ईश्वर, जीव, माया और संसार (भाग-२)

कृष्ण चरित्र (९ वें स्कन्ध से १० वां स्कन्ध पूर्वार्ध)

श्रीमद् महाभागवत महापुराण कथा

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- ट्रॅक्टो मॅटीक्स, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

* भागवतकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १
फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९ मो. ९३७१११६६८३

* प्रकाशन **नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट**
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

हर जलते दीपक तले अंधेरा होता है, हर रात के पीछे एक सबेरा होता है।
लोग डर जाते हैं मुसीबत को देखकर, हर मुसीबत के पीछे सुख का सबेरा होता है।

* मूल्य - कृष्ण भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

८) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

९) श्रीमती गीता जयप्रकाश गोयल
बिल्डिंग ९ए, ११ वां मजला, गंगा सॅटेलाईट,
वानवडी, पुणे- ४११०४० मो. ९८६०००० २२२
फोन नं. ऑ. २६१४०२५१ घर- २६८३७४३४

१०) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

११) श्री बनवारीलाल अगरवाल
१६-११-७४१/डी/३६, मूसारामबाग,
हैद्राबाद- ५०००३६ मो. ९४२४६३५४९१९

१२) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१३) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम, २९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१४) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१५) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
उत्तम टाऊनस्केपस्, फ्लॅट नं. (ए-१)-१०२,
सिरीन हॉस्पिटल के सामने, येरवडा, पुणे- ४११००६
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१६) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

१७) शंकरलाल रिणवाँ
धानूका आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रमण रेती,
वृंदावन- २८११२१ (यू.पी.) मोबाईल -०९७५६२५८२४२
फोन नं. ०५६५-३२९०८०४, २५४००७५, २५४०७३१

*** विशिष्ठ सहयोग *** १) श्री. कृष्णा वाडेकर, २) श्रीमती क्लेयरा गुडविन,
३) आरीफ इनामदार, ४) गणेश गुप्ता, ५) लेटीसीया कोलॅको, ६) अदिती वाईकर

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) नन्दकिशोर अग्रवाल

HHH(२)HHH

ईश्वर, जीव, माया और संसार (भाग-२)

श्रीकृष्ण चरित्र (९ वें स्कन्ध से १० वां स्कन्ध पूर्वार्ध)

श्रीमद् महाभागवत महापुराण कथा

तुम तो दीपक हो, जिसके पीछे पीछे प्रकाश चलेगा। तुम तो वो सूरज हो, जिसके पीछे पीछे आकाश चलेगा।
जिन राहों पर तुम कदम रख दो। उन राहों पर ही इतिहास चलेगा।।

विषयसूची

१)	यह ग्रन्थ जिनकी स्मृति में	४ से ६
३)	नवम स्कन्ध	७ से २६४
५)	दशम स्कन्ध पूर्वार्ध	२६५ से ९७६

* जिन्दगी में रंग है हजारों कभी आस, कभी प्यास, कभी अहसास चाहिए।
कभी कृष्ण की लीला हो, कभी राम का सा वनवास हो।।

* मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति बुद्धि नही है बल्कि उसकी सबसे बड़ी शक्ति है आस्था, श्रद्धा और अटूट विश्वास।

* हमारा देश श्रद्धाओं, मान्यताओं, परम्पराओं और अन्धविश्वासों का देश है, इसका आधार हमारे देश की भौतिक प्रगति में अवरोध है।

* बिना आधार की राजनीति और बिना समझदारी का अनियमित प्रशासन, अस्थायी सरकार ही क्रूरता, हिंसा, भय, स्वार्थ और भ्रष्टाचार को जन्म देती है।

* अन्यायपूर्वक दिया गया दण्ड भय, क्रोध, प्रतिरोध हिंसा, बगावत को जन्म देता है।

* सौ पुण्यों का फल देती है राधा की अंखियां, डूब चुके हैं शायद इनमें सब सागर और नदियां।
राधा के तन की खुशबू दिशा-दिशा महकाए, अधरों पर कान्हा की बंसी मीठा राग सुनाए।।

* कथा कीरतन कृष्णको, करैं नियमतें नारिनर। फँसे न तो जगफन्दमें, यही मार्ग है सुगतिकर।।
ब्रह्मा भूल्या वेद पढ़ी, व्यास पढ़ी पुराण। रचना एक शुकदेव लिखी सो जीवन भगत प्रमाण।।

* इबादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना में। इबादत तो नहीं है इक तरह की वह तिजारत है।।
मगर जब शुक्र नेहमत में, जुबाँ झुकती है बन्दे की। वही सच्ची इबादत है, वही शाही इनायत है।।

* भ्रष्ट है जब तक आपके विचार है, तब तक दूषित है आपके सभी व्यवहार।

जिनकी मधुर स्मृति में

प्रस्तुत वेदभाष्य के प्रकाशन में एक दिवंगत आत्मा की भी पावन स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, जो भारत के औद्योगिक आकाश में अपनी धवल कीर्ति के नये कीर्तिमान स्थापित करके चिर-स्मरणीय हो गया। देश और विदेश में जहाँ-जहाँ हीरो होंडा पर सवार होकर लोग हवाओं से बातें करेंगे, उसके निर्माता को प्यार और प्रशंसा से स्मरण करेंगे।

१९४९ की दो जुलाई को मुंजाल परिवार में एक शिशु ने आगरा में जन्म लिया, जिसका नाम रक्खा गया रमनकान्त। किशोरावस्था से ही यह बालक बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था मेधावी होने के साथ-साथ कठोर परिश्रमी भी था। मणिपाल टैक्नॉलॉजी संस्थान से मैकेनिकल इंजिनीयरिंग में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। चार सुपुत्रों के पिताश्री बृजमोहनलाल मुंजाल का **हीरो साइकल उद्योग** समूचे देश में पहले से प्रतिष्ठित था। अग्रज सन्तान रमनकान्त ने लुधियाना में हाइवे साइकल उद्योग लि. को १९७१ में सम्भालते ही, ऐसी निष्ठा के साथ अपने सहयोग से हीरो होंडा की रचना द्वारा देश को पवन गति प्रदान करके, पिता द्वारा स्थापित व्यवसाय को रमनजी ने देश की सीमाओं के पार फैलाकर सिद्ध कर दिया कि वह योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान थे। उद्योग की लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ३१ मई १९९१ के दिन कम्पनी ने हीरो होंडा सी. डी. १०० की पाँच लाख मोटर-साइकल्स के उत्पादन का लक्ष्य पूरा करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। हमारे शास्त्रों में सत्य ही कहा गया है- उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी। सचमुच रमनजी उद्योग कानन के सिंह पुत्र निकले।

किन्तु, लक्ष्मी केवल धन-वैभव का नाम ही तो नहीं है। सच्ची दौलत तो मनुष्यता है। रमनजी वस्तुत: मनुष्यता के उपासक थे। जिनके सहयोग से उन्होंने सफलताएँ और उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, उन श्रमिकों के पसीने की बूँदों से भी उन्हें प्यार था। उनके हितों का सरंक्षण करने में रमनजी सदैव तत्पर रहे। जरूरतमन्दों को भरसक सहयोग देने में वह निरन्तर अग्रणी रहे। दरिद्र ग्राम-बन्धुओं को उन्होंने तन-मन-धन से सहयोग दिया। अनेको विकलांगों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार उनके पाँवों पर खड़ा किया। देश की युवा पीढ़ी को आधुनिक शिक्षा सुलभ कराने हेतु, संगणकीकृत तकनीकी विधियों का संयोजन कराया और देश को आधुनिक शिक्षितों की एक सर्वगुण-सम्पन्न पीढ़ी उपलब्ध कराने में पहल की।

यह सब वही कर सकता है जो सेवाभावी पवित्रात्मा हो, जिसे एक वैभवशाली उद्योगपति होने का दम्भ और दर्प न हो, जो दैवी उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत हो, जो दया-ममता का अजस्र निर्झर हो, जिसके मन में दलितों और मजदूरों के प्रति सच्ची सहानुभूति हो, जिसमें उद्योग की स्पर्धा तो हो किन्तु ईर्ष्या-द्वेष न हो, जो ईश्वर-परायण हो और आस्तिकता में रचा-बसा हो। रमनजी सचमुच सबके सखा थे। उनके मित्रों का दायरा विशाल और विस्तृत था। उनके अधीनस्थ, उनके कर्मचारी और सेवक भी उन्हें अपना सखा और बन्धु ही मानते थे, तभी तो हर कोई उन्हें प्यार से रमनजी पुकारता था।

समय के एक-एक पल को पूरे उत्साह और कर्मठता से जीना, हर महफिल में अपने ठहाकों और चुटकुलों से रंगीनियाँ भर देना, दूसरों की पीड़ाओं को मुस्कानों में बदल देना, सोच-समझकर वचन देना और दिये हुए वचन को हर हाल में निभाना, बेरोजगारों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराना, हर काम का प्रारम्भ ईश्वर के स्मरण और अग्न्याधान-यज्ञादि से करना, दु:खों और दु:खों में समभाव से रमण करना- यही तो वे गुण हैं जो रमनजी को प्रिय थे। तभी तो वे रमनकान्त थे। स्वनाम-धन्य लोग सचमुच विरले ही होते हैं और रमनकान्त विरले ही थे परतु,

परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते।

HHH(४)HHH

देहधारी चाहे कितना ही पुण्यात्मा हो, भगवान श्रीराम हो या भगवान श्रीकृष्ण, देहत्याग तो होगा ही।

धन्य हैं वे लोग, जो देहधारी होते हुए भी अन्तरात्मा के आदेश पर चलते हैं और जीवन के अन्तिम क्षणों में भी कर्मठता के प्रतीक बने रहते हैं। १८ जून १९९१ को रमनजी ने हमेशा की तरह अपने कार्य-कक्ष में बैठकर स्वभाविक शैली में काम निपटाया। शाम को सहसा स्वयं को असहज पाया। तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया। किन्तु दूसरों के लिए ममता के मारे धड़कनेवाला दिल सारी मोह-ममता के बन्धन तोड़ गया। शरीर तो पंचतत्व में विलीन हो गया किन्तु अपनी सुखद स्मृतियों से हजारों-लाखों को रूला गया।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि प्रभो। मुंजाल-परिवार के सभी सदस्यों को पर्याप्त शक्ति, धैर्य और संयम प्रदान करें। संसार में जन्म लेना उसी का सार्थक माना जाता है जिसके द्वारा वंश की समुन्नति होती हो। इस परिप्रेक्ष्य में रमनकान्तजी की सुखद-स्मृतियों को हम श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। मरणोपरान्त भी मनुष्य को सम्मान से स्मरण किया जाय तो उसी का जीवन सार्थक है वह जीवित है। हमारा पूरा समाज व नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन न्यास के सभी सदस्य भावभीनी अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली अर्पित करते है।

*** तेरे आने का आज भी, इन्तजार किया करते हैं। लोग कहते हैं जानेवाले, कभी नहीं आया करते।।**

*** आरजू के महल बनते है और बिखर जाते हैं, रेत पर लिखे नाम, लहरों से मिट जाते है,**
ये जन्मों का बन्धन है टूटता ही नहीं, लाखों रिश्ते यहां जुडते है, बिगड जाते हैं।

*** दूर जाकर भी तुमसे, दूर जा न सके। कितने रोये किसी से बता न सके।**
गम ये नहीं कि आप मिल ना सके, दर्द सिर्फ ये है कि आपको एक पल के लिए भी भुला ना सके।

*** आंसू की कीमत वही जानते हैं, जो किसी को याद करते हैं।**
दिल का गम वो जानते हैं, जो किसी को चाहते हैं।
प्यार का दर्द वही जानते हैं, जो दिल से प्यार करते हैं।

*** सीढ़ियां उनके लिये होती है जिन्हें छतपर जाना होता है,**
आसमां पर हो जिनकी नजर, उन्हें तो रास्ता खुद बनाना पड़ता है।।

*** मरना है एक बार तो किस बात का डर है, जो हो गये शहीद उनका नाम अमर है,**
इतिहास के पन्नों में सदा उनके नाम का जिक्र है, ऐसे ही उद्योगी पुरुषों मे ऊंचा आपका नाम है।

*** आसमान के तारे अक्सर पूछते हैं हमसे, क्या तुम्हें आज भी इंतजार है उसके लौट आने का,**
और ये दिल मुस्कुराकर कहता है, मुझे तो अब तक यकीन ना हुआ उसके चले जाने का।।

*** जीवन एक नाटक है और हम करतार के द्वारा भेजे गये विभिन्न भूमिका निभानेवाले पात्र।**
जब हमारा अभिनय खत्म हो जाता है, हमें वापिस बुला लिया जाता है।

जिनकी मधुर स्मृति में (श्री शादी लाल मिण्डा)

है बुद्धिमान वो ही इस जग में जो अपनी राह स्वयं बनाता है। कोई चलता है पद चिन्हों पर और कोई पद चिन्ह बनाता है।।

शादी लाल जी मिण्डा हमारे परम मित्रों में से व पारिवारिक सदस्यों में से एक थे जिनसे हमारा सम्पर्क सन १९७८ में हुआ। १४ अप्रैल, २०१० को उनकी लोक विदाई सुनकर हृदय विदीर्ण हुआ। वे ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने उच्च कोटि की मित्रता व रिश्तेदारी निभायी। शादी लाल जी का जन्म हरियाणा हिसार जिले में ८ मार्च, १९३० को एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनका व्यापार दार्जिलिंग व कलकत्ता में था। मिण्डा जी एक महान सामाजिक कार्यकर्ता रहे हैं। उन्होंने दार्जिलिंग में एक पुस्तकालय की स्थापना की जो आज भी वहांपर विद्यमान हैं, और लोगोंकी ज्ञान पिपासा की तुष्टि करता है। वहींपर उनके द्वारा स्थापित धर्मशाला भी हैं जहांपर मुसाफिरों का ठहरनेके लिये उत्तम प्रबन्ध है।

दार्जिलिंग में उच्च शिक्षण प्राप्त करने के बाद आप श्री भिवानी आ गये। १९५४ में आपका शुभविवाह सावित्रीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। १९५६ में कमला नगर, दिल्ली में मिण्डा इण्डस्ट्रीज के नाम से उद्योग स्थापित किया जो आज बड़े विशाल रूप में देखा जा रहा है। उनका यह उद्योग प्रतिष्ठान वजीरपुर क्षेत्र दिल्ली में है। आज जगह-जगह उसके कई बहुयामी शाखाएं हैं कुन्डली, सोनीपत, गुड़गाँव, नोएड़ा, पूना, बैंगलूर, मुम्बई, मद्रास व इण्डोनेशिया में उद्योग स्थापित किये। मिण्डा समूह का उद्योग उच्च तकनीक की वजह से विदेशों में जर्मन, अमेरिका, जापान, इटली व ताइवान जैसे देशों में संयुक्त उपक्रम के माध्यम से कार्यान्वित हो रहा है। इन उद्योग प्रतिष्ठानों मे स्वचालित वाहन विद्युत ऊर्जे बनाये जाते हैं और पूरे देश में पूर्ति की जाती है व विदेशों में निर्यात किये जाते हैं।

आप श्री उद्योग प्रतिष्ठान सम्भालते हुए सामाजिक, धार्मिक कार्यक्रमों के लिये रत रहते थे और तन-मन से सहयोग देते थे। भारत देश के विकास के प्रति आपका बेहद लगाव था। मित्रता, सहानुभूति, सद्भाव जैसे गुणों का विकास आपमें था। कई संस्थाओं में आप अध्यक्ष पद पर रह चुके थे व कई धार्मिक संस्थाओं में न्यासी के पद पर भी प्रविष्ट हुए। दिल्ली में आपने अग्रसेन हॉस्पिटल एवं अग्रसेन धर्मशाला का निर्माण किया जिसका संचालन आज भलीभांति हो रहा है। आपके उच्च चरित्र व्यक्तित्व से व दूरदर्शिता के कारण सम्पूर्ण अग्रवाल जाति आपके कार्यकलापों से आकर्षित हो रही है। गुजरात में आये विनाशकारी भूकम्प के समय व्यक्तिगत जाकर लोगों की सेवा की। समाज सेवा में निष्ठ होकर व्यापार का दायित्व अपने योग्य पुत्रों श्री निर्मल मिंडा व अशोक मिंडा को सौंपकर शेष जीवन समाज व देश की सेवा में अर्पित किया। अलीपुर दिल्ली में आपने बालग्राम के नाम से अनाथालय की स्थापना की, जिसमें निराश्रित बच्चों का पालन-पोषण, शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि का पूर्ण प्रबंध सुरक्षित वातावरण में किया जहाँपर आज भी सौ से अधिक मातृ-पितृ हीन बच्चों की परवरिश होती है। जिसका संचालन बिना किसी सरकारी आर्थिक सहयोग के व्यक्तिगत रूप में आपके द्वारा ही किया जाता है। बालग्राम के अनाथ बच्चे शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक, सांस्कृतिक, अनुशासन के संस्कार पाते हैं और चरित्रसे परिपूर्ण होते हैं। बालग्राम का प्रत्येक बच्चा डॉक्टर, इंजिनियर, आई.ए.एस. आय.पी.एस. ऑफिसर हुए हैं। आपने इसको एक आदर्श गाँव बनाने का बीड़ा उठाया हैं जहाँ पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रारम्भ कर युवाओं को शिक्षित किया जाता है। युवाओं के लिये संगणकीकरण प्रशिक्षण, महिलाओं के लिए सिलाई, बच्चों के लिए बालविकास कार्यकमों को आयोजित किया। गाँव में आपने ज्वाला माई मंदिर का निर्माण कराया।

कुरुक्षेत्र में धर्मशाला, आँखों का अस्पताल एवं गुरुकुल आप ही के द्वारा संचालित किये जा रहे हैं जिससे प्रत्यक्ष रूप से समाज का कमजोर वर्ग लाभान्वित हो रहा है। आपका उद्देश्य गाँव में शिक्षा व स्वास्थ्य गुणवत्ता को बढ़ाना है। गाँवोंमें आपने विशाल कुँए और तालाब बनवायें। आपकी कार्यप्रणाली, कर्मठता एवं अनुशासन आनेवाले समाज के लिए एक प्रेरणा स्रोत हैं। आप ही की तरह आपके पुत्र रत्न निर्मल व अशोक ने आपकी कार्यप्रणाली को चालू रखते हुए सामाजिक, धार्मिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की। ऐसे महान आदर्शोंवाले व्यक्ति से हमें जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। वे हमारे परिवार के सुहृद एवं निकटतम् मित्र रहे हैं हमारा पूरा परिवार उनको भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। उस दिवंगत आत्मा को चि:रशांति प्राप्त हो यही ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और मेरा यह भागवत ग्रन्थ भाग-२ उनकी पुण्यस्मृति में समर्पित हैं।

नवम स्कन्ध

विषय सूची

१) वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन १३

२) राजा शर्याति का वंश और महर्षि च्यवन ऋषि का वृत्तान्त २१

३) राजा अम्बरीष की कथा २५

४) मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा ३५

५) राजा त्रिशंकु की कथा ४०

६) राजा हरिश्चन्द्र की कथा ४१

७) राजा सगर की कथा ४५

८) भगीरथ चरित्र और गंगावतरण ४८

९) राजा सौदास और खटवांग का चरित्र ५२

१०) राम अवतार (संक्षिप्त रामायण) ५४

११) इक्ष्वाकुवंश, निमिवंश और चन्द्रवंश १७२

१२) चन्द्रवंश का वर्णन १७९

१३) राजा पुरुरवा का चरित्र १८२

१४) परशुराम अवतार व विश्वामित्र चरित्र १९४

१५) राजा ययाति का आख्यान २०४

१६) पुरु वंश और राजा दुष्यन्त पुत्र भरत का चरित्र २१८

१७) महाराज रन्तिदेव की कथा २३०

१८) जरासन्ध तथा पाण्डवोंके वंश की कथा २३६

१९) यदुवंश और बृष्णि वंश का परिचय २५८

सूर्यवंश

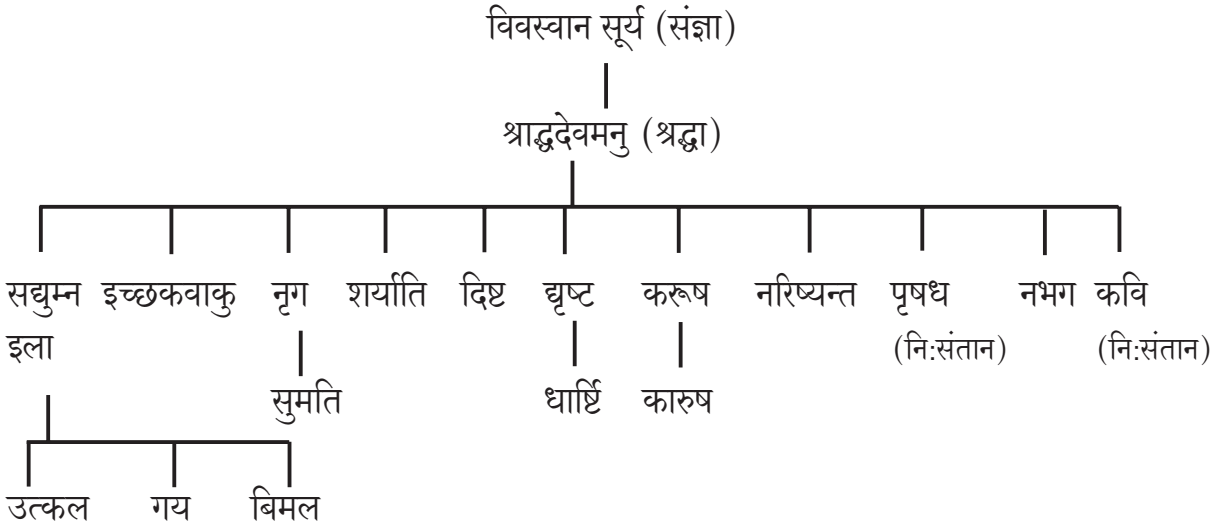
विवस्वान सूर्य (संज्ञा)
श्राद्धदेवमनु (श्रद्धा)
सद्युम्न
इला
इच्छकवाकु
नृग
सुमति
शर्याति
दिष्ट
द्यृष्ट
धार्ष्टि
करूष
कारुष
नरिष्यन्त
पृषध
(नि:संतान)
नभग
कवि
(नि:संतान)
उत्कल
गय
बिमल

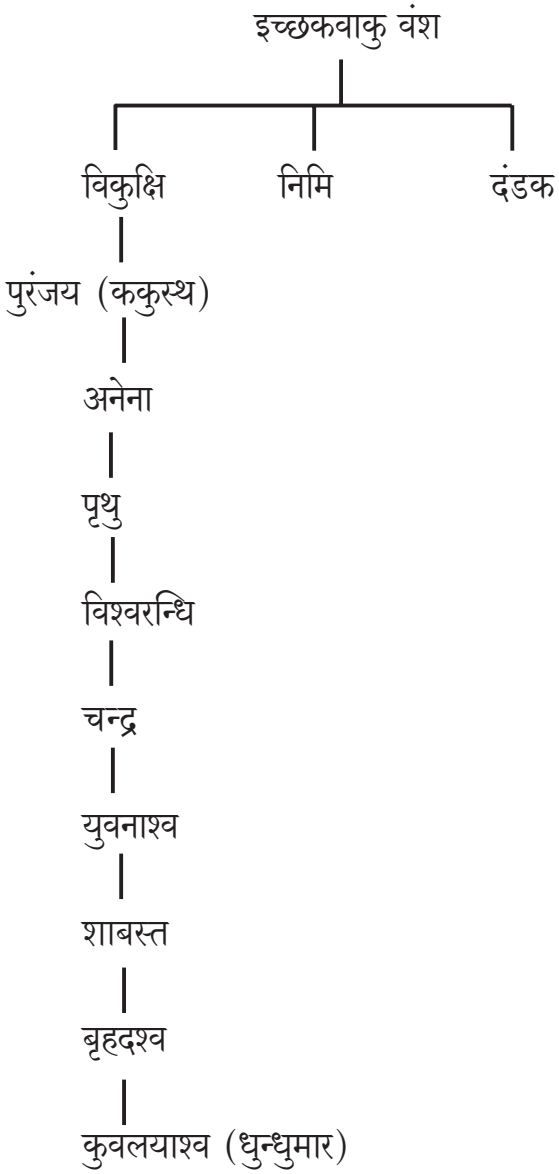
इच्छकवाकु वंश
विकुक्षि
निमि
दंडक
पुरंजय (ककुस्थ)
अनेना
पृथु
विश्वरन्धि
चन्द्र
युवनाश्व
शाबस्त
बृहदश्व
कुवलयाश्व (धुन्धुमार)

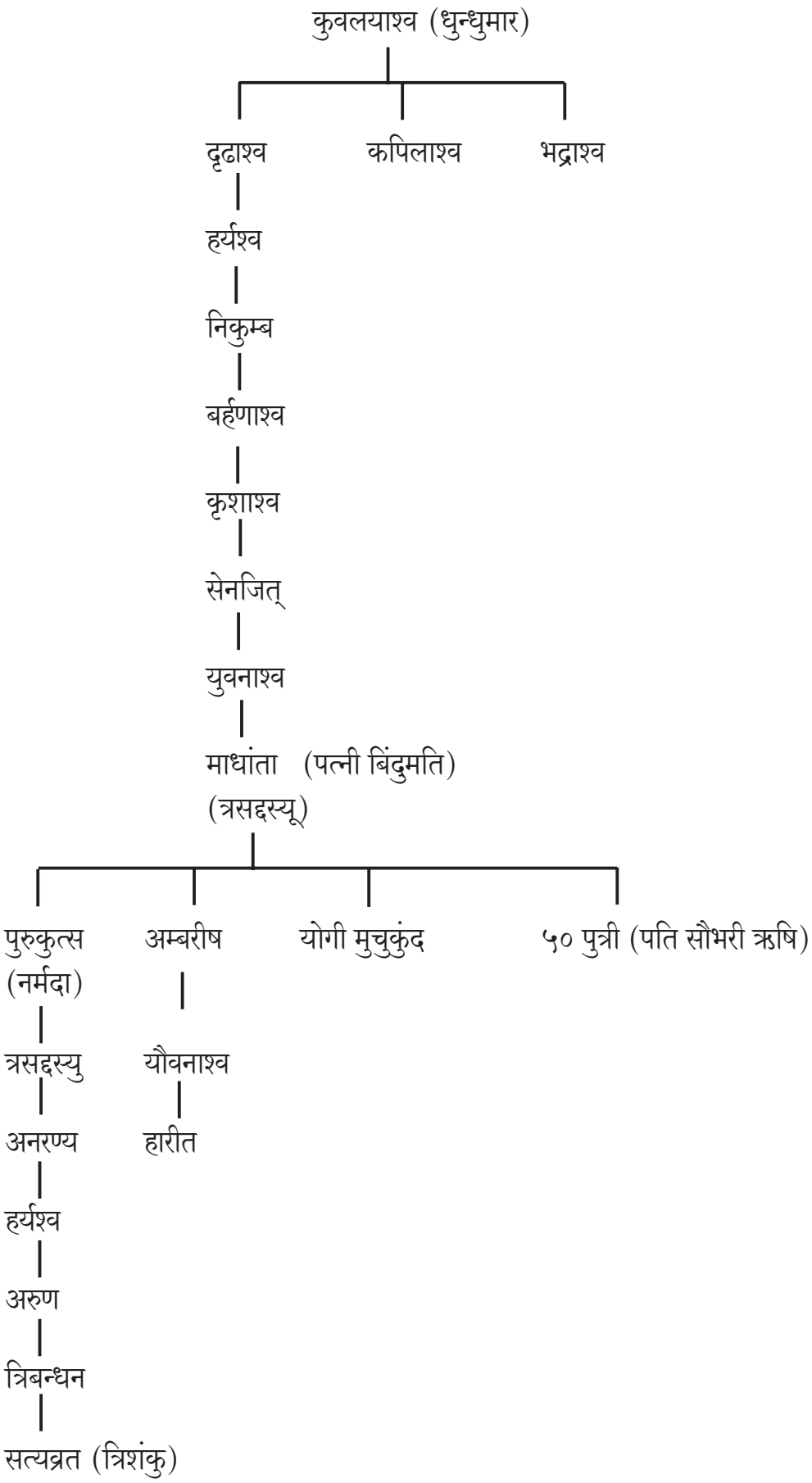
कुवलयाश्व (धुन्धुमार)
दृढाश्व
कपिलाश्व
भद्राश्व
हर्यश्व
निकुम्ब
बर्हणाश्व
कृशाश्व
सेनजित्
युवनाश्व
माधांता (पत्नी बिंदुमति)
(त्रसद्दस्यू)
पुरुकुत्स
(नर्मदा)
अम्बरीष
योगी मुचुकुंद
५० पुत्री (पति सौभरी ऋषि)
त्रसद्दस्यु
यौवनाश्व
अनरण्य
हारीत
हर्यश्व
अरुण
त्रिबन्धन
सत्यव्रत (त्रिशंकु)

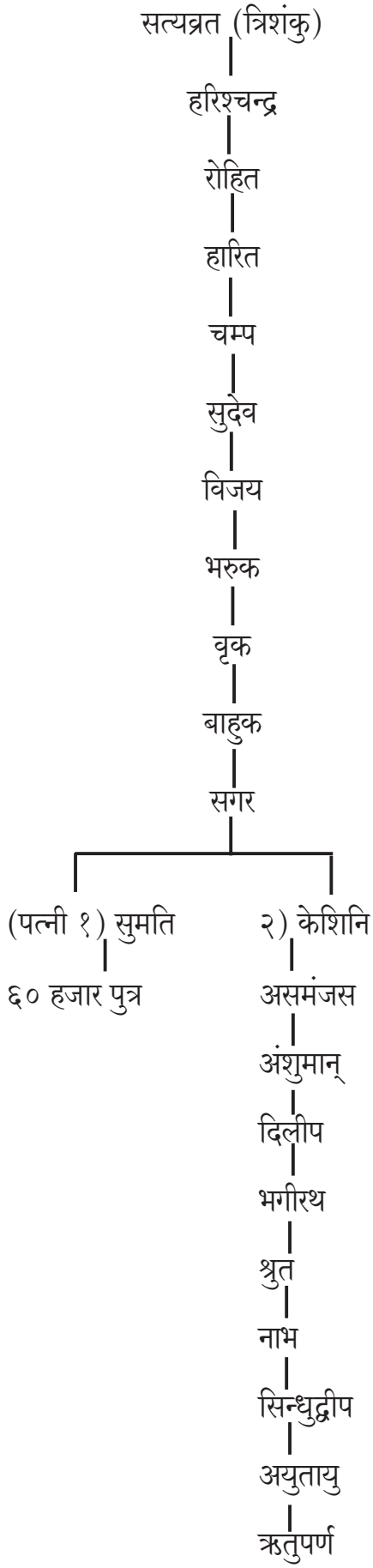
सत्यव्रत (त्रिशंकु)
हरिश्चन्द्र
रोहित
हारित
चम्प
सुदेव
विजय
भरुक
वृक
बाहुक
सगर
(पत्नी १) सुमति
६० हजार पुत्र
२) केशिनि
असमंजस
अंशुमान्
दिलीप
भगीरथ
श्रुत
नाभ
सिन्धुद्वीप
अयुतायु
ऋतुपर्ण

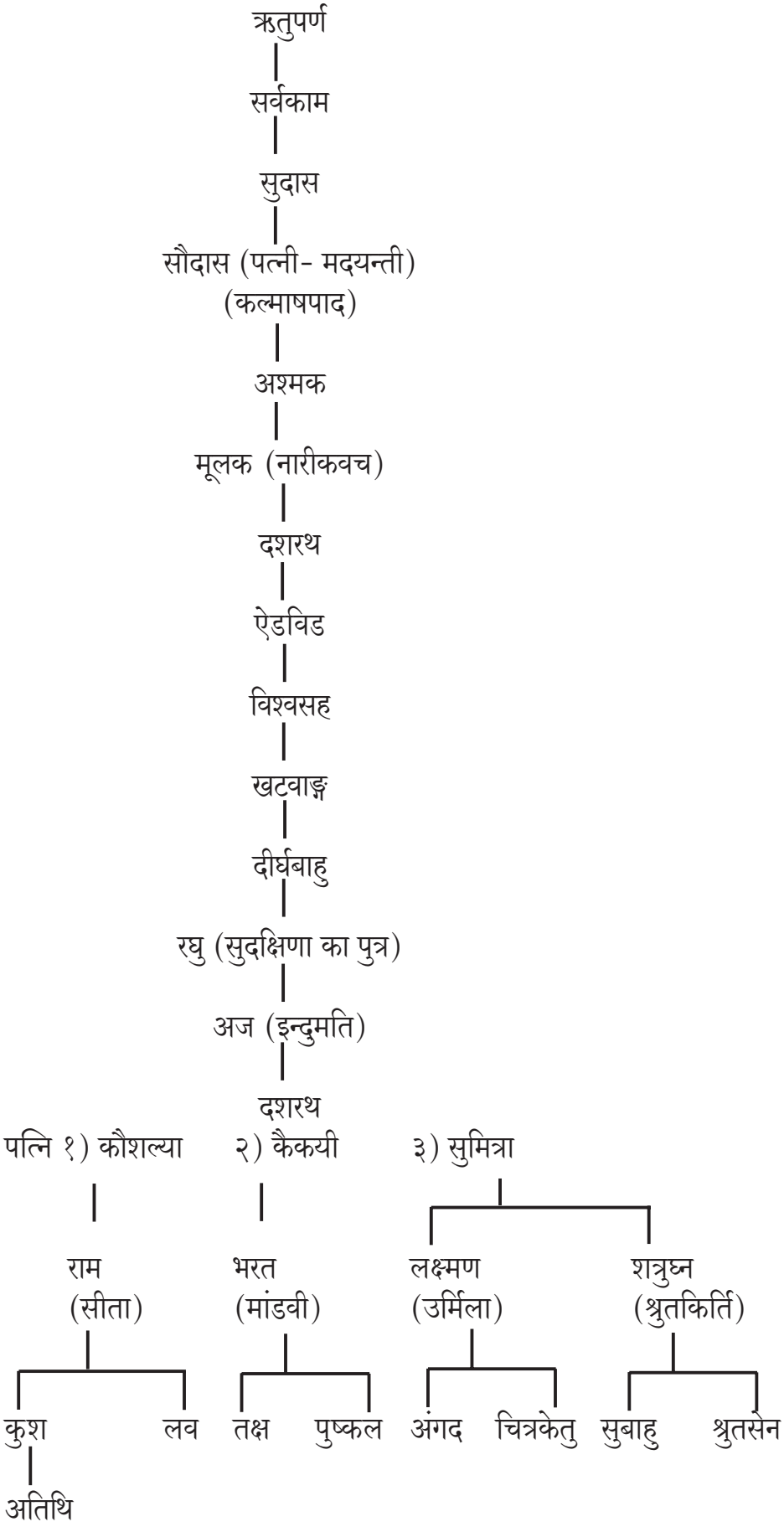
ऋतुपर्ण
सर्वकाम
सुदास
सौदास (पत्नी- मदयन्ती)
(कल्माषपाद)
अश्मक
मूलक (नारीकवच)
दशरथ
ऐडविड
विश्वसह
खटवाङ्ग
दीर्घबाहु
रघु (सुदक्षिणा का पुत्र)
अज (इन्दुमति)
दशरथ
पत्नि १) कौशल्या
२) कैकयी
३) सुमित्रा
राम
(सीता)
भरत
(मांडवी)
लक्ष्मण
(उर्मिला)
शत्रुघ्न
(श्रुतकिर्ति)
कुश
लव
तक्ष
पुष्कल
अंगद
चित्रकेतु
सुबाहु
श्रुतसेन
अतिथि

HHH(११)HHH

अतिथि
निषद
नभ
पौण्ड्रिक
क्षेमधन्वा
देवानीक
अनीह
पारियात्र
बलस्थल
वज्रनाभ
खगण
विधृति
हिरण्यनाभ
पुष्य
ध्रुवसन्धि
सुदर्शन
अग्निवर्ण
शीघ्र
मरू
प्रसुश्रुत

प्रसुश्रुत
सन्धि
अमर्षण
महस्वान
विश्वसाह्व
प्रसेनजित
तक्षक
बृहद्बल
बृहद्रण
उरुक्रिय
वत्सवृद्ध
प्रतिव्योम
भानु
दिवाक
सहदेव,
बृहदश्व
भानुमान
प्रतीकाश्व
सुप्रतीक
मरुदेव

मरुदेव
सुनक्षत्र
पुष्कर
अन्तरिक्ष
सुतपा
अमित्रजित्
बृहद्राज
बर्हि
कृतञ्जय
रणञ्जय
संजय
शाक्य
शुद्धोद
लाङ्गल
प्रसेनजित
क्षुद्रक
रणक
सुरथ
सुमित्र

नवम स्कन्ध

१) वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन- कल्प के आदि में जब महाप्रलय की स्थिति थी तब एकमात्र नारायण ही थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ। उसी पर ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मानस पुत्रों में एक थे मरीचि। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए उनकी पत्नी अदिति के गर्भ से विवस्वान (सूर्य) का जन्म हुआ। विवस्वान् की संज्ञा नामक पत्नी से श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ।

प्रकृति में भी सौरशक्ति और चन्द्रशक्ति ये दो विभाग हैं? पुरुष का शरीर सौर शक्ति प्रधान है और स्त्री का शरीर चन्द्र शक्ति प्रधान है। सूर्य से अग्नि, प्राण तथा बुद्धि प्रधान मानते हैं और चन्द्रमा को सोम, प्रियता तथा मन प्रधान मानते हैं। सोम का अर्थ आकाश में दीखनेवाला चन्द्र पिण्ड नहीं? सोम वह रस है जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त और सबके हृदय में प्रियता के रूप में प्रकट होता है। वैवस्वतु मनु की प्रधानता से सूर्यवंश हुआ तथा निमि की प्रधानता से चन्द्र वंश हुआ। सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही निष्काम कर्मयोग के उदाहरण हैं।

मनतें पुत्र मरीचि मुनि, तिनिके कश्यप प्रजापति। विवस्वान तिनिके तनय, जिनको जगमहँ तेज अति।।

यह श्राद्धदेव मनु पिछले जन्म में द्रविड़ देश के अधिपति सत्यव्रत राजा थे, जिन्हें मत्स्य भगवान ने ज्ञान प्रदान किया था। श्राद्धदेव मनु को वैवस्वत मनु के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने अपनी पत्नी श्रद्धा के गर्भ से- इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुप, नरिष्यन्त, पृषध्, नभग और कवि ये दस पुत्र उत्पन्न किये थे। मनु पुत्रोंमें किसीने ज्ञानमार्गको पुष्ट किया; किसीने वैराग्य-मार्गको पुष्प किया, किसीने भक्ति-मार्गको पुष्ट किया और किसीने प्रतिज्ञा-पालन मार्गको पुष्ट किया।

विवस्वान्के पुत्र भये श्रीवैवस्वत मनु। तिनतें श्रद्धामाहिँ भये दस सुत इन्द्रिय जनु।।
इक्ष्वाकु, शर्याति, दृष्टि अरु धृष्ट, नभग, कवि। नृग, करूष, नरिसन्त, पृषध्रहु वंश बिदित रवि।।
इन सबके पहिले भये, सुत सुद्युम्न विचित्र अति। नरतें नारी बनि गये, है विचित्र श्रीशम्भु गति।।

संसार में जितने भी विश्वकर्मा निर्मित पदार्थ हैं उन सबकी कोई-न-कोई संज्ञा है। संज्ञा के बिना कोई पदार्थ नहीं। संज्ञावान् पदार्थ के साथ उसकी छाया अवश्य रहती है अँधेरे में सब वस्तुओं के रहते हुए भी उनकी संज्ञा अज्ञात रहती है। घट, पट, वस्त्र, आभूषण विविध पदार्थ रखे हैं। यदि अन्धकार है तो उनका विवेक नहीं होता। प्रकाश के बिना छाया भी अव्यक्त नहीं होती, अत: संज्ञा और छाया के स्वामी विवस्वान् सूर्यदेव हैं। उनसे ही श्राद्धदेव आदि धर्म प्रवर्तकों की उत्पत्ति होती है। यहाँ जितने भी राजाओं का वर्णन आया है वे सब भगवान के भक्त हुए कोई सत्यके द्वारा, किसीने भक्तिके द्वारा, किसीने गुरुसेवा के द्वारा, किसीने न्याय के द्वारा अपने जीवनमें ऐसी निष्ठा धारण की, जिससे भगवान उनपर प्रसन्न हुए। उनमें कोई-न-कोई गुण ऐसा था जिसके द्वारा भगवान ने उनको अपना लिया।

वैवस्वत मनु को कोई सन्तान न थी अत: गुरु वसिष्ठ ने पुत्र के निमित्त इनसे पुत्रेष्टि यज्ञ (पित्रावरूण यज्ञ) करवाया। मनु की पत्नी श्रद्धा यज्ञ में दीक्षा लेकर केवल दूध पीकर ही रहा करती थी। यज्ञ के प्रारम्भ में ही होता बने हुए ब्राह्मण के पास में जाकर श्रद्धा ने धीरे से कहा- भगवन्, आप ऐसे मन्त्रों को पढ़कर कुण्ड में आहुति डालें जिससे मुझे कन्या हो। होता ने रानी की बात मान ली फिर अध्वर्यु की प्रेरणा से होता ने कन्या का ध्यान कर यज्ञ-कुण्ड में आहुति डाली। फल विपरीत

हुआ। पिता श्राद्धदेव मनुका मन था कि बेटा हो और माता श्रद्धाका मन था कि बेटी हो। श्रद्धाने जाकर होतासे कह दिया कि कुछ ऐसा कर दो कि हमारे कन्या हो जाये। राजाकी अपेक्षा रानीकी ज्यादा सुनी गयी।

रानी इच्छा करी पुत्र नहिँ पुत्री होवे। होता आहुति दई लोभ संकल्पहिँ खोवे।।

इला नाम कन्या भई, मनु मनमहँ चिन्तित भये। गुरु सन बोले दुखित ह्वै, मन्त्र व्यर्थ च्यौं ह्वै गये।।

पुत्र के स्थान पर एक सर्वांग सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। कन्या का नाम रक्खा गया- इला। वैवस्वत मनु इससे प्रसन्न नहीं थे। वे गुरु वसिष्ठ के पास गये और बोले- गुरुदेव, आपके निर्देशन में होनेवाले यज्ञ का यह उल्टा फल कैसे हो गया। पुत्र के स्थान पर पुत्री कैसे पैदा हो गई? वसिष्ठजी ने ध्यान लगाकर सारी बातों को जान लिया और कहा- मनु, यह गड़बड़ी होता के विपरीत संकल्प से हुई है महारानी ने पुत्री की कामना करी और होता से पुत्री के उत्पन्न होने का मन्त्र पढ़ने को कह दिया। अब मैं अपने तप के प्रभाव से इसे एक सुन्दर पुत्र के रूप में परिवर्तित कर दूँगा। इस प्रकार मनु को आश्वासन देकर गुरु वसिष्ठ ने भगवान नारायण की स्तुति की। भगवान ने पूछा- वसिष्ठ क्या चाहते हो? वसिष्ठ ने कहा- प्रभो, इला लड़का बन जाय, यह पुत्री पुत्र बन जाय- यही आपसे हमारी विनती है। भगवान ने कहा- वसिष्ठ, ऐसा ही होगा। राजकुमारी राजकुमार बन जायेगी। जगदीश्वर की इच्छा से लड़की लड़का बन गई। उसका नाम रक्खा गया- सुद्युम्न।

सुद्युम्न बड़ा हुआ, तरुण बना। एक दिन वह शिकार खेलने की इच्छा से घोड़े पर सवार होकर कुछ मन्त्रियों के साथ उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत की तलहटी में जा पहुँचा। सुमेरु पर्वत तीनों लोकों का आधार स्तम्भ है। वहाँ पहुँचते ही सुद्युम्न स्त्री बन गया। घोड़ा-घोड़ी बन गई। यही स्थिति मन्त्रियों और उनके वाहनों की भी हुई। इस अद्भुत परिवर्तन को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो एक दूसरे को देखने लगे। किसी की समझ में कुछ नहीं आया। मनुय पर देश और काल का बड़ा प्रभाव पड़ता है। काल विपरीत हो जाने से अच्छे अच्छों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, इसी प्रकार देश के गुणों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

नर से नारी हो गये, सुद्युम्न राजकुमार। देखि बुध मोहित भये, ब्याही सुन्दर नारि।।

घोड़ी घोड़ी भये लोग सब भये लुगाई। नरतैं कैसे नारि बने सुधि बुधि बिसराई।।

परम सुन्दरी भई फिरें इत-उत सब वनमहँ। इला रूप सर काम घुस्यो श्री बुधके मनमहँ।।

तब इस घटना को सुनकर राजा परीक्षित बोले- भगवन्, उस भूखण्ड में ऐसा विचित्र गुण कैसे आ गया? यह कैसा अद्भुत देश हैं, जहाँ पहुँचते ही पुरुष स्त्री बन जाता है? शुकदेव बोले- राजन्, एक दिन की बात है। भगवान शंकर जगदम्बा पार्वती के साथ रमण कर रहे थे। वस्त्र-विहीन पार्वती शंकर की गोदी में मचल रही थीं। रति का रंग अपने पूरे शबाब पर था। मालूम पड़ रहा था कि कामदेव आज शंकरसे अपनी हार का बदला व्याज के साथ चुकता कर रहा था।

उस सरवण प्रदेश में प्रिया के साथ पुराण पुरुष पशुपति प्रेमभरित हृदय से विविध भाँति की सुखकर क्रीड़ायें कर रहे थे। भगवती उमा देवी वृषभध्वज की गोद में क्रीड़ा कर रही थी। प्रेम के झरने झर रहे थे, स्नेह की सरिता बह रही थी, आनन्द का समुद्र उमड़ रहा था, सौहार्द का सागर हिलोरें ले रहा था, अनुराग का प्रवाह निरन्तर निकल रहा था। उसी समय रंग में भंग हो गई।

सुमेरु पर्वत की तलहटी में जहाँ बारहों महीने बसन्त की छटा छिटकती रहती है, जहाँ प्रकृति सुन्दरता के साथ नग्न होकर स्वच्छन्द नृत्य करती रहती हैं वहाँ भगवान विश्वनाथ अपनी प्रिया पार्वती के साथ नित नूतन काम क्रीड़ायें किया करते हैं।

प्रकृति पुरुष का नित्य विहार वहाँ होता रहता है। अज्ञानवश जीव इस जगत् को दु:ख का सागर समझता है। वास्तव में तो यह जगत् उन विहारी का विहार स्थान है। उन नटराज के नृत्य की रंगस्थली है वे उसमें अपनी सहचरी सखी के साथ सुखद क्रीड़ायें किया करते हैं। उस पुण्यप्रदेश के दस योजन विस्तृत प्रान्त का नाम सरवण प्रदेश है। वहाँ शिवा और शिव का नित्य विहार हुआ करता है। नित्य विहार में सरस प्राणियों का ही अधिकार है। जो नीरस हैं, कठोर हृदय के हैं जड़ नियमों में ही जिनका अत्यधिक आदर है, वे नित्य विहार को देखना तो पृथक रहा, उसके श्रवण के अधिकारी नहीं, ऐसे रूक्ष प्रकृति के पुरुषों को जो नित्य विहार की कथा सुनाते हैं, वे पाप कमाते हैं, अपने परलोक को बिगाड़ते हैं और स्वयं उस मार्ग से भ्रष्ट होते हैं। नित्य विहार में एक उन विहारीरमण श्रेष्ठ को छोड़कर सब सहचरी ही होती हैं। पुरुषाभिमानी की वहाँ गति नहीं, निवाह नहीं। यदि भूल से वहाँ भी जायँ, तो उन्हें वहाँ से उलटे परों लौटना पड़ता है।

मेरु निकट अति सुधर वन, जहँ झर झर झरना झरहिं। उमा संग तहँ कपरदी, कमनीया क्रीड़ा करहिं।।

सरसता में निरसता ने पदार्पण किया। कुछ ऋषि मुनि मिलकर जगत् सत्य है अथवा मिथ्या इसकी जिज्ञासा के लिये शिवजी के दर्शनार्थ उस प्रान्त में पधारे।

मन्मथ- कामदेव। भगवान कृष्ण के मन से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसका वर्ण तपाए हुए स्वर्ण के समान था। पांच बाणों (मारण, स्तंभन, जृंभृण, शोषण एवं उन्मादन) से सुसज्जित वह द्युतिमान पुरुष समस्त प्राणियों के मन को मथ डालता है, क्षुब्ध कर देता है, इसीलिए बुद्धिमान लोग उसे मन्मथ (कामदेव) कहते हैं।

उसी समय कुछ ऋषि-गण व सनतकुमार सनकादिक चारों भाई शंकर भगवान का दर्शन करने पहुँचे। ऋषियों को आया देखकर पार्वती अत्यन्त लजा गईं। झटपट शंकर की गोद से उत्तर कर उन्होंने वस्त्र धारण करना प्रारम्भ किया। यह दृश्य देखकर ऋषि-गण वहाँ से लौटकर नर-नारायण के आश्रम पर चले गये।

परस्त्री को नग्न देखना पाप है, यद्यपि हमने स्वेच्छा से यह सब नहीं किया, फिर भी नियम भंग तो हुआ ही। सभी नियम भंगों का सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ एक ही प्रायश्चित्त है, श्रीमन्नारायण की शरण जाना। उनके नामों का गुणों का कीर्तन करना, उनके श्रीविग्रह का दर्शन करना। यही सब सोचकर वे सब-के-सब मुनि वहीं से शिवजी को प्रणाम करके भगवान नारायण के दर्शन करने विशालापुरी बदरिकाश्रम को चले गये।

शिव दरशनके हेतु तहाँ इकदिन बहु ऋषिमुनि। आये सोचत होहिं कृतारथ शिव शिक्षा सुनि।।
किन्तु प्रिया सँग करें रमण कामारि उमापति। अंक बिराजैं उमा विवस्त्रा चित प्रसन्न अति।।
दाढ़ी वाले ऋषिनि लखि, पारवती लज्जित भईं। उठीं अंकते तुरत ई, लता ओटमहँ छिपि गईं।।

पार्वती ने महादेव से कहा कि आप विहार करने के लिये कोई स्थान नहीं बनवाते और मुझे वन में लाकर लज्जित करते हैं। मारे लज्जा के मैं अपना मुँह किसीको नहीं दिखा सकती। उसी समय भगवान शंकर ने अपनी प्रिया पार्वती को प्रसन्न करने के लिये कहा कि- हे प्राणप्यारी, तुम उदास मत हो। मेरे अतिरिक्त जो भी पुरुष इस स्थान में प्रवेश करेगा, वह स्त्री बन जायेगा।

स्थानं य: प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान शिव ने अपनी प्रिया पार्वती का प्रिय करने की इच्छा से अपने क्रीड़ा वन के सम्बन्ध में यह कह दिया कि जो पुरुष अब इस स्थान में प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायेगा।

तभी से उस स्थान में पुरुष प्रवेश नहीं करते। आज से कोई भी देवता, मनुष्य या पशु आदि पुरुष इस वन में आयेगा वह स्त्री हो जायेगा।

राजकुमार सुद्युम्न कन्या के रूप में अपनी सहेलियों के साथ इधर-उधर भ्रमण करने लगे। इस सुन्दरी कन्या को देखकर चन्द्रकुमार बुध उसे पाने के लिये उत्सुक हो उठे। कन्या भी बुध के सौन्दर्य पर निछावर हो रही थी।

निरखि रमणको समय भये लज्जित लौटे मुनि। गये समुझि ऋषि, उमा अंक पतिकी बैठी पुनि।।
पारबती प्रिय करन हेतु शिव बोले बानी। आवत होवे नारि पुरुष संज्ञक इहं प्रानी।।
श्राद्धदेव सुत भाग्य वश, भये पुरुषतें नारि तहँ। सखिनि सङ्ग घूमत फिरत, पहुँचे बुध तप करहिं जहँ।।
इला कामना करी विकृतिचित बुधके आई। नेत्र नेत्र मिलि गये सरसता हियमहँ छाई।।
विधिवत भयो विवाह इला अति मन हरषाई। भूले बुध जप जोग भाग्यतें पत्नी पाई।।
छिन सम बीते वर्ष बहु, गृही धर्ममहँ ह्वै निरत। बुध प्रमुदित वनमहँ बसत, इला संग क्रीड़ा करत।।

दोनों पति-पत्नी बन गये। फलत: उस तरुणी के गर्भ से पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उस कन्या ने अपने कुलगुरु वसिष्ठ का स्मरण किया। वे बुध के आश्रम पर जब पहुँचे तब सुद्युम्न की यह दशा देखकर उन्हें महान कष्ट हुआ। उन्होंने सुद्युम्न को पुन: पुरुष बना देने के लिये भगवान शंकर की आराधना की। शंकर प्रसन्न हुए। वसिष्ठ ने सुद्युम्न को पुरुष बना देने की उनसे प्रार्थना की। शंकर अपने वचन की रक्षा करते हुए बोले- वसिष्ठ जी, ठीक है- आप का यह यजमान एक महीने तक पुरुष रहेगा और एक महीने तक स्त्री। यही क्रम जीवन भर चलेगा।

मासं पुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रज:। पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजा:
यों कहि प्रभु बिनती करी, ह्वै प्रसन्न हरि वर दयो। सुता इला मुनि कृपातें, पुनि सुद्युम्न कुमर भयो।।
कीये शिव सन्तुष्ट दयो वर अद्भुत शंकर। एकमास नर रहे नारि दूसरमहँ मनहर।।

इस व्यवस्था से सुद्युम्न इच्छानुसार पृथ्वी का पालन करने लगे किन्तु प्रजा उनका अभिनन्दन नहीं करती थी, वह उनसे सन्तुष्ट न थी।

स्थान का प्रभाव पड़ता ही है। दूषित स्थान हो तो देश के गुणों से अच्छे अच्छों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक बार राम, लक्ष्मण, सीता वनवास में जा रहे थे। स्थान के प्रभाव से लक्ष्मण राम के प्रति व सीताके प्रति अण्ड-बण्ड वचन बोलने लगे। राम चित्रकूट से वनवास के समय अत्रि मुनि की आज्ञा से पुष्कर क्षेत्र में गये और मार्कण्डेय मुनि की आज्ञा से पुष्कर क्षेत्र में अपने भीतर दशरथ का श्राद्ध किया। राम और सीता ने व्रत किया। व्रत की समाप्ति पर श्राद्धादि कर्म किये। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हे सौमित्रे, मेरे कमण्डलु में जल ले आओ इससे हम पादप्रक्षालन करे। लक्ष्मण बोले- महाराज, आप मुझे रोज तंग करते रहते हैं कभी पानी ला, कभी फूल ला, मैंने बहुत दिनतक आपकी दासता की है अब यह मुझसे नहीं होगी मैं पानी नहीं लाऊंगा। श्रीराम बोले- अच्छा तो मैं ही ले आऊंगा। लक्ष्मण बोला- आप तो ले आयेंगे पर यह जो इतनी मोटी ताजी सीता को तुमने पाल रखा है, इससे क्यों नहीं मँगाते? दिनभर शासन करती रहती है और मुझे क्लेश देती है। मुझे आराम से बैठने भी नहीं देती। तुम्हें मेरे सुख-दु:ख की परवा नहीं है। इस जानकी को तुमने मुँह लगा रखा है। क्या यह परलोक में तुम्हारा पल्ला पकड़कर पीछे-पीछे जायगी। न इससे कोई काम के लिये कहते हो न कोई धन्धा कराते हो। अपने पिता को ही देख लो, कितना धन वैभव उन्होंने एकत्रित किया, पर उस कैकेयी को प्रसन्न करके तुम्हें वन में भेज

दिया, उस धन वैभव को यहीं छोड़ गये। क्या कैकयी उनके साथ गई। बहुत अधिक बोलने से कोई प्रयोजन नहीं। मेरी आपकी पटरी नहीं बैठेगी। आपका रास्ता और है मेरा रास्ता दूसरा। भलेही सीता आपके साथ जाय पर मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। श्रीराम ने लक्ष्मण के मुख से ऐसे अप्रिय, कठोर हृदय को विदीर्ण करनेवाले वचन आज तक कभी नहीं सुने। श्रीराम को तो आश्चर्य हुआ पर लक्ष्मणसे एक शब्द भी नहीं कहा। सीता भी चुपचाप बैठी सुनती रही। प्रात:काल होनेपर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- चलो लक्ष्मण, दक्षिण दिशाकी ओर चले। लक्ष्मण क्रोधित हो बोला- आप अकेले ही सीताको लेकर जाय मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। श्रीराम बोले- अच्छी बात है तुम मेरे साथ मत चलो, जिस वन में तुम्हारी इच्छा हो उस वन में चले जाना या अयोध्या को लौट जाओ। लक्ष्मण बोला- मैं अयोध्या भी नहीं जाऊंगा। इसी वन में आपसे पृथक रहकर १४ वर्ष तक तप करूँगा फिर जो मेरी इच्छा हो मैं वही करूँगा। आपको क्या आप मेरी चिंता न करे। जब १४ वर्ष पश्चात आप वनसे वापस लौटे तो इधर से निकल जाय यदि मैं जीता रहा तो अयोध्या देखने तुम्हारे साथ चलूंगा। यह सामनेवाला मार्ग आपका है मैं तो यहीं निवास करूँगा। मेरा मन आपकी तरफ से खट्टा हो गया है। आप जब लौटकर आयेंगे तो राजसिंहासन पर बैठे देखने के लिये आपके साथ चलूँगा। मैं तो आपके प्रतिकूल ही हूँ, मुझसे आपका कोई काम होने का नहीं मैं तो वन के कष्ट सहते-सहते ऊब गया हूँ। श्रीराम बोले- लक्ष्मण, तुमने यह बात मुझे अयोध्या में क्यों नहीं बता दी। वहाँ तो तुम मुझे कहते थे कि १४ वर्ष मैं आपके साथ वन में रहूँगा। तुमको सेवा करने के लिये कौन कहता है तुम मेरी सेवा मत करना मैं ही तुम्हारी सेवा करूँगा। जैसे तुम रहोगे वैसे ही मैं रहूँगा। तुम चाहते हो मैं अकेला चला जाऊं तो मैं सीता को साथ लेकर चला जाऊँगा। तुम मेरा धनुष लेकर थोड़ी दूर रेवातट के पार मुझे पहुँचा दो। यह बात लक्ष्मण ने स्वीकार कर ली और भगवान के पीछे-पीछे धनुष लेकर चल पड़ा। वहाँ मर्यादापर्वत के समीप शिवजी का एक मंदिर था। श्रीराम ने वहाँ मंदिर में पूजा की, स्तुति की और लक्ष्मण से बोले अब मेरा धनुष दे दो और तुम्हारी जो इच्छा हो वो करो इच्छा हो तो मेरे साथ रहो इच्छा हो तो चले जाओ। श्रीराम के मुख से ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मण फूट-फूटकर रोने लगे, थरथर कांपने लगे। समीप में बैठी सीताके समीप जाकर उनके चरणों में प्रणाम करके रोने लगे। सीता ने पूछा- वत्स लक्ष्मण, तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो? लक्ष्मण बोले- हे माता, श्रीराम से रहित होकर मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता। मैं अभी यही अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा।

सीता बोली- लक्ष्मण, श्रीराम भला तुम्हे कैसे त्याग सकते हैं। तुम तो उनके बाह्यप्राण हो। लक्ष्मण बोला- देवी, मैं बड़ा पापी हूँ, क्रूर, कुलकलंक हूँ। जो मेरे आराध्यदेव हैं, श्रेष्ठ हैं, ज्येष्ठ हैं, इष्ट है उनके प्रति मैंने अपराध किया। न जाने मुझे किन नरकों में रहना पड़ेगा। सीताने उन्हें धैर्य बंधाया। श्रीराम बोले- सीते, क्या मैं कभी लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ और क्या तुम अनुमान कर सकती हो कि लक्ष्मण कभी मेरे और तुम्हारे विरुद्ध एक शब्द भी कह सकता है। आज जो लक्ष्मण ने ऐसी कठोर-कठोर बातें कहीं इसमें इसका दोष नहीं है। यह स्थान ही शापित है यहाँ पुत्र पिता के, शिष्य-गुरु के, भाई-भाई के अनुकूल नहीं रह सकता। अब हम लोग उस स्थान की सीमा को लांघ आ गये है।

राजा सुद्युम्न के तीन पुत्र हुए- उत्कल, गय और विमल। ये सभी दक्षिणापथ के राजा बने। सुद्युम्न जब वृद्ध हुए तब उन्होंने अपनी राजधानी प्रतिष्ठान नगरी (प्रयाग के पास आजकल की झूसी) में अपने पुत्र पुरुरवा को प्रतिष्ठित कर स्वयं तपस्यार्थ वन में चले गये।

शुकदेव बोले- परीक्षित, जब सुद्युम्न तप करने वन में चले गये, तब वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से यमुना के तट पर

सौ वर्ष तक तपस्या की। प्रसन्न हुए भगवान ने पुत्रार्थ यज्ञ करने की आज्ञा दी। वेवस्वत मनु ने भगवान की आज्ञा का पालन किया। फलत: उन्हें अपने ही समान दस पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे इक्ष्वाकु, नृग, शर्यांति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि।

मनु पुत्रन के वंश की, कही कथा मुनिराय। नृपति परीक्षित् सुनि रहे, मन में अति हरषाय।।

वंशावली सुनने से, इसका नाम सुनने से स्वर्ग में यह मिलता है, इतना पुण्य बढ़ता है, क्योंकि वंशावली न बतायी जाय, तो आगे कथा प्रसङ्ग चले कैसे। बीज होता है तभी उसका विस्तार हुआ करता है अत: वंशादि का प्रकरण नीरस भी हो, तो उसे धैर्यपूर्वक पुण्य प्रद समझकर श्रद्धा के साथ सुनना चाहिये।

इनमें जो आठवाँ पुत्र पृषध्र था उसे गुरु की गायों का चरवाहा बना दिया गया। वह रात्रि में वीरासन से बैठकर गायों की रक्षा किया करता था, एक दिन अँधेरी रात्रि में एक सिंह गायों की झुण्ड में घुस गया। गायें भय के मारे भागने और चिल्लाने लगीं सिंह ने झपट कर एक गाय को पकड़ भी लिया। गायों का चिल्लाना सुनकर पृषध्र हाथ में तलवार लिये दौड़ पड़ा। रात अंधेरी थी। वर्षा हो रही थी अत: ठीक से पहचान न पाने कारण पृषध्र ने प्रहार कर कपिला गाय का सिर काट डाला।

व्याघ्र न दीख्यो अन्धकारमहँ खड्ग चलायो। भ्रमवश व्याघ्र न मर्‍यो धेनु सिर काटि गिरायो।।
जानि दोष गुरु निकट जाय सब वृत्त सुनायो। सुनि मुनि दीयो शाप क्षत्र ते शूद्र बनायो।।
कीयो नहीं विवाह पुनि, जीवन भर हरि ही भज्यो। वन दावानलमहँ प्रविशि, अन्त समयमहँ तनु तज्यो।।

सिंह का भी एक कान कट गया था अत: खून बहाता हुआ वह भयभीत होकर भाग निकला। सबेरा हुआ। पृषध्र गोशाला में गया। उसने देखा कि तलवार के प्रहार से कटी हुई गाय पड़ी हुई है। यह दृश्य देखकर वह दु:ख के सागर में डूब गया। उसने रात्रि की घटना का विवरण कुलगुरु वशिष्ठ को बतलाया। यद्यपि पृषध्र ने जान-बूझकर अपराध नहीं किया था, फिर भी वशिष्ठ जी ने उसे शाप दे दिया- जा, तू शूद्र हो जा। पृषध्र ने हाथ जोड़कर कुलगुरु के शाप को शिरोधार्य कर लिया। वह उसी समय से ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर वन में ही निवास करने लगा। राजधानी में कभी नहीं लौटा। वह भगवान की एकनिष्ठ भक्ति में ही दिन-रात डूबा रहता था। उसकी संसार की सारी आसक्ति समाप्त हो गई थी। आत्मज्ञान की पराकाष्ठा की स्थिति में पहुंचा हुआ पृषध्र कभी-कभी जड, अन्धे और बहरे के समान पृथ्वी पर विचरण करता था। एक दिन दैवयोग से वन में आग लग गई। पृषध्र ने उस आग की लपटों की चपेट में आकर स्वयं अपने आप को भस्म कर परमपद की यात्रा की।

मनु के छोटे पुत्र थे कवि। वे सर्वदा विषयों से नि:स्पृह थे। वे राज्य छोड़कर अपने बन्धुओं के साथ वन में चले गये। वहाँ भगवान के ध्यान में निमग्न रहकर किशोर अवस्था में ही परम पद को प्राप्त कर लिया।

मनु के छठे पुत्र करूषक उत्तरापथ के पालक क्षत्रिय हुए। उनसे कारूष नाम की क्षत्रिय जाति की परम्परा चली। धृष्ट से धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए अन्त में वे इसी शरीर से ब्राह्मण बन गये। नृग का पुत्र सुमति और नरिष्यन्त का पुत्र चित्रसेन था। चित्रसेन की वंश-परम्परा में आगे चलकर महाप्रतापी चक्रवर्ती नरेश मरुत्त हुए।

मरुत्त शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान नित्य प्रति बढ़ने लगे। उनमें सभी गुण विद्यमान थे। वे मातृ-पितृ-भक्त थे, अपने पितामह की सभी आज्ञाओं को वे श्रद्धा सहित सिर झुकाकर पालन करते थे। उन्होंने विधिवत् अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा पाई थी। वे सौभाग्यशाली, शूरवीर, सुन्दर, सुशील, सदाचारी, सर्वप्रिय, समदर्शी, सरल, शान्त, विनयी, बुद्धिमान् तथा विवेकी थे। अपने पितामह की संरक्षता में कुमार मरुत्त अब युवक हो गये थे। वे पितामह के राज-काज में भी उनका हाथ बँटाते थे।

महाराज मरुत्त के यज्ञ में अग्नि ने इतना घी पिया कि उन्हें अजीर्ण ही हो गया। मरुत्त के यज्ञाचार्य थे बृहस्पति के छोटे भाई, अंगिरा के पुत्र महायोगी संवर्त। संवर्त से बृहस्पति ईर्ष्या किया करते थे। मरुत्त के यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाली सारी वस्तुएँ सोने की थीं। इतना महान् यज्ञ तो आज तक किसी ने किया ही नहीं।

शुकदेव बोले- राजन्, अवीक्षित् सुत महाराज मरुत्त का जैसा यज्ञ हुआ वैसा आज तक किसी का नहीं हुआ। उस यज्ञ में जो भी कुछ सामग्री थी सभी सुन्दर सुवर्ण की थी। उस यज्ञ में इन्द्र सोमपान से और ब्राह्मण आवश्यकता से भी अधिक दक्षिणा पाकर उन्मत्त हो गये थे। उस यज्ञ में भोजन स्वयं मरुदगण परोसते थे और स्वयं विश्वेदेवा उस यज्ञ के सभासद थे।

इन्होने ऐसे ऐसे यज्ञ किये कि उनका यश दिग-दिगन्तों में व्याप्त हो गया। पृथ्वी के राजाओं की तो बात ही क्या स्वर्ग के राजा इन्द्र भी उनके ऐश्वर्य को देखकर उनसे ईर्ष्या करते थे। यहाँ तक कि ईर्ष्यावश उन्होंने बृहस्पति को मरुत्त का यज्ञ कराने से रोक दिया था। तब महाराज बृहस्पति के भाई अवधूत संवर्त के पास गये। संवर्त ने उनसे ऐसा अलौकिक यज्ञ कराया कि आज तक ऐसा यज्ञ किसी का हुआ ही नहीं। उनके यज्ञ के सम्बन्ध में सर्वत्र यह पौराणिकी गाथा गाई जाने लगी। गायक लोग जाकर कहते- महाराज मरुत्त के सदृश उदार यजमान इस अवनि पर अन्य कोई हुआ नहीं। जिनके यज्ञ में समस्त यज्ञ मण्डप, महल तथा यज्ञादि पात्र शुद्ध सुवर्ण के ही बने थे। जिनके यज्ञ में ब्राह्मण पर्याप्त दक्षिणा पाकर पूर्ण तृप्त हो गये। मरुद्गण तथा इन्द्रादि देव सेवकों की भाँति जिनके यज्ञ में ब्राह्मणों को भोजन परोसते थे। राजा मरुत्त के यज्ञ में जैसा समारोह हुआ था, वैसा किसी राजा के यज्ञ में नहीं हुआ है, जहाँ रत्नों से भवन भरे रहने के कारण ब्राह्मणों ने दक्षिणा का द्रव्य त्याग दिया था। उस छोड़े हुए धन को पाकर कितने ही राजाओं का मनोरथ पूर्ण हुआ। उसी धन से अनेक राजाओं ने अपने-अपने देशों में अनेक यज्ञ कराये। महाराज मरुत्त के यज्ञ के अवशिष्ट धन से ही धर्मराज युधिष्ठिर ने इतने भारी-भारी तीन अश्वमेध यज्ञ किये।

नृप मरुत्तत्तें नवम भये पीढ़ीमहँ भूपति। पृथ्वीपति तृणबिन्दु रूप गुणमहँ सुन्दर अति।।
अलम्बुसा अपसरा कामवश ह्वैकें आई। विधिवत् कर्‌यो विवाह इडविडा कन्या जाई।।
सुत पुलस्त्य मुनि विश्रवा, ता दुहिताके पति बने। धनाध्यक्ष उत्तर अधिप, श्री कुबेर ताने जने।।

इसीके वंश में तृणबिन्दु, विशाल और जनमेजय आदि महाप्रतापी राजा हुए। इनमें दो विरक्त होकर जंगल में चले गये थे। शुकदेव बोले- राजा परीक्षित, महाराज बन्धु के पुत्र तृणबिंदु राजा हुए। उन भजनीय गुणों के आलय भूपति को अलम्बुषा श्रेष्ठ अप्सरा ने वरण किया। उससे उन्होंने बहुत से पुत्र और इडविडा नाम की कन्या उत्पन्न की। जिसमें भगवान विश्रवा ने धनाध्यक्ष कुवेर को उत्पन्न किया।

तृणबिन्दु आदर्श गुणोंके भण्डार थे। अप्सराओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषा देवीने उनको वरण किया, जिससे उनके कई पुत्र और इडविडा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। मुनिवर विश्रवाने अपने योगेश्वर पिता पुलस्त्यजीसे उत्तम विद्या प्राप्त करके इडविडाके गर्भसे लोकपाल कुबेरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया।

शुकदेव बोले- राजन्, दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ। नाभाग का पुत्र भलनन्दन हुआ। भलनन्दन से वत्सप्रीति उसके प्रांशु नामक पुत्र हुआ। प्रांशु से प्रमति, प्रमति से खनित्र, खनित्र से चाक्षुष और चाक्षुष से विविंशति का जन्म हुआ। विविंशति का रम्भ और रम्भ का खनिनेत्र, खनिनेत्र के पुत्र करन्धम हुए। करन्धम के अवीक्षित् और अवीक्षित पुत्र महाराज मरुत्त हुए जिनको अंगिरा के पुत्र महायोगी संवत ने यज्ञ कराया था।

शर्याति वंश

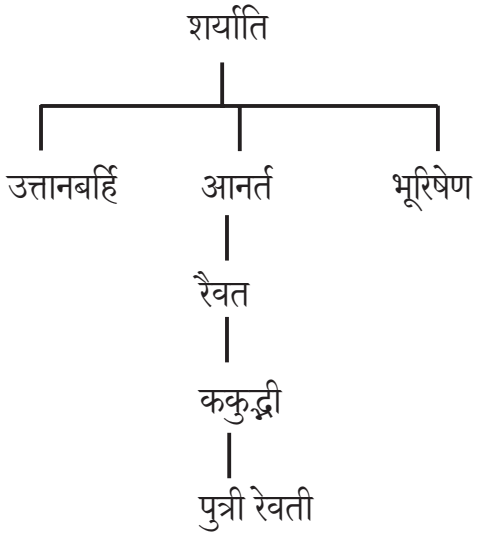

नरिष्यन्त वंश

नभग वंश

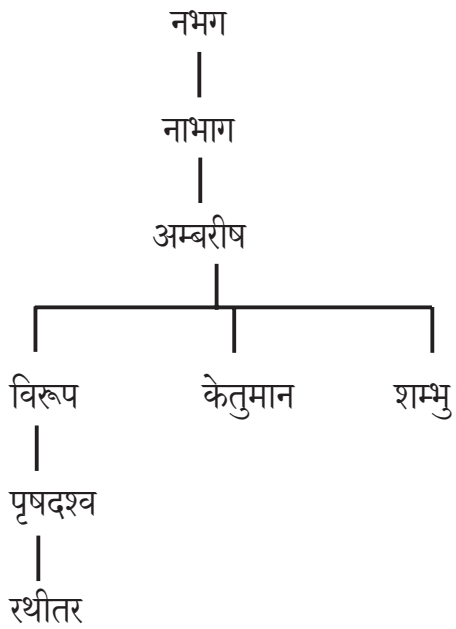

२) राजा शर्याति का वंश और महर्षि च्यवन ऋषि का वृत्तान्त

च्यवन सुकन्या की कथा, अति उत्तम सुखदाय। पतिव्रत नारी धर्म की, शुक्र आदर्श प्रगटाय।।
मनुसुत नृप शर्याति वेद शास्त्रनिके ज्ञाता। तिनकी कन्या भई सुकन्या जग विख्याता।।
इक दिन कन्या सहित गये नृप घूमन बनमहँ। कन्या सखियनि संग फिरै बन प्रमुदित मनमहँ।।
च्यवनाश्रम के निकट इक, दीमकको टीलो निरखि। चकित भई जुगनू सरिस, द्वै चमकीली बस्तु लखि।।

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, वैवस्वत मनु के पुत्र राजा शर्याति वैदिक कर्मकाण्ड के प्रवीण विद्वान थे। उन्होंने अंगिरा-गोत्र के ऋषियों के यज्ञ में दूसरे दिन के कर्म-काण्ड का विवरण बतलाया था। इससे उनके वैदिक कृत्यों की प्रवीणता सिद्ध होती है।

शर्याति की एक बेटी थी। उसका नाम था- सुकन्या। आकर्षक आँखों वाली सुकन्या एक सुन्दरी तरुणी थी। जिस कन्या में सत्य, विवेक, पराक्रम, धैर्य, लज्जा, चरित्र आदि सद्गुण हों उसे सुकन्या कहते हैं। मात्र शारीरिक सुन्दरता उपयुक्त नहीं है।

एक बार महाराज शर्याति अपनी बेटी सुकन्या के साथ वन में शिकार खेलते हुए च्यवन ऋषि के आश्रम पर जा पहुँचे। उनके साथ सुरक्षार्थ कुछ सैनिक भी थे। राजा कमललोचनी कन्या सुकन्या के साथ कुछ सैनिकों को लेकर वन में घूमते हुए ऋषि च्यवन के आश्रम पर पहुँच गये।

सुकन्या अपनी सखियों के साथ घूम-घूमकर वृक्षों का सौन्दर्य निहार रही थी। ऋषि च्यवन समाधिग्रस्त थे। उनके शरीर पर मृत्तिका जम गई थी तथा चींटियों ने बामी जमा ली थी। सुकन्या घूमती हुई मुनि च्यवन के समीप पहुँच गयी और उसने एक स्थान पर देखा कि एक बाँबी (दीमकों का ढेर) के छेद में से जुगनू की तरह दो ज्योतियाँ चमक रही हैं। दैव की कुछ ऐसी ही प्रेरणा थी। सुकन्या ने बाल-सुलभ चपलता से एक शूल के द्वारा उन ज्योतियों को बेध दिया। इससे उनमें से बहुत-सा रक्त बह चला। आश्चर्य एवं भय के कारण सुकन्या दूर चली गयी। उसी समय शर्याति के सैनिकों का मल-मूत्र बन्द हो गया। राजर्षि शर्याति को यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ। सैनिक परेशान हो गये। शर्याति घबड़ा गये।

यौवनको उन्माद कुतूहुल कन्या उरमह। उत्सुकता शमनार्थ लये द्वै कंटक करमहँ।।
आँखिनी दये चुभोई बही धारा शोणितकी। डरी भागी लखि रक्त बढ़ी व्याकुलता चितकी।।
इत मुनिवरके कोपतैं सैनिक सब व्याकुल भये। वेग रुक्यो मलमूत्रको, मृतक सरिस ते ह्वै गये।।

सुकन्या समझ गयी कि ऋषि अपराध उससे ही हुआ है किन्तु अन्य लोग उससे त्रसित हैं। राजाने अपने सैनिकों से कहा- अरे, तुम लोगों ने महर्षि च्यवन जी के प्रति कहीं कोई अनुचित व्यवहार तो नहीं कर दिया? मुझे लगता है कि तुम लोगों में से किसी ने महर्षि च्यवन का अपराध कर दिया है। तब सुकन्या ने अपने पिताजी से डरते-डरते कहा कि- पिताजी, मैंने कुछ अपराध अवश्य किया है। मैंने अनजान में दो ज्योतियों को काँटे से छेद दिया है। बेटी की यह बात सुनकर शर्याति घबड़ा गये। उन्होंने धीरे-धीरे स्तुति करके बाँबी से ढँके हुए च्यवन मुनि को प्रसन्न किया। कन्या के अपराध के लिये क्षमा-याचना की। मुनि ने कन्या की अवस्था आदि के विषय में पूछा। उनका अभिप्राय यह था कि सुकन्या का विवाह उनसे कर दिया जाय। तभी यह संकट दूर होगा। इच्छा न होते हुए भी राजा ने मुनि के प्रस्ताव को स्वीकार किया और कन्या उन्हें प्रदान कर दी और फिर संकट से मुक्त होकर उनकी अनुमति लेकर अपनी राजधानी में चले गये।

राजमहल का सुख लेनेवाली कन्या को ऐसा वर मिला जो जर्जर काय, दूसरे सूरदास, तीसरे परम क्रोधी, चौथे खाने को अन्न नहीं, पीने को जल नहीं और रहने को घर नहीं है। किन्तु सुकन्या ने विरोध नहीं किया। च्यवन ऋषि की मनोवृत्ति को

समझकर सेवा करती थी। कन्याओं का कर्त्तव्य है कि माता-पिता जीवन के सम्बन्ध में जो निर्णय लें उनकी मनोवृत्ति न करें। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वर को वरण करने से पूर्व उनकी मनोवृत्ति का परीक्षण करें। रूप-रंग, वैभव नाशवान् है, दु:खदायी हो सकता है। चरित्र मनोवृत्ति सुख का आधार है। जो कन्याएँ अपने माता-पिता एवं कुलपरम्परा के आदर्शों को स्वीकार करती है निश्चित ही उनको सौभाग्य प्राप्त होता है।

च्यवन ऋषिश्वर फिर परमेश्वर के ध्यान में समाधि लगाकर चौदह वर्ष तक आँख बन्द किये बैठे रहे वह राजकन्या भी इतने दिन बिना अन्न जल ग्रहण किये उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रही। वह ऐसी सुन्दरी थी कि इन्द्र ने उनके पास आकर कहा कि तू यहाँ क्यों इतना दु:ख सहती है, मेरे साथ चल, मैं तुझे इन्द्राणी बनाकर सुख दूँगा। इसीतरह कुबेरादिक कई देवताओंने आकर उसे अनेक प्रकारके प्रलोभन अपने साथ चलने को दिये, पर पतिव्रता ने किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। च्यवन ऋषि को ही अपना पति परमेश्वर समझकर उनके चरणों में लीन रही। चौदह वर्ष के बाद च्यवन ऋषिने समाधि से जागकर देखा कि राजकन्या उसी तरह हाथ जोड़े सम्मुख खड़ी है उसके शरीर में केवल अस्थि चर्म रह गया है। उसका ऐसा पातिव्रत धर्म देखकर च्यवन ऋषि अति प्रसन्न हुए।

सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि से होने पर विपदा तो टल गई लेकिन रहस्य नहीं खुला। सुकन्या जब च्यवन ऋषि के आश्रम में रहने लगी तब उससे मिलने अन्य अप्सरायें भी आती थीं। एक दिन चित्रलेखा आयी और सुकन्या से उसकी एकान्त में आत्मीय चर्चा हुई। चित्रलेखा ने पूछा-

किन्तु सुकन्ये डरी नहीं तू जब तेरे स्पर्शन से। मुनिसत्तम खण्डित समाधि से कोपाकु जागे।।

च्यवन ऋषि क्रोधित थे। सुकन्या सैनिकों से संतप्त होकर मुनि आश्रम उनसे क्षमा याचना करने अकेली ही आयी थी। बहुत देर तक समाधिस्थ मुनि के सामने खड़ी रही किन्तु समाधि भंग न होने पर उनका स्पर्श किया तब-

तब नयनों के खुलते ही उद्भाषित रन्ध्र युगल से। लगा अग्नि ही स्वयं प्रकट कर निकट चली आती हो।।

लेकिन सुकन्या निस्तब्ध खड़ी रही- किये अपराध का दण्ड भोगने के लिए। सर्व सुन्दरी सुकन्या को करबद्ध सम्मुख खड़ी देख- ऋषि का मन बदल गया, स्वभाव बदल गया, अग्नि का ताप बदल गया।

मानो प्रमुदित अनल ज्वाल जाबक में बदल रहा हो। नयन रक्त, पर, नहीं कोप से, आसब की लाली से।।

वातावरण बदल गया, पर्यावरण परिवर्तित हो गया। नेत्रों के क्रोध के स्थान पर स्नेह टपकने लगा। होठों पर मुस्कान दौड़ने लगी। मधुर वाणी में मुनि ने पूछा-

सौम्ये, हो कल्याण कहाँ से इस वन में आयी हो। सुरकुल की शुचि प्रभा या कि मानव कुल तनया हो?
कहाँ मिला यह रूप देखते ही जिसको पावक की, दाहकता मिट गयी, स्थाणु में पत्ते निकल रहे हैं?

सुकन्या ने अपना परिचय दिया तथा अनजाने में हुए अपराध की क्षमा माँगी। राजकुमारी सुकन्या ऋषि के क्रोधी स्वभाव से परिचित थी अत: भयभीत हो रही थी कि मैंने उनकी तपस्या भंग करके दूसरा अपराध भी किया है। लेकिन मुनि के मधुर वचन सुनकर मुग्ध हो गयी निर्भय हो गयी।

डरो नहीं, यह तपोभंग च्युति नहीं, सिद्धि मेरी है, पहले भी जब हुआ पूर्ण कटु तप महर्षि कदर्म का।
स्वर्ग नहीं ऋषि ने वर में नारी मनोज मांगी थी।

सुकन्या भययुक्त, आश्वस्त हो गयी। मुनि ने स्वभाव में आमूल परिवर्तन से स्तब्ध रह गयी। करबद्ध होकर बोली मुनिश्रेष्ठ। आप सृष्टि में पूज्य हैं। आपका तप स्तुत्य हैं। आपकी साधना सराहनीय है।

मुनि पूज्य सारी बसुधा के, पर असंख्य ललनाएँ, उन्हें देखती हैं अपार श्रद्धा, असीम गौरव से ।।

महामुनि। जगत में कौन आपको नहीं जानता, कौन ऐसा अभागा होगा जो आपकी तपश्चर्या से परिचित न होगा। मुनि च्यवन ने गद्‌गद होकर एक प्रस्ताव रख दिया और प्रस्ताव को अस्वीकार करने हेतु जो कमियाँ थीं उनका भी समाधान कर दिया। देखें-

वरण करोगी मुझे? तुम्हारे लिए जरा को तज कर। शुभे, तपस्या के बल से यौवन मैं ग्रहण करूँगा।
प्रोढ मेघ, पादप नवीन, मदकल किशोर कुँजर सा ।।
सुकन्या ने सहर्ष च्यवन ऋषि के साथ विवाहोत्सव मना लिया।
सुकन्या च्यवन प्राप्य प्रतिं परमकोपनम्, प्रीणयामास चिङ्गा अप्रमत्तानुवृत्तिभि ।।

इधर सुकन्या परम क्रोधी च्यवन मुनि को अपने पति के रूप में प्राप्त करके बड़ी सावधानी से उनकी सेवा करने लगी। कुछ समय बीत जाने पर एक दिन मुनि के आश्रम पर देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार पधारे। जिन्हें इन्द्र ने सोमपान कराने से वर्जित किया था। मुनि ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार कर किया और कहा कि आप दोनों समर्थ हैं अत: मुझे युवा अवस्था प्रदान कीजिये। मेरा रूप और यौवन ऐसा हो कि तरुणी स्त्रियाँ देखते ही मुझ पर मुग्ध हो जायँ। बदले में अनाधिकारी होते हुए भी आप लोगों को यज्ञ में भाग दिला कर सोम रस का पान करवाऊँगा।

मुनि के प्रस्ताव को देव-वैद्यों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा- मुनिवर, आप सिद्धों द्वारा निर्मित इस सरोवर में स्नान करें। आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। यह कहकर दोनों अश्विनीकुमारों ने अगल-बगल से जराजर्जरित मुनि को पकड़कर सरोवर में प्रविष्ट कराया। उन लोगों ने मुनि के साथ ही वहाँ जल में डुबकी लगाई। महान् आश्चर्य हुआ। डुबकी लगाई थी च्यवन और अश्विनी कुमारों ने किन्तु उनके स्थान पर सूर्य के समान तेजस्वी, एक जैसे दीखनेवाले, तीन तरुण उस जलाशय से निकले। वे तीनों सजे-धजे और समान सुन्दर थे। उन्हें देखकर सुकन्या अपने पति को पहचान न सकी। असमंजस में पड़कर उसने मन-ही-मन अश्विनीकुमारों का ध्यान कर उनसे इस विषय में सहायता की प्रार्थना की। अश्विनीकुमारों ने सुकन्या के पातिव्रत्य से प्रभावित होकर उसके पति को पृथक् कर दिया। पति को पाकर सुकन्या प्रसन्न हो उठी फिर मुनि की आज्ञा लेकर अश्विनीकुमार विमान से स्वर्ग चले गये। जाते-जाते देववैद्यों ने मुनि को एक ऐसे अवलेह की विधि बतला दी जिसके सेवन से व्यक्ति सर्वदा तरुण बना रहता है। यही अवलेह आगे च्यवनप्राश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार ने च्यवन रसायन के अनोपान से उन्हें वीर्यवान तथा सिद्ध सरोवर में स्नान कराकर कांचन देहधारी युवा बना दिया। च्यवन ऋषि का गृहस्थ जीवन आनन्ददायक हो गया। इसके प्रमाण सुकन्या के ये शब्द हैं-

वधूसरा- महर्षि च्यवन आश्रम के निकट की नदी। महर्षि भृगु की पत्नी पुलोमा, राक्षस द्वारा अपहरण का प्रयास किए जाने से त्रस्त होकर पुत्र च्यवन के जन्म के पश्चात् उन्हें गोद में लेकर रोती हुई लोकपितामह ब्रह्मा के पास गईं। यद्यपि अपहरण करनेवाला वराहरूपधारी राक्षस पुलोमा जलकर भस्म हो चुका था, फिर भी भृगुपत्नी बहुत दु:खी थीं। ब्रह्मा ने पुत्रवधू पतिव्रता पुलोमा को रोते हुए दयादृष्टि से देखा और उन्हें धैर्य बंधाया। महर्षि भृगु की पत्नी के निरंतर बहते हुए आंसुओं से तत्काल एक नदी प्रकट हो गई। उस समय ब्रह्मा ने पुलोमा के मार्ग का अनुसरण करनेवाली उस नदी को देखकर उसका नाम वधूसरा रख दिया, जो महर्षि च्यवन के आश्रम के निकट बहती है।

सुन चित्रलेख, मुझे अपने महर्षि भर्ता पर, ग्लानि नहीं निस्सीम गर्व है।

कुछ समय व्यतीत होने पर यज्ञ करने की इच्छा से राजा शर्याति च्यवन मुनि के आश्रम पर आये, वहाँ उन्होंने देखा कि

सुकन्या के बगल में सटकर परम तेजस्वी एक तरुण बैठा हुआ है। पिता को आया हुआ देखकर सुकन्या ने उनका चरण छूकर प्रणाम किया। शर्याति ने उसे आशीर्वाद नहीं दिया और कुछ अप्रसन्न होकर बोले- अरी कुलक्षणे, तूने यह क्या किया? क्या तूने सबके वन्दनीय मुनि च्यवन को धोखा दे दिया? अवश्य ही तूने उनको वृद्ध और अपने काम का न समझकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुष की सेवा कर रही है।

अरे कुलदूषणे, तुमने यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारे इस कृत्य से पति और पिता- दोनों के कुल कलंकित होंगे, नरकगामी बनेंगे। इस जार को स्वीकार करते समय तुझे लज्जा भी नहीं आई? तेरा जन्म तो बड़े ऊँचे कुल में हुआ था। यह विपरीत बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हो गई? तेरा यह व्यवहार तो कुल को कलंकित करनेवाला है। तुम निर्लज्ज होकर जार पुरुष की सेवा कर रही हो। कितना घृणित है तुम्हारा यह व्यवहार। पिता की फटकार को सुनकर सुकन्या मुस्कराती हुई बोली- पिताजी, ये आपके जामाता (दामाद) स्वयं भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं। इसके बाद उसने अपने पिता से महर्षि च्यवन के यौवन और सौन्दर्य की प्राप्ति का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर शर्याति के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़े प्रेम से अपनी पुत्री को गले से लगा लिया। राजा का भ्रम दूर हुआ।

महर्षि च्यवन ने अपने श्वसुर का आदर-सत्कार किया और सोमयज्ञ का अनुष्ठान करने की बात कही। शर्याति ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। महर्षि च्यवन के आचार्यत्व में अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। उसमें सोमपान के अधिकारी न होने पर भी अश्विनी-कुमारों को च्यवन ने अपने प्रभाव से सोमपान करवाया इस प्रकार उन्होंने अपनी दी हुई बात पूरी कर दी। यह देखकर इन्द्र क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शर्याति को मारने के लिये अपना वज्र उठाया। महर्षि च्यवन ने अपने तपोबल से वज्र उठाये हुए इन्द्र के हाथ को स्तम्भित कर दिया। अर्थात इन्द्र को लकवा आ गया। तब सभी देवताओं ने अश्विनीकुमारों को सोम का भाग देना स्वीकार कर लिया। देवों ने वैद्य होने के कारण पहले अश्विनीकुमारों का सोमपान से बहिष्कार कर रक्खा था। महर्षि ने उनका सोमयज्ञ का अनुष्ठान कराया। सुकन्या के गर्भ से महामुनि दधीचि का जन्म हुआ जिनकी कीर्ति तीनों लोक में अध्यावधि व्याप्त है।

परीक्षित शर्याति के तीन पुत्र थे- उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। आनर्त से रेवत हुए। रेवत ने समुद्र के भीतर द्वारिकापुरी का निर्माण किया था। उसी में रहकर वे राज्य का पालन करते थे। द्वारिकापुरी को ही कुशस्थली कहते हैं। रैवत के सौ पुत्र हुए। उनमें ककुद्मी सबसे बड़े थे। उनकी एक सुन्दर कन्या थी। उसका नाम था रेवती। रेवती तरुणी हुई। रैवत, ककुद्मी उसके विवाह के लिये चिन्तित हुए। फलत: वे अपनी कन्या रेवती को लेकर उसे लिये वर पूछने के उद्देश्य से ब्रह्मलोक में ब्रह्मा जी के पास गये। वहाँ उस समय गान-वाद्य चल रहा था अत: अवसर की प्रतीक्षा में रैवत एकक्षण रुके रहे। गान-वाद्य की समाप्ति पर ब्रह्माजी से उन्होंने अपना अभिप्राय व्यक्त किया। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी ने हँसकर कहा- राजन्, अब तो भूतल पर तुम्हारे समय के सब राजा मर चुके हैं। अब उनके वंश का भी वहाँ कुछ अता-पता नहीं है। क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हें पृथ्वी छोड़े २७ चतुर्युगी बीत चुकी है इसलिये तुम जाओ इस समय भगवान नारायण के अंशावतार महाबली बलदेव जी पृथ्वी पर विराजमान हैं उन्हीं नर-रत्न को यह कन्यारत्न तुम समर्पित कर दो। ककुद्मी ब्रह्माजी को सादर प्रणाम कर अपनी नगरी में चले आये। उनके वंशज भी यक्षों के भयसे वह नगरी छोड़कर इधर-उधर चले गये थे। उन्होंने अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलदेव जी के साथ कर दिया और स्वयं तपस्या करने के लिये भगवान नर-नारायण के आश्रम बदरीवन की ओर चले गये।

हरषि नृपतिने रेवती, बलदाऊकूँ दे दई। खैंची हलतैं बल बहू, लम्बी ठिगनी कर लई।।

३) राजा अम्बरीष की कथा- शुकदेव बोले- राजन्, मनु के पुत्र नभग के एक नाभाग पुत्र हुए। उनके बड़े भाइयों ने पैतृक संपत्ति के बँटवारे में पड़कर लौटने पर उन विद्वान ब्रह्मचारी को दाय भाग में केवल पिता को ही दिया था।

मनुके इक सुत नभग भये कै ई तिनिके सुत। तिनिमहँ इक नाभाग वेदविद् पंडित गुनयुत।।
पढ़न गये घर बन्धु कर्‍यो पीछे बटवारो। लौटि कह्यो नाभाग कहाँ है भाग हमारो।।
बन्धु कहें- नाभाग तब, पिता भाग तुम्हरे रहे। करि प्रणाम नाभागने बन्धु वचन पितुतै कहे।।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित्, मनुपुत्र नभग का पुत्र था नाभाग। नाभाग के पुत्र थे अम्बरीष। नाभाग चिरकाल तब ब्रह्मचारी रहकर गुरुकुल में अध्ययन करते रहे। बहुत दिनों तक वे वहाँ से लौटे ही नहीं। उनके भाइयों ने आपस में सब धन बाँट लिया। उनके लिये कोई हिस्सा नहीं रक्खा। जब वे लौटकर घर आये तो भाइयों से पूछा कि हमारा भाग कहाँ हैं? इस पर उन लोगों ने उत्तर दिया- हम तुम्हारे हिस्से में पिताजी को ही तुम्हें देते हैं। नाभाग ने यह सारा वृत्तान्त अपने पिता नभग से जाकर कहा। नभग ने कहा- बेटा, भाइयों ने तुम्हारे साथ छल किया है। पिता तो कोई भोग्य वस्तु है नहीं किन्तु तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें धन-प्राप्ति कराऊँगा। महान बुद्धिमान् आंगिरस-गोत्र के ब्राह्मण इस समय एक महान् यज्ञ कर रहे हैं किन्तु वे प्रत्येक छठे दिन अपने कर्म में भूल कर बैठते हैं। तुम उन महात्माओं के पास जाकर उन्हें वैश्वदेव-सम्बन्धी दो सूक्त बतला दो। इससे उनका यज्ञ सर्वांग में पूर्ण हो जायेगा। भूल-सुधार कर देने के कारण वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो जायेंगे। जब वे स्वर्ग जाने लगेंगे, तब यज्ञ से बचा हुआ अपना साराधन तुम्हें दे देंगे अत: तुम उन्हीं के पास चले जाओ। इससे धनसम्बन्धी तुम्हारी समस्या समाप्त हो जायेगी। उन्होंने अपने पिता की आज्ञा के अनुसार वैसा ही किया। यज्ञ की पूर्णाहुति हो जाने पर ब्राह्मणों ने यज्ञ का बचा हुआ सारा धन नाभाग को दे दिया और स्वयं स्वर्ग चले गये।

नाभाग उस धन को एकत्रित करने लगे। उसी समय उत्तर दिशा की ओर से एक कृष्ण वर्ण का पुरुष आया। उसने कहा- यह सब धन मेरा है। यज्ञ में अवशिष्ट धन मेरा ही हुआ करता है। नाभाग ने कहा- यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने यह धन मुझे दिया है अत: यह मेरा है। कृष्णवर्ण के पुरुष ने कहा- इस विषय में मध्यस्थता तुम्हारे पिताजी करेंगे। उन्हीं का निर्णय मान्य होगा। मैं यहीं बैठा हूँ। तुम जाकर अपने पिता से निर्णय लेकर आओ। नाभाग अपने पिता के पास गये। उनसे सारी बातें बतला दी। पिता ने उत्तर दिया- बेटा, वे पुरुष रुद्र जी हैं। उनका कहना सही है। यज्ञ का अवशिष्ट भाग उन्हीं का होता है। नाभाग लौट आये यज्ञ-स्थल में। उन्होंने रुद्र से पिता जी का निर्णय यथावत् कह दिया और अपने अपराध के लिये उनसे क्षमा-याचना की। रुद्र पिता पुत्र की सत्यनिष्ठा देखकर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा- यहाँ यज्ञ में बचा हुआ मेरा जो अंश है, उसे मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। इसे तुम स्वीकार करो। ऐसा कहकर रुद्र अन्तर्धान हो गये।

रुद्र द्रव्य अपनो कह्यो, नभग समर्थन हू कर्‍यो। तब अर्पित्त सरबसु कर्‍यो, शिव प्रसन्न ह्वै वर दयो।।
हर वरतैं नाभाग भयो जगमहँ अति ज्ञानी। अम्बरीष सुत तासु यशस्वी दृढ़व्रत दानी।।
सप्तदीपको अधिप अतुल वैभव सब पायो। किन्तु स्वप्न सम समुझि कृष्ण चरननि चित लायो।।
भयो चित्त चित्तचोरकी, सरस माधुरी पान करि। भयी जीभ यश नाम को, नित्य निरन्तर गान करि।।

पिता और पुत्र की सत्यनिष्ठा और भगवद्भक्ति का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिये ही इसकी चर्चा हुई। नाभाग के पुत्र हुए अम्बरीष। वे भगवान के महान् भक्त महात्मा थे। जो ब्रह्मशाप कभी रोका न जा सका वह भी राजर्षि अम्बरीष का स्पर्श न कर सका। भगवानका अवतार भक्तोंकी प्रार्थनापर उनपर अनुग्रहहेतु स्वेच्छासे होता है, परंतु भगवत्पार्षदोंका अवतार

प्रभुकी आज्ञासे होता है।

शुकदेव बोले- राजन मैं तुम्हें अम्बरीष का चरित्र सुनाता हूँ। अम्बरीष बड़े भाग्यवान थे। सप्तद्वीपा वसुमती पर उनका अव्याहत अधिकार था। उनके पास अचल सम्पत्ति और अतुल वैभव था। यद्यपि ये सब साधारण मानवों के लिये अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ हैं, फिर भी वे इन्हें स्वप्न के समान नश्वर समझते थे। उन्हें यह मालूम था कि धन-वैभव के चक्कर में पड़कर प्राणी घोर नरकगामी बनता है। उन्होंने अपना मन श्रीकृष्ण के युगल चरणारविन्द में लगा दिया। हाथों में हरि मन्दिर मार्जन, कर्णों को मोहन की मंगलमयी कथाओं के श्रवण में, नेत्र मुकुन्द हरि को निहारने में, जिह्वा हरिनाम संकीर्तन में, पैर भगवत, धामों के पैदल पर्यटन में लगा रखे थे। सरस्वती नदी के तट पर अनेक यज्ञ भी सम्पन्न कराये थे। राजा अम्बरीष तपस्या से युक्त भक्ति योग एवं पुत्रवत् प्रजा पालन स्वरूप स्वधर्म के द्वारा भगवान को प्रसन्न करने में लगे हुए थे।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज अम्बरीष के नेत्र भगवान की मूर्ति और उनके मंदिरों के दर्शन करने में लगे रहते थे, उनके अंग भगवान के भक्तों का गाढ़ालिङ्गन करने में सुख पाते थे उनकी घ्राणेन्द्रिय का उपयोग भगवान के चरणों में चढ़ी तुलसी की गन्ध सूँघने में होता था और उनके रसना भगवान् के भोग का ही स्वाद जानती थीं।

मारवाड़ के समीप धन्व नामक निर्मल प्रदेश में सरस्वती नदी तट पर वशिष्ठ, असित, गौतम आदि आचार्यों के द्वारा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये तथा यज्ञपति भगवान श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया।

भगवान श्रीकृष्ण में और उनके प्रेमी साधुओं में उनकी महती श्रद्धा थी। इस प्रकार की श्रद्धा के आजाने से यह सारा संसार और सारी सम्पत्तियाँ मिट्टी के ढेले के समान जान पड़ती है। उन्होंने अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणारविन्द-युग्म में, वाणी को भगवान के गुणों के गान में, हाथों को श्रीहरि के मन्दिर के मार्जन-सेचन में और अपने कानों को अच्युत की मंगलमयी कथा के श्रवण में लगा रक्खा था। अम्बरीष चक्रवर्ती सम्राट थे फिर भी वे अपने हाथों से भगवान के मन्दिर में झाड़ू लगाते थे, पोछा करते थे, कानों से भगवान की कथा सुनते थे, आँखों से मूर्ति का दर्शन करते थे, शरीर से भक्तों को स्पर्श करते थे, नासिका से भगवान के चरण-कमलों पर चढ़ी तुलसी की गन्ध सूँघते थे और जीभ से चरणार्पित तुलसी का स्वाद लेते थे। वे भगवान के तीर्थों में, क्षेत्रों में पैदल ही जाते थे। उनका सिर भगवान के चरण-वन्दन में निरत रहता था। उनकी इच्छा थी कि मेरा जीवन भगवान की दास्यभक्ति करने में ही व्यतीत हो। सांसारिक विषयों से उनका मन सर्वदा विरक्त रहता था। भगवान के भक्तों में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। वे भगवान के श्रेष्ठतम भक्त थे। परमभागवत, अजातशत्रु अम्बरीष ने अहंकार को जीता था।

महाराज अम्बरीष का सम्पूर्ण जीवन तपस्यामय था। उनका कोई भी कार्य ऐसा नहीं होता था, जो भगवान के निमित्त न किया गया हो। वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए भी उनके फलों की कभी इच्छा न करते थे। धर्मों का पालन वे पुण्य लोकों की प्राप्ति के निमित्त नहीं, किन्तु कर्त्तव्य बुद्धि से विष्णु प्रीतर्थ्य ही करते थे। उनकी संसार के किसी विषय में भी आसक्ति नहीं थी।

इसप्रकार उनका अन्त:करण और बाह्य इन्द्रियाँ, शरीर, मन-सब कुछ भगवान की सेवा में समर्पित था। मैं चक्रवर्ती सम्राट हूँ- यह अभिमान उनके मन में लेश मात्र भी न था। अम्बरीष ने बड़े-बड़े यज्ञों का सम्पादन किया। वसिष्ठ, असित और गौतम आदि महान् आचार्यों ने उनके यज्ञ में हिस्सा लिया था। देवता उनके यज्ञ में प्रत्यक्षरूप से भाग ग्रहण करते थे। उन्होंने ब्राह्मणों को वस्त्राभूषण से लाद दिया था। इससे वे देवताओं के सदृश प्रतीत होते थे। उनकी प्रजा भगवान के चरित्रों के कीर्तन और श्रवण में इस प्रकार आनन्द-निमग्न रहती थी कि उसे स्वर्ग भी तुच्छ प्रतीत होता था। वे संसार के विषयों और प्राणियों से पूर्ण विरक्त रहा करते थे। वे जानते थे कि जीवनमें जितना सुख-दु:ख होता है वह बिल्कुल मानसिक ही होता है।

धनमें सुख-दु:ख नहीं होता, मनमें ही सुख-दु:ख होता है- हृदयमें सुख-दु:ख होता है। उन्हें मालूम था कि धनका अन्त हो जाता है, नाश हो जाता है। उसीके कारण मनुष्य अभिमान आदिमें फँस जाता है। इसलिये उन्होंने भगवान और भगवानके भक्तोंमें अपनी परम भक्ति जोड़ी। उनको यह संसार मिट्टी-सरीखा पत्थरके टुकड़े जैसा मालूम पड़ता था। उनका मन भगवान्‌के चरणारविन्दमें लगा रहता था और उनकी वाणी भगवान्‌के गुणानुवाद वर्णन में लीन रहती थीं।

राजा अम्बरीष की पत्नी भी धर्मनिष्ठ पतिपरायणा थीं। पति के धर्मानुष्ठानों में सदैव आत्मीय सहयोग दिया करती थी।

इस प्रकार राजर्षि अम्बरीष सांसारिक पदार्थों को छोड़कर भगवान की ही सेवा-भक्ति में लगे रहते थे। उनकी दृष्टि में गृह, स्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवों का कोई महत्त्व न था। वे सर्वात्मना भगवान को समर्पित थे। इसलिये प्रसन्न होकर भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र को उनकी सुरक्षा में लगा दिया था।

सुदर्शन- भगवान श्रीकृष्ण का अमित तेजस्वी अस्त्र, चक्र। पूर्वकाल में जल के भीतर रहनेवाले भयंकर, गर्वीले दैत्यों को मारकर भगवान शंकर ने अग्नि के समान तेजस्वी अस्त्र चक्र भगवान श्रीकृष्ण को प्रदान किया था। उसे स्वयं भगवान शंकर ने उत्पन्न किया था। यह चक्र अमित प्रभायुक्त होने के साथ ही भयंकर और दुर्धर्ष था। उसे भगवान शंकर को छोड़कर और कोई अन्य देख नहीं सकता था। अत: भगवान शंकर ने आज्ञा दी- यह अस्त्र देखने में सभी के लिए सुदर्शन हो जाए। और वह सुदर्शन हो गया। उसी समय से उसका नाम सुदर्शन है।

जब अम्बरीष ने देखा कि उनकी सुरक्षा भगवान का सुदर्शन चक्र कर रहा है, तब वे और भी निश्चिन्त होकर भगवान की भक्ति में तल्लीन हो गये। भगवान के अवतार लेने का एकमात्र प्रयोजन भक्तों की रक्षा ही है। असाधुओं का विनाश्, यही तो अवतार का मुख्य उद्देश्य है।

श्रीहरिके दास होनेके कारण राजर्षि अम्बरीषके गुण महान् थे। संसारके दासत्वसे दोषका संग्रह होता है और श्रीहरिके दासत्वमें जीवनमें अनन्त गुणोंका समावेश हो जाता है। इसलिये जीवमात्रको श्रीभगवान्‌का दासत्व स्वीकार करना चाहिये।

एक समय अम्बरीष ने अपनी रानी के सहित, भगवान श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये, एक वर्ष तक शुद्धा एकादशी का व्रत किया। एकादशी-व्रतका विधान तो यह है कि न तो दशमीकी रात्रिमें भोजन करना चाहिए और न द्वादशीकी रात्रिमें। इस प्रकार जब दशमी और द्वादशी दोनोंका ध्यान रखा जाता है, तब एकादशीका व्रत पूरा होता है। जिनको धर्म, अर्थ, काम चाहिए उनके लिए दशमी-प्रधान एकादशी और जिनको भगवान चाहिए उनके लिए द्वादशी-प्रधान एकादशी है।

हरिवासर उपवास करैं ते नरक न जावैं। ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति सहज फल चारें पावैं।।
रुक्माङ्गद भूपाल राज्य महँ वत करवावैं। सब राखैं उपवास दार, सुत सहित न खावैं।।
सप्तद्वीप के अधिप नृप, सबई आज्ञा सिर धुरै। कछु भय वश कछु भक्ति तैं, हरवासर सब ब्रत बरै।।

एकादशी भगवान का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व्रत है। इससे स्वास्थ्य लाभ, अंतकरणकी शुद्धि पाप की निवृत्ति और नारकी यातना नहीं होती। इसके व्रत को करनेवाले सीधे बैकुण्ठ चले जाते हैं उनको किसी प्रकार की मार्ग में बाधा नहीं होती।

एकादशी का उद्‌गम स्थान नर-नारायण पर्वत का विशाल क्षेत्र है। बद्रीनाथ से पहले एक गुफा है, एकादशी की गुफा। एक नाड़ीजंगम असुर के साथ विष्णु भगवान का युद्ध चल रहा था। प्रभु उस गुफा के अन्दर जाकर विश्राम करने लगे, नाड़ीजंगम वहीं पहुँच गया और सोते हुए भगवान को मारने लगा तो इनके शरीर से एक कन्या पैदा हुई और भगवान की जो तलवार है उसको खींचकर कन्या ने राक्षस को मार दिया। भगवान ने उठकर देखा कि मेरे इतने प्रबल शत्रु को किसने मार दिया। कन्या बोली- ठाकुरजी। आपकी कृपा से मैंने मारा है। क्योंकि ये तो आपको सोते हुए मारने जा रहा था। असुरों

में युद्ध का, धर्म-नियम तो होता नहीं है, ये तो धार्मिक लोग ही धर्म युद्ध करते हैं। लोग शंका करते हैं कि महाभारत के युद्ध में शंख बज गये थे, तब श्रीमद्भगवद् गीता का श्रवण कैसे करवाया गया? लेकिन वह पांडवों की तरफ से धर्म युद्ध था। अगर उस युद्ध के अन्दर भगवान् श्रीकृष्ण सारा का सारा दिन भी गीता जी की चर्चा करते तो भी कोई हथियार नहीं उठाता क्योंकि वह धर्म युद्ध था। गीता सबको नहीं सुनाई दी। अर्जुन, संजय, धृतराष्ट्र तथा हनुमान् जी इन चारों को ही सुनाई दी। श्रीकृष्ण भगवान की यह मोहिनी माया थी। यद्यपि शंख को सुनकर लोगों के दिल दहल गये थे, परन्तु वीर पुरुषों का मन श्रीकृष्ण ने अपनी रूप माधुरी की ओर आकृष्ट कर लिया। वे युद्ध करना भूल गये और सबने यह समझा कि युद्ध अभी प्रारम्भ भी नहीं हुआ है और ये राक्षस अधर्म युद्ध करते हैं।

उस दिन एकादशी तिथि थी। भगवान ने कहा हम तुम्हारा नाम एकादशी रख रहे हैं और आज के दिन जो भी व्रत करेगा वह सीधे मेरे धाम, वैकुण्ठ में आयेगा। मैं तुमको ऐसा वरदान देता हूँ। एकादशी व्रत करने से चारों तरफ धर्म का बोल बाला होगा। धर्म के नाम पर मर मिटनेवालों को भगवान का लोक मिलता है जो अधर्म युद्ध करते है एकादशी का व्रत खण्डित करते हैं नरकगामी होते हैं। उसी समय पाप-भागे-भागे भगवान के पास आये कि हम भी आपकी सृष्टि में है। एकादशी के दिन हम कहाँ जायेंगे? उन्होंने कहा कि एकादशी के दिन तुम अन्न में रहना क्योंकि उस दिन लोग अन्न खायेंगे नहीं। अगर कोई एकादशी के दिन अन्न खाता है तो वह पाप खाता है।

एकादशी के प्रभाव की एक सच्ची घटना है। प्रकाशानन्दजी महाराज दिल्ली में कहीं जा रहे थे कि एक मुसलमान ने उनसे कहा- महात्मा जी प्रणाम। आज आपकी एकादशी है? महाराज जी ने कहाँ, हाँ जी। तो उस मुसलमान ने कहा- इस रेड़ी में से फल ले लीजिए। पैसे मैं दे दूँगा। महाराज जी ने कहा- भई। तुम मुसलमान हो। तुम कैसे एकादशी के प्रति ऐसी सच्ची श्रद्धा रखते हो? वह मुसलमान बोला- मेरे साथ घटना एक ऐसी घटी है। मैं नेवी का कप्तान हूँ। समुद्री जहाज लेकर जा रहा था। समुद्री तुफान आया। जहाज डूब गया। हम सात आदमी छोटी नौका के अन्दर बैठे थे। छोटी नौका भी पहाड़ की कन्दरा में फंस गई और हम ऊपर जाना भी चाहते थे कि एक बड़ा भारी अजगर ८५ हाथ लम्बा ऊपर से नीचे आ रहा था, उस अजगर ने झपट्टा मारा और दो आदमी ले गया। दूसरी बार दो, तीसरी बार दो ले गया। साँतवा मैं बचा। मैंने सोचा-चौथे झपट्टे में मेरा ही नम्बर होगा। थोड़ी देर बाद मैंने आँखें खोलकर देखा, पानी लाल-लाल हो गया था। उसका सिर फटा पड़ा था। पता नहीं किसने काटा। मुझे परमात्मा ने बचा लिया। मै ऊपर गया। ऊपर एक झोंपड़ी देखी। उसमें एक तेजस्विनी देवी बैठी थी। उस देवी ने कहा कि तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ मैंने कहा- नहीं देवी। मैं नहीं जानता पर इतनी कल्पना कर सकता हूँ कि आप कोई साधारण स्त्री नहीं हैं, आपका शरीर दिव्य लगता है। वह देवी बोली, मैं साक्षात् एकादशी हूँ। तुमने पिछले जन्म में मेरे बहुत व्रत किये थे, कुछ अपराध बन गया था। उस वजह से तुम्हारा यह मुस्लिम जन्म हुआ है। एकादशी स्त्री ने मुझसे वरदान माँगने के लिए कहा, मैंने यही वरदान माँगा कि मैं अपने बालबच्चों के बीच सकुशल घर पहुँच जाऊँ। अब मैं पछताता हूँ कि हाय-हाय केवल इतना ही माँगा। कुछ भी माँग सकता था। घर आना ही माँग लिया, मैंने सोचा कि अब मुसलमान के घर जन्म हुआ हैं, खुद तो एकादशी नहीं रख सकता। हमारा धर्म इसकी इजाजत नहीं देता है। कम से कम औरों के व्रत में सहयोग देकर उसमें हिस्सा तो लिया जा सकता है। इसलिए फल ग्रहण करने की आपसे मेरी प्रार्थना है। यह व्रत करनेवाले वैकुण्ठ धाम को प्राप्त होते हैं।

मनुष्यमात्र को एकादशी व्रत करना चाहिये। एकादशी व्रत करना हमारा धर्म है। धार्मिक रीति से भी एकादशी व्रत करना अनिवार्य है और शारीरिक स्वस्थता के लिए भी एकादशी अत्यन्त आवश्यक है।

शुद्धा एकादशी को अखण्डा एकादशी भी कहते हैं। अखण्डा एकादशी का विधान तो यह है कि न तो दशमी की रात्रि का भोजन करे और न द्वादशी की रात्रि का ही। दशमी और द्वादशी को केवल एक बार ही दिन में पारायण करना चाहिये। द्वादशी विद्धा ही एकादशी का व्रत करना चाहिये, दशमीविद्धा का नहीं। एकादशी व्रत का माहात्म्य समाप्त हो जाता है। स्मार्त लोगों के अनुसार एक पल भी दशमी का वेध होने पर एकादशी त्याज्य बतलाई गई है। यदि कदाचित् एकादशी की वृद्धि हो और द्वादशी आ जाय तो व्रत में पर द्वादशी उपवास के योग्य बतलाई गई है।

व्रत की समाप्ति होने पर कार्तिक महीने में अम्बरीष ने तीन रात का उपवास किया, फिर यमुना जी में स्नान करके मधुवन में श्रीकृष्ण की सविधि षोडशोपचार से पूजा की। ब्राह्मणों को प्रभूत धन-वस्त्र देकर उन्हें सन्तुष्ट किया उन्होंने बहुत सी अलंकृत गायें भी ब्राह्मणों के घर भेजीं। पूजन और दानकर लेने के बाद राजा ने ब्राह्मणों को पायस और अपूप, खीर और मालपुआ का भोजन कराकर उनका आशीर्वाद लिया। एक बार राजा ने एक वर्ष का एकादशी व्रत का संकल्प लिया था। व्रत के समाप्त होने पर कार्तिक मास में तीन दिन लगातार उपवास कर अन्तिम दिन यमुना में स्नान कर भगवान मधुसूदन का अभिषेक किया और तन्मय होकर भगवान् को वस्त्र आभूषण धारण कराके वैदिक रूप से अर्चना, वन्दना की तथा निष्ठापूर्वक ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हें अनेक गायें, आभूषण द्रव्य आदि देकर प्रसन्न किया।

सब को खिलापिलाकर वे पारण का विचार कर ही रहे थे कि संयोग से उनके यहाँ महर्षि दुर्वासा पधारे। राजा अम्बरीष उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गये, आसन देकर बैठाया तथा उनकी विधिपूर्वक़ पूजा की। उनके चरणों में प्रणाम करके भोजन करने की प्रार्थना की। ऋषि राजा की प्रार्थना स्वीकार करके मध्याह्न कृत्य के लिये यमुना-तट पर चले गये। वहाँ वे स्नान करके ब्रह्म के ध्यान में निमग्न हो गये। इधर द्वादशी केवल घड़ी भर शेष रह गई थी। द्वादशी में ही पारण अनिवार्य है। राजा बड़े धर्म-संकट में फँसे। दुर्वासा जी के आनेमें अतिशय विलम्ब होने लगा। अतिथि को भोजन कराये बिना स्वयं पारण कैसे करें? यदि द्वादशी में पारण न करें तो व्रत का माहात्म्य ही समाप्त हो जायेगा। ब्राह्मणों के परामर्श से यह निर्णय किया गया कि केवल भगवान के चरणामृत से पारण कर लें। शास्त्रों का वचन है कि चरणोदक भोजन अर्थात पारण भी है और भोजन नहीं भी है। इसलिये आप जल पीकर पारायण कर लें। भक्त अम्बरीष ने ऐसा ही किया।

दुर्वासा शंकरके अंश हैं, चक्र भी शंकरका ही अंश है और जो ब्राह्मण हैं उनमें भी शिवजी बैठे हुए हैं। दुर्वासाजी भक्तोंको हानि नहीं पहुँचाते, उनकी महिमा ही बढ़ाते हैं। अगर दुर्वासाजी न होते तो अम्बरीष कितने भक्त हैं और भगवान अपने भक्तकी कैसे रक्षा करते हैं, यह बात दुनियामें किसीको जाहिर ही नहीं होती। दुर्वासाजीकी हृदय बहुत अच्छा है। वे अपनेपर तो बदनामी ले लेते हैं और दूसरेका यश बढ़ाते हैं।

अम्बरीष जलप्राशन करके महर्षि दुर्वासा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। यमुना से, नित्य कृत्य सम्पन्न कर, दुर्वासा वापस आये। देखते ही वे पहचान गये कि अम्बरीष ने पारण कर लिया है फिर तो उनके क्रोध की सीमा न रही। शरीर काँपने लगा और भौहें कुटिल हो गईं। सामने हाथ जोड़ कर विनम्र बने अम्बरीष की ओर देखकर उन्होंने कहा- अरे देखो तो सही, यह कितना क्रूर है। यह धन के मद से मतवाला हो रहा है। इसने भोजन के लिये मुझे आमन्त्रित किया था किन्तु मुझे बिना खिलाये ही स्वयं खा लिया। अच्छा, देख तुझे अभी इसका फल देता हूँ। इतना कहते-कहते वे क्रोध से धधकने लगे। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी। पटक दिया उसे जमीन पर। उससे उत्पन्न हुई एक कृत्या (राक्षसी)। वह आग की तरह धधक रही थी। उसके हाथ में एक तलवार थी। वह टूट पड़ी राजा अम्बरीष पर, उनका प्राण लेने के लिये। जो प्रलयकाल की अग्नि के समान धधक रही थी। उसके हाथ में खडग् था और उसने अम्बरीष पर प्रहार किया।

महर्षि दुर्वासाजीने महाभागवत राजर्षि अम्बरीषकी परीक्षा ली। दुर्वासाने रोषमें आकर कृत्याको प्रकट किया तथा राजाके विनाशहेतु प्रेरित किया।

अम्बरीष नाभाग थे, हरि के प्यारे भक्त। तन मन से रहते सदा उनमें ही अनुरक्त।।
दुर्वासा अति क्रोध करि, भेजी कृत्या काल। अम्बरीष मारन चली, वही मरी तत्काल।।

यह देखकर अम्बरीष जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे एक पग भी पीछे नहीं हटे। वे ज्यों-के-त्यों हाथ जोड़े सिर झुकाए खड़े थे। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्त अम्बरीष की रक्षा में पहले से ही सुदर्शन चक्र नियुक्त कर रक्खा था। सुदर्शन चक्र निर्जीव नहीं, सजीव है। यह भगवान का पार्षद है। सुदर्शन चक्र ने आते ही कृत्या को भस्म कर दिया और फिर दुर्वासा की ओर बढ़ा। दुर्वासा जी अवाक् रह गये, भयभीत होने लगा और वहाँ से भाग निकले किन्तु तपन के कारण जल रहे थे उन्होंने मुड़कर देखा चक्र को अपनी ओर आते देखकर दुर्वासा, अपने प्राणों की रक्षा के लिये भाग खड़े हुए। चक्र भी उनके पीछे-पीछे दौड़ा। उधर सुदर्शन चक्र प्रभुकी आज्ञासे भक्त अम्बरीषके रक्षार्थ उनकी संनिधिमें अव्यक्त रूपसे रहते थे। भगवान्के प्रति अहैतुकी भक्ति एवं अगाध प्रेम रखनेवाले निष्कपट भक्तके ऊपर संकट आया देखकर सुदर्शनजी प्रकट हुए, कृत्याका विनाश कर दुर्वासाके पीछे लगे और उन्हें संतप्त किया।

दुर्वासा दिशाओं-विदिशाओं में जा रहे थे। उन्होने मेरु की गुफा में भी छिपने का प्रयास किये। किन्तु सर्वत्र सुदर्शन उनका पीछा करता रहा। वे आकाश, पाताल, स्वर्ग एवं मर्त्य आदि सभी लोकों में भागते फिरे किन्तु सुदर्शन ने उनका पीछा न छोड़ा। वे पहाड़ों की कन्दराओं में, तल और वितल में विभिन्न स्थानों पर छिपने की चेष्टा करते रहे किन्तु सुदर्शन ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। अब दुर्वासाजी निराश हो गये और भागने लगे। आगे-आगे दुर्वासा और पीछे-पीछे चक्र। कहीं कोई उनकी रक्षा नहीं करता। चक्र जड़ नहीं चेतन है और भगवानका साक्षात पार्षद है। वह दुर्वासाको मारता तो नहीं, किन्तु खदेड़ता चला जाता है। उनको कहीं दम लेनेकी भी जगह नहीं मिली। जो कालचक्र सामान्य मनुष्य को भयप्रद है, वही भक्त को आनन्दप्रद है। सुदर्शन कालोच्छेदक ज्ञानतत्व है।

दुर्वासा ने देखा कि भाग कर प्राण बचाना असम्भव है, तो वे ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने कृष्ण की महत्ता को सिद्ध करते हुए उनकी रक्षा में अपनी असमर्थता व्यक्त की। ब्रह्माजी बोले- सब काम अपनी शक्ति सामर्थ्य और अधिकारानुसार ही होता है।

दुर्वासा वहाँ से भाग कर कैलासवासी शंकर की शरण में गये। शंकर ने भी मुनि की रक्षा में अपने को असमर्थ बतलाते हुए उन्हें सुदर्शन के स्वामी भगवान विष्णु की शरण में जाने के लिये कहा। हम सब उनकी बनाये नियमों के बन्धन में बँधे हैं अत: उनके भक्त का अपराध करनेवालों की रक्षा मैं नहीं कर सकता। अत: तुम मुनि सर्वेश्वर की शरण में जाओ तभी तुम्हारा मंगल होगा।

ह्वैं निराश शिव ढिँग गये, हर बोले गहु शरन हरि। कृपा करहिं करुनायतन, बिनय करहु तुम पैर परि।।
हर आयसु सिर धारि गये हरिपुर दुर्वासा। शरनागत प्रतिपाल करहिँ मुनि मन बड़ आसा।।
त्राहि त्राहि कहि पैर परै प्रभु हौं अघ कीन्हौं। महिमा जाने बिना शाप वैष्णवकूँ दीन्हौं।।
भक्ताधीन सदा रहौं, विश्वम्भर बोले गरजि। और बात हौं सब सहौं, निज जनको अपमान तजि।।

शुकदेव बोले- राजन्, तदनन्तर निराश होकर दुर्वासाजी भगवान श्रीहरि के उस वैकुण्ठ नामक लोक को गये जहाँ श्रीनिवास भगवान लक्ष्मीजी सहित नित्य निवास करते हैं।

काँपते-हाँफते दुर्वासा भागकर गये वैकुण्ठ लोक में। वे वहाँ पहुँचते ही विष्णु के चरणों पर जा गिरे। हाथ जोड़कर कहा-

प्रभो, मुझसे अपराध हो गया है। बचा लीजिये मुझे। आपके महान प्रभाव को न जानते हुए मैंने आपके प्रिय भक्त के प्रति अपराध कर दिया है। आप मुझे उससे बचाइये। आप ही सन्तोंके एकमात्र रक्षक हैं, उनके एकमात्र जीवन धन हैं। भक्त का परम प्रभाव न जानने के कारण ही मुझसे यह अपराध बना है। हे नाथ, आपका नाममात्र उच्चारण करने से ही जीव भवसागर से तर जाता है। अत: आप मेरी अपने इस अस्त्र से रक्षा कीजिये।

अब महर्षि व्याकुल होते हुए ब्रह्मलोक गये, सुदर्शनचक्रके तापसे बचानेकी प्रार्थना की, परंतु ब्रह्माजीने अपनी असमर्थता बतायी। वहाँसे शिवलोक गये, श्रीशिवजीसे भी निराशा ही हाथ लगी। अन्तत: वैकुण्ठमें जाकर क्षमा-प्रार्थना करते हुए अपनी रक्षाहेतु विनती की।

भगवान ने कहा- दुर्वासा जी, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं सर्वदा भक्तों के अधीन रहा करता हूँ। सीधे-सादे भक्तों ने मेरे हृदय को अपने वश में कर रक्खा है। भक्त-जन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।

ब्रह्मन, अपने भक्तों का एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ अत: उन्हें छोड़कर मैं अपने आप को और अपनी अर्धांगिनी लक्ष्मी को भी नहीं चाहता। जो मेरे भक्त, स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक- सब कुछ छोड़कर केवल मेरी शरण ग्रहण किये हुए हैं, उन्हें छोड़ने का विचार भी मैं कैसे कर सकता हूँ।

दुर्वासा जी, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उनका हृदय मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता किन्तु ऋषिप्रवर, जिसका अनिष्ट करने के कारण आप इस महान् विपत्ति में पड़े हैं, उसी की शरण में जाइये। निरपराध साधुओं पर जो शक्ति का प्रयोग करता है, वह शक्ति उल्टे उसी का अमंगल करती है। भगवान भक्तकी भक्ति करते हैं, भक्तके सेवक हैं, भक्तके लिए रोते हैं, भक्तके लिए उनको नींद नहीं आती, भक्तके लिए बेचैन हो जाते हैं। भक्तके प्रेमके वश होकर भगवान अन्याय भी कर बैठते हैं। भगवान भक्त-पराधीन हैं। भगवान बोले- भक्त लोगोंके पास मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। जो दार, आगार, पुत्र, गुरु, प्रियजन, धन, लोक, परलोक, छोड़कर मेरी शरण में आये हैं; उनको छोड़ देनेकी बात मैं कैसे सोच सकता हूँ? मैं उनको मुक्ति देता हूं तो वे मुक्तिको भी नहीं लेते। मैं साधुओंका हृदय हूँ और साधु मेरे हृदय हैं। उनको मेरे सिवाय कुछ ज्ञात नहीं और मैं भी उनके सिवाय कुछ नहीं जानता। जो साधुपर प्रहार करता है उसीका अमंगल होता है। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँकि आप ब्राह्म हैं, तपस्वी हैं, जातिसे भी पवित्र हैं, कर्मसे पवित्र हैं, विद्यासे भी पवित्र हैं। अर्थात जिसकी जाति ठीक हो, विद्या, कर्म ठीक हो वही सच्चा ब्राह्मण होता है। आपका कल्याण होना चाहिये। लेकिन यदि कोई ब्राह्मण दुर्विनीत हो जाता है, वो गुणोंका दुरुपयोग करने लग जाये तो विपरीत फल मिलता है। जाति, विद्या, तपस्यामूलक श्रेष्ठता, श्रेष्ठता नहीं है, भक्तिमूलक श्रेष्ठता ही श्रेष्ठता है।

भगवान बोले- विप्रवर, आप कैसी बातें कर रहे हैं। अरे, महाराज। जिन्हें अपनी सुन्दरी से सुन्दरी सती साध्वी पत्नी का मोह नहीं है मेरे पीछे जो उसे छोड़ सकते हैं, जो फूल से खिले सुकुमार सुतों का मेरी प्रसन्नता के निमित्त हँसते हुए बिना हिचकिचाहट के बलिदान कर सकते हैं, वंश परम्परा से प्राप्त घर को मेरे भजन के निमित्त क्षणभर में छोड़ सकते हैं, जो दुस्त्यज स्नेहियों से मेरी प्रसन्नता के निमित्त नाता तोड़ सकते हैं, जो प्राण देकर प्राप्त होनेवाले धन से सदा के लिये मुख मोड़ सकते हैं, कहाँ तक कहें जो अपने प्राणों का भी प्रसन्नता पूर्वक़ उत्सर्ग कर सकते हैं, ऐसे निष्काम भक्तों को भला कभी मैं छोड़ सकता हूँ? जो मेरे पीछे इहलोक तथा परलोक में समस्त सुखों को तुच्छातितुच्छ समझते हैं, उनकी भला मैं कभी उपेक्षा कर सकता हूँ। ब्रह्मन, यह असम्भव है, मैं ऐसे भक्तों का क्रीतदास हूँ, उनके अधीन हूँ, वे मुझे जैसे नचाते हैं, वैसे नाचता हूँ, उन्हीं के लिये निर्गुण से सगुण और निराकार से साकार बन जाता हूँ, उनके विरुद्ध बर्ताव करने की मुझमें शक्ति नहीं, सामर्थ्य नहीं।

जे सरबसु कूँ त्यागि शरन मेरी महँ आये। मम हित मख-तप तीर्थ करे जिन दुख बहु पाये।।
धन, सुत, दारा बन्धु लोष्ठवत सब कूं जानें। मोकूँ तजि सब तुच्छ स्वर्ग अपवर्ग हि मानें।।
वस्तु जगत् की अन्य कछु, माकूँ तजि जाने नहीं। ऐसे अनुपम भक्त कूँ, त्यागि सकैं स्वामी नहीं।।

यदि कोई अपराधी हो, अल्पवीर्य हो तो उस पर किया हुआ अभिचार आदि का प्रयोग उसका अनिष्ट कर देता है, किन्तु निरपराध साधु पुरुषों पर जो व्यर्थ प्रहार किया जाता है वह उलटा प्रहारकर्ता पर ही पड़ता है। वस्तुएँ पात्र पाकर अच्छी बुरी बन जाती हैं। दूध दही अमृत हैं उन्हें ही तांबे के पात्र में रख दो तो वे विष बन जायेंगे। गंगा जल को सुरा के घड़े में रख दो तो अपेय हो जायगा। इसी प्रकार तपस्या और विद्या सदाचारी ब्राह्मणों के समीप तो कल्याण करनेवाली होती है, वे ही यदि दुर्विनीत दुष्ट खल के पास आ जायँ, तो अकल्याणकारक हो जाती हैं। उनका वह दुरुपयोग ही करेगा।

ब्राह्मण देवता, आप का कल्याण हो। आप अम्बरीष के पास जाइये, अपने अपराध के लिये उनसे क्षमा-याचना कीजिये, तभी विपत्ति दूर होकर आपको शान्ति मिलेगी अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैभक्तजनप्रिय:।।
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा माँ शरणं याता: कथ तांस्त्यक्तुमुत्सहे।।

मैं भक्तों के अधीन हूँ स्वतंत्र नहीं, अपने भक्तों का मैं एक मात्र आश्रय हूँ जो भक्त अपनी स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति आदि सब कुछ छोड़कर मेरी शरण में आये हैं उन्हें कैसे छोड़ सकता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मण मेरे प्रिय हैं, मैं इनका दास हूँ। ब्राह्मणों के लिए तपस्या और विद्या परम कल्याण का साधन है परन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड और अन्यायी हो जाये तो तपस्या और विद्या दोनों ही उल्टा फल देने लगते हैं।

हे दुर्वासा जी यद्यपि मैं सर्व समर्थ भगवान हूँ फिर भी भक्तों ने मुझे अपने आधीन कर रखा है।

मैं जरा भी स्वतन्त्र नहीं हूँ और सदा भक्तों के वश में रहता हूँ। सरल स्वभाव वाले भक्तों ने हमारे हृदय को अपने हृदय में धर लिया है इस प्रकार मैं भक्तों के वश में हो गया हूँ।

साधु स्वभाववाले भक्त हमें इतने प्यारे हैं जितने कि हमको हमारे प्राण भी नहीं प्यारे हैं। उन्होंने हमारे लिये पुत्र पति पत्नी गुरुजन घर सब कुछ छोड़ दिया है और वे हमसे सम्पत्ति प्राण यहाँ तक कि स्वर्ग भी नहीं माँगते।

उनको मेरी शरण छोड़कर और कुछ नहीं अच्छा लगता। ऐसे उन भक्तों को मैं छोड़ने की सोच भी नहीं सकता। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति को वश में कर लेती हैं उसी प्रकार भक्तों ने हमको प्रेम के बन्धन में बाँध लिया हैं।

उनको हमारी सेवा प्यारी लगती है मुक्ति प्यारी नहीं लगती और बिना हमारी सेवा के मुक्ति विष की तरह कड़ुवी और खारी लगती है। मैं भक्तों के लिये ही तो मनुष्य शरीर लेकर बार बार अवतार धारण करता हूँ।

ऐसे भक्तों को बिना आनन्द दिये मैं कैसे रह सकता हूँ इसके लिये तो लोगों के कड़ुवे बचन सुनकर भी मैं उनको प्रसन्न करना चाहता हूँ।

हे द्विजवर, मैं स्वतन्त्र होता हुआ भी भक्तजनोंका प्रिय अर्थात् भक्तवत्सल होनेके कारण सज्जन भक्तोंके अधीन-सा हूँ। सज्जन भक्तोंने प्रेमद्वारा मेरे मनको वशीभूत कर दिया है। अत: मैं उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। महर्षे, जहाँसे आपको यह संकट उपस्थित हुआ, वहीं पहुँचिये, शान्ति मिलेगी।

फिर हू एक उपाय बताऊं तुमकूँ मुनिवर। अम्बरीष नृप निकट जाहु चूकौ नहिँ अवसर।।
शान्त होइगो चक्र मिटेंगे दुस्सह दुख सब। प्रभु आज्ञा स्वीकारि चले मुनि नृप के ढिंग तब।।

दु:खित दुर्वासा तुरत, नृप पैरनि महँ परि गये। अस प्रयत्न मुनि को निरखि, अति लज्जित भूपति भये।।

महर्षि दुर्वासा जब सब ओरसे निराश होकर श्रीअम्बरीषकी शरणमें गये, तब राजाने श्रीहरिके तेजोमय चक्रसे प्रानिा करके उनकी रक्षा की। अत्रिनन्दन दुर्वासा कृतकृत्य होकर श्रीअम्बरीषसे कहते हैं- नाम, रूप, गुणसे अनन्त भगवान् श्रीअनन्तके दासोंकी अनन्त महिमाका आज मैंने साक्षात् दर्शन किया। हे राजन्, मैंने आपको मार डालनेकी इच्छासे अपराध किया, परंतु आपने तो मेरा मंगल किया- श्रीहरिके सुदर्शनचक्रसे प्रार्थना करके अपनी साधनाको अर्पण करके मेरे प्राणोंकी रक्षा की। यह हरिदासोंका महत्व है। धन्य हैं हरिदास।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान के द्वारा इस प्रकार की आज्ञा पाकर चक्र की ज्वाला से सन्तप्त ऋषि दुर्वासा भागकर अम्बरीष के पास पहुँचे। वहाँ वे अत्यन्त दु:खी होकर राजा के पैरों पर गिर पड़े। यह देख कर अम्बरीष लज्जित होकर संकोच में पड़ गये। उस समय उनका हृदय दयावश अत्यन्त पीडित हो रहा था। उन्होंने हाथ जोड़कर सुदर्शन चक्र की स्तुति करते हुए कहा- सुदर्शन चक्र, मैं आपको हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहा हूँ। आप सहस्त्र धाराओं से युक्त एवं भगवान विष्णु के परम प्रिय हैं। आप की महिमा सारे अस्त्र-शस्त्रों से बढ़कर है। आप सकल ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। आप धर्म की रक्षा करनेवाले तथा अधार्मिक असुरों के संहारक हैं। आप त्रिलोकी के रक्षक एवं विशुद्ध तेजोमय हैं। आप की गति मन के वेग के समान है। आप अद्भुतकर्म के संपादक है। मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ, आप की स्तुति कर रहा हूँ। आप इन ब्राह्मण-देवता की रक्षा करें।

अम्बरीष निज भक्त की, कीन्हीं रक्षा राम। दुर्वासा भागत फिरे, तीन लोक के धाम।।
अम्बरीष की शरण में, गये मुनी घबराय। चक्ररोकि नृपने लिये मुनिके प्राणबचाय।।

आप महात्माओं के अन्त:करण में प्रकाश बिखेरनेवाले हैं। मैं आपको बार-बार प्रणाम कर रहा हूँ। आप इन ब्राह्मण-महाराज की रक्षा करें। सुदर्शन जी, यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्म का पालन किया हो, यदि हमारा कुल ब्राह्मणों को देवता समझता रहा हो, तो दुर्वासा जी की जलन समाप्त हो जाय। यदि भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो ब्राह्मण देवता के हृदय की सारी जलन समाप्त हो जाय। तब चक्रने दुर्वासाजी को पाप से मुक्त किया।

अब दुर्वासाजी समझ गये कि प्रभु कितने भक्तवत्सल हैं, भक्तोंकी प्रेममयी भावनासे कैसे बँधे हैं। फिर तो वे वैकुण्ठसे नि:संकोच अम्बरीषके पास पहुँचे, क्षमा माँगी। तब राजाने भगवान् श्रीसुदर्शनकी स्तुति की- हे चक्रराज, आप स्वयं अग्नि, सोम, सूर्य आदि समस्त तेजोमय देवोंके भी तेज:स्वरूप हैं। आपका अमित प्रभाव है। इन महर्षिका मङ्गल हो। आप शान्त हो जायँ। अम्बरीष की प्रार्थना करनेपर सुदर्शनजी शान्तरूपमें दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये।

शुकदेव बोले- राजन्, अम्बरीष के इस प्रकार कहते ही सुदर्शन चक्र शान्त हो गया। दुर्वासा की सारी व्यथा समाप्त हो गई। वे पहले की तरह स्वस्थ हो गये फिर उन्होंने राजा को बहुत-सा आशीष प्रदान कर कहा- आज मैंने भगवान अनन्त के दासों की महिमा देख ली।

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टपद्यमे। कृतागसोऽपि यद् राजन् मंगलानि समीहसे।।
चक्र विनय नृप करी लखे भययुत दुर्वासा। शान्त सुदर्शन भयो भई मुनिवर कूँ आसा।।
बोले नृप तुम धन्य धन्य तुम्हारी है जननी। धन्य नभग शुभ वंश प्रजा दारा धन धरनी।।
महिमा भक्तनि की लखी, गर्व खर्व मेरो भयो। दुतकार्‌यो मोकूँ सबनि, शरन हेतु जहँ जहँ गयो।।

राजन्, मैंने आप का अपराध किया, फिर भी आप मेरी कल्याण-कामना ही कर रहे हैं, यह आप जैसे भगवद्भक्त के लिये ही संभव है। जिनके मंगलमय नामों के श्रवणमात्र से प्राणी निर्मल हो जाता है, उन्हीं तीर्थपाद भगवान के चरण-कमलों के

जो दास हैं, उनके लिये कौन-सा कर्त्तव्य अवशिष्ट रह जाता है? महाराज अम्बरीष, आप करुणा के सागर हैं। आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया है। अहो। आपने मेरे अपराध को भुलाकर मेरे प्राणों की रक्षा की है। आपके अलावा इतना महान् कार्य और कौन कर सकता है।

भक्तकी महिमा किसी सिद्धि-चमत्कारमें नहीं, इसमें है कि जो उसका अपराधी है उसके लिए भी वह मंगलकी अभिलाषा कर रहा है। जिन साधु-महात्माओंने भगवानको अपनी झोलीमें डाल लिया है, उनके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है, कोई भी दुस्त्यज नहीं है। जिन्होंने भगवानका संग्रह कर लिया, उन्हें सिद्ध, धन, दौलत, ऐश्वर्य और दुनियाका प्रभाव- इन सबका संग्रह करनेकी कोई जरूरत नहीं। जिनके नाम-श्रवण-मात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है, उनके भक्तोंके लिए दुनियामें क्या बाकी है। महाराज अम्बरीष, आपका हृदय करुणार्द्र है। आपने मेरे अपराधपर ध्यान नहीं दिया और मेरी रक्षा की, यह आपका बड़ा भारी अनुग्रह है। मेहमान का कर्त्तव्य बनता है कि यजमान के सौजन्य का दुरुपयोग न करे।

दान-पुण्य आदि शुभ कर्मों का फल यह है कि उसके प्रभाव से दैवी विपदा भी टाली जा सकती है। अम्बरीष के पुण्य प्रभाव से ऋषि दुर्वासा पर आयी विपदा टल गयी और वे स्वस्थ हो गये।

पूरे एक वर्ष बाद आज दुर्वासा जी त्रिलोकी का भ्रमण करके लौटे हैं। राजर्षि अम्बरीष पूरे वर्ष भर बिना भोजन किये उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अब उन्होंने दुर्वासा जी के चरण पकड़ लिये और उन्हें प्रसन्न करके भोजन कराया। विविध व्यंजनों का भोजन करके दुर्वासा जी तृप्त हो गये फिर उन्होंने कहा- राजन्, अब आप भी भोजन कीजिये। आपके आतिथ्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न और अनुगृहीत हूँ। मेरा-आशीष हैं, स्वर्ग की देवांगनाएँ अनन्तकाल तक आपके उज्ज्वल चरित्र का गान करती रहेंगी। इस भूतल पर आपकी परम पुण्यमयी कीर्ति-लहरियाँ सर्वदा हिलोरें लेती रहेंगी।

शुकदेव बोले- राजन्, अब दुर्वासा जी बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न थे। वे राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आकाशमार्ग से ब्रह्मलोक चले गये। ऋषि-प्रवर के चले जाने पर राजा ने परिवार के साथ भोजन कराने से बचे हुए अतिपवित्र अन्न को ग्रहण किया। ऋषि को उनके कारण कष्ट हुआ। इसके लिये उनका मन दु:खी था। इस विषय में वे भगवान का ही प्रभाव मान रहे थे। उन्हें अपने कर्तृत्व का लेश भर भी अभिमान न था। इस प्रकार के बहुत-से गुण उनमें विराजमान थे। भगवान की भक्ति के सामने सकल ब्रह्माण्ड का भी वैभव उन्हें नरक के समान प्रतीत होता था।

दुर्वासा की विनय निरखि नृप अति सकुचाये। करि सादर सत्कार स्वाद युत अन्न जिमाये।।
दीयो आशीर्वाद भक्त की महिमा जानी। भक्ति श्रेष्ठ जग मांहि महामुनि मन महँ मानी।।
अम्बरीष नृप भक्ति करि, अति प्रसिद्ध जग महँ भये। राज्य भार सुत सिर धर्‌यो, भजन करन वन महँ गये।।

तदनन्तर राजा अम्बरीष अपने ही समान भक्त पुत्रों पर राज्य का भार रखकर स्वयं वन में चले गये। वहाँ उन्होंने भगवान का प्रगाढ ध्यान करते हुए, त्रिगुणमय संसार का परित्याग कर, मुक्ति को प्राप्त किया।

दुर्वासा भगवान शंकर के अंशावतार हैं। भगवान शंकर ने यह लीला भगवान विष्णु एवं उनके भक्तों की महिमा को बढ़ाने के लिये ही रची थी। दुर्वासा के सिर पर अपयश मढ़कर अम्बरीष की महत्ता और विष्णु की भक्तवत्सलता प्रदर्शित करना ही इस लीला का हृदय है। दुर्वासा शंकरावतार थे। सुदर्शनचक्र शंकर के चरण के अँगूठे के नख से निकला था। उसे शंकर ने भगवान विष्णु को संसार की रक्षा के लिये दिया था। नाभाग शंकर के भक्त थे। शंकर के दिये हुए धन से ही अम्बरीष का बचपन में पालन-पोषण हुआ था। दुर्वासा ने कलंक लेकर भी भगवान विष्णु के भक्तों की महिमा बढ़ाई है यदि दुर्वासा ने यह लीला न की होती तो आज अम्बरीष को संसार में कौन जानता?

४) मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा- शुकदेव बोले - राजन्, अम्बरीष के तीन पुत्र हुए- विरूप, केतुमान् और शुम्भ। विरूप से पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर हुआ। रथीतर सन्तान-विहीन था। वंश चलाने के लिये रथीतर ने अंगिरा से प्रार्थना की। अंगिरा ने उसकी पत्नी से कई पुत्र उत्पन्न किये। ये सभी आंगिरस कहलाये।

इक्ष्वाकु वंश वर्णन कियौ, मुनि ने अति हरषाय। नृपति परीक्षित् सुनि रहे, प्रभु में ध्यान लगाय।।

धर्मात्मा नृपति ही इस पृथ्वी पर धर्म का प्रसार और प्रचार कर सकते हैं। शासक की जिस विषय में रुचि होगी, शासितों की भी उसी विषय में रुचि होना अनिवार्य है। राजा के भावों का ही प्रतीक प्रजा के जन होते हैं। इसीलिये राजवंश की विशुद्धता पर सदा से अधिक ध्यान रखा जाता था। राज्य परम्परा विशुद्ध बनी रहने से पूर्वजों के वंश परम्परागत सद्गुण विलुप्त नहीं होते। जहाँ राज्यवंश में संकरता का दोष आ जाता है, वहीं क्रमश: राज्य वंश क्षीण हो जाता है। विशुद्ध भावना से शुद्ध रजवीर्य की सन्तान विशुद्ध होगी। जिस वश में धर्म के भाव परम्परागत अक्षुण्य चले आते हैं, वह वंश पुण्यश्लोक तथा धर्म वश कहलाता है। उस वंश का वर्णन श्रवण, चिन्तन, पुण्यप्रद माना गया है, उसके संकीर्तन से, ध्यान से मनन से मनुष्यों के समस्त दुरित दूर होकर पुण्य की वृद्धि होती है।

एक बार मनु को छींक आ गई। छींकने पर उनकी नासिका से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र पैदा हुआ। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े थे- विकुक्षि, निमि और दण्डक। इक्ष्वाकु के पच्चीस पुत्र आर्यावर्त के पूर्व भाग के, पच्चीस पश्चिम के, तीन मध्य भाग के तथा बाकी ४७ पुत्र दक्षिण आदि अन्य प्रान्तों के अधिपति बनें।

एक दिन इक्ष्वाकु अष्टका श्राद्ध कर रहे थे। उन्होंने अपने बड़े पुत्र विकुक्षि को आज्ञा दी- बेटा, शीघ्र ही जाकर श्राद्ध के योग्य पवित्र पशुओं का मांस लाओ। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर विकुक्षि जंगल में गये। वहाँ उन्होंने बहु-से यज्ञ-योग्य पशुओं का शिकार किया। शिकार की बेला में इधर-उधर दौड़ने से वे थक गये थे। उन्हें भूख भी लग गई थी अत: उन्होंने एक खरगोश का मांस खाकर भूख मिटाई फिर उन्होंने बचा हुआ मांस लोकर अपने पिता को दिया।

प्राचीन काल का ऐसा सदाचार है कि किसी को उच्छिष्ट वस्तु देना बहुत बड़ा पाप है। साथ-साथ खाने से तत्काल दूसरों के गुण-दोष अपने में आ जाते हैं। बहुत सी छूत की बिमारियाँ होती हैं, जो संसर्ग दोष से ही फैल जाती है, साथ बैठकर खाने से, उच्छिष्ट वस्तु खाने से एक पात्र में ही खाने पीने से एक शैया पर सोने से, परस्पर में एक दूसरे के वस्त्र पहिनने से एक आसन पर बैठने से तथा और भी साथ-साथ क्रिया करने से रोगों के कीटाणु एक अंग से दूसरे अंग में फैल जाते हैं। हमारे यहाँ ब्रह्महत्या, सुरापान सुवर्ण की चोरी और अपने गुरु की स्त्री के साथ गमन करना ये चार महापापी बताये हैं। जितना दोष इन महापापियों को लगाता है उतना ही इनके साथ संसर्ग करनेवालों को लगाता है। इसलिये तत् संसर्गीतु पंचम: कहा है, अर्थात् चार ये और पाँचवाँ वह जो इनके साथ संसर्ग करे। शिष्य के लिये गुरु का, पत्नी के लिये पति का, तथा भक्त के लिये भगवान का प्रसाद भोग उच्छिष्ट नहीं कहाता। जो अपने सम्बन्धी हैं कुल गोत्र के सहधर्मी हैं, परिचित हैं उनके साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करना दोष नहीं किन्तु जो सहधमी नहीं, जिसके कुल गोत्र, वंश, शील सदाचार का पता नहीं। उनके साथ खान पान व्यवहार करना अनुचित है। उच्छिष्ट भक्षण की तो कौन कहे उनके साथ भी खान पान करना दोष युक्त है। जूठे बर्तन में खाया या खान के अनंतर जो पात्र में बच रहा उसे ही उच्छिष्ट नहीं कहते। हमारे यहाँ तो उसे भी उच्छिष्ट कहा है कि सहस्त्र आदमियों का भोजन बना है, सबको न खिलाकर पहिले एक को खिला दिया तो सब अन्न उच्छिष्ट हो गया। दुर्वासा अम्बरीष से इसीलिये कुपित हो गये थे कि पहिले स्वयं खाकर उच्छिष्ट हमें खिलाता है। जो वस्तु देवता के निमित्त आई है उसमें से कुछ भाग निकालकर देवता

के अर्पण के पूर्व ही उसे मनुष्य खा लेता है तो वह सबका सब उच्छिष्ट हो जाता है, फिर वह देवताओं के अर्पण करने योग्य नहीं रहता है। जैसे मालपुआ हलुआ आदि पदार्थ बने। अभी भगवान का भोग नहीं लगा है और उसके पूर्व ही उसमें से पृथक निकालकर किसी को दे दिया, तो वह सब उच्छिष्ट हो गया। उसे देवता ग्रहण न करेंगे।

इक्ष्वाकु ने जब अपने गुरु वशिष्ठ से मांस का प्रोक्षण करने के लिये कहा, तब गुरु ने बतलाया कि यह मांस तो उच्छिष्ट (झूठा) है अत: श्राद्ध के अयोग्य है। इस पर इक्ष्वाकु को क्रोध आ गया। उन्होंने विकुक्षि को देश से निकाल दिया। बाद में गुरु वसिष्ठ से ज्ञान प्राप्त कर पिता के परलोक चले जाने पर विकुक्षि फिर राज्य में लौट आये और भू-मण्डल का शासन करने लगे। उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा भगवान की आराधना की। दुनियाँ उन्हें शशाद इस नाम से भी जानती है।

विकुक्षि के बेटे का नाम था- पुरंजय। पुरंजय को इन्द्रवाह और ककुस्थ भी कहते हैं। एक बार देवासुर-संग्राम चल रहा था। देवताओं ने पुरंजय से युद्ध में सहायता मांगी। पुरंजय ने कहा- यदि देवराज इन्द्र मेरे वाहन बने, तो मैं युद्ध कर सकता हूँ। इन्द्र ने उनकी बात मान ली। वे एक विशाल बैल का रूप धारण कर पुरंजय के सामने प्रस्तुत हुए। उसकी पीठ पर डील (ककुद) के पास बैठकर पुरंजय ने असुरों से युद्ध कर उन्हें परास्त कर दिया। उनका सारा ऐश्वर्य छीनकर इन्द्र को प्रदान कर दिया। इसीलिये उन राजर्षि को, शत्रुओं का पुर जीतने के कारण, पुरंजय, इन्द्र को वाहन बनाने के कारण इन्द्रवाह और बैल के ककुद पर बैठने के कारण ककुत्स्थ कहा जाता है।

इन्द्र बने वाहन समर, इन्द्रावह सब कहहिँ नर। रिपुपुर जीत्यो पुरञ्जय, स्वर्ग माहिँ भाषै अमर।।

पुरंजय के पुत्र अनेना हुए। अनेना के पुत्र हुए विश्वरन्ध्री। इन्हीं का वंश परम्परा में राजा युवनाश्व हुए। युवनाश्व की सौ रानियाँ थीं किन्तु किसी से कोई सन्तान न हुई। इससे राजा दु:खित होकर वन में चले गये। ऋषियों ने पुत्र के लिये चिन्तित युवनाश्व से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करवाया। यज्ञ के दिनों में एक दिन युवनाश्व को रात्रि की बेला में जोर की प्यास लगी। पानी खोजते हुए वे यज्ञशाला में गये। वहाँ आचार्यों ने मन्त्र से अभिमन्त्रित जल एक घड़े में रानी को पीने के लिये रक्खा था। दैव का विधान बड़ा विचित्र होता है। राजा ने वही अभिमन्त्रित जल एक घड़े में रानी को पीने के लिये रक्खा था। दैव का विधान बड़ा विचित्र होता है। राजा ने उसी अभिमन्त्रित जल को पी लिया। प्रात:काल ऋषियों ने देखा कि कलश में तो जल नहीं है। पूछने पर पता चला कि राजा ने पुत्र उत्पन्न करनेवाले उस जल को पी लिया है। यह जान कर ऋषि-गण आश्चर्यचकित हो दैव को ही नमस्कार किये और कहा- धन्य है भगवदिच्छा। वस्तुत: भगवान का ही बल सबसे बड़ा बल है। प्रसव का समय आने पर युवनाश्व की दाहिनी कुक्षि फाड़कर उससे एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। दूध के लिये उसे रोते देखकर ऋषियों ने कहा- यह किसका दूध पियेगा? इस पर इन्द्र ने कहा- मेरा पियेगा (मां धाता)। यह कहकर इन्द्र ने अपनी अमृतवर्षिणी तर्जनी अँगुली बालक के मुँह में डाल दी। आगे चलकर इसी बालक का नाम मान्धाता हुआ।

यह ब्राह्मणों और देवताओं की ही कृपा का फल था कि युवनाश्व सकुशल बच गये, उनकी मृत्यु नहीं हुई फिर वह वहीं तपस्या करके मुक्त हो गये। आगे चलकर युवनाश्व के पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती राजा हुए। इन्द्र ने मान्धाता का नाम त्रसद्दस्यु रक्खा, क्योंकि रावण आदि दस्यु (लुटेरे) उनसे उद्विग्न और भयभीत रहते थे। भगवान के तेज से तेजस्वी होकर वे अकेले ही अखण्ड सप्तद्वीपा वसुमती के एकछत्र राजा थे। जहाँ से सूर्य का उदय होता है और वे जहाँ अस्त होते हैं, वह सारा-का-सारा भूभाग युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के ही अधिकार में था। इन्होंने बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन किया।

नृपति सेनजित् पुत्र भये युवनाश्व यशस्वी। मान्धाता तिन पुत्र चक्रवर्ती तेजस्वी।।

मांधाता - इक्ष्वाकुवंशीह राजा युवनाश्व नि:संतान होने के कारण दु:खी थे और खिन्न चित्त से मुनियों के आश्रम में रहा करते थे। उनके दु:ख से द्रवित होकर मुनियों ने उनके पुत्र उत्पन्न होने के लिए यज्ञानुष्ठान किया। आधी रात के समय उस अनुष्ठान के समाप्त होने पर मुनिजन मंत्रपूत जल का कलश वेदी में रखकर सो गए। उनके सो जाने पर राजा युवनाश्व ने उस स्थान पर प्रवेश किया। वे बहुत प्यासे थे। सोये होने के कारण उन्होंने मुनियों को जगाना उचित नहीं समझा। उन्होंने उस सिद्ध कलश के मंत्रपूत जल को ही पी लिया जागने पर मुनियों ने पूछा- इस मंत्रपूत-जल को किसने पिया है? इसका पान करने पर ही राजा युवनाश्व की पत्नी महाविक्रमशील पुत्र को उत्पन्न करेगी।

परिणामत: युवानाश्व के उदर में गर्भ स्थापित हो गया और क्रमश: बढ़ने लगा, यथासमय बालक राजा की दाईं कोख फाड़कर निकल आया, किंतु इससे राजा की मृत्यु नहीं हुई। बालक के जन्म होने पर मुनियों ने पूछा- यह शिशु क्या पान करके जीवित रहेगा? उस समय देवराज इंद्र ने आकर कहा- यह मेरे आश्रय से जीवित रहेगा। (ममयं धास्यतीति) अत: उसका नाम मांधाता हुआ। देवेंन्द्र ने अपनी तर्जनी (अंगुली) बालक के मुंह में रख दी जिसे वह पीने लगा। उस अमृतमयी तर्जनी का आस्वादन करने से बालक एक ही दिन में बढ़ गया। तभी से चक्रवर्ती मांधाता सप्तदीपा पृथ्वी का राज्य भोगने लगे। उनके संबंध में यह श्लोक कहा जाता है- जहां से सूर्य उदय होता है और जहां अस्त होता है वह सभी क्षेत्र युवनाश्व के पुत्र मांधाता का है।

राजा मान्धाता की पत्नी का नाम था- बिन्दुमती। वह शशबिन्दु की बेटी थी। उसके गर्भ से उनके तीन पुत्र हुए- पुरुकुत्स, अम्बरीष (ये दूसरे अम्बरीष) है और योगी मुचुकुन्द। मान्धाता की पचास बेटिया थीं। उनसबने अकेले सौभरि ऋषि को पति के रूप में वरण किया था।

कन्या जनी पचास सुन्दरी अति सुकुमारी। बड़ी भई सब संग कमल नयनी पितु प्यारी।।
व्रज मंडल में परम तपस्वी सौभरि मुनिवर। यमुना जल महँ बैठि तपस्या करै उग्रतर।।
बाल ब्रह्मचारी रहे, भये वृद्ध तनु छीन अति। बरस सहसदश तप कर्‌यो, नहिँ निरखी संसार गति।।

शुकदेव बोले- एक बार परम तपस्वी सौभरि मुनि कण्व ऋषि के पुत्र घोर महर्षि के पौत्र यमुना के जल में सुनरख नाम के स्थान पर वृंदावन में खड़े होकर तप कर रहे थे। जीवन में कभी न तो गृहस्थियों का संग किया और न कभी सांसारिक सुखों की ओर दृष्टि उठाकर ही देखा। अपने आश्रम में एकान्त में रहकर ये भगवान की आराधना करते हुए कालक्षेप करते थे। कभी-की आश्रम के निकट से स्त्री-पुरुष निकल जाते, कभी-कभी बातें भी सुनाई दे जातीं। इससे मुनि को आन्तरिक दु:ख होता। उन्हें सांसारिक बातें विष के समान लगती थी।

उसी समय उनकी दृष्टि एक विशाल मत्स्यराज पर पड़ी। मत्स्यराज मछलियों के साथ मैथुनक्रीडा करके आनन्द ले रहा था। यह दृश्य देखते ही सौभरि महाराज का मन विचलित हो उठा। दृष्टि से मन पर वृष्टि होती है। काम क्रीडा की लालसा उनके मन में भी पैदा हुई अत: जल से निकल कर वे पहुँच गये राजा मान्धाता के पास।

इक दिन जल महँ मत्स्यराज कूँ निरख्यो मुनिवर। निज पत्नी के संग करत क्रीड़ा अति सुखकर।।
अति अनुराग समेत नीर नयननि महँ भरि कैं। किलकें इत उत पुत्र पौत्र पैरनि महँ परि कैं।।
इच्छा मुनि मन महँ भई, व्रत करि करि अति सहे दुख। जप तप महँ जीवन गयो, नहिँ चाख्यो संसार सुख।।
ब्याह करन अभिलाष भई सब नियम भुलाये। मान्धाता ढिँग पुरी अयोध्या महँ मुनि आये।।

बोले- पुत्री है पचास तुमरे हे भूपति। करूँ याचना एक ब्याह की इच्छा चित अति।।
सुनि नृप अति विस्मित भये, घबराये सब अँग थके। वृद्ध देह तप अमित लखि, हाँ ना कछु नहिँ करि सके।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब सौभरि ऋषि के मन में विवाह करने की आकांक्षा उत्पन्न हो गई, तो उन्होंने महाराज मान्धाता से जाकर एक कन्या की याचना की इस पर वे राजा बोले- ब्रह्मन्, भीतर चले जाइये, जो कन्या आपको स्वेच्छा से वरण कर ले- उसे आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लें।

सौभरि ने कहा- राजन्, आप अपनी एक कन्या का विवाह मेरे साथ कर दीजिये। श्वेतकेश, वलीपलित जर्जर सौभरि के प्रस्ताव पर राजा सन्न रह गये। उन्होंने इस प्रसंग को टालने के लिये बहाना किया और कहा- मुनिवर, मेरी पचास कन्याएँ हैं। उनमें जो आपको वरण कर ले उसे आप सानन्द ले जाइये। राजा समझते थे कि इस मरणासन्न व्यक्ति का वरण भला कौन करेगी? मुनि राजा के अभिप्राय को समझ गये। वे जब अन्त:पुर में प्रवेश कर रहे थे तब अपने योगबल से कामदेव के समान सुन्दर रूप धारण कर लिया। उनकी रूप-सम्पदा को देखते ही राजा की सभी बेटियाँ मुनि पर न्यौछावर हो गईं। उनमें होड़ लग गई। सभी कह रही थीं कि इनसे मेरा विवाह होगा, इनसे मेरा विवाह होगा। राजा ने अपने कथन के अनुसार सारी बेटियों का विवाह सौभरि ऋषि से कर दिया। सौभरि सब को अपने आश्रम पर लाये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने तपोबल से प्रत्येक स्त्री के लिये सारी सुख-सुविधाओं से भरकर- एक-एक महल तैयार करके दे दिया। महल क्या थे? वे साक्षात् इन्द्र-भवन थे, जिनमें मौज-मस्ती की सारी सामग्रियाँ भरी हुई थीं। सौभरि ने उन सबके लिए दिव्य भवनों का निर्माण किया जिसमें गृहस्थी की सम्पूर्ण सामग्रियाँ रक्खी थीं। क्रीड़ा के लिए वन-उपवन, सुन्दर वापियाँ आदि भी उन भवनों के साथ बनी थीं। ऋषि ने राजकन्याओं के साथ बहुत दिनों तक विहार किया।

पुनि नृप बाले सम्हारि महामुनि भीतर जाओ। वरण सुता जो करै ताहिँ सुखतैं लै आओ।।
समुझि भूपि को भाव योगतैं युवक भये मुनि। आये मुनिवर सुघर भई प्रमुदित कन्या सुनि।।
विधिवत् कर्‍यो विवाह फेरि सुनरख मुनि आये। सबकूँ सुन्दर महल पृथक् सौभरि बनवाये।।
सबकूँ भूषण वसन सुखद शैयादिक दीन्हीं। सबकी इच्छा पूर्ण तपस्या तैं मुनि कीन्हीं।।

एक बार राजा मान्धाता अपनी पुत्रियों को देखने सौभरि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ वे विशाल भवनों की परम्परा और उनमें भरा अतुल वैभव देखकर अवाक् रह गये। उन्हें मुनि की समृद्धि के सामने अपना सप्तद्वीपा वसुमती का साम्राज्य तुच्छ प्रतीत होने लगा। इस प्रकार सौभरि गृहस्थी के सुख में रम गये।

मुनि पचास धरि वैष रमण नित सब सँग करहीं। तप प्रभाव तैं ताप व्यथा तन मन की हरहीं।।
आये नृप इक दिवस देखि वैभव विस्मित अति। भये, सबनि ढिँग गये कहें नित इतहिँ बसहिँ पति।।
सुरपुर को सुख अवनि पै, लखि प्रमुदित नृप ह्वै गयो। सब सुख भोगे तृप्ति हित, किन्तु तृप्ति मुनि नहिँ भये।।

बहुत दिनों तक स्वस्थ रहकर उन्होंने कामोपभोग किया फिर भी उनकी इन्द्रियाँ अतृप्त ही रह गईं। क्या कभी घी की आहुतियाँ डालने से अग्नि को तृप्त किया जा सकता है?

सौभरि ने अपनी प्रत्येक पत्नी से सौ-सौ पुत्र पैदा किये। एक दिन ऋग्वेदाचार्य सौभरि के मन में अकस्मात् वैराग्य की गंगा पैदा हो गई। वे सोचने लगे कि मत्स्यराज के क्षण भरके संग से तो मैंने अपने जीवन की गाढ़ी कमाई पूरी तपस्या ही विनष्ट कर डाली। इन्द्रियों द्वारा गार्हस्थ सुख को भली भाँति भोगते हुए भी तृप्ति का अनुभव नहीं करते थे।

सौभरि सोचने लगे- मनोरथोंकी समाप्ति तो हजारों लाखों वर्षों में भी नहीं हो सकती है। मनोरथों की पूर्ति होने पर भी

नये-नये मनोरथ उत्पन्न होते हैं। मेरे पुत्र हुए, वे पैरों से चलने लगे, युवा हुए, उनका विवाह हुआ, उसके पुत्र हुए। यह सब तो मैं देख चुका हूँ। अब मेरी अन्तरात्मा यह चाहती है कि मैं पौत्र देखूं उसका भी पुत्र देखूं। जब मैं वह भी देख लूँगा तब फिर दूसरा मनोरथ उठेगा। उसकी भी पूर्ति होने पर फिर आगे आनेवाली मनोरथों की श्रृंखला को कौन रोक सकता है? इसलिए मैंने भली-भाँति जान लिया है कि मृत्युपर्यन्त इन मनोरथोंका अन्त नहीं हो सकता है? जिस चित्त में मनोरथों की आसक्ति भरी हुई है वह कभी अपना मन परमार्थ-भगवान में नहीं लगा सकता।

सौभरि ऋषि ने गरुड को श्राप दिया कि वे यहाँ कालिदय में नहीं आवें और रमणक द्वीप में जाकर सर्पों का भक्षण करें।

शाप गरुड़ कूँ दयो सौभरिसर पुनि आवें। रमणक नामक द्वीप तहाँ नागनि नित खावें।।
पारी तैं सब जाहिं गरुड़ सँग सन्धि कराई। कछुक दिवस महँ कालिय अहि की पारी आई।।
कालिय अहि ने मत्त ह्वै, भङ्ग गरुड़ को प्रन कर्‌यो। लड़्यो पराजित ह्वै गयौ, सौभरिसर महँ छिपि गयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, गृहस्थी के चक्र में फँसे महर्षि सौभरि सोचने लगे- हाय, मेरा अध:पतन तो देखिये। कहाँ तो मैं सदाचार व्रत का पालन करनेवाला तपस्वी था, कहाँ मैं जलचर जन्तु का आसक्तिपूर्वक संग करने से इतना च्युत हो गया कि चिरकाल से धारण किये ब्रह्म तेज को भूल गया।

मैथुन धर्म महँ निरत नर-नारी को जै संग करैं। ते पुनि जनमें पुनि मरैं, स्वरग जाहिँ नरकनि परै।।

मैंने यह कैसा अनर्थ किया? मेरा यह अध:पतन तो देखो। इस प्रकार पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए वे कुछ दिनों तक तो घर में ही रहे फिर विरक्त होकर उन्होंने संन्यास ले लिया और वन में चले गये। तृष्णा का कहीं अंत नहीं। जब मैं इन असत् अनित्य और परिणाम में दुखद पदार्थों को सत् नित्य और सुख प्रद समझने लगा हूँ। यह मेरे पतन की पराकाष्ठा है। सांसरी विषयों का अन्त नहीं उनमें तृप्ति नहीं। जितना ही इन्हें भोगों उतनी ही भोग वासना बढ़ती है। पारलौकिक साधन से मैं भ्रष्ट हो गया। मुनि का मार्ग मैंने त्याग दिया है।

नर फँसि के निकसत नहीं, मायिक गुण हैं प्रबल अति। इत उत भटकै लोभ वश, होवै नहिँ जग विमल मति।।
यों करि पश्चाताप त्यागि गृह बनहि सिधाये। पत्नी लागीं संग विषय अरु भोग भुलाये।।
कर्‌यो घोर तप बुद्धि बिमल करि काटे कल्मष। ब्रह्म सत्य जगत् कर्‌यो दृढ़ निश्चय मुनि अस।।
ब्रह्मलीन सौभरि भये, संग सती पत्नी भईं। अगिनि बुझत ही लपट जनु, मनहुँ शान्त सब ह्वै गईं।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार कुछ काल तक गृहस्थाश्रम में रहकर तदनन्तर भगवान सौभरि वैराग्य को धारण करके घर का परित्याग करके वन का चले गये। उनकी पतिव्रता पत्नियों ने भी मुनि पदचिन्हों का अनुसरण किया। वहाँ जाकर उन आत्मवान मुनि ने शरीर को सुखानेवाले तीक्ष्ण तप में तत्पर होकर आहवनीयादि अग्नियों के साथ अपने आप को परमात्मा में लीन कर दिया।

अपने पति को ही अपना सर्वस्व माननेवाली सौभरि की पत्नियों ने भी उनके साथ ही वन की यात्रा की। ऋषि के मन में विचार आया कि मैं तो विषयों में फँस गया हूँ। व्यक्ति विषयों में फंसा हुआ है, वह विषयों का उपभोग नहीं कर रहा है, बल्कि विषय व्यक्ति का उपभोग कर रहे हैं। कामनाओं का, विषयों का, कोई अंत नहीं है।

वन में कठोर तपस्या करते हुए सौभरि ने शरीर त्यागकर अपने आपको परमात्मा में विलीन कर दिया। उनकी स्त्रियों ने भी चिता में सती होकर उन्हीं की गति प्राप्त की।

५) राजा त्रिशंकु की कथा- शुकदेव बोले- परीक्षित्, मान्धाता के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ अम्बरीष। उनके पितामह युवनाश्व ने उन्हें पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था। युवनाश्व का पुत्र यौवनाश्व हुआ और यौवनाश्व का हारीत। फिर इसी वंश में आगे पुरुकुत्स का जन्म हुआ। उनका विवाह नागों की बहन नर्मदा से हुआ था। नर्मदा अपने पति पुरुकुत्स को लेकर रसातल चली गई। वहाँ पुरुकुत्स ने वध करने के योग्य गन्धर्वों को मार डाला। इस पर नागराज ने प्रसन्न होकर पुरुकुत्स को वर दिया कि यदि कोई पुरुकुत्स-पुरुकुत्स कहेगा तो उसे नागों से भय नहीं होगा। पुरुकुत्स के पुत्र त्रसद्दस्यु हुए। उसके पुत्र हुए अनरण्य। अनरण्य के हर्यश्व, उसके अरुण और अरुण के त्रिबन्धन हुए। त्रिबन्धन के पुत्र सत्यव्रत हुए। यही सत्यव्रत त्रिशंकु के नाम से विख्यात हुए। त्रिशंकु ने ब्राह्मण-कन्या का अपहरण किया था। इस पर उनके पिता ने क्रुद्ध होकर शाप दिया- तुम चाण्डाल हो जाओ। फलत: वे चाण्डाल हो गये थे वे सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे। त्रिशंकु राजा एक दिन वशिष्ठ गुरु के पास गये और बोले- मुझे कोई ऐसा यज्ञ करावें जिससे मैं सशरीर स्वर्ग चला जाऊँ। मुझे इस शरीर से बड़ा ममत्व है। यह सुनकर वशिष्ठ के कहा- ऐसा यज्ञ कराना विधि विधान शास्त्र सम्मत नहीं है। तब त्रिशंकु ने जाकर वशिष्ठ के पुत्रों से यह बात कही वशिष्ठ की पुत्रोंने अपने योगबल से यह जान लिया कि हमारे पिताश्री ने यह कृत्य करने के लिये मना किया है। गुरु का वचन झूठा समझकर हमारे पास पूछने आया है। उसे शाप दिया कि तू जा चाण्डाल हो जा। त्रिशंकु जब प्रात:काल सोकर उठा तो देखा उसका सारा शरीर काला पड़ गया। कपड़े नीले हो गये, और वह अस्पृश्य हो गया। तब उसने वशिष्ठ के द्वेषी विश्वामित्र की आराधना करी कि वह स्वर्ग जावे। गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र में आपसी वैर था। वैर होने का कारण गाधि पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय थे। गुरु वशिष्ठ के आश्रम में एक कामधेनु गाय की पुत्री नन्दिनी गाय थी जो मुनि की सब आवश्यकतायें पूरी करती थी। एक बार राजा विश्वामित्र दिग्विजय करने के लिये निकले रास्ते में वे मुनि वशिष्ठ ने सेना सहित उनका आतिथ्य करने के लिये आग्रह किया। राजा ने स्वीकार कर लिया। और पूरी सेनाने मुनि के आश्रम में राजासहित वास किया। मुनिने कामधेनु को आज्ञा दी कि राजा का राजर्षि स्वागत सत्कार करो। छप्पन व्यंजनों से राजा को सन्तुष्ट करो और सब ऐश्वर्योंका भोग राजा को मिले। मुनि के आतिथ्य से राजा विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए और इसप्रकार के वैभव और ऐश्वर्य से आतिथ्य करने का उपाय जानना चाहा। मुनिने बताया- यह नन्दिनी गाय ही सब ऐश्वर्य प्रदान करती है। राजाने लोभ में आकर नन्दिनी गाय गुरु वशिष्ठ से माँगी और कहा- मुनिवर, यह गाय तो आपके पास रहने के लिये नहीं मेरे पास रहने के लिये है। इसे मैं ले जाऊँगा। इसके बदले आप करोड़ों गाय मुझसे ले लें, स्वर्णमुद्रायें ले लें। वशिष्ठ ने साफ मना कर दिया। राजा ने बलजोरी की और गाय को ले जानेके लिये खूँटेसे खोलने लगे। नन्दिनी गाय ने हूँकार भरी और असंख्यों सैनिक उत्पन्न कर दिये। वे सब सैनिक राजा विश्वामित्र की सेना से लड़ने लगे। अन्त में परास्त होकर गायको वहीं छोड़कर अपनी राजधानी को लौट गये। विश्वामित्र मन से उद्विग्न हुये और उन्होंने सोचा- शरीर बल से तो तपोबल ही श्रेष्ठ है। इसलिये विश्वामित्र ने साठ हजार वर्ष तक तपस्या करी और गायत्री को प्रकट किया। फिर भी वशिष्ठ मुनि ने उन्हें कभी ब्रह्मर्षि नहीं कहा। क्योंकि विश्वामित्र ने क्रोधपर विजय नहीं पायी थी। विश्वामित्रने गुरु वशिष्ठ के सौ पुत्रों का वध कर लिया और एक दिन गुरु वशिष्ठ का वध करने के लिये उनके आश्रम पर मध्यरात्रि के समय गये। गुरु वशिष्ठ अपनी पत्नी अरुंधती के साथ चांदनी रात में वार्तालाप कर रहे थे कि यदि महर्षि विश्वामित्र क्रोधपर विजय पा ले तो विश्वामित्र जैसा ब्रह्मर्षि इस संसार में कोई नहीं है। यह बातें महर्षि विश्वामित्र ने छिपकर सुन ली उसी समय महर्षि ने मन से अपने क्रोध का त्याग किया और वशिष्ठ से गले मिले।

विश्वामित्र ने सत्यव्रत को सशरीर स्वर्ग भेजने के लिये यज्ञानुष्ठान किया और आहुति अर्पण की। पर इन्द्र ने उनकी आहुतियों को स्वीकार नहीं किया और देवताओं ने उन्हें स्वर्ग से नीचे की ओर ढकेल दिया और वे नीचे की ओर सिर किये हुए गिरने लगे। जब किन्ही भी देवताओं ने आहुति स्वीकार नहीं की तब विश्वामित्र ने क्रोधित होकर अपने कमण्डलु के जल से त्रिशंकु पर प्रक्षालन कर कहा कि तू मेरे तपोबल से स्वर्ग में चले जा। वह चांडाल होनेपर भी विश्वामित्र के योगबल से स्वर्ग को चला गया और इन्द्रासन पर जाकर बैठ गया। जब इन्द्र ने देखा कि चाण्डाल मनुष्य इन्द्रासन पर बैठा है तब उसको नीचे गिरा दिया और देवताओं ने त्रिशंकु से कहा कि तू चाण्डाल है इसलिए सिर नीचे और पैर ऊपर करके गिर जा। चांडालोंका ठिकाना स्वर्ग में नहीं है। गिरते समय त्रिशंकु ने पुकार कर कहा- हे विश्वामित्र महाराज, मुझे इन्द्र ने इन्द्रासन से गिरा दिया है मेरी सहायता कीजिये।

इस पर विश्वामित्र ने अपने तपोबल से दूसरे स्वर्ग का निर्माण किया। तब गुरु बृहस्पति ने आकर विश्वामित्र को समझाया कि तुम्हारे इस तपोबल से अप्राकृतिक उद्योग से पृथ्वी का संतुलन बिगड़ जायेगा इसलिये सशरीर से किसीको स्वर्ग में भेजना प्रकृति के विधान के विरुद्ध है। इसलिए हे विश्वामित्र तुम इस यज्ञ को बन्द करो। बृहस्पति के समझाने पर विश्वामित्रने यज्ञ बन्द कर दिया और राजा सत्यव्रत को कहा- तू जिस जगह है वही रह और आकाशमें स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाश में लटके हुए दीखते हैं। इसलिये उनका नाम त्रिशंकु हुआ। विश्वामित्र ने दूसरे देवता न बनाकर अपना बनाया हुआ स्वर्ग उसे रहने दिया सो आज तक राजा त्रिशंकु उसी स्वर्ग में उलटे लटके हैं। उनके मुख से जो लार टपकती है उसीसे **कर्मनाशा नदी** प्रकट हुई, जिस नदी में पैर डालने से मनुष्य के सब पुण्य क्षीण हो जाते हैं। त्रिशंकु की छाया मगध देश पर पड़ती है, इसलिए मगध में मरने के लिए अशुद्ध प्रदेश कहा गया है।

इच्छा राजा करी सहित तनु स्वर्ग सिधाऊं। बोले विश्वामित्र यज्ञ करि तुरत पठाऊँ।।
तपतैं भेजे स्वर्ग नृप, सुरनि ढकेले गिरे नभ। लटके अधर त्रिशंकु तब, मध्यहिँ डोँ मुनि ऋषभ।।

मर्यादा के अनुकूल तपस्या का प्रभाव होता है। तपस्या के बल पर मर्यादा के प्रतिकूल लाभ लेने के कारण त्रिशंकु आकाश में लटके हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज त्रिबन्धन का पुत्र सत्यव्रत हुआ, जो त्रिशमु के नाम से विख्यात हुआ। वह अपने गुरु वशिष्ठ के शाप से चांडाल हो गया था, किन्तु विश्वामित्रजी के तेज से सशरीर स्वर्ग चला गया, जो अब भी आकाश में दिखाई देता है।

गुरु वशिष्ठ के शाप तैं, श्वपच भये अति दुख सहे। चांडालनि के बीच महँ, पितु आयसु तै ते रहे।।

६) राजा हरिश्चन्द्र की कथा

त्रिशंकु हरिश्चन्द्र कौ चरित, कह्यौ मुनी समझाय। पाण्डु पौत्र सुनने लगे, मन में अति हरषाय।।
हरिश्चन्द्र दान भये, सूरज कुल में आय। धन सम्पति सुत नारि सब, किये दान हरषाय।।

त्रिशंकु के पुत्र थे राजा हरिश्चन्द्र। जो अपने चरित्र सत्यनिष्ठा के लिये जगद्विदित हैं। उन्हीं के कारण विश्वामित्र और वसिष्ठ में भयंकर शत्रुता उत्पन्न हो गई। वे आपस में एक हजार वर्ष तक पक्षी बनकर आपस में लड़ते रहे। हरिश्चन्द्र को, उनकी सत्य-निष्ठा के कारण ही सत्यहरिश्चन्द्र कहा जाता है।

महाराज हरिश्चन्द्र बड़े धर्मात्मा, यशस्वी, प्रजापालक, शूरवीर, दानी, तेजस्वी तथा सर्वप्रिय थे। उनके राज्य में सभी

धर्म का आचरण करते थे, वर्णाश्रमी प्रजा विधिवत् वर्णाश्रम धर्म का पालन करती थी। उनके शासनकाल में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी, पूर्ण युवावस्था के पूर्व स्त्रियाँ संतान उत्पन्न नहीं करती, प्रजाजन अकाल को जानते ही नहीं थे। समय पर वर्षा होती थी, पृथ्वी अत्यन्त उर्वरा थी नदियों का जल स्वच्छ था, आधिव्याधि किसी को बाधा नहीं देती थी। पति पत्नी में प्रेम था लड़की लड़के माता पिताओं की आज्ञा में थे। सारांश यह है, कि उनके राज्य में प्रजा को सभी प्रकार के सुख थे। हरिश्चन्द्र की राजधानी अयोध्या थी।

हरिश्चन्द्र को कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारद के उपदेश से वे वरुण की शरण में गये। उनसे प्रार्थना की कि प्रभो, यदि मुझे पुत्र होगा तो मैं उसी से आप का यजन करूँगा, आपको प्रदान करूँगा। वरुण की कृपा से हरिश्चन्द्र को रोहित नाम का एक पुत्र हुआ। वरुण ने आकर हरिश्चन्द्र से यजन करने की बात कही। उन्होंने उत्तर दिया- भगवन्, अभी तो यह बालक दस दिन का न होने के कारण अपवित्र है। दस दिन का हो जाने पर ही यज्ञ-योग्य होगा। दस दिनों के बाद जब वरुण वही प्रस्ताव लेकर पुन: आये तो हरिश्चन्द्र ने कहा- अब इसके दाँत निकलने पर यजन करूंगा फिर से वरुण आये तो राजा ने कहा- ये दूध के दाँत हैं, इनके गिर जाने पर यजन करूँगा। जब फिर दाँत निकल आये तब कहा- जब यह संग्राम योग्य हो जायेगा तब अवश्य यजन करूँगा। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र के स्नेह पाश में आबद्ध होकर वरुण को बराबर टालते ही रहे। वरुण सहनशील देव हैं अत: वे बिना क्रुद्ध हुए उनकी बात स्वीकार करते रहे।

रोहित बड़ा हो चुका था। उसे पिता के अभिप्राय का पता चल गया अत: अपना प्राण बचाने के लिये वह एक दिन धनुष-बाण लेकर शिकार के बहाने जंगल में भाग गया। कुछ दिनों के बाद रोहित को पता चला कि यजन न करने के कारण वरुण देवता ने पिताजी पर आक्रमण कर दिया है। फलत: वे जलोदर रोग से ग्रस्त हो गये हैं अत: वह अपने नगर की ओर चल पड़ा पिताजी से मिलने के लिये। मार्ग में उसे मिल गये ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र। उन्होंने कहा- बेटा, यज्ञ-पशु बनकर मरने की अपेक्षा तो तीर्थों में भ्रमण करना ही अच्छा है। यह कहकर उन्होंने रोहित को लौटा दिया। इस प्रकार रोहित जब-जब घर जाने का प्रयास करता तब-तब वृद्ध ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र उसे लौटा देते थे। पाँच बार इन्द्र ने उसे लौटाया था। इसका कारण यह था कि वरूण और इन्द्र में बड़ा वैर था। उनके पारस्परिक युद्ध का भी वर्णन मिलता है। सिन्धु नदी के इस पार वरुण की प्रधानता थी। इन्द्र के प्रभाव-क्षेत्र का नाम सारस्वत और वरुण के प्रभाव-क्षेत्र का नाम सिन्धु था। छठी बार जब रोहित गृह की ओर जाने लगा तो उसने अजीगर्त के मध्यम पुत्र शुन:शेप को खरीद कर उसे यज्ञ-पशु बनाने के लिये, यज्ञ में बलि चढ़ाने के लिये, अपने पिता को समर्पित कर उनके चरणों में प्रणाम किया।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था अत: वे नारदजी के उपदेश से वरुणजी की शरण में गये और बोले- हे प्रभो, मेरे पुत्र हो जाय। वरुण ने कहा- हे वीर, यदि आप उसी पुत्र से मेरा यजन करें तो पुत्र हो जायगा। राजा ने अच्छी बात है करूँगा। तब वरुण की कृपा से राजा के रोहित नाम का पुत्र हुआ।

सुत त्रिशंकु हरिश्चन्द्र भक्ति जिन दृढ़ श्रीहरि पद। सन्तति बिनु अति दुखित वरुण ढिँग पठये नारद।।
वरुण कह्यौ हाँ होहि होमि यदि देवो तिहि सुत। स्वीकार्यो भूपाल भये सुन्दर सुत रोहित।।
भयो मोह भूपाल कूँ, सुत पठ्यो वन वरुण भय। सुरपति रोक्यो किन्तु लै, आयो बदले द्विज तनय।।

हरिश्चन्द्र इस उपाय से प्रसन्न हो गये। उन्होंने वरुण देवता के यजन का उपक्रम किया। फलत: वे जलोदर रोग से मुक्त हो गये। हरिश्चन्द्र ने पुरुषमेध यज्ञ करके वरुणादिक देवताओं को प्रसन्न किया और उदर रोग से छूट गये। इस यज्ञ में विश्वामित्र होता थे, जमदग्नि अध्वर्यु थे, वशिष्ठ ब्रह्मा हुए और अगस्त्यमुनि उद्गाता थे। इस यज्ञ से इन्द्र ने प्रसन्न होकर

हरिश्चन्द्र को सुवर्ण रथ दिया। राजा रानी दोनों को सत्यवक्ता और धैर्यवान् देख विश्वामित्र ने ज्ञान उपदेश किया जिससे राजा को मोक्ष प्राप्त हुआ। बालक शुन:शेप भी विश्वामित्र की कृपा से बलि चढ़ने से बच गया।

हरिश्चन्द्र दानी महा, भये दु:ख विश्वामित्र दयो। विश्वामित्र वसिष्ठ में, महायुद्ध जिहि हित भयो।।

एक दिन राजा हरिश्चन्द्र शिकार खेलने के लिये वन में गये। वहां माया से एक स्त्री की आवाज सुनी। उस नारी को देखने हेतु हरिश्चन्द्र उधर गये तो वहां स्त्री नहीं थी और विश्वामित्र मुनि मिले। विश्वामित्र मुनि क्रोधित थे और बोले- तू अपने आप में बड़ा दाता हो रहा है। राजाने मुनिके वचन सुनकर पूरे राज्य का दान कर दिया।

मुनि बोले- तू मुझे अपना सर्वस्व दान कर चुके हो तो अपना सब कुछ छोड़कर मेरे राज्य के बाहर चले जाओ। राजा, रानी और राजा पुत्र रोहित सब कुछ त्यागकर वल्कल वस्त्र पहिनकर अयोध्यापुरी से बाहर निकल गए। तब महामुनि विश्वामित्र उनका मार्ग रोककर बोले- राजन्, आपने इतना बड़ा दान मुझे दिया है किंतु साङ्गता दक्षिणा के बिना सम्पूर्ण दान निष्फल हो जाता है इसलिये दक्षिणा के रुप में मुझे यथेष्ट द्रव्य दीजिये। राजा बोले- ब्रह्मन्, मेरे पास तो कुछ नहीं बचा है फिर भी आप एक महीने की प्रतीक्षा करें और मैं प्रयत्न करके आपको साङ्गता दक्षिणा दूँगा। राजा वल्कल वस्त्रोंमें अपनी रानी तारामती (शैव्या) अपने पुत्र रोहित के साथ चलने के लिये तैयार हुए उसी समय पूरी प्रजा ने रोते हुए आकर उनको घेर लिया और कहने लगे- हे प्रजावत्सल महाराज, हमें छोड़कर मत जाइये। आप तो हमारा पुत्रों के समान पालन करते हैं, विधाता की इस अत्यन्त क्रूर गति को धिक्कार है, प्रजा पालन ही आपका सर्वोत्कृष्ट धर्म है। कभी जिसने दु:ख नहीं देखा ऐसे राजकुमार मार्ग के दु:खों को कैसे सहेंगे। आप यहीं रहकर धर्माचरण करें अथवा हमें भी अपने साथ ले चलें। विश्वामित्र ने देखा राजा और प्रजा को तो मोह हो रहा है कहीं यह वापस न ठहर जायें। विश्वामित्र बोले- तू क्या नीच हैं? मुझे सर्वस्व दान करके भी तू प्रजा को अपनी समझता है। क्या मुझसे यह राज्य फिर से हड़प लेना चाहता है? विश्वामित्र की बात सुनकर राजा आगे बढ़े और पत्नी को शीघ्र चलने को कहने लगे। महारानी शैव्या को पैदल चलने का अभ्यास नहीं था इसलिये वे आगे बढ़ने में अपने को असमर्थ पाती थी। राजा उन्हें हाथ पकड़कर खींच रहे थे। विश्वामित्र ने समझा रानी जाना नहीं चाहती पीछे से आकर रानी के पीठ में दो दण्डे मार दिये।

प्रजा रुदन सुनि दुखित नृप, ज्यों ही मग ठाढ़े भये। त्यों ही डंडा मारि मुनि, रानी कूँ धक्का दये।।

उस समय आकाश में पाँच विश्वदेव इस करुण दृश्य को देख रहे थे। वे आपस में कहने लगे- यह विश्वामित्र बड़ा ही क्रूर और नीच हैं। इन इतने बड़े धर्मात्मा राजा को राज्यच्युत करके इतना क्लेश दे रहा है इसे तो भविष्य में नरकों की यातना भोगनी पड़ेगी। विश्वामित्रने इन पाँचों विश्वदेवों की बातें अपने योगबल से सुन ली और क्रोध में भरकर उन विश्वदेवों को श्राप दिया तुम देवत्व से भ्रष्ट हो जाओ और मर्त्यलोक में जन्म लो। वे विश्वदेव घबड़ा गये और आकर ऋषिसे अनुनय-विनय करने लगे, क्षमा प्रार्थना करने लगे। विश्वामित्र ने कहा- हे विश्वदेवों, मेरा श्राप तो अन्यथा नहीं हो सकता तुमको मनुष्य योनि में तो जन्म लेना ही पड़ेगा। किन्तु तुम शीघ्र ही मनुष्य योनि से छूट जाओगे, तुम्हारा विवाह न होगा, तुम अविवाहित रहकर ही कुछ दिन पृथ्वी का भोग भोगकर अंत में पुन: देवत्व को प्राप्त होगे। वे ही विश्वदेव द्रौपदी के गर्भ से पाँचों पांडवों के पुत्र रूप में उत्पन्न हुये और अन्त में सोते हुए अश्वत्थामा के हाथोंसे मरकर देवत्व को प्राप्त हुये।

मृगया हित इक दिवस गये नृप क्रंदन धुनि सुनि। गये लक्ष्य करि नारि लखी तहँ अरु कौशिक मुनि।।
अबला सुनत विलाप धनुष पै बान चढ़ायो। अन्तर्हित ते भई क्रोध कौशिक कू आयो।।
बोले- तू दाता बड़ो, हौं सुपात्र हूँ योग्य अति। करो दान सर्वस्व तुम, दयो तुरत सब भूमिपति।।

अयोध्या से चलते-चलते राजा-रानी थक गए। राजाने सोचा- सम्पूर्ण पृथ्वी तो हमने महामुनि विश्वामित्र को दान में दे दी। अब हम कहाँ चलें। सोचते-सोचते महाराज के मन में यह बात आई कि दिव्य वाराणसी पुरी भगवान विश्वनाथ के त्रिशूल पर अवस्थित है। इसकी गणना मनुष्यों की रहने योग्य अन्य पृथ्वी में नहीं। इस पर केवल शूलपाणि भगवान शंकर का ही अधिकार है। यह तो मेरे राज्य के बाहर ही है। अत: मैं वाराणसी में ही जाकर बसूँ। वहीं कुछ उद्योग करके विश्वामित्र के दान की सांगता का प्रबन्धन करूँगा। यही सोचकर महाराज वाराणसी को ही लक्ष्य करके चल पड़े।

मुनि रोक्यो मग कह्यो साङ्गता धन अब दीजै। नृप बोले- मुनि, एक मास धीरज अरु कीजै।।
यों कहि काशी गये कपर्दीकी रजधानी। अवधिपूर्ण लखि पहुँच गये कौशिक अभिमानी।।

राजा रानी तथा कुमार किसी को नंगे पैर पैदल चलने का अभ्यास नहीं था। जैसे तैसे कन्द मूल खाते हुए राजा अपनी पत्नी और पुत्र के सहित अयोध्या से एक महीने में काशी पहुँचे। जिस दिन राजा काशी पहुँचे उसी दिन महा क्रोधी विश्वामित्र भी वहाँ पहुँच गये और राजा को डाँटते हुए बोले- राजन्, एक मास तो हो गया, तुम सत्यवादी होकर झूठ क्यों बोलते हो, मेरी दक्षिणा की सांगता दो।

इस समय महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र की सत्य-निष्ठा की परीक्षा ली जिसमें हरिश्चन्द्र पत्नी और पुत्र के सहित डोम के हाथ बिक गये किन्तु उन्होंने सत्य को नहीं छोड़ा। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र की परीक्षा उसका सारा राज्य दान में ले लिया और सांगता दक्षिणा का कर्ज बाकी रखा। यह कर्ज चुकाने के लिये हरिश्चन्द्र ने अपने आपको एक श्मशान घाट के डोम के हाथ बेच दिया। हरिश्चन्द्र की पत्नी तारामती एक ब्राह्मण के यहाँ दासी बनाकर बेची गयी। पुत्र रोहिताश्व भी उसके साथ गया।

द्रव्य याचना करी मुनि, नृप रानी विक्रय करी। रोहित हूँ बेच्यो स्वयं बिके दक्षिणा द्विज भरी।।

काल की कैसी क्रूर गति है, कल तक जो सप्तद्वीपा वसुमति के राजा थे, जिनके आगे पीछे सहस्त्रों सेवक सैनिक चलते थे, आज वे चांडाल के घर के एक कोने में रो रहे हैं, कोई उनकी ओर निहारता तक नहीं। उन्हें राज्य जाने का शोक नहीं था। ऐश्वर्य भ्रष्ट होने का दु:ख नहीं था। चांडाल दास होने का भी उन्हें उतना क्लेश नहीं था, किन्तु रात्रि-दिन उन्हें अपनी प्राणप्रिया पत्नी की और फूल से भी सुकुमार कुमार रोहित की चिन्ता बनी रहती। हाय, उनकी क्या दुर्दशा हो रही होगी। सदा सुख में पली शैव्या सेविका कार्य कैसे करती होगी, कुमार किस प्रकार अपने जीवन को बिता रहा होगा, वे इस लोक में हैं भी या नहीं। प्रारब्ध ने मेरे साथ यह कैसा खेल खेला, राज्य से च्युत हुआ, प्रजाओं से पृथक हुआ, पत्नी पुत्र को अपने ही हाथों विक्रय किया और स्वयं भी द्विजत्व से भ्रष्ट होकर चांडालता को प्राप्त हुआ। आज मुझे कोई पूछने वाला नहीं। क्या करूं कहाँ जाऊँ। इस प्रकार वे सोच करते हुए अपने दिन व्यतीत करने लगे।

पुत्र रोहिदाश्व वनमें समिधा लाने गया रास्ते में उसे एक काले नाग ने डस लिया। रोहिदास नाग के डसने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह समाचार महारानी शैव्या ने सुना। सुनते ही महारानी अचेत हो गयी और दैव को धिक्कारने लगी और बोली- हमारे कब के पाप उदय हुए हैं, मेरे पति ने तो कभी भूल से भी अधर्माचरण नहीं किया, कभी किसीको कष्ट नहीं दिया। क्यों हमारे ऊपर विपत्तियों पर विपत्तियाँ आ रही है।

रानी तारामती अत्यन्त विलाप करने लगी और कहने लगी- पुत्र तुमने भी मेरा साथ छोड़ दिया। मैं अभागिनी कहीं की भी नहीं रही। मेरे राजर्षि पति न जाने कहां भटक रहे होंगे।

आधी रात के समय पुत्र को अग्नि संस्कार करने श्मशान घाट लेकर गयी। वहांपर राजा हरिश्चन्द्र से उनकी भेंट हुई जो एक डोम के सेवक थे। उस डोम ने रानी से कफन मांगा और कहा जब तक कफन अदा न होगा वे इस बालक का संस्कार

नहीं करने देंगे। उसी समय हरिश्चन्द्र ने रानी को पहचान लिया और वे अपने सत्यव्रत पर अटल रहे। रानी ने भी हरिश्चन्द्र को पहचान लिया और बोली- आप तो पुरुष हैं मैं तो स्त्री हूँ। स्त्रियों को पुत्र शोक कितना अधिक होता है यह आप पुरुष क्या जानें। रानी ने उसी समय अपनी साडी का छोर फाड़कर कफन देने की प्रक्रिया पूरी की। हरिश्चन्द्र गद्‌गद् होकर बोले- हे अशरणशरण प्रभो, मैंने जो कुछ भी किया है, धर्म की रक्षा के लिये किया है। हे चराचर के स्वामी विश्वम्भर, आपके अनन्त नाम हैं, धर्म ही आपका नाम है, सत्य ही आपका स्वरूप है। आप आनन्दघन तथा चैतन्यस्वरूप हैं।

उसी समय इन्द्र और धर्मराज और ब्रह्मा सब देवता हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा देखकर प्रकट हो गये। उनके पीछे वरुण, कुबेर, धर्म, साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्‌गण, नाग, सिद्ध, गन्धर्व दोनों अश्विनीकुमार प्रकट हुये। उनके समीप विश्वामित्र भी खड़े थे। ब्रह्माजी ने कहा- विश्वामित्रने क्रोधवश, लोभवश तुम्हारा सर्वस्व अपहरण नहीं किया पर संसार को बताने आप जैसा सत्यवादी धर्मात्मा पुरुष दूसरा कोई संसार में नहीं है। आपने सर्वस्व का त्याग किया। जब तक सूर्य चन्द्र संसार में रहेंगे तब तक आपकी विमल कीर्ति अक्षुण्ण बना रहेगा। धर्मकी अधीनता नहीं है। धर्मके लिये उठाया जानेवाला कष्ट कष्ट नहीं है। धर्मके लिये होनेवाला अपमान अपमान नहीं है। जो धर्मकी रक्षा करता है धर्मभी उसकी रक्षा में रहता है। यह देखकर विश्वामित्र उन पर प्रसन्न हो गये और आत्मज्ञान का उपदेश दिया जिसके प्रभाव से राजा सपरिवार ब्रह्मलोक को चले गये।

जो लोग तत्त्वज्ञानसे दूर रहते हैं, उनकी समझ के परे हैं। मनको पृथ्वीमें कैसे डाल दिया जाता है। हमारा मन तो पृथ्वीसे ही बना है, यह बिल्कुल पार्थिव है। पृथ्वीसे पृथक् अन्त:करण कोई चीज नहीं है। देहके नाश होनेपर अन्त:करण रहता है, लेकिन पृथ्वीसे पृथक् अन्त:करण नहीं रहता। असलमें मनके जितने भी खेल हैं, ये सब भौतिक ही हैं और जब इनको पंचभूतमें लीन कर दिया जाता है तब आत्मा अनन्तसे एक हो जाता है।

चन्द्र टरै सूरज टरै-टरै जगत व्यवहार। पै दृढ़ हरिश्चन्द्र की टरै न सत्य विचार।।

७) राजा सगर की कथा-

सगर प्रतापी नृपति ने, किये एक शत याग। साठ सहस सुत नृपति के, कपिल किए सब खाक।।

शुकदेव बोले- राजन्, रोहित का बेटा हारीत हुआ। हारीत से चम्प हुआ। उसी ने चम्पापुरी नगरी बसाई थी। किसी समय यह नगरी सारी नगरियों में श्रेष्ठ थी- नगरीषु चम्पा। चम्प से शुदेव एवं विजय, विजय का भरूख और भरूख से वृक, वृक से बाहुक। इसी वंश में आगे चलकर वृक का बेटा बाहुक हुआ।

बाहुक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसके कुछ संतति नहीं थी। संतान के लिये उसने हजार विवाह किये पर किसी भी रानी को संतान नहीं हुई। इसलिए राजा बाहुक उदास रहते थे। एक दिन नारद मुनि ने राजमन्दिर पर आकर पूछा- हे राजन्, तुम उदास क्यों दिखलाई पड़ रहे हो? बाहुक ने हाथ जोड़कर विनती कि, मैं अपना दु:ख प्रकट करता हूँ। हजार विवाह करने पर भी मेरे कोई पुत्र नहीं, यही चिन्ता मुझे दिनरात रहती है। यह सुनते ही नारदजी ने दयालु होकर आम का एक फल जो हाथ में लिये थे राजा को देकर कहा कि जिस रानी को चाहो यह आम खिला दो परमेश्वर की दया से बालक हो जायेगा। राजा ने वह फल लेकर बड़ी रानी को खिला दिया। रानी के उसी दिन गर्भ रह गया पर बालक उत्पन्न नहीं हुआ। शत्रुओं ने बाहुक का राज्य छीन लिया था। इस पर बाहुक अपनी रानियों के साथ जंगल में चला गया। वह ऋषीश्वरों के स्थान के निकट झोपड़ी बनाकर रहने लगा। राजा बड़ी रानी के गर्भवती होने पर उस पर अति प्रीति रखता था, दूसरी रानियाँ सौतियां डाह करने लगी और आपस में कहने लगी- देखो, बड़ी रानीके पुत्र उत्पन्न भी नहीं हुआ फिर भी राजा रात-दिन उसीके

पास रहते हैं हमारी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। बालक होनेपर मालूम नहीं हमारी क्या दशा होगी। इसलिए सबने मिलकर यह निर्णय किया कि रानीको विष देना चाहिये जिससे वह गर्भ के बालक सहित मर जावे और गर्भवती रानीको विष खिला दिया। भगवान जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, जिसका जीवन चाहते हैं, वह चाहे धधकती अग्नि में कूद पड़े, पर्वत से गिर जाय, अगाध जल में बह जाय, अमोघ-से-अमोघ अस्त्र का लक्ष्य बन जाय, तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण विष का पान कर ले, फिर भी उसका बाल बाँका न होगा, फिर भी वह जीवित ही बच जायगा और जिसकी मृत्यु आ गई है, वह घर में बैठे-बैठे शैया पर लेटे-लेटे मर जायगा। जो जीव को जिला नहीं सकता, उसे मारने का भी अधिकार माधव ने नहीं दिया।

विष की ज्वाला से व्याकुल हुई रानी और्व मुनि के पास गयी और बोले- महाराज, मैं आपके शरण हूँ मेरे प्राण बचाइये। रानीके दीन वचन सुनकर ऋषिवर बोले- रानी, तुम डरो मत। परमेश्वर की कृपा से मरोगी नहीं और कहा- तेरे घर में जो बालक है जीता बचकर विष समेत उत्पन्न होगा। ऋषीवर की कृपा से हरिइच्छा से विष ने अपना प्रभाव नहीं दिखाया और गर्भ भी ज्यों का त्यों बना रहा। कुछ काल बीते राजा बाहुक वृद्ध तो था ही वह, अपमृत्यु से मर गया। जब बाहुक की महारानी उसकी चिता पर सती होने को उद्यत हुई तब और्व महर्षि ने उसे रोक दिया क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि वह गर्भवती है। जब उसकी सौतों को यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उसे भोजन के साथ गर (विष) मिला दिया। परन्तु गर्भ पर उस विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि उस विष को लिये हुए ही एक बालक का जन्म हुआ। गर के साथ पैदा होने के कारण वह सगर कहलाया। सगर बड़े यशस्वी चक्रवर्ती राजा थे। सगर चक्रवर्ती सम्राट हुआ, जिनके पुत्रोंने सागरका निर्माण किया। और्व ऋषिकी आज्ञाके अनुसार तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर आदि जातियोंको पराजित करके उनको नाना विकृतरूप धारण करवा दिये।

सगर- इक्ष्वाकुवंश के अमित पराक्रमी राजा सगर ने अश्वमेध की दीक्षा लेकर अनेक देशों के राजाओं को जीत लिया। विश्वविजय के लिए जब उनका घोड़ा घुमाया जा रहा था, उस समय पूर्व-दक्षिण में समुद्र के किनारे इंद्र ने उस घोड़े को चुरा लिया और उसे भूगर्भ में छिपा दिया।

महाराज सगर ने अपने गुरुदेव और्व की आज्ञा मानकर तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर जाति के लोगों का वध नहीं किया, बल्कि उन्हें विरूप बना दिया। उनमें से कुछ के सिर मुड़वा दिये, कुछ के मूंछ-दाढ़ी रखवा दी, कुछ को खुले बालोंवाला बना दिया तो कुछ को आधा मुड़वा दिया। और्व ऋषि की आज्ञा से सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञों के द्वारा भगवान की आराधना का संकल्प लिया। उनके निन्यानबे यज्ञ निर्विघ्न पूरे हो गये थे। जब वे सौवाँ अश्वमेध कर रहे थे तो इन्द्र ने उनके अश्वमेधीय अश्व को चुरा लिया और उसे महर्षि कपिल के आश्रम के पास ले जाकर बाँध दिया।

वनमहँ नृप तनु तज्यो गर्भिनी तिनकी रानी। सौतिनि गर दै दयो सगर तुम जनम्यो मानी।।
भये सगर अति ही बली, शत्रुनिको शासन कर्‌यो। दान पुण्य मख अधिक लखि, सुरपति हूँ तिनतें डर्‌यो।।

सगर की दो प्रधान पत्नियाँ थीं- सुमति और केशिनी। सुमति के साठ हजार पुत्र थे और केशिनी के एक पुत्र- असमंजस। अश्व के चोरी हो जाने पर पिता की आज्ञा से सुमति के साठ हजार पुत्र उसे खोजने निकले। जब अश्व कहीं नहीं मिला तो उन लोगों ने चारों ओर से पृथ्वी खोद डाली।

द्वै रानी तिन हतीं केशिनी सुत असमञ्जस। सुमति साठ सहस्र जने सुत मानी नीरस।।
अश्वमेध नृप सगर धूमतें यज्ञ रचायो। भयवश सुरपति आइ यज्ञको अश्व चुरायो।।
कपिलाश्रममहँ इन्द्र ने, मख हय बाँध्यो कपट करि। साठि सहस सुत भूमि खनि, पहुँचे नाना रूप धरि।।

खोदते-खोदते वे कपिल महाराज के आश्रम तक जा पहुँचे। यह आश्रम पूर्व और उत्तर के कोने पर था। उन्होंने देखा घोड़ा

वहाँ बँधा हुआ है। इस पर उन लोगों ने कहना प्रारम्भ किया- देखो, हमारे घोड़े का चोर यहाँ आँख बन्द किये बैठा है। यह महान ढोंगी है। इसे मारो, पकड़ो। हल्ला सुनकर कपिल जी ने अपनी आँखें खोली। उनकी नेत्रज्वाला से वे साठों हजार सगर-पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि में नहीं जले थे। इन्द्र ने उनकी बुद्धि हर ली थी। इसी से उन्होंने कपिल-जैसे महापुरुष का तिरस्कार किया। इस तिरस्कार के फलस्वरूप उनके शरीर में ही आग जल उठी, जिससे क्षण भर में ही वे सब-के-सब जलकर खाक हो गये।

यह वृत्तांत जानकर राजा सगर ने अपने पुत्रों से उस स्थान को खुदवाया। समुद्र के खोदने पर उनके पुत्रों ने आदिपुरुष कपिल रूपी भगवान विष्णु को वहां सोते हुए देखा। योगनिद्रा से जगने पर उनके नेत्रों से असह्य अग्निरूपी तेज प्रकाशित हुआ, जिससे राजा सगर के पुत्र भस्म हो गए। उनमें केवल बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ तथा पंचजन्य- ये चार राजकुमार ही जीवित रहे। उन राजकुमारों को भगवान ने यह वरदान दिया कि महाराज इक्ष्वाकु का वंश अक्षय रहेगा और राजा सगर की कीर्ति कभी नष्ट नहीं होगी। समुद्र उनका पुत्र कहा जाएगा। अर्थात भविष्य में समुद्र सागर नाम से प्रसिद्ध होगा। कपिल ने अपने नेत्र के तेज से भस्म हुए सगर-पुत्रों को भी अक्षयकीर्ति प्राप्त होने का वरदान दिया। उस समय समुद्र ने अर्घ्य देकर राजा सगर को प्रणाम किया। राजा सगर के इस कर्म के कारण समुद्र का नाम सागर पड़ गया।

कपिलाश्रमपै अश्व निरखि नृपसुत हरषाये। कोलाहल अति कर्‌यो कपिल मुनि चोर बताये।।
इन्द्र रच्यो षडयन्त्र बुद्धि नृप सुतनि बिगारी। मुनि मारन हित चले देहिँ गिनि गिनि कैगारी।।
कोलाहल सुनि सहजही, नेत्र कपिलके खुलि गये। दृष्टि परत निज पापतें, सगर पुत्र सब मरि गये।।

यह संसार-सागर एक मृत्युमय पथ है। इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है परन्तु कपिलमुनिने इस जगत्‌में सांख्यशास्त्रकी एक ऐसी दृढ़ नौका बना दी है, जिससे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला कोई भी व्यक्ति उस समुद्रके पार जा सकता है। वे केवल परम ज्ञानी ही नहीं, स्वयं परमात्मा है। उनमें भला यह शत्रु है और यह मित्र इस प्रकार भेदबुद्धि कैसे हो सकती है?

सगर की दूसरी महारानी का नाम था- केशिनी। केशिनी को एक ही पुत्र था- असमंजस। असमंजस पूर्वजन्म का योग-भ्रष्ट योगी था। इस जन्म में वह लोगों के संग से डरता था इसीलिये कभी-कभी वह ऐसा करता था जिससे लोग उद्विग्न होकर उससे दूर ही रहें। वह लोगों के क्रीड़ासक्त बालकों को ले जाकर सरयू के जल में डुबो देता था। पिता सगर को जब इसका पता लगा तो उन्होंने उसे अपने राज्य से निकाल दिया। किन्तु असमजंस ने अपने योगबल से उन्हें सरयू से लाकर अपने पिताजी के सामने खड़ा कर दिया और स्वयं उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर राज्य से निकल कर अज्ञातवास पर चला गया।

जब मनुष्य पर गृहस्थ का भार पड़ता है तो पागलपन भूल जाता है, बुद्धि ठीक ठिकाने आ जाती है, किन्तु सोते को जगाया जा सकता है जो जागता हुआ भी सोने का स्वाँग रचे हुए है, उसे कौन जगा सकता है। वह यथार्थ में पागल तो था नहीं। वह पूर्वजन्म का कोई योगभ्रष्ट योगी था।

असमंजस के चले जाने पर महाराज सगर को महान् पश्चात्ताप हुआ। बालकों को वापस आया देखकर सारे अयोध्यावासी भी आश्चर्य से चकित हो उठे। असमंजस के पुत्र का नाम था अंशुमान्।

इसके बाद राजा सगर की आज्ञा से अंशुमान् घोड़े को ढूँढ़ने के लिये निकले। चाचाओं के निर्मित मार्ग से चलकर अंशुमान् कपिल के आश्रम के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि घोड़ा बँधा हुआ खड़ा है और पास में ही उनके चाचा लोगों की राख की ढेर पड़ी हुई है। अंशुमान् को सारी परिस्थिति समझते देर न लगी। मुनि कपिल को ध्यान में निरत देखकर अंशुमान् ने उनकी प्रशंसा से भरी हुई दिव्य स्तुति की। उन्होंने कहा- आप माया के गुणों एवं उनके कार्यों से परे हैं, ऊपर हैं। आप में नाम और रूप की कल्पना मिथ्या है। आपमें कार्य-कारण भी नहीं है। आप सनातन आत्मा हैं। ज्ञान का उपदेश देने के लिये ही आपने यह

शरीर धारण कर रक्खा है। यह जगत आपकी माया है इसी को सत्य समझकर काम, ईर्ष्या, लोभ, मोह के द्वारा लोगों का चित्त इसमें भटकने लगता है। आपके दर्शन से मेरे ये विकार नष्ट हो गये हैं। हम आप को प्रणाम करते हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, अंशुमान की भावभरी स्तुति सुनकर कपिल भगवान ने प्रसन्न होकर कहा- बेटा, यह घोड़ा तुम्हारे पितामह का यज्ञपशु है। उनके अश्वमेध का अश्व है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओं का उद्धार एकमात्र गंगाजल से ही होगा। इसके अतिरिक्त उनके उद्धार का कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम गंगाको पृथ्वीपर अवतरण करो। मुनि की बात सुनकर अंशुमान् की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने कपिल महाराज की परिक्रमा की, प्रणाम किया और घोड़े को लेकर लौट आये अपने पितामह सगर के अश्वमेध-स्थल पर आये। सगर ने यज्ञीय पशु अश्व के आ जाने पर यज्ञ की शेष क्रियाओं को सम्पन्न किया। यज्ञ समाप्त कर महाराज सगर ने राज्य का भार अंशुमान् को सौंपकर जंगल की राह ली। वहाँ उन्होंने और्व ऋषि के बतलाये हुए मार्ग से परमपद की प्राप्ति की।

सुत नहिँ आये सोचि सगरने पौत्र पठाये। अंशुमान् चलि दये कपिल मुनि आश्रम आये।।
कुमर विनय अति करी महामुनि अति हरषाये। गंगा लाओ पितर हेतु ये वचन सुनाये।।
अश्व पाइ मख पूर्ण करि, सगर तपोवन चलि दिये। तदनन्तर मनु वंशके, अंशुमान भूपति भये।।

८) भगीरथ चरित्र और गंगावतरण-

भागीरथ अति तप कियो, भोगे कष्ट अपार। गंगाजी को लाय कर, कीन्हों कुल उद्धार।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भागवती गंगा का माहात्म्य सर्वविदित है। युगों से यह अपनी पतितपावनी शक्ति से भारतवर्ष को अनुग्रहीत कर रही है। पुराणों में गंगा को लोकमाता कहा गया है। भूलोक में जहां एक ओर गंगा प्राणियों की प्यास बुझाती है वहीं खेती की सिंचाई के लिए जल उपलब्ध कराकर प्राणियों का पालन-पोषण करती है। गंगा व्यक्ति को पापों से मुक्त कर सद्गति प्रदान करती है, लोग इसे गंगा कहकर पुकारते हैं। भारतवासियों के लिए गंगा केवल एक नदी ही नहीं बल्कि पूरी एक संस्कृति ही है। सनातन धर्म के ग्रंथ गंगा के माहात्म्य से भरे हुए हैं। गंगा के दर्शन मात्रसे तन-मन पवित्र हो जाता है और स्नान करने से मनके सारे मैल ताप-ताप मिट जाते हैं। गंगा तट पर जिनका दाह संस्कार किया जाता है वे मुक्ति के अधिकारी बन जाते हैं।

अंशुमान तप कस्यो अवनि पै गंगा आवैं। मृतक पितर पय परसि नरक तजि सुरपुर जावै।।
भये कुमार दिलीप राज तजि जाइ बसे बन। गंगा आई नहीं स्वर्ग नृप गये त्यागि तन।।
कुमर दिलीप पराक्रमी, पितु पीछे भूपति भये। गंगा हित तप करनकूँ, हिम गिरि पे तेहू गये।।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी हस्त नक्षत्र में स्वर्ग से गंगा का आगमन हुआ। गंगा को पृथ्वी पर लाने का श्रेय माया जगत् के साठ हजार पुत्रों के श्रम ने इसको सफल बनाया।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की आठवीं पीढ़ी में महाराज सगर का जन्म हुआ उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। जब देवराज इन्द्र ने उनके द्वारा छोड़े गये सगर के पुत्रों ने सारा भूमंडल छान मारा पर अश्व कहीं नहीं मिला। अश्व को पाताल में भी खोजा गया। अश्व को चुराकर कपिल मुनिके आश्रम में बाँध दिया। सगर के साठ हजार पुत्र जब घोड़े को ढूंढते हुए कपिल के आश्रम में पहुंचे तो सगर के पुत्रोंने मुनि को घोड़े का चोर समझकर उनके साथ अभद्र व्यवहार किया। मुनि की समाधि टूटनेपर वे क्रोधित हुए और अपने आग्नेय दृष्टि से उन सबको भस्म कर दिया। सगर पुत्रोंके उद्धार के लिये गंगा को भूतल पर लाने की आवश्यकता पड़ी।

भूप भगीरथ राज तजि, गंगाजी लैवे गये। अबके जननी तुष्ट ह्वै, नरपतिकूँ दरशन दये।।

अपने मृत बन्धुओं के उद्धार के लिये महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ ने कठोर तप किया। तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान माँगने के लिये कहा- तब भगीरथ ने गंगा की मांग की। ब्रह्मा बोले- भगीरथ, तुम पृथ्वी पर गंगा का अवतरण तो चाहते हो। वह पृथ्वी गंगा के भार और वेग को संभाल नहीं पायेगी। राजा भगीरथ ने कठोर तप किया। भगीरथ की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माने गंगा की धारा को अपने कमण्डल से छोड़ा। इन्हीं की कृपा तपस्या से गंगा को पृथ्वी पर आना पड़ा। पतित पार्वती गंगा के पृथ्वी पर आनेकी अवतरण की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला दशमी है। उसे गंगा दशहरा भी कहते हैं। अंशुमान् ने गंगाजी को लाने की कामना से बहुत वर्षों तक घोर तप किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। आयु समाप्त हो जाने पर वे परलोक चले गये। अंशुमान् के पुत्र थे दिलीप। पिता की ही तरह उन्हें भी गंगा को भूतल पर लाने में सफलता नहीं मिली और वे भी परलोकवासी हो गये। दिलीप के पुत्र थे भगीरथ। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्या से गंगाजी प्रसन्न हो गईं और कहा- पुत्र, वर मांगो। मैं तुम्हें वर देने के लिये आई हूँ। भगीरथ ने हाथ जोड़कर अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा- मात:, आप मर्त्यलोक में चलें। वहाँ ब्रह्मतेज से दग्ध मेरे पितरों का उद्धार करना है।

भगीरथ की प्रार्थना सुनकर गंगाजी ने कहा- राजन्, ठीक है। मैं भूतल पर चली तो चलूँगी किन्तु वहाँ मेरा वेग धारण कौन करेगा? भगीरथ, ऐसा न होने पर मैं पृथ्वी को फोड़कर रसातल में चली जाऊँगी। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि वहाँ पापी लोग अपना पाप मेरे जल में धोयेंगे फिर मैं उस पाप को कहाँ धोऊँगी? अत: मैं भूतल पर नहीं जाना चाहती।

कोऽपि धारयितावेगं पतन्त्यामे महीतले। अन्यथा भूतलं भित्वा नृप यास्ये रसातलम्।
किञ्चाहं नभुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम्। मृजमि तदघंकुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम्।।

गंगाजी की बात सुनकर भगीरथ ने कहा- माताजी, आप इन बातों की चिन्ता न करें। जहाँ तक आपके जल में पापियों के पाप-प्रक्षालन की बात है, वह तो कोई समस्या नहीं है। जब भगवान के भक्त महात्मा लोग आपके जल में स्नान करेंगे तो उनके अंग के संसर्ग से आपके भीतर संचित सारे पाप-ताप धुल जायेंगे क्योंकि उनके हृदय में पाप-विनाशक भगवान सर्वदा विराजमान रहते हैं। संसार से उपरत शान्त ब्रह्मनिष्ठ सन्त जिनके हृदय में सर्वदा पापनाशी परमात्मा रहते हैं उन्हीं के स्पर्श मात्र से गंगा के पाप नष्ट हो जायेंगे।

आप में जितने भी पाप होंगे, वे सब उसी प्रकार भस्म हो जायेंगे, जैसे एक अग्नि की चिनगारी से कितना भी बड़ा रूई का ढेर क्यों न हो, वह भस्म हो जाता है, अथवा एक ही सूर्य के उदय होने से समस्त अन्धकार मिट जाता है अथवा एक ही सिंह के आने से समस्त जन्तु भाग जाते हैं, अथवा एक ही चन्द्र के उदय होने से समस्त तारागण फीके पड़ जाते हैं। एक सन्त ने भी आप में स्नान कर लिया, तो आपके सब पाप कट जायेंगे। इसलिये परोपकारी कृपालु सन्त तीर्थों में घूम-घूमकर उनमें तीर्थत्व स्थापित करते हैं उसी प्रकार आपके उभय तटों पर रहकर तथा घूम-घूमकर सन्त आपको पावन बना देंगे, आपके समस्त पापों को काट देंगे।

साधवो न्यासिन: शान्ता: बह्मिष्ठा: लोकपावना:। हरन्त्यघं तेङ्गसंगात् वेष्वास्ते ह्यघभिद्हरि:।।

जिन लोगों ने अपनी सारी कामनाओं का परित्याग करके अपने मन को परमात्मा में लगा दिया है, जो संसार से उदासीन होकर शान्त हो गए हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ होने के कारण संसार को पवित्र बनानेवाले हैं; उनके अंगों का संस्पर्श होने से आपके पाप विनष्ट हो जायेंगे क्योंकि उन महापुरुषों के अन्त:करण में पापप्राणशक श्रीहरि का निवास होता है।

गंगा बोली वेग बड़ो रोकै को मेरो। औरहु चिन्ता एक करूँ हौं कारज तेरो।।

हौं सबके अघ हरूँ हरै मेरे को अघ नर। कहैं नृपति तब वेग सहेंगे शिव हर शंकर।।

अघहारी हियमें बसहिँ, साधु पाप काटैं सबहिँ। ह्वैं प्रसन्न अवतरण हित, गंगाजी गमनी तबहिं।।

रही आपके वेग को धारण करने की बात तो उसकी भी चिन्ता नहीं है। समस्त विश्व में व्याप्त भगवान रुद्र आपके वेग को धारण कर लेंगे अत: आप भूतल पर चलकर मेरी अभिलाषा पूरी करने की कृपा करें। यही मेरा वर है, आपसे प्रार्थना है। गंगाजी ने राजा भगीरथ की प्रार्थना स्वीकार कर भूतल पर अवतरण की बात स्वीकार कर ली।

जैसे राजा नदी पर कोई पुल बनवा देता है। छोटी सी चींटी जो तोला भर पानी को भी पार नहीं कर सकती अपार नदी के जल को पुल के माध्यम से पार कर जाती है।

किन्तु हिमालय के उत्तुंग श्रृंग पर वीरभाव से खड़े शंकर ने उन्हें अपनी जटाओं में धारण कर इस प्रकार उलझा दिया कि उन्हें गंगा को वहाँ से निकलने का मार्ग ही नही मिला। स्वर्ग से गिरा तो खजूर पर अटका। गंगाजी किसी प्रकार स्वर्ग से आई तो शंकर जी केजटामण्डल में ही अटक गईं। फिरभगीरथ ने स्तुति से शंकर को प्रसन्न कर उनसे गंगाजल की याचना की। शंकर ने प्रसन्न होकर अपनी जटा को पकड़कर निचोड़ दिया। हर-हर-झर-झर करती हुई गंगा की विशाल धारा बह चली। आगे-आगे भगीरथ का रथ मार्ग बनाता चल रहा था और पीछे-पीछे गंगाजी की जलधार बह रही थी।

भगीरथ रथ पर चढ़कर आगे-आगे चल दिये। उनके पीछे-पीछे पर्वतों को तोड़ती फोड़ती, लताओं को मरोड़ती वृक्षों को उखाड़ती, पाषाणों से टकराती, गिरि खण्डों को सहाती हुई भागीरथी बहने लगीं, वेग से चलने लगीं, उनके पीछे कच्छ, मत्स्य, नक्र, सर्प, उरग, भेषज आदि-आदि जल जन्तु भी माता की जय-जयकार करते हुए चलने लगे।

गंगाजी की वह पावन धारा मार्ग के भू-भागों को पवित्र करती हुई काशी में महर्षि जंन्हू ऋषि के आश्रम में पहुँची और जन्हूं ऋषि से अटखेलियां करने लगी। तभी जन्हूं ऋषि ने क्रोधित होकर उसे चुल्लु में भरकर पी लिया। तब भगीरथ ने फिर जन्हूं ऋषि से प्रार्थना करी तब ऋषि ने प्रसन्न होकर गंगा को अपनी जांघ से प्रकट किया। तो जन्हूं ऋषि की पुत्री जान्हवीं कहलायी।

छोड़ी गंगा कानतें, तनया तिनकी ह्वै गई। तबईतें भागीरथी, ख्यात जाह्नवी जग भई।।

संग भगीरथ लिये कपिल निज आश्रम आये। गंगा जलकूँ परसि पितर सब स्वर्ग सिधाये।।

भस्म भूत माँ पय परसि, सगर सुतनि छूटी व्यथा। तट निवसै नित पय पिये, तिन सुकृतिनिकी का कथा।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज भगीरथ वायु के समान वेग वाले अपने रथ पर चढ़े हुए थे। गंगाजी उनका अनुगमन कर रही थीं, इस प्रकार अनेक देशों को पावन बनाती हुई उन्होंने उस प्रदेश का सिंचन किया जहाँ दग्ध हुए सगर सुतों की भस्म की ढेरियाँ पड़ी हुई थी।

फिर गंगा भगीरथ के पीछे-पीछे चलीं और इसतरह महर्षि कपिल के आश्रम पर पहुँची। वहाँ गंगा-जल का स्पर्श पाते ही राख की ढेर में परिणत सगर के साठ हजार पुत्र दिव्य विमानों में बैठकर स्वर्ग सिधार गये। जब गंगाजल से शरीर की राख का स्पर्श हो जाने से सगर के पुत्रों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गई, और वहां जाकर सागर में मिल गयी इसलिये उस संगम का नाम गंगासागर हुआ। लोग नित्य गंगा का स्नान करते हैं। गंगा को पृथ्वी पर लाने का सफल प्रयास भगीरथ का था इसलिये गंगा का एक नाम भागीरथी भी पड़ा।

शुकदेव बोले- राजन्, जिन गंगाजी के जल का ब्रह्म दण्ड से आहत हुए सगर पुत्रों के शरीर की भस्म से ही स्पर्श होने मात्र सब वे सब-के-सब स्वर्ग चले गये। जब सगर के पुत्र भस्मीभूत शरीर के स्वर्ग होने से सीधे स्वर्ग सिधार गये, तो फिर जो व्रत धारण करनेवाले श्रद्धापूर्वक नित्य ही श्रीगंगाजी का सेवन करते हैं तो फिर उनकी मुक्ति अवश्य है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, गंगाजी से इस प्रकार कहकर राजा भगीरथ ने तपस्या करके भगवान् शंकर को प्रसन्न कर लिया। भगवान शंकर अतिशीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवता है। उनका नाम ही है- आशुतोष। भगवान शंकर ने कहा- बोलो भगीरथ क्या चाहते हो। तुम्हारी अभिलाषा पूरी करने के लिये मैं पूर्णत: तैयार हूँ। भगीरथ ने कहा- महादेव, गंगाजी स्वाभिमान स्वर्ग से आ रही है। उनका कहना है कि यदि किसी ने मेरा वेग रोका नहीं, तो मैं भूतल को फोड़कर रसातल को चली जाऊँगी। प्रभो, आप उनके वेग को धारण करने में समर्थ हैं उसे आप रोक लें। शिवजी ने कहा- भगीरथ, तुम निश्चिन्त रहो। आने दो गंगाजी को। इसके बाद गंगाजी बड़े वेग से नीचे उतरीं। इसप्रकार शिवजी की जटाओं में छिपकर गंगाजी हिमालय की घाटियों में कल-कल निनाद करती मैदान की ओर मुड़ी। इस प्रकार भगीरथ पृथ्वी पर गंगा अवतरण करके बड़े भाग्यशाली हुए।

राजन्, इस भूतल पर गंगा से बढ़कर कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। जो प्राणी श्रद्धा-भक्ति से गंगा का सेवन करते हैं, उनकी पुण्य-राशि का वर्णन मैं नहीं कर सकता। इसप्रकार भगीरथ पृथ्वीपर गंगा अवतरण करके बड़े भाग्यशाली हुए और जनमानस को अपने पुण्य से उपकृत कर दिया। युगों युगों तक बहनेवाली गंगा की धारा महाराज भगीरथ के कष्टमयी साधना की गाथा गाती है। गंगा प्राणीमात्र को जीवनदान भी नहीं देती मुक्ति भी देती है। इसी कारण भारत के विविध दिशाओं में गंगा की महिमा गायी जाती है।

जो लोग कभी देवी-देवताओंका भजन-पूजन नहीं करते, ध्यान नहीं करते, जिनके हृदयमें श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं, जिनको नमक-तेल-लकड़ीकी चिन्तासे ही फुर्सत नहीं मिलती, महात्माओंका संग नहीं मिलता, उन्हें यह बात समझमें नहीं आ सकती कि गंगाजी भी दर्शन देती है। सब वस्तुओंकी अधिष्ठातृ-देवी होती है, उनका देवता होता है। जब सद्भावसे, ईश्वरभावसे किसी भी वस्तुकी पूजा की जाती है तो तत्तदाकार होकर ईश्वर ही तत्-तत् देवताके रूपमें आकर दर्शन देता है। गंगा में आकर्षणी शक्ति भौतिक रूपसे भी ज्ञात होती है। जब मनुष्य उनमें स्नान करता है, तब उसके शरीरमें जो पाप होते हैं वो उन्हें कर्षित कर देती हैं और मनुष्य स्नान करनेके बाद निष्पाप अनुभव करता है।

दशहरे के दिन गंगा स्नान करने से मन, वचन, कर्म का सारा मैल धुल जाता है। मानसिक दोष- जैसे दूसरे के धन को हड़पने का विचार करना, मनमें दूसरे का बुरा सोचना, ईश्वर के विरुद्ध विचारधारा अर्थात नास्तिकता से बोलना, कटु वाणी बोलना, झूठ बोलना, परनिन्दा या चुगली करना, व्यर्थ की बात करना। शारीरिक दोष शास्त्र में वर्जित हिंसा, चोरी, किसीसे अनैतिक सम्बन्ध, गंगा दशहरे पर गंगा में १० डुबकियां लगाने से मन, तन और कर्म की सभी कलुषित प्रवृत्तियाँ व्यक्तिके पीछेसे निकल जाती है इसीको महल में पाप धोना कह जाते हैं।

धर्म, गंगा तथा गौ की रक्षा करना हम सभी का कर्त्तव्य है। सभी को मिलजुल कर इनका मान पूरी दुनिया में बढ़ाना होगा। गो-गंगा तथा धर्म पर हो रहे हमलों पर रोक लगाने के लिये संगठित प्रयास किये जाएं। सभी धर्म की अपनी-अपनी विशेषता है और सभी को अपने-अपने धर्म का पालन करने का अधिकार हमारे देश का संविधान देता है। लेकिन लोगों को प्रलोभन देकर या बलपूर्वक धर्मांतरण कराना पूर्णत: अनुचित है। हम इसका विरोध करते हैं हम सभी को एकसाथ होकर ही अपने धर्म की रक्षा करनी होगी। धर्म बचा तो देश बचेगा। आज गंगा की दशा अच्छी नहीं है। हम लोगोंने इसको इतना प्रदूषित कर दिया है कि स्नान करना तो दूर लोगोंको इसके जल से आचमन करनेतक संकोच होता है। इसलिये गंगाको प्रदुषण मुक्त करने के लिय हमें उपाय करनी चाहिय तभी गंगा दशहरा का औचित्य सार्थक होगा। आम श्रद्धालु के लिये गंगा आज तक आस्था का केन्द्र है। भक्तजन इस पर्व का स्नान ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक १० दिन लगातार स्नान करते हैं। अन्य पवित्र नदियों के तट पर भी यह त्योहार मनाया जाता है। जिन-जिन की यह धारणा है- गंगा

कितनी भी मैंली हो जाय, गंगा तो है पतित पावन ही। गंगाजी दिव्य शक्तिसम्पन्ना है। उसने तो ब्रह्म-दण्ड द्वारा दग्ध राजा सगरके पुत्रोंको पवित्र कर दिया। गंगा आकाश-व्यापिनी ज्ञान-धारा है, विष्णुपदी हैं, भगवान्‌के चरणोंसे निकली हैं। इनके स्नानसे, पानसे, दर्शनसे मनुष्यका जीवन पवित्र हो जाता है। गंगाके तीन रूप हैं- आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक। आधिभौतिक रूप सबके सामने प्रकट है, आधिदैविक और आध्यात्मिक रूपोंको महापुरुष लोग जानते हैं।

चंचलता में कभी-कभी क्रोध उत्पन्न हो आता है। हँसी में खाँसी हो जाती है। किन्तु बालकों में चंचलता स्वाभाविक है। इसीलिये वे परस्पर में खेलते-खेलते लड़ पड़ते हैं, रोने लगते हैं, युद्ध हो जाता है। क्षण भर में सब भूल जाते हैं, एक हो जाते हैं। कुट्टी हुई मित्रता पुन: मिल्ली के रूप में परिणित हो जाती है। इसीलिये क्रीड़ा में सभी सम्भव है। जैसे प्रेम क्रीड़ा का अंग है वैसे ही क्रोध कलह, मान भी उसका अंग है। मान के बिना प्रेम में स्वाद नहीं। कलह के बिना क्रीड़ा में नूतनता नहीं, भगवान नाना रूप रखकर इस जगत् नाट्यस्थली में क्रीड़ा कर रहे हैं। गंगा भी उन्हीं का द्रव्य रूप हैं, विष्णु, शिव, विरंचित, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवता, पितर सभी उनके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। क्रीड़ा में शंका के लिये स्थान नहीं।

गंगा में ज्ञान से, अज्ञान से, श्रद्धा से, अश्रद्धा से कोई भी स्नान करेगा उसका उद्धार होगा। यह बात समस्त वेद शास्त्र पुराण अनादि काल से चले आ रहे हैं और कह रहे हैं। शास्त्रों को सत्य माननेवाले, उनपर विश्वास रखनेवाले, इन बातों पर विश्वास करेंगे। इन वचनों की प्रामाणिकता के लिये कोई तर्क का सहारा नहीं लेना पड़ता जो स्वत: सिद्ध है।

भगवती भागीरथी इस पृथ्वी पर पापियों के उद्धार के ही निमित्त आयी हैं। गंगाजी न होती तो दीन दुखियों और पापी तापियों के पाप तापों को कौन हटाता, कौन पथभ्रष्ट लोगों को अपनाता। कौन संसार में पापों से बच पाता। गंगा ने भूले-भटकों को पार लगाया, असंख्यो पापियों को स्वर्ग पठाया और अगणित राजर्षि ब्रह्मर्षियों को मोक्ष का मार्ग बताया।

गंगा गंगा कहें नित्य गंगाजल पीवैं। सदा बसैं तट निकट गङ्गाजलतें ई जीवैं।।
गंगा रज तन लाइ नहावैं गंगा जलमहँ। बसैं गंग पय परसि अनिल बिहरैं जिहि थलमहँ।।
श्री गंगाके नामतें, कोटि जन्म पातक नसहिँ। भोगें भूपै भोग बहुत, अन्त जाहि सुरपुर बसहिँ।।

९) राजा सौदास और खटवांग का चरित्र- शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगीरथ के पुत्र थे श्रुत। श्रुत से नाभ, नाभ से सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीप से अयुतायु, अयुतायु से ऋतुपर्ण हुए। ऋतुपर्ण ने ही राजा नल को द्यूत-विद्या सिखलाई थी और उसके बदले उनसे अश्वविद्या सीखी थी।

दमयन्ती पति तजी भाग्यवश आई पितु घर। पति खोजन हित रच्यो दुबारा मृषा स्वयम्बर।।
नल ऋतुर्ण समेत ससुर गृह रथ लै आये। नल दमयन्ती मिले सुनत सब जन हरषाये।।
कायातें कलियुग भग्यो, जब नृपके दिन फिरि गये। गयो राज फिरितें मिल्यो, जग यश भागी नल भये।।

फिर ऋतुपर्ण से सर्वकाम हुए और सर्वकाम से सुदास हुए। सुदास से मदयन्ती के पति सौदास का जन्म हुआ। सौदास के ही दूसरे नाम मित्रसह और कल्मषाङ्घ्रि थे। वे गुरु वसिष्ठ के शाप से राक्षस और नि:सन्तान हो गये थे। यहाँ उनका वंश ही बदल गया।

शुकदेव बोले- एक बार राजा सौदास शिकार खेलने जंगल में गये। वहाँ दो राक्षस रहते थे। दोनों सगे भाई थे। राजा ने उनमें से एक को मार डाला और दूसरे को छोड़ दिया। बचे हुए राक्षस ने अपने मरे हुए भाई का बदला लेने का निश्चय किया। उसने वेश बदल कर रसोइये का रूप धारण किया। राजा के भोजनालय में उसकी नियुक्ति हो गई। एक दिन उसने वसिष्ठ जी की थाली में अन्य व्यंजनों के साथ ही मनुष्य का मांस पकाकर परोस दिया। जब वसिष्ठ जी ने देखा की थाली में अभक्ष्य भोजन

परोसा गया है तो वे क्रुद्ध होकर राजा को शाप देते हुए बोले कि- जा, इस काम से तू राक्षस हो जा। जब उन्हें यह बात मालूम हो गई कि यह काम तो राक्षस का है। राजा का इसमें कोई दोष नहीं है। तब उन्होंने उस शाप को केवल बारह वर्ष के लिये कर दिया। राजा सौदास ने देखा कि मेरा कोई अपराध नहीं है। व्यर्थ में ही गुरुजी मुझे शाप दे रहे हैं, तो उन्हें भी क्रोध आ गया, वे भी हाथ में जल लेकर वसिष्ठ को शाप देने के लिये उद्यत हो गये। किन्तु उनकी बुद्धिमत्ती पत्नी मदयन्ती ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। सौदास पत्नी की बात मानकर रुक गये। गुरु को शाप नहीं दिया। शाप देने के लिये हाथ में लिये जल को उन्होंने अपने पैर पर डाल दिया। इससे उनके पैर झुलस गये। तभी से उनका नाम कल्माषपाद पड़ गया।

गुरु के शाप से सौदास राक्षस बन गये। एक दिन वे जंगल में भ्रमण कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि- ब्राह्मण पति-पत्नी रमण कर रहे हैं। उन्होंने ब्राह्मण को खा जाने के लिये पकड़ लिया। ब्राह्मणी गिड़गिड़ाई, रोई और कहा कि अभी रमण से हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हुई है। आप मेरे पति को छोड़ दें। आप राक्षस नहीं, राजा सौदास हैं। गुरु के शाप के कारण आप की यह दशा हुई है। किन्तु कल्माषपाद माने नही। उन्होंने ब्राह्मण को खा लिया। इस पर ब्राह्मणी ने शाप दिया- अरे दुष्ट, मैं अभी काम से पीडित हो रही थी। ऐसी स्थिति में तूने मेरे पति को खा लिया। इसलिए तुम जब स्त्री से सहवास करना चाहोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। इसके बाद ब्राह्मणी ने पति की हड्डियों को एकत्रित किया और उनके साथ चिता में सती हो गई। जब सौदास बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर गुरु के शाप से मुक्त हुए तब वे अपनी राजधानी लौट आये। वे अपनी पत्नी से सहवास करना चाहे तो पत्नी ने ब्राह्मणी के शाप से भयभीत होकर पति को रोक दिया। तभी से राजा स्त्री-सुख से वंचित हो गये।

सौदास नि:सन्तान थे। उन्होंने सन्तान के लिये गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की। तब वसिष्ठ जी ने उनके कहने से मदयन्ती को गर्भाधान कराया। किन्तु सात वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी बालक पैदा नहीं हुआ। इस पर गुरुदेव ने पत्थर के एक ढेले से मदयन्ती का पेट ठोंका जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक अश्म=पत्थर से ठोकने पर पैदा हुआ था अत: उसका नाम अश्मक रखा गया। अश्मक से मूलक का जन्म हुआ। जब परशुरामजी भू-मण्डल को क्षत्रियों से विहीन कर रहे थे, तब स्त्रियों ने उसे छिपाकर रख दिया था। इसीसे उसका एक नाम नारी कवच भी पड़ा।

अश्मकके सुत ये राजकुलके जो मूलक। तबई प्रकटे परशुराम क्षत्रिय कुल शूलक।।
नारिनि कवच बनाइ बचाये मनुकुल त्राता। नारीकवच कहाय भये जगमहँ विख्याता।।
मूलक सुत दशरथ ये, एडविडहू सुत तासुके। पुत्र एडविड विश्वसह, खट्वाङ्गहु नृप जासुके।।

शुकदेव बोले- राजन्, अश्मक का पुत्र मूलक हुआ जिसकी स्त्रियों ने रक्षा की। इसलिये उसका नाम नारी कवच भी हुआ। पृथ्वी पर क्षत्रिय न रहने के अनन्तर यह क्षत्रिय कुल का मूल पुरुष हुआ।

आगे चलकर इसी वंश में महाप्रतापी राजा खट्वांग से वर माँगने के लिये कहा। इस पर खट्वांग ने पूछा- पहले आप लोग यह बतलायें कि मेरी आयु कितनी अवशिष्ट है? देवताओंने कहा- राजन्, अब आपकी आयु केवल दो घड़ी बाकी है।

खटवाङ्ग बोले- हे देवताओं, मुझे मेरी राजधानी ब्राह्मणों के बीच जाने दीजिये। यद्यपि आप सब सत्व प्रधान हैं, किन्तु स्वर्ग के दिव्य विषयभोगोंमें आसक्त होनेके कारण अपने अन्त:करण में स्थित परम प्रिय सनातन आत्मा श्रीहरि को नहीं जान पाते।

देवताओं की बात सुनकर खट्वांग अपनी राजधानी में लौट आये। वहाँ पहुँचकर उन्होने संसार और संसार के विषयों को अपने मन से पूर्णत: निकालकर उसे भगवान में लीन कर दिया और परमपद के अधिकारी बने।

जानी एक मुहूर्त आयु सब जग बिसरायो। करिकें ध्यान अखण्ड परम पद नृपने पायो।।

तिने पुत्र दिलीप यशस्वी दीर्घबाहु वर। सन्तति बिनु अति दुखित गये निबसैं जहँ गुरुवर।।
महिषी सङ्ग सुदक्षिणा, लिये जाय गुरु पद गहे। आशिष दै निज शिष्यतें, वचन मुदित मन गुरु कहे।।

१०) राम अवतार (संक्षिप्त रामायण)-

गौ सेवातें पुत्र होहिँ यह मैंने जानी। करि सादर स्वीकार नंदिनी सेवा ठानी।।
कृपा नन्दिनी करी भये रघु रविकुल भूषन। रघुके अज सुत ये तनिक निजमहँ नहिँ दूषन।।
अज अति अनुपम नृप भये, इन्दुमतीने जो वरै। एक छत्र जगमहँ नृपति, अगणित मख जिन्होने करै।।
सूर्य वंश में विष्णु ने, लियौ राम अवतार। दैत्यवंश का नाश करि, कीन्ह सुयश विस्तार।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, खट्वांग के पुत्र हुए दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के पुत्र हुए रघु। रघु से अज और अज की पत्नी इंदुमती से दशरथ हुए।

अज- अयोध्या के प्रसिद्ध राजा दशरथ के पिता। इनके पिता का नाम दिलीप था। इनका विवाह विदर्भ नरेश की कन्या इंदुमती से हुआ था। कहते हैं अज को एक गंधर्व से दिव्यास्त्र प्राप्त हुआ था। इसी की सहायता से ये स्वयंवर में इंदुमती को प्राप्त कर सके। अज ने अनेक राजाओं को परास्त करके कोशल राज्य का प्रभाव बढ़ाया था। कालिदास रचित रघुवंश के अनुसार इन्होंने एक पागल हाथी को मार कर उसने दिव्यास्त्र प्राप्त किया था। अज का एक अर्थ बकरा भी है।

महाराज दशरथ इक्ष्वाकु वंश के सबसे प्रतापी और सौभाग्यशाली राजा हुए। क्योंकि साक्षात् परमेश्वर ने इनके पुत्र रूप में अवतार धारण कर लिया। दशरथ के तीन पत्नियाँ भक्ति स्वरूपा महारानी कौशल्या, क्रियाशक्ति स्वरूपा महारानी कैकयी और भाव शक्ति स्वरूपा महारानी सुमित्रा थी। दशरथ के समान किसीमें भी उनके जैसा ऐश्वर्य, तेज और पराक्रम नहीं था।

अपने श्रेष्ठ कार्यों और अनुकरणीय आचरण द्वारा समाज में उच्चआदर्शों की स्थापना करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी का जन्मोत्सव या रामनवमी (चैत्र शुद्ध नवमी), पूरे विश्व में जहां भी हिंदू रहते हैं, बड़ी ही धूमधाम, उमंग व उल्लासपूर्वक मनाई जाती है। हिन्दू धर्म के अनुसार हर युग में भारत की पुनीत धरती पर विविध हेतुओं से अवतार प्रकट होते हैं। इसके अनुसार त्रेता युग में रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचंद्र का प्रादुर्भाव हुआ। त्रेतायं रघुनंदन: प्रत्येक भारतीय के लिए राम आज भी मर्यादा पुरुषोत्तम बने हुए हैं। आदर्श पुत्र, आदर्श पति और आदर्श राजा का त्रिवेणी संगम उनके चरित्र में सहज ही दिखाई देता है। एक वचन, एक बाण और एक पत्नी, राम के चरित्र के ये तीन वैशिष्ट्य रहे हैं। कथा के अनुसार राम का जन्म अयोध्या के इक्ष्वाकुकुल में राजा दशरथ और रानी कौशल्या के घर चैत्र शुदी नवमी के दिन मध्याह्न में हुआ था। जिस समय उनका जन्म हुआ उस समय पुलस्त्य ऋषि के पौत्र रावण के अत्याचारों से पृथ्वी पर आतंक छाया हुआ था। रावण ब्राह्मण और प्रकांड विद्वान होने के बावजूद अत्याचारी और क्रूरकर्मा था, इसलिए राक्षस कहा जाता था। अधर्म के प्रतीक रावण का सामना धर्म की शक्ति से ही किया जा सकता था, इसलिए भगवान विष्णु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में अयोध्या के राजकुल में अवतरित हुए थे। धर्मग्रंथों के अनुसार सोलह वर्ष की अल्पआयु में ही उनके अंतर में अध्यात्म-भावना जाग उठी और धन-राज्य, माता-पिता और संसार छोड़ देने का निश्चय उन्होंने किया। पर गुरु वशिष्ठ ने समझा-बुझाकर उन्हें ऐसा करने से रोका।

राम का चरित्र सर्वथा और सदैव अनुकरणीय है। एक ओर पिता राजा दशरथ द्वारा उनका राज्याभिषेक किए जाने का निर्णय तो दूसरी ओर सौतेली माता कैकेयी द्वारा उनके लिए चौदह वर्ष का वनवास दिए जाने की मांग। राम के जीवन का यह एक अनोखा पल था। वनवास का समाचार मिला तो उस समय भी उनके मुख पर वहीं शांत, सौम्य, मंद स्मित-रेखा

खेल रही थी, जो राज्याभिषेक का समाचार सुनकर थी। राज्याभिषेक का न हर्ष था, न वनवास का विषाद। राम के चरित्र की विशेषता ही यही थी। पिता की आज्ञा उन्होंने सहर्ष स्वीकार की और सत्ता के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं दिखाई। उन्होंने उस समय लक्ष्मण से कहा, हे लक्ष्मण, इस संसार में धर्म सर्वश्रेष्ठ है, धर्म ही सत्य का अधिष्ठान है और पिता की आज्ञा भी धर्माश्रित होने के कारण उसका पालन करना उत्तमोत्तम है। इस प्रकार उन्होंने आदर्श पुत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया। कठोर तपश्चर्या, राक्षसों के साथ भीषण युद्ध, ऋषियों के साथ तीर्थों एवं आश्रमों में सत्संग और सीताहरण के बाद हुए महायुद्ध में अत्याचारी राक्षस रावण का नाश, यह राम के युग प्रवर्ती कार्यों में से श्रेष्ठ कार्य था। परंतु राम के चरित्र की सर्वोच्च उदात्तता तो उस समय प्रकट होती है जब चौदह वर्ष का वनवास पूरा करने के बाद वे अयोध्या वापस लौटते हैं और सबसे पहले अपनी सौतेली माता कैकेयी से मिलने जाते हैं। आत्मग्लानि में डूबी कैकेयी उनके सामने नहीं आना चाहती। पर राम उसके चरणों पर गिरकर उसका सारा संकोच और सारी आत्मवितृष्णा दूर करते हुए कहते हैं, हे माता यह आपके चरणों की ही कृपा है कि वनवास में मुझे इतना कुछ जानने को मिला। पिता का स्नेह, भरत का त्याग, हनुमान का बल, सुग्रीव की मैत्री, लक्ष्मण की असीम भक्ति, सीता की पतिव्रता भक्ति, मेरे बाहुबल का ऐश्वर्य यह सारा कुछ मुझे कैसे मिलता यदि आपने कृपा करके मुझे वन में न भेजा होता। राम ने माता कैकेयी की आत्मग्लानि दूर करते हुए जिस कोमलता और आदर के साथ उसकी संवेदनशीलता को स्पर्श किया वह अपने आप में अद्‌भुत है।

निर्दोष सीता का त्याग मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का दुर्बल पक्ष कहा जा सकता है। परंतु जनभावना का आदर करते हुए अपनी निर्दोष पत्नी का त्याग करके उन्होंने अपने राजधर्म का ही पालन किया। राजा के लिए उसकी प्रजा सर्वोपरि होती है। प्रजा के समक्ष आदर्श रखना राजा का परम कर्त्तव्य होता है और ऐसा करने में उसे अपनी व्यक्तिगत भावनाओं की तिलांजली देनी पड़ती हो तो उसे इससे पीछे नहीं हटना चाहिए। राम ने यही आदर्श प्रजा के समक्ष रखा। यही कारण है कि आज भी रामराज्य हमारा आदर्श और लक्ष्य बना हुआ है। सुशासन, सुव्यवस्था, धर्म, शांति और सदाचार जैसे सद्‌गुणों की पूर्णता का द्योतक यह शब्द ऐसा है, जिसकी तुलना दूसरे किसी के साथ नहीं की जा सकती।

देवताओं की प्रार्थना पर महाराज दशरथ के यहाँ साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीहरि ही अपने अशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे- राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। समस्त ऐश्वर्य, यश कीर्ति की पराकाष्ठा दशरथ के परमार्थ और पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त हो चुकी थी किन्तु पितरों का तर्पणाधिकारी न होने के कारण अपनी चतुर्थावस्था में वे बड़े चिन्तित व दु:खी रहने लगे थे। भगवद् कृपा और गुरु वशिष्ठ के आशीर्वाद से पुत्रेष्ठी यज्ञ सम्पन्न कराके उसकी सफलता के रूप में चार पुत्रों की प्राप्ति हुई। कौशल्या के राम, कैकयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न। ये चारों ही भगवान के अंश से उत्पन्न अवतार स्वरूप थे।

अजके दशरथ पुत्र यशस्वी अति ई पावन। जिनके यशतें विमल धवल अब तक यह त्रिभुवन।।
भूपति परम उदार दान बहुत बिप्रनि दीन्हें। भूरि दक्षिणा युक्त विषद मख जिन बहुत कीन्हें।।
देवासुर संग्राममहँ, असुर पराजित जिन करे। दिव्य शस्त्र आघाततें, अगनित सुर कंटक मरे।।
विनती गुरुकी करी रचायो मख सुतके हित। ऋष्यक्रृंग पुत्रेष्टि यज्ञ करवायो प्रमुदित।।
बढ़यो भूमिको भार बहुत, सुर सब मिलि हरि ढिँग गये। सेतु करनि भव उदधि पै, अज अचयुत प्रकटित भये।।
रामकृष्ण दोऊ एक हैं, अंतर नहीं निमेष। इनके नयन गीर हैं, इनके चपल विशेष।।

राम के नेत्रों में गंभीरता है, कृष्ण के नेत्रों में चपलता है। राम की हुई लीलाओं को करो, कृष्ण की कहे हुए को करो। भगवान राम ने जिस पवित्र वंश में अवतार लिया, उसे सूर्यवंश कहते हैं। राम इन दो शब्दों में कितनी मिठास है, कितनी सरलता है, कितनी मोहकता, कितनी गम्भीरता और सरसता है। रामचरित्र अगाध है, अपरिमेय है, अनन्त है, अनादि है, अपार है।

मृत्युलोक में जब असुरवृत्ति का बाहुल्य हो जाता है या आसुरी प्रवृत्तियाँ जब प्रबल हो जाती हैं और सुरवृत्ति वाले सन्त पुरुषों का जीवन कष्टसाध्य हो जाता है। तब प्रभु मनुष्य रूप में आकर आसुरी वृत्तियों का विनाश कर दैवीवृत्तियों की स्थापना कर अपने भक्तों को सुख देते हैं। यही रामावतार के समय हुआ। प्रभु श्रीमन्नारायण को निराकार से साकार होना पड़ा- अवर्ण से सवर्ण होना पड़ा।

ईश्वर तत्व सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बताया है। परन्तु स्थिति और परिस्थिति देखने से नारदजी के क्रोध और शाप से भी प्रभुने अवतार ग्रहण किया। देवर्षि नारद, राजकुमारी के गुणों एवं सौन्दर्य पर इतने मुग्ध हो गये थे कि उन्हें केवल एक ही अनुभूति हो रही थी कि राजकुमारी उन्हीं का वरण करेगी। उन्हें लगता था कि नारायण ने उन्हें अपना सौन्दर्य प्रदान किया है किन्तु हुआ बिलकुल विपरीत।

धरि नर तनु तँह गयउ कृपाला, कुंवरि हरषि मेलेउ जयमाला।

राजकुमारी विश्वमोहिनी ने नारायण के गले में वरमाला डाल दी और राजकुमारी को लेकर चले गये। नारद व्याकुल हो गये आशा के प्रतिकूल हो गया। शम्भुगणों ने उनका परिहास किया कि निज मुख मुकुर विलोकहु जाई नारद ने सरोवर के जल में जब अपनी मुखाकृति देखी तो क्रोध स्वाभाविक था। वस चले नारायण को शाप देने या अपने प्राण देने का संकल्प लेकर। सत्यलोक के मार्ग ही प्रभु नारायण एवं भगवती लक्ष्मी तथा राजकुमारी को अपनी ओर आते देखा तो नेत्र लाल हो गये, शरीर काँपने लगा और कुछ कहें इससे पूर्व ही भगवान बोले-

बोले वचन मधुर सरसाई। मुनि कहँ चले बिकल की नांई।।

नारद तो पूर्व आवेशित थे ही इन व्यंग वचनों को सुनकर फूट पड़े।

पर सम्पदा सकहु नहीं देखी। तुम्हारे ईर्ष्या कपट विसेषी।।

देवता और दैत्यों के साथ भी कपट व्यवहार किये बिना नहीं रह सके। समुद्र मन्थन में दैत्यों को मदिरा, शंकर को विष और कौस्तुभमणि और लक्ष्मी को आप ले गये। नारद जी ने अपना संकल्प पूर्ण किया-

बचहु मोहि जवनि धरि देहा। सोई तनु धरहु श्राप मम एहा।।

ऐसी स्थिति और परिस्थिति में नारदजी के ये वाक्य परम स्वतंत्र करहु तुम सोई वेद वाक्यों के परप्रेक्ष में नगण्य प्रतीत होते हैं। किन्तु देवर्षि नारद वाक्य मिथ्या नहीं होते। इनको पूर्ण करने के लिए भगवान को अवतार धारण कर नर रूप में आना पड़ा। यह श्रीराम के जन्म का एक हेतु हुआ।

दूसरा हेतु राजा प्रतापभानु को ब्राह्मणों का शाप था। परम भागवत प्रतापभानु ने अपने समस्त कर्मों का फल भगवत अर्पण कर परम त्याग और वैराज्ञ का परिचय दिया था। उसे ब्राह्मणों ने शापित क्यों किया? यह एक योजना थी। पराजित राजा जो सन्त वेश में रहता था। उसने कालकेतु असुर के द्वारा ब्राह्मणों के भोजन में मनुष्य मांस का प्रयोग करा दिया। अज्ञानी राजा ने उसे परोस दिया और आकाशवाणी के द्वारा ब्राह्मणों को इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने निर्दोष राजा को असुर होने का श्राप दे दिया। प्रतापभानु परिवार सहित असुर योनि में चला गया।

काल पाइ मुनि सुन सोई राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा।।

दस सिर ताहि बीस भुज दण्डा। रावन नाम वीर बरबंडा।।

रावण, कुम्भकरण, विभीषण ने तप कर अनुपम वरदान प्राप्त किये। रावण के अत्याचारों ने धर्म का विनाश किया।

बाढ़े खल बहु चोर जुझारा। जे लपट परधन परदारा।।

मानहिं मातु पिता नहीं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।

अतिशय देख धर्म की ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।

सकल धर्म देखहिं विपरीता। कहि न सकइ रावण भयभभता।।

अधर्मों से त्रसित, अत्याचारी अनाचारियों के बोझ से दुखी पृथ्वी देवताओं के पास गई। देवता उसे लेकर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने सभी देवताओं के साथ प्रभु श्रीमन्नारायण की स्तुति की तब देववाणी सुनने को मिली-

जनि उरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा तुम्हहि लगि धरिहउँ नरवेशा।।

असंह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर वंश उदारा।।

यह भी श्रीराम प्रभु के अवतार का एक हेतु था। एक हेतु कश्यप मुनि और अदिति को वरदान था। ये दोनों ही दशरथ तथा कौशल्या के रूप में उत्पन्न हुए और वरदान के अनुसार भगवान उनके पुत्र बनें। महाराज मनु और शतरूपा के तप से प्रसन्न होकर श्रीभगवान ने उनका पुत्र बनने का वरदान दिया था। यह भी एक हेतु बना।

भगवान वैकुण्ठनाथ के पार्षद जय और विजय को ब्रह्मर्षि सनकादिक ने तीन जन्मों में असुर योनी में उत्पन्न होने का श्राप दिया था। भगवान वैकुण्ठनाथ ने इसका अनुमोदन किया और साथ ही यह आशीर्वाद दिया कि उनके मोक्ष हेतु वध करने के लिए वे स्वयं अवतरित होंगे। इसलिए भगवान को रावण और कुम्भकरण को मारने के निमित्त मानव शरीर धारण करना पड़ा।

कितने वंश इस पृथ्वी पर होते हैं, कितने नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वह कुल प्रशंसनीय पूजनीय और वन्दनीय हैं जिसमें पुराण पुरुष ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर मानवीय क्रीड़ायें की हैं। जिस कुल के पुरुषों को उन्होंने पिता, पितामह, प्रपितामह, पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र आदि कहा है। प्रभु के कौन पिता पितामह, वे तो चराचर जगत् के पिता हैं, सबके जनक हैं, किन्तु वे सम्बन्ध स्थापित न करें तो संसार में सरसता कैसे आवे। संसार का अस्तित्व न मानकर एक निर्गुण निराकार का ध्यान यह देह वाला प्राणी कैसे कर सकता है। देहधारी, देहधारी से ही प्रेम करेगा। प्रेम प्राय: एक योनि वालों में ही होता है, सम्बन्ध प्राय: सब जाति में ही होता है। जब तक भगवान से सम्बन्ध न होगा- ब्रह्म सम्बन्ध संस्कार की दीक्षा न ली जायेगी- तब तक भक्ति का प्राकट्य कैसे हो सकता है। सम्बन्ध तभी सम्भव है, जब सर्वेश्वर सर्वात्मा हमारे बीच में अवतरित हों। भगवान् का अवतार उसी कुल में होगा, जिसकी वंश परम्परा विशुद्ध हो, जिस वंश के लोग धर्म रक्षा के लिये सदा प्राण देने को उद्यत रहते हों, ऐसा विशुद्ध वंश सूर्यवंश ही है।

अगिनि कुण्डतें प्रकट भये पायस नृप दीन्हों। तीनों रानिनि दियो भाग न्यायोचित कीन्हों।।

गर्भवती सब भईं सबनिके हिय हुलसाये। शुभ मुहूर्त शुभ समय राम कौशल्या जाये।।

शुक्ल पक्ष मधुमासकी, नवमी अति पावन परम। प्रकटे रघुकुल चन्द्र शुभ, भयो अजन्माको जनम।।

नौ मास पूर्ण होने पर शुभ मास, शुभ पक्ष, शुभ तिथि, शुभ वार, शुभ कर्ण, शुभ मुहूर्त, शुभ ग्रह नक्षत्र सबके एक साथ शुभ हो जाने पर दिन के मध्य भाग में जब सूर्यदेव सिर पर आ गये थे तब कौशल्या रूपी प्राचीदिशि से दूसरे सूर्य का प्राकट्य हुआ।

कैकेयीने कुमर भरत कुलदीपक जाये। जनम सुतनिको सुनत अवनि पै बजत बधाये।।

सती सुमित्रा जने सङ्ग लक्ष्मण रिपुसूदन। चारि पुत्र मुख निरखि भूपको अति प्रभुदित मन।।

नामकरण संस्कार गुरु, सबके कीन्हें नेमतें। ह्वैं हर्षित महिभ सबहिँ, पुत्रनि पालैं प्रेमतें।।

भगवान श्रीराम ने पिता की आज्ञा से राज्य का परित्याग कर दिया। इनके जिन चरणों को अतिसुकुमारी राजदुलारी जानकी जी स्पर्श करने में संकोच करती थीं कि कहीं ये मेरे स्पर्श से छिल न जाँय, वे ही चरण-कमल जब वन में विचरण करते-करते थक जाते थे तब हनुमान जी और लक्ष्मण जी सहलाते थे, दबाते थे। उन्होंने शूर्पणखा को विरूप कर दिया और उसके कारण उनको अपनी प्रियतमा सीता का वियोग सहना पड़ा। उससे क्रोध के कारण उनकी भौंहें तन गई, जिन्हें देखकर सागर में भयवश खलबली मच गई, इसके बाद उन्होंने सागर पर पुल बाँधा और लंका में पहुँचकर दुष्ट राक्षसों के जंगल को दावाग्नि के समान दग्ध कर दिया। वे कोशलाधिपति हमारी रक्षा करें।

महाराज दशरथ श्रीराम के पिता थे। महाराज दशरथ की कीर्ति की धवल ध्वजा तीनों लोकों में फहराती थी। जिनकी प्रजा अर्थ, धर्म, काम से परिपूर्ण थी। सब प्रकार सम्पन्नता का साम्राज्य था। महाराज दशरथ की राजधानी अयोध्या थी जो सरयू नदीके किनारे बसी हुई है।

सरयू- अयोध्यापुरी को सुशोभित करने वाली पवित्र नदी। एक समय की बात है, समस्त देवताओं ने महर्षि वसिष्ठ के गौरव को जानकर, मन ही मन उनका स्मरण करके मानसरोवर के तट पर एक महान यज्ञ प्रारंभ कर दिया। यह देखकर खली नामक भयंकर दानव उपद्रव करने लगा। देवताओं ने जब उनका प्रतिरोध किया, तो दोनों ओर से भयानक युद्ध छिड़ गया। दानवों को ब्राह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि पास के मानसरोवर में डुबकी लगाने से उनके मृतक शरीर को नवजीवन प्राप्त हो जाएगा। अत: उस युद्ध में जो भी दानव हताहत हो जाते थे, उन्हें अन्य दानव मानसरोवर के जल में डुबकी लगवा देते थे, जिससे वे जीवित हो जाते थे। देवता पीड़ित होकर युवराज इंद्र की शरण में गए। जब इंद्र को भी इन दानवों को पराजित करने में कष्ट हुआ, तो वे सभी मुनि वसिष्ठ के यहां पहुंचे। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने अपने तेज से उन सभी भयंकर दानवों को भस्म कर दिया। इतना ही नहीं, वे महातपस्वी महर्षि देवनगी गंगा को भी उस दिव्य मानसरोवर में ले आए। देवनगीगंगा के प्रबल प्रवाह ने मानसरोवर में आते ही सरोवर के बांध के तोड़ डाला, जिससे एक स्रोत निकल पड़ा, वही स्रोत सरयू नदी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

भगवती पार्वती को परब्रह्म परमेश्वरके अवतार श्रीरामकी कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवान शंकर ने रामायण सुनायी और कहा- हे उमा, नाना प्रकारके योग, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करनेपर भी श्रीराम मन चाहे जैसी कृपा नहीं करते जैसा कि वे निश्छल प्रेम करनेवाले से करते हैं।

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम। राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम।।

एक बार भूपति मनमांहीं। भई गलानि मोरे सुत नाहीं।।

चक्रवर्ती सम्राट के हृदय में वेदना, टोस थी, किससे अपने मन की पीड़ा कहें। उन्हें अपने गुरु का स्मरण आया। गुरु सर्वोपरि हैं। गुरु से अपना संताप प्रकट किया।

कहि वशिष्ठ बहुविधि समझायउ। धरहु धोर होइहहिं सुत चारी।

गुरु वशिष्ठ ने आशीर्वाद दे दिया और उसकी पूर्ति के लिए बिभाण्डक पुत्र श्रृङ्गी ऋषि को बुलाकर पुत्र कामेष्ठि यज्ञ कराया। यज्ञ की हवि तीनों रानियों को खिलाई। तीनों गर्भवती हुई। तीनों रानियोंसे चार पुत्र हुए। श्रीराम प्रभु के अवतरण से पूर्व प्रकृति, प्रकृतिस्थ जीव तथा देवतागणों ने प्रफुल्लित हो हादिक अभिनन्दन किया।

जग निवास प्रभु प्रकटे अखिल लोक विश्राम। भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।

हरषत महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप विचारी। लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै।।

अखिल लोकपति प्रभु श्रीमन्नारायण चतुर्भुज रूप में कौशल्या के समक्ष प्रकट हुए। कौशल्या दर्शन कर गद्‌गद् हो गई किन्तु शीघ्र ही विषाद होने लगा कि जगत् पिता में पुत्रभाव कैसे किया जाय। यह स्वरूप तो वन्दनीय पूजनीय है। वात्सल्य भाव उसमें नहीं बन सकता। प्रभु ने माँ के मन की दुविधा जान ली। माँ ने स्तुति करी-

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन हरण भवभय दारुणं, नवकंज-लोचन, कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।
कंदर्प अगणित अमित छवि नवनील नीरज सुन्दरं, पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि, नौमि जनक सुतावरं।
भज दीनबन्धु दिनेश, दानव दैत्यवंश निकदन्दनं, रघुनन्द आनन्दकन्द कौशलचन्द दशरथनन्दनं।
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं, आजानुभुज शर-चापधर, संग्राम जित शरदूषणं।
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष मुनि मनरंजनं, मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि खल-दल गंजनं।

माँ को विभिन्न प्रकार से उपदेशित किया किन्तु मातृ हृदय वात्सल्य के लिए अभिलाषित था। अत:

कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहें। माता पुन: बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूप।।
कीजै शिशु लीला अतिप्रिय सीला यह सुख परम अनूपा। सुन बचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुर भूपा।।

चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि आई। उस समय आकाश के अन्दर बादल मन्द-मन्द गर्जने लगे। नदियों का शान्त और शीतल जल बहने लगा। दिशायें स्वच्छ हो गईं। पता नहीं, लोगों के चित्त में प्रसन्नता क्यों बढ़ने लगी।

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्लपक्ष अभिजित परिप्रीता।
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा।।
शीतल मन्द सुरभि वह बाऊ। हरषित सुर सन्तन मन चाऊ।।
बन कुसुमति गिरिगन मनिआरा। सबहि सकल सरतामृत धारा।।
सो अवसर विरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना।।
गगन विमल संकुल सुर जूथा। गावहि गुन गन्धर्व बरुथा।।
बरसहिं सुमन सुअंजुलि साजी गहगहि गगन दुन्दुभी बाजी।
स्तुति करहिं नाग मुनिदेवा बहुविधि लाबहि निज-निज सेवा।।
सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम। जग निबास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम।।

माता की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए प्रभु ने बाल रूप ले लिया और संसारी बालकों की भाँति रोने लगे। रोने की ध्वनि सम्पूर्ण राजमहल में शिशु जन्म का समाचार बनकर फैल गया। आनन्द की लहरें हिलोरीं लेने लगीं।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप बिचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन-बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।
कहि दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता।।
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।।
सोमम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।।
कीजै शिशु सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना हुई बालक सुरभूपा।।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।
बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के हित के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया। वे माया से परे हैं और (सत्, रज, तम) इन तीनों गुणों से भी परे हैं। गो नाम इन्द्रियों का है। (जब इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होती हैं। तो आत्म स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार होता है) इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो गयीं तब अन्त:कण चतुष्ट्य के अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में परमात्मा श्रीराम अपने अंशों भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के रूप में क्रमश: प्रकट हुए।

महाराजा दशरथ को भी पुत्र जन्म का समाचार मिला-

दशरथ पुत्र जन्म सुन काना। परम प्रेम मन पुलक अमाना।।

गुरुकृपा है मेरा पुरुषार्थ नहीं, वृक्ष पर जब फल लगते हैं तो झुक जाता है। दानशीलता बढ़ जाती है।

तेहि अवसर जो जेहि विधि मांगा दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। गज रथ तुरंग हेम गो हीरा दीन्ह भूप नाना विधि चीरा।।
सर्वस दान दीन्ह सब काहू जेहि पावा राखा नहिं ताहू।।

बधाई देनेवालों का तांता लग गया। राजा ने भी मुँह माँगा पुरस्कार दिया किन्तु लेनेवाले ने भी उसे राम जन्म के आनन्द में दूसरों को दान कर दिया।

नान्दी मुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह। हाटक धेनु वसन मनि नृप विप्रन्ह कँह दीन्ह।।

अयोध्या में चारों ओर उल्लास और आनन्द का वातावरण था। आज अयोध्या में बधाई गाई जा रही है। कौशल्या माता के गर्भ से श्री रामचंद्र की निधि अवतरित हुई है। सभी सखियां आपस में मंगल गा रही हैं। ऋषि-मुनि अभिषेक कर रहे हैं। राजा दशरथ के आंगन में अपार भीड़ हो गई है। सामवेद की ध्वनि छा रही है। अयोध्या के राजा दशरथजी मुनि वसिष्ठ से पूछ रहे हैं कि आप इस जन्म के विषय में कहिए। इस पर उन्होंने कहा कि मंगलवार नवमी तिथि को चौदहों भुवनों में बड़प्पन छाया हुआ है। इस दिन राजा दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों लोकों के वे स्वामी हैं। भगवान श्रीराम का सदा-सर्वदा राज है।

गृह गृह बाज बँधाव सुभ प्रकटे सुषमा कन्द। हरसवंत सब जँह-तँह नगर नारि नर वृन्द।।
वृंद-वृन्द मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किये उठ धाई।।
कनक कलश मंगल भरि थारा। गावत बैठहिं भूप दुआरा।।
मृग मद चन्दन कुंकुम कीचा। मची सकल वीथिन्ह विचवीचा।।

अयोध्यावासी ही नहीं देवगण भी आनन्दित मन मगन हो भ्रमित हो गये।

अवध घर आनन्द भयौ जय राजा राम की। जय राजा राम की भई जय हो बाल राम की।

कौशल्या के लाला भयौ, जय राजा राम की। अवध घर आनन्द भयो जय राजा राम की।

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जाने कोइ। रथ समेत रवि थाकेउ निशा कवन विधि होइ।।

सूर्यास्त नहीं हो रहा है निशारानी भी भगवान के दर्शनों को व्याकुल हैं।

अगर धूप बहुत जनु अँधियारी उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।

मन्दिर मनि समूह जनु तारा नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा।।

इस प्रकार नर-नारी ही नहीं देवतागण भी श्रीराम प्रभु के दर्शन को लालायित हैं। ब्रह्माजी देवताओं के साथ दर्शन करके चले गये तो भगवान भोलेनाथ कागभुशुण्डि को लेकर उपस्थित हो गये।

कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहीं कोऊ।।

परमानन्द प्रेम सुख फूले। वीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।।

महारानी कौशल्या के राम, कैकयी के भरत तथा सुमित्रा के दो पुत्र लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हुए। शनैः शनैः शिशु बड़े होने लगे। महाराज को नामकरण कराने की उत्सुकता हुई। इस निमित्त गुरुदेव वशिष्ठ को आमंत्रित किया। गुरुदेव पधारे। नामकरण हेतु यथाविधि कार्यक्रम होने लगे। गुरु वशिष्ठ ने नामकरण किये।

इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कबह स्वमति अनुरूपा।।

जो आनन्द सिन्धु सुख राशी। सीरकते त्रैलोक सुपासी।।

सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा।।

विश्व भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत असहोई।।

जाके सुमरन ते रिपु नासा, नाम शत्रुघ्न वेद प्रकाशा।।

लक्षन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। गुरु वशिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

सुख के धाम तीनों लोकों में शान्ति प्रदान करनेवाले आपके सबसे बड़े पुत्र का नाम राम और दूसरे केकयी नन्दन का नाम भरत और सुमित्रा जी के पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न होंगे।

लक्ष्मण सुमित्रा के सौभाग्य को बढ़ानेवाले संसार में शौर्य वीर्य को प्रदर्शित करनेवाले लक्ष्मी सम्पन्न होनेसे लक्ष्मण कहलायेंगे। ये राम के बाह्य प्राणों के समान होंगे, इनका यश विश्व में व्याप्त होगा, और ये सत्य मार्ग के आचार्य होंगे।

एक बार की बात है अञ्जना देवी के पास मिलकर कुछ ऋषि गये कि देवी तुम संसार में सबसे बड़ी हो, क्योंकि तुम्हारा पुत्र इतने भारी समुद्र को लाँघ गया था। अञ्जना ने कहा- इसमें कौन-सी बड़ी बात है। श्रीराम की कृपा से ही उसने ऐसा किया। उसने तो एक ही बार समुद्र को पार किया, श्रीराम ने तो समुद्र पर पुल बाँध दिया अतः उनकी माता सबसे बड़ी हैं। सब मिलकर कौशल्या के पास गये कि माताजी आप सबसे बड़ी हैं, क्योंकि आपके पुत्र ने समुद्र पर सेतु बाँध दिया। माता ने श्रीराम को बुलाकर पूछा- राम, ये मुनि कह रहे हैं कि मैं सबसे बड़ी हूँ, क्योंकि तुमने समुद्र पर सेतु बाँध दिया और मैं तुम्हारी जननी हूँ।

श्रीराम ने कहा- जननी तो बड़ी हैं, किन्तु सेतु बाँधना कोई बड़ी बात नहीं। अगस्त्यजी तो समस्त समुद्र के सलिल को एक चुल्लू में ही पी गये थे, अतः उनकी जननी आपसे भी बड़ी हुई। सब मुनि मिलकर अगस्त्य के पास गये और कहा- न अञ्जना बड़ी न हनुमान् बड़े। न कौशल्या बड़ी न उनके सुत राम बड़े। न मैं बड़ा न मेरे माता-पिता बड़े। सबसे बड़ा तो राम का नाम है, जिसके प्रभाव से समुद्र पर सेतु बना जिसके प्रभाव से शंकरजी विष को पचा गये और जिसके प्रभाव से मैं सम्पूर्ण समुद्र के सलिल को पान कर गया। राम से भी बड़ा राम का पवित्र मधुमय नाम है।

भरत- अयोध्यानरेश दशरथ के पुत्र (राम के अनुज)। चारों पुत्रों के जन्म के पश्चात् नामकरण-संस्कार का अवसर जानकर राजा दशरथ ने परम ज्ञानी मुनि वसिष्ठ को आदरपूर्वक बुलवाया। मुनिवर की पूजा करके राजा ने कहा- हे मुनि। लग्नराशि आदि विचारकर इन बालकों के नाम रखिए। मुनि वसिष्ठ ने महाराज दशरथ के दूसरे पुत्र का नामकरण करते हुए कहा- राजन्। यह संपूर्ण विश्व का भरण-पोषण करनेवाला है, आपके इस पुत्र का नाम भरत होगा।

सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। दम्पति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत।।

जिनके घर में साक्षात् आनन्दघन परब्रह्म ही प्रकटित हो गये हैं, उनके भाग्य और सुखके सम्बन्ध में कुछ कहना तो व्यर्थ ही है। यही तो जीव का परम लक्ष्य है। यही तो मानव शरीर की सार्थकता है। जब राम कुछ बड़े हुए तो अपने भाइयों के साथ भाँति-भाँति के खेल खेलने लगे।

सुख की राशि मन वाणी और ज्ञान से अतीत श्रीराम माता पिता को बाल लीलाओं से आनन्दित करते हुए स्वयं भी आनन्दित होते। इस आमोद-प्रमोद में अवस्था बदलती गई।

बड़े भये उपनयन कर्‍यो गुरु गृह भिजवाये। मुनि वसिष्ठ प्रभु-शिष्य पाइ अति हिर हरषाये।।

गुरु सुश्रूषा करहिँ सब, पढ़हिँ पाठ एकाग्र चित्त। समय शील संकोच युत, सुनहिँ शास्त्र श्रुति तन्त्र नित।।

महामुनि विश्वामित्र असुरों के अत्याचारों से त्रसित ऋषियों की पीड़ा से द्रवित हो गये। मन में विचार आया कि भगवान् असुरों का विनाश करने के लिए राम रूप में अवतरित हो गये हैं। वे ही इन दुष्टों का विनाश कर सकते हैं।

राजा दशरथ ने बालकों का संस्कार कराया। जब बालक कुमार हुये, समझने लायक हुये तब गुरु वशिष्ठ के पास विद्या अध्ययन करने को भेजा। वहाँ यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। चौंसठ दिनों में चौंसठों विद्या में पारंगत होकर घर आये।

तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा।।

अत: अयोध्या महाराजा दशरथ के दरबार में उपस्थित हो गये। दशरथ जी को हर्ष भय मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। प्रसन्नता हुई कि महामुनि विश्वामित्र पधारे हैं महल पवित्र हो गये, मैं धन्य हो गया ऐसे महात्मा के दर्शन हुए किन्तु राजा हरिश्चन्द्र के साथ किये गये व्यवहार का स्मरण आते ही भयातुर हो गये। फिर भी महामुनि का भव्य स्वागत किया। ऊँचे सिंहासन पर विराजमान किया और करबद्ध होकर अति नम्र वाणी में दशरथ बोले-

केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ वारा।।

विश्वामित्र भी बिना हिचक के स्पष्ट रूप से बोले-

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचर बध मैं होउ सनाथा।।

राम लक्ष्मण को देने की बात सुनकर दशरथ जी विचलित हो गये। उन्हें याद आया कि यह वही विश्वामित्र हैं जो गुरु वशिष्ठ का बध करने के लिए खड़ग लेकर उनके आश्रम पर पहुँच गये। दशरथ किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। साहस बटोर कर करबद्ध होकर बोले- **देह प्राण ते प्रिय कछू नाहीं। सोउ मुनि देहु निमिष एक माहीं।।**

किन्तु- **सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई राम देत नहीं बनइ गुसांई।।**

दशरथ जिनका समस्त इन्द्रियों पर नियंत्रण था मोह के वशीभूत होकर बोले- महामुनि। उन अत्यन्त क्रूर राक्षसों को आप जैसे तपोनिष्ठ ऋषि नहीं मार सके उन्हें ये कोमलांग राम कैसे मार सकेंगे?

आये विश्वामित्र राम लछिमन तिनि माँगे। वचन शूल सम नृपति हियेमहँ मुनिके लागे।।

आज वह दशरथ मोह के आवरण से आच्छादित हो गये जिनका यह प्रण था। **प्राण जायँ पर वचन न जाई।**

अपने विश्वास से डिग गये, वचन से पश्चास्पद होने लगे। कुछ क्षण पूर्व ही कहा था-

कहहु सो करउँ न लावउँ बारा।

अब कह रहे हैं- राम देत नहीं वनई गोसाई विश्वामित्र क्रोधित होने लगे कि भगवान के निमित्त की पूर्ति में दशरथ बाधक बन रहे हैं। अबरोधक को हटाना पड़ेगा। विश्वामित्र समझ गये कि पुत्र मोह राम को बन भेजने में बाधक बन रहा है लेकिन मैं जानता हूँ कि श्रीराम का इसमें कोई अनिष्ठ नहीं होगा। तब विश्वामित्र ने कहा- दशरथ।

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम्। वशिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थित:।।

आप जानते हैं कि श्रीराम का सत्य पराक्रम क्या है? महात्मा वशिष्ठ आदि सन्त इनकी शक्ति पहचानते हैं। इनके द्वारा राक्षसों का संहार हुआ ही समझिये।

दशरथ मूर्छित हो गये। चेतना जब लौटी तब करबद्ध होकर विनम्र शब्दों में बोले- महामुनि, राम तो बहुत छोटे हैं, राक्षसों से क्या लड़ेंगे? मेरे पास विशाल सेना है मैं स्वयं उसको लेकर आपके साथ चलता हूँ और आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा। बुढ़ापे में चार पुत्ररत्न प्राप्त हुए हैं। वैसे तो सभी मुझे प्रिय हैं किन्तु राम मुझे अधिक प्रिय है। इनके वियोग में मैं जीवित नहीं रह सकता। दशरथ को विश्वामित्र का क्रोधी स्वरूप दिखने लगा। राजा हरिश्चन्द्र के साथ उनकी परीक्षा का दृश्य उनकी आँखों के सामने घूमने लगा। फिर भी साहस करके कह दिया-

सब सुत मोहि प्रान की नाई। राम देत नहीं बनई गुसाई।।

विश्वामित्र क्रोधित हो गये। कहने लगे राजन्, यदि तुम अपने वचनों का पालन नहीं कर सकते हो- अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ रहे हो जो रघुवंश के अनुरूप नहीं है तो मैं भी बिना कुछ लिये ही लौट जाता हूँ। कुपित हो विश्वामित्र लौटने के लिए खड़े हो गये। दशरथ महाराज को कम्पन होने लगा। गुरु वशिष्ठ ने दशरथ जी को समझाया कि राम परात्मपर ब्रह्म है। राक्षस उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते फिर विश्वामित्र समस्त अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता हैं, प्रणेता हैं, और वे सन्त हित के लिए, जगत के कल्याण के लिए आपका सुयश बढ़ाने के लिए राम को माँग रहे हैं और एक लौकिक आनन्द की बात भी दशरथ को बताई कि राम का विवाह इन्हीं के द्वारा कराया जायेगा। उसका भी योग बन रहा है अत: राम को भेज दो।

गुरु वसिष्ठ समुझाइ दये मुनिको दोऊ सुत। मुनिके पीछे चले राम लछिमन अति प्रमुदित।।

गुरु आज्ञा, ब्रह्म का ज्ञान और राम के विवाह की लालसा से दशरथ जी का पुत्रमोह भंग हो गया। तब-

सौंपे भूप रिषिहि सुत बहु विधि देइ अषीस।।

ऋषि विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित वन की ओर प्रस्थान कर गये। वन में पहुँचने पर ताड़का नामक राक्षसी का वध करके राम ने राक्षसों के वध का शुभारम्भ किया।

मिली ताड़का पन्थमहँ, मारो गुरु आज्ञा दई। प्रभु छोड़यो शर सर्रतें, लग्यो हियेमहँ मरि गई।।

मारि ताड़का चले फेरि सिद्धाश्रम आये। गुरु मख दिक्षित भये राम रक्षक कहलाये।।

पूर्णाहुतिके दिवस निशाचर दल इक आयो। मार्‌यो राम सुबाहु लंक मारीच पठायो।।

मख रक्षक श्रीराम पै, अति प्रसन्न मुनिवर भये। आशिष पत्नी देनहित, धनुष यज्ञमहँ लै गये।।

सिद्धाश्रम- महर्षि विश्वामित्र का आश्रम। सिद्धाश्रम के संबंध में पूर्ण वृत्तांत बताते हुए महर्षि विश्वामित्र ने राम से कहा- पूर्वकाल में इस स्थान पर भगवान विष्णु ने तपस्या के लिए सौ युगों तक निवास किया था। यह उनके वामन अवतार से पूर्व की बात है। सिद्धाश्रम के नाम से यह आश्रम इसलिए विख्यात हुआ, क्योंकि महातपस्वी भगवान विष्णु को

यही सिद्धि प्राप्त हुई थी। उन्हीं दिनों विरोचनकुमार राजा बलि ने इंद्रादि सभी देवताओं को पराजित करके उनके सी अधिकार छीन लिए थे। असुरराज बलि ने उसी समय एक महान यज्ञ का आयोजन किया। तब सभी देवता इस आश्रम में आए और भगवान विष्णु से प्रार्थना की कि वे वामन रूप में अवतार लेकर राजा बलि के यज्ञ में जाएं और देवकार्य संपन्न करें। ठीक उसी समय महर्षि कश्यप, धर्मपत्नी अदिति के साथ वहं पहुंच गए। वे वहां एक सहस्त्र दिव्य वर्ष तक चलने वाले महान व्रत को पूरा करने आए थे। उन्होंने भगवान मधुसूदन की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर प्रभु ने उनसे वर मांगने के लिए कहा। भगवान ने वचन सुनकर कश्यपजी ने कहा- हे नारायण, आप देवकार्य के लिए हमारे-मेरे और अदिति के पुत्र बन जाएं। आप इंद्र के अनुज हों और देवताओं की सहायता करें। भगवन्, आपकी कृपा से यह स्थान सिद्धाश्रम के नाम से प्रसिद्ध होगा। अब आपका तपकार्य सिद्ध हो गया। अत: यहां से उठिए।

तदनंतर भगवान विष्णु अदिति के गर्भ से वामन रूप में प्रकट होकर बलि के यज्ञ में गए। वहां उन्होंने तीन पग भूमि के लिए याचना करके भूमिदान ग्रहण किया और तीनों लोकों को आक्रांत करके उन्हें पुन: देवराज इंद्र को लौटा दिया। उन्हीं भगवान वामन में भक्ति होने के कारण मैंने भी इस स्थान को अपना आश्रम बना लिया है।

भगवान राम ने विश्वामित्र के यज्ञ की लक्ष्मण के साथ रक्षा करते हुए मारीच आदि राक्षसों को मार डाला। आगे बढ़े तो यज्ञ मण्डप की रक्षा करते हेतु सुबाहु आदि राक्षसों को अपने धाम तथा मारीच को समुद्र के उस पार लंका एक ही बाण से पहुँचा दिया। ऋषिगण निर्भय होकर अपना नित्य कर्म करने लगे। मुनि विश्वामित्र मुनियों को निर्दय देख राम और लक्ष्मण को लेकर जनकपुरी की ओर चल दिये।

राम, लक्ष्मण तथा ऋषियों सहित मुनि विश्वामित्र ने मिथिला के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में विश्राम करते हुए विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अनेक वृत्तांत सुनाते हुए कहा- गंगा गिरिराज हिमालय और मेरुनंदिनी मेना की ज्येष्ठ पुत्री हैं। सब देवताओं की सिद्धि के लिए गंगा को, जो आगे चलकर स्वर्ग से त्रिपथगा नदी के रूप में अवतीर्ण हुईं, गिरिराज हिमालय से मांग लिया। इस प्रकार पहले तो गंगा आकाश में गई थीं, तत्पश्चात वे गिरिराजकुमारी गंगा देवनदी के रूप में देवलोक में आरूढ़ हुई। फिर जलरूप में प्रवाहित होकर लोगों के पाप दूर करती हुई रसातल में पहुंची थीं, इसलिए त्रिपथगा मानी गई हैं। त्रिपथगा, दिव्या और भागीरथी इन तीनों नामों से आकाश, पृथ्वी और पाताल में गमन करने के कारण गंगा त्रिपथगा है।

मार्ग में गौतम ऋषि के श्राप से शिलाखण्ड बनी उनकी पत्नी अहिल्या खड़ी हुई दिखाई दी। गुरुदेव के निर्देश पर श्रीराम ने अपने चरणों का स्पर्श उस शिलाखण्ड से करा दिया। स्पर्श होते ही वह सुन्दर नारी में परिवर्तित हो गयी।

परसत पद पवन शोक नशावन प्रगट यी तपपुंज सही।

इस प्रकार गौतम पत्नी अहिल्या का उद्धार हो गया।

गुरुकी आज्ञा से श्रीराम ने अहिल्या को चरण स्पर्श कराया। स्पर्श किया तो वह गौतम नारी पत्थर की प्रतिमा से पुन: अहिल्या नारी बन गई। अहिल्या इतनी रूपवती तथा सुन्दर थी कि दिन में दिखाई भी नहीं देती थी। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से अहिल्या ने श्रीराम की स्तुति की। उसके बाद वर पाकर वे अपने पतिलोक को प्राप्त हुईं।

एक बार राम के साथ विश्वामित्र मिथिला जा रहे थे। वे जब नदी के उस पार पहुंचे, तो नाविक को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसकी नाव राम के चरण स्पर्श से सोने की हो गई है। वह दौड़कर घर गया और उसने अपनी पत्नी से इन आश्चर्यजनक घटना के विषय में बताया। उसकी पत्नी तुरंत जितना भी सामान ढोकर ले जा सकती थी, उठा लाई और उसने सारा सामान राम के चरणों में इस आशय से डाल दिया कि वे सब सोने में बदल जाएंगे। नाव तक अन्यान्य लकड़ी

के सामानों को लाना, उनको सोने में परिवर्तित करना और फिर ढोकर घर ले जाना बहुत कठिन था। नाविक पत्नी के शरीर में पीड़ा होने लगी, उसकी पीठ उसके हाथ अंग-प्रत्यंग दर्द करने लगे और कुछ ही समय बाद वह बोझ ढोने में असमर्थ हो गई। किंतु, लोभ के फलस्वरूप वह अधिकाधिक स्वर्ण संग्रह में लगी रही। तब नाविक ने उसे राय दी, काठ और स्वर्ण के भार ढोते रहने की जगह तुम उन चरणों को ही क्यों अपने घर नहीं ले जाती हो, जिनकी ऐसी दिव्य महिमा है? नाविक की पत्नी राम के पास गई और बोली, आपको मेरे घर पधारना होगा। पहले तो राम झिझके, किंतु उसके प्रेम भरे आग्रह के कारण वे तैयार हो गए और उसके घर जाने के लिए नाव में बैठे। तभी आश्चर्यजनक रूप से नाविक पत्नी सब कुछ स्वर्ण में बदलने की इच्छा को ही भूल गई और उन चरण कमलों के ध्यान में ही निमग्न हो गई।

नाविक पत्नी ने राम से प्रार्थना की, आप मेरे घर आगमन के प्रतीक स्वरूप मुझे कुछ देने की दया करें। लक्ष्मण ने उसे चार फल दिए। नाविक पत्नी ने उन चारों फलों के विषय में जिज्ञासा प्रगट की कि वे क्या हैं और उनके प्रतीकात्मक अर्थ क्या हैं? लक्ष्मण ने कहा कि राम के ये चारों फल- काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष हैं। लक्ष्मण ने यह भी कहा कि राम के युगल-चरणों की प्राप्ति के बाद फिर चतुर्वर्ग की प्राप्ति का कोई अर्थ नहीं। वे बोले, जो सच्चे भक्त हैं, उन्हें इन चारों वर्गों की प्राप्ति के लिए अथवा ऐसी किन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति के लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। भक्त में अगर श्रद्धा जग गई, तो कठिन काम भी आसान हो जाता है, इसलिए श्रद्धा के बिना भक्ति नहीं जग सकती।

जनकपुरी में सीता जी का स्वयंवर चल रहा था। **रत्नावली-** भगवती सीता। रत्नों में निवास करने के कारण सीताजी को रत्नावली कहा है।

सीता- जनकनंदिनी जानकी जगजननी हैं। वह आदिशक्ति तथा जगत के मूलाधार हैं जिनके भृकुटिविलास से ही संसार की सृष्टि हुई है- जानकी लक्ष्मी का अवतार मिथिलानरेश विदेहराज जनक या सीरध्वज की कन्या एवं दशरथ नन्दन श्रीराम की सहधर्मिणी हैं। रामचरितमानस में उनकी वंदना करते हुए कहा गया है कि वह उद्भव, स्थिति एवं संहार की कारिणी शक्ति हैं एवं सर्वश्रेयस्करी हैं। प्राय: सभी रामायणकारों ने जानकी का चरित्र सर्वसुन्दरी, सर्वसत्वगुण संपन्ना एवं सर्वश्रेयस्करी रूप में ही उपस्थित किया है। सीता शब्द का अर्थ होता है कूंड अर्थात् हल के फाल से खींची हुई रेखा। कहा जाता है कि एक बार मिथिला या विदेहराज्य में भीषण अकाल पड़ा था। ज्योतिषों ने भविष्यवाणी की थी कि यदि राजा जनक स्वयं हल चलावें तो प्रभूत वर्षा होगी और तब दुर्भिक्ष से उबरा जा सकता है, अत: उन्होंने स्वयं हल चलाना प्रारंभ किया कि सहसा उससे एक घड़ा निकला जसमें एक बच्ची थी जिसे उन्होंने पुत्री रूप में स्वीकार किया, किंतु बाल्मीकिय रामायणानुसार जब जनक यज्ञभूमि के लिए हल चला रहे थे, तब सीता निकलीं। कहा जाता है एक दिन उन्होंने पिता का शिवप्रदत्त धनुष उठाकर दूसरे स्थान पर रख दिया तो पिता के आश्चर्य का पारावास नहीं रहा, इसलिए उन्होंने प्रतिज्ञा कर दी कि जो इस धनुष को तोड़ देगा उसी से सीता की शादी होगी।

दशानन रावण की उग्र तपस्या के तेज से समग्र जगत् जलने लगा, तब देवताओं के साथ ब्रह्मा ने आकर उससे कहा- हे पौलस्त्य। तुम्हारी इस घोर तपस्या से समस्त लोग भस्मीकृत- से हो गए हैं। अत: मेरे कहने से अब तुम तप से विराम करो। मैं तुम्हें अप्सित वर देता हूं। ब्रह्मा को प्रणाम करके रावण ने कहा- हे प्रभो, यदि आप वरदान देने वाले हैं तो मुझे पूर्ण अमरत्व प्रदान कर दीजिए। यह सुनकर ब्रह्मा बोले- पूर्ण अमरत्व तुम्हें नहीं मिल सकता। मुझसे कोई दूसरा वरदान मांग लो। तब रावण ने कहा- सुर, असुर, रक्ष, पिशाच, नाग, राक्षस, विद्याधर, किन्नर तथा अप्सराओं के गण- कोई भी मुझे किसी प्रकार न मार सकें। इसके अतिरिक्त मुझे आप यह वरदान भी दीजिए कि मोह के कारण जब मैं अपनी पुत्री की

आकांक्षा करने लगूं और कन्या की इच्छा न हो तो उस समय मेरी मृत्यु ही जाए। तथास्तु कहकर लोकपितासह अपने लोक चले गए। मनुष्यों को तृण के समान मानकर रावण ने उसकी कोई गणना ही नहीं की।

एक बार रावण दंडकारण्य में गया। वहां सौ पुत्रों के पिता गृत्समद नामक एक मुनि थे। उसकी पत्नी ने पुत्री के लिए उनसे प्रार्थना की। लक्ष्मी मेरी पुत्री हो- ऐसी इच्छा से वह मुनि एक कलश में प्रतिदिन नियमित रूप से मंत्रोच्चार सहित कुशाग्र से दूध डालते थे। एक दिन वह वन में गए हुए थे। दैवयोग से उसी दिन रावण ने मुनियों का रुधिर उस कलश में ही रख दिया और कलश लेकर लंका चला आया। उसने मंदोदरी से कहा- इस कलश की रक्षा करो। मुनियों का यह रुधिर न तो किसी को देना और न स्वयं ही इसका पान करता। यह विष से भी अधिक भयंकर है। ऐसा कहकर रावण तीनों लोकों की विजय के उद्देश्य से इधर-उधर विचरने लगा।

उसकी अनुपस्थिति में खिन्नमना मंदोदरी ने आत्महत्या की इच्छा से उस विष के समान रुधिर का पान कर लिया। लक्ष्मी के आश्रयभूत उस दूध-मिश्रित रुधिर से मंदोदरी के उदर में अग्नि सदृश तेजस्वी गर्भस्थापित हो गया। रावण के भय से तीर्थ-सेवन के बहाने विमान पर चढ़कर वह कुरुक्षेत्र गई और गर्भपात करके उसे पृथ्वी में गाड़ दिया। सरस्वती में स्नान करके वह घर लौट आई और इस रहस्य को किसी को भी नहीं बताया।

कुछ समय के बाद राजा जनक ने कुरुक्षेत्र में आकर एक महान यज्ञ किया, और सोने का हल लेकर यज्ञभूमि खोदी। सुवर्ण के हल से खींची गई नोक से खोदने पर धरती से एक कन्या का प्रादुर्भाव हुआ। उसी समय कन्या के ऊपर फूलों की वर्षा हुई। राजा जनक यह देखकर आश्चर्य में पड़ गए। तभी आकाशवाणी हुई- हे राजन्, इस महाभाग्यशालिनी कन्या को अपनाओ और उसका पालन करो। अग्नि और सूर्य के समान दिव्य इस कन्या से न केवल तुम्हारा प्रत्युत पूरे विश्व का महान कल्याण होगा। हे राजन्, यह कन्या हल की नोक से खींची गई रेखा (सीता) से उत्पन्न हुई है, इसलिए इसका नाम सीता होगा।

राजा जनक ने मुनि विश्वामित्र को सीता की उत्पत्ति का प्रसंग बताते हुए कहा- एक दिन मैं यज्ञ के लिए भूमि-शोधन करते समय हल चला रहा था। उसी समय हल के अग्रभाग से जोती हुई भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हल द्वारा खींची गई रेखा) से उत्पन्न होने के कारण कन्या का नाम सीता रखा गया। पृथ्वी से उत्पन्न यह मेरी कन्या क्रमश: बड़ी हो गई है।

मिथिलापुरी पहुँच कर गुरुदेव ने एक आम के सुन्दर उपवन में अपना डेरा लगा दिया। महाराजा जनक को जब मुनि के आने का समाचार मिला तब अपने मंत्रियों एवं सभासदों सहित उस आम्र वाटिका में आये, इससे पूर्व ही मुनि ने राम लक्ष्मण को पुष्प लाने के लिए इस निर्देश के साथ भेज दिया था कि इशारा पाते ही लौट आवें। विश्वामित्र जी ने समस्त आगन्तुकों को खड़े होकर बैठ जाने के लिए निर्देश दिये। उसी इशारे पर राम और लक्ष्मण आ गये-

तेहि अवसर आये दोउ भाई, गये रहे देखन फुलवारी। उठे सकल जब रघुपति आये, विश्वामित्र निकट बैठाये।।

राम लक्ष्मण के आगमन पर जनक सहित सभी लोगों ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। जनक जी राम के सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य पर मुग्ध हो गये और अपने मन के इस वेग को रोक न सके और पूछ ही लिया-

कहहु नाथ सुन्दर दोऊ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक।। तब विश्वामित्र जी ने बताया-

रघुकुल तिलक दशरथ के जाए। मम हित लागि नरेश पठाए।।

जनक महाराज के आग्रह पर मुनि विश्वामित्र ने उस आम्र वाटिका को त्याग कर जनक के महल में निवास किया।

गुरु की आज्ञा लेकर श्रीराम लक्ष्मण को लेकर नगर भ्रमण करने के लिए जनकपुर की सड़कों पर निकल पड़े।

जाय देख आबहु नगर, सुख निधान दोऊ भाइ। करहु सुफल सबके नयन सुन्दर वदन दिखाइ।।

देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरवासिन पाये पाए।
धाए धाम काम सब त्यागी मनहुं रंक निधि लूटन लागी।।
जुवती भवन झरोखन्हि लागी। निरखहि राम रूप अनुरागी।।
देखी राम छवि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह वरु अहई।।

नगर और यज्ञशाला देखकर थके राम निवास पर लौट आये। प्रात: अपनी उपासना कर गुरु उपासना हेतु जनकजी की पुष्प वाटिका में पुष्प लेने पहुँचे।

दोनों भाई हाथों में डलिया लिये हुए पुष्प चुनने लगे। उसी समय जनकनन्दिनी सीता गौरी माँ का पूजन करने के लिए सखियों के साथ वाटिका में उपस्थित हुई तभी एक चतुर सखी ने कहा- **देखन बाग कुमर दुइ आए।**

जानकी के इतना सुनने पर- **दरस लागि लोचन अकुलाने।**

डरी हुई मृग की भाँति जानकी इधर-उधर मन्द-मन्द गति से आगे बढ़ने लगीं। उनके चलने की सूचना उनके पद कमलों में पड़ी पाइजेब कटि में करधनी और हाथों में पहने कंकनों की मधुन धुन से मिल रही है। पुष्प वाटिका का सौन्दर्यमय पर्यावरण, मेघयुक्त गगन, मन्द-मन्द सुगन्धित पवन और उसमें इन आभूषणों की रुनझुन मानों कामदेव के विश्वविजय हेतु समरांगन में आने की सूचना दे रहा हो-

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दिगंजल।।

राजा निमि जनक जी के पूर्वज थे। इन्हें पलकों का अधिष्ठाता बनाया गया था किन्तु राम अपलक जानकी को निहार रहे थे और जानकी श्रीराम के सौन्दर्य को निहार कर मुग्ध हो गई, नेत्र स्थिर हो गये और पलक गिरना भूल गये इसलिए पलकों के देवता महाराजा निमि अपनी कुल पुत्री का ऐसा व्यवहार देख लज्जित होकर पलकों को छोड़कर अन्यत्र चले गये।

राम के साथ लखनजी भी थे। परस्त्री को न देखना रघुकुल की आन है। लखन मन में क्या धारणा बनायेंगे इस विचार से राम उनसे बातें भी करने लगे किन्तु नेत्र जानकी सौन्दर्य रस का पान कर रहे हैं और हाथ पुष्प चुनने में लगे हैं।

करत वतकही अनुज सन मनसिय रूप लोभान। मुख सरोज मकरन्द छवि, करइ मधुप इव पान।।

राम की ही ऐसी स्थिति है यह बात नहीं जनकनन्दिनी की भी यह दशा है।

थके नयन रघुपति दवि देखें। पलकन्हि परिहरीं निमेषें।।
अधिक सनेद देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।

शरद चन्द्र को देखकर चकोरी बेसुध हो जाती है वैसे ही जानकी जी श्रीराम को निहार कर विह्वल हो गई। शरीर पुलकित हो गया, नेत्र बन्द कर लिये और अचेतन होने की स्थिति का अनुमान लगाकर सखियों ने उन्हें सम्भाल लिाय। जानकी जी ने नेत्र द्वार से मन मन्दिर में श्रीराम को विराजमान कर, उनको निरखने लगीं। कभी उने मोर पंख सिर सोहत नीके और कभी कच घुंघराले भाल तिलक नव सरोज लोचन रतनारे मुख छवि उर वन माल भुजबल सीषा पीत पट आदि का क्रमश: अवलोकन करने लगीं। मानसिक रूप से श्रीराम की रूप माधुरी का पान करती जानकी को एक सखी ने झकझोर कर दिया- **भूप किशोर देख किन लेहू, सकुच सीय तब नैन उघारे। सन्मुख दोउ रघुसिंह निहारे।।**

राम ने जानकी और जानकी ने राम को नेत्रभर के निहारा। राम गुरु का आशीर्वाद लेने चले तो माँ गौरी से वरदान प्राप्त करने के लिये उनके मन्दिर चली गई सीता। बड़े मनोयोग से गौरी का पूजन किया-

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वरू माँगा।।

और माँ गौरी ने भी गद्‌गद्‌ होकर असीस दिया-

सुन सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनोकामना तुम्हारी।।

नारद वचन सदा सुचि साँचा। सो वरु मिलहि जाहि मनराँचा।।

सीता श्रीराम के मुख की ओर देखकर परमेश्वर से विनती करती हैं कि श्रीराम से मेरा प्रेम बंध गया है। वे अपनी सखी से कहने लगीं कि यह शंकरजी का धनुष बड़ा कठोर है और पिताजी ने इसके तोड़े जाने की कठिन प्रतिज्ञा कर ली है, किन्तु श्रीराम तो किशोरावस्था के हैं। उनसे इतना बड़ा धनुष कैसे उठेगा? इसी का मुझे संशय है।

शुकदेव बोले- राजन्‌, श्रीराम ने सीता के स्वयंवर गुह में लोक के विख्यात वीरों के समाज में जिसे तीन सौ आदमी खींचकर लाये थे उस शिवजी के उग्र धनुष को जैसे हाथी का बच्चा ईख के गन्ने को लीला से तोड़ देता है वैसे ही उन्होंने उसे चढ़ाकर तड़ से बीच से तोड़ डाला।

सीताकी शंका को भगवान श्रीराम ने समझ लिया। उन्होंने धनुष को अपनी उंगली की कोर से पकड़ा और धनुष को तोड़ डाला। धनुष के टूटते ही कुटिल राजा लोक इस प्रकार इधर-उधर जा छिपे जैसे प्रात:काल में तारागण छिप जाते हैं।

जब सीता प्रकट हुई तो क्या हुआ था? तब भगवान स्वयं आए, उन्होंने शिव का धनुष भंग किया और सीता ने उन्हें वर लिया। ऐसी कथा है कि सीताजी ने एक बार दाएं हाथ से शिव का धनुष उठाया और उसके नीचे की जमीन बाएं हाथ से लीप दीं राजा जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे हुआ? उन्होंने सोचा कि सीता के रूप में मेरे घर में कोई शक्ति प्रकट हुई है। वह धनुष तो और कोई नहीं उठा सकता। राजा जनक ने समझ लिया कि यह तो परम शक्ति हैं, उन्हें उनके योग्य वर को सौंपना होगा। ऐसा सोचकर उन्होंने घोषणा की कि जो यह धनुष उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाएगा, सीता उसीका वरण करेंगी। राम ने धनुष तोड़ा तो उससे यह साबित हुआ कि वही उस शक्ति के स्वामी हैं। ऐसा जानकर सीता ने राम के गले में वरमाला डाल दीं।

यज्ञशाला में रक्खे हुए शिव के धनुष को उन्होंने बीच से वैसे ही तोड़ दिया जैसे हाथी का बच्चा ईख को तोड़ डालता है। जानकी के मन से पिता के कठोर प्रण का भय निकल गया और धनुष राम ने ही तोडा- जानकी गुण, शील, अवस्था, शरीरकी गठन और सौंदर्य में सर्वथा भगवान श्रीरामके अनुरूप थीं। भगवान्‌ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहू न लखा देख सग ठाड़े।।

स्वयंवर में अनेक पराक्रमी राजा भी पधारे परंतु धनुष किसी से टस से मस भी नहीं हुआ। अंत में श्रीराम ने ही उसे तोड़ा तथा त्रिभुवन जय समेत सीता का वरण किया।

जानकी सखियों के मध्य श्रीराम के सन्मुख जयमाला लेकर खड़ी हैं किन्तु प्रेमविवश परिहाइ न जाई। इसमें विवशता क्या थी? मन चाहा वर मिल गया। विवशता थी प्रेम परिहास की। श्रीराम चन्द्र जी कद में लम्बे थे उस पर भी मुकुट पहन रखा था। जानकी जी इतनी लम्बी नहीं थी। अत: जयमाला डालने में असमर्थता थी। श्रीराम झुके नहीं वरन्‌ तनकर खड़े हो गये जानकी से परिहास करने के लिए।

विवश जानकी ने माता पृथ्वी से प्रार्थना की कि आपने मुझे छोटे कद की उत्पन्न कर आज दुविधा में डाल दिया परिहास का कारण बना दिया। अब आप जरा ऊँची हो जाय तो मैं जयमाला डालने में सफल हो जाऊँगी। जानकी के नीचे की भूमि ऊपर उठे इससे पूर्व ही श्रीराम ने पैर से दबाकर पृथ्वी को चेतावनी दे दी। पृथ्वी शान्त हो गई। जानकी का प्रयास

विफल हो गया। उन्होंने श्रीलक्ष्मण से प्रार्थना की भैया लक्ष्मण। आपने जीवन भर मेरी सेवा, सुरक्षा का संकल्प लिया है। अब तो मैं तुम्हारे गोत्र में भी आ चुकी हूँ मेरी मदद करो।

लक्ष्मण जी के मन में विचार आया माँ का सोचना यथार्थ है। बिना भैया राम के क्रोध का विचार किये शेषावतार अपना फन सीधा करने लगे। श्रीराम ने लक्ष्मण की ओर आँखें तरेरीं। लक्ष्मण सहम गये। भैया के रोष से बचने के लिए- बुद्धि ने जब किसी समस्या का समाधान न मिले या किसी विपत्ति से मुक्ति का मार्ग न मिले तो प्रभु चरणारविन्द का आश्रय लेना चहिए। लक्ष्मण तुरन्त प्रभु श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। प्रभु उन्हें उठाने के लिए झुके तब जानकी ने शीघ्र उनके गले में जयमाला डाल दी और लक्ष्मण के बुद्धिकौशल की सराहना करने लगीं। प्रभु श्रीराम ने जब जिज्ञासा की कि जयमाला किसने डाल दी? तो जानकी जी मन्द मुस्कुराते बोली होइहि कोइ हक दासी तिहारी प्रभु श्रीराम मुस्करा गये, सखियों ने पुष्प वृष्टि कर दी, बन्दीगण जय-जयकार करने लगे, चारण विरदावली गाने लगे। यह थी प्रेम परिहास की परिणति।

इधर राम का परिहास चल रहा है उधर हताश राजा लोग षडयंत्र बनाने में संलग्न हैं।

उठि-उठि पहिरि सनाइ अभागे। जँह-जँह गाल बजावन लागे।।
लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।।
कोलाहलु सुन सिय सकानी। सखीं लवाइ गई जहँ रानी।।
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं।।
तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।।
सीस जटा ससिवदन सुहावां रिसबश कछुक करुन होई आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते। सहजहुं चितवत मनहु रिसाते।।
कटि मुनिवसन तून दुइ बाँधे। धनुसर कर कुठारु कल काँधे।।

राजाओं का विरोध देख सखियाँ सीता को रानी के समीप ले गए एवं श्रीराम गुरु विश्वामित्र के समीप चले गये।

उसी समय मुनिवेश में भृगुवंशीय श्रीपरशुराम क्रोधित मुद्रा में कंधे पर धनु लिये हाथ में फरसा लिए गर्जना करने लगे। ये वही परशुराम थे जिन्होंने इक्कीस बार भूमण्डल को क्षत्रियों से विहीन कर डाला था।

अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।।

फरसा का बार-बार चमकाते पूछते कि भगवान शंकर का यह धनुष किसने तोड़ा है। यज्ञशाला में सन्नाटा छा गया। राजाओं में भय व्याप्त हो गया। क्षत्रियों के प्रबल शत्रु परशुराम को झुककर प्रणाम करने लगे। श्रीराम ने निर्भीक होकर मृदु शब्दों में कहा- **नाथ शम्भु धनु भंजन हारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।**

परशुराम बोले- राम यह दास कैसा जो शत्रुओं का सा कार्य करें। इस धनुष को तोड़ने वाला सहस्त्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सहस्त्रबाहु ने परशुराम पिता जमदग्नि जी की कामधेनु गाय बलात् लेली थी। परशुराम जी ने सहस्त्रबाहु को परास्त कर कामधेनु प्राप्त की सहस्त्रबाहु के पुत्रों ने जमदग्निजी का वध कर दिया। माता रेणुका ने परशुराम से गुहार की। परशुराम ने भूमि को क्षत्री विहीन करने की प्रतीक्षा कर ली। इक्कीस बार भूमि को क्षत्री विहीन कर दिया। उपस्थित राजा इसके स्मरण मात्र से ही सिहरने लगे। श्रीराम ने जब निवेदन किया तो राजा राम के अमंगल की कल्पना से प्रसन्न होने लगे।

परशुराम के गर्वीले, जोशीले शब्दों को सुनकर लक्ष्मण मुस्काने लगे। मुस्कान को देखकर परशुराम और भी क्रोधित हो गये। लक्ष्मण ने और उत्तेजित किया यह कहकर-

बहुत धनु हीं तोरी लरिकाई। कबहुँ न अस रिस कीन्हि गोसांई।।

एहि धनु पर ममता केहि हेतु। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतु।।

परशुरामजी गरजने लगे- अरे राजकुमार मृत्युवश होकर इस प्रकार।

रे नृप बालक कालवस बोलत तोहि न संभार।

का अनर्गल प्रलाप क्यों कर रहा है। मेरा प्रताप तुझे मालुम नही है।

लक्ष्मण बोले- हे मुनिश्रेष्ठ। धनुष तो सभी समान हैं और यह तो और भी पुराना था यह तो छूते ही टूट गया। इसमें रघुनाथ जी का क्या दोष है।

परशुराम बोले- अरे शठ बालक, तू मेरा प्रभाव नहीं जानता (कुठार दिखते हुए) मैंने अनेक बार भूमि को क्षत्री विहीन कर दिया है। लक्ष्मण मुस्कराके बोले- मुनिवर। इस जीर्ण कुठार को बार-बार क्या दिखाते हैं। इससे हम लोग भयभीत नहीं हो सकते हैं। **सूर समरु करनी करहिं कहिं न जनावहिं आपु।**

श्री लक्ष्मण के कटु वचन सुनकर परशुराम ने चेतावनी दे डाली-

अब जनि देह दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बध जोगू।।

विश्वामित्र जी ने बालकों के गुणदोष न देखने का अनुरोध किया किन्तु लक्ष्मण पुन: बोल पड़े- हे मुनि जी। आपने माता-पिता का ऋण तो चुका दिया किन्तु गुरु ऋण चुकाने के लिए व्याकुल हैं। लक्ष्मण के कटु वचन सुनकर परशुराम ने कुठार सँभाला। सारी सभा हाय-हाय करने लगी और लक्ष्मण जी ने फिर कह दिया कि हम ब्राह्मण के सम्मान में अस्त्र नहीं उठा रहे हैं। यह कहकर लक्ष्मण ने अग्नि में घी डाल दिया हो। राजाओं ने भी इसे अनुचित कहा। वातावरण को विषाक्त देख राम ने खड़े होकर कहा-

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ। लक्ष्मण अभी अज्ञान है, आपका यश, प्रभाव न जानने के कारण ऐसा कह रहे हैं। इसे अल्पायु बालक की भाँति क्षमा करें। राघवेन्द्र ब्राह्मण को शान्त करने में प्रयत्नशील थे किन्तु लक्ष्मण ने कहा- हे मुनि। मैं आपका दास हूँ किन्तु क्रोध पाप का मूल है इसलिए हे मुनिराज आप आवेश को त्याग दें। अब टूटा धनुष जुड़ नहीं सकता है। लक्ष्मण के इस प्रकार तर्क करने से महाराज जनक तथा उनका रनिवास भयभीत होने लगा। उपस्थित राजा लोग भी भयभीत थे किन्तु राम से उन्हें ईर्ष्या थी अत: प्रसन्न हो रहे थे। आतंक और भय का वातावरण था।

परशुराम क्रोधवश खड़े हो गये बोले- अरे राम तेरा यह भाई विषयुक्त स्वर्णघट के समान है। इसे दण्ड देना उचित होगा।

राम ने स्थिति को समझकर लक्ष्मण को इशारे में ही मौन कर दिया और मुनिवर से पुन: क्षमा याचना कर अनुरोध किया कि अब आप कृपया आदेश दें कि आपका समाधान करने के लिए क्या किया जाय। आप तो क्षमा की मूर्ति हैं। वीरत्व में आपकी समता नहीं है। आप देवतुल्य हैं अत: मुझे अपना दास समझकर समाधान की युक्ति बतावें।

श्रीराम की अतिशय विनम्रता पर द्रविभूत हो गये परशुराम।

सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के। उधरे पटल परसुधर मति के।।

राम रमापति कर धनु लेहू। खेंचहु चाप मिटै सन्देहू।।

और श्रीराम को जब परशुराम ने अपना धनुष बाण दे दिया तो श्रीराम के बिना चलाये ही बाण स्वत: ही चल गया। यह देख परशुराम सहित समस्त समाज आश्चर्य में पड़ गया। राम की जय जयकार का उद्घोष हो गया। देवतागण पुष्प वृष्टि करने लगे, दुन्दुभि बजाने लगे। भगवान राम ने परशुराम के बढ़े हुए गर्व को विनष्ट कर दिया।

देवन्ह दीन्ही दुन्दुभी प्रभु पर बरषहिं फूल। हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल।।
गरजे तरजे परशुराम रघुपति मुख मोर्‍यो। दयो विष्णुको धनुष ताहि रघुनायक तोर्‍यो।।
जामदग्निकी आँख खुली विनती बहुत कीन्ही। गिरि महेन्द्रकूँ गये शक्ति तिनकी हरि लीन्हीं।।

महाराजा जनक के विवाह की विधिवत् सूचना दूत के द्वारा अवध नरेश के पास भेजी। अबध नरेश महाराजा दशरथ वशिष्ठ तथा अन्य सभासदों, गणमान्य प्रजाजना सहित स्वरूपानुरूप हाथी, रथ, घोड़े, सेना को साथ ले जनकपुरी पहुँच गये। महाराज जनक ने यथा सम्भव यथाशक्ति उनका सत्कार किया। विवाह की औपचारिकतायें पूर्ण हुई। एक साथ चारों भाइयों का विवाह इतिहास की अविस्मरणीय कृति है। श्रीराम का विवाह जनकनन्दिनी जानकी से भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण का जनक भ्राता कुशध्वज की कन्या माण्डवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। उसके बाद उनका विवाह श्रीसीताजी से हो गया। नारायण की प्रिया श्रीलक्ष्मी जी ही जानकी के रूप में अवतीर्ण हुई थीं।

राजा दशरथ अयोध्या से धनतेरस के दिन बारात लेकर मिथिला पहुँचे। कहते हैं रास्ते में और जनवासे में बारात का जो स्वागत किया गया वह इन्द्र और ब्रह्मा को भी चकित कर देनेवाला था। मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को विवाह हुआ और फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी को बारात को जनक ने मुश्किल से विदा दी। भगवान राम के ब्याह का बड़ा आनन्द है। भगवान कृष्ण के ब्याह में तो बस लड़ाई से ही शुरुआत है। ससुराल में स्वयं दामाद को भोजन नहीं मिलता तो बारातियों की बात कहाँ?

बारात विदा होने लगी तब माता सुनयना ने अपनी कुमारियों को समझाया- बेटी, अभी तक तुम सब राजकुमारी के रूप में रही हों किन्तु अब रानी बन रही हों। अपने माता-पिता की इज्जत का खयाल रखना। **सासु ससुर गुरु सेवा करेहूं। पति रुखच लखि आयसु अनुसरेहू।** सभी माताओं का कर्त्तव्य है कि अपनी बेटी की विदाई में ऐसी ही शिक्षा दें। किन्तु समय की कुछ ऐसी विडम्बना है कि माताएँ अपने बेटी से कहती है-

इतना कहा मोर तुम करिहौ। पहुँचत चूल्हा अलग कै लेहौ।

जनकपुरी कुछ दिन निवास कर बारात विदा हुई तो श्रीराम ने विदा माँगी-

राम विदा मांगत कर जोरी। कीन्हि प्रनाम बहोरी-बहोरी।।
पाई असीस बहुर सिरनाई। भाइन्ह सहत चले रघुराई।।

जनकपुरी से विदा होकर जब चारों भाई अपनी वधुओ सहित चले तो जनकपुर का रनवास शोकागार और जनकपुर समग्र जनकपुर न रहकर करुणा सागर बन गया था-

प्रेम विवश नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु। मानहु कीन्ह विदेहपुर विरह करुणा निवासु।।

इस करुणा सागर को पार कर करुणानिधान अवधपुर की ओर चले। मार्ग में पुरवासियों को सुख देते जब अयोध्या के निकट पहुँचे तो अयोध्या में बज रहे नगारों एवं जय-जयकार की ध्वनि सुनाई देने लगी। अयोध्या नगरी स्वयं एक नववधु की भाँति सुसज्जित हो अपने प्रिय राजकुमार राम के स्वागत के लिए प्रतिक्षाबद्ध थी। श्रीराम के प्रवेश के साथ धमाको को धाँय-धाँय, नक्कारों की गनगनाहट, शहनाई की मधुर ध्वनि ने नगर का वातावरण ही बदल दिया। विभिन्न प्रकार से सजाये अनेक तोरण द्वारों को पार करते जब आगे बढ़े तो विभिन्न परिधानों में इठलाती सुहागिनें मंगल कलश लिये मार्ग के दोनों ओर खड़ी थीं। अनेक नगर बधूटी स्वर्ण, रजत थालों से आरती उतार रही थी। ब्राह्मण स्वतिवाचन कर रहे थे तो महिलायें मंगल गीत गाकर नव-वधुओं का स्वागत कर रही थीं- अयोध्या की शोभा आज इन्द्रप्रस्थ से भी बढ़कर थी क्योंकि स्वयं देवतागण भी यहाँ उपस्थित होकर पुष्प वृष्टि कर रहे थे। वे भी इस महान मंगल वेला में पीछे नहीं रहे। देखें-

होहिं सगुन बरसहिं सुमन-सुर-दुन्दुभि बजाइ। विवुध बधु नाचहिं मुदित- मंजुल मंगल गाइ।।

इस परम पावन बेला में जब चारो भाई बधुओं सहित महल पधारे तो माताओं ने आरती उतारी। अमूल्य रत्नों की न्योछावर की। चारों राजकुमारों को वधुओं सहित पृथक-पृथक सिंहासनों पर आसीन किया गया तथा लोकविधि से उनका पूजन किया गया। अबध के महलों में नवीन मंगल कार्यक्रम होने लगे।

घर आया मेरा रघुराई, अवध पूरी में बहार आयी।

राजा दशरथ ने वृद्धावस्था में सोचा कि श्रीराम का राज्याभिषेक करें। नगर में राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। ऋषि-देववृन्द सोचने लगें- **अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक** दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन के निमित्त नर रूप में अवतरित हुए हैं। कहीं राज्यासक्ति उन्हें आवृत्त न कर ले। अत: मन्थरा के माध्यम से कैकेई को प्रेरित किया। पूछेउँ गुनिन्ह रेष अस खाँची। भरत भुञ्जाल होहि यह साँची। शास्त्रीय दृष्टि से मन्थरा ने नगर के ज्योतिषियों से पूछा- पण्डितप्रवर। अवध का राजा कौन होगा? ज्योतिषियों ने अपनी-अपनी गणना करके कहा- राजा तो भरत ही होंगे। अब मन्थरा ने नगरज्योतिषियों के वचन को प्रमाण मानकर रानी कैकई को ठीक-ठीक समझा दिया।

राम एकान्त में माता कैकयी के पास गये और चरणों में प्रणाम किया। माता कैकेई ने पूछा- पुत्र राम, तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है? तुम क्यों आँखें नीची किये हों? तुम्हारे आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। अभी तो विवाह की खुशियाँ हैं फिर तुम्हारा चेहरा गम्भीर क्यों है? कैकेई का राम के प्रति अगाध स्नेह था। कैकई ने पूछा- क्या हुआ मेरे लाल? और सिर पर हाथ फेराने लगी। श्रीराम रोकर कहने लगे- माता, मुझे बचालो। मुझे यह राजगद्दी नहीं चाहिये। वन के अन्दर मेरे संत बहुत दु:खी है। मैं साकेत लोक को राजगद्दी के लिये छोड़कर नहीं आया हूँ। कैकेई ने कहा- राम तू प्राण भी माँगे तो मैं प्राण दे दूँ मेरे लाल। बता मैं तेरे लिये क्या करूँ। मुझे तुम भरत से भी ज्यादा प्रिय लगते हो। राम ने कहा- मुझे वचन दो जो मैं माँगूंगा सो दोगी। कैकेई ने कहा- पुत्र राम क्या समय बदल गया है या मेरा राम बदल गया है? क्या रामको अपनी माता कैकेई पर भरोसा, विश्वास नहीं। ये शंका तुम्हारे मन में आई कैसे? रामने कहा- माता, प्राण देना साधारण बात है, परन्तु कभी-कभी अत्यन्त दुखी होकर जीवित रहना बहुत कठिन होता है। तुम पिताश्री से दो वचन माँगो। मेरे लिए चौदह वर्ष का वनवास और दूसरा वचन भरत के लिये राजगद्दी। कैकेई एकदम पछाड़ खाकर गिर पड़ी और बोली केवल अपना ही सोचा है अपनी माता के बारे में नहीं सोचा। तुम्हें देखे बिना मैं एक पल भी नहीं जी सकती। तुम जानते हो कि तुम्हारे पिताश्री तुमसे बहुत प्यार करते हैं। वरदान माँगाते ही वे भी जीवित नहीं रह पायेंगे और मुझे विधवा जीवन भोगना पड़ेगा? पर पुत्र मैं तुम्हारे लिये यह भी सहने को तैय्यार हूँ। पर दुनिया कहेगी जिस कैकेई ने सबकी आँखोंके तारे राम को अयोध्या से निकाल दिया। दुनियाँ थू-थू करेगी, गली-गली में निन्दा होगी। तेरी माता कैकेई के नाम पर फिर कोई अपनी पुत्री का नाम भी कैकेई नहीं रखेगा। फिर भी मेरे लाल जैसे तुम राजी रहो वो मैं करने को तैय्यार हूँ। कैकेयी रामपर बहुत स्नेह करती थी। रामने कैकेयी से कहा- माता केवल तुम्हारे प्रेम में ही इतनी शक्ति हैं कि बदनामी सहन कर सकती है। कैकेयी ने रामको चौदह वर्ष का वनवास देकर कितना बड़ा लांछन और दुख सहनकर राम के कार्य में सहायता की।

रामने चरणों में प्रणाम किया। दशरथ जी जिस समय आये। कैकेई को ऊपर से क्रूरता का नाटक करना पड़ा।

समय का प्रवाह प्रबल है। समय वीता राग के राज्याभिषेक की घोषणा हो गई। तैयारियाँ पूर्ण हो गई। प्रात: अभिषेक होना था। **लेकिन मेरे मन कछु और है विधना के कछु और वाली उक्ति चरितार्थ होने लगी।**

विघ्नेश्वरी देवी का अयोध्या में प्रवेश हुआ। विघ्नेश्वरी देवी ने मंथरा की बुद्धि में विकृति पैदा कर दी।

महारानी कैकयी की दासी मन्थरा जब नगर घूमने गई और विभिन्न प्रकार से तैयारियाँ पूर्ण हो गई। प्रात: अभिषेक होना था।

दीख मन्थरा नागरु बधावा। मंजुल मंगल बाज बधावा। पूछेसि लोगन्ह कहा उछालू। राम तिलक सुनि भा उर दाहू।।

मन्थरा जब लौटकर महल में आई तो बड़ी उदास थी। रानी कैकयी अपने पलंग पर लेटी थी। उदास मन्थरा से कारण पूछा तो मन्थरा बोली- **पूत विदेश न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे।।**

नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहू न भूप कपट चतुराई।।

तुमको न पुत्र की चिन्ता है न पति का ध्यान। यह तुम्हारी कल्पना मात्र है कि राजा तुम्हारे वश में है। महाराजा का दुर्भाव तुमने नहीं देखा। वे कौशल्या पुत्र राम को युवराज बना रहे हैं। नगर सज रहा है। सब तैयारियाँ हो गई है। कल प्रात: ही अभिषेक हो जायेगा। सुनकर कैकयी बैठी होकर बोली-

प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे।।

मन्थरा बोली तुम्हीं को राम प्रिय हैं। राम को तुम नहीं हो।

कौशल्या सम सब महतारी। रामहित सहज सुभाय पियारी।।

मो पर करहिं सनेह विशेषी। मैं कर पीत परीक्षा देखी।।

कैकयी के वचन सुन मन्थरा बोली- **प्रिय सियाराम कहा तुम रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरवानी।।**

यह तुम्हारा भ्रम है रानी जी। वह समय बीत गया है जब राम को तुम प्रिय थीं। मन्थरा के इन वाक्य बाणों ने कैकयी को आश्चर्य में डाल दिया। वे खड़ी हो गयीं। बोली मन्थरा। मेरा विश्वास कभी असत्य नहीं हो सकता। मैं विधाता से यही याचना करती हूँ कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो राम और सीता ही मुझे पुत्र और पुत्रवधु के रूप में प्राप्त हों।

जो विधि जनमु देह करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू।

मन्थरा। तुम इस मंगल बेला में इतनी संतृप्त क्यों हो रही हो। राम और भरत में कोई भेद नहीं समझती बल्कि राम मेरी अधिक सेवा करते हैं। राज्य यदि राम को मिल रहा है तो भरत को ही मिला समझो। राम के राज्याभिषेक की बात सुन मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। तुम चाहो तो इस उपलक्ष में श्रेष्ठ वर माँग सकती हो। मैं निश्चय ही दूँगी।

मन्थरा को कैकयी का यह आत्मविश्वास उचित नहीं लगा। वह बहुत दुखी हुई और कैकयी को विभिन्न प्रकार से भय दिखाने लगी। वह बोली रानी, यह हर्ष का समय नहीं है तुम्हें पीछे पछताना होगा। जब कौशल्या राजमाता होंगी और तुम उनके अधीन रहोगी और दासी की भाँति हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ी रहोगी।

रानी, राम राजा होंगे और उनके बाद उनका पुत्र राजा होगा। भरत कभी राजा नहीं होंगे। राम की ही परम्परा चलेगी- भरत इस परम्परा से पृथक हो जायेंगे। मन्थरा लम्बी गर्म साँस लेकर बोली रानी। तुम अज्ञानवश अनर्थ को अर्थ समझ रही हो, अशुभ को शुभ समझ रही हो, अमंगल को मंगल समझ कर आनन्दित हो रही हो, यही तुम्हारा दुर्भाग्य है। यदि राम राजा हो जायेंगे तो भरत को राज्य से निकाल देंगे या मौत के घाट उतार देंगे।

ध्रुवं तु भरतं राम: प्राप्त राज्यमकष्टकम्। देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि बा।।

यह सुन कैकयी का मन डगमगाने लगा। **भावी बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि पुन सपथ देवाई।**

तो मन्थरा मुस्करा कर बोली- **का पूछहु अवहु न जाना। निजहित अनहित पशु पहिचाना।।**

जानकर अन्जान न बनो रानी। यह भावना निर्मूल है कि राम तुम्हें विशेष स्नेह करते हैं। यह केवल मात्र दिखावा है। राम मृदुभाषी हैं, लेकिन हृदय के मलिन हैं। राजा राम बन जायें इसका कष्ट नहीं, वेदना इस बात की है कि उनके राजा होने पर

तुम्हारी क्या स्थिति होगी? अनेक दृष्टान्त सुनाकर मन्थरा ने कैकयी को प्रभावित कर दिया। कैकयी की स्थिति ऐसी हो गई- **कैकय सुता सुनत कु बानी। कहि सकहि कछु सहम सुखानी।**

मन्थरा देव कार्य में सफलता की ओर बढ़ने लगी कैकयी पर उसकी कपट वाणी सार्थक हो गई। सरस्वती जी उसकी जिह्वा पर विराज रही थीं। देवगण राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ देख भयभीत हो गये थे। दौड़कर माँ सरस्वती के पास पहुँचे प्रार्थना की-

विपत्ति हमारि विलोक बड़ि, मातु करिउ सोइ काजु। राम जाहिं बन राजु तज, होई सफल सुरकाजु।।

तब सरस्वती जी ने-**नाम मन्थरा मन्द मति, चेरी कैकयी केरि। अजस पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि।।**

विजय मन्थरा या कैकयी की नहीं देवताओं की हुई। कैकयी कहने लगी-

नेहर जनमु भरब बरु जाई, जिअत न करबि सौत सेवकाई।

पिता के घर रहकर दिन बिता दूँगी किन्तु सौत की गुलामी नहीं करूंगी। मन्थरा ने धीरज बँधाते हुए कहा- अरी रानी। इतनी हताश, उदास क्यों हो रही हो? तो क्या करूँ मन्थरा। यहाँ तो राम के राज्याभिषेक की सब तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी है और कल समाप्त ही हो जायगा। अब मैं कर भी क्या सकती हूँ।

मन्थरा प्रसन्न होकर बोली- उपाय मैं बताती हूँ। मुझे याद है तुम शायद भूल गई। देवासुर संग्राम में तुमने महाराज के प्राणों की रक्षा कर दो वरदान प्राप्त किये थे। आज अवसर है उन्हीं दो वरदानों को माँग लो। पहला राम को १४ वर्षों के लिए वनवास दूसरा भरत का राज्याभिषेक। जाओ, कोप भवन में चली जाओ। जमीन पर बिना बिस्तर के लेट जाना। राजा आवें तो उन्हें देखना भी मत, बोलना भी नहीं, रोना और पैर पीटना। देखो, वे तुम्हें प्रलोभन भी देंगे परन्तु तुम बातों में न आना। अपने वाक्यों पर अटल रहना और देखो राजा को पहले शपथ दिलाकर धर्म के बन्धन में बाँध लेना। प्रतिज्ञा के बन्धन में बाँध लेना ताकि राजा फिर बदल नहीं सकेंगे। सिद्धान्त पर दृढ़ रहना, अपनी प्रतीज्ञा पूरी कराना ही तुम्हारा ध्येय रहे।

भरत शत्रुघ्न गये मातृगृह कैकय पुरमहँ। राम होहिँ युवराज भई इच्छा नृप उरमहँ।।
सबनि समरथन कर्‍यो तिलककी भई तयारी। किन्तु कुबरी कुटिल बीचमहँ बात बिगारी।।
कान केकयीके भरे, मँगवाये द्वै बर तुरत। बसै चतुरदश बरस बन, राम राज्य पावहिँ भरत।।

कैकयी बोली- मन्थरा, अब चाहे पूर्व का सूर्य पश्चिम से उदय होने लगे, समुद्र सोख जाय, सुमेरु पाताल में चला जाय, पृथ्वी उलट जाय, चन्द्रमा आग उगलने लगे, अग्नि चाहे शीतल हो जाय, मैं अपनी प्रतिज्ञा से हट नहीं सकती, नहीं हट सकती। राम को बिना वन भेजे भरत को बिना राज्य दिलायें मैं अन्न जल कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगी। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है, इससे मुझे कोई हटा नहीं सकता। टस से मस नहीं कर सकता।

मन्थरा की मंत्रणानुसार कैकयी कोप भवन में चली गई। महाराजा जब आये और रानी को महल में न पाया तो दासियों से पूछा। मालूम होने पर कोप भवन पहुँच गये। कैकयी को मलिन वस्त्रों में आभूषण रहित भूमि पर पड़े बिलखते देखा। राजा अधीर हो रानी से उसकी विवशता का कारण जानने लगे। पूछने लगे कि किसने तुम्हारा अपकार किया, किसने तुम्हारा अपमान किया वह निश्चय मुझसे दण्ड पायेगा। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा- बताओ तो क्या हुआ है? न मेरा किसी ने अपकार किया न किसी ने अपमान। मेरा एक मनोरथ है उसको यदि आप पूर्ण करना चाहते है तो पहिले आप प्रतिज्ञा कीजिये, शपथ खाइये फिर मैं अपना अभिप्राय बताऊँगी।

दशरथ ने कहा- मैं प्रतिज्ञा करता हूँ और तुमसे अधिक संसार में मुझे केवल राम प्रिय हैं उसकी शपथ खाकर कहता हूं

तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

कैकयी ने राजा को धर्म एवं प्रेम बन्धन में आबद्ध जान कहा कि मेरे दो वरदान आप पर धरोहर के रूप में बाकी हैं उन्हें मैं आज पूर्ण कराना चाहती हूँ। राजा प्रसन्न होकर-रानी माँग लो जो चाहती हो मै। सब कुछ आज दे दूँगा। तब रानी ने कहा सचमुच आप देना ही चाहते हैं तो पहला राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राज्य दे दीजिए। कैकयी के मुख से निकले इन शब्दों को सुनकर महाराज को पसीना आ गया, गला सुख गया। कुछ काल बाद धैर्य रख कैकयी इस वरदान के दुष्परिणामों पर विचार नहीं किया तुमने। केवल अपनी हठ रखना चाहती हो। राम को राज्य का लोभ नहीं है। भरत राजा हो इसमें भी उन्हें दुख नहीं होगा क्योंकि भरत उन्हें परम प्रिय हैं। मुझे भी इसमें कोई आपत्ति नहीं हैं। यद्यपि यह कुल परम्परा के प्रतिकुल है किन्तु राम को वन मत भेजो, कैकयी। बड़ा अनर्थ हो जायेगा।

महाराज दशरथ ने मन में निश्चय किया कि अयोध्या का राज्य राम को देकर वे वानप्रस्थ ले लें। ऐसा सुनकर उनकी रानी कैकेयी ने कहा कि आप अपने दिए हुए वचनों को पूरा करें। उनके अनुसार एक तो राम चौदह वर्ष वन में रहें और दूसरा यह कि अयोध्या का राजछत्र भरत धारण करें। यह सुनकर महाराज दशरथ अत्यन्त व्याकुल हो गए। उनसे कुछ कहते न बना। उन्होंने बहुत समझाया, किंतु कैकेयी ने अपना हठ न छोड़ा।

किन्तु कैकयी अपने निश्चय पर अडिग रही। उसे राजा की सहिष्णुता उदारता पर तरस नहीं आया अपने भविष्य की भी उसने परवाह नहीं की और अन्तिम निर्णय की घोषणा कर दी-

कोपभवनमें महारानी कैकेयीको मनाते हुए महाराज दशरथने दृढ़तापूर्वक यह भावना व्यक्त की- मछली चाहे बिना पानीके जीती रहे और मणिधर सर्प भी चाहे बिना मणिके दीन-दु:खी होकर जीता रहे; परंतु मैं स्वभाववश ही कहता हूँ, मनमें छल रखकर नहीं कि मेरा जीवन रामके बिना नहीं है।

होत प्रात मुनिवेश धरि जो न राम वन जाहिं। मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहि।।

महाराजा को कैकयी के वाक् बाण असहनीय हो गये। उन्हें असहनीय पीड़ा होने लगी, भूमि पर पड़ गये, बिलखने लगे। हे राम, हे रघुनाथ कहते-कहते अचेत हो गये। निर्दयी कैकयी को राजा की दैन्यता पर दया नहीं आयी। राजा को जब चेत हुआ तो फिर मधुर व्यंग किया। महाराज, आप दानी भी बनना चाहते हैं और देना भी नहीं चाहते। दोनों कार्य एक साथ सम्भव नहीं हैं।

दशरथ जी ने पुन: कहा- कैकयी, तुमने बिना विचारे इनके परिणामें पर विचार किये इस प्रकार के वरदान माँगे हैं यह अनुचित है।

प्रिया हास रिस परिहरहि मांगु विचार विवेक। जेहि देखों अब नयन भरि भरत राज अभिषेक।।

महाराजा का स्पष्ट मन्तव्य यही था कि यदि राम को वनवास हुआ तो भरत के राज्याभिषेक देखने के लिए शायद शरीर नहीं रहेगा। किन्तु निष्ठुर कैकयी पर इस स्पष्टवादिता का भी प्रभाव नहीं हुआ। वह अडिग चट्टान की तरह अपने विश्वस पर दृढ़ रही। कुसंग का कैसा प्रभाव जमा है कि अपने अनहित के विषय में भी चिन्तन नहीं कर पा रही है। वैधव्य जीवन स्वीकार है परन्तु राम को वनवास निश्चित हो। वह कैकयी जो राम के बिना जल भी ग्रहण नहीं करती। राम को बिना देखे अधीर हो जाती, पहले राम को स्नेह देती पीछे भरत को ऐसी स्नेहमयी माँ को आज क्या हो गया? जो हुआ यही भगवान की माया है। क्योंकि होगा वही जो राम रच राखा इसलिए कैकयी तो विधि की कठपुतली है जिधर नचाती है नाच रही है। कैकयी ने कहा- महाराज। **दशरथ अनुनय विनय करी रानी न पसीजी।**

महाराजा को कैकयी की चेतावनी सहन नहीं हुई, वे विचलित होकर भूमि पर गिर पड़े। राम, ही राम कहने लगे। बिलखते हुए पति पर भी पतिव्रता को दया नहीं आई। पाषाणहृदया कैकयी बोली महाराज, आप अबला नारी की भाँति विलाप क्यों कर रहे हैं न दीजिए वरदान। सत्यव्रती के लिए तो स्त्री, पुत्र, धन, वैभव सब तृणवत होता है। आप तो धर्मज्ञ हैं। ऐसे मर्मस्पर्शी व्यंग वाक्यों से दशरथ की स्थिति और भी दयनीय हो गई। अभिलाषा और आशाओं के महल ढह गये थे। उनका स्वप्न निरर्थक सिद्ध हुआ, उनकी अभिलाषायें धूलि में मिल गयीं। वे उदास हो गये। खिन्नता ने उन्हें अपना लिया। निराशा ने उन्हें कसकर पकड़ लिया। **राम राम रट विकल भुआला, जनु बिनु पंख विहंग विहाला।**

अन्त में विवश होकर कैकयी के दोनों वरदान दशरथजी ने स्वीकार कर लिये। उन्होंने कहा कि मैं प्रतीज्ञा के बन्धन में बँध गया हूँ, किन्तु मेरी चेतना लुप्त हो रही है इसलिए मैं शीघ्र अपने धर्मपरायण प्रिय पुत्र रामचन्द्र को देखना चाहता हूँ।

धर्मबन्धेन वद्धोऽत्मि नष्टा च मम चेतना। ज्येष्ठं पुत्रं रामं द्रष्टमिच्छामि धार्मिकम्।।

प्रात:काल हो गया। गुरु वशिष्ठ अपने शिष्यों एवं ब्राह्मणों सहित उपस्थित हो गये। महाराज की प्रतीक्षा किन्तु जब विलम्ब होने लगा, मुहूर्त का समय निकट आने लगा तो सुमन्त को महाराज को लाने के लिए भेजा।

सुमन्त को भी अन्त:पुर में घटित घटनाओं का ज्ञान नहीं था। महल में उनका प्रवेश था अत: जानकारी करते महाराज के समक्ष कोप भवन में उपस्थित हो गये। महाराज को निद्राहीन समझ स्तुति के द्वारा जागने का प्रयास करने लगे। सुमन्त को घोर आश्चर्य हो रहा था इस वातावरण को देखकर। दशरथ ने कहा सुमन्त। तुम्हारी इस स्तुति से मुझे मार्मिक पीड़ा हो रही है। कैकयी तुरन्त बोल उठी- सुमन्त जी राज्याभिषेक के कारण रातभर निद्रा नहीं आई है। आप शीघ्र राम को बुला लावें। दशरथ को भयंकर वेदना हुई कैकयी के मायिक शब्दों पर, किन्तु कुछ बोले नहीं। सुमन्त गये नहीं। दशरथ ने आज्ञा दी, सुमन्त मैं राम को देखना चाहता हूँ। **सुमन्त रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानव सुन्दरम्।।**

महाराज की आज्ञा पालन में सुमन्त शीघ्र राम और लक्ष्मण को लेकर उपस्थित हो गये। दोनों ने माता और पिता को प्रणाम किया तो दशरथ के मुख से केवल नाम मात्र निकला राम। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। नेत्रों से झरना बहने लगा, अंग शिथिल हो गये। न देख सके न बोल सके। **मातु पिताकी दशा देखि रघुपति घबराये।**

जब नहिँ बोले नृपति कछु, कथा केकयी सब कही। उठे बिलखि नृप राम कहि, परि पापिनि बैठी रही।।

श्रीराम स्वयं यह दशा देख व्याकुल हो गये। माता से पूछा क्या अनजाने में मुझसे कोई अपराध बन गया जिससे तात मुझसे बोलना नहीं चाहते। कैकयी बोली- यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु एक बात है जिसे महाराज कहना नहीं चाहते। रामचन्द्र और भी व्यथित हुए बोले- माँ। आप शीघ्र बताइये, क्या बात है? मैं पिताश्री को प्रसन्न करने के लिए आग में भी कूद सकता हूँ, विषपान भी कर सकता हूँ। पिताश्री केवल मेरे पिता ही नहीं गुरु भी हैं। मैं उनकी हर आज्ञा का पालन करूँगा, त्रिपुरारी इसके साक्षी हैं। मैं अपनी प्रतीज्ञा पूर्ण करूँगा।

मोहि कहु मात तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन।।

कैकयी बोली- राम। महाराज ने मुझे दो वरदान दिये हैं। उन्हें पूर्ण करने में अब संकोच कर रहे हैं। संकोच का कारण भी राम तुम्हारा मोह है। पहला वरदान तुम्हें चौदह वर्षों का वनवास और दूसरा भरत का राज्याभिषेक है। यह सुनकर श्रीराम के मन में कोई संकोच या भय या अन्य कोई कल्पना नहीं उठी। अपितु।

मन सुसुकाई भातुकुल भूषण। बोले वचन विगत सब दूषण।
सुनु जननी सोई सुत बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।।

माता, आपकी संमति से पिताश्री की आज्ञा पालन में मुझे सुख मिलेगा। आप मेरी ओर से पिताजी को आश्वासन दे दें कि मैं शीघ्र वन जाने को तैयार हूँ। राम ने पुन: पिताश्री से कहा-

तात कहउं कछु करउँ ढिटाई, अनुचित छमा जानि लरिकाई।

दशरथ फिर भी नहीं बोले। श्रीराम माता कौशल्या से विदा लेने चले गये। दशरथ से नहीं रहा गया और बोले-

कहा न पावक जारि सक, का न समुद्र समाय। का न करे अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय।।

वे राम का स्मरण कर, उनकी पितृभक्ति के शब्दों का स्मरण कर शोकसागर में डूब गये और फूट-फूट कर विलाप करने लगे। लेकिन राम का मुखमण्डल वैसा ही था जैसा राज्याभिषेक का समाचार सुनने पर था। यद्यपि समस्त भूमण्डल पर राज्य करने की उनमें क्षमता है, शौर्य है फिर भी पिता की आज्ञा पालन में वन जाने को तत्पर हैं। धन्य है राम की पितृभक्ति।

श्रीराम माता कौशल्या के पास पहुँचे। भगवान का पूजन कर रही थीं। राम ने जब प्रणाम किया तो उन्होंने अपने सीने से लगा लिया और बोली- सर्वप्रथम तुम अपने सत्य प्रतिज्ञ धर्मात्मा पिता के दर्शन करो वे अभी तुम्हें युवराज पद पर अभिषिक्त करनेवाले हैं। कौशल्या ने उन्हें आसन दिया कुछ भोजन खाने का आग्रह किया, तब राम बोले- माता, मुझै अब सुन्दर भोजन और बहुमूल्य आसनों की आवश्यकता नहीं। मैं कन्दमूल फल खाऊंगा, चटाई पर सोऊंगा क्योंकि मैं युवराज नहीं- अब वनराज बना दिया गया हूँ-

पिता दीन्ह मोहि कामन राजू जहं सब भाँति मोर बड़ काजू।
आयसु देहि मुदित मम माता, जेहि मुदि मंगल कानन जाता।।
वचन विनीत मधुर रघुवर के, सर सम लगे मातु उर करके।

श्रीराम ने विनम्र शब्दों में बताया कि उन्हें चौदह वर्षों तक वनवास में रहने की आज्ञा मिली है। कौशल्या इस आदेश को सुनकर विह्वल हो गयी, भूमि पर गिर गई। चेतना आने पर गम्भीर होकर बोली- राम। यह आज्ञा केवल पिताजी की है तो माँ का प्रथम स्थान होने के कारण मैं इस आदेश का पालन करने को निषेध करती हूँ। मातरं प्रमं वन्दे, प्रथम गुरु जननी होती है। गुरु की आज्ञा सर्वोपरी है अत: यदि यह केवल महाराज की आज्ञा है तो मैं कहती हूँ कि यह पालनीय नहीं है। यदि माता और पिता दोनों की आज्ञा है तो-

जो पितु मात कहेउ वन जाना, तो कानन सत अवध समाना।।
माताकूँ समुझाइ बन्धुकूँ शिक्षा दीन्हीं। जस-तस धर्म बताई जननितें अनुमति लीन्हीं।।
समाचार तेहि समय सुन सीय उठी अकुलाय। जाइ सासु पद कमल जुग, बंदि बैठि सिर नाय।।

माता कौशल्या की चरण वन्दना कर सिया बैठ तो गई किन्तु अन्तर्द्वन्द होने लगा, विचार करने लगीं।

चलन चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृति सन होइहि साथू।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतवु कछु जाय न जाना।।

श्रीराम जब वन जाने के लिए तैयार हुए, पिता की आज्ञा से तो सीता भी साथ चलने के लिए तैयार हो गई। श्रीराम ने उन्हें (सीता को) बहुत समझाया किंतु वह अपने निर्णय पर दृढ़ रहीं। उन्होंने तर्क दिया- उन्हें जब सुकुमारी होने के कारण जंगल जाने से रोका जाने लगा तो उन्होंने व्यंग्यपूर्वक कहा-

मैं सुकुमारी नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहं भोगू।

सीता वाहिरूप से शान्त दिखाई देती है किन्तु मानसिक द्वन्द चल रहा है। अपने पदनखों से भूमि कुरेदने लगीं तो

पायल के नूपुर मधुर ध्वनि में रोने लगे। कहने लगे कि ऐसा मत करना कि हमें इन चरण कमलों के स्पर्श से पृथक कर दो। हम इनसे विलग होकर रह नही पायेंगे। कौशल्या सीता के आंसुओं को देखकर अपना कष्ट भूलकर बोली राम। सीता सुकोमल है। कभी पलंग या झुले से नहीं उतरी हैं सबको प्रिय भी हैं और यह तो बड़े ही कोमल स्वभाव की हैं- बंदरों का चित्र देखकर डर जाती हैं।

सिय बन बसहि तात केहि भाँति। चित्रलिखित कपि देख डेराती।।

किन्तु सीता के मन में ज्वालामुखी धधक रहा था। उसकी मनस्थिति का आभास इस प्रकार है-

जी तो पलपल घुटता था पर मुंह खोल न सकती थी।
ताला डाला था लज्जा ने परवस थी बोल न सकती थी।
अखियाँ जलभरी घटायें थीं देखें थीं बाट बरसने की।

माता कौशल्या ने जानकी से पूछा-

बेटी बेटी सौगन्ध तुम्हें बतलाओ तो चिन्ता क्या है। लज्जा को दूर करो सीते कह डालो आशंका क्या है।

सीता को सहारा मिल गया बोली-

लज्जा को कैसे दूर करूँ यह तो नारी का गहना है। पर माता आज्ञा देती है तो कहती हूँ जो कहना है।

जानकी ने हृदय उद्‌गार प्रकट किये-

प्राणनाथ तुम बिनु जगमांही मोकहु सुखद कतहु कछु नाहीं।
जिय बिनु देह नदी विनु बारी, तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद विमलविधु बदनु निहारें।

अम्बा कौशल्या जानकी का संकल्प जानकर अवाक रह गई। ऐसी सुकोमल एवं भीरु स्वभाव की राजकुमारी बन में रहने योग्य नहीं है।

करि केहरि निसिचर चरहि दुष्ट जन्तु बन भूरि। विश वाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवन मूरि।।

वन की ऐसी विषमताओं में जानकी रहने योग्य नहीं है उसके लिए यही श्रेयस्कर होगा कि मेरे पास रहकर सहारा बनें। श्रीराम ने भी यह समझाया कि महलों में रहकर सास सुसर की सेवा करना ही उनका परम लक्ष्य होना चाहिए। बन की विपत्तियाँ तुमसे सहन नहीं होंगी। मेरा और तुम्हारा दोनों का हित एवं कल्याण इसी में है। राम ने स्पष्ट शब्दों में कहा-

आपन मोर नीक जों चहहू, वचन हमार मानि गृह रहहू।
एहि ते अधिक धरमु नहीं दूजा, सादर सास ससुर पद पूजा।
जो हठ करहु प्रेमवस बामा, तो तुम दुख पावउ परिनामा।।
कुस कंटक मग कांकर नाना, चलव पयादेहिं विनु पदत्राना।।
भालु वाघ बृक केहरि नागा, करहिं नाद सुनि धीरज भागा।।
भूमि शयन बलकल बसन, असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल।।

जानकी, वन के दुर्गम कंटकाकीर्ण मार्ग, भोजन के लिए कन्द, मूल फल और वह भी समय-असमय प्राप्त होने पर मिलेंगे और कभी निराहार भी रहना पड़ सकता है। नदी, नाले, पहाड़ों की यात्रा उसमें वन्य पशुओं का भय। नर-आहार

करने वाले असुर जिन्हें देखकर ही बड़े-बड़े वीर पुरुषों का धैर्य छूट जाता है तुम तो स्वभाव से ही भीरु हो। राम द्वारा भयावह वन दृश्य उपस्थित करने पर भी जानकी नहीं डरी। साथ चलने का आग्रह ही करने लगीं तो राम पुन: बोले-

मैं जान रहा हूँ पति वियोग तुम नहीं प्रिये सह सकती हो।
पर निज आत्मा में बल लाओ बल होगा तो सह सकती हो।

आतुर जानकी ने शीघ्र उत्तर दिया- प्रभो।

तब शीघ्र जानक बोल उठी आत्मा में बल लाऊँ क्यों कर।
जब मेरी आत्मा के बल हैं केवल मेरे पति परमेश्वर।।
अब लाज छोड़कर कहती हूँ चरणों के साथ चलूँगी मैं।
यदि आप भभूत रमाओगे तो स्वामी भस्म मलूँगी मैं।।
जीवात्मा जब चल देता है तो तन का कल्याण कहाँ।
ऐसे ही समझो प्राणनाथ जब नाथ नहीं तो प्राण कहाँ।।

राम ने समझाने का अन्तिम प्रयास किया-

सहज सुहृद गुरु स्वामी, सिख जो न करइ सिर मानि। सो पछिताइ उघाइ उर अबसि होइ हित हानि।।

लेकिन सीता ने भी अपना अन्तिम निर्णय सुना दिया-

प्राणनाथ करुणायतन सुन्दर सुखद सुजान। तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान।।

श्रीराम ने समझ लिया कि जानकी अपनी हठ पूर्ण करेगी या तन त्याग देगी तब-

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु वन साथा।।

लक्ष्मण को जब यह विश्वास हो गया कि श्रीराम और जानकी दोनों वन में जा रहे हैं तब माता सुमित्रा से आज्ञा लेने पहुँच गये। लक्ष्मण ने श्रीराम सीता के साथ वन जाने की आज्ञा मांगी। सुमित्रा हर्ष सहित बोली-

तात तुम्हार मात बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।
अबध तहाँ जहँ रामनिवासू। तहँई दिवस जहाँ भानुप्रकाश।।
पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगति जासु सुत होई।।

सुमित्रा ने अपने को धन्य माना कि उनका पुत्र प्रभुराम की सेवा में रहेगा। भगवत कैकर्य ही संसार में प्रमुख हैं। लक्ष्मण तुरन्त राम के समीप पहुँचे और साथ चलने का आग्रह किया तो राम बोले- लक्ष्मण तुम यहीं रहकर माता पिता और राज्य की रक्षा करो। भरत और शत्रुघ्न भी यहाँ नहीं है। लक्ष्मण ने एक ही उत्तर देकर मौन ले लिया।

गुरु पितु मातु न जानउं काहू। कहउं सुभाउ नाथ पति आहू।।
मोरे सबई एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरयामी।।

लक्ष्मण अपने महल में पत्नी उर्मिला के पास गये। लक्षण पत्नी का चरित्र अप्रकट है, कहीं इनका वर्णन, त्याग का उल्लेख तक नहीं, किन्तु मूक स्वार्थ त्याग का दर्शन अद्भुत है।

राम मौन हो गये। लक्ष्मण साथ हो गये। कोप भवन में राम लक्ष्मण और जानकी महाराज से विदा लेने गये। महल में कोहराम मचा था। प्रजा महल के बाहर चारो ओर एकत्र थी। विभिन्न प्रकार से कैकयी और महाराज की निंदा कर रहे थे।

राम कहाँ? लक्ष्मण कहाँ? बड़भागी सीया कहाँ। कौशल्या बोली जाऊँ सङ्गमहँ, जाइँ लाल मेरो जहाँ।।

तीनों को दशरथ ने आते देखा तो खड़े हो गये। उनकी ओर दौड़े उनसे मिलने के लिए लेकिन विधि की विडम्बना कि कुछ दूर चलकर ही गिर गये, अचेत हो गये। महल के अनुचर दास, दासी सब हा-हाकार करने लगे। राम लक्ष्मण का हृदय भी द्रवित हो गये। तीनों ने मिलकर दशरथ जी को उठाया- पलंग पर लिटाया। जब होश आया तो श्रीराम ने लक्ष्मण सीता सहित वन जाने की आज्ञा माँगी तो दशरथ शिशु की भाँति चीत्कार कर उठे। राम ने ढाँढस बँधाया। दशरथ बोले राम मैं तो कैकयी के मोह के बन्धन में फँसकर अनर्थ कर रहा हूँ लेकिन तुम यह सब क्यों सहन कर रहे हो- मुझे बन्दी बनाकर आप पृथ्वी का राज्य करो।

अहं राघव कैकय्या वरदानेन मोहित:। अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजानिगृह्यमाम्॥

श्रीराम ने प्रार्थना की कि महाराज। आप हजारों वर्षों तक भूतल पर राज्य करें। मैं आपकी प्रतीज्ञा पूर्ण कर १४ वर्ष बाद लौटकर आपके दर्शन करूँगा। दशरथ ने राम को छाती से लगा लिया और फिर मूर्छित हो गये। उपस्थित जन से रो पड़े। सुमन्त भी रोते-रोते मूर्छित हो गये। दशरथ जी को जब चेतना आयी तो सुमन्त से बोले- सुमन्त, राम को जब जाना ही है तो मेरी चतुरंगिनी सेना, राज्य का खजाना सब राम के पीछे भेज दो- और सुनो अच्छे शिकारी जिन्हें वन का ज्ञान हो उनके साथ भेज दो। हां अन्न भण्डार और मंत्रीगण भी साथ जायेंगे।

कैकयी के होठ सूख गये। ईर्ष्या से जलने लगी। बोलीं- ऐसे निर्धन एवं सेना वैभव रहित राज्य को लेकर भरत क्या करेंगे। दशरथ आवेश में आ गये बोले- कुलघातिनी यह सब तुम्हारे वरदान में नहीं है। यह सब माँग लेती। किन्तु कैकयी पर इस आवेश का कोई असर नहीं हुआ। और स्वयं शीघ्र बलकल वस्त्र ले आई और तीनों को पहनने का आदेश दिया। राम और लक्ष्मण ने तो वस्त्र पहन लिए किन्तु उन्हें सीता के लिए खड़ी ही रहीं क्योंकि उन्हें पहनना नहीं आता था। सीता की आँखें भर आई अपनी असमर्थना पर, पराधीनता का अहसास कर वे उदास हो गई। सारा रनिवास चिल्लाने लगा कि सीता बलकल नहीं पहनेगी, ये वन में नहीं जायेंगी। उपस्थित जनसमूह रो पड़ा। सीता की सुकुमारता, अनभिज्ञता का अनुभव कर श्रीराम ने उन्हें वस्त्रों के ऊपर ही वस्त्र पहना दिये। आभूषण सब उतार दिये, किन्तु हाय। कैसी पाषाण हृदय थी कैकयी तनिक न पसीजी अपनी नवविवाहिता कुलवधू को देखकर। निष्ठुरता जैसे साकार होकर कैकयी के रूप में प्रकट हो गई हो।

इसी अवसर पर अतिविलम्ब से प्रतीक्षा कर रहे गुरुवशिष्ठ भी वहीं पधारे और सबकुछ देख कुछ क्षण के लिए निस्तब्ध रह गये। सीता को देख गुरु वशिष्ठ की भी आँख सजल हो गई। वे बोले- कैकयी। कुलबधु को बलकल पहनाना अनुचित है। तुम इनके ये बलकल वस्त्र उतार कर उत्तम वस्त्र धारण कराओ। तुमने वनवास राम का मांगा है, सीता का नहीं- ये तो सब प्रकार के आभूषण एवं उत्तम वस्त्र पहनकर ही राम की अनुचरी बनेंगी।

किन्तु निष्ठुरता, निर्भावता, निर्लज्जता की मूर्ति कैकयी संज्ञाहीन खड़ी देखती ही रहीं। महाराज दशरथ ने भी उसे डांटा पर वह निर्विकार की भाँति खड़ी रही। सीता ने भी बलकल नहीं उतारे क्योंकि वे पति के अनुरूप रहना चाहती थी।

गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से उनकी पत्नी अरूंधती ने सीता का श्रृंगार किया। तीनों ने आज्ञा लेकर जब महल से प्रस्थान किया तो महल के कण कण में करुणारस व्याप्त हो गया। महल के पक्षी भी चीत्कार करने लगे। दशरथ ने चुपके से महामंत्री सुमन्त से कहा कि तुम राम को रथ में ले जाओ और चार दिन वन में घुमाकर वापिस ले आना यदि किसी कारण राम न आवे तो जनकनन्दिनी को अवश्य ले आना। कहते कहते अचेत हो गये। चेतना लौटी तब तक राम महल के बाहर पहुँच गये। दशरथ दौड़े अरे राम, हे सीता, अरे लक्ष्मण सुनो। वे तीनों रथ में बैठ गये। रथ चल दिया। दशरथ और कौशल्या आदि पीछे दौड़े। दशरथ ने कहा सुमन्त रथ रोको। श्रीराम ने कहा महामंत्रीजी रथ मत रोकना। इसकी गति तेज

कर दो रथ नहीं रुका। दशरथ पछाड़ खाकर गिर गये। कौशल्या सुमित्रादेवी ने उन्हें सम्भाला और कौशल्या उन्हें अपने महल में ले गयी। महल में ही नही समस्त अयोध्या में मौत का सन्नाटा छा गया। दशरथ ने कैकयी का त्याग किया।

दशरथ जी को जब चेतना आयी तो फिर राम हा राम, हा सीता कह कर विलाप करने लगे। कौशल्या अम्बा ने धीरज बँधाया। दशरथ को याद आया श्रवणकुमार का, अनायास अज्ञानवश, अनजाने में हुआ वध और उनके बिलखते अंधे माता-पिता। स्मरण आया उसका श्राप। उसी परिवेश में आज पुत्र वियोग हो गया है। समय निकट आ गया है। जीवन दीप बुझने वाला है। उन्हीं विचारों में सोच दशरथ फिर अचेत हो गये। रथ चल दिया। पुरवासी रथ के पीछे श्रीराम, हे रमा का उद्घोष करते चलने लगे। रात्रि को सोते पुरवासियों को छोड़ राम निकल गये। जब राज्याभिषेक की बेला आई तब उन्होंने कैकेयी को दिये गये अपने पिता के वचन की रक्षा के लिये पत्नी के साथ वन-गमन किया।

सीता तो भक्ति है। वह सदैव श्रीराम की सेवा में रहना चाहती है। वह वन में भी राम के संग चलीं। सब दुख सहे लेकिन राम का संग नहीं छोड़ा।

सीता सचिव सहित दोउ भाई, श्रृंङ्वेरपुर पहुंचे जाई। उतरे राम देवसरि देखी, कीन्ह दण्डवत हरष विशेषी।।

नित्य कर्म से निवृत्त हो आगे जाने की योजना बना रहे थे। उसी समय निषादराज अपने साथियों सहित भेंट लेकर उपस्थित हुए। कुशल क्षेम के बाद निषाद ने अपने नगर चलने का आग्रह भी राम से किया किन्तु श्रीराम ने उसे स्वीकार नहीं किया। निषाद के अनुचरों ने अशोक वृक्ष के नीचे सूखे पत्तों एवं घास का बिछौना तैयार किया। उसी पर राम-सिया ने शयन किया। निषाद ने पहरे की व्यवस्था कर दी किन्तु प्रहरी लक्ष्मण निषाद के साथ वीर आसन में बैठे बातें करते तृण शैया पर शयन करते देख निषाद को परम विषाद हुआ और इस विषाद का हेतु उसने कैकयी को दोषी बताया-

कैकयनन्दिनी मंदमति कठिन कुटिल पनु कीन्ह। जेहि रघुनन्दन जानकिहिं सुख अवसर दुख दीन्ह।।

निषाद को चेतना यथार्थ थी किन्तु लक्ष्मण जी ने इसका समाधान इस प्रकार किया।

काहू न कोउ सुख दुख कर वाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

निषादराज। भले बुरे, मित्र और शत्रु, सुख और दुख सब अपने कर्मानुगत प्राप्त होते है। इसमें किसी का कोई दोष नहीं।

निषाद ने जिज्ञासा की क्या श्रीराम ने भी ऐसे कोई कर्म किये हैं जिनके परिणामस्वरूप यह पत्तों की सेज शयन हेतु मिली है। लक्ष्मण मन मगन होकर बोले- निषाद जी। श्रीराम प्रभु को इन पत्तों की सेज पर विश्राम करने में किसी प्रकार का खेद नहीं है। कष्ट तो देखकर आपको हो रहा है अत: निश्चित ही आपके कर्म कुछ इस प्रकार के होंगे जिसके कारण आपको कष्ट हुआ है। श्रीराम प्रभु तो वन प्रवास को वनवास नहीं समझ रहे हैं वो तो अपने आपको वन का राजा मानकर यहां निवास कर रह हैं। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू इस सत्य केा जान लेने पर किसी प्रकार की शंका होगी ही नहीं-

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल।।

अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमन्त नयन जल छाये।।

नित्यकर्म से निवृत्त हो श्रीराम ने निषाद को बड़ का दूध लाने की आज्ञा दी। दूध आने पर उन्होंने अपनी तथा लक्ष्मण की जटायें बना लीं। सुमन्त को आश्चर्य तो हुआ ही आन्तरिक पीड़ा भी हुई। उन्होंने करबद्ध हो श्रीराम से कहा- आप यह क्या कर रहे हैं श्रीराम। मुझे तो महाराज की आज्ञा थी कि आप को गंगा स्नान करा अयोध्या वापिस ले जाऊँ। आप धर्मात्मा महाराजा की आज्ञा का पालन करें। सुमन्त विह्वल हो श्रीराम के चरणों में पड़ गये।

यह आप क्या अनर्थ कर रहे हैं महामंत्री सुमन्त जी। मैं तो धर्मात्मा पिताश्री की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। सत्य की

रक्षा ही सबसे बड़ा धर्म है। **धरम न दूसर सत्य समाना।**

धर्म की रक्षा के लिए महाराजा शिबि, हरिश्चन्द्र, रतिदेव, महात्मा दधीचि आदि ने अपार कष्ट सहन किये। सत्य का अनुशरण ही धर्मशास्त्रों में सर्वोपरि माना गया है। सत्य परं धीमहि। सत्य के आचरण हेतु ही मैं वन में आया हूँ। आप पिताश्री को समझा दें कि वे हमारी ओर से किसी तरह चिन्तित न हो।

कह सुमन्त पुनि भूप सन्देसु, सहि न सकहि सिय विपिन कलेसू।
जेहि विधि अवध आवफिरि सीया, सोइ रघुवीर तुम्हरि करनीया।।

सुमन्त ने महाराज का दूसरा सन्देश सुनाया कि जनकनन्दिनी को वापिस अयोध्या भेजना तुम्हारा दायित्व है यह तुम ही कर सकते हो। राम ने जानकी को भली भाँति आदेशित किया कि वे सुमन्त जी के साथ लौट जायें। जानकी ने भी आत्मविश्वास के साथ अति विनम्र होकर अनुरोध किया।

प्रभु करुणामय परम हितैषी, तनु तज रहति छाँह किमि छेकी।।
प्रभा जाइ कँह भानु विहाई, कहँ चन्द्रिका चन्द्र तज जाई।।

प्रभु, चन्द्रमा। से उसकी चाँदनी सूर्य से उसका प्रकाश, शरीर से छाया, भूमि से गन्ध पृथक नहीं हो सकती तब सेविका स्वामी से विलग कैसे हो सकती है। सुमन्त जी से जानकी ने कहा- धर्मात्मा सुमन्त जी। आप मेरे ससुर समान है परन्तु कुछ कहने की धृष्टता कर रही हूँ। आप क्षमा करें अपने पिता के वैभव की छटा देखी है। जिनकी चरण चौकी में सर्व शिरोमणि मणियाँ जड़ी है जो अच्छे नरेशों के मुकुट में भी नहीं होती है। मेरे ससुर चक्रवर्ती सम्राट अवध नरेश का चोदह भुवनों में सम्मान है। इन्द्र भी उन्हें अपना सिंहासन देते है। माँ से अधिक स्नेहमयी सास है किन्तु श्रीरघुनाथजी की चरणरज के बिना ये सब स्वप्नवत् हैं। मुझे भयंकर वन, हिंसक जन्तु नराहारी असुर, नदी, सरोवर, झील और भील भी श्रीरघुनाथजी के साथ सुख देनेवाले होंगे। इनके साथ मुझे न भ्रम है न श्रम है अत: आप मेरे लौटने का विचार त्याग दें। मुझे क्षमा करें। पिताश्री और माताश्री से भी हमें क्षमा करने की मंगल कामना करें।

सुमन्त जब लौटे तो लौट-लौट कर श्रीराम को निहारने लगे। चरणों ने आगे बढ़ने में विद्रोह कर दिया, आँसुओं ने न रुकने का संकल्प ले लिया, नेत्र राम से हटने को मना करने लगे। सुमन्त ने दोनों हाथों से आँखें बन्द कर लीं और रथ की ओर दौड़े-उनका कर्त्तव्य उन्हें पुकार रहा था। सुमन्त की यह दशा देख निषाद भी विषाद में पड़ गये। घोड़ों की जब रास खींची तो हिनहिना लगे- राम की ओर निहारने लगे। सुमन्त ने चावुक से उनके कर्त्तव्य का भान कराया। निषाद कल्पना करने लगे कि जब पशु-पक्षियों की यह दशा है तो राजा और रानी, अयोध्या की प्रजा इन आनन्दमूर्ति के वियोग को कैसे सहन करते होंगे।

सुमन्त अयोध्या की तरफ लौटे, श्रीराम गंगा के तट पर पहुँचे और गंगा पार करने के उद्देश्य से केवट से नाव लाने को कहा किन्तु- **मांगी नाव न केवट आना। कहहु तुहार मरम मैं जाना।।**

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।
तरनिउ मुनि घरनी होई जाई। वाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।

सुनने में बड़ा असहनीय सा लगता है कि श्रीराम प्रभु ने आदेश दिया और साधारण व्यक्तित्व ने आदेश की अवहेलना कर दी। केवट का ऐसा साहस कि भगवान के मांगने पर नाव नहीं लाया। (अद्भुत साहस) करबद्ध होकर कहने लगा- प्रभु। मैं नाव नहीं ला सकता क्योंकि-

एहि प्रति पालउँ सवु परिवारु, नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।

जो प्रभु अबसि पार जा चहहू, मोहि पद कमल पखारन कहहू ।।

यह नाव ही मेरे समस्त परिवार के पालन का साधन है और मैं अन्य कोई कार्य जानता नहीं, मुझे पहले आप आज्ञा दें कि मैं आपके चरण पखार लूँ तब नाव लाऊँगा और आपको चढ़ाऊँगा क्योंकि यह नाव काठ की बनी है और काठ पत्थर से कठोर नहीं होता- जब आपके चरण के स्पर्श से पत्थर से सुन्दर स्त्री उत्पन्न हो जाती है। यह नाव तो कोमल काठ की है यह भी बदल गई तो मेरी रोजी चली जायेगी। प्रभु मुझे स्त्री की आवश्यकता नहीं- रोजी की जरूरत है जिससे मेरे परिवार का पालन हो। **एहि प्रतिपालहु सब परिवारू ।**

और आपसे प्रभु मैं उतराई भी नहीं लूँगा- आप केवल मुझे चरण धोने की आज्ञा दें-

पद कमल धोइ चढ़ाई, नाव न नाथ उतराई चहौ ।

सुन केवट के वैन प्रेम लपेटे अटपटे । विहँसे करुणा ऐन चितव जानकी लखन तन ।।

श्रीराम के नाव मांगने पर केवल विनयपूर्वक कहता है कि मैं अपनी नाव नहीं लाऊंगा। मैं आपके चरणों का प्रताप देख चुका हूं। यदि मेरी नाव मेरे हाथ से निकल गई तो मैं उसे कहां पाऊंगा? केवल कृपालु भगावन श्रीराम के पास आया और कांपता हुआ बोला कि आपके चरणों के स्पर्श से तो पत्थर भी उड़ने लगते हैं तो इसके उड़ने में कितनी देर लगेगी? कौन जाने यह भी किसी की पत्नी हो और अब यह लकड़ी के रूप में हो तों आपके चरणों के स्पर्श से अहिल्या की भाँति इसका भी काठ शरीर छूट जाएगा। यह गंगा छोड़कर चली जाएगी। मेरी तो सारी जीविका (वृत्ति) यही है। हे श्रीराम, मेरी इस जीविका को न छुड़ाइए। हे प्रभु, पहले मुझे अपने चरणों की धूल धो लेने दीजिए, फिर आप मेरी नाव पर चढ़ें।

केवट के इतने लम्बे तर्कयुक्त अनुनय सुनकर श्रीराम तो मुस्करा गये किन्तु लक्ष्मण को रोष और जानकी को आश्चर्य हो रहा था। इसलिए श्रीराम ने जानकी और लक्ष्मण की ओर निहार कर यह निर्देश दिया कि मेरी भाँति प्रसन्न हो जाओ। लक्ष्मण का रोष और राम का निर्देश जानकर ही केवट ने कहा-

वरु तीर मारहुँ लखनु पै, जब लगि न पाय पखारिहौं । तब लग न तुलसीदास नाथ, कृपाल पारु उतारिहौ ।।

प्रभु राम केवट का मर्म जान गये थे इसलिए मुस्कुराये। जानकी और लक्ष्मण नहीं समझ पाये।

केवटहिं परम राम प्रभु जाना ।

राम प्रभु ने यह समझ लिया कि केवट में वे सब अबगुण नहीं है जिससे जीव नरकगामी होता है- अर्थात् परम भागवत है।

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।

केवट कामी नहीं है इसलिए अहिल्या की तरह नाव को स्त्री बन जाने से भयभीत है। केवट में क्रोध का लेश भी नहीं है। अन्यथा नाव का स्वामी होकर यात्रियों से करबद्ध होकर दास की तरह प्रार्थना नहीं करता।

केवट में लोभ भी नहीं है। स्पष्ट कहा है उसने- **ना न उतराई चहो ।**

तो नारकीय जीव के गुणों का अभाव है उसमें। वह परम भागवत है अत: मोक्ष पद का अधिकारी मेरा भक्त है अत: भक्त को देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं- पुत्र की अटपटी बात सुनकर पिता गद्‌गद् हो जाता है। वैसे ही जगतपिता पुत्र की अटपटी वाणी सुनकर गद्‌गद् हो गय। मुस्करा गये।

केवट में मद या अहंकार भी नहीं है- बर तीर मारहु लखन यह जानकर भी उसे क्रोध नहीं आया- विचलित नहीं हुआ बल्कि प्रसन्नचित्त हो उससे निवेदन किया कि इसमें भी मेरा हित है-

१) जनम-जनम मुनि जतन कराहीं अन्तराम कह आवत नाहीं और साक्षात परमेश्वर प्रभु श्रीराम के सन्मुख रहते प्राण त्यागूँगा-

२) प्राण त्याग दूँगा इतना ही नहीं अगला जन्म रघुकुल में होगा। पूर्व जन्म में आपके भय से तो मनुष्य देह मिली। अब आपके बाण से मरूँगा तो आपका ही कुल प्राप्त होगा।

३) आपके हाथों मरूँगा तो मेरा सारा परिवार आपकी शरण में ही विलाप करेगा आप सान्त्वना देने के लिए मेरी अर्थी बनायेंगे उसमें कंधा भी लगायेंगे। बड़े-बड़े भक्त अन्त समय आपके दर्शन को तरसते हैं मैं दर्शन तो करूँगा ही यह पार्थिव शरीर भी शमशान तक आपके कंधों पर जायेगा।

४) जब आप मेरी मृत्यु का कारण बनेंगे, मेरी अन्त्येष्टि में शामिल होंगे तो आपको मेरे अन्तिम संस्कारों तक यहाँ रुकना पड़ेगा। इस अन्तराम में मेरे परिवार और पुरवासियों को आपके सहवास का आनन्द तथा उद्धार का मार्ग मिल जायेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण का तरकस से निकला आधा तीर हाथ से छूटकर तरकस में चला गया। यह थी केवट की निष्काम भक्ति जिसके कारण आनेवाली मृत्यु भी टल गई। यही था केवट का रहस्य जिसे प्रभु श्रीराम समझ गये। कहेहु तुम्हार मरम मैं जाना और प्रसन्न हो बोले-**कृपासिन्धु बोले मुसुकाई, सोइ करू जेहिं तव नाव न जाई।।** तब-

केवट राम रजायसु पावा, पानि कठवता भरि लेई आवा।।

पद पखारि जल पानु करि आपु सहित परिवार। पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।

महात्मा केवटका- नहीं, नहीं, उनके पूर्वजों एवं उनके सम्पूर्ण परिवारका जीवन धन्य हो गया। वे कृतार्थ हो गये। अनन्तकालीन जन्म-जरा-मरणके कठोर पाशसे वे सहज ही मुक्त हो गये।

प्रभु श्रीराम ने केवट की भावना जान कृपापूर्वक चरण पखारने की अनुमति दे दी, केवट ने शीघ्र ही जलपात्र लाकर सरयूजल से चरण धोए और आचमन कर आनन्दातिरेक से कृतकृत्य हो प्रभु को नाव पर विराजमान कर सरयू के उस पार उतार दिया।

तब गनपति सिबि सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ। सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ।।

केवट प्रेम प्रसंग पूर्ण कर प्रभु राम निषादराज के विशेष आग्रह पर, साथ ले, लखन एवं सीता सहित आगे वन में चले। आगे चलकर प्रयाग इलाहाबाद में (गंगा-यमुना, सरस्वती) के संगम पर भारद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। आश्रम में भोजन एवं विश्राम कर प्रात: ऋषि का आशीर्वाद ले आगे चले। विभिन्न प्रकार की चर्चायें ग्राम्य बधुओं में इनके दर्शन करने पर होती थी। निषाद को भी प्रेमपूर्वक विदाकर तीनों ही राम, लक्ष्मण एवं सीताजी सहित आगे चले।

तीर्थराज प्रयागकी तीर्थस्थली चारों फल प्राप्त करनेकी तपस्थली एवं प्रेमस्थली है।

भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान- गंगा और यमुना, दोनों हिमालय से निकलीं। लेकिन गंगा ठहरी कुछ गोरी और यमुना कर रंग काला। गंगा को अपनी शुभ्रता का अभिमान हुआ। वह ऊपर-ऊपर चली। बेचारी यमुना अपने श्यामल वर्ण के कारण उससे कुछ दूर-दूर चली। लेकिन गर्वीली गंगा ने आगे चलकर देखा कि बिना यमुना के वह शतमुख से सागर में नहीं मिल सकेगी। इसलिए नम्रभाव से गंगा रुकी। ऊधर से यमुना आई। गंगा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत करते हुए कहा, यमुना बहन, तू मेरे पास आ। मैंने तेरा रंग देखकर तुझे हेय माना। पर तेरे किनारे पर कृष्ण भगवान ने भक्ति की वर्षा की, छोटे-बड़ों को एक किया, अपनी वंशी से एकता का गान किया, मिल-बांटकर खाने की प्रेरणा दी। अरे, तेरी महिमा के क्या कहने। यमुना न गद्‌गद् स्वर में गंगा से यह सुनकर कहा, क्यों बहन, तुम मेरी बड़ाई करती हो, किन्तु तुम्हारी महिमा तो अपरम्पार है। मेरे किनारे पर भक्ति का विकास अवश्य हुआ, पर तुमहारे किनारे से ज्ञान का प्रकाश फैला। भगवान पशुपतिनाथ तुम्हारे किनारे पर साधना-लीन हुए। असंख्य ऋषि-मुनि तुम्हारे ही तट पर तपस्या करते हैं। राजा-महाराजा अपना राजपाट त्यागकर ब्रह्मचिंतन करते हैं। बहन, तुम पूर्ण ज्ञान हो। तभी गुप्त रहनेवाली सरस्वती बोली,

भक्ति और ज्ञान आवश्यक हैं, पर बिना कर्म के वे अधूरे हैं। इसलिए भक्ति का ज्ञान से भक्ति-ज्ञान का कर्म से मिलन अनिवार्य है। फिर क्या था। ज्ञानमयी गंगा, भक्तिमयी यमुना और कर्ममयी सरस्वती बाहें फैलाकर एक-दूसरे के आलिंगन में बंध गई। तीनों नदियों का संयम ज्ञान, भक्ति और कर्म की धाराओं का संगम हैं। भारतीय संस्कृति का यही अधिष्ठान है।

भगवान श्रीराम ने नाव से उतरकर ऋषियों-मुनियों, योगी-यतियों का दर्शन करते हुए पंचवटी में आश्रम बनाया।

राम लखन सिय रूप निखारी, पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ।।
सजल विलोचन पुलक शरीरा, सब भए मगन देखि दोउ वीरा ।।
आगे राम लखन पुन पाछे, तामस वेष विराजत काछे।
उभय बीच सिय सोहति कैसे, ब्रह्म जीव विच माया जैसे ।।

इस प्रकार वृक्षों के नीचे रात्रि विश्राम करते कन्दमूल फल खाते वन यात्रा चल रही है।

जब श्रीराम लक्ष्मण और सीता पैदल ही वन में जा रहे थे, तब गांव की स्त्रियां आ गईं। वे आपस में कहने लगीं कि सखी बताओ कि ये राही कौन हैं? इनके साथ त्रिभुवन को मोहने वाली यह अत्यन्त सुंदर स्त्री कौन हैं? यह तो अत्यंत सुशील और सुलक्षणा है। ऐसी जोड़ी ब्रह्माजी भी नहीं रच सकते। इनके उपमा किससे दें। पता नहीं किसने मनुष्य रूप धारण किया है? इसके बाद स्त्रियां सीताजी के पास जाकर उनसे पूछने लगीं कि इन दोनों में से तुम्हारे पति कौन हैं? सीताजी ने कमल नैन और कामदेव की मूर्तिवाले श्रीराम को इशारे में बता दिया। वे सारी स्त्रियां भी साथ-साथ दूर तक गईं। उनका मन अपनी पुरी को लौटने को नहीं चाहता था। तुलसीदासजी कहते हैं कि अंत में बिछुड़ते हुए वे आहें भर-भरकर रोने लगीं।

दूषित स्थान हो तो देश के गुणों से अच्छे अच्छों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक बार राम, लक्ष्मण, सीता वनवास में जा रहे थे। स्थान के प्रभाव से लक्ष्मण राम के प्रति व सीताके प्रति अण्ड-बण्ड वचन बोलने लगे। राम चित्रकूट से वनवास के समय अत्रि मुनि की आज्ञा से पुष्कर क्षेत्र में गये और मार्कण्डेय मुनि की आज्ञा से पुष्कर क्षेत्र में अपने भीतर दशरथ का श्राद्ध किया। राम और सीता ने व्रत किया। व्रत की समाप्ति पर श्राद्धादि कर्म किये। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हे सौमित्रे, मेरे कमण्डलु में जल ले आओ इससे हम पादप्रक्षालन करे। लक्ष्मण बोले- महाराज, आप मुझे राज तंग करते रहते हैं कभी पानी ला, कभी फूल ला, मैंने बहुत दीनतक आपकी दासता की है अब यह मुझसे नहीं होगी मैं पानी नहीं लाऊंगा। श्रीराम बोले- अच्छा तो मैं ही ले आऊंगा। लक्ष्मण बोला- आप तो ले आयेंगे पर यह जो इतनी मोटी ताजी सीता को तुमने पाल रखा है, इससे क्यों नहीं मँगाते? दिनभर शासन करती रहती है और मुझे क्लेश देती है। मुझे आराम से बैठने भी नहीं देती। तुम्हें मेरे सुख-दु:ख की परवा नहीं है। इस जानकी को तुमने मुँह लगा रखा है। क्या यह परलोक में तुम्हारा पल्ला पकड़कर पीछे-पीछे जायगी। न इससे कोई काम के लिये कहते हो न कोई धन्धा कराते हो। अपने पिता को ही देख लो, कितना धन वैभव उन्होंने एकत्रित किया, पर उस कैकेयी को प्रसन्न करके तुम्हें वन में भेज दिया, उस धन वैभव को यहीं छोड़ गये। क्या कैकयी उनके साथ गई। बहुत अधिक बोलने से कोई प्रयोजन नहीं। मेरी आपकी पटरी नहीं बैठेगी। आपका रास्ता और है मेरा रास्ता दूसरा। भलेही सीता आपके साथ जाय पर मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। श्रीराम ने लक्ष्मण के मुख से ऐसे अप्रिय, कठोर हृदय को विदीर्ण करनेवाले वचन आज तक कभी नहीं सुनी। श्रीराम को तो आश्चर्य हुआ पर लक्ष्मणसे एक शब्द भी नहीं कहा। सीता भी चुपचाप बैठी सुनती रही। प्रात:काल होनेपर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- चलो लक्ष्मण, दक्षिण दिशाकी ओर चले। लक्ष्मण क्रोधित हो बोला- आप अकेले ही सीताको लेकर जाय मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। श्रीराम बोले- अच्छी बात है तुम मेरे साथ मत चलो, जिस वन में तुम्हारी इच्छा हो उस

वन में चले जाना या अयोध्या को लौट जाओ। लक्ष्मण बोला- मैं अयोध्या भी नहीं जाऊंगा। इसी वन में आपसे पृथक रहकर १४ वर्ष तक तप करूँगा फिर जो मेरी इच्छा हो मैं वा करूँगा। आपको क्या आप मेरी चिंता न करे। जब १४ वर्ष पश्चात आप वनसे वापस लौटे तो इधर से निकल जाय यदि मैं जीता रहा तो अयोध्या देखने तुम्हारे साथ चलूंगा। यह सामनेवाला मार्ग आपका है मैं तो यही निवास करूँगा। मेरा मन आपकी तरफ से खट्टा हो गया है। आप जब लौटकर आयेंगे तो राजसिंहासन पर बैठे देखने के लिये आपके साथ चलूँगा। मैं तो आपके प्रतिकूल ही हूँ, मुझसे आपका कोई काम होने का नहीं मैं तो वन के कष्ट सहते-सहते ऊब गया हूँ। श्रीराम बोले- लक्ष्मण, तुमने यह बात मुझे अयोध्या में क्यों नहीं बता दी। वहाँ तो तुम मुझे कहते थे कि १४ वर्ष मैं आपके साथ वन में रहूँगा। तुमको सेवा करने के लिये कौन कहता है तुम मेरी सेवा मत करना मैं ही तुम्हारी सेवा करूँगा। जैसे तुम रहोगे वैसे ही मैं रहूँगा। तुम चाहते हो मैं अकेला चला जाऊं तो मैं सीता को साथ लेकर चला जाऊँगा। तू मेरा धनुष लेकर थोड़ी दूर रेवातट के पार मुझे पहुँचा दो। यह बात लक्ष्मण ने स्वीकार कर ली और भगवान के पीछे-पीछे धनुष लेकर चल पड़ा। वहाँ मर्यादापर्वत के समीप शिवजी का एक मंदिर था। श्रीराम ने वहाँ मंदिर में पूजा की, स्तुति की और लक्ष्मण से बोले अब मेरा धनुष दे दो और तुम्हारी जो इच्छा हो वो करो इच्छा हो तो मेरे साथ रहो इच्छा हो तो चले जाओ। श्रीराम के मुख से ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मण फूट-फूटकर रोने लगे, थरथर कांपने लगे। समीप में बैठी सीताके समीप जाकर उनके चरणों में प्रणाम करके रोने लगे। सीता ने पूछा- वत्स लक्ष्मण, तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो? लक्ष्मण बोले- हे माता, श्रीराम से रहित होकर मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता। मैं अभी यही अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा।

सीता बोली- लक्ष्मण, श्रीराम भला तुम्हे कैसे त्याग सकते है। तुम तो उनके बाह्यप्राण हो। लक्ष्मण बोला- देवी, मैं बड़ा पापी हूँ, क्रूर, कुलकलंक हूँ। जो मेरे आराध्यदेव है, श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है, इष्ट है उनके प्रति मैंने अपराध किया। न जाने मुझे किन नरकों में रहना पड़ेगा। सीताने उन्हें धैर्य बंधाया। श्रीराम बोले- सीते, क्या मैं कभी लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ और क्या तुम अनुमान कर सकती हो कि लक्ष्मण कभी मेरे और तुम्हारे विरुद्ध एक शब्द भी कह सकता है। आज जो लक्ष्मण ने ऐसी कठोर-कठोर बातें कहीं इसमें इसका दोष नहीं है। यह स्थान ही शापित है यहाँ पुत्र पिता के, शिष्य-गुरु के, भाई-भाई के अनुकूल नहीं रह सकता। अब हम लोग उस स्थान की सीमा को लांघ आ गये है।

देखत बन सर सैल सुहाए वाल्मीक आश्रम प्रभु आये।

श्रीराम ने ऋषि बाल्मीक का सीता और लक्ष्मण सहित अभिवादन किया ऋषि ने विभिन्न प्रकार से स्तुति की। राम की महिमा का बखान करते हुए बाल्मीकजी ने कहा- **सोई जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ जन्हाई।।**

राम की कृपा के बिना राम की जानकारी नहीं होती और जान लेने पर वह राम को ही समर्पित हो जाता है। राम के द्वारा अपने निवास के लिए स्थान पूछने पर मुनि बोले-

पूछहु मोहि कि रहों कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ। जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं दिखावों ठाउँ।।

प्रभु, आप सर्वत्र हैं। हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम ते प्रकट होंइ मैं जाना आप वह स्थान मुझे बतावें जहाँ आप नहीं हैं तब मैं आपको रहने के लिए स्थान दिखाऊँ। प्रभु राम संकोच में पड़ गये तब ऋषि बाल्मीकि ने राम के निवास हेतु चौदह स्थान बताये-

१) जिनके श्रवण समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।
रहि निरन्तर होहि न पूरे तिनके हिय तुम्ह कहु गृह रुरे।।

२) लोचन चातक जिनकर राखे, रहहि दरस जलधर अभिलाषे।
निदरहि सरित सिंधु सर भारी, रूप विन्दु जल होहि सुखारी।।
तिनके हृदय सदन सुखदायक, वसहु बन्धु सिय सह रघुनायक।।
३) जसु तुम्हार मानस विमल, हँसिनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुणगुण चुगहिं राम बसहु हिय तासु।।
४) तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं।
शीश नवाहिं सुर गुरु द्विज देखो, प्रीति प्रसाद पट भूषध धरहीं।
कर नित करहि राम की पूजा, राम भरोस हृदय नहिं दूजा।
चरणराम तीरथ चलि जाहीं, राम बसहु तिनके मनमाहीं।
५) सब करि मांगहि एक फल, रामचरण रति होउ।
तिनके मन मन्दिर बसहु सियरघुनन्दन दोउ।।
६) काम क्रोध मद मान न मोहा, लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा।
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया, तिनके हृदय वसहु रघुराया।।
७) सबके प्रिय सबके हितकारी, सुखदुख सरिस प्रसंसा गारी।
कहहिं वचन प्रिय हृदय विचारी, जागत सोवत शरण तुम्हार।
तुम्हहि जानि गति दूसर नाहीं, राम वसहु तिनके मन माहीं।।
८) जो हरषहिं परि सम्पति देखी, दुखित होय पर विपति विशेखी।
जिनके राम तुम प्राण पियारे, तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे।
९) स्वामी सखा पितुमातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
मन मन्दिर तिनके वसहु सिय सहित दोउ भ्रात।।
१०) अवगुन तजि सबके गुन गहहिं विप्र धेनु हित संकट सहहीं।
नीति निपुन जिनकी जगलीला, घर तुम्हार तिन कर मन नीका।
११) गुण तुम्हार समझहि निज दोषा, जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहि जेही, तेहि उर वसहु सहित वैदेही।।
१२) जाति पाति जन धरम बड़ाई, प्रिय परिवार सदन सुखदाई।
सव तजि तुम्हहि रहइ लौ लाई, तेहि के हृदय रहहु रघुराई।।
१३) स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना, जहँ-तहँ देख धरे धनु वाना।
कर्म वचन मन राउर चेरा राम करहु तिनके मन डेरा।।
१४) जाहि न चाहिअ कबहुँ कुछ, तुम सन सहज सनेह।
वसहू निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेह।।
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक, आश्रम कहऊँ समय सुखदायक।
चित्रकुट गिरि करहु निवासु, जहैं तुम्हार सब भाँति सुपासू।।

चित्रकुट रघुनन्दन छाये समाचार सुनि सुनि मुनि आए।

आवत देखि मुदित मुनिवृन्दा, कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा।।

ऋषियों को जब यह समाचार मिले कि प्रभु चित्रकूट में वास कर रहे है तो समूह में आने लगे। प्रभु उनका आदर सत्कार करते, सत्संग करके विदा देते। भील, किरात लोगों को जब पता लगा तो वन में कन्दमूल फल दोनों भर-भर के लाते प्रभु को जुहार करते और भेंट करते। भगवान भी उनके निच्छल प्रेम को देख गद्‌गद् हो गये प्रिय वचनों से सबका सम्मान किया। भील बोले प्रभु। आपके शुभागमन से हमारा सौभाग्य उदय हो गया। हम अनाथ थे अब सनाथ हो गये। किरात बोले प्रभु। यहाँ वन भयानक है, हिंसक जन्तु भी अधिक हैं किन्तु हम सबसे परिचित हैं। रास्ते भी जब जाने हुए हैं, नदी, सरोवर और आखेट के लिए आपके साथ चलेंगे। आपकी सेवा कर हम अपने को धन्य समझेंगे।

रामहि केवल प्रेम पियारा, जानु लेउ जो जाननिहारा।।

श्रीराम प्रभु ने सबकी प्रेमपूरित बातें सुनीं और आदर से सबको विदा किया। चित्रकूट की शोभा अद्वितीय थी। नदी, वन, पर्वतमाला अत्यन्त सुहावनी थीं। इसलिए प्रभु श्रीराम-

पय पयोधि तजि अवध विहाई, जहँ सिय लखन रामु रहे आई।

कहि न सकहि सुषमा जसि कानन, जौं सत सहस होंहि सहसानन।।

प्रभु श्रीराम सीया और लखन के साथ पर्णकुटी में सानन्द निवास करते है। उन्हें अयोध्या या परिवारजनों का स्मरण भी नहीं होता है किन्तु अयोध्या में परिवारी और प्रजाजन हा-हाकार कर रहे है। सुमन्त रात्रि में चोरों की भाँति नगर में प्रवेश कर महल में चले गये।

सचिव आगमनु सुनत सवु विकल भयउ रनिवासु। भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुं प्रेत निवासु।।

प्रजाजन बिना पानी जैसे मछली तड़फती है, ऐसे व्याकुल है और राजमहल जैसे भूतवासा बन गया है। शमसान जैसी शान्ती है। सुमन्त धीरे से कौशल्या के महल में पहुँचे तो महाराजा, पंख जलने पर जैसे सम्पाति चिल्लाता था। वैसे ही हा राम, हा सीता, हा लक्ष्मण कह कहकर चीत्कार कर रहे है। सुमन्त का स्वर सुनते ही बोले- कह सुमन्त कहँ राम।

जब सुमन्त ने उत्तर नहीं दिया तब महाराज बोले- सुमन्त।

सखा राम सिच लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुंचाउ। नाहि त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ।।

सुमन्त ने जब दुखद समाचार सुनाया कि राम लखन और जानकी सहित नाव के द्वारा गंगा पार हो गये। मैंने अनेक अनुनय की किन्तु उन्होंने आपके चरणों में प्रणाम कहा और धीरज रखने के लिए कह चले गये। महाराजा सुमन्त का सन्देश और कौशल्या के हितकारी वचन विष के समान लगे और अचेत होकर भूमि पर गिर गये और-

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। तनु परिहरि रघुवर विरह, राउ गयउ सुरधाम।।

महाराज देवलोक प्रस्थान कर गये। रानियाँ विलाप करने लगीं। दास और दासी, अयोध्या निवासी विकट विलाप करने लगे। सर्वगुणसम्पन्न श्रीराम-जैसे पुत्रने यदि अपने माता-पिताकी आज्ञासे परम प्रसन्नतापूर्वक क्षणभरमें अयोध्याका सुरदुर्लभ साम्राज्य त्यागकर चौदह वर्षके लिये वनवास स्वीकार किया तो परम वात्सल्यमय महाराज श्रीदशरथजीने भी ऐसे पुत्रके विरहमें क्षणमात्रमें प्राण ही त्याग दिया। यदि राम आदर्श पिता-भक्त हैं तो महाराज श्रीदशरथजी भी परमादर्शमय पुत्रवत्सल हुए। उन्होंने सत्यकी रक्षाके लिये प्रियपुत्रको वनवास दिया एवं अपने प्रणकी रक्षा प्राण देकर की।

वशिष्ठ मुनि की आज्ञा से राजा के पार्थिक शरीर को तेल में रखा गया। भरत को बुलाने के लिए विशेष दूत भेजे गये।

भरत वेगवान घोड़ों के रथ पर सवार हो जब अयोध्या में प्रविष्ट हुए तो नाना अपशकुन होने लगे। विचलित तथा दुखित भरत जब महल में पहुँचे तो-

कैकई हरति एहि भाँति, मनहुं मुदित दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देख मनु मारे, पूँति नैंहर कुशल हमारे।। तब-
सकल कुशल कहि भरत सुनाई, पूँछी निज कुल कुशल भलाई।।

श्री भरत के पूछने पर कैकयी ने बताया कि मन्थरा के सहयोग से सब कुछ तो ठीक हो गया। तुम्हारे युवराज बनाने का वचन मैंने महाराज से ले लिया किन्तु बीच में ही भरत पूछ उठे-

मात कहाँ नृप तात गये, सुरलोकहि, क्यों सुत शोक लहे।
सुत कौन सो, राम कहाँ हैं अबै, वन लक्ष्मण सीय समेत गये।।
वन काज कहा, कहि केवल मो सुख, तो को कहा सुख यामें भये।
हमको प्रभुतादिक तो को कहा, अपराध महा तुम एहि किये।
तात तात हा तात पुकारी, परे भूमितल व्याकुल भारी।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी, कहु पितु मरन हेतु महतारी।।

कुटिल कैकयी ने आदि से अन्त तक सब कह सुनाया तथा राजा की मृत्यु पर सोच करना उचित नहीं क्योंकि उन्होंने जन्म लेने के स मस्त फल प्राप्त कर लिये थे और सुरलोक गये हैं।

अस अनुमान सोच परिहरहु। सहित समाज राज पुर करहू।।
श्रीभरत ने माता के समस्त प्रलापों को विष के समान ग्रहण करके इतना ही कहा-
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा, पापिनि सबहि भाँति कुलनासा।।
हंसवंसु दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ। जननी तू जननी भई, विधि सन कछु न वसाइ।।

श्री भरत एवं शत्रुघ्न माता कौशल्या से मिलने के लिए जाने लगे तो सामने से मन्थरा श्रृङ्गार किये आती दिखाई दी। शत्रुघ्न अपना आवेश न रोक पाये। एक पद प्रहार से उसका कुबड़ तथा सिर तोड़ दिया, केश पकड़कर झकझोर दिया। श्रीभरत ने दयावश उसे छुड़ा दिया तथा धीरज रखने को कहा- किन्तु भरत के मन से ग्लानि दूर नहीं हो पा रही थी। अन्त में उन्होंने कह ही दिया-

जे पातक उप पातक अहही, करम वचन मन भव कवि कहहीं।
ते पातक मोहि होहु विधाता, जौ यहु होइ मोर मत माता।।

माता कौशल्या यह सुन विह्वल हो गई। भरत को हृदय से लगा लिया उसी समय गुरुदेव वशिष्ठ वहीं आ गये तथा भरत को विभिन्न प्रकार से समझाकर निर्दोष बताकर कहा-

सुनहु भरत भावी प्रबल विलखि कहेउ मुनिनाथ हानि लाभ जीनव मरन यश अपयश विधि हाथ।।

महाराज दशरथ को प्राण से अधिक वचन प्रिय थे। अत: उन्होंने अपने वचन निभाये अब तुम भी उनकी आज्ञा मानकर राज्य स्वीकार करो। मंत्रीगण और माताओं ने भी इसका अनुमोदन किया। भरत ने करबद्ध हो सभी का आदर करते हुए गुरुदेव के वचनों को हितकर मानते हुए मधुर शब्दों में कहा-

पितु सुरसुर सिय रामु बन करन करहू मोहि राजु। एहि ते जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु।।

श्रीभरत ने प्रार्थना की कि राज्य करने में मेरा ही हित है या इसमें निहित आप लोगों का कोई कार्य है। मेरा हित तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, वह केवल सीया राम के कमलों की सेवा में है, अन्यत्र नहीं। अत:

लोक समाज राजु केहि लेखे, लखन राम सिय विनु पद देखे ।।

अत: श्रीगुरुदेव और मातायें मुझे श्रीराम से मिलने की आज्ञा दें। मैं उन्हें बिना देखे विह्वल हो रहा हूँ। आप मुझ अधम से राज्य संचालन कराके अपने सुख की आशा केवल स्नेह की जड़ता के वश होकर कर रहे हैं। मैं अतिशय कुटिल हूँ। इन सब अनर्थों की मूल हूँ। राज्य का भार केवल धर्मात्मा राम ही सम्भाल सकते हैं। धर्मात्मा पिताश्री थे जिन्होंने धर्म के विलग होते ही प्राण त्याग दिये। मैं दुष्टात्मा हूँ जो जगत की निन्दा और उपहास सुनकर तथा श्रीराम से विलग होकर भी जीवित खड़ा हूँ। माताश्री ने सब कुछ तो दे दिया पिताश्री को सुरलोक, भगवत्स्वरूप भैया और भाभी को वनवास अपने को विधवापन, प्रजा को शोक-सन्ताप और मुझे राज्य दे दिया और अब क्या देना बाकी रह गया है। गुरुदेव। आप बताइये संसार में मुझे और मेरी कुमाता को छोड़कर कोई ऐसा है जो इस कृत्य की निन्दा नहीं करता। मेरा मन तभी शान्त होगा, मेरी उलझन तभी सुलझेगी, मेरा समाधान तभी होगा जब प्रभु श्रीराम के दर्शन हो जायेंगे। अत: मेरा यह निश्चय है-

एकइ आंक अहइ मन मांही। प्रातकाल चलिहउ प्रभु पाहीं ।।

ब्रह्मा की सृष्टि के दो विचित्र पात्र हैं। एक तो भरत दूसरी मंथरा। भरत ऐसा अद्भुत पात्र है, जिसमें ढूँढने पर भी एक भी दोष नहीं है। भरत के चरित्र में लाख प्रयास करने के बाद भी एक भी दुर्गुण नहीं दिखता। दूसरी ओर मन्थरा एक अद्भुत ऐसा पात्र है जिसमें एक भी गुण नहीं, एक भी सद्गुण नहीं।

भरत के प्रेम को देखकर सबने अपनी सहमति दे दी और सब राज परिवार प्रजा सेना सहित, महाराज जनक तथा अन्य लोगों के साथ प्रभु श्रीराम से भेंट करने के लिए चल दिये। पहला पड़ाव तमसा पर दूसरा गोमती पर और तीसरा श्रृङ्गवेरपुर पर पड़ा। निषादाज गुह को जब यह समाचार मिला तो यकायक उनके मन में अमंगल की कल्पना होने लगी। भरत के सैन्य सहित वन आने का क्या प्रयोजन, क्या प्रभु राम और भैया लखन को अपने मार्ग का अवरोधक समझ उसे हटाने आया है। लेकिन यह उसका असफल प्रयास है। प्रभु राम को सम्पूर्ण देवता और दैत्य भी मिलकर रण में नहीं जीत सकते। विचारे भरत की तो विसात ही क्या है। गुह के मन में प्रतिशोध जागृत हुआ। उसेन अपने अनुचरों को सब नाव डुबा देने तथा घाटों को बलात् अवरुद्ध करने एवं युद्ध के लिए तैयार होने का निर्देश दिया।

निषादराज और उसके अनुचर प्रभु राम के लिए अपने प्राण का समर्पण करने का निश्चय कर तीर, वल्लम, कवच आदि से सुसज्जित हो गये। निषाद सब वीरों को तैयार देख बोले-

भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि। सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहि ।।
बूढ़ एक कह सगुन विचारी, भरतहि मिलिअ न होइहि रारी।
रामहि भरत मनावन जाहीं, सगुन कहइ अस विग्रहु नाहीं ।।

निषाद की सेना तैयार है। मोर्चाबन्दी कर रही है उस समय अति वृद्ध निषाद ने कहा कि मेरा मन कहता है कि भरत लड़ने नहीं प्रभु राम को मनाने आये है यदि उनसे मिल लिया जाय तो सम्भव है यह युद्ध न हो। निषादराज ने स्वयं भरत का भाव जानने के लिए उनसे मिलने के लिए उपहार लेकर जब उनके निकट पहुँचे।

करत दण्डवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाय। मनहुँ लखन सन भेट भई, प्रेम न हृदय समाय ।।

निषाद ने चक्रवर्ती राज्य का राजकुमार समझ भरत को दूर से प्रणाम किया किन्तु भरत ने रथ से कूदकर निषाद को गले

से लगा लिया। आकाश से देखता धन्य-धन्य कहकर पुष्प वृष्टि करने लगे। भरत ने जब राम सखा निषाद से कुशलक्षेम पूछी तो निषाद निहाल हो गया- प्रेममुग्ध हो गया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। नेत्रों से प्रेमजल गिरने लगा। भरत के चरणों पर गिर गया। प्रेमातुर निषाद से शत्रुघ्न भी ऐसे मिले जैसे भैया लखनलाल से मिल रहे हों। नित्य कर्मों से निवृत्त हो भरत ने निषाद के साथ वे स्थान देखे जहाँ प्रभु राम ने विश्राम और शयन किया था। उस अशोक वृक्ष की परिक्रमा लगाकर उस रज को आँखों, मस्तक और हृदय से लगाया था। भरत की दशा राम के प्रेम में अत्यन्त कारुणिक हो गई। जब प्रात:काल मार्गदर्शक निषाद आगे चले गुरुदेव और ब्राह्मणों के रथ और फिर माताओं की पालकियाँ और साथ में शत्रुघ्न पीछे भरत सेवकों सहित पैदल चल दिये।

भरत के प्रेम और निष्ठा को देख देवराज इन्द्र को भय उत्पन्न हुआ कि कहीं प्रेम पराधीन प्रभु भरत के साथ लौट आये तो देव कार्य अधूरा रह जायेगा। अत: गुरुदेव बृहस्पति जी से निवेदन किया।

गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई, रामहि भरतहिं भेंट न होई।।

ज्ञाननिधि समझे जाने वाले इन्द्र की अज्ञानता पूर्ण बात सुन गुरुदेव को आश्चर्य हुआ। गुरुदेव ने इन्द्र को समझाया कि प्रभु श्रीराम आपके प्रति किये अपराध से रुष्ट नहीं होते हैं। किन्तु उनके भक्त का यदि अपराध करता है तो उसे दण्ड अवश्य देते हैं अत: भक्तराज भरत का सहयोग करना तुम्हें अभीष्ट है। उनके मार्ग में बाधक मत बनो, साधक बनो। तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण होगा। श्री भरत राम मिलन की आकांक्षा लिए, श्रीराम के विश्राम स्थलों का दर्शन करते हुए चित्रकूट की ओर निरन्तर बढ़ रहे हैं। कैसे बढ़ रहे हैं निषाद के शब्दों में-

चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु। जात मनावत रघुवरहि, भरत सरिस को आजु।।

निषादराज ने भरतजी को दूर दिखाई देनेवाला कामदगिरी पर्वत दिखाया और बताया कि इस पर्वत के नीचे जो सुन्दर उपवन है जिसमें आम, जामुन, तमाल के विशाल वृक्ष है। इसके नीचे सुन्दर पर्णकुटी में श्रीराम प्रभु, सिया लखन सहित निवास करते हैं। यहीं से भरत ने उन्हें प्रणाम किया संध्या हो गई। विश्राम हेतु शिबिर लगा दिये गये।

प्रात: जानकी ने श्रीरामजी को स्वप्न सुनाया कि रनिवास सहित भरत चतुरांगिनी सेना लेकर आये है। इधर भरत ने ब्रह्ममुहूर्त में ही प्रस्थान कर दिया। दैनिक कर्म से निवृत्त होकर राम वटवृक्ष के नीचे जानकी सहित विराजमान थे। भील और किरातों ने आकर समाचार दिया कि महाराज भरत चतुरांगिनी सेना लेकर इसी ओर आ रहे हैं। उधर प्रहरी लखन ने हाथियों की चिंघाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट सुनी उड़ती हुई धूल देखी तो किसी शत्रु के आने की आशंका हुई। दौड़कर श्रीराम के समीप पहुँचे। बोले- हे स्वमी। इतना समय नहीं कि आप पूछें और मैं बताऊँ।

बिनु पूछे कछू कहऊँ गुसाई, सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई।
तुम सर्वग्य सिरोमनि स्वामी, आपनि समुझि कहउँ अतुगामी।।

अत: बिना आपके पूछे मैं बताने की धृष्टता कर रहा हूँ, मैं स्वयं विवेकानुसार आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि- विषयी मनुष्य प्रभुता प्राप्त होने पर भी अपनी मूल प्रवृत्ति को नहीं छोड़ता है और वह अनायास प्रकट हो जाती है। भरत नीतिज्ञ हैं, धर्मपरायण हैं और आप में उनकी श्रद्धा हैं, प्रेम है किन्तु राजमद आने पर उन्होंने भी मर्यादा को नष्ट कर और यह समझ कर कि वन में राम अकेले असहाय हैं। अत: अपने को निष्कंटक करने के लिए, भविष्य की बाधाओं को समाप्त करने के लिए चतुरांगिनी सेना लेकर दोनों भाई तैयारी से यहाँ आये हैं।

प्रभु, भरत ही क्या? यह इस मायामयी सृष्टि का दोष है कि राजपद मिलने पर जीव पागल हो जाता है। चन्द्रमा ने यज्ञ

कराने आई गुरुपत्नी को ही बलात रख लिया, महाराजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर सवार हो कामवशात इन्द्राणी के महल जाने लगे, राजा बैन स्वयं भगवान बन गये। सहस्त्रबाहु, इन्द्र, त्रिशंकु आदि कितनों ने राजपद को कलंकित नहीं किया किन्तु भरत को ऐसा नहीं करना था कि प्रभु श्रीराम को असहाय समझ उनका निरादर करें। और श्रीलखन की मन स्थिति बदल गई। **इतना कहत नीतिरस भूला, रनरस विटपु पुलक मिस फूला।।**

हे प्रभु। कहाँ तक सहा जायगा, भरत ने हमारे साथ क्या नहीं किया। लखनलाल ने जटायें बाँध लीं कमर में तरकस कस लिया, बायें हाथ में धनुष और दायें हाथ में बाण लें लिये। वीररस ही जैसे साकार रूप धारण कर खड़ा हो। क्रोधावेश में लखन बोले- स्वामी। आज मैं उन्हें प्रभु श्रीराम के निरादर करने का फल प्राप्त कराऊँगा, दोनों भाइयों को रणशय्या पर सुलाऊँगा, यह भी अच्छा होगा कि सारे समाज के सामने भरत को उसके अपराधों का दण्ड मिलेगा। प्रभु मैं आपकी शपथ लेकर कहता हूँ कि यदि भगवान शंकर भी भरत का पक्ष लेकर युद्ध में आवेंगे तो उन्हें भी परास्त कर दूँगा क्योंकि राम मेरे साथ हैं। बाण मेरे हाथ हैं। **भरतहिं होइ न राजमदु, विधि हरहरि पद पाइ।।**

शीघ्रता में कोई कार्य करने से पीछे पछताना पड़ता है और बुद्धिमान लोग ऐसा नहीं करते- बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय, काम बिगारे आपनों जग में होय हँसाय। यह सत्य है कि सत्संग किये बिना राजा को मद हो जाता है किन्तु लक्ष्मण। सुनो, भरत जैसा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो सुना गया है न देखा गया है। अयोध्या राज्य की तो बात क्या वह भी उसने स्वीकार नहीं किया- यदि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी उसे मिल जाय तो भी भरत को मद नहीं हो सकता।

चाहें काजीं की बूदों से खीर सागर फट जाय, अंधकार चाहे सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे बादलों में समा जाय, चाहे अगस्त मुनि गोखुर के जल में डूब जायें, चाहे पृथ्वी से सहनशीलता मिट जाय, चाहे पानी से शीतलता मिट जाय किन्तु भरत को राजमद नहीं हो सकता। यह मैं पिताश्री को साक्षी करके कहता हूँ।

उधर शारीरिक श्रम और मानसिक वेदना से भरत जी का शरीर शिथिल हो गया है- मन में यह धारणा है कि प्रभु चाहे मुझे मलिन मन जानकर त्याग दें चाहे अपना दास समझ अपना लें, किन्तु मैं तो उनके चरणों की शरण हूँ। माता द्वारा दिये गये कटु व्यवहार उनके कदमों को रोकते हैं, किन्तु भक्ति उन्हें निरन्तर आगे बढ़ने का उत्साह देती है।

देख भरत कर सोचु सनेहू, भा निषाद तेहि समय विदेहू।

भरत का मानसिक द्वन्द उचित नहीं है। कभी भक्ति के प्रभाव से गद्गद् हो प्रसन्न मुद्रा में चलते हैं तो कभी माता के दुष्ट व्यवहार से कदमों को मन्दकर अश्रुप्रवाह को तेज कर देते हैं। किन्तु साथ चल रहे निषादराज तो श्री भरत की दशा देख स्वयं अपनी सुध भूल गये, विदेह हो गये। आगे बढ़ते गये और-

करत प्रवेश मिटे दुख दावा, जनुजोगी परमारथु पावा।
देख भरत लखन प्रभु आगे, पूछे वचन कहत अनुरागे।।

भरत की यात्रा पूर्ण हुई प्रभु श्रीराम के आश्रम में प्रवेश किया तो सामने प्रभु श्रीराम तथा माता जानकी बैठी हैं और लखन उनकी ओर खड़े कुछ बातें कर रहे हैं। श्रीराम ने बल्कल वस्त्र धारण कर रखे हैं, सिर पर जटायें बँधी हैं चारों ओर मुनि मण्डली बैठी हैं।

चित्रकूट पै लखन सिय, राम भरत लखि पग परे। ह्वै अधीर रोये भरत, नयन नीर सबके भरे।।

भरत और शत्रुघ्न प्रभु का दर्शन कर भूमि पर लम्बी दण्डवत् यह कहते हुए कि- हे नाथ्। रक्षा कीजिए। हे गुसाई दया कीजिये। लखन द्वारा आकर्षित करने पर इस आर्त वाणी को सुन श्रीराम प्रभु अधीर होकर दौड़ पड़े- कहीं तरकस गिर गया

कहीं उत्तरीय, कहीं बाण, कहीं धनुष। लोकाराध्य प्रभु श्रीराम भरत शब्द सुनते ही अपनी सुध-बुध खो बैठे स्वामी सेवक बनकर दौड़े। कहीं पट गिरा, कहीं निषग, कहीं धनुष, कहीं बाण। प्रभु श्रीराम को देह बिस्मृति हुई। व्यवधान रहते सच्चा मिलन कैसे होता, प्रभु के पास ये चार व्यवधान रहते सच्चा मिलन कैसे होता, प्रभु के पास ये चार व्यवधार ही थे, अत: त्याग दिये।

वैसे वीर के लिए शस्त्र और भक्त के लिए सुमरनी का गिरता शकुन शास्त्र के अनुसार अपशकुन हैं पराजय का द्योतक है। प्रभु के कर कमलों से आयुध गिरा। उनकी पराजय हुई। किससे भक्त शिरोमणि भरत से, तो ऐसी पराजय हजारों विषयों से श्री श्रेष्ठ है। प्रेम पराजित दशरथ नन्दन तो बचपन से ही भरत से पराजय होते आये हैं। आयुधों का गिरना आत्म समर्पण की पूर्व सूचना है। **भरत कहे सोई किये भलाई।**

आयुध उस प्रेमानन्द के दिव्य रस का आस्वादन लेना चाहते हैं जिसे चरण रज में पड़े हुए भरत ले रहे हैं। आयुधों ने इस धारणा की पुष्टि में कि भक्तशिरोमणि भरत जिस विशिष्ट रस का आनन्द रज में पड़े हुए ले रहे हैं। हम उससे क्यों वंचित रह जायँ? अत: प्रभु की अधीरावस्था देख वे भी रज में कूद पड़े।

अथवा आयुधों ने विचार किया कि भक्त प्रवर दैन्यभाव से रजशक्ति हों और हम प्रभु के अंगों पर रहें, इसी से लज्जित होकर यत्र-तत्र भूमि पर गिर पड़े। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तस्थेव भजाम्यहम् भरत जी को पंचवी में चार वस्तुओं की विस्मृति हो गई। **सानुज सरवा समेत मगन मन, बिसरे हरष सोक सुख दुख गन।**

प्रसन्नता खेद और दुख चारों बातों की विस्मृति प्रभु श्रीराम को देखते ही हो गई तो प्रभु श्रीराम ने भी चारों वस्तुओं को त्याग दिया- **कहुं पट कहुं निषंग धनु तीरा।**

प्रभु को भरत से मिलने की इतनी आतुरता थी कि उन्हें इनके गिरने का अनुभव ही नहीं हुआ।

भक्त के मानसिक संकल्प से या गजेन्द्र की भाँति एक बार स्मरण करने पर ही प्रकट हो जाते हैं यहाँ तो भक्तराज पाहिमाम रक्षा कीजिए। रक्षा कीजिए की आर्त ध्वनी कर रहा हे। अगर शीघ्र नहीं आते हैं तो योग क्षेमो वहाम्यहम् की प्रतिक्षा असत्य हो जाती है।

बरबस लिए उठाई उर, लाए कृपा निधान। भरत राम का मिलन लखि, विसरेउ सबहि अपान।।

विस्मृति का साम्राज्य है पर्णकुटीर में भरत को हर्ष, शोक, सुख, दुख की विस्मृति है तो प्रभु राम को पट, निषंग, धनुष तीर की। और जब दोनों का एकीकरण हो गया- एक प्राण दो देह हो गये। असीम को भक्त ने करसीमा में बद्ध कर लिया, तो दोनों को मन-बुद्धि और चित्त अहंकार का विस्मरण हो गया। अर्थात् मन-बुद्धि चित्त ने कार्य करना ही बन्द कर दिया। संकल्प करना और उसका विकल्प खोजना ही तो मन-बुद्धि का कार्य है। भरत का संकल्प था प्रभु श्रीराम के दर्शन, श्रीराम के संकल्प में केवल भरत की प्रतीक्षा थी वह भरत के अंक में आने से समाप्त हो गई। रामहि बन्धु सोच दिन राती। भक्त का केन्द्र बिन्दु भगवान उसके लिए ही संकल्प-विकल्प और क्रियायें करता है। दोनों के इस मिलन से मन संकल्पात्मक न रहकर प्रेमाकार हो गया। जब संकल्प नहीं तो मन का काम नहीं, जब द्वन्द्व नहीं तो बुद्धि का काम नहीं, जब निर्णय नहीं करता तो चित्त का काम नहीं, जब कर्म ही नहीं तो अहंकार कैसा। प्रेमपयोध में स्नान करते ही या भक्त और भगवान का एकाकार होते ही सब प्रेममय हो गया।

लाली मेरे लाल की जित देखो तित ला। लाली देखन मैं गई तो में भी हो गई लाल।।

गुरुदेव वशिष्ठ को भी यह विस्मरण हो गया कि निषाद अछूत जाति का है केवल राम सखा है इसलिए उससे भी मिले। जनकनन्दिनी जानकी की चित्तवृत्तियाँ विस्मृत हो गई। कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं सकती। स्नेहपूरित हृदय में जब

भरत शत्रुघ्न के करुणामयी सीता ने चरण कमल पराग को मस्तक से लगाया। श्रीभरत के प्रेम के कारण इतनी भाव विभोर हो गई कि शरीर की सुध भी न रही। बार-बार श्रीभरत ने प्रणाम किया तब समाधी टूटी तब भरत के मस्तक पर बरद हस्त रखा किन्तु प्रेमाधिक्य के कारण कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अश्रुप्रवाह अनवरत होने लगा, चाहने पर भी शब्द मुख से प्रस्फुटित नहीं हुए, मानसिक रूप से भरत को आशीर्वाद दिया-

सीय असीस दीन्ह मन मांही, मगन सनेह देह सुधि नाही ।।

श्रीजनकनन्दिनी के कर-स्पर्श का सौभाग्य केवल भरत को ही मिला, अन्य किसी को नहीं, यही उनकी निष्कलंकता का प्रबल प्रमाण है।

श्रीराम को भीलों द्वारा यह पूर्व सूचना प्राप्त हो चुकी है कि भरत के साथ गुरुदेव, मातायें तथा चतुरंगिनी सेना है परन्तु उन्हें ऐसा लगा कि भरत को पाने के बाद अब कुछ पाना शेष ही नहीं है- भरत के प्रेम पयोधि में डूब रहे हैं। किन्तु साथ में केवल और सखा निषाद भी हैं। केवट का काम डुबते को बचाना है। यही उसका धर्म भी है। केवट सचेत है। अपने कर्त्तव्य के प्रति और सखा होने के नाते सखा की मर्यादा का भी उल्लंघन न हो। निषाद ने स्तुति के रूप में प्रभु को स्मरण कराया-**नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।**

प्रभु को जागृति हुई- शत्रुघ्न को जानकी के पास छोड़ गुरुदेव के स्वागत के लिए प्रस्थान किया। और-

सानुज मिलि पल महु सब काहू, कीन्ह दूर दारुन दाहू। प्रथम राम भेंटी कैकेई, सरल सुभाय भगति मति भेई।
गहि पद लगे सुमित्रा अंका, जनु भेंटी संपति अति रंका।
मिलि जननिहि सानुज रघराउ, गुरु सन कहेउ कि धारिअ पाऊ।
महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ। पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ ।।

गुरु, ब्राह्मण, मंत्री, माता आदि के साथ भरत, शत्रुघ्न राम तथा लक्ष्मण जी ने आश्रम में प्रवेश किया। जनकनन्दिनी ने गुरुदेव, ब्राह्मणों तथा गुरुमाता के चरणस्पर्श कर सासुओं की ओर देखा तो देखती ही रह गई। अयोध्या की महारानियों की दीनदशा देखकर सीता अपने आँसु नहीं रोक सकी, कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी ने वनवधूटि के रूप में जब अयोध्या की कुलवधु को देखा तो वे भी अपने पर नियंत्रण नहीं रख सकीं। जैसे बिछड़ी हुई गाय वत्स से दौड़कर मिलती है और भूखा वत्स मां को देख उसके थनों से लग जाता है। ठीक उसी प्रकार सीता और सासुओं का मिलन हुआ।

विकल सनेह सीय सब रानी, बैठत सबहि करेउ गुरु ग्यानी ।।

अतिथि और आतिथेय जब सब बैठकर परस्पर कुशल मंगल की चर्चा करने लगे तो गुरुदेव ने महाराज दशरथ के परलोक गमन की बात कहीं- तो धीरधुरन्दर धीरपति श्रीराम अत्यन्त व्याकुल हो उठे। सीता तथा रानियाँ विलाप करने लगीं, समस्त उपस्थित समाज शोक के सागर में डूब गया। गुरु वशिष्ठ के अनुसार राम ने पिताश्री की क्रिया कर अपने को शुद्ध किया। कई दिन इसी तरह शोक और चर्चाओं में बीत गये- तब श्रीराम ने कहा- गुरुश्रेष्ठ। महाराज वैकुण्ठ चले गये आप समस्त लोग यहाँ पधारे हैं अयोध्या सूनी है अत: उसकी सुरक्षा के लिए आप लोग वापिस जाये।

निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुचि सोच ।।

भरत की स्थिति दयनीय थी। दिन-रात एकान्तिक होकर विचार मग्न रहते। विचार यही कि राम कैसे अयोध्या वापिस चलें। मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते और विलीन हो जाते। राम के अयोध्या ले जाने का पहला विचार यह था- मुनि वशिष्ठ कुल गुरु हमारे।

हमारी परम्पराओं में गुरुदेव सर्वोपरि हैं इनके आदेश का निरादर करने का साहस किसी में नहीं है और श्रीराम भी इनकी अवज्ञा नहीं करेंगे क्योंकि पिताश्री ने भी न चाहने पर भी केवल गुरु की आज्ञा से ही श्रीराम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ भेज दिया था तब राम भी अवश्य इनके आदेश को मानकर अयोध्या लौट चलेंगे। इस विचार से भरत का एक आशा का सम्बल मिला किन्तु गुरुदेव साधु पक्ष के हैं और श्रीराम साधुओं की सेवा के लिए अवतरित हुए हैं। परित्राणाय् साधूनाम् श्रीराम के अयोध्या लौटने में सन्तों का अहित होगा तब गुरुदेव अयोध्या लौटने की बात कभी नहीं करेंगे। दूसरा विचार- मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ।

माता कौशल्या प्रभु राम की जननी हैं यदि हठपूर्वक कहेंगी तब राम अयोध्या लौटने को बाध्य होंगे। पिता की आज्ञा का पालन हो गया। पिता की अनुपस्थिति में अब मां का अधिकार सर्वोपरि है किन्तु माता कौशल्या का स्वभाव हठ करने का नहीं अगर हठीली होती तो श्रीराम वन में ही क्यों आते, शायद वे अब भी बलपूवक अपनी आज्ञा मनाने का प्रयास नहीं करेंगी। तीसरा विचार- जो हठ करउ त निपट कुकरमु, हर गरि तें गुरु सेवक धरमू।

मैं प्रभु राम का सेवक हूँ। यदि मैं हठ करूँ तो उचित नहीं होगा। क्योंकि सेवक का हठ अनुचित है, धर्म विपरीत है।

कोई विचार स्थिर नहीं हो सका, रात बीत गई। प्रात: नित्य कर्म से निवृत्त होने पर गुरुदेव ने बुला लिया, वहाँ सारा समाज एकत्रित था गुरुदेव बोले

केहि विधि अबध चलहि रघुराऊ कहहू समुझि सोइ करिअ उपाऊ।

भरत ने करबद्ध होकर निवेदन किया कि आप जैसा धर्मज्ञ, वेदज्ञ और नीति निपुण और कौन है जो श्रीराम को वापिस ले जाने का उपाय बताये। मुनि वशिष्ठ ने प्रसन्न हो उपाय बताया

तुम कानन गवनहु दोउ भाई फरिअहि सिह लखन रघुराई।

भरत सहित सबने यह सुझाव मान्य किया किन्तु तीनों रानियाँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी सहमत नहीं हुई क्योंकि उनके लिए कष्ट समान होगा। लेकिन भरत इतने हर्षित हुए कि खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर यह प्रतिज्ञा करने लगे कि मैं १४ वर्ष ही नहीं जीवन भर अयोध्या नहीं जाऊँगा। यदि प्रभु राम अयोध्या लोटना स्वीकार कर लें। ब्राह्मण और सन्त समाज साधु साधु कहने लगे। गगन से पुष्पवृष्टि होने लगी। वशिष्ठ मुनि गद्गद् हो गये। समाज को लेकर प्रभु श्रीराम के समीप उन्हें मनाने पहुँचे। वशिष्ठ जी ने कहा- हे राम्। ऐसा कोई उपाय सुझाइये जिससे प्रजाजन रानियों तथा भक्त भरत का सन्ताप मिट जाय। राम ने गुरु आज्ञा को ही एक मात्र उपाय बताया।

वशिष्ठ मुनि बोले- भरत का मत आप जान लें फिर अपनी परम्परानुसार साधुमत, लोकमत, नीतिमत, धर्ममत जानकर जो उचित हो वही करना अभीष्ट होगा।

तब मुनि बोले भरत सन, सब संकोच तजि तात। कृपासिन्धु प्रिय बन्धु सन, करहु हृदय की बात।।

पुलक शरीर सभा भए ठाढ़े, नीरज नयन जल बाढ़े। कहब मोर मुनिनाथ निहाबा, एहि ते अधिक कहौं मैं काहा।।

भरत कुछ कहने को खड़े हुए तो शरीर रोमांचित हो कांपने लगा। अश्रु का प्रवाह शुरू हो गया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया, फिर भी कहने लगे। मैंने जीवन में संकोच और प्रेम के कारण प्रभु राम के सामने कभी कुछ नहीं कहा- अब मैं क्या कहूँ, मैं जो कुछ निवेदन करता वह गुरुदेव ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है। मैं तो यह अनुभव कर रहा हूँ कि विधाता मेरे प्राण से ईर्ष्यालु हो गया है तभी उसने मेरी माँ के माध्यम से उत्पात कर मेरे प्रभु को मुझसे अलग कर दिया है।

पिता का वियोग सहा नहीं जाता। माताओं की व्याकुलता देखी नहीं जाती। प्रजा का दुख सुना नहीं जाता, फिर भी सब

सहते हुए अपने कुकर्मों का फल भोगते भी मैं जीवित हूँ। इससे अधिक दुखद बात यह कि प्रभु राम सिया और लक्ष्मण सहित मुनिवेश धारण कर नंगे पाँव पैदल इन कंटकाकीर्ण और पथरीले रास्तों में चल रहे हैं- मैंने उन पत्तों और घास से बनी सेज का दर्शन भी किया जिस पर राजराजेश्वर प्रभु श्रीराम, अतिशय सुकोमल माता जानकी ने शयन किया, फिर भी यह ब्रज सा कठोर मेरा हृदय नहीं फटा। आपने सदा मेरी बात रखी। हारे हुए खेल को जिताया है, गिरते हुए मुझे उठाया है, रोते हुए मुझे हँसाया है, पहिले मुझे खिलाकर तब खाया है, संयम सदाचार का पाठ आप ही ने सिखाया है।

दु:ख से व्याकुल प्रेम से परितृप्त और नीति से ओतप्रोत भरत की वाणी सुनकर सब विह्वल हो गये। वातावरण विषादमय हो गया। स्तम्भता छा गई। राम ने मौन भंग करते हुए कहा-

तीनकाल त्रिभुवन मत मोरे, पुण्यसिलोक तात तर तोरे ।।

हे पुण्य शिरोमणि। तीनों लोकों में भूत, भविष्य, वर्तमान में इस भूलोक, स्वर्ग और पाताल लोक में अनेकानेक पुण्यात्मा पुरुष हुए हैं, पर आप उन सब में अग्रगण्य हैं। आप अकारण अपने को निमित्त मानकर आत्मग्लानि से व्यथित हैं। इस संसार के समस्त कारणों का भी कारण वह ब्रह्म हैं। सब गति-मति उसके अधीन है। अहं सर्वस्व प्रभों मत्स सर्वश्व प्रवर्तये।

हे निष्पाप। जरा विचार करो, ऐसे धर्मात्मा पिता जिन्होंने सत्य रखने के लिए पुत्र का त्याग कर दिया। स्नेह सिंचन में प्राण त्याग दिये, उनकी आज्ञा का उल्लंघन क्या उचित होगा। हे रघुकुल श्रेष्ठ भरत। अब तुम जैसा कहोगे मैं तदनुरुप करने को तत्पर हूँ।

भरत निराश नहीं हुए किन्तु सुरपति इन्द्र चिन्तित हो गये। भय व्याप्त हो गया देवताओं में, कि प्रभु श्रीराम भक्ताधीन हो गये, देवताओं का कल्याण नहीं होगा। गुरु बृहस्पति ने निर्देश दिया कि भरत का चिन्तन करो भय मत करो तुम्हारा कल्याण होगा। **करि विचारु मम दीन्ही ठीका, राम रजायस आपन नीका।**

भरत जी ने अपने मन का बोझ उतार दिया। स्पष्ट कर दिया कि प्रभु श्रीराम की आज्ञा में ही मेरा तथा सबका हित निहित है। श्रीराम की आज्ञा सर्वोपरी है। अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि-

जगु अनभल भल एक गोसाई, कहिअ होइ भल कासु भलाई ।।

अब तक मैं कल्पित विषाद में पीड़ित था। मिथ्या भय से डरा हुआ था किन्तु सारा जगत मुझे बुरा कहे, यदि आप अनुकूल हो तो कोई भी मेरा अहित नहीं कर सकता है। हे भक्तवत्सल, मेरी एक ही विनती है अगर आप उचित समझें तो उसे स्वीकार करलें- राज्याभिषेक की सामग्री तैयार है अगर आप आज्ञा दें तो उसका उपयोग कर लिया जाय। मैं और शत्रुघ्न आपके इस स्थान की पूर्ति कर देंगे। आप समस्त अयोध्या वासियों को कृतार्थ कर दें।

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तज जो जेहि आयसु देव। सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अबरेब ।।

सब मन मग्न हो गये भरत की यह बात सुन। देवता साधु-साधु कह कर पुष्पवृष्टि करने लगे यह विचार कर कि प्रभु श्रीराम अयोध्या नहीं जायेंगे। अपना संकल्प पूरा करेंगे। बनवासियों की भी यह धारणा थी कि वन त्याग राम नहीं जायेंगे अत: हमें सान्निध्य प्राप्त होता रहेगा। अयोध्यावासी इसलिए प्रसन्न हुए कि भरत के निष्कपट त्याग से राम गद्गद् हो गये हैं अत: अयोध्या लौट जायेंगे। किन्तु श्रीराम के मौन ने सबको संकोच में डाल दिया। उसी समय महाराजा जनक के दूत उपस्थित हुए और विदेह के आगमन की सूचना से सब उनके स्वागत आतिथ्य में लग गये। कई दिन इसी प्रकार मिलन और चर्चाओं में बीत गये। एक दिन प्रात: श्रीराम स्नान कर लौटे तो गुरुदेव वशिष्ठ को प्रणाम कर बोले-

नाथ भरतु पुरजन महतारी, सोक विकल वनवास दुखारी।

सहित समाज सन राउ मिथलेशू, बहुत दिवस भए सहत कलेसू।
उचित होय सोई कीजिए नाथा, हित सबही कर रौरे हाथ।।

राम के सत्य स्नेह को देखकर मुनि गद्‌गद् हो गये। श्रीराम को कुटिया में जाने की आज्ञा देकर स्वयं महाराज विदेह को लेकर श्रीभरत के पास गये। भरत के मर्मस्पर्शी शब्दों से सब आनन्दित हो एकत्र हो प्रभु श्रीराम को समझाने उनकी पर्णकुटी पर पहुँचे। **भूप भरत मुनि सहित समाजू, गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू।**

प्रेम विह्वल समाज, स्नेहासिक्त जनक, मन मगन गुरुदेव और प्रेम पराकाष्ठा की मूर्ति भरत को देख प्रभुराम स्वयं व्याकुल हो संकोच में पड़ गये, प्रभु श्रीराम की व्याकुलता ने देवराज को भयभीत कर दिया। माँ सरस्वती की बन्दना करने लगे उनसे भरत की बुद्धि को विचलित करने की प्रार्थना करने लगे। माँ सरस्वती ने यह कहकर इन्द्र को निराश कर दिया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जिनकी मति पलटने में असमर्थ हैं वहाँ मेरा भी प्रयास असफल होगा।

गुरुदेव के आदेश पर भरतजी बोले- प्रभु। आप सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। गुरु, पिता, सुहृद् और शरणागत वत्सल हैं, लेकिन मैं तो एकमात्र आप जैसे स्वामी को पथभ्रष्ट करनेवाला द्रोही हूँ- आपके धर्माचरण में अवरोध उत्पन्न कर आपसे धर्म की मर्यादा एवं पिता के वचन के विरुद्ध अयोध्या लौट चलने का आग्रह कर रहा हूँ। इसे मेरा दुराग्रह ही समझ मुझ पर कृपा करें। प्रेम पुलकित हो भरतजी ने श्रीराम के चरणकमल पकड़ लिये और आँसुओं से उनका अभिषेक किया। श्रीराम ने उन्हें अपने बराबर बिठा लिया। भरतजी ने पुन: अनुरोध किया कि गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा से विभिन्न पवित्र तीर्थों का जल आपके अभिषेक के लिए भी एकत्र कर लाया गया है उसका उपयोग करने की आज्ञा दें। अत्रि मुनि ने उस पवित्र जल को पास के लुप्त तीर्थकूप में डलवा कर पुन: जागृत करा दिया और भरत तीर्थ के नाम से जाना जायगा यह आशीर्वाद दिया। इस प्रकार पाँच दिन और व्यतीत हो गये।

मोहि लगि सहेउ सबहि संतापू, बहुत भाँति दुख पावा आपू।।
अब गोसाई मोहि देउ रजाई, सेवौं अवध अवधि भरि जाई।।

भरत के मधुर वचन सुन राम बोले-

तात तुम्हारि मोरि परिजन की चिंता गुरुहि नृपहिं घर वन की।
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू, हमहि तुमहि सपनेहु न कलेसु।।

श्रीराम ने भरत को विभिन्न प्रकार से समझाया- हे भरत, तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप मिट जायँगे। छल, कपट, दम्भादि सब प्रकारके प्रपञ्च (मायाजाल) विनष्ट हो जायँगे। समस्त अमङ्गलोंके समूह विनष्ट हो जायँगे तथा धन-वैभव-यशादिकी सुलभतासे लोक सुखद होगा और परलोकमें सुख मिलेगा।

किन्तु भरत विना आलम्बन के अशान्त दिखाई दिये। तो कौशल्या ने कहा श्रीराम भरत को आलम्बन चाहिये यह तुम्हारे बिना तो वापिस अयोध्या भी पहुँच नहीं पायेगा और रास्ते में प्राण त्याग देगा। तो प्रभु श्रीराम ने- **प्रभु कर कृपा पाँवरी दीनी, सादर भरत सीस धरि लीन्ही।**

प्रभु श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ, मुनि विश्वामित्र तथा राजा जनक से अतिशय संकुचित होते हुए भी भरत को अपनी पादुका प्रदान कर दी। भक्तराज ने भी प्रजा की रक्षा का सम्वल समझ, अयोध्या में प्रवल प्रहरी के रूप में, अपने साध्य की साकार प्रतिमा समझ अपने मस्तक पर धारण कर लीं और प्रभु श्रीराम से विदा माँगने लगे तो प्रभु ने गद्‌गद् हो भरत को हृदय से लगा लिया।

राम रजायसु पाइ पादुका प्रभुकी लीन्हीं।

श्रीराम का धीरज छूट गया। कमल नयनों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे भक्त और भगवान का यह मिलन, ज्ञान और भक्ति की एक रूपता अकथनीय है। **प्रभु पद पदुम बदि दोउ भाई, चले सीस धरि राम रजाई।।**

अथक प्रयास के बावजूद भी भरत श्रीराम को अवध नहीं लौटा सके।

श्रीभरत एवं शत्रुघ्न का अनुकरण कर सब समाज दुखित हो प्रस्थान के लिए प्रस्तुत हो गया। श्रीराम ने सबको ससम्मान विदा किया। चौथे दिन भरत अयोध्या पहुँच गये। श्रीभरत ने मंत्री सचिव, सेवक और प्रजाजन सबको सम्बोधित कर अपने अपने दायित्वों का धर्मपूर्वक पालन करने का निर्देश दिया तथा शुभमूहर्त में श्रीराम के चरण पादुकाओं को सिंहासनारूढ़ कराकर स्वयं नन्दीग्राम में पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। उनकी रहनी अत्यन्त त्यागमयी थी।

भरतजीका त्याग महान है। भरत-चरित्र हमें सर्वत्यागकी शिक्षा देता है। उनका हृदय निर्मल है। सांसारिक विषय-भोगोंकी उन्हें कोई इच्छा नहीं है। इसीलिये उन्होंने पिताके द्वारा प्राप्त राज्यको त्याग दिया है। तपमें उन्होंने स्वयंको जलाकर स्वर्णके समान तेजयुक्त बना लिया है। वे इन्द्रियोंके वशमें नहीं हैं। इसीलिये तेजस्वी हैं। वे केवल भगवान्‌को हृदयसे देखने एवं अपनी भावनाएँ व्यक्त करनेको लालायित हैं।

श्री भरतजीका पावन उपदेश हम सबके लिये है कि इस अनित्य संसारमें दु:ख प्रदान करनेवाले विचारोंको समझकर उनसे पूर्णतया मुक्त होनेका प्रयत्न करें और जितनी जल्दी हो सके अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके भगवान्‌के शरणमें जायँ। हमें सांसारिक इच्छा, अहंकार आदि दुर्गुणोंसे मुक्त होना है। सांसारिक चाह हमें अशान्त करती है। वर्तमानमें रहनेपर, सब ईश्वरकी कृपा समझनेपर हम जीवनके केन्द्रसे जुड़ जाते हैं, अस्तित्व ईश्वरीय शक्तिके सम्पर्कमें आ जाते हैं, कुतर्करूपी विचारोंकी परिधिसे हटकर ईश्वरके समीप हो जाते हैं। अत: आवश्यक है कि प्रेम-पथपर चलनेका संकल्प करें। जीवको परमात्मासे मिलानेका प्रेमसेतु है। सदाचारी ही प्रेम-सेतुका पथिक होता है। अत: दैवी गुणसम्पन्न बनें।

अमृत तो देवलोकमें भी है, चन्द्रमामें भी है, परंतु देवलोकका अमृत पीनेके बाद पुण्य क्षीण होनेपर प्रभाव समाप्त हो जाता है। चन्द्रमाका अमृत दुर्लभ है। रात्रिमें जीव-जन्तुओंको, लताओं तथा वृक्षोंको कठिनाईसे प्राप्त होता है अर्थात् सर्वसुलभ नहीं है, परंतु श्रीभरतजीके गम्भीर हृदयरूपी समुद्रसे प्रकट प्रेमरूपी अमृत आज भी सर्वसुलभ है। जो स्मरण करेगा, सत्संगसे चरित्र-श्रवण करेगा वह प्रेमरूपी अमृत प्राप्त करेगा।

प्रेममूर्ति भरतजी एवं महर्षि भरद्वाजजीका सुसंवाद हमारे शुष्क एवं नीरस हृदयमें निर्मल पावन प्रेमभक्तिकी त्रिवेणी बहानेका अजस्र अमृत स्रोत है, जिसकी निर्मल वेगवती धारामें हमारा कलिकलुष सब बह जाता है। इसके आस्वादसे हमारे हृदयमें पूर्ण आनन्द सदा बना रहेगा। हमारा मानसिक रोग एवं हृदयका अवसाद निर्मूल होगा। धीरे-धीरे प्रेमभक्तिके मार्गपर यदि हम अनवरत रूपसे बढ़ते रहेंगे तो एक-न-एक दिन नि:संदेह हम पूर्णताको अवश्य प्राप्त कर लेंगे। पूर्णता भगवान्‌का स्वभाव एवं स्वरूप है।

जो सांसारिक सुखोंका त्याग करता है, उसीको तो प्रेमके सहारे आत्मसमर्पणका महाप्रसाद- अपने आराध्यके सांनिध्यकी प्राप्ति होती है। उसके सामने मान-सम्मान या जागतिक धन-ऐश्वर्य सभी फीके तथा त्याज्य हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, जिनके चरित्र ब्रह्मादिक देव प्रसन्नतापूर्वक गान करते हैं- ऐसे महाकारुणिक रामने जब सुना कि मेरे भाई भरत मेरे वियोग में गोमूत्र में बनाया दलिया खाकर वल्कल वस्त्र पहिनकर भूमि में सोते हुए बिता रहे हैं तो वे बड़े दुखी हुए।

भूषण वसन भोग सुख भूरी, तन मन वचन तजे तिन तूरी।
अवध राज सुर राजु सिहाई, दशरथ धन सुनि धनदु लजाई।

तेहि पुर वसत भरत बिनु रागा, चचरीक जिमि चम्पक बागा।
राम बिलास, राम अनुरागी, तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।

भरत अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते, किसी से व्यर्थ की बातें न करतें, निरंतर राम-राम रटते, राम के रूप का ध्यान करते। राम के समस्त काम करते। उन्होंने अपने जीवन को राममय बना लिया था। वे राम सुनते ही चौंक पड़ते, राम कहते ही रो पड़ते। राम स्मरण करते ही उनका शरीर रोमांचित हो उठता। राम ही उनके जीवन के आधार थे, राम ही उनके इष्ट थे, राम ही आराध्य थे और राम के आगमन की प्रतीक्षा में पल-पल को गिन रहे थे। चित्त में राम मिलन की ही उत्कट इच्छा थीं, नयनों को राम दरश की ही अत्यधिक अभिलाषा थी। पैर राम दरश के लिये गमन करने को ही उतावले हो रहे थे, नेत्र राम को अर्ध्य देने के ही लिये अश्रुकणों का संग्रह कर रहे थे, राम के लिये ही निकल रहे थे, कर्ण राम की पद ध्वनि सुनने के ही लिये लालायित बने रहते थे, कर्ण राम की पद ध्वनि सुनने के ही लिये लालायित बने रहते थे। सारांश राम विरह के विरही भरत की समस्त चेष्टायें राम के ही लिये थीं उन्होंने अपने जीवन को राम के जीवन में ओतप्रोत कर दिया था।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, चौदह वर्षों तक अयोध्या में किसी ने अपने पांव में जूते नहीं पहने। राम नंगे पैर जाते, तो हम जूते कैसे पहने। चौदह वर्ष तक अयोध्या में किसीने अपने घर में दीपक नहीं जलाया। राम अन्धेरे में रहते हैं तो हम भी अन्धेरे में रहेंगे। चौदह वर्ष तक किसीने अपने द्वार पर बंदनवार नहीं बांधी। चौदह वर्ष तक अपने बेटी-बेटे का विवाह नहीं किया। राम के बिना कैसा मंगल? राम ही तो मंगल सूचक है।

श्रीराम प्रभु चित्रकूट में सीता लखन सहित सानन्द निवास कर रहे हैं। भगवान विभिन्न लीलायें करते हुए भक्तों के हृदय में कौतुहल उत्पन्न करते हैं। एक दिन स्फटिक शिला पर बैठकर श्रीराघवेन्द्र ने जानकी जी का फूलों से अनुपम श्रृङ्गार किया। इन्द्रपुत्र जयन्त को श्रीराम के बलाबल की परीक्षा लेने की इच्छा हुई तो जनकनन्दिनी के चरणों में चोंच मारकर भागा। प्रभु श्रीराम ने अभिमंत्रित कर बाण छोड़ दिया। जयन्त अपनी रक्षा के लिए इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक गया किसी ने प्रश्रय नहीं दिया। परोपकारी मुनि नारद ने दया कर उसे भगवान राम की शरण में जाने का सद्उपदेश दिया। जयन्त ने प्रभुराम के चरणों की शरण ली तब प्रभु ने उदारतापूर्वक उसकी एक आंख का संहार कर उसे क्षमा कर दिया इससे श्रीराम का यश और फैलने लगा। ऋषियों की भीड़ अधिक होने लगी तब प्रभु अपने प्रभाव को छुपाने के लिए चित्रकूट छोड़कर अत्रि मुनि के आश्रम पर चले गये।

अत्रि मुनि ने विभिन्न श्लोकों से गद्गद् होकर भगवान की स्तुति की और आश्रम में ले गये। जब अनुसुइया के दर्शन किये तब प्रभु श्रीराम ने सीता को ऋषिपत्नी के चरण स्पर्श करने की आज्ञा दी। अनुसुइया ने भी सीता को बहुत दुलार से बैठा कर श्रृङ्गार किया।

अनुसुइया के पद गहि सीता, मिली बहोरिं सुसील बिनीता।
रिषिपतिनि मन सुख अधिकाई, आपिष देइ निकट बैठाई।।
दिव्य बसन भूषण पहिराए, जे नित नूतन अमल सुहाए।
कह रिषि वधू सरस मृदु वानी, नारिधर्म कछु व्याज बखानी।।

ऋषिपत्नी अनुसुइया ने विभिन्न प्रकार के दिव्य अस्त्र, आभूषण पहनाकर रघुकुल की कुलवधु का सम्मान किया तथा आयु बद्ध होने एवं ज्ञान बृद्ध तथा पूज्य होने के कारण नारियों के अनुरूप धर्म की व्याख्या करते हुए नारियों के धर्म का निरूपण किया-

ऋषिपत्नी बोली- हे राजकुमारी। माता-पिता भाई-बन्धु एक सीमा तक ही चिन्तन करते हैं किन्तु पति सर्वदा सुख देनेवाला है। पति यदि निर्धन, क्रोधी, वृद्ध, अन्धा, बहरा कैसा भी हो नारी का धर्म उसकी सेवा करना है। अपमान या निरादर करने से यमपुर की यातनायें भोगनी पड़ती हैं।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिये चारी।

जग पतिव्रता चार विधि अहही, वेदपुरान सन्त सब कहहीं।

उत्तम के अस वस मन माहीं, सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।

उन्होंने सती स्त्रियों का विश्लेषण चार प्रकार से किया उत्तम पतिव्रता वह है जो मन से भी पर पुरुष की की कल्पना नहीं करती अर्थात वे ये समझती हैं कि उनके पति के अलावा और कोई पुरुष है ही नहीं।

भगवतचरणानुरागी मीरा जब वृन्दावन आई तो उन्होने सन्त सनातन देव के विषय में सुना और मिलने के लिए जब उनकी कुटिया पर गई और मिलने के लिए शिष्यों द्वारा समाचार भेजा तो सन्त ने कहलवाया कि वे किसी स्त्री से नहीं मिलते। जब मीरा को यह बताया गया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और बोली- क्या श्रीकृष्ण के अलावा भी यहाँ कोई पुरुष हैं बाकी सब गोपियाँ हैं। सनातन जी ने जब यह सुना तो बड़े लज्जित हुए और मीरा जी से मिले।

मध्यम पतिव्रता परपुरुष को अवस्थानुसार पिता, भाई या पुत्र के रूप में देखती हैं।

निष्कृष्ट पतिव्रता वे हैं जो अपनी कुल मर्यादा या धर्म से भयभीत होकर अपने धर्म का पालन करती हैं।

अधम नारी वे हैं जो अवसर प्राप्त न होने या पति के भय से पतिव्रता बनी है।

और उन नारियों को तो स्मरण करने से भी पाप लगता है जो अपने पति को धोका देकर अन्य पुरुषों के साथ क्षणिक सुख प्राप्त करने की अभिलाषा में अनेकों जन्मों में कष्टों का आवाहन कर लेती हैं।

अत्रिमुनि से विदा ले प्रभु ने विराट असुर का बध किया फिर शरभंग मुनि के आश्रम में गये, वहाँ सबको कृतार्थ कर आगे चले तो अस्थियों का ढेर देखा। जिज्ञासा हुई तो मुनियों ने बताया कि राक्षसों ने तपस्वी ऋषियों का भक्षण कर उनकी अस्थियों को यहाँ एकत्र किया गया है। यह सुन भगवान के नेत्र सजल हो गये। संकल्प किया-

चित्रकूटतें चलै राम इत दण्डक बनमहँ। निरखि राम सिय लखन होहिँ मुनि प्रमुदित मनमहँ।।

निसिचर हीन करऊँ, महि भुज उठाय पन कीन्ह।

पंचाप्सर- वनवास के समय लक्ष्मण तथा सीता के साथ विचरण करते हुए राम भांति-भांति के पर्वतीय शिखरों, वनों तथा नाना प्रकार की नदियों को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। दूर तक यात्रा करने के पश्चात् सायंकाल के समय उन्होंने एक अत्यंत विशाल सुंदर सरोवर देखा। उस रमणीय सरोवर से मधुर संगीत की ध्वनि सुनाई दे रही थी, किंतु वहां कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था। तब कौतूहलवश राम और लक्ष्मण ने अपने साथ आए हुए धर्मभूत नामक मुनि से सरोवर के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की।

मुनि धर्मभृत ने उस सरोवर के संबंध में बताते हुए कहा- श्रीराम। यह पंचाप्सर नाम का सरोवर है, जो सर्वदा अगाध जल से भरा रहता है। मांडकर्णि नामक मुनि ने अपने तप के द्वारा इसका निर्माण किया था। महामुनि मांडकर्णि ने जलाशय में रहकर केवल वायु का भक्षण करते हुए दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या की थी। उस समय अग्नि आदि समस्त देवता मुनि के तप से व्यथित हो गए। उन्हें शंका हो गई की महामुनि उन देवताओं में से किसी के स्थान को ग्रहण करना चाहते हैं, अत: उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए समस्त देवताओं ने पांच प्रधान अप्सराओं को नियुक्त किया। उन

अप्सराओं ने अपनी चेष्टाओं से मुनि को मुग्ध कर दिया। वे पांचों अप्सराएं मुनि की पत्नी के रूप में इसी सरोवर में निवास करती हैं। महामुनि अपनी तपस्या के प्रभाव से सदैव युवा बने रहते हैं। क्रीड़ा-विहार में लगी हुई उन अप्सराओं के संगीत की मधुर ध्वनि ही यहां सुनाई दे रही है।

अत्रि अगस्त्य सुतीक्ष्ण आइ मुनि पावन कीन्हें। भये कृतारथ सबहिँ स्वयं हरि दरशन दीन्हें।।

भक्त सुतीक्ष्ण को दर्शन दे अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनिगणों को आनन्दित कर अगस्त्य जी की आज्ञा से पंचवटी पर निवास करने लगे। यहाँ जटायू से मित्रता हुई। लक्ष्मण को धर्म चर्चा सुनाते हुए आनन्द से समय व्यतीत होने लगा। यह दण्डकवन में है।

दंडकारण्य- इक्ष्वाकुवंश में दंडक नाम का एक अत्यंत पापी राजा था। एक बार वह अपीन सेना के साथ वन में मनोविनोद के लिए गया। एक मृग को देखकर उसने उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ा दिया। गहन वन की भूल-भूलैया में मृग उसकी आंखों से ओझल हो गया। इसी बीच में वह मार्ग में भटक गया। भूखा-प्यासा वह किसी सरोवर के निकट पहुंच गया। पानी पीकर जब वह स्वस्थ, शांतचित्त हुआ, तब उसे ध्यान आया कि यहां तो गुरुवर भृगु का आश्रम है। मुनिवर भृगु तो उस समय आश्रम में थे नहीं, केवल उनकी कन्या ही वहां थी। कन्या के सौंदर्य को देखकर राजा दंडक मुग्ध हो गया। पापी तो वह था ही, कन्या को दुष्कर्म पीड़ित करके वह अपनी नगरी को लौट गया।

पिता के लौटने पर कन्या ने सारा वृत्तांत सुना दिया। कन्या को सांत्वना देते हुए मुनिवर भृगु ने अंजलि में जल लेकर शाप दिया कि दंडक के साथ-साथ तो उसका सौ योजन राज्य चारों ओर से जलकर भस्म हो जाए। उतने स्थान पर न तो जल ही रहे और न ही कोई जीव वहां रहे। शाप की अवधि निश्चित करते हुए मुनिवर ने कहा था- जब ऋषि अगस्त्य काशी छोड़कर विंध्याचल के पार चले जाएंगे तब इस स्थान पर पुन: जल आ जाएगा। बड़े-बड़े ऋषि-महात्मा भी वहां निवास करने लग जाएंगे। राजा दंडक के दुराचार के कारण उस क्षेत्र की ऐसी दुर्दशा हुई, इसलिए लोग उसे दंडकारण्य कहा करेंगे।

सुपनखा रावन के वहिनी, दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
पंचवटी सो गई एक बारा, देखि विकल भई जुगल कुमारा।।

सूर्यकान्त मणि जैसे दर्शन कर पिघल ही जाती है वैसे ही राक्षसी सूर्पनखा सुन्दर सुकुमार राम और लक्ष्मण को देख काम विकल हो गई उनसे तुरन्त मायावेश बनाकर श्रीराम से कहा- संसार में आपके समान कोई सुन्दर पुरुष नहीं और न मेरे समान कोई स्त्री। लगता है विधाता ने संयोग से ही हमारा तुम्हारा निर्माण किया है। अत: विधाता की रचना का हमें आदर करना चाहिए। **तुम सम पुरुष न मो सम नारी, यह संयोग विधि रचा विचारी।**

सुर्पणखा की बुद्धि बहुत ही कलुषित, कामवासनाके कारण अशुद्ध थी।

इस सुन्दर पुरुष को आज तक कोई सर्वाङ्ग सुन्दरी स्त्री मिली नहीं। जैसी कुछ इसे मिली है उसी में यह अनुरक्त है तन्मय है। यदि मैं इस स्त्री से भी सुन्दर स्त्री बन जाऊँ तो निश्चय है यह इसे छोड़ कर मुझे अपना लेगा वरण कर लेगा।

बसहिँ राम सिय सङ्गमहँ, पञ्चवटीमहँ करि कुटी। राम रूप फँसि भई जहँ, रावण भगिनी नककटी।।

राम ने मुस्करा कर जानकी की ओर देखा और बोले- शुभे। मैं तो दुर्भाग्य से विवाह सूत्र में बँध चुका हूँ, साथ में ये मेरी भार्या है। वे सामने मेरे लघुभ्राता हैं तुम उनके पास चली जाओ। वह लक्ष्मण जी के पास गई।

लक्ष्मण ने जब नेत्र बदलकर उसकी ओर देखा मात्र ही था इतने पर ही बोली-

अच्छा तुम उनकी भाँति मुझे उत्तर देना खुरखुर नहीं।

तुम बने बनों में बनी बनूँ यह जोड़ा भी कुछ बुरा नहीं ।।

सूपनखा बोली- आर्यश्रेष्ठ। आप सुन्दर पुरुष हैं- मैं भी आपके अनुरूप हूँ इसलिए आप वर और मैं बधु बन जाऊँ। यही विधि का विधान है। किन्तु लक्ष्मण जी रावण की बहन समझ बोले- हे सुन्दरी। तुम समझ नहीं रही हो- मैं तो उनका दास हूँ। मेरे साथ तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, वे अयोध्या के राजा हैं। सामर्थवान हैं उनके साथ तुम्हारा जीवन आनन्द से व्यतीत होगा। वह श्रीराम के पास गई। राम ने पुन: लक्ष्मण के पास भेज दी, लक्ष्मण ने पुन: राम के पास भेजा तो सुपनखा खिसियानी हो गई। सूर्पणखा बोली- क्या मुझे पागल समझ रखा है। मैं सर्वनाश कर दूँगी, कभी इधर भेजते हो, कभी उधर भेजते हो। पहले तो मैं इस जानकी को ही नहीं छोडूँगी। जब राम ने पुन: उसे टालने की बात कही तब वह निशाचरी निजरूप में आ गई और जानकी को भयभीत करने लगी। राम के इशारे पर लखन ने शीघ्र उसके कान और नाक काट कर रावण को चेतावनी दे दी। सूर्पणखा को विरुप कर दिया। लक्ष्मण उसका अन्त ही क्यों नहीं कर दिया? यदि अन्त कर दिया जाता तो खर-दूषण तथा रावण को श्रीराम प्रभु के आने की सूचना कैसे मिलती और उनका बध कैसे होता?

खर दूषण पहिं गई विलपाता, धिक-धिक तब पौरुष बल भ्राता। थे सूपनखा के सम्बन्धी, नाते में भाई लगते थे।
खर-दूषण, त्रिसरा तीन वीर वरदानी और बलखानी थे। रावण के संगी साथी थे उसके सादृश्य साहसी थे।
वे लड़ने आये रघुवर से, कुल सहित इकट्ठा कुल होकर।

खर-दूषण और त्रिसरा सहित जुन्नर, मंचर के पास युद्ध करने आ गये। श्रीराम ने लक्ष्मण को जानकी सहित कंदरा में छुपा दिया और धनुषबाण ले जब राक्षसों की सेना के सामने आये तो खर को सम्मोहन हो गया। प्रभु राम की सुकुमारता, सौन्दर्य को देखकर चकित हो गया। उसने सन्धि प्रस्ताव भेजा किन्तु राम ने उसे ठुकरा दिया। क्रोधित हो विभिन्न आयुधों से आक्रमण कर दिया।

राम राम कहि तनु तहहिं, पावहिं पद निर्वान। करि उपाय रिपु मारे छन महु कृपानिधान।।

श्रीराम ने भी भयंकर बाणों की वर्षा की, कुछ ही समय में समस्त सेना और खर-दूषण तथा त्रिसरा को कृपाकर कृपानाथ ने अपने धाम भेज दिया। वहाँ दण्डकारण्य में शूर्पणखा के उकसाने से लड़ने के लिये आये हुए खर, दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह सहस्त्र राक्षसों का उन्होंने वध किया।

दूषण खर अरु त्रिशिर रामतें लड़िबे आये। निशिचर चौदह सहस राम यमसदन पठाये।।
यातुधान जब सब मरे, चली लंककूँ नककटी। मरहिं निशाचर बेगि कब, लगी रामकूँ चटपटी।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, दण्डकारण्य में श्रीराम हाथ में दुर्जय धनुष बाण धारण किये बड़ी कठिनता से रहे। वहाँ उन्होंने रावण की बुरे विचार वाली बहिन सूर्पणखा के रूप को विकृत कराया, उसके खर, दूषण और त्रिशिरा आदि भाइयों को मारा तथा अकेले ही चौदह सहस्त्र राक्षसों को मारा।

खर-दूषण का जब हुआ रण में काम तमाम। सूपनखा को फिर कहाँ पलभर भी विश्राम।।
लंकापति की सभा में बोली होकर लाल। दशमुख के रहते हुए कटी बहन की नाक।।
लंकापति रावण यह सुन आगबबूला हो गया। पूछा- किसने यह तेरा हाल किया? सूपनखा बोली-
भाई दो लड़के राम-लखन इस दण्डवन में आये हैं। हमराह एक सीता नारी सुकुमारी संग में लाये हैं।
यूँ पंचवटी में रहते हैं जैसे जागीर उन्हीं की हो। बांके हैं और लड़ाके हैं गोया शमसीर उन्हीं की हो।।

सूर्पणखा रोती-चिल्लाती हुई रावण के पास आयी। रावण ने पूछा- क्या हुआ? कैसे हुई तुम्हारी ये दशा? सूर्पणखा

बोली- हे लंकेश्वर, मैं सैर करने के लिए पंचवटी की ओर गई। वहाँ उस सुकुमारी को देख उससे बातें करने की इच्छा हुई। मैं उसके पास गई तो लखन ने मेरे साथ हरकत करने की कोशिश की। मैंने उसे बताया कि मैं लंकाधिपति महाराज रावण की बहिन हूँ। वह डरा नहीं बल्कि उसने तुरन्त मेरी यह दुर्दशा कर दी। मैं खर-दूषण के पास गई। वे सेना सहित उनसे लड़ते-लड़ते मारे गये।

रावणके ढिँग जाइ रोइ बोली नकटी सुनि। पंचवटीमें रहे राम लक्ष्मण बनिकें मुनि।।
सङ्ग सीय इक सुधर नारि रति सम सुकुमारी। भाभी मेरी बने बात मन माहिँ बिचारी।।
तिनि सुनि मम प्रस्तावकूँ, नाक काट मेरी लई। खर, दूषन, त्रिशिरा मरे, अपकीरति तेरी भई।।

रावण- महर्षि अगस्त्य ने राम को बताया- राक्षसराज दशग्रीव एक बार पुष्पक विमान से भगवान शंकर के क्रीड़ा-स्थल पर्वतशिखर के ऊपर से जा रहा था, तब विमान की गति सहसा रुक गई। भगवान शंकर के पार्षदों ने उसे भगवान शंकर की महिमा बताई। वह अभिमान से बोला- कौन हैं यह शंकर? और गर्वीले स्वर में कहने लगा- तुम्हारे इस पर्वत को, जो मेरे सामने खड़ा है, मैं समूल उखाड़ फेंकता हूं। ऐसा कहकर दशग्रीव ने पर्वत के निचले भाग में अपनी भुजाएं लगाई और उसे शीघ्र उठा लेने का प्रयास करने लगा। सभी गणों एवं पार्वतीजी के विचलित हो जाने से भगवान शंकर ने उस पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से सहज रूप में ही दबा दिया। फिर तो दशग्रीव ने बड़े जोर से आर्तनाद किया, जिसे सुनकर सभी प्राणी कांप उठे। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

दशग्रीव के मंत्रियों ने कहा- महाराज। आप महादेव को संतुष्ट कीजिए। वे ही आपका उद्धार कर सकते है। दशानन ने भगवान वृषभध्वज को प्रणाम करके नाना प्रकार के स्तोत्रों और मंत्रों से उनका स्तवन किया। तब भगावन शंकर प्रसन्न हो गए और दशानन से बोले- मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूं। तुमने पर्वत से दब जाने के कारण जो अत्यंत भयानक राव (आर्तनाद) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों लोकों के प्राणी रो उठे। इसलिए राक्षसराज, अब तुम रावण नाम से प्रसिद्ध होगे, देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतल पर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकों को रुलानेवाले तुम दशग्रीव को रावण कहेंगे।

रावण ने विचार किया-

खर दूषण मो सम वलवन्ता, तिन्हहि को मारइ बिन भगवन्ता।
जब एक अकेले तपसी ने इन सब वीरों को मार दिया।
तो फिर निश्चय यह सिद्ध हुआ, नारायण का अवतार हुआ।।
अच्छा यदि वे अवतारी हैं तो वैर भाव ही रखूँगा।
इस नाक काटने का बदला दोनों से अभी चुका लूँगा।।

रावण क्रोधित हो फुफकार छोड़ता हुआ क्रोधित हो बोला- किस दुष्ट ने जलती हुई अग्नि में हाथ डाला? कोन अबोध सोते सिंह की दाढ़ों को उखाड़ने का प्रयत्न कर रहा है? कौन विषधर सर्प के सिर पर पैर रखकर मृत्यु का आलिङ्गन करना चाहता है? खरदूषण को किसने मारा? राम कौन है? मैं उसे अभी जाकर मारूँगा। क्या राम मेरे प्रबल पराक्रम से परिचित नहीं? क्या इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम के दाँत खट्टे करनेवाले दशानन का नाम राम ने नहीं सुना?

इस राक्षसत्व का चोला भी बाहरी है। रावण विरोधी भक्त हैं।

निरखि बहिन अपमान रक्त खौले नहिँ तेरो। रावण बोल्यो बहिन, निरादर है जिह मेरो।।

छल बलतें तिनि मारि नारि तिनकी लै आऊँ। मृतंग बनाइ मारीच तहाँ हौं अबई जाऊँ।।

लंकाधिपति को यह निश्चय हो गया कि भगवान साकार रूप लेकर रामरूप में अवतरित हो गये हैं अत: उनसे शत्रुता का सम्बन्ध रखकर सम्पूर्ण कुल का उद्धार कराना ही उचित होगा। शीघ्र मारीच के पास गया और उसे मायामृग बनने के लिए बाध्य किया। रावण ने सीताहरण की योजना बनाई। उधर प्रभु श्रीराम ने लखन के बन चले जाने पर सीता को अग्नि देवता को समर्पित्त कर छायामूर्ति अपने साथ रख ली। रावण ने सीता के सौन्दर्य की बात सुनी। वह कामातुर हो उठा। उसने मारीच को माया से सोने का मृग बनाकर राम की कुटिया के पास भेजा। पर्णकुटी के सामने स्वर्णमृग छलांग भरने लगा।

डरि रावनतें कनकको, बनि मरीच मृग चलि दयो। पंचवटी ढिँग फिरहि खल, सीताको विस्मय भयो।।

सीता ने देखा-

सीता परम रुचित मृग देखा, अंग अंग सु मनोहर वेषा।
सुनहु देव रघुवीर कृपाला एहि मृग कर अति सुन्दर छाला।।
भला कहीं संसार में होता स्वर्ण कुरंग। होनी होती है प्रबल करती हैं मति भंग।
बाण चढ़ाया राम ने खींच धनुष की डोर, सौंप लखन को जानकी चले हरिण की ओर।।

वह मायावी मारीच स्वर्णमृग के रूप में छलांग मारता, दुबकता, उजागर होता श्रीराम को बहुत दूर खूले मैदान में ले गया। वह धीरे-धीरे राम को वहाँ से दूर ले गया। काफी दूर जाने पर श्रीराम ने मायावी मारीच को अपने अमोघ बाण का निशाना बनाया। श्रीरामने धनुष पर बाण का संधान किया। सीताके लिए वे मृग के पीछे दौड़ पड़े। उन्होंने अपने वल्कल (छाल) वस्त्र को अपनी फेंट में मजबूती से बांध लिया था। उनके शरीर का रंग नए बादल या नीले कमल के समान है, उनकी भुजाएं विशाल हैं और कंधे सिंह के समान हैं। उनका मुख चंद्र के समान तथा नेत्र कमल के समान हैं। सिर पर जटाएं शंकरजी के समान बंधी हुई हैं। वे सृष्टि को बनानेवाले, पालनेवाले और संहार करनेवाले हैं। वे अनेक ब्रह्माण्डों की रचना आधे पल की अवधि में कर सकते हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, इसके पश्चात सीता के सौन्दर्य की सराहना सुनकर कामातुर रावण ने मृग बने मारीच को पश्चवटी भेजा। वह श्रीराम को लुभाकर आश्रम से दूर ले गया। श्रीराम ने उसे शीघ्र ही एक बाण में उसी प्रकार मार दिया जिस प्रकार दक्ष को उसके यज्ञ में वीरभद्र ने मार डाला था।

वे राक्षस बड़भागी हैं, जो राम बाण से घायल होकर मुख से राम नाम का उच्चारण करते, नेत्रों से राम के रमणीय रूप को निहारते शरीर त्यागते हैं। उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है?

धनधारी रघुनाथकूँ, लखि पीछे भाग्यो असुर। मारहिँ नहिँ पकर्‌यो चहें, सोचहिँ प्रभु मृग अति सुघर।।

राम ने निशाना लगाकर एक तीर मारा उसके लगते ही हा राम, हा लक्ष्मण, हा भय्या लक्ष्मण जोर से चिल्लाया, मायावी ने श्रीराम जैसी आवाज बना ली थी जिसे सुनकर जानकी विचलित होने लगी- और लक्ष्मण को सहायता हेतु जाने का आदेश दिया। लक्ष्मण ने समझाने का भरसक प्रयास किया जो जानकी जी रोष में कुछ अनुचित कह गई। और अन्त में माता के रूप में आदेश दिया-

माता तुम मुझे समझते हो तो आज्ञा मानो माता की, मैं आज्ञा तुमको देती हूँ जाओ सुधि लैने भ्राता की।।

लक्ष्मण को आन्तरिक वेदना हुई किन्तु सेवक धर्म कठोर है। सेवक को अवज्ञा करने का साहस नहीं होता। अवज्ञा करने पर सेवक धर्म की मर्यादा ही नष्ट हो जाती है। लक्ष्मण जाने लगे तो भगवान भास्कर को, वन के पक्षियों और पवनदेव

को साक्षी बनाया और जाते-जाते इतना ही निवेदन किया-

बोले लक्षिमन त्रियाचरित मत मातु दिखाओ। कहें जानकी मरूँ राम ढिँग यदि नहिँ जाओ।।

जाते-जाते भी उन्हें इतना रहा विवेक, सीता के चारों तरफ रेखा खींची एक।

फिर बोले, माता जाता हूँ, तुम सावधान होकर रहना। मैं रहा आज्ञा के भीतर तुम रेखा के भीतर रहना।।

लक्ष्मणरेखा- मृगरूपधारी कपटी राक्षस मारीच के पीछे गए हुए भगवान राम के अनुज लक्ष्मण ने गवती सीता से कहा है- हे माता मेरी बात सुनो। मैं धनुष से आपके चारों ओर यह रेखा खींच देता हूं। यह आपकी रक्षा के लिए है जिसका दुष्ट उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकते। इसे देखते ही दुष्टों के मन में भय उत्पन्न हो जाएगा। किसी भी परिस्थिति में आप स्वयं इस रेखा का उल्लंघन नहीं करना। ऐसा कहकर धनुष की कोर से लक्ष्मणजी ने पंचवटी के बाहर खाई की भांति सीताजी के चारों ओर रेखा खींच दी। तथा सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के धनुष्य द्वारा खींची हुई रेखा पंचवटी के चारों ओर आज भी भयानक नदी के रूप में दिखाई देती है।

नहिँ जब आयो हाथ तीर तकि सियपति मार्‍यो। हा सीता। हा लखन, राम स्वर माहिँ पुकार्‍यो।।

लखि रजनीचर राम भये व्याकुल इत सीता। पति आरत सुनि शब्द भई भामिनि भय भीता।।

पग पग पै प्रिय प्रेममहँ, अनहित आशंका रहत। वचन कहे कछु कटु कुमरि, दास लखन सिर धुनि सहत।।

थकित से, श्रमित से लखन की आशंकाओं के घेरे में आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं किन्तु पैर उठते नहीं है जैसे विद्रोह कर रहे हों। लक्ष्मण तुम जाओ, जाने की आवश्यकता नहीं थी। यह सब आसुरी माया थी। अब छल भी सम्भव है किन्तु माँ की आज्ञा पालनीय है। लक्ष्मण जी भी राम के पीछे चले गये थे। आगे बढ़ते गये। रावण ने सीता को देखा अकेली हैं अब उसके कार्य का उचित अवसर है।

लखन दुखित ह्वै चले दशानन तब तहँ आया। साधु समुझिकें सीय सहमि सादर बैठायो।।

सीता हरण के लिए जब रावण गया तो वह एक संन्यासी के ही वेष में था। भक्त की पहचान न रखनेवालों को सीता हरण के लिए जाता रावण भी साधु ही नजर आएगा।

सन्त का वेश धारण कर हरिगुण गाता कुटिया के निकट आकर- माँ भिक्षां देहि कह कर जानकी से याचना की। जानकी दुखित थी- योगी के आशीर्वाद से मंगल होगा इसलिए मध्याह्न के भोजन के लिए रखे फलों को उठा लाई, सन्त जब लेने के लिए आगे बढ़े रेखा के करीब हुए तो जैसे जलने लगे। पीछे लौट आये। बोले माँ, सन्त कभी मंत्र से ग्रसित भिक्षा नहीं लेते। मन में सोचा रावण ने-

रेखा जो उल्लंघन करता है तो निश्चित अभी मरण तेरा। कैसा सीता का हरण यहाँ, होता है प्राण हरण तेरा।।

अगर आपको भिक्षा देनी ही है तो इस बन्धन से मुक्त होकर दीजिये सीता ने सोचा सन्त हैं इनसे किसी प्रकार के अनर्थ की कल्पना नहीं करनी चाहिए और दान का मैं संकल्प कर चुकी हूँ, वापस कुटिया में कैसे रखूँ। रावण जब भिक्षा ले रहा था उस समय वो संत था। माता जानकी का हरण किया, तब वो राक्षस बन गया। सन्त बनकर रावण ने जानकी का हरण नहीं किया। उसने सोच यदि संत बनकर माता हरण करूँगा तो संत के चरित्र पर कलंक लग जायेगा।

अत: रेखा से बाहर आकर भिक्षा देने लगीं तो रावण अपने यथार्थ वेश में आ गया और सीता को बलात अपने रथ पर बिठाकर आकाश मार्ग से भयातुर भागने लगा। कुटिया में सीता को अकेली पाकर रावण ने सीता का हरण कर लिया। सीता विभिन्न प्रकार से विलाप करने लगी।

उधर राम ने जब लक्ष्मण को आते देखा तो अवाक् रह गये। लक्ष्मण ने राम को सकुशल देखा तो शंकायें बलवती हो गई। गोदावरी के तट पर बनी पर्णकुटी में जब लौटकर आये तो जानकी को न देख राम साधारण मानव की भाँति विलाप करने लगे- **हा गुन खानि जानकी सीता, रूप सील व्रत नेम पुनिता।।**

पशु-पक्षी, वृक्ष लताओं से जानकी के विषय में पूछते वन में भटकने लगे। तो-

हे खग, हे मृग, हे भ्रमर वृन्द। तुमने वह मृगनयनी देखी?

कोकिले कूक कर बतला दे तूने कोकिल वयनी देखी।।

हँसो मत हँसो बताओ तो चलकर उस राजहँसनी को। सिंहो, गर्जो, इतना कह दो, देखा रजपूत सिंहनी को।

शुकदेव बोले- राजन्, इधर राक्षसाधम रावण द्वारा श्रीराम के परोक्ष में विदेहराज कन्या सीताजी के हर लिये जाने पर स्त्री सङ्गियों की इसी प्रकार की गति होती है। इसे दर्शाने के लिये, अपनी प्रियतमा से वियुक्त होने पर अपने भाई लक्ष्मण के सहित श्रीराम दीन होकर वन-वन विचरते रहे।

जड़ चेतनका भेद भूलि भामिनि हित भटकै। खग मृगतें सिय पतो पूछि सिर धुनि कर पटकैं।।

तदनन्तर सीता के वियोग में राम विलाप करते हुए वन-वन में घूमने लगे। लक्ष्मण उन्हें ढाढस बँधा रहे थे। इस प्रकार राम ने संसार को यह शिक्षा दी कि- जो स्त्रियों में आसक्त रहते हैं, उनकी यही गति होती है।

इत उत चितवत चकित ह्वै, नयन नीर धारा बहत। तात धीर धारन करो, रामअनुज पुनि पुनि कहत।।

श्रीराम वन में वृक्षों और लताओं से पूछते हुए घूम रहे हैं। हे बंधुओं, क्या आप लोगों ने रास्ते में किसी अकेली स्त्री को जाते हुए देखा है। पक्षी, हे सर्पराज, इस कंदरा के स्वामी, अबकी बार मेरी विपत्ति को मिटा दो और सीताजी का पता-ठिकाना बता दो। उनका शरीर चंपा के रंग जैसा और अत्यंत ही सुंदर हैं, ऐसा लगता है कि उस पर चित्रकारी की गई है।

निम्ब, कदम्ब, रसाल, पनस, सियपती बताओ। प्रिया छिपी तुम कहाँ शीघ्र शशिबदन दिखाओ।।

जाइ तरुनि ढिँग कहत जनकतनाय तुम देखी। सरिता गोदावरी, कहा सखि सिय तुम पेखी।।

यों प्रलाप पुनि पुनि करें, सिरी सरिस राघव भये। सर सरिता वन कन्दरा, ढूँढ़त दिशि दक्षिण गये।।

पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भी शूरवीर, शरणागतरक्षक, धर्मपरायण साधुजन मिलते हैं।

इस पर कहीं से आवाज आई कि हे रघुनाथजी, मैंने अभी राक्षस के साथ सीताजी को जाते हुए देखा है। यह सुनकर रामजी दौड़ पड़े। उनको धरती पर सीताजी के चरणों के चिन्ह दिखाई दिए। उनके नेत्रों में आंसू आ गए और उन्होंने उनके चरण-चिन्हों की धूल इस प्रकार शरीर पर लगा ली जैसे शंकरजी धूलि को शरीर में लगा लेते हैं। फिर आगे चलने पर उन्हें कहीं गले का हार, कहीं हाथ का कंगन, कहीं पायजेब और कहीं वस्त्र प्राप्त हुए।

सर्वज्ञ, अज्ञ की भाँति आज, नाना प्रकार चिल्लाते थे। सीता की खोज हेतु वन में आगे को बढ़ते जाते।

राम प्रभु सर्वज्ञ होकर भी अज्ञ की तरह विलाप करते सीता को खोज रहे हैं। सीता रावण के वायुरथ पर बैठी विलाप कर रही हैं। रथ दक्षिण की ओर जा रहा है। सीता के विलाप सुन भारी, भए चराचर जीव दुखारी के अनुसार वन में कारुणिक दृश्य उत्पन्न हो गया। परदुख कातर जटायू ने जब करुणक्रन्दन सुना तो उनका कर्त्तव्य उन्हें ललकारने लगा। देखा तो राक्षस बलात किसी कुलीन महिला को लिये जा रहा था। जटायू का शौर्य अधीर हो उठा।

वैदेही की जब सुनी करुणा भरी पुकार। हुआ दया का निर्दयी खग में भी संचार।।

अबला का चीत्कार हुआ, सुन जटायु जाने को तत्पर हुआ तो मन से आवाज उठी-

दुष्ट सीय लै चलि दयो, धेनु बधिक फंदे परी। दुखित गीध स्वर सुनि भयो, जानि दशानन सिय हरी।।

बलिदान आज होगा मेरा, यह उसको पहले सूझ गया। फिर भी उपकार का निर्दयी खग में भी संचार।।

जटायू ने आगे बढ़कर राक्षसराज रावण को ललकारा। बलात अपहरण के लिए उसकी निन्दा की। रावण ने अपनी निन्दा करनेवाले साहसी को मुड़कर देखा- **जाना जरठ जटायू एहा।**

रावण ने जटायू को पहचान लिया। जटायू ने रावण को जान लिया। जनकनन्दिनी श्रीरामवल्लभा के दर्शन कर जटायू ने पुन: रावण को समझाया-

समर दशानन संग गीधने अद्‌भुत कीन्हों। अश्व सारथी मारि निशाचर मूर्छित कीन्हों।।

तजि जानकिहि कुशल गृह जाहू, नाहि त अस होइहि बहुबाहू।

किन्तु- रावण आतातई था- जटायू के पंख काट दिये।

उतर न देत दशानन जोधा, तबहि गीध धावा करि क्रोधा।

चौंचन मारि विदारति देही, दंड एक भई मूर्छा तेही।।

पर गीध गीध ही था कब तक दानव से लड़ सकता था।

रावण ने जब पर काटे तो परवस हो चकनाचूर हुआ।

इधर अधमरा गीध भी कहता था हा राम। उधर जानकी भी वहीं टेर रही श्रीराम।

विलाप करती-करती सीता ने जब ऋष्यमूक पर्वत पर बन्दर समूदाय को देखा तो आभूषण, वस्त्र में लपेटकर फेंक दिये। रथ आगे चलता गया।

पुनि घायल करि गृद्ध चल्यो सीता लै रावन। किष्किंधा पै फेंकि दये सिय पट आभूषन।।

राम आगे बढ़ते गये-**आगे परा गीधपति देखा, सुमिरत राम चरन जिन देखा।**

चलते-चलते उस जगह पहुच गये सुखधाम। जहाँ अधमरा गीध भी कहता था हा राम।

दीनबन्धु श्रीराम ने जटायू को जब घायलावस्था में देखा तो द्रवित हो गये शीघ्र जटायू को सम्भाल कर पूछने लगे कि उसके साथ यह अत्याचार किसने किया है। आत्मीय शब्द सुन जटायू को अत्यन्त सांत्वना मिली और बोला-

नाथ दशानन यह गति कीन्हीं, तेहि खल जनक सुता हरि लीन्हीं।

राम ने जिज्ञासा भरी मधुर वाणी से पूछा- लेकिन गिद्धराज तुमने उसका क्या अपराध किया? गीधराज अचेतन सा होने लगा। किन्तु श्रीराम के मधुर स्वरों ने बरवस उनके नेत्र खोल दिये वह बोला-

यह सुन ही फिर खुले भक्तराज के नैन। टूटे फूटे वाक्य में लगा बोलने बैन।।

हा राम, एक राक्षस दक्षिण, हा राम ले चला था उनको।

हा राम, लड़ा था मैं उससे, हा राम, छुड़ा न सका उनको।

हा राम, न बोला जाता है, हा राम, मुझे अब मरने दो।

हा राम, सामने आ जाओ, हा राम स्वरूप निरखने दो।

रोते-रोते भक्त से लिपटे दशरथ लाल। लिटा लिया निज गोद में गीधराज तत्काल।।

भक्तवत्सल की गोद में लेटे भक्त अन्तिम दर्शन कर रहे हैं। श्रीराम के अश्रुपूरित नेत्रों को देख गीधराज निहाल हो गये। श्रीराम बोले- गीधराज तुमने मुझे चिर ऋणी बना दिया है एक उपकार और करना। तुम मेरे धाम जा रहे हो वहाँ आपके

मित्र मेरे पिताश्री अवश्य मिलेंगे किन्तु उनसे इन आपदाओं को मत कहना। गीधराज ने हा राम कहकर अपने प्राणों को प्रभु को समर्पित कर दिया। भगवान ने उसका दाह-संस्कार किया, जैसे कोई अपने बच्चे की अन्त्येष्टि क्रिया करता है।

जनम मरनतें छूटि तनु-तज्यो गीध भरि गोदमहँ। रामरूप हिय राम मुख, दह रामकी गोदमहँ।।

गीध पिता न होनेपर भी पिता का सम्मान पा गया, दशरथजी पिता होते हुए भी उस सम्मान से वंचित रह गये।

उसकी समस्त अन्तिम क्रियायें प्रभु ने अपने हाथों ही की। शरीर पाने का यथार्थ फल यही है, कि वह राम के काज में लगे। जो शरीर राम काज में नहीं आता वह व्यर्थ है। उस शरीर से कोई लाभ नहीं। बहुत से लोग कहते हैं, हम बड़े कुलीन हैं, हमारा जन्म उच्च वर्ण में हुआ है। हम धनवान, रूपवान, विद्यावान, तेजस्वी, यशस्वी ऐश्वर्यशाली सात्विक आहार करनेवाले तथा नियम से रहनेवाले श्रेष्ठ हैं। अमुक नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति हमारी बराबरी कैसे कर सकता है। तुम्हारी कुलीनता, शालीनता, धन, विद्या, वय, रूप, तेज, यश, ऐश्वर्य व्रत तथा नियम आदि तभी सार्थक हैं, जब इनके द्वारा राम की सेवा का सुयोग प्राप्त हो। यदि इन सब वस्तुओं को पाकर भी इस सुन्दर शरीर से राम का भजन न बना तो ये सब किसी काम के नहीं। ये केवल विडम्बना है। अहंकार की ओर बढ़ानेवाले हैं। इसके विपरीत जिनके मन में राम के प्रति भक्ति है, प्रभु पाद पद्मों में प्रेम है, तो फिर वह चाहे पशु, पक्षी ही क्यों न हो। लोकनिन्दित अधम, घृणित आहार करनेवाला अस्पृश्य और अशुभ ही क्यों न हो, प्रभु प्रेम के कारण वह विश्ववन्दित और जगत् पूज्य बन जाता है।

जटायु का जन्म अंडज योनि में हुआ। वे पक्षी थे। पक्षी भी शुक, सारिका, श्यामा के सदृश शोभनीय तथा पूजनीय नहीं थे। वे घृणित मृतक मांस भोजी गिद्ध थे। शास्त्रों में गृद्ध को इतना अशुभ बताया है, कि जिस भवन की छत पर वह बैठ जाय, उस भवन का पुन: संस्कार कराना चाहिये। गृद्ध की दृष्टि, गृद्ध का दर्शन, गृद्ध का स्पर्श परम अमङ्गल प्रद-शुभ माना जाता है। वे ही गृद्धराज जटायु राम भक्ति के कारण शक्ति स्वरूपा सीता के निमित्त कार्य करने और तनुत्यागने के कारण विश्ववन्द्य तथा लोकपूज्य बन गये। राम भक्ति के सम्मुख सभी व्यर्थ हैं।

दयाधाम श्रीरामभद्रके नेत्रोंमें जल भर आया। वे कहने लगे- तात। मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ। तुमने तो अपने ही कर्मसे परम गति प्राप्त कर ली। जिनका चित्त परोपकारमें लगा रहता है, उन्हें संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अब इस शरीरको छोड़कर आप मेरे धाममें पधारें।

श्रीरामने जटायुको गोदमें उठा लिया था। अपनी जटाओंसे वे उन पक्षिराजकी देहमें लगी धूलि झाड़ रहे थे। जटायुने श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हुए उनकी गोदमें ही शरीर छोड़ दिया- उन्हें भगवान्का सारूप्य प्राप्त हुआ। वे तत्काल नवजलधर-सुन्दर, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, तेजोमय शरीर धारण कर वैकुण्ठ चले गये। जैसे सत्पुत्र श्रद्धापूर्वक पिताकी अन्त्येष्टि करता है, वैसे ही श्रीरामने जटायुके शरीरका सम्मानपूर्वक दाहकर्म किया और उन्हें जलाञ्जलि देकर श्राद्ध किया। पक्षिराजके सौभाग्यकी महीमाका कहाँ पार है। त्रिभुवनके स्वामी श्रीराम, जिन्होंने दशरथजीकी अन्त्येष्टि नहीं की, उन्होंने अपने हाथों जटायुकी अन्त्येष्टि विधिपूर्वक की। उस समय उन्हें श्रीजानकीजीका वियोग भी भूल गया था।

वनों में सीता का अन्वेषण करते श्रीराम ने दुर्वासा से शापित कबंध राक्षस का उद्धार किया। शवरी के आश्रम पर पहुँचे। शवरी अति दीन थी, शवरी अतिमन्द थी, शवरी अति कृषकाय थी, अति त्रसित थी क्योंकि अब वह निसहाय थी, उसके गुरुदेव ऋषि मतंग अचानक एक दिन स्वर्गारोहण कर गये थे। गुरुदेव को लेने बैकुण्ठ धाम से श्रीहरि के पार्षद स्वर्णिम विमान लेकर आये। गुरुदेव उसमें आरूढ़ होकर जब जाने लगे तो शवरी विलाप कर कहने लगी गुरुदेव। आप तो जा रहे हैं मैं अब किसके सहारे रहूंगी। आपकी कृपा से, आपके स्नेह से ही मैं इस आश्रम की सेवा कर रही थी। अब आपके न

रहने पर मैं कैसे रहूँगी मुझे यहाँ कौन रहने देगा। ऋषिगण मुझ से पहले से ही रूष्ट हैं- प्रभु। मैं महिमा हूँ, अबला हूँ, वृद्धा हूँ, अछूत हूँ इसलिए मेरा यहाँ आपके बिना रहना सम्भव नहीं है। हे गुरुदेव। मैं भी आपके साथ चल रही हूँ। शवरी ने विमान पकड़ लिया। हठात् उसमें चढ़ने लगी।

दण्डकारण्यमें भक्ति-श्रद्धासम्पन्न एक वृद्धा भीलनी रहती थी, जिसका नाम था शबरी। एक दिन वह घूमती हुई पम्पा नामक पुष्करिणीके पश्चिम तटपर स्थित एक अति रमणीय आश्रमपर पहुँची। मेघोंकी घटाके समान श्याम और नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंसे भरे हुए उस वनमें, जिसे मतंगवन कहा जाता था, एक अति सुन्दर आश्रम था। वह आश्रम मतंगमुनिका था। अनाथ शबरीने मुनिके चरणोंमें सिर रख दिया और उनसे शरण मांगी। दयालु मुनिने उसे शरण दी तथा भक्तिज्ञान दिया। मतंगमुनि सदा प्रभुभक्तिमें लीन रहा करते थे। अन्त समयमें उन्होंने शबरीको आदेश दिया कि तुम यहीं रहना; क्योंकि यहाँ श्रीराम और लक्ष्मण पधारेंगे। तुम उनका स्वागत करना। श्रीराम परब्रह्म हैं, उनका दर्शन कर तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा। शबरीके मनमें श्रीरामभक्तिकी एक लौ उन्होंने जगा दी थी।

मुनि मतंग ने उसको धीरज दिया, समझाया-शवरी। जिसका समय पूरा हो जाता है वही जाता है। अभी तुम्हारी आयु शेष है अत: तुम नहीं जा सकती। शवरी बोली- हे मुनि श्रेष्ठ। मैंने सारा जीवन आपकी सेवा में बिताया है और शेष जीवन भी आपकी सेवा में बिता दूँगी- आप मुझे साथ ही ले चलें। मुनि बोले- शवरी। अभी तुम्हारी साधना शेष है। उसे पूरी करो, तब ही भगवद् धाम जा सकती हो। शवरी ने दोनों हाथों से विमान पकड़ लिया था चीत्कार करके विलाप करने लगी, गुरु बोले- शवरी सुनो। मेरी आज्ञा मानों तुम सदैव अनुपालिनी रही हो, मैं एक बात स्पष्ट बताए देता हूँ- तुम ध्यान से सुनो और उसका पालन करना। देखो शवरी। मैं तो प्रभु से मिलने के लिए उनके धाम जा रहा हूँ लेकिन निश्चित ही भगवान श्रीमन्नारायण तुमसे मिलने के लिए भटकते-भटकते, पूछते-पूछते तेरी इसी कुटिया पर आयेंगे। तू धैर्य रख और मेरे शब्दों में विश्वास रख। गुरुजी ने शवरी के मस्तक पर अपना कृपा हाथ फेरा विमान उड़ चला- शवरी अश्रु पूरित नेत्रों से विमान को खड़ी निहारती रही।

उसी दिन से निशिवासर प्रभु का स्मरण, सन्तों की पूर्ववत सेवा करते हुए प्रभु के आने की बाट देखती रहती। नित्य कन्द, मूल, फल, एकत्र करती, रास्ता बुहारती, कुटिया को परिशुद्ध करती, न जाने कब प्रभु पधारें। गुरु के शब्दों में अटूट विश्वास था उसका।

गद्गद् वाणी कण्ठ की, आंसू टपके नैन। वह तो विहरन राम की तड़फत है दिन रैन।।

पूछति-पूछति प्रभु उदारा, शवरी के आश्रम पग धारा।

शवरी ने जटाजुट धारी, वक्षस्थल पर बनमाला धारण किये, कमल नेत्रोंवाले श्याम-गौर शरीरवाले, अद्वितीय सुन्दर दो तपस्वियों के दर्शन किये तो गद्गद् हो गई रोमांच हो गया। गुरु की स्मरण हो गई-

प्रेम मगन मुख वचन न आवा, पुनि-पुनि पद सरोज सिर नावा।

प्रेम विह्वल शवरी अपनी सुध-बुध भूल गई। स्तुति करना आता नही है कैसे प्रभु का गुणगान करे, जानती नही है। वौराई हुई स्थिति में ही दौड़कर गई दो टूटे से आसन ले आई। प्रभु के पद प्रक्षालन किये, आसन पर आसीन कर वे कन्द मूल, फल जो एकत्र करती थी प्रभु को अर्पन किये। प्रभु ने बड़ी रूचि से आनन्दित होकर उनका भोग लगाया। प्रभु फल पा रहे हैं शवरी सामने भाव विह्वल बैठी है। कुछ कहना चाहती है, पर शब्द नही आ रहे जिह्वा पर साहस बटोर कर बोली-

अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन्ह महँ मैं अति मन्द अधारी।

कह रघुपति सुन भामिनि बाता, मानहु एक भगति कर नाता।

गुरुके आदेशानुसार शबरी श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन आश्रममें प्रभु श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थी कि पता नहीं प्रभु श्रीराम कब पधार जायँ? अत: नित्य आश्रमके प्रवेश-द्वारतकके मार्गको बुहारती और सम्पूर्ण मार्गको नवीन पुष्पोंसे ओट देती थी। भगवान श्रीराम आयेंगे- यह गुरुका संदेश था और उसे इसका दृढ़ विश्वास था। कब आयेंगे? पता नहीं, पर आयेंगे अवश्य। वह श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रात-दिन श्रीरामजीका स्मरण करती। उनके स्वागतहेतु प्रतिदिन वनके ताजे पके कन्द-मूल-फल संग्रह करती- उन्हें निवेदन करनेके लिये। उसे विश्वास-सा एहो चला था कि प्रभु श्रीराम लक्ष्मणसहित अवश्य आयेंगे; क्योंकि गुरुने उसे यह सब बता दिया था। उसे गुरुवाणीपर पूर्ण विश्वास जो था।

अन्तत: वह शुभ दिन आ गया। प्रभु श्रीराम लक्ष्मणसहित सीताकी खोज करते हुए शबरीके आश्रमकी ओर आ ही गये। शबरीने देखा- श्रीराम और लक्ष्मण मतंगवनकी शोभा निहारते हुए बहुसंख्यक वृक्षोंसे घिरे उस सुरम्य आश्रमकी ओर आ रहे हैं। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। उन दोनों भाइयोंको आश्रममें आया देख, वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। उसने श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया। कमलसदृश नेत्र, विशाल भुजाओंवाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और गलेमें वनमाला धारण किये, सुन्दर, साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंसे शबरी लिपट गयी।

श्रीरामने शबरीको दोनों हाथ बढ़ाकर उठा लिया। प्रेमपूर्वक पूछा- हे चारुभाषिणि। तुमने जो गुरुजनकी सेवा की वह पूर्ण सफल हो गयी है न? उनके ऐसा पूछनेपर शबरीने उत्तर दिया- हे रघुनन्दन। आज आपका दर्शन पाकर मुझे अपनी तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हो गयी। आज मेरा जन्म सफल हुआ। गुरुजनोंकी उत्तम पूजा भी सार्थक हो गयी।

प्रभु राम बोले- शवरी, तुम धन्य हो। तुम्हारी भक्ति आनन्द है। तुम में भक्तों के समस्त गुण विद्यमान हैं फिर भी तुम्हें नवधा भक्ति का ज्ञान देता हूँ।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं, सावधान सुनु धरु मन माहीं।
प्रथम भगति सतन्ह कर संगा, दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। चौथी भगति मन गुन गन करति कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।
छह दम सील विरति बहु करमा, निरत निरन्तर सज्जन धरमा।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा मोते सन्त अधिक कर लेखा।
आठम जथा लाभ सन्तोषा, सपनेहू नहीं देखहिं परदोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना, मम भरोस हिय हरष न दीना।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे, सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।

सन्तों का सत्संग करना भक्ति का प्रथम लक्षण है। दूसरी भगवद् कथा सुनना, गुरुदेव की सेवा करना तीसरी भक्ति और चौथी है मेरा संकीर्तन करना, पाँचवी भक्ति मेरे नाम का विश्वासपूर्वक जप करना, छठी है अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना (मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि को अपने वश में करना), समस्त प्राणियों में मेरा ही रूप देखें (सियाराम मय सब जग जानी) और उसी तरह उनसे व्यवहार करें यही सातवीं भक्ति है। आठवीं भक्ति है पर निन्दा न करना, न देखना, न सुनना अपने मन में ही संतोष करके रहना मेरे ऊपर आश्रित रहकर सब व्यवहारिकताओं को त्याग दें (सर्व धमान परित्यज्य मामेकं शरण व्रज) यही सबसे सरल नवीं भक्ति है। इसमें से यदि एक भक्ति का आलम्बन कर ले वही मेरा प्रिय होकर समस्त आपदाओं से विरत होकर मुझे ही प्राप्त कर लेता है। हे पुण्यात्मा शवरी। तुम में तो सब समाहित है।

तब श्रीरामजी बोले- हे भामिनि, मैं तो केवल भक्तिका ही सम्बन्ध मानता हूँ। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन-बल, कुटुम्ब, गुण एवं चतुराई- इन सबके होनेपर भी भक्तिरहित मनुष्य जलहीन बादल-सा लगता है। उन्होंने शबरीको नवधा भक्तिका उपदेश किया। कहा- मेरी भक्ति नौ प्रकारकी है- संतोंकी संगति अर्थात् सत्संग, श्रीरामकथामें प्रेम, गुरुजनोंकी सेवा, निष्कपट-भावसे हरिगुणगान, पूर्व विश्वाससे श्रीरामनामजप, इन्द्रियदमन तथा कर्मोंसे वैराग्य, सबको श्रीराममय जानना, यथालाभमें संतुष्टि तथा छलरहित सरल स्वभावसे हृदयमें प्रभुका विश्वास।

इनमेंसे किसी एक प्रकारकी भक्तिवाला मुझे प्रिय होता है, फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वह आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है।

शवरी श्रवण करके गद्‌गद् हो गई प्रभु आनन्द मग्न हो गये। सावधान होकर राम ने पूछा- शवरी यदि तुम देवी जानकी के विषय में कुछ जानती हो तो बताओ।

शवरी बोली- हे धीर शिरोमणि। आप सर्वज्ञ हैं फिर भी मुझसे पूछ रहे हैं। मैं मतिमन्द न कछु कह जानू-परन्तु इतना निवेदन करती हूँ कि आगे पम्पा नाम का सरोवर है उसके पास ही ऋष्यमूक पर्वत है। उस पर वानरों के राजा सुग्रीव रहते हैं। उनसे मित्रता कीजिए। आपके मनोरथ सिद्ध होंगे।

सुग्रीव- वानरराज, वाली के छोटे भाई। महर्षि अगस्त्य ने भगवान श्रीराम को वाली और सुग्रीव के जन्म का वृत्तांत सुनाते हुए कहा- मेरूपर्वत के मध्यशिखर पर ब्रह्मा की सौ योजना विस्तारवाली सभा है, उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा किसी समय ध्यानस्थ बैठे थे। उस समय उनके नेत्रों से बहुत से दिव्य आनंदाश्रु गिरे। उन्हें अपने हाथ में लेकर ब्रह्मा ने कुछ चिंतन करके पृथ्वी पर डाल दिया। पृथ्वी पर गिरते ही उनसे एक बहुत बड़ा वानर उत्पन्न हुआ। उस बृहदाकार वानर से ब्रह्मा ने कहा- वत्स, कुछ समय तक तू मेरे पास इसी स्थान पर रह, इससे तेरा कल्याण होगा। वह वानरश्रेष्ठ बहुत दिनों तक वहीं रहा। उस वानर का नाम ऋक्षराज हुआ। एक दिन ऋक्षराज ने इधर-उधर विचरण करते हुए एक दिव्य जलाशय देखा। वह उसमें पानी पीने के लिए झुका तो उसने जलाशय में एक छायामय वानर देखा। अपना प्रतिद्वंद्वी समझकर ऋक्षिराज पानी में कूद पड़ा। किंतु जल में किसी वानर को न पाकर वह तुरंत बाहर निकल आया।

जल से बाहर निकलते ही स्वयं को एक सुंदर रमणी के रूप में परिवर्तित देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय देवराज इंद्र लोकपितासह ब्रह्मा की पूजा करके लौट रहे थे। उस सुंदर रमणी को देखकर इंद्र का तेज विकीर्ण हो गया। वह तेज उस सुंदरी के बालों को छूता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। उससे इंद्र समान पराक्रमी वाली का जन्म हुआ। देवराज इंद्र उसे एक सुवर्णमयी माला देकर स्वर्गलोक चले गए।

उसी समय भगवान सूर्यदेव वहां आए। उस सुंदरी को देखकर वे ऐसे मुग्ध हो गए कि उनका तेज विकीर्ण होकर सुंदरी की ग्रीवा पर जा गिरा। उस तेज से तत्काल एक बृहदाकार वानर उत्पन्न हो गया। उनका नाम सुग्रीव हुआ। सूर्यदेव ने सुग्रीव को पवनसुत हनुमान के संरक्षण में रख दिया।

वह सुंदरी बालकों को लेकर कहीं जाकर से गई। दूसरे दिन प्रात: काल जागने पर उसने अपने को पूर्ववत् वानर ऋक्षराज रूप में ही देखा। ऋक्षराज ब्रह्मा की सभा में आए और उन्हें प्रणाम करके वहीं खड़े हो गए। ब्रह्मा ने ऋक्षराज को अच्छी तरह से समझाया तथा एक देवदूत को बुलाकर उससे कहा- हे दूत। तुम इस वानरश्रेष्ठ को विश्वकर्मा की बनाई हुई किष्किंधा नाम की दिव्यनगरी में ले जाओ। वहां के सिंहासन पर इनका राज्याभिषेक कर दो। सातों द्वीपों के जो जो वानरवीर हैं, वे बस ऋक्षराज के अधीन रहेंगे।

आगे चले बहुरि रघुराया, रिष्यमूक पर्वत्त निअराया।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा, आवत देखि अतुल बल सींवा।।
गीध कर्म सब करे परम गति ताहि दिबाई। कियो कबन्ध कृतार्थ सुरति शबरीकी आई।।
शबरी निरखे राम धाम शोभा सुख खानी। समुझि साधना सफल सकल फल कम भुलानी।।
अतिथि करि रघुनाथको, भगतिनि अति प्रमुदित भई। राम नाम मुख हृदय छवि, धरि तनु तजि हरिपुर गई।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिन्होंने देवताओं की याचना पर लीला से ही नर तनु धारण किया है, जिनसे बढ़कर या जिनके बराबर भी प्रभावशाली कोई नहीं है, उन रघुनन्दन के लिये बहुत से राक्षसों को मार डालना या समुद्र के ऊपर पुल बँधवा देना यह कोई बहुत यशवाली बात नहीं है। उन सर्वसमर्थ लीलाधारी के लिये राक्षसों के वध में वानर भला क्या सहायता दे सकते हैं। यह सब उनकी मानवीय क्रीड़ा है, लीला है।

प्रेम वैर चखि चले सोच सीता हित भारी। कपि कस होवै मित्र मिलै कस जनकदुलारी।।
अगनित जे छिन माहिँ विश्व ब्रह्माण्ड बनावें। ते कपि मैत्री चहै करुण नरनाट्य दिखावें।।
राम लखन सुग्रीव लखि, पवनतनय पठये तहाँ। सिर चढ़ाई लाये तुरत, डरि कपिवर बैठै जहाँ।।

शबरीने तब उन्हें पम्पासरोवरपर जानेको कहा। वहाँ सुग्रीवसे आपकी मित्रता होगी। हे रघुवीर, वे सब हाल बतायेंगे। हे धीरबुद्धि, आप अन्तर्यामी होते हुए भी यह सब मुझसे पूछ रहे हैं? फिर कहने लगी- जिनका यह आश्रम है, जिनके चरणोंकी मैं सदा दासी रही, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षिके समीप अब मुझे जाना है। प्रेमभक्तिमें रँगी हुई शबरीने बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर, प्रभु-दर्शन कर हृदयमें श्रीरामके चरणोंको धारण कर योगाग्निद्वारा शरीर त्यागा। वह प्रभुचरणोंमें लीन हो गयी। वह श्रीराममें वात्सल्यभाव रखती थी और श्रीरामने भी उसे माता कौसल्याकी भाँति मातृभावसे ही देखा।

शवरी से विदा हो प्रभु श्रीराम आगे वनों में होते हुए जब ऋष्यमूक पर्वत के नीचे पहुँचे तो सुग्रीव के गुप्तचरों ने सुग्रीव को उन बलनिधान राजकुमारों के दर्शन कराये। मुनियों के राम ने पैर छूए, शबरी के जूठे बैर खाये। नियम से प्रेम बड़ा है यह शिक्षा राम ने दी।

सुग्रीव भयभीत होने लगा। नाना प्रकार की शंकायें उसे त्रसित करने लगीं। तब समाधान के लिए अंजनिकुमार को उनके समीप भेजा। श्रीहनुमान ब्राह्मण वेश धारण कर उनके समीप पहुँचे। अभिवादन कर जानकारी की आप इस कठोर भूमि, बीहड़ वन में विचरण करनेवाले कौन हैं। कहीं आपके मार्ग भ्रम तो नहीं हो गया है।

हनुमान- केसरीकुमार, पवनसुत, अंजनीनंदन। मुनि अगस्त्य ने भगवान श्रीराम को हनुमानजी की उत्पत्ति के संबंध में बताते हुए कहा- रघुकुलतिलक राम, प्रसिद्ध सुमेरु पर्वत पर हनुमान के पिता केसरी राज्य करते हैं। उनकी अंजना नाम से विख्यात प्रियतमा पत्नी थी। उनके गर्भ से वायुदेव ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। एक दिन माता अंजना फल लाने के लिए वन में गईं। माता की अनुपस्थिति में हनुमान भूख से पीड़ित होकर रोने लगे। इतने में उन्होंने लाल रंग वाले सूर्यदेव को उदित होते हुए देखा। लाल रंग का फल समझकर वे सूर्य की ओर उछले और आकाश में उड़ने लगे। उड़ते-उड़ते वे सूर्यदेव के समीप पहुंच गए। वह अमावस्या का समय था। राहु सूर्यदेव पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमान ने जब सूर्य के रथ के ऊपरी भाग में राहु का स्पर्श किया, तब राहु वहां से भयभीत होकर भाग गया। इंद्र के पास आकर उसने क्रोधित होकर कहा- सूर्य पर ग्रहण मैं लगाता था। अब आपने उन्हें किसी अन्य को क्यों सौंप दिया?

राहु की बात सुनकर देवराज इंद्र उस स्थान पर गए, जहां हनुमानजी के साथ सूर्यदेव विराजमान थे। राहु को अपनी ओर

आता देख हनुमानजी ने सूर्य को छोड़ दिया और दूसरा फल समझकर राहु की ओर लपक पड़े। राहु सहायता के लिए चिल्ला उठा। इंद्र के वाहन ऐरावत को भी एक विशाल फल समझकर हनुमानजी उसे पकड़ने के लिए उसकी ओर दौड़े। उसी समय इंद्र ने बालक हनुमान पर वज्र से प्रहार कर दिया। वज्र से आहत होकर हनुमानजी एक पहाड़ पर गिरे। पुत्र को इस प्रकार गिरते देख वायुदेव कुपित हो गए और उन्होंने अपनी गति रोक दी। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। सभी देवताओं ने ब्रह्मा से सहायता करने के लिए प्रार्थना की। तब वे उन सभी के साथ वायुदेव के पास आए, जहां शिशु पवनसुत आहत हुए विराजमान थे। ब्रह्मा के स्पर्श करते ही शिशु हनुमान पूर्ववत् स्वस्थ हो गए। इसके बाद ब्रह्मा ने इंद्र, अग्नि, वरुण, महादेव और कुबेर आदि देवताओं से कहा- देवताओं। आप जानते ही हैं, इस बालक के द्वारा भविष्य में आप लोगों के बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अत: आप भी इसे वरदान प्रदान करें। यह सुनकर देवराज इंद्र ने बड़ी प्रसन्नता से हनुमान के गले में कमलों की माला पहनाकर यह बात कहीं- मेरे हाथ से छूटे हुए व्रज के द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्डी) टूट गई थी, इसलिए इस कपिश्रेष्ठ का नाम हनुमान होगा।

सहज स्वभाव से श्रीराम ने कहा- हम महाराज कौशलेन्द्र श्री दशरथ के पुत्र राम और ये मेरे अनुज लक्ष्मण हैं। हमारे साथ मेरी भार्या जानकी भी थी। जिनका यहाँ किसी ने हरण कर लिया है। हम उन्ही की खोज में घूम रहे हैं। हे ब्राह्मण देव, कृपया आप भी अपना परिचय दें।

बयनों, नयनों से, सयनों से हनुमत ने प्रभु को जान लिया।
रुद्रावतार-बजरंगी ने नारायण को पहचान लिया।
राम राम कहते हुए, चरण गिरे हनुमान। मायावश मैं आपको भूला कृपानिधान।।

हनुमन्त ने स्वामी को पहचान लिया। रघुनाथजी ने हनुमान को गले से लगा लिया। श्रीहनुमन्त ने तब सुग्रीव का परिचय दिया और उससे मैत्री करने का अनुरोध किया। श्रीराम लखन को कंधों पर बिठा पवनपुत्र ऊपर शिखर पर सुग्रीव के पास पहुँच गये। अग्नि को साक्षी करके श्रीराम तथा सुग्रीव में मैत्री सम्बन्ध स्थापित कराये।

रोई रोइ सुग्रीव दुखद निज कथा सुनाई। दशा देखि अति दीन दया राघवकूँ आई।।

राम प्रभु ने सुग्रीव के ऋष्यमुक पर्वत पर रहने का भेद जान उसे किष्किन्धा का राजा बनाने तथा बाली का बध करने का वचन दे दिया।

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं वान। ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उवरहि प्रान।।
जे न मित्र दुख होय दुखारी, तिनहि विलोकत पातक भारी।

राम मित्र सुग्रीव को केवल भाई बाली से भय था। यही उसके संताप का कारण था। राम भी अहंकारी बाली का बध करना चाहते थे। किन्तु सुग्रीव ने कहा- बाली अत्यन्त बली है उसके सामने जाने पर निज बल आधा हो जाता है। प्रभु राम के आश्वासन पर सुग्रीव आश्वस्त नहीं थे। सुग्रीव ने कहा-

इन सात ताड़ के पेड़ों की जो एक बाण से ढायेगा। वो ही मेरे भाई बाली को बस एक बाण से मारेगा।।

श्रीराम ने सुग्रीव की शंका का निवारण किया। सुग्रीव ने राम के आदेश पर बाली को ललकारा। बालि ने स्वाभिमानवश उसे स्वीकार किया। वीर वही है जो युद्ध में मुँह न मोड़े। बालि परम वीर, महान पुरुषार्थी अतुलित बलशाली था और सुग्रीव से रुष्ट भी था। अत: उसकी चेतावनी पर युद्ध के लिये तैयार हो गया। यद्यपि उसकी पत्नी तारा ने उसे यह सूचना दी-

सुन पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा, वे दो बन्धु तेज बल सींवा।

कौशलेश सुत लक्ष्मण रामा, कालहु जीत सकहिं संग्रामा ।।

धर्मपत्नी सबसे अधिक आत्मीय होती है। सबसे अच्छी सलाहकार होती है बाली ने उसकी राय का समर्थन तो किया किन्तु साथ ही अपना आत्म विश्वास भी बताया। निष्ठा से उसे अवगत कराया-

कहि बाली सुन भीरु प्रिय, समरदासी रघुनाथ। जो कदापि मोहि मारिहि, तो पुन होउ सनाथ ।।

कितना आत्मविश्वास था बाली को। प्रभु श्रीराम के प्रति अगाध श्रद्धा और अडिग विश्वास। भगवान का यही स्वरूप भी है। भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ लेकिन राम ने ऐसे विश्वासी को-

एक बानतें सात ताल बेघे जब रघुपति। भइ प्रतीति कपि हृदय हर्ष मनमहँ बाढ़्यो अति ।।

हनुमान ने प्रभु श्रीराम की स्तुति की-भगवान को प्रसन्न करने के निमित्त उच्च कुल में जन्म सुन्दरता, चतुरता, बुद्धि की तीक्ष्णता और आकृति इनमें से कोई भी कारण नहीं है। हम वानरों में इनमें कोई भी गुण नहीं है फिर भी उन लक्ष्मण के भाई ने हम लोगों से मित्रता की।

सङ्ग लिये सुग्रीव बालि वध हित हरि आये। समर हेतु सुग्रीव बालि ढिँग तुरत पठाये ।।

बालि भिड्यो सुग्रीवतें, गुत्थम गुत्था ह्वै गई। भग्यो दुखित लघु बन्धु जब, पुनि पठये उर स्रग दई ।।

मारा बालि राम तव हृदय माझ सर तानि।

बाली बाण लगने से हताहत तो हो गया लेकिन सुग्रीव की तरह रण छोड़कर भागा नहीं, वहीं गिर गया। प्रभु दौड़कर बाली के समीप पहुँच गये, कहीं कोई कौतुहल न कर दें। राम के सन्निकट पहुँचते ही बाली उनके सम्मान में, घायल होते हुए भी, मृत्यु की सन्निकटता पर भी बैठा हो गया। श्रीराम को देख उसमें जोश आ गया अपने आत्म विश्वास की हत्या उसे स्वीकार नहीं है, हृदय उद्‌गारों को स्पष्ट करने को उतावला हो रहा था। श्रीराम का बाण अमोघ शक्ति वाला था उसके निष्फल होने का कोइ कारण नहीं था फिर राम दौड़कर बाली के पास क्यों आये? राम कृपासिंधु तथा दीनबन्धु हैं, अन्तर्यामी हैं। बाली की अन्तिम वेदना जानते थे बाण लगने पर अधिक जीवित रहने की सम्भावना नहीं थी। फिर श्रद्धालु की श्रद्धा को ठेस लगती। मन में वेदना लेकर प्राण छोड़ना तो पुन: जन्म की सम्भावना थी। क्योंकि अन्त मति सो गति के अनुसार पुन: जन्म निश्चित था किन्तु श्रीराम के कर कमलों से निश्रित बाण द्वारा प्राणों का हनन होने पर प्रभु के धाम (मोक्ष) की प्राप्ति अब निश्चित है। अत: इस दुविधा को दूर करने, वाली को अपने दर्शनों से सन्तोष तथा मोक्ष प्रदान करने हेतु प्रभु का आगमन अति शीघ्र हुआ अन्यथा जैसे भक्त प्रह्लाद से विलम्ब के लिए क्षमा याचना की बाली से भी करनी पड़ती।

क्वेदं वपु: क्व च वयं सुकुमार मेतत्। क्वैता प्रमत्तकृत दारुन यासनास्ते।

आलोचितोहि विषयोऽयमभूतपूर्व:। क्षन्तव्य मग यदि मे समये विलम्ब: ।।

बाली की श्रीराम में श्रद्धा थी। अटूट विश्वास था। श्रीराम की भगवत्ता को जान गया था अत: मन में प्रेम था। अनुराग था लेकिन उसमें पुरुषार्थ का अहं भी था।

हृदय प्रीत मुख वचन कठोरा, बोला चितव राम की ओरा।

धर्म हेतु अवतरेउ गुसांई, मारेहु मोहि व्याध की नांई।

मैं बैरी सुग्रीव पियारा, कारन कवन नाथ मोहि मारा ।।

बाली ने जिज्ञासा की- प्रभु आपका अवतरण धर्म की रक्षा के लिए होता है। अभ्युत्थानं धर्मस्य किन्तु यह अधर्म कैसे कर दिया, छुप कर शत्रु की भाँति मुझे मार दिया। क्षत्री धर्म, वीरधर्म भी यह नहीं, युद्ध की मर्यादाओं का स्पष्ट उल्लंघन

है- श्री राम। श्रीराम मुस्कराते हुए बोले- बाली।

अनुज बधु भगिनि सुत नारी, सुन सठ कन्या सम ये चारी।
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकहि जोही, ताहि बधे कछु पाप न होई।।

बाली बोला- राम, समरथ को नहीं दोष गुसाई अन्यथा शठ मैं नहीं हूँ। आपकी यह संहिता मनुष्य के लिए है। वानर जाति पर लागू नहीं होती-

राम सहमे, सम्भले और तुरंत दूसरा आरोप लगाया-

मूढ तोय अतिशय अभिमाना, नारि सिखावन दीन्ह न काना।

बाली बोला- हे राम, यह सत्य है कि नारि सर्वश्रेष्ठ हितैषी है, योग्य परामर्श दात्री हैं। उसकी बात मैंने नही मानी यह भी सत्य है लेकिन प्रभु आप केवल नारियों की बात सुनते हैं? यह इसलिए सत्य नहीं है क्योंकि आपने सुग्रीव की भी बात सुनी है फिर मैंने जो कुछ कहा उसे आपने कैसे अनदेखा कर दिया। आप तो अन्तर्यामी हैं- राम सदा मन की गति जानहिं फिर आपने यह कैसे नहीं सुना-

कह बाली सुनु भुरु प्रिय समदर्शी रघुनाथ। जो कदाचि मोहि मारहिं, तो पुनि होउँ सनाथ।।
हे राम, आपने मेरी हत्या नहीं मेरे विश्वास की हत्या की है, सिद्धान्त की हत्या की है- विश्वासं फलदायकम्।।

श्रीराम ने इस तर्क का उत्तर देना उचित न समझ तीसरा आरोप लगा दिया-

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी, मारा चहसि अधम अभिमानी।

बाली बोला- हे राम, आपका यह तर्क भी माननीय नहीं हैं। मैंने अभिमान या ईर्ष्या के कारण सुग्रीव को नहीं मारा बल्कि राजा के धर्म का, योद्धा के धर्म के पालनार्थ सुग्रीव को मारा था। सुग्रीव ने मुझे युद्ध के लिए ललकारा। मैं राजा योद्धा दोनों ही हूँ फिर शत्रु की ललकार सुनकर कैसे बैठा रह सकता हूँ। यह तो दिन की बात है मैं रात्रि में भी शत्रु की ललकार बर्दास्त नहीं करता।

मय सुत मायावी तेहि नाऊँ, आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ। अर्द्धराति पुर पुकारा, बाली रिपु बल सहे न पारा।।

शत्रु युद्ध का आह्वान करे और मैं उसे स्वीकार न करूँ यह योद्धा के लिए निन्दनीय है। अत: मैंने धर्म के परिपालन में सुग्रीव से युद्ध किया। मैं अधर्मी नहीं हूँ, अधम नहीं हूँ, अभिमानी भी नहीं हूँ। अभिमान तो उस समय होता जब मैं सुग्रीव को मारने उसके निवास पर जाता। मेरे निवास पर आकर मुझे युद्ध की चेतावनी दे और मैं कायर बनकर छुप जाऊँ यह सम्भव नहीं था राम। मैंने अपने स्वाभिमान की रक्षा की है अभिमान की नहीं। अधम इसलिए नहीं हूँ कि अन्त समय तुम मेरे सामने खड़े हो। अन्त समय आपका नाम लेने से जीव पुण्यवान बन जाता है। मोक्षपद का अधिकारी बन जाता है। मैं तो धर्मात्मा हूँ जब आप मेरे समक्ष उपस्थित हैं फिर भी आप मुझे अधम कह रहे हैं। हे राम, मेरे समक्ष शारीरिक बल ही कम होता है बुद्धि बल नहीं, परन्तु आश्चर्य है कि आपका बुद्धि बल भी कम हो रहा है।

राम निरूत्तर हो गये। बाली की मानसिकता बदलने की चेष्टा करने लगे- अधम और अभिमानी कहनेवाले राम ने बाली सीस पर निज पानी। बाली के तर्कों का समाधान अब नहीं मिला, तो राम सहम गये। वाणी से परास्त न होनेवाले बाली को प्रलोभन से परास्त करने की चेष्टा करते बोले- अचल करौ तन राखो प्राना। मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ तुम और तुम्हारा राज्य दोनों अमर बनाये देता हूँ।

बाली ने शीघ्र कहा- प्रभु राम। आप ब्रह्म हैं। अत: जीव ब्रह्म पर विजयी नहीं हो सकता है। आप ज्ञानी हैं, सत्यस्वरूप हैं, गुणनिधान हैं, सर्व शक्तिमान हैं, परात्पर ब्रह्म हैं- मैं वानर जाति का अनपढ़, अज्ञानी आप से तर्क नहीं कर सकता

किन्तु धोखा भी नहीं खा सकता। बाली बोला-

मोहि जान अति अभिमानवश प्रभु कहेउ राखि शरीरहीं।

मम लोचन गोचर सोई आवा, बहुरि कि अस बनिहिं बनाया।

हे राम। आप अब भी मुझे अभिमानवश समझ प्रलोभन देने की मधुर चेष्टा कर रहे हैं। संसार में कौन ऐसा मूर्ख होगा जो कल्पवृक्ष को हटाकर बबूल का कांटेदार पेड़ लगायेगा। इस समय आप मेरे समझ खड़े हैं। क्या पुन: ऐसा अवसर मिल सकेगा। इस दुर्लभ अवसर को मैं त्यागनेवाला नहीं हूँ। अगर आप कृपा करना ही चाहते हैं तो इतनी कृपा करें-

जेहि जोन जन्मौं कर्मवश, तहँ राम पद अनुरागउँ।

यह तनय मम सम विनय बल, कल्याण पद प्रभु कीजिये।

गहि बांह सुरनर नाह आपन दास अंगद कीजिये।

रोते हुए अंगदको वालीने अपने अत्यन्त निकट बुलाकर और उसकी बाँहको स्नेहसे पकड़कर यह कहा- हे पुत्र, अब रुदन समाप्त करो। तुमको ऐसे महान् पिताकी गोदमें डालकर जा रहा हूँ, जो अविनाशी हैं, मरणधर्मा नहीं हैं। हे अंगद, तुम्हारे इस प्राकृत पिताकी मृत्यु हो रही है, यह मरने जा रहा है, तुमको छोड़कर जा रहा हूँ, परंतु जाते-जाते अब जिन पिताकी गोदमें डालकर-समर्पित्त करके जा रहा हूँ, वे तुम्हारे जीवनभरका रुदन समाप्त कर देंगे। हे मेरे लाल, अब तुम्हारे रुदनके दिन समाप्त हो गये। यही तो जीवमात्रके अजर-अमर वास्तविक पिता हैं।

वालीने अंगदको युवराज बनानेके लिये नहीं समर्पित किया है, उन्होंने तो स्पष्ट कहा है- हे प्रभो, इस अंगदको अपना दास बना लीजिये। वैष्णव बना लीजिये। वालीका आभ्यन्तर आशय यह है कि यदि मेरा पुत्र रामदास बन गया- वैष्णव बन गया- शरणागत हो गया- रामाश्रित हो गया तो मेरी अधोगति नहीं हो सकती; क्योंकि श्रीभगवान्ने सत्ययुगमें एक विधान बना दिया है कि जिस कुलमें एक रामभक्त उत्पन्न हो जायगा, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जायँगी।

श्रीराम ने जब बाली की इच्छा पूर्ण कर दी तब- वालीने कहा- मैं तो मर ही रहा हूँ, अब आप इस बालक अंगदको अपना दासत्व प्रदान करके हे भक्तवत्सल, स्वामी और माता दोनोंका वात्सल्य स्नेह प्रदान करें।

रामचरण दृढ़ प्रीति कर बालि कीन तन त्याग। राम बालि निज धाम पठावा।

सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता की और बालि का वध किया।

बाली के बध से उसकी पत्नी तारा विलाप करने लगी, बाल बिखर गये, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। शरीर की सुधी जाती रही। तब प्रभु श्रीराम ने दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया सुग्रीव ने विधिवत मृतक कर्म किया। श्रीराम के निर्देश पर लक्ष्मण ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। राजु दीन्ह सुग्रीव कहं अंगद कहँ जुवराज। सुग्री और बाली दोनों को दिये वचनों का निर्वाहन प्रभु ने कर दिया। सुग्रीव राजमहल में रहने लगे। प्रभु श्रीराम पर्वत पर कुटिया बना कर रहने लगे।

बरसा विगत सरद रितु आई पर्वत पर निवास करते चार माह प्रभु को व्यतीत हो गये। किन्तु सीता का कोई पता नहीं चला। एक की सुधि नही मिली, दूसरे ने सुधि बिसरा दी।

सुग्रीवहु सुधि मोरि विसारी, पावा राज कोष पुर नारी।

जिनके प्रयास से सहज में राज्य, धन और पत्नी प्राप्त हुई उसी राम का विस्मरण हो गया सुग्रीव को। कंचन और कामिनी जो प्रभु के स्मरण में सबसे बड़ी बाधायें हैं सहज में सुग्रीव को दोनों ने ग्रस लिया-

एक कनक और कामिनी ये नंगी तलवार। निकसत ही हरि भजन कूँ बीच ही देवे मार।

प्रभु के पास दया है तो क्रोध भी है, भय के बिना सच्ची प्रीति भी नहीं प्राप्त होती है। श्रीराम ने स्वयं बाली की भाँति सुग्रीव का बध करने का विचार किया, किन्तु उनकी भ्रकुटि और मुखाकृति से लक्ष्मण पहिचान गये कि प्रभु क्रोधित हो रही हैं। लक्ष्मण ने स्वयं धनुषबाण सम्भाल लिया, दया के सागर ने लखन को क्रोधातुर देख आज्ञा दी। भय दिखाय लै आवहु तात सखा सुग्रीव जिसको हमने ही राजा बनाया है उसका हम ही बध करें, यह उचित नहीं केवल भय से काम चल जायगा।

सुत अङ्गदकूँ सौंपि परम पद पायो कपिपति। राज पाइ सुग्रीव काममहँ फँसी तासु मति।।
चारि मास गिरि गुहामहँ, बसे राम कपि काममहँ। फँस्यो किन्तु हनुमान मन, सदा बसे श्रीराममहँ।।

लखनजी ने भय का प्रदर्शन किया। भय दिखाना मात्र ही सार्थक हो गया। सुग्रीव ने चारों दिशाओं में वानर यूथ सीता की खोज में भेज दिये। दक्षिण की ओर युवराज अंगद के नेतृत्व में हनुमान सहित अनेक वीर वानर भेजे।

हनुमत सिखतें सीय खोजिबे दूत पठाये। राम रजायसु पाइ लखन कपिपति धमकाये।।
त्यागि काम सुग्रीव काम रघुपतिके आये। इत उत भेजे और पवन सुत लंक पठाये।।
अङ्गदादि कपि सँग चले, दई मुद्रिका सीयपति। सिन्धु लाँघि लमा गये, हनुमत हिय उत्साह अति।।

अंगद का दल सीता की खोज करता लवणासागर के किनारे पहुँच गया। अवधि समाप्त होनेवाली है इससे सब दुखी थे। सम्पाती जटायू का भाई बहुत दिन से भुखा एक पर्वत की कन्दरा में बैठा था क्योंकि पंखविहीन था वह। सम्पाती ने भगवान की महती अनुकम्पा माना इसे कि इतने वानर भोजन को मिल जायेंगे।

आज सबहि कहँ भच्छन करऊँ, दिन बहुत चले अहार बिनु मरऊँ।
डरपे गीध वचन सुनि काना, अब भा मरन सत्य हम जाना।

फिर अंगद ने सहसा कहा-

धन्य जटयू सम कोई नाहीं। राम काज कारन तनु त्यागी।

सम्पाती ने अपने बन्धु का नाम और काम सुना तो आगे जानने की जिज्ञासा हुई। जानकारी होने पर हर्ष और शोक दोनों हुए। भाई को तिलांजलि देने के बाद सीता का निवास त्रिकूट पर्वत पर अशोक वृक्ष के नीचे अशोक वाटिका में है, बताया। सौ योजन दूर समुद्र के बीच लंका कैसे पहुँचा जाय। कौन जाय इस पर आपस में चर्चा होने लगी- सबने अपनी-अपनी सामर्थ का बखान किया। अंगद ने कहा- जा तो सकता हूँ, आने में सन्देह है। तब जाम्वबन्त ने कहा-

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना, का चुप साधि रहेउ बलवाना।
पवन तनय वल पवन समाना, बुद्धि विवेक विग्यान निधाना।।

श्री हनुमान को अपने बल विवेक का ज्ञान हो गया। लंका जाने को तैयार हो गये तब वृद्ध जामवन्त ने एक परामर्श दिया- **एतना करहु तात तुम्ह जाई, सीतहि देखि कहहु सुधि आई। चारों युग प्रताप तुम्हारा।।**

हनुमानजी के प्रताप के बारे में एक प्रसंग है। एक सेठ अपनी सेठानी के साथ मेले में गये थे। भीड़ भाड़ में सेठानी खो गयी। सेठजी के मन में बड़ी चिंता हुई क्या करूँ? कहाँ खोजू। उदास मन से घर की ओर जा रहे थे। मार्ग में रामजी का बहुत बड़ा मंदिर पड़ा। पुजारी से पूछा महाराज मेरी पत्नी खो गयी है मैं क्या करूँ। पुजारी बोले- सवा मन लड्डु का प्रसाद लगवाओ पत्नी मिल जायेगी। सेठजी सवामन के लड्डू बनवाकर मंदिर में चढ़ाने के लिए जा रहे थे, बीच में हनुमानजी का मंदिर पड़ा। हनुमान जी के पुजारी ने सेठको पूछा- क्यों सेठजी किधर जा रहे हो? सेठ बोले, क्या बताऊँ महाराज बड़ी विपत्ति में हूँ। आज मेले में मेरी पत्नी खो गयी बहुत ढूँढा कहीं नहीं मिली। राम मंदिर के पुजारी ने कहा सवा मन के लड्डू

का प्रसाद करो तो पत्नी मिल जायेगी। हनुमान मंदिर के पुजारी बोले- अरे भले आदमी, रामजी की तो अपनी पत्नी खो गयी थी उसको तो राम खोज नहीं पायें हनुमान ने खोजा फिर वो तुम्हारी पत्नी को क्या खोजेंगे? सेठजी भी उस पुजारी की बातों में आ गये और बोले- क्या करूं पुजारी जी? हनुमान जी की पुजारी ने कहा- यह प्रसाद हनुमानजी को लगाओ तुम्हारी पत्नी मिल जायेगी। सेठजी को बात समझमे आ गयी कि वो ही करना चाहिये जिसमें दो पैसे का फायदा हो। सेठजी ने हनुमान जी को सवा मन का लड्डू का भोग लगाया और हनुमान मंदिर की परिक्रमा देने लगे, परिक्रमा में ही सेठानी मिल गयीं। सेठजी को विश्वास हो गया कि यह तो बड़ा चमत्कारी पुजारी है।

पवन तनय बल पवन समाना। बुद्धि विवेक बिग्यान निधाना।
कौन सो काज कठिन जग माँही, जो नहिं होई तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा, सुनतहिं भयउ पर्वताकारा।।

तटीय पर्वत से हनुमत लाल ने यात्रा प्रारम्भ की- मार्ग में मैनाक पर्वत के अनुग्रह पर भी हनुमान जी ने विश्राम नहीं किया। देवताओं ने हनुमान की बल बुद्धि की परीक्षा लेने सर्पों की माँ सुरसा को भेजा। सुरसा ने हनुमान का भक्षण करने के लिए अपने मुख का आकार बढ़ाया, तो हनुमान जी ने अपने शरीर का। सौ योजन मुख का आकार देख हनुमान सुक्ष्म हो उसमें प्रवेश कर वेग से बाहर निकल आये। सुरसा उनके चातुर्य से प्रसन्न हो आशीर्वाद दे चली गई-

राम काजु सबु करिहहु तुम बल बुद्धि निधान। आशिष दे सुरसा चली, हरषि चले हनुमान।।

मार्ग में बाधाओं को नष्ट करते हुए हनुमानजी त्रिकुट पर्वत पहुँच गये। चारों ओर अगाध जल के बीच में सुन्दर पर्वत जिसमें अनेक सुन्दर वन-उपवन, वाटिका, स्वर्णमण्डित अट्टालिकाओं से सुशोभित नगर को देखते ही बनता था। विलक्षण सैन्य व्यूह रचना, दुर्ग के समस्त द्वारा बन्द और उन पर कड़ा पहरा। बहुत छोटा रूप बनाकर हनुमान ने लंका में प्रवेश करने की चेष्टा की। लंकनी ने उन्हें ललकारा। एक मुष्टिक प्रहार किया हनुमान ने, लंकनी रक्त वमन कर भूमि पर गिरी। उसे स्मरण हुआ श्री ब्रह्मा का वरदान कि जब वानर के प्रहार से तू विकल हो जायेगी तब निश्चरों का अन्त हो जायेगा। उसने निश्चरों के संहारक को प्रणाम कर सुझाव दिया।

प्रविसि नगर कीजे सब काजा, हृदय राखि कौशलपुर राजा।

हनमंत ने नगर में प्रवेश कर प्रत्येक भवन में माता जानकी की खोज की, किन्तु कहीं दिखाई नहीं दी, हनुमान जी को एक भवन देखकर आश्चर्य हुआ। जिसके द्वार पर तुलसी का वृक्ष और राम राम की ध्वनि। हनुमान को सहारा मिला। आशा बँधी, उसमें प्रवेश किया तो श्रीविभीषण जी के दर्शन हुए।

विभीषण- रावण, कुंभकर्ण और शूर्पणखा के पश्चात् मुनिवर विश्रवा के तेज से कैकसी ने अतिशांतचित्त, सौम्यमूर्ति विभीषण को जन्म दिया। वह अत्यंत स्वाध्यायशील, स्वल्पाहारी और नित्यकर्मपरायण था। विभीषण की निष्काम भक्ति से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उससे वर मांगने के लिए कहा। इस पर विभीषण ने कहा- भगवान्। मेरी बुद्धि सर्वदा निश्चल रूप से धर्म में ही बनी रहे। ब्रह्मा ने विभीषण को वरदान देते हुए कहा- वत्स। तुम बड़े धर्मनिष्ठ हो, अत: जैसा चाहते हो, वैसा ही होगा। हे विभीषण। यद्यपि तुमने मांगा नहीं है, फिर भी मैं तुम्हें अमरत्व का वरदान देता है।

(विशेष भक्त विभीषण की भांति ही सात विभूतियां अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम) चिरंजीवी हैं- अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषण:, कृप: परशुरामश्च सप्तैते चिरजीवन:।

ब्राह्मण वेश में सन्त का प्रवेश देख विभीषण रामभक्त से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें सीता के निवास से अवगत

कराया। हनुमान तुरन्त विदा हुए, अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के ऊपर बैठ गये। विचार करने लगे क्या किया जाय। उसी समय रावण अपनी अर्धांगिनी मन्दोदरी तथा राक्षसियों के साथ आया। विभिन्न रूप से समझाया, प्रलोभन दिये। जब किसी तरह तर्क-वितर्क, प्रलोभन से काबू नहीं पा सका तो बध करने के लिए तलवार से प्रहार करने को तत्पर हुआ तो मन्दोदरी ने नीति निपुण रावण को नीति का स्मरण कराया। रावण राक्षसियों को, सीता को त्रसित करने का आदेश दे चला गया। जानकी ने जान की परवाह न कर धर्म की रक्षा की, मर्यादा की रक्षा की, कुल परम्पराओं की रक्षा की, स्त्री जाति के सम्मान की रक्षा की। जानकी को भयभीत करनेवाली राक्षसियों में एक त्रिजटा भी थी। राक्षसी होते हुए भी सीता के सतीत्व को जाननेवाली, उनका सम्मान करनेवाली थी। त्रिजटा ने राक्षस विनाश का स्वप्न सुनाकर सब प्रहरियों को हटा दिया। स्वयं भी सीता को सान्त्वना दे अपने घर चली गई।

त्रिजटाने सीताके लिये परामर्शदात्री एवं प्राणरक्षिकाका काम किया है। राक्षसी होते हुए भी त्रिजटाको मानव-मनोविज्ञानका सूक्ष्म ज्ञान है। वह सीताजीके स्वभाव और मनोभावको अच्छी तरह समझती है। वह यह भलीभाँति जानती है कि सीताजीकी सान्त्वनाके लिये और उनके दु:खोंको दूर करनेके लिये रामकथासे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। मरणातुरा सीताजी आत्मत्यागके लिये जब उससे अग्निकी याचना करती हैं तो इस अनुरोधको वह यह कहकर टाल देती है। **निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।**

दानवी होनेके कारण त्रिजटाको दानव-मनोविज्ञानका ज्ञान तो था ही। दानवोंका अधिक विश्वास दैहिक शक्तिमें है और इसीलिये उन्हें कार्यविरत करनेमें भय अधिक कारगर होता है। सीताजीको वशीभूत करनेके लिये रावणने भय और त्रासका सहारा लिया था और तदनुसार राक्षसियोंको ऐसा ही अनुदेश करके वह चला गया था। सीताजीका दु:ख दूना हो गया; क्योंकि राक्षसियाँ नाना भाँति भयमर रूप बना-बनाकर उन्हें डराने-धमकाने लगीं। व्यवहार-विशारद त्रिजटाके लिये यह असह्य हो गया। वर्जनके लिये उस पण्डिताने विवेकपूर्ण एक युक्ति निकाली। उसने राक्षस-मनोविज्ञानका सहारा लिया और एक भयानक स्वप्नकथाकी सृष्टि की। महाविनाशकारी स्वप्नदर्शनकी चर्चा सुनकर निशाचरियाँ भयभीत हो उठीं और तब अनुकूल परिस्थितिमें त्रिजटाने उन्हें सलाह दी- सीतहि सेइ करहु हित अपना। कितनी विलक्षण सूझ है। इस स्वप्न-वार्तासे एक ओर जहाँ त्रिजटाका भविष्यदर्शिनी होना सिद्ध होता है, वहीं दूसरी ओर उसका व्यवहार-निपुणा और विवेकिनी होना भी उद्घाटित होता है। भय दिखाकर दूसरेको वशीभूत करनेवाली मण्डलीको उसने भावी भयकी सूचना देकर मनोनुकूल बना लिया। प्रत्यक्ष वर्जनमें तो राजकोपका डर था, अनिष्टकी सम्भावना थी।

त्रिजटा सीताजीसे एक तर्कपूर्ण बात कहती है कि रावणके हृदयमें तुम हो। इसीसे श्रीराम उसके हृदयमें बाण नहीं मारते। वे सोचते हैं- नाभिमें शर लगते ही उसका मन विचलित होगा, जिससे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब वह हृदयमें तीर लगते ही मर जायगा। इसप्रकार त्रिजटाचरित्र भक्ति, विवेक और व्यवहार कुशलताका एक मणिकाञ्चनयोग है।

हनुमान जिस अवसर की प्रतीक्षा में थे, उपलब्ध हो गया। जानकी चिता प्रज्वलित करने के लिए विभिन्न प्रकार से याचना कर रही थी। अशोक वृक्ष से जब शोक निवारण की याचना करते हुए अग्नि की माँग की तो हनुमंत लाल ने प्रभु श्रीराम द्वारा प्रदत्त मुद्रिका सीता जी के सामने डाल दी, सीताजी ने पहले तो इसे भी राक्षसी माया समझा किन्तु जब मुद्रिका देखी तो पहिचान ली, किन्तु सन्देह सागर में गोते लगाने लगी तब श्रीहनुमान ने सन्देह का निवारण किया।

चकित चितव मुदरी पहिचानी, हरष विषाद हृदय अकुलानी।
तब कहा हनु ने हे माता, मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ।

करुणानिधान ने भेजा है सेवा में उनकी रहता हूँ।

विश्वास आपको हो जाय इसलिए अँगूठी लाया हूँ।

बजरंगी के वचन सुन, हुआ हृदय को चैन। कुछ क्षण उपरान्त फिर बोली सीता बैन।।

जानकी बोली- पुत्र हनुमान, क्या आपकी सेना में सब वानर आपके ही समान हैं। हनुमान की स्वीकृति में सर हिला दिया। जानकी के मुखचन्द को सन्देहरूपी राहू का ग्रहण लग गया। हनुमान को भी मन स्थिति समझने में देर नहीं लगी-

देखा जब बजरंग ने मां हो रही अधीर। योग शक्ति से काम ले विस्तृत किया शरीर।।

सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा, कनक भूधराकार शरीरा।।

हनुमान का पर्वताकार शरीर देख जानकी को यह विश्वास हो गया कि ये राक्षसों से लड़ने में सक्षम होंगे। जानकी ने सन्तोष की सांस ली। तब हनुमान ने अनुरोध किया कि माँ मैंने कई दिनों से आहार नहीं किया है इन सुन्दर फलों को देख मेरी क्षुधा और प्रबल हो गई है आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी भूख मिटालूँ।

सीता बोली- हे हनुमान, अब वे श्रीराम नहीं रहे, जिस श्रीराम ने मेरे पिता के घर पर भगवान शंकर का धनुष पल-भर में तोड़ डाला था। जिन्होंने परशुराम की दिव्य गति को वहीं काट दिया था। जिनके हाथों ने खर-दूषण को बाण से मार डाला था। अब या तो श्रीराम ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी है और वे योगी हो गए हैं या वे वनवास के दु:ख से दु:खी हो गए हैं या वे रघुकुल में ही राजा बन बैठे हैं या यह हो सकता है कि वे रावण की बहुत बड़ी राक्षस सेना से डरा गए हैं अथवा हे पवनसुत, मुझे साधारण स्त्री समझकर छोड़ दिया है और लंका के बाग में कहीं निवास करते हैं या यह हो सकता है कि मैं ही कुटिल, बुरे वस्त्रोंवाली या बुरे लक्षणों वाली हूं, तभी मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया है।

हनुमान, मैं तेरी शक्ति को जानती हूँ। तू इतना बली, विद्वान, विचरशील, विवेकी, विजयी, विनयशील, तथा वानराग्रगण्य न होता, तो देशकाल और बलाबल के ज्ञाता श्रीराम तुझे इस कार्य को भेजते ही क्यों? किन्तु भैया। मेरा तेरी पीठ पर जाना उचित नहीं। इसमें कई दोष है। तू वेग से चलेगा, मैं इतने बड़े समुद्र को देखकर डर जाऊँगी। कहीं शीघ्रता में मैं तेरी पीठ से सरक गई तो गिरकर मर जाऊँगी, राक्षसों को विदित हो गया तो वे तुझसे लड़ने आवेंगे, उस समय तू मेरी रक्षा करेगा, या राक्षसों से लड़ेगा। यदि उन्होंने मुझे पुन: पकड़ लिया तो अबके वे मुझे बहुत क्लेश देंगे। सबसे बड़ी बात यह है, कि मैं स्वेच्छा से किसी परपुरुष का स्पर्श कर नहीं सकती। रावण तो मुझे बलपूर्वक मेरी इच्छा के विरुद्ध पकड़ लिया था, उस समय मैं विवश थी। तू मुझे ले जाकर श्रीराम से मिला सकता है, किन्तु यह न मेरे अनुरूप होगा, न मेरे पति के ही अनुरूप। वे युद्ध करके राक्षसों को रण में पराजित करके मुझे ले जायँगे। इसी में उनकी प्रशंसा है।

देखि बुद्धि बल निपुन कपि करेउ जानकी जाहू। रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु।।

वनवास के १३ वें वर्ष में लंकापति रावण ने जब सीता का अपहरण कर लंका की अशोक वाटिका में राक्षसियों के अधीन रख दिया तो वहां उनकी सीता की हनुमान से जो बातें हुई, उनसे उनकी (सीता की) सूझ-बूझ पतिव्रत्य, व्यवहारिक ज्ञान, कर्त्तव्यनिष्ठा, धीरता गंभीरता इत्यादि के स्पष्ट परिचय मिलते हैं। उनका हृदयगत शोक श्रीराम की चर्चा होने से उचित पयोनिधि नीरे हो उठता है। उन्हें जब हनुमान ने श्रीराम के पास पहुंचा देने को आश्वस्त किया तो उन्होंने कहा कि यद्यपि तुम मुझे ले जाने में समर्थ हो, तथापि मुझे भी अपनी कार्यसिद्धि के प्रसंग में अच्छी तरह से अवश्य ही विचार कर लेना चाहिए। मेरी दृष्टि में मेरा तुम्हारे साथ जाना उचित नहीं होगा। सीता ने अनेक दूरदर्शिता पूर्ण तर्क दिये यथा पतिव्रत्य के कारण में श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के शरीर को स्वेच्छया स्पर्श नहीं करना चाहती। रावण

से तो बलात् मेरे शरीर का स्पर्श हो गया था, क्योंकि इस समय मैं असमर्थ, अनाथ और विवश थीं- भर्तुभक्ति पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर। सीता हनुमान संवाद से तो वह अत्यंत बुद्धिमति आदि भी परिलक्षित होती हैं। उन्होंने अत्यंत ज्ञानी की तरह हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा है कि तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणों से संपन्न, माधुर्य गुणों से भूषित तथा बुद्धि के आठों अंगों से अलंकृत है। ऐसी बातें तो तुम मात्र कह सकते हो।

हनुमान मन मगन अशोक वाटिका के मधुर फल खाने लगे। वानर स्वभाव के अनुरूप पेड़ों को तोड़ भी देते थे। बाग के रखवाले प्रहरियों ने जब इनका विरोध किया तो उन्हें भी मारा। रावण तक पुकार हुई। रावण ने बहुत से सुभट हनुमान को पकड़ने के लिए भेजे इनके मारे जाने पर अक्षयकुमार भी जब क्षय हो गया तब मेघनाद को भेजा। वीर मेघनाद भी जब युद्ध में परास्त न कर सका तब बजरंगबली ने कहा- मेघनाद।

मेरा तेरा रण ही क्या है मैं तुझको खेद दिखाता हूं। तू मेघनाद कहलाता है, मैं रामदास कहलाता हूं।
तू इन्द्रजीत छलवाला है मैं कामजीत बलवाला हूँ। तू दीपक लेकर चलता है मैं रामाश्रय उजियारा हूँ।

मेघनाद मेघ की तरह गरजने लगा और खोज कर अपना अन्तिम अस्त्र ब्रह्मास्त्र चला दिया। अंजनिपुत्र ने समझ लिया युद्ध समाप्त हो गया। अब आगे लड़ने की इसकी क्षमता नहीं है, इसकी बल-बुद्धि की थाह भी मिल गयी। अंजनिकुमार बोले-

यह ब्रह्म अस्त्र, यह ब्रह्म फाँस, यह ब्रह्म शक्ति है ब्रह्म की। मैं इसे काट भी सकता हूँ, पर इसमें निन्दा है ब्रह्मा की।

हनुमान को ब्रह्मपास में बाँधकर लंकेश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। ब्रह्मशक्ति समाप्त हो गई। वानर स्वरूप को देखकर पहले तो लंकेश हँसे किन्तु सहसा पुत्रहन्ता समझ क्रोधवश हो पूछने लगा। अरे वानर तुम कौन हो, किसके बल पर मेरी अशोक वाटिका को क्षतिग्रस्त कर दिया है। क्या तुमने मेरा नाम नहीं सुना, इसलिए निर्भय होकर मेरे वन प्रहरियों का वध कर दिया है, क्या तुम्हें अपनी मौत का भय नहीं है?

क्रोधातुर रावण को देख, भगवान श्रीराम को नमनकर हनुमन्त विनम्र भाव से बोले- हे लंकापति। जिसकी अनुकम्पा से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि की रचना, पालन और संहार के निमित्त बनते हैं, जो अनेक रूप धारण कर भूभार उतारने के लिए अवतरित हुए हैं जिन्होंने भगवान शंकर का धनुष भंजन कर जानकी को अर्धांगिनी बनाया था। जिन्हें आप हरण करके लाये हैं मैं उन्हीं प्रभु राम का सेवक हूँ। हनुमान ने कहा- मैं सुग्रीव का सचिव हूँ, पवन का तनय हूँ, हनुमान मेरा नाम है। श्रीराम का मैं दूत हूँ, सीता जी का पता लगाने आया हूँ।

खायउँ फल प्रभु लागी भूखा, कपि स्वभाव ते तोरेउ रूखा।
सबके देह परम प्रिय स्वामी, मारहि मोहि कुमारगगामी।।
जिन मोहि मारा तेहि मैं मारा, तेहि पर बांधउ तनय तुम्हारा।

रावण बोला- फिर तूने लंका की वाटिका को क्यों उजाड़ा?

हनुमान बोला- भूख लगने पर हम लोग हलुआ पूड़ी तो बनाते नहीं वृक्षों के फल तोड़-तोड़कर खाते हैं।

रावण बोला - वृक्षों के उखाड़ने का क्या प्रयोजन था? हनुमान बोले - यह हम वानरों का सहज स्वभाव है। सहज स्वभाव का त्याग कठिन है। रावण बोला- तुमने मेरे सैनिकों को क्यों मारा?

हनुमान बोले- लड़ाई में मार-धाड़ होती ही है। उन्होंने मुझे मारा मैंने उन्हें मारा। समझ गये लंकेश। वानर स्वभाव के कारण अनायास ये वृक्ष टूटे हैं- मैंने प्रयास करके या किसी प्रयोजन से नहीं तोड़े हैं। यह तो हुए आपकी प्रश्नावली के उत्तर, अब आप से एक प्रार्थना मैं करता हूँ उसे गम्भीरता से, शुद्ध हृदय से आप सुनें और उसका अनुशरण करें तो आप

निर्भय होकर लंका का राज्य सदैव करते ही रहेंगे, हे लंकेश। आप जिन्हें साधारण मानव समझ रहे हैं वे राम प्रभु केवल अयोध्या के नाथ ही नहीं त्रिलोकी के नाथ हैं जिनके भय से भय भी कुण्ठित होता है, वे अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक हैं प्रभु श्रीराम। अत: इनसे शत्रुता रखकर कोई जीवित नहीं रह सकता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश चाहने पर भी आपकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। अत: तुम माता जानकी को वापिस कर उनसे क्षमा याचना कर लो।

रावण क्रोधित हो गया। निशाचरों को हनुमान का बध करने का आदेश दे दिया। उसी समय विभीषण ने निवेदन किया कि दूध का बध नीति के प्रतिकूल है इसलिए अन्य कोई दण्ड देना उचित होगा। राजन्, आप नीति के ज्ञाता हैं। वेद शास्त्रों के पण्डित हैं। फिर आप यह न्याय विरुद्ध आज्ञा क्यों दे रहे हैं। दूत सदा से सब देशों में अवध्य माने गये हैं। दूत को कभी कोई नहीं मारता। यदि आप में बल है, तो आप इसके स्वामी को मारिये। यह जो भी कुछ कह रहा है कर रहा है, सब अपने स्वामी के संकेत को पाकर कर रहा है। यह व्यक्तिगत रूप से तो निर्दोष ही है। दृष्टि-से-दृष्टि मिलने पर ही प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है, वह उसे निश्चय ही कभी-न-कभी मिल ही जाता है।

रावण बोला- ठीक है, हम विभीषण की राय का आदर करते हैं। अत: इस वानर के प्रिय अंग पूँछ में आग लगा दी जाय। राक्षसगण हनुमानजी को ले गये उनकी पूँछ में कपड़ा लपेटने लगे। पूँछ बढ़ने लगी और यह स्थिति हो गई, रहा न नगर बसन घृत तेला- लंका में वस्त्र और घी तेल समाप्त हो गया, सब श्रीहनुमान की पूँछ मे लगा दी। पूँछ जलाई गई, हनुमान ने छोटा रूप बनाकर लंका के एक कोने से दूसरे कोने तक आग लगा दी। सारा शहर धूँ-धूँ करके जलने लगा। किन्तु प्रभु की कृपा का चमत्कार कि विभीषण के घर पर एक पतंगा तक नहीं आया-

जारा नगर निमिष एक माहीं, एक विभीषण कर गृह नाहीं।
पूँछ बुझाय खोय श्रम धरि लघु रूप वहोरि। जनक सुता के आगे ठाढ़ भयहू कर जोरि।।

हनुमान के कौतुहल की सब कथा त्रिजटा ने सीताजी को हनुमान के आने के पूर्व ही सुना दी। सीताजी हनुमान के बल और बुद्धि पर बहुत ही प्रसन्न थीं। हनुमान ने कहा- माता, मैं अब शीघ्र ही जाकर प्रभु श्रीराम को आपका समाचार सुनाना चाहता हूँ। आप कृपा कर अपनी ऐसी कोई निशानी मुझे दे दें जिसस प्रभु राम को सहज में आप तक पहुँचने का विश्वास हो जाय। श्रीराम की तुम आह्लादिनी शक्ति हो, तुम प्रेरिका हो, जगज्जननी और जगदीश्वरी हो मुझे अब जाने की आज्ञा दीजिये। मैं तुरन्त ही श्रीराम के समीप जाऊँगा और अपने वानर भालुओं के सहित पुन: यहाँ श्रीराम और लक्ष्मण के साथ आऊँगा।

सीता बोली- तेरी वीरता, बुद्धिमत्ता, निर्भयता, कार्यकुशलता, सुशीलता, शालीनता, महत्ता तथा कष्ट सहिष्णुता आज मैंने देखी।

पुत्र, मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ, तू सदा अजर अमर हो। कोई तुझे युद्ध में पराजित न कर सके। तू अपने समान अद्वितीय योद्धा हो, तेरे शरीर पर शस्त्रों का प्रहार न हो सके। तेरी कीर्ति संसार में तब तक अक्षुण्य बनी रहे, जब तक सूर्य चन्द्रमा विद्यमान हैं। बेटा, तेरा पथ मंगलमय हो, तू सर्वत्र विजयी हो।

चूढ़ामणि उतार तब दयऊ, हरष समेत पवन सुत लयऊ।
विरह व्यथामहँ विकल जानकी निरखी कपिवर। राम-कथा कहि दई मुद्रिका दुखहर सुखकर।।
वैदेही पुनि पलटि दई चूड़ामणि कपिकूँ। लै कपि क्रीड़ा करै उखाड़े बहु वृक्षनिकूँ।।

माता को विभिन्न प्रकार से आश्वासन देकर हनुमन्त ने रामादल की ओर प्रस्थान किया। समुद्र पार आये, सब वानर श्रीहनुमान को देख गद्गद् हो गये। प्रसन्नता से उछलने लगे। और जब सुग्रीव जी के प्रिय बाग मधुवन में फल खाने से

प्रहरियों को मारकर भगा दिया तो उन्होंने राजा सुग्रीव को यह समाचार दिया, सुग्रीव समझ गये कि अंगद सीता की खोज में सफल हो गये हैं। फल और मधु खाने से सबका श्रम दूर हो गया।

मारो कपिकूँ तुरत विभीषण नीति बताई। कपड़ा तेल लपेटि पूँछमहँ आगि लगाई।।
कपि हित शीतल अनल भये सब पुरकूँ जारैं। पकरन आवें निकट पूँछ कसि मुँहपै मारैं।।
यों जराइ लमा पुरी, कूदि पार सागर भये। निरखे विजयी पवन सुत, अंगदादि प्रमुदित भये।।

जय श्रीराम का उद्घोष करता जब वानर दल ऋष्यमूक पर्वत्त पर आया तो भगवान उठकर सबसे मिले। प्रत्येक वानर प्रथम समाचार देने को उत्सुक था किन्तु मर्यादा के बन्धन के कारण श्रीजामवन्त ही बोले-

नाथ पवन सुत कीन्ह जो करनीं, सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।

श्रीराम ने आतुरता से पूछा- हनुमान। जानकी तुम्हें मिल गई। कहाँ हैं? कैसी हैं, सचमुच तुम उनसे मिलकर आये हो।

ऐ हो हनु कहें श्रीरघुवीर कहीं सिय की सुधि है चितमाहीं।
हैं प्रभु लंक, कलक बिना, सो बसे वन रावन कानन छाही।
जीवित हैं? कहिबे को ही नाथ, तो क्यों न मरी हमसों विलगानी।
प्राण बसें पद पंकज में, यम आवत है पर पावत नाहीं।।

अरे हनुमान, शीघ्र बताओ तुम्हें सीता कैसे मिली, कहाँ मिली, गद्गद् हो गये प्रभु राम और नयन जल छाये, कमल नयन छलकने लगे। हनुमान बोले- प्रभु। माता निष्कलंक रूप से रावण की लंका के अशोक वन में निवास कर रही हैं और निशि वासर आपका ध्यान करती रहती हैं।

सीता अभी जीवित हैं- राम ने आश्चर्य से पूछा तो हनुमान ने तुरन्त उत्तर दिया। केवल कहने मात्र को जीवित संज्ञा है, नरकाल उनका शरीर है। श्रीराम ने कहा- हमसे विलग होकर भी अभी तक जीवित हैं। वे कहती थीं- मैं एक पल भी आपके बिना नहीं रह सकती, जहाँ नाथ हैं वहीं प्राण है। श्रीराम विचलित होने लगे। तब श्रीहनुमान ने समाधान किया। प्रभु, माता का पंच भौतिक शरीर लंका में है उनकी जीवात्मा उनके प्राण तो प्राणेश्वर श्रीरघुनन्दन के चरणकमलों के कैमर्य में लगे हुए हैं काल भगवान श्रीयमराज बार-बार उनकी जीवात्मा को लेने के लिए आते हैं, किन्तु प्रयास करने पर भी जब नहीं मिलते तो लौट जाते हैं- आपके चरण कमलों तक आने का उनका साहस नहीं हैं। इसलिए जीवित रहने में माता का कोई दोष नहीं है प्रभो।

हनुमान का ऐसा बुद्धिपरक, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सुन श्रीराम सिया से मिलने को आतुर होने लगे, रावण को उसके अपराध का दण्ड देने के लिए भुजायें फड़कने लगीं। श्रीराम ने सेनापतियों से मंत्रणा कर सेना को प्रस्थान का आदेश दे दिया।

अब विलम्ब केहि कारण कीजे, तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।
ऐहि बिधि जाय कृपा निधि, पहुँचे सागर तीर। जहँ-तहँ लागे खान फल भालु विपुल कपि वीर।।

उलट-पलट लंका सब जारी लंका का विध्वंस तो कर ही आये थे, अब समुद्र तट पर आने से राक्षस फिर भयभीत हुए जो लंका के जल जाने पर यहाँ आकर बस गये थे, पुन: पलायन करने लगे। उधर लंका में भी इस वीभत्स काण्ड की समीक्षा होने लगी। उस समय गुप्तचरों ने यह भी सूचना दी थी कि वानर सेना समुद्र तट पर लड़ने के लिए अधीर है। सेनापति, मंत्रीगण लंकेश की चटुकारिता करने लगे।

सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस। राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।

लंकेश के साथ वही छलना थी- सब उसके यशोगान, गुणगान और वीरत्व का बखान कर रहे हैं। उसी समय विभीषण

ने नतमस्तक हो निवेदन किया।

जो आपन चाहै कल्याना, सुजहु सुमति शुभगति सुख नाना।
सो पर नारि लिलार गुसाई, तजउ चउथि के चन्द की नाई।।
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ। सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत।।

मंत्री एवं नाना श्रीमाल्यवंत ने भी विभीषण के अनुरोध की पुष्टि कर रावण को उसे मानने का परामर्श दिया। लंकेश की क्रोधाग्नि भड़क उठी विपत्तिकाल में बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। रावण का सुयश समाप्ति होने जा रहा था अत: तद्नुसार ही गति विधि होनी है। इसलिए माल्यवंत जो पद, ज्ञान, आयु और रिश्ते में सम्माननीय थे, अनुज विभीषण जो परम धार्मिक, नीतिज्ञ और स्पष्ट वक्ता थे, सत्यम् ब्रूयात् प्रियम ब्रूयात के सिद्धान्त के मूर्तिमान स्वरूप थे, का तिरस्कार समग्र समाज के समक्ष दरबार से निकालने का आदेश देकर किया। यह लंकेश की विपरीत बुद्धि होने का ज्वलन्त प्रमाण है। माल्यवन्त तो अपमानित हो दरबार त्याग कर चले गये किन्तु अनुज की ममता ने भाई के हितचिन्तन में उस तरल गरल को भी स्वीकार कर पुन: अनुरोध किया। हे देत्यकुल दिवाकर। मैं आपके प्रति, असुर समाज तथा मातृभूमि लंका के प्रति निष्ठावान हूँ और अपनी निष्ठा के प्रति जागरूक रहकर ही आपको आपके तथा राज्य के हित के लिए अपनी बुद्धि के अनुसार परामर्श दे रहा हूँ यद्यपि यह वेद सम्मत है और आप स्वयं वेद मर्मज्ञ हैं।

सत और असत बुद्धि हर प्राणी में विद्यमान है। सुमति से सम्पत्ति और कुमति से विपत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। विपत्ति काल में मित्र शत्रु हित अहित सा प्रतित होता है। यही अवस्था आपकी हो रही है। इसीलिए जगत् जननी जानकी पर आपकी विपरीत आसक्ति हो रही है। असुरकुल की कुशलता की याचना करते हुए चरण-नत होकर आपसे अनुनय करता हूँ कि आप श्रीराम भार्या जानकी को वापस कर दें जिससे आप अपने अहित की आशंका से मुक्त हो जायेंगे।

यह सुन रावण अपने भुजदण्डों को निहारने लगा अपने पुरुषार्थ का स्वयं बखान करने लगा। मूँढ़ चाटुकार मन्त्री उसका अनुमोदन करने लगे। कालवशात् मेघनाद ने भी चाचा विभीषण को शत्रु का गुण गायक बताकर विरोध किया। रावण बोला-

मम पुर वसि तपसिन्ह कर प्रीति, सठ मिलु जाउ तिन्हहि कहु नीति।
अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा, अनुज कहे पद बारहिंबारा।।

अमानिया मानदेन कीर्तनीय सदा हरि: अपमान करनेवालों को भी मान दे, स्नेह दे यही भक्त का लक्षण है। विभीषण ने भी यही किया और लंका त्याग प्रभु श्रीराम की शरण में चले गये।

इत जारी कपि लम शम रावण हिय पैठी। देहुँ जानकी नहीं बात खलके मन बैठी।।
सब सुत सचिव बुलाइ समर हित सम्मति पाई। किन्तु न सहमत भये विभीषण छोटे भाई।।
नीति विभीषनकी सुनी, भयो कुपित अति दशानन। नाश समय लखि भक्तवर, तुरत गये तब हरिशरन।।

राम के सैन्य शिबिर पर उन्हें रोक लिया गया। राम प्रभु को जब समाचार दिया- आवा मिलन दशानन भाई।

प्रभु श्रीराम ने कहा कि इसमें आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता है? उन्हें आने दिया जाय। सुग्रीव बोले- प्रभु। शत्रु का भाई शत्रु होता है। सम्भव है हमारा भेद जानने के लिये ही आये हों। श्रीराम ने निर्भिकता से कहा-जाति के लोग समीप में रहनेवाले लोग समर्थ प्रभावशाली व्यक्ति से मन-ही-मन जलते रहते हैं। भीतर-ही-भीतर उसके पराभव को चाहते रहते हैं। सभी जाति के लोग एक से नहीं होते, अपवाद सभी में रहता है। राक्षसों में भी भले आदमी हो सकते हैं। ब्राह्मणों में भी क्रूर हो सकते है।

भेद लैन पठवा दशसीसा, तबहु न कछु भय हानि कपीसा।

जग महुं सखा निशाचर जेते, लक्ष्मनु हनई निमिष महुँ तेते ।।

वानर सेना जयजयकार करती हुई श्रीविभीषणजी को आदर सहित प्रभु श्रीराम के समीप ले आयी। भक्त को भगवान से मिलने में व्यवधान क्यों? विभीषण को रोका क्यों गया? मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपसे यह अनुरोध करूँगा कि विभीषण को नहीं रोका गया- रोका गया- रावण के भाई को, विभीषण ने अपना परिचय न देकर रावण का ही परिचय दिया- कुसंग का प्रभाव होने के कारण प्रभु से मिलने में विलम्ब हुआ।

नाथ दशानन कर मैं भ्राता, निशिचर वंश जनम सुरत्राता।

विभीषण असुर, शत्रु का भाई होने पर भी प्रभुराम ने शरण में ले लिया।

जो नर होइ चराचर द्रोही, आवै अभय सरन तकि मोहि।
कोटि विप्र बध लागहिं जाहू, आए सरन तजउँ नहिं ताहू।
सनमुख होहि जीव मोहि जवहीं, जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

भगवान की शरण में आने पर समस्त पापों का मोचन हो जाता है लेकिन आवे निर्मल मन से, क्योंकि **निर्मल मन जन सो मोहि पावा- मोहि कपट, छल छिद्र न भावा** शुद्ध हृदय से प्रभु की शरण ग्रहण करेगा तो उसके समस्त अमंगल नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि भगवान मंगल भवन अमंगल हारी है। विभीषण के समस्त अमंगल नष्ट कर वह सम्पत्ति और वैभव उसे प्रदान कर दिया जिसे रावण ने अनेक तपाग्नियों से त्रसित होकर प्राप्त किया था-

विभीषण ने आकर भगवान रामके चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार किया। विभीषण को देखते ही श्रीराम ने उसे लंका का राजा कहकर बुलाया। उनका तो यही यश चला आया है कि जो कुछ उन्होंने एक बार कहा, उसे फिर दुहराया नहीं अर्थात वह पूरा ही हो गया। भगवान भक्तों पर स्नेह रखनेवाले हैं।

आयो तुमरी शरन दीनवत्सल सुनि स्वामी। सुनत शरन हरि लये कृपानिधि अन्तर्यामी।।
सचिवनि करी कुतर्क राम एकहु नहिँ मानी। तनिक न शमा करी भक्त हियकी सब जानी।।
बन्धु तिरस्कृत विभीषण, लखे राम दु:खित भये। तुरत मँगायो सिन्धुजल, झट लंकापति करि दयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, विचित्र कृत्य करने के कारण जिनके समस्त कृत्य नष्ट हो गये हैं। उन जटायु का दाह संस्कार करके, कबन्ध को मारकर, कपियों से मित्रता करके बाली को मारकर वानरों से श्रीराम ने अपनी प्रियतमा का पता लगाया। फिर वे भगवान वानरराज की सेना के सहित समुद्र के समीप आये जिनके पादपद्मों की प्रजापति तथा पशुपति भी पूजा करते हैं।

जो संपति शिव रावनहि दीह दिये दशमाथ। सोइ सम्पदा विभीषणहि सकुच दीन्हि रघुनाथ।।

प्रभु श्रीराम ने विभीषण के साथ ही नहीं सागर के साथ भी सहज आदर का व्यवहार किया था। तीन दिन तक समुद्र से रास्ता देने हेतु प्रार्थना की किन्तु समुद्र ने नहीं सुनीं- बोले राम सकोप तब **भय विनु होय न प्रीत** तब उन्हें लक्ष्मण द्वारा पूर्व में बताई युक्ति का ही अनुसरण करना पड़ा- तब बोले- लक्ष्मण **वान सरासन आनू सोषो वारिधि विसिख कृसानू** प्रभु श्रीराम ने जब बाण का अनुसंधान किया तब समुद्र-

कनक थार भरि मनि गन नाना, विप्र रूप तजि माना।

लंका में हड़कम्प मच गया। वानरों ने माता सीता का पता लगाया फिर मानव की सी लीला करते हुए सर्वसमर्थ भगवान श्रीराम सागर के तट पर गये और उससे मार्ग की याचना की। सागर पर राम की याचना का कोई प्रभाव न पड़ा। रामने भृकुटी

चढ़ा लीं। तब भगवान राम क्रुद्ध हो उठे। उनके क्रोध से सागर में खलबली मच गई। सागर स्तब्ध हो गया।

पार जान हित सिन्धु विनय रघुपति अति कीन्हीं। किन्तु जलधि जड़ गैल नहीं रघुवरकूँ दीन्हीं।।
कस्यो कोप करुणेश धनुषपै सर सन्धान्याबे। लख्यो वेष विकराल नाश मिज जलनिधि जान्यो।।
तुरन्त रूप रखि भेंट लै, आयो राघवकी शरन। हाथ जोरि गद्-गद गिरा, लग्यो विनय इस्तुति करना।।

सागर ने मानवरूप धारण कर भगवान के चरणों में गिरकर स्तुति करके कहा- प्रभो, हम जड़मति हैं। आपके महान् प्रभाव को हम नहीं समझ सकते। आप आदिपुरुष इश्वर हैं। आपको हम नहीं जान सकते। अपनी इच्छामात्र से सागर को पारकर, रावण का संहार कर प्राणप्रिया पत्नी सीता को प्राप्त कर सकते हैं किन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है। आप यहाँ मेरे ऊपर एक सेतु का निर्माण कर लंका में प्रवेश करें। इससे आपका यश बहुत विस्तृत होगा।

हे अनाथके नाथ, दीन दुखियन दुख त्राता। हे कृपालु करुणेश, शान्ति सत सुखके दाता।।
हे अनादि अखिलेश, अनामय अज अघहारी। हे अच्युत अवधेश, अमरपति लीलाधारी।।
जीव विवश गुण प्रकृतितें, करै कर्म ह्वैकें अवस। मोइ अगाध अपार तुम, रच्यो तजौं मर्याद कस।।

शुकदेव बोले- राजन्, शरण में आया समुद्र श्रीराम की इस प्रकार विनय करने लगा। वह बोला- हे भूमन्। हम जड़ बुद्धिवाले आपके यथार्थ रूप को नहीं जान सकते। आप तो कूटस्थ, आदि पुरुष तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी है। आपके सत्वगुण से देवता रजोगुण से प्रजापति और तमोगुण से भूतपति उत्पन्न होते हैं। आप ही सम्पूर्ण गुणों के स्वामी हैं।

शुकदेव बोले- हे राजन्, मूर्तिमान समुद्र प्रकट होकर श्रीराम से कहने लगे- हे वीर। आप सुखपूर्वक मेरे ऊपर से जाइये। विश्रवा मुनि के मल रूप इस तीनों लोकों को रुलानेवाले रावण को मारकर अपनी पत्नी को प्राप्त कीजिये। यहां मेरे ऊपर आप अपने सुयश के विस्तार के निमित्त पुल बनाइये। जिससे यहाँ आकर दिग्विजयी भूपतिगण आपके यश का गान किया करे।

हौ हरि सर्व समर्थ विश्व छिनमाँहि बनाऔ। मोपै बाँधों सेतु पार प्रभुवर पुनि जाओ।।

शुकदेव बोले- राजन्, अनुनय विनय करने पर भी समुद्र जब प्रसन्न न हुआ तब श्रीराम कुपित हुए। उनके कोप के कारण विस्फारित कटाक्ष भङ्गी से समुद्र में रहने वाले नक्र, मगर आदि विचलित होकर तड़फड़ाने लगे। जिनका भय के कारण गर्जन स्तम्भित हो गया था, वह सिन्धु सिर पर रत्नादिकों के उपहार लेकर श्रीराम के चरणारविन्दों में उपस्थित होकर कहने लगा।

कृपालु भगवान ने समुद्र से ही पार होने का उपाय पूछा- ब्राह्मण वेशधारी समुद्रने नल, नील वानरों द्वारा डाले गये पत्थरों के न डुबने का रहस्य बता उन्हीं के द्वारा सेतु निर्माण कराने की योजना बताई। श्रीराम ने कहा- इस पर श्रीराम बोले- देखो, भैया नीरनिधि। मेरा बाण अमोघ है, वह धनुष पर व्यर्थ नहीं चढ़ता। वह चढ़कर बिना छोड़े तूणीर में नहीं आता। अत: मुझे बताओ इस बाण को कहाँ छोड़ूँ?

समुद्र ने कहा- प्रभो। यदि आपको इस बाण को सार्थक करना ही है तो इसे उत्तर दिशा में छोड़िये। उधर द्रुमकुल्य (दुबई) नामक एक देश है। वहाँ मेरे किनारे पर बहुत से अनार्य दस्यु रहते हैं। वे मेरे जल का दुरुपयोग करते हैं, वे बड़े क्रूर हैं। इस बाण को मारकर उस देश को आप मरुभूमि बना दें। यह बाण दुबई कच्छ रण और राजस्थान होकर गया।

समुद्र की ऐसी बात सुनकर श्रीराम ने अपना अमोघ बाण उत्तर की ओर छोड़ा। उसके छोड़ते ही उस देश का समस्त पृथ्वीतल का जल सूख गया। समुद्र के स्थान पर वह एक देश हो गया, जो मरुभूमि (बद्रीनाथ के आगे तिब्बत) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ पृथ्वी में एक छिद्र हो गया जिससे सदैव मधुर जल निकलता रहता है।

उस देश को भगवान् ने वरदान दिया- इस देश में पशु बहुत हों पशुओं के लिये यह देश अत्यन्त ही हितकारी हो।

यह देश अल्प रोगवाला और रस से युक्त हो। घृत, दूध आदि रसीले पदार्थ यहाँ बहुत हों और नाना प्रकार की औषधियाँ आदि उत्पन्न हुआ करें।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, अब तक तिब्बत की सम्पूर्ण भूमि मरुभूमि है वहाँ अन्न उत्पन्न नहीं होता। सैकड़ों योजन मैदान ही मैदान दिखाई देता है। समुद्र के सोखने के चिन्ह अभी तक वहाँ मिलते हैं। भूमि खोदने पर उसके नीचे से सीपी शंख आदि निकला करते हैं। वहाँ के लोग बड़े हृष्ट, पुष्ट निरोग रहते हैं वहाँ बकरी, चमरी गौएँ ही परमधन हैं। वहाँ के लोग शपथ भी पशुओं की ही खाते हैं और पत्र में भी पशुओं के कुशल समाचार लिखते हैं। वहाँ औषधियाँ भी बहुत होती हैं। किन्तु वृक्ष नहीं होते।

नल सुर शिल्पी तनय सेतु सुखकर बाँधे वर। सुघर सेतु बनि जाइ ताहितें जावैं वानर।।
मम मर्यादा रहै रहै यश तुमरो जगमहँ। नर लीला हरि करहु नहीं नाप्यो जग पगमहँ।।
राम बुलाये नल तुरत, अन्तर्हित सागर भयो। बाँधो वानर सिन्धु पै, सेतु विहँसि राघव कह्यो।।

सूतजी कहते हैं- मुनियो। देवताओं के कार्य करने के निमित्त नर देवों राजा राम के रूप में उत्पन्न होकर भगवान ने समुद्र पर पुल बांधना आदि अनेक पुरुषार्थ वाले कार्य किये।

मापदण्डतें नापि बनायो चौदह योजन। द्वितीय दिव जब बीस बन्यो तब कीयो भोजन।।
तृतीय दिवस इक्कीस बँध्यो बाइस चौथे दिन। पहुँचे पञ्चम दिवस पार रचि तेइस योजन।।
सिन्धु सेतु पूरो भयो, रामेश्वर थापित करे। आशुतोषके दरश करि, नयन नीर सबके भरे।।

राम का कार्य समझकर एक मन के बहुत से लोग मिलकर जिस कार्य को करते हैं उसके करने में अत्यधिक आनन्द आता है। उन कार्यों में क्लेश का अनुभव होता है, जो ममत्व से अहंकारपूर्वक व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के निमित्त कि;ये जाते हैं। उनके करने में चिन्ता, अविश्वास, चंचलता, क्षोभ और सन्देह बना रहता है। जो राम का कार्य समझकर किया जाता है उसमें प्रतिक्षण उत्साह बढ़ता है। सभी हँसते खेलते गाते बजाते आनन्द करते जय-जयकार बोलते हुए काम करते हैं। वे लोग धन्य हैं, जो राम के निमित्त उत्सव पर्व और धूम-धाम में सम्मिलित होते हैं और वे उनमें से भी धन्यतम हैं जो ऐसे कार्यों की योजना करते हैं। ऐसे कार्यों में लोगों को लगाते हैं।

राम रजायसु पाइ सेतु सब बाँधन लागे। लैन वृक्ष अरु उपल वीरवर वानर भागे।।
उपल उठाइ उठाइ सलिलमहँ फेंके सबई। देहिं सबहिं उत्साह बँध्यो पुल वीरो, अबई।।
धम्म धम्म पत्थर गिरैं, धूम धड़ाको मचि गयो। आर पारतें सूधिमहँ, सूत सामने खिँचि गयो।।

समुद्र पर सेतु बन गया। अब श्रीराम ने शिव पूजा की और हनुमानजी को शिवलिंग लानेके लिये भेजा। इसी बीच रामने बालू का शिवलिंग बनाकर शिवजी की स्थापना कर दी। इधर तब तक श्रीहनुमानजी एक सुन्दर शिवलिङ्ग लेकर आये। बालू के शिवलिङ्ग को देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे श्रीराम से बोले- राघव, यह आपने क्या किया, मैं कितने परिश्रम से कितना सुन्दर शिवलिंग लाया हूँ, आपने बालू के शिवलिङ्ग की स्थापना कर दी।

श्रीराम ने कहा- भाई, दु:खी क्यों होते हो, तुम इन्हें हटाकर अपने शिवजी की स्थापना कर दो तुम भी तो पंडित हो, कर्मकाण्डी हो, साक्षात् शिव ही हो।

इतना सुनते ही हनुमान्‌जी ने अपनी पूँछ में लपेटकर पूरी शक्ति लगाकर बालुका की बनी शिवलिङ्ग को उखाड़ना चाहा, किन्तु वह टस-से-मस न हुईं। तब तो हनुमानजी बड़े लज्जित हुए। इस पर श्रीरामजी हँसकर बोले- पवनतनय। लज्जा

की कौन-सी बात है, भैया। शिवलिङ्ग की स्थापना तो जितनी ही हो जायँ उतनी ही उत्तम हैं। तुम भी अपने शिवजी की स्थापना कर दो। मेरे स्थापित शिवजी श्रीरामेश्वर के नाम से विख्यात होंगे और तुम्हारे शिवजी हनुमदीश्वर के नाम से।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, श्रीराम की आज्ञा मानकर हनुमानजी ने शिवजी की स्थापना कर दी। इसलिये श्रीरामेश्वर धाम में श्रीरामेश्वर के समीप श्री हनुमदीश्वर शिव अद्यावधि विद्यमान हैं। श्रीरामेश्वरजी के दर्शनों के पूर्व उनके दर्शन करते हैं, जो हनुमानजी के स्थापित शिवजी के दर्शन नहीं करता, उसकी रामेश्वर यात्रा पूर्ण सफल नहीं मानी जाती। इस प्रकार पुल बँध जाने पर श्रीरामजी समस्त वानरी सेना के सहित उससे पार जाने की तैयारियाँ करने लगे।

सागर की बात स्वीकार कर राम ने उस पर सेतु पुल बनवाया। यह पता चल जाने पर कि सीता लंका में रावण की अशोक वाटिका में बंदिनी है, श्रीराम लंका-विजय करके उन्हें मुक्त कराने के लिए अपनी सेना लेकर उस ओर कूच करते हैं, लेकिन बीच में सागर आ जाता है। उसे पार करने के लिए सेतु का निर्माण किया जाता है। अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब पुल बनाने में जुट जाते हैं। नल-नील उस कला में निष्णात हैं। वे पत्थरों को जमाते हैं। एक गिलहरी बालू के कण उठा-उठाकर लाती है। वानरों की सेना बड़ी तत्परता से सहायता करती है। हनुमान की स्फूर्ति तो देखते ही बनती है। वह बिजली की गति से पत्थर उठाकर लाते हैं और उन पर राम का नाम लिखकर पानी में डाल देते हैं। पत्थर एक-दूसरे से जुड़कर पुल को आगे बढ़ाते हैं। श्रीराम सबको काम में संलग्न देखकर स्वयं आगे आते हैं और उनका हाथ बंटाने के लिए पत्थर उठाकर लाते हैं। लेकिन यह क्या? पानी में डाले उनके पत्थर तैरते नहीं, डूब जाते हैं। राम अवाक् होकर देखने लगते हैं। उनकी निगाह हनुमान पर जाती है। उनके पत्थर तो बराबर पानी पर तैर रहे थे। श्रीराम ने विस्मित होकर पूछा, हनुमान, यह माजरा क्या है कि तुम्हारे पत्थर पानी पर तैर रहे हैं और मेरे पत्थर पानी में डूब रहे हैं? स्वामी की ओर देखकर हनुमान बोले, प्रभो, इसमें कोई रहस्य नहीं है। तब? ऐसा क्यों हो रहा है? हनुमान कुछ देर मौन रहे, फिर भाव-विह्वल होकर बोले, स्वामी, जो आपके हाथ से छूटेगा, वह बिना डूबे नहीं रहेगा। इस प्रसंत का प्रतीकात्मक अर्थ है। श्रीराम नीति के पर्यायवाची हैं। तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति नीति के मार्ग को छोड़ता है, उसका पतन अवश्यम्भावी है।

शुकदेव बोले- राजन्, उस शैल शिखरों से जिन पर वृक्ष उग रहे थे और जिन वृक्षों की शाखाएँ वानर वीरों के करों द्वारा कम्पित हो रही थीं उनसे श्रीराम ने समुद्र पर पुल बँधवाया। विभीषण ने जिस लंकापुरी का मार्ग दिखलाया है उसे जिसे हनुमान्जी ने पहिले ही जला दिया था फिर सुग्रीव और नल-नील आदि के साथ, विभीषण के द्वारा दिखाई हुई लंका में प्रवेश किया।

बालमीक मुनि चरित सेतु करि जगकूँ तारें। सिन्धुसेतु कपि करैं सैन्य सब पार उतारें।।
रामचरित मुनि सेतु करि, स्वयं अबशि तरि जाइँगे। बने रहें पुनि जगतमहँ, सब सेवैं सुख पाइँगे।।

लंका विचलित हो उठी। रावण किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया, विचलित हो गया, विकम्पित हो गया। किसी ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता रावण बड़ा वीर और धीर था।

बाध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिन्धु वारीस। सत्य तोयनिधि कपति उदधि पयोधि नदीस।।

दशमुखों से एक साथ बोलना क्या आश्चर्य, भय, आतुरता का कारण नहीं है। सम्पूर्ण मानस में लंकेश केवल एक मुख से ही बोले हैं यहाँ तक कि रणभूमि में जब काल भगवान के दर्शन स्पष्ट रूप से हो रहे थे, मृत्यु के समय कैसा भय, शोक और आतुरता होती है उस समय भी रावण को इतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना कि श्रीराम द्वारा समुद्र पर सेतु बनाने से हुआ क्योंकि यह अलौकिक, अप्रत्याशित, अद्वितीय कार्य था।

रावण को ही नहीं पट्टमहिषी मन्दोदरी को भी उतना आश्चर्य हुआ। मन्दोदरी भी राक्षस कुल में विभीषण के समान न्याय प्रिय और ज्ञानप्रिय हैं। भगवत महत्व को समझनेवाली है। इसलिए अब तक के कौतुहलों में सेतु निर्माण सर्वोपरि था। उसने अपने स्वामी लंकाधिपति के आगे आंचल पसार कर चरणों में शीश झुका कर विनम्र शब्दों में कहा-

नाथ बयरु कीजे ताही सों बुधिबल सकिअ जीति जाही सों।
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा खलु खद्योत दिनकरहि जैसा।।
रामहि सौपि जानकी नाइ कमल पद माथ। सुत कहु राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।

व्यवहार और मित्रता समान स्थिति वाले से होती है किन्तु शत्रुता कम बुद्धि और बल वाले से करनी चाहिए। श्रीराम आपसे बल में अधिक हैं। जनक जी ने जब स्वयंवर का आयोजन किया उसमें अन्यान्य राजाओं के अलावा आप भी थे किन्तु आप भी उस धनुष को नहीं तोड़ सके और सुकुमार राम ने उसे तोड़ दिया। वानरराज बाली को आप परास्त नहीं कर सके, श्रीराम ने उसे मार दिया। उनका अनुचर आपकी नगरी जला गया और आप कुछ न बिगाड़ सके। उन्होंने आपके समान बलवान खर, दूषण और त्रिसरा को मार दिया। आपसे बल पराक्रम में बहुत आगे हैं। आप उनसे सन्धि कर लें जिससे मेरा सौभाग्य अटल हो सके। मन्दोदरी पुन: चरणों में पड़कर रोने लगी। रावण ने अपने निकट बैठाकर कहा-

सुनु तै प्रिया वृथा भय माना, जग जोधा को मोहि समाना।

रावण ने अट्टहास किया और अपनी शूरवीरता का बखान करने लगा। पुन: मन्दोदरी ने सत्य किन्तु कटु बात कही-

सिन्धु तरयो उनको वनरा, तुम पै धनु रेख गई न तरी।
वानर बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँध कै बाट करी।
श्रीरघुनाथ प्रताप की बात, तुम्हें दशकंध न जान परी।
तेलहू तूलहू पूछ जरी, न जरी-जरि लंक जराई जरी।

मन्दोदरी के मर्मभेदी शब्दों को सुनकर रावण तिलमिला गया और पुन: राज्यसभा में जाकर बैठ गया। चाटुकार मन्त्री पुन: खुशामदी बातें करने लगे कि वानर भालू तो हमारे भोजन हैं, देवता हमारे अधीनस्थ हैं फिर भय का कोई कारण नहीं। रावण पुत्र प्रहस्त से चाटुकारिता सहन न हुई तो बोला-

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू, जारत नगरु कस न धरि खाहू।

जिस हनुमान वानर ने अशोक वाटिका उजाड़ी, भाई अक्षयकुमार को मार दिया, लंका को जलाकर भस्म कर दिया तब किसी ने उसको छुआ तक नहीं खाने की बात तो दूर रही। कथनी और करनी में बड़ा अन्तर होता है। मंत्रियों की ठकुरसुहाती बातें सुनने में अच्छी लग रही हैं लेकिन इनके परिणाम दुखद होंगे और प्रहस्त ने अपना अभिमत भी प्रकट इस तरह किया- **नारि पाइ फिरि जाहिं, जौं तौं न बढ़ाइअ रारि।**

लेकिन अहंकार स्वरूप लंकेश ने क्रोधातुर होकर पूछा-

सुत सन दशकंठ रिसाई, असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई।
इहाँ प्रात: जागे रघुराई, पूछा मत सब सचिव बुलाई।
कहहु वेगि का करिअ उपाई, जामवंत कह पद सिरनाई।
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा, दूत पाइअ बालिकुमारा।

सर्व सम्पत्ति से बालीकुमार अंगद को दूत बनाकर लंका भेज दिया।

पार पहुँचि सुग्रीव निशाचरपति समुझायो। मूढ़ न मानी बात राम अङ्गदहुँ पठायो।।

अंगद ने लंका में प्रवेश किया तो राजपुत्र से मुठभेड़ हो गई। अंगद ने उसे रामधाम पहुँचा कर अपने आने की शुभ सूचना रावण तक पहुँचा दी। रावण ने उन्हें सभा भवन बुलाया। **गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।**

अंगद ने सभा भवन का अवलोकन किया तो अचम्भित रह गये फिर लंकापति उन्हें कैसे दिखाई दिये-

सहित प्राण कज्जलगिरि जैसे। रावण ने कहा- अंगद तुमने लिए हैं अभी जिन्हों के नाम।

ध्यान मुझे आया नहीं कौन बाली और राम?

मानो काजल का पहाड़ प्राणवन्त होकर असीम हो गया हो। वृक्षों के समान श्रृङ्ग शिखर जैसा सिर। शरीर पर रोम इतने लम्बे जैसे लता हों। नाक और कान के छिद्र गुफा के आकार के थे किन्तु अंगद निर्भय ऐसे चले गये जैसे हाथियों के झुण्ड में सिंह चला जाता है। लंकेश का सम्मान कर बैठ गये तो रावण ने परिचय चाहा।

अंगद बोले- मैं श्रीराम प्रभु का दूत, बाली पुत्र अंगद हूँ, मेरे पिता के आप मित्र थे इसलिए आपके हित चिन्तन में मैं ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

अंगद बोले- निश्चित विस्मरण हो गया होगा। क्योंकि आप जब बाली की कांख में बन्दी थे तब आप मूर्च्छित थे। किन्तु श्रीराम का विस्मरण आश्चर्य की बात है। बहिन सूर्पनखा को देखकर भी श्रीराम का स्मरण नहीं होता। जनकपुर से लेकर खर-दूण बध तक आपका राम से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है फिर भी विस्मरण। आप चिन्तित न हों बस दस दिन के बाद ही श्रीरघुनाथ का दर्शन और बाली से आपकी मुलाकात हो जायेगी-

रावण अंगद के व्यंग बाणों से तिलमिला गया। बोला-

खल तव कठिन वचन सब सहऊँ, नीति धर्म मैं जानत अहऊँ।

अंगद, मैं नीति धर्म का पण्डित हूँ इसीलिए तेरे कटु वचनों को सह रहा हूँ, अन्यथा तुम्हें बोलने योग्य नहीं रहने देता। अंगद ने तुरन्त जवाब दिया।

कहि कपि धर्म शीलता तोरो, हमहु सुनी कृत परतिय चोरी।

कान नाक बिनु भगिनि निहारी, क्षमा कीन्हि तुम धर्म विचारी।।

हे असुर शिरोमणि, आपकी क्षमताशीलता की अद्भुत चर्चा है। आप कितने उदार हैं कि जिसने आपकी बहिन के नाक-कान काटकर कुरूप बना दिया है उसे भी क्षमा कर दिया। रावण ने धीरता से अपना पांसा फेंका-

अंगद, तुम्हीं बाली के पुत्र हो, जो पिता के हत्यारों का दास होकर गौरवान्वित हो रहे हो अगर ऐसी ही सेनापति बनने की इच्छा है तो लंका की विशाल सेना के नायक बनो। मैं मित्र पुत्र को सम्मान देने के लिए तत्पर हूँ।

हे राक्षसराज, मैं भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए जगतनियंता श्रीराम से शत्रुता लेकर मृत्यु का आह्वान नहीं चाहता।

अरे अंगद, हम तो तुम्हें वीर समझते थे तुम तो बड़े भीरू हो। मृत्यु से भय खाते हो। फिर उन तपस्वियों की सेवा में कौन सा वीर दिखाई देता है जो हमारी सेना को परास्त कर सके। मुझसे लड़ने की क्षमता किसमें है। तुम जिससे भयभीत हो वह राम तो-

तुम्हरे कटक मांझ सुनु अंगद, मो सन भिरिहि कवन जोधा वद।

तव प्रभु नारि विरह बलहीना, अनुज तासु दुख दुखी मलीना।।

स्वयं स्त्री विरह में व्याकुल हैं, उसका अनुज उसके संताप में बलहीन हो गया है। जामवन्त बृद्ध है क्या वह समरांगन में

टिक सकेंगा।

अंगद बोला- आपने ठीक कहा लंकेश प्रीति और बैर बराबर वाले से ही होती है। हमारी सेना में कोई वीर नहीं जो आपसे लड़ने में शोभा पाये। किन्तु मुझे यह विस्मृति हो रही है कि आप कौन से रावण हैं क्योंकि मैं अनेक रावण के विषय में सुन चुका हूँ- एक रावण तो वो है जो पाताल में बली राजा को जीतने गया और बलि के बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध दिया था। दूसरा सहस्त्रबाहु को धमकाने गया तो उसने उसे बाँधकर बच्चों के लिए खेल का साधन बना दिया था। एक रावण मेरे पिताश्री बाली की काँख में बहुत दिनों तक दबा रहा था, आप इनमें कौन से हैं? रावण सहन न कर सका यह व्यंग, तुरंत बोला-

सुनु सठ मैं सोई बलसीला, हर गिरि जान जासु भुज लीला।
जान उमापति जासु सुराई, पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई।।

अरे मूर्ख, तू नहीं जानता मुझें। कैलाश पर्वत को जिसने शिव सहित उठा लिया था। समस्त देवताओं को अपने भुजबल से परास्त कर दिया, यमराज को जिसने अपनी कारागार में डाल रखा है यह वह लंकाधिपति रावण है।

अंगद बोले, हे लंकेश। जो स्वयं अपने श्रीमुख से अपनी यश गाथा का बखान करता है वह कितना वीर है इसका प्रमाण तो यह जली हुई लंका और चीत्कार करते राक्षस हैं। एक छोटे से धावक वानर ने तुम्हारी दुर्दशा कर दी। तुम्हारे पुत्र को मार दिया, बाटिका उजाड़ दी, उस समय तुम्हारी शूरता कहाँ गई थी? अरे अहंकार पुंज। श्रीरघुनाथजी के बाणों के सामने तू पलभर भी नहीं टिक सकेगा।

अरे मन्दबुद्धि, सिर काटनेवाले को वीर नही कहा जाता यह कार्य तो इन्द्रजाल रचनेवाले मदारी भी कर लेते हैं। अतिशय वजन लादने वाले गधे शूरवीर नहीं कहलाते।

रावण। यदि मुझे सुग्रीव का भय न होता, श्रीराम प्रभु की आज्ञा का बन्धन न होता तो तेरी लंका को चौपट कर, तेरी सेना को समाप्त कर, तेरा संहार कर, तेरी युवती पत्नियों सहित माता जानकी को ले जाता।

रावण क्रोधातुर होकर बोला- अरे नीच बन्दर तू छोटे मुँह बड़ी बात कर रहा है। लगता है तेरा अन्तिम समय आ गया है। जिन तपस्वियों पर तू गर्व कर रहा है ऐसे मनुष्यों को तो राक्षस रात दिन खा जाते हैं और उसे तो मूर्ख समझ कर उसके पिता ने घर से निकाल दिया था। अब नारी के वियोग में रात दिन तड़प रहा है।

जब तेहि कीन्हि राम कै निन्दा, क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा।
हरि हर निंदा सुनइ जो काना, होइ पाप गोघात समाना।।

वानरश्रेष्ठ अंगद जोर से कटकटाये और दोनों हाथ पृथ्वी पर दे मारे। पृथ्वी हिलने लगी। सभासद ही नहीं रावण भी सिंहासन से पृथ्वी पर आ पड़ा, मुकुट गिर गये उन्हें उठाने लगा- चार तो अंगद जी के हाथ लग गये, उन्होंने वे रामादल की ओर फेंक दिया। वानर सेना ने तारों की तरह चमकते देखें तो उलकापात का भय करके डरने लगे। हनुमान ने चारों को इकट्ठा कर श्रीराम को अर्पित्त किया और बोले- प्रभु। अंगद के जाते ही ये साम-दाम, दण्ड और भेद चारों भी रावण का साथ छोड़कर आपकी शरण में आ गये हैं।

रावण अब क्रोधान्ध हो, भूला शिष्टाचार। था समीप जो असुरदल, उससे कहा पुकार।।

पकड़ो, इसे बाँध डालो, लोहे की गर्म सलाखों से सब तन छेद डालो। जाओ वानर दल से दोनों भाईयों को पकड़ लाओ-देखो उन्हें भी रस्सी से बाँधकर लाना, जाओ जल्दी जाओ। राक्षस वीर एक दूसरे की ओर देखने लगे। बालीकुमार बोले-

ओ झूठे नारी चोर मूर्ख, क्या सन्निपात हो गया तुझे। ले आऊँ कोई नया वैद्य, अष्टादशांग दे पिला तुझे।।

अरे अभिमानी, पहले राम सेवक का बल तो देख ले- तब उन बलसागर की थाह खोजना। यह कह अंगद ने शक्ति का ध्यान कर अपना पैर पृथ्वी पर जमा दिये और बोले- यदि इस पैर को कोई हटा देगा तो हम अपनी हार स्वीकार कर लेंगे और वापिस चले जायेंगे। रावण के योद्धा अंगद के पैर पर जोर लगाने लगे किन्तु जब-

अढ़कर बढ़कर गिरकर पड़कर, उठ उठ कर होड़ लगाते थे।
पग हटता न था हठीले का, हठधर्मी हट हट जाते थे।।

और इन्द्रजीत भी पैर न हटा सका तो स्वयं रावण अंगद की ओर आने लगा तो अंगद ने पैर हटा लिया और बोले-

सेवक के पैर पकड़ कर क्यों, अपना मान घटाता है।
क्योंकि नहीं पकड़ता राम चरण, उसमें लज्जा खाता है।।
क्या होगा मेरे पैर पकड़, मैं नहीं क्षमा कर सकता हूँ।
भूमि न छांड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। कोटि विघ्न ते सन्त कर मन जिमि नीति न त्याग।।

हे लंकेश, मेरे पैर पकड़ने से तुम्हारा कोई हित नहीं होगा। हितकारी जनदुख भंजन श्रीराम के चरणशरण जाने से तुम्हारा कल्याण होगा। रावण लज्जित होकर पुन: सिंहासन पर बैठ गया और अंगद प्रभु राम के पास पहुँच गये।

रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज। पुलक शरीर नयन जल गहे राम पद कंज।।

अंगद ने लंका और लंकाधिपति के साथ वार्ता का समस्त वृत्तान्त सुनाया तब श्रीराम ने सबके परामर्श से लंका पर आक्रमण करने का आदेश दिया। दोनों सेनायें भिड़ गई वानर सेना में हर हर महादेव और जय सीयाराम तथा राक्षस सेना में जय लंकेश का उद्घोष होता था। हनुमान और अंगद लंका में पहुँच रावण के महल पर चढ़कर जय श्रीराम का उद्घोष करने लगे। सेना के बीच कूदकर राक्षसों को मसलने लगे। महल में घुसकर खम्भे उखाड़ने लगे। राक्षसनियाँ भय से काँपने चिल्लाने लगीं। राक्षसों ने माया से अन्धकार कर दिया- वानर सेना घबड़ाने लगी। श्रीराम ने अग्नि बाण छोड़ दिया चारों ओर प्रकाश हो गया।

रणके बाजे बजे धुसे लंकामहँ वानर। तोड़े फोड़ें उछरि कूदि सब घूमे घर घर।।
वन उपवन सब नगरमहँ, वानर ही वानर भरे। क्षत विक्षत नगरी भई, घर टूटे निशिचर मरे।।

सैनिक धर्म बड़ा कठोर और निर्दय धर्म है। सैनिक जब शत्रु पर चढ़ाई करते हैं, तो उन्हें दया नहीं रहती। वे उन्मत हो जाते हैं, उनके सामने शत्रु की कैसी भी सुन्दर-से-सुन्दर वस्तु आ जाती है। उसे ही नष्ट कर डालते हैं। उस समय उन्हें शत्रु की किसी वस्तु पर दया नहीं आती। यदि युद्ध धर्म इतना कठोर न होता तो यह बढ़ी हुई सृष्टि कहाँ समाती। जैसे उत्पन्न हुई सृष्टि के लिये संहार अनिवार्य है। सेवक धर्म अत्यन्त ही कठिन होता है सेवक को मरने तक की स्वतन्त्रता नहीं। वह स्वेच्छा से प्राणों का उत्सर्ग भी नहीं कर सकता। स्वामी के द्वारा सेवक का पराभव होना कोई पराभव नहीं। वह उसके लिये परम सौभाग्य की बात है। प्रभुओं की प्रत्येक चेष्टा में सेवकों का हित निहित रहता है। सेवक का धर्म है, स्वामी के निमित्त अपने शरीर का उत्सर्ग कर दे। जिस सेवक को शरीर का मोह है वह सेवा क्या करेगा, जिस स्वामी को सेवकों के सुख और निर्वाह की चिन्ता नहीं, उस स्वामी के सेवक सेवा ही क्या करेंगे। स्वामी और सेवक का सम्बन्ध सनातन है। अपवाद तो सभी में होते हैं, किन्तु जैसे पति-पत्नी का सम्बन्ध पूर्वकाल में कभी नहीं छूटता था, उसी प्रकार स्वामी सेवक का सम्बन्ध भी स्थाई समझा जाता था। सैनिक अपने स्वामी की विजय के लिये सभी कुछ करते हैं। वे अत्यन्त उल्लास के साथ शरीर की तनिक भी चिन्ता न करके युद्ध में जाते और सिर कटने पर भी केवल धड़ से युद्ध करते रहते हैं। इसी का नाम वीरता है।

शुकदेव बोले- राजन्, जिस पुरी के क्रीड़ा स्थल, कोष्ठ, गृहद्वार, प्रधान द्वार, सभा स्थल, छज्जे, पक्षियों के स्थान सुग्रीव

की वानरी सेना से रुद्ध हो गये हैं। वह लंकापुरी, वेदी, ध्वज, सुवर्ण कलश तथा चतुष्पथों के टूटने फूटने के कारण गज यूथपों द्वारा विमर्दित सरोवर के समान हो गयी थी।

इत उत वानर फिरहिँ करहिँ मिलि धक्कम धक्के। निरखि कपिनि उत्साह छुटे रावनके छक्के।।
उत निशिचर इत भालु कपि, दोनों सेना सजि गई। दोनों विजयी बनन हित, करि रव भीषण भिड़ गईं।।

वानर सेना ने लंका के दुर्ग को घेर लिया। राक्षस सेना लंकेश की दुहाई देने लगी। दोनों ओरसे राक्षस और वानर आँख मूँदकर भिड़ जाते, परस्पर प्रहार करने लगते। परस्पर एक दूसरे को पराजित करने का प्रबल प्रयत्न करने इस प्रकार अनेकों वीर परस्पर में द्वन्द्व युद्ध करने लगे। लक्ष्मण प्रभु राम से बोले- हे श्रीरामजी, यदि मैं इंद्र को जीतने वाले मेघनाद को न मारूं और अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करूं तो मैं आपके चरणों का दास नहीं हूं। हे प्रभु, आप यह बात पक्की समझ लीजिए कि मैं उसे एक ही बाण में मार दूंगा। मैं आपके यश की सौगंध खाकर कहता हूं कि उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। कुंभकर्ण तथा दस सिर और बीस भुजा वाले रावण को और उसकी राक्षसी सेना का सर्वनाश कर डालूंगा।

शुकदेव बोले- राजन, लंका पर वानरी सेना का प्रहार देखकर राक्षसराज रावण ने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, अपने पुत्र इन्द्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय और विकम्पन आदि सब अपने अधीन राक्षसों को भेजकर कुम्भकरण को भी भेजा। राम के बल, वीर्य, पराक्रम, ओज, तेज, राजपटुता हस्तलाघवता तथा शूरवीरता, आदि गुणों को देखकर रावण भय के कारण तन्मय हो गया था।

धनुष, प्रास, शर, शक्तियुक्त, रावनकी सेना। पकरि पकरि कपि भालु चबावैं मनहुँ चवैना।।
सर्र सर्र शर समरमहँ, चलें चपत हूँ चटाचट। जहँ देखो तहँ ह्वै रही, पटका पटकी खटापट।।

शुकदेव बोले- राजन्, राक्षसों की वह सेना तलवार शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, बाण, तौमर और खड्ग आदि आयुधों के कारण दुर्गम थी, उनसे लड़ने के लिये श्रीरामजी सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान्, गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पानस आदि वीरों के सहित चले।

चले राम रनमाँहि सङ्ग सुग्रीव सहायक। जाम्बवान्, नल, नील, पनस, अङ्गल सब नायक।।

तब मेघनाद सेना लेकर युद्ध करने लगा। इधर यति लक्ष्मण उधर सती पति मेघनाद। दोनों परम वीरों में विभिन्न शस्त्रों से युद्ध होने लगा। वानर सेना त्रस्त होने लगी। हनुमान ने शीघ्र एक विशाल शिला उठाकर मेघनाद के रथ पर फेंकी- मेघनाद तो माया से आकाश में चला गया। किन्तु रथ, घोड़े और सारथी नष्ट हो गये।

मेघनाद ने वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग कर लक्ष्मण जी को मूर्छित कर दिया। उन्हें उठाकर लंका ले जाने का प्रयत्न किया किन्तु किसी प्रकार उठे नहीं तब छोड़कर चला गया। हनुमान जब श्रीलक्ष्मण को लेकर राम के निकट पहुँचे तो अत्यन्त दु:खी हुए। विभीषण के बताने पर ही हनुमान को लंका सुषेण वैद्य को लाने का निर्देश दिया। हनुमान घर सहित सुषेण जी को ले आये और उनके बताने पर हनुमान हिमालय पर बूटी लेने गये। रात्रि बीतने लगी श्रीराम का शोक बढ़ता गया क्योंकि रात्रि के बीत जाने पर बूटी भी प्रभावी नहीं होगी। अर्द्धरात्रि के बाद हनुमान पर्वत सहित लौटते दिखाई दिये। हर्ष छा गया। वैद्य सुषेण ने जड़ी लेकर लक्ष्मण पर प्रयोग किये तो लक्ष्मण जी को चेतना आ गयी। श्रीराम तथा सभी यूथपतियों ने श्रीहनुमान का आभार प्रकट किया और विलम्ब का कारण पूछा। श्रीहनुमान ने कालनेमि तथा श्रीभरत की घटनायें सुनाई।

पठये कुम्भ निकुम्भ इन्द्रजित् निशिचरपति जब। समर करन सब चले विभीषण भेद कह्यो सब।।
मेघनाद रन छोड़ि भग्यो माया फैलाई। नर लीला प्रभु करी गिरे रन दोऊ भाई।।

निशिचर दलमहँ हर्ष अति, कपिदलमहँ चिन्ता भई। राम जगे कपि लखन हित, लाये सञ्जीवनि दई।।

रावण यह सब जानकर कुम्भकरण के समीप गया और उसे युद्ध करने के लिए प्रेरित किया।

राम बानतें बिकल दशानन लमा आयो। कुम्भकरण लघुबन्धु नींदतें तुरत जगायो।।

जगिकें बोल्यो वीर रामतें रनमहँ लरिहौं। लहूँ विजय करि कीर्ति नहीं हरि सम्मुख मरिहौं।।

यों कहि अञ्जन गिरि सरिस, चल्यो देखि बानर भगे। भगदड़ कपिदलमहँ निरखि, अङ्गद समुझावन लगे।।

कुम्भकरण पर एक साथ सारी वानर सेना टूट पड़ी किन्तु वह संहार करता आगे बढ़ता ही गया। वानर सेना बिफल हो गई तब श्रीराम ने सौ बाण एक साथ छोड़े, कुम्भकरण के शरीर में विध गये। कुम्भकरण क्रोधातुर होकर गर्जना करता दौड़ा तो पहाड़ डगमगाने लगे, पृथ्वी हिलने लगी। कुम्भकरण एक विशाल पर्वत उठाकर श्रीराम की ओर फेंकने को तत्पर हुआ तो प्रभु ने दायीं भुजा काट दी, बायें हाथ से पर्वत फेंकने का प्रयास किया तो बायीं भुजा भी बाण से काट दी, दोनों भुजायें कटने पर भी गिरा नहीं। रक्त की धारा बहने लगी, परन्तु कुम्भकरण वानर सेना का संहार करता आगे ही बढ़ता गया। जोर से चिंघाड़ा, फिर राम की ओर दौड़ा, वानर सेना चीत्कार करने लगी। देवता और सिद्धगण आकाश में हाहाकार करने लगे- राम प्रभु की दुहाइ देने लगे। श्रीराम प्रभु ने बाणों से मूँह भर दिया और एक बाण से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। कुम्भकरण का अन्त हो गया। कुम्भकरण का सिर भूमि पर न गिर रावण के सिंहासन पर गिरा।

अङ्गद मार्‌यो वज्रदंष्ट्र धूम्राक्ष पवनसुत। आयो लड़न प्रहस्त भये नहिं वानर विचलित।।

हनुमान् अरु बालिसुत, नील लखन मूर्छित करे। पवनतनयकी पीठ चढ़ि, रावनतें राघव लरे।।

अङ्गदकी सुनि सीख रुके कपि लड़िवे लागे। कुम्भकर्ण सुग्रीव लखन सेनाके आगे।।

भयो भयानक समर लखन रन अद्‌भुत कीन्हों। पुनि राघवतें भिड्यो असुरकूँ अवसर दीन्हों।।

रामवानतें कर कटे, पग मस्तकहू कटि गये। कुम्भकर्ण खल मरि गयो, सुनि हर्षित सुर मुनि भये।।

रावण उसे देख व्याकुल हो गया, विचलित हो गया। आकाश में नगाड़े बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी श्रीराम प्रभु पर।

निशिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम। गिरिजा ते नर मदमति जे नर भजहि श्रीराम।।

ऐसे महा अधम निश्चर को भी भगवान ने अपना धाम दे दिया फिर भी यह मनुष्य ऐसा मन्दबुद्धि है कि ऐसे दयालु श्रीराम का स्मरण नहीं करता है। रावण को इतना होने पर भी ज्ञान नहीं हुआ- अहंकार नहीं मिटा, पुत्र मेघनाद को युद्ध करने भेज दिया। मेघनाद ने माया से, छल से और बल से भयंकर युद्ध किया। श्रीराम तथा लक्ष्मण को नागपाश मे बाँध दिया तब जामवन्त ने मेघनाद को मुष्टिक प्रहार से अचेत कर दिया और पैर पकड़ कर घुमाकर लंका में फैंक दिया। नारदजी ने गरुड़ को भेजा, उन्होंने नागों का भक्षण कर नागपाश को नष्ट कर दिया।

आये विनतातनय नाग सब तनुतें भागे। सूँघि सँजीवनि लखन उठे जनु सोबत जागे।।

राम लखन लखि स्वस्थ भये कपि प्रमुदित भारी। सोचें माया व्यर्थ राम पै भई हमारी।।

मेघनाद देवी निकुम्भला का तप करने लगा। विभीषण के बताने पर लक्ष्मण ने उसका अनुष्ठान भंग कर दिया। युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध में मेघनाद ने अपने चाचा विभीषण को देखा और कहने लगा- चाचा, तुम तो कुलांगार हो, घर का भेद दे दिया। तुम कृतघ्न हो नीच हो, जातिद्रोही हो, लोभी हो, पापी हो, दुष्ट हो। पहिले तुम्हें मारकर तब लक्ष्मण को मारूँगा।

इन्द्रजित् की बातें सुनकर विभीषण ने कहा- नीचों से बातें करना भी पाप है, फिर उनके साथ रहना उनके कार्यों में सहयोग देना यह तो महापाप ही है।

मेघनाद ने हनुमान एवं अंगद को त्रिशूल के वार से अचेत कर दिया। श्रीलक्ष्मण ने भयंकर बाणवर्षा की तो वह माया युद्ध होने लगा। अन्तर्ध्यान हो जाता, प्रकट हो जाता, कभी आकाश में कभी पृथ्वी पर कभी रथ पर कभी पैदल। लक्ष्मण जी अत्यन्त क्रोध में भर गये। श्रीराम का स्मरण का बाण छोड़ा जो उसकी छाती में लगा और भूमि पर गिरकर हा राम हा लक्ष्मण कहते प्राण छोड़ दिये।

कुम्भकर्ण सुनि निधन दशानन दुख अति पायो। तबहि तनय अति सूर युद्धकूँ तुरत पठायो।।
देवान्तक अतिकाय गये पुनि आये नहिँ फिरि। इन्द्रजीत पुनि छले राम सौमित्र गये गिरि।।
ह्वै चेतन लक्ष्मण चले, सुनत सबनि अति सुख भयो। यतिवर लक्ष्मण हाथतें, इन्द्रजीत मार्‌यो गयो।।

लक्ष्मण जी ने एक बार से उसका दायाँ हाथ काटकर सुलोचना के पास लंका भेज दिया। शीश काटकर रामादल में ले आये। सुलोचना पति के लिए पुष्पों के हार बना रही थी-

इतने में वायु का झोंका आया एक, इधर-उधरको उड़ गये थे जो फूल अनेक।
फड़क उठा दायाँ नयन, खुले शीश के बाल, घबड़ाहट में हाथ से छूट पड़ी वह माल।

सुलोचना सुन्दर पुष्पों की सुघड़ माला पिरो रही थी। अचानक वायु वेगगती हो गयी, फूल उड़ गये, हाथ से माला छूट गई, साड़ी उड़ने लगी। दाँयी आँख फड़कने लगी, माँग का सिन्दूर टपकने लगा। उसी समय पतिदेव की दायीं भुजा आकर सामने गिरी। उसे देख अपने अपशकुन चिन्हों को सोच सुलोचना घबड़ाई किन्तु उसने धीरज धर विचार किया कि युद्ध में माया का प्रयोग हो रहा है कहीं किसी ने माया तो नहीं की है- क्योंकि पतिदेव तो तप करने गये हैं। किन्तु हृदय की व्याकुलता शान्त नहीं हुई। उसने उस हाथ को उठाने के लिए अपने हाथ बढ़ाये किन्तु बढ़कर रूक गये, कहीं किसी परपुरुष का हाथ हुआ तो सतीत्व में दाग लग जायगा। इस लिए हाथ पीछे हटा लिये-

सम्भव है नारि परिक्षा को, पति ने यह खेल रचाया हो। या बनकर पति का हाथ कहीं, पर-पति का हाथ न आया हो।।

इसलिए शीघ्रता करने में, सत पन पर बट्टा आएगा। तप जाएगा, यश जाएगा, निज पतिव्रता भी जाएगा।

इसलिए परीक्षा लेने के विचार से सुलोचना उस हाथ से बोली-

यदि तू पति का हाथ है नहीं किसी की चाल। तो तुको मेरी शपथ, लिख दे सच्चा हाल।।

खड़िया से हाथ ने भूमि पर लिखा-

लिखा हाथ ने प्रियतमे, परबश छूटा साथ, हाथ न हे यह और का, है मेरा ही हाथ।।
पहुँची आत्मा सूक्ष्म में लिखकर इतनी बात, सुलोचना के शीश पर हुआ बज्र सा पात।।

सुलोचना अधीर हो विचार करने लगी- देवी के मंदिर गये थे रणभूमि कैसे पहुँच गये। यदि मुझे इसका आभास होता तो नाथ। मैं भी तुम्हारे साथ समराँगण में होती। आपका साथ देती और उस ब्रज आघात को अपने सीने पर सह लेती। हे नाथ। आप नहीं हारे हार तो मेरी हुई है- उर्मिला ने मुझे आज पराजित कर दिया। मेरा सतीत्व फीका कर दिया। हे प्राणधन, इसमें मेरा दोष नहीं आपकी संगत का दोष ही मेरी पराजय का कारण बन गया। सती स्त्री का हरण करनेवाले का आपने पक्ष लिया- यही मेरी कमजोरी बन गया और सती सीता का बल भी उसे मिल गया इन्हीं विचारों में खोयी सुलोचना के समक्ष लंकापति रावण तथा मन्दोदरी आ गई।

रावण बोला- पुत्री, क्यों शोक में डूब रही हो- धीरज रखो। तुम वीर पति की वीर पत्नी हो। ऐसा महावीर जिसने परमवीर गति प्राप्त की है। चिन्ता मत करो मैं अभी एक शीश के बदले हजारों शीश काटकर तुम्हारे चरण में पटक दूँगा। सुलोचना

का धैर्य छूट गया- लज्जा त्याग कर बोली- श्रीमहाराज, मुझे सहस्त्रों शिरों से क्या प्रयोजन- मैं केवल एक शीश अपने पति का ही चाहती हूँ जिसके साथ मैं सती हो सकूँ। **वे गये वीर-गति पाकर है, मैं नारि उचित गति पाऊँगी।**

पति का शव साथ चिता में ले, सानन्द सती हो जाऊँगी।।

रावण को सहन नहीं हुआ। क्रोध में भरकर चला गया। मन्दोदरी ने भी सुलोचना को बहुत समझाया। सुलोचना ने सती नारी का आदर्श पूछा तो मन्दोदरी ने न्यायोचित सती धर्म का निरूपण किया मन्दोदरी ने बताया- उत्तम सती विधवा होने पर पति के साथ ही सती हो जाती है। मध्यमों में वह श्रेष्ठ है जो अपना वैधव्य जीवन तपस्वियों की भाँति बिताती है। मध्यम सती समाज के भय से घर में ही रहती है किन्तु उनकी शारीरिक वासनायें अतृप्त होती हैं। अधम वे हैं जिन्होंने दिखाने के लिए चूड़ियाँ तोड़ दीं, श्रृङ्गार छोड़ दिया कुछ दिन के लिए। अधमतर वे हैं जो समाज का कलंक हैं जिन्हें सधवा और विधवापन में कोई भेद ही मालूम नहीं होता, जानवरों की तरह रोज पति बदलती रहती है।

मन्दोदरी धीरज बँधा कर चली गयी। सुलोचना पालकी में बैठकर रामादल में पहुँच गई। भालू-वानरों ने देखा पालकी आ रही है। कहने लगे रावण को सद्बुद्धि आ गई लगती है, माता जानकी को रामार्पण कर रहा है। किन्तु विभीषण, जामवन्त आदि को सन्देह था कि रावण ऐसे सत्कर्म कैसे कर सकता है। पालकी जब श्रीराम प्रभु के समीप आई तो श्रीहनुमान ने पूछा प्रभु। जब रावण शरणागत तो जायगा तो विभीषणजी का राज्याभिषेक कैसे होगा? प्रभु राम ने उदारतापूर्वक मुस्कुराते हुए कहा- हनुमान। हमने जो वचन दिया है वह मिथ्या नहीं हो सकता। विभीषणजी अयोध्याके राजा होंगे। हम चारों भाई बनवास करेंगे। प्रभु राम का उत्तर सुन सब गद्गद् हो गये। उस समय पालकी से मेघनाद की पत्नी सुलोचना उतरी। सब अवाक् रह गये। सीता माता का धोखा था। सुलोचना का तेज और सौन्दर्य वानर सेना से देखा नहीं गया- देवी जैसी आभा आज करुणा की साक्षात् मूर्ति बनकर राम प्रभु के समक्ष करबद्ध होकर निवेदन करना चाहती थी। उसको देख विभीषण जी व्याकुल हो गये-

भक्त विभीषण रो पड़े, देख सती का वेश। सुध-बुध सारी खो गई, हुआ अत्यधिक क्लेश।।

तभी सुलोचना ने कहा-

मैं आज विपत् की मारी हूँ, मैं दु:ख की आज सताई हूँ।
अपना सिर नीचा किये हुए, पति का सिर लेने आई हूँ।
यदि राम दया के सागर हैं तो रखेंगे टेक भिखारिन की।
आशा तो है स्वीकृत होगी विनती यह एक भिखारिन की।।

हे राम, जगत तुम्हें दीनबन्धु, कृपासिन्धु कहता है आज मैं महान् दु:ख के सागर में डूब रही हूँ, मैं भी उद्धार की याचना लेकर आपकी शरण में आई हूँ। मेरी अभिलाषा भी आप कृपा कर पूर्ण करें।

श्रीराम सुलोचना के ऐसे मृदु, शिष्ट एवं विनम्र शब्द सुनकर लजा गये भूमि दर्शन करने लगे। फिर संभलकर बोले-

देवी, निश्चित तुम पर विपत्ति का पहाड़ टूटा है। इससे मैं भी दुखी हूँ किन्तु तुम्हारी वेदना प्रत्यक्ष है, मैं आन्तरिक रूप से त्रसित हूँ। लेकिन सती तुम महान हो। असुरों की कुलवधू होने पर भी तुम देव कन्या के समान हो लंका के मरुस्थल में सुरसरी के समान हो। यह सब तुम्हारे सत का परिणाम है। बोलो क्या चाहती हो इस वनवासी से।

हे सत्यस्वरूप, शर से विंधे हुए कर ने मुझे बताया कि मेरे प्राणधन का मुखमुण्ड आपके पास है। उसे आप देदें तो मैं उसके साथ सती होना चाहती हूँ। श्रीराम के इशारे से मुण्ड लाने की आज्ञा दी तो सुग्रीव ने शंका प्रकट की प्रभु, कहीं कटा

कर भी लिख सकता है?

श्रीराम ने जब उत्तर नहीं दिया तो सुलोचना बोली हे तात सुग्रीव। मेरे पति का न कोई वध कर सकता था न किसी ने किया है। उन्होंने तो तपभूमि में याचक बनकर आये तपसी श्रीलक्ष्मण को अपने प्राणों का दान किया है और हे लक्ष्मण, तुम यह अभिमान भी मत करना कि मेघनाद को मैंने मारा है- वास्तव में यह युद्ध तुम्हारा और उसका नहीं था, यह संग्राम तो मेरा और अयोध्या में बैठी तपसिन उर्मिला का था। मैं अपने पति के कुसंगगामी होने से निर्बल हो गयी। उर्मिला को सती सीता का बल भी मिल गया, वह बलवती हो गयी। इसी से मेरी पराजय हो गई।

सब धन्य-धन्य कहने लगे। सुलोचना ने पति का मस्तक हाथ में ले लिया और उससे कहने लगी-

हे प्राणनाथ, के कटे शीश आगई बात पातिव्रत पर। ठठ्ठा न उड़े इस विधवा का वट्टा न कहीं आये सत पर।।
आदेश तुम्हारे पर आई रामाबल में यह नारी है। यदि लोक हसाई हुई यहाँ तो मेरी नहीं तुम्हारी है
क्यों हँसते नहीं प्राणजीवन क्यों मेरी हँसी कराते हो। ऐसी भी हँसी नहीं अच्छी, पचों में हँसी कराते हो।

और तब- **मेघनाद का सिर हँसा अट्टहास के साथ। काँप उठा पृथ्वी गगन दहल गया जलनाथ।।**

मेघनाद के कटे मस्तक ने जब अट्टहास किया तो वानर सेना सहम गयी। सुग्रीव को पसीने आ गये, श्रीराम मुस्कुराने लगे। विभीषण के नेत्रों से अश्रुओं का अविरल प्रवाह बहने लगा। चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। सुलोचना पति के मस्तक के साथ लंका के समुद्र तट पर सती हो गई। किन्तु रावण का अहं भस्म नहीं हुआ। सैना तैयार हो गई। रावण का रथ भी तैयार हो गया। युद्ध के नगाड़े बजने लगे। सैना का प्रस्थान होने पर विभिन्न अपशकुन होने लगे। योद्धाओं के हथियार हाथ से गिर गये, स्यार गधे बोलने लगे, उल्लू रोने लगे। किन्तु गर्वाश्रित रावण ने इसकी परवाह नहीं की।

चतुरांगिनी सेना लेकर समरांगन में आ गया। दोनों ओर से योद्धा जयनाद करते हुए भिड़ गये। इधर श्रीराम उधर जय लंकेश कह कर प्रहार करने लगे। विभीषण ने देखा प्रभु श्रीराम युद्ध स्थल पर खड़े हैं किन्तु...

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना, केहि बिधि जितव वीर बलवाना।

प्रभु, शत्रु प्रबल है, विशाल चतुरांगिनी सैना है और आप नंगे पांव, बिना बाहन के कैसे युद्ध कर पायेंगे, शत्रु को परास्त करना कठिन होगा नाथ।

सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होय सो स्पंदन आना।

रावण बड़े-बड़े वीरों को साथ लेकर युद्ध करने आया। भगवान श्रीराम ने द्वन्द्व युद्ध में मेघनाद एवं कुम्भकर्ण आदि के साथ बहुत से राक्षस-वीरों का विनाश कर डाला।

प्रभु बोले- विभीषण, जिस रथ पर सवार हो विजय श्री प्राप्त होती है वह रथ दूसरा होता है। इन काष्ठोपकरण से निर्मित, वेगवान अश्वों से गतिशील तथा सारथी द्वारा संचालित दृश्यमान रथ युद्ध विजय के लिए अपर्याप्त हैं। विजय के लिए धर्मरथ की आवश्यकता है। वह रथ कैसा होता है सुनो।

उस धर्मरथ के शौर्य और धैर्य दो पहिये हैं। उस रथ पर सत्य और शीलरूपी ध्वजा और पताकायें लगी हैं। उसमें बल, विवेक, दम और परोपकारी रूपी चार अश्व हैं जिन्हें क्षमा, दया, और समता रूपी डोर से रथ बाँध राख है। भगवद् भजन इस रथ का चतुर सारथी है। वैराग्य और सन्तोष इसमें ढाल और तलवार हैं। ज्ञानरूपी फरसा, बुद्धिरूपी प्रचण्ड शक्ति ता विज्ञान ज्ञानरूपी धनुष है पाप रहित और स्थिर तरकस है, शम, यम, नियम आदि बाण हैं। गुरु-ब्राह्मणों का आशिर्वाद रूपी अभेद्य कवच धारण कर जो ऐसे रथ पर सवार हो युद्ध करता उसकी पराजय का कोई कारण नहीं है। वह सदैव विजयी होता है।

एक ओर रावण ललकार रहा है दूसरी ओर अंगद और हनुमान। दोनों ओर से योद्धा युद्ध-रस में मगन है। देवतागण आकाशरूढ़ होकर युद्ध की विभीषिका का निरीक्षण कर रहे। काल के समान क्रोधित वानर शत्रु सेना का संहार कर रहे है। रावण अपनी सेना को भागता देख, क्रोधित हो बीसों भुजाओं में दस धनुष लेकर एक साथ प्रहार करने लगा। वानर बड़े-बड़े पेड़, पत्थरों से प्रहार करने लगे- किन्तु वे सब व्यर्थ चले जाते रावण अडिग हो वानरों का संहार करने लगा। वानर सेना विचलित हो, हनुमान, अंगद की दुहाई देने लगी। सेना को व्याकुल देख लक्ष्मण रावण के सामने आ गये। रावण को प्राप्य प्राप्त हो गया। भयंकर बाण वर्षा करने लगा, लक्ष्मण उन्हें निष्फल करने लगे। लक्ष्मण ने रावण का रथ तोड़ दिया सारथी मार दिया। सौ बाण रावण के वक्षस्थल पर मारे। रावण अचेत हो पृथ्वी पर गिर गया।

चेतना आने पर उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। लक्ष्मण उसके लगते ही अचेत हो गये। भूमि पर गिर गये। रावण ने उन्हे उठाकर ले जाने का प्रयास किया किन्तु जनक के धनुष की तरह हिला भी न सका। हनुमान ने दौड़कर प्रतिरोध किया तो उन्हें भी एक मुक्का मारा तो रावण धराशायी हो गया। **मुरछा गै बहोरि सो जागा, कपि बल बिपुल सराहन लागा।**

चेतना आने पर रावण ने हनुमान के बल की प्रशंसा की-

किन्तु हनुमानजी ने अपने पुरुषार्थ को धिक्कारा कि मेरे बल प्रयोग के बाद भी देवद्रोहजी रावण जीवित रह गया। लक्ष्मणजी को उठाकर हनुमान राम जी के पास लाये तो उनकी मूर्छा समाप्त हो गई। पुन: युद्धरत हो गये। पुन: रावण का रथ तोड़ दिया सारथी को मार दिया तथा रावण को बाण से प्रहार कर अचेत कर दिया। दूसरा सारथी उसे उठाकर लंका ले गया। वहाँ यज्ञ करने लगा तो विभीषण के निर्देश पर यज्ञ विध्वंस करने अंगद हनुमान आदि वीर उसके महल में घुस गये। रावण को यज्ञशाला में पीटने लगे। पद प्रहार करने लगे परन्तु वह विचलित नहीं हुआ तो रनवास की महिलाओं को पकड़कर खींचने लगे उनका चीत्कार सुन रावण यज्ञ छोड़ वानरों को मारने लगा। हनुमान ने यज्ञकुण्ड तोड़ दिया। सामग्री नष्ट कर दी, यज्ञ विध्वंश कर दिया। राक्षस भयातुर होकर भाग गये। रावण ने युद्ध का डंका बजवा दिया। जीने की आशा छोड़ रणक्षेत्र में आ गया। देवताओं ने प्रभु राम से प्रार्थना की कि माता जानकी बहुत दु:खी हैं नाथ। अब इसका संहार कीजिये। श्रीराम ने जटायें सँभालीं, सारंग धनुष लिया, तरकस बाँधकर युद्ध को उद्यत हो गये। चारों ओर तलवार चमक रही थी। हाथी चिंघाड़ रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे, रथों की गड़गड़ाहट जैसे बिजली कड़क रही हो। वानर सेना जय श्रीराम का गगनभेदी उद्घोष कर रही थी उधर जय लंकेश कहकर राक्षस कूद रहे थे।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। बाण वर्षा होने लगी, वीर वानर वृक्षों और पर्वतों की वर्षा करने लगे। राक्षस सेना चीत्कार करने लगी, रक्त की धारा बहने लगी। रक्तपान करने हेतु भूत, पिशाच, वेताल, वेतालनियाँ, प्रेतनियाँ, योगिनी, चामुण्डा खप्पर लिये अपना आहार खोज रही थी। गिद्ध, चील, कौए, कुत्ते लाशों को नोच-नोच कर क्षत-विक्षत कर रहे थे। गीदड़ों के समूह लाशों को खींच-खींच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे। बहुत से धड़ बिन मुण्ड के धुम रहे थे, कहीं केवल मुण्ड जय श्रीराम का उद्घोष कर रहे थे। युद्ध की ऐसी विभीषिका देख इन्द्र भी भयभीत हो गया। भगवान राम का सहयोग करने हेतु उसने अपना रथ भेजा-

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा, उपजा उर अति छोभ विशेषा।
सुरपति निज रथ तुरंत पठावा, हरष मातलि लै आवा।

तदनन्तर इन्द्र की प्रेरणा से उनका सारथि मातलि अति दिव्य रथ लेकर आया। श्रीराम उस पर आरूढ होकर रावण को ललकारते हुए बोले- अरे ओ राक्षसाधम। तुम कुत्ते की तरह हमारी अनुपस्थिति में हमारी प्राणप्रिया पत्नी को हर लाये, तुमने दुष्टता की हद कर दी, तुम्हारे जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय दूसरा और कौन होगा? जैसे काल को कोई टाल नहीं

सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हारा वध करूँगा।

इन्द्रजीत रन मरन दशानन सुनि घबरायो। वैदेही वध हेतु खग् लै निशिचर धायो।।
अनुचित कहिके सचिव निवार्‍यो सम्मति मानी। मारूँ या मरि जाऊँ लमपति मनमहँ ठानी।।
समर हेतु रथ चढ़ि चल्यो, राम विरथ लखि अमरपति। पठ्यो रथ मातलि सहित, चढ़े राम कपि मुदित अति।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, राक्षसराज रावण ने अपनी सेना को नष्ट होते देखा तो वह रुष्ट होकर विमान पर चढ़कर श्रीरमा के सम्मुख आया। उसने उन श्रीराम पर तीखे बाणों से आक्रमण किया जो द्युतिमान सुन्दर स्वर्गीय विमान पर बैठे हुए थे और जिसे इन्द्रसारथी मातलि हाँक रहे थे।

राम और रावण में भयंकर युद्ध होने लगा। राम बाणों से भयभीत हो रावण माया करने लगा। रामादल में अनेक राम और लक्ष्मण देख वानर सेना डरने लगी। राम ने शीघ्र उस माया का भेदन कर दिया और अपना रथ रावण के सामने लगा दिया। रावण श्रीराम को सन्मुख देख कहने लगा-

अरे तपस्वी बालक, मेरा नाम रावण है। सारा जगत जिसका यशगान करता है, देवता और लोकपाल जिसके कैदखाने में पड़े हैं। तुमने खर-दूषण और विराध को मार है, मेघनाद और कुम्भकरण को मारा है आज मैं उन सबका बदला लेकर ही रहूँगा। आज रावण से पाला पड़ा है, तपस्वी।

शुकदेव बोले- राजन्, अपने सामने रावण को देखकर श्रीरामजी क्रोध करके बोले- ओ, राक्षसों के मलरूप रावण, जब हम लोग पञ्चवटी में नहीं थे तब तू पापी कुत्ते की भाँति छिपकर मेरी प्राणप्रिया सीता को हर लाया था आज मैं तुझ निर्लज्ज को तेरे पाप का फल उसी प्रकार दूँगा जिस प्रकार अमोघवीर्य काल, पापी पुरुष के पाप का फल देता है।

समर निशाचर नाथ लख्यो प्रभु कोप दिखायो। नयन अरुन करि कहै नीच सम्मुख अब आयो।।
चीर भीरु निरलज्ज निशाचर पामर कामी। पीठ-पिछारी प्रिया हरी तू है खल कामी।।
अति सुकुमारी जानकी, दयिता दुःख दुसह दयो। पृथक करहुँ धड़तें उदय पाप खल तव भयो।।

श्रीराम ने हँसकर कहा- तुम्हारे अनुसार तुम्हारी सब प्रभुतायें सत्य हैं किन्तु स्वयं बखान करने से पुरुषार्थ मन्द होता है। यश का नाश होता है। क्षमा करना लंकेश, आप तो नीति के पंति हैं फिर भी मैं कुछ आपको बताता हूँ। संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। १) गुलाव के समान, २) आम के समान, ३) कटहल के समान।

१) गुलाब का पौधा केवल फूल देता है फल नहीं। इस प्रकार का मनुष्य केवल कहता है करता नहीं।

२) आम का वृक्ष फूल भी देता है और फल भी। ऐसा मनुष्य जो कहता है उसको करता भी है।

३) कटहल के वृक्ष में फूल नहीं आते केवल फल आता है। ऐसे मनुष्य कहते नहीं करते हैं।

यह सुन रावण अट्टहास करने लगा, बोला- आज मुझे ज्ञान सिखाते हो जब प्राणों पर वन आई है। सच कहता हूँ राम, यदि युद्ध से नहीं भागे तो आज जीवित नहीं छोडूँगा। रावण ने भयंकर बाण वर्षा की- श्रीराम ने क्षणमात्र में सब नष्ट कर दिये। रावण ने तीक्ष्ण शक्ति, चक्र, त्रिशुल आदि चलाये श्रीराम ने सब निष्फल कर दिये। रावण ने राम के सारथी मातली को नीचे गिरा दिया। श्रीराम ने उसे सम्भाला और क्रोध में भरकर धनुष पर टंकार दी। टंकार के प्रचण्ड शब्द से राक्षस वातग्रस्त हो गये। मन्दोदरी का हृदय काँपने लगा, दिशायें हिलने लगीं। पर्वत डगमगा गये। रावण को काल के दर्शन होने लगे। राम रावण के युद्ध की कोई उपमा संसार में नहीं। सागर के समान गम्भीर सागर ही है, जैसे आकाश के समान विस्तृत आकाश ही है, जैसे कामधुरा के समान चित्त को आकिर्षत करनेवाली कामधुरा ही है, जैसे वायु के समान व्यापक वायु ही

है, जैसे सुमेरु के समान सुमेरु ही है, जैसे त्याग वैराग्य के समान शान्ति का साधन त्याग वैराग्य ही है।

सुनत रामके वचन क्रोध करि रावण धायो। धनुषबानकूँ तानि समरमहँ सम्मुख आयो।।
उभय ओरतें बान चलैं सुर मुनि सुख पावहिँ। भयो समयअति कठिन उभय शर दिव्य चलावहिँ।।
ज्यों सागर, नभ, चन्द्र, रवि की उपमा अनुपम कहीं। त्यों रावन अरु रामकी, रन समता जगमहँ नहीं।।

राम ने रावण का रथ नष्ट कर दिया। रावण खिसिया कर दूसरे रथ पर सवार हो गया। राम ने पुन: रथ की पताका गिरा दी घोड़ों को मार दिया। रावण के एक साथ दसों सिर काट दिये, बीसों हाथ काट दिये किन्तु फिर नये उत्पन्न हो गये। राम सिर और भुजाओं को काटकर आकाश में उछालते गये और नये उत्पन्न होते गये। आकाश रावण के मुण्डों से भर गया जैसे चारों ओर राहू छा गये हों। वे मुख चिल्लाते-राम कहाँ हैं, लक्ष्मण कहाँ गये, सुग्रीव कहाँ गये और चीत्कार करते। भय का वातावरण पैदा कर दिया इन मुण्डों ने। चारों ओर रक्त की वर्षा सी होने लगी। रावण को धराशायी कर दिया। हनुमानजी ने रथ को नष्ट कर सारथी को मार दिया। विभीषण श्रीराम की ओर लपके। रावण और हनुमान फिर भिड़ गये। हनुमान ने रावण को पूँछ में लपेट लिया और आकाश में उड़ गये। रावण उनकी पूँछ में लटका रहा पेंडिल की तरह। दोनों पृथ्वी पर आकर रामादल में प्रकट हो गया। वानर डर गये। श्रीराम ने उसकी माया नष्ट कर दी तो देवता आकाश से पुष्पवृष्टि करने लगे। रावण उन देवताओं पर क्रोधित हो उन्हें मारने के लिए आकाश की ओर लपका-देवता भयभीत हो भागने लगे तब अंगद ने छलांग लगाकर रावण को भूमि पर खींच लिया। फिर रावण ने भयंकर बाण की वर्षा की और हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि को मूर्छित कर दिया। सेना का विध्वंस देख जाम्बवन्त ने रावण को ललकारा वक्षस्थल पर पद घात किया-

उर लात घात प्रचण्ड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहूँ कर मनहुँ कमलहिं बसे निसि मधुकरा।।
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालूपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्पंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो।।

लात का प्रचण्ड आघात लगते ही लंकापति रावण व्याकुल होकर रथ से भूमि पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथों से भालू पकड़ रखे, वे ऐसे प्रतीत होते थै जैसे संध्या होने पर भँवरे कमल दल में बन्द हो गये हों। भूमि पर अचेत पड़े रावण पुन: लात मार ऋक्षराज जामवंत भगवान श्रीराम के पास चले गये। सारथी रावण को लंका ले गया। संध्या हो गयी, युद्ध विराम हो गया।

लेकिन सीता के विरह को विराम नहीं मिला। उसका संताप तो यह सुनकर और भी बढ़ गया कि प्रभु राम के द्वारा अनेक बार रावण के सिर और हाथ काटने पर भी रावण नहीं मर रहा है। विधाता की क्या विलक्षणता है रावण की आयु बढ़ाकर मेरे विरहताप को तेज कर रहा है। हे राम, तुम तो परम प्रतापी वीर हो, क्यों नहीं रावण को शीघ्र समाप्त कर देते। सीता के सन्ताप को बढ़ते देख त्रिजटा बोली-

रावण हृदय बस जानकी, जानकी उर मम बास है। मेरे उदर भुअन अनेक, लागत वान सबकर नास है।।

पुत्री, भगवान ने इसलिए रावण के हृदय में तीर नहीं मारा कि उसने अपने हृदय में तुम्हें बिठा रखा है और तुम्हारे हृदय में श्रीरघुनाथ विराजमान हैं और रघुनाथ के अंग-अंग में अनेक ब्रह्माण्ड में (ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रतिवेद कहें।) रावण के हृदय को विदीर्ण करने से रावण का कष्ट नहीं होगा, उसमें विराजी आप और आपके हृदय में विराजे स्वयं श्रीराम और राम की रोमावलियों में अनेक ब्रह्माण्ड भी क्षतिग्रस्त हो जायेंगे। अत: प्रभु श्रीराम ऐसी चेष्टा कर रहे हैं कि रावण के मन में तुम्हारा अनुराग निकल जाय- रावण तुम्हें विसार दे भगवान उसे एक ही बाण से समाप्त कर देंगे।

प्रभु राम रावण को इतना त्रसित कर देंगे कि वह अपने पराभव से बचने की योजनाओं, क्रियाओं में इतना व्यस्त और व्यथित हो जायेगा कि तुम्हारा उसे स्मरण ही न रहें। उसके मन बुद्धि चित्त में केवल युद्ध ही रह जायगा, उसी समय राम प्रभु उसका संहार कर देंगे। समय सन्निकट है। चिन्ता न करो पुत्री। अब सो जाओ। त्रिजटा तो चली गयी किन्तु सीता की आँखों में नींद कहाँ? नींद उर्मिला की आँखों में भी नहीं है, परन्तु इतनी वेदना नहीं है। नींद मन्दोदरी को भी नहीं है?

बीती आधी रात तब, खोले उसने नैन। देखी चरणों के निकट, मन्दोदरी बेचैन।।
पति चरण दबाती हुई स्वामिनी, हिचकियाँ मार कर रोती थी।
मानो आँसू की बूँदों से स्वामी की मूर्छा खोती थी।।

रावण की मूर्छा हटने पर उसने पूछा- वह कहाँ है? कहाँ गया वह राम। रावण की भुजायें फड़कने लगी। युद्ध के लिए अधीर होने लगा। प्राण बचाकर लाये सारथी को कोसने लगे। सती मन्दोदरी ने समझाया। है प्राणेश्वर, हे प्राणनाथ। जिन्हें आप बालक समझ रहे हैं उन्होंने आपके परिकर के सुभट भटों को अपने धाम पहुँचा दिया है। वे ब्रह्म हैं, अवतारी पुरुष हैं अत: अब भी जानकी को वापिस कर सन्धि कर लीजिये और मुझे वैधव्य दु:ख से बचा लीजिये।

रावण बोला- महारानी, अब प्रश्न सीता का नहीं है, अब तो लंका के प्रभुत्व और लंकेश की आन-वान-शान का प्रश्न है। दिग्विजयी रावण अपनी हार कभी स्वीकार नहीं कर सकता है।

प्रात: होते ही रावण अपनी सेना सहित रणभूमि में आ गया। वानर वीरों को पहिले ही राक्षस सेना के आने का समाचार मिल गया था- वे बड़े-बड़े वृक्ष और पाषाण शिलाओं से उनका स्वागत करने लगे। भयंकर युद्ध होने लगा। राक्षस सेना भागने लगी। वानर वीरों ने रावण को घेर लिया। नखों से घायल कर उसे व्याकुल कर दिया।

देखि महा मर्कट प्रवल, रावण कीन्ह बिचार। अंतरहित होइ निमिष महुं कृत माया विस्तार।।

माया का प्रकोप प्रारम्भ कर दिया। पत्थर, पीव, सिंह, नागों की वर्षा होने लगी- अनेक रावण चारों ओर वानर सेना का संहार करने लगे। वानर सेना त्रसित हो राम की दुहायी देने लगी।

खैंचि कान तक बान राम रावनके मार्‌यो। काट्यो धड़तें शीश धम्म धरतीपै डार्‌यो।।
उदित भयो पुनि शीश तुरत पुनि काट्यो रघुपति। ज्यों ज्यों काटहिं उगहिं नये लखि प्रभुविस्मित अति।।
मोहित सम चेष्टा करहिं, मातलि बोल्यो बचन तब। च्यौं नरलीला करहु हरि, ब्रह्म अस्त्रकूँ लेहु अब।।

श्रीराम ने धनुष संभाला, रावण को देखा जो अन्तरंग और बहिरंग युद्ध की प्रबलता, हृदय में केवल विजय की कल्पना, प्रतिशोध की भावना से ओतप्रोत वानरों का संहार कर रहा था। राम ने श्रेष्ठ अवसर जान विभीषण के परामर्श के अनुसार एक साथ इक्कीस बाण छोड़े। एक ने हृदय का, बीस ने भुजाओं का, दसों ने मस्तकों का भेदन कर दिया। रावण का धड़ युद्ध भूमि में, सर और कर मन्दोदरी के महल में कोहराम मचाने लगे। धड़ जब वेग से भागा तो पृथ्वी हिलने लगी। राम ने धड़ को भी दो भाग कर उसे धराशायी कर दिया। रावण का अन्त हो गया। श्रीराम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। क्रोध करके उन्होंने रावण के मजबूत किले को तोड़ डाला और रावण के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। कहीं भुजा तो कहीं धड़ और कहीं सिर लोटता था, मानो कोई शराबी लोट रहा हो। खून से लथपथ उसका शरीर कभी फड़कता था और कहीं तड़पता था, उसे देखा नहीं जाता था। सुख के सागर भगवान ने खारे सागर को बांधकर और सभी को मुक्त कर दिया। देवता, मनुष्य और मुनि सभी प्रभु का यश गाते हैं कि उन्होंने दुष्ट रावण को मार दिया। जिस रावण से वरुण, कुबेर, इंद्र और यमराज डरते थे और जो बड़ा वीर और प्रतिज्ञा को पूरी करनेवाला था, वही रावण एक मांस का पिंड मात्र रह गया। उसके प्राणों को भगवान

के तीक्ष्ण बाण हर ले गए। जिस रावण के नीचे नवग्रह पड़े थे और जिसने काल को कुएं में डाल रखा था, उसी रावण को भगवान् श्रीराम ने क्षण-भर में गिद्ध का चारा बना दिया। उसके सिर को भगवान शंकरजी संभालकर ले गए, वह खून का गारा मात्र रह गया। श्रीराम ने विभीषण को राज्य दिया और देवताओं का उद्धार किया।

मातलि सम्मति मान ब्रह्मसर धनुपै धार्‌यो। करि अभिमन्त्रित तुरत निशाचरपति तब मार्‌यो।।
मरत निशाचर देव विप्र ऋषि मुनि सुख पायो। सुन रावन-वध बन्धु विभीषन ढिँग तब आयो।।
लमापतिको निधन सुनि, आई तहाँ निशाचरीं। सिर पटकहिँ छाती धुनहिँ, मृतक पतिहिँ लखि गिरि परीं।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार दशानन का तिरस्कार करते हुए श्रीराम ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर उसके ऊपर छोड़ा जिसके द्वारा उसके बज्र के समान हृदय को बेध दिया। उन बाण के लगते ही वह अपने दशों मुखों से रक्त उगलता हुआ पुष्पक विमान से उसी प्रकार गिरा जिस प्रकार पुण्य क्षीण होने पर पुण्यात्मा स्वर्ग से गिरते हैं। इस दृश्य को देखकर वहाँ के उपस्थित पुरुष हाहाकार करने लगे।

इसके बाद श्रीराम ने रावण के ऊपर ऐसे-ऐसे भीषण बाणों की वर्षा कि उसने हाय-हाय करते हुए भूतल पर लोट-लोट कर प्राणों का परित्याग कर दिया।

शुकदेव बोले- राजन्, लंका से बाहर निकलकर मन्दोदरी आदि सहस्त्रों रानियाँ रोती-रोती समर भूमि में आयीं। जो लक्ष्मण के बाणों से मारे गये ऐसे अपने बन्धु-बान्धवों के मृतक शरीरों का आलिङ्गन करती हुई दीन होकर उच्च स्वर से रुदन करने लगीं और अपने आप अपने ही शरीरों को कूटने लगीं।

बार बार पति देह अम महँ धरि धरि रोवैं। मृतक बदल लखि दुखित होहिँ धीरजकूँ खोवैं।।
दृढ़ आलिंगन करहिँ शीश धरनीमें मारैं। पटतें पोंछैं रक्त धूरि पति शवकी झारैं।।
निशाचरी रोवैं सतत, क्रन्दन-ध्वनि नभमहँ भरी। तबई रानिनितें घिरी, आई तहँ मन्दोदरी।।

शुकदेव बोले- राजन्, रावण के मरने पर मन्दोदरी विलाप कर रही है- हे कुलनन्दन, तुमने हम सबको और इस लंका को भी विधवा बना दिया। देह को गीधों का आहार बना दिया और अपने आपको नरक का अधिकारी बना दिया।

रावण के मरने के बाद उसकी पत्नी मन्दोदरी विलाप करती हुई रो-रोकर कहने लगी- हाय हाय। स्वामी। आज हम सब बेमौत मारी गईं। एक दिन वह था जब आप के भय से त्रिलोकी थर्राती थी और आज वह बेला भी आ गई है जब हमारे शत्रु लंका की दुर्दशा कर रहे हैं। अब यह लंका तुम्हारे न रहने पर किस की शरण में जायेगी?

मेरे प्राणनाथ, आप सब प्रकार से सम्पन्न थे। आपके पास किसी वस्तु की कमी न थी। परन्तु काम आपके सिर पर सवार था। आपने पतिव्रता सीता की महिमा न समझी। आपकी यही भूल आप की दुर्दशा का कारण बन गई। आप के अभाव में हम लोगों के साथ ही यह लंका अनाथ हो गई, विधवा बन गई।

मन्दोदरी बोली-

तुमको न मारा लक्ष्मण ने न रघुवर के वज्र सम बाहों ने। तुमको तो मारा पतिदेव जनकसुता की आहों ने।।
प्राणनाथकूँ निरखि मृतक मन्दोदरि रोई। ह्वैकें व्याकुल गिरि विरहमहँ तनु सुधि खोई।।
रामबवंडर वायुतें, पति-पादप जड़तें कट्यो। विधवा लंका ह्वै गई, मेरे सिरको सिंदूर मिट्यो।।

देवतागण हर्षित हो जय-जयकार करने लगे पुष्प वृष्टि होने लगी। विभीषण जी ने राम के कहने पर रावण का अन्तिम संस्कार किया। शुकदेव बोले- परीक्षित- भगवान श्रीराम की आज्ञा से विभीषण ने अपने स्वजन-सम्बन्धियों का शास्त्र के

विधान से अन्त्येष्टिकर्म किया। विभीषण ने रामद्रोही रावण का अन्त्येष्टि करने की अनिच्छा व्यक्त की। इस पर रामने उन्हें समझाते हुए कहा- विभीषण, मृत्यु के साथ ही वैर की भावना समाप्त हो जाती है। हमारा प्रयोजन पूरा हो गया अत: जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी बन्धु है इसलिये अब तुम इसका क्रिया कर्म करो।

रघुनन्दन अति प्रेमतें, प्रेत कर्म आयसु दई। समुझाई मन्दोदरी, पृथक देह पतितें भई।।

शुकदेव बोले- राजन्, इसके अनन्तर श्रीराम के कहने से विभीषण ने अपने कुटुम्बियों की पितृमेध विधान द्वारा शास्त्रीय विधि से अन्त्येष्टि क्रिया की।

राम-रजायसु पाइ विभीषण अनुमति दीन्हीं। सामग्री सब पितृकर्म एकत्रित कीन्हीं।।

चन्दन चिता बनाइ ताहिपै धर्‍यौ बन्धुतन। निरखत मृतक शरीर सबनिको दुखित भयो मन।।

धू धू करिके चिता जब, जरी निशाचर नाथकी। एक सङ्ग फूटी तबहिँ, चूड़ी रानिनि हाथकी।।

श्रीराम का यह स्वभाव है कि वे अपने शत्रु का भी अनभला नहीं करते। अत: उनका कथन है कि रावण का भी परलोक बन जाय, उसकी भी सद्गति हो। इसलिये यह आवश्यक है कि उसके लिये समस्त धार्मिक कृत्य सम्पन्न किये जायँ।

दाह करम करि दई तिलाञ्जलि निशिचर-नायक।

धूम-धामके सहित विभीषण क्रिया कराई। भस्म देहकी भई परम गति रावन पाई।।

सब सौतिनिकूँ सङ्ग ले, मन्दोदरी महलनि गई। सब वानर प्रमुदित भये, विजय रामदलकी भई।।

श्रीराम प्रभु के निर्देश पर लक्ष्मण ने लंका में जाकर विभीषण का रज्याभिषेक कराया।

लंकामहँ अभिषेक विभीषणको करवायो। जानि अवधिको अन्त यान पुष्पक मँगवायो।।

आइ विभीषण रामचरनमहँ शीश नवायो। पूँछे राघव सीय कहाँ तब पतो बतायो।।

जानि नगरतें दूर गये रघुनायक नेही। विरह व्यथातें व्यथित लखीं बैठी वैदेही।।

मलिन बसन कच जटा बनि, बिथुरै इतउत ग्लानमुख। पति दरशनतें भयो अति, सीय हृदयमहँ परम सुख।।

शुकदेव बोले- राजन्, तदनन्तर श्रीराम ने अपने ही विरह की व्याधि व्यथिता अत्यन्त दुर्बला श्रीसीताजी को अशोक वन के एक आश्रम में शिंशपा तरु के तले बैठे हुए देखा।

रावण के मारे जाने के बाद राम ने अशोक वाटिका में शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हुई विरह-व्याकुलता, दीना, हीना और क्षीणा पत्नी सीता को देखा। उन्हें देखकर श्रीराम का हृदय प्रेम और कृपा से भर आया। इधर भगवान का दर्शन पाकर सीता जी का हृदय प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उनका मुख-कमल खिल उठा। श्रीराम ने विभीषण को राक्षसों का स्वामित्व, लंकापुरी का राज्य और एक कल्प की आयु प्रदान की।

तुरंत चले कपि सुन प्रभु बचना, कीन्ही जाइ तिलक की रखना।

सादर सिंहासन बैठारी, तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।।

इस उपक्रम के बाद विभीषण अपने सभासद तथा वानरों के साथ लक्ष्मण को ले प्रभु श्रीराम की शरण में आ गये। श्रीराम प्रभु ने हनुमान को लंका जाकर सती सीता को विजय समाचार देने तथा उनका समाचार लेकर शीघ्र लौट आने की आज्ञा दी। माता के सामने जब हनुमान उपस्थित हुए तो उन्होंने रामदूत को तुरन्त पहचान, पूछा-

कहहु तात प्रभु कृपानिकेता, कुशल अनुज कपि सैन समेता।।

हनुमान जी ने रावण के बध और विभीषण के राज्याभिषेक का समाचार देकर प्रभु की कुशलता का बखान किया। माता

का आशीर्वाद ले हनुमान श्रीराम प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए। जानकी की कुशलता कह सुनाई उनकी मिलने की व्याकुलता बताई। प्रभु ने विभीषण को सीता को लाने का आदेश दिया। विभीषण की आज्ञा से माता जानकी का शोडषोपचार से अभिषेक कराया गया। सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण कराये गये। सुन्दर पालकी में बैठाकर राज्यकुल परम्परानुगत उन्हें प्रस्थान कराया। श्रीराम की आज्ञा से सीता जी को रामादल में पैदल लाया गया ताकि सब वानर भालू उनका दर्शन कर सकें। राघवेन्द्रजी ने कहा कि हे भाई लक्ष्मण चिता तैयार करो। यह सुनकर हनुमानजी बड़े दु:खी हुए। उन्होंने कहा मुझसे नहीं देखा जाता। सीताजी आसन लगाकर चिता पर बैठ गई। उनमें स्वर्ण की लालिमा आ गई। जैसे सूर्य एक पल के लिए वायुरहित बादलों में छिप जाता है, वैसे ही क्षण-भर बाद ही अग्नि देवता सीताजी को गोद में लिये हुए प्रकट हुए और बोले कि हे राम, सीता निष्कलंक है।

प्रभु ने अग्निदेवता को समर्पित सीता को पुन: वापिस लिया।

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम विभाग राजति रुचित अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।

देवतागण स्तुति करने लगे। पुष्पवृष्टि तथा आकाश में विभिन्न वाद्य बजने लगे। इसी अवसर पर महाराजा दशरथ भी अश्रुपुरित नेत्रों से उपस्थित हुए। पुत्रों ने अभिवादन किया, पिता ने आशीर्वाद दिया। श्रीराम ने विभीषण से विदा लेने की इच्छा प्रकट की तो विभीषण जी उदास हो गये। श्रीराम ने उन्हें भी विभिन्न उपदेश दिये। विभीषण ने पुष्पक विमान मणियों तथा वस्त्रों से भर कर प्रभु को भेंट किया। प्रभु की आज्ञा से वे समस्त वस्तुयें आकाश से गिरा दी गई। वानर भालुओं ने इच्छानुसार प्राप्त कर धारण कर लीं। भगवान समस्त वानर भालुओं को विदा करना चाहते हैं किन्तु उनका मन जाने को नहीं होता है। अंगद, महाराज सुग्रीव, जाम्बवन्त, हनुमान आदि श्रेष्ठ वानर कुछ कह तो नहीं सके किन्तु हाथ जोड़कर खड़े अश्रुपात करने लगे। प्रभु दयामय हैं, कृपासागर है, अत: आँसू न देख सके। सबको विमान में बैठने का निर्देश दे दिया।

पवन-तनय सुग्रीव विभीषण लछिमन आये। वैदेही पद-पदुम आइ सब शीश नवाये।।
लज्जित देवी भई अधिक आभार जनायो। राम-रजायसु पाइ विभीषण यान मँगायो।।
रथ चढ़ि वैदेही सहित, उपवनमहँ राघव गये। जग जननी जग जनककूँ, लखि वानर प्रभुदित भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकौशलकिशोर, रावण को मारकर, विभीषणजी को राक्षस राज्य, एक कल्प की वायु तथा लंकापुरी देकर लक्ष्मण तथा विभीषण के सहित सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर, वनवास की १४ वर्ष की अवधि को समाप्त करके अयोध्यापुरी को चले। मार्ग में लोकपाल उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करते जाते थें

पवन-तनय सुग्रीव लखन अंगद बैठाये। बैठे सियासहित स्वयं रघुपति हरषाये।।

इसके बाद राम ने पत्नी सीता, बन्धु लक्ष्मण, सखा सुग्रीव एवं सेवक हनुमान जी के साथ पुष्पक विमान पर सवार हो अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार चौदह वर्ष का व्रत पूरा हो जाने पर उन्होंने अपने नगर की यात्रा की। विमान चल दिया, विभिन्न स्थानों को इशारे से बताते हुए वानर आपस में चर्चा करते बड़े प्रसन्न थे। श्रीराम प्रभु ने भी जानकी को सेतुबन्ध रामेश्वर बताया जहाँ शिवजी की पूजा कर सेतु की स्थापना कर समुद्र पार गये थे। किष्किन्धा में सुग्रीव का आतिथ्य स्वीकार कर जब पुन: चलने को तैयार हुए तब श्रीहनुमान ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की- प्रभु। सामने पहाड़ पर मेरी माँ अंजनी रहती हैं

आपकी महती अनुकम्पा होगी यदि उन्हें भी दर्शन दे कृतार्थ कर दें। प्रभु को संकोच तो हुआ, क्योंकि अयोध्या पहुँचने के लिए केवल एक दिन शेष था फिर भी हनुमान के आग्रह को न टाल सके। श्रीराम सिया और अनुज सहित अंजनी से मिलने के लिए चल दिये। जब पहाड़ पर ऊपर पहुँच गये, कुटिया दिखने लगी तो श्रीराम ने हनुमान से आगे जाकर माँ को खबर करने को कहा। हनुमान शीघ्र माँ के समीप पहुँचे और बोले माँ माँ मेरे प्रभु आपको दर्शन देने आ रहे हैं।

कौन प्रभु? अञ्जनी ने पूछा। श्रीदशरथ नन्दन श्रीरघुनाथ, हनुमान ने कहा- अंजनी ने पुन: पूछा- कौन रघुनाथ? हनुमान ने कहा- माता अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम प्रभु। जिन्होने अभी लंका में विजय प्राप्त की, घनघोर युद्ध कर रावण को परास्त किया है। (श्रीराम भी कुटिया के दरवाजे तक आ पहुँचे थे) लंका का युद्ध, अंजनी बोली- जो चार मूर्खों का युद्ध हुआ था।

हनुमान यह सुन तिलमिला गये किन्तु जननी थी अत: कुछ कह न सके। श्रीराम ने भी कुटिया में प्रवेश कर माता को प्रणाम किया और पूछा- माता क्या कह रही थीं आप?

माता अंजनी ने अतिथि को बैठने को आसन दिये। कन्दमूल जो उपलब्ध थे प्रस्तुत किये। राम ने पुन: जिज्ञासा की तो अंजनी ने बताया कि मैं लंका में हुए मूर्खों के युद्ध के विषय में कह रही थी। मूर्खों का युद्ध...? राम ने आश्चर्य से मुस्कुराते हुए कहा- अञ्जनि ने गम्भीर होते हुए कहा- हा राम-

प्रथमों जानकी: मूर्खा: द्वितीयो रघुनन्दनम्। तृतीयो रावणो मूर्ख: चतुर्थे मम नन्दनम्॥

यह मूर्खों का युद्ध नहीं तो और क्या था। माता जानकी जगत जननी हैं। उद्भवक़-स्थिति और संहार करने वाली हैं।

उद्भव स्थिति संहारकारिणीं क्लेषहारिणीम्। सर्वश्रयष्करीं सीतां नतोऽह रामवल्लभाम्॥

इन्होंने यह विचार नहीं किया कि सृष्टि की रचना करते हुए इन्होंने सोने का मृग बनाया ही नहीं- फिर कैसे श्रीराम से सोने का मृग शिकार करने का आग्रह किया। अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर लक्ष्मण रेखा को पार कर रावण को अपहरण का अवसर दिया और जनसंहार के अवसर का सुत्रपात किया- क्या यह मूर्खता नहीं है?

राम मुस्कुराये और बोले माँ आपने ठीक कहा लेकिन मैंने तो ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे आपकी सूची में मेरा नाम आये।

क्षमा करना राम तुमने सबसे बड़ी भूल की है। अगर जरा सावधानी से काम लेते तो युद्ध टल जाता और वानरों का जो संहार हुआ नहीं होता। जानकी स्त्री है। स्त्री का स्वभाव चंचल होता है। अगर चंचल वृत्ति के कारण उनसे स्वर्ण मृगचर्म की याचना भी की थी तो आप भी परब्रह्म हैं, जगत नियंता है, आपने भी विचार नहीं किया कि स्वर्णमृग की रचना सृष्टि में हुई ही नहीं। नारी सुख में इतना आसक्त होना, नारी को प्रसन्न करने में उचित्त- अनुचित, सम्भव यथासम्भव का विचार न करना तुम्हारी भूल है। पुरुष ज्ञान वाला स्वरूप है, उसे धैर्य और विवेक से काम लेना चाहिए। अगर आप विवेक से काम लेते तो सीता का हरण नहीं होता, आपको विरह व्यथा नहीं झेलनी पड़ती।

रावण को इसलिए इस क्रम में मैंने रखा कि वह यह अच्छी तरह जानता था कि सीता जगत जननी माता लक्ष्मी का अवतार हैं। जनकपुर में धनुषयज्ञ के समय तथा खर, दूषण के बध के बाद उसे पूर्ण विश्वास हो गया था। यथा-

खर-दूषण मो सम बलवन्ता, मारि को सकहि विना भगवन्ता।

जान कर भी भगवत स्वरूप से शत्रुता का व्यवहार करना मूर्खता के अलावा और क्या हो सकता है? बुद्धि और विवेक का प्रयोग किया होता तो युद्ध की विभीषिका से बचा जा सकता था।

मेरा पुत्र और आपका अनन्य सेवक यह हनुमान सर्वश्रेष्ठ मूर्ख है। इसने मेरे दूध को लज्जित किया। सेवक का काम स्वामी की सेवा करना मात्र ही नहीं बल्कि स्वामी के हित में कार्य करना भी है। यदि हनुमान चाहता तो युद्ध ही नहीं होता। सीता अन्वेषण के समय अशोक वाटिका में उनसे भेंट हो गई थी तो त्रिकूट पर्वत को उठाकर ही आपकी सेवा में लाना चाहिए था। सीता सहज में आपको मिल जाती- युद्ध टल जाता। लेकिन हनुमान ने ऐसा न कर भीरु बनकर मेरे पय को कलंकित किया है। प्रमाण स्वरूप अञ्जना ने अपने स्तन से दुध की धार निकाली जो निकट के सात पर्वतों का छेदन करती पार हो गयी। सब अवाक् रह गये। प्रभु श्रीराम ने माता से आज्ञा माँगी क्योंकि अयोध्या शीघ्र पहुँचने की आतुरता थी। भारद्वाज आश्रम पर रुककर गंगा पार कर गये।

भरद्वाज मुनि लखे राम सौमित्र सीय संग। निरखि सबनिकूँ कुशल भये मुनिके पुलकित अंग।।
करि बहुत विधि आतिथ्य सबनिकी कुशल बताई। भरत तपस्या सुनी दया हरि जहाँ विरही बसहिँ।।
पवनतनय पठये तुरत, भरत जहाँ विरही बसहिँ। स्वाँस स्वाँस रघुपति जपहिँ, तप करिके तनकूँ कसहिँ।।

निषादराज से मिले। भरत को समाचार देने के लिए हनुमान को अयोध्या भेजा।

रहा एक दिन अबधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ-तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम वियोग।।
है यह सुन्दर सेतु नील नलने बनवायो। यह रामेश्वर धाम विभीषण यहि थल आयो।।
किष्किन्धा पम्पापुरी, पञ्चवटी गोदावरी। चित्रकूट सीते। लखो, यह तिरबैंनी सुख करी।।

राम के वियोग में अयोध्या के नर-नारी सब कृषकाय हो गये थे। आज बड़े चिंतित थे कि प्रभु राम क्यों नहीं आये हैं इस पर सुन्दर शकुन भी हो रहे थे सार्वधिक भरत चिंतित थे वे विचार करने लगे।

रहेउ एक दिन अबधि अधारा, समुझत मन दुख भयउ अपारा।
कारन कवन नाथ नहीं आयउ, जानि कुटिल किधों मोहि विसरायउ।
बीते अवधि रहहिं जो प्राना, अधम कवन जग मोहि समाना।

इस प्रकार संकल्प कर रहे थे। दु:ख के अथाह सागर में गोते लगा रहे थे। उसी समय विप्ररूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत। पवनपुत्र ब्राह्मण स्वरूप में भरतजी के समक्ष उपस्थित हुए।

सुनि रघुपतिको आगमन, भरत मुदित मनमहँ भये। समाधान सब भाँति करि, पवनतनय प्रभु ढिँग गये।।

प्रभु श्रीराम के आगमन की विभिन्न प्रकार से तैयारियाँ कीं तथा क्षण-क्षण प्रभु के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

आवत देखि लोग सब कृपा सिन्धु भगवान। नगर निकट प्रेरेउ उतरेऊ भूमि विमान।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब भरतजी ने सुना कि श्रीरामजी वन से लौटकर आ रहे हैं तो वे नगर निवासी, आमात्य तथा पुरोहित के सहित भगवान की पादुका को सिर पर रखकर उनकी अगवानी करने चले।

प्रभु का विमान आते देख भरत गुरु वशिष्ठ सहित आगमन के लिए पहुँचे। समस्त नागरिक स्त्री-पुरुष अपने राम प्रभु से मिलने के लिए विमान के चारों ओर एकत्र हो गये। श्रीराम के वन चले जाने पर चित्रकूट से लौट कर भरत जी नन्दिग्राम में निवास करते थे। वे गोमूत्र में पकाया हुआ वह खाते थे, भूमि पर शयन करते थे। उनकी जटाएँ बढ़ी हुई थीं। वे वल्कलवसन पहनते थे। उनकी यह दशा देखकर करुणा के सागर भगवान श्रीराम का हृदय भर आया, सन्तप्त हो उठा।

सब प्रकारके भोग भरत के सामने उपस्थित है, अनुकूलता भी है, धर्मविरुद्ध भी नहीं है, पिता की आज्ञा है, गुरु की

सम्मति है, राम भी अनुकूल है, फिर भी उनका मन भोगों के प्रति उदासीन हैं। राम जब वनवास से लौटे तब भरत नंदिग्राम में मिले। राम वन में तप करते थे, भरत नन्दिग्राम में।

उधर भरत ने जब यह सुना कि मेरे बड़े भाई श्रीराम जी आ रहे हैं तब वे पुरवासी, मन्त्री और पुरोहितों को साथ लेकर एवं भगवान की चरण-पादुका सिर पर रखकर, गाजे-बाजे के साथ नन्दिग्राम से उनकी अगवानी के लिये गये।

आगे-आगे वेदपाठ करते हुए ब्राह्मण चल रहे थे। अयोध्या की सारी चतुरंगिणी सेना भी भगवान श्रीराम की अगवानी के लिये आई।

शुकदेव बोले- परीक्षित, महाराजों के योग्य छोटी बड़ी सभी सामग्री लेकर भरतजी राम की ओर चले और प्रेम से गद्‌गद् हृदय होकर नीर-भरे नयनों से भगवान के पैरों में पड़ गये। भगवान की चरणपादुका उनके सम्मुख रखकर अञ्जलि बरँणे हुए बाष्पपूर्ण लोचनों से उनके सम्मुख खड़े हा गये। भगवान् ने भी उन्हें चिरकाल तक गाढ़ालिङ्गन करके अपने नेत्रों के जल से भिगो दिया।

रामपादुका शीश धरि, राम चरनमहँ रोवते। परे लकुट सम भरतजी, अँसुवनि भूमि भिगोवते।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार अपने भाइयों से सत्कृत हुए भगवान् उत्सवपूर्ण अयोध्यापुरी में प्रविष्ट हुए। राजभवन में पहुँचकर उन्होंने माता का तथा गुरु पत्नियों का गुरुओं तथा बराबरवालों का स्वागत सत्कार किया। छोटों के द्वारा स्वयं सम्मानित हुए। इसी प्रकार उनके ही समान सबसे व्यवहार करते हुए लक्ष्मण और सीताजी ने भी उनके साथ प्रवेश किया।

करि सबको सम्मान मातृ महलनि प्रभु आये। सबतें पहिले रत मातु चरननि सिर नाये।।
झेंप छुड़ाइ हँसाय सुमित्राके पद पकरे। कौशल्या रघुनाथ मिलन लखि रोये सबरे।।
चूमे चाटें प्रेमतें, धेनुवत्स अति लघुहिँ लखि। कौशल्या प्रमुदित भई, त्यों रघुनन्दनकूँ निरखि।।

श्रीराम ने गुरु को प्रणाम किया। भरत ने राम को प्रणाम किया तो उठ नहीं सके- प्रेम विह्वल हो गये। अश्रुपात होने लगा। प्रभु श्रीराम ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। चारों ओर श्रीराम और भरत की जय जयकार होने लगी, सब लोग श्रीराम से मिलने को आतुर थे। भगवान ने विभिन्न रूप धारण किये और सबकी कामना पूर्ण की। माताओं से श्रीराम-जानकी और लक्ष्मण मिले। सभी बन्धु-बान्धवों, मित्रों से मिले। इस अवसर पर आनन्द लेने श्री ब्रह्मा और महेष भी अन्य देवताओं के साथ पधारे।

लखे भरत कृशगात राम रघुनायक रोये। आलिङ्गन करि नयन नीरतें चीर भिगोये।।
भरत रामको मिलन निरखि उपमा सकुचावै। करुणा हू ह्वै द्रवित नयनतें नीर बहावै।।

भरत ने भगवान की पादुकाएँ सिर से उतार कर उनके सामने रख दी और दीन-हीन की भाँति हाथ जोड़कर खड़े हो गये। भगवान ने भरत की दशा देखी। करुणा का सागर उनके हृदय में उमड़ पड़ा। उन्होंने भरत को खींचकर अपनी छाती से चिपका लिया। उस समय राम इतने करुणार्द्र हो उठे कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली।

इसके बाद श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के साथ ब्राह्मणों और पूज्यजनों को प्रणाम किया। प्रजा ने सिर झुकाकर बहुत दिनों के बाद आये अपने स्वामी का वन्दन किया। समस्त कौशलवासी आज अपने को धन्य-धन्य समझ रहे थे। सब लोग यथायोग्य भगवान की सेवा में लिपट गये। भरतजी ने उनकी खड़ाऊँ ले ली। विभीषण ने चामर, सुग्रीव ने व्यंजन, हनुमान जी ने श्वेत छत्र, शत्रुघ्न जी ने धनुष-तूणीर, सीता ने तीर्थ-कमण्डलु, अंगद ने खडग् और जाम्बवान ने कवच ले

लिया। श्रीराम उन सबके साथ पुष्पक विमान् पर बैठकर अयोध्यापुरी पहुँचे। विमान से उतरकर राम, लक्ष्मण और सीता राज-भवन में पधारे। वहाँ उन लोगों ने माताओं, गुरुजनों और गुरुपत्नियों को श्रद्धा के साथ प्रणाम किया। सम और लघु लोगों के साथ यथायोग्य व्यवहार किया। सर्वत्र आनन्द-ही-आन्द दिखलाई पड़ता था।

राम वनवास से लौटकर माता कैकेयी से मिलने प्रथम गये और उनका क्षोभ दूर कर कहने लगे- पिता का अद्वितीय प्रेम, भरत की अलौकिक महिमा, हनुमानजी का पौरुष, वानरराज सुग्रीव की मित्रता, लक्ष्मण की सच्ची भक्ति, सीता का सत्, मेरा भुजबल और दुश्मनों का वैर-भाव इन सब भावों की प्रतीति मुझे हुई। माता, वह तेरे चरणों का ही प्रभाव है।

शुकदेव बोले- राजन्, भरत मिलाप के अनन्तर पुष्पक विमान में विराजमान तथा सुन्दरी स्त्रियों से घिरे हुए तथा बन्दियों द्वारा जिनकी विरुदावली गाई जा रही है ऐसे श्रीराम आकाश में उसी प्रकार सुशोभित हुए जिस प्रकार नक्षत्र मण्डल के मध्य में उदित हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं।

भरत पादुका लिये विभीषण चँवर डुलावें। श्वेतछत्र हनुमान व्यजन सुग्रीव हिलावें।।

शुकदेव बोले- राजन्, रघुकुल के गुरु भगवान वशिष्ठजी ने अन्य कुलवृद्धों के सहित भगवान की जटाओं को उतरवाकर उनका चारों समुद्रों के जल से उसी प्रकार अभिषेक किया जिस प्रकार देवगुरु बृहस्पति शतक्रतु इन्द्र का अभिषेक करते हैं।

राम सम्हारें राजकूँ, हम सब मिलि सेवा करहिँ। पावें प्राणी परमपद, बिनु प्रयास सब भव तरहिँ।।

वृक्षों की सार्थकता फल-फूलों से है, स्त्रियों की सार्थकता पुत्रों से है, धन की सार्थकता दान से है, विद्या की सार्थकता विनय से है, औषधि की सार्थकता रोग-निवृत्ति से है, इसी प्रकार ज्येष्ठ युवराज की सार्थकता राज्याभिषेक है। राज्य के उत्तराधिकारी तथा सुयोग्य होने पर भी जिस राजकुमार का राज्याभिषेक नहीं होता जो छत्र चँवर धारण करके राज्य-सिंहासन पर नहीं बैठता, वह उसी प्रकार है जैसे बड़ी आशा से फलवान वृक्ष की सेवा करते रहने पर भी फल के समय उसकी कलियाँ गिर जायँ, फूल की पत्तियाँ नष्ट हो जायँ।

गुरु वशिष्ठ ने सुन्दर दिव्य सिंहासन पर प्रभु श्रीराम तथा जानकी को मन्त्रोच्चारण के साथ आसीन कराया। ऋषि ब्रह्माणों ने मंगलाचरण किया। ब्राह्मण ने तिलक किये। माताओं ने हर्षित हो आरती उतारी। दुन्दुभी आकाश में बजी, पुष्पवृष्टि हुई। अयोध्या में नौपत बजी चारों ओर आनन्द की लहर दौड़ गयी। राम राजा हो गये। बोलो राजा रामचन्द्र की जय।

सीय सहित रघुनाथ राजसिंहासन राजें। शोभा अमित अपार काम रति सँग लखि लाजें।।

गुरु वसिष्ठ मन्त्री सचिव, प्रजा सहित प्रमुदित भये। धन आभूषन अश्व, गज, हय, पट, पुर विप्रनि दये।।

आनन्द और प्रमोद में दिन बीतते गये। प्रभु श्रीराम ने सखाओं से कहा-

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम। सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम।।

प्रभु के वचन सुनकर सब रोमांचित हो गये। श्रीराम प्रभु से विलग होने की बात सुन दुख के अथाह सागर में डूब गये। कल्पनातीत लगा उन्हें। वे तो घर परिवार सबको भूल गये थे। किंकर्त्तव्य विमूढ़ करबद्ध होकर खड़े रहे। श्रीराम भी उनके प्रेम को देखा गद्गद् हो गये थे। विभिन्न प्रकार से उन्हें सान्त्वना देकर नाना प्रकार के वस्त्र-आभूषण उपहार दिये। अंगद को बुलाया। उनके मस्तक पर अपना कृपा कर रखा। अंगद विह्वल हो गये। अश्रु प्रवाह तेज हो गया। प्रभु ने समझाया तो अंगद बोले-

हे आर्तबन्धु, मेरे पिताजी ने मरते समय मुझे आपकी शरण में रखा और आपको सौंपा। अब इन चरणकमलों को

छोड़कर मैं कहाँ जाऊँगा। आपके सिवाय मेरा कौन है?

प्रभु श्रीराम ने कहा- अंगद, तुम्हारा राज्य है उसकी सुव्यवस्था करना अपनी माताश्री एवं महाराज सुग्रीव की सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उसका तुम पालन करो। यह सुन अंगद का धैर्य टूट गया रो पड़े और बोले प्रभु। मैं आपके घर का छोटे से छोटा काम कर लूँगा- आपकी किसी प्रकार सेवा करना जीव का सर्वोपरि कर्त्तव्य है। अत: मुझे अपनी सेवा से विलग मत कीजिये। राम प्रभु ने मुस्कुराते हुए कहा- अंगद, संसार में जितने भी जीव हैं उन सब में भी मैं ही हूँ। मेरी ही सेवा समझ अपनी माँ, महाराज सुग्रीव एवं प्रजाजनों की सेवा करो। मैं इसी में प्रसन्न हो जाऊँगा।

निज उर माल बसन मनि बालि तनय पहिराइ। विदा कीन्हि भगवान तब बहुत प्रकार समझाइ।

श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण सबको विदा करने द्वार तक गये। राम मर्यादा पूर्वक राज्य का संचालन करने लगे। रामराज्य में सब सुखी और सम्पन्न थे। धर्म पथगामी थे अत: उन्हें किसी प्रकार का ताप व्याय नहीं रहा था - इसके बाद गुरु वसिष्ठ जी ने भरत के आग्रह करने पर, भगवान श्रीराम को राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। सभी प्रजा अपने-अपने धर्म में निरत थी। श्रीराम पिता की भाँति प्रजा का पालन करते थे। प्रजा भी उन्हें पिता की दृष्टि से देखती थी। परीक्षित्, जब समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान श्रीराम राजा हुए तब था तो त्रेता युग, परन्तु ज्ञात होता था मानो सत्ययुग ही चल रहा है।

जबतें राजा राम भये सब सुख जग माहीं। आधि, व्याधि, भय, शोक, जरा, दुख, श्रमकछु नाहीं।।

जब भगवान श्रीराम- भूमण्डल पर शासन कर रहे थे, उस समय किसी को मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दु:ख, शोक, भय और श्रान्ति नाम मात्र के लिये भी नहीं थे। यहाँ तक कि बिना चाहे लोगों की मृत्यु भी नहीं होती थी।

दैहिक देविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहि व्यापा।

श्रीराम का जीवन अत्यन्त सरल और मर्यादित था। प्रात: सरयू में स्नान कर, कथा श्रवण करना, दान करना, भाईयों से अतिशय प्रेम साथ बैठकर भोजन करते हैं, माताओं में अतिशय श्रद्धा-भक्ति, प्रजा में अतिशय अनुराग रखकर सबका यथा सम्मान पालन करना ही उनका धर्म था।

क्षमा दया विश्वास शील-तप-संयम शम दम। ब्रह्मचर्य नय विनय राममहँ राजऋषिनि सम।।

हरिहिँ चित्त रघुनाथको, नारी सुलभ विलासतें। सती-सिरोमनि जानकी, विनय हास परिहासतें।।

प्रभु श्रीराम भाईयों सहित उपवन में घूम रहे थे- उसी समय सनकादिक मुनि विचरण करने आये। श्रीराम प्रभु ने उन्हें आते देख दण्डवत प्रणाम कर उनके विराजने के लिए अपना उत्तरीय बिछा दिया। बाल ऋषि भगवान की यह अद्भुत लीला देखकर उन्हें निहारते ही रह गये। भूल गये कि वे मृत्युलोक में है। साक्षात् नारायण के दर्शन करके गद्गद् हो गये। एक ओर सनकादिक ऋषि दूसरी ओर भाईयों सहित श्रीराम, हनुमान हाथ पकड़कर बिछाये आसन पर बिठाया, पुन: सबने साष्टांग प्रणाम किये। ऋषियों ने भगवान लक्ष्मीनारायण की स्तुती की और अविचल भक्ति का वरदान मँगकर अपने लोक चले गये। भरत जी के मन में भी कुछ शंका भी किन्तु निवारण करने में सकुचा रहे थे। भक्त हनुमान ने उसे स्पष्ट कर किया।

नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं, प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं।

श्रीराम प्रभु के पूछने पर भरत लाल ने कहा- भगवन्। सन्तों की महिमा वेद और पुराणों में विभिन्न प्रकार से बताई गयी है। और आप भी सन्त प्रेमी हैं। मैं तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि सन्त पुरुषों के लक्षण क्या हैं?

सत असंत भेद विलगाई, प्रणतपाल मोहि कहहु बुझाई।

श्रीराम ने शीघ्र सूक्ष्म में सन्त और असंतों के भेद का सूत्र बता दिया-

संत असतन्हि कै असि करनी, जिमि कुठार चन्दन आचरनी।

काटइ परसु मलय सुनु भाई, निज गुन देह सुगध बसाई।

सन्त, चन्दन के समान अहित करनेवालों का भी हित चिन्तन करते हैं जैसे कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है फिर भी चन्दन उसे सुगन्धित कर देता है। सन्त स्वभाव के कारण ही चन्दन सर्वप्रिय है और मस्तक पर धारण किया जाता है किन्तु कुल्हाड़ी को अग्नि में तपाया जाता है। सन्त सांसारिक विषयों से दूर, शील स्वभाव तथा सद्गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इतना ही नहीं-

निन्दा अस्तुति उभय सन, ममता मद पद कंज। ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज।

समदृष्टि रखकर जनहित करना, जनप्रिय होकर रहना तथा एक मात्र भगवद् आधीन रहकर चिन्तन, मनन और भजन करना सन्त का लक्षण हैं। इसके विपरीत कार्य करनेवाले असन्तों की कोटि में आते हैं। ये अधिक संतापित एवं दूसरे के वैभव, सुख और सम्पत्ति को देख अकारण ईर्ष्या करते हैं। दूसरों की निन्दा करने में एवं सुनने में अपार आनन्द मिलता है। माता, पिता, गुरु, ब्राह्मण के निन्दक तथा पर सम्पत्ति को हरण करने में प्रवीण हेाते हैं। भरत, ऐसे अधम नर सतयुग एवं त्रेता में नहीं थे। द्वापर में अल्प संख्या में तथा कलियुग में अत्यधिक होंगे।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।

हे भरत, समस्त वेद शास्त्र एवं पुराणों का यह निर्णय है कि दूसरों की भलाई के समान अन्य धर्म नहीं तथा दूसरों को कष्ट पहुँचाने के समान कोई पाप नहीं है। अत: इस मनुष्य देह को सार्थक बनाने के लिए बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के सिद्धान्त को ही क्रियान्वित करना अभीष्ट है तथा ऐसा आचरण करने से जीव आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

भगवानात्मनाऽऽत्मान राम उत्तमकल्पकै:। सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखै:।

शुकदेवजी बोले- परीक्षित्। भगवान श्रीराम ने गुरुवशिष्ठ के आचार्यत्व में अपने ही स्वरूप का स्वयं यजन किया। इस प्रकार अनेक यज्ञ किये। भूमि, स्वर्ण आदि दान किया।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्डमेधसे। उत्तमश्लोक धुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये।।

लौकिक गति दरसाइ रामने यज्ञ रचाये। वेदविज्ञ आचार्य, विप्र, ऋषि, मुनि बुलवाये।।

उत्तम सामग्री सहित, सहस यज्ञ रघुपति करे। सरबसु दीन्हों दीनमहँ, धन रत्ननि द्विज घर भरे।।

शुकदेव बोले- राजन्, सर्वदेवमय तथा प्रकाश स्वरूप भगवान श्रीराम ने अपने आचार्य भगवान वसिष्ठ के अधीन होकर उत्तम कल्पोंवाले यज्ञों द्वारा स्वयं अपना ही यजन किया अर्थात् अपने आप अपनी ही यज्ञरूप से पूजा की।

हे राम, आप पवित्रकीर्ति पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप ज्ञान के अनन्त सागर हैं। अनन्तश्रेष्ठ मुनिगण आपके चरणाश्रित हैं फिर भी आप ब्राह्मणों की शक्ति को श्रेष्ठता प्रदान करना आपकी उदारता है। इसीलिए आपकी राज्य व्यवस्था तथा प्रजा पालन को देखकर इस त्रेता युग में भी सतयुग का सा भान होता है।

त्रेतायां वर्तमानायां काल: कृतसमऽभवत्। रामे राजनि धर्मज्ञ सर्वभूत सुखावहे।।

अरे राजन्। धर्मात्मा राम का राज्य सब को इतना सुखद था कि किसीको रोग, शोक, मानसिक या शारीरिक वेदना, बुढ़ापा तो क्या थकावट तक नहीं होती थी और मृत्यु भी इच्छा से होती थी।

एक पुरुषसे प्रेम करके पत्नी कल्याणको प्राप्त करती है। लेकिन भगवन रामके राज्य की सब-की-सब स्त्रियां पतिव्रता थी। श्रीराम भी एक-पत्नीव्रतधर थे, उन्होंने एक-पत्नीव्रतका पालन किया। उनके बापदादाओं आदिके सम्बन्धमें तो कोई नहीं कह सकता कि वे सब एक-पत्नीव्रतधारी थे। किन्तु श्रीरामने अपनी भावी पीढ़ीके राजाओंके लिए एक नवीन आदर्श स्थापित किया। वे राजर्षि थे। गृहस्थ-धर्ममें रहकर कैसा आचरण करना चाहिए, उन्होंने यह सिखाया।

जब कोई व्यवस्था नहीं रहती, तब भी लोग कहते हैं कि यहां रामराज्य चल रहा है। देश और परिवार के कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्था का मूल्यांकन करना चाहिए। रामराज्य अपनी शासन व्यवस्था के कारण नहीं सराहा गया। वहां हर बात के लिए कानून नहीं बनाए जाते थे, राम का आचरण ही कानून था। जनता के प्रति उनकी संवेदना ही शासन की नीति थी। वर्ण की व्यवस्था कर्म के आधार पर बनी थी। श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अन्य पुरुष भी वैसा ही करते हैं। उनके व्यवहार को प्रणाम मान कर शेष मनुष्य उसका अनुकरण करते हैं। एक सामान्य व्यक्ति के कहने पर भगवान राम ने सीता का निर्वासन कर दिया। यह उनके आचरण का प्रमाण है। रामराज्य में लोग सत्य के प्रति स्वयं निष्ठा रखते थे और अपने कर्त्तव्यों का स्वयं पालन करते थे। यह व्रत जनता अपनी स्वेच्छासे लेती थी।

राजा जनता की सूक्ष्म मनोवृत्ति का विराट स्वरूप होता है। इसीलिए कहा गया है, यथा राजा तथा प्रजा। राजा जनता की मनोवृत्ति के अनुरूप कार्य करता है। इसलिए जैसे ही राम सिंहासन पर बैठे, सब लोग हर्षित हुए और शोक समाप्त हो गया। राम के प्रताप के कारण सबकी विषमता जाती रही। सब में समता के भाव का संचार होने लगा। तीनों ताप स्वयं ही नष्ट हो गए।

रामराज्य में सब मनुष्य एक-दूसरे को प्रेम करते थे। सब अपने-अपने धर्म (कार्य) में निरत थे। रस का आधार कार्य था, अर्थात कर्त्तव्य पालन में सबको आनंद की अनुभूति होती थी। इसलिए रामराज्य की सामाजिक व्यवस्था में अल्प मृत्यु नहीं होती थी। सब सुंदर और निरोग थे, इसलिए आज की तरह अस्पतालों की आवश्यकता नहीं थी।

रामराज्य में शिक्षा की सामाजिक व्यवस्था बहुत ही अनुकरणीय थी। सब लोग गुणवान और ज्ञानी थे। कोई भी अज्ञानी नहीं था। कपट जैसी बुराइयों का कोई स्थान नहीं था। सब में कृतज्ञता का भाव था। जनता का जीवन कौशल परिमार्जित और शुद्ध था। शिक्षा व्यवस्था, मनुष्य को महामानव बनना सिखाती थी।

आज की सामाजिक व्यवस्था में धर्म का अर्थ है- झूठ, फरेब, अन्याय, अत्याचार और पाखंड। लोग समझते हैं कि अनाचार या दुराचार से भी धन का लाभ होना चाहिए, बाद में मंदिर में धूप-बत्ती दिखा दो, यही धर्म है। आज कर्त्तव्य नीरस और रस निराधार है। जनता में कर्त्तव्य बोध नहीं है। उनके हृदय में तामसी गुणों की प्रधानता है।

राजा जनता की सूक्ष्म मनोवृत्तियों का विराट स्वरूप होता है, इसलिए आज के मंत्री भ्रष्ट और दुराचारी हैं। मां, बच्चे को अपना दूध न पिलाकर बोतल का दूध पिलाती है। इसलिए वर्तमान में लोगों की बोतल के प्रति ममता बढ़ती जा रही है। जैसे अस्पतालों की संख्या बढ़ती है, रोगियों की संख्या उससे अधिक हो जाती है। आज जनता में सद्गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों का समावेश ज्यादा तेजी से हो रहा है।

रामराज्य में सामाजिक व्यवस्था इसलिए मजबूत थी कि वहां जनता में किसी प्रकार का भय नहीं था। भय के कारण व्यक्ति गलत काम करता है। लोकतंत्र और प्रजातंत्र का उचित रूप भी हमें रामराज्य में दृष्टिगोचर होता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान श्री राम एक नारी व्रत एवं मर्यादा पुरुषोत्तम थे, और श्रीकृष्ण पूर्णकाम? भगवान श्रीराम को जनकपुर आदि जहाँ-जहाँ श्रीराम गये थे, वहाँ-वहाँ की सुन्दरी कन्याएँ अपना पति के रूप में तथा बहुत से ऋषि-मुनि

एवं ऋषि कन्या आदि भी, वेदों की श्रुतियाँ भी भगवान श्रीराम को अपने स्वामी के रूप में चाहती थी। श्रीराम ने उन्हें यही वचन देकर कहा कि द्वार में जब कृष्णावतार ग्रहण करूँगा? तब ही तुम्हारी सबकी सभी कामनाएँ पूर्ण करूँगा। युग-युगान्तरों में भगवान श्रीहरि ने निज भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये ही यदुकूल में श्यामसुन्दर श्री कृष्ण ने अपने अंश स्वरूप बलराम जी के सहित अवतार धारण किया था।

भगवान श्रीराम ने एकपत्नी का व्रत धारण कर रक्खा था। उनके चरित्र अतिपावन और राजर्षियों के से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्म की शिक्षा देने के लिये स्वयं उस धर्म का आचरण करते थे। सती-शिरोमणि सीताजी अपने पति के हृदय का भाव जानकर उनकी सेवा में निरत रहती थीं। वे प्रेम से, सेवा से, शील से, अत्यन्त विनय से तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणों से अपने पति भगवान श्रीराम जी का चित्त चुरा लेती थीं।

राम ने सीता को रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिए संपाति, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, मैन्द, द्विविद, जाम्बवंत, नल, नील, तार, अंगद, शरभ, महाबली कम्पन (गवाक्ष), दधिमुख, गवय और गंधमादन आदि की सहायता से सेतु बनाया और लंका पर चढ़ाई कर दी। लंका में घोर युद्ध हुआ और पराक्रमी रावण का वध हो गया। तब पुष्पक विमान द्वारा राम सीता सहित पुन: अयोध्या आ गए। इस सारे घटनाक्रम में हनुमानजी ने राम का बहुत साथ दिया इसीलिए हनुमानजी राम के अनन्य सहायक और भक्त सिद्ध हुए। भगवान राम को हनुमान रिष्यमूक पर्वत के पास मिले थे।

गुरु वसिष्ठ से शिक्षा-दिक्षा लेना, विश्वामित्र के साथ वन में ऋषियों के यज्ञ की रक्षा करना और राक्षसों का वध, राम स्वयंवर, शिव का धुनष तोड़ना, वनवास, केवट से मिलन, लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा (व्रजमणि) की नाक काटना, खर और दूषण का वध, लक्ष्मण द्वारा लक्ष्मण रेखा खींचना, स्वण हिरण-मरीच का वध, सीता हरण, जटायु से मिलन। कबन्ध का वध, शबरी से मिलन, हनुमानजी से मिलन, सुग्रीव से मिलन, दुन्दुभि और बाली का वध, संपाति द्वारा सीता का पता बताना, अशोक वाटिका में हनुमान द्वारा सीता को राम की अंगूठी देना, हनुमान द्वारा लंका दहन, सेतु का निर्माण, लंका में रावण से युद्ध, लक्ष्मण का मूर्छित होना, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना और रावण का वध, पुष्पक विमान से अयोध्या आगमन ये सब महत्वपूर्ण घटनाएं है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान श्रीराम ने अपने गुरु वसिष्ठ जी को आचार्य बना कर बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया। यज्ञ में उन्होंने होता, ब्रह्मा, अध्वर्यु और आचार्य को अपना सब कुछ दान कर दिया। इस प्रकार सारे भू-मण्डल का दान करके उन्होंने अपने शरीर पर धारण किये गये वस्त्र और आभूषण ही अपने पास रक्खा। इसी प्रकार महारानी सीता जी के पास भी केवल मांगलिक वस्त्र तथा आभूषण मात्र बचे रहे।

दान, धर्म का अंग है। दान और दक्षिणा दोनों में प्रधान कारण श्रद्धा है। श्रद्धाहीन होकर कोई भी काम क्यों न करो, वह निष्फल ही होगा। श्रद्धा प्रेम के बिना चाहे कोई कितनी ही वस्तु दे दे, अमृत तक पिला दे, सब व्यर्थ है, सब निष्फल है। किन्तु मानपूर्वक चाहे पान ही क्यों न दिया, श्रद्धा के साथ जो भी दिया जाय, राम उसे बहुत मान लेते हैं। राम बड़े उदार है। जिस पर प्रसन्न हो जायँ उसे स्वर्ग, अपवर्ग यहाँ तक कि अपने आपको भी वे दे देते हैं। राम दानियों में श्रेष्ठ हैं। वे जो भी देते हैं प्रेम सहित देते हैं। उनके यहाँ दुराव नहीं, छल नहीं, कपट नहीं।

भूमि दान सब करी कोष धन धान लुटाये। चारिहुँ दिशि दै दई दान करि परम सिहाये।।
विप्र वासनाहीन परा विद्या जे जानें। दान पात्रतें श्रेष्ठ राम यह मनमहँ मानें।।
त्याग प्रेम, अरु दान लखि, गदगद ह्वैके विप्रगन। राजपाट लौटाइके, प्रेम सहित बोले बचन।।

भगवान की ब्रह्मण्यता से सन्तुष्ट विप्रगण कह रहे हैं- हे प्रभो, आप ब्राह्मणों को ही देवता माननेवाले हैं, आप सबमें रमण करनेवाले हैं। आपकी बुद्धि अकुण्ठित है, आप पुण्यश्लोक शिरोमणि हैं। आपने अपने चरणकमलों को त्यागियों के लिये अर्पित कर रखा है।

भगवान राम की इस अनुपम उदारता को देखकर ब्राह्मणों का हृदय गद्गद् हो उठा। वे प्रेम से पिघल गये। उन लोगों ने भगवान श्रीराम को सारा भू-मण्डल वापस करते हुए कहा- प्रभो, हम इस पृथिवी को अपना प्रसाद बनाकर आपको प्रदान कर रहे हैं। हमारा धन तो तप है। ऐसी स्थिति में हम पृथ्वी का पालन कैसे कर सकते हैं? आपने हमें क्या नहीं दिया है? हमारे हृदय में प्रवेश करके आपने अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर दिया है।

हम नित तपमहँ निरत राजको काज न जानें। तुमहि विश्वपति सकल जगतको पालक मानें।।
पुण्यश्लोक शिरोमणे, हे विश्वम्भर जगतपति। देहिं दया करि दान यह, तव चरननिनहँ होहिं रति।।
रामचरन सुख दाई भज मन रामचरण सुखदाई।
जेहि चरणन ते निकरी सुर सरी शंकर जटासमाई।। जटा शकरी नाम पड़ौ हैं त्रिभुवन तारन आई।।
दण्डक बन प्रभु पावन कीन्हों ऋषियन त्रास मिटाई। सोई चरण गौतम ऋषि नारी परस परम पद पाई।।
जेहि चरणन की चरण पादुका भरत रह्यो मन लाई। सोई चरण केवट धोय लीन्हें तब हरि नाव चढ़ाई।।
कपि सुग्रीव बन्धु भय व्यकुल निज तन छत्र धराई। रिपुक अनुज विभीषण निशचर परसत लंका पाई।।
बन्धु पुरोहित सचिव प्रभुहिं श्रद्धायुत सेवै। राजधर्ममहँ निरत राम सबकूँ सुख देवैं।।
दुख सुख सबको सुनहिं सतत सन्तोष सिखावैं। सदाचार करि स्वयं सबनितें नित करवावैं।।
पिता करहिं जस सुतनिकी, तस चिन्ता रघुपति करहिं। वेष बदलिके निशामहँ, गुप्तरूप पुरमहँ फिरहिं।।

शुकदेव बोले- राजन्, श्रीराम ने यह जानने के लिये कि लोग मेरे सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं, किसी समय गुप्त रूप से वेष बदलकर घूमते हुए सीताजी के सम्बन्ध में अपनी भार्या से कहते हुए किसी के मुख से ऐसी शंकायुक्त बातें सुनीं।

एक बार लोक-वृत्तान्त ज्ञात करने की इच्छा से राम रात्रि में गुप्तरूप से भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने एक स्थान पर सुना कोई धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था- तुम असती हो, कुलटा हो और दूसरे के घर में जाकर निवास करनेवाली हो अत: तुम्हारी जैसी दुष्टा को मैं अपने घर में नहीं रख सकता। स्त्री-लोभी राम, पर-गृह में निवास करनेवाली सीता को भले ही रख लें किन्तु मैं तो तुम्हें कदापि फिर से नहीं रख सकता।

राम रावण का वध कर लमा से लौट आये थे। अयोध्या की राजगद्दी पर उनका अभिषेक भी हो चुका था। जनता की मनोभावना को जानने के लिये उनके गुप्तचर चारों ओर घूमा करते थे। एक दिन रात्रि के समय में एक धोबी अपनी स्त्री को पीटते हुए कह रहा था- तू दुष्टा है। दूसरे के घर में रहकर आई है इसलिये मैं तुझे नहीं रखूँगा। स्त्री के लोभी राजा राम भले ही सीता को रख लें, किन्तु मैं तुझे स्वीकार नहीं कर सकता।

जिनमहुँ योगी रमें ज्ञानतें ज्ञानी जानें। अन्तर्यामी राम भाव सबके पहिचानें।।
रजक एक दिन रातिमें, निज नारीके कच पकरि। रही रातिमें कहाँ तू, पुनि-पुनि पूछे क्रोध करि।।
दाँत पीसि यों कहे लाज कुलटा नहिं तोकूँ। पर घर कैसे रही राम तू समुझे मोकूँ।।
सीयरूपमहँ फँसे रामने वही लुगाई। रावण घर दस मास रही फिरतें अपनाई।।

बड़े करें सो सत्य सब, छाजै सबई रामकूँ। करूँ दूसरों ब्याह मैं, जा तू अपने गामकूँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, निन्दक अपनी स्त्री को लक्ष्य करके कह रहा है- अरी, पराये घर में रहनेवाली तुझ दुष्ट स्वभाव स्त्री को अब मैं अपने घर में नहीं रखूँगा। स्त्रीलोभी रामने सीता को स्वीकार कर लिया है तो करें। मैं राम नहीं हूँ। मैं तुझे अब कभी स्वीकार न करूँगा।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, यह संसार बड़ा ही बहिर्मुख है, हठी है और इसमें रहनेवाले लोग नाना प्रकार की अण्ट-सण्ट बातें बनाते रहते हैं, ऐसे मूर्ख लोगों से भयभीत हुए भर्ता श्रीभरताग्रज ने भगवती सीता का परित्याग कर दिया, तब वे अयोनिजा वैदेही महामुनि वाल्मीकि के आश्रम पर चली आयी।

अवध में एक नहीं अनेकों रावण पैदा हो गये। जिसके मुख पर देखो उसी के मुख पर यही बात कि राजा राम ने अन्याय किया। दूसरे के घर में रही हुई सीता को फिर रानी बना लिया। समुद्र पार के दशमुख वाले रावण को तो वे मार सकते थे, किन्तु एक मुखवाले घर में ही बहुत से रावण जब पैदा हो गये, तो इन्हें कैसे मारते। राम ने उन्हें न मारकर अपने मन को ही मारा। जो नहीं करने योग्य था वह किया। अपनी प्राणेश्वरी को सदा के लिये त्याग दिया। राजरानी कंटकाकीर्ण वन में- इन घर के रावण के ही कारण-जीवन भर भटकती रही और रामराजा सिंहासन पर बैठे-बैठे भीतर-ही-भीतर रोते रहे। इस संसार का सम्बन्ध ऐसा ही दुखकर है।

इस लोक-लाञ्छन को सुनकर भगवान श्रीराम ने सीता का परित्याग कर दिया था। उन्हें जंगल में निकाल दिया था। यद्यपि वे उस धोबी को दण्डित कर सकते थे, किन्तु ऐसा किया नहीं था। बाद में वही मथुरा में कंस का धोबी बना। भगवान दयालु हैं अत: उसका वध अपने हाथ से करके उसे मुक्त कर दिये अन्यथा उसे नरक की भयमर यातनाएँ भोगनी पड़तीं।

माता जानकी, तुम इस परम घृणित, महान् निन्दित, अत्यन्त कुत्सित, निन्दा प्रिय संसार में आयी क्यों? माँ, यह विकर्म निरत संसार तुम्हारे आने योग्य नहीं था। इतनी पवित्रता की परख ये पाखण्डी पुरुष कर ही क्या सकते हैं, इतनी दया के भार को ये अज्ञ संसारी जीव उठा ही कैसे सकते हैं, इतनी कृपा के वहन करने की शक्ति इन बहिर्मुख प्राणियों में आ ही कैसे सकती है? माँ, तुम इतनी करुणा, ऐसा वात्सल्य लेकर इस जगत् में न आतीं तो यह जड़ जगत् जड़ ही बना रहता, इसमें चैतन्यता का संचार होता ही नहीं। राम में रामत्व स्थापित करनेवाली आद्याशक्ति, हे विदेहनन्दिनी, आप ही हो, जगज्जननी, तुम्हारे बना सब शून्य हैं। संसार में दया के वशीभूत होकर तुम न आती तो आज सभी राक्षस बन जाते, पशुओं में और पुरुषों में कोई भी भेदभाव न होता, सभी पशुचर्या में प्रवृत्त हो जाते। गंगा जल से भी पवित्र, सुमेरु से भी अधिक स्वच्छ, आकाश से भी अधिक विस्तृत और समुद्र से भी अधिक गम्भीर तुम्हारे पातिव्रत धर्म के बिना दर्शन किये, यह संसार जड़ से भी जड़ बना रहता। माँ, सबमें शक्ति संचार करनेवाली जननी, हे जगद्धात्री, हे विश्वप्रसविनी, हे परम वात्सल्यमयी मैया, राम की भी कीर्ति जब तुम्हारे ही कारण है। किन शब्दों में तुम्हारी महती महिमा का बखान कर सकें जगदम्बे।

सुनि अपयश अति बिकल भये रघुवर मनमाहीं। सोचें-सेवा सरल सुखद यहि जगमहँ नाहीं।।
कठिन हृदय करि त्यागि सती सीताको करिहौं। मन ही मन निशि दिवस विरह ज्वालामहँ जरिहौं।।
दृढ़ निश्चय करि बात प्रभु, भरत शत्रु हनतें कही। तुरत सुनत विष सरिस बच, मूर्छा दोउनिकूँ भई।।
तव करुनाके पात्र अज्ञ जड़ जीव नहीं माँ। करुनावश ह्वै जगत हेतु अति विपति सही माँ।।
हाय, कहाँ अति मृदुल पद, कहँ कंकड़ युत पथ विकट। ह्वैके अति प्रिय रामकी, रहि न सकीं तनतें निकट।।

इसे सुनकर लोकापवाद से भयभीत राम ने जंगल में वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास ले जाकर सीता को छोड़ दिया।

उस समय सीता गर्भवती थीं।

तब निज तनकी शपथ दइ लछिमन समुझाये। प्रभु आयसु सिर धारि सीय सँग बनहिँ सिधाये।।
सुनि निर्वासन सहमि सिय, पति प्रति श्रद्धा प्रकट करि। शून्य सरिस संसर लखि, बोली नयननि नीर भरि।।
पति यश जगमहँ अमर होहि तुम सब सुख पाओ। देवर, मेरो उदर निरखि नृपके ढिँग जाओ।।
गर्भवती हूँ दोष फेरि मोकूँ मति दइयो। पति परमेश्वर चरन कमलमहँ वन्दन कहियो।।
लखन सुनत मूर्छित भये, गिरे भूमि पै ह्वै विकल। लखि प्रसंग अति ही करुण, भये दुखित खग मृग सकल।।
चरन धूरि सिर धारि लखन लौटे इत जबहीं। सुनि सब मुनि वाल्मीकि ले गये सियकूँ तबहीं।।
मुनि पत्निति सँग रखी सुता सम जनक दुलारी। सेवा मुनिकी करै सबनिकी भई पियारी।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस प्रकार भाँति-भाँति की व्यर्थ की बातें बनानेवाले बकवादी, हठी, अज्ञ पुरुषों से भयभीत हुए अपने पति द्वारा परित्यक्ता जनकनन्दिनी भगवान वाल्मीकि के आश्रम पर आकर रहने लगीं।

राजन्, गर्भवती सीता ने समय आने पर दो यमज (जुड़ैले पुत्र) पैदा किये। वे संसार में लव कुश इन नामों से विख्यात हुए। महामुनि वाल्मीकि ने उनके सभी जात कर्म आदि संस्कार किये।

समय आने पर उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनमें बड़े का नाम था कुश और छोटे का नाम था लव। वनवास के दौरान ही राम को सीता से दो पुत्र प्राप्त हुए- लव और कुश। लव और कुश की ५० वीं पीढ़ी में शल्य हुए जो महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े थे।

समय पाइ द्वै सुत जने, सुनि सब अति हर्षित भये। करन जान संस्कार मुनि, तुरत जानकी ढिँग गये।।

मुनि वाल्मीकि ने दोनों बालकों के जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किये।

रिपुसूदन तिहि समय लवण वध हित मधुवनमहँ। आत रहे विश्राम करन उतरे आश्रममहँ।।
तहाँ सुनये सुत जनम सीयके ढिँग तब आये। गुप्त रहे यह बात शत्रुहन मुनि समुझाये।।

शुकदेव बोले- राजन्, शत्रुघ्न ने भी मधु नामक राक्षस के पुत्र लवणासुर को मारकर मधुवन में मथुरा नामक पुरी को बसाया था।

अश्वमेध को अश्व पकरि लव कुश ने लीन्हों। नहिँ छोड्यो नहिँ डरे समर डटि के तिन कीन्हों।।
पुनि मुनि सँग मख गये राम की कथा सुनाई। जानि तनय निजि राम जनक तनया बुलवाई।।
सहमी सिकुड़ी लाजतैं, मुनि पाछे श्रुति सरित सिय। जनु करुणा सँग शान्तरस, चलहिँ रामपद धारि हिय।।

रामचंद्रजी के अश्वमेध यज्ञ का छोड़ा हुआ घोड़ा अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र, मगध, पौण्ड, उत्कल, गुर्जर, पाण्ड्य, द्रविड़, महाराष्ट्र, मत्स्य, सूरसेन, कुरु, जांगल आदि अनेकों देशों में भ्रमण करता ब्रह्मावर्त प्रदेश में आया। उसे लव-कुश ने पकड़ लिया।

राम सभामहँ शपथ प्रचेता सुत ने कीन्हीं। सुन नर ऋषि मुनि सबनि विशुद्धा सीता चीन्हीं।।
पाइ राम रुख सीय धरातैं बोली बानी। पतिपरायणा मोइ जननि। यदि तुमने जानी।।
तो आपने ई उदरमहँ, करहु लीन अपनाउ अब। सुनत भूमि फाटी तुरत, घँसन लगीं सिय दुखित सब।।

शुकदेव बोले- राजन्, पति से निर्वासिता सीता अपने दोनों पुत्रों को भगवान् वाल्मीकि जी को सौंपकर श्रीराम के युगल चरणों का ध्यान करती हुई पृथ्वी के विवर में समा गईं।

सीता राम के परित्याग से दु:खी थी अत: उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि को समर्पित कर दिया फिर वे राम के चरणों का ध्यान करती हुई, भू-तल (नैमिषारण्य) के विवर में प्रवेश कर गईं। इस घटना को सुनकर राम के शोक का पारावार न रहा। सीता के एक-एक गुणों का स्मरण कर वे भावविह्वल हो उठते थे।

वहीं उन्हें दो यमज पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई, जिनका नाम ऋषि ने लव एवं कुश रखा और संस्कारोपरान्त उन्हें अपनी रामायण कंठाग्र करा दी। श्रीराम ने जब अश्वमेध का आयोजन किया तो वे दोनों भाई भी बाल्मीकि के साथ वहां उपस्थित हुए और रामायण का गान किया, जिससे प्रभावित होकर एवं बाल्मीकि से सीता की पवित्रता तथा निर्दोषता के प्रसंग में सुनकर उन्होंने (श्रीराम ने) उन्हें अंगीकार करना स्वीकार किया। महर्षि बाल्मीकि ने वहीं स हागा। हे देवी। गोकुल में वसुदेव की रोहिणी नामक दूसरी पत्नी रहती है। देवकी के सातवें गर्भ को ले जाकर तुम इस प्रकार रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर देना, जिससे वह उसी के उदर से उत्पन्न हुए के समान जान पड़े। उसके विषय में संसार यही कहेगा कि कारागार में बंद होने के कारण कंस के भय से देवकी का सातवां गर्भ गिर गया। गर्भ से कर्षण किए जाने (खींचे जाने) के कारण संसार में उस वीर की प्रसिद्धि संकर्षण के नाम से होगी।

भगवान सर्वव्यापी हैं। उन्हें कहीं आना-जाना नहीं पड़ता इसीलिये वे वसुदेव जी के मन में अपनी समस्त कलाओं के साथ प्रकट हो गये। उस समय वसुदेव का तेज दुर्धर्ष प्रतीत होता था। जैसे एक दिये की लौ से दूसरे दिये की लौ जला दी जाती है, ऐसे ही वसुदेवजी ने अपने मन में स्थित तेज को देवकी के अन्त:करण में स्थापित कर दिया। देवकी के गर्भ में भगवान के आते ही सारा कारागार अलौकिक आभा-प्रभा से भर गया। उसे देखकर कंस को यह समझने में देर न लगी कि मेरा नाश करनेवाला हरि अवश्य ही देवकी के गर्भ में आ गया है। एक बार उसे इच्छा तो हुई कि देवकी को मार डालूँ।

जहां उन्होंने कहा यदि मन, कर्म एवं वचन से मैंने राम के अतिरिक्त और किसी पुरुष का चिन्तन न किया हो तो हे धरती मां मुझे तुम फटकर अपनी शरण दो। कहा जाता है कि पृथ्वी तुरंत फट गयी और देखते-देखते सीता इसी में समा गई जिसका वर्णन बाल्मीकि ने विलक्षण ढंग से किया है। सीता पृथ्वीपुत्री थीं और इसी में समा गयीं, परंतु उनका तप: पूत जीवनचरित नारी-समाज को आज भी प्रेरित-प्रभावित करता है। उनके (सीता के) संबंध में बाल्मीकि ने सर्वथा उचित ही कहा है।

कृत्स्नं रामायणं काव्य सीतायाश्चरितं महत्।

अस्तु सीता का चरित्र महान है, किंतु उन्हें भी लोकापवाद का शिकार होना पड़ा था।

रामके द्वारा सीता अकारण निर्वासित कर दिये जानेपर अपनी ओरसे कोई उपालम्भ नहीं देतीं। वे स्वयंको रामसे इस प्रकार अलग करके देख नहीं सकतीं कि शिकायत और क्षमादान कर सकें। उलटे रामके दु:खसे द्रवित होकर वे उनके लिये करुणामय होकर रह जाती हैं।

राजन्, सीताजी के विवर प्रदेश का समाचार सुनकर भगवान राम दुखित हुए। उन्होंने अपने शोक को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहा किन्तु ईश्वर होने पर भी वे रोकन में समर्थ न हुए। सीताजी में बहुत से गुण थे उनके सब गुणों का जब स्मरण हो जाता तब वे विकल हो जाते। यह स्त्री पुरुष का सम्बन्ध ऐसा ही सर्वत्र दुख देनेवाला ही है। जब इतने बड़े-बड़े ईश्वर भी इस चक्कर में पड़कर विकल हो जाते हैं तब अन्य गृहासक्त विषयी पुरुषों की तो कथा ही क्या है।

समय समुझि के काल वेष मुनि को धरि आयो। प्रभु आयसु सिर धारि ब्रह्म सन्देश सुनायो।।

अंशनियुत अवतार धरि, भार उतार्‌यो अवनिको। नियत काल जितनो कर्‌यो, भयो पूर्ण सो सबनिको।।

सीता के प्रस्थान करने के बाद त्रयोदश सहस्र वर्ष पर्यन्त राम ने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, अखण्डित

अग्निहोत्र करके इस धरामण्डल का परित्याग किया।

अब इच्छा यदि होइ नाथ, निज धाम पधारें। करि नरतनु संवरन नित्य लीला विस्तारें।।
कृपायतन सुनि काल कथन बोले मृदु बानी। तिरोभाव तिथि काल प्रथम हम सबने जानी।।
कही कालतें प्रभु- करहुँ, होवै जातें जगत हित। तबई आये द्वारपै, क्रोधी दुर्वासा कुपित।।
रामचन्द्रतैं मिलहुँ कहैं पुनि पुनि दुर्वासा। मुनि नहिँ माने लखन गये तजि जीन आशा।।
बुलवाये मुनि बिदा काल रघुवर ने कीन्हों। करि आदर सत्कार स्वाद युत भोजन दीन्हों।।
पूर्ण प्रतिज्ञा करन हित, रघुपति लछिमन तजि दये। राम विरह में तनु सहित, दुखित लखन सुरपुर गये।।

शुकदेव बोले- राजन्, समस्त नरनाट्य करने के अनन्तर स्मरण करनेवाले अपने भक्तों के हृदय में उन पाद पल्लवों को स्थापित करने जो अति कोमल होने पर भी दण्डकारण्य के काँटों से विद्ध है- श्रीराम अपने परम धाम को पधार गये।

लखन विरह अति दुसह राम तेहि सहि न सके जब। लव कुश कीन्हें नृपति चले वन धन जन तजि सब।।
भरत शत्रुघ्न संग चले पुर के नरनारी। खग, मृग, बानर, वृक्ष, भीर लागी सँग भारी।।
राम प्रेम के पाशमहँ, बँधे चले सब हरषिकें। अति प्रमुदित सुरपति भये, हरष जतावें बरषिकें।।

राम के साथ ही जिन्होंने उनका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया- वे सब-के-सब कोसलदेश के निवासी भी उसी लोक में गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योग-साधना के द्वारा जाते हैं।

अवध पुरीतें सकल चले सियपतिहिँ धारि उर। निखिल जीव निर्मुक्त भये सब शून्य भयो पुर।।
कीयो प्रभुपद प्रेम सफल तनु तिनने कीन्हों। जगजीवन को लाभ जथारथ तिनही लीन्हों।।
विधि विमान अगणित लिये, सरयू तट आये तुरत। बैठि पधारें परमपद, रघुनन्दन निज तनु सहित।।

शुकदेव बोले- राजन्, इसके अनन्तर भगवान ने तेरह हजार वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए निरन्तर अग्निहोत्र किया।

परीक्षित के पूछने पर शुकदेव बोले- भगवान श्रीराम के आदेश से उनके तीनों भाइयों ने दिग्विजय की। भगवान राम की पुरी सर्वदा सजी-धजी रहती थी। वहाँ के प्रासाद, पुरद्वार और सभा-मण्डप आदि सब-के-सब स्वच्छ, सुगन्धित एवं पताका तथा कलश आदि से सुसज्जित रहते थे। भगवान अपनी पुरी की देखभाल स्वयं करते थे। जब वे नगर-भ्रमण के लिये निकलते तो जनता उनका दर्शन कर धन्य-धन्य हो जाती थी और अनेक प्रकार के उपहारों से उनका स्वागत करती थी।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान राम को जिन्होंने छुआ था, जिन्होंने उनके दर्शन किये थे, जिन्होंने उनका सहवास अथवा अनुगमन किया था, वे समस्त कोशलपुरवासी उसी स्थान को गये जिस स्थान को बड़े-बड़े योगी जन जाते है।

सो पद पायो सहज अवधवासी जीवनि ने। राम कृपा तैं लोक उच्चतम पायो तिनि ने।।
पल्लो पकरें प्रेमतैं, आत्म समरपन जे करहिं। ते तप तीरथ जोग बिनु, भवसागर छिनमहँ तरहिँ।।

भगवान श्रीराम अपने राजमहल में प्रिया के साथ सानन्द निवास करते थे। परीक्षित्, सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरण-कमलों का ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान श्रीराम बहुत वर्षों तक धर्म की मर्यादा का पालन करते हुए समयानुसार भोगों का उपभोग करते रहे। उन्होंने प्रजाके लिए अपने अत्यन्त सुखमय जीवनको भी दु:खमय बना लिया।

वर्षा के अनन्तर नदी तट पर बहुत से वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। कँटीले वृक्ष, झाड़ियाँ, सरपत, कास, घास, तथा अन्य भी नाना प्रकार के झाड़ झंकार जम जाते हैं। किसी को कोई उत्सव करना होता है तो उतनी ही परिमित पृथ्वी को परिष्कृत करके उसे

एक-सी शुद्ध कर लेते हैं। वह पृथ्वी सर्वगम्य बन जाती है। वहाँ के झाड़-झंकार हट जाते हैं, किन्तु जब बाढ़ आती है तो बिना परिश्रम के ही सम्पूर्ण तट प्रान्त में अन्त तक विशुद्धता छा जाती है, इसी प्रकार जब कोई आचार्य अवतरित होते हैं तो अपने प्रभाव से अपने अनुयायियों को संसार-सागर से पार कर देते हैं। यदि भगवान अवतरित होते हैं तो अपने संसर्ग में रहने वाले कीट, पतंग, पशु, पक्षी सभी को मुक्त कर देते हैं। सभी के कर्मबन्धनों की बेड़ियों को काट देते हैं।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, भगवान राम सशरीर अपने परमधाम वैष्णव लोक में चले गये। अन्य जितने भी जीव थे, वे भी सरयू के पावन जल में प्रवेश करके अपने शरीरों का परित्याग करने लगे। सबको तनु त्याग करते देखकर भगवान ने ब्रह्माजी से कहा- देखो, मेरे पीछे जितने भी प्राणी आये हैं, सबकी सद्गति होना चाहिये। इन सरयू के गोप्रतार घाट (गुप्ता घाट) के जल का स्पर्श जिनके शरीरों से हो जाय वे अवश्य कर्म बन्धनों से छूट जायँ।

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले- प्रभो, आप ही समस्त प्राणियों की एकमात्र गति हैं। आप जिसे जो लोक देना चाहें दें। जितने ये कीट पतंग सर्प आदि तिर्यक योनि के जीव हैं, ये सब-के-सब सन्तानक लोक में जायँ। यह लोक ब्रह्मलोक के ही समान शुद्ध और सनातन है। ये जितने भालू बन्दर आदि देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे, अब तनु त्यागकर अपने-अपने अंशों में मिल जायँ। सुग्रीवजी सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए थे, अत: वे सूर्य मंडल में प्रवेश कर जायँ। और भी सब वानर अपने-अपने अंशी देवताओं में एकीभूत हो जायँ।

किशोरी जनक दुलारी जानकी एक दिन सखियों के साथ उद्यान में विहार कर रही थीं। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृक्ष की शाखा पर तोता-युगल बैठा हुआ है। दोनों देखने में अतीव मनोहर थे। वे राम और सीता के विवाह की चर्चा कर रहे थे। सीताजी ने उनकी बात को ध्यान से सुना। उन्हें लगा कि ये मेरे विवाह की चर्चा कर रहे हैं। फलत: उन्होंने सखियों के द्वारा उन्हें पकड़वा लिया। सीताजी ने आश्वस्त करके उनसे विवाह सम्बन्धी सारा प्रकरण सुन लिया। सीताजी के यह पूछने पर कि यह वृत्तान्त तुम लोगों ने कहाँ सुना? तो दम्पति ने कहा- वाल्मीकि जी ने राम की भावी कथा रामायण लिखी है। वे छात्रों को उसे पढ़ाते हैं। वहीं बार-बार सुनने से यह प्रसंग हम लोगों को कण्ठस्थ हो गया है। इस पर इस प्रसंग को बार-बार सुनने की लालसा से जानकी ने कहा- राम के साथ मेरा विवाह हो जाने पर मैं तुम लोगों को बन्धन से मुक्त कर दूँगी। तब तक तुम दोनों मेरे घर में रहो और स्वादिष्ट वस्तुओं को खाओ। शुकी गर्भिणी थी। सीता के वचन को सुनकर वह कांप उठी। उसने कहा- हम वन में रहनेवाले पक्षी हैं। हमें जो सुख जंगल में मिलता है, वह आपके घर में नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ। जंगल में बच्चा पैदाकर मैं पुन: आपके पास वापस आ जाऊँगी। शुकी की बात का समर्थन शुक ने भी किया। सीता ने शुक को तो छोड़ दिया, किन्तु बाल हठ के कारण शुकी को नहीं छोड़ा। पति के वियोग में जीवित रहना शुकी के लिये असह्य हो उठा। उसने कुपित होकर सीता को शाप देते हुए कहा- जैसे आज तुम मुझे मेरे पति से वियुक्त कर रही हो, वैसे ही जब तुम गर्भिणी रहोगी तब तुम्हारा भी पति से वियोग होगा।

इस प्रकार सीता को शाप देकर शुकी ने राम-राम कहते हुए अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। उसे लेने के लिये एक विमान आया जिस पर आरूढ होकर वह राम के धाम में चली गई। पत्नी के प्राण-वियोग को देखकर दु:ख से परम सन्तप्त शुक ने भी गंगा में गिरकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। प्राण छोड़ते हुए उसने भी सीता को शाप देते हुए कहा- मैं अगले जन्म में राम के जनसंकुल नगर में जन्म ग्रहण करूँगा। मेरे वचन के कारण ही उद्विग्न यह अपने पति के वियोग से अतिशय दु:खी होगी। वही शुक राम के समय में अयोध्या में धोबी बना।

श्रीराम कोई साधारण नायक तो हैं ही नहीं वे तो जगन्नियन्ता हैं। इस चराचर जगत् के एकमात्र सूत्रधार हैं। वे ही सृष्टि,

स्थिति और प्रलय के स्वामी हैं। श्रीसीताजी उनकी नित्य शक्ति हैं वे सदा उनके साथ रहती हैं। उनका कभी श्रीराम से वियोग होता ही नहीं। अयोध्यापुरी भी कभी रिक्त नहीं होती। जैसे राम नित्य हैं। वैसे ही उनका धाम नित्य है। त्रेतायुग की एक रामनवमी को ही राम का अवतार हुआ हो, सो बात नहीं। जब-जब चैत्र में रामनवमी आती है, तब-तब उनका अवतार होता है। उनका अवतार, विवाह, वनगमन, राज्यारोहण नित्य ही होता है। राम और धाम की भाँति उनकी लीला भी नित्य है। श्रीराम कभी बूढ़े नहीं होते, उनके न कभी दाढ़ी मूछें आती हैं और न उनके कभी झुर्रियाँ ही पड़ती हैं। वे सदा १६ वर्ष के युवक ही बने रहते हैं। उनके रूप में कभी परिवर्तन नहीं होता। अवस्थाओं का उनके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि उनका शरीर प्राकृतिक न होकर चिन्मय है। अत: नाम रूप तथा लीला की भाँति उनका रूप भी नित्य हैं। वह कभी ढलता नहीं नित्य नूतन दिखाई देता है। इसी प्रकार सीताजी भी नित्य किशोरी ही बनी रहती हैं। यह जुगल जोड़ी सदा अवधपुरी के कनक महल में कमनीय क्रीड़ा करती रहती हैं। सेविकायें नित्य सखी इनकी परिचर्या में संलग्न रहती हैं। वे नित्य सखी धन्य हैं जो प्रिया प्रियतम की सेवा में रहकर महल में टहल करके दिव्य सुख का अनुभव करती हैं।

लक्ष्मण के अंगद, चित्रकेतु, भरत के तक्ष, पुष्कल और शत्रुघ्नके सुबाहु, श्रुतसेन नामक दो-दो पुत्र हुए। भरत गन्धर्वोंको जीतकर उनका धन ले आये थे। शत्रुघ्न ने भी मधु तथा मधुके पुत्र लवणासुर को जीत लिया और मथुरापुरी बसायी।

सब सनि बोले सूतजी, मुनिवर, राम अखण्ड अज। नितकी आद्या शक्ति सिय, जाहिँ कबहुँ नहिँ तिनहिँ तज॥

शुकदेव बोले- राजन्, सुबाहु और श्रुतसेन ये दो पुत्र शत्रुघ्नजी के हुए। भरतजी ने दिग्विजय करते हुए करोड़ों गन्धर्वों का युद्ध में संहार किया और उन्हें परास्त करके तथा उनका धन छीनकर सब-का-सब लाकर उन्होंने महाराज राम को अर्पण किया।

लछिमनके सुत चन्द्रकेतु अङ्गद नृप होवें। तव हम ह्वै निश्चिन्त नींद फिर सुखकी सोवें॥

शुकदेव बोले- राजन्, अङ्गद और चित्रकेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए और तक्ष, पुष्कल ये दो श्रीभरत के सुत थे।

शत्रुघ्नजी के दोनों पुत्र माथुरमण्डल तथा शूरसेन देशों के राजा हो गये। भरत के दोनों पुत्र पञ्चनद और गन्धार देश के राजा हो गये।

भगवान राम ने भरत से कहा- कोई ऐसा समृद्धिशाली देश खोजो जहाँ की भूमि उर्वरा हो, जल की कमी न हो, जहाँ वर्णाश्रमी लोग रहते हों और जो यहाँ से दूर भी न हो।

यह सुनकर भरत बोले- समीप में ही कारुपथ और मल्ल गोरखपुर के आस-पास ये दो देश हैं। ये देश देखन में भी रमणीक हैं, इनमें वन भी बहुत हैं, हिमालय की तराई तक फैले हुए हैं। आजकल ये राज्य बिना राजा के पड़े हुए हैं, इन देशों में राजधानियाँ बनाकर लक्ष्मण के दोनों पुत्रों का वहाँ अभिषेक किया जाय। मेरी तो यही सम्मति है।

जब जानकीजी पाताल लोक को चली गयी तब रामको बड़ा शोक हुआ। उनसे वियोग सहन न हो सका। जानकीजीके पाताल-प्रवेशके पश्चात् श्रीराम ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके हजारों बरसों तक विद्यमान रहे। सम्पूर्ण त्रिलोकी में उनके यशका गान होता है और उनके सारे पाप दूर हो जाते है। जिस किसीने श्रीरामको स्पर्श कर दिया, कोई मख्खी-मच्छर भी उनके शरीर पर बैठ गया, अथवा कोई कीड़ा मकोड़ा उनके पीछे-पीछे उड़ा तो उसको भी वही गति प्राप्त हुई जो बड़े योगियों को होती हैं। जो कोई रामचरित्र सुनता है उसके जीवनमें सद्गुण आते हैं और उसका परमकल्याण होता है। भगवान श्रीराम की पुरी अयोध्या सदा सजी-सजायी रहती थी। वहाँके प्रसाद, पुरद्वार और सभामण्डप आदि सब-के-सब साफ-सुथरे, स्वर्णपताका एवं कलश आदिसे सुशोभित रहते थे। श्रीराम अपनी पुरीकी देखभाल स्वयं करते थे। परीक्षित, जानकीजी भगवान श्रीरामकी स्निग्ध प्रिया हैं, स्नेह-सन्निधान हैं, स्नेह-सिक्त और इष्टदेवी है। वे उनके साथ विहार करते

हैं। उनके द्वारा कभी भी धर्मकी मर्यादाको क्षति नहीं पहुँचती। राम कहते हैं- मैं लोगोंकी प्रसन्नताके लिए, आनन्दके लिए अपना स्नेह छोड़ सकता हूँ, अपनी दया छोड़ सकता हूँ, सुख छोड़ सकता हूँ, यहाँतक कि अपनी पत्नी जानकीको भी छोड़ सकता हूँ। ऐसा करने में मुझे जरा भी व्यथा नहीं होती।

कृष्ण कथा अनेक रूपों में प्रेम और मर्यादा की कथा है। राम की कथा केवल मर्यादा की कथा है, उनका नाम भी सरल है, उनका चरित्र भी सरल है और उनकी उपासना करनेवाले भी सरल होते हैं। रामायण का एक-एक अक्षर सारे पापों का नाश करनेवाला है। कृष्ण उपासना वैयक्तिक है और राम उपासना सार्वजनिक। राम का जीवन अनुकरणीय और शिक्षाप्रद है आदर्श है। श्रीकृष्ण का चरित्र अनुकरणीय नहीं है, वह श्रवणीय है, पठनीय है उससे अभिप्राय निकाला जाता है, कि जगत् में प्रेम ही सार है, प्रेम करो, प्रेम करो। राम का जीवन नियम प्रधान है, कृष्ण का जीवन प्रेम प्रधान है। नियम और प्रेम दोनों ही त्याग के बिना व्यर्थ हैं। अत: दोनों ही जीवन में त्याग ओत-प्रोत है। त्याग के बिना जीवन नहीं। वह तो बन्धन है, मोह है। कृष्ण की लीलायें प्रेम प्रधान होने से वैयक्तिक हैं। राम की लीलायें आदर्श मर्यादा पूर्ण होने से सार्वजनिक हैं, शिक्षाप्रद हैं, प्रेम के बिना तो वे हो ही नहीं सकती किन्तु उनमें संयत प्रेम है, नियमपूर्वक प्रेम है और श्रीकृष्ण तो इभराडिव भिन्न सेतु हैं। जैसे गजराज नदी के तटों को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण लीला में प्रेम के सम्मुख सबको तुच्छ माना है। इसीलिये यह मार्ग अत्यन्त कठिन हे। पग-पग पर पतन की सम्भावना है। रामचरित्र राज पथ है। आँख मूँदकर चले जाओ। गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे। रामने मानव धर्म को प्रकाशित करके अवतार धारण किया। भक्तों को मर्यादा का पाठ पढ़ाने को ही अपने चारु चरित्रों का सुन्दर सेतु बना दिया, जिससे सुगमतापूर्वक प्राणी भवसागर को पार कर सकें।

राम का जीवन त्यागमय जीवन है, राम सबका आदर करते हैं, इसलिये वे बड़े हैं। जो संग्रही है, अपनी ही प्रतिष्ठा चाहता है, अपनी ही बात रखना चाहता है, वह कृपण है। राम जो करते हैं, दूसरों के लिये करते हैं, मेरे कारण किसी को क्लेश न हो इसका वे सदा ध्यान रखते हैं। राम के दो रूप हैं। परब्रह्म रूप और पुरुषोत्तम रूप। परब्रह्म रूप तो मन वाणी से अगोचर है, उसके विषय में तो वेदों ने भी नेति-नेति कहा है उसका अनुभव तो योगिजन समाधि में करते हैं, वह विचार का विषय नहीं, उस विषय में तर्क वितर्क से काम चलने का नहीं वह तो अनुभवगम्य है।

रामने एक मनुष्य चरित का सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है, उसके विषय में मानवता के नाते हम विचार कर सकते हैं। राम अपने सब भाइयों में बड़े थे, अत: छोटे के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका आदर्श उन्होंने बाल्यकाल से ही उपस्थित किया। भरतजी जब खेल में हारने लगते, तब आप ढीले पड़ जाते, भरत को जिता देते और स्वयं प्रसन्न होते।

श्रीरामने सुग्रीवसे मित्रता की, समुद्रपर सेतु बाँधा। श्रीराम के कारण ही वशिष्ठ और विश्वामित्रमें मित्रता हुई, दशरथ और जनक आपसमें सम्बन्धी बनें, केवट और वशिष्ठका मिलन हुआ। जहाँ-जहाँ अलगाव था इस पार उस पारके दो किनारे हो गये थे, वहाँ-वहाँ श्रीराम ने उनको जोड़कर एक कर दिया। परिपूर्ण के समस्त कार्य परिपूर्ण ही होते हैं। राम रीति, नीति, प्रीति, तथा भीति सभी जानते हैं। राम परिपूर्ण हैं, आदर्श हैं। राम ने नियम का, त्याग का एक आदर्श स्थापित किया। राम ने ईश्वर होकर मानव रूप रखकर मानव जाति को मानवता का पाठ पढ़ाया है। मानवता का अत्युत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। मायातीत महेश होकर उन्होंने माया का आश्रय लेकर मानव लीलायें की। राम मानव धर्म के प्रतीक हैं, राम तायग की मूर्ति हैं, राम प्रेम की सजीव प्रतिमा है, राम लोक व्यवहार के उपदेष्टा हैं, राम मर्यादा के रक्षक हैं, राम सदाचार के शिक्षक हैं, राम का चरित्र इतना विशुद्ध है, कि उनमें त्रुटि शंका की सम्भावना नहीं। राम के सरल नाम का जप करें राम के

सुमधुर नामों का कीर्तन करें, राम के अनुपम रूप का ध्यान करें, राम की सुन्दर शिक्षाओं को धारण करें, राम की सुमधुर कथा को नियम पूर्वक श्रवण करें। राम के अनुपम आदर्श को आगे रखकर व्यवहार करें और राम की भक्ति में अपने को निमग्न कर दें। राम के सच्चे भक्तों का आश्रय लें।

राम-नाम अति मधुर सुखद सबकूँ सुखकारी। राम-धाम अति विमल पुण्यप्रद सब अघहारी॥
राम-रूप अति सुघर मनोहर सुख सरसावन। राम-प्रिया जग जननि जीव जग-जरनि जरावन॥
राम-अनुज आदरश अति, रामभक्त सुख सार हैं। राम-चरित पावन परम, होवें सुनि भव पार हैं॥
राम, हृदयमहँ बसो कामकूँ तुरत भगाओ। राम, मलिन मारीच बन्यो मन मारि गिराओ॥
राम, सिन्धु भव बहत सेतु करि पार लगाओ। राम, निहारें राह आइ तन तपन बुझाओ॥
राम, न साधन भजन मन, बने परे पाषान हम। राम, छुआओ चरन निज, हो जड़ चेतन करन तुम॥

रामचरित विश्व चरित है। वह व्यक्ति चरित नहीं समष्टि चरित है, वह अनित्य नहीं नित्य है। जो चरित हो रहा है वह सब राम चरित है। राम की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, दुख भी रामचरित है, सुख भी रामचरित है। राम का नाम, राम का धाम और राम का रूप नित्य है वैसे ही राम की लीला भी नित्य है, सुख दुख उसके दो पंख हैं। वास्तव में तो वह सुख दुख से परे अनिवर्चनीय आल्हाद को देनेवाली है।

राम के चरित में काम की गन्ध नहीं, विषयों की अभिलाषा नहीं, भोगों की आकांक्षा नहीं, स्वाद की इच्छा नहीं, दु:ख की चिन्ता नहीं, राम तो स्वच्छन्द हैं। उनके लिये घर और बन समान हैं। यह नहीं वन उन्हें घर से भी प्रिय है। राम के लिये राजसी भोग और कन्द मूल फल सभी समान हैं। यही नहीं राजसी भोगों की अपेक्षा वे वन्य कन्द मूल फलों का विशेष आदर करते हैं। राम भोग के भूखे नहीं, वे भाव के भूखे हैं। राम हठ से झुँझलाते नहीं। हठी पर आज्ञा उल्लंघन का आरोप नहीं करते, किन्तु वह हठ शुष्क न हो प्रेम का हठ हो, अनुराग का आग्रह हो, अपनेपर में सना हठ हो। राम हठ के आगे नव जाते हैं, नतमस्तक हो जाते हैं। आश्रित के प्रण को पूरा करते हैं। अपनी बात भूल जाते हैं, यही उनकी भक्तवत्सलता है।

राम के सर्व काम जगत के उद्धार के ही निमित्त हैं। राम का प्यार, दुलार, उनका क्रोध, स्पर्श, सत्संग, चिन्तन मनन सभी मुक्तिप्रद है। राम कथा सुरसरि के समान है। नहाने से पाप कटेंगे, पीने से प्यास बुझेगी, स्पर्श से सुख होगा, दर्शन से आह्लाद होगा। डूब जाने से मुक्ति मिलेगी। सारांश जिसका सुरसरि से सम्बन्ध हुआ उसका समस्त संसार बन्धन छूट गया। इसी प्रकार राम से जिसका काम से, क्रोध से, द्वेष से, लोभ से, प्रेम से, कैसे भी किसी प्रकार भी सम्बन्ध हो गया वह मुक्त बन गया।

संसार में राम का अवतार केवल राक्षसों को मारने के ही निमित्त नहीं हुआ। उनका अवतार तो लोकशिक्षण के लिये हुआ है। सबको सुख देनेके लिये हुआ है। जो अपने आत्मा में ही रमण करनेवाले हैं, उन साक्षात् षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान को सीतो लिये इतना दु:ख कैसे हो सकता है। श्रीरामचरित सुखद है, किन्तु सीय चरित तो करुणरस का जनक है। इसीलिये करुणरस के अमर कवि भगवान वाल्मीकि ने रामचरित को प्राधान्य न देकर सीताजी के महत् चरित्र को ही प्रधानता दी है।

जैसे कोई अपने को छिपाने के लिये अपनी कृति को किसी दूसरे ही नाम से प्रसिद्ध कर देते हैं, ऐसे ही अपने पावन चारु चरित्र को माँ मैथिली ने रामायण के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। सीता ही रामायण की प्राण हैं। उन्हीं के महान् चरित के कारण रामायण का महत्व है। सीता के बिना राम मर्यादा पालन भले ही करते रहें, किन्तु उन्हें कोई पूज नहीं सकता। काई कल्पना ही नहीं कर सकता। जब संसार अमर्यादित हो गया तो राम मर्यादा को लेकर आये।

रामायण में रामचरित की प्रधानता नहीं है, सीताजी का ही चारु चरित है उसी की मुख्यता है।

सीता, इन दो शब्दों में कितने उच्च भाव हैं, कितनी कृपा निहित है, कितनी अनुकम्पा और सरसता भरी है, वह व्यक्त करने की वस्तु नहीं। इतने निन्दा प्रिय बहिर्मुख संसार के सम्मुख ऐसी निधि प्रकट हो गयी और लोगों ने उसका महत्व नहीं समझा, उन्हें नाना क्लेश दिये। इससे अत्यन्त दुखित होकर किसी भक्त कवि ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा है- हे माँ। मैथिली, आप अखिल जगन्नियन्ता अखिलेश अच्युत की आद्याशक्ति हो आप इस सारहीन संसार में हमारे रक्षण और शिक्षण के ही निमित्त प्रकट हुईं। किन्तु माँ, तुमने बीन भी बजाया तो भैंस के सामने। अरे, यह निन्दा प्रिय संसार क्या आपकी महती महिमा को सुन सकता हैं, माँ। यह संसार तो बधिर है बधिर। इस बहिरे संसार को अपना महत्व जताने को आपने व्यर्थ प्रयास किया। इसीलिये तो आपको इतना कष्ट सहना पड़ा। ऊसर खेत में बीज बोने का यही तो परिणाम होता है।

बालकपनमहँ लाड़ प्यारतें पलीं कुमारीं। आई पुनि ससुराल राम सँग वनहिँ सिधारीं।।
निज पथ श्रम सहि करी कृपा जड़ सठ अपनाये। युगल रूप दरसाय भक्त कृतकृत्य बनाये।।
अन्धो बहिरो जग भयो, अभिनिवेस करि असतमहँ। कौन करि सकै कृपा माँ, तुम बिनु ऐसी जगतमहँ।।
भक्तनि हित अवतार धरि, नरलीला रघुवर करहिँ। बँधहिँ सेतु प्रभु चरितको, जाते सब भवनिधि तरहिँ।।

श्रीराम त्रेता के युगावतार हैं। जब-जब त्रेतायुग आयेगा तब-तब श्रीराम अवतरित होकर अवनि पर वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को स्थापित करेंगे। त्रेतायुग में वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा पवित्रता की आवश्यकता होती हैं। इसीलिये मर्यादा पुरुषोत्तम राम अवतार लेकर दृढ़ता के साथ मर्यादा का पालन करते हैं। मर्यादा भंग न हो, इसके लिये न करने योग्य कार्यों को भी करते हैं।

सीताजी के त्याग में केवल मर्यादा का ही प्रधान कारण है। नहीं तो वे क्या जानते नहीं थे सती सीता परम पवित्र हैं, किन्तु मेरे आचरण से अन्य स्त्रियों के सम्मुख बुरा आदर्श उपस्थित न हो, इसी डर से शुद्ध होने पर भी सीता को त्याग दिया और उसके लिये कठोर बन गये।

राम धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं। राम का जीवन विशुद्ध कर्म की मर्यादा का आदर्श है। सत्यव्रत होने पर भी राम सदा प्रसन्न और अतिशय ऋजु, सरल हैं। राम एकवचनी, एकपत्नीव्रत और शत्रु के लिए उनका एक ही बाण पर्याप्त है। राम काल के भी काल हैं। उन्होंने वशिष्ठजी से कहा- इन वानरों ने मुझे लंका पर विजय दिलायी।

शिवजी ने पार्वती से कहा-

सुनहुं उमा ते लोग अभागी, हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।
उमा कहूँ मैं अनुभव अपना, सत हरि भजन जगत सब सपना।।

अवतार लेकर भगवान सबके लिए सुलभ हो गये। भगवान से मिलना सभी को आसान हो गया। राम इतने करुणामय कि राजमहल में भी न रहे, वन में गये, गाँव-गाँव, रास्ते-रास्ते पैदल जाकर लोगों से मिले। ऋषि-मुनियों के आश्रम जाकर उन्हें सुख दिया, राक्षसों को मारकर इनका कष्ट भी दूर किया। ऋषियों के आश्रम ही नहीं भील जाति की शबरी की कुटिया पर भी राम स्वयं मिलने गये। गाँव के अबोध अकिंचन लोगों से भी बड़े प्रेम से मिले। भील केवट जाति के आदिवासी सबके सब इनके दर्शन मात्र से पावन हो गये।

राम के पूर्व भी रावण को परास्त करनेवाले शक्तियां थीं। सहस्त्रार्जुन ने रावण को परास्त किया था। बाली छह महीने तक रावण को कांख में दबाकर घूमते रहे थे। तो राम क्या रावण का ही केवल वध करने के लिए इस धरती पर आए थे? नहीं, वह तो जन कल्याण के लिए आए थे। जिसके केवल भृकुटि विलास में अनेक ब्रह्माण्ड जन्मते और नष्ट होते हैं, उसके लिए रावण को मारना क्या कठिन था?

दण्डकारण्य जैसी बाँझ शापित भूमि को अपने रहने मात्र से पवित्र और हरिभरी बना दी। पादस्पर्श मात्र से युगों से शिला बनी अहिल्या को मुक्त कर वानरों से मैत्री तो राम का शिरमौर और अलौकिक कार्य है। राम-चरित में किसी का दोषदर्शन नहीं है। रामकथा के सब, प्रकट अप्रकट चरित्र अलौकिक है।

जीव के सहज सुहृद श्रीराम हैं। राम को छोड़कर जो काम के वशीभूत हो जाते हैं, विषयों के संग रम जाते हैं वे ८४ के चक्कर में फँस जाते हैं। योगी लोग आँख, कान आदि इन्द्रियों को मूँद कर, एकान्त में बिना कुछ देखे, बिना कुछ सुने, बिना खाये-पीये इसीलिये बैठे रहते हैं कि हम पुन: संसार के आवागमन में न फँसे। हमारा इस जनम-मरण से सदा के लिये छुटकारा हो जाय। इसके लिये वे घोर तप करते हैं। संसृति का कारण शरीर ही है, शरीर सुख के लिये ही संसार में फँसना पड़ता है।

मन विषयनि तैं मोड़िकें, प्रभु सेवा संलग्न चित। ते रघफवर लीला लखहिँ, कनकभवनमहँ होति नित।।
रामचरित जे पुरुष प्रेम तें पढ़ें पढ़ावें। तिनके छूटे बन्ध परम पदवी ते पावें।।
श्रवनि पुटनितैं पिये हिये आवे कोमलता। मिटहिँ कठिनता निखिल होहि जीवनमहँ मृदुता।।
नितप्रति नवदिन नियमतैं, रामायण जे नर सुनहिँ। ते न भूलि भवजालमहँ, श्रवन रसिक कबहूँ फँसहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस रामचरित को अपने श्रवणपुटों से पान करनेवाला पुरुष ऋजुता मृदुता आदि गुणों से मुक्त होकर कर्मबन्धनों से विमुक्त बन जाता है।

राम इन दो शब्दों में इतना बल है कि पापी भी इनके सहारे पावन बन जाता है। मुख से उच्चारण न भी करे, केवल कानों द्वारा सुन ही ले तो भी उसकी मुक्ति हो जाती है। औषधि खा ली जाय तब तो अपना प्रभाव दिखाती ही है। खावें न केवल सुई द्वारा रक्त में पहुँचा दी जाय तो भी वह तत्काल चमत्कार दिखाती है। रामचरित वैसे तो स्वयं ही बड़ा मधुर चित्ताकर्षक तथा कानों को सुख देनेवाला है।

राम कथा कानों के द्वारा हृदय में प्रवेश करते ही उसकी कठिनता और चंचलता मिटाकर अन्त:करण को सरल और कोमल बना देती है। रामकथा मुख्यत: विधिरूप कर्म सिखाती है। रामायण असल में एक तरह का प्रयोगशास्त्र है। उससे स्पष्ट होता है कि राम ने धर्म को जीया। जीवनभर वही किया जो शास्त्रों के अनुसार सही होता है।

यह चरित धन्य है, यश को देनेवाला है। जिसके पुत्र न हो वह यदि श्रद्धा से रामचरित श्रवण करे तो उसके पुत्र हो जाय। जिसका विवाह न होता हो, वह यदि नियमपूर्वक रामचरित सुने तो उसे सुन्दर बहू मिल जाय। जिस कन्या को पति न मिलता हो, यदि वह रामचरित को सुने तो उसे मनोनुकूल पति की प्राप्ति हो। दरिद्र धन की इच्छा से रामचरित सुने तो धनी हो जाय। विद्यार्थी भक्तिपूर्वक रामचरित सुने तो उसे विद्या की प्राप्ति हो। शरणार्थी यदि सावधान होकर रामचरित सुने तो उसे सबके शरणदाता श्रीहरि मिल जायँ उनकी शरण में जाकर सुखी हो जाय। सारांश यह कि रामचरित, धर्म, अर्थ काम और मोक्ष तक को देनेवाला है। जो मोक्ष की भी इच्छा नहीं रखते, ऐसे निष्काम भक्त यदि निरन्तर राम कथा को ही सुनते रहें तो उन्हें प्रभु पादपद्मों में अहैतुकी पराभक्ति प्राप्त हो। वह प्रभु प्रेम में पागल बने, परमानन्द सुख का सदा अनुभव करते रहे।

राम कथा यदि सुनहिँ दु:ख काहेकूँ पावें। देखैं नहिँ यमसदन नित्य वैकुण्ठ सिधावैं।।
चिन्ता दुख भय शोकयुक्त, नीरस यह संसार है। है यदि जामें तत्व तो, रामचरित ही सार है।।

राम तेरे अनेक रूप हैं।

एक राम घट-घट में बैठा, एक राम का जगत पसारा। एक राम दशरथ का बेटा, एक राम जगत से न्यारा।।

राम राम सब कोई कहैं, ठग ठाकुर और चोर। जो नाम ध्रुव प्रह्लाद ने जपा, वो राम-राम कुछ और।।

एक राम तापस तिय तारी, नाम कोटि खल-कुमति सुधारी।

नाम लेत भव-सिंधु सुखाही, करहूं विचार सज्जन मन माही।।

तोता भी रटकर राम-राम बोलने लगता है। तोता भी नहीं जानता की राम कौन है? राम रमन्ते योगिन: जो योगिओं के हृदय में रमण करते हैं, राम जो घट-घट में बैठा है, वह है राम।

घट-घट मोरा साईयां, सूनी सेज न कोय। बलिहारी वा घट की, जा घट प्रगट होय।।

किसी-किसी ने ही अपने भीतर के राम को पहचाना, अंदर के ज्ञान-चक्षु को खोलकर देखा व परखा। जिस राम का ध्यान योगी जन करते हैं, तत्त्व जिज्ञासु साधक भी तत्व ज्ञान द्वारा अपने अंदर के राम का साक्षात्कार करके नित-प्रति राम में रमण करते हैं और जिस दिन राम को पहचान लेते हैं उस दिन गोस्वामी जी की वाणी भी हमारे जीवन में सार्थक हो जायेगी। **सियाराम मय सब जग जानी, करहूं प्रनाम जोरि जुग पानी।।**

राममय दृष्टि होना जरूरी है। दो लाभ हो सकते हैं राम को पहचानने से। एक तो बहस नहीं करेंगे राम को लेकर, जीवन में स्पष्टता आयेगी तथा जीवन राम के प्रकाश से अलोकित हो जायेगा। दूसरा मानवता की सेवा कर सकेंगे जब राम मय सारा जग दृष्टिगोचर होगा। राम को पहचानने में राम राज्य की दैहिक-दैविक-भौतिक, तापा, राम-राज्य काहू नहीं ब्यापा। क्योंकि जब तीनों तापों की ज्वाला बुझकर एक अद्वितीय दिव्य शीतलता का आभास होता है जो आनंनदायक है। राम कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं है बल्कि जीते-जागते, एक चैतन्य परम पुरुष हैं, हमारे अंदर की चेतना ही राम-स्वरूप है और जिसने भी जाना, पहचाना उसने अपना जीवन सार्थक किया है।

राम मनुष्यजन्मा: थे, उनको भी शत्रु-मित्र थे। दु:ख कष्ट उन्हें भी झेलनी पड़ी। जीवन में हताश भी हुए, सिर पकड़कर क्रन्दन भी किया। वे पूर्णपुरुष थे, पर लोकोत्तर देवता नहीं। वो भी हम जैसे दो हाथ, दो पैर, दो आँख, एक सिरवाले मानव थे। उन्होंने असुर संस्कृति को विनष्ट कर, ऋषि-मुनियों की रक्षा की, सुराज्य की स्थापना की, वे वन्दनीय है। मनुष्य होते हुए भी देवता बन गये। वे आदर्श शिष्य रहे, आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श पति, आदर्श सेनाध्यक्ष और आदर्श राजा रहे। गौतम पत्नी अहित्या, शबरी, निषादराज, गृधराज जटायु, वानरराज सुग्रीव, ऋक्षराज जाम्बवान, कपीश हनुमार और अंगद अपने निजी जीवन में अपावन होकर भी उनकी इसी धर्म नीति की दुहाई फेरने के लिए ही इतिहास के पन्नों में अमिट रूप से जुड़े हुए हैं। एक पत्नी व्रत का आजीवन पालन करना, गुरूओं का आदेश पालन, धर्म रक्षार्थ मां-बाप व पुत्रों का त्याग, राज्य और सम्पत्ति के लिए विवाद नहीं, बल्कि भाई एक दूसरे के लिए राज्य को छोड़ने को तैयार, उच्चकुल के चरित्रवान लोग, पतिता स्त्रियों के उद्धार में अपना गौरव समझा। राजपुत्रों का गुहों, भीलों और वनचरों के साथ मैत्री स्थापन, वेदज्ञ होनेपर भी अभिमान की ऐंठन से ऊपर शूद्रादि का आलिंगन, ब्रह्मचर्य का पुनीत तेज, सत्य और धर्म की सेवा स्वीकार करना, प्रजा वर्ग में परोपकार के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना, उच्च वंश में उत्पन्न राजकुमार होकर भी जीवन के सुख ऐश्वर्य को ठुकराकर सुख-शांति का सच्चा संदेश देने निकल पड़ना।

रामजीका बन्धुप्रेम भी अलौकिक है। ऐसा बन्धुप्रेम जगत्में कहीं देखनेको नहीं मिलेगा। जब महाराज दशरथने रामका राज्याभिषेक करनेकी सोची, तब रामजी लक्ष्मणसे कहते हैं- लक्ष्मण। यह राज्य तेरा है, मैं तो निमित्तरूप हूँ, तुम मेरे बाह्य प्राण हो, यह जीवन और राज्य तेरे लिये है।

राम वनमें पधारे तो रामजीके पीछे-पीछे लक्ष्मण गये। कैकेयीने वनवास तो रामचन्द्रको दिया, लक्ष्मणको नहीं। फिर भी

रामजी वनमें जाते हैं, तब लक्ष्मण माता-पिता और पत्नीको छोड़कर बड़े भाईके पीछे हो जाते हैं। रामजीका प्रेम ऐसा है कि राम-वियोगसे लक्ष्मण अयोध्यामें रह नहीं सके। लक्ष्मण पत्नी और माता-पिताको छोड़ सकते हैं, किंतु बड़े भाईको नहीं छोड़ सकते हैं। राम-वियोग लक्ष्मणसे सहन नहीं हुआ। जहाँ रामजी हैं, वहीं लक्ष्मण हैं।

लोग कहते हैं कि भरतका प्रेम रामके प्रेमसे श्रेष्ठ है। राज्य भरतने नहीं किया, किंतु गद्दीपर उन्होंने रामजीकी पादुकाको प्रतिष्ठित किया। रामजी तो वनमें तप करते हैं, किंतु भरत महलमें ही तप करते हैं। श्रीरामने जगत्‌में धर्मका आचरण सिखाया है। श्रीरामजी कर्मका प्रकाश देनेवाले सूर्य हैं।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्त्तव्य है वह सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। वनवास जाते समय सब प्रकारकी वनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखलाया था और वनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया, शूर्पणखाके कान-नाक लक्ष्मणसे कटवाये, ससैन्य खरदूषण-त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विध्वंस किया। आदर्श गृहस्थधर्मका कार्यत: निरूपण करनेके लिये लंकामें सीताकी अग्नि-परीक्षा ली और आदर्श प्रजावत्सलता, जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परित्याग कर दिया। श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्धधर्मके वशवर्ती होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परंतु श्रीरामने शत्रुका भ्राता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध व्रत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणागत-वत्सलताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि अचानक आकर जो मेरे शरण होता है और मैं आपका ही हूँ ऐसा कहता है, उसे मैं प्राणिमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है। अनेक धर्मोंका संकट उपस्थित होनेपर ठीक-ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी च्युति नहीं हुई है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई जगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परंतु वास्तवमें वह अधीरता नहीं है, क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अधैर्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे भी कष्टका समय आये, अन्तर्धृतिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्धृति ही धर्मका निर्णय करेगी।

उदयाचलसे अस्ताचल तक राज्य करनेका सौभाग्य अयोध्याके नरेशोंको प्राप्त हुआ। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामने भी इसी अयोध्यामें अवतार लेकर अपनेको गौरवान्वित समझा। साक्षात् परमात्मा श्रीरामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके मानव-समाजको मर्यादाका उपदेश दिया है। इतना ही नहीं, जन्मसे लेकर मरणपर्यंत मनुष्यको कैसे जीना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, यहाँतक कि बालक, पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु, परिजन, पुरजन, मन्त्री और गुरुका कैसा बर्ताव एवं आदर्श होना चाहिये- इन सभीका उपदेश श्रीरामके चरित्रसे प्राप्त होता है। ऐसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने भी अयोध्याके प्रभावको समझकर यहाँ अवतार लेना श्रेयस्कर समझा।

मानसके सारे भक्त भक्तवत्सल राघवेन्द्रके प्रति अपनी अभिन्न और विभिन्न प्रेमनिष्ठाका परिचय देते हैं, यथा श्रीदशरथजीमें सत्यप्रेम, श्रीकौसल्याजीमें वात्सल्यप्रेम श्रीअहल्याजीमें धीरप्रेम, श्रीजनकजीमें गूढ़प्रेम, श्रीसीताजीमें तत्त्वप्रेम, श्रीभरतजीमें अगमप्रेम, श्रीलक्ष्मणजीमें अनन्य प्रेम श्रीकेवटजीमें सहजप्रेम, वनवासियोंमें सरलप्रेम, जटायुजीमें दरसप्रेम, श्रीशबरीजीमें परमप्रेम, श्रीविभीषणजीमें चरणप्रेम और श्रीहनुमानजीमें निर्भरप्रेम की पूर्ण प्रतिष्ठा है। मानसमें ऐसे ही अनेक भक्तोंके उद्धारके लिये भगवान श्रीराम प्रतिबद्ध थे, जिनके कारण वे देह धारण कर धराधामपर आये।

भगवान श्रीरामने भगत हेतु सामान्य नरकी तरह अनेक परम पावन चरित किये। परम पावन चरित वह होता है, जो स्वयं पवित्र होता है और दूसरेको पवित्र करता है। भगवान श्रीरामका यही परम पावन चरित श्रीरामचरितमानसमें आद्योपान्त वर्णित है, जिसमें प्रेमकी अद्भुत छटा दिखायी पड़ती है। भक्तप्रेमवश अवतरित ब्रह्म राम वनवासियोंसे प्रेमपूर्ण सरल-सहजरूपमें मिलते हैं। भक्तप्रेमके कारण अवतरित श्रीरामके प्रेमपूर्ण परम पावन चरितको प्रेमसे ही जाना जा सकता है; क्योंकि वे प्रेमस्वरूप हैं और उन्हें केवल प्रेम ही प्यारा है। अत: ऐसे प्रेममय भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंमें प्रेमपूर्ण शरणागतिसे ही जीव परम विश्राम पा सकता है। मानवके आदर्शोंको, कर्त्तव्यके विभिन्न क्षेत्रोंकी मर्यादाको प्रत्यक्ष उपस्थित करनेके लिए यह अवतार हुआ।

समय के प्रवाह में न जाने कितने दिन, महीने और साल बीत गये, परंतु रावण पर राम की विजय गाथा आज भी हमारे भारतीय समाज में पूरे श्रद्धा और उल्लास के साथ मनायी जाती है। सदियों पूर्व राम ने सत्य और शक्ति के बल पर रावण रूपी असत्य और बुराई का अंत किया था। तब से यह ऐतिहासिक कालजयी घटना हमारी आत्मा व संस्कृति में रच-बस गयी है। इस महान सत्य की अमूल्य निधि हमारा आंतरिक संबल बनकर हमें आगे-बढ़ने की प्रेरणा देता है। हमारे संपूर्ण जीवन त्रेता युग का दर्पण ही तो है। राम सत्य है तो रावण असत्य और सीता आदि शक्ति। जीवन आकाश पर जब पाप, अनाचार, ईर्ष्या, द्वेष, काम-वासना, क्रोध, मद और लोभ आदि बुराइयों के बादल छा जाते हैं, तब हमारी आत्मा में समाया सत्य मलिन होकर अपनी वास्तविक सत्ता भूल जाता है और यहीं से जीवन में बिखराव प्रारंभ हो जाता है। आज चारों ओर असत्य और बुराइयां पांव पसारती जा रही हैं, जिसने जीवन की सभी क्षमताओं पर कुठाराघात किया है। ऐसे में आवश्यक है उसे परास्त करने के लिए सत्य और शक्ति को पुन: जागृत करने की।

राम के पक्ष में शक्ति और रावण के पक्ष में शिव। अपने संरक्षण के बाद भी शिव रावण को नहीं बचा पाए। शिव से तात्पर्य कल्याण है। जब कल्याण असत्य के पक्ष में चला जाएगा, तब सत्य और शक्ति के सामने उसे मौन धारण करना ही पड़ेगा। जीवन में असत्य एवं बुराइयों के नाश हेतु सत्य को शक्ति की आराधना करनी होगी। तीज त्यौहारों में निहित संदेशों को, उनके शाश्वत सत्य को हम मात्र क्षणिक आनंद अथवा परिवर्तित होते संदर्भों में उसकी पारंपरिक वास्तविकता से मुकरते हुए आधुनिकता के दिखावेपन और भौतिकता के सुख-भोग तक ही ग्रहण करते जा रहे हैं।

सामाजिक जीवन में हम राम-रावणी आचरण के साथ कितना न्याय कर पा रहे हैं? क्या बुराई और असत्य की बढ़ती सीमाओं को सत्य रोक पा रहा है? अनाचार से मुकाबला करने का हौसला क्या हमारे भीतर शेष है? असत्य का विरोध करनेवालों के साथ क्या हम मौन खड़े हैं?

आज से हजारों वर्ष पूर्व अश्विन शुक्ल दशमी को दुराचार या अनाचार पर सदाचार की विजय हुई थी। उस विजय की पताका फहरानेवाले थे अयोध्यापति राम और जिस पर विजय प्राप्त की गई थी वह था लंकाधिपति रावण। राम ने रावण से युद्ध अवश्य किया था, पर उनके मन में रावण के प्रति कोई द्वेष नहीं था। यद्यपि उन्होंने रावण पर विजय प्राप्त की थी, परंतु उनका शत्रु रावण नहीं, रावण का दुराचार था। लंका को जीतना भी राम का उद्देश्य नहीं था, क्योंकि ऐसा होता तो वे जीती हुई लंका को रावण के ही भाई विभीषण को क्यों लौटा देते? भगवान राम को हम मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं, जिसका अर्थ है मर्यादा का पालन करनेवाले पुरुषों में सर्वोत्तम। विजय के प्रति श्रीराम की भावना निज अधिकार प्राप्ति अथवा पुनर्प्राप्ति के सिद्धांत में निहित थी। इसीलिए तो युद्ध प्रारंभ करने के पूर्व रावण को संदेश भेजवाया था, यदि तुम सीता मुझे लौटा दो तो मैं तुमसे युद्ध नहीं करूंगा। रावण द्वारा यह प्रस्ताव अस्वीकार किए जाने के बाद ही श्रीराम ने युद्ध करके रावण को

परास्त किया, पर रावण के राज्य को अपने राज्य में न मिलाकर उन्होंने अपनी मर्यादा का परिचय दिया। अपहृता पत्नी सीता को छुड़ा कर लाना ही उनका एक मात्र उद्देश्य था, रावण से उनका व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। रणभूमि में रावणवध के समय श्रीराम मरणासन्न रावण से धर्म, नीति संबंधी विद्वतापूर्ण बातें विनयपूर्वक सुनते हैं और लक्ष्मण को भी रावण के चरणों के समीप जाकर सुनने के लिए प्रेरित करते हैं। रावण की विद्वता का आदर राम सदैव करते रहे। इतना ही नहीं, अपनी विजय हेतु मंगल अनुष्ठान भी राम ने रावण से कराया था और रावण ने भी बिना छल कपट के अपनी ही हार और शत्रु राम की विजय के लिए वह अनुष्ठान पूर्ण मनोयोग से कराया।

विद्वानों और सद्गुणियों का सम्मान करना चाहिए इन भावनाओं का भी हम अपमान करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि रावण में विद्वता आदि सद्गुणों के साथ ही अहंकार भी था, पर इसी दुर्गुण या दुराचार से ही तो श्रीराम ने वास्तव में युद्ध किया था। चूंकि इस दुर्गुण का धारक रावण था, इसलिए श्रीराम को पर-स्त्री का हरण करनेवाले रावण के साथ युद्ध करने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह समग्र वास्तविकता क्या इस बात का बोध नहीं कराती कि राम की भावना दुराचार पर सदाचार की विजय का संदेश देने की थी, न कि दुराचारी से शत्रुता निभाने या उसे ही प्रतिवर्ष स्मरण किए जाने की थी। वाल्मीकि रामायण में रावण का चित्र भिन्न है। वाल्मीकि का रावण नीतिज्ञ, विद्वान, रूपवान एवं अन्य उदात्त मानवीय चरित्रिक गुणोंवाला है। पर परिवर्ती विद्वानों, कवियों की दृष्टि में वह भयंकर मुखाकृति वाला, कुरूप, दस मुखों और बीस भुजाओं वाला दुराचारी राक्षस बन गया। वास्तविकता न समझ सकने के कारण हमारी मान्यताएं धीरे-धीरे इस सीमा तक बदल गई हैं कि हमें हमारे आराध्य की भावनाओं का अनादर करनेवाला तक बना दी हैं। पर-स्त्री अपहरणकर्ता और घमंडी माना गया है, किंतु रामायणादि ग्रंथों की भांति उसे महानीतिज्ञ, धार्मिक, रूपवान और अन्य अनेक गुणोंवाला भी बताया गया है। इससे श्रीराम का चरित्र और भी अधिक उज्ज्वल रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। जैन ग्रंथों के अनुसार श्रीराम मात्र रावण-विजेता ही नहीं थे, बल्कि कर्म-विजेता भी थे। दूसरे शब्दों में कहें तो श्रीराम ने शत्रुओं को पराजित कर उनके लिए परम स्थान मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अंतत: कर्म-विजेता का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अंतत: कर्म-विजेता बनकर सभी को विजय का सही स्वरूप पहचानने और उसे प्राप्त करके परम सुख पाने की प्रेरणा दी। श्रीराम ने दुराचार के प्रतीक से युद्ध किया था, दुराचारी से नहीं।

अन्याय, अत्याचार, अहंकार, विघटन और आतंकवाद आदि संसार के कलुष कलंक हैं। इतिहास पुराण गवाह हैं कि समय-समय पर ये कलुष सिर उठाते रहे हैं। त्रेता युग में रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खरदूषण, ताड़का, त्रिशरा आदि और द्वापर में कंस, पूतना, बकासुर के अलावा दुर्योधन आदि कौरवों के रूप में हों या इस युग में अन्याय और आतंकवाद के तरह-तरह के चेहरे हों। इन कलुषों पर श्रीराम जैसे आदर्श महापुरुष साधन संपदा नहीं होते हुए भी केवल आत्मबल के माध्यम से इन पर विजय होते रहे हैं। ऋषि विश्वामित्र के साथ ताड़क वन प्रदेश में ताड़का आदि के नेतृत्व में प्रशिक्षित हो रहे आततायियों को ध्वस्त कर छोटी अवस्था से ही श्रीराम-लक्ष्मण ने राष्ट्र रक्षा का पहला अध्याय लिखा। उसके बाद वनवास के समय वनमाफियाओं द्वारा उजाड़े गए दंडक वन में ग्यारह वर्ष तक रहते हुए वन और वृक्षों की सेवा की। रोपे गए वृक्षों की जानकी जी ने वनवासी स्त्रियों के साथ सिंचन किया तथा लक्ष्मण जी ने धनुषबाण लेकर उनकी रक्षा की। इस प्रकार प्रकृति पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वनों के महत्व को समाज के सामने प्रस्तुत किया। इसी प्रकार पंचवटी प्रदेश जहाँ खरदूषण की देख-रेख में सीमा पार से घुसे आतंकी भारत को अस्थिर करने के लिए प्रशिक्षण ले रहे थे। सूर्पणखा विषकन्या के रूप में रावण की सत्ता का विस्तार करने का उपक्रम चला रही थी। उसे कुरूप बनाकर खरदूषण समेत सारे

आततायी उपद्रवियों का सफाया कर सुदूर लंका में बैठै रावण को मानो चुनौती दे डाली। रावण द्वारा सीता का हरण कोई सामान्य अपहरण नहीं था। वह एक राष्ट्र की अस्मिता एवं संस्कृति का हरण था। जिसकी शिक्षा के लिए भगवान श्रीराम ने रीछ, वानरों जैसे सामान्य प्राणियों को संगठित किया। वन में रहनेवाले सामान्य जीवों में इतनी शक्ति उभार देना साधारण नायकों के वश का काम नहीं हो सकता कि अजेय और दुर्लंघ्य कहे जाने वाले समुद्र से घिरे लंका जैसे दुर्ग का भेदन कर राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा कर सके। रामचरित अपने समय और बाद की पीढ़ियों के लिए भी एक मिसाल है कि किस प्रकार शौर्य, शक्ति आचरण एवं नीति से किसी राष्ट्र की अखंडता को बचाया जा सकता है। आधुनिक परिवेश में विश्व के प्रत्येक राष्ट्र पर आतंकवाद का असुर सुरसा के मुख की तरह फैलता जा रहा है।

भारत के अतिरिक्त विश्व के अन्य सभी राष्ट्र श्रीराम के शील सौंदर्य राजनीतिक कुशलता तथा सामरिक वैश्विक रणनीति के परिप्रेक्ष में राम को ही अपना आदर्श मानव निर्माण की दिशा में अपनी इष्ट मान रहे हैं। भारत वर्ष के नीतिनियामकों सुधी राष्ट्रभक्त इस अवसर पर श्रीराम चन्द्र जी के जीवन से सात्विकता, आत्मीयता, निर्भीकता एवं राष्ट्र रक्षा की प्रेरणा लें तथा समाज के राष्ट्रविरोधी प्रच्छन्न तत्वों से संघर्ष करने के साहस का परिचय दें तो भारतवर्ष की अखंडता, नैतिकता तथा चारित्रिक सौम्यता के निर्माण के क्षेत्र में अद्भुत सराहनीय प्रयास होगा।

रावण पण्डित था, बेहद ज्ञानी था। वह समझता था कि इस राक्षस-देहसे भजन करके वह भवसागर पार नहीं कर सकेगा, इसीलिये वह अपने गुप्त निर्णयपर अटल रहा। उसे अपने निश्चयसे डिगानेके लिये उसकी पत्नी मन्दोदरीके अलावा मारीच, जटायु, हनुमान्, विभीषण, अंगद, कुम्भकर्ण तथा गुप्तचरोंने भी अपने-अपने तरीकेसे प्रयास किये, परंतु वह अडिग रहा और शत्रु बनकर प्रभुप्रेममें लीन रहा।

रावण में अनुपम तेज, धैर्य है। रावण बुराई और सत्य का प्रतीक माना जाता है। उसने अपने और अपने परिजनों के उद्धार के लिए खलनायक की भूमिका निभाई। राम से बैर मोल लिया। यह विद्वान रावण का त्याग ही था, जिसने असत्य पर सत्य और बुराई पर अच्छाई की जीत का उदाहरण दुनिया के सामने रखने के लिए खुद को खलनायक के रूप में पेश किया। रावण पापी नहीं था, तभी तो उसने सीता का हरण करने के बाद भी उन पर एक उंगली का भी स्पर्श नहीं किया। वह चाहता तो ऐसा कर सकता था।

ताड़का नामक राक्षसीका पुत्र मारीच भगवान् श्रीरामकी प्रभुता एवं बलको भूला नहीं था। अपने राक्षसी स्वभाववश ऋषि-मुनियोंके यज्ञ आदिमें विघ्न डालनेके अपराधमें श्रीरामजीके बाणसे वह सौ योजन दूर आ पड़ा था। उसने उन्हें साक्षात् ईश्वरके रूपमें पहचान लिया था। इसलिए उसने रावणको बहुत समझाया, विनय की और सीताहरण न करनेकी प्रार्थना की, परंतु रावण अपनी गुप्त योजनाके अन्तर्गत कार्य करता ही रहा।

रावण जैसे महानायकका अन्तिम समय जानकर अनेक अपशकुन होने लगे। मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाशसे वज्रपात होने लगे, पृथ्वी हिलने लगी, अमङ्गल होने लगे और तभी श्रीरघुनाथजीके इकतीस बाणोंसे घायल होकर रावणने इस नश्वर देहका त्याग कर दिया।

धृति क्षमा दमोस्तेयम शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।

जीवन के ये सारे महान आदर्श, जीवन दर्शन सत्य में अगर किसी के जीवन व्यवहार में पाया गया है, तो वह दशरथ पुत्र राम। तभी तो उनको मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहा गया। इस भारत की ही नहीं सारे संसार का आदर्श पुरुष। जिस भी रूप में देखें, उनका जीवन हमें सत्य राह दिखाता है। यहां तक कि वह दुश्मन के लिए भी आदर्श था। वे दुश्मन भी आदर्श थे।

इसी कारण राम भारत की जनता के नस-नस में समाये हुए हैं। हर आत्मा में समाये हैं राम। राम इस देश की आत्मा हैं। हमारे देश की पहचान हैं राम। हमारी संस्कृति सभ्यता के प्रतीक हैं राम। इसी कारण भगवान के अवतार हैं राम।

कई हजारों या लाखों वर्ष पूर्व त्रेतायुग में इस राम को राजगद्दी के बदले वनवास मिला था। नहीं, नहीं। पिता के वचन को पूरा करने एवं माता की मनोकामना पूरी करने के लिए उन्होंने वनवास स्वीकार किया था। इतना ही नहीं उन्हें मालूम था कि राजधानी अयोध्या से दूर जंगलों एवं पहाड़ों में ऋषि, मुनी एवं तपस्वियों पर घोर अत्याचार हो रहे हैं। असंगठित वनवासियों पर जुल्म ढाये जा रहे हैं। उन सबकी रक्षा करना अतिआवश्यक है। इस कारण उन्हें (शासन को) वनवास जाना होगा, पिता के वचन एवं माता की आज्ञा को उन्होंने स्वर्णिम अवसर माना और वनवास जाना स्वीकार किया। उन्होंने समझाया कि शासक को मात्र राजधानी में नहीं रहना चाहिए। प्रजा की रक्षा के लिए उन तक जाना चाहिए। नदी किनारे केवट को गले लगाकर समरसता एवं समानता का संदेश दिया। वनवासी शबरी माता के जूठे बेर खाकर उन्होंने जताया कि सच्चा प्रेम कोई भेदभाव नहीं मानता। यह करते उन्होंने अस्पृशता के विरुद्ध संदेश दिया। ऋषियों, मुनियों एवं तपस्वियों की रक्षा कर जताया कि शासन का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि अपनी प्रजा के जान माल की रक्षा करें। ऋषियों से निरअभिमान होकर उन्होंने शास्त्रों एवं शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। शूर्पणखा की शादी के आग्रह को ठुकरा कर एक पत्नीत्व का आदर्श रखा। नगरों में जो रहते हैं वे नागर एवं वनों में जो रहते हैं वे वानर, ऐसे वनवासियों को संगठित होना सिखाया। अधर्म के विरुद्ध जंग छेड़ दी। इसी कारण उनकी पत्नी का अपहरण हुआ। अधर्म, पाप एवपं आतंकवाद को समाप्त करने के लिए पापी के घर में भी घुसकर मारना पड़े तो जाकर मरना चाहिए। यह राजनीति एवं राजनीति का संदेश उन्होंने दिया। उसी प्रकार लंका पर आक्रमण कर महापापी रावण को मार संपूर्ण स्त्री जाति की प्रतीक सीता को छुड़ाया। वापस अयोध्या की ओर प्रस्थान कर बताया।

जो कोई इस राम-कथाका प्रेमपूर्वक कथन, श्रवण और मनन करेगा, वह श्रीरामचरणके प्रेमका पात्र अवश्यमेव बनेगा।

श्रीरामचरितमानस वह कल्पवृक्ष है, जो अपने आश्रय लेनेवालोंके हृदयमें भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंके प्रति प्रेम उत्पन्न कर देता है। श्रीरामचरितमानसके श्रवणमात्रसे काम और मद आदि सारे विकार अपने-आप ही विनष्ट हो जाते हैं तथा मन पूर्ण विश्रामका अनुभव करने लगता है।

लौकिक या पारलौकिक सभी प्रकारकी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाला चारु चिन्तामणि है- यह श्रीरामचरितमानस। जो कोई भी निष्कपट होकर इस कथाको कहता, सुनता और अनुमोदन करता है, वह सारी मनोकामनाओंकी सिद्धिके साथ-साथ इस भवसागरको भी अत्यन्त सरलतापूर्वक पार कर लेता है।

मानस वह पारस है कि इसके सम्पर्कमें आनेवाला मनुष्य निश्चितरूपसे भगवत्प्रेमी बन जाता है। यह मानस वह सरोवर है जो पुण्यमय है, पाप हरण करनेवाला है, सदा कल्याणप्रद है, विज्ञान और भक्ति प्रदान करनेवाला है तथा माया-मोहरूप मलको दूर करनेवाले शुभ, स्वच्छ प्रेम-जलसे परिपूर्ण है।

श्रीरामचरितमानस वह सिद्ध सरोवर है, जिसमें श्रद्धाका सम्बल लेकर अवगाहन करनेवाला मनुष्य अनायास ही भगवान्‌का अविचल प्रेम-रत्न प्राप्त कर लेता है। जो भी इस सरोवरमें चाहे-अनचाहे प्रविष्ट हुआ, उसके विषयरूपी दावानलमें जलता हुआ मनरूपी हाथी शाश्वत सुखका अनुभव करने लगता है।

राम-नामकी साधनाके द्वारा हम समस्त समस्याओंका समाधान कर सकते हैं एवं प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी अखण्ड आनन्दका अनुभव कर सकते हैं।

निमिवंश

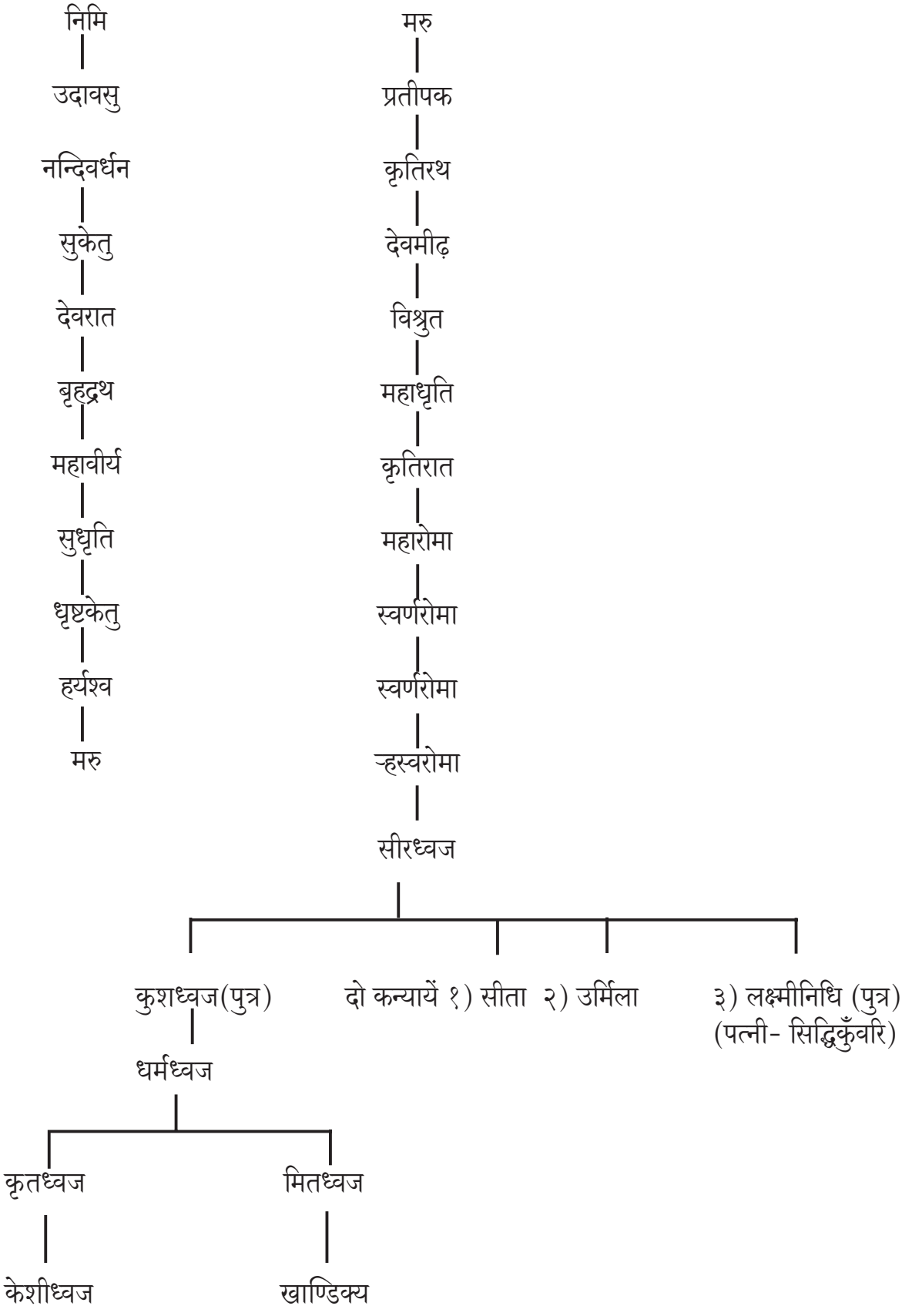
निमि
उदावसु
नन्दिवर्धन
सुकेतु
देवरात
बृहद्रथ
महावीर्य
सुधृति
धृष्टकेतु
हर्यश्व
मरु
मरु
प्रतीपक
कृतिरथ
देवमीढ़
विश्रुत
महाधृति
कृतिरात
महारोमा
स्वर्णरोमा
स्वर्णरोमा
ऱ्हस्वरोमा
सीरध्वज
कुशध्वज(पुत्र)
दो कन्यायें १) सीता २) उर्मिला
३) लक्ष्मीनिधि (पुत्र)
(पत्नी- सिद्धिकुँवरि)
धर्मध्वज
कृतध्वज
मितध्वज
केशीध्वज
खाण्डिक्य

भानुमान
शतद्युम्न
शुचि
सनद्वाज
ऊर्ध्वकेतु
अज
पुरुजित
अरिष्टनेमि
श्रुतायु
सुपार्श्वक
चित्ररथ
क्षेमधि
समरथ
सत्यरथ
उपगुरु

उपगुप्त
वस्वनन्त
युयुध
सुभाषण
श्रुतु
श्रुतु
जय
विजय
ऋत
शुनक
वीतहव्य
धृति
बहुलाश्व
कृति
महावशी

११) इक्ष्वाकुवंश, निमिवंश और चन्द्रवंश- शुकदेव बोले- राजन्, इक्ष्वाकु वंशीय भूपतियों का वंश सुमित्र नाम के राजा तक ही चलेगा। कलियुग में उस राजा के अनन्तर यह वंश समाप्त हो जायेगा।

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका बीज नष्ट हो जाता हो धर्म और अधर्म दोनों ही भगवान के अंश से उत्पन्न हुए हैं, धर्म हृदय प्रवेश से प्रकट हुआ है और अधर्म पृष्ट देश से। सत्ययुग में जब धर्म चारों पैरों से अवस्थित रहता है, तब भी अधर्म सूक्ष्म रूप से वहाँ रहता है। इसी प्रकार कलियुग में जब पूर्ण रूप से अधर्म व्याप्त हो जाता है तब भी धर्म बीज रूप से बना ही रहता है। सृष्टि में बीज सब के बने रहते हैं।

भगवान के अवतार युग के अन्त में हुआ करते हैं। जैसे सत्ययुग में लोगों में ज्ञान की भावना स्वाभाविक थी। बिना सिखाये पढ़ाये ही सभी ज्ञानी होते थे। प्रकृति की गति स्वभावत: पतन की ओर है। उत्थान के पश्चात् पतन यह लगा रहता है किन्तु स्वभावत: प्रकृति शनै: शनै: पतन की ओर जाती है। जिसे सृष्टि के आदि में प्रथम जो सत्ययुग होगा उसमें धर्म पूर्ण रूप से रहेगा। फिर धर्म शनै: शनै: क्षीण होते-होते कलियुग में क्षीण हो जायेगा। कलियुग के पश्चात फिर जो दूसरा सत्ययुग आवेगा उसमें धर्म पूर्ण रूप से रहेगा तो अवश्य, किन्तु प्रथम सत्ययुग की भाँति न रहेगा। उसमतें न कुछ न्यून हो ही जायगा ऐसे ही होते-होते कल्प के अन्त में सत्ययुग में धर्म बहुत ही न्यून हो जायगा और कल्प के अन्त के कलियुग में तो सृष्टि का प्रलय ही हो जायगा।

इस प्रकार शनै: शनै: धर्म का ऱ्हास होता रहता है भगवान अवतार लेकर उसका अभ्युत्थान करते हैं इसीलिये युगावतार प्राय: युग के अन्त में अवतरित होते हैं। सत्ययुग में जो स्वाभाविक ज्ञान की प्रवृत्ति थी वह सत्ययुग के अन्त में आकर क्षीण हो गई। उसका पुनरुत्थान करने के लिये भगवान कपिल का अवतार हुआ। उन्होंने ज्ञान का प्रसार किया और यज्ञ की भी प्रशंसा की। त्रेता में ज्ञान के साथ वर्णाश्रम धर्म समस्त यज्ञ यागों का भी प्रसार हो गया। उसमें जब ऱ्हास होने लगा तो त्रेता के अन्त में भगवान श्रीराम का अवतार हुआ भगवान के वंशज द्वापर के अन्त तक पृथ्वी का पालन करते रहे कलियुग में विशुद्ध क्षत्रिय वंश अधर्म के कारण रह नहीं सकता कलियुग में वर्णाश्रम धर्म नष्ट प्राय: हो जायगा। यदि सूर्यवंश और चन्द्रवंश का बीज ही नष्ट हो जाय तो फिर आगामी सत्ययुग में इन वंशों का प्रसार कैसे हो। इसीलिये भगवान का ऐसा विधान है कि कलियुग के आते ही एक सूर्यवंश के राजा अपनी दिव्य देह से गन्धमादन पर्वत पर गुप्त रूप से एक युग तक रह कर तपस्या करते रहते हैं। वे योग प्रभाव से अपने शरीर को टिकाये रहते हैं, कलियुग के अन्त होते ही वे विवाह करके फिर से सूर्यवंश और चन्द्रवंश की स्थापना करते हैं। इन्हीं सब कारणों से ये सूर्यवंश और चन्द्रवंश कल्प के अन्त तक नष्ट नहीं होते। यह सब भगवान की इच्छा से ही होता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान राम के पुत्र कुश के वंश का भी आगे खूब विस्तार हुआ। कुश का पुत्र हुआ अतिथि, उसका निषध, निषध का नभ, नभ का पुण्डरीक और पुण्डरीक का क्षेमधन्वा। क्षेमधन्वा से देवानीक, देवानीक का अनीह, अनीह का पारियात्र, पारियात्र का बलस्थल और बलस्थल का पुत्र हुआ वज्रनाभ। यह सूर्यका अंश था। वज्रनाभसे खगण, खगण से विधृति और विधृति से आगे चलकर इस वंश में हिरण्यनाभि की उत्पत्ति हुई। यह जैमिनि का शिष्य और योगाचार्य था। कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्य ऋषि ने उसकी शिष्यता स्वीकार कर उससे अध्यात्मयोग की शिक्षा ग्रहण की थी। वह योग हृदयकी गाँठ काट देनेवाला तथा परम सिद्धि देनेवाला। इस वंश में हिरण्यनाभका पुष्य, पुष्यका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण।

इसी वंश में आगे चलकर अग्निवर्ण हुआ और अग्निवर्ण से शीघ्र और शीघ्र से मरु की उत्पत्ति हुई। मरु आज भी कलाप ग्राम में रहकर तपस्या कर रहा है। कलियुग की समाप्ति होने पर वह पुन: सूर्य वंश को प्रचारित करेगा। मरुसे प्रसुश्रुत उससे सन्धि और सन्धिसे अमर्षणका जन्म हुआ। अमर्षणका महस्वान् और महस्वान का विश्वसाह्व। विश्वसाह्वका प्रसेनजित, प्रसेनजितका तक्षक और तक्षकका पुत्र बृहद्बल हुआ।

इनके वंश में बृहद्बल नाम के एक राजा हुए जिन्हें महाभारत के युद्ध में तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने मारा था। बृहद्बलका पुत्र होगा बृहद्रण। बृहद्रणका उरुक्रिय, उसका वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका भानु और भानुका पुत्र होगा सेनापति दिवाक। दिवाकका वीर सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुमान, भानुमानका प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्वका पुत्र होगा सुप्रतीक। सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका पुष्कर, पुष्करका अंतरिक्ष, अन्तरिक्षका सुतपा और उसका पुत्र होगा अमित्रजित। अमित्रजितसे बृहद्राज, बृहद्राजसे बर्हि, बर्हिसे कृतञ्जय, कृतञ्जयसे रणञ्जय और उससे होगा संजय। संजयका शाक्य, उसका शुद्धोद्ध और शुद्धोदका लाङ्गल, लाङ्गलका प्रसेनजित और प्रसेनजित्का पुत्र क्षुद्रक होगा। क्षुद्रकसे रणक, रणकसे सुरथ और सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्र। वंश आगे चलकर कलियुग में राजा सुमित्र तक चला और इसके बाद यह वंश समाप्त हो गया।

मरुतैं अष्टम पीढ़िमाँहिं नृप भये वृहद्बल। जिनकी द्वापरमाहिं भई कीरति अति उज्ज्वल॥
भारतमहँ अभिमन्यु संग लड़ि स्वर्ग सिधारे। कुमर बृहदरण बचे बने राजा अति बारे॥
पीढ़ी उन्तिसमहँ भये, अन्तिम नृपति सुमित्र वर। फिर कलिमहँ इक्ष्वाकु के, रहें विशुद्ध न वंशधर॥

शुकदेव बोले- परीक्षित, इक्ष्वाकु के एक पुत्र थे निमि। राजा निमि ने सहस्र वर्ष पर्यंत चलने वाला यज्ञ प्रारंभ किया। यज्ञ संपन्न कराने के लिए उन्होंने महर्षि वसिष्ठ का वरण किया।

राजा निमि के वंश को, कह्यो मुनीश सिहाय। नृपति परीक्षित् सुन रहे, मन में अति हरषाय॥
अब इक्ष्वाकु कुमार द्वितिय निमि-वंश सुनाऊँ। गुरु वसिष्ठतैं कह्यो नृपति- हौं यज्ञ कराऊँ॥
ऋत्विज बनि गुरुदेव, यथा विधि मख करवावें। बोले गुरु- सुरराज बुलायो तहँ ह्वै आवें॥
भये मौन सुनि निमि नृपति, इन्द्र यज्ञ हित गुरु गये। क्षण-भंगुर जीवन निरखि, चिन्तित नृप सोचत भये॥

उन्होंने यज्ञ करने के लिये महर्षि वसिष्ठ को ऋत्विक् के रूप में वरण किया। वसिष्ठ ने उनसे कहा- राजन्। इंद्रदेव ने मुझे पहले ही पांच सौ वर्ष के यज्ञ के लिए वरण कर लिया है, अत: उस समय तक तुम ठहर जाओ। राजन्, इन्द्रने तुम्हारे पहले ही मुझे यज्ञ के लिये वरण कर लिया है। इसलिये मैं वह यज्ञ पूरा कराकर तुम्हारे पास आऊंगा। तब तक तुम मेरी प्रतिक्षा करना। निमि कुछ भी नहीं बोले। वसिष्ठजी ने यह समझकर कि राजा निमि ने उनकी बात मान ली है, इंद्रदेव का यज्ञ प्रारंभ कर दिया।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने एक यज्ञ आरम्भ किया उसमें वसिष्ठजी को ऋत्विज् वरण किया। वसिष्ठजी ने कहा- भाई मुझे पहिले इन्द्र ने वरण कर लिया हैं, वहाँ से निवृत्त होकर आऊँगा तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करो। यह सुनकर गृहपति महाराज निमि चुप हो गये, वसिष्ठजी इन्द्र का यज्ञ कराने लगे।

वसिष्ठ जी इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये। निमि ने मन में यह विचार किया यह शरीर क्षणभंगुर है। इसका कोई ठिकाना नहीं, इसलिये समय रहते यज्ञ कराना ठीक है। ऐसा विचार कर उन्होंने वसिष्ठके आनेतक की प्रतिक्षा नहीं करी और उन्होंने

दूसरे ऋत्विजों को वरण कर यज्ञ आरम्भ कर दिया। किंतु राजा निमि ने महर्षि गौतम आदि अन्य ऋषियों का वरण करके यज्ञ प्रारंभ कर दिया। देवराज इंद्र का यज्ञ पूर्ण कराके महर्षि वसिष्ठ राजा निमि के यहां पहुंच गए।

है यह देह अनित्य यज्ञ अविलम्ब कराऊँ। यदि गुरु आवें नहीं अन्य आचार्य बुलाऊँ।।
करि दृढ़ निश्चिय तुरत यज्ञ आरम्भ करायो। मुनि वसिष्ठ पुनि आइ नृपति प्रति क्रोध दिखायो।।

वसिष्ठ जी जब इन्द्र का यज्ञ पूरा करके लौटे तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमि ने उनकी बात न मान कर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। यज्ञ में मुनि गौतम को अपना कर्म करते देखकर उन्होंने सोते हुए राजा निमि को यह शाप दे दिया-इसने मेरी अवज्ञा करके यज्ञ का भार ऋषि गौतम को सौंप दिया है, अत: यह देहहीन हो जाएगा। इस पर उन्होंने शाप दिया कि- निमि अपने को बड़ा विचारवान मानते हो। तुम्हें अपनी बुद्धि का बड़ा अभिमान है अत: तुम्हारा शरीरपात हो जाय।

निमि की दृष्टि से गुरु वसिष्ठ का यह शाप धर्म के प्रतिकूल था अत: उन्होंने भी बदले में शाप दिया- आपने लोभवश अपने धर्म का पालन नहीं किया, इसलिये आप का शरीर भी गिर जाय। यह कहकर निमि ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। सोकर उठने के बाद राजा निमि ने भी उन्हें शाप दिया- उन्होंने मुझसे बिना बातचीत किए अज्ञानतावश मुझे शाप दिया है, अत: यह भी देहहीन हो जाएंगे।

देह पात को शाप मुनि, दयो भूप क्रोधित भये। पहु शाप मुनिकूँ दयो, तनु दोउनि के गिरि गये।।

इस प्रकार परस्पर के शापा शापी से वसिष्ठ और निमि- दोनों का शरीरान्त हो गया। वसिष्ठ जी मित्रावरुण के वीर्य से उर्वशी अप्सरा से फिर से उत्पन्न हुए। उर्वशी के मदभरे यौवन को देखकर मित्रावरुण काम से व्याकुल हो उठे। उनका वीर्य भूतल पर गिर पड़ा। उसे उठाकर घड़े में रख दिया। उसी से वसिष्ठ का यह दूसरा जन्म हुआ। अत: उर्वशी के उद्देश्य से मित्रावरुण का वीर्य स्खलित हुआ था अत: यहाँ कहा गया है कि वसिष्ठ उर्वशी से उत्पन्न हुए।

राजा निमि के शाप से वसिष्ठ ने अपना शरीर त्याग दिया और कालांतर में मित्रावरूण के पुत्र के रूप में जन्म लिया।

इधर निमि के शरीर को भी गंध तैल आदि से जीवित समान ही सुरक्षित रख दिया। यज्ञ समाप्त होने पर देवतागण अपना भाग ग्रहण करने आए, तो उनसे ऋषिगण बोले- यजमान को वर दीजिए।

इधर ऋत्विजों ने एक कार्य किया। निमि के निष्प्राण शरीर को उन लोगों ने सुगन्धित तेल की द्रोणी (नैया) में रख दिया। यज्ञ की समाप्ति पर आये हुए देवों से उन लोगों ने निमि को जीवित कर देने की प्रार्थना की। देवों ने ऋत्विजों की प्रार्थना को स्वीकार करके राजा को जीवित कर दिया किन्तु निमि ने कहा- मुझे अब देह का बन्धन नहीं चाहिये। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी देह-योग नहीं चाहते। जब यह छूट गया तो छूट जाने दीजिये पुन: मैं इसे नहीं धारण करूँगा। सृष्टि में सर्वत्र मृत्यु का भय है। इससे छुटकारा पाने के लिये ऋषि-मुनि भगवान के चरणों का ध्यान करते हैं। यह तो भगवत्कृपा है कि मेरा शरीर अनायास छूट गया। अब मुझे देह का बन्धन नहीं चाहिये। देवताओं द्वारा प्रेरणा दिए जाने पर राजा निमि ने कहा- मेरे विचार में शरीर और आत्मा के वियोग में ही दु:ख होता है, अत: मैं अब फिर शरीर ग्रहण करना नहीं चाहता। समस्त लोगों के नेत्रों में वास करना चाहता हूँ।

इस पर देवता बोले- निमि विदेह (शरीर धारण के बिना) ही रहकर प्राणियों के नेत्रों में निवास करें। वे वहाँ रहकर सूक्ष्म शरीर से भगवान का चिन्तन-ध्यान करते रहे। पलक उठने और गिरने से इनके अस्तित्व का पता चलता रहेगा।

निमि ने देवताओं की यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद महर्षियों ने यह सोचकर कि राजा के अभाव में सर्वत्र

अशान्ति मच जायेगी, निमि के शरीर का मन्थन किया। उस मन्थन से एक सुन्दर कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेने के कारण उसका नाम रक्खा गया जनक। विदेह से उत्पन्न होने के कारण वैदेह और मन्थन से उत्पन्न होने के कारण उसी बालक का नाम मिथिल हुआ। उन्होंने ही मिथिला नगरी बसाई थी। राजा के ऐसा कहने पर देवताओं ने उनको समस्त जीवों के नेत्रों में अवस्थित कर दिया। तभी से प्राणी निमेषोन्मेष (पलक खोलना और बंद करना) करने लगे हैं। इसके पश्चात् अराजकता के भय से मुनिजनों ने पुत्रहीन राजा निमि के शरीर को अरणि से मथा जिससे एक कुमार उत्पन्न हुआ। मंथन से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम मिथिल प्रसिद्ध हुआ।

तनु तजि मित्रावरुण वीर्यतें प्रकटे मुनि पुनि। निमिहू नेत्रनि माँहि बसहिँ नित पलक निमिष बनि।।
निमिको मृतक शरीर मथ्यो वैदेह भये सुत। आदि जनक मिथिलेश मुक्त जीवन समाधियुक्त।।
तबतैं निमि वंशी नृपति, जनक विदेह कहाहिँ सब। क्षणभंगुर समुझें सबहिँ, राज पाट वाहन विभव।।

शुकदेव बोले- राजन्, मृतक निमि के देह के मन्थन करने पर जो पुत्र हुआ, वह जन्म लेने से जनक, विदेह से उत्पन्न होने से वैदेह और मन्थन करने से उत्पन्न होने के कारण मिथिल, नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी ने मिथिला नाम की पुरी बसाई।

जनक के पुत्र उदावसु हुए। उदावसु के पुत्र नन्दिवर्धन, उसका पुत्र सुकेतु, उसका पुत्र देवरात, उसका पुत्र बृहद्रथ, उसका पुत्र महावीर्य, उसका पुत्र सुध्रति, उसका पुत्र धृष्टकेतु, उसका पुत्र हर्याश्व, उसका पुत्र मरु था। मरु का प्रतीपक, उसका पुत्र कृतिरथ, उसका पत्र देवमीढ़, उसका पुत्र विश्रुत, विश्रुतका पुत्र महाधृति था। महाधृति का पुत्र कृतिरात, उसका पुत्र महारोमा, उसका स्वर्णरोमा, उसका पुत्र ह्रस्वरोमा। इसी वंश में आगे चलकर ह्रस्वरोमा के पुत्र सीरध्वज और कुशध्वज हुए। एक समय सीरध्वज यज्ञ के लिये भूमि जोत रहे थे। उसी समय उनके सीर (हल) के अग्रभाग से सीताजी पैदा हुईं।

उन्निस पीढ़ीमाँहिँ ऱ्हस्वरोमा जनमे सुत। सीरध्वज तिनि पुत्र जगतमहँ परम् कीर्ति युत।।
जनकदुलारी मैथिली, जनकसुता सीता सती। वैदेही जनकात्मजा, जिनहिं जपहिँ जोगी जती।।
सीरध्वज मख करन भूमि शोधन हित आये। ऋषि मुनि ज्ञानी विप्र शोधिवे तहाँ बुलाये।।
शोधी सब ने भूमि जनक हल तहाँ चलायो। तबहिँ अवनि तैं प्रकटि सीय निज रूप दिखायो।।
सीर माँहि सीता भई, लखि कृतार्थ नृप ह्वै गये। पाली पुत्री मानिकें, सीरध्वज तातैं भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज ऱ्हस्वरोमा के सीरध्वज उत्पन्न हुए। वे महाराज सीरध्वज एक बार यज्ञ के लिये हल से पृथ्वी जोत रहे थे उसी समय उनके हल की फार (सीर) के अग्रभाग से सीताजी भूमि से उत्पन्न हो गयीं। इसीलिये उनका नाम सीरध्वज प्रसिद्ध हुआ।

शक्ति के बिना शक्तिवान् कुछ कर नहीं सकता। सभी कार्य शक्ति के द्वारा ही सम्पन्न होते है। शक्तिशाली ही सब कुछ कर सकते हैं, जिन्होंने जन्म जन्मान्तरों में सुकृत किये हैं, ऐसे सौभाग्यशाली पुरुषों के ही यहाँ शक्ति प्रकट होती हैं। शक्ति के आधार पर ही सम्पूर्ण विश्व टिका हुआ है।

आदि शक्ति हैं सीय जगत छिन माँहि बनावें। पाले पोसें सतत अन्तमहँ प्रलय करावें।।
यह प्रपंच सब शक्ति को, क्रीड़ा-थल ऋषि मुनि कह्यो। जगदम्बा के पिता बानि, सीरध्वज अति यश लह्यो।।

भये योगिनी संग जनक नृप के प्रश्नोत्तर। योग ज्ञान अध्यात्मयुक्त सुन्दर अति सुखकर।।
दोनों ज्ञानी परमज्ञान की गंङ्ग बहाई। जनक त्याग तप तेज निरखि सुलभा हरषाई।।
पुत्र कृतध्वजमाँहि भये केशिध्वज ज्ञानी। भूप मितध्वज तनय भये खाण्डिक्य अमानी।।
केशिध्वज अध्यात्म ज्ञानमहँ बिदित दिवाकर। कर्म तत्त्व परवीन नृपति खाण्डिक्य उजागर।।
क्षत्रिय धर्म कठोर अति, समर उभयदलमहँ भयो। हार्‍यो लघु खाण्डिक्य नृप, डरिकें बनमहँ भगि गयो।।

शुकदेव बाले- राजन्, महाराज जनक के कृतध्वज और मितध्वज दो पुत्र थे। तिनमें कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज हुए और मितध्वज के पुत्र हुए खाण्डिक्य। इनमें केशिध्वज आत्मविद्या विशारद थे। राजन्, सीता पिता महाराज सीरध्वज के सुत कुशध्वज हुए। उनके पुत्र धर्मध्वज हुए। धर्मध्वज के दो पुत्र हुए। उनमें से एक का नाम कृतध्वज और दूसरे का नाम मितध्वज था।

खाण्डिक्य भी ज्ञानी तो थे ही किन्तु वे कर्मकाण्ड के विशेष ज्ञाता थे कर्मकाण्ड के विषय में उनकी सर्वत्र ख्याति थी।

ज्ञानी पुरुष भी आसक्ति छोड़कर निष्काम भाव से लोक संग्रहणार्थ यज्ञ यागादि पुण्य कर्म करते ही रहते हैं। यह न करें तो काल क्षेप कैसे हो। यज्ञ, दान, तप ये तो मनुष्य को पावन बनानेवाले हैं इनका तो कभी परित्याग करना ही न चाहिये। आत्मविद्या विशारद महाराज केशिध्वज सदा यज्ञ याग आदि पुण्य कार्यों में लगे ही रहते थे।

इत केशिध्वज कर्‍यो यज्ञ इक अतिशय भारी। सिंह यज्ञ की धेनु खाई सब बात बिगारी।।
पूछो प्रायश्चित्त सबनि खाण्डिक्य बताये। तिन ढिँग भूपति गये वृत्त सब तिनहिँ सुनाये।।
प्रायश्चित्त सुन्यो जनक, आइ कर्‍यो विधिवत स कल। सोच्यो गुरु खाण्डिक्यकूँ, दई दक्षिणा नहिँ विपुल।।

केशिध्वज का पुत्र भानुमान तथा उसका पुत्र सद्युम्न था।

जगमहँ जीवन मुक्त नृप, केशिध्वज हू ह्वै गये। तिनके पीछे तनय तिनि, भानुमान भूपति भये।।

उसके शुचि, उसके पुत्र सनद्वाज, उसके पुत्र ऊर्ध्वकेतु, उसके पुत्र अज, उसका पुरुजित, उसका पुत्र अरिष्टनेप्रि, उसका पुत्र श्रुतायु, उसके पुत्र सुपार्श्वक, उसके पुत्र चित्ररथ उसके पुत्र क्षेमधि हुए। मितध्वज के खाण्डिव्य थे। खाण्डिव्य के कर्मकाण्डका मर्मज्ञ था। वह केशिध्वज से भयभीत होकर भाग गया। चित्ररथ, से समरथ, समरथ से सत्यरत, उसके उपगुरु, उपगुरु के उपगुप्त, उपगुप्त के वस्वनन्त, उसके पुत्र युयुध, उसके सुभाषण उसके पुत्र श्रुतु उसे पुत्र जय, उसके विजय, विजय के ऋतु, उसके शुनक, उसके वीतहव्य, उसके पुत्र धृति उसके पुत्र बहुलाश्व, उसके पुत्र कृति उसके पुत्र महावशी थे। बहुलाश्व और अन्त में महावशी नाम के ज्ञानी राजा हुए।

परीक्षित, मिथिल के वंश में उत्पन्न ये सभी नरपति मैथिल कहे जाते हैं। इन्हें जनक भी कहा जाता है। ये सब-के-सब आत्मज्ञान से सम्पन्न थे। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी ये सभी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से विमुक्त थे। इसका कारण यह था कि इन राजाओं पर याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरों की बड़ी कृपा थी।

जनक वंशको विमल चरित अति सुखद सुनायो। तिहिँ जगमहँ यश ज्ञान दानदैं विपुल कमायो।।
प्रकटी आद्या शक्ति अमर कुल भयो भुवनमहँ। करन जीवन कल्यान फिरी प्रभु संग वन वनमहँ।।
यों विकुक्षि निमि वंश की, कही कथा अति सुखमयी। दण्डक तीसर तनय की, सुनहु कथा अब दुखमयी।।
सुत इक्ष्वाकु तृतीय गयो दण्डक वनमाँही। शुक्रसुता लखि भई विकलता अति मनमाँही।।
अनुचित करि प्रस्ताव कुपित कन्या तिनि कीन्हीं। भयो काम वश शिखा पकरि कन्या की लीन्हीं।।

गुरु की कन्या द्विजसुता, विरजा संगमतैं रहित। बुद्धि भ्रष्ट नृप की भई, करि अनुचित कीयो अहित।।

दण्डक दक्षिण देश में राज्य करते थे। राजा कुलीन था पर इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं थी। भगवान शुक्राचार्य उनके पुरोहित थे। एक दिन महाराज दण्डक वन में गये। वहाँ पर वन की शोभा देखने शुक्राचार्य की पुत्री विरजा आयी हुई थी। वह कुमारी थी, इतनी सुन्दर थी, आकर्षक थी कि स्वर्गीय अप्सरा भी उसके समाने लज्जित हो जाती थी। वह पृथ्वी की लक्ष्मी थी। बाल्यावस्था से यौवनावस्था में पदार्पण किया था। जिसका सौरभ पराग अभी विस्फुटित न हुआ हो। वह अपनी नारी सुलभ चंचलता से इठलाती हुई वन में घूम रही थी। राजा दण्डक उसके अनवद्य सौन्दर्य को देखकर काम बाण से बिद्ध हो गया और उसका मन अपने अधीन न रहा। उसके समीप आकर उससे पूछने लगा- भामिनी, तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? किसकी पत्नी हो? इस अकेले वन में क्या कर रही हो? तुम कोई साक्षात स्वर्गीय देवी ही हो। शुक्राचार्य पुत्री बोली- मैं आपके कुल पुरोहित शुक्राचार्य की पुत्री हूँ और मैं अविवाहिता हूँ। राजा दण्डक अधीर होकर बोले- देवी, मैं इस देश का राजा हूँ। तुम्हारे सौंदर्य पर मुग्ध हूँ। मैं अधीर हो रहा हूँ, काम मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रहा है। तुम मेरे ऊपर कृपा कर प्राणदान दो। उस कन्या ने कहा- राजन्, आपके मुखसे ऐसे शब्द शोभा नहीं देते। ऐसी बात आपको कभी मनमें भी नहीं सोचनी चाहिए। मैं आपकी पुत्री के समान हूँ। आप मेरे पिता के शिष्य है। आपको मन में मेरे प्रति बुरे भाव नहीं लाना चाहिए। कैसा भी कामी हो पुत्री और बहन के प्रति वह बुरे भाव मन में नहीं लाता। आप मेरे पिता से इसके लिये स्वीकृति ले। राजा दण्डक बोले- मैं अपने वश में नहीं हूँ, मेरा मन तुझमें फँस गया है। प्रेम अन्धा होता है, उसमें नियम रहता नहीं। विरजा बोली- तुम स्वयं अपनी मृत्यु को क्यों निमंत्रण दे रहे हो, तुम अपना हित सोचो। मेरे पिता को तुम्हारे बातोंका पता लग जायेगा तो वे तुम्हारा सर्वस्व नाश कर देंगे। राजा बोले- वरवर्णिनी, मुझे मरना भी पड़े तो मैं मृत्यु को, राज्य को, धन को तुम्हारे सामने तृण के सदृश भी नहीं समझता। कन्या क्रोध में भरकर बोली- कुत्ता कहीं का। ऐसा अनुचित प्रस्ताव करता है और शीघ्रता से जाने लगी। राजा की तो बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उसके कालने उसके पाप में प्रेरित किया। उसने जाती हुए कन्या के साथ एकान्त देखकर बलात्कार किया और फिर वह राजा चला गया। कन्या लज्जा से सिकुड़ी हुई रोती-चिल्लाती अपने पिता के पास गयी। पिता ने उसकी दशा देखी और योगदृष्टि से सबकुछ समझ गये। क्रोध में आकर मुनि ने शाप दिया- जिस क्रूरकर्मा नीच निर्लज्ज कामी राजा ने ऐसा जघन्य पाप किया उसका राज्य नष्ट हो जाय, उसके राज्य में एक भी पशु पक्षी न बचे। सात दिन तक तप्त बालू की वर्षा हो, वृक्ष भी वहाँ न रहे, सम्पूर्ण राज्य बालुकामय अरण्य बन जाय। मुनि का शाप असत्य तो हो नहीं सकता। सात दिन, सात रात्रि तक दण्डक के सम्पूर्ण राज्य में तप्त बालू की वर्षा हुई। उसका राज्यपाट, कोष, सेना, मन्त्री सब-के-सब नष्ट हो गये। दण्डक का राज्य वन बन गया और वह दण्डक वन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

लज्जित पितु ढिँग गई शुक्रतनया जब रोवति। दुहिता देखी दुखित कुपित तब भये शुक्र अति।।
दयो शाप नृप राज नष्ट ह्वै जावै सबई। बरसी बालू तप्त भयो दण्डकवन तबई।।
घोर पापतैं पलकमहँ, धूरि माँहिँ वैभव मिल्यो। नष्ट भयो परिवार सब, फिरि दण्डक कुल नहिँ चल्यो।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, अब मैं तुम्हें चन्द्रमा के पावन वंश का वर्णन सुना रहा हूँ। इस वंश में पुरूरवा आदि महान् पवित्रकीर्तिवाले राजा हुए।

भगवान नारायण के नाभि-कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के पुत्र हुए अत्रि। अत्रि अपने गुणों के कारण ब्रह्माजी के समान थे। उन्हीं अत्रि के नेत्र से अमृतमय चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।

चन्द्र वंश

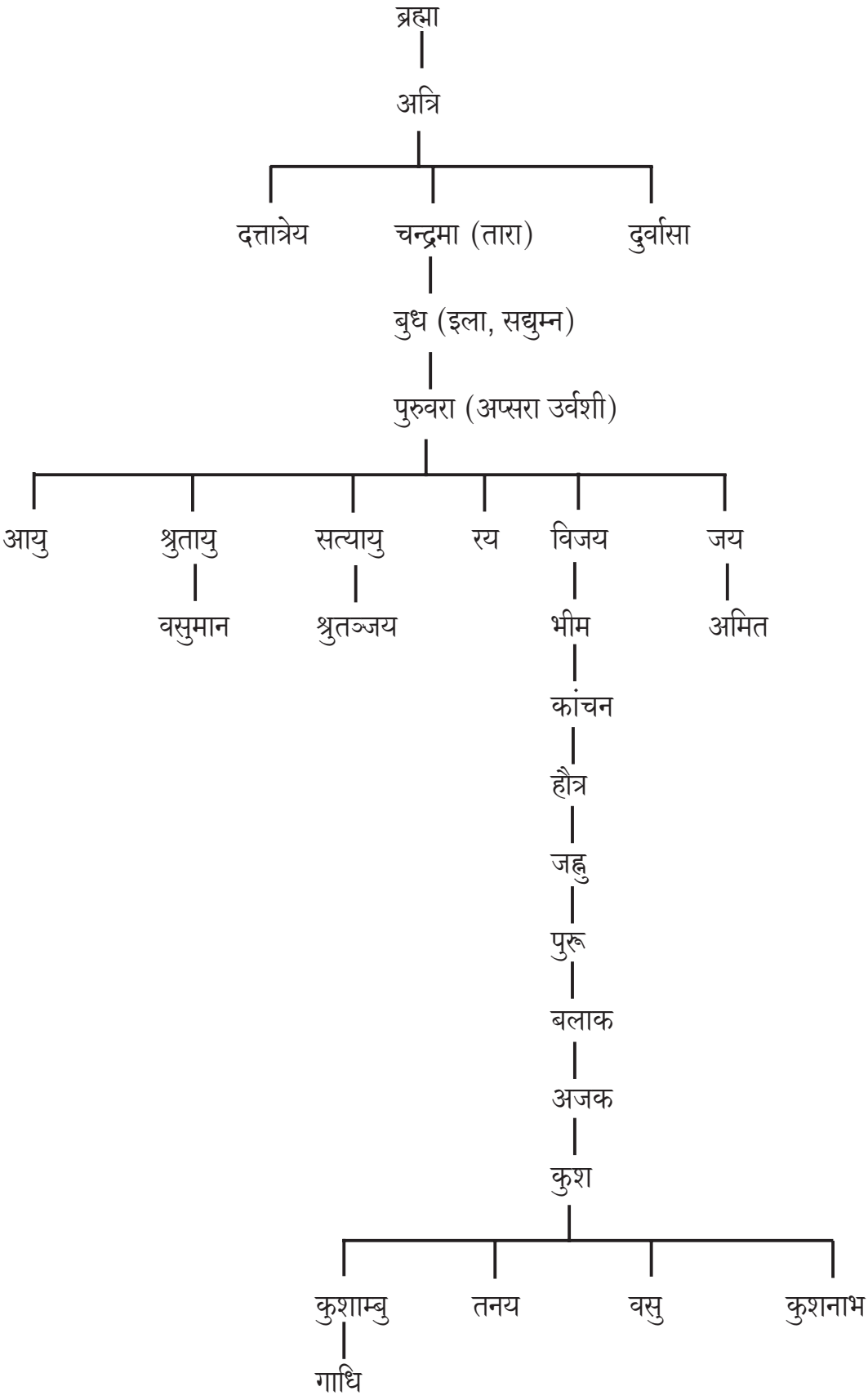
ब्रह्मा
अत्रि
दत्तात्रेय
चन्द्रमा (तारा)
दुर्वासा
बुध (इला, सद्युम्न)
पुरुवरा (अप्सरा उर्वशी)
आयु
श्रुतायु
सत्यायु
रय
विजय
जय
वसुमान
श्रुतञ्जय
भीम
अमित
कांचन
हौत्र
जह्नु
पुरू
बलाक
अजक
कुश
कुशाम्बु
तनय
वसु
कुशनाभ
गाधि

१२) चन्द्रवंश का वर्णन

चन्द्रवंश में पुरुरवा, भये नृपति महाभाग। ब्याह उर्वशी संग कियौ, करते अति अनुराध।।

चन्द्रवंश भी सूर्यवंश की तरह पराक्रमी राजाओं से परिपूर्ण है। चन्द्रवंश का उदय पुरुषार्थ एवं परमार्थ के आधार पर हुआ है। महर्षि अत्री की नेत्र ज्योति से अमृतमय चन्द्रमा का उदय हुआ है।

चतुरानन ब्रह्माजी के पुत्र अत्री उन्हीं के समान गुणवान थे। जैसे ब्रह्माजी ने मानसिक पुत्र उत्पन्न किये महर्षि अत्री ने भी अपने नेत्रों की ज्योति से चन्द्रमा का प्राकट्य किया। चन्द्रदेव भी अपने पिता की तरह तेजस्वी और प्रतापी थे। श्री ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों और नक्षत्रों का अधिपति बना दिया था। चन्द्रदेव ने अपने पराक्रम एवं प्रतिभा से लोक-लोकान्तरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। चन्द्रमा बहुत सुंदर थे।

सोम- प्राचीन काल में महर्षि अत्रि ने तीन हजार दिव्य वर्षों तक अपनी भुजाएं उठाकर काष्ठ, दीवार और पत्थर के समान निश्चल रहकर, किसी भी प्राणी को बिना दु:ख पहुंचाए अनुत्तर नामक परम उत्कृष्ट तप किया था। परम कांतिमान महर्षि का तेज नेत्रों से जल रूप में बह निकला और दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ आकाश में चढ़ने लगा। तब प्रसन्न हुई दिशाओं की देवियों ने उसको विधिपूर्वक धारण किया। किंतु वे उस तेज को धारण करने में असमर्थ रहीं। तब वह दिव्य तेज दिक्-देवियों के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह सोमरूपी तेज ब्रह्मा ने लोककल्याण की भावना से रथ पर रख लिया। वह रथ वेदमय, धर्मस्वरूप तथा सत्य से नियंत्रित था। उसमें एक हजार श्वेत घोड़े जुते हुए थे। उस रथ में बैठे हुए आसमुद्र पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा करते हुए सोम का जो तेज पृथ्वी पर टपकने लगा, उस तेज से प्रकाशपूर्ण औषधियां उत्पन्न हुईं। उन औषधियों के द्वारा भगवान सोम सभी प्रजाओं का पालन करते हैं। कालांतर में ब्रह्मा ने चंद्रमा को औषधि, ब्राह्मण एवं जल का राजा बना दिया।

ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को ब्राह्मण, औषधि और नक्षत्रों का अधिपति बना दिया। चन्द्र ने त्रिलोकी पर विजय प्राप्त करके राजसूय यज्ञ किया। इससे उनका घमण्ड बहुत बढ़ गया था। फलत: उन्होंने देवगुरु बृहस्पति की अतिसुन्दरी स्त्री तारा का बलपूर्वक हरण कर लिया। इसी तारा को लेकर गुरु बृहस्पति और चन्द्रमा में बहुत बड़ा वाद-विवाद हुआ। बृहस्पति बड़े दार्शनिक थे। चन्द्रमा चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा से अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। इसका आचार्यत्व करने के लिए गुरुदेव बृहस्पति जी सपत्नि पधारे थे। सानन्द यज्ञ समाप्ति पर जब गुरूदेव विदा होने लगे तब चन्द्रमा ने बलात् गुरूपत्नी तारा को रोक लिया। गुरूदेव के बार-बार कहने और समझाने पर तारा को वापिस करने से मना कर दिया। गुरूदेव निराश, उदास मन लौट गये। चन्द्रमा महापातकी बनकर गुरूपत्नि का भोग करने लगा।

यौवन, धन, सम्पति और प्रभुता जग माँही। होवे यदि अविवेक सहित तो फल शुभ नाँही।।
यौवनतैं उन्माद, मान धनतैं ह्वै जावै। सम्पति प्रभुता पाइ सबनिकूँ कुटिल सतावै।।
सुन्दरताकी ठसकमहँ, सोम कार्य अनुचित कर्‌यो। यौवन-मद ऐश्वर्यने, सब विवेक तिनको हर्‌यो।।

बुध की उत्पत्ति- शुकदेव बोले- राजन्, अत्रि मुनि के नेत्रों से अमृतमय चन्द्रमा नामक पुत्र हुआ। जिसे ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों, औषधियों और नक्षत्रों का राजा बना दिया। उसने राजसूय यज्ञ के द्वारा भगवान का भजन किया और तीनों लोकों को जीत लिया फिर गर्व से बलपूर्वक बृहस्पतिजी की तारा नामकी पत्नी को हर लिया।

भये ब्रह्मसुत अत्रि चन्द्रमा जनमें तिनिके। विधि कीये पति सर्व ओषधिनि अरु विप्रनिके।।

राजसूय मख कर्‍यो गर्व ते सुरगुरु दारा। बलपूर्वक हरि लई बृहस्पति पत्नी तारा।।
देवासुर संग्राम अति, भीषण तारा हित भयो। कमलासन परि बीचमहँ, निर्णय ताको करि दयो।।

अत्रे ऋषिकी पत्नी सति अनसुइया से विष्णु के अंश से अवधूत दत्तात्रेय, शंकरजी के अंश से परम क्रोधी दुर्वासा मुनि और ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। अमृतमय चन्द्रमा अत्यन्त ही सुन्दर थे। संसार में इनके समान सुन्दर कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं था। चंद्रमा ने एकान्त वन में जाकर घोर तपस्या की और लोक पितामह ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। ब्रह्माजी से वरदान मांगा कि मैं अमृतमय बन जाऊं और संसार में मेरा अद्वितीय ऐश्वर्य हो। ब्रह्मा बोले- हे सोम, आज से तुम अमृतमय होगे, तुम संसार की समस्त औषधियों के, नक्षत्रों और ब्राह्मणों के अधिपति होगे। तुम्हारा अतुल ऐश्वर्य होगा। रूप सौन्दर्य तथा तेज में तुम्हारे समान कोई दूसरा देवता न होगा। वरदान पाकर चन्द्रमा का अभिमान बढ़ गया। चन्द्रमाने ऐश्वर्य की ख्याति के लिये राजसूय यज्ञ किया। सभीने राजसूय यज्ञ में सहयोग लिया। देवता, ऋषि, गंधर्व, यक्ष, राक्षस सभी यज्ञमें पधारे। इतना अतुल वैभव, इतनी अधिक पद प्रतिष्ठा, ऐसा ओज, रूप, सौन्दर्य पाकर चन्द्रमा ऐश्वर्य के मद में मदोन्मत्त हो गये। वे इतने सुन्दर आकर्षक और रूप लावण्ययुक्त थे कि स्त्रियाँ उनको निहारते ही विमोहित-सी बन जाती है। अपने को सर्वश्रेष्ठ समझकर परदाराभिमर्षण भी करने लगे। इनकी लिप्सा यहाँ तक बढ़ गयी कि देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की पत्नी तारा को ये बलपूर्वक हर ले गये।

अत्रि-तनय अद्वितीय सुधर अतिशय त्रिभुवनमहँ। लखें उनहिँ जे नारि, काम प्रकटे तिनि मनमहँ।।
रूप निरखि आसक्त भई मुनि पत्नी सबहीं। निज-निज पति तजि गई समुझि सोमहिँ सरबसहीं।।
अति साहस तब सोमको बढ़्यो पाप मनमहँ धँस्यो। तारा गुरु-पत्नी हरी, रूप परस्पर चित बस्यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, चन्द्रदेव ने त्रिलोकी को जीतकर राजसूय यज्ञ द्वारा भगवान का यजन किया और ऐश्वर्य के अभिमान में भरकर देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का बलपूर्वक हरण किया।

बृहस्पतिजी को इससे बड़ा दु:ख हुआ। इन्द्रादि देवोंने मध्यस्था की किंतु चन्द्र ने तारा को देना स्वीकार नहीं किया। बृहस्पति गुरु व अन्य देवता चन्द्रमा से लड़ने के लिये तैय्यार हो गये। असुरों के कारण शुक्राचार्य गुरु बृहस्पति से द्वेष रखते थे इसलिये चन्द्रमा का पक्ष लिया। शिवजी अंगिरा मुनि से ब्रह्मविद्या पढ़ी थी, अंगिरा और बृहस्पति गुरु भाई थे इसलिये उन्होने बृहस्पति का पक्ष लिया। दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। ब्रह्माने देखा अकारण एक स्त्री के पीछे सृष्टि का संहार हो रहा है। अत: वे दौड़कर युद्ध भूमि में आये। इस देवता और असुरों का विनाश करनेवाली युद्धको रोकने की प्रार्थना करी। ब्रह्मा चन्द्रमा को डाँटकर बोले- तुम इतने बड़े जगत् पूज्य देव होकर ऐसा अन्याय का काम करते हो। तुम्हें अपने इस काम पर लज्जा आनी चाहिये। यह सर्वथा अन्याय है। गुरुपत्नी तारा को अभी लाकर गुरु बृहस्पति को दो। ब्रह्मा के कहने पर चन्द्रमा ने तारा को लाकर बृहस्पति को दे दिया।

बृहस्पतिने देखा तारा तो गर्भवती है। यह देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और क्रोधसे तारा को बोले- मेरे क्षेत्र में यह किसने बीज बो दिया है। मैं तुम्हें शाप देकर भस्म कर दूँगा। तू इस अन्य से स्थापित गर्भ का तुरन्त त्याग कर दे। तारा डर गयी। उसने तुरन्त उस तेजपुञ्ज गर्भ को वहीं मन्त्रबल से त्याग दिया। सबने देखा एक परम तेजस्वी तेजपुंज बालक दसों दिशाओं में अपने आलोक से आलोकित करता हुआ चारों तरफ निहार रहा है। गर्भ में ही उसे ज्ञान था। वह असाधारण बालक था। ऐसे सुन्दर बालक को देखकर बृहस्पति का मन चल गया। बृहस्पतिने सोचा हो न हो यह मेरे ही द्वारा स्थापित

गर्भ का पुत्र है। वे सबसे कहने लगे यह मेरा क्षेत्रज पुत्र है, मेरा वीर्यज भी पुत्र है। इसपर मेरा अधिकार है। चन्द्रमा अपना अधिकार बताने लगे। तारा सुत के लिये वाद-विवाद युद्ध छिड़ गया। तारा लज्जा के मारे चुपचाप एक ओर खड़ी थी। तेजपुंज कुमार को बड़ा क्रोध आया। उसने सोचा इतने बड़े समाज में मेरा अपमान हो रहा है। सब लोग मेरे लिये हंस रहे हैं कि इसके बाप का पता नहीं। वह क्रोध करके अपनी माता से बोला- मिथ्या लज्जा को छोड़ो। सत्य बता दो कि मेरा पिता कौन है? ब्रह्माजी ताराको एकांत में ले गये और पूछा- पुत्री, सत्य बता यह किसका पुत्र है? ताराने अत्यन्त लजाते हुए मन्द स्वर में तारा ने कहा- यह तो चन्द्रमा का ही है। फिर ब्रह्मा ने निर्णय लिया- इस पुत्र का अधिकारी तो चन्द्रमा ही है। बुद्धिमान होने से ब्रह्मा ने इसका नामकरण बुध किया।

गर्भवती गुरुनारि गर्भ निज त्याग्यो तबहीं। मेरो मेरो करै चन्द्र गुरु सुत हित जबही॥
बालक डाँटी मातु सत्य तू च्यौं न जतावै। तारा बिधितें कही सोम ही सुतकूँ पावै॥
निशानाथकूँ सुत दयो, बुध ब्रह्माने नाम धरि। चन्द्रवंश थापित कर्‌यो, इलासङ्ग सम्बन्ध करि॥

इस घटना का स्फुरण हुआ, चर्चा का विषय बन गया। दैत्यगुरू शुक्राचार्य देवगुरू बृहस्पति से वैमनस्यता मानते थे। ठीक समय समझकर उन्होंने चन्द्रदेव का पृष्ठपोषण कयिा। दैत्यों का सम्बल उसे दिखा दिया। शुक्राचार्य के हस्तक्षेप से उन्हें भी क्रोध आ गया और अपनी भूत, पिशाच, वैताल, अक्षिणी, भक्षिणी, रक्षिणी सेना लेकर पहुँचे गये चन्द्रलोक। सेना के आगमन की सूचना गुरू शुक्राचार्य को भी लग गयी। उन्होंने भी दैत्य सेना को सुसज्जित करके समरांगण में भेज दिया।

देवराज इन्द्र भी गुरू बृहस्पति का पक्ष लेकर समस्त देव सेना को सुसज्जित करके युद्ध क्षेत्र में आ गये। दो पक्ष आमने-सामने युद्ध के लिए आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हैं। शुक्राचार्य जी की देवताओं में परस्पर संघर्ष कराने की योजना सफल होने लगी। युद्ध के नगाड़े बजने लगे। जयघोषों से गगन गुंजायमान होने लगा। हाथी चिंघड़ने लगे, रथ और घोड़े गिरने लगे। चण्डिका रक्त पान करने लगी। लाशों के अम्बार दिखने लगे।

महर्षि अंगिरा अपने पुत्र बृहस्पति के कारण सुर-असुर सेना का संहार देख परम-पिता ब्रह्मा के समीप गये और बोले- पिताश्री। आप दृष्टा बने हुए हैं आपके सामने आपकी सृष्टि का संहार हो रहा है। युद्ध की यदि यही स्थिति रही तो देव और दैत्यों का केवल नाम शेष रहेगा। आपको इसमें हस्तक्षेप करना सर्वथा अभीष्ट है। पितामह आवेश में आये और हंस पर बैठ चन्द्रलोक पहुँच गये। ब्रह्माजी को आया देख चन्द्रमा सहम गया। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को कटु वचनामृत से तृप्त कर दिया। साथ ही अधिपति पद से हटाने की धमकी भी दे डाली।

बृहस्पति के बार-बार कहने पर भी चन्द्रमा ने तारा को नहीं लौटाया। इसके लिये देवों और दानवों में महान् संघर्ष हुआ। दानव, चन्द्रमा का पक्ष लेकर लड़ रहे थे। महादेव और इन्द्र बृहस्पति के पक्षधर थे अन्त में अंगिरा ऋषि के कहने पर ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को डाँट-डपट कर तारा बृहस्पति को दिला दी। उस समय तारा गर्भवती थी। गर्भधारण करने के लिये बृहस्पति ने उसे डाँटा और लज्जित किया। फलत: तारा ने गर्भ त्याग दिया। गर्भ की अवधि पूरी हो चुकी थी अत: उससे एक अतिसुन्दर और तेजस्वी बालक पैदा हुआ। उस बालक को लेने के लिये चन्द्रमा और बृहस्पति में कलह उत्पन्न हो गया। दोनों उस बालक को लेना चाह रहे थे। चन्द्रमा ने तारा को वापिस कर दिया। युद्ध विराम की घोषणा हो गयी। देवसैना विजयोल्लास मानते वापिस चली गयी।

तारा गुरू बृहस्पति के सानिध्य में रहने लगी- शनै: शनै: इस रहस्य से आवरण हटा कि तारा गर्भवती है किन्तु उसने यह

स्पष्ट नहीं किया कि यह था किसके संसर्ग से। गुरूदेव चिन्तित हो गये, मुख मलीन हो गया। चिन्तन करने लगे कि स्त्री को ताड़ित करना असाधुता है। यह वंश की धात्री भी हैं अत: इसका त्यागना भी उचित नहीं होगा। नारी अबला होती है। इसके साथ जो व्यवहार चन्द्रमा ने किया है वह बलात् था- यह तो निर्दोष है।

लेकिन यह पाप-यह कलंक तो नष्ट होना ही चाहिए। सहसा आक्रोशित होकर तारा से बोले- इस पाप से तुम मुक्ति ले लो तभी मेरे साथ रहने योग्य होगी। तारा ने पति आज्ञा गरीयसी मान कर गर्भपात करा दिया लेकिन पतित बालक की स्वर्णिम आभा को देख उसका पालन करने को तैयार हो गये किन्तु उसी समय चन्द्रमा ने उपस्थित होकर उस बालक पर अपना अधिकार जताया। पुन संघर्ष की स्थिति बनने लगी। देवगण एकत्र होने लगे-विवाद बढ़ने लगा। अन्तत: ब्रह्माजी को पुन: आना पड़ा। उन्होंने तारा को एकान्त में ले जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि चन्द्रमा के संसर्ग से यह गर्भ धारण किया था। अत: बालक चन्द्रमा को दिलाकर विवाद शान्त कर दिया। कुशाग्र बुद्धि वाले बालक का नाम चन्द्रमा ने बुध तथा उसे अपना पुत्र घोषित कर दिया।

यह शिला सा वक्ष, ये चट्टान सी मेरी भुजायें। सूर्य के आलोक से दीपित समुन्न भाल मेरा।
सामने टिकता नहीं वनराज पर्वत डोलते हैं। काँपता है कुण्डली मारे समय का व्याल भी है।
अन्ध के तम भाल पर पावक जलाता हूं। बादलों के शीश पर स्यन्दन चलाता हूं।
मर्त्य मानव की विजय का सूर्य हूं मैं।

देवों, ऋषियों और स्वयं उस बालक के कहने पर भी लज्जावश तारा ने कुछ नहीं बतलाया किन्तु जब ब्रह्माजी ने तारा को एकान्त में बुलाकर बहुत समझा-बुझाकर पूछा तो उसने धीरे से कहा कि यह बालक चन्द्रमा का है। इसलिये चन्द्रमा ने उस बालक को ले लिया। बालक की धीर-गम्भीर प्रकृति को देखकर ब्रह्माजी ने उसका नाम रक्खा-बुध। पुत्र के रूप में बुध को प्राप्त कर चन्द्रमा को बड़ी प्रसन्नता हई। मनु की पुत्री थी इला। बुध के द्वारा इला में पुरूरवा का जन्म हुआ। इला का पुत्र होने के नाते पुरूरवा को ऐल भी कहते हैं।

१३) राजा पुरुरवा का चरित्र- पुरूरवा की शूरवीरता से समस्त भूमण्डल गौरवान्वित था। देवलोक में भी देवराज इन्द्र की सभा में देवर्षि नारद ने उसकी उदारता, शयीलता, वीरता, सौन्दर्य का गुणगान किया था। देवलोकवासियों के मन में पुरूरवा के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव बन गये थे। देवांगनायें उसकी एक झलक पाने, उससे मधुर सम्भाषण करने के लिये आतुर दिखायी देती थीं।

देवर्षि नारद द्वारा स्वर्ग में उन महाराज पुरूरवा के रूप, गुण, औदार्य, शील, सम्पति, पराक्रमादि का वर्णन श्रवण करके उर्वशी अप्सरा कामबाण से बिद्ध होकर समीप आई।

एक दिन की घटना है। इन्द्र की सभा में देवर्षि नारद जी पुरूरवा के रूप गुण, उदारता, शील-स्वभाव, वैभव और पराक्रम का वर्णन कर रहे थे। उर्वशी ने उसे सुना। सुनकर वह पुरूरवा पर मोहित होकर उनके पास चली आई। यद्यपि उर्वशी को मित्रावरुण का शाप था भूतल पर चले जाने के लिये अत: उसे भूतल पर जाना भी था किन्तु इसी समय उस सुर-सुन्दरी ने सुना कि पुरूरवा कामदेव के समान सुन्दर हैं अत: वह उनके पास स्वयं आ गई।

शुकदेव बोले- राजन्, उर्वशी को मित्रावरुण का शाप था। इसी कारण वह मर्त्यलोक में आई। महाराज पुरूरवा को कामदेव के समान रूपवान सुनकर उसने धैर्य धारण किया और वह ललना प्रतिष्ठानपुर में उनके समीप आकर उपस्थित हुई।

महर्षि नारायण के उरूओं के स्पन्दन से उत्पन्न उर्वशी, देवलोक की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी, जिसके बिना देवलोक सूना श्रीहीन सा लगने लगता था।

सुनकर जिनकी झमक स्वर्ग की तन्द्रा फट जाती थी। योगी की साधना सिद्ध की नींद उचट जाती थी।
हिमकण-सिक्त-कुसुम-सम उज्ज्वल अंग-अंग झलमल था। बड़ी बड़ी पलकों के नीचे निद्रा भरी भरी थी।
अंग अंग में लहर लास्य की राग जगानेवाली। नर के सुप्त शान्त शोणित में आग लगाने वाली।।

यह सर्वप्राण उर्वशी महाराज पुरूरवा की बाँहों में सिमट जाने को समुत्सुक थी। उसकी मनोभावनाओं में व्याकुलता है, वेदना है जो कसक कर मुखरित हो उठी थी- चन्द्रलेखा ने सखियों को बताया-

आज सांझ से सखी उर्वशी को न रंच भी कल थी। नृप पुरूरवा से मिलने को वह अत्यन्त विकल थी।
कहती थी यदि आज कान्त का अंग नहीं पाऊँगी। तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊंगी।।

पुरूरवा ने देखा कि देव-सुन्दरी उर्वशी उनके सामने खड़ी है अत: उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़ी ही मधुर वाणी में उससे कहा- सुन्दरी हमारे राजभवन में तुम्हारा स्वागत है। आज्ञा दो। मैं तुम्हारी कौन-सी सेवा करूँ। तुम मेरे साथ विहार करो। हमारा और तुम्हारा यह विहार अनन्त काल तक चलता रहे- यह मेरी कामना है।

महाराज पुरूरवा अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में अपनी सहधर्मिनी महारानी ओशीनरी से पूजन कराके, उसमें आत्मविश्वास जगाके कि वह पत्नीव्रती हैं, निकट उपवन में घूमने निकल गये। प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेते कुछ दूर निकले ही थे कि शुभ्र आकाश में चीत्कार का स्वर सुनाई दिया। मधुर स्वर में कारूणिक क्रन्दन। सहसा उस ओर ध्यान गया। साहसी था, वीर तथा प्रजापालक था अत: उस नीरव वन की ओर लपके जिधर से यह नारी चीत्कार का स्वर आ रहा था। देखा- अप्सरायें वेदनाके स्वर से बचाओ-बचाओ चिल्ला रही थीं।

टूटा लुब्ध श्येन-सा हमको त्रास अपरिमित देकर। और तुरन्त उड़ गया उर्वशी की बाहों में भरकर।
सुनी पुकार तभी राजा ने, दौड़े उसे अविलम्ब बचाने। मुक्त हुई उर्वशी हमारी उस दिन काल कवल से।।

आकाश में बिहार करती अप्सराओं की टोली पर एक भयंकर दैत्य बलात् आक्रमण कर परम सुन्दरी उर्वशी को अपने बाहुपाश में भरकर ले जाने लगा। अप्सरायें चिल्लाई, रक्षा की पुकार करने लगीं। पुरूरवा ने दैत्य का पीछा किया। उर्वशी को मुक्त कराकर अप्सराओं को अभयदान दिया किन्तु वह महावीर भी जिसके भय से सिंह और गजराज भी हिंसा करना भूल जाते थे, चट्टानसा दृढ़ संकल्पी उस अप्सरा के सौन्दर्य को देखकर विचलित हो गया, स्पर्श कर रोमांचित हो गया। उर्वशी उर में बसी राजा विकल्पित हो गया। उर्वशी की कामना पूर्ण होने के कारण आनन्दित हो गयी किन्तु साथ सखियों के संकोचवश गन्दमादन पर्वत पर पुन मिलने का आश्वासन देकर चली गयी। राजा विचारमग्न हो चिन्तन करने लगे- प्रेम एक मन से दूसरे मन के साथ एकाकार होने का सबसे सहज, सबसे स्वाभाविक उपाय है प्रेम में भूत से ऊपर उठकर भूतोत्तर होने की शक्ति होती है। प्रेम में डूबकर अरूप का संधान करने की प्रेरणा होती है। उर्वशी प्रेम प्रेरणा का स्त्रोत हैं वह तो प्रेम पदुप का बीजारोपण करके चली गयी।

सुरपुर की कोमुदी कलित कामना इन्द के मन की। सिद्ध, विरागी की समाधि में राग जगानेवाली।
देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली। रति की मूर्ति रमाकी प्रतिमा तृषा विश्वमय नर की।
विधु की प्राणेश्वरी, आरती शिखा काम के कर की।

सहसा प्रहरियों के आने से ध्यान भंग हो गया। राजा महलों में समय की प्रतीक्षा में चिन्तित रहने लगे निर्धारित समय पर

पुरूरवा हिमालय पर पहुँच गये। उर्वशी भी आश्वासन के अनुरूप आ गयी और राजा से बोली-

पुरुरवा नरश्रेष्ठ। गहो राह निजपुर की। नर के लिए अलभ्य भोग्या हूँ सुरपुर की।।

मैं तुम्हारे स्निग्ध स्नेह के कारण चली आई हूँ। मेरे उपासक देवलोक में निवास करते हैं। मृत्युलोक के वासी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। राजा ने तुरन्त उत्तर दिया- हो सकता है लेकिन वह अप्राप्य वस्तु मेरी बाहों में है जो तुम्हारे कथन की सत्यता पर प्रश्न चिह्न लगाती है।

उर्वशी सहम गयी और योगियों की योगस्थली, सन्तों की साधना भूमि देव किन्नरों की रमण वाटिका में भाव बदल कर पुरुरवा का पुरुषत्व जागृत करने लगी- पुरुरवा उर्वशी की तपन का अहसास कर रहे थे उसके मनोभावों का मनन कर रहे थे, सहज मानव धीर और गम्भीर होता है। उर्वशी की असाधारण चेष्टाओं को सहन कर रहे थे किन्तु मानव मन सहज चंचल भी है। स्वयं अपनी उलझन और उसका समाधान सोच रहे थे-

पर न जाने बात क्या है?

इन्द्र का आयुध पुरूष जो झेल सकता है, सिंह से वाहें मिला कर खेल सकता है।

फूल के आगे वही असहाय हो जाता, शक्ति रहते हुए निरूपाय हो जाता।

विद्ध हो जाता सहज वंकिम नयन के बाण से, जीत लेती रूपसी नारी उसे मधु मुस्कान से।।

पुरूरवा के मन में द्वन्द्व चल रहा है क्योंकि मनुष्य को द्वन्द्व प्रिय है और द्वन्द्व ग्रस्त रहना उसका स्वभाव बन गया है। वह सुख पाने की कामना तो करता ही है उससे आगे भी कुछ पाना चाहता है। उँगली पकड़कर हाथ पकड़ने की उसकी प्रवृत्ति हो गयी है। नारी के स्पर्श से उसे तृप्ति नहीं होती और न आलिंगन से सन्तोष। यर्थात् में कोई ऐसी अज्ञात शक्ति है जो नर को नारी से और नारी को नर से प्रथक नहीं होने देती। प्रेमी युगल की कल्पना होती है कि इस धरातल को छोड़ किसी ऐसे लोक में प्रविष्ट हो जाय जो किरणोज्ज्वल और वायवीय हो। इन्द्रीय मार्ग से अतीन्द्रिय चिन्तन करना ही इसका आध्यात्मिक पक्ष है। इस मानव द्वन्द्व का साकार रूप पुरुरवा है। इसे द्वन्द्व के दो पक्ष हैं एक है नैतिकता दूसरा है कामुकता। नैतिकता का दबाब है-

दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है। रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।

और कामुकता का पक्ष जब प्रबल होता है तो भाव बनता है।

इस चन्द्रमा को हाथ से धरकर निचोड़ो। पान कर लो उस सुधा को शान्त होलो।।

किन्तु भूत की परम्पराओं एवं भविष्य की कल्पना में मगन हो गया। नारियों में द्वन्द्व कम होता हैं देवियों में द्वन्द्व होता ही नहीं वे तो त्रिकाल निष्णात होती हैं। उर्वशी द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त है। द्वन्द्वातीत होने पर भी अपनी सफलता के लिए संघर्ष तो करती है। वह अप्सरा है और अप्सरायें योगियों के योग को भ्रष्ट करने वाली, तपस्वियों की तपस्या भंग करने वाली होती हैं। उन्हें नैतिकता के मूल्य कब भाते हैं। अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए सब कुछ कर सकती हैं। पुरूरवा के आदर्शों पर प्रहार करती उर्वशी कहती है-

जब तक यह पावक शेष तभी तक सखा मित्र त्रिभुवन तेरा, जब तक यह पावक शेष तभी तक सिन्धु समादर करता है।
सुरपति तभी तक सावधान रहते बढ़कर अपनाने को, अप्सरा स्वर्ग से आती है अधरों का चुम्बन पाने को।

पुरुरवा का अहं भी जागृत हो गया। नैतिकता पराजित हो गयी।

कहे उरवशी- देवि, कौन ललना जग माहीं। जो लखि तुम्हरो रूप होहि बरबस वश नाहीं।।

शुकदेव बोले- राजन्, उर्वशी के प्रस्ताव करने पर महाराज पुरूरवा ने कहा- अहौ देवि। आपका यह मनुष्यों को विमोहित करनेवाला रूप और भव्य भाव कैसा कमनीय है? भला संसार में ऐसा कौन पुरुष होगा, जो अपने आप आई तुम जैसी सुरसुन्दरी का सेवन न करेगा?

ऊर्वशी ने कहा- राजन्, आप की प्रार्थना मुझे स्वीकार्य है, मान्य है। किन्तु इसके लिये मेरी तीन शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि मेरे इन दो भेंड़ के बच्चों की रखवाली करनी होगी। दूसरी यह है कि सम्भोग के अतिरिक्त अन्य समय में मैं आपको मैं नग्न न देखूं। तीसरी और अन्तिम शर्त यह है कि- मुझे घृत-भोजन ही देना होगा। जो पुरुष रूप-गुण आदि के कारण प्रशंसनीय होता है, वही स्त्रियों को अभीष्ट होता है।

प्यारे पुत्र समान मेष बालक द्वै मेरे सँग। पालनतिनिको करहिं न रति तजि लखहुँ नगनअंग।।
घृत को भोजन करहुँ नित, दुख-सुख सब कछु सहुङ्गी। प्रन यादि पूरे भये नहिँ, तो न यहाँ फिर रहुङ्गी।।
सब स्वीकारे नियम उरवशी नृप अपनाये। पाइ ऐल सुरवधू हियेमहँ अति हरषाये।।

राजा ने उर्वशी की इन तीनों शर्तों को सहर्ष स्वीकार कर लिया। प्रारम्भ हुआ उन दोनों का दिव्य स्थानों में उद्दाम काम-विहार। उर्वशी इन्द्र की सभा का रत्न थी। इधर कुछ दिनों से उसकी अनुपस्थिति से स्वर्ग फीका प्रतीत हो रहा था अत: इन्द्र ने उर्वशी को लाने के लिये गन्धर्वों को भेजा। इन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य कर गन्धर्व पहुँचे राजा के पास। उस समय आधी रात की बेला थी। चारों ओर घोर अन्धकार व्याप्त था। पुरूरवा नग्न अवस्था में उर्वशी के साथ उद्दाम काम-क्रीड़ा कर रहा था। वे गन्धर्व उर्वशी के दोनों भेड़ों को, जिन्हें उर्वशी ने राजा के पास धरोहर के रूप में रक्खा था, चुरा कर चलते बने। ले जाने की बेला में भेंड़े चिल्लाने लगीं। उसे सुनकर उर्वशी ने राजा को बहुत फटकारा। उर्वशी बोली- यह दिनमें तो मर्द बनता है किन्तु रात में स्त्रियोंकी भाँति सोता रहता है। उसने उन्हें नपुंसक और कायर तक कह डाला। इस पर पुरूरवा क्रोध में भरकर, नग्न अवस्था में ही, नंगी तलवार लेकर भेंडों की ओर जोर से दौड़ा। गन्धर्वों ने उनके झपटते ही भेड़ों को तो छोड़ दिया। किन्तु वे स्वयं बिजली की तरह चमक उठे। जब राजा भेंड़ों को लेकर लौटे, तब उर्वशी ने उस प्रकाश में उन्हें नग्न अवस्था में देख लिया। उन्हें नग्न देखते ही उर्वशी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सीधे स्वर्ग चली गई और पुरुरवा को छोड़ गयी।

प्रिया वचन सुनि परुष नगन नृप असि लै धाये। करि प्रकाश गन्धर्व मेष तजि तुरत बिलाये।।
जब नृप निरखे नगर उरवशी अति सकुचाई। अन्तरहित ह्वै गई फेरि सुरपुरमहँ आई।।

उर्वशी मयंक का अंग बन गयी। इन्द्रदेव उर्वशी के बिना विकल होने लगे और उर्वशी को बुलाने का उपाय सोचने लगे।

इत सुरपति लखि स्वर्ग उरवशी बिनु घबराये। प्रेरित करि गन्धर्व ऐलपुर माहिँ पठाये।।

अनायास एक रात इन्द्र के अनुचर उर्वशी के भेड़ के बच्चों को चुराकर भागे, मैमने चिल्लाने लगे। उर्वशी जाग गयी।

लै मेषनि गन्धर्व रातिमहँ छिपिकें भागे। सुनिकें तिनिको शब्द उरवशी संग नृप जागे।।

राजा से उनकी रक्षा की पुकार की। राजा को भी निबन्धन की स्मृति हुई और शीघ्रता में बिना वस्त्र धारण किये खड्ग लेकर उन चोर अनुचरों के पीछे दौड़े। मृत्यु भय के कारण अनुचर मैमनों को फेंक भाग गये। राजा जब उनको लेकर कक्ष में आया तो उर्वशी नहीं मिली। अनुबन्ध था इन भेड़ के बच्चों की रक्षा करोगे तथा पलुंग के अलावा कभी आपको नग्न न देखूँ। अनुबन्ध भंग हो गया। उर्वशी चली गयी।

भूपतिकूँ कोसन लगी, चोरनि सुत मेरे हरे। भये व्यर्थ नृप के नियम, लगन समयमहँ जो करे।।

चली गयी उर्वशी। उसके न मिलने पर राजा अधीर हो गया। विक्षिप्त-सा हो गया। वन, कन्दरा, पर्वतों में खोजता फिरा-

उर्वशी तुम हो कहां इतना बता दो, किस विटप की खोह, कन्दरा में समायी,
या किसी वन जन्तु ने तुमकौ शिकारा, या किसी सुरलोक के सुर ने छिपाया,
विश्वस्त हो आवाज दो, मैं हूं सहारा।।

पुरुरवा जब अपनी शयनशाला में लौटे तो देखा कि उर्वशी वहाँ से गायब थी। फिर तो वे उर्वशी के शोक से व्याकुल होकर भूतल पर उन्मत्त की भाँति घूमने लगे।

फिरे नृपति नहिँ लखी तहँ, प्रिया अधिक विह्वल भये। अन्वेषण हित तुरत ही, रोवत वनकूँ चलि दये।।
सुमिरि सुमिरि गुन-रूप भूप रोवें पछितावें। कस्तूरी-मृग-सरिस फिरैं विह्वल डकरावें।।
जड़-चेतन को भेद-भाव भूले भ्रम छायो। पूछें पक्षी-पशुनि पतो कोई न बतायो।।
जाति, वरन, पद, प्रतिष्ठा, सब अभिमान बिसारिकें। इत-उत भूले फिरहिँ हिय, रूप-उरवशी धारिकें।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज पुरूरवा ने जब शय्या पर अपनी प्रिया को नहीं देखा, तब वे अन्यमनस्क हुए उसी में चित्त लगाये शोक से विह्वल होकर, उन्मत्त के सदृश पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

सम्मुख उन्होंने एक जंगली हाथी को आते हुए देखा। उसे देखकर वे बोले- हे बारणेन्द्र, तुम इस वन के ज्येष्ठ-श्रेष्ठ जीव हो। तुम कहीं इधर से जाती हुई मेरी प्रिया को तो नहीं देखा है? देखो उसकी जाँघें तुम्हारी सूँड़ के समान है। हाथी भला क्या उत्तर दे सकता था। इतने में ही एक सिंह आ गया। सिंह के भय से हाथी भाग गया। अब राजा सिंह से ही पूछने लगे- हे केशव, तुमने क्या मेरी प्रिया को देखा है? उसका उदर तुम्हारे उदर के ही सदृश कृश है। सिंह भी राजा की बात को अनसुनी करके एक ओर चला गया। सम्मुख एक लता पर पके-पके बिम्ब के फलों को देखकर राजा बोले- हे बिम्ब, तुमने मेरी प्राणेश्वरी को तो नहीं देखा है? उसकी सबसे मोटी पहचान यह है कि उसके अधर तुम्हारे फलों के ही समान अरुण वर्ण के, स्निग्ध और रसीले हैं। भला कुँदरू क्या उत्तर दे सकता था। उसके नीचे एक मयूर नृत्य कर रहा था। राजा की बात सुनकर उसने नृत्य करना बन्द कर दिया। वह भागकर एक ओर खड़ा हो गया और राजा को चकित दृष्टि से निहारने लगा। तब राजा उससे बोले- हे मयूर। तुम्हारे पंख बड़े चित्र-विचित्र वर्णवाले है। कभी-कभी मेरी प्रिया ऐसी ही साड़ी पहिना करती थी। तुमने कहीं उसे इधर से जाते तो नहीं निहारा है? मयूर यह सुनकर चल दिया। उधर से एक हिरणी आ रही थी। वह यूथ-भ्रष्टा होने से कातर दृष्टि से भयभीत होकर आँखें फाड़-फाड़ कर राजा को निहार रही थी। उसे देखकर राजा बोले- हे मृगी। तुम मुझसे डरो नहीं। मैं वधिक नहीं, दु:खित हूँ, विरही हूँ, अपनी प्रिया द्वार परित्यक्त हूँ। वह मुझे अर्धरात्रि में छोड़कर चली गई है। तुमने उसे देखा हो तो मुझे बता दो, मेरे तन की तपन बुझा दो, मुझे दयिता का सन्देश सुनाकर जीवन-दान दो। उसकी आँखें तुम्हारे ही समान हैं। वह भी बड़ा भीरू है।

मृगी ने भी जब कुछ उत्तर नहीं दिया, तब राजा रोने लगे। वे अपने ही आप बड़बड़ाने लगे- हाय। विधाता मेरे वाम हो गया। मेरे बुरे दिन आ गये। कोई मुझसे बोलता तक नहीं। घूमते-घूमते रात्रि बीत गई। सूर्य चढ़ते-चढ़ते माथे पर आ गये। पृथ्वी तपने लगी। नीचे पाँव, ऊपर सिर जलता है। मुझे भीतर से विरहाग्नि जला रही है। सिंह ताप से तप्त होकर अपनी गुहा में घुस गये, वे अपनी प्रियाओं के साथ सुखपूर्वक बैठे हैं। मैं कहाँ जाऊँ? मेरे लिये तो संसार शून्य है। ये जंगली भैंसे धूप के कारण तालाबों में घुसकर कीच में लोट रहे हैं, अपने ताप को मिटा रहे हैं। मैं किसके अंक में लोटकर अपना

ताप मिटाऊँ? यह चातक प्यास के कारण बार-बार चिल्ला रहा है, जैसे मैं उर्वशी को पाने के लिये पागलों की भाँति प्रलाप कर रहा हूँ। ये वन-गज अपनी-अपनी सूँड़ों में पद्मिनी खण्डों को लिये हुए, उन्हें जल में डुबो-डुबो कर, अपने शरीर को सींचते हैं। यदि कहीं मेरी प्रिया भी मुझे मिल जाती तो उसके कर-कमलों को अपने अंगों पर फिरा कर अपनी विरहाग्नि को बुझाता, उसके कमल-मुख को सूँघकर अपनी तृष्णा को शान्त करता। उसके चरण-कमलों को अंक में रखकर सुखास्वादन करता। उसके अंग की कमल-सरिस गन्ध को सूँघकर अपने विरह-ज्वर को शान्त करता। ये पक्षी ताप से तपित होकर अपने-अपने घोसलों में घुस गये। जैसे यह चिरौटा अपनी चिड़िया के साथ घोंसले में सुखपूर्वक सो रहा है, ऐसे ही यदि मेरी प्रिया मिल जाती तो मैं भी अपने गृह रूपी घोंसलें में सुखपूर्वक सोता। ये पक्षियों के सुन्दर-सुन्दर कोमल-कोमल अंगों वाले बच्चे बार-बार अपनी चोंच घोंसलों से बाहर निकालते हैं, फिर छिपा लेते हैं। इसी प्रकार मेरे बच्चे मेरी प्रिया के बिना तड़प रहे होंगे। ये हिरण घास चरना छोड़कर वृक्षों की छाया में बैठकर जुगाली कर रहे हैं। मैं भी कुछ देर किसी वृक्ष की छाया में बैठकर अपनी प्रिया का चिन्तन कर लूँ। ओहो, यह शिरीष का सघन वृक्ष कितना सुन्दर है। इसके पुष्प उसी प्रकार कोमल और सुखस्पर्शी हैं, जिस प्रकार मेरी प्रिया का प्रत्येक अंग है। किन्तु प्रिया के विरह से दु:खित मुझको यह अच्छा नहीं लगता। हाय, इसकी छाया में भी मुझे शान्ति नहीं। इसकी सुगन्धि मुझे विह्वल बना रही है। आगे कहाँ चलूँ? किधर चलूँ? कहाँ रोऊँ? किससे बातें करूँ? कौन मेरी सुनेगा? कौन मुझे सान्त्वना देगा? मरूँ भी तो कैसे मरूँ? मौत भी मुझसे डर जायगी, नदी भी सूख जायगी, पहाड़ भी मुझे न गिरावेंगे, हिंसक जन्तु भी मुझे न खायँगे। अग्नि मुझे कैसे जलावेगी, जब इतनी प्रबल विरहाग्नि से भी मैं अभी तक नहीं जला? सब मुझ छोड़ गये। कोई मेरी बात का उत्तर नहीं देता। जगत्साक्षी भगवान भुवनभास्कर भी अपनी प्रिया सन्ध्या के रक्तवर्ण के अञ्चल में छिप गये। अब निशादेवी आ गई। हाय। मैं इस रात्रि को कैसे काटूँगा? कहाँ विश्राम करूँगा? कौन मुझे आश्रय देगा? हे देवि निद्रे, तुम्हें बार-बार प्रणाम है। तुम मेरी आँखों में आ जाओ। स्वप्न में ही मैं अपनी प्रियतमा के दर्शन कर लूँ। स्वप्न में भी वह तन्वङ्गी मुझे मिल जाय तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ। हाय, मैं कैसा अभागा हूँ? प्रतिष्ठानपुर का प्रतिष्ठित चक्रवर्ती भूप होकर मैं यहाँ विजन वन में अकेले भटक रहा हूँ। यदि मुझे कोई मेरी प्रजा आकर देखे तो कभी पहिचान नहीं सकती। हाय, यह पूर्ण चन्द्र उदित होकर मुझे खिझा रहा है, मानों मुझे चिढ़ाते हुए कह रहा है- तुम्हारी प्रिया ने अपने मुख की आभा से मुझे फीका-फीका बना दिया था। तुम उसके विकसित मुख को निहार कर मुझे अत्यन्त तुच्छ, हेय और कलमी बताते थे। मैं सुन्दर हूँ या तुम्हारी प्रिया का मुख। मैं इन्हें क्या उत्तर दूँ? बुरे दिनों में मित्र भी दुश्मन बन जाते हैं। सो यह चन्द्र तो मेरी प्रिया के मुख द्वारा पहिले से ही तिरस्कृत है। किन्तु नहीं, नहीं, ये चन्द्र तो मेरे पूज्य हैं। मेरे पिता के भी पिता हैं। अपने पोते पर दया करेंगे, अपनी पौत्र-वधू का पता ये अवश्य मुझे बता देंगे, मुझे मेरी प्रिया से अवश्य मिला देंगे। मेरी प्राणेश्वरी ने इन्हें ददिया ससुर समझकर लज्जा से घूँघट निकाल लिया होगा, वह यहीं कहीं बैठी होगी। ये चन्द्रदेव संकेत द्वारा मुझे अवश्य उसके समीप पहुँचा देंगे। कब उस कमलानना, कमलनयना, कमलाङ्गिनी, कमलगन्धा की अंग-वायु को सूँघूँगा? कब उसके काले-काले घुंघराले कचों से आवृत विकसित मुखकमल को किञ्चित उन्नत करके उसके अधर से नि:सृत अमृत का अतृप्त भाव से पान करूँगा? कब उसकी मृणाल के समान सुन्दर-सुड़ौल कोमल बाहुपाश में आबद्ध होऊँगा? कब उस नीलोत्पल दलाक्षी के बड़े-बड़े विशाल नेत्रों में निज नेत्र गड़ा कर आत्मविस्मृत बनूँगा?

हाय, मेरी प्रिया तो ऐसी निष्ठुर कभी नहीं थी। वह तो कभी स्वप्न में भी मुझ पर क्रोध नहीं करती थी। मैंने आज तक

उसका क्रोधित आनन कभी देखा ही नहीं। वह तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यार करती, पल-पल, क्षण-क्षण मेरी प्रसन्नता का ध्यान रखती थी। उसके मुख-मण्डल पर मैंने आज तक कभी उदासी देखी ही नहीं। रात्रि में कमल मुँद जाता है किन्तु उसका मुख-कमल रात्रि में अधिक खिलता था। दिन में चन्द्रमा म्लान हो जाता है किन्तु उस चन्द्र-मुखी का मुख-चन्द्र दिन में ही अधिकाधिक विकसित होता था। उसकी काली-काली घुँघराली लटें विथुरकर मेरे मुख से लगतीं, तब वह हँस पड़ती। मैं निहाल हो जाता। प्रिये, तुम किस अपराध पर मुझे छोड़ गई? जो हो गया, सो हो गया। अब मैंने अपने किये का आवश्यकता से अधिक दण्ड पा लिया। अब तुम आ जाओ। मुझे दर्शन देकर सुखी बनाओ। संसार में तुम ही मेरी मति हो, तुम ही मेरी गति हो, तुम ही मुझे जिला सकती हो, तुम ही मृत-सदृश मुझे सुधा-पान करा सकती हो, तुम ही मेरी डगमगाती नौका को पार लगा सकती हो, तुम्हीं अथाह समुद्र में डूबते मुझे करावलम्बन दे सकती हो। पहिले भी मैं मर रहा था, तुमने ही रम्भा के साथ आकर अपने देवदुर्लभ दर्शन देकर मुझे जीवन दान दिया था। अब भी तुम आकर मुझे मरने से बचा लो। हाय, तुम तो उत्तर भी नहीं देती। अब मैं क्या करूँ? देखो-देखो यह विभावरी भी बीत गयी। निशा का भी अन्त हुआ। पूर्व सन्ध्या पुन: वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आ गयी। पक्षी अपने घोंसलों में बैठे-ही-बैठे गीत गाने लगे। मेरे गीत की तो उर्वशी ही एकमात्र टेक है। जब तक वह तन्वङ्गी न मिलेगी, मैं इसी गीत को गाता हुआ वन-वन फिरूँगा। इसी प्रकार भटकता-भटकता मर जाऊँगा। दिन हो, या रात्रि हो, मेरे लिये सब समान हैं। निद्रा भी मुझे छोड़कर चली गयी। वह तो उर्वशी की सहेली थी। उसी के साथ वह भी भाग गयी। जब उर्वशी लौटेगी, तभी उसके साथ वह भी लौटेंगी। अब तो विकलता देवी ही एक मात्र मेरा साथ दे रही है, आशा देवी ही हाथ पकड़े मुझे ले चल रही है, अब आशा जहाँ ले जायगी, वहाँ चलूँगा यह कहते हुए राजा ऐल आगे को चल दिये।

बैठें तरु तर तनिक तुरत औचक उठि धावैं। भ्रमवश प्रिया निहारि बढ़ैं आगे गिर जावैं।।
अण्ड-सण्ट कछु बकैं सिड़ी-पागल सम रोवें। निशि-वासन पथ चलें, करें भोजन नहिँ सोवें।।
चलत-चलत द्वादश दिवस, महँ पहुँचे कुरुक्षेत्र ढिँग। भूख प्यास श्रम नींद तैं, भये नृपति के शिथिल अङ्ग।।

एक दिन की घटना है। पुरूरवा ने कुरूक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर उर्वशी को उसकी पाँच सखियों के साथ देखा। उनका मन मचल उठा उर्वशी को अपनी बाहों में भर लेने के लिये। वे बोले- देवि, प्रिये, जरा ठहर जाओ। एक बार मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो। निष्ठुरे, अब आज तो मुझे सुखी बनाकर ही जाओ। क्षणभर ठहरो, आओ हम दोनों एकान्त में कुछ बातें तो कर लें। देवि, अब मेरे इस शरीर पर तुम्हारा अनुग्रह नहीं रहा अत: यह अभी तुम्हारे सामने गिरकर ढेर हुआ जाता है और तुम्हारे देखते-देखते इसे भेड़िये और गीध खा जायेंगे।

अरी प्रिये, तनिक ठहर जाओ, मेरी बात सुन लो। अरी निष्ठुर, आज तो मुझे प्रसन्न किये बगैर मत जाओ। कुछ क्षण बैठकर मेरी वेदना तो सुन लो। अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो अभी अपने शरीर के टुकड़े कर दूँगा और इसे फिर गीद्ध और भेड़िया खायेंगे तुम्हें देखने को नहीं मिलेगा।

इस पर उर्वशी ने राजा को समझाते हुए कहा- तुम पुरुष हो। पुरुष धैर्य खोकर इस प्रकार की बातें नहीं किया करते हैं। स्त्रियों की किसी के साथ स्थाई मित्रता नहीं हुआ करती। स्त्रियों और भेड़ियों का हृदय एक जैसा होता है। स्त्रियाँ निर्दयी होती हैं, क्रूरता तो उनका स्वभाव ही है। तनिक सी बात पर चिढ़ना और खुश होना उनकी प्रकृति है। वे अपना स्वार्थ साधने में चतुर होती है। वे स्वार्थ के लिये पति और भाई का भी वध करा देने से नहीं हिचकतीं। इनके हृदय में तो सौहार्द

है ही नहीं। भोले-भाले लोगों को झूठ-मूठ का विश्वास दिलाकर उन्हें फँसा लेना तो इनके बाँए हाथ का काम है। नये-नये पुरुषों से सम्बन्ध जोड़ना और स्वच्छन्द-चारिता इनकी आदत है। तनिक सी बात पर चिढ़ कर क्रूर बन जाती है। नये नये पुरुषों की चाह से कुलटा तथा स्वेच्छाचारिणी बन जाती है। तो तुम धैर्य धारण करो, घबराओ मत, तुम राजराजेश्वर हो। प्रतिवर्ष के बाद एक रात तुम मेरे साथ विहार करोगे।

कहै उरवशी कामिनी, करैं प्रीति नित स्वार्थ तैं। नष्ट करहिँ सर्वस्वकूँ, भ्रष्ट करहिँ परमार्थ तैं।।

तब तुम्हारे और भी कई सन्तानें होंगी।

छी, छी, इतने कापुरुष न बनो राजन्। मेरी भी मजबूरी समझने की चेष्टा करो धीरज से सुनो-

मैं पाने अधरामृत तेरा देव लोक से आई, किन्तु विवसता कुछ मेरी सुन लो और समझ लो।।

मैं धात्री बनने वाली हूं नन्हें राजकुँवर की, धरो धीर फिर अवश मिलन इसी धरा पर होगा।।

नृपवर, धारो धैर्य, कष्ट कब तक सहोगे। एक बरष पश्चात रात्रि मेरे संग रहोगे।।

होवेगो सुत और शोक सब मनको त्यागो। गन्धर्वनिकूँ पूजि इष्ट वर उनतैं माँगो।।

नृप-संग निशि बसि गई पुनि, राजा तप लागे करन। भये तुष्ट गन्धर्व तब, भूपतितैं बोले वचन।।

सान्त्वना देकर उर्वशी चली गयी- किन्तु सुरलोक नहीं च्यवन ऋषि के आश्रम पर और वहीं रहकर काल की प्रतीक्षा करने लगी। उर्वशी को पुत्ररत्न की प्राति हुई। च्यवन की पत्नी सुकन्या ने उर्वशी को बहन जैसा प्यार दिया। ससम्मान अपने आश्रम में आश्रय देकर पोषण किया। उर्वशी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। चित्रलेखा ने एक दिन उर्वशी पर व्यंग किया कि इस सुन्दर शिशु को लेकर तुम राजा पुरुरवा के पास चली क्यों नहीं जाती? उर्वशी निरुत्तर नहीं हुई लेकिन उसके हृदय में एक असह्य पीड़ा हुई। स्व वेदना-मर्म को स्पष्ट रखते हुए बोली- तुम क्या जानो पीर प्रसव की। तुम अप्सरा हो सखी। तुम्हें इस मर्म वेदना का क्या कयास हो सकता है। यह तो मानवीय सुखानुभूतियां है। इस प्राणान्त वेदना में भी परमानन्द प्राप्त होता हे।

कितनी सह यातना पालती त्रिया भविष्य जगत का। कह सकता है कौन? पूर्ण महिमा, इस तपश्चरण की।।

मानवीर प्रकृति का श्रेयस्कर चित्रण चित्रलेखा अप्सरा से सहन नहीं हुआ- पूछ बैठी।

मनुजों का अगला शशांक-वंशी नरेश जनमा है। हम अप्सरा, किन्तु, आर्या किस मानव की बेटी हैं?

सुरपुर की कौमदी, कलित कामना इन्द्र के मन की।

बेटी नहीं हुई तो क्या? अब मां तो तूं मानव की, नहीं देखती रत्नमयी को कैसा लाल दिया है।

यही तेजस्वी बनकर एक दिन इस आर्यावर्त का महाराज होगा। लेकिन मैं राजमाता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकूँगी। **पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पाओगी।**

उर्वशी ने रहस्योद्घाटन किया कि उसे भरत मुनि का श्राप लगा है कि पुत्र और पति को एक साथ देखते ही नष्ट हो जाऊँगी। उर्वशी पुत्र को सुकन्या को सोंपकर पुरुरवा के समीप चली गयी। उस समय राजा पुरूरवा ने देखा कि उर्वशी गर्भवती है, इसलिये वे अपनी राजधानी में लौट आये। एक वर्ष के बाद वे फिर वहाँ गये। तब तक उर्वशी एक वीर पुत्र की जननी बन चुकी थी। उर्वशी के मिलने से पुरूरवा को बड़ा सुख मिला। वे एक रात उसी के साथ रहे, विहार किये। प्रात:काल जब उर्वशी स्वर्ग सिधारने लगी तो राजा को महान् कष्ट हुआ।

सोलह वर्ष व्यतीत हो गये। पुरुरवा ने स्वप्न देखा च्यवन ऋषि के आश्रम के पास जब वह शिकार खेलता पहुँचा तो एक

सुन्दर षोडशीय युवक बाणों का अनुसंधान कर रहा था। कितना सुन्दर कितना आकर्षक कि पुरुरवा घोड़े से उतर कर उसका आलिंगन करने को आगे बढ़ा कि आँख खुल गई। यह स्वप्न, स्वप्न वेत्ताओं, मंत्रियों को दरबार में सुनाया तो उर्वशी व्याकुल होने लगी उसे लगा कि वह जल रही है।

आह, क्रूर अभिशाप, तुम्हारी ज्वाला बड़ी प्रबल है। अरी, जली, मैं जली अपाले, और तनिक पानी दे।।

उर्वशी व्याकुल हैं केवल कल्पना मात्र से किन्तु ज्योतिषी ने बताया कि आज अपने पुत्र को राजमुकुट पहनायेंगे। उसी समय प्रहरी ने प्रणाम किया और कहा- महाराज के दर्शन की अभिलाषा लिए च्यवन ऋषि पत्नी सुकन्या प्रतीक्षारत हैं। राजा की आज्ञा से सुकन्या ने शोडष वर्षीय ब्रह्मचारी के साथ प्रवेश किया। उर्वशी। ऋषि ने कहा- आयु को आज ही पितृगृह पहुँचना है। इसलिए मैं बिना सूचना अनायास ही उपस्थित हो गई हूँ।

सोलह वर्श पूर्व तुमने जो न्यास मुझे सौंपा था, उसे आज सक्षेम सखी। तुमको अब मैं लौटाती हूं।

बेटा, करो प्रणाम, यही है मां वे देव पिता तेरे।

राजा की जिज्ञासा पर उर्वशी ने पुत्र जन्म भरत मुनि के श्राप की घटना बतानी शुरू की किन्तु-

लगता है, कोई प्राणों को बेध लोह अंकुश से, बरबस मुझे खींच इस जग से दूर लिये जाता।

उर्वशी ने पुरुरवा से कहा- राजन्, तुम गन्धर्वों की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न करो यदि वे चाहेंगे तो तुम्हें मुझे प्रदान कर सकते हैं। राजा ने अप्सरा की बात मानकर उनकी स्तुति की। गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर राजा को एक अग्निस्थाली दी।

बर माँगो सुनि नृपति नीर नयनिमहँ छायो। बोले- यदि बर देहु, उरवशी मोइ दिवाओ।।

अग्निस्थाली दई, कह्यो करि तीन भागमहँ। करो यजन, पुनि जाउ उरवशी वसहि सदा जहँ।।

तबई आई उरवशी, दै सुत निज पुरकूँ गई। थाली रखि तुम संग पुर, गये लुप्त पावक भई।।

यज्ञ-याग पुर पहुँचि कैं, करे उर्वशी मिलन-हित। दान, धर्म, शुभ कर्म मख, करहिँ प्रियामहँ फँस्यो चित।।

भयो कामतैं क्रोध, शाप विप्रनिने दीन्हों। जीवित ह्वै तप घोर जाइ बदरीवन कीन्हों।।

नारायणने कृपा करी नृप स्वर्ग सिधाये। निज शरीरक सहित गये सुर लखि हरषाये।।

सुरपति संग बैठाइकें, सब सुख-सामग्री दई। पतिहि पाइ पुनि उर्वशी, प्रेम-सहित प्रमुदित भई।।

शुकदेव बोले- राजन्, दो अरणियों के मंथन से जो जातवेदा नामक अग्नि प्रकट हुई, उन्हें राजा पुरूरवा ने आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन भागों में विभक्त करके पुत्र-रूप से स्वीकार किया। हे राजन्। महाराज पुरूरवा से ही त्रेतायुग के आरम्भ में आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों का प्रादुर्भाव हुआ। महाराज उमी पुत्ररूप से मानी हुई अग्नि के द्वारा गन्धर्वलोक को प्राप्त हुए।

राजा की बौद्धिक स्थिति इतनी गड़बड़ थी कि वे उसे ही उर्वशी समझकर छाती से चिपकाये हुए एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करते रहे। जब उन्हें यह पता चला कि यह उर्वशी नहीं, यह तो थाली है; तब वे उसे वन में छोड़कर अपने महल में लौट आये एवं रात्रि के समय उर्वशी का ध्यान करते रहे। इसी समय सत्ययुग की समाप्ति हुई। त्रेता का प्रारम्भ हुआ। उस समय स्वर्ग-प्राप्ति करानेवाले वेदोक्त कर्मों का उनके हृदय में प्रादुर्भाव हुआ फिर वे उस स्थान पर गये, जहाँ उन्होंने वह अग्निस्थाली छोड़ी थी। अब उस स्थान पर शमीवृक्ष के कोटर में पीपल का एक वृक्ष उग आया था। उन्होंने उर्वशी को प्राप्त करने की कामना से पीपल के पेड़ की दो लकड़ियाँ तोड़कर उनसे दो अरणियाँ बनाईं। सामान्य रति की बेला में स्त्री नीचे और पुरुष ऊपर होता है अत: उन्होंने नीचे की अरणि में उर्वशी और ऊपर की अरणि में स्वयं अपनी कल्पना कर मन्थन

प्रारम्भ किया। उनके मन्थन से जातवेदा नाम का अग्नि प्रकट हुआ। अग्नि के तीन रूप हैं- आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि। पुरुरवा ने उसे पुत्र के रूप में स्वीकार किया फिर पुरूरवा ने उर्वशी को प्राप्त करने की इच्छा से, वही अग्नि लेकर यज्ञपति भगवान श्रीहरि का यजन किया। इसी यज्ञ के प्रभाव से राजा पुरूरवा ने गन्धर्व लोक प्राप्त कर उर्वशी के साथ पुन: सानन्द विहार प्रारम्भ कर दिया। जैसे घृत डालने से अग्नि की ही वृद्धि होती है, वैसे ही निरन्तर कामोपभोग से काम-वासना की वृद्धि होती है। वह प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

पाइ अप्सरा संग सुखी भूपति अति मनमहँ। दिव्य विमान बिठा प्रिया सँग विहरें वनमहँ।।
नित अधरामृत पान करें सुधि-बुधि बिसराई। नहिँ जाने कब दिवस होहि पुनि निशि कब आई।।
मोह-दाममहँ फँस्यो मन, रहे अतृप्त दुखी सतत। विषनिमहँ सन्तोष नहिँ, भयो फेरि नृप चित विरत।।
सचिवनि शासन सौंपि प्रिया सँग ह्वैं प्रमुदित अति। वन उपवन गिरि निकट नदी-तट बिहरहिँ भूपति।।
जने पाँच सुत अप्सरा, आयु श्रुतायु सतायु रथ। सब सुन्दर सब सवविद्, भये पाँचवें सुत विजय।।

श्री शुकदेव कहते हैं- राजन्, जब क्षुद्र कामों को भोगते-भोगते महाराज पुरुरवा को शान्ति नहीं मिली, तब उन्हें वैराग्य हुआ। वे कहने लगे- अरे, मुझ काम से कलुषित चित्त वाले राजा के मोह का विस्तार तो देखो। देवी उर्वशी के कण्ठ में बाँह डाले मैंने अपनी सम्पूर्ण आयु के इतने दिनों को, इतनी रात्रियों को, जाते हुए नहीं निहारा। इस स्त्री के मोह-पास में फँसकर मैंने यह भी नहीं जाना, कब सूर्य उदय होता हैं, कब अस्त। यह भी तो पता नहीं चला कि ये दिन किस प्रकार निकल गये।

नृपकूँ भयो विवेक मोहनिद्रातैं जागे। निज स्वरूप पहिचान विषय विष सम अब लागे।।
अब न उरवशी भली लगे गुण सर्व बिलाने। समुझि दोषकी खानि हाथ मल-मल पछिताने।।
हाड़, माँस मल-मूत्रको, तनु थैला दीखन लग्यो। भक्त भये भगवानके, विषय-भोग मल-भ्रम भग्यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, नरदेव-देव महाराज ऐल इस प्रकार कहते हुए उर्वशी के लोक को छोड़कर चले आये और अपने अन्तकरण में आत्मारूप से स्थित परमात्मा को समझाकर और उस आत्मज्ञान के द्वारा मोह-रहित होकर उपरत हो गये; अर्थात् संसार-बन्धन से मुक्त हो गये।

करै न कबहूँ संग कामिनी कामुक जन को। नहीं करै विश्वास पंच इन्द्रिय अरु मन को।।
योगी, ज्ञानी, सिद्ध, विवेकी हू फँसि जावें। त्यागि तपस्या योग काम भोगनि अपनावें।।
तातैं ह्वै नि:संग नित, निरत भजन ही महँ रहै। विषयनितैं बचिके चले, मम मन वश कबहुँ न कहै।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, ऐसा विचार करके राजा उर्वशी के प्रति उदासीन हो गये। उनका मोह दूर हो गया।

भयो ज्ञान तन नाशवान अविनाशी श्री हरि। साधक तरे अनेक काम तजि प्रभु चिन्तन करि।।
नारि फँसे नर रूप निरखि नर नारि-रूपमहँ। दोनों तजि परमार्थ गिरें जग-अन्ध-कूपमहँ।।
चरम-मांस-रज-वीर्यमहँ, अज्ञ लिपटि समुझें सुखी। ज्यों-ज्यों विषयनिमहँ फँसे, होहिँ अधिक त्यों-त्यों दुखी।।
यों करि मनहिँ प्रबोध भये विषयनितैं उपरत। त्यागि उरवशी लोक आत्मसुख माहिँ निरत नित।।
बिखरी मनकी वृत्ति योगतैं वश-महँ कीन्हीं। करि स्वरूप सन्धान, चित्तकूँ शिक्षा दीन्हीं।।
मन पुरूरवा, उरवशी- मायापुर तनकूँ कहें। फँसिके ताके फन्दमहँ, जीव विविध विधि दुख सहें।।

राजा को पुत्र तो मिल गया प्राणाधार चली गई। यही आयु नाम से पुरुरवा का उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार उर्वशी के सहयोग से यह चन्द्रवंश आगे बढ़ा और इसी वंश में आगे चलकर श्रीकृष्ण वृन्दावन बिहारी जी का अवतरण हुआ।

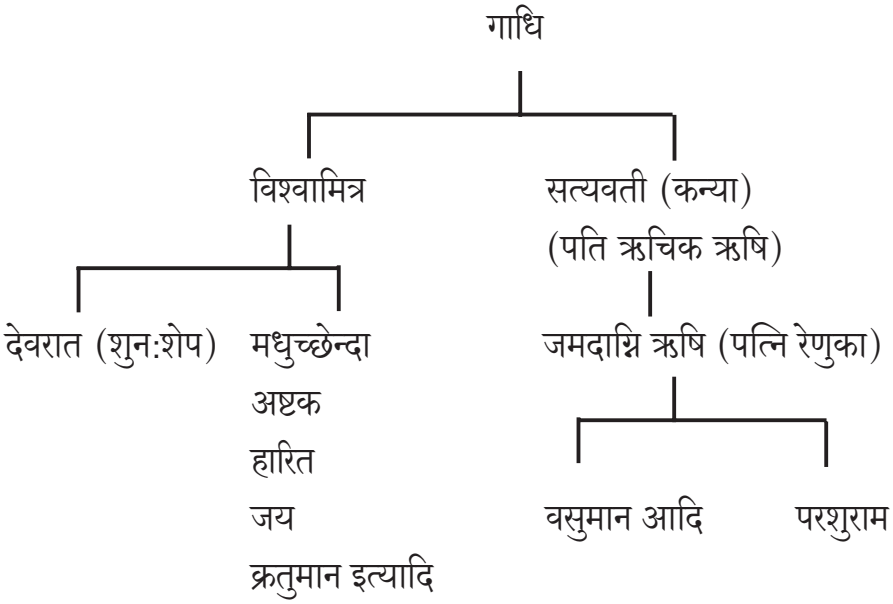
गाधि
विश्वामित्र
सत्यवती (कन्या)
(पति ऋचिक ऋषि)
देवरात (शुन:शेप)
मधुच्छेन्दा
अष्टक
हारित
जय
क्रतुमान इत्यादि
जमदाग्नि ऋषि (पत्नि रेणुका)
वसुमान आदि
परशुराम

आयु वंश

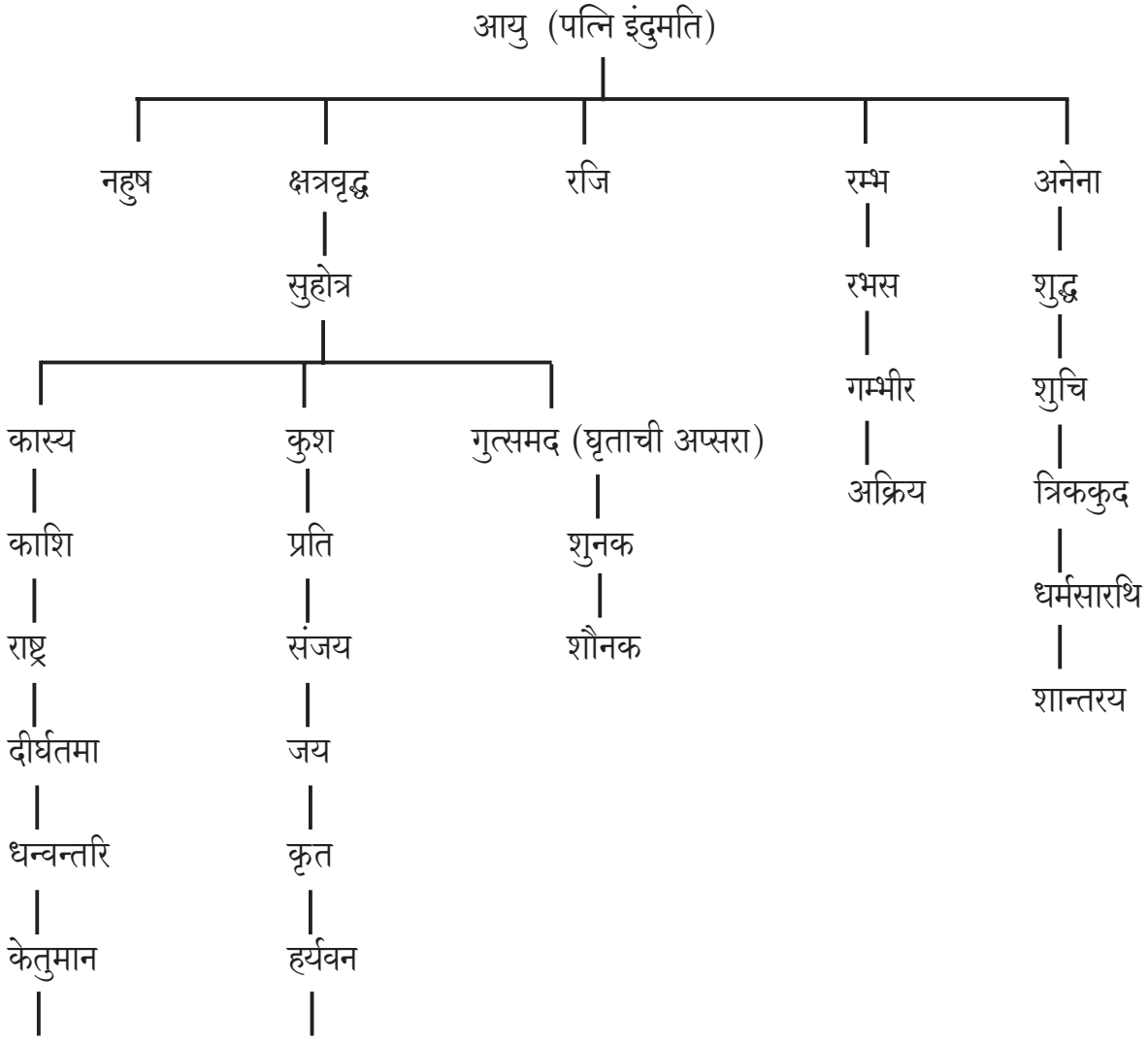
आयु (पत्नि इंदुमति)
नहुष
क्षत्रवृद्ध
रजि
रम्भ
अनेना
सुहोत्र
रभस
शुद्ध
गम्भीर
शुचि
अक्रिय
त्रिककुद
धर्मसारथि
शान्तरय
कास्य
कुश
गुत्समद (घृताची अप्सरा)
काशि
प्रति
शुनक
राष्ट्र
संजय
शौनक
दीर्घतमा
जय
धन्वन्तरि
कृत
केतुमान
हर्यवन

केतुमान
|
भीमरथ
|
दिवोदास
|
द्युमान(प्रतर्दन)
|
(शत्रुजित, वत्स,
ऋतध्वज, कुबलयाश्व)
|
अलर्क
|
सन्तति
|
सुनीथ
|
सुकैतन
|
धर्मकेतु
|
सत्यकेतु
|
धृष्टकेतु
|
सुकुमार
|
वीतिहोत्र
|
भर्ग
|
भार्गभूमि

हर्यवन
|
सहदेव
|
हीन
|
जयसेन
|
संङकृति
|
जय

नहुष

यति ययाति संयाति आयति वियति कृति

पत्नि १) देवयानि

यदु तुर्वसु

पत्नि २) शमिष्ठा

द्रुह्यु अनु पुरु

१४) परशुराम अवतार व विश्वामित्र चरित्र - शुकदेव बोले- राजन्, उर्वशी के गर्भ से पुरूरवा के छ: पुत्र हुए- आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय।

शुकदेव बोले- राजन्, विजय के पुत्र महाराज भीम हुए। उनके काञ्चन, काञ्चन के होत्र और होत्र के पुत्र महाराज जहनु हुए, जो गंगाजी को अंजलि में भरकर पी गये थे।

तपस्वी अपनी तपस्या के प्रभाव से क्या नहीं कर सकता? यह जगत् पंचभूतात्मक है। योगी अपने योग बल से इन सब पर विजय प्राप्त कर सकता है, पृथ्वी को हिला सकता है, जल का स्तम्भन कर सकता है, सूर्य की गति रोक सकता है। कहने का सारांश यही कि वह चाहे जो कर सकता है, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं, दुष्कर या असंभव नहीं।

जह्नु तनय नृप पुरु पूरुके पुत्र बलाक हु। परम प्रसिद्ध बलाक भये तिनके सत अजक हु।।
अजक जगतमहँ भये यशस्वी तिनके कुश सुत। तिन तैं कौशिक गोत्र भयो जगमाँहिं धरमयुत।।
पुत्र चारि तिनके भये, भिन्न-भिन्न परके अधिप। श्रीकुशाबु भूतप बसू, चौथे भये कुशम्बु नृप।।

श्रुतायु का पुत्र था वसुमान्, सत्यायु का श्रुतञ्जय, रय का ऐद और जय का अमित। विजय का भीम, भीम का कांचन, कांचन का होत्र और होत्र का पुत्र था जह्नु। यह वह जह्नु ऋषि थे जो गंगाजी को अपनी अंजलि में लेकर पी गये थे। जह्नु का पुत्र था पुरू, पुरु का बलाक और बलाक का अजक, अजक का कुश था। कुश के चार पुत्र थे- कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ। इनमें से कुशाम्बु के पुत्र गाधि हुए।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, महर्षि जह्नु के पुत्र पुरु हुए। पुरु के बलाक और बलाक के पुत्र अजक हुए। अजक के पुत्र कुश तथा कुश के कुशामबु, भूतप, वसु और कुशनाभ- ये चार पुत्र हुए। कुशामबु के पुत्र महाराज गाधि हुए।

अति सुन्दर कुशनाभ धृताची लखि नृप दृढ़ व्रत। पत्नी बनिके रही भई तातैं कन्या शत।।
कन्या क्रीड़ा करहि अनिल तिनक ढिँग आयो। कस्यो व्याह-प्रस्ताव कुमारिनि ने ठुकरायो।।
कुपित वायु अति ही भयो, सब कन्या कुबरी करीं। रोवत सब पितु ढिँग गई, नृप चरननिमहँ गिरि परी।।

मागधी/सुमागधी - शोणभद्र, सोन नदी। पूर्वकाल में कुश नाम के एक महातपस्वी राजा थे। वे ब्रह्मा के पुत्र थे। उनका प्रत्येक व्रत एवं संकल्प निर्विघ्न पूर्ण हो जाता था। विदर्भ देश की राजकुमारी उनकी पत्नी थीं। उनके चार पुत्र हुए- कुशांब, कुशनाभ, असूर्तरजस तथा दसु, राजा वसु ने गिरिव्रज नगर की स्थापना की। महाराज वसु की राजधानी गिरिव्रज को वसुमती भी कहा जाता था। इसके चारों ओर पांच श्रेष्ठ पर्वत हैं। रमणीय सोन नदी दक्षिण-पश्चिम की ओर से बहती हुई मगध देश में आई है, इसलिए यह सुमागधी (मगधी) नाम से विख्यात हैं। यह नदी पांचों पर्वतों के बीच से माला की भांति सुशोभित है। मगधी नाम से प्रसिद्ध यह सोन नदी दक्षिण-पश्चिम से आकर पूर्वोत्तर दिशा की ओर प्रवाहित हुई है। इसके दोनों तटों पर सुंदर क्षेत्र हैं, जो बहुत उपजाऊ हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज गाधि से उनकी कन्या सत्यवती को ऋचीक ऋषि ने माँगा। राजा ने देखा, यह बूढ़ा ऋषि मेरी पुत्री के योग्य वर नही है। अत: वे बोले- मुनिवर, हम कुशिक-वंशी क्षत्रिय हैं। आप हमें कन्या के शुल्क में चन्द्रमा के समान कान्तिवान सहस्त्र घोड़े दीजिये, जिनका एक कर्ण श्याम वर्ण हो।

ते कुशाम्बके पुत्र कहाये गाधि भूमिपति। तिनकी कन्या सत्यवती जगमहँ सुन्दर अति।।
आइ महर्षि ऋचीक याचना कन्या कीन्हीं। सुनि घबराये बात बदलि भूपतिने दीन्हीं।।

बोले- देउ सहस्त्र हय, स्वच्छ शभ्र जिनके वरन्। वेगवान अति कान्तियुत, एक कृष्ण होवे कर्ण।।

गाधि की एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था- सत्यवती। ऋचीक ऋषि ने गाधि से उनकी कन्या मांगी। गाधि ने सोचा कि यह वृद्ध तपस्वी हमारी तरुणी तनया के योग्य नहीं है अत: उनसे कहा- मुनिवर, हम लोग कुशिक वंश के क्षत्रिय हैं। हमारी कन्या के साथ विवाह करना सरल नहीं है। इसलिये आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूप में दीजिये जिनका सारा शरीर तो श्वेत हो, परन्तु एक-एक कान श्याम वर्ण हो। कन्या के विवाह के बदले में शुल्क लेना अत्यन्त निंदित और धर्मशास्त्र के विरूद्ध कर्म है। किन्तु गाधि ने यह सोचकर शुल्क मांगा कि ऋचीक यह असंभव कार्य कर नहीं पायेंगे और फिर मेरी सुन्दरी कन्या इस बूढ़े के हाथों में जाने से बच जायेगी।

राजा का अभिप्राय समझ कर ऋचीक पहुँचे वरुण के पास। उनसे मांग कर वैसे ही घोड़े ले आये और राजा को देकर उनकी कन्या सत्यवती के साथ सानन्द विवाह रचा डाला। एक बार महर्षि ऋचीक से उनकी पत्नी और सास (सत्यवती की माता) दोनों ने ही पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना की। महर्षि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर दोनों के लिये अलग-अलग मन्त्रों से चरु (एक प्रकार का रसायन) पकाया और स्नान करने के लिये चले गये। सत्यवती की माता ने सोचा कि ऋषि ने अपनी पत्नी के लिये उत्तम चरु पकाया होगा अत: उसने सत्यवती से मांग कर उसका चरु स्वयं खा लिया। सत्यवती अपनी माँ के आग्रह को ठुकरा न सकी अत: उसने मां के लिये तैयार चरु को खाया।

शुकदेव बोले- राजन्, जब महर्षि ऋचीक स्नान करने गये, तब सत्यवती की माता ने सत्यवती के चरू को श्रेष्ठ समझकर उससे माँग लिया। सत्यवती ने भी माता को अपना चरु दे दिया और माता के चरु को स्वयं खा लिया।

स्नान करके लौटे ऋचीक को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवती से कहा- भद्रे, तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र अत्यन्त उग्र स्वभाव का और तुम्हारा भाई श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता होगा।

सत्यवती ने ऋचीक मुनि को प्रसन्न कर कहा- स्वामिन्, अब कुछ ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि मेरा पुत्र ऐसा न हो। इसपर ऋचीक ने कहा- अच्छी बात है। पुत्र के बदले तुम्हारा पौत्र वैसा (अर्थात् घोर प्रकृति का) होगा फिर तो समय आनेपर सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि ऋषि का जन्म हुआ। बाद में सत्यवती समस्त लोकों को पवित्र करनेवाली परम पुण्यमयी कौशिकी नदी बन गई। रेणु ऋषि की कन्या थी- रेणुका। जमदग्नि ने उसके साथ विवाह किया। रेणुका के गर्भ से जमदग्नि ऋषि के वसुमान् आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे थे परशुराम। इनका यश सारे संसार में प्रसिद्ध है। हैहय-वंश का नाश करने के लिये भगवान विष्णु ने ही परशुराम के रूप में अंशावतार लिया था। परशुरामजी ने इक्कीस बार दुर्वृत्त क्षत्रियों का विनाश कर पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन कर दिया था।

परशुराम- भगवान विष्णु के लीलावतार। महर्षि जमदग्नि के पुत्र। पूर्वकाल में क्षीरसागर के तट पर देवताओं तथा ऋषि-मुनियों ने भगवान विष्णु की स्तुति की, जिससे वे महर्षि जमग्नि के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए। वे संपूर्ण लोकों में परशुराम नाम से विख्यात थे। वे दुष्ट राजाओं का नाश करने के लिए ही इस भूतल पर अवतीर्ण हुए थे।

उनके अवतार से पूर्व राजा कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन ने भगवान दत्तात्रेय की आराधना से सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था। एक बार सहस्त्रार्जुन महर्षि जमदग्नि के आश्रम पर गया। उसके साथ चतुरंगिणी सेना थी। महर्षि ने अपनी कामधेनु गौ के प्रसाद से राजा और सेना का भव्य स्वागत किया। सत्कार से चमत्कृत होकर राजा ने गौ को बलपूर्वक छीन लेना चाहा। इसी प्रयास में राजा ने महर्षि जगदग्नि का वध कर दिया। दिव्य कामधेनु आकाश मार्ग से गोलोक चली गईं। उस समय परशुराम ने सहस्त्रार्जुन के वध की प्रतिज्ञा की तथा उसकी नगरी माहिष्मती में जाकर उसका वध कर दिया। भगवान

परशुराम आज भी महेंद्र पर्वत पर विराजमान है।

भगवान शंकर की शरण में जाकर परशुराम ने अपना वृत्तांत सुनाते हुए कहा- प्रभो। मैं जमदग्नि का पुत्र एवं भृगुवंश में उत्पन्न हूं। रेणुका मेरी माता है और परशुराम मेरा नाम है। हे दयासिंधो। मुझे विद्या प्रदान करके आप अपना सेवक बना लें। मैं आपकी शरण में हूं, मेरी रक्षा कीजिए। मृगया खेलने के लिए आए हुए राजा को भूखा देखकर मेरे पिता ने कपिला की दी हुई वस्तु से उसका आतिथ्य- सत्कार किया। अनंतर उस मूर्ख राजा ने कपिला के लिए लालायित होकर मेरे पिता को मार डाला। कपिला उन्हें मृत देखकर गोलोक चली गई। माता भी पिता के साथ चली गई। इस समय मैं अनाथ हूं। मैंने शोकाकुल होकर अति दुष्कर प्रतिज्ञा की है कि इक्कीस बार इस पृथ्वी को मैं क्षत्रियों से शून्य कर दूंगा और युद्ध में उस कार्तवीर्य को नष्ट कर दूंगा, जिसने मेरे पिता का वध किया है। मेरी इस प्रतिज्ञा को पूरा करा दें।

भगवान शंकर ने कहा- वत्स। आज से तुम मेरे पुत्र के समान हो गए। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गुह्य मंत्र अस्त्र-शस्त्र आदि दूंगा।

आर्य संस्कृति के महान प्रचारक भगवान परशुराम ने जनकल्याण के लिए अपने समय में नदियों की दिशा बदल दी थी। उन्होंने अपने बल से आर्यों के शत्रुओं का भी विनाश किया था। हिमालय के उत्तरी भू-भाग, अफगानिस्तान, अपगण, ईरान, कश्यप भूमि, इराक व अरब आदि देशों में जाकर भगवान परशुराम ने आर्य शत्रुओं का जमकर संहार किया। आर्य संस्कृति को प्रचारित करते हुए उन्होंने आर्यन यानी ईरान के कश्यप भूमि क्षेत्र व आर्यक यानी इराक को नई पहचान दी थी। विभिन्न धर्म ग्रंथों का व्यापक अध्ययन से यह तथ्य उद्घाटित हुआ है कि मुंबई से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र को आठ कोणों में बांटकर भगवान परशुराम शोध ग्रंथ के मुताबिक परशुराम में ब्रह्मा की सृजन शक्ति, विष्णु की पालन शक्ति व शिव की संहार शक्ति विद्यमान थी। इसीलिए उन्हें त्रिवंत कहा गया है। जिस स्थान पर उन्होंने तपस्या की थी, वह स्थान आज तिरूवनंतपुरम के नाम से प्रसिद्ध है जो केरल की राजधानी भी है और त्रिवेंद्रम के नाम से जाना जाता है। केरल, कन्याकुमारी व रामेश्वरम के संस्थापक भगवान परशुराम की केरल में लोग नियमित पूजा करते हैं। पंडित लोग संकल्प मंत्र में परशुराम की धरती मानते हैं। भगवान परशुराम पर शोध कर चुके विद्वानों का कहना है कि देश की प्रमुख नदियों में ब्रह्मपुत्र, राम गंगा व बाण गंगा नदियों को जनकल्याण के लिए दूसरी दिशाओं में प्रवाहित करने का श्रेय भगवान परशुराम को ही जाता है। शोध में यह बात भी सामने आई है कि परशुराम ने क्षत्रियों का कभी विनाश नहीं किया था। उन पर लगाया गया यह आरोप पूरी तरह से मिथ्या है। जिस तरह भगवान राम ने ब्राह्मण के बजाय एक अत्याचारी रावण की हत्या की थी, उसी तरह परशुराम ने भी अपने समय में उन दुष्टों का संहार किया जो मानवता के विरोधी थे। वस्तुत भारतीय संस्कृति में तीन कल्याणकारी राम अवतरित हुए हैं जिनमें आदि राम परशुराम, दशरथ पुत्र राम व श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम शामिल है। परशियन भाषा और परशिया स्थान के परशुराम के अनुयायी जो कि अग्नि पूजक हैं, के कारण परशुराम सदैव अमर रहेंगे। अठारह महापुराणों में भगवान परशुराम के अवतार का उल्लेख मिलता है जिसका चित्रण कहीं समास शैली में तो कहीं व्यास शैली में किया गया है। विष्णु पुराण में भृगु और याति से लक्ष्मी का जन्म होना बताया गया है। जब विष्णु आदित्य रूप में प्रकट हुए तो लक्ष्मी पदमा रूप में प्रतिष्ठित हुई। जब परशुराम के रूप में विष्णु ने अवतार लिया तो लक्ष्मी पृथ्वी रूप में उनके साथ रहीं। भगवान परशुराम को भागवत पुराण में सोलवां अवतार माना गया है। महाभारत के वन पर्व व तीर्थ यात्रा पर्व के अनुसार जब कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन शक्ति संपन्न होकर प्रभुता मद में देवताओं और यक्षों को रौंदता हुआ अत्याचार करता था तो पीड़ितों ने विष्णु से कार्तवीर्य अर्जुन को रोकने के लिए प्रार्थना की।

विष्णु ने इंद्र से विचार कर वैशाख शुक्ल (अक्षय तृतीया) के दिन महर्षि जमदग्नि के पुत्र के रूप में माता रेणुका के गर्भ से परशुराम रूप में जन्म लिया और संसार से अन्याय दूर करने के लिए शस्त्र हाथ में उठाकर शत्रुओं का संहार किया तथा धर्म की विजय पताका फहराई। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जिनका सादर नमन करते हों, उन भगवान परशुराम की महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। भगवान परशुराम योग, वेद व नीति शास्त्र में निष्णात थे। तंत्रकर्म व ब्रह्मास्त्र सहित अनेक दिव्य शस्त्रों के संचालन में उन्हें पारंगत माना जाता था। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार जो **खलदण्ड करहूं नहीं तोरा, भ्रष्ट होए श्रुति मारग मोरा,** की परंपरा का पालन परशुराम ने बखूबी किया। परशुराम केवल क्रोधी ही नहीं थे, बल्कि उनकी सम्मान भावना भी जगजाहिर थी। सीता स्वयंवर में श्री राम की वास्तविकता जानने पर उन्होंने श्री राम का भक्ति भाव के साथ अभिनन्दन किया तो महाभारत काल में कौरव की सभा में भगवान परशुराम भगवान श्री कृष्ण का खुला समर्थन करते नजर आए। इतना ही नहीं, उन्होंने गंगापुत्र देवव्रत यानी भीष्म पितामह को भी शस्त्र विद्या सिखलाई थी। भगवान परशुराम का उत्तराखण्ड से भी गहरा नाता रहा है। उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी के निकट वरूणावत पर्वत पर भगान परशुराम ने घोर तपस्या की थी। इसी तपस्या के बल पर भगवान परशुराम विश्व से अन्याय का खात्मा करने में सफल रहे जिसके लिए उन्होंने अधर्मियों, अन्यायियों व अत्याचारियों के खिलाफ शस्त्र उठाये। भगवान परशुराम की इस तपस्या स्थली को आज भी लोग नमन करते हैं।

भगवान परशुराम बाल्यकाल से ही अस्त्र-शस्त्र विद्या के प्रेमी थे। उन्होंने अपने पिता से ही धनुर्वेद की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। वे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। जब वे रुरु नामक मृग का चर्म ओढ़कर अपनी काली-काली घुँघराली जटाओं को बखेरकर, धनुष-बाण धारण करके चलते तो साक्षात् वीर-रस दिखाई देते। फरसा धारण करने से ही सब उन्हें परशुराम कहने लगे। ये अपने पिता के अनन्य भक्त थे। पितृभक्ति का ऐसा उदाहरण संसार में दूसरा कोई नहीं मिलता।

पति चरननिमहँ सत्यवती विनती बहु कीन्हीं। होहि पुत्र नहिँ पौत्र घोर मुनि आयसु दीन्हीं।।
भयो कछुक सन्तोष जने जमदग्नि तपोनिधि। जात नाम सब करम करे मुनि हरषि यथाविधि।।
रेणु सुता श्री रेणुका, संग ब्याह मुनिने कर्‍यो। परशुराम तिनतैं भये, भूमिभार जिनने हर्‍यो।।

शुकदेव बोले- उन दिनों हैहयवंश का अधिपति था अर्जुन। वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था। उसने नारायण के अंशावतार दत्तात्रेय जी को विविध सेवाओं से प्रसन्न कर लिया था। प्रसन्न हुए दत्तात्रेय ने उसे एक हजार भुजाएँ प्रदान की थीं और युद्ध में उसे अपराजेय रहने का वरदान भी दिया था। उसका अबाध बल, अतुल वैभव, तेजस्विता और वीरता भी उन्हीं की कृपा का फल था। शत्रु-जन उसके बढ़े हुए बल तथा तेज को देखकर घबड़ाते थे। उसे अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह योगेश्वर हो गया था। वह संसार में वायु की तरह सब जगह बेरोक-टोक विचरा करता था।

शुकदेव बोले- राजन्, हैहय-वंशी क्षत्रियों का अधिपति सहस्रार्जुन क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ था। उसने श्रीमन्नारायण के अंशावतार भगवान् दत्तात्रेय की अनेक प्रकार से आराधना करके एक सहस्र भुजाएँ, शत्रुओं से अजेयता, अव्याहतइन्द्रिय-बल, सम्पत्ति, तेज पुरुषार्थ, यश, शारीरिक, बल, आदि गुण प्राप्त किये थे।

सहसबाहु बलवान भूप हैहयकुल-भूषन। दत्त प्रभुहिँ आराधि, प्राप्त कीन्हें जिन बहुत गुन।।
तेज, ओज, पुरुषार्थ, सहसभुज, अब्याहत गति। यश, अजेयता, आदि लहे गुन, भयो मत्त अति।।
रावन त्रिभुवन विजय करि, घूमत बल-मद-महँ भर्‍यो। पशु-समान तिहि पकरिकैं, दलन दर्प ताको कर्‍यो।।

जमदग्नि ऋषिकी पत्नी रेणुका की बहन सत्या नाम से सहस्रबाहु अर्जुन का विवाह हुआ। सहस्रार्जुन सातों द्वीपों का ऐसा

प्रतापी राजा था, जिसके यहाँ आठों सिद्धियाँ बनी रहती थी। वह ऋषीश्वरों के समान कर्म व धर्म करता था, सब जगह जानेकी सामर्थ्य रखता था।

शुकदेव बोले- राजन्, महर्षि जमदग्नि से रेणुका में वसुमान् आदि पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें भगवान वासुदेव का अंशावतार कहते हैं, जिन्होंने हैहयवंश का अंत किया था और इक्कीस बार सम्पूर्ण पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य कर दिया था।

छोटेसे बटु राम धनुष कंधापै धारें। शस्त्र शास्त्रमहँ निपुण निशानों तकिके मारें।।
परशु प्राप्त जब भयो निरखि अतिशय हरषाये। तबहीतैं मुनि परशुराम जग माँहि कहाये।।
क्षत्रिय अति निर्दय भये, अभिमानी अघ नित करहिँ। वेद विप्र मानें नहीं, ऋषि मुनि हू तिनतैं डरहिँ।।

एक बार गले में वैजयन्ती माला धारण कर सहस्त्रबाहु अर्जुन सुन्दरी स्त्रियों के झुण्ड के साथ नर्मदा नदी में जल-विहार कर रहा था। उस समय मदोन्मत्त सहस्त्रबाहु ने अपनी बाहों से नदी का प्रवाह रोक दिया। नदी के ऊपरी हिस्से में दिग्विजय के लिये निकला रावण शिव का पूजन कर रहा था। उसका सारा शिबिर नर्मदा के अवरुद्ध जल से आप्लावित हो गया। यह देखकर क्रुद्ध रावण सहस्त्रार्जुन से युद्ध करने जा पहुँचा। नदी की धारा उल्टी बहने लगी जिससे रावण का सिर डूबने लगा। रावण अपनेको बहुत बड़ा वीर तो मानता ही था, इसलिये सहस्त्रार्जुनका यह पराक्रम उससे सहन नहीं हुआ। तब रावण सहस्त्रबाहु अर्जुनके पास जाकर बुरा-भला कहने लगा।

उस समय सहस्त्रार्जुन ने खेल-ही-खेल में रावण को पकड़ लिया और अपनी राजधानी माहिष्मती में ले जाकर बन्दर के समान कैद कर दिया। उसके दसों मस्तकों पर दीपक जलाकर सब स्त्रियों व लड़कों को दिखलाया करता था। पीछे पुलस्त्य जी के कहने से सहस्त्रबाहु ने रावण को छोड़ दिया। ऐसा प्रतापी, क्षत्रिय-शिरोमणि, दत्तात्रेय का प्रिय शिष्य, अर्जुन (सहस्त्रार्जुन) एक बार वन में आखेट के लिये विचरण कर रहा था।

सुनि पुलस्त्य निज पौत्र पराभव अति सकुचाये। उतरि अवनिपै तुरत नृपति अर्जुन ढिँग आये।।
कार्तवीर्य सत्कार कर्‌यो मुनि आयसु दीन्हीं। छोड्यो रावन तबहिँ, मित्रता गाढ़ी कीन्हीं।।
यों जग जीत्यो जोगतैं, अतिशय मद बलको बढ़्यो। मम समान जगको बली, भूत भूपके सिर चढ़्यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, एक दिन कार्तवीर्य महाराज सहस्त्रार्जुन दैवयोग से गहन वन में मृगया करते समय महामुनि जमदग्नि के आश्रम पर जा निकले।

एक दिवस आखेट करन वन भूप पधारे। तेज-पुञ्ज जमदग्नि निजाश्रम माँहिँ निहारे।।
हैहय-वंशी नृपति समुझि मुनि कीन्हों आदर। कर्‌यो निमन्त्रण सैन्य-सहित नृप मान्यो सादर।।
कामधेनु की कृपातैं, करे तृप्त सैनिक सकल। धेनुसिद्धि लखि सहसभुज, लोभ भयो मन महँ प्रवल।।

एक दिन रेणुका अपनी बहिन सत्या के यहाँ गई और रेणुका ने अपनी बहन से कहा- एक बार तुम हमारे यहा आओ। सत्या अभिमान से बोली कि तुम कंगाल ऋषीश्वर की स्त्री होकर हमारी सेना का सत्कार कैसे कर पाओगी। रेणुका लज्जा से कुछ नहीं बोली, पर अपने पति जमदग्नि से कहा कि एक बार बहन को सेनासमेत बुलाकर आतिथ्य करें। मेरी बहन सत्या ने मुझे ताना मारा है। जमदग्नि बोले- परमेश्वर की दया से मेहमानी करना कुछ कठिन नहीं है। भगवान तेरी इच्छा पूरी करेंगे। उसी समय सहस्त्रबाहु अर्जुन ने महर्षि जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किया। तपोधन जमदग्नि ने अपनी कामधेनु गाय के प्रभाव से सेना-परिच्छद-सहित राजा का भव्य दिव्य स्वागत सत्कार किया। मुनि के ऐश्वर्य को अपने ऐश्वर्य से अधिक देखकर सहस्त्रार्जुन बर्दास्त न कर सका। उसने अपने सैनिकों से हठात् मुनि की गाय कामधेनु का हरण करवा

लिया। गाय चिल्ला रही थी वह आश्रम से जाना नहीं चाहती थी किन्तु सहस्त्रार्जुन के सैनिक बछड़े के सहित गाय को बलात् माहिष्मती लाये।

माँगी नृप मख-धेनु नहीं मुनिवरने दीन्हीं। बल प्रयोग करि पकरि धेनु भृत्यनिने लीन्हीं।।
बार-बार चिल्लाइ नयनतैं नीर बहावै। बछरा बनिकें विकल लखै, जननी डकरावै।।
नृप-हठ जगमहँ अति विकट, कामधेनु-पुर लै गये। परशुराम आये तबहिँ, सुनत रुद्र-सम ह्वै गये।।

माहिष्मती सहस्त्रार्जुन की राजधानी थी। गाय लेकर सहस्त्रार्जुन चले जाने पर परशुराम आश्रम में आये। उसकी दुष्टता की गाथा को उन्होंने सुना। सुनते ही परशुराम आहत सर्प की भाँति आग-बबूला क्रोधित हो उठे। उनके क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने अपने घोर परशु एवं धनुष-बाण को उठाया और उस दुष्ट राजा का पीछा करते हुए माहिष्मती की ओर दौड़े।

शुकदेव बोले-राजन्, राजा के आश्रम से निकलते ही परशुरामजी वहाँ आ गये। राजा की दुष्टता का वृत्तान्त सुनकर वे आहत हुए अहि के समान क्रोध में भरकर फुँफकारने लगे।

फरसा लीन्हों हाथ, चले नृप-कुल संहारन। राम-रूप लखि उग्र लगे हाथी चिंघारन।।
सहस करनि शर-धनुष लिये नृप लरिबे आयो। सम्मुख निरख्यो शत्रु राम तकि परशु चलयो।।
कर शर धनु, तनु, मृग-चरम, अरुन नयन, रिस युत वदन। मनहुँ परशु लै वीर रस, दर्प-दर्प आयो दलन।।

सहस्त्रार्जुन ने अपनी राजधानी में झपट कर प्रवेश करते हुए वीरवर परशुराम को देखा। वे अकेले थे। उनका सामना करने के लिये सहस्त्रार्जुन युद्ध करने के लिये स्वयं बाहर आया। दोनों वीरों में भीषण संग्राम प्रारम्भ हुआ। झंझावात के समान परशुराम के सम्मुख सहस्त्रार्जुन व्यजन का पवन प्रतीत हो रहा था। मुनि ने राजा की सारी भुजाओं को कदली की तरह काट कर उसके सिर को धड़ से पृथक् कर दिया। पिता के मारे जाने पर सहस्त्रार्जुन के सारे पुत्र गीदड़ की भाँति भयभीत होकर भाग निकले। परशुराम गाय को आश्रम में लाये। उन्होंने अपने पिता और भाइयों से युद्ध के वृत्तान्त के साथ सहस्त्रार्जुन के समर-भूमि में वध की बात बतलाई।

तीक्ष्ण परशतैं भुजा काटि अर्जुनकी दीन्हीं। सुत सैनिक सब भगे राम गर्जन पुनि कीन्हीं।।
नृप-सिर धड़तैं पृथक् करि, कामधेनु लै चलि दये। कही कथा पितु सन सकल, सुनि मुनि हर्षित नहिँ भये।।

राजा के वध की बात को सुनकर पिता जमदग्नि प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा- क्षमा ब्राह्मण का सबसे बड़ा गुण है। ब्राह्मण को क्षमाशील होना चाहिये। राजा सर्वदेवमय होता है अत: राम, राजा का वध करके तुमने उचित नहीं किया अत: पाप का मार्जन करने के लिये नारायण का ध्यान करते हुए तुम तीर्थों का भ्रमण करो।

बोले मुनि जमदग्नि- राम, भल कियो न कारज। विप्रनि भूषण क्षमा जिही मर्यादा आरज।।
अरे, कहा जिह करयो विप्र ह्वै नरपति मार्‌यो। कर्‌यो कर्म अति क्रूर कलंमित कुल करि डार्‌यो।।
नृप-वध द्विज-वधतैं अधिक, प्रायश्चित जाको करहु। हरि चित धरि कीर्तन करत, पावन तीर्थनिमहँ फिरहु।।

शुकदेव बोले- राजन्, परशुरामजी जब सहस्त्रार्जुन को मारकर आये, तब उसके पिता भगवान जमदग्नि ने कहा- हे राम, हे राम, हे महाबाहो, तुमने यह बड़ा भारी पाप किया, जो वृथा ही राजा का वध किया। राजा सर्वदेवमय होता है। हम ब्राह्मणों का क्षमा ही भूषण है, क्षमा के कारण ही हम संसार में पूजनीय बने हैं। और की बात ही क्या, लोकगुरु ब्रह्माजी भी क्षमा के कारण ही ब्रह्मपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

परशुराम क्षत्रिय कुल घातक, जग रक्षक संतन सुख दायक।

इक्कीस बार क्षत्री पुनि मारे, पृथ्वी के सब भार उतारे ।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर परशुरामजी ने एक वर्ष तक तीर्थाटन किया फिर वे अपने आश्रम पर लौटकर पिता की सेवा-शुश्रूषा में लग गये।

परशुराम की माता का नाम था रेणुका। एक बार रेणुका जल लेने के लिये नदी में गई। वहाँ उसने गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए देखा। चित्ररथ के साथ विहार करने की लालसा रेणुका के मन में भी अंकुरित हुई।

एक दिवस जल भरन रेनुका गई, लखे तहँ। सुर बनितनि संग करहिँ चित्ररथ खल नदीमहँ ।।

रति-क्रीड़ा नृप-रूप लखि, भयो काम-युत तिय-हृदय। बीत्यो मुनिको तब तक, अग्निहोत्र-सन्ध्या-समय ।।

शुकदेव बोले- राजन्, महर्षि जमदग्नि अपनी पत्नी के मानसिक व्यभिचार को जानकर उस पर अत्यन्त कुपित होकर अपने पुत्रों से बोले- पुत्रों। तुम अपनी इस पापिनी माता को मार डालो किन्तु उन पुत्रों ने ऐसा नहीं किया। जब मुनि ने परशुरामजी से कहा, उन्होंने माता के सहित भाइयों को भी मार डाला, क्यांकि वे अपने पिता के प्रभाव से पूर्णतया परिचित थे।

चित्ररथ- गंधर्वराज अंगारपर्ण। माता कुंती के साथ पांचों पांडव पंचाल देश की ओर जाते हुए गंगा के तट पर पहुंचे। रात्रि हो गई थी। अत: आगे आगे महारथी अर्जुन प्रकाश तथा रक्षा के लिए जलती हुई मशाल उठाए चल रहे थे। गंगा के जल में गंधर्वराज अंगारपर्ण अपनी गंधर्वियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। पांडवों को आते देखकर कुपित होकर उसने उन्हें ललकारा और उन पर आक्रमण कर दिया। तब विख्यात धनुर्धर अर्जुन ने आग्नेय अस्त्र से अंगारपर्ण के विलक्षण रथ को जलाकर गंधर्वराज को मूर्छित कर दिया। आहत गंधर्वराज अंगारपर्ण की पत्नी कुंभीनसी ने महाराज युधिष्ठिर से अपने पति के लिए प्राणदान की गुहार लगाई। पांडवों ने अंगारपर्ण को अभयदान दे दिया। गंधर्वराज के पास एक विचित्र रथ था, इसी कारण उसे चित्ररथ कहते थे। उस रथ के दग्ध हो जाने पर अंगारपर्ण ने अपना नाम चित्ररथ नाम त्यागकर दग्धरथ रख लिया।

दग्धरथ- गंधर्वराज अंगारपर्ण चित्ररथ। अर्जुन ने आग्नेय अस्त्र से अंगारपर्ण के रथ को जलाकर गंधर्वराज को मूर्छित कर दिया। अंगारपर्ण की पत्नी कुम्भीनसी द्वारा पति के प्राणदान की गुहार लगाने पर पांडवों ने जब अंगारपर्ण को क्षमा प्रदान कर दी, तब गंधर्वराज चित्ररथ ने कहा- महापराक्रमी अर्जुन के दिव्यास्त्र से मेरा यह विचित्र एवं उत्तम रथ दग्ध हो गया है। पहले मैं अपने इसी विचित्र रथ के कारण चित्ररथ कहा जाता था, परंतु आज से मेरा नाम दग्धरथ हो गया।

चाक्षुषी विद्या- गंधर्वों की माया। वीर अर्जुन से परास्त गंधर्वराज अंगारपर्ण उनकी शरण में आकर उनका मित्र हो गया। उसने कहा- आज की पराजय से मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि मैंने दिव्यास्त्रधारी अर्जुन को मित्र रूप से प्राप्त कर लिया है। अब मैं अपने प्राणरक्षक वीर अर्जुन को गंधर्वों की माया अर्पित करना चाहता हूं। मैंने पूर्वकाल में तपस्या द्वारा यह विद्या प्राप्त की है। यह चाक्षुषी नामक विद्या है, जिसे मनु ने सोम को दिया; सोम ने विश्वावसु को दिया और विश्वावसु ने मुझे प्रदान किया है। यह गुरु की दी हुई विद्या यदि किसी कायर पुरुष को मिल गई तो नष्ट हो जाएगी। इस विद्या की ऐसी अद्भुतशक्ति है कि तीनों लोकों में जिस किसी भी वस्तु को देखने की इच्छा हो, उसे इस विद्या के प्रभाव से कोई भी देख सकता है; और जिस रूप में देखना चाहे, उस रूप में देख सकता है। जो कोई भी एक पैर से छ: महीने तक खड़ा रहकर तपस्या करें, वही इस विद्या प्राप्त कर सकता है परंतु आपको बिना किसी साधना के ही मैं यह विद्या प्राप्त करवा दूंगा। इस विद्या के बल से ही गंधर्व मनुष्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं और देवताओं के तुल्य प्रभाव दिखा सकते हैं।

मुनि की होमबेला का अतिक्रमण हो रहा है- इसका भी स्मरण उसे न रहा। जब उसे इस बात का ध्यान आया तो जल लेकर जल्दी-जल्दी आश्रम पहुँची और विलम्ब के लिये पतिदेव से क्षमा-याचना की। पत्नी के मानसिक व्यभिचार को ज्ञात कर

जमदग्नि कुपित हो उठे। उन्होंने बेटों से कहा- पुत्रों, इस पापिनी का वध कर डालो किन्तु बेटों ने उनके आदेश का पालन नहीं किया फिर जमदग्नि ने परशुराम से माता के सहित भाइयों के वध के लिये कहा। परशुराम ने पिता के आदेश का अविकल पालन किया। पिता प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा- पुत्र, वर माँगो। परशुराम ने वरदान माँगा- माताजी के सहित मेरे सब भाई जीवित हो जाँय और उन्हें इसकी स्मृति भी न हो कि मैंने उनका वध किया है। ठीक है, ऐसा ही होगा- पिता के यह कहते ही वे सभी जीवित हो उठे। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि जैसे वे सभी अभी सोकर उठे हों। परशुराम पिता के तप के इस प्रभाव से परिचित थे। यही कारण था कि पिता के आदेश देते ही उन्होंने परिवारजनों का वध कर डाला।

परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध कर दिया था इसलिये उसके पुत्र क्रुद्ध थे।

इत पितु-आज्ञातें परशु-राम यज्ञ-जप-तप करत। उत हैहय क्षत्रिय अधम, बदलौं लैबेकूँ फिरत॥

वे परशुराम से बदला लेना चाहते थे अत: एक बार जब भाइयों के सहित परशुराम वन में गये हुए थे, तब अवसर देखकर वे जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किये। उस समय जमदग्नि यज्ञशाला में भगवान का ध्यान कर रहे थे।

एक दिवस सँग बन्धु गये वन परशुराम जब। आये छिपिके सहसबाहु-सुत अस्त्र लिये सब॥
विष्णु ध्यान लवलीन मुनि, निरखि भये हर्षित सकल। प्रतिहिंसा हियमहँ जगी, वधहि तऊधम करहि खल॥

शुकदेव बोले- राजन्, एक दिन परशुरामजी सब भाइयों के सहित वन को गये हुए थे। उसी समय सहस्रार्जुन के पुत्र अवसर पाकर अपना वैर चुकाने के लिये वहाँ आये।

उन दुष्टों ने उसी अवस्था में उनका सिर काट दिया और उसे अपने साथ लेते गये। रेणुका के करुण विलाप का प्रभाव भी उन पर न पड़ा। परशुराम जब जंगल से लौटे तो उन्होंने विलाप करती हुई माता से सारा वृत्तान्त सुना।

लखि आश्रम सब शून्य शीघ्र सिर मुनिको काट्यो। मृतक लख्यो पति-देह रेणुकाको हिय फाट्यो॥
रोवे कुररी सरिस, पुकारे राम, धुनै सिर। सुनि जननीको रुदन राम तब आये सत्वर॥
जनक मृतक तनु निरखि प्रति, परशुराम रोवन लगे। गये तात तजि हमहि कहँ, क्रूर कालने हम ठगे॥

अपनी माताको इक्कीस बार छाती पीटते देखकर परशुरामजी ने इक्कीस बार सम्पूर्ण नामोनिशान मिटाने का प्रण किया। उनके शोक का पारावार न रहा। पिता के शव को परशुराम ने भाइयों के पास रख दिया। उन्होंने दुष्ट क्षत्रियों के विनाश का दृढ़ संकल्प अपने मन में किया। उन्होंने अपना कठोर कुठार (फरसा) हाथ में लिया और फिर एक बार माहिष्मती को क्षत्रिय-विहीन बनाने के लिये अकेले ही चल पड़े। वहाँ इन्होंने ब्राह्मण के वध से नि:श्रीक सहस्रार्जुन के पुत्रों का विध्वंस कर डाला। उनके सिरों को काट-काट कर वहाँ एक विशाल पर्वत ही खड़ा कर दिया। रेणुका जमदग्नि के मार दिये जाने पर इक्कीस बार छाती पीटकर रोया था अत: परशुराम ने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन बना डाला। क्षत्रियों का संहार करके कुरुक्षेत्र के समन्त पंचक नामक स्थान में पाँच सरोवर रक्त से भर गये और अपने पिता के सिर को लाकर धड़ से जोड़ दिया तथा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपति भगवान का पूजन किया। उन यज्ञों में सारी पृथ्वी, होता तथा ऋत्वजों को दान में दे दी।

शुकदेव बोले- राजन्, पिता के वध से क्रुद्ध हुए परशुरामजी ने २१ बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य कर दिया और समन्तपञ्चक क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में रुधिर-रूप जल के ९ कुण्ड बनाये।

पितु तनु बन्धुनि सौंपि चले क्षत्रिनि संहारन। पहफुंचे पुरमँह तुरत परशुलै लागे मारन॥
हैहय कुल संहार कर्‍यो पुनिजे ई पाये। क्षत्रिय सबई मारि मारि यम सदन पठाये॥
युवक, वृद्ध, शिशु, उदरमँह, लखहिँ जहाँ क्षत्रिय तनय। तुरत पठावें यम सदन, सुनहिँ नहीं अनुनय विनय॥

माहिष्मती से पिता के कटे सिर को लाकर उसे शरीर से जोड़कर परशुराम ने उन्हें जीवित कर सप्तर्षि-मण्डल में स्थापित कर दिया फिर उन्होंने कई यज्ञों के द्वारा भगवान यज्ञ-पुरुष की समाराधना की और समूची पृथ्वी ब्राह्मणों को दान में दे दी। परशुराम आज भी महेन्द्र आदि पर्वतों पर शान्त होकर तप में निरत हैं। इस प्रकार भगवान नारायण ने ही परशुराम के रूप में, भृगुवंश में, अवतार लेकर पृथ्वी के भारभूत राजाओं का कई बार संहार किया और पृथ्वी के भार को उतारा।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान परशुरामजी मारकाट का परित्याग करके शान्त चित्त से अब तक भी मन्हेद्र पर्वत पर विद्यमान हैं। वहाँ पर सिद्ध, गन्धर्व और चारणगत उनका चरित-पान करते हैं। इस प्रकार विश्वात्मा विश्वेश्वर भगवान श्रीहरि ने भृगुवंश में अवतीर्ण होकर पृथ्वी के भार भूत समस्त राजाओं का अनेक बार वध किया।

पुनि पितु-सिर धड़ माहि जोरि मंत्रनितैं दीन्हों। सर्व-देव मय यज्ञ पुरुषको पूजन कीन्हों।।
करे यज्ञ अति विशद भूमि कश्यपकूँ दीन्हीं। करि अवभृत अस्नान प्रतिज्ञा पूरी कीन्हीं।।
त्यागि रोष अति शांत ह्वै, भूमि द्विजनिकूँ सौंपि सब। पूजित प्राणिनितैं भये, गिरि महेन्द्र पर बसहिँ अब।।

वैवस्वत मन्वन्तर में विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम- ये सप्तर्षि हैं; वैसे आगामी सावर्णि मन्वन्तर होगा। उस में प्रह्लादजी के पौत्र महाराज बलि इन्द्र होंगे और गालव, दीप्ति-मान, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृङ्ग, बादरायण व्यास और परशुराम- ये सब सप्तर्षि होंगे। ये सब-के-सब अपने-अपने आश्रमों में गुप्त रीतिसे स्थित हैं। किसी-किसी भाग्यशाली को इनके दर्शन भी होते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को महेन्द्रपर्वत पर परशुरामजी ने दर्शन दिये थे।

परशुरामजी ने समस्त भूमंडल को जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वी को कश्यपजी को दान दी। कश्यपजीने पृथ्वी की देखरेख नहीं करी। पृथ्वीको अपनी पत्नी पाकर भी तप-तपस्या करने चले गये। उग्र शासकीय न रहने से वैश्य, शूद्र अन्य लोग भी सबल बन गये और उन्होंने ब्राह्मणों पर ही शासन करना आरम्भ कर दिया। सर्वत्र अराजकता छा गयी। पृथ्वीने सोचा था मेरा कोई रक्षक ही नहीं। तब मैं रसातल को क्यों न चली जाऊँ? जब कश्यपजी को विदित हुआ तो पृथ्वी से पूछा- तू रसातल में क्यों जाना चाहती हैं। तब पृथ्वी बोली- आपने दान में मुझे ले तो लिया किन्तु मेरा पालन नहीं किया। कश्यपजी को अपनी भूल अब मालूम हुई। जैसे तैसे क्रुद्ध पृथ्वी को उन्होंने मनाया। उसे अपने ऊरू में छिपाया। तभी से पृथ्वी का नाम उर्वी पड़ा।

राजन् परीक्षित्, इस प्रकार हमने गाधि की बेटी सत्यवती के वंश का वर्णन आपको सुना दिया। अब उनके पुत्रों के वंश का वर्णन कर रहा हूँ।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज गाधि के परम तेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए, जिनका तेज प्रज्वलित अग्नि के समान था, जो अपने तपोबल से क्षत्रियपन त्यागकर ब्राह्मण बन गये।

गाधि के पुत्र थे विश्वामित्र। ऋचीक के द्वारा तैयार किये गये चरु के प्रभाव से विश्वामित्र का जन्म हुआ था। विश्वामित्र प्रज्ज्वलित अग्नि की भाँति परम तेजस्वी थे। इन्होंने अपने तप बल से क्षत्रियत्व का त्याग कर ब्रह्मतेज प्राप्त किया था।

भयो परस्पर युद्ध गाधि-सुत रनमहँ हारे। ब्रह्म-तेज-हित करन तपस्या बनहिँ सिधारे।।
काम क्रोधने आइ तपस्या नष्ट कराई। आई रम्भा कबहुँ, मेनका कबहूँ आई।।
पुनि-पुनि आये विघ्न बहु, किन्तु निराशा नहिँ भई। ह्वै प्रसन्न विधि ब्रह्म ऋषि, की पदवी तबई दई।।

एक बार क्षत्रिय राजा विश्वामित्र अपनी सारी सेनाके साथ वसिष्ठजीके आश्रमसे गुजरे। उनके साथ पूरी चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें लाखों सैनिक थे। शबला कामधेनु थी, फलत: उसने सभी लोगोंके लिये स्वादिष्ट भोजन उत्पन्न कर दिया,

जिसे ग्रहणकर सेनासहित विश्वामित्र तृप्त हो चकित हो गये और सोचने लगे महर्षि वसिष्ठने ऐसी सामर्थ्य कहांसे प्राप्त कर ली। क्योंकि उनके पास कोई अन्य धन नहीं दीखता। जब पता लगा कि यह सब शबलाका ही दिव्य विलक्षण प्रभाव है, तब उन्होंने उसे वसिष्ठजीसे माँगा और कहा कि मैं इसके बदले आपको पर्याप्त धन दूँगा। पर महर्षि वसिष्ठ तैयार नहीं हुए। तब राजाने उस शबलाको जबर्दस्ती घसीटकर ले जानेके लिये अपने सिपाहियोंको आज्ञा दी। वे लोग उसे घसीटने लगे। शबलाने उस समय रोकर महर्षि वसिष्ठसे कहा कि आपने मुझे इसे क्यों दे दिया? इसपर वसिष्ठजीने कहा- मैंने तुम्हें नहीं दिया, यह राजा बलवान है। मेरी बात नहीं मानता और तुम्हें बलपूर्वक घसीटता है। तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं तुम्हं जानेको नहीं कहता। इसपर शबलाने अपने शरीरसे अनन्त संख्यामें यवन, खस, पह्लव, दूण आदि सैनिकोंको उत्पन्न किया, जिन्होंने महर्षि विश्वामित्रकी सेनाको नष्ट कर दिया।

उस गौ ने उस समय वैसा ही किया। उसके हुंकार करते ही सैकड़ों पह्लव जातिके वीर पैदा हो गये। वे सब विश्वामित्रके देखते-देखते उनकी सारी सेनाका नाश करने लगे। इससे राजा विश्वामित्रको बड़ा क्रोध हुआ। वे रोषसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। उन्होंने छोटे-बड़े कई तरहके अस्त्रोंका प्रयोग करके उन पह्लवोंका संहार कर डाला। विश्वामित्रद्वारा उन सैंकड़ों पह्लवोंको पीडत एवं नष्ट हुआ देख उस समय उस शबला गौने पुन: यवनमिश्रित शक जातिके भयंकर वीरोंको उत्पन्न किया। उन यवनमिश्रित शकोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी भर गयी। वे वीर महापराक्रमी और तेजस्वी थे। उनके शरीरकी कान्ति सुवर्ण तथा केसरके समान थी। वे सुनहरे वस्त्रोंसे अपने शरीरको ढँके हुए थे। उन्होंने हाथोंमें तीखे खड्ग और पट्टिश ले रखे थे। प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित होनेवाले उन वीरोंने विश्वामित्रकी सारी सेनाको भस्म करना आरम्भ किया। इससे मालूम पड़ता है महर्षि वसिष्ठकी गोसेवा कितनी महान थी और गौ की शक्ति कितनी प्रबल होती है। यह देखकर विश्वामित्रने जाना कि शस्त्र बल से तपोबल ही अधिक श्रेष्ठ है। तबसे विश्वामित्रने तपस्या करना आरंभ किया और वे क्षत्रिय से ब्राह्मण कुलमें चले गये।

पुराणों में इनकी बड़ी विचित्र कथाएँ आती हैं। इनके सौ पुत्र थे। उनमें बिचले पुत्र का नाम था- मधुच्छन्दा, इसलिये सभी पुत्र मधुच्छन्दा के ही नाम से विख्यात हुए। विश्वामित्र ने भृगुवंशी अजीगर्त के पुत्र शुन:शेप को पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था। देवताओं ने शुन:शेप की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे प्राणादान दिया था। इसीलिये उसका एक नाम देवरात भी था।

मुनिवर विश्वामित्र करें तप पुष्कर माहीं। शुन:शेपकूँ भूप यज्ञ-बलि-हित लै जाहीं।।
मामा विश्वामित्र विनयके मंत्र सिखाये। अति प्रसन्न सुर भये यज्ञमहँ प्राण बचाये।।
मातु पिता ढिङ्ग पुनि न्हीं, शुन: शेप कबहूँ गये। गाधि तनयम सुत सम करे, भार्गव तै कौशिक भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, देवताओं द्वारा यज्ञ में दिये जाने के कारण शुन:शेप गाधिकुल में देवरात नाम से विख्यात तपस्वी हुआ। वह भृगुवंशी कहलाया।

महर्षि ने अपने पुत्रों से कहा- तुम लोग शुन:शेप को अपना बड़ा भाई मानो। विश्वामित्र के पुत्रों में जो ४९ बड़े थे। उन्हें शुन:शेप को बड़ा भाई मानने की बात अच्छी न लगी। इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्रजी ने उन्हें शाप दे दिया- दुष्टों, तुम लोग म्लेच्छ हो जाओ। मध्यम पुत्र मधुच्छन्दा के साथ ५० भाइयों ने पिता की बात शिरोधार्य कर शुन:शेप को अपना बड़ा भाई मान लिया। इस पर प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उन्हें पुत्रवान् होने का आशीर्वाद दिया।

निज सुत विश्वामित्र प्रेमतैं पास बुलाये। देवरातकूँ ज्येष्ठ करो बहुत विधि समुझाये।।
आधे माने नहीं शापदै म्लेच्छ बनाये। शेषनि करि स्वीकार मनोवांछित वर पाये।।
ब्राह्मण क्षत्रिय म्लेच्छ हूँ, कौशिक गोत्री ही रहे। बिमल चरित संक्षेपमहँ, गाधि-तनयके कछु कहे।।

इस प्रकार विश्वामित्र जी की सन्तानों के कौशिकगोत्र में कई भेद हो गये और देवरात अर्थात् शुन:शेप को बड़ा भाई मानने के कारण उसका प्रवर भी दूसरा हो गया।

१५) राजा ययाति का आख्यान- शुकदेव बोले- परीक्षित्, पुरूरवा के पाँच पुत्र हुए उनके ज्येष्ठ पुत्र आयु के पाँच लड़के हुए- नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना। क्षत्रवृद्ध के पुत्र सहोत्र थे। उनके तीन पुत्र हुए- काश्य, कुश और गृत्समद। गृत्समद का पुत्र हुआ शुनक। इसी वंश में ऋग्वेदी मुनिवर शौनक जी हुए।

भृगुवंशी रुरु की पत्नी, ऋषि शुनक की माता। पूर्वकाल में स्थूलकेश नाम के एक प्रसिद्ध तपस्वी महात्मा थे। उनके आश्रम के निकट ही गंधर्वराज विश्वावसु ने अप्सरा मेनका के गर्भ से एक संतान उत्पन्न की। मेनका जन्म देकर अपनी कन्या को आम के निकट ही छोड़कर चली गई। महर्षि स्थूलकेश ने करुणावश उस शिशु को उठा लिया और आश्रम में ले जाकर उसका पालन-पोषण किया। वह कन्या बुद्धि, रूप और सभी उत्तम गुणों से संपन्न संसार की समस्त प्रमदाओं (सुंदर स्त्रियों) में श्रेष्ठ जान पड़ती थी, अत: महर्षि ने उसका नाम प्रमदा रख दिया। यह आगे चलकर रुरु की पत्नी बनी और ऋषि शुनक की माता भी यही है। शुनक की यह संतानें शौनकादि ऋषि हुए।

इसी वंश में परम तेजस्वी दिवोदास और ऋतध्वज हुए। काश्य का पुत्र था काशि, काशि का राष्ट्र, राष्ट्र का दीर्घतमा और दीर्घतमा का धन्वन्तरि। यही आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। धन्वतरि का पुत्र हुआ केतुमान्। केतुमान् का भीमरथ, भीमरथ का दिवोदास और दिवोदास का द्युमान् (इनका नाम शत्रुजित भी है)। इसका एक नाम प्रतर्दन भी है। यही कुवलयाश्व के नाम से भी प्रसिद्ध है।

आभूषण आदि किसी भी वस्तु की कमी नहीं थी। महाराज के एक परम-विनयी, शूरवीर, विद्वान प्रियदर्शन और चरित्रवान सुन्दर पुत्र भी था, जिसका नाम ऋतध्वज था। वह बुद्धि में बृहस्पति के समान, पराक्रम में देवराज इन्द्र के और सुन्दरता में अश्विनीकुमारों और कामदेव के समान था। वह ऐश्वर्य में कुबेर के समान, दृढ़ता में यम के समान, सत्य में धर्म के समान और प्रियता में चन्द्रमा के समान था। ऐसे पुत्र को पाकर पृथ्वीपति शत्रुजित सदा अपने सौभाग्य की प्रशंसा किया करते थे।

राजकुमार की सहृदयता, सहनशीलता, मृदुलता, सर्वप्रियता, कार्यकुशलता, गुणग्राहकता, आदि सद्गुणों के कारण समस्त प्रजा के आबालवृद्ध नर-नारी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे।

कुवलयाश्व की महारानी मदालसा बड़ी विदुषी थी। उसने अपने तीन पुत्रों को अध्यात्मविद्या का उपदेश देकर संसार से विरक्त कर दिया था। कुवलयाश्व के कहने पर उसने अपने सबसे छोटे पुत्र अलर्क को उपदेश देकर नीति-निपुण और संसार-विद्या में पारंगत बनाया। जिन्होंने साठ हजार वर्ष तक राज्य किया। रानी मदालसा अपने पुत्रों को बाल्यावस्था में ज्ञान सिखलाया करती थी। उसने मरते समय अपने पुत्र राजा अलर्क को दो श्लोक देकर कहा कि तू इसे मंत्र बनाकर अपने पास रख। जब तेरे ऊपर कुछ विपत्ति पड़े तब इस श्लोक को पढ़कर उसी के अनुसार करना। राजा अलर्क ने उन दोनों श्लोकों को मन्त्र बनाकर भुजा में बाँध लिया और संसारी सुख में फँसकर राज्य करने लगा। जब दूसरे राजा ने उसे सुख व विलास में फँसा देखा तब जाकर अपनी सेना से उसका नगर घेर लिया। जब राजा अलर्क ने देखा कि अब मेरा प्राण

व राज्य बचना कठिन है तब अपने ऊपर विपत्ति जानकर दोनों श्लोक मंत्र से निकालकर पढ़ा। उसमें लिखा था कि महात्माओं की सत्संग के सिवा संसारी वस्तुओं से प्रीति नहीं करना, संसारी लोगों से संगति व प्रेम करने में पीछे दु:ख होता है, जगत् का व्यवहार स्वप्नवत् समझकर उसमें मन न लगाना चाहिए, संसार की चाह मत रखना यही दु:ख की फाँसी है। पर्वों में ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करना, अपने बन्धु-बान्धवों की इच्छा पूर्ण करना, हृदय में दूसरे की भलाई का ध्यान रखना, मनको परायी स्त्रियोंकी ओर कभी न जाने देना, मन में सदा विष्णु भगवान का चिन्तन करना, उनके ध्यान से अन्त:करण के कामादि छ: शत्रुओं को जीतना, ज्ञान से माया का निवारण करना, जगत् की अनित्यता पर विचार करना, धन के लिए राजाओं को जीतना, यश के लिए धन का सदुपयोग करना, परायी निन्दा सुनने से डरना, विपत्ति के समुद्र में डूबते हुए मनुष्योंका उद्धार करना। राज्य करते हुए सुहृदयों को प्रसन्न रखना, सत्पुरुषों की रक्षा करते हुए भगवान का यजन करना एवं संग्राम में दुष्ट शत्रुओं का संहार करते हुए गौ ब्राह्मणों की रक्षा के लिए अपने प्राण की भी परवाह न करना।

संग का सर्वथा त्याग करना चाहिए, किन्तु यदि संग का त्याग न कर सके तो सत्पुरुषों का ज्ञानी महात्माओं का संग करना चाहिए क्योंकि सत्पुरुषों का संग सम्पूर्ण दु:खों की निवर्तक औषधि है। कामनाओं को सर्वथा छोड़ देना चाहिए किन्तु यदि न छोड़ पाओ तो मोक्ष के प्रति कामना करना चाहिए, क्योंकि मुमुक्षा ही कामनाओं की नाश करनेवाली दवा है।

जब उन श्लोकों को पढ़ने से राजा अलर्क को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वह विरक्त होकर वन की ओर हरिभजन करने चला। उस समय दूसरे राजाओं ने, जो उसका नगर घेरे थे, यह हाल सुनकर राजा अलर्क से जाकर पूछा कि तुम बिना युद्ध किये हार मानकर वन में क्यों जाते हो। अलर्क ने उत्तर दिया कि राज्य करने के उपरान्त नरक भोगना पड़ता है, इसलिए मैं राज्य नहीं करूँगा, तुम मेरी राजधानी लेकर आनन्दपूर्वक सुख करो, मुझे लड़ने की इच्छा नहीं है। जब यह वचन सुनकर दूसरे राजाओं को भी नरक भोगने के डर से ज्ञान उत्पन्न हुआ तब उन्होंने राजा अलर्क का देश लेना उचित नहीं समझा और अपने-अपने देश को चले गये।

शुकदेव बोले- राज्न, द्युमान का ही नाम शत्रुजित था। उसका पुत्र ऋतध्वज के नाम से विख्यात था, जिसका दूसरा नाम कुवलयाश्व भी था। उसके अलर्क आदि कई पुत्र हुए।

कालान्त में ब्रह्मवादिनी मदालसा देवी के गर्भ से बिक्रान्त, सुवाहु, शत्रुमर्दन और अलर्क ये चार पुत्र हुए। इनमें से प्रथम तीन तो माता के उपदेश से गृह-त्यागी विरागी सन्त बन गये, केवल महाराज अलर्क गृहस्थ हुए। अन्त में वे भी त्यागी बन गये।

भूप शत्रुजित् वत्स ऋतध्वज शूरवीर अति। पालहिँ पितु५सम प्रजा धर्ममहँ रखहिँ सदा मति।।
गालव दीन्हों अश्व पवन-मनतैं द्रूतगामी। ता पै चढ़ि पाताल केतु मार्‌यो खेलनामी।।
कुवलयाश्व की कृपातैं, नृप पताल तलमहँ गये। विश्वावसु तना तहाँ, मिली पाइ प्रमुदित भये।।
सँग मदालसा लई ऋतध्वज पितु पुर आये। जननी पितु अति सुधर बहू लखि अँग न समाये।।
अति प्रगाढ़तर प्रेम परस्पर कुँवरि-कुँवरमहँ। जन-रक्षा हित गये अश्व चढ़ि नृप-सुत वनमहँ।।
तालकेतु पाताल को, बन्धु-कपटतैं बन्यो मुनि। छल मदालसातैं कर्‌यो, मरी प्राणपति मृत्यु सुनि।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज अलर्क के अतिरिक्त किसी भी अन्य राजा ने छियासठ सहस्र वर्षों तक युवा रहकर इस पृथ्वी के राज का भोग नहीं किया।

लखि अलर्ककूँ बोधयुत, काशिराज निजपुर गये। पायो पुनि निर्वाण-पद, तिन सत-सन्तति नृप भये।।

अलर्क के सन्तति पुत्र हुआ, उसके सुनीथ, उसके सुकेतन, उसके धर्मकेतु, उसके सत्यकेतु, उसके धृष्टकेतु, उसके सुकुमार उसके नीतिहोत्र उसके भर्ग तथा भर्ग के भर्गाशर्प पुत्र हुआ। ये सब के सब क्षत्रवृद्ध के वंश में उत्पन्न हुए।

शुकदेव बोले- राजन्, देवताओं की प्रार्थना करने पर रजि ने दैत्यों को मारकर इन्द्र को स्वर्ग का राज दिया। इन्द्र ने अपने शत्रु प्रह्लाद आदि असुरों से भयभीत होकर रजि को पुन: स्वर्ग लौटाया, उसके पैर पकड़ आत्मसमर्पण किया। पर, पिता के मरने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र के माँगने पर भी स्वर्ग नहीं लौटाया।

सन्तति सुत हु सुनीथ सुकतन सुत शुभ तिनके। धर्मकेतु तिनि पुत्र सत्यकेतु सुत उनिके।।
क्षत्रवृद्धको वंश कह्यो कुल रम्भ भये द्विज। नृपति अनेना छठी पीढ़ि तक चल्यो वंश निज।।
आयु तनय रजि अति बली, होहिँ चरनमहँ इन्द्र नत। भये पुत्र रण-बाँकुरे, तेजस्वी तिनि पञ्चशत।।

आयु के तृतीय पुत्र रजि के पाँच सौ पुत्र हुए। देवताओं की प्रार्थना पर रजि ने दैत्यों का वध करके इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया था किन्तु प्रह्लाद आदि दैत्यों से भयभीत होकर इन्द्र ने स्वर्ग का राज्य पुन: रजि को ही लौटा दिया और अनुनय-विनय कर अपनी रक्षा का भार भी उन्हीं के हाथों में सौंप दिया। रजि के मरने पर उनके पुत्र स्वर्ग का साम्राज्य इन्द्र को नहीं लौटा रहे थे। तब बृहस्पति के अभिचार-क्रिया के सहयोग से इन्द्र ने उन सबका वध कर दिया और स्वर्ग का साम्राज्य अपने अधिकार में कर लिया।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, महाराज अलर्क के सबसे बड़े पुत्र सन्तति हुए। सन्तति के पुत्र सुनीथ और सुनीथ के सुत सुकेतन हुए। सुकेतन से धर्मकेतु नामक पुत्र हुए। धर्मात्मा धर्मकेतु के घर सत्यकेतु का जन्म हुआ। सत्यकेतु के सुत धृष्टकेतु हुए। उनसे सुकुमार का जन्म हुआ और सुकुमार से वीतिहोत्र का। वीतिहोत्र के भर्ग हुए और भर्ग के राजा भर्गभूमि। यह सब महाराज क्षेत्रवृद्ध के वंश में महाराज काशी से उत्पन्न भूपतिगण हैं। क्षत्रवृद्ध महाराज आयु के द्वितीय पुत्र थे। चतुर्थ पुत्र महाराज रम्भ के रभस नामक पुत्र हुआ और रभस के गम्भीर और उसके अक्रिय। अक्रिय की स्त्री से जो भी सन्तानें हुईं, वे सभी ब्राह्मण वर्ष की हो गयीं।

अब अनेना के वंश का वर्णन करते हैं। महाराज आयु के पाँचवें पुत्र अनेना थे। उनके शुद्ध, शुद्ध के शुचि, शुचि से त्रिककुद् और त्रिककुद् के धर्मसारथि पुत्र हुए। धर्मसारथि ब्रह्मज्ञानी थे, अत: उन्होंने विवाह नहीं किया। इसलिये उनके कोई सन्तति नहीं हुई।

कुश के पुत्र प्रति हुए, प्रति के सञ्जय और सञ्जय के जय। जय के कृत, कृत के हर्यवन, हर्यवन के सहदेव, सहदेव के हीन और हीन के जयसेन नामक पुत्र हुए। जयसेन के संकृति, संकृति के फिर जय और जय के क्षत्रधर्मा नामक पुत्र हुए। राजन्, मैं कहाँ तक गिनाऊँ? यह तो अनन्त सृष्टि है।

नृपति ययाति बढ़े मतमानी, ब्याही शुक्र सुता देवयानी। जग में कीन्ह वंश विस्तारा, फैल्यौ सुयश महान अपारा।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, अब मैं तुमसे आयु के बड़े बेटे नहुष के वंश का वर्णन करता हूँ। नहुष के छ: पुत्र थे- यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति। नहुष अपने बड़े बेटे यति को राज्य देना चाहते थे। किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। वे उसके परिणाम को जानते थे कि राजा के पद पर बैठा हुआ मनुष्य आत्मा के सही स्वरूप को नहीं जान पाता। राजन, महाराज नहुष के यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति और कृति- ये छ: पुत्र उसी प्रकार थे, जिस प्रकार देहधारी जीवें के छ: इन्द्रियाँ होती हैं।

रानी पाइ अशोकसुन्दरी नहुष सुखी अति। गये आयु बन करी तपस्या लही परम गति।।
सुत यति और ययाति वियति संयाति यशस्वी। आयति कृति सब षष्ठ भये अति ज्येष्ठ तपस्वी।।
बृत्र मारि हत्या-ग्रसित, ह्वै शतक्रतु जब छिपि गये। तब सुर सम्मति तैं नहुष, स्वर्ग माँहि सुरपति भयो।।

इन्द्र को वृत्रासुर की वध से ब्रह्महत्या लग गई वह छुप गया- इन्द्रपुरी का राज्य राजा नहुष करने लगे। उनकी इन्द्राणी को भी पत्नी बनाने की इच्छा थी। इन्द्राणी शची भयातुर होकर गुरु बृहस्पति के शरण में गई और उन्होंने युक्ति बताई।

नहुष बड़े प्रतापी थे। वृत्रासुर का वध करने पर इन्द्र के पीछे ब्रह्महत्या लग गई। वे उसके भय से कमलनाल में छिप गये। उस समय स्वर्ग का राज्य नहुष को सौंपा गया। वे इन्द्राणी के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये। उन्होंने इन्द्राणी शची से भोग करना चाहा। इस पर गुरु बृहस्पति की सलाह से शची ने कहा- आप ब्राह्मणों के द्वारा ढोई जाती हुई पालकी पर चढ़कर मेरे पास आयें तब मैं आपके साथ रमण करूँगी। नहुष ने शर्त स्वीकार कर ली। शची की बात मानकर नहुष सप्तर्षियों के द्वारा ढोई जाती हुई पालकी पर चढ़कर शची की ओर चले। धीरे चलने पर वे कहते थे- सर्प-सर्प अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। इस पर अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि जा तू सर्प हो जा। शाप के प्रभाव से नहुष अजगर बन गये। इसीतरह इन्द्राणी का सतीत्व नष्ट होने से बच गया।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, नहुष के सबसे बड़े पुत्र यति ने राज्य ग्रहण नहीं किया, क्योंकि वे उसके उस परिणाम को जानते थे कि इसमें प्रविष्ट होकर मनुष्य आत्मभाव को नहीं जान सकता। जब इन्द्राणी के साथ सम्भोग करने की अभिलाषा के कारण ब्राह्मणों द्वारा पिता नहुष अपने इन्द्र-पद से भ्रष्ट कर दिये गये और वे अजगर योनि को प्राप्त हो गये, तब उनके स्थान पर ययाति राजा हुए।

पाई स्वर्ग को राज नहुष मन गर्व भाये अति। लह्यो अतुत ऐश्वर्य भूपकी भई भ्रष्ट मति।।
शची समीप सँदेश पठायो मोह भजो अब। सती भई भयभीत बृहस्पति निकट गई तब।।
करि सम्मति गुरुतैं शची, कहवायो तब वरुङ्गी। ऋषि ढोवैं शिविका जबहिँ, इच्छा पूरी करूँगी।।
शिविका महँ ऋषि लगे नहुष चढ़ि शचि-गृह गमने। पद-प्रहार करि सर्प कहे मुनि भये अनमने।।
दुष्ट होहि तू सर्प, शाप कुम्भज मुनि दीन्हों। तुरत सर्प ह्वै गिर्‌यो, पाप को फल चखि लीन्हों।।
धर्मराज सत्संग तैं, सर्प-योनि तैं छुटि गये। सब तजि यति जब बन गये, तब ययाति भूपति भये।।

इसके बाद ययाति राजा बने। ययाति ने अपने चारों छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य दे दिया और स्वयं शुक्राचार्य की बेटी देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को पत्नी के रूप में स्वीकार कर पृथ्वी की रक्षा करने लगे।

राजा परीक्षित बोले- ऋषिवर, शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण-कन्या और क्षत्रिय वर का प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ?

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित, दानवराज वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा अपनी गुरुपुत्री देवयानी और अन्य सहस्त्रों सखियों के साथ उद्यान में भ्रमण कर रही थी। शर्मिष्ठा बड़ी मानिनी तथा अति सुन्दर राजपुत्री थी। किन्तु रूप लावण्य में देवयानी भी किसी प्रकार कम नहीं थी। उस समय उद्यान की शोभा अद्भुत थी। घूमती-घामती वे जा पहुँची एक मनोहर सरोवर के तट पर। वहाँ उनकी जल-विहार करने की इच्छा हुई अत: तट पर वस्त्रों को उतारकर वे उतर गईं जलाशय में जल-क्रीड़ा करने।

जल का एक नाम है जीवन। जल में वरुण का बास है। अत: जल में घुसते ही एक प्रकार की स्फूर्ति आती है। कैसा भी

गंभीर मनुष्य हो, जल में घुसते ही उसका मुख खिल उठेगा। बच्चे जल में घुसते ही किलोलें करने लगते हैं, स्त्रियाँ हँसने लगती हैं। जल में एक प्रकार की शान्ति का अनुभव होता है। यदि शीत न हो, उष्णकाल हो, जल का स्पर्श अत्यन्त ही सुखद होता है। यदि एक अवस्था के बहुत से युवक-युवतियाँ जल में साथ ही स्नान करें, हँसे, खेलें तो फिर पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतर आता है। सदा अन्त:पुर में रहनेवाली स्त्रियों को तो स्वच्छन्द स्नान में अत्यधिक आनन्द आता है।

संयोग की बात। उसी समय भगवान शंकर पार्वती के साथ बैल पर बैठ कर उधर से निकले। उनको देखकर लड़कियों को शर्म आई। वे दौड़कर वस्त्र पहनने लगीं। शर्मिष्ठा ने जल्दबाजीमें भूल कर देवयानी के वस्त्रों को पहन लिया। इस पर देवयानी ने उसे डाटते हुए कहा- देखो, देखो, इसकी दुष्टता। जैसे कुतिया यज्ञ का हविष्य उठा ले जाय, वैसे ही इसने मेरे वस्त्र पहन लिये हैं। संसार में ब्राह्मण ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि हैं। उनमें भी हम भृगु-वंशी ब्राह्मण सर्वोत्तम हैं और इसका पिता प्रथमत: तो असुर है, फिर हमारा शिष्य है। इस पर भी इस दुष्टा ने जैसे शूद्र वेद पढ़ ले उसी तरह हमारे कपड़ों को पहन लिया है। हम ब्राह्मणोंने सृष्टि बनायी है, श्रेय मार्ग दिखााय है और परमात्माका दर्शन कराया है। बड़े-बड़े लोकनाथ हमारी चरणोंकी धूलि अपने सिरपर धारण करते हैं। यहाँतक की स्वयं भगवान भी हमारी वन्दना करते हैं।

वृषपर्वा की सुता नाम शर्मिष्ठा युवती। लै सखियन बन गई देवयानी सँग हँसती॥
शोभा निरखि बसन्त मोदमहँ नाचे गावें। ह्वै विवस्त्र जलमाहिं करें क्रीड़ा सब न्हावें॥
निरखे आवत वृषभ चढ़ि, पशुपति पारवती-सहित। ह्वै लज्जित सरतैं निकसि, पहिनत पट लोचन-चकित॥

देवयानी के अपशब्दों ने शर्मिष्ठा के भीतर क्रोध की ज्वाला भड़का दी। वह चोट खाई हुई नागिन की भाँति फुफकारने लगी। उसने अपने दाँतों से ओठ चबाते हुए कहा- भिखारिन्, तू इतना बहक रही है। तुझे कुछ अपनी स्थिति का भी पता है? जैसे कौवे और कुत्ते हमारे द्वार पर रोटी के टुकड़ों के लिये प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही क्या तुम भी हमारे घरों की ओर नहीं ताकती रहती? शर्मिष्ठा ने इस प्रकार बहुत-सी चुभनेवाली बात कह कर देवयानी के वस्त्रों को छीन लिया और उसे पास के ही कुएँ में ढकेल दिया। देवयानी को कुए में ढकेल कर शर्मिष्ठा अपनी सखियों के साथ घरको चली गयी।

उलटे पुलटे वायुदेव ने पट अरु गहने। गुरुपुत्री के वस्त्र भूमि शर्मिष्ठा पहने॥
शुक्रसुता ने कहीं बहुत अनकहनी बानी। वृषपर्वा की सुता सुनत मन माँहिँ रिसानी॥
अन्धकूप धक्का दियो, गिरि देवयानी तबहिँ। छाँड़ि विवस्त्रा कूपमहँ, आई लै पुरमहँ सबहिँ॥

संयोग की बात थी। महाराज ययाति शिकार खेलते हुए उधर आ निकले। उन्हें प्यास लगी थी अत: कुएँ पर गये। देखा तो उसमें एक नग्न तरुणी पड़ी थी। उन्होंने तरुणी को अपना शरीर ढकने के लिये दुपट्टा दिया और फिर उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाल लिया।

शुकदेव बोले- राजन्, शर्मिष्ठा जब घर चली गई, तब दैवयोग से मृगया करते हुए राजा ययाति वहाँ पहुँचे। जल की इच्छा से उन्होंने ज्योंही भीतर देखा, वहाँ देवयानी दिखाई दी, त्योंही दया के वश हुए राजने उस विवस्त्रा को अपना दुपट्टा देकर अपने हाथ से उसका हाथ पकड़कर कुएँ से बाहर निकाला।

बाहर आ जाने पर देवयानी ने महाराज ययाति से प्रेमभरी वाणी में कहा- वीरवर राजन्, आज आपने मेरा हाथ पकड़ा है। अब मेरा पाणिग्रहण किसी और के द्वारा नहीं हो सकता। इसे दैव का विधान ही समझना चाहिये, इसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। बृहस्पति-पुत्र कच के शाप के कारण कोई ब्राह्मण मेरा पाणि-ग्रहण नहीं कर सकता।

कच और देवयानी का प्रसंग इस प्रकार है- दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य थे। उन्हें मृतसंजीविनी विद्या विदित थी। मारे गये दैत्यों को वे पुनर्जीवित कर दिया करते थे अत: दैत्य प्रबल पड़ते थे। देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास मृतसंजीविनी विद्या सीखने के लिये भेजा। कच तरुण थे, सुन्दर थे अत: शुक्राचार्य की तरुणी सुन्दरी बेटी देवयानी उन्हें हृदय से प्यार करती थी। कच पूरी निष्ठा और तत्परता के साथ शुक्राचार्य की सेवा कर विद्या प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। दैत्यों को इस बात का पता चला। उन्होने कई बार कच को मार डाला किन्तु देवयानी के आग्रह पर शुक्राचार्य उन्हें जीवित कर देते थे। एक बार दैत्यों ने खूब सोच-विचार कर योजना बनाई। कच गायों को चराने जंगल में गये थे। वहीं दैत्यों ने कच को मार कर जला दिया। उनकी भस्म को मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को ही पिला दिया। इस बात का पता किसी को भी न चला। शाम को कच जब नहीं लौटे तो फिर देवयानी ने शुक्राचार्य से कच को जीवित करने का आग्रह किया। बेटी के प्रबल हठ को देखकर शुक्राचार्य ने कच को जीवित कर दिया किन्तु इस बार महान् आश्चर्य यह हुआ कि कच आचार्य जी के पेट के अन्दर से ही बोले कि- मैं तो यहाँ हूँ। यह सुनकर शुक्राचार्य चकित हो उठे। कच ने उनसे सारा रहस्य बतला दिया। इस पर आचार्य जी ने कहा- बेटा, घबड़ाना नहीं। तुम्हें मैं संजीवनी विद्या का उपदेश कर रहा हूँ। तुम मेरा पेट फाड़कर बाहर निकल आना और फिर उस विद्या के बल से मुझे जीवित कर देना। यही तुम्हारी मेरे लिये गुरुदक्षिणा होगी। तदनुसार कच आचार्य का पेट फाड़कर बाहर निकले और विद्या के प्रभाव से गुरुजी को जीवित कर दिया। विद्या प्राप्ति के बाद जब कच अपने घर जाने लगे तो देवयानी ने उनके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रक्खा। कच यह कहते हुए उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया कि तुम गुरुपुत्री होने के नाते मेरी बहन हो अत: किसी भी दशा में तुम्हारे साथ विवाह नहीं करूँगा। इस पर देवयानी ने उन्हें शाप दे दिया कि- पिताजी से पढ़ी हुई तुम्हारी विद्या निष्फल हो जाय। इस पर कच ने भी उसे शाप दिया कि- कोई भी ब्राह्मण तुम्हारे साथ विवाह नहीं करेगा।

असुरनि कच वधि सुरासङ्ग गुरु-उदर पठायो। शुक्र सिखाओं मन्त्र मृतकतैं फेरि जिवायो।।
ह्वै कृतार्थ कच चले देवयानी बोली तब। करो ब्याह ममसङ्ग न कच ने स्वीकार्‌यो जब।।
शाप दियो विद्या नहीं, होहि फलवती निकट तब। मिलहि न तोकूं विप्रवर, कचहु कुपित ह्वै कह्यो तब।।

इसलिये राजन्, आप मुझे पत्नी बनाने में संकोच न करें। राजा बोले- देवी। मैंने तो विपत्ति में आपकी सहायता की है। आपसे मेरा कोई परिचय भी नहीं, जीवों पर दया करना प्राणी का धर्म है। मैंने अपने धर्म का पालन किया है। वह युवती बोली- राजन्, कन्या का पाणिग्रहण करना और उसकी रक्षा का संकल्प लेना ही पाणिग्रहण संस्कार हे। मेरा नाम देवयानी है। मैं गुरु शुक्राचार्य की कन्या हूँ। राजा ययाति बोले- गुरु शुक्राचार्य तो हमारे ब्राह्मण हैं, हमारे पूज्य हैं आप उनकी कन्या हैं। आप भी पूज्या हैं। मैं क्षत्रीय होकर आपको कैसे पत्नी के रूप में स्वीकार करूँ।

यद्यपि ययाति शास्त्र के प्रतिकूल होने के कारण यह सम्बन्ध स्वीकार करने के लिये तत्पर नहीं थे। परन्तु दैव की प्रबलता, देवयानी के आग्रह और तरुणी के सौन्दर्य पर मन के आकर्षण के कारण वे विवाह को स्वीकार कर अपनी राजधानी लौट गये।

नृप ययाति ने ब्याह शुक्र-तनया सँग कीन्हों। शौनक शंका करी धर्म नृप च्यों तजि दीन्हों।।
सूत कहें- मुनि, सुनी, कथा अति कहौं मनोहर। गुरु-सुत कच सुर-स्वार्थ-हेतु व्रत कीन्हों दुष्कर।।
सीखन मृतसञ्जीवनी-विद्या उशना ढिँग गये। मारे असुरनि द्वेष-वश, गुरु-प्रसाद जीवित भये।।

ययाति के चले जाने पर देवयानी रोती बिलखती अपने घर पहुँची। वहाँ उसने सारा वृत्तान्त अपने पिताजी को कह सुनाया। शर्मिष्ठा के व्यवहार से शुक्राचार्य को महान कष्ट हुआ। वे पुरोहिताई की निन्दा करने लगे।

दैवयोग तैं नृप ययाति मृगया-हित आये। नङ्गी निरखी कूप देवयानी सकुचाये।।
दयो दुपट्टा डारि दयावश तुरत निकासी। दया उलटि कैं परी भूप के गरमहँ फाँसी।।
पितु ढिँग आई दुखित ह्वै, द्विज-तनया-नृप वरि लये। सुनि घटना तनया-सहित, उशना अति दु:खित भये।।

उन्होंने सोचा कि इसकी अपेक्षा खेत या बाजार से कबूतर की तरह अन्न बीन कर खा लेना ही अच्छा है अत: वे बेटी के साथ वृषपर्वा के नगर से निकल पड़े।

पुत्री हठ कूं मानि त्यागि वृषपर्वा पुर कूँ। चले सुता सँग शुक्र त्यागि नृप शिष्य असुर कूँ।।
सनि सब सुर हरषित भये, असुरनि के छक्के छुटे। यदि गुरु तजि सुरपुर गये, तो अघबरमहँ हम लुटे।।

आचार्य जी के नगर से गमन की बात सुनकर वृषपर्वा घबरा उठे। वे आचार्य जी के पीछे दौड़ पड़े। मार्ग में रोककर उनके चरणों पर अपना मस्तक रखकर शर्मिष्ठा की गलती के लिये क्षमा-याचना करने लगे। इस पर शुक्राचार्य ने कहा- राजन्, मैं अपनी पुत्री देवयानी को नहीं छोड़ सकता अत: इसकी जो इच्छा हो उसे तुम पूरी कर दो फिर तो मुझे नगर में लौट चलने में कोई आपत्ति नहीं है।

पुत्री सँग गुरु जहाँ, तहाँ सब दानव आये। गुरु चरननि महँ परे विविध विधि शुक्र मनाये।।
शांत भये गुरु कहें- सुता कूँ नृपति, मनाओ। सुनि-सुनि पैरनि परे देवि, अब लाज बचाओ।।
दासी शर्मिष्ठा बने, गुरु-पुत्री बोली- कहूँ। सब सेवा सादर करै, सहस सखिनि सँग जहँ रहूँ।।

वृषपर्वा ने हाथ जोड़कर अपने गुरुदेव की बात मान ली। राजा के पूछने पर देवयानी ने कहा- हे दैत्यराज, जहाँ मेरा विवाह हो वहीं शर्मिष्ठा मेरी दासी बनकर चले और कभी भी मेरे पति के साथ सहवास न करे।

शर्मिष्ठा ने देखा कि परिवार पर संकट आया हुआ है अत: उसने देवयानी की शर्त स्वीकार कर ली।

शुकदेव बोले- राजन्, शर्मिष्ठा ने जब अपने समस्त सम्बन्धियों पर संकट आते देखा, तब वह उनके कार्य के गौरव को समझकर सहस्र सखियों-सहित दासी के समान देवयानी की सेवा करने लगी।

गुरु-पुत्री पद पकरि कें, बोली दासी बनूँगी। जहाँ विावहें पिता तव, तहाँ सङ्ग ही चलूँगी।।

शुक्राचार्य ने देवयानी का विवाह ययाति के साथ कर दिया और उनसे कहा कि शर्मिष्ठा को कभी भी अपनी शय्या पर मत आने देना। शर्मिष्ठा दासी बनकर देवयानी के साथ गई। प्रायश्चित्त स्वरूप शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर उसके साथ दहेज में दी गयी।

शर्मिष्ठा सँग सुता दै, बोले-पितु पावें न दु:ख। दोऊ आदर पाइँ परि, शर्मिष्ठा नहिँ सेज सुख।।

शुकदेव बोले- राजन्, तदनन्तर शुक्राचार्यजी ने शर्मिष्ठा के सहित अपनी कन्या ययाति को देते हुए कहा- राजन्, इस शर्मिष्ठा को तुम अपनी पर्यमशयनी कदापि मत बनाना।

मुनियों, अपनी राजधानी में आकर महाराज ययाति धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगे। उनके राज्य में समय पर वर्षा होती थी, सभी औषधियाँ समय पर फलती-फूलती थीं। उनके राज्य में चारों का नाम नहीं था, व्यभिचार, अन्याय, अत्याचार कोई जानता नहीं था। सभी संयमी, सदाचारी, सुशील और शान्त थे। सभी निरन्तर भगवद्भक्ति में रित रहते।

राजा ने नियम कर दिाय था कि सभी अपने-अपने घरों में नियम समय पर कीर्तन करें, भगवान के गुणानुवाद श्रद्धा-सहित श्रवण करें, संयम और सदाचार के साथ रहें, सभी गुरुजनों का आदर करें और अपनी-अपनी धर्मपत्नियों से ही सन्तुष्ट रहें। इन नियमों के कारण सभी सन्तुष्ट रहते। भगवद्भक्ति के प्रभाव से न कोई वृद्ध होते और न मृत्यु के ही दर्शन उन्हें होते। राजा ने सबके द्वार पर कल्पवृक्ष लगा दिये थे, सबके घर में कामधेनु बाँध दी थीं, अर्थात् कोई भी ऐसा नहीं था, जिसको इच्छित वस्तु सरलता से प्राप्त न हो जाती हो। राजा की ऐसी धर्मनिष्ठा के कारण इन्द्र भी उनसे ईर्ष्या करने लगे। महाराज ने साक्षात् वैकुण्ठ को लाकर पृथ्वी पर स्थापित कर दिया।

कुछ दिनों के बाद देवयानी के क्रमश: दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम था यदु और दूसरे का नाम था तुर्वसु। इन पुत्रों को देखकर शर्मिष्ठा के मन में भी पुत्र उत्पन्न करने की लालसा हुई अत: उसने ऋतुकाल में ययाति से सहवास की प्रार्थना की।

शुकदेव बोले- राजन्, किसी समय शर्मिष्ठा ने देवयानी को पुत्रवती देखा, तब उसने भी ऋतु-स्नान के अनन्तर अपनी सखी के पति महाराज ययाति से एकान्त में वीर्यदान की प्रार्थना की।

पुत्रवती उशना सुता, कछुक कामलहँ ह्वै गई। शर्मिष्ठा ह्वै ऋतुमती, नृप-सङ्गम इच्छुक भई।।
रूपवती अरु ऋतुमती, शर्मिष्ठा की सुनि विनय। शुक्र-प्रतिज्ञा भंग करि, दयो दान ह्वैकें सदय।।

भावी प्रबल होती है। ययाति को शुक्राचार्य की चेतावनी याद थी फिर भी ऋतुमती की याचना को धर्म समझते हुए उन्होंने शर्मिष्ठा के साथ जमकर सम्भोग किया।

शुकदेव बोले- राजन्, जब राजकुमारी शर्मिष्ठा ने पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना की, धर्म को जाननेवाले महाराज ययाति ने इसे धर्म समझकर शुक्राचार्य की आज्ञा का स्मरण रखते हुए भी, दैवाधीन होकर, उसे वीर्यदान दिया। उन्होंने भाग्य का अनुसरण किया।

शर्मिष्ठा सुत ज्यो देवयानी सुनि आई। भई क्रोध तैं लाल असुर-तनया धमकाई।।
इत-उत बात बनाय देवयानी टरकाई। गुरु पुत्रिहिँ बहकाइ दैत्य-पुत्री हरषाईं।।
शर्मिष्ठामहँ फँस्यो मन, बस्यो दम्भ नृप के हिये। भये कामवश शील तजि, रति सुख-हित कारज किये।।

एक बार प्रारम्भ हो जाने पर सम्भोग का क्रम समय-समय पर चलता रहा। फलत: शर्मिष्ठा ने भी तीन पुत्रों को पैदा किया। ययाति ने उसे भी अपने शयन कक्ष की शोभा बनाकर तीन पुत्र उत्पन्न कर दिये। इनके नाम थे- द्रुह्यु, अनु और पुरु।

यदि अरु तुर्वसु तनय देवयानी ने जाये। शर्मिष्ठा हू तीन तनय भूपति तैं पाये।।
द्रहयु और अनु पुरु नाम तिनके अति मनहर। प्रकट न बाहर होहिँ रहे महलनि के भीतर।।
शर्मिष्ठा के रूप महँ, रँग्यो रँगीलौ नृप हृदय। देव-सरिस सुन्दर भये, ताईतैं तीनो तनय।।
एक दिवस नृप सङ्ग देवयानी उपवनमहँ। घूमत-घूमत गई परम प्रमुदित ह्वै मनमहँ।।
देव-कुमार समान निहारे द्वै शिशु सुन्दर। रूप रंग उनहार-शील नृप सरिस मनोहर।।
पूछे पतितैं प्रेमवश, जीवन-धन ये शिशु सुघर। ह्वै निर्भय क्रीड़ा करहिँ, कहहु कौन के हैं कुमर।।

पता चलने पर देवयानी के क्रोध की सीमा न रही। वह कुपित होकर पिता शुक्राचार्य के घर चली गई। ययाति ने देवयानी को मनाने की बड़ी चेष्टा की, गिड़गिड़ाये, चरण दबाये किन्तु वह एक न मानी।

भये भूप भयभीत न बोले कछु घबराये। करि कर को संकेत कुमर द्विज सुता बुलाये।।

पूछे किनके पुत्र शिशुनि सच बात बताई। शर्मिष्ठा ढिँग कुपित देवयानी सुनि आई।।

बात खरी-खोटी कहीं, शर्मिष्ठा डरपी न जब। भरी क्रोधमहँ नृपहिँ तजि, पितु-ढिँग रोवत गई तब।।

शुकदेव बोले- राजन्, देवयानी से यदु और तुर्वसु ये दो पुत्र उत्पन्न हुए और शमिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पुरू पुत्र उत्पन्न हुए। जब मानिनी देवयानी को विदित हुआ कि शर्मिष्ठा के मेरे पति के द्वारा गर्भ रहा था, तब तो वह क्रोध से विमूर्छित हुई अपने पिता शुक्राचार्य के घर चली गई।

पीछे-पीछे ययाति भी शुक्राचार्य के घर तक पहुँच गये। शुक्राचार्य ने जो भी क्रोध में भर कर ययाति से कहा- तू अत्यन्त स्त्रीलम्पट, मन्द बुद्धि और झूठा है। जा, तेरे शरीर में वह बुढ़ापा आ जाय जो मनुष्य को कुरुप बना देता है।

ययाति ने कहा- ब्रह्मन, आपकी पुत्री के साथ सम्भोग करते-करते अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है, इस शाप से तो आपकी पुत्री का भी अनिष्ट ही है।

वृत्त सुन्यो सब शुक्र शाप भूपतिकूँ दीन्हों। करी प्रतिज्ञा भंग अनादर मेरो कीन्हों।।

तातैं तुरतहिं जरा देह तेरी महँ आवै। भोगि सके नहिँ भोग अनृत को अब फल पावै।।

नृप बोले- तव सुता तैं, ब्रह्मन्। तृप्ति भई नहीं। उभय ओर तैं विषय की, इच्छा अबहिँ गई नहीं।।

इस पर शुक्राचार्य बोले- अच्छा जाओ; जो प्रसन्नता से तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उससे अपना बुढापा बदल लो। इससे तुम पुन: युवा बन जाओगे। यदु बोले- पिताश्री, असमय में आयी वृद्ध अवस्था को लेकर मैं जीवित नहीं रहता चाहता। मुझे तो आनन्द भोगने की लालसा है। जब तक मुझे विषयभोग का अनुभव नहीं करता तब तक उसे वैराग्य प्राप्त नहीं होता।

शुकदेव बोले- राजन्, अपनी पुत्री की बात सुनकर शुक्राचार्य कुपित होकर ययाति से बोले- हे स्त्री कामी, हे असत्यवादी, हे मन्दमति तुझे मनुष्यों को विरुप करनेवाली जरावस्था प्राप्त हो। यह सुनकर ययाति बोले- ब्रह्मन, अभी तक मैं आपकी पुत्री के साथ विषयभोग करके तृप्त नहीं हुआ। तब शुक्र बोले- अच्छी आत है, जो तुम्हें प्रसन्नता से स्वेच्छापूर्वक अपनी युवावस्था दे उससे तुम अपनी वृद्धावस्था बदल सकते हो।

एवमस्तु मुनि कही विहँसि नृप पुरमहँ आये। पाँचों प्यारे पुत्र प्रेम तैं पास बुलाये।।

शुक्र शाप की बात बताई यौवन माँग्यो। यदु, अनु, तुर्वसु, द्रहयु, सुनत वच सर सम लाग्यो।।

चारों ही पितु-वचन सुनि, वय दैवे तैं नटि गये। क्षात्र-धर्म तैं शाप दै, भ्रष्ट भूप ने करि दये।।

ययाति ने सर्वप्रथम अपने पुत्रों से ही युवावस्था माँगी किन्तु बुढ़ापा लेकर बदले में अपनी जवानी देने के लिये तैयार नहीं हुआ। **राजा बोले- जरा जो, स्वीकारे मेरो तनय। पावै सो सम्राट-पद, जगमहँ यश, कीरति, विजय।।**

सबसे छोटे पुत्र थे- पुरु। उन्होंने खुशी-खुशी पिताजी को अपना यौवन देकर उनका बुढ़ापा अंगीकार कर लिया। वे पिता की इच्छा को पूर्ण करना अपना सौभाग्य समझते थे।

शुकदेव बोले- राजन्, ययाति के यौवनावस्था माँगने पर उनके सबसे छोटे पुत्र पुरू ने कहा- जो पुत्र पिता के चिन्ता किये कार्य को स्वत: करता है, वह उत्तम पुत्र है, कहने पर जो करे, वह अधम और जो कहने पर भी न करे, वह तो पिता के मल-मूत्र के समान है। ऐसा कहकर उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता की वृद्धावस्था ग्रहण कर ली। जो अपना शरीर देकर भी माता-पिता की इच्छाओं को पूरी कर सके, संसार में वही सत्पुत्र यशस्वी होता है।

राजा ने प्रसन्न होकर पुरू को आशीर्वाद दिया- तुम मेरे राज्य के पूर्ण अधिकारी हो, सम्राट-पद तुम्हें ही प्राप्त हो। तुम

यशस्वी, तेजस्वी और दीर्घायु हो। यह वंश तुम्हारे ही नाम से संसार में प्रसिद्ध हो।

महाराज ययाति भी पुत्र के यौवन को प्राप्त करके यथेष्ट विषय-भोग करने लगे।

अब पुन: ययाति देवयानी के साथ सानन्द विहार करने में संलग्न हो गये। प्रजा का पालन भी वे पिता की भाँति करते थे। राजा ययाति ने सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान श्रीहरि का बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले बहुत से यज्ञों से निष्काम भावना के साथ यजन किया। इसप्रकार एक हजार वर्ष तक उन्होंने अपनी स्वतन्त्र इन्द्रियों को मन के साथ संयुक्त कर प्रिय विषयों का उपभोग किया परन्तु इतने पर भी चक्रवर्ती सम्राट ययाति की भोग-लालसा तृप्त न हो सकी।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, राजा ययाति इस प्रकार स्त्री के वशीभूत होकर बहुत दिनों तक विषयों का उपभोग करते रहे। एक दिन जब अपने अध:पतन पर उनकी दृष्टि गई तो उन्हें महान् वैराग्य हुआ फिर उन्होंने अपनी प्राणप्रिया पत्नी देवयानी को एक प्रसंग सुनाया। जो उनके जीवनचरित से बहुत कुछ मिलता-जुलता थी। उन्होंने कहा- भृगुनन्दिनी, सुनो- एक बकरा था। वह वन में मस्ती के साथ घूम रहा था। उसने देखा कि एक बकरी कुएँ में गिरी हुई है। वह बकरा बड़ा कामी था। उसने बकरी को कुएँ से निकालने का निश्चय किया। फलत: उसने अपनी सींग से कुएँ के पास की धरती खोद डाली और मार्ग बना दिया। बकरी बाहर निकल आई। निकल कर उसने दाढ़ी-मूँछ-मण्डित उस बकरे से प्रेम करना प्रारम्भ किया। बकरा हृष्ट-पुष्ट एवं मस्त था और बहुत सी बकरियों से प्यार करता है, तो वह क्रुद्ध होकर अपने मालिक के पास चली गई। वह दीन कामी बकरा उसे मनाने के लिये में-में करता हुआ उसके पीछे-पीछे चला किन्तु उसे मार्ग में मना न सका। उस बकरी का स्वामी एक ब्राह्मण था। बकरी की बात सुनकर वह बकरे पर क्रुद्ध हो उठा ओर उसके अण्डकोष को कटवा दिया फिर उस बकरी का ही भला करने के लिये उसे जोड़ भी दिया। वह इस प्रकार की शल्य चिकित्सा करने में माहिर था। अण्डकोष ठीक हो जाने पर वह बकरा उस बकरी के साथ बहुत दिनों तक संभोग करता रहा फिर भी उसे तृप्ति न हुई। सुन्दरी, मेरी भी यही दशा है। तुम्हारे प्रेम-पाश में फँसकर मैं भी दीन हो गया। तुम्हारी माया से मोहित होकर मैं अपने-आपको भी विस्मृत कर बैठा।

प्रिये, पृथ्वी में जितने भी अन्न, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं- वे सबके सब मिलकर भी कामनाओं से आहत हृदयवाले पुरुष के मन को सन्तृप्त नहीं कर सकते। जो कामनाओंके प्रहारसे जर्जर हो रहा है।

विषयों के निरन्तर भोग से भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती। जैसे घी की आहुति डालने पर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोग-वासनाएँ भोगों से और प्रबल हो जाती हैं। जब मनुष्य किसी भी प्राणी अथवा वस्तु से द्वेष भाव नहीं रखता है, तब वह समदर्शी हो जाता है, तथा उसके लिए सभी दिशाएँ सुगम बन जाती हैं। विषयों की तृष्णा ही दु:खों का उद्गमस्थल है। मन्दबुद्धि लोग बड़ी कठिनाईसे उसका त्याग कर सकते हैं। शरीर बूढ़ा हो जाता है पर तृष्णा नित्य तरुण हो जाती है।

मैं सहस्रों वर्षों से निरन्तर भोगों को भोग रहा हूँ फिर भी विषयों के प्रति मेरी तृष्णा बढ़ती ही जा रही है अत: अब मैं भोगों की वासना, तृष्णा का परित्याग करके अन्त:करण परमात्मा से संलग्न कर दूँगा। द्वन्द्वों की परवाह न करता हुआ निर्द्वन्द्व होकर वन में मृगों के साथ सुखपूर्वक विचरण करूँगा। इन्द्रियों का भी यही स्वभाव है। इनको चाहे जितना भी भोग दो, इनकी लालसा और लिप्सा बढ़ती ही जाती है। मनुष्योंमें कुछ-न-कुछ ममता, सम्बन्ध और आसक्तिका उदय हो ही जाता है और मन कहीं-न-कहीं रम जाता है। इसलिये जो विरक्त होता है वही आत्मदर्शी होता है।

शुकदेव बोले- राजन्, ययाति अपनी पत्नी देवयानी से कह रहे हैं- पृथ्वी में जितना धान्य, यव, सुवर्ण तथा सुन्दरी स्त्रियाँ हैं ये सबकी सब वस्तुएँ एक भी विषय-ग्रस्त पुरुष के चित्त को सन्तुष्ट नहीं कर सकतीं। विषयों के भोगने से कभी

भी वासना शांत नहीं हो सकती। यही नहीं, जैसे अग्नि में घृत की आहुति डालने से वह और अधिक बढ़ती है, वैसे ही विषयों के भोगने से विषयेच्छा अधिकाधिक बढ़ती जाती है।

यों सुत यौवन पाइ भोग भोगे संसारी। तोऊ तृप्ति न भई चित्त अति भयो दुखारी।।
भयो विषय-वैराग्य विचारें नहिँ सुख पायो। बनि विषयनिको दास समम सब व्यर्थ गँवायो।।
तृप्ति करि सकें विषय ये, विषय-ग्रस्त नरकूँ नहीं। शान्त होहि कहु प्रज्वलित-अगिग बिन्दु घृततैं कहीं।।

यह कहकर महाराज ययाति ने अपने लघु पुत्र पुरु को उसकी जवानी लौटा कर उससे अपना बुढ़ापा वापस ले लिया। इसके बाद उन्होंने पूर्व में द्रुह्यु को, दक्षिण में यदु को, पश्चिम में तुर्वसु को और उत्तर में अनु को राजा बनाकर शेष समग्र भूमण्डल का चक्रवर्ती राजा पुरु को बना दिया फिर वे देवयानी के साथ वन में तप करने चले गये। वहाँ उन दोनों ने कठिन तप करते हुए भगवान श्रीकृष्ण में चित्त स्थिर कर शरीर को छोड़ दिया और भगवान के परम धाम की यात्रा की। वन में जाकर राजा ययाति ने अपने स्थूल शरीर को लिंग शरीर में लीन कर दिया तथा लिंग शरीर को आत्मा के साक्षात्कार में लीन करके परब्रह्म पद की प्राप्ति की। यद्यपि राजा ययाति ने बहुत वर्षोंतक इंद्रियोंसे विषयोंका सुख भोगा परन्तु जैसे पाँख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला छोड़ देता है वैसे ही वन में जाकर राजा ययाति ने समस्त आसक्तियोंको त्याग दिया।

नृपति ययाति विचार करें हा, पाप कमायो। पााये दुर्लभ देह भजन बिनु व्यर्थ गँवायो।।
सुत को यौवन लयो भोगे भोगे निशि-वासर। तोऊ तृप्ति न भई, लह्यो नहिँ सुखमय अवसर।।
तातैं अब सब त्यागि कैं, तप हित बनमहँ जाउँगो। विषयाशा तजि भक्ति तैं, चित हरि माहिँ लगाउँगो।।

देवयानी पहिले तो राजा के वैराग्य को परिहास रूप ही समझती रही किन्तु जब राजा को वास्तव में वैराग्य हुआ देख कर उसने भी भगवान की माया को समझकर संसार से आसक्ति त्याग दी और श्रीहरि में अपने चित्त को लगा कर उन्हें नमस्कार किया।

यों करि पश्चात्ताप पुरू सुत तुरत बुलायो। यौवन दैकें लईं जरा बहु विधि समुझायो।।
सबकूँ दीयो राज पुरू सम्राट बनाये। राजपाट सब त्यागि गये वन मन हरषाये।।
करै घोंसला त्याग ज्यों, पक्षी पर के जमत ही। त्यौं विराग में निरत ह्वै, वन गमने नृप तुरत ही।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज ययाति के अनु नामक पुत्र के सभानर, चक्षु और परोक्ष ये तीन पुत्र हुए। सभानर के सुत कालनर, उनके सृञ्जय, सृञ्जय के जनमेजय तथा जनमेजय के महाशील हुए और महाशील के महामना हुए। महामना के उशीनर और तितिक्षु दो सुत थे।

नृत ययाति के भये पुत्र चौथे जो नरपति। तिनि अनु को अब वंश सुनहु जो है पावन अति।।
भये सभानर, चक्षु परोक्षहु अनुसुत रनजय। पुत्र सभानर भये कालनर तिनिके सृञ्जय।।
जनमेजय सृञ्जय तनय, महाशील तिनि पुत्रवर। महामना तिनिके तनय, तिनितैं नृपवर उशीनर।।
बनि के अग्नि कपोत उशीनर नृप-ढिँग आये। शक्र श्येन धरि रूप भूप कूँ वचन सुनाये।।
यह कपोत आहार हमारो या कूँ त्यागो। नृपति कहैं- तजि याहि और चाहे जो माँगो।।
तिनि के सुत शिबि भये क्रोधजित धैर्यवान अति। माँग्यों द्विज सुत मांस दयो हर्षित ह्वै भूपति।।
लेन परीक्षा माहिँ द्विज आग लगाई। तनिक न विचलित भये बात द्विज शीश चढ़ाई।।
आय अब द्विज वेश धरि, लई परीक्षा कठिन अति। मृतक पुत्र जीवित भयो, शिवि नरपति की विमल मति।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज उशीनर के शिवि, वन, शमी और दक्ष- ये चार पुत्र हुए। इनमें ज्येष्ठ महाराज शिवि के भी वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय- चार सुत हुए।

पृथ्वी के रजकणों की, मेघ बूँदों की, आकाश के तारागणों तथा नक्षत्रों की, समस्त जीवों के रोमों की, सातों समुद्रों के जल बिन्दुओं की भले ही कोई गणना कर ले, किंतु महाराज शिबि ने ब्राह्मणों को कितनी गौएँ दीं, कितनी सुवर्ण मुद्राएँ बाँटी, इनकी गणना करना अत्यन्त ही कठिन है। उन्होंने जितने यज्ञ किये, उतने प्रजापतियों को छोड़कर किसी ने न किये होंगे। समुद्रों में जितने जीव-जन्तु निवास करते हैं, उतनी गौएँ उन्होंने दान दी होंगी। उनके यज्ञों में आओ, नहाओ खाओ, ले जाओ- ये ही शब्द सुनाई देते थे।

भये चारि शिवि तनय पिता के सम तेजस्वी। वृषादर्भ कैकेय सुवीरहु मद्र यशस्वी॥
नृपति तितिक्ष सुशील उशीनर नृप लघु भ्राता। पुत्र उशद्रथ भये हेम सुत तिनि सुख-दाता॥
हेम पुत्र सुतपा भये, सुतपा सुत बलि जगविदित। राज, पाट, धन, धान्य, पशु, सुख सब, किन्तु न एक सुत॥

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज शिबि के तो पुत्र चार हुए। उशीनर के भाई तितिक्षु थे, उनके पुत्र रुशद्रथ हुए। उनके हेम, हेम के सुतपा और सुतपा के पुत्र बलि हुए। महाराज बलि ने अपनी पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा मुनि के द्वारा अङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र आन्ध्र- छः पुत्र उत्पन्न कराये। इन लोगों ने पूर्व दिशा में अपने नाम से अलग-अलग प्रान्त बसाकर राज्य किया।

भूपति बलि सुत बिना रहे मनमहँ अति चिन्तित। सूझै नहीं उपाय नृपति कूँ सुतहित समुचित॥
गंगा तट पै बैठि बात नृप मनमहँ आई। द्विज तैं सुत करवाहुँ, नाव इक दई दिखाई॥
दीर्घतमा तामें बँधे, बड़े तपस्वी अन्ध मुनि। नाव पकरि तट पै करी, भये मुदित मुनि नाम सुनि॥

महामुनि दीर्घतमा उतथ्य ऋषि के ही पुत्र थे। बृहस्पतिजी के शाप से, ये माता के उदर से अन्धे ही उत्पन्न हुए थे। उत्पन्न होते ही ये संस्कार-वश वेद-वेदाङ्ग-सभी कुछ पढ़ गये। जब ये विवाह-योग्य हुए, तब उतथ्य मुनि को इनके विवाह की चिन्ता हुई, किन्तु जन्मान्ध को अपनी कन्या दे कौन? यही एक कठिन समस्या थी। उसी समय एक ब्राह्मण की प्रद्वेषी नामवाली युवती पुत्री थी। वैसे तो वह बड़ी रूपवती, किन्तु स्वभाव की बड़ी चिड़चिड़ी थी। कोई ब्राह्मण-कुमार उसके स्वभाव के कारण उससे विवाह करना नहीं चाहता था। उसने सोचा- चलो, दीर्घतमा को ही अपना पति बना लो। पढ़ा-लिखा विद्वान तो है ही। कोई नेत्रवाला हो तो बात-बात में त्रुटि निकालेगा। अन्धे को जहाँ बिठाओ, बैठ जायगा, जहाँ लिटाओ, लेट जायगा। यही सब सोच समझकर प्रद्वेषी ने दीर्घतमा को अपना पति बना लिया।

दीर्घतमा तैं भये नृपति सुत क्षेत्रज सुखकर। अंग बंग अरु कलिँग सुह्म अरु पुण्ड आन्ध्रवर॥
निज-निज नामनि देश पूर्वमहँ थापित कीन्हें। दासी सुत मुनि दीर्घतमा निज सुत करि लीन्हें॥

शुकदेव बोले- राजन्, दिविरथ के पुत्र धर्मरथ हुए। उनके चित्ररथ हुए, जो रोमपाद नाम से भी विख्यात थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। उनके मित्र अयोध्याधीश महाराज दशरथ थे।

रोमपाद हू नाम न तिनके कोई सन्तति। शान्ता कन्या दई मित्र लखि दशरथ भूपति॥
विप्रन का अपमान कर्‌यो नहिं सुरपति बरसें। भीषन पर्‌यो अकाल अन्न बिनु सब जन तरसे॥
भये चित्ररथ दुखि अति, सम्मति मन्त्रिनि तें करी। कौन पाप तैं घोर यह, विपदा हम सब पै परी॥
बोले द्विज-यदि ऋष्यश्रृङ्ग मुनिवर पुर आवें। तो सुरपति अविलम्ब राजमहँ जल बरसावें॥

मुनि आगमन उपाय बतायो सब मिलि मंत्रिनि। ऋषिकुमार तप निरत न निरखी नारी नयननि।।
यदि प्रमदा को मुख कमल, निरखें तो फँसि जायँगे। रूपाकर्षण डोरिमहँ बँधे, विवश ह्वै आयँगे।।
वीर्य विभाण्क पान नीर सँग हरिनी कीयो। जन्यो श्रृङ्ग सिर पुत्र नाम श्रृङ्गी धरि दीयो।।
विषयनि तैं अनभिज्ञ वृत्ति तप मांहिँ लगाई। नारि न कबहूँ लखी करन छल वेश्या आई।।
परम सुन्दरी षोडशी, लखि, समुझे मुनि तपोधन। आलिङ्गन छल तैं कर्‌यो, मोहित मुनि को कर्‌यो मन।।

शुकदेव बोले- राजन्, मुनि-पुत्र ऋष्यश्रृंग को वेश्यायें नृत्य, गान, वाद्य, हाव-भाव तथा आलिङ्गन आदि विविध विधियों से मोहित करके राजा के पुर में ले आई। उन्हीं ऋष्यश्रृङ्ग ने पुत्रहीन महाराज रोमपाद को पुत्र के लिये मरूतों की इष्टि करायी।

अति भोरे सब बात कपट बिनु पितुहिँ बताई। समुझि गये मुनि यहाँ कामिनी कुलटा आई।।
सुत समुझायो- वत्स, न मुनि खल तोहि भुलायो। अब करिये मत बात असुर माया करि आयो।।
पितु आयसु मानी नहीं, दशा अनौंखी-सी भई। घायल करि शर सैंन तैं, ठगिनी ठगि कै लै गई।।
मुनि-सुत के छिपि पास बार बनिता पुनि आई। नौका पै लै गई नाव पुनि तुरत चलाई।।
गावत रसमय गीत नृत्य करि वाद्य ब्रजावत। अङ्गदेश लै गई चित्तमहं अति हरषावत।।
ऋष्यश्रृग्ग पहुँचे जबहिं, राज माँहिँ बरषा भई। भये सुखी सब प्रजागन, विपति-भूतिनी भगि गई।।
शान्ता कन्या सङ्ग ब्याह मुनि सुतको कीन्हों। सुकुमारी लहि बहु, जगत-सुख मुनि अब चीन्हों।।
कोप विभाण्डक कर्‌यो, रोष तैं नृप पुर आये। बहु स्वागत नृप कर्‌यो, बहू सुत पैर गिाये।।
पुत्र-वधू सँग पुत्रकूँ, लखि लट्टू मुनिवर भये। उड़्यो क्रोध कर्पूर सम, पुत्र वधूं कूं वर दये।।

शुकदेव बोले- राजन्, मुनिवर ऋष्यश्रृंग के यज्ञ कराने पर पुत्रहीन राजा दशरथ ने (श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) पुत्र प्राप्त किये थे। रोमपाद के पुत्र चतुरङ्ग हुए और चतुरङ्ग के पुत्र पृथुलाक्ष हुए।

ऋष्यश्रृङ्ग मुनि गृही बने बह मख करवाये। दशरथ अरु नृप रोमपाद जिन तै सुत पाये।।
रोमपाद के भये पुत्र चतुरङ्ग अमानी। दशवीं पीढ़ी भये कर्ण कुन्ती तैं दानी।।
सुत ययाति अनु-वंशमहँ, भये धर्मयुत भूप सब। कह्यो वंश अनु पुरू को, सुनो द्रह्यु को वंश अब।।
नृपति द्रह्यु-सुत बभ्रु सुत सेतु जिनहु तैं। सेतु-पुत्र आरब्ध भये गान्धार तिनहु तैं।।
चौथी पीढ़ी माँहि प्रचेता भये शक्ति युत। तिन तैं अति बलवान भये तेजस्वी शत सुत।।
उत्तर दिशि के भूप ये, म्लेच्छनि के राजा विदित। अब तुर्वसु को सुनहु कूल, जो ययाति के द्वितिय सुत।।

शुकदेव बोले- राजन्, उनके तृतीय पुत्र द्रह्यु के कुल को कहता हूँ। ये हिमालय के इस पार उस पार देशों के अनार्य म्लेच्छ देशों (पहाड़ी, तिब्बती, काबुल, कंधार, रूस, चीन, जापान) के राजा हुए। वर्णाश्रमी देशों की सीमा से बाहर होने से ये संस्कारहीन हो गये। म्लेच्छों के संसर्ग से उनके साथ विवाह आदि सम्बन्ध करने से ये भी म्लेच्छप्राय हो गये। अत: इनके कुल के कुछ ही राजाओं का केवल नाममात्र रहता है।

तुर्वसुके सुत वह्नि वह्नि के गर्भ भूमिपति। भानुमान तिनि तनय त्रिमानहु तिनि सुत दृढ़मति।।
नृप त्रिभानु के तनय करन्धम भूप मनस्वी। मरुत नृपति तिनि पुत्र यज्ञ करि भये यशस्वी।।
पुरुवंशी दुष्यन्त कूँ, गोद लयो परि लोभवश। निजकुलमहँ पुनि मिलि गयो, बढ़्यो न पुनि तिनि वंशयश।।

पुरुवंश

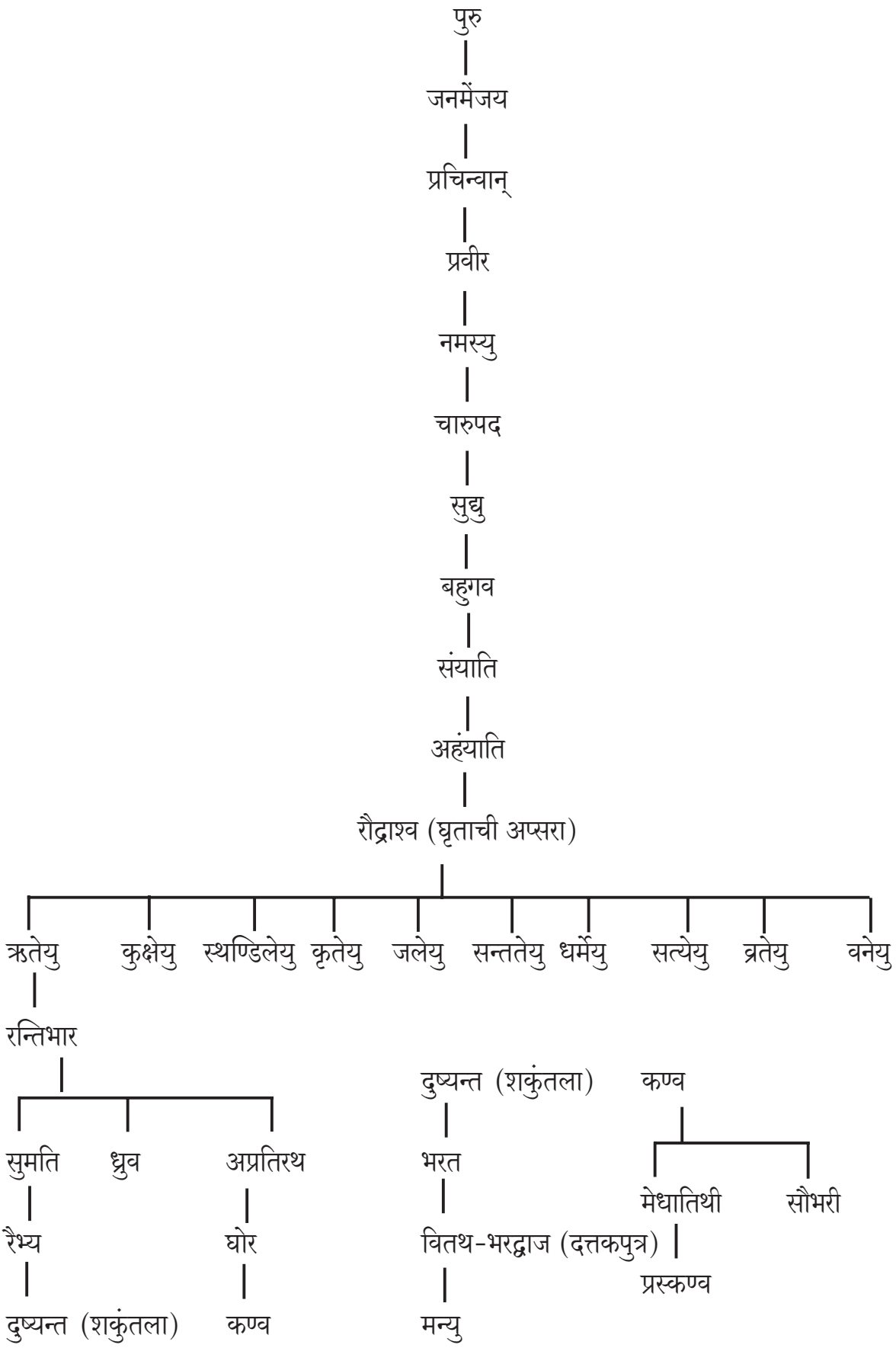
पुरु
जनमेंजय
प्रचिन्वान्
प्रवीर
नमस्यु
चारुपद
सुद्यु
बहुगव
संयाति
अहंयाति
रौद्राश्व (घृताची अप्सरा)
ऋतेयु
कुक्षेयु
स्थण्डिलेयु
कृतेयु
जलेयु
सन्ततेयु
धर्मेयु
सत्येयु
व्रतेयु
वनेयु
रन्तिभार
सुमति
ध्रुव
अप्रतिरथ
रैभ्य
घोर
दुष्यन्त (शकुंतला)
कण्व
दुष्यन्त (शकुंतला)
भरत
वितथ-भरद्वाज (दत्तकपुत्र)
मन्यु
कण्व
मेधातिथी
सौभरी
प्रस्कण्व

१६) पुरु वंश और राजा दुष्यन्त पुत्र भरत का चरित्र- शुकदेव बोले- परीक्षित्, इसी वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। यह वंश बड़ा प्रशस्त है। इसमें बड़े-बड़े राजर्षि और ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए हैं।

पुरु के पुत्र का नाम था- जनमेजय। जनमेजय का पुत्र हुआ प्रचिन्वान। **प्राचिन्वान-** पुरुवंश के एक पराक्रमी राजा। जनमेजय ने मधुवंश की कन्या अनंता के साथ विवाह किया था। उसके गर्भ से उनके प्राचिन्वान नामके पुत्र हुआ। पराक्रमी प्राचिन्वान ने उदयाचल से लेकर सारी प्राची दिशा को एक ही दिन में जीत लिया था, इसीलिए उनका नाम प्राचिन्वान हुआ। प्रचिन्वान् का प्रवीर, प्रवीर का नमस्यु और नमस्यु का हुआ चारुपद। चारुपद का पुत्र सद्यु, सद्यु का बहुगव, बहुगव का पुत्र संयाति उसका पुत्र अहंयाति, उन्हीं की वंश-परम्परा में रौद्राश्व हुए। उन्होंने घृताची अप्सरा से दस पुत्र पैदा किये। उनके नाम थे- ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु। उनमें से ऋतेयु के पुत्र रन्तिभार हुए। रन्तिभार के तीन पुत्र हुए- सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ। अप्रतिरथ से कण्व हुए। कण्व से मेधातिथि हुए। इन्हीं मेधातिथि से प्रस्कण्व आदि पुत्र उत्पन्न हुए जो ब्राह्मण हो गये। इनका वंश क्षत्रिय वंश से पृथक् हो गया। सुमति के पुत्र रैभ्य हुए। रैभ्य के ही पुत्र महाप्रतापी राजा दुष्यन्त थे।

एक बार राजा दुष्यन्त शिकार खेलने वन में गये। उनके साथ कुछ सैनिक भी थे। शिकार का पीछा करते हुए वे कण्व के आश्रम में पहुँचे। वहाँ देवमाया के समान मनोहर एक तरुणी बैठी हुई थी। उसकी अंगकान्ति से वह आश्रम जगमगा रहा था। सुन्दरी के सौन्दर्य को देखते ही दुष्यन्त उस पर मोहित हो उठे। काम-वासना ने उनके मन में अधिकार कर लिया।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज दुष्यन्त एक बार अपने बहुत से योद्धाओं से घिरकर मृगया के निमित्त गये। वे संयोगवश कण्वमुनि के आश्रम पर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अपनी प्रभा से उस आश्रम को सुशोभित करती हुई लक्ष्मी के समान देवमाया के समान एक सुन्दरी स्त्री को देखा। उसे देखकर राजा उससे बातचीत करने लगे।

मुस्कराकर राजा दुष्यन्त ने पूछा- कमलनयने, तुम कौन हो? तुम्हारे पिताश्री कौन हैं? इस निर्जन वन में तुम क्यों निवास कर रही हो? सुन्दरी, मुझे स्पष्ट मालूम पड़ रहा है कि तुम अवश्य किसी क्षत्रिय की पुत्री हो क्योंकि पुरुवंशियों का चित्त कभी अधर्म की ओर नहीं जाता।

शकुंतला- ऋषि विश्वामित्र और अप्सरा मेनका की पुत्री, महर्षि कण्व द्वारा लालित-पालित। पूर्वकाल में देवराज इंद्र महर्षि विश्वामित्र की घोर तपस्या से चिंतित हो गये। उन्हें यह भय सताने लगा कि कहीं विश्वामित्र तपस्या के बल से इंद्र-पद प्राप्त कर स्वयं उन्हें स्थान भ्रष्ट न कर दें। यही सोचकर उसने मुनि के तप में विघ्न डालने का निश्चय किया।

अत: मुनि विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र ने मेनका अप्सरा को भेज दिया। अनिंद्यसुंदरी मेनका के रूप-माधुर्य ने मुनि विश्वामित्र को ऐसा मंत्रमुग्ध कर दिया कि वे आत्मसंयम नहीं रख सके, जिससे उनकी दीर्घकाल से उपार्जित तपस्या नष्ट हो गई। परिणामत: हिमालय के रमणीय परिवेश में, मालिनी नदी के तट पर मेनका ने शकुंतला को जन्म दिया।

मेनका अब क्या करती। इंद्र की आज्ञा कैसे टाल सकती थी। वह मुनि के निकट गई और अपने हाव-भाव, कटाक्ष और संगीत से मुनि के मन को मोहने लगी। मुनि का मन चंचल हो उठा और उन्होंने उसे आश्रम में रहने के लिये आमंत्रित किया। मेनका तो आई ही इसी उद्देश्य से थी। मुनि के बुलाने पर वह गई और उनकी इच्छा पूर्ति करती हुई, सुखपूर्वक मुनि के साथ आनन्द विहार करने लगी। मुनि उस वार-वनिता के फंदे में ऐसे फँस गये कि जप, तप, योग, ध्यान आदि सब भूल गये। अब वे रात-दिन उस ललना को ही रिझाने में लगे रहते। मुनि उसके चय, रूप और अनवद्य सौन्दर्य पर ऐसे आसक्त हो गये कि वे समय की गति को ही भूल गये। उन्हें यह भी प्रतीत नहीं होता था कि कब दिन हुआ, कब रात हुई।

विश्वामित्र बोले- सुन्दरि, न तुम्हारा कुछ दोष है, न कामदेव का ही दोष। यह सब मेरा ही दोष है। मैंने यदि इन्द्रिों को जीता होता तो मैं इस प्रकार तप छोड़कर काम के फंदे में क्यों फंस जाता। मेरे ही मन में दोष है। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम सुखपूर्वक स्वर्ग जा सकती हो। मनुष्य विषय लोलुप न हो तो स्त्री उसका कुछ कर ही नहीं सकती।

तुम इच्छापूर्वक जहाँ चाहो जा सकती हो। अब मैं और भी घोर तप करूँगा। यह सुनकर मेनका के प्राणों में प्राण आये। वह मुनि के चरणों में प्रणाम करके तुरन्त वहाँ से चल दी। वह गर्भवती थी। विशवमित्र का तेजस्वी वीर्य उसके उदर मतें स्थित था। गर्भके दिन भी पूरे हो गये थे। अत: मेनका को मुनि के आश्रम से दूर मालिनी नदी के तट पर सिंह व्याघ्र सेवित निर्जन वन में एक कन्या उत्पन्न हुई। हिमालय की तलहटी में उस शीघ्रगामिनी सरिता के तट पर उस सद्य:जात कन्या को यों ही अनाथ छोड़कर वह स्वच्छन्दचारिणी कामिनी सुरवनिता स्वर्ग को चली गई। पृथ्वी पर उसने मानवीय रूप बना लिया था, इसलिये उसे गर्भ रह गया, नहीं तो स्वर्गीय ललनाओं के स्वर्ग में तो सन्तान होती ही नहीं।

यौवन रूप निहारि भये मोहित मुनि ज्ञानी। कीयो भोग बिलास दिवस अरु निशा न जानी।।
भयो चेत इक दिवस मेनका भागी डरिकें। गई स्वर्ग इक सुता सुन्दरी वनमहँ जनिकें।।
कुलपति कन्या वन लखी, घिरी शकुन्तनितें विवश। तातैं नाम शकुन्तला, धरयो करी कन्या सरिस।।

भगवान कण्व का आश्रम इस मालिनी के तट पर ही है। कुलपति भगवान कण्व स्नान करने के लिये नदी तट पर प्रात:काल जा रहे थे। उन्होंने निर्जन वन में एक अत्यन्त ही सुन्दरी विद्युतपुञ्ज के समान सद्य:जात कन्या को वहाँ पड़े हुए देखा। उसे चारों ओर से शकुन्त (पक्षी) घेरे खड़े थे। कोई अपने पंखों से उसके ऊपर छाया कर रहे थे। कोई वायु कर रहे थे। मुनि को उस कन्या को देखकर बड़ी दया आई। करुणावश उन्होंने उस बच्ची को गोद में लेकर छाती से चिपटा लिया और लेकर आश्रम में आये। (एक वृद्धा तापसी की ओर संकेत करके सखी ने कहा) यह जो वृद्धा तपस्विनी हैं, इन्हीं को मुनि ने कन्या लाकर दी। इन्होंने अपनी सगी पुत्री की भाँति इसका पालन-पोषण किया। शकुन्त (पक्षियों) से घिरी हुई थी, इसलिये मुनि ने इसका नाम शकुन्तला रखा। मुनि ने अपनी पुत्री की ही भाँति इसे प्यार से पाला है, इसीलिये यह उन्हें अपना पिता कहती है। वे भी इसे प्राणों से अधिक प्यार करते हैं।

मेनका नवजात कन्या को वहीं छोड़कर इंद्रलोक को चली गई। सिंह और व्याघ्रों से भरे हुए उस निर्जन वन में शिशु को सोते हुए देखकर शकुंतों (पक्षियों) ने उसे सब ओर से ढक लिया, जिससे हिंसक पशु उस कन्या को पीड़ित न कर सकें।

उसी समय महर्षि कण्व उस स्थान पर पहुंचे, जहां पक्षियों से घिरी हुई वह कन्या सो रही थी। महर्षि कण्व सभी प्राणियों की बोली समझते थे। उन्हें देखते ही वे पक्षी महर्षि के पैरों पर गिर पड़े और अत्यंत विनम्र वाणी में कहने लगे- मुनिवर। यह मुनि विश्वामित्र की कन्या आपके यहां धरोहर के रूप में आई है। आप दयालु हैं, कृपा करके इसका पालन-पोषण कीजिए। कण्व मुनि कन्या को अपने आश्रम में ले आये। उन्होंने उसका अपनी पुत्री के रूप में पालन किया। उन्होंने ही उसका नाम शकुंतला रखा, क्योंकि उस कन्या को निर्जन वन में शकुंतों (पक्षियों) ने घेर रखा था और उन्होंने ही उसकी रक्षा की थी। अत: शकुंतों द्वारा लालित रक्षित-कन्या शकुंतला नाम से विख्यात हुई।

शुकदेव बोले- राजन, शकुन्तला दुष्यन्त से कह रही है- हे वीर, मैं विश्वामित्रजी की पुत्री हूँ। मेरी माता मेनका ने मुझे वन में छोड़ दिया। **विश्वामत्रि महर्षि करें तप डरप्यो सुरपति। करन तपस्या भंग पठाई सुरललना रति।।**
परम सुन्दरी मेनका, रति सङ्ग भेजी मुनि निकट। डरपति पहुँची सुरवधू, करहिँ जहाँ मुनि तप विकट।।

शकुन्तला ने अपना परिचय प्रदान करते हुए कहा- वीरप्रवर, मैं विश्वामित्र की पुत्री हूँ। मेनका अप्सरा ने मुझे पैदा कर

वन में छोड़ दिया था। मुझ अबोध शिशु पर मुनि कण्व की कृपा-दृष्टि पड़ी। वे मुझे आश्रम में लाये। पालापोषा और बड़ी किया। यही मेरा परिचय है। कमलनयन, आप यहाँ बैठिये। हमारा स्वागत स्वीकार कीजिये। आश्रम में नीवार (तिन्नी की भात) है। यदि आप को रुचे तो उसे ग्रहण कीजिये। आप चाहें तो यहाँ ठहर भी सकते हैं।

राजा ने कहा- देवि, तुम्हारे दर्शनों से ही मुझे सब कुछ मिल गया। तुम्हारे मधु से भी मीठे वचनों से ही मेरी परम-तृप्ति हो गई। तुम्हारे रूपासव को पान करते-करते ही मैं नहीं अघाता। तुमने जो मेरा सत्कार किया इसीसे मैंने सब कुछ पा लिया।

एक तरफ सौन्दर्य का महासागर लहरा रहा था, तो दूसरी ओर तरुणाई का हिमालय तैयार था। दोनों का दिल एक-दूसरे पर न्योछावर हो रहा था। दुष्यन्त ने कहा- सुमुखि, तुम उत्तम कुल की कन्या हो। मेरा अनुमान सही निकला। राजाओं की कन्याएँ अपने सदृश वर का वरण स्वयं कर लेती हैं।

क्षत्रिय कन्या जानि नृपति मनमाहिँ सिहाये। भूप काम-वश भये नीतिके वचन सुनाये।।
मैं पौरव तुम कुशिक वंशकी राजकुमारी। वरण करहु पति मोहिँ प्रीति यदि होहि तुम्हारी।।
ब्राह्म, दैव, गान्धर्व अरु, राक्षस, आसुर, आर्ष वर। प्राजापत्य, पिशाच, यों, ब्याह अष्ट संतानकर।।

शुकदेव बोले- राजन्, शकुन्तला की बात सुनकर दुष्यन्त ने कहा- हे सुभ्रु। आतिथ्य-सत्कार के लिये वचन कहना तुम्हारे अनुरूप ही है। तुम्हारा जन्म तो कुशिक वंश में हुआ, राजकन्यायें तो अपने योग्य वर को स्वयं ही वरण करती हैं।

सूतजी कहते हैं- मुनियों। जब महाराज दुष्यन्त के मन्त्री और पुरोहित चले गये और वे शकुन्तला के साथ अकेले ही रह गये, तब उन्होंने बड़े स्नेह से उससे कहा- सुन्दरि, तुम राजकुमारी हो, वन में रहने योग्य नहीं हो। तुम तो महलों को सुशोभित करने योग्य हो।

शकुन्तला ने लजाते हुए कहा- महाराज, मेरा तो जन्म ही वन में हुआ है, वन में ही मैं पली हूँ। वन के पशुओं के साथ ही मेरा जीवन व्यतीत हुआ। महलों में तो राजा-रानी रहते हैं। हम तपस्वियों के भाग्य में तो वन ही है।

मैं विवाह करने में स्वतन्त्र नहीं, अपने पिता के अधीन हूँ। मेरे पिता जिसके साथ मेरा विवाह कर देंगे, उसी के साथ मैं चली जाऊँगी। मुझे तो कुछ कहने का अधिकार ही नहीं। संसार में ऐसी कौन युवती होगी, जो आपको आत्मसमर्पण करने में अपना परम सौभाग्य न समझे। मर्त्यलोक की ललनाओं की तो बात ही क्या, स्वर्ग की सुन्दरी देव-कुमारी भी आपको अपना पति बनाने में अपना गौरव समझेंगी। मेरे चाहने से ही तो सब कुछ नहीं हो सकता। मैं अपने पिता से और अधर्म से बहुत डरती हूँ। धर्म-विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं कर सकती। प्राणों को मैं सहर्ष छोड़ सकती हूँ, किन्तु धर्म को कभी नहीं छोड़ सकती।

राजा ने कहा- मैं तुम्हें धर्म छोड़ने को नहीं कह रहा हूँ। तुम युवती हो, प्राप्तवयस्का हो, राजकुमारी हो। युवती क्षत्रिय कन्याओं को स्वयं वर-वरण करने का पूर्ण अधिकार है। उनके लिये गान्धर्व विवह गर्ह्य नहीं, प्रशंसनीय है, अधर्म नहीं, धर्म है, कनिष्ठ नहीं, उत्तम है, अयशस्कर नहीं, यशस्कर है, अकीर्तिकर न होकर, कीर्तिकार है। तुम मेरे साथ गान्धर्व विधि से विवाह कर सकती हो। महामुनि कण्व धर्मज्ञ हैं, वे इसका अवश्य अनुमोदन करेंगे। यदि मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा है तो इसी समय तुम मेरे साथ विवाह कर लो।

शकुन्तला ने कहा- महाराज, यदि मैं स्वयं वर-वरण करने में स्वतन्त्र हूँ, यदि धर्म और नीति के विरुद्ध नहीं है तो मुझे आपको पति बनाने में परम प्रसन्नता है, किन्तु यहाँ मंत्र पाठ करनेवाले पुरोहित तो हैं ही नहीं।

राजा बोले- गान्धर्व-विवाह में मन्त्र न भी पढ़े जायँ तो भी धर्म विरुद्ध नहीं होता। दोनों प्रतिज्ञापूर्वक पाणिग्रहण कर लें, एक-दूसरे को आत्मसमर्पण कर दें, यही अथेष्ट है।

शकुन्तला ने कहा- यदि यही शास्त्रीय आज्ञा है तो मुझे आपको आत्म-समर्पण करने में कोई आपत्ति नहीं। आप प्रतिज्ञा करें, मेरे गभ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का अधिकारी माना जायगा।

राजा बोला- मैं सत्य को साक्षी देकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे ही मैं अपने राज्य का अधिकारी बनाऊँगा। मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया। आशा है, तुम्हें मेरी शपथ पर विश्वास हो गया होगा।

लोभी जिस प्रकार धनराशि ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा ने शकुन्तला के कर को आदर, उल्लास और अनुराग के साथ अपने हाथ में दे लिया। फिर दोनों ने वेद मन्त्रों से एक दूसरे के साथ आजीवन धर्मपूर्वक रहने की प्रतिज्ञा की। स्वर्ग में देवता और पितर इस मंगलमय गान्धर्व विवाह को देखकर मुदित हो रहे थे।

राजा ने समझा- अनमोल वस्तु मिल गई। शकुन्तला ने समझा- मेरा जीवन सार्थक हो गया।

करि गान्धर्व विवाह होहु पत्नी तू मेरी। सब विधि इच्छा करूँ सकल पूरन हौं तेरी।।
राज, पाट, धन-धाम, वस्तु सब मेरी जो है। देह, प्रान, सर्वस्व आजतैं तेरी सो है।।
बोली सोचि शकुन्तला, यदि अधर्म है नहीं नृप। करूँ वरन यदि मम तनय, होहि सकल भूको अधिप।।

शकुन्तला ने कहा- अच्छी बात है। तब देश-काल के विधान को जाननेवाले राजा ने गन्धर्व-विधि से शकुन्तला के साथ विवाह कर दिया।

नृप स्वीकार्‍यो, भयो ब्याह गान्धर्व तुरत तहँ। पति-पत्नी बनि भये निरत दोऊ रति-सुखमहँ।।
मुनि-तनया तन अरपि अतिथिकूँ अति सुख दीन्हों। रज अरु वीर्य अमोघ गरभ थापन नृप कीहों।।
भयो प्रात अति कष्ट तैं, विलग भये दोऊ बिकल। रति-श्रम प्रिया-वियोग तैं, दोउनिके सब अँग शिथिल।।

शुकदेव बोले- राजन्, अमोघवीर्य राजर्षि दुष्यन्त ने अपनी रानी शकुन्तला में वीर्य स्थापित किया। प्रात:काल होते ही दूसरे दिन वे अपने नगर को चले गये।

शकुन्तला के स्वीकार करने पर राजा ने उससे सविधि गान्धर्व विवाह कर लिया। रात भर राजा ने यौवनमदमाती शकुन्तला से जमकर रमण किया।

राजा पुर में जाकर आश्रम की सब बातें भूल गये। समय आनेपर शकुन्तला ने एक पुत्ररत्न प्रसव किया। आश्रम भर में आनन्द मनाया गया। स्वयं भगवान कण्व ने उसके सभी संस्कार दिये। अब शकुन्तला बालिका न रहकर पुत्रवती बन गई।

कण्व-शापतैं डरपि प्रियातें अनुमति माँगी। महिषी समुझि वियोग दु:खतै रोवन लागी।
तब शकुन्तला लाज-वश, मुनि समीप आई नहीं। सोचे-पितु होवें न रिस, पति परमेश्वरपै कहीं।।।

राजा अमोघवीर्य थे फलत: शकुन्तला ने कण्व के आश्रम में एक पुत्र-रत्न पैदा किया। मुनि कण्व ने बालक का जातकर्म आदि संस्कार किया। बालक इतना दुर्दान्त था कि वह सिंह-शिशुओं को हठात् पकड़कर उनसे खेला करता था।

मुनि आश्वासन दियो ब्याह अनुमोदन कीन्हों। पुत्रवती हो पुत्र हरिष कुलपति वर दीन्हों।।
समझ पाइके पुत्र जन्यो ऋषि-मुनि हरषाये। जात-कर्म-संस्कार कण्व विधिवत करवाये।।
अति सुन्दर अति स्वस्थ सुत, लखि प्रमुदित सब जन रहें। करे दमन सिंहादिको, सर्व-दमन सब मुनि कहें।।

सबने उसका नाम सर्वदमन रख दिया, क्योंकि वह सभी पशुओं का दमन करता था। भगवान कण्व के चरणों में उसकी अनन्य भक्ति थी। उनकी प्रत्येक आज्ञा का पह पालन करता था।

सर्वदमन- दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र भरत। शकुंतला ने जब प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, रूपवान और उदारता आदि गुणों से संपन्न अमित पराक्रमी कुमार को जन्म दिया, उस समय आकाश से फूलों की वर्षा हुई। देवताओं

की दुदुंभियां बज उठीं और अप्सराएं मधुर स्वर में गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस अवसर पर देवताओं सहित इंद्र ने आकर कहा- शकुंतले। तुम्हारा यह पुत्र चक्रवर्ती सम्राट होगा। पृथ्वी पर कोई भी इसके बल, तेज तथा रूप की समानता नहीं कर सकता। देवकुमार-सा प्रतीत होनेवाला वह तेजस्वी बालक महर्षि कण्व के आश्रम में शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगा।

छ: वर्ष की अवस्था में ही वह बलवान बालक सिंह, व्याघ्र, वराह, हाथी आदि पकड़कर ले आता था और वृक्षों से बांध देता था। दुष्यंतकुमार भरत उनकी पीठ पर चढ़ जाता था और क्रीड़ा करते हुए उन्हें सब ओर दौड़ता था। कितने ही दैत्य और राक्षस प्रतिदिन उस पराक्रमी बालक दुष्यंतकुमार के हाथों मारे जाते थे। कुमार के भय से ही राक्षसों ने महर्षि कण्व के आश्रम की ओर आना छोड़ दिया। अत: आश्रमवासी ऋषियों ने उसका नाम सर्वदमन रख दिया- यह सब जीवों का दमन करता है, इसलिए सर्वदमन नाम से प्रसिद्ध हो।

सुत-शकुन्तला सहित पठाई पुनि पति-गृह मुनि। दुखित निहारत चली लता, तरु, खग मृग पुनि-पुनि।।
कुलपति करुणा करी, हृदय तैं सुता लगाई। पितु गृहतैं ह्वैं विदा, राजमहलनिमहँ आई।।
सभा-भवनमहँ आइकें, नृपकूँ निज परिचय दयो। सुनि अवाक् से नृप, अति विस्मय सबकूँ भयो।।
राजा बोले- कौन कहाँकी है तू नारी। जान नही पहिचान बनें तू बहू हमारी।
ह्वै शकुन्तला क्रुद्ध कहे होकर तुम भूपति करिके छल-व्यवहार बने अब इतर भोरे अति।।
करि गन्धर्व विवाह बन, गर्भ कस्यो थापन तहाँ। करवाश्रममहँ जन्यो सुत, है समुपस्थित यह यहाँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब महाराज दुष्यन्त ने दोष रहित अपनी पत्नी तथा पुत्र को स्वीकार नहीं किया, तब सभी प्राणियों के सुनते हुए यह अशरीरी आकाशवाणी हुई - हे दुष्यन्त, माता तो धौंकनी के समान है। देखा जाय तो पुत्र पिता का ही होता है। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसी का रूप होता है। इसलिये तू इस पुत्र का भरण-पोषण कर, शकुन्तला का अपमान न कर।

जब राजा ने शकुन्तला का स्वीकार नहीं किया तो तब आकाशवाणी ने कहा- आदित्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, ावयु, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, देवता, दिन, रात्रि तथा दोनों सन्ध्यायें- ये तो प्राणियों के सभी भले-बुरे कर्मों को देखती हैं। धर्म से डरिये। अधर्म का आश्रय न लीजिये। सोते हुए को जगाया जा सकता है, किन्तु जो जागता हुआ भी सोने का स्वाग रच रहा है, उसे कोई कैसे जगावे।

राजन्, आत्मा से उत्पन्न होने के कारण पुत्र में और पिता में कोई भेद नहीं। पिता ही नया रूप रखकर पुत्र रूप में परिणित हो जाता है। यह पुत्र आपका ही है। आप इसका भरण-पोषण कीजिये, शकुन्तला का सम्मान कीजिये, ऐसी सती-साध्वी सरला धर्मपत्नी का परित्याग करना सर्वथा अनुचित है। यह साधारण बालक नहीं है, यह आपके पश्चात समस्त भूमण्डल का सम्राट होगा। राज्, आप हमारी आज्ञा से इसका भरण-पोषण करेंगे, इत: इसका नाम भरत होगा। संसार में यह भरत नाम से विख्यात होगा। इतना कहकर आकाशवाणी शान्त हो गई।

माता धारण करे पिताकी वस्तु कहावै। पति ही बनके पुत्र उदर जायाके आवै।।
यह कुमार तुमरो तनय, भूप भरन जाको करो। पितर सहित पुं नरकतैं पर जाइ सुखतैं तरो।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज भरत के किये हुए महान कर्मों को न तो पिछले राजाओं ने ही किया है और न ही उन कर्मों को आगे के राजा ही कर सकते हैं। उनकें कर्मों तक कोई उसी प्रकार पहुँच सकता, जिस प्रकार कोई अपने बाहुओं से स्वर्ग को नहीं छू सकता।

स्वीकार्‌यो सुत नृपति प्रजा अनुमोदन कीन्हों। जानि-बूझिके भूप-पुत्र अपनो नहिं चीन्हों।
सर्वदमन युवराज करि, नाम भरत नृप ने धर्‌यो। भरत वंश जिनतैं चल्यो, जग उज्ज्वल यशतैं कर्‌यो।

भरत का बल असीम था। वे बलवान भैंसों और सौ-सौ गर्वीले सिंहों को भी बलपूर्वक घसीट लाते थे। उनके इस कर्म से ब्राह्मणों ने उसका नाम सर्वदमन रख दिया।

वह बालक भगवान का अंशावतार था। उसका बल विक्रम अपार था। बालक का नाम भरत रक्खा गया। भरत के नाम से ही यह देश भारत देश कहलाया। कण्व की आज्ञा से शकुन्तला बालक को लेकर दुष्यन्त के पास गई। दुष्यन्त ने पत्नी और पुत्र- दोनों को अस्वीकार कर दिया। **भरत -** सम्राट, महाराज दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र। जब शकुंतला अपने पुत्र सर्वदमन के साथ महाराज दुष्यंत के दरबार में पहुंची और दुष्यंत ने उन्हें स्वीकार नहीं किया, तब शकुंतला वहां से लौटने के लिए ज्यों ही उद्यत हुई, तभी विद्वानों, पुरोहितों, आचार्य और मंत्रियों से घिरे हुए दुष्यंत को संबोधित करते हुए आकाशवाणी हुई- राजा दुष्यंत। तुम शकुंतला से उत्पन्न हुए अपने पुत्र का पालन-पोषण करो। अपने जीवित पुत्र को त्यागकर जीवन धारणा करना बड़े दुर्भाग्य की बात है। यह महामना बालक शकुंतला और दुष्यंत दोनों का पुत्र है। हम देवताओं के कहने से तुम इसका भरण-पोषण करोगे, इसलिए तुम्हारा यह पुत्र भरत के नाम से विख्यात होगा। इस पर सब को विश्वास दिलानेवाली आकाशवाणी हुई- दुष्यन्त, शकुन्तला सत्य बोल रही है। यह बेटा तुम्हारा ही है अत: इसका भरण-पोषण करो। आकाशवाणी की बात मानकर दुष्यन्त ने पत्नी और पुत्र को स्वीकार किया।

पिता दुष्यन्त के मर जाने पर भरत भारत के चक्रवर्ती सम्राट बने। अपने शासन काल में इन्होंने गंगा के पावन तट पर ५५ एवं यमुना के विमल तट पर ७८ अश्वमेध यज्ञ किये था। उनमें इन्होंने प्रत्येक ब्राह्मण को तेरह हजार चौरासी गायें प्रदान की थी। उन्होंने चौदह लाख सुवर्ण मण्डित विशालकाय हाथियों का भी दान किया था। भरत ने जिन महान कर्मों का सम्पादन किया, वैसे कर्म न तो भूतकाल में किसी ने किया है और न आगे ही कोई करेगा।

भरत ने दिग्विजय की बेला में किरात, हूण एवं यवन, अन्ध, अंक, शख, शक अबह्मण्य राजा और म्लेच्छों आदि ब्राह्मण-विद्वेषी राजाओं को मार कर यमपुरी भेज दिया था। इससे संसार में सर्वत्र उनका यश फैल गया। राजा भरत ने रसातल में ले जाकर देवाङ्गनाओं को असुरों से छुड़ाया था। इनकी तीन पत्नियाँ थीं। ये तीनों ही विदर्भराज की कन्याएं थीं। इन रानियों के पुत्र तो अवश्य हुए किन्तु वे राजा के अनुरूप नहीं थे अत: उन लोगों ने अपने बच्चों को मार डाला अत: यह वंश नष्ट हो गया। बाद में महाराज भरत ने पुत्र की कामना से मरुत्सोम नामक यज्ञ किया। इससे प्रसन्न होकर मरुतों ने भरत को भरद्वाज नामक पुत्र दिया। भरद्वाज की उत्पत्ति की कथा यह है कि एक बार बृहस्पति जी ने अपने बड़े भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी ममता से मैथुन करना चाहा। उस समय गर्भस्थ शिशु (दीर्घतमा) ने बृहस्पति को ऐसा करने से मना किया किन्तु कामी बृहस्पति माने नहीं और गर्भाधान कर दिया। उतथ्य की पत्नी ममता ने अपने पति के भय से बृहस्पति द्वारा गर्भ में स्थापित बच्चे को त्याग दिया। बृहस्पति ने कहा कि यह मेरा पुत्र है तथा मेरे भाई के क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है अतएव यह द्वाज है। इस तरह इस पुत्र का नाम भरद्वाज रहा। भरत ने जब मरुद्गणों की स्तुति की तो उन सबों ने उसी भरद्वाज को भरत को प्रदान कर दिया। यह भरद्वाज भरत का दत्तक पुत्र हुआ।

मरुतों ने उसे ग्रहण कर लिया और बाद में उसे ही भरत को दे दिया। यही भरद्वाज भरत का दत्तक पुत्र हुआ। इसीसे फिर उनका वंश चला। **भरद्वाज-** अपना क्रम आने पर महर्षि भरद्वाज ने यातुधानी से कहा- कल्याणी- जो मेरे पुत्र और शिष्य नहीं हैं, उनका भी मैं पालन (भरण) करता हूँ तथा देवता, ब्राह्मण, अपनी धर्मपत्नी तथा याज (वर्णसंकर) मनुष्यों का भी भरण-

पोषण करता हूं, अत: मेरा नाम भरद्वाज प्रसिद्ध है। सम्राट भरत ने सत्ताईस हजार वर्ष तक पृथ्वी का एकछत्र राज्य किया।

ममता के अपने पति उतथ्य से जो पुत्र हुआ, वह बृहस्पतिजी के शाप से उदर से ही अन्धा उत्पन्न हुआ। इसीलिये उनका नाम दीर्घतमा रखा गया। यह जो ममता और बृहस्पति के द्वारा पुत्र हुआ, वह दो से होने के कारण वाज कहलाया। ममता ने बृहस्पति से कहा- हे बृहस्पति। तुम इस द्वाज का भरण-पोषण करो। बृहस्पतिजी ने कहा - तू ही इस द्वाज को भर-अर्थात् भरण-पोषण कर। दोनों ही उस पुत्र का भरण-पोषण नहीं किया। पुत्र बड़ा ही सुन्दर और परम तेजस्वी था, अमोघवीर्य देवगुरू भगवान बृहस्पतिजी के वीर्य से उत्पन्न हुआ था। दोनों ने उसका भरण-पोषण नहीं किया। दोनों ही उस द्वाज को अरण्य में छोड़कर चले गये। मरुतों ने उनका भरण-पोषण किया। इसलिये वह भरद्वाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मरुतों ने प्रसन्न होकर उस भरद्वाज को ले जाकर महाराज भरत को दिया। राजर्षि भरत ऐसे सुन्दर तेजस्वी सुत को पाकर परम प्रमुदित हुए। उन्होंने उसे अपना सगा पुत्र ही समझा। उसका एक नाम वितथ भी हुआ। वितथ कहते हैं, जो अन्याय से जन्मा हुआ हो। इधर भरत-वंश वितथ अर्थात् उच्छिन्न हो रहा था। उसी समय यह पुत्र प्राप्त हुआ। इसलिये इसका नाम वितथ ही प्रसिद्ध हुआ। महाराज ने उसे ही अपने राज्य का अधिकारी बताकर युवराज-पद पर अभिषिक्त किया।

दयो मरुतगन लाइ भरतने सुत निज जान्यो। पायो मरुत-प्रसाद वंश निज उज्ज्वल मान्यो।।
वितथ नामतैं ख्यात जगतमहँ भये भरतसुत। त्यागि राज-परिवार गये वन नरपति तप-हित।।

भरत, सत्ताईस हजार वर्षों तक वे वसुन्धरा का धर्मपूर्वक पालन करते रहे। अन्त में उन्हें विषयों से विराग हुआ। उन्हें सार्वभौम सम्राट की सम्मत सुखदा सम्पत्ति, अप्रतिहत अटल अनुशासन, तथा प्रिय पदार्थों से भी प्यारे प्राण मिथ्या, नश्वर तथा क्षणभंगुर दिखाई देने लगे। विषयों के उपभोग में सुख नहीं शान्ति नहीं। ऐसा निश्चय करके वे समस्त संसारी सुखों से उपरत हो गये।

भरत-सरिस जग माहिँ वीरको ज्ञानी दानी। परम यशस्वी युद्ध-क्षेत्रमहँ अति ही मानी।।
अगणित दीये दान अश्व, भू, रथ, गोधन। कीये रिपुवश बाह्य भीतरी मन इन्द्रियगन।।
भोगे सब संसार सुख, तोऊ तुष्ट न नृप भये। भोग सकल मिथ्या समुझि, उपरत तिनतैं ह्वै गये।।
राजा भरत धीर मति मानी। शूरवीर पंडित अति ज्ञानी। आर्यावर्त रत्न वह पाया। भारत वर्ष नाम तब पाया।।
नृप विदर्भकी सुता सुन्दरी राजदुलारी। पत्नी तिनकी तीनि सुशीला अति सुकुमारी।।
तिनतैं जे सुत भये भरत अनुरूप न माने। त्यागे पत्नी वंश वितथ लखि नृप खिसियाने।।
भाभी ममता गर्भतैं, पैदा सुरगुरु कर्‌यो सुत। त्यागि दाये पितुमातुने, मरुत उठायो शिशु तुरत।।

शुकदेव बोले- परीक्षित, भरद्वाज भरत के दत्तक पुत्र थे। भरद्वाज को उनकी जननी वितथ कहा करती थी अत: उनका एक नाम वितथ भी था। वितथ के पुत्र मन्यु थे। मन्यु के पाँच पुत्र थे- बृहत्क्षत्र, जय, महावीय, नर और गर्ग। नर के एक पुत्र थे- संकृति। संकृति के दो पुत्र हुए- गुरु और रन्तिदेव। रन्तिदेव का चरित इहलोक और परलोक दोनों में फैला हुआ था।

भये वितथके मन्यु पाँच सुत तिनके सुन्दर। बृहत्क्षत्र, जय, गर्ग, भये नर महावीर्यवर।।
नरसुत संकृति भयो तासु सुत द्वै जग-भूषन। प्रम भयो गुरु रन्तिदेव दूसर निष्किञ्चन।।
बिनु पुरषारथ दैववश, मिलहि अयाचित जो अशन। दै अभ्यागत अतिथिकूँ, पावें ह्वैं सन्तुष्ट मन।।

रन्तिदेव को प्रारब्ध के अनुसार जो मिलता उसीको स्वीकार कर लेते थे। उनके पास धनोपार्जन का कोई उपाय नहीं था।

भरतवंश

वितथ (भरद्वाज)

बृहस्पति (भाई उतथ्य की पत्नि ममता से)

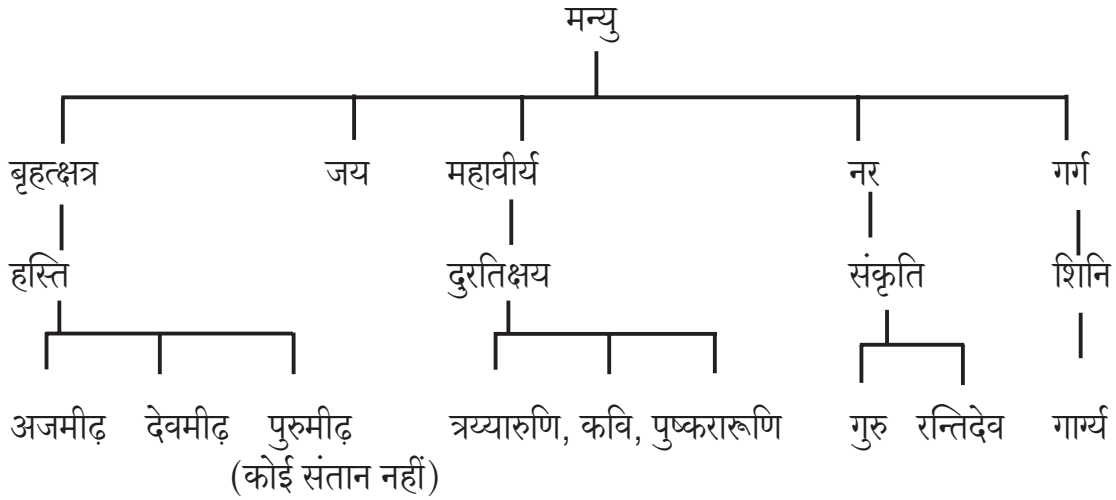

द्विमीढ़ का वंश

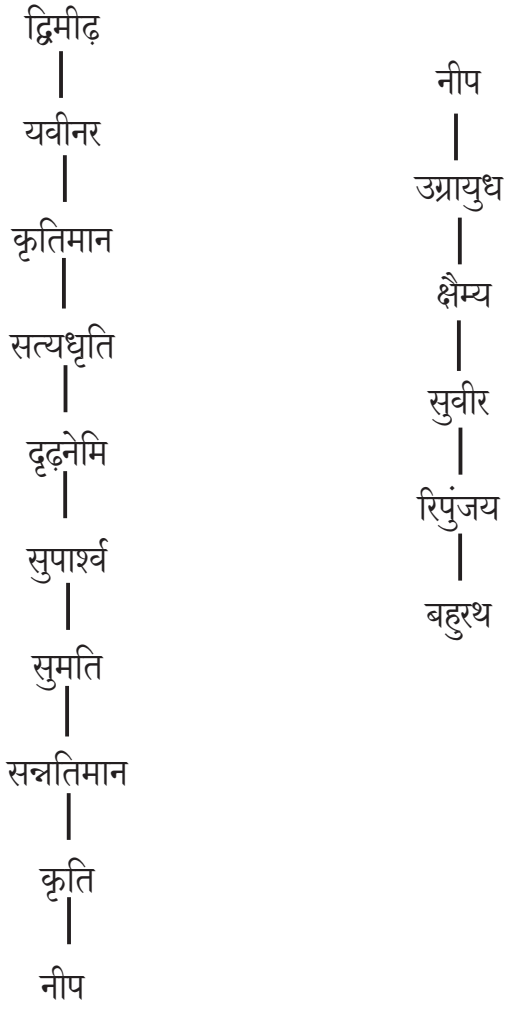

अजमीढ़

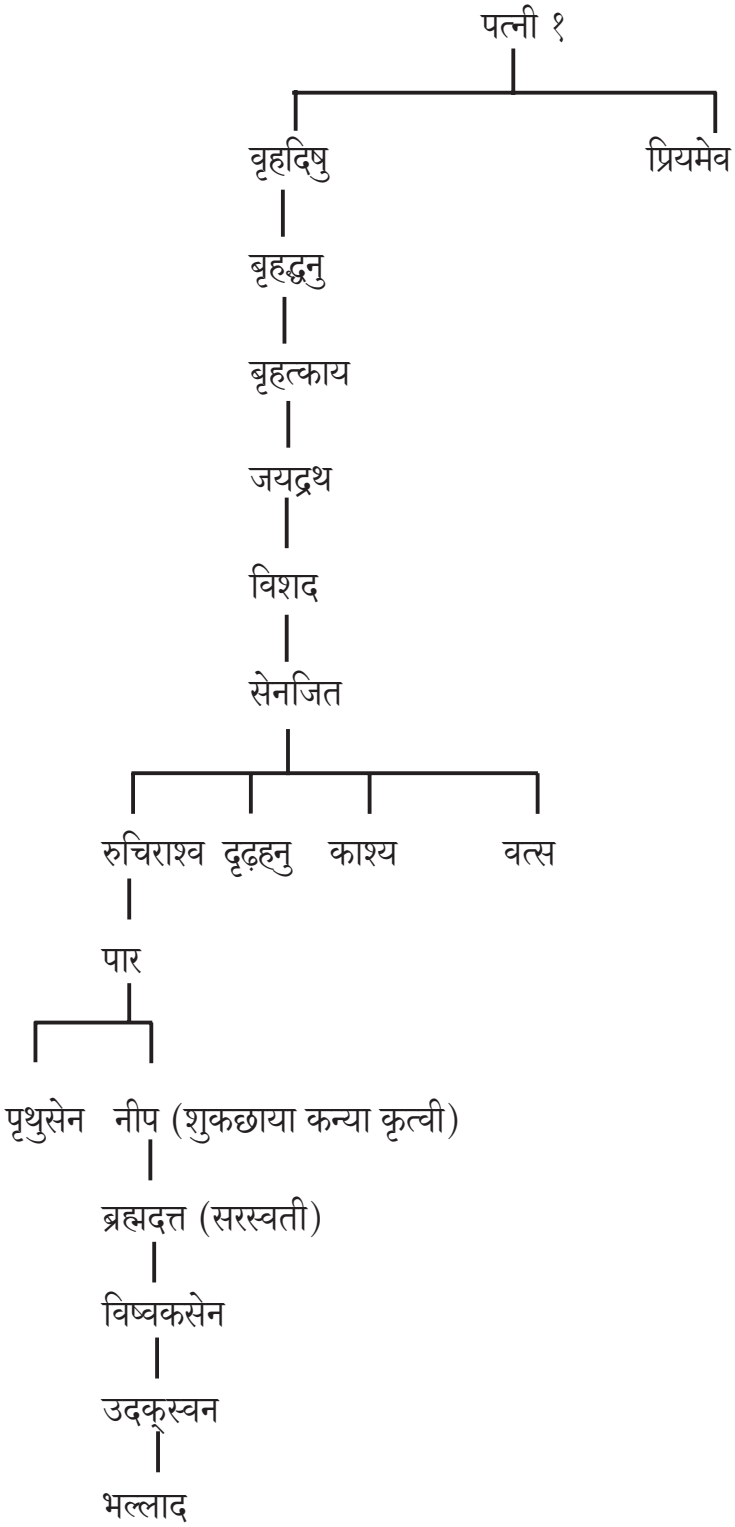
पत्नी १
वृहदिषु
प्रियमेव
बृहद्धनु
बृहत्काय
जयद्रथ
विशद
सेनजित
रुचिराश्व
दृढ़हनु
काश्य
वत्स
पार
पृथुसेन
नीप (शुकछाया कन्या कृत्वी)
ब्रह्मदत्त (सरस्वती)
विष्वकसेन
उदक्स्वन
भल्लाद

अजमीढ़

पत्नी ३) नलिनी

ऋक्ष

संवरण (पत्नि- सूर्य कन्या तपती)

कुरु

परीक्षित — नि:संतान

सुधन्वा — सुहोत्र — च्यवन — कृती — उपरिचरवसु

जन्हु — सुरथ — विदुरथ — सार्वभौम — जयसेन

निषधाश्व

जयसेन — राधिक — अयुत — क्रोधन — देवातिथि — ऋष्य — दिलीप — प्रतीप

उपरिचरवसु — बृहद्रथ (पत्नि १) — कुशाग्र — ऋषभ — सत्यहित — पुष्पवान — जहु

बृहद्रथ (पत्नि २) — जरासंध

उपरिचरवसु — कुशाम्ब (ये पांचों चेदि देशके राजा हुए) — जरासंध — सहदेव — मार्जारि — श्रुतश्रुवा — अयुतायु — नरमित्र — सुनक्षत्र — बृहत्सेन

उपरिचरवसु — मत्स्य, — कर्मजित् — सृतञ्जय — विप्र — शुचि — क्षेम — सुव्रत — धर्मसूत्र — शम

उपरिचरवसु — प्रत्यग्र — द्युमत्सेन — सुमति — सुबल — सुनीथ — सत्यजित — विश्वजित — रिपुंजय

उपरिचरवसु — चेदिप

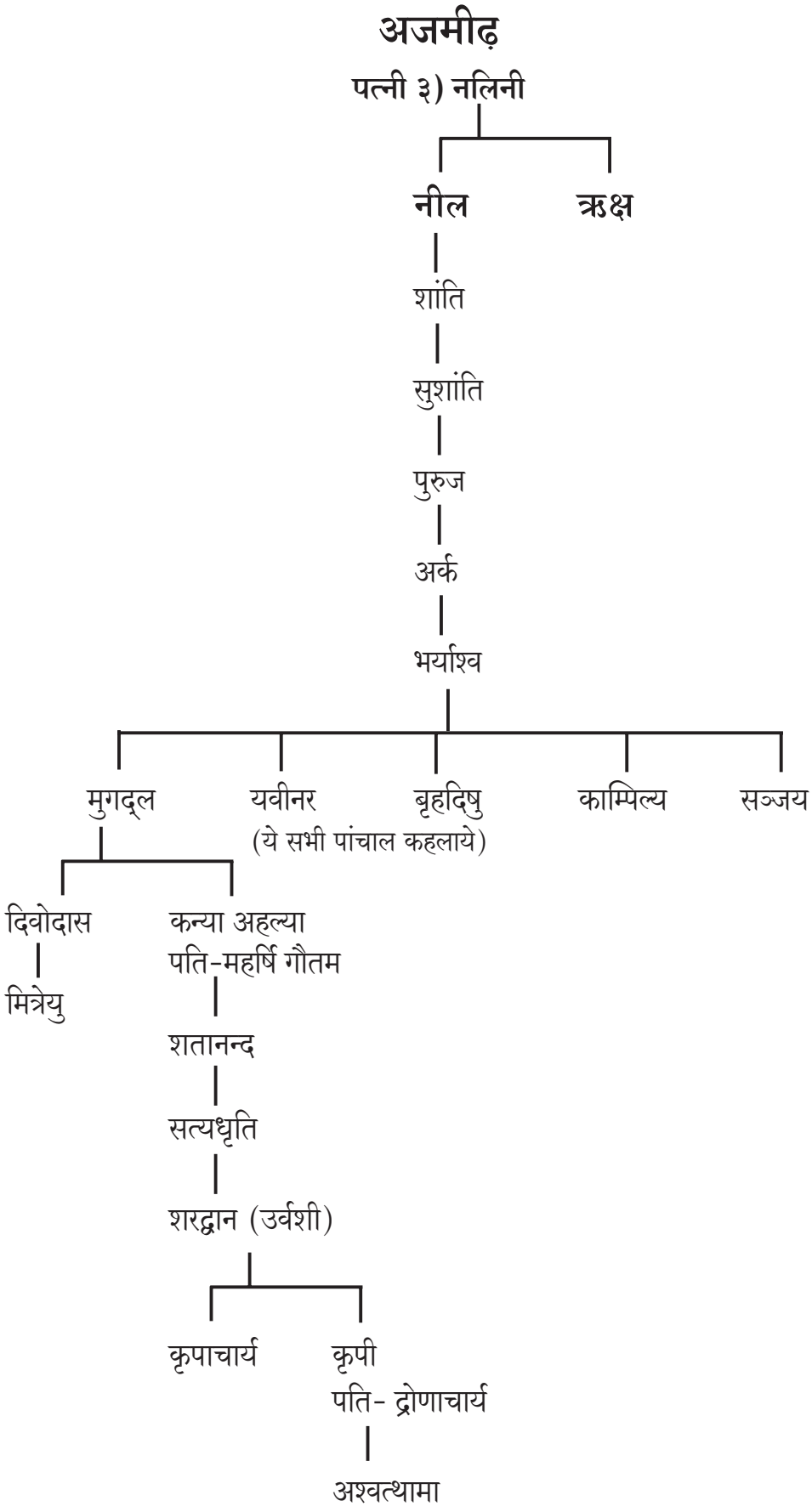
अजमीढ़
पत्नी ३) नलिनी
नील
ऋक्ष
शांति
सुशांति
पुरुज
अर्क
भर्याश्व
मुगद्ल
यवीनर
बृहदिषु
काम्पिल्य
सञ्जय
(ये सभी पांचाल कहलाये)
दिवोदास
मित्रेयु
कन्या अहल्या
पति-महर्षि गौतम
शतानन्द
सत्यधृति
शरद्वान (उर्वशी)
कृपाचार्य
कृपी
पति- द्रोणाचार्य
अश्वत्थामा

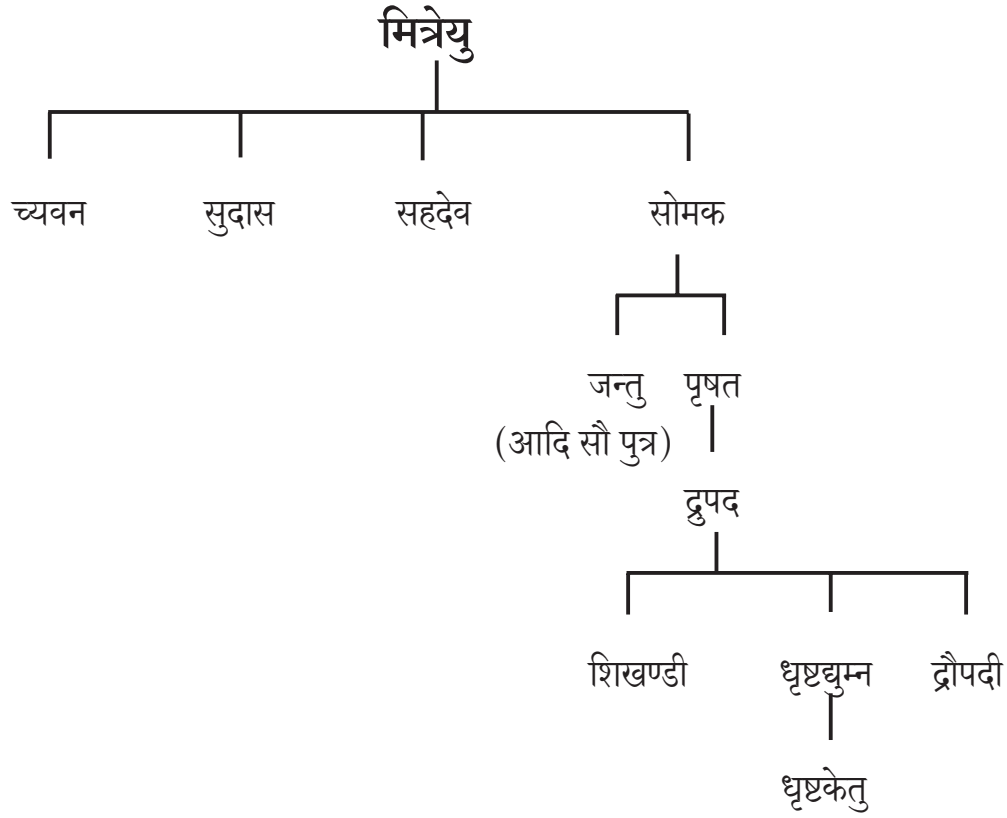

---

* सत्य में कोई सम्प्रदाय और पंथ नहीं होते।
* अपनी निजता में जीकर मर जाना लाख गुना बेहतर है उस जीवन से जो समझौते पर जीना होता है।
* जो चीज जितनी सरल होती है उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है।
* टूटे हाथ से काम हो सकता है पर टूटे दिल से नहीं।
* दु:ख स्वकृत है, परकृत नहीं।
* संवाद के लिये समझौता की आवश्यकता नहीं आपसी समझ जरूरी है।
* दूसरों पर निर्भरता आपको काफी हद तक असमर्थ बना देती है।
* प्रत्येक कुकर्म और कुकृत्य उस तार को तोड़ देता है जो हमारे और ईश्वर के बीच सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।
* एक कृष्ण व वसुदेव का बेटा, एक कृष्ण घट घटमें लेटा, एक कृष्ण का यह सकल पसारा, एक कृष्ण जो सबसे न्यारा।
* जिन्दगी को न समझ आज तू सोने जैसी, ये तो है वक्त के हाथों में खिलौने जैसी।
* पैसों के चक्कर में इन्सान अपना होश खो चुका है और अपनों को भूल चुका है,
झूठा प्यार, दोस्तों की भावना बताकर, किसी को लूटना उसका स्वभाव बन चुका है।
* सब छोड़के सब मिल जाता है जब उसकी इनायत होती है, इन्सां के लिये कुर्बान होना यही सच्ची शहादत होती है।
* बच्चे तो भवितव्य की सीढ़ी पर चढ़ गये, मां-बाप अभावों की सूलियों पर चढ़ गये।
* जीवन तभी कष्टमय होता है, जब वस्तुओं की इच्छा करते हैं और मृत्यु तभी कष्टमयी होती है जब जीने की इच्छा करते हैं।

१७) महाराज रन्तिदेव की कथा- शुकदेव बोले- राजन्, रन्तिदेव का यश इस लोक तथा परलोक-दोनों स्थानों में गाया जाता है। वे दैवाधीन प्राप्त धन से सन्तुष्ट रहनेवाले, जो-जो प्राप्त हो जाय, उसे देनेवाले थे। एक बार उन निष्किञ्चन और धैर्यवान राजा को परिवार-सहित दु:ख उठाते हुए, भूखे प्यासे रहते हुए अड़तालीस दिन हो गये।

रन्तिदेव अपने अनन्त साम्राज्य का परित्याग कर परिवार के साथ वन में निवास करते थे। वे सर्वदा जो कुछ प्राप्त हो जाता था उसे दूसरों को दे दिया करते थे। संग्रह-परिग्रह से वे बहुत दूर रहा करते थे। धैर्य उनका गुण था। वे अपने परिवार के साथ दु:ख भोग रहे थे। एक बार तो लगातार अड़तालीस दिन ऐसे बीत गये कि उन्हें पीने के लिये पानी तक न मिला। उनचासवें दिन प्रात:काल ही उन्हें कहीं से कुछ घृत, खीर, हलवा और जल मिला, उस समय उनका परिवार बड़े संकट में था। भूख और प्यास के मारे वे लोग काँप रहे थे। परन्तु ज्यों ही उन लोगों ने भोजन करने की तैयारी की, त्यों ही एक अतिथि ब्राह्मण के रूप में आ गया। रन्तिदेव सबमें भगवान का दर्शन करते थे अत: उन्होंने बड़ी श्रद्धा से आदरपूर्वक उसी अन्न में से ब्राह्मण को भोजन कराया। ब्राह्मणदेवता भोजन करके चले गये।

रन्तिदेव के सरिस कौन नर जगमहँ दानी अतिथि-हेतु निज-क्षुधा-पिपासा जिन नहिँ जानी।।
भये दिवस चालीस आठ बिनु पीये खाये। उनञ्चासवें दिवस स्वाद-युत व्यंजन आये।।
जेमन बैठे कुटुम-सङ्ग, विप्र वृषल चाण्डाल बनि। याञ्चा हरि हर अज करि, नृपति अन्न-जल दयो सुनि।।

अब बचे हुए अन्न को रन्तिदेव ने आपस में बाँट लिया और भोजन करना चाहा। ठीक उसी समय भोजन की कामना से एक शूद्र उनके सामने आ गया। रन्तिदेव ने उसे भी भगवान समझते हुए भोजन दे दिया। जब शूद्र खा-पीकर चला गया, तब कुत्तों को लिये हुए एक और अतिथि आया। उसने कहा- राजन्, हम और हमारे कुत्ते बहुत भूखे हैं। हमें कुछ खाने को दीजिये। रन्तिदेव ने बचे-खुचे पूरे अन्न को उसे प्रदान कर दिया। उन्होंने कुत्तों और उनके स्वामी को भगवन्मय समझकर नमस्कार किया। अब उनके पास केवल एक व्यक्ति को पीने भर के लिए जल ही बच रहा था वे उसे आपस में बाँट कर पीना ही चाहते थे तभी एक चाण्डाल आ पहुँचा। उसने बड़ी दीन वाणी में कहा- मैं अत्यन्त नीच हूँ। प्यास लगी हैं। मुझे जल पिला दीजिये। उसकी करुणवाणी को सुनकर रन्तिदेव का हृदय करुणा से भर उठा। उन्होंने अमृतमय वचन कहा- मैं भगवान से आठों सिद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता और तो क्या, मुझे मोक्ष की भी कामना नहीं है। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सारे प्राणियों के हृदय में बैठ जाऊँ और उनका सारा दु:ख मैं ही भोगूं, जिससे प्राणियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो, उन्हें दु:ख से छुटकारा मिल जाय। इस प्राणी को जल देने से मेरे भूख, प्यास, परिश्रम, दीनता, क्लान्ति, शोक विशाद और मोह सब दूर हो गये हैं। इस तरह राजा ने यह कहकर पानी चाण्डाल को दे दिया।

इस दीन-हीन प्राणी को थोड़ा-सा जल पिला देने की इच्छा से मेरी भूख मिट गई, प्यास बुझ गई, परिश्रम के कारण शरीर में जो थकान और दुर्बलता आ गई थी, वह दूर हो गई, मेरा दैन्य चला गया तथा मेरे शोक, मोह और विषाद दूर हुए। इस प्रकार कह कर रन्तिदेव ने वह बचा हुआ जल भी उस चाण्डाल को पिला दिया और स्वयं प्यास से व्याकुल होते रहे।

श्रीशुकदेव बोले- परीक्षित्, न कहीं कोई ब्राह्मण था और न कहीं कोई चाण्डाल। यह सब, भक्त की परीक्षा लेने के लिये, भगवान की रची हुई माया थी। परीक्षा पूरी हो जाने पर भक्त-भय-हारी भगवान ब्रह्मा विष्णु और महेश- ये तीनों ही उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान बोले- रन्तिदेव जो चाहिए सो वर माँग लो। परमगति चाहिए तो परमगति माँग लो, आठों ऋद्धि-सिद्धि चाहिए तो वो मांग लो। **(क्रमश: पृष्ठ क्रमांक २३६)**

कुरुवंश

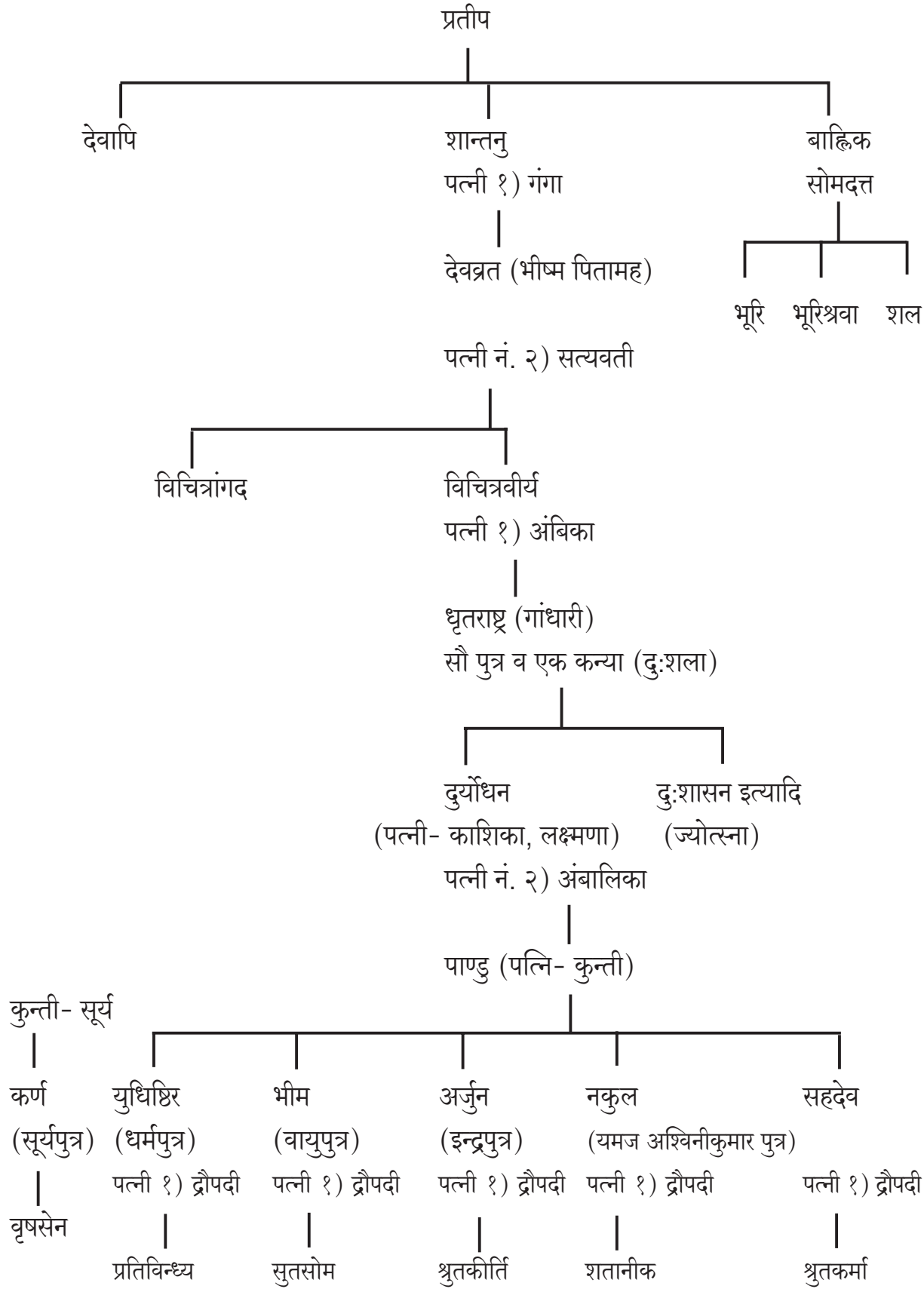
प्रतीप
देवापि
शान्तनु
पत्नी १) गंगा
देवव्रत (भीष्म पितामह)
बाह्लिक
सोमदत्त
भूरि
भूरिश्रवा
शल
पत्नी नं. २) सत्यवती
विचित्रांगद
विचित्रवीर्य
पत्नी १) अंबिका
धृतराष्ट्र (गांधारी)
सौ पुत्र व एक कन्या (दु:शला)
दुर्योधन
(पत्नी- काशिका, लक्ष्मणा)
दु:शासन इत्यादि
(ज्योत्स्ना)
पत्नी नं. २) अंबालिका
पाण्डु (पत्नि- कुन्ती)
कुन्ती- सूर्य
कर्ण
(सूर्यपुत्र)
वृषसेन
युधिष्ठिर
(धर्मपुत्र)
पत्नी १) द्रौपदी
प्रतिविन्ध्य
भीम
(वायुपुत्र)
पत्नी १) द्रौपदी
सुतसोम
अर्जुन
(इन्द्रपुत्र)
पत्नी १) द्रौपदी
श्रुतकीर्ति
नकुल
(यमज अश्विनीकुमार पुत्र)
पत्नी १) द्रौपदी
शतानीक
सहदेव
पत्नी १) द्रौपदी
श्रुतकर्मा

युधिष्ठिर	भीम	अर्जुन	नकुल	सहदेव
(धर्मपुत्र)	(वायुपुत्र)	(इन्द्रपुत्र)	(यमज अश्विनीकुमार पुत्र)	
पत्नी २) पौरवी	पत्नी २) हिडिम्बा	पत्नी २) उलूपी	पत्नी २) करेणुमती	पत्नी २) विजया
|	|	|	|	
देवक	घटोत्कच	ईरावान	नरमित्र	

पत्नी ३) बलंधरा	पत्नी ३) चित्रांगदा
|	|
सर्वगत	बभ्रूवाहन

पत्नी ३) सुभद्रा

|
अभिमन्यु (उत्तरा)

|
परीक्षित (ईरावती)

जनमेजय	श्रुतसेन	भीमसेन	उग्रसेन
|			
शतानीक			
|			
सहस्त्रानिक			
|			
अश्वमेधत्र			
|			
असीम कृष्ण			
|			
नेमिचक्र			
|			
चित्ररथ			
|			
कविरथ			
|			
वृष्टिमान			
|			
सुखेण			

सुनीथ	तिमि
|	|
नृचक्षु	बृहद्रथ
|	|
सुखीनल	सुदास
|	|
परिप्लव	शतानीक
|	|
सुनय	दुर्दमन
|	|
मेधावी	बहीनर
|	|
नृपंजय	दण्डपाणी
|	|
दूर्व	निमि
|	|
तिमि	क्षेमक

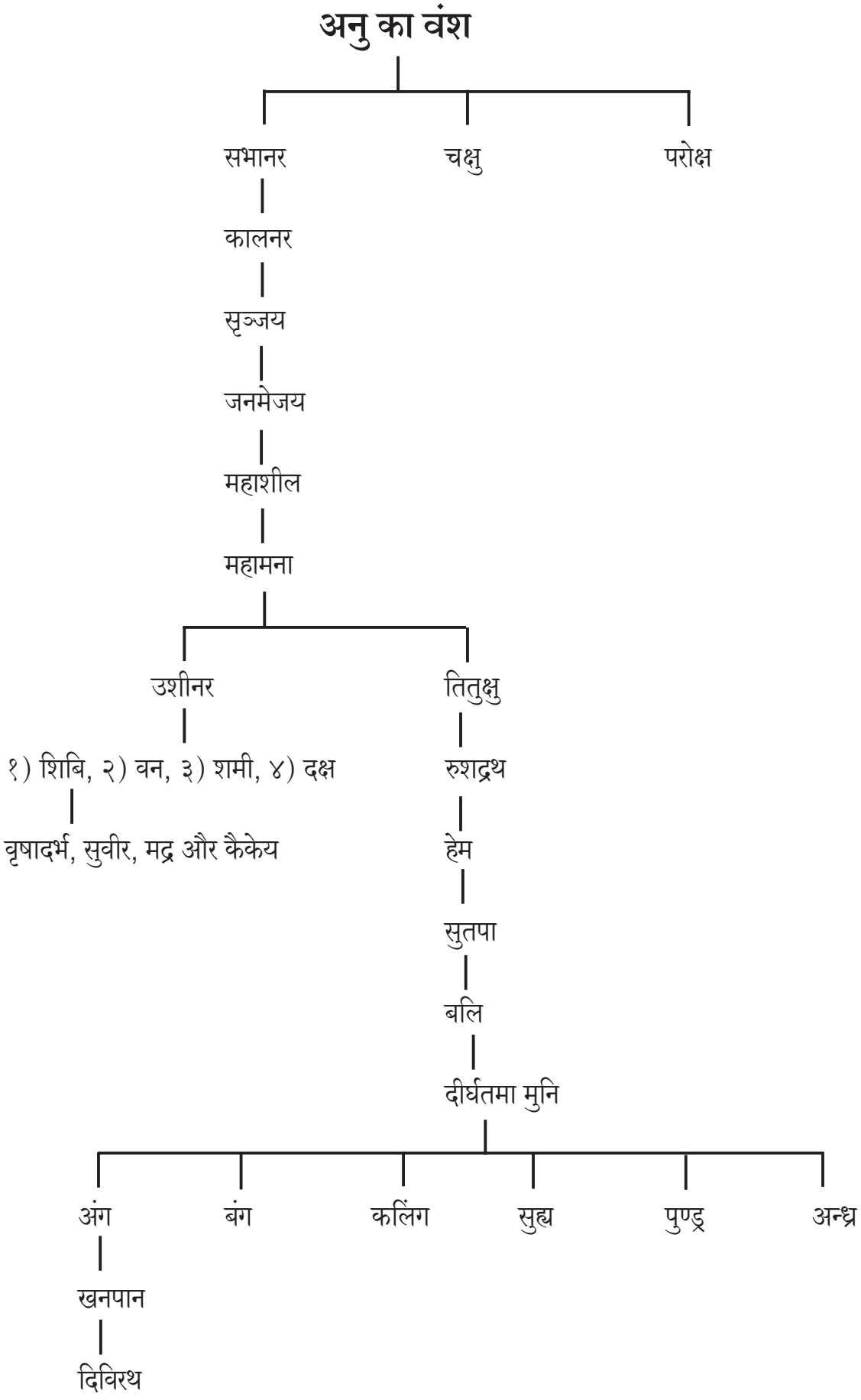
अनु का वंश
सभानर
चक्षु
परोक्ष
कालनर
सृञ्जय
जनमेजय
महाशील
महामना
उशीनर
तितुक्षु
१) शिबि, २) वन, ३) शमी, ४) दक्ष
रुशद्रथ
वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय
हेम
सुतपा
बलि
दीर्घतमा मुनि
अंग
बंग
कलिंग
सुह्म
पुण्ड्र
अन्ध्र
खनपान
दिविरथ

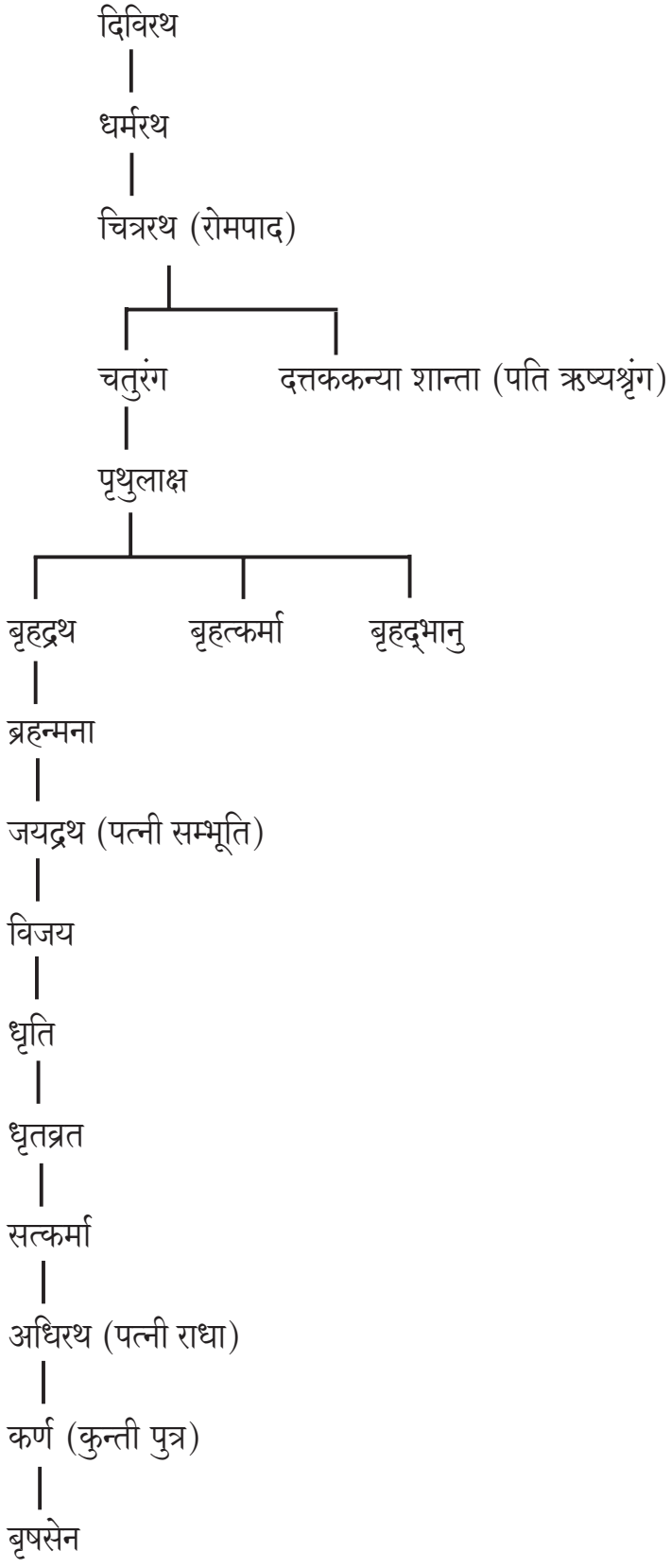
दिविरथ
धर्मरथ
चित्ररथ (रोमपाद)
चतुरंग
दत्तककन्या शान्ता (पति ऋष्यश्रृंग)
पृथुलाक्ष
बृहद्रथ
बृहत्कर्मा
बृहद्भानु
ब्रहन्मना
जयद्रथ (पत्नी सम्भूति)
विजय
धृति
धृतव्रत
सत्कर्मा
अधिरथ (पत्नी राधा)
कर्ण (कुन्ती पुत्र)
बृषसेन

द्रुह्यु वंश

द्रुह्यु
|
बभ्रु
|
सेतु
|
आरब्ध
|
गान्धार
|
धर्म
|
धृत
|
दुर्मना
|
प्रचेता

तुर्वसु का वंश

तुर्वसु
|
वह्नि
|
भर्ग
|
भानुमान
|
त्रिभानु
|
करन्धम
|
मरुत
|
दत्तक पुत्र दुष्यन्त

हरषे तीनों देव दैन दुरलभ वर लागे। हरि-चरननि अनुराग त्यागि जग-सुख नहि माँगे।।
माया भई विलीन प्रेम प्रभु-हियमहँ छायो। नृप-अनुयायी सबनि सहज ही पर पद पायो।।

रन्तिदेव ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। उनकी एकमात्र कामना थी कि भगवान के चरणों में उनकी अटल भक्ति बनी रहे। उनका अन्त:करण पहले से ही कामनाओं और द्वन्द्वों से मुक्त हो चुका था अत: उनपर भगवान की ऐसी कृपा हुई है कि वे सपरिवार दिव्य लोक चले गये। रन्तिदेव के अनुयायी भी उनके संग के प्रभाव से योगी हो गये। सब-के-सब भगवान के ही आश्रित होकर परम भक्त बन गये।

१८) जरासन्ध तथा पाण्डवोंके वंश की कथा- शुकदेव बोले- परीक्षित्, मन्यु-पुत्र गर्ग से शिनि हुए और शिनि से गार्ग्य का जन्म हुआ। यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, फिर भी उससे ब्राह्मण-वंश चला। मन्यु के दूसरे पुत्र महावीर्य से दुरितक्षय हुए और दुरितक्षय से त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि हुए। ये तीनों ब्राह्मण हो गये। बृहत्क्षत्र के पुत्र का नाम था- हस्ती। हस्ती ने ही हस्तिनापुर नगर बसाया था। राजन्, महाराज मन्यु के सबसे बड़े पुत्र बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ती हुए, जिन्होंने हस्तिनापुर नामक नगर बसाया। उन महाराज हस्ती के अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ ये तीन पुत्र हुए।

ज्येष्ठ-श्रेष्ठ सुत मन्युके, बृहत्क्षत्र भूपति भये। रच्यो हस्तिनापुर जिननि, हस्ति अमर सुत ह्वै गये।।

हस्ती के तीन पुत्र थे- अजमीढ़, द्विमीढ और पुरुमीढ। अजमीढ के पुत्र प्रियमेधा आदि ब्राह्मण हो गये। अजमीढ़ के पुत्र बृहदिषु हुए। उसका पुत्र बृहद्धनु उसका पुत्र बृहत्काय, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथ का पुत्र विशद और उसका पुत्र सेनाजित। उसके चार पुत्र हुए बृहहिषु के वंश में आगे चलकर रुचिराश्व का जन्म हुआ। रुचिराश्व का पुत्र पार था और पार का पृथुसेन। पार के दूसरे पुत्र का नाम नीप था। नीप के सौ पुत्र थे। इसी नीप ने शुक की कन्या कृत्वी से विवाह किया था। उससे ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। शुकदेवजी असंग थे। किन्तु वे वन में जाते समय एक छाया-शुक रचकर छोड़ गये। उस छाया शुक ने गृहस्थोचित्त व्यवहार किये।

ब्रह्मदत्त बड़ा योगी था। उसने अपनी पत्नी सरस्वती के गर्भ से विश्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न किया था। इसी विश्वक्सेन ने जैगीषव्य के उपदेश से योगशास्त्र की रचना की थी। विश्वक्सेन का पुत्र था उदक्स्वन और उसका भल्लाद। ये सब बृहदिषु के वंशज हुए। इसी वंश परम्परा में आगे चलकर मृद्गलसंज्ञक ब्राह्मण-कुलल हुआ। द्विमीढ़ का बेटा यवीनर, उसका बेटा कतिमान उसका बेटा सत्सदृति तथा उसका बेटा दृढ़नेमि तथा उसका बेटा सुपार्श्व तथा उसका बेटा सुमति तथा उसका बेटा सन्नति मान तथा उसका बेटा कृति था। कृति का बेटा दूसरा नीप था। नीप के उग्रायुर्ध उसका क्षेम्य, उसका बेटा सुवीर, उसके रिपुञ्जय तथा उसके बहुरथ उत्पन्न हुआ। अजमीढ़ की नलिनी नाम की पत्नी से नील का जन्म हुआ नील का बेटा शान्ति उसका सुशान्ति, उसका पुरज उसका अर्क तथा उसका बेटा भरण्याश्व हुआ। उसके मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु काम्पिल्य तथा संजय बेटा थे। इन पांचों बेटों के नाम से ही पाँचाल देश प्रसिद्ध हुआ।

भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्र का नाम था दिवोदास और कन्या का नाम था अहल्या। दिवोदास का काश्यवंशी राजा प्रतर्दन से अत्यन्त प्रेमवश वत्स-वत्स कहा था, इसलिए उसका नाम वत्स हो गया। अहल्या का विवाह गौतम ऋषि से हुआ था। इन्हीं के पुत्र थे शतानन्द। उनके पुत्र थे सत्यधृति। यह धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे। सत्यधृति के पुत्र थे शरद्वान् मुनि। एक दिन उर्वशी को देखने से शरद्वान् का वीर्य मूँज की झाड़ पर गिर पड़ा। इसीसे युगल सन्तान कृपाचार्य और कृपी का जन्म हुआ। महाराज शन्तनु शिकार खेलने वन में गये हुए थे। उनकी कृपा-

दृष्टि इन दोनों अबोध शिशुओं पर पड़ी। वे उन्हें अपने राज-भवन में लाये। जहाँ इनका पालन-पोषण किया गया।

हस्तीसुत अजमीढ़ नील-सुत शान्ति भयो तिनि। उनके पुत्र सुशान्ति पुरुज सुत अर्क लहे जिनि।।
अर्क-पौत्र भर्म्याश्व पुत्र मुद्गल द्विज तिनिकी। भई अहिल्या सुता नारि मुनिवर गौतमकी।।
शतानन्द तिनि तैं भये, पुत्र सत्यधृति तासुके। शरद्वान सुत धनुर्विद, कृपाचार्य सुत जासुके।।
लखी उर्वशी शरद्वान् चित चंचलता अति। भई कामवश वृत्ति, तुरत सतधृति सुतकी मति।।
तनुतो रोक्यो किन्तु रुक्यो नहिँ रेत गिरयो जहँ। कुशा झापड़के मध्य भये सुत-सुता प्रकट तहँ।।
लाये शन्तनु कृपावश, दउनिको पालन करयो। जानि विप्र सन्तान शुभ, नाम कृपी कृप नृप धरयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, गौतमपुत्र शतानन्द के शरद्वान हुए। एक बार उर्वशी के दर्शन से उनका वीर्य कुशा के गुच्छे पर पड़ा। उससे अति शुभ लक्षण युक्त जुड़वा पुत्र-पुत्री हुए। मृगया के निमित्त गये हुए राजा शान्तनु ने उन्हें देखा। वे कृपा के वशीभूत होकर उन्हें उठा लाये। लड़के का नाम कृपाचार्य हुआ और लड़की कृपी हुई। कृपी का विवह धनुर्विद्या के परमाचार्य द्रोणाचार्य से हुआ था।

भरद्वाज सुत आइ ब्याहकी इच्छा कीन्हीं। ह्वै प्रसन्न नृप कृपी द्रोणकूँ, विधिवत् दीन्हीं।।
द्रोण वीर्यतैं कृपीमहँ, अश्वत्थामा सुत भये। जगमहँ द्रोणाचार्य द्विज, वीर अग्रणी ह्वै गये।।
पांचाल, कौरव नृप, कीन्ह जगत विस्तार। शूरवीर अति धीर सब, जग में सुयश अपार।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, मुद्गल के पुत्र दिवोदास से मित्रेयु, मित्रेयु के च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक पुत्र हुए। सोमक के सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा जन्तु और सबसे छोटा पृषथ था। पृषथ के पुत्र द्रुपद थे। द्रुपद के द्रौपदी नाम की पुत्री और धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पुत्र हुए।

दिवोदास सुत भये भूप मित्रेयु च्यवन तिनि। च्यवन कुमार सुदास भये सोमक आदिक उनि।।
सोमकके शत तनय पृषद् सुत छोटे सबतैं। पृषद्-पुत्र नृप द्रुपद द्रौपदी तनया तिनतैं।।
धृष्टद्युम्न आदिक तनय, भये द्रुपदके जग-विदित। शत्रुसेन धन दूरि कर, रवि सम रणमहँ ह्वै उदित।।

शुकदेव बोले- राजन्, सोमक के सौ पुत्र हुए। उनमें पृषद् सबसे छोटे थे। पृषद् के पुत्र द्रुपद हुए। उनके द्रौपदी नाम की सुता और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए।

तुम्हारे दादा अर्जुन मत्स्यवेध कर द्रौपदी को स्वयंवर में से ले आया और कुटिया में अपनी माता से आकर कहा- कि हम भिक्षा ले आये। कुन्ती उसे खाने का पदार्थ समझकर बोली- तुम पाँचों भाई आपस में इसे बाँट लो। माता की आज्ञानुसार पाँचों भाइयों ने द्रौपदी को पत्नी बना लिया। राजा द्रुपद को यह बात अच्छी नहीं लगी तब युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हम अपनी माता की आज्ञा नहीं टाल सकते। राजा द्रुपद ने व्यासजी से पूछा कि महाराज, मेरी प्रतिज्ञा द्रौपदीके विवाह की अर्जुन ने पूरी की पर द्रौपदी को युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने अपनी पत्नी बना लिया। तब मेरे पिता वेदव्यास ने द्रुपद को एकान्त में उसकी पुत्री द्रौपदी की पूर्वजन्म की कथा बतायी। देवताओंने देखा एक कमल का पुष्प गंगा में बहा जा रहा है। इन्द्र देखनेके लिये गये कि यह कहाँसे आया ह। वह गंगाजी के उद्गम गोमुख पहुँचा और देखने लगा कि यह पानी कहा से निकल रहा है। वहाँ एक अति सुन्दर स्त्री रोते हुए खड़ी थी और उसके आँसू गंगा में गिरने से पुष्प होकर बहते जा रही थी। इन्द्र ने आश्चर्य से उस स्त्री से पूछा- तू कौन है? उस स्त्री ने कहा तू मेरे साथ आ तुझे मेरा हाल मालूम पड़ेगा। यह कहकर वह स्त्री आगे चलने लगी और इन्द्र उसके पीछे-पीछे। दोनों एक पर्वत पर चढ़ गये। वहाँ एक पुरुष और स्त्री अति सुन्दर व तेजवान रत्नजड़ित सिंहसन पर बैठे हुए आपसमें कुछ खेल खेल रहे थे। उस पुरुष ने इन्द्र को देखकर इन्द्रका सम्मान नहीं किया। इन्द्र

अभिमान में भरकर सोचने लगा कि मैं तो सब देवताओं का राजा हूँ किन्तु इसने मेरा कुछ भी आदर नहीं किया। वो पुरुष तो अन्तर्यामी महादेव थे। इन्द्रको देखकर हँस दिये। इन्द्र डरके मारे सूख गया। तब शिवने कहा तुम यह प्रतिज्ञा करो कि फिर कभी अभिमान नहीं करोगे और महादेव सिंहासन पर से उतरकर इन्द्रको उस पर्वत की कन्दरा में ले गये। वहाँ जाकर इन्द्रने देखा उसीके रूपके चार इन्द्र वहाँ बैठे है। उनको देखते ही इन्द्र घबराकर भय से चुपचाप खड़ा हो गया। तब शिवने इन्द्रसे कहा- जिस तरह तूने गर्व किया उसी तरह इन चारों पुरुषों में भी अहंकार हुआ था, इसी कारण ये इस कन्दरा में बन्द हैं। अब तुम इन चारों समेत जाकर मर्त्यलोक में जन्म लो। महादेव का यह शाप सुनते ही चारों मनुष्य शिवके चरणोंमें गिरकर विलाप करने लगे। तब शिवने कहा- तुम लोग संसार में जन्म लेकर शुभकर्म करोगे और बड़े बलवान होंगे। तुम्हारे हाथोंसे बहुत सारे शूरवीर युद्ध में मारे जायँगे। उन पुरुषोंने कहा- आपकी आज्ञानुसार हम यह शाप स्वीकार करते हैं। हमारा जन्म मर्त्यलोक में अवश्य हो, पर हम पर ऐसा अनुग्रह करें जिससे देवता के वीर्य से मनुष्य योनी प्राप्त हो। शिवने कहा- ऐसा ही होगा। इसलिए वे पाँचों धर्मराज, पवन, इन्द्र और अश्विनीकुमार देवताओंके वीर्य से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव नाम से उत्पन्न हुए। जिस स्त्री के साथ इन्द्र पर्वत पर गया था उस मायारूपी स्त्री से शिवने कहा- तू भी मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर इन पाँचों की पत्नी होगी। वेदव्यास द्रुपद से बोले- हे राजन्, वही स्त्री आकर तेरे यहाँ द्रौपदी नाम की पुत्री हो गयी है। इन्हीं पाँचों इंद्रों ने राजा पांडु के घर जन्म लिया है। तुम्हे चिंता करने की आवश्यकता नहीं। प्रारब्ध में बधा है वो होकर ही रहेगा। यह सुनकर राजा द्रुपद का संदेह छूट गया।

कोई-कोई ग्रन्थों में मिलता है कि द्रौपदी ने पूर्वजन्म में महादेव का तप किया था। तब शिवने प्रसन्न होकर वर देनेके लिये प्रेरित किया। तब द्रौपदी ने पाँच बार पति-पति अपने मुख से कहा। तब महादेव ने उसको ऐसा वरदान दिया कि तेरी कामना पतिकी हैं इसलिये तुमने तप किया और तू पाँच पति चाहती है इसलिये तू पाँच पतियों की पत्नी होगी। द्रौपदी बोली महाराज मैंने पाँच पति होने के लिए तप नहीं किया था। शिव बोले- तूने अपने मुखसे पाँच बार पति-पति की कामना करी इसलिये मैंने तुझको पाँच पति दिया। कदाचित तू एकबार कहती तो तुझे एक ही पति देता। अब जो मेरे मुखसे निकल गया वह तो अन्यथा हो नहीं सकता। तू धैर्य रख तेरे लिये पाँचो पति कल्याणकारी होंगे। तेरे प्रारब्ध में यही लिखा है।

कई महापुरुषों और सन्तोंने बताया है कि एक गाय रस्तेमें चली जा रही थी वो पाँच साँड़ उस गायके पीछे दौड़े जा रहे थे। सो द्रौपदी यह देखकर हँसने लग गयी। तब उस गायने द्रौपदी को श्राप दिया तू मुझे देखकर क्या हँस रही है। तू भी पाँच पतिकी पत्नी बनेगी। इसी कारण द्रौपदी के पाँच पति हुए।

धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु हुए। भर्य्याश्य के वंशज सब राजा पांचाल कहे जाते थे। हस्ती के पुत्र अजमीढ हुए। अजमीढ के दूसरे पुत्र थे- ऋक्ष। ऋक्ष से संवरण हुए। संवरण का विवाह सूर्य की पुत्री तपसी से हुआ था। महाराज ऋक्ष के पुत्र संवरण बड़े ही सुन्दर तथा प्रिय-दर्शन थे। प्रजा उनके दर्शनों से उसी प्रकार प्रमुदित होती, जिस प्रकार शरद के पूर्णचन्द्र को देखकर चकोर प्रमुदित होते हैं। वे धर्मात्मा, न्यायप्रिय, सत्यवादी तथा दानवत्सल थे। रूप में, उदारता में तथा समस्त गुणों में वे अद्वितीय थे। महाराज मृगया-प्रिय थे। वे यदा कदा सैनिक तथा सेवकों के साथ मृगया के निमित्त जाया करते थे।

इसी तपती के नाम से तापी नदी जानी जाती है। आषाढ शुद्ध सप्तमी को खानदेश में तापी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। तापी सूर्यकन्या है। सूर्य जब अपनी ही दाह से जलने लगा तो तापी नदी की उत्पत्ति हुई। यह सूर्यपुत्र शनिदेव की बहन है। जो कोई शनि के चक्कर के फंस जाते है उसे तापी में स्नान करने की सलाह पंडित, ब्राह्मण देते है। चारधाम की यात्रा करनेवाले भी यात्रा के बाद तापी नदी में नहाने आते हैं। यह सतपुड़ा पहाड़ी क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है, जो पूरब से पश्चिम की ओर बहती है। इस नदीका क्षेत्र लगभग २ सौ किलोमीटर वर्ग का है। मध्यप्रदेश में मुलताई गांव में जिल्हा

बैतुल में तापी का उद्‌गम स्थान है। मध्यप्रदेश से बहती हुई तापी नदी रावेर तहसील स्थित अजनाड गांव से महाराष्ट्र में आती है। जलगांव, धुलिया, नंदुरबार होते हुए तापी गुजरात की खंबायत खाड़ी से समुन्दर में समा जाती है।

तपती सूर्य की प्रभा के समान अग्निज्वाला के समान, घनीभूत, तेज के समान, चमक रही है, उसका मुख कमल के समान मृदु और स्निग्ध है। वह हँसती हुई प्रकृति-सौन्दर्य, को अत्यन्त ही अनुराग भरी दृष्टि से निहार रही थी। दृष्टि पड़ते ही महाराज संवरण अपने-आप को भूल गये। फिर राजा ने अधीर होकर कहा- हे वरवर्णिनि। तुम लजाती क्यों हो? मुझे अपना परिचय दो। मैं भरतवंशीय महाराज ऋक्ष का पुत्र हूँ। संवरण मेरा नाम है। तुम्हारे दर्शन से ही मेरी सुधि बुधि जाती रही। तुम मेरे ऊपर कृपा करो। आज तक अनेक युवतियाँ मैंने देखी हैं, किन्तु ऐसा सौन्दर्य, इतना माधुर्य, ऐसी अनुपम आभा, मुझे आज तक कहीं भी दिखाई नहीं दी। इस पर उस तेज-पुञ्ज रमणी ने कहा- हे नरदेव, आप तो संसार के समस्त पुरुषों में सुन्दर हैं। आपका ऐश्वर्य अपार है। आप ऐसे व्याकुल क्यों हो रहे हैं?

राजा संवरण बोले- यदि तुम मेरे साथ गान्धर्व विवाह कर लो तो शरीर में नवजीवन का संचार होने लगे।

उस कन्या ने कहा- प्रभा मैं संपूर्ण प्राणियों के कर्मों के साक्षी चराचर के स्वामी, तेजोराशि भगवान सूर्यनारायण की पुत्री हूँ। सावित्री मेरी बड़ी बहन है। मैं उससे छोटी हूँ, तपती मेरा नाम है। यदि आप मुझे पाना चाहते हैं तो मेरे पिता के पास जाकर याचना कीजिये। बाल्यकाल में सभी स्त्रियाँ पिता तथा पालक के अधीन रहती हैं, यौवन में उन्हें पति के अधीन रहना पड़ता है और वृद्धावस्था में पुत्रों की इच्छानुसार चलना पड़ता है।

बोली तपती-नृपति। मोइ रवितनया मानो। कन्या जनक अधीन होहि तुम सब कछु जानो।।
करो याचना जाइ दान यदि पितु दे देवैं। तो हम तुम मिलि धर्मयुक्त कामहिं नित सेवैं।।
यों कहि अन्तरहित भई, नृप पुनि मूर्छा तैं जगे। तपती-हित उपवास व्रत, दृढ़ जप-तप करिवे लगे।।
गुरु वशिष्ठ रवि निकट गये विनती बहु कीन्हीं। माँगी तपती हरषि सूर्य नृप-हित दै दीन्हीं।।
विधिवत् कर्‌यो विवाह भये दोऊ अति प्रमुदित। प्रिया प्रेममहँ फँर्‌यो संवरण भूपतिको चित।।
रानी तपती गर्भ तैं, भये पुत्र कुरु जग-विदित। कुल कौरवके नाम तैं, भयो पुत्र तिनि परीक्षित्।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, कुरु के परीक्षित्, सुधनु, जह्नु और निषधाश्व- ये चार पुत्र हुए। इनमें से सुधनु से सुहोत्र, सुहोत्र से च्यवन, च्यवन से कृती और महाराज कृती के ही उपरिचर वसु हुए। ये बड़े धर्मात्मा राजा थे। ये विमान में ऊपर ही उड़ा करते थे। इसलिये इनका नाम उपरिचर हुआ। मैं आपको इन धर्मात्मा राजा की कथा सुनाता हूँ।

तपती की कोख से पैदा हुए कुरु ही कुरुक्षेत्र के स्वामी थे। कुरु के पुत्रों का नाम था- परीक्षित्, सुधन्वा, जह्नु और निषधाश्व, सुधन्वा से सुहोत्र, सुहोत्र से च्यवन, च्यवन से कृती, कृती से उपरिचरवसु और उपरिचरवसु से बृहद्रथ आदि कई पुत्र पैदा हुए। इनके भी वंश खूब फले-फूले। ये सब चैंदि देश के राजा कहलाये।

सुधनु जह्नु निषधाश्व तीन सुत औरहु तिनके। रहे प्रथम सुतहीन सुहोत्रहु भये सुधनुके।।
च्यवन सुहोत्र कुमार च्यवनके कृती भये सुत। कृती पुत्र वसु नृपति उपरिचर अष्ट सिद्धि युत।।
सुर-ऋषि-वाद-विवादमहँ, पक्षपात नृपने कियो। क्रुद्ध भये ऋषि भूपकूँ, पतन शाप मिलिकैं दियो।।
स्वर्गच्युत ह्व भूमि-विवरमहँ बसहिं उपरिचर। नारायणको मन्त्र जपैं पूजामहँ तत्पर।।
नारायणको नाम निरन्तर नित-नित गावैं। नारायणको ध्यान करैं तन्मय ह्वै जावैं।।
नारायण आज्ञा दई, गरुड़ शाप मोचन कर्‌यो। नारायणने नृपतिको, ताप-शाप सबई हर्‌यो।।

बृहद्रथ की एक दूसरी पत्नी के गर्भ से एक शरीर के दो टुकड़े पैदा हुए। उन्हें माता ने बाहर फेंकवा दिया। तब जरा नाम

की एक राक्षसी ने जियो, जियो कहकर दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया। उसी जोड़े हुए बालक का नाम पड़ा- जरासन्ध।

वसुके चेदि नरेश बृहद्रथ तिनि कुशाग्र सुत। तिनिके सुत नृप ऋषभ ऋषभके पुत्र सत्यहित।।
नृपति बृहद्रथ अपर नारि द्वै भाग देहके। जने मृक लखि तुरत फिँकाये निकट गेह के।।
जरा नामकी राक्षसी, भाग उभय जोरे जबहिँ। जीव-जीव कहिवे लगी, उठि रोयोसो शिशु तबहिँ।।

एक दिन काक्षीवान गौतम ऋषि के पुत्र परम तपस्वी महर्षि चण्ड कौशिक घूमते-घूमते मगध देश में आये। वे नगर से दूर एक सघन आम्र-वृक्ष के नीचे टिके। बहुत से लोग मुनि के दर्शनों को आने लगे, जब महाराज बृहद्रथ ने मुनि का आगमन सुना तब वे भी अपने मन्त्री, पुरोहित तथा रानियों सहित मुनि के दर्शनों को आये। आषाढ़ का महीना था। सघन वृक्ष के नीचे दर्शकों से घिरे मुनि मूर्तिमान तप के समान ही दिखाई देते थे। राजा ने मुनि के चरणों में विधिवत् प्रणाम किया। फिर लजाते हुए कण्ठ में अञ्चल डालकर रानियों ने भी मुनि के पैर पकड़े। रानियों सहित राजा ने मुनि की षोडशोपचार पूजा की। मुनि ने शास्त्रीय विधि से राजा की पूजा स्वीकार की। पूजा के अनन्तर बड़े करुण स्वर में राजा ने महर्षि की स्तुति की। पूजा और स्तुति से प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा- राजन्, मैं तुम्हारी पूजा-स्तुति से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूँ आप मुझसे कोई वर माँगे?

सर्वज्ञ मुनि राजा की अन्तर्वेदना समझ गये। वे ध्यान मग्न हो गये उसी समय एक बड़ा ही सुन्दर आम का फल मुनि की गोद में गिर पड़ा। उस फल को लेकर मुनि बोले- राजन्, आप इस फल को अपनी महिषी को दें। इससे आपके सन्तान होगी।

फल पाकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने घर आकर नियमानुसार फल के दो भाग करके अपनी दोनों रानियों को दे दिया। फल को खाते ही दोनों गर्भवती हो गई। इससे राजा को तथा उनकी समस्त प्रजा को बड़ा ही हर्ष हुआ। समय पाकर दोनों ने ही प्रसव किया। दोनों के ही उदर से एक देह के आधे-आधे भाग उत्पन्न हुए। एक हाथ, एक पैर, एक आँख, एक कान- सारांश यह कि बीच से आधे-आधे अङ्ग दोनों के पेट से पैदा हुए। ऐसे पुत्र को लेकर वे क्या करतीं। अत: उन दोनों ने धाई से कहा- इन दोनों अंगों को तुम महलों के पीछे फेंक आओ।

धाई उन्हें एक पात्र में लेकर एक शून्य स्थान में रख आई उसी समय जरा नामकी राक्षसी वहाँ आ गयी। उसने ध्यान से देखा कि वे दोनों फाँकें जीवित सी हैं। उसने दोनों को लेकर एक में जोड़ दिया और खेल-खेल में कहने लगी- जीवित हो जा जीवित हो जा।

राक्षसी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे दोनों फाँकें एक में सट गयीं। परस्पर मिल गयीं। उनसे बड़ा ही सुन्दर एक शिशु बन गया। वह रोने लगा। जरा एक सुन्दरी स्त्री का वेश बना कर उस बच्चे को लेकर राजमहल में गयी और बोली- रानी, देखो, तुमने तो इस पुत्र को मृतक समझकर फेंक ही दिया था, किन्तु दैव ने इसकी रक्षा की। आपने दीवाल पर चित्र बनाकर मेरा पूजन किया था, उसी के बदले मैंने तुम्हारा यह उपकार किया।

पुत्र को देखकर राजा-रानी परम हर्षित हुए उन्होंने ब्राह्मणों को विविध दान दिये, याचक, अभ्यागत तथा अश्रितों की मनोकामनायें पूर्ण कीं। राजा ने जरा राक्षसी द्वारा सन्धित होने से उसका नाम जरासन्ध रखा। तभी से राजा ने मगध देश में घर-घर उस राक्षसी की पूजा आरम्भ करा दी।

यह जरासन्ध बड़ा ही शूरवीर मानी तथा बली था। इसने पृथ्वी के समस्त राजाओं को जीत लिया था। जब महाराज वानप्रस्थाश्रम धारण करके रानियों सहित वन को चले गये, तब जरासन्ध ही मगध देश का राजा हुआ। दीपक की लौ के समीप आकर जैसे पतंगे जल जाते हैं वैसे ही शत्रु इसके सामने आते ही श्री-हीन हो जाते थे। उस समय भूमण्डल पर इसके समान दूसरा कोई बली नहीं था। भगवान श्रीकृष्ण पर भी इसने अठारह बार चढ़ाई की। अन्त में श्रीकृष्ण अपने वंश वालों के सहित इसके भय से भागकर द्वारिका में जाकर रहे। इसका वध भगावन ने भीम से कराया।

जरासन्ध के पुत्र का नाम था- सहदेव, सहदेव का पुत्र सौमापि उसका पुत्र श्रुतश्रुवा हुआ। कुरु का बड़ा पुत्र परीक्षित् नि:सन्तान था। जह्नु के सुरथ नाम का पुत्र था। सुरथ का पुत्र बिदूरथ तथा विदूरथ का सारभौम, सारभौम का पुत्र जयसेन तथा जयसेन का पुत्र राधिक था राधिक का अयुत तथा अयुत का क्रोधन और क्रोधन का देवातिथि। देवातिथि का ऋष्य तथा ऋष्य का पुत्र दिलीप तथा दिलीप का राजा प्रतीप था। आगे चलकर उन्हीं के वंश में दिलीप के पुत्र राजा प्रतीप हुए। प्रतीप के तीन पुत्र हुए- देवापि, शन्तनु और बाह्लीक। देवापि अपना पैतृक राज्य छोड़कर वन में चले गये अत: उनके छोटे भाई शन्तनु राजा बने। पूर्वजन्म में इनका नाम महाभिष था। इनकी यह विशेषता थी कि यह जिस वृद्ध के शरीर पर अपना हाथ फेर देते थे, वह जवान हो जाता था और उसे बड़ी शान्ति भी मिलती थी। इसी से इनका नाम शन्तनु रक्खा गया। शान्तनु का विावह गंगा के साथ हुआ।

जरासन्ध अति बली भयो नृप सेवें पदरज। जातें डरि रणछोड़ द्वारका भगे त्यागि ब्रज।।
तासु पुत्र सहदेव भये सोमापि तासु सुत। श्रुतश्रवा तिनि तनय चेदि कुलभूषण रणजित।।
कुरु सुत तीसर जह्नु के, पौत्र विदुर ह्वै गये। तिनिकी नवमीं पीढ़िमहँ, नृप प्रफतीत भूपति भये।।
हस्ती सुत अजमीढ़ नृपतिके ऋक्ष अपर सुत। तासु पुत्र संवरण तेज-तप परम कीर्तियुत।।
नृप बड़भागी परम सेन सँग मृगया-हित बन। गये, प्रकृति-सौन्दर्य निरखि प्रमुदित नृपको मन।।
लख्यो विशाल वराह वन, एकाकी पीछो कियो। दौरत ठोकर खायकें, गिर्‌यो तुरत हय मरि गयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, प्रतीप के बड़े पुत्र देवापि के वन जाने पर छोटे शन्तनु राजा हुए। वे पूर्व जन्म में महाभिष नामवाले राजा थे। वे अपने हाथ से जिस-जिस को स्पर्श कर देते थे, वह वृद्ध होने पर भी युवा हो जाता था तथा उसे परम शान्ति प्राप्त होती थी। इसी कर्म के कारण वे शन्तनु कहलाते थे। एक बार बारह वर्ष उनके राज्य में इन्द्र ने वर्षा नहीं की।

नृप प्रतीपके तीनि तनय देवापि बड़े सुत। गये राज तजि नृपति भये शन्तनु शोभायुत।।
परसैं कर तैं जाहि शान्ति पावै सो प्रानी। जानि अग्रभुक् इन्द्र नहीं बरसायो पानी।।
भेजि सचिव षड्यन्त्र करि, वेद-भ्रष्ट अग्रज कर्‌यो। तब सुरपति वरषा करी, यों नृप सबको दुख हर्‌यो।।

एक बार शन्तनु के राज्य में बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई। राजा के कारण पूछने पर ब्राह्मणों ने कहा- आप ने अपने बड़े भाई के रहते राज्य ले लिया। यह एक अधर्म है। इसी कारण राज्य में वर्षा नहीं हो रही है। इस पर शन्तनु वन में बड़े भाई को मनाने गये किन्तु इसके पहले ही उनके मन्त्री अश्मरात ने कुछ ब्राह्मणों को देवापि के पास भेजकर उन्हें वेद-विनिन्दक एवं पाखण्डी बनवा दिया था अत: वे अब राज्य के अधिकारी नहीं रह गये थे। तब शन्तनु के राज्य में वर्षा हुई। तभी से देवापि योग का आश्रय लेकर कलापग्राम में निवास करते हैं। जब कलियुग में चन्द्रवंश का नाश हो जायेगा, तब सत्ययुग के प्रारम्भ में वे फिर उसकी स्थापना करेंगे।

शन्तनु के छोटे भाई थे- बाह्लीक। बाह्लीक से सोमदत्त हुए। सोमदत्त के तीन पुत्र थे- भूरि, भूरिश्रवा और शल। शन्तनु के द्वारा गंगाजी के गर्भ से नैष्ठिक ब्रह्मचारी देवव्रत नाम का पुत्र जन्म हुआ। वे ही तुम्हारे पूर्वज भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए वे महान् धर्मज्ञ, परमभगवद्भक्त और महान ज्ञानी थे। वे बेजोड़ योद्धा थे। उन्होंने युद्ध में अपने गुरु महान् योद्धा परशुरामजी को भी सन्तुष्ट कर दिया था।

शल अरु भूरिश्रवा भूरि बाल्हीक नृपति सुत। शन्तनुके सुत भीष्म भये वसु ज्ञानी श्रीयुत।।
पितु-प्रसन्नता-हेतु प्रतिज्ञा दुष्कर कीन्हीं। सन्तति सुख ऐश्वर्य भोग-इच्छा तजि दीन्हीं।।

नहीं पुत्र तोऊ सकल, द्विज तरपन नित प्रति करैं। होहिँ जगतमहँ यशस्वी, जे पितु आयसु सिर धरैं।।

देवदत्त- राजा शांतनु और देवनदी गंगा के पुत्र। वसुओं को शापमुक्त करने के लिए देवनदी गंगा एक अलौकिक सुंदरी के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुईं।

वसुगण इक दिन जात रहे नभमहँ ह्वै प्रमुदित। मुनि वशिष्ठ मग मिले भूलि नहिँ करी दण्डवत।।

निरखि अवज्ञा क्रोध ब्रह्मसुत तिनिपै कीन्हों। जनमो भूपै सकल, शाप तिनि सबकूँ दीन्हों।।

तेई गंगा-गरभतैं, नृप शन्तनुके सुत भये। जनमत फेंके सात सुत, एक भीष्महो बचि गये।।

शुकदेव बोले- राजन्, बाह्लीक से सोमदत्त हुए। उनसे भूरि, भूरिश्रवा तथा शल नामक तीन पुत्र हुए। शन्तनु से श्री गंगाजी में आत्मवान श्री भीष्म का जन्म हुआ।

एक दिन राजा शांतनु ने गंगा को देखा तो उनके सौंदर्य से मुग्ध होकर उन्होंने उनके साथ विवाह का प्रस्ताव रख दिया। इस पर देवनदी ने कहा- राजन्। इसके लिए मेरी यह शर्त है कि मैं भला या बुरा जो कुछ भी करूं, आप मुझे नहीं रोकेंगे, मुझसे अप्रिय वचन भी नहीं कहेंगे। यदि कभी ऐसा हुआ तो मैं आपका साथ छोड़ दूंगी। शांतनु द्वारा सहमति प्रकट करने पर देवी जाह्नवी राजा शांतनु की पत्नी हो गई।

गंगा जननी कर्‌यो भीष्मको पालन बनमहँ। शन्तनुकूँ पुनि दये पाइ सुत हर्षित मनमहँ।।

लाइ करे युवराज राजमहँ चहुँदिशि मंगल। शन्तनु नृप इक दिवस गये मृगया हित जंगल।।

बहु हिंसक पशु बध करे, पहुँझचे नृप यमुना जहाँ। लखी पार पथिकनि करत, दाशराज कन्या तहाँ।।

देवनदी गंगा ने आठ पुत्रों को जन्म दिया। किंतु सात पुत्रों को वह गंगाजल में यह कहकर फेंक देती थीं- चल, इस प्रकार शाप से मुक्त किया। राजा शांतनु को दु:ख तो होता था किंतु वचनबद्ध होने के कारण वे कुछ भी नहीं कर पाते थे। जब देवी गंगा के आठवां पुत्र हुआ और उन्होंने उसे भी जल में फेंकना चाहा, तभी राजा शांतनु ने कहा- देवी। आप इस पुत्र का वध न करें। मुझे यह तो बताइए कि आप हैं कौन? अपने ही पुत्रों को आपने क्यों मार डाला?

शन्तनु की एक दूसरी पत्नी थी- दासराज की कन्या मत्स्यगंधा। यह कन्या वास्तव में उपरिचरवसु के वीर्य से मछली के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। किन्तु दासों (केवटों) के द्वारा पालन-पोषण करने से वह केवटों की बेटी कहलाई। मत्स्यगंधा का एक दूसरा नाम था- सत्यवती।

जिनतैं कीन्हें प्रकट पराशर व्यास महामुनि। योजनगन्धा तुरत भई कन्या मुनि जनि पुनि।।

लखि कन्या-सौन्दर्य नृपति अतिशय हरषायें। कन्या-याचन-हेतु दासपतिके ढिँग आये।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज शन्तनु ने निषादराज की कन्या से विवाह किया। उससे चित्रांगद पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका सबसे छोटा भाई विचित्रवीर्य था। कुमार चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नाम के गन्धर्व ने मार डाला। उसी निषाद-कन्या के गर्भ से भगवान के अंशावतार पराशर-नन्दन भगवान व्यास उत्पन्न हुए।

उसके गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए- चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद को चित्रांगद नामक गन्धर्व ने युद्ध में मार डाला था। इसी दासराज की कन्या सत्यवती से पराशर जी के द्वारा व्यासजी का जन्म हुआ। जिस समय पराशर ने दासराज की कन्या के गर्भ में अपना वीर्य स्थापित किया उस समय अप्रतिम शुभ मुहूर्त चल रहा था। उस समय माँ के गर्भ में आया हुआ बालक महान् यशस्वी, तेजस्वी और भगवान का अंश होगा- बस, यही सोचकर महर्षि पराशर ने सत्यवती के साथ सम्भोग किया। व्यासजी मेरे पिता हैं। वे भगवान विष्णु के कलावतार कहे जाते हैं। उन्होंने वेदों की रक्षा की है।

शन्तनु भये उदास लौट निज पुरमहँ आये। निज पितु इच्छा जानि कुँवर केवट ढिँग धाये।।
समुझि दाश पण भीष्म प्रतिज्ञा दारुण कीन्हीं। त्याग्यो पद-युवराज सीख सब जगकूँ दीन्हीं।।
जीवन भर क्वारे रहे, पितु प्रसन्नताके निमित्त। सत्यवतीके गरभ तैं, द्वै शन्तनुके भये सुत।।

शुकदेव बोले- राजन्, भीष्म द्वारा स्वयंम्बर से बलात्मकार से लाई हुई काशिराज की अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो कन्याओं से विचित्रवीर्य ने विवाह किया। उन दोनों कुमारियों में अत्यन्त आसक्त हो जाने के कारण विचित्रवीर्य को राजयक्ष्मा (टी.बी.) रोग हो गया, उसी कारण वे मर गये। विचित्रवीर्य ने काशिराज की कन्या अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया था। उन दोनों को भीष्मजी स्वयंवर से बलपूर्वक हर ले आये थे। विचित्रवीर्य अपनी दोनों पत्नियों में इतना आसक्त था कि उसे राजयक्ष्मा (टी.वी.) रोग हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। माता सत्यवती के कहने से भगवान व्यासजी ने अपने सन्तानहीन भाई की स्त्रियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासी से तीसरे पुत्र विदुर जी का जन्म हुआ।

अम्बा इच्छा जानि शाल्व ढिँग भीष्म पठाई। कन्या ने निज प्रीति विवशता नृपहिँ जताई।।
बल अभिमानी शाल्व कहै पर विजित कुमारी। करूँ ग्रहण तो हाहि जगतमहँ हँसी हमारी।।
अति अनुनय अम्बा करी, घुड़की कही नृप च्यौं बकै। अपर गृहीता नारिका, नृप पटरानी बनि सकै।।

शुकदेव बोले- राजन्, शन्तनुनन्दन भीष्म सम्पूर्ण धर्मात्माओं में श्रेष्ठ थे। वे परम भगवद्भक्त, आत्मज्ञानी तथा वीरों के अग्रणी थे। उन्होंने युद्ध में विश्व-विजयी परशुराम को भी सन्तुष्ट कर दिया था।

ह्वै निराश बन माहिँ लौटि अम्बा तब आई। बिलखि-बिलखि निज विपति-कथा सब मुनि नि सुनाई।।
दैव-योगतैं परशुराम मुनिवर तहँ आये। सुनि अम्बा वृत्तान्त राम-नयननि जल छाये।।
अम्बाके हित भीष्मतैं, परशुराम लड़िवे चले। शुभागमन मुनि सुनि तुरत, हरषि भीम गुरुतैं मिले।।
अम्बा बनिके शिखण्डी, भीषमतैं बदलो लयो। नृप विचित्र आसक्त अति, निज रानिनिमहँ ह्वै गयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, स्वर्गीय विचित्रवीर्य की पत्नियों से बादरायण भगवान व्यास ने माता सत्यवती के कहने से धृतराष्ट्र, पाण्डु और दासी से तीसरे पुत्र विदुर नामक पुत्र उत्पन्न किये।

भयो रोग क्षय पुत्र-हीन स्वरग सिधारे। माता सुमिरन करे व्यास मुनि तुरत पधारे।।
कुरु-कुलको क्षय जानि व्यासतैं करवायो सुत। अन्ध भये धृतराष्ट्र पाण्डु अरु विदुर नीति युत।।
पुत्रवती रानीं लखीं, भये हृदय सबके हरे। शन्तनु सुतने सब तनय, पालि-पोसि समरथ करे।।

माता सत्यती के कहने से भगवान व्यासजी ने अपने सन्तानहीन भाई की स्त्रियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासी से तीसरे पुत्र विदुर जी का जन्म हुआ।

अन्ध न राजा होहि विदुर दासीके जाये। तातैं मझिले पाण्डु प्रजाने भूप बनाये।।
अन्ध कुमर धृतराष्ट्र सङ्ग ब्याही गान्धारी। जानि अन्ध पति कबहुँ स्वयं नहिँ वस्तु निहारी।।
पति समान अन्धी भई, नयननि पट्टी बाँधिकें। विपुल कीर्ति जगमहँ लही, यों अखण्ड व्रत साधिकें।।

धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी से हुआ था। उसके गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़ा था- दुर्योधन। गान्धारी को एक कन्या भी थी। उसका नाम था दु:शला। पाण्डु की पत्नी थी कुन्ती। शापवश पाण्डु स्त्री-सहवास नहीं कर सकते थे।

एक दिन पाण्डु वन में शिकार कर रहे थे। समय दिन का था। मनुष्य को दिन में संभोग वर्जित है अत: एक मुनि और उनकी पत्नी मृग और मृगी का रूप धारण कर रति-क्रिया कर रहे थे। पाण्डु इस रहस्य को नहीं जानते थे अत: उन्होंने मृग

का वध कर दिया। इस पर संभोग से अतृप्त मृगी ने पाण्डु को शाप दिया- जब भी तुम स्त्री सहवास करोगे तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। इसलिये उनकी पत्नी कुन्ती के गर्भ से धर्म, वायु और इन्द्र के द्वारा क्रमश: युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों-के-तीनों महारथी थे। पाण्डु की दूसरी पत्नी का नाम था- माद्री। दोनों अश्विनीकुमारों के द्वारा उसके गर्भ से नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। द्रौपदी पाण्डवों की सामान्य पत्नी थी। उससे इन पाँचों के क्रमश: प्रतिविन्ध्य, श्रुतसेन, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज धृतराष्ट्र के उनकी पत्नी गांधारी से सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। दु:शला नाम की एक कन्या भी थी। पाण्डु शापवश मैथुन नहीं कर सकते थे। अत: उनके धर्म, वायु और इन्द्र द्वारा युधिष्ठिर आदि तीन पुत्र हुए। दूसरी पत्नी माद्री से भी अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव दो पुत्र हुए। इस प्रकार कौरव सौ और पाण्डव पाँच थे।

एक सुता शत पुत्र जने गान्धारी रानी। दुर्योधन जिनिमाहिँ ज्येष्ठ अतिशय अभिमानी।।
कौरव सबकूँ कहें पाण्डुसुत पाँचहु पाण्डव। अर्जुन हरि के सखा जराये। जिन बन खाण्डव।।
भारतमहँ कौरव मरे, पुत्र-मित्र-बान्धव सहित। कुन्ती माद्रीमहँ भये, पाँच पाण्डु के अमरसुत।।

इसप्रकार पाँचों पाण्डवों का जन्म पाण्डुकेश्वर से ऊपर लोकपाल के पर्वत के ऊपर हुआ था। अब तक वहाँ पाण्डवों के नाम से बहुत से पर्वत, झरने, ग्राम, तालाब तथा शिलाएँ प्रसिद्ध हैं। हिमालय में, विशेषकर गन्धमादन पर्वत के निकट, पग-पग पर पाण्डवों के स्मृति-चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं।

लोकपाल पर्वत संसार में सबसे रमणीय स्थान है। उसकी घाटी में सैकड़ों प्रकार के पुष्प अपने आप उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिदेवी वहाँ परदा नहीं करतीं; क्योंकि वह जन-शून्य अत्यन्त ही एकान्त स्थान है। ऋतुराज बसन्त में शोभादेवी वहाँ सोलहों श्रृङ्गार करके विचरण करती हैं, प्रकृति नग्न होकर नृत्य करती है। वन श्री मारे हर्ष के फूल जाती है पुष्पों की सुगन्धि से दसों दिशाएँ सुवासित हो जाती हैं। शाल, ताल, तमाल, रसाल, पनस आदि के लम्बे-लम्बे वृक्ष वहाँ प्रहरियों की भाँति सजे-धजे खड़े हो जाते हैं। झरने झर-झर करके गान गाते हैं। वह भू-स्वर्ग है। लोकपाल वहाँ नित्य ही आते हैं। स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे स्थल कमल खिल जाते हैं। हिमकुण्ड देवताओं का बनाया हुआ है। अद्यावधि भी उसमें इतनी स्वच्छता रहती है कि एक तिनका भी उसमें नहीं रह सकता। यह बद्रिनारायण के पास है जोशी मठ से हिमकुण्ड को रास्ता जाता है इसे फूलोंकी घाटी भी कहते हैं।

भये धरमतैं धरमराज वृक उदर बायुतैं। पार्थ इन्द्रतैं जने पृथाने परम चावतैं।।
नकुल और सहदेव अश्विनीकुमार भिषक्वर। माद्रीतैं उत्पन्न करे दोऊ सुत सुन्दर।।
पाँचहुँकी पत्नी भई, द्रुपदसुता अति सुन्दरी। पूर्व जन्मको वृत्त सुनि, आपत्ति काहू नहिँ करी।।

द्रौपदेय- युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव- इन पांचों पांडवों के संयोग से द्रौपदी के पांच पुत्र उत्पन्न हुए, जो इस प्रकार हैं- युधिष्ठिर के संयोग से प्रतिविंध्य, भीम के संयोग से श्रुतसेन, अर्जुन के संयोग से श्रुतकीर्ति, नकुल के संयोग से शतानीक और सहदेव के संयोग से श्रुतकर्मा। ये पांचों द्रौपदेय (द्रौपदी के पुत्र) कहलाए। द्रौपदी के जो पांच पुत्र थे, उनके रूप में पांच विश्वेदेवगण ही प्रकट हुए थे। उनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं- प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक, श्रुतसेन।

शुकदेव बोले- राजन्, पाँचों पाण्डवों से द्रौपदी द्वारा तुम्हारे पाँच पितृव्य उत्पन्न हुए। उनमें युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य,

भीमसेन से श्रुतसेन, अर्जुन से श्रुतकीर्ति और नकुल से सतानीक तथा सहदेव से श्रुतकर्मा का जन्म हुआ।

धर्मराज पतिविन्ध्य पुत्र तामें प्रकटायो। भीम पुत्र श्रुतसेन द्रौपदी देवी जायो।।
श्रुतकर्मा सहदेव-तनय अति ये धरमयुत। अश्वत्थामा सबनिके, काटे सिर सोवत शिबिर।।

पाण्डवों की दूसरी पत्नियाँ भी थीं। उनसे भी इनके पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें युधिष्ठिर की पौरवी नाम की पत्नी से देवक और भीमसेन की पत्नी हिडिम्बा से घटोत्कच नाम के पुत्र हुए। भीम की दूसरी पत्नी सर्वगत, सहदेव के द्वारा विजया के गर्भ से सुहोत्र नाम का पुत्र हुआ। नकुल की दूसरी पत्नी करेणुमती के गर्भ से नरमित्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अर्जुनद्वारा नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावान, तथा मणिपुर के राजा की पुत्री के गर्भ से बभ्रुवाहन का जन्म हुआ।

धर्मराजकी पत्नि पौरवीतैं सुत देवक। भीम घटोत्कच कस्यो हिडिम्बामहँ सुत सेवक।।
दूसरि काली माहिँ सर्वगत सुत प्रकटाये। श्री सहदेव सुहोत्रकुमार विजयाने जाये।।
नकुल करेणुमती उदर, तैं कीन्हें नर मित्र सुत। अर्जुन रानी तीनि तैं, भये तीनि सुत विनय युत।।
करी हिडम्बा बिनय दया कुन्तीकूँ आई। आयसु दीन्हीं भीम राक्षसी बहू बनाई।।
ताहीतैं सुत यो घटोत्कच अति बलशाली। इन्द्र-दत्त जो शक्ति करणकी कीन्हीं खाली।।
अर्जुन-वध हित सुरक्षित, रखी कर्णने यत्न करि। वीर घटोत्कचकें लगी, लगत भूमिपै पस्यो मरि।।

श्रीकृष्ण की बहन थी सुभद्रा। सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। सुभद्रा का पुत्र था अभिमन्यु। अभिमन्यु की पत्नी का नाम उत्तरा था। उत्तरा के गर्भ से तुम्हारा (परीक्षित् का) जन्म हुआ है। तुम जब महाभारत के युद्ध में अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से माँ के पेट में भस्म हो रहे थे तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रभाव से तुम्हारी रक्षा की थी।

लक्षाग्रहतैं भागि गहन वन आये पाण्डव। लखि हिडम्बने बहिन हिडम्बा तहँ पठई तब।।
मारन आई स्वयं भीम लखि भई विमोहित। जान्यो भाव हिडम्ब भीमतैं भिड्यो क्रूरचित।।
द्वन्द्व युद्ध भीण भयो भिड़े, भीम, भय नहिँ कस्यो। यातुधानको बल धट्यो, मरि धरनी पै गिरि पस्यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, द्रौपदी से पाँचों पाण्डवों के पाँच पुत्रों के अतिरिक्त युधिष्ठिरजी से पौरवी नामकी पत्नी में देवक पुत्र हुआ। हिडिम्बा राक्षसी में भीम से घटोत्कच और दूसरी काली नामकी पत्नी से उनके सर्वगत नामक पुत्र हुआ। राजन् नकुल से करेणुमती ने नरमित्र तथा अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से इरावान तथा पुत्रिका-धर्म से विवाहित मणिपूरपति की कन्या से बभ्रुवाहन नामक पुत्र उत्पन्न किया। वह उनका पुत्र अपनी माता के पिता का ही पुत्र कहलाया।

इरावान सुत जन्यो उलूपीतैं अरजुनने। दई पुत्रिकाधर्म सहित मणिपुर नरेशने।।
सुता ब्याहि प्रण कस्यो पुत्र जो पुत्री जावै। सो होवै युवराज हमारो पुत्र कहावै।।
तासु गरभतैं अति बली, पुत्र बभ्रु वाहन भयो। लखि रण-कौशल जासुको, विस्मित अर्जुन ह्वै गयो।।
अश्वमेधको अश्व बभ्रु वाहनने पकस्यो। रनको बानो पहिन पितातैं लड़िबो निकस्यो।।
अति ई भीषण युद्ध भयो पितु सुततैं हास्यो। सुनी मात जित बात पुत्रने मम पति मास्यो।।
अति विलाप पति-हित-कस्यो, आइ उलूपी समरमहँ। मणितैं पति जीवित करे, गये पार्थ निज नगरमहँ।।
रचवायो अति स्वांग सूत्रधर सखा कृष्णने। हरी सुभद्रा जाय द्वारकामहँ अजुनने।।
तिने सुत अभिमन्यु वीर-गति भारत पाई। नारि उत्तरा गर्भवती हरि-चरननि आई।।
तातैं जनमें भागवत, देवरात नृप परीक्षित। सुरतरु-सम पूरन करहिँ, प्रजा-मनोर धरमवित।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, जब कौरवों का वंश नष्ट होने लगा और माता के उदर में ही तुम अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र तेज से नष्ट होने लगे, तब श्रीकृष्ण भगवान के प्रभाव से ही तुम उस मृत्यु से जीवित बच गये। हे तात, जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन ये तुम्हारे परम पराक्रमी पुत्र हैं।

तुम्हारे चार पुत्र हैं- जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन। जब जनमेजय को ज्ञात होगा कि तक्षक से तुम्हारी मृत्यु हुई है तो वह सर्पसत्र का आयोजन करेगा। उसके बाद वह अश्वमेध यज्ञ भी करेगा। जनमेजय के पुत्र शतानीक होंगे। शतानीक कृपाचार्य से विद्या ग्रहण करेगा और याज्ञवल्क्य से तीनों वेदों का अध्ययन करेगा और शौनक जी से आत्मज्ञान प्राप्त करेगा। शतानीक का पुत्र सहस्त्रानीक तथा उसका पुत्र अश्वमेधत्र तथा उसका असीम कृष्ण पुत्र होगा। उसका पुत्र नेमिचक्र होगा। हस्तिनापुर के गंगाजी में बहने पर वह कौशाम्बीपुरी में आनन्द से रहेगा। नेमिचक्र से चित्ररथ, चिरत्ररथ से कविरथ, कविरथ से वृष्टिमान, वृष्टिमान का राजपुत्र सुखेण, सुखेण से सुनीति, सुनीति से नृचक्षु, नृचक्षु से सुखीनल उससे परिप्लव परिप्लव से सुनय, सुनय से मेधावी, मेधावी से नृपंजय, नृपंजय से दूर्व तथा दूर्व से तिमि नाम का पुत्र होगा। तिमि का पुत्र बृहद्रथ उसका पुत्र सुदास, उसका पुत्र शतानीक, उसका पुत्र दुर्दमन, उसका पुत्र बहीनर, उसका दण्डपाणी, उसका पुत्र निमि, उसका पुत्र क्षेमक होगा। आगे यह वंश कलियुग में राजा क्षेमक तक चलकर समाप्त हो जायेगा। इसी प्रकार मगध देश में जरासन्ध के पुत्र सहदेव आदि जो राजा हैं, उनका वंश रिपुंजय पर्यन्त चलकर समाप्त हो जायेगा। यह सोमवंश का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया।

भूप भागवत सुनी अन्तमहँ भये भक्तियुत। जनमेजय श्रुतसेन भीम अरु उग्रसेन सुत।।
जनमेजय जो ज्येष्ठ भये सुत शतानीक तिनि। पच्चीस पीढ़ी माहिँ भये क्षेमक भूपतिमनि।।
क्षेमक ही जा वंशके, सबतें अन्तिम नृप भये। कलि प्रभावतैं शुद्ध कुल, छिन्न-भिन्न अब ह्वै गये।।

अब मैं तुम्हें मगध देश के राजा जरासंध के वंश का वर्णन करता हूँ। जरासन्ध से सहदेव, उससे मार्त्तरि, उससे श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा का पुत्र युतायु, युतायु का पुत्र नरमित्र होगा। नरमित्र का सुनक्षय, उसका पुत्र बृहत्सेन, उसका पुत्र कर्मजित, उसका पुत्र सृतंजय उसका पुत्र विपु, उसका पुत्र शुचि होगा। शुचि का पुत्र क्षेम, क्षेम का पुत्र सुव्रत उसका पुत्र धर्मसूत्र, उसका पुत्र शम, उसका पुत्र युमत्सेन, उसका पुत्र सुमति तथा सुमति का पुत्र सुवल होगा। सुवल का पुत्र सुनीति, सुनीति का सत्यजित, सत्यजित का विश्वजित तथा विश्वजित का रिपुंज्य होगा। ये वृहद्रथ वंशी राजा एक हजार वंश तक शासन करेंगे।

भारत- भारतसंहिता, महाभारत, आद्य भरत। इस पावन ग्रंथ (महाभारत) में महर्षि व्यास ने कुरुवंश के विस्तार, गांधारी की धर्मशीलता, विदुर की उत्तम प्रज्ञा और कुंतीदेवी के धैर्य का भली भांति वर्णन किया है। भगवान व्यास ने इसमें वासुदेव श्रीकृष्ण के माहात्म्य, पांडवों की सत्यपरायणता तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन आदि के अनाचार का स्पष्ट उल्लेख किया है। पुण्यकर्मा मनुष्यों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों के इस उत्तम ग्रंथ को आद्य भारत (महाभारत) जानना चाहिए। तदनंतर व्यासजी ने उपाख्यान भाग को छोड़कर चौबीस हजार लोकों की भारतसंहिता बनाई, जिसे विद्वान पुरुष भारत कहते हैं।

जय- अतीव प्रतिभाशाली सत्यवतीनंदन व्यासजी ने पुण्यात्मा पांडवों की यह कथा एक लाख श्लोकों में कही है। ऋषियों द्वारा प्रशंसित यह पुरातन इतिहास सब ग्रंथों में श्रेष्ठ है। यही वेदों के समान ही पवित्र और उत्तम है। जय नामक यह इतिहास (महाभारत) विजय की कामना करनेवाले व्यक्ति को अवश्य सुनना चाहिए। इसका श्रवण करनेवाला राजा भूमि पर विजय पाता और सब शत्रुओं को परास्त कर देता है। यह महान् मंगलकारी श्रेष्ठ साधन है। व्यासजी ने इसे पुण्यमय धर्मशास्त्र, उत्तम अर्थशास्त्र तथा सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी कहा है।

यदु वंश

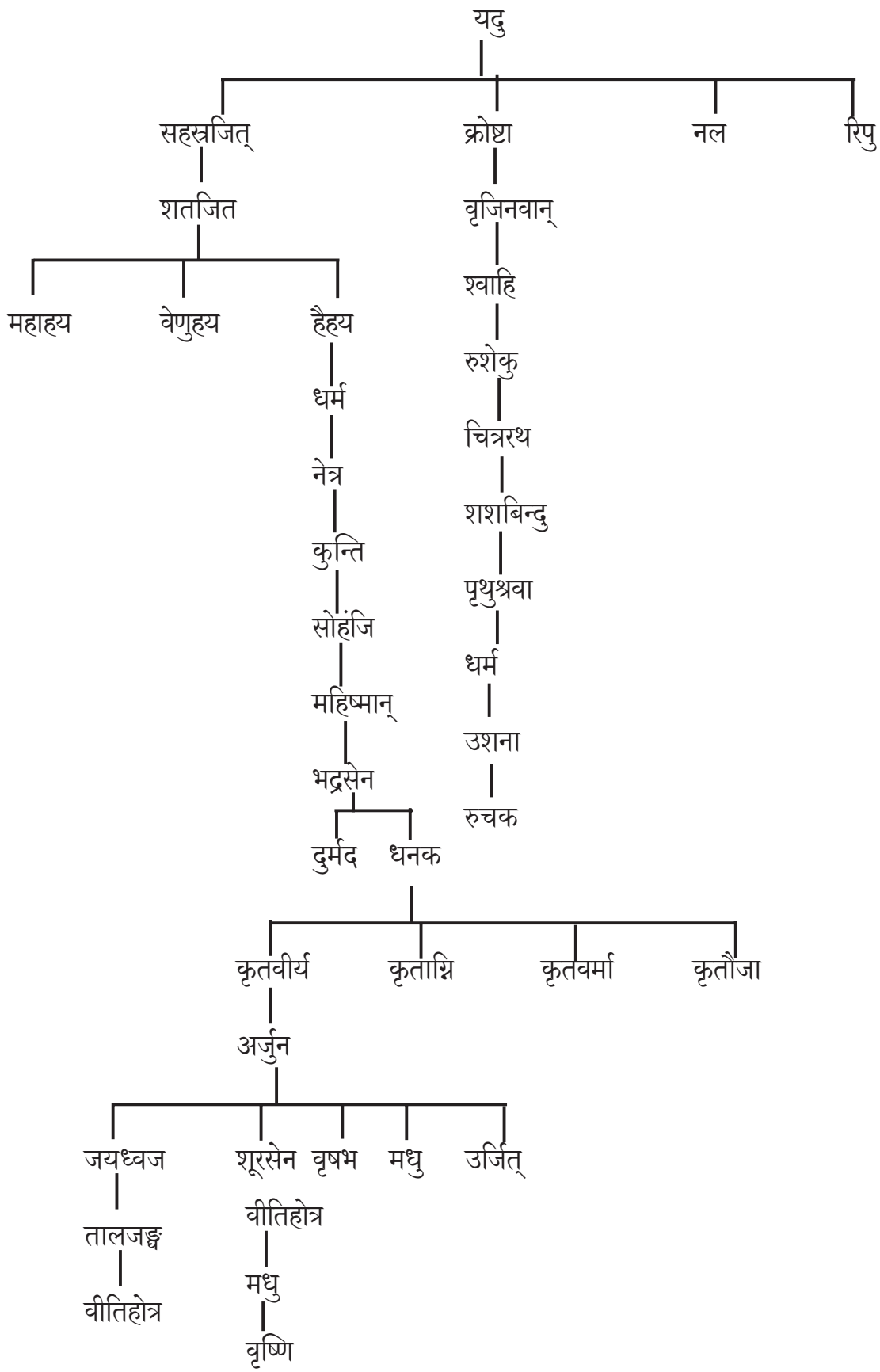
यदु
सहस्रजित्
क्रोष्टा
नल
रिपु
शतजित
वृजिनवान्
महाहय
वेणुहय
हैहय
श्वाहि
धर्म
रुशेकु
नेत्र
चित्ररथ
कुन्ति
शशबिन्दु
सोहंजि
पृथुश्रवा
महिष्मान्
धर्म
भद्रसेन
उशना
दुर्मद
धनक
रुचक
कृतवीर्य
कृताग्नि
कृतवर्मा
कृतौजा
अर्जुन
जयध्वज
शूरसेन
वृषभ
मधु
उर्जित्
तालजङ्घ
वीतिहोत्र
मधु
वीतिहोत्र
वृष्णि

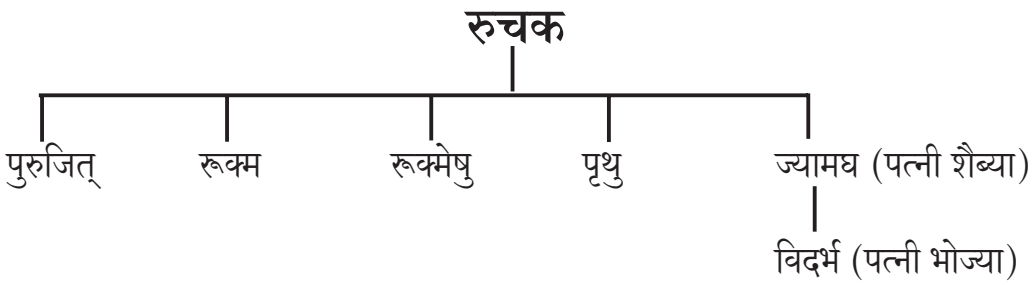
रुचक
पुरुजित्
रूक्म
रूक्मेषु
पृथु
ज्यामघ (पत्नी शैब्या)
विदर्भ (पत्नी भोज्या)

विदर्भ वंश

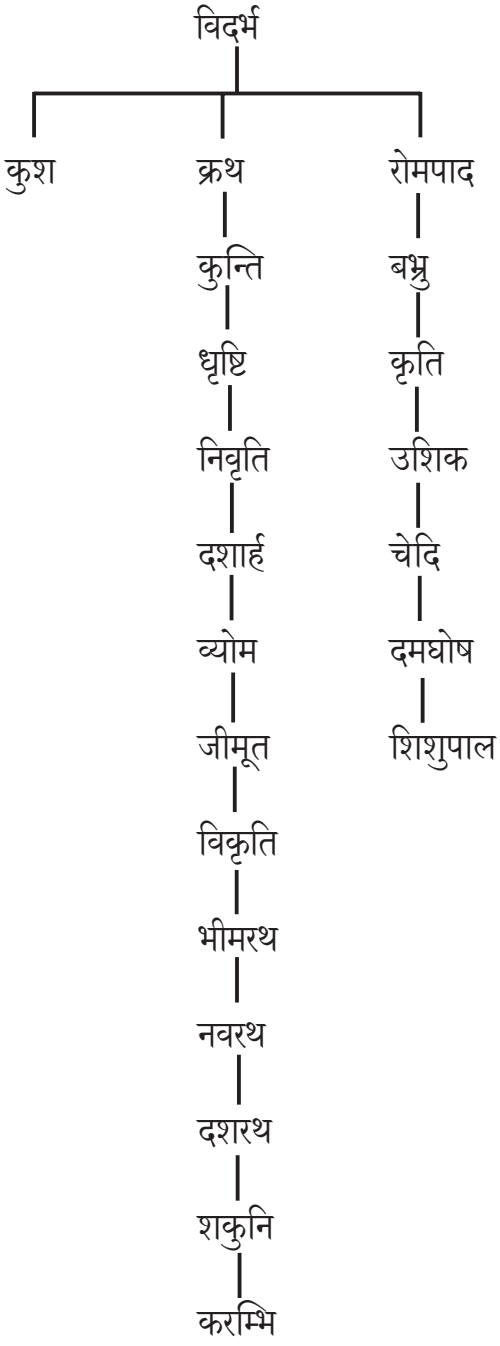
विदर्भ
कुश
क्रथ
रोमपाद
कुन्ति
बभ्रु
धृष्टि
कृति
निवृति
उशिक
दशार्ह
चेदि
व्योम
दमघोष
जीमूत
शिशुपाल
विकृति
भीमरथ
नवरथ
दशरथ
शकुनि
करम्भि

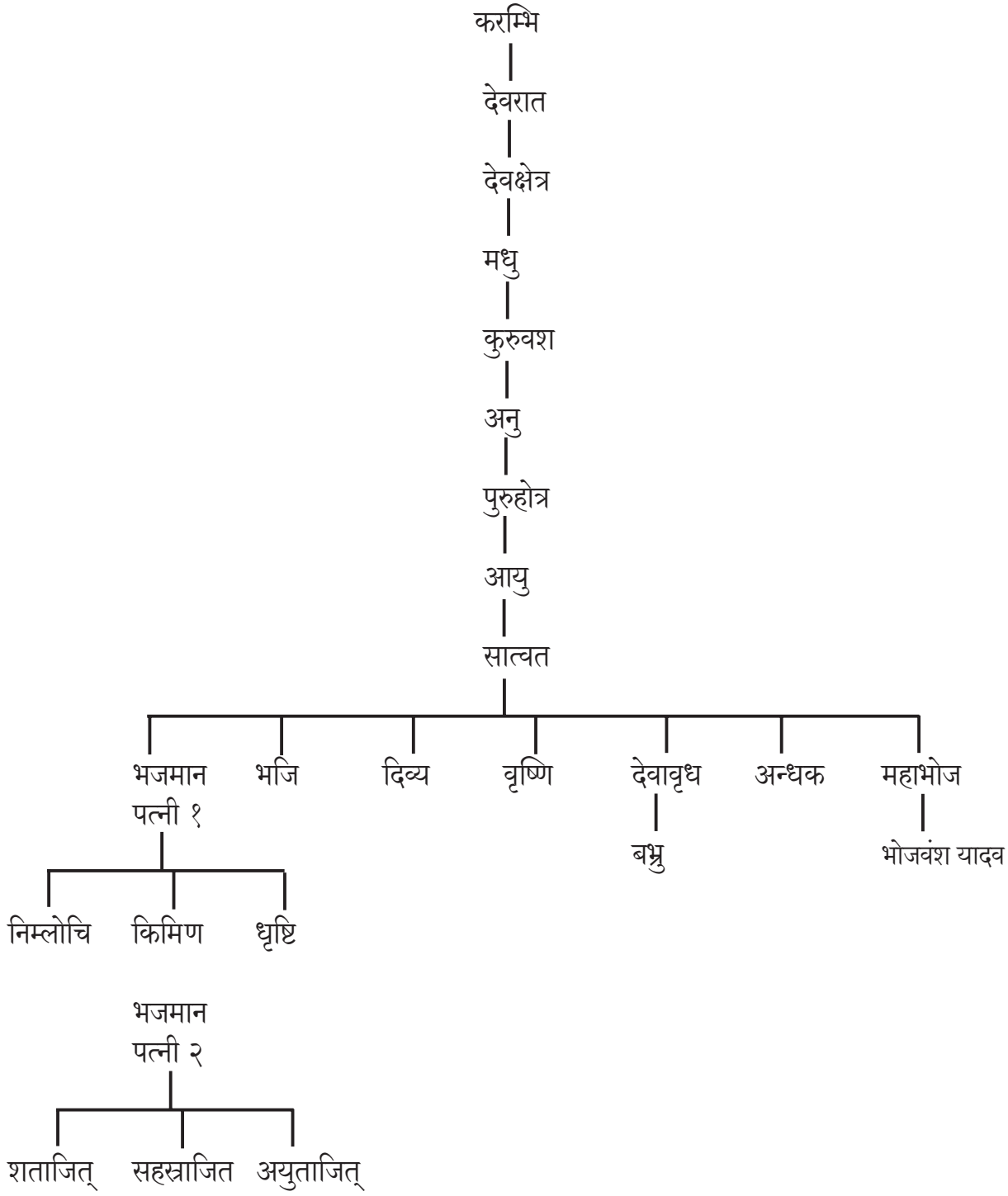
करम्भि
देवरात
देवक्षेत्र
मधु
कुरुवश
अनु
पुरुहोत्र
आयु
सात्वत
भजमान
भजि
दिव्य
वृष्णि
देवावृध
अन्धक
महाभोज
पत्नी १
बभ्रु
भोजवंश यादव
निम्लोचि
किमिण
धृष्टि
भजमान
पत्नी २
शताजित्
सहस्राजित
अयुताजित्

वृष्णि वंश

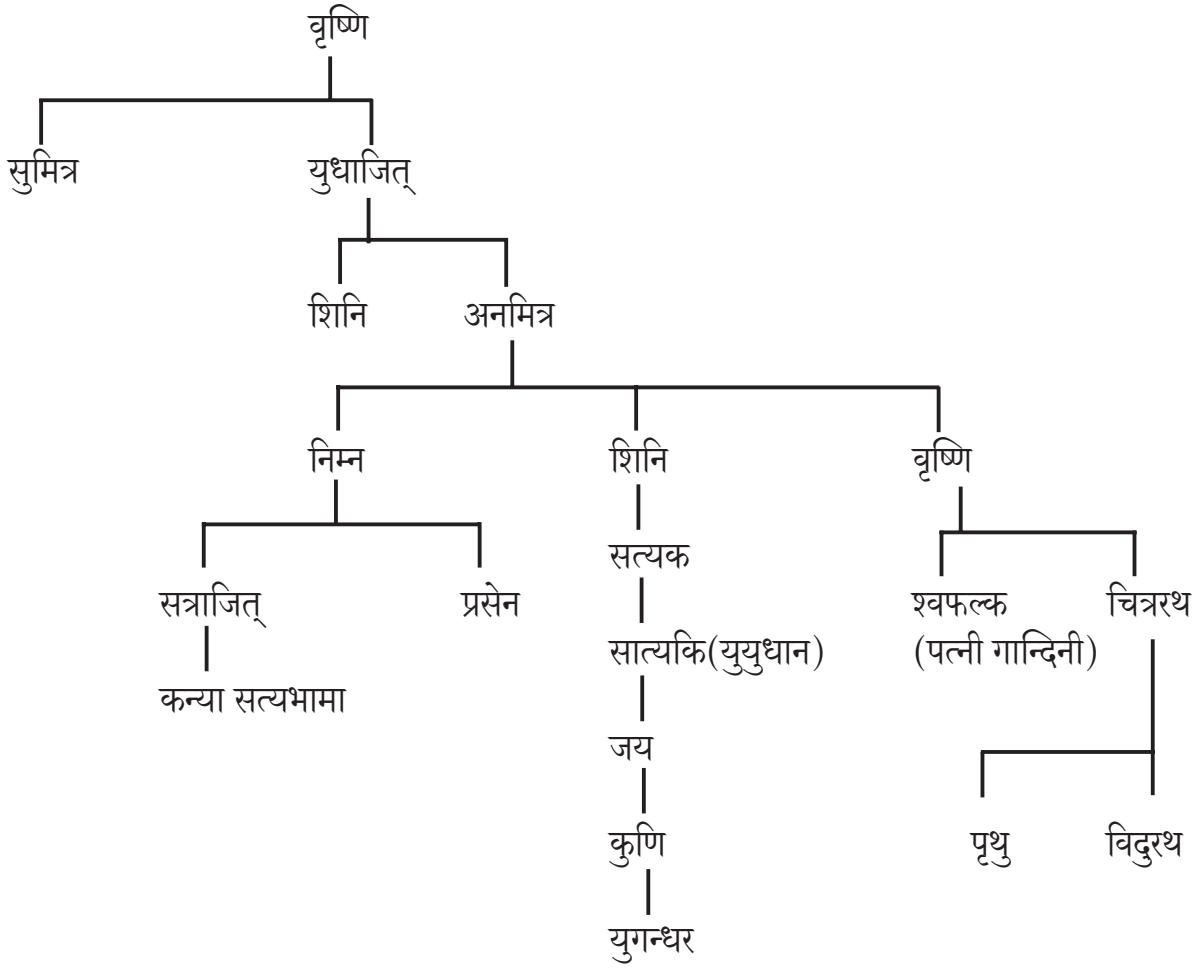

श्वफल्क वंश

श्वफल्क (पत्नी गान्दिनी)

अक्रूर, आसङ्ग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मवृद्ध,
सुकर्मा, क्षेत्रोपक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन, प्रतिबाहु और सुचीरा पुत्री

अक्रूर

देववान् उपदेव

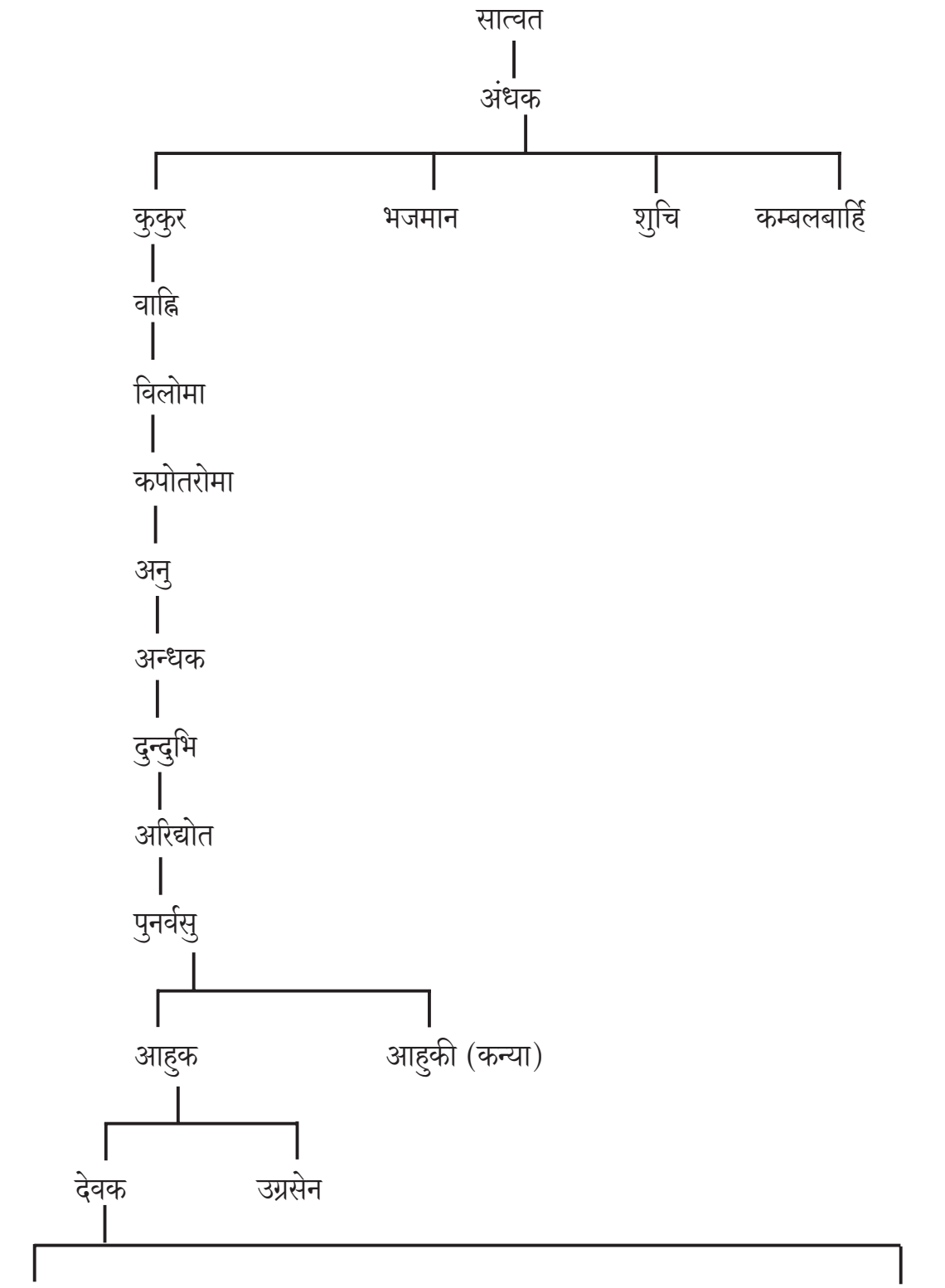

(इन सात पुत्रियों के साथ वसुदेवजी ने विवाह किया)

उग्रसेन का वंश

उग्रसेन

पुत्र- कंस सुनामा न्यग्रोध कम शमु सुहू राष्ट्रपाल सृष्टि तृष्टिमान
पुत्रियां- कंसा कंसवती कमा शूरभू राष्ट्रपालिका
(इन पांच कन्याओं का विवाह वसुदेवजी के छोटे भाई देवभाग, देवश्रवा आदिसे हुआ)

विदुरथ वंश

विदुरथ

शूर

भजमान

शिनि

स्वयम्भोज

हृदीक

देवमीढ़ शतधन्वा कृतवर्मा

देवमीढ़ वंश

देवमीढ़

१) क्षत्रिय पत्नि से

शूरसेन (पत्नि मारिषा)

२) गोप पत्नि वरीयसी

पर्जन्य

दस पुत्र- वसुदेव(आनकदुन्दुभि), देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कम, शमीक, वत्सक, वृक
पाँच पुत्री- पृथा (कुन्ती), श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी
(कुन्तीभोज शूरसेन की बुआ का पुत्र उसे अपनी पुत्री कुन्ती को दत्तक दिया)

गुरु वशिष्ठ वंश

ब्रह्मा

वशिष्ठ (पत्नि- ऊर्जा, अरुंधती)

शक्ति (पत्नि- अदृश्यन्ति)

पराशर (पत्नि- सत्यवती)

वेदव्यास (पत्नि- विटका)

शुकदेव (नैष्ठिक ब्रह्मचारी)

महिभानु वंश

महिभानु

वृषभानु (पत्नि कीर्तिदा)

श्रीदाम राधा सुबल

नन्द वंश

देवमीढ़ (गोप पत्नि)

पर्जन्य (पत्नि वरीयसी)

उपनन्द (पत्नि तुंगी) प्रभावती — ऋषभ देवप्रस्थ

अभिनन्द (महानंद) (पत्नि पीवरी) सुष्मा — विशाल तेजस्वी

नन्द (पत्नि यशोदा) गिरिभानु गोप व पद्मावती पाटली की पुत्री — कृष्ण-कन्हैया (संरक्षक)

सन्नन्द (कुबला) — अर्जुन अंशु अजया (पुत्री)

नन्दन (अतुला) — भद्र तोक

नंदिनी — वरूथप (पुत्र)

सुनंदा

शुरसेन पुत्री १) श्रुतदेवा (पति वृद्धशर्मा)

दन्तवक्त्र

शुरसेन पुत्री २) श्रुतकीर्ति (पति कैकयी देश के राजा धृष्टकेतु)

सन्तर्दन

शुरसेन पुत्री ३) राजाधिदेवी (पति जयसेन)

विन्द अनुविन्द मित्रविंदा (कृष्ण पटरानी)

शुरसेन पुत्री ४) श्रुतश्रवा (पति चेदिराज दमघोष)

शिशुपाल

वसुदेवजीके भाई देवभाग (पत्नी कंसा)

चित्रकेतु बृहद्बल (उद्धव)

वसुदेवजीके भाई देवश्रवा (पत्नी कंसवती)

सुवीर इषुमान

वसुदेवजीके भाई अनक (पत्नी कमा)

सत्यजित् पुरुजित्

वसुदेवजीके भाई सृञ्जय (पत्नी राष्ट्रपालिका)

वृष दुर्मर्षण

वसुदेवजीके भाई श्यामक (पत्नी शूरभू)

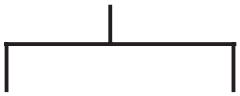

हरिकेश हिरण्याक्ष

वसुदेवजीका भाई वत्सक (पत्नी मिश्रकेशी अप्सरा)

(नि:स्संतान)

वसुदेवजीके भाई वृक (पत्नी दुर्वाक्षी)

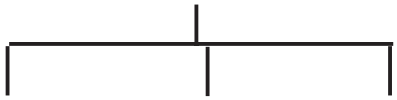

तक्ष पुष्कर शाल

वसुदेवजीके भाई शमीक (पत्नी सौदामिनी)

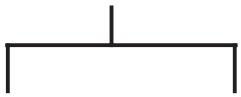

सुमित्र अर्जुनपाल

वसुदेवजीका भाई कंक (पत्नी कर्णिका)

ऋतधाम जय

वसुदेव वंश

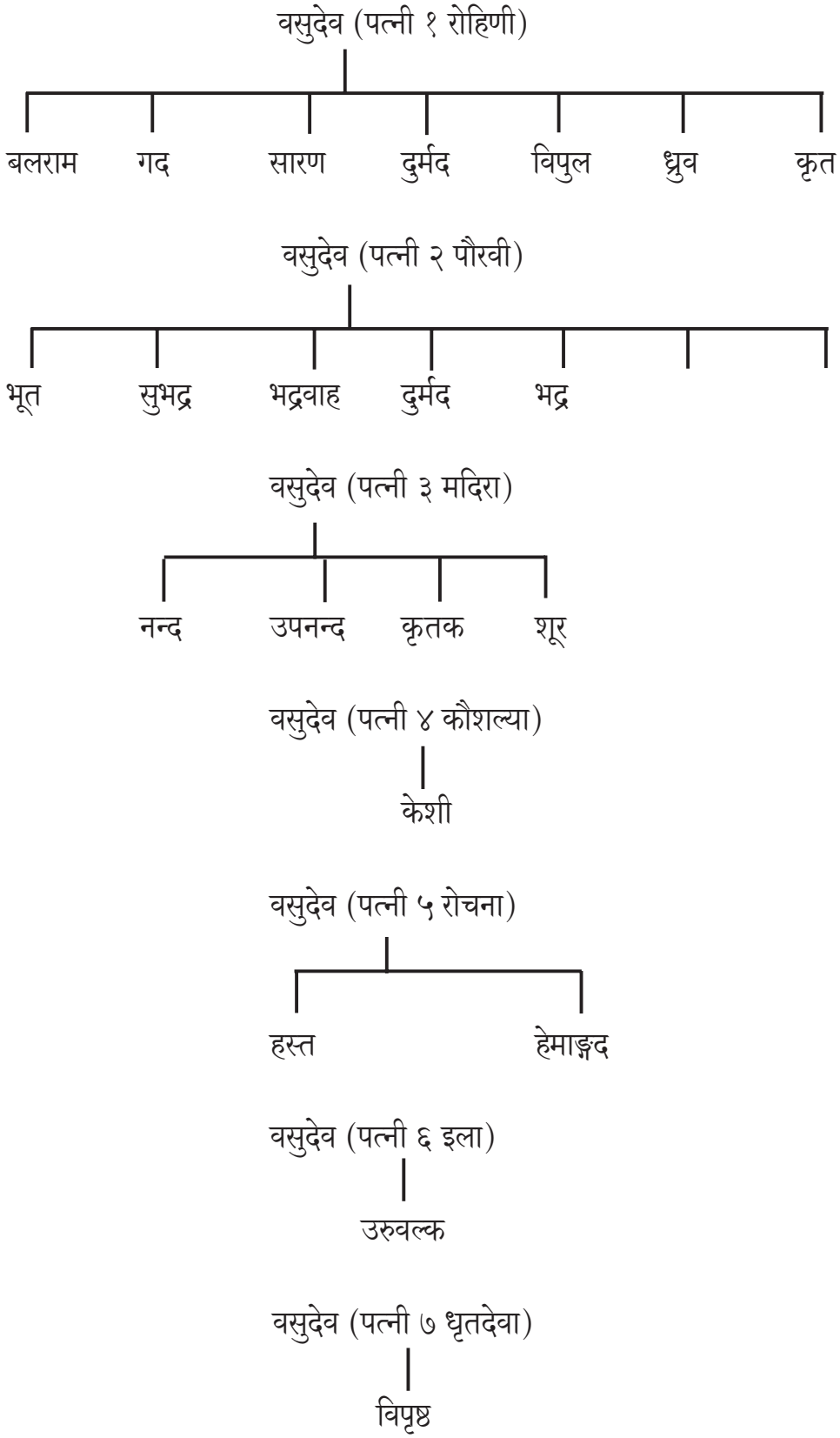
वसुदेव (पत्नी १ रोहिणी)
बलराम
गद
सारण
दुर्मद
विपुल
ध्रुव
कृत
वसुदेव (पत्नी २ पौरवी)
भूत
सुभद्र
भद्रवाह
दुर्मद
भद्र
वसुदेव (पत्नी ३ मदिरा)
नन्द
उपनन्द
कृतक
शूर
वसुदेव (पत्नी ४ कौशल्या)
केशी
वसुदेव (पत्नी ५ रोचना)
हस्त
हेमाङ्गद
वसुदेव (पत्नी ६ इला)
उरुवल्क
वसुदेव (पत्नी ७ धृतदेवा)
विपृष्ठ

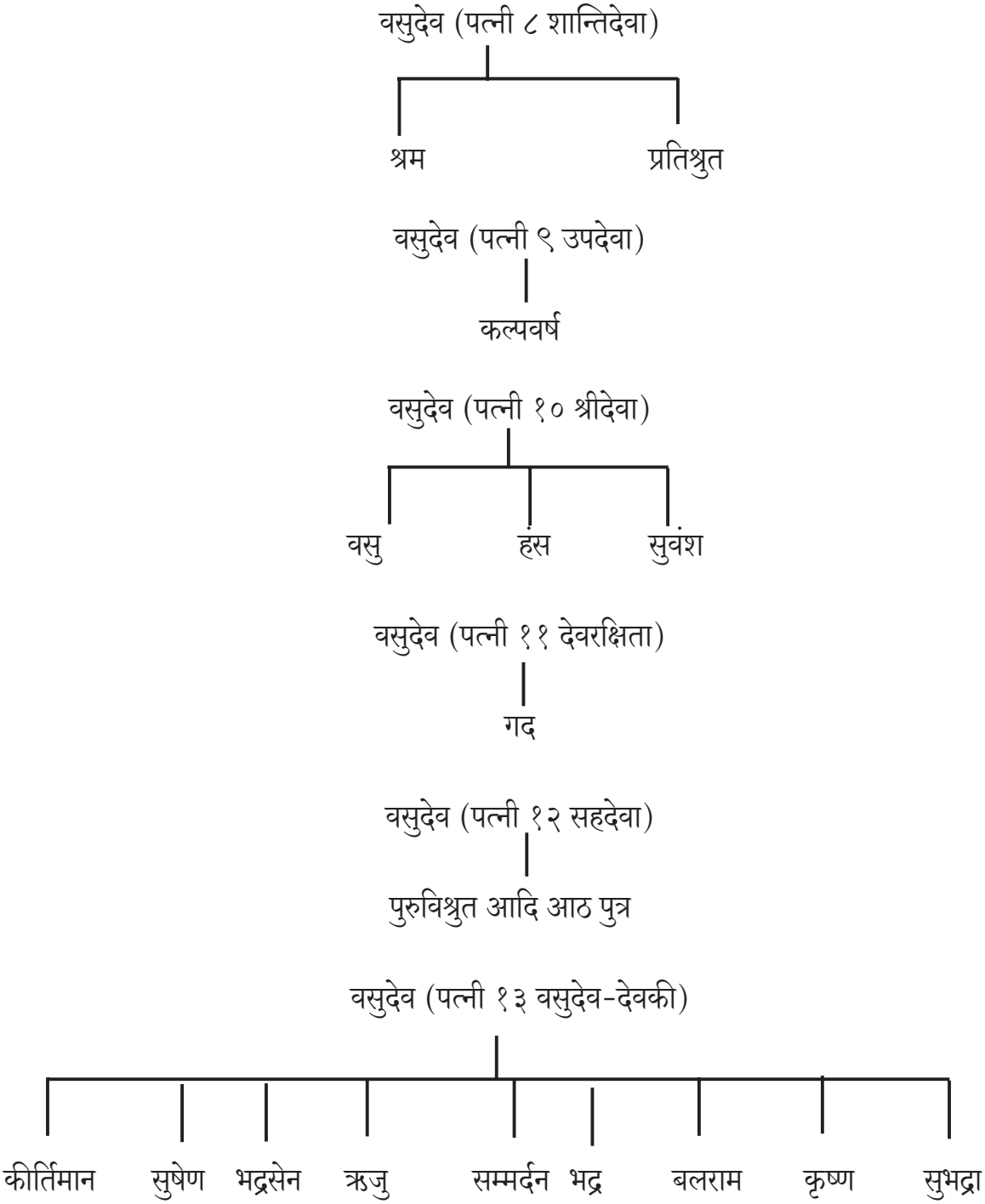

वसुदेव (पत्नी १४ वसुदेव-भद्रा)

वसुदेव (पत्नी १५ वसुदेव-इंदिरा)

वसुदेव (पत्नी १६ वसुदेव-वैशाखी)

वसुदेव (पत्नी १७ वसुदेव-सुनाम्नी)

वसुदेव (पत्नी १८ वसुदेव-वृकदेवी)

वसुदेव (पत्नी १९ वसुदेव-सुतनु)

१९) यदुवंश और बृष्णि वंश का परिचय-

राजा ययाति के पाँच पुत्र हुए। जो यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु के नाम से प्रसिद्ध हुए। यदु ने अपने जीवन में अनेक विशाल यज्ञों के द्वारा देवों और देव गुरु बृहस्पति जी को प्रसन्न किया। दान देने में यदु जी इतने अधिक उदार थे कि अनेक बार ब्राह्मणों को दान देते समय शरीर पर तीन कपड़ों को छोड़कर सब दान कर दिया था। इसी महान पुण्य के कारण चन्द्रवंश आगे चलकर यदुवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीशुकदेव बोले- परीक्षित्, ययातिनन्दन अनु के तीन पुत्र हुए- सभानर, चक्षु और परोक्ष। सभानर का कालनर, कालनर का सृञ्जय, सृञ्जय का जनमेजय, जनमेजय का महाशील तथा महाशील का पुत्र हुआ महामना। महामना के उशीनर तथा तितिक्षु दो पुत्र हुए। उशीनर के शिव, बन, शमी तथा दक्ष चार पफत्र थे शिव के वृषाद्रर्भ, सुवीर, मद्र तथा कैकेय चार पुत्र थे। तितिक्षु के रुषरुद्रथ तथा रुषरुद्रथ के हेम पुत्र हुआ। हेम के सुतमा तथा सुतमा के बलि पुत्र हुआ।

आगे इसी वंश में बलि उत्पन्न हुए। राजा बलि की पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा मुनि ने छ: पुत्र उत्पन्न किये। इनके नाथ थे- अंग, बंग, कलिंग, सुह्य, पुण्ड्र और अन्ध्र। इन लोगों ने पूर्व दिशा में अपने नाम से अलग-अलग प्रान्त बसाकर राज्य किया।

अंग के वंश में आगे चलकर धर्मरथ का बेटा चित्ररथ हुआ। यह चित्ररथ ही रोमपाद के नाम से प्रसिद्ध है। रोमपाद के मित्र थे अयोध्याधिपति महाराज दशरथ। प्रथमत: रोमपाद के कोई सन्तान न थी अत: दशरथ ने उन्हें अपनी शान्ता नाम की कन्या गोद दे दी। शान्ता का विवाह ऋष्यश्रृंग मुनि से हुआ। ऋष्यश्रृंग विभाण्डक के पुत्र थे। विभाण्डक ने इन्हें हरिणी के गर्भ से उत्पन्न किया था। एक बार राजा रोमपाद के राज्य में बहुत दिनों तक वर्षा नहीं हुई। ऋष्यश्रृंग को राजा रोमपाद ने गणिकाओं की सहायता से अपने राज्य में बुलाया। उनकी कृपा से राजा रोमपाद के राज्य में वर्षा हुई उन्होंने राजा से इन्द्र देवता का यज्ञ कराया और उसके सन्तान उत्पन्न हुई। ऋष्यश्रृंग के वहां आते ही प्रभूत वर्षा हुई। ऋष्यश्रृंग ने यज्ञ द्वारा रोमपाद और दशरथ को पुत्र प्राप्त कराया था।

रोमपाद के पुत्र चतुरंग हुए। इन्हीं के वंश में बृहद्रथ का जन्म हुआ। बृहद्रथ के पुत्र बृहन्मना और बृहन्मना के पुत्र जयद्रथ हुए। जयद्रथ के विजय, विजय के धृति, धृति से धृतव्रत, धृतव्रत के सतकर्मा तथा सतकर्मा के अधिरथ पुत्र हुआ। अधिरथ नि:सन्तान थे। एक दिन उन्होंने गंगा के तट पर भ्रमण करते हुए देखा कि एक पिटारी में एक नवजात शिशु बहता हुआ चला जा रहा है। वे उसे अपने घर लाये तथा अपना पुत्र बना लिया। आगे यही बालक कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। यह बालक सूर्य के द्वारा कुमारी अवस्था में कुन्ती के गर्भ से कान द्वारा उत्पन्न हुआ था इसीलिये इसका नाम कर्ण पड़ा। कर्ण के पुत्र वृषसेन थे। ययाति के पुत्र द्रुह्यु से बभ्रु हुए। उससे सेतु उसके आरब्ध उससे गान्धार, गांधार से धर्म, धर्म से धृत उससे दुर्मना तथा दुर्मना से प्रचेता और प्रचेता से सौ पुत्र उत्पन्न हुये जो उत्तर दिशा में म्लेच्छों के राजा हुए। तुर्वसु के वह्नि हुए उसके भर्ग, भर्ग से भानुमान उसके त्रिभानु, त्रिभानु करन्धम और करन्धम के पुत्र मरुत हुए। मरुत सन्तानहीन थे अत: उन्होंने पुरुवंशी दुष्यन्त को अपना पुत्र बनाकर रक्खा था किन्तु बाद में वह राज्य की कामना से अपने ही वंश में लौट गये।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश के बारे में बताता हूँ, जिसका श्रवण करने पर मानव पाप-मुक्त हो जाता है। इसी वंश में नराकृति भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम्। यदोर्वंश नर: श्रुत्वा सर्वपापै: प्रमुच्यते।।
यत्रावतीर्णो भगवान परमात्मा नराकृति:। यदो: सहस्रजित क्रोष्टानलोरिपुरिति श्रुता:।।
यदुनन्दन के पाद पद्ममहँ शीश नवाऊँ। अब ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु-वंश सुनाऊँ।।

भये चारि यदु-पुत्र सहसजित्, क्रोष्टा, रिपु नल। नृप सहस्रजित पुत्र भये शतजितहु अमित बल।।
सतजित के सुत महाहय, हैहय दूसर बेणुहय। हैहय कुल बलवान अति, करी जिननि दश दिशि बिजय।।

यदु के चार पुत्र थे- सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्रजित् के पुत्र थे शतजित्। शतजित् के तीन बेटे थे- महाहय, वेणुहय तथा हैहय। हैदय के धर्म, धर्म के नेत्र, नेत्र के कुन्ती और कुन्ती के सोहञ्जि हुए। सोहञ्जि के महिष्मान् हुए और महिष्मान् के भद्रसेनक। भद्रसेनक के दो पुत्र हुए- दुर्मद और धनक। धनक के चार पुत्र हुए- कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा।

कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन हुए, वस्तुत: इनका सही नाम था- अर्जुन। हजार भुजाओं से युक्त होने के कारण इन्हें सहस्रार्जुन कहते थे। यह महान् प्रतापी और ससद्वीपा वसुमती के अधिपति थे। दत्तात्रेय की कृपा से उन्हें योगसिद्धि की उपलब्धि हुई थी। वे दत्तात्रेय के शिष्य थे। उन्होंने अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। कोई भी राजा उनकी समता नहीं प्राप्त कर सकेंगे, न योग में और न यज्ञ में ही। चिरकाल तक उन्होंने राज्य-सुख का उपभोग किया था। इन्होंने पिचासी हजार वर्ष तक राज्य किया पर उन्हें किसी भी प्रकार की शांति नहीं थी। उन्हें राज्य की चिंता भी नहीं थी। सहस्रार्जुन के स्मरण मात्र से ही खोयी हुई वस्तु मिल जाती है। उनके सौ पुत्र थे। पञ्चानबे पुत्रों का वध परशुराम ने कर दिया था। केवल पाँच पुत्र ही बचे थे। उनके नाम हैं- जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और अर्जित।

हैहय नृप तैं भये आठवीं पढ़ी अर्जुन। कार्तवीर्य अति बली सहस भुज, सिद्ध सर्वगुन।।
दत्तकृपा तैं सिद्धि सहस सुत सब सुख पाये। परशुराम तैं सुतनि सङ्ग मरि स्वर्ग सिधाये।।
सहस निमहँ तैं पाँच सुत, बचे जयध्वज, मधु, वृषभ। सुरसेन ऊर्जित नृपति, सुनहु जयध्वज कुल ऋषभ।।

जयध्वज के वंश में तालजंघ आदि का वंश चला। तालजंघ के सौ पुत्र थे। तालजंघ क्षत्रिय के नाम से प्रसिद्ध हुये जिनको राजा सगर ने महर्षि और्वकी कृपा से मार डाला उनमें सबसे बड़ा वीतिहोत्र था। वीतिहोत्र के मधु, मधु के सौ पुत्र थे। जिनमें वृष्णि सबसे बड़ा था। मधु, वृष्णि और यदु- इन तीनों के कारण ही श्रीकृष्ण को मधुवंशी, वृष्णिवंशी और यदुवंशी कहा जाता है। यदु के दूसरे पुत्र क्रोष्टु के वृजिनवान तथा वृजिनवान के श्वाहि उसके रुषेक, रुषेक के चित्ररथ उसके शशविन्दु था।

तालजंघ तिनि पुत्र भये तिनिके हू शत सुत। वीतिहोत्र ही बचे शेष लरि मरे शक्तियुत।।
वीतिहोत्र के पुत्र भये मधु वृष्णि भये तिनि। माधव अरु वार्ष्णेय नामतं, पालहिजं देशनि।।
कोष्टा यदु ये द्वितीय सुत, वृजिनवान् तिनिके तनय। वृजिनवान के वंश कूं, सुनहु विप्रगन ह्वै सदय।।

शुकदेव बोले- राजन्, यदु पुत्र क्रोष्टु के बृजिनवान नामक पुत्र से श्वाहि का जन्म हुआ। श्वाहि के सुत रुशेकु हुए और रुशेकु के चित्ररथ। इन्हीं चित्ररथ से महायोगी, महाभोगी, महान ऐश्वर्यशाली महाराज शशविन्दु का जन्म हुआ।

यह शशविन्दु बड़ा चक्रवर्ती तथा अजेय राजा था। उसके दस हजार पत्नियाँ थी। प्रत्येक के एक-एक लाख संताने उत्पन्न हुई। इस तरह उसके सौ करोड़ यानी एक अरब संतान हुईं। उनमें पृथुश्रवा आदि प्रधान थे।

चौथी पीढ़ी माँहि भये शशविन्दु योगिवर। भोग, योग, ऐश्वर्य बसहिं जिनमहँ गुन सुखकर।।
दश सहस्त्र तिनि नारि कोटि दश सुत उपजाये। जिनको वैभव देखि स्वर्गपति इन्द्र लजाये।।
पृथुश्रवा तिनिके तनय, धर्म पुत्र तिनि श्रेष्ठतर उशना, उशना के तनय, रुचक पंच तिनि सुत सुघर।।

पृथुश्रवा से धर्म तथा धर्म से उषना उत्पन्न हुआ। उषना ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये उनका पुत्र रुचक था। रुचक के पुरुजित, सक्य, रुक्मेषु, पृथु तथा ज्यामध आदि पाँच पुत्र थे। आगे चलकर इस वंश में ज्यामध नाम के एक राजा हुए। उनकी पत्नी का

नाम था- शैव्या। वे नि:सन्तान थे। पत्नी के भय से दूसरा विवाह भी नहीं किये। एक बार वे अपने शत्रु की कन्या भोज्या को हर कर लाये। राजा के साथ रथ पर कन्या को बैठी देखकर शैव्या ने डाँट कर पूछा- अजी, यह कौन लड़की है? किसे आप साथ में लाये हैं। राजा ने कहा- यह तुम्हारी पुत्रवधू है। इस पर शैव्या ने मुस्कुराकर कहा- न कोई मेरा पुत्र है और न कोई सौत ही फिर यह कैसे मेरी पुत्रवधू हुई? ज्यामघ ने कहा- रानी, यह तेरे भावी पुत्र की पत्नी बनेगी। विश्वेदेवता एवं पितरों ने राजा के उक्त वचन का अनुमोदन कर दिया। फलत: उनकी कृपा से शैव्या तत्काल गर्भवती हो गई। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका विवाह भोज्या के साथ कर दिया गया। शैव्या के पुत्र का नाम था- विदर्भ। आज तक सृष्टि में जितने भी पत्नी-भक्त राजा हुए हैं, उनमें ज्यामध की बराबरी का कोई नहीं है और न आगे कोई होनेवाला ही है।

कुहक, कहाँ तैं सौति पकरि रथ पै बैठाई। डरिकें बोले भूप-पतोहू रानी। आई।।
बोली रानी-बन्ध्या हौं क्यों बात बनाओ। कैसे मेरी होहि पतोहू मर्म बताओ।।
बोले नृप- भावी तनय, बने वधू वर सुर दियो। गर्भवती शैव्या भई, सुत विदर्भ पैदा कियो।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज रुचक के पुरजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ ये पांच पुत्र थे। ज्यामघ की स्त्री का नाम शैव्या था। यद्यपि वे सन्तानहीन थे, फिर भी स्त्री के भय से उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया।

पुरुजित, पृथु, रुक्मेषु, रुक्म ज्यामहु रुचकके। ज्यामघ छोटे नृपति न सन्तति कोई तिनके।।
शैव्या नृप की नारि भूप निज वश करि लीन्हों। सन्तति इच्छा रही व्याह डरि और न कीन्हों।।
सीमावर्ती भूप की, कन्या हरि लाये नृपति। रथासीन युवती लखी, बोली शैव्या कुपित अति।।
यादव कुल वर्णन कियौ, मुनिराय। श्रीकृष्ण प्रगटे तहाँ, नृपति सुनी हरषाय।।

शुकदेव बोले- परीक्षित् राजा विदर्भ की भोज्या नामक पत्नी से तीन पुत्र हुए- कुश, क्रथ और रोमपाद। रोमपाद विदर्भवंश में बहुत ही महान् पुरुष हुए।

कुश, क्रथ, नृपवर रोमपाद तीनों विदर्भ सुत। क्रथ की पीढ़ी बीस माँहि प्रकटे नृप सात्वत।।
सात्वत के भजमान, दिव्य, भजि, वृष्णि हु अंधक। देवावृध अरु महाभोज सातों सुत धार्मिक।।
षष्ठ पुत्र भजमानें, देवावृध के बभ्रु सुत। पिता पुत्र दोऊ परम, ज्ञानी, तारक योग युत।।

शुकदेव बोले-राजन्, वृष्णि के पुत्र सुमित्र और युधाजित् दो हुए, उनमें युधाजित् से भी शिनि और अनमित्र दो पुत्र हुए अनमित्र के पुत्र निम्न हुए।

रोमपाद के पुत्र थे बभ्रु। बभ्रु से कृति, कृति से उशिक् और उशिक् के हुए चेदि फिर चेदि से शिशुपाल आदि का जन्म हुआ।

क्रथ के पुत्र थे कुन्ति। कुन्ति के धृष्टि, धृष्टि के निवृति, निवृति के दशार्ह और दशार्ह के व्योम पुत्र हुए। व्योम का जीमूत उसका विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ और नवरथ का दशरथ। दशरके के में शकुनि, करम्भि, देवरात, देवक्षत्र- ये सब क्रमश: पैदा हुए। देवक्षत्र से मधु, मधु से कुरुवश और कुरुवश से अनु हुए। अनु से पुरुहोत्र, पुरुहोत्र से आयु और आयु से सात्वत का जन्म हुआ। सात्वत के सात पुत्र थे- भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज। भजमान की दो पत्नियाँ थीं। दोनों से तीन-तीन पुत्र पैदा हुए। उनके नाम थे- निम्लोचि, किमिण, धृष्टि, शताजित सहस्राजित और अयुताजित्। देवावृध के पुत्र का नाम था- बभ्रु। ये पिता-पुत्र अनुपम थे। बभ्रु मानव शिरोमणि थे तो देवावृध देवोपम। इन दोनों के उपदेश से सहस्रों व्यक्तियों ने मोक्ष-पद की प्राप्ति की। सात्वत के पुत्रों में महाभोज भी महान् धर्मात्मा था। उसी के वंश में भोजवंशी यादव हुए।

महाभोज तें भये भोजवंशी यादवगन। वृष्णि-वंश वार्ष्णेय कहाये यदुकुलनन्दन।।
वृष्णि-तनय नृप भये युधाजित् पौत्र वृष्णि पुनि। सुत श्वफल्क तिनि पुत्र भये अक्रूर सरिस मुनि।।
अन्धक दशमी पीढ़ि महँ उग्रसेन देवक भगत। देवक तनया देवकी, उग्रसेन के कंस सुत।।

राजन्, वृष्णि के दो पुत्र थे- सुमित्र और युधाजित्। युधाजित् के शिनि और अनमित्र- ये दो पुत्र थे। अनमित्र से निम्न का जन्म हुआ। सत्राजित् और प्रसेन नाम से प्रसिद्ध यदुवंशी निम्न के ही पुत्र थे। अनमित्र का एक और पुत्र था, जिसका नाम था- शिनि। शिनि के पुत्र थे सत्यक और सत्यक के थे युयुधान। युयुधान को सात्यकि कहा जाता है। सात्यकि से जय, जय से कुणि, उससे युगन्धर पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्र के तीसरे पुत्र का नाम वृष्णि था। वृष्णि के दो पुत्र हुए- श्वफल्क और चित्ररथ। श्वफल्क की पत्नी का नाम था गान्दिनी। श्वफल्क के तेरह पुत्र थे। अक्रूर, आसङ्ग, सार्मेय, मृदुर, मृदुविद, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोषेक्ष अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन तथा प्रतिवाहु थे। इनकी बहिन का नाम सुचीरा था। इनमें अक्रूर सबसे बड़े थे। अक्रूर के देववान तथा उपदेव दो पुत्र थे। सात्यकि के पुत्र अंधक, अन्धक के कुकुर भजमान खुचि तथा कम्बलवर्हि चार पुत्र थे। कुकुर से वह्नि और वह्नि से विलोमा, विलोमा से कपोतरोमा तथा कपोतरोमा से अनु उत्पन्न हुए। अनु से अन्धक हुए।

अन्धक- १) पौराणिक अनुभूति के अनुसार कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य, जिसके हजार सिर, दो हजार भुजाएं, दो हजार आंखें और दो हजार पैर थे। आँखें रहते हुए भी घमंड में चूर, अंधों की तरह चलने के कारण अंधक कहलाया। स्वर्ग से पारिजात वृक्ष चुराते समय शिवजी के हाथों मारा गया। इसने शिव के मस्तक पर गदा से प्रहार किया जिसमे पांच भैरव उत्पन्न हुए और उन्होंने इसका काम तमाम किया।

२) युधाजित नामक यादव का पुत्र जो यादवों की अंधक का पूर्वज और प्रतिष्ठाता माना जाता है। अंधक से यादवों की अंधकों की शाखा और इसके भाई वृष्णि से वृष्णियों की शाखा चली। इन दोनों गणराज्यों के मिल जाने से बाद में अंधक-वृष्णिक संघ स्थापित हुआ।

अन्धक से दुन्दुभि उससे अरिद्योत, उससे पुनर्वसु, उससे आहुक उत्पन्न हुए। आहुक के पुत्र हुए- देवक और उग्रसेन। इसके आहुकी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। देवक के देववान, उपदेव, सुदेव तथा देववर्द्धन चार पुत्र थे। इन पुत्रों की सात बहनें भी हुई थीं। इनके नाम थे- धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। वसुदेव जी ने इन सातों बहनों के साथ विवाह किया था।

उग्रसेन का पुत्र कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि तथा तुष्टिमान नौ पुत्र थे। कंस के सुनामा आदि आठ भाई तथा कंसा, कंसवती, कंका, सूरभू तथा राष्ट्रपालिका आदि पाँच बहनें थीं। इनका विवाह वसुदेव के छोटे भाई देवभाग आदि के साथ हुआ था। चित्ररथ के पुत्र पृथु विदूरथ आदि अनेक पुत्र थे। जो वृष्णि वंशियों में उत्तम गिने जाते हैं। विदूरथ से शूर, शूर से भजमान, भजमान से शिनि उसके स्वयम्भोज, उसकेआगे इसी वंश में हृदीक के पुत्र देववाहु, सधन्वा तथा कृतवर्मा तीन पुत्र हुए। देवमीढ के पुत्र शूरसेन थे। शूर की पत्नी थी मारिषा। मारिषा से वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृंजय, श्यामक, कंक शमीक, वत्सक तथा वृक ये आदि पुत्र हुए। जिस समय वसुदेव का जन्म हुआ था उस समय देवताओं की दुन्दुभियाँ स्वयं बजने लगीं। इसी से इनका नाम आनकदुन्दुभि भी पड़ गया।

पुत्र चित्ररथ भये विदूरथ शूर तनय तिनि। शूर तनय भजमान भये तिनि के सुत नृप शिनि।।
शूर मारिषा माँहि जने दश सुत तेजस्वी। तिनि महँ सबतैं बड़े भये वसुदेव यशस्वी।।

तिनिकी पत्नी त्रयोदश, भाग्यवती अति देवकी। अजर अमर जग महँ भई, जननी बनि हरि देवकी।।

शुकदेव बोले- राजन्, वसुदेवजी के जन्म के समय देवताओं के आनक और दुन्दुभि बाजे स्वयं बजने लगे थे। इसलिये वसुदेवजी को आनक दुन्दुभि कहते हैं। ये भगवान श्रीहरि के जन्म के स्थान हैं।

वसुदेव आदि की पाँच बहनें भी थीं। उनके नाम हैं- पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। शूर के मित्र थे भोजराज कुन्ति, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी अत: शूर ने पृथा को उन्हें गोद दे दिया इसी से उसका नाम कुन्ती प्रसिद्ध हुआ।

एक समय दुर्वासा महाराज कुन्तिराज के अतिथि बने। राजा ने मुनि की सेवा का भार कुन्ती के कन्धों पर डाल दिया। कुन्ती ने बड़ी तत्परता और सावधानी के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा की। मुनि कुन्ती पर प्रसन्न हो उठे अत: जाते समय उन्होंने कुन्ती को वह विद्या, मन्त्र बतला दिया जिसके पढते ही देवता सामने उपस्थित हो जाते थे। मन्त्र- विद्या का नाम था- देवहूति। एक दिन उस विद्या के प्रभाव की परीक्षा लेने के लिये कुन्ती ने भगवान सूर्य का आह्वान किया। उसी समय सूर्य कुन्ती के सामने आकर खड़े हो गये। उसने हाथ जोड़कर भगवान सूर्य से कहा- प्रभो, मैंने मन्त्र-विद्या की परीक्षा के लिये आप को बुलाया था अत: आप मुझे क्षमा करें। सूर्य ने कहा- देवि, मेरा दर्शन कभी भी निष्फल नहीं जाता है। मेरे द्वारा तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न होगा, किन्तु पुत्र उत्पन्न होने से तुम्हारी योनि दूषित न हो इसका उपाय मैं कर दूँगा। ऐसा कहकर सूर्य अपने लोक चले गये। उसी समय कुन्ती से अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु लोकलज्जा के भय से कुन्ती ने उसे नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। कर्ण से (कान से) उत्पन्न होने के कारण उस बालक का नाम कर्ण पड़ा।

सुता शूर की पाँच बहन वसुदेव भूप की। पृथा सबनि महँ बड़ी खानि जो रही रूप की।।
कुन्ति भोज कूँ दई नृपति पुत्री करि लीन्हीं। दुर्वासा ने देव बुलावनि विद्या दीन्हीं।।
आवाहन रवि को कर्‌यो, मन्त्र परीक्षा करन हित। आये सम्मुख सूर्य जब, भयो कुंवरि चित संकुचित।।

शुकदेव बोले- राजन्, पृथा के पिता राजा शूरसेन ने अपनी पुत्री को अपने सखा महाराज कुन्तिभोज को दे दी। उस पृथा ने अपने से संतुष्ट हुए महर्षि दुर्वासा से देवहूती नाम की विद्या प्राप्त की थी। उस विद्या की परीक्षा के निमित्त उसने परम पवित्र सूर्यदेव को बुलाया।

उसी पृथा (कुन्ती) का विवाह तुम्हारे परदादा पाण्डु से हुआ था। पाण्डु बड़े उच्च कोटि के वीर थे।

धरि मंजुषा माँहि नदीमहँ वत्स बहायो। चम्बल-यमुना-गंग बहत चम्पारन आयो।।
अधिरथ पकर्‌यो तुरत मुदित ह्वै पुत्र बनायो। राधा कूँ दै दयो, कर्ण राधेय कहायो।।
पृथा विवाही पाण्डु कूँ, पाण्डव जाके भये सुत। श्रुतदेवा के भयो खल, दन्तवक्र सुत पापयुत।।

देवमीढ़ की दूसरी गोप पत्नी से पर्जन्य नामक पुत्र हुआ। देवमीढ़ ने अपने दोनों पुत्रों को शूरसेन को मथुरा मण्डल का शासक बनाया और पर्जन्य को गोकुल का अधिपति बनाया। पर्जन्य की पत्नी मदिरा से पाँच पुत्र नन्द, उपनन्द महानन्द इत्यादि हुए।

शूर की दूसरी कन्या श्रुतदेवा का विवाह करूष देश के राजा वृद्धशर्मा से हुआ था। उसके गर्भ से दन्त्रवक्त्र का जन्म हुआ। यह वही दन्त्रवक्त्र है, जो पूर्व जन्म में सनकादि ऋषियों के शाप से हिरण्याक्ष हुआ था। श्रुतकीर्ति का विवाह कैकय नरेश दृष्टकेतु से हुआ। उसके पाँच पुत्र थे। राजाधिदेवी का विवाह जयसेन से हुआ जिससे विन्द और अनुविन्द पैदा हुए। चेदिराज दमघोष से श्रुतश्रवा का विवाह हुआ था। शिशुपाल का जन्म इसीसे हुआ था।

केकय कूँ श्रुतकीर्ति विवाही बूआ हरि की। चौथी बूआ भई सुरानी अवन्तीश की।।
श्रुतश्रवा ने चेदिराज शिशुपालहु जायो। मारि चक्र तैं कृष्णचन्द्र वैकुन्ठ पठायो।।

देवभाग का विवाह कंस की बहन कंसा से हुआ था। कंसाके दो पुत्र थे- चित्रकेतु और बृहद्बल।

वसुदेवजी की पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी- ये सात पत्नियाँ थीं। रोहिणी से बल, गद, सारण, विपुल, ध्रुव और कृत आदि कई पुत्रों का जन्म हुआ। पौरवी से सुभद्र, भद्रवाह, दुर्मद, भद्र और भूत आदि बारह पुत्र हुए। मदिरा के नन्द, उपनन्द, कृतम और शूर आदि पुत्र हुए। कौशल देश की जो भद्रा थी जिसका कौशल्या भी नाम था, उससे केशी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। रोचना ने हस्त हेमाङ्गदादि कई पुत्र उत्पन्न किये। इला ने उरू, वल्कल आदि कई पुत्र उत्पन्न किये। उग्रसेन के भाई देवक की सात पुत्रियाँ वसुदेवजी को ब्याही थी सबसे बड़ी धृतदेवा।

उससे विदूष्ठ नामक शूरवीर बली पुत्र को पैदा किया। शान्तिदेवा के श्रम और प्रतिश्रुत नामक कई पुत्र हुए। उपदेवा के कल्प, वर्ष आदि दस क्षत्रिय राजा उत्पन्न हुए। श्रीदेवा के वसु, हंस, तथा सुतश आदि छ: पुत्र हुए। देवरक्षिता ने नौ पुत्रों का जन्म दिया, जिनमें गद मुख्य थे। सहदेवा ने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया, मानों आठों वसु पुत्र रूप से उत्पन्न हुए हों। उनमें पुरु और विश्रत ये मुख्य थे। देवकी से आठ पुत्र और एक पुत्री पैदा हुई। सुभद्रा सबसे छोटी पुत्री थी।

सुनहु रोहिणी, इला, पौरवी अरु धृतदेवा। भद्रा, मदिरा, देवरक्षिता अरु सहदेवा॥
शान्तिदेवा सुन्दरी, श्रीदेवि हू नाम की। उपदेवा इन सबनि महँ, सबतैं छोटी देवकी॥

कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र और शेषावतार भगवान संकर्षण तथा वासुदेवजी ये आठ पुत्र थे।

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला। देवकी प्रमखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभे:॥
बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम्। वसु देवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत्॥

वसुदेव की सबसे छोटी पत्नी देवकी से कीर्तिमान्, संकर्षण आदि सात पुत्र हुए। आठवें पुत्र साक्षात् श्रीकृष्ण थे। इनकी बहन सुभद्रा थी जो तुम्हारी दादी थीं।

आठ सात दश एक भये सबके ही सुतवर। आठ देवकी जने भये अष्टम श्रीगिरिधर॥
जब जब होवे धर्म नाश बाढ़ै अघ अतिशय। तब तब लै अवतार करहिँ हरि धर्म अभ्युदय॥
कौन कहि सके कौतुकी, के कारन अवतार को। कौतुक-वश क्रीड़ा करत, काज सरत संसार को॥

परीक्षित्, जब-जब संसार में धर्म का ह्रास और पाप की वृद्धि होती है, तब-तब भगवान श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं।

भगवान सबके द्रष्टा और वास्तवमें असङ्ग आत्मा ही हैं। इसलिए उनकी आत्मस्वरूपिणी योगमायाके अतिरिक्त उनके जन्म अथवा कर्मका और कोई भी कारण नहीं। उनकी मायाका विलास ही जीवके जन्म, जीवन और मृत्युका कारण है। उनका अनुग्रह ही माया रहित करके आत्मस्वरूपको प्राप्त करानेवाला है। जब असुरोंने राजाओंका वेष धारण कर लिया और कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके वे सारी पृथ्वीको रौंदने लगे, तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान मधुसूदन बलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए। पृथ्वीका भार तो उतरा ही साथ ही कलियुगमें पैदा होनेवाले भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवानने ऐसे परम पवित्र यशका विस्तार किया, जिसका गान और श्रवण करनेसे ही उनके दु:ख, शोक और अज्ञान सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं। उनका पवित्र यश, श्रेष्ठ तीर्थ है। कानोंके लिये तो वह साक्षात् अमृत ही है। भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरू, सृञ्जय और पाण्डुवशी वीर निरन्तर भगवानकी लीलाओंका गान करते हैं। सभी नर नारी उनकी माधुरीका निरन्तर पान करते-करते तृप्त नहीं होते।

भगवान श्रीकृष्ण नें व्रज, गोकुल आदि विविध स्थानों में जो-जो अलौकिक लीलाएँ की हैं, उनके श्रवण से मानव की कर्म-वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं, सारे पाप-ताप विनष्ट हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार तो लिया था मथुरा में वसुदेव के घर किन्तु वे वहाँ रहे नहीं। वहाँ से गोकुल नन्द बाबा के घर चले गये। वहाँ अपना प्रयोजन पूरा कर पुन: मथुरा वापस लौट आये। उन्होंने वज्र में, मथुरा में और द्वारिका में रहकर अनेकों शत्रुओं का संहार किया। बहुत-सी स्त्रियों से विवाह करके सहस्रों पुत्र

उत्पन्न किये। साथ ही अपनी वाणीभूत श्रुतियों की मर्यादा स्थापित करने के लिये अनेक यज्ञों द्वारा अपना ही यजन किया।

कौरव और पाण्डवों के मध्य उत्पन्न हुए आपस के कलह से उन्होंने पृथिवी का बहुत-सा भार हल्का कर दिया।

कृष्णके लिये आत्ममायाके अतिरिक्त जन्मका और कोई कारण नहीं। जैसे दूसरोंका जन्म उनके कर्म बन्धनसे समबन्ध होता है वैसे भगवानका जन्म उनके कर्मके सम्बन्धसे नहीं होता। उनकी लीला स्थिति, सृष्टि, प्रलयके लिए होती है। यह मायाचेष्टित है कि वे सृष्टि बना देते हैं और यह अनुग्रह-चेष्टित है कि संसारकी परम्पराकी निवृत्ति होती है, आत्मबोध होता है, आत्मसाक्षात्कार होता है। भगवानकी लीला दो प्रकारकी है- एक माया-लीला और दूसरी अनुग्रह लीला। मायालीला सृष्टिको बनाती है। स्थिति और प्रलय करती है इस परम्पराको चलाती है। अनुग्रहलीला वह है जिससे संसारकी निवृत्ति हो जाये और आत्मसाक्षात्कार हो जाये। नर-नारी कृष्णके सौन्दर्यको अपने नेत्रोंसे पीते रहते हैं; लेकिन कभी तृप्त नहीं होते।

युद्ध में अपनी दृष्टि से ही राजाओं की बहुत-सी अक्षौहिणियों का ध्वंस करके, संसार में महाभारत की जीत का श्रेय अर्जुन को देकर तथा उद्धव को आत्मतत्त्व का पाठ पढ़ाकर वे अपने परम धाम को चले गये।

देवश्रवा की भार्या कंसावती के गर्भ से सुवीर और इषुमान दो पुत्र हुए। अनाक की पत्नी कंका के शत्रुजित और पुरुजित दो पुत्र हुए। सृञ्जय की राष्ट्रपालिका पत्नी से वृष तथा दुर्मषण आदि अनेक पुत्र हुए। श्यामक के शूर भू नाम की पत्नी से हरिकेष तथा हिरण्याक्ष दो पुत्र हुए। श्रत्सक के मिश्रकेशी अप्सरा के गर्भ से वृक आदि कई पुत्र हुए। वृक के तक्ष, पुष्कर तथा शाल आदि कई पुत्र हुए। शमीक के सुदामिनी के गर्भ से सुमित्र तथा अर्जुनपाल आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए। कंक के ऋतुधाम और जय नाम के दो पुत्र हुये। वसुदेव की पत्नी रोहिणी के गर्भ से बलराम, गदा, सारण, दुर्मद तथा पौरवी के गर्भ से भद्र आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुए। इला के गर्भ से उर्वल्क नाम के यदुवंशी हुए। रोचना के हेमाङ्ग आदि पुत्र हुए। धृतदेवा के गर्भ से विपृष्ठ नाम का एक ही पुत्र हुआ। शांतीदेवा के गर्भ से श्रम तथा पतिश्रुत कई पुत्र हुए। उपदेवा के कल्प वर्ष आदि हुये। श्रीदेवा के वसु आदि छ: पुत्र हुये। सहदेवा के गर्भ से पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र हुये तथा देवकी के गर्भ से आठ पुत्र हुये। उनमें कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र ये छ: पुत्र सातवें शेषावतार बलराम आर आठवें पुत्र श्रीकृष्ण भगवान थे। नौंवे उनके सुभद्रा नाम की कन्या हुई। हे राजा परीक्षित्, संसार में जब जब धर्म की हानि तथा पाप की वृद्धि होती है तभी-तभी भगवान अवतार धारण करते हैं यह मैंने तुम्हें पवित्र यदुवंश का वर्णन सुनाया जिसमें भगवान विष्णु में अपनी सोलह कलाओं से संकर्षण भगवान बलराम सहित अवतार धारण किया और पृथ्वी का भार उतारा।

जिस अनुपम रूप के साक्षात् दर्शन से या ध्यान में दर्शन करने से जीव समस्त अशुभों से तत्काल छूट जाता है, उनके यश, रूप, पवित्र तीर्थ में अवगाहन करनेवाले साधुजन, उसे अपने कर्णपुटों से पुन: पुन: पान करनेवाले प्रणत पुरुष, मोक्ष की प्रतिबन्ध-स्वरूपा कर्मवासना को तत्काल त्यागकर संसार बन्धनों से सदा के लिये छूट जाते हैं। पुन:-पुन: पार न भी कर सके, तो भी एक बार ही श्रीहरि के यशामृत का श्रोत्ररूप अंजलि से आचमन मात्र ही करने से कल्याण हो जाता है।

इस श्रीकृष्णावतार में भगवान ने बड़ी-बड़ी श्रुत-मधुर त्रैलोक्य पावन, हृदय तथा इन्द्रिय को सुख देनेवाली क्रीड़ायें की, जो मुक्तों को, मुमुक्षुओं को, नित्यों को तथा वृद्ध जीवों के लिये भी आनन्द देनेवाली हैं। ज्ञानियों को, वीरों को यहाँ तक कि संसारी विषयों को भी वे लीलायें अच्छी लगती हैं। उस समय असुर अवनि पर राजाओं के रूप में अवतीर्ण हो गये थे। अनेकों अक्षौहिणी सेना के वे सब स्वामी बन गये थे, वे बड़े दुस्साहसी, अभिमानी, क्रूर तथा तपस्या में निरत थे और कोई उन्हें मार नहीं सकता था, क्योंकि उनमें तप का बल भी था।

इक टक निरखहिं नारि-नर, मन अँटके चित चकित ह्वै। परे पलक व्यवधान तो, निमिकूँ कोसें दुखित ह्वै॥

इति नवम स्कन्ध

विषयसूची

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

१) कुल परिचय २६८
- १) शाण्डिल्य मुनि का परिचय २७१
- २) भगवती पूर्णमासी और मधु मंगल २७५
- ३) माता रोहिणी और दाऊका जन्म २७७
- ४) नन्द बाबा और यशोदा मैया का परिचय २७९
- ५) राधा का जन्म २८१
- ६) वृषभानु और कीर्तिदा के पूर्व जन्म की कथा २८४
- ७) उद्धव का परिचय २८५

२) पृथ्वीका भगवान से भार हरण की प्रार्थना करना २८६

३) देवकी के गर्भ की देवता और ब्रह्माद्वारा गर्भ स्तुति ३२२

४) श्रीकृष्ण जन्म ३३०

५) कंस का अत्याचार ३४७

६) कृष्ण की गोकुल में लीलायें ३६६
- १) गोकुल में नन्द महोत्सव ३६६
- २) भगवान शंकर का कृष्ण दर्शन ३८५
- ३) मथुरा में नन्द और वसुदेव का मिलन ४०८
- ४) पूतना वध ४१४
- ५) अन्य राक्षसों के उत्पात ४२७
  - १) कागासुर वध ४२८
  - २) श्रीधर ब्राह्मण ४२९
  - ३) दैत्य महाबल भट की कथा ४३२
- ६) शकटासुर का वध ४३३
- ७) तृणावर्त वध ४४१
- ८) नामकरण संस्कार ४५१
- ९) बाल क्रीड़ा ४६८

१०) माखन चोरी की लीलायें ५०२
११ कर्णवेध ५५१
१२) कन्हैया का मिट्टी खाने का प्रसंग ५५२
१३) मैया का कृष्ण को ऊखल से बान्धना ५६२
यमलार्जुन के उद्धार की कथा ५९२
१४) कृष्ण की गोकुल में अन्य बाल-लीलायें ६०१
१) सुखिया मालिन का प्रसंग ६०१
२) दुर्वासा ऋषि पर कृपा ६०४
३) अन्य बाललीलायें ६०६
७) कृष्ण का वृन्दावन गमन ६१६
कृष्ण की वृंदावन में लीलायें ६३३
१) कन्हैया का बाँसुरीवादन ६३३
२) वत्सासुर का वध ६४१
३) बकासुर का वध ६४४
४) कृष्ण का गोवत्स चारण और
ग्वालबालों के साथ बाल क्रीड़ायें ६५१
५) अघासुर का मोक्ष ६५९
६) ब्रह्मा द्वारा बछड़ों और ग्वालोंका
अपहरण और ब्रह्माका मोह भंग ६६६
७) कृष्णका गो-चारण ६८७
८) धेनुकासुर का वध ६९१
९) कालिया नाग का दमन ६९५
१०) व्रजवासियों को दावानल से बचाना
और कृष्ण का दावाग्नि पान ७१०
११) प्रलम्बासुर का वध ७१७
१२) राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन ७१९
१३) राधा-कृष्ण की प्रणयलीला ७२८

१४) कृष्ण की गोपियों से छेड़छाड़ और
पनघट व राधा-कृष्ण की प्रणय लीला ७४३
१५) कृष्ण का ब्रज में होली खेलना ७६४
१६) वर्षा और शरद ऋतु, वेणुगीत ७६९
१७) चीरहरण लीला ७९५
१८) यज्ञपत्नियों पर कृष्ण की कृपा ८१६
१९) ब्रह्मा द्वारा राधा-कृष्ण का विवाह ८२४
२०) गोवर्धन लीला ८२९
२१) इन्द्रका गर्वहरण और श्रीकृष्ण का नाम गोविन्द ८५३
२२) वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाना और
गोपोंको वैकुण्ठ धाम का दर्शन कराना ८६२
२३) रासलीला ८६६
१) गोपियों का विरह ८८६
२) गोपी गीत ९०३
३) कृष्ण का गोपियोंके बीच में
प्रकट होकर महारास करना ९१३
२४) विद्याधर सुदर्शन का उद्धार ९३९
२५) शफ्चूड़ का उद्धार ९४०
२६) युगल गीत ९४१
२७) अरिष्टासुर का वध ९४८
२८) कंस की अक्रूर को व्रज भेजने की योजना ९५०
२९) केशी वध ९५२
३०) व्योमासुर का वध ९५४
३१) अक्रूर जी का व्रज में आना ९५५
३२) श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरा के लिये प्रस्थान
और व्रजवासियों का विलाप ९५७

दशम स्कन्ध

राधा और कृष्ण अभिन्न तत्त्व है। श्री राधा अपने स्वरूप को छिपाये रखती है। जो श्रीकृष्ण माखन खाकर ग्वालों तथा बानरों में उसे लुटाकर उन पर बलि बलि जाकर बानर बन्धु नाम पाते हैं फिर मटकी फोड़कर मंथनी फोड़नेवाले कहे जाते हैं तथा कमर में रस्सी बँधवा कर दामोदर नाम पाते हैं। जो बड़े चंचल स्वभाव वाले हैं और जिनकी चितवन बड़ी चंचल है और जो छड़ी की मार से डरते हुए शोभा पाते हैं। यशोदा की भय से डरी हुई ऐसी छबि से युक्त श्रीकृष्ण के दर्शन करने का हर वक्त मन ललचाता है। हे गोपियों के चित्त को चुराने वाले श्रीकृष्ण उस माखनचोर की झाँकी का हर कोई दर्शन करना चाहता है। जब से अविनाशी, अजन्मा देह रहित और विकार रहित श्रीकृष्ण को देवकी ने धारण किया व शुद्ध सतोगुण से युक्त होकर शोभा पाने लगी। उससे वसुदेव को बड़ा सुख मिला और वो धन्य-धन्य मानकर हरि की कृपा का गान करने लगे।

१) कुल परिचय- ब्रजमंडल- कृष्णपौत्र ब्रजनाभ ने कृष्ण की लीला स्थलों पर दो हजार पाँच सौ मंदिर बनवाये। बारह वन और बारह उपवन, बारह अधिवन और बारह प्रतिवन जहाँ श्रीकृष्ण ने लीलायें की है उनका दर्शन कर परम सुख पाया। तालवन, महावन, कुमुदवन, कोकिलावन, भाण्डीरवन, काम्यवन, खदिरवन, क्षत्रवन, भद्रवन, बहुलावन, लोहवन और विद्रुमवन ये बारह वनों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मवन, अप्सरा वन, विह्वल वन, कदम्ब वन, मयूर वन, स्वर्ण वन, प्रेम वन, सुरभि वन, मनोगितं वन, खेलन वन, शेषशाई वन और नारद वन, ये बारह आनन्दप्रद उपवन भी हैं। मथुरावन, राधाकुण्ड वन, ललिता वन, गढ़वन, गोकुल वन, गोवरधन वन, मधु वन, श्री नन्दग्राम वन, वृन्दावन, संकेत वन और जाव वन ये बारह अधिवन हैं। रंक वन, वारता वन, वत्स वन, करह वन, प्रेक्षन वन, कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कामना वन, कृष्ण द्विपन वन, कर्ण वन, नन्दवन, तप वन, अञ्जन वन और सुन्दर वन ये बारह प्रतिवन है। यह क्षेत्र चौरासी कोस के नाम से प्रसिद्ध है।

मथुरा, अयोध्या, द्वारावती, विष्णुकांची, काशी, मायापुरी-हरिद्वार, अवंती और शिवकांची यह सभी मोक्षदायिनी पुरी है। मथुरा, अयोध्या, द्वारावती और विष्णुकांची यह साड़े तीन पुरी गिनी जाती है जो वैष्णवपुरी है। वहाँ हरि (नारायण) का नित्य सान्निध्य रहता है तथा काशी, मायापुरी, हरिद्वार, अवन्तिका, शिवकांची यह साड़ेतीन पुरी जहाँ भगवान शिव का नित्य सान्निध्य है। अत: इन पुरियोंमें से मृत्युसे अधीश्वरका अनुग्रह प्राप्त होता है।

मधुरा जो कि आज का नाम मथुरा है। मथुरा मण्डल उस समय वृष्णि-वंशके शासन में था। **मधुरा (मथुरा)-** भगवान श्रीकृष्ण की लीलानगरी। भगवान राम के अनुज शत्रुघ्न ने दैत्यराज मधु के पुत्र लवण नामक महाबली राक्षस को मारकर मधुवन में जिस नगरी का निर्माण किया, वही मधुरा (मथुरा) नाम की प्रसिद्ध पुरी है। यह वंश सुरोंके प्रति, शास्त्रोंके प्रति श्रद्धालु रहा। चक्रवर्ती नरेश श्रीराम ने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न को मथुरा पुरी में धर्म की स्थापना करने के लिए और लवणासुर का संहार करने के लिये भेजा। लवणासुर वध के बाद मथुरापुरी में धर्म राज्य की स्थापना हुई। मथुरा एक बड़ी विचित्र नगरी है, बड़ी धर्म-पुण्य नगरी है। मधुरा वन है, जहां बालक ध्रुवने तपस्या करी है। मथुरा शूरसेन साम्राज्य कहा जाता है। कृष्णकी पूरी जिन्दगी का आधा भाग वहां निकला है। वहां १७ बार जरासंध के साथ युद्ध हुआ और जरासंध वहांपर हारा है। उग्रसेन का राज्य वहां रहा है। कृष्ण का जन्मस्थान रहा।

सम्पूर्ण सृष्टि में पृथ्वी लोक सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पृथ्वी लोक में भी भारत वर्ष शुभ कर्म और शुभ धर्म परिपालन करने

का उत्तम धाम है। भारत वर्ष के उत्तरी क्षेत्र में हिमालय का पावन आँचल दूर दूर तक फैला हुआ है। उत्तर भारत में ही अवध पुरी में और मथुरा पुरी में सर्वेश्वर भगवान के पूर्णतम अवतार होते हैं। जिसके कारण दोनों पुरियों के निवासी आनन्द में झूमने लगते हैं।

परम ब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण की अवतार भूमि राजा कंस का कारागार आज भी दर्शनीय है, जिसके निकट पोतरा कुण्ड के दर्शन होते हैं। भगवान श्री कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा पुरी भक्त जनों को दिव्य धाम तक पहुँचाने के लिए सुन्दर सीढ़ी है। मथुरा जी में ही तप्त कूप और गाय का घी, दधि, दूध, मधु, तक्र, नीर और रस के सागर बने हुए हैं। जिनका सेवन करने से घोर पापी भी पापों से मुक्त हो जाता है। कोई महापुरुष जहाँ एक क्षणके लिए भी चरण रख देता है, दीर्घकाल तक वहाँकी भूमिमें अन्य प्राणियोंको पवित्र करनेकी शक्ति, क्षमता आ जाती है। महापुरुषके जन्मस्थान, उपासनास्थान, देहत्याग स्थान और विशेष क्रीड़ाओंके भी स्थान तीर्थस्थान कहलाते हैं। दीर्घकाल तक वहाँकी भूमिमें, जलमें, तरुलता, शिलादिमें पापहारी-मंगलकारी शक्ति विद्यमान रहती हैं। जहाँ परमात्मा अवतार लेते हैं, क्रीड़ा करते हैं, जहाँ उनके श्रीचरण पड़ते हैं, वे सभी क्षेत्र सर्वमंगलकारी तीर्थ हैं।

बृज चौरासी कोस के मध्य में बनी हुई मथुरा पुरी जी अति ही पावन है, जिसकी सीमा पर केशी दैत्य को समाप्त करनेवाले और बृज वासियों की रक्षा करनेवाले केशव जी का स्वरूप है। कृष्ण कूप में श्रद्धापूर्वक स्नान करने से, आचमन करने और प्रणाम करने से अनेक जन्मों के सम्पूर्ण पाप समाप्त हो जाते हैं। चौरासी कोसकी सम्पूर्ण ब्रजधरा भूदेवीका हृदय है। उसमें गोवर्धन, नन्दग्राम, बरसाना, मथुरा, वृन्दावनका मण्डल वहाँपर परात्पर प्रभु प्रकट होकर सदा क्रीड़ा करते रहते हैं। अयोध्या और मथुरा एक ही नित्य चिन्मय धामके रूप हैं। जिसे रौंदा न जा सके वही मथुरा है।

मथुरा पुरी की चारों दिशाओं के रक्षक श्री भोले शिवशंकर हैं जो पूर्व दिशा में श्री पिपलेश्वर के रूप में, पश्चिम दशा में श्री भूतेश्वर के रूप में, उत्तर दिशा में श्री गोकर्ण के रूप में और दक्षिण दिशा में श्री रंगेश्वर के रूप में विराजमान हैं।

प्रात:काल विश्राम घाट का दर्शन करने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है। मध्यान्ह काल में दीर्घ विष्णु का दर्शन श्रेष्ठ पुण्य प्रदाता है और सायंकाल केशव देव जी का दर्शन भरपूर पुण्यों को प्राप्त करानेवाला है। श्री गतश्रम नारायण के श्रद्धापूर्वक दर्शन करने से, स्नान करने से और प्रणाम करने से प्राप्त हो जाता है।

पावन मथुरा पुरी में सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले आठ प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करनेवाले श्री गणपति जी का मन्दिर है, जो दस भुजा धारी, संकटों का हरण करनेवाले और मंगल प्रदान करनेवालों के आधार हैं।

श्री पद्मनाभ जी का मन्दिर, श्री कमलावर विष्णु जी का मन्दिर, श्री चतुर्भुजी जगदीश जी का मन्दिर और श्री श्याम वाराह जी का मन्दिर दर्शनीय है।

कुब्जा कृष्ण मन्दिर, श्री अष्ट भुजा धारी देवी, श्री चामुण्डा जी, श्री बलराम जी, देवी, राजा कंस द्वारा पूजित नित्य महाविद्या, हर देवा, आदरणीय सरस्वती देवी, चर्चिका देवी आदि सब को मैं माता के भाव से प्रणाम करता हूँ।

श्री भद्रेश्वर महादेव, श्री पशुपति जी, नीलकंठेश्वर शंकर, पंचमुखी गर्तेश्वर, श्री रत्नेश्वर के रूप में श्री शंकर भगवान मथुरा पुरी में विशेष पूजित हैं। श्री श्रीनाथ जी, मथुरा देवी जी, मथुरेश श्री दाऊ जी, श्री अन्नपूर्णा जी, श्री कंस निकन्दन जी इत्यादिक जितने भी तीर्थ श्रेष्ठ मथुरा पुरी में मंगलमय देवता हैं, उन सबके चरण कमलों में मैं बार बार प्रणाम करता हूँ ताकि वे मेरे हृदय में हरि के चरित्रों की स्फुरणा प्रदान करें।

श्री मनु जी के पौत्र और श्री उत्तानपाद जी के पुत्र श्री ध्रुव जी ने मधुपुरी में ध्रुव टीले पर कठिन तप किया। छ: महीने

की साधना मात्र से श्री हरि ने प्रसन्न होकर अपने पावन दर्शन पाँच वर्ष के छोटे बालक ध्रुव को दिये। अम्बरीश टीले पर राजा अम्बरीश ने अतिशय तप किया और नारद टीले पर देवर्षि नारद जी ने भगवत दर्शन हेतु भारी तपस्या की।

श्री जमदग्नि जी, श्री विश्वामित्र जी, श्री गौतम जी, श्री कश्यप जी, श्री अत्रि जी, श्री वशिष्ठ जी और श्री भारद्वाज जी, इन सप्त ऋषियों ने भक्ति और मुक्ति का वरदान प्रदान करानेवाली मधुपुरी में एक टीले पर बैठकर तप किया। बाद में जिस का नाम सप्तऋषि टीला पड़ गया जो आज भी सप्तऋषि टीले के रूप में प्रसिद्ध हैं।

श्री मधुरापुरी में यमुना जी के तट पर अनेक पवित्र घाट हैं। जैसे नारायण घाट, वाराह घाट, वामन घाट, लंगूर घाट, असकुण्डा घाट और इन घाटों पर स्नान करने से यमुना महारानी तन और मन की इच्छित सुखद स्थितियाँ प्रदान करती हैं।

सारी पृथ्वी की परिक्रमा करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य मथुरा में यमुना के असकुण्डा घाट पर स्नान करने मात्र से भक्त को प्राप्त हो जाता है।

मधुपुरी में मणि कर्णिका घाट पर स्नान करने से महान पुण्य की प्राप्ति होती है। वेद और शास्त्र का ज्ञान एवं वैभवशाली भोगों का सुख प्राप्त हो जाता है। व्यास भगवान ने श्याम गंगा यमुना तट पर आकर भारी तप किया। मधुपुरी के दशाश्वमेध घाट पर राजाओं ने भारी यज्ञ किये।

विघ्नराज गणपति जी मथुरापुरी में क्रीटी तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं। मधुपुरी में गंगा तीर्थ और यमुना तीर्थ आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। परिकर के सहित मन मोहन की सेवा आनन्द प्रदान करनेवाली है।

अविमुक्त तीर्थ, गुह्य चक्र, दुर्वासा तीर्थ, मुक्ति तीर्थ मथुरा शंकर भगवान की तप स्थली है, जिसमें कल्याणकारी दर्शनीय ताल है। अभिमत पदार्थों की वर्षा करने वाली मथुरा पुरी ने साम्ब वट के नीचे भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के कुष्ठ रोग का हरण किया था।

वृष्णिवंशी देवमीढ़ने दो विवाह कर लिये। उनकी एक पत्नी क्षत्रिय-कन्या थी। उससे पुत्र हुए शूरसेन। इन्हीं शूरसेनजीके पुत्र वसुदेवजी, उन्हींसे भगवान वासुदेवका आविर्भाव हुआ। देवमीढ़की दूसरी पत्नी गोपकन्या थीं। गोप जातिमें अनेक स्वाभाविक सद्गुण हैं, यह अत्यन्त श्रद्धालु, शूर, सहानुभूतिपूर्ण तथा उदार जाति है। स्नेह तथा सुदृढ़ संगठन इनके रक्तमें है। गोसेवा ही इनकी परम सेवा है और इनका अन्तर-बाह्य परम पवित्र है। गो सेवा के सामने इन्हें सुदृढ़, शरीर, सबल स्वास्थ्य, सहजजीवनका इन्हें प्रसाद प्रदान किया है। वेद, ब्राह्मण, सुर, साधु और गायोंके प्रति इतनी श्रद्धा, सम्मान, सेवा-तत्परता कई अन्य नहीं है। गोकुलका सौन्दर्य स्वर्गसे भी सुदुर्लभ है। गोप जाति व निश्छल, सहज सम्बन्धपूर्ण व्यवहार अन्यत्र देखनेको नहीं मिलेगा। उनके पुत्र हुए पर्जन्य। पर्जन्य युवक हुए और उनका विवाह गोपकन्या वरीयसीसे हो गया। देवमीढने अपने इस पुत्रको गोधन देकर गोकुलमें रहनेका आदेश दिया और शूरसेन को मथुरा मण्डल के राज्यपर अभिषिक्त किया। मथुरा राज्य के पास कोई गोधन नहीं रहा। यह गो-सम्पत्ति और उसके पालक गोपोंके अधिपति होकर देवमीढने यमुनाके पार महावन में मधुराके सामने ही अपना निवास गोकुलमें बनाया। पर्जन्य गोपराजकी पत्नी वरीयसीने पाँच पुत्र तथा दो कन्याओंको जन्म दिया। उनके पुत्र हुए उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सन्नन्द और नन्दन। इनमेंसे अभिनन्द महानन्द के नाम से भी जाने जाते हैं। कन्याओंका नाम- नन्दिनी और सुनन्दा रखा। यह नामकरण शाण्डिल्य मुनि ने किया। प्रत्येक गोप श्रद्धाकी मूर्ति थी। गोपजातिमें सगाई तो कई बार बच्चे के जन्म से ही हो जाती है। विवाहके लिए भी बड़े होनेकी इच्छा नहीं करनी पड़ती। व्रजराज पर्जन्यके पुत्रोंका विवाह भी शीघ्र ही हो गया। दोनों कन्याएँ भी उत्तम गोपनायकोंको विवाह दी। पर्जन्य वृद्ध हो गये। उन्होंने शाण्डिल्य मुनि से अनुमति मांग ली कि पुत्र योग्य हो जाए तो

पिताका कर्त्तव्य है कि उसे सांसारिक दायित्व देकर स्वयं भगवद् भजनमें लग जाये। पुत्रोंको भी अपने आदेश के पराधीन रखकर अधिकारकी भोगलिप्सा व्यक्तिको वार्धक्यमें सन्तानके उचित बौद्धिक विकासमें बाधक होती है और अनेक बार संतानका पिताके प्रति आदर अवरुद्ध कर देते हैं।

व्रजपति पर्जन्यने शाण्डिल मुनि से अनुमति पाकर सब गोपोंको एकत्रित करके अपने व्रजराज्यका उत्तराधिकारी नियुक्त किया। जो गोपोंमे सर्वप्रिय हो, जिसे सब पसन्द करें, वही व्रजराज बनेगा। पर्जन्यके के ज्येष्ठ पुत्र उपनन्द सब प्रकार योग्य थे किन्तु प्रबन्धका दायित्व वहन करनेके प्रति उनकी अरुचि थी। वे केवल उत्तम सम्मति ही दे सकते थे। सक्रिय कर्म करनेमें उनका उत्साह नहीं था। द्वितीय पुत्र महानन्द जिसे अभिनन्द भी कहते हैं वे अत्यन्त उदासीन स्वभाव के थे। उन्हें गृह गोष्ठकी स्थिति मालूम नहीं थी। वे तो संतोषी, भगवद्भक्त, साधुसेवी थे। ऐसे नि:स्पृहको व्रजराज व्रजपति तो नहीं बनाया जा सकता। यह दायित्व मध्यम कुमार नन्द को ही सौंपा गया। उसके अन्य दो छोटे भाई उनका बहुत अधिक सम्मान करते थे। इसलिये नन्द ही पिताका दायित्व वहन कर रहे थे। उनको ही समस्त गोपोंकी, उनके गोष्ठोंकी चिन्ता रहती थी। वे ही सबकी सम्हाल-सम्भाल करते थे। उन्हें सब गोपोंका स्नेह-सम्मान प्राप्त था। पर्जन्यने उस दिन सब गोप-प्रमुखोंसे अनुमति ली और अपनी पगड़ी अपने मध्यम पुत्र नन्दके मस्तकपर बाँध दी। नन्द उस दिन व्रजपति हो गये। गोप-प्रमुख सुमुखकी कन्या यशोदा से विवाह हुआ और वह व्रजरानी बन गयीं। गोकुल के पास ही बृहत्सानु (बरसाना) गाव है। जिसके अधीश्वर महीभानु है। वे पर्जन्य के सहपाठी व घनिष्ठ मित्र है। वो भी अपने कुमार वृषभानु के साथ इस उत्सव में पधारे थे। महीभानु पर्जन्यने बोले- नव प्रजापति नन्दका प्रथम अभिनन्दन करनेका अधिकार मेरा है और मैं ही पहला उपहार अर्पण करूँगा। पर्जन्यने विनीत स्वरमें कहा यह तो आपका ही पुत्र है। घनिष्ठ मित्रता से पर्जन्यने महीभानु को ही उपहारार्पणका पहिला अवसर दिया। पर्जन्यने कहा- आप हमारे सम्माननीय है, सुहृदय है। आपका कोई विरोध कैसे कर सकता। आप तो जो आज्ञा करेंगे वे हम स्वीकार करेंगे। नन्दराय की शुभ्र पगड़ी हंस पंखसे उज्वल मुकुटसे महीभानुजीने अलंकृत किया। नन्दराय ने पिताको प्रणाम करके महाभानु की चरणवन्दना की और विषभानु को आलिंगन कर लिया। अब गोकुलका व्रजपति नन्दराय सम्पूर्ण व्रज का व्रजेश्वर बन गया। सब गोपनायकोंने नन्दराय को उपहार भेंट किये। इतना पुनीत प्रेम नन्दराय को प्राप्त हुआ। सब गोपियां यशोदा के चरणोंमें प्रणत हुई। नन्दरायने भी गुप्तरूपसे वृषभानु के गृह बरसाना में नूतन व्रजेश्वरीके उपहार भेज दिये। उनके घर पहुँचनेसे पूर्व ही पहुँचा दिये। पर्जन्यने विरक्त होकर वनको प्रस्थान किया। साथमें बरसानपूर के सखा महीभानुने भी। महीभानुने भी अपने कुमार वृषभानु को उत्तराधिकार दे दिया। व्रजपती नन्दराय पितासे कहीं अधिक विनम्र और अतिशय उदार, सेवा परायण है। नन्दराय व्रजेश्वर कहलाने लगे और यशोदा व्रजेश्वरी।

१) शाण्डिल्य मुनि का परिचय- शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्माके मानस-पुत्रोंमें अंगिरा हुए। उन्हींके अंश में प्रधान अग्नि है। उनके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण प्रचण्ड तेज पाता है। उन्हींके वंशमे से शाण्डिल्य मुनि है जो तप्ततामृ वर्ण, प्रलम्बकाय, विशाल बाहु, अरुणाभ दीर्घ, उन्नत नासिका, सुगठितकाय जो अपवित्रता से परे।

शाण्डिल्य मुनि परम भागवत हैं। भगवानके अनन्य प्रेमी हैं। भगवानके सौन्दर्य, माधुर्य एवं औदार्य आदि दिव्य स्वरूपोंका ध्यान करते रहते हैं। भगवानकी मंगलमयी कथाओंका प्रेमपूर्वक श्रवण तथा प्रेमाभक्तिका दान ये ही दो उनके मुख्य कार्य हैं। त्याग, वैराग्य, तपस्या तथा स्वाध्यायका आश्रयण और भगवत्प्रेममें निमग्न रहना- यही उनकी मुख्य चर्चा है। कश्यपवंशी महामुनि देवलके पुत्र शाण्डिल्य नामसे प्रसिद्ध हुए। शफ और लिखित इनके पुत्र है। नरेश रघुवंशीय दिलीपके पुरोहित थे। इन्होंने प्रभासक्षेत्रमें शिवलिंग स्थापित कर दिव्य सौ वर्षोंतक घोर तपस्या और प्रेमपूर्ण आराधना की

थी, शिवने प्रसन्न होकर इन्हें तत्त्वज्ञान और अष्टसिद्धियोंका वरदान दिया। शाण्डिल्य ने मथुराधिपति राजा बाहुको सम्पूर्ण गर्गसंहिता सुनायी। इसीके फलस्वरूप राजाको भगवान राधामाधवके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। इन्होंने ही विप्रोंको उपदेश दिया, मनुष्य जीवन में सबसे बढ़कर कल्याणकारक भगवद्भजन है। जिसे किसी देश या काल की अपेक्षा नहीं हैं और न इसके लिये कोई साधन जुटाना पड़ता है। भगवान कृष्णकी भक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंसे बढ़कर है। जिससे अन्त:करण शुद्ध हो जाता है और अन्त:करणके शुद्ध होनेपर जीवको शान्ति मिलती है, वह निर्भय हो जाता है। जीव की उपाधि के नाश से ही भ्रमकी निवृत्ति हो सकती है। उपाधिनाशके लिये भगद्भक्तिसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार महर्षि शाण्डिल्यने भगवद्भक्तिकी उपयोगिता और ज्ञानकी अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है। भगवानके साथ अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। इसी अनुरागसे जीव भगवन्मय हो जाता है, भगवानमें समा जाता है, यही मुक्ति हैं। उन्होंने बताया- भगवान श्रीकृष्णकी आत्मा है राधिका; उसीमें रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें ही आत्माराम कहते हैं।

उनकी तपोभूमि को पवित्र रखनेकी नित्य व्यवस्थाका विधान भी इन्द्रने अपनी सेवा मानकर स्वीकार किया। उस मुनिको हिमगिरिका एकान्त निर्जन प्रदेश प्रिय है। भारत तिब्बत सीमा के अल्मोड़ा जिलेके अंतिम ग्राम मिलमसे लगभग १५ मील दूर ऊँचाईपर सूर्यकुण्ड है। वहाँसे प्राय: तीन मील ऊपर शाण्डिल्य कुण्ड हैं। उसके चारोंओर दो मीलके क्षेत्रमें कोई पशु-पक्षी नहीं है। इस हिम क्षेत्रमें कोई पशु-पक्षी भूल से भी मल-मूत्र या कफ कर डालें तो ओलोंकी वर्षा होने लगती है। जबतक वह अपवित्रता स्वच्छ न हो जाए वर्षा होते रहती है। शाण्डिल्य मुनि एकाकी, अपरिग्रही, वीतराग दानी ब्राह्मण थे। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने पौरोहित्य करनेका दायित्व सौंपा। पौरोहित्य भी ब्राह्मणोंसे से किसी वेदज्ञ, तपस्वीका नहीं, किसी राजाका या सामान्य क्षत्रियका भी नहीं। शाण्डिल्य मुनि अक्रोधी हैं। ब्रह्मा सर्वज्ञ है और ब्रह्मा ने बताया जिस लाभके लोभने वशिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षिको पौरोहित्य पद स्वीकार करना पड़ा वह ही अवसर पुन: आनेवाला है और शाण्डिल्य मुनिको कहा- तुम एक बार ब्रज चले जाओ। तुम्हें परात्पर प्रभु का अवतार होगा वे ब्रज में नन्दके घर आयेंगे और तुम्हें गोपोंको पवित्र करना है। मथुरा पुनीत तीर्थ बना। यमुना सूर्य पुत्रीके तीरपर मथुराके सम्मुख महावनमें गोपोंका आवास गोकुल था और सृष्टिकर्ताने शाण्डिल्य को आदेश दिया कि वही जाकर अपना आवास करो। परमपुरुष के अवतीर्ण होनेकी सूचना ने शाण्डिल्य मुनि को पौरोहित्यके लिये प्रलुब्ध कर दिया। वैवस्वत मन्वन्तरकी वर्तमान अट्ठाइसवीं चतुर्युगीके इसी द्वापरान्त में हरिका अवतार होना है। आशुतोष भगवान शंकरने प्रसन्न होकर यदुकुलके पौरोहित्यका सौभाग्य महर्षि गर्गको दे दिया। परीक्षित्, मथुरा का माहात्म्य अभी तक तुम समझ नहीं पाये। तुमने भूमिके दूसरे उत्तम स्थान तथा तीर्थ देखे हैं यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम ब्रजमें आ गये हो। यह दिव्यभूमिका वास्तविक स्वरूप समझने-देखनेमें समय लगेगा। यह तुम्हारे आराध्यकी नित्य-विहार भूमि है। मथुराकी तो त्रिभुवनमें समता भी नहीं है। ब्रजधराकी वास्तविक समझ को जब भी जान सकोगे कि मथुरा श्रीहरिका विग्रह है और वृन्दावन उसका हृदय है। गोकुलके तृण, तरु, लताएँ, पक्षी-पशु, पिपीलिका जहाँ तक दृष्टि पड़ती है चरण चलते-चलते वहीं रूक जाते हैं। गोपनायक पर्जन्यने भूमिमें लेटकर शाण्डिल्य मुनिको प्रणिपात किया और सविधि पूजन किया। शाण्डिल्य मुनि को उपहार में इतनी गायें और वृषभ मिले कि उनकी गणना करना कठिन था। इतने ही कम्बल, मृगचर्म तथा अन्न, स्वर्णकी राशि भेंट स्वरूप आयी। शाण्डिल्य मुनि ने गोपराज पर्जन्यसे आग्रह कर कहा- भला इतने सारे पशुओंका, धनका, अन्न या वस्त्रका मैं क्या करूँगा। आप इन सबको प्रसादरूप में गोपोंमे वितरण करा दे।

उन्हें गोपोंका अपार धन मिलता था। गोपराज पर्जन्य और उनके सब गोप अपनी पूरी सम्पत्ति ब्राह्मणों की मानते थे और सपरिवार शाण्डिल्य मुनि की सेवा करते थे। शाण्डिल्य मुनि भी उन श्रद्धालु भक्तोंके कल्याणकामना के बारे में सोचते

रहते थे। वार्धक्य और मृत्यु विश्वस्रष्टाके वरदान है। वार्ध्यक वासनाओंसे सहज परित्राण दे देता है, जिन्हें जीतनेमें मुनियोंको कठोर श्रम करना पड़ता है। नेत्र, कर्ण, रसना, नासिकाकी शक्ति क्षीण हो जाती है। तृष्णा अगर प्रबल न हो तो संसारके विषय स्वयं छूट जाते हैं।

सब गोपोंने प्रार्थना की हम वनवासी पशु-पालकोंका पौरोहित्य आप स्वीकार करें। गोपराज पर्जन्यने यह बात बडी विनम्रतासे शाण्डिल्य मुनि को कही और उनकी कुटिया के बाहर ऐसी बाड लगा दी कि जंगली पशु कुटिया के भीतर न आ सके। केवल एक आश्रम धेनु सेवाके लिये उनकी कुटिया पर रहेंगे। शीघ्र ही ऋषि-मुनि-गण आकर उनकी कुटिया के आसपास बसने लगे। गोप बालक सदा शाण्डिल्य मुनिकी सेवाके लिये उत्सुक रहते थे। सम्पूर्ण व्रजवासीयों ने, गायोंने, वृषभों तकने अनुभव किया कि स्नेह, श्रद्धा, सत्कार, सावधानी सब लोकोंमें पुत्र पितासे बहुत बढ़े-चढ़े हैं।

शाण्डिल्य मुनिने ही नन्दराय के और व्रजभान की सन्तानों का पालन-पोषण किया, उन्हें शिक्षा दी। वे केवल उनके पुरोहित ही नहीं पिता समान बर्ताव करते थे। शाण्डिल्य मुनि पुरोहित इसलिये है कि वह उसके लौकिक-पारलौकिक हितकी चिन्ता रखते थे। नन्दराय को बचपनसे अपने सुख, सम्मान तथा सम्पत्ति के प्रति उपेक्षा थी। वे दूसरे सबके सुख-सुहिवधा-सम्मानके प्रति सतत सावधान रहते थे। सेवकों तथा पूरे व्रजके पशुओं तककी उन्हें चिन्ता रहती थी; किंतु अपनी चिन्ता न उन्हें कभी हुई, न उनकी सहधर्मिणीको। नन्दराय सन्तानहीन थे वैसे ही उसके सब भाई थे। पूरा व्रज इसके लिये चिंतित था। कृष्णके आविर्भावका कोई ग्रह-गणित उन तक नहीं पहुंच सकता था। शाण्डिल्य मुनि का अन्य वेदज्ञ ब्राह्मण, ऋषिमुनि जो गोकुलके आसपास बसे थे उसके लिये जप-तप अनुष्ठान कर रहे थे। उन सबका एक ही उद्दिष्ठ था कि व्रजराज नन्दको तनय प्राप्त हो।

शुकदेव बोले- परीक्षित, उस प्रेमधन को किसीकी तपस्या या विद्या प्रभावित नहीं कर सकती, किन्तु व्रजके गोप-गोपियोंने उसे कैसा नचाया। गोपियोंके आतुर कण्ठ उसको पुकारते-पुकारते सूख गये। व्रजधरा उसे पुकार रही थी।

शाण्डिल्य मुनि बृजपति के घर आये। नन्दने उनको विशेष सम्मान दिया आदर पूर्वक आसन देकर शीष झुकाकर पूजन आदि किया और कहा- भगवन, आप कुछ सत्संग श्रवण कराएं जिससे मेरे सांसारिक मन को सन्तोष की प्राप्ति हो। यह जीव ईश्वर का अंश होते हुए भी हरि के चरणों से दूर क्यों हैं। ईश्वर सदा जीव के हृदय में बसा रहता है फिर भी यह जीव दु:खों से भरपूर क्यों है। शाण्डिल्य मुनि बोले- नन्द, यह सृष्टि सत्य नहीं है केवल आभास मात्र है और इसके सत्य होने का भ्रम चिन्मयसत्ता के आश्रित होकर टिका रहता है अर्थात् सत्य न होते हुए भी सत्यवत प्रतीत होता रहता है। द्वैत रहित सत्ता विकार से रहित है, धर्म परायणता से रहित है और तीनों गुणों से रहित है। यह सत्ता व्यक्त और अव्यक्त दो भेद से जानी जाती है, परन्तु इससे किसी प्रकार का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जीव का प्रयोजन सिद्ध करने में सहयोगी वेद श्रुतियाँ हैं और निधिध्यासन से युक्त प्रौढ़ सन्तों की वाणी है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह अन्त:करण चतुष्टय है, इसी के द्वारा जीव का जीवत्व प्रकाश में आता है। विशेष चैतन्य के अभाव में सामान्य चैतन्य जीव की आशाओं को पूर्ण नहीं कर पाता। तीन गुणों के अभाव में सभी संकल्प विकल्प स्वप्नवत अधूरे रहते हैं।

सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों गुण ही अन्त:करण को नचाते हैं अर्थात स्फुरणा प्रदान करते हैं, स्फुरणा के बल पर ही जीव साधना कर पाता है और यह अपनी चित्त सत्ता को खोकर अपने अंशी ब्रह्म का स्वरूप हो जाता है, अहंकार के मर जाने पर यह जगत बन्धन छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाता है। सामान्य चेतन अन्त:करण की वृत्ति में आरूढ़ सामान्य चेतन जगत बन्धन से मुक्ति का हेतु होता है जो ब्रह्माकार कहलाता है।

अन्त:करण की वृत्ति पर ब्रह्म आरूढ़ होता है, यह भी एक काल्पनिक बात है। जिस प्रकार स्वप्न में होनेवाला रोग स्वप्न की ही औषधि से जाता है जाग्रत की औषधि से नहीं। ठीक इसी प्रकार काल्पनिक संसार ब्रह्म की काल्पनिक वृत्ति की आरूढ़ता के कारण ही नाश को प्राप्त होता है। जीव के अन्त:करण में बर्तनेवाला चेतन मायारूढ़ होता है। उसके कारण जड़ माया में चेतनता की प्रतीति होती है। इसलिए केवल अज्ञानी मूढ़ ही जड़ में चेतनता की भावना दृढ़ कर लेते हैं। अज्ञानी लोग अपने आपको प्रकृति के वशीभूत होकर कर्म करनेवाला कर्त्ता मान बैठते हैं। कर्त्तापन स्वीकार करके जो कर्म तीन गुणों ने करवाया है उसका भोग रूपी कर्मफल सिर पर चढ़ा लेते हैं।

इस संसार में क्षर और अक्षर नाम के दो पुरुष हैं। क्षर अर्थात जड़ और अक्षर अर्थात चेतन। ये दोनों जड़ और चेतन क्षर और अक्षर के ही नाम हैं। क्षर से अतीत अर्थात न्यारा होने के कारण और अक्षर अर्थात सच्चिदानन्द ब्रह्म से श्रेष्ठ होने के कारण श्री कृष्ण को पुरुषों में उत्तम (पुरुषोत्तम) कहा जाता है। जो परम सुख के धाम हैं।

पुरुषों में उत्तम पुरुषोत्तम ही इस संसार में अनंत ब्रह्माण्डों की रचना करते हैं और अपनी रुचि से कर्मो के कर्त्तापन को स्वीकार करनेवाले जीव को ये ही ईश्वर सुख और दुख के रूप में फल भुगतान करवाते हैं।

हे नन्द, ब्रह्मा के मानस पुत्रों में अंगिर ऋषि हुए। उन्हीं की वंश परम्परा में अग्नि के समान महान तप्वी अनेक पुत्र हुए। मेरा जन्म भी इसी अंगिरा वंश में हुआ और तुम्हारे कुल पुरोहित के रूप में उपस्थित हूँ। ब्रह्मा जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके मैंने कुल पुरोहित बनना स्वीकार किया। ब्रह्माजी बोले- बृज मण्डल के ग्वाले तुम्हारे यजमान होंगे।

ब्रह्मा की निन्दित कर्म पुरोहित बनने की आज्ञा मुझे अच्छी नहीं लगी। उनकी आज्ञा है कि ग्वालों के घर का पुरोहित बनना। ब्रह्मा ने कहा- आप महान तपस्वी, विद्वान, वरिष्ठ, भक्त, पाञ्चरात्र के रचनाकार हो। हे वत्स, पूर्वकाल में वशिष्ठ मुनि ने भी इस पवित्र कर्म की निंदा की पर वे ब्रह्मा की आज्ञा से इच्छकवाकु वंश के पुरोहित बने और उनको लाभ प्राप्त हुआ। तुम कृष्ण के पुरोहित बनने का सौभाग्य प्राप्त करोगे। मैंने भारत वर्ष के उत्तरीय भाग में हिमालय के निकट कैलाश पर्वत पर जो सूर्य कुण्ड से सौ योजन दूर मेरा आश्रम स्थान बनाया। मेरे आश्रम में शाण्डिल्य सर के नाम से पवित्र जल वाला तालाब है जिसमें कोई गन्दगी नही रहती। अगर कोई पंछी अपनी विष्ठा के द्वारा उस स्थान को गंदगी कर भी देता है तो इन्द्र वर्षा करके उस गंदगी को साफ कर देता है। इस कार्य को देवराज इंद्र ने सेवा के रूप में स्वीकार किया है और ब्रह्माजी की आज्ञा स्वीकार कर ब्रह्मलोक छोड़कर ब्रजभूमि पर आ गया। यहांपर मैंने आश्रम पवित्र बनाया। हे ब्रजेश्वर, गोकुल में धरती का कोई भी अंश नहीं है जो गोलोक धाम से विदा हो न आया हो। भक्तों के साथ लीला करने के लिए श्रीहरि अवतार लेंगे। बृजधाम मुझे इतना अधिक प्रिय हो गया कि इसके सामने ब्रह्मा का सत्यलोक और कैलाश गिरि का आश्रम भी विस्मृत हो गये। मुझे सभी वृक्ष, तितली, भ्रमर, पक्षी, प्राणी व अन्य पर्वत सभी भव्यता से भरे हुए दृष्टिगोचर होते है। सभी गोप मन लगाकर मेरी सेवा करते है। ये सभी हरि के प्रिय पात्र हैं। इनमें श्रद्धा से परिपूर्ण हो धर्म रक्षा हित शूरवीर, विचार-विमर्श में एकदत, परम उदार ब्राह्मणों, सन्तोंके आदर करनेवाले ३३ करोड़ देवताओं की निवास स्थली विश्व माता गाय की सेवा इत्यादि से महान बली हैं। जीव मात्र के प्रति स्नेह, सौंदर्य पूर्ण स्वस्थ शरीर, वेद, शास्त्र और देवताओं में विशेष श्रद्धा, निर्मल हृदय, कपट रहित, इन्हीं सब सद्गुणों के कारण बृजवासियोंने मेरे मन को आकर्षित कर लिया। कोई भी स्त्री- पुरुष, कोई भी छोटा-बड़ा गोप मेरे पास खाली हाथ नहीं आता। कोई अन्न लाता है, कोई वस्त्र भेंट करता है, तो कोई घी का उपहार देता है। आपके पिताश्री पर्जन्य ने मुझसे विनती की कि गर्गाचार्य जैसे मथुरा पुरी में यादवों के कुलगुरु है और पुरोहित धर्म कर रहे हैं वैसे ही आप भी करूणा करके हमारा पुरोहित कर्म करने का स्वीकार करे

ताकि हमारी सुरक्षा हो सके। मेरी स्वीकृति पाकर सभी गोपोंने मिलकर इसी जगह का निर्धारण कर थोड़े समय में मेरे आश्रम की कुटिया बना दी। गोपोंने पर्जन्य को अपने अधिपति के रूप में स्वीकार किया। मैंने आपके सभी भाइयों का विधिवत नामकरण संस्कार कराया। बालक गर्भ में हो या गोद में उनके विवाह के रिश्ते तय हो जाते हैं। आपके पिताश्री पर्जन्य ने उसी प्रथा के अनुसार अपनी सब सन्तानों का बाल-विवाह कर दिया और अपना उत्तरदायित्व निर्वाह किया। सब बातें समझाकर शाण्डिल्य मुनि प्रस्थान करने के लिये तैयार हुए। मुख्य गोपों की सहमति प्राप्त कर अपने मन की इच्छा को पूर्ण करते हुए नन्द को बृजराज बना दिया और सुमुख गोप की पुत्री यशोदा बृजमण्डल की रानी बनी। बृजभानु के पिता गोपभानु ने सबसे पहले नन्दराय का सम्मानपूर्वक अभिनन्दन किया। कालान्तर में पर्जन्य और महिभानु घर-गृहस्थी छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करने लगे। महिभानु ने अपने पुत्र बृजभानु को अपना उत्तराधिकारी बनाया। ब्रह्माजी ने कहा था- शाण्डिल्य इन्हीं गोपों के घर में परम ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण का अवतार होनेवाला है। नन्दराय ने दान, यज्ञ, अनुष्ठान अनेकानेक शुभ कर्म किये है। सारे बृजमण्डल के निवासी यह चाहते थे कि हमको युवराज मिले। लोग इसके लिये देवताओंकी पूजा करने लगे, व्रत करने लगे, पाठ करने लगे। मैंने भी ध्यान लगाकर देखा परन्तु हरि के आने का कोई आभास नहीं मिला। मैं बेबस था। यजमानों को सन्तानों की प्राप्ति हो इसके लिये मैंने अनेक ब्राह्मणों के द्वारा यज्ञानुष्ठान करवायें।

२) भगवती पूर्णमासी और मधु मंगल- भगवती पूर्णमासी वृद्धावस्था, कृशकाय, काषायवस्त्र, साक्षात जगदम्बा की मूर्ति है। उनके पास सभी समस्याओंका समाधान है। उनसे किसीको भी कभी संकोच नहीं होता। वे स्वयं ही अपना परिचय सबको देती है। और वे व्रजमें आकर बसीं। उनका जन्म वाराणसी में हुआ। वे उज्जैनी के सुप्रसिद्ध विद्वान महर्षि सान्दीपन की बड़ी बहन है। जब वो बालिका थी तभी उनके पिता ने अपने मित्र ब्राह्मणकुमार के साथ पाणिग्रहण का वाकदान कर दिया। किन्तु यह अवसर आने से पूर्व ही वे ब्राह्मणकुमार परलोक सिधार गये। उन ब्राह्मणकुमारके पहले पत्नी से एक शिशु था। सांदीपन ऋषि इस शिशु को ले आये जो लगभग पांच वर्ष का था। जिसका नाम मधुमंगल था। वह शिवभक्त था। उसपर कोई विकार नहीं थे। आयु तो उस शिशु के अपने हाथ में थी। पिछले अनेक वर्षों से पाँच वर्ष का ही बना हुआ है। इसका शरीर इसकी इच्छा के बिना वर्षों बीतने पर भी आगे नहीं बढ़ता।

सांदिपन ऋषि ने अपनी बहन पूर्णमासी को कहा कि यह असामान्य शिशु है। यह बालक परम ज्ञानी है। इसने वेदों के गूढ़ ज्ञान को अनुभव सहित धारण किया है और बाहर से नासमझ अज्ञानियों की तरह व्यवहार करता है।

यह परमपुरुष का नित्य सखा जन्मसिद्ध है। इसका पालन-पोषण करो। यह तुम्हारा भी आश्रय रहेगा। मधुमंगल के मुखसे कभी कटु शब्द नहीं निकले। अत्यन्त मधुर व्यंग करते रहता है और सबको तेरा कल्याण हो कहते रहता है। उसे मोदक अति प्रिय है। उसे किसीसे मांगने अथवा बिना मांगे भोग लगानेमें कोई संकोच नहीं होता। यह शिक्षा के प्रति सर्वथा उदासीन रहा। पूजा-पाठ में इसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। हास्य रस के व्यंग की बात करता है। फिर भी शतरुद्री और पुरुषसूक्तमें इसकी समान प्रीति है। काशीके विद्वानोंकी परिषदमें भी जब वह पहुँच जाता तो उनकी भी गलतियाँ निर्दिष्ट करने से कोई हिचकिचाहट नहीं करता। उसकी वाणीमें मंगल रहता है। जहाँ भी जाता है वातावरणको मंगलमय मुदित बनाये रहता है। शोक, उदासीनता, चिन्ताकी छाया भी उसके पास आती नहीं। सांदीपन ऋषि काशी छोड़ गये और उज्जैन में बस गये। भगवती पूर्णमासी को भी उज्जैन आनेके लिये आग्रह करने लगे। पर मधुमंगल नहीं माना। मधुमंगल भगवती पूर्णमासी को माँ ही मानता था और कहने लगा हम व्रजमें बसेंगे। वहीं मेरा सखा आनेवाला है। उसे मेरी

आवश्यकता है और मैं उसीके लिये इस संसार में आया हूँ। तेरी भी सार्थकता इसीमें है। मधुमंगल के कहनेसे हम मथुरा आ गये। पूर्णमासी और सांदीपन ऋषि दोनों ही आशुतोष विश्वनाथ शिव के परम पुजारी रहे।

मधुमंगल कहने लगा मथुरा का युवराज कंस असुर है। उसके राज्य में रहना मेरे लिये दुर्भाग्यपूर्ण है। हम उस महावन में चलेंगे जहां गोरसकी मधुरगन्ध आ रही है। इसिलिये भगवती पूर्णमासी मधुमंगल के साथ बृज में चले गये। उसका जीवन सरल था। रात्रि में अनेकबार किसी भी गोपगृहमें सो जाता था और सबके घरोंमें का मधुर भोजन उसका अपना ही था। पूर्णमासी सदा ही नारियोंको सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद देती रही। जब पूर्णमासी नन्दभवन में गयी तो यशोदा ने चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। पूर्णमासी ने आशीर्वाद दिया- तुम्हारी गोद भरी रहे। व्रजेश्वरी यशोदा बहुत श्रद्धालु है, सेवाकी मूर्ति है। उन्होंने मुझसे बिनती की- मैं कुछ दिन गोकुलमें रहकर उनके निवास को पवित्र करूँ। मधुमंगल ब्रजरानी से बोला- मैं तो यहीं ठहरूंगा मेरा सखा यहीं आनेवाला है। ब्रजराज नन्दने मधुमंगल और पूर्णमासी की वहां बसनेकी व्यवस्था कर दी।

महर्षि शाण्डिल्य ने अपनी कुटिया के समीप ही पूर्णमासी की कुटिया बनवा दी। महर्षि शाण्डिल्य पुन: भगवती मासी को भाई के रूप में मिले। उन्होंने पूर्णमासी की सम्पूर्ण सुविधाओंका भार स्वयं उठा लिया। मधुमंगल सहानंद पूर्णमासी के पास रहने लगा और कहता था अब दूध-दही का क्या देखना। मेरा सखा आनेवाला है वो कितना लूटाता है। उसी दिन उपनन्द की पत्नी तुंगी और अभिनन्द की पत्नी पीवरी, सनन्दकी पत्नी कुबला तथा नन्दनकी पत्नी अतुला भगवती मासी की चरणवन्दना करने के लिये आयी। भगवान विश्वनाथ की कृपा से भगवती पूर्णमासी के मुख से यही आशीर्वाद निकला कि तुम्हारी गोद पूर्ण रहे। सब-की-सब आश्चर्य से मासी को देखने लगी।

नारीका हृदय मातृत्वका महोत्सव माननेको कितना व्याकुल रहता है। जब इसकी आशा न रह जाय- नारी अपने मन्दभाग्यके लिए कितनी दु:खी होती होगी। अब ऐसी नारीको गोद भरनेका आशीर्वाद उसने अपना उपहास माना हो तो उपनन्द की पत्नी तुंगी ने पीछे प्रथम-पुत्रके जन्म हो जानेपर कहा था- भगवती। आपने उसे आशीर्वाद दिया तो लगा कि उसे व्यंगपूर्वक वन्ध्या न कहकर यह कह रही है। तुंगी कहाँ जानती थी सर्वशक्तिमती जगदम्बा सचमुच हतभागिनीपर आज सुप्रसन्ना हैं।

तुंगी वृद्धअवस्था पर पहुंच चुकी थी। पतिका उसे केवल पाद-स्पर्श प्राप्त होता था और भगवती पूर्णमासी के मुखसे उसे ऐसा आशीर्वाद निकल गया। वहाँसे भगवती पूर्णमासी अभिनन्दके घर पहुँच गयी थी; किन्तु उनकी पत्नी पीवरीने जब अंचल करमें लेकर उनके पदोंपर मस्तक रखा तो वही आशीर्वाद उनके मुखसे फिर निकल गया और बोल उठी- तुम्हारी गोद पूर्ण हो।

पीवरी बालिका थी, तबसे स्थूलकाया पायी है उसने। इस अवस्थामें आकर उसका शरीर अधिक स्थूल हो गया है। अपनी जेठानी तुंगीसे दो वर्ष छोटी होनेपर भी वह अधिक वृद्धा लगती है। स्वभावसे हँसमुख विनोदी होनेके कारण वह बोल उठी- भगवती। आप भी व्यंग करती है? पूर्णमासी बहुत दु:खी थी, व्याकुल थी। जीवनमें कभी भी जिसके मुखसे असत्य न निकला हो, उसके मुखसे एक असम्भव लगता वरदान कैसे निकल गया? इन सबको असम्भव कामना पूर्तिका आशीर्वाद दे दिया। जो आशीर्वाद सफल न हो सके, उसका उच्चारण असत्य बोलना ही तो है। भगवती पूर्णमासी ने कुबला और अतुलाको ही नहीं पीवरी और तुंगी को सन्तान होनेका आशीर्वाद दे दिया। मधुमंगल उठा और गया और एक-एक पुत्र और होनेका आशीर्वाद दे आया। मधुमंगल ने तो श्रीव्रजराज नन्दसे, व्रजेश्वरी यशोदा और महर्षि शाण्डिल्य तकको यह शुभ-सम्वाद सुना दिया। गोप और गोपियोंमें इतनी अगाध श्रद्धा है कि वे सब इस बालककी बात भी सुनकर

हँसकर उड़ा नहीं सकते; किंतु महर्षि शाण्डिल्यने गम्भीर होकर इसकी ओर देखकर कहा- आप अवधूतोत्तमका आशीर्वाद सफल तो होगा ही। मैं अपने इन आनेवाले यजमानोंका स्वागत करने को प्रस्तुत हूँ। सब लोग भगवती पूर्णमासी को जगदम्बा ही मानते है। महर्षि शाण्डिल्य सुप्रसन्न थे। मुख्य यजमान नन्दरायके पिता पर्जन्यने कहा वंश लुप्त होनेसे बच गया। व्रजराज नन्द और वज्रेश्वरी यशोदाके हर्ष और उत्साहका तो पूछना ही क्या। सबको आश्वस्त हो गया कि व्रजरानी की गोद भरेगी। मधुमंगल कहता था दादा आवेगा, सबसे पहिले दादा आवेगा। लगता है संकर्षण अवतार लेनेवाले है।

पांच वर्ष की आयु का यह मधुमंगल सब गोपियों के घरों में फेरियाँ लगाते रहता था। श्यामसुन्दर का यह गोलोक धाम का सखा श्यामसुन्दर के साथ खेलने के लिए ही नित्य गोलोक को छोड़कर पृथ्वी पर अवतरित होकर गोकुल में आया। यह सदैव पाँच वर्ष की आयु का ही बना रहा। हास्य रस अधिदेव श्यामसुन्दर का यह सखा मधुमंगल ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुआ। गौरवर्ण है, लड्डू इसका प्रिय भोज्य है सदैव हँसते रहता है। उज्ज्वल शुक्ल वर्ण का वस्त्र पहनता है। दाऊ दादा से दो वर्ष की आयु में बड़ा है। बड़ा होनेसे सभी सखा इसका सम्मान करते हैं। मधुमंगल सबके मन को सुखी करनेवाले हैं इसीलिए इनका एक नाम मनसुखा भी है। माखन और मोदक का लोभी होने के कारण गोपियां अपने पास बुलाकर कहती है, मधुमंगल तुम हमारी सब आशाओं को पूरा करनेवाले हो हमारी मनचाही बात करवा दो फिर हम आपको मनचाही मिठाई खिलाएंगे।

३) माता रोहिणी और दाऊका जन्म- चाक्षुष मन्वन्तर के प्रारम्भ में दक्ष प्रजापति ने महर्षि कश्यप को अपनी परम मनोहर ग्यारह कन्यायें पत्नी के रूप में प्रदान की थीं। उन कन्याओं में जो श्रेष्ठ सांपों की जननी कद्रू थी वही वसुदेव प्रिया रोहिणी होकर प्रकट हुई थी, जिन्हें पुत्र के रूप में बलरामजी की प्राप्ति हुई थी। उस कद्रू ने करोड़ों महासर्पों को जन्म दिया था। उन्हीं में से फणिराज शेष और कालिय नाग भी हैं।

एक समय देवमाता अदिति ने ऋतुमती होने पर समस्त श्रृंगारों से सुसज्जित हो अपने पतिदेव श्रीकश्यपजी से मिलना चाहा। उस समय कश्यपजी अपनी दूसरी पत्नी सर्पमाता कद्रू के पास थे। कश्यपजी के आने में विलम्ब होने पर अदिति को बहुत क्षोभ हुआ और उन्होंने कद्रू को शाप दे दिया कि वे जरायुक्त होकर मर्त्यलोक में मानव योनि में जाए।

इस प्रकार दोनों के शापग्रस्त होने पर कश्यपजी ने कद्रू को सान्त्वना देकर समझाया कि तुम मेरे साथ मर्त्यलोक में जाकर श्रीहरि के मुखकमल का दर्शन प्राप्त करोगी। तदनन्तर कश्यपजी ने अदिति के घर जाकर उनकी इच्छा को पूर्ण किया। उसी ऋतु से देवराज इन्द्र का जन्म हुआ। इसके बाद अदिति ने देवकी के रूप में, कद्रू ने रोहिणी के रूप में और कश्यपजी ने श्रीकृष्ण के पिता श्रीवसुदेवजी के रूप में जन्म ग्रहण किया।

उच्चकाय माता रोहिणी स्वभावसे महारानी है। यह अमित, महिमामयी सबके अन्तरपर शासन करनेवाली है। यह किसी भी परिस्थितिमें उद्विग्न नहीं होती। ये तो मानो सभी व्यथा मिटानेको ही अवतीर्ण हुई। इनके लिये कोई एकान्त नहीं है और न ही यह अवकाश ग्रहण करती हैं। कंसने अपने अत्याचारोंसे अपने पिताश्री उग्रसेन को बन्दीगृह में डाल दिया। साथमें ही अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को भी कारागारमें बन्दी बना लिया। पर रोहिणी को उनतक जानेकी सुविधा प्राप्त थी। रोहिणी का देवकीके पास जाने से देवकीको आश्वासन मिलता था और अपने स्वामी वसुदेवकी सेवा करनेका मौका मिलता था। बाकी अन्य पत्नियां वसुदेव की आज्ञा से मथुरा त्यागकर चली गयीं। विपत्तिमें कोई किसीका नहीं होता है और अपने पितृकुलोंको कंसका कोपभाजन बनाना उचित भी नहीं था। इसीप्रकार सभीको संकटके दिन काटने थे। देवकी की सगी बहनें वसुदेवकी पत्नियां थी। कंस जितना शूर था अन्दरसे उतना ही कापुरुष था। कुसंगके पड़ गया

था। मरणके भयसे कुछ भी करनेको उद्यत हो गया था। वह भीत, कायर, निरन्तर, मानसिक अशान्ति का ही पात्र था।

देवकीने रोहिणी से कहा- इनका वंश कभी नष्ट न होने पाये। मुझ जैसी अभागिनीने तो इस वंश का दीप ही बुझा दिया। अब तक वसुदेवजीकी किसी दूसरी पत्नीसे उन्हें कोई संतान नहीं प्राप्त हुई न वसुदेवजीके छोटे भाइयोंके पत्नीसे संतान प्राप्त हुई। शूरसेन जी का वंश समाप्त होनेके कगार पर है। अब मेरी विनती सुनकर तुम अन्त:र्वती हो जाओ।

रोहिणी अन्तर्वती हो गई थी। रोहिणी की किसी भी सपत्नी को अबतक कोई सन्तान नहीं थी। वे सब बेचारी मथुरासे दूर चली गयी। देवकीकी सन्तानें कंसके कोपकी आहुति बनती जा रही थी। वसुदेव रोहिणी से बोले- तुम तो कारागार में भी नहीं हो। मैंने कंसको केवल देवकी की संतान देनेका वचन दिया है। कंस अतिशय क्रूर है। कब क्या करेगा, कुछ निश्चय नहीं है। वसुदेवजी बोले- भावनामें मत बहो देवि। बुद्धिमान हो, परिस्थिति समझो और मेरी बात मान लो। मेरा एक ही तो वंशधर है तुम्हारी कुक्षिमें। मथुराके समीप गोकुलमें ब्रजाधिप नंदराय मेरे भाई ही तो हैं। कंस भी सहसा उन गोपनायकपर हाथ उठानेका साहस नहीं करेगा और तुम भी नन्दरानी यशोदा से अपरिचित नहीं हो। हमारे दोनों परिवार में अत्यन्त घनिष्टता है। कंसकी दासी अभी यहाँ आनेवाली हैं। उसके आनेसे पहले ही तुम यहाँसे निकल जाओ।

रोहिणी को पति वासुदेवने विवश कर दिया मथुरा त्यागके लिये। गोकुल समीप था और गोकुल में व्रजपति नन्दराय मेरे स्वामीके भाई भी और अभिन्न सखा भी थे। विपत्ति व्यक्तिसे सबकुछ करा लेती है। रोहिणी ने पुरुष वेश धारण किया और अश्वरोही बनकर प्रात:काल ही मथुरासे निकली। प्रात:काल में कंसके असुर पुररक्षक असावधान थे। रोहिणी को मथुरा छोड़ने कोई बाधा नहीं होई, किसीने रोका नहीं। पुर रक्षकोंने यही समझा की यह तो कोई पर्यटन का व्यसनी है। वह इतनी प्रात: घुमने को निकला। रोहिणीने मथुरा से बाहर निकलकर अश्वको दौड़ा दिया। अश्व सीधा जाकर द्रुतगतिसे चलता हुआ व्रजपति नंदराय के द्वार गोकुलमें ठहरा और रोहिणी उतर कर अन्त:पुरमें चली गयी। रोहिणी ने अन्त:पुरमें यशोदा को गले मिलकर कहा बहिन, मैं तुम्हारी और श्रीव्रजराजकी शरण में आई हूँ। यशोदा ने कहा- जीजी मुझे पापकी भागिनी मत बनाओ। मैं और व्रजपति तो तुम्हारे सेवक-सेविका है। यह गोकुल भी तुम्हारा है। व्रजेश्वर नन्द अन्दर आये और रोहिणी की चरणवन्दना की और कहा- भाभी, आज हमें गोकुलेश्वरी प्राप्त हुई। हम सब तो अनपढ़ है, अरण्यानी है; आपके सेवक हैं। आप कभी आदेश देनेमें संकोच नहीं करना नहीं तो हमें कष्ट होगा। आप हमारे गृह, गोष्ठ, गोकुलका स्वामित्व सम्हालने के लिये आये हैं, आपको पाकर हम सब निश्चिन्त हो गये। आप अपने मन को छोटा न करें। यशोदा ने मेरी कठिनाई समझी और मुझे शीघ्र वहां से अपने कक्षमें ले गयी। व्रजपति मेरे स्वामीसे आयुमें बहुत बड़े हैं, स्वामी के सामने तो पितृव्य भी प्रतीत होते हैं। व्रजेश्वरी यशोदा भी रोहिणीसे वयमें बहुत बड़ी है। रोहिणीको नन्दराय से संकोच होता था। रोहिणी स्वभावसे शासिका है। अपने पतिके घरमें समस्त व्यवस्थाका संचालन वे ही करती थी। सेवक-सेविकाएं और सब सपत्नियां उसके आदेश का पालन करते थे। बृजेश्वर और बृजेश्वरी का अतिशय स्नेह और सम्मान पाकर रोहिणी का चित्त गद्‌गद हो और आँखों में पानी भर आया।

यशोदा रोहिणी की अनुजा बन गयी। गोप और गोपियोंने रोहिणीको उपहार भेंट दिये। सब गोपियोंने रोहिणीका आगमन अहोभाग्य माना। रोहिणी को अपरिचय-जन्य संकोच किसीके भी सामने नहीं हुआ। भगवती पूर्णमासी के साथ मधुमंगल आया और रोहिणी से बोला- माँ हमारा दादा आ रहा है न? मेरा सखा भी आयेगा। मधुमंगल बहुत भोला, चंचल और बहुत बोलनेवाला बड़ा प्यारा बालक है। गोकुल में तो वह सबको ही सरल, विनोदी बालक लगता है।

यशोदाने रोहिणीको कोई व्रत नहीं करने दीया। अन्तर्वत्नीको उपवास नहीं करना चाहिए। व्रजपति और यशोदा हमेशा

रोहिणी के दोहद (गर्भवती नारी के गर्भ में उठनेवाली कामना) का खयाल रखते थे कि उसे किसी वस्तुकी इच्छा या आवश्यकता तो नहीं। महर्षि शाण्डिल्य, भगवती पूर्णमासी कहते थे कि कोई असाधारण महापुरुष आनेवाले हैं। व्रजपति नन्दराय की भाई की सब पत्नियां भी अन्तर्वत्नी हो चुकी थी। उपनन्द पत्नी तुंगी और अभिनन्द पत्नी पीवरी उन्हें भी श्रम नहीं करनेका संकेत दिया जाता था। एक दिन भूमिपर बैठै बैठै रोहिणी अत्यन्त वेदना से छटपटाने लगी। बहुत भयंकर पीड़ा होने लगी। उस समय कोई अष्टभुजा देवी उसके समीप आयी और रोहिणी के गर्भ का आकर्षण किया और भगवान अनन्त को रोहिणी के उदर में स्थापित किया। रोहिणी को लगा कोई ज्योतिर्मय सहस्त्रफणा महासर्प उसके उदरमें प्रविष्ट हो गया। देवकीका अष्टम गर्भ आयेगा इसीकी प्रतिक्षा में कंस कई उत्पात कर रहा था। सभी सुर रेवतीके कक्षमें आकर स्तुति करने लगे। भगवती पूर्णमासी अंजलि बाँधकर रोहिणी को प्रणाम कर बोली- हे अनन्त जननी। आपके उदरमें जो आ गये हैं, वे सुरोंके नित्यसेव्य हैं। रोहिणी के मनमें नीरव-शान्ति थी। भाद्रशुक्ल षष्ठी बुधवार का मध्य दिन था तब बलदेव जयन्ती शतभिषा नक्षत्रमें दाऊका आविर्भाव हुआ। यह कर्षण करके लाया हुआ गर्भ स्थापित करने से इसका एक नाम संकर्षण भी हुआ।

भगवान अनन्तकी जननी रोहिणीजीको ब्रजमें दीर्घकाल तक रहना पड़ा। वे सुरभिकी अंशोद्भवा थीं। स्वर्गीय सुरभिके समान ही सबके लिए नित्य सुप्रसन्ना, सर्वकामवर्षिणी, अनन्तवात्सल्यमयी, सम्पूर्ण कुलकी यादव-राजसदनकी वे अधिदेवता थीं और सुर भी आकर उनकी चरण-वन्दना करते थे।

बलभद्र - बलराम। बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण बलराम को बलभद्र भी कहा जाता है।

शाण्डिल्य समाचार पाते ही आ गये। गोकुलमें महोत्सव के वाद्य बजने लगे। व्रजपति नन्दराय ने जातकर्म संस्कार सविधि कराया। सहस्त्रों गोदान किये। शिशुको दुग्धपान संस्कार सम्पन्न करायें। यशोदाने स्वयंम् दूध पिलाया और इसकी धात्री होनेका सौभाग्य माना। रोहिणी का यह शिशु कुछ बोलता नहीं था। न ही घुटनोंके बल सरकने का प्रयत्न किया। पलनेमें इसने हाथ-पैर नहीं उछाले। जहाँ धर दिया, लेटा दिया या बैठा दिया। इसने हंसना नहीं जाना, रोना नहीं जाना। हर समय कुछ देखता रहता, घूरता रहता था आकाश की ओर। गोपियां यशोदा सब हार गयीं इसे हंसाने का प्रयत्न करके। भगवती पूर्णमासी कहती थी यह गूंगा नहीं है, अपंग नहीं है यह किसीकी प्रतीक्षा कर रहा है। मेरी अनुजा यशोदा के भी पैर भारी हो गये। व्रजपति नन्द के भी कुमार हो जाए तो रोहिणी के लिये भी अहोभाग्य है।

४) नन्द बाबा और यशोदा मैया का परिचय- परमपुरुषको जब भी पृथ्वीपर अवतार लेना होता है नृसिंह वाराहके समान आविर्भूत होना होता है। श्रीपुरुषोत्तमके अनेक अवतार-रहस्य जो सृष्टिकर्त्ताको भी ज्ञात नहीं होते इसप्रकार जब परात्पर पुरुषने चन्द्रमा को ही कुलपुरुष बनाकर मान गौरव प्रदान किया। इसप्रकार देवी योगमाया भी चन्द्रवंश मे आयी। गोकुल में देवी रोहिणी वे ही नागमाता कद्रू हैं। कद्रूने ही रुष्ट होकर अदिति को मानव जन्म योनिमें जन्म लेनेका शाप दिया। उन्होंने भी अदिति को श्राप दिया। अदिति देवकी के रूप में आयी तो कद्रू रोहिणी के रूप में आयी। अब दोनों आपसमें परमप्रिय बहन बनकर रहती है। गोलोकबिहारी कृष्णके अग्रजको अवतीर्ण होना था तो माता रोहिणी ही आवेगी। नागमाता कद्रू केवल उनसे ही हो सकती है। जब उन निखिल लोकमहेश्वरको इस धरापर अवतीर्ण होना है, जब उनका नित्य धाम धरापर वज्र मण्डल बनकर आविर्भूत हुआ तो यह निश्चय है कि उनके नित्य परिकर भी यथाक्रम से आयेंगे। इन परिकरोंके ही तो प्रतिबिम्ब जन्म-जन्मसे जीव बनकर भटक रहे हैं।

वसुश्रेष्ठ द्रोण ने अपनी पत्नी धराके साथ गन्धमादन पर्वतपर सुप्रभाके तटपर गौतमाश्रममें रहकर श्रीहरिके दर्शनके निमित्त

घोर तप किया। सृष्टिके प्रारम्भके स्रष्टा सबको ही सृजन करते हैं। उस हंसवाहन चतुर्मुख ब्रह्माने धरा और द्रोणको भी यही आदेश दिया कि तुम व्रजमण्डल में जाओ नारायण तुम्हारे पुत्र बनेंगे। शताब्दियाँ व्यतीत हो गयी। तो हरिका दर्शन वसुश्रेष्ठ द्रोण और धराको नहीं हुआ। इस दम्पत्ति ने अग्नि प्रवेश करके देह त्याग करने का निश्चय किया। चिता प्रज्ज्वलित की। नदीके पावन प्रवाहमें स्नान करके अग्निकी प्रदक्षिणा करने चले। उसी समय आकाशवाणी हुई, तुम यह अभद्र प्रयास मत करो। मैं गोकुलमें प्रकट होकर तुम्हें पुत्र रूपसे अवश्य प्राप्त होऊंगा। ब्रह्माने भी उनको यही वरदान दिया। गोकुलमें वसुश्रेष्ठ द्रोण नन्दराय हुए और गोपराज गिरिभानु सुमुख जो की गोपोंका प्रमुख है उसकी पत्नी पद्मावती पाटली धरा यशोदा नन्दकी पत्नी हुई। इस लोकमें ही दोनों पति-पत्नी बनें। उनका सौभाग्य था कि परात्पर परमपुरुष पुरुषोत्तमका पितृत्व-मातृत्व तो मिलना था।

बृहत्सानपुर (बरसाना) के सम्बन्धमें भी यही है। पूर्वजन्ममें मनुवंशी सुचन्द्रका विवाह पितरोंकी मानसी कन्या कलावतीके साथ हुआ। दीर्घकाल तक राज्य करने के पश्चात् सुचन्द्र पुलहाश्रममें तप करने चले गये। ब्रह्माने इनके तपसे प्रसन्न होकर वरदान मांगनेके लिये कहा। सुचन्द्रने कहा- प्राणीका परम पुरुषार्थ तो यही है यदि आप प्रसन्न हो तो मुझे मुक्ति प्रदान करें अत: इनकी पत्नी कलावती ने अत्यन्त आर्त होकर प्रजापति ब्रह्मासे कहा- पति ही नारी का सर्वस्व है। आप इन्हें कैवल्यमुक्ति प्रदान करते हैं तो मेरा क्या होगा? मैं इनके बिना नहीं रह सकती और न ही मेरी कैवल्यमुक्ति में रूचि है। मैं तो इनका नित्य सानिध्य चाहती हूँ। आप इन्हें सोच-समझकर वरदान दें। यदि आपने इन्हें मोक्षका वरदान दिया तो मैं आपको शाप दूँगी। ब्रह्मा बोले- देवी, आपका शाप मुझे भ्रष्ट कर सकता है। सुचन्द्रको दूसरा वरदान माँगना चाहिए। सुचन्द्र बोले- मैं कुछ मांगना नहीं चाहता अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे ऐसा बनाइये कि मैं उन निखिल लोक महेश्वरको भी दे सकूँ। उनका परमाभीष्ट प्रदाता बनूँ। सृष्टिकर्ताने एवमस्तु कहकर प्रणाम किया। बृहत्सानपुरमें महीभानु की पत्नी पद्मावतीसे सुचन्द्र (वृषभानु) प्रकट हुए। कान्यकुब्ज नरेश के यज्ञकुण्डसे वृषभानुकी पत्नी कीर्तिदेवी (कलावती) अयोनिजा बनकर प्रकट हुई।

नन्दराय ने अपने मित्र वृषभानुके लिए कान्यकुब्ज नरेश की अयोनिजा कन्या मांगी थी। और कान्यकुब्ज नरेश ने वृषभानुके साथ सहविधि कन्यादान कर दिया।

रोहिणी के पुत्र संकर्षण के आविर्भाव के दो दिन पश्चात ही उपनन्दकी पत्नी तुंगीकी गोद पूर्ण हुई। उनके पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम है ऋषभ। इसके सात दिन ठीक बाद सन्नन्दकी पत्नी कुबलाके एक पुत्र हुआ जिसका नाम अर्जुन हुआ। तीन सप्ताह के पश्चात् अभिनन्दकी पत्नी पीवरीके घरमें पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम विशाल रखा। इन बालकों को कोई ग्रह प्रभावित नहीं कर सकता। ग्रहोंको और कालको भी इनकी कृपा अपेक्षित है। सबको प्राय: समान जीवन व्यतीत करना है।

एक दिन सूर्य पुत्री यमुना के तीर पर नन्दराय जी नारायण का जाप कर रहे थे। उसी समय शाण्डिल्य मुनि ने एक आश्चर्य देखा कि अपार प्रकाश का पुञ्ज नन्दराय के शरीर में प्रवेश कर गया। वह प्रकाश पुञ्ज करोड़ों सूर्यों के समान था। उस तेजपुञ्ज में न कोई चुभन थी और नही कोई तपन थी। लगता है जैसे कोई नन्दराय जी के रूप में कोई बड़ा देवता विराजमान हो। गोकुल पति के कुल की प्रसिद्ध धातरी मुखरा ने जब नन्दराय को देखा तो भागकर नंद महल में बृजरानी यशोदा के समीप गई और कहा हमारे बृजराज तो देवता बन गये है। बृजराज के तेज पुञ्ज शरीर को मैंने देखा है वहां सभी ऋषि-मुनि आश्चर्यचकित है। सभी नन्दराय के चरणों मे शीश झुका रहे है। मुखरा की बात सुनकर यशोदा का हृदय धक् करने लगा। सोचने लगी- मानव होकर देवता कैसे बन गये? शीघ्रतापूर्वक महर नन्द के पास चली गयी। यशोदा ने देखा

यमुनाके किनारे ऋषियों के समूह झुण्ड के झुण्ड का बृजवासियों के साथ ऊँचे स्वर में जय-जयकार निकल रहा है। तेजपुंज से नन्दराय का शरीर उल्लास से कम्पायमान हो रहा था। यशोदाने नन्दराय को चेतन करने के लिये स्पर्श किया और कहा- हे महर, आपको क्या हो गया? जैसे ही यशोदा ने स्पर्श किया वह तेजपुंज यशोदाके शरीर में प्रवेश कर गया। अभी यशोदा भी दिव्य देवी प्रतीत होने लगी और भारी भीड़ उनके दर्शनों के लिये उमड़ पड़ी। यशोदाजी के गर्भवती होनेके लक्षण देखे गये। धातरी मुखरा ने घोषणा कर दी कि यशोदा गर्भवती है। सारे ब्रजमण्डल में यह बात फैल गयी। शाण्डिल्य ऋषि-मुनि आये और सीमन्तन संस्कार किये। यशोदा ने सपने में बाल-गोपाल की सुन्दर छवि देखी। सभी देवी-देवता नन्दगृह में आकर यशोदा को प्रणाम करते और ढेर सारे आशीर्वाद प्रदान करते। एक दिन नन्दराय को सपना आया कि वे नीलवर्ण के छोटे बालक को अपनी गोद में खिला रहे है। वह बालक गोद से उतरकर यशोदा की गोद में चला गया। यशोदा बोली- हे महर, मैंने भी सपने में दो बालक देखे जो मेरी गोद में बैठकर अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर रहे थे। उन दोनों में एक पुत्र था और एक पुत्री। दोनों मन हरण करनेवाले स्वरूप में थे। पुत्र मेरे आँचल का दूध पीने लगा और कन्या दूध पिये बिना ही अन्तर्ध्यान हो गयी। नन्दराय ने यशोदा से बार-बार पूछकर उसका दोहद पूरा किया। यशोदा बोली- हे महर, मेरा मन चाहता है कि प्रात: और सायंकाल गो माता के चरणों की धूलि अपने सिर पर चढ़ाऊँ, अपने हाथों से निकाले हुए माखन में मिश्री मिलाकर खाने की इच्छा होती है। बाँसुरी की धुन मुझे अतिप्रिय लगती है और मन करता है बार-बार सुनती जाऊं। इन दिनों मुझे नन्हें-नन्हें बालक बहुत प्रिय लगते हैं और मन करता है मेरे घर का आँगन छोटे-छोटे बालकों से भरा रहें। हे महर, मेरे घर में नित्य प्रति ऋषि-मुनि, संत और ब्राह्मण आते रहें। मेरे दरवाजे पर याचक गण अधिक से अधिक संख्या में आये और मैं उनको इच्छाभर दान करती रहूं। कहीं कोई दु:खी दीन, रोगी, अभावग्रस्त न रहे। मुझे इच्छा होती है- सब सुप्रसन्न, सन्तुष्ट, सुखी रहें और सदा आनन्द-मंगल मनावें। अपने गोकुलमें मैं यह देख ही रही हूँ। इन दिनों तो लगता है कि मैं सारे संसारको ही सुख दे रही हूँ।

बृजवासियों को अपने घर परिवार की तनिक भी चिंता नहीं। जिसके हाथ में जो कीमती वस्तु आती है उसे श्री नन्दरानी जी के ऊपर न्यौछावर करके लुटाता जा रहा था। बृज में नदी, तालाब, वन, यमुना सरिता, कूप, बावरी सबमें अपार स्मृति आ गयी। कहीं भी कुश, काँस, काँटे देखने को नहीं मिलते। चारों ओर हीरे, मोती, लाल बिखरे हुए चमचमा रहे हैं। हर मौसम में वृक्षोंपर सुन्दर फल लग गयें। चारों ओर सुहानी हरियाली छा गयी। भरपूर मात्रा में हीरे मोती लुटाने पर भी उनमें थोड़ी भी कमी नहीं आयी। आनेवाले युवराज के स्वागत में शीतल सुगन्धित बयार बहने लगीं। कोयल और मोर अपनी मीठी ध्वनि में बोलने लगी।

५) राधा का जन्म- राधा का नाम भान-नन्दिनी है। हरिप्रिया की अंशोद्भवा है। वृषभानु के कीर्तिदेवी से एक कुमार हुआ। गोकुलमें भगवान अनन्तके आविर्भाव के केवल दो दिन पीछे ही यह आया। उसका नाम श्रीदाम रखा गया। कला-काष्ठादि से लेकर दिन, सप्ताह, मास, वर्षादि कल्पतक कालका सर्जक सूर्य ही हैं। सूर्यपुत्र शनैश्चर सदासे ही विरोधी और क्रूर है। कीर्तिरानी के अंकको भूषित करने जो कन्या आ रही है इसके आविर्भाव का अवसर आ रहा है। कार्तिक कृष्ण अष्टमी, मध्याह्नकाल। सुरांगनाएँ, गन्धर्व कुमारियाँ, तारिकाएँ इस धरापर कण-कणमें नाच रही है। पेड़-पौधोंकी लतिकायें, मरालबालायें, गायें, पिपीलिकायें, भ्रमरियाँ यह सब शिशु बालिकायें आनन्दमग्न, किलकती, नाच रही है। आज देवताओं की देवियोंने श्रृंगार किया है। कीर्तिकी कुमारियाँ आ रही है। कीर्तिका दूसरा कुमार सुबल अपनी अनुजा के साथ आया। यह अयोनिजा कीर्ति-कन्या, किसी देवालयमें प्रकट हो गई और उसे उठा लाये। संसार के लोग और

वृषभानु यह समझेंगे कि उनकी सहधर्मिणीने युग्म सन्तति दी है। युग्म के अनुरूप, सर्वथा अनुरूप ही सुबलकी अंग-कांति एवं स्वरूप है। वृषभानु नन्दिनी आज धरापर अवतीर्ण हो गई।

राधा- एक दिन भगवान श्रीकृष्ण की विरह-वेदना से व्याकुल सोलह हजार रानियां अपने प्रियतम पतिदेव की चतुर्थ पटरानी कालिंदी (यमुनाजी) को आनंदित देखकर सरल भाव से उनसे इसका कारण पूछने लगीं। कालिंदी ने उनका प्रश्न सुनकर हँसते हुए कहा- बहनो। भगवान श्रीकृष्ण की आत्मा हैं श्रीराधिकाजी। उनकी सेवा का ही यह प्रभाव है कि किसीको भी विरह वेदना पीड़ित नहीं करती। श्रीकृष्ण की जितनी भी रानियां हैं, सबकी सब राधाजी के ही अंश का विस्तार है। श्रीकृष्ण और राधाजी का नित्य संयोग है। श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही श्रीकृष्ण है।

गोलोकेश भगवान श्रीकृष्ण अत्यंत सुंदर एवं मनोहर रासमंडल में गए। रमणीय कल्पवृक्षों के मध्य वह मंडलाकार रासमंडल दिव्य आभामय था। चंदन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से वह सुसज्जित था। भगवान श्रीकृष्ण वहां जाकर ठहर गए। उस रासको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे। उसी समय श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह दौड़कर तुरंत पुष्प ले आई और प्रभु को पग-पग पर अर्घ्य प्रदान करने लगी। रास में उत्पन्न होकर गोलोक में भगवान के सामने दौडने के कारण विद्वानों ने उसे राधा कहा है। वह परमात्मा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी, उनके प्राणों से प्रकट होने के कारण उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हुई।

राधा एक यौगिक प्रक्रिया है। यह जो जीवन की धारा बाहर की तरफ बह रही है, जिस दिन यह उल्टी हो जाती है, उस दिन उस धारा का नाम राधा हो जाता है। सिर्फ शब्द को उल्टा कर लेने से ही वह सार्थक हो जाता है।

राधा और कृष्ण के बीच का आध्यात्मिक संबंध समझने के लिए हमें अपने दिमाग की अपवित्रता को दूर करना होगा ताकि हम रासलीला को सही अर्थों में समझ सकें। दरअसल राधा और कृष्ण एकाकार होकर राधाकृष्ण के रूप में जिस शक्ति पुंज का निर्माण करते हैं, वह शक्ति ही सृष्टि की रचना करती है। कृष्ण को राधा का विस्तार समझा जा सकता है। जिस तरह सूर्य से उसकी किरणें अलग नहीं है, ठीक उसी तरह राधा कृष्ण की ही शक्ति हैं और उन्हें कृष्ण से अलग करके नहीं समझा जा सकता। जिस तरह शक्ति के बिना शिव अधूरे हैं, उसी तरह राधा जी के बिना कृष्ण। इसलिए राधा को जीवन की प्रवाह धारा समझा जाता है। राधा लोकमहेश्वरी है। भगवती पूर्णमासी कहती है- राधा यह आद्या, अखिलेश्वरी, सर्वसेव्या है।

राधा जी कृष्ण की आध्यात्मिक ऊर्जा तथा कृष्ण की वामांगिनी हैं। कृष्ण की उसी शक्ति का जन्म राधाष्टमी के दिन हुआ। श्री कृष्ण की आद्य शक्ति को नमन कर भक्त गण आनंद की अनुभूति करते हैं।

राधा जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल पद की अष्टमी को मथुरा से ३० कि.मी. दूर बरसाने गांव में राजा वृजभान और माता कीर्ति के घर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि प्रात: राजा वृजभान घूमने विहार के लिए गए और कमल के फूल पर अष्टमी के दिन राधाजी को देखा तो वे उन्हें अपने घर लिवा लाए। ऐसा कहा जाता है कि राधा जी कृष्ण से बड़ी थी लेकिन उन्होंने अपनी आंखें कृष्ण दर्शन के बाद ही खोलीं। राधाजी का अवतार पृथ्वी लोक पर श्रीकृष्ण के अवतरित होने से साढ़े ग्यारह माह पहले ही हुआ। जिस तरह राधा माधव सच्चिदानंद है, उसी तरह उनकी लीला भी सच्चिदानंद स्वरूप है।

नन्दबाबा और उनकी पत्नी यशोदा अपने कुटुम्ब के साथ पहले महावन (गोकुल-ग्राम) में रहते थे। श्री वृषभानुवर और उनकी पत्नी कीर्तिदा (कलावती) भी अपने कुल परिवार के साथ उसी ग्राम में रहते थे। दोनों परिवारों में प्रगाढ़ प्रेम और सौहार्द्र का सम्बन्ध था। इसी वृषभानु गोप की पत्नी कीर्तिदा के गर्भ से भगवान श्रीकृष्ण की प्रियतमा श्री राधा जी का अवतार हुआ था। श्री राधा जी कलिन्दजा कूलवर्ती निकुंज प्रदेश के रावल ग्राम के एक सुन्दर मन्दिर में अवतीर्ण हुई थीं।

उस समय भाद्रपद का महीना था। शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि, अनुराधा नत्र एवं सोमवार का दिन था। मध्याह्न का समय था और आकाश में बादल छाये हुए थे। देवगण नन्दन-वन के भव्य प्रसून लेकर मन्दिर पर बरसा रहे थे। श्री राधा जी अयोनिजा थीं। माता के पेट से पैदा नहीं हुई थीं। उनकी माता कीर्तिदा ने अपने गर्भ में वायु को धारण कर रखा था। उसने योगमाया की प्रेरणा से वायु को ही जन्म दिया, परन्तु वहाँ स्वेच्छा से श्री राधा जी प्रकट हो गईं।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के प्राकट्य के समय जो आनन्द रस की धारा बही थी, आज उनकी आनन्द-रस भावमयी इन हृदयेश्वरी के प्राकट्य के समय वही रस मानो समुद्र बनकर उमड़ चला और सभी दिशाएँ उस आनन्द-रस से आप्लावित हो गईं। उस समय श्रीराधा जी के अवतार धारण करने से नदियों का जल स्वच्छ हो गया। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न-निर्मल हो उठीं। कमलों की सुगन्ध से व्याप्त शीतल वायु मन्द गति से प्रवाहित हो रही थी। शरत-पूर्णिमा के शत-शत चन्द्रमाओं से भी अधिक अभिराम कन्या को देखकर गोपी कीर्तिदा आनन्द में निमग्न हो गईं। पुत्री के कल्याण के लिए उन्होंने मंगल कृत्य कराया और प्रचुर दान दिया। जिनका दर्शन बड़े-बड़े देवताओं को भी दुर्लभ है, तत्वज्ञ मनुष्य सैकड़ों जन्मों तक तप करने पर भी जिनकी झाँकी नहीं पाते, वे ही श्रीराधा जी जब वृषभानु के यहाँ साकार रूप से प्रकट हुईं और गोप ललनाएँ उनका लालन-पालन करने लगीं, तब सर्वसाधारण लोग उनका दर्शन करने लगे। सभी दिशाएँ जय-ध्वनि से गूँज उठीं। ऋषिवर करभाजन, श्रृंगी, गर्ग और मुनि दुर्वासा पहले से ही पधारे हुए थे। उन्होंने बालिका के मंगल ग्रह-नक्षत्रों का शोध किया और कुण्डली बनाई। सम्पूर्ण व्रज मण्डल में यह शुभ समाचार फैल गया। महाभाग नन्द-यशोदा सदल-बल उपहार लेकर पधारे। घर-धर बधाइयाँ दी जाने लगीं। सुवर्ण जटित एवं सुन्दर रत्नों से खचित, चन्दन निर्मित तथा रत्न-किरण-मण्डित पालने में सखी जनों द्वारा नित्य झुलायी जाती हुई श्री राधा प्रतिदिन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कला की भाँति बढ़ने लगी। श्री राधा क्या है- रास की रंगस्थली को प्रकाशित करनेवाली चन्द्रिका, वृषभानु मन्दिर की दीपावली, गोलोक-चूड़ामणि श्रीकृष्ण के कण्ठ की हारावली।

एक बार देवर्षि नारद बरसाने में गोप वृषभानु के घर गये। वहाँपर उन्होंने एक बालिका को देखा। उस बालिका को अपनी गोद में उठा लिया। उस बालिका के स्वरूप को देखकर नारद का मन मुग्ध हो गया और अपनी सुधबुध खो बैठे। होशोहवास आनेपर मन ही मन सोचने लगे मैं सदा स्वच्छन्द विचरनेवाला हूँ, मैंने सभी लोकों में भ्रमण किया है, परन्तु रूप में इस बालिका की समानता करनेवाली स्त्री कहीं नहीं देखी है। महामाया स्वरूपिणी गिरिराज कुमारी भगवती उमा को भी देखा है, किन्तु वे भी इस बालिका की शोभा को कदापि नहीं पा सकतीं। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या आदि सुन्दरी स्त्रियाँ तो कभी इसके सौन्दर्य की छाया का भी स्पर्श करती नहीं दिखाई देतीं, अत: मुझमें इसके तत्व को समझने की किसी प्रकार शक्ति नहीं है। यह भगवान की प्रियतमा है, इसे प्राय: दूसरे लोग भी नहीं जानते। इसके दर्शन मात्र से ही श्रीकृष्ण के चरण कमलों में मेरे प्रेम की जैसी वृद्धि हुई है, वैसी आज से पहले कभी भी नहीं हुई थी।

नारद उनकी स्तुति करने लगे- देवि, तुम महायोगमयी हो, माया की अधीश्वरी हो। तुम्हारा तेज: पुंज महान् है। तुम्हारे दिव्यांग मन को अत्यन्त मोहित करनेवाले हैं। तुम महान माधुर्य की वर्षा करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय अत्यन्त अद्भुत रसानुभूति-जनित दिव्य आनन्द से परिपूरित रहता है। मेरा कोई महान सौभाग्य था, जिससे तुम मेरे नेत्रों के समक्ष प्रकट हुई हो। हे देवि, तुम्हारी दृष्टि सदा आन्तरिक सुख में निमग्न दिखाई देती है। तुम भीतर ही भीतर किसी महान् आनन्द से परितृप्त जान पड़ती हो। तुम्हारा यह प्रसन्न, मधुर एवं शान्त मुख मण्डल तुम्हारे अन्त:करण में किसी परम आश्चर्यमय आनन्द के उद्रेक की सूचना दे रहा है। सृष्टि, स्थिति और संहार- तुम्हारे ही स्वरूप हैं, तुम्हीं इनका अधिष्ठान हो। तुम्हीं

विशुद्ध सत्त्वमयी हो तथा तुम्हीं पराविद्यारूपिणी उत्तम शक्ति हो। तुम्हारा वैभव आश्चर्यमय है। ब्रह्मा और रुद्र आदि के लिए भी तुम्हारे तत्व का बोध होना कठिन है। बड़े-बड़े योगीश्वरों के ध्यान में भी तुम कभी नहीं आती। तुम्हीं सबकी अधीश्वरी हो। इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति ये सब तुम्हारे अंशमात्र हैं। ऐसी मेरी धारणा है- मेरी बुद्धि में भी यही बात आती है। माया से बालक-रूप धारण करनेवाले परमेश्वर श्रीहरि की जो मायामयी अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सब तुम्हारी अंशभूता हैं। तुम आनन्दरूहपिणी शक्ति और सबकी ईश्वरी हो, इसमें तनिक भी सन्देह की बात नहीं है। निश्चय ही भगवान श्रीकृष्ण वृन्दावन में तुम्हारे ही साथ क्रीड़ा करते हैं। कुमारावस्था में भी तुम अपने रूप से विश्व को मोहित करने की शक्ति रखती हो। तुम्हारा जो स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण को परम प्रिय है, मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ। हे माहेश्वरि, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, चरणों में पड़ा हूं, मुझ पर दया करके इस समय अपना वह मनोहर रूप प्रकट करो जिसे देखकर नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण भी मोहित हो जाएँगे।

जब नारद इस प्रकार स्तुति कर रहे थे उसी समय वह बालिका क्षणभर में अत्यन्त मनोहर दिव्यरूप धारण करके नारद के समक्ष प्रकट हुई। उसकी सखियाँ वृषभानु कुमारी को देखकर खड़ी हो गईं। तब उनकी सखियोंने अपनी सखी राधा का चरणोदक लेकर मुनि के ऊपर छींटा और कहा- मुनिश्रेष्ठ, तुम बड़े भाग्यशाली हो, महान योगेश्वरों के भी ईश्वर हो। तुम्हीं ने पराभक्ति के साथ सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की आराधना की है। भक्तों की इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान की उपासना वास्तव में तुम्हारे ही द्वारा हुई है। यही कारण है कि ब्रह्मा और रुद्र आदि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवत् भक्तों के लिए भी जिसे देखना और जानना कठिन है, वही अपनी अद्भुत अवस्था और रूप से सबको मोहित करनेवाली यह श्रीकृष्ण की प्रियतमा हमारी सखी आज तुम्हारे समक्ष प्रकट हुई है। निश्चय ही यह तुम्हारे किसी अचिन्त्य सौभाग्य का प्रभाव है। देवर्षि, धैर्य धारण करके शीघ्र ही उठो, खड़े हो जाओ और इस देवी की प्रदक्षिणा करो, इसके चरणों में बारम्बार मस्तक झुका लो। फिर समय नहीं मिलेगा, यह अभी इसी क्षण अन्तर्धान हो जायेगी।

नारद ने वृषभानु गोप को बुलाकर कहा- हे गोप श्रेष्ठ तुम्हारी इस कन्या का स्वरूप और स्वभाव दिव्य है। देवता भी इसे अपने वश में नहीं कर सके। जो घर इसके चरण-चिन्हों से विभूषित होगा, वहाँ भगवान नारायण सम्पूर्ण देवताओं के साथ निवास करेंगे और भगवती लक्ष्मी भी सब प्रकार की सिद्धियों के साथ वहाँ मौजूद रहेंगी। अब तुम सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित इस सुन्दरी कन्या को परा देवी की भाँति समझकर इसकी अपने घर में यत्नपूर्वक रक्षा करो। ऐसा कहकर भगवत् भक्तों में श्रेष्ठ नारदजी ने मन ही मन उस देवी को प्रणाम किया और उसी के स्वरूप का चिन्तन करते हुए वे गहन वन के भीतर चले गए।

६) वृषभानु और कीर्तिदा के पूर्व जन्म की कथा- राजराजेश्वर महाभाग सुचन्द्र राजा नृग के पुत्र थे जो भगवान के अंश जाने जाते है। पूर्वकाल में पितरों के यहाँ तीन मानसी कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम थे- कलावती, रत्नमाला और मेनका। कलावती सुचन्द्र के साथी ब्याही गयी। रत्नमाला विदेहराज जनक के साथ जो सुननया के नाम से प्रसिद्ध हुई और मेनका हिमालय के साथ ब्याही गयी। सुनयना से सीताजी और मेनका से पार्वती और कलावती जो कीर्तिदा नाम से प्रसिद्ध है राधाजी का जन्म हुआ। सुचिन्द्र अपनी सुन्दरी पत्नी कलावती के साथ विभिन्न रमणीय स्थानों में रहकर दीर्घकाल तक विहार करने के पश्चात् भोगों से विरक्त हो गए और कलावती को साथ लेकर विन्ध्याचल पर्वत पर पुलहाश्रम पर ब्रह्माजी की तपस्या करने लगे और साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की। तदनन्तर ब्रह्माने प्रसन्न होकर वर दिया। उसी समय रानी कलावती ब्रह्मा से बोली- हे पितामह, यदि आप महाराज सुचन्द्र को मुक्ति दे रहे हो तो मेरी क्या

गति होगी? कान्त के बिना कान्ता की शोभा नहीं होती। श्रुतियों में कहा गया है पतिव्रता नारी के लिए पति ही व्रत है, पति ही गुरु, इष्टदेव, तपस्या और धर्म है। हे ब्रह्मन, सभी स्त्रियों के लिए पति से बढ़कर परम प्रिय बन्धु कोई नहीं है। पति-सेवा परम दुर्लभ है। ये मेरे पति मुझे प्राणों से भी बढ़कर है। पति-सेवा से दूर रहनेवाली स्त्री का सारा शुभकर्म निष्फल होता है। ये मेरे पति मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। यदि इन्हें मुक्ति प्राप्त हो गई तो मेरा रक्षक कौन होगा? मेरे धन और यौवन की रक्षा कौन करेगा? कुमारावस्था में नारी की रक्षा पिता करता है। फिर वह कन्या सुपात्र को दान देकर कृतकृत्य हो जाता है। तब से पति ही नारी की रक्षा करता है। पति के अभाव में उसका पुत्र रक्षक होता है। इस प्रकार तीन अवस्थाओं में नारी के तीन रक्षक माने गए हैं। पति के बिना पतिव्रता स्त्री एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। हे ब्रह्मन, यदि मेरे बिना ही आप इन्हें मुक्त कर देंगे तो मैं आपको शाप देकर स्त्री हत्या का दारुण पाप प्रदान करूँगी।

ब्रह्मा जी ने कहा कि हे देवि, मैं तुम्हारे शाप के भय से अवश्य डरता हूँ किन्तु मेरा दिया हुआ वर कभी विफल नहीं हो सकता। इसलिए तुम अपने प्राणपति के साथ स्वर्ग में जाओ। वहाँ पर स्वर्ग-सुख भोग कर कालान्तर में फिर पृथ्वी पर जन्म लो। द्वापर के अन्त में, भारतवर्ष में, गंगा और यमुना के बीच तुम्हारा जन्म होगा। तुम दोनों से जब परिपूर्णतम भगवान श्रीकृष्ण की प्रिया साक्षात् श्री राधिका जी पुत्री के रूप में प्रकट होंगी, तब तुम दोनों साथ ही मुक्त हो जाओगे। हे नृप श्रेष्ठ, तुम कुछ काल तक अपनी स्त्री के साथ स्वर्गीय सुख का उपभोग करो। यह स्त्री साध्वी एवं सत्वगुण से युक्त है। तुम मुझे शाप मत देना, क्योंकि श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में चित्त लगाए रखनेवाले जीवन्मुक्त संत समदर्शी होते हैं। उनके मन में श्रीहरि के दुर्लभ दास्यभाव को पाने की इच्छा रहती है। वे निर्वाण नहीं चाहते। फिर ब्रह्माजी अपने धाम को चले गये। दोनों दम्पति स्वर्गीय भोगों का उपभोग करके परम पुण्य दायक दिव्य स्थान भारतवर्ष में आये जहाँ देवता भी जन्म लेने की इच्छा रखते हैं। सुचन्द्र ने गोकुल में जन्म लिया। वे सुरभानु-पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न हुए। वे हरि के अंश थे और धीरे-धीरे व्रज के अधिपति बन गए। सुरभानु महिभानु के नाम से भी जाने जाते है। वृषभानु उदार, रूपवान, गुणवान और श्रेष्ठ बुद्धिवाले थे।

कलावती कान्यकुब्ज देश में उत्पन्न हुई। कान्यकुब्ज देश के राजा भनन्दन की पुत्री हुई। कीर्तिदा नाम से जानी गई। अपने पिता की अयोनिजा सन्तान यज्ञकुण्ड से प्रकट हुई। उसकी माँ मालावती थी। उसके जन्म के समय आकाशवाणी हुई- हे नरेश्वर, इस कन्या का नाम कलावती रखो। नन्दजी ने कलावती के पिता राजा भनन्दन और वृषभानु के पिता सुरभानु से साँठ-गाँठ करके दोनों का विवाह करवाया। राधिका इन्हींकी अयोनिजा पुत्री हुई। रानी कलावती रानी कीर्तिदा कहलाती है।

७) उद्धव का परिचय - उद्धवजी वृष्णि-वंशियों में एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात् बृहस्पति के शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। वे भगवान श्रीकृष्ण के प्रिय सखा और श्रेष्ठ मन्त्री थे। उद्धवजी वसुदेव के भाई देवभाग के भाग्यशाली पुत्र थे। ये महान ज्ञानी थे यह कृष्ण के चचेरे भाई भी हैं। उद्धव महान नीतिशास्त्रके पंडित थे और यादव-प्रशासनके प्रमुख मन्त्री रहे। उद्धवको कृष्णसे परमज्ञान मिला। नीति शास्त्र और अध्यात्म-ज्ञान समान रूपसे उद्धव के लिये करामलकवत् हैं।

उद्धवकी नीतिमत्ताका यश चारों ओर फैल गया। महाभारतके कई स्थानोंमें उद्धवकी नीतिकी प्रशंसा है। धृतराष्ट्रने विदुरकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि जैसे यदुवंशियोंमें नीतिके सर्वश्रेष्ठ और यशस्वी विद्वान उद्धव हैं, वैसे ही कुरुकुलमें तुम हो। जिसे भगवान्के सन्निधि, उनकी कृपा और उनका प्रेम प्राप्त है, उसके नीतिमान् होनेमें क्या सन्देह है? भगवान्की आज्ञाका पालन करते हुए उद्धव द्वारिकामें निवास करने लगे।

उद्धव भगवान्‌के नित्य पार्षद हैं, वे भी भगवान्‌की ही भाँति नित्य सिद्ध हैं। वे अब भी हैं और अधिकारियोंके सामने प्रकट होकर समय-समयपर भगवान्‌के तत्त्वज्ञानका उपदेश करते हैं। जब भगवान्‌की इच्छा होती है तब वे उन्हें अपने पास बुला लेते हैं और जब चाहते हैं तब संसारमें भेज देते हैं। पुराणोंमें ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं, जब भगवान्‌के दर्शनके समय भक्तोंको उद्धवके भी दर्शन हुए हैं।

उद्धवके जीवन में क्रमश: साधनभक्ति, साधनज्ञान, पराभक्ति और परमज्ञानका उदय हुआ है। वे भगवान्‌के प्रेमी भक्त हैं, उनके तत्त्वके परमज्ञानी हैं, उनके पार्षद हैं और उनके स्वरूप ही हैं। उद्धव भगवानके नित्य पार्षद है। उद्धवमें भगवानकी भक्ति थी, साधना थी, वे बृहस्पतिसे बुद्धिसम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञातव्योंका ज्ञान प्राप्त करके उनकी अनुमतिसे मथुरा लौट आये।

मथुरामें उनका बड़ा ही सम्मान था। सब लोग उनके ज्ञानके, उनकी नीतिके और उनकी मन्त्रणाके कायल थे। यदुवंशियोंमें जब काई काम करनेमें मतभेद होता, कोई उलझन सामने आ जाती, उनसे कोई समस्या हल न होती तो वे उद्धवके पास जाते और उद्धव बड़ी ही योग्यताके साथ सब उलझनोंको सुलझा देते, सारी समस्याको हल कर देते। सब उनकी बुद्धिपर, उनके शास्त्रज्ञानपर लट्टू थे, उनका पूरा विश्वास करते थे और वे भी सबकी सेवा करते हुए, सबका हित करते हुए कंसकी दुर्नीतियोंसे लोगोंको बचाते हुए भगवानके भजनमें तल्लीन रहते थे। उन्होंने अपना हृदय खोलकर श्रीकृणके सामने रख दिया था, वे श्रीकृष्णके एक अंतरंग सखा थे। उन्हें भगवानके दर्शनमें, सन्निधिमें, आलापमें और आज्ञा-पालनमें इतना आनन्द आता कि वे सारे जगत्‌को भूले रहते। श्रीकृष्णके साथ उनका सम्बन्ध सखाका सम्बन्ध था, वे श्रीकृष्णके एकान्त प्रेमी थे।

२) पृथ्वीका भगवान से भू-भार हरण की प्रार्थना करना

पापी लोगोंके तीर्थ में स्नान आदि करने से उनके पाप छूट जाते हैं और तीर्थों का प्राप्त होते रहते हैं। जब तीर्थ पापों से बहुत भारी हो जाते हैं तो गाय का रूप धारण करके सन्तों की शरण में जाते हैं। सब तीर्थ पापों का हरण और सुखों की अभिवृद्धि करते हैं। इसमें सर्वश्रेष्ठ तीर्थ भगवान श्रीकृष्ण कन्हैया हैं। जो गाय रूपी पृथ्वी के दुख को दूर करने के लिए मथुरा पुरी में प्रगट हुए।

जन्म-मरण से रहित हैं नारायण करतार। हरिभक्तन के हेतु सो लेत भूमि अवतार।।
जब पृथ्वी पर होत हैं अधिक पाप विस्तार। तबहीं सगुणै धरत हैं एकरूप अवतार।।
युग द्वापर के अंत में कंस कियो जब राज। साधु ऋषीश्वर दुख भयो दैत्यन बढ़े समाज।।
यज्ञ होम की हानि करि प्रजा को दु:ख दीन। ऐसो पाप विचार कर भूमि भई आधीन।।
जब सब देवन जाइकैं कीन्हीं बहुत पुकार। तब धरि सगुणै रूपको दूरि कियो महि भार।।

परीक्षित बोले- महाराज, हमारे पितामह महाराज युधिष्ठिर और अर्जुन आदि जिस भगवान की चरणरूपी नैया के सहारे, कठिनाइयों से भरी हुई दुस्तर कौरव सेनारूपी महासागर को, बड़ी आसानी से पार कर सके, उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण की लीला का पान हमें करावें। मैं मां के गर्भ में था। कौरवों एवं पाण्डवों के वंश-वृक्ष का एकमात्र अवशिष्ट बीज मैं ही था। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से मेरा यह शरीर जल चुका था। रोती हुई मेरी माँ उस विपत्ति की अवस्था में कृष्ण की शरण में गई। भगवान कृष्ण ने उठाया सुदर्शन चक्र और सीधे प्रवेश कर गये मेरी माता की कोख में। वहाँ सुदर्शन के तेज से ब्रह्मास्त्र को दग्ध किया और अपनी अमृत-वर्षिणी दृष्टि से मुझे पुन: उज्जीवित कर दिया। उन्हीं भगवान की लीला का श्रवण हमें करावें।

मुनिवर, जो समस्त प्राणियों के बन्धन एवं मुक्ति के कारण हैं, जो कृपावश ही सम्प्रति नर-लीला करने आये हैं, आप उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण की लीला श्रवण हमें कराने का अनुग्रह करें।

विधि, हरि और शम्भु को भी नचानेवाले श्रीकृष्ण ने वज्र में और मथुरा में रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं?

मानव शरीर धारण करके उन्होंने द्वारिकापुरी में यदुवंशियों के साथ कितने वर्षों तक निवास किया? उनकी कितनी पत्नियाँ थीं? इन सारी बातों को और जिन बातों को मैं नहीं पूछ सका हूँ, उन्हें भी बतलाने की कृपा करें यदि वे कृष्ण से सम्बन्ध रखती हों तो।

अवतीर्य यदेविशे भगवान भूतभावन:। कृतवान यानिविश्वात्मा तानि नो वदइ विस्तरात्।।

शुकदेव बोले- राजन्, मैं देख रहा हूँ कि आपने चार दिनों से कुछ खाया नहीं है अत: कुछ भोजन कर लें तब कथा का क्रम आगे बढ़ाया जाय।

यहां राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। राधाजी शुकदेव जी की गुरु हैं। गुरु का प्रसंग आते ही उनके समाधिस्थ होने का खतरा था। समाधि लगते ही कथा का क्रम विच्छिन्न हो जायेगा।

सुनिकै शुक बोले तभी राजा तू बड़भाग। माखन प्रभु सों या समय बाढ़्यो है अनुराग।।

परीक्षित् बोले- गुरुदेव, मैंने चार दिनों से भोजन तो नहीं ही किया है, किन्तु जल भी नहीं ग्रहण किया है। फिर भी असह्य भूख-प्यास मुझे तनिक भी नहीं सता रही हैं। एक दिन इसी प्यास से व्याकुल होकर मैंने मुनि के गले में मरा हुआ साँप डालने का अपराध किया था। सम्प्रति मैं आपके मुखचन्द्र से बरसनेवाले कथारूप अमृत का पान कर रहा हूँ अत: भूख-प्यास का कोई असर ही नहीं है। अमृत-पान करनेवाले को भला भूख-प्यास कैसे व्याकुल कर सकती है?

शुकदेव बोले- राजन्, तुम्हारे जैसा श्रोता मैंने नहीं देखा। जो चार दिन से कथा सुन रहे हो। न प्यास, न भूख।

नैषातिदु:सहाक्षुन्मा त्यक्तोदमपि बाधते। पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।।

परीक्षित् बोले- महाराज, मुझे भूख, प्यास नहीं लगती। आपके मुखसे गोविन्द की अमृतमयी कथा का पान करना चाहता हूं।

ऐसा कौनसा अत्यधिक तप एवं सुकृत था जिससे वसुदेव देवकी परम प्रभु के माता-पिता बने। नन्द यशोदा का कौनसा तप सुकृत था जो उसी परम प्रभु का वात्सल्य प्रमोद प्राप्त किए। जो काल का भी काल परम विकराल है उससे तुच्छ कंस को क्या भय था जो प्रभु अवतार धारण कर मथुरा में सूतिका गृह से ब्रज चले गए। घर-घर में जाकर माखनचोरी की। ब्रजवनिताओं के वस्त्र का हरण किया। ब्रज बनिताओं की ऐसी कौनसी भारी तपस्या एवं सुकृत था जो ऐसा परम सौभाग्य को प्राप्त हुई। परम प्रभु कृष्ण की राधा परम प्रेयसी हैं सदा गोलोक धाम में निवास करनेवाली हैं। वही प्रभु की परम प्यारी राधा किस कारण से ब्रज में वृषभानु की दुलारी बनीं। प्रभु कृष्ण ब्रज के गोप-गोपियों के प्रेम में लुभाए रहते थे फिर वो उन्हें छोड़कर क्यों मथुरा आई। फिर मथुरा छोड़कर द्वारिका में क्यों वास किया। राधापति योगेश्वर कृष्णने एक नहीं कई अन्य विवाह क्यों किए? कौरवों और पाण्डवों भाई-भाई में आपस में सन्धि नहीं कराके क्यों महाभारत करवा दिया? फिर दुर्वासा ऋषि के शाप के बहाने क्यों अपने कुल का नाश करवाया। हे मुनिवर, यह सब रहस्य मुझे समझाकर कहें। यही सब प्रश्न गिरिजा ने अपने पति शिवसे पूछे थे।

शौनक ऋषियों ने कहा- सूतजी, श्रीकृष्ण और बलराम किस लिए अवतीर्ण हुए? वे वसुदेव के पुत्र होकर नन्द के घर में क्यों रहे? यह मर्त्यलोक सर्वथा नि:सार है। अत्यन्त दु:खदायी है। पानी के बुलबुले की तरह अत्यन्त क्षणभंगुर है। ऐसे संसार में उन्हें जन्म ग्रहण करने की क्या आवश्यकता पड़ी। इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर उन्होंने जो लीलाएँ की उनके

सम्पूर्ण चरित्र अद्‌भुत और अलौकिक है। कृष्ण सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी, सुरश्रेष्ठ तथा अविनाशी परमात्मा हैं। उन्होंने अपने दिव्य स्वरूप को मानवों के बीच में फिर से प्रकट किया। जो भगवान सम्पूर्ण जंगम प्राणियों की गति हैं, वे मानव शरीर में कैसे आये? कृष्ण सम्पूर्ण जगत के रक्षक और सर्वलोक महेश्वर है, संसार की सृष्टि, पालन और संहार वे ही करते हैं। वे ही सब लोकों को सुख देनेवाले हैं। वे अक्षय, सनातन, अनन्त, क्षय और वृद्धि से रहित, निर्लेप, निर्गुण, निर्विकार, निरंजन, सर्वशक्तिमान, अविकारी, विभु, नित्य, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त तथा शाश्वत परमात्मा हैं। उन्हीं परमेश्वर की लीलाओं को जिनका रहस्य अत्यन्त गहन व गम्भीर है कृपा करके बताइये।

सूतजी ने कहा- शौनकजी, राजा परीक्षित् के इतने सुन्दर प्रश्न को सुनकर शुकदेव जी प्रसन्न हो उठे। इसके बाद उन्होंने कलियुग के पापों को धो डालनेवाले भगवान के चरित का वर्णन शुरू किया।

यही कृष्णचरित्र है जो शिवजी ने पार्वती को सुनाया था।

शिव बोले- हे गिरिजा तुम्हारी बुद्धि धन्य है जो अभिरस से प्लावित होकर अपने मूल्य स्वरूप अतीव परमात्मा में लीन होकर प्रभु कथा का प्रसंग छेड़ा मानों धरती पर अमृत की गंगा लाना चाहती हो। जिस प्रकार संशय में आकर हे भवानी तुमने मुझसे प्रश्न किये है उसी प्रकार बड़े-बड़े बुद्धिमान ज्ञानी भी परम प्रभु के रहस्य को न जानकर भ्रमित हो जाते हैं। लौकिक रीति नहीं जानकर अज्ञानी हो जाते हैं। प्रभु पर दोष लगाकर अनेक प्रकारके तर्क करते हैं। हे शैल सुता तुम्हारे सब संशय और भ्रम का निवारण करूँगा। तुम्हारे और मेरे सम्वाद को सुनकर जग का कल्याण होगा। प्रभु अनन्त हैं, प्रभु का चरित्र अनन्त हैं। प्रकृति और परमेश्वर के परम रहस्य की कथा अब कहूँगा जिसे सुनकर तुम्हारे सभी भ्रम वितर्क मिट जाएंगे तथा सदचित ज्ञान की प्राप्ति होगी। उस मूल परमात्मा को कोई ब्रह्म कहता है, कोई उसे विराट कहता हैं। कोई द्वैत कहता है, कोई अद्वैत कहता है। कोई उसे योग रूप कोई काल रूप कोई निर्गुण और कोई सगुण कहता है। कोई यज्ञ रूप, कोई कर्म रूप, कोई ज्ञान रूप, कोई तेजरूप और कोई धर्म रूप कहता है। कोई उसे अगम अलख निर्लेप कहता है, कोई कर्ता रूप, कोई धर्ता रूप, कोई वर्त या अवर्त कहता है। कोई विरति रूप कोई नियम रूप कोई भक्ति रूप कोई उसे प्रेम रूप कहता है। कोई उसे सत्य रूप कोई उसे मूल रूप कहता है सब उसीकी शाखा है। उस प्रभु के परम कृपा के बिना उसके रहस्य का परम ज्ञान नहीं होता है। हे गिरिजा सुनो, इस जीव के सभी जीव प्रकृति के प्रबल मोह मायासे विमोहित हैं। सत रज तम इन दारुन तीनों गुणों से जीव की बुद्धि मन चित्त मलीन हैं। जीव इस अज्ञान रूपी इस कूप में हमेशा व्यथित रहता है फिर वह प्रभु के परम स्वरूप को कैसे समझ सकता है? यह जीव चिन्मय एवं सहज सुखरासी है। यह माया के वशीभूत विविध योनियों का वासी है। इस जीव को नाना प्रकार के दारुन दुखों को भोगते देखकर भगवान मनुष्य का शरीर देते हैं। यह मानव शरीर भव विषय भोग के लिए नहीं है यह श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्ति के लिए सेतु हैं। वे मनुष्य अति धन्य है जो मानव शरीर पाकर मन वचन कर्म के द्वारा प्रभु कृष्ण का भजन करते हैं। जब तक जीव में मैं और मेरापन है तब तक वह दुखी है। जिस दिन परमात्मा को वह अपने आपमें पूर्णतया अर्पण कर देगा तो जीव सुखी हो जायेगा। वही नेत्र सफल एवं धन्य हैं जो कृष्णकी परम छबि को देख ले। वही जिह्वा पवित्र है जो प्रभु कृष्ण चरित्र का गान करे वही कर्ण धन्य हैं जो सुन्दर सुखदाई कृष्ण चरित्र का श्रवण करे। वो हाथ सुन्दर और धन्य हैं जो हमेशा प्रभु कृष्णके लिये सेवा करें। कृष्ण चरित्र परमात्मा के परम गति के लिए योग स्वरूप है। दारुन भवरोग के लिए एकमात्र औषधि है। वही लोग अत्यन्त बड़भागी है जो कृष्णके अनुरागी हैं। जैसे कोई व्यक्ति गंगा में स्नान करके अपने पापोंको नष्ट करता है और पवित्रता को ही

प्राप्त होता है उसी प्रकार सुकृत मय प्रभु कथा का मज्जन करके श्रोता वक्ता दोनों पवित्र होते हैं।

मायाके वशीभूत जीव परमात्मा को नहीं जान पाता है। वह इस अनृत झूठे संसार को ही अपना श्रेय समझता है। इसलिये विविध प्रकार के मनोरथ करते रहता है। परमात्मा के भक्तिरूपी कर्म को त्यागकर दोष मय काम क्रोध मद लोभ कर्मों को करता है तथा पग पग पर दारुन दु:खों को पाकर ईश्वर को दोष देता है। इस संसार में सभी भाव सभी रस व्याप्त हैं सुकृत हीन मनुष्य नहीं प्राप्त कर पाते। जप तप योग वैराग्य ज्ञानादि साधना इस कलियुग में अत्यन्त कठिन है। सबसे ज्यादा सुगमता सरलता रुचिरता ब्रजभूषण प्रभु कृष्ण के दिव्य चरित्र में रति करना है। जो प्रभु कृष्ण के गुन का गान नहीं करते हैं वे अमृत त्यागकर विषय का ही पान कर रहे हैं। यह जीव इस संसार में तभी तक भटकता रहता है जब तक परम प्रभु कृष्ण को नहीं भजता। जहाँ पर नित्य प्रभु का गुनगान होता है वह स्थल तो तीर्थ के समान हैं। जब जीव का बहुत पुण्य उदय होता है तब प्रभु के गुण श्रवण का सुन्दर योग प्राप्त होता है। जो मनुष्य शरीर पाकर प्रभु के कथामृत का सादर गान नहीं करते हैं उसका सारा जीवन व्यर्थ है वह चाण्डाल और गधे के समान हैं। प्रभु कृष्णके चरित्र का अपार रहस्य है। उनकी कृपा के बिना कोई उसमें पार नहीं पा सकता है। पूरे परिकर के साथ प्रभु कृष्ण अविकारी है मूर्ख लोग उन्हें प्राकृतिक नर नारी समझते हैं। पूरे परिकर के साथ प्रभु कृष्ण का रूप अचिन्त्य, चिन्मय एवं रुचिकर हैं। कृष्ण स्वयं में एक महान रस है उसका आदि मध्य अन्त नहीं है। स्वयं प्रभु सीताराम ही राधेश्याम हुए। उन्हीं के लीला परिकर के लोग गोप गोपी रूप हुए। प्रभु स्वयं ही पुत्र हैं स्वयं ही अपना माता-पिता हैं, स्वयं ही अपना सुहृद हैं। प्रभुने स्वयं ही अपना विस्तार गोप गोपियों और पत्नियों के रूप में किया। एक ही तत्त्व अपनी माया द्वारा विविध रूपों में विविध प्रकार से दिखाई पड़ता है। युगल रूप में रहनेवाले एक ही सियाराम भिन्न अभिन्न दाहिन वाम प्रतीत होते हैं। स्वयं ही पुरुषाकार हैं स्वयं ही श्रीकार हैं स्वयं ही अपने आपको स्वजन के व्यास में सँवार कर रखे इस दृश्य को देखकर हँसते-हँसते लोटपोट होकर परमानन्द में निमग्न हो जाते हैं।

प्रबल कंस से पार नहीं पाया। फिर कंस अपने सुभों के साथ देवगणों का मान भंग करने के लिए चला। असुरों के साथ कंस यहाँ तक चढ़ आया है यह सुनकर देवों के साथ सुरपतिने धावा किया। बलमदमत्त विजय की कामना से दोनों दल परस्पर में भिड़ गए। एक एक को बहुत प्रकार से प्रहार करने लगे। बहुत बिकट संग्राम हुआ। फिर इन्द्र ने अपने वज्र से प्रहार किया उस वज्र की धार को कंसने अपनी गदा से तोड़ दिया। फिर कंसने परिघ मारकर सुरपति को गिरा दिया जिससे इन्द्र को एक क्षण के लिए मूर्छा आ गई। यह देखकर मरुदगण गरजते हुए दौड़े। धनुष को खींचकर बाणों की झरी लगा दी। जिस प्रकार मेघमण्डल सूर्य को ढँक लेता है? उसी प्रकार वे बाण कराल कंस को ढँक लिए। यह देखकर कुपित होकर बाणासुर दौड़ा बाण मारकर मरुदगणों को मार गिराया। फिर आदित्य, रुद्र, वसु के समूह भी अनेक अस्त्र शस्त्र बरसाने लगे। यह देखकर प्रलम्बासुर भौमादिक दौड़कर प्रहार करने लगे जिससे देवगण भयभीत होकर भाग खड़े हुए। सुरपति इन्द्रने फिर से देवों को हाँक लगाकर अपने हाथी ऐरावत को अंकुश मारा। अत्यन्त खिसिया कर वह गजराज चला गर्जकर पैरों तले रिपुदल को मर्दने लगा। अपने दल को विचलित होते देखकर कंस ने वज्र के समान मुष्टिका मारी जिससे वह गज अत्यन्त व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ा। फिर उठकर उसने कंस को बहुत दूर फेंक दिया। कंसने फिर समर भूमि में आकर उस गज के सूड़ को मरोड़ करा गिरा दिया। फिर वह गजराज अत्यन्त भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ। फिर कंसने भगवान विष्णु के धनुष का सन्धान किया। उससे दुसह कराल विषधर बाणों को छोड़ कर सुरगणों को घायल और बेहाल कर दिया। सभी देवगण अत्यन्त भयभीत होकर समरांगण को छोड़ इधर-उधर सब दिशाओं में भाग चले। सभी देवगणों

को जीतकर देवराज का छत्र युत सिंहासन लेकर अपने सहायक असुरों के साथ मथुरा पुरी आ गया।

सुतजी बोले- मुनियों, कृष्ण एक अद्वितीय ईश्वर हैं। अपनी लीला से जगत् की सृष्टि पालन तथा संहार करते हैं तथा उनमें आसक्त नहीं होते। जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्म से अपना पेट पालने लगते हैं तब ये ही सत्वगुण को स्वीकार कर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश को प्रकट करते हैं और संसार के कल्याण के लिए युग-युग में अनेकों अवतार धारण करते हैं।

शुकदेव बोले- राजर्षे, आपका प्रश्न बहुत ही सुन्दर और कल्याणमय है। श्रीहरि आदि, सनातन, अविनाशी, नित्य निरन्तर, घटघटवासी हैं पुराण जिसको पूर्ण ब्रह्म बतलाते हैं, शिव और ब्रह्मा भी जिनका आदि अन्त नहीं जान पाते, जिनका गुणगान योगीजनों के लिए भी अगम्य है, जो अद्वितीय है, ज्ञानीजन जिसका निरन्तर ध्यान करते हैं, जो पुरातन पुरुष हैं और निर्वाण देनेवाला है, जप-तप संयम से भी जाना नहीं जाता, वही भगवान हरि नन्द के आंगन में श्रीकृष्ण बनकर दौड़ते है। जिसके लोचन, श्रवण, जीव, कान, हाथ-पैर आदि इंद्रियां नहीं हैं, फिर भी सृष्टि की रचना पालन और संहार करते हैं, जिनका नाम विश्वम्भर है वही गोकुल के घर-घर में जाकर माखन चोरी करते हैं। नारद सनकादि मुनि भी जिनकी लीला और महिमा का पार नहीं पाते, जो सगुण और निर्गुण रूप से रहित हैं, जो जन्म-मरण से रहित है, जिसको माया नहीं व्याप सकती, जिसके कोई माता-पिता, बन्धु-पुत्र आदि नहीं है, जो ज्ञानरूप से सबके हृदयमें विराजता है वही गोकुल में गोपियों और गायोंके बछड़ों के पीछे दौड़ता है, जो जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश इन पंचभूतों के सारे संसार की रचना करता है, जो अपनी माया से सारे जग को मोहित करता है, जो कारण और कार्य दोनों ही है, वही भगवान बाबा नन्द के यहाँ गाय चराते हैं। जो अच्युत है, परमानन्द है और सब जग को परम सुखदायी है वही व्रज की गोपियों के संग रास रचाता है। जिसके डर से महाकाल भी डरता है उसीको माता यशोदा ऊखल से बाँधती है। जो त्रिगुणातीत है, जिसकी गति कोई नहीं जान सकता, जिसके अपार यश का वेद और श्रुति का गान नहीं कर सकते, वही गोपियों के पीछे-पीछे चलता है। जिसकी माया को कोई नहीं जानता, निर्गुण और सगुण रूप स्वेच्छा से धारण करता है, चौदह भुवनों का पल निमेष में ही बनाता और बिगाड़ता है, जिसके चरण कमलोंको लक्ष्मीजी सदा पलोटती रहती हैं, नित्य नयनों से निहारती हैं, जो अगम और अगोचर है, वही राधिका गोपी के संग कुंज की गलियों में विहार करता है। जो रस ब्रह्मा आदि देवताओं को भी दुर्लभ है, वही रस गोकुल की गलियों में बहता है।

तुम्हें वह कथा सुनाऊंगा जो शिवने कैलास पर उमाको सुनायी थी। देवताओं को जीत अभिमानी कंस ने अपने आप को तीनों लोकों में अजेय मान लिया। भौमादिक जितने असुर थे वे सब कंस की जैसी रुचि रहती थी वैसा ही करते थे। वे खल असुर छद्म वेष में नाना प्रकार से दिनरात उपद्रव करते थे। सब ओर अति घोर खल दल की बाढ़ हो गई धरती पर सब ओर अधम ही छा गया। सब प्रकार से धर्म का निर्मूलन करने लगे साधु जनों को दारुण सूल देने लगे। चारों दिशाओं में वेद ब्राह्मण देवताओं की निन्दा होने लगी धरती मानों बहुत से भारी पहाड़ों से दब गई। कहीं भी दया और सरलता की रीति नहीं रह गई सभी की हिंसा कुटिलता में प्रीति हो गई। माता पिता देवता, सन्त कोई भी नहीं मानता था जहाँ तहाँ परस्पर में बैर होने लगे। गुरुजनों का बड़े छोटे का विचार नहीं रह गया पूरे संसार में निज शरीर का सुख ही सब का श्रेय बन गया। धर्म की रीति तथा सुहावनी प्रभु की भक्ति कहीं कहीं खद्योत (जुगनू) की तरह दिखाई पड़ने लगी। सर्वत्र अमित तामस ही तामस अभिमान ही अभिमान छा गया, पग पग पर गुरु का अपमान होने लगा। प्रभु का कथा प्रसंग कहीं भी सुलभ नहीं रह गया सभी भव विषयों के कुरंग में रँग

गए। जप, तप, जोग, ज्ञान, वैराग्य सब कुण्ठित होकर धरती से भाग गए। चारों दिशाओं में भ्रष्ट आचार ही व्याप्त हो गया संसार में कहीं भी शुभ आचरण नहीं रह गया। इस प्रकार असत गुण को अतिशय प्रबल एवं सत गुण की बड़ी हानि देखकर धरती प्रभु का सुमिरन करके परम भयभीत होकर अत्यन्त व्याकुल हो गई।

जब-जब धरती पर अन्याय ने अपनी पराकाष्टा को पार किया, धरती पाप के बोझ से दबने लगी, ऋषि-मुनि, सन्यासियों व भगवान के भक्तों पर दानवी अत्याचार हुए, तब-तब भगवान ने क्षीरसागर के शेषासन को छोड़कर धरती पर अवतार लिया और धरती को भय मुक्त किया। साथ ही साथ भगवान ने हर अवतार में मानव को मानव धर्म सिखाते हुए यह बताया कि प्रेम व भक्ति से ही मोक्ष व भगवान को पाया जा सकता है।

भगवान भक्त विशेषको कृतार्थ करने-उसकी भावनाके अनुरूप दिव्यधामसे स्वयं प्रभु प्रेमवश पधारते हैं। वे दर्शन देकर अन्तर्हित हो जायेंगे या सम्पूर्ण लीला व्यक्त करेंगे, यह तो वे ही जिनके प्रेमवश पधारे हैं, उनकी भावना पर निर्भर है, किन्तु वे कब आयेंगे, कब तक इस धरापर रहेंगे इसका कोई नियम नहीं। सर्वेश्वर वस्तुत: भौतिक धरापर कभी नहीं आते। केवल वे यहाँ अपने को व्यक्त करते हैं तभी उनका नित्यधाम उनके परिकरादि भी व्यक्त हो जाते हैं। यह धरा सृष्टिकर्ताके मानसमें और सृष्टिकर्ता स्वयं भगवान नारायणकी नाभि कमलपर स्थित हैं। अनेकों ब्रह्माण्ड सगुण परमेश्वरके संकल्पमें ही उदय-विलय होते हैं। कभी वह लीलामय व्यक्त कर देता है और कभी तिरोहित कर देता है। सृष्टिके पालन का दायित्व भगवान विष्णु का है। परिपूर्णतम परमेश्वर तो परम स्वतन्त्र है। सृष्टि और सृष्टिके विधान उसे परवश नहीं कर सकते। वह केवल तब प्रगट होता है, जब भावुक भक्तोंका प्रेमाग्रह उसे विवश कर देता है।

सृष्टिका मर्यादा का अतिशय अतिक्रमण होने लगे तो व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए, किसी धर्मात्मा, तपस्वीपर संकट आया हो और उसके निवारणका अन्य मार्ग न हो तोब उसके रक्षणके लिए और भक्तिप्राणजनोंकी भावनाको सार्थक करनेके लिए अवतार होता है।

द्वापर युग में जब अत्याचारी कंस का अत्याचार पराकाष्ठा को पार कर गया तब भगवान ने कृष्ण के मानव रूप में देवकी की कोख से जन्म लेकर व यशोदा के मातृत्व की छांव में पल-बढ़ कर अनेक रासलीला करते हुए समय आने पर अत्याचार-दुराचारी कंस का वध किया व धरती को उसके अत्याचारों से मुक्त किया।

द्वापर युग के अन्त में बाढ़े असुर अपार। धर्मविमुख असुभृतन का, सहन सकी भू-भार।।

वह समय था जब लाखों-लाखों असुरोंने पदाभिमानी मदमत्त क्षत्रिय राजाओंके रूपमें प्रकट होकर अपने भारसे पृथ्वीको एकदम आक्रान्त कर दिया। वाराह कल्प में पृथ्वी असुरों के अधिक भार से आक्रांत हो गई। उससे त्राण पाने के लिये सुमेरु पर्वत पर देवताओं की सभा में नारी रूप (गौ) रूप में गयी। पृथ्वी, भूलोक पर अपना कोई रक्षक न देखकर, गौ के देह को धारण करके ब्रह्मलोक में गई।

धराके दो कार्य हैं- धारण और पोषण। धराका आधिदैवत रूप है गौ। भूदेवीके रूपमें तो वे नित्य भगवान नारायणकी सहचरी हैं। पृथ्वी की अपनी पहुँच ब्रह्मलोक तक- सृष्टिकर्ता तक ही है। पार्थिव साधनोंसे होनेवाले कर्मोंकी गति भी यहीं तक है। धर्म और तपके द्वारा मनुष्य यहीं तक पहुँच सकता है। योग, ज्ञान, उपासना तो भगवान हरिसे एकत्व प्राप्त करानेवाले साधन हैं किन्तु धर्म और तप का माध्यम देह है। जो सृजनका अधिदेवता है, जगतमें अव्यवस्था, अधर्म उत्पन्न करनेवालोंकी सृष्टि भी उसीने की है। इन आततायी शक्तियों को ऱ्हास करने में न स्रष्टा और न देवता ही समर्थ हैं। वे इस भार को दूर करनेमें असमर्थ हैं। देवता समर्थ रहते हैं, तब तक वे भौतिक उपद्रवोंके माध्यमसे सन्तुलन बनाये रखते

हैं किन्तु नर तो नारायणका सखा है। उसका बल- उसकी बुद्धि- अनेक बार वह मन्त्र, तप अथवा औषधि (विज्ञान) के द्वारा सुरोंकी शक्तिको कुण्ठित कर देता है। सृष्टिकर्ता सृजन कर सकते हैं, उनका कार्य वृत्तियोंको स्वरूप देना है पर वे स्वयं नियंत्रण करने में असमर्थ हैं। नियंत्रण एवं पालनकर्ता तो अन्तर्यामी वासुदेव ही है। इसके लिये ब्रह्मा को, देवताओंको एवं पृथ्वीको एकसाथ एकाग्र होकर क्षीरसागरके तटपर जाकर प्रार्थना करनी पड़ती है। पालन, शासन, संरक्षण भगवान आशुतोष महादेव का स्वभाव व काम नहीं है। वे ओघड़धानी किसीको वरदान भी देते हैं, वे विश्वके परम ज्ञानगुरु है। ज्ञानका स्वभाव सृजन-संरक्षण नहीं है। ज्ञानका स्वभाव प्रकाश देना, सबको प्रकाशित करना और सम्पूर्ण भ्रम, अविद्या को मिटा देना है। यह इसपर निर्भर है कि हरि सृष्टिमें अवतार कब और कैसे लेंगे, उसका स्वरूप क्या होगा। परम तत्व के यह पाँच स्वरूप है- भगवान नारायण, महादेव, महाशक्ति दुर्गा, गणपति और सूर्यदेव। साकार विग्रह पृथक-पृथक होते हुए भी एक ही परम तत्व के अनेक रूप हैं। इनमें न सामर्थ्य का कोई तारतम्य है और न अनुग्रह का। किसीकी आराधना, तपसे संतुष्ट होनेपर भगवान आशुतोष, महाशक्ति और गणपति यह नहीं देखते कि जो सामने वरदान माँगने आया है वह सुर है या असुर। वह जो वरदान माँग रहा है, उसका सदुपयोग करेगा या दुरुपयोग। अनेक बार इनसे वरदान पाकर असुरोंने सुरोंको संत्रस्त किया। ब्रह्मा का सृजन जिनका व्यसन है वे मोक्ष तो दे नहीं सकते। मोक्षके अधिपति तो भगवान नारायण ही है। नारायण शुद्ध, सत्त्व विग्रह हैं। जब किसीको स्त्री के अतिरिक्त अन्य सभीसे अबध्य होनेका वरदान प्राप्त हो तो महाशक्ति को अवतार धारण करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी असुरताका प्राबल्य विघ्नोंकी गणनामें आता है तो गणाधीश गणपति को पुकारना पड़ता है। भगवान को अवतार लेनेके पहले यह देखना पड़ता है किन भगवत्स्वरूपों से असुरोंने किससे और कब अनुग्रह प्राप्त किया है। जब ऐसी परिस्थिति और समय आता है तो परात्पर परम प्रभु को धरा पर अवतार लेना पड़ता है।

असुरों के अत्याचारों से दुखी होकर पृथ्वी देवी ने गाय का रूप बनाकर ब्रह्मा जी से अपनी दुख भरी व्यथा सुनाई। वह बोली हे ब्रह्माजी, आपकी मेदिनी अर्थात पृथ्वी अति दुखी है आप मेरे कष्टों का हरण करें।

नाथ नाथ मैं परम दुखारी। देव आइहूँ शरण तुम्हारी।
तुम बिन और न कोई मम त्राता। तुमही बन्धु जनक गुरु माता।।

ब्रह्माजी सहित सभी देवताओं को प्रणाम करके अपना कष्ट निवेदन किया। पृथ्वी कहती थी मुझको मनुष्योंका बोझ बोझ नहीं लगता। विषयी जीव और पापी जीव जब आकर मेरे ऊपर रहने लगते हैं तो मैं दब जाती हूँ, घबड़ा जाती हूँ। मेरे ऊपर चाहे जितने आदमी रहें, पर हजारों, लाखों दैत्योंने धरतीपर घमण्डमें भरे हुए राजाओंके रूपमें प्रकट होकर, जन्म लेकर पृथ्वीको अत्यन्त दबा दिया और पृथ्वी बड़ी दु:खी हो गयी। पृथ्वी तो सत्तारूप है। इसपर जो दैत्यभाव है, अहंकार है, मोह-ममता है; उसीका भार है। जब मोह, ममता, अहंकार आदिसे ग्रस्त होकर मनुष्य दैत्यप्राय हो जाता है तब पृथ्वीके ऊपर उसका भार बढ़ जाता है। पृथ्वीपर पार्थिव देहोंकी संख्या कुछ भी हो, उससे भूमिपर भार नहीं बढ़ता। धरा पर दो ही तरह के भार है - सेनाकी अभिवृद्धि। समाज में उत्पीड़क निरंकुश तत्त्वोंको नियंत्रित रखने तथा बाहरी आक्रमणसे रक्षाके लिए; किन्तु प्राय: क्रूर एवं महत्वाकांक्षी शासक दूसरे राज्योंपर शासन-स्थापित करनेके लिए, उन्हें पराजित करनेके लिए सैन्यशक्ति बढ़ाते रहते हैं- बढ़ाते ही जाते हैं। जब एक पड़ोसी या प्रतिद्वन्द्वी अपनी सैन्यशक्ति बढ़ाता है तो दूसरेको भी अपनी सुरक्षा या प्रतिष्ठा-रक्षाके लिए सैन्यशक्ति बढ़ानी पड़ती है। इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जानेपर पूरा समाज

बहुत पीड़ा पाता है। सेनाको सबसे अधिक सुविधा चाहिये; क्योंकि उसे सदा युद्ध-तत्पर रहना पड़ता है। उसपर होनेवाला व्यय पर्याप्त अधिक होता है। सामान्य नागरिक की अपेक्षा युद्धके अतिरिक्त सेनाका कोई उपयोग नहीं। सेना उत्पादक तत्त्व नहीं है। देशके उत्पादनका एक बड़ा भाग सेनापर व्यय होता है। यह व्यय बढ़ता जाता है। सैन्यशक्तिकी वृद्धिके साथ और उत्पादक समाजको अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत होनेको बाध्य होना पड़ता है। प्रतिस्पर्धीका आतंक सैन्यशक्तिको घटाने नहीं देता। इस प्रकार सेनाकी वृद्धि पूरे समाजपर पृथ्वीपर ही भार बनती है। सम्पूर्ण मानव ही नहीं, सम्पूर्ण प्राणियों का शोषण चलता रहता है सेनाके लिए। राज्योंकी संख्या जितनी बढ़ती है- सेनाका भार उतना बढ़ता जाता है। केवल किसीको पराजित कर देनेसे ही बात समाप्त नहीं होती। अन्याय, अधर्म, उत्पीड़न-शोषण करनेवालेको अपना प्रभुत्व, अपना आतंक बनाये रखनेके लिए बहुत बड़ी सैन्यशक्ति सन्नद्ध रखनी पड़ती है। यह बढ़ी हुई सेना समाजपर भार है और उसका आतंक भार रहता है जनमानसपर।

जब देवशक्ति भी आसुर मानवों अथवा असुरोंकी बढ़ी सेनाका भार दूर नहीं कर पाती, सृष्टिकी मर्यादाकी सुरक्षाका जिनपर दायित्व है, तब वे श्रीहरि स्वयं पधारते हैं और यह भार दूर करनेकी व्यवस्था करते हैं। कोई प्रबल सैन्यशक्ति सम्पन शासक अपनी सैन्यशक्तिका विसर्जन स्वेच्छापूर्वक कभी नहीं स्वीकार करता, भले उसका कोई प्रतिस्पर्धी न रह जाय। उसके लिए आतंक-आशंकाका कोई कारण न रहा हो। वह अपनी सैन्यशक्ति बनाये रखनेके लिये कल्पित कारण घटते जाता है। यह तो श्रीहरि ही थे जो यादव वाहिनीको उन्होंने अपने निमित्त बनाया और अन्तमें पारस्परिक संघर्षके द्वारा उस अजेय वाहिनीका भी विसर्जन कर दिया।

भूदेवी जड़ तो नहीं है। सच तो यह है कि जड़ता भ्रम है। सम्पूर्ण सृष्टि एक सच्चिदानंद परमात्मामें ओत-प्रोत है। परमात्मा ही सृष्टिके रूपमें प्रतीत हो रहा है। इसमें जड़ तत्व केवल भ्रमसे प्रतीत होते हैं। उस सच्चिदानन्दकी प्रकृति-स्वभाव है कि उसकी सत्ता घनीभूत होकर तमस-तमोगुण प्रतीत होने लगती है और उसमें जड़ताका भ्रम होता है। भूदेवी चेतन हैं, अत: उनमें अनुभूति है और अनुभूति है तो उनके शरीर-धरापर रहनेवाले प्राणी जो कुछ करते हैं, उसमें उनको प्रिय-अप्रियका अनुभव होता है। परोत्पीड़क, अधर्म-परायण असुर पृथ्वीके भार हैं। धर्म या अधर्म घट-बढ़ नहीं सकते क्योंकि ये दोनों ही विराट् स्वरूप श्रीहरिके अंग ही हैं। धर्म यदि उनका हृदय है तो अधर्म उनका पृष्ठदेश है। होता यही है कि इनकी सघनता घटती-बढ़ती रहती है।

सत्त्व, रज और तम ये त्रिगुण प्रकृतिमें घटते-बढ़ते नहीं। इनकी मात्रा सदा समान रहती है; किन्तु प्रलयके समय ये साम्यावस्थामें रहते हैं। सृष्टिके समय इनका तारतम्य बदलता रहता है। कहीं एक प्रबल होता है कभी और कभी कहीं दूसरा। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म सब त्रिगुणात्मक हैं, अत: इनकी मात्रा घट या बढ़ कैसे सकती है? केवल इनका तारतम्य परिवर्तित होता रहता है। धरापर भार बढ़नेका अर्थ है कहीं किसी विशिष्ट वर्गमें ही केन्द्रित रहनेके स्थानमें तमोगुण एवं तमोन्मुख रजोगुण अधिकांश मानवोंमें व्याप्त हो गया है। इससे सत्त्वगुणकी व्यापकता घट गयी है और वह थोड़ेसे विशिष्ट व्यक्तियोंमें अधिक सघन हो गया है।

यही अवसर परमप्रभुके अवतीर्ण होनेका होता है। अधिक सघन-प्रबल सत्त्वगुण अन्त:करणको शुद्ध कर देता है और तब उसमें अन्तर्मुखता, अन्तर्यामी वासुदेवका सान्निध्य स्पष्ट हो जाता है। जन्म-जन्मके संस्कारोंके अनुसार ऐसे शुद्धान्त:करण जन योग, ज्ञान या उपासनाका पथ अपना लेते हैं।

प्राय: सर्वत्र व्याप्त तमोगुण प्रधान रजोगुण जिनमें ये व्याप्त हैं, उन्हें सत्त्वगुण-शुद्ध सत्त्वगुण सहन कैसे हो सकता है? फलत: उनके द्वारा वे साधक-संत पीड़ित होने लगते हैं। उनपर अत्याचार होने लगता है। आसुरजन सात्विकोंका समूलोन्मूलन करने पर उतारू हो जाते हैं। उनका यह उत्पीड़न-भगवती धराको अपने श्रेष्ठतम सर्वाधिक प्रियपुत्रोंकी पीड़ा असह्य हो उठती है। यह धराका सबसे अहस्य भार है। विशुद्ध सत्त्व-शुद्धान्त:करण जनोंमें जो योगी हैं, ज्ञानी हैं- उन्हें सुरक्षा चाहिए- भले वे अपने शरीरसे निरपेक्ष हों और देहका मानापमान, देहकी पीड़ा उन्हें व्यथित न करे, सर्वेश्वरको उनकी सुरक्षा सबसे अधिक आवश्यक लगती है।

जो धर्म पुरुषार्थी बन जाते हैं शुद्धान्त:करण होनेपर, पूर्व-पूर्वके संस्कार जिन्हें तप यज्ञादिमें लगाते हैं- वे अपने धर्मकी रक्षाके आग्रही होते हैं और उनका तप, यज्ञ, सबसे अधिक असह्य होता है आसुरताको। क्योंकि योगी-ज्ञानी तो आत्मरत, आत्मतृप्त, एकांतप्रिय हैं। उन्हें कोई कैसे रहता है या रहे, इसकी चिन्ता नहीं। सब अपना स्वरू या सब भगवन्मय, तो उसमें पापी-असुर या पुण्यात्मा क्या? अत: ऐसोंकी असुर भी उपेक्षा कर सकते हैं, किन्तु धार्मिकोंका यज्ञ-तप तो सीधे आसुरतापर-तमोगुणपर आघात करता है। अत: इस वर्ग को सबसे अधिक उत्पीड़ित होना पड़ता है और यह चुप-चाप सहन नहीं करता। यह पुकारता है सर्वेशको। इसके आह्वानकी उपेक्षा कब तक वह धर्मका परमप्रभु कर सकता है।

यज्ञ और तप शक्तिदाता हैं, उत्तम कार्य हैं; किन्तु इनको माध्यम बनाकर कोई व्यक्ति या समुदाय स्वयं शक्तिशाली होता रहे तथा उस शक्तिके दुरुपयोगमें लगा रहे-समाज एवं संसारका उत्पीड़न-शोषण करे तो अन्तत: उससे वे साधन छीनने ही पड़ेंगे। सत्कर्ममें स्थितको धक्का तो दिया नहीं जा सकता, उसे प्रकारान्तरसे-बहलाकर वहाँसे हटाना होगा, जिससे उसे मिलनेवाली लोकोत्पीड़क शक्तिसे वह वंचित हो जाय।

कितना भी बड़ा धर्मात्मा क्यों न हो उसमें अहं बढ़ेगा तो उसका पतन होगा। धर्माभिमान बढ़नेपर धर्म भी आसुरताका आश्रय बन जाता है। उससे परस्वापहरण होने लगता है तभी सृष्टिके संचालनको हस्तक्षेप करना पड़ता है।

बलि यज्ञ कर रहे थे, धर्मात्मा थे और ब्राह्मणों-सत्पुरुषोंके भक्त थे। उनमें संयम, श्रद्धा, उदारता सब सद्गुण थे। उन्हें भी भगवान को छलसे पदच्युत करना पड़ा। बलि में सब सद्गुण थे; किन्तु दो महान दोष थे- उनका संग असुरोंका था। वे असुरोंके पाषक, समर्थक थे और असुरोंके अपकर्मोंको उनसे प्रोत्साहन मिल रहा था। दूसरा उन्होंने अपने धर्मबल से असमयमें दूसरेका स्वत्व- इन्द्रका पद बलपूर्वक छीन लिया था। बलिमें अहम प्रबल था और धर्मका अभिमान भी स्वयंमे बड़ा दोष था। सर्वाधार प्रभु दीखते नहीं है पर समस्त प्रयत्नोंके वही आधार है।

सत्पुरुषोंकी उपेक्षा ही नहीं- स्वजनों, प्रियजनोंको पीड़ा देनेका व्यसन होता है लोभमें। जो मेरी न माने, वह मेरा शत्रु- धनमदका यह उन्मत्त रूप है और जब यह इतना उन्मद हो जाय, सज्जन-सत्पुरुष तो चुपचाप सहन ही कर सकते हैं; किन्तु नृशंस मदमत्तका हृदय-परिवर्तन सत्याग्रह नहीं कर पाता। उसका तो दमन करना पड़ता है और दमनमें स्वयं कुछ पशुत्वकी स्वीकृति तो है ही, भले उसमें सम्यक् सद्भाव मनुष्यत्व भी हो।

भक्त समूहको या किसी भक्त विशेषको कृतार्थ करने-उसकी भावनाके अनुरूप दिव्यधामसे स्वयं परात्पर प्रभु भी प्रेम-परवश पधारते हैं। वे दर्शन देकर अन्तर्हित हो जायेंगे या सम्पूर्ण लीला व्यक्त करेंगे, यह तो वे जिनके प्रेम-परवश पधारे हैं, उनकी भावना पर निर्भर है, किन्तु वे कब आवेंगे, कब तक रहेंगे धरापर व्यक्ति रूपमें, इसका कोई नियम नहीं बन सकता। अनेक बार उनके आविर्भावके समय भगवान विष्णु उनमें एक होकर प्रकट होते हैं और धर्म-स्थापन, असुरदमनका कार्य

वे उनसे एक रहकर या पृथक होकर भी सम्पन्न करते हैं। सर्वेश्वर वस्तुत: भौतिक धरातपर आते नहीं। वे केवल यहाँ अपने को व्यक्त करते हैं और तब उनका नित्यधाम उनके परिकरादि भी व्यक्त हो जाते हैं। वस्तुत: तो यह धरा है ही सृष्टिकर्ताके मानसमें और सृष्टिकर्ता स्वयं भगवान् नारायणकी नाभि कमलपर स्थित हैं। अनन्तान्त ब्रह्माण्ड सगुण परमेश्वरके संकल्पमें ही उदय-विलय होते हैं। अपने संकल्पके इस जगतमें अपनेको, अपने नित्यधामको परिकरों सहित कभी वह लीलामय व्यक्त कर देता है और कभी तिरोहित कर लेता है।

परिपूर्णतम परमेश्वर तो परम स्वतन्त्र है। सृष्टि और सृष्टिके विधान उसे परवश नहीं करते। वह केवल तब प्रगट होता है, जब भावुक भक्तोंका प्रेमाग्रह उसे विवश करता है। सृष्टिका विधान ही ऐसा है वह कल्प-कल्पमें समान रूपसे चलती हैं, अत: युग-युगमें प्राय: समान समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं उनका समाधान हरि कब और किस रूपमें अवतरित होकर करेंगे यह भी निश्चित है।

शुकदेव बोले- एक समय की घटना है। दैत्यों ने दुष्ट राजाओं का रूप धारण कर पृथ्वी को बोझिल बना रक्खा था। पृथ्वी उनके भार से आक्रान्त थी, पीडित थी अत: वह गौ का रूप धारण कर रोती हुई मेरूपर्वत पर ब्रह्माजी की शरण में गई। रो-रोकर उसने उन्हें अपना सारा दु:ख सुनाया। उस समय उसका मन खिन्न था और शरीर दुर्बल। विधाता उसीको कहते हैं जो संसारका विधान करता है। विधाता उसे कहते हैं जो तीन गुणों से युक्त संसार की रचना करता है।

पृथ्वी बोली- आप मेरी रक्षा का शीघ्र ही कोई उपाय करो नहीं तो मैं रसातल में चली जाऊँगी। हे नाथ, मेरे ऊपर रची हुई, आपकी प्रजा भी अत्यन्त दु:खी हो रही है। हे ब्रह्माजी, अठारह भार वनस्पति (वृक्षादिक) तथा सुमेरु हिमालयादिक सम्पूर्ण पर्वत और सात समुद्र सब नदियाँ और संसार में अत्यन्त बलवान जीवों का समूह, इत्यादि और भी जितने भारी पदार्थ हैं, वह मेरे को कुछ भी भारी नहीं लगते हैं, परन्तु जो ब्राह्मणों तथा वेदों के निन्दक और ईश्वर से सदा विमुख हैं वैसे पुरुषों का भार मेरे से सहन नहीं होता।

जहाँ सब सुर गण सिद्ध गण मुनि गण दुखी होकर बैठे थे वह धरती सुन्दर गौ का रूप धारण करके गई। सबको अपने हृदय की दाह विलख कर सुनाई। पृथ्वीने कहा कि इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोक पर अधिकार कर जनता को कष्ट दे रहे है। सर्वशक्तिमान भगवान विष्णुने जिस कालनेमि असुर का वध किया था वही इस समय उग्रसने के पुत्र कंस के रूप में उत्पन्न हुआ है। इस समय मेरे ऊपर महाबलवान और गर्वीले दैत्य राजाओंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। उनके अत्यन्त वार से पीड़ित होकर मैं अपने को धारण करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। उनके भार से दबकर मैं कहीं रसातल में न चली जाऊँ।

लेकिन सभी विफल थे किसी का कुछ भी बस नहीं था। फिर सभी धरती के साथ शोक युक्त होकर आतुर भयभीत विधिलोक गए। धरती देवगण मुनि सिद्ध सभी को देखकर सुजान ब्रह्माजी सभी का दुसह दु:ख जान गए। दुखिया देवताओंने ऋषियों और मुनियों ने भी ब्रह्मा जी के आगे अपनी दुख भरी कहानी कही। वे बोले हे ब्रह्मन, हमारे द्वारा किये जानेवाले ईश्वरीय ध्यान भजन में, आत्मचिन्तन में और सुख चैन में बहुत बाधाएँ आ गई हैं। दीन भक्तों ने भी आर्तनाद आर्त वाणी में ब्रह्माजी से किया और बताया कि दिन रात असुर लोग अधर्म की वृद्धि करते जा रहे हैं और धर्म की हानि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। विधाता श्री ब्रह्मा जी ने दु:खी लोगों के दु:ख को सुना और उनके कष्ट निवारण के लिए मन में विचार करने लगे कि इसी समय कालनेमि दैत्य कंस के रूप में उत्पन्न होकर अत्याचार कर रहा है क्योंकि उसकी मृत्यु पूर्णतम परमात्मा के हाथों होनी है। इसीलिए उसकी मृत्यु मेरी सामर्थ्य से बाहर है। दु:खी लोगों का दु:ख दूर करने के लिए

हमें प्रभु को ही पुकारना चाहिए।

द्वापर अन्त असुर अति बाढ़े, करें पाप हिंसा अति गाढ़े। तब पृथ्वी ब्रह्मा ढिंग रोई, कृश तनु भई बुद्धि सब खोई।।
तप ने देव संग सब लीन्हें, शंकर पृथ्वी, आगे कीन्हें। गये क्षीर सागर तट पासा, जहँ नारायण करत निवासा।।
दण्ड प्रणाम कीन्ह चितलाई, पृथ्वी की सब व्यथा सुनाई।
नारायण हर्षित भये, कीन्ह गिरा सुख पाय। प्रगट होउँ मैं भूमि पर, कुछहि काल में आय।।
ब्रज में जाकर के बसो, सभी देव गणराय। गोपी ग्वाला रूप धरि, रहो तहाँ तुम जाय।।

ब्रह्माजी बोले- देवताओं, पृथ्वी जो कुछ कह रही है वह सर्वथा शत् प्रतिशत सत्य है। नारायण की जो विभूतियाँ है उनकी परस्पर न्यूनता और अधिकता हो सकती है, समस्त सृष्टि का पालन नारायण ही करते हैं। प्रभु के विरद बिचार कर की वे प्रनत पाल हैं प्रनतारति हारी हैं। धैर्य धारण करो। हे धरनी सुनो जिसकी तू दासी है वही आज अबिनासी प्रभु हम सबका भी प्रभु है। इसलिए हृदय में धैर्य धारण कर प्रभु पद का सुमिरन कर प्रभु अपने जन की पीड़ा को अवश्य नष्ट करते हैं। जिस विष्णु भगवान का नाम लेते ही दुखों का समूह नष्ट हो जाता है और जन्म-मरण रूपी संसार बंधन भी छूट जाता है, हे पृथ्वी। तुम्हारे दर्शन करते ही तुम्हारे सम्पूर्ण दुख दूर हो जायेंगे। जैसे अग्नि के पास सर्दी और बर्फ को गरमाई लगते ही नष्ट हो जाती हैं वैसे ही भगवान के चरणकमलों की रज मस्तक लगते ही जीवों के अनेक प्रकार के कष्ट, ताप तथा शोक भाग जाते है।

फिर सभी के साथ ब्रह्माजी शम्भु के पास आए उनसे मिलकर मन्त्रणा करके हरि के पास आए तथा ब्रह्माजी को सबके दुसह दु:ख को सुनाए।

शेष सुरेस शिवादि सुर, निज निज शक्ति समेत। अमर मेदिनी सहित विधि, गमने विष्णु निकेत।।

जब भी पाप कर्म बढ़ जाता है तब-तब प्रभु विविध शरीर धारण करते हैं। उस पाप का उन्मूलन करते हैं, प्रभु अवतार धारण करते है।

द्वापरयुग का अन्त आते-आते मनुष्यों के चरित्र में अत्यधिक मलिनता आ गई। जप, तप, संयम, नियम, स्वाध्याय तथा भगवद्भक्ति की साधना लोगों को कठिन तथा नीरस प्रतीत होने लगी। उनका मन सत्कर्मों से विरत होते जाने लगा। अधर्म ने समाज पर अपना प्रभाव बढ़ा दिया। मानव आसुरी भावनाओं से आक्रान्त हो गया। कलुषित कर्म अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा आनन्ददायक प्रतीत होने लगे। मनुष्यों का चित्त केवल आकर्षित होने लगा। ऐसे में भगवान नारायण ने कृष्ण अवतार लेकर अपनी मधुर लीलाओं के द्वारा आत्माराम ऋषि मुनियों, ज्ञानी परमहंस महात्माओं को अपनी विशुद्ध प्रेमभक्ति में लगाया। प्रेमी भक्तों, देवताओं और ऋषि मुनियों को भगवान का सान्निध्य प्राप्त होनेपर मोक्ष प्राप्ति का वरदान दे रखा था। उन भक्तों की बातों को सत्य करने के लिए भगवान कृष्णने अवतार लिया और उन वर प्राप्त लोगों का उद्धार किया।

त्रेतायुग में भगवान श्रीरामचन्द्र के सुन्दर स्वरूप को देखकर बहुत सी नारियाँ आकर्षित हो गई और वे भगवान का सान्निध्य प्राप्त करने की कामना कर बैठी। एक पत्नीव्रत होने के कारण रामावतार में उनकी मनोकामना पूर्ण नहीं की पर श्रीकृष्ण ने कलियुग में अवतार लेकर उन नारियों की कामना पूर्ण की। दुर्दान्त दैत्यों के भीषण भार से अत्यन्त आक्रान्त पृथ्वी का भार उतारना भी कृष्णावतार का कारण था। राजाओं और शासकों के रूप में सर्वथा अनीतिपरायण, स्वेच्छाचारी, नीच-स्वार्थरथ असुरों का आधिपत्य हो गया। ईश्वर तथा धर्म का प्रबल विरोध होने लगा। ईश्वर को माननेवाले साधुचरित्र पुरुषों पर अत्याचार होने लगा। ऐसे पापात्मा राजाओं के रूप में प्रकट असुरों तथा असुर भावापन्न कुकर्मियों के भार से

पृथ्वी त्राहि-त्राहि कर उठी। ऐसे समय में भगवान कृष्णने अवतार लेकर दैत्यों के प्राण हरण कर उन्हें मुक्ति दिलाने के लिये पृथ्वी का भार उतारा। देवासुर संग्राम में महाबली दैत्य मारे गये वे मनुष्य लोक में उपद्रव करनेवाले राजाओं के रूप में उत्पन्न हुए उन्हीं का नाश करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार लिया।

गोलोक में कृष्णकी प्रियतमा राधा को श्रीदामा के शापवश इस पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा। राधाजी के दु:खी होने पर भगवान कृष्ण ने उन्हें भूतल पर भी आकर आनन्द प्रदान करने का वचन दिया था। वही वचन भगवान ने अवतार लेकर अपना वचन निभाया।

शौनक ऋषियों ने पूछा- सूतजी, यह श्रीदामा कौन था? और उसने राधा को श्राप क्यों दिया?

सूतजी बोले- मुनियों, कृष्ण अपने नित्य गोलोक धाम में अपनी प्रियतमा राधा और उनकी सखियों के साथ नित्य विहार किया करते थे। एक दिन भवान श्रीकृष्ण एकान्त कुंज में कोटि चन्द्रमाओं सी कान्ति वाली सुन्दरी विरजा देवी के साथ विहार कर रहे थे। सखी के मुँह से यह सुनकर कि श्रीकृष्ण इस समय विरजा के साथ है। श्रीराधा को बहुत दु:ख हुआ। वे मन ही मन अत्यन्त खिन्न हो उठीं और मान करके अपने महल में बैठ गईं। श्रीराधा को विरह-दु:ख से व्यथित जानकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं अपने प्रिय सखा श्रीदामा के साथ उनके महल में आए। द्वार पर सखा के साथ आए हुए प्राणवल्लभ की ओर देखकर मानवती राधा उनसे इस प्रकार बोली- हरे, तुम वहीं चले जाओ जहाँ तुम्हारा नया स्नेह जुड़ा है। अब मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है? भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें मनाने का प्रयत्न किया पर वे नहीं मानीं। तब भगवान श्रीकृष्ण अपने महल में चले गऐ।

भगवान श्रीकृष्ण के मित्र श्रीदामा ने तब रोषपूर्व कहा कि राधे, श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम भगवान हैं। वे असंख्य ब्रह्माण्डों के अधिपति और गोलोक के स्वामी के रूप में विराजमान हैं। परात्पर श्रीकृष्ण तुम जैसी करोड़ों शक्तियों को बना सकते हैं। तुम उनकी निन्दा करती हो? ऐसा मान मत करो, तब श्रीराधाजी बोलीं कि ओ मूर्ख, तू अपने पिता श्रीकृष्ण की स्तुति करके मुझ माता की निन्दा करता है। अत: दुर्बुद्धे, राक्षस हो जा और गोलोक से चला जा। तब श्रीदामा ने भी कहा कि शुभे, श्रीकृष्ण सदा तुम्हारे अनुकूल रहते हैं और तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इसलिए तुम्हें इतना मान हो गया है। अत: तुम व्रज में व्रजांगना होकर भूतल पर विचरण करोगी और वहाँ परिपूर्णतम भगवान श्रीकृष्ण से तुम्हारा सौ वर्षों के लिए वियोग हो जाएगा। श्रीदामा का श्राप सुनकर राधा अत्यंत विक्षिप्त हो गयी और क्रंदन करने लगी और श्रीकृष्ण से बोली- हे प्राणधन, श्रीदामा ने मुझे शाप दिया है कि मैं पृथ्वी पर गोपी बनकर अवतरित होऊ और मेरा आपसे भूतल पर सौ वर्ष तक वियोग हो जायेगा। हे नाथ, आपके बिना मैं जीवन कैसे धारण करूंगी? श्रीकृष्ण ने राधा के यह वचन सुनकर उन्हें सान्त्वना दी, अभय दिया और कहा- राधे, मैं अपने निगम स्वरूप वचन को तो छोड़ सकता हूँ किन्तु भक्तों की बात अन्यथा करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। हे कल्याणी, शोक मत करो, वाराहकल्प में भूतल का भार उतारने और भक्तजनों को दर्शन देने के लिये मैं तुम्हारे साथ ही पृथ्वी पर चलूँगा। ब्रज में जाकर वहाँ व्रज के कानन कुंजों में तुम्हारे साथ विहार करूँगा। वियोगकाल बितने पर फिर तुम सदा मेरे साथ रहोगी। भूतल पर हम सुन्दर रास रचाएंगे। माता-पिता को बंधन से छुड़ाना, अन्यान्य कर्मों का संपादन, पिता के यज्ञ का संपादन, वहाँ से तुम्हारे साथ मेरा पुन: व्रज में आगमन होगा। वृंदावन में तुम्हारे साथ मेरा फिर से निवास होगा। माता-पिता तथा गोपियों के शोक का पूर्णत: निवारण होगा। फिर हम पुन: गोलोक में आ जायँगे। तुम्हें अध्यात्मज्ञान का उपदेश देकर तुम्हारे साथ नित्यमिलन का सौभाग्य प्राप्त करूँगा। मेरे

द्वारा जो निश्चय किया जा चुका है उसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता।

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीदामा से कहा- जाओ तुम अपने एक अंश से असुर हो जाओ और रास मण्डल में आकर तुम मेरी अवहेलना करोगे, तब मेरे हाथ से तुम्हारा वध होगा, तत्पश्चात् मेरे वरदान से तुम अपना पूर्व शरीर प्राप्त कर सकोगे।

मुनियों इस शापवश श्रीकृष्ण-प्रिया राधा, गोकुल में ब्रजभानु के घर कीर्तिदारानी के गर्भ से गोपी राधा बनकर अवतीर्ण हुईं। ब्रह्माजी ने गुप्त रूप से राधा और कृष्ण का विवाह कराया। व्रज में ग्यारह वर्षों की आयु तक बिहार करने के बाद राधा और कृष्ण का सौ वषों तक के लिए वियोग हो गया। सौ वर्ष बीत जाने पर राधा और कृष्ण का पुन:मिलन कुरुक्षेत्र में हुआ। प्रभाव क्षेत्र में यादवों का आपसी कलह से विनाश हो गया तब कृष्ण भूतल पर अपनी एक सौ पच्चीस वर्ष की आयु पूर्ण कर पुन: गोलोक धाम को चले गये। श्रीदामा ने भी शाप वश यक्षलोक में सुधन यक्ष के घर जन्म लिया। रासमण्डल में भगवान कृष्णके हाथों मारा गया।

भगवान तो भक्तवत्सल है। जिन भक्तोंने सच्चे हृदय से भगवान को जिस रूप में चाहा वे उसी रूप में उन्हें प्राप्त हुए। देवकी वसुदेव और नन्द-यशोदा ने पूर्वजन्मों में उन्हें पुत्र रूप में चाहा वे उनके पुत्र बन गये। मिथिला की नारियों ने उन्हें प्रेमी के रूप में चाहा वे ही नारियां ब्रज में गोपियाँ बनने पर श्रीकृष्ण उनको प्रेमी रूप में मिले। कंस, शिशुपाल आदि दैत्यों को शत्रु रूप में मिले। अर्जुन, उद्धव आदि भक्तों ने उन्हें सखा के रूप में चाहा वे उनके सखा बन गये। अक्रूर, भीष्म आदि उन्होंने ब्रह्म के रूप में देखा वे उन्हें ब्रह्म के रूप में मिले।

इस पर ब्रह्माजी पृथ्वी और देवताओं को लेकर भगवान शंकरजी के साथ क्षीर-सागर के तट पर गये जहाँ नारायण विश्राम किया करते हैं। वहाँ वे पुरुषसूक्त से भगवान विष्णु की स्तुति कर उनके ध्यान में निमग्न हो गये।

क्षीरसागर- मुनिवर नारद ने यह वृत्तांत इंद्र के सारथी मातलि को रसातल का भ्रमण करते हुए बताया- गोमाता सुरभि के क्षीर की धारा पृथ्वी पर निरंतर गिरती रहती है। उसी धारा से एक विशाल सागर की सृष्टि हो गई, जिसे क्षीरसागर कहते हैं। यह सागर परम पवित्र है। जब भगवान श्रीकृष्ण लीलापूर्वक निर्मित सुरभीदेवी के दूध का पान कर रहे थे तो सुधा-सदृश रत्न-पात्र से किसी प्रकार दूध गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया, जो चारों ओर से सौ योजन तक लंबा-चौड़ा था। गोलोक में वही रमणीय क्षीरसागर के नाम से विख्यात है।

प्रभु कृष्ण का चरित्र परम रहस्यमय है उनकी कृपा के बिना कोई नहीं जान सकता। अभी का कार्य अत्यन्त जटील है कृष्ण कृपा के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए हम सब मिलकर दिव्य गोलोक धाम चलें जहाँ जाने से सब शोक नष्ट हो जाएँगे। इस प्रकार प्रभु विष्णु के विशेष प्रमाणित वचन सुनकर सभी सिद्ध मुनि देवता हृदय में सुख मानें। फिर सभी सिद्ध मुनि देवताओं के साथ भगवान विष्णु गोलोक धाम गए। जहाँ पर अज परम अभिराम परमीश कृष्ण विराजमान हो रहे थे। वह परम धाम शाश्वत एवं अविनाशी है। वहाँ चारों ओर परमानन्द ही व्याप्त है सर्वत्र परमेश्वर की ही लयता है। वहाँ सूर्य चन्द्र का प्रकाश नहीं है सहज रूप से अपने ही तेज से उद्भाषित रहता है वहाँ माया का केलि कलाप नहीं है और न मानसिक व शारीरिक आदि ताप ही है। वह निराधार है किसी से आधारित नहीं है किसी का अवलम्बन नहीं है सहज रूप से हमेशा अपनी ही स्थिति एवं लयता में व्याप्त है। द्वन्दों गतियों से परे अमल अविकारी सहज एक रस दिव्य सुखकारी है। उसी का विभाग रुचिर ब्रह्म लोक तथा वैकुण्ठ लोक है। उसी का विस्तार ही सब लोक है उसी के रूख से सब उसी में समा जाते हैं। वहाँ विरजा में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड लुढ़कते देखकर परम प्रभु की परम महिमा समझकर चकित हो गए। सभी का

शरीर पुलकित हो गया लोचन सजल हो गए हाथ जोड़कर प्रणाम करके अच्छी सरल वाणी से सभी स्तुति करने लगे। हे अखिल पति विभु परमेश्वर आपको नमस्कार है हम सब ईशों के भी ईश हम सब के आप मूल हैं। हे नाथ आपका रहस्य परम एवं अपार है। आप स्वयं अपने आपको स्वयं आप ही जान सकते हैं। आप ही मूर्त भी हैं अमूर्त भी है। ब्रह्मा बोले- मैं शान्त, सर्वेश्वर तथा अच्युत कमलाकान्त को प्रणाम करता हूँ। समस्त देवता जिनकी कला से भी अंशकला से उत्पन्न हुए हैं। मनु, मुनींद्र, मानव तथा चराचर प्राणी आपकी कला की अंशकला से ही प्रकट हुए।

हे सर्वेश्वर, हे कष्ट निवारक, हे विश्व नियन्ता, हे सुजान, हम जो आशायें लेकर आये हैं, उन्हें पूर्ण करने की कृपा कीजिए।

ब्रह्माजी श्री विष्णु भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहे हैं हे दीनों के नाथ। हे देवताओं के स्वामी, आपके चरण-कमलों में नमस्कार हो। जिन आपके चरणकमलों की रज शीश पर धारण करने से, आध्यात्मिक, क्षुधा-पिपासा रोगादि जो दु:ख हो। आधिभौतिक व्याघ्र, सर्प, चोर, बलादि से जो दु:ख हो तथा आधिदैविक यक्ष-राक्षस-भूत-प्रेतादिकों से जो दु:ख हो तीनों प्रकार के ताप दूर हो जाते हैं। देव, आपके चित्त में अपना तथा पराया यह भेद नहीं है, क्योंकि एक आपके ही सबका आत्मा होने के कारण, आप में यह मेरा यह तेरा इत्यादि सम्पूर्ण भेद निवृत्त हो गये हैं। तो भी आपके जो अनन्य दास अर्थात् जो केवल आपके ही आधार पर हैं, वे आपसे भोग तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। आपका मन भी नित अनन्य प्रेमियों के योग अर्थात् अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति में, तथा क्षेम-अर्थात् प्राप्त वस्तु की रक्षा में लगा रहता है, फिर भी जीव अपने चित्त में धैर्य नहीं धारण करे हैं, क्योंकि यही जीव का जीवपना है, जो कि सदा अपने खान-पानादि देह-आराम रूप स्वार्थ में ही संलग्न रहता है।

कष्ट-काल में यह जीव परमेश्वर का स्मरण करता है, परन्तु दुख दूर होने के पश्चात् सुखप्राप्ति-काल में यह अपने परम सहायक परमात्मा को भूल जाता है। यदि यह जीव सुख में भी परमेश्वर का स्मरण करे तो फिर यह दु:ख को कभी भी प्राप्त नहीं होवे। हे भगवन्, इसके पूर्व भी आपने बहुत बार अवतार धारण करके, सम्पूर्ण देवता तथा ब्राह्मण, दु:खरूपी समुद्र से पार किये हैं। अब जिन-जिन अवतारों को धारण कर, जिन-जिन दुष्टों को मारा है, सो कहते हैं- जैसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को वाराह और नृसिंह रूप धारकर तथा रावण-कुम्भकर्ण को राम रूप धार कर आपने मारा है, वैसे ही अब दया कर हमारे दु:ख तथा शोक को दूर करिये, क्योंकि हे नाथ, पृथ्वी, गौ, देवता और ब्राह्मण ये सब आपकी शरण हैं। अब आप ही इनके रक्षक हैं।

आपके ये बाल भक्त दुष्ट असुरों के द्वारा सताये जा रहे हैं। आप अपने प्रिय भक्तों की रक्षा कीजिए। पूर्व काल में जब जब भी भक्तों पर भीर पड़ी हैं आप सदा उनकी रक्षा करते आए हैं। भक्तों की विपत्तियों को टालते रहे हैं अर्थात निवारण करते रहे हैं। आपकी गऊएं, आपके परम भक्त, आपके श्रद्धालु ब्राह्मण, आपके प्रिय देवता और आपका सनातन धर्म इस समय विपत्ति में है। हे भक्त जनों का पालन करनेवाले, हे प्रियजनों के दु:ख निकन्दन। हे कष्ट निवारक, हे दीनों के रखवाले, अपनी कृपा की दृष्टि को अपने जनों पर बरसायें।

ब्रह्माजी ने कहा हे प्रभु, आपके द्वारा मुझे प्रदान किए गए चारों वेदों को एक बार जब एक असुर ने हरण कर लिया तो आपने ही उस वेद हर्त्ता असुर को मारकर चारों वेद पुन: मुझे प्रदान किए थे। आपके परम प्रिय भक्त ध्रुव पर और प्रह्लाद पर विपदायें आई तो सभी बाधाओं को, हे दयालुता में प्रवीण आपने ही दूर किया था। एक बार जब गज ने अपनी सुण्ड में कमल के पुष्प को लेकर आपके श्री चरणों में करुणा भरी पुकार की थी और कहा था हे नाथ, मुझे इस बलवान ग्राह ने पकड़ लिया है। हे हरि, मेरी रक्षा करो, तब आपने उस महागजराज की दीन पुकार को सुनकर और भाव से विभोर होकर चरण और गरुड़ को भी विसार दिया था। हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर दौड़ पड़े और ग्राह को मारकर अपने भक्त गज की रक्षा की।

हे भगवन, धर्म विरोधी क्षत्रियों का भार धरती पर बढ़ जाने पर आपने उनका संहार करने के लिए परशुराम अवतार धारण किया था। भक्तराज प्रह्लाद के पिता असुर सम्राट हिरण्य कश्यिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को विष्णु भक्त जानकर बहुत सताया। मारने के अनेक प्रयास करने पर भी वह सफल नहीं हुआ, तब आप नृसिंह बनकर प्रगटे और हिरण्य कश्यिपु का संहार किया। हे प्रभु, हिरण्याक्ष के द्वारा पृथ्वी को समुद्र में डुबो दिये जाने पर आपने वाराह रूप धारण कर उसे उभारा और हे महाबली। आपने उस दैत्य को इतने जोर से थप्पड मारा कि उसकी मृत्यु हो गई। आपके इस विशेष कार्य की सराहना आपकी प्रिय पत्नी लक्ष्मी जी ने भी की।

हे प्रभु, त्रेता युग में सन्त विरोधी लंकेश्वर रावण और बलवान कुम्भकर्ण को दशरथ नन्दन श्री रघुनाथ के रूप में आपने ही समाप्त किया था। राजा जनक की पुत्री उर्मिला के स्वामी लक्ष्मण जी के द्वारा रावण के दुर्दान्त पुत्र इन्द्रजीत का संहार करवाया था। हे सर्वेश्वर प्रभु आपने अनेक रूप धारण करके बार-बार अपने दुखी भक्तों की रक्षा की।

ब्रह्माजी ने कहा हे विश्वनियन्ता, कंस इत्यादिक बहुत से दैत्यों ने राजा बनकर धर्म रक्षण की अपेक्षा धर्म नाश प्रारम्भ कर दिया है। वे दैत्य विश्व माता गाय को, धर्म निरूपक वेद शास्त्रों को, धर्म प्रचारक ऋषि मुनियों को और इन सबके मूल कारण आपका भी विरोध करते हैं। वे दैत्य राजा स्वयं को ही भगवान मान कर राज्य की प्रजा से अपनी पूजा करवा रहे हैं। वे कहते हैं संसार में हैं ही सर्वेश्वर भगवान हूँ, मेरे सिवा और कौन सा दूसरा ईश्वर है जिसकी तुम पूजा करते हो?

हे नाथ, असुराधिप कंस अन्य असुर राजाओं को साथ लेकर नित्य उत्पात करने लगा है वह क्रूर महाबली गो माता मुनि ब्राह्मणों आदि की भी हत्या करने लगा है।

हे मेरे साईं, हे मेरे स्वामी, कंस इत्यादिक महाबलवान असुरों का नाश करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है इसलिये हम दीन जनों की विनती सुनकर प्रसन्न हो जाइये। हमें आपके सिवा और किसी का सहारा नहीं है।

शंकर बोले- आप अविनाशी, अविकारी है। योगीजन आप में रमण करते हैं। आप अव्यक्त ईश्वर है। आपका स्वरूप आनंदमय है, आप सर्वरूप है। अणिमा आदि सिद्धियों के कारण है, सिद्धि के ज्ञाता, दाता और सिद्धिरूप है।

आप बिना पद भी चलते हैं बिना श्रवण के भी सब कुछ सुनते हैं। विना नेत्र के भी आप सब कुछ देखते हैं तथा हे सोच विमोचन आप बिना वाणी के सब कुछ बोलते हैं। आप पर एवं अपर से परे रूप हीन होते हुए भी अपने परम रूप से सब में लीन रहते हैं। हे राधापते प्रभो आपके अनन्त शीश अनन्त लोचन अनन्त हाथ पैर हैं। हे विष्णु ब्रह्मा, शम्भू, सुरेश, दिनेश, अग्नि, वायु, बसु, रुद्र, गणेश, साध्य, पितर, अश्विनीकुमार, यम, काल वरुण, कुबेर, यक्ष, बेताल, भूत, प्रेत, नर, पशु, पक्षी, इस चराचर के बहुत प्रक़ार से सभी सर्ग। सर्व रूपों केवल एक तुम्हीं हो तथा विवेक युक्त कृत करते हैं। आपका आपमें ही दृढ़ स्थिति नहीं है एकता की लयता में ही द्वयता की द्विलयता है। इसलिए आप को आप कँही नहीं दिख रहा है परस्पर में ही बाधक और बाध्य बने हुए हैं। हे प्रभो जब जब धरती पर अत्याधिक अत्याचार बढ़ा तब तब आप विविध तनु धारण करके धरती का भार उतारें। हे प्रभु हम सब आपकी कृपा से ही सनाथ हैं हम सब दु:ख सागर में डूब रहे हैं हाथ पकड़ कर रख लीजिए। हे शाश्वत परम उदार प्रनतपाल राधा रमण प्रभु खलों को मार कर फिर से धर्म की स्थापना कीजिए तथा धरती का भार उतारिए।

कहो तात कल्याण तुमारे। किस क़ारण आये सुर सारे।
जो कुछ कहो करूँगा सोई, मम दर्शन निष्फल नहि होई।।

ब्रह्मा बोले- हे सर्वात्मन, हे अन्तर्यामी। आप तो सबके हृदय की जाननेवाले है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। चन्द्रवंश

में यदु नाम का एक राजा हुआ। उन्हीं के कुल में आहुक नाम का राजा हुआ उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए देवक और उग्रसेन। उग्रसेन का पुत्र कंस, दु:ख देनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह नीच स्वभाव का, पापी और मन्दभागी है जो चन्द्रवंश में अग्नि के समान उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण, देवता, गौ, वेद और साधुओं का बैरी है तथा लोभी और विषय-परायण, लम्पट, महान क्रोधी और मूढ़-बुद्धि है। बल सहित कठोर स्वभाववाला तीनों लोकों को दुखी कर रहा है। देवता, मनुष्य जितने भी प्राणधारी है वे सब कंस को दूर से आते हुए देखकर डर के मारे भाग जाते है। हे स्वामी, जिस प्रकार कंस दुष्ट है उसी प्रकार उसके आज्ञाकारी सेवक पूतना, बकासुर इत्यादि है।

मगध देश के राजा जरासन्ध ने दिग्विजय करते हुए मथुरा में यमुना के किनारे डेरा डालता। एक दिन कंस, अपने मल्ल-अखाड़े में मल्लों के साथ कुश्ती लड़ रहा था। इधर महान बलवान जरासन्ध राजा का कुवलयापीड़ नाम का हाथी, जिसमें एक हजार हाथियों का बल था, वह जरासन्ध के हाथीखाने से अकस्मात छूट गया और घूमता हुआ कंस के मल्ल-अखाड़े में आ पहुँचा। हाथी के भय से अन्य सब मल्ल तो भाग गये, किंतु कंस ने निर्भय खड़े रह कर हापथी को सूँड़ से पकड़ कर घुमा कर जरासन्ध के डेरे (कैम्प) में फेंक दिया। जरासन्ध ने यह आश्चर्य देखा और कंस के बल को देखकर अपनी लड़कियाँ अस्ति और प्राप्ति कंस को विवाह दीं। इधर कंस अपने को महान बलवान समझकर दिग्विजय के निमित्त निकला। प्रथम माहिष्मती पुर के राजा चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल इन पाँचों पुत्रों को जीत कर अपने साथ लेकर प्रवर्षण पर्वत पर द्विविद नाम के बन्दर से उसने द्वन्द्व युद्ध किया। अन्त में द्विविद को जीत, साथ लेकर ऋष्यमूक पर्वत के वन में गया। उसने वन में बादल के समान गरजनेवाले घोड़े के शरीर वाले केशी नाम के दैत्य से युद्ध किया। उसे जीत कर, साथ ले, महान् तेजस्वी तपस्वी महेन्द्र पर्वत पर रहनेवाले परशुरामजी को प्रणाम किया और युद्ध माँगा। परशुराम कंस को देखकर कहने लगे, अरे बन्दरी के बच्चे, तू तो मेरे सन्मुख मच्छर के समान तुच्छ है परन्तु मैंने अब युद्ध करना छोड़ दिया है। दुष्ट, वीर, अभिमानी, क्षत्रिय। तेरे को मैं अभी मारता हूँ, किन्तु प्रथम यह लाख भार का धनुष विष्णु भगवान ने त्रिपुरासुर दैत्य के मारने के लिए श्री महादेवजी को दिया था। अब वह धनुष दुष्ट क्षत्रियों के मारने के निमित्त मेरे पास है। यदि तू इसको चढ़ा लेगा तो तुम्हारा भला है, नहीं तो तुम्हारे प्राण ले लूँगा। कंस ने परशुरामजी के कहने पर तीन ताल लम्बे धनुष को उठाकर उनके देखते-देखते खेल में ही धनुष को चढ़ा लिया, और कान तक खींच कर सौ बार टंकार की, जिस टंकार से सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। तब धनुष को रखकर परशुरामजी के आगे बारम्बार प्रणाम करके कंस कहने लगा- हे भगवन्, मैं क्षत्रिय नहीं हूँ, मैं आपका दास, दैत्य हूँ। हे पुरुषोत्तम, मेरी रक्षा करो। तब प्रसन्न होकर परशुराम जी ने वह धनुष कंस को दिया और कहा- जो इस धनुष को तोड़ेगा, वह परिपूर्णतम अवतार तेरे को मारेगा, इसमें सन्देह नहीं। तब कंस परशुरामजी को प्रणाम कर दिग्विजय के निमित्त पृथ्वी पर घूमने लगा। इसके किसी बाद भी राजा ने कंस की बराबरी नहीं की। तब घूमते हुए कंस ने समुद्र के किनारे फुँकार मारते हुए सर्प के आकार वाले अघासुर को देख ललकारा। अघासुर को आते देख कंस ने हाथ से धरती पर उसे मार कर निर्भय होकर गले में हार के समान पहन लिया। फिर पूर्व बंगाल में जाकर बैल के शरीरवाले अरिष्टासुर के साथ युद्ध किया। पश्चात् उसको जीत, साथ लेकर प्राग्ज्योतिषपुर के महान् बलवान राजा भौमासुर, जिसका दूसरा नाम नरकासुर भी था, उससे कंस ने कहा, मैं युद्ध को आया हूँ, तुम मुझसे युद्ध करो। तब नरकासुर ने कंस के साथ युद्ध के लिए प्रलम्बासुर, धेनुकासुर और तृणावर्त आदि को आज्ञा दी। कंस ने इन सबको जीत लिया। पश्चात् वकासुर को युद्ध के निमित्त भेजा। कंस और वकासुर का महान् भयंकर युद्ध हुआ। वकासुर को युद्ध में व्याकुल देखकर सहायता के निमित्त उसकी बहिन वकी (पूतना) आई। पूतना को देखकर कंस ने कहा- मैं स्त्री

के साथ युद्ध नहीं करता। जैसे वकासुर को मैंने भाई माना है, तू मेरी बहिन हुई। तब भौमासुर ने कंस को महान बलवान जानकर मित्रता कर ली। तदुपरान्त प्रलम्बासुर आदि दैत्यों को साथ लेकर शम्बरासुर के पास जाकर युद्ध को कहा। यद्यपि शम्बरासुर बलवान था परन्तु कंस से न लड़कर उसने मित्रता कर ली। तब त्रिश्रृङ्गशिखर पर्वत में सोते हुए महान् भौमासुर को जीतकर आगे बढ़ा। वहाँ नारद ऋषि को देखकर प्रणाम कर प्रार्थना की, हे ऋषि, मेरी युद्ध की इच्छा है, कोई योद्धा बताइये। नादर जी ने कंस को अभिमानी जानकर बलि के पुत्र बाणासुर के पास भेजा। कंस ने बाणासुर से युद्ध मांगा। तब दोनों को युद्ध में उत्साहित जानकर महादेवजी ने बाणासुर को कहा, हे बलिराज के पुत्र बाणासुर। इस कंस को श्रीकृष्ण जी के अतिरिक्त पृथ्वी में कोई नहीं मार सकता। इससे महादेवजी ने दोनों की मित्रता कर दी। तब कंस पश्चिम दिशा में वत्सासुर नामक दैत्य को जीत कर नारद जी से महान् बलवान कालयवन का नाम सुनकर काबुल में गया। कालयवन नरे कंस के साथ भयंकर युद्ध किया भी, परन्तु अन्त में हार मानकर कंस का दास बन गया। तदुपरान्त कंस अपने सहायकों को लेकर इन्द्रपुरी में आया और इन्द्र के साथ भयंकर युद्ध किया। अन्त में देवता हार मानकर भाग गये। कंस, इन्द्र का छत्र तथा सिंहासन लेकर अपनी दिग्विजय का डंका बजाता हुआ राजधानी मथुरापुरी में आ गया।

अत्यन्त स्नेह युक्त विह्वल सभय आर्त वाणी सुनकर करुना अयन हरि भगवान परम गूढ़ मय वचन बोले। हे सभी ब्रह्मादि देवगण तथा मुनि सिद्धादि मेरे परमार्थवादी वचन सुनों। परम प्रभु कृष्ण जो रच देते हैं उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता है। हम सब ईश हैं। कृष्ण परमीश हैं वही पूर्ण परात्पर सर्वाधीश्वर हैं। उनकी लीला अनुपम अतुलनीय है अगम अनन्त तथा अनिर्वचनीय है।

समस्त देवताओं की सुन्दर विनय युक्त वाणी सुनकर कृपा अमृत से सनी बानी परम प्रभु कृष्ण बोले।

नारायण बोले- हे विधाता ब्रह्मा, धरती पर समय समय पर होनेवाले युगावतार अधिकतर मेरे द्वारा ही किये जाते हैं। अबकी बार गोलोक धाम के निवासी साक्षात् ब्रह्म श्री कृष्ण इस द्वापर युग के अन्त में बृजवासी बनकर अवतार धारण करेंगे। देवताओं, हे ऋषियों और हे मुनियों सहित भक्त जनों, यदि आप सब परम ब्रह्म श्री कृष्ण के दर्शन, स्पर्श और सेवा करने का सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो ब्रज मण्डल में शुक, कोयल, मैना, मोर, गाय, ग्वाल बाल, लता पता, वृक्ष, जिसे जो अच्छा लगता हो बन जाए अथवा, मृग, खरगोश, कूकर, गिलहरी, बिल्ली, बंदर के रूप में भी श्री घनश्याम को रिझाने का प्रयास कर सकता है।

सुनो देवगण तुम सब जावो। यदुकुल में मानुष तनु पावो।
भूकर भार उतारूँ जौं लौं। करो वास तुम महि में तौं लौं।।

हे देवगण, सुनो, तुम सब भी स्वर्ग से पृथ्वी में अपने-अपने अंश रूप से जाकर यदुकुल में मनुष्य शरीर को प्राप्त करो। जब तक मैं पृथ्वी के भार को उतारूँ अर्थात् धर्म-विरोधी दुष्टों का नाश करूँ, तब तक तुम पृथ्वी में ही वास करो।

संसार में कभी सत तत्त्व मेरे रुचि के अनुसार ही प्रबल होते हैं। यही द्वन्द गति ही इस जगत का स्वभाव है सभी शुभाशुभ कर्मों का ही प्रभाव है। देवता असुर नर नाग ब्याल सभी का नियन्त्रण काल करता है शुभ या अशुभ जिसका जैसा कृत रहता है मेरे रुख से काल वैसा ही फल देता है हे तात सुख दुख का कारण अपना कर्म ही है कोई किसी का सुखदुख दाता नहीं है।

तुम सब लोग गोलोक में जाओ। मैं वहाँपर लक्ष्मी के साथ अवतरित हो आऊंगा। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता मेरी ही कलायें है। देव, असुर और मनुष्य आदि प्राणी मेरी कला की अंशकला से उत्पन्न हुए हैं। गोलोक में तुम्हारे अभीष्ट कार्य की सिद्धि होगी। तुम्हारा जो अभिप्राय है वह मैं पहले से ही निश्चित रूप से जानता हूँ। सृष्टिके जो भी शुभ-

अशुभ कार्य है वह समय पर ही सम्पन्न होंगे। वृक्ष अपने-अपने समय पर ही सदा फलते-फूलते है। समय पर ही उनके फल लगते है। सुख-दु:ख, सम्पत्ति-विपत्ति, शोक-चिन्ता तथा शुभ-अशुभ अपने-अपने कर्म के फल है और सभी समय पर ही उपस्थित होते हैं। तीनों लोकों में न तो कोई किसी का प्रिय है और न अप्रिय है। समय आनेपर कार्यवश सभी लोग अप्रिय अथवा प्रिय होते हैं।

पृथ्वी पर बहुत से राजा और मनु हुए और वे सभी अपने-अपने कर्मों के फल के परिपाक से काल के अधीन हो गये। मेरा कालचक्र दिन रात भ्रमण करता रहता है। इन्द्र, मनु तथा राजा सभी लोग काल के वशीभूत हो गए। उनकी कीर्ति, पृथ्वी, पुण्य और पाप की कथा मात्र शेष रह गई है। इस समय भी भूमि पर बहुत से दुष्ट राजा और भगवन्निन्दक हैं। उनके बल और पराक्रम महान हैं। परन्तु समयानुसार वे सबके सब कालान्तक यम के ग्रास हो जायेंगे। यह काल इस समय भी मेरी आज्ञा से उपस्थित है। वायु मेरी आज्ञा मानकर ही निरन्तर बहता रहता है। मेरी आज्ञा से ही आग जलती है और सूर्य तपते हैं। देवताओं, मेरी आज्ञा से ही सब शरीरों में रोग निवास करते हैं। समस्त प्राणियों में मृत्यु का संचार होता है तथा समस्त जलधर वर्षा करते हैं। मेरे शासन से ही ब्राह्मण ब्राह्मणत्व में, तपोधन तपस्या में, ब्रह्मर्षि ब्रह्म में और योगी योग में निष्ठा रखते हैं। ये सबके सब मेरे भय से भीत होकर ही स्वधर्म कर्म के पालन में तत्पर होते हैं। जो मेरे भक्त हैं वे सदा नि:शंक रहते हैं क्योंकि वे कर्म का निर्मूलन करने में समर्थ हैं।

देवताओं, मैं काल का भी काल हूँ। विधाता का भी विधाता हूँ, संहारकारी का भी संहारक तथा पालक का भी पालक परमेश्वर हूँ। मेरी आज्ञा से शिव संहार करते हैं इसलिए इनका नाम हर है। तुम मेरे आदेश से सृष्टि के लिए उद्यत रहते हो इसलिए विश्वस्रष्टा कहलाते हो और धर्मदेव रक्षा के कारण ही पालक कहलाते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सबका ईश्वर मैं ही हूँ। मैं ही कर्मफल का दाता तथा कर्मों का निर्मूलन करनेवाला हूँ। मैं जिनका संहार करना चाहूँ उनकी रक्षा कौन कर सकता है? तथा मैं जिनका पालन करूँ उनको मारनेवाला भी कोई नहीं है। मैं सबका सृजन, पालन और संहार करता हूँ। परन्तु मेरे भक्त नित्यदेही हैं। उनके संहार में मैं भी समर्थ नहीं हूँ। भक्त सदा मेरे पीछे चलते हैं और मेरे चरणों की आराधना में तत्पर रहते हैं। अत: मैं भी सदा भक्तों के निकट उनकी रक्षा के लिए मौजूद रहता हूँ। ब्रह्माण्ड में सभी नष्ट होते और बारम्बार जन्म लेते हैं, परन्तु मेरे भक्तों का नाश नहीं होता है। वे सदा नि:शंक और निरापद रहते हैं। इसीलिए समस्त विद्वान पुरुष मेरे दास्यभाव की अभिलाषा रखते हैं, दूसरे किसी वर की नहीं। जो मुझ से दास्यभाव की याचना करते हैं, वे धन्य हैं। दूसरे सबके सब वंचित हैं। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और यमयातना ये सारे कष्ट विभिन्न कर्मपरायण लोगों को प्राप्त होते हैं, मेरे भक्तों को नहीं। मेरे भक्त पाप या पुण्य किसी भी कर्म में लिप्त नहीं होते हैं। मैं उनके कर्मभागों का निश्चय ही नाश कर देता हूँ। मैं भक्तों का प्राण हूँ और भक्त भी मेरे लिए प्राणों के समान है। जो नित्य मेरा ध्यान करते हैं, उनका मैं दिन-रात स्मरण करता हूँ। सोलह अरों से युक्त अत्यन्त तीखा सुदर्शन नामक चक्र महान् तेजस्वी है। सम्पूर्ण जीवधारियों में जितना भी तेज है, वह सब उस चक्र के तेज के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है। उस अभीष्ट चक्र को भक्तों के निकट उनकी रक्षा के लिए नियुक्त करके भी मुझे प्रतीति नहीं होती, इसलिए मैं स्वयं भी उनके पास जाता हूँ। तुम सब देवता और प्राणाधिका लक्ष्मी भी मुझे भक्त से बढ़कर प्यारी नहीं है। जो अपने स्त्री-पुत्र आदि स्वजनों को त्यागकर दिन रात मुझे ही याद करते हैं, उनका स्मरण मैं भी तुम लोगों को त्यागकर अहर्निश किया करता हूँ। जो लोग भक्तों, ब्राह्मणों तथा गौओं से द्वेष रखते हैं, यज्ञों और देवताओं की हिंसा करते हैं, वे शीघ्र ही उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि में तिनके। जब मैं उनका घातक बनकर उपस्थित होता हूँ, तब कोई भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता। देवताओं, मैं पृथ्वी पर जाऊँगा। अब तुम लोग

भी अपने-अपने स्थान को पधारो और शीघ्र ही अपने अंशरूप से भूतल पर अवतार लो।

सभी अहम भाव के कारण कर्मपाश में बन्धे हुए हैं अपने आवरण रूपी शरीर के चाव के कारण ही अपना सुख दुख है। आप सब त्रिभुवन में देखिए सभी कर्म बस आ रहे हैं जा रहे हैं। मेरे जन अपना मैं मेरा मुझमें अर्पण करके सब ओर निर्भय सुखी विचरण करते हैं। मेरे जन को त्रास देते हैं उस खल को मैं अवश्य नष्ट करता हूँ। ब्राह्मण में मेरे मुख हैं, गौ शरीर है, श्रुति मेरी वाणी है, देव मेरे अंग हैं तथा सदकी खानि भक्त मेरे प्राण है। काल के विपर्यय से जब जब इन्हको त्रास होता है तब तब मैं अवतार धारण करके इन खल दलों का नाश करता हूँ।

अब आप सब डरो मत निर्भय होकर अपने अपने धाम को जाइए अपने शक्ति के साथ आप सब धरती पर जाकर यदुकुल में मेरी आज्ञा से जन्म धारण करो। मैं भी यदुकुल में अवतार धारण करके धरती के भार का हरण करके आप सब का काज करूँगा। कश्यप अदिति महान तपस्या किए हैं उन्हें पहले ही वरदान रखा है। उन्हीं का नाम वसुदेव देवकी है उन्हीं का रुचिर ललाम पुत्र होऊँगा। मेरे अंश विशेष बल शक्ति शेष रोहिणी पुत्र होंगे। ललाम लक्ष्मी ही भीष्मक पुत्री रुक्मिणी नाम से होगी। गिरिजा सुन्दरी जाम्बवती होगी तथा विरिजा का सुन्दरी कालिन्दी नाम होगा। श्रेष्ठ गंगा मित्रविन्दा होगी सुभगि लज्जा का नाम भद्रा होगा रुचिर दक्षिणा का नाम लक्ष्मणा तथा नाग कन्या का नाम सत्यभामा होगा। अभी तक मेरे जितने अवतार हुए हैं मेरे उन सब स्वरूपों की पत्नियाँ राधा की अंशज सोलह सहस्र पत्नियाँ होगी।

द्रोण और धरा पूर्व वरदान के कारण मेरे बाल प्रमोद को प्राप्त करने के लिए ब्रज अधिपति नन्द यशोदा होंगे। महान सुचन्द्र कलावती के साथ ब्रज में कीर्ति और वृषभानु होंगे उन्हीं के गृह मेरी प्राणप्रिया राधा प्रगट होकर मेरे रस का अनुसरण करेगी। मेरे अर्जुन अंशु सुबल श्रीदामा श्रीकृष्ण स्तोक रुचिर सखा नन्दों उपनन्दों के घर जन्म लेकर मेरे लिए बाल आनन्द की वृद्धि करेंगे। मेरे सखागन देवप्रस्थ तेजस्वी विशाल ऋषभ वरुपथ ये सब वृषभानु के घर में प्रगट होकर मेरे लिए सुख का विधान करेंगे। यहाँ की गोलोक निवासिनी गोपियाँ मेरे सुख की अभिलाषिनी ब्रज में जाकर गोपियाँ होंगी। गंगा, जमुना, माया, रमा, माधवी, ललिता, विसाखा आदि के मेरे सुख रस के अभिलाष से बहुत से गोपियों के यूथ प्रगट होंगे।

वैकुण्ठ उर्ध्व वैकुण्ठ आदि में लक्ष्मी रमा की सखियाँ मेरे स्वरूप कमलापति विष्णु से वरदान प्राप्त कर चुकी हैं। मेरे विग्रह यज्ञ की तपस्या द्वारा आराधना करके देवांगनाओं ने वरदान प्राप्त किया। फिर धन्वन्तरि रूप से पग कर तपस्या करके औषधियाँ वरदान प्राप्त करके बड़भागिनी हुई हैं। जालन्धर नगर में वृन्दा की सखियाँ तपस्या करे हरिदवारा वरदान कर चुकी हैं। मेरे मत्स्य रूप से पग कर समुद्र की कन्याएँ तपस्या करके वरदान प्राप्त कर चुकी हैं। बहिष्मती की नारियाँ पुथु हो सुतल की नारियाँ वामन रूप से वरदान प्राप्त कर चुकी है। इस प्रकार कोई दिव्य स्वरूपा कोई अदिव्य स्वरूपा कोई सतोगुण प्रधान कोई रजोगुण प्रधान कोई तमोगुण प्रधान पूर्व वरदान के कारण ब्रज मण्डल में जाकर सब गोपियाँ होंगी।

लक्ष्मीजी बोली- हे मेरे स्वामी, यदि आप पृथ्वी पर जाते हैं तो मेरे को भी साथ ले चलिये। हे प्रभु, मैं आपके हर अवतार के साथ आपकी दासी प्रकट होऊंगी क्योंकि आपके बिना मुझे एक क्षण भी युग के समान प्रतीत होता है। भगवान बोले- हे सुमुखी, तुम मुझसे पूर्व ही पृथ्वी में राजा भीष्मक के घर में जाकर प्रकट होगी। हे सुन्दरी, तुम्हारा जो सेविका-मण्डल हैं, वह भी पृथ्वी में जन्म धारण करेगा। भुजाओं के बल से सब राजाओं को जीतकर मैं तुम्हें ले आऊँगा।

तब राधाजी बोली, हे प्रियतम, क्या आप मेरे बिना अकेले ही धरती पर अवतार धारण करेंगे। नारायण बोले- तुम्हारे बिना तो मैं आधा हूँ किशोरीजी। तुम तो मेरी आल्हादिनी शक्ति राधारानी मेरे प्रकट होने से पहले ही तुम धरती पर प्रकट हो जाओगी।

वहाँ वे पुरुषसूक्त से भगवान विष्णु की स्तुति कर उनके ध्यान में निमग्न हो गये। ध्यानावस्था में ही उन्हें भगवान की

वाणी सुनाई पड़ी। उसे सुनकर उन्होंने देवताओं से कहा- देवताओं, मैंने भगवान की वाणी सुनी है। उसे मैं तुम लोगों को सुना रहा हूँ। सुनकर तुम लोग शीघ्र वैसा ही करो जैसा भगवान का आदेश है। भगवान को पृथ्वी की पीड़ा का पहले से ही पता है। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। उनका आदेश है- कि देवगण अपने-अपने अंश से यदुवंश में जन्म ग्रहण करें। वसुदेवजी के घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान प्रकट होंगे। उनकी अचिन्त्य शक्ति उनकी प्रियतमा राधा रानी की सेवा के लिये देवांगनाएँ भी जन्म ग्रहण करेंगी। सकल जगत् को नचाने में समर्थ भगवान की ऐश्वर्यशालिनी योगमाया भी उनकी लीला के कार्य सम्पन्न करने के लिये यशोदा के गर्भ से प्रकट होगी। भगवान शेष भगवान की कला होनेके कारण अनन्त हैं। अनन्तका अर्थ है जिसका अन्त न हो, नित्य हैं, शेष के हजार मुख हैं। राधाजीके वरदान से शेष के हजार मुख हुए। राधाने कहा हजार मुख क्या करोड़ मुख हो तब श्रीकृष्णका नाम लेनेमें आनन्द आवे। शेषजी अपने हजार मुखोंसे भगवान्का गुणगान करते हैं। भगवान अनन्त देवताओंका प्रिय कार्य करने के लिये भगवान के बड़े भाई बनकर आ रहे हैं।

तब ब्रह्माजी ने विविध प्रकार से समझाकर पृथ्वी को सन्तोष दिया और बोले कि परम प्रभु का भरोसा हृदय में रखकर उन्हीं का सुमिरन करो। फिर देवताओंको भी समझाकर कहा कि तुम सब धरती पर जाकर शरीर धारण कर प्रभु की सेवा करो। ब्रह्माजी के रुचिर आज्ञा का तुरन्त पालन करके सभी देवगण नर वेष में धरती पर छा गए। कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल समय से बिचरते हुए अपने मूल प्रभु कृष्ण की राह देखने लगे।

पृथ्वी बोली- मेरे ऊपर चोर जुआरियों की संख्या बहुत बढ़ गई है। माता पिता और ब्राह्मणों का घात करनेवाले पापियों की संख्या अपार हो गई है। पर नारी का अपहरण करनेवाले कामी और पर धन अपहरण करनेवाले लोभी आदिकी संख्या बढ़ गई है। अब आप प्रभु अवतार धारण करके सबका संहार करो। भगवान के अवतार की बात सुनकर ऋषि मुनि इसलिए प्रसन्न हुए कि अब हमारी तप और साधना की बाधाएं समाप्त हो जाएंगी। भगवत भजन, सद्ग्रन्थों का पाठ, इष्ट मित्रों का जप, आराध्य देव का ध्यान, मंगलमय तीर्थों का सेवन रूपी सब कार्य असुरों के भय के कारण पूरी तरह सध नहीं पा रहे थे और हमारे प्राण संकट में टँगे रहते थे कि पता नहीं कब कौन सा असुर हमारे आश्रम में आ धमके और झोपड़ी में आग लगा दे और हमारी दाढ़ी और जटाओं को खींच कर उखाड़ दे। सभी भक्त प्रभु का जय जयकार कर रहे थे और कह रहे थे, अब चारों ओर श्री हरि की लीला कथायें सुनने को मिलेंगी। सन्त अपने मुख से श्री हरि की कथायें सुनायेंगे और झगड़े फसाद सब दूर हो जायेंगे। अब हमारे उल्टे दिन भी मंगलमय हो जाएंगे और हमारी रातें भी मंगलमय हो जायेंगी। सभी ऋषि, मुनि, देवता, सन्त, पृथ्वी और भक्त प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरो से कहने लगे। श्री कृष्ण का अवतार बृजमण्डल में होनेवाला है, अत: आओ हम सब बृज मण्डल चलें। कोई मयूर, शुक, बन्दर बने, कोई जलचर, थलचर और नभचर का शरीर धारण करे।

आकाशवाणी हुई कि तुम सभी देवी-देवता ब्रजमण्डल में जाओ। मथुरा नगरी में जन्म लो और मैं अपने चार स्वरूप धरके वसुदेव के घर देवकी के गर्भ से अवतार लूंगा और बाललीला कर नन्द-यशोदा को सुख दूँगा। यह आकाशवाणी सुनकर सुर मुनि किन्नर और गन्धर्व अपनी-अपनी पत्नियोंसहित ब्रजमण्डल में जन्म लें यदुवंशी और गोप कहलायें, वेद की ऋचायें ब्रज में गोपियाँ कहलाई। लक्ष्मण बलराम हुआ, नारायण वासुदेव हुए, भरत प्रद्युम्न हुए, शत्रुघ्न अनिरुद्ध हुआ और सीताने रुक्मिणी का अवतार लिया।

वसुदेवगृह साक्षात् भगवान पुरुष: पर:। जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रिय: ।।

मथुरा में शूरसेन नाम के राजा होंगे उनके पुत्र वसुदेव, वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ से नारायण कृष्ण रूप में अवतरित होंगे। गोकुल में नन्द की भार्या यशोदा है। प्रभु की दिव्य चिन्मयी माया पुत्री के रूप में यशोदा के यहाँ अवतार लेकर

आयेगी। आप सबके कष्ट की निवृत्ति होगी।

सभी रूपों के मूल श्री सीताराम ही हैं सभी धामों का मूल साकेत धाम ही हैं। सभी नामों का मूल राम नाम तथा समस्त चरित्रों का मूल ललाम राम चरित्र ही है। वही एक राम ही परम ज्योति परम प्रकाशक है सब का सार सब का नियमायक है वही सब के सब लयों में रमन करनेवाला है केवल एक उसी का सर्वत्र प्रसार है।

शुकदेवजी ने कहा कि राजन्, जो देवी-देवता व्रज में अवतीर्ण हुए उनमें से कुछ प्रमुख का वर्णन इस प्रकार है।

	गोलोक में नाम	व्रज में नाम
१	श्रीकृष्ण/श्रीनारायण	श्रीकृष्ण
२	भगवान अनन्त/शेष	बलराम/संकर्षण
३	राधाजी (गोलोकवासिनी)	राधाजी (वृषभानु की पुत्री)
४	लक्ष्मी	रुक्मिणी
५	पार्वती (आधे अंश से)	जाम्बवती
	पार्वती (आधे अंश से)	महामाया (नन्द की पुत्री)
६	तुलसी	लक्ष्मणा (श्रीकृष्ण पत्नी)
७	यमुना (सूर्य पुत्री)	कालिन्दी
८	लज्जा	भद्रा
९	गंगा	मित्रविन्दा
१०	सावित्री	नाग्नजिती/सत्या
११	वसुन्धरा/वसुधा	सत्यभामा
१२	कामदेव	प्रद्युम्न
१३	ब्रह्मा	अनिरुद्ध
१४	द्रोण (वसु)	नन्द गोप
१५	धरा देवी (द्रोण पत्नी)	यशोदा
१६	सुचन्द्र	वृषभानु
१७	कलावती (सुचन्द्र पत्नी)	कीर्तिदा (वृषभानु पत्नी)
१८	कार्तिकेय/षड़ानन	साम्ब
१९	रति	मायावती (शम्बर के घर में)
२०	कश्यप (ऋषि)	वसुदेव
२१	अदिति	देवकी
२२	कद्रू (सर्पों की माता)	रोहिणी (बलराम की माता)
२३	भारती	ऊषा (बाणासुर की पुत्री)
२४	सरस्वती	शैव्या
२५	स्वाहा (एक अंश से)	सुशीला (सुदामा पत्नी)

हे भवानी अभेद गति होनेपर भी रस के लिए भेद होता है रस के लिए ही रस का वर्णन किया जाता है। हे गिरिजा जो रस के आन्तरिक गति को अच्छी तरह जान लेता है वे परमात्मा राम के समान हैं। रावणादि खलों का संहार करके तथा देवों का हित एवं धर्म व्यवस्थित करके अपने स्वजनों की प्रीति की रीति पूरी करके सब का भय हरण करके परम प्रभु राम अपने धाम आए। कुछ काल बीत जानेपर प्रभु फिर द्रवित हुए और अपने हृदय में विचार किए कि पूर्व जन्म में जिनको वरदान दिया है उसे पूरा करने का अवसर आ गया है। वे सीता से बोले- तुम मेरी लीला की संयोजिका हो तुम्हारे बिना कौनसा विधान पूरा हो सकता है। अब बची हुई योजनाओं का संयोजन करो। पूर्वजन्म में स्वजनों को जो वरदान दिए थे वो मैं अब पूरा करना चाहता हूँ। सीता बोली- मैं तो आपकी आल्हादिनी शक्ति हूँ। जैसी आपकी रूचि वैसी मेरी रूचि। मैं तो आपकी अनुगामिनी हूँ। यह सुनकर रामने तुरन्त अपनेको कृष्ण रूप में परिणित कर लिया और सीता राधा रूप में परिणित हो गयी। साकेत का परम धाम गोलोक में परिणित हो गया। परम प्रभु कभी तो अंशांश रूप से कभी आवेश रूप से कभी कला रूप से कभी पूर्ण रूप से अवतार धारण करते हैं। कभी परम परिपूर्ण साज से अभिसज्जित स्वयं परम प्रभु आप ही विराजमान होते हैं। प्रभु का वह रूप न प्राकृत है न संसारी है प्रभु का रूप चिन्मय रुचित तथा सदा अविकारी होता है। जिस प्रकार से नट अपनी माया से मोहित नहीं होता है उसी प्रकार परम प्रभु सहज एक रस रहते हुए सभी कृत करते हैं। हे उमा प्रभु कृष्ण परम प्रतापी हैं वे दिव्य शरीर धारण करके भी घट घट में व्याप्त रहते हैं। चाहे कोई देवता हो चाहे असुर इस चराचर जगत में कोई भी हो जिन्हें परमार्थ का ज्ञान नहीं है वे सभी द्वन्द गति से सने हुए सुख दुख भोगते हैं अहम, स्वार्थ बस आत्म ज्ञान नहीं होता है। दानव असत हैं देवता सत है इन दोनों में परस्पर भेद हैं इसलिए हमेशा परस्पर विरुद्ध रहते हैं और इन दोनों के नियन्त्रक ईशों के भी ईश अपेक्षा रहित परमात्मा राम है। परम नियन्त्रक प्रभु का रूख पाकर प्रबल असुर ने धरतीपर आकर जन्म लिया। विप्रचिति नाम का जो असुरों का राजा था वही मगध देश का राजा जरासन्ध हुआ। हिरण्यकश्यपु पहने जन्म में रावण हुआ वही शिशुपाल नाम से विख्यात हुआ। बलवान असुर इषुपाद वही राजा नग्नजित हुआ। वाष्कल नामक असुर भगदत्त नामक राजा तथा असुर शिवि द्रुम नामक मदमत्त राजा हुआ। फिर अय:शिरा, अश्वसिरा, वेगवान, नभ और संकु ये सब केकयराजके नि:संक राजा हुए। एक चक्र प्रति विन्ध्य नामक राजा चित्र वर्मा विरुपाक्ष हुआ बिक्षर वसुमित्र राजा था क्रथन सूर्याक्ष हुआ।

परमात्मा के अतिरिक्त जो कुछ स्थावर, जंगमात्मक जगत् दीख रहा है, उसकी अंतिम गति प्रलय है। अवतार ले-लेकर भगवान् उसकी विपरीत गति का निरोध तो करते ही रहते हैं। परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है तब भगवान् नवीन रूप से सात्विक सृष्टि करने के लिये प्रलय कर दिया करते हैं। परमात्मा जब अपनी शक्तियों के साथ सो जाता है, तब सारे जगत् का निरोध अर्थात् प्रलय हो जाता है।

अवतार के अनेक भेद बताये गये हैं- अंशावतार, गुणावतार, व्यूहावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, स्फूर्ति अवतार आदि। अवतार भगवान् और उनके नित्य पार्षद दोनों के ही होते हैं। सर्वव्यापक, निराकार एकरस परमात्मा के लिए कोई ऐसा स्थान है ही नहीं, जहाँ वे पहले से विद्यमान् न हों। इसलिये अवतार का अर्थ है- अव्यक्त रूप से विराजमान् परमात्मा का व्यक्त हो जाना। जगत् में जो कुछ है और जो कुछ जगत् है, वह परमात्मा का ही रूप है। इसलिये परमात्मा व्यक्त होने पर भी अव्यक्त है और प्रकट होने पर भी गुप्त है। यह जगत् परमात्मा की शक्ति-विशेष का ही प्रकाशमात्र है। शास्त्रों के अनुसार परमात्मा में सोलह कलाएँ हैं। उसमें से एक कला प्रकाश उद्भिज्ज योनि में हैं, वे अन्नमय कोश प्रधान है। दो कलाओं का प्रकाश स्वेदज योनि में हैं, वे विज्ञानमय कोष प्रधान हैं। पाँच कलाओं का प्रकाश जरायुज मनुष्यों में है, वे

आनन्दमय कोष प्रधान हैं। छ: से आठ कलाओं का प्रकाश उन महात्माओं में है, जो कोष सम्बन्धी संवेदनाओं से ऊपर उठे हुए हैं। मानव शरीर में आठ कलाओं से अधिक शक्ति धारण करने की क्षमता नहीं है। इससे अधिक शक्ति की जहाँ स्फूर्ति होती है, वहाँ शरीर भी दिव्य उपादानों से ही बनता है और उसका नाम अवतार होता है। नौ से पन्द्रह कला तक का प्रकाश अंशावतार के नाम से अभिहित होता है और सोलह कलाओं के अवतार को पूर्णावतार कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण का अवतार आनन्द प्रधान अवतार है। सभी अवतारों में सब होता है, किन्तु किसी-किसी अवतार में विशेष धर्म की अभिव्यक्ति होती है। भगवान् का चरित्र रसायन है। रसायन है तो अच्छे वैद्य के द्वारा निर्मित होना चाहिये तथा सेवन भी उसी के अनुसार। यदि वैद्य रोगी से अधिक धन पाने की इच्छा से दवा दे तो दवा में संदेह होता है। अत: भवरोग की दवा तृष्णारहित महापुरुषों के द्वारा सेवन करने को ही कहा गया है, कोई तर्क हमारी वासना को शांत नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् की लीला कथाओं का श्रवण करो, मनन करो उनके नामों का कीर्तन करो तथा संसार को अपने हृदय से निकाल दो और ईश्वर को अपने हृदय में स्थापित करो इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

सर्वशक्तिमान भगवान श्रीहरि मत्स्यादिके रूपमें जो अवतार धारण करते हैं और उन अवतारोंमें जो मनोज्ञ कर्णरम्य चरित्र करते हैं, उनके श्रवणसे मनुष्यकी भगवत्-कथा सम्बन्धी अरुचि दूर हो जाती है, विविध विषयोंकी प्यास बुझ जाती है, उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है, उसकी भगवान्में भक्ति हो जाती है और भक्तोंसे मैत्री जुड़ जाती है।

अणिमा, लघिमा आदि सभी सिद्धियाँ वहाँ निवास करने लगीं। सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति तथा श्रीदेवी भी वहाँ आ विराजीं। उस ब्रजधाम की महिमा का क्या वर्णन। वहाँ भगवान बैकुण्ठनाथ का नित्य निवास स्थान गोलोक धाम के रूप में ही परिणित हो गया।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, देवताओं को आदेश देकर तथा पृथ्वी को ढाढस बँधाकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये।

इस प्रकार सभी देवगण विलक्षण दिव्य दर्शन पाकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए कृष्ण ही परम प्रभु हैं सब के मूल हैं यह ज्ञान हो गया। फिर सभी देवोंने बार बार प्रभु कृष्ण की श्रेष्ठ विनती की तथा बार-बार दण्डप्रणाम किया फिर परमेश्वर की आज्ञा पाकर सभी अपने अपने धाम आए।

प्राचीन काल में यदुवंशी राजा शूरसेन मथुरापुरी में रहकर मधुरा-मण्डल और शूरसेन-मण्डल का शासन करते थे। उसी समय से मथुरा ही समस्त यदुवंशी राजाओं की राजधानी बन गई थी। भगवान श्रीहरि मथुरा में सर्वदा विराजमान रहते हैं। कुछ समय के बाद, उग्रसेन के भाई देवक की कन्या देवकी का विवाह शूर के पुत्र वसुदेव के साथ सम्पन्न हुआ।

प्राचीनकाल की मान्यता थी कि- मथुरा की लड़की और गोकुल की गाय। करम फटै तो बाहर जाय। अत: मथुरा की बेटी मथुरा में ही ब्याही जाती थी। इसीलिये एक-एक व्यक्ति से कई-कई लड़कियाँ ब्याह दी जाती थीं। स्वयं देवकी की सारी बड़ी बहने वसुदेवजी के साथ ब्याही गई थीं। वसुदेव का पहला विवाह राजा रोहण की बेटी रोहिणी से हुआ। प्रथम पत्नी रोहिणी के होते हुए भी वसुदेव ने देवकी का पाणिग्रहण स्वीकार किया। महाराज उग्रसेन और उनके अग्रज देवकजी ने अपनी सभी कन्याओंका विवाह शूरासेनजीके ही कुलमें किया। महाराज उग्रसेन अपने अग्रज देवक को लेकर शूरसेनजी के सदन में देवकीके लिये प्रस्ताव लेकर पहुँचे। पितामह शूरसेनजी ने बहुत बड़ी आयु पायी। वे अन्ततक स्वस्थ, सशक्त बने रहे। उन परमश्रद्धेयको अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और उनकी भी सन्तानोंका महासंहार स्वयं अपनी आँखोंसे देखना पड़ा। कंसका प्रारम्भ से आग्रह था कि देवकी का विवाह वसुदेवके साथ हो। प्रतिवाद सहन करना कंसके स्वभावमें नहीं था।

महामति ज्ञानी मुनिवर गर्ग ज्योतिष शास्त्र के भी निपुण विज्ञानी तथा मथुरा नरेश के पुरोहित भव विषयों से अलिप्तता

रूपी श्रेय के एक समय अच्छा अवसर जानकर मथुरा के राजभवन में आए। राजा उग्रसेन बोले- हमारे अत्यन्त भाग्य है जो आपके श्री चरण हमारे घर पधारे। आपके चरण लगनेसे सब प्रकारसे कुशल मंगल ही होता है। आचार्य गर्ग बोले- समस्त भूमण्डल में देवकी के योग्य वर नृप वसुदेव ही है यह संयोग विधाता ने ही रचकर रखा है। उग्रसेन के भाई देवक ने महामुनि गर्ग की आज्ञा पाकर तुरन्त सगाई का प्रस्ताव वसुदेव के पास भेज दिया। जैसा प्रभु का रूख होता है वैसा ही होता है। ईश्वर के विधान को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

कंसके स्वभाव में शीघ्रता थी। वह प्रतीक्षा करना नहीं जानता था। उसीके आग्रहके कारण महर्षिको विवाहका मुहूर्त निकट का रखना पड़ा जो उन्हें श्रेष्ठतम नहीं लग रहा था। वृद्धायें अन्त तक कहती सुनी गयीं कि कंसके दुराग्रहके कारण देवकीका पाणिग्रहण शीघ्रतामें हुआ। पाणिग्रहण के समय कंस गर्गाचार्य पर चिल्लाकर बोला- महर्षि आप विलम्ब कर रहे हैं। परिणय-क्रिया यथाशक्ति शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करें।

कंसने वसुदेव के पास प्रस्ताव भेजा कि देवकी का विवाह वसुदेव से किया जाय। वसुदेव एक छोटेसे जनपद के अधिपति, जो सम्पूर्ण यादव संघ का हिस्सा था जिसका सम्राट कंस था। वसुदेव जानता था कि कंस की सर्वथा निस्वार्थ भावना ही काम कर रही है। उसकी सीमाओं से लगे राज्य और स्वयं उसके अपने शूर-सामंत उसके विरुद्ध दुरभिसंधि में लीन थे। उसमें वसुदेव के समान समर्थ व्यक्ति को सम्बन्धों के सूत्र में बांधना सर्वथा समय की मांग थी। कंस अपने अन्याय, अत्याचार और स्वभाव की उग्रता के कारण अपने राज्य की सीमाओं में ही लोकप्रियता खो चुका था। ऐसे में वसुदेव उसके कामके होते, अत: प्रताप और प्रभाव में न्यून होते हुए भी देवकी के हाथ को उनके हाथ में देने में उसने किसी अवमानना का अनुभव नहीं किया अपितु वसुदेव की स्वीकृति उसे वरदान के रूप में लगी और वसुदेव के पास भी स्वीकृति के अलावा कोई उपाय नहीं था। कंस के क्रोध का उन्हें ज्ञान था और देवकी के सौन्दर्य का भी।

एक समय वसुदेवजी, गज रथ अश्व समेत, कर विवाह सह देवकी, चले स्वकीयनिकेत ।।

विवाह के बाद वसुदेव जी अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिये रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का लड़का था कंस। उत्साह से कंसने विवाह के सारे आयोजन स्वयं के निर्देशन में सम्पन्न कराये। कंस अपनी सहोदरा बहन से देवकी को किंचित भी कम नहीं मानता था। देवकी उसकी चचेरी बहन हुई तो क्या हुआ। वह लोगों के मन से उसके बारे में उठे उग्र और हिंस्र भाव को नि:शेष करना चाह रहा था। उसने अपने ही पिता को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया। प्रजा उसके प्यार और न्याय-भाव के प्रति आश्वस्त नहीं थी।

कीन्ह ब्याह वसुदेवजी, देवक-पुत्री साथ। छ: पुत्र मारे गये, दुष्ट कंस के हाथ ।।

वह अपनी चचेरी बहन देवकी को बहुत प्यार करता था अत: उसको प्रसन्न करने के लिये कंस स्वयं घोड़ों की लगाम पकड़कर रथ हाँकने लगा।

कंस स्वसा के नेह से, बैठ तास के यान। हय रश्मी करग्रहण कर, चला सहित अभिमान ।।

देवक अपनी पुत्री देवकी से बहुत प्रेम करते थे। देवक ने अपनी कन्या को दहेज में चार सौ हाथी, पन्द्रह सहस्र घोड़े और नौ सौ अथवा अठारह सौ रथ दिया। बेटी की सेवा के लिये उन्होंने दो सौ दासियाँ भी प्रदान की। बिदाई की बेला में वर-वधू के मंगल के लिये एक ही साथ शंख, तुरही, मृदंग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। इन सब रणनीतियोंने ही कंस को बाध्य किया था कि वह मार्ग में जिस समय घोड़ों की रास पकड़कर स्वयं रथ हाँके।

तब चढ़ाय रथ देवकी आप भयो रथवान। पहुँचावन अति प्रीति सों चल्यो सहित अभिमान ।।

उसकी सौम्यता, उदारता और सेवा-भावना पराकाष्ठा पर है यह दिखाना चाहता था। यह देखकर आमंत्रित राजा और नगर के प्रतिष्ठित जन, सामान्य सभासद सभी कंस की उदारता पर प्रसन्न हो जाय। कौन कहें कि कंस क्रूर, स्वार्थी और महत्वाकांक्षी है। जो अपनी चचेरी बहन और उसके पति के सारथ्य को प्रस्तुत है वह कैसे अपने पिता को बंदीगृह में बन्द कर सकता। शायद उग्रसेन का ही कोई दोष रहा होगा। ऐसे लोगों के मन में विचार आवें। वसुदेव भी कुछ क्षणोंके लिये कंस के ही प्रेमप्रदर्शन पर पुलकित हो गये। कुछ क्षण तक तो वसुदेव को विश्वास ही नहीं हुआ कि जो वह सुन रहे हैं और देख रहे हैं वह अलग ही है। वे कंस के कृत्योंसे परिचित थे। वसुदेवजी को कंस का यह व्यवहार पूर्णत: कृत्रिम और स्वार्थप्रेरित लगा। राज्यारोहण के पश्चात् घृणित कार्य करता ही रहता था। उसे प्रजा के सुख में नहीं बल्कि उनको उत्पीड़न और शोषण में आनन्द आता था। सभी पास-पड़ोस के राज्योंपर उसकी शनिवक्र दृष्टि बराबर पड़ी रहती थी और सीमाओं पर व्यर्थ के उत्पात निर्माण कर निरपराधों के रक्त से धरती को रंजित करता था। कंस नर नहीं नर पिशाच के रूप में विख्यात हो चुका था।

अन्याय, अनीति, अत्याचार और कदाचार की कथाएं उसके राज्य ही नहीं, पास पड़ोस के राज्यों में भी सार्वजनिक चर्चा का विषय बन गयी। अब सारथी के स्थान पर कंस विराजमान हुआ। अश्वों की पीठ पर क्रूर हाथों से कुशाघात किया कंस ने और अश्व दौड़ पड़े। कंसके हृदयमें सच्चा प्रेम नहीं है। वह तो खल है, पापी हैं, कुलकलंक है- कुलका नाश करनेवाला है।

उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधित कर के कहा- अरे मूर्ख कंस, जिस देवकी को तू इतने प्रेम से रथ पर बैठा कर ले जा रहा है, उसके आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी। इसका अष्टम गर्भ तेरा काल होगा।

कंस बोला- मेरा काल? मैं मरूँगा? देवकी का अष्टम गर्भ मुझे मारेगा।

जाको पहुँचावन चल्यौं रे मूरख अज्ञान। बालक ताको आठवों, हने तोकूँ आन।।

कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टता की सीमा न थी। वह भोजवंश का कलंक ही था।

रे रे कंस मूढ़ अभिमानी। जो तुमने निज भगिनी जानी। या कर अष्टम सुत हो जोई। खल मारेगा तुमको सोई।।

आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहन की चोटी पकड़कर उसकी गर्दन काटने के लिये तैयार हो गया। वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। कोई कैसा ही रिश्तेदार हो अपने प्राण से प्रिय नहीं होता। अज्ञानी कंस को पाप और पुण्य का कोई विचार नहीं। कंस बड़ा निंदित कर्म करने जा रहा है। वह तो क्रूर है, निर्लज्ज है। कंसने विचार किया मूल का ही नाश कर दिया जाय तो शाखा-प्रशाखा का क्या होगा?

रंगमें भंग पड़ गयी, अमृतमें विष मिल गया। हर्षके स्थानमें उदासी छा गयी, स्नेहका स्थान द्वेषने ग्रहण कर लिया।

जो कंस स्नेह के कारण अपनी बहन के रथ का रथवान बना हुआ था, वही क्रोध भरी आँखों से निहारने लगा। एक क्षण में प्रसन्न होना और दूसरे ही क्षण में आग बबूला होना, यह दुष्टों की पुरानी रीति है। उनका किसी से हार्दिक प्यार नहीं होता केवल स्वार्थ होता है। स्वार्थ पूर्ण हुआ तो स्नेह करने लगे और स्वार्थ में बाधा पड़ी तो कुपित हो गये। वे सज्जनों की तरह से एक रस नहीं रह सकते। इसलिए विश्वास के पात्र नहीं होते। शब्दों में कटुता आ गई। वाणी में लेशमात्र भी लाज नहीं रही। कंस बोला- मेरे काल रूपी बालक को पैदा करनेवाली देवकी के प्राणों का मैं हरण कर लूँगा, बाँस के बिना बाँसुरी कैसे बजेगी? मैं बाँस रूपी देवकी को ही जड़ से उखाड़ कर फेंक दूँगा। बस न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। विषके वृक्षको ही क्यों बढ़ने दे जिसके फलोंसे मृत्युकी सम्भावना हो, बढ़नेके पहले वृक्षको ही काट देना बुद्धिमानी है।

कंस का कड़कता स्वर नव-दम्पति के कानों में पड़ा कंस ने कहा - नीचे उतरो वसुदेव, देवकी। विलम्ब हो रहा है वसुदेव। मुझे इतना समय नहीं, देवकी के साथ शीघ्र उतरो नीचे वर्ना मुझे स्वयं अन्दर आकर उद्देश्य की पूर्ति करनी होगी।

मेरे काल को जन्म देनेवाली देवकी को ही जीवित नहीं छोडूँगा तो काल पैदा होगा कहांसे? कंस अपने पाशविक और आसुरी प्रवृत्तियों के लिए पूरी तरह विख्यात था। क्या उद्देश्य हो सकता है कंस का? कंस हाथमें नंगी तलवार लिये नीचे देवकी को मारने के लिये उद्यत था।

गगन गिरा सुन कंस ने, काढ़ लिया तरवार। भगनी मारण कारणे, तब हुई हाहाकार।।

देवकी तो आँखें खोलने का भी साहस नहीं कर सकी। उसका तो पूरा गात कांप उठा। वसुदेव बोले- राजन्। कंस ने कहा- मैं इस देवकी का शिरोच्छेदन करना चाहता हूँ अभी और इसी समय। एक क्षण का विलम्ब भी घातक हो सकता था। पति को पति कहने का अधिकार तभी है जब वह हर प्रकार से पत्नी की सुरक्षा कर सके।

विषयी लोगोंका स्नेह जबतक रहता है जबतक उनके स्वार्थमें बाधा नहीं पड़ती। उनका सारा स्नेह स्वार्थमें है।

जिसके हृदय में जो भाव होता है, वह स्वार्थमें बाधा पड़ते ही प्रकट हो जाता है और अपना काम कर दिखाता है। स्वार्थी मनुष्यकी यही पहचान है।

अपने भय पर नियंत्रण करते हुए करबद्ध हो वसुदेव बोले- क्षमा करो राज्न, इस नववधू ने अपने जीवनके सुख का एक क्षण भी नहीं देखा, जो स्वयं आपकी बहन है और जिसका सारथ्य कर आपने इसे इतना मान दिया है फिर उससे थोड़े से समय में कैसा अपराध बन गया कि आप उसकी हत्या करने को तैय्यार हो गये। नारी तो वैसे भी अवध्या होती है और विवाह के समय तो नारी लक्ष्मीके स्वरूप होती है। राज्न, आपके चरित्र पर कलंक लग जायगा। लोग कहेंगे बड़ा वीर बनता था, बहन को तलवार से मार दिया। तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया? किस जीवन की सुरक्षा के लिए यह घोर अत्याचार रूपी महापाप करने जा रहे हो? तुम्हारी विकृत बुद्धि इतना भी निर्णय करने में सक्षम नहीं है कि तुम जिस की हत्या करने जा रहे हो, प्रथम तो वह नारी है फिर नवविवाहिता है, छोटी बहन है। जिस छोटी बहन को धर्मशास्त्र पुत्री के समान बताते है, अब तक जिसे अपार प्यार दिया, उसीका जीवन समाप्त करने की धूर्तता करने जा रहे हो। आप यदुवंशके गौरव हैं। आपका शौर्य त्रिभुवन में प्रख्यात है। कंस बोला- यह मेरे मरणका हेतु है। देवकीके मुखसे चीत्कार भी नहीं निकल सकी।

शूर शलाघनीय यदुवंशा। करें तुम्हारी वीर प्रशंसा।। यह अधर्म क्यों करो उदारे। किस जीवन हित भगनी मारे।।

कंस ने घोर अट्टहास करके कहा- आस-पास के पेड़-पौधे भी उसकी हँसी से काँप उठे। वसुदेव अपराध किसी अल्पसमय में नहीं बना यह देवकी अपराध की साक्षात् प्रतिभूति पैदा हुई है। इसके गर्भ से मेरा काल प्रकट होनेवाला है। मैं इसे कैसे जीवित छोड़ सकता हूँ। वसुदेव आश्चर्य से बोले- आपका काल, आप कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं? कंस बोला- मैंने सपना नहीं साक्षात् अपनी मृत्यु देखी है। अपना असामयिक निधन। वसुदेव बोले- इससे आपकी बहन देवकी का क्या सम्बन्ध? माना यह संदेश घोर अपशकुनसूचक है। आपके सम्बन्धी होने के नाते यह हमारी भी चिन्ता का विषय है। पर इसमें इस निरीह नववधू देवकी का तो कोई अपराध नहीं? हम सब मिलकर इसके प्रतिकार का प्रबन्ध करें।

भैया कंस, आप भोजवंश के होनहार वंशधर तथा अपने कुल की कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। बड़े-बड़े शूरमा आप की प्रशंसा करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरी आपकी बहन और तीसरे यह विवाह का शुभ अवसर है। ऐसी स्थिति में आप इसे कैसे मार सकते हैं? वीरवर, जो जन्म लेते हैं, उनके शरीर के साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती हैं। आज हो या सौ वर्ष के बाद- जो प्राणी है, उसकी मृत्यु अवश्य होगी। अपनी इस बहन का वध कर तो आप अपने पाप को ही बढ़ाएंगे। दैत्यराज अपनी बहन को मारने के पश्चात फिर क्या तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी? मृत्यु तो जीवन का कटु सत्य है जिसका निवारण लाख प्रयत्न करने पर भी कोई कर नहीं सकता। भविष्य वेत्ता बताते हैं कि जीव के पैदा होते ही उसकी मृत्यु का कारण भी

साथ ही पैदा हो जाता है। जिस शरीर को नश्वर कहा गया है, लाख उपाय करने पर भी वह स्थिर नहीं रह सकता। ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए कि मरनेके पश्चात् लोग निंदा करें और अधोगति होकर घोर नरकमें जाना पड़े।

कंस चिल्लाया- मरण, मरण कैसा मरण? नहीं मरना है मुझको अभी। मैं अपनी मृत्युके कारणको ध्वस्त कर दूँगा।

जो उपजत जग मरता सोई। मृत्यु नाहिं निवारण होई।। जाको जासो मरण उचारे। निश्चय ताको सोई मारे।।
वीर नारि पर हस्त उठावो। क्यों निज कुल को दाग लगावो। यह कन्या सम अनुजा थारी। दीन अबल अब शरण तुमारी।।

छोटी बहन का संहार करके अपना सिर बचाना न चाहो क्योंकि अपना सिर तो फिर भी नहीं बचा पाओगे। अपने बचपन को याद करो कि तुम्हारा नाम कंस क्यों पड़ा? तुम्हारे पिता ने तो तुमको अशुभ जानकर जन्म लेने के बाद ही कांस (फूंस) में लपेट कर यमुना जी में बहा दिया था। ज्योतिषाचार्यों ने तुम्हें अपने वंश के लिए अशुभ घोषित कर दिया था। पिता ने अपने गले की फांस समझकर तुमको अपने परिवार की सुरक्षा के लिए यमुना जी की धारा में बहा दिया था। मेरे पिताश्री शूरसेन जी ने तुम्हें कालिन्दी की धारा में बहते देखा और अनाथ जानकर अपने महलों में ले आये। जैसे उन्होंने अपने पुत्र के रूप में मेरा पालन किया उसी तरह से बिना भेदभाव किये तुम्हारी पालना भी पुत्रवत की। बचपन से ही हम एक साथ रहे। साथ साथ खेले कूदे। मेरे पिता की कृपाओं को भूलकर और मेरा बढ़ा हुआ भाईचारा भूलकर आप हाथ में तलवार लेकर मेरी ही पत्नी को मारने के लिए तैयार हो गये।

कंस क्रोधित हो बोला- चुप करो वासुदेव। मैं इतना मूढ़ नहीं कि अनावश्यक रूप से उसी के वध पर उतारू हो जाऊं जिसका कल इतनी धूम-धाम से मैंने विवाहोत्सव मनाया। अभी अभी क्या तुमने आकाशवाणी को नहीं सुना?

वसुदेव बोला- मैंने समझा आप अपनी बहन की प्रेमवश....। कंस बोला- कंस इस प्रकार प्रेम आदि का नाटक नहीं करता। तुम्हें पूरी तरह मालूम है प्रेम, स्नेह और परोपकार आदि अनावश्यक भावनाओंसे मेरा कोई लेना-देना नहीं। तुम्हारी यह भार्या मेरी मृत्यु का कारण बनकर उत्पन्न हुई है। आकाशवाणी ने सब बताया है कि इसकी आठवीं संतान मेरा काल बनकर आ रही है। मैं मूल को ही समाप्त कर दूँगा। न रहेगा यह विष-वृक्ष और न ही आपयेगा उसमें विष-फल। जब देवकी न बचेगी और न ही इसकी आठवीं सन्तान मेरा काल होगी। ये तुम्हारा भाषण किसी और को सुनाना, यह वेद-वेदान्त किसी और को पढ़ाना। मैं तो इतना जानता हूँ मेरे काल को जन्म देगी देवकी और काल को जन्म देनेवाली को मैं नहीं छोड़ूँगा तो फिर काल पैदा होगा कहाँसे।

कंस झपट्कर देवकी की ओर लपका। वसुदेव बड़ी नम्रतासे बोले- किसी अन्ध:विश्वास का शिकार हो अपराध करना उचित नहीं है। कंस बोला- कंस अपने जीवन और साम्राज्य के संबंधमें किसी प्रकार का खतरा मोल लेना नहीं चाहता। मैं अपने सम्भावित काल की जननी इस देवकी को जीवित नहीं छोड़ सकता। आप मेरे रास्ते से हट जाय वरना मुझे एक नहीं दो की हत्या करनी पड़ेगी।

वहाँपर जनसैलाब उमड़ पड़ा। कुछ यदुवृद्ध कंसके समीप आयें और बोले- तुम्हें ऐसी कुबुद्धि कहाँ से आयी? देवता तुम्हारे मित्र तो नहीं है। देवता तुम्हारा जीवन चाहनेवाले कबसे हो गये? जो होनी होती है वो तो होकर ही रहेगी उसे रोका नहीं जा सकता। कंस बोला- कैसी होनी? क्यों नहीं रोका जा सकता उसे। देवताओंने झूठ ही कहा होगा यह बात मानकर मैं कैसे निश्चिन्त हो जाऊं।

वसुदेव बोले- राजन्, आकाशवाणी सुनकर घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। आप बुद्धिमान और नीतिज्ञ हैं। नीति बुद्धिमान पुरुष को कभी भी निरपराध अबला की हत्या करने की अनुमति नहीं देती। देवकी आपकी बहन है। उसने अब

यह संसार ही नहीं देखा है। अभी तो इसके हाथकी मेहंदी भी नहीं सूखी हैं। क्या यह आपके द्वारा वध करनेयोग्य है।

स्त्री वध बड़ा पाप है, ऐसे अधर्म करनेवालों के अनेक पुरुष नरक में पड़ते हैं। संसार में जो जन्मा एकदिन वह अवश्य मरेगा। अपना शरीर रहने के लिए चाहे जितने उपाय कर लो, नर यह तन किसी तरह रह नहीं सकता। तरुणाई व राज्य भी कुछ काम न आकर, केवल यश व अपयश संसार में रह जाता है।

दाता को महीन मानधाता और दिलीप ऐसे जाके यश आज हूँ लौं द्वीप-द्वीप छाये हैं।
बलि ऐसो बलवान को भयो जहान बीच रावण समान को प्रतापी जग जाये हैं।
बान की कलान में सुजान द्रोण पारथ से जाके गुण दीनद्याल भारत में गाये हैं।
कैसे कैसे शूर रचे चातुरी विरंचि जू की फेउर चकचूर कर चूर में मिलाये हैं।
अर्ब खर्ब लों द्रव्य है उदय अस्त लों राज। तुलसी जो निजमरण है तो आवै क्याहि काज।।

कंस बोला- नीति अबला की हत्या करने की अनुमति दे या नहीं पर राजनीति हर स्थिति में अपने प्राणोंकी रक्षा करने की अनुमति देती है। तर्क में समय नष्ट मत करो। आप नीति और धर्मकी दुहाई देकर मेरे कार्यमें बाधा बन रहे हो। देवकी के लिये क्यों चिंतित हो रहे हो। तुम्हे चाहिए तो अन्य किसी कन्या से तुम्हारा विवाह करा दूँगा। मैं देवकी को मारकर तुम्हारा दूसरा विवाह करा दूँगा।

कंस बोला देवकी, विधाता दैववश एक तिनके के द्वारा पर्वत को धराशायी करने में समर्थ हैं। एक कीड़े के द्वारा सिंह और व्याघ्र को तथा एक मच्छर के द्वारा विशालकाय हाथी को नष्ट कर सकते हैं। शिशु के द्वारा महान वीर का, क्षुद्र जन्तुओं के द्वारा विशालकाय प्राणी का, चूहे के द्वारा बिल्ली का और मेंढ़क के द्वारा सर्प का वध करा सकते हैं। इस प्रकार विधाता जन्य के द्वारा जनक का, भक्ष्य के द्वारा भक्षक का, अग्नि के द्वारा जल का और सूखे तिनके के द्वारा अग्नि का नाश करने में समर्थ हैं। एक मात्र द्विज जह्नु ने सात समुद्रों को पी लिया था। अत: तीनों लोकों में विधाता की विचित्र गति को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। दैवयोग से यह बालिका ही मेरा नाश करने में समर्थ हो जाएगी। अत: मैं बालिका का भी वध कर डालूँगा। इस विषय में और विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

वसुदेव ने सोचा- इस समय क्रोध करने से देवकी के प्राण जा सकते हैं इसे क्षमा करना ही उचित हैं। क्योंकि जब बलवान शत्रु क्रोध करें तब क्षमा करके वह अवसर बचा जाना चाहिए। जिस तरह ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काट डालता है। उसी तरह क्षमा करनेवाले मनुष्य अवसर पाकर अपने वैरी को जीत लेते हैं।

बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि जहाँ तक उसकी बुद्धि, उसका बल काम दे, वहाँतक मौतको टालनेका प्रयत्न करना चाहिए। फिर भी यदि उसका कोई वश न चले तो उसमें उसका कोई दोष नहीं। पर अपने प्रयत्न करनेमें कोई कसर न रखें। वसुदेवजीने सोचा पता नहीं जब तक मेरे पुत्र होंगे तब तक यह कंस मरेगा या जीवित रहेगा कौन जानता है? भविष्य कौन जान सकता है। विधाता का विधान कौन जान सकता है? कभी-कभी सामने आयी हुई मृत्यु भी टल जाती है और टली हुई मौत भी लौट आती है। हो सकता है मेरे पुत्र ही न हो। इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवाय और कोई कारण नहीं है। इसलिये कौनसे प्राणीका शरीर रहेगा और किस हेतुसे जायेगा इसका पता लगना अत्यन्त कठिन है।

वसुदेव बोले- भय तो आपको देवकी से नहीं, देवकी के पुत्रों से है। तो जन्म लेते ही उन पुत्रों को मैं आपको प्रदान कर दूँगा। इससे आपकी अपकीर्ति भी नहीं फैलेगी।

या सों कहा न मरणा तेरो। जो जो सुत होवेगा मेरो। देवूंगा सो सो सुत थारे। जिनसे भीती होय तुमारे।।

कंस यह जानता था कि वसुदेव मिथ्या भाषण नहीं करते हैं अत: उनकी बात का विश्वास कर उसने बहन के वध के विचार को छोड़ दिया और अपने घर लौट गया। इस पर वसुदेव जी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले गये। वसुदेव महात्मा पुरुष हैं। वसुदेवने वचन दिया और कंस को शान्त किया। कंस बोला- आपको अपना वचन स्मरण रहें। कंसने दोनोंको बन्दीगृह में डाल दिया। उनके हाथों में हथकडियाँ और पैरोंमें बेड़ियां डाल दी।

भामा के सुन वचन तब, युक्ति सहित सविचार। मारण का संकल्प तज, कंस रखी तरवार।।

काल गाल से छूटकर, गृह गमने पतिदार। चिन्तातुर हो देवकी, पति सों कहा पुकार।।

पुत्र देन जो वचन उचारे। भला कीन नहि सो तुम प्यारे।। सुत समान जग में नहि कोई। उभय लोक सुख देवे सोई।।

पुत्र के समान संसार में कोई प्रिय पदार्थ नहीं और पुत्र ही इस लोक तथा परलोक में सुख देनेवाला हैं, अर्थात् इस लोक में वृद्धावस्था में अन्नवस्त्रादि के द्वारा और परलोक में श्राद्धादिक द्वारा सेवा करता हैं। सन्तान के बिना घर सूना रहे है और पुत्र के बिना मन सदैव दुखी रहे है, मनुष्य, देवता तथा पितरों के ऋण से बिना पुत्र के उऋण नहीं होता है। जैसे तैसे बुद्धिमान पुरुष पुत्र उत्पन्न करने का उपाय करे, क्योंकि इस लोक में तिनका यश है और परलोक में श्रेष्ठ गति है। सन्तान के बिना जीवन को धिक्कार है, संतान के न होने पर घर को भी धिक्कार है। जिस पुरुष के पुत्र नहीं उसके धन को धिक्कार है, जिस कुल में पुत्र नहीं, उस कुल को भी धिक्कार है।

देवकी बोली- हे स्वामिन्, पुत्र के बिना संसार में जीवन किस निमित्त है, व्यर्थ है, पुत्र विहीन पुरुष सदा दुखी रहता है। हे नाथ, दुष्ट कंस मेरे को भले ही मार डाले परन्तु पुत्र का शौक मेरे से सहा नहीं जाता। वसुदेव बोले-

क्या जाने यह मारे वाको। अथवा मारेगा वो याको। काल गती को नहि को जोवे। क्या जाने कल को क्या होवे।।

इस क्षण से आगे कोई नहीं जान सकते की विधाता क्या करेगा।

सन्मुख आय काल को टाला। भावी का मैं करा न ख्याला।।

जब लग वा तूँ गर्भहि धारे। तिससे प्रथम इसे यम मारे।।

जहाँ तक अपनी बुद्धि और बल का प्रभाव चले, तहाँ तक बुद्धिमान पुरुष अपनी तथा दूसरे को प्राप्त हुई मृत्यु को हटावे, प्रयत्न करे पर भी यदि मृत्यु दूर नहीं हो, तो फिर जीव का कोई अपराध नहीं।

पति वचन सुन देवकी, धीरज मन में धार। समय पाय तिसके उदर, उत्पन भया कुमार।।

जब महाराज उग्रसेन को मालूम पड़ा तो क्रोध भरे स्वर में कंससे बोले- तुमने देवकीपर खड्ग उठायी। कंसने बिना किसी हिचक के कठोर स्वर में कहा- उसका अष्टम गर्भ मुझै मारेगा, यह भी सुन लिया आपने? अनेकोंने मेरे विरुद्ध शस्त्र उठा लिये थे वहाँपर। उग्रसेन बोले- क्या तुम अमर हो? क्या तुम कभी मरोगे नहीं? छोटी बहिनपर हाथ उठाते लज्जा नहीं आयी। कंस बोला- जिन्होंने शस्त्र उठाये वे क्या प्रशंसाके पुरस्कारके पात्र है। क्या उनमें मनुष्यत्व जीवित है। उग्रसेन बोले- तुमको अपने कर्मपर ग्लानि नहीं हो रही। कंस बोला- मैं अपने मारनेवालेको मार दूँगा। उग्रसेन देखते रह गये कंस चला गया। महाराज उग्रसेन बोले- कुलांगार है। उग्रसेन अपने राजसदन चले गये।

कंस ने अपने सदनमें जाकर अपनी दोनों पत्नियाँ आस्ति और प्राप्ति को बुलाकर बोला- सुन लिया तुमने, देवकी का अष्टम गर्भ मुझे मार देगा। प्राप्ति बोली- फिर आपने देवकीको छोड़ क्यों दिया? उपद्रवकी जड़ तो वही है। आस्ति बोली- अच्छा किया उसे छोड़कर नहीं तो बहुत कलंक मिलता। पर उसके आठवें गर्भकी उपेक्षा सर्वथा नहीं करनी है। कंस दोनों पत्नियों को बोला- देवकी पर सतत दृष्टि रखो। वसुदेव देवकीको लेकर कहीं भाग गये तो समस्या बहुत कठिन हो जायगी।

कंस ने असुरों की सभा में कहा मेरे द्वारा वसुदेव और देवकी को नजर बन्द कर देना, मेरे पिता मथुरा नरेश उग्रसेन को बिल्कुल अच्छा नहीं लगेगा। भोजपति (मेरे पिता) मुझे अवश्य प्रताड़ित करेंगे और अपनी पुत्री देवकी एवं अपने जामाता वसुदेव को नजर बन्दी से मुक्त करा देंगे। मेरे पिता मेरी ताड़ना करके वसुदेव और देवकी को मुक्त करें, उससे पहले ही मैं इस निर्बल और वृद्ध राजा को गद्दी से च्युत करके स्वयं राज मुकुट को अपने सिर पर धारण कर लेता हूँ, वृष्णि वंशी, भोजवंशी और अन्धक वंशी आदि शूर वीरों के गठबन्धन को तोड़कर अपने आधीन कर लेता हूं। इनके बल का खण्ड खण्ड कर देने से फिर कोई भी बली नहीं रह जायेगा, जो मेरे सामने सिर उठा सके। यदुवंशियोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। वे कभी भी विद्रोह कर सकते हैं वे महाराज के ही समर्थक हैं। वसुदेव की गतिविधियों पर दृष्टि रखो। सेना और प्रशासनमें ऐसे कौन-कौन हैं जो कठिन अवसर आनेपर भी विचलित नहीं होंगे और मेरा साथ देंगे। हो सकता है महाराजके विरुद्ध भी मेरा साथ देनेका अवसर आये। वहाँपर सभीने स्वीकार किया- मथुराका सिंहासन आपका है। हम आपके कारण किसीकी आज्ञा मानते नहीं। हम केवल आपके सेवक- आज्ञानुवर्ती हैं। सेनामें बहुत सारा परिवर्तन कंसने कर दिया। कंसने आदेश दिया- अयोग्य लोगोंकी भीड़ कम की जाये। प्रशासन में उसने कुछ नवीन पद बनाये और अपने लोगोंकी नियुक्तियाँ कर दीं।

कंसमें स्वजन, परिवार, सम्बन्धी जनोंके प्रति पहले अतिशय ममता थी। इसके कारण इस वर्गकी बहुत सुविधा और सम्मान राजसदनसे मिलता था। कंसके चित्तसे इस ममताका जैसे सर्वथा लोप हो गया। फलत: स्वजन-सम्बन्धियोंको मिलनेवाली विशेष सुविधायें क्रमश: बन्द हो गयीं और कंस सबकी उपेक्षा करने लगा। उसके नवीन अनुचर भी उपेक्षा करने लगे।

महाराज उग्रसेन अपने इस उद्धत पुत्रसे उदासीन हो गये थे। कठिनाई यह थी कि कंससे सब छोटे भाई पिताकी अपेक्षा बड़े भाईको ही अधिक आदर देते थे। मथुराका वास्तविक शासन धीरे-धीरे कंसके करोंमें जा रहा था। महाराज इसे समझते थे; किन्तु वे प्रतिवाद करनेकी स्थितिमें नहीं थे।

समय आने पर देवकी के गर्भ से प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र उत्पन्न हुए। प्रथम वर्ष समाप्त होते-होते जो पहला पुत्र हुआ उसका नाम था कीर्तिमान्। वह बड़ा ही सुन्दर था।

धन्य है वसुदेवजी का सत्य प्रेम। सत्यके प्रति ऐसी निष्ठा लोकमें दुर्लभ है। वसुदेवजी महापुरुष हैं, अपना नवजात पुत्र कंस को देने गये। जो अपनी छोटी बहन को मारने को उद्यत हो गया वह मनुष्य नहीं हो सकता। वह कभी भी कोई दुष्कर्म कर सकता है।

यद्यपि कंस के हाथों पर वध के लिये देने में वसुदेव का हृदय छटपटा रहा था किन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बात का था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायँ अत: वसुदेव ने उस पुत्र को ले जाकर कंस को दे दिया। वसुदेवजी अपने पुत्र को कंसके समीप ले गये और कंस से कहा- युवराज यह रहा आपका भागनेय।

सुत को लेकर कष्ट से, श्रीवसुदेव उदार। झूठ वचन से डरपता, गया कंस के द्वार॥

जो कोई भी पुरुष लोभादि के कारण मिथ्या भाषण करे, वह सहकुटुम्ब नष्ट होता है। उसके यह लोक व परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। लोक में जो बालघाती कहे हैं और स्त्री व बालकों को जो मारता है तथा मित्र से बैर जो करता है, दूसरों के उपकार को जो नहीं जानता उसके समान ही पाप, मिथ्यावादी को होते हैं। सत्य-भाषण से रहित पुरुष का देवता-पूजन, भगवन्नाम का जप और तप, यह सब व्यर्थ हैं जैसे ऊषर भूमि में बोया बीज निष्फल है, तैसे ही मिथ्यावादी का सब शुभकर्म निष्फल है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं, सत्य के सदृश कोई श्रेष्ठ नहीं कहा, और इस लोक में असत्यभाषण के समान कोई पाप नहीं है। यज्ञ और सत्य एक साथ तोले जायें तो हजारों यज्ञों से सत्य का पलड़ा अधिक भारी होगा।

कंस उनकी सत्यता पर विमुग्ध हो उठा। उसने हँसते हुए कहा- लौटा ले जाइये इस बालक को। इससे मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। जब आठवाँ बेटा पैदा होगा तो लाइयेगा। आकाशवाणी के अनुसार उसी से मेरी मौत का विधान है अत: मैं उसी का वध करूँगा। वसुदेवजी शान्त लौट आये।

सुत वित आदिक जो जग माहीं। सत्य सन्ध को दुस्त्यज नाहीं। तुम धर्मज्ञ सत्य व्रत धामा। मैं प्रसन्न हूँ तुम पर भामा।।
इस बालक से मम मृति नाहीं। ले जावो इस को गृह माहीं। बिन अपराध न इसको मारूँ। अपराधी का मूल उखारूँ।।
अष्टम उपजेगा जो बाला। तिसके कर मम होगा काला।। तिस बैरी को निश दिन जोवूँ। तिसे मार कर निर्भय सोवूँ।।

सत्य प्रतिज्ञा वाले साधु पुरुष कौन से दुख को नहीं सहन कर सकते, अर्थात् सब दुखों को सह लेते हैं, विद्वान विवेकी पुरुषों को किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती, अर्थात् सब दु:खों को सह लेते हैं, कठोर पुरुषों को करने के अयोग्य कौन सा कार्य है अर्थात् कोई भी नहीं, अपने मन में धैर्य धारण करनेवाले पुरुषों को कुछ भी त्यागना कठिन नहीं है। उदार पुरुषों को धन तृण के सदृश है, शूरवीर को मरना तृण के समान है और वैराग्यवान को स्त्री तृण सदृश तुच्छ है। इच्छा (कामना) से रहित पुरुष को सम्पूर्ण जगत् तृण के समान जान पड़ता है।

कंस की बात सुनकर वसुदेव बालक को लेकर अपने घर लौट गये फिर भी उन्हें बहुत अधिक प्रसन्नता न हुई क्योंकि वे जानते थे कि दुष्टों की बात का कोई विश्वास नहीं है। दुष्टों के वचन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि खल की मति यथास्थिर नहीं होती है। कंस की बुद्धि अस्थिर है, उसकी बुद्धि भी बदल सकती है अतएव उन्होंने कंस की बातों पर विश्वास नहीं किया। स्वार्थ रत प्राणी की रीति हमेशा स्वार्थमय ही होती है यह एक क्षण में तो बैर करते हैं और एक क्षण में प्रीति करते हैं।

दुष्ट वचन विश्वास के, योग्य नहीं यह मान। अति प्रसन्न मन नहि भया, सुन प्रिय वचन सुजान।।

नीच पुरुष मधुर प्रिय वचन बोले भी है, परन्तु विश्वास के योग्य नहीं, क्योंकि उसकी जिह्वा में मधुरता है किन्तु हृदय में विकट हलाहल जहर भरा है। जो क्षण में रुष्ट तथा क्षण में प्रसन्न होता है तिस क्षण में प्रसन्न और रुष्ट होनेवाले अनिश्चित चित्तवाले मनुष्य का प्रसन्न होना भी भय-दायक है। लौटकर वसुदेवजी देवकी से बोले- जितने क्षण यह तुम्हारे गोद में है इससे स्नेह कर लो। मुझे कंस की बात पर विश्वास नहीं हो रहा है। मेरे हृदयमें अकारण आशंका नहीं उठती। युवराज कंस अपना निर्णय परिवर्तित कर दें, यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

श्रीमन्नारायण नारायण कहते देवर्षि की वीणा-झंकार और भगवन्नाम-ध्वनिसे वातावरण गूँज उठा। देवर्षि नारद तो कब-कहाँ पहुँच जायँगे और क्या करेंगे कोई अनुमान नहीं कर सकता।

इसी समय देवर्षि नारद ने आकर कंस से कहा- तुमपर स्नेह होनेके कारण मैं यहाँ आ गया हूँ। आश्चर्य तो यह है कि महासुर कालनेमि अपने आपको भूल गया है। द्रुमिल दानव द्वारा उत्पन्न हुए है और कालनेमि हो। उग्रसेन तुम्हारे पिता जिनके तुम क्षेत्रज्ञ पुत्र हो। उनके भाई देवकके रूपमें गन्धर्वराज है। वसुदेव कश्यप हैं और देवकी अदिति है। पृथ्वीपर इस समय दो प्रकारके ही राजपुरुष प्राय: है। एक देवांशसे उत्पन्न और दूसरा असुरांशसे उत्पन्न। जरासन्धादि तुम्हारे मित्र असुर हैं जो देवासुर संग्राममें मारे गये थे और अब पृथ्वीपर मनुष्य-रूपमें जन्म ग्रहण करके तुम्हारे सहायक हो गये हैं। तुम शायद सोचते होंगे नारद बुद्धिमान नहीं है केवल झगड़ा लगाकर चले जाता है। पृथ्वीपर अंश रूपसे जन्म लेकर देवता तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगे? तुम नीतिज्ञ हो। शत्रु कितना भी छोटा हो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। देवता इस बार तुम्हारे स्वजन-परिजन बनकर प्रकट हुए हैं।

अरे मूर्ख, नन्द, वसुदेव आदि उनके सारे सगे-सम्बन्धी सब-के-सब देवता ही हैं। देवताओं की ओर से भूमि के भार को उतारने का प्रयास किया जा रहा है अत: अपने शत्रुओं को छोड़ क्यों रहा है? इसके बाद उन्होंने कहा- कंस, लगता है, तुझे गणित नहीं आती है। मैं भूमि पर आठ लाइनें खींच दे रहा हूँ। इन्हें ले गिनकर देख ले। प्रत्येक रेखा आठवीं बन जाती है। तुमने वसुदेवके पुत्रको लौटा दिया बड़ा ही आश्चर्य है। नारायणने सदा असुरोंको छलसे मारा है। इस बार भी वे तुम्हारा छल नहीं करेगा इसका क्या ठिकाना है।

नारद के समझा देने पर कंस ने कहा- महाराज, तो मैं देवकी के इस प्रथम पुत्र का भी वध कर दूँ? नारद ने अपने कान पर हाथ रख कर कहा- राम-राम। मैं यह नहीं कहता कि तूँ बालक का वध कर दे। मैंने तो तुम्हें गणित समझाया है। ब्रज में रहनेवाले नन्द, उपनन्द, गोप, ग्वाले, उनकी गोपियाँ वसुदेव आदि वृष्णि वंशी यादव तथा देवकी आदि सभी उनकी पत्नियाँ सब देवताओं के अंश है। यह सभी तुम्हारे शत्रु हैं और तुम्हें मारने के प्रयत्न में रहते हैं। नारद बोला- मैंने तो स्नेहवश तुम्हें एक चेतावनी दे दी है और यह कहकर नारद अन्तर्धान हो गये। देवर्षिने बताया- स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी उर्णासे छ: पुत्र हुए। वे विद्वान थे, शास्त्रज्ञ देवता थे। ब्रह्मा जब भगवती सरस्वतीको देखकर क्षोभको प्राप्त हुए तो इन छहोंको हँसी आ गयी। इससे कुपित होकर ब्रह्माने उन्हें शाप दे दिया- तुम अपने पितामहका अपमान कर रहे हो, इसलिए असुर योनिमें चले जाओ। छहोंने ब्रह्माजी की स्तुति की। ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर कहा- जब परमपुरुष इस धरा पर अवतीर्ण होंगे तब तुम्हारा उद्धार होगा। वे ही छहों षडगर्भ नामसे दैत्य कालनेमिके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए। देवासुर युद्धमें मारे गये और फिर हिरण्यकशिपुके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। अपने पिताका अनुकरण करके इन्होंने कठोर तप किया। इन्होंने ब्रह्माजीसे वरदान माँगा कि हम देवता गन्धर्व, किन्नरादिसे अवध्य हों। ब्रह्माजीने तथास्तु कहा। हिरण्यकशिपु ने जब सुना तो वह क्रुद्ध हो उठा और बोला- अरे मूर्खों, तुम यह परम्परा चलाना चाहते हो कि मेरे कुलके लोग ही मुझे छोड़कर अन्य की आराधना करें और मनमाना वरदान प्राप्त करें। तुम अत्यन्त अज्ञानी हो, मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ। तुम सुतलमें जाकर दीर्घकाल तक निद्राके वशवर्ती रहो। तुम्हारे पूर्वजन्मका पिता ही अपने हाथ से तुम्हारा वध करेगा। उसी कालनेमि ने कंस के रूप में जन्म ले लिया। अब वह अपने पुत्रोंका वध न करता तो वह शाप कैसे सत्य होता। इस शाप को सत्य करने के लिए कंसने उन षडगर्भ पुत्रों को उत्पन्न होते ही मार दिया। अगर यह कुमार बड़े होते तो माता का मोह उनमें और भी अधिक हो जाता और उसके वधसे माता-पिताको बहुत अधिक पीड़ा पहुँचती। उन शिशुओंका मंगल इसीमें था और इसीमें कंसका मंगल था कि उसका दारुण-अत्याचार बढ़े तो हरिको अवतार धारण करने की त्वरा हो। उसके बिना तो कंसका भी उद्धार सम्भव नहीं था।

सुनो कंस तुम नहि कुछ जानत। जिनको तुम बांधव कर मानत।।
वसुदेवादिक यादव जेते। नन्दादिक आभीर समेते।।
इन सबको तुम निर्जर जानो। कालनेमि अपने को मानो।।
पूरव बैरी तव यह सारे। तव मारण हित नरतनु धारे।।
पूरव जलधि मथन की वेरा। हरि से समर भया था तेरा।। हरि ने तुमको तब हत कीया। शुक्रमंत्र कर पुन तू जीया।।
पुन तुम हरि सन सम विचारा। मन्द्राचल पर्वत इक वारा।।
विधि दर्शन हित तप तुम कीना। देव वर्ष शत दुब रस पीना।।
सोई तुमरा शत्रु मुरारी। मात देवकी उदर मझारी।। अष्टम सुत होगा जगदीश्वर। मारेगा तुमको अवनीश्वर।।

क्रोध बढ़ाकर कंस का, नारद गमने पश्चात्। करे उपद्रव कंस जो, सो अब सुनिये तात।।

ऋषि के चले जाने पर कंस ने वसुदेव के प्रथम पुत्र को मँगवा कर उसका वध कर दिया। कंसका रथ अब सूतिकागृहके द्वार पर रुका। वसुदेव आश्चर्यचकित हो गये। वसुदेव समझ गये कंस कोई अनर्थ करने ही आया है। कंसने देवकीकी गोदसे झपटकर उस शिशुको छीन लिया। देवकी मूर्छित हो गयी। वहीं उस पिशाचने उस शिशुके चरण पकड़कर नवजात शिलापर घुमाकर पटक दिया। वहीं शिशुका शव फेंककर वसुदेवके सम्मुख आ खड़ा हुआ और वसुदेवसे बोला- तुम देवकी सहित बन्दी किये जा चुके हो। देवकी को भी पुकार लो और चुपचाप रथपर बैठ जाओ।

वसुदेव और देवकी को हथकड़ी और बेड़ी से जकड़कर जेल में डाल दिया और आगे उत्पन्न होनेवाले देवकी के और पाँच पुत्रों को पैदा होते ही मार डाला। कंस स्वयं राजसिंहासन पर बैठकर अपने विचार तथा अपनी प्रणाली से राज्य का अनुशासन करने लगा। बहुत से दारुन दुष्ट दल को बटोर कर यदुवंशियों को बलपूर्वक त्रास देने लगा। कितने ही यादव कंस की त्रास से पीड़ित होकर कुरु देश पांचाल में रहकर अवध में जाकर वास करने लगे।

कंस वसुदेवजी से बोला- तुम यदि यहाँ शान्त रहे तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं दिया जायगा। तुम्हारी पत्नियाँ तुमसे मिलने आ सकेगी। इस समय मुझे तुम्हारी कोई बात नहीं सुननी है। कोई अन्य नागरिक भी उत्पात नहीं करें। कंस तत्काल लौट गया। कारागारका द्वार बन्द कर दिया गया।

उग्रसेन ने वसुदेवजीके शिशुका वध हुआ यह सुन लिया और वसुदेव-देवकी को कारागार में बन्द कर दिया है। उसी समय उग्रसेन ने आदेश दिया कंसको बन्दी बनाओ। यादव राजसभा उसका न्याय करेगी। कंसने भी पिताकी उपेक्षा कर दी। यादवगण अत्यन्त उत्तेजना में थे। प्राय: युवकों और तरुणोंने शस्त्र उठा लिये थे। महाराज उग्रसेनके समीप उनके समूह एकत्र हो रहे थे। सब जानते थे कंस राजाज्ञा मात्रसे बन्दी नहीं बना सकता कारण पूरी सेनापर उसका प्रभुत्व था। कंसने आदेश कर दिया केवल मेरा आज्ञापत्र लेकर ही कोई कारागारमें प्रवेश कर सकता है। दूसरे किसीकी आज्ञा तुम्हें नहीं सुननी है। महाराज उग्रसेनको और उनके अंगरक्षकों तथा यादव-तरुणोंको राजद्वारसे बाहर आनेका अवकाश नहीं मिला। सेना पहिलेसे कंसका आदेश पाकर सन्नद्ध थी। आज्ञा मिलते ही राजभवनपर सेनापतिने घेरा डाल दिया। कंसने सेनापतिको आज्ञा दी कि उग्रसेनजी को बन्दी बना दिया जाय। कंसने अपने पिता पर हाथ उठानेमें भी कोई संकोच नहीं किया। महाराज उग्रसेन कंसको बोले- मैंने तेरा त्याग कर दिया है। नराधम, तू मेरा वध कर। कंसने अपने हाथसे महाराज का राजमुकुट उतार फेंका। कंसको मार्गमें रोकनेवाला कोई नहीं था।

कंसने कारागृह अधीक्षक को आदेश दिया। वसुदेवकी रानियाँ कारागारमें उनके समीप आती-जाती रहेंगी। उनमें से कोई रात्रिको भी रहे तो रहने दी जाय; देवकी में जैसे गर्भका लक्षण प्रकट हो, दासियोंको उनके पास नहीं जाना चाहिये और तब वसुदेवकी अन्य पत्नियोंको भी देवकीके संतान हो जानेतक वहाँ नहीं जाने देना चाहिये। जो दासियाँ वसुदेव-देवकीके समीप जायें, वे भले कितने ही विश्वस्त क्यों न हो, उनपर सतर्क दृष्टि रखी जाय। वसुदेवका भी कोई स्वजन अथवा कोई सेवक उनके कक्षमें नहीं जाय और वृद्ध पिताश्री उग्रसेन की चिंता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उसके कोई मंत्री और कोई यादव उसे मिलने नहीं दिया जाय। उसके पास दिन में केवल राज्य के सहयोगी भेजे जाय और सेवकों पर सतर्क कड़ी दृष्टि रखें कि वे नगर में किस-किससे मिलते हैं। वृद्ध उग्रसेन तो अत्यन्त राज्यलोलुप है। जिसे बहुत पहले वन में चले जाना चाहिये था। उसकी चलती तो सिंहासन मृत्युपर्यंत नहीं छोड़ता। वह कारागार में रहकर कोई षडयन्त्र न कर सके। उग्रसेन के मन में मानसिक पीड़ा थी कि मैं तो कुपुत्रका पिता बन गया। मेरे पुत्र न होते या होते ही मर जाते। यह कंस तो पिशाचों जैसे

कर्म कर रहा है। कैसी प्रभु की विडंबना कि कारागार के एक हिस्सेमें महाराज उग्रसेन अपने पुत्रके कारण दारुण व्यथा भोग रहे है और उसी कारागारके दूसरे भागमें वे दम्पत्ति अपने अबोध शिशु की हत्याके कारण व्यथित थे। देवकी व्याकुल होकर बार-बार कह रही थीं मेरे लाल, मेरे लाल। वसुदेवजी धैर्यसे सांत्वना दे रहे थे- देवि, वह तुम्हारा नहीं था।

कंसने आदेश दिया- जो लोग सिंहासन का सम्मार करेंगे उनकी रक्षा की जायगी। प्रशासन उनकी सुख-सुविधाकी व्यवस्था करेगा। राजभक्त प्रजाको तंग करनेवालों एवं आतंकित करनेवालोंको कठोर दण्ड दिया जायेगा। मधु और शूरसेन वंशके लोग राजद्रोही हैं। इनकी समस्त सम्पत्ति छीनकर राजकोषमें ले ली जाय। वैसे भी इनकी कोई स्वउपार्जित सम्पत्ति नहीं है। राज्यकी सम्पत्ति ही इन दोनों कुलोंने अपहरण कर रखी है। वसुदेव तथा उनके सभी भाईयोंकी चल-सम्पत्ति, पशु-धन कंसने छीन लिया सिर्फ उनके भवन नहीं छीने। वे उनके अधिकारमें ही रहे। मथुरासे पिछली रात्रिके दिन बड़ी संख्यामें लोग भाग गये। उनके स्वजन-सम्बन्धी रात्रिमें ही नगर छोड़कर चले गये। वे अपने परिवारको साथ ले गये। केवल वसुदेवकी पत्नियाँ एवं निजी सेवक रह गये। वसुदेवने अपनी पत्नियों से कहा कि मथुरामें रहना निरापद नहीं है। सबको मथुरा छोड़कर अपने पितृगृह या अन्यत्र कहीं सुरक्षित स्थानोंमें जाकर रहना चाहिये। विपत्तिके दिन बीतनेपर सब वापिस आ जाना। पर उस समय तक सबको प्रतीक्षा करना है। वसुदेवकी पत्नियोंमें से कोई भी अपने पितृगृह नहीं गयी यह सोचकर कि अकारण कंस का कोप बाकीवालों को क्यों भोगना बड़ें। सबने मथुरा त्याग का निर्णय किया पर रोहिणी कहीं नहीं गयी और वसुदेवजी से बोली- आप और देवकी जब तक कारागृह में है आपकी भी तो कोई खोज-खबर लेनेवाला चाहिये। मैं तो यहीं रहूँगी चाहे कंस मुझे मार ले या बन्दी कर ले। वसुदेवने पूछा- पर तुम रहोगी कहाँ? अब मेरे उस सूने घरमें कोई अकेली नारी कैसे रहेगी? रोहिणी ने कहा- मेरे श्वसुर पिताजी शूरसेन के पास रहूँगी। वसुदेवने सम्मति दे दी- ठीक है, पिताश्री सिर्फ तुम्हारी सेवा का उपभोग करते हैं इस अवस्था में उनकी देखरेख भी अत्यंत आवश्यक है। वसुदेव जानते थे कंस कैसा भी हो उस सदनकी ओर देखनेकास साहस उसमें नहीं था। जो एकमात्र श्रीहरि भगवान भजन में लगे हैं, उनकी रक्षा वे सर्वेश्वर कर लेंगे। वसुदेवकी अन्य पत्नियाँ वनोंमें आश्रममें और गिरि-गुहाओंमें चली गयीं। जिनको अब दीर्घकाल तक तप तपस्विनीका जीवन व्यतीत करना था, उनके लिए यही बहुत था। वन्य कन्द, मूल, फल, शाकका आहार और वल्कल वस्त्र-पतिवियुक्ता, व्रतनिष्ठा नारीको इतना कम कहाँ था। अत्यन्त अनुरक्त दासियोंमेंसे भी एक-दो ही उनमें-से प्रत्येकके साथ जा सकीं। वृद्ध सेवक भी साथ गये उनके। वसुदेवजीको केवल एक पत्नी नगरमें रह गयी है। वह अपने श्वसुरके सदनमें रहने लगी है। कंसको समाचार मिल गया।

कंसने कहा- वसुदेवके समीप उसे निर्बाध आने-जाने दो। वसुदेवकी शेष पत्नियाँ कहाँ गयीं। वे अपने पितृगृह तो नहीं गयीं। अच्छा हुआ वे स्वत: चली गयी हैं अत: वे कहाँ जा छिपी हैं, अब हमपर तो उनकी जीवन निर्वाहकी व्यवस्थाका भार नहीं है। बहुतसे यदुवंशी तो रात्रिमें ही भाग गये। कंस बोला- जो शासनके प्रमुख पदोंपर हैं; जैसे दानाध्यक्ष अक्रूर, ऐसे लोगोंको नगरसे बाहर जानेसे पहले मुझसे अनुमति लेनी चाहिये। अन्य लोग जो भी जाना चाहें उन्हें जाने दो। क्योंकि जिनपर हम भरोसा नहीं कर सकते। वे रहेंगे तो हमको उनपर दृष्टि रखनी पड़ेगी। वो सब अपने-अपने स्वजन-सम्बन्धी लोगोंको यहाँ आमंत्रित करो। ब्राह्मण जाते हैं तो जाने दो। जो प्रमुख व्यापारी हैं उन्हें तंग मत करो। कलामें जो बहुत निपुण हैं, प्रयत्न करो कि वे नहीं भाग सकें। कंसके अनुचरोंने अधिक ही अत्याचार शुरू कर दिये। जो लोग उन्हें अप्रिय और अभीष्ट नहीं थे उन्हें सताना प्रारम्भ कर दिया ताकि वे भाग जायें।

कंस को हर बार यही आशंका बनी रहती थी कि कहीं विष्णु ही उस बालक के रूप में न आ गया हो। इस प्रकार कंस के

द्वारा देवकी के कुल छ: पुत्र मार डाले गये। देवकी के छ: पुत्र कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन और भद्र। देवकी के ये छ: बालक पूर्वजन्म में हिरण्यकशिपु के भाई कालनेमि के ही पुत्र थे। इन राक्षसकुमारों ने हिरण्यकशिपु का अनादर करके भगवान की भक्ति की थी। अत: कुपित होकर हिरण्यकशिपु ने शाप दिया कि तुम लोग दूसरे जन्म में अपने पिता के हाथों ही मारे जाओगे। भगवान विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा उन बालकों को क्रमश: देवकी जी के गर्भ में स्थित करती रही और कालनेमि असुर कंस रूप में पैदा हुआ। इसप्रकार यह बालक पूर्वजन्म में कंस के ही पुत्र है।

स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रजापति मरीचि की पत्नी ऊणा के गर्भ से छ: पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी देवता थे। उनके नाम थे- स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत, और घृणि। एक समय की बात है ऋषि मरिचि ने अपने छ: पुत्रों सहित ब्रह्माजी की सभा में प्रवेश किया। ब्रह्माजी को प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया और कुछ देर सभा में बैठे। ब्रह्मा जी की पुत्री देवी शारदा ने सुन्दर परिधान युक्त होकर ब्रह्माजी की सभा में प्रवेश किया, वह महान रूप और लावण्य के कारण अति सुन्दरी दिखाई दे रही थीं।

देवि शारदा का अति आकर्षित लावण्य रूप देखकर ब्रह्माजी का मन चंचल हो गया। कामाधीन होकर वे अपनी पुत्री की ओर बढ़ने लगे। उसी समय ब्रह्माजी को पतनोन्मुख होता देखकर वे हँसने लगे। ऋषि मरीचि के पुत्रों ने ब्रह्मा जी का उपहास करते हुए अपमान जनक ठहाका लगाया। ब्रह्माजी ऋषि बालकों के द्वारा किया गया अपना उपहास सहन नहीं कर पाये और उन्होंने कालनेमि असुर के पुत्र होने के कारण श्राप दिया।

इस परिहास रूप अपराध के कारण उन्हें ब्रह्माजी ने शाप दे दिया, तुम यहाँ रहने योग्य नहीं हो। धरातल पर जाकर दैत्य योनि में जन्म धारण करो और वे असुर योनि में हिरण्यकशिपु के पुत्र कालनेमि के पुत्र हुए और षड्गर्भ नाम से विख्यात हुए।

कालनेमि असुर के पुत्र बनने के पश्चात ऋषि बालकों ने ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या आरम्भ की ताकि श्राप का शमन करवाया जा सके। कालनेमि के पिता हिरण्यकशिपु को अपने पौत्रों के द्वारा ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करना अच्छा नहीं लगा। उसने क्रोधित होकर अपने छ: पौत्रों को श्राप दिया कि तुम अपने पिता कालनेमि के हाथों से मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। समय पाकर कालनेमि ही कंस बना और उसके छ: पुत्र देवकी पुत्र होकर पैदा हुए जिनका वध श्राप के अनुसार कालनेमि कंस ने अपने क्रूर हाथों से कर दिया।

उनके शरीर बल-विक्रम से सम्पन्न थे। वे देवताओं के समान तेजस्वी थे और युद्ध में देवताओं के समान पराक्रम प्रकट करते थे। पहले की बात है, वे दैत्य अपने पिता के भी पिता हिरण्यकशिपु को छोड़कर लोकपितामह ब्रह्माजी की उपासना करने लगे। सिर पर जटा-जूट धारण किए वे तीव्र तपस्या में लग गए। तब ब्रह्माजी उन षड्गर्भ नामक दैत्यों पर प्रसन्न हो गए और उनसे वर माँगने को कहा। उन दैत्यों का प्रयोजन या मनोरथ एक सा ही था। वे ब्रह्माजी से बोले- भगवन्। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें यह श्रेष्ठ वर दीजिए कि हम देवताओं, नागों, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, चारण और मनुष्यों द्वारा अवध्य हों। जो शाप द्वारा प्रहार करने वाले हैं उन महर्षियों से भी हमारा सदा कल्याण ही हो। तब ब्रह्माजी ने उनके प्रति अति प्रसन्न चित्त से कहा- तुम लोगों ने जो कुछ कहा है वह सब पूरा होगा। उन षड्गर्भ नामवाले दैत्यों को इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को चले गए।

जब हिरण्यकशिपु को इस बात का पता चला तब वह क्रोधित होकर उनसे बोला- अरे, तुमने मुझे छोड़कर ब्रह्माजी से वर ग्रहण किया है, अत: तुमने अपने प्रति मेरे स्नेह का त्याग करा दिया है। अब तुम लोग मेरे शत्रुभूत हो, इसलिए मैं तुम्हें त्याग देता हूँ। जिस पिता ने तुम्हें षड्गर्भ नाम दिया है और पाल-पोषण कर बड़ा किया है, वही गर्भ में स्थित होने पर तुम

सब लोगों का वध कर डालेगा। तुम छहों षड्गर्भ नामक महान असुर देवकी के गर्भ में स्थित होओगे। तब कंस जो तुम्हारे पिता कालनेमि का अवतार होगा तुमको पैदा होते ही मार डालेगा।

देवासुर संग्राम में कालनेमि श्री हरि के हाथों मारा गया। शुक्राचार्य जी की कृपा के पथ प्रदर्शन प्राप्त करके कालनेमि ने उग्र तपस्या की और कंस के रूप में राजा उग्रसेन के यहाँ पैदा हुआ। अपने ही हाथों से अपने पूर्व जन्म के पुत्रों को मारकर राजा बलि के धाम में भिजवा दिया। माता देवकी की इच्छा पूर्ण करने के लिए सर्व समर्थ भगवान श्रीकृष्ण ने उन छहों को द्वारिका पुरी में मंगवा लिया जो माता देवकी के स्तनों का भगवान श्रीकृष्ण का प्रसादी दूध पीकर ब्रह्म धाम को चले गए।

हे राजन्, भगवान की प्रेरणा से योगनिद्रा उन षड्गर्भ नामक असुरों को एक-एक करके देवकी के गर्भ में रखती गयी और उनका पिता कालनेमि जिसने कंस के रूप में अवतार लिया था, उनके जन्म लेते ही उनका वध करता गया। देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने पर उनके नाम थे- कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋतु, संमर्दन और भद्र।

गौ, ब्राह्मण और सगोत्रीय आदि की हत्या का पाप जन्म-जन्म तक रहता है। कंस पापी हो गया। कंस रूपी अभिमान पाप का मूल है। अभिमानी पुरुष जीवन की कार्यशैली के निमित्त विधि और निषेध को महत्त्व नहीं देता। नीच मनुष्य कौनसा कुकर्म नहीं करता। अपने स्वार्थके सिद्धि ही उसका विशेष धर्म होता है। कंस अधम है दुष्ट स्वभाव का है।

वसुदेव और देवकी कंसके कारागृह में है। वसुदेव देवकी से बोले- देवि, मैं न पति होने योग्य हूँ और न पिता होने योग्य। मैं न तो पत्नीकी रक्षामें समर्थ हूँ न पुत्रके पालनमें। कंस कितना निर्दय है, हम संयम-पूर्वक़ रहकर श्रीहरि के भजनमें लग जायँ। जीवन कितना भी लम्बा हो, इस कारागारमें कट जायगा। देवकी बोली- मैं ही भाग्यहीना कुलक्षणी हूँ। मेरे ही कारण आपको ये दिन देखने पड़ रहे हैं। आप तो मथुरा में सुखी और सम्मानित थे मेरे ही कारण आपपर यह विपत्ति आयी। वसुदेवने देवकी को आश्वस्त किया और बोले- देवि, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। देवकी बोली- मैं चाहती हूँ जो आठवां आनेवाला है, शीघ्र आ जाय। जितनी शीघ्र आ सकता हो, आवे। वह कंसको मार दे या कंस ही उसे मार डालें; ताकि आपका संकट तो दूर हो। जब आठवें से कंसको कोई डर ही नहीं रहेगा तो कंसके लिए आपको बन्दी बनाये रखना अनावश्यक हो जायेगा। हो सकता है वह हमें मथुरामें नहीं भी रहने दे पर इस धरित्रीका अंक तो बहुत विशाल है। वसुदेव बोले- ठीक है देवि, पर जो सर्वेश्वरका विधान है, उसे कोई अन्यथा कैसे कर सकता है?

वसुदेव अपनी छ: संतानों को स्वयं अपने हाथोंसे कंस के क्रूर करोंमें डालते गये और वो उनके सामने ही कारागार के कोने में रखी शिला पर पटककर उनके प्राण हरता गया।

राजन्, प्रतापी वसुदेवजी कश्यप मुनि के अंश थे। इन्हें पूर्व समय में वरुण का शाप लग गया था। उसी के फलस्वरूप इन्हें गोवृत्ति स्वीकार करनी पड़ी थी। मुनिवर कश्यप के दो पत्नियाँ थीं- अदिति और दिति। ये ही दोनों देवकी और रोहिणी- दोनों बहिनों के रूप में प्रकट हुई थीं। वरुण ने इन्हें घोर शाप दे दिया था। इसी शाप के कारण इन स्त्री-पुरुष सभी को इस धरातल पर जन्म लेना पड़ा था।

एक समय की बात है, कश्यपजी यज्ञ सम्पन्न करने के लिए वरुण की दिव्य गाय ले आए थे। यज्ञ सम्पन्न हो जाने के बाद वरुण ने बहुत प्रार्थना की, परन्तु कश्यप ने गौ को नहीं लौटाया। तब वरुण जगत् प्रभु ब्रह्माजी के पास गए। उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और अत्यन्त शोकातुर होकर विनयपूर्वक अपना दु:ख प्रकट करते हुए कहा- महाभाग। मैं क्या करूँ? बहुत प्रार्थना करने पर भी कश्यप मेरी गौ नहीं लौटा रहे हैं। अत: मैंने उनको शाप दे दिया है कि तुम मानव वंश में गोपाल होकर अपना जीवन व्यतीत करो। तुम्हारी दोनों पत्नियाँ भी वहीं जन्म ग्रहण करें। इस समय मेरी गाय के अभाव में

बछड़े अत्यन्त दु:खी होकर डकरा रहे हैं, उसी के फलस्वरूप अदिति को मृतवत्सा होकर पृथ्वी पर जाना पड़ेगा। वह कारागार में रहेगी। इसके कारण भी उसे अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे।

वरुण की यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी ने कश्यप मुनि को बुलाया और कहा- महाभाग, तुम लोकपाल वरुण की गौ उन्हें देते क्यों नहीं? महाभाग, तुमसे कोई बात अविदित नहीं है। तुम बड़े बुद्धिमान हो। न्याय जानते हुए भी ऐसे कार्य में तुम्हारी प्रवृत्ति कैसे हो गई? लोभ बड़ा बलवान है। यह किसी को नहीं छोड़ता। इसके प्रभाव से नरक की प्राप्ति होती है, अनेकों पाप बन जाते हैं। किसी ने भी इसका समर्थन नहीं किया है। कश्यप भी उस लोभ का परित्याग करने में असमर्थ रहे। उन शान्त स्वभाव मुनियों को धन्यवाद है, जिन्होंने लोभ को जीत लिया है। वे वन में रहते हैं, उनके मन में सदा शान्ति बनी रहती है। कभी दान स्वीकार नहीं करते। संसार में सबसे बलवान शत्रु लोभ है। यह सदा अपवित्र बनाये रखता है। इस नीच लोभ से स्नेह होने के कारण कश्यप का विचार भी भ्रष्ट हो गया है। ऐसा कहने के पश्चात ब्रह्माजी ने भी मुनिवर कश्यप को शाप दे दिया। यद्यपि कश्यपजी ब्रह्माजी के प्रीतिभाजन पौत्र थे, फिर भी धर्म की मर्यादा का रक्षण करने के लिए ब्रह्माजी की इस कार्य में प्रवृत्ति हो गई। उन्होंने कहा- कश्यप, तुम अपने अंश से पृथ्वी पर जाओ। तुम्हें यदुकुल में जन्म लेना होगा। दोनों पत्नियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी। वहाँ तुम गोपाल बन कर रहोगे। इस प्रकार वरुण और ब्रह्मा दोनों के शाप देने पर कश्यपजी अपने अंश से भूतल पर अवतरित हुए। ऐसे ही अत्यन्त शोक से संतप्त होकर दिति ने अदिति को शाप दे दिया- जन्म लेते ही तुम्हारे सात पुत्र प्राणों से हाथ धो बैठें।

कंस को यह बात विदित थी कि पूर्वजन्म में मैं कालनेमि नाम का असुर था और विष्णु ने मेरा वध किया था। इससे उसने यदुवंशियों से घोर विरोध ठान लिया। उसने यदु, भोज और अन्धक वंश के अधिनायक अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लेने के लिये सेनापति को आदेश दिया। सेनापति ने अपने ही महाराज को बन्दी बनाने में जब अपनी असमर्थता व्यक्त की, तब कंस स्वयं हथकड़ी-बेणी लेकर उग्रसेन के पास पहुँचा और उन्हें बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया एवं शूरसेन-देश का राज्य स्वयं करने लगा। उसने राजसिंहासन पर अभिषेक भी करवाने की आवश्यकता न समझी।

उग्रसेन का तखत उतारो। सब यादव को देश निकालो। करे सामना तुम्हारा कोई। तनु तज यमपुर जावे सोई।।
कोई मारे गये कोई भाग गये, कोई को कर लिये अधीन। आप राज्य करने लगा, गुरु द्रोही मतिहीन।।

३) देवकी के गर्भ की देवता और ब्रह्माद्वारा गर्भ स्तुति

उदर देवकी के बसे, आय विष्णु भगवान। ले ले प्रभु का नाम सुर, स्तुति करत महान्।।

एक तो कंस महान् बलवान था। दूसरे उसे मगध देश के राजा जरासन्ध का दामाद आश्रय प्राप्त था। जरासन्ध कंस का श्वसुर था। उसकी दो बेटियाँ अस्ति और प्राप्ति कंस से ब्याही गई थीं अत: कंस ने प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर (मल्ल), तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक (मल्ल), अरिष्टासुर, द्विविद (वानर), पूतना, केशी और धेनुक आदि अपने साथियों तथा बाणासुर एवं भौमासुर आदि बहुत-से मित्र दैत्य राजाओं को साथ लेकर यदुवंशियों का उत्पीडन प्रारम्भ किया।

भयभीत बेचारे यदुवंशी कुरु, पांचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह (मिथिला) और कोसल आदि देशों में जाकर बस गये। कुछ लोग इच्छा न रहने पर भी उसी की दुष्ट नीतियों का समर्थन करते हुए उसकी सेवा में लगे रहे। जब कंस ने एक-एक करके देवकी के छ: पुत्रों को पत्थर पर पटक-पटक कर मार डाला तब देवकी के सातवें गर्भ में भगवान के अंशस्वरूप श्रीशेष पधारे। शेष को अनन्त भी कहते हैं। आनन्दस्वरूप शेष के गर्भस्थ होने पर देवकी को स्वभावत:

हर्ष की अनुभूति हुई। परन्तु वह इस बात को सोचकर शोकाकुल भी थी कि कंस इसका वध कर देगा।

विश्वात्मा भगवान ने देखा कि मुझे ही अपना सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंस के द्वारा बहुत सताये जा रहे हैं तब उन्होंने अपनी योगमाया को आदेश देते हुए कहा- देवि, तुम वज्र में जाओ। वहाँ नन्द बाबा के गोकुल में वसुदेव की पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियाँ कंस के भय से गुप्त स्थानों में रह रही हैं। सम्प्रति मेरे अंश शेषजी देवकी के गर्भ में स्थित हैं। उन्हें वहाँ से निकाल कर तुम रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दो। देवि, जब मैं देवकी के गर्भ से उत्पन्न होऊँगा, उस समय तुम नन्द की पत्नी यशोदा से जन्म ग्रहण करना। तुम्हारा सामर्थ्य अनन्त होगा। तुम लोगों के सारे मनोरथों को पूरा करने में समर्थ होओगी। संसार के मानव तुम्हारा दुर्गा, भद्रकाली, विजयी, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्याकुमारी, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका अनेक नामों से स्मरण करेंगे। श्रद्धा के साथ तुम्हारी पूजा-अर्चना करेंगे और तुम्हारे मठ-मंदिर का निर्माण करेंगे। कृष्णने अपनी आँख से योगमाया देवीरूप को प्रकट किया। देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण शेषजी को लोग संकर्षण कहेंगे। लोकरंजन के कारण राम और बल का खजाना होने के कारण वे बलभद्र भी कहे जायेंगे। भूति, सन्नति, कीर्ति, कान्ति, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि, ऊषा तथा अन्य जो भी शक्तियाँ हैं वह सब तुम्हीं हो। योगमायाको लगा कि उन्हें सबसे अलभ्य वरदान मिल गया। वैसे वह नन्दात्मजा बनकर जिन निखिलेश्वर आनन्दघनकी अनुजा बनने जा रही थी उस गौरवके पश्चात् इसकी आवश्यकता थी नहीं। योगमाने अपनी आकांक्षा स्पष्ट कर दी। मुझे आपकी नरलीला देखनेका तो सौभाग्य मिलेगा।

भगवान की आज्ञा को शिरोधार्य कर योगमाया भूतल पर गई। वहाँ उसने वैसा ही किया जैसा भगवान ने उसे आदेश दिया था। जब योगमाया ने देवकी के गर्भ को कर्षण कर रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया तब लोग कहने लगे- हाय। बेचारी देवकी का गर्भपात करवा दिया। सातवाँ गर्भ स्खलित हो गया।

भगवान शेष- सहस्रफणधारी, कमल-तन्तुके समान श्वेतवर्ण, मणिमण्डितमौलि, एक-कुण्डलधर, नीलवस्त्रधारी भगवानका यह संकर्षण-विग्रह जगत्का आधार है। सम्पूर्ण पृथ्वी भगवान शेषके एक फणपर राईके समान स्थित है। प्रलयके समय उनके फूत्कारकी अग्निमें विश्व सूखे गोबरके समान भस्म हो जाता है।

प्रलयकालमें भगवान विष्णु शेषजीके भोगपर शयन करते हैं। भगवती लक्ष्मी चुपचाप उनके श्रीचरणोंको पलोत्ती हैं। शेषजी अपने पूर्व फणसे उनके नाभिनालके लोकपद्मको, उत्तर फणसे प्रभुके मस्तकको एवं दक्षिण फणसे उनके चरणोंको आच्छादित किये रहते हैं। वे अपना पश्चिम फण फैलाकर सर्वेशको व्यजन करते हैं तथा अन्य फणोंसे भगवान्के शंख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक-खड्ग, दोनों तूणीर, धनुष तथा गरुड आदिको धारण किये रहते हैं।

पातालमें नागकन्याएँ भगवान अनन्तके महाभोगको नाना प्रकारके सुगन्धित अङ्गरागोंसे उपलिप्त करती हैं। मुनिजन इष्टसिद्धिके लिये उनकी आराधना करते हैं। सनकादि उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभुका यह रूप प्राणतत्त्वका अधिष्ठान है। वे समस्त बलके आश्रम हैं और वे ही जीवोंके परमोपदेष्टा आदिगुरु हैं।

जो छिपाय हर लिया जाय रोहिणी को सो दिया। जानें सब पहला आधान, भये रोहिणी के भगवान।।

प्रहरियों ने जाकर कंस को इसकी सूचना दी और कंस स्वयं आश्वस्त हो गया। उसने प्रहरियों को कठोर निर्देश दिया आगामी सन्तान के जन्म की सूचना देने में तनिक भी प्रमाद न हो। जैसे ही गर्भ के चिन्ह स्पष्ट हो मुझे सूचित करो। जिस समय देवकी का सातवाँ गर्भ स्खलित हुआ उसी समय गोकुल नन्दगृह में रोहिणी ने एक अत्यन्त सुन्दर बालक को जन्म

दिया। श्रावण सुदी चतुर्दशी बुधवार को बलभद्रजी ने रोहिणी के पेट से गोकुल में जन्म लिया। अनुभवी प्रसवकला-प्रवीणा स्त्रियों ने बालक को प्राय: गर्भ से खींचकर बाहर निकाला था, इसलिये गोकुल में उस बालक का नाम संकर्षण पड़ा। उच्च स्थान में स्थित पाँच ग्रहों से घिरे हुए तुला लग्न में दोपहर के समय बालक का जन्म हुआ। रोहिणी के यहाँ प्रकट हुआ बालक कंचन वर्ण सुन्दर, सुड़ौल शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें थी। रोहिणी के सुपुत्र ने न तो किलकारी भरी, न ही रुदन किया। तुला राशि, चन्द्र लग्न, स्वाति नक्षत्र, दसवें भाग में कर्क राशि के गुरु, एकादश भाव में सिह राशि के सूर्य, द्वादश भाव में कन्या राशि का बुध, चतुर्थ भाव में मकर राशि का मंगल, पाँचवें भाव में कुम्भ राशि का केतु। मंगल, बुध, गुरु तथा शनि अपनी-अपनी उच्च राशिमें स्थित हैं। सूर्य, बुध, शुक्र और सर्प अर्थात राहू चारों स्वग्रही हैं। पूर्णमासी योगिनी ने कहा- रोहिणी, तुम्हारा यह पुत्र अति मानव योगेश्वर होगा। पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करनेवाला होगा। यह शेषावतार राम अवतार में लक्ष्मण थे। इस अवतार में बड़े भाई बनकर आये। भगवती पूर्णमासी ने बताया- यह बालक चंचलता से रहित उदास स्थिति में है। अपने प्रभु के चरण कमलोंमे चित्त लगाये रखने के कारण न रुदन करता है, न हँसता-उछलता है। मधुमंगल सब लोकों में जाकर बोला- अब मेरा दादा आ गया है और पीछे-पीछे मेरा सखा भी आनेवाला है।

संकर्षण- मानव रूप में भगवान शेष के अवतार बलराम, भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई। भगवान विष्णु ने देखा कि परम भागवत यदुवंशी क्रूर कंस द्वारा पीड़ित हैं, तब उन्होंने अपनी योगमाया से कहा- देवि, तुम व्रज में जाओ। वहां नंदगोप के गोकुल में वसुदेव की पत्नी रोहिणी रहती हैं। इस समय मेरा अंश, जिसे शेष कहते हैं, देवकी के गर्भ में हैं। उसे वहां से निकालकर रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दो। देवी देवकीके गर्भमें भगवान शेष पहुंच गये हैं। वसुदेवजीकी सगर्भापत्नी राहिणी गोकुलमें हैं। उनके गर्भका आकर्षण करो और शेषजी को देवकीके उदरसे रोहिणीजीके उदरमें पहुँचा दो।

मैं देवकी का पुत्र बनूंगा और तुम नंदबाबा की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लेना। देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में खींच जाने (कर्षण) के कारण बलराम का नाम संकर्षण है। इस बार तुम मेरी अनुजा बन जाओ। व्रजपति नन्दकी रानी यशोदा मैयाकी कुक्षिको धन्य करो। मैं देवकीके उदरमें आ रहा हूँ। मेरे लिए वह पावन स्थान प्रस्तुत कर दो।

इधर परमपिता परमेश्वर ने देवताओं की प्रार्थना पर दैत्यों और राक्षसों का अंत करने के लिए योगनिद्रा (योगमाया) से कहा- हे निद्रे। पाताल में स्थित छ: गर्भों को तुम एक-एक करके देवकी की कुक्षि में स्थापित कर दो। कंस द्वारा उन सबके मारे जाने पर शेष नामक मेरा अंश अपने अंशांश से देवकी के सातवें गर्भ में स्थित होगा। हे देवी। गोकुल में वसुदेव की रोहिणी नामक दूसरी पत्नी रहती है। देवकी के सातवें गर्भ को ले जाकर तुम इस प्रकार रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर देना, जिससे वह उसी के उदर से उत्पन्न हुए के समान जान पड़े। उसके विषय में संसार यही कहेगा कि कारागार में बंद होने के कारण कंस के भय से देवकी का सातवां गर्भ गिर गया। गर्भ से कर्षण किए जाने (खींचे जाने) के कारण संसार में उस वीर की प्रसिद्धि संकर्षण के नाम से होगी।

समय समय पर देवकी, षट सुत जाय नरेश। सो सो मारे कंस ने, सप्तम आये शेष।।
मात देवकी गर्भ में, कर निवास कुछ मास। निज शक्ती कर रोहिणी, उदर किया पुन वास।।
गर्भ सप्तमा स्त्रव गया, यह जानत सब लोक। हाहाकार सबने करा, करा दम्पती शोक।।
भाद्र मास सित पक्ष में, तिथि षष्ठी बुधवार। स्वाति ऋक्ष मध्याह्न में, शेष लिया अवतार।।
मात रोहिणी ने सुत जाया, उत्सव होत अपारो। बहु विधि बाजे बजत सुहावन, विप्र वेद ध्वनि कारो।।
देव पुष्प वर्षा करें, करें अप्सरा गान। शेष जन्म उत्सव लखें, नभ में सुर सविमान।।

हे जगत्रूपी समस्त ब्रह्माण्ड जिसने अपने फण पर धारण किया है, उन्हीं शेषनाग का यह अवतार है। हरि-भक्तों की रक्षा के निमित्त तथा धर्म से विमुख दुष्टों के मारने के लिए ही प्रकट हुए हैं। ईश्वर स्त्री-पुरुष के संयोग को नहीं चाहते जब उनकी इच्छा होती हैं, तब स्वयं ही संसार में अपने शरीर को धारण करते हैं। ईश्वरों के शरीर योनियों से उत्पन्न नहीं होते हैं, उनके जो माता-पिता होते हैं वे केवल निमित्तमात्र के ही होते हैं जैसे संसारी जीव गर्भवासादि दुखों को सहकर उत्पन्न होते हैं, तैसे ये नहीं होते हैं ये अयोनिज हैं।

भगवान सर्वव्यापी हैं। उन्हें कहीं आना-जाना नहीं पड़ता इसीलिये वे वसुदेव जी के मन में अपनी समस्त कलाओं के साथ प्रकट हो गये। उस समय वसुदेव का तेज दुर्धर्ष प्रतीत होता था। जैसे एक दिये की लौ से दूसरे दिये की लौ जला दी जाती है, ऐसे ही वसुदेवजी ने अपने मन में स्थित तेज को देवकी के अन्त:करण में स्थापित कर दिया। देवकी के गर्भ में भगवान के आते ही सारा कारागार अलौकिक आभा-प्रभा से भर गया। उसे देखकर कंस को यह समझने में देर न लगी कि मेरा नाश करनेवाला हरि अवश्य ही देवकी के गर्भ में आ गया है। एक बार उसे इच्छा तो हुई कि देवकी को मार डालूँ। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आया कि देवकी को मारना ठीक नहीं है, क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थवश अपने यश को कलंकित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरी बहन है और तीसरी गर्भवती भी है। ऐसी स्थिति में इसको मारने से मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायेगी। क्रूर मनुष्य घोर नरकगामी होता है। ऐसा सोचकर वह देवकी के वध से निवृत्त हो गया। अन्त में उसने यही निर्णय किया कि अष्टम गर्भ के जन्म की प्रतीक्षा करना ही उचित है, देवकी का वध ठीक नहीं। अब भगवान के प्रति वैर का दृढ़भाव मन में ठान कर वह भगवान के जन्म की प्रतीक्षा करने लगा। वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते-सर्वदा ही कृष्ण का चिन्तन करने लगता था और कुछ भी काला नजर आनेपर डरता था। जरा-सा भी खटका होने पर उसे कृष्ण ही दीखने लगता था। इस प्रकार सारा जगत् ही उसे कृष्णमय दीखने लगा।

कंसको सोते, बैठते, उठते, खाते, पीते सब समय कृष्ण-कृष्णका ही दर्शन होने लग गया। कभी वह अपनी परछाईसे डर जाय तो कभी अपने पाँवकी ध्वनिसे सहम जाय। प्रतिक्षण उसको सामने कृष्ण दिखाई पड़ें। भले ही कंसकी कृष्णके प्रति द्वेष-बुद्धि थी, परन्तु उसका जीवन कृष्ण-स्मरणसे भर गया। वह कृष्णमय हो गया, तन्मय हो गया।

हिंसा रत प्राणी मृत्यु के समान हैं उसे अपना ज्ञान नहीं रहता।

इस समय कंस भगवान का जैसा प्रगाढ चिन्तन कर रहा था, वह बड़े-बड़े योगियों और मुनियों के लिये भी दुष्प्राप्य था।

जब सगुण, साकार, जगत्का कल्याण और भक्तोंका पक्षपात करनेवाले भगवान प्रकट होते हैं तब समग्र सृष्टिमें, प्रकृतिमें एक विलक्षणता आ जाती है। कंस को छोड़कर कोई ऐसा प्राणी न था जिसका मन प्रसन्न न हो।

कंसने जब भी यह अनुमान कर लिया इस बार अवश्य विष्णु ही देवकी के गर्भ में आये हैं अपने शत्रु को आया जानकर देवकी को मार डालने का बड़ा विचार आया। अपने प्राणों को बचाने के लिये तो वह बड़ा ही व्याकुल हुआ। प्रत्येक समय हरि का चिन्तन हृदय में करते हुए वह अपनी रक्षा का उपाय सोचने लगा। इसलिये सोते जागते हर समय श्रीकृष्ण का ही उसे चिंतन हो जाता है और वह जिधर देखता था उधर उन्हीं का ही रूप दिखाई पड़ता था। चारों तरफ उसे कृष्ण-ही-कृष्ण दिखाई देने लगे।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोद् सौभगम्॥
महार्हवैदूर्य किरीट कुण्डल-त्विषा परिष्वक्त सहस्त्र कुन्तलम्।

उद्धामकाञ्चंगदकंकणोदिबि-र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।।

उसी समय सबके हृदय में विराजमान रहनेवाले भगवान विष्णु देवतारूपिणी देवकी के गर्भ से कारागार में प्रकट हुए।

अष्टम आये आप हरि, देवकि उदर मझार। तेज देखकर उसका, करे है कंस विचार ।।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं। हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।

वचनं मधुरं चरितं मधुरं बसनं मधुरं बलितं मधुरं। चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।

मधुर रस के अधिपति भगवान श्री श्यामसुन्दर का सब कुछ ही मधुर है, अधर (ओष्ठ) मधुर हैं, मुखाविन्द मधुर है, आँखें मधुर हैं, मुस्कान मधुर है, चाल मधुर है और उनका हृदय भी मधुर है। उनकी वाणी मधुर है, चरित्र मधुर है, वस्त्र मधुर है, केश मधुर हैं, चलना-फिरना मधुर है, भ्रमण मधुर है, मधुरता के अधिपति भगवान का सब कुछ मधुराति मधुर है।

वेणुर्मधुरो रेंणुर्मधुर: पाणिर्मधुर: पादौ मधुरौ। नृत्यं मधुरं सख्यं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरं। रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।

भगवान श्री श्यामसुन्दर की मुरली (वंशी) मधुर है, लीला स्थल की रज मधुर है, उनके हाथ मधुर हैं और दोनों चरण अति मधुर हैं, उनका नाचना भी मधुर है और मित्रता भी मधुर है। उनका संगीत मधुर है खाना-पीना भी मधुर है, सोना भी मधुर है।

कंस भय से विह्वल हो गया। अभागा परमेश्वर से बैर बाँधकर सठ जनम की राह देखने लगा। कब दिन बीत गया और कब रात बीत गयी कुछ भी समझमें नहीं आता। प्रतिक्षण प्रभु का ही ध्यान करता उसे कहाँ पाऊँ क्या उपाय करूँ, कैसे उस हरि प्रभुको मार डालूँ।

ब्रह्मा और शंकरजी ने सोचा कि हमारे प्रभु ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अवतार ग्रहण कर भूमि के भार को हरूँगा। अपनी उस प्रतिज्ञा की मूर्ति के लिये इस समय वे देवकी के गर्भ में आ गये हैं इसलिये शंकर और ब्रह्माजी कंस के कारागार में आये, उनके साथ देव-मण्डली और नारद आदि ऋषि भी थे। वहाँ आकर उन लोगों ने गर्भ में स्थित भगवान की स्तुति की।

शिव, चतुरानन, देवगन, आये अवसर जानि। मधुर बचन युत नत मुदित, बन्दत बलि गुरु ज्ञानि ।।

आपकी कृपा के बिना कोई जीव आपके रहस्यमय स्वरूप को जान नहीं पाता। जो आपके विषय में जितना जानता है, वह आपकी महिमा की सीमा नहीं आपका कृपा स्वरूप होता है। जिस जीव पर जितने अंश में आपकी कृपा होती है, वह आपको उतने ही अंश तक जान पाता है। तीन गुणों से बँधा हुआ जीव निर्गुण प्रभु कैसे प्राप्त करें? यह तो माया प्रेरित पुत्र तृष्णा और धन की तृष्णा में दिनोंदिन अधिक से अधिक बँधता जा रहा है। जिसके कारण दुष्कर्मों में प्रवृत्त होकर पतित हो जाता है और फलस्वरूप चौरासी लाख शरीरों में भटकता है। दुष्कर्मों के कारण ही जीव को अट्ठाइस प्रकार के नरकों में उल्टा लटकना पड़ता है अर्थात अति कष्ट भोगना पड़ता है।

पञ्चभूत से बनी देह भौतिक कहलाई। पञ्च प्राण के कारण जीवन कर्म कमाई ।।

उप प्राणन आधार हि दैहिक कर्म कमावे। कर्मन के आधार देह चौरासी जावे ।।

यह जीव पाँच भूतों से बनी भौतिक देह में पञ्च प्राण और पञ्च उपप्राण के आधार पर जीवन में दैहिक कर्म कमाता है। उनमें धर्म विरुद्ध निकृष्ट कर्मों के फलस्वरूप चौरासी लाख शरीरों में भटकता है।

भौतिक देह में स्थित कर्ण, चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक इन पांच ज्ञान इन्द्रियों को इनके पाँचों अपने अपने विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श अपनी ओर आकर्षित करते हैं। माया से बँधा हुआ जीव उसी में क्रीड़ा आसक्त हो जाता है फिर यह बिना सत्संग के विषयों से परे, हे हरे। आपको कैसे जान सकता है? करोड़ों जन्म विषयों के भोग में बीतने पर भी यह

आपकी कृपा से रहित नंगा का नंगा ही रहता है अर्थात कृपा से शून्य ही बना रहता है।

हे प्रभु, जिस सौभाग्यशाली जीव को आपकी अहैतुकी कृपा प्राप्त हो जाती है उसी जीव को आपकी ओर जाने वाले पथ के प्रदर्शक के रूप में श्री सद्गुरु देव की प्राप्ति होती है। जो अज्ञान में अन्धे जीव को आपका नाम जपाकर भव सागर से पार आपके चरणों के पास पहुँचा देते हैं। पुण्य भोगों को भोगने के लिए, हे प्रभु। आपने जो पुण्य लोकों की रचना की है वह केवल भोग लोक होने के कारण केवल भटकन ही हैं। चौदह भुवनों में पुण्यों के फलस्वरूप भोग भोगता हुआ जीव आपके सत्य स्वरूप से दूर ही रहता है।

हे सर्वेश्वर, आपके नाम की महत्ता महान है। ये सारा विश्व आपके शासन भय के कारण सुचारू रूप से चलता है। आपके भय से जीवन दायिनी पवन बहती है। आपके भय से ज्योति पुञ्ज सूर्य तपता है और लोगों को दिन का प्रकाश प्रदान करता है। आपके भय से ही अग्नि विश्व का कार्य करती है। आपके भय से भयभीत होकर देवराज इन्द्र काले बादलों से वर्षा करवाते हैं। इसलिए आपका नाम जपनेवालों को कोई बाधित करने का साहस नहीं कर सकता।

तोरे भय सों काल यम, जीव जगत संहार। तोरे भय सों शशि कला, उपज बढ़ावन हार।।

हे विश्वेश्वर, आपके भय से नियंत्रित होकर काल स्वरूप श्री यमराज जी विश्व के जीवों का संहार करते हैं। आपके भय से भयभीत होकर चन्द्र देव अपनी कलाओं के द्वारा खेती की उपज को पोषण देकर बढ़ाते हैं।

अन्य देव ऋषि नाग असुर गंगा की धारा। सूर्य चन्द्र उड़गन करते आज्ञा अनुसारा।।

सर्व धर्म का पालन तेरा धाम मिलावे। सर्वधारना सर्वोपासन तव ढिंग लावे।।

हे परमेश्वर, आपकी माया ने देव, ऋषि, नाग, असुर, गंगा की धारा, सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सृष्टि के अङ्ग रचे हैं। जो आपकी आज्ञा के अनुसार ही कार्यरत रहते हैं, जो जीव सारा जीवन धर्म पालन कर्ता हुआ बिताता है उसे आपके धाम की प्राप्ति होती है। सबमें आपकी ही धारणा करना, सबमें आपकी ही उपासना करना, आपके समीप लाने में सहयोगी है।

गोहन्ता ब्राह्मण हनी, स्वर्णस्तेयी घोर। मद्य पाइ संगी चहूँ, गति हरिनाम न और।।

आपके पवित्र नाम की महिमा का कोई ओर छोर नहीं है। आपके नाम के महान प्रताप से गो हत्यारा, ब्रह्म हत्यारा, स्वर्ण की चोरी करनेवाला, शराब पीनेवाला और इनका करनेवाला ये पाँचों प्रकार के महापातकी भी पाप मुक्त होकर भव पार हो जाते हैं।

दुराचारी नर, पापवर्ती नर, कुमार्ग गामी, नित्य क्रोधाग्नि में जलनेवाला, कामासक्त, हिंसकों में नामी, कुटिल, सत्य रहित, घोर दम्भी, माता पिता का दूषक आदि महापापी भी आपका नाम लेने से तर जाता है।

कुल आश्रम से धर्मरहित गिर तृष्णा कूपा। मत्सर अवगुण ज्वलित छली कर छदम अनूपा।।

विप्र द्रोह रत धन हर्ता द्विज नारी माता। नाम तुम्हारा लिये महापापी तर जाता।।

हे नीलमणि सर्वेश्वर, कुल और आश्रम के शुभ आचरण से रहित, धर्म से शून्य, तृष्णा के कुएँ में गिरा हुआ, मत्सर रूपी, अवगुण से जलनेवाला, छल और छदम में प्रवीण, विप्र से द्रोह करनेवाला, विप्र के धन का हरण करनेवाला, द्विज की नारी में आसक्त प्राणी भी आपका परम पावन नाम लेकर भव कूप से निकल आता है।

हे सकल सृष्टि नियन्ता, ब्राह्मण के धन से अपना पोषण करनेवाला, व्यभिचार में आसक्त, क्रूर कर्मा, परनारी हर्त्ता, परधन अपहर्त्ता, दूषित धर्म का सेवन करनेवाला, दूसरों के बालकों का हनने करनेवाला, पाखण्डियों के संग में रुचि रखनेवाला महापापी भी आप का नाम लेने से सहज में ही पार हो जाता है।

हे धर्म नियन्ता, परनारी से प्रेम करनेवाला, गुरु पत्नी से गमन करनेवाला, कपट का व्यवहार करनेवाला, लोभी और

कामियों का संग करनेवाला, सदा पशुवत आचरण करनेवाला, पशुओं के साथ दुराचार करनेवाला, नित्य परदोषों में प्रवृत्त रहनेवाला, महापातकी भी आपका परम पावन नाम लेने से निर्मल चित्त वाला हो जाता है।

हे देवाधिदेव, हे अखिलेश्वर प्रभु, दूसरों का धन हरण करके अपने परिवार का पालन करनेवाला, पापियों की जूठन खानेवाला, पाप कर्मों से धन जुटाने वाला, असत्य भाषण करनेवाला, अघकर्त्ता, अपने खाते में पाप बढ़ानेवाला महाअपराधी भी आपका नाम लेने से विशुद्ध हो जाता है।

देवों ने स्तुति करते हुए कहा, हे करुणामय। आपका अवतार भक्तों की रक्षा करने के लिये, पापों का हरण करने के लिए हुआ है। आप, हम देवों के कोटि कोटि नमस्कार को स्वीकार करें।

जो मुक्ति या स्वतंत्रता अपने जीवनसे भगवान्‌को हटा दे वह स्वतंत्रता भी सर्वथा त्याज्य हैं और जो बंदीगृह भगवानके साथ सम्पर्क जुड़ा दे और देवताओंको भी उस कैदखाने में स्तवन करनेके लिये आना पड़े तो वह बन्धन भी बड़ा शुभ बन्धन है। वह बड़े सौभाग्यसे मिलनेवाला बन्धन हैं।

स्वागतम् कृष्ण स्वागतम् कृष्ण। स्वागतम् स्वागतम् शरणागतं कृष्ण।।
मनमोहना कृष्णा, मधुसूदना कृष्णा। हे केशवा कृष्णा, हे माधवा कृष्णा।।
सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं संत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यभूत सत्य नेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना:।।
मत्स्याश्वकच्छप नृसिंह वराह हंस राजन्यविप्र विबुधेषु कृतावतार:।
त्वं पासि नस्त्रि भुवनं च यथाधुनेश भारं भुवोहर यदूत्तम वन्दनं ते।।
हे हे त्रिसत्य, सत्यव्रत, सत्य बिधायक, हे सत्य-साध्य, आराध्य, सत्य अधिनायक।
हे परम-सम्य हे सत्य योनि, सत नामी, हे सत्य-निहित शरणागत-पूरण-कामी।
सोइ बिधि, हरि, हर तुम, आत्म रूप बनि छाये, सन्तन सरसावन दुष्ट नसावन आये।
हे बम्बुजाक्षि, हे मूर्ति- अनुग्रह सुखावन। भव-सेतु कमल-पद अमल, अचल गुनग्रामी।।
हे कमल-नयन, जिन चरण शरण नहिँ भायी, लहि भक्ति शक्ति नहिँ बुद्धि बिशुद्ध बनायी।
वे निज कहँ मुक्त बृथाहिँ मानि भरमाये, कहुँ निज बल तप साधन करि बड़ पद पाये।
तउ, चरण-शरण बिनु बनत अधोगति गामी।।

हे कमलस्वरूपी नेत्र वाले, जिसको तुम्हारी चरण शरण अच्छी नहीं, लगती और जो आपकी भक्ति के द्वारा अपनी बुद्धि को पवित्र नहीं करते वे अपने को व्यर्थ ही मुक्त मान कर भ्रम में पड़े रहते हैं। वे यदि कहीं अपने बल पर तपस्या की साधना करके उच्च पद पा भी लेते हैं तो भी बिना तुम्हारी शरण के उनका अध: पतन हो जाता है।

धनि धनि हम, तव चरनन-चिह्नन-छबि-वारी, लखि धन्य धरणि ह्वैहैं सब भाँति सुखारी।
लीला विनोद तव जन्म, अजन्मा, अक्षय, अतिशय अतर्क्य, लीलन-बपु-अभिनय जय जय।

परम सविशेष स्वरूप आपको नित्य नमस्कार हैं। हे परिभाषक सर्व सुशासक अतुलनीय परम प्रकाशक आप ही सर्व श्रम रूप विराम रूप, ललाम रूप परम अभिराम स्वरूप है आपको नित्य नमस्कार है। हे काल के भी काल परम सुकाल स्वरूप समस्त सुर समूह आप के ही अंग हैं आप ही सबके भाल स्वरूप हैं आप की जय हो। आप ललित लावण्यमय मधुर महोदधि सब के मूल परम निधि आपको नित्य नमस्कार है। आप गोतीत अकथनीय अगम्य अज परम परिपूर्ण

परात्पर परम भजनीय स्वरूप है आप ही स्वार्थ के यथार्थ परिबोध स्वरूप परम स्वरूप हैं आपको नित्य नमस्कार है।

हे गोलोक धाम के अधिपति सदजनों के मनोरंजन स्वरूप परम गति आप की जय हो। हे रस रूप स्वरमय राधारमण भव के त्रितापों का शमन करनेवाले परम प्रभु आपको नित्य नमस्कार है। जैसे आपने पूर्व में अनेकों रूप धारण करके इस त्रिलोकी की व्यथा का हरण करके रक्षा की उसी प्रकार हम लोग कराल दुख जाल में फँसे हुए हैं हे प्रनत जन हरे प्रभु दुहाई है रक्षा कीजिए।

हे प्रभो, आप सत्यसंकल्प हैं। आपको पाने की साधना भी सत्य ही है। आप त्रिसत्य हैं, अर्थात् आप भूत, वर्तमान और भविष्य- तीनों कालों में सत्य हैं, वर्तमान हैं। पंचभूत सत् और त्यत् रूप हैं। इनमें पृथ्वी, अग्नि और जल सत् हैं, वायु तथा आकाश सत्य हैं। इन पाँचों भूतों के कारण आप ही हैं एवं उनसे रचित पंच भौतिक शरीरों में भी आप ही निवास करते हैं। जगत् के प्रलय हो जाने पर भी आप ही शेष रहते हैं। सब व्यावहारिक सत्य हैं, किन्तु आप पारमार्थिक सत्य हैं। आप ऋत-सत्य-नेत्र हैं- अर्थात् आप धर्म एवं सत्य के प्रवर्तक हैं। हम सब सत्य-स्वरूप आप की शरण में हैं। सत्य आपका स्वरूप है।

जय सत्यव्रत, पुन सत्यकारण, सत्य में स्थित, श्रीपते।। त्रय काल सत्यस्वरूप तव, सुर सत्यप्राप्य स्वजनगते।।
जय सत्यधर्म प्रवर्तकाच्युत, सत्य आश्रय, श्रीहरे।। यह सप्तसत्यस्वरूप प्रभु, तव चरण शरणी हम परे।।

हे सत्यव्रत, जिनका व्रत-संकल्प सत्य है, ऐसे आपकी जय हो अर्थात् हे सत्यकारण। अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों के भी आप कारण हैं। उन आपकी जय हो। हे सत्य में स्थित, आपकी जय हो- हे लक्ष्मीपते, आपकी जय हो। हे त्रयकाल सत्य-स्वरूप, अर्थात् सृष्टि से पूर्व और प्रलय के अनन्तर, तथा स्थिति काल में भी अर्थात् सत्य निर्विकार स्वरूप से आप विराजमान हैं ऐसे आपकी जय हो, हे देव। आपकी जय हो। हे सत्यप्राप्य, अर्थात् सन्मार्ग पर चलनेवाले भक्तजनों को आप प्राप्त हैं। ऐसे आपकी जय हो- हे सत्यधर्म प्रवर्तक, हे अच्युत, अर्थात् अपने सत्-चित्-आनन्द स्वरूपधर्मों से आप कभी भी चलायमान नहीं होते हैं ऐसे आपकी जय हो, हे सत्य आश्रय, आपकी जय हो, हे श्री हरे, हे भक्तजनों के पापों को हरनेवाले, आपकी जय हो। हे प्रभो, इन सप्त स्वरूपवाले आपके चरणकमलों की शरण को हम प्राप्त हुए हैं।

माया एक आसरा दो, फल सुख दु:ख तीन, गुणमूल धरमादि, चार रस माने हैं।
पंच ज्ञान इन्द्रीकर, पंच हैं प्रकार जामें, षड्मीस्वभाव सात धातु त्वचा माने हैं।।
पंचभूत मन बुद्धि, अहंकार आठ शाखा, बदनादि नवद्वार, कोटर बखाने हैं।
दश विध प्राण पत्ते, जीव ईश खग दोऊ, आदि वृक्ष कर तोको, कारण ही जाने हैं।।
तुम ही इक कारण हो जग के, तुमको प्रतिपालक वेद पुकारे। पुन अन्त समे लय होवत है, यह विश्व सबी तव धाम मझारे।।
तुमरी शकती कर मोहित जो, नर सो तुम में बहु रूप निहारे। मतिमान मुनीश सुपंडित जो, सबको इक आतमरूप विचारे।।
निज बोधस्वरूप अरूप प्रभो, तुम रूप धरो शुध सत्व उदारे। सब स्थावर जंगम जीवन के, सुख कारण हेत सुरेश मुरारे।।
खल मूढ़मती नर पामर जो, तुम से दुख पावत हैं अविचारे। निज भक्त विरक्त उदारन को, तुम देवत मोक्ष अखण्ड खरारे।।
प्रभु के निज सत्व स्वरूप विषे, नर जो मन को दृढ़ धारत हैं। सतसंगति सेवन में तनु को, धन को मन को नित डारत हैं।।
जलजाक्ष सुरेश्वर जो प्रभु के, पद पोत विषे स्थिति कारत हैं। भव सागर से निज आतम को, विन खेद सुपार उतारत हैं।।

यह संसार आदि वृक्ष है। माया इसका आश्रय है। सुख और दु:ख इसके दो फल हैं। सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण इसके मूल हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चारों पुरुषार्थ इसके रस हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इसके जानने के साधन हैं। उत्पन्न होना, रहना, बढना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना- ये छ: इसके स्वभाव हैं। रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि,

मज्जा और शुक्र- ये सात धातुएँ इसकी छाल हैं। पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ इसकी शाखाएँ हैं। मुख आदि नौ छिद्र इसके खोड़र हैं। प्राण, अपान आदि दश प्राण इसके दस पत्ते हैं। इस पर जीव और ईश्वर ये दो पक्षी बैठे हैं।

यह आदि वृक्ष आप परमात्मा से प्रकट होता है, परमात्मा में ही रहता है, परमात्मा ही इसका पालन करते हैं और अन्त में यह परमात्मा में ही लीन भी होता है। परमात्मा के अनुग्रह से इसकी रक्षा भी होती है। आप की माया से मोहित चित्तवाले व्यक्ति इस रहस्य को नहीं समझ सकते। आप सकल-जगत् के कल्याण के लिये समय-समय पर विभिन्न रूपों को धारण कर अवतार लेते रहते हैं। आपके अवतारों से महात्माओं को सुख और दुष्टों को दु:ख की प्राप्ति होती है। जिसने श्रद्धा और भक्ति के साथ अपना मन आपके चरण-कमलों में विलीन कर दिया है, उसके लिये यह संसार गोपद के समान सरलता से पार करने लायक बन जाता है। बड़े-बड़े भक्त और महात्मा आपके जिस चरण-नौका के सहारे अनायास संसार-सागर को पार कर जाते हैं, वे संसार के कल्याण के लिये आपके उस चरणकमलों की नौका यहीं स्थापित कर जाते हैं। जो ज्ञान के अहंकार में चूर होकर आप की भक्ति का अनादर करते हैं, उनका कभी-कभी जैसा अध:पतन होता है, वैसा आपके भक्तों का कभी नहीं होता। आप भक्त-रक्षक हैं। आपके चरण-कमलों की छत्र-छाया में भक्त जन निर्भय होकर विघ्नों के मस्तक पर भी विचरण किया करते हैं।

जो पुरुष आपके मंगलमय नामों और रूपों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करते हैं और आपके चरणकमलों की सेवा में ही अपना चित्त लगाये रहते हैं- उन्हें जन्म-मृत्युरूप संसार के चक्कर में नहीं फँसना पड़ता।

प्रभो, आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हम लोगों के साथ तीनों लोकों की रक्षा की है- वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वी का भार दूर कीजिये। यदुनन्दन, हम आपके चरणों का वन्दन करते हैं।

फिर देवकी की ओर मुखकर के देवों ने कहा- माताजी, यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम सबका कल्याण करने के लिये साक्षात् नारायण कहीं आपके गर्भ में पधारे है, अब आपको कंस से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, अब तो वह कुछ ही दिनों का मेहमान है। हे माता देवकी, तुम धन्य हो धन्य हो जो तुम्हारी कोख ने परम पद प्राप्त कर लिया है। जहाँ कि अपने ज्ञान बल आदि अंशों के साथ स्वयं भगवान पुरुषोत्तम आये हैं।

आपके कोख से उत्पन्न बालक, न केवल आपकी अपितु समस्त यदुवंश की रक्षा करनेवाला होगा। अम्बे, अब आप तुच्छ कंससे मत डरें। वह शीघ्र मरनेवाला है आपका सुत तो त्रिभुवनको संरक्षण देने आ रहा है। देवताओंका आवागमन बढ़ता ही गया। बढ़ती गयी देवियोंकी श्रद्धाभरित सेवा और बढ़ता गया माता देवकीका वह गर्भ।

भया प्रमोद देवकी माता। तुमरे जठर आय जन त्राता।। भोजपती से भय मत मानो। निज सुत को ईश्वर कर जानो।।
हम तुम सब यादव का पालक। तेरा सुत होगा दानव घातक।। कंस दुष्ट को सह परिवारा। निश्चय मारेगा सुत थारा।।
याविध हरि का स्तवन कर, ब्रह्मा देव समेत। हरिगुण गावत पंथ में, निज निज गये निकेत।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस प्रकार गर्भस्थ भगवान की स्तुति कर सारे देव, ब्रह्मा और शिव को आगे करके वहाँ से निकले और अपने-अपने धाम को चले गये।

४) श्रीकृष्ण जन्म- श्रीकृष्ण का जन्म आज के ५२३४ वर्ष पहले हुआ था।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान के जन्म लेने के समय में काल, परम मंगलमय रूप धारण कर भगवान के स्वागत के लिये मानो स्वयं आकर उपस्थित हो गया। वह सारे गुणों से अलंकृत था। यही कारण है कि उस समय उसकी शोभा

निरतिशय थी। कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि, वार बुधवार, रोहिणी नक्षत्र समय रात बारह बजे। योगमाया ने ब्रह्माजी से कहा-पूरे ब्रजमण्डल की कमान मेरे हाथ में दीजिए। कृष्णपक्ष की अष्टमी स्थिति को प्रभु ने सोचा, माता यशोदा सौभाग्यवती हैं मैं उनका दुग्धपान करूँगा, लेकिन माता रोहिणी ने कितना त्याग किया। इसलिये मेरे जन्म का नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र होगा। प्रभु के नित्यधाम में भले ही वह गोलोक धाम हो या साकेत धाम, या नित्य स्वरूप वाला नित्य निवास करनेवाला परिकर ही रहता है। वहाँ माता, पिता, भाई-बहन, सखा-सखी, गाय-ग्वाले, सहचर सहचरियाँ, स्थाई सम्बन्ध बनाये रहते हैं। जब जब परमप्रभु का अवतार होता है उनका प्रिय परिकर भी धरा धाम पर अवतरित होता है। इसके साथ ही यमुना, वृन्दावन धाम, गोवर्धन आदि बृजमण्डल सहित धरती पर प्रगट होते हैं। धरती पर परमात्मा के अनेक भक्त अनेक भावों से उनकी आराधना, वन्दना और सेवा करते हैं। प्रकाश और आनन्द दोनों जैसे एक हैं, अपार हैं, असीम हैं।

अथ सर्वगुणोपेत: काल: परमशोभन: । यर्ह्यो वाजन जन्मर्क्षे शान्तर्क्षग्रहतारकम् ।।

दिश: प्रसेदुर्गननं निर्मलोडुगगणोदयम् । महो मंगलभूयिष्ठ पुरग्राम ब्रजाकरा ।।

काल वही अच्छा है, जिसमें भगवान अवतरित हों, भगवानका दर्शन हो। भगवान के जन्मके समय काल अपने सर्वगुणोंसहित शान्ति, दान्ति, मैत्री आदि समस्त अंतरंग गुणोंको धारण करके आया। समय रोहिणी नक्षत्र होने के कारण सर्वत्र सौभाग्य का वातावरण था। समष्टि प्रकृति के मालिक देव जब प्रगट होनेवाले थे, तब काल रुद्ररूप छोड़कर सुहावना बनकर प्रगट हुआ। सभी ग्रह, नक्षत्र, दिशाएँ, वायु शान्त सौम्य प्रसन्न हो उठे।

काल समस्त शुभ गुणों से युक्त और परम शोभन हो गया। काल नित्य ही जगत् के सृजन-संहार में लगा रहता है-बनाता है फिर बिगाड़ देता है, इससे जगत् में कोई भी उससे प्यार नहीं करता। परन्तु काल के आधार भगवान उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते। वे काल के नियन्ता होकर भी काल में ही प्रकट होते हैं और काल में ही अन्तर्धान भी होते हैं। काल को भगवान यदि यह सौभाग्य नहीं प्रदान करते तो शायद उस बेचारे के दु:ख का कहीं पार नहीं रहता। आज जब काल को यह पता लगा कि स्वयं परिपूर्णतम भगवान मेरे अन्दर प्रकट हो रहे हैं तब उसके आनन्द की सीमा नहीं रही और अपने समस्त गुणों को प्रकट करके वह परम शोभनीय बन गया। उसने प्रत्येक ऋतु तथा प्रत्येक समय-विशेष से चुन-चुन कर सभी सद्गुणों को अपने में धारण कर लिया और वह विलक्षण रूप से सुसज्जित हो गया। जैसे बसन्त ऋतु का मलय-समीर, कोकिल का कूजन, भ्रमर की गुंजार, आम्र में नवीन बौर का उदय, अशोक और चम्पा का मुक्त हास्य, वर्षा का कदम्बानिल, शरद की स्वच्छता और प्रसन्नता, हेमन्त की मालती, शिशिर के कुन्दु कुसुम, दिवस की कमलिनी रात्रि की कुमुदिनी इत्यादि काल के भंडार में जहाँ जो ऐश्वर्य था, उन सभी को अपने में धारण करके वह सर्वांग सुन्दर हो गया।

आकाशमण्डल में सारे नक्षत्र, ग्रह और तारा-गण शान्त और प्रसन्न थे मानो वे उत्सुकता के साथ भगवान के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे थे। सारी दिशा-नायिकाएँ अतिशय प्रसन्न थीं मानो वे भगवान के आविर्भाव की बेला में मंगल गान-के लिये सजधज कर तैयार बैठी हों। निर्मल आकाश में तारे जगमगा रहे थे। तारागणों और मेघमण्डल में होड़ सी लगी थी। तारामण्डल छटक-छटक कर भगवान को देखने के लिये कभी आकाश से झाँकने लगते तो कभी भादों का महीना होने के कारण उमड़ते-घुमड़ते बादल उन्हें ढक देते थे। आज मानो मेघमण्डल इस बात पर इतरा रहा था कि भगवान मेरे जैसा साँवला-साँवला रूप धारण कर धरामण्डल पर प्रकट हो रहे हैं। उस समय सारी पृथ्वी मंगलमय बन गई थी। वह नई नवेली दुलहन की तरह सजधज गई थी। उसके पति आज उसके घर आ रहे हैं। नगर, गाँव तथा अहीरों की बस्तियों में मंगल-गान होने लगे। हीरे आदि की खानें जगमगा उठीं। वर्षा में शरद ऋतु के गुण प्रकट हो गये। सारी नदियों के जल

निर्मल हो गये। तालाबों में रात्रि के समय भी कमल विकसित होकर शोभा बिखेरने लगे। जंगल फूलों से ढँक गये। उन पर भौंरें गुनगुनाने लगे। चिड़ियाँ चहकने और फुदकने लगीं। पवित्र शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। उससे चारों ओर सुगन्ध फैल गई। ब्राह्मणों के यज्ञकुण्डों की शान्त अग्नि दक्षिणावर्त होकर स्वयं प्रज्वलित हो उठी। किसी का भी अहित न चाहनेवाले साधु-सज्जनों के मन सुप्रसन्न हो उठे। अजन्मा भगवान् के जन्म लेने के काल में स्वर्ग में देवताओं की दुन्दुभियाँ स्वयं बजने लगीं। किन्नर और गन्धर्व गाने लगे। सिद्ध और चारण भगवान के मंगलमय गुणों का बखान करने लगे। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-गण प्रसन्न हो आकाश से पुष्प-वृष्टि करने लगे। जलभरे बादल सागर के पास जाकर मन्द-मन्द गर्जन करने लगे। देवता, ब्राह्मण, पर्वत, वृक्ष और गौएं सभी सुख सामग्री से परिपूर्ण हो गए। देवताओं की दुन्दुभियाँ बज उठीं, साथ ही जय-जयकार की ध्वनि सब ओर व्याप्त हो गई। जहाँ-तहाँ सब जगह सब का परम मंगल हो गया। गायन कला में निपुण विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध, किन्नर तथा चारण गीत गाने लगे। देवता लोग स्त्रोत पाठ कर उन परम पुरुष का स्तवन करने लगे। देवलोक में गन्धर्व तथा विद्याधरियाँ आनन्दमग्न होकर नाचने लगीं। मुख्य-मुख्य देवता पारिजात, मन्दार तथा मालती के फूल बरसाने लगे।

पृथ्वीका कण-कण धन्य हो जाता है। बेचारे इन मिट्टीके कणोंको कब भगवान मिलें? भगवान स्वयं आ करके इन पर लोटते हैं, इन पर खेलते हैं। पृथ्वीके रज-कणसे अपने शरीरको धूसरित करते हैं। यह जल-कण, वायु-कण नक्षत्र, तारे सब धन्य हो जाते हैं भगवानको अपने बीचमें पाकर।

ऐसी ही मंगलमय बेला थी। रजनी अन्धकार से आच्छन्न थी। आधी रात का समय था। भादों का महीना था। कृष्णपक्ष था। बुधवार का दिन था। पूर्व दिशा में पूर्ण-सा चन्द्र निकल रहा था।

कृष्णपक्ष नाभस्य में, तिथि अष्टमि निर्धार। अर्धरात्रि सह रोहिणी, चन्द्र उदय बुधवार।।
सर्व गुणों कर युक्त जब, उदय भया शुभकाल। पूरव दिशि से चन्द्र इव, प्रकट भये गोपाल।।

जगत का प्रत्येक कार्य काल दिशा और देश के अधीन है, इसी से जगत् में काल दिशा और देश का विचार करके ही कार्य किया जाता है। यद्यपि श्रीभगवान की दिव्य लीला में काल दिशा और देश की कोई बाध्यता नहीं है- वे स्वयं ही काल, दिशा और देश के नियन्ता हैं, तथापि जब वे धराधाम में अवतीर्ण होते हैं तब काल, दिशा और देश पर कृपा करके उनके साथ अपना पवित्र सम्बन्ध जोड़कर उन्हें धन्य और कृतार्थ कर देते हैं। इसलिए आज काल की भाँति दिशा और देश भी समस्त सद्गुणों से सुशोभित हो गये। दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, आकाश में तारे जगमगाने लगे। किसी भी दिशा में कहीं तनिक भी मलिनता नहीं रह गयी। सर्वत्र परमानन्दपूर्ण स्वच्छता छा गयी। सभी दिक्पति परम प्रफुल्लित आनन्दपूर्ण हृदय से अपने स्वामी के शुभागमन का अभिनन्दन करने के लिए समस्त दिशाओं को सुसज्जित करके दिग्वधुओं के साथ हाथों में अर्घ्यपात्र लेकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान के श्रीचरण मेरे वक्ष:स्थल पर पड़ेंगे, अपने सौभाग्य का ऐसा अनुसन्धान करके भूदेवी आनन्दित हो गई। पृथ्वी के सभी बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरों की बस्तियाँ और रत्नों की खानें आनन्द मंगल की क्रीड़ा-भूमि बन गईं। विविध हेतुओं की अवतारणा करके नगरों के मार्ग परिष्कृत तथा सुगन्धित हो गए। नाना प्रकार से नाना कारणों से सर्वत्र आनन्दमय के शुभागमन की आनन्दधारा बह चली। पृथ्वी के समस्त स्थानों को आनन्द प्लावित करके आनन्दमय का शुभागमनानन्द मूर्तिमान होकर नद, नदी, सरोवर, अरण्य, पर्वत आदि सभी जगहों में व्याप्त हो गया।

निर्मल हृदय को ही भगवान की प्राप्ति होती है। भगवान के दर्शन की अभिलाषा और उनकी प्राप्ति की कामना से नदियाँ

निर्मल जल से प्लावित हो गईं। इस प्रकार जल ने भगवान के स्वागत के लिए निर्मल रूप धारण कर लिया।

इस अवतार में श्रीकृष्ण ने व्योमासुर, तृणावर्त, कालिय के दमन से आकाश, वायु और जल की शुद्धि की है। मृद्-भक्षण से पृथ्वी की और अग्नि-पान से अग्नि की। भगवान श्रीकृष्ण ने दो बार अग्नि को मुँह में धारण किया था। इस भावी सुख का अनुसन्धान करके अग्निदेव भी शान्त भाव से प्रज्ज्वलित होने लगे। असुरों के अत्याचार से देवताओं के लिए हवन, यज्ञ-भाग आदि बन्द हो गए थे और अग्निदेव भी बुभुक्षित हो गए थे। श्रीकृष्णावतार से हवन-यज्ञादि पुन: चालू हो जाने और यज्ञभाग मिलने की आशा से अग्निदेव प्रसन्न होकर, प्रज्ज्वलित हो गए।

द्विजों के होमकुण्डों की कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ, जो कंस के अत्याचार से बुझ गईं थीं, प्रदीप्त हो उठीं। उन्हें जलाना नहीं पड़ा। लकड़ी के अन्दर स्वयं ही प्रज्ज्वलित होकर अग्नि दक्षिणावर्त हुई, अपनी शिखाओं को हिला-हिला कर नाचने लगीं। श्रीगोविन्द के शुभागमन के महाआनन्द में उनके लिए घृत की आहुति, मन्त्रपाठ अथवा ईंधन की आवश्यकता नहीं हुई। वे अपने आप ही प्रकट होकर होम मण्डपों को आलोकित करने लगीं। अग्निदेव स्वयं आवाहनीय कुण्डमें पधारे। सम्पूर्ण विप्रवर्ग, सब ऋषि-मुनि व्यग्र हो गये हवन-सामग्री जुटानेमें। कंसके राज्यमें छिप-छिपकर किसी प्रकार दैनिक अग्निहोत्रका नियम कुछ नैष्ठिक लोग निर्वाह करते थे। उनके यहाँ भी आहुति देनेपर प्राय: अग्निदेव धूम्र ही देते थे। बड़ा प्रयत्न करना पड़ता था ज्वाला प्रकट करनेके लिए, किन्तु आज तो उन हवन-कुण्डोंसे सहसा लपटें उठने लगीं, जिनमें वर्षोंसे समिधा तक नहीं पड़ी थी।

दिशि प्रसन्न, निशि अति मुदित, तारा ग्रह सब शान्त। ग्राम धाम अभिराम अति भये सौम्य निर्भ्रान्त॥

परम पवित्र शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्श से सबको सुखदान करता हुआ बहने लगा। जहाँ से भी उसे उत्तम सुगन्ध प्राप्त हुआ, वहाँ से उसे अपने अंगों में धारण कर और आनन्द मत्त हो वह वृक्षकों के मस्तकों, रमणियों के अंचलों तथा प्रासाद शिखरों की पताकाओं के साथ क्रीड़ा करने लगा। श्रीभगवान आ रहे हैं, इसलिए उस समय वायु ने रज (धूल) से खेलना छोड़ सात्विक आनन्द के साथ खेलना शुरु किया। इस कारण वह अपने स्पर्श से सबको सुख देनेवाला बन गया।

असुरों और उनके अनुगत मानवोंकी स्थिति भी आज अद्भुत थी। उनकी केवल सोते रहनेकी इच्छा होती थी। पूरे प्रकृतिके प्रांगणमें आज जो महोत्सव उतर आया, उसपर दृष्टि डालनेका अवकाश इस वर्गमें किसीको नहीं था। कंस बहुत दिनोंसे आज सोया था- दोपहरसे भी पहले सो गया था और थोड़े समयके लिए सायंकाल उठा था। उसके अनुचरोंकी भी यही अवस्था थी। अवश्य आज उन्हें भी आहारमें बहुत स्वाद मिला था। डटकर भोजन किया था आज उन सबने; अत: आलस्य-निद्रा सहज थे।

प्रत्येक बारकी भाँति देवकी-वसुदेवजीकी परिचर्या फिर बढ़ा दी गयी थी। इस बार कंस बार-बार सेविकाओंको सावधान करता था। देवकीकी दैनिकचर्या वह इस बार पूछने लगा था।

एक परिचारिका प्राय: दौड़ती हुई कारागारसे आयी और कंसके सम्मुख पहुँची। कंस हड़बड़ा उठा- क्या हुआ वसुदेव कारागार से निकल गये। परिचारिका बोली- वसुदेव तो वहीं हैं महाराज लेकिन देवकी... कंस बोला- फिर देवकी को क्या हुआ? वसुदेवने देवकी को कहीं भेज दिया? नहीं महाराज। देवकी अन्तर्वत्नी हो गयी। कंसने अर्थ लगाया- मेरा मारनेवाला हरि अब देवकीके भीतर आ गया। देवी देवकीकें भीतर जो आ बैठा था, उस धर्मके परम प्रभुका सान्निध्य कंसके काले हृदयको भी कुछ किरणें अपने प्रकाशकी दे रहा था। कंसने विचार किया- यह स्त्री है, बहिन है और गर्भवती है। अत्युग्र पाप प्रारब्ध बनकर तत्काल फल देता है। इतना उग्र पाप यश, श्री और आयुको भी तुरन्त चाट जाता है। कंस सोचने लगा- यह हरि वाराह बन गया है, हयशीर्ष बन गया, हंस बन गया। कंसको प्रत्येक पक्षी, प्रत्येक पशु अब हरि दीखने लग गया। वह इस बार काक, गौ

या हाथी बनकर क्यों नहीं आ सकता? यह मोहिनी बना, वामन बना, परशुराम बना। वह उसके लिए आतंक बन गया।

पंछिन चहकन सों ललित, चहुँ भ्रमरन गुंजार। सुरभित, शीतल, मन्द बहु, बलि समीर रस धार।।

इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त हो गईं। भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि की आधी रात का समय आया, उस समय रोणिी नक्षत्र तथा बुधवार था। प्रकृति चारों ओर से बड़ी सुहावनी हो गई थी। सुन्दर मेघ माला आकाश में झूम रही थी। पूर्व दिशा की ओर प्रकाश पुब्ज प्रगट हुआ और चन्द्र देव के मन भावन दर्शन हुए। देखते ही देखते जन जन में परम अद्भुत उत्साह प्रगट होकर बढ़ने लगा। दिन बीत गया। सायंकाल आया और रात्रि आ गयी। इतना निर्मल आकाश- ऐसी स्वच्छ दिशायें कि लगता था गगनमें रत्नोंका अम्बर किसीने उलट दिया है। तारोंकी ज्योति बहुत अधिक जगमगाने लगी थी। अचानक दिव्यलोकोंमें उत्सव प्रारम्भ हो गया। सत्यलोक तक जब संकीर्तन गुञ्जित होने लगा तो अमरावती तो वैसे भी अप्सराओंकी नृत्य-गीत स्थली है। गन्धर्वोंके कलकण्ठ दूसरे किस दिन सार्थक होते। स्वर्गके उस संगीतकी ध्वनि धरापर पहिचान ली गयी होती यदि उसी समय दूर-समुद्रतटीय प्रदेशकी ओरसे मन्द-मन्द किन्तु गम्भीर एवं निरंतर मेघगर्जनकी ध्वनि न आने लगी होती।

देवन दुंदुभि बजि उठी, किन्नरादिकन गाय। विद्याधरियन नचि उठीँ देव सुमन बरसाय।।

कंस नैन नहिं नींद उड़ा सा इत उत डोले। ताड़ित प्रहरी कारागृह के बड़ बड़ बोले।।

बन्धयंत्र द्विगुण प्रहरी चौगुणा बढ़ाये। वैरी मेरा चतुर बहू कहुँ निकल न जाये।।

इन सब दिव्य घटनाओं को सुनकर कंस की आँखों से नींद उड़ गई। बौखलाया हुआ इधर से उधर डोलने लगा। कारागृह के पहरेदारों को फटकारता हुआ बड़बड़ाने लगा। तालों की संख्या दुगुनी और कारागार के पहरेदारों की संख्या चार गुनी बढ़ा दी। सबको सावधान करता हुआ बोला, सब लोग सावधान हो जाओ, मेरा बैरी बहुत चतुर है, कहीं मेरे हाथों से निकल न जाये। लोग पूर्व दिशा की ओर एड़ियाँ उठाये उकस उकस कर विस्मित नेत्रों से चन्द्र देव को निहार रहे थे। अष्टमी तिथि अर्ध पक्ष का चन्द्र इतना तेजोमय था मानो पूनम की प्रभा छिटका रहा हो। अर्ध पक्षीय चन्द्र के बीच अद्भुत प्रकाश था। जेसे जैसे पूर्ण उजियारा होने लगा वैसे ही दीन भक्तों के दु:खी मन की निराशा घटने लगी और सुरक्षा की आशा बढ़ने लगी। करुण पुकार करते हुए भक्तों ने कहा, हे करुणा के अवतार। हमारी आँखें आपके दर्शनों के लिए तरस रही हैं। हे सुख प्रदान करनेवाले। आप दर्शन देने में इतना विलम्ब क्यों कर रहे हैं।

उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में स्थित थे और आकाश में सभी नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त और सौम्य हो रहे थे। सूर्यादि नव ग्रह, अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्र, जन्म सम्पत् आदि तारागण, उग्र, शान्त, वक्र, उच्च, नीच आदि विभिन्न भावों से काल के सृजन-संहार कार्य में सहायता किया करते हैं। कर्मफलानुसार काल जब जिसको जैसा कुछ दु:ख-सुख भुगताना चाहता है, ये भी तब उसके लिए वैसे ही उग्र, शान्त, वक्र आदि होकर काल का साथ देते हैं। आज परिपूर्णतम भगवान श्यामसुन्दर के शुभागमन के समय वे सभी अपनी उग्रता, वक्रता, का परित्याग करके शान्त हो रहे हैं। कोई वक्रगति से, कोई अतिचार गति से, तो कोई महातिचार गति से अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित होकर श्रीभगवान का अभिनन्दन करने में सानन्द संलग्न हो गए।

वनों में वृक्षों की पंक्तियाँ विविध वर्णों के सुगन्धित पुष्पों से लद गईं और शुक-पिकादि पक्षी मधुर ध्वनि करते हुए चहक उठे तथा मधुपान मत्त भ्रमरों की गुंजार से सारी वन-भूमि मुखरित हो उठी। वनों को तो पूर्णरूप से सजधज कर अपना आनन्द प्रकट करना है।

भद्र उसे कहते हैं, जो उपस्थितिके साथ-ही-साथ आनन्द देता है। फिर जो भाद्रमासका कृष्णपक्ष है, वह तो भगवानके

नामका है। जहाँ घनघोर अन्धकार छाया रहता है, वहीं भगवान् प्रकट होते हैं।

अन्ततः वह दिन- वह अजन्माके जन्मकी तिथि भी आयी। भाद्र कृष्ण अष्टमी- भरी वर्षाकी वह ऋतु और सर्वत्र लोग चकित रह गये उस दिन प्रभातसे ही- सरितायें बढ़ी हैं और उनमें स्वच्छ-निर्मल जल। मिट्टी, रेत- कहीं घास-तिनकोंका नाम तक नहीं। शरदमें भी जलमें जो स्वच्छता नहीं आती, वह स्वच्छता। सरोवरोंमें राशि-राशि कमल और कुमुदिनियाँ एक साथ खिल उठीं उस दिन। सम्पूर्ण धरा- एक-एक तृण, बीरुध, लता, तरु पुष्पोंसे लद उठे। आज तो पक्षी तक शिल्प-मण्डल बनाकर उड़ते हैं। किसी एकने नहीं बहुतोंने लक्षित किया- आज पक्षियोंके कूजन और भृगोंके गुञ्जारमें लयबद्ध कोई स्वागत गीत गूँजता जान पड़ता है। इतना प्रसन्न, इतना आनन्दोल्लासित मन तो कभी नहीं हुआ। ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, सामान्य सज्जन-वर्गके सभीने अनुभव किया।

इस लग्न का उत्पन्न बालक ब्रह्म का अवतार हो। कर पूर्ण सबकी कामनाएँ लोक का सरदार हो।।
इसका करे जो ध्यान उसके कल्मषों का नास हो। यमराज को भी जीतकर गोलोक उसका वास हो।।
वर्णन सके कर कौन महिमा शब्द में इस बाल की। श्रुति नेति-नेति पुकारती पात न गति व्रजलाल की।।
सब ऋद्धि-सिद्धि सुरेश तक इने बँधे यश में रहें। यह भक्तवत्सल सर्वदा निज भक्त के वश में रहें।।
प्रगटे अभिराम स्याम रसिक ब्रजबिहारी। वृंदावन नंद-भवन जन-मन-सुखकारी।।
हरन विषम भूमि-भार, कारन दुष्ट-दल-उधार। सरन संत-जन उबार अखिल अघ-बिदारी।।
मुदित भए प्रेमी जन, संत भए निर्भय मन।

चन्द्रमा रामजन्म के समय सन्तुष्ट नहीं हुए तो पुनः राम ने कहा- मेरा अगला अवतार आपके वंश में होगा। इतना ही नहीं, उस समय आपकी पत्नी रोहिणी का नक्षत्र होगा। आपके पुत्र बुध का दिन होगा। आधी रात होगी। सारी दुनियाँ सोती होगी। उस समय केवल तीन ही व्यक्ति जागते रहेंगे- आप, वसुदेव और देवकी। जन्म लेते ही मैं खुले आसमान के नीचे आ जाऊँगा, जिससे आप भरपूर मेरा दर्शन करेंगे, आज वही सुलभ अवसर आया है अतः चन्द्रमा अपनी प्रसन्नता छिपा नहीं पा रहा है। अष्टमी का होते हुए भी पूर्ण चन्द्र की भाँति चमक रहा था।

प्रकृति परमात्मा की सेविका है और प्रकृतिके द्वारा ही परमात्माके सारे गुणोंका प्रकाश होता है। सारा काम प्रकृति ही करती है। प्रकृति न हो तो भगवान्का काम नहीं बने। प्रकृतिके अनेक प्रकार हैं।

भगवानका निर्गुण रूप सबको सुख नहीं दे सकता है। यह जड़-चेतन जितने भी जगत्के उपादान हैं, जितनी भी जगत्की सामग्रियाँ हैं।

पृथ्वी पर जब-जब पाप का अभ्युदय हो जाता है; धर्म का जब-जब संसार में क्षय हो जाता है, तब-तब वे सर्वेश्वर सर्वात्मा श्रीहरि अनेक रूप रखकर अवतरित होते हैं।

प्रगटे यादव लाल, भादों आठें बुधवार। रोहिणी नक्षत्र जोग तहाँ, नाम भया नन्दकुमार।।

दुष्टों का विनाश और शिष्टों का पालन तो उनके संकल्पमात्र से ही हो सकता है। जीवों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश यह तो उनकी माया विलास का ही हेतु है। जिसका अहैतुकी अनुग्रह ही, इन जन्म मरणादि की सर्वथा के लिये निवृत्ति और आत्मस्वरूप सुखस्वरूप की प्राप्ति का हेतु है, उनके अवतार के सम्बन्ध में इत्थम्भूत कहना यह दुस्साहसमात्र ही है, अज्ञता है, मूर्खता है।

उन प्रभु के अवतार के सम्बन्ध में यदि कुछ कहा भी जा सकता है, तो यही कि वे भक्तों पर कृपा करने के लिये ही अवनि

पर अवतरित होते हैं। अपने अनुगत आश्रितों पर अनुग्रह करने के अतिरिक्त और कोई निश्चित कारण बुद्धि में आता नहीं।

अंतर हरि हरि होत है, मुख से कियो अनुराग, वो नार बडभाग है जो श्याम दियो सुहाग।

भाग्य बड़ो है ते जीवणा, मथुरा लिया अवतार, क्या पक्षी, क्या मानव, क्या गोपी, क्या ग्वाल।

सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड की कोमलता, कमनीयता और सौंदर्य को समेटे एक जीवित, स्पंदित मांस-पिंड। आकर्षण-पार्थिव नहीं, नैसर्गिक, अलौकिक और अनिर्वचनीय का एक मूर्त प्रतीक। अंजलि में पड़ा, भाग्य-देवता का कोई अछूता, अप्रतिम और पूत-पवित्र प्रसाद। ब्रह्मदेव की असंख्य सृष्टियों के अनन्त प्राणियों-यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सुर, मनुष्य सबके मूर्त, पुँजिभूत, मधु सिंचित मुसकान अथवा असंख्य आसमानों की असंख्य सार-सम्मिश्रण।

माता देवकीको लगा था कि उन्हें तन्द्रा आ गयी है। समस्त धार्मिक, भक्तिप्राण प्राणियोंके समान वसुदेवजी भी घनीभूत सत्वगुणके कारण अन्तर्मुख हो गये थे। एक आनन्द समाधिमें निमग्न थे वे। अचानक कारागारका वह कक्ष सहस्र-सहस्र पूर्णचन्द्रके सम्मिलित प्रकाशके समान दिव्यजोतिसे प्रकाशित हो उठा। वसुदेवजी ही सर्वप्रथम सावधान हुए। उन्होंने देखा देवकीके सम्मुख दिव्य शिशु खड़ा है मन्द-मन्द मुस्करा रहा है। वह नवजलधर सुन्दर, तडिदाम्बर, वनमाली, रत्न किरीटी। अपनी विशाल भुजाओंमें उसने कंकण, अंगद आदि धारण किये हैं। करोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। कण्ठमें महामणि कौस्तुभ है। वक्षपर वनमालाके मध्य श्रीवत्स चिह्न है। कटिमें रत्नमेखला है। चरणोंमें नूपुर हैं।

उसी समय सबके हृदय में विराजमान रहनेवाले भगवान विष्णु देवतारूपिणी देवकी के गर्भ से कारागार में प्रकट हुए।

मातु देवकिहिँ दरस दिखायो। नित्य किशोर रूप प्रगटायो।।

वसुदेवहु निरखत हरषाई। सोई छबि, जोइ निज हिये बसाई।।

लखतहिँ भये मगन पितु माता। अपलक-दृगन देख उन गाता।।

कह वसुदेव, तुमहिँ हम जानैं। ब्रह्म रूप तुम्हरो पहिचानैं।।

सर्व गुणों कर युक्त जब, उदय भया शुभकाल। पूरव दिशि से चन्द्र इव, प्रकट भये गोपाल।।

जय जय ध्वनि नभ में भई, बाजे बजे अपार। शीतल मन्द सुगन्ध तब, चला पवन सुखकार।।

देव पुष्प वर्षा करें, करें अप्सरा गान। मन्द मन्द वर्षें जलद, गर्जें सिन्धु समान।।

प्रभु, पुरुषोत्तम, प्रकृति-पर, प्रेम-विवश छबि छाय। परमानन्द-स्वरूप, विभु, प्रगट्यो मो गृह आये।।

यह बालक अद्भुत बालक था। ऐसा बालक आजतक देखने में नहीं आया। इसकी चार भुजाएँ थीं। उनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे। कमल की तरह बड़ी-बड़ी आँखें थीं। श्रीवत्स का चिह्न उसकी छाती पर विराजमान था। गले में लाल वर्ण का कौस्तुभमणि देदीप्यमान था। वह पीताम्बर धारण किये हुए था। वर्षाकालीन श्याम मेघ के समान परम सुन्दर उसका श्यामल शरीर था।

कानन में कुण्डल छबि छाजै। उर मुक्तन की नाम बिराजै।।

मुख आभा कछु कही न जाई। भानु कोटि प्रकटे मनु आई।।

भये प्रगट कृपाला देवकी लाला सुर मुनि जन हितकारी। लखि रूप अनूपा वसुदेव भूपा हरषित मन अति भारी।।

देवकी रानी मन यह जानी प्रगट भये यदुपाला। हरषित महतारी पुलकित भारी विग्रह लखि निज लाला।।

भादों कृष्ण अष्टमी, अर्द्ध रात्रि परमान। नक्षत्र रोहिणी में भये, श्री कृष्ण भगवान्।।

भक्तन हित अवतरेउ गुसाईं। करहु कृपा कुरु पितु की नाईं।

भू पर दुष्ट असुर अति बाढ़े। साधु सन्त हिय उन्होने काढ़े।।

जो समस्त वायु आदि भूतों का तथा सूर्य आदि ग्रह-नक्षत्रों का संचालन करता है। ऐसा है यह बालक। जिसके सिरके बाल घुंघराले थे। उस बालक के कमर में चमचमाती करधनी की लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहों में बाजूबन्द और कलाइयों में कंकण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणों से सुशोभित बालक के अंग-अंग से अद्भुत छटा छिटक रही है। सारे संसार को जन्म देनेवाला आज स्वयं जन्म धारण कर रहा है।

देवी देवकी ने आश्चर्य से देखा और अपने प्राणधन श्री वसुदेव जी को भी दिखाया। नीलमणि के समान एक ज्योति पुंज आकाश से उतरता हुआ आया और श्री वसुदेव जी के शरीर से होता हुआ देवी देवकी के शरीर में प्रवेश कर गया। जिससे दम्पत्ति को अतिशय आनंद की प्राप्ति हुई और देखते ही देखते वह नील ज्योति पुञ्ज कारागार के श्री वसुदेव देवकी के कक्ष के मध्य में वह आनन्द कन्द ब्रह्म प्रगट हो गया। अति दिव्य ज्योति पुञ्ज में अब अद्भुत चतुर्भुजी नारायण के दर्शन होने लगे।

देवकी प्रसव-पीडा से आक्रान्त थी अत: सबसे पहले वसुदेव ने उस बालक को देखा। देखकर वसुदेव को असीम आश्चर्य एवं महान् आनन्द की अनुभूति हुई। उनकी आँखों में आनन्द के अश्रु छलछला आये। शरीर पुलकावलियों से भर गया। उन्हें यह समझते देर नहीं लगती कि साक्षात् नारायण ही हमारे पुत्र-रूप में पधारे हैं। कुछ क्षण लगे स्वस्थ होने में। वसुदेवजीने अञ्जलि बाँध ली। सिर झुकाया।

उन्होंने बालक की कुशलता के लिये मन-ही-मन दस हजार गायों के दान का संकल्प लिया फिर हाथ जोड़कर स्तुति की। वसुदेव बोले- मैं समझ गया कि आप प्रकृति से परे साक्षात् परम पुरुष हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियों के एकमात्र साक्षी हैं। सर्वस्वरूप, सर्वसाक्षी, सबके प्रकाशक, स्वयंप्रकाश प्रभु, आप प्रकृतिसे पार केवल अनुभव स्वरूप हैं। इस विश्वके निमित्तोपादानकारण। इस सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहारके मूल हेतु। आप यहाँ अपनी मायासे युग-युगमें अवतीर्ण होते हैं, अत: इस समय भी प्रकट हुए हैं। इस धराको धन्य करने, असुरोंका संहार करने, भक्तोंका भय मिटाने मेरे यहाँ प्रगट हुए आप; किन्तु निखिलेश्वर, कंसके अनुचर उसे समाचार देंगे तत्काल और वह शस्त्र उठाये दौड़ता अभी आवेगा।

पुत्र जन्म उत्सव समय, अमित हर्ष उर धार। दशसहस्त्र गोदान का, कर संकल्प उदार।।
परम पुरुष परमातमा, निज सुत को तब जान। हस्त जोड़ वसुदेव ने, करा कृष्ण गुण गान।।

आपकी प्रकृति इस त्रिगुणात्मक संसार की सृष्टि करती है। इसमें आप अप्रविष्ट होकर भी प्रविष्ट की तरह प्रतीत होते हैं। प्रभो, आप ही संसार की सृष्टि करने के लिये ब्रह्मा, पालन के लिये विष्णु और संहार के लिये रुद्र का रूप धारण करते हैं। सकल जगत् के स्वामी इस लोक की रक्षा के लिये ही आप मेरे घर में अवतार लेकर पधारे हैं।

निश्चय ही कोटि-कोटि असुर-राजाओं का वध आपके हाथों होनेवाला है। हे नाथ, आपका जन्म देवकी के गर्भ से होनेवाला है- इस बात को सुनकर ही इस असभ्य कंस ने आपके छ: बड़े भाइयों का वध कर डाला है। अभी जब उसके दूत आपके जन्म का समाचार उसे देंगे तो वह आपका वध करने के लिये नंगी तलवार हाथ में लिये दौड़ा आयेगा। इसके लिये आप कोई उचित उपाय बतलायें। मैं आपका शरणागत हूँ। इतना कह कर वसुदेव चुप हो गये।

विपति विनाशन दुखहरण जनरंजन सुरराय। अब हमको कोऊ नहीं तुम बिन और सहाय।।

इतने में देवकी पूर्ण चेतना में आ चुकी थी। उसने देखा उसका पुत्र नारायण के सारे लक्षणों से अलंकृत है। वह उसकी ओर वैसे ही कातर होकर दौड़ी जैसे गाय बछड़े की ओर दौड़ती है। पहले तो उसे कंस से भय हुआ किन्तु बाद में बालक

के स्वरूप को देखकर मुस्कराती हुई स्तुति करने लगी। पति पत्नी ने अति प्रसन्न मन से स्तुति की। हे त्रिभुवन के नाथ, हे भक्तों के मन की जाननेवाले। भक्तों को मनवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले। हे चतुर्भुजी नारायण, आपका यह सुन्दर स्वरूप हमको अति प्रिय लगा।

देख पुत्र को देवकी, रूप राशि भगवान। त्रास मानकर कंस से, लगी कृष्ण गुणगान।।
काउ परम तप को फल पायो। आजु भयो हम दोउ मन भायो।।
हौं तव चरनन शरण कृपाला। पाहि माम प्रभु दीन-दयाला।।

देवकी ने कहा- प्रभो, आप बुद्धि आदि के प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं। वेदों ने आपको अव्यक्त, सब का कारण, ब्रह्म, ज्योति, निर्गुण, निराकार, सत्तामात्र, निर्विशेष और निष्काम बतलाया है। काल के वेग से सकल संसार के विनष्ट हो जाने पर एकमात्र आप ही शेष बचते हैं इसीलिये आपको शेष भी कहा जाता है। वस्तुत: अनन्त काल भी आप की लीलामात्र ही है। मरणधर्मा प्राणी कालरूपी सर्प से भयभीत होकर सारे लोकोंमे भागता फिरता है किन्तु कहीं वह निर्भय नहीं हो पाता, जब वह आपके चरणों की शरण में आ जाता है तब वह स्वस्थ होकर यथेच्छ शयन करता है, सुख की नींद सोता है। स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग खड़ी होती है।

प्रभो, आप हैं भक्तभयहारी। हम लोग इस दुष्ट कंस से भयभीत हैं अत: आप हमारी रक्षा कीजिये। आपका यह चतुर्भुज रूप हृदय से ध्यान करने के लायक है। मधुसूदन, यह पापी कंस यह न जानने पावे कि आपका जन्म हमारे यहाँ हुआ है। मेरा धैर्य टूट रहा है। आपके लिये कंस से मैं बहुत डर रही हूँ अत: शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी इस अपने अद्भुत रूप को आप छिपा कर बालरूप धारण कर लीजिये। मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है, मेरे घर स्वयं भगवान् अवतरित होकर आये हैं। ये निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष, ये ब्रह्म आज मेरे घर आया है। आपके चरणों का आश्रय लेकर तो प्राणी मौत पर भी विजय पा लेता है।

यह भोजपती खल दुष्टमती, इससे मम चित्त अती डरपावे।
अब पाहि प्रभो हमको तुमको, शरणागतवत्सल आगम गावे।।
यदुनाथ उपाय करो अब सो, जिससे प्रभु को यह जान न पावे।
तुम यद्यपि ईश्वर देव पते, मम योषित के उर धीर न आवे।।
रूप अलौकिक है तुमरा यह, ध्यान करें इसका मुनि सारे।
सो इसको हम गोचर देखत, को नहि जानत भाग हमारे।।
अन्तरधान करो इसको वर, बालक रूप धरो जन प्यारे।
वाम रती तनु धाम मती नर, देखन योग्य न रूप तुमारे।।
रूप चतुर्भुज दूर करि, शिशु बनि छबि छिटकाव। कंस भयन भय भीत हम, याको करौ उपाव।।

प्रलयकाल के समय में जो आप सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर अनायास धारण कर लेते हैं, वही मेरे गर्भ में आये, यह आपकी अद्भुत मानव-लीला नहीं तो और क्या है? इतना कहकर भाव-विभोर देवकी भगवान की अद्भुत छबि निहारने लगी। भगवान प्रेम परवश हैं और प्रेम परवशतामें कभी भयकी लीला, कभी विषादकी लीला, कभी क्रोधकी लीला, कभी कामकी लीला करते हैं। स्वयं ही विषाद बन जाते हैं, स्वयं ही क्रोध, भय, शोक बन जाते हैं। प्रेम परवशताका एक स्वरूपभूत लक्षण है। माया का अर्थ लीला है। लीलासे ही भगवान प्रकट होते हैं। लीलासे ही वह पुत्र बने, लीलासे ही वह भाई बने, मित्र बने, स्वामी बने, प्रियतम बने, सखा बने यह विचित्रता है। भगवानमें भूख होती है, विषाद होता है, क्रोध

होता है। यह सब भी भगवानमें आकर धन्य हो जाते हैं।

हे प्रभु, आपके महान तेजोमय स्वरूप को हमारी आँखें सहन नहीं कर पा रही हैं। हे करुणा के अवतार। मेरी इच्छा है कि तुम नन्हें बालक होते तो तुम्हें अपनी गोद में बिठाती और अपने हृदय के साथ लगाकर अपने स्तन का दूध पिलाती।

जानती हूँ कि जिसे ऋषि-मुनि अव्यक्त, आदि, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष कहते हैं, वे अध्यात्मदीप विष्णु तुम्ही हो। समस्त लोक जब कालके गालमें चले जाते हैं- प्रलयकाल जब सब लोकोंको निगल लेता है, तब भी तुम शेष रहते हो और अनन्त शैय्यापर सोते रहते हो। यह सर्वग्रासी काल तुम्हारी चेष्टा मात्र है। इस कालरूप सर्पसे सन्त्रस्त मानव भागता रहता है और कहीं- किसी लोकमें आश्रय नहीं पाता; किन्तु जब तुम्हारे चरणोंमें पहुँच जाता है, तब निर्भय हो जाता है। काल-सर्प उसे छोड़कर तब भाग जाता है।

तुम प्रलयमें भी निर्भय निश्चित सोते हो। काल तुम्हारी चेष्टा है। तुम्हारे चरणोंका आश्रय जीवको कालसे निर्भय कर देता है- यह जानती हूँ; किन्तु मेरा हृदय इस समय बहुत व्याकुल हो रहा है। तुम्हारे लिए मैं बहुत चिन्तित हूँ। कंस सर्वथा पिशाच है- अत्यन्त घोर है और आता ही होगा वह। तुम तो अपने जनोंका त्रास दूर करनेवाले हो, मेरा यह त्रास दूर करो- तुम्हारे लिए मैं बहुत भयभीत हूँ।

एक बात और। बड़ी विडम्बना है कि तुम मेरे गर्भसे प्रकट हुए। समस्त लोक कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड तो तुम्हारे रोम-कूपोंमें रहते हैं... नहीं इस चतुर्भुज रूपको छिपा लो। यह तो ध्यानका सौभाग्य, महापुरुषोंकी धेयमूर्ति है। इसे अभी स्थूल देह-दर्शियोंके सम्मुख मत करो। इस प्रकार अनेक तरह से भगवान की स्तुति कीं और अपने हृदय में उन्हें धारण कर उनको जाना। तब प्रभुने कहा-

मूल प्रकृति यशुदा गृह जेहै। सुधरि सुवनि बनि खेल रचैहै।
तुम लै मोहिँ गोकुल पगुधारौ। सकल काज इहि भाँति सम्हारौ।।

देवकी की बात को सुनकर भगवान ने कहा- हे आदरणीय माता, पूज्य पिता। मेरा प्रणाम स्वीकार करें। आपका अपने पुत्र को प्रणाम करना आपको शोभा नहीं देता। आप दोनों ने पूर्वकाल में मुझ नारायण को पुत्र के रुप में प्राप्त करने के लिये घोर तपस्या की।

स्वायंभुव मन्वन्तर जोई। पृश्नी नाम तहाँ तू होई। सुतपा नाम भयो वसुदेवा। तुम दोनों मम कीनी सेवा।।
शुष्क पत्र अर पवन अहारा। द्वादश सहस वर्ष तप धारा।। हो प्रसन्न हम दर्शन दीना। तब तुमरा तप सफला कीना।।
तुम मांगा मम सम सुत माई। निज समान कहिं खोजूं जाई।। याविध कर हम हृदय विचारा। तुमरी कुखि लीनो अवतारा।।
पृश्निगर्भ तब नाम हमारा। विदित होत भा सब संसारा।। कशप अदिती भये तुम माता। तब वामन मैं भा बिख्याता।।
अब तुमरी कुखि तीसर बारा। तव हित लीना हम अवतारा।। पुत्र भाव करके तुम मानो। अथवा ब्रह्मभाव कर जानो।।
जिससे बढ़े प्रेम मम माहीं। भजन सोउ मम दूसर नाहीं।। अब तुम्हारा पुन जन्म न होऊ। परम गती पावो तुम दोऊ।।
यदी कंस से भय तुम पावो। तो हमको गोकुल पौंचावो। यशमति से कन्या जो जाता। तिसें यहाँ लावों तुम ताता।।

देवि, मैं स्वयं तुम्हें अपना रूप नहीं दिखाना चाहता था। किन्तु पहले की घटना है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुम पृश्नि और तुम्हारे पति सुतपा थे। उस समय आप लोगों ने दिव्य बारह हजार वर्षों तक घोर कष्ट उठाकर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर आप लोगों को दर्शन दिया और वर मांगने की बात कही। उस समय आप लोगों ने मुझसे पुत्र होने का वर माँगा था। फलस्वरूप मैं पृश्निगर्भ नाम से आपका बेटा बना था। पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें आप पृश्नि थीं और ये पिता,

निष्पाप प्रजापति सुतपा थे। ब्रह्माने आदेश दे दिया था आप दोनोंको प्रजाकी सृष्टि करनेका। वर्षों तक आप दोनोंने इन्द्रियोंको संयमित करके, वर्षा, आतप, हिमपात सहते हुए घोर तप किया था। मैं तब भी ऐसे ही प्रकट हुआ था आपके सम्मुख। मैंने तब कहा था- वरं ब्रूहि और आप दोनोंने एकसाथ कहा था- तुम्हारे समान पुत्र हो हमें। उस समय मैं आपका पुत्र बना। **नन्द यशोदा कीन्ह तप, मोहि मिलन के काज। देखन चाहें बाल सुख, लहे दरश मम आज।।**

दूसरे जन्म में आप दोनों अदिति और कश्यप हुए थे। मैं वामन के रूप में आपका पुत्र हुआ था। इस तीसरे जन्म में मैं पुन: आप लोगों का बेटा बना हूँ। साधारण बालक के रूप में जन्म लेने से आप मुझे पहचान न पाते। अत: मैंने अपना यह चतुर्भुज रूप दिखलाया है। आप दोनों को मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और ब्रह्मरूप से चिन्तन के द्वारा आप दोनों को मेरे परम पद की प्राप्ति होगी। आप तो नित्यमुक्त हैं। मुझे पुत्र मानकर और ब्रह्मा मानकर भी आपका अन्तर मुझमें लगा रहेगा। मेरा चिन्तन करते हुए आप मेरे धाम पधारेंगे।

इतने पर भी यदि आप को कंस से भय है तो मुझे गोकुल पहुँचा दो। पाठान्तर और वहाँ यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कन्या को उठा लाओ। नन्द पत्नी यशोदा ने इस समय कन्या को जन्म दिया है। मुझे वहीं ले जाकर सुला दो, उस कन्या को लाकर कंस को सौंप दो। यह नन्द और यशोदा पूर्वजन्म में द्रोण वसु और उनकी पत्नी भक्तिमती धरा थी। जिन्होंने गन्ध मादन पर्वत पर जाकर सुप्रभा नाम की नदी के किनारे आश्रम बनाकर भगवत दर्शन के लिए कठोर तप किया। कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर अखिलेश्वर नारायण भगवान ने उनको दर्शन दिया और वरदान माँगने के लिए कहा। उन दोनों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे नारायण, हम आप जैसे पुत्र को अपनी गोद में खिलाकर वात्सल्य का आनन्द लेना चाहते हैं। श्री नारायण ने एवमस्तु कहा और वे दोनों श्री नन्दराय जी और भक्तिमती यशोदा के रूप में गोकुल में रहने लगे और अपने मन की वृत्ति को पुत्र प्राप्ति के लिए स्थिर कर लिया। एक कल्प में गोप श्रेष्ठ गिरिभानु और उनकी पत्नी पद्मावती के यहाँ यशोदा जी कन्या के रूप में प्रगट हुईं। जिनका विवाह गोपराज पर्जन्य और वरीयसी के मध्यम पुत्र श्री नन्दराय के साथ हुआ। जब नित्य गोलोक धाम से परब्रह्म श्री कृष्ण के नित्य माता-पिता श्रीमती यशोदा एवं नन्दराय जी ललित रूप में पृथ्वी पर प्रगट हुए तो ये तप के प्रभाव से श्री नारायण जी का वरदान प्राप्त करके बने हुए माता-पिता के रूप में यशोदा और नन्दराय जी नित्य स्वरूप वाले यशोदा और नन्दराय जी में विलीन हो गये।

विधिना बिन राखे नहीं कोई, करम लिखा सोई फूल होई।
तब कर जोरि देवकी कहै, नन्द मित्र गोकुल में रहै।। पीर यशोदा हरै हमारी, नारी रोहिणी तहाँ तहारी।।

वसुदेव चौंके। माता देवकी चौंकी और दूसरे ही क्षण देवकीजीने अपने सम्मुख धरापर पड़े सद्योजात इन्दीवर सुन्दर शिशुको ललककर अंकमें उठा लिया। वह तो माता के अंकमें आनेको उत्सुक दोनों कर एवं चरण भी उठाये माताकी ओर ही देख रहा था।

वसुदेव बोले- **कैसे तुमको गोकुल पौंचाऊं। कैसे द्वार से बाहर मैं जाऊं।**
द्वारे द्वारपाल सब जागे। गृह कपाट दृढ़ ताले लागे।।
नन्दभवन को जानो कैसे। यमुना पार जाऊँगा कैसे।। बरसे बादल पथ दीखत नहीं। पड़ी बेड़ियां मम पद माहीं।।

वसुदेवजीके मनमें ही नहीं आया कि वे गोकुल कैसे पहुँचा देंगे इस नन्हें नवजातको अपने। वे मानो यन्त्रचालितके समान उठे और तभी बेड़ी उनके पैरोंसे सरककर नीचे गिर गयी। जैसे किसीने उतार दी हो। अभी अपने हाथ सम्हाले भी नहीं थे कि हथकड़ी भी उतर गयी। वह ऐसे हाथोंसे सरक गयी जैसे सदासे बहुत ढीली रही हो।

भगवान बोले- **मम माया मोहित सब होई। द्वारपाल जावेंगे सोई।।**
मोरे पद स्पर्श से ताता। खुले जानिये फाटक व्राता।।
शेष नाग निज फण कर छाया। करसी मार्ग में तेरी सहाया।।
ताके फण गत मणि द्युति व्राता। उससे मग दीखेगा ताता।।
मम पद छूवत यमुना जोई। गुलफ प्रमाण होयगी सोई।। गोदी ग्रहण मात्र से मेरे। तूट जायँगे बंधन तेरे।।
या विध उनको बोल के, माया पति योगेश। मात पिता के देखते, भये बाल नर वेश।।
बालकृष्ण के विरह से, दुखित भई तब मात। मुख चूमति निज पुत्र को, बार बार उर लात।।
वो दिन फिर आवेगा ताता। पुन देखेगी तव मुख माता।।
तात वत्स बल जावे माई। जावो निज जन को सुखदाई।।
मैं निज हृदय भली विध जोई। पुत्र विरह सम दुख नहि कोई।।
जो कृपालु हो सुत दे सांई। तास विरह पुन देवे नाँई।।
आज भाग यशुमति के जागे। पुत्र भाग मेरे सब भागे।।
बार बार बल जावे माता। निज जननी जनि भूलो ताता।।
बाल चरित का आनंद जोई। मम भागन में लिखा न सोई।।
उरधर तव दर्शन की आशा। करहूँगी इस तनु में वासा।।
तनुज दिया पति गोद में, अमित कष्ट उर पाय। गमने श्रीवसुदेव जी, गणपति हृदय मनाय।।

भगवान् के इतना कहते ही कारागार का वह कक्ष प्रकाश से इस प्रकार भर गया कि वसुदेव और यशोदा की आँखें क्षणभर के लिये बन्द हो गईं। खुलने पर उन लोगों ने देखा कि यशोदा की गोद में एक श्याम सलोना बालक हाथ-पाँव चला रहा है। उसे देखकर माता-पिता के हर्ष का पारावार न रहा।

देखत कर पद श्रृंखल छूटे टूटे ताले। द्वार खुले सब प्रहरी सोये जो रखवाले।।
पितु हाथन शिशु देवन जननी मन नहिं माना। कंस उपद्रव सुमिरण कर पुनि कण्ठ लगाना।।

माता का दूध पी लेने के बाद श्री वसुदेव जी ने जैसे ही बालरूप श्री हरि को गोद में लिया, हाथों की हथकड़ियाँ, पाँव की बेड़ियाँ देखते देखते टूट गईं और दरवाजों पर लगे बड़े-बड़े दोगुने ताले खट खट करके सब टूट गये। कारागार के दरवाजे अपने आप खुल गये। रखवाली करनेवाले पहरेदार निद्रा मग्न होकर लेट गये। माता देवकी की इच्छा नहीं थी कि वह सद्योजात शिशु को उसके पिता के हाथों में सोंप दें। अपने हृदय से दूर करने को देवकी जी का मन नहीं मानता था। लेकिन असुर भाई कंस के क्रूरता पूर्ण उपद्रवों का स्मरण करके बालक को बार बार कण्ठ से लगाकर पिता की गोद में न चाहते हुए समर्पित कर दिया। माताने हृदयसे लगाया शिशुको। उसके भालका चुम्बन किया और उठाकर वसुदेवजीके करोंपर धर दिया। इसकी सुरक्षाके लिए इसे छोड़ती हूँ समस्त देवता इसकी रक्षा करें।

वृंदावन में सब पंछी करे किलोल, नंद घर कान्हो प्रगट्यो, हमे निरखत जुगल किशोर।
चल मनुआ उस देश को, जहां राधा रास विलास, संत संगत बिना सब दिन जाये उदास।।

वसुदेवजीने इधर-उधर देखा। केवल एक सूप मिला उन्हें। अपना ही पटुका बिछाकर लिटा दिया शिशुको उसमें और मस्तकपर रखकर उठ खड़े हुए। सभी बन्धन टूट जाने के कारण वसुदेव ने अपने पुत्र को एक सूप में रखा और आज्ञानुसार

गोकुल की ओर प्रस्थान किया।

ब्रह्म सच्चिदानन्द लै, विदा भयो बसुदेव। मगन दृगन रिखत छबिन, गगन बिमानन देव॥

वसुदेवजीने पद बढ़ाये और द्वारकी अर्गला किसी अज्ञात करने हटा दी। शृंखला खुल गयी। खुल गया स्वत: वह कक्षद्वार। अनन्त: गोकुलमें मैया यशोदाके अंकमें जो योगमाया नवमीं लगते ही अवतीर्ण हो चुकी थी।

अनेक रक्षक थे कंसके कारागार-द्वारपर। इस आँधीवर्षामें वे भला बाहर कैसे रहते। वे द्वारके भीतर सिमट आये थे और ऐसे कुसमयमें रक्षाकी सावधानी अनावश्यक लगी उन्हें। न जाने कितनी रातें जगते कटी थीं। दिनमें कहीं ठीक निद्रा आती है। भले आज वे पूरे दिन प्राय: सोते रहे थे; किन्तु उससे तो आलस्य और बढ़ गया था। किसी प्रकार लगभग आधी रात तक पलकें झपकाते जागे। अब तनिक नेत्र बंद हो गये तो उनका दोष? वे सबके-सब द्वारके दोनों ओर बैठे-बैठे लुढ़क गये थे।

मथुरामें कोई जाग नहीं रहा था। केवल द्वार-रक्षक ही नहीं सोये थे इस समय। सो तो गये थे इस वर्षामें नगरके श्वान तक इधर-उधर दुबककर। केवल कंस जाग रहा था आज अपने कक्षमें; किन्तु उसकी बात फिर। उसके सब अनुगत सो गये थे और सात्त्विक जनोंको भी मध्य-रात्रिके पश्चात् निद्रा तो आती ही है।

अपने सुत और देवकी की थाती को अपने कम्पित करों में सहेजे वे कारागार से बाहर आ क्षिप्र गति से गोकुल की ओर गतिमान हुए। आँखें मार्ग ढूँढने के बजाय करस्थ शिशु पर ही गड़ी थी और पैर तेज भागे जा रहे थे यमुना तीर की ओर। आकाश पूरी तरह मेघाच्छन्न था, तम इतना गहन था हाथ को हाथ नहीं सूझता था, मार्ग-संधान अपने वश में नहीं था। यह तो कभी-कभी बिजली चमक जाती नवजात के मुख से फूटता नील-प्रकाश था जो बहुत दूर तक पथ आलोकित किये जा रहा था। मार्ग के आरोधों-अवरोधों से निपटते जा रहे थे। आसमान में मेघ थम गये।

वसुदेवजी नहीं देख सके कि कारागार-रक्षक हैं भी या नहीं। आकाशमें मेघ उमड़-घुमड़ रहे हैं, यह कौन देखता। उन्हें तो अपने चारों ओर होती मूसलाधार वृष्टि नहीं दीख रही है। सन्-सन् करती वायुका पता नहीं। पल-पल होती तड़ातड़ बिजलीकी गर्जना सुनायी नहीं पड़ती। लगभग घुटनों तक जलमें वे छपाछप चले जा रहे हैं, यह भी पता नहीं उन्हें।

भगवान अनन्त अपने सहस्त्र फणोंको उठाये वसुदेवजीके मस्तकपर फणोंका छत्र लगाये उनके पीछे उसी गतिसे चल रहे हैं। वसुदेवजीके ऊपर एक सीकर पड़ जाय इस समय, यह भला कैसे सम्भव है। उन सर्वेश्वर शेषका स्मरण तो महामायाकी विपत्ति-वर्षासे प्राणीको त्रास दे देता है और इस समय तो वे अत्यन्त सावधान अपने स्वामीकी सेवामें, उनके श्रीमुखका दर्शन करते चल रहे हैं।

इसके बाद वसुदेव जी ने भगवान की प्रेरणा से अपने पुत्र को लेकर सूतिका-गृह से बाहर निकलने की इच्छा की। उसी समय नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ से भगवान की योगमाया का जन्म हुआ। यह योगमाया भी भगवान् की शक्ति होने के कारण उनके समान ही जन्म-रहित है। त्रिभुवन की अधीश्वरी विश्व ब्रह्माण्डों की जननी तथा प्राणिमात्र की पूजनीया आराधनीया महामाया है। माधुर्य में ऐश्वर्य रहता ही नहीं।

सुत समेत वसुदेवजी, गमने जब नर भूप। भयी नन्द के गेह में, कन्या अद्भुत रूप॥
हरि माया मोहित भई, भूल गया सब ज्ञान। जगत जनक को देवकी, निज सुत करके मान॥

भगवान की यह योगमाया तीन प्रकार की होती है- स्वमोहिनी, स्वजनमोहिनी और स्वविमुखजन मोहिनी। स्वमोहिनी माया स्वयं भगवान् को मोहित करती है जैसे भगवान मणि की फर्श पर स्वयं अपनी परछाई देखकर मोहित हो उसे पकड़ने के लिये किलकारी मार कर दौड़ पड़ते हैं। यह स्वमोहिनी माया का स्वरूप है। स्वजनमोहिनी माया नन्द आदि भगवान के

जनों को मोहित कर प्रगाढ निद्रा में डाल देती है और स्वविमुखजनमोहिनी माया भगवान से विमुख जो कंस आदि जन हैं उन्हें मोहित कर घोर निद्रा में धकेल देती है। स्वजनमोहिनी माया ने जन्म लेते ही गोकुलवासियों को सुला दिया और स्वविमुखजनमोहिनी माया ने सारी मथुरा को निद्रा से बेहोश कर दिया।

भगवान का आदेश तो हुआ उन्हें नन्द के गोकुल में पहुँचा देने का किन्तु वसुदेव के सामने समस्या थी। उनके हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी लगी थी। दरवाजे बन्द थे। उनमें बड़े-बड़े ताले लटक रहे थे। कृष्ण बोले- इसकी चिन्ता मत करो। जीव जब मेरा आश्रय लेता है तो सारे बन्धन खुल जाते हैं। इसी समय भगवान ने वसुदेव के हृदय में प्रेरणा दी कि- जरा मुझे सिर पर रखकर ले जाओ। वसुदेव ने बड़ी कठिनाई से भगवान को अपने सिर पर रखा। हाथ की हथकड़ी, पाँव की बेड़ी, द्वार के ताले और फाटक सभी फटफट खुल गये। ऐसा महान परम आश्चर्य। जिसको देखकर लोग आह, वाह, वाह करे उसका नाम आश्चर्य है। आश्चर्यकी उपलब्धि भी आश्चर्य है। जीव जब कर्म करने का प्रयास करता है, तो परमात्मा सहायता करते हैं।

कहाँ जा रहे थे वसुदेव, उन्हें अपने गन्तव्य का पता नहीं था। कहीं युगों से कारागार में बन्दी बने वसुदेव के स्वभाव ने ही वहाँ के कई पहरेदारों और परिचारकों को उनके अनुकूल बना दिया। वसुदेव जानते थे कि वृद्ध नन्द की पत्नी यशोदा गर्भवती है। द्वारपाल भी नहीं चाहते थे कि प्रतिभा-पुँज-सा प्रतीत होता यह बालक, कंस की हिंस्र वृत्ति का शिकार होकर काल-कवलित हो जाय। मन्द-मन्द बारीश हो रही है, ताले पर ताले खुलते जा रहे है।

भगवान विष्णु ने निद्रा की अधिष्ठात्री देवी से कहा- देवी। इस समय भूतल पर गोकुल की स्वामिनी यशोदा नंदगोप की पत्नी है। आठवें शिशु के रूप में जब मैं उनके गर्भ में आऊंगा, तब कंस मुझे भी मारने का प्रयास करेगा। तुम उन्हीं के नौवें गर्भ के रूप में हमारे कुल में उत्पन्न होओगी। भाद्रपद कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को तुम्हारा जन्म होगा। तब आधी रात के समय अभिजित मुहूर्त के योग में मैं सुखपूर्वक गर्भवास का त्याग करूंगा। हम दोनों भाई-बहन गर्भ के आठवें महीने में जन्म लेंगे। फिर कंस के भावी विनाश का कारण प्राप्त होने पर हम दोनों बदल दिए जाएंगे। मैं तो यशोदा माता के पास पहुंच जाऊंगा और तुम देवकी का आश्रय लेना। हम दोनों के परिवर्तित गर्भ-संयोग के विषय में कंस अनभिज्ञ ही रहे।

इसके पश्चात् कंस तुम्हारे पैर पकड़कर तुम्हें शिला पर पटक देगा, परंतु तुम उसके हाथ से निकलकर आकाश में शाश्वत स्थान को प्राप्त कर लोगी। तुम्हारी अंगक्रांति मेरी ही छवि के समान श्याम होगी, परंतु मुख भैया संकर्षण के समान गौर होगा। तुम आकाश में मेरी ही भुजाओं के समान दोनों ओर दो-दो हृष्ट-पुष्ट भुजाएं धारण करोगी। तुम चार भुजाओं में त्रिशूल, सोने की मूठ लगी तलवार, मधु से भरा हुआ पात्र तथा अत्यंत निर्मल कमल धारण करके सुशोभित होओगी। तुम्हारे श्री अंग में नील वर्ण की रेशमी साड़ी शोभा पाएगी। तुम्हारा रेशमी पीतांबर होगा और गले में प्रकाशमान श्वेत माला होगी। कानों में दिव्य कुंडल होंगे, मस्तक पर मुकुट होगा। मोरपंख से विभूषित ऊंचा ध्वज तथा मयूरपिच्छ के ही भुजबंद होंगे। भयंकर भूतगणों से तुम घिरी हुई रहोगी। मेरी आज्ञा के अधीन रहती हुई तुम सदा कुमारी रहने का व्रत लेकर स्वर्गलोक को चली जाओगी। वहां देवताओं सहित इंद्र तुम्हारा विधिपूर्वक अभिषेक करेंगे। वहां देवेंद्र तुम्हें अपनी बहन बनाने के लिए तुम्हें सादर ग्रहण करेंगे। कुशिक के गोत्र से संबंध होने के कारण तुम कौशिकी नाम से प्रसिद्ध होगी। देवराज इंद्र तुम्हें पर्वतों में श्रेष्ठ विंध्यागिरि पर शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे। तत्पश्चात् तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली और वरदायिनी होकर तीनों लोकों में विचरोगी और तुमसे की हुई उपयाचना (मनौती) अवश्य पूर्ण होगी। वहां मुझे मन में स्थान देकर तुम विंध्यपर्वत पर विचरनेवाले शुंभ और निशुंभ दानवों को उनके अनुचरों सहित नष्ट कर डालोगी। मेरे प्रभाव को जाननेवाले जो मनुष्य तुम्हें प्रणाम करेंगे और बारंबार तुम्हारे तीर्थ की यात्रा करेंगे, उनके लिए पुत्र, धन आदि कोई भी दुर्लभ नहीं होगा।

भग शब्द समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति एवं यश का बोधक है। इन गुणों से संपन्न होने के कारण शक्ति को भगवती कहा जाता है, क्योंकि वे सदैव भगस्वरूपा हैं। प्रत्येक युग में जिनमें सिद्धियां और ऐश्वर्यादि वर्तमान रहते हैं, उन सिद्धादिक अर्थ में भग शब्द प्रयुक्त होने के कारण उन्हें भगवती कहा जाता है। तुम अनेक नामों से पूजी जाओगी। कोई तुम्हें दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशायिनी, शारदा तथा अम्बिका आदि नामों से पुकारेंगे।

योगमाया ने सारे मथुरावासियों के साथ ही कारागार के द्वारपालों को घोर निद्रा में सुला दिया। जब वसुदेव श्रीकृष्ण को लेकर द्वार पर आये तो बड़े-बड़े दरवाजें तथा लोहे की श्रृंखलाओं से बन्द दरवाजे स्वयं खुल गये। उस समय मेघ मन्द-मन्द गर्जन करते हुए फुहारों की वर्षा कर रहे थे। वसुदेव के अज्ञातरूप से पीछे-पीछे चलते हुए शेषजी अपने बड़े-बड़े फणों से जल का निवारण कर रहे थे।

यमुना ने भी अपने प्रियतम के चरणों का स्पर्श करने के लिये उमंग में बढ़कर चरण स्पर्श करके उन्हें मार्ग दे दिया और वसुदेव वे अपने इष्टदेव नारायण का स्मरण करते हुए अपने रास्ते पर चले।

भाद्रपक्ष के माह में यमुना प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है। अपने कूल-किनारों की मर्यादा लांघ जाती है। आज तो जैसे इसके तल पर प्रलय ताण्डव ही हो गया हो। तूफानी हवायें चल रही थी। बेगवती वायु के थपेड़े खाकर यमुना जल उत्ताल तरंगों की सृष्टि कर रहा था। वसुदेव कालिन्दी किनारे मूक खड़े थे। बाहर से मौन पर अन्दर से अधिक आन्दोलित। अर्द्धरात्रि बीत चुकी। प्रात:काल होनेके पूर्व ही वे सबकुछ सम्पन्न करके मथुरा अपने कारागर में वापस नहीं आते तो यह जो कर रहे है वह सारा-का-सारा प्रयास व्यर्थ जायेगा। रात के समय कोई नाविक भी तट पर नहीं मिलता। यमुनाके इस ओंर मथुराकी सम्पन्न नगरी और ठीक उस पार श्री-समृद्धिपूर्ण गोकुल। यह तूफानी समय वसुदेव के लिये अभिशाप था। पवन रूकने का नाम भी नहीं ले रहा। वसुदेवने अपने दोनों हाथोंको ऊपर कर बालक को सूप में अपने ऊपर रख लिया। बालक को बचते-बचाते ले चले। बालक के सिरपर भीगने नहीं दिया नहीं तो पता नहीं कैसा अनर्थ हो जाता।

वसुदेव ने चारों ओर देखा, तो बस पानी ही पानी दिखायी देता है। पानी में कई-कई प्रकार के जीव-जन्तु बोल रहे हैं। अर्धरात्रि का समय, चन्द्रमा अभी निकला ही है। पानी में कहीं मेंढ़क बोलता है, कहीं झींगुर बोलते हैं, कहीं साँप निकलते हैं, बड़े-बड़े मगरमच्छ दौड़ रहे हैं जल में। गोकुल जाने के लिये यमुना को पार करना होगा। यमुना का जल ऊपर की ओर उठ रहा है।

लेने को प्रभु के चरण, कालिन्द्री उमगाइ। जानि कष्ट वसुदेव प्रभु, दीन्हों चरण बढ़ाइ।।
छू कर यदुपति के चरण, यमुना गई विलाय। नन्द बाबा के धाम में, वसुदेव धँसे सिहाय।।

यमुना जोरों से उफन रही थी। हमारे भावी पति हजारों दरवाजे पर आये हैं- यह जानकर यमुना मैया तुरन्त घट गईं। कहीं कमर भर और कहीं घुटने भर जल हो गया। उन्होंने वसुदेव को गोकुल जाने का मार्ग वैसे ही दे दिया जैसे सागर ने श्रीराम को दिया था। आज उसी नन्द के यहाँ जा रहे वसुदेव इस बरसाती, तूफानी रात में। एक क्षीण आशा की ज्योति अन्तर में जगाए, शायद आसन्न-प्रसवा यशोदा ने इसी समय... और वह उसकी सन्तान से अपनी इस चमत्कारी सन्तान को बदलकर इसके प्राणों की रक्षा करने में समर्थ हो सकें।

ठीक है कि चन्द्रोदय हो चुका है; किन्तु इस मेघाडम्बरमें कहीं शशिका पता लग सकता है? मथुरामें तो पथ-प्रदीप तक झञ्झावेगमें बुझ चुके हैं। सूचीभेद्य अन्धकार है चारों ओर। केवल क्षण-क्षणमें चमकती चपला प्रकाश फैलाती है। वसुदेवजीका पथ प्रकाशित है। वह विद्युतकी चमक है या भगवान् शेषके सहस्र फणोंकी मणियोंका प्रकाश है, यह देखने जाननेकी स्थितिमें वसुदेवजी नहीं हैं।

वसुदेवजी सीधे बढ़ रहे हैं। कारागारके ठीक सामने उस पार गोकुल है। उन्हें शीघ्र गोकुल पहुँचना है। उन्होंने नहीं देखा कि पथ किधर है, कैसा है। पथके दोनों ओरके भवन कौन देखता- पदके नीचे बहता जल तो उन्होंने देखा ही नहीं। उन्हें यह भी पता नहीं लगा कि कब वे पथके बहते जलसे यमुनाके प्रवाहमें उतरे और कब यमुनासे बाहर निकले सर्वत्र ही तो जल था। यमुना कब आयीं, कब पीछे छूटीं- यह उन्हें नहीं जान पड़ा, कालिन्दीने उन्हें पथ दे दिया घुटने-घुटने जल बनाकर अपना और वे गोकुल पहुंच गये।

योगमाया अद्भुत हैं। वे अविद्या हैं तो विद्या भी हैं। वे तामसजनोंको निद्रासे मोहित करती हैं, राजसोंके समीप श्रान्ति बनकर आती हैं तो सात्त्विकजनोंके लिए समाधि भी वही बनती हैं। मथुरामें सब घोर निद्रामें पड़े थे तो गोकुलमें भी कोई जाग नहीं रहा था। यहाँ भी सब सो गये थे। अद्भुत अलौकिक तन्द्रा- सत्त्वगुणके समुद्रेकमें सबकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ शान्त-अन्तर्लीन हो गयी थीं। पशु तक सो गये थे पूरे गोकुलके इस समय।

वसुदेवजीके पद त्वरापूर्वक उठते गये। उन्हें कोई अज्ञात शक्ति ही ले जा रही थी। गोकुल कब आया, कब वे नन्द-भवनके खुले द्वारमें प्रविष्ट हुए यह उन्हें पता नहीं। वे चलते हुए सीधे मैया यशोदाके प्रसूति-कक्षमें पहुँचे और तब रुक गये।

वसुदेव बिना किसी विघ्न बाधा के नन्द के गोकुल में पहुँचे। उस समय रात्रि के एक बज रहे थे। चारों ओर घोर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। गोकुल प्रगाढ निद्रा में आनन्द ले रहा था। वसुदेव का मन बार-बार कचोट रहा था।

नंद महल के दरवाजे पर भी श्री वसुदेव जी को कोई पहरेदार नहीं दिखाई दिया। सारा भवन सूना था। वहाँ मनुष्य की छाया भी नहीं थी।

रोहिणी अलसाये नेत्रों से सो रही थी उसे भी चैन नहीं था। वह यशोदा को अकेली नहीं छोड़ सकती थी। बहुत-सी दासियाँ झूमती हुई अपनी सुध-बुध भूल रहीं थी। उसी समय ऐसा समय आया कि योगनिद्रा ने उन्हें भ्रमित कर दिया।

वे कंस की पराकाष्ठा पर पहुँचे इस क्रूरता को जानते थे। वे कंस के काल को सुरक्षित रख उसके विनाश को सुनिश्चित करना चाहते थे। यशोदा के सन्तान की कंस द्वारा हत्या के पाप के समक्ष वसुदेव जो पाप कर रहे हैं वो तुच्छ है। वे जो कुछ कर रहे हैं ठीक कर रहे हैं। अपने मन को समझाया, समष्टि के कल्याण के हित के लिए है। यदि असुविधा और लांछना का भागी बनना पड़े तो वह क्षम्य है। यह अपराध नहीं, समष्टि के कल्याणार्थ किया गया एक सुकृत ही है, एक परोपकार प्रेरित पुण्य अनुष्ठान। सोते-सोते वसुदेव कब गोकुल पहुँचे इसका भान ही नहीं। शायद नीति को यही स्वीकार्य था। महायोगमाया के द्वारा उत्पन्न हुई प्रसव की पीड़ा पाकर यशोदा परमानन्द से भरी मूर्छा में पड़ी रसपान कर रही थीं। रोहिणी की नींद और दासियों की अलसाहट ब्रह्म समुद्र के बीच में क्षण प्रतिक्षण लहरा रही थी। उन सबकी प्रेम समाधि लगी हुई थी और वे अपनी इस समाधि से मानो गोकुल को दिव्य रस में डुबो रही थीं।

नन्दरानी घोर निद्रा में सोयी हुई थीं। नन्दबाबा भी सो रहे हैं। सैनिक सो रहे हैं, दास-दासियाँ सो रहीं हैं। कोई जगा नहीं।

पहुँचे नंद-महल हाल, दरसन करि अति निहाल। भए सकल ग्वालि-ग्वाल, पुलक अंग झारी।।
पायौ सब सुख अपार उतरयौ सब मोह-भार। तन-मन सब दिए वार गोकुल नर नारी।।

जीव जब परमात्मा का आश्रय लेता हैं तो सारे बँधन खुल जाते हैं और परमात्मा को छोड़कर जब माया को पकड़ता है, तो फिर बँधन में बँध जाता है। माया बाँधती हैं, गोविन्द छुड़ाते हैं। माया से पार पाना किसीके वश की बात नहीं है। गोविन्द पास में रहते हैं तो शान्ति रहती हैं, माया आती हैं तो अशान्ति बढ़ती है।

सुत को यशुमति शयन में, धरकर अतिदुख पाय। कन्या को निज गोद ले, मथुरा पहुँचे आय।।
पूरबवत फाटक लगे, निज पद श्रृंखल धार। कन्या का रोदान सुना, जागे पहिरेदार।।

गोकुल, गोपालोंका और यदुवंशियों का गढ़ रहा। नन्द की सुरक्षा में पल रहे गोपालोंकी समृद्धि अपनी सीमा पर थी। सभी घर धन-धान्योंसे पूर्ण थे। दूध, दधि और घृत की नदियाँ ही जैसे प्रवाहित हो रही थीं। घोर अरण्य में बसे रहनेके बावजूद गोकुल अपने विशाल आवासगृहों, अट्टालिकाओं और महलों में किसी नगर से कम नहीं था। गोकुलपति नन्द का महल तो आकार-प्रकार में मथुराधिपति कंस के राजमहल से थोड़ा ही कम रहा होगा। यादव पूरी तरह से संगठित थे। कंस की कोपदृष्टि भी इन पर पड़ने से सहम जाती थी। वसुदेव अपनी प्रथम पत्नी रोहिणी और उसके नवजात शिशु को लेकर कभी चिंतित नहीं हुए।

यशोदा जी के कक्ष के कोने में एक दीपक टिमटिमा रहा था। वसुदेवजी ने अपने पुत्र को यशोदा जी की शय्या पर सुला दिया और उनकी पास में लेटी नवजात कन्या को लेकर मथुरा के कारागार में लौट आये। वसुदेव अपने पुत्र को महलों में ले आये। नन्द महल में यशोदाजी निद्रामग्न थी, अपनी देह का कोई भान नहीं था।

वसुदेवजीने मस्तकसे सूप उतारा और शिशुको उठाकर प्रस्तुत यशोदाजीके अंकमें रखने बढ़े। सहसा दृष्टि पड़ी एक नवजात बालिकापर। वह नन्हीं एकटक देख रही थी वसुदेवजीकी ओर। धीरेसे मुस्करा उठी वह और वसुदेवजीकी रही-सही सुधि भी खो गयी। उन्हें स्मरण ही नहीं कि कब उन्होंने अपने शिशुको शय्यापर रखा और कब उनके करोंने उस कन्याको उठाकर सूपमें सुला दिया। सूपको मस्तकपर रखकर वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट चले।

वसुदेवजीने कारागारके द्वारमें प्रवेश किया और भगवान अनन्त अदृश्य हो गये। वह विशाल द्वार वसुदेवजीके पीछे स्वत: बन्द हो गया। बन्द हो गयी अर्गला, शृंखलादि। ऐसे ही कक्षमें प्रवेश करते ही कक्ष-द्वार भी बन्द हो गया। वसुदेवजीने सूप उतारा और बेड़ी पदोंमें, हथकड़ी हाथोंमें डाली तो वे जकड़ गयीं। मानों वे कभी वहाँ से हटी ही न हों। माया आयी तो बन्धन भी आना ही था।

कोई भी कैसे विश्वास करेगा कि हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़े वसुदेवजी कारागारके बन्द द्वारसे निकलकर इस बढ़ी यमुनामें-से गोकुल गये और सकुशल लौट आये।

जेल में पहुँच कर वसुदेव जी ने उस कन्या को देवकी की शय्या पर सुला दिया। अपने हाथों और पैरों में हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहन लीं। फाटक और ताले भी फटाफट बन्द हो गये। वे पहले की तरह जेल में बन्द हो गये।

उधर योगमाया के प्रभाव से प्रगाढ निद्रा में निमग्न यशोदा जी ने पुत्री के पैदा होने पर इतना ही भर जाना कि कोई सन्तान हुई हैं; परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र पैदा हुआ है या पुत्री।

भगवान के दिव्य सखा भी जन्म लेकर आने लगे। तुंगी देवी के यहाँ पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम ऋषभ था। ऋषभ के सात दिन पश्चात कुबला के पुत्र हुआ जिसका नाम अर्जुन था। अर्जुन के २१ दिन पश्चात पीवरी को पुत्र प्राप्ति हुई जिसका नाम विशाल रखा गया। महावन के निकट ही रावल ग्राम में बृजभानु अपनी प्रिय पत्नी रानी कीर्ति के साथ निवास करते थे। समय पाकर रानी कीर्तिके यहाँ एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया जिसका नाम श्रीदामा रखा गया। धन-धान्य से परिपूर्ण होने के साथ सभी रावल निवासी भजन पाठ, दान-पुण्य एवं भक्ति भाव से पूर्ण थे। कार्तिक के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मध्यान्ह काल में राधाजी का प्राकट्य हुआ। उसी समय आकाशवाणी ने कहा- हे बृषभानु यह कन्या तीनों लोक की स्वामिनी गोलोक धाम की अधीश्वरी राधारानी है। आपने पूर्वकाल में बहुत दिन तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किया था कि भगवान नारायण भी मेरे द्वार पर याचना के लिये आये। उसीके अनुसार आदिशक्ति राधारानी के पिता होने का और तुम्हारी पत्नी कीर्ति रानी माता कहलानेका तुम लोगोंको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हे गोपश्रेष्ठ, श्यामसुन्दर अपनी प्रियतमा राधाके दर्शनों की चाह में तेरे दरवाजे पर प्रतिदिन आते ही रहेंगे। वे नटवर घनश्याम आए दिन कोई न कोई छिपे-छिपाये छद्म वेष धारण करके

तुम्हारे घर में लीला करेंगे। थोड़े दिन बाद कीर्तिरानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया जिसका नाम ऋषियोंने सुबल रखा। उस बालक की शक्ल राधा से मिलती थी। लगता था कि दोनों भाई-बहन जुड़वा ही पैदा हुए हैं।

५) कंस का अत्याचार- कंस उग्रसेन का केवल क्षेत्रज पुत्र था। महारानीके प्रमादसे उनके उदरमें आनेका अवसर मिल गया असुरको। माथुर मण्डल के राजा आहुक के पुत्र उग्रसेन धर्म-पूर्वक प्रजापालन करते थे। वे सम्पूर्ण धर्मों के जाननेवाले शूरवीर, दानी तथा सभी सद्गुणों के सागर थे, उनका विवाह विदर्भ देश के महाराज सत्यकेतु की प्यारी पुत्री पद्मावती (पवनरेखा) के साथ हुआ था। पद्मावती यथा नाम तथा गुणवाली थी। वह पद्मा के समान सुन्दरी थी। महाराजा ऐसी सुन्दरी-सर्वगुणसम्पन्ना पत्नी पाकर परम प्रमुदित हुए। पति-पत्नी में परस्पर बड़ा स्नेह था।

नृप विदर्भ की सुता विवाही उग्रसेन कूँ। सुताप्रेम तें नृपति पठाये दूत लेन कूँ।।
मातु पिता घर जाय भई स्वच्छन्द दुलारी। सखियनि सङ्ग सजि फिरै वननि महँ राजकुमारी।।
मदमाती पद्मावती, विहरति ह्वै स्वच्छन्द जहँ। धनद दास गोमिल असुर, आयो घूमत फिरत तहँ।।

कंस- दूसरे की सम्पत्ति को अनीतिपूर्वक स्वयं सुख के लिए प्राप्त करे ऐसी प्रवृत्तिवाला प्राणी कंस कहलाता है। महाराज उग्रसेन के पुत्र, भगवान श्रीकृष्ण के मामा। एक बार देवर्षि नारद ने कंस को यह सूचना दी कि उग्रसेन तुम्हारे पिता नहीं हैं, सौभ विमान का स्वामी महाबली दानव द्रुमिल तुम्हारा पिता है। नारदजी ने कहा- एक बार तुम्हारी माता सुयामुन नामक पर्वत का दर्शन करने गईं। पर्वत की रमणीयता देख-देखकर वह इधर-उधर विचरण करने लगीं। इसी बीच सौभ विमान का अधिपति द्रुमिल नामक दानव दैवयोग से वहां आ पहुंचा।

पद्मावती जिस सरोवर के निकट क्रीड़ा कर रही थी उसका नाम सर्वतोभद्र था।
उग्रसेन को रूप धर्‌यो रानी बहकाई। कर्‌यो कपट-छल असुर कुमरि एकान्त बुलाई।।
थापन कीयो गर्भ जानि पीछे पछिताइ। आई महलनि तुरत पिता पीहर पहुँचाई।।
कालनेमि आयो उदर, होनहार सो ह्वै गयो। बन्यो पुत्र दस बरस महँ, असुर कंस सोई भयो।।

उसने दूर से ही उग्रसेन की रानी पवनरेखा को देखा। उस युवती पर मुग्ध होकर उसने अपना रूप बदल दिया और महाराज उग्रसेन का रूप धारण कर लिया। कपटरूपधारी पति को अपने सामने देखकर रानी ने अपने को उसके प्रति समर्पण कर दिया।

किंतु यथार्थ अनुभव होने पर क्रुद्ध होकर उसने आवेश में कहा- निश्चय ही तू मेरा पति नहीं है। अत: बता तू किसका दुराचारी पुत्र है, जिसने मुझे कलंकित कर दिया?

अरे अधर्मी, तूने यह क्या अनर्थ किया जो मेरे सत को नष्ट कर दिया। धिक्कार है तेरे माता-पिता और तेरे गुरु को वो जनम-जनम नरक में पड़े रहेंगे। जो नर देह पाकर किसी का सत भंग करते हैं, वो सौ-सौ जन्म नरक में पड़े रहते हैं।

द्रुमिल ने उत्तर देते हुए कहा- तुमने जो मुझसे यह पूछा है कि तू किसका पुत्र है- कस्य त्वम्, इससे तुम्हें कंस नामक शत्रुनाशक पुत्र प्राप्त होगा। इस प्रकार कंस उग्रसेन का क्षेत्रज पुत्र था, किंतु माता-पिता ने उसे त्याग दिया था।

द्रुमिल बोला- तेरी कोख बन्द थी आज से दसवें मास तेरे इसी गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा जो नौखण्ड पृथ्वी को जीत कर राज्य करेगा और श्रीकृष्ण से युद्ध करेगा। देवी, मैंने तो कोई अधर्म नहीं किया। असुर और दानवों का यह धर्म ही है कि छल-बल और माया से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करें। पतिव्रता तो असम्भव को सम्भव कर सकती है, सूर्य-चन्द्र की

गति रोक सकती है, सुमेरु को भस्मसात् कर सकती है, सातों समुद्रों को संकल्पमात्र से सुखा सकती है। शरीर की बात तो पृथक् रही, सती को कोई मन से भी दूषित नहीं कर सकता। हम तो असुर हैं, जहाँ हमें ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं, सम्मति-असम्मति, छल-बल, कला-कौशल तथा माया आदि से मोहित करके अपनी इच्छा-पूर्ति करते हैं, चले जाते हैं। मैंने तुम्हारे उदर में अमोघवीर्य स्थापित किया है। इसमें कालनेमि नामक राक्षस संकल्प से आ गया है वही तुम्हारे उदर से उत्पन्न होकर तुम्हारे पति के वंश वालों को क्लेश देगा।

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजै बुद्धि। होनहार हृदय बसै, विसर जाय सब सुद्धि।।

माघसुदी तेरस बृहस्पति के दिन जिस समय उग्रसेन की महारानी **पवनरेखा** के पुत्र उत्पन्न हुआ उस समय ऐसी आँधी चली कि पृथ्वी कांपने लगी, हजारों वृक्ष गिर पड़े और चारों ओर अँधियारा छा गया, बिजली चमकने से दिन रात एकसमान दिखने लगी, तारे टूटने लगे उसी समय कंस पैदा हुआ। कंस का जन्म मृगशिरा नक्षत्रमें हुआ था। बलवान कुल प्रकृतिके लोग उसे प्रिय थे। लोगोंको अपने अनुशासनमें रखना उसे बहुत अच्छा आता था।

द्रुमिल नामक राक्षस की छाया उग्रसेन की महारानी पवनरेखा पर पड़ी। उससे जिस बालक ने जन्म लिया वही कंस हुआ। ब्राह्मणोंने महाराज उग्रसेन से कहा- महाराज यह बालक आपके वंश को नष्ट करनेवाला होगा। इसलिए उग्रसेन ने उसे लता-पता कपड़ेमें लपेटकर यमुना में बहा दिया। वसुदेवजी के पिता शूरसेन यमुना किनारे भजन कर रहे थे। शूरसेन जी ने उस बच्चे को गोद में लिया और अपने घर ले आये। अपनी पत्नी मरीषा से बोले- अब तक तो केवल वसुदेव ही हमारा पुत्र था विधाता ने हमें दूसरा और दे दिया। कंस वसुदेव के साथ-साथ शूरसेनजी के यहाँ पल रहा है। जब कंस को नारदजी से ज्ञात हुआ कि वे उग्रसेन का पुत्र है तो रात्रि में ही वो उठकर शूरसेनका घर छोड़कर चला गया और जाकर कैलास पर तपस्या करने लगा। भगवान शिव को प्रसन्न कर वरदान प्राप्त किया। शिव ने उसे एक धनुष प्रदान किया और कहा की नारायण के अलावा इसे कोई नहीं छोड़ सकता और जो कोई इस धनुष को तोड़ेगा वह तुम्हें छोड़ नहीं सकता।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस को यह बात विदित थी कि मैं पूर्वजन्म में कालनेमि नाम का महाअसुर था। उस समय विष्णु भगवान द्वारा मारा जाकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। इसीलिये वह यादवों से विरोध करने लगा।

कंस जानता था कि वह पूर्व जन्म में कालनेमि असुर था, जिसे भगवान विष्णु ने मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियों से घोर विरोध ठान लिया। कंस बड़ा बलवान था। कंस को मगध के राजा जरासंध की सहायता मिलती थी। प्रलम्बासुर, बकासुर, चारुण, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, भौमासुर आदि सभी दैत्य तथा राक्षस उसकी सहायता के लिए हर समय तत्पर रहते थे। इनकी सहायता से वह यदुवंशियों को मारने लगा। यदुवंशी कंस के डर से भाग कर कुरु, पाँचाल, कैकय, शाल्व, विधर्व, निषध, विदेह तथा कौशल आदि देशों में जाकर छिप गये। जो लोग उसके राज्य में रह गये वे सभी इच्छानुसार उसकी सेवा करने लगे। कंसको अधिकार देना नहीं पड़ा। आज्ञा देना-शासन उसकी सहज प्रकृति थी। उसने प्रशासनके सभी विभागोंपर स्वत: प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कोई भी प्रतिवाद नहीं कर सकता। महाराज तो स्वयं ही प्रशासनके भारके हटनेसे अपनेको निश्चिन्त अनुभव करने लगे और स्वजनोंके प्रति कंसके मनमें इतनी प्रीति थी कि वह उनकी प्रसन्नता, सुख-सुविधा, रुचि-सम्मानका इतना ध्यान रखता था कि आश्चर्य होता है। उसके छोटे भाई तो उसपर प्राण देनेको प्रस्तुत रहते थे। आसुर प्रकृतिमें केवल क्रोध ही प्रधान नहीं होता। मोह-ममताका भी पूरा प्राबल्य होता है। जब तक कोई स्वजन अपने अहंकार-स्वार्थके लिए ही आशंकाका कारण न बन जाय, असुर स्वजनोंसे अतिशय स्नेह करते हैं; किन्तु उनके स्वार्थके लिए आशंका हो तो अत्यन्त आत्मीयका निर्मम उच्छेद

करनेमें भी वे हिचकते नहीं। कंसका आसुर स्वभाव इस तथ्यके सर्वथा अनुकूल था। कंसकी तनिक भी रुचि प्रजा-पालनमें नहीं थी। प्रजाकी सुख-समृद्धिके लिए यत्नका प्रश्न आनेपर वह कह देता था- सदा महाराज इसके लिए सचिन्त एवं सयत्न रहते हैं। स्वभावसे कंस क्रोधी था। लगता था कि वह क्रोधमें भरा ही रहता है। उसकी वाणी रुक्ष, कठोर और स्वर उच्च था। जैसे वह धीरे बोल ही नहीं सकता हो। मद्य-माँस उसे बहुत प्रिय थे। फलत: समान रुचिवाले लोग उसके परिकर बन गये थे। उसने जब सेना सजायी और दिग्विजय करने निकला, महाराजने मना किया था। क्षत्रियको महत्वाकांक्षी तो होना ही चाहिए। यादव-कुलके शूरोंने, प्रधान राजसभा-सभ्योंने, यादव वृद्धोंने भी कंसका पक्ष लिया उस समय। महाराजको मौन रह जाना पड़ा था।

जो प्रतापी असुर कालनेमी था वह तीनों लोकों को ताप देनेवाला कंस हुआ। पूर्व में यह दारुण तप किया था जिससे ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देवों से अवध्य का वरदान प्राप्त किया था। वह कंस मल्ल युद्ध का अनुरागी था सबके रास्ते में जाकर हठपूर्वक भिड़ता था। वरदान के प्रभाव से इसमें अकूल बल था इसे अपने बाहु बल पर बहुत गर्व था। जब यह सठ कंस कुमार अवस्था में था तो मल्ल युद्ध में बहुत से सुभटों को पछाड़ चुका था।

सचमुच कंसने प्राय: मल्लयुद्ध ही किये। मथुराकी विजय-वाहिनीको प्राय: तटस्थ दर्शक रहना पड़ा। युवराजकी विजयके समाचार मथुरामें आये दिन आने लगे और विजय किसे अप्रिय लगती हैं? मथुराके नागरिक भी सोल्लास महोत्सव मनाते रहे। कंस किसीको शूर सुनता था तो वहीं जा धमकता था और मल्लयुद्धकी चुनौती देकर कह देता था- जो पराजित होगा, उसे विजयीका सेवक होकर रहना पड़ेगा।

वीराभिमानियोंने कंसकी चुनौत्ती सहर्ष स्वीकार की; किन्तु परिणाम यह हुआ कि उनकी संख्या कंसके सेवकोंमें बढ़ती गयी। ऐसे लोगोंको कंसने सखाके समान ही स्नेह, सम्मान और सुविधा सदा दी।

एक समय दिग्विजय के लिए मगधनरेश जरासन्ध ने अपनी अपार सेना के साथ राजाओं को अपने आधीन करते हुए यमुना के तट पर छावनी डाली। उस समय कुवलयापीड़ नामक उसका हाथी जिसमें दस हजार हाथी का बल था। वह एक दिन साँकल को तोड़कर रक्षकों को मारकर चला रास्ते में कितने घरों को पर्वतों को तटों को बलमद से तोड़ डाला। अपने पदभर से धरती को धमकाते हुए वहाँ आया जहाँ कंस अखाड़े में मल्ल युद्ध करता था। उस बलमत्त हाथी को देखकर सभी वीर भयभीत होकर भागे। फिर कंस हँसकर उसके सामने आया। उसकी सूँड़ पकड़कर धरती पर पछाड़ दिया तथा मुष्टिका मार कर हतास कर दिया। फिर से उसकी सूँड़ पकड़कर उसे फेंककर जरासन्ध की सेना में डाल दिया।

आप अपने इस गजको ठीक बाँध रखें। कंसने उच्च स्वरमें चेतावनी दी- यह नगर तक पहुँच गया था। अब यदि यह फिर उधर आया तो सम्भव है आप तक लौट न सके।

जरासंध बोला- तात, तुम इसे मेरा उपहार मानकर स्वीकार कर लो। जरासन्धने सहर्ष उठकर कंसको हृदयसे लगा लिया और बहुत सत्कार करके, उसी गजपर बैठाकर शिबिरसे विदा किया। उसी दिन मगधराजके कुल पुरोहित महाराज उग्रसेनके सम्मुख नारियल लेकर पहुँचे और उन्होंने प्रार्थनाकी- मगधराज अपनी दोनों पुत्रियोंके विवाहके सम्बन्धमें बहुत चिन्तित थे। अल्पप्राण पुरुषको अपना जामाता बनाकर वे लज्जित नहीं होना चाहते थे। मगधसे वे उपयुक्त पात्रके अन्वेषणार्थ ही निकले थे। सौभाग्यसे हम मथुरा आ पहुँचे। आपके ज्येष्ठ कुमारके बाहुबलको हमने प्रत्यक्ष देख लिया। मगधराजने प्रार्थना की है कि यह नारियल स्वीकार करके इस सम्बन्धको स्वीकृति देनेका अनुग्रह करें।

युवराज कंस राजसभामें ही थे। नगरमें यह बात फैल चुकी थी कि मगधराजके महागजको उन्होंने सूँड़ पकड़कर

घसीटकर सैन्य-शिबिर तक पहुँचाया और उसे मगधराजके उपहारके रूपमें लाकर मथुराकी गजशालामें बाँध दिया है। महाराजने ज्येष्ठ पुत्रकी ओर देखा। कंसने संकोचसे सिर झुका लिया। महाराजने महर्षि गर्गको बुलवाया और उसी समय उस सम्बन्धको सविधि स्वीकृति दे दी।

मगधराजने मथुरामें ही अपनी दोनों कन्यायें अस्ति और प्राप्तिका परिणय कंसके साथ कर दिया। मथुरा-नरेशको गिरिव्रज तक बारात ले जानेका कष्ट भी नहीं करना पड़ा। दहेजमें मगधराजने इतने गज दिये कि मथुराकी गजसेना, जो नगण्यप्राय: थी, भारतकी प्रमुख गजसेनाओंमें गणना करने योग्य हो गयी। युवराज कंसके आग्रहसे ही उनकी बहिनों-चचेरी बहिनोंका भी विवाह वसुदेवके ही कुलमें हुआ।

ऐसा अद्भुत विशेष बल देखकर मगध नरेश जरासन्ध अति प्रसन्न हुए। आदर करके कंस की अत्यन्त सराहना की तथा उसके साथ अपनी अस्ति और प्राप्ति नाम की दोनों पुत्रियों का ब्याह कर दिया तथा सुखमान दास, हाथी, घोड़े, नाना प्रकार के रथ आदि बहुत सा दहेज दिया। जरासन्ध का महान योग पाकर कंस का अभिमान और बढ़ गया। फिर कंस अभिमान में भरकर माहिषमती पुरी में गया क्योंकि कंस ने वहाँ के राजा तथा उसके पाँच पुत्र मल्ल युद्ध में अमित बलवान है ऐसा सुन रखा था।

वहाँ जाकर उग्रसेन पुत्र के सुन्दर सामनीति का आश्रय लेकर प्रेमपूर्वक बोला कि हमसे मल्लयुद्ध करो यदि आपकी विजय हुई तो मैं आपका दास बनूँगा यदि मेरी विजय हुई तो आपको मेरा दास बनना पड़ेगा। ऐसी प्रतिज्ञा पुरजन के सामने ठान कर दारुन अभिमानी उन सबसे भिड़ गया। पहले सुभट चाणूर को पछाड़ दिया फिर मुष्टिक को उठाकर धरती पर पटक दिया। फिर कूट, शल, तोशल पर विजय पाकर सबको अपना सेवक बना लिया। माहिष्मती पुरी कंस पहले गया था। वहाँके नरेशके लोक-प्रसिद्ध मल्लयुद्ध निपुण पाँचों पुत्र चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल क्रमश: भिड़े और पराजित होकर कंसके परिकर बन गये।

फिर कंस प्रवर्षण गिरि पर गया वहाँ अत्यन्त दारुन सुभट द्विविद बानर रहता था। उसके साथ बीस दिन युद्ध करके उसे जीत कर अपना सेवक बना लिया। मित्र बनाया उसने केवल द्विविदको। यद्यपि प्रवर्षण गिरिपर बीस दिन अविराम युद्ध करके द्विविदको कंसने थका दिया। फिर ऋष्यमूक बन में जाकर विशेष दानव केशी को जीतकर अपना दास बना लिया। फिर जाकर सठ कंस ने महेन्द्र पर्वत को अभिमान में भरकर सौ बार उठाया मानों अपने बाहुबल को तौल रहा था अपने में अपार पौरुष समझा। बार-बार महेन्द्र पर्वत को उठते देखकर उसपर स्थित परशुराम विशेष रूप से कुपित हुए तुरन्त कंस के पास प्रगट हो गए मानों प्रलयकाल का दारुन सूर्य का प्रकाश ही प्रगट हो गया। हे गोसाई दुहाई है दुहाई है कहते हुए कंस मुनि के चरणों पर दण्ड की तरह गिर गया। अबोध कंस को अति विनीत देखकर मुनि क्रोध को शीतल करके बोले।

क्यों रे मन के तुच्छ कीड़े बड़ा ही अपने बल से अभिमान में भरा हुआ है। यह जो मेरे हाथ में धनुष है उसनें बड़े-बड़े महावीरों का अभिमान तोड़ा है। विष्णु भगवान का यह धनुष भगवान विष्णुने शिवको दिया था और शिवने इससे त्रिपुररुर का वध कर क्षत्रियों के नास हेतु यह धनुष मुझे दिया है अब तू अपनी कुशल चाहता है तो धनुष का सन्धान कर। नहीं तो तुझे नष्ट कर तेरा सब अहंकार मिटा दूँगा। मुनिकी यह कठोर वाणी सुनकर कंस ने धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ाई। धनुष के भयंकर टंकार सब लोकोंमें व्याप्त हो गयी और धनुष को मुनिके चरण में रखकर उनकी वन्दना की बोला हे नाथ मैं आपके दास का दास हूँ। मुनि परशुराम ने वह धनुष कंसको दिया और बोले- प्रभु विष्णुके धनुष को तोड़नेवाला ही तेरा काल होगा। कंस उस दिव्य धनुष को पाकर अपार हर्षित हुआ और मुनिकी वंदना करके चला गया। कंस के पौरुष एवं सैन्य

बल का वरदान सिद्धि शक्ति अपार सुनकर कोई राजा उससे भिड़ता नहीं था उसको कर देना सभी ने स्वीकार कर लिया।

समुद्र तटपर रहनेवाला सर्पाकार अघासुर वहाँ पहुँचनेपर कंसको निगलने ही लगा था; किन्तु कंसने उसे पटककर ऐसा रौंदा कि गलेमें लपेटनेपर भी अघ शिथिल ही बना रहा। वह भी अनुचर बनकर आ गया।

फिर जलनिधि के तट पर अघासुर को जीतकर गंभीर अरिष्टासुर को भी जीत लिया। फिर प्राग ज्योतिषपुर में जाकर संग में दुर्धर्ष सुभट समुदाय लेकर नरकासुर से अपनी प्रतिज्ञा कह कर बलमदमत्त कंस अत्यन्त माख में भर कर भिड़ गया। भौमासुर के साथ भी बहुत से सुभट थे रन रंग में रँगकर कंस से भिड़ गए। वहाँ पहले भौमासुर के सुभट प्रलम्ब असुर को पछाड़ा फिर धेनुकासुर को धरती पर गिरा दिया। तृणावर्त ने अत्यन्त क्रोध करके धावा किया वह भी कंस से पार नहीं पा सका। फिर दुर्धर्ष बकासुर को धरती पर गिरा कर सामने पूतना को देखकर मुस्करा कर बोला तुम नारी हो इसलिए तुम्हारे साथ नहीं लड़ूँगा मेरी बहन बनकर सुखपूर्वक रहो। अपने सभी सुभटों को निहत देखकर भौमासुर ने उसे प्रबल जानकर उसे विजय प्रदान कर दी बोला मैं तुम्हारा हमेशा सहायक बनूँगा कंस से मैत्री कर लिया। फिर सम्बरासुर के नगर में जाकर अपने संग सहायों के साथ घोषणा की। यद्यपि सम्बरासुर अत्यन्त बलवान था फिर भी कंस को अजेय जानकर उससे युद्ध नहीं किया। कंस जहाँ कहीं भी सुभट सुन पाता था सारे संसार में बलमदमत्त कंस वहीं धावा बोला देता था। त्रिकुट पर्वत पर ब्योमासुर को खेल खेल में ही जीत कर अपने बस में कर लिया।

अधिकांश नरेशोंने बिना युद्ध किये मथुराका आधिपत्य स्वीकार करके युवराजको कर दे दिया। नरकासुरके यहाँ प्राग्योतिषपुरमें प्रलम्ब, धेनुक, तृणावर्त, बकासुर जब कंससे हार गये तो बकासुरकी बहिन पूतना युद्ध करने आ गयी। कंसने उससे कहा, यह बक मेरा भाई हुआ। तुम मेरी बहिन बनकर मथुरामें रहो।

स्त्रीसे युद्ध करके विजयी होनेमें कोई यश नहीं और पराजित होनेमें अत्यन्त अपयश है, यह बात कंस समझता ही था। उसने नीतिकुशलतासे पूतनाको मना लिया। लेकिन भौमासुरने युद्ध नहीं किया। उसने हँसकर कंसको हृदयसे लगाया और कह दिया- हम दोनों परस्पर मित्र रहें। परस्पर युद्धकी बात क्यों की जाय। कंसने उसकी नीति-कुशलताको स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार शम्बरासुरने भी कंससे मैत्री कर ली बिना युद्ध किये। व्योमासुरने युद्ध किया त्रिकूटपर और हारकर सेवक बन गया।

फिर कंस ने बाणासुर के पास जाकर अपना अभिप्राय एवं प्रतिज्ञा सुनायी। उसकी अतिशय गर्व भरे बात को सुनकर बाणासुर का मानों पूरा शरीर ही जल उठा। उसने अपना पैर धरती पर पटका जिससे उसका पैर धरती को विदीर्ण करके धँस गया। खींझ कर कंस से ललकार कर कहा यदि मेरे चरन को धरती से बाहर निकाल दो तब मेरे साथ युद्ध करने के अधिकारी हो। जैसे कोई प्रबल हाथी सहज में ही सुदृढ़ खम्भे को उखाड़ डालता है उसी प्रकार प्रबल कंस ने बाणासुर के चरन को दम्भ में भर अनायास ही खींच कर बाहर कर दिया।

बाणासुर का पैर खींचते समय दिग्गज डोलने लगे सातों समुद्रों में खलबली मच गई। फिर बाणासुर को कंस से समर के लिए उद्यत देखकर तुरन्त प्रगट होकर भगवान शिवने बाणासुर को रोक कर कहा। हे तातप्रभु कृष्ण को छोड़कर इस भूतल पर कंस को कोई नहीं जीत सकता है इसलिए इस कंस से मित्रता कर लो इससे युद्ध करने में तुम्हारी भलाई नहीं है।

सबसे भिन्न कार्य किया बाणासुरने। कंसने उसके यहाँ जाकर युद्धके लिए ललकारा तो उस सहस्त्रबाहुने कहा- मैं किसी अल्पप्राणसे युद्ध नहीं करता। इससे मुझे व्यथा होती है। तुम पहिले मेरा पैर उठा दो। वाणने भूमिपर पैर पटका। उसका चरण घुटने तक भूमिमें धँस गया। कंसने चरण उठा तो दिया, किन्तु इतना श्रम पड़ा कि क्लान्त हो गया। वह विजयके सम्बन्धमें सशंक हो ही गया था, भगवान शिवने रोक दिया आकर- तुम परस्पर युद्ध मत करो। मित्र बनकर रहो। कंसने

सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया।

फिर कंस ने वत्सासुर को हराकर यवन देश को जाकर घेर लिया यह सुनकर कालयवन क्रोधातुर होकर दौड़ा।

पश्चिम दिशामें वत्सासुरको कंसने पछाड़कर सेवक बनाया; किन्तु कालयवनसे मित्रता कर ली। यह कंसने बुद्धिमानीकी; क्योंकि उसे पता था कि कालयवनको युद्धमें अपराजित रहनेका वरदान प्राप्त है।

असुरों की विशेषता यह है एक क्षण में तो पानी-पानी और दूसरे क्षण में बेपानी हो जाते हैं। एक क्षण में संतुष्ट और दूसरे क्षण में रूष्ट। जो प्राणी आचारणविहीन है वही राक्षस है।

कंसने इसके पश्चात अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। यह समाचार मथुरा आया तो महाराज बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने कंसको तत्काल मथुरा लौटनेका आदेश भेजा। आदेश पहुँचने में देर हुई। कंस आदेश पाकर लौट आया, अन्यथा वह अन्य लोकपालोंकी पुरियोंपर चढ़ाई करता। उसकी योजना तो असुर-नाग लोकोंको जीतकर त्रिभुवन-विजय करनेकी थी; किन्तु अमरावतीको वह आदेश मिलनेसे पूर्व ही पराजित कर चुका था। देवताओंसे उसने युद्ध किया और जब उसके मुद्गरके आघातसे देवराजके हाथसे वज्र गिर पड़ा, देवताओंमें बहुत-से भाग गये। शेषने पराजय स्वीकार कर ली। कंस वहाँसे देवराजका छत्रयुक्त सिंहासन लेकर मथुरा लौट आया।

कंस ने युवावस्था के जोश में होश गवाँ करके एक खलमण्डली बनायी और राज्य में उपद्रव करने लगा। जब से जन्मा तब से नगर में जाकर छुपे हुए बालकोंको पकड़ लावें और मार डाले। उनका गला घोंट दे। उग्रसेन ने कंसको बुलाकर बहुत समझाया पर उसके जी में कुछ भी नहीं भाया। मन चाहे जिसके घर में घुस कर माँ-बहनों की इज्जत लूटता। यदि कोई हस्तक्षेप करे तो उसे मारता, पीटता, घसीटता और लहूलुहान कर देता। उग्रसेन के राज्य में निर्भय रहनेवाली जनता ने राजकुमार के अत्याचार से भयभीत होकर त्राहि-त्राहि करते हुए राजदरबार में राजा उग्रसेन से रो-रोकर अपनी व्यथा भरी कथा सुनाई। उग्रसेन सोच में पड़ गये। कुछ सोचकर बोले- बेटा कंस, यह प्रजा क्या कह रही है? कंस बोला-पिताजी, प्रजा क्या कहती है यह आप सुनो। हाँ, मैं यह जानता हूँ कि इस राज्य का भावी राजा मैं हूँ। मैं राज्य कैसे करूँगा उसी का अभ्यास करता हूँ। आप मेरे कार्य-कलाप में निर्णय लेने के अधिकारी नहीं हैं। उग्रसेन सोचने लगे- पवित्र यदुवंश को धूमिल करनेवाला दुष्ट कंस कहाँ से पैदा हो गया। इधर कंस के अनुचर यत्र-तत्र-सर्वत्र जहाँ कहीं भी विप्र, धेनु, सुर, सन्त को पाते वहीं मारते-पीटते और रक्तरंजित कर देते और कहते- यदि तुम लोगों ने जप, तप, यज्ञ, वेदपाठ किया तो खाल खींच लूँगा। अरी गायो, तुमने सन्त-महात्माओं, ब्राह्मणों को दूध दिया तो तुम्हारी भी हत्या कर दूँगा। बेचारी गायें थर-थर काँपने लगीं और सोचने लगीं- कौन सा अपराध किया है कि हमारे दुग्ध से संत-ब्राह्मण वंचित रह जायेंगे? हमारे दूध का उपयोग कंस करेगा। ऋषि-मुनि-ब्राह्मण सोचने लगें- यदि भजन-पूजन, वेद पाठ न किया तो श्री नारायण भूखे रह जायेंगे। राक्षसों का बल बढ़ेगा, वे अत्याचार करेंगे। ऐसा सोच करके लुक-छिप कर प्राणरक्षा करते हुए अपने धर्म कर्त्तव्य में निष्ठा रखते हुए ऋषि-मुनि-ब्राह्मण नित्य कर्म करते रहे, गौएँ सन्त-ब्राह्मणों को दूध देती रहीं। इधर कंस के अनुचरों ने देखा कि इतना मारने-पीटने एवं प्रताड़ित करने पर भी ये लोग नहीं मान रहे हैं।

जेहि-जेहि देश धेनु द्विज पावहि। ग्राम नगर पुर आग लगावहि।।

जहाँ कहीं गौ-ब्राह्मण को पाते वहाँ पूरे गाँव-के-गाँव नगर-के-नगर में आग लगा देते। आग की ज्वाला ऐसी बढ़ती मानो काल ने ही कराल रूप धारण कर लिया है। विप्र, धेनु, सन्त को ऐसे दावाग्नि से बचानेवाला कोई नहीं है। बेचारे अनाथ होकर तड़प-तड़प कर मर जाते। कुछ साधु-ब्राह्मणों को पकड़ कर लाते और उनसे अपनी सेवा कराते।

कंस अपने पिता से बोला- रामनाम का जाप करना छोड़ दो और महादेव का जाप करो। पिता ने कहा- मेरे तो कर्त्ता दु:ख हर्त्ता वही हैं जो उनको ही न जपूँगा तो अधर्मी हो भवसागर कैसे पार करूँगा। कंस ने पिता को पकड़कर बंदी बना लिया और पूरे नगर में ढिँढोरा पिटवा दिया कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप और राम नाम का जप करने नहीं पावेगा तब ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ, ब्राह्मण, हरि के भक्त दु:ख पाने लगे, धरती बोझ से मरने लगी।

मथुरा नरेश उग्रसेन का एक कारागार भी था। यमुना किनारे ऊँची परिखासे घिरा हुए बहुत दिनोंसे अपरिचित कारागार था जिसका उपयोग ही नहीं हुआ था। एक वृद्ध कारागार रक्षक उसकी देखरेख करता था। उसने उस कारागृह के दो भाग कर दिये एक पुरुष बन्दी के लिए दूसरा स्त्री बन्दीके लिये। वर्षमें केवल एक बार कारागार के द्वार खुलते थे। कंसने जैसे ही अपनी सेनाकी व्यवस्था सम्हाली, उसे लगा इस कारागृह की आवश्यकता कभी पड़ सकती है। कंसने कारागारकी परिखाको दृढ़ बनवाया। उसे अधिक ऊँचा उठाया। कंसने महाराज को बताया- कोई बन्दी कभी भी वहाँ रखना पड़ सकता है ऐसा अवसर कब आ जाये पता नहीं। स्वयं महाराजको अकस्मात् बन्दी होकर यहाँ अनेक वर्षों तक रहना पड़ा। कंस अपने पिताश्री महाराज उग्रसेन को बोला- अब तुम कार्य करने योग्य नहीं रहे हो। सैनिक तुम्हारे आवास की सामग्री ले जाकर नगर में तुम्हें दूसरा निवास स्थान देंगे। तुमको निर्वाह-व्यय मिलेगा और कारागारके द्वारोंकी कुञ्जियाँ नवीन कारागार-रक्षक को दे दी जो उसी समय नियुक्त किया गया। प्रचण्डकाय, कञ्जलकृष्णवर्ण, उग्रस्वभाव एक असुर। महाराजको बन्दी बनाकर कंस लौटा। कंस सोच रहा था अच्छा हुआ, मैं देवकी को मारने जा रहा था अब वो अवसर टल गया। नहीं तो मरने के बाद देवकी कहीं भी जन्म ले लेती। अब तो उसका अष्टम पुत्र होता, बढ़ता कौन जानता है। दूसरे असुरोंके नेत्र चमके और उनमें कंसके लिये प्रशंसा का भाव आया कि हमारा स्वामी इतना दूरदर्शी हैं।

कंसको किसी अभिषेक की आवश्यकता नहीं हुई। कोई मुहूर्त नहीं देखा गया। महाराज उग्रसेन को बन्दी बनाकर कंस स्वयं महाराज बन बैठा। प्रात:काल महाराज उग्रसेन का मुकुट उतारकर अपने मस्तकपर रख लिया। किसमें साहस नहीं था कि उसे मथुरानरेश नहीं माने। मथुराका शासन वैसे भी कंसके ही हाथमें था। महाराज उग्रसेन सिंहासनपर थे तब भी प्राय: सब राजकार्य कंस ही देखता था। अत: कंसको कोई भी कठिनाई नहीं हुई। प्रशासनमें उसे कोई बड़ा परिवर्तन भी नहीं करना पड़ा।

कंसने राजसभा बुलायी। उसमें महर्षि गर्ग भी उपस्थित थे। कंसने सब सभासद के सामने प्रस्तावना की- आप सबको पता ही है कि यदुवंशमें सदासे पिताका सम्मान आवश्यक नहीं माना जाता। वृद्ध पिता उग्रसेन को मैंने सब सुविधा दे रखी है। किंतु वे अपनी मनमानी से ऐसी आज्ञायें करने लगे कि उनका पालन सम्भव नहीं है।

गर्गाचार्य बोल उठे- अनुचित सुनकर मौन रह जाना भी दोष है। इसलिये मैं प्राय: सभा में नहीं आता पर अपने पूर्वजोंपर आक्षेप करना उचित नहीं है यह कहकर गर्गाचार्य राजसभा छोड़कर चले गये। कंस बोला- वसुदेवने मुझे धोखा दिया। अपने सत्य की रक्षा नहीं की। अपने पुत्रको छिपाकर और कहीं चले गये। उग्रसेन के बड़े भाई देवक उस सभा में थे। वे तीव्र स्वर में बोले- इसमें वसुदेवने अनुचित ही क्या किया। अपने पुत्र की रक्षा का प्रयत्न करना कोई अधर्म है क्या? तुमने उसके छ: पुत्र मार दिये। सातवां दैवयोग से गर्भ गिर गया। अब उन्होंने अपने पुत्र को बचा लिया तो क्या हुआ। अंधक उस सभा में थे बोले- वसुदेव ने सत्य की कोई उपेक्षा नहीं की। उन्होंने तुम्हें वचन दिया था कि वे अपने पुत्रोंको तुम्हें दे जाया करेंगे। मथुराके सब नागरिक जानते हैं कि वसुदेवने अपने वचनका पालन किया था। अपना पहला पुत्र जन्मते ही तुम्हारे पास ले आये थे। कंस बोला- यह सब ढोंग तो मुझे विश्वास दिलाने के लिये था। अन्धक बोले- यह तुम कैसे कह सकते हो। तुमने तो उनको स्वतन्त्र रहने ही नहीं दिया बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया। अगर वो अपने पुत्र तुम्हें नहीं देते तो तुम उनपर

आक्षेप कर सकते थे। अब तो वे अपने दिये हुए वचन से मुक्त हो गये। अब तो वो विवश है और विवशका कोई कर्त्तव्य नहीं होता। अब उन्होंने अपने पुत्र की रक्षा कर ली तो उनकी बुद्धिमत्ता, साहस और चतुरता प्रशंसनीय है। यह भी बहुत है कि वो अभी तक मथुरामें ही है। अगर मथुरा से भी कही चले गये होते तो, उनको दोष नहीं दिया जा सकता। कंस बोला- वे मुझसे भागकर जाते भी जाते कहां। अन्धक बोले- क्या तुम समझते हो कि विश्वमें तुम्ही एक शूरवीर रह गये हो। तुम्हारे श्वसुर जरासंध की शरण में जाते। बाणासुर या भौम तुम्हारे मित्र ही सही उनकी शरण में जाते तो वे क्या कापुरुष है जो उन्हें शरण नहीं देंगे। वे अपने पुत्रोंको मिलने गोकुलमें व्रजपतिके यहाँ भी जा सकते हैं। कंसने वही आदेश दिया। वसुदेव देवकी को कारागार में पहुँचा दिया जाय। हथकड़ी और बेड़ीसे जकड़े दम्पत्ति फिर वहाँ सात द्वारा भीतर बन्द कर दिये गये।

शुकदेव बोले- परीक्षित, वसुदेव जी के लौट आने पर नगर के बाहरी और भीतरी सभी दरवाजे अपने-आप ही बन्द हो गये। बालिका ने रोना शुरू किया। उसके रुदन की ध्वनि सुनकर सभी द्वारपालों की नींद भंग हो गई। वे झटपट उठकर सावधान हो गये। देवी देवकी की गोद में पहुँचते ही यशोदा की कन्या ने उच्च स्वर से रुदन प्रारम्भ किया जिसे सुनकर पहरेदार जाग गये और कंस के भय से बौखलाए हुए उच्च स्वर से एक दूसरे को हाँक लगाने लगे। प्रगट हो गया, प्रगट हो गया, भोजराज मथुरेश कंस को इसकी सूचना दे दी जाए कि देवकी का आठवाँ बालक पैदा हो गया।

किसी ने उस रात्रि को कंस के लिए काल-रात्रि ही बना दिया। शाम को ही कारागार का अधिकारी कह गया था कि देवकी प्रसव-वेदना से पीड़ित लग रही है। वर्षों तक सूरज के प्रकाश से भी वंचित पांडु-मुख हो आई उस आसन्न-प्रसवा ने पीड़ा को यथासम्भव अन्दर-ही-अन्दर पी जाने का प्रयास किया था ताकि परिचारकों और प्रहरियों तक को भी उसका भान न हो। इस आठवीं सन्तान को बचा ले जाने के लिए वह कृत-संकल्प थी। पर पुरुष तो नहीं, किसी महिला-परिचारिका ने इस पीड़ा की पहचान कर ही ली और बात कंस तक पहुँच गई। कंस की हालत पिंजड़े में कैद शेर के समान थी। वह व्यग्रता और आक्रोश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पागल-सा चक्कर कांट रहा था जैसे सर्प बन्द पिटारी में पिटारी का ढक्कन हटते ही वह फुफकारकर बाहर निकलनेकी व्यग्रता करता है अथवा किसी गहरे सरोवर में जा पड़े किसी मस्त बैल को मार्ग न मिलने पर बार-बार बेचैनी से हर किनारे को खुरों से रौंदता है। कंस को आशंका थी कि पता नहीं कब कोई आकर उसके तथाकथित काल की उत्पत्ति की बात कह दे। उसकी मुट्ठियां बार-बार बन्द हो रही थी और खुल रही थीं। उसके शरीर की सारी नसें रह-रहकर अकड़ती और तन रही थीं। वह सोचता था पता नहीं प्रहरियोंको क्या हो गया। कंस की व्यग्रता क्रोध में बदलने लगी। मृत्युभय कितना भयानक होता है, दिन-रात सिर पर तीक्ष्ण तलवार लटकते रहनेवाली मृत्यु की आशंका कैसी त्रासद और भयंकर होती है। कंस अपने काल से भयभीत रहने लगा। मन के ऊपर काल का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह स्वयं ही बौखलाया हुआ इधर-उधर घूमते रहता और मुखसे बड़बड़ाता रहता। कहता था कृष्ण को मैं छोड़ूंगा नहीं। कंस को काले रंग वाला कहीं कुछ दिखाई पड़ जाता तो भय के मारे उछारें भरने लगता। भोजन करते समय दाल में छोंक लगाया हुआ काला जीरा देखकर भी कंस दाल के कटोरे में जोर से घूँसा मारकर दहाड़ता, पकड़ लो इसे पकड़ लो यह काला काला मेरा काल है।

कंसका सत्य-दर्शन बड़ा दु:खद, बहुत उत्पीड़क हो गया है उसके लिए। वह भोजनकी थाली, पहिननेको आये वस्त्र अथवा सेवक-सेविकाको चौंक-चौंककर, नेत्र फाड़कर, खड्ग सम्हालकर देखने लगता है। उसके समीप आनेमें उसकी पत्नी तक अब काँपती हैं।

अब अष्टम बैरी मम आया। रचत विष्णु जो बहु विधि माया।। तेजवान अब देवकि जैसी। पूरव देखी कभी न तैसी।।

यांते याके जठर मझारी। निश्चय होगा हरि असुसारी।। किस विधि इसका मरणा होवे। भगिनी गर्भ मांहि यह सोवे।।
गर्भवती को मारूँ जो अब। नष्ट होयगो मम यशश्री तब।। जीवत जग में निन्दा पावूँ। मर कर अधम गती को जावूँ।।
जब लग गर्भ मांहि यह सोवत। तब लग इसका मरण न होवत। जब जन्मेगा यह रिपु बाला। तभी करूँगा इसका काला।।

रात व्यतीत होने लगी। बाहर पक्षियों का कलरव वातावरण को संगीत-पूरित करने लगा। पक्षियों का स्वर उसे सदा कौओं की कर्कश काँव-काँव लगता था। अगर कंस का बस चलता तो संसार-भर के सारे वृक्षों को जड़-मूल से ही कटवा फेंकता। न रहते वृक्ष, न रहता उन पक्षियों का बसेरा। उसे कोयलों के गाने में और उल्लू के रोने में कोई भेद मालूम नहीं पड़ा। संगीत, नाट्य आदि ललित कलाओं से उसे चिढ़ थी, घोर वितृष्णा। कंस के विचार से यह सारी कलायें वीरोचित नहीं थी, वीरता नहीं कायरता, पलायनता का भाव भरती थी मनुष्य के मन में। शहनाई नहीं रणभेरियाँ बजाकर प्रातःबेला के आगमन की सूचना दी जाती थी। उसके विचार में अगर विश्वमें कोई वाद्ययंत्र है तो रण-भेरी या नणक्षेत्र का नगाड़ा। संगीत कहीं से फूटता है तो जल-प्रपातों से नहीं, नदियों की कल-कल से नहीं, कामिनियों के कण्ठ से भी नहीं, बल्कि संग्राम के अनुपम वाद्यों से। इतने में ही कारागार के अधिकारी और सेवक-सेविकायें चिल्लाने लगे। आ गयी देवकी की आठवीं सन्तान आ गयी।

वे सब दौड़कर कंस के पास गये। उससे देवकी के सन्तान पैदा होने की बात कही। कंस बड़ी बेचैनी के साथ इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मेरा काल आ गया- यह कहते हुए वह झटपट पलँग से उठकर सूतिका-गृह की ओर नंगे पैर दौड़ पड़ा। हड़बड़ी में वह मार्ग में लड़खड़ा कर कई बार गिरते-गिरते बचा। उसके सिर के बाल बिखर गये।

भोजपती सुन दूत से, पहुँचा कारागार। निज वैरी लख बाल को, मारण भया तयार।।

आठवें गर्भ के भय से भयभीत कंस को जैसे ही यह समाचार मिला कि देवकी का आठवाँ गर्भ प्रकट हो गया है, वह हाथ में नंगी तलवार लेकर अव्यवस्थित अवस्था में ही कारागार की ओर दौड़ा। भय से व्याकुल बड़बड़ाता हुआ बन्दीखाने के द्वार तक आ गया। देवकीके सन्तान हुई। कंसने भी दुहराया। वैसे ही खुले केश, नंगे पैर दौड़ पड़ा वह नंगी तलवार लिये। मस्तकपर मुकुट रखने, मार्ग-प्रकाशक सेवक साथ लेनेकी उसे सुधि कहाँ। कंस अनेक बार फिसला- गिरते-गिरते बचा मार्गमें। वर्षा हुई थी और खूब हुई थी। पानीका बरसना रुका था; किन्तु मार्ग फिसल रहा था और कंस दौड़ रहा था। इतने वेगसे वह दौड़ रहा था कि कारागारसे संदेश लेकर आये रक्षक उसका साथ नहीं दे सकते थे। वे पीछे छूट गये।

अंग रक्षक सैनिकों की सेना भी पीछे पीछे वहाँ पहुँची। डगमगाते हुए पैरों से कंस ने जेल के कक्ष में प्रवेश किया। वसुदेव और देवकी को भयभीत करने के लिए तलवार वाला हाथ ऊपर को करके जोर जोर से दहाड़ने लगा।

अमृत को जाने अनजाने कैसे भी पी लिया जाये तो वह भी अमर बना देता है। उसीप्रकार भगवान का कोई भी कीर्तन, चिंतन करतें तो वह पाप से मुक्त हो जाता है। दुष्ट कंस ने भी भय से भयभीत होकर परब्रह्म कृष्ण का चिंतन किया तो निष्पाप हो गया साथ ही अपने परिकर को भी भव पार करा दिया। जिस प्रकार जाने-अनजाने में अग्नि का स्पर्श शरीर को जला देता है, उसी प्रकार किसी भी भाव से परम प्रभु का किया गया स्मरण इच्छित फल प्राप्त करा देता है। भय के मारे बावला होकर कंस हाथ में नंगी तलवार लेकर रात दिन इधर से उधर भटकता फिरता और लोगों से पूछता, मेरा बैरी आया कि नहीं? मेरा काल पैदा हुआ कि नहीं? मुझे शीघ्र बताओ। उत्तर में जो व्यक्ति इस बात को कहता कि हे राजन्, आपका काल अभी तक पैदा नहीं हुआ तो कंस उसी समय उसका मुख चूम लेता। शाबाश, तुमने ठीक कहा, मेरा काल मेरे भय से मेरे सामने नहीं आ सकता। कंस ने भय से इस बावलेपन में अपना खान पान, अपना सोना यहाँ तक कि अपने बन्धु बान्धवों को भी भुला दिया। शरीर पर अनेक प्रकार के हथियार टाँगे रहता और कहता कृष्ण अब आने ही वाला है। पता

नहीं कब कौन से हथियार की आवश्यकता पड़ जाए।

परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण को कंस आसुरी स्वभाव के मति भ्रम के कारण अपना शत्रु मान बैठा। शत्रु रूप में चिन्तन इतना बढ़ गया कि उसे जहाँ तहाँ श्री कृष्ण ही दिखाई देने लगे। काले रंग के बलवान असुर को कृष्ण समझकर कंस तलवार लेकर उसके ऊपर टूट पड़ा और चिल्लाया यही देवकी का आठवाँ पुत्र है, यही मेरा काल है। बेचारे असुर ने जैसे तैसे भागकर अपने प्राणों की रक्षा की। रात्रि के समय पूर्णमासी के चाँद में काले दाग को देखकर कंस उसे ही अपना शत्रु कृष्ण मान बैठा। क्रोध के मारे नयनों को तरेर कर देखने लगा। अपने धनुष पर बाण चढ़ा लिया और मतिभ्रम में बड़बड़ाने लगा। कंस कहने लगा, अरे कृष्ण तू इतनी दूर चाँद में जाकर बैठ गया है। अरे मेरे काल, तू मुझे डराना चाहता है, मैं डरनेवाला नहीं हूँ। कंस कहने लगा तू बड़ा शूरवीर कहलाता है तो तू चाँद में छिपकर क्यों बैठा है? जरा मेरे सामने आ, मैं तुझको अभी देख लूँगा। दूर से ही टुकुर टुकुर क्या देखता है? वीर है तो नीचे आ, मुझे मारने आया है तू, तू मुझे क्या मारेगा, मैं ही तुझको यमलोक पहुँचा दूँगा।

एक बार भयभीत कंस ने एक प्रहरी की नाक पर मक्खी को बैठे हुए देखा और मतिभ्रम के कारण उस काले रंग की मक्खी को कृष्ण समझ बैठा, फिर क्या था? उसने तलवार निकाली और मक्खी पर प्रहार कर दिया। मक्खी तो उड़ गई परन्तु प्रहरी की नाक कट गई। बिचारा प्रहरी बचाओ कहते हुए भाग खड़ा हुआ। असुराधिप कंस ने जोर से अट्टाहास किया और बिचारा प्रहरी कटी नाक लेकर जोर से रोता जा रहा था।

कंस ने अपने रनिवास में अपनी पत्नी अस्ति और प्राप्ति को देखा। आज उन दोनों ने अपनी काले रंग की चोटियों को नागिन की तरह बलखाती हुई बनाया। उन काली काली चोटियों को देखकर कंस के मन पर भय का भूत सवार हो गया और मतिभ्रम से उसे ऐसा लगने लगा कि कृष्ण की नीयत में खोट है, वह मुझे मारने के लिए इन दो नागिनों का रूप बनाकर आया है। कंस जोर से चिल्लाया, अरे कृष्ण। तू मेरे महलों में कैसे घुस आया है? मुझे मारने के लिए अब तुमने नागिन का रूप भी बना लिया है। क्रोध के मारे कंस ने तलवार खींची और बड़बड़ाया, अरे कृष्ण मैं तुम्हें अभी मार दूँगा। कंस के हाथ में तलवार देखकर रानियाँ जोर से चिल्लाई, सुनो सुनो, यह कृष्ण नहीं है, ये तो हमारी चोटियाँ हैं। मन्त्रियों ने आगे बढ़कर स्थिति को सम्भाल लिया। तब कहीं जाकर अस्ति और प्राप्ति के प्राण बचे।

बात-की-बात में कंस का रथ जा पहुँचा महल के महाद्वार के पास। द्वारपाल से लेकर प्रहरी, परिचारक-परिचारिकाओं तक सभी दौड़ पड़े मथुराधिपति के अभिनन्दन को। पर जैसे कोई तूफान गुजरता है वन के वृक्षों से वैसे ही सबको भटका देते हुए वह अकेला ही लपका कारागार की ओर। तूफान की चपेट में आ जैसे वन के वृक्ष धराशायी हो जाते हैं वैसे ही कंस के रथ से टकराकर कितने परिचारक और प्रहरी औंधे-मुँह धरती पर गिर धूल चाटने लगे। कंस को एक ही भय अन्दर से आन्दोलित कर रहा था- अन्तत: उसका काल आ ही गया, देवकी की आठवीं सन्तान के रूप में। जितना शीघ्र हो उसे समाप्त कर देना है। तभी गत दस-बारह वर्षों से बेचैन उसके मन को शान्ति मिल सकती है। किसी सर्प-युक्त वृक्ष पर बसेरा बनाए जैसे किसी पक्षी-युगल का हर क्षण भय-त्रस्त रहता है उसी तरह विगत बारह वर्षों का कंस विगत जीवन अभिशापग्रस्त रहा था। वही जानता है कि इस एक-एक क्षण को उसने कैसे जीया है। देवकी की हर सन्तान की हत्या के पश्चात् उसकी हिंस्र भावना, आहुति पड़ी अग्नि की तरह भड़की ही है। मथुराधीश को इससे पूर्व शिशु-हत्याका कोई अनुभव नहीं था। आवश्यकता ही कहाँ थी इसकी? निरन्तर खूँखार योद्धाओं की तलवार से तलवार भिड़ानेवाले कंस को कभी निरीह, नि:शस्त्र और असहाय नवजातों का भी काल बनना पड़ेगा, इसकी कल्पना भी कभी नहीं की थी उसने।

कंस भी जीना तो चाहता था पर डरा हुआ था। उसे ऐसा कुछ करना पड़ रहा था, जो किसी भी दृष्टि से मानवीय नहीं था। पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर राज्य-सुख लूटना चाहता था पर भाग्याकाश में देवकी भयानक उल्का बनकर प्रकट हुई और जब तक उसकी आठवीं सन्तान से भी निवृत्त नहीं हो जाता, उसकी स्थिति महासागर में भी पिपासा से छटपटाती मछली जैसी थी। कंस रथ की तीव्रता से कारागार की ओर पहुँचा। कंस के लिए पल-पल का विलम्ब भी युगों के समान लग रहा था। रास्तेभर सोच रहा था- उसका काल कैसा होगा? देवकी का पुत्र कैसा होगा जो उसका काल बनकर आया है। शायद वह अन्य शिशुओं से भिन्न ही होगा उसका स्वरूप या तो मानव शिशु होगा या फिर एक बार हिरण्यकशिपु का काल बनकर नृसिंह आया था। पता नहीं उसका काल कौनसा रूप लेकर उत्पन्न हुआ है? क्या सचमुच उसके विनाश की घड़ी आ गयी। ताला खोला और पहुँच गया हाँफता हुआ देवकी के सामने।

कंसने पहुँचते ही प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। कैसा है? कैसा है? सेवक नायक ने पूछा- कौन? कंस अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में बोला वही मेरा काऽऽऽल। प्राणों का मोह किसे नहीं होता। जिनका जीवन भोगविलास को ही समर्पित है, और उनके लिये शरीर ही सर्वस्व है। इस कालने कंस को असहाय, दुर्बल अथवा कापुरुष बना डाला। और लड़खड़ाती हुई जबान से बोला- वही देवकी का बालक। प्रहरी बोले- बालक कहां है महाराज वह तो बालिका है? कंस अट्टहास कर उठा- बालिका?

सुन करके बालक जन्म, कंस गयौ अकुलाय। बन्दी गृह में जाय कर, कन्या लई छिनाय।।

कंस ने उच्च स्वर में कहा- देवकी, तुम अपने पुत्र को तुरन्त मुझे समर्पित कर दो नहीं तो मैं तुम्हारे पुत्र के सहित तुम को अभी मार डालूँगा।

देवकी उस समय लड़की को छाती से लगाये हुए थी। कंस को देखकर उसने रोकर गिड़गिड़ाते हुए कहा- मेरे हितैषी भइया, यह कन्या है। भला इस नन्हीं सी कन्या को मार देनेसे तुम्हारा कौन सा भला होनेवाला है? यह नवजात नन्हीं सी कन्या तुम्हारा क्या बिगाड़ सकती है। आप इसको जीवन दान देकर संसार में यश को प्राप्त करो। इसका विवाह आपके पुत्र से करूँगी। स्त्री जाति की है। तुम्हें स्त्री की हत्या कदापि नहीं करनी चाहिये। माता अत्यन्त कातर स्वरमें प्रार्थना कर रही थीं। तुमने मेरे अग्निके समान अनेक पुत्र मार दिये भाई। तुम तो देव-प्रेरित थे, दोष तुम्हारा नहीं है; किन्तु अब तो स्त्री हत्या मत करो। यह पुत्री है। यह पुत्री मुझे दे दो। हमारी बेबसी का भी ध्यान करो। यदि इसे तुम्हारी कृपा मिल जाय तो यह जीवित रह कर धन्य बन जाय। यह तो अबला जाति की है, सब प्रकार से असमर्थ है। तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगी। तुमने मेरे छः पुत्र मार दिये। सातवा गर्भ तो विधाता ने ही नष्ट कर दिया अब इस पुत्री को तो छोड़ दो।

कंसने हुंकार भरी और बोला- मैं जानता हूँ कि मुझे छलनेके लिए मोहिनी बननेवाला यह मायावी यहाँ कन्या बनकर आया है। **यह कन्या नहि मारन योगू। करहैंगे तव निन्दा लोगू।।**

बहुत तनुज मम तुमने मारे। ज्वलित अनलसम जो द्युतिवारे।।
यह इक कन्या देवो ताता। मैं तुमरी अनुजा हूँ भ्राता।।
मृत तनूज मैं मन्द अभागी। मो पर वीर होव अनुरागी।।
जो यह जीवत रही कुमारी। करहूँगी तव सुत की नारी।।
इससे काल न कहा तुमारो। बिन अपराध इसे क्यों मारो।।
याविध कहकर कंस को, कन्या कण्ठ लगाय। रुदन करत भयि देवकी, मुख सम दीन बनाय।।

मेरे भाई, दैव की प्रेरणा से आपने मेरे अग्नि के समान तेजस्वी कई बालकों को मार डाला है। अब केवल यही एक कन्या

बची है। इसे मुझे दे दो। मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। बहुत-से बच्चों के मर जाने से मैं अत्यन्त दु:खी हूँ। मेरे प्रिय और समर्थ भाई, तुम मुझ मन्दभागिनी को यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो। देवकी रो-रोकर गिड़गिड़ा रही थी। यह तो अबला है। तेरा क्या बिगाड़ेगी? इसको तो रहने दो। विनती कर रही थी। किन्तु क्रूर कंस ने उसकी एक बात भी न सुनी। कंस बोला- इसे मुझे दे दो देवकी। बालिका हो या बालक वह तो कंस के प्राणों का संकट ही है। विष के दृष्टि से नाग हो या नागिन। नागिन का काटा तो पानी भी नहीं माँगता। पता नहीं अबला कब सबला हो जायेगी। क्या भरोसा ला दे। वसुदेव, देवकी को समझा दो और उस बालिका को मेरे हवाले कर दो। देवकी को आज्ञा दो वसुदेव वह तुम्हारी पत्नी हैं वरना मुझे.....

देवकी, सर्वप्रथम अपने प्राणों की रक्षा करना जीव मात्र का परम कर्त्तव्य है। यश का क्रम तो प्राण रक्षा के पश्चात ही आता है। यह तुम्हारी आठवीं सन्तान है, पुत्र हो या पुत्री इससे मुझे बैर है। क्योंकि आकाशवाणी ने तुम्हारी आठवी संतान से ही मेरी मृत्यु का योग बताया है। देवताओं का कार्य करनेवाले विष्णु बड़ा ही चतुर है। इसने पहले भी मोहिनी रूप धारण कर असुरों की पराजय करा दी। मैं इसके ऊपरी वेष से भ्रमित होनेवाला नहीं हूं।

देव वचन मिथ्या नहिं जावे, मारे मुझे जो ब्याहन आवे ।।

उसने देवकी को झिड़क कर उसकी गोद में हाथ डाला और निर्दयतापूर्वक कन्या को पकड़कर खींच लिया। देवकी की बाहों को झटक कर गोद की बालिका को बाहर खींच लिया। लेकिन कंसने इतनेमें तो उस बालिकाका पैर पकड़ा और माताके हाथोंसे झपट लिया उसे। माताने चीत्कार किया और मूर्छित हो गयीं।

कंस तात की गोद से, बलकर लीनी छीन। शिला मांहि मारत भया, सो निर्दयी मलीन ।।

कन्या ले ठाढ़ी भई देवी अंचल ओड़। भैया तेरे शरण है चाहे मार कि छोड़ ।।

ऊसर भूमि में बीज बोने से क्या फल, क्रूर के सामने रोने से क्या लाभ, सब व्यर्थ ही है। जो स्वार्थरत प्राणी होते हैं वे दूसरे के हित हानि के बारे में नहीं सोचते।

दया न आई कंस को, घड़ा पाप का गया फूट। पत्थर से पटकन लगौ, गई हाथ से छूट ।।

लाय शिला पर दुष्ट ने, पटकी गगन घुमाय। गई अम्बिका हाथ से, कंसहि गिरा सुनाय ।।

अपनी उस नन्हीं-सी नवजात भानजी के पैर पकड़कर कंस ने उसे जोर से, जैसे धोबी कपड़ा पत्थर पर पटकता है वैसे ही, पत्थर पर, पटकने का प्रयास किया। कंस वैसे ही बालिकाको लिये हुए कक्षसे बाहर कारागार-प्रांगणके कोनेमें पड़ी शिलाके समीप आया। बालिकाका पैर पकड़े कंसने उसे मस्तकके ऊपर उठाकर घुमाया। वह उसे अन्य शिशुओंकी भाँति शिलपर पटक देना चाहता था; किन्तु कंसके हाथसे बालिकाका चरण छूट गया। भला योगमाया कहीं ऐसे किसीको अपने चरण पकड़े रहने देती हैं। कंसने चौंककर ऊपर देखा और उसके हाथसे शस्त्र छूट गिरा। वह देखता रह गया। वहाँ गगन तो प्रखर प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया। वहाँ वह कन्या कहाँ थी? कैसी कन्या और कैसी बालिका? वहाँ तो प्रचण्ड तेजोमयी तप्तस्वर्णवर्णा, अष्टभुजा महादेवी गगनमें अपने दिव्य शतपत्र रथपर नीलाम्बर धारण किये विराजमान थी और उसके आठों हाथोंमें शूल, खड्ग, घंटा, कपाल, खट्वांग, कमल, पास और तर्जन मुद्रा थी। उस मयूर पिच्छकी ध्वजावाले दिव्यरथमें चार सिंह जुते थे।

पीताम्बरोत्तरीय, मयूरपिच्छांगदा, हीरक-हार-धारिणी उस अष्टभुजा महाशक्तिके चारों ओर भयानक भूतगण पार्षदके रूपमें हाथ जोड़े उपस्थित हो गये थे।

जैसे ही उसने उसे ऊपर उठाया वह कन्या उसके हाथ से छटक कर आकाश में चली गई। वहाँ वह दिव्य रूप धारण कर अष्टभुजा देवी के रूप में दिखलाई पड़ी। वह बालिका कंस के करोंमें पड़ते ही गतप्राण हो गई और उसी आकाश में ऊँचे

उठकर विचित्र रूप धारण कर लिया। अष्टभुजा, कराली बन आयी। पूरे तन से तेज वलय फूट रहा था। किसी हाथ में खडग्, किसी में खप्पर, किसी में तलवार, किसी में पाश तो किसी में परीघ और परशु। वह मुक्त-केशी महाकाली मन्द-मन्द मुस्कुरा रही थी।

उस समय उसके हाथों में भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र विराजमान थे। उसके श्रीविग्रह पर चन्दन और माला शोभायमान थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व उसकी पूजा और स्तुति कर रहे थे। उस समय देवी ने ऊपर मुँह उठाकर देखते हुए आकाशवाणी ने कंस से कहा- रे मूर्ख, मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तुझे मारने के लिये किसी स्थान पर पैदा हो चुका है। अब तुम निर्दोष बालकों की हत्या बन्द करो। दुष्ट, मूर्ख, मेरी हत्याके प्रयत्नसे तुझे क्या मिला? तू व्यर्थ अब देवकी को कष्ट मत दे। दीन-असहायोंकी हत्या मत कर। तू अपनी चालों के जाल में और मत फँस।

इस पर कंस ने कहा- देवी, यह तो बतलाओ कि कहाँ पैदा हुआ है? देवी ने कहां- यह नहीं बतलाऊँगी। बस, इतना ही भर जानों कहीं पैदा हो चुका है।

देवी बोली- मूर्ख, वह भीत, चकित, विक्षिप्त कक्ष के एक कोने से दूसरे कोने का चक्कर काट ही रहा था कि उस मूर्ति ने अट्टहास बन्द कर कहना आरम्भ किया, किशोरावस्था से लेकर आज तक मनुष्य के रक्त को पानी की तरह बहानवाले तुझ नर-पिशाच को अपने प्राणों का मोह इतना सताने लगा? और यह तू किस भ्रम में पड़ा है कि देवकी के सभी शिशुओं के प्राण हरकर तूने अपने काल को टाल दिया है। मूढ़, तुम्हारा काल तो अवतरित हो चुका है। जा, ढूँढ कहीं आसपास ही पल रहा होगा वह। जा, कुछ कर सके तो कर पर ध्यान रख, काल की गति पर किसी का वश न चला है न चलेगा। तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे और अन्तत: तुम देवकी की आठवीं सन्तान के हाथ ही काल-कवलित होंगे। अरे महा नीच, मुझे मारने से तुम्हारा कोई कार्य का प्रयोजन नहीं होगा, तुम्हारी मृत्यु टलनेवाली नहीं, तुम्हें मारनेवाला तो बृजमण्डल में प्रकट हो गया है।

अरे कंस, मेरे जैसे निरपराध बालकों को मारने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम्हारा शत्रु तो कृष्ण है, उसने तो ब्रज में अवतार भी ले लिया। हे अधम खल कंस मुझे मारने से तेरा कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। हे मूढ़ अब वृथा ही दारुन क्रोध कर निर्दोष बालकों की हत्या मत कर। हे नीच अधम तुझे मारनेवाला वह परम उदार प्रभु प्रगट हो गया है।

छूट कंस के हाथ से, गयी गगन मंझार। तांको यह बोलत भयी, रूप अष्टभुज धार।।

अरे दुष्ट जो शत्रु तुमारा। जहाँ तहाँ तिसने तनु धारा।। मोको मारण से क्या होई। मारेगा तोको प्रभु सोई।।

कंस से इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहां से अन्तर्धान हो गई और पृथ्वी के अनेकस्थानों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हुई। सस्मिता, सुप्रसन्ना दुर्गा सुरोंके साथ अदृश्य हो गयीं। देवर्षिने बतलाया- उनका सुरोंने स्वर्गमें महाभिषेक किया। देवगुरु बृहस्पतिने सविधि पूजा सम्पन्न करायी उनकी। देवराज इन्द्रने ही विन्ध्य पर्वतपर उनकी स्थापना की। वैसे वे धरापर अनेक पीठोंमें अनेक रूपों एवं नामोंसे प्रकट हुईं।

वे इच्छानुसार रूपधारिणी, भक्तभयहारिणी, त्रैलोक्यचारिणी, वरदायिनी, असुर-सहारिणी हैं। वे कहीं कुमारी हैं, कहीं वैष्णवी, कहीं शारदा और कहीं अम्बिका; किन्तु हैं वे अनुजा जनार्दनकी। मांस-रहित बलि एवं पूजन प्रिय है उन्हें। भाद्रकृष्ण नवमी उनका जयन्ती-महोत्सव, महापूजन पर्व है।

देवी की यह बात सुनकर कंस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कंस बड़बड़ाते हुए कहने लगा- यह देवता भी झूठ बोलते है कि देवकी का आठवां गर्भ मुझ मारनेवाला होगा और मेरी बुद्धि को भ्रमित कर दिया। मैं मूर्ख अज्ञानी इन दुर्देवों की बातों पर विश्वास कर बैठा। मैंने व्यर्थ में ही अपने बहनोई वसुदेव और बहन देवकी को बन्दीगृह में डालकर महान दुख दिया। अब मैं इन

कुकर्मों के फलस्वरूप कौनसे नरक में जाऊंगा। इसका कितना भयंकर दु:ख के रूप में मुझे भोगना पड़ेगा। विधाता ने भी कैसी झूठी आकाशवाणी कही कि जिसे सुनकर ही मैंने ऐसी निर्दयता का विचार किया।

अब मैं कारागृह में जाकर उनसे क्षमा माँगूंगा और अपनी बहन-बहनोई के समक्ष जाकर उनके चरण पकड़कर घड़ियाल के आँसू रोने लगा। गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला स्वाभाविक रूप से असुर कंस अब दीन बनकर क्षमा माँगते हुए अपनी बहन-बहनोई से बोला- मेरे अपराधों को क्षमा करना। मैं कपटी देवताओं की बात को सच मान बैठा। मेरी बुद्धि मारी गई।

आप साधुपुरुष है। साधु दु:खियोंपर दया करते हैं। आप दोनों मुझ दुरात्माको क्षमा करें। कंस रो पड़ा और उसने वासुदेवजी तथा देवकीके भी चरण पकड़ लिये।

तुम महान दोउ शोक न कीजो। निज-कृत-भोग मानि इन लीजो।।
सब प्रारब्ध अधीन दिशाये। बिछुरन्, मिलन खेल बिधि जाये।।

तुम दोनों बड़े ही महान हो, तुम शोक न करना और यह जो कुछ हुआ है इसे अपने किसी बुरे कर्म का ही फल समझ लेना, सभी अपने-अपने भाग्य के आधीन है और बिछुड़ना तथा मिलना यह तो बिधाता के बनाये खेल हैं। शरीर धारियों के शरीर मिट्टी के बरतनों की तरह बनते बिगड़ते रहते हैं किन्तु मिट्टी सदा ही एक सी रहती है उसका बनना, बिगड़ना नहीं होता। इसी प्रकार देह बनती, बिगड़ती रहती है किन्तु आत्मा इस बनने, बिगड़ने से परे है।

वसुदेव बोले- महाभाग, आप ठीक कहते हैं। मनुष्यमें अपने और परायेपनका भेद अज्ञानसे ही होता है। इस अज्ञानसे ही हर्ष, शोक, भय, द्वेष, लोभ, मोह या भेदके वशीभूत होकर पार्थक्यदर्शी प्राणी परस्पर एक-दूसरेको मारते हैं।

उसने उसी समय वसुदेव और देवकी को कारागार से मुक्त कर दिया और बड़ी विनम्रता से उनसे कहा- मेरी प्यारी बहन और जीजाश्री, मैं बड़ा पापी हूं। राक्षस की भाँति मैंनें तुम्हारे बच्चों को मार डाला। इस महापाप के कारण पता नहीं मैं किस नरक में गिरूँगा। और मेरी क्या दुर्गति होगी? वस्तुत: मैं ब्रह्मघाती के समान जीवित होते हुए भी मुर्दा ही हूँ। मुझे आज ज्ञात हुआ कि केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विधाता भी झूठ बोलते हैं। उनकी बात पर विश्वास कर मैंने अपनी बहन के बच्चों का वध कर दिया। ओह। मैं कितना महान पापी हूँ। खल लोग काल की गति देखकर रंग बदलते है उनके हृदय की कुटिल गति कभी नष्ट नहीं होती। वह खल कंस अपने मुख पर दु:ख का ढोंग बनाकर वसुदेव देवकी के पास जाकर स्वयं तुरन्त दोनों को बंधन से मुक्त कर उनके चरण पकड़कर हाथ जोड़कर विनंती करने लगा कि जिनके हृदय के प्रेम भगवान है होनहार अतिशय बलवान है।

अहो पूज्य भगिनी हे भामा। अधम नीच मैं मोह गुलामा।।
अति निर्दयी बन्धुजन द्रोही। कौन नरक मोको अब होही।।
देव झूठ भाखें अब जाना। जिनका वचन सत्य मैं माना।।
राक्षस सम तुमरे सुत मारे। दीने कष्ट बहुत विधि थारे।।
जीवत मृत सम जानो मोही। जाकर अपकीरति जग होही।।
क्षमा करो अपराध हमारे। तुम साधू समदृष्टी वारे।।
या विध कहकर रुदन कर, तिनके चरण मझार। गिरा कंस तब कहत भा, श्रीवसुदेव उदार।।

वस्तुत: भगवान के आवासभूत देवकी के दर्शन से ही कंस में यह सद्बुद्धि आई है। उसके ओझल होते ही कंस पुन: दुर्विचारों से आक्रान्त हो जायेगा। उसने पुन: वसुदेव और देवकी से कहा- आप दोनों महात्मा हो। जो होना था, वह हो

गया। अब पुत्रों के लिये शोक मत करो। संसार के प्राणी दैव के अधीन हैं। सभी अपने-अपने कर्मों को भोगते हैं। उनके भाग्य में जो था, वह हुआ। अत: आप लोग मेरे अपराध को क्षमा कर दो। क्षमा करना आप महात्माओं का स्वभाव है।

सभी प्राणी प्रारब्धका भोग भोगते हैं। उनकी मृत्यु का यही विधान था। यह आत्मा अमर है, केवल शरीर का ही नाश होता है। अज्ञानी पुरुष ही इस नाशवान शरीर को आत्मा मान लेते हैं। यही अज्ञान है। कंस दूसरेके दु:खके समय बड़ा ज्ञान बघारता है, तो फिर मरनेसे स्वयं क्यों डरता है? दूसरेको उपदेश देना असुर ज्ञान है।

कर्म का लिखा हुआ कोई मिटा नहीं सकता। संसार में जन्म लेकर मृत्यु के हाथ से कोई नहीं बचता। जिस तरह नदी में घास व तिनके न मालूम कहाँ से इकट्ठे हो जाते हैं और तरंग उठने से फिर अलग होकर उनका पता नहीं लगता, उसी तरह संसारी जीव है। ज्ञानी लोग जीने व मरने को समान समझते हैं और अहंकार करनेवाले मनुष्य शत्रु व मित्र में भेद करते हैं। सत्य तो यही है कि जीव अमर है, वह कभी नहीं मरता।

कंस ने कहा- हे बहन देवकी। हे श्री वसुदेव जी, अब आप कारागार से मुक्त हो। आप प्रसन्नतापूर्वक अपने गृह में प्रस्थान करें और सुखपूर्वक जीवन जीयें। कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। उसी के अनुसार जीवों को सुख दुख भोगना पड़ता है। यह जेल का कष्ट भी आपके किसी पूर्व कर्म का ही परिणाम होगा। मुझे उसके भुगतान में निमित्त बना दिया। ऐसा मानकर आपको अपना चित्त शान्त कर लेना चाहिए। मैं अपनी मृत्यु से भयभीत था। इसलिए लाचार और बेबस होकर ही मुझे आपके साथ यह कष्टदायक अभद्र व्यवहार करना पड़ा। जिसमें आपके पुत्रों की मृत्यु का भी मुझे कारण बनना पड़ा। अब आप अपने मन को छोटा न करें और सारा विश्व कर्म फल के द्वारा ही नियन्त्रित है, ऐसा मानें।

वसुदेव बोले- होनेवाली बात बिना हुए रहती नहीं। मनुष्य अपने सुख के लिए अनेक उपाय करता है, पर परमेश्वर की इच्छा के बिना उनका कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता। इस विश्व में सुख समाप्त होता है तो दु:ख पैदा हो जाता है, दु:ख के दिन नष्ट होते हैं तो सुख के दिनों का शुभारम्भ हो जाता है। इस चंचल चलायमान संसार में जीव के कर्मानुसार काल ही सुख और दुख के रूप में उलट पलट करता रहता है। यह सुनकर कंस प्रसन्न हुआ।

या विध कहकर रुदन कर तिनके चरण मझार। गिरा कंस तब कहत भा, श्रीवसुदेव उदार।।
धरो धीर तुम उर नर नाहू। जन्ममरण यह देह स्वभाहू।
सुत का शोक करें हम जोऊ। जो जग निजथिर रहना होऊ।।
यह सब जगत काल का खाजा। बली अबल सब निर्धन राजा।।
यावत संगम लिखा विधाता। न्यूय अधिक नहि होवत ताता।।
तव अपराध न मैं मन चीना। विधि ने लिखा न तिनकर जीना।।
नहि को किसका सुत पितु माता। कर्म अधीन विश्व सब भ्राता।।

धैर्यवान विवेकी वसुदेव जी जानते थे कि इस दुर्जन कंस के मुख से धर्म की बातें इसी प्रकार शोभायमान नहीं लग रही हैं जैसे कुलटा नारी के मुख से सती नारियों के सतीत्व की प्रशंसा शोभा नहीं पाती। दीनता पूर्वक रुदन करते हुए दुष्ट कंस की क्षमा याचना वसुदेव जी को भली नहीं लगी क्योंकि एक पल में प्रसन्न होना और दूसरे ही पल रुष्ट होना यह दुर्जनों का प्रसिद्ध लक्षण हैं।

इतना कहकर कंस वसुदेव और देवकी के चरणों पर गिर पड़ा। उस समय वह रो रहा था। अपने किये पर पश्चाताप कर रहा था। वसुदेव और देवकी ने उसकी यह दशा देखकर उसे क्षमा कर दिया। उन्होने उसके अपराधों को भुला दिया।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, वसुदेव और देवकी के शान्त वचनों को सुनकर कंस उनकी आज्ञा लेकर अपने भवन में चला गया और वे दोनों भी अपने घर चले गये।

कंसके इस परिवर्तित व्यवहारका प्रभाव पड़ा। रोहिणीजीको छोड़कर वसुदेवजीकी अन्य पत्नियाँ जो मथुरासे जहाँ-तहाँ चली गयी थीं, वनों गिरिगुफाओं और आश्रमोंमें छिपकर रहने लगी थी, मथुरा आने लगीं। प्राय: सब आ गयीं थोड़े ही दिनोंमें। वसुदेवजीके लगभग सभी भाई भी सपरिवार लौट आये और इन सबके सेवक-सेविकायें भी अपने स्वामियोंके गृहोंमें लौट आये।

ब्राह्मणों, धार्मिकजनों, सत्पुरुषोंमें-से भी कम ही मथुरा लौटे। कंस भले वसुदेवजीके प्रति नम्र हो गया हो, उसकी प्रकृति तो नहीं गयी कहीं। उसके असुर अनुचर भी मथुरा में ही थे और वही कंसके प्रमुख पार्षद थे। अत: मथुरा सत्पुरुषोंके लिए निरापद नहीं हुई थी। यदुकुलके वृद्धोंमें थोड़े ही मथुरा छोड़कर गये थे। वे किसी स्वजन सम्बन्धीसे मिलनेके बहाने ही गये। उन्हें मथुरा लौटनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। मथुरामें कंसके अनुचरोंने उनका स्वागत नहीं किया तो उनको उत्पीड़ित भी उन्होंने नहीं किया।

देवर्षि नारद की शत्रुता किसी से भी नहीं है। कोई उनसे द्वेष नहीं करता पर कंस नारदजी से भी प्रसन्न नहीं था। नारदजी आये। कंसने देवर्षिको प्रणिपात किया। नारद बोले- भोजराज, तुम अपने को बहुत बुद्धिमान समझते हो परन्तु ठगे गये। कंस चौककर बोला- मैं ठगा गया। देवता भी झूठ बोलते हैं और आप भी मुझसे छल कर रहे हैं मैं कभी सोच भी नहीं सकता। नारद बोले- न तो देवता झूठ बोलते हैं और न मैंने ही तुम्हारे साथ छल किया है। अपनी अज्ञाता और असावधानी को दोष दो। कंस बोला- देवकी की कन्या कह गयी..... नारद बोले- वो देवकी की कन्या थी नहीं वह तो यशोदाकी पुत्री थी जो तुम्हारे हाथसे छूटकर आकाशमें अष्टभुजा देवी बन गयी। कंस आश्चर्यसे बोला- सच कहते हो? यशोदाकी पुत्री नन्दकी पुत्री हैं। तुम देवकी को व्यर्थ कष्ट दे रहे हो। कंस बोला- तब देवकी के अष्टम गर्भका पुत्र? नारद बोले- वह अपने बड़े भाई रोहिणीपुत्र बलराम के साथ नन्दराय के यहां पल रहा है। उत्पन्न होते ही वसुदेव ने यमुना पार कर उसे गोकुल पहुँचाया और यशोदाकी कन्याको ले आये। कंस झल्लाया, मैं अभी मार दूँगा वसुदेव और देवकी को। नारद बोले- मार दोगे? मार देनेका प्रयत्न करके देखो। वे कौन है जानते नहीं हो। तुम उनके माता-पिताको मार दोगे तो उनके वहाँ प्रकट होनेसे कौन रोकेगा। तुम्हें आज ही मरने की उतावली क्या है? जो कुछ भी करो सोच-समझकर करो। अपने कालके सम्मुख स्वयं होकर चले जाना बुद्धिमानी नहीं है। परंतु ऐसा कुछ मत करो कि वे प्रभु प्रकट होनेपर विवश हो जाय। तथा गोपोंकी सहायता से उन्हें तुमपर आक्रमण करने का अवसर मिले। कंस बोला- वसुदेव ने धोखा दिया मुझे और वहीं सिर पकड़कर बैठ गया। कंस यह जान गया कि व्रजपति नन्दका पुत्र ही उसका शत्रु है और मुट्ठियां भींच कर बोला- मैं व्यर्थ ही उस आकाश में गयी देवीसे डरकर वसुदेव का सत्कार करता रहा। कंस सीधा अपने राजसदनके एकान्त कक्षमें चला गया।

कंस को रातभर नींद न आई। वह विभिन्न विचार तरंगों में खोया रहा। जिस तरह जल में डूबता हुआ मनुष्य चारों ओर हाथ-पैर मारता है और एक तिनके को भी सहारे हेतु पकड़ना चाहता है; जिस तरह जीवन के अन्तिम क्षणों में उखड़ती साँसों के एक सूत्र को भी पकड़ व्यक्ति संसार से अन्त-अन्त तक जुड़े रहने का अथक प्रयास करता है; जिस तरह सिकता-कणों से भरे मरुकान्तार का मृग सूर्य-किरणों से चमकते दूर के हर कण में पानी का आभास पा अपने सूखते कण्ठ को सिक्त करने हेतु निरर्थक दौड़ लगाता है; जिस तरह डाल से छूटा बन्दर हर पात को पकड़ प्राणों की रक्षा को व्यग्र हो उठता है; उसी तरह, हाँ उसी तरह कंस अपने प्राणों पर आए संकट को टालने के लिए अपने अव्यवस्थित मन के अश्वों को विभिन्न दिशाओं में दौड़ाने लगा।

अर्ध रात्रि महँ असुर लै, सभा बुलाई कंस। सभा भवन भेले हुये, बोला खलन नृशंस।।

कंस वसुदेव-देवकीको सन्तुष्ट करके, उनकी व्यवस्था करके निश्चिन्त हुआ। इस निश्चिन्तताका अर्थ कंसके लिए था- उस अष्टभुजा देवीसे निश्चिन्त होना। जबसे कंसने उस भयानक भूतोंसे घिरी तेजोमयीको देखा था, वही उसके मस्तिष्कपर छायी थी। उसकी ओरसे आशंका मिटाकर कंस अपने मन्त्रणा-गृहमें आ बैठा और उसने अपने सभी पीठ, पैठिक आदि मन्त्रियों तथा सहायकोंको बुलानेके लिए सेवक भेज दिये।

असुर स्वभावसे प्रात: देर तक सोते रहनेवाले होते हैं, किन्तु आज उन्हें जगाये जाने पर कठिनाई नहीं हुई। वे प्राय: पिछले दिन और पूरी रात सोते रहे थे। इतने पर भी उन्हें कंसका सन्देश जानेपर जगाना पड़ा। वे कहाँ प्रात: स्नानके व्रती थे कि विलम्ब लगता उन्हें। जागते ही झटपट वस्त्र पहिने, शस्त्र उठाया, चल पड़े।

आधी रात के समय मथुरा में दुष्ट कंस ने अपने असुर साथियों की सभा बुलाई। जब सभा भवन में असुर एकत्र हुए तो खलों में नृशंस कंस बोला।

वृथा देवकी के सुत मारे। गगनगिरा भी झूठ उचारे।। मम पूरव वैरी हरि जोई। जहाँ तहाँ जन्मा जग सोई।।

जब लग ताकी खबर न पावूं। तब लगे रुचिकर अन्न न खावूं।। करो उपाय वेग अब सोही। जाविध मरे असुरकुलद्रोही।।

नभ जा बोली देवि काल तुमरा प्रगटाना। निश्चित कही ना ठौर कहाँ काके घर आना।।

मेरा वैरी कहो कौन विधि मारा जावे। अब ही देवों मार बड़ा हो मारन आवे।।

सबेरा हुआ। कंस ने अपने मन्त्रियों को बुलाया। नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर उसने प्रमुख सामन्तों, योद्धाओं और मन्त्रियों को अपने गुप्त सभा-कक्ष में बुलाया।

उनसे रात्रि की सारी घटना का वर्णन करते हुए योगमाया ने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया। रात्रिमें जो कुछ हुआ है, उसे आप सबको सुना देनेके लिए मैंने बुलवाया है। कंसने रात्रिकी पूरी घटना सुना दी। मैंने देवकी-वसुदेवको उनके भवन भेज दिया है। उन्हें अथवा यादव प्रमुखोंको जो बाहर चले गये हैं- लौटें तो अब कोई उत्पीड़ित न करे।

हे असुर साथियों, देवकी के विवाह के समय आकाशवाणी ने देवकी के आठवें गर्भ को मेरा काल बताया था, परन्तु देवकी के आठवें गर्भ में आई हुई कन्या मेरे हाथ से छिटक कर आकाश में चली गई और अष्टभुजी देवी का रूप धारण करके मुझसे बोली, तेरा काल यहीं कहीं पैदा हो गया है। उस देवी ने किसी निश्चित स्थान पर मेरे काल का पैदा होना नहीं बताया और यह भी नहीं बताया कि किसके घर पैदा हुआ है। अब हम लोग इस बात पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए हैं कि मेरे बैरी को कैसे ढूँढ कर समाप्त किया जाये? अभी तो वह नन्हा सा बालक है इसलिए उसको मरना बहुत सहज है, बड़ा होने पर हो सकता है वह महाबली मुझे मारने आवे।

एक सभासद ने कहा- आपने उचित ही किया। क्योंकि वो जानता था कि महाराज विरोध सुनना कभी नहीं पसंद करते।

एक वृद्ध सभासद ने पूछा- महाराज आप कुछ अधिक ही चिंतित लग रहे है? कंस बोला- चिन्ता की तो बात है। मेरा काल पैदा हो चुका है। सभी ने एक स्वर से पूछा- कहाँ और कब ? कंस बोला- यहीं कहीं आसपास और आजकल में। दूसरे सामन्त ने पूछा- महाराज आपको कैसे मालूम हुआ? क्या आपने फिर कोई सपना देखा है? कंस बोला- मुझे मेरे गुप्तचरों ने बताया है।

एक असुर ने कहा मेरा सुझाव है कि बृज के सभी बालकों को यहाँ बुलवा लिया जाये और एक साथ उनकी हत्या करके यमुना की धारा में बहा दिया जाय। दूसरा असुर बोला मेरे विचार से सभी नन्हे शिशुओं को कुँओं में भर दिया जाय। उनमें

आपका शत्रु भी मारा जाएगा, जिससे आपको काल का भय है।

एक असुर बोला मेरे मत में लकड़ियों की एक बहुत बड़ी चिता बनाई जाये, उसकी प्रचण्ड अग्नि में बृज भर कर नन्हे शिशुओं को फेंक कर भस्म की ढेरी बना दी जाये। उसीमें हमारा काल बालक की भी चिता की भेंट चढ़ जाएगा। एक असुर ने कहा अपना कार्य प्रजा के सामने खुले रूप में नहीं करना चाहिए। अत्याचार से पीड़ित दु:ख प्रजा अगर क्रोध से भड़क गई तो फिर सम्भालना बहुत मुश्किल होगा।

कंस की बात सुनकर स्वभावत: देवशत्रु दैत्यों ने और चापलूस मंत्रियों ने कहा- भोजराज, यदि ऐसी बात है, तो आप चिन्ता न करें। शहर, गाँव और वज्र में दस दिनों के और इसके आस-पास के जितने भी बच्चे होंगे सबको हम लोग मार डालेंगे।

महि मंडल में जन्मा हरि जो, तिसको मरिया अब जान सुरारे।।
इस मास विषे उपजे शिशु जो, व्रज जंगल में पुर ग्राम मझारे।।
यद्यपि हमरे शत्रु सुरेशा। हमसे डरपत रहत हमेशा।।
तदपि उपेक्षा योग्य न वैरी। अल्प सर्प जिम होवत जहरी।।
जहाँ धर्म तहिं हरि को जानो। धर्म मूल श्रुति गो द्विज मानो।।
श्रुति द्विज गो साधू मुनि लोगा। जप तप व्रत संयम मख योगा।।
नष्ट होनगे जब यह सारे। तब सब सुर मृत जानो प्यारे।।
जो अब रावर आज्ञा होई। धर्म मूल नहि रहगा कोई।।

अब जहां देवताओं को पायेंगे वही उनको मारेंगे। उनको मारना क्या बड़ी बात है वे तो जन्म से ही भिखारी है।

इत ह्वैकें अति दुखित कंस घर अपने आयौ। मन्त्री लये बुलाय वृत्त सब सत्य सुनायौ।।
सुरद्रोही खल दैत्य कहें- का चिन्ता स्वामी। अज हरि हर सुर करें कहा हम स्वेच्छागामी।।
सुर निरबल परि विप्रगन, मख करि पोसें रिपुनिकूँ। मारें जहँ द्विज मुनि मिलहिँ, आयसु देवें सबनिकूँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, अपने कुटिल मन्त्रियों के साथ इस प्रकार परामर्श करके कंस ने ब्रह्म-हत्या में ही अपना हित माना, क्योंकि वह असुर था और कालपाश में आबद्ध था। जो प्राणी काल विवश हो जाता है वह अहित को ही हित और हानि को ही लाभ समझता है।

मंत्री बोले- युद्ध से डरनेवाले देवता लोग हमारा क्या बिगाड़ लेंगे? वे तो आपके धनुष की टंकार सुनकर ही घबड़ा जाते हैं। आपके बाण बरसाने पर तो सारे-के-सारे देवता भाग खड़े होते हैं। कुछ तो अपनी चोटी और कच्छा खोल भी देते हैं और कोई कहते हैं कि हम तो भयभीत हो गये हैं। हमारी रक्षा कीजिये। आप इतने दयालु हैं कि उन्हें छोड़ देते हैं किन्तु महाराज शत्रुओं की उपेक्षा ठीक नहीं है अत: उनको जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये आप हम लोगों को नियुक्त कर दीजिये। हम आपके अनन्य सेवक हैं। देवतागण सब भीरू है तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। विष्णु एकान्तवासी हैं, क्षीरसागर में लक्ष्मीके साथ विहार करता है। उसे तो युद्ध करना ही नहीं आता। शंकर वनवासी हैं, शंकर दिन-रात इलावर्त में पार्वतीजी से भोग-विलास में रत रहता है। सारे दिन धतूरा खायकर, भांग के नशे में मत रहता है। इन्द्र अल्पवीर्य हैं, उसमें तो कोई सामर्थ्य ही नहीं जो आपके सम्मुख लड़ सके। तथा ब्रह्मा तपस्वी हैं। आठों पहर पूजा व पाठ में लीन रहता है।

सारे देवताओं की जड़ हैं भगवान विष्णु। विष्णु वहाँ रहते हैं जहाँ सनातन धर्म रहता है। सनातन धर्म वहाँ रहता है, जहाँ ब्राह्मण, वेद, गाय, तप और दक्षिणावाले यज्ञ रहते हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तप, सत्य, शम, दम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और

यज्ञ- ये सब विष्णु के शरीर हैं। विष्णु को समाप्त करना नितांत जरूरी है। उसका एकमात्र उपाय है सनातन धर्म को नष्ट कर देना और यह तब ही सम्भव है जब गौ-ब्राह्मण और ऋषियों को समूल नष्ट कर दिया जाय। आप आदेश दें तो हम लोग इन्हीं का विनाश करना प्रारम्भ कर दें। इनके विनाश के बाद तो विष्णु निर्मूल होकर स्वयं विनष्ट हो जायेगा। उसको मार डालने का यह भी सर्वोत्तम उपाय है कि भू-मण्डल से ऋषियों का विनाश कर दिया जाय। यहाँ की बात तो आसान है महाराज। अत: हम सब तपस्या करने तथा यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको तथा यज्ञके लिए घी, दूध आदि देनेवाली गायोंको मार देंगे।

आपका शत्रु स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, त्रैलोक्य में जहाँ कहीं भी होगा, वहीं ढूँढकर हम उसका काम तमाम कर देंगे। शत्रु और व्याधि को तो उत्पन्न होते ही समाप्त नहीं कर दिया जाय तो एक दिन वे उस व्यक्ति को ही समाप्त कर देंगे। शरीरमें व्याधि हो जाय और मनुष्य उसकी उपेक्षा कर दें तो पीछे वह दृढ़-मूल होकर असाध्य हो जाती है। इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर दी जाय तो वे दुर्जय हो जाती हैं। ऐसे ही उपेक्षित शत्रु बलवान होकर दुर्जय बन जाता है।

हम भी वही करेंगे। हम सभी इस क्षेत्र के नवजात शिशुओं को ढूँढ-ढूँढकर उनकी हत्या कर देंगे फिर न तो रहेगा बांस और न ही बजेगी बांसुरी।

प्रलम्बासुर बोला- देवता शान्ति-कालमें ही शूर बने रहते हैं और बहुत बड़बड़ाते हैं। युद्ध सम्मुख आनेपर तो बस भागते ही दीखते हैं। देवासुर संग्राम के समय बहुत से तो भाग गये थे। कुछने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये, शिखा और कच्छ खोलकर प्राण की भिक्षा माँगने लगे और आपने उनको दया करके छोड़ दिया। देवता तो वही हैं, कुछ दूसरे नहीं हो गये। अब वे क्या कर लेंगे। आप शस्त्र चलाना भूल नहीं गये कि देवता साहस करने लगेंगे। इन्द्र अल्पप्राण है। हरि कहीं एकान्त समुद्रमें छिपा रहता है। शिव वन-पर्वतोंमें घूमता फिरता है और ब्रह्माको तो तपस्यासे ही अवकाश नहीं।

कंस की दुष्ट बुद्धि में बैठ गया। उसने तुरन्त हिंसक राक्षसों को गौ, ब्राह्मण और ऋषियों की हत्या करने का आदेश दिया। जहाँ धर्म नहीं रहता वहां भगवान नहीं रहते हैं। वहाँ दैत्य रहते हैं, असुर रहते हैं, नरक रहता है।

कंस बोला- अवश्य ही तपस्वियों, यज्ञशील विप्रोंको आतंकित करके विरत किया जाना चाहिये। अब तो असुरों को मनमाना अत्याचार करनेकी शक्ति मिल गयी।

दुष्ट मन्त्रियों की दुष्ट मन्त्रणा सुनकर कंस बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनके नाश करने की आज्ञा दे दी। कंस बोला- यही करें आप लोग। मथुरा और आसपास के सभी क्षेत्रों में हमारे योद्धा फैल जाएँ और एक-दो पक्ष के अन्दर पैदा हुए सभी शिशुओं की हत्या कर दें। सभी सभासद बोले- यही होगा महाराज। एक पक्ष के अन्दर पूरी मथुरा, गोकुल, वृन्दावन और आसपास के किसी क्षेत्र में कोई नवजात पैदा हुआ नहीं बचेगा।

अर्ध रात्रि की उस असुर सभा में बकासुर की बहन बकी जिसे पूतना भी कहते हैं वहीं बैठी थी। उसने कहा, इस बाल हत्या के कार्य के लिए आप लोग चिन्ता न करें और यह काम मेरे ऊपर छोड़ दें। मैं इस ढंग से बृजवासियों के घरों को उनके बच्चों से रहित कर दूँगी कि उन्हें पता भी नहीं चलेगा। इस प्रकार साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। अर्थात हमारा शत्रु भी मर जाएगा और प्रजा भी नहीं भड़केगी। मैं सुन्दर वेष बनाकर अपने स्तनों पर काल कूट विष लगाकर बच्चों को दूध पिलाऊँगी। जिसे पीते ही उनके प्राण पखेरु उड़ जाएंगे और वे दूध पीते ही काल के मुख में चले जाएँगे। पूतना ने कहा कि मैं ऐसा रूप धारण करूँगी जिससे न कोई मुझे पहचान पाए और न ही मुझे पकड़ पाये। बृजवासियों को पता भी नहीं चलेगा और मैं उनके बालकों को मार दूँगी। यह काम तो मैं अकेली कर लूँगी। आप चिन्ता मत करो। तुम्हारी बहिन इस कामके लिए पर्याप्त हैं।

पूतना के क्रूरता भरे शब्दों को सुनकर दुराचारी कंस बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, अरी बहन पूतना। तुमने हमारी बहुत बड़ी चिन्ता को काट दिया है अर्थात समाप्त कर दिया है। तुम्हारी इस योजना से मेरा वैरी भी मर जाएगा और प्रजा में मेरा विरोध भी नहीं होगा।

पास हुआ प्रस्ताव यह, हुई सभा तब भंग। हर्षित मन सब उठ चले, नाचत अपने ढंग।।

पूतना का प्रस्ताव असुर सभा में एक मत से पास हो गया, उसके बाद सभा को भंग कर दिया गया। असुर लोग हर्षित मन से उठकर चल पड़े। जाते जाते कोई कोई अपने ढंग से नृत्य करते हुए अपनी शत्रु हत्या की प्रसन्नता को व्यक्त कर रहे थे।

कंस काल के फन्दे में फँसा हुआ था अत: ब्राह्मणों आदि की हिंसा में ही उसने अपना हित समझा। दुष्ट राक्षसों को धर्मध्वंस के लिये आदेश देकर कंस अपने भवन में चला गया।

कुटिल कुमन्त्रिनि कही कंस सो सब कछु मानी। गो, द्विज, तप, मख, वेद नाशकी मनमहँ ठानी।।
काल पाशमहँ फँस्यो असुर हिसा हित मानै। समुझे सन्तनि शत्रु द्विजनि निज नाशक जानै।।
यों मथुरामहँ असुरगन, धेनु द्विजनि दुख देहिँ नित। मातु यशोदा सुत जन्यो, सुनहु भयो जो वृत्त इत।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, यह बात जान लेनी चाहिये कि सन्तों से विद्वेष करना अपनी मौत को बुलाना है। जिनकी मृत्यु पास आ जाती है, वहीं संतों से विद्वेष करते हैं। राजन्, जो मनुष्य पूज्य पुरुषों का अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, विषय-भोग और सारे कल्याण के साधनों को विनष्ट कर देता है। अत: गौ, ब्राह्मण और सन्तजनों की सेवा करना मानव का प्रथम धर्म है। सन्तसे विद्वेश करना मृत्युको निमंत्रण देना है। जिसकी मृत्यु पास आ जाती है, वही सन्तसे द्वेष करता है। यदि कोई महापुरुष सन्तका अतिक्रमण करता है तो उसकी आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म, लोक, आशीष और सारे श्रेय नष्ट हो जाते हैं। जो लोग विप्र, धेनु, सुर, सन्तों का पूर्णतया अनादर करता हैं; उनका वही कुकर्म उनमें सर्वनाश का कारण बनता है। हमारे हृदय में सोये हुए ईश को तरंगित करे उसे जगाये वहीं संत है, विद्वान है।

आयु: श्रियं यशो धर्मं लोकनाशिष एव च। हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रम: ।।

जो महत्पुरुष हैं, महापुरुष हैं, सन्त-महात्मा हैं तथा भगवानके भक्त हैं- इन लोगोंका जो अनादर करते हैं, तिरस्कार और अपमान करते हैं, इनका जो बुरा करना चाहते हैं उनका यह बड़ा भारी कुकर्म होता हैं। इससे आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, संसारके भोग, सारे मंगल-कल्याण, इस लोकका कल्याण, परलोकका कल्याण और मुक्ति नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंका कभी अनादर न करें।

६) कृष्ण की गोकुल में लीलायें

१) गोकुल में नन्द महोत्सव- पूरे गोकुलवासी निद्रामग्न हो गये, गलियाँ सुनी हो गईं। यशोदा की आँखों में भी नींद भर गई। यशोदा की ननदें, नन्दा और सुनन्दा भी निद्रायुक्त हो गई। रानी रोहिणी भी सो गयी। कोई भी नहीं जान पाया कि वसुदेव कब नन्दमहल में आये और सन्तान बदलकर चले गये। प्रात:काल ब्रह्म मुहूर्त में मांगलिक बाजों को सुनकर सुनन्दा को चेतना हुई और उसीको पहले मालूम पड़ा कि भाभी ने प्रसव किया है और वह चिल्लाकर पागलों की तरह लाला भयो, लाला भयो काँसे की थाली बजाने लगी और दौड़कर अपने भैया के पास गोष्ठ में गयी। नन्दजी से बोली- वृद्ध अवस्था में आपके घर में सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई।

कहन चहति मुख आव न बचना। भूली सकल चातुरी-रचना।।

घर घर घूमत एक सुहानी, कहति, सुवन जायो नँदरानी ।।

जन्मे पुत्र यशोदा माई, नन्दबाबा घर गवें बधाई। दो लख गाय पुण्य नन्द कीनी। अन्न वस्त्र बहुत दक्षिणा दीनी ।।

जाइ सुनन्दा कह्यो- जन्यौ भाभीने लाला। छिनमहँ फैली बात सुनत दौरी ब्रजबाला ।।

आवें गावत गीत सब, अति उमङ्गमहँ गोपगन। पकरि नचावें नन्दकूँ, डगमग डगमग होहि तन ।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, नन्द बाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्र उत्पन्न होने की बात सुनकर उनका हृदय आनन्द से भर गया। यमुना की पावन धारा में बृजेश्वर श्री नन्दरायने सभी सेवक और साथियों के साथ स्नान किया।

उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणों को धारण किया। फिर वैदिक विद्वानों को बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार करवाया। साथ ही देवों और पितरों की पूजा भी करवाई। शाण्डिल्य मुनि को बुलाकर नांदीमुख श्राद्ध कराया। नन्दजी की बड़ी भाभी प्रभावती जिसे तुंगी के नाम से पुकारते हैं। यशोदानन्द को गोदीमें लेकर प्रसूति कक्ष के द्वार पर आई और नन्दजी को दर्शन कराया।

इहि ब्रज घर-घर आजु बधाई। नन्द सदन नभ चन्द उदै भयौ, मिट्यौ ताप सब जग को माई।

सुकृत पुंज सुत जसुमति जायो, वरनौ कहा बड़ भाग निकाई।

प्रकुलित गोपी गोप कुमुदगन, त्रिभुवन सुजस चाँदनी छाई।

दान मान गुरू द्विज पद वन्दे, ब्रजपति सबकी आस पुजाई।

बलि हरि-रूप सकल सुख मन्दिर, वृन्दावन हित कुंवर कन्हाई।

सुखद समाचार को सुनकर बृजपति नन्द प्रसन्नता से फूले नहीं समाये और ऊँचे हाथ कर-करके गायन करते हुए नृत्य करने लगे।

शाण्डिल्य मुनि ने विधिविधान से यशोदा नन्दन का जातकर्म संस्कार करवाया। नन्दजी इतने अधिक आनिन्दत हो रहे थे उनको किसी प्रकार की सुध-बूध नहीं थी। बड़े भाई उपनन्द ने नन्दराय को पकड़कर पूजाकर्म सम्पन्न करवाया। कुलगुरु महर्षि शाण्डिल्य ने नन्दलाला के कान में मन्त्र का उच्चारण किया और जातकर्म संस्कार संपन्न करवाए फिर तुंगी ताई ने नन्दतनय को माता यशोदा की गोद में ले लिया।

अब ब्राह्मण आ गये हैं। व्रजेश स्नान करके, अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। मातृकापूजन, नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको साथ लिये हुए वे सूतिकागारमें आते हैं। विधिवत् जातकर्म-संस्कार आरम्भ होता है। यह नित्य अजन्माका जातकर्म है। जिनके एक-एक रोमकूपमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणमें सृजनका कार्य वहन करते हैं, आज उन्हींका ब्रह्ममुखनि:सृत वेदमन्त्रोंसे संस्कार हो रहा है।

गोकुल में श्रीहरि प्रकट हुए। अब जब से गोप ब्रज में आये ब्रज की छटा शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। यह ब्रजभूमि प्राकृतिक थल नहीं है। यह दिव्य गोलोक धाम की ही दिव्यलीला है। जब प्रभुने अवतार धारण किया तब प्रभु ने अपने धामको भी धरती पर भेज दिया उसी प्रकार ब्रज के नर नारी भी प्राकृत नर नारी नहीं थे वे सब प्रभु के लीला अधिकारी थे।

प्रभुके धाम में जो उनके कुन्ज वितान की रक्षा करते हैं वही ब्रज में वृषभानु रूप से शोभायमान हुए। गोलोक धाम में जो गौओं के रक्षक हैं वहीं ब्रजधाम में उपनन्द हुए। परमात्मा के द्वार के रक्षक ब्रज में आकर अधीश्वर नन्द हुए। वही पूर्वजन्म में वसुद्रोण थे वे महान तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान पाकर ब्रजमें नन्द हुये। धरादेवी यशोदा हुई। आज उन ब्रज के स्वजनों का जप, तप, ज्ञान धर्म आदि सभी पवित्राबिधान सफल हुआ। आज उनका जग में जन्म लेना सफल हो गया।

प्रभु देवताओं का उद्धार करनेवाले, राक्षसों का विनाश करनेवाले, अंतर्यामी और तीनों लोकों के नाथ हैं। श्री वसुदेवजी उन्हें अपने शीश पर लेकर नंद बाबा के घर पहुंचा आए। यशोदाजी जागीं तो उन्होंने पुत्र का मुख देखा। वे रोमांचित हो गईं। हृदय में आनंद नहीं समा रहा था। हर्षातिरेक से उनका गला रुंध गया। उनसे बोला नहीं जाता था। यशोदा जितना ही बालक को निहारती हैं, उतनी ही आनन्द विभोर होकर आत्म-विस्मृत-सी बन जाती हैं।

इतने दिनों की प्रतीक्षा, इतनी मनौतियाँ, इतनी प्राणोंकी पुकार। यह व्रजराज कुमार अब सदा सबको सम्हालेगा और सब सोनेवालोंको जगाया करेगा। योगमाया अनुजा बनकर आयी और चली भी गयी, उसकी शक्ति अपार है।

नन्दबाबा के दो बहनें हैं नन्दा और सुनंदा। नन्दा और सुनंदा को जब पता चला नन्दरानी को लाला हो गयो प्रसन्न होकर उन्होंने नंदजी को बुलाया और कहा कि हे प्रिय, आइए, देवता हम पर प्रसन्न हुए हैं। हमारे पुत्र हुआ है। आप आकर बेटे का मुख देखिए। नंदजी दौड़कर गए। उन्होंने पुत्र का मुख देखा। जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

व्रजराज आकर प्रसूतिगृहके सामने आँगनमें खड़े हो जाते हैं। प्राणोंकी उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्रका मुख देखूँगा, पर देख नहीं पाते। प्रसूतिगृहके कपाट खुले हैं; पर उपनन्द-सनन्दका परिवार, पड़ोसकी गोपियोंकी भीड़ कपाटकी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्त:पुरमें आते तो गोपियाँ घूँघटकी ओट कर लेतीं, किनारे हो जातीं, परंतु आज तो आह्लादवश वे जानतक नहीं पायीं कि व्रजेश्वर खड़े हैं, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नंदरायके प्राण व्याकुल हो उठे। तत्क्षण ही उन दर्शक गोपियोंके अन्तरालसे कुछ क्षणके लिये एक क्षुद्र छिद्र बन गया, व्रजेशको अपने पुत्रकी एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो गयी। अहा, वही है, वही है। सचमुच वही शिशु आया है। इतनेमें छिद्रके सामने एक गोपी आ गयी, छिद्र बंद हो गया, व्रजराजकी आँखें भी बंद हो गयीं। पर आश्चर्य है, अब मानो कोई व्यवधान नहीं। गोपेश स्पष्ट देख पा रहे हैं, प्रसूति-पर्यमपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है, मानो अनन्तजन्मर्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरू-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हो।

नन्द यशोदा जायौ ललना, सुन-सुन कर सब धायीं। पुत्र जन्म सुनकर नन्द के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। बहुत काल से चली आ रही अभिलाषा पूरी हुई। नन्दने ब्राह्मणों को बुलाकर श्राद्ध आदि मंगलकाज किये और जातकर्म किया। ऐसा सुन्दर शिशु न कहीं सुना गया, न कहीं देखा गया।

उपनन्द नन्द के बड़े भाई थे वे समय के अनुसार सारा कार्य करने के लिए पवित्र व्यवस्था कर रहे थे उन्होंने सारे ब्रज में यह आनन्द देनेवाली घोषणा करवाई और उसके द्वारा सभी गोपों और गोपियों को बुलाया।

गोकुल की गली गली में लक्ष्मी चारों ओर दौड़ती फिरती थी और तीनों लोकों की सम्पत्ति आनन्द में मगन होकर लुटा रही थीं। ब्राह्मणों को उपनन्द ने बुलाया और आदर के साथ उन्हें आसन पर बैठाया। फिर विधिपूर्वक मातृका पूजन किया और नान्दीमुख श्राद्ध करने का आनन्द लिया। बहुत प्रकार के ज्योतिषी बार बार आकर नन्द पुत्र के ग्रहों का फल कह कह कर अपने आपको धन्य मान रहे थे। जो अनन्त नामों और अनंग गुणोंवाला है उसको अल्पजीव एक नाम ओम बता रहा है। इस प्रकार सब वैदिक क्रियायें कीं और ब्रह्म को भी नंद के पुत्र रुप में पहिचाना।

आजु अजन्मा को भयो, जात कर्म-संस्कार। जो बिधि को बिधि, तासु कह, बिधि-विधान, बलिहार।।

इस प्रकार आज जनम धारण न करनेवाले ब्रह्मा का जात कर्म संस्कार हुआ। जो विधाता का भी विधान बनानेवाला है उस पूर्ण परात्पर ब्रह्म का विधि का लेख अर्थात भाग्य फल ज्योतिषी बता रहे हैं। ऐसी उनकी लीला पर बलिहार है।

नन्द यशोदा की हालत ऐसी हो रही थी जैसे अमावस्या की रात्रि में गहरे पथ में भूले हुए किसी पथिक को आकाश में

पूनम का चाँद दिख जाए औंर उसका पथ प्रकाशित हो जायें। प्यास से कंठ तक आये हुए प्राण यदि किसी मरूस्थल यात्री को समीप में ही लबालब पानी से भरा सरोवर दिख जायं तो उसके हर्ष की पराकाष्ठा की कल्पना नहीं कर सकते। किसी शेर की माँद में भ्रमवश भटके हुए मनुष्य के प्राणों की रक्षा हो जायें। ठीक समय पर व्याघ्र को लकवा हो जायं और वे अपने स्थान पर जड़ बन जायें। तो उस नवजीवन प्राप्त व्यक्ति की क्या दशा होती होगी। जो जन्म से ही दरिद्र है, अन्न के दानों को भी तरसता है। अकस्मात उसे स्वर्ण सिंहासन मिल जायें तो उसके भाग्योदय के बारे में क्या कहेंगे। बस ऐसी ही स्थिति थी गोकुल के नन्द और यशोदा की। नन्द वृद्ध हो चुके थे। पचासी वर्ष की अवस्था पार कर गयी और यशोदा भी प्रौढ़ अवस्था में थी। जैसे किसी सूख गई शाख पर कोंपल के फूटने की आशा व्यर्थ है उसीप्रकार नंद यशोदा सन्तान प्राप्ति की आशा को निष्फल मान चुके थे और उन्होंने भाग्य से समझौता कर लिया। सन्तान के रूप में यशोदा की गोद में पुत्र आ गया। और पुत्र भी ऐसा कि उसके सौन्दर्य पर सौ -सौ चन्द्रमाओंकी शोभा। नीलमणि की कांति को भी पराभव करनेवाला यशोदा पुत्र पूरे गाँव का ही नहीं आस-पास और दूर-दराज के लोगों का आकर्षण बन चुका। उसकी एक झलक पाने के लिये सभी लालायित हो उठे।

यशोदा माता ने पहले ही वर मांग लिया था कि वे भगवान को दूध पिलाएंगी।

सारे ब्रजमंडल में समाचार बिजली की तरह फैल गया वृद्धवस्था में ब्रजेश्वर के घर में युवराज के रूप में अति सुन्दर नन्हा सा बालक प्रगट हो गया है।

नाल काटनेवाली दाई कहती है कि हे यशोदा, मैं नाल नहीं काटने दूंगी। मैं तो आपके गले का मणि जड़ा हुआ हार लूंगी। अन्य दाइयों के बहुत से ग्वाले हैं, मेरे पास तो केवल एक आपका ही घर है। आज नंदनंदन को देखकर मेरा जन्म-भर का दु:ख मिट गया है। मैं इस शुभ दिन को देखने की आशा बहुत दिनों से लगाए हुए थी। इस प्रकार अपना नेग (पुरस्कार) लेने के लिए दाई झगड़ा कर रही थी, तब मन में प्रसन्न होकर यशोदाजी ने अपने गले का हार उतारकर उसे दे दिया। जिन भगवान (विष्णु) की नाल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और जो समस्त विश्व के आधार हैं, वही प्रभु पृथ्वी तल के बोझ को मिटाने के लिए गोकुल में प्रकट हुए हैं।

सभीने नन्दजी को पुत्रोत्सव मनाने के लिए बाध्य किया। वृद्धावस्था में सन्तान प्राप्त होनेपर संतान के जन्मोत्सव के लिये जो कुछ किया जाए वह थोड़ा ही है। बाबा नन्द पूरे गोकुल के प्रधान थे। कंस मथुरा की गद्दी का राजा होगा पर सम्पूर्ण गोकुल में नन्द गोप का ही सिक्का चलता था। अपने प्रभुत्व से ही नहीं सद्व्यवहार से उन्होंने सबका मन जीत लिया। नन्द के साथ-साथ यशोदाके मधुर स्वभाव ने भी सभी गोकुलवासियोंको उनका अनुचर ही बना लिया। नन्दबाबा और यशोदा की खुशी सारे गाववालों की ही खुशी थी। अब नन्दबाबाका वंश समाप्त नहीं हो सकता।

यद्यपि नन्द बाबा ८५ वर्ष के बूढ़े हो गये थे। वे अलंकार नहीं धारण करते थे किन्तु आज पुत्र के उत्पन्न होने से इतने प्रसन्न थे कि स्वयं अपने-आप को खूब अलंकृत किया। वे दिल खोलकर आज दान देने बैठे थे। उन्होंने दो लाख ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर प्रत्येक को एक-एक गाय और सात-सात तिलों के पहाड़ बनाकर दान दिया। गायें वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित थीं। तिलों के पहाड़ रत्नों और रक्त वस्त्रों से आच्छादित थे। नन्दबाबा अनेकानेक प्रकार के दान देते थे। बरसों से बन्द पड़े खजाने उन्होंने खुलवा दिये जिसको जो चाहिए ले जाओ। वेदक, देवक, ब्राह्मण को बुलाकर जातकर्म संस्कार करवाया। बालक का जब जन्म होता है तो हम सब भी यह संस्कार करवाते हैं। मां के सूतक से मुक्त होने के लिए दान-दक्षिणा देकर यह जातकर्म संस्कार करवाया जाता है। नंदरायजी ने तो गायों का दान दिया। हजारों-लाखों गायें दान

में दीं। सींग से लेकर पूंछ तक स्वर्ण से संगीन करके खूब सजाकर विप्रों को दान कर दी।

इधर व्रजेश्वर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे रहे हैं। व्रजराजने उस दिन बीस लाख गायें ब्राह्मणोंको दीं। गायोंके सींग सुवर्णपत्रोंसे, खुर रजतपत्रोंसे मढ़े हैं; प्रत्येकके कण्ठ-देशमें बहुमूल्य मणियोंकी माला है। सभी नवप्रसूता हैं। व्रजेशकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात पर्वत निर्मित हुए, उन पर्वतोंपर सघन पत्रावलीकी तरह रत्न बिछा दिये गये, फिर पर्वतोंको सुनहले वस्त्रोंसे सर्वत्र ढक दिया गया। ये पर्वत भी ब्राह्मणोंके लिये ही बने थे, उन्हें दान कर दिया गया। व्रजराज जिस समय इस पर्वतदानका संकल्प पढ़ने लगे, उस समय आश्चर्यमें भरे हुए ब्राह्मण कुछ क्षण अवाक् रह गये।

काहू हीरा लाल मणि काहू मोतिन माल। काहू भूषण वसन दे कीन्ह्यो सभी निहाल॥
ज्यों त्यों भीतर गये द्विजनि सामान मँगाये। जात करम अरु देव पितर पूजन करवाये॥
ब्रज सुख-सागर शान्त सम, उमड़ि हरष प्रकटित करें। उदित भये ब्रजचन्द्र हरि, रत्ननितें तटकूँ भरें॥

शुकदेव बोले- राजन्, पुत्र उत्पन्न होने पर नन्दजी ने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराके विधिवत् सुत का जात-कर्म संस्कार कराया तथा देवता और पितरों का पूजन कराया।

प्रेम पुलकि ब्रजराज आज सर्वस्व लुटावें। जो माँगे जो वस्तु ताहि सो तुरत दिवावें॥

शुकदेव बोले- राजन्, महामना नन्दजी गोपों को वस्त्र, अलंकार तथा गौओं को देते तथा सूत, मागध बन्दी और दूसरे भी विद्योपजीवी जो वहाँ आये थे सबको उनकी इच्छित वस्तुएँ देकर संतुष्ट करते। यह सब इतना दान आदि उन्होंने भगवान विष्णु की प्रसन्नता के लिये तथा अपने पुत्र के अभ्युदय के लिये किया। नन्द तो यह भी नहीं जानते थे कौन दे रहा हैं, किसे दे रहा है, क्या दे रहा है।

संस्कार दो प्रकार के होते हैं- दोषापनयन संस्कार और गुणाधान संस्कार। साबुन लगाकर मुंह पर से मैल हटाना दोषापनयन संस्कार और पाउडर आदि लगाकर मुँह को चमकाना गुणाधान संस्कार है। इसी प्रकार जातकर्म संस्कार के द्वारा माता के गर्भ-वास के दोषों को दूर कर बालक में गुणों का आधान किया जाता है। इससे बालक का तेज बढ़ता है।

किसी प्रकार यह जातकर्म-नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न हुआ। गोप-गोपियोंने नृत्य करना, गायन और परस्पर नवनीत दधि-दुग्ध दरिद्रा मिश्रित जलका निक्षेप प्रारम्भ किया।

नन्द बाबा का आनन्द आज अनन्त बन गया था। उन्होंने हृदय खोलकर खूब दान किया। सारा व्रज-मण्डल आज महोत्सवमय बन गया था। ब्राह्मण, आशीर्वचन बोल रहे थे।

शुकदेव बोले- राजन् श्रीनन्दजी के पुत्रोत्सव के समय ब्राह्मण गए तथा सूत, मागध और बन्दीजन सुन्दर मंगल युक्त वचन बोलने लगे। गायक लोग गाने लगे तथा भेरी दुन्दुभि आदि बाजे स्वयं बार-बार बजने लगे। परमानन्द के उल्लास में भरकर सभी लोग कहने लगे परमदेव की करुणा से हम सबके भाग्य का विकास हुआ। सबके हृदय में बड़ी लालसा थी कि ब्रजपति नन्दके कोई पुत्र नहीं है उनके सन्तान जन्म लें।

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावें। नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावें॥
धुनि भेरीकी सुनी सुनत सब जन हरषाये। जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥

सूत, मागध और बन्दी-जन स्तुति कर रहे थे। सब जगह महोत्सव ही महोत्सव मनाया जा रहा था।

शहनाईवाले सदल-बल आ पहुँचे हैं। नगारेवालोंने पहला डंका लगाया। दूसरे ही क्षण शहनाईवालोंने भी मधुरातिमधुर रागिनीकी तान छेड़ दी। नन्दप्रासादकी मणिमय भित्ति, आच्छादन (छत) और स्तम्भोंको निनादित करती हुई वह सुरीली

ध्वनि समस्त व्रजपुरमें फैलने लगी। यद्यपि इससे पहले भी व्रजमें अनेक बार शहनाई बजी थी, तथापि आजकी तान तो आज ही बजी है।

बृज की गोप और गोपियों की वर्षों से की जा रही विनय दयानिधि परमात्मा ने सुन ली। आबाल वृद्ध सजधज कर हाथोंमे भेंट लिये नन्द महल की ओर चल दिये। बृजवासियों के घर किसी भी प्रसन्नता के अवसर पर यशोदा भरपूर भेंट भेजती रहती थीं। बृजवासियों को उससे उऋण होने का अब तक कोई अवसर ही नहीं था। आज इस परम प्रसन्नता के अवसर पर सब लोग जी भर कर भेंट लायें। इस प्रसन्नता के कारण नन्दराज के सहित पाँचों भाई नाचने लगे। बालक के प्रगट होने का ठीक समय भी किसी को मालूम नहीं था क्योंकि सभी निद्रा अधीन थे।

यशुदा रानी सो गई, सोते जनमा बाल। अद्‌भुत लीला किनि भईं, कहो पूज्य सब हाल।।

मुखरा धात्री भी आश्चर्य में थी कि यशोदा रानी प्रसव के समय कैसे सो गई। बालक का रूदन सुनकर रोहिणी का एक वर्ष का पुत्र जो अब तक गम्भीर था यशोदा जी के पलंग के पास आकर किलकारियाँ मारने लगा। पिछले एक साल से मौन रहनेवाला दाऊ अब बोलने लगा। किलकारियां लेते हुए हँसना, उठना, चलना और राग अलापना प्रारम्भ किया। महर्षि शाण्डिल्य ने जन्मकुंडली बनायी। बालक के बुध, शनि, मंगल, चन्द्र और गुरु ये पाँचों ग्रह उच्च के हैं। शुक्र स्वग्रही है और शनि के साथ शत्रु घर में बैठा है, जिसके फलस्वरूप यह बालक शत्रुओं का संहारक होगा। तृतीय भाव में विराजमान राहु सर्व विघ्नों को समाप्त करनेवाला होगा। नवम भाव में केतु के होने से यह बालक अपने प्रियजनों को सहज में मुक्ति प्रदान करनेवाला होगा। सुख भाव में सूर्य के स्वग्रही होने से यह बालक सुन्दरता, ऐश्वर्य और सुयश का अनन्त धाम होगा और अपने सुहृदजनों का सब प्रकार से कल्याण करनेवाला होगा।

महर्षि गर्गने पीछे भगवान वासुदेवकी जन्मपत्रिका बनायी थी। उनका कहना था- भाद्रपद कृष्ण अष्टमीकी अर्धरात्रि थी। इस रात्रिका नाम जयन्ती है। विजय नामका मुहूर्त था। रोहिणी नक्षत्र का तृतीय चरण प्रारम्भ हुआ था। बुधवासर था और हर्षण योग था। वृष लग्न, लग्नमें चन्द्र और केतु, चतुर्थमें सिंहका सूर्य, पञ्चममें कन्याका बुध, षष्ठममें तुलापर शुक्र और शनि, सप्तम, वृश्चिकका राहु, नवम् मकरका मंगल और एकादशमें मीनका गुरु था।

अर्धरात्रिका वह धन्यकाल-धरापर घोर अन्धकारको विदीर्ण करता प्राचीमें क्षितिजसे इन्दुकी अमृतमयी किरणें ऊपर उठीं और उसी समय, समकाल ही, कंसके कारागारके उस कक्षमें देवी देवकीके सम्मुख वह दिव्य ज्योति प्रकट हुई जिसने त्रिभुवनमें छाये तमसावरणको विच्छिन्न कर दिया। गगनका चन्द्र कलंकित है, अष्टमीको आधा ही रहता है। घटता-बढ़ता है। लेकिन देवी देवकी के सम्मुख जो कृष्ण प्रकट हुआ, वह नित्यपूर्ण पुरुष, उसका स्मरण निखिल कलंक कल्मषको ध्वस्त कर देता है।

महामुनि गर्गाचार्यजीने जब अवसर आनेपर नामकरण किया तो कहा था- ये भगवान वासुदेव मुकुन्द हैं। इनका सहज गुण है अनन्तकालसे अविद्यान्धकार में भटकते जीवको मुक्तिदान करना।

व्रज के सभी घरों के द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़-बुहार दिये गये। उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। उन्हें फूलों, मालाओं, वन्दनवारों और ध्वजापताकाओं से खूब अलंकृत किया गया। गायों, बैलों और बछड़ों के शरीर पर हर्दी-तेल का लेप कर दिया गया। सारे गोपों ने बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और पगड़ियों को धारण कर अपने को खूब सजाया फिर अपने हाथों में भेंट की विविध वस्तुएँ लिये हुए वे नन्द बाबा के दरवाजे पर आये। सभी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार भेंट लेकर पहुँचे। मथुरा नगर में उनके दूध, दही और घृत की इतनी माँग थी कि कुछेक के पास तो सौ-सौ गायें और असंख्य

सेवक थे। गोचारण और गोपालन का उनका प्रमुख कर्म अवश्य था। उनके क्रम में उन्हें धन-धान्य से सम्पन्न गृहस्थ बना दिया। गो-दुग्ध और दधि-घृत आदि के विनियम से उनके घर स्वर्ण, हीरे जवाहरात और विविध रत्नों से भरे पड़े थे। नन्द की समृद्धि तो पराकाष्ठा पर थी। गोपोंके प्रमुख होनेके कारण सभी घरोंसे उन्हें पर्याप्त कर प्राप्ति होती थी।

सभी अपने यहाँ से मणि-माणिक्य, वैदूर्य, पुखराज और हीरों-पन्नों के साथ-साथ प्रचुर अन्न और दुग्ध, दधि, घृत की भी भेंट लेकर आए थे। बहुमूल्य रत्नों के साथ गोधन से प्राप्त वस्तुओं अर्थात् दुग्ध दधि, मक्खन, घृत आदि की भी भेंट लाना गोकुलवासियों की परम्परा थी - उनकी संस्कृति। मणि-माणिक्य तो रख भी लें पर इतनी मात्रा में दुग्ध और दधि, मक्खन का क्या हो? उस दिन सचमुच नन्द बाबा के यहाँ दुग्ध और दधि की नदियाँ बह चली और आँगन से निकली ये नदियाँ गोकुल की गलियों का भी चक्कर लगाने लगीं। मक्खन और घी भी कहीं अँटाए नहीं अँटते थे और उनका भी अम्बार लग गया नन्द के प्रशस्त प्रांगण में।

यशोदा के घर में लाला आया है- यह समाचार सुनते ही गोपियों ने अपने को भरपूर सजाया। वे भेंट की सामग्री लेकर जल्दी-जल्दी यशोदा जी के पास चलीं।

इत गोपिनि सम्वाद सुन्यो सुत जसुमति जायो। रोम रोममहँ हरष सुनत सबईकें छायो।।
मलि मलि माखन मुखन से ब्रज-ग्वाला हरषाहिं। दधि गोरस के फाग सों, भई कीच ब्रज माहिं।।

गोपियों का प्रत्येक अंग कृष्ण मिलन के लिये व्याकुल हो रहा था, आन्दोलित हो रहा था। मानो उनकी आँखें कह रही हों- हमारे जैसा भाग्यशाली कोई नहीं है। हमें ही कृष्ण-दर्शन का आनन्द मिलेगा। हाथों ने कहा- हम तो प्रभु को भेंट देंगे अत: सर्वाधिक भाग्यशाली हम हैं। कानों ने कहा सबसे बड़े भाग्यशाली हम हैं, क्योंकि सबसे पहले हमने ही लाला के जन्म का समाचार सुना है। आगे भी हम ही कन्हैया का वंशी-वादन भी सुनेंगे। इस पर हृदय ने कहा- जबतक मैं पिघलता नहीं तब तक आनन्द नहीं आता है अत: हमारा ही भाग्य सबसे तेज है। पैरों ने कहा- जन्म-जन्मान्तरों से हम यौवन-सुख और धन-सम्पत्ति के पीछे भागते फिरे हैं, किन्तु आज प्रभु-दर्शन के लिये दौड़ पड़े हैं। मेरे दौड़ने में ही सब की चरितार्थता है। इसलिये मेरा भाग्य सबसे विशाल है। इस प्रकार सबको आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हो रही है।

नन्द बोले- यह आप सबके आशीर्वादोंका पुण्य फल है। ऐसा जीव समूह में मृतक के समान कौन सा ऐसा अघपीन होगा जिसे प्रभु दर्शन के लिए लालसा न हो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरपति, दिकपाल, अनल, अनिल, सूर्य, चन्द्र, बसु, काल, वरुण, कुबेर, रुद्रगण, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू, केतु आदि नाना प्रकार के देवता अपने अपने वाहन पर अपनी अपनी शक्ति के साथ ईश्वर का गुणगान करते हुए वहाँ आए। व्यास, हंस, नारद, सनकादी, कपिल, पुलस्य, दत्त, शुक आदि भी बहुत से परमार्थ वादी अल्हाद में भरकर प्रभु कृष्ण के दरस के लिए वहाँ आए। बासुकि, कर्कोटक, शेष, ऐरावत, पिंगल आदि नागेश एवं नाग गण प्रभु दर्शन के लिए वहाँ आए प्रभु को देखकर सभी ने परम सुख को प्राप्त किया। सुर, मुनि, मनुष्य, नाग सभी शोक रहित हो गए तीनों लोक में जय जय की ध्वनि व्याप्त हो गई। परम ब्रह्म परिपूर्ण अभिराम श्याम के दर्शन से सभी मग्न हो रहे थे।

अपने हाथों में भेंट की विविध वस्तुएँ लिये हुए वे नन्द बाबा के दरवाजे पर आये। सभी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार भेंट लेकर पहुँचे।

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रजमण्डल के समस्त गोपगण अँगरखे पगड़ियों तथा अन्यान्य वस्त्रारणों से विभूषित हेाकर हाथ में भेंट की सामग्रियों को लिये हुए नन्दजी के द्वार पर जाने लगे।

व्रजराज, कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिके अपनाये।
सुनिके सुत जन्म उमङ्ग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये।।
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।
ब्रजमहँ विहरें घुँघची पहिरें, वर देहु जिही तनु धूरि लगाये।।
चाँदीके खुर करो सींग सोनेतें मढ़िकें। सुन्दर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितें।।

पंख जो होते मैं उड़ जाती, नंद बाबा के द्वार। उमड़-उमड़ मेरा जिंयरा आवे, बहे दूध की धार।।
लाल मेरो रोवत होयगो के भूखो सोवत होयगो। लाल मेरा रोवत...

नन्दके द्वारपर अपरिमित भीड़ हुई। प्रेम में उमड़कर नन्दराज ने सभी का सत्कार किया। ऊँच-नीच, बड़ा-छोटा सभी को दान सन्मान से तुष्ट किया। ब्रज के घर-घर में प्रत्येक गलियों में तथा सभी जगह कण-कण में ऋद्धि सिद्धि लोट रही थी।

देन बधाई ब्रज की वनिता, बाल वृद्ध सब धाया। मन वांछित सबकी प्रिय वस्तू, देत नन्द हर्षाया।
कृष्ण चरण रज माँगन को अब, कार्ष्णि नंद घर आया।।
चले जात हैं नर नारी सब, मोद न हृदय समाया। देन बधाई यशुमति माई, गोकुल सब उठ धाया।।
गोप गोपिका हर्ष कर, करें नृत्य कल गान। बाजे बजे अनेक विधि, को कवि करे बखान।।

यशोदा के घर और आँगन में भीड़ हो गई और बधाइयों के गान में सब मग्न होने लगे। गोपियाँ बालक की छबि रस का पान करके बावली बनी उसकी छवि पर बलि बलि जाती थीं।

भई भीर यशुमति गृह अँगना। होत बधाइन-गायन मगना।।
ग्वालिनि शिशु छबि-रस-मतवारी। निरखि छबिन उनवारी वारी।।

बालक की अनोखी शोभा देखकर वे कहती थी कि ऐसा बालक कभी भी सुनने में नहीं आया और जैसा इसका रंग है तथा जैसा इसके रूप का आनन्द है तैसा तीनों लोकों में कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। जो भी देखता है वह पागल बन जाता है और यह कहता फिरता है कि धन्य हैं नन्द और धन्य हैं यशोदा। शिशु के प्रगट होने के साथ ही मानो सुन्दरता का समूह प्रगट हो गया हो और ब्रज मण्डल की सुन्दरता बड़ी ही भव्य दिखाई पड़ने लगी। आनन्द रस में डूबी हुई एक ग्वालिनी उठी और वह अत्यन्त भोलेपन के साथ गीत गाकर नृत्य करने लगी। सब गोपियाँ उसके साथ मिलकर नाचने गाने लगीं और इस प्रकार अपने मन का आनन्दभाव प्रगट करने लगीं।

झूमक नाच नचतिँ मिलि ग्वालिनि। मोहतिँ मन केतिक गज-चालिनी।।
करहल नाच ग्वाल मिलि नाचे। जो न नच्यो, अस कोउ न बाँचे।

ग्वालिनें मिलकर झूमक नाच नाच रहीं थीं और बहुत सी अपनी हाथी की सी मतवाली चाल से मन को मोहती थीं। ग्वाले मिल कर करहल नाच नच रहे थे और ऐसा कोई भी नहीं बचा जो कि नचा न हो।

आज तो नंदजी के घर बधाई बज रही है। गोपी और ग्वाल गण रुक-रुककर बड़ी प्रसन्नता से घूम रहे हैं। गायें भी घरों में प्रसन्नता से घूम रही हैं। गोपियां अंग-अंग में आनंदित हैं। ब्रज के वृक्ष भी फूलों और फलों से हरे-भरे है। चारण लोग द्वार पर प्रसन्न दिख रहे हैं। हर द्वार पर फूलों की बंदनवारें सजने लगी हैं। सारे यदुवंशी पूर्णतया आनंदित हैं। उनके पूर्व जन्म के पुण्य अंकुरित हो-होकर फूल उठे हैं। यमुना का जल भी आनंद से उमड़ पड़ रहा है। कुंज-कुंज प्रफुल्लित है और

काले-काले भारी-भारी बादलों के झुंड गरज रहे हैं। कामदेव और रति आनंद से नृत्य कर रहे हैं। बलराजजी के मन की कामनाएं फूल रही हैं। ब्राह्मण, संत और वेद आनंदित हैं, उनका कंस का कष्ट भी मिट गया है। घर के भीतर और बाहर बधाई गाई जा रही है।

कंचन थार सँवार के तामे दीपक बारि। माखन प्रभु की आरती लै आई ब्रजनारि।।
देहिं बधाई नन्द को पड़ैं यशोदा पाँव। कहैं पियारे लाल को नेक हमैं दिखलाव।।
बजत बधाइयां रे बाबा न्द जी के द्वार। भयौ रस सौहना रे बाबा नन्दजी के द्वार।।

यशोदा प्रमुदित हैं, क्योंकि उन्होंने भगवान को जन्म दिया है। उदार नंदजी प्रसन्न हैं, क्योंकि उनके घर का भाग्य फल रहा है।

नंदजी के अँगना में, बज रही आज बधाई। सौ-सौ बार बधाई सखियो, लाखों बार बधाई।।
चमत्कार सा हो गयो सखियो, हो गई बात निराली। रात ही रात में नंद बाबा की, दाढ़ी हो गई काली।।
नंद के आनंद भयो, जय कन्हैया लाल की।
यशोदा जायो ललना मैं वेदन में सुनि आई। हाँ यशोदा।।
मैं वेदन में सुनि आयी पुराणन में सुनि आयी।। हाँ यशोदा।।
री मैं गंगा पै सुनि आयी री मैं यमुना पै सुनि आयी। हाँ यशोदा।।
हैं यशोदा जायो ललना मैं वेदन में मुनि आयी।। हाँ यशोदा।।

गोपों से अधिक उल्लसित थीं गोपिकाएँ। छोटी-बड़ी-किशोरी, युवती- प्रौढ़ा सबके आकर्षण का केन्द्र बन आया था नन्द का अद्भुत लाला। नामकरण संस्कार तो अभी दूर पर, सबने अपने मन से अनेकानेक नाम दे रखे थे। किसी के लिए वह कन्हैया था तो किसी के लिए लाला, किसी के लिए नन्दलाल तो किसी के लिए गोपाल।

चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी। धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी।।
धनि-धन्य महरि कौ कोख, भाग-सुहाग भरी। जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी।।
थिरा थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी।।

गोपियां खूब नाच-गा रही थीं और जो उनके सामने आ जाता उसे भी नचाती थी। उससे भी गाना गवाती थीं। आनन्द में पागल गोपियाँ कन्हैया की जयकार कर रही थीं। पुरुष तो बाहर रह गये किन्तु गोपियाँ तो अन्दर पहुँच कर आनन्द से नाच रही थीं। पुरुष अहंकार, अभिमान का प्रतीक है और गोपियाँ दीनता का। जो गोपियों की भाँति विनम्र बनकर जाता है उसे ही ईश्वर के दरबार में प्रवेश मिलता है। अहंकारी का वहाँ प्रवेश दुर्लभ है। ब्रजेश नाच रहे हैं, उपनन्द नाच रहे हैं।

नन्द को आनन्द भयो, जय कन्हैया लाल की। लड़कन को हाथी घोड़ा, बुढ़वन को पालकी।
आज ब्रजराज जू कैं लाला को जन्म भयौ, छायौ उर मोद भयौ अति सुखदाई है।
नाचैं सुर किन्नरी और अप्सरा उर चाह भरी, बाजत मृदंग झांझ ढोल भी सवाई है।
बाल कृष्ण लाल को दर्शन कूँ पाय गाय, गीत शुभ दायी दिव्य अमित लुटाई है।
देखौं सखी आली, नैन कीजिए निहाली सखी, नन्दू जू के द्वार आज बजत बधाई है।
नन्द के आनन्द भये जय कन्हैया लाल की। हाथी दीने घोड़ा दीने और दीनी पालकी।
जवान को घोड़ा दीने बूढ़ों को पालकी। साल दिये दोसाला दिये वह भी नये मोल की।
पाट दिये पाटम्बर दिये वह भी सवा लाख की। बहली और बछेड़ा दिये वह भी नई हाल की।।

शुकदेव बोले- राजन्, श्रीकृष्ण के जन्म के उत्सव में समस्त ब्रजमण्डल के सम्पूर्ण घरों के द्वार, आँगन और भी भीतर के भागों को भली प्रकार झाड़ बुहारकर उनमें छिड़काव किया गया। फिर भाँति-भाँति की चित्र-विचित्र ध्वजा पताका तथा मालायें लटकायी गयीं, रंग-बिरंगे वस्त्रों और पत्तों की बन्दनवारें लगायी गयीं।

अति आनन्दित नन्द सबनिको स्वागत कीन्हों। जाने जो जो करी, याचना सो सब दीन्हों।।
बार बार ह्वै मुदित गीत लालाके गावें। गोप गान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें।।
नन्दलालके जन्मको, घर-घरमें उत्सव भयो। मानो ब्रज मण्डल सकल, मंगलमय ही बनि गयो।।

एक गोपी कह रही हैं कि आज शोभा के सागर का आर-पार नहीं है। आज यह शोभा नंद के महल में भरपूर छाई हुई है, फिर उसका जो उफान आया तो ब्रज की गलियों में घर-घर दही बेचते समय इस शोभा का विस्तार देखा। इसका वर्णन मैं अनेक प्रकार से बनाकर कहां तक करूं, इसको तो यदि शेषनाग भी अपने सहस्त्र मुख से कहें तो वे भी पूरा नहीं कह सकते। सबने ऐसा कहा कि यशोदा के गर्भ रूपी अथाह सागर से प्रभु रूपी इंद्र-नीलमणि उत्पन्न हुई है। सूरदास कहते हैं कि ब्रज की नारियों ने इस शोभा को हृदय से लगाकर ग्रहण कर लिया है।

मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ। तुम्हरैं पूत भयौ, हौं सुनि कै, अति आतुर उठि धायौ।।
बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि, दूरि-दूरि तै आए। इक पहिलैं ही आसा लागै, बहुत दिननि तैं छाए।।
ते पहिरे कंचनमनि-भूषन, नाना बसन अनूप। मोहिं मिले मारग में, मानौ जात कहूं के भूप।।
तुम तो परम उदार नंद जू, जो मांग्यौ सो दीन्हो। ऐसो और कौन त्रिभुवन में, तुम सरि साकौ कीन्हौ।।
कोटि देहु तौ रुचि नहिं मानौ, बिनु देखे नहिं जैहौं। नंदराई, सुनि विनती मेरी, तबहिं बिदा भल ह्वै हौं।।
दीजै मोहिं कृपा करि सोई, जो हौं आयौ मांगन। जसुमति-सुत अपनैं पाइनि चलि, खेलत आवै आंगन।।
जब हंसि कै मोहन कछु बोले, तिहिं सुनि कै घर जाऊँ। हौं तौ तेरे घर कौ ठाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊं।।

भाट नंद बाबा से कहता है कि हे नंदजी, मेरे मन में आनंद हुआ है, मैं गोवर्धन से आया हूँ। मैंने सुना है कि आपके पुत्र उत्पन्न हुआ है। ऐसा सुनकर मैं बड़ी उतावली से दौड़कर आया हूं। बंदीजन और भिखारी लोग इस बात को सुनकर दूर-दूर से आए हैं। कुछ लोग पहले ही आशा लगाए थे और बहुत दिनों से यहीं उपस्थित थे। सोने और मणि के गहने और अनेक प्रकार के सुंदर वस्त्र पहने हुए वे मुझे मार्ग में मिले। वे इस प्रकार जा रहे थे मानो कहीं के राजा हों। हे नंदजी, आप तो बड़े ही विशाल हृदयवाले हैं- जिसने जो मांगा, उसे वही दिया। आपकी समता करनेवाला तीनों लोकों में कौन है? आप मुझे करोड़ों दें तो भी मेरी रुचि उसमें नहीं हैं। मैं तो बिना बाल कृष्ण को देखे नहीं जाऊंगा। हे राजा नंद, आप मेरी विनती सुनिए। मैं ते तभी विदा लूंगा, जब आप मुझे वहीं दें, जो मैं मांगने आया हूं। यशोदाजी का पुत्र अपने पैरों से अपने आंगन में खेलता हुआ आए और वह कुछ हंसकर मुझसे बोले, उसकी वाणी सुनने के बाद ही मैं घर जाऊंगा। मैं तो आपके घर का भाट हूं। मेरा नाम सूरदास है। गोकुल में जन-जन और कण-कण आज आनन्दित हैं।

नन्द राय के द्वार पर, बन्दी मागध सूत। सह ब्रज वासि बधाइ दें, नन्द यशोदा पूत।।

नन्दराय के द्वार पर मागधगण, बन्दीजन और सूत आदि श्री नन्दराय एवं यशोदा के पुत्र के जन्मोत्सव की बधाइयाँ बृजवासियों सहित गाने लगे।

बहुत समय की प्रतीक्षा के बाद यह नन्द भवन श्री हरि की कृपा से प्रसन्नता और चाव से भर गया है। आपने लम्बे समय से श्री नारायण का भजन अर्चन किया और घर आये सन्तों की सेवा की इसीलिए परमात्मा ने आपकी मनोकामना पूर्ण

कक्षे। आपने ब्राह्मणों के चरणों की स्नेह पूर्वक पूजा की और उन्हें थाल भर भर कर उत्तम पदार्थों का भोजन कराया। आपने नित्य प्रति गायों का पूजन किया और समय समय पर देवताओं के उत्सव श्रद्धापूर्वक मनाये। तभी तो यह पुत्र प्राप्ति की शुभ घड़ी घर में आई है। आपने मान सम्मान एवं सत्कार के सहित बहुत दान किया है और लाला के शुभ आगमन पर बहुमूल्य वस्तुओं को लुटाया है। हे बाबा, हम बन्दीगण तुम्हारी उदारता की बड़ाई सुनकर तुम्हारे दरवाजे पर आए हैं।

नन्द महोत्सव के अवसर पर मागध लोगों ने बधाई देते हुए कहा, अरी बृजरानी यशोदा मैया, तुम्हारे द्वार पर हम मागधजन आकर तुम्हें पुत्र जन्म की ढेरों बधाइयां दे रहे हैं। हे मैया, तुम्हारा लाला युगों युगों तक बना रहे और उनके संगी साथी, ग्वाले व गईया भी चिरंजीवी हों। रानी रोहिणी नन्दन दाऊ भैया की हजारों वर्ष की आयु हो और बृजमण्डल के राजा परम उदार श्री नन्दराय जी की सभी बृजवासी प्रियजनों के ऊपर स्नेहमयी छत्र छाया सदा सदा के लिए बनी रहे। हे माता यशोदा, आपने ऐसे प्यारे प्यारे सुन्दर, आकर्षक पुत्र को जन्म दिया है, जिसके मुख कमल देखनेवालों को परम आनन्द की प्राप्ति होती है। हे मैया, आपने अपने ग्वाल पुत्र के रूप में बृजमण्डल को युवराज प्रदान किया है अत: आपको लाख लाख बधाइयाँ हों। हम आपके द्वार के मागध आशा व विश्वास लेकर आये हैं।

नन्द महल के द्वार पर सूत जनों ने श्री नन्दराय जी को गुहार करते हुए कहा, हे बृजराज जी। हम आपके कुल के सूत हैं, आपकी वंश परंपरा को गाकर सुनाते हैं। आपका पुत्र जिस वंश में उत्पन्न हुआ है उसे चन्द्रवंश कहते हैं। चन्द्रवंश के मुख्य मुख्य राजाओं के नाम आपको सुनाने जा रहे हैं। हजारों सिरवाले शेषनाग जी जिनके ऊपर अपने फणों का छत्र लगाये रहते हैं, उन नारायण भगवान को हमारा प्रणाम स्वीकार हो। श्री नारायण जी के नाभि कमल से विधाता ब्रह्मा जी प्रगट हुए, ब्रह्मा जी के पुत्र अत्रि ऋषि तथा अत्रि जी के यहाँ चन्द्र देव प्रगट हुए। चन्द्रमा के सुन्दर गुणवान पुत्र बुध तथा बुध के यहाँ पुरुरवा ने जन्म लिया। इसी चन्द्रवंश में आगे चलकर जन्हू, गाधि, विश्वामित्र यशस्वी राजा हुए। इसके पश्चात् इसी शशि कुल में धन्वन्तरि नहुष ययाति फिर यदु हुए। परम पुण्यात्मा यदु के नाम से चन्द्रवंश का नाम यदु वंश भी जाना जाने लगा। इसी कुल में अर्जुन, माधव, वृष्णि और भोज हुए। यदुवंश में आगे आहुक राजा के यहाँ देवक और उग्रसेन हुए। देवमीढ़ के यहाँ पर्जन्य नाम का पुत्र हुआ। उन्हीं पर्जन्य के सर्वगुण सम्पन्न पुत्र नन्दराय जी आप हुए।

आज नन्द की उदारता आकाश छू रही थी। उन्होंने गोपों को विविध वस्त्र, नाना प्रकार के अलंकार और गायें दी। सूत, मागध, बन्दी तथा विद्योपजीवी जनों को भी नन्द ने यथेच्छ दान-मान प्रदान किया।

रस-समुद्र डूबन लग्यो, लहरन लहरन माहिँ। गोधन बिच बैठ्यो मगन, तन की कछु सुधि नाहिँ।
त्रिभुवन पति बनि सुवन सुहायो। गोद-मोद, प्रमोद भरि आयो।।
पुलकित उन सुख अनुभव कीन्ह्यों, रस, मधु अमिय मूर कहँ चीन्ह्यों।।

जो तीनों लोकों का स्वामी है वही पुत्र बनकर शोभा दे रहा है यह तुम्हारी गोदी में आनन्द ही आनन्द भरता चला आया है। ऐसा करते हुए नन्द ने पुलकित होकर पुत्र के सुख का अनुभव किया और उन्होंने रस, मिठास और अमरता के मूल को पहिचाना। जो अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं और जिसका कभी जन्म नहीं होता उसने तुम्हारे स्नेह को पाने के लिए जन्म धारण किया है। जो अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी है जिसकी समस्त कामनायें पूर्ण हैं और जो अपनी इच्छानुसार काम करने में पूर्ण स्वतंत्र है। वही ब्रह्म तुम्हारे आँगन में खेलने आया है। उसे तुम्हारे प्रेम का बन्धन अच्छा लग रहा है। योगी लोग जिसे प्रयत्न करने पर भी ध्यान में नहीं ला पाते हैं ज्ञानी जिसके विषय में अपने मन को भरमाये रखते हैं।

सोइ तव आँगन खेलन आयो। वाहि प्रेम को बन्धन भायो।

योगिन ध्यान धरत नहि आवें। ज्ञानिन जिन निज मन भरमावें।।
ब्रजरानी के गोद सरोवर। प्रगट्यो नील कमल शिशु-सुन्दर।
ब्रह्मा, शिव, सनकादि, शुकादी। दरसन हित आवें बहु बादी।।
नैनन मूँदि धेनु पुलकानीं। गान बधाइन सुनि हरषानीं।।
नन्द मगन-मन महलन आयो। ग्वालन उन मिलि नाचि, नचायो।।

नेत्र बन्द करके गायें भी आनन्द से पुलकित हो रही हैं और बधाइयों का गान सुनकर हर्षित हो रही हैं। नन्द आनन्द मन से महलों में आये और ग्वालों ने उनको लिपटा कर नाचते हुए नचाया।

जाको नाम अमंगल हारी। सोइ आयो, मंगल बपु-धारी।।
जाको भावन गोद खिलायो। यशुमति अंक सोई शिशु आयो।।

जिसका नाम सभी अमंगलों का हरनेवाला है वही मंगल करनेवाली देह धारण करके यहाँ आया है। जिसे वे भाव जगत में अपनी गोदी में खिलाते रहे हैं यशोदा की गोद में वही शिशु खेल रहा हैं।

सब गोप-गोपांगनायें आनन्द लिये। कूद-कूदकर वृजराज कुमार का जन्मोत्सव मना रहे हैं। नन्द भवन के द्वार पर, नौबत बज रही है। आम्र पल्लवों की वन्दना से, कदली खम्भों एवं पत्तों से द्वार को आच्छादित कर दिया है। नन्द भवन ही समस्त गोकुल को विभिन्न उपकरणों से सजाया गया है।

बृज की गोपियों और गोपों की अपार भीड़ नन्द महल के प्रांगड़ में जुड़ती चली गई। वे हाथ उठा कर नाचते गाते हुए नन्दबाबा और यशोदा मैया को मधुर स्वरों में ढेरों बधाइयाँ देने लगे। बन्दी, मागध और सूत जनों ने मन को तृप्त कर देनेवाला आदर प्राप्त किया और अपने हृदय की गहराइयों से अपार आशीर्वाद प्रदान किया। गोपियाँ बार बार घूम घूम कर लाला की बलैया ले रही थीं। गोपवृन्द एक हाथ कान पर रखकर दूसरे को लम्बा तानकर मधुर मांगलिक बधाइयों के गीत गाने लगे। नाचते, गाते वे छोटे बड़े गोप गोपियाँ एक दूसरे पर हल्दी मिलाकर दूध दही छिड़कते हुए दधि कांदा नृत्य कर रहे थे। कुमकुम और कस्तूरी मिले हुए दही की इतनी अधिक वर्षा की कि बिना बादल के बरसात शुरू हो गई। दही और माखन की आँगन में कीच मच गई जिसमें कई लोग नाचते गाते फिसलने लगे। इस नृत्य में बालक और वृद्ध भी नहीं थक रहे थे तो भला परम प्रेम रस पीनेवाले युवा कहाँ थकनेवाले थे।

नाचो नाचो री नन्द भवन हरषाई। लाखन लाख बधाई दीजै यशुदा के घर आई।।
बड़ी उमर पायो सुत यशुदा जनमत ही सो जाई। छोरी हो गइ छोरा कैसे कोइ जान नहिं पाई।।
एक अचम्भित बात सुनो सखि गोरिन घर कालाई। याही लाजन मारे यशुदा आँचल लीन छुपाई।।
नैन कँटीले सुघड़ नासिका अधरा चिबुक सुहाई। एकहु अँग ना मिले नन्द सों याही बात लजाई।।
घर-घर यशुदा शुभ अवसर पर दीनी भेंट बधाई। भेंट लाय आँगन भरि डारो आज घड़ी शुभ छाई।।
युग-युग जीवे यशुदा नन्दन सब आसीस सुनाई।

झुण्ड की झुण्ड गोपियाँ नन्द महल में नन्द महोत्सव पर आनन्द की वृद्धि करती हुई कह रही थीं कि अरी सखियों, नन्द भवन में सभी प्रसन्नतापूर्वक नाचो, अरी। नाचो वे बृजरानी यशोदा को लाखों लाख बधाइयाँ देते हुए कहने लगीं, देखो देखो यहाँ कैसी अनोखी लीला हुई है। यशोदा जी ने ऐसी वृद्धावस्था में पुत्र को जन्म दिया है जिस आयु में सन्तान प्राप्ति की कोई आशा की किरण नहीं रह जाती और दूसरी विचित्र बात यह हुई कि यशोदा जी पुत्र को जन्म देते ही सो गईं तथा

उनको इस बात का भी पता नहीं चला कि मेरी बेटी जन्म लेते ही कब और कैसे बेटा बन गई? दूसरी सखी कहने लगी, एक अचम्भे की बात मुझसे भी सुनो, श्री नन्दराय जी गोरे और यशोदा जी भी गोरी फिर गोरे गोरी के यहाँ काले लाला ने कैसे जन्म लिया? हमें तो लगता है इस बात से यशोदा जी को बहुत लाज लगती है इसीलिये उन्होंने अपने लाला को आँचल में छिपा लिया है। एक सखी कहने लगी, अरी सखियों, जरा ध्यान से देखो नन्द लाला के नैन बड़े कँटीले हैं, सुआसारी नाक बड़ी सुघड़ है, लाल अधर और ठोड़ी सुन्दर सुहावनी है परन्तु श्री नन्दराय जी ने इनका एक भी अंग मेल नहीं खाता। लगता है इसी कारण नन्दबाबा संकोच से शरमा रहे हैं। इन्होंने हम सबके घरों में अनेक बार भेंट भिजवाई है। अब हम लोगों को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि अपनी लाई हुई भेंट से इस शुभ घड़ी के अवसर पर सारा आँगन भर दें। सब सखियों ने श्री यशोदा जी को ढेर सारी बधाइयाँ देते हुए लाला को आशीर्वाद प्रदान किया कि यशोदा नन्दन युगों युगों तक जिये।

उत्सव ब्रजमहँ नये नारि नर नित्य मनावैं। गावत गोपी गीत ग्वाल गोधन सँग आवैं।।
दूध दहीकी बहें नदी घृत कोउ न खाई। मन्दिर मन्दिर भरीं मनोहर मनहु मिठाई।।

हमारे जीवन में जो भी आनन्द है वह परमात्मा का स्वरूप है। किसी को किसी तरह का भी आनन्द प्राप्त हो रहा है, वह आनन्द परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही स्वरूप है। जहाँ पर निवृत्ति परक सत्ता का एकत्रीकरण होता है वहीं पर परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं। सत्ता हमारी भी है संसार में। लेकिन हमारी प्रवृत्ति परक सत्ता है। यह मेरा है, यह मेरा है, ऐसी जो प्रकृति है वैसी हम सत्ता रखते हैं और उसमें दृढ़ हो जाते हैं। उनके विछोह के साथ ही अपना मरण भी मान लेते हैं।

भरे परमआनन्द सुर उपजावत अनुराग। बार बार वर्णन करैं नन्दयशोमति भाग।।
गोकुल को आनन्द अति कापैं बर्णो जाय। जहाँ परम आनन्दमय लियोजन्महरि आय।।
ब्रजकोसुख को कहि सकैं उपमा बड़ी अपार। सुखनिधान भगवान जहँ लियोमनुजअवतार।।
पूत सपूत जन्यो यशुदा इतनी सुनिके बसुधा सब दौरीं।
देवनको आनन्द भयो सुनि धावत गावत मंगन गौरी।।
नन्द कछू इतनो जो दियो घनश्याम कुबेरहु की मति बौरी।
स्वहिं देखत ब्रजहि लुटाय दियो न बची बछिया छछिया न पिछौरी।।

मधुमंगल भी इधर उधर फुदकता फिरता यशोदा के कक्ष में आ गया और यशोदा को बोला- नन्दबाबा के हाथों दी गई दान दक्षिणा देवी-देवताओं को नन्दबाबा के सामने हाथ पसारते देखा। मैया मेरा सखा बहुत ही ऊँचे लोकों से आया है। लाला के धाम के पार्षद भी बालक बन-बनकर गोकुल में आने लगे हैं। सौभाग्यशाली लोग तेरे लाला के दर्शन लेने पधार रहे हैं।

नृत्योत्सव इतने जोर से मनाया गया कि पूरा समाचार बरसाने में पहुँच गया। वृषभानजी की पुत्री राधारानी नन्द के लाला से साढ़े ग्यारह महीने बडी है। वृषभान जी की और नन्द जी की बचपन से ही मित्रता रही है और आपस में यह निश्चित हुआ तुम्हारे यदि लाला हुआ और हमारे यहा लाली आयेगी तो हम सगाई का टीका भेजेंगे। कन्हैया अपने जन्म के समय पिताके लिए चिन्ता लाते है- कन्याके लिये योग्य सम्बन्धकी चिंता सिर पर सवार रहती है। महर्षि शाण्डिल्यने भी आश्वस्त किया था और भगवती पूर्णमासीने भी कीर्तिदेवी को गोद भरनेका आशीर्वाद दिया था। वृषभानुजी जानते थे कि गोकुलके स्वामीको कन्या हुई तो फिर वृषभानुजीके घर आयेगी और कुमार हुआ तो वृषभानुजी की लाड़ली नन्दजी के घर जायेगी।

एक दिन महर्षि गर्गाचार्य आ गये थे। उन्होंने वृषभानुजी के छोटे कुमार व कन्याका नामकरण किया। भाग्यकी लिपि मिटायी जानी अत्यन्त कठिन है। भविष्यदर्शी गर्गाचार्य ने बताया आपकी तनया नन्दतनयकी नित्य संगिनी है। इनका अनादि सम्बन्ध

है। इसमें व्यवधान बननेकी शक्ति सृष्टिमें भी नहीं है और कहा था कि स्वयं सृष्टिकर्ता यह पाणिग्रहण संपन्न करायेंगे पर वो समाजके नेत्रोंसे परोक्ष होगा। नीलमणि की सुरक्षा वृषभानुजी के लिये अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वे जानते थे कंस कितना क्रूर और निर्दयी है। तो यह सगाई फिर समाज और लोगोंसे भी गुप्त रहकर ही करनी पड़ी। वृषभानुजी ने नीलमणिके जन्मदिनपर नन्दजी को अपार उपहार भेजे। व्रजेश्वरी रोहिणी समझ गई थी बरसाना से आनेवाले उपहारोंमें सगाई की सभी सामग्री थी। पूरे परिवारके लिए तथा सेवक-दासियोंके लिये भी वस्त्राभरण थे। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमीको गोकुल में नीलमणिकी सगाई हुई।

अब बरसाने की सगाई आ रही है। राधारानी की सहेलियाँ सज-धजकर नृत्य करते आयीं। ब्रजवासी आपस में बात कर रहे हैं बरसाने से लाला के ताईं टीकौ आयो हैं और आपस में नाच-गा रही है।

नन्द महर घर ढोटा जायौ, बरसाने से टीकौ आयौ। बरसाने से टीकौ आयौ, नन्द महर घर ढोटा जायौ।।

गोप जाति में बाल विवाह की प्रथा पुरखों से चली आई है। एक दो वर्ष की आयु के बालकों की भी सगाई कर दी जाती है। श्री राधा के पिताश्री वृषभानुराय जी के मन में राधा जी के विवाह की चिन्ता लग गई। कन्या रूपी धन का भार उतारने के लिए उनकी बुद्धि में सद्प्रेरणा जागी।

प्रथम पुत्र श्रीदामा सुन्दर घर में जाया। सुबल भया जब दूसर औरे आनँद छाया।।
तब ही प्रगटी चिन्ता हरनी लाली राधा। जिनके देखत कट जाती सब जीवन बाधा।।

श्री वृषभानुराय जी के यहाँ श्रीदामा प्रथम सुन्दर पुत्र के रूप में पैदा हुए। जब दूसरा पुत्र सुबल पैदा हुआ तो घर में और भी आनन्द छा गया। तब ही चिन्ताओं को दूर करनेवाली सर्वेश्वरी राधा लाली के रूप में प्रगट हुई जिसके पावन दर्शन करके दर्शनार्थी की सम्पूर्ण बाधाएँ कट जाती हैं।

मम चिन्ता कस दूर यही वृषभानु विचारे। नंद राय सन्तान नहीं जाऊँ किस द्वारे।।
ऋषि शाण्डिल्य करी करुणा औ भेद बताया। नँद रानी ने पुत्रवती भव आसिस पाया।।

श्री वृषभानुरायजी अपने मन में विचार करने लगे कि मेरी पुत्री की सगाई रूपी चिन्ता कैसे दूर हो क्योंकि श्री नन्दराय जी की और हमारी बात पक्की हुई थी कि हमारे घर पुत्री होगी और आपके घर पुत्र हुआ अथवा आपकी पुत्री होगी और हमारे घर पुत्र हुआ तो आपस में उनका विवाह सम्बन्ध पक्का कर देंगे। अब हमारे यहाँ तो पुत्री राधा प्रगट हो गई है और श्री नन्दराय जी के यहाँ कोई सन्तान नहीं है। अब मैं अपनी पुत्री के रिश्ते के लिए किसके दरवाजे पर जाऊँ। परन्तु ऋषि शाण्डिल्य जी ने करुणा करके वह रहस्य बता दिया है कि नन्दरानी यशोदा को पुत्रवती होने का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है।

शाण्डिल्य जी बोले हे वृषभानुराय जी। भगवती पूर्णमासी ने रानी यशोदा को, तुम्हारी गोद भरे, यह आशीर्वाद प्रदान किया है जिसे सुनकर यशोदा को इतना आनन्द मिला मानों अमृत पीने को मिल गया हो। रानी कीर्ति की पुत्री यशोदानन्दन की नित्य संगिनी है। जन्म-जन्म उनकी ही चरणानुगामिनी बनकर आती है।

बृजपति श्री नन्दराय अपने पुत्र की सगाई राधा के साथ करने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए दही की कमोरी लेकर श्री वृषभानुराय के गृहमन्दिर में आते। पुरातन काल से चली आ रही इस रीति को श्री वृषभानुराय जी ने तोड़ दिया। लाला लाली जिस घर भी हों हम आपस में सगाई कर देंगे, इसी बात को महत्व देते हुए श्री वृषभानुराय कन्हैया की सगाई करने के लिए पूरे परिवार के साथ उत्साह पूर्वक गोकुल में आये।

नन्दनन्दन श्याम सुन्दर के जन्म तिथि के समय ही श्री वृषभानुराय के मन में अपनी पुत्री श्री राधा के साथ उनकी सगाई करने का भाव पैदा हुआ था।

आज बरसाने में बधाई बज रही है। वृषभानुजी के घर सबको सुख देनेवाली श्री राधिकाजी उत्पन्न हुई हैं। आनंद में मग्न होकर सभी स्त्रियां कह रही हैं कि हम सब लोग बधाई देने आई हैं। बंदीजन, चारण और भिखारी लोग गीत गा रहे हैं। तीनों लोकों में जय-जयकार हो रही है, क्योंकि प्रभु के प्रेम की लता प्रकट हो गई है। अब प्रभु की सुंदर जीवन जोड़ी बन गई। आज वृषभानुजी के घर पर परम आनंद छाया हुआ है। राधाजी के मुख की शोभा इस प्रकार लग रही है, मानो पूर्ण चंद्रमा प्रकट हो गया हो। कोई व्यक्ति दूब बंधाते हुए गा रहा है और कोई जोर से गा रहा है। राधाजी के जन्म को सुनकर अपने-अपने मेल की औरतें बधाई देने आईं। जो स्त्री आती है, वही बलिहारी जाती है और तिनका तोड़ती है कि कहीं बालिका को नजर न लग जाए। वे कहती हैं कि वृषभानुजी और उनकी पत्नी का भाग्य बहुत बड़ा है, ऐसा कहकर फूली नहीं समातीं। आज सारे ब्रज के लोग अपने-अपने मन को भानेवाला कार्य कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि आज श्री राधाजी भक्तों के हित के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुई हैं। राधा और कृष्ण दो नहीं हैं, एक ही परम तत्त्व के दो रूप हैं।

वृषभानुजी के यहां तीनों लोकों की शोभा आकर प्रकट हुई है। उनके अद्‌भुत रूप को देख-देखकर ब्रज की गोपियां हंस-हंसकर बलैयां ले रही हैं। इनकी समता में न तो लक्ष्मी है, न इंद्राणी, न रति न रंभा। कोई भी उपमा हृदय में नहीं समाती। ये तो वे आदि शक्ति हैं, जिससे ब्रजभूषण श्रीकृष्णजी प्रकट हुए हैं, अत: इनके माता-पिता धन्य हैं। नंदजी और वृषभानु आप दोनों युगों-युगों तक राज्य करो। वहां तो श्रीकृष्ण हुए हैं और यहां राधाजी।

शाण्डिल्य मुनि ने विधिविधान से श्यामसुन्दर और राधारानी की सगाई का शुभ माँगलिक कार्य सम्पन्न किया। राधा के सहित रानी कीर्ति और वृषभानुराय बहुत प्रसन्न हुए और दोनों को अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान किया।

डेढ़ बरस के कान्हा हेही राधा रानी। ढाइ बरस की राधा ने प्रीती पहिचानी।।
माखन मिशरी इक दूजे के मुख में डारी। परिजन ने मिल युगल रूप आरती उतारी।।

डेढ़ वर्ष के कन्हैया ने श्री राधा को स्नेहपूर्वक निहारा। लगभग ढाई वर्ष की राधा रानी ने पुरातन प्रीति को पहिचाना। नित्य प्रिया प्रियतम ने माखन मिश्री के कटोरे में से एक दूसरे के मुख में माखन मिश्री को डाला। प्रिय परिजनों ने मिलकर युगल स्वरूप की आरती उतारी।

नन्दनन्दन कन्हैया और श्री राधारानी का मन खेलने और नृत्य को होने लगा। दाऊ भैया सखा, सखियों, कन्हैया और राधारानी के साथ मिलकर नृत्य कर रहे थे। नन्हे नन्हे बालकों को भी बहुत आनंद प्राप्त हो रहा था। भानु दुलारी श्री राधा ने अपने मुखारबिन्द को आँचल से ढक लिया परन्तु मनमोहन से कुछ छिपा नहीं रह सका और उन्होंने पहिचान कर राधा का हाथ पकड़ लिया। इसप्रकार राधामाधव की सगाई का महोत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। अब श्री वृषभानुराय जी ने अपने घर जाने की इच्छा व्यक्त की।

कृष्ण जन्मकी मची धूम जड़ चेतन हरषें। कल्पवृक्षके सुमन गगन फलझरियाँ वरषें।।
व्रजमंडलके गोपगन, सख मिलि दधिकाँदो करें। दूध, दही, घृत उलचि घट, खाली करि पुनि-पुनि भरें।।

चारों ओर आनन्द का सागर उमड़ रहा था। कोई भी याचक आज नन्द बाबा के द्वार से विमुख होकर नहीं जा रहा था। उनके मन में यह विचार नहीं था कि यदि आज हम सब कुछ लुटा देंगे तो कल क्या खायेंगे और घर में क्या रहेगा? वे विष्णु की आराधना तथा अपने पुत्र के अभ्युदय की कामना से मुक्त हस्त से, दोनों हाथों से, दान कर रहे थे।

नन्द बाबा की पुरोहिताइन पौर्णमासी जी आ पहुँची। उन्होंने नेग-चार के लिये है नन्द बाबा को द्वार पर से घर के आँगन में बुलवाया। वे आये। पौर्णमासी जी ने बड़े रोब से उन्हें बिछी हुई चौकी पर बैठाया। नन्द बाबा उन्हें हाथ जोड़कर आनन्द

से बैठ गये। पौर्णमासी ने पहले से इकट्ठे किये हुए अनेक मांगलिक कलशों के जल से उन्हें स्नान करवाया। नहला लेने के बाद उनकी दाढ़ी में दही-मक्खन पोता और कहा- नन्दजी, अब वस्त्र धारण कर कमर पर हाथ रखकर नाचो तब आपको छोड़ा जायेगा। नन्द बाबा ने हँसते-हँसते नृत्य किया। उनके साथ पौर्णमासी जी तथा दूसरी गोपियाँ भी नाच रही थीं।

पौर्णमासी भगवान श्रीकृष्ण की योगमाया का अवतार थीं जो कि असम्भव को सम्भव कर देने में कुशल थीं। पौर्णमासी के साथ ब्रह्मचारी मधुमंगल आया हुआ था वह यशोदा के पुत्र को देखकर सुखी हो रहा था। पार्वती, लक्ष्मी, ब्रह्माणी बड़ी सुखी होकर आरती कर रही थी। मधुमंगल उस बालक की छवि देख-देखकर प्रमोदित हो रहा था और सोच रहा था कि उसको अपना सखा बनाऊंगा। उसके साथ खेलने-कूदने पर सुख पाऊंगा।

गोपोंका आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। बूढ़े व्रजेन्द्रको भी उन सबने अपने बीचमें ले लिया है और इतना दूध, दही, घृत और नवनीत ढरकाया है कि नदी-सी बह चली है। दूध-दहीके अनेक गम्भीर गर्त बन गये हैं। उनमें लोटते हुए गोपोंका शरीर सर्वथा उज्ज्वल दीखने लगा है, मानो ये गोप दुग्धसागरकी चञ्चल तरंगे हों।

व्रजेन्द्र कभी तो इस दूध-दहीकी नदीमें स्नान करने आते हैं, कभी रत्नराशि लुटानेके लिये द्वारदेशपर खड़े हो जाते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, कोई भी विद्योपजीवी आकर खड़ा हुआ कि नन्दराज रत्नोंकी झोली, वस्त्रोंकी गठरी और गोधनकी टोली लेकर उसके पास जा पहुँचे; सदाके लिये उसका मँगतापन मिटा दिया। व्रजेश-कुलके सूत, मागध, बंदीजन आज अयाची बन गये।

उसके बाद स्नान आदि से निवृत्त होकर नन्द बाबा रोहिणी जी के पास गये। उनसे कहा- इस उत्सव में तुम क्यों नहीं सम्मिलित हो रही हो? आखिर, पुत्र तो तुम्हारा ही है। दूसरे के घर का तो उत्सव है नहीं। इसपर रोहिणी जी भी सज-धज कर उत्सव में सम्मिलित हो गईं। फिर उन्होंने सब ओर घूम-घूम कर सबकी देख-भाल प्रारम्भ कर दी।

जब से कृष्ण गोकुल में पधारे तब से लक्ष्मीजी ने ऋद्धि-सिद्धि के साथ वहीं डेरा डाल दिया था। मानों खूँटा गाड़कर बैठ गई थीं। श्रीकृष्ण के जन्म से ही गोकुल, विशेषकर नन्द बाबा का भवन, उनकी क्रीडास्थली बन गई थीं।

सिद्धिनि सब सत्कार करि, जनम सुफल अपनो कर्‍यो। गोकुल धन, मणि, अन्न अनु, सबइ वस्तुनितें भर्‍यो।।

आठों सिद्धियां चारों ओर गलियाँ झारती फिर रही थीं और नवो निधियाँ वहाँ पर सम्पत्ति लुटाती फिरती थीं। देवता लोग मन को अच्छी लगनेवाली हवा चला रही थी।

नन्द बाबा की समझ में नहीं आ रहा था कि सम्पत्ति का अनन्त भण्डार हमारे घर में कहाँ से आ गया। वे भण्डार घर खोल कर बैठ गये थे और आदेश दे दिया था कि जिसको जितना लेना हो यथेच्छ ले जाय। इस पर याचकों ने कहा- चलो भाई, ले चलें। उन्होंने शक्तिभर चाँदी की सिल्ली उठा ली और चल पड़े। जब वे गांव से बाहर निकले तो लोगों ने कहा- अरे, तुम लोग कितने मूर्ख हो? वहाँ सोने का खजाना खुला है और तुम लोग चाँदी ले जा रहे हो। अरे, इतने ही वजन का सोना लाते तो उसका मूल्य कुछ और होता। इस पर याचकों ने चाँदी वहीं फेंक दी और फिर लौट कर सोने की सिल्ली सिर पर लाद ली। जब सोना लेकर जाने लगे तब किसी ने कहा कि- अरे, राम राम। तुमने महान् गलती की, वहाँ तो हीरों का, मोतियों का रत्नों का भी खजाना खुला हुआ है। अगर इतने वजन का रत्न ले जाते तो कितना मूल्य होता। इतना सुनकर याचकों ने सोना फेंक दिया और लौटकर रत्न ले गये। इस प्रकार गोकुल के आस-पास की भूमि धातुओं से पट गई, भर गई।

व्रजेन्द्र जो इतनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। उनका भंडार ही अब अनन्त, असीम बन गया है; क्योंकि सारे विश्वकी समस्त सम्पत्ति जिनकी चरणसेविका लक्ष्मीजीकी आंशिक विभूति है, वे स्वयं आज पुत्रके रूपमें

व्रजेशके घर पधारे हैं। प्राकृत भंडारकी सीमा होती है, उसमेंसे कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। पर व्रजेशका भंडार प्राकृत नहीं; वह ऐसा है कि उसमेंसे जितना वे निकालेंगे, उतना ही बचा रह जायगा। अपनी जानमें सम्पूर्ण निकाल लेंगे तो भी उसमें सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये उनके देनेमें आज विराम नहीं, हिसाब नहीं; देते ही चले जा रहे हैं। सब कुछ लुटा देने पर भी वहां कमी नहीं जान पड़ती थी ऐसी पूर्णता नन्द के घर में छाई थी। उनका सम्पूर्ण भण्डार दिव्य हो गया था। और नन्द अपनी सभी सम्पत्ति को लुटा रहे थे।

प्रभु का प्राकट्योत्सव है, परमात्मा का उत्सव है, इसे आनन्द से मनाना चाहिये। संसार के पुत्र के जन्मोत्सव को मनाना जरूरी नहीं हैं, लेकिन भगवान का जन्मोत्सव नित्य मनाना चाहिए। परमात्मा के जन्मोत्सव में मन रूपी मयूर स्वयं नाचने लग जाता है। नन्दबाबा के घर बालकृष्ण प्रभु का जन्मोत्सव छ: महीने लगातार रहा। नन्दबाबा के उत्सव में सब लोग आये पर रोहिणी नहीं आयी थी। रोहिणी के पति वसुदेव कारागृह में बन्द हैं। यदि पति के जीवन में संकट आये तो पत्नीको सजधजकर किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं होना चाहिये। ये प्रोत्सित भर्तृका स्त्री का लक्षण है। माता रोहिणी अपने कक्ष में बैठी हैं और खिड़की से कृष्ण का जन्मोत्सव देख रही हैं। रोहिणी का मन रो रहा है। नन्दने यशोदा से पूछा- सब लोग तो नाच-गा रहे हैं, आनन्द मना रहे हैं पर रोहिणी क्यों नहीं आयी। नन्द-यशोदा दोनों रोहिणी के पास गये और बोले- आप क्यों नहीं चल रही हो ? रोहिणी बोली आप लोग मनाओ मेरा तो लालाको यहीं से आशीर्वाद है। नन्दने कहा- देखो, अगर आप नहीं चलोगी तो हमारे मन को बहुत कष्ट होगा। आपको चलना ही चाहिये और नन्द ने आग्रह किया। रोहिणी ने भी समझा संसार के नियम तो अलग होते हैं। गोविन्द के जन्मोत्सव मनाने में कैसा संकोच। रोहिणी भी जन्मोत्सव में शामिल हो गयी और कन्या को लेकर नृत्य करने लगी।

रोहिणी आये हुए सभी अतिथियों का स्वागत सत्कार करने लगीं। नन्द महोत्व में आयी हुई बहन, बेटियों, वसुओं और बालकों को आदि सब प्रकार से संतुष्ट किया।

आज व्रजेश्वरने सबसे अधिक सम्मान श्रीरोहिणीजीका किया है। आजका सम्मान रोहिणीने स्वीकार भी कर लिया है। इससे पूर्व रोहिणीने कभी नन्द-घरके सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषणोंकी ओर ताकातक नहीं था। वे सदा पतिवियोग, पति-बन्धनसे मन-ही-मन खिन्न रहती थीं। पर आज यशोदानन्दनका मुख देते ही रोहिणीका रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो गया। इसीसे वे नन्दप्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर पुर-महिलाओंके सत्कारमें लगी हुई हैं।

जो नाच विलासियोंके सामने विलास पैदा करनेके लिये होता है वह तो गन्दा और नरकोंमें ले जानेवाला है। परन्तु जो नाच भगवानके लिये, भगवान्के सामने होता है उसकी तो कुछ बात ही दूसरी है भगवत् प्रेमरसमें उन्मत्त होकर, ब्रह्मानन्दको भुलाकर जब ऋषि-मुनि देवता आदि नाचते हैं तो वह नृत्य नृत्यके जीनको सफल करनेवाला होता है। आज नृत्यका जीवन सफल हो गया क्योंकि आज बड़े-बड़े देवता नर्तक बन गये हैं। कोटि-कोटि देवताओंने आनेके बाद चुपकेसे बन गये हैं। कोटि-कोटि देवताओंने आनेके बाद चुपकेसे खबर भेज दी गन्धर्वोंको कि डरो मत। तुम लोग भी आ जाओ और अप्सराओंसे कहा कि तुम लोग ग्वालिनी, अहिरनियाँ बन करके आ जाओ। तमाम स्वर्ग लोकके जितने भी किन्नर, गन्धर्व, अप्सरायें और देवता थे बड़े-बड़े तपलोक, महर्लोकके जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि महात्मा थे वे आज सबके सब अपने आपको भूलकर वहाँ आ गये। नन्दबाबासे कहा कि नाचो, तो बूढ़े दाढ़ीवाले नन्दबाबा भी वहाँ नाचने लगे। नाचनेमें नन्दबाबा इतने मस्त हो गये कि यह मालूम नहीं हुआ कि क्या हो रहा है। अब वहाँ जब नन्दबाबाको गोप लेने आये तो खींच लिया और जाकर पहले उनको दधि-मक्खन लगा दिया।

उस दिन देर रात तक विभिन्न उत्सव और नृत्य-गान का कार्यक्रम चला। नहीं, इसके लिए किसी प्रकाश-व्यवस्था की भी आवश्यकता नहीं पड़ी। राशि-राशि मणियों, हीरे मोतियों का प्रकाश ही इतना प्रखर था कि दीपाधार पर रखे दीपों का प्रकाशय उनके सामने व्यर्थ हो जाता। गोपियों ने तो उसी क्षण से अपनी आँखों का तारा ही बना लिया और मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली कि नित्य किसी-न-किसी बहाने देखना ही है नन्द के लाल को।

ज्योतिषविद्या विज्ञ बहुतसे विप्र बुलाये। नन्दमहरि सुत जन्यो सुनत सब द्विज उठि धाये।।
सबने आशिष दई ग्रहनिके सुफल बताये। सबकी सम्मति समुझि नन्द जमुनामहँ न्हाये।।

रात गए सब घर लौटे पर किसी के तन-मन पर थकान का चिन्ह भी नहीं था। वृद्ध नन्द और प्रौढ़ा यशोदा भी पूरी तरह उल्लसित थे और इस उछल कूद और नृत्य-नाट्य में कन्हैया की आँखों की भी नींद उड़ी-की-उड़ी ही रह गई।

ग्राम वधूटी सबहिं मिल, लाल बधाई गाय। लहँगा फरिया सबन को, यशुदा नव पहराजय।।

गाँव की बहुएँ मिलकर झुण्ड की झुण्ड आने लगीं। यशोदा नन्दन के दर्शन करके सुन्दर सुन्दर बधाइयाँ गाने लगीं। रानी यशोदा ने उन सबको नये नये लहँगा, फरिया, आभूषण आदि प्रसन्नतापूर्वक धारण करवाये।

सभी नन्दरानी की आज्ञा से घर जाते थे फिर से लौट आते थे क्योंकि सभी का चैन उस शिशु के पास ही था। क्या कृत्य है, क्या अकृत्य, क्या धर्म, क्या ज्ञान, क्या श्रेय, क्या प्रेय, क्या पवित्रता का विधान। जागते सोते बस एक ही विचार था कि कृष्ण का संग ही जीवन का अभिसार है। जिस प्रकार अपने ध्येय स्वरूप सुन्दर चन्द्र के दर्शन को छोड़कर उस चकोर के नेत्र अन्यत्र कहाँ सुख पा सकते हैं।

जो दूसरों को यश देता है, उसका नाम है यशोदा। जो यश दूसरे के मत्थे मढ़कर अपयश स्वयं अपने मत्थे ले लेती है- उसका नाम है- यशोदा। जो यश अपने पास न रखे, यश औरों को बाँटे वही यशोदा है। यशोदा अपने को छोटा महसूस करती हैं और सबकी बढ़ाई करती है।

बछड़ा जब छोटा होता है तो दूध पीने को मिलता है, पर जब उसके सींग निकल आते हैं तो अपने आप को कुछ समझने लगता है। उसकी मैं तीव्र गति से जाग उठती है।

छोटा बछड़ा पय पीए। बड़े होत भूस खाए।।
नानक नन्हा होय रहो जैसे नन्ही दूब। और खर जर जात हैं, दूब खूब की खूब।।

जो अपनी वाणी से, व्यवहार से सबको आनन्दित करता है, उसे नन्द कहते हैं। जो यशोदा और नन्द होते हैं, उन्हीं के घर कन्हैया बेटा बनकर आता है उन्हीं की गोद को कन्हैया सुशोभित करता है।

यसोदा हरि पालनै झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।।
मेरे लाल कौं आउ रीं निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै। तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।।
कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै। सोवत जानि मौन ह्वै कबे रहि, करि-करि सैन बतावै।।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुर गावै। जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावै।।

यशोदाजी बाल कृष्ण को पालने में झुला रही हैं। वे हिलाती हैं, दुलारती हैं, चुमकारती हैं और जो मन में आता है, गाती हैं। ओ री नींद, तू मेरे लाल के पास आ। तू आकर कृष्ण को क्यों नहीं सुलाती? तू जल्दी क्यों नहीं आती, जब तुझे कन्हैया बुला रहा है। कृष्ण कभी पलकों को बंद कर लेते हैं और कभी होठों को फड़काते हैं। कृष्ण को सोता हुआ जानकर यशोदा चुप हो जाती हैं और दूसरों को इशारे से बातें बताती हैं। इस बीच मां को चुप जानकर कृष्ण अकुला उठते हैं और

यशोदाजी फिर मधुर स्वर में गाने लग जाती हैं। सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार नंद की पत्नी यशोदा को जो सुख प्राप्त हो रहा है, वह देवताओं और मुनियों के लिए भी दुर्लभ है।

यशोदा कहती है दिन भर तो यह सार्वजनिक सम्पत्ति बना रहता है। यह घड़ी भर भी उसे गोद नहीं उठा पाती। प्रात: से शाम तक उसका पलना दर्शनार्थीयों से घिरा रहता। गोपियाँ बोलती यशोदा ने इस उम्र में भी क्या रत्न जना है।

प्राय: ११ वर्ष ६ महीने तक, जब तक कि कृष्ण मथुरा नहीं लौटे, तब तक कृष्ण का जन्म, नन्दमहोत्सव के रूप में मनाया जाता था। कंस के कारागार में कृष्ण के प्राकट्य की बात चारों ओर फैलने पर भादों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण का जन्म मनाया जाने लगा। फिर भी नन्द-महोत्सव का महत्त्व कम नहीं हुआ। आज भी सर्वत्र नन्दमहोत्सव नवमी के प्रात: में मनाया जाता है।

गोकुल की गायों को भी पता चल गया कि हमारा नया गोपाल आया है। वे भी प्रसन्नता के मारे हुंकारे भरने लगीं। वे अपनी नासिका से सुगन्धि को सूँघती हुई नन्द महल के दरवाजे तक आ गई और स्नेह भरे नैनों से भीतर झाँकने लगीं। रखवारे ग्वालों के द्वारा बहुत रोकने पर भी वे नहीं रुकीं। सभी गायों के हृदय में अपने नये चरवाहे के दर्शनों की इच्छा प्रबल हो गई।

गोकुल की गायें नन्द महल के दरवाजे पर दृष्टि जमाये हुंकार कर रही थीं और भीतर प्रसूति कक्ष में माता यशोदा की बगल में लेटे हुए बाल कृष्ण अपने हाथों को उछारें भर भर कर हिला रहे थे और अपने चरणों को ऊपर नीचे उछाल रहे थे। मानो कह रहे हों, ठहरो ठहरो गैया मैया मैं अभी चराने के लिए आ रहा हूँ। दाऊ भैया ने नन्हे लाला को उँगली से छुआ। मानो छोटे भैया से बात करना चाहते हों। छोटे भैया का हाथ अपने हाथ में लेकर इस प्रकार खींच रहे थे मानो अभी उठाना चाहते हों।

प्रतिदिन प्रात:काल ब्राह्म मुहूर्त में चार बजे से साढ़े पाँच बजे तक नन्दमहोत्सव मनाया जाय। ईश्वर का प्राकट्य ही उत्सव है। उत्सव में धन या भोग आदि नहीं प्रेम ही प्रधान है। मन्दिर में नहीं, अपने घर में ही नन्दमहोत्सव मनाया जाय। जीवात्मा का घर हमारा शरीर ही तो है जो प्रतिदिन नन्दमहोत्सव मनाता है, उसका सारा दिन आनन्द में ही बीतता है। निर्धन व्यक्ति भी प्रतिदिन नन्द महोत्सव मना सकते हैं। इस महोत्सव में धन नहीं, मन ही प्रधान है।

मधु की तरह मीठे विषयों को, भोगों को जो देता है, वह शरीर ही मधुरा है। कालान्तर में मधुरा को मथुरा कहा जाने लगा। गोकुल का अर्थ है- हृदय। जहाँ सारी इन्द्रियाँ एकत्रित होती हैं, मिलती हैं उसे गोकुल कहते हैं। गो का अर्थ इन्द्रिय भी होता है। नन्द बाबा जीव के प्रतीक हैं, जीव हैं। हृदयरूपी गोकुल में कृष्ण का प्राकट्य कराकर नन्दमहोत्सव मनाना है। यमुना भक्ति का प्रतीक है। इसीलिये मथुरा और गोकुल आदि यमुना के तट पर बसे हैं। शरीर को मथुरा बनाना है और हृदय को गोकुल तो भक्ति यमुना के किनारे बसना होगा। भक्ति करनी होगी। यमुना के तट पर बसे हैं। यमुना भक्ति का तट कभी नहीं छोड़ना चाहिये। चौबीसों घण्टे भक्ति के किनारे रहोगे तभी तुम्हारा शरीर मथुरा और हृदय गोकुल बन पायेगा।

जो अपनी सारी इन्द्रियों से सर्वदा कृष्ण-रस का पान करती रहती हैं, वह गोपी है और यदि पुरुष है तो वह गोप है।

पुत्र जन्म महोत्सव की प्रसन्नता में गोकुल में ये पाँच दिन कैसे बीत गये पता ही नहीं चला। षष्ठी पूजन के लिए महर्षि शाण्डिल्य नन्द महल में पधारे। षष्ठी पूजन के लिए यशोदा और नन्द ने सारे परिवार वालों को बुलाया। माता यशोदा अपनी गोदी में अपने नन्हे लाला को लेकर बृजपति नन्दराय के वाम भाग में बैठी। महर्षि शाण्डिल्य जी ने श्री नन्दराय से यशोदा जी के सहित पूजा का संकल्प करवाया फिर अन्य ऋषियों सहित स्वस्ति वाचन प्रारम्भ किया। तत्पश्चात गणपति पूजन, मातृका पूजन, नवग्रह पूजन, कलश पूजन, देव पूजन आदि विधि विधान से करवाया गया। देव सेनापति कार्तिकेय जी की पूजा करवाई तत्पश्चात वसुधारा करवाई गई। षष्ठी देवी का पूजन करके सब लोगों को परम प्रसन्नता हुई। महर्षि

शाण्डिल्य ने प्रेरणा दी कि यशोदा नन्दन का धरणी स्पर्श संस्कार किया जाये। लोग मन ही मन झिझक रहे थे कि अति कोमल यशोदा नन्दन का कठोर भूमि से स्पर्श कैसे किया जायेगा। अगर लाला धरती की कठोरता के कारण चुभन महसूस करते हुए रुदन करेगा तो उसे कौन सहन कर पायेगा? सब लोग इस विषय पर चिन्ता युक्त विचार विमर्श कर ही रहे थे कि चंचल नन्दलाल ने माता की गोदी में लेटे लेटे ही इस ढंग से चरण प्रक्षेपण किया कि उनका चरण धरती से स्पर्श हो गया और भूमि स्पर्श का विधान पूरा हो गया।

श्री नन्दराय जी के सुपुत्र के षष्ठी पूजन महोत्सव की धूम कंस के कानों में नहीं पड़े तो अच्छा है। उस अधम की बुद्धि किसी भी भ्रम से भ्रमित न हो और उसका हृदय द्वेष की अग्नि से जलने लगे इसलिए उत्सव की धूम का स्वर कुछ नीचा ही रखा जाए। हम लोगों को मथुरा जाकर नन्दराय जी के पुत्र होने की बधाई कंस को देनी चाहिए। शीघ्र ही कुछ भेंट के साथ वार्षिक कर भी लेते चलें तो उचित होगा। यह प्रस्ताव सबने रूचि पूर्वक स्वीकार किया।

नन्दने कहा- अबतक तो मैंने राजाको कर देनेकी कभी चिन्ता नहीं की। उपनन्द बोले- लेकिन अब वह समय आ गया है, जिसके लिये चिन्ता की जानी चाहिए। उसके जन्म-दिवसकी भेंट भी दी जानी चाहिए राजाको।

हम गोपोंमें कभी दो मत हुआ ही नहीं करता। जो बात एकके मुखसे निकल गयी, वही सबकी अपनी बात हो गयी। नन्द इसी समय व्यवस्था प्रारम्भ कर दो कि कौन-कौन साथ जायेंगे और कौन-कौन यहाँ रक्षाके लिये रहेंगे। सम्पूर्ण ऋषि-मुनियोंकी प्राणोंके समान रक्षा करनी है। महर्षि शाण्डिल्य तथा उनके अतिथियोंके आश्रम में कोई उत्पात नहीं होना चाहिए। इधर षष्ठी पूजन के गीत गाये जाने लगे और सबने अपनी मन की रुचि के अनुसार नृत्य गान किया।

नाचत गावत छोड़िके चले नंद कर देन। बाधा मथुराधीश ना, करे रहे सुख चैन।।

नन्दराय जी अपने सभी गोपों के साथ घी और माखन के कुप्पों से भरी हुई गाड़ियाँ लेकर पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में सभी बृजवासियों को नाचता गाता हुआ छोड़कर वार्षिक कर देने के लिए मथुरा की राह पर चल दिए। गोपों की इच्छा थी कि हम लोग सुख चैन से रहे और हमारे सुखी जीवन में मथुरा का क्रूर राजा कंस बाधायें उपस्थित न करे।

घृत और माखन के कुप्पे, बड़ी बड़ी सुदृढ़ गाड़ियों में लादे जाने लगे। छकड़ों को अच्छी तरह से सजाकर उनमें मुख्य मुख्य गोपगण विराजे। अंगरक्षक, प्रहरियों को शस्त्र सहित चलने के लिए टेर लगाई गई। कुछ वीरों को ग्राम की रक्षा के लिए हथियार दिए गए और उनको सावधान करते हुए कहा, सभी पहरेदार एकजुट होकर ग्राम रक्षा में तत्पर रहना एवं स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना।

भाद्रपद कृष्ण पक्ष नवमी के दिन नन्द बाबा के यहाँ कृष्ण-जन्मोत्सव मनाया गया। इसे ही नन्दमहोत्सव कहते हैं। महोत्सव का यह क्रम नवमी, दशमी और एकादशी लगातार तीन दिन चला।

२) भगवान शंकर का कृष्ण दर्शन-

शिवा हिमालय पीहर आई सह परिवारा। अति पावन कैलास धाम पर डेरा डाला।

ध्यान मगन शिव करन परी नारद धुनि वाला। उत्सुक नैना देखे नारद भाव नवीना।।

शिवा ने कहा, हे नाथ। मेरा पीहर हिमालय है, वहाँ अति पावन कैलाश पर्वत है। क्यों न हम परिवार सहित वहाँ चलकर निवास करें। शंकर भगवान की सहमति मिलने पर उन्होंने कैलाश पर्वत पर डेरा डाल लिया और वहाँ शंकर भगवान अपने आराध्य के ध्यान में मग्न रहने लगे। श्री नारद जी की वीणा और हरि गुणगान का स्वर शंकर भगवान के कान में पड़ा और

उन्होंने नेत्र खोलकर देखा कि आज नारद जी बहुत प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनकी वाणी और वीणा में नये-नये मधुर भाव प्रकट हो रहे हैं।

गोकुल के इस परम आनन्द को अन्य देवों तक पहुँचाने के उद्देश्य से नारदजी मधुर वाणी में हरिनाम की गुञ्जार करते उत्तरी भारत के हिमालय में स्थित श्री कैलाश पर्वत पर पहुँचे, जहाँ अपने कार्तिकेय और गणपति दोनों पुत्रों और प्रिय पत्नी पार्वती के साथ भगवान शम्भू निवास करते हैं। चारों ओर सफेद बर्फ से आच्छादित पर्वतों की शोभा प्रकाशमान हो रही थी। यह अति पवित्र दिव्य धाम कैलाश सुन्दर ज्योतिर्मय प्रतीत हो रहा था।

करि प्रणाम नारद कही, सुधि कहँ खोई नाथ। गोकुल आये ईष्ट वर, चेत करो भव माथ।।

श्री नारदजी ने कैलाश पर्वत पर विराजमान सारे परिवार सहित भगवान शिव को प्रणाम किया और गद्‌गद् वाणी से बोले, हे भोलेनाथ। आपके आराध्य परमानन्द स्वरूप श्री हरि गोकुल में प्रकट हो गए हैं और आप हर बार उनके बालरूप का दर्शन करने जाते हैं, उसी बात को याद दिलाने, हे कैलाश पति, मैं गोकुल से आया हूं। आप अपने समाधि लीन मस्तिष्क को चेतन कीजिए।

नारदजी शिवजी से बोले- आप तो समाधि में ही मस्त हो। आपके आराध्य कन्हैया ने नन्द के लाला बनकर ब्रज में जन्म ले लिया है। **तेरी लीला जग से न्यारी न्यारी हरि हरि। श्रीमन नारायण नारायण हरि हरि।।**

कैलासवासी भगवान शंकर ने देखा कि नन्द के गोकुल में परम ब्रह्म कृष्ण का प्राकट्य हो चुका है, अत: वे कन्हैया का दर्शन करने कैलास से चले। साथ में किसी भी गण को नहीं लिया। साथ से मन में विक्षेप पैदा होता है। भगवान शंकर योगी का रूप धारण कर द्वादशी के दिन गोकुल में नन्द बाबा के द्वार पर पधारे। जय-जयकार लगाईं ऐसा तेजस्वी योगी गोकुलवासियोंने आज तक नहीं देखा था। बड़ा ही अद्भुत था यह योगी।

प्रीतम दर्शन हेत भाल पर चन्द्र लगाया। अहि आभूषण धार कटी मृग चर्म धराया।।
प्रिया शिवा सुत मत्त नाग मुख षट मुखधारी। नंदी भृंगी सेवा हित नहिं वाक उचारी।।

गौरी पति शंकर भगवान ने अपने प्रियतम के दर्शन करने के लिए जटाओं को सँवार कर जूड़ा बाँधा, माथे पर चन्द्रकला लगाई, सर्पों के आभूषण हाथों, पैरों और जटाओं में लगाये। कटि प्रदेश में मृगछाल धारण की। भगवान ने न तो प्रिय पत्नी पार्वती को साथ जाने हेतु तैयार होने को कहा और न ही मत्तगज मुख गणेश जी और षटमुख धारी कार्तिकेय को और अपने प्रिय सेवक नंदी, भृंगी को सेवा हेतु साथ चलने को नहीं बुलाया। किसी को भी आवाज न लगाने का अर्थ था भोले बाबा अपने आराध्य के दर्शन करने अकेले ही जाना चाहते थे।

पार्वती ने पूछा- महाराज आप कहां जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं? शंकर बोले- जहाँ मेरे प्राणाधार घनश्याम हैं, मैं वही उनके दर्शन करने जा रहा हूँ। पार्वती बोली- भगवत् प्राप्ति के लिए जो कोई एक व्यक्ति परिवार में से जाता है, बाकी लोग उसमें सहयोग न करें तो वे सहयोगी नहीं है, वे तो दुश्मन हैं जो परमात्मा की तरफ जाने के लिए बाधा डालते हैं। आप जाओ जहाँ आपके श्यामसुन्दर है।

सुरति लगी घनश्याम त्वरा दर्शन की लागी। सहमति लै परिवार चले मोहन अनुरागी।।
कृष्ण कृष्ण श्री कृष्ण नाम रस लेवत रसना। कब गोकुल पग लाग न जाना मनुआ बस ना।।

भोले बाबा की चित्त वृत्ति अपने घनश्याम में पूरी तरह से लग गई और उनके दर्शन करने की व्याकुलता बढ़ने लगी। अत: परिवार की सहमति प्राप्त करके मोहन के अनुरागी शीघ्रता पूर्वक चल दिये। बार-बार श्री कृष्ण कृष्ण कृष्ण कहकर

रसना भगवत् नाम का रस लेने लगी। कब उनके चरण कमल गोकुल की धरती से स्पर्शित हो गये, उन्हें पता ही नहीं चला क्योंकि उनका मन उनके बस में नहीं था। मनुवा तो श्री हरि के दर्शन हेतु उनसे पहले ही दौड़ चला था।

भगवान गंगाधर अपने मोह की निवृत्ति के लिए ब्रज में पधारे। वृंदावन की धाम महिमा याद आते-आते आँखों से अश्रुपात होने लगे।

प्रेम की पिपास देख, देख निज प्रेमियों को, प्रेम का समुद्र सीमा तोड़ के बहाया है।
भावुक रसीले जन नहीं हो निराश अब, भावना की पूर्ति हेतु कल्पतरु बनाया है।
चिंतामणि जटित चारू, चादर बिछाई जहाँ, भास प्रविभास कुञ्ज कुञ्ज से सजाया है।
मनां चल वृन्दावन चलिए जिथे रहदें ने सांवल शाह।
जित्थे यमुना पई ठाठाँ मारदी, जित्थे प्रेम दा वगे दरिया।।
जित्थे संत दिवाने झूमदे मुखो राधे-राधे गा।। मना चल.....
जित्थे ना कोई माई बाप है जित्थे ना कोई भैण भरा।। मनां चल...
जित्थे दुनियाँ सारी भुल्दी, चढ़े श्याम मिलन दा चा।। मनां चल...
जित्थे राधारानी झूमदी, जदो श्याम देवे बंसी बजा।। मनां चल वृन्दावन चलिए...
झाँकि-झाँकि घर घर देखे गोकुल की गलियाँ। संत पधारे गाँव सभी के मन रँग रलियाँ।।
चन्द्र भाल करपूर वरण मस्तानी चाला। बात चली चहुँ ओर जुरी गोपी अरु बाला।।

शिव भोले ने गोकुल पहुँचकर गलियों और घरों में झाँकना प्रारम्भ कर दिया। उनकी आँखें श्री हरि के दर्शनों के लिए तरस रही थीं। शंकर भगवान के दिव्य स्वरूप के दर्शन करके गोकुल वासी बहुत प्रसन्न हुए। गाँव में दिव्य सन्त पधारे जानकर उनका मन मयूर उछल उछल कर नृत्य करने लगा। शंकर भगवान का कपूर जैसा सुन्दर रंग, माथे पर चन्द्र, मस्तानी चाल बहुत भली लग रही थी। तुरन्त सारे गाँव में बात फैल गई तथा बालक और गोपियों के झुण्ड के झुण्ड एकत्र हो गये।

जहँ देखो बस नँदनन्दन की चर्चा पाई। गोपिन सों मस्ताने जोगी बात चलाई।।
बाबा पहले मेरे घर तुम भोजन पावो। चौका करो पुनीत चलो जो चाहो खावो।।

भोले बाबा ने देखा जहाँ भी दृष्टि जाती है, गोपियाँ नन्दनन्दन की चर्चा कर रही हैं। मस्ताने जोगी ने गोपियों से पूछा, हे गोपियों। तुम किस नन्दनन्दन की बात कर रही हो? गोपियों ने कहा, बाबा। पहले तुम हमारे घर भोजन पाकर चौका पवित्र करो और जो तुम्हारे मन में हो वही वस्तु ग्रहण करो। दूसरी गोपी बोली- अरी सखी, तुमसे पहले मैं बाबा को घर ले जाकर आज मनवाँछित भोजन करवाऊँगी और भोजन से तृप्त करवाकर यशोदानन्दन सुखी रहे का आशीर्वाद प्राप्त करूँगी। दक्षिणा में जिस वस्तु की माँग करेंगे मैं वही वस्तु इनको भेंट करूँगी।

सब बोली हमरे मन की अभिलास यही री। नँदनन्दन हित जो तुमने निज मुखन कही री।।
बाबा बोले गूजरि मोको बात बताओ। अपने सुत को छोड़कर किसका कल्याण मनाओ।।

शंकर को ज्योतिषी जानकर अन्य सखियां बोली-अरी वीर। हमारे मन में भी एक यही अभिलाषा है कि हमारा प्यारा नन्दनन्दन सदा सुखी रहे, जिसका आशीर्वाद तुम बाबा से लेने के लिए अपने मुख से कह रही थीं। भोले बाबा ने कहा, अरी गुजरियो, मुझे भी तो बताओ अपने पुत्रों को छोड़कर तुम किसके कल्याण का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहती हो?

अपना वेश बदल लिया। वेश छुपा लेनेपर भी साँप और बिच्छू तो लटक ही रहे थे। अपना नाम शंकरानन्द महाराज

ज्योतिषी रख लिया और नन्दके द्वार पर आकर अलख निरंजन जगाने लगे।

ऐसा को गोकुल आया जो सर्व चहेता। अपने हित को भूलि चाह सबकी जा हेता।।

बाबा आये नये गाँव मो को अस लागे। ये नहिं जाने कस आवन सब भागन जागे।।

शंकर बोले- अरी गोपियों, भला बताओ तो सही गोकुल में ऐसा कौन बालक आया है जो तुम सबको अति प्रिय है? तुम लोग अपना और अपने परिवार का कल्याण भूलकर केवल बालक की शुभ कामना चहाती हो। गोपियाँ आपस में विचार करने लगीं कि ऐसा लगता है यह बाबा हमारे गाँव में नया-नया आया है जो इतना भी नहीं जानता कि गोकुल में किसके प्रकट हो जाने पर हमारे भाग जाग गये हैं। गोपियों ने कहा, अरे बाबा। हमारे बृजमण्डल के राजा श्री नन्दराय जी के यहाँ एक कुमार ने जन्म लिया है जिसकी सौन्दर्य भरी मोहिनी मूर्ति हम सब पर जादू सा डाल चुकी है। जिसके गोकुल में प्रकट होते ही रूठी हुई बहारें पुन: आ गई हैं तथा चारों ओर शीतल मन्द सुगन्ध पवन हमारे आनन्द को झकझोर कर बढ़ाने लगी है।

बाबा गोकुल स्वर्ग परे का कोई लोका। सब ही भये निरोग उमंगन पा त्रैलोका।।

सोना चाँदी हीरे मोती बरसा आई। आँगन चौक गली बन वीथी गये पुराई।।

गोपियाँ कहने लगीं, हमारा गोकुल इन दिनों स्वर्ग से भी परे का कोई दिव्य लोक बन गया है। गाँव में खाँसी खुर्रा जैसा छोटा मोटा रोग भी किसी को नहीं रहा। सब लोगों में इतनी अधिक उमंग है मानो त्रिलोकी का साम्राज्य प्राप्त हो गया हो। गाँव के बाहर और गाँव में सोना, चाँदी, हीरे मोती इतने बिखरे पड़े हैं मानो इन सबकी बरसात हो गई हो। घरों के आँगन, गाँव के चौक, गलियाँ और वन के रास्ते हीरे मोतियों से भर गये हैं।

नव नव वसन जड़ाऊ भूषण लागे ढेरा। इकदूजे कहँ देवत थाके घटा न घेरा।।

याचक गोकुल आय रहा नहिं माँगन हारा। ना ना करते उटज द्विजन आँगन भर डारा।।

गोपियों ने कहा, अरे बाबा। नये नये जड़ाऊ वस्त्र और आभूषणों के ढेर लग गए हैं। लोग एक दूसरे को बाँते बाँटते थक गये हैं फिर भी वस्त्र आभूषणों का ढेर थोड़ा सा भी कम नहीं हुआ। जो याचक गोकुल में आया वह याचक नहीं रहा, दाता बन गया है। ब्राह्मणों के मना करने पर भी लोगों ने उन्हें इतना अधिक दिया कि उनकी कुटिया और आँगन पूरी तरह से भर गये।

पहले दर्शन श्याम फेरि कछु मुख में डारूँ। जो तुम करो सहाय गोपिका नैनन ठारूँ।।

बहुत दूर सों गाँव तुम्हारे मैं चल आया। कान बड़ाई सुनी दरश जियरा ललचाया।।

अरी गोपियों, मैं बहुत दूर कैलाश पर्वत से चलकर तुम्हारे गाँव आया हूँ। मैंने अपने कानोंसे इस गोकुल के चाँद की बहुत बड़ाई सुनी है तो मेरा हृदय दर्शनों के लिए ललचा रहा है।

सोच गोपिका बाबा मिस पुनि दर्शन पावें। चलो चलो कहि संग लिये यशुदा घर आवें।।

नन्दमहल को देखि महाशिव वन्दन कीना। दरी अटारी सुघड़ कँगूरा खचित महीना।।

गोपियाँ मनमें विचार करने लगीं, बाबा को दर्शन कराने के बहाने हमें भी तो लाला के पुन: दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाएगा अत: चलो बाबा चलो कहती हुई गोपियाँ बाबा को साथ लेकर रानी यशोदा के घर पहुँच गई। नन्द महल को देखते ही महाशिव कैलाश पति ने हाथ जोड़कर वन्दन किया और भोले बाबा ने देखा, महल में सुन्दर सुन्दर छोटी छोटी खिड़कियाँ अटारियों में बनी हुई हैं।

नन्दी को दूर छोड़ चतुराई से जटायें बन्धनों में बाँध ली, फिर भी चन्द्रकलायें उनमें से झाँक रही थीं। हाथ में त्रिशूल, बगल में झोल, भाल पर त्रिपुण्ड, कण्ठ और कर में रुद्राक्ष और सर्प मालायें धारण किये जगह-जगह नन्द महल का मार्ग

पूछ रहे वे। दूर तमाल पर बैठे शुक रूप में काकभुशुण्डी ने अपने परम गुरू को पहचान लिया तत्क्षण भोलेनाथ के समक्ष उपस्थित हो उन्हें लेकर नन्दभवन के द्वार पर गये। नन्दमहल की ड्योढ़ी पर ही ब्रजेश विराजमान थे। उनका भी दिव्य वपु, श्वेत वस्त्र, श्वेत लम्बी दाढ़ी, हाथ में लम्बी लाठी। भोलेनाथ ने उन्हें भी कोई आगन्तुक दर्शनाभिलाषी सन्त समझा। वे नन्दजी की ओर बढ़े तो ब्रजराज ने उनका प्रणिपात किया और भोलेनाथ ने उनका।

दरशन श्याम के करादे जोगी आया चलके...

तेरा गोरा गोरा अंग जाये लिपटे है भुजंग, तेरे मस्तक ऊपर गंगा और चंदा चमके।

दर्शन श्याम के ना होवे बाबा जावो घरसे, दरशन .....

तूने ऐसी बीन बजाई मेरा सोया श्याम जगाई, वो तो अंखिया घूमावे और दुध उलटे।

शंकर विनती बहुत गाई, यशुमती हरि को लेकर आई, दो रूप में रंग समाये जोगी नाचे उछले। दरशन ...

शंकर कैलाशी अविनाशी, मेरी काटो यमकी फाँसी, मैं तो जनम-जनम की दासी। दरशन ...

भगवान चन्द्रमौली ने पूछा क्या यही नन्दराय का महल है? नन्द ने करबद्ध होकर कहा- आप भी क्या लाला के दरशन करने आये है? आप कहाँसे पधारे है? शंकर ने कहा- हम तो बहुत दूर हिमालय से आये हैं। नन्दने पूछा- आपको क्या काम है? शंकर बोले- हमें तो आपके लाला के दर्शन की अभिलाषा है। नन्द ने मन्दिर की ओर इशारा करते हुए बोले- दर्शन तो ठाकुर का होय, देखो सामने मन्दिर हैं, वही पर चले जाओ। शंकर बोले- हमारा तो वह प्रभु है जो यशोदा के अंक में छुपा है। उसीके दर्शन की अभिलाषा से आये है। नन्द बोले- आपका क्या नाम है? मैं भीतर खबर करूं। शंकर बोले- मेरा नाम शंकरानन्द है बाबा। आपका क्या परिचय है? नन्द विनम्रता से बोले- बस आपके नाम से शंकरा हटादो और बच जाय वह मेरा नाम है। भगवान आशुतोष समझ गये कि ये ही नन्दराय है। भोलेनाथ द्वारपर बैठ गये और शंखनाद करने लगे।

हे हो व्रजराज कोऊ वेषधारी आज इस पुत्र को जनम सुनि आयो तेरे भवन में ।।
मोती मणिमाणिक पट कंचन न रतन लेत हय गय भूमि ग्राम लेत हमसो न है ।।
नगर अहोटे नाहिं भूमि व्रज लौटे एक अलख उचारै बैन और निज मौन है ।।
बालक के पाँव लै जटान सों छुवाय नाचै योगी तीनि आँखि को कहाँ से आयो कौन है ।।

गोपियां जाकर यशोदा को बोली-

यशुदा लाला भाग बड़, आवत देव महान। आज द्वार तप मूरती, दरसन कहुँ अकुलान ।।

अरी यशोदा, तेरे लाला के बड़े भाग्य हैं जो महान देवता लोग भी तेरे लालाके दर्शन करने आते हैं। आज तो तेरे दरवाजे पर महान तपस्वी मूर्ति परम सन्त तेरे लाला के दर्शन के लिए अकुला रहे हैं।

यशोदा बोली भाग बड़े मेरे घर आई। महातपी साधू बाबा संदेसा लाई।
पर मैं लाला बाहर अब नाहीं लै जाऊँ। अबहिं कियो स्नान लाला अब दूध पिलाऊँ ।।
जो माँगे सो वस्तु ताहि तुम ही दे आवो। लाल उनींदे नैन नहीं बहु सोर मचावो ।।
जब ते आई छली पूतना जी घबरावे। अब लों वाकी छवी नहीं जियरा टरि पावे ।।
चार दिना नहिं गये विप्र इक घर महँ आया। झूठ कपट पाखण्ड करी मोको भरमाया ।।
तपी व्रती करि ढोंग लाल मारन हित आना। पूरणमासी कहा पुरोहित कंस पठाना ।।
ताते महर ताड़ना मीठी मों कहँ दीनी। वृद्ध अवस्था प्रथम पुत्र लालन नहिं कीनी ।।

अब जनि अनजाना कोई भीतर घुसि आवे। अन पहिचाने हाथन महँ लाला नहिं जावे।।

देखि विप्र को रूप धर, भोजप असुर पठान। अब साधू के वेष महँ, जनि हो असुर महान्।।

यशोदा जी ने कहा, ब्राह्मण के रूप में कंस के द्वारा एक असुर को भेजा जाना मैं देख चुकी हूँ। अबकी बार हो सकता है, कोई भारी असुर तपस्वी साधु के वेष में भेजा हो।

कहा गोपिका निज कर सों भिक्षा दे आवो। दूध जरे पे छाछ फूँकि पाछे पछतावो।

ठोकर खावे राह राहि राहन नहिं त्यागे। करु मिंगी बादाम खाइ को खावन भागे।।

गोपियां बोली, अरी यशोदा, बाहर खड़ा महात्मा बहुत तेजस्वी है। हम लोगों की इच्छा है कि तुम उसे अपने हाथ से भिक्षा देकर आओ। ये तो हमें भी मालूम है, गर्म गर्म दूध पीने से कभी मुँह जल गया हो तो फिर वह दूध जैसे सफेद रंग की छाछ को भी गर्म समझ कर उसे ठण्डा करने के लिए फूँक मारने लगता है। इसी प्रकार असुरों के दुर्भाव से डरी हुई तुम सन्तों को असुर समझ बैठी हो। इसलिये उनके प्रति अवहेलना का बर्ताव कर रही हो। अरी, जरा सोचो, किसी को रास्ते में ठोकर लग जाए तो वह राही रास्तों पर चलना बन्द नहीं करता और न ही कोई बादाम की कड़वी गिरि मुख में आने पर बादाम खाना बन्द करता है। अरी यशोदा, अगर कोई घुड़सवार घोड़े से गिर जाये तो क्या वह घोड़े पर चढ़ना बन्द कर देता है? यदि भोजन पाते समय किसी के मुख में कंकड़ चला जाये तो क्या वह हमेशा के लिए भोजन पाना ही छोड़ देता है? तुम्हारा लाला हमें भी प्राणों से अधिक प्रिय है। हम तो उसे महान सन्त का आशीर्वाद प्राप्त करवाके तुम्हारे लाला का जीवन सुखमय बनाना चाहती हैं।

करिके यही विचार तुम्हारे गृह में आई। आगे तू ही जान करो जो तुम्हें सुहाई।।

सखियो तुमरी बात हमारे मन मँह लागी। निज कर भिक्षा डारि संत देखूँ अनुरागी।।

गोपियों ने कहा, यही शुभ विचार करके हम तुम्हारे घर आयी थीं और महान तेजस्वी सन्त को दरवाजे पर खड़ा भी कर आई हैं। हमने तो अपने मन की बात कह दी अब तुम जानो। जैसे तुम्हें अच्छा लगे वही करो। यशोदा जी बोलीं, अरी सखियो, मेरा भाव किसी सन्त का अपमान करना नहीं है। मैंने महर का संकेत और अपने मन की स्थिति तुम्हें बता दी है। तुम लोग उस महान सन्त की इतनी बड़ाई गा रही हो तो मैं तुम्हारी बात मान लेती हूँ। लाला के प्रति तुम्हारे स्नेहवाली बात मेरे मन को बहुत अच्छी लगी। अब मैं तुम्हारी इच्छानुसार उस अनुरागी सन्त के दर्शन करने चलती हूँ और मैं मेरे हाथों से उसे भिक्षा भी दे आऊँगी।

योगी के द्वार पर पधारने का समाचार मैया यशोदा को मिला। मैया ने पात्र में भिक्षा सजाकर दासी को भेज दिया। दासी ने कहा- महाराज, यशोदा जी ने यह भिक्षा भेजी है। आप इसे स्वीकार कर लाला को आशीर्वाद दें। शंकरजी ने कहा- मैं भिक्षा नहीं लूँगा। मुझे किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। मुझे बाल कन्हैया का दर्शन करना है। दासीने जाकर यशोदाजी से कहा कि- साधु महाराज कुछ लेना नहीं चाहते। वे तो केवल लाला के दर्शन के लिये ही इतनी दूर तक चलकर आये हैं। कैलाश पर्वत पर तपस्या करते हैं, गुरु का आदेश हुआ तो दर्शन करने आये हैं।

यशोदा सोचने लगी- कोई जो भी द्वार पर आये, बिना कुछ भेंट लिये वापस न जाय इसलिए एक थाल में मणि भर कर भेज दी।

उनके पास धन के नाम पर बैल ही पशुधन है और वस्त्रों के नाम पर बाघम्बर ही है यशोदा ने कहा फिर वह क्या चाहता है और अपने भोले स्वभाव को देखने के लिये चल दीं।

मैया ने देखा- **सर्वांग में भस्म, रुद्रा और सर्पों के आभूषण, लम्बी जटायें, हाथ में डमरू और त्रिशूल।**

अरी मैया तोरे द्वारे, यशोदा तोरे द्वारे, बाला जोगी आयो रे।

मैया तेरे लाला के दर्शन को एक दीन भिखारी आया है। दर्शन की भिक्षा पाने को ये नैन कटोरे लाया है।।
भरि मोतिन को थार यशोदा बाहर आई। असन वसन लै संग द्वार लाँघत रुक जाई।।
दृष्टि परा जब रूप संत यशुदा घबरानी। भस्म धरे सब अंग नाग कातर लटकानी।।
महाभयंकर नाग सभी मिल फुन्न फुकारें। डरी यशोदा भीतर जावन पग पलटारे।।

माता यशोदा संत को भिक्षा देने के लिए मोतियों से भरा हुआ थाल लेकर बाहर आई और साथ में बहुत सा भोजन का सामान और वस्त्र आदि भी ले आईं। दरवाजे से बाहर पैर रखते ही ठिठक कर रुक गईं। माता यशोदा की दृष्टि सन्त के स्वरूप पर पड़ी तो एकदम घबरा गईं। उन्होंने देखा कि यह कैसा विचित्र महात्मा है, सारे शरीर पर भस्म लगाए हुए हैं और अंग अंग पर नाग, बिच्छू और कातर लटका रखे हैं। कई साँप तो बड़े आकार के महाभयंकर हैं और फुन्न फुन्न करके फुफकारे छोड़ रहे हैं। माता यशोदा यह सब देखकर बहुत भयभीत हो गई और डर के मारे भीतर जाने के लिए अपने पैरों को पलट लिया।

ब्रजेश्वरी ने स्वर्णपात्र की भिक्षा देने को जब हाथ आगे बढ़ाया। यशोदा मोतियों से भरा थाल लेकर योगी को देने लगीं और योगी बाबा से बोली- इसे लेकर अपने आश्रम को शीघ्र ही पधारो, नहीं तो मेरा लाला तुम्हें देखकर डर जाएगा।

होर कोई सेवा मैंनू दस जोगिया। नहीं बाल वाली गल मेरे बस योगिया।।

तब ही भगवान शंकर ने उच्च स्वर से अलख जगाई और बोले- माता, हमारी बात सुनो, यह भिक्षा हमारे किसी काम की नहीं, हीरे, मोती, भोजन वस्त्र हमारे यहाँ भरपूर मात्रा में हैं। माता मैं तो वीतरागी हूँ। इन पत्थरों से मेरा क्या प्रयोजन? मुझे तो अपने लाला के दर्शन की भिक्षा दे। मुझे तुम्हारी माया नहीं चाहिये, मैं तो तुम्हारे पुत्र का दर्शन करने के लिये आया हूँ।

हे यशोदे, अन्न की मुट्ठी मेरी भिक्षा नहीं है। हे बड़भागिन यशोदे, तू अपने पुत्र का दर्शन कराकर मेरे चित्त को प्रसन्न कर दें यही मेरी इच्छा है। हे देवि। अपने पुत्र का दर्शन कराना ही तेरा बड़ा दान होगा। इस दान से ही तू मेरा, यति (सन्यासी) का सत्कार कर, तेरा मंगल होगा, क्योंकि मैं बहुत दूर से आकर बड़ी कठिनता से यहाँ पहुँचा हूँ। हे यशोदे, मैं सत्यवादी हूँ, तू मेरे वचन पर विश्वास करके मेरे परिश्रम को सफल कर।

तेरे द्वार खड़ा एक जोगी, ना माँगे ये सोना चाँदी,
ना माँगे ये हीरा-मोती, माँगे दर्शन देवी तेरे लालाका।

यशोदा बोली- बाबा, लाला अभी बहुत अबोध है, छोटा है। तेरा यह उग्र रूप देखकर डर जायगा। शंकर बोले- अरी माता, तुम उन सर्वेश्वर का प्रभाव नहीं जानती। भय भी उनसे भयभीत रहता है।

मैया बोली- बाबा, तेरा विवाह हुआ है? शंकरानन्द बाबा बोले- मेरी पत्नी अन्नपूर्णा है। मैया ने पूछा- बाबा, तेरे कितने बेटे है? बाबा बोले- मेरे दो बेटे हैं। एक छः मुँह का है और एक हाथी जैसा गजमुख है। मैया बोली- तो बाबा, तू अपने छोरों को छोड़कर दूसरों के छोरों को क्यों देखता फिरता है, क्या यह कोई अच्छी बात है? बाबा बोले- अरी मैया, कहाँ काँच के टुकड़े कहाँ हीरे मोती। कहाँ मिशरी की डली और कहाँ चिपकना गुड़ का ढ़ेला। कहाँ रेशमी रूमाल और कहाँ फटे टाट का थैला। मेरे छोराँ तो हैं पर तुम्हारे जैसा छोरा कहाँ?

जाके भय भय हूँ डरपाई। लाल तिहारो सोइ सुखदाई।
अग्नि सूर्य जिन भय तप सारे। इन्द्र, वायु, यम जासों हारे।।

शंकर बोले- जिसके डर से डर भी कांपने लगता है। अग्नि, सूर्य आदि इसकी आज्ञा के कारण तपते हुए काम में लगे

रहते हैं और इन्द्र, वायु, यमराज इनकी भी, इसके आगे कुछ नहीं चलती। वही सुख देनेवाला तुम्हारा लाला है। वही ब्रह्म तुम्हारा पुत्र बनकर आया है। तुम मुझपर दया करो और दर्शन करके मेरा जीवन सफल करो।

माता तेरो लाल युगो युग दर्शन देवे। सदा रहे परसन्न सदा परिकर सुख सेवे।।
रोग दोष नहिं निकट सदा खुसहाली काया। है मेरी आसीस लगे नहिं काहू माया।।
हिमआलय कैलास गिरी ऊपर मम डेरा। अन्नपूरणा परिपूरण नहिं झंझट झेरा।।
गोकुल का परकाश हमारे हिय महँ आयो। यासों दरसन कारण ही गोकुल उठि धायो।।

शिव बोले- माता, तेरा सुन्दर और प्यारा लाल युगों युगों तक दर्शन देता रहे। यही हमारी शुभ कामना है कि लाला सदा प्रसन्न रहे और हमेशा अपने परिकर को भी सुखी रखे। इनका शरीर सदा खुशहाल रहे, कोई रोग, दोष तेरे लाला के निकट भी न आये। हे मैया, मुझ बाबा का यही शुभ आशीर्वाद है कि तेरे लाला पर किसी की माया का कोई प्रभाव न पड़े। कैलाश पति फिर बोले, ओ मेरी मैया, मेरा डेरा बहुत दूर हिमालय में कैलाश पर्वत पर है। मेरी पत्नी अन्नपूर्णा है। कभी किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं होता। गोकुल में तेरे यहाँ जिस चाँद से लाला ने जन्म लिया है, उसका दिव्य प्रकाश मेरे हृदय तक पहुँच गया। इसीलिए लाला के दर्शन करने को मैं गोकुल में दौड़ा चला आया हूँ।

यशोदा ने खिड़की से झाँक कर योगी को देखा और कहा- महाराज, यदि भिक्षा कम हो तो मैं कुछ और देने को तैयार हूँ किन्तु मैं लाला को बाहर नहीं लाऊँगी। आपको भोजन चाहिये तो भोजन ले जाओ, आटा, दाल, चावल, कम्बल, बर्तन जो चाहिये सो ले जाओ पर लाला का दर्शन नहीं कराऊँगी। महाराज मैं अस्सी बरस की हो गयी। तेरेको देखकर मुझे डर लगता है। आप के गले में सर्प है, मेरा लाला उसे देखकर डर जायेगा। लम्बे-लम्बे साँप, बिच्छू कानमें लटक रहे हैं, शरीर में चिता की भस्म लगा रखी हैं, बाघम्बर पहने शेर का मोंह बना रखा है, मैं अपने लाला के दर्शन नहीं कराऊँगी मुझे डर लगता है। तुम्हारी इतनी विकराल जटा। बाबा, जो भी चाहे हीरा चाहिये, जवाहरात चाहिये, सोना-चांदी चाहिये, गायें चाहिये सब ले जाओ पर माफ करना मैं अपने लाला को नहीं दिखाऊँगी। मेरा लल्ला तो छोटा है, पलना में सो रहा है।

शिव बोले- माता, तेरा कन्हैया तो काल का काल और ब्रह्म का ब्रह्म है वह न तो किसी से डर सकता है और न उसे किसी की कुदृष्टि ही लग सकती है। वह तो मुझे पहचानता भी है। साँप को देखकर डरेगा तेरा लाला? अरी मैया ये तो छोटे-छोटे सर्प हैं, तुम्हारा लाला तो एक हजार फन वाले शेषनाग पर सोता है। यशोदा मैया बोली- तुम गलती से दूसरी जगह आ गये हो महाराज। मेरे लाला तो चित्र में भी साँप देखे, तो डर लगता है और डर के मारे मेरी गोदी में चढ़ जाता है। उसको तो साँप चित्रमें भी अच्छा नहीं लगता और तुम कह रहे हो वो शेषनाग पर सोता है।

हम मूढ़न के समुझ न आवत, संस्कृत वचन तुमारो। जो चाहिये सो साधो लेवो, यह सब तोर अगारो।।
भवन पवित्र करो चौके में, भोजन हेत पधारो। दधि घृत पायस पूरी जेमो, कम्बल लीजो कारो।।

हम बेसमझ, अनपढ़े लोगों को आपके संस्कृत-वचन समझ में नहीं आते। हे महात्माजी, यह सारा घर तो आपका ही है। अब आपकी जो इच्छा हो, सो लीजिये और प्रार्थना करती हूँ, आप हमारे घर के भीतर चलें और चौके में बैठकर भोजन करें। आपके पधारने से हमारा घर पवित्र हो जायगा। बाबा, दूध, दही, घृत, खीर, पूरी- बड़े प्रेम से बैठकर भोजन करिये और ओढ़ने के लिये काला कम्बल भी लीजिये, अर्थात् जिस वस्तु की इच्छा हो, उसी को ग्रहण कीजिये।

भोजन कम्बल हम नहि लेवें, और नहीं कुछ भाये। अपने सुत के दर्श करा दे, जिस हित तव गृह आये।।
मन वांछित देना निगमागम, दान विधी बतलाये। जैसा सुर तैसी तस पूजा, नीती निगम बताये।।

शंकर बोले- हे नंदराज की पत्नी सुनो, हम न तो भोजन और न कम्बल ही लेंगे और दूध, घृत, खीर, पूरी आदि ये भी हमें अच्छे नहीं लगते। जिस निमित्त तेरे घर में आया हूँ सो तुम अपने पुत्र का दार्शन मेरे को करा दे और मेरी कोई इच्छा नहीं है। वेद-शास्त्र में दान की विधि में बतलाया है कि अतिथि भिक्षु को उसकी इच्छानुरूप देना चाहिए। नीति-शास्त्र वेद में भी यही बतलाया है कि देवतानुरूप ही पूजा करनी चाहिये।

शंकर भगवान बोले, अरी मैया। तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारा लाला तो अखिलेश्वर है, सर्वेश्वर है और इसी ने सारे विश्व का फैलाव किया हुआ है। पूर्व काल में सूर्य भगवान ने तुम्हारे लाला को अद्भुत रूपों में देखा है, उन्होंने इनके दिव्य रूपों को परमानन्द स्वरूपों में देखा है।

नाना वर्ण अलौकिक वेषा इन महँ देखे। आठ वसू एकादश रुद्रा सुर अवरेखे।।
अश्वनि सुत उश्वास मरुद्गण अमित प्रकासा। लखी चराचर सृष्टि विधाता ऋषि अहिवासा।।

शिव शंकर ने कहा, हे मैया, भास्कर भगवान ने तुम्हारे लाला के अनेक वर्ण और अलौकिक वेश देखे। तुम्हारे पुत्र के विराट रूप में सूर्यदेव ने अपार सृष्टि देखी। आठों वसु ग्यारह रुद्र व अन्य देवों के सहित अश्विनीकुमार और उनचास मरुत गण, अपार प्रकाश सहित विधाता ब्रह्माजी, अपार ऋषियों सहित सर्प और चराचर सृष्टि देखी। योगी बाबा बोले- मैया, सूर्य नारायण ने तुम्हारे लाला के असंख्य सिर, अपार भुजाएँ, अनन्त चरण, पेट, मुख और नेत्र देखे। सूर्य भगवान विराट रूप का आदि, मध्य और अन्त पूरी तरह नहीं देख पाए। कहीं सिर पर मुकुट पहने थे, किसी हाथ में गदा, किसी हाथ में चक्र और किसी मुँह में अग्नि की लपटें चमचमा रही थीं। इनका स्वरूप उपमा से रहित, जगत का आश्रय और धर्म का अवलम्ब था।

स्वर्ग धरा नभ दस दिग्पाला याके माहीं। रूप अलौकिक महा भयंकर हू लख पाहीं।।
कर जोड़े भयभीत देव बहु याके आगे। ऋषि मुनि वन्दित लाल नहीं काहू डर लागे।।

हे मैया, तुम्हारे लाला के विराट रूप में सूर्य देव ने स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश, दसों दिक्पाल और अलौकिक महा भयंकर रूप भी देखे, जिसके आगे भयभीत देवता हाथ जोड़े खड़े थे। ऋषि, मुनि जिस तुम्हारे लाल की वन्दना करते हों उसे किसी का भय भयभीत नहीं करता।

विश्वेदेवा साध्यगणा गंधर्व रु पितरा। राक्षस यक्ष सिद्ध मुनि ज्ञानी भक्तन मितरा।।
कर जोरे वन्दन कर देखे रूप विशाला। वपु विकराल दाढ़ निज छेदे सृष्टि कराला।।

हे मैया यशोदा, तुम्हारे लाला के विशाल रूप के आगे विश्वेदेवा, साध्यगण, गन्धर्व, पितर, राक्षस, यक्ष, सिद्ध, मुनि, ज्ञानी और श्रेष्ठ भक्त हाथ जोड़कर वन्दना करते हुए देखे, जिस विराट रूप में कई विकराल मुखों को भयंकर दाढ़ों के द्वारा सृष्टि के जीवों को छेदन करते हुए देखा। वह सबसे अलग निराकार ही है ऐसा वेद कहता है। किन्तु तुम्हारे प्रेम ने इसे साकार बना दिया है।

महायोगेश्वर शिव ने कहा, जब तुम्हारे लाला ने देखा कि मेरे विराट रूप की भयंकर आकृतियों को देखकर ऋषि, देवता आदि बहुत भयभीत हो रहे हैं तब अपने विशाल रूप को अन्तर्ध्यान करके सुन्दर सौम्य रूप मुस्कान के सहित प्रकट कर लिया।

या लघु नागर डरे मात यासों अति भारी। शेषनाग की सेज सोव नित चरण पसारी।।
मातृ भाव युत मैया को यह बात न भाई। बाबा तू क्या कहे कहा तव मति बौराई।।

कैलाश पति शंकर भगवान ने कहा, अरी मैया, तू व्यर्थ में ही शंका कर रही है कि मेरे शरीर पर लिपटे हुए छोटे छोटे साँपों से तुम्हारा लाला डर जाएगा। अरी भोली मैया, तू नहीं जानती, तेरा लाला तो अति विशाल शेष नाग की शैया पर अपने पैर

पसार कर सोता रहता हूँ।

क्रूर नाग सँग रहत याहि सों क्रूरा धारी। मैं जननी नहिं लखा कहा तुपहुँचे।
अब जनि बाढ़ो बात यहाँ सो त्वरित पधारो। है अचरज मो अधिक कहा तू जानन हारो।।

यशोदा बोली- **मैं बाल नहीं दिखावूं, मुनि वचन सुन हमारे। तव तनु कुरूप दीसे, गल मांहि नाग कारे।।**
डरपत तनूज मेरा, तव देह के निहारे। सब जीव को अभयता, देनी सुधर्म थारे।।

मैं अपना बालक तुझे नहीं दिखाऊँगी, तेरे गलेमें काले नाग लिपटे रहने से तेरा शरीर कुरूप देखने में आता है, इस कारण तेरी देहके देखने मात्र से ही मेरा पुत्र डर जायेगा। आप जैसे महात्माओं का धर्म है- जीवमात्र को निर्भयता देना।

माता यशोदा ने कहा, अरे योगी बाबा, क्रूर विषैले साँपों के साथ रह रहकर तुम्हारी बुद्धि में क्रूरता भर गई है। मैंने अपने पुत्र की माता होते हुए भी आज तक नहीं देखा कि मेरा बेटा किसी दिन साँप के ऊपर सोया हो और तुमने पहले दिन ही आकर इतना बड़ा झूठ बोल दिया। अब तुम बात को मत बढ़ाओ और शीघ्रता पूर्वक यहाँ से चले जाओ। यह कितने आश्चर्य की बात है कि तू मेरे बेटे के विषय में मुझसे भी अधिक जाननेवाला हो गया।

बड़ बातन के बीच भले केता भरमाओ। नहिं लाऊँ मैं लाल नहीं तुम लखने पाओ।।
बढ़ बढ़ करते बात डरे नहिं लाला तेरो। बात मान नहिं डरपाऊँ मैं लाला मेरो।।

मैया ने कहा, अरे जोगी बाबा, तुम अपने ज्ञान की बड़ी बड़ी बातों में मुझे कितना भी भरमाओ, बहलाओ, मैं तुम्हारी बातों में आनेवली नहीं। न तो मैं अपने लाला को बाहर लाऊँगी न ही तुम उसे देख पाओगे। बहुत बढ़ चढ़कर बातें कर रहे हो कि तेरा लाला बिल्कुल नहीं डरेगा।

कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, सूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो।।
नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यसुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौ वारौंगो।।

फिर भला मेरा छोटा सा लाला कैसे नहीं डरेगा? मैं तुम्हारी बातों में आकर मेरे लाला को बाहर लाकर तुम्हारे इन काले काले नागों से भयभीत करवाना नहीं चाहती।

जो हो सो अब संत रूप को बाना थारो। भिक्षा लेकर त्वरित आपने धाम पधारो।।
सरल गृहस्थन को दुख देना उचित न थारे। बिनु भिक्षा जावो अघ लागे बाबा भारे।।

माँ यशोदा बोलीं, मैं नहीं जानती कि तुम साधु के वेष में कौन हो और न ही जानना चाहती हूँ। तुमने सन्त का बाना धारण किया है अत: जो भी हो अब भिक्षा लेकर शीघ्र अपने धाम पधारो। सरल गृहस्थियों को दु:खी करना आपके लिए उचित नहीं है। तुम बिना भिक्षा लिये जाओगे तो हमें भारी पाप लगेगा क्योंकि हमने सुना है कि अगर कोई महात्मा गृहस्थ के दरवाजे से बिना भिक्षा लिये लौट जाता है तो वह गृहस्थी के पुण्य साथ ले जाता है और अपने पाप दे जाता है।

तुम रिक्त कर न जावो, हम बाल बचे वारे। जिस भवन से भिखारी, यदि रिक्त हाथ पधारे।।
तब उस गृहस्थ को सो, देके स्वपाप सारे। उसके सुकर्म लेवे, इम वेद श्रुति उचारे।।

आप मेरे घर से खाली हाथ नहीं जावें अर्थात् कुछ भोजन लेके जावें, क्योंकि हम तो बाल-बच्चे वाले गृहस्थी हैं। वेदों और श्रुतियों ने कथन किया है- जिस घर से यदि भिक्षु खाली हाथ चला जाए, तब उस गृहस्थ को वह भिक्षु अपने सारे पापों को देकर जाता है और उस गृहस्थ के सम्पूर्ण पुण्यकर्म आप ले जाता है।

अपराध देना मोको, यह उचित नहीं तुमारे। तव पादपद्म बन्दूँ, तुम शांत हृदय वारे।।

देवो असीस शिशु को, भिक्षा करो अगारे। जब श्याम युवा होगा, तब दर्श करसि थारे।।

हे मुनिराज, हमारे को अपराध लगाना, यह आपके योग्य नहीं है, क्योंकि आप तो सज्जन, उदार-आत्मा, सर्व-हितकारी हैं। मैं आपके चरणकमलों में नमस्कार करती हूँ। आप तो बड़े शांत, गम्भीर हृदयवाले हैं, इस कारण जिससे उसकी बड़ी आयु हो, धर्मात्मा हो, आप सज्जनों का भक्त हो, इस प्रकार आशीर्वाद दें। आपने जो दर्शन के लिये कहा है, तो महाराज, जब मेरा श्याम बड़ा होगा, तब आप (स्वयं) ही आकर के आपकी कुटिया में दर्शन करेगा।

शंकर बोले- जब तक तेरे बालक का दर्शन न हो तब तक मैं नहीं जाऊँगा और यशोदा का कहना था कि ऐसे बाबा लोगों का कोई भरोसा नहीं।

या सों जोरूँ हाथ लखो अपना शुभ बाना। नहिं सन्तन की रीत जोइ तुमने हठ ठाना।।

बाल दरस को चाव रूप क्यों संत बनाया। अपने बाल लखाव जने जो तुमरी जाया।।

माँ यशोदा ने कहा, बाबा। मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ती हूँ। तुमने सन्त का बाना पहन रखा है उसकी तो कुछ लाज शर्म करो। क्या यही सन्तों की शोभनीय रीति है कि गृहस्थियों के दरवाजे पर उनके बच्चों को देखने का हठ करके अड़ जाना? अगर तुम्हें बच्चों के प्रति इतनी ममता है और उनको देखने का चाव मन में भरा हुआ है तो फिर घर छोड़कर सन्त का बाना क्यों पहन लिया? घर में तुम्हारी पत्नी से जने बच्चों को देखते रहते।

यशुदा धरनी सीस धर, शिव हित किया प्रणाम। क्षमा करो मम देवता, छाँड़ो मेरा धाम।।

देवी यशोदा ने विक्षिप्त हृदय से धरती पर सिर रखकर योगी बाबा को प्रणाम किया और बोली, अरे देवता, मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं कर सकती अत: कृपा करके मेरा घर छोड़कर प्रस्थान करो।

शंकरजी मैयाको समझाने लगे और बोले- ये तेरा लाला है ना देखने में छोटा लगता है। पर हजार फनवाले शेषनाग पर शयन करता है। मैंया इसका कोई क्या बिगाड़ सकता है? इसका तो कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैया बोली- महाराज मुझे क्षमा करना। आपके कान में यह बिच्छू और सर्प लटक रहे हैं, ये बड़े-बड़े नाग जीभ निकाल रहे हैं, मुझे डर लगता है। महाराज मैंने बड़ी तपस्या करी, बड़े-बड़े यज्ञ किये, ब्राह्मणों को खाना खिलाया, बहुत सी गायें दान की तब कही जाकर लाला का दर्शन हुआ। जब मुझेही डर लगता है तो मेरा लाला क्यों नहीं डरेगा।

लालन दरसन हेत नैन मेरे बड़ प्यासे। मैया बड़ी उदार सुना मैंने हर पासे।।

जैसी तेरी महिमा चारों ओर पसारी। कृपण भई क्यों मात आज जब मेरी बारी।।

परम प्रेम मूर्ति शिव भगवान ने आगे कहा, हे मैया यशोदा। परमानन्द स्वरूप तेरे लाला के दर्शन करने के लिए मेरी आँखों में बड़ी प्यास है और मेरी यशोदा मैया के विषय में हर कोई कहता हुआ सुना गया है कि मैया बहुत ही उदार है। जिस प्रकार से तुम्हारी उदार गुणों की महिमा चारों ओर फैली हुई है, उसीके अनुसार मुझे भी अपने लाला के दर्शन करवा दो। मेरी बारी, हे मात, आज इतनी कृपण क्यों बन रही हो?

यशोदा बोली- **संत नहीं यह चेटकी, चेटक करि भरमात। मायावी माया करे, मैं नहिं भ्रम महँ आत।।**

माता यशोदा ने सखियों से कहा, अरी सखियो, यह कोई सन्त महात्मा नहीं यह तो कोई चमत्कार दिखानेवाला जादूगर प्रतीत होता है जो अपने जादू का प्रभाव दिखाकर हमें भरमाना चाहता है। यह मायावी कितनी ही माया दिखावे, मैं इसके भ्रम में नहीं आनेवाली।

यशुदा बोली बाबा दर्पण रूप निहारो। भर पाई मैं दरसन करि आगे पग धारो।।

अस्सी पाँच पिचासी की मैं भई डोकरी। मैं डरपूँ तब क्यों नहिं डरपे छोर छोकरी।।

माता यशोदा फिर भगवान शंकर से बोली, अरे बाबा, दर्पण में अपना रूप तो देखो, कैसा भयंकर दीख रहा है। तुम्हारे दर्शन करके मेरा पेट भर गया है, अब तुम यहाँ से कहीं दूसरे स्थान के लिए पैर बढ़ाओ। मैं अस्सी पाँच पिच्चासी वर्ष की वृद्धा हो गई हूँ और जब मैं इस विकराल रूप को देखकर भयभीत हूँ तब नन्हे नन्हे छोरा छोरी क्यों नहीं डरेंगे?

जाने क्यों गोपी तोकों मेरे घर लाई। लाल दरस की चाह लखो गोपी घर जाई।।

नाग तुम्हारे तुम्हें सुभावें सँग लै जावो। दरशन भर गया पेट कहीं अब दरस करावो।।

यशोदा जी ने कहा, अरे महा तपस्वी। जाने इन गोपियों को क्या सूझी जो तुझ जैसे भयंकर वेषधारी बाबा को मेरे घर ले आईं। अगर तुम्हारी छोटे बच्चों को देखने की प्रबल इच्छा है तो इन गोपियों के घर जाकर इनके बच्चों को देख लो। तुम्हारे साँप तुम्हें ही शुभ हों, इन्हें भी गोपियों के घर साथ ही लेते जाओ। तुम्हारे दर्शन करे मेरा पेट पूरी तरह भर गया है, अब ये सुन्दर दर्शन किसी और के घर जाकर करवाओ।

लाला है बड़ छोट नाग छाया डरि जावे। नाग संग लै जाव कहीं कोई छूट न पावे।।

मुझे बुला कर लाई तुम याही के हेता। अमित तपस्वी येही बड़ आसीसन देता।।

माँ यशोदा ने फिर कहा, अरे जोगी बाबा, मेरा लाला तो अभी बहुत छोटा है। साँप की छाया से भी डर जाता है। तुम यहाँ से जाते समय सारे साँप अपने साथ ही लेते जाना। ध्यान रहे, एक भी यहाँ छूटने न पाये। यशोदा जी गोपियों से बोलीं, इसी सपेरे योगी के दर्शनों के लिए मुझे भीतर से बुलाकर लाई हो। अरी गोपियों, क्या यही तुम्हारा महान तपस्वी है और यही लाला को बड़े बड़े आशीर्वाद देनेवाला है।

गोपी बोली आज यशोदा भई बावरी। सन्तन पग धूरी सिर धारत कहाँ चावरी।।

सत्य लाल के रक्षण हेतू बात बताई। वा आया अभिमान संत की करत बुराई।।

यशोदाजी की बात सुनकर गोपियाँ आपस में कहने लगीं, आज यशोदा बावरी तो नहीं हो गई है। सन्तों के दर्शन करते ही उनके चरणों की धूलि को सिर पर धारण करने का शुभ आचरण, श्रद्धा, उत्साह कहाँ लुप्त हो गया है? यह सचमुच लाला के भयभीत होने से सुरक्षा करने हेतु इस प्रकार का बर्ताव कर रही है अथवा इसके मन में विशेष पुत्र प्राप्त होने का अहंकार आ गया है? इसके पुत्र का दर्शन करने के लिए बड़े बड़े देवता भी आते हैं, इसी अहंकार के कारण इस समय इतने बड़े महात्मा की बुराई कर रही है।

हम आईं इन संग साँप एकहु नहिं खाया। बाल लगें सब संग नाहिं एकहु डर पाया।।

चेटक नहीं दिखात घोर तप कर परभावा। भोगन की नहिं चाह चाह बस लाल दिखावा।।

गोपियाँ बोली, अरी यशोदा। तुझे क्या हो गया है? हम कब से इन महात्मा के साथ घूम रही हैं, हमें तो एक भी साँप खाने नहीं आया। छोटे छोटे बालक भी हमारे साथ ही घूमते रहे, एक भी नन्हा बालक साँपों से भयभीत नहीं हुआ। यह महात्मा कोई चमत्कार नहीं दिखा रहा अपितु आकाश से हीरे मोतियों की बरसात तो इसके तप का प्रभाव है। सांसारिक विषय भोगों की तनिक भी इच्छा इस सन्त के मन में नहीं, यह तो यही चाहता है कि तुम अपने नन्हे लाला का इन्हें दर्शन करवा दो।

हमही तेरे लाल का, बतलाया परभाव। यासों दरसन करन का, इन मन बाढ़ा चाव।।

गोपियों ने कहा, अरी यशोदा, हम लोगों ने ही तेरे लाला के असीम प्रभाव का बखान किया है, जिसे सुनकर इनके मन में लाला के दर्शनों का चाव इतनी अधिक मात्रा में बढ़ गया है।

शिव बोले मैया नहिं जानो लाल तुम्हारा। अखिलेश्वर सर्वेश्वर याने जगत पसारा।।

लखा भास्कर पूर्व काल इन अद्‌भुत रूपा। दिव्य रूप जब दर्शन पाया परम स्वरूपा।।

शंकर बोले- देखो, हमारे गुरु का आदेश है जब तक लाला के दर्शन नहीं करेंगे तो हम यहां से जायेंगे नहीं। हम तेरे दरपर ही धूनी रमायेंगे, उठकर न जायेंगे। हम यही बैठ जायेंगे। अभी तक तुमने योगी की हठ नहीं देखी है। बार-बार तुमसे कह रहा हूँ। तुम्हारा लाला नहीं डरेगा। एकबार दर्शन करा दे। हम तो योगी है, हठ करके बैठ गये तो दर्शन करके जायेंगे।

अब यशोदाजी द्वारा भगवान का दर्शन नहीं कराने से शंकर भगवान रुष्ट होकर दरवाजे के बाहर धूनी लगाकर बैठ गये। हे यशोदे, यदि मेरा प्रेम श्यामसुन्दर के चरणों में सच्चा है और मैं सच्चे गुरु का शिष्य हूँ, तब तेरा वह लाला कन्हैया आप ही आकर दर्शन देगा। यशोदे, अब मैं अपने धाम (कैलाश) पर्वत पर नहीं जाऊँगा और यहाँ तेरे दरवाजे पर ही डेरा लगाकर रहूँगा। हे ब्रजरानी यशोदे, यह मेरी प्रतिज्ञा सत्य जानना। झट महादेव जी अलख-अलख कह करके पद्मासन लगाकर बैठ गये।

यशोदा बोली- कैसी बात कर रहे हैं आप? मेरा लाला तो नन्हा-सा है। मेरी प्रार्थना है- आप हठ न करें। बाबाजी आप तो योगियों के हठ जानते हो, त्रिया हठ नहीं देखा। आप दरवाजे पर बैठे रहे, मैं दूसरा दरवाजा खोल दूँगी पर तुम्हें दर्शन नहीं कराऊँगी? शंकर बोले- तेरा लाला कभी तो बड़ा होगा, कभी तो बाहर निकलेगा। मैं तो इसी द्वार पर बैठ जाऊँगा। मैंया बोली- मेरे घर में तो पंद्रह दरवाजे हैं मैं दूसरे दरवाजे खोल दूँगी पर तुम्हें लाला को नहीं दिखाऊँगी। शंकर बोले- मैं बारह वर्ष की धूनी रमा कर बैठ जाऊँगा, कभी तो निकलेगा। मैंया बोली- मैं चौबीस वर्ष तक लालाको घरसे निकलने ही नहीं दूँगी।

शिव बोले- मैया, ध्यान लगाकर सुनो। मैं तेरे लाला के दर्शन किये बिना यहाँ से हट नहीं सकता। आखिर, मैं इतनी दूर से आया किसलिये हूँ? योगी के स्वर में दृढ़ता और हठ-दोनों थे। बड़ी हठी हो मैया। तुम्हारी इच्छा। हम तो दर्शन करने आये थे, अब तुम गोविन्द के दर्शन नहीं कराती तो क्या करूँ?

मैया ने कहा- तू कोई बाबा नहीं लागे। तू तो पाखण्डी नजर आवे। शंकर बोले-

तीन देह से परे सनातन त्रिगुणातीता। शीतोषण सुख दुख नहिं भासे परम पुनीता।।

इन्द्रि विषय संयोग जन्य सुख लेष न भासे। मैया तेरा लाल सच्चिदानन्द प्रकासे।।

शंकर भगवान ने यशोदा नन्दन की वास्तविक महिमा का गान करते हुए कहा, अरी मैया, तू तेरे लाला की महिमा नहीं जानती। अगर यह साधारण बालक होता तो मैं कैलाश छोड़कर दर्शन करने नहीं आता। हे मैया, तेरा लाला स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से परे है। अनादि होने से सनातन है। सत, रज और तम तीनों गुणों से परे है। सर्दी, गर्मी, सुख दुख के आभास से दूर है और तेरा लाला परम पवित्र है। तेरे पुत्र को इन्द्रि विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाला सुख लेश मात्र भी नहीं व्यापता तथा तेरा लाला तो सच्चिदानन्द प्रकाशवान स्वरूप है।

अविनासी प्रमेय रहित आतम बोधीसा। नित्य सनातन परम पुरातन है अयमीसा।।

जन्म व्यय सों रहित शस्त्र कोइ काट न पावे। अनशोषित अक्लेद्य अगनि जा नहीं जरावे।।

भोले बाबा ने कहा, हे यशोमति माता। तेरा पुत्र अविनाशी तत्त्व है, अप्रमेय है अर्थात असीम, आत्मज्ञान स्वरूप नित्य सनातन है और यह परम पुरातन ईश्वर है। जन्म और नाश से रहित है, इसके दिव्य स्वरूप को कोई भी शस्त्र काट नहीं पाता, कोई भी शक्ति इसका नाश नहीं कर पाती है। कोई भी पदार्थ इसे गीला नहीं कर पाता और अग्नि इसका स्पर्श नहीं कर पाती।

छुये न जाही पवन विषय बिन रहित विकारा। माया परे अचिन्त्य लखे कोई बड़ आचारा।।

अकल अनीह अनन्त अजन्मा करनातीता। एक सर्व मति साक्षि विभू सर्वज्ञ अतीता।।

ज्ञान के भंडार शिव बोले, हे माता। तेरे लाल को पवन छू नहीं सकती। यह विषय वासना से रहित अति निर्मल है, इसके चित्त पर माया के विकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह बालक माया से परे अचिन्त्य शक्ति है। कोई बड़ा आचारवान ही इनके वास्तविक दर्शन कर सकता है, यह तेरा लाला स्फुर्णा रहित है। इच्छाओं से परे है, अन्त रहित है, जन्मादि से रहित, इन्द्रियों से अती अद्वितीय है। सबकी बुद्धियों का साक्षी है, सर्वव्यापक है, सब कुछ जाननेवाला फिर भी सबसे न्यारा है।

मन वाणी से परे ज्ञान घन मुक्त पुराना। परमारथ को रूप प्रेमधन सर्व अजाना।।

कर्म भूमि भारत बिच असुरन बाढ़े घेरा। सेना सहित अधर्म करे पुर ग्रामन डेरा।।

ज्ञान के पुञ्ज महायोगेश्वर शिव ने कहा, आदरणीया माता जी, तेरा लाला तो मन वाणी से परे है, दिव्य ज्ञान का घनीभूत स्वरूप है। नित्य मुक्त पुराण पुरुष है। परमार्थ का स्वरूप, प्रेम धन से परिपूर्ण फिर भी संसार की आसक्ति से रहित अजान है। तेरे यहाँ प्रकट होने का कारण है कि इन दिनों कर्म भूमि भारत वर्ष में असुरों का अत्याचार दिनों दिन बढ़ रहा है, अधर्मियों ने सेना सहित नगर और ग्रामों में डेरे लगा रखे हैं।

गो ब्राह्मण वर संत ऋषी मुनि दुखित पुकारे। धर्म बने जब पंगु गिरे जब सभी सहारे।।

तबहिं पुरातन पुरुष धरा पर ले अवतारा। साधुन रक्षा करे हरे बल असुरन सारा।।

हे माता। गाय, ब्राह्मण, संत, ऋषि, मुनि असुरों के अत्याचार से दुखी होकर अपनी सुरक्षा के लिए श्री हरि को पुकारते हैं। जब धर्म पंगु हो जाता है और सभी सहारे समाप्त हो जाते हैं, तब ही पुरातन पुरुष इस धरती पर अवतार धारण करता है। साधुओं को सुरक्षा प्रदान करता है और असुरों का सारा बल हरण कर लेता है।

परम पुरुष परमातमा, तेरे घर अवतार। मात यशोदा गेह तव, प्रगट भया करतार।।

शंकर भगवान ने कहा, हे माता यशोदा। तेरे घर में परम पुरुष परमात्मा ने अवतार धारण किया है। अरी मैया, स्वयं विश्व का करतार ही तेरे घर में प्रकट हुआ है।

बड़ी बड़ी तू बात बतावे ज्ञानी बाबा। जितनी तुमने कही मती मेरी नहिं आवा।।

मै मैया मेरा लाला इतना जानूँ। लालन पालन हेत महर कह सोई मानूँ।।

माँ यशोदा बोली, अरे ज्ञानी बाबा तू तो ज्ञान की बड़ी बड़ी बातें बता रहा है परन्तु तेरी एक भी बात मेरी समझ में नहीं आई है। मैं तो बस इतना जानती हूं कि मैं मैया हूँ और यह मेरा लाला है। इसका लालन पालन जिस तरह महर करने हेतु आज्ञा प्रदान करेंगे, मैं वैसा ही उचित मानकर करती रहूँगी।

ज्ञान गठरिया जाय कहं औरे घर खोलो। और किसी के बालक को जा ईश्वर बोलो।।

तोरा वो अवतार होयगो और घरमा। मेरे घर महँ क्षुधित लाल पय हेतू ररमा।।

माँ यशोदा ने कहा, अरे ज्ञानी बाबा। अपनी इस ज्ञान की गठरिया को किसी और के घर खोलकर फैलाओ और उनके बच्चों को ईश्वर का अवतार बताओ। जिस परम ब्रह्म परमात्मा के अवतार को तू ढूँढता फिर रहा है, वह किसी और के घर में होगा। मेरे घर में तो मेरा छोटा सा लाला भूख के मारे रो रहा है मैं तो उसे दूध पिलाने जा रही हूँ। चला जा यहाँसे कोई दर्शन नहीं होगा। और बाबा को घर से निकाल दिया।

इतना कह यशुदा चाली गृह भीतर भागी। करिके बन्द किवार नागबाबा डर लागी।।

एक चली नहिं बात भुवन पति भये उदासा। तार लगी करतार दुखित मन नैन रुयाँसा।।

इतना कहकर माता यशोदा अपने पुत्र की ओर घर के भीतर चली गई और नाग बाबा के काले काले नागों के डर से मैया ने दरवाजा भीतर से बन्द कर दिया। भुवनपति भगवान शंकर की एक न चली अर्थात लाला के दर्शन की प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई। अब हम जा रहे हैं और शंकर वहां से चले गये। शंकर ने विचार किया- मैंने अपने प्रियात्मा भगवान श्यामसुन्दरा के दर्शन के लिये सारा संसार खोज डाला, परन्तु अब तक भी परम प्रिय श्याम सुन्दर के मुख को नहीं देखा। हे प्रिय कृष्ण, आपने प्रथम त्रेता युग में रामावतार के समय मेरी पुकार को सुनकर दर्शन दिये अब कौन मेरे से अपराध हुआ, जो आपने इतनी देर की? आप तो भक्तों की पुकार सुनकर शीघ्र ही दर्शन देते हैं। मेरे से कोई अपराध हो गया हो, उसको क्षमा करो।

यशोदा बोली- **बाबा क्यों तुम अति हठ धारो।।**

पुत्र कलत्र तजे क्यों अपने, जो तोको शिशु प्यारो। सरल गृहस्थन को दुख देना, यह नहि धर्म तुमारो।।

भिक्षा करके वन में जावो, करिये ब्रह्म विचारो। प्रत्यक् तत्त्व विवेक लिये यह, आश्रम निगम उचारो।।

बाबा, तुम तो बड़े सीधे-सादे महात्मा थे, अब तुमने हठ क्यों धारा है अर्थात् अड़ंगा लगाकर क्यों बैठ गये? लोग क्या कहते होंगे, यशोदा इतनी निर्दयी है कि साधु का सत्कार भी नहीं करती। तेरे को यदि बालक ही प्यारे लगते हैं तो अपने स्त्री-पुत्रों का त्याग क्यों किया? अपने घर में ही रहना था। महात्माजी, सरल, सीधे-सादे गृहस्थियों को हठ करके दुःख देना, यह आपका धर्म नहीं है। आप भिक्षा करके वन को जाओ, एकान्त में बैठकर सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म का विचार करो। यह आपका चतुर्थ आश्रम, प्रत्यक् तत्त्व (अन्तर आत्मा) के विचार के लिये ही वेद ने कहा है।

यह जो संन्यास का वेश धारण किया है, इसकी तेरे को लाज नहीं, क्योंकि तुमने मेरे दरवाजे पर अड़ंगा लगाया है। जाओ-जाओ यहाँ से। मेरे दरवाजे पर बहुत से दण्डी, स्वामी, कई कुण्डी- परमहंस, तपस्वी- जटाजूट वाले बहुत से साधु आये, पर तेरे समान क्रोधी और हठीला कोई साधु देखा नहीं। बाबा, अब मैं हाथ जोड़कर तेरे चरणों में नमस्कार करती हूँ, अब तुम भिक्षा लेकर के दूसरे घरों में पधारो।

शंकर बोले- **यशुमति तुमको ज्ञान न आया।।**

माधव को मानव मति मानो, देव देव श्रुति गाया। इनके दर्शन कारण मैंने, भगवा वेष बनाया।।

यह मम इष्टदेव अति प्यारा, इतर न मोहिं सुहाया। प्राकृत बालक सम यह शिशु नहि, कृष्ण अलौकिक काया।।

महादेव बोले- अरी यशोदे, तुम बड़ी चतुर होते हुए भी अभी तक तुम को ज्ञान (विवेक) नहीं हुआ। माधव-लक्ष्मीपति भगवान को एक साधारण मनुष्य नहीं मानो। यह तो ब्रह्मादिक देवताओं का भी देवता है, ऐसा वेदों ने कहा है। इन्हीं के दर्शन के लिये मैंने घरबार को छोड़कर के भगवा वेष धारण किया। यही मेरे इष्ट हैं, पूज्य हैं, इनके सिवाय कोई प्यारा नहीं है। इनसे भिन्न संसार के बीच कोई पदार्थ अच्छा नहीं लगता। यह बालक प्राकृत अर्थात् साधारण बालकों की न्यांईं नहीं है; अलौकिक- दिव्य इनका शरीर है।

यशोदा बोली- **मुण्डी क्यों तुम रार बढ़ाई।।**

जननी जनक न होवे तेरे, मरन तुमारे भाई। तुमरे इष्टदेव गुरु होवन, अपने पुत्र लुगाई।।

देव दैत्य तू तात तुमारा, मनुज न तोहि सुहाई। कौन जन्म का वैरी तू मम, तुमने बहुत दुखाई।।

अरे मुण्डी, अर्थात् मूँड़ मुड़ाये बाबा, तेरे दरवाजे पर क्यों झगड़ा बढ़ाया है? जाओ, जाओ यहाँ से, माता-पिता तेरे न होवें और तेरे भाई आदिक मृत्यु को प्राप्त होवें। अर्थात् इनकी मैं माता हूँ, नंदराज इनके पिता हैं, कैसे तुमने कहा कि माता-पिता नहीं हैं? और तुमने जो कहा कि ये मेरे इष्टदेव गुरु हैं, तो तेरे इष्टदेव गुरु तेरे पुत्र और तेरी लुगाई होवे, यह तो मेरा पुत्र है।

न देवता है, न कोई दैत्य है, अथवा देवता और दैत्य तेरे पिता होवे, तेरे को तो मनुष्य अच्छे लगते ही नहीं। हा दैव, यह बाबा, मेरे कौन जन्म का शत्रु है, जो इसने मेरे को बड़ा दुख दिया है।

गाली देना उचित न तुमको, योगी सब सुखदाई। संन्यासी नहि तुम पाखंडी, जावो त्वरित पलाई।।

हाँ ठीक है, चुगलखोर, आलसी, बहिर्मुख परस्पर विरोध करने व करानेवाले ये पुरुष मान और बड़ाई को चाहते हैं। अब मूर्ख, दैव द्वारा दूषित हृदय वाले संन्यासी भी कुछ देखने में आते हैं। बाबा, हम गृहस्थों को गाली देना यह आपके योग्य नहीं है। योगी तो जीवमात्र को सुख देनेवाले, हरेक के शुभचिंतक होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि तुम सन्यासी नहीं हो। तुम तो बड़े पाखंडी हो। यहाँ से शीघ्र ही तुम भाग जाओ, नहीं तो अभी मैं ग्वाल बालों को बुलाकर पिटवा दूँगी।

हर को बाहिर काढ़ि के, यशुमति गई अगार। खिन्न हृदय हो शम्भु ने, हरि पै करी पुकार।।

गुस्से में आकर यशोदा अपने दरवाजे से मुण्डी को बाहर निकाल करके अपने घर में जब गई, तब यशोदा द्वारा अपमानित हुए हृदय में खिन्न होकर महादेवजी ने भगवान से पुकार की, अर्थात् प्रार्थना करने लगे।

बाहर जाकर शामको पुकारने लगे-

शंकर ने मैया को धन्य-धन्य कहा और एक बरगद के वृक्ष के नीचे जाकर श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे और बोले- मेरे किस अपराध के कारण तुम मुझे दर्शन नहीं दे रहे हो।

ऐसे हम चाहने वाले नहीं, प्यारे आज तुम्हें, कल और को चाहें।
फैंक दें आँख निकाल के वो जो दूसरी ओर मिलाए निगाहें।।
लाख मिलें तुमसो बढ़के हम तुम्हीं को चाहें तुम्हीं को सराहें।
जब तक घट में प्राण रहें हम नेह का नाता तुम्हीं से लगायें।।
मुश्किल है सहन करना, ये दर्द जुदाई का। मुझे कुछ तो बता मोहन, कारण बेवफाई का।।
मेरे भोले मनवाँ ने तुमको ही चाहा है। बदले में यही पाया तू लापरवाहा है।।
क्यों याद नहीं आई क्या मान खुदाई का। मुझे कुछ.....
हर वक्त कन्हैया रे तेरी यादें आती हैं। दिल कहीं नहीं लगता तेरी बातें रुलाती हैं।
मुख मोड़ के क्यों बैठे, क्या फल है वफाई का। मुझे कुछ.....
गर नजर में औगुन थे फिर क्यों अपनाया था। प्रीति नहिं निभ सकती पहले न बताया था।
क्या यही तरीका है तेरी भलमनसाई का, मुझे कुछ.....
तुझ सा कोई मिल जाता हम ढूँढ लिए होते। उसको अपना लेते, क्यों तेरे लिए रोते।।
मौका तो दिये होते, मेरे मीत सफाई का। मुझे कुछ.....
शंकर ने दुखी मन से अपने हृदय की तार आराध्य देव करतार के साथ जोड़ दी।
कहा भयो अपराध साँजवरे क्यों मन मोरा। निष्ठुर इतने भये बिगारा क्या मैं तोरा।।
पतित पूतना प्राण हरण आई सो तारी। वाको दीने दरस कृपण क्यों मेरी बारी।।

प्रेमपूर्ण भोले बाबा ने कहा, हे मेरे साँवरे। हे मेरे नाथ। मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया? जो आपने मन मेरी तरफ से मोड़ लिया है। मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ दिया? जो आप इतने दया रहित हो गए। पूतना पापिन तो आपके प्राणों का हरण करने आई थी फिर भी उसे सद्गति प्रदान की, सहज में ही दर्शन दे दिये परन्तु मेरी बारी इतने कृपण क्यों हो गये?

सीधा सरल स्वभाव तुम्हारे मन को भावे। कपट न तोही रुचे वेद ऐसे यस गावे।।

आज भई क्यों नाथ वेद की झूठी बानी। सीधी साँची ना मैया एकहु मम मानी।।

शंकर भगवान ने श्रीहरि से प्रार्थना करते हुए कहा, हे सर्वज्ञ। मैंने सुना था कि आपके मनको भक्तों का सीधा सरल स्वभाव बहुत अच्छा लगता है। वेदों में भी ऐसा लिखा है कि कपट व्यवहार आपको बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। हे नाथ, आज वेदों की वाणी झूठी क्यों हो गई? मैंने तो सरलतापूर्वक निष्कपट भाव से आपकी महिमा गाई परन्तु मेरी सीधी सच्ची बातें भी मैया ने नहीं मानीं।

विह्वल ह्वै रोवन लगे, प्रेमी भोले नाथ। रुद्ध कण्ठ विनती करें, बाँधे दोनों हाथ।।

प्रेमी भोले नाथ दर्शन की आशा पूरी न होते देख व्याकुल होकर रोने लगे तथा अपने दोनों हाथों को जोड़कर अवरुद्ध कण्ठ से विनीत भाव पूर्ण प्रार्थना करने लगे।

काको द्वार गहूँ मैं जाई।

एक बार जो कहे तुम्हारा लेवत हो हियलाई। रैन दिना तेरे गुण गाऊँ क्यों धारी निठुराई।।

जीवन सर्वस माना तुमको अब नहिं होत भुलाई। तेरो तज औरन के द्वारे कहा कहूँ मैं जाई।।

नाथ हमारे साथ न दीना दाग लगे ठकुराई। प्यासे नयन दरसहित रोवत देहु हँसाई।।

बिन दर्श देव तुमरे, अति विकल मन हमारा।

यदि भक्त वश्यवर्ती, सुस्वभाव यह तुमारा। नहि भक्त नष्ट होवे, यह नियम सत्य थारा।।

तो दर्स त्वरित देवो, मम प्रेम जो निहारा। मम चरण पड़ यशोदा, ले जाय निज अगारा।।

यदि आपने मेरे प्रेम को सत्य देखा है तो भगवन्, शीघ्र ही दर्शन दीजिए। कैसे दर्शन दो? जिस यशोदा ने मेरा तिरस्कार किया है, वही यशोदा मेरे चरणों में पड़कर अर्थात् मेरे को मान देकर अपने घर में ले जाये।

दर्शनों के बिना व्याकुल शंकर भगवान ने अपनी दीनता भरी पुकार करते हुए कहा, हे श्री हरि। मैं तुम्हारे दरवाजे पर दर्शन की आशा लेकर आया, माता ने दर्शन नहीं करवाये, अब तुम ही बताओ मैं किस का दरवाजा खटखटाऊँ? मैंने सब कुछ तुम्हें समर्पित करके हाथ पकड़ा दिया, अपने हृदय मन्दिर में सदा तुम्हें सर्वस्व मानकर ध्यान किया। हे दयामय, कोई तुम्हें एक बार भी कह दे कि मैं तुम्हारा हूँ, उसे आप हृदय से लगा लेते हैं और मैं तो रात दिन तुम्हारे ही गुण गाता हूँ। फिर भी तुमने निष्ठुरता क्यों धारण कर रखी है? हे हृदयेश्वर, मैंने तुम्हें अपने जीवन का सर्वस्व माना है, मैं प्रयास करने पर भी तुम्हें भुला नहीं पाऊँगा तुम्हारा दर छोड़कर मैं औरों के दरवाजे पर जाकर क्या कहूँगा? क्या मैं यह कह पाऊँगा कि मेरे नाथ ने मेरा साथ नहीं दिया? नहीं नहीं। ऐसा करने पर तो आपकी भक्तवत्सलता, आपकी ठकुराई को दाग लगेगा। मेरी आँखें आपके दर्शनों की प्यासी हैं अत: अपने सुन्दर दर्शन देकर मुझ रोते हुए को भी हँसा दीजिए।

पद-दर्शन बिन कैसे जी पाऊँ।। जब जब तुम अवतरते स्वामी दर्शन को मैं आऊँ।।

बाल रूप की झाँकी करिके हिय आनन्द मनाऊँ। बाल छवी निज हिये बसा के बरसों मैं खो जाऊँ।।

सुध बुध खो के लगे समाधी घट तोही को ध्याऊँ। मन आवे मैं गुप्त रूप सों महलन में धँसि जाऊँ।।

लेकिन मर्यादा की बेड़ी तासों ही रुक ठाऊँ। तप करि यशुदा ने पाये तुम बिन अनुमति न लखाऊँ।।

शंकर रोते हुए बोले- हे हरि, मैं तुम्हारे दर्शनों के बिना कैसे जीवित रह पाऊँगा? हे मेरे दयालु स्वामी। जब जब आपका इस धरा धाम पर अवतार होता है तब तब मैं आपके बालस्वरूप के दर्शन करने आता हूँ और सुन्दर झाँकी करके हृदय में

परमानन्द प्राप्त करता हूँ। आपकी बाल छवि का दर्शन करते हुए वर्षों उसी में खोया रहता हूँ। अपने घर परिवार और तन की सुधि खोकर मेरी तो समाधि लग जाती है और हृदय में निरन्तर आपकी बाल छवि का ध्यान बना रहता है लेकिन आज मैं आपके बाल स्वरूप की सुन्दर झाँकी से माता के द्वारा वंचित कर दिया गया हूँ। आपके दर्शनों के लिए व्याकुलता के कारण कभी कभी तो मेरे मन में ख्याल आता है कि मैं अदृश्य रूप से नन्द महल के भीतर जाकर आपके दर्शन कर लूँ लेकिन इस समय आप पुत्र धर्म की मर्यादा निभा रहे हैं, आपने माता यशोदा और पिता नन्दराय जी की घोर तपस्या के फलस्वरूप उनका पुत्र होना स्वीकार किया है और कुछ ही दिनों का नन्हा पुत्र तो पूर्णत: माता के अधीन होता है। अत: मर्यादा के अनुसार माता की अनुमति के बिना आपका दर्शन कर लेना ममता का उल्लंघन होगा यही सोचकर मैं रुक गया हूँ। करूणा करके माता यशोदा को ऐसी प्रेरणा दो कि वो हमें आपकी बाल छवि के सुन्दर दर्शन करवा दें। जिससे दर्शनों को तरसती हमारी आँखों को राहत मिले।

यशुमति आज बनी धनवन्ता।।
गुरु आज्ञा सन्तन की सेवा पायो धन भगवन्ता। द्वारे भीर रहे देवन की ऋषी मुनी सद सन्ता।।
पुर ग्रामन ब्रजवासी हर्षित दर्शन सहित अनन्ता। भागन मारे हम ही द्वारे दर्शन बिन अकुलन्ता।।
कौन दोष मेरा लखि पाया जो बड़ ध्वजा फरन्ता। दर्श पूतना अन्य असुर कर तासों मैं अघवन्ता।।
अब लौं धीर धरी मन अन्दर अब धीरज भा अन्ता। प्रीत की रीत निभावो भक्तन के प्रिय कन्ता।।

शंकर भगवान बोले, आज माता यशोदा वास्तविक धन को प्राप्त कर धनवन्ता बन गई है क्योंकि श्री सद्गुरु की आज्ञानुसार संतों की श्रद्धापूर्वक सेवा करके आप सर्वेश्वर भगवान को परम धन के रूप में प्राप्त कर लिया है, इसीलिये माँ यशोदा के द्वार पर आपके दर्शनों के याचक देवता ऋषि मुनि और श्रेष्ठ संत भीड़ लगाए रहते हैं। नगर और गाँव में रहनेवाले बृजवासी शेषावतार श्री बलराम जी के सहित तुम्हारे दर्शन करके परम प्रसन्नता को प्राप्त हो रहे हैं। एक मैं ही भाग्य का मारा हुआ दर्शनों के बिना व्याकुल हो रहा हूँ। जाने आपने मुझमें ऐसा कौनसा दोष देख लिया जो कि माता यशोदा मुझै तुम्हारे दर्शन न करवाने के बड़े हठ की ध्वजा फहरा रही है। हे दयामय, बाल हत्यारी पूतना और अन्य अधर्मी असुरों को तो आपके दर्शन प्राप्त हो गए क्या मैं उनसे भी अधिक पापी और अपराधी हूँ। हे नाथ। अब तक मैंने जैसे तैसे अपने मन को धीरज बँधाए रखा लेकिन अब धैर्य का बाँध टूटनेवाला है। हे भक्तों के प्रिय स्वामी। अपनी प्रीत की रीत को निभाओ और दर्शन देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो।

अब तो प्यारे मोहर आवो।
कै आपहिं आवो दर्शनप हित कै तुम मोहि बुलावो। छटपटात जियरा अकुलावे अधिकै ना तड़फावो।।
जन्म जन्म की प्रीति हमारी बिन कारण छिटकावो। व्याकुल करि का मिलि है तोकों जनि एतो निठुरावो।।
परम दयालू जग जानत है ताको ना झुठलावो। कहा दोष जननी कर कीन्हा जों तोको नहिं लावो।।
नैनन नीर बहावन लखि के तनिक तरस नहिं खावो। पीर हर मम हिय केरी तुरतहिं दरस करावो।।

दीनतापूर्वक दुखी मन से भगवान शंकर ने अपने आराध्य की प्रार्थना की। हे प्यारे मोहन, अब और विलम्ब न करो, शीघ्रतापूर्वक मैया की गोदी में विराजमान होकर मुझे दर्शन देने आ जाओ अथवा मुझे भीतर आकर दर्शन करने की आज्ञा प्रदान करो। मेरा हृदय बिना दर्शनों के व्याकुलता में छटपटा रहा है। हे दया सिन्धु, अब और अधिक न तड़पाओ। हमारी तुम्हारी अनेक जन्मों की प्रीत पुरानी है उसे तुम बिन कारण ही क्यों छिटका रहे हो? मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि मुझे

व्याकुल करके तुम्हें क्या मिल जाएगा? हे नाथ, अपने नाम को सार्थक करते हुए इतने कठोर न बनो। तुम परम दयालु हो, यह बात सारा विश्व जानता है अपने इस सद्गुण को झूठा न पड़ने दो। मैंने माता का क्या अपराध कर दिया जो वह तुम्हारे दर्शन करवाने के लिए तुम्हें घर से बाहर नहीं ला रही है? मेरी आँखों के बहते आँसुओं को देखकर भी आपको तरस नहीं आया। हे दया के धाम, मेरे हृदय में उठनेवाली पीड़ा को यथाशीघ्र दर्शन देकर हरण करो।

या विध कहकर गिरिश ने, मन इन्द्रिय कर लीन। दामोदर की व्यक्ति का, ध्यान हृदय में कीन।।

इस प्रकार कैलाश-निवासी भोले बाबा महादेव कहकर मन और इन्द्रियों को एकाग्र करके हृदय के बीच दामोदर भगवान के स्वरूप का ध्यान करने लगे।

भीतर कृष्ण ने जाना कि शंकर जी मेरा दर्शन करने के लिये आये हैं किन्तु मैया मुझे बाहर नहीं जाने दे रही है, अत: वे जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगे। इतनी जोर से रोये लाला। मैया गोद में लेवे, दूध पिलावे, सिर पर हाथ पहरे, पर कोई असर नहीं होता।

नहि बोलत नहि खाय हरि, हस्त लिये लव ग्रास। दशा देख गोपाल की, यशुमति माना त्रास।।

अब भगवान हाथ में छोटा सा ग्रास लिये हुए न तो बोलते हैं और न खाते ही हैं। इस प्रकार की कृष्ण जी की दशा को देखकर, कि ये न तो बोलते ही हैं और न खाते ही हैं, यशोदा ने अपने हृदय में भय माना कि यह क्या हो गया है।

गोपियों की भीड़ लग गई गोपियां पूछने लगी- मैया क्या हुआ? मैया बोली- जाने क्या हुआ। अच्छा-भला सो रहा था अब जब से उसकी नींद खुली वो रोता-ही-रोता है। न कुछ बोलता है, न कुछ इशारा करता है। गोपियां बोली- किसीकी नजर तो नहीं लगी। मैया बोली- यहां तो कोई नहीं आया। एक साँपवाला बाबा आया था। बड़े-बड़े साँप, बिच्छू लटक रहे थे, जटायें लम्बी थी और कह रहा था- तेरे लाला के दर्शन करवा दें। मैंने उसे मना कर दिया। उस बाबा के जाते ही लाला रोने लग गया।

यशोदा बोली- मैं वन्दना करती हूँ कि मेरे लाला का दुख दूर कर दो तो मैं ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराके तृप्त कर दूँगी। मैया ने कहा आज दुख में हमारा कौन हितैषी मीत है जो लाला का दुख दूर करके हमें आनन्द से भर दे।

देख यशोदा रोवती, रोवत यशुदा बाल। दुखित उदासी गोपिका, रोवत अधिका लाल।।
एक उपाये सूझ ना, इक दूजी मुख देख। मन ही मन महँ छीजती, कौन मिटावे रेख।।

सभी लोग एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे लाला का रोना बन्द कराने का कोई उपाय किसी की समझ में नहीं आ रहा था। मन ही मन दुखी होकर सब अपने ऊपर खीझ रही थीं। अब इस दुख की रेखा को कौन मिटाये?

जो जाने सोई करे, झाड़ा फूँकी कार। अंग अंग देखत रही, कहँ पीड़ा भरमार।।
गुणी मानती आप कहँ, गोपी चतुर सुजान। नेक सरा कारज नहीं, शिशु अस रोदन ठान।।
बाल मनावन कुशल जे, मान रही हुशियार। खेल खिलोने वचन सों, बाल न माने हार।।
यशुदा नन्दन रुदन मचायो।
मैया गोदी लै निज सुत को विविध भाँति हलरायो। चुचकारो पुचकारो दीन्हों नेक नाहिं थमि पायो।।
बाहर भोले भीतर लाला एकहि तार बँधायो। भक्त भजै तैसे मैं चिन्तू सत्य वचन चरितायो।।
माखन मिशरी खेल खिलौना कहुँ मन नहीं लगायो। हिलकि हिलकि ऊँचे स्वर रोवे दोनों भुजा उठायो।।
रोहिणि आदी निज गोदी लै चाहें चुप्प करायो।

भोले बाबा बाहर खड़े व्याकुल हृदय से रो-रो कर दर्शनों के लिए प्रार्थना कर रहे थे इसी कारण यशोदा के कक्ष में नन्दलाल

ने शिव दर्शन के लिए रुदन मचाना प्रारम्भ कर दिया। माता यशोदा अपने लाला का रुदन बन्द कराने का अनेक प्रकार से उपाय करने लगी। मैया अपने नन्हे प्यारे लाल को गोदी में लेकर हिलाने लगी और कभी पुचकारने लगी तो कभी पुचकारते हुए पुत्र का रुदन शान्त कराने का प्रयास करने लगी। परन्तु लाला का रोना बन्द नहीं हुआ। बाहर भोले बाबा रो रहे थे और भीतर यशोदा नन्दन का रुदन चालू था मानो दोनों में एक ही तार बँधा हुआ हो। ऐसा लगता था कि नन्दनन्दन अपने कहे हुए वचनों की सत्यता को चरितार्थ कर रहे हों कि मैं भक्तों के भावानुसार ही उनका चिन्तन करता हूँ। माता कभी माखन मिश्री खिलाकर, खेल खिलौने दिखाकर लाल का रुदन बन्द कराने का प्रयास करती परन्तु बाल गोपाल तो कहीं पर मन नहीं टिका रहे थे।

लाला पर लगी हुई नजर उतारने के लिए जो जितनी झाड़ा फूँकी जानती थीं, गोपियाँ करने लगीं। बार बार लाला के शरीर के अंगों को टटोल कर दबाकर देखती थीं कि पता चले लाला के किस अंग में पीड़ा हैं? जो गोपी झाड़ा फूँकी के काम में अपने आपको बहुत गुणी, बहुत चतुर, बहुत सुजान मानती थीं उनके द्वारा प्रयास करने पर भी कोई काम नहीं बना। लाला ने ऐसा रुदन ठाना कि बन्द नहीं कर पाई। जो गोपियाँ रोते हुए बालकों को खिलाने और रुठे हुए बालकों को मनाने में स्वयं को होशियार मानती थीं उनके द्वारा खेल खिलौने देकर मीठे शब्द बोलकर लाला का रुदन बन्द कराने का प्रयास करने पर भी बालक ने रोना बन्द नहीं किया।

कृष्ण ने सोचा- **भाव का भूखा हूँ मैं और भाव का एक सार है। भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है।।**
भाव बिन सब कुछ भी दे डाले, तो मैं लेता नहीं। भाव का एक पत्र भी होता, मुझे स्वीकार है।।
भाव बिन सूनी पुकारें मैं कभी सुनता नहीं। भावपूरित टेर ही करती मुझे लाचार है।।

इधर भोले बाबा रोये। उधर नन्दलाला रोने लगे। हरि-दर्शन का बहाना बन गया। माँ ने कन्हैया को बहुत पुचकारा बात नहीं बनी। दासी ने मैया से कहा कि योगी के ओठ हिल रहे हैं। लगता है उसने ही मन्त्र का कुछ प्रयोग कर दिया है अत: लाला रो रहा है। ऐसा साधु कभी देखने में नहीं आया है। लगता है उस बाबाने ही कोई जादूटोना कर दिया होगा।

याहि बीच आई तहाँ, गृह में पूरणमासि। लाल रुदन तड़फत लखा, लेकर लम्बे साँसि।।

लाला के लम्बे समय से निरंतर रोने की बात गाँव में चारों ओर फैल गई, इसे सुनकर उसी समय योगमाया पूर्णमासी नन्द भवन में आई और यशोदा नन्दन को लम्बे लम्बे साँस लेकर रोकर तड़फते देखा।

कहो यशोदा क्या हुआ, क्यों रोवत सुकुमार। तन पीड़ा या क्षुधित है, इतने आँसू ढार।।

योगमाया पूर्णमासी ने यशोदा जी से पूछा, हे देवी यशोदा। लाला को क्या हो गया है? यह सुकुमार क्यों इतना रो रहा है? इसके शरीर में कोई पीड़ा है अथवा यह भूखा है, आँखों से इतने आँसू क्यों गिरा रहा है?

करि प्रणाम सब वारता, कथी यशोदा माय। नागधरा बाबा हठी, लाल दरस अकुलाय।।

माता यशोदा ने योग माया को सादर प्रणाम करके सारी बात बताई, हे पूर्णमासी जी। बाहर एक हठी बाबा आया हुआ है, उसके शरीर पर अंग अंग में साँप लिपटे हुए हैं। वह मेरे लाला के दर्शन करने की जिद पर अड़ा हुआ है और लाला को देखने के लिए व्याकुल हैं। हे पूर्णमासी जी, नाग बाबा के शरीर पर लिपटे हुए नागों की भयंकर फुंकार से मैं बहुत भयभीत हो गई, आप ही कहो फिर भला मेरा नन्हा लाला भयभीत क्यों नहीं होगा? मेरा लाला डर के रोना न शुरू कर दे इसी भय के कारण मैं लाला को बाहर नहीं लाई, फिर मेरा लाला भीतर ही इतना क्यों रो रहा है? मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

यशोदा रानी आज भया अपराध तुम्हारा। नहिं साधारण संत पुराना पीयारा।।
बिन दर्शन लौटाय ताहि अतिशय दुख दीना। यासों रोवत बाल हिये में चैन परी ना।।

पूर्णमासी जी ने कहा, यशोदा। आज तुमसे भारी अपराध हो गया है। जिस महान सन्त को नाग बाबा समझकर भयभीत होकर बाहर दरवाजे पर छोड़ आई हो वह तुम्हारे लाला का जन्म जन्मान्तर का पुराना मित्र है। तुम उसे साधारण सन्त समझकर भूल कर बैठी हो। उसे लाला के दर्शन करवाये बिना निराश लौटाकर तुमने अतिशय दुख दिया है। अपने प्रिय सन्त का घोर अपमान जानकर और दुखी जानकर तुम्हारे लाला का दिल भी दुखी हो गया है। इसीलिए ऊँचे स्वर से रो रहा है क्योंकि उसके चित्त में शान्ति नहीं है।

जो चाहो सुख चैन बाल रोदन रुकवाना। बेगि बुलावो संत करावो ता मन माना।।
संत प्राण ते अधिक पियारे हैं नँदलाला। भीतर तुरत बुलाव चरण मेलो तव बाला।।

योगमाया पूर्णमासी बोली, हे यशोदा। अगर तुम अपने लाल का रोना बन्द करवाना चाहती हो और उसके मन को सुख चैन प्राप्त करवाना चाहती हो तो उस साँप वाले महात्मा को शीघ्रता पूर्वक बुलवालो और उसके मन की इच्छा पूर्ण कर दो। तुम्हारे इस नन्दलाल को ऋषि मुनि, सन्त महात्मा और भक्त प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। साँपों वाले उस महान सन्त को अपने यहाँ बुलवाकर उनका स्वागत सत्कार करो और तुम्हारे लाला को उनके चरणों में प्रणाम करवाओ।

कन्हैया अपने शंकर भगवान का दर्शन करने को अति व्याकुल थे। इसलिए विशेष प्रयास के बावजूद भी वे धैर्य धारण नहीं कर रहे थे। **यशुदा संगहि रोवन लागी।**

कहा भयो मेरे सुत लाला क्यों इतनी मुख झागी। उदर अपच वा छाती पीड़ा मन्द भई जठरागी।।
दूध न पीवे इतनो रोवे मैं नहिं जानु अभागी। इतनो दुख पावे मम लाला नजर कौन ने दागी।।
सरवस अर्पूं जो मेरो सुत करे चैन अनुरागी। जीवन भर दासी बन सेवूँ दूख हरे बड़भागी।।
कर जोरे मैं ईस मनाऊँ द्विजन जिमाऊँ छागी। हमारो आज कौन जो कर दे आनँद पागी।।

बहुत देर प्रयास करने के बाद भी जब लाला का रुदन बन्द नहीं हुआ तो माता यशोदा भी दुखी होकर लाल के साथ ही रोने लगी और रोते रोते कहने लगी, अरे बेटा, अरे लाला, तुझे क्या हो गया है? क्यों इतना रो रहे हो? देखो तो, मुख से इतना झाग निकलने लगा, जठराग्नि के मन्द होने से तुम्हारे पेट में अजीर्ण हो गया है अथवा छाती में कोई पीड़ा हो गई है। तूने दूध पीना बन्द करके क्यों इतना रुदन मचाया है? मैं अभागी अब तक इसका कारण जान नहीं पाई कि मेरा लाला इतना दुख क्यों पा रहा है? जाने किसने इस पर बुरी नजर लगा दी है? अरी सखियो, मेरी सहायता करो ऐसा कोई सज्जन ढूँढकर लाओ जो मेरे पुत्र का दुख दूर करे उसे सुखी कर दे। मैं उसे इस काम के लिए जो कुछ मेरे पास है, सब अर्पण कर दूँगी। जो बड़भागी मेरे लाला का दुख दूर कर दे मैं जीवन भर उसकी दासी बनकर सेवा करती रहूँगी।

मैया बोली- तो बाबा को जल्दी बुलाओ। जिस दिशा में गया है एक गोपी बुलानेके लिये दौड़ी-दौड़ी जा रही है। यशोदा बोली- उस जोगी को खोज कर ले आवो और उसे लाला के दर्शन कराके सन्तुष्ट कर दो। वह दासी अत्यन्त व्याकुल होकर चारों तरफ दौड़कर जोगी जोगी ऐसा पुकारती हुई रोने लगी। कदम्ब वृक्ष के नीचे भोलेबाबा समाधिष्ठ बैठे हैं। दासी बोली- अरे जोगी, घर चलो और लालापर कृपादृष्टि डालो। हमारा लाला बहुत रो रहा है ऐसा लगता है कि उसे नजर लग गई।

मैं बालकृष्ण को बाहर ले जाऊँ और साधु से आशीर्वाद माँगू। मैया ने कन्हैया का श्रृंगार कर के बाहर भेज दिया और कह दिया कि- उस महाराज से कहना कि लाला को देखना, किन्तु टकटकी लगाकर मत देखना। अन्यथा नजर लग जायेगी।

दासी आकर उस बाबा को बोली- आपको नन्दरानी ने बुलाया है नन्दराज के घर चलो। शंकर बोले- हम किसीके घर नहीं जाते। दासी बोली- यशोदा मैया ने आपको बुलाया है उसके लालाको नजर लग गई है।

चल रे योगी नन्द भवन में, तोहे यशोदा माय बुलावै। वाके लाला को नजार लगी है, रोई लोन करवावै।।

दासी कन्हैया को योगी के पास लाई। योगी ने दर्शन कर प्रणाम किया और कहा- यदि लाला को मेरी गोद में रख दिया जाय तो मैं इसकी हथेली देखकर इसका भविष्य बतला दूँ।

बोल लिये त्रिपुरारि प्रेम सों आदर दीना। दरस कराये लाल आपहू वन्दन कीना।।

क्षमा करो अपराध जानि मोहि निपट गँवारी। लाल नेह पर असुर शंक मेरी मति मारी।।

शंकर आनंद में मग्न होकर, श्रीकृष्ण के पास आये और आँखों में आँखें मिलाईं। हरि और हर अपनी आँखें मिलाकर हँसने लगीं। जिनकी मुसकान मुनियों के मनों को चुरा लेती हैं उन श्रीकृष्ण को देखकर शंकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले- मैं तो धन्य हो गया। अब तक कभी मैंने ब्रह्मा का ऐसा सुन्दर स्वरूप नहीं देखा।

तब यशोदा अपने हृदय में शनि-मंगल आदि ग्रहों का वा भूत-प्रेत आदिकों की शंका मानकर के शंकरजी के पास में गई और हाथ जोड़कर के नम्रता-पूर्वक शंकर भगवान से कहने लगी। इस समय यशोदा की नम्रता को देखकर रुद्र भगवान हँस पड़े।

तुम बैठे जिसके हेत, दुखित सो जानो। नहि बोलत भोजन करत, चित्र सम मानो।।

अब चलो भवन कुछ यंत्र-तंत्र वा ठानो। मैं किया जौन अपराध, हृदय नहि आनो।।

अरे बाबा, तुम जिसके निमित्त ध्यान लगाये हुए हो, वह तो बड़ा दु:खी हो रहा है। न बोलता ही है, न खाता ही है। उसे जानो जड़ के समान पड़ा हुआ। बाबाजी, अब चलो मेरे घर में, कुछ यन्त्र-मन्त्र आता होवे तो उसको झाड़ो। मैंने जो कुछ भी आपका अपराध किया है, आप उसको हृदय में नहीं लावें।

हरि भक्त संत विद्वान, कृपा गृह गानो। बिन माधव हमारी टेक, और न बखानो।।

अब देख दुखी गोपाल, चित्त अकुलानो। केशव बिन कमला भवन, तुल्य उद्यानो।।

क्योंकि संत, विद्वान जो महात्मा हरिभक्त होते हैं, वे तो अत्यन्त कृपालु होते हैं। अब बिना माधव के हमारा कोई सहारा नहीं रहा है। अब बाबाजी, गोपाल को दु:खी देखकर हमारा चित्त घबरा रहा है। जैसे केशव भगवान के बिना लक्ष्मी का भी महल वन के समान है, तैसे हमारा घर भी लाला कन्हैया के बिना सूना है।

तब यशोदा जी अत्यन्त नम्रता के साथ महादेवजी को मनाकर बड़े सत्कार के साथ अपने घर में ले गईं। फिर भगवान शंकर को बैठा कर कामदेव के समान सुन्दर श्याम श्री कृष्णजी को उनके गोद में दे दिया।

महामाया की बात सुनकर मैया यशोदा ने त्रिपुरारी शिव को प्रेम से घर में बुलवाया और सादर सन्मान किया। अपने लाला के उन्हें प्रेम से दर्शन करवाये और स्वयं भी हाथ जोड़कर वन्दना की। यशोदा जी ने कहा, हे योगेश्वर भगवान, मेरे अपराध को क्षमा करो, मैं तो भोली भाली गाँव की निपट गँवार हूँ। लाला के प्रति अपार स्नेह होने के कारण मैंने उसकी सुरक्षा के लिए आप जैसे महान सन्त के प्रति असुर भाव की शंका की क्योंकि इससे पहले भी कई असुर कपट पूर्वक स्नेह भाव दिखाते हुए आये थे और लाला का अनिष्ट करने की कुचेष्टा की थी इसलिए आपको देखकर शंका से मेरी बुद्धि मारी गई थी।

पूरणमासी नैन झुकाये सनमुख देखी। योगी बाबा जान गये योगिनि की लेखी।।

मन ही मन में कहे छोड़ आये कैलासा। लेकिन मेरा एक रूप गोकुल महँ वासा।।

शंकर भगवान ने योगमाया पूर्णमासी जी को नयन झुकाकर सामने खड़े देखा। महायोगेश्वर शिव बाबा जान गए कि माता यशोदा की विचारधारा में यह महान परिवर्तन इस योगिन की करनी से ही सम्भव हो सका है। योगमाया मानो मन ही मन कह

रही हों, हे परमेश्वर। आप तो मुझे कैलाश पर्वत पर ही छोड़ आए थे परन्तु मैं एक रूप से यहाँ गोकुल में भी वास कर रही हूँ।

दरस कराये मन मोहन के भे आभारी। तुम नहिं आती रोवत रहते गंगाधारी।।
नंदनन्दन को गोद लिये बाबा मुसकाये। रुदन हो गया बन्द उभय ने नैन मिलाये।

मैया ने कन्हैया को योगी की गोद में रख दिया। वे समाधि में डूब गये। आनन्द का महासागर, उमड़ पड़ा। शिव बोले- इसको गोद में दो तो इसका रोना बन्द हो सकता है। जैसे ही शिव ने मैया के लाला को गोद में लिया वह किलकिलाकर हँसने लगा। मैया बोली- बाबा, क्या जादूटोना करता है? मेरा लाला तेरी गोदमें आते हैं देखो कैसा हंस रहा हैं अब मेरी गोद में दे दे। जैसे ही मैया ने कृष्णको गोदमें लिया फिर वह रोने लगा। जब यशोदा की गोद में आवे तो रोवें और शिव की गोद में जावें तो हँसे।

शंकर भगवान ने मन ही मन कहा, हे महाशक्ति। तुमने यहाँ आकर मेरे आराध्य देव मन मोहन के दर्शन करवा दिए मैं इसके लिए तुम्हारा बहुत आभारी हूँ। हे देवी, अगर तुम नहीं आतीं तो ये गंगाधारी तो दर्शनों के लिए व्याकुल होकर जाने कब तक रोता ही रहता। नन्द नन्दन को अपनी गोद में लेकर भोले बाबा का मुख प्रसन्नता से खिल गया और वे मुस्कराने लगे। बाबा और लाला दोनों ने एक दूसरे से प्रेमपूर्वक नयन मिलाए, दोनों ही परम प्रसन्न हुए और दोनों का ही रुदन बन्द हो गया।

किलकारी लाला भरी, बाबा दीना अंग। यशुदा तन मन खिल गया, लालन देखि उमंग।।

शंकर भगवान ने यशोदा नन्दन को अपनी गोद में लिया तो प्रसन्नता के कारण लाला ने किलकारी भरी। बाबा ने भी हर्षित मन से लाला को अपने हृदय से लगाया। अपने लाल की प्रसन्नता भरी उमंग देखकर रानी यशोदा का मन और अंग अंग खिल गया।

शिवशंकर ने मन ही मन बहु अस्तुति कीनी। झाड़ दिये सब अंग उतारा बहु विधि दीनी।।
बाबा तुम तो बहुत भले मैं जान न पाई। कबहुँ न लागे दृष्टि लाल ऐसो कर जाई।।

होश में आने पर योगी ने कहा- मैया, तेरा लाला सम्राटों का सम्राट होनेवाला है। यह कहकर शंकरजी ताण्डव करने लगे। शंकरने कहा- एक प्रतिज्ञा करो तुम मेरा मन्दिर अपने घरमें बनवाओ और जब तुम अपने लाला को स्नान कराओ तो उसका जल मेरे ऊपर होकर निकले।

रह रे योगी नन्द भवन में, ब्रज में वासो कीजै। जब-जब मेरो लाला रोवें, तब तब दर्शन दीजै।।
प्रेम देख हर का हरी, निरख तास का आस। हंसकर दीना वदन में, माखन मिसरी ग्रास।।
मुदित वदन तक तनय का, उपजा मन में मोद। मात यशोदा त्वरित तब, माधव लीने गोद।।

उसी समय यशोदा मैया को अपने पुत्र के प्रसन्न मुख को देखकर मन में बड़ा भारी आनन्द उत्पन्न हुआ। तत्काल ही माता यशोदा ने भगवान् श्याम सुन्दर को अपनी गोद में ले लिया।

शिवशंकर ने मन ही मन यशोदा नन्दन की महिमा बखान करके बहुत स्तुति की। उन्होंने सोचा, पहले मैंने प्रकट रूप में मैया के सामने नन्द नन्दन की महिमा गाई तो माँके मन में अनेक प्रकार की उलटी पलटी शंकाएं उठने लगीं। इसलिए अबकी बार मन में ही महिमा का बखान किया और माता यशोदा के सामने उन्हें प्रसन्न करने हेतु विविध प्रकार के मंत्रों से लाला की झाड़ा फूँकी करने लगे।

यद्यपि सर्वजित परमेश्वर को इसकी आवश्यकता नहीं थी फिर भी वह लाला को प्रसन्न करके माता को भी प्रसन्न देखना चाहते थे। लाला की प्रसन्नता तथा उमंग भरी किलकारी को देखकर माता प्रसन्नता से फूली नहीं समाई और बाबा

से बोली, हे बाबा- तुम तो बहुत अच्छे बाबा हो मैं तो आपकी महिमा को जान ही नहीं पाई। अब आप मेरे लाला को ऐसा सुरक्षा कवच पहना दें कि इसे कभी भी किसी की बुरी नजर न लगे।

मैया मेरे नजर बहुत जल्दी लग जाती। मेरे गुरु मम जटा बीच गंडा संघाती।।

जासों मेरे नजर गुजर कबहूँ नहिं लागे। जो वासों छिव जाय दूख वाहू के भागे।।

शंकर बोले- हे मैया, मैं जब छोटा था तब बहुत सुन्दर था, तुम्हारे लाला की तरह मुझे भी बहुत जल्दी नजर लग जाती थी। तब मेरे श्री गुरुदेव भगवान ने मेरी छोटी छोटी सुनहरी जटाओं में नजर अवरोधक गंडा बाँध दिया था उसीके कारण आज तक कोई नजर गुजर कभी नहीं लगी। जिस किसी का शरीर मेरे गुरुजी के बाँधे गंडे से छू जाता है, उसके भी दुख दर्द, नजर, गुजर सब दूर हो जाते हैं।

चरण लाल को याहीं सो मम सीस घुमावो। जब लों नहिं छिवि जाय बराबर फेरति जावो।।

शीश झुकाया चरण यशोदा लाल फिराया। बहुत काल शिव झुके चरण परसन सुख पाया।।

शंकर भगवान ने कहा, हे माता। मेरी अवस्था बड़ी होने के कारण जटाएँ भी बड़ी बड़ी हो गई हैं। जिसमें गुरुजी का बाँधा गंडा दिखाई नहीं देता है। तुम अपने लाला के चरणों को मेरे सिर में घुमाओ, जब तक लाला के चरण उस गंडे से छू न जाए तब तक बराबर घुमाती ही रहो। यह कहकर शंकर भगवान ने नीचे बैठकर सिर को झुकाया। माता यशोदा ने अपने लाल को गोद में लेकर लाला का चरण बाबा की जटाओं में घुमाना आरम्भ किया। बहुत समय तक भोले बाबा ने झुके रहकर अपने आराध्य देव के चरण कमलों का अपने सिर के साथ स्पर्शित होने का परम आनन्द प्राप्त किया।

बहुत दीन आसीस यशोदा गोदी लीना। जय जय हरि हरि शम्भु कहा उलटा पग दीना।।

माता की गोद में विराजमान बाल रूप धारी आराध्य देव के लिए यशोदा मैया को बहुत से आशीर्वाद सुनाए और शंकर समाधि में चले गए। गोपियां बोली- अरी बृजरानी, हमने तुमसे पहले ही कहा था कोई महान देवता सन्त के रूप में आया है, परन्तु तुमने तो असुरों के भय से शंकित होकर हमारी एक नहीं मानी और अपनी ही बात को सिद्ध करने का प्रयास किया। माता यशोदा ने देखा, मेरा लाल प्रसन्न होकर किलकारियाँ मारते हुए अपने हाथों और पैरों को ऊपर उछाल रहा है तब माता भी खुशी के मारे अपना तन मन न्यौछावर करने लगी।

शंकर की समाधि टूटने पर होश में आने पर योगी ने कहा- तेरा यह बालक साक्षात् ईश्वर है। इसके रहते किसी को कहीं भी कोई भय नहीं होगा। इसका तो नाम ही सब भवबाधाओंको नष्ट करनेवाला है।

ताण्डव करने की बेला में अपने असली रूप में बसा कर शंकरजी कैलास वापस लौट गये। नन्द बाबा के गाँव के पास आज भी आशेश्वर महादेव का मन्दिर है वहांपर शिवजी का नाम नन्देश्वर महादेव हो गया।

३) मथुरा में नन्द और वसुदेव का मिलन- पुत्र की रक्षा और अभ्युन्नति के लिये देवों, ब्राह्मणों और याचकों को सन्तुष्ट कर लेने के बाद नन्दबाबा की दृष्टि राजा की ओर गई। घर में शुभ कार्य होने पर राजा को भी भेंट देना धार्मिक और व्यावहारिक अंग है। राजा को वार्षिक कर देने का भी समय आ गया था अत: नन्द बाबा गोकुल की रक्षा का भार गोपों को सौंप कर स्वयं कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिये कुछ गोपों को साथ लेकर भादों कृष्णत्रयोदशी के दिन मथुरा गये।

वार्षिक कर नहिँ जाइ करे उत्पात न दुरजन। छकरनिमहँ भरि दूध दही घृत चले गोप-गन।।

गोकुल रक्षाको सकल, करि प्रबन्ध मथुरा गये। पुण्य पुरी शोभा लखी, गोप परम हरषित भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, नन्दजी गोकुल की रक्षा का भार गोपों को सौंपकर कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिये मथुराजी गये।

एक दिवस नन्दहिं ब्रजराजा, गोपन्ह सौंपि ब्रजहिं कृत साजा ।।

देन राजकर मथुरहिं आए, सकल बारसिक करहिं चुकाए ।।

मथुरा पहुँचे नन्द नृप, मथुरा पति को मेल । भेंट लिये दरबार में, पहुँचे गोपन भेल ।।

प्रमुख गोपों के सहित श्री नन्दराय जी मथुरापति से मिलने मथुरा पहुँचे। साथ में आये हुए सभी गोपों को एकत्र करके हाथ में भेंट लिये हुए श्री नन्दराय जी कंस के दरबार में गये।

ब्रजपति अपने सुत करि नृप कहँ सूच जनाई । हीरे मोती पन्ना भरि भरि भेंट धराई ।।

कंस बधाई नन्द राय कहँ भूरी दीनी । सुख पावे रिपु नास हेतु शुभ आसिस कीनी ।।

नन्दराय जी ने हीरे, मोती, पन्ना आदि की मणिमालाओं से भरे हुए थालों की भरपूर भेंट राजा कंस को प्रदान की और उन्हें बताया कि नारायण भगवान की कृपा से हमारे घर में पुत्र रत्न का प्रादुर्भाव हुआ है। राजा कंस ने ऊपरी मन से श्री नन्दराय जी को पुत्र जन्म की बहुत बधाई दी और अपनी ओर से शुभ आशीवाद देते हुए कहा, आपके पुत्र के सभी शत्रुओं का विनाश हो जाये और आपका पुत्र सदा सुख से रहे।

कंस क्या जानता था कि उसने श्री नन्दराय जी के पुत्र को अनजाने में ही अपने नाश का आशीर्वाद दे दिया? श्री नन्द नन्दन के लिए राजा कंस ने एक सुन्दर रत्न जड़ित किरीट श्री नन्दराय जी को प्रदान किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। मथुरापति ने बृजपति का सुन्दर स्वागत किया और साथ में आए हुए गोपों को भी खान पान की सुविधा देकर तथा गले में मालाएँ धारण करवाके विदा किया और कहा, मुझे सूचना मिल गई है कि आप लोगों ने वार्षिक कर भण्डार घर में जमा करवा दिया है। अब आप लोग अतिथि भवन में सुख पूर्वक निवास करें और अपने भैया श्री वसुदेव जी से भी भेंट करके अपने पुत्र जन्म की सूचना से अवश्य अवगत करा दें।

नन्द बाबा और उनके साथी बैलगाड़ियों में बैठकर मथुरा गये। वहाँ मथुरा के बाहर बगीचे में डेरा डाला फिर तैयार होकर उन्होंने कंस के दरबार में पहुँच कर वार्षिक कर चुकाया। बेटा होने के उपलक्ष्य में उपायन भी भेंट किया फिर वे वहाँ से अपने डेरे पर लौट कर विश्राम करने लगे।

दई भेंट कर सहित रतन अगनित घृत पय धन । पाइ अमोलक वस्तु कंस पूछत प्रसन्न मन ।।

एक सेवकने वसुदेवजीको समाचार दिया व्रजराज नन्द आये हैं। वे गोपोंके साथ मथुरा आये है। उनके साथ बहुत बड़े छकड़े महाराज को वार्षिक कर देकर लौट रहे है। नगरके बाहर आम्रोपवनमें रुके हुए हैं। वसुदेव देवकी से बोले- देवि, व्रजपति नन्द आये हैं। वे तो बड़े नीतिज्ञ हैं। उनका यहाँ आना उचित नहीं जिससे कंसको कोई सन्देह नहीं हो मैं ही उनसे जाकर मिल आता हूँ। नन्दराय आयु में वसुदेवजीसे पर्याप्त बड़े थे। वसुदेवजी उन्हें अग्रज के समान ही सम्मान करते थे। कंसकी क्रूर दृष्टि है। स्वभावसे शंकालु है। गोपोंमें सनन्दन बोले- हम गोप हैं। हमें आहार मिले या न मिले, हमारी गायों-बैलोंको चारा-घास चरनेकी सुविधा पहिले चाहिये। यमुना-किनारे आमोंकेउपवनमें छकड़े रुकें और बैल चरनेको छोड़ दिये वहाँपर इनके जल पीनेका भी सुपास है।

जब नन्द बाबा के आने का समाचार वसुदेव जी को मिला तो वे उनसे मिलने के लिये उनके डेरे पर गये। वसुदेव जी को आया देखकर नन्दबाबा हर्षित हो उठे। बड़े प्रेम से उन्होंने वसुदेवजी की अगवानी की। उन्होंने उनको बाहों में भरकर छाती से लगा लिया। उस समय उनकी प्रेम विह्वलता आसमान छू रही थी।

सुधि आवे जब मित्रकी तब मन आवै चैन । या सुख की उपमा नहीं जो मुख देखै नैन ।।

नन्द बाबा ने वसुदेव जी को बड़े सम्मान के साथ बैठाया। जब वसुदेवजी आराम से बैठ गये तो उन्होंने नन्द बाबा का कुशल समाचार पूछा।

वसुदेव तहँ आय जहाँ ब्रजपति ठहराना। अभिनन्दन करि नन्द तात कर कुशल बुझाना।।
रोहिणि को सुत होवन की तिन दीन बधाई। महर आपनी अरु लाला की कुशल सुनाई।।

वसुदेव जी स्वयं ही भैया नन्दराय से भेंट करने अतिथि भवन में आ गए जहाँ नन्दराय जी को ठहराया गया था। परस्पर अभिनन्दन करके एक दूसरे का कुशल समाचार पूछा और अपनी कुशल भी बताई। श्री नन्दराय जी ने वसुदेव जी की पत्नी रोहिणी जी के यहाँ पुत्र होने की सूचना दी और बधाई दी। अपनी पत्नी यशोदा तथा उनके पुत्र की भी कुशल सूचना सुनाई।

बड़ा करे अति प्रेम यशोदा नन्दन साथा। एक वर्ष तक मौनी रहि अब भया सनाथा।।
लाला के सँग रहे सगे जनु दोनो भाई। प्रसव कक्ष नहिं तजे मातु निद्रित लै जाई।।
इस संसार चक्र में प्यारे। दुर्लभ तुम सम मित्र उचारे। कहो कुशल है तुमरे भाई। दुग्ध देत हैं महिषी गाई।।

इस संसार-चक्र में जीव को आपके समान मित्र के दर्शन कठिन कहे हैं। हे भाई, कहो आपके घर में आनंद तो है और भैंसे तथा गायें दूध तो देती हैं। कंस के जीवित रहते हुए किसी को सुख नहीं मिल सकता।

नन्दराय बोले- **नीर घास है बहु वन माहीं। आधि व्याधि तो व्रज में नाहीं।**
पुत्र सहित यशुमति कुशलाता। मम सुत कुशल सहित निज माता।।

और वन में जल, घास तो बहुत है, मानसिक वा शारीरिक रोग की पीड़ा ब्रज में तो नहीं है और पुत्र के सहित यशोदा जी आनंद में हैं और मेरा पुत्र अपनी माता रोहिणी के सहित राजी खुशी तो है। मैं आपको ज्ञान देकर क्या समझाऊं आप तो सूर्य के समान हो और मैं तुच्छ दीपक हूँ। तुम्हें तो अब एक रोहिणी के पुत्र का ही सहारा है और वह मुझे और यशोदा को प्राणों के समान प्यारा है। हम दोनों उसका पालन अपने सगे पुत्र की तरह करते हैं। नेत्रोंकी पुतली के समान हम दोनों पुत्रोंको रखते हैं।

नन्द बोले- हे वसुदेवजी, तुम्हारा एक वर्ष बड़ा पुत्र बलराम अपने छोटे भैया यशोदा नन्दन से बहुत प्रेम करता है। जब तक यशोदा के यहाँ लल्ला नहीं आया तब तक एक वर्ष रोहिणी नन्दन मौन ही बना रहा। चेहरा उदास, प्रसन्नता से रहित रहा। अब उसने हँसना, खेलना आरम्भ कर दिया है। दोनों लाला एक साथ इस प्रकार प्रेम से रहते हैं मानो सगे भाई हों। रोहिणी नन्दन छोटे भैया के पास प्रसूति कक्ष में ही बना रहता है तथा सो जाने पर ही निद्रित अवस्था में उसकी माता रोहिणी उठाकर उसे अपने कक्ष में ले जाती हैं। आप पुण्यपुरुषोंका अनुग्रह है। गोष्ठ खूब समृद्ध और गायों-गोपोंको पूरी सुविधा है।

वसुदेव बोले- नन्दजी मुझे तो आशा ही नहीं रह गयी थी कि इस जीवनमें भी आपके दर्शन कर सकूँगा। यह तो मेरा बहुत बड़ा पुण्योदय है कि आप जैसे आत्मीयका दुर्लभ दर्शन आज मिल गया। क्या किया जाय। सबके कर्म-प्रारब्ध पृथक्-पृथक् हैं। सबको अपने-अपने प्रारब्धका फल भोगना ही पड़ता है। अत: बहुत इच्छा होनेपर भी मनुष्य अपने स्वजन-सुहृदोंके साथ एकत्र नहीं रह पाता। पुरुषको अर्थ, धर्म काम तभी सुख देते हैं जब उसके सुहृद् भी सुखी हों। सुहृद् दुखी हों तो कोई सम्पत्ति या भोग सुखी नहीं करता। आप तो प्रेम-वात्सल्य मूर्ति हैं। आपसे उत्तम लालन-पालन उसका हम भी नहीं कर सकते। नन्द बोले- हमने तो समझा था कि देवी रोहिणीका वह पुत्र गूँगा है। वह इतना गम्भीर, गुमसुम रहा है पूरे वर्ष भर कि सब चिंतित हो उठे। लेकिन जैसे ही व्रजराजकुमारका जन्म हुआ वह ऐसा हँसने-खेलने लग गया, उसीको सबसे अधिक सुख मिला हो। देवी रोहिणी तो साक्षात् वरदानमयी हैं। वे जबसे गोकुल आयीं और गोपोंके घर उनके पुत्र सखा-सेवक आने लगे। वे कृपामयी ही हम सबका संरक्षण पालन करती हैं, हम कहाँ उनकी सेवा करने योग्य है।

छे बालक मरवाय कंस तव यह दुख भारी। सप्तम स्त्रव अष्टम भई कन्या चाहत मारी।।
छूट हस्त नभ गई कहा अठ हाथन धारा। दुष्ट कंस भा प्रगट तुम्हारा मारन वारा।।

नन्दराय ने कहा, वसुदेवजी। यह जानकर हमें बहुत भारी दु:ख हुआ कि दुष्ट राजा कंस ने तुम्हारे छ: बालकों को जेल में ही मार दिया, देवी देवकी का सातवाँ गर्भ स्त्रवित हो गया और आठवें गर्भ में कन्या आई जिसे कंस हाथ में लेकर मारना ही चाहता था कि वह हाथ से छूटकर आकाश में चली गई और वहाँ उसने अष्टभुजी देवी का रूप धारण करके कहा कि अरे दुष्ट कंस, तुम्हें मृत्यु प्रदान करनेवाला तुम्हारा बैरी प्रगट हो गया है। देव भी कितना निष्ठुर है। देवकीसे उत्पन्न आपके अनेक पुत्रोंको कंसने मार दिया। एक कन्या बची थी वह भी स्वर्गमें चली गयी। यह सब भाग्यका खेल है। अदृष्टके द्वारा ही मनुष्यका जीवन नियंत्रित है। जो इस तत्त्वको जान लेता है, वह मोहमें नहीं पड़ता। फिर आप तो परम तत्त्वज्ञ है।

सुनि बसुदेव नन्द आगमन। आए तहँ जहँ जसुमति रमनू।।
मिलेउ उमगि दोउ हृदय लगाई। प्रीति परस्पर बरनि कि जाई।।
सादर नन्द सुपूजन कीन्हा। यथा जोगु सुठि आसनु दीन्हा।।
बुझि परस्पर दोउ कुशलाई। उर चिन्ता भय सोकु मिटाई।।
देश काल अवसरु गति जानी, कह बसुदेव मधुर सुठि बानी।।
धन्य-धन्य अति भाग तुम्हारा, चौथे पन सुत बदनु निहारा।।

वस्तुत: वसुदेव जी का मन अपने बेटों के ऊपर लगा था। वे मुख्यरूप से उन्हीं का समाचार जानना भी चाहते थे अत: उन्होंने कहा- भैया, बड़े सौभाग्य से आज बहुत दिनों के बाद आप का दर्शन हुआ। इस ढलती अवस्था में आपके यहाँ पुत्र होने का समाचार जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। अच्छा, यह बतलाइये कि आजकल आप जिस महावन में निवास करते हैं उसमें कोई रोग तो नहीं लगा है? वहाँ जल, घास और लतापत्रादि भरपूर तो हैं न? वह वन पशुओं के लिये अनुकूल और सब प्रकार के रोगों से तो बचा हुआ है न? भैया, मेरा बेटा अपनी माँ (रोहिणी) के साथ आपके व्रज में रहता है। उसका लालन-पालन यशोदा और आप करते हैं। इसलिये वह आप लोगों को ही अपना माता-पिता मानता होगा। वह अच्छी तरह है न? आपकी आज्ञा का पालन करता है न?

मनुष्यके लिये वह धर्म, वही कर्म और वही अर्थ शास्त्र विहित हैं जिनके द्वारा इनके स्वजनोंको सुख मिले। जिनके द्वारा सुहृदोंको सुख हो वही धर्म, धर्म वही काम काम; और वही अर्थ, अर्थ है। जो अर्थ केवल अपने लिये हो और अपने सुहृदोंके लिये न हो वह अर्थ अर्थ नहीं, वह धर्म धर्म नहीं। ऐसा धर्म, कर्म और अर्थोपार्जन जो किसीके द्वारा स्वयंके सुखके लिये किया जाय वह त्रिवर्ग हितकारी नहीं हो सकता। स्वजनोंसे पृथक् अपने लिये होनेवाले अर्थ, धर्म और काम क्लेशकारी है।

नन्दजी, तुम्हारे समान मेरा कोई मित्र नहीं। राजा कंस के दु:ख देने से मैंने अपनी गर्भवती स्त्री तुम्हारे यहाँ भेज दी और उसका तो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पालन तुमने हमसे भी अधिक किया। मैं राजा कंस के डर से कुछ सुधि नहीं ले सका। यह तुम्हारा बड़ा उपकार है मेरे ऊपर। मैं जन्मभर तुम्हारी सेवा करूँ तब भी इस उपकार से उऋण नहीं हो सकता।

वसुदेव की प्रेमभरी बात सुनकर नन्द ने कहा- भैया वसुदेव, बेटे तो दोनों ही आपके हैं। मैं तो उनकी सेवामात्र करता हूँ। यद्यपि यह बात नन्द बाबा ने सभ्यता के लिहाज से कही थी। किन्तु वसुदेव ने मन-ही-मन कहा- कहते तो भैया ठीक ही हो। बेटे तो दोनों हमारे ही हैं। उन्होंने सिर हिला कर नन्दजी की बात का जवाब दिया।

फिर नन्द ने उदास स्वर में लम्बी आह भर कर कहा- विधि की भी क्या विडंबना है कि आज साधु पुरुष को अपार दु:ख

उठाना पड़ा। भाई होते हुए भी हम तुम्हें सहारा नहीं दे सके। भाई वसुदेव, कंस ने देवकी के गर्भ से उत्पन्न आपके कई पुत्रों को मार डाला। अन्त में सबसे छोटी एक कन्या बची थी, वह भी स्वर्ग सिधार गई। यह सब भाग्य का खेल है- ऐसा जानकर सन्तोष करना पड़ेगा। विधि का विधान कोई टाल नहीं सकता। वसुदेव बोले- अब मनको छोटा करने से क्या फायदा? मेरा एक पुत्र तो आपके घर में ही पल रहा है, आपके छोटेवाले पुत्र को मैं अपना ही मान लूँगा। दोनोंको मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।

नंदराज बोले- ब्रज में सर्व प्रकार से महान् आनंद है और आपका पुत्र भी रोहिणी माता के सहित आनंद-पूर्वक है। हे प्रिय मित्र, आपका पुत्र और मेरा पुत्र यह कोई दो नहीं, किन्तु मैं तो आपके पुत्र को अपना पुत्र ही मन में जानता हूँ।

एक कष्ट बहु मम उर प्यारे। दुष्ट कंस जो तव सुत मारे।। तुम सम धर्मशील दुख पावे। ईश गती कुछ कही न जावे।।

परन्तु मेरे मन में एक दु:ख है, जो तुम्हारे पुत्रों को नीच कंस ने मारा है और ईश्वर की गति भी कुछ कही नहीं जाती, क्योंकि तुम्हारे समान धर्मात्मा पुरुष भी दु:ख को प्राप्त होते हैं। आपको दु:ख नहीं होना चाहिये पर यह प्रभु की लीला विचित्र है।

जब सारा परिवार सुखी रहता है तभी गृहस्थ लोग सुखी रहते हैं। गृहस्थका सुख अकेले सुखी रहनेमें नहीं है। नन्दजी आपके यहाँ जो सुख आया है, वह हम सबके लिए भी बड़ा सुखदायी है।

नंद दयो कर कंस लौटि डेरापै आये। समाचार वसुदेव सुनत तुरतहिँ उठि धाये।।
दई बधाई नन्दकूँ, कुशल प्रश्न पुनि पुनि करें। सुमिरि सुमिरि बल कृष्णकूं, नीर नयन नीरज भरें।।

शुकदेव बोले- राजन्, नंदजी से मिल भेंटकर वसुदेवजी कहने लगे- आप राजा को वार्षिक कर दे ही चुके और हमसे भी साक्षात्कार हो चुका, अब आपको अधिक दिन यहां न ठहरना चाहिये। क्योंकि आजकल गोकुल में बहुत-से उत्पात हो सकते हैं।

दो कर जोर कहूँ इक बाता। रोष मानना नहि कुछ ताता।।
बहुत काल तुम मत ठहरावो। कारज कर जल्दी गृह जावो।।

हे प्रिय नंदराज, दोनों हाथ जोड़कर आपसे एक बात कहता हूँ, परन्तु मेरी बात सुनकर कुछ बुरा नहीं मानना। मैं तो दूर से चलकर और मित्र जान आया था, आगे यह मित्र भाव को तोड़कर, घर को शीघ्र जाओ, यह मेरे कथन का उल्टा अर्थ समझ कर तुम क्रोध नहीं करना। अब आप बहुत देर तक मथुरा में नहीं ठहरो, अपना कार्य करके शीघ्र ही घर को चले जाओ।

क्योंकि गोकुल में बहुत उपद्रव हो रहे हैं। इस बात का मेरे को अनुमान होता है कि दुष्ट स्वभाव वाले कंस के भेजे हुए सेवक राक्षस इधर-उधर उत्पात करते-फिरते हैं।

वसुदेव कही जाउ गृह ताता। ब्रज में होंहि नित्य उत्पाता। बालक ढूँढ़ि कंस मँगवावे, दुष्ट उन्हें तत्काल मरवावे।।

इसलिये हे नन्दजी, अब तुम शीघ्र ही यहाँ से ब्रज को जाओ। यहाँ अधिक न ठहरो। क्योंकि वह दुष्ट कंस ब्रज वासियों के पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है और उसके राक्षस अनेक प्रकार के रूप बना बनाकर ब्रज के बालकों की हत्या करते रहते हैं।

गोकुल में ठीक नहीं हो रहा है। जगह-जगह से रुदन आ रहा है। बच्चे मर रहे हैं, तुम यहां अधिक समय मत रुको, गोकुल लौट जाओ।

तात इँहा तुम जेहिं लगि आएउ, भएउ काज नृप करहिं चुकाएउ।।
जाहु तुरत अब गोकुल माहीं। अधिक विलम्ब करब भल नाहीं।।
तात सुनत अस दुखप्रद बाता। गोकुल होत विविध उतपाता।।
सखा काल गति जानत नीके। कुटिल भाव सठ कंसहिं हीके।।

वसुदेवजी ने कहा, हे भैया नन्द। ऐसी स्थिति में आपको अधिक समय तक मथुरा में नहीं ठहरना चाहिए। मुझे सन्देह है कि शिशुओं के हत्यारे असुर खोज लगाते हुए गोकुल की ओर भी जा सकते हैं और आपने तो स्वयं राजा कंस को अभी अभी अपने यहाँ पुत्र होने की सूचना दी है। अत: आप शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान करके गोकुल की सुरक्षा के लिए वहाँ पहुँचे।

नन्दराज ने सुना कि गोकुलमें उत्पात हो सकता है तो एकसाथ उठ खड़े हुए। गोप जाति एकमत, त्वरित कर्मरत होनेवाली है। गोप किसीपर अकारण अविश्वास नहीं करते।

दोनों भाइयों ने एक दूसरे को नमस्कार किया, परस्पर गले मिले तथा शहर से खरीदी हुई वस्तुओं को गाड़ियों में लादकर छकड़ों को महावन के लिए हाँक दिया। व्रजपतिने भुजा फैलाकर वसुदेवजीको अंकमाल दी और कहा- हरिकी कृपा हुई तो फिर मिलेंगे। गोपोंने भी यथायोग्य अभिवादन किया और व्रजेन्द्र छकड़ेपर सवार हो गये।

तात नन्द अब अधिक मधुपूरि मत ठहरावो। मोहि अँदेसा दु:ख शीघ्र गोकुल हित जावो।।
नमस्कार करि इक दूजे को गले लगायो। क्रीत वस्तु धरि शकट महाबन हेत चलायो।।

हमारे पुत्र को भी अपने आश्रित देखकर अपने पुत्र की तरह रखवाली करना। वसुदेव की सरल सुन्दर वाणी सुनकर रुचिर तथा परम हितकारी माना। तुरन्त सभी भाण्डों को संकटों पर सजाकर अपने गणों के साथ नन्दराज ब्रज लौट पड़े।

बोले श्रीवसुदेव दयो कर भेंट भई अब। अधिक रहें नहिँ यहाँ काज सम्पन्न भये सब।।
ब्रजमहँ नव उत्पात कौन-से कब का आवें। तातें अब अविलम्ब आपु गोकुलकूँ जावें।।
राम-कृष्णमहँ मन फँस्यो, नन्द-हृदय शंका भई। तुरतहिँ गोकुल गमनकी, गोपनिकूँ आज्ञा दई।।
छकरनि जोरे बैल नन्द वसुदेव मिले पुनि। गोकुलकूँ चलि दये कथा अब एक कहूँ मुनि।।
निज रिपु हनिबै हेतु पूतना कंस पठाई। सब थल मारत शिशुनि, खेचरी गोकुल आई।।

रास्ते में गाड़ी में बैठे बैठे नन्दराय जी मन में विचार करने लगे कि श्री वसुदेवजी सत्यवादी हैं उन्होंने झूठी बात नहीं कही होगी क्योंकि सत्यवादियों के हृदय में अनूठी और प्रामाणित बात ही प्रकट होती है। राह में चलते समय बिल्ली रास्ता काट गई और उन्हें अब ध्यान आया कि चलते समय किसी ने पीछे से छींक लगाई थी। अब नन्दराय जी के मन में शंका बढ़ने लगी और उन्होंने गाड़ियों का वेग बढ़ा दिया, देर करना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था।

भोजप प्रेरी पूतना, पुर ग्रामन के बीच। बाल हनन हित विचरती, गोकुल आई नीच।।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस के द्वारा भेजी हुई घोर रूपा, बालकों को मारने वाली पूतना राक्षसी नगरों, ग्रामों तथा गौओं के गोष्ठ आदि में सद्य:जात शिशुओं को मार रही थी। एक दिन वह कामचारिणी खेचरी पूतना नन्दजी के गोकुल में आयी और अपनी आसुरी माया से अत्यन्त सुन्दरी युवती का वेष बनाकर अन्त:पुर में घुस गयी।

सुन्दर योषित रूप धर, गयी नन्द के द्वार। देख यशोदा रोहिणी, कीना अति सत्कार।।
प्रेरित कंस समय भल पाई। तेहिं अवसरु ब्रजमण्डल आई।।
केतिक बालहिं कीन्हिं निपाता। गहि गहि अंकु शिशुहिं नवजाता।।
छदम वेष धरि अति कमनीया। बनि सुन्दरि सोड़ष बरसीया।।
सुन्दरता तेहिं बरनि कि जाई। लखि शचि रति रम्भादि लजाई।।
गई पूतना आज व्रज को बालकघातिनी। करिहै कछू अकाज वैगि धाम सुधि लीजिये।।
बिनती कीन्हीं मित्र सों डारेउ जनि बिसराय। माखन प्रभु बुलाइहैं फेरि मिलेंगे आय।।

वसुदेवजी अपनी सत्यवत्कृता के लिये प्रसिद्ध थे। वे कभी मिथ्या भाषण नहीं करते थे अत: उनकी वाणी मिथ्या नहीं हो सकती। जो व्यक्ति सत्यनिष्ठ होता है, उसके मुख से अनजान में भी यदि कोई बात निकल जाय तो वह सच हो जाती है। यहाँ वसुदेव जी के मुख से यह शब्द निकला है, जो वर्तमान काल का वाची है। इसका तात्पर्य यह है कि यहाँ नन्द और वसुदेव परस्पर बात कर रहे हैं और वहाँ गोकुल में उत्पात हो रहे हैं। वसुदेव और नन्द में इतनी आत्मीयता इसलिये है कि दोनों भाई लगते हैं। शूर के पुत्र हैं- वसुदेव और पर्जन्य के पुत्र हैं- नन्द। शूर और पर्जन्य के पिता एक ही थे।

वसुदेव बोले- **तुम घर जाहु बेगि आपने कीने कंस उपद्रव घने। बालक ढूँढ मँगावे नीच हुई साध पर जाक मीच।।**

श्री शुकदेव जी ने कहा- परीक्षित्, वसुदेव की बात सुनकर नन्दजी उनसे अनुमति लेकर गोपों के साथ छकड़ों पर सवार होकर गोकुल के लिये चल पड़े। वसुदेव जी भी चुपचाप अपने स्थान पर लौट आये।

४) पूतना वध- श्रीशुकदेवजी ने कहा- राजन्, एक दिन राजसभा में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुये कंस को आकाशवाणी सुनाई दी। ओ मूढ़ नरेश, क्या कर रहा है? अपने कल्याण का उपाय सोच। तेरा काल धरती पर उत्पन्न हो चुका है। वसुदेव ने माया से तेरे शत्रुभूत बालक को नन्द के हाथ में दे दिया और उसकी कन्या लाकर तुम्हें सौंप दी। वह कन्या माया का अंश थी। वसुदेव के पुत्र के रूप में साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण हुए हैं। वे ही तेरे प्राणहन्ता है। इस समय गोकुल में नन्द-मन्दिर में उनका पालन-पोषण हो रहा है। देवकी का सातवाँ गर्भ भी स्खलित या मृत नहीं हुआ था। योगमाया ने उस गर्भ को रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया था। उस गर्भ से शेष के अंशभूत महाबली बलदेवजी प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण और बलराम- दोनों तेरे काल हैं और इस समय गोकुल के नन्द-भवन में पल रहे हैं।

यह आकाशवाणी सुनकर राजा कंस का मस्तक झुक गया। उसे सहसा बड़ी भारी चिन्ता प्राप्त हुई। अनमने होकर उसने आहार को भी त्याग दिया। उसने अपनी प्रिय मुँहबोली बहिन पूतना को बुलाकर भरी सभा में कहा कि पूतने, मेरे कार्य की सिद्धि के लिये गोकुल के नन्द-मन्दिर में जाओ और अपने स्तन पर विष का लेप करके शीघ्र ही नन्द के नवजात शिशु के मुख में दे दो। वत्से, तुम मन के समान वेग से चलनेवाली मायाशास्त्र में निपुण और योगिनी हो। अत: माया से ही मानवी रूप धारण करके तुम वहाँ जाओ। तुम दुर्वासा से महामन्त्र की दीक्षा लेकर सर्वत्र जाने और सब प्रकार का रूप धारण करने में समर्थ हो।

नन्द बाबा ने मार्ग में विचार किया कि वसुदेव जी की वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। अवश्य ही कोई-न-कोई विघ्न उपस्थित होगा- ऐसी आशंका कर वे रक्षा के लिये मन-ही-मन भगवान श्रीहरि की शरण में गये।

त्रयोदशी के दिन नन्द बाबा मथुरा गये थे। चतुर्दशी के दिन वे वहाँ से लौटे। चतुर्दशी के दिन गोकुल में लाला की छट्ठी मनाई जा रही थी। अब तो कम लोग छट्ठी मनाते हैं। केवल बरही ही धूम धाम से मनाई जाती है। छट्ठी अर्थात् चतुर्दशी के दिन कंस ने बालकों की हत्या करनेवाली पूतना नाम की एक विकराल राक्षसी को नन्द के लाला कन्हैया का वध करने के लिये गोकुल भेज दिया।

पूतना- जो पवित्र न हो उसे पूतना कहते हैं। ज्ञान पवित्र है और अज्ञान अपवित्र। अज्ञान को ही माया कहते हैं। पूतना अविद्या है। यह दुरत्यया है। जिस स्थान पर भगवान के गुण, यश तथा कीर्तन का स्मरण नहीं होता, वहाँ पर ऐसी राक्षसियों का बल अधिक बढ़ जाता है। पूतना शिशु-घातिनी, क्रूर ग्रह है। वह रुधिराशना है, शिशुओंका रक्तपान उसका व्यसन है।

पूतना दैत्यराज बलिकी पुत्री थी। कोटराके उदरसे उत्पन्न नहीं हुई, पर बाणासुर की धाय माता कोटरा उसे स्वगर्भ जातकन्या ही मानती थी।

पूतना अविद्या है। अहंकार, अविद्या के आश्रित, भले वह शोणितपुरमें सहस्रबाहु वाण हों अथवा मथुरामें कंस हो।

अविद्या के चौदह स्थान हैं। वह चौदह ठिकानों में निवास करती है- पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इसीलिये वह चतुर्दशी, चौदहवीं को वज्र में आई। इस शिशु-मारक ग्रहका आहार ही अबोध शिशु-अज्ञानी जन है और यह पूतना तो रक्त-पायनी है। जिसे अंकमे ले लेती है- उसे पय पिलानेका प्रलोभन देकर रक्त चूस लेती है।

पूतना तीन वर्ष तक के बालकों को ही मारती थी। आज भी पूतना-रोग तीन वर्ष तक के बच्चों को ही होता है। अवस्थाएँ चार होती हैं- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तूर्यगा। तूर्यगा अवस्था ब्रह्मा-मिलन की अवस्था है। माया प्रथम तीन अवस्थावाले व्यक्तियों को ही पीडित करती है, मारती है। तूर्यगा अवस्था में पहुँचे व्यक्ति को वह छू भी नहीं सकती। सत्त्व, रज, तम में ही फँसे हुए व्यक्ति को माया मारती है, त्रिगुणातीत को नहीं। नरक के तीन द्वार हैं- काम, क्रोध और लोभ। इनमें फँसे हुए व्यक्ति को माया मारती है। यही है पूतना के द्वारा तीन वर्ष तक के बच्चों को मारने का रहस्य।

पूतना स्वभावसे शिशु-घातिनी है इसे कंसने आग्रहपूर्णक नियुक्त कर दिया इस कार्यपर और यह पिछले पाँच दिनोंसे अहर्निशि कंसके काल उस कहीं उत्पन्न शिशुको मारनेके प्रयत्नमें ग्रामोंमें, नगरोंमें पशु-पालकोंकी झोपड़ियोंमें शिशुहत्या करती घूमती रही है। सहस्त्रों शिशु मारे इसने। यह निसर्ग क्रूरा-माताओंका क्रन्दन इसे अट्टहास करनेकी प्रेरणा देता है। किसीके भी पुत्रोत्सवका मंगल-संगीत इसे असह्य है। इसके नेत्र जल उठते हैं कहीं भी षष्ठी-पूजनका संवाद पाकर। इस मायाविनीको कोई भी कैसे रोकेगा। वह आकृतिसे उलूकी थी। अत्यन्त बेधक, प्राणहारी दृष्टि थी वह निशाचरी थी। रात्रिमें उस गगनचरीको कुछ भी देखने, कहीं भी जानेमें कोई कठिनाई नहीं थी। पूतना के अलावा कोटराके दो पुत्र थे बकासुर और अघासुर। बकासुर रहता था बगुलेके रूपमें और अघ रहता था अजगर के रूप में। पूतना अपने दोनों भाइयों के साथ कंसके यहाँ आई और कंस उनको बहुत सम्मानपूर्वक रखता था।

पूतना दिनमें बगुली बनी फिरती है और रात्रिके अन्धकारमें उलूकी हो जाती है। वह बहुत उज्वल वस्त्र पहनती थी। पुत्रवती स्त्रियोंसे हिलमिल जाना, शिशुओंके प्रति वात्सल्य प्रदर्शित करना, माताओंको प्रेमसे झिड़क देना कि उन्हें बालकको रखना-पालना भी नहीं आता; वात्सल्यमयी माताका अभिनय करने में वह दक्ष थी; किन्तु इस सबका उसका अभिप्राय सदा बहुत निर्दय रहता था। वह अबोध शिशि-घातिनी थी- अबोध शिशुओंका रक्त ही उसका आहार था। पूतना रात्रिमें एकाकी सोये बालकका रक्त चूस लेती। बालकके पालक भी नहीं जान पाते कि अचानक शिशु को क्या हो गया।

पूतना को यह दायित्व मिला कि वे उसी काल के शिशुओं को मृत्यु की नींद सुलाती रहे। उसे तो अपने सम्राट मथुराधिपति कंस के भावी शत्रु का काम तमाम करना था। पूतना किसी डायन से कम नहीं थी साक्षात् पिशाचिनी। विकृत मनोवृत्तिकी विवश शिकार। शिशु की हत्या से उसे वैसा ही आनंद मिलता जैसे शेर की हत्या कर कोई शिकारी आनन्दित होता है। वह निशाचरी शिशुओंकी हत्या करती सर्वत्र घूमने लगीं। वह पूरी रात्रि उलूकी बनकर और दिनमें बकी बनकर घूमती। जहाँ जैसा अवसर देखती, वैसा वेश बना लेती। दस दिन तकके सूतिका-गृहमें अथवा उसके बाहर आये शिशु उसके आखेट बनने लगे। अब तक असंख्य शिशुओं को अपनी इस विकृति की वेदी पर चढ़ा चुकी थी वह। हर नवजात शिशु का क्रन्दन उसे उसी तरह अपनी ओर खींचता जैसे बीन का स्वर साँप को खींचता है। सचमुच किसी सर्पिणी से कम नहीं थी वह। सर्प का विष ही अपने स्तन के अग्रभाग पर मलकर वह अपने भोले शिकार को बात-की-बात में यमलोक का मार्ग दिखा देती थी। कंस के कायरता के काले जीवन-अध्याय में पूतना एक और काला पृष्ठ ही है। कंस साँप तो मारना चाहता था पर लाठी भी सुरक्षित रखना चाहता था।

कंसने पूतना को बुलाकर कहा-

भये पूत हैं नन्द के, सूनों गोकुल गाँव। छलकर अबही मारिहों, गोपी बनके जायँ।।

राजा परीक्षित बोले- हमारे आराध्य श्रीकृष्ण का पूतना ने कुछअनिष्ट तो नहीं कर दिया? इस पर शुकदेवने कहा कि नहीं, जहाँ श्रीकृष्ण के नाम नहीं लिये जाते, वहीं ये राक्षस अनिष्ट कर सके हैं। किन्तु जहाँ भगवान के नाम, रूप और लीला का कीर्तन, स्मरण और श्रवण होता रहता है, वहाँ ये कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। राम अवतार और कृष्ण अवतार दोनों ही अवतारों में पहिले राक्षसी को मारना पड़ा। रामजीने सबसे पहिले ताड़का को मारा था और कन्हैया ने सबसे पहले पूतना को मारा था।

शिशु हत्या के संवाद दिन-प्रतिदिन यशोदा और नन्द तक पहुँचते रहते और सुनकर वे चिंतित हो जाते। गोप उन्हें आश्वासन देते हुए कहते आप क्यों चिंतित रहते बाबा। हम सबके रहते कन्हैया का बाल भी बाँका नहीं हो सकता। कंस के योद्धा तो योद्धा उनकी छाया भी लाला पर नहीं पड़ने देंगे। गोपियाँ दिनभर घरमें आती रहती और मैया यशोदा से कहती- अरे घड़ीभर तो लाला को गोद में लेने दो। तुम भी कितनी क्रूर हो। पर मैया कब बदलनेवाली थी। कुछ अल्लड़ किशोरियां कहतीं जरा बड़ा होने दे। इसको तो ऐसा नाच नचाएँगी कि मैया भी हमारा क्या बिगाड़ लेंगी। यह यशोदा का छोरा, एक-न-एक दिन गाय चराने जायेगा तब देखेंगे कि यह हमे कैसे रोकती है। इससे ऐसा नाच नचाएँगी कि घर लौटने पर यशोदा मैया ही इसके पैर दबायेंगी। कहते हैं समय को भी कभी-कभी पंख लग जाते हैं। विशेषकर खुशी के दिनों में। गोकुलवासियों के भी जब से लाला आया था यशोदा के आँगन में।

पूतना जानती थी कि महर्षि शाण्डिल्य उन तपोधनकी दृष्टिको धोखा नहीं दिया जा सकता। वे अगर रोषमें आ जाय और श्राप दे दें तो पूतना तो क्या समस्त असुर कुल दो क्षणमें भस्म हो जायेगा। गगनमें मायासे पक्षभ होकर जानेमें उन तेजस्वीकी दृष्टि पड़नेकार भय था और आचार्य की दृष्टि पड़ गयी तो माया टिकेगी नहीं। पूतना ने मार्ग सोच लिया कि उनसे बचकर ही वहाँ जाया जा सकता है। वह बहुत सुन्दर नारी बनकर वहाँ जायेगी और उस बूढ़े ऋषिके आश्रमको दूर छोड़कर गोकुलमें प्रवेश करेगी।

नागिन सौ-सौ बल खाती हुई चलती है वैसे ही अपने रूप पर इठलाती, मचलती पूतना कंस के सामने पहुँची थी। कंस बोला- अगर तुम अपने अभियान में सफल हो गईं और उस नन्द के नवजात को मृत्यु की नींद सुला सकीं तो तुम्हारे घर को अपार सम्पत्ति से भर दिया जाएगा। पर कहीं तुम चूक गईं अपने कर्त्तव्य में तो विवश हो तलवार से तुम्हारे धड़ से तुम्हारे सिर को पृथक् करने को बाध्य होना पड़ेगा मुझे।

पूतना के मुख से नियति बोल रही थी- आप आश्वस्त रहें महाराज। कंस की आज्ञा का अनुसरण करती हुई पूतना एक दिन आकाशमार्ग से नन्द बाबा के गोकुल में पहुँच गई। वह बड़ी मायाविनी थी। अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में प्रवीण थी। उसने अपनी माया से अपना असली रूप छिपा कर अत्यन्त मनोहर रूप धारण कर रक्खा था। वह अपनी मधुर-मधुर मुसकान और कटाक्ष भरे चितवन से व्रजवासिनी स्त्रियों का चित्त चुरा रही थी। पूतना इन दिनों बहुत क्रूरा हो रही थी। कब दिनमें कहीं कोई उज्ज्वल बकी किसीके प्रांगणमें उतरेगी, अकस्मात अथवा रात्रिमें उलूकी आ कूदेगी, कोई नहीं जानता। पूतना किस शिशुको कैसे मार देगी यह भी नहीं कहा जा सकता। वह पहुँचती है- मायाविनी राक्षसी। शिशु सहसा रक्तहीन होकर निष्प्राण हो जाता है। रक्त पी जाती है यह पिशाचिनी।

गई पूतना नन्द घर, मन में अति हरषाय। बालक लीनों गोद में, प्यावे कुचा सिहाय।।

वसुदेवजी यह सुनकर कि पूतना गोकुलकी ओर गयी हैं वे बहुत व्याकुल हो गये। भगवान से प्रार्थना करने लगे- हे करुणावरुणालय, रक्षा करो। पूतना तो मथुरासे गोकुल चली गयी इस लोकसे सदाके लिये चली गयी। वह कहाँ फिर इस

धरापर लौटनेवाली थी।

प्रकृति का यह एक स्वभाव है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होती। किन्तु यहाँ व्रजवासिनी स्त्रियाँ पूतना के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो रही थी। उसने अपने हाथ में कमल ले रक्खा था अत: गोपियाँ उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानों स्वयं लक्ष्मीजी अपने पति का दर्शन करने के लिये पधारी हों। इस मायाविनी राक्षसीने तो साक्षात् लक्ष्मीका स्वरूप धारण किया है। यह पत्नीका रूप बनाकर स्तनपान करावेगी धात्रीके समान और मारना चाहेगी। पापात्मा मायावियोंको मर्यादाका किंचित भी ध्यान नहीं रहता।

कोई कहैं यह कोई रानी। यशुमति के आई हम जानी। कोई कहै यह कमला बाई। श्रीकमलापति देखन आई।।

पूतना की रूप सम्पदा देखकर व्रज-बालाएँ हतप्रभ हो गईं। किसी में यह साहस न था कि वह पूछता- बहन, तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? रानी हो या महारानी अत: वह बेरोकटोक अनायास सीधे नन्द बाबा के अन्त:पुर में घुस गई। वहाँ उसने देखा कि एक विलक्षण बालक दिव्य शैया पर सोया हुआ है। जैसे दहकता अंगार राख की ढेर में छिपा हो, ऐसे ही वह बालक अपना तेज पीताम्बर में छिपाये हुए था। भगवान श्रीकृष्ण चर-अचर सकल जगत् की आत्मा हैं अत: उन्हें यह समझते देर न लगी कि यह बालघाती ग्रह पूतना है इसीलिये उन्होंने अपने नेत्र-कमल बन्द कर लिये।

१) पूतना नारी थी। नारी का वध उचित नहीं है। सामने कोई पुरुष हो और उसके साथ वीरता प्रदर्शित करनी हो तो कोई बात नहीं है। किन्तु किसी स्त्री को मारने में कौन-सी वीरता है? पूतना बालघातिनी है अत: इसे तो मारना है ही। स्त्री की हत्या करने में कृष्ण को संकोच हो रहा था अत: उन्होंने पूतना को आती हुई देखकर आँखे बन्द कर लीं। प्रभु के मन में बड़ी ग्लानि हो रही थी और ग्लानि की वजह से ही गोविंद ने अपनी आँखे बन्द कर ली।

२) पूतना नारी तो थी। किन्तु वह राक्षसी थी। उसने कई बच्चों की हत्या भी की थी और यहाँ भी कन्हैया की हत्या के लिये ही आई थी अत: ऐसी दुष्टा को मारने में कैसा संकोच? अत: कन्हैया के आँख बन्द करने का कारण और कुछ है। उन्होंने सोचा कि मेरी आँखों में वैराग्य और ज्ञान का स्थाई निवास है। यदि मेरी आँखें पूतना की आँखों से मिल जायेंगी तो उसे ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। वह जान जायेगी कि यह तो ईश्वर हैं। मेरे ईश्वरत्व का उसे ज्ञान हो जाने पर मैं जो लीला करना चाहता हूँ, वह पूरी नहीं हो पायेगी। ईश्वरत्व का ज्ञान लीला में बाधारूप है। यदि पूतना यह जान गई कि यह भगवान हैं, ईश्वर हैं तो वह मुझे दूध पिलाने का प्रयास नहीं करेगी। उसे मेरे असली रूप का ज्ञान न हो। वह मुझे सामान्य बालक ही समझती रहे इसलिये भगवान ने अपनी आँखें बन्द कर ली।

३) एक महात्मा ने कहा-आँख बन्द कर कन्हैया यह सोच रहे हैं कि इसे संसार से मुक्त करना है। मेरे पास पहुँचनेवाला व्यक्ति पुन: संसार-सागर में नहीं आता है अत: इसे कहाँ भेजा जाय, गोलोकधाम अथवा वैकुण्ठ?

४) एक अन्य महात्मा ने कहा- इस जन्म में इसने कुछ साधन तो किया नहीं है। संभव है मुझसे मिलने के लिये पूर्व जन्म में कुछ सत्कर्म किया हो। मानो पूतना के पूर्व-पूर्व जन्मों के साधन देखने के लिये ही कृष्ण ने नेत्र बन्द कर लिये।

५) दूसरे महात्मा ने कहा- मैं गोकुल में यह विचार कर आया था कि लोग मुझे माखन-मिश्री खिलायेंगे किन्तु यहाँ छठी के दिन ही विष पीने का अवसर आ गया इसलिये मानो वे डर के मारे आँखें बन्द कर लिये हों।

६) वस्तुत: कन्हैया आँख बन्द कर शिवजी से प्रार्थना कर रहे हैं कि- प्रभो, आप विषपायी है। आपको विष पीने की आदत है अत: आइये, दौड़कर आइये। पूतना मौसी के स्तन का विष आप पी लीजिये फिर मैं इसका दूध पीऊँगा। इस प्रकार कन्हैया आँखें बन्द करके शिवजी का ध्यान करते हुए उन्हें विष पीने के लिये बुला रहे हैं। जब किसी देव को याद

करना या बुलाना होता तो आँखे बन्द करके ही उसका ध्यान करना पड़ता है।

७) पुण्यात्मा जन ब्रह्मलोक में सूर्य-मार्ग अथवा चन्द्रमार्ग से ही जाते हैं। भगवान का वाम नेत्र चन्द्र है और दक्षिण नेत्र सूर्य है। भगवान अपने पास आई हुई पूतना को ब्रह्मलोक भेजने की तैयारी में हैं अत: उनके नेत्रों ने सोचा- पूतना हमारे प्रभु को विष पिलाकर मारने आई है अत: हम अपना मार्ग बन्द कर देते हैं जिससे यह ब्रह्मलोक न जा सके। कन्हैया ने आँखें नहीं बन्द की। अपितु आँखें स्वयं बन्द हो गईं।

८) एक महात्मा ने कहा- भगवान बड़े असमंजस में पड़ गये हैं। वे सोच रहे हैं कि- पूतना मेरे पास आई है। मुझे गोद में उठायेगी। अपनी छाती पिलायेगी, अत: इसको गोलोक धाम भेजना अनिवार्य है। ऐसी स्थितिमें मैं मैया यशोदा को कौन गति, कौन-सा लोक प्रदान करूँगा, जिसकी छाती का अमृत पी-पीकर, जिसकी गोद में लोट-पोट कर मैं पलूँगा, बढ़ूँगा। मेरे पास सर्वोत्तम लोक है- गोलोक। पूतना वहीं जायेगी यदि मैया को भी वहीं भेजता हूँ तो- यह अन्याय होगा, अन्धेर नगरी होगी, आँखें बन्द कर कन्हैया यही सोच रहे हैं।

९) एक महात्मा ने कहा है- भगवान सोच रहे हैं कि पूतना ने वेश पत्नी का धारण किया है और कार्य माता का करने जा रही है। यह महापापिनी है अत: इसका मुख देखना पाप है अत: उन्होंने आँखे बन्द कर लीं।

१०) बल्लमाचार्य महाराज का कहना है कि- अविद्या ही पूतना है। अविद्या पूतना प्रोक्ता। भगवान कृष्ण ने सोचा- मेरी दृष्टि के सामने अविद्या टिक नहीं सकती। वह भाग खड़ी होगी फिर लीला कैसे होगी? इसलिये नेत्र बन्द कर लिये।

११) किसी महात्मा ने कहा- अपरिचित प्राणी को देखकर बालक स्वभावत: नेत्र बन्द कर लेते हैं अत: कन्हैया ने आँखें बन्द कर ली।

१२) अन्य महात्मा ने कहा- यह पूतना बालघातिनी है। यह पवित्र बालकों को भी ले जाती है। ऐसा जघन्य कृत्य करनेवाली का मुख नहीं देखना चाहिये, इसलिये नेत्र बन्द कर लिये।

१३) भगवान ने सोचा दृष्टिपात होने से पहिचान होती है, पहिचान होने से प्रीति होती हैं। प्रीति हो जाने पर विरोध कैसे होगा, अत: नेत्र बन्द कर लिये।

१४) भगवान ने सम्भवत: नेत्र इसलिए बन्द कर लिये होंगे कि कहीं मेरे निडर नेत्रों को देखकर भयातुर होकर लौट न जाय और मेरी लीला का श्रीगणेश ही बिगड़ जाय, अत: नेत्र बन्द कर लिये।

१५) सम्भवत: भगवान ने यह विचार किया हो कि यदि पूतना को कृपा दृष्टिसे देखूँगा तो मारूँगा कैसे क्रोध दृष्टि से देखूँगा तो यहीं भस्म हो जायेगी, अत: अपनी लीला सिद्धि के लिए नेत्र बन्द कर लिये।

१६) यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बालक अपरिचित को देखकर डर जाते हैं, मुँह फेर लेते हैं या आँखें बन्द कर लेते हैं या माँ के आँचल में मुंह छुपा लेते है। पूतना अपरिचित है, अत: भगवान ने बाल स्वभाव के कारण ही आँखें बन्द कर लीं।

१७) कृष्णने इसलिये आँखे बन्द कर ली कि पूतना अविद्या है ओर कन्हैया की दृष्टि में ज्ञान है। ज्ञान की नजर पड़ते ही अविद्या खण्डित हो जायेगी। लीला नहीं पूरी हो पायेगी। और यह जो पूतना है पूर्वजन्म में बलि की कन्या रत्नमाला है। जिसने वामन भगवान को देखकर मन में इच्छा की थी कि दूध पिलाऊँ और जब पिता बलि को बाँध दिया तो बोली इनको दूध क्या इनको जहर देना चाहिए। उसी समय कन्हैया ने कहा- एवमस्तु।

१८) कन्हैया ब्रज में आये तो माखन खाने के लिए और श्रीगणेश जहर पीने से करना पड़ा। कड़वी दवाई को बच्चे आँख बन्द कर पी लेते हैं। जहर मिला तो कन्हैया ने आँखे बन्द कर ली।

१९) आया तो मैं राक्षसों को मारने के लिये पर श्रीगणेश नारी से ही करना पड़ेगा। इसलिए आँखें बन्द कर ली।

२०) ये मेरे साठ हजार सखाओं को मारकर आई है, वे सखा मेरे दर्शन करते थे, मेरे साथ खेलते थे परन्तु इस राक्षसी ने उन्हें मार डाला इसलिए इसका मुँह नहीं देखना चाहिए।

मखमली म्यान के भीतर छिपी हुई तीखी धारवाली तलवार के समान पूतना का हृदय बड़ा कुटिल था किन्तु ऊपर से देखने में उसका वेश और व्यवहार बड़ा ही सुन्दर था। देखने में वह एक बहुत बड़ी कुलीन भद्र महिला के समान जान पड़ती थी। पूतना तो सुन्दरी थी ही। वय में मुश्किल से बीस-इक्कीस के आसपास लगती थी वह। उसे एक गोपांगना के वेष में सजा देने पर यशोदा के आँगन में उसका प्रवेश निर्बाध हो जाता। गोप तो उसके सौन्दर्य पर ही अभिभूत हो उसे मार्ग दे देते और गोपियाँ उसे गोकुल में किसीके घर नई-नई पधारी पुत्र-वधू ही समझकर उसका हाथ पकड़ कन्हैया के पलने तक पहुँचा देतीं- ले री। तू भी पान कर ले एक भ्रमरी की तरह इस रूप-पराग का। पता नहीं ऐसा रूप कभी देखा भी होगा या नही अपने मायके में। पूतना पक्षिणी का रूप धारण करके व्रज में आई थी।

गोकुल में आकर कोई नन्द के लाल के दर्शन कर अपनी आँखों की सार्थकता नहीं सिद्ध करे, वह भी रूप की ऐसी चलती-फिरती प्रतिमा, यह हो ही नहीं सकता था। बिना कहे लोगों ने उसे नन्द के द्वार तक जा पहुँचाया।

मायातें अति सुघर नारिको रूप बनायो। मधुर मधुर मुसकाइ सबनिको चित्त चुरायो।।
महरानेकी समुझि रोहिणी विहसि बिठाई। यशुमति समझी नई बहू मथुरातें आई।।

इसलिये रोहिणी और यशोदा- दोनों माताएँ उसे घर के भीतर आई देखकर भी उसकी सौन्दर्य प्रभा से हत-प्रभ-सी होकर कोई रोक-टोक नहीं कीं, चुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रहीं।

प्रथम कंस पूतनां पठाई। नंद-घरनि जहं सुत लिये बैठी, चली-चली तिहिं धामहिं आई।।
अति मोहिनी रूप धरि लीनौ, देखत सबहिनि कैं मन भाई।
जसुमति रही देखि वाकौ मुख, काकी बधू, कौन धौं आई।।
नंद-सुवन तबहीं पहिचानी, असुर-धरनि असुरनि को जाई।
आपुन बज्र समान भए हरि, माता दुखित भई भरमाई।।
अहो महरि पालागन मेरौ, मैं तुमरौ सुत देखन आई।
यह कहि गोद लियौ अपनी तब, त्रिभुवन पति मन-मन मुसुकाई।।
मुख चूम्यौ, गहि कंठ लगायौ, विष लपट्यौ अस्तन मुख नाई।
पय संग प्रान ऐंचि हरि लीनी, जोजन एक परी मुरझाई।।
त्राहि-त्राहि कहि ब्रज-जन धाए, अब बालक क्यें बचै कन्हाई।
ति आनंद सहित सुत पायौ, हिरदै मांझ रहे लपटाई।।
करवर बड़ी टरी लालन की, घर-घर आनंद होत बधाई।
सूर स्याम पूतना संघारी, सो सुनि जिय डरप्यौ नृपराई।।

यशोदा बोली- **कह सुन्दरि तू किस की नारी। रमा रती वा हर की प्यारी।**
वामोरू तू किस की जाई। कहो सुमुखि किस कारण आई।।
मम पति मात पिता है जोई। यशुमति तुमको विदित न सोई।।

भगिनी तुमको देन बधाई। तव सुतका मुख देखन आई।।
दोनों पुत्र रोहिणी लावो। या देवी की गोद बिठायो।। जो असीस देगी यह नारी। होवेंगे सुत परम सुखारी।।
दोनों सुत को लाय के, दिये तास की गोद। देख पूतना शिशुन को, माना अति मनमोद।।

मैं मथुरा की रहनेवाली गोपी हूँ। इस समय एक ब्राह्मण की भार्या हूँ। मैंने संदेशवाहक के मुख से यह मंगल सूचक संवाद सुना है कि वृद्धावस्था में नन्दरायजी के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ है। यह सुनकर मैं उस पुत्र को देखने और उसे अभीष्ट आशीर्वाद देने के लिये यहाँ आई हूँ। अब तुम लोग नन्दनन्दन को यहाँ ले आओ। मैं उसे देखूँगी और आशीर्वाद देकर चली जाऊँगी। वह बोली- गोपी सुन्दरी, तुम्हारा यह बालक अत्यन्त सुन्दर और अद्भुत है। यह गुणों में साक्षात् भगवान नारायण के समान है।

बालक कन्हैया की ओर बढ़ती हुई पूतना ने यशोदा को डाटते हुए कहा- देखती नहीं हो। बालक के ओठ सूख गये हैं। उसे भूख-प्यास लगी हुई है। लगता है, पहले तुम्हें कभी बच्चा नहीं पैदा हुआ है-अरी यशोदा, तुम अपने पुत्र का लालन पालन करना तो जानती नहीं फिर अपने इस पुत्र को जन्म क्यों दिया? भूख के मारे बालक कितना रो रहा हैं और तुम कैसे जाकर चैन की नींद सो रही हो। ऐसा कहकर उसने कन्हैया को अपनी गोद में उठा लिया। इसे देखकर यशोदा ने मन-ही-मन सोचा कि मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो कि त्रिलोक-सुन्दरी यह स्त्री मेरे ललन को अपनी गोद में उठा रही है। यशोदा उसपर भरोसा कर लेती है। संसार में पहले जानकारी, उसके बाद भरोसा और आध्यात्म में पहले भरोसा और उसके बाद जानकारी। भरोसा का प्राथमिक स्वरूप श्रद्धा है और श्रद्धा का प्राकट्य अल्लोलता में ही होता है। वह किसी तर्क या होशियारी से पैदा नहीं होती। वंदना श्रद्धा और विश्वास से ही होती है।

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाई, मातुकी गति देई ताहि कृपालु यादवराई।
तेहिं लखि हत प्रभ भई यशोदा। तुरत लीन्हीं तेहिं कृष्णहिं गोदा।।
कीन्हिं न जननी कछु प्रतिकारा। सुठि दर्शकि तेहिं हृदय बिचारा।।

पूतना प्रेम के प्रतीक स्तन पर कपट का प्रतीक विष लगाकर आयी है। काल भी जिनके नाम मात्र से ही भयभीत हो जाता है उन्हें पूतना इस निष्णात विष से मारना चाहती है। पूतना को प्राणहारी सर्प में रज्जु का भ्रम हो गया। उस काल कालेश्वर को ही शिशु समझ पय पान के नाम पर विषपान कराने का प्रयास कर रही है।

रामकृष्ण को गोद ले, बहुविध लालन कीन। गरल युक्त कुच युग्म को, युग शिशु के मुख दीन।।
कुच कौ विष पीवन लगे, निज मुख सुघड़ लगाइ। दुष्ट पूतना वध कियो, समुझि बाल ग्रह ताहि।।

गोद में लेकर पूतना ने भयंकर विष से पुते हुए अपने स्तन को उनके मुख में डाल दिया, इस पर कन्हैया को कुछ रोष हुआ। उन्होंने दोनों हाथों से उसके मोटे-मोटे स्तनों को जोर से दबाकर उसके प्राणों के सहित दूध को पिया। बड़े प्रेम से कन्हैया उसका दुग्धपान कर रहे हैं। एक स्तन से दूध पी रहे हैं दूसरे स्तन को अपने छोटे से हाथ से दबा रहे हैं।

पूतनाकी शक्ति, बुद्धि, प्राण तो यह उसके वक्षसे चिपका शिशु पिये जा रहा है। इसने दोनों करोंसे उसका वक्ष पकड़ लिया और पी रहा है- पीता जा रहा है। पूतनाके रोने-चिल्लाने, उछलनेका इसे जैसे कोई पता नहीं। यह तो पी रहा है। पूतनाके दूधके साथ उसके प्राण भी पी रहा है।

पीवें पय प्रयु प्रान सँग, अति अद्भुत छवि लालकी। मातु निहारति चकित चित, बनी अकबकी-सी बकी।।
करि अति उपरि छाहु अठखेली। कूच गरल युत शिशु मुख मेली।।

जिमि कोउ गहइ रज्जु मिस ब्याला। गहेसि मन्दमति तिमि निज काला।।

जिस प्रकार कोई रस्सी के बहाने किसी साँप को पकड़ ले उसी प्रकार मतिमन्द पूतना ने अपने काल को पकड़ लिया। उस शिशु घातिनी के घोर भाव जानकर तथा उसे कुलटा जानकर प्रभु क्रोधपूर्वक उसके विषयुक्त स्तन को पकड़कर पयपान करने लगे।

कीन्हिं पान प्रानहिं युत छीरा। भएउ पूतना कुच अति पीरा।।
छाँड़ु छाँड़ु कहि चीखत भागी। तबहुँ न बाल हठी कुच त्यागी।।
प्रगटि रूप निज उड़ी अकासा। परी घरनि भा प्रानहिं नासा।।
मरतहिं कीन्हेसि घोर चिकारा। गुँजेउ रव ब्रह्माण्ड हिं सारा।।

पूतना बोली- यह कैसा बच्चा है। काफी समय से जहर लगा दूध पी रहा है, मरता भी नहीं। दूध पीते-पीते गोविन्द ने उसके प्राणोका कर्षण कर लिया। प्राण जब निकलने लगे तो श्वांस लेनेमें कठिनाई होने लगी। और वो जोर से चिल्लाने लगी- अरे लाला छोड़, कन्हैया छोड़। यह तो कोई यमराज का दूत मालूम होता है। मैंने रस्सी के धोखे से साँप को पकड़ लिया। कदाचित् आज इसके हाथ से जीती बचकर जाऊं तो गोकुल में फिर नहीं आऊं। सात दिन का कृष्ण बोल उठा, मौसी हमें तो पकड़वो आवे, छोड़वो आवे नहीं।

तांके प्राण समेत तिन, पान करा पय भूप। छोड़ छोड़ कहती भयी, प्रकट करा निज रूप।।
मूसल सम तांके दशन, नाशा गुफा समान। खुले केस गल में पड़े, फैल गये पद पानि।।

दूध के साथ उन्होंने पूतना के प्राण भी खींच लिये। वह मुरझाकर एक क्षण में ही गिर पड़ी। सारे ब्रज के लोग बचाओ बचाओ कहकर दौड़ पड़े। उन्हें शंका हुई कि अब बालक कृष्ण कैसे बचेगा? यशोदाजी ने अपने बेटे को आनंदित पाया, उन्होंने उसे अपने हृदय से लगा लिया। लाल का बड़ा कष्ट हट गया, घर-घर में आनंद-बधाई होने लगीं। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्णजी ने पूतना को मार दिया। यह बात सुनकर राजा कंस भयभीत हो गया।

जिस समय पूतना के प्राण खिंचने लगे, उसके शरीर की सन्धियाँ फटने लगीं। पूतनाका अंग-अंग फटा जा रहा है। उसके मर्म-स्थल विदीर्ण हो रहे हैं। वह छटपटा रही है, चिल्ला रही हैं; किंतु अपने हाथ उठाकर वक्षसे चिपके इस शिशुको नोचकर फेंक देनेमें भी असमर्थ हो गयी है। उसके हाथ ऊपर उठते ही नहीं हैं उसकी यह अनवरत चीत्कार-पक्षी चिल्लाने उड़ने लगे। पशु दिशाओंमें दूर भागते जा रहे हैं। गोकुलमें सबको लगता है कि भयंकर शब्दसे कर्ण कुहर फट जायेंगे। फट जायगा हृदय और मस्तक। सबके सब दोनों करोंसे कर्ण बन्द करके नेत्र मूँदकर बैठ गये।

उस समय वह जोर से चिल्ला उठी- अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर। वह बार-बार अपने हाथ-पैर पटक-पटक कर रोने लगी। उसके नेत्र उलट गये। उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया।

बिलबिलाति ब्याकुल बिकल, छटपटाति अकुलाय। छाँड़ु छाँड़ु बैरी अधम, हाय हाय कर हाय।।
अरे, छोड़ दे लाल, छोड़दै बकी पुकारे। किन्तु लालकी बानि पकरिकें अवसि उबारै।।
चूचीमें पीड़ा अधिक, माया ताकी खुलि गई। मुँह फाट्यो निरजीव ह्वै, बाल बखेरें गिरि गई।।
गिरि पूतना तुरत नाश सब ब्रजको कीन्हों। कंस बाग छै कोश ताहि चौपट करि दीन्हों।।
मुख मानो गिरि गुहा दाढ़ि खूँटा सम ताकी। चूची पर्वत शिखर आँखि कूआ सम वाकी।।

पूतना छटपटाती भागी है- भागती गयी है और गोकुलसे दूर- पर्याप्त दूर अपने महाराज कंसके उपवनमें गिर पड़ी है। वह

कंसका फलोद्यान- इस राक्षसीकी विशाल कायाके नीचे वह पूरे छ: कोसका उद्यान पिस गया है। उसके वृक्षों, शाखाओं, तनोंका अब कहीं पता नहीं। उनको खण्ड-विखण्ड करके तो उनपर हाथ-पैर फैलाकर यह पूतनाका महाशरीर प्राणहीन पड़ा है। उसके भीषण शब्द से पर्वतों के सहित पृथ्वी और ग्रह-नक्षत्रों के सहित सारा आकाश-मण्डल कम्पित हो उठा। पाताल एवं दिशाएँ गूँज उठीं। वज्रपात की आशंका से लोग मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। परीक्षित्, इस प्रकार निशाचरी पूतना के स्तनों में इतनी पीड़ा हुई कि उसने छटपटा-छटपटा कर प्राणों का परित्याग किया। मरने के समय में वह अपने असली रूप में प्रकट हो गई। प्राण निकलने के समय उसका मुँह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ-पाँव फैल गये जैसे इन्द्र के वज्र सें आहत वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बस्ती से बाहर गोष्ठ में आकर गिर पड़ी। वस्तुत: बाल कन्हैया ने उसे अपने भक्तों की रक्षा के लिये बस्ती से बाहर फेंक दिया। एक सन्त कहते हैं- पूतना जब जमीन पर गिरी थी उसका शरीर छ: कोस का हो गया। जितने बाग-बगीचे थे, पूतना के शरीर के नीचे आकर सब चकना-चूर हो गए। संत कहते हैं उसके पैर पैगाम में जाकर गिरें, मूंड मुंडसान में, हाथ हाथरस में और कान गिरे कानपुर में।

कंस बगीचे अमृत फल सब पेड़ गिराये। आप गिरी लाला निज छाती सों लटकाये।।
रक्षक गोपी गोप भगे लाला घर आनो। तुंगी झाड़ा धेनु पुच्छ निज हाथ लगानो।।

दिग्विजय के समय कंस स्वर्ग से अमृत फलों के बीज लाया था और उसे बारह कोस लम्बे चौड़े बगीचे के रूप में परिणित कर दिया था। उसने सोचा जब भी कोई मेरा राक्षस किसी कारण से मरेगा तो वह अमृत फलों के प्रभाव से पुन: जीवित कर लिया जायेगा। अत: भगवान नारायण ने सोचा कि इस पूतना के माध्यम से कंस के अमृत फलों के बगीचे को ही खत्म कर दिया जाए, ताकि यह राक्षस मरने के बाद पुन: जीवित न हो सकें। अत: बारह कोस लम्बे पूतना के शरीर को अमृत फलोंवाले बगीचे पर गिराकर चूर चूर कर दिया। लाला अब भी उसकी छाती पर लटके हुए थे। रक्षक लोग गोप और गोपियाँ पीछे पीछे भागते हुए यहाँ तक आये और लाला को कुशल पाकर सब लोग प्रसन्न हुए। गोपियां चिल्लाती दौड़ती गयीं। राक्षसी ले गयी हमारा लाल। गोकुलके रक्षकोंने भी सुना- वे भी दौड़े। राक्षसी नन्दलालको ले गईं। गोपियाँ तो पुकारती दौड़ती ही जा रही थी। रक्षक इधर-उधर देखते जा रहे थे। राक्षसी गिरी। भारी धमाका हुआ। गोपियोंकी गति उत्साहमें बढ़ गयी। इन्होंने तो सोचा भी नहीं था कि इतनी महाकाय राक्षसी मिल भी गयी तो ये उससे कैसे अपने नन्दलालको छीन पावेंगी। किसीने भी राक्षसीके शरीरको नहीं देखा। सब रौंदती, चढ़ती, बढ़ती चली जा रही थी और दौड़ पड़ी बोली- यह रहा हमारा लाल। अपने सुकुमार युवराज को लेकर वैसे ही पीछे भागी। उन्हें भय था कि राक्षसी उठाकर फिर से उन शिशुको छीन न ले। बहुत सारी गोपियां शीघ्रता से दौड़ी और चिल्लाने लगीं- लाल मिल गया, हमारा नन्हा युवराज सकुशल है।

राजेन्द्र, पूतना के शरीर ने गिरते-गिरते भी छ: कोस तक वृक्षों को कुचल डाला। उसका शरीर महाभयंकर और डरावना था। उसे देखकर सारे गोप और गोपी थर्रा उठे। महान् अनिष्ट की आशंका से यशोदा और रोहिणी तो अचेत-सी हो गई थीं।

माखन प्रभु गोपाल को ढूँढत गोपी ग्वाल। तबहुँ पूतना उदर पर खेलत पायो लाल।।

गोपों ने नन्दराय से कहा, तुंगी भाभी प्रभावती ने यशोदा नन्दन के ऊपर गाय की पूँछ से झाड़ा अपने हाथ से लगाया।

पूतना और बालक की तरफ देखने और जाने का वे साहस भी न जुटा सकीं। गोपियों ने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छाती पर निर्भय होकर खेल रहे हैं, तब वे बड़ी घबड़ाहट और उतावली के साथ झटपट वहाँ दौड़ कर पहुँच गईं तथा श्रीकृष्ण को उठा लिया। सुनन्दा ने यशोदा को झकझोरा और बोली- नेत्र खोलो। यह रहा तुम्हारा नन्दन।

गोपियोंमें वात्सल्यकी महिमा अपार है। जो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंका अधीश्वर, सबका शाश्वत संरक्षक है, उसकी ये

रक्षा कर रही हैं। यह गोपाल बनकर आया है तो गौयें रक्षा करें इसकी। गोपुच्छ घुमाई शिशुके सर्वांगपर और फिर गोमूत्रसे स्नान करा दिया। गायोंके खुरोंसे खुन्दित धूलि उठाकर पूरे शरीरमें मल दी।

निर्भय हो तांके हृदय, खेल करें युग भ्रात। तात काल दोनों शिशू, गोद लिये निज मात।।
रुदन करत अति विकल मन, जननी सह परिवार। वार वार निज पुत्र को, लावत हृदय मझार।।
छाती पै प्रभु पैर प्रेमतें करत किलोलें। मामा भेज्यो बँध्यो खिलौना मानो खोलें।।
भई रोहिणी बिकल अति, गिरि लिये बलरामकूँ। झपटि एक गोपी तुरत, लै आई घनश्यामकूँ।।

तुँगी ताई ने प्यारे लाला को गोद में लिया और बेसुध यशोदा को कन्हैया के सकुशल लौटने पर चेत कराने लगी। तभी प्रभावती ताई ने कहा, तनिक ठहरो। लाला राक्षसी के हाथों में से आया है, इस पर राई नौन वार दूँ और गाय की पूँछ का झाड़ा शरीर पर लगा दूँ जिससे लाला की अलाय-बलाय झड़ जाये।

तुंगी ताई गोद लिये यशुदा ढिंग आई। लाल तुम्हारा कुशल सम्भालो क्यों घबराई।।
तनिक रुको लाला पर राई नौन उतारूँ। धेनु पुच्छ सों सर्वांगन झारो करि डारूँ।।
महरि सुनी गोपिन रस-बानी। रोहिणि संग उठी, अकुलानी।।
मनहुँ रंक कोउ पारस पायो। अति आतुर उन हिये लगायो।।

इसके बाद यशोदा और रोहिणी के साथ गोपियों ने लाला के चारों ओर गाय की पूँछ घुमा कर उनके अंगोंकी सब प्रकार से रक्षा की। उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्ण को गोमुत्र से स्नान कराया, फिर सब अंगों में गो-रज लगाया और फिर बारहों अंगों में गोबर लगाकर भगवान के केशव आदि नामों से रक्षा की। जब गोपियों को ध्यान आया कि मुर्दा छुआ है तब उन लोगों ने हाथ-पैर धोकर अंग-न्यास, करन्यास कर पुन: बालक के अंगों में भगवान के नामों से बीजन्यास किया। भगवान के नामों में भगवान की भी रक्षा करने का सामर्थ्य है।

गो मूतर से स्नान तब, करवाये युग भ्रात। करत भई हरिनाम से, रक्षा यशुमति मात।।
रक्षा कर पुन पुत्र को, करवाया पय पान। सुत के मंगल हेत तब, दिये द्विजन को दान।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकाएँ बालकृष्ण की रक्षा करती हुई कह रही हैं- अज भगवान तेरे चरणों की रक्षा करें, मणिमान जानुओ की, यज्ञपुरुष ऊरुओं की, अच्युत कटि की, हयग्रीव उदर की, केशव हृदय की, ईश वक्ष:स्थल की, सूर्य कण्ठ की, विष्णु भुजाओं की, उरुक्रम मुख की और ईश्वर तेरे सिर की रक्षा करें।

कृष्ण की दो चीजोंसे रक्षा की गयी- एक गायसे और एक भगवन्नामसे। यदि सृष्टिमें भगवन्नाम और गाय ये दो वस्तु रहें तो आस्तिकताको मिटानेवाली कोई शक्ति नहीं है।

धरि धीरज गो पूँछ लाल अँग-अङ्ग घुमाई। द्वादश गोबर तिलक करे गोरज लिपटाई।।
करि कर अङ्गन्यास नाम पढ़ि मन्त्र उचारं। पद अज रक्षा करें जानु मणिमान सम्हारें।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस प्रकार गोपियों ने प्रेमपाश में बँधकर भगवान श्रीकृष्ण की रक्षा की। माता यशोदा ने अपने पुत्र को स्तन पिलाया, गोपियों के पैर पर रक्खा और फिर धीरे से पलंग पर सुला दिया।

यशोदाने गोपियोंसे कहा कि हमारे दुभार्ग्यसे ही अभीतक हमको पुत्र नहीं हुआ था। यह बेटा तो बुढ़ापेमें तुम लोगोंके भाग्यसे हुआ है। इसलिए मैं इसको तुम लोगोंके चरणोंमें अर्पित करती हूँ। यह हमारा बेटा नहीं, तुम्हारा बेटा है। यशोदा

मैय्या अपने बेटेको लेकर एक-एक गोपीके सामने रखें और कहें कि यह तुम्हारा ही बेटा है। गोपियाँ भी अपनी-अपनी गोदमें लेकर बालकको प्यार करती हैं।

कहै यशोमतिमाय फिर-फिर सबके पाँव परि। उबर्‍यो आजु कन्हाय तुम पंचन के पुण्य प्रताप।।

शिशु को सर्वांग पर, गौमूत्र से स्नान कराया। गौ खुरों से खुन्दित मृतिका उनके श्रीअंग में मली गई। पूर्णमासी पुरोहितिन पधारी। डांकिनी, साकिनी, प्रेतनी, पिशाचिनी आदि की मनोती मनाई गई।

गो-मूत्रन अभिषेक करि, गोबर, गोरज लाय। दियो आचमन शुचि सुखद, मंत्र-अजादिन गाय।।

गोकुल आया पास कुलाहल लागा भारी। हाथन में हथियार लिये बड़ जोर पुकारी।।

देखि पूतना देह नन्द को लागा झटका। लालन खबर सुनावे कोई मनुआ अटका।।

जैसे-जैसे गोकुल निकट आ रहा था, कोलाहल की आवाज बढ़ती जा रही थी। किसी अनजान भय की आशंका में गोपों ने सुरक्षा प्रहरियों सहित हाथों में हथियार ले लिये और जोर जोर से पुकारना शुरू कर दिया, कौन है? क्या बात है? सावधान डरो नहीं, हम सब पहुँच गए हैं। कोलाहल करते हुए गोकुल के गोपों के पास पहुँचकर श्री नन्दराय और उनके साथियों ने विशालकाय राक्षसी पूतना को देखा तो एक दम मन को झटका लगा। वे अपने लाला की कुशलता का समाचार जानने के लिए व्याकुल हो गए। हृदय चाहता था कि कोई शीघ्रतापूर्वक मेरे लाल की कुशलता मुझे सुना दे।

ताहि समय नन्दादिक आए। समाचार सुनि अति अकुलाए।

सकुशल निज प्रिय लालन देखी। भए स्वस्थ पुनि सुखी विसेषी।।

तेहिं तनु गोपन्ह काटि कुठारा। जमुना कूल चिता रचि जारा।।

सुठि सुगन्ध निसरत शव माहीं। प्रभु संसर्ग अपावन नाहीं।।

इसी समय नन्द बाबा और उनके साथी गोप-गण मथुरा से गोकुल पहुँचे। जब उन्होंने पूतना का भयंकर शरीर देखा, तब वे आश्चर्य से चकित हो कहने लगे कि- अरे यह क्या? वसुदेवजी ने जो कहा था, वह सच ही निकला। अवश्य ही वे कोई महान् ऋषि हैं।

इतने में तब नन्द नृप, आये भवन मझार। देख पूतना देह को, कीना हाहाकार।।

समाचार सुन तास का पुरवासिन से तात। वार वार युग पुत्र का, मुख चूमत उर लात।।

देह काट कर तास का, फूका विपिन मझार। पुत्र निरामय हेत तब, विप्र जिमाय हजार।।

निज वैरिणि को कृष्ण ने, जननी की गति दीन। अस कृपालु गोपाल को, को न भजे मति हीन।।

चिन्तालीन नंद ब्रज आयो। अग्नि प्रज्वलित लखि चकरायो।।

मनहीँ मन हरि शरणहिँ लीन्हीँ। गोपन तबहिँ सूचना दीन्हीँ।।

तदनन्तर गोपों ने कुल्हाड़ी से पूतना के अंग-अंग को काट डाला और गोकुल से दूर ले जाकर लकड़ियों पर रख कर जला दिया। उस समय पूतना की चिता के धुएँ की दिव्य सुगन्ध से गोकुल का वायुमण्डल सुगन्धित हो उठा। भगवान ने उसका दूध पीकर जो उसकी छाती पर खेला था। इससे उसके सारे ताप तत्काल भस्म हो गये थे।

देखा आवत नंद भीर नेरे जुरि आई। मरी पूतना जैसे सारी बात बताई।।

अघ बक अनुजा बकी क्रूर बालन हत्यारी। कंस प्रेरना पाय दिये बहु बालक मारी।।

श्री नन्दराय जी को आता हुआ देखकर ग्वालों की भीड़ उनके समीप पहुँच गई और मरी हुई पूतना की सारी कहानी अपने अपने ढंग से लोग सुनाने लगे। यह पूतना अघासुर और बकासुर की छोटी बहन है। यह बकी बड़े क्रूर स्वभाववाली है, बालकों की हत्यारिन है, दुष्ट कंस की प्रेरणा प्राप्त करके बहुत से बालकों को मार चुकी है।

ब्रजमण्डल युवराज कराया षष्ठी पूजन। पूरणमासी और पुरोहित गये सभी जन।।
परम सुन्दरी कमलावत बन नारी आई। आते यशुदा रानी को इक डाँट पिलाई।।

बृजवासी बोले, हे नन्दरायजी। हम लोगों ने बृजमण्डल के युवराज श्री यशोदा नन्दन का षष्ठी पूजन बड़े अच्छे ढंग से मना लिया था। योगमाया पूरणमासी जी और महर्षि शाण्डिल्य जी अन्य ऋषियों के साथ अपनी कुटिया पर पहुँच चुके थे। अम्बुजा (लक्ष्मीजी) जैसा परम सुन्दर स्वरूप बनाकर कपट वेष में यह पूतना गोकुल में आई और बिना किसी रोक टोक के अपने नकली सुन्दर शरीर के प्रभाव से नन्द महल में प्रवेश कर गई।

माखनप्रभु कमलापती सकल सुबास निवास। तिनके अंग प्रसंगते प्रकट्या वाससुबास।।

पूतना के शरीर को पकड़कर ब्रजवासी जब यमुना के किनारे लाये और पूतना के शरीर को चिता पर रखा, अग्नि जलायी। भगवान राम और कृष्ण का एक बार भी नाम स्मरण करने से व्यक्ति भवसागर से पार हो जाता है। फिर उस राक्षसी की गति में सन्देह ही नहीं। श्रीकृष्णने उसके सारे दुर्गुणों को भुला दिया और पूतना को मातृगति प्रदान की।

नारायण उन रक्षण दीन्ह्यौं। लालन बाल न बाँकहु कीन्ह्यौं।।
भूमि परी बिकराल शरीरा। वाहि लखत छूटत मन धीरा।।
अचरज भरे सकल ब्रजवासी। नारायण करुणा विश्वासी।।
करुण अकारण गुन जिन गायो। जिन पूतना-मोक्ष मन लायो।।

शुकदेव बोले- राजन्, देखिये, पूतना लोक के बालकों को मारनेवाली थी, रक्त पीती थी तथा राक्षसी थी। उसने भगवान को दूध पिलाया था, सो भी प्रेम से नहीं मारने की इच्छा से, इतने पर भी उसे सद्गति प्राप्त हुई।

कृष्ण करनितें मरी पूतना सद्गति पाई। काटि कूटि सब अङ्ग गोप मिलि आँच लगाई।।
विष पिआइवे द्वेष भाववश दुष्टा आई। दई धाय गति श्याम बाकी निज लोक पठाई।।

राजन्, यद्यपि पूतना बालकों की हत्या करनेवाली थी, जाति से राक्षसी थी, कर्म से रुधिर पान करनेवाली थी और नियत से वह कृष्ण को मारनेवाली थी, फिर भी श्रीकृष्ण के मुँह में विषमिश्रित स्तन देने के कारण उसे माता की सद्गति मिली। जब विष पिलाकर मारने की नीयत से आनेवाली पूतना को इतनी ऊँची सद्गति मिली, तो जो श्रद्धा-भक्ति से अपनी प्रिय श्रीकृष्ण को समर्पित करते हैं, उनको क्या गति मिलेगी? जब जन्म कर्म और नीयत सब प्रकार से भयंकर राक्षसी पूतना की छाती पर पाँव रखकर स्तन पीने के बदले भगवान ने उसको सर्वोत्तम गति प्रदान कर दी, तब उन्होंने जिन गायों के थनों में मुँह लगाकर स्वयं अथवा उनके बछड़ों के रूप में दूध पिया तथा जिन गोपियों के वक्ष:स्थल पर चढ़कर दूध पिया, उनको सर्वोच्च गति मिलनी ही है।

वस्तुत: कन्हैया का कहना है कि मैया यशोदा और गोपियों को अपना सर्वस्व प्रदान कर देने पर भी मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता, उनका सार्वकालिक ऋणी बना ही रहूँगा।

तदनन्तर नन्दजी ने और उनके साथी गोपों ने जब यह देखा कि हमारा लाला सुरक्षित है, तब उन्हें महान् सन्तोष एवं आश्चर्य हुआ। नन्द बाबा ने तुरन्त अपने पुत्र को गोद में उठा लिया, मानो वह मारकर लौट आया हो।

ब्रजपति ने ढाँढस दिया, सुनो महर धरि कान। अनजाना कोई घर में ना घुसे, लाल तजो नहिं ध्यान।।

नन्दरायने यशोदा की आँखों में पानी बहता देखकर उन्हें धीरज बँधाया और कहा, नारायण भगवान की कृपा से तथा सन्तों ब्राह्मणों की कृपा से हमारा पुत्र सकुशल तो बच गया न, और बाल हत्यारिन पूतना भी समाप्त हो गई अब भय किस बात का, रोना किसलिये? अब तो हमारी इतनीसी बात ध्यान देकर सुनो।

कपट कुभावन हरि भजा, गई पूतनाधाम। सद्भावन हरि पूजते, तिन शंका केहि काम।।

राक्षसी पूतना ने कपटपूर्ण दुर्भावना से युक्त होकर श्री हरि का चिन्तन किया तो भी उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हो गई। जो लोग सद्भावना पूर्वक परमानन्द स्वरूप परमात्मा का भजन स्मरण करते हैं उन्हें भगवद्धाम की प्राप्ति होगी, इस विषय में सन्देह या शंका करने का क्या काम? शंका वहाँ होती है जहाँ भक्ति भावना न हो और भक्ति भावना पूर्ण समर्पित सेवा भाव के बिना स्थिर नहीं रहती। सेवा भाव की स्थिरता के लिए अपने स्नेहास्पद के प्रति प्रीति का होना अति आवश्यक है और प्रीति की दृढ़ता के लिए परतीत अर्थात विश्वास की अत्याधिक आवश्यकता पड़ती है। विश्वास को जमाये रखने के लिए उदारता, सरलता, दयाभाव एवं अहैतु कृपालता आदि सद्गुणों का होना आवश्यक है। सौन्दर्य आदि विशेषताओं का होना भी परम सहयोगी है और कृष्ण तो अनन्त गुणों की खान हैं।

शुक्देवजी का कहना है कि जो प्राणी पूतना-मोक्ष का प्रसंग श्रद्धापूर्वक सुनते हैं, उनकी गोविन्द भगवान में प्रगाढ रति होती है।

बाललीलाओंकी एक रहस्यमय बात यह है कि नन्द और यशोदा (जीव और बुद्धि) जब-जब गोकुल से दूर होते थे कन्हैया से अलग होते थे तब कोई-न-कोई संकट आ ही जाता था। इसका अर्थ यही हुआ कि जब भी जीव ईश्वर से दूर होता है तब दु:खी हो जाता है। भगवान की बाललीला जगत् का विस्मरण कराती है।

बलि तनया वह प्रथमु भवानी। लखि वामन अस भावहिं आनी।।
धन्य भाग्य जौं अस सुत मोरे। करतिउँ नेह दुलार अथोरे।।
इन्हहिं करबतिउँ स्तन पाना। कहाँ भाग अस मोर महाना।।
निरखि भाव अस तेहिं भगवाना। भगत बद्दल दीन्हें बरदाना।।
सोइ रत्नहिं माला सुभगि भई पूतना नाम। तासु मनोरथ सफल करि प्रभु दीन्हें निज धाम।।

पूतना का पूर्व जन्म- बलि की एक तरुणी बेटी थी कांचनमाला। वटु वामन को देखकर उसके मन में इच्छा हुई कि यदि यह मेरा बालक होता तो मैं इसे अपनी छाती पिलाती। भगवान के इन्दीवर सुन्दर बाल स्वरूप को देखकर बलि कन्या कांचनमाला ने मन में सोचा कि यह नन्हा बालक मेरे मन को विशेष रूप से मोहित कर रहा है। मेरी इच्छा होती है कि इस नन्हे बालक को गोदी में बैठाकर अपना दुग्ध पान कराऊँ। सबके मन को जाननेवाले प्रभु ने मन-ही-मन स्वीकार कर लिया। तीन पग पृथ्वी का संकल्प लेने के बाद भगवान ने अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि दैत्यराज बलि का चौदह भवनों का साम्राज्य दो पैरों में ही नाप लिया और तीसरा पग संकल्प के बाद भी पूरा न करने के अपराध में दैत्यराज बलि को नागपाश में बाँध लिया। बाद में जब वामन ने त्रिलोकी नाप कर बलि को बाँध लिया तो उसके मन में आया कि यदि मेरा बस चले तो इसे जहर पिलाकर मार डालूँ। भगवान ने मन-ही-मन उसे मनोरथ पूर्ण होने का वरदान दिया। फलस्वरूप कांचनमाला पूतना बनी।

कई कई ग्रन्थों में यह भी कहा गया है अयोध्या की मन्थरा ही अपने कुटिल आचरण के कारण मथुरा में आकर पूतना राक्षसी बनी। पूर्वकाल में कालभीरू ऋषि के यहाँ एक बड़ी सुन्दर कन्या ने जन्म लिया। कन्या का नाम चारुमति रखा गया। युवावस्था में प्राप्त होने पर ऋषि कक्षिवान के साथ उसका विधि-विधान से विवाह सम्पन्न हुआ।

ऋषि कक्षिवान अपनी युवा और सुन्दर पत्नी को कुटिया पर अकेले छोड़कर तप का अनुष्ठान करने चले गये। अनुष्ठान के पश्चात घर लौटकर उन्होंने अपनी पत्नी का अन्य शूद्र पुरुष के साथ दूषित आचरण देखा। ऋषि इसे सहन नहीं कर पाए और क्रोधावेश में श्राप दिया कि तुम्हारा असुरों जैसा आचरण है अत: तुम आसुरी देह को धारण करो। उसमें भी पति से विहीन रहो। वही चारूमति ऋषि पत्नी श्राप के कारण पूतना राक्षसी बनी और पुरुषोत्तम के हाथों श्राप मुक्त होकर तर गई एवं हरि पद को प्राप्त कर लिया।

कल्पभेद से पूतना बनने के सभी कारण सत्य प्रतीत होते हैं। पूतना के शरीर में दस हजार हाथियों का बल था। वह आसुरी विद्या में प्रवीण अनेक रूप धारण कर सकती थी। दिन में बगुली का रूप धारण करके आकाश मार्ग से गोकुल में प्रवेश करना चाहा तभी योगमाया की अपार शक्ति के प्रभाव से बगुली बनी पूतना के पंख भारी होने लगे। अपने को उड़ने में अशक्य जानकर वह वापिस मथुरा चली गई। रात्रिकाल में उलूकी बनकर आकाश मार्ग से गोकुल जाने पर भी उसकी यही दुर्गति हुई कि भारी पंख हो जाने पर गोकुल नहीं पहुँच पाई और वापिस लौट गई। इस बार उसने सुन्दर नारी का स्वरूप बनाया। लक्ष्मी जैसा सुन्दर स्वरूप होने और सर्वेश्वर नारायण द्वारा योगमाया को संकेत कर दिये जाने के कारण ही इसे कोई रोकने का साहस नहीं कर पाया। पूतना ने अपनी माया फैलाकर यशोदा जी को भी मोहित कर दिया।

यशोदाजी किसी गोपी से कह रही हैं कि हे सखी। जरा गोपाल को मुझे दो। मैं इसके कमल मुख के भली भाँति देख लूं। बाद में तुम इसे गोद में लेना। इसके हाथ और पांव कमल के समान कोमल हैं। इसके होंठ, दंतावलियां और नाक शोभायमान हैं। इसके सिर में लटकन, गले में कौस्तुभमणि शोभायमान हैं। इसकी शोभा पर करोड़ों कामदेव निछावर हैं। रात-दिन मैं सोचती हूं कि यह सुख मुझे कभी नहीं मिला। यह तो वेदों के धन और सनक-सनंदन-सनत्कुमार-सनातन के सर्वस्व से भी बड़ा है। बड़े भाग्य से मैंने इसे पाया है। जिसके रूप पर संसार के नेत्र चंद्र और सूर्य के करोड़ों रूप लज्जित होते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदाजी गोपियों के प्राण और पूतना के शत्रु श्रीकृष्ण पर बलिहारी जाती है।

पुन: पुरोहित चरणन में जा वन्दन कीना। बहु अचरज की बात कंस ने चकमा दीना।।
मीठे सन्मुख बोल पीठ में छुरी चलाई। हमरा कर सत्कार पूतना दुष्ट पठाई।।

नन्दराय जी नन्द परिवार के विशेष सदस्यों के साथ कुल पुरोहित श्री शाण्डिल्य जी के चरणों में पहुँचे और जाकर वन्दना की, हे गुरुदेव। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि राजा होते हुए भी कंस ने हम लोगों को चकमा दिया। सामने तो मीठे बोल बोले, पुत्र जन्म की बधाइयाँ दीं और बाद में पीठ में छुरी चलाई। हम लोगों का तो भली प्रकार सत्कार करता रहा और बाल हत्यारी पूतना को उस दुष्ट ने यहाँ हमारे बच्चों की हत्या के लिए भेज दिया।

शाण्डिल्य मुनि बोले- हे बृजेश, प्रभु के अनेकों नाम और रूप हैं। वही प्रभु सृष्टि के आधार हैं सबके आश्रय दाता हैं। वही इन्द्रियातीत हैं, वही ब्रह्म तुम्हारे घर में तुम्हारा पुत्र बनकर आया है। पहले पृष्णि गर्भ बना, फिर वही वामन रूप में आया अब वो ही तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ है। देवतरु कल्पवृक्ष ने मनोकामना पूर्ण करने की शक्ति एक कण भर प्राप्त की है। पूर्ण शक्तियों के स्वामी तो परम ब्रह्म परमात्मा हैं जो मनोकामना पूर्ण करने में पूरी तरह समर्थ हैं।

५) अन्य राक्षसों के उत्पात - ब्रजकी तो तुलना तीन लोकमें नहीं है। वहाँके गोप, गोपी, गाय-बछड़े, पशु-पक्षी ही नहीं तरु-तृण तक धन्य हैं, दिव्य हैं। उनकी बात- उनकी महिमाकी बात, कौन करे। बात मथुराकी और उसमें भी महाराज कंसकी? कंसके प्राण भी अधरमें अटक गये हैं इन दिनों।

वही-वही है। वह नंदका लड़का ही बनकर प्रकट हुआ है। पूतनाके मरनेका समाचार मिला और कंसको सन्देह नहीं रह

गया कि उसे मारनेवाला हरि गोकुलमें ही है। गोकुलमें और गोकुल तो मथुराके ठीक सामने यमुनाके उस पार ही है। इतने समीप प्राणहर्ता आ गया- कब यमुनापर उतर आवे, कुछ पता नहीं। कंसका भय- उसकी चिन्ता सीमाहीन है।

गोपराज नन्द कोई एकाकी असहाय वासुदेव तो नहीं है कारागारमें पड़े कि कंस उनके पुत्रको मारने दौड़ जायगा। नन्दराय व्रजपति हैं और कंस जानता है कि सम्पूर्ण व्रजके गोप उनकी रक्षाके लिए मर-मिटनेको पलक मारते दौड़ पड़ेंगे। रोषमें भरे गोप तो सभीके लिए- भले वह कितना भी वीर हो, भारी पड़ते हैं।

कंस स्वयं अपने उस कालके सामने जानेका साहस नहीं कर सकता। अपने-आप दावाग्निमें कूद पड़नेकी मूर्खता वह नहीं करेगा। सेना भी नहीं भेजी जा सकती। कोई ऐसा कार्य नहीं किया जा सकता, जिससे नन्दको, गोपोंको अवसर मिले कंसके विरुद्ध शस्त्र उठानेका। ऐसा होनेपर तो वह मायावी वामनसे विराट बननेवाला मथुरा पर चढ़ दौड़ेगा।

कूट प्रयत्न-छलसे मारना ही एकमात्र मार्ग लगता है। कुछ हो भी जाय तो कंस अपनेको अनजान-निर्दोष दिखलानेकी स्थितिमें बनाये रखना चाहता है। वह अपने श्रेष्ठतम-प्रबलतम समर्थकोंको भेजेगा और उस नन्दके शिशुकी हत्या करा देगा- यही एकमात्र मार्ग कंसके सम्मुख है।

पूतना मर गयी। कंस मृतोंका श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति नहीं है। वह जीवनकी-जीवितोंकी चर्चा करता है। उसे वे चाहिये जो कंसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करनेको उद्यत रहें। कंस उनका सम्मान करता है, किन्तु जो जीवन उत्सर्ग कर चुके, उन्होंने कर्त्तव्य किया अपना। उनके लिए कंसको रुदन नहीं आवेगा। पूतनाको बहिन बनाकर रखा- वह ठीक बहिन सिद्ध हुई। भाईके लिए प्राण दे दिये उसने।

कंसके पास एक पूतना ही तो नहीं थी। उसके पास अनेक असुर हैं और कंस अपना प्रयत्न रोक तो नहीं सकता। उसके लिए तो अपनी मृत्युको मारनेका प्रश्न है। उसके प्राण उस नन्दके लड़केमें भयसे अटके हैं। क्रूर कंस उसे बार-बार मारनेके कुटिल प्रयास कर रहा है।

१) कागासुर वध- कंस की राजसभा में बैठे हुए कागासुर को बहुत क्रोध आया और वह क्रोध में भरकर बोला- हे भोजपति, अबकी बार आप मुझे गोकुल में भेजो और अपन मन में निश्चित जान लो कि आपके शत्रु का नाश हो गया।

एक राक्षस ने कौए का रूप धारण किया। राजा कंस का आदेश शीश पर धारण करके प्रसन्नता के साथ हृदय में गर्व से भरा हुआ बोला कि हे राजन्, यह कौन-सी बात है? आप यह समझिए कि मैं आपकी आज्ञा से गया कि आपका वह शत्रु तुरंत मरा। इतना कहकर वह उड़कर गोकुल आया और नंद के घर की छाजन पर बैठ गया। उसने पालने में लेटे हुए श्रीकृष्ण को देखा और तुरंत आकर श्रीकृष्ण की आंखों पर झपट पड़ा। नन्दमहल में जाकर कागासुर ने नन्दलाल को अपनी तीक्ष्ण चञ्चु के द्वारा क्षत-विक्षत करना चाहा। बाल गोपाल ने चोंच मरोड़ दी तथा इतने जोर से फेंका कि गोकुल के नन्द महल से मथुरा में कंस के दरबार में जा गिरा। श्रीकृष्ण ने उसकी गर्दन दबाकर उसे कई बार घुमाया और ऐसा पटका कि सीधा वह कंस के पास जाकर गिरा। कागासुर गोकुल गया और नन्दभवन पर इसे देरतक बैठना भी नहीं पड़ा। उड़कर यशोदास्तनन्धय के समीप पहुँचा और उसने अपने नन्हे, सुकुमार करसे पंख पूँछ सहित पकड़ लिये और इसे घुमाकर फेंक दिया। सीधे मथुरामें कंसके सिंहासनके सम्मुख ही यह गिरा। श्रीकृष्णका स्पर्श मिलते ही उसे सद्बुद्धि आ गयी। कागासुर समझ गया कि क्रूर उद्योग भले असफल हो गया; किंतु जीवन सफल हो गया।

कागासुर इक दिवस काक बनि हरि ढिँग आयो। पकरि टेंटुआ तुरत कंसके पास पठायो।।

कंसके समझ में तो यह बात आयी नहीं। कंस इस काग के कहने से श्रीकृष्णकी शरण में जाने से रहा।

कंस उससे पूछने लगा- तू यहां कैसे आया, क्या तूने मेरा काम नहीं किया? एक पहर के बाद उसके मुंह से आवाज निकली। उसने कहा कि हे कंस, सुनो वह तो अब तुम्हारे गले पर आ गया है। यह तो कोई महाबली अवतार है, उसने तो एक ही हाथ में मेरा अभिमान हर लिया। सूरदासजी कहते हैं कि भक्तों के कल्याण के लिए श्रीहरि ने कंस का वध करने के लिए अवतार धारण किया है।

कंसने कागासुरको भेजा था। इस सम्वादने बहुत चिन्ता नहीं दी; क्योंकि सम्वाद जिसने दिया, उसने सुना दिया- भला कौएको मथुरासे गोकुल जाने कितनी देर; किन्तु वह तो फट्से कंसके पैरोंके पास आ गिरा। मरते-मरते भी असुर झूठ बोलते हैं? वह मरते-मरते कंससे कह गया- नन्दके शिशुने पालनेमें पड़े-पड़े हाथ लम्बाकर उसे पकड़कर फेंक दिया।

यह समाचार लानेवाला सेवक देर तक पेट पकड़कर हँसता रहा था- लगता है कि गोप-बालकने गुलेलका लक्ष्य बस कौएको बनाया। ऐसा पत्थर लगा इसे कि बुद्धि भी ठिकाने नहीं रह गयी। कंसके सिंहासनके पास कौआ मरा। सेवकने फिर हँसकर कहा- महाराज कंसके लिए बड़ा भारी शकुन तो हुआ यह आज।

२) श्रीधर ब्राह्मण- महाबली अब असुर कौन मम वैरी मारे। बाल रूप मम काल जायकर ताहि पछारे।।
उपरोहित श्रीधर बोला सुन राजन बाता। असुर न जावे कोइ स्वयं मैं ही तहँ जाता।।

कंसमें बल, विक्रम, ओजस्विता थी और थी प्रबल महत्वाकांक्षा।

दैत्यराज कंस ने असुर सभा में कहा, अब इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि अब कौन महाबली असुर मेरे शत्रु को मारने को तैयार है? सभा में ऐसा कौन है जो एक छोटे बच्चे के रूप में आए मेरे इस शत्रु को जाकर पछाड़ दे?

श्रीधर ब्राह्मण है जातिसे; किन्तु पिशाच ब्राह्मण। जीवित ब्रह्म राक्षस है। कंसके अभिचार यज्ञोंका पुरोहित- ऐसा कोई क्रूर कर्म नहीं जो वह न कर सके। कंस जानता था कि गोप बहुत सीधे हैं। व्रजपति और व्रजरानी श्रद्धाकी मूर्ति हैं। वे ब्राह्मणका सत्कार करेंगे। ब्राह्मणपर हमें तनिक भी सन्देह नहीं होगा।

तभी असुरों का पुरोहित श्रीधर बोला, हे राजन्। मेरी बात सुनिये, किसी असुर को गोकुल न भेजा जाए। आपके शत्रु का संहार करने के लिए मैं स्वयं वहाँ जाता हूँ।

हे नरेश, मैं तन्त्र शास्त्र में प्रवीण हूँ फिर भला एक छोटे बालक की हत्या मेरे लिये क्या बड़ी बात है? गोकुलवासी धर्मभीरू लोग हैं, मुझ ब्राह्मण की कपटभरी बातों से कुछ ही देर में द्रवीभूत हो जाएँगे। मैं जल्दी ही गोपों को अपने विश्वास में लेकर उनकी श्रद्धा भावना के सहारे बड़ी आसानी से बालक तक पहुँच जाऊँगा और पूरी तरह एकान्त पाकर नन्हे शिशु का गला दबा दूँगा। इस प्रकार तुम्हारा कार्य आसानी से हो जाएगा। कंसने बहुत सोचकर श्रीधरको गोकुल भेजा था। यह सुनकर श्रीधर गोकुल गया है वसुदेव और देवकी तो मूर्छितप्राय हो गये और सतत उस अशरण-शरण को पुकारने लगे। कुछ समय पश्चात में संवाद मिल गया श्रीधर गोकुलसे लौट आया है और वह विक्षिप्तप्राय होकर गूँगा बनकर लौटा है।

कंसने कहा- श्रीधर, गोकुल जाकर उस नन्हें नन्दनन्दन को मार दो और श्रीधर ने शिशु-हत्याका यह कुत्सित कार्य स्वीकार कर लिया। उसमें साहस नहीं था कि कंसको कठोरतापूर्वक मना कर देता। वह भी क्या ब्राह्मण जो प्राण और भयसे कांपे अथवा कायिक सुख सुविधा जिसे क्रीत सेवक बनाकर कुकृत्यमें लगा दे।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस ने सबसे कहा जो कोई मेरे शत्रु को मारेगा उसे मैं बहुत सा द्रव्य दूँगा। उस समय श्रीधर नाम का ब्राह्मण वहाँ बैठा था और वो बोला- राजन्, आप निश्चिंत रहें मैं आपके शत्रुको मारूँगा और श्रीधर ब्राह्मण कंस से विदा होकर पंडितों का वेश बनाकर नन्दके यहाँ आया।

तेजोदीप्त आनन से निस्सृत ब्राह्मणत्व एक प्रकाश-वलय की ही सृष्टि करता एक हाथ में कमंडलु और दूसरे में त्रिशूल धारण किए वह निर्भीक ब्राह्मण सबका श्रद्धा-पात्र बनकर आया है। ऋषि-मुनि गोकुल में आते ही रहते थे आसपास के आश्रमों में भी साधकों-तपस्वियों की कमी नहीं थी पर तेज का ऐसा पुंज, ब्राह्मणत्व ऐसा साक्षात् विग्रह, स्वयं आशुतोष की ऐसी प्रतिमूर्ति दिख रही थी। वह सीधे चला आ रहा था कन्हैया को आशीर्वाद देने। वह कह रहा था भगवान भूतभावन के आदेश का पालन करने आया था। श्रीधर नाम था इस कपटी ब्राह्मण का। यह कंस का पुरोहित था। जब से पूतना सद्गति को प्राप्त हुई कंस और उसके लोगों में चिन्ता व्याप हो गई। सभी यह बात जानते थे गोप ब्राह्मण पूज्य है, वे श्रीधर का स्वागत करेंगे। गोप, गोपियाँ परम श्रद्धालु है। श्रीधरका वे विप्र होनेके कारण सम्मान करेंगी, यह कंस ने ठीक सोचा था। श्रीधर कुछ अनुचित भी कर बैठे तो उसपर गोप हाथ उठानेका साहस नहीं करेंगे, यह भी कंसका विचार असंगत नहीं था। श्रीधर स्वयं आज्ञापालक सेवक बनकर चल पड़ा। ब्राह्मण शाप दे सकता है, शस्त्र उठा सकता है, समय ही आ पड़े तो अविचार कर सकता है; किंतु अपकर्म, पापकर्म, ब्राह्मणके वशकी बात नहीं होनी चाहिए। श्रीधर ने शिशु-हत्याका संकल्प स्वीकार किया और अपने ब्राह्मणत्वसे-ब्रह्मतेजसे च्युत हो गया।

श्रीधर कंस के पुरोहित थे पर कंस का अन्न भक्षण करने के कारण उनके संस्कार भ्रष्ट हो गये और उनकी बुद्धि कुंठित हो गयी। कंस ने उन्हें पर्याप्त उत्कोच दिया। वे कंस के इस प्रस्ताव को ठुकरा नहीं पाये और सब कुछ करने को तैयार हो गये। कंस ने उन्हें समझाया। एकान्त कक्ष में अपने त्रिशूल से कन्हैया का काम तमाम कर देना और रातों-रात वहाँसे भाग आना। कंस को तो अपने काम से काम था। अगर इस अभियान में कुलपुरोहित मारा भी गया तो कंस का क्या? उसके अपने प्राणों के सामने एक पुरोहित के प्राणों का कोई महत्व नहीं। भले ही वह उद्भट्ट शास्त्रज्ञ और प्रकाण्ड पण्डित था। कंस के मन में था पौरोहित्य-कार्य करने के लिये बहुत मिल जायेंगे। सबको कंस के लिये ही जीना था, कंस के लिये ही मरना। कंसने श्रीधर पुरोहित को बहुत समझा-बुझाकर भेजा था।

श्रीधर गोकुल आया। वह बड़े आडम्बर-पूर्वक महापण्डित बनकर आया था। वैसे उसमें पाण्डित्य पर्याप्त था और प्रयोजन होने पर पाखण्डको मैं अनुचित नहीं मानता; किंतु सरल-श्रद्धालु गोपोंके यहाँ आनेमें इतनी बनावट अनावश्यक थी। श्रीधर बड़ी भारी पगड़ी पहिने, भाल-बाहु, वक्ष, उदर आदिपर भस्मका उज्वल त्रिपुण्ड लगाये, बड़े-बड़े रुद्राक्षके दानोंकी मालाओंसे कण्ठ, भुजदण्ड, कलाई आदि अलंकृत किये आया। वह शाक्त: किंतु शाक्त अपनेको समाजमें तो नैष्ठिक शैव प्रदर्शित ही करते हैं। नन्दरायने अपनेको कृत-कृत्य माना कि ऐसे नैष्ठिक शिवभक्त विद्वान ब्राह्मण उनके अतिथि हुए। श्रीधरकी सविधि पूजा की उन्होंने। अपने भवन के भीतर ले गये।

नन्दमहल में एक अलग कक्ष में जाकर उसे ठहराया गया। वहांपर दाऊ अपनी गदा लिये वहीं कन्हैया के इर्दगिर्द फिर रहा था और बार-बार घूरकर श्रीधर पुरोहित की तरफ देखता रहता। श्रीधर भी अब क्या कर सकता। समय बीतते जा रहा है। वे दाऊ की आँखोंके सामने जो कुछ करना चाहता था वह कर नहीं पायेगा। श्रीधर शास्त्रज्ञ पंडित था। उसका संस्कार इतना भ्रष्ट नहीं था कि दो निर्दोष शिशुओंकी हत्या एक साथ करे। श्रीधर क्या करें बहुत चिंतित हो गया।

श्रीधर ने दूध, दधि, नवनीतका नैवैद्य अस्वीकार कर दिया। वह कहने लगा- मैं एकाहारी हूँ और स्वयं नैवेद्य प्रस्तुत करता हूँ। सर्वथा एकान्त चाहिये मुझे। आराध्यके अर्थ अग्निपर चढ़े पात्रपर भी किसीकी दृष्टि पड़ जाय तो नैवेद्य अपवित्र हो जाता है। श्रीधरने साग्रह कहा- शिशुको मेरे समीप ही रहने दो। मैं इसके कल्याणके लिए कुछ जप, स्तोत्र पाठ यज्ञानुष्ठान करूँगा। इससे अधिक भला यशोदाको और क्या प्रिय हो सकता था। वे तो दाऊको भी उठा लायीं और वहीं

बैठा गयीं। उन्होंने आग्रह किया कि इस दूसरे बालक को भी आप आशीर्वाद दे दें।

स्वयंपाकी होने का ढोंग करनेवाले इस पापात्मा श्रीधर ब्राह्मण को सीधा सामान (सूखा) और पकाने के बर्तन ईंधन आदि देकर यशोदा जी स्वयं जल लाने हेतु यमुनाजी की ओर बढ़ी। परिवार के अन्य सेवादारों को इधर उधर के व्यर्थ के कामों में नियुक्त करके श्रीधर ने पूरा एकान्त कर लिया और तभी उसके मन में अपने कुविचार को क्रिया रूप में परिणित करने की दुर्भावना प्रबल हुई। जिस पालने में यशोदा जी अपने लाल को सुला गई थीं, वह दुष्ट श्रीधर बालक का कण्ठ दबाने के लिए उस पालने के निकट पहुँचने का प्रयास करने लगा।

नन्दँनन्दन धरि कण्ठ विप्र के प्राण रुकाने। दूसर कर धरि जीभ खेंचि पुनि बोल न पाने।।
दाऊ देखा विप्र भगा हँसि तालि बजाई। द्विज बिन भोजन गया गोप ब्रज शोक मनाई।।

श्रीधर पण्डित पालने में सोये नन्दलाल का कण्ठ दबाना ही चाहता था कि लाला ने एक हाथ से उस दुष्ट ब्राह्मण का कण्ठ दबाया जिससे उसके प्राणों का आवागमन रुक गया और दूसरे हाथ से असुर सेवी ब्राह्मण के खुले मुख से निकली जीभ को पकड़कर ऐसा मरोड़ा कि फिर वह कुछ भी बोलने लायक नहीं रहा। भय के मारे दुर्जन ब्राह्मण भागा। बड़े भैया रोहिणी नन्दन ने हँसते हुए तालियाँ बजाईं। माता यशोदा जी आदि गोपियों, गोपों को इस बात का बड़ा दु:ख हुआ कि ब्राह्मण बिना कुछ खाये चला गया।

माताके जाते ही श्रीधर इस एकान्तका लाभ उठा लेता, यदि उसे अवसर मिलता; किंतु वह नन्हा शिशु श्रीधरसे अधिक स्फूर्तिमय सिद्ध हुआ। वह अपने पलनेसे उठा। आश्चर्यमें पड़ गया श्रीधर। वह कुछ कर सके, सोच सके, इससे पूर्व तो उसका कण्ठ कस गया उन किसलयाधिक प्रतीत होते अत्यन्त छोटेसे करमें और दूसरा कर श्रीधरके मुखमें डालकर जिह्वा खींचकर स्वर नली मसल दी गयी। पलकें झपकते विलम्ब होता है, उस अद्भुत शिशुको यह सब करते विलम्ब नहीं हुआ। दूसरा कोई वहाँ होता भी तो लगता कि उसे भ्रम हुआ है पलक गिरानेमें। ब्रजेश्वरीका लाल तो अपने पलनेमें पड़ कर-चरण उछाल-कर किलक रहा है; किंतु श्रीधर इसे कैसे भ्रम मान ले, जिसका कण्ठ पीड़ासे फटा जा रहा है और वाक्-शक्ति सदाको लुप्त हो गयी है। सम्पूर्ण शरीर पीड़ासे, भयसे स्वेद-नात हो गया है। दाऊ सिर हिलाकर, ताली बजाकर हँस रहा है और उठ खड़ा हुआ है। श्रीधर भागा- भागता चला गया। उसे पीछे मुड़कर देखनेका भी साहस नहीं हुआ यमुनाके पार जाने तक।

गोपोंने श्रीधरको भागते देखा और पुकारा- क्या हुआ इन विप्रवरको? पर श्रीधरका साहस नहीं हुआ किसीकी पुकार सुननेकी। उसके पद रुक जाते है।

पाकशाला में केतली में गरम-गरम पानी चढ़ा हुआ था। दाऊ ने एक हल्का सा धक्का दिया और पूरी गरम पानी की केतली श्रीधर पर जा उलटी। श्रीधर पुरोहित चिल्लाने लगा। गरम पानी उसकी जिह्वा पर गिरा। इससे उसकी जुबान चली गयी। **ब्राह्मणके मुख बात न आवै, जीभ होई तौ कहि समुझावै।**

उसकी चीत्कार सुनकर रोहिणी, यशोदा और कई दास-दासियाँ एक साथ कक्ष में आ गयी। उन्हें देखकर श्रीधर उसीप्रकार रोते-बिलखते सिर पर पाँव रख नौ, दो ग्यारह हो गया। कहते हैं विपत्ति कभी अकेले नहीं आती। नन्द, यशोदा और गोकुल के अन्य ग्रामवासियों को तो ऐसा लग रहा था कन्हैया के जन्म के पश्चात् एक-पर-एक संकट आ रहा था।

जब यशोदा यमुना स्नान करके आईं तब उसने दूध व दही का बर्तन टूटा हुआ देखा और दही श्रीधर ब्राह्मण के मुख में लगा हुआ देखा और उन्होंने समझा कि इसीने बर्तन तोड़ दिये हैं यह समझकर यशोदा ने कहा- महाराज, आपने दूध व दही खाया तो अच्छा किया पर मेरे बर्तन क्यों तोड़ डालें। श्रीधर ब्राह्मण कुछ बोल नहीं पा रहा था। उसने संकेत किया कृष्ण की ओर हाथ

उठाकर कि इसीने बर्तन तोड़े हैं। यशोदा ने उस ब्राह्मण के बताने पर विश्वास नहीं किया और अपने घरसे निकाल दिया।

पुनि द्विज श्रीधर असुर कंसको बनिकें सेवक। आयो हरिकूँ हनन परे जहँ जगके रक्षक॥
श्रीहरि-लीला शक्तितें, दन्त भंजि मुख खीर भरि। ब्रजतें बाहर कर्‌यो नँद, अद्‌भुत कीयो कृत्य हरि॥
उपनन्द बोले- उसको घरसे बाहर निकालो। सब गोप मिलकर उस गूँगेको ब्रजके बाहर छोड़ आये।

नन्दरायका रोष उचित था वे रोष में बोले- क्या हुआ? अतिथिदेव इतने भयातुर क्यों भाग रहें? अब यशोदा उन्हें क्या उत्तर दें। उसे तो कुछ भी पता नहीं वह तो उस ब्राह्मण देवताके समीप शिशुओंको छोड़कर गयी थी। नन्दराय, यशोदा, रोहिणी सब बहुत चिन्तित हैं। अतिथि ब्राह्मण इस प्रकार आहार-ग्रहण किये बिना चला गया, यह बहुत अशुभ लक्षण है। यह साहस नहीं कर पा रहे थे कि महर्षि शाण्डिल्य से कह सकें।

योगमाया पूर्णमासी ने सारा रहस्य खोलते हुए कहा कि आप लोग ब्राह्मण के खाली हाथ जाने का दु:ख न करें क्योंकि यह तो तमोगुणी ब्राह्मण तन्त्र विद्या में प्रवीण था और मथुरा नरेश कंस की प्रेरणा से नन्दनन्दन का अहित करने यहाँ आया था। चिन्ता मत करो, तुम्हारे लालाका दर्शन करके वे अतिथि कृतार्थ हो गये। अब उन्हें किसीका आतिथ्य कभी आवश्यक नहीं होगा। यह रहस्य जानकर नन्द महल में ऋषियों द्वारा स्वस्ति वाचन पूर्वक दान पुण्य, न्यौछावर सम्पन्न किया गया।

सचमुच श्रीधर कृतार्थ हो गया। वह कंसका कल्याण करने आया था; परंतु उसका अपना कल्याण तो हो ही गया। नन्दनन्दनका स्पर्श प्राप्त कर अविद्या तथा अविद्यासे उत्पन्न हिंसा-दम्भ, क्रूरता, कुटिलतादि सब समाप्त हो गये। श्रीधरकी वाक्-शक्ति गयी; किंतु उसके अन्तरके नेत्र निर्मल हो गये। उसका अन्त:करण उज्ज्वल हो गया।

सीमाओं पर कंस के योद्धाओं और गुप्तचरों से सुलटना पड़ता था और घर में घुस आए घुसपैठियों से भय खड़ा हो गया था वह अलग। कंस को अब लगने लग गया- हो न हो अवश्य यह बालक चमत्कारी है। कुछ वर्षों के पश्चात् वह कंस का भी काल बन सकता है। श्रीधर मथुरा लौटकर ही नहीं आया। अब कहाँ श्रीधरको कंसका पौराहित्य करना है। अब तो उसको सद्‌बुद्धि आ गयी। तपोवन जाकर तप करेगा। ब्राह्मणके लिये उचित पथ अपनाया उसने।

श्रीधरने कंसको लिखकर ही बतलाया था कि नन्दके उस छोरेने एकान्त में पालनेसे उठकर श्रीधरके मुखमें नवनीत लपेट दिया। दही-नवनीतके भाण्ड फोड़ दिये और उसकी जिह्वा उमेठ दी। कंस बोला- धूर्त कहींका। वह सुकुमार अभी स्वयं तो पालनेमें करवट नहीं बदलता और उसपर यह आरोप लगा रहा है। उसके सभासद कहने लगे- श्रीधर बहुत जिह्वालोलुप है। वह घर सुना देखकर नवनीत खाने लगा होगा। उतावलीमें भाण्ड गिरकर टूट-फूट गये होंगे। गोपोंने उसे धिक्कारा होगा। सम्भव है, धक्का देकर उसे घरसे निकाल दिया हो। क्योंकि वे ब्राह्मणपर हाथ उठायेंगे नहीं। मार लगने से ही उसकी वाणी चली गयी। किसीने भी उसकी खोज-खबर नहीं ली क्योंकि किसी को भी उसके प्रति सहानुभूति नहीं थी। उसके चले जानेपर मथुरा के नागरिक प्रसन्न हुए। श्रीधर फिर मथुरामें नहीं दिखा।

गोकुलवासियों की चिंता और बढ़ गयी। सभीने एक दिन सभा की और सीमाओं के साथ-साथ, नन्दभवन के पहरे की व्यवस्था भी बढ़ाकर कड़ी कर दी। कंस की पूरी सेना भी कभी भूल से गोकुल पर टूटने का प्रयास करती तो गोकुल की संगठित युवा-शक्ति उससे लोहा लेने को पर्याप्त थी। कंस के मंत्रियों ने सलाह दी- अब लघुकाय को भेजना चाहिए। जो देखने में इतना सूक्ष्म है कि रात के अँधकार में प्रहरियों के पैरों के मध्य से भी निकल जाय तो किसीको पता नहीं चलेगा। वह काया में लघु है पर बुद्धि में तीक्ष्ण। वह उस नंद के छोरे का काम तमाम करके ही लौटेगा।

३) दैत्य महाबल भट की कथा- कंस की सभा में महाबल नाम का दैत्य ज्योतिषी था। उसने कंस को आश्वासन

दिया कि वह कृष्ण का वध करके लौट आयेगा। महाबल भट अपना पोथी-पत्रा, पंचाग आदि लेकर ज्योतिषीके रूपमें गोकुलमें नंद महल में आया। मैया तो बस ब्राह्मणोंकी प्रतीक्षा ही करती रहती थी कोई ज्योतिषी आ जाये और उसके सन्तान को आशीर्वाद दे। महाबल भट का भी बड़ा सम्मान हुआ। नन्दबाबा बच्चे को लेकर आये। महाबल भट ने देखा नन्दजी भोलेभाले है। इनको फंसाकर इनके द्वारा कृष्णका अन्त करा दिया जाये यह मन में दुर्बुद्धि सूझी और मुंह बनाकर महाबल भट बोले- यह तो ऐसे मूल नक्षत्र में पैदा हुआ है यह तो तुम्हारे वंशको निर्मूल कर देगा। यह बड़ा ही कुलक्षणी है। नन्दजी बोले- महाराज, कोई जप आदि करो। महाबल भट बोला- जप, यज्ञ से कुछ नहीं होगा। इसका तो घरमें रहना ही अच्छा नहीं है। आप इसको या तो जंगलमें फेंक दें या गड्ढा खोदकर गाड़ दें। भगवानकी योगमायाने सोचा कि इसका काम तो प्रकृतिके द्वारा करवाना है। इसी प्रकार चैतन्य रहे। इतनेमें छींकेपर जो हाँड़ी रखी थी, भटजीके सिर पर पड़ी तब उनका सिर फूट गया। तब महाबल भट किसीतरह प्राण बचाकर कंसके पास भागा।

दुर्मति दैत्य महाबलने आ, नन्द-भवनमें किया प्रवेश। हाथ लिये पंचांग, रामनामी ओढ़े, शुचि ब्राह्मण-वेश॥
झूल रहा यज्ञोपवीत कंधेपर, भस्म त्रिपुण्ड सुभाल। गले भव्य रुद्राक्ष-हार शुभ, पाण्डित्योचित मन्थर चाल॥
आदर किया सभीने नन्द-महलमें उसको पंडित जान। अर्घ्यासन मधुपर्क दानकर बैठाया सादर, सहमान॥
परिचय दे ज्योतिषका, उसने पूछा शिशुका जन्म-सु-काल। बना कुण्डली, हो गम्भीर लगा बतलाने फल तत्काल।
कहा- मूलमें जन्मा है यह, कर देगा कुलको निर्मूल। गोकुलको पहुँचा पताल, यह सबसे उर बेधेगा शूल॥
होली करके गोत्रमात्रकी, कर देगा सब वंश-विनाश। अत: इसीमें है मंगल, कर दिया जाय इसका ही नाश॥
फेंका जाय घोर वनमें, या गाड़ा जाय भूमिको खोद। बालक नहीं, काल है सबका, अशुभ अमंगल विगत-विनोद॥
सुन कर्कश वाणी दानवकी, हुए सभी नर-नारि उदास। भड़क उठा क्रोधानल सबके, तुरत बढ़ चला श्वासोच्छ्वास॥
सुनते ही दुर्वचन, अचेतन भी हो उठे तुरत विक्षुब्ध। व्याप्त चेतनाने उनको भी देने दण्ड कर दिया क्रुद्ध॥
मटकी छींके टँगी गिरि आ दानवके सिर तुरत धड़ाम। बेलन चला, आ घुसा मुखमें, बिगड़ गयी हुलिया बेकाम॥
सिलबट्टा झट उठा, धड़ाधड़ किया पीटना जो आरम्भ। भगा महाबल चिल्लाता-रोता अति, लगा छिपाने दम्भ॥
खटिया खड़ी रोककर पथको, मूसलने उठ मारी मार। पीठ पटा कर दी दानवकी, चीख उठा कर करुण पुकार॥
दम फूला, गिर पड़ा भूमिपर, पोथी-पन्ने फटे तमाम। असत् जनेऊ टूटी, मिटे तिलक, हो गया शोकका धाम॥
पण्डितको यह मिली दक्षिणाकी जब देखी भारी पोट। लोट-पोट हो हँसे नारि-बालक, बूढ़ोंने हँस ली ओट॥

६) शकटासुर का वध- पूतना के मरने की सूचना पाकर दैत्यराज कंस का मन आश्चर्य से भर गया। ऐसा कौन बली है जिसने विशालकाय, दस हजार हाथियों के बल वाली पूतना को समाप्त कर दिया? अपनी बहन पूतना के विनाश को सुनकर उसके भाई अघासुर और बकासुर की आँखों में खून उतर आया। सभा में बैठे हुए अनेक बलवान असुर दु:ख और क्रोध के मारे हाथ मलने लगे। आपस में एक दूसरे से कहने लगे, ऐसा वो कौन है जिसने अति बली पूतना का सिर तोड़ दिया?

देव नाग नर किन्नर प्रेत पिशाच समूहा। सब मिल सन्मुख भिड़न होत तिन कम्पित रूहा॥
फिर को अस अतिवीर महाबलि बकी विनासी। कर दीना संहार बाल इक गोकुल वासी॥

राक्षस राज कंस की सभा में सब लोगों को पूतना की मृत्यु पर आश्चर्य हुआ। कंस भी सोचने लगा, देवता, नाग, नर, किन्नर, प्रेत, पिशाच बहु संख्या में सब मिलकर भी पूतना के साथ भिड़ने का साहस नहीं कर पाते थे, उनका शरीर थर थर काँपने लगता था फिर ऐसा कौन सा अति वीर है जिसने महाबली पूतना का विनाश कर दिया? और यह तो बड़े आश्चर्य

की बात है कि गोकुल वासी छोटे से बच्चे ने उसका संहार कर दिया।

कंस कहा जब नन्द तनय की खबर सुनाई। भादौं अष्टमि कृष्ण नन्द घर भई जनाई।।
वाही दिन वसुदेव गृहे कन्या प्रगटानी। हो न हो सुत बदलि नन्द सों कन्या आनी।।

कुछ सोचकर दैत्य सभा में कंस ने कहा, गोकुल का मुखिया नन्दराय अपने यहाँ पुत्र होने की सूचना लेकर मेरे दरबार में आया था। उसने बताया कि मेरे यहाँ भादों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी में पुत्र ने जन्म लिया है और उसी भादों अष्टमी को वसुदेव के यहाँ एक कन्या प्रकट हुई। हो न हो वसुदेव ने ही अपना आठवाँ पुत्र नन्दराय को देकर बदले में उनकी कन्या लेली जिस कन्या को मुझे वसुदेव अपनी पुत्र कहकर दे गया। उत्कचका कंसपर स्नेह है। हिरण्याक्षके पुत्रका अनुराग असुर कालनेमिपर हो, यह स्वाभाविक ही था। कंस बहुत चिंतित है। उसका काल गोकुल में पल रहा है, बढ़ रहा है। उसे अब इस सम्बन्धमें कोई अनिश्चय नहीं है कि उसको मारनेवाला कहाँ उत्पन्न हुआ।

वो ही देवकि लाल काल मेरो बन आयो। चतुराई वसुदेव नन्द के गेह छिपायो।।
सकल खोज करू बन्द एक गोकुल को छानो। शंका लागे सत्य पूतना कीन पयानो।।

वही देवकी का लाल जिसे आकाशवाणी ने मेरा काल बताया था, वसुदेव ने बड़ी चतुराई से नन्दराय के घर में छिपा दिया है। उसका बड़ा भारी प्रमाण पूतना का ध्वंस है। अब आप लोग अन्य स्थानों पर मेरे काल को ढूंढ़ना बन्द कर दो और गोकुल को छान मारो। पूतना की मृत्यु से मुझे मेरी शंका सत्य प्रतीत होती है। अदृश्य वायुशरीरी उत्कच शायद सफल हो जाय। जो दिखता ही नहीं उसे कोई पकड़ भी कैसे सकता है।

प्रहरी बन्दीगेह के, मो सों कीन दुराव। मृत्यु दण्ड तिन दीजिये, निज करनी फल पाव।।

दैत्यराज कंस ने क्रोध से दहाड़ते हुए कहा, वसुदेव के द्वारा सन्तान बदलने के इस छल में बन्दीगृह के पहरेदारों ने भी उसका साथ दिया है। उनके सहयोग के बिना बन्दीगृह के विशाल ताले खुल नहीं सकते और प्रहरियों के चुपचाप रास्ता दिये बिना वसुदेव अपने पुत्र को नन्दराय के घर तक पहुँचाने नहीं जा सकता था। अत: कारागार के प्रहरियों को राजद्रोह के फलस्वरूप मृत्यु दण्ड दिया जाए।

परीक्षित बोले- प्रभो, भगवान सर्वशक्तिमान् हैं। वे विविध अवतार धारण कर भाँति-भाँति की लीलाएँ किया करते हैं। ये लीलाएँ हम लोगों के कानो को अतिशय प्रिय लगती हैं। सुनकर मन भी प्रफुल्लित हो उठता है। उनके श्रवणमात्र से तृष्णा की निवृत्ति, अन्त:करण की शुद्धि और भगवान में भक्ति तथा भक्तों के साथ मैत्री भी हो जाती है। इन लीलाओं के श्रवण से विषयों की तृष्णा पलायन कर जाती है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, सुनो कन्हैया ने पहले अविद्यारूप पूतना का विनाश किया। अब वे जडवाद का ध्वंस करने के लिये शकट-भंजन की लीला करने जा रहे हैं। यह लीला भगवान के जन्म से तीन महीने बाद हुई थी।

पूतना और कागासुर के मारे जाने के बाद कंस बड़ा दु:खी हुआ। कंसने श्रीधर विप्रको भेजा, कागासुरको भेजा और दोनों असफल होकर, आहत होकर गोकुलसे लौट आये।

उसने अपने सेनापतियों से उदास होकर पूछा कि ऐसा कौन है, जो कृष्ण को मार सकता है? कंस ने जब उपर्युक्त वचन सबको सुनाए तो सेनापति ने शकटासुर की प्रशंसा की जिससे उसका अभिमान बढ़ गया। वह दोनों हाथ जोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला हे स्वामी, यदि मुझे आप आज्ञा दें तो यहां से जाकर मैं कृष्ण को तुरंत ही मार सकता हूँ और यदि कहें तो जीवित भी ला सकता हूं। यह सुनकर कंस प्रसन्न हो गया। उसने तुरंत शकट को पान का बीड़ा दिया। सूरदासजी कहते

हैं कि कंस ने उसे बार-बार वीर कहकर उसकी प्रशंसा की और उसकी हिम्मत बढ़ाई।

तो राजन्, जब भी भगवान के द्वारा कुछ नया काम हो जाता तब मैया उत्सव मनाने लगती थी। एक दिन लाला ने करवट बदल ली। मैया यशोदा यह देखकर प्रसन्न हो उठी। उसने उत्सव मनाने का निश्चय किया और संयोग की बात यह थी कि उस दिन लाला का जन्म नक्षत्र भी था। इस आनन्द को मनाने के लिये व्रजवासियोंने उत्सव किया।

गोकुल की सारी गोपियाँ एकत्रित हुईं। खूब गाना-बजाना होने लगा। लाला का अभिषेक भी कराया गया। नन्दरानी ने स्वस्तिवाचन करवा कर ब्राह्मणों को खूब खिलाया-पिलाया। बहुत-सा अन्न और वस्त्र भी उन्हें प्रदान किया, गायें भी दीं। नन्द बाबा ने प्रभूत दान-दक्षिणा के साथ ब्राह्मणों का खूब मान-सम्मान किया।

गायन वादन सब लव लाईं। नंद महर घर बजी बधाईं।
विप्रन वेद गान धुनि कीन्ह्यौं। मंत्रन पढ़ि पढ़ि आशिष दीन्ह्यों।।
कृष्ण जन्म नक्षत्र दिन, उत्सव भया अपार। यशुमति ने सुत युगल का, कीना विविध श्रृंगार।।

अन्नप्राशन का उत्सव था। आँगन के बीचोंबीच एक शकट (छकड़ा) था उसपर बहुत सारे सामान लदे हुए थे। विविध प्रकार के फल, मिठाइयां, दूध, फल, मेवे, और अधिक दही और घी-मक्खन भरे मटके। शकटासुर ने अपना आव देखा न ताव वो इन मटकों के बीच घुंसकर बैठ गया।

इसी समय मानो निद्रा देवी ने कन्हैया से प्रार्थना की कि- प्रभो, यदि आप कुछ देर के लिये सो जाते तो आप की आँखों पर बैठकर मैं भी आपके अंग-परिवर्तन का उत्सव देख लेती। उसकी प्रार्थना को अंगीकार कर लाला ने सोना चाहा। उनके नेत्रों में कुछ झपकी-सी आने लगी। यह देखकर मैया ने सोचा कि बड़ा अच्छा हुआ यदि लाला सो जाय तो आज मैं गोपियों का खूब स्वागत-सत्कार करूँगी। संसार के विषय रस की, धन-सम्पदा इत्यादि की जहाँ अगत्यता हुई, वहाँ गाड़ी उलट जाती है।

पांव को पकड़े हुए बाल कृष्ण अंगूठा मुख में डाले हुए हैं। यशोदाजी गा रही हैं, पालने को हिला रही हैं और श्रीकृष्ण पालने में खेल रहे हैं। अंगूठे का मुख में रखने का कारण यह है कि श्रीकृष्ण सोचते हैं कि जो चरण कमल लक्ष्मीजी के भूषण हैं और जिन्हें वे अपने हृदय पर से जरा भी नहीं हटाती, मैं भी तो देखूं उन चरणों में क्या रस है, इसलिए वे चरणों को हठपूर्वक मुख में रखे हुए हैं। फिर जिन चरणों के रस के लिए देवता और ऋषि लोग आपस में झगड़ते हैं, वह रस मुझे भी तो दुर्लभ है, इसलिए इस समय प्रभु उसका स्वाद ले रहे हैं। अंगूठे को ज्यों ही बालकृष्ण ने मुख में रखा प्रलय-काल समझकर सागर उछलने लगा, पृथ्वी को धारण करनेवाले पर्वत कांप उठे, कच्छप भगवान अकुला उठे, शेषनाग के हजारों फन डोलने लगे। अक्षयवट बढ़ने लगा, देवता घबरा उठे। आकाश में उपद्रव होने लगा। महाप्रलय के बादल भयंकर गर्जना के साथ उठ गए। भगवान ने कृपा की, उन्होंने देवताओं के कष्ट को जानकर पांव छोड़ दिया। भगवान राक्षसों को मारनेवाले और दुष्टों को कष्ट देनेवाले हैं।

तेहिं खल उर अस दुरमति आवा। चहेउ कृष्ण पहिं शकट गिरावा।।
कौतुक निधि प्रभु निसचर चीन्हीं। पाद प्रहार कौतुकहिं कीन्हीं।।
टुटेउ शकट हिं पाद प्रहारा। भएउ अधम उत्कचहिं सँहारा।।
परम पूत प्रभु पादहिं लागे। निसिचर सकल अभागहिं भागे।।
तुरतहिं बिमल रुचिर तनु पावा। रुचिर यान प्रभु प्रेरित आवा।।
तनु पुलकित लोचन सजल करि अस्तुति परनाम।

पाइ कृपा प्रभु कृपानिधि गएउ असुर गो धाम ।।

शुकदेव बोले- राजन्, शिशु श्याम शकट के नीचे पलकिया पर पौढ़े हुए थे। उनका छोटा-सा नूतन पल्लव के सदृश सुकोमल चरण शकट में लगा, लगते ही वह शकट उलट गया। दूध, दही आदि विविध भाँति के रसों से भरे हुए कुप्पे जो उसमें रखे थे, उसके उलटने से फूट गये। उसके पहिये इधर-के-उधर हो गये तथा उसका जूआ भी टूट गया।

वास्तव में यह शकटासुर वध की कथा है। श्रीकृष्ण पालने में लेटे हुए मुख में पांव का अंगूठा डाले उसे चूस रहे थे। अब इनके करोंसे चरण छूट गया है और पादांगुष्ठ मुखसे पृथक हो गया। कृष्ण रोने लग गये हैं। विशुद्ध आनन्दघन रो रहे हैं। निखिल लोकाश्रयको मातृ-अंकका आश्रय चाहिए और मातृ-स्तनपान के लिये रो रहे हैं।

श्यामसुन्दर के जन्म से तीसरे महीने के रोहिणी नक्षत्र में प्रात:काल आनन्दकन्द परमानन्द ने करवट बदली। मैयाने ब्राह्मणों और सखियों को बुलाया। ब्राह्मण वेदमन्त्र और आशीर्वाद वचन बोलने लगे। नन्दन पत्नी अतुला यशोदा को बोली- दीदी, लाला ने करवट लेली है। यह प्रथमोत्थान था। विधि-विधान सदा निष्ठुर होते हैं किंतु इनका पालन तो करना ही पड़ता है।

बोले शुक-सुनु भूप। श्यामने करवट लीन्हों। मैया अति मन मुदित बुलायो ब्रजमहँ दीन्हों ।।
आई गोपी चाव लै, सजी बजी सब आज है। जन्मोत्सव करवट बदल, एक पन्थ द्वै काज हैं ।।

महर्षि शाण्डिल्य, ब्राह्मणों एवं व्रजराज सहित आ गये लाला का अभिषेक प्रारम्भ हुआ। पहले गोमय लगााय गया फिर गौमूत्र से स्नान, गौ धूलि लेपन, स्वर्णकलश में भरे यमुना जल से मधुमंगल ने अभिषेक किया। इस तरह विभन्न प्रकार से नन्द-नन्दन का अभिषेक किया। उपनन्द पत्नी ने उनका श्रीअंग पोंछ वस्त्र धारण कराये। सुर-पूजनादि के बाद स्वस्तिवाचन हुआ। यशोदा ने लाला को दुग्धपान कराया, वे सो गये। यशोदा इधर-उधर देखने लगीं। सारा नन्द भवन गोपियों से भरा हैं। निद्रित लाल को कहाँ सुलाये। आज के उत्सव के लिए पूरा गृह लगभग खाली हुआ था। आंगन में बड़ा-सा छकड़ा खड़ा था। इस पर दूध, घृत, तैल आदि के मांट तथा अन्य सामग्री रखी हुई थी। यशोदा ने पालने को छकड़े के नीचे रखकर लाला को उसमें सुला दिया।

हूहल्लामहँ फँसी सुनी नहिँ माता बानी। धूम धड़ाको करूँ लालने मनमहँ ठानी ।।
नव पल्लव सम सुघर पग, लखि छकरा सूधे करे। छुवत भाँड़ रस घट शकट, अड़ड़धम्म करिकें गिरे ।।
करि दुलार पय पान कराई। शकट तलहिं पालन पौढ़ाई ।।
तेहिं दिन सुन्दर नन्द दुआरा। भएउ नारि नर भीर अपारा ।।
इक आवहिं इक निर्गमहिं सब उर मोद अपारू। छाँड़ि महत पन यशोमति करति सबहिं सतकारु ।।
नन्द यशोमति अतिथि सनमान्यो। आसनप बसन गोदानन मान्यो।
सुत अन्हवाइ पलँग पौढ़ायो। दूध पियन उन रुदन मचायो ।।
उत्कच लोमश शाप वश, छकड़हिँ बैठ्यो आय। वाहि उधारन हेतु हरि, पुनि पुनि चरण बढ़ाय ।।
अमित भाण्ड छकड़न धरि राख्यो। कहुँ गोरस कहुँ दधि भरि राख्यो ।।
कोमल कमल चरण उन लायो। छकड़हु टूट्यो भाण्ड बहायो ।।

राक्षस शकट (बैलगाड़ी) बनकर आया। शकटासूर की आँखे फटी-की-फटी रह गयी। ऐसा सुन्दर रूप तो उसने कही देखा नहीं। इस बालक को मारे बिना मैं कंस के पास लौट नहीं सकता। नहीं तो उसके अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। शकट को जहाँ खड़ा किया गया था वह जमीन समतल नहीं थी और शकट का सन्तुलन ठीक नहीं था। उसका एक पहिया

प्राय: धरती को छोड़े हुए था। कन्हैया का एक पद-प्रहार ही पर्याप्त था उसे पूर्णतया असन्तुलित कर देनेमें और हुआ भी वही। कन्हैया ने अपनी एक जोरदार किलकारी मारी और अपने दोनों पैरोंको शकट के पेंदे में मारा। शकट अपने साज-सामान के साथ एक ओर झुककर पूरी तरह उलट गया। सारे भाँड और दूध भरे पात्र गिर गयें और नीचे दब गये।

उसने चाहा कि बालकृष्ण को पालने सहित दबाकर मार डाले, किंतु प्रभु ने अपना पांव झटके से छोड़ा। पांव के स्पर्श मात्र से शकट चूर-चूर हो गया और राक्षस मर गया। घटना में भयंकरता थी, किंतु सूरदासजी ने इस भयंकर राक्षस-निपात को खेल में परिवर्तित कर दिया। लोग श्रीकृष्ण के खेल मात्र को जान सके जैसे सब अनजाने में हो गया। सूरदासजी ने ब्रज में समस्त ईश्वरीय अलौकिक कार्य खेल (लीला) के द्वारा करवाए हैं। छकड़ा उलट गया, मटका फूट गया, दूध-दही-घी बिखर गया। यशोदा आदि गोपियाँ आश्चर्य में पड़ गयीं।

नैना खोले बाल वर, लगे क्षुदित भर रोन। पाद पछारे जोर सों, उलटा गाड़ा जौन।।

शकटासुर निरन्तर नीचे की ओर बढ़ रहा था, लाला को दबाने के लिए। लोमश के आशीर्वाद की पूर्ति भी करनी थी आनन्दकन्द को। अपने मृदुल अरुण चरणों से शकटासुर का स्पर्श कर दिया। सकट जो रसे चरमराया। शिशु पीछे हट गये। शकटासुर उलट गया। भारी नाद हुआ। इससे भी अधिक धमाका उन पात्रों ने किया जो उसमें भरे थे। उत्कच को जीवत्व से मुक्त कर अपने धाम भेज दिया। सकट का पलटना आश्चर्य और चर्चा का विषय बना। यहाँ वृषभ भी नहीं है जिनके द्वन्द्व से यह पलटता, कोई राक्षस राक्षसी भी नहीं जो सकट को पलटते, अपने भार से असन्तुलित होकर पलटता तो कल से अब तक क्यों नहीं पलटा। यशोदा तो लाला के अंग प्रति अंग को देखने लगीं कहीं चोट तो नहीं लगी।

जब प्रलय होती है तो सागर बढ़ता है। समस्त संसार सागर में डूब जाता है। नहीं डूबता तो केवल अक्षयवट जिसमें केवल एक पत्ता है। यह पत्ता सागर के ऊपर होता है और उस पर भगवान बालकृष्ण के रूप में लेटे हुए अपने हाथ से अपना पांव पकड़कर उसका अंगूठा मुख में डाले चूसते रहते हैं। प्रलय करनेवाले हैं शंकरजी, जो तांडव नृत्य करते हैं। बादल प्रलयकालीन वर्षा करते हैं। पृथ्वी डोलती है। पृथ्वी को संभालने वाले शेषनाग के फन डोलने लगते हैं। आकाश में उपद्रव होने लगते हैं। दयानिधान श्रीकृष्ण ने देवताओं के मन की शंका को समझकर अपना पांव छोड़ दिया। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु राक्षसों का संहार करनेवाले और दुष्टों के हृदय को चोट पहुंचानेवाले हैं।

भड़भड़ाहट रव सुना यशोदा बाहर भागी। लाला किलकत देखि उठाया छाती लागी।।
कहा भयो कैसे भर गड़ा उलटि गिराया। भूकम्पन नहिं भया नहीं कोइ अंधड़ आया।।

यशोदा ने कन्हैया को थपकी लगानी शुरू की। कन्हैया ने सोचा कि यदि मैया सुलाना ही चाहती है तो मैं सो जाऊंगा। उन्होंने आँखें बन्द कर ली। यशोदाजी कृष्णजी को सुला रही हैं। उनको सोते हुए देखकर तीनों लोक कांपने लगे तथा शिव और ब्रह्माजी भ्रम में पड़ गए। भय का कारण कदाचित यह है कि यदि श्रीहरि सो जाएंगे तो सृष्टि कैसे चलेगी? उनके नेत्र अलसाए हैं और आँखें अधखुली हैं। आंख के काले, लाल और सफेद रंग पलकों पर इस प्रकार दिखाई पड़ रहे हैं जैसे सूर्यास्त के समय संकुचित दो कमलों में रात्रि के कारण भौंरे उड़ नहीं पाते हैं, स्वास लेता हुआ उनका पेट इस प्रकार ऊपर-नीचे हो रहा है, जैसे क्षीरसागर की शोभा होती है। ब्रह्माजी जो पहले भगवान की नाभि कमल पर थे, अब पछता रहे हैं कि वे क्यों उतर गए। श्याम सुंदर श्रीकृष्ण ने अपना हाथ सिर के नीचे रखा हुआ है। ऐसा लगता है मानो शेषनाग ने श्रीहरि के ऊपर अपने फनों की छाया कर दी है।

माताको अपने शिशुको सुलाने योग्य स्थान मिल गया। गोपोंने आंगनमें खूब बड़ा छकड़ा खड़ा कर दिया है। आजके

उत्सवके लिए लगभग पूरा गृह खाली किया गया। घरके दूध, दधि, नवनीत, घृत, तैल आदि के सब पात्र इस छकड़ेपर सजा दिये गये हैं। यशोदाने पलनेको छकड़ेके नीचे रख दिया है और दाऊ, ऋषभ, विशाल, अर्जुन जैसे बालक छकड़ेके पास आ बैठे हैं। यशोदाने ठीक ही सोचा है कि उनका शिशु यहाँ ठीक सो सकेगा। उनको गोपियोंके सत्कारमें लगना है। बालक तो अपने इन नित्य सखाको छोड़कर कहीं जाते नहीं। ये यहाँ रहेंगे।

मैया ने देखा कि कन्हैया सो गया है अत: उन्होंने पालने पर लाला को सुला कर उसे शकट (बैलगाड़ी का छकडा) के नीचे रख दिया। शकट में दूध, दही, मक्खन आदि के भरे मटके रक्खे थे। उत्कच शकटमें आविष्ट हो गया। अपवित्र कर दिया इसने शकटपर रखे सब भाण्डों और उसके पदार्थोंको। ये दैत्य-स्पर्श-दूषित पदार्थ क्या अब किसी भी गोपके उपयोग योग्य रह गए?

शकट अध: शुभ दोल में, शयन कराये बाल। उत्सव कारज में लगी, रहा न शिशु का ख्याल।।
निज बांधव गृह आय जो, तिनका कर सम्मान। बहु बाजे बजवाय के, दिये द्विजन को दान।।
दानव उत्कच नाम तब, सूक्षम तनु को धार। शिशु मारण हित शकट को, उलटा करण विचार।।
हरि ने पद कर शकट को, दिया असुर पर डार। तनु को तज कर दैत्य तब, गमना इन्द्र अगार।।

थोड़ी देर में श्यामसुन्दर की आँखें खुलीं। इसी समय कंस के द्वारा भेजा गया एक असुर पात्रों से भरी हुई उस गाड़ी पर आकर बैठ गया। वह भगवान को मारना चाहता था अत: वह अपने शरीर के भार से उस शकट को पृथ्वी में धंसाने लगा। दुष्ट उत्कच अपने भारसे शकट को दबाने लगा।

इसी समय लाला की दृष्टि उस असुर पर पड़ी। वे मामा का काम तमाम करना चाहते थे अत: स्तनपान के लिये रोने लगे। उस समय मनस्विनी यशोदा जी उत्सव में आई हुई गोपियों के स्वागत-सत्कार में बहुत ही तन्मय हो रही थीं इसलिये उन्हें कृष्ण का रोना नहीं सुनाई पड़ा तब श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे।

भगवान ने कृपा की, उन्होंने देवताओं के कष्ट को जानकर पांव छोड़ दिया। भगवान राक्षसों को मारनेवाले और दुष्टों को कष्ट देनेवाले हैं।

लागि ब्रहहिं भूषण अति भूखा। करन लगे रोदन मुख रुखा।।
तेहिं छन उत्कच निसिचर आवा। ताहि मलिन मति कंस पठावा।।

शकट पर बैठा हुआ असुर बड़े वेग से ज्यों ही गाड़ी को नीचे दबा कि भगवान ने अपना नन्हा लाल-लाल कोमल पैर शकट में ऐसा मारा कि वह विशाल शकट भयंकर शब्द के साथ उछलकर उलट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वेग से गिरने के कारण उसके धुरी पहिये आदि सभी अंग चूर-चूर हो गये। वह असुर भी उसी गाड़ी के नीचे दब कर तत्काल मर गया। शकट में बैठने के कारण उसे शकटासुर कहा जाता है। छकड़ा जोरसे चरमराया तो बालक डरकर पीछे हट गये। नन्दनन्दनका पाद-स्पर्श पाकर पूरा शकट उलट कर धड़ामसे गिर पड़ा। सब रखे पात्र फूट गयें और शकट धमाके के साथ उलट गया। दूध, दधि, नवनीत, घृत, तैल आदि सब एकाकार होकर पूरे प्रांगणमें फैल गये।

गोपी इत उत भगी भई भयतें व्याकुल अति। एकमात्र घनश्याम नन्दरानीकी गति मति।।
दौरीं छकरा ओर अबहिँ जहँ श्याम सुवाये। उलट्यो देख्यो शकट झपटिकें लाल उठाये।।
प्यायो पय द्विज आइ सब, शान्ति पाठ सबने कर्‌यो। अति विस्मित सबई भये, गोपनि छकरा पुनि धर्‌यो।।
जनम नक्षत्र जबहिं जब होई। करहिं महा उत्सव सब कोई।।

एक समय अस अवसरु आवा। भएउ सुमंगल मोद महावा।।
लीन्हिं द्विजन्ह पुर वासिन्ह बोली। आवहिं झुण्ड झुण्ड सुठि टोली।।
नन्द यशोमति अति सुख माना। कीन्हिं सुमंगल सकल बिधाना।।
जिहि नक्षत्र मोहन भये, सो नक्षत्र परी आय। चारु बधाये रीति सब, करत यशोदा माय।।

हिरण्याक्ष का एक बेटा था उत्कच। वह महान् बलवान और विशाल शरीर का था। उसे अपने इस सुपुष्ट महाकाय होनेका भी अहंकार बहुत था। उत्कच अदृश्य रहता है। वायुशरीरी है। मथुरामें सब जानते हैं कि चाक्षुष मन्वन्तरमें उत्कचने जब मदमत्त होकर महर्षि लोमशके आश्रमके बहुत-से वृक्ष उखाड़ दिये, तब महर्षिने क्रोधमें आकर इसे शाप दे दिया- तू घोरवायुके समान वृक्षोंको गिराता है, अत: वायुदेह हो जा। उत्कच चाहे जब, चाहे जिसके गृह या उद्यानमें उत्पात करने लगता था। वस्त्र फटने लगें; भाण्ड गिरने-फूटने लगें, वृक्ष टूटने लगें; और कोई कारण न दीखे तो लोग समझ लेते थे कि उत्कच आ गया है। इस असुरके अट्टहास और दुर्वाक्य कभी भी आकाशसे आने लगते थे। कुशल यही थी कि वायुशरीर होनेके कारण यह अधिक देर कहीं टिक नहीं पाता था।

एक बार उसने लोमश ऋषि के आश्रम के वृक्षों को उखाड़ कर इधर-उधर फेंक दिया। उत्कच ने मदान्ध होकर आश्रम के वृक्षोंसे अपना शरीर रगड़ना प्रारम्भ किया। उसे देह-कण्डू दूर करने के लिए वनमें कहीं वृक्ष ही नहीं मिले? लोमश ऋषि के आश्रम में उसने बहुतसे वृक्ष गिरा दिये। इस पर ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने उसे शाप दिया- अरे दुष्ट, जा तू शरीर-विहीन हो जा। शाप देते ही उसका शरीर गल-गल कर गिरने लगा। यह देखकर वह ऋषि के चरणों पर गिर कर गिड़-गिड़ाने लगा- प्रभो, क्षमा कर दीजिये। मेरा शरीर मुझे लौटा दीजिये, मुझे आप के प्रभाव का ज्ञान नहीं था अत: ऐसी गलती हो गई। इस पर लोमश जी प्रसन्न हो गये। महात्माओं का शाप भी वरदान बन जाता है। उन्होंने कहा- वैवस्वत मन्वन्तर में श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से तेरी मुक्ति हो जायेगी। वही असुर छकड़े पर आकर बैठ गया था और भगवान श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से मुक्त हो गया। ऋषि के शाप के प्रभाव से उत्कच वायुरूप शरीरवाला बन गया था अत: श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उसे किसी और ने नहीं देखा। जब जोर का धमाका हुआ तब उत्सव में सम्मिलित सभी गोप-गोपियों की दृष्टि उधर गई। दासी चिल्लाती हुई दौड़ने लगीं आवाज सुनकर प्रहरी भी दौड़ें। सबको कन्हैया की चिंता थी पर वह तो शकट के ऊपर अपने पालने में किलकारियाँ मार रहा था।

टूक टूक लख शकट को, नन्दादिक सब लोक। करहैं विविध विचार तब, सुतहित उपजा शोक।।
कैसे गिरा शकट यह भाई। अति प्रचंड आँधी नहि आई।। नहि कुछ वसुधा कम्पित होई। उष्टर गज आया नहि कोई।।
जा पर घृत के पात्र अपारा। अपने आप न गिरने वारा।। भयी ईश की मो पर दाया। जो शिशु रथ नीचे नहि आया।।

हड़बड़ा कर सभी उधर दौड़ पड़े। नन्द आदि गोप एवं यशोदा, रोहिणी आदि गोपियाँ इस दृश्य को देखकर चकित हो गईं। वे परस्पर कहने लगीं- आखिर यह सब कैसे हुआ? इतना विशाल शकट कैसे पलट गया? इस पर वहाँ खेलते हुए बालकों ने कहा- अरे नन्द बाबा, अरी मैया यशोदा, तेरे लाला नें ही तो रोते-रोते पैर से मार कर उस शकट को उलट दिया है, आप को नहीं पता। हम लोगों ने इसे अपनी आँखों से देखा है।

सब चिल्लाकर कहने लगे- हे विधाता, यह क्या हुआ, सारे जगत की रक्षा करनेवाले हमारे पुत्र की रक्षा करो। बड़ी दु:ख भरी पुकार के साथ यशोदा और गोपियाँ दौड़ी वे अकुलाकर चीत्कार करने लगी।

रोहिणी बोली- शीघ्र बताओ। सब बालक भाग गये उनमें से एक बोला- लाला ने पैर मारकर पलट दिया है। लाला ने

दुग्धपान करते माँ के आँचल से बाहर अपना दक्षिण चरण निकाल दिया यह संकेत देने के लिए कि इस चरण से मैंने सकट को पलट दिया। गोप-गोपियोंमें चर्चाका विषय बना कि यह शकट उलटा कैसे? यहाँ कोई वृषभ भी नहीं था, कोई पुरुष भी नहीं था, कोई राक्षसी भी नहीं दीखी। अनेक गोप लगकर भी इतना भारी छकड़ा सीधे उठाकर उड़ नहीं सकते थे। अपने भारसे भी यह असन्तुलित होता तो सायंकाल होता। गोपोंने मिलकर छकड़ेको सीधा कर दिया।

सुनि शकटहिं भंजन रव घोरा। हाहाकार भएउ सब ओरा।।
नर नारिन्ह तँह आतुर धाए। कुशल कृष्ण लखि अति सुख पाए।।
पूँछहिं सकल परस्पर बाता। कवन भाँति भा शकट निपाता।।
कहेउ बाल कन्हिं कृष्ण गिरावा। तदपि न काहु भरोषहिं आवा।।

उन लोगों को बालकों की बात का विश्वास नहीं हुआ क्योंकि वे बालक कन्हैया के अनन्त बल को नहीं जानते थे।

अँसुवन झरत महर तहँ आयो। नन्द नँदन उन गोद बिठायो।
हिये लगाय परम सुख मान्यो। रह-रह रोवत सुनि अकुलान्यो।।

यशोदा जी ने समझा कि यह किसी ग्रह का उत्पात है। उन्होंने अपने रोते हुए लाड़ले लाल को गोद में लेकर ब्राह्मणों से वेदमन्त्रों के द्वारा शान्तिपाठ करवाया और फिर वे उसे स्तन पिलाने लगीं। गोपों ने बैलगाड़ी को उठा कर खड़ा किया। उसके टूटे अवयवों को जोड़कर ठीक किया। शकट को पलटकर सीधा किया और उसमें असुर की लाश शकटासुर को देखकर सभी दंग रह गये। कन्हैया का बाल भी बाँका नहीं हुआ उल्टा राक्षस मरा पड़ा था।

पलनामहँ पौढ़ाइ लालकूँ मातु झुलावैं। थपथपाइ कछु कहें हलावें अति सुख पावैं।।
लीन्हों करवट श्याम लगे रोवन जग बन्दन। दीयो आँचल मातु पियो पय पुनि नँदनन्दन।।
पय पियाइ मुख चूमिकें, गोदीमहँ बैठाइकें। मातु खिलावत मगन मन, इत उत वस्तु दिखाइकें।।

ब्राह्मण बुलाये गये। स्वस्ति पाठ हुआ। गौ, अन्न-वस्त्र का दान हुआ। शकटासुर का अन्त हो गया, किन्तु कंस की क्रोधाग्नि और प्रबल हो गई।

ब्राह्मणों ने हवन किया और दही, अक्षत, कुश और जल से भगवान और छकड़े की पूजा की। मैया ने ब्राह्मणों को अच्छे-अच्छे पकवान खिलाए। नन्द बाबा ने उन्हें अन्न, वस्त्र, रत्न और गायें प्रदान की। सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणों ने हार्दिक आशीष प्रदान किया। वेदज्ञ सदाचारी ब्राह्मणों के आशीष कभी निष्फल नहीं होते हैं।

लघु शिशु क्षुधकर व्याकुल होय। दुग्ध पान करने हित रोया।। रिस कर इसने पाद पछारा। पद प्रहार से गाड़ा डारा।।
बाल वचन को गोप सब, मिथ्या करके मान। जननी सुत को गोद ले, दुग्ध कराया पान।।
करवाया स्वस्त्ययन तब, उर ग्रह शंका मान। अन्न वस्त्र गो रत्न घृत, दिये द्विजन को दान।।
मम प्रतिकूल दैव अब भैना। क्षण भर बालक लेत न चैना।।
विविध कलेश शिशुन पर आवें। निज भागन से ये बच जावें।।
पलना ढिग खेलत हते कछुक गोपकेबाल। तिन्हन कह्यो डार्‌यो शकट पलना से नँदलाल।।
बहुत भाँति करुणाकरी और दियो बहुदान। बार-बार नँदलाल के रक्षपाल भगवान।।

जो किसी के गुणों में दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमान से रहित हैं ऐसे ब्राह्मणों का आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता है। आजकल गोकुल में ग्रहों का बड़ा उत्पात है। इससे बचने के लिये

बालक के सकल कल्याण के लिये ब्राह्मणों से आशीर्वाद दिलाऊँ। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। सांसारिक भावनाएँ ही ग्रह हैं जो गोकुल रूपी हृदय में उत्पात मचाकर अनिष्ट करती है। अत: अपने कल्याण के लिये गौ-विप्र, गुरु, पुरोहित, बड़े-बूढ़ों को अभिवादन करना चाहिये। आयु, सत्त्व (विद्या), यश और बल की वृद्धि होती है तथा ग्रहों की शांति होती है। रूप पर संसार के नेत्र चंद्र और सूर्य के करोड़ों रूप लज्जित होते हैं।

शकट गिरयो उत्कच दब्यो, वायु देह बिनसान। भव्य देह लहि शरण गहि, बैठयो दिव्य विमान।।

कभी-कभी बिना कुछ किए भी बहुत कुछ हो जाता है और कभी-कभी बहुत कुछ करने पर भी कुछ नहीं होता।

शकट-भंजन की लीला के द्वारा संसार के लोगों को यह सन्देश दिया गया है कि- भगवान को सर्वदा सबसे ऊपर रक्खो, गृहस्थी को भगवान के नीचे रक्खो, तभी गृहस्थी की गाड़ी सकुशल चलेगी। यशोदा जी ने यही गड़बड़ी कर दी थी। उन्होंने गृहस्थी की सामग्री को तो रक्खा छकड़े के ऊपर और भगवान को लाला को रक्खा उसके नीचे अत: उनकी गृहस्थीरूपी गाड़ी उलट गई तथा दूध-दहीरूप विषय विनष्ट हो गये। क्रिया और लीला में अन्तर है। जिसके साथ कर्तृत्व का अभिमान और सुखी होने की इच्छा है, उसे क्रिया कहते हैं। जिसके साथ कर्तृत्व का अभिमान नहीं है तथा दूसरों को सुखी करने की इच्छा है, उसे लीला कहते हैं। जीव जो कुछ करता है, वह क्रिया है और ईश्वर जो कुछ करते हैं, वह लीला है।

संसार का व्यवहार करते समय भी दृष्टि तो भगवान पर ही होनी चाहिये। यशोदा मैया संसार के व्यवहार में इस प्रकार निमग्न हो गईं कि उन्होंने भगवान को ही भुला दिया अत: विपत्ति आ खड़ी हुई। ज्ञानी महात्मा भी व्यवहार तो करते ही हैं, किन्तु ईश्वर को वे कभी नहीं विस्मृत करते।

आज रविवार हैं कान्हा चार मास का हो गया। शिशु के सर्वांग सूर्य रश्मि पड़नी चाहिये। अब अनुकूल समय आ गया है। हेमन्त का शुभारम्भ हो गया है। इस समय सूर्य रश्मियाँ प्रखर नहीं है। महर्षि ने इस समय का मुहूर्त दिया हैं। अभिनन्द पत्नी पीवरी सबसे पहले पधारीं तो रोहिणी रानी लाला को उनके अंक में लिये निहारती विचार करती है- सुकुमार है यह कैसे सह पायेगा भुवन भास्कर की ऊष्ण किरणों को। मुझे इस अवस्था में भी हेमन्त का अतप सहन नहीं होता फिर यह तो नवनीत कलेवर है।

सब गोप-गोपांगनायें सूर्योदय से पूर्व ही नन्दभवन में आ गये। पूजन प्रारम्भ हुआ। गणपति पूजन, नान्दीमुख श्राद्धादि सब ही सम्पन्न हो चुके। स्वस्ति पाठ, शंखध्वनि के मध्य नन्दरानी अपने अंक में लिए बैठी हैं नन्दलाल को। भूमि स्पर्श करानेके लिये भूमि पूजन हुआ। नन्दराय ने भूमि पूजन किया। नन्दनी ने अर्घ्य दिया, नैवेद्य समर्पित्त किया। लाला के अपने दोनों चरण नीचे लटकाये, कुंवर को भूमिपर बिठाया गया। कुछ ही क्षण में वह हूँ हाँ करता लुढ़क गया। सब आनन्दित हो जयनाद करने लगे।

७) तृणावर्त वध- कंस को लग रहा था शकटासुर ने कृष्ण का वध कर दिया होगा। उसने मथुरा में महोत्सव के आयोजन का आदेश दिया। राजमहल के बाहर नगाड़े और शहनाइयां बज रही थीं। राजदरबार में नर्तकियों का नृत्य हो रहा था। स्वर्णपात्रों में भर-भर मदिरा का पान हो रहा था। अपने महल के अन्त:पुर में रात-दिन रंगरेलियों में रत रहता था। भय, आशंका और अनिश्चितता का भूत उसके जीवन को ग्रसित कर रहा था। उसे लगने लगा कि वह आज समाप्त हो गया। ईश्वर में कंस का विश्वास नहीं था क्योंकि उसके विचार से बल-बुद्धि और ऐश्वर्य की दृष्टि से उससे कोई बड़ा नहीं था। अत: अगर कोई ईश्वर कहीं था तो वह यहीं था और वह स्वयं कंस था। कंसने विचार किया पूतना-अविद्या नष्ट हो गयी, उत्कच-शकटासुर-जड़देहका अभिनिवेश मिट गया तो यह अहंता-लोकैषणाका-सुयशका उन्मादी, अन्धकार

देनेवाला उत्कट रजोगुण क्यों रह जाय अधिदैव जगतमें।

जिन्ह नक्षत्र ब्रजपति भये, परयौ वही शुभ आय। दान करें ब्रजराज अति, यशुदा रही जिमाय।।

कहते हैं लीला के समय श्रीकृष्ण एक वर्ष के हो गये थे।

तृणावर्त तब गर्जन कीनी परम भयंकर। मैं हूँ तुम्हें न मारे कोई राजन मत डर।।

तुमरो भयधर आजहिं मैं सह मूल मिटाऊँ। परिकर परिजन जननी सह सब धूलि मिलाऊँ।।

असुरों की सभा में कंस की पुकार को सुनकर परम भयंकर गर्जना करते हुए तृणावर्त असुर बोला, हे राजन्, कोई भय मत करो, मेरे रहते हुए तुम्हें कोई नहीं मार सकता। मैं आज ही तुम्हें मृत्यु का भय देनेवाले को जड़सहित उखाड़कर समाप्त कर दूँगा। मैं तुम्हारे शत्रु के, सारे परिकर को, सारे परिजनों को उसकी माता के सहित धूल में मिला दूँगा।

एक समय जननी युगल, सुत को लेकर गोद। लालन पालन कर रही, उर न समावत मोद।।

एक दिन की बात है। यशोदा मैया बैठी थीं। लाला मारे प्रेम के मैया की गोद में चढ़ गया। मैया ने लाला को अपनी बाहों में भर लिया और वह उन्हें प्यार-दुलार करने लगी। यशोदा जी के सद्धर्म-पालन का सती होने का ही यह लाभ है कि उनकी गोद में स्वयं भगवान् खेल रहे हैं। मैया ने प्यार-दुलार करते हुए लाला को ऊपर की ओर उछाला। पहली बार तो थोड़ा भय लगा फिर दुबारा उचकाया तो थोड़ा उत्साह हुआ। मैयाने अपने लालाको दोनों हाथोंमें लेकर ऊपर उचकाया। उनका लाला हँस पड़ा।

उनका लाला किलकारी मारने लगा अब उसे उचकाने में बड़ा आनन्द आने लगा। वह बार-बार यही चाहे कि मैया उचकावे। मैया के उचकाना बन्द कर देने पर लाला रोने लगता था फिर सहसा लाला चट्टान के समान बहुत भारी हो गया। मैया उसका भार न सह सकी।

एक दिवस ऐसो भयो यशुमति लाल खिलाय। सहसा, उनने अनुभव कियो, ललन भार अधिकाय।।

गिरि सम गुरु लख पुत्र को, महि में दिये बिठाय। तृणावर्त इक दैत्य ने, शिशु को लिया उड़ाय।।

अंधकार कर डारिया, एक मुहूरत काल। धूड़ उड़ा कर असुर ने, भये विकल गोपाल।।

एक दिवस सुठि मातु यशोदा। कृष्ण खेलावति लइ निज गोदा।।

प्रभु किलकत बीचहिं मृदु हासा। लेति छोरि उर सकल हरासा।।

बार बार छबि छटा निहारी। पुलकति बहुरि बहुरि महतारी।।

सहसा कृष्ण भए अति भारी। लीला निधि लीला बिस्तारी।।

मैया यशोदा अपने लालको उछालते-उछालते थककर बैठ गयी हैं; किंतु उसे अद्भुत लग रहा है। अपनेपर ही आश्चर्य हो रहा है- वे सोचने लगी कि मैं कैसी जननी हूँ मुझे अपना पुत्र ही भारी लग रहा है। इसके भारसे मेरे पदोंमें पीड़ा हो रही है, यह कोई सुने तो मुझे क्या कहेगी? मुझे आज क्या हो गया है? मैं अभी ही बैठी हूं और मेरे पद थककर दर्द करने लगे? अवश्य मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है। यह नन्हा नीलमणि भला क्या भारी होगा; किंतु अब इसे अंकमें बैठाये रहनेमें तो मैं असमर्थ हूँ। पदोंमें कुछ हुआ है, उनसे इतना भी भार सहा नहीं जाता।

यशोदाजी मन में अभिलाषा करती हैं- कब मेरा कृष्ण घुटनों के बल चलेगा और कब जमीन पर दो-कदम रखेगा? कब उसके दो दूध के दांत देखूंगी और कब वह तोतली वाणी में बोलेगा? कब वह नंदजी को बाबा कहकर और मुझे मां कहकर पुकारेगा? कब वह मेरा आंचल पकड़कर जिस-तिस किसी चीज के लिए झगड़ेगा? कब वह थोड़ा-थोड़ा खाएगा और अपने

हाथ से चीजें मुख में डालेगी? कब वह हंसकर मुझसे बातें करेगा, जिस शोभा को देखकर मेरा दु:ख दूर होगा। ऐसी बातें सोचकर वह कृष्ण को अकेले आंगन में छोड़कर अपने किसी काम से घर में चली गई। इतने में बड़े जोर का अंधड़ आया, साथ ही आकाश गरजने लगा। सूरदासजी कहते हैं, यह गरज सुनकर ब्रज के लोग जहां-के-तहां रुककर डर से कांपने लगे।

हलरावत गावत मधुर हरि के बाल विनोद। जो सुख सुर मुनिको अगम सो सुखलेत यशोद।।
कभी झुलावत पालने कभी खिलावत गोद। कभी सुलावत पलँग पर यशुदा सहित विनोद।।

फिर उन्होंने भार से पीडित होकर श्रीकृष्ण को पृथ्वी पर बैठा दिया। इस नई घटना से वे अत्यन्त चकित हो रही थीं। इसके बाद वे नारायण का स्मरण करके घर के काम में लग गईं।

तृणावर्त भभूड़े को बोलते हैं। यह विशेषकर राजस्थान में होता है। गोल-गोल धूल उड़ती है- आँधी में, तृण उड़ते हैं उसी का नाम तृणावर्त है। तृणावर्त नाम था झंझावात का। वो चाहता था कि नन्द के छोरे को उड़ा लाकर कंस के पास ले आये।

तृणावर्त आंधी, बवण्डरों का अधिपति था। मरुस्थल निवासी था। कंस से उसकी प्रीति थी। कंस बहुत उद्विग्न है। यशोदानन्द की आयु की गणना वह यशोदा से अधिक रखता हैं। आषाढ़ का महीना तृणावर्त का बल चरम सीमा पर था। महाराज कंस के अनुरोध पर गोकुल की ओर चल दिया। दिन का प्रथम प्रहर पूर्ण हुआ। तृणावर्त अत्यंत घोर शब्द, उमड़ता-घुमड़ता धूलिका अम्बार, कंकड़ियाँ, पत्ते, तृणोंका आकाश तक उठता क्रोशार्धमें घूमता प्रचण्ड वायुका विशाल वात्याचक्र। ऐसा वात्याचक्र जल लेकर सागर में उठता है; किंतु धरापर मरुभूमिमें भी देखा नहीं जाता। दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं। पक्षी क्रन्दन कर भागने लगे। वन-पशु और गोष्ठोंमें बँधी गायें बन्धन तोड़कर भागने लगे।

दैव का संयोग बड़ा विचित्र होता है। इसी समय बड़े जोर की आँधी आई। तृणावर्त नाम का एक दैत्य था। वह कंस का निजी सेवक था। कंस ने उससे कहा- जाओ गोकुल में। वहाँ नन्द का एक लाला है। उसे उड़ा कर मथुरा ले आओ। यहाँ मैं उसका वध कर दूँगा। कंस की प्रेरणा मिलते ही तृणावर्त बवण्डर का रूप धारण कर नन्द के गोकुल में पहुँचा।

तृणावर्त ने कृष्ण को देखा और सोचने लगा- कितना सुन्दर है यह बालक। हमारा राजा कंस तो किसी ईश्वर और देव-देवी को मानता नहीं, वह तो प्रकृति को अपनी चेरी समझता है।

तृणावर्त राक्षस अत्यंत उल्टे ढंग से आया। बवंडर के बहाने वह ब्रज के ऊपर आकर नंद की ड्यौढ़ी के भीतर घुस गया।

महावनमें तृणावर्त जिधर से आया है, तरुओं-लताओंको नि:शेष करता आया है। भारी वृक्ष भी जड़-सहित उखड़कर दूर जा गिरे हैं; किंतु गोकुलमें पहुँचकर बहुत कुछ वेग शिथिल हो गया है। गोपोंके गृहोंमें कोई ध्वन्स नहीं; क्योंकि तृणावर्तको अपनी शक्ति नन्द-प्रांगणमें केन्द्रित करनी है।

ब्रजरानी सुकुमार ब्रजकुमार को प्रांगण में छाया में बैठी दुग्धपान करा रही हैं और हृदय से लगा रही हैं। वायु वेगवान होने लगी और उस प्रबल वायु ने धीरे-धीरे झंझावात का रूप ले लिया। कृष्ण समझ गये तृणावर्त का आगमन हो रहा है।

कृष्ण भार नहिं सकी सँभारी। तुरत गोद में धरनि उतारी।।
तृणावर्त तेहिं अवसरु आवा। खल मायावी कंस पठावा।।
सुभग सुअवसरु असुर निहारी। दारुण रूप बवन्डर धारी।।
गा उठाइ लइ बाल कन्हैया। खेलत शिशु सुभाँय अँगनइया।।

कृष्णने अपना वजन बढ़ाया और यशोदा ने लालाको अपनी गोद में से उतारकर पृथ्वी पर रख दिया। यशोदा लाला को भूमि में बिठाकर पाकगृह में चली गई। तृणावर्त आया अत्यन्त घोर शब्द, उमड़ता-घुमड़ता धूलिका का अम्बार, पत्ते, कंकड़ियाँ

तृणों का आकाश तक उठता क्रोषार्ध में घूमता प्रचण्ड वायु का विशाल वात्याचक्र।

श्रीकृष्ण आंगन में अकेले लेटे हुए थे, उन्हें लेकर वह आकाश में उड़ गया। सारे गोकुल में अंधेरा छा गया। जो जहां था, वहीं छिप गया। नन्द-गृह के सामने भीषण क्रन्दन मच गया। सब हाय-हाय करने लगें। आँधी के वेग के आने के ठीक पूर्व ही कृष्ण को आँगन में छोड़ वह किसी काम से दौड़ी थी। इसी बीच चक्राकार वायु-प्रवाह ने कन्हैया को उड़ा लिया और धूल की आँधी में विलीन हो गया। आसमान के किस कोने में कहाँ था, जीवित भी है या मर गया यह भी कठिन है।

इधर तृणावर्त बवण्डररूप से जब भगवान श्रीकृष्ण को आकाश में उठा ले गया तब सोचने लगा कि इसे मैं अपने मालिक कंस के पास ले चलूँ किन्तु जब वह मथुरा की ओर बढ़ना चाहे तो टस-से-मस न हो सके। अपनी यह अशक्ति देखकर तृणावर्त सोचने लगा कि कहीं मैं नन्दबाबा के आँगन से किसी नीली शिला को तो नहीं उठा लाया क्योंकि कोई बालक इतना भारी नहीं हो सकता।

संयोग से वहाँ उसे बालक श्रीकृष्ण अकेले बैठे मिल गये। वह उन्हें उड़ा कर ऊपर ले गया और फिर मथुरा की ओर बढ़ने का प्रयास करने लगा। उस समय उसने धूलि से सारे गोकुल को आच्छादित कर दिया। लोगों के देखने की शक्ति हरली। उसके अत्यन्त भयंकर शब्द से दशों दिशाएँ कांप उठीं।

देखा नहि जब पुत्र को, जननी मही मझार। मूरछ हो महि में गिरि, करके हाहाकार।।
गोपी सब रोने लगीं, नन्दादिक सब गोप। रुदन करें अति विकल मन, देख बाल का लोप।।

तृणावर्त प्रसन्न मुद्रा में विचार करने लगा। पूतना, शकटासुर सशक्त थे। मारने आये थे पर स्वयं मर गये। मैं मारूंगा नहीं। महाराज कंस को सौंप दूंगा। मथुरा है ही कितनी दूर।

तृणावर्त हरि लख्यो देखिकें मन मुसकाये। अति भारे बनि गये मातुके अङ्ग पिराये।।
भूमि बिठाये श्याम मातु मनमहँ घबरावे। च्यों सुत भारी भयो भेद माता नहिँ पावे।।
लगी मातु गृह काजमहँ, असुर अवण्डर बनि गयो। लै हरिकूँ नभमहँ उड़्यो, अन्धकार ब्रजमहँ भयो।।

सारा ब्रज दो घड़ी तक रज और तम से ढका रहा। यशोदा जी घबड़ा उठीं। वे दौड़कर वहाँ गईं जहाँ कन्हैया को बैठाया था। पर हाय। यह क्या हुआ? कन्हैया वहाँ नहीं मिला। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त था। किसी को कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा था। बेटे के न मिलने से यशोदा का कलेजा किसी अनिष्ट की आशंका से काँप उठा। वे अधीर होकर रोने लगीं। मूर्च्छित-सी होकर भूमि पर गिर पड़ीं।

रज तम ढाँपि दियो ब्रज सारो। यशुदा तहाँ न सुतहिं निहारो।
शोक बिवश अति ब्याकुल माई। दीन बनी आकुल घबराई।।
भीषण अन्धड़ चला हाथ को हाथ न सूझे। बेबस सब ही भये कौन काऊ को बूझे।।
जननी के मन सुत के हेतू प्रीत घनेरी। लाला बेटा कहे बढ़न नहिं देत अँधेरी।।

ऐसा भीषण अन्धड़ चला कि हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था, सब लोग अपने आपको आँधी में बेबस पा रहे थे। ऐसी स्थिति में कौन किससे सहायता के लिए पूछता? माता यशोदा के हृदय में अपने पुत्र के लिए विशेष प्रेम था अत: अपने पुत्र के लिए बहुत चिन्तित थीं। मेरा पुत्र, मेरा लाल आदि शब्द वह अपने मुँख से कह तो रही थी परन्तु लाला को भीतर लाने के लिए अँधेरी एक कदम भी नहीं बढ़ाने देती थी।

छप्पर के घर उड़े गिरे तरु लघु अरु भारी। गैया सब डकराइ रौवे वत्स लचारी।।

नन्हे नन्हे बाल लिये मायें दुबकानी। जहाँ मिली जा ठौर आपनी देह लुकानी।।

तृणावर्त असुर ने ऐसा भीषण अन्धड चलाया कि गोकुल के छप्पर से बने घर उड़ गये। छोटे छोटे पेड़ जड़ से उखड़ गये। गायें भयभीत होकर डकराने लगीं और छोटे बछड़े बेबस होकर रम्भाने लगे। मातायें नन्हे नन्हे बालकों को छाती से लगाये जहाँ तहाँ दुबक गईं, जिसको जहाँ सुरक्षा दिखाई दीं, वहीं अपने शरीर को छिपा लिया।

जीव हानि नहिं योगमाय आ सबहिं बचाया। तृणावर्त कान्हा ढिँग आना प्रेरित माया।।

इकला देखा नन्दलाल द्रुत लियो उड़ाई। हर्षित मन ऊपर को उछरा घनी ऊँचाई।।

योगमाया ने अपनी सेवा सुचारू रूप से की। श्री हरि की इच्छा से तृणावर्त को गोकुल में प्रवेश तो करने दिया, परन्तु उस अन्धड़ के द्वारा किसी भी जीव की प्राण हानि नहीं होने दी। योगमाया की अन्त: प्रेरणा से प्रेरित होकर तृणावर्त असुर नन्दमहल की ओर आया। प्राँगण में नन्दनन्दन को अकेला बैठा देखकर अच्छा मौका जान शीघ्रतापूर्वक उसने उड़ा लिया। मन में प्रसन्न हो रहा था कि राजा कंस का शत्रु मेरी पकड़ में आ गया है, इसलिए ऊपर आकाश में बहुत अधिक उछल गया।

जब सोचा मथुरा चलूँ, तृणावर्त दृढ़ठान। नँद नन्दन गर्दन कसी, भार असह्य बढ़ान।।

तृणावर्त असुर ने जब कन्हैया को मथुरा ले जाने को विचार दृढ़ता पूर्वक मन में ठान लिया तब नन्दनन्दन को यह बात अच्छी नहीं लगी। इसलिए उन्होंने अपने शरीर का असह्य भार बढ़ा दिया और अपने दोनों हाथों से तृणावर्त के गले को कसकर दबाया। कण्ठ कसता जा रहा है। नेत्र बाहर निकल आये हैं। केवल गों-गों की अव्यक्त ध्वनि और इस ध्वनिको भी धरापर नीचे गोकुलमें गोप सुन नहीं सकते। गिर रहा है, गिर रहा है तृणावर्त, वह गिरा नन्दद्वारके बाहर शिलापर।

तृणावर्त के कण्ठ को, पीड़ित हरि ने कीन। शिशुन सहित नभ से गिरा, तब वो असुर मलीन।।

शिला पृष्ठ में गिरत ही, तजे दैत्य ने प्रान। तांके गल में युगल शिशु, लिपट रहे सुख खान।।

इसी समय बवण्डर का वेग कुछ शान्त हो गया। गोपियों ने यशोदा के रुदन को सुना। वे भी रोती हुई यशोदा के पास पहुँची। उन्हें कहीं कन्हैया दिखलाई नहीं पड़े।

यशुमति रोदन सुनि सखि दौरीं। ब्याकुल बूझतिं, कहा भयौ री।।

सुनि सुनि रुदन करतिँ ब्रज बाला। कहाँ गयो हा, हा, नँदलाला।।

यशोदा दौड़कर आई और इधर-उधर देखा तो श्याम-शाम कहकर पुकारने लगी। उसने कहा नंदजी, दौड़ो, दुहाई लगाओ। तुम्हारे पुत्र को अंधड़ उठा ले गया है। इसी बीच लोगों ने बताया कि कोई पर्वताकार वस्तु आकाश से आ रही है। श्रीकृष्ण ने राक्षस को पत्थर पर पटककर मार डाला और आप उसके ऊपर चढ़े हुए पाए गए। नंद दौड़े, यशोदा दौड़ी और तुरंत ही उनको उठाकर गले लगा लिया। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदा कहती हैं कि नहीं जानती कि श्रीहरि को क्या अच्छा लगता है?

खोजति मातु इतहिं उत ऐसे। मीन अगाधहिं नीरहिं जैसे।।

इहाँ असुर गुनि सफल प्रयोजन। गएउ कृष्ण लइ नभ दस जोजन।।

तासु कन्धु प्रभु भए अति भारी। शिशु पवारि खल चाहेसि मारी।।

खल अभिप्राय समुझि भगवाना। दाबि कण्ठ हरे निसिचर प्राना।।

ढूँढ़े गोपी ग्वाल सब, ले ले हरि का नाम। नन्द याशेदा शिर धुनें, रोवें ब्रज की बाम।।

इसी बीच कृष्ण ने उसका गला कस कर पकड़ लिया और बोले- मामा कंस ने मेरे लिये उड़न खटोला भेजा है। तृणावर्त घबड़ा उठा। वह अपना गला छुड़ाते हुए चिल्लाने लगा- छोड़ दे मेरा गला, छोड़ दे। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक

का भार तृणावर्त को असहनीय हो गया। उसका वेग शिथिल हो गया। उसे लगा कि वह भूल से कोई विशाल पर्वत या शिला उठा लाया। कंठ और जोरोंसे कसने लगा।

कन्हैया ने कहा- मामाजी, मैं किसी को जल्दी पकड़ता नहीं हूँ किन्तु एक बार पकड़ लेने पर फिर कभी छोड़ता भी नहीं हूँ। अब छटपटाओ मत। तुम्हारे उद्धार का क्षण आ गया। तुम बने तो बहुत चतुर थे पर तुमने भी वही भूल की जो पूतना ने की। यह कह कर श्रीकृष्ण ने जरा कस कर उसका गला पकड़ लिया। इससे उसकी आँखें बल्ल-बल्ल बाहर निकल आईं। वह विकराल शब्द करता हुआ धड़ाम से पत्थर की एक चट्टान पर गिर पड़ा। उसके शरीर के सारे अंग छितरा गये।

उत श्रीकृष्ण भयो अस भारी। सक्यो बवण्डर नाहिँ सम्हारी।।
उन छोड़न बरबस मन कीन्ह्यों। पै हरि कण्ठ पकरि गहि लीन्ह्यों।।
जस जस असुर तजन चह्यो, तस तस पकर्‌यो गाढ़। कृष्ण सहित छिति पै गिरयो, ब्याकुल मार दहाड़।।

लाला उसकी छाती पर पड़े-पड़े खेलते रहे। भयंकर विशाल कज्जल-कृष्ण शरीर असुरका शिलापर पड़कर स्थान-स्थानसे फट गया है। रक्तका प्रवाह फूट पड़ा है। शरीर से और फैल रहा है। हाथ-पैर फैलाये गिरा है। लाल-लाल केश बिखर गये हैं।

निसरि ज्योति प्रभु माहिं समाई। गिरेउ निसाचर तनु माहिं आई।।
गिरत निसाचर भा धुनि घोरा। निरखे सबहिं विकल तेहिं ओरा।।
तासु पीठ निज कान्हा देखी। धाई जसुमति बिलखि विशेषी।।
सुतहिं उठाइ हृदय छपकाई। बार बार मुख चूमति माई।।
पाइ प्रान धन भई निहाला। निज मनि लहि जिमि मनि धर ब्याला।।

चक्रवात का घोर नाद सुनकर नन्दरानी पाकगृह से आंगन में भागी किन्तु भयंकर अन्धकार एवं पलक खोलते ही धूल और कंकड़ी आँखों में भरती- नेत्र खोले नहीं जा सकते थे। नीलमणि लाला यशोदा व्याकुल हो ढूँढते-पुकारते व्यथित हो गयीं। अत्यन्त व्याकुल माता- वे इधर-उधर टटोल रही थी। पुकार रही थीं प्राणोंको एक आशा बचाये थी- चंचल हैं, कहीं चलकर दूसरी ओर गया होगा। इस अन्धड़में डरकर कहीं कोनेमें, कक्षमें दुबक गया होगा। रो रहा होगा और मुझे पुकारता होगा। श्याम नहीं हैं, नन्दनन्दन कहीं नहीं है। वह उड़ गया। बात्याचक्र उड़ा ले गया उसे। किसने कहा, कौन देखे। आर्त क्रन्दन गूँजने लगा प्रत्येक कण्ठसे यशोदाजी मूर्छित होकर गिर पड़ी।

रोहिणी ने सुना, गोपियों ने सुना, प्रहरियों ने सुना जो नीलमणि भवन में नहीं है। सब एक साथ कक्षों और आँगन, वारद्वारी, इधर और उधर चारों तरफ अँधेरे में, उस अन्धड़ में टटोलते पुकारते, एक दूसरे से टकराते खोजने लगे- और बोलने लगे नीलमणि कहीं नही मिला।

ऐसी आँधी चलायी कि ब्रज के बहुत वृक्ष टूटकर गिर गये, छप्पर उड़ गये, सम्पूर्ण ब्रजमण्डल धूलि से आच्छादित हो गया। घरों में धूलि भर गयी। सभी ने अपने नेत्र बन्द कर लिये, मुख में, कानों में, बालों में तथा सम्पूर्ण वस्त्र और शरीरों में धूलि भर गई। आँधी का साँय-साँय शब्द दशों दिशाओं में भर गया। गोप, गोपी तथा गौएँ इस भयंकर आँधी, तूफान और बवण्डर से भयभीत हो गयीं। एक मुहूर्त पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रज में सर्वत्र धूलि छायी रही और घोर अन्धकार व्याप्त रहा।

यशोदा दौड़कर आई और इधर-उधर देखा तो श्याम-श्याम कहकर पुकारने लगी। उसने कहा नंदजी, दौड़ो, दुहाई लगाओ। तुम्हारे पुत्र को अंधड़ उठा ले गया है। वात्याचक्र उड़ा ले गया। रोहिणी प्रांगणसे बाहर आनेसे पूर्व ही गिर पड़ी। गोपियाँ इधर-उधर निकलकर भागनेको उद्यत हुईं। आशा बहुत छलनामयी है। वात्याचक्र इतने सुकुमार शिशुको उड़ा ले गया। पता नहीं

कितने ऊपरसे, कहाँ गिरेगा शिशु। क्षीण-क्षीणतम सही आशा तो है कि कहीं कोमल स्थानपर गिरे और जीवित मिल जाय।

माता यशोदा दरवाजे के पास अब तक बेसुध पड़ी थीं, देवी रोहिणी को भी अपने शरीर की सुधि नहीं रही। आँधी शान्त हो जाने के पश्चात् श्री हरि के स्नेही लोग लाला कन्हैया की जहाँ तहाँ जाकर खोज करने लगे। अतुला चाची, बावरी सी होकर लाला को ढूँढ रही थी, इतने में कन्हैया की किलकारियों की आवाज उसके कानों में पड़ी, बाहर आकर उसके पैर ठिठक गये।

रोहिणि उठि यशुदा ढिँगा, जाय हिलाई देह। दीदी लाला कुशल है, देखो देखो एह।।

लाला के मिलने की आवाज को सुनकर रानी रोहिणी की बेसुधी टूटी और शीघ्रता पूर्वक बेसुध यशोदा के शरीर को हिला हिलाकर चेत कराया व कहने लगीं, दीदी, दीदी। अपना लाला कुशल से है, देखो देखो यह रहा।

यशुदा जागी लाल कहाँ कहिके चिल्लाई। पुत्र दिया जब गोद प्रान जनु वापस आई।।

बार बार चूमा पुनि सारे अंग सम्हारे। लाल तुम्हें कहुँ लगी नहीं प्रिय प्राण हमारे।।

माता यशोदा की बेसुधी दूर हुई तो मेरा लाल कहाँ है, चिल्लाते हुए कहा, मेरा लाल अकेला बाहर रह गया। लाला को सकुशल गोद में पाकर माता यशोदा को मानो प्राणों की निधि प्राप्त हुई हो। बार बार लाला के अंगों को चूमकर फिर सारे अंगों की सम्हाल की और बोली, हे मेरे प्राणधन, तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी?

इसी बीच लोगों ने बताया कि कोई पर्वताकार वस्तु आकाश से आ रही है। श्रीकृष्ण ने राक्षस को पत्थर पर पटककर मार डाला और आप उसके ऊपर चढ़े हुए पाए गए। नीलमणि सकुशल हैं सबके कण्ठों से एक ही हर्ष ध्वनि निकली। अतुला चाची दौड़कर आई उस राक्षस के वक्ष पर नीलमणि को उठाकर लेकर दौड़ पड़ी और कहने लगी जीजी, सकुशल है तेरा नीलमणि।

गोप गोपिका देख कर, तुरत उठाये बाल। दिये मात की गोद में, सुखी भये गोपाल।।

कण्ठ लगाकर शिशुन को, जननी अति हर्षान। मानो मृतक शरीर में, उलट आय हैं प्रान।।

तिने सनान कराय के, रक्षा पुन पुन कीन। दिये दान बहु द्विजन को, धन्य भाग निज चीन।।

पूरव में तप दान किया कुछ, कूप तड़ाग अराम बनाया। वा हरि पूजन कीन जपा हरि, नाम निरन्तर वा हरि ध्याया।।

वा शशि सूरज ग्राह समें कुरुक्षेत्र विषे तुलदान कराया। कालमुखानल में पड़ के पुनि, जो मम बालक जीवत आया।।

नंद दौड़े, यशोदा दौड़ी और तुरंत ही उनको उठाकर गले लगा लिया। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदा कहती हैं कि नहीं जानती कि श्रीहरि को क्या अच्छा लगता है? ब्रजवासी उस असुर को घसीटकर यमुना में डाल आए और बहुत-सा दान-पुण्य किया। यशोदा कहने लगी- तुम सबके भाग्य से यह वापिस लौटा है। महर्षि शाण्डिल्य के आने पर ग्रहशान्ति करवायी, लाला की शुद्धि करवायी।

ग्वालों की हिम्मत तो पूतना के समय भी श्रीकृष्ण को उठाने की नहीं हुई थी। परन्तु गोपियों ने पहले की भाँति दौड़कर कन्हैया को मृत पड़े दैत्य की छाती पर से उठाया और झाड़-पोंछ कर अच्छी तरह देख लिया कि कहीं चोट-चपेट तो नहीं लगी है।

सभी गोपियां अत्यन्त व्याकुल होकर यशोदा को उलाहना देती है कि मेरी इस प्रकार की बाणी सुन कर बुरा मत मानिएगा सही बात तो यह है कि शिशु का कैसा लालन पालन करना चाहिए तुम्हारे अन्दर कुछ भी योग्यता नहीं है। ऐसे घोर अन्धकार को देखकर तथा कठोर दारुण चक्रावात को देखते हुए भी कौन माता अपने अबोध शिशु को अपने गोद से अलग करेगी।

बालक को पूर्ण सकुशल देखकर यशोदा आदि गोपियों और नन्द आदि गोपों को बड़ा आनन्द हुआ और सभी कहने लगे कि हम लोगों का बड़ा भाग्य है कि हमारा लाला मृत्यु के मुख में से लौट आया। देखो तो भगवान की लीला कितनी अद्भुत है। हिंसक अपने पाप के द्वारा ही मारा जाता है। साधु अपनी समता से ही सम्पूर्ण भीतियों से मुक्त हो जाता है।

सैर सपट्टो करत असुर सङ्ग नममहँ डोलत। इत गोपी अरु गोप विरहमहँ सब मिलि रोवत।।
हरि सब देखे दुखी असुरको गरो दबायो। पटियापै लै गिरे ताहि परलोक पठायो।।
निरखि लालकूँ कुशल सब, मुदित मातु गोदी धरे। बालकृष्ण अद्भुत चरित, यो ब्रजमहँ बहुतक करे।।

१) तृणावर्त का अर्थ है- काम। जो सारे संसार के प्राणियों को तिनके की भाँति नचा दे, उड़ा दे, उसका नाम है तृणावर्त। यह काम ही है। यह ब्रह्मा से लेकर तुच्छ से तुच्छ प्राणी तक को नचाता रहता है। सबकी आँखों में धूल झोंक देता है। देखने-विचारने की शक्ति समाप्त कर देता है। जब प्राणी भगवान को अलग करके गृहस्थी सजाने-सँवारने लगता है, तब काम उसके मन में आकर खलबली मचा देता है।

२) तृणावर्त मरने की बेला में शिला पर गिरा। पत्थर शंकर का प्रतीक है। मृत्यु के देवता शंकर हैं। मामा की नगरी से आये हुए उनके सेवक को कन्हैया ने नहीं, शंकर ने मारा था।

पाण्डु देश में एक महाप्रतापी राजा थे। उनका नाम था सहस्त्राक्ष। एक समय वे गन्धमादन पर्वत पर स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे। पाण्ड्य नरेश सहस्त्राक्ष परम विष्णु-भक्त प्रजापालक थे। धर्माचरण करनेवाले सद्गुणी थे।

यह तृणावर्त असुर पाण्डेय नामक राजा था। वह सहस्त्राक्ष विष्णु भगवान का दास था और नित्य पूजा करने के बाद बहुत सा धन दान किया करता था। पाण्डेय राजा रात दिन गुरु मन्त्र का जाप पूरी श्रद्धा विश्वास के साथ करते, सन्त सेवा मन लगाकर करते और उनका नित्य प्रति श्रद्धा भाव बढ़ता ही जाता था। सहस्त्राक्ष प्रमत्त होकर रेवा (नर्मदा) में नारियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे।

एक दिन अपनी रानियों के सौन्दर्य ने इनके मन को भ्रमित कर दिया। चित्त में चंचलता इतनी अधिक बढ़ गई कि अपना शील स्वभाव गँवा बैठे। पाण्डेय राजा अपनी सुन्दर रानियों के साथ नर्मदा किनारे आए और नर्मदा नदी के पावन जल में किलोल करने लगे। स्नान करते समय राजा और रानियाँ परस्पर एक दूसरे की ओर जल उछाल डाल कर फेंक रहे थे। जल सिंचन के इस खेल में उनका अंग अंग प्रसन्न था। भगवान रुद्र के अंश से उद्भुत महर्षि दुर्वासा क्रोधावतार माने जाते है। क्षणिक आवेश में श्राप देते हैं।

नर्मदा नदी में पाण्डेय राजा की स्नेहमयी सुन्दर रानियों के साथ जल क्रीड़ा चलती रही, तब ही दुर्वासा ऋषि नर्मदा किनारे भ्रमण करते हुए उस स्थान पर आये और उन्होंने पाण्डेय राजा को अपनी पटरानियों के साथ जल केलि करते हुए देखा। राजा और रानियाँ जल केलि की उमंग में इतने मग्न थे कि वे ऋषिवर का आगमन जान तक नहीं पाये। जिसके कारण आदर सत्कार कर उचित व्यवहार नहीं कर पाये। कोई नारियोंके साथ हास-परिहासमें इतना असावधान हो जाय कि अभ्युत्थान देने योग्य पुरुषोंके आगमनका ही उसे ध्यान न रह जाय, ऐसी राजसिकता तो आसुर भाव ही है। अति शीघ्र क्रोधित होने वाले दुर्वासा ऋषि ने राजा द्वारा अपनी अवहेलना किया जाना समझा।

संयोग की बात यह थी कि उसी समय वहाँ महान् क्रोधी दुर्वासा आ पहुँचे। राजा ने अभ्युत्थान, प्रणाम आदि के द्वारा उनका उचित सम्मान नहीं किया। इस पर क्रुद्ध होकर मुनि ने शाप दिया- अरे निर्लज्ज अज्ञानी राजन्, संतों का अपमान तो असुरों का लक्षण है। तेरा असुरों जैसा व्यवहार है अत: जा तू असुर हो जा। जब वह उनके चरणों पर गिर कर गिड़गिड़ाया, तब दुर्वासा जी ने कह दिया- भगवान श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह का स्पर्श होते ही तेरी मुक्ति हो जायेगी। वही राजा तृणावर्त होकर आया था और श्रीकृष्ण का संस्पर्श प्राप्त कर मुक्त हो गया।

तृणावर्त की घटना के बाद मैया कन्हैया को जल्दी अपनी गोद से उतारे ही नहीं। वह लाला को हर समय गोद में ही रक्खे।

वे यह सोचकर बार-बार दु:खी होती थीं कि- पलंग पर सुला दिया तो पूतना ने उठा लिया, छकड़े के नीचे सुला दिया तो छकड़ा ही टूट कर गिर पड़ा और अकेले छोड़कर चली गई तो बवण्डर उड़ा ले गया। अब तो मैं इसे अलग छोड़नेवाली नहीं हूँ।

मैया अब एक पल भी नीलमणि को अपने से अलग नहीं होने देती। माँ के समान स्नेह सृष्टि में कौन दे सकता हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, गोप गोपी परस्पर में कहने लगे- अहो, यह कैसी अद्भुत बात हुई। बालक इस तृणावर्त असुर के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होकर भी फिर बचकर लौट आया तथा वह हिंसक दुष्ट असुर भी अपने आप ही मारा गया।

कंस ने कुछ दिनों के लिए नियति से समझौता कर लिया। मृत्यु का भय किसीका पीछा कहाँ छोड़ता है। राजयक्ष्मा का रोगी कभी निर्भय नहीं बैठ पाता। जब पासे ही विपरीत पड़ रहे हों तो व्यक्ति क्या करें? उस समय बेबसी खुलकर सामने आती है। उसके अहम् का बुलबुला पानी के बुलबुले की तरह बैठ जाता है।

यशोदा मैयाके स्नेहकी अधिकतासे उनका दूध अपने-आप झर-झर निकलने लगा। कृष्णने अपने-आप ही माताका स्तन अपने मुँहमें डाल दिया। माता ऐसी स्नेहकी बनी है कि उनमें स्नेह-ही-स्नेह है। लेकिन माँ का स्नेह ऐसा है कि जब वह अपने बालकके प्रति उमड़ता है, तब वह केवल भावात्मक नहीं होता, ठोस द्रव्यके रूपमें परिणत हो जाता है। माताका स्नेह, अपने बालकके प्रति दूध बनकर प्रकट होता है। यह विशेषता पिता, भाई, बहन, पुत्री किसीमें भी नहीं है। भावका ठोस वस्तु बन जाना, यह माताके स्नेहकी विचित्रता है।

एक दिन की बात है। यशोदा मैया बालक को अपनी गोद में लेकर स्तन-पान करा रही थी। ज्यों-ज्यों कन्हैया दूध पीता त्यों-त्यों माता का स्नेह बढ़ता जाता था। फलत: मैया के स्तन से दूध की धारा बहने लगी।

माताका जो स्नेह हैं, वह सृष्टिमें और कहीं होता ही नहीं। यह केवल माँकी ही विशेषता है कि उसके हृदयमें अपने लालाके लिए जो अमूर्त स्नेह होता है, वह दूध बनकर निकल आता है। स्नेह साकार भाव नहीं, निराकार भाव है, हृदयमें रहनेवाला है; लेकिन जब वह माँके शरीरमें पैदा होता है तब साकार दूधका रूप ग्रहण करके पुत्रके मुखमें प्रवेश करता है। बालक अपनी माँका हृत्पिण्ड है। जो माता अपने बालकको दूध नहीं पिलायेगी, उससे वह कैसे आशा कर सकती है कि उसका बालक आगे चलकर उसकी आज्ञाका पालन करेगा और अपनी पूर्व संस्कृतिकी रक्षा करेगा?

चतुर माताएँ बालक को दूध पिलाने के समय में यह ध्यान रखती हैं कि कहीं मेरा लाला अधिक दूध न पी ले अन्यथा अपच हो जायेगा। यहाँ तो माता के दूध और कन्हैया में होड़ लगी थी कि कौन पहले बन्द होता है। किसीको खिलाना-पिलाना प्रेमका परिचायक है।

मैया असमंजस में पड़ गई। मैया ने यह भी देखा कि कन्हैया प्राय: दूध पी चुका है। उसका पेट भर गया है। लाला को कैसे दूध पीने से अलग करें यदि जबर्दस्ती छुड़ाती है तो वह रोवेगा अत: उन्होंने बालक के गाल पर ऊँगली फेरनी शुरू कर दी। वह मुस्करा उठा। मुँह ढीला पड़ गया। मैया ने धीरे से अपना स्तन बाहर खींच लिया। माता के भोलेपन पर कन्हैया मन-ही-मन हँसने लगा।

भगवान सोचने लगे- अरी मैया, तू अकेलीकी मैया नहीं है, सारे विश्वकी मैया है। देख, मेरे साथ विश्व तेरा बेटा है और पेटके भीतर बैठकर सब तेरा दूध पी रहे हैं। इतनेसे दूधसे सबका पेट कभी भरनेवाला है, इनको कभी अपच होनेवाला है।

यासों मैया मोहिं तू, अविरल दूध पिवाय। जासों तेरो दूध पिय, विश्व तृप्त ह्वै जाय॥

यशोदा मैया ने देखा उस नन्हें बच्चेके मुँहमें पहाड़, द्वीप, नदी, सूर्य, अग्नि, वायु, नक्षत्र मण्डल, दिशाएँ, समुद्र, पर्वत, वन, स्थावर, जंगमल, प्राणी, चन्द्रमा, पृथ्वी, द्युलोक, भूलोक आदि स्थित हैं यहाँतक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा। तब

उसके होश उड़ गये। मैयाको लगा यह कोई जादू तो नहीं है, खेल तो नहीं है।

यह अद्भुत दृश्य देख वह चकित रह गयीं और नेत्र बंद कर अपने कुलदेवता श्रीनारायण का स्मरण करने लगीं। नारायण, नारायण, न जाने मेरे लाला को क्या हो गया। कहीं कोई असुर तो इसके मुख में नहीं घुस गया। रक्षा करो, रक्षा करो, इतना कहते ही वह झाँकी तुरन्त अदृश्य हो गयी यशोदा स्वस्थ हो लाला का मुँह चूमने लगी।

शुकदेव बोले- राजन्, एक दिन की बात है मैया यशोदा ने लालजी को गोद में लिया। मातृ-स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध झर रहा था। उसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक माता ने पान कराया। उनके दूध पीने पर माता उनके मन्द मुस्कान युक्त मनोहर मुख का चुम्बन कर रही थीं उसी समय शिशु श्याम को जमुहाई आयी, माता ने उनके मुख में इस सम्पूर्ण विश्व को देखा।

मुखमहँ माताने लखे, रवि, शशि, सागर, द्वीप, वन। अनिल, अनल, जल, नभ, अवनि, सरिता, पर्वत, जीव-गन॥

यशोदाजी बालक श्रीकृष्ण को ले गईं और बार-बार स्तन पिलाकर, मस्तक सूँघकर और आँचल से छाती में छिपाकर छोह-मोह के वशीभूत हो रोहिणी से कहने लगीं कि बहिन, मुझे दैव ने यह एक ही पुत्र दिया है, मेरे बहुत से पुत्र नहीं हैं। इस एक पुत्र पर भी क्षण भर में अनेक प्रकार के अरीष्ट ने आते रहते हैं। आज यह मौत के मुँह से बचा है। इससे अधिक उत्पात और क्या होगा? अत: अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा अब और कहाँ रहने की व्यवस्था करूँ? धन, शरीर, मकान, अटारी और विविध प्रकार के रत्नों से बढ़कर मेरे लिए एक ही बात है कि यह मेरा बालक कुशल से रहे। यदि मेरा बच्चा अरीष्टों पर विजयी हो जावे तो मैं भगवान श्रीहरि की पूजा, दान एवं यज्ञ करूँगी, तड़ाग, वापी आदि का निर्माण करवाऊँगी और सैकड़ों मन्दिर बनवा दूँगी। प्रिय रोहिणी, जैसे अन्धे के लिए लाठी ही सहारा है, उसी प्रकार मेरा सारा सुख इस बालक से ही है। अत: बहिन, अब मैं अपने लाला को उस स्थान पर ले जाऊँगी, जहाँ कोई भय नहीं हो।

यशोदा की गोद में श्रीकृष्ण किलकारी मार रहे हैं। अपने लाल के मुख को देख-देखकर वह कहती हैं कि तुम मुझ गरीब के धन हो। फिर श्याम के कोमल शरीर को देखकर बार-बार पछताती हैं। कहती हैं कि तुम तृणावर्त की मार से कैसे बच गए, मैं तुम पर बलिहारी जाऊं, पता नहीं किस पुण्य के कारण कोई सहायता कर देता है। ऐसा ही काम पूतना ने किया था और अब इसने भी वैसा ही किया। मां को दु:खी देखकर श्रीकृष्ण नन्हें-नन्हें दांत दिखाकर हंस पड़े। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार उन्होंने माता के चित्त से दु:ख को भुला दिया। यही तो प्रभु के प्रेम की लीला है।

एक दिन की बात है कि यशोदाजी अपने प्यारे बालक श्रीकृष्ण को गोद में लेकर दूध पिला रही थीं और वात्सल्य स्नेह से सरावोर हो रही थी। जब बालक श्रीकृष्ण दूध पी चुके और यशोदाजी उनके रुचिर मुस्कान से युक्त मुँह को चूम रही थीं, उसी समय श्रीकृष्ण को जँभाई आ गई। माता ने देखा कि उनके मुँह में आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, पृथ्वी, पर्वत, नदियां, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं। अपने पुत्र के मुख में सहसा सारा जगत् देखकर माता यशोदा का शरीर काँप उठा। वह आश्चर्य चकित हो गईं और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बन्द कर ली। इस प्रकार बालक श्रीकृष्ण ने अपने मुख में सारा विश्व दिखलाकर माता यशोदा को बतलाया कि मैया, तेरा दूध मैं अकेला नहीं पीता हूँ, मेरे मुख में बैठकर सारा विश्व ही इसका पान कर रहा है। वात्सल्यमयी माता यशोदा अपने पुत्र के मुख में सारा विश्व देखकर डर गईं, परन्तु हृदय में वात्सल्य प्रेम होने के कारण उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि यह विश्व-प्रपंच बालक के मुख में कहाँ से आया। यह मेरी आँखों का ही भ्रम है। इसलिए उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली। जो चित्त, मन, कर्म और वाणी के द्वारा ठीक-ठीक और सुगमता से अनुमान का विषय नहीं होता, यह सम्पूर्ण विश्व जिनके आश्रित है, जो इसका प्रेरक है और जिसकी सत्ता से ही इसकी प्रतीति होती है, जिसका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है।

लाल जम्भाई हेत सलोना मुखड़ा खोला। माँ ने देखा माँही ब्रह्माण्ड हिँडोला।।

सर सरिता नग धरा गगन मण्डल मुख आया। तैंतिस कोटी देव चराचर जीव निकाया।।

माता यशोदा की गोदी में लेटे हुए लाल ने जब जँभाई लेने के लिए अपना सलोना सा मुखड़ा खोला तो माँ ने विस्मित नेत्रों-से लाला के मुख में सा रे ब्रह्माण्ड को झूले की तरह झूलते देखा। मुख में तालाब, नदियाँ, पर्वत, पृथ्वी तथा आकाश मण्डल सब समाया हुआ था। तैंतीस करोड़ देवता, चर और अचर जीव समूह लाला के छोटे से मुख में दिखाई पड़ा।

अचरज युत जब लखा तबहिं सब गाय बिलाई। मति भ्रम अपना जबन यशोदा मन मुसकाई।।

सौष्ठव कामद वत्स थन, अन चाहत मुख दीन। नन्दन दूहा पय मधुर, लाल समर्पित कीन।।

कामदा गैया के सौष्ठव नामक बछड़े को गाय के थनों के पास लाया गया। सौष्ठव की इच्छा थी कि पहले यशोदा नन्दन दूध पीवें। विधान पूर्ण करने के लिए उसने न चाहते हुए भी अपनी मैया कामदा के थनों को मुँह लगाया। तब नन्दन चाचा ने मधुर मधुर दूध दुहा और श्री नन्दराय जी के हाथों में रखे दक्षिणावर्ती शंख में डाला गया तत्पश्चात उस दूध को पूर्णमासी के द्वारा नन्दलाला को समर्पित किया गया।

८) नामकरण संस्कार- जैसे नामका व्याकरण होता है, वैसे ही रुपका व्याकरण होता है। एक रूपसे दूसरा रूप कैसे निकलता है? रूपसे अरुप कैसे निकलता है? स्वरूप बीज निकलता है। जो केवल रूप और नामका व्याकरण जानते हैं वे सच्चा व्याकरण नहीं जानते। जबतक रूपके व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा तब तक यह सृष्टि किस प्रकार विशिष्ट आकृतिको प्राप्त हुई यह व्याकरण नहीं जान पायेगा। यदि सृष्टि-रूपका व्याकरण जानना हो तो भगवान की आराधना करनी चाहिए।

एक दिन यशोदा ने अपने महर नन्दबाबा से पूछा- हमारे लाला का नामकरण कब होगा? नन्द बोले- बच्चों के नामकरण के लिए अभी हमको कुछ दिन और ठहरना पड़ेगा। यशोदे, भाई वसुदेव का संदेश आया हैं कि बच्चों के नाम अभी न रखा जाये। धूमधाम से नामकरण महोत्सव करके दुष्ट राजा कंस के मन में शंका पैदा करना हमारे हित में नहीं होगा। दुर्जन लोग विश्वास के पात्र नहीं होते, जाने कब अनुकूल से प्रतिकूल हो जाएँ और पूतना से भी बड़ी विपत्ति आ जावे। समय आने पर गुरुजनों से सम्मति लेकर मैं नामकरण हेतु सन्देश भिजवा दूँगा।

निरन्तर की विघ्न-बाधाओं के फलस्वरूप दोनों भाइयों का नामकरण नहीं हो पाया।

शुकदेव बोले- राजन्, गर्गाचार्य महान् तपस्वी और अपने समय के बेजोड़ ज्योतिषी थे। वे वसुदेव आदि यदुवंशियों के पुरोहित थे। वसुदेवजी की प्रेरणा से भगवान चन्द्रमौलि के साक्षात् शिष्य ज्योतिष के संहिताकार ऋषि गर्गाचार्य नन्दभवन गोकुल पहुँचे। गर्गाचार्य शशि वर्णवाले ऋषिराज ज्योतिष विद्या के उद्भट विद्वान और वेद शास्त्रों के भाष्यकार हैं। गर्ग संहिता के आचार्य हैं।

गर्गाचार्य त्रिकालज्ञ थे अत: वसुदेव ने गर्गाचार्य से कहा- गुरुदेव, यदि बच्चों का नामकरण करने के लिये मैं नन्द के यहाँ जाऊंगा तो कंस को शंका हो जायेगी ऐसी स्थिति में अनर्थ होने की संभावना है, आप हमारे कुलपुरोहित हैं अत: आप ही जाकर नामकरण संस्कार कर आवें। आपके जाने से किसी को भी किसी प्रकार की शंका नहीं होगी। आप चुपचाप जाकर धीरे से वहाँ बच्चों का नामकरण संस्कार कर आने की कृपा करें। लेकिन नन्दजी को यह बात बिल्कुल विदित नहीं हो कि छोटेवाला भी मेरा ही पुत्र है। वसुदेव की प्रार्थना स्वीकार कर बड़े भोर अन्धेरे में ही गर्गाचार्य गोकुल के लिए रवाना हो गये। वसुदेव की प्रार्थना को स्वीकार कर गर्गाचार्य पहुँचे नन्द के गोकुल में।

एक दिवस वसुदेव ने, गर्गाचारज नाम। उपरोहित निज वंश का, बोल लिया निज धाम।।

कर प्रणाम गुरु चरण में, आसन दीन बिछाय। कहा मनोरथ आपना, निरजन ठौर बिठाय।।
जानत हो द्विज नायक जी, तुमको जिस कारण हेतु बुलाया। योग प्रभाव प्रभाकर से, कुछ गोप्य नहीं तुमको मुनिराया।।
गोकुल में मम बालक हैं, युग नन्द नृपालय मांहि छिपाया। नाम रखो तिनके विधि से, व्रज जाकर ज्योतिष में जिमि गाया।।
एक दिवस बसुदेव पुरोहित गर्ग बुलाये। करि पूजा सत्कार विनययुत वचन सुनाये।।
बोले-गुरुवर, आज आप गोकुलकूँ जावें। तहँ द्वै बालक बसहिं नाम तिनके धरि आवें।।
शौरि बचन सुनि गर्ग मुनि, अति ही आनन्दित भये। पोथी पत्रा बाँधिके, तुरत नन्द ब्रजमहँ गये।।
गई रोहिणी गर्भ सों, भयो पूत है ताहि। किती आयु कैसौ बलीं, कहां नाम तेहि आहि।।

वसुदेव ने अपने लाला को नन्द के भवन में पहुँचा दिया है- यह बात गर्गाचार्य को अपने ज्योतिर्विज्ञान के कारण विदित थी। योगमाया के द्वारा प्रेरित होकर वसुदेव अपने कुलगुरु गर्गाचार्य के पास पहुँचे और अपनी चिन्ता प्रकट की। गर्गाचार्य बोले- भोजपति कंस तुम्हारे ऊपर शंका की दृष्टि रखता है। तुम्हारे आठवीं सन्तान कन्या हुई यह बात उसकी समझ के बाहर है। तुम्हारे आठवीं सन्तान के रूप में पुत्र हुआ उसे तुमने किसी के साथ बदल कर कन्या कंस के हाथ में थमा दी यह शंका उसके मन में अच्छी तरह घर कर गई है और उसे मारनेवाला शत्रु आठवीं सन्तान के रूप में तुम्हारे यहाँ ही पैदा हुआ है पर हे वसुदेव, कंस के पास इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं है इसलिये वह प्रकट रूप में आप के ऊपर कोई आक्षेप नहीं लगा पाता। वह हृदय का काला है और तुम्हारे साथ मीठी वाणी में बोलता है पर तुम्हारे प्रति मनमें भारी कपट रखता है। वसुदेव बोले- हे गुरुदेव, मेरा रोहिणी का पुत्र एक वर्ष का हो गया और देवकी का पुत्र भी सौ दिन का हो गया। अब दोनों पुत्रोंके नामकरण संस्कार करवाना चाहता हूँ। मेरी यह प्रार्थना है कि आप नंद को जाकर समझा दे। परिस्थिति को समझते हुए नामकरण संस्कार बिना उत्सव कर लिये जाये।

ब्रज में आये गर्ग मुनि, देखे बल और श्याम। कहे नाम गुण रूप सब, जन्मे प्रेम सुख धाम।।

कृष्ण एक बरस के हो गये। शास्त्र यह कहते हैं कि एक वर्ष का बालक हो, तो उसका नामकरण हो जाना चाहिए। यशोदा और नन्द तो अपने बालकों का नामकरण कराना ही भूल गये। मैया लोरी गा-गाकर कन्हैया को सुला रही है।

छगन-मगन मेरे लाल को, आज निंदिया आ। चंचल, मोहन श्याम के नैंनन बीच समा।
जप-तप पूजा पाठ सों, विधिना दियो मोहि लाल, सोजा कन्हैया लाड़ले मैया बजावे ताल।
कैसे सुलाऊँ लाल को, धीरेधीरे लोरी गा। सोवे कन्हैया पालना याकि है छवि अभिराम।
आंगन की शोभा मेरो मनमोहन घनश्याम, आजा री निंदिया लाल को, मैया रही तोकूं बुलाय।

सूरदास कहते हैं यशोदा तेरे भाग की कही न जाय। जिसने साक्षात् ब्रह्म को बालक बना लिया।

एक समय वसुदेव पठाए। गर्ग महामुनि गोकुल आए।।
निरखि नन्द उर हरष अपारा। कीन्हिं सबिधि पूजन सतकारा।।
गर्ग नन्द आतिथ्यहिं पाई। बैठे भद्रासन हरषाई।।
नन्द बिनत सादर कर जोरी। बोले बयन प्रेमरस बोरी।।
आजु तुष्ट मम पितरहिं देवा। मिलेउ भाग बड़ राउर सेवा।।
पाइ चरन रज रुचिर तुम्हारा। परम पूत भा मम आगारा।।
तुम सों सन्त प्रयोजन नाहीं। बिचरत नित जनहिंत छिति माहीं।।

मम गृह समुचित समय पधारे। नामकरण करु सुतन्हिं हमारे।।
समुचित कहत यदपि तुम नन्दा। तदपि नीच कंसहि मतिमन्दा।।
जानत सब यदुकुल गुरु मोहीं। आनक दुन्दुभि मीतहिं तोहीं।।
अस प्रतीति ताके मन माहीं। देवकि आठवँ कन्या नाहीं।।
गुनत देव नभ बचन प्रमाना। बसत कतहुँ सो सुत थल आना।।

गर्गाचार्य जैसे तपस्वी विद्वान को अपने यहाँ आया देखकर नन्द ने अपना अहोभाग्य माना। वे परम प्रसन्न हो उठे। हाथ जोड़कर अगवानी में दौड़े। आदर-सम्मान के साथ लाकर उन्हें आसन पर बैठाया और भगवान समझ कर उनकी पूजा की। गर्गाचार्य भूले-भटके उधर आ निकले। उनसे सुयोग्य व्यक्ति कौन मिलता नामकरण संस्कार के लिये। गर्गाचार्य पुरोहित ही नहीं थे ज्योतिष विद्या में भी पारंगत थे। यदि कोई अच्छा ज्योतिर्विद मिल जाय तो किसे अपने भविष्य को जाननेकी उत्कण्ठा नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति अपना ही नहीं अपने पूरे परिवार का भविष्य जानना चाहता है। मित्र-परिचितोंको भी बुला लेता है।

सत्य वचन कह गर्ग गुरु, गया नंद के द्वार। अर्घ पाद्य से नन्द ने, कीना अति सत्कार।।
भये भाग्य द्विज आज हमारे। जो मम गृह तुमने पद धारे।। तुम सब विध पूरण मुनिराई। कहा करूँ तुमरी सिवकाई।।
यह दो सुत हमरे गृह माहीं। और अलम्बन जग में नाहीं।। धरहूँ तुमरे पद निज माथा। शिशु को आशिष देवो नाथा।।
नाम धरो इनके मुनिराया। ज्योतिष आगम में जिम गाया।। ब्रह्म वंश में जन्मत जोई। चार वर्ण कर गुरु जग सोई।।

नंदजी ने बड़ी मधुर वाणी से उनका अभिनंदन किया और कहा- भगवन, आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, आपकी मैं क्या सेवा करूँ? आप जैसे महात्माओं का आगमन हमारे जैसे गृहस्थों के घर आना ही परम कल्याण का कारण है। हमारे कल्याण के सिवा आपके आगमन का कोई हेतु नहीं हो सकता। प्रभो, बात साधारणत: मानव इन्द्रियों के पहुँच के बाहर है यह सब बातें भूत और भविष्य के गर्भ में निहित है जो ज्योतिषशास्त्र के द्वारा जानी जा सकती है। आपने उस ज्योतिष शास्त्र की रचना की है। आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ है। इसलिए मेरे दोनों बालकों के नामकरण आदि संस्कार आप कर दें क्योंकि मनुष्यमात्र का गुरु ब्राह्मण ही होता है।

भवन भवन पगु धारयो। हम गृहस्थियन आय उबारयो।।
गृह प्रपंच उरझनि अस भारी। आश्रऊ दरशन रहौं बिसारी।।

आप तो आनन्द के घर ही हो। आपने हम गृहस्थियों के घर आकर हमारा कल्याण ही किया है। हम तो अपने घर की ही इतनी उलझनें बनी रहती हैं कि आपके आश्रम में आकर दर्शन करने की सुधि ही भूली रहती है।

नंदजी के घर महर्षि गर्ग गए। नंदजी ने उनके चरणों को धोकर उसका आचमन किया तथा प्रेमपूर्वक आधा आसन उन्हें दिया। उन्होंने कहा आज मेरा बड़ा भाग्य है, जो मुनिजी कृपा करके पधारे हैं। इस पर गर्गजी ने कहा हम क्या धन्य हैं? धन्य तो हैं नंद और यशोदा तथा यह ब्रज यहां परमेश्वर प्रकट हुए हैं, जो परमेश्वर आदि और अनादि हैं, जिनकी रूप-रेखा ज्ञात नहीं है, जिनके अतिरिक्त और कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। जिन्होंने देवकी के गर्भ से अवतार लेने को कहा था और इन्हें तुमने दूध पिलाने को मांगा था। इन्हें बालक मत समझो। ये ही कंस का वध करेंगे। सूरदासजी कहते हैं कि मनुष्य शरीर धारण करके देवताओं का उद्धार करने और पृथ्वी का भार उतारने का कार्य ये ही करेंगे।

पूजा कर लेने के बाद हाथ जोड़कर नन्द बाबा ने पूछा- भगवन्, आप तो पूर्णकाम हैं। आपको किसी वस्तु की कामना नहीं

है फिर भी बतलाने की कृपा करें कि मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? नि:सन्देह आप जैसे महात्मा का आगमन दीन चित्तवाले गृहस्थों के कल्याण के लिये ही हुआ करता है, उसका और दूसरा प्रयोजन नहीं है। महाराज आपने बड़ी कृपा की आप मेरे यहाँ आये। कहाँ से पधारे? आप तो सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, ज्योतिषशास्त्रके मूर्तिमान स्वरूप हैं।

गर्गाचार्य बोले कहीं नामकरण, कहीं ब्याह करना, अपना तो यही सब काम है नन्दजी।

नन्द बोले, आपने अच्छा स्मरण कराया। मेरे भी घर में दो-दो बालक हैं पर अभी तक किसीका नामकरण नहीं हुआ।

आप भूत-भविष्य के ज्ञाता है। आप जैसा ज्योतिषविद्या का महाज्ञानी आचार्य संसार में नहीं हुआ है। आप ज्योतिषी हैं जो बात साधारण जीव मनके द्वारा नहीं जान सकता, आप उस बातका ठीक-ठीक ज्ञान रखते हैं। आप तो ज्योतिष शास्त्रके केवल ज्ञाता ही नहीं प्रणेता भी है। आपने ज्योतिष शास्त्र की रचना की है। आप ज्योतिषका शोधन भी करते हैं। ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी महापुरुषोंमें भी आप श्रेष्ठ हैं। मेरे इन बालकोंका संस्कार नहीं हुआ है। इन दोनों बालकोंका नाम-संस्करण आप करा दे। संस्कार से जीव की शुद्धि होती है, उसमें संस्कृति का उदय होता है। आज आपके पदार्पण से मेरा घर पवित्र हो गया। मेरे पितर तृप्त हो गए। प्रभो, आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे दोनों बालकों का नामकरण संस्कार करने की कृपा करें, क्योंकि ब्राह्मण जन्म से ही सारे मनुष्यों का गुरु होता है।

तुम सब लायक गोकुल राई। गुप्त बात सुनिये मन लाई। यदुकुल गुरु सब मोको जानत। तुमको शौरि मित्र कर मानत॥
देवकि का सप्तम सुत जोई। स्त्रवने योग्य कदापि न होई॥ पुन अष्टम सुत तांका जोऊ। कन्या होन योग्य नहि सोऊ॥
या विध कंस न इनको जाने। देवकि सुत करके नहि माने॥ गुप्त बैठ कर नाम रखावो। बहुविध बाजे जनि बजवावो॥

आज भी बड़े-बड़े विद्वानोंके यहाँ समय-समयपर संस्कार सम्पन्न होते हैं। संस्कार अनेक हैं- जैसे गर्भाधान संस्कार, पुंसवन-संस्कार, सीमन्तोन्नयन-संस्कार, जातकर्म-संस्कार आदि-आदि। इन संस्कारोंसे ही जीवनके विकारोंकी निवृत्ति होती है।

गर्गाचार्य बोले- आपके पुत्रोंका नामकरण मैं नहीं कर सकता क्योंकि मैं यदुवंशियों का आचार्य हूँ। वसुदेव के घर का पण्डित हूँ। कंस बड़ा पापबुद्धि है। जिसकी बुद्धिमें हमेशा पापकी ही उद्भावना होती है। पापके ही विचार उदित होते हैं उसको पापमति कहते हैं। पापी सर्वत्र पाप ही देखता है। वसुदेव के साथ तुम्हारी मित्रता यह बात वह जानता है।

कंस के मन में यह शंका बैठ गयी है कि देवकी का आठवां बालक कन्या तो हो नहीं सकती फिर कहीं ऐसा तो न हो वसुदेव ने अपना आठवां पुत्र गोकुल भेज दिया हो। यदि मैं आपके पुत्रका नामकरण करूँगा तो कंस की यह शंका बलवती हो जायेगी। पूतना के वध से विश्वास हो गया है कि देवकी का अष्टम पुत्र तुम्हारे ही गृह में है। इसे मारने का कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेगा। आप कष्ट में पड़ जायेंगे।

आचार्य मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि मैं तो इसी कार्य के लिये आया ही हूँ। कंस कहेगा कि वसुदेव के ही घरके पण्डित ने नन्दके पुत्रका नामकरण क्यों किया।

इस पर गर्गाचार्य ने कहा- यह बात सर्वत्र विदित है कि मैं यदुवंशियों का आचार्य हूँ। यदि मैं आपके पुत्र का संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकी का पुत्र है। कंस पापी है। अत: वह सर्वत्र पाप की ही आशंका करता रहता है। वसुदेवजी के साथ आपकी घनिष्ठ मित्रता है। योगमाया के द्वारा जबसे उसने सुना है कि उसको मारनेवाला कहीं और पैदा हो चुका है, तब से वह यही सोचा करता है कि देवकी के आठवें गर्भ से कन्या का जन्म नहीं हो सकता। यदि मैं आपके बालकों का नामकरण संस्कार कर दूँ और कंस इस बालक को वसुदेवजी का लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा

अन्याय हो जायगा। आप तो प्रत्येक कार्य बड़ी धूम-धाम से करते हैं। यदि आपने नामकरण संस्कार भी धूमधाम से मनाया तो उसी भीड़ में कंस का भेजा हुआ कोई-न-कोई राक्षस आ जायेगा, आपके पुत्रोंके जीवन में संकट आ सकता है। नन्द बाबा ने कहा- महाराज, हम किसीको भी निमन्त्रण नहीं देंगे पर लाला का नामकरण आपके श्रीमुख से ही होना चाहिए। आचार्यजी, गोशाला स्वयं परम पवित्र स्थान है। वहाँ पूर्ण एकान्त भी है अत: वहीं स्वस्तिवाचन करके बेटों का नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये। मेरे अपने खास व्यक्ति भी इस बातको नहीं जान पावेंगे। मैं अपने भाइयों को भी सूचना नहीं दूँगा कि यह संस्कार आपने किया है, इसे गोकुलमें मेरे स्वजन भी नहीं जानेंगे तो कंसके सुननेकी कोई सम्भावना ही नहीं रहती।

गर्गाचार्य बोले- अब तुम दोनों बालकों को यहाँ गो सदन में लिवा लाओ। मैं गुप्त रीति से नामकरण करने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

सत्य वचन कह नन्द तब, युग सुत को ले साथ। गमन करा गोशाल में, साथ लिये मुनि नाथ।।
स्वस्ती वाचन कर प्रथम, गर्ग गणेश मनाय। नाम धरा युग शिशुन का, वास्तव अर्थ छिपाय।।

श्री गर्गजी नंदसे कहते हैं कि नंदजी, मैं आपके घर का आदि ज्योतिषी हूं, तुम्हारे पुत्र का जन्म सुनकर तुम्हारे यहां आया हूं। लग्न शोधकर और सभी नक्षत्रों की गणना करके तुम्हें सुनाना चाहता हूँ।

नाम-करण संस्कार सुतनि को कीजै मुनिवर। मुनि समुझाये नन्द न मेरो करिबो हितकर।।
बोले ब्रजपति जाति कुल, के जन नहिँ बुलवाऊँगो। गुप्त भावतै गोष्ठमहँ, नाम-करण कराऊँगो।।

शुकदेव बोले- गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे। वे इसीलिये आये ही थे। जब नन्दजी ने इसके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे एकान्त में छिपकर गुप्तरूप से दोनों बालकों का नामकरण संस्कार करने के लिये यशोदा, रोहिणी और नन्द के साथ गोशाला में गये।

संस्कारों पर उस समय बड़ा जोर था। संस्कार हुये बिना बच्चा असंस्कृत माना जाता था। घर असंस्कृत माना जाता था। संस्कार होना वैदिक पद्धतिमें बड़ा आदर्श माना गया है। आपत्तिकालमें समयपर संस्कार न होना दोष नहीं होता।

आज कल जातक संस्कार मिट रहे हैं। नामकरण संस्कार होटलों में और विवाह-न्यायालय में होने लगा। संस्कार-संस्कृति का ऱ्हास हो रहा है। इसलिये देश सम्पन्न होते हुए भी दु:खी है। संस्कार कभी भी घर में या तीर्थों में कराना चाहिए। इससे घर के देवता, तीर्थ के देवता और अपने पूर्वज प्रसन्न होते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से हार्दिक आशीर्वाद की वर्षा करते हैं। संस्कारोंसे ही जीवनमें संस्कृति एवं धर्मकी रक्षा होती है। यही कारण है कि हमारे धर्मशास्त्रोंने संस्कारोंपर बल दिया है।

नन्द बोले-हमारा बालक पाञ्चभौतिक उपादानोंसे बना हुआ होता है और दिव्य बालक स्वेच्छामय और स्वरूपभूत होता है। उसका शुक्र-शोणितरक्त आदिके द्वारा निर्मित शरीर नहीं होता उसका शरीर दिव्य, उसके सारे अंग-उपांग तथा सारी धातुयें दिव्य होती हैं। बलराम कृष्णसे सौ दिन बड़े है। इन बालकोंका अभी नामकरण नहीं हुआ था। कृष्ण को कोई श्याम, कोई नीलमणि कहते थे, कोई काला समझकर कन्हैया कहते थे। बलरामको कोई दाऊ कहते थे, कोई राम कहते थे। कोई बलराम को रेवतीरमण, कालिंद्री, भेदन, हलधर इत्यादि कहते हैं। कोई कनुआ कहते व बलराम को बलुआ कहते है इस प्रकारसे इनके नाम अपने-आप रख लिये।

आकर्षण का केन्द्र बन आया था नन्द का अद्‌भुत लाला। नामकरण संस्कार तो अभी दूर पर है, सबने अपने मन से

अनेकानेक नाम दे रखे थे। किसी के लिए वह कन्हैया था तो किसी के लिए लाला, किसी के लिए नन्दलाल तो किसी के लिए गोपाल।

नन्द घर आज भयो आनन्द। मातु यशोदा लाला जायो, ज्यों पूनों ने चन्द।।
गोपी गोप गाय गायक-गन, सब हिय सरसिज वृन्द। नन्दनँदन रवि उदित भये हिय, विकसे पंकज वृन्द।।
वसुधा मुदित समीर बहुत वर, शीतल मन्द सुगन्ध। गरजत मन्द-मन्द घन नभमहँ, प्रकटे आनँद कन्द।।
माया बन्धु सिन्धु सब सुखके, स्वयं सच्चिदानन्द। प्रभुके प्रभु विभु विश्वविदित बर, काटैं यमके फन्द।।

नन्दबाबा गर्गाचार्य के ज्योतिष-ज्ञान की परीक्षा करना चाहते थे अत: उनके निर्देश से रोहिणी ने कन्हैया को और यशोदा ने बलराम को अपनी गोद में ले रक्खा था। मैया ने सोचा, ज्योतिषी है कि नहीं इसके लिए माता रोहिणी और माता यशोदा ने पुत्रोंकी अदली-बदली कर ली। श्रीकृष्ण को संत गर्गाचार्य ने जैसे ही देखा देखते-देखते उनकी तो समाधि लग गयी। आये ते नामकरण करने पर कन्हैया को देखकर अपना नाम भी भूल गये कि वह कौन है।

उन बालकोंका स्वरूप, रूप, सौंदर्य, माधुर्यता, विलक्षण आकर्षण था। श्याम गौर दोनोंका उनको देखनेमें गर्गाचार्यकी आँख बरबस बँध गयी। वहाँसे हटी ही नहीं और उन आँखोंके दर्शनसे प्रेमका सागर उमड़ पड़ा जिससे प्रेमाश्रु निकल पड़े। किसी तरहसे वह अश्रुधारा रुकी नहीं। ब्रह्मविद् शिरोमणि महान् तपस्वी गर्गाचार्यने उन बालकोंको जब देखा तो देख करके उनके अन्तरात्मामें एक अभिनव प्रेमसागर उमड़ा। गर्गजीको प्रेमकी आँखोंसे वे प्रेममय दिखायी दिये। ब्रह्मविद् होनेके कारण सारे उपनिषद इनके सामने आ गये। भगवान और ब्रह्मके जिस रूपको उपनिषदोंमें पढ़ा था वह सामने आ गया।

ईश्वर प्रतिपादक सकल, उपनिषदन को सार। मूर्त रूप प्रगटित भयो, रूप सुधाआगार।।

दोनों बालकों को जब गर्गाचार्य ने देखा उनकी तो आंखें ही बन्द हो गयी और सोचने लगे क्या इन्हींके लिये हम साधना कर रहे है। यही है वह?

खोजा सकल जहां पे तो पाया तेरा पता नहीं। अब पता मिला है तेरा तो मेरा पता नहीं।।

समाधि भी दो प्रकार की होती है- १) ध्यान समाधि, २) त्राटक समाधि। ध्यान समाधि उसे कहते हैं, जिसमें आँख बंद हो, स्वांस चलती रहे और त्राटक समाधि उसे कहते हैं, जिसमें आँखें तो खुली रह जायें, मुँह खुला रह जाए और श्वांस बन्द हो जाए। गर्गाचार्य ने गोविन्द को देखा और सोचे- यही तो ब्रह्म है, यही तो परमात्मा है, यही तो निर्विकार, निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्म हैं और उनकी समाधि लग गयी। दोनों मातायें गर्गाचार्य की ओर देखने लगी। रोहिणी बोली- आचार्य को क्या हुआ? यशोदा बोली- भगवान जाने क्या हुआ? उन्होंने देखा आचार्य में श्वास नहीं है, आँखों के सामने चुटकी बजायी, आँखों के पलक भी नहीं गिरते। यशोदा बोली- क्या हुआ बाबाजी? रोहिणी बोली- मुझे तो ऐसा लगता है महाराज ही पधार गये दिखते। यशोदा ने दोनों हाथ पकड़कर गर्गाचार्य को जोर से झकोरा और बोली- अरे महाराज पधार गये क्या? अरे, पधारना ही था तो बाहर जाकर पधारते, मेरे घर में आकर क्यूं पधारे? लोग क्या कहेंगे? माताओं के झकोरने पर गर्गाचार्य की समाधि टूटी।

ब्रजपति देखा गर्ग मुनी चह जान समाधी। चरण पकरि जय कार करी अन्तरमुख बाधी।।
मुनि मेरे सुत नाम आपने मुख सो भाखो। सुन्दर कोई नाम गुरू वर बेगी राखो।।

बृजपति श्री नन्दराय जी ने देखा कि गर्गाचार्य जी अन्तमुख होते होते समाधि की स्थिति में पहुँचने वाले हैं तब उन्होंने आचार्य जी के चरण पकड़ कर ऊँचे स्वर से जय जयकार करके उनकी अन्तर्मुखता में बाधा डाल दी और बोले, हे मुनिराज। मेरे पुत्र का नाम भी आप अपने श्री मुख से कथन कीजिए। हे गुरुश्रेष्ठ, आप शीघ्र ही कोई सुन्दर सा नाम बखान करें।

गर्गाचार्य बोले- क्या हुआ। मैया बोली- तुम ठीक-ठाक तो हो ना? अरे बाबा तुम्हारौ मुंह खुला रह गया, आंखें खुली रह गयीं, ये श्वास बन्द हो गया, हम तो डर गयीं। हमने तो सोचा- क्या हुआ? कहीं महाराज पधार तो नहीं गये। क्या बताऊं यह जो लाला बैठा है वह तो साक्षात् परब्रह्म.....इतने में कृष्णने इशारा किया कि बाबा यहां पुत्र बननेमें ही फायदा है, भगवान बनने में नहीं। मैंया हमें पुत्र मानती हैं, गोद में बिठाती हैं, अपना स्तनपान कराती हैं, माखन खिलाती हैं। हमें भगवान मत बनाओ। गर्गाचार्य जी इशारा समझ गये और बोले- आपकी गोद में जो बालक बैठा हैं वो साक्षात् गुणोंका भंडार है। मैं इसकी रेखा देख रहा था और रेखा देखने में जरा भी ध्यान भंग हो जाय तो आँखे खुली रह जाती हैं। गर्गाचार्य ने देखा, मातायें कितनी चतुर हैं। बच्चों की अदला-बदली करके बैठी हैं मेरी परीक्षा लेने के लिये। गर्गाचार्य बोले- माता, तुम्हारी गोद में जो बच्चा बैठा है वह तुम्हारा नहीं हैं वो तो साक्षात् रोहिणी का पुत्र है। मैया ने तुरंत हीरे की अंगूठी उतारी और गर्गाचार्यजी को दान में दी। रोहिणी को धीरे से बोली यह खड़िया पलटन नहीं हैं सच्चे ज्योतिषी हैं सही बात बतायी है। जब सब गोशाला में पहुँच गये तब अत्यन्त संक्षेप में स्वस्तिवाचन करके गर्गाचार्य जी ने कहा- यशोदा की गोद में जो बालक है, वह रोहिणी जी का बेटा है। यह बालक अपने सगे सम्बन्धी और मित्रों को अपने गुणों से आनन्दित करेगा। इसलिये इसका नाम होगा राम। इसमें नि:सीम बल भरा हुआ है अत: इसका एक नाम बल भी है। फूट हो जाने पर यह अपने लोगों को खींचकर मेल करवावेगा अत: इसका एक नाम संमर्षण भी है। ऋषि, योगीजन और ज्ञानीजन पुरुष इसके प्रताप और प्रभाव के कारण इसमें रमण करेंगे, इसका ध्यान करेंगे, इससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे अत: इसका नाम राम होगा। यह अद्भुत बलशाली होगा। रणाँगण में इसके सामने कोई बल के सामने टिक नहीं पाएगा। इसका प्रिय आयुध हल सारी पृथ्वी को उलट सकता, अत: इसका एक नाम बल भी होगा। इन दोनों नामों को मिलाकर इसे बलराम भी कहेंगे। यह हल को धारण करेगा अत: इसका नाम हलधर भी होगा। इसमें अद्भुत संगठन शक्ति होगी, लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करेगा, अत: इसका एक नाम संकर्षण होगा। यह शेष का अवतार है। सारी सृष्टि की समाप्ति के बाद यही शेष रहेगा।

रोहिणी का सुत जोई, निज गुणों कर सोई, स्वजन रमावने से राम नाम जानिये।
बल की अधिक्यता से, बल आदि नाम याको, कान्मि मद मोदता से, बलदेव मानिये।।
रोष युत यादवों के, एकी भाव करने से, सङ्करषण याके, नाम को बखानिये।।
रोहिणी को सुत याँते, रौहिणेय नाम ताँते, हल कर धारणे से, हली नाम जानिये।।

गर्गाचार्य बोले- रोहिणी का यह पुत्र है, इसका नाम होगा राम लेकिन बल की अधिकता के कारण इसको राम बलराम कहेंगे या बलभद्र कहेंगे। इसका बल समाज का कल्याण करे, उसे बलभद्र कहते हैं। हलधर इसका नाम होगा, दाऊदयाल इसका नाम होगा। एक गर्भ से खींचकर दूसरे गर्भ में लाया गया इसलिये इसका नाम संकर्षण होगा। अशेष जगत् का संहार होने पर भी ये शेष रहेंगे इसलिये इन्हें लोग शेष नाम से भी पुकारेगे और अनंत नाम से भी जाने जायेंगे। ये हल का धारण करनेवाले होंगे इसलिये उन्हें हलधर भी कहा जायेगा। मूसल इनका आयुध होगा, रेवती के साथ इनका विवाह होगा इसलिये ये रेवतीरमण भी जाने जायेंगे, रोहिणी के पुत्र होने से रोहिणेय भी जाने जायेंगे।

ऋषिवर विचार करने लगे कि हजारों सिर वाले शेष नाग जी अपने हजारों मुख से श्रीहरि के नाम लेते रहते हैं। इनके द्वारा लिये जाने वाले नाम गिनती से रहित अनन्त है, यह सारी पृथ्वी, इनके किसी एक सिर पर सरसों के दाने की तरह रखी हुई है जिसका थोड़ा सा भी भार इन्हें प्रतीत नहीं होता। वही शेष वही अनन्त, वही हरि की शैया इस समय बालक रूप धारे हुए हैं।

ऋषि गर्गाचार्य जी ने शेष नाग जी के स्वरूप का मन में चिन्तन करके मन ही मन में उन्हें प्रणाम किया और रोहिणी पुत्र

का ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शोधन करके नामकरण करने लगे। कन्हैया की सारी ग्वाल सखा मण्डली सम्मानपूर्वक इसे दादा कहेगी। देवताओं जैसा सुन्दर रूप होने के कारण इसे बलदेव भी कहा करेंगे। सब लोग कन्हैया से बड़ा होने के कारण स्नेहपूर्वक वन्दना करते हुए इसे दाऊ कहा करेंगे।

सुनि सुठि बचन नन्द भल मानी। गर्ग मुनिहिं गोशालहिं आनी।।
नामकरण करि मंगल काजा। बोले हरषि गर्ग मुनि राजा।।
यह रोहिनि सुत गुणगन धामा। रमत जगत तेहिं नामहिं रामा।।
बलहिं अधिकता ते बलदाऊ। करष गरभ संकर्षण नाऊँ।।
रहत शेष ए जगत अशेषू। तासु नाम बरनत श्रुति शेषू।।

रोहिणी नन्दन के नामकरण के पश्चात गर्गाचार्य जी की दृष्टि रानी रोहिणी की गोदी में विराजमान नन्दलाल की ओर स्थिर हो गई। गुरुवर ने प्यारे श्यामसुन्दर को अपनी गोद में लिया और उसके स्वरूप को प्रेमपूर्वक देखने लगे।

रेखा यशुदा लाल की, हस्त चरण बड़ भाग। जो देखी मैं नैन निज, और कहीं ना लाग।।

रोहिणी माता आपकी गोद में जो बालक बैठा है इसका पहले शुक्ल वर्ण था, फिर इसका रक्त वर्ण हुआ, फिर पीत हुआ और अभी इसका कृष्ण वर्ण से इसका नाम कृष्ण होगा। ये काला है, ये जग का उजियाला है। मैया, ये कभी वासुदेव का पुत्र बन चुका है, इसका नाम वासुदेव होगा, मधुसूदन होगा, मुरलीधर होगा, गोविन्द, माधव होगा, कन्हैया होगा, कान्हा होगा। इसके सहस्त्रों नाम होंगे। इसके जितने नाम उतने ही रूप हैं। यह बालक नारायण के समान गुणोंवाला हैं। नारायण के समस्त गुण इसमें विद्यमान होंगे। इसका एक नाम नीलमणि होगा। भाद्रपद की अँधकार पूर्ण अष्टमी को कृष्ण पक्ष में पैदा हुआ, इसलिये इसका नाम कृष्ण होगा। भगवान के अन्य करोड़ों नामों का स्मरण करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है वह सब केवल कृष्ण नाम के स्मरण का करने से मनुष्य अवश्य प्राप्त करता है। कृष्ण नाम के स्मरण का जैसा पुण्य है उसे कीर्तन और श्रवण से भी वैसा ही पुण्य फल मिलता है। इससे मनुष्य के पाप का नाश हो जाता है। कृष्ण नाम अत्यन्त मंगलमय, सुन्दर और भक्तिदायक है। ब्रजेश्वर, विद्वान लोग शायद भूतल के धूलि कणों की गणना कर सकें, परन्तु इनके नाम के प्रभाव की गणना करने में संत पुरुष भी समर्थ नहीं है। ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, देवता, ऋषि, मनु, मानव, वेद और संतपुरुष श्रीकृष्ण नाम की महिमा की सोलहवीं कला को भी नहीं जानते हैं।

गो गण प्रपालने ते, आह्वय गोपाल याको, श्याम तनु धारणे से कृष्ण नाम ख्यात है।
प्राक कबी कर दया, वसुदेव सुत भया, वासुदेव नाम यह, यांते कहा जात है।।
मुकती के देने कर, नाम है मुकुन्द याको, लक्ष्मी का पति तांते, माधव कहात है।
जनी गुण क्रिया कर, नाम हैं अनन्त याके, तिनको न जाने लोक, हमें सब ज्ञात है।।
यह बालक प्राक्रम तेज विषे, गुण कीरति में हरि के सम होई।
तज दम्भ छलादिक दोषन को, इनमें नित प्रीति करे नर जोई।।
बलवंत अनन्त अरी यम के, भृत जो तिसको भय देत न कोई।
इन बालन की करुणा जिसमें, सुर मानव में नित पूजित सोई।।

गर्गाचार्य जी विचार करने लगे, लाला के चरण कमलों के लालिमा से भरे तलवों में सुन्दर चिन्ह अंकित है। जैसे जो, ध्वज, मछली, ऊर्ध्व रेखा, अंकुश, कमल, स्वस्ति, षटकोण, अष्टकोण, इन्द्र धनुष, कल्प वृक्ष, शंख, चक्र, त्रिशूल आदि ये सभी

नगीने चिन्तन करनेवालों के पाप समूह का नाश करनेवाले हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप श्री हरि के चरणों में जो जो चिन्ह होते हैं वे सभी चिन्ह इस बालक के चरणों में हैं। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण संसार के एकमात्र स्वामी श्री कृष्ण भगवान ही मनुष्य रूप धारण करके आए हैं। यही तो तीनों लोकों के उत्पन्न कर्ता, पालन कर्त्ता और लय कर्त्ता हैं और लय करने के पश्चात पुन: सृष्टि की रचना करने वाले हैं। कण कण में व्याप्त होनेवाले श्री हरि चौदह भुवनों के रक्षक ही बाल रूप में पधारे हैं।

ऋषि मुनि जिस ब्रह्म तत्त्व को अजन्मा कहते है, उसी ने बाल रूप धारण किया है। भूमा होने के कारण सर्वव्यापक होने पर भी यह सबसे न्यारा है। तीनों गुणों से परे और वेद शास्त्रों में श्रेष्ठ सम्पूर्ण गुणों की खान, सभी जीवों के कर्मों के साक्षी होने पर भी अपने भक्तों के करुणा का सागर, आज बालक रूप में आया है।

सम्पूर्ण शास्त्र जिसे स्फुर्णा से रहित कहते हैं उसी ने इस संसार में माया को रचा है। जो माया इस प्रकार की झूठी रचना करती है, जो शत प्रतिशत सच्ची लगती है। जिस ब्रह्म तत्त्व को वेदों ने इच्छा रहित कहा है मैं एक हूँ अनेक (बहुत) हो जाऊँ ऐसी इच्छा की और उसने अपनी चाहना से सारी सृष्टि की रचना कर दी।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि सम्पूर्ण बुद्धियों के साक्षी परम तत्त्व की आज मेरे द्वारा नाम रखाई हो रही है अर्थात आज मैं परम ब्रह्म का नामकरण करने जा रहा हूँ।

नाम रूप से भिन्न जो, ताको सन्मुख रूप। नाम धरावे मो मुखा, महिमा अमित अनूप।।

गर्गाचार्य जी तन्मय होकर विचार करने लगे, जो परम तत्व नाम और रूप से परे है उसीका स्वरूप मेरी गोदी में मेरे सन्मुख विराजमान है। जिनकी महिमा अपार एवं उपमा से रहित है उस अनामी का नाम आज मेरे मुख से रखवाया जा रहा है, यह कितने आश्चर्य की बात है।

श्रुतियों के अनुसार जो नयन रहित है उस परम तत्त्व के नेत्र मैं अपने नेत्रों से देख रहा हूँ। जो परम ब्रह्म वाणी से रहित है, उसके तोतले मधुर बोल मैं अपने कानों से सुन रहा हूँ। जो तत्व अडिग है वह मेरी गोदी में डग भर रहा है, जो चरणों से रहित है वह अपने नन्हे नन्हे चरणों से चलने का प्रयास कर रहा है। जो ईश्वर हाथों से रहित है वह अपने हाथों से मेरा आँचल पकड़ रहा है, जिसके अन्दर अखिल ब्रह्माण्ड हैं उसका उदर एक मुट्ठी भर का दिखाई दे रहा है। जिसकी भौंह बाँकी होने पर सारी सृष्टि का विनाश हो जाता है, वह मेरी गोदी में एक पग भी ठीक से नहीं रख पाता है।

श्याम रोहिणी लिये रामकूँ मैया यशुमति। बोले मुनिवर गर्ग रोहिणीसुत जिह ब्रजपति।।
संकर्षण, बलराम नामतैं बोले जावैं। जे जसुमति सुत वासुदेव हरि कृष्ण कहावैं।।
नारायण सम तनय तब, व्रजकी रक्षा करिङ्गे। हरि-सुर-द्रोही असुर कुल, भूमि-भारभय हरिङ्गे।।

ये जो साँवला-साँवला जो सलोना है, बड़ा मधुर सा, देखनेमें बड़ा सुंदर लगता है। यह हरेक युगमें शरीर धारण करता है और यह भी काला-काला है, कभी सफेद रूपमें, कभी लाल, कभी पीले रूप मेंआता है। इसबार यह काले रूपमें आया इसलिये इसका नाम कृष्ण होगा। इसके बहुत से नाम और रूप होंगे। जितने गुण उतने ही नाम है। जितनी लीला उतने ही नाम, जितने कर्म उतने ही नाम। यह आगे गोवर्धनधारी, मुरली मनोहर, वंशीधर और गोपीनाथ नामसे भी जाना जायेगा। यह जो नाम होंगे यह सम्बन्ध, गुण और कर्मोंको लेकरके होंगे। यह जो बालक है यह तुम लोगोंके वंशका, तुम लोगोंके कुलका और तुम्हारा अपना परम कल्याण करनेवाला होगा। यह गायोंको, गोपोंको सबको आनन्दित करनेवाला होगा, सबको सुख पहुँचानेवाला होगा और जितने भी कठिनाइयोंके, विपत्तियोंके किले हें वे सभी किले इसकी कृपासे ढह जायेंगे। सारी कठिनाइयां जीवनकी दूर हो जायेंगी। इसका आश्रय लेकर के सुगमतासे तुम सारी विपत्तियोंको पार कर सकोगे।

जन्म रोहिणी नक्षत्र है, यह अत्यन्त शुभ है, अष्टमी तिथि बुधवार सब मंगलमय ही है, लग्न वृष है, इससे यह सबसे श्रेष्ठ होगा। तीसरे स्थानों में उच्च के चन्द्रमा हैं, जिससे इसे शारीरिक सुख सदा मिलेगा। वृष से चौथे स्थान अर्थात् सिंह राशि सूर्य हैं इसका फल यह है कि यह सम्पूर्ण भूमण्डल को अपने भुजबल से जीत लेगा पंचम स्थान पर कन्या के बुध हैं इसका फल यह होगी कि पुत्रों की कमी न होगी नित्य ही पुत्र पैदा होंगे। इतने पुत्र होंगे कि बाबा, दादी को सबके नाम भी न याद रहेंगे।

छठे स्थान पर तुला राशि पर शुक्र और शनि दोनों साथ ही साथ बैठे हैं, इसका फल यह है कि यह अपने शत्रुओं को बीन-बीनकर मारेगा। पृथ्वी पर एक भी इसका शत्रु शेष न रहेगा। सातवें स्थान पर राहु हैं, ये कुछ गड़बड़ है इसका फल यह होगा कि इसके बहुएँ बहुत होंगी ऊँच-नीच सभी श्रेणी की बहुओं से महल भरे रहेंगे। मकर राशि पर भाग्य स्थान में मंगल है इनका फल यह होगा कि सदा इसका मंगल-ही-मंगल होगा, निरन्तर ऐश्वर्य बढ़ता रहेगा। मीन राशि पर लाभ के स्थान में बृहस्पति हैं। इसका फल तो कुछ कहना ही नहीं सदा अष्टसिद्धि नवो निधि तुम्हारे लाल के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी। कर्क स्थान में मेष के शनिश्चर हैं इसका फल यह है कि इसका वर्ण कृष्ण होगा। घन के सदृश श्याम शरीर होगा।

पीत वसन धारे यासो पीताम्बरधारी। असुर करे संहार कहावे ये असुरारी॥
नचकैया कोइ कहे गवैया बंशी वाला। वत्स चरावे ग्वाल खिलैया मोहन काला॥

आचार्य जी ने कहा, हे श्री नन्दराय जी, पीले वस्त्र पहनने से इस बालक का नाम पीताम्बरधारी होगा। असुरों का संहार करने से असुरारी कहलायेगा। नृत्य करने से नचकैया, गायन करने से गवैया, बंसी बजाने से बंसीधर, वत्स चराने से ग्वाल, गाय चराने से गोपाल, खेल खेलने से खिलैया, मन मोहने से मोहन और श्याम वर्ण होने से कलुआ भी कहलायेगा।

बाँसि बजैया मधुर बाँसुरी नित्य बजावे। खीज गोपिका कबहूँ लै कहुँ लेत दुरावे॥
गाय चरैया चीर चुरैया गिरिवर धारी। नाग नथैया अनल पिवैया है बनवारी॥

हे नन्दराय जी, तुम्हारा लाल नित्य मधुर बाँसुरी बजाने से बंशी बजैया कहलायेगा। इस बंसी बजैया की बाँसुरी से गोपियाँ खीझकर कभी कभी इसकी बाँसुरी को छिपा दिया करेंगी। गाय चरैया, चीर चुरैया, गिरिवरधारी, नाग नथैया, अग्नि पिबैया और बनवारी नाम वाला भी होगा।

जो मनुष्य तुम्हारे इस शिशुसे प्रेम करेंगे वे महाभाग्यवान हैं। इसलिये वे भगवान्की छत्रछायामें रहेंगे। असुर उन्हें जीत नहीं सकते हैं। जैसे भगवान्की छत्रछायामें रहनेवालोंको असुर नहीं जीत सकते; इसी प्रकार इनसे प्रेम करनेवालेको असुर नहीं जीत सकते। असुर दो प्रकारके होते हैं एक असुर जो बाहर रहते हैं और एक असुर वे जिनको हमने अपने घरमें बसा रखा है- अन्तरके घरमें। ये बड़े घातक होते हैं, बड़े बुरे होते हैं। बाहरके शत्रुओंका उतना असर नहीं होता है, वे केवल शरीरको ही मारते हैं और बाहरके धनको छीनते हैं। जो हमारी आध्यात्मिक सम्पत्ति है, पारमार्थिक सम्पत्ति है, उसको छीननेवाले होते हैं अन्त:शत्रु- भीतरमें रहनेवाले, ये वैरी हैं। इन वैरियोंमें प्रधान है विषयकामना। इससे ही क्रोध पैदा होता है। यह वैरी जबतक अन्तरमें रहते हैं तबतक मनुष्यका भला नहीं हो सकता चाहे वह बाहरसे अपनेको भला मान ले। लेकिन जो इससे प्रेम करेंगे- इसका प्रेम इस प्रकारका विलक्षण है कि वह अन्त:शत्रुओंको मार डालेगा। भगवत्प्रेम विषय-प्रेमको खा लेगा। फिर तमाम विषय भगवान्की सेवाकी सामग्री बनेंगे। उसका शरीर, उसके विषय, उसकी इन्द्रियाँ, उसका मन, उसके पदार्थ ये सबके सब भगवत्सेवाकी सामग्री बनेंगे। असुरोंका आश्रय छोड़ देंगे। मनुष्यने असुरोंका आश्रय ले रखा है।

लुप्त होती जा रही कृषि-संस्कृति को पुनर्जीवित करेगा। लोग वाणिज्य-व्यवसाय और आपसी लड़ाई-झगड़े में पड़कर कृषि की प्राय: उपेक्षा करने लगे हैं। बहुत सारे लोग कृषि-कर्म को छोड़कर अरण्यों में आश्रम बना बैठे हैं- संन्यास धारण

कर परजीवी बन गए हैं। यह उन्हें कर्म की महिमा बतायेगा। यह भी स्पष्ट करेगा कि अन्ततः सबकुछ कृषि पर ही निर्भर करता है- वाणिज्य, व्यवसाय और युद्ध भी। यह कृषि-योग्य भूमि का कर्षण करायेगा, बंजर को शस्यश्यामला करेगा, अत: यह कृष्ण कहलायेगा। मैं तो अपनी योग-सिद्धि से अभी देख रहा हूँ कि अपने मित्र पाण्डवों को मिली इन्द्रप्रस्थ की झाड़-झंखाड़-भरी धरती को बात-की-बातों में कर्षित करा वह न केवल उसे अन्नदा बना डालता है अपितु वहाँ एक सुन्दर नगर भी बसा देता है। खाण्डवन-वन के समान विस्तृत और भयानक जंगल को खाक में मिला वहाँ भी वह कृषि कराकर अपने सुहृदों के अन्न-भण्डार को आकण्ठ भर देता है। यह तो नीलकमल की तरह नीले प्रकाश से युक्त है- शयम रंग है इसका। इसलिए इसका एक नाम श्याम भी होगा। कृष्ण एक ही साथ लक्ष्मीपति है, विष्णु है, राम है, नृसिंह है, सर्व-संहार अग्नि हैं, नर-नारायण हैं, तो इस नाम का उच्चारण सर्व विध पापों के मूल पर कुठाराघात नहीं करेगा। इसका एक नाम हरि होगा। जिनको कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं कुछ मनीषी जिसे जगत्का कर्ता कहकर पुकारते हैं, कुछ प्राणी जिसे परमात्मा कहते हैं, कुछ जिसको भगवान कहते हैं और जो देश-कालसे परिछिन्न नहीं है। देश-कालकी सीमामें जो आबद्ध नहीं है। सारे देशोंमें और सारे कालोंमें अतीत भी है और वर्तमान भी ठीक-ठीक अब मालूम हो गया कि वही देवता- कुछ भी उसका नाम होगा भगवान्, परमात्मा, ब्रह्म, जगत्कर्ता वही नन्दरानीकी गोदमें परिछिन्न छोटा-सा बालक सीमाबद्ध-सा बना हुआ दीख रहा है। यह जो तुम्हारा पुत्र हैं गुणोंमें, सौन्दर्यमें, कीर्तिमतें, सम्पत्तिमें नारायणके समान हैं। दूसरा नारायण हैं; अर्थात् नारायण ही इस रूपमें आया है।

ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर राधा के वल्लभ ने अवतार धारण किया। यह गोकुल का स्वामी है अनाथों का नाथ है और भक्तों का पान करनेवाला तथा मधुर रस से भरा हुआ है। यह सबका स्वरूप है और सबका आधार है। यह सबका बीज है और सब जगत के रूप में यही फैला हुआ है। बहुतसे नामोंके स्मरण का जो फल है वह सब कृष्ण नाम के स्मरण से प्राप्त हो जाता है। इनका सुनना और इनका कीर्तन करना आनन्द रस को बढ़ानेवाला है। यह नाम करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करनेवाला है।

यह वंशका उद्धारक होगा, कुलका उद्धारक होगा, कुलका यशस्वी होगा, कुलकी कीर्ति फैलानेवाला होगा, सारे विघ्नोंको नाश करनेवाला होगा, सारे मंगलोंको देनेवाला होगा।

इतना सुनकर नन्दबाबा चौंक पड़े। पूछा- गुरुदेव, आपने क्या कहा? इस पर गर्गाचर्य जरा संभल कर बोले- नहीं, नहीं, नन्द बाबा, यह बेटा तो आपका ही है। पर कभी वसुदेव के घर जन्मा था, अत: रहस्य-वेत्ता लोग इसे वासुदेव भी कहते हैं अत: आप चिन्ता न करें। यह बेटा तो आप का ही है।

यद्यपि इसके गुण और कर्म के अनुसार बहुत-से नाम हैं। इसे सारे नामों को मैं भी नहीं जानता तो औरों की क्या बात है? यह आप लोगों का परम कल्याण करेगा। सारे गोप-गोपियों और गायों को यह परम आनन्द प्रदान करेगा। इसकी सहायता से आप लोग बड़ी-बड़ी विपत्तियों को बड़ी आसानी से पार कर लेंगे। जो मनुष्य आपके इस लाला से प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं। उन्हें कभी शत्रु अभिभूत नहीं कर सकते। नन्द बाबा, आपका यह बेटा गुणों में नारायण के समान होगा।

वैसे तो श्रीकृष्ण और नारायण में कोई अन्तर है ही नहीं। यह सब बातें तो केवल कलहमात्र है। नारायण में साठ और मुरलीमनोहर में चौसठ गुण बतलाये गये हैं अर्थात् नारायण की अपेक्षा श्रीकृष्ण में चार गुण अधिक हैं- रूपमाधुरी, लीलामधुरी, वेणुमाधुरी और प्रियामाधुरी। श्रीकृष्ण के ये चार गुण नारायण में नहीं है अत: श्रीकृष्ण बड़े और नारायण छोटे हैं।

तुम्हारा यह शिशु पूर्ण ब्रह्म स्वरूप है माया से इस भूतल पर अवतीर्ण हो पृथ्वी का भार उतारने के लिये उद्यमशील है। इस शिशु के रूप में साक्षात् राधिका वल्लभ गोलोकनाथ भगवान श्रीकृष्ण पधारे हैं। वैकुण्ठ में जो कमलाकान्त नारायण

हैं तथा श्वेत द्वीप में जगत् पालक विष्णु निवास करते हैं वे भी इन्हीं में अन्तर्भूत हैं। यह तेजोराशि ही मूर्तिमान होकर वसुदेव के यहाँ अवतीर्ण हुई है। यह किसी योनि से प्रकट नहीं हुए हैं, अयोनिज है। मैंने तुम्हारे पुत्र के नाम और महिमा का वर्णन अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार कर दिया। इनका एक नाम राधापति भी है। असंख्य ब्रह्माण्ड जिनके अधीन हैं, जो गोलोकधाम में विराजते हैं, पृथ्वीका भार उतारने के लिये कंस आदि दुष्टों का संहार करने के लिये और भक्तों की रक्षा करना ये ही इनके अवतार के उद्देश्य हैं। हे ब्रजेश्वर, इनके नामोंका कोई अन्त नहीं। वेदोंमे इनके नाम गूढ़रूप से कहे गये हैं। यह अच्युत, विष्णु, सर्वेश, सर्वाधार, सर्वगति, सर्वकारण नाम से जाने जाते हैं। ये नाम जन्म तथा मृत्यु के कष्टोंको हर लेनेवाले है। इनकी लीलाओं के कारण ही इनके कर्मों के अनुसार इनके नाम विख्यात होंगे। तुम्हारा अहोभाग्य है, जो साक्षात् परिपूर्णतम परात्पर पुरुषोत्तम प्रभु पुत्र के रूप में तुम्हारे घर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

कुछ क्षण के लिये आचार्य स्तम्भित उस मोहिनी मूरत को निहारते रहे। यशोदा चिंतित थीं यह सोचकर कि कहीं यह अबाध महाराज को अपवित्र न कर दे।

नामकरण तो अब औपचारिकता मात्र है। जिसके सहस्रों नाम पड़े हो उसके नाम ऋषिवर क्या रखेंगे। नाम रूप की कोई मर्यादा नहीं है। भगवान के बहुत सारे नाम हैं, बहुत सारे रूप हैं। गर्गाचार्य बोले- न तो उन सबको मैं जानता हूँ न दुनिया जानती हैं।

यह जो नन्दन्दन प्रेमावतार हैं इसको मधुरावतार भी कहते हैं। यहाँ माधुर्य ही माधुर्य है। माधुर्य की सेवा करनेके लिये ऐश्वर्य प्रकट होता है। माधुर्यकी सेवा सम्पन्न करके छिप जाता है। यह वात्सल्य अवतार है। वात्सल्य कहते हैं उसको जो अपने आश्रितजनके दोषोंको अपनी प्रसन्नताका साधन बना ले।

सांवरीया थारा नाम हजार, कईयां लिखू कुंकुपत्री...
कोई कहे तने देवकी को, कोई कहे तने यशोदा को, कोई कहे दिन दयाल रे, कईयां.....
कोई कहे तने नंदजी को, कोई कहे तने वसुदेवजी, कोई कहे भक्त प्रतिपाल, कईयां.....
कोई कहे द्वारिका को, कोई कहे गोकुल को, रोज रोज बदले मुकाम, कईयां.....

नद अनत यह तनय तुम्हारा। लीन्हिं प्रथम तिहुँ युग अवतारा।।
श्वेत अरुन पीतहिं अनुहारी। कृष्ण बरन दिबि अब की बारी।।
दिबि अभिराम कृष्ण तेहिं नामू। ब्रजभूषण सुठि रुचित ललामू।।
कह श्रुति इन्हकर नाम अनेका। गुन प्रभाव कृत लीला टेका।।
प्रभु अनन्त प्रभु नाम अपारा। कहेउँ कछुक निज मति अनुसारा।।
धन्य भाग ब्रज राज तुम्हारा। तुम समान नहिं कोउ संसारा।।
भएउ तोर सुत ईशन्ह ईशा। परम धाम गोलोका धीशा।।
गर्ग भाखि अस कीन्हिं पयाना। नन्द आपु कहँ कृतकृत माना।।

मैया बोली- महाराजजी, क्या इधर-उधर की बातें बता रहे हो। कभी भगवान, कभी नारायण बताते हो। यह बताओ मेरो लाला पराक्रमी होयो की नहीं। धन, ऐश्वर्य, संतति, पत्नियोंकी बात बताओ।

गर्गाचार्य ने कहा- सुंदर सरस संवत्सर है। भाद्रपद की अष्टमी तिथि, दिन बुध और कृष्ण पक्ष का रोहिणी नक्षत्र है। ठीक

आधी रात और हर्षण योग है। वृष लग्न में ऊँचे घर के चंद्रमा हैं, इसलिए शरीर से ये बड़ा सुख पाएंगे। चौथे घर में सिंह राशि के सूर्य हैं, इसलिए ये समस्त पृथ्वी को जीतेंगे। पांचवें स्थान में कन्या राशि का बुध है, इससे इनके पुत्र बहुत बढ़ेंगे। छठे स्थान में शुक्र तुलाराशि के शनि के साथ हैं, इसलिए इनके शत्रु रहने नहीं पाएंगे। सातवें स्थान में राहु है, अत: ऊंच-नीच कुल की बहुत-सी युवतियों से ये संबंध स्थापित करेंगे। भाग्य के घर में पृथ्वी पुत्र मकर है, जो इनके ऐश्वर्य को बढ़ाएगा। लाभ के घर में मीन राशि के बृहस्पति है इसलिए घर में नवों निधियां आएंगी। कर्म के घर के स्वामी शनि हैं, इसलिए इनका शरीर श्याम वर्ण का होगा। आदि, सनातन, परब्रम, अंतर्यामी, सूरदस के स्वामी श्रीहरि ने तुम्हारे घर में अवतार लिया। मैया, तुम्हारे लाला के अनेक विवाह होंगे, अनेक पत्नियाँ होंगी और संतति भी खूब होगी। धन, ऐश्वर्य, श्री सम्पन्न होगा, पराक्रमी होगा। तुम्हारा यह जो छोटा लाला है, बड़ा होनेपर समुद्र के किनारे अपनी राजधानी बनाएगा। मैया बोली- क्या कह रहे हों ऋषि-प्रवर, यह कन्हैया हम लोगोंसे दूर चला जायगा। पश्चिमी समुद्र किनारे? सूरज पूरब-सागर में उगता है और पश्चिम-समुद्र में डूबता है। तो क्या हमारा कन्हैया डूबते सूरज के देश को चला जाएगा? हम सबको छोड़कर, गो-वत्सों को छोड़कर जायगा नन्द उदास होकर बोले। गर्गाचार्य बोले- खिन्न होनेकी आवश्यकता नहीं है नन्दराय। मनुष्य चलने के लिये ही बना है। प्रकृति में सबकुछ गतिमान है। जिसके अति से विरक्ति है उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। केसरी (सिंह) जहाँ जन्म ग्रहण करता है उससे हजारों कोस की दूरी पर उसकी मृत्यु होती है। श्रृगाल जिस वन में पैदा होता है वही मरता है। तो नर-केसरी है तुम्हारा कन्हैया। तो इसमें शोक की क्या बात है? यह तो हर्ष का विषय है नन्दराय। क्या तुम सदा के लिए बने रहोगे। अपनी सन्तान की गतिविधियों का साक्षी बनने के लिए? मनुष्य क्या अमर होकर आये इस धरती पर? जब तुम ही नहीं रहोगे तो तुम्हारा पुत्र कहाँ बसता है, क्या करता है, इसकी चिन्ता तुम्हें क्यों? इसके जन्मकालीन ग्रह-गण तो वही कहते हैं जिसकी तुम्हें आशंका है। तुम्हारा और उसका बहुत दिनोंका साथ नहीं है। पंख लगते ही जैसे नीड़ के पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे ही दोनों भाई तुम सबको छोड़नेवाले हैं। मनुष्य को नियति के साथ समझौता करना पड़ता है। तुम्हीं ने ज्योतिष की बात चलाई तो मुझे यह सब बताना पड़ा। यह बालक सामान्य नहीं है। इसकी कीर्ति विश्वव्यापी होगी। इसकी कहानी कालातीत होगी। सृष्टि के अन्ततक इनकी यशोगाथा गाई जायेगी। ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ उपलब्ध करेगा कि यह ईश्वर के रूप में पूजित हो जाएगा। अपने साथ-साथ तुम्हें भी अमर कर जायेगा। लोग कन्हैया और दाऊ को नहीं भूलेंगे तो नन्द और यशोदा को कैसे भूल पायेंगे, कैसे भूल पायेंगे वसुदेव और देवकी को? समय सब कुछ बता देगा। तुम्हें ज्ञात है कोयल का बच्चा कहां पलता है- कौए के सुरक्षित घोंसले में। कोयल घोंसला बना नहीं सकती यह उसकी विवशता है। वह अपने अण्डे कौए के घोंसले छोड आती है और कौएं उनकी सुरक्षा करते हैं। पर निकलने पर कोयल के बच्चे कोयलों की समूह में जा बैठते हैं। जो कुछ भी घटेगा तुम्हारे भले के लिए ही घटेगा। यह तुम्हारे पूर्वजन्म के पुण्यों का फल है। ये दो बालक तुम्हारे प्रांगण में खेल रहे हैं अन्यथा ये कहीं और ही होते। नन्दरानी अत्यन्त कोमल हृदय की है। गोप-गोपियों में किसी पर भी यह बात प्रकट मत करना। वे इस कन्हैया पर सब जान छिड़कते हैं। आनेवाले वर्षों में वह इनके प्राणों का आधार होगा। भविष्य की आशंका से अपने वर्तमान को बर्बाद न करो। अभी तो तुम्हें अपने लाला का सान्निध्य प्राप्त है उसका भरपूर उपभोग करो, सुखी रहो, उसे भी सुखी रखो। भविष्य पर किसीका अधिकार नहीं, एकमात्र सत्य, वर्तमान है। उसके साथ खिलवाड़ करना, उसकी उपेक्षा करना, उसे बर्बाद करना जघन्य पाप है। जिसका प्रायश्चित किसी धर्म-ग्रन्थ, किसी श्रुति-स्मृति में नहीं है। जो वर्तमान का उपभोग करता है, उसका जीवन सत्य से साक्षात्कार हो गया।

किसी बड़े आदमीके बालकसे भी सम्पर्क हो जाय तो मनुष्य अपनेको धन्य मानता है और यह तो विश्व-पालक हैं। यह बालक नहीं, विश्व-पालक जो बालक बनकर आज यहाँ पर उदय हुये हैं, यह जो भगवान्का उदय है, यहाँ पर यदि हमें आचार्यत्व मिलता है तो इसे खोना नहीं है।

गर्गाचार्य प्रसन्न होकर बोले- आज मेरा जन्म धारण सफल हो गया। मेरे नेत्र सफल हो गये। मेरी विद्या, मेरा तप, मेरा कुल सफल हो गया। जो कुल, सदाचारमें प्रवृत्त कराकर भगवान्में लगा दे वह कुल और जो तप, संसारके दु:खोंसे हटाकर भगवान में जोड़ दे वह तप सफल हो जाता है। जो विद्या, अविद्याको संसारकी मोह-मायाको हटाकर अध्यात्ममें, भगवानमें जोड़ दे वह विद्या सफल और जो शरीर भगवान्की सेवामें समर्पित हो जाय वह शरीर सफल हो जाता है। उन्होंने कहा कि, मेरा तो आज पुरोहित होना सफल हो गया। ब्राह्मणोंने कहा है कि पुरोहिती कोई अच्छा पेशा नहीं, नीचा पेशा है। मेरी आचार्यता, पुरोहिती, गुरुपना तथा यदुकुलका आचार्यपना सफल हो गया। आचार्यतारूप भगवतीने बड़ी कृपा की कि मुझको यदुकुलकी आचार्यताका आश्रय दिया। कहीं और किसी कुलका पुरोहित होता या किसी राक्षसके यहाँ ही पुरोहित बन जाता। शुक्राचार्य की तरह ही तो आँखे फूटती। यदुकुलकी प्राप्त हुयी आचार्यताने ही अनुकम्पा करके मुझे कृतार्थ कर दिया। इस प्रकारसे उनको अत्यधिक आनन्दकी प्राप्ति हुई।

कृष्ण को नारायण के समान बतलाकर गर्गाचार्य ने नन्द बाबा को बताया- अत: नन्द आप बड़ी सावधानी और तत्परता से इस बालक की रक्षा करना।

नन्द बोले- मुनिवर, आप बार-बार राधा का नाम ले रहे हैं। यह राधा कौन है? गर्ग बोले- हे नन्द, मैं पुराना इतिहास सुना रहा हूँ जो पहले गोलोक में घटित हुआ और मैंने भगवान शंकर के मुख से सुना। किसी समय गोलोक में श्रीदामा का राधा के साथ लीला प्रेरित कलह हो गया। उस कलह के कारण श्रीदामा ने राधा को शाप दिया कि तुम्हारा कृष्ण से सौ वर्ष का वियोग होगा। इसलिये गोपी राधा को गोकुल में आना पड़ा। इस समय वे वृषभानु गोप की पुत्री हैं, कीर्तिदेवी उसकी माता है। वे कृष्ण के अर्धांग भाग से प्रकट हुई हैं। अपने स्वामी के अनुरूप ही परम सुन्दरी सती हैं। श्रीराधा गोलोक वासिनी है। ये देवी मूल प्रकृति ईश्वरी हैं। अब राधा ब्रज में बढ़ रही हैं। एक ही मूर्ति दो रूपों में विभक्त हो गई हैं जिसका निरूपण वेदों में किया गया है। दोनों ही स्वरूप, गुण एवं तेज की दृष्टि से समान हैं भिन्न नहीं है। पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और सम्पत्ति की दृष्टि से भी उनमें न्यूनता अथवा अधिकता नहीं हैं। वे गोलोक धाम से यहाँ पहले अवतरित हुई है इसलिये आयु में कृष्ण से कुछ अधिक हैं। श्रीराधा के नाम श्रवण, स्मरण और कीर्तन का सुयोग जीव को मिलने से मोहजाल, पाप, रोग, शोक, मृत्यु और यमराज सभी की फाँसी कट जाती है। श्रीदामा के शाप के कारण राधा ने ब्रज में बृषभानु के घर में जन्म लिया। श्रीकृष्ण ने राधा को अनादि काल में अपने बाये अंग से प्रगट किया। राधा और कृष्ण कभी भी अलग न होनेवाले एक ही स्वरूप हैं। फिर भी उन्होंने लीला करने के लिए दो अलग-अलग स्वरूप धारण किये। राधा तो नित्य गोलोक धाम की निवासिनी हैं किन्तु लीला के लिए वह ब्रज में वास करनेके लिये आयी है। वे ही मूल प्रकृति है वे ही ईश्वरी हैं। वे ही अयोनिजा है। उन्होंने श्रीकृष्ण का पूर्ण तेज प्राप्त किया है। उसी एक ब्रह्म तत्त्व ने दो रूप बनाये हैं। राधा और कृष्ण में कोई छोटा बड़ा नहीं है। वे एक ही तत्व होकर दो रूपों में प्रगटे हैं। वे परम विलक्षण एक समान तेज धारण करके प्रगट हुए हैं। कृष्ण को तो कंस से कोई भय नहीं था पर ब्रज में रस की वर्षा करने ब्रज को सरस बनाने आये हैं। भय को भय से भी भय लगे वह कंस के भय से डर कर कहीं क्यों जायगा।

राधा श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण राधा की आराधना करते हैं। वे एक दूसरो के आराधक और आराध्य है। दोनों सब प्रकार से समान और पूर्ण तथा रसिकों में श्रेष्ठ हैं। रा कहने से दुर्लभ मुक्ति भी पाई जाती है और धा कहने पर

श्रीकृष्ण के चरणों तक कहनेवाला पहुँच जाता है। राधा मोक्ष की खान है।

गर्गाचार्य ने कहा- हे नन्द, अब श्रीकृष्ण के द्वारा जो लीलाएं होनेवाली हैं, उनका वर्णन सुनो।

कुबेर पुत्रों का उद्धार, गोपियों के घरों से माखन चोरी, धेनुकासुर, वकासुर, अघासुर, केशी, प्रलम्बासुर का वध, द्विजपत्नियों का उद्धार, इन्द्र-यज्ञ निवारण, इन्द्र के कोप से व्रज की रक्षा, गोपियों का चीरहरण और उनको मनोवाञ्छित वरदान देना। ये श्यामसुन्दर अपनी लीलाओं से गोपियों का चित्त चुरा लेंगे और उन्हें सर्वथा अपने अधीन कर लेंगे। तदनन्तर इनके द्वारा अत्यन्त रमणीय रासोत्सव का आयोजन होगा जो सबका आनन्दवर्धन करेगा। शरद् और बसन्त ऋतु में रात के समय पूर्णचन्द्रमा का उदय होने पर रासमण्डल में गोपियों को नूतन प्रेम मिलन का सुख प्रदान करके ये श्यामसुन्दर उनका मनोरथ पूर्ण करेंगे। तत्पश्चात श्रीदामा के शाप के कारण इनका गोप गोपियों तथा श्रीराधा के साथ (पार्थिव) सौ वर्षों के लिए वियोग हो जाएगा। उस समय ये मथुरा चले जायेंगे और वहाँ इनका गमन गोपियों के लिए शोकवर्धक होगा। ये उन्हें समझा बुझाकर धैर्य बधायेंगे और आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करेंगे। उसके बाद रथारूढ़ हो सारथी अक्रूर के साथ यमुना लाँघ कर मथुरा को पधारेंगे। मथुरा में धोबी, दर्जी, माली और कुब्जा को भवबन्धन से मुक्त करेंगे। शंकरजी के धनुष को तोड़कर यज्ञभूमि का दर्शन करेंगे। फिर कुवलयापीड़ हाथी, मल्लों और कंस का वध करके अपने माता पिता को बन्धन से छुड़ायेंगे और कंस के राज्य पर उग्रसेन का अभिषेक करेंगे। इसके बाद बलराम-श्रीकृष्ण का उपनयन संस्कार होगा, ये गुरु के मृत पुत्र को लायेंगे। तत्पश्चात् जरासंध की पराजय, कालयवन का वध, द्वारिकापुरी का निर्माण और वहाँ को प्रस्थान, मणि सम्बन्धी मिथ्याकलंक का मार्जन आदि मनोहर लीलाएँ करेंगे। तीर्थयात्रा के प्रसंग से व्रजवासियों के साथ पुन: मिलना इत्यादि कार्य करके ये श्रीकृष्ण श्रीराधा के साथ फिर व्रज में आयेंगे। इसके बाद ये जगदीश्वर गोलोकनाथ यहाँ राधा के साथ समस्त आवश्यक कार्य पूर्ण करेंगे तथा व्रजवासियों और श्रीराधा को साथ लेकर शीघ्र ही गोलोक धाम में पधारेंगे। नारायण देव तुम्हें साथ लेकर वैकुण्ठ पधारेंगे।

नन्द, यहाँ पास ही वृन्दावन में श्रीराधा और माधव का विवाह होगा। साक्षात् जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी पुरोहित हो अग्निदेव को साक्षी बनाकर प्रसन्नतापूर्वक यह वैवाहिक कार्य सम्पन्न करेंगे। नन्द, जो लोग तुम्हारे इस साँवले सलोने शिशु से प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान हैं। जैसे विष्णु भगवान के करकमलों की छत्रछाया में रहनेवाले देवताओं को असुर नहीं जीत सकते वैसे ही इससे प्रेम करनेवलों को भीतर या बाहर किसी भी प्रकार के शत्रु नहीं जीत सकते। चाहे जिस दृष्टि से देखें- गुण में, सम्पत्ति और सौन्दर्य में, कीर्ति और प्रभाव में तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान नारायण के समान है।

नैनन छैया चित्त चुरैया नाम अनन्ता। जैसी लीला करे जना सो नाम धरन्ता।।

अब मैं चलूँ देर बहु लागी भई अबेरा। समय लगेगा जावत मोको मथुरा नेरा।।

हे बृजेश, नैनन छैया चित्त चुरैया आदि इसके अनेक नाम होंगे। जैसी जैसी लीला करेगा भक्त लोग वैसा वैस इसका नाम धरेंगे।

हे नन्द मैं इस ब्रह्म के सब नामोंको जानता हूँ किन्तु संसार उन सबको नहीं जानता। गोप, गोपियाँ, गायें बछड़े इनके नाम रूप पर लुभाकर बलि बलि जायँगे। अब मैं चलना चाहता हूँ, बहुत देर लग गई है। मथुरा तक पहुँचने में अब देर हो जाएगी।

आचार्य की बात सुनकर मैयाने बहुत स्वर्ण दिया। आशीर्वाद देकर गर्गाचार्य चले गये। उसे धन क्या चाहिए जिसके पास सबसे बड़ा धन गोविन्द हो। मैया मन में बड़ी प्रसन्न हैं। पूरे व्रज में आनन्द, उल्लास छा रहा है।

या विधि कहकर गर्ग द्विज, गये स्वकीय अगार। राम कृष्ण की सुभब छबि, निज मानस में धार।।

सुत के गुन सुन नन्द के, उर नहि हर्ष समाय। नाम रखे जो जो मुनी, सबको दिये सुनाय।।

गर्गाचार्य ने समझाया गोकुलमें उनका आगमन गुप्त रहना चाहिये यह शिशुओंकी सुरक्षाके लिये अत्यन्त आवश्यक है। वे अन्त में कुछ भी साथ लेकर नहीं गये न ही ब्रजपतिको गोष्ठके बाहर पहुँचानेके लिये मना कर दिया। वहींसे दोनों माताओंने गर्गाचार्य को प्रणाम किया। शिशुओंको गर्गाचार्य के चरणों में रखा।

इस प्रकार नन्द बाबा को भाँति-भाँति से समझा कर गर्गाचार्य जी अपने आश्रम को लौट गये। आचार्य की बात सुनकर नन्द बाबा को बड़ा आनन्द आया। उन्होंने अपने को परम भाग्यशाली समझा।

चकित-थकित अपलक नेत्रोंसे देख रहे गुरु गर्ग महान।
नँदरानीकी गोद मनोहर मधुर, श्याम शिशु श्रीभगवान॥
सफल हो गया जीवन, जप-तप-विद्या-बुद्धि सफल सब आज।
कुल, यदुकुलका हुआ सफल शुभ आचार्यत्व सकल सुख-साज॥
मन आया- लुट पड़ूँ चरणमें, तुरत चढ़ा लूँ पद-रज शीश।
प्रकट परात्पर ब्रह्म स्वयं सब लोक-महेश्वर श्रीजगदीश॥
भूल सभी ऐश्वर्य, स्वयं जब शिशु बन रहे जननिकी गोद।
हृदय लगा लूँ तुरत उठाकर, बदन चूम लूँ क्यों न समोद?
पर यदि कुल-आचार्य वृद्ध मैं विप्र करूँगा चरण-स्पर्श।
कह उन्मत्त हँसेंगे सारे, होगा कुछके चित्त अमर्ष॥
यदि मैं हृदय लगा लूँगा शिशु सुंदरको, भर मन उल्लास।
समझ चपलता मेरी बूढ़े-बड़े करेंगे सब उपहास॥
छूट रहा पर धैर्य, जा रहा छूटा सारा सोच-विचार।
इसी बीच मुसका मोहनने किया तुरत माया-विस्तार॥
कुल-गौरव जग उठा, भूल सब, लगे कराने वे संस्कार।
पर छूटा न तनिकभर मनसे आकर्षण शिशुका अनिवार॥

गोकुल से मथुरा आने के रास्ते में एक रावल नाम का शुभ गाँव भी पड़ता है, जहाँ के राजा श्री वृषभानु जी और रानी कीर्ति देवी हैं। श्री गर्गाचार्य जी के आने का समाचार पाकर श्री वृषभानु राय जी पूरे आदर सम्मान के सहित उन्हें अपने महलों में लिवा लाये।

मथुरा आवत राह परा रावल शुभ ग्रामा। राजा तहँ वृषभानु राय जा कीरति वामा॥
समाचार पा वृषभानू अपने गृह लाये। गर्गाचारज सन्मानित उन महलन आये॥

वन या मथुरा जाने की बजाय श्रीगर्गाचार्य जी वृहत्सानुपुर (बरसाना) की ओर चल दिये। कालिन्दी कूल पर शोभित यह नगरी अत्यन्त आकर्षक लग रही थी। मध्यान्ह हो गया था अत: महाराज जी स्नान कर मध्यान्ह संध्या करके पुरी की ओर प्रस्थान करने ही जा रहे थे कि सामने से अनेक गोपों के साथ श्रीवृषभानु जी आते दिखाई दिये। वे रुके। वृषभानु जी ने प्रणिपात किया आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। भवन में ले जाकर सविधि पूजन किया। भोजन कराया, विश्राम कर रहे थे तो वृषभानु जी चरण दबाते हुए बोले महाराज, श्रीचरणों से अधिक ज्योतिष का ज्ञान सम्भवत: देवताओं को भी नहीं है। सेवक के भी एक पुत्री और एक पुत्र है। आप कृपाकर उनका भी कुछ करें। नम्रता से उन्होंने कहा। गर्गाचार्य जी

शीघ्र बैठे हो गये जैसे वे यह सुनने के लिए ही आतुर थे। वृषभानु जी अत्यन्त हर्षित हुए और तुरन्त सेवक को शिशुओं सहित कीर्तिरानी को शीघ्र बुला लाने का आदेश दिया। वे भी जैसे आदेश पालन की प्रतीक्षा में ही थी, शीघ्र उपस्थित हो गयीं, गोद में दोनों शिशुओं को लिए।

गर्ग ने मुनि राधारमण के गुणों का सुमिरन करते हुए वृषभानु को बताया कि नन्दनन्दन धर्म के सेतु कृपानिकेतु परम प्रभु नन्द के पुत्र हैं। तुम्हारी पुत्री उन्हीं परमप्रभु कृष्ण की सुभामिनी है यही पराशक्ति गोलोक की स्वामिनी है।

हे रावलपति, गौरवर्ण का आपका यह पुत्र श्री नन्द नन्दन श्याम सुन्दर का अतिप्रिय सखा है। अपने स्नेह भाव से परिपूर्ण होनेके कारण इसने मन मोहन के हृदय में डेरा लगाया हुआ है। आपकी पुत्री गोलोक की विभूति नित्य निकुञ्जेश्वरी श्री राधा हैं। यह यशोदा नन्दन कृष्ण की हृदयेश्वरी हैं।

बृजभानु बोले- मुनिवर जिस प्रकार आप मुझे सदराह दिखा रहे हैं उसी प्रकार यह ब्याह भी आप ही सम्पन्न कराएं।

गर्गाचार्य ने पुत्र को गोद में बिठाकर उसका मस्तक, कर और पदचिन्ह देखे। बोले- यह नन्दराय के नीलमणि श्याम का सखा होगा इसका नाम सुबल रखलो। यह सौम्य, शील और सदा स्नेहमय होगा। जो असंख्य ब्रह्माण्डों के अधिपति, गोलोक धाम के स्वामी, परात्पर प्रभु साक्षात् परिपूर्णतम हैं, जिनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। स्वयं वे ही भगवान श्रीकृष्ण नन्द के घर प्रकट हुए। पृथ्वी का भार उतारने और दुष्टों का विनाश करने ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर पृथ्वीपर आये है। उन्हीं परमप्रभु श्रीकृष्ण की पटरानी प्रिया श्री राधाजी गोलोक धाम में विराजती हैं, वे ही तुम्हारे घर में पुत्री रूप में प्रकट हुई है। वृषभान तुम उन पराशक्ति राधिका को नहीं जानते। यह भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति नित्य प्रिया श्री राधा है। यहाँ भूतल पर भी इनका विवाह भगवान श्रीकृष्ण के साथ ही होगा।

बालिका को अंक में लेते ही वे स्वयं विस्मृत हो गये। उनके पंकज चारु श्रीचरण देखते ही रह गये। आचार्य किसी प्रकार स्थिर चित्त करके बोले। यह तो कान्हा की आल्हादिनी आराधना की अधिष्ठात्री होगी। श्रीराधा इसका नाम होगा।

आपकी पुत्री शीलवती है। पुत्रीको धन मिले, सुख मिले, संतान मिले, सुन्दर पति मिले- सब मिले; किंतु शील पहिले मिले। सब न मिले और शील मिले तो भी उसे स्वीकार है। इस कन्या का शील सृष्टिको शुद्ध प्रेमके स्वरूपका शाश्वत आदर्श बनेगा।

गर्ग मुनि बोले- हे तात, यह विवाह का कृत मैं नहीं कराऊँगा इसे स्वयं विधाता आकर करवायेंगे। आप सब प्रकार से सुख रासी हैं गोलोक धाम के निवासी हैं आप धन्य-धन्य हैं। प्रभु लीला के लिए ही आप इस धरती पर आए हैं।

यमुना के तट पर भांडीर वर में इनका विवाह होगा। वृन्दावन के निकट जनशून्य सुरम स्थान में स्वयं ब्रह्मा पधारकर इन दोनोंका विवाह करायेंगे। गोपवर, तुम इन श्रीराधिका को भगवान श्रीकृष्ण की नित्य प्राणवल्लभा जानो। संसार में राजाओं के शिरोमणि तुम हो और लोकों का शिरोमणि गोलोक धाम है। तुम सम्पूर्ण गोप गोलोक धाम से ही इस भूमण्डल पर आए हो। समस्त गोपियाँ भी राधिका की सखी बनकर उनकी आज्ञा मानकर गोलोक से आयी है। राधा नाम सर्ववाच्छित, सदानन्द स्वरूप, सम्पूर्ण सिद्ध समुदाय रूप एवं ईश्वर की प्राप्ति कराता है। हरि के साथ उन्हीं की भाँति अनन्त काल तक सहवास का सुख, समान ऐश्वर्य, सारूप्य तथा तत्त्व-ज्ञान प्रदान करता है। राधा नाम के श्रवण, स्मरण और कीर्तन का सुयोग मिलने से मोहजाल, पाप, रोग, शोक, मृत्यु और यमराज से भी भय नहीं रहता। राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्ण प्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्ण स्वरूपिणी, कृष्णावामांगसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरतचन्द् प्रभानना- ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्त्र नामों के ही

अन्तर्गत हैं। इनका नाम रासेश्वरी भी है। उनका रासमण्डल में निवास है तभी ये रासवासिनी कहलाती है। वे समस्त रसिक देवियों की परमेश्वरी हैं संत महात्मा उन्हें रसिकेश्वरी कहते हैं। श्रीकृष्ण के लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय है। कृष्ण उन्हें कृष्ण प्राणधिका कहते हैं। समस्त देवता उन्हें कृष्णप्रिया कहते हैं। वे सभी अंशों में श्रीकृष्ण के समान हैं। अत: श्रीकृष्ण स्वरूपिणी कही गई हैं। परम सती श्रीराधा श्रीकृष्ण के आधे वामांग भाग से प्रकट हुई हैं। इसलिये उन्हें कृष्णवामांग सम्भूता कहते हैं। श्रीराधा स्वयं परमानन्द की मूर्तिमती राशि हैं अत: श्रुतियों ने उन्हें परमानन्दरूपिणी कहा है। राधा शब्द मोक्ष का वाचक है, उत्कृष्टता का बोधक है। यह मोक्षदात्री है। वृन्दावन की अधिदेवी है इसलिए वे वृन्दावनी कही गया है। वेद उन्हें वृन्दावनविनोदिनी कहते हैं। श्रीकृष्ण ने उन्हें चन्द्रावली एक नाम दिया है। उनकी कान्ति दिनरात चन्द्रमा के समान बनी रहती हैं। कहीं कहीं उन्हें चन्द्रकान्ता भी कहा गया है।

आख्य सुबल धरूँ लाल कर, लाली राधा नाम। गर्गाचारज नमन धर, गे मथुरा निज धाम।।

आचार्य जी ने कहा, तुम्हारे पुत्र का नाम मैं सुबल रखता हूँ और तुम्हारी पुत्री का नाम तो राधा के सिवा और क्या हो सकता है? इसीलिए यह लाली राधा के नाम से प्रसिद्ध होगी। श्री वृषभानु राय जी के सहित सारे परिवार का प्रणाम करके श्री गर्गाचार्य जी अपने आश्रम हेतु मथुरा के लिए प्रस्थान कर गए। मथुरा में वसुदेवजी मिले। अर्घ्य-पाद्यादिसे उनकी अर्चा पूजा हो चुकी। महर्षि प्रसन्न होकर बोले- मेरी दक्षिणा तो व्रजपतिने दे दी है। रोहिणीकुमार राम तो है ही, बलाधिक्यके कारण बल भी है। उस संकर्षणका प्रभाव शैशवमें भी असीम है। देवी, तुम्हारा छोटा कुमार त्रिलोकीको धन्य करने धरापर आया है। उसके गुणोंकी, गुणोंके अनुरूप नामोंकी गणना करना मेरे गुरु भगवान शिवके भी बसकी बात नहीं है। मैं गोकुल जाकर कृतकृत्य हो गया।

गर्गाचार्य ने देवकी को बताया आपके छोटे कुमार का विवाह बृषभानु की कन्या से होगा पर आपको यह पुत्रवधू प्राप्त नहीं होगी। वह ब्रजसे बाहर जानेवाली नहीं है। आपके कुमार तो राजकन्याएँ लायेंगे इतनी राजकन्याएँ कि एक नगर बस जायगा उनकी ही सन्तानोंसे। तुम उन पुरुषोत्तमकी जननी हो। वे धराका भार ही दूर करने आये हैं। कंस और उसके असुर मरेंगे- गर्गकी यह भविष्यवाणी कभी असत्य नहीं होगी तुम चिंता का त्याग करो।

९) बाल क्रीड़ा-

ब्राह्म मुहूर्त शिशिर को आयो। चतुर्दशी प्रभात सरसायो।।

माघ शुक्ल को दिवस सुहावन। प्रात समीर बहत अति पावन।।

अन्नप्राशन- करत बाललीला ललित परम पुनीति उदार। सुन्दर श्याम सुजान हरि सन्तन के आधार।।

सूर्योदयमें अभी विलम्ब हैं, किंतु गोपसुन्दरियोंके दल-के-दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगे। घड़ीभर दिन चढ़ते-चढ़ते तो नन्दभवन गोप-वनिताओंसे सर्वत्र परिपूर्ण हो गया। नन्दभवनमें पुर-महिलाओंके लिये समय-असमयकी रोकथाम तो है नहीं तथा व्रजपुरमें नन्दनन्दनके अन्नप्राशन मुहूर्तकी सूचना फैल चुकी है। इसलिये आज यमुना-स्नान करके कितनी ही गोपसुन्दरियाँ तो घर भी नहीं गयीं, सीधे नन्दभवनमें ही चली आयीं। जिनके अतिशय अल्पवयस्क पुत्र हैं, उन्हें ही आनेमें कुछ विलम्ब हुआ, पर आयीं सब। छोटे शिशुओंको गोदमें लिये, किंचित् वयस्क पुत्रोंकी अँगुली पकड़े, मंगलगीत गाते आती हुई गोपसुन्दरियोंकी मधुर कण्ठध्वनिसे सुमधुर झन्-झन्, झिन्-झिन्, रुन-झुन, रुन-झुन, कङ्कण-किमिणी-नूपुर ध्वनिसे राजपथ तथा राजपथके दोनों ओर स्थित उत्तुङ्ग प्रासाद प्रतिशब्दित-प्रतिध्वनित होने लगे।

उन गोपाङ्गनाओंकी प्रत्येक भावभङ्गीसे एक अद्भुत वात्सल्य, अप्रतिम मातृभावका निर्झर झरता जा रहा है।

यथासमय व्रजरानी नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुत्रको गोदमें लिये आँगनमें चली आती हैं। गोपाङ्गनाओंकी अपार भीड़ उन्हें चारों ओरसे घेर लेती है। निकटतम कुटुम्बियोंको नन्दरानीने दासी भेजकर निमन्त्रित किया है। वे सब आ गयी हैं। व्रजरानी एक बार भंडारकी ओर जाती हैं। वहाँ पुत्रको गोदमें लिये श्रीरोहिणीजी सारी व्यवस्था कर रही हैं।

मंगल-उत्सव नन्द मनायो। करन अन्न प्राशन मन भायो॥

ब्रज रानी जगति रजनि बिताई। निशि बीती किमि जानि न पाई॥

व्रजेन्द्रका उत्साह तो देखने योग्य ही है। उनकी योजना ऐसी है कि उनके पुत्रका अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एवं भविष्यके इतिहासमें अद्वितीय बन जाय। नन्द-प्रासादसे संलग्न, कालिन्दीतीरपर्यंत विस्तीर्ण सुमनोहर नन्दोद्यानमें व्रजेन्द्रने एक नयी सृष्टि-सी रच दी है। उस सुरम्य उद्यानमें नौ छोटी-छोटी नदियोंका निर्माण हुआ है। जलकी नदियाँ नहीं, विभिन्न भोज्यरसोंकी। पहली नदी दधिकी है, उसमें दधिकी धवल धारा बह रही है, दोनों तट दधिसे भरपूर हैं। दूसरी गोदुग्धकी नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा है। तीसरी नदी घृतकी है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है, दोनों किनारे घृतसिक्त हो गये हैं। चौथी गुड़की नदी है, पीताभ गुड़की यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है- मानो सचमुच ही किसी नदीकी पीताभ जलधारा हिमके संयोगसे जम गयी हो। ऐसी इस गुडकुल्या (गुड़की नदी)- की शोभा है। पाँचवीं तैल-नदी प्रवाहित हो रही है, मन्द मन्थरगतिसे धीरे-धीरे यमुनाकी ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण है, यह मधुकुल्या है, इसमें मधुधारा बह रही है। सातवी नवनीत-नदी है, उज्ज्वल हिमपिण्डकी भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। इसका प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। इन सातके अतिरिक्त तक्र-नदियाँ भी हैं। ये कई हैं तथा द्रुतगतिसे झर-झर करती हुई यमुनाकी ओर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करोदक नदियाँ हैं, इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधाराएँ अत्यन्त प्रखर गतिसे उद्यानकी परिक्रमा कर रही हैं।

नन्दबाबा अपने पुत्र श्रीकृष्ण और रोहिणी पुत्र बलराम के सभी जात कर्म संस्कार विधिपूर्वक विद्वान ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न कराते थे। अतएव इन बालकों का अन्नप्राशन संस्कार भी उन्होंने विधिपूर्वक ही कराया था। बालकों के नामकरण संस्कार के समय नन्दबाबा ने उनका अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न कराने के लिए श्रीगर्गाचार्यजी से निवेदन किया था। श्रीगगाचार्यजी ने विचार किया कि सर्वसमर्थ पूर्णतमब्रह्म परमेश्वर ही नन्दनन्दन के रूप में प्रकट हुए हैं। इनकी योग माया पर भी, अपने को बहुत बलशाली समझने वाले कंस का कुछ वश नहीं चला था। कंस इन परब्रह्म श्रीकृष्ण का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। नंदनंदन के अन्नप्राशन के अवसर पर मेरा उपस्थित रहना नन्द और यशोदा को कंस के कोप का भाजन बना सकता है। इसलिए उन्होंने नन्दबाबा को अन्नप्राशन का शुभ मुहूर्त बतलाकर गोकुल के कुल पुरोहित से संस्कार सम्पन्न कराने के लिए कहा और स्वयं मथुरा के लिए प्रस्थान किया। श्रीगर्गाचार्यजी भगवान श्रीकृष्ण के अन्नप्राशन संस्कार में स्वयं उपस्थित नहीं थे। गोकुल के पुरोहित ने ही यह संस्कार सम्पन्न कराया था।

महर्षि शाण्डिल्य का स्वस्ति-पाठ, मुनियों का सामगान, गोपों का शंखनाद, पुरुषोंके कण्ठकी सोत्साह-जयध्वनि, गोपियों का गान-सबमें मानों शतगुणित शक्ति आ गयी। मधुमंगल तालियाँ बजाकर नाचने लगा।

श्रीकृष्ण के सभी सखा रेंदा, पेंदा, झरा, झपटुआ, चटकू, मटकू आदि नन्दराय जी के घर जुड़ आये, आज कोई भी पीछे नहीं रहा। अपने अपने माता-पिता के साथ सभी सखा श्री बृजराज के महल में पहुँच गये। परिवार के लोग बालकों के साथ सुन्दर श्रृंगार करके नन्दमहल में आ गये। कुल पुरोहित श्री शाण्डिल्य जी ने श्रीकृष्ण के अन्न प्राशन का मुहूर्त माघ

मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी गुरूवार को निश्चित किया, जिसमें रेवती नक्षत्र था। लग्न भाव में मीन और चन्द्र थे। इस दिन व्यापार करने का भी आनन्द शुभ योग प्रकट हुआ। लाला के अन्न प्राशन के निमित्त बनाये गये खीर, पूरी आदि अनेक व्यञ्जन सोने की थाली में सजाकर सर्वप्रथम बड़े भैया बलराम के मुख में डाले गये।

आज श्याम पाँच माह इक्कीस दिन के हो रहे हैं। अब इनको अन्नाहारी बनाया जायेगा। इन्हीं के साथ दाऊ, ऋषभ, विशाल, अर्जुन, भद्र आदि का भी अन्न प्राशन होगा। गोपों में सामूहिक संस्कार करने की प्रथा सी है। सगाई और विवाह तक सामूहिक रूप में होते हैं। यशोदा नंदजी से कहती हैं कि कुंवर कन्हैया का अन्नप्राशन करता है, क्योंकि इन्हें छह मास पूरे होने में कुछ ही दिन रह गए हैं। नंदजी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि कृष्ण अन्नप्राशन के योग्य हो गए हैं। महर्षि शाण्डिल्य बुलाये गये। उन्होंने ब्राह्मण को बुलाया और पुत्र का नाम लेकर पूछा। ब्राह्मण ने राशि शोधकर एक शुभ दिन निर्धारित किया। अच्छे दिन को सुनकर यशोदा ने सखियों को बुलाकर मंगलगान आरंभ कर दिया। युवतियां नंदजी का नाम लेकर यशोदा को गाली देती थीं। ब्रज के घर-घर में आनंद छाया हुआ था। प्रेम के कारण लोगों का आनंद हृदय में नहीं समा रहा था। सूरदासजी कहते हैं कि जिसको वेद नेति-नेति कहकर गाते हैं। देवता और मुनिगण एक चित्त ध्यान लगाते हैं, उसीको ब्रज की गोपियां अपनी गोद में लिए हुए झकझोर रही हैं। गोकुल में काल धीरे-धीरे सरक रहा है किसीको पता भी नहीं चलता।

इन सब कामोंसे निवृत्त होकर व्रजेन्द्र अगणित ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। इतनी प्रचुर दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणको मिली है कि वे ढो नहीं सकते। वे सब अन्नादिके पर्वत भी वितरण कर दिये गये। दधि-दुग्धकी नदियोंके लिये तो कोई प्रतिबन्ध ही नहीं है। जो चाहे, जितना चाहे, उसमेंसे ले सकता है। बहुतोंने लिये भी, पर वह तो नदी है, चतुर्थांश भी रिक्त न हो सका। इसलिये वह आनन्दोन्मत्त हुए गोपोंकी, गोपबालकोंकी क्रीडास्थली बन गयी। उसमें कूद-कूदकर वे स्नान करने लगे। व्रजेन्द्रने सोच-समझकर ही इनका निर्माण कराया था। व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें दूध-दही बिखेरकर गोपोंने दधि-दुग्धकी धारा बहा दी थी, गर्त बना दिये थे। आज व्रजेन्द्रने उनका आनन्द-वर्द्धन करनेके लिये अपनी ओरसे दधि-दुग्ध आदिकी नदियाँ बहा दीं।

यशोदा कहती हैं हे सखी, आज मेरे प्रिय पुत्र की वर्षगांठ है। सब सखियों को बुलाकर मंगल-गान कराओ। आंगन को चंदन से लीपकर उसमें गजमुक्ताओं का चौक पुराओ। अंगों से उमंग कर आनंद के साथ तुरही बजवाओ। जल्दी से ब्राह्मण को बुलाओ। शुभ घड़ी निश्चित करके कृष्ण को सुंदर वस्त्र और आभूषण पहनाओ। अच्छत और दूब की पत्तियां बंधाकर मेरे लाल की गांठ जोड़ दो। मैं अपनी आंखों के होने का लाभ उठा लूं और जी भरकर उसे देखूं। नंदरानी ग्वालों को बुलाकर इस रीति को सुनाती हैं और कहती हैं कि इसे जल्दी करो, इसमें देर क्यों लगाते हो? तब यशोदाजी नंदजी को बुलाकर, बेटे को गोद में लेकर, लगन के आते ही कृष्णजी को नहलाकर सजा देती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण की शोभा देखकर ब्रज की युवतियां उन पर अपना तन-मन निछावर करती हैं और वर्षगांठ के जोड़ने में अत्यधिक आनंद प्राप्त करती हैं।

अत: नन्द और यशोदा सहर्ष उक्त दिवस पर संस्कार सम्पन्न करने के लिए तैयारियाँ करने लगे। नन्दजी ने अपने बन्धु-बान्धवों और इष्ट मित्रों को निमंत्रण भिजवाया और स्वयं विभिन्न प्रकार की वस्तुओं यथा दूध, दही, घी, गुड़, तेल, मधु, माखन, तक्र, चावल, चीनी, अन्न, वस्त्र, रत्न, सोना, चाँदी आदि का विशाल भण्डार जुटाया। निश्चित वेला में नन्दजी ने भगवान विष्णु की पूजा अर्चना की और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर वेदोक्त कर्म का सम्पादन करने के लिए दोनों बालकों को भोजन कराया। इसके बाद विविध प्रकार के बाजे बजने लगे और मंगल कृत्य हुए।

पूजन और तर्पण हुआ। दधि, दुग्ध, अक्षतसे, श्वेत सुरभित पुष्पोंसे आराध्यका पूजन समाप्त हो गया। महर्षिने

नन्दनन्दनके नक्षत्रेश ब्रह्माजी, चन्द्रदेव, सूर्य, षष्ठीदेवी, अग्निदेव, सुरगुरु, कालाधिदेव, द्वापर, संवत्सर, भाद्रमास, कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र, वृषराशि, इन सबके अधिदेवताओंका पूजन कराया; जन्मदेव, स्थानदेव, पञ्चमहाभूत, महामाया, परमपुरुष, भगवान शिव, सम्भूति, प्रीति, सन्नति, क्षमा, विघ्नवती, भद्रा इन्द्रादि लोकपाल, भगवान शेष तथा कुमार कार्तिकेयका भी सविधि पूजन सम्पन्न करा दिया। यह सब तो आजके प्रधान पूजन की वाह्यपूजा सम्पन्न हुई। अब अंतरंग पूजनमें चिरजीवियोंकी पूजा होनी थी। भगवान परशुराम, पवनात्मज श्रीहनुमान, दैत्येन्द्र प्रह्लाद एवं बलि तथा विभीषणकी पूजा पूर्ण करके क्षेत्रपालको उनका भाग समर्पित करा दिया गया।

ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से संतुष्ट किया गया। याचकों और अतिथियों का खोज-खोज कर लाया गया भोजन कराये गये। आज सब आमंत्रित हैं। पूरा ब्रजमंडल प्रसाद पाने के लिए नन्दभवन में एकत्रित है।

नन्दजी ने ब्राह्मणों, बन्धु-बान्धवों, बन्दीगणों और आगन्तुकों को भोजन कराया और प्रचुर अन्न धन रत्नादि का दान दिया। समुचित आदर सम्मान करके नन्दजी ने सबको विदा किया।

सुमुख गोप अति सरल स्वभाव के थे। अपने मुख से झूठ बोलना, किसी के साथ कपट व्यवहार करना आदि अवगुण उनके पास नहीं थे। हास्य उपहास में भी झूठे शब्द नहीं बोलते थे। दूसरों को दुखी देखकर अति शीघ्र व्याकुल हो जाते थे। क्रोध रहित कभी भी अपने मुख से कठोर वचन नहीं बोलते थे। यशोदा में पिता वाले सद्गुण पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त थे। मेहराने गाँव में आनेवाला कोई पथिक, कोई संत अथवा ब्राह्मण बिना भोजन पाये आगे नहीं जाता था। दीन, दुखी, भिक्षुक नित्य नये आते और भरपूर मात्रा में मनचाहा प्राप्त करके प्रसन्न हो जाते। सुमुख गोप विशेष उदारता से परिपूर्ण हाथों को बढ़ा-बढ़ाकर नित्य प्रति लुटाते रहते थे। मेहराने में सुमुख गोप के यहाँ जब से देवी यशोदा ने जन्म लिया तबसे इनके परिवार में वैभव नित्यप्रति बढ़ने लगा। दान के रूप में घर से जितना धन निकालते वह दो गुना होकर बढ़ जाता। अपनी कन्या यशोदा को पैतृक गुणों से भरपूर देखकर सुमुख गोप का मन अति प्रसन्न हुआ। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह पर्जन्य के पुत्र श्री नन्दरायजी के साथ कर दिया। सुमुख गोप के जीवन में एक ही बात का दुख था कि यशोदा के घर कोई सन्तान नहीं हुई। वृद्ध अवस्था आ जाने पर भी भगवान ने अभी तक उनकी नहीं सुनी। सुमुख गोप को जब पता चला की यशोदा अन्तर्वती हो गई तो वे अति प्रसन्न हो गये और कहने लगे मुझे कोई नाना कहनेवाला आ रहा है।

कृष्णके नाना सुमुख गोप (मेहराना ग्राम) ने उसे प्यार से अंक में लिया और मोदक खिलाने लगे। मंगलगान, स्वस्तिपाठ, के मध्य नन्दराय ने पायस का नन्हा सा ग्रास कान्हा के मुख में देने के लिए अधरों पर लगाया तो मुख फेर लिया।

महँराने सों ग्राम निवासी दिन प्रति आवें। नैनन भरि यशुदा को सुत सौगात धरावें॥
कन्या की ससुराल कहो कस पीवें पानी। जी भर दें आसीस न चाहत पग लौटानी॥

महँराना ग्राम के निवासी अब प्रतिदिन गोकुल आने लगे। यशोदा के पुत्र की सुन्दर छवि को अपनी आँखों में भरकर अपनी लाई हुई सौगात लाला के आगे धर देते थे। महँराने के लोग गोकुल का पानी भी नहीं पीते क्योंकि गोकुल गाँव में उनके मेहराने गाँव की कन्या यशोदा का विवाह हुआ है अत: कन्या की ससुराल के घर का वे कुछ भी खाते पीते नहीं। जी भरकर यशोदा नन्दन को शुभ आशीर्वाद देते और वापिस गाँव लौट जाते।

आज सबको उत्सुकता लगी थी यह देखने की कि बालक स्वर्णमुद्रा, रत्न, वस्त्र-आभूषण, हल, बेंत, रज्जु, लेखनी, ग्रंथ आदि अनेक अन्य उपकरणों का मण्डलाकार से सुन्दर एवं व्यवस्थित ढंग से सजा कर रखा गया है ताकि शिशुओं को दीख सके और वे क्या चयन करते हैं। दाऊ ने हल उठाया, श्याम बेंत ले आये। ऋषभ, अर्जुन आदि क्रमश: सब बालक

गये और अपनी-अपनी पसन्द का खिलौना उठा लाये। मधुमंगल चिल्लाया- मुझे तो मोदक चाहिए।

रानी रोहिणी ने यशोदा नन्दन को पहली बार सूर्य दर्शन करवाने के लिए अपनी गोद में लिया। लाला की अतिशय सुकुमारता को देखकर सब लोग अपने मन में भयभीत हो रहे थे कि लाला सूर्य की किरणों को किस प्रकार सहन कर पायेगा। सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होती हैं और लाला का शरीर नवनीत के समान है। ताप लगने पर माखन द्रवीभूत होने लगता है फिर लाला तो माखन से भी कोमल है। इसीलिए सबके मन में लाला के कष्ट पाने का डर बैठा हुआ था।

शिशुके सर्वांगपर सूर्य-रश्मि पड़नी चाहिए और उदित होते सूर्यका दर्शन तो लोग अशुभ मानते हैं। यह हेमन्तका प्रारम्भ महर्षिने उपयुक्त मुहूर्त बताया। अब शीतके कारण सूर्य विषम-रश्मि नहीं रहा।

सूर्य भगवान ने अपनी सुनहरी किरणों रूपी हाथों के द्वारा नन्दनन्दन के श्री विग्रह का स्पर्श किया। सभी ने सूर्य नारायण का जय जयकार करते हुए प्रणाम किया और यशोदा जी तेज धूप के भय से भयभीत होकर शीघ्र अपने लाल को गोदी में लिये निज महल में ले गईं।

दाऊ दादा, अर्जुन, ऋषभ, वरूपथ, भद्र, विशाल, तोक, अंशू और तेजस्वी आदि नन्हे नन्हे बालक साथ साथ खेलते थे। कोई घुटनों के बल चलता था, कोई होले-होले डगमग कदमों से चलने लगा था और कोई कोई दोनों पैरों से अच्छे ढंग से चल लेता था। वे भोले बालक एक दूसरे को पकड़ने का भरसक प्रयास करते थे। कोई बालक चलना सीखने लगता तो कोई सहारा पकड़कर दो चार पग चलता और धम्म से गिर जाता, दूसरा उसको सँभालने लगता तो दाऊ दादा खुद को बड़ा मानकर तुरन्त गिरे हुए बाल सखा के पास पहुँच जाते और चल चल फिर से उठकर चल कहते कहते उसे उठा लेते। कन्हैया इस बात को आंखें फैला फैलाकर बड़े गौर से देखने लगते।

चले एक पग धरत धम्म से फरसहिं फैले। डेड़ वर्ष का दाऊ कान्हि कैसे झेले।।
इतने में इक बिल्ली आ कर म्याऊँ बोली। आऊँ आऊँ करते कान्हा लीन्हा झोली।।

दाऊ दादा कन्हैया को थामकर चलना सिखाते, यशोदा नन्दन ने एक दो डग भरे और धम्म से फर्श पर बैठ गये। भला डेढ़ वर्ष की आयु का दाऊ कन्हैया को कैसे सम्भालता? बालक अपने अपने खेल में लगे थे इतने में एक बिल्ली आई और कन्हैया की तरफ मुँह करके म्याऊँ म्याऊँ बोलने लगी। कन्हैया जान गए, पिछले जन्म का यह तपस्वी जीव शरण में आया है। लालजी ने उसकी नकल करते हुए आऊँ आऊँ बोलना शुरू किया और उस बिल्ली को अपनी झोली में रख लिया।

अथ कुछ दिन बीते जबी, राम कृष्ण नर भूप। घुंटरन से चलने लगे, शुक्ल श्याम वर रूप।।
ऐसे वदन सरोज को, देख देख युग मात। कण्ठ लगावें शिशुन को, मोद न हृदय समात।।
चाकू अनल भुजंग को, जब पकड़त हैं बाल। करें निवारण मात तब, निशदिन राखें ख्याल।।
हस्त पकड़ कर शिशुन का, चलन शिखावत मात। कबि चालें कबि गिर पड़ें, या विध जब थक जात।।

कहीं पर थोड़ा पानी फर्श पर फैला हुआ मिल जाता तो बालक छपाछप उसीमें हाथ चलाने लगते। एक दूसरे की देखा देखी उस पानी में कूदते और अपनी देह को वस्त्रों के सहित भिगो लेते। घुटनों के बल रेंगते-रेंगते श्याम सुन्दर की दृष्टि एक छुरी पर पड़ी तो तुरन्त उसे उठा लिया। एक बालक ने तलवार उठाने का प्रयास किया तो एक ने कुल्हाड़ी ही खेलने के लिए उठा ली। कोई बालक फरसा से, कोई बल्लम से, कोई मूसल से खेलने लगा। कुछ बालकों ने मिलकर एक पटरे को ही लुढ़काना प्रारम्भ कर दिया। माताएँ जिस बालक के हाथ से उसके खेलने की वस्तु छीनतीं वह बालक उसी समय रोने चिल्लाने लगता।

परीक्षित्, कुछ ही दिनों में बलराम और केशव (कृष्ण) घुटनों और हाथों के बल बकैयाँ चल-चल कर गोकुल में

विचरण करने लगे। राधारानी के केशों को सजाते हैं, सँवारते हैं, उन्हें केशव कहते हैं। राम और श्याम ने अपनी रूपमाधुरी और क्रीडामाधुरी से वज्रवासियों का मनोरंजन करना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन कन्हैया बढ़िया श्रृंगार करके बाहर गये और बाहर कीचड़ में लथपथ हो गये। जब आये तो मैया ने पूछा- क्यों रे पिछले जन्म में कोई सूअर था क्या? कन्हैया हंसकर बोले- पता नहीं मैया तुमको कैसे पता लग गया मैंने तो वराह रूप पहले ही धारण किया था।

दोनों भाई अपने नन्हें-नन्हें पाँवों को गोकुल की कीचड़ में घुटमन घुटमन करते हुए चलने लगे। चलने से उनके पैर और कमर के घुँघरू रुनझुन-रुनझुन बजने लगते। इनकी रुनझुनाहट बड़ी मनोहर मालूम पड़ती थी। वे दोनों स्वयं भी इनकी ध्वनि सुनकर प्रफुल्लित हो उठते थे। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अपरिचित के पीछे-पीछे लग जाते। जब वह व्यक्ति मुड़ कर इनकी ओर देखता तो ये भाग कर अपनी माताओं के आँचल में जाकर मुँह छिपाकर डरने का आडम्बर रचते।

बाल कृष्ण घुटनों के बल मणि-निर्मित आंगन में चल रहे हैं। मां-बाप दोनों देख रहे हैं। किलकारी मारकर कभी पिता को देखते हैं और कभी माता को। उनके बालों में लगा हुआ लटकन उनके सुंदर मस्तक पर लटक रहा है और भौंह के ऊपर काजल का डिठौना लगा है। इस शोभा को वे भरपूर आंखों से देखते हैं। पृथ्वी पर इसकी कोई उपमा नहीं मिलती। वे कभी घुटनों से दौड़कर लपकते हैं, तो गिर पड़ते हैं। फिर उठकर दौड़ पड़ते हैं। इधर से नंदजी उनको बुलाते और उधर से यशोदाजी बुलाती हैं। दोनों आपस में स्पर्धा करते हैं। कृष्ण दोनों के लिए खिलौना बने हुए हैं। सूरदासजी कहते हैं कि जो प्रभु शाश्वत ब्रह्म हैं, उन्हें इन दोनों ने पुत्र रूप में प्राप्त किया है।

बलराम और कन्हैया दोनों रेंगकर कभी-कभी गोशाला में चले जाते है और कीचड़ में सन जाते हैं। मणि से बने हुए सुनहले नंद के आंगन में वे अपनी परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। कभी तो कृष्ण अपनी छाया को देखकर उसे हाथ से पकड़ना चाहते हैं और कभी वे किलकारी मारकर हंसते हैं। उनके दो दांत दिखाई पडते हैं और वे अपनी परछाई को बार-बार खोजते हैं। ऐसा करने से आंगन की स्वर्णभूमि की प्रत्येक मणि पर उनके हाथ-पैर की परछाई ऐसी लगती है, मानो पृथ्वी उनके बैठने के लिए कमल का आसन सजा रही हो। कृष्ण के बचपन के सुख को देखकर यशोदाजी बार-बार नंदजी को बुलाती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदाजी अपने आंचल के नीचे कृष्ण को ढककर उन्हें अपना दूध पिलाती हैं। कभी लोगों के पीछे कुछ दूर जाकर भयभीत होकर वापिस माता के पास लौट आते हैं।

एक दिवस सुत गोद खेलावत। चले नन्द वन धेनु चरावत। शनैः शनैः यमुना तीरा। पहुंचे रुचिर बनहिं भण्डीरा॥
हरि कनुआ-बलुआ बने, गोकुलमहँ बढ़िबे लगे। कछुक दिवसमहँ रेंगिके, छुटुअन बल चलिबे लगे॥

यशोदा और रोहिणी कीचड़ से सने हुए अपने बालकों को बड़ी प्रसन्नता से गोद में उठाकर बाँहुओं में भर लेतीं। माँ की गोद में पहुँचते ही राम और श्याम मैया के स्तनों को ढूँढने लगते। यह देखकर माताएँ बड़े स्नेह से अपना स्तन उनके मुँख में डालकर दूध पिलाने लगती थीं। बीच-बीच में मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बच्चों के नन्हीं-नन्हीं दंतुलियों से अलंकृत, भोले-भाले मुख को देखकर आनन्द के सागर में डूबने-उतराने लगतीं।

ब्रजरानी, ब्रजराज अरु, रोहिणी डूबि निहाल। कुहू कुहू करि बलि गई, कोकिल हूँ रस ढाल॥

यशोदा और नन्द तथा रोहिणी उस रस में डूब कर निहाल हो गये। उसी समय कोकिल ने भी कुहू कुहू का मधुर शब्द करके रस बरसा दिया।

हाथ में मक्खन लिए हुए श्री कृष्ण शोभा पा रहे हैं। घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके शरीर पर मिट्टी लगी हुइ सुशोभित

है, मुख पर दही लपेटी हुई है। कपोल सुंदर हैं, नेत्र चंचल हैं और ललाट पर गोरोचन का टीका लगा है। उनकी लटें मुख पर लटक रही हैं। ऐसा लगता है मानो मस्त भौंरें मतवाला करनेवाले रस को पी रहे हैं। उनके कंठ में कंठुला नामक गहना है और हृदय पर बघनखा शोभायमान हैं। सूरदासजी कहते हैं कि वह व्यक्ति धन्य है जिसने एक पल के लिए भी यह दर्शन प्राप्त किए, सैकड़ों कल्प जीने से क्या लाभ?

नीलमणि सचमुच सबका है। उसके समीप आते हैं। उसे उठाने और अंक में लेने की प्रेरणा होती है। वह तो हर किसी के आँचल में छिपकर स्तनपान करने को उद्यत रहता हैं। अब वह माँ कहने लग गया है। दूध दू बोलकर माँगने लगा है। दाऊ, भद्र, विशाल, ऋषभ आदि आ जाते हैं। उनसे मिलकर इतना प्रसन्न होता है कि वे माँ और दूध को भूल जाता है।

श्याम समवयस्क शिशुओं के साथ आँगन में घुटुमन चलते हैं, कभी खड़े होने का प्रयास करते हैं। कहीं जल मित्र जाय तो गिरा कर गोपियों का जैसे अनुकरण करने लगते हैं, नन्हीं-नन्हीं अरुणिम हथेलियों से लिपाई करके। कभी कर-कंज से जल में छप-छप करके स्वयं ही किलकने लगते हैं ताबे दिखाई देती उनकी द्वै दंतियाँ। घुटनों के सहारे वेग से चलते हैं थोड़ी दूर, फिर थक कर पेट के बल लेट जाते हैं। कुछ ही क्षण में फिर सरकने लगते हैं। उनकी धूल-धूसरित अलकें, व्रजरज लेपित कर-कपोल और उदर की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता।

यशोदाजी बाल कृष्ण को गोद में लिये हुए हैं। उनके शरीर पर पीली झंगुली इस प्रकार शोभा पा रही है मानो बादल पर बिजली की लता हो। उनके गले में मोती की माला इस प्रकार सुशोभित है मानो स्वर्ग से इंद्र के शत्रु हिमालय की पुत्री की सौत अर्थात गंगा ढलकर सिंधु में मिल रही हो। कृष्ण हठ करते हैं और अपने चंचल हाथों से यशोदा के मुख को इस प्रकार स्पर्श करते हैं, मानो सांप अमृत रस के लालच से चंद्रमा को बार-बार चाटता हो। यहां यशोदा के मुख की उपमा चंद्रमा से और कृष्ण के हाथों की उपमा सांप से दी गई है। बाल कृष्ण की गूंगे के समान तोतली बोली को यशोदा इस प्रकार प्रेम से सुनती हैं, जैसे कमल के भीतर बंद भौरों की अस्पष्ट आवाज आ रही हो। सूरदास कहते हैं कि यशोदा और नंदजी ने पूर्व जन्म में बड़ी तपस्याएं की हैं इसलिए अब उनके बड़े सौभाग्य हैं, वे धन्य हैं।

एक दिन घरमें नयी-नयी ब्यायी गाय आयी। कन्हैया ने देखा कि इससे साथ तो हमारे ही सरीखा बहुत सुन्दर बछड़ा है और गायको चाट रहा है। वे सरक-सरक करके धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। गायके गलेमें अपने दोनों हाथ डालकर लिपट गये। तब गोपियां बोली अरे लाला, क्या कर रहे हो? कहीं नयी-नयी ब्यायी गाय सींग न लगा दे।

तुरति गोद ले मात युग, दुग्ध करा कर पान। गह कर सुत का पाणि पुन, सिखवावें पद जान।।
खेल करत गो वत्स का, पुछ पकड़त जब बाल। भाग जात हैं वत्स तब, देख हँसत गोपाल।।
पुन कुछ दिन बीते जबी, जाकर यमुना तीर। श्रीदामादिक सखन युत, खेल करें यदुवीर।।
रमणरेति में जायके, लोटें सब ब्रज बार। शिखि का रव सुन तास सम, करहैं शब्द उचार।।

एक दिन घरमें सुनार आया। यशोदा मैयाने सोचा कि जब बेटे आये हैं तो बहुएँ भी आयेंगी। सुनार जब आभूषण बना रहा था तो कन्हैया ने सुनार की आग फूँकनेवाली नली उठा ली और मुँहमें डालकर आग फूँकने लगे। जब चिनगारी उड़ी और शरीरमें लगी तब बलराम और कन्हैया चिल्लाने लगे- मैया, मैया।

माखन खावे श्याम तबहिं मर्कट चलि आवें। कपि केरी चपलाइ छोड़ निद दर्शन पावें।।
सीत प्रसादी देत श्याम उनके मुख डारी। दाँत सबै गिन लेत डरे नहिं कृष्ण मुरारी।।

कन्हैया जब माखन खाने लगता है तो बहुत से बन्दर निकट चले आते हैं। बन्दरों वाली चंचलता छोड़कर शांति भाव से

नित्य दर्शन करते रहते हैं। श्याम सुन्दर अपनी शीत प्रसादी बन्दरों के मुख में डाल देते हैं और श्रीकृष्ण निर्भय होकर उनके दाँत गिनने लगते हैं।

एक दिन घर में वानर आ गया। उसको रोटी खिलानेके लिए उसके पास गये। वानर उनकी गोदमें जा बैठा वे उसको अपने हाथसे रोटी खिलाने लगे। मैया दौड़ी इस डरसे कहीं वानर काट न लें।

ये कपि हैं, कितना भी भगाओ ये आँगनमें बालकोंके पास कूदकर आये बिना मानते नहीं। कृष्ण इनके कान या कण्ठ पकड़कर किलकारी लेता है। दाऊ इनकी पूँछ पकड़कर खींचता है। फिर भी ये काटते नहीं, डरते नहीं। गोपियों में से कोई समीप जाय तो दाँत दिखाते हैं।

गौशाला में जाने के लिए जैसे ही कन्हैया गोदी में बैठकर घर से आते, कुक्कुर और बन्दर इन्हें घेर लेते और कुकुर कूँ कूँ करते हुए पूँछ हिलाकर अपने अन्दर की प्रसन्नता को प्रकट करते। गौओं के सदन की राह पर सारे पंछी फुदकते हुए सँग सँग चलने लगते। कितने ही वनचर बड़ी सीधी प्रकृति वाले बनकर मनमोहन के साथ साथ घूमते।

घरमें तलवार रखी हुई थी। बलराम-श्रीकृष्ण दोनों ही उठाकर उसे खनाखन लड़ाने लगे।

पक्षियों की भीड़ कहाँसे आ जाती है मालूम नहीं पड़ता। कपोत, काक, शुक, हंस, मयूर- गौरैयों और मैनासे लेकर भारी सारस तक- इन सबको वनमें, सरोवर में कहीं, स्थान नहीं, सब दलके दल आ जाते हैं इसी आंगनमें और शिशु तो उनको देखकर किलकते भागेंगे ही इनकी ओर। ये सब पता नहीं, कैसे इतने घृष्ट हो गये हैं? उड़ते नहीं, कोई समीप आवे तो यहाँसे फुदककर वहाँ बैठ जायँगे। कपोत साधु पक्षी हैं। शिशुके समीप आकर भी चञ्चु नहीं चलाते और ब्रजेश्वरी उन्हें दाने डालती हैं। यह पक्षी इसी आंगनमें भरे रहते हैं दिनभर। कोई पक्षी किसी वस्तुमें चोंच नहीं लगाता। पक्षी ही हैं, कोई भी चञ्चु चला दे सकता है और शिशु तो समझने से रहे। इन सबको पक्षियोंके साथ खेलनेमें आनन्द आता है।

बहुत से पक्षी उड़ते हुए आये और कन्हैया के सहित बालकों को घेर लिया। कबूतर गुटुर गूँ गुटुर गूँ का स्वर निकालते हुए फेरियाँ लगाने लगे। मैना, हंस, काक, शुक, म्यूर, सारस और गौरैया आदि पक्षी साथ साथ नाचकर आँगन में धूम मचाने लगे। मयूरोंको भी इसके चारों ओर ही नाचते रहना हैं। वे आँगनमें ही पंख फैलाये धीरे-धीरे घूमते हैं। बालक दोनों हाथोंमें पकड़ लेते हैं पक्षियोंको। श्याम तो मयूरके ऊपर ही बैठने लगता है। फड़फड़ाते समय उनके पंजे या पंख लग सकते हैं।

इतने ढीठ न पंछी मैंने अबलौं देखे। चहे उड़ावन आय कोई तो पार न लेखे।।
एक ठौर सों फुदक दूसरी बैठे ठौरा। कोई न चाहे दूर होन ब्रजराज किशोरा।।

एक सखी दूसरी से बोली- देखो तो कितने ढीट पक्षी हैं, इतने ढीठ पक्षी मैंने अभी तक कहीं नहीं देखे। कोई इन्हें उड़ाने का प्रयास करने पर भी सफल नहीं हो सकता। एक स्थान से थोड़ा उड़कर दूसरी जगह बैठ जाते हैं। कोई भी पक्षी बृजराज किशोर श्याम सुन्दर से दूर होना नहीं चाहता। बालक पक्षियों के साथ छेड़ छाड़ करते हैं तो भी वे उड़कर दूर नहीं जाते। कन्हैया के सहित भले कोई बालक पक्षियों की चोंच घुमावे, भले कोई मोर पर चढ़कर सवारी करे, भले कोई सारस पर चड़कर बैठ जावे फिर भी वे पक्षी तालों और वनों को छोड़कर पूरा दिन कन्हैया के साथ ही बिताते। बालक जो कुछ भी अपने हाथ से देते, उसीको संतोष पूर्वक खा लेते हैं और साँझ ढले अपने ठौर ठिकाने में पहुँच जाते हैं।

एक दिन मैयाने कहा कि दोनों सामने रहो, दूर नहीं जाना। वे दोनों खेलते-खेलते एक पानीके हौजके निकट चले गये। पानीके हौजमें कूदकर डूबने लगे और मैया बचाओ कहकर चिल्लाने लगे।

एक दिन घरमें मोर आ गया। कहने लगे कि हम इसको अपने हाथसे रोटी खिलायेंगे। मोर भी अपना मुँह नीचा करके

रोटी खाने लगा। इतनेमें इसके कंधेमे हाथ डालकर उसके ऊपर ही बैठ गये। इतने में मोर उड़ गया। मैया दौड़ी कि हाय, हाय कहीं काँटोंमें ले जाकर न गिरा दे।

सखनि सँग खेलत दोऊ भैया। रुचित खेल बहु भाँति, मुदित मन दाऊ, कुँअर कन्हैया।।
धावत मिलि गेयन के पाछें, बोलत हैया-हैया। ईस्वरपनौ बिसारि, अग्य-से नाचत ताता-थैया।।
कोमल किसलय लेइ बनाई एक नैक-सी नैया। लाइ तराय दई जमुना में हँसि-हँसि जात बलैया।।
डूबन लगी तरी जल में तब, हा मैया, री मैया। लगे पुकारन-नारायन अब तुम ही बनौ खेवैया।।
लरत कबौं, रूठत, रिझवत, पुचकारत दै गलबैयाँ। धन्य-भाग ये हरि के प्यारे नैक-नैक-से छैयाँ।।

हे राजन्। देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर की महिमा वेद नहीं जानते वह वैकुण्ठनाथ बालरूप से नन्दजी के आँगन में खेलकर प्रतिदिन नये सुख नन्द व यशोदा को देते थे। जो आनन्द तीनों लोकों में नहीं मिलता वह सुख श्यामसुन्दर की कृपा से व्रजवासियों को गोकुल में प्राप्त होता था।

जब बलराम और कृष्ण कुछ बड़े हुए। वे लड़खड़ा कर थोड़ा चलने लगे।

यशोदा मां कृष्ण को चलना सिखाती है। श्रीकृष्ण हड़बड़ाकर अपना हाथ पकड़ा देते हैं और डगमगाकर पृथ्वी पर पैर रखते हैं। यशोदा जब कृष्ण के सुंदर मुखड़े को देखती है तो उनके हृदय में आनंद की हिलोर उठती हैं और वे बलिहारी जाती हैं। कभी वे अपने कुल-देवता को मनाने लगती हैं कि उनके कान्हा चिरंजीव बनें। कभी वे बलराम को ऊंचे स्वर से बुलाती है और कहती हैं कि तुम दोनों भाई इसी आंगन में खोलो। कन्हैया पृथ्वी पर दो-दो पग चलते हैं। यशोदाजी विचार करती हैं कि जो-जो मैं इच्छा रखती थी, वह अब अपनी आंख से देख रही हूँ। कान्हा के चलने पर उनके पैर की पैंजनी रुनक-झुनक बजती हैं, जो मन को हरनेवाली है। कृष्ण चल नहीं पाते, चलते-चलते बैठ जाते हैं, किंतु तुरंत ही उठ जाते हैं। गोपियां इस सुंदरता को देखकर थक गईं।

गोपोंको गायें भी चरानी हैं। कोई कहाँ तक द्वारपर लाठी लिए बैठा रहे और महावन के मृगोंको तो इन दिनों कुछ हो गया है। ये वनसे भाग आते हैं व्रजराजके आँगनमें। बालकोंको सूँघते हैं और कूदते हैं उनके ऊपरसे। कहीं इनके खुर, सींग लग सकते हैं। बालक इनके कान, सींग पकड़ लेते हैं।

ये काली, उज्ज्वल, स्वर्णिम बिल्लियाँ हैं कि म्याऊँ-म्याऊँ करती बालकोंके ही आसपास घूमती रहेगी। ये बच्चे भी तो इन्हें नवनीत खिलाते हैं; किंतु श्याम इनको करोंसे पकड़कर प्रसन्न होता है। बिल्लियाँ अपने नख छिपाये तो रहती हैं, पर पशु ही तो हैं। शिशु तो इनके मुखोंमें अँगुली डालते हैं, इनकी पूँछे खींचते हैं, बिल्लियोंके नख-दन्त पकड़ लेते हैं।

नीलमणि का यह श्वान अत्यन्त स्वामिभक्त है। सब शिशु इसपर लद भी जाते तो उठता नहीं; किंतु नीलमणि तो दाँत ही पकड़ रहा था। वैसे यह पक्षियों, बिल्लियों, वन-मृगों तक पर भी कभी दौड़ा नहीं। इन सबके समीप आनेपर भी शान्त बैठा ही रहता है।

ये सब बालक ही तो हैं; सुई, छुरीका, तलवार सब इनके लिए खिलौना है। इन्हें चोट लग सकती है नन्हें बाटसे भी और पाक-गृहमें, आँगनमें, कक्षमें कहीं भी ये चले जाते हैं। जो हाथ लगे, उसीसे खेलने लगते हैं।

श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ ही तो वात्सल्य रस के उपासकों के जीवन का आधार हैं वात्सल्य भाव में भावित भावुक भक्त उन्हीं के स्मरण से तो निर्भय होकर इस भवसागर को बात-की-बात में तर जाते हैं और अनन्त कालपर्यंत उस सुख का अनुभव करते रहते हैं।

इसप्रकार ब्रह्म की लीलाओं को देखकर कौन बलि बलि नहीं जायगा और कौन ऐसा है जिसको ब्रह्म का यह लीला बिहार रस अच्छा नहीं लगेगा। वात्सल्यमयी माता की दुग्ध धारा दिन रात बहती रहती है और दिन रात लीला रस का विस्तार होता रहता है। नित्य गोलोक धाम में जिनकी सेवा में सदा चिन्तामणि धेनु रहती है वे उसका अमृत के समान दूध छोड़कर प्रेम के वश में होकर यशोदा के दूध के लिये ललचाते हैं। अरे वह तो भक्तों को सुख देने के लिये ही तो ब्रज में आया है।

पाँ पाँ पैयाँ चलें खाइँ अब माखन रोटी। करें मातुतैं रारि रोषमहँ पकरे चाटी।।
मधुर मधुर बतियाँ करें, ब्रजवासिनिके मन हरें। रसिया गावें नाचि कें, नित नूतन लीला करे।।
बछरनिकी गहि पूँछ लटकिके इत उत जावें। गैया मैया भैंसि चमरिया कहि कहि गावें।।
पकरैं गैयनि सींग कुदकि ऊपर चढ़ि जावें। ता ता थैया करे लुगाइनि नाच दिखावें।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब राम-श्याम कुछ बड़े हुए तब व्रजांगनाओं के लिये दर्शनीय कुमार लीलाओं को करने लगे। बछड़ों की पूँछ पकड़कर लटकने लगे, बछड़े उन्हें इधर से उधर खींचने लगे। उस समय गोपियाँ अपने-अपने घरों से बाहर निकल आतीं और हँसती हुई आनन्द में विभोर हो जातीं।

नन्द गोष्ठ में बछड़ों की क्या कमी थी? उनमें से कुछ नवजात आँगन में भी आते रहते थे। उनका वहाँ आना अपने ऊपर आफत ही मोल लेना था। कन्हैया और दाऊ उनकी पूँछे पकड़ उनके पीछे पड़ जाते। विस्तृत आँगन में वे जिधर-जिधर भागते दोनों भाई उनके पीछे उधर-उधर लगे ही रहते। वे गो-वत्स लाख प्रयास करते, अपना पिंड नहीं छुड़ा पाते उनसे।

गौशाला में सीधे सरल चार बछड़े एक स्थान पर बैठे जुगाली कर रहे थे और कभी कभी एक दूसरे के कंधे पर अपना मुख रख देते थे। कन्हैया ने उनके पास जाकर चारों की पूँछ को एक साथ पकड़ लिया तब चारों बछड़े उठकर भागे। चारों बछड़े चारों दिशाओं में अलग-अलग भागे थे इसलिये कन्हैया के शरीर को झटका लगा। बछड़ों की पूँछ को पकड़ने से झटका लगने पर कन्हैया गोबर के ऊपर गिर पड़े। सारा शरीर गोबर में सन गया, उठकर खड़े हुए तो बहुत जोर से खिलखिलाकर हँसने लगे। श्याम सुन्दर को प्रसन्नता से हँसते हुए देखकर सभी बाल सखा बाँसों उछलकर हँसने लगे। हँसते हँसते गोबर के ढेर पर धमा धम गिरने लगे और खड़े होकर हँसते हुए फिर गिरने लगे। बालकों को नया खेल मिल गया। एक के पीछे एक गोबर पर गिरता और खड़े होकर खुशी से हँसते हुए नाचने लगता, ऐसे ही बालकों का रेला चल पड़ा। गायों के मन में यह चाहना रहती थी कि प्यारे शाम हमारे स्तनों से दुग्ध पान करें। और साथ ही दाऊ भैया के सहित सारे सखा हमारा दूध पीयें।

माता यशोदा मन में विचार करने लगी मेरा लाला श्याम घर में मनुहार करने पर भी दूध नहीं पीता। मिश्री डाला हुआ अघौटा दूध पीने के लिए देने पर कन्हैया एक दो घूँट ही लेता है। अब तो मेरा लाला, मेरा नन्हा मुन्ना, गैया का धारोसन दूध पी रहा है। बालकों के घुटने दोनों हाथ सहित सारा शरीर गोबर में सना हुआ है। इसकी चिन्ता किये बिना कन्हैया प्रेम सहित गैया मैया का स्तन पान कर रहा है, यह प्रसन्नता की बात है।

भू लोटे मचलन करे, एक सुने नहिं बात। बड़े साँस रोवन लगे, हाथ पछारे लात।।

गोपियां जब पनघट पर जल भरने जातीं तब प्रेम में डूबकर कृष्णके गुणों का गान करती हैं। उनकी रसभरी झाँकियाँ और रसभरी बातें करके गोपियाँ आनन्द में डूबने लगती।

जिन वेदान्त ब्रह्म करि गायो। उन छबि दरसन गोपिन पायो।।
नँद-कुल-सरवर कमल प्रकास्यो। चहूँ ओर जिन सुरभि बिकास्यो।।

वेदान्त जिसे ब्रह्म कहकर बताता है उसी का साक्षात् दर्शन गोपियाँ पा रही हैं। नन्द वंश रूपी सरोवर में कृष्ण रूपी

कमल ऐसा प्रगट हुआ है जिसकी सुगंध चारों ओर छा रही हैं।

कण्व ऋषि यशोदा नन्दन की अमित महान महिमा को सुनकर हिमालय पर तप करने का विचार छोड़कर यशोदा नन्दन के दर्शन करने के लिए गोकुल में आये। यशोदा भी यह सुनकर प्रसन्न हुई कि मेहराने के कुलगुरु कण्व ऋषि गोकुल में पधार रहे हैं। ऋषि कण्व पहले भी कई बार गोकुल आ चुके हैं, परन्तु अब तो उन्हें आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखायी दिया। गोकुल की तो काया ही पलट गई। कण्व ऋषिने देखा गायों के समूह सब नये हैं और सभी गायें सुन्दर, विशालकाय हैं। सबका शरीर पुष्ट, अतिशीलवान है। वन में चरने के लिए जाती हुई गायों के साथ भारी संख्या में चरवाहे हैं। प्रसन्न मन से कण्व ऋषि महावन गोकुल में पहुँच गये।

एक दिन कण्व ऋषि नन्दजी के घर आये। कृष्ण और बलराम की छवि का दर्शन कर कण्व ऋषि अपने तन को भूल गये और विचार करने लगे मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ। वे आसन पर विराजमान हुए।

नन्द यशोदा से बोले- **त्रिभुवन मोहन सुत तुम पायो। इनहिं निरखि मन आनँद छायो।।**

जस जस सुन्यो रूप अभिरामा। निरख्यो तस अभिनव छबि धामा।।

तुमने तीनों लोकों को मोहित करने वाला पुत्र पाया है। इन्हें देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिला। मैंने जैसे सुन्दर स्वरूप की चर्चा सुनी थी वैसा ही देखा। तुम दोनों बड़े भाग्यवान हों।

शालिग्राम भगवान को भोग लगाने के लिये सीधे के सामान की व्यवस्था हेतु यशोदा को आदेश दिया। यशोदा ने दूध, चावल और शक्कर उसे दिया। जब कण्व ऋषि ने खीर बनाकर थाली में परोसा और भगवान को भोग लगाकर आँख बन्द करके ध्यान किया तब श्रीकृष्ण जाकर उनकी थाली में भोजन करने लगे। कण्व ऋषि बोले हे परम पुरुष परमात्मा शीघ्र पधारिये और अपनी रुचि से धीरे-धीरे पदार्थों का भोग लगाईये। मैं आपका गरीब सेवक हूँ, आप मेरे सर्वस्व हैं। मेरे द्वारा अर्पण किये हुये भोग को स्वीकार करें। रूखा सूखा जैसा भी बना पाया हूँ इसे आप स्वीकार करें और ऋषि ने अपने दोनों नेत्रों को बन्द कर लिया। अपने कानों में आते ही नन्द के लाला ऋषि के द्वारा समर्पित भोग लगाने के लिये पहुँच गए।

बालकों का भोजन पाना चंचलता पूर्ण होता है। कन्हैया ने बाल भाव से शीघ्रता पूर्वक अपने हाथों से भोजन को उठाकर मुख में डालना शुरू किया। कण्व ऋषि ने कन्हैया को खाते देखकर वह थाली जूठी समझकर छोड़ दी और यशोदा से बोले तुम्हारे इस बालक ने हमारे भोजन को स्पर्श कर दिया। इस बार भी उठने, भागनेका कई प्रयत्न प्रभुने किया। यशोदा बोली- यह अत्यन्त चपल और धृष्ट हो गया है। विप्रवर, आपको हमारे यहाँ बहुत कष्ट हुआ। अब कैसे कहूँ कि आप एक बार रन्धनका श्रम और स्वीकार करें; किंतु यदि श्रीचरण इसे स्वीकार कर लेते, हम कृतकृत्य हो जाते।

पकरयो जाय नंद नँदलाला। घुसि न सक्यो आँगन गोशाला।।

ब्रजरानी लखि अति हरषानी। पकरि पाणि बोली महरानी।।

अरे ढीठ, नटखट अस भारी। विप्र रह्यो करि परम-दुखारी।।

वह अपने ठाकुरहिं जिमावै। तू उन भोग प्रसाद जुठावै।।

मैया बोली- नीलमणि, नीलमणि, मेरे लाल, तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला-घटनासे अत्यन्त व्यथित व्रजरानी इससे अधिक बोल न सकीं। पर श्रीकृष्ण ऐसी सरल दृष्टिसे जननीकी ओर, ब्राह्मणकी ओर देख रहे हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो। उस भोली चितवनसे कण्वका रोषाभास तो उड़ ही गया, बल्कि वे तो भय करने लगे कि कहीं इस सरलमति सुकुमार बालकको इस छोटी-सी बातके लिये व्रजरानी कुछ दण्ड न दे दें।

इसी तरह तीन बार यशोदा ने उस ब्राह्मण से खीर बनवाई और भोग लगाते समय कन्हैया उसकी थाली में खाने लगे तब यशोदा ने क्रोधित होकर कन्हैया से बोला मैं ब्राह्मण को भोजन कराने के लिए खीर बनाती हूँ और तू जूठी क्यों कर देता है, मैं तुझे मारूँगी। अरे श्याम यह तुमने क्या किया। घरमें पधारे हुए सन्त को परेशान करते हुए तुझे शर्म नहीं आती। माता कन्हैया को पकड़ने के लिये लपकी परंतु चंचल कन्हैया उसके पकड़ पाने से पहले ही भाग गये।

सुनु मैया बोल्यो नँद-प्यारो। रोष त्यागि मन नेक बिचारो।।
मोहिं दोष क्यों दै री मैया। दोषी तेरी नायँ कन्हैया।।

यह सुनकर कृष्ण बोले- माता, तू मुझको क्यों दोष देती, जब यह ब्राह्मण ध्यान लगाकर विनयपूर्वक मुझे भोजन करने के वास्ते बुलाता है तब इसके प्रेम को देखकर खाने लगता हूँ। मैया, तू चाहे तो मार, पर यह ब्राह्मण शंख बजाकर, आँखें बन्द करके गिड़गिड़ाकर मुझे पुकारता है बार-बार। यह बुलाता है इतने प्रेमसे कि मुझे आना पड़ता है।

नन्दनन्दन भी इस बार- भयभीत होना तो दूर-रोषमें भरकर अविलम्ब बोल उठे-

जननी। दोष देति कत मोकौं, बहु बिधान करि ध्यावै। नैन मूँदि कर जोरि नाम लै बारहिं बार बुलावै।।

यह विप्र आँख बंद करके और हाथ जोड़कर मुझी को बुलाता है और बार-बार विनती करता है। कन्हैया की इस गूढ़ बात को मैया कुछ न समझ सकी वह घबराई हुई कि कहीं फिर छूट न जाय हाथ पकड़े खड़ी रही।

वह न जान जिन विप्र जिमावै। भोग लाय जिन विनय सुनावै।।
जो पुरुषोत्तम नित्य अजन्मा। कल्प धारत बहु जन्मा।।
सोई पूर्ण, अनन्त जो, बन्यो नीलमणि आय। जाको मानति सुवन सोइ, इष्ट देव उन भाय।।

जो तीनों लोकों का स्वामी है, जो सृष्टि रचता है, पालन करता है और संहार करता है और जो क्षण ही क्षण में अनन्त रूप धारण करता है वही ब्रह्म उसका पुत्र बनकर रस की वर्षा कर रहा है। वह यह भी नहीं जानती कि जिसका उसने हाथ पकड़ रखा है वह दूसरा रूप धारण करके विप्र की खीर खा रहा है। जो उसकी गोद में बैठकर उसे आनन्द देता है वही विराट रूप भी धारण करता है। यशोदा के हृदय में कन्हैया का ऐश्वर्य नहीं आता वह तो उसे अपने गर्भ से उत्पन्न पुत्र मान कर सब ऐश्वर्य भूला रहती है। मैया इस समय यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न है कि मैंने कन्हैया को पकड़ रखा है। नन्दलाल की यह बात सुनकर ऋषि को ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस प्रकार विप्र को भोजन कराके धन्य हो गई किन्तु इधर जब कण्व ने आँखें खोलीं तो देखा कि कन्हैया खीर खा रहा है। किन्तु इस बार भगवान ने उनके अज्ञान का पर्दा दूर कर दिया था इसलिये कन्हैया के खीर खाने में उनको दोष दिखाई नहीं पड़ा। उनके मनकी शंका दूर हो चुकी थी और वे जान चुके थे कि उनके इष्टदेव ही श्रीकृष्ण के रूप में प्रगट हैं।

ऋषि नीरवता भङ्ग करते हुए बोले- नन्दगेहिनी। बालकका कोई दोष नहीं, अन्नके कण-कणपर ईशविधानकी छाप रहती है; तुम्हारा पुत्र तो निमित्तमात्र है। नहीं-नहीं, इसने तो मेरे व्रतकी रक्षा की है; आसक्तिवश मैं नीचे गिर रहा था, इसने मुझे गिरनेसे बचा लिया; ग्राम्यजीवनका परित्याग कर चुका था, कन्दमूलाहारी होनेका व्रती था। पर तुम्हारे विशुद्ध आग्रहवश पुन: पीछे लौट रहा था, प्रभुने इस बालकके द्वारा मेरी रक्षा कर दी; मैं आशीर्वाद देता हूँ, यह बालक चिरंजीवी हो, तुम्हारी सुख-समृद्धि निरन्तर बढ़े पर, अब मैं चलता हूँ, बहुत ही अतिकाल हो गया है। कण्व चलनेके लिये प्रस्तुत हो गये। हे यशोदा, धन्य है तेरा भाग्य कि साक्षात् ब्रह्मने तेरे यहाँ आकर अवतार लिया।

प्रेमरसभावितमति यशोदारानी यह जान भी नहीं सकतीं; क्योंकि उन्हें पता नहीं कि जो अजन्मा है, पुरुषोत्तम है, जो प्रत्येक कल्पमें स्वयं अपने-आपमें अपने-आपका ही सृजन करता है, पालन करता है और फिर संहार कर लेता है, जो

मायालेशशून्य-विशुद्ध है, केवल ज्ञानस्वरूप है, अन्तरात्माके रूपमें एकरस अवस्थित है, जो त्रिकाल सत्य है, पूर्ण है, अनादि है, अनन्त है, निर्गुण है, नित्य है, अद्वय है- वह मेरा नीलमणि ही तो है। व्रजेन्द्रगेहिनी नहीं जानतीं कि मेरा नीलमणि ही विराट पुरुष हैं, काल है, स्वभाव है, मन है, इन्द्रियाँ है, कार्य है, कारण है, पञ्चभूत है, अहंकार है, त्रिगुण है, ब्रह्माण्डशरीर है, ब्रह्माण्डशरीराभिमानी है, अनन्त स्थावर-जङ्गम जीव है, ब्रह्मा है, शंकर है, विष्णु है, दक्ष है, नारद है। व्रजरानी कल्पना ही नहीं कर सकतीं कि मेरा नन्हा-सा नीलमणि स्वर्लोकपाल है, खगलोकपाल है, नृलोकपाल है, अतल-वितल-सुतलपाल है, गन्धर्व-विद्याधर-चारण-अधिनायक है, यक्ष-राक्षस-सर्प-नागपति है। यशोदारानीके मनमें कभी यह भाव उदय नहीं होता कि महर्षि, देवर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, दानवेन्द्र, सिद्धेश्वर तथा प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृगं, विहंगम-सबके नायकके रूपमें मेरा नीलमणि ही है। व्रजेन्द्रमहिषी यह धारणा ही नहीं कर सकतीं कि जगत्की जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य-तेज इन्द्रियबल-मनोबल-शरीरबलसे युक्त हैं, क्षमासे सम्पन्न हैं, सौन्दर्य-लज्जा-विभूतिसे समन्वित हैं, सुन्दर-असुन्दर अद्भुत वर्णवाली हैं- वे सब-की-सब मेरे नीलमणिके ही रूप हैं। उन्हें यह भान ही नहीं होता कि मेरी गोदमें रहते हुए ही ठीक उसी क्षण मेरा यह नीलमणि इन अनन्त रूपोंमें भी अवस्थित है, क्रीड़ा कर रहा है। उनके वात्सल्यरस-सुधासागरके अतल-तलमें डूबे हुए अपरिसीम ऐश्वर्यके रज:कण कभी ऊपर आते ही नहीं। आते होते तो भले वे जान पातीं कि व्रजेन्द्रके द्वारा यह निरोध व्यर्थ है, यहाँ निरुद्ध रहकर भी नीलमणि तो भीतर प्रकट है। वे तो सदा इस भावनासे ही भरी रहती हैं कि मेरा नीलमणि मेरा गर्भजात शिशु है, अबोध है। इसीलिये आज वे फूली नहीं समा रही हैं; क्योंकि उनकी दृष्टिमें अभी-अभी व्रजेन्द्रने चंचल नीलमणिको रोक लिया और एक महान् अनर्थ होनेसे रक्षा हो गयी।

इधर इस बार जब कण्वके नेत्र खुले, तब दृश्य तो वही था- नन्दनन्दन भोग आरोग रहे हैं। पर इस बार कण्वके नेत्र, मन, बुद्धिपर लगा हुआ अनादि आवरण सर्वथा छिन्न-भिन्न हो चुका था। वस्तुतत्त्वके सम्बन्धमें अब उन्हें संशय नहीं रहा। कण्व वहीं श्रीकृष्णके चरणोंमें लोट गये। उनके नेत्रोंसे अश्रुका निर्झर झरने लगा, इस निर्झरवारिसे श्रीकृष्णके चरणयुगल प्रक्षालित होने लगे।

नन्दबाबा ने उन्हें प्रणाम करते हुए पूछा- मुनिवर, सुखपूर्वक आपके व्रत का पारण हो गया। विप्र ने कहा कि सदा सदा के लिये अनन्त तृप्ति मुझे मिल गयी। मैं गोकुल में आ गया और मेरा जीवन सफल हो गया। यह गोकुल धन्य है। नन्दबाबा और यशोदा भी धन्य हैं जहाँ पर सारंग धनुष को धारण करनेवाला ब्रह्म बालक के रूप में आया।

व्रजेशने देखा- ब्राह्मणके अणु-अणुसे आनन्द झर-सा रहा है। दिव्योन्मादके लक्षण भी उनमें प्रत्यक्ष परिलक्षित हो रहे हैं। हाथ जोड़कर व्रजेन्द्र पूछते हैं, देव। पारण हो गया? कण्व गद्गद् कण्ठसे कहते हैं- हाँ व्रजेश, हो गया, मैं अनन्त कालके लिये परितृप्त हो गया। यह कहकर फिर वे कुछ बड़-बड़ करने लगते हैं। नन्द-दम्पत्ति कुछ नहीं समझ पाते कि ब्राह्मण क्या कह रहे हैं।

सफल जन्म, प्रभु आजु भयौ। धनि गोकुल, धनि नन्द-जसोदा, जाकैं हरि अवतार लयौ॥
प्रगट भयौ अब पुन्य-सुकृत-फल, दीनबंधु मोहिं दरस दयौ।
बारंबार नंद कें आँगन, लोटत द्विज आनंदमयौ॥
मैं अपराध कियौ बिनु जानें, को जानें किहिं भेष जयौ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत-बस, जसुमति-गृह आनन्द लयौ॥
सुफलजन्म प्रभु आज प्रकट भयोसब सुकृतफल। दीन बंधु ब्रजराज दियो दर्शम्वहिंकृपाकरि॥

कण्व ऋषि श्री हरि से दीनता पूर्वक क्षमा माँगते हुए बोले, दीर्घकाल तक तप करने के कारण हे प्रभु, मेरे मन में अभिमान भरा हुआ था जिससे मेरी आँखों पर परदा पड़ा हुआ था। तप के अहंकार के कारण ही मेरे इष्ट के सामने आने पर भी मैं उन्हें पहचान नहीं पाया। शालिग्राम का चेतन स्वरूप मुझे दिखाई ही नहीं पड़ा। हे नाथ, आप ही कहो यह आपकी माया का कैसा भाना है? कण्व मुनि सिर झुका कर प्रणाम करते हुए आनन्दित होकर अपने आश्रम की ओर चले। वे आँखों से आनन्द के आँसू बहाते हुए बार बार धन्य धन्य कहते जाते थे।

तप अभिमानी मोर नैन तप परदा छाया। ईष्ट सामने आया मैं पहिचान न पाया।।
शालिग्राम चेतन स्वरूप मोहि नजर न आना। तुमहिं कहो मम नाथ आपका कैसा भाना।।

कण्व ऋषि की बात को सुनकर घनश्याम ने हँसकर उनकी ओर देखा और बालकों की सी हँसी हँसते हुए अपने सखाओं के साथ बाहर की ओर भाग गये। खीर का प्रसाद कण्व ऋषि ने बड़े प्रेम से पाया और पाते पाते उनकी आँखों से झर झर आँसू बहने लगे। बाकी का सारा दिन और सारी रात ऋषिवर महानन्द से परिपूर्ण होकर नृत्य करते रहे। वर्षों बीत गये परन्तु गोकुल से जाने के बाद ऋषिवर फिर किसीको दिखाई नहीं दिये।

हँसि देखा घनश्याम सखन सँग खेलन भागे। पायस को परसाद पाय ऋषि रोवन लागे।।
नाचे सारी रात महा आनन्द समाना। बरसन पर गे बरस ऋषि पुनि नहीं लखाना।।
घर घर फैली बात कण्व ऋषि नाचा गाया। श्याम प्रसादी पायस ह्वै आनन्दित पाया।।
अपरस राखें ध्यान ऋषि बड़ अचरज बाता। जूठी कान्हा खीर ऋषी निज तनहिं लिपाता।।

महातपस्वी कण्व ऋषि जो गृहस्थी बालकों की मोहमाया से सदा दूर रहते थे उन्होंने हमारे श्याम सुन्दर की प्रसादी खीर खाकर आनन्द मग्न होकर बहुत समय तक नृत्य किया। यह बात गोकुल के घर घर में फैल गई। यह कितने आश्चर्य की बात है कि जो शुद्धि अशुद्धि का बहुत ध्यान रखते थे उन्होंने हमारे श्याम सुन्दर की जूठी खीर खाई और अपने तन पर उसका लेपन भी किया।

जब सों आया श्याम महावन काया पलटी। बढ़ा आपसी प्यार नेह दृष्टी अति सुलटी।।
दिन प्रति हमरो श्याम नई नित लीला धारे। सेवा की धुनि चढ़ी नहीं कोइ रोकन हारे।।

जबसे श्याम सुन्दर महावन में आये हैं तबसे गोकुल की तो काया पलट गई। गोपों का आपसी प्यार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा और एक दूसरे के प्रति स्नेह और हित करनेवाली सीधी दृष्टि हो गई है। वे आपस में कहने लगे हमारा श्याम सुन्दर प्रतिदिन नित्य नई लीला करके दिखलाता है अब उसके ऊपर सब लोगों की सेवा करने की धुन सवार हो गई है और उसे इस कार्य में कोई रोक नहीं पाता।

सबका प्यारा साँवरा, सर्व सुप्रिय चित चोर। सबही चाहे देखना, मर्कट मैना मोर।।

चितचोर मनमोहन सबको प्यारा लगता है। यह साँवरा सर्व प्रिय है बन्दर, मैना, मोर, गाय आदि सभी साँवरे कन्हैया को देखते रहना चाहते हैं।

तुंगी ताई प्रभावती ने दो सुत जाये। ऋषभ और सुरप्रस्थ पुत्र उपनन्द कहाये।।
अभिनँद सुषमा महानन्द पीबरी कहावें। बड़ विशाल लघु तेजस्वी के जनक बतावें।।

प्रभावती नाम की कन्हैया की ताई जिसे लम्बा कद होने के कारण तुंगी भी कहते हैं उस माता ने योगमाया पूर्णमासी के आशीर्वाद से दो पुत्रों को जन्म दिया। प्रभावती और उपनन्द गोप के पुत्रों का नाम वृषभ और देवप्रस्थ रखा गया। उपनन्द

के छोटे भैया अभिनन्द और उनकी पत्नी सुषमा जिन्हें महानन्द और पीवरी भी कहते हैं इनके यहाँ भी दो बालक हुए। बड़े का नाम विशाल और छोटे का नाम तेजस्वी रखा गया।

एक गोपी दूसरी से कहती है कि जैसे ही मैंने बालक यशोदा-नंदन को आंगन में खेलते हुए देखा, वैसे ही मेरे प्राण बदल गए और प्रेम भाव से मेरा तन और मन काला हो गया। उनको देखते ही मैंने उन्हें अपने हृदय में संजो लिया और पलकें बंद करके ताला लगा लिया। ऐसा करने से हे सखी। मुझे भ्रम हुआ, मुझे ऐसा लगा कि चारों ओर उजाला है। अतिशय प्रेम के आनंद से उज्ज्वलता का भान हुआ। ऐसा लगा कि घुंघची सुमेरु पर्वत से तुल रही है- कहां मैं अति लघु और कहां श्रीकृष्ण इतने महान, किंतु प्रेम भाव के उत्पन्न होने पर दोनों में समता आ गई। श्रीकृष्ण इतने महान, किंतु प्रेम भावना के कारण मैं उनसे मिलकर इस प्रकार एकाकार हो गई, जैसे बूंद सागर में मिलकर समा जाती है। मैं नहीं जानती कि मैं उनके अंदर समा गई या वे मेरे अंदर समा गए। मेरा शरीर अब संभल नहीं रहा था। वृक्ष में बीज है या बीज में वृक्ष है। दोनों में एक भी अलग नहीं है। जल, थल, आकाश, वन, घर के अंदर और उसके बाहर जहां-जहां दृष्टि फैलाती हूँ, सर्वत्र मेरे आगे श्रीकृष्ण ही नृत्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं। अब तो मैंने लोक-लाज और कुल की मर्यादा को छोड़ दिया। पति, गुरुजन और मायके आदि जिनके संकोच के कारण मेरा घर की देहरी को देखना कठिन था, अब उन सबमें मैं सिर खोलकर बेधड़क चल रही हूँ। मुझे प्रेम का ऐसा रोग लग गया है कि टोना-टोटका, यंत्र-मंत्र किए, देवस्थानों में फिरी, मेरी सास-ननद मुझे लेकर घर-घर डोलती फिरीं और लोगों से मेरे रोग पर विचार करवाती फिरीं। क्या कहूं, कुछ कहते नहीं बनता। अब कृष्ण-प्रेम के बिना रस खारे लगते हैं।

कभी-कभी वे बैठे हुए बछड़ों की पूँछ पकड़ लेते। बछड़े हड़बड़ा कर, उठकर, भागने लगते, राम और श्याम और जोर से पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ इस दृश्य को देखकर हँसते-हँसते लोटपोट होकर परमानन्द में निमग्न हो जातीं। गोपियाँ अपने घर का काम-काज छोड़कर के लिए उसके पास गये।

श्रीकृष्ण अब मैया-मैया कहने लगे। नंदजी को बाबा-बाबा और बलराम को भैया पुकारने लगे। ऊंचाई पर चढ़कर यशोदाजी कृष्ण का नाम लेकर कहती हैं कि ऐ मेरे लाल, तू खेलने के लिए दूर न जा, किसी की गाय तुझे मार देगी। गोपी और ग्वाल मिलकर खेल करते हैं और घर-घर में बधाई गाई जा रही है। कृष्ण दही और रोटी मांग रहे हैं। वे कहते हैं कि ऐ मेरी मां, मुझे अच्छी पकी हुई कोमल और मोटी रोटी दे। इस पर मां यशोदा कहती हैं कि हे कन्हैया। तुम आंगन में लोटकर हठ क्यों करते हो? तुम जो चाहते हो, उसे तुरंत ही लो, लेकिन तुम हठ करने की बुरी आदत को छोड़ दो। इस प्रकार खुशामद करके माता यशोदा ने उनको कलेवा (नाश्ता) दिया और उनके मुख और चोटी को तेल या घी चुपड़कर सुंदर बना दिया।

कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चंचल और बड़े खिलाड़ी थे। वे कभी हाथ में तलवार उठाने का प्रयास करते। कभी जलती आग में फूँक मारने लगते। कभी कूप में झाँकने लगते। कभी कुत्तों को पकड़ने की कोशिश करते तो कभी सींगवाले जानवरों को भगाते। मैया यशोदा और रोहिणी दौड़-दौड़कर इन्हें बरजतीं और बचाती थीं। वे न तो घर का कामकाज कर पातीं और न निश्चिन्त हो स्नान-भोजन ही कर सकती थीं। उनका चित्त सर्वदा बच्चों को खतरे से बचाने में ही चंचल रहता था। वे बालकों की क्रीड़ाओं में अपूर्व रस का अनुभव करती थीं।

श्रीकृष्ण कभी दीवार पकड़कर खड़े हों और गिरने लगें तो अपने हाथकी परछाई पकड़कर खड़े रहनेकी कोशिश करें। कभी गोपियाँ पूछें कि बेटा, तुम्हारी नाक कौन-सी है तो हाथ रखकर बतावें कि यह है। दाँत कहाँ हैं तो उसे बतानेके लिए मुस्करा दें। आँख कौन-सी है तो आँख टेढ़ी करके देख लें। तुम्हारी छातीपर यह जो सुनहली भौंरी है यह क्या है? क्या अपनी श्रीमतीजीको तुम साथ ही लाये हो? इसपर श्रीकृष्ण स्वयं हंसते हैं और सबको हँसा देते हैं।

एक दिन की घटना है। श्रीकृष्ण घर से बाहर निकलने की चेष्टा करने लगे। किन्तु दरवाजे की देहली ऊँची थी। श्रीकृष्ण ने उसको हाथ से पकड़ा और किसी-किसी प्रकार खड़े हो गये। फिर उन्होने देहली पर अपना पेट रखकर बाहर की ओर जमीन पकड़ने के लिये दोनों हाथ फैला दिये। दोनों तरफ का संतुलन बराबर हो गया। पैर भी जमीन छोड़कर ऊपर उठ गये। वे नन्द बाबा की देहली पर लटक कर मैया-मैया कहने लगे। इसी समय वहाँ नारायण-नारायण करते हुए नारदजी पहुँच गये। उन्होंने इस दृश्य को देखकर कहा- कि धन्य हैं, वे नन्द बाबा, जिसकी देहरीपर ब्रह्म इस प्रकार लटकता है। अब भगवान बिना घुटनोंका सहारा लिये ही चलने लगे और बालकोंके साथ ऐसी-ऐसी क्रीड़ा करने लगे कि देख-देखकर गोपियाँ आनन्दमें मगन हो जायँ। संसार के भय से आक्रान्त कुछ लोग चाहे वेदों की शरण ग्रहण करें, कुछ लोग चाहे स्मृतियों का आश्रय लें, किन्तु मैं तो इह संसार-सागर से पार होने के लिये इस नन्द बाबा के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिसकी देहली पर ब्रह्म लटका हुआ है।

राजर्षे, कुछ ही दिनों में यशोदा और रोहिणी के लाड़ले लाल घुटनों का सहारा लिये बिना अनायास ही खड़े होकर गोकुल में चलने-फिरने लगे।

बालकृष्णके घुटमन-घुटमन चलने का समाचार पूरी गोष्ठमें फैल गया। गोपियाँ नन्दद्वारपर एकत्र हो जाती थीं तथा उस अनुपम लीलारस सुधाका अतृप्त पान करके बलिहार हो जाती थीं। सबका अलग-अलग हृदय था, सब अपनी-अपनी भावनाओं के अनुरूप लीलाका रस लेती थीं। व्रजेन्द्रनन्दन धीरे-धीरे उठ खड़े होते। चार-पाँच पग चलकर गिर पड़ते। दोनों भाई परस्पर अस्फुटस्वरमें बोल जराते। गोपियोंका हृदय आनन्दसे उछलने लगता। व्रजराज गोशालामें बछड़ोंकी सँभाल करने गये और यशोदा रानी अपने लालाके लिये भोजन बनानेमें लगी। राम-श्याम दोनों भाई आँगनमें खेल रहे हैं। दोनों भाई बाबाकी गोदमें चढ़कर गोशाला आदिमें जाने लगे।

बछड़ोंकी सुकोमल पूँछको देखकर एक बछड़ेकी पूँछको दोनों हाथोंसे मुट्ठी बाँधकर पकड़ लिया। अचानक पूँछ खिंच जानेसे बछड़ा उठ खड़ा हुआ और भागने लगा। दोनों भाई बछड़ेसे खिंचे जाने लगे और भयभीत होने लगे। उन्होंने तो अपनी रक्षा के लिये और भी अधिक शक्ति लगाकर पूँछको जकड़कर पकड़ लिया। माँ-माँ, बाबा-बाबा पुकारकर रोने लगे। सभीने देखा बछड़ा धीरे-धीरे भाग रहा है और नीलमणि एवं दाऊ बछड़ेकी पूँछ पकड़े खिंचे चले जा रहे हैं। इसी समय उपनन्द की पत्नी तुंगीने बछड़ेको आगे जाकर रोक लिया। इतनेमें नन्दरानी एवं नन्दराय आ पहुँचे और बोलने लगे- बेटा नीलमणि, दाऊ, पूँछ छोड़ दो, और दोनों हाथोंसे उनकी पूँछ छुड़ा दी। नीलमणि एवं दाऊको अपनी गोदमें ले लिया और दोनोंका मुख चूमने लगीं। गोपियां कहने लगी- अरे नीलमणि, यह बछड़ा तो तुम्हें पूरे व्रजमें घुमा रहा था। इसीतरह बार-बार दिन-प्रतिदिन बछड़ोंकी पूँछ पकड़ते, बछड़े कूँदते-फाँदते और श्यामसुन्दर हँसने लगते। कितने तो बछड़े स्वाभाविक प्यारवश श्यामसुन्दर इच्छानुसार उन्हें खींच ले जाते। जब वे किसी बैठे हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियां अपना काम-धंधा छोड़कर देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जातीं।

अपनी लुटिया ले जाकर बछड़ों को दुहने लगते, बछड़े फुदकते भागते तब पूछते- मैया, हमें यह दूध क्यों नहीं दुहने देते? तू तो इतना दुह लेती है। मैया कहतीं- बेटा, बछड़े दूध नहीं देते गैयाँ ही दूध देती हैं।

कभी बछड़ों के गले में बाहुएँ डालकर लटक जाते, कभी किसी बछड़े पर चढ़ जाते, बछड़ा कूद-फाँद करता तो आप बिल्ली के बच्चे की भाँति उससे चिपट जाते। कभी बछड़ों को इधर-से-उधर दौड़ाते और स्वयं भी उनके पीछे-पीछे

दौड़ते, कभी बछड़ों को घर से रोटी लाकर खिलाते, न खाते तो उनके मुख में ठूँसते। कभी मट्ठा को बाँस की नलकी में भरकर बछड़ों को पिलाते, बछड़े इनकी शरीर पर मट्ठे को उगल देते, तब आप दौड़कर घर जाते, कपड़े बदलने को माता से कहते। कभी छोटी-छोटी घास उखाड़कर बछड़ों के मुख में देते। कभी बँधे बछड़ों को खोल देते, वे जाकर गौओं को पीने लगते। फिर उन्हें खींचते दूध पीने से हटाते, किन्तु माता का दूध पीते हुए बच्चे सरलता से नहीं हटते, ये कितना भी खींचते तो भी बछड़े नहीं हटते, तब रोने लगते। गोप आकर बछड़ों को बाँधते, कभी गौओं के सींग पकड़कर हिलाते। बछड़ों की पूँछ को गौओं की पूँछ में बाँध देते, फिर बछड़े के फुदकने पर ताली बजा-बजाकर हँसते। कभी हरी-हरी कोमल-कोमल घास उखाड़कर बछड़ों को खिलाते वे न खाते और गायें मुख करतीं तो उनके ही मुख में दे देते।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, इस प्रकार श्रीश्याम और राम गोष्ठ में जाकर गौओं और बछड़ों से भाँति-भाँति की क्रीड़ा करने लगे।

कबहुँ साँड़के सींग पकरिकें तिनितैं खेलें। कबहूँ पकरै श्वान सर्प तिनि मुखकर मेलें।।
कबहूँ ताता करें आगिकूँ पकरन जावें। कबहूँ बन्दर मोर खगनिकूँ पकरि नचावें।।
कबहूँ खेलन चन्द्र मातुतैं पुनि पुनि माँगें। कबहूँ पीकें दूध गोदतैं झटपट भागें।।
कबहूँ जलमहँ घुसैं भिगोवें तन पट सगरे। कबहूँ परसी खीरकूँ, चाटि चाटिके खात है।।

शुकदेव बोले- राजन्, दोनों मैयाओं का चित्त बड़ा उद्विग्न हो जाता और वे घर के धन्धों को भी नहीं कर सकती थीं। कारण कि वे अत्यन्त चंचल बच्चों को सींग वाले पशु से, अग्नि से, दाँतों से काटनेवाले पशुओं से, तलवार से, जल से, पक्षी-ब्राह्मण और दाँतों से तथा काँटों से बचाने में ही लगी रहतीं।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, राम और श्याम अब पैरों से चलने लगे, दौड़ने लगे, खेलने लगे, माता से तोतली बोली में झगड़ने लगे, आग्रह करने लगे। दोनों ही बड़े चञ्चल थे किन्तु ये छोटे तो महा खोटे थे। ये बाहर भीतर दोनों ओर से टेढ़े थे, इनकी चितवन, चलन, उठन, बैठन, क्रीड़ा, लीला सभी टेढ़ी। सभी अद्भुत रहस्यों से भरी हुई थी। वेद भी जिनका अब तक भेद न पा सके। वेद एक बार भेद बताने का प्रयत्न करते हैं, फिर न इति न इति (यह नहीं, यह नहीं) कहकर चुप हो जाते हैं।

हाथ में मक्खन लिए हुए श्री कृष्ण शोभा पा रहे हैं। घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके शरीर पर मिट्टी लगी हुइ सुशोभित है, मुख पर दही लपेटी हुई है। कपोल सुंदर हैं, नेत्र चंचल हैं और ललाट पर गोरोचन का टीका लगा है। उनकी लटें मुख पर लटक रही हैं। ऐसा लगता है मानो मस्त भौंरें मतवाला करनेवाले रस को पी रहे हैं। उनके कंठ में कंठुला नामक गहना है और हृदय पर बघनखा शोभायमान हैं। सूरदासजी कहते हैं कि वह व्यक्ति धन्य है जिसने एक पल के लिए भी यह दर्शन प्राप्त किए, सैकड़ों कल्प जीने से क्या लाभ?

बन्दर बालक सरिस हाथ पाँइनि बल किढ़िरें। इत उत भोरे बने नन्द-आँगनमहँ बिहरें।।
घिसिरि-घिसिरके कबहुँ गोष्ठमें घुटुअनि जावें। गोशालाकी कीच चलत निज तन लपटावें।।

कान्हा जब आँगन में आ जाता है तो वहाँ पक्षियों के झुण्ड आ जाते हैं। कपोत, काक, शुक, हंस, मयूर, मैना, गौरैया ही नहीं हंस तक दिखाई देते हैं। मैना के कर्ण प्रिय स्वर और मोर के नृत्य का अनन्द मातायें सेवक सेविकायें दूर रहकर ही लेते हैं। व्रजरानी जब दाने डालने लगती हैं तो पक्षी उन्हें व्यवधान समझ उड़ने लगते हैं माँ शीघ्र लौट जाती हैं तो पक्षी फिर कान्हा को चन्द्राकार घेर कर आत्मानन्द अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर प्रकट करते हैं। मयूर कोयल के स्वर पर नृत्य करते हैं तो कबूतर भी गुटुर्गू करके उसे ताल देता है।

पक्षी जब उड़ जाते हैं तो उनकी परछायीं को पकड़ने श्याम लपकते हैं और हाथ न आने पर रोने लगते हैं। उनकी इस

अल्पज्ञता पर मातायें हँसती हैं और अंक में भरकर ले जाती हैं। ठुमुक चलत नन्दलाल बाजत पैंजनियाँ।

अम्मा बब्बा मधुर तोतली बोली बोलें। गोबर अरु गो-मूत्र पमहँ विहरत डोलें।।

जब देखो तब गोष्ठमहँ, चंचलता अद्भुत करें। गौअनिके पैरनि परें, मैया अति मनमहँ डरें।।

शुकदेव बोले- राजन्, माताएँ कीचड़ में खेलते अपने बालकों को क्रीड़ा करते देखकर स्नेह के वशीभूत हो जातीं, उनके स्तनों में दूध भर आता और वे पम रूपी अङ्गराग से अनुलिप्त होने के कारण रुचिर प्रतीत होनेवाले अपने बालकों को दोनों हाथों से उठाकर गोदी में लेकर हृदय से चिपटा लेतीं, फिर दुग्ध पान कराती। दूध पीते समय उनकी मधुर-मधुर मुस्कान तथा नन्हीं-नन्हीं दन्तावली से युक्त उनके मुख कमल को निहारकर अत्यन्त ही आनन्द में निमग्न हो जातीं।

अब श्याम धीरे-धीरे, माँ का अंक छोड़कर, अंगुली का सहारा त्याग कर स्वयं अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने में समर्थ हो रहे हैं। कभी गिरकर किलकने लगते हैं तो कभी रोकर। इस सहज मानवीय कृत्य पर देवता भी आशंकित हो जाते हैं।

जल बहुत प्रिय है इसे। देहरी पार करने के प्रयास में लगा था किन्तु दीख गया, बस लग गया उसे फैलाने में, भूल गया देहरी पार करना। झाड़ी का जल फैला दिया और छप-छप करने लगा उसी में। हाथ-पैर सब भीग गये। रोहिणी रानी ने देखा तो उठा लिया नीलमणि को और आँचल से अंग पोंछने लगीं किन्तु चपल नीलमणि अपनी मृत्तिका मिश्रित हथेली उनके कपोलों पर लगा उनके कण्ठ से लिपट गये। वे भी गद्गद् हो गयीं।

कान्हा देहरी पार नहीं कर पाते हैं सब उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। दाऊ उन्हें उठाकर पार कराने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे स्वत: ही पार करना चाहते हैं बिना किसी सहयोग लिये-

देहरी चढ़ो न जात देहरी थरथरात, देहरी लगाय हाथ देहरी चढ़ाय दे।

सहसा प्रांगण में मयूर आ गये। कान्हा उन्हें पकड़ने को आतुर होने लगे। देहरी बाधा थी इसमें। देखिये कैसी सुन्दर युक्तिनिकाली बालब्रह्म ने- देहरी के समीप घुटनों के बल खड़े हुए फिर लेट गये देहरी पर और पैर लटका दिये। हाथ से देहरी पकड़ी और खड़े हो गये। देहरी पार हो गयी। बड़े प्रसन्न हुए जैसे भक्त भवसागर से पार होने पर प्रसन्न होता हैं। मयूर को भूल गये, पुन: देहरी पार करने लगे। यशोदा दौड़ी पकडने कहीं गिर न जाय उसका कान्हा तो रोहिणी ने हाथ पकड़ लिया यह कहते- शिशु को श्रम करना ही चाहिये उससे शरीर के अवयव पुष्ट होते हैं।

श्याम अब देहरी पार कर स्वयं आँगन में पहुँच जाते हैं जहाँ बन्दर और पक्षी उसकी प्रतीक्षा ही करते रहते हैं। ये बन्दर भी अजीव हैं, बार-बार भगा देने पर भी आ जाते हैं।

किन्तु दाऊ बन्दर की पूँछ पकड़कर खींच लेता है तब भी दाँत दिखाकर दूर हो जाता है बन्दर पर काटता नहीं। देखो ना वह श्याम मयूर की गर्दन पकड़कर खड़ा है पर वह न चोंच मारता है, न भागता है। ये पशु पक्षी भी कैसे अजीव हैं इस व्रज के या व्रजराज कुमार के।

एक दिवस सुत गोद खेलावत। चले नन्द वन धेनु चरावत।

शनै: शनै: यमुना तीरा। पहुंचे रुचिर बनहिं भण्डीरा।।

सहसा कृष्ण रुखहिं चहुँ ओरा। बढ़ेउ बेग अति पवन झकोरा।

आज नन्दबाबा यमुना स्नान करके लौटे। कृष्ण भी घुटमन-घुटमन चलने लगे। बाबा आये और पूजा घर में गये। लाला भी घुटने के बल उनके पीछे चल दिये। बाबा ने अंदर से कहा दूर-दूर, भीतर न आइयो। कन्हैया बोले- क्यों? बाबा बोले- लाला, मैं जै-जै की पूजा कर रहा हूँ बिना स्नान किये अंदर नहीं आना यह कहकर नन्दबाबा ने कन्हैया को पूजाघर के

भीतर नहीं आने दिया। लाला वहीं पूजा घर के द्वार पर बैठ गया। नन्दबाबा ने पंचामृत से शालिग्राम को स्नान कराया, फिर दूध, नंदबाबा ने घंटा बजाकर देवता को स्नान कराया और भोग लगाया। दही से स्नान कराया, फिर शर्करा से स्नान कराया और शहद से स्नान कराया तो कन्हैया के जीभ में पानी आ गया। लाला को लगा कि रोज शालिग्राम जी पंचामृत से नहाते हैं तो मीठे हो गये हैं। नन्दबाबा आँखे बन्द कर भजन करने लगे। कृष्णने कहा बाबा- तुमने जो अर्पित किया न तो देवताओं ने खाया ही नहीं। कृष्ण की बात सुनकर नन्द और यशोदा देखते ही रह गये।

कन्हैया ने देखा बाबा की तो आँखे बन्द है और शालिग्राम बड़े मीठे हो गये होंगे। घुटमन-घुटमन चलकर कन्हैया पूजा घर में आ गये और चांदी के सिंहासन से शालिग्राम को उठाकर गपक से मुँह में धर लिया और पालकी मारकर बैठ गये। जैसे ही नंदबाबा ने आँखे खोली और देखा शालिग्राम जी नहीं है और दूसरी तरफ देखा की लाला वहींपर बैठा है। उसका मुँह फूला हुआ है।

नन्दजी ने अगल-बगल में दृष्टि फिरायी सभी जगह खोजने के पश्चात भी शालिग्राम जी नजर नहीं आये। पास में बैठे हुए कन्हैया से पूछा, तुमने मेरे आराध्य देव को कहीं देखा है क्या?

नन्दबाबा बोले- मेरे इष्ट देव कहा गये, उन्हें कौन उठा ले गया। लाला, तू यहाँ पूजा घर में कैसे आया? तेरे मुंह में यह क्या है? बाबा ने गुस्से में एक गुलचा मारा तो शालिग्राम गपक से बाहर आ गये। नन्दबाबा बोले- अरे भगवन्, यह कैसा ऊधमी छोरा है? यह तो मेरे भगवान को भी खा गया और यशोदा को पुकारकर बोले- देवी, देखो तो सही, मैंने मना किया फिर भी मेरे पूजा घर में आकर मेरे भगवान को खा गया, शालिग्राम को मुँह में धर लिया। नन्द यशोदा से बोले- लाला कन्हैया ने मेरे पूज्य श्री शालिग्राम जी को मुख में भर लिया। अरी महर, तुम्हारा यह चपल कन्हैया हमको बहुत सताने लगा है।

यशोदा मैया बोली- इतना क्यों डाँट रहे हो? छोटोसा लाला है। इसको क्या मालूम, इसने तो गुलाबजामुन समझ कर मुंह में धर लिया। हम गृहस्थी लोग बालकों की इन्हीं लीलाओं में ही सुख मानते हैं। वृद्धावस्था होने को आई, बाल लीलाओं के बिना घर सुना लगता है।

नन्दबाबा बोले- तुम इसको बिगाड़ दोगी, इसको समझाओ। ये कोई तरीका है। यशोदा लालाको गोदमें उठाकर बोली मेरा लाला कोई भगवान से कम थोड़े ना है? मैया लाला से बोली- तूने तेरे बाबाके घरमें से भगवान को क्यों मुँह में धर लिया। कन्हैया बोले- मैया वो रोज घी, शक्कर, शहद में नहाता हैं मैंने सोचा मीठा हो गया होगा इसलिये मैंने इसे मुँह में धर लिया। नन्द बोले- देखो लाला, अब फिर कभी ऐसा मत करना नहीं तो भगवान क्रोधित हो जायँगे ऐसा नटखटपन मत करो।

कृष्ण ठुमका मारकर नाचने लगा। मैया बोली- हे भगवन्, तुने यह नाचना कब सीख लिया। मैया बड़ी प्रसन्न हुई। **नाचे नंदलाला नचामें हरि की मैया।** आज परब्रह्म यशोदा की गोद में है। दुनिया जिसके इशारे पर नाचती है, वो यशोदा के इशारे पर नाच रहा है। संसार जिसके इशारे पर नाचता है, माँ यशोदा के आँगन में वो ब्रह्म नाच रहा है।

जिन चरणों को शंकर जी सदैव हृदय में बसाये रहते हैं और जो भगतों को प्राणों से अधिक प्यारे हैं। विधाता जिन चरणों को आनन्द के निकलने का स्थान मानते हैं और जिनकी रज को पाने के लिये वे तपस्या करते हैं। वेद जिन चरणों पर बलि जाकर वन्दना करते हैं और उनकी महिमा को नेति नेति कहते हैं। ऐसे उन चरणों की रज को सिर पर धारण करना कल्याणकारी है।

कृष्ण की माता का नाम यशोदा और राधा की माता का नाम है कीर्ति। राधा और कृष्ण दोनों की माताओंका नाम का अर्थ एक ही होता है। गोपियां वेद के मन्त्र बनकर आयी। गोपियों का मन रूपी मयूर नाचने लगा। गाय की धूल से धूसरित अंगवाला, वेदांत प्रतिपाद्य ब्रह्म आज यशोदा के आंगन में नाच रहा था। यशोदा बड़ी भाग्यवती हैं।

रोटी पर धरकर माखन मिश्री खाते हुए कन्हैया के पास तोते, कबूतर, चिड़ियाँ, कोयल, मैना अपनी चोंच कन्हैया की ओर बढ़ा देते हैं तथा श्याम सुन्दर के हाथों प्रसादी खाकर अपने भाग्य की सराहना करते हैं। नील गिरि के ऊपर रहनेवाला काक भुशुण्डी श्री हरि के दर्शन करने आया। जब जब परम प्रभु का अवतार होता है यह कागा अपना धाम छोड़कर दर्शन करने के लिए आता है और श्री हरि की पाँच वर्ष की आयु पूरी होने तक उनके आस पास ही बना रहता है।

तुम नहिं पीवत दूध जाहिं सों चुटिया छोटी। दाऊ पीवे दूध देख लो लाम्बी मोटी।।
अब ही मेरे लाल तुम्हें मैं दूध पिलाऊँ। छोटी चुटिया दूध पिला लाम्बी करवाऊँ।।

माँ यशोदा ने कहा, अरे लाला। तू दूध नहीं पीता तभी तेरी चुटिया छोटी है। दाऊ भैया को देखो उसने दूध पीकर अपनी चुटिया कितनी लम्बी और मोटी कर ली है। मैं मेरे लाला को अभी दूध पिलाती हूँ जिससे तुम्हारी छोटी चुटिया दूध पीने योग्य बाद लम्बी हो जायेगी।

सोचे मोहन बात ठीक कहती महतारी। घर जाकर सब दूध पिये तिन चुटिया भारी।।
रोदन हो गया बन्द दूध की इच्छा जागी। चुटिया सब की बड़ी मोर क्यों छोटी लागी।।

माँ यशोदा ने कहा, मेरी बात सुनकर मोहन सोचने लगा जो मेरी महतारी बात तो ठीक ही कहती है। मेरे सब सखा घर जाकर दूध पीते हैं इसीलिए उनकी चुटिया इतनी भारी है। कन्हेया का रोना बन्द हो गया और चुटिया बढ़ाने के लिए दूध पीने की इच्छा होने लगी। सोचने लगे सभी सखाओं की चुटिया इतनी बड़ीं, मेरी चुटिया इतनी छोटी क्यों है? आज इसका कारण समझ में आया। सखा दूध पीते हैं और मैं दूध के लिए पूछने पर भी मैया को मना कर देता हूँ।

मां यशोदा ने कृष्ण से कहा कि तुम काली गाय का दूध पीयो तो तुम्हारी चोटी बढ़ेगी। देखो जैसे और ब्रज के बालक हैं वैसे ही तुम्हारे अंदर भी बल आएगा और आयु बढ़ेगी। यह सुनकर कृष्ण दूध पीने लगे। दूध पीते हुए जब दूध गर्म लगा, तब जीभ जल गई और वे रोने लगे। फिर दूध पीने के साथ ही वे अपने सिर की चोटी को टटोलने लगे। जब उन्होंने देखा कि चोटी नहीं बढ़ी तो वे समझ गए कि मां झूठ ही कह रही है। यशोदाजी कृष्णके तमतमाए हुए मुख को देखकर हंसने लगीं।

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी।।
तू जो कहहि बल की बैनी ज्यों, ह्वै है लांबी-मोटी। काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिनि-सी भुई लौटि।।
कांचौ दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी। सूरदास चिरजीवौ दौउ भैया, हरि-हलधर की जोटी।।

कृष्ण मां यशोदा से कहते हैं कि मां, मेरी चोटी कब बढ़ेगी? मैंने कितनी बार दूध पीया, किंतु यह आज भी छोटी-की-छोटी है। तुम कहती हो कि बलराम की चोटी की भांति यह भी लंबी और मोटी हो जाएगी और नहलाने, काढ़ने और गूंथने में यह नागिन की भांति जमीन पर लोटेगी, किंतु तुम तो यह कच्चा दूध जबरदस्ती पिलाती हो और माखन रोटी देती नहीं, तो भला यह कैसे बढ़ेगी? सूरदासजी कहते हैं कि तुम दोनों भाई कृष्ण और बलराम की जोड़ी चिरंजीवी हो।

तु नहिं पीवे माऊँ आके सब पी जाई। अच्छी लागी बात हरष मन लाल कन्हाई।।
सखा तोर बलवान दूध बिन तू कमजोरा। भाग दौड़ खेलन पिट जाये जीतें छोरा।।

जब मैं कहती अच्छी बात है तू दूध नहीं पी रहा है तो म्याऊँ बिल्ली आकर सब दूध पी जायेगी तो कन्हैया प्रसन्न मन से उछलकर कहने लगता यह बात मेरे को बहुत अच्छी लगी। म्याऊँ को दूध पी जाने दो। जब मैं कन्हैया से कहती तेरे सारे सखा तुझसे बलवान हैं और तू दूध नहीं पीता इसीलिए सबसे कमजोर है। भागने दौड़ने में, खेलने में तू सदा सखाओं से पिट जाता है और तेरे सखा बलवान होने के कारण जीत जाते हैं क्योंकि वे सारे दूध पीते हैं।

ताली दे कर नाचे जीतें सखा हमारे। हार मोहि स्वीकार सखा सब जीते प्यारे।।

चुटिया वाली बात आज लौं हाथ न आई। दूध कटोरा दिया घूँट दो पिया कन्हाई।।

यशोदा जी ने कहा, मेरी बात सुनकर कन्हैया ताली बजाकर नाचने लगता, मेरे सखा जीत जाते है यह तो बहुत सुन्दर बात है। मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरे प्यारे सखा मुझसे जीतते रहें मुझे उनसे हारना स्वीकार है। माता बोलीं कि छोटी चुटिया वाली बात आज तक मेरे हाथ नहीं आई थी मैंने दूध का कटोरा कन्हैया को पीने के लिए दिया, कन्हैया ने दो घूँट पीकर अपनी चुटिया टटोली।

फिर कर सों निज चुटिया देखी कितनी बाड़ी। मैं बोली ये तनिक दूध सों ना हो ठाड़ी।।

एक कटोरा नित्य दूध सों लाम्बी होवे। चार घूँट पी दूध लाल चुटिया को जोवे।।

अपने हाथ से अपनी चुटिया को पकड़कर मोहन देखने लगा कि दो घूँट दूध पीने से चुटिया में कितनी बढ़ोतरी हो गई है। यशोदा ने कहा- मेरे लाल, थोड़ा सा दूध पीने से चुटिया खड़ी नहीं होगी। एक कटोरा दूध अगर नित्य पीओ तो अवश्य ही यह लम्बी हो जायेगी। चार घूँट दूध पीकर नन्दलाल फिर अपनी चुटिया को टटोलकर देखने लगे।

एक हाथ चुटिया पर राखो बढ़े न ऐसे। छोड़ो भरा कटोरा पीयो बढ़े न कैसे।।

एहि विधि दूध पिलाया मैंने जतन बनाई। दूध पिया मम लाल हिये महँ सान्ती आई।।

माँ ने कहा, अरे कन्हैया, तुम एक हाथ से चुटिया को पकड़ रखोगे तो इस प्रकार पकड़ने से वह बढ़ नहीं पायेगी। चुटिया को छोड़कर दूध का भरा कटोरा पीकर तो देखो कि तुम्हारी चोटी कैसे नहीं बढ़ती। माँ ने कहा इस प्रकार मैंने इन यत्नों से कन्हैया को सारा दूध पिला दिया। मेरे लाल ने चुटिया बढ़ाने के लिए आज सारा दूध पी लिया तब यशोदा के मन को शान्ति की प्राप्ति हुई।

यशोदा आज अत्यन्त उल्लसित थी। कार्तिक पूर्णिमा का चन्द्र स्वच्छ आकाश में ऐसा खिला हुआ था जैसे नीलमणि के थाल में किसीने चाँदी की गेंद रखी हो। पूर्णिमा की रात यों भी मानव-मनोभावनाओं को उद्वेलित कर देती हैं। एक ओर सागर में ज्वार आता है। मानव-तन-मन में भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ता है। यशोदा की स्थिति और भी दयनीय हो रही थी। चार वर्ष का कृष्ण मचल रहा था। परिवार के सभी लोगों द्वारा उसे मनाने का प्रयास किया गया परन्तु कोई भी उसमें सफल नहीं हो पाया।

तबसे आज एक पक्ष पूर्ण हो रहा है। श्रीकृष्णका नृत्यदर्शन, गान-श्रवण, क्रीडावलोकन ही व्रजसुन्दरियोंकी अविच्छिन्न दिनचर्या है। अब इस समय कोजागरी (आश्विन-पूर्णिमाकी) रजनीमें जागरण करनेके मिससे वे नन्दालयमें एकत्र हुई हैं तथा महान आश्चर्य है, आज अभीतक श्रीकृष्ण भी निद्रित नहीं हुए। हों कैसे? उन्हें तो जगत्के समक्ष, जगत्के अनन्त योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके सामने अपनी अप्रतिम भक्ताधीनता प्रकाशित करनी है। अपनी अतुल भृत्यवश्यताको प्रकट करते हुए ही तो वे प्रतिक्षण व्रजरामापओंके संकेतपर नित्य-नूतन बाल्यचेष्टाका विकास करते थे, व्रजको आनन्दमें निमग्न कर देते थे।

अचानक नृत्यका विराम करके श्रीकृष्ण हँसने लगते हैं तथा समीपवर्ती मन्थन-गगरीकी ओर देखते हैं। गगरीमें गगनस्थ चन्द्र प्रतिबिम्बित है। इस प्रतिबिम्बने ही श्रीकृष्ण का ध्यान आकर्षित किया है। अत: वे और भी समीप जाकर उसे देखते हैं। सोचते हैं- यह ऐसी सुन्दर वस्तु क्या है। फिर कुछ क्षण बाद जननीसे पूछते हैं- री मैया, गगरीमें यह अत्यन्त उज्ज्वल क्या समाया हुआ है? जननी पुत्रकी भोली बात सुनकर केवल उनके मुखकमलकी ओर देखती हैं, कोई उत्तर नहीं देतीं। उत्तर न पाकर श्रीकृष्ण किंचित् दूर खड़ी हुई जननीके पास जाकर, अंचल पकड़कर फिर प्रश्न करते हैं। इस बार जननी

हँसकर कहती हैं- मेरे लाल। यह चन्द्र-प्रतिबिम्बित है। श्रीकृष्ण विस्फारितनेत्र होकर आश्चर्यमें भरकर बोले- यह चन्द्र है? उत्तरमें जननीके मुखसे निकल पड़ा- हाँ, मेरे प्राणधन, यह चन्द्र है। फिर तो श्रीकृष्णके उल्लासकी सीमा न रही। हाथोंको नचाकर ताली पीटकर वे बोले- मेरी मैया, तू इसे गगरीसे निकालकर मेरे हाथोंपर रख दे।

जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा वृद्धिशील होता है वैसे-वैसे उसका आकर्षण बढ़ता जाता है। यह चन्द्रमा सौंदर्य सुषमा का अवतार ही था। नन्दका लाला उसको पाने के लिये हठ कर रहा था। कन्हैया ने कहा- यह आसमान का चाँद दे दे। यशोदा बोली- कन्हैया, क्या माँग रहे हो तुम। कन्हैया बोला- इसी चाँद को मुझे दे, बड़ा सुहावना-लुभावना लग रहा है। माँ बोली- कुछ और माँग ले। कन्हैया रोकर बोला- मुझे यही चाहिये और कुछ नहीं। माता बोली- चुप हो जा, कन्हैया चुप हो जा। मैं तुम्हें चाँदी का चाँद बनाकर दूँगी। कन्हैया बोला- मुझे चाँदीका नहीं आसमान का चाँद चाहिये। कन्हैया अपनी जिदपर अड़ गया। नन्दरानी हँसने लगती हैं, व्रजसुन्दरियाँ हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाती हैं; किंतु श्रीकृष्ण जननीके अंचलका छोर पकड़े बारम्बार कह रहे हैं- री, उसे निकाल दे, शीघ्र निकालकर मेरे हाथोंमें दे दे। जननी पुत्रको अन्य बातोंमें भुलाना चाहती हैं; पर वे तो भूलते ही नहीं, बल्कि रोना आरम्भ करते हैं।

इसी समय समीप अवस्थित प्रभावती (उपनन्दपत्नी) को एक सुन्दर बुद्धि उपज आती है। वे नन्दरानीको धीरेसे कानमें संकेत कर देती हैं। संकेत करके स्वयं भंडारमें चली जाती हैं, एक विशाल नवनीतखण्ड पीठकी ओर छिपाकर ले आती हैं तथा श्रीकृष्णकी दृष्टि बचाकर मन्थन-गगरीमें डाल देती हैं। यह हो जानेपर अंचलसे पुत्रकी आँखें पोंछती हुई जननी बोलीं- अच्छा, चल, मैं तेरे हाथपर रख देती हूँ। जननी आती हैं, गगरीके पास आकर उसमें हाथ डालकर उज्ज्वल नवनीतखण्ड निकाल लेती हैं तथा नीलमणिके हाथोंपर रख देती हैं। ओह, श्रीकृष्णके आनन्दका पार नहीं- जैसे सचमुच चन्द्र ही उनके हाथमें आ गया हो। आनन्दमें निमग्न हुए नीलमणि गगरीकी ओर देखते हैं। यद्यपि गोपिकाओंके निकट खड़े हो जानेसे प्रतिबिम्ब विलुप्त हो गया है, तथापि किंतु श्रीकृष्ण यह सोच रहे हैं कि चन्द्र गगरीसे निकलकर मेरे हाथोंपर आ गया है।

नवनीतपिण्ड लेकर वे आँगनमें दौड़े। उनके पीछे नन्दरानी एवं गोपिकाएँ भी दौड़ीं। पर बाहर जानेका द्वार तो गोपिकाओंकी भीड़से रुद्ध है। वे बाहर जा ही कैसे सकते हैं? इसीलिये पुन: मन्थन-गगरीके ही समीप आ जाते हैं। अब भी चन्द्र गगरीमें प्रतिभासित हो रहा है। नीलमणिकी दृष्टि भी उसपर पड़ ही जाती है। बस... नीलमणिने समझ लिया- जननीने मेरी वञ्चना की है, चन्द्र तो अभी भी गगरीमें ही है। उनके पमजनयनोंमें रोष-मान-व्यथा भर जाती है। वे वहीं भूमिपर लोट जाते हैं, हाथ-पैर पटक-पटककर करुणक्रन्दन प्रारम्भ करते हैं।

गोद लेन चाहति महतारी। हाथ न आवत विलपत भारी॥
सौगन्ध देह उन जननि उठावे। चन्द्र गगन को उनहिं दिखावे॥

रूठे हुए श्रीकृष्ण जननीकी गोदमें भी नहीं उठना चाहते। किसी प्रकार जननी उन्हें वक्ष:स्थलपर उठा लेती हैं। समझाती हैं- मेरे लाल, चन्द्र तो गगनमें है, गगरीमें नहीं।

श्रीकृष्ण गगनस्थ चन्द्रको देखकर चुप हो जाते हैं। वे कभी आकाशचन्द्रकी ओर, तो कभी गगरीमें प्रतिबिम्बित चन्द्रकी ओर देखने लगते हैं। उन्हें प्रतीत हो रहा है- दो चन्द्र हैं; एक गगरीमें, एक आकाशमें। जननी पुत्रका मनोभाव जान लेती हैं। समझाती हैं- मेरे प्राणधन। देख, चन्द्र तेरा मुख देखने आता है; जब तू गगरीकी ओर देखता है, तब आकाशमें चला जाता है। जननीके इस उत्तरसे नीलमणिका यह समाधान तो हो जाता है कि चन्द्र एक है; पर इससे क्या हुआ? उन्हें तो चन्द्र जो चाहिये। उसे पानेके लिये वे उपाय सोचते हैं एवं चन्द्रको ला देनेके लिये जननीके सामने पुन: मचल उठते हैं।

मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं माता साँ कहि ताहिं मँगावत। लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि बिरुझावत।।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, जोइ भावै सोइ लीजै।।
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।। पालागौं हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै।।
अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात। यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिं तात।।

मैया बोली- तू जहाँ देखता हैं वहीं चन्द्रमा भी आ जाता है। वह शहद, मक्खन और मिश्री की तरह मीठा नहीं है, वह खाने योग्य नहीं है। चतुर लोग चन्द्रमा की चमक देखकर भ्रमित नहीं होते। वह तो बिना किसी आधार के आकाश में हैं उसे कोई पकड़ नहीं सकता उसी का प्रकाश पृथ्वी पर छाया हुआ है। उसे खानेका हठ मत करो, नहीं तो सब लोग तुम्हारे ऊपर हँसेंगे। लाला बोला- अच्छी बात है। खिलौना ही सही। तू इसे ला तो दे। मैं खाऊँगा नहीं, इससे खेलूँगा। मैं इस खिलौनेको लूँगा ही- श्रीकृष्ण पहलेकी अपेक्षा भी और अधिक हठ कर बैठे।

मैंया, मैं तो चंद खिलौना लैहों। जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं। ह्वै हौ पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।
आगैं आउ बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं। हंसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया देहौं।।
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं। सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं।।

हे मां, मैं तो चंद-खिलौना लूंगा। यदि तू नहीं देगी तो मैं जमीन पर लोट जाऊंगा और तेरी गोद में नहीं आऊंगा। गाय का दूध नहीं पीऊंगा और चोटी भी नहीं गुंथवाऊँगा। मैं नंद बाबा का बेटा हो जाऊँगा, तेरा बेटा नहीं कहलाऊंगा।

कृष्ण हठ करने लगे। खीझ गये और बोले- बड़ी भूख लगी हैं मैं तो चंदा को खाऊँगा बड़े हठीले बन गये।

थोड़ी ही देर में यशोदा रोहिणीके साथ लौटी, हाथ में चाँदी का एक जल भरा कटोरा था। उसने आँगन के बीच में रख दिया और कन्हैया से बोली- आ कन्हैया, चाँद ले ले। कन्हैया कटोरे में झाँकते हुए बोला- यह आ गया चाँद। हाथ की बाँसुरी किनारे पर रख दी और ताली बजाकर किलकारियाँ मारने लग गया।

गगन बीच में चन्द्र खिलौना श्याम दिखाना। इक टक देखी हर्ष नयन मोहन मन भाना।।
दोनों हाट उठाकर कान्हा टेर लगाई। आजा आजा मो सँग खेलो चन्दा भाई।।

रोहिणी ने कहा, मैंने रोते हुए कन्हैया को आकाश में चन्द्र खिलौना दिखाया। चमकते हुए चाँद को देखकर लाला की आँखों में प्रसन्नता हो गई। चंदा मोहन के मन को बहुत अच्छा लगा। दोनों हाथ उठाकर कन्हैया ने चंदा को अपने पास आकर खेलने के लिए आवाज लगाई। अरे चंदा भाई, आओ, आओ, मेरे साथ आकर खेलो।

एक बार श्रीकृष्ण चन्द्रमा को देखकर मचल गये और मैया से बोले- मैं तो यह चन्द्र खिलौना लेऊंगा।

मन-ही-मन हरि बुद्धि करत हैं माता सौं कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि-देहि- रिस करि बिरुझावत।।

मैया बार-बार समझाती हैं। तू मेवा खा ले, मिष्ठान्न खा ले, माखन तेरे लिये रक्खा है। लाला बोला- ना-ना। यशोदा बोलीं-

आछे मेरे लाल हो, ऐसी आरि न कीजै। मधु-मेवा-पकवान-मिठाई जोइ भावै सोइ लीजै।।
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै। पा लागाँ हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै।।

गोपियों ने पानीके पात्र में भरकर चंदा की छाया दिखायी तो कन्हैया कहने लगा- मुझे तो ऊपरवाला ही लाकर दे। मैया को लगा बड़ी भूल हो गयी अब इसे किसतरह समझाऊं। कन्हैया तो बोलने लगा मैं तो उसे ही खाऊँगा। माताने कहा- यह खानेकी

चीज नहीं है। यह तो खिलौना है। कन्हैया बोला- अच्छा खिलौना दो मैं इसीसे खेलूँगा, खाऊँगा नहीं अब तो लाकर दे।

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहि लाल बुलावै। मधु-मेवा-पकवान मिठाई, आपुन खैहैं, तोहि खवावै।।
हाथहि पर तोहि लीन्हे खेलै नैकु नहीं धरनी बैठावै। जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै।।

रोहिणी जी बोली, कन्हैया ने मुझसे कहा, मैं चंदा को खेलने के लिए बुलाता हूँ परन्तु यह क्यों नहीं आ रहा है। मुझे बहुत जोर से भूख लगी है, मैं इस चंदा को ही खा जाऊंगा। कन्हैया को ऐसा लगा कि यह पीला पीला चंदा गाय के दूध में से निकला हुआ माखन का लौंदा है। रोहिणी ने कहा- यह खाने की वस्तु नहीं, यह तो तुम्हारी सुन्दर सी बहू का सुन्दर सा भैया है।

यशोदा मां कहती है, तुम आगे आओ मेरी बात सुनो। मैं यह बात बलराम को नहीं बताऊँगी। मां ने हंसकर कहा और समझाया कि तेरे लिए नई दुल्हन ला दूंगी। यह सुनकर कृष्ण ने कहा कि हे मां, मैं तेरी सौगंध खाकर कहता हूं कि मैं अभी ब्याह करने जाऊंगा।

नन्हा शिशु नहिं जान बहू क्या वस्तु होवे। खेलन खावन सूझ उसी हित गावे रोवे।।
खेलन माँ दे चन्द्र खेलते भरा न मनुआ। पकरे मेरे हाथ त्वरित दे खीजे कनुआ।।

नन्हा कन्हैया नहीं जानता था कि बहू क्या वस्तु होती है। अभी तो उसे खेलने और खाने, इन दो ही वस्तुओं का ज्ञान है इसीलिए इन्हीं के लिए माँग करता है। अथवा न मिलने पर रोता है। इसका मन अभी खेलने से भरा नहीं इसलिए मुझसे कहता है कि माँ मुझे खेलने के लिए चंदा दे दो न। मेरे दोनों हाथ पकड़कर बोला, जाँ जल्दी दे दो। देरी होने पर कनुवा खीजने लगा।

थारी में भर नीर श्याम के आगे राखा। इतने नियरे देखि श्याम सब भूला माखा।।
पकरन को जब उभय हाथ मारी में सारे। पर छपाका चन्दा बन गया झिलमिल तारे।।

रोहिणी ने कहा, मैंने पानी से भरी थाली मोहन के आगे रख दी। थाली मैं चंदा को इतने समीप देखकर कन्हैया खीजना, रूठना, मचलना, सब भूल गया। चंदा के साथ खेलने के लिए अपने दोनों हाथ लाला लालानें थाली में मारे तो छपाक की आवाज हुई, हिलते हुए पानी में चाँद के प्रतिबिंब के छोटे छोटे रूप हो गये, ऐसा लगने लगा मानो चंदा अनेक तारे बनकर झिलमिला रहा हो।

देखो अब यह सोवन के हित रोवन लागा। लगा कन्हाई रोवत चन्दा सोवन भागा।।
थार उठाया तुरत लाल ब्यारू करि सोया। मेरा मन लालन की लाला रहता खोया।।

यशोदा समझाती है-

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहिँ लाल बुलावै। मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपनु खैहै, तोहिँ खवावै।।
हाथहिँ पर तोहिँ लीन्हे खेलै, नैंकु नहीं धरनी बैठावै। जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै।।
लै लै मोहन, चंदा लै। कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै।।
जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्ही इती अरै। सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिँ परै।।
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै। लै अपने कर काढ़ि चंद कौं जो भावै सौ कै।।
गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै। सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरौ लाल हठै।।

इस बार श्रीकृष्ण मनोरथ मानो पूर्ण हो गया, वे आनन्दमें भर जाते हैं; क्योंकि जलपात्रमें उन्हें चन्द्रके स्पष्ट दर्शन हो रहे हैं। वे गोदसे उतरकर चन्द्रको पकड़नेके उद्देश्यसे अपने दोनों हस्तकमल जलपात्रमें डाल देते हैं। झलमल-झलमल करती हुई चन्द्र-परछाई विलीन हो जाती है। ठीक उसी समय योगमायाप्रेरित एक शुभ्र मेघखण्ड आकाशचन्द्रको

आच्छादित कर लेता है। श्रीकृष्ण दृष्टि फिराकर आकाशकी ओर देखते हैं- वहाँ भी चन्द्र नहीं है। जननीसे पूछते हैं- री मैया, चन्द्र कहाँ चला गया? मैया उत्तर देती हैं- मेरे लाल, तू उसे हाथोंसे पकड़ना चाहता था, तुझसे डरकर वह पातालमें भाग गया। पाताल क्या है? श्रीकृष्णने अतिशय आश्चर्यमें भरकर बड़ी उतावलीसे पूछा। जननीको अब कहीं पुत्रको भुलानेका सूत्र प्राप्त हुआ। वे बोलीं- मेरे नीलमणि, पातालकी बड़ी सुन्दर कथा है; चल, तुझे पातालकी कथा सुनाऊँ।

यह कहती हुई नन्दरानी नीलमणिको हृदयसे लगाकर शय्या-मन्दिरकी ओर चल पड़ती हैं।

व्रजसुन्दरियाँ, हम कोजागरीका जागरण करने आयी हैं- यह कहकर आयी थीं। अत: वे व्रजेन्द्रके नारायणमन्दिरकी ओर चली जाती हैं। वहाँ जाकर वे जागरण कर भी रही हैं, पर उनके नयन-मन प्राणोंमें तो श्रीकृष्ण छाये हुए हैं। इसलिये वे नारायणका नामोच्चारण तो भूल गयी हैं, उसके बदले परस्पर एक दूसरीको अपने चित्तकी दशा सुना रही हैं। एक गोपसुन्दरी अपनी दशा बता रही है।

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन, खेलत आँगन बारौ री। ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ, तन-मन ह्वै गयौ कारौ री॥
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री। मोहिँ भ्रम भयौ सखी, उर अपनँ चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री॥
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिँ, ताहू तैं अति भारौ री। जैसे बूँद परत बारिधि मैं, त्यौं गुन ज्ञान हमारौ री॥
हाँ उन माहँ कि वै मोहिँ महियाँ, परत न देह सँभारौ री। तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु, दुहुँ मैं एक न न्यारौ री॥
जल-थल-नभ-कानन-घर-भीतर, जहँ लौं दृष्टि पसारौ री। तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री॥

कन्हैया ने रोहिणी मैया के मुख की ओर देखा तब रोहिणी ने कहा चंदा को नींद आ रही है इसलिए वह सोने के लिए रोने लगा। कान्हा को भी ऐसा मानो रोता हुआ चंदा सोने के लिए भागा जा रहा हो। माँ ने पानी का थाल उठाया और लाला को ब्यारूँ करवाके सुला दिया। वे बोलीं, लाला के सो जाने के बाद भी मेरा मन उसकी लीलाओं में खोया रहता है।

मधु मंगल मोदक कहा, अँगुठ दिखाया श्याम। गुरु विद्या गुरु पर चली, सबहिं हँसे नर बाम॥
जो कोई काला कहे वाहि को मारन जावे। तू गंदी तू काली, कहि के जीभ दिखावे॥

मधुमंगल ने कन्हैया से मोदक माँगा, श्याम ने हँसकर मधुमंगल को अँगूठा दिखा दिया। इस प्रकार गुरु की विद्या गुरु पर चलती देखकर गोप, गोपियाँ सब ही हँसने लगे। अगर कोई गोपी कहती कन्हैया तो काला है तो उसी को मारने दौड़ पड़ते और कहते तू काली है, तू गन्दी है और फिर अपनी जीभ मुख से बाहर निकालकर उसे चिढ़ाते।

कोई पूछे तुंगी ताई कैसी लागे। ऊपर करिके हाथ उठाये एड़ी भागे।
लम्बा कद जतलावन देखे पेड़ खजूरा। ओ ओ करिके कूदे हँसे सभी मुँह पूरा॥

अगर कोई पूछता तुम्हारी तुंगी कैसी लगती है तो अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर तुंगी ताई के लम्बे कद का होना बतलाते और तुंगी ताई के लम्बे कद को जताने के लिए खजूर का पेड़ दिखलाते, ओ ओ करके कूदते। उसे देखकर सब लोग पूरा मुँह खोलकर हँसने लगते।

तुंगी ताई लम्बी पकरन हाथ बढ़ावे। ताहि दिखाइ अँगुष्ठ तुरत बाहर भग जावे॥
पीवरि ताई चाल श्याम सों पूछे कोई। कमर धरे दो हाथ फुलावे मुँह द्रुत सोई॥

लम्बे कद की तुंगी ताई अपनी हँसी करने पर कन्हैया को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाती तो कान्हा उसे अँगूठा दिखाकर तुरन्त बाहर भाग जाता । यदि कोई श्यामसुन्दर से पीवरी ताई की तरह चलकर दिखाने को कहता तो श्यामसुन्दर अपने दोनों हाथों को कमर पर रखकर अपना मुंह फुलाकर पीवरी ताई के मोटा होने को दिखलाता।

दोनों पग फैलाकर धीरे राखे आगे। हँसते हंसते पेट सबन के दूखन लागे।।

रोहिणि माँ प्रिय श्याम बतावो कैसे डाँटे। कटि धर हाथ दिखावे दूसर तर्जनि छाँटे।।

पीवरी के मोटापे को दिखाने के लिए दोनों पैरों को दोनों ओर फैलाकर धीरे-धीरे चलकर दिखलाता जिसे देखकर हँसते हँसते सबके पेट दुखने लगते। अगर कोई पूछता प्यारे श्याम सुन्दर बताओ रोहिणी माँ कैसे डाँट लगाती है तो श्याम एक हाथ कमर पर रखकर दूरसे हाथ की तर्जनी अँगुली को डाँटने की तरह दिखाता जिसे देखकर रोहिणी आदि सभी प्रसन्न होते। जब श्यामसुन्दर घुटनों का बिना सहारा लिये चलना प्रारम्भ किये तब वे अपने घर में अनेकविध कौतुकमयी लीला करने लगे।

मातहिं श्याम सतावन भाई।।

पल में मांगे माखन मिशरी पल में दूध मलाई। साढ़ी दही जिलेबी रबड़ी खोया को मन धाई।।

दाल भात रोटी ओ पल में खुरचन टेर मंगाई। हलुआ छाछ खीर अरु खुरमा मालपुआ गोहराई।।

पल पेड़ा बरफी लाड़े कढ़ि हांक कचोरि लगाई। कला कन्द बालूशाही पल रसगुल्ला दौराई।।

इमरति गुझिया मठा गुलगुला मीठे हित चिल्लाई।।

श्यामसुन्दर को अपनी माता को सताना, खिजाना अच्छा लगने लगा। अनेक प्रकार की वस्तुओं की माँग करके माँ को दौड़ाते रहते। श्याम सुन्दर कहते, अरी मैया। मैं मिश्री खाऊंगा। माता माखन मिश्री लेकर आती तब ही कहते, मैया। दूध मलाई लाओ, मैया लेकर आती तो कन्हैया, मेरा मन साढ़ी खाने को हो रहा है। मुझे दही, जलेबी चाहिए। मैं रबड़ी खोया खाऊँगा फिर कहते मैया, दाल भात लाओ, पल में कहते रोटी दो, खुरचन लाओ। अरी मैया, मैं तो हलुवा खाऊंगा। फिर कहते मैया छाछ पिला दो। मैया मेरा मन खीर खाने को होता है। मुझे खुरमा खिलाओ। बहुत दिन से मालपुआ नहीं खिलाया लेकर आओ। मैया मेरे लिए पेड़ा लाओ, मैं बरफी खाऊंगा और एक पल के बाद बोले लड्डू दे दो। अरी मैया, बढ़िया सी कढ़ी बनाकर लाओ, अब मैं कचौड़ियाँ खाऊंगा। फिर बोले- मैया मेरा मन कलाकंद खाने को हो रहा है। मैया बालूशाही भी लाना। मैया जल्दी से रसगुल्ला दे दो। अरी मैया, इमरती, गुजिया, मट्ठा का मन हो रहा है। फिर चिल्लाकर बोले, ओरी माई। मीठे गुलगुला लाओ। श्यामसुन्दर ने कहा- अरी मैया बरा पकौड़ी जल्दी लाकर दो। मैया किसी वस्तु को लाने में किसी कारण से थोड़ा विलम्ब कर देती तो कन्हैया जोर जोर से चिल्लाकर मैया को परेशान कर देते।

कान्ह कहे मन भावन लावो।।

पल में लेन बड़ी हित टेरे घेवर मोहि पवावो। पल सन्देस खान हित टेरे माल चूरमा भावो।।

दूध अधोटा घुघरी गट्ठा भाजि बताशा पावो। चाट फलन चटनी अधरक पल शरबत घोरि पिलावो।।

पल में कहे महेरी रइता गाजर मूली खावो। लाई चिउरा चना अचारहिं सरसों साग खवावो।।

मक्का रोटी खिचड़ि बाजरा काजू आन धरावो।।

कन्हैया ने कहा, अरी मैया। मेरे मनको अच्छी लगनेवाली खाने की वस्तु लेकर आओ। एक पल में नमकीन बड़ियाँ मँगवाई तो दूसरे पल में घेवर के लिए आवाज लगाई। एक पल के पश्चात खाने के लिए संदेश माँगा तो दूसरे क्षण में बोले मुझे माल चूरमा अच्छा लगता है। मैया अघौटा दूध पिला दो। मैं घूँघरी, गट्ठा भाजी बताशा खाऊंगा। फिर बोले फलों की चाट खिलावो, फिर बोले अदरक की चटनी दे दो, फिर बोले चटनी से मुँज जल गया शरबत घोलकर पिला दो। एक पल के बाद कहा महेरी रायता पीऊंगा फिर कहा गाजर मूली खाने का मन हो रहा है। दूसरे क्षण कहा अचार के साथ लाई, चिवड़ा और चना खाऊंगा। अरी मैया, मेरा मन सरसों का साग खाने को होता है। अरी मैया, मक्का की रोटी और बाजरा की खिचड़ी भी लाना। अरी मैया

खिचड़ी में काजू डालकर लाना। अरे श्याम सुन्दर, तुम्हारी मैया अब थक गई है, तुम मुझे क्यों सता रहे हो।

रूठा मोहन कौन मनावे।।

सखा सखी बलराम मनावे कान्हा नहिं मुस्कावे। गोप खड़े कर जोरे सुर मुनि नभ सों सुमन गिरावें।।

जगत पती को मात यशोदा अपनी गोदि चढ़ावे। धन्य धन्य हरि जननी ताता जिन मिस सब सुख पावें।।

प्रात नहाया ताते जल अब मचले गाल फुलावे। देह श्रिंगारी केस सँवारे बिगरे भू लौटावे।।

गोपियां श्रीकृष्णके रूपसे भरी हैं। गोपसुन्दरीके नेत्रमें तो ये भरे हैं; मथानी समा सके, इतना अवकाश नेत्रोंमें कहाँ। इसीलिये अनुमानसे मथानीके समीप वह जा तो पहुँची, पर देख न पा सकी कि कहाँ क्या है। आते ही दधिभाण्डसे चरणोंका वेगपूर्ण स्पर्श हुआ, वह दधिपात्र उलटा हो गया, दहीकी धारा बह चली। गोपसुन्दरीने हाथसे टटोलकर केवल यह समझा कि मटका तिरछा हो गया है, अपनी जानमें सीधा करके वह बिलोने चली। प्रेमविवश हुई ग्वालिन यह नहीं जानती कि वह रीते पात्रमें ही मन्थनदण्ड चला रही है, दही तो बाहर बह गया है- **ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ।।**

यशोदारानीने भी तब जाना कि जब श्रीकृष्ण स्तनपानसे विरत होकर हँसते हुए-से उस ग्वालिनकी ओर देखने लगे, जननीको उस ओर देखनेके लिये इङ्गित करने लगे। अन्यथा जननी तो बिलोनेका आदेश देकर अपने नीलमणिमें ऐसी उलझ गयी थीं कि अन्य सब कुछ विस्मृत हो गया था। वे तो अपने नीलमणिको स्तनपान करानेमें तन्मय हो रही थीं। श्रीकृष्णने ही उन्हें जगाया तथा जागकर जननीने देखा- हैं। माखन तो बहता जा रहा है। जननीने पुकारकर कहा- री सखी। अपनेको सँभाल। अब कहीं जाकर व्रजसुन्दरीको मथानीकी, दधिपात्रकी वास्तविक अवस्थाका भान हुआ; फिर तो संकोच-लज्जामें वह बह चली। व्रजरानीको भी संकोच हुआ कि इसकी सुख-समाधि मैंने तोड़ दी।

पराजयका रोष, अब भविष्यमें दुग्धपानसे विरत होनेकी भावना, जननीके प्रति अविश्वास, क्षुधाकी निवृत्ति, दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति- ये सब एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो रहे हैं।

अपनेको भूली-सी रहकर ग्वालिन यह दृश्य देख रही थी। इतनेमें जननीसे रूठे हुए श्रीकृष्ण वहाँसे उठकर उसके समीप आकर खड़े हो गये। ग्वालिनका उनके शरीरसे किंचित् स्पर्श हो गया, फिर तो वह बाह्यज्ञान-शून्य हो गयी। जब चेतना हुई, तब घरके लोगोंने उसे बताया, पूरे आठ पहर वह प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति निस्पन्द बैठी थी। किंतु वह नन्दभवनसे अपने आवासमें कैसे चली आयी, यह प्रश्न किसीके मनमें उदय न हुआ; स्वयं ग्वालिनने भी इसका रहस्य न जाना। जाननेका अवकाश ही जो न था। वह तो निरन्तर देख रही थी- व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण दुग्धपान कर रहे हैं।

आज तीसरे दिन वह पुन: आयी है तथा देख रही है- विविध पकवान-मिष्टान्न थालोंमें सजाकर सामने रखकर व्रजेश्वरी श्रीकृष्ण को लाड़ लड़ा रही हैं; किंतु पकवान भोजन करनेकी बात तो दूर, श्रीकृष्ण उस ओर ताक भी नहीं रहे हैं, बल्कि खीझकर कह रहे हैं।

मैया री, मोहिँ माखन भावै। जो मेवा पकवान, कहति तू मोहिँ नहीं रुचि आवै।।

वह गोपसुन्दरी श्यामसुन्दरके ठीक पीछे खड़ी है; श्रीकृष्णके मधुर वचनोंसे अमृत झर रहा है, उसे पीकर वह मत्त होती जा रही है। इस मत्तताके आवेशावेश ही उसके अन्तस्तलमें आज सहसा एक वासना जाग उठती है- क्या श्रीकृष्ण कभी मेरे घर चलेंगे, मेरे घरका नवनीत ग्रहण करेंगे? पर मेरे सामने रहनेपर तो ये संकुचित हो जायँगे। अत: मैं तो दधि-मन्थन करके छिप जाऊँ और तब ये मथनीके समीप जायँ, वहाँ बैठकर यथारुचि माखन खावे; मैं यह देखकर निहाल हो जाऊँ। मेरे नेत्रोंकी यह साध कभी पूरी होगी क्या?

ग्वालिन तो अपनी जानमें अपने मनमें मनोरथचित्र अंकित कर रही है, पर ये अंकित हो रहे हैं अनन्तैश्चर्य-निकेतन, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, प्रेमके भूखे, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान श्रीकृष्णके मन:पटलपर।

बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी। सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी।।

इस मनोरथके प्रवाहमें ग्वालिनका मन ही नहीं, शरीर भी मानो बह चला। सहसा वह नन्दभवनसे लौट पड़ी, अपने घर आ पहुँची। जाते समय दधिमन्थन किये बिना ही चली गयी थी। अब आकर यन्त्र-परिचालितकी भाँति दही बिलोने लग जाती है। रह-रहकर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो श्रीकृष्ण उसके द्वारपर पधारे हैं; अचकचाकर वह कभी-कभी विस्फारित नेत्रोंसे द्वारकी ओर देखने भी लग जाती है, परंतु द्वारा सूना पाकर पुन: अपने भावोंमें विभोर हो जाती है। उसे यह पता नहीं कि मनोरथतन्तुमें बँधे, आकृष्ट होते हुए वाञ्छाकल्पतरु स्वयं भगवान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण वास्तवमें ही उसके घरकी ओर चल पड़े हैं।

सचमुच ज्यों ही गोपसुन्दरी नेत्रोंसे ओझल हुई कि बस, श्रीकृष्ण जननीकी गोदसे कूदकर बाहरकी ओर भाग चले। जननीने लपककर थाम तो लिया, पर अतिशय चेष्टा करके भी आज पकवान-मिष्टान्न वे उन्हें न खिला सकीं। केवल किंचित् माखन ही मुखमें डाल सकीं। आज क्षणभरका भी विलम्ब श्रीकृष्णको सर्वथा असह्य हो रहा है। वे हाथ छुड़ाकर आखिर भाग ही गये। यशोदारानीको भी आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि नीलमणिको बाहर जानेके लिये इतना अधिक व्यग्र उन्होंने पहली बार देखा है। श्रीकृष्ण क्षणभरमें ही गोपसुन्दरीके घरपर चले आये।

माता की बात को सुनकर कन्हैया रूठने की लीला करने लगे। रूठे हुए कन्हैया तो जल्दी मानते नहीं इसलिए कौन मनाने के लिए आगे आये? सखा, सखियाँ, बलराम भैया ने मनाने का प्रयास किया लेकिन कन्हैया के मुख पर कोई मुस्कान नहीं आई। गोप लोग हाथ जोड़कर मनाने का प्रयास कर रहे हैं, देवता और मुनि आकाश के सुगन्धित फूलों की वर्षा कर रहे हैं। जगत के स्वामी को माता यशोदा ने अपनी गोद में चढ़ा लिया। श्री हरि की माता और पिता धन्य धन्य हैं जिन्होंने निमित्त बनकर सब लोगों को श्री हरि की लीलाओं का सुख प्रदान किया। प्रात:काल माता ने ऊष्ण जल से स्नान करवाया और अब कन्हैया गाल फुलाकर मचलने की लीला दिखा रहे हैं।

कन्हैया के कान में बाल सखाओं के बुलाने की आवाज आई तो माता की गोदी से उतरकर वे शीघ्रतापूर्वक बाहर भाग गये। माता पुकारती ही रह गई। परन्तु सखाओं के प्रेम के आधार कन्हैया रुके नहीं। बाहर गली में तोक, ऋषभ, वरूथप, सुबल, अर्जुन आदि सखा मिल गये। सबने देखा एक कुतिया ने सुन्दर सुन्दर बच्चों को जन्म दिया है, सब अपने ढंग से रंग बिरंगे नन्हे पिल्लों को देखने लगे।

दूर खड़े कोई पास झुके आधे कोई बैठे। श्वाबालन सों खेल रहे जो माँ पर लेटे।।
कूँ कूँ करते नन्हे शिशु लख रंग बिरंगे। दूध पीन को मचल रहे निज जननी ढिंगे।।

नन्हे बालक कुतिया के बच्चों के पास खड़े थे। कुछ बालक दूर खड़े थे और कुछ बालक अपनी माँ पर लेटे हुए पिल्लों को झुककर देख रहे थे। कूँ कूँ करते हुए रंग बिरंगे नन्हे बच्चों को अपनी माता के पास दूध पीने के लिए मचलते हुए देख रहे थे।

शिशु सहलाये दाऊ तो सबका भय भागा। श्वानबाल पर हाथ फिरावन सब मन लागा।।
मार पलाथी श्याम सभी पर फेरा हाथा। सरमा हुई निहाल बाल निज चाटा माथा।।

सर्वप्रथम दाऊ दादा ने अपना हाथ बढ़ाकर कुतिया के बच्चों को सहलाया तो सभी सखाओं के भय और झिझक दूर हो गये और सभी बालक कुतिया के छोटे बच्चों पर हाथ फिरा फिराकर सहलाने लगे। श्यामसुन्दर पालथी मारकर बैठ गये और श्वान

के सभी बच्चों पर अपना वरद हस्त घुमाया। कुतिया यह देखकर निहाल हो गई और बच्चों का माथा चाटने लगी।

जनु कहती हो आज धन्य तुम हो गय सारे। कोख हमारी सफल श्याम तुम पर कर धारे।।
सीस झुकाया चरण प्रेम सों पुच्छ घुमाई। पशु योनी का प्रेम प्रदर्शन एहि बिधि गाई।।

अपने बच्चों के ऊपर कन्हैया के द्वारा हाथ फिराना देखकर मानो कूकरी मन ही मन प्रसन्न होकर कह रही हो, अरे मेरे बच्चों, आज तुम धन्य हो गये, आज मेरी कोख सफल हो गई क्योंकि सर्वेश्वर भगवान श्याम सुन्दर ने तुम्हारे ऊपर अपना स्नेह भरा हाथ रख दिया। श्वा (कूकरी) ने अपना सिर कन्हैया के चरणों में प्रेमपूर्वक झुकाया और अपनी पूँछ को घुमाने लगी। हे तात, पशु योनि के जीव अपने हितैषी के लिए अपना प्रेम प्रदर्शन इसी प्रकार से करते आये हैं।

माता यशोदा ने देखा मेरा बेटा श्याम गोबर और कीचड़ से लिपटा हुआ आँगन में खड़ा है। मैया देखकर मुसकराई और फिर बोली क्यों रे मेरे सपूत। तू पिछले जन्म में कहीं सूअर तो नहीं था? जिसके कारण इस जन्म में तुम्हें गोबर और कीचड़ में लिपटे रहना अच्छा लगता है। कन्हैया मन ही मन मुस्कराये और सोचने लगे मैया को कैसे पता लग गया कि मैंने इससे पहले वाराह अवतार भी धारण किया था। गोबर से सने हुए कन्हैया मुस्कराते हुए अपनी माता से लिपट गये।

कुतिया के पिल्ले बाहर उन दूध पिलाऊँ। भूख लगी है उनको दे जलदी ले जाऊँ।।
पौंछि अँगोछा देह दूध मैया ने दीना। जाय पिलाया सरमा के बालन ने पीना।।

कन्हैया बोले, मैया री। बाहर कुतिया के बहुत सारे पिल्ले हैं, उनको भूख लगी है मैं उनको दूध पिलाऊँगा। तुम मुझे दूध दे दो ताकि मैं जल्दी से ले जाऊँ। मैया ने अँगोछे से कन्हैया के शरीर को पोंछ दिया और दूध से भरा हुआ कटोरा हाथों में दे दिया। बाहर ले जाकर कान्हा ने श्वा के पिल्लों को दूध पिलाया। पिल्ले बड़े प्यार से दूध पीने लगे।

पिल्ले लागे संग गये आँगन के बीचा। बैठे जहँ जा श्याम सभी जा बैठ नगीचा।।
माता बोली कान्ह इन्हें क्यों संग लिवाया। तू है मेरा पुत्र इन्हें कुतिया ने जाया।।

कन्हैया घर में आये तो पिल्ले भी घर के आँगन तक पहुँच गये। जहाँ जाकर श्याम बैठे, पिल्ले भी वहाँ जाकर उनके पास बैठ गये। माता ने कहा, कन्हैया। तू इन पिल्लों को अपने साथ घर में क्यों लिवा लाया, तू तो मेरा सुत है परन्तु इन्हें तो कुतिया ने जन्म दिया है, तू इन्हें साथ क्यों ले आया?

मोहन बोले नये सखा हैं माता मेरे। भूख लगी है इनको भी दे मेरे नेरे।।
मैया ने निज गोदी लै सुत दूध पिलाया। दूध कटोरा भरे सभी को खूब पिवाया।।

मोहन ने कहा, अरी मैया। ये मेरे नये सखा हैं, इनको भी भूख लगी है इसलिए इनको भी मेरे साथ खाने को दे दो। माता यशोदा ने अपने लाला को गोदी में लेकर प्रेम से दूध पिलाया ओर दूध का कटोरा भरकर सभी पिल्लों को भी खूब दूध पिलाया। माता मन ही मन जानती थी कि अगर मैंने कुतिया के पिल्लों को दूध पिलाने से मना कर दिया तो कन्हैया रूठा ही धरा है अर्थात तुरन्त रूठ जायेगा और रूठे हुए श्याम को मनाना बहुत कठिन होता है। मेरा लाला परम उदार है, यह जिस को जो वस्तु जिस समय देना चाहता है उसे वह वस्तु उसी समय मिल जानी चाहिए। यह नहीं देने की बात सहन नहीं कर पाता इसकी यह भली आदत सदा से चली आ रही है। भक्तों और सन्तों में अन्य लोगों को उदारतापूर्वक देने का सद्गुण होता है और वह सद्गुण श्याम सुन्दर का सद्भावना पूर्वक चिन्तन करने से श्याम सुन्दर से ही प्राप्त होता है।

साँझ ढलने पर एक सखी मैया यशोदा के महल में आयी जो अपने हाथों में बिना जला हुआ दीपक लिये हुए थी। आकर यशोदा जी से कहने लगी, अरी मैया। मेरी सासु माँ ने कहा है कि बृजरानी के यहाँ जाकर दीपक को ज्योतिर्मय कर आवो।

यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना ज्योति विहीन दीपक आपके ज्योतिर्मय गृह दीपक के साथ जोड़कर अपने दीपक को भी ज्योतिर्मय कर लूँ ताकि हमारे गृह मन्दिर में प्रकाश हो सके।

माँ यशोदा ने कहा, हाँ हाँ, मेरी बीर। इसमें पूछने वाली क्या बात है। मेरा दीपक और तेरा दीपक अन्धकार दूर करने का एक जैसा कार्य करनेवाला है। सखी ने दीपक जलाना प्रारम्भ किया था कि प्यारे श्यामसुन्दर भीतर से बाहर आ गये। सखी दीपक तो जोड़ नहीं पायी उससे पहले कन्हैया से नैना जुड़ गये। सुन्दर स्वरूप को पहली बार देखकर सखी स्तब्ध हो गई।

कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ खेल रहे हैं। सुबल, बलराम और श्रीदामा अनेक प्रकार से खेल रहे हैं। सभी बच्चे हाथ पर ताली मारकर स्पर्धा से दौड़ रहे थे। बलराम ने कृष्ण को मना किया कि तुम न दौड़ो, तुम्हारे पैर में चोट लग जाएगी। इस पर कृष्ण बोले- कि मैं दौड़ना जानता हूँ, मेरे शरीर में बहुत शक्ति है। श्रीदामा मेरी बराबरी का है और हाथ पर ताली मारकर जा रहा है। इस पर श्रीदामा बोला कि अच्छा तुम ताली मारकर जाओ। अब आगे कृष्ण भागे और पीछे श्रीदामा दौड़ा। उसने ललकारकर कृष्ण को पकड़ लिया। इस पर कृष्ण बोले- मैं तो जान-बूझकर खड़ा हो गया था, अब तुम मुझे क्यों छू रहे हो? सखा कहने लगे कि कृष्ण नाराज हो गए। पहले तो अपने आप आवेश में आकर खड़े हो गए थे, तो अब मन में क्यों क्रोध कर रहे हो? बीच में ही बलराम बोल उठे- इसके न मां है न पिता, यह हार-जीत की बात तनिक भी नहीं जानता, पाप लड़कों को लगता है। आप तो हार गया और अब सखाओं से झगड़ा करता है। यह कहकर उन्होंने कृष्णको भेज दिया।

प्रात: यमुना तीर जा, खेलन लागे शाम। संग सखा सारे जुरे, त्यागे अपने धाम।।

प्रात:काल श्याम सुन्दर यमुना के किनारे खेलने के लिए आये। संग के सखा भी अपना अपना घर त्यागकर कन्हैया के पास इकट्ठे हो गये।

बाल सखाओं से यमुना किनारे अपना अपना घर बनाने के लिए गीली मिट्टी का ढेर लगाया। अपने अपने पैर को नीचे रखकर ऊपर से माटी थप थपाने लगे। हाथों की हथेलियों का थाप लगने से पैर पर रखी हुई मिट्टी दब जाती है, बालक अपना पाँव मिट्टी के ढेर से बाहर निकाल लेते हैं और इस प्रकार उनका मिट्टी का घर बन जाता है। चंचल कन्हैया चंचलता पूर्वक पैर बाहर निकालता है इसीलिए गीली मिट्टी धम् से गिर जाती है और कन्हैया का घर बनाने का काम पूरा नहीं हो पाता। कन्हैया का घर न बनता देखकर भद्र ने ताली बजाई और अपना बना हुआ घर दिखलाकर कहा श्याम घर नहीं बना पाया और वह यह कहते हुए कूद कूदकर चिल्लाने लगा।

भद्र के द्वारा उपहास किये जाने पर कन्हैया खीज गया और तुरन्त जाकर अपने पैरों से भद्र के बनाये मिट्टी के घर को बिगाड़ दिया। यह देखकर भद्र ऊँचे स्वर से रोने लगा। दाऊ दादा ने भद्र के पास जाकर प्रेम से पुचकारा और भद्र को शान्त किया। सखा कहने लगे हम सब श्याम का साथ छोड़कर अलग जाकर खेलेंगे। यह बृजपति का पुत्र होने का अपने मन में बड़ा गुमान रखता है।

श्रीदामा बोला- क्यों रे कनुआ, तू अपने आप को बड़े बाप का बेटा मानता है इसलिए खेल में रोंद मचाता है। हारना तो तू कभी चाहता ही नहीं, सदा जीतना ही तुझे अच्छा लगता है। श्याम ने कहा, यह खेल अच्छा नहीं है, दूसरा खेल खेलेंगे। श्रीदामा ने कहा, पहले मेरा इस खेल का दाव दे दो फिर कहीं जाकर बालकों का मेला लगाना। सब सखाओं ने श्याम को घेर लिया और बोले, अरे कनुआ। यह तो तुम बहुत बड़ी अनीति का काम करते हो। खेल में हारने के पश्चात भी हार मानना स्वीकार नहीं करते। दूसरों से दाव लेने के लिए अपना भरपूर दबाव डालते हो। तू इतने बड़े बाप का बेटा होकर भी मनमानी करता है। क्या हुआ यदि सखाओं की गायों से तुम्हारे यहाँ कुछ अधिक गैया हैं। देखो श्याम सुन्दर, खेल तो

बराबर वालों में जमता है, खेल में किसी की ठकुराई नहीं चलती। अरे हो रोंद पिरैया कन्हैया, या तो हमारा दाव दे दो नहीं तो फिर अकेले खेलो। खेल में रोंद पीटनेवाले को हम अपने संग नहीं खिलाएँगे और न ही तुमसे मेल जोल रखेंगे। बलदाऊ बोले, भैया श्याम बालकों के साथ अनीति का व्यवहार अच्छी बात नहीं है। तुम्हारे द्वारा अनोखी राह पर चलने के कारण हमारे माता-पिता का उपहास होता है। दाऊ ने कहा, भैया कन्हैया। अच्छे कुल के सुपुत्र सदा अच्छा ही कार्य करते हैं। अच्छे कार्य के बल से ही संसार में अच्छी सुखद स्थिति की प्राप्ति होती है। यदि तुमने रोंद नहीं मारा होता तो यह बखेड़ा ही क्यों खड़ा होता। अपने पिता की बिना कारण हँसी क्यों होती जिनका लेश मात्र भी दोष नहीं है।

श्रीदामा की कही हुई बात तोक को अच्छी नहीं लगी और बोला, अरे भाई। साफ बात यह है कि श्याम के बिना हम नहीं खेलेंगे। तोक के बाद एक एक करके सभी सखाओं ने यही बात कही। ऋषभ, वरूथप, बलराम, अर्जुन आदि सारे सखा कन्हैया की ओर आकर खड़े हो गये। श्रीदामा अपने आपको अकेला देखकर उदास हो गया तब कन्हैया ने प्यार से उसे मना लिया। अपने साथ मिलाकर सब लोग बट चौगान का खेल खेलने लगे। सखा दो दल में बँट गये। एक दल के मुखिया श्याम सुन्दर हुए और दूसरे दल का दलपति श्रीदामा को बनाया गया। श्रीराधाजी के भैया सुबल को मोहन ने अपने दल में ले लिया। गेंद बटा की चोट खाकर इधर उधर भागने लगी। थोड़ी देर में ही मौसम में गर्मी बढ़ने लगी। आकाश में देवताओं के सहित देवियाँ कन्हैया की बाल लीला को आनन्दपूर्वक देखने लगीं। बालक खेलते खेलते दौड़ते समय गिर पड़ते फिर पुन: उठकर अपनी जीत के लिए भागने लगते। हँसते हुए चौगान की ओर देखते और चोट मारकर शीघ्रता से भाग खड़े होते।

नँद बाबा की भी सुत नाहीं साँची जानो। मात यशोदा ने नहिं जाया ये ही मानो।।
गोरे नन्द यशोदा गोरी क्यों ये काला। दहि के बदल पुलिन्दिन लेकर याको पाला।।

दाऊ दादा ने भद्र आदि बालकों से कहा, सत्य बात तो यह है कि यह कन्हैया नन्दबाबा का पुत्र नहीं है और माता यशोदा ने इसको जन्म ही नहीं दिया। मेरी बात को सत्य मानो यह गोरे रंग के नन्दबाबा और गोरे रंग की यशोदा मैया का पुत्र होता तो इसे भी गोरा ही होना चाहिए था। यह काला कैसे हो गया? इसको तो माँ यशोदा ने पुलिन्द जाति की महिला से दही के बदले खरीदकर पालन किया है।

लाऊ लीन्हा संग सखा सब भे विलगाने। खीजन मारे कान्हा उनपे मुक्का ताने।।
पीटा मिट्टी ढेर क्रोध सों पाँव लतारा। मात उलाहन देवन को घर में पग धारा।।

दाऊ दादा ने सब सखाओं को अपनी ओर कर लिया और सारे सखा कन्हैया से अलग हो गये। अकेला रह जाने पर कन्हैया को बहुत खीज लगी। क्रोध के मारे कन्हैया अपने सखाओं को हवा में मुक्का तान तान कर दिखाने लगे। क्रोध में भरकर कन्हैया ने मिट्टी के ढेर को पीटा और अपने पैरों से लताड़ा मानो कह रहे हों तुमने मेरा घर क्यों नहीं बनने दिया। घर नहीं बना तभी तो सखाओं ने मेरा उपहास किया और अब सारे के सारे मुझसे अलग हो गये। कन्हैया दाऊ की बात का उलाहना देने के लिए अपनी यशोदा मैया के पास घर में चले आये।

बोलि उठे बलराम तब इनके माय न कोई बाप। हारजीत जाने नहीं लड़िकन लावत पाप।।
कृष्ण रोते हुए उठकर यशोदा मैया के पास चले गये और दाऊ की शिकायत करने लगे।
मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ। मौसौं कहत मोल को लीन्हों, तू जसुमति कब जायौ।।
कहा करौं इहि रिस के मारें, खेलन हौं नहीं जात। पुनि-पुनि कहत कौन है माता, कौ है तेरौ तात।।
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर। चुटकी दै-दै हंसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर।।

तू मोहीं कों मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै। मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति मन महिं रीझै।।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत। सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हों माता तू पूत।।

कृष्ण रोते हुए उठकर यशोदा मैया के पास चले गये और दाऊ की शिकायत करने लगे।

क्या तू मेरी माँ नहीं, क्या मैं नहिं तेरा पूत। दाऊ भैया क्यों कहे, तू नहिं मेरा कहँ सूत।।

कन्हैया ने खीजकर माँ से कहा, क्यों री मैया। क्या तू मेरी माँ नहीं है? क्या मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ? बताओ दाऊ भैया मुझसे ऐसा क्यों कहते हैं कि तुमने मुझे जन्म नहीं दिया। माता ने प्यार से गोदी में लेना चाहा परन्तु क्रोध के मारे लाला गोदी में नहीं आये, धरती पर लोटने लगे और बोले, माँ। आज सच सच बताओ कि सच्ची बात क्या है, दही कमोरी के बदले तुमने किसके साथ कपट किया है?

कौन है मेरी मात कौन है तात हमारा। वहीं मोहि पहुँचावहु जिनका जाया बारा।।
वही करेगा प्यार कभी ना डाँटे मोको। तू तो नित मोपर खीजो और हर पल टोको।।

क्रोध से भरे कन्हैया ने कहा, मुझे बताओ मेरी असली माता कौन है, मेरे सचमुच के पिता कौन हैं? जिन्होंने मुझे जन्म दिया है। मुझे उन्हीं के पास पहुँचा दो वे मुझसे हमेशा प्यार करेंगे, मुझे कभी भी नहीं डाटेंगे। मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ इसलिए तुम मुझ पर खीजती रहती हो, डाँटती रहती हो और हर पल टोक टोकाई करती रहती हो।

मैं नहिं तेरा पूत याहि सों मारन सीखी। नाहिं रहूँ मैं पास सहन को बतिया तीखी।।
दाऊ पर कबहुँ नहिं खीजे क्यों री मैया। मैं हि पराया पूत न कोई मेरा भैया।।

मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ इसलिए मुझे मारना पीटना सीख गई हो। मैं तुम्हारी कठोर बातों को सुनकर सहन करने के लिए तुम्हारे पास नहीं रहूँगा। क्योंरी मैया। तुम दाऊ दादा पर तो कभी नहीं खीजती हो, मैं ही पराया पुत्र हूँ और यहाँ मेरा कोई भाई भी नहीं है।

कृष्ण अपनी मैया यशोदा से बोले- हे मां, बलराम ने मुझे बहुत चिढ़ाया है। वह कहता है कि मैं तो खरीदा हुआ हूं। यशोदा ने तुझे कब पैदा किया? क्या करूं, इस क्रोध के मारे मैं खेलने नहीं जाता। बार-बार वह कहता है कि तेरी मां कौन है और तेरा पिता कौन है? नंद बाबा गोरे हैं और यशोदाजी भी गोरी हैं, तो तुम काले शरीरवाले क्यों हुए? सारे ग्वाल-बाल चुटकी बजा-बजाकर हंसते हैं, उनको ऐसा करने के लिए बलराम सिखाते हैं। हे माता, तूने तो मुझे ही मारना सीख लिया है, बलराम पर कभी गुस्सा नहीं करतीं। कृष्णके क्रोध से भरे हुए मुख को देखकर यशोदाजी प्रसन्न होती है। फिर यशोदाजी ने कहा कि हे कन्हैया, सुनो, बलराम तो बड़ा ही चुगलखोर है और जन्म से ही धूर्त है। सूरदासजी कहते हैं, यशोदाजी ने कहा कि मैं गाय की कसम खाकर कहती हूं कि मैं ही तेरी मां हूं और तू मेरा बेटा है। कन्हैया बोले- अब मैं खेलने नहीं जाऊंगा। भैया बलराम जब भी मुझे बच्चों के साथ खेलते देखते हैं, तभी खीझ जाते हैं। मुझसे कहते हैं कि तेरे पिता वसुदेव और मां देवकी हैं। नंदजी ने कुछ देकर तुम्हें मोल लिया है और अनेक उपायों से तुझे बढ़ाया है। अब तू नंद को बाबा और यशोदा को मां कहता है। इस तरह की बातें कहकर सभी मुझे चिढ़ाते हैं। तब मैं खिसियाकर उठकर चला आता हूं। पीछे नंदजी खड़े हुए सुन रहे थे, हंसते-हंसते उन्होंने कृष्णको गले लगा लिया। सूरदासजी कहते हैं कि उन्होंने बलराम को डांटा, तब कृष्णजी के मन में खुशी हुई।

मैया मोहे दाऊ दुख दीन्हों मोसों कहत मोल कौ लीन्हों।

कहा करूँ या रिस के मारे। मैं नहिं खेलन जात दुआरे।।

पुनि पुनि कहत कौन तेरि माता। कौन तेरो तात कौन तेरो भ्राता।

गोरे नन्द यशोदा गोरी। तुम तो काले आये चोरी।।

मोसों कहलत देवकी जाये। लै वसुदेव यहाँ निशा में आये।

मोल कछुक वसुदेवहि दीन्हों। ताके पलटे तुमको लीन्हों।।

हे माता, बलदाऊजी के सिखलाने से सब बालक भी मुझे यह बात कहकर चिढ़ाते हैं, सो तू सत्य कह, मैं किसका बेटा हूँ। यह सुनते ही यशोदा गोधन की सौगन्ध खाकर बोलीं- हे मोहनप्यारे, मैं तेरी माता और तू मेरा पुत्र है।

एक दिनकी बात है लाला रूठ गया। दाऊने हँसी-हँसीमें कह दिया तू तो मोलका लाया है, जाया थोड़े हैं। कन्हैया खीझ गया और खेल छोड़कर भाग गया। दाऊ बोले- ठहर-ठहर खेलें-खेलें, पर वह नहीं माना और माँ से जाकर कहा। माँ बोली- कन्हैया कलेवा कर ले, माखन खा ले। कन्हैया बोला- नहीं माखन नहीं खाना है। यह दाऊ बड़ा बदमाश हैं उसने मुझे चिढ़ाया और खिझा दिया है। मुझसे कहता है तू तो खरीदकर लाया हुआ हैं। यशोदाने तुझे कब जाया? अब मुझे इतना गुस्सा आ गया है कि मैं इन लोगों के साथ कभी नही खेलूँगा। सारे के सारे ग्वालबाल दाऊका पक्ष लेने लगे और सभी कहते हैं कौन तेरी माँ हैं? कौन तेरा बाप हैं? हमारे नन्दबाबा गोरे हैं, यशोदा मैया गोरी है, तू काला-काला कहाँसे आ गया? तू उनका जाया हुआ नहीं है। ताली पीटकर, चुटकी बजाकर मुझको चिढ़ाते हैं और खुद हँसते हैं इसलिये मुझे बड़ा दु:ख होता है। मैया, तू भी वैसी हो गयी है। जब भी शिकायत करता हूँ तो तू मुझे ही डाँटती हैं। मुझको ही लाठी दिखाती हैं।

नैनन आँसू ढार यशोदा गले लगायो। झूठ पसारी बात लाल तू मेरो जायो।।

गौउन खाऊँ सपथ लाल तू मेरा लाला। पुनि कबहूँ अस बोल न कहना झूठी चाला।।

यशोदा मैया ने आँखों से आँसू बरसाते हुए कन्हैया को पकड़कर अपने गले से लगा लिया और कहा अरे मेरे लाल। यह बात किसी ने झूठी ही फैला दी है। वास्तव में तू मेरा ही पुत्र है। अरे लाला, मैं गायों की शपथ खाकर कहती हूँ कि तू मेरा ही लाल है, फिर भी कभी ऐसी झूठी बात अपने मुख से नहीं कहना।

झूठा दाऊ बचपन सों बस झूठ पसारे। घर आवन दे आज सुनाऊँ वचन करारे।।

कहि कहि झूठी बात लाल मम रुदन करावे। तबहीं हँसि गये श्याम मातु निज दूध पिलावे।।

यशोदा ने कहा, दाऊ झूठा है। वह बचपन से ही झूठी बात फैलाता रहता है। आज उसको घर आने दो मैं खरी खरी बातें सुना दूँगी। देखो तो सही झूठी झूठी बात कहकर मेरे लाला को कितना रुला दिया है। मैया की बात सुनकर कन्हैया हँस पड़े। माता ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी गोदी में लेकर प्यारे श्यामसुन्दर को दूध पिलाया।

यशोदा कहती है- मैं गायोंकी सौगन्ध खाकर कहती हूँ तू मेरा लाड़ला बेटा है और मैं तेरी मैया।

अब यशोदाको छोड़कर रोहिणी मैया के पास गयें और बोले- यह दाऊ बड़ा बदमाश है। रोहिणी बोली- बता सहीं क्या बात है। लाला बोला-

देख री, रोहिणी मैया, कैसे हैं बलदाऊ भैया, यमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायौ।

सुबल-श्रीदामा साथ, हँस-हँस बूझत बात, आप डरपे और मोहि डरपायौ।

जहँ-जहँ बोलैं मोर, चितै रहत ताही ओर, भाजौ रे भाजौ रे भैया, वह देखौ आयौ।

आप गए तरु चढ़, मोहि छाड़यौ वाहि तर, धर-धर छाती करै, दौरयौ घर आायौ।।

भैयाने मुझको डरा दिया। दाऊ भैयाने कहा कि वह यमुनाके तीर पर झुँझवा आ गया और श्रीदामा, सुबल, सुदामा यह सब हँस-हँसकरके बोले। कौन आ गया? बोले- झुँझवा आ गया। ये खुद भी डरने-से लगे और मैं तो एकदम डर गया। और मैया, जहाँ-जहाँ मोर बोले उधर वे देखते रहें और बोलें- भागो-भागो वह आया और भागकर आप तो फुदककर गाछपर चढ़ जायँ और मुझको नीचे छोड़ दें। मैं रह गया अकेला नीचे और मुझे बहुत डर लगे तो मैया भागकर यहाँ आया। यह दाऊ देखो कितना बदमाश है। रोहिणी मैयाने हृदयसे लगा लिया और बोलीं- नहीं, बेटा। तेरा भइया है न, वह तो तुझसे हँसी करता है। तू डर मत। बोले- मैया डराता है। बोलीं- इसीलिये तो डराता है कि तू डर जाता है। तब उनको हँसी आती है। वह मौज करता है। बोले- नहीं मैया। फिर उन्होंने कहा- अच्छा, तू डर जाता है? मैयाने हाथ लगाया तो छाती धड़क रही थी।

एक आभीरबाला संकेत करती- वह देख, नीलमणि। मयूरका नृत्य देख। अहा, कितना सुन्दर नृत्य है। तू भी उसकी तरह नाच तो सही। ग्वालिनके मनोरथकी पूर्तिके लिये नीलमणि अपनी दोनों भुजाओंको पीठकी ओर ले जाकर फैला देते, कमर झुका देते, पीठ बमिम बना लेते, ग्रीवा ऊपर उठा देते तथा रुनझुन-रुनझुन ध्वनि करते हुए आभीरबालाकी परिक्रमा करने लगते; नन्द-प्राङ्गण गोपाङ्गनाओंकी तुमुल हर्षध्वनिसे निनादित होने लगता। कोई गोपबाला प्रश्न करती- बता, मेरे लाल। भ्रमरका गुञ्जारव कैसे होता है? उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कुछ क्षण उद्यानसे उड़-उड़कर आते हुए मधुमत्त भ्रमरोंकी ओर देखते; तत्पश्चात् उसीका अनुकरण करते हुए- गूँ ऊँ ऊँ ऊँ ध्वनि करते। गोपिकाएँ अट्टहास करने लगतीं, श्रीकृष्ण भी उनके स्वरमें मानो स्वर मिलाकर हँसने लगते। कोई ग्वालिन द्वारदेशतक दौड़नेकी आज्ञा देती, नीलमणि दौड़ पड़ते। द्वारतक पहुँचनेके पूर्व ग्वालिन अपनी ग्रीवासे हीरक-हार निकाल लेती और चौखटपर फेंक देती। ग्वालिनके प्राणोंमें स्पन्दन होने लगता- आह।

इस प्रकार व्रजवधुएँ जो-जो आदेश करतीं, वही-वही श्रीकृष्ण करते; करनेके पश्चात् तोतली बोलीमें पूछते भी कि री चतुर हूँ न? अवश्य ही जब किसीका निर्देश पाकर वे उन्मान (बाट) आदि भारी वस्तु उठाने जाते और वह न उठता तो रोने भी लग जाते। उनके रोते ही जननी दौड़ पड़तीं, हृदयसे लगाकर अरुण अधरोंका चुम्बन करने लग जातीं। इतनी छोटी आयुमें ही वे अनेक बातें सीख गये थे, उन्हें तोतले शब्दोंमें शिशु-सुलभ मुद्रामें व्रजसुन्दरियोंको सुनाते, सुनाकर उनकी ओर प्रत्याशाभरी दृष्टि डालते तथा फिर हँसने लग जाते। व्रजसुन्दरियाँ भी उत्तरके बदले उन्हें भुजपाशमें बाँध लेतीं। उनके (गोपसुन्दरियोंके) आनन्दका पार नहीं रहता। वे तो अपना समस्त गृहकार्य, सभी सेवा-शुश्रूषा भूल चुकी थीं; जागनेसे सोनेतक छायाकी तरह श्रीकृष्ण एवं बलरामका अनुगमन कर रही थीं। क्षुधा-पिपासासे भी वे ऊपर उठने लगी थीं। श्रीकृष्णके इन मधुमय चरित्रोंसे निरन्तर मधुका निर्झर झरता था। वे उसे पी-पीकर मत्त होती जा रही थीं। श्रीकृष्णलीला-रसपानसे छकी इन व्रजाङ्गनाओंके लिये अन्य समस्त अमृत-राशि नित्सार हो चुकी थी।

कभी स्वजनोंको आनन्दवर्द्धन करते हुए श्रीकृष्ण बाहुक्षेप करते-ताल ठोंकते। उस समय गोपिकाएँ कदाचित कह बैठतीं- नीलमणि, तेरी अपेक्षा तो राममें बल अधिक है। यह सुनकर श्रीकृष्ण अपने चूर्णकुन्तलमण्डित सिरको हिला-हिलाकर असम्मति प्रकट करते। रोहिणीनन्दन राम भी अपने अनुजकी ओर देखकर हँसने लगते। गोपाङ्गनाएँ दोनोंको पुचकारकर पास खड़ा कर देतीं और स्वयं दो मण्डलोंमें विभक्त हो जातीं। एक मण्डली श्रीकृष्णको अधिक बलवान बताती, दूसरी रोहिणीतनय रामका पक्ष-समर्थन करती।

श्रीबलदाऊके साथ श्रीकृष्ण नन्ही-सी भुजा फैलाकर लिपट पड़ते। दोनों परस्पर एक-दूसरेके प्रति अपना प्राबल्य दिखाते हुए-से कभी श्रीकृष्ण ऊपर तो राम नीचे, राम ऊपर तो श्रीकृष्ण नीचे- इस प्रकार एक परम मनोहारी अभिनव

मल्ल-क्रीड़ाकी रचना करते।

एक दिन माता के बाहर जाने पर कन्हैया अपने घर में ही माखन चोरी कर रहे थे। इसी बीच यशोदा जी लौट आईं। उन्होंने लाला को न देखकर पुकारना प्रारम्भ किया- कन्हैया। कन्हैया। अरे ओ मेरे बाप। कहाँ हो, क्या कर रहे हो? माता की बात सुनते ही माखनचोर डर गये। झट-पट मक्खन की मटकी से अपना हाथ निकालते हुए थोड़ी देर चुप रहकर बोले- मैया री मैया। यह जो तुमने मेरे कंकण में आग जैसा लाल-लाल पद्मराग मणि जड़ा दिया है तो इसकी लपट से मेरा हाथ जल रहा था। इसीसे मैंने इसे माखन की मटकी में डालकर शीतल किया है। मैया बोली- लाला, कंगन शीतल कर रहे हो या पेट को शीतल कर रहे हौ? लेकिन यह मुँहमें मक्खन कैसे लग गया? श्रीकृष्ण बोले- मुँहपर बैठी हुई मक्खीको उड़ाने लगा तो मक्खन लग गया। मैया सब-कुछ समझती थी और हँसकर रह जाती।

रणमरेति लोट्यो नहीं, कियो न यमुना पान। रे नर तो जान्यो नहीं, ब्रज कौ तत्त्व महान।।
को कवि वरणन कर सके, रमणरेति को मूल। जाके कण कण में मिली, युगल चरण की धूल।।

१०) माखन चोरी की लीलायें-

कहिय कवन बिधि यह प्रभु चोरी। सबहिं स्वजन दिवि भाव विभोरी।।
कवन वस्तु अस एहिं संसारा। जो नहिं प्रभु कर कृष्णहिं सारा।।
प्रभु लीला जन तनु गुन धामू। सकलद अप्राकृत रुचिर ललामू।।
नित परिकर गोकुल नर नारी। कृष्ण परम लीला अधिकारी।।

यह प्रभु की चोरी हैं यह भला किस प्रकार से कहा जाय उनके सभी स्वजन दिव्य भाव प्रेम रस में विभोर रहते थे। इस संसार में कौन सी ऐसी वस्तु हैं जो प्रभु कृष्ण की नहीं है प्रभु कृष्ण ही सार हैं। प्रभु, प्रभु की लीला, जन, तनु, गुण धाम सभी अप्राकृत हैं रुचिर और लालसा है गोकुल के सब नर नारी परम प्रभु कृष्ण के परिकर हैं नित्य लीला के अधिकारी हैं।

इहइ सकल उर लालसा रहउँ कृष्ण नित पास। प्रभु सुख लगि जीवन सकल कण कण वासहिं स्वाँस।।

यही सब के हृदय में लालसा रहती थी कि नित्य अपने सर्वस्व कृष्ण के ही पास रहूँ। जीवन का सबकुछ कण कण स्वाँस प्रति स्वाँस प्रभु सुख के लिए ही था।

उमड़-घुमड़कर काले मेघ बरस चुके हैं। इन्द्रधनुष उदित हो आया है, मानो वर्षा-सुन्दरीने व्रजपुरके क्षितिजपर रत्नोंकी बंदनवार बाँधी हो। ग्रीाष्म एवं पावसकी संधिपर श्रीकृष्णकी मणिस्तम्भलीला- प्रथम नवनीतहरण-लीलाकी झाँकीसे उन्मादिनी हुई वर्षा-सुन्दरी व्रजमें घूम रही है; वन-उपवन, नद-नदी, ह्रद-सरोवर-जहाँ जाती है वहीं हृदय उमड़ पड़ता है, नाचने लगती है, परिधानका कृष्णवर्ण अञ्चल उड़ने लगता है। नृत्यके आवेशमें वह सुदूर आकाशमें उड़ गयी, अंशुमालीकी किरणोंने उसके गलेमें रत्नोंका हार पहना दिया; किंतु अब आभूषण धारण करनेकी उसे लालसा जो नहीं है। अब तो वह श्रीकृष्ण-चरणामित व्रजपुरका आभूषण स्वयं बन जाना चाहती है, अपने अङ्गका अणु-अणु व्रजपुरमें विलीन कर देना चाहती है; इसीलिये उसने किरणोंके उपहार-रत्नोंके हारको तोड़ डाला तथा उन सात रंगोंके रत्नों द्वारा व्रजेन्द्रकी पुरीको सजानेके उद्देश्यसे क्षितिजको छूती हुई बंदनवार बाँध दी। श्रीकृष्ण इसी बंदनवार- आकाशमें उदित इन्द्रचापकी ओर देख रहे हैं। नन्दोद्यानकी तमालवेदिकापर अपने सखा वरूथपकी गोदमें सिर रखकर, अर्धशायित हुए उस रत्न-धनुषकी शोभा निहार रहे हैं पर स्वयं उनके श्रीअङ्गोंका सौन्दर्य कितना मोहक है, इसे वे स्वयं नहीं अनुभव करते। ओह, वह सघन कुन्तलराशि, मुखचन्द्रपर बिखरी हुई अलकावलीकी लटें, वे विशाल नेत्र, वह मृदु बोलन, वह मधुस्रावी अधरयुग्म, ललित

वदनारविन्द, वे चञ्चल चेष्टाएँ इन्हें जो निहार सके, उसे ही भान होता है कि इस सौन्दर्यमें कितनी मादकता भरी है- ऐसी मादकता जो मन-प्राण-इन्द्रियोंको विमोहित कर दे।

इसी समय एक व्रजसुन्दरी वहाँ आयी। आकर बोली- नीलमणि। व्रजेश्वरी तुम्हें बुला रही हैं, मेरे साथ घर चलो।

किंतु श्रीकृष्णको अवकाश कहाँ कि जननीके आह्वानका उत्तर भी दे सकें। वे तो उस सुन्दर धनुषके अरुण, नारङ्ग, पीत, हरित, उज्वल, नील और अरुणिम नीलवर्णोंका विश्लेषण करके सखाओंको दिखा रहे हैं, रंगोंकी गणना कर रहे हैं, व्रजसुन्दरी भी मुग्धभावसे श्रीकृष्णचन्द्रकी इस बाल्यमाधुरीका रस लेने लगती है। कुछ क्षण पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र उसकी ओर देखते हैं, तब उसे यह ज्ञान होता है कि मैं केवल देखने नहीं, मैं तो बुलाने भी आयी हूँ। अत: स्मरण होनेपर वह पुन: श्रीकृष्णसे चलनेके लिये कहती है। इस बार श्रीकृष्णने उत्तर दे दिया- अभी तो मैं खेल रहा हूँ, नहीं जाऊँगा।

यह गोपसुन्दरी नन्दभवनमें आयी थी। इसने अन्य पुर-रमणियोंके मुखसे श्रीकृष्णके मणिस्तम्भमें अपने प्रतिबिम्बसे भ्रमित होनेकी लीला तथा-

प्रथम करी हरि माखन चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन आपु भजे ब्रज खोरी॥

उसी क्षण व्रजेश्वरीके पास पहुँच गये। गद्गदकण्ठसे पूछा- व्रजरानी। नीलमणि किधर है? उत्तरमें यशोदारानीने उद्यानकी ओर संकेत कर दिया तथा बोली - बहिन्। तू उधर जाय तो उसे कह देना कि मैया बुला रही है और अपने साथ ही लेती आना। बस, वह मन्त्रमुग्धा-सी अविलम्ब उद्यानकी ओर दौड़ पड़ी। तमालवेदीपर गोपशिशुओंके कोलाहलने उसे श्रीकृष्णका पता बता दिया और वह वहाँ जा पहुँची।

जब श्रीकृष्णने घर लौटना अस्वीकार कर दिया, तब वह वहीं बैठ गयी। उसके नेत्र छल-छल करने लगे। इसलिये नहीं कि श्रीकृष्ण घर क्यों नहीं चल रहे हैं, उसके हृदयकी तो वेदना ही दूसरी है। वह सोच रही है- हाय, मैं अभागिनी नन्दभवनसे इतनी दूर क्यों बसी; जैसे श्रीकृष्ण उस ग्वालिनके घर गये, माखन खाया, वैसे इतनी दूर मेरे घर आनेकी, मेरा माखन अरोगनेकी तो सम्भावना ही नहीं है। ये भाव गोपसुन्दरीके प्राणोंमें टीस उत्पन्न कर रहे थे। इसीलिये उसके नेत्र भर आये। वह अपने भावोंको संवरण करना चाहती है, किंतु कर नहीं पाती। श्रीकृष्णके सलोने मुखकी ओर जितना देखती है, उतनी ही यह लालसा प्रबल होती जा रही है। यहाँतक कि उसे अनुभव होने लगा कि यदि कुछ क्षण मैं यहाँ और रुकी रही तो इस लालसाके भारसे चेतनाशून्य हो जाऊँगी। फिर तो श्रीकृष्णकी इस स्वच्छन्द, आनन्दमयी क्रीड़ामें विघ्न हो जायेगा। इसीलिये वह अपना सारा साहस, धैर्य बटोरकर उठ खड़ी हुई और नन्दभवनकी ओर लौट पड़ी। उसे पथ नहीं दीख रहा है, नेत्रोंसे अश्रुधारा दोनों कपोलोंपर बह रही है। किसी तरह अपनेको सँभाले और नेत्रोंमें, हृदयमें श्रीकृष्णकी झाँकी लिये वह चली जा रही है। व्रजेश्वरीके निकट पहुँची, किंचित् धैर्य हो आया; नीलमणिने आना स्वीकार नहीं किया, यह बात व्रजरानीको बताकर वह अपने घर चली गयी।

वात्सल्यकी कौन-सी पयस्विनी इस सागरसे मिली है, कहाँपर संगम है, कौन-सी वात्सल्यधारा मिलने आ रही है, कहाँ संगमित होगी, किस संगमपर, किस वात्सल्यतीर्थपर श्रीव्रजेशपुत्रको आज स्नान कराना है- इन सबकी पूरी सूची उन्हींके पास तो है। अपने इच्छानुसार, अपने निर्दिष्ट क्रमसे वे श्रीकृष्णको लहरोंपर बहाती हुई किसी संगमपर ले जाती हैं। श्रीकृष्ण वहाँ स्नान करते हैं, अञ्जलिमें भरकर वात्सल्यसुधारसका पान करते हैं, एक-दो छींटे किनारेपर बिखेर देते हैं, इन्हीं बिन्दुओंसे प्रपञ्च-जगत्के वात्सल्य-स्रोतमें रसका संचार सदा होता रहता है, स्रोत कभी सूखता नहीं। अत: लीलामहाशक्तिको व्रजसुन्दरीके हृदयकी धाराका पूरा पता है। वे जानती हैं कि यह धारा भी इसी सागरसे मिलने आ रही है। इन्हें तो प्रत्येकके

संगमपर श्रीकृष्णको अवगाहन-प्रत्येककी पवित्र सुधाका मुक्त आस्वादन कराना है। इसीलिये ये क्रमश: सबके लिये द्वार खोलती रहती हैं। अत: इसके लिये भी कपाट उन्मुक्त करने चलीं।

श्रीकृष्ण उसी प्रकार वरूथपके अममें विराजित हैं। परस्पर पावसके अनुरूप विविध क्रीड़ाकी चर्चा चल रही है। अब सुबल क्रीड़ाकी नयी योजना रख रहा है तथा श्रीकृष्ण एवं अन्य सखा सुन रहे हैं।

यह तो तुम्हारा अपना व्रज है। व्रजवासी तुम्हारे निजजन हैं। यहाँ तुम यशोदाके लिये उनके गर्भजात नीलमणि हो, गोपसुन्दरियोंके लिये भी यशोदानन्दन श्रीकृष्णमात्र हो। ऐसा बानक अन्यत्र कहाँ। वाञ्छाकल्पतरो, इन सबके मनोरथ पूर्ण करो। रस देकर, रसास्वादन कर इन वात्सल्यवती गोपसुन्दरियोंको वात्सल्यपयोनिधिमें डुबो दो नाथ। श्रीकृष्णके अरुण अधरोंपर मन्द मुस्कान छा गयी। उन्होंने लीलाशक्तिकी इस प्रार्थनाका अनुमोदन ही किया।

मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ। गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सब कें माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग। सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज-लोग॥

नन्दनन्दन उठ बैठे। हँसकर सखाओंसे बोले- भैयाओ। माखन खानेका खेल खेलोगे? माखनका खेल। दो-चारने एक साथ आश्चर्यमें भरकर कहा। फिर तो श्रीकृष्णने नवनीतहरणलीलाकी अपनी विस्तृत योजना सखाओंके समक्ष रख दी। किस प्रकार हमलोग छिपकर प्रत्येक गोपीके घरमें जायँ, मैं माखनकी मटकी उठा लाऊँ और फिर हम सब मिलकर खायँ, दूसरे पशु-पक्षियोंको खिलायें, गिरायें, माखनकी कीच मचायें- ये सारे विचार श्रीकृष्णने गोप-सखाओंको समझाये। सुनकर गोप-शिशुओंके आनन्दका पार नहीं। ताली पीट-पीटकर वे उस तमालवेदीपर नाचने लगे। व्रजेश्वरकी सौंह खाकर सभी श्रीकृष्णकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगे-

करैं हरि ग्वाल संग बिचार। चोरि माखन खाहु सब मिलि, करहु बाल-बिहार॥
यह सुनत सब सखा हरषे, भली कही कन्हाइ। हँसि परस्पर देत तारी, सौंह करि नँदराई॥
कहाँ तुम यह बुद्धि पाई, स्याम चतुर सुजान। सूर प्रभु मिलि ग्वाल-बालक, करत हैं अनुमान॥

वय जब कछु कछु बढ़ी नन्दलालाकी थोरी। सीखी विद्या प्रथम दही माखनकी चोरी॥
सङ्ग सखा सब लिये खेलिबे घर घर जावें। कहँ माखन दधि धर्‍यो सैनतें ताड़ लगावें॥

चोरी उसे कहते हैं, जब दूसरे की कोई चीज उसकी इच्छा के बिना, उसके अनजान में और आगे भी वह जान न पाये, ऐसी इच्छा रखकर लेली जाती है। भगवान श्रीकृष्ण गोपियों के घर से माखन लेते थे उनकी इच्छा से, उनके अनजान में नहीं। वे लेते थे उनके देखते-देखते। दूसरी महत्व की बात यह है कि संसार में या संसार से बाहर ऐसी कौन सी वस्तु है जो भगवान नहीं है।

चोरी तो उसे कहते हैं कि परायी वस्तुको, उसकी इच्छाके बिना, उसकी अनुपस्थितिमें कोई अपने अधिकारमें कर ले- उपयोगमें ले ले। पर श्रीकृष्णसे अतिरिक्त कौन-सी वस्तु है, जिसे वे अपने अधिकारमें करें? उनके अतिरिक्त कौन है, जिसकी इच्छाके बिना, जिसकी अनुपस्थितिमें वे वस्तु ग्रहण करें?

कृष्ण गोकुल में पधारे थे, माखन तो नन्दबाबा के घर भी कम न था, वे जितना चाहते खाते या लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबा के ही नहीं, सभी ब्रज-वासियों के अपने ही थे और सभी को सुख पहुँचाना चाहते थे। गोपियों की लालसा पूरी करने के लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते, यह वास्तव में चोरी नहीं थी, भगवान की दिव्य लीला

थी। असल में प्रेम की अधिकता से ही गोपियों ने उनका प्रेम का नाम चोर रख दिया था, वैसे भी वे उनके चितचोर तो थे ही। चोर था यह कान्हा। उसने लोगों का मन चुराया। जन्म से कुछ भी बनकर आना अपने हाथ में नहीं, आगे क्या बनना वो भी अपने अधिकार में नहीं। यह सब तो ऊपरवाले के विधान से बनता है। कान्हा सबकी आँखों में बस गया। प्रात: होते-होते यशोदा का आँगन जो भरना शुरू होता तो रात तक ताँता लगा रहता। पूर्वजन्म के पुण्य से ही रूप मिलता है और वही पुण्य व्यक्ति को कहीं से कहीं ले जाता है, सामान्य से असामान्य बनता है। कान्हा पूर्वजन्म का बहुत बड़ा योगी-तपस्वी, सिद्ध-साधक रहा होगा। ब्रजांगनायें तो इतना ही जानती थी कि पूर्वजन्म में कुछ पुण्य अर्जित किए थे जो अपार सुख देते हैं। कान्हा सचमुच चोर था या चंचल था। गोपी-गोपियों के मन-प्राणों की चोरी के बाद उसने अपने घर में ही चोरी आरम्भ की।

मोह नीकी लागत जीवन, जे गली देत ग्वाल। चार वेद ब्रह्मा पढ़े, सो मेरे मन काल।
वृन्दावन में जीवणा, दधि खायो सब लूट, ब्रह्मा छल किया जीवणा, नवी जुगति अनुप।

कुछ गोपियाँ ऐसे थीं जो श्रुतियाँ थी। स्वयं ब्रह्मविद्या गोपी बनकर आयी थीं, वेदकी ऋचायें थीं, वे सब दण्डकारण्यके ऋषि थे। एक ऋषि थे उनका नाम था उग्रतपा। वे बड़े अग्निहोत्री और दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या भी बड़ी विलक्षण रही। उन्होंने भगवान्का ध्यान किया, तप किया, पञ्चदशाक्षर मन्त्रका जाप किया। वे भगवानकी कृपासे सौ कल्पों तक तप करनेके फलस्वरूप सुनन्द नामक गोपकी कन्या सुनन्दा हुए। एक मुनि थे सत्यतपा। उन्होंने सूखे पत्तों पर रहकर श्रीकृष्ण और श्रीराधाजीके नृत्यमय रूपका ध्यान किया। वे दस कल्पके बाद सुभद्र नामक गोपकी कन्या सुभद्रा हुये।

अब आनन्दकन्द परमानन्द भगवान श्रीकृष्ण ने दूसरे वर्ष में प्रवेश किया। खड़े होकर गोकुल में चलने-फिरने लगे। माता यशोदा दधिमन्थन करती रहती, उसी बीच बाल कन्हैया को माखन चटाती रहती। कन्हैया की आदत माखन खाने की हो गयी। कन्हैया बार-बार माखन माँगते- मैया, माखन दे दो। मैया यशोदा समझाती है- कन्हैया। ज्यादा माखन मत खाओ, अपच हो जायेगा। माखन स्नेह का प्रतीक है। स्नेहमयी जननी और स्नेह के भूखे भगवान; उन्हें माखन खाने से तृप्ति नहीं होती है। बालकों का स्वाभाविक गुण है कि यदि उसे प्रिय वस्तु नहीं मिलती है तो उसे पाने का प्रयास करते हैं।

मैया री, मोहि माखन भावे। जो सेवा पकवान कहति तू, मोहि नहिं रुचि आवै।।
ब्रज युवती इक पाछै ठाड़ी, सुनत श्याम की बात। मन-मन कहति कबहु अपने घर, देखों माखन खात।।
बैठे जाय मथनियाँ के ढिंग, मैं तब रहौ छिपानी। सूरदास प्रभु अन्तरजामी, ग्वालिन मन की जानी।
गये श्याम तिहि ग्वालिन के घर।

हाथ-पैरों के बल चलता माखन के बर्तनों तक पहुँच जाता कुछ माखन निकालकर मुँह में डालता। मैया यशोदाके ढूँढने पर इतनी तेजी से भागता कि स्थूलकाय मैया उसे पकड़ नहीं पाती। गोपियाँ अगर उसे बचा लेती है तो कहती है हम अपने घर ले जायेगी जितना माखन खायेगा उतना खिलायेंगे। मैया बोलती- मेरे यहाँ माखन मिश्री की कोई कमी नहीं है पर मुझे अपने लाला को चटोर नहीं बनाना है।

कन्हैया चोर ही नहीं नटखट भी हो गया था। प्रौढ़ा यशोदा उसके उत्पात से तंग आ गई थीं। एक क्षण को वह शान्त बैठे यह हो नहीं सकता था। यशोदा सोचती, कैसे कहते हैं कि बालक दिन-रात की अधिकांश घड़ियों में सोये ही रहते है। यह तो रात में जो सोये-सो-सोये, दिन में तो इसकी आँखों से नींद उसी तरह गायब रहती है जिस तरह हेमन्त में वृक्षों के पत्ते। उसकी विभिन्न नटखट लीलाओं में यह रोहिणी-सुत दाऊ भी कुछ कम योगदान नहीं देता। कहीं उससे बड़ा होने के कारण वह उसे कुछ रोके, समझाए, उलटे वह तो उसकी हर क्रिया में सहयोग ही देता है, बल्कि नए उत्पातों के लिए प्रोत्साहित

ही करता रहता है।

माखन चोरी की लीला का उन्होने अपने घर में ही प्रशिक्षण लेना प्रारम्भ कर दिया। मैया और गोपियों के मन को पूर्णत: चुरा लेना ही कृष्ण की माखन चोरी का रहस्य है। घर में जब किसीको नहीं देखा तब भण्डार गृह का दरवाजा खोलकर भीतर घुस गये और दोनों हाथोंमें माखन लेकर बड़ी प्रेम से वह खाने लगे।

अब वह सौन्दर्यसागर मानो तरंगित हो उठता है, श्रीकृष्ण यशोदाके मनोरथकी पूर्ति करते हुए नवनीत हरणकी लीला करने चलते हैं। उनके पास ही नवनीतपूर्ण एक पात्र पड़ा है। चंचल नेत्रोंसे एक बार वे द्वारकी ओर देखते हैं तथा फिर पात्रमेंसे माखन निकालकर खाने लगते हैं। सहसा मणिस्तम्भमें उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। उन्हें प्रतीत होता है कि मेरे आनेसे पूर्व एक अन्य शिशु यहाँ आयाहै, मणिस्तम्भसे सटकर खड़ा है। श्रीकृष्णको यह भय होने लगता है कि कहीं यह मेरी चोरी प्रकट न कर दे।

एक दिन साँवरे-सलोने व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण अपने सूने कक्ष में स्वयं ही माखन चुरा रहे थे। इसी बीच उनकी दृष्टि मणि के खम्भे पर पड़ी। उसमें उनकी परछाईं दिखलाई पड़ रही थी। उसे देखकर वे डर-से गये। उन्होंने सोचा यह कोई दूसरा बालक है, जो मेरी चोरी को देख रहा है अत: उन्होंने कहना प्रारम्भ किया-

अरे सखा, तोहूँ छिपि छायो। हौं हूँ आजुहिं चोरिन आयो॥
भैया, काहू सों जनि कहियो। अर्ध-भाग लै बलि चुप रहियो॥
अच्छो सखा, सबै लै भाई। हौं जानी तुम्हरी चतुराई॥
इन बातन गोपी रस सानी। खिलखिलाति डोलति हरषानी॥

अरे भैया। मेरी मैया से कहियो मत। मैं अपने ही बराबर तुझे भी मक्खन दूँगा। चोर चोर सब मौसेरे भाई होते हैं। तुम कहीं चोरी करने जाओ तो मुझे भी अपने साथ बुला लिया करो। ऐसा कहकर वे उसकी ओर मक्खन बढ़ाते हुए बोले- ले, खा। खा ले, भैया। माखन नीचे गिर पड़ा। कन्हैया ने बोला- अरे दारिके, तेरी मैया ने तुझे माखन खाना नहीं सिखाया, मैं तुम्हें माखन खाकर दिखाता हूँ और माखन खाना सिखलाता हूँ। मैं खाता हूँ तब तो खा लेते हो जब खाने को कहता हूँ तो जमीन पर गिरा देते हो।

वे उसे प्रलोभित करने लगते हैं। उससे कहते हैं- भैया, देख तू किसीसे मेरी बात बता न देना, भला। आजसे हम दोनों साथी हुए, हम लोग सभी वस्तु आधी-आधी बाँट लेंगे। यह ले, मैं खा रहा हूँ; तू भी खा। यह कहकर श्रीकृष्ण अपने हाथोंसे नवनीत उठाकर प्रतिबिम्बके मुखमें डाल देते हैं। तत्क्षण माखन नीचे गिर जाता है। वे सोचते हैं, शिशु रूठा हुआ है। उसे पुन: समझाते हैं- अरे, तू फेंक क्यों दे रहा है? बावला हो गया है। नहीं भैया, यह ठीक नहीं; तू भी खा ले, मैं भी खाऊँ। अच्छा, बाँटकर खायगा? ले, यह एक लौंदा तेरे हाथपर, एक मेरे हाथपर। हैं, तूने फिर गिरा दिया। क्या सब लेना चाहता है? नहीं-नहीं, यह तो उचित नहीं। अच्छा अब तू मान जा, खा ले; कितना मीठा है। यदि तुझे भी अत्यन्त रुचिकर लगे तो मैं कमोरी भरकर तुझे माखन दूँ।

नन्दनन्दनकी यह मुग्ध चेष्टा देखकर यशोदा के हृदयमें प्रेम-समुद्र लहराने लगता है, रसतरंगोंके आवेगसे धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित हँसीके रूपमें तरंगें मुखसे बाहर आ जाती हैं, यशोदा स्तम्भकी ओटसे मुख निकालकर हँसने लगती है। श्रीकृष्ण ने यशोदा को देख लिया।

आजु सखी मनि-खंभ निकट हरि, जहँ गोरस कौं गो री। निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी॥

अरध विभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी। माखन खाहु कतहिँ डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी।।
बाँट न लेहु, सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी। मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी।।
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी। सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी।।

यशोदा मैया बगल के कक्ष में खड़ी होकर अपने लाला की तोतली बोली सुनकर आनन्द के सागर में हिलोरें ले रही थीं।

मैंने श्रीकृष्ण का ऐसा अनोखा लीला स्वरूप देखा कि जिससे मेरी सुधबुध भूल गयी। वे मणियों के खम्भे से छिपे हुये चुपके चुपके मक्खन खा रहे थे और अपनी छाया को दूसरा ग्वाला समझकर उसको मक्खन खिला रहे थे और ऐसी रसमयी बातें कर रहे थे जिसको सुनकर आनन्द लेने के लिये मेरा मन बार बार तरस रहा है।

मैया बोली- अरे लाला, किससे बातें कर रहा है। माखन के भण्डार में कौन घुस गया है? कोई बिल्ली है या कोई कुत्ता बन्दर है। कन्हैया बोला- कोई नहीं मैया भंडार गृह में तो मैं हूँ। तुम्हारे घर में माखन की रखवाली कर रहा हूँ।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कक्ष के भीतर प्रवेश कर गईं। माता को देखते ही कन्हैया ने बातें बदल दी। उन्होंने मणि के खम्भे में दिखलाई पड़नेवाली अपनी परछाई की ओर इशारा करते हुए कहा- मैया। मैया। यह कौन बालक है? जो लोभवश तुम्हारा माखन चुराने के लिये इस घर में घुस आया है। मेरे मना करने पर भी यह मान नहीं रहा है। मेरे डाँटने पर यह भी मुझे डाँट रहा है। यह जो आया है वो गया भी नहीं। बड़ा नटखट है। मैंने भण्डार घरके भीतर चोरी करते हुए चोर को पकड़ रखा है। मैंने इस चोर को माखनचोरी करके खाते हुए अपनी आँखोंसे देखा है। मेरी मना करनेपर भी नहीं मानता। यदि मैं इसको घुड़की देता हूँ तो यह मुझे भी वैसे ही घुड़की देता है। यदि मैं इस पर क्रोध करके घूँसा मारूँ तो यह भी मेरे साथ वैसा ही करता है।

मैया को नटखट वाली बात पर हँसी आ गयी। भला तुमसे बढ़कर त्रिभुवन में कोई नटखट पैदा हुआ है?

कन्हैया बोला- मैया तुम कुछ और मत सोचना। मेरे मन में माखन का तनिक भी लोभ नहीं है। मैं इससे कहता हूँ कि तू भाग जा। मेरी मैया के घरमें माखन मत चुरा। लेकिन यह तो कुछ सुनता ही नहीं। गुस्सा करता हूँ, दांत पीसता हूँ। मैं कोई चोरी करके माखन नहीं खा रहा हूँ। तुम्हारे माखन में चींटी चढ़ गई थी तो मैंने तो उन चींटियों को निकाला है। मैया अपने कन्हैया की प्रतिभा वाक्चतुरता देखकर आनन्दविभोर हो गयी। मैया बोली- कन्हैया तुम्हारा साथी चोरी का माखन नहीं खाता। चलो मैं तुझे ताजा माखन निकालकर खिलाती हूँ। कन्हैया बोला- मैया, मुझे तो चोरीका माखन ही अच्छा लगता है। वन का सिंह भी दूसरे का शिकार किया पशु नहीं खाता। कन्हैया चोरी के माखन को अपने हाथों उपार्जित वस्तु समझता है। मैया बोली- तुम्हें तो चोरी का माखन ही अच्छा लगेगा क्योंकि तुम चोर जो ठहरे।

ओह, जिनसे इस जगत्का सृजन, संस्थान, संहार है, जिनकी सत्तापर ही जगत्की सत्ता अवलम्बित है, जगत्का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हैं, जो सर्वज्ञ हैं, अखण्ड अबाध ज्ञानसम्पन्न हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जो अपने संकल्पमात्रसे पद्मयोनिमें वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमें योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हो जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उनका अपने प्रतिबिम्बसे मोहित हो जाना कितना आश्चर्यमय है। जिस मायासे मोहित होकर जगत्के मूढ प्राणी मैं-मेरे का प्रलाप कर रहे हैं, वही माया जिनके दृष्टिपथमें ठहर भी नहीं पाती, लज्जित होकर भाग खड़ी होती है।

उनका मणिस्तम्भ में अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भ्रमित हो जाना कितना मोहक है। ओह, जिन विराट्के कटिसे ऊपरके भागमें भूलोक, नाभि में भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्लोक, वक्षःस्थल में महर्लोक, ग्रीवा में जनलोक, स्तनोंमें तपोलोक एवं मस्तक में सत्यलोक की कल्पना है, कटिदेश में अतल, ऊरुओं में वितल, जानुओंमें सुतल, जंघाओं में तलातल, गुल्फों

में महातल, एड़ियों में रसातल एवं पादतल में पाताल कल्पित है; जिन विराट्के मुखसे वाणी एवं अग्नि उत्पन्न हुए; गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति एवं जगती- ये सात छन्द जिनकी सात धातुओंसे निर्गत हुए; हव्य, कव्य, अमृतमय अन्न, समस्त रस, रसनेन्द्रिय एवं वरुण जिनकी जिह्वासे निस्सृत हुए; पञ्चप्राण एवं वायु जिनके नासाछिद्रोंसे उद्भूत हुए; अश्विनीकुमार, ओषधिसमुदाय, मोद (साधारण गन्ध), प्रमोद (विशेष गन्ध) जिन विराट्की घ्राणेन्द्रियसे उत्पन्न हुए; रूप एवं तेज जिनके नेत्रेन्द्रियसे निकले; सूर्य एवं स्वर्ग जिनके नेत्रगोलोकसे प्रकट हुए; समस्त दिशाएँ, समस्त तीर्थ जिनके कर्णयुगलसे व्यक्त हुए; आकाश एवं शब्द जिनके श्रोत्रेन्द्रियसे निकले; जिन विराट्का शरीरसंस्थान समस्त वस्तुओंका सारस्वरूप एवं समस्त सौन्दर्यका भाजन है; जिनकी त्वचासे सारे यज्ञ, स्पर्श एवं वायु निकले; जिनके रोमसे यज्ञके उपकरणभूत समस्त उद्भिज्ज उद्भुत हुए; जिनके केश, श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) एवं नखोंसे मेघ, विद्युत, शिला तथा लोह प्रकट हुए; जिनकी भुजाओंसे रक्षक लोकपाल आविर्भूत हुए; जिनका पदसंचालन भूः, भुवः, स्वः त्रिलोकका निर्माण कर देता है; जिनके भयहारी चरणकमल अप्राप्तकी प्राप्ति एवं प्राप्तकी रक्षा कर देते हैं, समस्त कामनाओंकी पूर्ति कर देते हैं; जो विराट् जल, वीर्य, सर्ग, पर्जन्य, प्रजापति, कामसुख, यम, मित्र, मलत्याग, हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु, निरयके उद्गम हैं; जिनके पृष्ठदेशसे पराजय, अधर्म, अज्ञान उद्भूत हुए; जिनकी नाड़ियोंसे नद-नदी-समूहका निर्माण हुआ; जिनके उदरमें मूलप्रकृति रस नामक धातु, समुद्र, समस्त प्राणी-समुदाय, प्राणियोंका निधन समाया हुआ है; जिनके हृदयसे मनकी अभिव्यक्ति हुई; जिनका चित्त ब्रह्मा, शंकर, नारद, धर्म, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारका आश्रय है, विज्ञान एवं अन्तःकरणका आधार है; अधिक या, जिन विराट्की ही अभिव्यक्ति ये ब्रह्मा, शंकर, नारद, सनकादि हैं; सुर, असुर, नर, नाग हैं; खग, मृग, सरीसृप हैं; गन्धर्व, अप्सराएँ हैं; यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प हैं; जिनकी मूर्तिमें पशु हैं, पितर हैं, सिद्ध हैं, विद्याधर हैं, चारण हैं, द्रुमपुञ्ज हैं; जिन विराट्की परिणति नभ-जल-थलवासी विविध जीव हैं, जिन विराट्के ही रूप ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारावलि, तडित्, मेघ हैं; अतीत, वर्तमान एवं भविष्यके विश्व जिनके रूप हैं, उन विराटपुरुषके भी स्रष्टा स्वयं भगवान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका यह नवनीत-हरण, यह मुग्धभाव, यह शैशव-नाट्य कितना विस्मित कर देनेवाला है।

गोपसुन्दरी उस समय दधिमन्थन कर रही थी। पर उसे अपने शरीरकी सुध-बुध नहीं है, किसी और ही भावमें तन्मय हो रही है- मन्थन क्रियासे यह स्पष्ट झलक रहा था। सखासहित श्यामसुन्दर उपयुक्त अवसरपर ही नवनीतहरण-माखन-चोरीके लिये पधारे हैं तथा गवाक्ष-रन्ध्रसे व्रजसुन्दरीका दधिमन्थन देख रहे हैं।

वह न स्थूल है, न अणु है, न क्षुद्र है, न विशाल है, न अरुण है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है, न सङ्ग है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कर्ण है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है; उसमें न अन्तर है, न बाहर है- इस प्रकार निरसन करते-करते श्रुतियाँ जिनमें जाकर समाप्त हो जाती हैं, अपनी सत्ता विलीन कर सफल हो जाती हैं।

जो इस विश्वका संकल्प करते हैं; जो विश्वके आदि, मध्य तथा अन्तमें स्थित हैं; जो प्रकृति-पुरुषके स्वामी हैं; जो विश्वका सृजन करके जीवके साथ इसमें प्रविष्ट हो गये हैं; जिन्होंने जीवभोगायतन शरीरसमूहकी रचना की है; जो इन शरीरोंका नियन्त्रण करते हैं; जिन्हें प्राप्तकर जीव- जैसे सुषुप्तिमें निमग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसंधान छोड़ देता है, वैसे- मायापाशसे मुक्त हो जाता है; जो नित्य अच्युतस्वरूपमें अवस्थित हैं, जिन्हें माया तिलमात्र भी स्पर्श नहीं कर सकती; जो सर्वथा विशुद्ध हैं; जो अभयपद हैं; जिनका निरन्तर चिन्तन ही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है- वह नराकृति ब्रह्म, वे प्रकृति-पुरुषके स्वामी पुरुषोत्तम ही तो आप गोपसुन्दरीके घर नवनीत-हरण करने, माखन चुराने आये हैं।

गोपसुन्दरी कमोरी माँगने बाहर गयी। इधर श्यामसुन्दरको अवसर मिल गया। सखाओंके साथ वे तत्क्षण अन्तर्गृहमें प्रविष्ट हो गये। वहाँ जो कुछ भी दही-माखन था, सबका भोग लगाकर रीती मटकी वहीं छोड़कर हँसते हुए शीघ्र ही बाहर चले आये।

हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हौ उतरात। आपुन गई कमोरी माँगन, हरि पाई ह्याँ घात।।

पैठे सखनि सहित घर सूनें, दधि-माखन सब खाए। छूछी छाँडि मटुकिया दधिकी, हँसि सब बाहिर आए।।

उधरसे गोपसुन्दरी हाथमें कमोरी लिये आ पहुँची। देखा-बहुत-से गोपशिशु मेरे घरसे बाहर निकल रहे हैं और यशोदाके नीलमणि उनके पीछे हैं। नीलमणिके अरुण अधरोंपर उज्ज्वल नवनीत लग रहा है, हस्तकमल माखनसे सन रहे हैं।

आइ गई कर लिएं कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल। माखन कर, दधि मुख लपटानौ, देखि रही नँदलाला।।

अब उसे इतना ही भान है कि सखाओंको साथ लिये नीलमणि मेरे गृहतोरणके पास खड़े हैं, उनका मनोहर मुखारविन्द माखनसे सना है। सरलतासे वह पूछ बैठी- **कहँ आए ब्रज-बालक सँग लै, माखन मुख लपटान्यौ।।**

उत्तरमें श्यामसुन्दर कुछ कहने लगे, पर उन्होंने क्या कहा, ग्वालिन सुनकर भी कुछ सुन न सकी। उनके सलोने माखनसने मुखकी मन्द हँसीमें उसकी चेतना सहसा विलुप्त होने लगी। इतनेमें श्यामसुन्दरने अपने सखा एक गोपशिशुकी भुजा पकड़ ली तथा वे व्रजकी गलीमें चल पड़े। ग्वालिन निर्निमेष नयनोंसे उनकी ओर देख रही है। अन्धकार होता तो दूसरी बात थी। दिनके उज्ज्वल प्रकाशमें हरि-श्रीकृष्ण गोपसुन्दरीका मन हरणकर- चित्त चुराकर चले गये और वह ठगी-सी खड़ी रह गयी।

भुज गहि लियौ कान्ह इक बालक, निकसे ब्रज कीं खोरि। सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि।।

अपने द्वारपर स्वर्णपुतली-सी खड़ी वह उस ओर देखती रहती है जिधर श्रीकृष्ण गये हैं। जब मध्याह्न होने लगता है तब कहीं वह अन्तर्गृहमें प्रवेश करती है। नवनीतकी रिक्त मटकी देखकर सोचती है कि माखनभरे पात्रको मैं सम्भवत: कहीं अन्यत्र रख आयी हूँ, इधर-उधर उसे ढूँढ़ती फिरती है।

देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौ कहुँ हेरि। चकित भई ग्वालिनि मन अपनें, ढूँढ़ति घर फिरि फेरि।।

देखति पुनि-पुनि घर के बासन, मन हरि लियौ गोपाल। सूरदास रस भरी ग्वालिनी जानै हरि कौ ख्याल।।

वृन्दावन में सास बहुओं को घरसे बाहर नहीं जाने देती स्वयं तो सब जगह चली जाती पर बहुओं को कहीं जाने नहीं देती।

देखे बिन कान्हा जब मन नहिं माना, इन आँखों से आज हमने ब्रह्म पहचाना है।

कृष्ण पद कमलों में, मन को लगाना, इन गोपियां का ताना ये उलाहना तो बहाना है।

सासूयें सवेरे शिवजी को जल चढ़ाने शिव मंदिर गयी और पीछे से बहुओं ने घर की जितनी मटकी थी सारी फोड़ दी और फिर सासूओं से बोली नन्दको लालो आयो और वो मटकी फोड़कर चले गयो। सासू बोली- नन्द के छोरे की इतनी हिम्मत। मेरे घर में आकर मटकी फोड़कर चलो गयो। यशोदा के पास मैं जाऊंगी तो बात ज्यादा बढ़ जायेगी इसलिए तुम लोग ही जाओ और हमारी तरफ से यशोदा को उलाहना देकर आओ। गोपियों को तो यही चाहिये था, उनके लिये तो बड़ी खुशी की बात थी। इस उलाहना के बहाने लाला का दर्शन हो जाये। इन गोपियों का ताना, ये उलाहना तो बहाना था। आज दर्शन करने का बहाना मिल गया मटकी फूट गयी सो उलाहना देने जा रही हूँ। गोपियाँ आनन्द लेने के निमित्त नंदबाबा के घर आती हैं और बोलती है- अरी ओ मैया यशोदा।

एक बार सब गोपियोंने मिलकर सभा बुलाई। कन्हैया को मालूम पड़ गया उसने अपने सखा मधुमंगल को गोपी का रूप बनाकर सभा में भेज दिया ताकि सभा में क्या बात होती है इसकी जानकारी मिल सके। मधुमंगल भी गोपी का रूप बनाकर घूँघट निकालकर गोपियों की सभा के बीच में जा बैठा। गोपियोंकी सभा में किस बात पर विचार विमर्श हुआ कि माता

यशोदा हमारी बात को सत्य ही नहीं मानती जब भी उलाहना देने जाती है उसे वह झूठा बना ही देती है। कन्हैया हमारे घरोंमे चोरी करके हमारे हाथ नहीं आता। कोइ ऐसा उपाय करें जिससे मोहन हमारे हाथ लग जाय, तब उसको पकड़कर मैया यशोदा के पास ले जाये। एक सखी बोली- यह नन्द का लाला बड़ा ही चतुर है। वह जल्दी से हाथ आनेवाला नहीं।

एक दूसरी गोपी बोली- एक दिन मेरे घर में मैंने उसे माखन चुराकर खाते हुए रँगे हाथों पकड़ लिया। पूछने पर बोला मेरी गेंद तेरी दही की मटकी में गिर गई है। अरी गोपी, मैं उसीको ढूँढ़ने आया हूँ, तू भी जरा मेरी सहायता कर देना। मैंने कहा कोई बहाना नहीं चलेगा मैं तो तुम्हें रस्सी के साथ इस खम्बे से बाँधूंगी और फिर मैया को बुलाकर डाँट लगवाऊँगी। अरी सखियों, नट खट कन्हैया बोला लो मैं तुम्हें बाँधना सिखा दूँ। मैं भोली उस चतुर की बातों में आ गई और उसने मुझे खम्बे के साथ बाँध दिया। मैंने कहा कन्हैया, अब मैं बाँधना सीख गई हूँ, तुम मुझे खोल दो मैं तुम्हें ऐसे ही बांधूंगी। नट खट श्याम सुन्दर हँसकर कहने लगा, वाह सखी, मैंने तुम्हें बाँधना सिखा दिया अब तुम मुझे ही बाँधोगी। गुरु की विद्या गुरु पर ही चलाओगी। कहता हुआ अँगूठा दिखाकर ठिल्ली करता हुआ बाहर भाग गया और कहता गया बँधी रहो बँधी रहो, बड़ी सुन्दर लग रही हो, मुझे बाँधना तुम्हारे वश की बात नहीं।

नन्द तनय उत्पात करे है, फोड़त बासन प्यारी। देन उरान्हें मैं अब जावूँ, तुम होवो सहकारी।।
तुम सबका नुकसान करेगो, जोउ उपेक्षा धारी। जानूँगी उपकार तुमारा, गमनो द्रुत ब्रजनारी।।

माधवी गोपी बोली- कन्हैया को पकड़ने के लिये मेरे मन में एक युक्ति आयी है। गोपियां बोली- बताओ कौनसी युक्ति है। माधवी गोपी बोली- एक छींके पर माखन की भरी हुई मटकी रखकर उसे घर के आँगन में टांग देती हैं, छींके के चारों ओर पतली पतली रस्सियों का जाल लगा देंगे। हर डोरी का किनारा आँगन में लटकी हुई मटकी वाले छींके के साथ बँधा होगा और डोरियों में घण्टियाँ बाँध देंगी। फिर हम छिपकर श्याम कन्हैया के आने का इंतजार करेंगी। माखन लोभी श्याम किसी भी रस्सी को छू लेगा तो सारी घण्टियाँ एकसाथ बज जाएँगी। जब भी घण्टियों की आवाज आये तब गोपियाँ ऊंचे स्वर से श्याम आया, श्याम आया कहकर हल्ला मचा देंगी जिसे सुनकर सब गोपियां इकट्ठी हो जायेगी और चारों ओर से कन्हैया को घेरकर पकड़ लेंगी। गोपी के वेष में मधुमंगल ने सारी बात सुनी और आकर कन्हैया को बता दी। श्याम ने कहा- मधुमंगल मुझे गोपियों की चुनौती स्वीकार है और कन्हैया घण्टियों से बोला, मैं डोरियों से हाथ लगाऊं तो भी तुम लोग थोड़ा सा भी न बजना और न हीं छींका, मटकी अथवा माखन को हाथ लगाने से बजना, घण्टियों से वचन भरवाकर श्याम अपने सखाओं सहित निर्भयतापूर्वक माधवी गोपी के घर गये। नन्दनन्दन ने अपने सखाओं को खाने के लिये माखन दिया। वचन के अनुसार रस्सी, छींका, मटकी छूने पर भी घण्टियाँ नहीं बजीं। सभी सखा प्रेम से माखन खाने लगे पर जैसे ही कन्हैया ने अपने खाने के लिये माखन मुख में डाला तो सारी घण्टियाँ एक साथ टनन टनन करती हुई बजने लगीं। तो कन्हैया के रहस्य का सब भाण्डा फूट गया। गोपियों ने कन्हैया को चारों ओर से घेरकर पकड़ लिया। कन्हैया ने घण्टियों से पूछा, घण्टियों तुमने वचन भंग क्यों कर दिया। घण्टियां बोली- हमने तो हमारी मर्यादाओं का पालन किया। जब भी भगवान को भोग लगे घण्टी बजनी ही चाहिए। जब आपने डोरी, छींका, माखन को हाथ लगाया तो नहीं बजी पर जब आपने भोग लगाया तो हम मर्यादा के अनुसार बजीं।

सजि ब्रजिकें सब मिलि मुदित, उपालंभ दैवे चलीं। गोकुलकी सब गलिनिमहँ, खिली मनहुँ पंकजकलीं।।

एक गोपी बोली- काले मधुमंगल ने अपने सखाओं को लेकर मेरे घर में आकर माखन खा लिया। मेरा माखन बहुत मीठा होता है। सुना है तेरा सखा कन्हैया मलिका के घर में चोरी करके माखन खाने गया था। मधुमंगल बोला- अरी तेरा

माखन तो खट्टा है? और उसने मटका ही उठाकर पटक दिया। मेरे सखाको क्या रुचेगा। नन्दबाबा के घर का माखन-दधिका अभाव है कि मेरा सखा तेरे घर आकर माखन खायेगा। गोपी बोली- लाल, जानती हूँ व्रजराज कुमारके लिए कुछ भी अभाव नहीं है। व्रजेश्वरीकी बात मानो तो हम सब गोपियों, गोपोंको नित्य अपने यहाँ ही खिलावें। तेरा सखा मल्लिकाके घर जाकर आ गया है एकाध दिन उसे मेरे घरका भी माखन खिला।

एक दिन सभीने तय किया कि उत्पला गोपी के घर चलेंगे और वहीं माखन खायेंगे, दही पियेंगे। अर्जुन तो बहुत सीधा है उसके सामने चोरी की बात नहीं आयी तो कन्हैया से पूछ बैठा- तू चोरी करेगा। कन्हैया बोला- भोजन में चोरी क्या होती है? जब ब्रह्माने पेट बनाया है तो उसने भूख भी बनायी हैं और सृष्टिमें भोज्य पदार्थ बनाये। भूख लगे तो भरपेट खा लेना चाहिये। इतना तो सबका हक है। इसमें सोचने की कौनसी बात है। कुछ उठाकर ले जानेसे चोरी कहलाती है? अर्जुन डरकर बोला- मैया सुनेगी तो मारेगी। कन्हैया बोला- मैया को कहीं क्रोध आता है क्यों? वह क्यों मारेगी? हम सब माखन ही तो खाना चाहते हैं। मैया के यहाँ नहीं खाया तो उत्पला गोपी के घर खा लिया। विशाल बोला- तू मेरे घर चल मैं बहुत सा माखन दूँगा। विशाल बड़ा ही दानी बन गया।

किसीका दिया ही माखन खाना हो तो मैं अभी मैयासे कहकर नन्दभवनके सब मटके उठा लाता हूँ। लेकिन इसमें कोई आनन्द है? कन्हाई ठीक तो कहता है, हम सब चुपचाप चलें उत्पलाके। यहाँ अपने आप ढूंढ़-ढाँढ़कर माखन, दही, दूध, छाछ खायेंगे और ढुलकायेंगे। ये बिचारे कपि और पक्षी कितनी आशासे एकत्र हो गये हैं यहां। इनका भी तो पेट भरना चाहिये। उत्पला आवेगी तो उसे अँगूठा दिखाकर भाग आवेंगे। देखूँगा मैं छिपकर कि वह क्या करती है। तोक कूदने लगा, प्रसन्न हो गया तो कन्हाईका प्रस्ताव पारित हो गया। दाऊने आपत्ति नहीं की, अब किसी औरकी आपत्तिपर ध्यान देना अनावश्यक था। सब बालक चल पड़े उछलते-कूदते, ताली बजाते। कन्हैया सावधान है। चतुर है। उसने सबको सचेत किया चुप रहनेको और स्वयं पहिले प्रविष्ट हुआ उत्पलाके घरमें। उसे घरमें उत्पला दीखी नहीं। यह तो पीछे पता लगा कि वह छिपी थी और चुपचाप देख रही थी। बड़ा भारी मटका छाछ से भरा हुआ भूमिपर रखा हुआ था। गोप कोई छाछ पीने तो आये नहीं थे। तेजस्वीका रुष्ट होना उचित था। केवल छाछ भरा मटका उसे देखकर पत्थर उठाया और भड़ामसे तोड़ दिया और सब ताली बजाकर कूदने लगे। छाछ का समुद्र चारों तरफ उमड़ पड़ा। बालकोंके साथ ही पक्षियोंका, कपियोंका समुदाय था। वे सब उतर आये और छाछ पीने-चाटने लगे। इतनी देर में कन्हैया ने माखन का भांड ढूँढ़ निकाला और बोला- माखन तो छींकेपर हैं। कोनेमें पड़ा ऊखल को देखकर लुढ़काकर छीकेके नीचे रखा। ऊखल पर पीड़ा, पीड़ेपर घुटनोंके बल व्यस्थित बलिष्ठ वरूथप, वरूथपकी पीठपर खड़ा विशाल और उसके कन्धोंपर दोनों पैर रखकर कन्हैया बाएँ हाथसे छीकेको पकड़ने लगा और दायें हाथ से माखन उठाया प्रथम लोंदा अग्रभोजी ब्राह्मण मधुमंगल को दिया। कन्हैया तनिक-तनिक माखन अपने मुखमें डालता और माखनके गोले लोंदे सभी दिशाओंकी ओर फेंकता और कहता दादा तू ले, कभी दाऊको, कभी झुककर विशाल के मुखमें डालता, कभी अंशुको कहता और कभी वरूथपको खिलाता। भद्रने लकड़ी की बाँस से दधिभाण्डमें छिद्र कर दिया और दूसरे छींकोंपर टँगे दूध-दही के पात्रोंको भी गिरा दिया। कहने लगे- इतने ऊँचे पात्र नहीं टाँगने चाहिये कि हमारे हाथ ही नहीं पहुँचे। कन्हैया कपियोंको, पक्षियोंको, सखाओंको भी माखनके लोंदे फेंकने लगा। आयुर्वेद, उपवेद, श्रुतिका इन सबमें सभी गोप-बालकोंकी सम्यक श्रद्धा है। आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि सब चिन्ता, आशंका त्यागकर प्रसन्न-चित्त आहार ग्रहण करनेपर ही उसका उचित परिपाक होता है। अत: सब प्रसन्न होकर निश्चिन्त है। हँसते हैं ताली पीटते हैं। उछलते और माखन, दूध, दही खूब खाते-पीते उछालते हैं। केवल कन्हैया की

श्रद्धा अभी कुछ शिथिल है। बड़ा होगा तो पूर्ण श्रद्धालु हो जायगा। अभी तो सबको बार-बार शान्त रहनेका संकेत करता है। बार-बार सशंक होकर द्वार की तरफ देखता है। कहीं उत्पला गोपी आ न जाय। अगर आ ही जाय तो उसको भी दो लोंदे माखन दे देना। गोकुल के घर तो सभी उसके अपने ही है। दूध, दही, माखन खानेके लिये नहीं तो फिर किसके लिये है? यह भाण्ड फूट गये है उत्पलाकी भूलसे। वह इतने ऊपर न रखती तो क्यों इनको फोड़ना पड़ता? मधुमंगल परितृप्त हो गया तो कोई भी भूखा नहीं। उत्पला यह सब कुछ छिपकर देख रही थी। उत्पला की चूड़ी खनकी। सभी बालक कूदकर भाग गये। कन्हैया बोला- तू चल मेरी मैया के पास। मैं तुझे अपनी मैयासे माखन दिलवा दूँगा। अब श्याम का यह तो दैनिक क्रम बन गया। कभी किसीके घर और कभी किसीके। कभी ऋषभ हठ करता है, तो कभी भद्र, कभी देवप्रस्थ। आज उनके घरका गोरस हम सब सफल करें। कन्हैया बोला- ये नन्हें बछड़े तो कूदते-फुदकते अच्छे लगते हैं। छोटे-छोटे बछड़ोंको बाँध रखना कोई भली बात है? बछड़ोंको खोल देनेमें एक सुविधा है। कन्हैया और सखा इन्हें खोल देते हैं तो गोपियाँ इनको पकड़कर बाँधने में लग जाती हैं और पीछेसे उनके घरमें सब माखन, दही की चोरी करने लग जाते हैं।

एक दिन कोकिला गोपी के घर गयें और वहाँ उन्हें कुछ भी नहीं मिला। कहने लगा- गोप का घर और उसमें गोरस नहीं। लगता है यह तो बड़ी चतुर है कहीं छिपाया जरूर होगा जिससे हममें से कोई ढूँढ़ न सकें। कन्हैया को क्रोध आया उस घरके सभी बर्तन फोड़ दिये और कोकिला का शिशु पालनेमें सो रहा था उसको बोला तेरी माता बहुत कंजूस है। तुझे तो दूध भी भरपेट नहीं देती अब तू हमारे साथ चले चल हम तुझे माखन खिलायेंगे बहुत मीठा माखन। उसी समय कोकिला यमुना जल लेने गयी थी आ गयी और दूर से ही चिल्लाकर बोलने लगी- अरे लाला, शिशुके समीप क्या करने आये हो तुम सब यहाँ? शिशु फूट-फूटकर हिचक-हिचककर रोने लगा। कोकिला बोली- कन्हैया मेरे शिशुको चिकोटी काटकर रूलाकर भाग गया। छोटे बालकों के चुटकी काट लेता है और बड़े लड़कों की चोटी पकड़ कर खींचता है इस डर से मैं इनको कुछ देकर अपना काम बना लेती हूँ। महारानी जी हम इनके छल से सब प्रकार हार गयी हैं।

एक दिन कन्हैया अपने नन्दन चाचाके घर में ही चोरी करने के लिये प्रविष्ट हो गया। अन्धेरे में सब गोप गो-दोहन में लगे रहते है और गोपियाँ दधि मंथन करके दूध लाने गोष्ठ में चली जाती है। गोकुलमें कोई भी अपने द्वार बन्द नहीं करता। बिल्लियाँ, कुत्ते, बन्दर, कौएं कोई भी यहाँ इतना धृष्ट नहीं कि किसीके पात्रमें मुख डाल दे। मनुष्योंके समान पशु-पक्षियोंको परिग्रहका व्यसन तो है नहीं। फिर कृष्ण सबका सखा है, पुचकारकर, बुलाकर माखन खिलाते रहता है। यह सभी उसीके साथ आते हैं। तोकको कपियों, कुत्तों, बिल्लियों से बहुत प्रेम हैं। तोक बोला- कन्हूं हम तो सब अँधेरेमें खा लेंगे; किंतु ये बिचारे बन्दर, कौएं अभी तक आये नहीं वे भूखे रह जायेंगे। कन्हैया बोला- भूखे क्यों रहेंगे? हम तो तेरे घर के आँगन में हैं और ऊपर छतपर उनके लिये पर्याप्त माखन, दधि रख जायेंगे। तोक बोला- अगर तू यहाँ नहीं होगा तो यहाँ कोई भी खाने नहीं आयेगा। कपि, कुत्ते, बिल्लियां, पक्षी जब तक इसे न देखें तो ढूँढ़ते फिरते हैं गोकुलके घरोंमें।

मैयाने खिड़की में से देखा कि गोप-गौएं आज घर में आ रही है पता नहीं मेरे यहां तो एकादशी, सत्यनारायण, वेदकी कथा भी नहीं है फिर क्यों आ रही है। मैयाने गोपियों को बोला -बहना, कैसे आयें? गोपियोंने यह बोला- पहले यह बताओ आपके लाला है कहा। सभीने शिकायत करी।

तुम्हारा कन्हैया स्तेय योगमें बड़ा निपुण हो गया। चोरीकी कला जितना वह जानता है उतना कोई दूसरा जानता नहीं।

हमारे घर की आमदनी मारी जाती है। जिस दूध-दही माखन को मथुरा के बाजारों में बेचना होता है वह बालकों और वानरों के पेट में जाता है। सब सखियाँ चोरों के सरदार कन्हैया को पकड़कर माता यशोदा के पास ले चली और जाकर

बोलीं, हे यशोदा। तुम सदा हमें ही झूठा बताती हो हमारी कोई बात पर कभी विश्वास नहीं करती।

श्यामा सखी बोली- हे माधव-माता यशोदाजी, तुम्हारा पुत्र कृष्ण बड़े अयोग्य कर्म करता है। (क्या अनुचित कर्म करता है सुन) बड़ा उपद्रवी कृष्ण मेरे घर में जाता हैं, जिसके गले में प्रकाशमय रत्नों की माला है। उत्पाती कृष्ण मूढ़े पर खड़ा होकर, हाथ में लकड़ी लेकर मेरे घर में माखन, दही, दूध के भरे हुए बासनों को फोड़ डाला है। हे चन्द्रमुखी यशोदे, मेरे सूने घर में श्रीकृष्ण माखन दधि आदि को खाता है। इतना ही नहीं, किन्तु बन्दरों के बच्चों को और अपने मित्रों को माखनादि देता है और बंधे हुए बछड़ों को खोल देता है। सोये हुये बालकों के पास जापकर उनके केशों को नोचता है। घर में दधि-माखन के न मिलने पर घर को शाप देता है और घरवालों को गाली भी देता है। अर्थात् इस घर के लोग कंगाल हो रहे हैं, जिन्होंने अपने घर में दूध-दधि कुछ भी रखा नहीं है। हे यशोदे, अब हम तुम्हारे गाँव से जाते हैं, यहाँ नहीं बसेंगे, आप अपने ग्राम में सुख से रहो।

अरी मैया तेरो कन्हैया बड़ा है माखन चोर। स्वयं तो खावे सबैं खिलावै डारै मटकी फोर।।

श्रीकृष्णके साथ माखन चुरानेवाले बालकोंकी पूरी टोली होती है। माखन खाना, माखन और दधिके भाजन फोड़ना, बंदरोंको माखन खिलाना, दूधमें पानी मिलाना, बछड़े गायोंके नीचे दूध पीनेको खोलकर छोड़ देना- इन सब बातोंसे गोपियाँ तंग आ जाती हैं। यशोदाके पास उलाहने लेकर आती हैं। पुत्र प्रेमके कारण यशोदा यह स्वीकार नहीं करतीं। वे श्रीकृष्णका पक्ष लेकर ग्वालिनोंसे लड़ती हैं।

मैया बोली- **मेरौ गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।**

हाथ नचावत आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी।।

यशोदा बोली- अरी गोपियों, जिसका उलाहना तुम मेरे पास लेकर आयी हो वो कन्हैया क्या तुम्हारा लाला नहीं है? तुम्हारे हृदय का सच्चा प्रेम देखकर ही यह तुम्हारे घर जाता है। तुम चाहती हो कि मैं कन्हैया को डाँटू, फटकारूँ। क्या मेरा कन्हैया तुम्हें अच्छा नहीं लगता? मेरा तो एक ही बालक है वह भी तुम्हारी आँखों में चुभता है। तो फिर मैं अपनी लाला को लेकर और कहीं चली जाती हूँ। यह हमारे बुढ़ापे का धन है इसे लेकर मैं अपना सिर कहीं और जाकर छिपा लूँगी। मैं तो इसके नित्य उलाहनों से परेशान हो गयी हूँ। ढाई वर्ष का मेरा यह लाला क्या इस प्रकार उत्पात कर सकता है? जिसे तुम घड़ घड़कर सुनाती हो। मैं तो ममता की मारी हुई हूँ। अपने पुत्र को बड़े लाड़ प्यार से पाला है। अब मैं तुम्हारी एक बात भी नहीं सुनूंगी। मैं तुम्हारे दोनों हाथ जोड़कर कहती हूँ तुम ही बृज की रानी बन जाओ। तुम्हारे घर की जितनी माखन की मटकियाँ तोड़ी हैं तुम गिन गिन कर मुझसे ले जाओ पर मेरे लाला को चोर कहकर बृज में बदनाम मत करो। तुम्हारा जितना माखन का नुकसान हुआ है मेरे यहाँ से हाँड़ियां भर-भर कर ले जाओ। मेरा कान्हा थोड़ा सा माखन खा लेता है, बिगाड़ देता है तो फिर मुझे उलाहना देने आती हो। तुम इतनी दयाहीन क्यों हो गयी। मेरा लाला तुम्हारी आँखों में कांटा बनकर क्यों खटक रहा है। हम लोगों से जितने अपराध बन गये हैं मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि उन्हें क्षमा कर दो। मैं कल ही अपने लाला को साथ लेकर कहीं दूसरी जगह चली जाऊंगी।

यशोदा कहती है- अरी सत्यवक्ताओ, मेरा छोटा, नन्हा-सा कन्हैया और कहाँ सात फुट ऊपर छींके पर रखा माखन; कैसे पा सकता है? तुम्हें झूठ बोलते शर्म नहीं आती? दूसरी गोपी बोलती है- अरी ओ मैया, सुनो तो सही-

तेरो छय्या कुअर कन्हैया देता बछड़े छोर। दधि बेचन जब मैं जाती देवे मटकी फोर।।

मैया यशोदा कहती- अरी गोपियों, तुम्हारी छ: छ: फुट की ऊँचाई; उस पर टोकरी, टोकरी में मटकी और वह भी कपड़े से ढँकी। कहाँ यह नन्हा कुँवर, इसे दिखाई कैसे पड़ेगा, फोड़ना तो अलग है? आखिर झूठा दोष क्यों लगाती हो? इतने में

एक गोपी कहती है- अरी मैया, तेरा कन्हैया कितना दूध का धोया है सुनो। यह तेरो लाला-

माखन खावे मटकी फोरे करता है वह जोर। यदि मै सोचूँ कि समझाउ कहता तू है पत्नी मोर।।

किसीने एक मटकी, किसीने दो, किसीने सारे मटकी घरके फोड़ दिये ऐसी शिकायत करी। मैया बोली- क्या मेरे लाला ने यह उधम किया वो तो पलना में सो रहा है। मैया ने आवाज दी- पलना में से गोविन्द निकलकर आया और गोपियों की झूँड़ को देखा- कन्हैया ने सोचा- आज फिर कोई नाटक हो गया है दिखता। कन्हैया डरकर माता यशोदाके साड़ी के पल्लू को पकड़कर खड़ा है। शुकदेव कहते हैं- राजन्, एक बार तुम झाँकी का दर्शन करो, काल भी जिसके भय से भयभीत होता है वो यशोदा की साड़ी का पल्लू पकड़कर थर-थर कांप रहा है। उसे डर था की गोपियोंकी शिकायत से आज फिर पिटाई होगी। गोपियां बोली- आपका लाला हमारे घरमें आता हैं और हमारे बछड़ोंको खोलकर भाग जाता है। जब गाय दुहनेका समय होता है तो तब बछड़ेको खोल देता है। बछड़े सारा दूध पी जाते हैं और हमको एक बूँद भी दूध नहीं मिलती। देखो नन्दरानी, आपका यह लाला देखने में बड़ा सीधा लगता है पर देखने में बड़ा टेढ़ा है। दोहन के समय के पहले ही बछड़न को छोड़ देता है। वे सब दूध पी जाते हैं और हमको अँगूठा दिखाकर भाग जाता है। मैया बोली- यदि लाला उधम करता हैं तो आँख दिखाकर डाँट दिया करो वो उद्यम नहीं करो।

यशोदा बोली- हे श्यामा सखी, तू देख तो सही यह मेरा लाला कन्हैया बड़े भ्राता बलराम के सहित अपने घर में ही खेला करता है और बानर को देखकर रो पड़ता है; इतना डरपोक है। घर में तो थोड़ा भी दूध नहीं पीता, न माखन-दही खाता है। फिर मेरे भोले-भाले बालक कृष्ण की कैसे झूठी निन्दा करती है। देख बावली श्यामा, यह कन्हैया तो (मणिस्तम्भ आदि में) अपने शरीर की छाया को ही देखकर रो पड़ता है- मैया री मैया यह हौआ आया, फिर वह कृष्ण तुम्हारे घरों में जाकर अनेक प्रकार की माया का विस्तार कैसे करता है? यह तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आती है। चाहे तुम किसी दूसरे गाँव में जाओ, चाहे यहीं रहो, मैं इसमें क्या कहूँ?

सुन निजसुत कमी करतूत, श्याम महतारी। हम जावत यमुना तीर, भरन जब वारी।।
तब आय अचानक झटिति, कृष्ण गिरिधारी। मग रोकत खैंचत चीर, चुंदरिया फारी।।

चन्द्रा नैना सखी कहने लगी- हे श्याम की मैया, तुमने श्यामा सखी को तो डाँट दिया, परन्तु अब मेरे से अपने पुत्र की करतूत को सुन। हे यशोदा मैया, हम जब यमुना किनारे जल भरने जाती है तब कहीं से अचानक छिपा हुआ गिरिराज पर्वत को धारण करनेवाला कृष्ण शीघ्र ही आकर के हमारे जाने के रास्ते को रोककर, चुन्दरिया (सिर की ओढ़नी) को फाड़ देता है।

घट फोड़ पुकारत चोर, हसत दे तारी। इस लाज उतारी मोर, भिगोई सारी।।
तू झूंठि हमें बतात, आप सचयारी। जोब साँच न आवे तोहि, पूछ ब्रज नारी।।

यशोदा बोली- **क्यों झूठ बात बोलो, तुम सकल घोष नारी। रोटी न तुटत यासे, किम चीर तोरी फारी।।**
नहि फोड़ सकत मोदक, किम कलश फुटत दारी। तुम आय आय नित प्रति, मम भवन सब उखारी।।
नहि काम और तुमरा, इम कटत दिवस थारी। बिन काम फिरत व्रज में, तुम लाज सकल डारी।।
अब जाव जाव निज गृह, नहि तो सुनाऊँ गारी। सुन सुन तुमरि बातें, आश्चर्य लगत भारी।।

मालूम होता है कि घर में तुम्हारे को और तो कोई काम है ही नहीं, इस प्रकार झूठे उलाहने देकर इधर-उधर की बातें करके तुम्हारे दिन कटते हैं। बिना काम के तुम लोग इधर-उधर ब्रज की गलियों में घूमती फिरती हो। तुमने तो कुल-मर्यादा (और शास्त्र मर्यादा) की लाज सब उतार दी है। अच्छी बात तो अब यह है कि तुम सब अपने घरों को चली जाओ,

यदि नहीं जाओगी तो तुम्हारे को बुरी भली गारी सुनाऊँगी। तुम्हारी झूठी-झूठी अनहोई बातों को सुनकर मेरे को बड़ा आश्चर्य लगता है कि यह कैसी कुलांगनाएँ हैं और कैसी मिथ्या बातें कहती हैं।

श्यामा सखी बोली- **यशुमति बात सुनो अब मोरी।**

निज सुत को सिखलाकर भामिनि, तुम करवावत चोरी। सुत के चरित सकल तू जानत, बन बैठी अब भोरी।।
तुमरे ढिग यह निर्बल दीसत, पंथ मचावत होरी। मग जाते को छेड़त माधव, कर है जोरा जारी।।

हे यशोदा रानी, हे भामिनि, कोपिनि, तू ही अपने पुत्र को चोरी-कर्म सिखाकर, हमारे घरों में चोरी करवाती है। अपने पुत्र के सारे कर्मों को तू जानती है, पर हमारे आगे तू बिल्कुल भोली-सी बन बैठी है। तेरे पास तो यह कन्हैया भी निर्बल सा दीखता है। परन्तु रास्ते चलनेवालों के साथ तो यह होरी मचाता है। अर्थात् किसी पर धूल पटक, किसी पर पानी फेंक, किसी के कपड़े फाड़, किसी गोपी का घड़ा फोड़, अनेक प्रकार के उपद्रवों द्वारा यह होली जैसे खेलता है। इसके दोष क्या-क्या कहें? रास्ते चले जाने वालों को यह जबरन ही छेड़ता है। जो बचकर निकल भी जाये, तो जबरन पकड़ जोरा-जोरी कुश्ती लड़ता है।

जो तुम ऐसी करन विचारी, कौन बसे ब्रज तोरी। जाय बसेंगी और नगर में, हम सब गोप किशोरी।।
एक दिवस की बात नहीं जो, सहन करें ब्रजगोरी। अपने सुत को नहि समुझावो, करहो हमसे खोरी।।

जब तुमने ही (माँ-बेटा ने) इस प्रकार के उपद्रव करने का विचार कर रखा है मन में, तो बता फिर ब्रज में कौन बसेगा? फिर हम सब गोपों की बिटियाँ, किसी और ही नगर में जाकर बसेंगी, क्योंकि एक दिन की तो बात नहीं जो हम ब्रज की सुन्दर रूपवान कुलीन स्त्रियाँ, आपके पुत्र के अपराध को सहन कर लें। उसका तो नित्य का यही काम है- मग चलते छेड़ना। यदि हम आकर तेरे पुत्र का दोष तेरे से कहें भी, तो तुम आगे ऐसी पंडित हो कि अपने पुत्र को न समझाकर, उल्टा हमारे साथ द्वेष करने लगती हो, अर्थात् उल्टी-सीधी बातें करने लगती हो।

यशोदा बोली- **लाला पुन नहि परगृह जाना।।**

दधि माखन मिशरी सब घर में, जो चाहो सो खाना। चोरी की यह टेव न चहिये, क्यों कुल दाग लगाना।।
जो तव तात सुनेगा तोको, पीटेगा रिससाना। मैया मैया भले पुकारो, मैंने नाहिं छुड़ाना।।
दुःख पाकर नित तुमसे मोको, गोपी देत उराना। सुनकर दुरकरतूत तुमारी, मम मन बहुत लजाना।।
होकर ब्रज भूपति का सुत पुन, चोरी कर्म कमाना। सुत गोपाल सुनो मम शिक्षा, चोर न लोक कहाना।।

कंस की आज्ञा से वज्र का सारा मक्खन मथुरा जाता था। कंस के मल्ल माखन खाकर पहलवानी करते थे। कृष्ण ने इसे बन्द कराने का निश्चय किया। जब कृष्ण पैरों के बल स्वतन्त्ररूप से चलने-दौड़ने लगे तो वज्रमण्डल के सारे बालक यशोदा मैया के दरवाजे पर एकत्रित होने लगे। कन्हैया ने बालचौर्य-मण्डल की स्थापना की। देश के शहनशाह आज माखनचोर हो गये। चोर की बुद्धि बड़ी तीव्र होती है, अपने घर से चोरी सीखता तो जरूर है लेकिन वह चोरी अन्यत्र करता है।

बलराम भी उसमें सम्मिलित थे फिर इस बाल-चौर्य-मण्डल ने गोपियों के घर धावा बोलना शुरू कर दिया। वे गोपियों के घर जाते, माखन चुराते, सभी को खिलाते, बन्दरों में बाँटते, दूध, दही की मटकियाँ फोड़ते एवं इसी प्रकार के विविध उत्पात किया करते थे। कृष्ण की शिशु-चपलता को देखकर, मन-ही-मन मुदित गोपियाँ एक दिन इकट्ठी हो नन्दरानी को उलाहना देने आईं और कहने लगीं- अरी यशोदा, यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहने का समय न होने पर भी यह बछड़ों को खोल देता है। इस पर हम डाँटती हैं तो ठठा-ठठा कर हँसने लगता है। यह चोरी करने के विविध उपायों को करने में अतिशय चलाक था। विविध उपाय कर के यह हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुरा कर खा जाता है। केवल अपने ही खाता

तो भी एक बात थी, यह तो सारी दही-दूध वानरों को बाँट देता है और जब वे भी पेट भर जाने पर नहीं खाते तब यह हमारे मटकों को ही फोड़ देता है और कहता है कि इस घर का वर्तन अशुद्ध है, दूध खराब है और दही खट्टी है अत: बन्दर नहीं खा रहे हैं। इसे और कोई खायेगा तो बीमार हो जायेगा। यदि घर में इसे कोई वस्तु नहीं मिलती तो यह घर और घरवालों पर बहुत नाराज होता है और हमारे बच्चों को चिकोटी काट कर रुला देता है और फिर भाग खड़ा होता है।

हमको फूहड़ स्त्री बताता है और कहता है इसको दही जमाना नहीं आता इसलिये इसके मक्खन में कोई स्वाद नहीं है, इसलिये इसका दूध, दही सब फेंक दो।

जब इसको कोई वस्तु न मिली तब यह गुस्सा होकर बोला अरी ठहर जा मैं तुम्हारा घर जलाकर सब संहार कर दूँगा।

जिस घर में मेरे लिये कुछ न हो उसका जल कर नष्ट होना ही सब कोई अच्छा कहता है। मैं उनके घर के बालकों को मार कर रुलाऊँगा और घर की मालकिन की अकड़ भी भुला दूँगा।

तुम्हारा लाला गाय दुहने के समय से पूर्व ही बछड़े खोल देता है जो गाय का सारा दूध पी जाते हैं हमारे बालकों के लिए गायों के थनों में रत्तीभर भी दूध नहीं बचता। लाला को कोइ रोकटोक करें तो उसका अपमान कर देते हैं। हमारे घरों का माखन स्वयं भी खाते हैं और अपने सखाओं, बन्दरों और मोरों को भी खिला देते हैं। जिस मटकी का माखन खट्टा अथवा बासी होता है ये उस मटकी को तोड़ देता है। भीतर छुपाकर रखा हुआ माखन यदि इसे नहीं मिलता तो यह खीज के मारे चुटकी काटकर हमारे सोते हुए बालकों को रुला देता है अथवा उनका हाथ मरोड़ देता है। यदि हम अपनी मटकियों को तेरे लाला के हाथ की पहुँच से दूर ऊँचे छींके पर रख देती हैं तो यह चपल मूँढ़ा रखकर मटकी तक पहुँच जाता है। यदि कोई मटकी हाथ नहीं लगती तो नोकदार छड़ी से छींके पर रखी हुई मटकी में छेद कर देता है। छोटे बालकों को सू सू लग जाये तो वह आँगन में ही उनका वही करा देता है। एक गोपी बोली- अरी ब्रजरानी, लाला एक दिन मेरे घर पर आकर मुझसे बोला अरी ताई, मेरी बात सुन, तेरी बहू यमुना जल भरने गई उसे रास्ते में एक साँड़ ने मार गिराया है। बेचारी की बहुत सी हड्डियाँ टूट गई हैं। रास्ते में पड़ी हाय मैया कहकर चिल्ला रही है। अरी यशोदा, तेरे लाला ने ऐसा रोने का सा मुँह बनाकर मुझसे कहा मैं झट उसकी बात को सत्य समझकर विश्वास करके मैं बहू की सँभाल करने यमुना तरफ चली गई। गोपी बोली- अरी मैया, मैं उतावली होकर यमुना जी पहुँची तो क्या देखा, मेरी बहू तो बिल्कुल ठीक ठाक है और यमुना में गोते लगा लगाकर नहा रही है। तब मेरा माथा ठनका मैंने विचार किया कि बहू की चोट के बहाने मुझे घर से बाहर भेजकर श्याम ने अवश्य ही कोई ऊधम किया होगा। मैंने घर आकर देखा तो बात सही निकली। कान्हा ने अपने बाल सखाओं के साथ मेरे घर में माखन की ऐसी लूट मचाई कि घर की किसी मटकी में तोला भर माखन नहीं छोड़ा। माखन की खाली मटकियों में माटी के ढेले भरकर ऊपर से फैना लगाकर ऐसा सजा दिया कि मानो मटकियाँ माखन से भरी पड़ी हैं।

जब हम दही-दूध को ऊँचे छीकों पर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े उपाय रचता है। कहीं दो-चार पीढ़ों को एक के ऊपर रख देता है। कहीं ऊखल पर चढ़ जाता है, तो कहीं ऊखल पर ही पीढ़ा रख देता है, कभी-कभी तो अपने साथी के कन्धे पर चढ़ जाता है। जब इतने पर भी काम नहीं चलता, तब यह नीचे से ही उन बर्तनों में छेद कर देता है। फिर तो नीचे सभी मुँह फाड़कर पीने लगते हैं। इसे इस बात की पक्की पहचान रहती है कि किस छींके पर, किस बर्तन में क्या रक्खा है और ऐसे ढंग से छेद करना जानता है कि किसी को पता तक न चले।

कहता है तू हमारी सम्पत्ति को अपना समझती है और बड़ी साहुनी बनकर हमको चोर कहती है। तू चोरी भी करती है और सीना जोरी भी, अरी निगोरी अर्थात बिना गुरू वाली तू सम्हल कर नहीं बोलतीं।

अत्यन्त ऊँचे छींके पर रखने का हमको यह फल मिलता है कि वह उसमें कंकड़ी मार कर छेद करता है और उसको पता रहता है किस बर्तन में क्या रखा है।

उन्हीं के अनुरूप वह छेद कर देता है और मन चाहा दही, मक्खन पा लेता है। वह बड़ा चतुर है और बहुत सी कलायें जानता है और सखाओं के मुख में इसकी धार लगा देता है।

उन्होंने मुझे देखते ही फूतकार किया और अपने मुख के दूध को मेरे मुख में मार दिया।

देखा तो कैसा भोला बना बैठा है मानो कुछ नहीं जानता है। परंतु है बहुत सी कलाओं में कुशल। यह बड़ा चतुर है और छलछन्द जानता है।

बड़ा ही नटखट है माँ तेरा नन्द किशोर। गलियन गलियन घूमें दधि खाये माखन चोर।।
तेरा ये लाल मैया रार मचावे। रोज-रोज कुंजन में आन सतावै।। नन्द नन्दन के आगे चले ना कोई जोर।।
वृन्दावन में रास रचाये। मुरली बजाके श्याम दिल को लुभाये।। धुन सुन करके सखियां के मन में उठे हिलोरे।।
नृत्य करत है नन्द को लाला। मन का उजला तन का काला। मन कुंजन में मेरे मोर मचावै शोर।।
कोई नहीं बम बम का सहारा। जंगू ने रो रो करके पुकारा। प्रेम के चरणों में है मेरी जीवन डोर।।

गोपियां बोली- यदि हम आंख निकालकर लालाको डाँटे तो हमको देखकर खिल-खिलाकर हंस पड़ता है। मैया बोली- मेरा तो छोटासा लाला है, वो चोरी करना क्या जानता है? तुम इसको राजी खुशी थोड़ा मक्खन दिया करो। राजी से मक्खन दोगी तो चोरी क्यों करेगा? गोपियां बोली- हम इसको राजी-खुशी मक्खन देवें तो यह मुंह ठेढ़ा करके बोलता है मेरेको तो चोरी किया हुआ ही मक्खन मीठा लगता है राजी-खुशी का नहीं।

मैया बोली- तेरेको शरम नहीं आती, जरासे मक्खन के लिये मेरेको उलाहना देने आ गयी। ज्यादा से ज्यादा तुम्हारा मख्खन कितना खाया होगा? मेरे घर से पचास मटकी माखन की ले जाओ, कोई कमी थोड़े ही है। गोपियां बोली- आप तो नाराज हो गयी। आपका लाला चोरी करके माखन खाया तो बुरा नहीं लगेगा पर स्वयं थोड़ी ही खाता है इनकी तो पूरी-पूरी चोर मंडली आती हैं। इनकी चोर मंडली का नाम भी बालगोपाल चौर्य विद्या प्रचार मंडल। ऊपर से बन्दर की मंडली, नीचे ग्वाल मंडली। बंदरों को माखन लुटाता हैं और माखन खाकर मटकी को धड़ाम से फोड़ देता है। ऊपर से यह कहता हैं नन्द को लाला चोरी करके जा रहा है। किसी को पकड़ना हो तो पकड़ लो।

चोरीके सब साज सजे सङ्गी शिशु कीहें। भेद लगावैं कछू कछू इत उत करि दोन्हें।।
कछू बहानों करें सरलता मुखपै लावें। इत उत बात बनाइ श्याम घरमाँहिं घुसावें।।
चोर कलामहँ निपुण अति, नन्दनँदन घनश्याम हैं। चोरें मन, माखन मदन, मोहन शोभाधाम है।।

मैया बोली- एक काम करो- तुम अपनी मटकी ऊपर छीकेपर टांग दिया करो। लाला छोटा है, इसका हाथ भी नहीं पहुँचेगा तो फिर चोरी करेगा कहाँसे।

माखन प्रभु गुण देखिकै गोपिन कियो उपाय। दूध दही माखन माही राखैं दूर दुराय।।

गोपियां बोली- यह भी हम सब कर चुकी हैं। आपके सामने जो लाला तीन बिलाँत् का लगता हैं बाहर तो चौकड़ी भरकर भागता हैं।

नीचे ऊखल खड़ा करके ऊसके ऊपर एक और सखा खड़ा करता हैं सबके ऊपर आप खड़े होकर यह काम करता है।

फिर एक दिन श्यामसुन्दर किसी ब्रजबाला के धर माखन आदि चुराने गये उस समय वह गोपी शय्या पर सोई थी।

नन्दलालाजी ने उस ब्रजबाला की चोटी चारपाई से बाँध दी, उसका माखन और दही ग्वालबालों समेत आनन्दपूर्वक खाया और बर्तन तोड़ डाला। जब वह गोपी बर्तनों का खटका सुनकर चिल्लाई तब पड़ोस की गोपियों ने आकर नन्दलालजी को पकड़ लिया और यशोदा के पास ले जाकर कहा-

हे राजन्, उस दिन गोपियों ने सच्ची बनकर यशोदा से कहा कि अपने पुत्र के लक्षण देखो, हमारे बर्तन तोड़ डाले और मेरी चोटी चार पाई से बाँधकर सब माखन व दही खा लिया। यह हम लोगों का चीर खींचकर नंगी कर देता है। इसके मारे रास्ता नहीं चलने पातीं। यह बात सुनकर यशोदा बोलीं-

प्यारे की कोसन सुनि कसकी कलेजे माहिं जीवन है मेरा कान्ह कहा कर आयो है।।
मोसों कहौं कोटिक कछू न कहो बालक सों केतो दुख देखदेख कैसे कर पायो है।।
माखन को माठ लेके द्वार पर महरि बैठी तौल तौल लेव बीर जाको जेतो खायो हे।।
गोरस के काज ग्वालि गोदहु पसारति हूँ गारी मति देव मो गरीबिनी को जायो है।।

हमने एक बार तो गुस्सेमें अपनी दही की मटकी पीपल की डाली पर लटका दी और देख रही थी कि लाला चोरी कैसे करता? तुम्हारा यह लाला पच्चीस हाथ लंबा बांस लेकर आया और मटकी को बांस से मारकर नीचे गिरा दिया। मटकी फूट गयी। और सब ओक लगाकर नीचे खड़े हो गये। और क्रम से सब दही पी गये। इसकी बुद्धि की क्या बात बताओ। परसो की बात हैं मेरे पति का जन्मदिन था। अपने पति के जन्मदिन की खुशी में मेरे घर में छप्पन भोग लगाया। आपका लाला मेरे घर आया और बोला- भाभी हमारा भोग लगाओ। मैंने लाला से कह दिया अभी सत्यनारायण की भगवान की कथा होनी है फिर पंडितजी भोजन करेंगे, बाद में तुम्हारा प्रसाद मिलेगा। मैंने डाँट कर कहा- नहीं, ऐसे भोग अभी नहीं मिलेगा। लाला नाराज होकर चला गया। जन्मदिन के खुशी पर मैंने और मेरे पतिने बड़े प्रेम से भोजन किया और सो गये। आधी रात को आपका लाला न जाने कब घर में घुस गया मेरी पतिकी दाढ़ी से मेरी चोटी को कसकर बाँध दिया। मेरे पति जब पानी पीनेके लिये उठे तो मेरी चोटी खींच रही थी। इस खींचा-खींच में उनकी तो दाढ़ी ही उखड़ गई। ऐसा उधम करता तुम्हारा कन्हैया। एक गोपी बोली- परसों मेरे घर सत्यनारायण की कथा थी। मैं पंजीरी बना रही थीं। आपके लाला मेरे घर आये, कुत्ते के दो पिल्ले पकड़कर लाये और सत्यनारायण भगवान के सिंहासन पर पदरा दिये और बोले भाभीजी, आपके सत्यनारायण भगवान आये हैं उनके दर्शन कर लो। मैं सब काम छोड़कर भागकर गयी देखती हूँ सिंहासन पर दो कुत्तेके पिल्ले बैठे हैं ऐसा उधम मचाता है तुम्हारा लाला।

मैया यशोदा कहती हैं कि अरी धांगरी गोपियों, मेरे लाला की मुट्ठी भर कमर और जरा-सा पेट है। थोड़ा माखन खा लिया होगा, हमें सन्तोष है। क्योंकि यह घर का माखन छूता ही नहीं है। गोपियाँ आनन्दविभोर हो जाती है। अहा, हमारे प्राणधन श्यामसुन्दर हमारे लिये अपने घर का माखन छोड़ दिया। यशोदा बोली- यदि बछड़ा छोड़ देता है तो हानि क्या? गोपियाँ कहती हैं- मैया, बछड़े को समय से नहीं छोड़ता है बल्कि असमय से छोड़ता है। इससे भारी हानि होती है। स्वयं तो दूध कम ही पीता है लेकिन औरों को पर्याप्त मात्रा में लूटाता है।

कन्हैया तो संसार में बँधे हुए जीवों को खोलने के लिये आया है अब किसी के यहाँ बँधे हुए बछड़ों को खोल देता है उसमें क्या बुराई है। कन्हैया को तो बंधन मुक्त करना ही आता है। बछड़ा अपनी गैया का दूध पीने के लिये जायेंगे और परिवार के लोग बछड़ोंको बाँधने के लिए घर से बाहर चले जायेंगे तब ही तो घर में एकान्त पाकर श्याम को चोरी करने का अवसर मिलेगा।

यशोदा बोली- **तुमहिं याय दै ताड़ना, निज घर घुसन न देहु। हम न बुरो कछु मानिहैं, सीख हमारी लेहु।।**

तुम्हीं इनको डाँट कर अपने घर में न आने दो इस हमारी सलाह को मानो, हम इसका कुछ बुरा नहीं मानेंगी।

कन्हैया ने कहा कि ये छाछ का लोभ देकर हमको बुलाती हैं और हमको पकड़ कर नचाती हैं। अगर मैं इनकी बात न मानूँ तो कहती हैं कि मैं मैया से शिकायत करूँगी।

और एक बात को चौगुना बढ़ा कर कहूँगी और तुझको मार खिलाऊँगी अरी मैया मेरे तो छोटे हाथ हैं फिर मैं इनके छींके तक कैसे पहुँच सकता हूँ।

भला मैया तू ही बता कि जब तू पेट भर कर खिला देती है तो इनका मक्खन मुझे क्यों पसन्द आयेगा। अमृत भरी हुई प्यारी बाणी सुनकर मैया उन पर वारी जाने लगी।

दधि माखन की हानि जो, कीन्हीं कृष्ण कन्हाय। वासों दूनो चौगुनो, मोसों लेहु भराय।।

और बोली दही, मक्खन का जो नुकसान कन्हैया ने किया हो उससे दूना, चौगुना मुझसे भरा कर ले जाओ।

दधि मटुकी आँगन धरी, कहति, तौलि लै जाउ। जेतो खयो कान्ह जिन, मोसों नाहिं छिपाउ।।

कन्हैया की अतुला चाची ने अपने घर में आकर दीप जलाया और सोचकर कहने लगी दीपक को किसी चूहे ने अथवा बिल्ली ने घी के लोभ में बुझा दिया होगा। दीपक की रोशनी में देखा कि घर में बिल्ली नहीं बिलोटे घुसे हुए हैं। सबने अपने-अपने हाथों में माखन की मटकी धर रखी हैं और चुपचाप माखन खाने में जुटे हुए हैं। अतुला चाची ने कन्हैया से कहा अंजुली में छिपाकर माखन क्यों खा रहे हो और स्वयं ही दही और माखन की मटकियां बाहर लाकर कूकुर बिल्ली एवं बंदरों को खिलाने लगी। अतुला के घर में सब आनन्दसे बैठकर माखन खाने लगे। विशाल और वरूथप मिलकर पूरा पात्र उठा लाये हैं। भद्र भी इसी घरमें रहता है। तोक नाच रहा है। यहाँ कोई डाँटने, खीझनेवाला नहीं। अत: यहाँ भाण्ड भग्न नहीं किये जा सकते। अतुला चाची बोली- अरे तुम अन्धकार में क्या कर रहे हो? और दीप जला दिया। तोक अपनी माँके पैरोंमें लिपट गया और बोला मैं यह माखन कपियों और बिल्लियों को खिला दूँगा। अतुला बोली- तुम सब लोग अच्छे से खाओ मैं इन सब कपियों, काकोंको दे रही हूँ और कन्हैया को बोली- लाल, खा और बाँट सबको। वह बड़े-बड़े लोंदे कपियों की ओर उछालने लगी।

अरे नन्दरानी, सुन तेरे लाला ने तो बड़ा ही ऊधम मचा रखा है। असमय में जाकर बछड़े खोल देते हैं, वे सब दूध पी जाते हैं। यदि कोई कुछ कहने लगता है तो ग्वालबालों के साथ ताली बजा-बजाकर उसी की हँसी उड़ाते हैं। दूध-दही, माखन चोरी से खाते हैं और चोरी के बड़े-बड़े हथकण्डे भी जानते हैं। घर में पहुँचते ही न जाने बन्दर कहाँ से आ जाते हैं जिन्हें वे माखन बाँट-बाँटकर खिलाते हैं। जब कोई नहीं खाता तब मटकी ही फोड़कर चल देते हैं। अरी मैया, इनकी ढिठाई कहाँ तक बखानूँ जब हम दूध-दही का सारा सामान ताले में बंद कर रख देती हैं तब कुछ न मिलने पर सोते हुए बच्चों को चुटकी से नोचकर भाग जाते हैं और बच्चे चीं-चीं कर रोने लगते हैं। छींकों पर रखे दूध-दही के मटकों में नोकदार डण्डों से छेदकर देते हैं और दूध दही माखन उतारकर खा जाते हैं। प्रेम से जब कभी हम बुलाकर खिलाना चाहती हैं तब ये नहीं खाते। लिपे-पुते सुन्दर घरों में कुत्ता, बिल्ली, कबूतर आदि का सूखा मल गिराकर भ्रष्ट कर देते हैं और तेरे सामने साधु के समान बड़े ही सीधे-साधे बनकर खड़े हो जाते हैं। ब्रज भर में इन्होंने बड़ा ऊधम मचा रखा है। यशोदाजी ये सारी शिकायतें सुनकर भी लाला की भयभीत छवि निहारकर कुछ भी नहीं कह पातीं। प्रत्युत गोदी में लेकर प्यार करने लगतीं।

एक गोपी बोली- हम जब पानी लेने कुएँ पे जाती हैं और पानी भरने लगती हैं तो हमारी ईडरी लेकर भाग जाता है। एक दिन मैंने पकड़ लिया तो वो रोने लगा, मैंने छोड़ दिया। मैं मटका सिर पै धरके चलीं तो पीछे से ऐसी कंकरी मारी कि मटकी फूट गई। मैं पूरी भीज गई और ये सब के सब ठहाका मारकर हँसकर भाग गये। दूसरी गोपी बोली- मेरे सूने घर में

घुसकर मेरी ओखली पे पीड़ा रखकर छींकै पर रखा माखन पहले खूब खाया फिर बन्दरों को खिलाया और मटकी फोड़कर भाग गये। एक गोपी बोली- अरी, तेरे यहाँ तो ओऊली पर चढ़कर खाया मेरे यहाँ तो श्रीदामा के कंधा पर चढ़कर माखन खाया और मैं आयी तब सब भाग गये।

एक दिन कन्हैया गोप के खेत में गये उसकी बहुत-सी गौएँ थीं, उनके सब बछड़ों को खोल आये और दौड़कर उसके घर गये और हाँपते-हाँपते बोले- देख तेरे बछड़े सब छूट गये। मैंने उन्हें बाँधना चाहा किन्तु भला वे मुझ पर कैसे रुकने लगे। शीघ्र जा नहीं वे सब दूध पी जायँगे। यह सुनकर वह कदम्बा सखी दौड़कर खेत में गयी और कहती गयी- लालाजी मेरे घर को देखना, कुत्ता बिल्ली न जाय। आप बोले- हाँ भाभी, तू जा मैं तो यहाँ बैठा ही हूँ।

कदम्बा सखी खिरक की ओर गयी आपने तुरन्त ताली बजायी। ताली का शब्द सुनते ही आसपास छिपे हुए दाम, सुदामा, स्तोक कृष्ण, किंकणी, मनसुखा, मधुमंगल, रैंदा, पैंदा, सैंदा, सटकुआ, मटकुआ, चटकुआ, लटकुआ, भटकुआ तथा और भी सैकड़ों गोप आ गये अब क्या था, उड़ने लगे माखन के लौंदे। श्रीकृष्ण कमोरी उठा-उठाकर लाते, लड़के आपस में बाँटकर खाते। श्याम सुन्दर चोर चाल से चलते हुए घर में घुस गये। सावधानी पूर्वक इधर-उधर देखने लगे। मानो टोह लगा रहे हों कि कहीं गोपियाँ आड़ में तो नहीं छिपी है। माखन की मटकी ढूंढकर चखकर देखने खट्टा है या मीठा। दूसरी मटकी फिर तीसरी मटकी का माखन चखा।

कन्हैया ने देखा रास्ता साफ है कोई डर नहीं तब मण्डली के सभी सखाओं को आवाज देकर बुला लिया। मीठा मीठा माखन खाने में सभी बालकों के वारे न्यारे हो गए। मैया यशोदा घर में कन्हैया को माखन खाने के लिए कितनी मनुहार करती है तो भी नवनीत नहीं खाता शीश हिलाकर न न कह देता है। कभी कहता है मुझे भूख नहीं है, कभी कहता है मेरा मन नहीं करता। नन्दनन्दन को अकेले माखन खाना अच्छा नहीं लगता। इसे तो सखाओं के साथ चोरी करके खाने में ही आनन्द आता है। पूरे विश्व का भरण पोषण करनेवाले यशोदा नन्दन को सखाओं को खिलाये बिना अकेले खाने में आनन्द नहीं आता। धमा चौकड़ी करते हुए सभी ग्वाल बाल अपने उदर पूर्ति में जुट गए।

श्रीकृष्ण ने दूर से देखा गोपी आ रही है, सब लड़कों से सैनों में ही कह दिया- अब सटकन्तोबाच होनी चाहिए। तुरन्त ही किसी ने गालों में माखन भरा किसी ने हाथों में लौंदा लिये और वहाँ से भागे। श्रीकृष्ण चिल्लाने लगे- अरे धूर्तो ठहर जाओ अब भागते क्यों हो?

गोपी ने देखा मेरा सब दूध, दही, माखन की कमोरी मोरी के पास खाली पड़ी हैं। उसने कहा- हाय लालाजी, तुमने यह क्या किया? अरे माखनचोर कन्हैया मेरे घर का इतना नुकसान करके तुम और तुम्हारी ग्वाल सेना भाग नहीं पायेगी। अब तक मेरे घर को जितना उजाड़ा है उसका दण्ड तुम्हें भुगतना पड़ेगा। आप बोले- भाभी, तू मुझसे कुत्ता बिल्ली देखने को ही तो कह गई थी, वह मैंने एक भी घर में नहीं जाने दिया।

गोपी बोली- तुमने इन लफंगे छोकरों को क्यों नहीं रोका? श्रीकृष्ण बोले- मैंने बहुत रोका, किन्तु वे ठहरे बहुत, मैं ठहरा अकेला। अकेला कैसे रोकता? गोपी बोली- तुम रोक कहाँ रहे थे, तुम तो उन्हें खिला रहे थे और स्वयं खा रहे थे।

श्रीकृष्ण ने कहा- भाभी, तेरी सौगन्ध, तेरे पति की सौगन्ध, मैंने तो माखन छूआ तक नहीं।

गोपी बोली- हाय, लल्लू, तुम झूठी शपथ खा रहे हो, मैंने स्वयं तुम्हें सबके साथ खाते देखा है, तुम्हारा मुख अभी तक माखन से सन रहा है, गालों पर चिपक रहा है।

श्रीकृष्ण बोले- अरे, भाभी तू मुझे बिना बात झूठा बनाती है, मैंने तो तेरा माखन देखा तक नहीं। एक छोरा माखन खा रहा था, हाथ में लिये था, मैंने उसमें एक पटक मारी वह नीचे गिर गया, किन्तु फिर उसने मुझे दबा दिया। हाथ से मेरा मुँह पकड़कर

मसल दिया, बन्द कर दिया। जिससे मैं तुझे बुला न सका। उसी समय मेरे मुख में माखन लग गया होगा। हवन करते हाथ जलते हैं, उपकार करते अपकार होता है, मैंने तेरे घर की रखवाली की, उसका फल यह मिला कि झूठी चोरी लगी, अब मैं तेरे घर कभी न आऊँगा। यह कहकर भगवान तुरन्त भाग गये। गोपी हक्की-बक्की-सी बनी उन्हें देखती-की-देखती रह गयी।

एक दिन श्रीकृष्ण एक घर को खाली देखकर सँकड़ी खोलकर उसमें घुस गये। पास में ही छोटे मुख की माखन की कमोरी रखी थी। उसमें से माखन निकालकर खाने लगे। गोपी तो जान-बूझकर छिपी हुई थी। उसने देखा अब श्याम ने पेट भर माखन खा लिया है और भागने की ही ताड़ में हैं तो पीछे से आकर हाथ पकड़ लिया और बोली- लालजी, राम राम। कहो क्या कह रहे हो?

आपने छूटते ही उत्तर दिया- भाभी। मेरा एक बछड़ा खो गया है, उसे ही ढूँढ़ रहा हूँ। तू नहीं जानती मेरा मंगला नाम का बछड़ा खो गया है, जैसे बाबाके बछड़ोंकी समस्त सम्हाल इसीको मिल गयी और बछड़ा इस मटकेमें ही कहीं है। हँसीको रोकना और जल भरे घटको सम्हालना बहुत ही बड़ा कठिन कार्य है। गोपीने पूछा- तू इस मटकी में क्यों उझका है? तेरा बछड़ा क्या इसमें कूद गया है। मैं उसीको खोजने के लिये आया हूँ।

गोपी ने हँसकर कहा- बछड़ा खो गया है तो फिर माखन की मटुकी में हाथ क्यों दे रहे हो? माखन की मटकी में बछडा खोज रहे हो कि माखन चुरा रहे हो। यह माखन की मटकी है या कोई बाग बगीचा जिसमें खोया हुआ बछड़ा खोजने आये हो। श्रीकृष्ण बल देकर बोले- उसी को तो मटकी में खोज रहा हूँ, मेरा बछड़ा छोटा-सा माखन का ही है और माखन ही वह खाता है। कुदुक-कुदुककर चलता है, जहाँ माखन की मटकी देखता है उसी में कूदकर घुस जाता है।

गोपी बोली- वह बछड़ा यशोदा मैया ने जाया है न? वह सफेद माखन का न होकर काले माखन का है न?

मैं तो इसे अपना ही घर समझ रहा था और इस मटकी में चींटी पड़ी है। इसलिये इस मटकी में से चींटियाँ निकाल रहा था। तू कहती है यह तेरा घर है। तो ले सम्भाल रख अपने घर को। गोपी बोली- क्यों रे नटखट तुम्हें मेरे घर और अपने घर कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता। कन्हैया बोला- मुझे अपने-पराये की पहचान नहीं है। जब मैं घर से चला था तो मेरे घर की छत पर मैंने एक कौआ बैठा देखा और वापिस आते समय वह कौआ इस घरकी छतपर बैठा देखा। इसीलिये इसे अपना जानकर घर के अन्दर चला आया। फिर तेरे मुँह पर और गाल पर यह माखन क्यों लगा हुआ है? कन्हैया बोला- खाज आ रही थी और खुझानेको भी तू नहीं थी, तू इतनी बड़ी हो गयी, अपने आप कुछ क्यों नहीं सोच लेती? मुझसे ही पूछती चली जा रही हैं। तेरे मटकी में गाय-बैल, बछड़ा-बछड़ी न सही, चींटी-चींटा कुछ तो होगा। मैं अपने रास्ते जाता हूँ। यह कहकर श्याम हँस पड़े और गोपी भी निहाल हो गयी। गोपी बोली- मेरे यशोदा रानी के समान पुण्य नहीं है, नहीं तो यह मेरी कोख से पैदा होता।

मैया यशोदा ने लाला की तरफ देखा और गुस्सेमें बोली- क्यों रे लाला, क्या यह गोपी ठीक कह रही है। कन्हैया बोले- मैया तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ मैं तो यह भी नहीं जानता की इसका घर कौनसी गली में हैं यह सब झूठ बोलती है।

ये गोपियां बड़ी चालाक और चतुर हैं तू इनकी बातका विश्वास मत कर। यशोदा मैया ने लाला का कान पकड़ लिया। शुकदेव कहते हैं- परीक्षित, इस झाँकी का दर्शन करो। माँ यशोदा ब्रह्म का कान पकड़ती हैं। कृष्ण डरके मारे थर-थर काँप रहा है। मैया बोली- ज्यों-ज्यों बड़ा होते जाता है त्यों-त्यों बिगड़ते जा रहा है। चोरी करने की क्या जरूरत है। हमारे घर कितनी गाय हैं। क्या माखन की कमी है।

नौ लख गाय तेरे नंदबाबा के, नित नयौ माखन होय।

कन्हैया बोले- ये गोपी जबर्दस्ती मेरे मुँह पर माखन लगा देती हैं और चोर-चोर कहकर मेरी बदनामी करती हैं। तू तो मन की भोली हैं, जो इनकी बातोंमें आ जाती हैं। मैया बोली- आज के बाद तुमने उधम किया तो मैं तेरी पिटाई करूँगी।

हे माता, अब मैं ग्वालियों के घर नहीं जाऊँगा। ऐसा कहने पर भी उन्होंने दही आदि चुराकर खाना नहीं छोड़ा। मैं बाहर भी नहीं जाऊंगा, न ही गोपियां मुझे अपने यहां बुलाएंगी।

मैया गोपी मोहि खिझावें।
जो मैं जात न तिनके घर में, गह कर गृह ले जावें। कोई भाखत गीत सुनावो, कोई नाच नचावें।।
घर का काम करावें हमसे, हठकर माखन ख्वावें। जो मैं रिस कर भाग जात हूँ, हँसकर कंठ लगावें।।
बाहिर जान न देवें मम मुख, चूमत गोदि बिठावें। निज घर का यह ख्याल न राखत, मोसे हँस बतरावें।।
तब तिनके मन्दिर के भीतर, हरि सेना धस जावें। गोरस खावत यह पुनि मोको, झूँठा दोष लगावें।।
माता सुन सीदे सरस, मीठे माधव बैन। क्रोध त्याग सुत कंठ लग, जल भर लाई नैन।।

मैया दाऊ से बोली- तुम ही कुछ करो बलदाऊ। मैं तो रोज-रोज इस कन्हैया के उलाहनों से तंग आ गयी। दाऊ बोला, तुम निश्चिंत रहो मैया मैं अभी शीघ्र प्रबन्ध करता हूँ।

कोई दाऊको क्यों नहीं पकड़तीं। दाऊको पकड़े तो पता लगे। यह चौथे वर्षमें चलता दाऊ- इस बालको रोष आ जाय तो यह ऊखल उठाकर पटककर फोड़ देगा या गृहके स्तम्भ गिरा देगा। इसे छेड़नेका साहस कोई नहीं करेगी। यह भला क्यों भागे। यह तो आता भी है अनुजके अनुरोधसे और कन्हाईके देनेसे ही मुखमें कुछ माखन डालता है। अपने हाथपर आये लोंदे भी यह सखाओंको ही देता रहता हैं।

कृष्ण बोला- मैंने गोपियोंकी प्रेम रीति को पहिचान लिया और गोपियों ने भी मेरे मन की रुचि जान ली इसलिये उन्होंने भी ऐसी रस भरी पद्धति अपना ली है जिससे मुझको अपने प्रेम में बाँध लिया।

यह सारा ब्रज मेरा ही स्वरूप है और मेरा ही स्वरूप यह दही और मक्खन है। हमारे नन्दबाबा के नौ लाख गैयाँ हैं फिर भी गोपियों का मक्खन हमारे मन को मोहित करता है।

फिर भी मेरा माखन चोर नाम रसिकों को अत्यन्त प्यारा है। वे प्रेम में भरे हुये आनन्द में डूबे हुये इस विलक्षण नाम को लेकर मुझे बुलाते हैं तो वे मुझे अपने पास पाते हैं।

मेरा मन माखन चोर नाम सुनकर आनन्द में डूब जाता है। यह नाम मुझे बड़ा प्यारा है। मैं ब्रज में चोर कहलाता हूँ फिर भी यह कहने वाली गोपियों के हाथ मैं बिक जाता हूँ और उनकी पूजा को स्वीकार करने के लिये उनके घर दौड़ कर जाता हूँ। कहीं वे थोड़ी सी छाँछ मुझको दे देती हैं तो मैं उनको नाच कर रिझाता हूँ और बंसी में उनका नाम सुनाकर प्रेम रस की बरसा करता हूँ और उनके प्रेम में घर का दही मक्खन छोड़कर साँकरी खोर में उनका दही मक्खन लेने के लिये दौड़ जाता हूँ।

उसी समय राधा योगिनी रूप धरकर, यशोदा से बोली- तेरे इस लाला ने तो बहुत से बसे हुए घरों को उजाड़ कर रख दिया है। यह तो संसार में उपद्रव करनेवालों में प्रसिद्ध उत्पाती है। एक बात है कि इस तेरे लाला की चतुराई वह ही जान सकता है जिसको यह कन्हैया आप दिखाता है। नहीं तो बड़े-बड़े चतुर इसकी चतुराई से मोह को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् इसको बड़ा महात्मा-सज्जन मानकर के इसका मानसत्कार करते हैं।

हमरे गृह में नित प्रति जावत, छीन छीन दधि खाता। घर घर चोरी कर यह खावे, अबलों नाहिं अघाता।।
बैठ इकाँत ठौर यह गुरु बन, मोको ज्ञान सुनाता। गृह आश्रऊ में मुक्ति न होवत, विविध वेदना दाता।।

यशोदा मैया, तेरा लाला मेरे घर नित्य प्रति जाता है और हम लोगों से जबरन दूध, दधि, माखन छीन-छीन के खाता है। यह सबके घर-घर में जाकर चोरी से दूध, दधि, माखन खाता है। इतना खाने पर भी अब तक इसका पेट भरा नहीं है। इतना ही नहीं, और भी इसकी करतूत सुन। हमारे घर में एकांत स्थान पर बैठ, गुरु बन के यह तेरा लाला मेरे को ज्ञान की

बातें भी सुनाता है- अरी गोपी, तू ध्यान देकर सुन, गृहस्थाश्रम में जीव की मुक्ति नहीं होती, क्योंकि गृह तो अनेक प्रकार के जन्म-मरणादि दु:खों को देने वाला है।

मन्दिर त्याग विपिन चल बसिये, ईश भजो जनत्राता। मानुष जनम वृथा मत खोवो, पुन पुन यह नहि पाता।।
याविध मोको श्याम सिखाकर, त्याग कराये भ्राता। बन्धु जनक जननी सब बिछड़े, तूट गये सब नाता।।

इस कारण दु:ख का घर गृहस्थ को त्याग करके वन में चलकर बसना चाहिये और वन में भक्तों की रक्षा करनेवाले भगवान का भजन करना चाहिये। इस मानुष-जन्म को व्यर्थ विषय-विकारों में नष्ट नहीं करो। बारम्बार यह मानुष-जन्म नहीं मिलता। इस प्रकार का उपदेश सिखाकर तेरे श्यामसुन्दर कृष्ण ने मेरे भ्रातादि सब बांधव त्याग करा दिये हैं। अब माता-पितादि सब बांधव भी मेरे से बिछुड़ गये हैं और सबसे अब नातेदारी भी टूट गयी है।

अब नहि सार लेत यह हमरी, मोसे भीख मँगाता। बसते गृह प्रिय लगत न इसको, करत फिरत उत्पाता।।
मन्द सुगंधित शीतसमीरे, यमुना तीरे प्राता। पर्णकुटीरे कूजित कीरे, मम आश्रऊ यह जाता।।

प्रथम तो वैराग्य का उपदेश सिखाकर घर से निकाल दिया किन्तु अब यह मेरी खबर भी नहीं लेता; उल्टा घर-घर में मेरे से भीख मँगाता है। अरी मैया, इस कृष्ण को सुख से बसे हुए घर अच्छे नहीं लगते। यह चारों ओर बड़ा उपद्रव करता फिरता है। इस कारण ही यह नारद का पिता, बाबा है। भाव-नारद ने भी ऐसे ही दक्ष प्रजापति के पुत्रों को बरबाद किया था। मैया इसकी और करतूत सुन- मैंने घरबार त्यागकर भजन के लिये यमुना किनारे कुटिया बनाई हुई है। यह वहाँ प्रात:काल मंद-मंद सुगन्धित शीतल पवन चलने पर, पत्तों की कुटियों में वा अन्य (छोटी) कुटी में जहाँ पर शुक (तोते) आदि पक्षी मधुर शब्द करते हैं, ऐसे सुन्दर यमुना के किनारे प्रात:काल ही यह कृष्ण मेरे आश्रम में आ जाता है।

एक ठौर में बास करे नहि, योगी आगम गाता। देश देश में सैल करो तुम, याविध यह बहकाता।।
उत्पाती को सुख से बैठा, मानव नाहिं सुहाता। पर्णकुटी में जो कुछ पावत, सो सब कृष्ण लुटाता।।

और शिक्षा देता है कि योगियों को चाहिये कि एक स्थान पर सदा वास नहीं करें। चलता-फिरता रहे, इस प्रकार यति धर्मों में शास्त्रों ने कथन किया है। जब तुमने घर त्यागा है तो देश-देशांतर में भ्रमण करो। जिससे किसी में रागद्वेष न होने पावे। अरी यशोदा, इस प्रकार यह तेरा लाला हमें बहकाता (भ्रम में डालता) है। इस उपद्रवी कृष्ण को तो सुख से बैठा हुआ मनुष्य अच्छा नहीं लगता है। हमारी पत्तों या फूस की अल्प कुटी में जलपात्रादि जो कुछ भी पाता है, वह सब तेरा लाला कृष्ण लुटा देता है। संग्रह करने से मोह बढ़ता है, यह कहता है।

क्या करिये हम जायँय कहाँ अब, तव सुत अति दुख दाता। ममन मन मोती यह हर लाया, तब से कर नहि आता।।
तुमरी गोदि छिपा अब आकर, नहि निज वदन दिखाता। ऐसा नटखट सुत तुम जाया, इससे रखत विधाता।।

अब हम कहाँ जायें, क्या करें, किस जगह जाकर के बसें, क्योंकि तेरा पुत्र अब अत्यंत दु:ख दे रहा है। देख री मैया, मेरा मनरूपी मोती यह कन्हैया जब से चुरा लाया है, तब से अब यह मेरे हाथ नहीं आता। अब यह श्यामसुन्दर तेरी गोद में आकर छिप के बैठ गया है, लज्जा के मारे यह कृष्ण अब अपना मुख हमें दिखाता ही नहीं, क्योंकि चोर जो हुआ। हे यशोदा, तुमने ऐसा नटखट, चतुर चालाक पुत्र पैदा किया है, इसकी चतुराई से विधाता (ब्रह्मा) ही रक्षा करे तो जीव बच सकें और कोई बचने का उपाय नहीं।

गृह से बाहिर आवेगा जब, याद करेगा माता। बदला अपना सब अब ल्योंगी, मम मन बहुत रिसाता।।
चलिये आली अपने गृह को, यहाँ न कछू बसाता। तव मम दो बातें अब होंगी, केशव क्यों घबराता।।

गुस्से में आकर योगिनी बोलीं- कन्हैया, यहाँ तो मैया की गोद में छिपके बैठा है, जब घर से बाहिर आयेगा, तब माता को

याद करेगा। तुमने मेरे को जो सताया है, उसका बदला अब मैं लूँगी, क्योंकि मेरा मन तेरी नटखट अदा पर बहुत ही रिसा रहा है। अब साथ की सखियों से कहती है- अरी सखियों, अब अपने घरों को चलिये, क्योंकि यहाँ पर अब हमारा कुछ भी बस नहीं चलता। (प्रणय कोप से) हे सुन्दर केशवाले कृष्ण, तू क्यों घबराता है, तेरा बल मैं देखूँगी। प्रेमरूप क्रोधकर भली प्रकार भरी हुई ब्रज की स्त्रियाँ उस समय तो अपने-अपने घरों को चली गईं।

तब सब गोपियों ने आपस में सलाह की कि एक दिन माखनचोर को दहीसमेत पकड़कर यशोदा के पास ले जाना चाहिये। सो एक दिन मोहनप्यारे किसी ब्रजबाला के घर में माखन आदि चुराकर खा रहे थे। जब कई गोपियों ने मिलकर उन्हें पकड़ लिया और उनके साथी ग्वालबाल वहाँ से भाग गये तब गोपियाँ केशवमूर्ति को पकड़कर यशोदा के पास ले चलीं। उस समय ब्रजनाथजी ने अपनी माया से ऐसा छल किया कि उस गोपी को उसके पति का हाथ पकड़ा दिया और आप वहाँ से अन्तर्धान होकर ग्वालबालों में खेलने लगे। उस गोपी ने हरिइच्छा से यह भेद नहीं जाना कि मैं अपने पति का हाथ पकड़े जाती हूँ। उसके साथ जो गोपियाँ थीं, उन्होंने भी उसे नहीं पहिचाना।

करतफिरत उत्पातअतिसब्रव्रजघर घर जाय। नित उठि खेलतफागुरीगरियावतनलजाय।।

गोपियाँ मैया यशोदा से बोली- जब हम लोग उलाहना देने आती हैं तब तुम भी हमें झूठी बनाती हो सो आज श्यामसुन्दर को माखन चुराते व खाते पकड़कर तुम्हारे पास लाई हैं। जब गोपियाँ इसी तरह का बहुत उलाहना दे चुकीं तब यशोदा बोली कि मेरा मोहनप्यारा कहाँ है? हे बहिन, तुम किसे पकड़कर लाई हो, तुम अपने चोर का मुख तो देखो, तब तुम्हारा सत्य व झूठ खुल जायगा। मेरा श्रीकृष्ण तो कल से घर के बाहर भी नहीं निकला। यह बात सुनकर जैसे उस गोपी ने अपने चोर का मुख देता तो अपना पति दिखलाई दिया। यह चरित्र देखते ही उसने उसका हाथ छोड़ दिया और लज्जित होकर हँसने लगी। तब यशोदा ने सच्ची बन कर गोपियों से कहा कि मेरे बालक को तुम लोग वृथा चोरी लगाती हो, मेरा कन्हैया पाँच वर्ष का चोरी योग्य नहीं है। तुम मेरे प्राणप्यारे से मत बोला करो। यह बात गोपियों से कहकर यशोदा ने मोहनप्यारे से कहा कि हे बेटा, मेरे बर्जने पर भी चोरी करना नहीं छोड़ता।

सुनिसुनि लाजन मरत मैं तूनहिं मानत बात। अबतोहिं राखौं बाँधिकै जानी तेरा घात।
मोपे लीजे श्याम दधि माखन मेवा मधुर। सब कुछ तेरे धाम पर घर बायबलाय तुव।।

यह बात सुनते ही मोहनप्यारे ने तुतलाकर कहा- हे माता, तुम इन लोगों के कहने का विश्वास मत करो। ये सब मेरे पीछे-पीछे फिरा करती हैं, कभी मुझे दूध व दही के बर्तन, कभी बछड़ा पकड़ाकर अपने घर के अनेक काम मुझसे कराती हैं मेरी झूठी चुगली आकर तुमसे खाती हैं। कभी दोहिनी बछड़ा पकड़ाती हैं कभी घरकी टहल कराती हैं, कभी मुझे द्वार बिठाकर अपने घरकी रखवाली कराती है और अपने कामको चली जाती हैं। अब झूठमूठ आकर तुमसे चुगली करती है।

सुनकै कान्ह कहत तुतलाय, मति मैया तू इन्हें पतियाय। झूठी गोपी झूठहि बोलें, मेरे पीछे लागी डोलें।।

एक गोपी यमुना जल भरने गयी थी। यमुना जल की गगरी लिये जैसे ही अपने घर के द्वार की देहरी पार की तो देखती की देखती रह गयी। यशोदा नन्दन ने अपने संग के सखाओं के साथ बन्दरों को लेकर सारा घर उजाड़ दिया। दूध दही फैला दिया, मटकियों को तोड़ दिया। आँगन में दूध दही की कीच मचा दी और बाँटते हुए जाते जाते अँगूठा दिखाया और जीभ बाहर निकालकर गोपियों को चिढ़ाया।

तेजस्वी ने अपने घर पहुँचते ही एक बड़ी सी दही की कमोरी आँगन में पटक कर तोड़ दी। आँगन में फैले हुए उस दही को खाने के लिए बन्दरों की सेना दौड़कर आयी। बहु संख्यक पक्षियों ने आकर प्रेम सहित दही खाना आरम्भ कर दिया। छींकें के ऊपर रखे माखन को श्याम सुन्दर ने नीचे गिरा दिया।

माखन की मटकी कन्हैया ने गिरायी तो अर्जुन, तोक और वरूथप ऊँची आवाज में उछलकर बोले वा भाई वा, बल्ले बल्ले। कन्हैया ने झट अपने मुख पर अँगुल रखकर चुप रहने का संकेत किया और धीरे से कहा हल्ला मत करो नहीं तो हम सब पकड़े जायेंगे। भद्र ने भी अपनी लठिया घुमाकर एक माखन की कमोरी पर जोर से मारी इस प्रकार दूसरी माखन की मटकी भद्र ने तोड़ दी। उत्पला ने दही की कमोरी भला ऊँचे छींके पर क्यों टाँगकर रखी थी।

गोपियाँ घर के किवाड़ों को खोलकर माखन की मटकी धरकर कन्हैया की लीला देखने के लिये कहीं ओट में छिपकर बैठ जातीं। दिन प्रतिदिन चोरी लीला की संख्या बढ़ने लगी। जिन गोपियों के घरों में कन्हैया नहीं पहुँच पाते उन मोहल्ले की गोपियों ने मिलकर प्रस्ताव रखा कि कन्हैया के दर्शन कैसे हों? सब की सब अपने-अपने घरोंमें अपनी अपनी मटकी को स्वयं तोड़कर यशोदा को उलाहना देने चलीं।

कृष्ण अपने साथियों के साथ माखन चुराने गए। उन्होंने छोटी खिड़की से झांककर देखा कि एक भोली-सी गोपी दही मथ रही है। उसने मथानी को देखा कि मटके में माखन आ रहा है। माखन तैयार देखकर वह मटकी मांगने के लिए चली गई। कृष्ण को मौका मिला। वे सूने घर में घुस गए। हण्डी का सारा माखन खा गए। दही की मटकी को खाली छोड़कर सभी बाहर आ गए। इतने में वह गोपी मटकी लिये हुए आ गई। सब बालक निकल रहे थे। कृष्ण के हाथ में माखन और मुंह पर दही लगी हुई थी। उसने कहा कि मुंह में मक्खन लपटाए हुए ब्रज के बालकों को साथ लिए हुए कहां आए थे? कृष्ण तुरंत बोल उठे- यह मेरा साथी खेलते हुए उठकर भाग आया था और इस घर में छिपा था। ऐसा कहकर एक बालक का हाथ पकड़कर वे ब्रज की गली में निकल गए। सूरदासजी कहते हैं कि वह गोपी श्रीकृष्ण की छवि देखकर ठगी-सी रह गई, उसे लगा कि उसने अपनी अंजलि भरकर अपने को श्रीकृष्ण पर अर्पित कर दिया। उसका मन कृष्ण के द्वारा हर लिया गया।

चली ब्रज घर-घरनि यह बात। नंद-सुत संग सखा लीन्है, चोरि माखन खात।।
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ। कोउ कहति, मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ।।
कोउ कहति किहि भांति हरि कों, देखौं अपनै धाम। सद्य माखन देउं आछौ, खाइ जितनौ स्याम।।
कोउ कहति मैं देखि पाऊं, भरि धरौं अंकवारि। कोउ कहति, मैं बांधि राखौं, को सकै निरवारि।।
जोरि कर बिधि कौं मनावति, पुरुष नंदकुमार। सूर प्रभु के मिलन कारन, करतिं बुद्धि विचार।।
शोभा मय सुन्दर ब्रजहिं घर घर फैली बात। करि चोरी लइ सुहृद सँग प्रभु दधि माखन खात।।

गोकुल के घर-घर में यह बात फैल गई कि कृष्ण अपने सखाओं को लेकर चोरी करके मक्खन खाते हैं। कोई कहती कि कृष्ण अभी-अभी मेरे घर में दौड़कर घुसे थे। कोई कहती कि मुझे अपने द्वार पर खड़े देखकर उधर भाग गए। कोई कहती कि किस प्रकार कृष्ण को मैं अपने घर में देखूं, ताजा मक्खन उनको खाने को दूं, जितना भी वे खाएं। कोई कहती यदि वे मेरे घर में आते तो मैं अंकमाल देकर उन्हें गले लगाती। कोई कहती कि मैं उन्हें अपनी भुजाओं के बंधन में ऐसा बांधती कि कोई उन्हें छुड़ा ही नहीं सकता। वह हाथ जोड़कर परमेश्वर से मनाती है कि श्रीकृष्णजी उसे पति रूप में मिलें।

सूरदासजी कहते हैं कि श्रीहरि से मिलने के उपरांत सभी अपनी-अपनी बुद्धि से विचार करती हैं।

सब गोपियों का तन, मन, धन, गति, प्रेम, रति, मति, प्रान सब कुछ कृष्ण भगवान को अर्पित था कब प्रभु आएँगे बस एक ही इच्छा थी सोचती हुई सभी प्रभु का ब्याकुल होकर प्रतीक्षा करती थीं। बहुत विलम्ब देखकर विचार करने लगती थी कि कहीं यशोदा ने मेरे श्याम को रोक दिया क्या। सुख की रास मेरे प्राण धन कान्हा क्या इस तुच्छ दासी के भवन को पवित्र नहीं करेंगे क्या। सभी के शोक का हरण करनेवाले मेरे तुच्छ माखन भोग को ग्रहण नहीं करेंगे क्या। सभी गोपियों का प्राण अपने सर्वस्व ब्रज भूषण के लिए अत्यन्त ब्याकुल रहते थे क्षण क्षण युग के समान बीतता था।

प्रातकाल ते निसिहिं लगि निसि ते प्रात: कालु। सकल काज प्रिय कृष्ण लगि गोपिन्ह रहतिं बेहालु।।

प्रात:काल को सायंकाल तक रात से प्रात:काल सभी काज अपने परम प्रिय कृष्ण के लिए ही करती थीं सभी गोपियाँ बेहाल रहती थी। कोई केवल देखना चाहती है- वह आ जाय और सखाओंके साथ प्रसन्न होकर भरपेट खाय। भले मेरे सब भाण्ड फोड़ जाय। कोई चाहती हैं- कितना भला लगता है जब अँगूठा दिखाकर मटकता है। आज खूब खीझूँगी और वह हँसेगा, मुख बनावेगा। मैं चिल्लाऊंगी तो सब ताली बजाकर कूदेंगे। कोई भागते चपल-चरण देखना चाहती हैं और सोच-सोचकर ही हँस रही हैं- कितना धृष्ट है। आँख दिखाओ तो मुखपर माखन का लोंदा मार देता है। रूष्ट मत हो, तू भी खा मुखमें दूध या छाछ भरकर सीधे मुखपर कुल्ला कर देगा- इतना गरम मत बन, शीतल हो जा। कोई चाहती है कि पकड़ ले और तब ये नीलसुन्दर कर छुड़ानेको उलझें उससे। कोई पकड़कर सचमुच मैयाके समीप लाना चाहती है- व्रजेश्वरीके समीप उपालम्ब देने पहुँचो तो यह कितना सीधा, भोला, सभीत बन जाता है और मैयाकी दृष्टि बचाकर आँखें भी तरेरता है।

यशोदा की बात सुनकर गोपियां यशोदा के चरणों में गिर पड़ी और बोली- मैया यशोदा, ऐसी कोई बात नहीं जिसके कारण तुम दुख से परिपूर्ण हो जाओ। तुम्हारे लाला श्याम सुन्दर के दर्शन के बिना हमारा हृदय व्याकुल होने लगता है। वह अधिक समय तक हमारी आँखोंके सामने रहे यही हमको अच्छा लगता है।

प्रभु केवल नन्दहिं के नाहीं। प्रियतम सब ब्रज बासिन्ह काहीं।
ब्रज बासिन्ह जन करन सुखाने। मथुरा ते प्रभु ब्रजहिं पधारे।।
सूने घर में ढूँढ़े जाय, जो पावें सो देंय लुटाय। जिनको घर में सोते पावें, तिनकी ढकी दही ढरकावें।।
दूध दही माखन मही, बचे नहीं ब्रज माँझ। ऐसी चोरी करतु है, फिरत भोर अरु साँझ।।
शंकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावें।
नेक हिए में जो आवत ही रसखान महाजड़ मूढ़ कहावें।।
जापर सुन्दर देववधू नहिं वारत प्राण अबार लगावें।
ताहि अहीर की छोकरियाँ छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं।।

कृष्णने देखा कि एक गोपी यमुना जा रही है। आप उसके घर में पूछते हुए गए कि बताओ घर में कौन है? घर के अंदर जाकर देखा कि दो ग्वाल-बाल हैं। कृष्ण के साथियों की भीड़ देखकर वे दोनों बच्चे रो पड़े। फिर एक साथी की पीठ पर चढ़कर कृष्ण ने छींका (रस्सी से लटके मक्खन व दूध के मटके) उतार लिया। उन मटकों का सारा माखन और दही सब मिलकर खा गए और दूध को जमीन पर गिरा दिया। घर के सारे बछड़ों को भी खोल दिया। वे सब वन की ओर चले गए। उन दोनों बच्चों के ऊपर मट्ठा छिड़क दिया और अपने साथियों को भगा दिया। उस गोपी को अपने घर की ओर आते देखकर उसकी सखियों ने दौड़कर उसके घर का सारा हाल उसे सुना दिया। उसने आकर घर में कृष्णजी को देखा तो वह पौड़ी (बाहर के दरवाजे) पर खड़ी हो गई। उसके हृदय में तो कृष्ण के लिए प्रेम भरा है, पर ऊपर से उसने क्रोध दिखाया और पूछने लगी। कृष्ण का मुख देखकर वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठी। तब कृष्ण ने उसके हृदय पर नाखून से चोट की। इससे वह रसानंद के वश हो गई। उसे न घर की याद रही, न शरीर की। सूरदासजी कहते हैं कि उसने कृष्ण को भुजा से पकड़ा और यशोदाजी के पास ले गई।

गोपी कहने लगी- हे यशोदाजी, तुम मेरी बात मानो। तुम्हारे पुत्र ने घर का सारा गोरस खोजकर चुरा लिया है। इस पर यशोदाजी ने कहा कि तू यह कैसे कहती हैं कि किसी ग्वाल-बाल के कंधे पर चढ़कर कृष्ण ने तेरा सारा छींका ही उतार लिया। यह तो घर में धौरी (सफेद) गाय का दूध भी नहीं पीता तो इसने तुम्हारे घर का छींका उतारकर कैसे सारा गोरस खा लिया? यह सवेरे-सवेरे तू कैसी ढिठाई की बात करती हैं कि कृष्ण ने तेरे हृदय पर नख-क्षत किया। मेरा बेटा इस प्रकार

की शरारत नहीं कर सकता। तू कैसी बातें बना रही हैं। गोपी बोली कि मैं क्या कहूं, शरम लगती है, यदि आप कहें तो मैं खोलकर शरीर दिखा दूँ? सूरदासजी कहते हैं कि इनके बड़े गुण हैं, पर यहां पर बच्चे बन जाते हैं।

गोपी कहती है कि हे यशोदाजी, मैं तुमसे कृष्ण के गुणों की क्या बात कहूं? अभी-अभी मेरे घर इन्होंने जो रंग दिखाए, उन्हें सुनो। मैं अपने घर में दही मथ रही थी कि अचानक वे वहां आए और मुझसे कहने लगे कि तुम मेरी बात सुनो, मैं मुस्कराती रही। फिर इन्होंने बांह पकड़कर मेरी चोली फाड़ डाली और अपनी बांहों के बीच भर लिया। शरम की बात कहते नहीं बनती। आप मेरा हृदय खोलकर देख लीजिए। बुरी तरह से निरादर करके माखन खाते हैं। यह तुम्हारे बेटे की करतूत है। सूरदासजी कहते हैं कि ऐसा करने के बाद तुम्हारे आगे वह छोटे बच्चे-से बन जाते हैं।

एक बार एक गोपी आयी और बोली अपने लाला की करतूत देख ले। उसने हमारे घर का सारा दूध फैला दिया और मेरे आँचल को फाड़कर मुझे लज्जित किया और यह देखो हमारा हाथ पकड़ कर चुड़ियाँ फोड़ दीं। मैया अभी तो इसकी छोटी अवस्था है। मैया यशोदा ने लाला की तरफ देखा और गुस्सेमें बोली- क्यों रे लाला, क्या यह गोपी ठीक कह रही है।

लाला गोपी बहुत रिसाई।

अब नहि बाहिर तुमने जाना, पीटेंगी दुख पाई। कौन प्रकार मनावूं इनको, ब्रज तज वनिता जाई।।

घर घर निंदेंगी यह तुमको, होगी तव न सगाई। जग में हाँसी होगी हमरी, हमरा धर्म पलाई।।

हे लाला कृष्ण, गोपियाँ तो अब बहुत ही क्रोध में भर गई हैं, इस कारण अब तुम्हें घर से बाहिर जाना ही नहीं, क्योंकि तेरे द्वारा दु:खियाई हुई गोपियाँ तेरे को अकेला पाकर पीटेंगी। अब तू ही बता कन्हैया, इन गोपियों को मैं किस तरह से मनावूँ, क्योंकि ये गोपियाँ ब्रज त्याग कर देशांतर जा रही हैं। यह तो अब तुम्हारी घर-घर निंदा ही करेंगी। इस कारण से बेटा कृष्ण, तेरी सगाई भी नहीं होगी और हमारी भी जगत् में हँसी होगी। लोग कहेंगे- देखो, नंदराज का लड़का कृष्ण चोर है। इतना बड़ा हो गया है, अब तक उसकी सगाई भी नहीं हुई। हाँ भाई ठीक है, बुरे का साथी कौन है ऐसे कहेंगे। दूसरी लज्जा की बात यह है कि हमारा धर्म है प्रजा का पालन करना। जब गोपियाँ रुष्ट होकर ब्रज से चली जायेंगी, तब हमारा धर्म भी साथ ही चला जायगा।

कन्हैया बोले- मैया तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ मैं तो यह भी नहीं जानता की इसका घर कौनसी गली में हैं यह सब झूठ बोलती है। ये गोपियां बड़ी चालाक और चतुर हैं तू इनकी बातका विश्वास मत कर। यशोदा मैया ने लाला का कान पकड़ लिया। कृष्ण बोले- **मैया सुन तू हमरी बात।**

तुमसे नहि मानेंगी गोपी, सोच करें मत माता। मो में प्रेम करत सम जननी, और न इनहि सुहाता।।

अब जा उनको फेर लिआवो, पड़कर पद जलजाता। भव सुख त्यागी अनुरागी का, मोहि मनावन आता।।

हे मैया, तू मेरी बात सुन, ये गोपियाँ तुम्हारे से नहीं मानेंगी, इनके निमित्त तू चिन्ता मत करे। ये ब्रज की गोपियाँ मेरे में माता के समान प्रेम करती हैं। इनको मेरे बिना और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब तू जा करके उन गोपियों को लौटा करके ले आ। (लाला कन्हैया, मैं कैसे लाऊँ, युक्ति बता तो सही) सुन मैया- गोपियों के चरण कमलों में पड़कर अर्थात् उनके चरणों में माथा रखकर उनको ले आ। मैया, जिन्होंने संसार के सुखों को त्याग दिया है और मेरे में ही केवल प्रेम किया है, उनको मनाना तो मेरे को ही आता है।

कन्हैया बोले- ये गोपी जबर्दस्ती मेरे मुँह पर माखन लगा देती हैं और चोर-चोर कहकर मेरी बदनामी करती हैं। तू तो मन की भोली हैं, जो इनकी बातोंमें आ जाती हैं। मैया बोली- आज के बाद तुमने उधम किया तो मैं तेरी पिटाई करूँगी।

मैंया मैं नहिं माखन खायौ। भोर भई गयो गैयन के पाछे, मधुबन मोही पठायो।।

ग्वाल-बाल सब बैर परत है। बरबस मुख लपटायौ।।

तू जननी मन की अति भोरी। इनके कहे पतियायो।।
झूठी गोपी झूँठे ग्वाल, झूँठ बजावें तुम से गाल। बरबस मुख गोरस लिपटाय, झूँठी लगावें तुम से आय।।
भोरी मैया करो पत्याय, झूँठो मुझको त्रास दिखाय।।
इनको पतियारो करे, मैं तस्कर ये साह। चौर नाम मेरौ धर्‌यौ, मेरो होन न देंगी ब्याह।।
देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ।। हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं, मैं कैसे करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ। डारि सांटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।।
बोल बिनोद-मोद मन मोह्यो, भक्ति प्रताप दिखायौ। सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहीं पायौ।।

कृष्ण कहते हैं कि हे मां, मैंने माखन नहीं खाया। हंसी खेल में मेरे इन सखाओं ने मेरे मुख पर माखन लपेट दिया है। तू ही देख बर्तन तो छींके पर कितने ऊँचे लटके हुए थे। मैं भला अपने छोटे हाथों से उन्हें कैसे उतार सकता हूँ। इसके बाद मुख का दही पोंछकर एक चतुराई की बुद्धि दिखाई। दोने को पीठ के पीठे छिपा लिया। इस पर छड़ी को फेंककर मां यशोदा मुस्करा पड़ीं और कृष्ण को गले लगा लिया। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपने बाल-विनोद से सभी के मन को मोहित कर लिया और अपनी भक्ति का प्रताप दिखााय कि किस प्रकार भगवान अपने भक्त (यशोदा) के वश में खेल रहे हैं। यशोदा मां का यह सुख अपार है, भगवान शंकर और ब्रह्माजी भी इसे नहीं पा सकते।

कृष्ण गोपियों से बोले- **ब्रज त्याग तुम न जावो, सुन गोप की कुमारी। तुमरे बिना न मोको, ब्रज लगत पलक प्यारी।।**
निज जन प्रमोद कारण, मैं मनुज देह धारी। मम मन अधीर होवत, नित निरख रति तुमारी।।

कृष्ण बोले- हे गोपों की कन्याओं, आप ब्रज को त्यागकर बाहिर मत जावो। देखो, तुम्हारे बिना, मेरे को ब्रज एक पलभर भी अच्छा (प्यारा) नहीं लगता है। देखो, अपने दासों के सुख के निमित्त मैंने मानुष शरीर धारण किया है। यद्यपि मैं पूर्णकाम हूँ, किन्तु तुम्हारे अनन्य प्रेम को देख करके मेरा मन भी धैर्य-रहित होता है। मैं अपनी स्वतन्त्रता को भी त्याग देता हूँ।

मैं मात तात बन्धू, ब्रज गोपिका विचारी। किस हेत तुम रिसा के, बि करत मोहिं न्यारी।।
जो अस तुमारि मरजी, क्यों प्रीति जाल डारी। युग चरण कमल तुमरे, यह सीस है हमारी।।

यद्यपि मैं सर्व का माता, पिता हूँ, तथापि ब्रज की गोपियों को ही मैंने अपना माता, पिता, बांधव निश्चय किया है। अब तुम किस कारण क्रोध करके मेरे को त्याग रही हो? यदि आपकी प्रथम से ही ऐसी इच्छा थी, तो मेरे से प्रीति का जाल ऐसा क्यों डाला था? मैं तो आपके प्रेम को देखकर के ही आपके अधीन हुआ हूँ।

निज जन वत्सल श्याम के, सुनकर वचन विशाल। गोपी जनने कृष्ण को, गोदि लिया तत्काल।

अपने दासों से प्यार करनेवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण प्रभु के इस प्रकार से बड़ी नम्रता के स्नेहभरे वचन सुनकर गोपीजनों ने तत्काल (शीघ्र ही) परम प्रिय प्राणाधार श्रीकृष्ण को गोद में ले लिया।

भक्त विवशता श्याम की, देख देख व्रज दार। रोमांचित गद्‌गद् गिरा, बोलीं प्रेमागार।।

और ब्रज की स्त्रियाँ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण को भक्त के अत्यन्त अधीन हो जाना देख-देख के जिनके शरीर के रोंगटे प्रेम के कारण खड़े हो गये हैं और वाणी, कंठ गद्‌गद् होने के कारण रुक गयी है, पश्चात् बड़े धैर्य से प्रेम की गृह (प्रेममूर्त्ति) गोपियां बोली- हे गोविन्द, हे भक्तों के पयारे, हे लक्ष्मीपते, हे मुरदैत्य के शत्रो। आप की महिमा कौन कवि कह सकता है? अर्थात् कोई भी कहने में समर्थ नहीं। अधिक या कहें, वेद भी आपकी महिमा का पार (अन्त) नहीं पा सकता जी, तो हम कैसे आपकी महिमा का पार पा सकें। हम तो पुत्र या अपने शरीर में ही अधिक प्रेम करनेवाली, अनेक दोषों से दूषित, कलंकित, मन्दबुद्धि वाली ब्रज की स्त्रियाँ हैं। आपने अपनी उदारता से ही, अपरे चरण-कमलों की प्रीति देकर, हम अधर्मों

को भी अपने दर्शन का अधिकारी (योग्यपात्र) बना लिया है।

जन्म जन्म में तव प्रीती, माँगें गोद पसारी जी। हम तव दर्श पिपासी तड़फत, जिम मछरी बिन वारी जी।।

हम तो परमात्मा से यही प्रार्थना करती हैं कि हम अपने कर्मों के अनुसार किसी जन्म-जन्मान्तर में जावें, तो वहाँ पर भी आपके चरणकमलों में प्रेम होवे, यही गोद (पल्ला) पसार कर माँगती हैं। हम आपके दर्शन की प्यासी ऐसी तड़फती-बिलबिलाती रहती हैं, जैसे जल के बिना मछली तड़फे है। हमारे प्राणाधार आप ही हैं। हे प्रिय श्यामसुन्दर, हमने तो उराहने के बहाने से ही आपके मुख-कमल की कांति (शोभा) को देखा है। बिना किसी निमित्त के परघर जाना हम कुलांगनाओं का कठिन था। हे माधव, जो हमने आपको गाली दी हो, तो हमारी जीभ जल जावे।

विरह विकल हो प्रणय कोप से, वचन कठोर पुकारी। आरत कौन कुकर्म न कर है, लोभी अघ न विचारी।।
अनृत उपालंभ हमने दीने, क्या गति होय हमारी। क्षमा करो अपराध हमारे, अपनी ओर निहारी।।

पर क्या करें, आपके वियोग से व्याकुल होकर, हमने प्रणय-कोप से अर्थात् मन में प्रेम, ऊपर क्रोध दिखाकर, ये कठोर वचन कहे हैं। लाला कन्हैया, आप ही विचारो कि दुखिया पुरुष कौन बुरे कर्म नहीं करता है, लोभी पुरुष कौन पापकर्म नहीं करता है। हमने तो आपको मिथ्या ही उलाहने दिये हैं। अब हमारी क्या गति (दशा) होगी, अर्थात् बुरी होगी। अब हमारी अन्तिम यही प्रार्थना है कि अपने दयालु, परमोदार स्वभाव की ओर देख करके, हमारे अपराधों को क्षमा करो।

कन्हैया की नित्य नयी नयी चंचलता बढ़ती जाती है और गोपियाँ उनको और बढ़ाकर यशोदा से बताती है। वे नई नई रसीली बाणियाँ बोलती हैं और नन्द भवन में चलकर अपने उलाहनों से रस घोलती हैं।

यशोदा सुन सुन कर भ्रमित होती हैं कि यह सच कह रही हैं या झूठ, यह नहीं जान पाती जिन गोपियों को श्रीकृष्ण करोड़ों प्राणों से भी प्यारे हैं उनके वे नित्य नये नये दोष यशोदा से बताती हैं।

यशोदा गोपियों की मन की नहीं जान पाती इसलिये वह उलाहना सुनकर सकुचा जाती हैं। मैं उनकी कड़वी बातों को दुखी होकर सुनती हूँ जिससे मेरा शरीर कैसा दुबला हो गया है।

ब्रज की ढीठ ग्वालिनियाँ आती हैं वे बड़ी निर्लज्ज हैं और कडुवे बचन सुनाती हैं।

एक दिन एक ग्वालिनी आयी और इठलाती हुई बड़ी गुस्से में बोली।

तू तो बड़े बाप की बेटी है और तेरा लाला बड़ी मैया का लाला है। उसमें बड़े गुण भरे हुये हैं और उसमें बड़ी चतुराई भरी हुई है।

वह सखाओं की भीड़ लेकर घर में घुस आता है स्वयं खाता है और सखाओं को खिलाता है सखाओं से बचा हुआ बन्दरों को लुटा देता है और बन्दरों का बचा हुआ पृथ्वी पर ढलका देता है।

उसकी बात को सुनकर उसको कुछ देकर सन्तुष्ट किया और बार बार उससे बिनती की और यह बन्धन लगा दिया कि कन्हैया यमुना तट को छोड़कर कहीं न जाय।

श्रीकृष्ण ने मैया की बात मान ली और सखाओं के साथ यमुना तट पर खेलने लगे। वे पत्तों की नाव बनाकर जमुना में बहाते थे और उसका तैरना देख कर प्रसन्न होते थे।

खेलते खेलते वे जल में घुस गये मैय्या ने यह देखकर कि कहीं यह डूब न जाय, हाय। हाय करके दौड़कर उठा लिया और फिर कुछ सोचकर कहा कि अरे कन्हैया अब तू ग्वालों के साथ आँगन में ही खेल।

मैया अत्यन्त गम्भीर मन से सोचने लगी कि लाला सखियों से इतना प्रेम क्यों करता है और उपाय सोचने लगी कि किस प्रकार इसका गोपियों के घर जाना छुड़ाऊं और किस प्रकार इसको समझाऊँ।

मेरा अच्छा मक्खन इस लाला को बिलकुल नहीं अच्छा लगता और जब मैं सैकड़ों बार विनती करती हूँ तब थोड़ा सा

खा लेता है। किन्तु गोपियों के घर में हठ-हठ कर जाता है और वहाँ चुरा-चुरा कर खाता है। हे इष्टदेव नारायण, अब इसके लिये मैं क्या करूँ मुझे कोई उपाय नहीं सूझता। भला मैय्या उनके उस स्वरूप को क्या जाने।

एक दिन लाला बोले कि सखी, चली चल। रास्तेमें मिल गयी एक गोपी। लालाने इशारेसे उसको पास बुलाया और इशारेसे ही यह समझकर कि उनका हाथ दु:ख रहा है, उस गोपीका हाथ आगे चलनेवाली गोपीके हाथमें थमा दिया। आगे-आगे चलनेवाली गोपीको यह पता नहीं चल सका कि उसने लालाका हाथ छोड़कर दूसरी गोपीका हाथ पकड़ लिया है। वह पहुँची यशोदा मैयाके पास और कहा कि तेरे बेटेको पकड़कर लायी हूँ, यह चोर है।

मैयाने देखा तो लालाकी जगह लाली दिखायी पड़ी। मैयाके यह पूछनेपर कि तू कौन है बेटी, उसने बताया कि मैं गोविन्द गोपकी बेटी हूँ। इसके साथ कैसे आयी है? उसने बताया कि मैं गोबर पाथ रही थी, वहींसे यह मुझे पकड़कर लायी है। अब तो लालाको पकड़कर लानेवाली गोपीके होश गुम हो गये और उसे उल्टे उलाहना सुननेको मिला।

गोपियोंने इस तरहकी बहुत-सी घटनाओंकी चर्चा करते हुए कहा कि यशोदाजी, तुम्हारा लाला बाहर तो ऐसी-ऐसी करतूतें करता हैं, किन्तु तुम्हारे पास ऐसे खड़ा होता है मानो मूर्तिमती साधु हों।

मैया बोली- जो तुम लोग सच्ची हो तो चुराते समय उसको मेरे पास पकड़ लाओ। यह बात सुनकर सब ब्रजबाला अपने-अपने घर चली गईं।

घर-घर प्रकटी बात यह सखा वृन्द ले साथ। माखन चोरी खात हैं नन्दसुवन ब्रजनाथ॥
सबके मन अभिलाख चोरी पकर न पाइये। धरिये माखन राख यही ध्यान सबके हिये॥

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित, इस झाँकी का दर्शन करो। माँ यशोदा ब्रह्म का कान पकड़ती हैं। कृष्ण डरके मारे थर-थर काँप रहा है। गोपियाँ उलाहना दे रही है और भगवान कृष्ण मैया की आड़ में खड़े होकर कुछ सहमे हुए से यह सब देख-सुन रहे हैं। वास्तवमें गोपियाँ श्यामसुन्दरका दर्शन कर रही है। उनका प्रयोजन बस इतना ही है कि उन्हें श्रीकृष्ण का दर्शन हो। उनके मनमें होता कुछ है, दिखाती कुछ हैं और देखती कुछ हैं। वे श्रीकृष्णको देखनेके लिए उनपर चोरीका इल्जाम लगाती है पर मनमें तो इतना प्यार है कि उसको किसी-न-किसी बहाने चलकर देख आवें। मैया बोली- अरी गोपियों, तुम मेरी ओर देखकर बोलो, हमारे लाला को छिपकर क्या देख रही हो? यदि हमारे लालाने तुम्हारे घरका माखन खाया है तो भी उलाहने की कोई बात नहीं। इसने खा लिया तो खाने दो। यह तो हमारे घरमें इस तरह नहीं खाता। वास्तवमें प्रेम-प्रसंग ही बड़ा निराला है।

कान्हा की कोसना सुन कसकी करेजा माहि, बालक है कान्ह हाय कहा करि आयो है।
मो सो कहो कोटिन कछु न कहो बालक सो, कैसे दुख झेल झेल बड़ो करिपायो है।
माखन के माट लैकें द्वार पै महर बैठे, तोल तोल लेअ वीर जाको जेतो खायो है।

मैया कन्हैया से बोली- ज्यों-ज्यों बड़ा होते जाता है त्यों-त्यों बिगड़ते जा रहा है। चोरी करने की क्या जरूरत है। हमारे घर कितनी गाय हैं। क्या माखन की कमी है। नौ लख गाय तेरे नंदबाबा के, नित नयौ माखन होय।

मैया, तू भोली है, नहीं जानती कुछ इसकी करतूत। कैसा धूर्तशिरोमणि है यह तेरा सुघड़ साँवरा पूत॥
ननद जा रही थी मेरी वह प्रात: ही अपनी ससुराल। बना रही थी उसको देने शकुन-बटेरी मैं तत्काल॥
लगा रही थी इसके मेंहदी, मेरी देवरानी थी व्यस्त। छतपर थी वह, इधर साँवरा लगा रहा था बाहर गश्त॥
देखा-घर सूना है, आया चुपके-से, घर किया प्रवेश। पक्का चोर, न पैरोंकी आहट भी होने दी कुछ लेश॥
एक-एक कर बुला लिया फिर अन्दर, खोला दधि-भण्डार। घुसे सभी धीरे-धीरे, कर लिये बन्द फिर सब ही द्वार॥
नजर गयी मेरी, दीखे कपाट मुझको दधि-माखनके सारे माट। पता नहीं ये कितने थे सब, कैसे रचा अनोखा ठाट॥

खा-पीकर कुछ मटके फोड़े, होने दी न जरा आवाज। धीरे-से पट खोल, सभी ये भागे निकल मनोहर साज।।
देखा-भाग रहे, मैं दौड़ी, झट जा पहुँची घरके द्वार। तबतक दूर निकल, यह लगा चिढ़ाने मुझको, दे फटकार।।
दिखा-दिखाकर मुझे अंगूठा हँसा विचित्र हँसी यह चोर। उड़ा रोष सब, रही देखती मैं अपलक हँस-मुखकी ओर।।
गयी भूल मैं इसे पकड़ना, इसवके जादूके वश हो। तबतक सब चल दिये नाचते-हँसते, करते हो-हो-हो।।

यशोदा मैया कन्हैया की शरारत की बात गोपियों से बता दिया करती थीं, अत: गोपियों के मन में आया कि यह लाला अपनी मैया के साथ जैसी-जैसी लीला करता है, वैसी लीला हमारे घर में भी आकर करता तो हमारा बड़ा सौभाग्य होता। उन लोगों ने कन्हैया को अपने घर आने का आमन्त्रण दिया। जिस घर में चोरी नहीं हुई वह गोपी अपने आपको कम सौभाग्यशालिनी समझती है। वह सोचती थी कि क्या प्रभु को मेरा घर पसंद नहीं, मेरा मक्खन पसंद नहीं? वे गोपियां कोई शिकायत नहीं कर रही हैं, बल्कि कन्हैया को निमंत्रण दे रही हैं कि हमारे घर भी आना। हमारे घर में चोरी करना, हम खुले कटोरे में माखन रखेंगे।

शुकदेव बोले- परीक्षित, एक दिन भगवान श्यामसुंदर श्रीकृष्ण अपने सखा तनसुखा, मनसुखा, धनसुखा, श्रीदामा आदि के साथ एक ग्वालिन के घर में घुसकर माखन की चोरी कर रहे थे, वह ग्वालिन भी पास ही में कुँए से पानी भर रही थी। माखन का छीका कुछ ऊँचा ही बँधा था, तब वे उक्ति से एक के ऊपर एक के कन्धे पर चढ़कर उसका माखन निकालकर चख-चखकर मीठा-मीठा माखन खाने और खिलाने में मग्न हो रहे थे, इतने में ही वह ग्वालिन आती हुई उनके साथियों को दिखाई पड़ी, तब वे तो चुपचाप वहाँ से निकल भागे और उस ग्वालिन ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया। वह कहने लगी- अरे नन्द के लाला। अब तू कहाँ जायेगा चल आज मैं यशोदाजी से तेरी शिकायत करूँगी। यह कहकर वह ग्वालिन श्यामसुन्दर जी के कोमल हाथ को पकड़ के नन्दभवन की ओर चली जा रही थी। घूँघट तो उसने डाल ही रक्खा था। रास्ते में उनका एक सखा मिला उसने इशारे से श्रीकृष्ण से पूछा लाला कन्हैया क्या बात है और ये ग्वालिन तुझे कहाँ ले जा रही हैं। तब श्रीकृष्ण ने उससे कहा- भैया, ये ग्वालिन मेरा विवाह कराना चाहती है और मैं अभी नन्हासा बच्चा हूँ, अब तू ही बता कि मैं क्या करूँ। वह सखा बोला- अरे लाला, यहाँ ऐसी कौनसी बात है, तेरा मन अभी नहीं है तो मैं ही विवाह कर लूँगा। श्रीकृष्ण ने उस ग्वालिन से कहा, मेरी प्यारी गोपी, देख मेरी कलाई अब दुखने लगी है सो तू मेरे दूसरे हाथ को पकड़ ले। यह कहकर उन्होंने अपने सखा का एवं उसी के देवर का हाथ उस ग्वालिन को पकड़ा दिया और आप उससे पहले ही माता की गोदी में जाकर स्तनपान करने लगे। जब ये गोपी नन्दभवन में आई तो इसने जोर-जोर से कहा- अरी ओ यशोदा मैया। देख आज तो मैं तेरे लाल को रंगे हाथ पकड़ कर लायी हूँ। लो पूछ्ले अपने लाड़ले से। यशोदाजी ने कहा- अरी गोपी, तेरी तो मति मारी गयी है। नेक देख तो सही ये मेरो लाला है या तेरो देवर। गोपी ने जब घुँघटा उठाकर देखा तो बड़ी लज्जित हुई और चुपचाप अपने घर को चली गयी।

गोपियोंने आपसमें विचार किया उनमें से एक गोपी बोली- यह नन्द का लाला तो अब हद करने लग गया है। हम सबका दूध-दही चोरी कर जाता है और उलटे हमीं को झूठी बनाता है। जब भी मैया के पास उलाहना देने जाओ, तो कहता है कि हम झूठ बोलती है। उसके यहाँ कौनसी माखन मिश्री की कमी है। मैया भी उसीका पक्ष लेती है और कहती हैं- तुम्हारे घरसे मेरे घरमें ज्यादा माखन है। फिर कन्हैया क्यों मधुमक्खी की तरह तेरे घर मँडरायेगा। गोपियां बोली- वह प्रेम तो किसी को नहीं करता। सबको उल्लू बनाता है। एक सयानी गोपीने कहा- हम तो उससे प्रेम करती हैं पर। एक दूसरी गोपी बोली- कन्हैया और मैयाको तो पाठ पढ़ाना पड़ेगा। हमें मैया को यह सिद्ध कर देना है कि कन्हैया चोरी भी करता है, झूठ भी बोलता है। इससे मैयाका भ्रम दूर होगा। मैया तो सदा यही कहती है कि कन्हैया को रंगे हाथों पकड़ा दो तब तुम्हारे बात पर विश्वास करूं। गोपियां बोली- तुम्हारा लाड़ला चौर्य कला में पूरी तरह पारंगत है।

एक ग्वालिन छीके के नीचे खाट बिछा कर लेटी थी। लाला ने उसका सब दूध-दही उड़ा दिया। कुछ खट-पट होने पर

जब वह जगी तो उसके मुँह पर ऐसा फूँक मारा कि दूध उसकी आँखों में चला गया। जब तक वह अपनी आँख मले, तब तक तुम्हारा लाला नौ दो ग्यारह हो गया।

बड़ा महँगा पड़ गया कन्हैया दर्शन। यहां यशोदा को शिकायत कर लेने-के-देने पड़ गये। कन्हैया अकेले आता तो जी भरकर इसे दधि-माखन खिलातीं, पर यह तो सारे गोकुलबालकों की सेना ही लिये फिरता है; जैसे अकेले कुछ खाना उसे पसन्द ही नहीं। ऊपर से यह उत्पात। घर-घर में दूध-दही के भाँड़ फूटते रहे तो कल किसी भी घर में एक बर्तन नहीं बचेगा दूध-दही रखने कों।

नँदरानी सुन हँसी कहें मदमाती तुम सब। कनुआ मम ढिँग रहे करे घर घर चोरी कब।।
ऊपरतैं करि रोष कहें गोपी तुम रानी। पक्ष करोगी पुत्र प्रथम ही हमने जानी।।
जो जिह बाहर करतु है, सो घरमहँ हू करेगो। चोरी पकरो दण्ड फिर, दैवो तुमकूँ परेगो।।
सोचे मनमहँ मातु बने जिह कैसे छोरी। कैसे घर घर जाइ करे माखनकी चोरी।।
करि क्रीड़ा सरस श्याम सुख सबकूँ दीन्हों। मातु मनोरथ सिद्ध करहुँ हरि निश्चय कीन्हों।।

मैयाने कहा कि अरी, तुमलोग इसकी बातोंमें मत आओ और दही-दूध-मक्खन ऐसी जगह रखा करो, जहाँ यह पहुँच न सके, इसे मिले ही नहीं। गोपियोंने कहा कि तब तो और भी उपद्रव करता है। गृहपतिपर ही क्रोधित हो जाता है अथवा गृहपर कुपित होकर कहता है कि आज तो दियासलाई लेकर नहीं आया हूँ, कल लेकर आऊँगा और जिस घरमें दही-दूध-मक्खन नहीं मिला, उसमें आग लगा दूँगा। जिस घरमें दही-दूध-मक्खन नहीं, वह कोई घर है, वह तो आग लगाने लायक है। मैया, यह उपदेश देता है कि घर-घरमें गाय रहनी चाहिए, दही रहना चाहिए, दूध रहना चाहिए, मक्खन रहना चाहिए। ऐसा घर हमको बरदाश्त नहीं है, जहाँ यह सब न हो। चलते-चलते बच्चोंको चिकोटी काट लेता है। दो बच्चे एक साथ सोते हों तो उनकी चोटी बाँध देता है। उनको रुला देता है। जब हम उनको चुप कराने जाती हैं, तब यह भाग खड़ा होता है। मैया, यह इतना चालाक है कि इसके सामने किसीकी नहीं चलती। एक नयी ग्वालिन आयी। वह बड़ी बुद्धिमती है। उसने कहा कि हम ऐसी युक्ति करेंगे कि कन्हैया को दही-दूध-मक्खन न मिले। वह अपना सारा दही-दूध-मक्खन ऊपर छींकेपर रखकर नीचे खाट बिछाकर सो गयी। इसपर तुम्हारे लालाने यह चाल चली कि पानीमें-से एक लम्बी नली निकालकर ले आये। उसका एक छोर दूधमें डाला और दूसरा छोर मुँहमें और सप्प-सप्प करके दूध पीने लग गये। कुछ आवाज होनेपर ग्वालिन उठी तो उसके मुँहपर ऐसा फूंक मारा कि दूध उसकी आँखोंमें चला गया। जबतक वह अपनी आँख मले, तबतक तुम्हारा लाला भाग खड़ा हुआ। अरी मैया, हम क्या कहें। तुम्हारे लालाका जहाँ हाथ नहीं पहुँचता, वहाँ वह ऊखलपर, पीढ़ापर, किसी ग्वाल-बालको बैठा देता है और उसके कन्धोंपर चढ़कर किस बर्तनमें क्या रखा है, इसको देख लेता है। उसको मटकोंकी पहचान है और उनमें किस-किस तरहसे कहाँ-कहाँ छेद किया जा सकता है, इसकी जानकारी है। यह ऊपर रखे बर्तनोंमें नुकीले डंडेसे हल्का-सा छेद कर देता है और जब दूध गिरने लगता है, तब साथी ग्वाल-बालोंके साथ नीचे हाथ लगाकर पीने लगता है।

कहा यशोदा गोपियो, धरो अन्धेरे बीच। फिर कैसे ये ढूंढ़ ले, लावे मटकी खींच।

यशोदा जी ने कहा, अरी गोपियों, तुम अपनी माखन की मटकियों को अँधेरे में छिपाकर क्यों नहीं रखतीं? अगर वहाँ रखो तो फिर यह कैसे ढूँढ़कर मटकी उठा लायेगा।

रतन कड़ूला कण्ठा कंगन करधनि धारी। अन्ध कक्ष में याके बल होती उजियारी।।
छुपे अन्धेरे धरे पात्र सब लखे कन्हाई। सभी राह अपनाइ पूर नहि कोई पाई।।

गोपियों ने कहा, हे यशोदा जी। तुमने अपने लाला के कड़ुला, कण्ठा, कंकन, करधनी आदि आभूषणों में जो चमचमाते रत्न जड़वा रखे हैं उनके प्रकाश से अँधेरे कक्ष में भी उजाला हो जाता है और यह कन्हैया अँधेरे में छिपाकर रखी हुई मटकियों को भी देख लेता है तथा अपने सखाओं के साथ मिल बाँटकर चट्ट कर देता है। हमने अपने माखन की सुरक्षा के सभी उपाय करके देख लिये लेकिन किसी में भी सफल नहीं हो पायी।

तुमने ढिंग बैठो देखो कैसे साधू दीखे। बाहर जो जो करें कहें क्या इनकी लीखें।।
नयन तरेरे मातु श्याम अखियाँ भर आईं। चरण पकर मैया के गोपी देत दुहाई।।

गोपियां बोलीं, अरी मैया। देखो तुम्हारा नटखट कन्हैया तुम्हारे पास कैसा सीधा साधा बनकर बैठा है जेसे कोई परोपकारी, भजनानन्दी, अन्तर्मुखी साधु महात्मा हो। बाहर निकलकर जो अचगरी करता है ऊधम मचाता है उसके विषय में तुमसे क्या कहें। गोपियों की बात सुनकर मैया यशोदा ने लाला की ओर क्रोध से नयन तरेरे तो भय के मारे श्याम सुन्दर की आँखों में पानी भर आया। इसे देखकर दर्शनों की प्यासी गोपियाँ, जो झूठे उलाहने के बहाने कन्हैया का मुख कमल देखने आई थीं, द्रवीभूत हो गईं। माता के चरण पकड़कर दुहाई देते हुए मनुहार करने लगीं।

मैया ने कहा- गोपियों, तुम लोग दूध-दही के बर्तनों को अँधेरे में रख दिया करो, उसे अँधेरे में डर लगता है। इस पर गोपियों ने कहा- क्या कहती हो मैया, उसका तो अंग ही प्रदीप है। जिस घर में घुसता है, वहाँ हीरे की तरह चमक जाता है।

यशोदाजी, तुम अपने लालाको भोला-भाला मत समझो, वह हम लोगोंसे बड़ी धृष्टताके वचन बोलता है। कभी-कभी तो वह हमारे घरोंमें हग-मूत देता है।

यदि देखें नहिँ डौल लौटिके पुनि पुनि आवें। जब घर सूनो लखें चोरि दधि माखन खावें।।

एक बोली- मेरे यहाँ माखन तक हाथ नहीं पहुँचा तो लकुटिया लेकर मटकी में छेद कर दिया। उसमें से माखन टपकने लगा तो वो ही हाथ में लेकर चाट गये। मैं जब गोबर लेकर आई तो मुझे देखकर सब कूद-कूदकर भाग गये। एक गोपी बोली- अरी श्रीमन्त रानी, तुमने इस कन्हैया को ऐसे मणि आभूषण पहना रखे हैं कि इनके प्रभाव से ये अँधेरे में भी माखन को देख लेता है। एक दिन मैंने अंधेरी कोठरी में माखन की मटकी छुपाकर रख दी और मैं दुबक कर बैठ गई तो तुम्हारे श्याम सलोने ने अपने कंगन के प्रकाश में माखन की मटकी को ढूँढ लिया। अब बताओ मैं उसे कहाँ धरती? एक गोपी बोली- व्रजरानी, तुम्हारे लाला को इतना ज्ञान है कि कौन-सी गोपी कौन से समय घर में है, कब पानी को जाती हैं, कब गोबर को जाती है, कब गायको दूहने जाती है, जब जरा सा घर सूना दिखायी दिया अपने चेलोंको लेकर घरमें घुस जाता है। एक गोपी बोली- इतना ही नहीं, जब कभी पकड़ में आ जाता है उल्टा हमें ही दोषी ठहराता है। दूसरी बोली- देखो नन्दरानी, खाने-पीने की कोई बात नहीं। ये कोई पराया थोड़े ही है, पर उस बन्दरों का हमारे रसोई घर में मल-मूत्र करा देता है। नन्दरानी सबके उलाहने सुन रही थीं। साथ ही गोपियों के चंचल नेत्रों, जो बार-बार कान्हा को देख रहे थे तथा आँचल में मुँह छिपाकर मुस्काने को भी देख रही थी। यशोदा ने समझ लिया कि इनके उलाहनों में गाम्भीर्य नहीं। अपना मनोरंजन करने हेतु, कृष्ण को छेड़ने के लिये ही आई हैं।

चित्रा सखी गोपी ने कहा- आठ-दस सखाओं को लेकर मेरे घर आये और बोले- सखी, मैयाने भेजा है।

राजाधिराजयोग है, अधिरूढ़ राजाधिराजयोग हैं। ब्रह्मयोगके अनेक रूप देखने-सुननेमें आता है। परन्तु तुम्हारा यह बेटा तो एक नये योगका ही आचार्य है। इसने स्तेययोगका आविर्भाव किया है।

गोपियाँ कहती हैं कि अरी मैया, तुम्हारी लालाकी बातें हम कहासे सुनायें। कहता है कि आज हमारे गाँवमें बड़े-बड़े राम-भक्त पधारे हुए हैं। अयोध्यासे आये हैं, दण्डकारण्यसे आये हैं, किष्किन्धासे आये हैं और वे सब लोग बड़े-बड़े महात्मा हैं। इसलिए घर-गाँवमें जितना भी दही-दूध है, सब निकालो और महात्माओंको अर्पण करो।

कन्हैया चित्रा गोपी से बोले- मेरी मैया ने हमें तुम्हारे घर भेजा है और कहलवाया है कि हमारे यहाँ सन्त महात्मा पधारे हैं। सन्तों की संख्या विशेष है इसलिये तुम्हारे घर से दो मटकी माखन मँगवाया है। माँ ने कहलवाया है कि संत सेवा के पश्चात् एक मटकी के स्थान पर दो मटकी माखन वापस भिजवा देंगी। मुझे आज इन विशेष संतों को भरपूर भोजन करवाना है।

हमारे घर संत आये हैं। एक कमोरी माखन दे दो। मैया ने कहा है कि मैं एक के बदले दो कमोरी माखन दे दूँगी। चित्रा सखी ने कहा- अरे लाला, तुम्हारे घर में संत आये या मेरे घर में संत आये क्या अन्तर है। इसलिए तुम माखन ले जाओ और अपनी मैया से कह देना- कोई बात नहीं है, वापिस देने की जरूरत नहीं है।

कन्हैया बोला- अरी चित्रा सखी, यह तो बहुत अच्छी बात है। सन्त तो सबके लिये एकसमान होते हैं। दो मटकी माखन लियो, अब सबर किसको? गली में पहुँचते ही छीना झपटी शुरू कर दी। मटकी में से माखन निकालकर खाने लगे। जब हल्ला मचा तो चित्रा सखी भीतर से बाहर आई। बोली अरे कान्हा, तू तो कह रहा था घर में संत महात्मा आये हैं और तुम सब लोग माखन तो यहीं चट कर रहे हो।

कन्हैया बोले, महात्मा आये तो हैं। तुम्हें दीख नहीं रहे हैं, नागा महात्मा हैं, कर लो दण्डवत्। ग्वाल बाल उस समय नंगे थे क्योंकि सभी बहुत छोटे-छोटे थे। अरी गोपी मैंने झूठ थोड़े ही कहा था। ये बिना लँगोटी वाले नागा सन्त ही है। तेरे बड़े भाग्य हैं कि नागा सन्तों का टोला तेरे घर आया और सब बम बम भोला कहते हुए तेरे द्वारा श्रद्धा से दिए गए माखन का भोग लगा रहे है। तुम इनको दण्डवत प्रणाम करो और इनका आशीर्वाद प्राप्त करो। पता नहीं थोड़े समय पश्चात ये कहा चले जायेंगे क्योंकि ये बहुत ही त्यागी महात्मा है जो एक ही स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरते। चित्रा सखी समझ गई कि ये नन्द का छोरा है। यह अपनी सखाओं को नागा महात्मा कहकर मुझे बहका रहा है। चित्रा सखी कहने लगी- डण्डा लेकर आऊँ तब दण्डवत् करूँ। वह भीतर डण्डा लेने गई, ये सब नौ दो ग्यारह हो गये।

नहिँ हम ब्रजमहँ रहें कान्ह अब बहुत सतावे। घर घर चोरी करे नित्य तकरार मचावे।।
दूध, दही, नवनीत, घृत, चोरि सखन सँग खातु है। कहनी अनकहनी कहे, ढीठ भयो सतरातु है।।

जिसके हाथ में जितना माखन आया वह भागते भागते खा भी रहा है और भागो-भागो कहकर चिल्ला रहा है। चित्रा सखी आज अगली पिछली सारी कसर निकाल देगी। जितना माखन स्वाद लेकर खाया है वह सब वसूल कर लेगी।

भागते हुए बालकों में से कई बालक गिर पड़ते फिर उठकर भागने लगते और टिली ली ली झिर्र करते जाते। चित्रा कन्हैया और उसके सखाओं की बाल लीला देखकर परम प्रसन्न हो रही थी और ऊँचे स्वर से हँसती जा रही थी। कन्हैया ने जाते जाते मुस्कराकर चित्रा सखी को अँगूठा दिखाया मानो चुनौती दे रहे हों कि पकड़ के तो दिखाओ।

लेकिन वहाँ जाकर देखती क्या हैं कि जो पाँत-की-पाँत बैठी है, वह महात्माओंकी नहीं, बन्दरोंकी है। तुम्हारा लाला उन्हीं बन्दरोंको सारा दही-दूध-मक्खन परस देता है। और सुनो, उन हजारों बन्दरोंमें-से यदि किसी एकने भी नहीं खाया- तो हमें कहता है कि तुम्हारे घरका बर्तन अशुद्ध है, तुम्हारे दूधमें खराबी है, तुम्हारा दही बिगड़ गया है, तुम्हारा मक्खन खराब है, इसे कोई खायेगा तो घर-गाँवमें रोग फैल जायेगा और यह कहकर बर्तन ही फोड़ देता है।

सखन्ह कपिन्ह सब लेहिं बुलाई। गोकुल गृह-गृह धूम मचाई।
लखि सुठि माखन ऊपर छींका। करहिं जुगुति अति सुन्दर नीका।।
पाँच तीनि दुई पंक्ति बनाई। चढ़ि ऊपर छींका ढिग जाई।
खाहिं स्वयं सब सुहृद खिलावहिं। फोरहिं घड़ा तहँ जहँ नहिं पावहिं।।

प्रभु अपने बाल सखाओं को तथा बानरों को बुला लेते थे तथा गोकुल के घर-घर में धूम मचाए हुए थे। छींके के ऊपर रखे

सुन्दर माखन को देखकर सभी मिलकर बहुत सुन्दर जुगुति करते थे। पाँच की तीन की दो पंक्ति बनाकर उसके ऊपर चढ़कर छींके नजदीक जाकर स्वयं खाते थे सुहृदों को खिलाते थे जहाँ जुगुति करने पर भी नहीं पाते थे वहाँ घट को फोड़ डालते थे।

कोउ आवत आहट जब पावहिं। भागहिं इत उत खेल खेलावहिं।
कोउ ब्रज बनिता लाँघव धाई। पकरि श्याम उर लेइ लगाई।।
धाइ पकरि कोउ कान्हा काँहीं। आनइ को सत यसुमति पाँहीं।
प्रेम सुरसमय सुठि दोउ धारा। कहुं इकरार कबहुँ इनकारा।।

किसी के आने की जब आहट पाते थे तो सभी इधर उधर भागकर खेल खेलाते थे। कोई गोपी बड़ी शीघ्रता से दौड़कर जब पकड़ लेती थी तो श्याम को हृदय से लगा लेती थी। कोई दौड़कर कान्हा को पकड़कर कोसती हुई यशोदा के पास लाती थी। प्रेम की सुरसमय दोनों धाराएँ होती हैं कभी तो प्रेम इकरार रहता है कभी इनकार करता है।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपियाँ आकर यशोदा मैया को उलाहना देती हुई कह रही हैं- मैया, तुम्हारा लाला असमय में बछड़े छोड़ देता है। डाँटने पर हँस जाता है चोरी के दूध दही को रुचि पूर्वक खाता है। चोरी के विविध प्रकार के उपाय रचता है। यदि कोई वस्तु मिलती नहीं तो घर के ऊपर क्रोध करता है। बालकों को रुलाकर भग जाता है।

चुपके घरमहँ घुसे धस्यो दधि माखन पावै। संगी साथी मोर बानरनि तुरत खवावै।।
यदि न मिलहि नवनीत कुपित ह्वै मटुकी फोरे। पटकि पुरातन पात्र लाइ आँगनमहँ तोरे।।
पकरैं गोपी तुरत तो, लै छोरनि सँग भगतु है। घरमहँ आगि लगाइकें, मारि ठठाको हँसतु है।।
जिह छोटो है नहीं छोकरा खोटो भारी। मुँहफट अति ई भयो देह छूटत ई गारी।।
छींके पै चढ़ि जाइ जानि दधि माखन जावे। चोरी विद्या निपुण विविध विधि युक्ति चलावें।।
कबहूँ बाबाजी बने, छोरी हू बनि जात है। मूसे बिल्लीके सरिस, घुसि घरमहँ दधि खात है।।
कबहूँ झिरके आइ हमें ही चोर बतावै। रानी तेरो पूत भूत बनि कबहुँ डरावे।।
बन्दर लावे पकरि कहे जे तोकूँ काटे। खिलखिलाइ हँसि जाइ जबहिँ हम जाकूँ डाटे।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपियाँ यशोदा मैया से कह रही है- मैया। यदि दही माखन ऊँचे स्थान पर हो, इसका हाथ नहीं पहुँचता तो बड़ी-बड़ी युक्ति करता है, चौकी ऊखल आदि रखकर उन तक पहुँचता है, फिर भी नहीं पा सकता तो छींकों में रखी उन सब भाँड़ों की वस्तुओं को जानकर उनमें छिद्र कर देता है। यदि अँधेरी कोठरी में रख दें तो मणि जटित आभूषण जो इसके अंग में हैं, वे ही प्रकाशित कर देते हैं मणियों से क्या? इसका अंग ही ऐसा प्रकाशवान् है कि दीप का काम देता है। ये सब उत्पात यह तभी करता है, जब हम सब अपने घर के काम धन्धों में लगी रहती है।

साँवरे घर में साँवला कृष्ण छिप गया। गोपी उनको समझ भी नहीं पायी कि वह कहाँ है, किन्तु जब दीपक लेकर उनको ढूँढ़ने आयी तो वह मक्खन खाते हुये मिले।

मैया, कहँ लौं कहैं बात कछु कहत न आवे। निशि दिन चोरी युक्ति सोचि उत्पात मचावै।।
मुखतैं सीटी मार बाल गोपाल समेटे। देखे आँगन लिप्यो वहीं टट्टीकूँ बैठे।।
खाई, बिगारे, उलीचे, बर्तन फोरे हँसि परै। त्यागि देहि मल मूत्र हू, घर आँगन मैलो करै।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें उलाहना देती हुई यशोदा मैया से कह रही हैं- नन्दरानी, यह तुम्हारा लाला इस प्रकार की अनेकों बार धृष्टता करता है। हमारे स्वच्छ घरों में मल-मूत्र भी कर देता है। नित नूतन चोरी सम्बन्धी ही अविष्कारों का अन्वेषण करता रहता है, किन्तु इस समय कैसा सरल बना है, मानों कुछ जानता ही नहीं। इस प्रकार गोपियाँ यशोदाजी

को सुनाती भी जाती थीं और भय से चंचल हुए नेत्रवाले कृष्ण को बार-बार निहारती भी जाती थीं।

गोपियों को लेने-के-देने पड़ गए। पहले जहाँ वे केवल कन्हैया को दधि-माखन खिलाती उसकी शरीर कान्ति और मुख-श्री को देख-देख निहाल होती थीं, वहाँ अब पूरी-की-पूरी बालमण्डली का उन्हें सामना करना पड़ता था। सब सुने घरोंमें घुसने का प्रयास करता था, ग्वालबालों की टोली चारों ओर उमड़ रही थी।

तुम्हारा यह कन्हैया गांवभर के लड़कों की टोली बनाकर हमारे घरमें घुसता है और सब मिलकर हमारे दधि-माखन चट कर जाते हैं। अपने साथ लगी बन्दरों की टोली में भी बाँट देते हैं। मैया बोली- तुम सब झूठ बोलती हो। गोपियां बोली- अब तक तो इसके उत्पात हम आँख मीचकर बर्दाश्त करती रहीं और जब हार-थककर तुम्हारे पास बताने के लिये आयी तो हमें ही झूठी बता रही हो। एक गोपी ने साहस करके बोली यह तो तुम अपने कन्हैया से पूछो। तुम्हारे यहां दूध-दही की नदी बहती हैं, बहनी भी चाहिए। नन्दबाबा का घर है। दूसरे का सामान हमेशा अच्छा लगता है। जानवर भी जिस खेत में डालो उसके बाड़े को पार कर दूसरे के खेत में मुँह मारना चाहते हैं। कन्हैया को तुम्हारे घर के माखन से हमारे घर का माखन अच्छा लगता है तो हम क्या करें? मैया बोली- कन्हैया को अभी बुलाती हूँ। गोपियों ने एकसाथ- कहा बुलालो। मैयाने आवाज दी- कन्हैया, श्याम कहाँ हो तुम? कन्हैया आया और मुस्कराने लगा। कन्हैया का रंग और रूप देखकर यशोदा की भी स्थिति आश्चर्यजनक हो गयी। पूरा सफेद रंग में रँगा हुआ। गोपियां बोली- देखलो अपने लाला का रूप। अब भी कुछ कहने को रह गया। मैया ने पूछा- लाला क्या इन गोपियों का कहना ठीक है? कन्हैया बोला- क्या कहना इन्होंने मेरे सामने तो कुछ कहा ही नहीं। मैया बोली- इनका कहना है कि तुम अपने साथियों के साथ घरोंमें घुसकर दूध-दही-माखन की चोरी करते हो। कन्हैया बोले- ये झूठ बोलती है। एक गोपी- ऊँचे स्वर में बोली- लो, हम झूठ बोलती है? क्या तुमने आज इसकी वर्षों पुरानी हांड़ी नहीं तोड़ दी? कन्हैया बोला- तुम सब झूठ बोल रही हो। वह गोपी कन्हैया की ओर देखकर बोली अपना हुलिया देख रहे हो और इसके बाद भी कहते हो कि हम झूठ बोल रही है। कन्हैया बोला- हाँ झूठ तो बोल रही है। मैया इनकी बातपर विश्वास नहीं करना। यह सरासर झूठ बोलती है। मेरा यह हुलिया तो इन्हीं लोगोंने बनाया है। गोपियां बाली- हम लोगोंने कैसे? कन्हैया बोला- मुझ दुर्बल को पकड़कर तुम सबों ने मुझे इस हालत में पहुँचा दिया और अब पहुँची हो मैया से शिकायत करने।

गोपियां बोली- हमने ऐसा किया है या तुमने स्वयं दूध की हांड़ी फोड़कर अपना हुलिया इसप्रकार कर लिया है। तुमने अपना मुंह दर्पण में देखा या नहीं। कन्हैया बोला- दर्पण जाकर देखो तुम। मुझे फुसला-फुसलाकर अपने घर बुलाकर जबरदस्ती माखन खिलाकर मेरा मुख देखती रहती हो। आज दो टके की एक हाँड़ी क्या फूट गई तो आसमान सिर पर चढ़ा लिया। जाओ, कह दिया ना मैंने तुम्हारी हांड़ी नहीं फोड़ी वह तो पहले से ही फूटी हुई थी। गोपी बोली- वह हांड़ी पहले नहीं फूटी थी वह प्रतीक्षा कर रही थी कि तुम आओ और वह तुम पर सावन के मेघ की तरह बरसे। तमतमाया हुआ कृष्ण बोला- तुम लोगोंको हांड़ी से प्रेम है या कान्हा से? यह सुनकर सब गोपियां चुप हो गयी। कृष्ण बोला- अब बोलती क्यों नहीं। गोपी बोली- दोनोंसे। कृष्ण बोला- झूठ। प्रेम दो से एक साथ नहीं हो सकता। तुम्हें प्रेम का पता ही नहीं। अभी मेरी बालसंगिनी राधा होती तो क्या वह उस मुई हांड़ी के लिये इस तरह हंगामा करती? तुम तो हांड़ी क्या फूटी ऐसा लगता है कि जैसे किसी का सिर ही फूट गया। गोपियां आपसमें बातें करने लगी। यह कान्हा कहता तो ठीक है, प्रेम दो से एकसाथ कैसे हो सकता है? हम तो कान्हा से ही प्रेम करती हैं, यह मुई हाँड़ी कहाँ से बीच में आ गई? मैया बोली- तुम लोग खामखाह मेरे लाला को चोर बना रही हो। राधा कहती थी- तुम मेरे चितचोर हो। कंस को मारो।

गोविन्दा आला रे आला, जरा मटकी सम्भाल ब्रजवाला...

चोरी से दूध, दही, माखन और मीठे पदार्थ चुराकर खा जाते हैं। बचा हुआ बन्दरों को खिला देते हैं। कदाचित दूध, दही, माखन न मिले तो क्रोधकर हमारे बालकों को रुलाकर भाग जाते हैं। यदि ऊपर रखा हो तो उपाय करके उतार लेते हैं। छींके पर धरे हुए पात्रों में छेद करके नीचे मुख लगाकर गोरस पी जाते हैं। कभी सखा के कन्धे पर चढ़कर उतार लेते हैं। आप खाते व ग्वालबालों को खिलाते है, बाकी बचे हुए को लुटा देते हैं।

तुम्हारा कन्हैया बड़ा ढीठ है, इसके पेट में सैकड़ों छल भरे हैं। परन्तु मुँह का मीठा है, तुम्हारे सम्मुख दीन की नाईं साधु बन गया है। ब्रज बालाओं की सब बातें सुनकर यशोदा हँस पड़ी।

कन्हैया बोला- क्या मुझे घर में माखन की कमी है? कभी कहता तेरा दूध और माखन तो बहुत खट्टा है मैं नहीं पीता। क्या दूध भी कभी खट्टा होता है? यह सबको मोहनेवाला श्याम है। यह अकेला नहीं खाता इसके साथ बहुत से सखा हैं, मोर, बन्दर, और बहुत संख्या में पक्षी भी हैं उन सबको भी खिलाने के लिये इसका काम थोड़े से माखन से नहीं चलता इन सबके लिये ढेर सारा माखन चाहिये और अपने साथियों को खिलाने के बाद ही खुद माखन का भोग लगाता है।

नन्द रानी कन्हैयो, जबर भयो रे, मेरी मटकी उलट के, पलट गयो रे
मुस्कान इसकी लगे प्यारी-प्यारी, दीवानी हुई इसकी, सारी ब्रजनारी
ऐंकी बंशी में जियरो अटक गयो रे, मेरी मटकी उलट.....
पनघट पे आके, करै जोराजोरी, चुपके से आके, करै चीर चोरी
मैया हल्लो मच्यो तो, सटक गयो रे, मेरी मटकी उलट.....
घर-घर में जाके, यो माखन चुरावे, खावै सो खावै, जमीं पै गैरावे
मैया रोकनो हमारो, खटक गयो रे, मेरी मटकी उलट.....
मैं तो दुखारी गरीबी की मारी, नही जोर चालयो, तो दिन्दी मैं गारी

एक दिन एक गोपी ने माखन-चोरी करते हुए लाला को पकड़ा। उसने कहा- लाला, आज मैं तुझे रस्सी से बाँधूगी फिर मैया यशोदा को बुला कर लाऊँगी। ऐसा कह कर वह कन्हैया को रस्सी से बाँधने लगी। इस पर लाला ने कहा कि तुम्हें तो बाँधने आता नहीं, कैसे उल्टा-सीधा बाँध रही हो। सचमुच, प्रेम-विवश गोपी उल्टा-सीधा ही बाँध रही थी। वह बोली तनिक लाला तुम को आता है तो सिखा दो। लाला ने कहा कि अच्छा सीख। पहले छोड़ मेरा हाथ तब तुम्हें सिखलाऊँ, भोली-भाली गोपी ने लाला का हाथ छोड़ दिया। कन्हैया ने रस्सी को खम्भे में लगाया और फिर उसके हाथों को बाँधने लगे। बाँधते जाँय और कहते जाँय कि देख गोपी, यह एक गाँठ हुई, यह दो गाँठ हुई, यह तीन गाँठ हुई। गोपी बोली कि छोड़ दे, मैं समझ गई। अब मैं तुमको बाँधूगी। इस पर लाला ने कहा- अरी नादान गोपी, तुझे यह भी नहीं पता कि मैं जिसको बाँधता हूँ, उसको छोड़ता ही नहीं हूँ। मुझ को बाँधना तो आता है, पर छोड़ना नहीं आता। यह कहकर लाला अँगूठा दिखाते हुए भाग खड़ा हुआ। भौंचकी गोपी निहारती ही रह गई।

जब यशोदा को गोपियों की बात सत्य मालूम हुई तब कन्हैया पर क्रोध करके कहा कि तूने अच्छा चोरी का काम सीखा है। हे बेटा, मैंने तुझे बारम्बार समझाया, पर तू मेरा कहना नहीं मानता, अब मैं तुझको बाँधकर घर में बैठा रक्खूँगी। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा- हे मैया, यह गोपी मुझे बरजोरी पकड़कर अपने घर ले गई और हमसे इसने अपने घर का काम-काज कराया, अब झूठ कलंक लगाकर उलहना देने आई है।

मैया गोपियोंसे हाथ जोड़कर बोली- इसने जितना खाया उससे सौ-सौ गुना तौलकर ले जाओ। पर मेरे कन्हैया को शाप नहीं देना मुझ गरीबनीका लड़का है।

गारी मति दीजौ, मो गरीबनी कौ जायौ है।
जितौ तो बिगार कियौ, आनि कहौ मो सों तुम, मैं तो काहू बातनिमें नाहिं तरसायौ है।।
दधि की मटुकिया लै-लै आँगन में आनि धरी, तौलि तौलि लीजौ भटु, जेतौ जाकौ भायौ है।।

यह बात कन्हैया की सुनकर यशोदा हँसने लगीं और सब गोपियाँ अपने-अपने घर चली गईं। हे परीक्षित्, इसी तरह श्यामसुन्दर नई-नई लीला करके अपनी माता व पिता व व्रजवासियों को सुख देते थे। देखो, जो वैकुण्ठनाथ आठों प्रहर क्षीर समुद्र में रहते हैं, वे गोपियों का दही व माखन चुराकर खाते थे।

विश्व भरणपोषणकरनकल्पत रोवर नाम। सो दधि चोरी करत हैं प्रेमबिवश सुखधाम।।
धनिव्रजवासिनधन्यव्रजधनि धनिब्रजकीगाय। जिनको माखनचोरि हरि नित उठिघर घर खाय।।

जिस परब्रह्म परमेश्वर के चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आठों प्रहर अपने हृदय में करते हैं और जल्दी उनका दर्शन नहीं पाते, उन्हें व्रज की अहीरनियाँ बाँह पकड़कर यशोदा के पास ले जाती थीं। उनकी लीला व भेद को कोई नहीं जान सकता।

एक दिन उलाहना देनेवाली गोपियों से यशोदा जी ने कहा- गोपियों, चोरी करते हुए एक दिन लाला को पकड़कर तुम लाओ। तब मैं उसे सजा दूँगी। ऐसे तो वह पूछने पर कहता है कि मैंने तो कुछ किया ही नहीं है। इस पर प्रभावती नाम की एक अभिमानिनी गोपी ने कहा यह कोई बड़ी बात नहीं है। मैं ही इसे रंगे हाथ पकड़ लाऊँगी।

उपालम्भका प्रारम्भ किया उपनन्द-पत्नी इनकी बड़ी ताई तुंगी (प्रभावती) ने उनके धुले, लिपे-पुते प्रांगण तथा कक्षोंको इन्होंने सखाओंके साथ लघुशंका करके भली प्रकार पवित्र कर दिया। शिशु ही तो हैं सब सखा। सबेरे-सबेरे माखन, दधि, छाछ खाते रहे और छपाछप करते रहे उसीकी कीचमें तो नन्हें तोकको लघुशंका लग आयी।

तोक बहुत अल्पवय शिशु है- सबसे छोटा। उसे क्या पता कि मूत्रत्याग बैठकर किया जाता है। उसके मूत्रकी धारा दीखी तो इनको एक क्रीड़ा सूझ गयी। सबसे बोले- देखें, किसके मूत्रकी धार कितनी दूर जाती है? इस क्रीड़ामें ताईका घर पवित्र हो गया। तू बहुत धृष्ट हो गया है। चल आज यशोदासे कहती हूँ। ताईने अरे, अरे, क्या करते हो सब? कहा और सम्मुख आयी तो सब इधर-उधर हँसते, ताली बजाते भागने लगे उनके ही कक्षोंमें। लघुशंका प्रारम्भ हो गयी तो उसे पूर्ण तो करना था। कई कक्ष सबोंने भिगो डाले और इसपर कन्हाई अँगूठे दिखाने लगा। ताई बड़ी है। वे इन बालकोंको उद्धत होता नहीं देख सकतीं। वे नन्दभवन चल पड़ीं। अब शिशुओंको लगा कि उचित नहीं हुआ। सब एक दूसरेका मुख देखने लगे। सखा सहमे रहे, यह कहाँ सह्य है श्रीकृष्णको। कह दिया हँसकर- तुम सब मेरे पीछे आना। मैं मैयाके पास जाता हूँ। मैया ताईको मारेगा।

इनको अब कौन कहे कि मैयाको ताई ही डांट सकती हैं। ये तो भागे और आकर मैयाकी गोदमें बैठ गये। मैयाने जेठानीको देखते ही इन्हें गोदसे उतारा। प्रणाम किया उन्हें। वे बोलीं- यशोदा। तुम अपने इस लालके गुण भी जानती हो? कैसा साधु बना तुमसे सटा खड़ा है। क्या किया है इसने? मैया आश्चर्यसे अपने नीलमणिका मुख देखती हैं। अभी तो यह यहीं खेल रहा था सखाओंके साथ। मैयाको लगता ही नहीं कि उसका यह अबोध लाल ऐसा भी कुछ कर सकता है, जिससे कोई उलाहना देने आवे। मैं इसे डाँटती। अब प्रभावती हँस पड़ीं- यह तो मेरे डाँटनेपर मुँह चिढ़ाता है, हँसता है, अँगूठा दिखाता है।

एक दिन प्रभावती गोपी बोली- मैया को बहुत अहंकार है अपने कन्हैया पर। मैं चूर करूँगी उसका अहंकार, कन्हैया को मैं पकड़वा दूँगी। प्रभावती को प्रतिशोध का भाव पैदा हुआ। प्रभावती तो चाहती थी कि कन्हैया को यह अहसास हो जाय चातुर्य और बुद्धिमत्ता उसकी चेरी नहीं है।

उस दिन कन्हैया ने अपनी बाल-मण्डली में तय किया कि आज प्रभावती के घर चलने का कार्यक्रम है। प्रभावती घर

के एक कोने में छिप कर बैठी थी। धीरे-धीरे सारे बालक घर में प्रविष्ट हो गये। कन्हैया ने छीके से माखन की मटकी उतारी। स्वयं माखन खाया, मित्रों को खिलाया और बन्दरों को भी दावत दी। रामावतार में बन्दरों ने पेड़ के पत्तों को खाकर राम की सेवा की थी अत: वही राम जब कृष्ण के रूप में आये तो बन्दरों को माखन खिला कर बदला चुका रहे हैं। धन्य हो कन्हैया धन्य।

सभी ने भर पेट माखन खाया इतने में धीरे से प्रभावती बाहर निकली। मित्रों ने देखा तो कहा- अरे कन्हैया, भाग, भाग। वह आ गई किन्तु कन्हैया ने कहा- कि आने दो। क्या कर लेगी वह।

प्रभावती ने कन्हैया को पकड़ लिया। वह लेकर चली कन्हैया को यशोदा के घर की ओर। कन्हैया के साथ बालक विनती कर रहे थे छोड़ने के लिये। प्रभावती का बेटा स्वयं कन्हैया की बाल-मण्डली का सदस्य था। वह अपनी माँ से कह रहा था- मैया, छोड़ दे कन्हैया को। इसे अपने घर में मैंने ही बुलाया था। मुझे चाहे जो दण्ड दे दे, पर कन्हैया को छोड़ दे। माखन की क्षतिपूर्ति के लिये मैं स्वयं छ: महीने माखन नहीं खाऊँगा। पर प्रभावती कब किसी की बात माननेवाली थी। वह अभिमानिनी थी। उसने कहा आज मैं लाला को मैया के सामने पेश करूँगी। इन्हें रंगे हाथ पकड़ा हैं।

प्रभावती लाला को पकड़ कर चली जा रही थी। उसके आगे-पीछे चारों ओर सभी बच्चे लगे हुए थे। इतने में सामने विपरीत दिशा से आते हुए एक वृद्ध दिखलाई पड़े। वे प्रभावती के श्वसुर थे। उन्हें देखकर उसने लम्बा घूँघट खींच लिया। कन्हैया ने सोचा यह अच्छा अवसर है अत: उसने प्रभावती से कहा- चाची, मेरा यह हाथ दुख रहा है अत: इसे छोड़कर दूसरा हाथ पकड़ ले। प्रभावती ने सोचा ठीक है। दूसरा हाथ पकड़ने में क्या गड़बड़ है। सो वह दूसरा हाथ पकड़ने लगी तो कन्हैया ने इशारे से उसके ही बेटे को बुलाकर उसका हाथ पकड़ा दिया। इस प्रकार मुक्त होकर कन्हैया भाग कर माता के पीठ पीछे जा बैठा। इधर प्रभावती चोर को पकड़कर बड़ी उमंग से चली आ रही थी। उसने बाहर से ही चिल्लाते हुए कहा- अरी यशोदा मैया, सुनती हो। देखो, तेरे कन्हैया को आज रंगे हाथ पकड़ कर लाई हूँ। इस चोर को अब सजा देनी ही होगी।

मैया यशोदा घर से बाहर निकलीं। प्रभावती ने कहा- लो, तुम पकड़ने के लिये कहती हो तो आज चोर को पकड़ लाई हूँ। लो, इसे दो दण्ड। मैया यह दृश्य देखकर हँसने लगी। प्रभावती ने कहा- मैया, हँसो मत। तुम्हारे इस प्रकार हँसने से ही तो लाला चोर बन रहा है।

यशोदा बोली- अरी गोपी, देख तो सही, तू किसे पकड़ कर लाई हो। मेरा लाला तो घर में है। प्रभावती ने नीची निगाह कर देखी तो उसके हाथों में उसी का बेटा था। वह असमंजस में पड़ गई। लजा कर उसने कहा- कन्हैया बड़ा जादूगर है। मैंने तो उसे ही पकड़ा था। लगता है रास्ते में कुछ गड़बड़ हो गई।

अभिमान से भरी बुद्धि ही प्रभावती है। ऐसी बुद्धि ईश्वर को कभी पकड़ नहीं सकती। निष्काम निर्मल बुद्धि ही ईश्वर को पा सकती है। ईश्वर को सकाम नहीं, निष्काम बुद्धि ही ढूँढ पाती है।

प्रभावती उपनन्द की, पत्नी तांके गेह। एक दिवस गमने हरी, उर धर परम सनेह।।
प्रभावती निज भाग्य को, सर्वोत्तम कर जान। मन विनोद हित तिनों से, कहन लगी मति मान।।
मूढ़ा लाय दीजिये मोको। कृष्ण दियोंगी लड़वा तोको।। लावो राम खड़ावों मेरी। चुटिया गूँथूँगी मैं तेरी।।
जो तुम दोनों नृत्य दिखावो। माखन मिसरी कुखि भर खावो।। सुन्दर गीत सुनावो मोको। हेम बंसरी द्योंगी तोको।।
देवो प्रथम कहा तुम जोई। तुमरा वचन करें सब कोई।। जो तुमने नहि पाछे दीया। वृथा जायगो हमरा कीया।।
सत्य कहूँ देवूँगी ताता। मोको तनक न झूठ सुहाता।। जो मैं कहा न देवूँ जोई। मन भावत करियो तुम सोई।।
जैसे तिसने कहा था, तैसे ही तिन कीन। कृष्ण खिजावन कारणे, तिसने नहि कछु दीन।।

हाटन से मिशरी मँगवावूँ। दधि मथकर नवनीत खवाऊँ।। वंशी बनवावूँ अब जाई। कल लेना बल जावे माई।।
प्रभावती के वचन सुन, हृदय धारकर कोप। गमने निज निज गेह में, राम कृष्ण सब गोप।।
प्रभावती इक दिवस में, सोय रही निज द्वार। गये तास के गेह में, कृष्णादिक ब्रज बार।।
दूध दधी नवनीत को, गृह में दिया फिलाय। कुछ खाया कुछ कपिन को, पटका हृदय रिसाय।।
तांके सुत को पीटके, बछरे दीने खोल। भाग गये जब सुन लिया, प्रभावती का बोल।।
तात काल उठ गोपिका, गृह की दशा निहार। प्रणय कोपकर कृष्ण पर, गयी नन्द के द्वार।।
उर उत्कंठा कृष्ण के, मुख देखन की तात। उपालम्ब का मिष करा, उर निज भाग्य सरात।।
सुनो यशमति रानी, निज सुत की कहानी, दूध दधी माखन की चोरी से न डरे है।
पातरों को फोड़ डारे, ऊंचे छिक्य से उतारे, जो न पौंचे हाथ तापै, मूड़ा नीचे धरे है।।
कंठ मणी तेज कर, देख लेत सब घर, करे जो पुकार जोई, ताँसो पुन लरे है।।
कुछ आप बाल जेवें, कुछ वानरों को देवें, कुछ भूमि में फिलावें, उतपात करे है।।
पादों का प्रहार कर, भूमि मांहि डार कर, मंच सोये बालन को, रुदन करावे है।
लीपे पोते चौके झरे, मूतर पुरीष करे, बछरों को खोलकर, धेनु चुखावे है।।
होके व्रजराज बार, सुन्दर शरीर धार, ऐसे बुरे करमों से, नैकन लजावे है।।
द्वार जाय ढीठ होवे, टेढ़ी आँखन सों जोवे, तुमरे समीप बैठा, साधु दरसावे है।।
शिशु नुकसान करा तव जोई। लेवो दुगुना हमसे सोई।। ईश दिया सब कुछ घर मांही। कोउ चीज का टोटा नाहीं।।
गृह में यत्न करूं नहि खावे। चोरी को कह कैसे जावे।। चोरी करत लायंगी जबही। याको दण्ड दियोंगी तबही।।
यशमति के सुन वचन तब, गयी प्रभावित तात। नित प्रति मग देखत रहे, कब आवें युग भ्रात।।
पुन बालन को साथ ले, माधव परम प्रवीन। गये तास के गेह में, पूरववत सब कीन।।
प्रभावती का बोल सुन, भाग गये सब बाल। भागत भागत तास ने, पकड़ लिये गोपाल।।
गह कर कर से कृष्ण को, चली यशोमति द्वार। मग में चलते वदन पै, अंचल लीना डार।।
जननी का डर मान कर, योगीश्वर जगदीश। तांके सुत का रूप तब, धार लिया अवनीश।।
ले निज सुत को यशमति रानी। अब तुम साची नहि जानी।। यह चोरी कर है नित जाई। दूध दधी घृत देत बहाई।।
आज हाथ आया यह मेरे। अब विश्वास आयगो तेरे।। चोरी करते पकड़ लिआई। सत्य कहूँ जाने रघुराई।।
यह मम सुत वा तव सुत बौरी। वृथा लाय मम सुत को चौरी।। नैक नयन से वसन उतारो। तो पुन ऐसा वचन उचारो।।
निज सुत कृत मम तनय लगावो। मम ब्रज तज देशान्तर जावो।।
अन्याये गोकुल में जैसा। देखा सुना न अब तक ऐसा।।
यशमति के सुन वचन तब, देखा नयन उघार। निज सुत को लख हस्त में, दीनी सुत को गार।।
नन्द यशोदा रोहिणी, गोप गोपिका राम। वा वा कर हँसने लगे, ले ले तांका नाम।।
प्रभावती सुत साथ ले, अति लज्जित हो भूप। गयी आपने धाम में, बोले श्याम सरूप।।
सुन गोपी तू परम सुजाना। निपट बाल कर मोको माना।।
पकड़ेगी पुन हमको तू जब। रूप धरूँगा तव पति का तब।।
गो गोरस धन धाम समेता। मम तनु तनुजादिक है जेता।। बल जावूँ यह सबी तुमारे। क्षमा करो अपराधा हमारे।।

मैं नित तव दर्शन की प्यासी। तब विनोद हित कीनी हासी।।
बिन तुमरे नहि और सुहाता। नित प्रति मम गृह आवो ताता।।
याविध कह कर रुदन कर, हरि को कंठ लगाय। गिर गद्‌गद रोमांच तनु, तनु की सुध बिसराय।।
मोमें जैसे प्रेम तुमारा। तैसे ही तुम मांहि हमारा।। मम प्रिय उर में चितवत जोई। सत्य कहूँ ऋत करहूँ सोई।।
प्यारी मैं निज हाल सुनावूं।।
जप तप युत योगीश विरागी, इनके कर नहि आवूं। भुक्ति मुक्ति कुछ सम्पद देकर, तिन से वसन छुड़ावूं।।
जो इनको नहि स्वीकृत कर है, ताके हाथ बिकावूं। प्रेमा भक्ती जो जन कर है, तिसकी टहल कमावूं।।
प्रेमी का ऋणियां हूं निश दिन, तिसे नाहिं बिसरावूं। निज आतम मैं मानूं वाको, ताके पीछे धावूं।।
जो मम प्रेमी बिछड़ जाय तो, वाका ध्यान लगावूं।
जो मेरा प्यारा मान करे तो, गहकर चरण मनावूं। योग क्षेम मैं तिसका कर हूँ, अपने धाम पुचावूं।।
जो मेरे प्रिय नहि भोजन कर है, निज कर ताहि जिमावूं। जननी जनक बन्धु नहि ता सम, वासे बल बल जावूं।।

कन्हैया की बड़ी ताई प्रभावती ने अपने घर की बात बतायी और बोली, मेरे घर कन्हैया ग्वाल टोली को लेकर आया। अपनी ताई का घर जानकर बिना किसी शंका संकोच के माल उड़ाने लगा। दही की मटकियों को बन्दरों, स्वानों, पक्षियों को खिलाने के लिये आँगन में लुढ़का दिया और स्वयं सखाओं के साथ माखन खाने में जुट गया। जिसके हाथ में जिस मटकी से जितना माखन आया प्रसन्नता से खाने लगा। आँगन दही और छाछ से भर गया। बालकों में सबसे छोटे बालक तोक को माखन खाते-खाते सू सू लग गई। जब किसी एक बालक की धार चलती है तो दूसरा भी उसी तरह धार निकालता है। सब मिलकर जोर कर रहे थे कि किसकी धार आगे जाये। इसतरह बालक बहुत धृष्ट हो गये थे जिसका परिणाम भविष्य में अच्छा नहीं है। इसलिये बालकों को शिष्टाचार की शिक्षा देने के लिये कुछ उपाय करनी चाहिये। प्रभावती ने यशोदा को उपालम्भ दिया। तुम्हारा बालक कन्हैया अति चपलता के कारण सब बालकों को बिगाड़ते जा रहा है। तुम्हारी गोदी में तो भोला भाला साधु बनकर बैठा हुआ है और दूसरों के घर जाकर क्या क्या ऊधम मचाता है इसे तुम नहीं जानतीं।

एक बार श्याम किसी गोपी के घर गये। दादा दाऊ एवं साथियोंको सबको द्वारपर छोड़ दिया। अकेले ही भीतर घुसे। गोपीके आनेका पार नहीं रहा। उसने झरोखेसे बाहर की ओर देखा, दाऊ शान्त मुद्रामें छिपे खड़े हैं, उनके अनुज किसी संकेतकी प्रतीक्षामें खड़े हैं। गोपी समझ गयी- यह स्वप्न नहीं सत्य है। अधिक देरतक गोपी धैर्य न रख सकी उसी क्षण दौड़ पड़ी और गोद में उठाकर नन्दनंदनको हृदयसे लगा लिया। श्यामसुन्दर का सुखद स्पर्श पाकर गोपीको समाधि लग गयी और सारी सुध-बुध खो बैठी। नीलमणि चुपचाप गोदसे उतर गये पर गोपी पत्थरकी मूर्ति की तरह निच्छल बैठी रही। गोपिको समाधि लग गयी। श्यामसुन्दर ने ताली बजायी कि गोपमण्डली दाऊ सहित भीतर आ गये। नीलमणिने माखन की ओर संकेत कर दिया। गायें अभी तक दुही नहीं थीं। गायें रँभा रही थीं। गोपी तो आधी रातसे ही भावाविष्ट थी; कि कब श्यामसुन्दर आयेगा। श्यामसुन्दरको देखकर बछड़े सिर हिलाने लगे, गायों होंकार करने लगीं। श्यामसुन्दरने चारों तरफ चंचल दृष्टि उठाकर देखा कि कोई देख तो नहीं रहा। फिर बछड़ोंको खोल दिया। बछड़े जाकर गायोंका दूध पीने लग गये। गायों और बछड़ोंकी दशा विचित्र है। गायें दूध पीते हुए बछड़ोंको चाट कर श्यामसुन्दर की ओर देखने लगे। बछड़े भी दूध पीना छोड़कर श्यामसुन्दर की ओर निहारने लगे। श्याम कहने लगे- अरे बछड़ों, दूध पी लो, गोपी आनेवाली है। श्यामसुन्दरने नयी गायोंके थन दबाकर दूधकी धार निकाल ली और मुँहमें सीधा दिया। दाऊ है कि स्तम्भकी ओटमें छिपे हुए संकेत से कह रहे थे- कन्हैया, जल्दी भाग जा गोपियाँ आ रही है। जैसे ही कृष्ण भागने लगे गोपीने रास्ता रोक लिया

और पकड़कर बोली- अरे नटखट, यह तुमने क्या किया, सारे बछड़ोंको खोलकर सारा दूध पिला दिया। कृष्ण गोपीसे अपने निर्दोष सिद्ध करने लगे और छोड़ देनेके लिये कातर प्रार्थना की। जब गोपीने नहीं छोड़ा तो उसीपर सारा दोष मढ़कर झगड़ा करने लगे। तुम्हींने तो मुझे बुलाया था मैं आया तो तुम मुझे गोदमें लेकर सो गयी। तुम्हें सोयी देख मैं तुम्हारी गोशालामें खेलने चला गया। बछड़े दूध पी गये तो उसमें मेरा क्या दोष। गोपी भी यशोदानन्दनकी बुद्धि देखकर चकित हो गयी और कन्हैया अपना हाथ छुड़ाकर दाऊसहित वहाँसे भाग निकले। गोपी उलाहनेके बहाने नंदरानीके घर जा पहुँची। नन्दरानीने पूछा- बहन, इतने सवेरे कैसे आयी हो? गोपी बोली- अरी नन्दरानी, तुम्हारा यह लाड़ला बार-बार अनीति करता है। इसने क्या किया यह तुम्हें अच्छी तरह से ज्ञात है। यह चलते-फिरते बछड़ोंको खोल देता है। मैं तो यही जानती हूँ कि यह तुम्हारे संकेतसे करता है। यदि तुम्हारे संकेतसे नहीं करता तो तुम इसको डाँटती क्यों नहीं?

भगवान श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करते-करते गोपियाँ अपना घर खुला छोड़ कर दूसरी गोपियों से पूछने जाती है कि क्या आपने प्यारे श्यामसुन्दर को किसी गली-कूचे में देखा है? इधर घर को सूना देखकर आनन्दकंद परमानन्द श्रीकृष्ण माखन चोरी करने घर में घुस गये। छींके से माखन उतारा और सबको बाँटते हुए माखन खाने लगे। इतने में गोपी आ गई, चतुरसुजान भगवान मटकी पटक कर भागे। गोपी ने पीछा किया तो श्याम ने उसके गैया-बछड़ा खोल दिया। गोपी अपने गाय-बछड़े बाँधने में लग गई तो श्यामसुन्दर भाग गये। चोरमण्डल के सदस्यों ने कहा- अरे प्रधानमन्त्रीजी। माखन से क्षुधा की तृप्ति नहीं हुयी। भगवान ने कहा- चलो कहीं दही पिया जाये। उधर एक गोपी भगवद्भाव से ओत-प्रोत होकर दही बेच रही थी। भगवान् ने कहा- अरी गोपी। दही का स्वाद कैसा है लाओ चखे। सब-के-सब हाथ फैलाकर बैठ गये। गोपी ने कहा- अरे साँवरे। कोई वस्तु बिना भुगतान किये मिलती है क्या? नहीं तो पैसा दो या जरा अपना नृत्य दिखा दो। अब बालमण्डल ताली बजाने लगे और सारे संसार को नचाने वाले प्रभु श्यामसुन्दर का नृत्य देखकर परमानन्द में मग्न हो गयीं। साँवरे सलोने पसीने से सरोबार हो गये, नृत्य करते-करते थक गये और रुक गये। बोले- अरी गोपी। अब तो दही दे। भोली गोपी ने थोड़ा दही दे दिया। भगवान मन-ही-मन बोले- नृत्य में तो सिर का पसीना पैर पर उतार दिया, इसके परिणाम में जरा-सी दही? अभी मजा चखाता हूँ। गोपी सिर पर मटकी रखकर आगे बढ़ी। इधर आपने (भगवान ने) एक ढेला उठाया और फेंक कर मटकी पर दे मारा। दही भरी मटकी टूट गयी, दही से गोपी नहा गयी। मानो उसका अभिषेक हुआ है। प्रिय श्यामसुन्दर भाग गये, घर पहुँचे, माखन-मिश्री खाने लगे।

गोपियाँ यशोदा से बोली- हमने कन्हैया के विषय में तुमसे उसकी चंचलता की उल्टी सीधी बात कह दी तुम्हारे हृदय को बहुत दुख हुआ इसके लिये हम सब आपके चरण पकड़कर क्षमा मांगती हैं। कन्हैया के दर्शन के लिये यदि तुम्हारा हृदय इतना दुखी होता है तो हम तुम्हारे यहां नहीं आयेंगे और अपने घर में रह लेंगी। तुम्हारे लाला के दर्शनों से मिलनेवाली प्रसन्नता के बल पर ही हम अपनी सास ननद की कड़वी बातों का भी बुरा नहीं मानती। श्याम सुन्दर की एक मधुर मुस्कान की झलक मिल जाने पर हम लोग अन्य लोगों के ताने सुनकर भी प्रसन्न हो जातीं हैं। अब आप कन्हैया को कहीं और लेकर चले जाने की बात कहकर हमें जीवित ही मार देंगे। इतना कहकर गोपियां बड़े जोर से रोने लगी, उनका कंठ रुद्ध हो गया, हिचकियाँ बँध गयी। यशोदा बोली- मैं तुम्हारे दुःख को जानती हूँ। तुम लोग अपने आप को संभालो। कन्हैया गोपियों का और अपनी मैया का दोनों ओर का अपने प्रति अपार स्नेह देखकर बहुत आनंदित हुए। वे जानते थे कि मेरे जन्म-जन्म के प्रेमी हैं। प्रेम में विभोर होकर नैनों से आँसू बरसाती हुई कन्हैया को प्यार से हृदय से लगाकर गोपियां अपने-अपने घर चली गईं।

नाचो नन्दलाल तुम्हें माखन खिलाऊँगी। गाओ गोपाल तुम्हें गोरस पिलाऊँगी।।
बाजत मृदंग ताल-ताल-ताल नाच दे। ऐसी घड़ी आज श्याम आई बड़े भाग ते।।

श्याम में बनूंगी तुम्हें राधिका बनाऊँगी। नाचो नन्दलाल तुम्हें माखन खिलाऊँगी।।

गोपी आप भी नाची, अत्यन्त आत्मिक आनन्द लिया। गोपियाँ भगवान को नचा रही हैं और भगवान नाच रहे हैं। व्रजपुरमें आनन्दकी मानों लहर दौड़ गयी। तमाम गोपियाँ इकट्ठी हो गयीं और कोई नाच नचाती है, कोइ कुछ कहती, कोई कुछ। अब सब जान गयीं कि नन्दलाल तो नाचते हैं और गाते हैं। अब यह अवसर कौन छोड़े? कोई मिश्री लायी, कोई माखन, कोई खिलौना लायी, कोई कुछ लायी और कोई कुछ और सब-की-सब बालसुलभ चेष्टाओंको देखनेके लिये इकट्ठी हो गयीं। यह रोजका काम हो गया। कन्हैया अपना हाथ कान पर रखकर दूसरा हाथ लम्बा तानकर लम्बी सी तान छेड़ता है। बड़े-बड़े गबइयों की नकल करता हुआ लम्बे लम्बे गीत के अलाप सुनाने लगता है। एक बार तो एक घड़ी तक नाचे और गोपियों ने थोड़ा सा माखन उसकी हथेली पर रखा। कन्हैया बोला- बस इतना सा ही। कहकर क्रोध के मारे खीजने लगा।

तू गंदी तूँ झूम सूम कहना नहिं आवे। दोनों हाथन सारी नोचे खीच मिटावै।।
इतना ढेर नचाया दोनों हाथ पसारे। इतना सा नवनीत कहे कर चुटकी धारे।।

कन्हैया गोपियोंसे कहने लगा, तू गन्दी है, तू झूम है। मुझे इतना ढेर सारा नचाया और एक चुटकी भर माखन दिया।

अब भगवान्‌की शैशवकी रस-धारा बहने लगी। मुँहसे धीरे-धीरे तोतली वाणी बोलते हें। सारा व्रज इस रससागरमें डूबने लगा। यह चीज किसीने देखी नहीं। कहते हैं कि इसपर न तो वेद कुछ विचार कर सके। वेदोंने नेति-नेति कह दिया और तत्त्वका निरूपण करनेकी कुछ चेष्टा की जरूर परन्तु वे इस लीलाका गान नहीं कर सके और न ब्रह्माजी गा सके न शंकरजी गा सके।

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु। अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहि नाचि देखावहु।।
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु। आन जन्तु धुनि सुनि कत उरपत, मो भुज कंठ लगावहु।।
जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु। बाँह उचाइ काल्हि की नाइं, धौरी धेनु बुलावहु।।
नाचहु नैकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु। रतन-जटित किंकिनि पग-नूपुर, अपनै रंग बजावहु।।
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु। सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु।।

भगवान अखिल ब्रह्माण्डनायक अतुल ऐश्वर्य जिनके संकल्पमें रहता है वे भगवान छोटे-से बालक बने हुये व्रजगोपियोंको सुख दे रहे हैं- दारुयन्त्रवत्। जैसे कठपुतलीको कोई सूत्रधार नचाता है इसी प्रकारसे वे गोपांगनायें श्रीकृष्णको नचाती है। जैसा कुछ वे कहती हैं उसी प्रकार वे करते हैं।

बनी सहज यह लूट हरिकेलि गोपीन कें, सपने में यह कृप कमला न पावै।।
निगम निरधार, त्रिपुरारहू विचार रहयौ, पचि रहयौ सेस, नहिं पार पावै।।
किंनरी बहुर अरु बहुर गंधरबनी, पंनगनी चितवन नहिं माँझ पावैं।
देत करताल वे लाल गोपाल सौं, पकर ब्रजबाल कपि ज्यौं नचावैं।।
कोऊ कहै ललन पकराव मोहिं पाँवरी, कोऊ कहै लाल बल लाऔ पाढ़ी।
कोऊ लहै ललन गहाव मोहि सोहनी, कोऊ कहै लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी।।
कोऊ कहै ललन देखौ मोर कैसे नचैं, कोऊ कहै भ्रमर कैसैं गुँजारैं।
कोऊ कहै पौर लगि दौर आऔ लाल, रीझ मोतिन के हार वारैं।।
जो कुछ कहजैं ब्रजबधू मोइ सोइ करत, तोतरे बैन बोलन सुहावैं।
रोय परत वस्तु जब भारी उठै तबै, चूम मुख जननी उर सौं लगावैं।।

प्रात:काल यशोदा दही बिलो रही थी। लाला पलने में सो रहा था। अब बड़ा उधमी हो गया है। लाला सोकर उठा और देखा मैया दही बिलो रही है। आकर मैया से बोला- मैया बड़ी जोर से भूख लगी है माखन दे दे। मैया बोली- हाथ मुंह धोकर आ। रात का माखन छिकेपर मटके में रखा हैं थोड़ी मिश्री मिलाकर खा ले। कन्हैया बोला- मैं तो यही मटकी का लूंगा, अभी लूंगा, ताजा मक्खन लूंगा, बांसी मक्खन नहीं खाऊंगा और मचल गया। मैया बोली- तू मुझे तंग मत कर। मैया सोचने लगी- इसको कोई भूख तो लगी नहीं, बच्चों को तो जो बात मन में आ जावे बस वही चाहिये। बालकों की हठ बड़ी विचित्र होती है। कन्हैया बोला- तू मक्खन नहीं देगी तो ब्रजवासियों की पंचायत में शिकायत कर देंगे कि हम केवल नन्दबाबा के बेटे हैं यशोदा के नहीं। रूठकर कोनेमें जाकर बैठ गया। दौड़कर यशोदा ने लालाको अंक में भर दिया और गोद में बिठा लिया। लालासे बोली- तू रूठा मत कर, माखन चोरी की आदत छोड़ दे। नहीं तो तेरेसे कोई विवाह नहीं करेगा।

यदि बालक घर में चोरी करे या अन्यत्र से चोरी-बदमाशी करके लावे और माता-पिता उस पर अंकुश न करें तो बालक क्या बनेगा? चोर। दूसरा कब चाहेगा कि एक दूसरे का बालक साधु बन जाये। बालक को संस्कारवान् बनाने में माता की अहं भूमिका है। माताएँ अपने बालक की गलत आदतों पर अंकुश करें। बालक की जरा-सी त्रुटि पर बालक बिगड़ेगा, भविष्य में अपराधी भी बन सकता है।

रे माखन की चोरी छोड, कन्हैया मैं समझाऊँ तोय।।टेर।।
नौलख धेनु नंद घर दुजे, नित नया माखन होय
बडो नाम तेरे नंद बाबाको, नाम धरेंगे तोय।। माखना।।
बरसाना में भईरे सगई, नित नई चर्चा होय
बडे घरन की राजदुलारी, नाम धरेगी तोय।।माखना।।
मैं जानू कान्हा गयो बिरजमें, रहयो भवन में सोय
काऊ ग्वाल की नजर लगी है, गई कमलिया खोय।।माखना।।
नहीं छोडुं माखन की चोरी, होनी होय सो होय
सूर श्याम यशोमती आगे, दियो नैन भर रोय।।माखना।।

कई बार गोपियाँ यशोदा के घर आकर कन्हैया से प्रेमभरी विनती करतीं- कान्हा, तूँ हमारे घर चलेगा? कन्हैया कहते हैं- हाँ-हाँ चलूँगा। पर तुम मुझे क्या दोगी? गोपी कहती अच्छा तो बतला तूँ क्या लेगा? कन्हैया कहता- माखन। गोपी हँसकर पूछती- कितना माखन लेगा? कन्हैया दोनों हाथ फैलाकर कहता - इतना। इस पर गोपी ठहाका लगाकर कहती- अरे मेरे लाला, इतना माखन तूँ क्या करेगा? कन्हैया कहता- मैं अपने साथियों को भी खिलाऊँगा। गोपी कहती- अच्छा चल लाला। कन्हैया गोपी की अँगुली पकड़ कर चल देते।

घर जाकर गोपी सोचती कि- यदि कन्हैया के हाथ पर माखन रख दूँगी तो यह चला जायेगा अत: इसे कुछ देर फँसाए रखने के लिये वह कहता- लाला, जरा नाच तो दिखला दे तो तुझे माखन दूँ। लाला गोपियों की प्रसन्नता के लिये उनके आँगन में मटक-मटक कर ता-ता थैया, ता-ता थैया नाचने लगते। यह देखकर गोपियाँ चुटकी बजातीं, ताली बजातीं और हा-हा कर हँसती थीं। **ब्रह्म नाचि रह्यो चुटकिन पै व्रज में।** कन्हैया के पैर में बँधे घुंघरू इस नृत्य में वाद्य का कार्य करते थे। नाचते-नाचते जब कन्हैया थक जाता तो गोपी उसे गोद में उठाकर हिलोरे लेने लगती।

कन्हैया ने कहा- अच्छा गोपी अब तो माखन दे दो। गोपी ने कहा हाँ-हाँ, दे रही हूँ। तब तक लाला जरा मेरा वह पीढ़ा तो लाकर यहाँ रख दो। उस पर कन्हैया दौड़कर जाते और जैसे-तैसे जोर लगाकर उसके पीढ़े को लाकर रख देते। कभी

तौल के बटखरे को लाते। कभी खड़ाऊँ लाते, तो कभी अपने प्रेमी भक्तों को आनन्दित करने के लिये ताल ठोंकते। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण नित्य गोपियों को आह्लादित करते थे। गोपियों के इसी सौभाग्य को देखकर किसी कवि ने कहा है-

यदपि यशोदा नन्द अरु ग्वाल-बाल सब धन्य। पै या जग में प्रेम की गोपी भईं अनन्य।।

हे राजन्, जब कोई ब्रजबाला चोरी करते समय पहुँचकर नन्दलाल से यह कहती कि तुमने हमारे सूने घर में आकर माखन व दही की हाँड़ी में क्यों हाथ डाला तब उसको उत्तर देते कि मैं धोखे से अपना घर जानकर यहाँ चला आया, दही में चिउँटी पड़ गई थी सो निकालता हूँ। कदाचित् कोई ब्रजबाला दही आदि खाते समय आकर कहती कि हे माखनचोर। तू हमारा दही क्यों खाता है तब मोहनप्यारे उस गोपी को आँख के सैन से निकट बुलाकर दूध या दही जो मुख में लिये रहते थे उसके मुख व आँखों पर कुल्ला कर देते थे। जब तक वह मुख व आँख पोंछती तब तक भागकर अपने घर चले आते थे।

कन्हैयाकी आँखे हिरन-सी नसीली। कन्हैयाकी शोखी कली-सी रसीली।।
कन्हैयाकी छबि दिल उड़ा लेनेवाली। कन्हैयाकी सूरत लुभा लेनेवाली।।
कन्हैयाकी हर बातमें एक रस है। कन्हैयाका दीदार सीमीं कफस है।।
कभी गोपियोंमें जो पनघटपै आये। वह नखरेमें आईं तो ये हठपै आये।।
किसीका सलामत दुपट्टा न छोड़ा। जो भागीं तो कंकड़ से मटकोंको फोड़ा।।
जो हाथ आई उसकी मरोड़ी कलाई। बहुत कसमसाई न छोड़ी कलाई।।
बिठाया जमींपर पकड़कर किसीको। रखा बाँसुरीसे जकड़कर किसीको।।
वह कहती हैं- अब शाम होती है प्यारे। यह कहते हैं- क्यों आईं जमना किनारे?
ग्वालिनका मक्खन चुराकर जो भागे। वह लाईं शिकायत जसोदाके आगे।।
कह तेरा मोहन सताता बहुत है। चुराता तो है, पर लुटाता बहुत है।।
कई एक पहलेसे घरमें खड़ी है। जसोदासे सब बारी-बारी लड़ी हैं।।
वहीं नागहाँ नन्दका लाल आया। कयामतकी चलता हुआ चाल आया।।
कहा दूरसे- झूठ कहती हैं माता। इसी ताकमें ये तो रहती हैं माता।।
शिकायत अरजाँ मजाक इनके सस्ते। कहीं जाऊँ तो रोक लेती हैं रस्ते।।
ये छेड़ें मुझे और दुहाई न दूँ मैं। जो ठोकर, झटककर कलाई न दूँ मैं।।
जो पनघट पै इनको दिखाई न दूँ मैं। जो मुरली बजाता सुनाई न दूँ मैं।।
तड़पती हैं बेचैन होती हैं क्या-क्या। मेरे गममें आँसू पिरोती है क्या-क्या।।
न शबको मिला हूँ न दिनको मिला हूँ। महीनोंके बाद आज इनको मिला हूँ।।
ये झूठी हैं गर शिकवा- बर लब है आई। मुझे देखनेके लिये सब हैं आई।।

यशोदा उनको नित्य समझाया करती थीं कि हे बेटा, मेरे नव लाख गौ दही-दूध देनेवाली हैं, जितना दूध व माखन तुम्हारा मन चाहे, खाया और लुटाया करो। किसी दूसरे के घर चुराने मत जाओ। सब गाँववाले मुझे कहते हैं कि तू अपने बेटे को भोजन नहीं देती, इसी वास्ते वह सबके घर माखन व दही चुराकर खाता है। जब गोकुलवासी तुम्हें माखनचोर कहकर पुकारते हैं तब मारे लज्जा के मुझसे किसी को अपना मुख नहीं दिखलाया जाता। जब हाट-बाजार में दूध-दही बेचनेवाली यह सब ग्वालिन नित्य आकर तेरा उलाहना मुझे देती हैं तब मैं मारे लज्जा के डूब जाती हूँ। नन्दजी यह हाल सुनकर तुझे मारेंगे।

बड़े बाप के पूत चोर नाम राख्यो जगत। उपज्यो पूत सपूत नाम धरावत तात को।।

मैया बोली- अरी गोपियों बड़े अनुष्ठान कर करके बड़े दुख से इसको पाया है इस स्थिति में मैय्या को अत्यन्त चिंतित जानकर श्रीकृष्ण उसके पास आते हैं और मैया की चिबुक पकड़कर कहते हैं अरी मेरी भोली मैय्या मैं तो तेरा लाला कन्हैया हूँ।

नन्द बाबा की बहुत-सी गाएँ थीं। उनके घर कई मटकी माखन प्रतिदिन निकलता था। कितना खायेगा कन्हैया? अत: यही मानना युक्तिसंगत है कि कन्हैया माखनचोरी लीला नहीं, मनचोरी लीला किया करते थे।

एक दिन एक गोपी आई और बोली अरी मैया तू कितनी कंजूस है कि तू नौ लाख गायों का दूध दुहाती है और उसका दही जमाती है और तेरे परिवार में पाँच ही प्राणी हैं जिनमें बलराम और कृष्ण दो ही पुत्र हैं किन्तु तू उनको भी दही मक्खन नहीं खिला सकतीं जिससे वह गोपियों के यहाँ चुरा चुरा कर खाता है। तूने बुढ़ापे में बड़े पुण्य से इनको पाया है फिर भी उनको जी भर कर नहीं खिलाती और उनके खिलाने में भी चतुराई करती है। अरी जसोदा तेरा हृदय बड़ा कठोर है।

नन्द बाबा सुनकर गरदन झुकाकर लज्जित हो गये तब यशोदा ने हँस हँस कर उनको समझाया कि अरे महर यह तो उलाहना के बहाने कन्हैया को देखने आई है क्योंकि इसका मन उसने मोह लिया है।

ऐसा कहकर यशोदा ने हँसकर उसे बिठा लिया और बोली कि लाला अभी तक आया नहीं है उसको आशीर्वाद देकर जाना। मैं तो तुम्हारी सदा कृतज्ञ हूँ। यशोदा भी अत्यन्त सकुचाकर लाला को समझाती है।

श्यामने देखा आज उसके कारण मैया बड़ी लज्जित हो रही है। गोपियाँ महारानी यशोदा को परास्त किये जा रही हैं। श्याम का मोह भंग हो गया बोले- मैया अब मेरी भी सुन-

मैया जब मैं घर ते चलूँ, बुलावें ग्वालिन घर में मोय।
अचक हाथ कौ झाली दैके, मीठी बोलें देवर कहिकें। निधरक ह्वै जाय सांकर दैके।।
झपट उतारैं काछनी, मुरली लेय छिनाय। मैं बालक ये धींगरी, इनते कहा बसाय।
आपहू नाचै मोय नचावैं, कहा बताऊँ तोय।।
एक दिन पनघट पर मैया, मैं बैठ्यो एक द्रुम की छैयां, ढिंग बैठ्यो बलदाऊ भैया।।
ये पहुँची लै गगरिया रिपट्यौ याकौ पांम। मेरे गौहन परि गई धक्का दीनौ श्याम।।
गुलदा दै दै गाल लाल किये, मैं ठाड़ी रह्यो राजेउ।
तेरे मुंह पै करे बढ़ाई बाहर निकसत करैं बुराई। ऐसी वृज की ढीट लुगाई।।

हे माता, यह सब ब्रजबाला मुझे यमुना किनारे व गली राह में से अपने घर बरजोरी पकड़ ले जाती है और कोई मेरा मुख चूमती, कोई कपड़ा खींचती, कोई मेरी टोपी उतार लेती, कोई मेरे गाल में मुक्का मारकर कहती हैं कि तू नाच। हे माता, ये गोपियाँ मुझे बड़ा दु:ख देती हैं। तुम यह गाँव छोड़कर कहीं दूसरी जगह चलकर बसो। ऐसी मीठी बातें मोहनप्यारे की सुनकर यशोदा ने गोपियों के कहने का विश्वास नहीं किया।

माखन प्रभुहि उठाय के मातु लियो उर लाय। गोपिन सों बिनती करी रहीं सबै शिरनाय।।
झूठो दोष लगाय के नित उठि आवत प्रात। सम्मुख बोलत लाज तजि फेरि बनावत बात।।

गोपियाँ श्रीकृष्णगत प्राण थीं। उनका मन, तन, धन सब कृष्ण का था। वे जीवित ही कृष्ण के लिए थीं। घर में रहती कृष्ण के लिए, घर का कार्य करती कृष्ण के लिए। उनकी निर्मल और योगीन्द्र दुर्लभ बुद्धि में केवल कृष्ण ही कृष्ण थे। उनके समस्त दैनिक कर्म कृष्ण को सुख पहुँचाने के हेतु थे- प्रात: उठते ही कृष्ण का गुणानुवाद गाना, अपने घर, आँगन, द्वार को उनके आगमन के लिए साफ-सुथना बनाना। वे जागृत, सुषुप्ति, स्वप्न में भी कृष्ण की मधुर लीलाओं का अनुभव करतीं। दूध निकालतीं तो कृष्ण के लिए दही जमातीं तो कृष्ण का ध्यान करके कि चक्क दही जमे दही विलोतीं तो भी

यह ध्यान करतीं कि गाढ़ा स्वच्छ मक्खन निकले जिसे खाकर कान्हा प्रसन्न हो, वे जानकर मन ही मन कृष्ण का आवाहन करके मक्खन को ऐसे स्थान पर रखतीं कि कृष्ण को आते ही दिखाई दे जाय। जब कृष्ण माखन खाते तो गोपियाँ निहाल हो जातीं, वे अपना जीवन धन्य मानने लगतीं। नटवर उन्हें चिढ़ाते, उन्हें छेड़ते। वे जानकर ऐसा अवसर उत्पन्न करतीं कि कृष्ण उन्हें परेशान करें- जैसे दही बेचने जातीं तो इकट्ठी होकर कृष्ण का यशोगान करती जातीं ताकि गोपाल यह जान लें कि वे जा रही हैं। कृष्ण आवें, हमें रोकें, हमें उनके स्पर्श करने का अवसर मिले। इन लीलाओं का आनन्द केवल व्रज की श्रीमन्तिनियाँ ही जानती हैं। गोपियों का सदैव यही प्रयास रहता था कि किसी बहाने कृष्ण की छवि देखने को मिले उनकी बाल लीला के माधुर्य का रस गान करें, बड़ा ही सौभाग्य होगा यदि उनका स्पर्श मिल जाय तो।

जब गोपी को देव दुर्लभ यह सौभाग्य प्राप्त हो जाता है तो वह खुशी से झूम उठती है, आनन्दित हो जाती हैं। अन्य वनितायें जब उससे पूछती क्या कुछ मिल गया ता वह प्रेम विह्वल हो जाती है, उसका रोम-रोम खिल उठता है, गद्‌गद् हो जाती हैं, बोलना चाहती हैं तो बोल नहीं पाती। स्पर्श सुख का अनुभव अन्दर ही अन्दर करती है। अब सखियाँ बहुत आग्रह करती हैं तो केवल इतना उसके मुख से निकलता है- आज मैंने उसे पा लिया।

जगमहँ भटके जीव प्रेम बिनु शान्ति न आवे। क्षणभंगुर जगभोग भोगिके सुख नहिँ पावे।।
प्रेमधाम हैं श्याम हियेमहँ यदि बसि जावें। होवे जीव कृतार्थ दु:ख सन्ताप नसावें।।
प्रेम पन्थ अति अटपटो, बिनु बोले दिन दिन बढ़े। चाहे वह यह फेरि मुख, जाय रङ्ग गहरो चढ़े।।
सखनि सङ्ग सुखतें सरस, खेलें खेल अनेक नित। चहल-पहलमहँ दिन कटत, चिन्ता लिपटे नहीं चित।।
कबहुँ बिवुध कबहूँ सुरवामा। आवहिं हेतु दरसु घनश्यामा।।
कहुँ बिरन्चि हरि कबहुँ पुरारी। आवहिं छदम बेष तनु धारी।।
कहुँ जयेतिस कहुँ गायका रूपा। कबहुँ नटहिं कहुँ बनिक स्वरूपा।।
कहुँ नृत्यक बनि कबहुँ मदारी। कबहुँ गोप सेवकु तनु धारी।।

कभी ऋषि मुनि शरीर धारण करके कभी काल ज्ञाता बनकर आते थे प्रभु के दरसन को पाकर अत्यधिक हर्षित होते थे। सुख मान कर छदम वेश में कभी उमा कभी रमा कभी ब्रह्मानी आदि भी आती थी कभी कौतुक करनेवाली बनकर कभी भेद बतलाने वाली कभी सहचरी तो कभी सेविका कभी गोपियाँ बनकर कभी वस्तु बेचनेवाली बनकर आती थी प्रभु दरसन पाकर मगन हो जाती थी।

अलख निरन्तर परम गति अति दुर्लभ जो ईश। भगत भगति रस प्रेम बस भएउ सुलभ परमीश।।

जो ईश्वर अलख निरन्जन परमगति एवं अत्यन्त दुर्लभ है वही अपने भक्तों के भक्ति प्रेम रस के बस में होकर सुलभ हुआ है।

इसीलिये जब कोई उलाहना देने आती है तो यशोदा उनके मन की न जानकर दुखी हो जाती है और इधर गोपियों की दशा ऐसे प्रेमरस में मतवाली हो गई है कि बिना कृष्ण दर्शन के उनकी छाती जलने लगती है।

चाहे बाला हों, चाहे तरुण हों, चाहे बड़ी हों कोई हों बिना श्रीकृष्ण के क्षण भर को रह नहीं सकती हैं। वे प्रेम में विभोर सुध बुध सी बनी डोलती रहती हैं और घर के कामों में जबरदस्ती मन को लगाती हैं।

वे घर आँगन और खम्भों में जहाँ कहीं देखती हैं उन्हें श्रीकृष्ण की ही छबि दिखाई देती है उनके हृदय में बड़े लोगों का कोई संकोच नहीं रह गया है उन्हें जब यह भान होता है कि श्रीकृष्ण बुला रहे हैं तो वे उस ओर दौड़ जाती हैं।

उनकी आँखों से श्रीकृष्ण के रूप को छोड़कर और कुछ नहीं दिखाई देता और उनके कानों में प्रत्येक पल प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण के अमृत बचन ही रस ढलकाते रहते हैं। ब्रज गोपिकायें अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को समर्पित कर देती हैं यहाँ तक

कि अपनी कामनाओं को भी उन पर न्यौछावर कर देती हैं। वे गोपिकायें अतुलनीय प्रेम की सुन्दर घनी मूर्ति हैं, इसलिये पूर्ण काम श्रीकृष्ण उनका दर्शन करके बलि बलि जाते हैं।

श्रीकृष्ण का स्वभाव ऐसा है कि वे प्रेम के वशीभूत हैं ऐसा उनका स्वभाव यशोदा नहीं जानती। इसलिये उलाहना सुनकर ब्याकुल होती है और भय मानती है और कभी वह श्रीकृष्ण के लीला रस के सागर की लहरों में लहराने लगती है और क्षण क्षण में भ्रमित होने लगती है। इस प्रकार कन्हैया की अनन्त बाल लीलायें हैं, जिन्हें देख-सुनकर व्रज की गोपियाँ आनन्द का अनुभव करती थीं। मैया भी लाला की भयभीत छवि निहार कर कुछ भी नहीं कह पातीं। प्रत्युत अपनी गोद में उठा कर उन्हें प्यार करने लगतीं।

यदि भगवानके नित्य परम धाममें अभिन्नरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनासिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी लालसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी लगन इतनी सच्ची थी कि भक्तवाञ्छाकल्पतरू प्रेमरसमय भगवान उनके इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चीरहरण करके उनका रहा-सहा व्यवधानका परदा उठा दें और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

माखनचोरी लीला कन्हैया की शैशव-लीलाओं का प्राण है। कन्हैया गोपियों का माखन नहीं, बल्कि माखन की तरह कोमल उनके मन की चोरी करते थे। माखनचोरी-लीला मनचोरी लीला है। नौलख गौएँ नंद बाबा के। नित नव माखन होय। नन्द बाबा की बहुत-सी गाएँ थीं। उनके घर कई मटकी माखन प्रतिदिन निकलता था। कितना खायेगा कन्हैया? अत: यही मानना युक्तिसंगत है कि कन्हैया माखनचोरी लीला नहीं, मनचोरी लीला किया करते थे।

कोई मिथिला की गोपी, कोई अयोध्या की गोपी, कोई कौसल देश की गोपी, कोई रमा वैकुण्ठ की इत्यादि। अन्य नगर तथा लोकों की गोपियाँ ही गोकुल में व्रज गोपी बनकर अवतरित हुई थीं। पदम्पुराण के अन्दर वर्णन आता है कि एक ऋषि ने सौ कल्प तक प्रभु का भजन किया, उनके बल पर ये ऋषि सुनन्द गोप की कन्या सुनन्दा गोपी बने। एक ऋषि ने दस कल्प तक भजन किया तो सौभद्रगोप की कन्या सुभद्रा गोपी बने। एक हरिभामा ऋषि ने तीन कल्प तक भजन किया तो सारंग गोप की कन्या रंगवेनी गोपी बने। जाबाली ऋषि ने जब मंत्र जपा तो नौ कल्पों के बाद प्रचण्ड गोप की कन्या चित्रगंधा गोपी बने।

श्रुतियां गोपियाँ जो नेति-नेति के द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्रूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती है और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमें परिणत होकर भगवान श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती है। इनमें मुख्य श्रुतियोंके नाम हैं- उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकण्ठिका और विपञ्ची आदिं

भगवानके श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले- अपने-आपको उनके स्वरुप-सौन्दर्यपर न्योछावर कर देनेवाले सिद्ध ऋषिगण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें गोपी रूप प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी- पुलिन्दगोपी, रमावैकुण्ठ, श्वेतद्वीप आदिकी गोपियां और जालन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूथ थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवानसे वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

हमको ऐसा लगता है कि सखियों के घर में चोरी की है लेकिन चोरी का उद्देश्य नहीं है। जिसके अपने घर में नौ लाख गईयाँ हैं, फिर भी अगर वह चोरी करता है तो उसका मतलब है वह उनको खुश करने के लिए कर रहा है। गोपी रूप में ऋषियों को अपने भजन के प्रताप से कन्हैया की बाल लीलाओं का सुख प्राप्त हो रहा है। इतने कल्पों तक जिसने तपस्या

की है कि हे परमात्मा, हमको गोपी बनाओ। फिर वे गोपी बने, क्या उनके घर सूने रह जायेंगे। फिर अगर दुनियाँ उनके ऊपर किसी प्रकार का लांछन लगाकर पाप कमाती है तो इसमें परमात्मा का क्या कसूर? गोपियोंकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये भगवान ने उनकी मनचाही लीला पूरी की। रासलीला के प्रसंग में भगवान ने स्वयं गोपियों से कहा है गोपियों, तुमने लोक और परलोक के सारे बन्धनों को काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है; यदि मैं तुममेंसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अनन्त कालतक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे ऋणरहित मानकर और भी ऋणी बना दो। यही उत्तम है। सर्वलोकमहेश्वर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं जिन महाभागा गोपियोंके ऋणी रहना चाहते हैं, उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान पूर्ण कर दें- यह तो स्वाभाविक ही है।

साक्षात् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म, सबकी भूख मिटानेवाला भगवान श्रीकृष्ण गोपियोंके घरोंमें जा-जाकर और उनके घरोंकी गायोंका दूध-दही-माखन-मलाई और मिश्री खा-खाकर अपनी भूख मिटाता है। गोपिकायें महाभागा है जिनकी घरोंमें जाकर श्रीकृष्णब्रह्म माखन मिश्री माँग-माँगकर खा रहे हैं।

प्रेम करी हरि माखन-चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी।।
मनमें यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ। गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ।।
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग। सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग।।

अपने निजजन व्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये ही तो भगवान गोकुलमें पधारे थे। माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था। लाख -लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं; सभी व्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे। गोपियोंकी लालसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते। यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान्के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान भक्तकी पूजा स्वीकार कैसे न करतें?

जन-जीवन उत्सव की तरह हो, इसीलिए तो माखन चुराया है कृष्ण ने, जिससे एक साधारण गोपी भी यशोदा के समकक्ष खड़ी होकर यशोदा के पुत्र की शिकायत कर सके। यहां पर समरसता का सिद्धांत और रस वर्षण का सौंदर्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है क्योंकि जहां श्रीकृष्ण ने माखन चुराया हैं, वही गोकुलवासियों को अभयदान दिया है।

कृष्ण कन्हाई की लीलाओं में सबसे नटखट लीला है माखन चोरी। कान्हा को माखन बहुत ही पसंद था और माखन पाने के लिए वे बृज के किसी भी घर में प्रवेश कर अपने सखाओं के साथ माखन की दावत उड़ाते थे। जिन घरों में माखन चोरी होती, वे गोपियां यशोदा के पास कान्हा की शिकायत लेकर पहुंच जाती थीं। लेकिन इसके पीछे का गूढ़ मकसद था कान्हा के मनमोहक दर्शन। वे कान्हा को हर रूप में देखना चाहती थीं। उनके मनोहारी रूप को देखकर किसी का मन नहीं भरता था। जब यशोदा गोपिकाओं की शिकायत पर कान्हा को डाटतीं या मारती थीं तब गोपिकाएं उनके उस रूप का भी दर्शन कर आनंदविभोर हो जाती थीं। वास्तविकता यह थी कि हर गोपिका चाहती थीं कि कान्हा उसके घर में आएं और माखन चोरी करें। दिखावे के लिए वे माखन को इतनी ऊंचाई पर छींके पर रखती थीं कि कान्हा माखन चोरी न कर सकें। लेकिन कान्हा अपने ग्वालों के कंधों पर चढ़ कर स्वयं भी माखन खाते और ग्वालों को भी खिलाते।

गूढ़ अर्थ में देखा जाए तो यह भी कान्हा का मानवजाति के लिए संदेश था कि किसी वस्तु को या फिर आज के दौर में कहा जाए तो सफलता को पाने के लिए एकजुट, संघर्ष और सहयोग की आवश्यकता होती है। कान्हा स्वयं भगवान का अवतार थे। लेकिन उन्होंने मानव शरीर में जन्म लिया था और मानव जाति के लिए विविध संदेश भी दिए थे। माखन की

लालसा याने किसी वस्तु को पाने के लिए पहले एक दल बनाना, फिर संघर्ष करते हुए उस वस्तु को पाना और फिर पाने के बाद उसे मिल-बांट कर खाना। यह महान संदेश कान्हा ने दिया। इसी को आज गोविन्दा कहा जाता है। लेकिन आज का गोविन्दा शक्ति प्रदर्शन व वैमनस्य का प्रतीक बन गया है। गोविन्दा के गूढ़ अर्थ को हर व्यक्ति को समझना चाहिए। छींके पर बंधी हांडी का अर्थ है हमारी सफलता की मंजिल जिसे हम पाना चाहते हैं। लेकिन हकीकत यह है कि मंजिल इतनी मुश्किल है कि उसे अकेले नहीं पाया जा सकता। इसके लिए दल का गठन जो आपको सहयोग करें और उस मार्ग पर प्रशस्त करें। फिर उस दल के सहायता से सीढ़ी ऊपर चढ़ना और फिर अपनी मंजिल को पाना। कई बार ऐसा भी होता है कि मंजिल तक पहुंचते-पहुंचते ही हम गिर भी जाते है। लेकिन संघर्ष कायम रखते हुए, हार न मानते हुए फिर एकत्रित होना और फिर उसी हिम्मत के साथ आगे बढ़ना। मंजिल को पाने के बाद जो लाभ हुआ उसे मिल-बांट कर खाना। गोविन्दा का यह संदेश यदि मानव जाति समझ ले तो यह निश्चित है कि संसार से भेदभाव, दुश्मनी, जातिवाद सब कुछ नष्ट हो जाएगा और चारों ओर अमनशांति व भाईचारे का वातावरण निर्माण हो जाएगा।

या विध ताको धीर दे, गये कृष्ण निज धाम। प्रेम विकल भभि गोपिका, जपन लगी हरि नाम।।
तनु गृह में मन कृष्ण में, कौन करे गृह काज। जिनके उर हरि लगन है, ते तज हैं जग लाज।।

जिन श्रीकृष्ण के मधुर रस का पान लक्ष्मी ने नहीं कर पाया उसे ही श्रीकृष्ण ने अंजली भर भर कर गोपियों को पिलाया। वेद ब्रह्म की इन लीलाओं को देखकर उनके इस नवीनतम स्वरूप को निश्चित करने का प्रयत्न करने लगा। शेष शंकर इस स्वरूप का पार ही नहीं पा रहे हैं।

जिन मधुरस पद्मा नहिँ पायो। अंजलि भरि गोपियन पियायो।।
निगम करत स्वरूप निर्धारन। शेष महेश पाव उन पार न।।
जो इन्द्रिय मन बुद्धि न आयो। रोम-रोम गोपिन तिन पायो।।
जिन कह गोबर पाथनवारी। सोइ तारिन नचवतिँ बनवारी।।

औरों के लिये जो इन्द्रिय मन बुद्धि का विषय नहीं है उसका आस्वादन गोपिकायें इन्द्रिय मन बुद्धि से ही नहीं अपितु रोम रोम से कर रही हैं जिन्हें गोबर थापनेवाली ही समझा जाता है वे ही गोपियाँ अपनी तालियों की ताल पर श्रीकृष्ण को नचाती हैं। वे श्रीकृष्ण उनकी सम्पूर्ण मन की इच्छाओं को पूर्ण करते फिरते हैं और उनकी आज्ञा सुनने की प्रतीक्षा करते हैं। कोई कहता है अरे लाला यह खड़ाऊँ उठा लावो, कोई कहती है लाला तनिक हँसते हुए मेरे पास तक आवो। कोई उनसे पीढ़ा उठवाती हैं और जब वे पीढ़ा को उठाते, घुटनों पर धरते और फिर पेट पर चिपकाते हैं तो गोपी आनन्द में डूब जाती हैं। किसी को माँगने पर वे झाडू लाकर देते हैं और किसी को अपनी मनहर ठुमुक चाल का आनन्द देते हैं। कोई ब्रज गोपी उनसे कहती है कि लाला वह मोरों का नृत्य देखो और इनके साथ तुम भी नृत्य करके मुझे आनन्दित करो। जो श्रीकृष्ण प्रेम रस इनके लिये इतना सुगम हो गया है वह ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है। जिन श्रीकृष्ण का दर्शन श्रेष्ठ योगी जनों के लिये भी दुर्लभ है उन्हीं को गोपिकायें बन्दर की तरह नचाती हैं। ब्रज गोपिकाओं की इच्छा जानकर उन्होंने बड़ी ही विलक्षण लीलायें कीं और जो उन्होंने मन ही मन कामना की थी वैसा ही सरस लीला रस उनको पिलाया।

वो रसीली गोपिकायें लीला के प्रवाह में डूबी हुयी अपनी सुध भूली रहती थीं और घर में, गोशाला में, आँगन में, पनघट पर, वन, उपवन, गलियों और यमुना तट पर। श्रीकृष्ण के चरित्र को मिल करके सुनती और सुनाती थी और लीला रस में स्वयं डूबती थीं और दूसरों को डुबाती थीं कोई कहती उनकी रस भरी चर्चा सुन कर उनकी याद में रात भर जागती रही।

वेद जिसको अन्तर्यामी कहता है और जिसको संसार का स्वामी तथा संसार को नियम में चलानेवाला कहता है वही ब्रह्म

अपने ऐश्वर्यों को छिपा कर और सारी नियामकता को भुलाकर ब्रज की भूमि में रस में मतवाला होकर विचरण करता है जिसे देख कर देवताओं के नेत्र शीतल होते हैं। कैसा आश्चर्य है कि जो प्राकृतिक इन्द्रिय मन बुद्धि से नहीं जाना जा सकता।

सखियाँ कन्हैया पर बलि बलि गईं और उसे आशीर्वाद देकर प्रसन्न हुईं और बोली अरी मैया तुम बुरा न मानो यह कन्हैया तो हमको भी प्यारा है।

वास्तव में यह चोरी चोरी नहीं है यह तो केवल लीला है और इसके द्वारा उन्होंने उनकी पूजा स्वीकार की है जो इस लीला के पात्र हैं।

गोपियाँ रात दिन उन्हीं में चित्त लगाये हुये घर काम करती थीं। उनके प्राण कृष्ण में ही लगे हुये थे और उनकी बुद्धि श्रीकृष्ण रस में सनी हुई थी। उनका तन, मन, धन कृष्ण में ही लगा हुआ था और उनकी पवित्र बुद्धि और सुमिरन कृष्ण में ही पगे हुये थे। वे कृष्ण के ही सुख से सुखी रहती थीं और कृष्ण के द्वारा ही पिलाये हुये लीला रस से वे आनन्दित रहती थीं। वे उन्हीं के लिये दूध दुहती थीं उन्हीं के लिये दही जमाती थीं और उन्हीं के सुख के लिये सुख के साज सजाती थीं उन्हीं के लिये दही मथ कर बढ़िया मक्खन निकालती थीं और उनके दर्शन के लिये ही बढ़िया रुचि पैदा करती थीं।

अपनी ही सम्पत्ति को श्रीकृष्ण भक्तों की अभिलाषा जानकर चुराते हैं और रस घोर कर उनको रस में डुबोते हैं और प्रेम का नाता जोड़कर उसको निभाते हैं।

उनको गोपियों ने जीत लिया है और वे उनको मोल लिया हुआ दास बनाकर रखती हैं और वे युग युग तक इस रस को फैलाती रहती हैं और उनकी चोरी को प्रमाणित करती हैं।

कन्हैयाकी प्रेमलीलाका विलास दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा था। उनका चोरी-चोरी किसीका मक्खन खा जाना, दही-दूध ढरका देना और किसी गोपीका चीर लेकर वृक्षकी डालपर बैठ जाना आदि गोपियोंके लिये असह्य-सा होता जा रहा था। फिर तो यशोदाजीके पास पहुँचकर वे कन्हैयाकी शिकायत करनेसे चूकती नहीं।

वही नन्द का दुलारा अत्यन्त छबि वाला अविनाशी तत्व प्यारा श्रीकृष्ण है जिनकी लीलायें सब प्रकार से अविनाशी हैं और जो बालकों के खेल की तरह विकसित होकर शोभायमान होती हैं।

जिनमें धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और समस्त ऐश्वर्य स्वयं और सदैव निवास करते हैं।

स्वयं वे भगवान ही कृष्ण रूप में शोभायमान हो रहे हैं जिनके नाभि के कमल से ब्रह्मा जी प्रगट हुये हैं।

जो पूर्ण और परे से भी परे ब्रह्म हैं। वे करने योग्य न करने योग्य विपरीत करने योग्य और सब कुछ करने में समर्थ हैं।

वात्सल्य रस की साक्षात मूर्ति यशोदा ऐसे नीलमणि कृष्ण को अपना पुत्र मानती है वह वात्सल्य रस में इतना डूबी रहती हैं कि वह इनके ऐश्वर्य को नहीं देख पाती।

११) कर्णवेध- व्रजको वैद्यकी आवश्यकता नहीं होती। प्रकृतिमें अंकमें उन्मुक्त क्रीड़ा करनेवाली जातियाँ प्राय: कृत्रिम जीवन की विकृतियों से अपरिचित होती हैं। वैद्यकी आवश्यकता सबसे अधिक विलासी-जीवनकी होती है।

गोप उन्मुक्त वनोंमें विचरण करनेवाली जाति है। गो-सेवकोंको वैद्यसे कोई प्रयोजन नहीं? अमृतको भी अनादरित करनेवाला गोरस है उनके समीप और कोई रोग कभी आ ही जाय तो गोमूत्रके सम्मुख टिकता नहीं। समस्त चर्मरोगोंके अधिदेवता गोबरकी रगड़से काँपते हैं। गोरज जिस क्षेत्रपर उड़ती है, ग्रह, भूत-प्रेत, यक्ष सब तो वहाँसे दूर रहते है। अत: व्रजमें वैद्य को कोई नहीं पूछता। जो कन्हैया दो वर्ष पाँच महिनेका हो गया तो माताके अंकमें बैठकर उनके कुण्डल खींचने लगा और मचल गया कि मुझे इसको पहना दे। माता बोली- तेरे कानोंमें छिद्र नहीं है। जब तेरा कर्णवेध होगा तब

कुण्डल पहनाये जायेंगे। कन्हैया बोला- मेरे कानोंमें छेद कर दे मैं तो अभी पहनूंगा। मैया बोली- मुझे छिद्र करना नहीं आता। कन्हैया कैसे मान ले कि कोई काम माता को नहीं आता। मैया बोली- बाबा महर्षि शाण्डिल्य मुनि को बुलाकर मुहूर्त निकलायेंगे, पूजन करायेंगे, कोई वैद्यराज आयेगा तब वे छिद्र करेंगे। कन्हैया नन्दबाबा के पास जाकर बोला- मैं कुण्डल पहनूंगा। तुम महर्षि के पास चलो और मुहूर्त निश्चित कराओ। कन्हैया तो हठी था नन्दबाबा यह जानते थे। महर्षि शाण्डिल्य सर्वज्ञ, समर्थ सारे मुहूर्त उन्हींके संकेत पर चलते है। महर्षि ने बताया पञ्चम या सप्तम मासमें बच्चेका कर्णवेध होना चाहिये। यह शरद ऋतु है, शुक्लपक्ष है आप स्वर्णकारको शलाका निर्माणका आदेश दे। सौम्यवासर द्वादशी में कर्णवेधका उत्तम मुहूर्त है। इसके लिये सुर-वैद्य अश्विनीकुमारों का आह्वान कर लूँगा।

कुलगुरु श्री शाण्डिल्य महाराज ने लाला के कुण्डल पहनने के लिये कर्ण छेदन का मुहूर्त निकाला। स्वर्णकार को बुलाकर सोने के कुण्डलों का जोड़ा तैयार करवाया फिर विचार किया गया कि कन्हैया का कर्ण छेदन होगा तो बाकी बालक पीछे कैसे रह जायेंगे। इसीलिये कानों में छेद करने के लिए बहुत सी चाँदी की शलाखायें और ढेरों कुण्डल कन्हैया के सखाओं के लिये बनवाये गये।

देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार ने मन में विचार किया, कन्हैया आदि बालकों के कर्ण छेदन की सेवा में अपने हाथों से करूँ तो मेरे लिए अति सौभाग्य का विषय होगा। अश्विनी कुमार बूढ़े वैद्य का रूप बनाकर गोकुल में आ गए। शाण्डिल्य ऋषि के द्वारा कर्ण छेदन संस्कार करवाने के लिए विधि विधान से पूजन करवाया। कन्हैया आदि के द्वारा पूजन विधि विधान से सम्पन्न होने के पश्चात वैद्यराज ने बालकों के कान छेदने प्रारम्भ किये। बालकों का रुदन सुनाई न पड़े इसलिए उच्च स्वर से डमरू और शंख बजाए गए।

मैयाने दोनों कर पकड़ रखे थे। ये अरुण चरण उछाल-उछालकर रो रहे हैं। गोपियोंमें कोई नृत्य करते मयूरको दिखलाती हैं। कोई कहती हैं- लाल। यह रत्नसारिका बोलने लगी है। किंतु सारिका बोले या रोये, ये नहीं देखते।

तोक यह इनकी दूसरी मूर्ति इतना स्नेह-भाजन इनका? इन्होंने तो सुनते ही इधर-उधर सिर किया। मैयाने अञ्चलसे अश्रु पोंछ दिये और ये उठ पड़े। अब अपने इस छोटे भाईके कपोलपर नन्हा कर रखकर कहते हैं- चुप। चुप हो जा। तोक भी अद्भुत है। अभी सबसे अधिक रो रहा था। कर छुड़ानेको छटपटा रहा था अब हँसने लगा है। इनको देखकर और ये अपनी हथेलियोंसे ही उसके अश्रु पोंछ रहे हैं।

पहले वैद्यराज ने चाँदी की सलाखाओं पर दर्द निवारक औषधियाँ लगाकर सर्वप्रथम दाऊ दादा के कानों में छेद किया। उसके पश्चात कन्हैया के कानों पर हाथ लगाया तो वैद्यराज जी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नन्दनन्दन के कानों में तो जन्म से ही छिद्र बना हुआ है। अत: अन्य बालकों के कानों के धागे काटकर उसमें कुण्डल पहनाए गए। वैद्यराज अपनी सेवा से परम प्रसन्न हुए और सेवा का पूर्ण फल प्राप्त करके अपने धाम में चले गए।

१२) कन्हैया का मिट्टी खाने का प्रसंग- शास्त्रों में ब्रज की महिमा का बड़ा वर्णन हैं। सन्त, महात्मा, मुनि ब्रज की रज का गान करते हैं।

रमणरेत लेट्यो नहीं, कियो न जमुना पान, रे मन तूं समझ्यो नहीं, ब्रज को तत्व महान्।
जो रमणरेती लेटे नहीं, जमुना पान किये नहीं उसका ब्रज में रहने का क्या मतलब।
मुक्ति कह गोपाल सौं मेरी मुक्ति बताय। ब्रजरज उड़ मस्तक लगै तो मुक्ति मुक्त है जाय।।

कृष्ण मिट्टी खाया करते थे। माता यशोदा ने उन्हें मिट्टी खानेसे मना किया था। माँ ने एक दिन पकड़ा तो अपना मुख बंद

कर दिया। माँ ने डाँटा तो अपना मुख खोल दिया। कृष्णने मुख खोला तो यशोदा देखती है समस्त ब्रह्माण्ड उनके अन्दर है। यशोदा आश्चर्यचकित हो गयी। तुरंत अपनी माया से उन्हें मोहित कर लिया और वे सब कुछ भूल गई।

एक दिन कन्हैया ने ग्वालबालों के साथ खेलते हुए मिट्टी खा ली।

एकदा क्रीडमानास्ते सममाद्या गोपदारका:। कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन्।।

सखाओं के साथ खेलने में श्रीकृष्ण को अनुराग आता था। एक दिन कृष्ण-बलराम तथा अन्य सखागण खेल रहे थे। बालकृष्ण किसी कारण असंतुष्ट हो मृत्तिका के ढेर पर बैठ गये और मृत्तिका भक्षण करने लगे। बलराम ने मना किया, सखाओं ने मना किया, किन्तु वे खाते ही गये। मनसुखा सखा दौड़कर माता यशोदा के पास गये और चुपके से बताया- कि तेरे लाला कन्हैया ने मिट्टी खाई है।

एक दिवस बलराम सँग, खेलत कुँवर कन्हाय। सखन आय यशुमति कह्यो, कनुवाँ माटी खाय।।
मैया डाँटि कहति रे नटखट। काम करत तू नित नव अटपट।।
छिप-छिप, चुप चुप माटी खाई। रे शूकर। तोहिं घृणा न आई।।

बालकों ने जाकर मैया यशोदा से शिकायत करते हुए कहा- मैया, तेरे लाला ने मिट्टी खाई है।

यशोदा ने देखा उन बालकों में दाऊ, भद्र, विशाल, अर्जुन तथा अन्य सखा भी हैं श्याम के और सब सखा कह रहे हैं, कानू ने मिट्टी खाई हैं। यशोदा ने छड़ी उठा ली मारने के लिए। सुनन्दा बुआ ने उसे रोकना चाहा किन्तु झिड़क दिया नन्दरानी ने तुम देखती नहीं उसका स्वभाव दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा है। यशोदा बाहर पहुँची श्याम मिट्टी के ढेर पर ही बैठा था। सर्वांग धूलधूसरित था। माँ को छड़ी लिए आती देख ढेर पर ही खड़े हो गये किन्तु भयभीत थे। यशोदा ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और बोलीं- क्यों रे तूने मिट्टी खाई है?

सुनो वचन मम यशमति माई। आज कृष्ण ने माटी खाई।।
हम बहु विध याको समझावत। हम सबसे यह छिपकर खावत।।

बलराम बोले- हे माता, आज कृष्ण ने माटी खाई है। हम सब प्रकार से समझाते हैं, परन्तु हम सब बालकों से छिपकर यह माटी खाता है।

यशोदा बोली- **कह कैसे तुम माटी खाई। निडर भया तू मात भुलाई।।**
भाखत यह सब सखा तुमारे। पुन तव अग्रज राम उचारे।।

हे कन्हैया तुमने माटी क्यों खाई? मालूम पड़ता है कि तुम माता के भय को त्यागकर अब निर्भय हो गये हो। कन्हैया बोले- मेरा माटी खाना तुमने कैसे जाना? यशोदा बोली- तेरे यह सब सारे सखा और फिर तुम्हारे बड़े भाई बलराम भी कह रहे है। कन्हैया बोले-

यह सब बालक झूठ पुकारत, मिथ्या दोष लगाई। मैं नवनीत दधी सों पूरण, रज की कहां समाई।।
मैं तो खेलूं एका एकी, इन भ्रम देत दिखाई। समुझ सोच देखो तुम मन में, बालक तूं बैकाई।।
अपने सम यह मोको जानत, मति इनकी बौराई। नहिं निश्चय तो मम मुख देखो, क्या रज देते दिखाई।।

कृष्ण बोले- हे मैया, मैंने तो थोड़ी सी भी माटी नहीं खाई। ये बालक तो सब झूठ ही कहते हैं और मुझ पर माटी खाने का झूठा ही दोष लगाते हैं। क्योंकि मैं तो माखन और दही से तृप्त हो रहा हूँ, फिर मेरे पेट में रज की कहाँ जगह है? हे मैया। मैं तो इन बालकों से भिन्न होकर अकेला खेलता हूँ, इसलिये इनको मेरा माटी खाने का भ्रम दिखाई देता है। हे माता, तू अपने

मन में ठीक से विचारकर तो देख, तेरे को बालकों ने बहका दिया है। इसमें झूठ (सन्देह) नहीं। ये बालक मेरे को भी अपने समान ही जानते हैं। अर्थात् जैसे हम माटी खाते हैं, वैसे ही यह कृष्ण भी खाता है। मैया, इनकी बुद्धि तो बावरी हो गयी है। तेरे को यदि मेरे वचन पर विश्वास नहीं तो मेरे मुख में देख, क्या इसमें कहीं भी रज दिखाई दे रही है।

यशोदा बालक का कल्याण चाहनेवाली है। वह सोचती है कि यदि लाला में मिट्टी खाने की आदत पड़ जायेगी तो उसके पेट में कीड़े पड़ जायेंगे अत: उसने कसकर लाला का हाथ पकड़ लिया और कान पकड़ लिया, छड़ी दिखा रही हैं। क्या ब्रह्मा में और शंकर में शक्ति हैं जो भगवान का कान पकड़ सकें, भगवान को छड़ी दिखा सकते। यह शक्ति तो केवल यशोदा में हैं। ब्रह्म को पूछ रहीं हैं तुमने मिट्टी कैसे खाई? वेद में ब्रह्मा का नाम हैं आप्तकाम, समस्त काम, पूर्णकाम, निष्काम लेकिन यशोदा कृष्णका कान पकड़ छड़ी दिखाकर कह रही हैं क्यों रे बन्दरों के यार, तुमने मिट्टी खायीं? तुम्हारे सखा कह रहे हैं, तुम्हारे बड़े भैया बलराम कह रहे हैं तुमने मिट्टी खाई। यशोदा की छड़ी ऊपर उठ गयी और लगा जैसे कन्हैया पर गिरने ही वाली हो। सुनन्दा दौड़कर यशोदा के करीब आ गई।

यशोदा ने स्नेहपूर्वक गोद में बिठा कर पूछा- मैंने सुना है तूने आज मिट्टी खाई, । तुम जैसा चाहो वैसा भोजन मुझसे लेकर पा लिया करो। तुम्हारे यहाँ किस बात की कमी है। बृजरज को खाकर तुम हमारी हँसी क्यों करवाते हो, लोग तो यही समझेंगे कि माँ कुछ खाने को नहीं देती इसलिए कन्हैया मिट्टी खाता है।

गृह आयो कान्हा तो मैया गोद बिठाई। कहा प्यार सों लाला सुना तुमने माटी खाई।।
जो चाहो भोजन पावो क्या कमी तुम्हारे। हंसी करावत बृज रज खाए नंद दुलारे।।

डाँटते हुए पूछा- क्यों रे नटखट, तूने छिपकर मिट्टी क्यों खाई? उस समय श्रीकृष्ण की आँखे डर के मारे नाच रही थीं। उन्होंने डरते-डरते पूछा- मैया, किसने कहा कि मैंने मिट्टी खाई है?

मैया बोली- यह सारे तुम्हारे साथी कह रहे हैं और तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हीं की ओर से गवाही दे रहे हैं।

झूठ कहत तोसों सभी मिट्टी मोहे नहीं सोहाय। न मानै तू बात मेरी दिखलावें मुख बाय।।

माँ यशोदा बोली, तुम्हारे देखा देखी मिट्टी खाने पर सब बालकों के पेट में कोई रोग हो जायेगा। ग्वाल बाल नित्य इस माटी को तुम्हारे साथ खायेंगे तो वे भी रोगी हो जायेंगे। कन्हैया बोला- अरी मैया, मैं जानता हूँ मनसुखा ने ही यह झूठी बात बताई है। उसकी तो चुगली खाने की आदत है और मेरी भोली मैया झट इस बात को मान गई। माटी भी क्या कोई खाने की वस्तु है? माटी में क्या कोई मिठाई भरी होती है? तुम्हें विश्वास नहीं तो सभी बाल सखाओं से पूछ लो। तुम्हें किसी ने व्यर्थ में ही बहका दिया है। मेरी बात सच्ची नहीं लगती तो दाऊ भैया से पूछ लो।

जो न होय विस्वास हमारा मुंह खुलवावो। माटी दीखे नेक चहे सो दण्ड धरावो।।
अस कहि त्रिभुवन पति ने अपना आस्य पसारा। अचरज मैया ने मोहन मुख मांहि निहारा।।

श्यामसुन्दर ने कहा, अरी मैया। तुमको फिर भी विश्वास न होता हो तो मेरा मुख खुलवाकर देख लो। यदि तुम्हें मेरे मुख में थोड़ी सी भी माटी लगी हुई दिखाई दे तो तुम मुझे जो दंड देना चाहो सो देना। ऐसा कहकर त्रिभुवनपति भगवान श्याम सुन्दर ने अपना मुख फैला दिया। माता ने मुख में देखा तो उसे बहुत अचरज भरा दिखाई देने लगा।

सारे संसार को डरानेवाले भगवान आज माता यशोदा से डर मान गये। नेत्र आँसू से भर गये और बोले- मैया। मैंने मिट्टी नहीं खायी। मैया यशोदा ने कहा- तू कन्हैया इतना ढीठ हो गया है कि सारी बातें न कर देता है। व्रजगोपियों ने माखनचोरी की शिकायत करी फट से तू न कर गया और अब मिट्टी खाई तो भी न कह रहा है।

दूध दही कूं कबहुं न नाटी, क्यों लाल तेने खाई माँटी?

श्यामने समझा रही ले सांटी, याकूं नैक दया नहीं आई।।

श्रीकृष्ण बोले- मैया, मैंने मिट्टी नहीं खाई है। ये सब-के-सब झूठ बोल रहे हैं। यदि तुम इनकी बात को सच मान रही हो तो मेरा मुख तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखों से इसे देख लो। मैया बोली- मिट्टी खाते हुए तुझे गोपोंने देखा। कृष्ण बोले- यदि ग्वालोंने देखा तो उस वक्त मैं अकेला नहीं था। फिर मैंने मिट्टी कहाँ खायी?

बलराम ने देखा कि कन्हैया सबके साथ हमें भी झूठा बता रहा है तो वे आकर कन्हैया के पास खड़े होकर डाँट कर बोले- क्यों रे कन्हैया, तूने मिट्टी नहीं खाई है? मो देखत जसुमति तेरें ढोटा अबहीं माटी खाई।

कन्हैया बोले- हम भी मैया से कह देंगे कि दाऊ भैया रोज भाँग का गोला खाता है। श्रीकृष्ण बोले कि हाँ, दाऊ दादा, खाई है। मैया, मैं ठीक कहता हूँ कि मैंने मिट्टी नहीं खाई। कृष्ण की दो तरह की बात सुनकर मैया चक्कर में पड़ गई कि उसकी कौन-सी बात सही मानी जाय? कन्हैया के कहने का अभिप्राय यह है कि- मैया, मैंने तो सारे प्रपंच को खा रक्खा हैं फिर तो तू जरा-सी मिट्टी के लिये नाहक बवाल मचा रही है? सभी सही बात कह रहे हैं। मैया, यदि ये सही हैं तो मेरा मुख तेरे सामने है, देख ले। अथवा हे सतीशिरोमणि मैया, यदि मेरी वाणी कुछ असमंजसभरी प्रतीत हो तो मेरा मुख तेरे ही सामने है, इसे देख ले। मैया, तुमने कहा है कि मैंने एकान्त में मिट्टी खाई है। ऐसा इन लोगों ने आपसे कहा है यदि मैंने एकान्त में मिट्टी खाई है तो इन लोगों ने देखा नहीं है- और देखा है तो फिर एकान्त कहाँ हुआ? इस प्रकार इनका वचन असमंजस से भरा हुआ है फिर भी यदि तू चाहती हैं तो देख ले मेरा मुख।

मधुमंगल भी देखकर बोला- बड़ा चालाक बनता हैं। अर वो मुंह में थोड़ी हैं, वो तो पेट में चली गई।

कन्हैया बोला- ये लोग मुझे चिढ़ाते हैं और तुम इनकी बातों में आकर विश्वास कर मुझे ही डांटती है। दाऊ दादा को कभी कुछ नहीं कहती। यदि मैं तेरा बेटा होता तो क्या तुम मुझे डाँटती? यशोदा रोमांचित हो गयी। बनावटी आक्रोश दिखाते हुए बोली- पहले बता कि तूने मिट्टी क्यों खाई?

कृष्ण बोला- नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसितः। यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम्।।

माँ, मैंने तो मिट्टी नहीं खाई, किन्तु सखाओं का ही विश्वास करती है तो मैं तुम्हारे सामने हूँ मुँह देख लो। अगर खायी होगी तो कहीं तो थोड़ी बहुत लग रही होगी। मैया ये सब मेरे दुश्मन है। न जाने कहाँ-कहाँसे माखन मिश्री चुराकर लाते हैं, खाते हैं और मेरे मुँहमें भी डालते हैं। मैंने उनको कहा मेरे मैया-बाबा बड़े धर्मात्मा हैं। उनको कभी दूसरेके बनाये हुए तालाबमें स्नान करना होता है तो पहले उसमें से दो मुट्ठी माटी निकालकर किनारेपर रख आते हैं। जब मेरे मैया-बाबा दूसरेके धर्मका हिस्सा लेना अथवा दूसरेके घरकी वस्तु लेना अधर्म समझते हैं तो मैं दूसरेके घरसे माखन-मिश्री कैसे खा सकता हूँ? ये ग्वालबाल मेरी बात समझते नहीं और जबर्दस्ती मेरे मुँहमें डाल देते हैं। ये सब इस समय तुमसे जो कुछ कह रहे हैं सब झूठ है। यदि तुमको मेरी वाणी असंगत अथवा परस्परविरोधी मालूम पड़ती है तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने हैं, देख लो।

माँ, ये सब मिथ्या बोलते हैं। ये मुझसे झगड़ते हैं, चिढ़ाते हैं, मुझे पिटवाना चाहते हैं। मैया, ये दाऊ भैया मेरेसे कहते हैं-

गोरे नन्द यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर, तारी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर,

तू मोहिकों मारन सीखी दाऊ कबहुं न खीझे, मोहन का मुख रिस समेत लख जसुमत सुन सुन रीझे।

या विध कह कर कृष्ण ने, निज मुख दिया पसार। यशमति हरि के वदन में, देखा सब संसार।।

रवि शशि गिरि सागर नदी, निज समेत ब्रजराज। लोक चतुर्दश अनिल नभ, स्थिर चर जीव समाज।।

यशुमति सुनि, गुनि मुख बगरायो। अखिल विश्व तहँ प्रगट दिखायो।।

मानौ चाहत मातु दिखावन। अखिल जगत चह ब्रज-रज-पावन।।

यशोदा की बात सुनकर और उस पर बिचार करके कन्हैया ने मुख खोल दिया और यशोदा को वहाँ सम्पूर्ण विश्व के दर्शन करा दिये। मानो ऐसा करके यह दिखाना चाहते हों कि सम्पूर्ण विश्व इस ब्रज रज को पाने के लिये ललचा रहा है।

हरि सोच्यो मम मुख निरखि, मैया अति चकराय। नयन मूँदि ठाढ़ी रहै, माटी निरखि न जाय।।

कन्हैया ने यह भी सोच कर मुख खोल कर दिखाया कि मेरे मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर मैया अत्यन्त चकित हो जायगी और वह आँख बन्द करके खड़ी रह जायगी तथा मेरे मुख की मिट्टी को देख नहीं पायेगी और मेरे बचनों की सच्चाई सिद्ध हो जायगी।

तब सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, समुद्र, नदियाँ अपने सहित नन्दराज और चौदह लोक वायु आदि जड़-चेतन रूप जो जीवों का समुदाय है, वह भगवान के मुख में देखा। वायु, अग्नि, आकाश, वरुण, इन्द्रादि देवता, सूर्य-चन्द्र, तारक-मंडल; पता नहीं क्या-क्या कहती हैं ये। महासागर, महाद्वीप, पर्वत, कानन, नदियाँ और नगर दीखे। पृथ्वीमें मथुरा-मण्डल, कालिन्दी और उसके तटपर यह गोकुल भी दीखा।

माता ने मोहन के मुख में देवताओं के सहित ब्रह्मा, विष्णु, महेश को विराजमान देखा और मोहन के मुख में असुर, नाग, ताल, वन, पर्वत भी देखे। इसके अतिरिक्त प्रेत, योगिनी, शेर अनेक प्रकार के पक्षी व कीट पतंग देखे एवम् बृजमण्डल और बृजवासियों के सहित सारा विश्व माता को कन्हैया के मुख में दिखाई देने लगा।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश सुर तहाँ विराजे। असुर नाग वन ताल गिरि मोहन मुख राजे।।

प्रेत योगिनी सिंह खगा कृमि बहु परकारा। ब्रज मण्डल ब्रज वासी सह जग निरखा सारा।।

अगनित निरखे लोक द्वीप खण्डा सब भुवना। अमित ब्रह्माण्ड लखे मुख मोहन विस्मय हुवना।।

मोहिनि माया देखि मात ने सुध बुध खोई। ढाइ घड़ी लौं लागे जैसे गहरी सोई।।

माता ने कृष्ण के मुख में असंख्य लोकों, द्वीपखण्डों, सब भुवनों, अमित ब्रह्माण्डों को देखा। जिससे माता को बहुत विस्मय हुआ। अपार मोहिनी माया को देखकर माता की सुद्बुध खो गई। ढाई घड़ी तक उसे ऐसा लगा जैसे गहरी निद्रा में सो गई हो।

नन्दरानी भी पूरी पक्की थीं। उन्होंने कहा- अगर ऐसी बात है तो मुख खोल दे। तब तो भगवान फँस गये। अब तो बचने का कोई रास्ता था नहीं अत: व्याध से डरे पक्षी की तरह मुख खोल दिया। मुख खुलते ही उनके हाथ से छड़ी गिर गई, माता बेहोश हो गईं।

मैया यशोदा विश्वरूप भगवान का और पूरे विश्व का दर्शन कर रही है। जिसके विज्ञान से सर्व का विज्ञान अर्थात् विशद हो जाता है। ऐसा श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का मुखारविन्द मैया यशोदा के लिए ऐसा ही सिद्ध हो रहा है। मैया यशोदा की समझ में आया जिन परमेश्वर का ऐश्वर्य अनन्त हैं वे भगवान क्रीड़ा के निमित्त मनुज बालक बने हैं अथवा नन्द को आनन्द देने के लिए बालक बने हैं।

इसी समय उन्होंने जँभाई के बहाने मैया के सामने अपना मुँख खोल दिया। यशोदा ने लाला के खुले हुए मुख में आकाश, अन्तरिक्ष, नक्षत्र-मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, और समस्त चराचर प्राणी, यहाँतक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा। चौदह लोक कृष्णके मुँहमें दिखने लगे। चौरासी कोस के ब्रजमण्डल में गोकुल नगरी हैं, वो भी कृष्ण के मुख में दीखती हैं। गोकुल नगर में पिच्चासी चौक का नन्दराय का महल हैं वो भी कृष्ण के मुखमें दीखने लगा और

महल के द्वार पर मैया लाला का कान पकड़कर छड़ी दिखा रही है वो भी कृष्णके मुंह में दिखायी देता है।

जब कृष्णने अपना मुँह खोला, जँभाई दी तब मैयाने उसके मुँहमें संसारका प्रपंच देख लिया। उसमें चर, अचर, आकाश, दिशा आदि द्वीप-अब्धि, भूगोल, वायु, अग्नि, इन्दु, तारका, ज्योतिश्चक्र ये सब कहीं तो तन्मात्राके रूपसे और कहीं स्थूलरूपसे दिखायी पड़े। इन्द्रिय, मन, मात्रा, गुण, यहाँतक कि जीव, काल, स्वभाव और कर्माशय भी जो कभी किसीके प्रत्यक्ष नहीं होते, उन सबको मैयाने श्रीकृष्णके मुखमें देख लिया। मैयाने देखा कि श्रीकृष्णके शरीरमें पाञ्चभौतिक सृष्टिके अलावा जम्बूद्वीप है, भारतवर्ष है, व्रज है, व्रजमें नन्दबाबाका घर हैं, नन्दबाबाके घरमें यशोदा है और श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर लेकर माटी उगलवा रही है। यह सब देखकर मैया आश्चर्यचकित हो गयी। क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ। क्या यह देवमाया है, या मेरा बुद्धि-मोह हैं या मेरे बालकका कोई औत्पत्तिक योग है या कोई ईश्वर की लीला है।

मोहन नै मुखड़ा दिखलायो, तीन लोक कौ दरस करायो।
तब विश्वास जसोदहिं आयौ, यै तो पूरन ब्रह्म कन्हाई।।
विश्व प्रपंच सहित ब्रज सारो। देख्यो यशुमति निज गृह द्वारो।।
आँगन निज कहँ हरि सँग पायो। उन मुख यह सब प्रगट दिखायो।।
अति सशंक पुनि सोचत हारी। सपन कि साँच, बुद्धि भ्रम भारी।।
यह बालक कोउ सिद्ध मुनीसा। योग करन आयो योगीसा।।

यह दृश्य देखकर वे ठगी-सी रह गई। उनके शरीर में कँपकँपी आ गई। आश्चर्य से चकित होकर उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, वे मन-ही-मन नारायण का स्मरण करने लगीं फिर आँखें खोलकर देखा तो कहीं कुछ न था। केवल लाला मुस्कराभर रहा था। यशोदा ने उसे अपनी ही आँखों का ही दोष समझा, दृष्टि-सृष्टि जानीं फिर तो स्नेहवश वे लाला का मुख चूमने लगीं और बोली- क्या मैं कोई सपना देख रही हूँ, या कोई देवता की माया है कि मेरी बुद्धि खराब हो गयी।

खोलि दिखायौ मातु को, मोहन मुख तत्काल। मुख में लखि तिहुँ लोक को, यशुमति भईं विहाल।।

यशोदा के नेत्र खुले के खुले ही रह गये। शरीर में कम्पन होने लगा लगता था गिर जायगी। सांटी तो कब की छूट गयी- यशोदा बैठ गई घोटूओं के बल, हाथ जुड़े के जुड़े रह गये- श्याम का मुंह खुला है। कन्हैया के मुख में नदी, पर्वत, समुद्र और सृष्टि का दर्शन कर रही थी।

क्या यह मोको स्वपना आया। अथवा ईश्वर की यह माया। अथवा मम मति बौरी होई। मम सुत की शक्ति या कोई।।

यशोदा मन में विचारने लगीं- क्या यह मेरे को स्वप्न आया है, अथवा परमात्मा की यह कोई लीला रूप रचना है, या मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई है अथवा मेरे पुत्र की ही कोई सामर्थ्य-रूप लीला है।

श्रीकृष्ण ने विचार किया अभी तक हमने व्रजगोपियों की माखन-मटकी खूब फोड़ी अब हमारे उद्देश्य भरी जीवन मटकी स्वत: फूट गयी। मैया मुझे कन्हैया नहीं मानेगी, गोद में नहीं बैठायेगी, स्तनपान नहीं करायेगी बल्कि ब्रह्मभाव से मेरी पूजा करेगी। जीव मन के वश में होता है और मन माया के अधीन होता है। जीव को माया से मोहित कर दूँ तो मेरे स्वरूप को भूल जायेगी। कन्हैया ने मैया यशोदा के हृदय में अपनी वैष्णवी माया का संचार किया। मैया यशोदा यह घटना तुरन्त स्वप्न की तरह भूल गयी।

जब इमि यशुमति हिय मति आई। हरि वैष्णव-माया फैलाई।।
सुवन सनेह हिये संचारयो। यशुदहिं इन सब सुधिहिं बिसारयो।।

जब यशोदा के मन में ऐसा विचार आया तो भगवान ने अपनी वैष्णवी माया फैलाकर ऐश्वर्य की ओर से यशोदा का मन हटा दिया और वात्सल्य प्रेम का संचार कर दिया। ऐसा होने पर यह सब दृश्य यशोदा भूल गई।

श्रीकृष्ण ने अपने मुख में विश्वरूप दिखला कर मानो मैया से कहा- अरी मैया, तू व्यर्थ में ही घबड़ा रही है। तेरा दूध मैं अकेले ही थोड़े पी रहा हूँ। मेरे मुख में बैठकर सकल ब्रह्माण्ड तेरा दूध पी रहा है। मुझे दूध पिलाकर वस्तुत: तू सारे ब्रह्माण्ड की जननी बन गई है इसलिये तू घबड़ा मत।

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति यशोदा मैया अपने लाला के मुख में विश्व देखकर भयभीत हो उठीं। परन्तु वात्सल्यरस से भावित हृदय होने के कारण उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि यह विश्व का बखेड़ा लाला के मुख में कहाँ से आ गया? हो-न-हो यह मेरी इन निगोड़ी आँखों की ही गड़बड़ी है। मानो इसी से उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। मैया बोली- मैंने ब्रह्मका कान पकड़कर बहुत बड़ी गलती की अब कभी भी उसके कान नहीं पकडूँगी। कन्हैया बोला- कुछ नहीं मैया, तूने कोई सपना देख लिया होगा, मैंने तो ब्रज रज खायी, माटी थोड़े ही खायी।

कन्हैया ने माता को बेसुध देखा तो सिर पर हाथ फेरकर उसे हिलाया और चेत कराया। कन्हैया बोले अरी मैया, तुम्हारे मन में क्या आया कि बैठी बैठी ही नींद में ऊँघने लगीं। कहीं तुम गिरकर चोट खा जातीं फिर मुझे भोजन कौन खिलाता? मोहन ने मैया के ऊपर ऐसी मोहिनी डाली कि उसने लाला के मुख में जो कुछ आश्चर्यजनक देखा था सब भूल गई और उसे लगा मानो मैंने कोई सपना देखा हो।

मैया बोली, अरे छोरा। तेरी ढिठाई बढ़ती ही जा रही हैं, तू मेरी एक भी बात नहीं मानता। अरे ऊधमी, तेरे रोम-रोम में चंचलता समाई हुई है। तू बड़ा ही अवगुणधारी होते जा रहा है। इस गोकुल में और भी हजारों बालक रहते हैं परन्तु तेरे समान एक भी नटखट दिखाई नहीं देता।

वस्तुत: यहाँ भगवान की ऐश्वर्य शक्ति और मैया की वात्सल्यशक्ति के मध्य युद्ध चल रहा था। अन्त में भगवान ने ऐश्वर्य-शक्ति को यह कह कर भगा दिया कि- यहाँ तो मैं मैया के स्नेहपाश में बँधकर क्रीडा करने आया हूँ। यहाँ तेरी कोई आवश्यकता नहीं है। यह घटना गोकुल में जिस स्थल पर हुई वह स्थल ब्रह्माण्ड घाट के नाम से जाना जाता है।

आप कितना भी यज्ञ करो, अनुष्ठान करो, तपस्या करो, पर जब तक मन में प्रेम नहीं तब तक गोविन्द की प्रप्ति नहीं हो सकती। गोविंद तो केवल प्रेम से ही मिलता है। प्रेम ही प्रधान है। प्रेम जब आता है, तो दुनिया के रस फीके लगने लगते हैं।

तेरे लाला ने ब्रज रज खाई, यशोदा सुन माई।
अद्‌भुत खेल सखन संग खेलो, छोटो सो माटी को ढेलो।
तुरन्त श्याम ने मुख में मेलो, याने गटक गटक गटकाई।। तेरे लाला ने.....
दूध दही को कबहुँ न नाटी, क्यों लाला तैंने खाई माटी।
यशोदा समझा रही लै साँटी, याकूँ नेक दया न आई।। तेरे लाला ने.....
मोहन को मुखड़ो खुलवायो, तीन लोक या में दरसायो।
तब विश्वास यशोदहि आयो, ये तो पूरण ब्रह्म कन्हाई।। तेरे लाला ने.....
ऐसो रस नहि है माखन में, नहीं मेवा मिसरी दाखन में।
जो रह है ब्रजराज चाखन में, याने मुक्ति की मुक्ति बताई।। तेरे लाला ने.....

हाथ में छड़ी लिये यशोदा अब मेरे प्रभु को, प्राणधन को मारे बिना न रहेगी तब उसने अपने कौशल से उन्हें बचाने का

प्रयास किया। उसके प्रताप से यशोदा को श्रीमुख में अनन्त ब्रह्माण्ड दीख पड़े। यह देखते ही वह बेहोश हो गईं। भावुकों की तो यहाँ तक मानना है कि प्रभु ने यशोदा से अपने बचने के लिये सिर्फ कह भर दिया था कि समक्षं पश्य मे मुखम् अर्थात् मेरा मुख तेरे सामने ही है, देख ले इसे किन्तु वस्तुत: वे अपना मुख खोलकर दिखाना नहीं चाहते थे, क्योंकि मिट्टी तो आखिर खाई ही थी। तब मुख खुल कैसे गया?

नष्ट बोध यशमति भयी, पूरबवत सुत जान। प्रेम पयोनिधि मग्न हो, गोद लिये भगवान।।

फिर होश में आने पर यशोदा मैया ने सोचा- क्या यह स्वप्न है? अथवा किसी देव की माया है? अथवा मेरे लाला का ही कोई विशेष चमत्कार है? वे कुछ निर्णय न कर सकीं। अन्ततोगत्वा वे अपने लाला को ईश्वर समझने लगीं फिर उन्होंने नारायण का ध्यान करते हुए कहा- भगवान ही एकमात्र मेरे आश्रय हैं- मैं उन्हीं की शरण में हूँ। जब इस प्रकार यशोदा माता श्रीकृष्ण का तत्त्व समझ गईं, तब सर्वशक्तिमान् व्यापक प्रभु ने पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी माया का संचार कर दिया। इससे उनकी स्मृति नष्ट हो गई और उन्होंने लाला को अपना बेटा मान कर गोद में उठा लिया और उन्हें दूध पिलाने लगीं।

बाबा एक पुरुष गृह वासा। रूप धरे मम भेद न मासा।।
नित्य वही उत्पात मचावे। मैया मोकहँ दोष लगावे।।
इक दिन कहा भूत मम नामा। वस्तु बिगारन मेरो कामा।।
जो तुम कहो रहन नहिं पावो। लै जावों तोहि यमुन डुबावों।।
बाबा कह सुनि यशुदा रानी। पकरो भूत तबै तुम जानी।।
जो अब लालहिं दोष धर, रहन न पैहौ गेह। करनी औरन दोष सुत, भली बात नहिं एह।।

कन्हैया नन्दबाबा से बोले- हमारे घर में एक काले रंग का पुरुष निवास करता है। वह अपनी शक्ल सूरत बिल्कुल मेरे जैसी बना लेता है। देखने पर मेरे और उसके आकार में माशा भर भी अन्तर नहीं है। कन्हैया ने कहा हमारे घर में नित्य वही उत्पात मचाता है। मैया को इस रहस्य की जानकारी नहीं है। इसलिए वह मेरे ऊपर ही दोष लगा देती है। एक दिन मैंने उससे पूछा, अरे भाई, तुम कौन हो जो हमारे घर की वस्तुओं को बिगाड़ते रहते हो? तब उसने पूरा मुँह फाड़कर मुझे डराया और बोला, मेरा नाम भूत है। घर की वस्तुओं को नित्य बिगाड़ना ही मेरा काम है। अरे बाबा, भूत ने मुझसे कहा अगर तुम मेरी बात किसी से कहोगे तो इस घर में रहने नहीं पाओगे। मैं तुमको पकड़कर यमुना में ले जाकर डुबो दूँगा। मैंने सारी बात आपको बता दी है। अत: अब आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें। नन्दबाबा ने यशोदा से कहा, हे यशोदा रानी। तुम मेरे पुत्र पर नाहक ही दोष लगाती हो। उत्पात तो भूत करता है और तुम नाम कन्हैया का धरती हो। अब तुम असली दोषी उस भूत को पकड़कर दिखाओ तब मैं तुम्हें मानूँगा। नन्दबाबा ने यशोदा से कहा, अब यदि तुम मेरे लाला पर झूठा दोष लगाओगी तो तुम इस घर में रहने नहीं पाओगी। करनी तो किसी और की है और तुम दोष मेरे पुत्र पर लगाती हो, यह अच्छी बात नहीं है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, देखो यशोदा मैयाका सौभाग्य, सारे वेद, उपनिषद और शास्त्र जिसकी महिमा गाते हैं, उसको वे अपना लाला मानकर, बेटा मानकर उससे लाड़ लड़ाती है और प्यार करती हैं। भगवान भावके भूखे हैं। जैसा भाव होता है, उसीके अनुरूप व मिलते हैं।

इतनी लीला सुन लेने पर परीक्षित ने पूछा- भगवन्, नन्द बाबा ने ऐसा कौन-सा मंगलमय साधन किया था? और महाभाग्यशालिनी यशोदा जी ने ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भवगान् ने अपने श्रीमुख से उसका स्तन-पान किया? देवकी और वसुदेव तो श्रीकृष्ण की बाल-लीला से वंचित ही रह गये। उन्हें इसका सुख न मिल सका, जिसका गान ब्रह्मा आदि देव-गण किया करते हैं।

शुकदेवजी ने कहा- राजन्, नन्दबाबा पूर्व जन्म में एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नी का नाम था धरा। उन लोगों ने ब्रह्माजी से वरदान मांगा था कि- जब हम भूतल पर जन्म लें तब भगवान् श्रीकृष्ण में हमारी प्रेममयी अनन्य भक्ति हो। इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि- ऐसा ही होगा। फलस्वरूप वे ही दोनों नन्द और यशोदा के रूप में व्रज में पैदा हुए। इस जन्म में जन्म-मृत्यु-विनाशक भगवान् उनके पुत्र हुए और सारे गोप और गोपियों से बढ़कर उन लोगों का उनके प्रति प्रगाढ प्रेम हुआ। ब्रह्माजी के वरदान को सत्य सिद्ध करने के लिये भगवान श्रीकृष्ण, बलरामजी के साथ व्रज में रहकर व्रजवासियों को अपनी बाल-लीला से आनन्दित करने लगे।

पूर्वकाल में नन्द द्रोण थे और यशोदा धरा थी। वे ब्रह्मासे वरदान पाकर तप करते थे और संतसेवा करते थे। द्रोण व धरा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कहीं बार धरा के घर में चूल्हा भी नहीं जलता था। कोई सन्तोंने भिक्षा के लिये उनके घरके आगे आवाज लगाई परंतु उस घर में भिक्षा देने हेतु कुछ था ही नहीं। उसने संत को बुलाया बिठाया और उसका सत्कार किया और उसने सत्कार सामग्रीके लिये अपना पुत्र एक किरानेवाले को बेच दिया और बोले कि अन्न का सामान दीजिये मेरे घर संत आये हैं। दुकानदार ने बहुत फटकारा और कहा कि यह बच्चा तुम्हारा है या किसीका उठाकर लायी है। तू कैसी माँ है? कोख से जाये हुए बेटे को, इन गली, बाजार में घूमने वाले संतों को भोजन करवाने के लिए बेचने आई है। तेरे घर में नहीं खायेंगे तो और कहीं खावेंगे। तू क्यों अपनी संतान बेच रही है। धरा बोली- मैं उपदेश सुनने नहीं आई हूँ। पुत्र को बेचकर धरा साढ़े ग्यारह मुट्ठी अन्न लेकर आयी। टिक्कड़ बनाये, नमक डालकर, थाल परोसकर संत के सामने रखे और कहा प्रभुजी, भोग लगाओ। संत ने भोग लगाया। जिस समय संत ने भोग लगाया उस धरा से बोले तेरा बालक कहां हैं? मैं इसे जरा प्रसाद दे दूँ। धराने सोचा- अगर इनको पता चल गया कि मैं बालक को बेचकर अन्न लाया हूँ तो महात्मा नाराज हो जायेंगे। शायद यह मालूम पड़ जायें कि बच्चा भीग गया है तो वे स्वयं भोजन भी नहीं करेंगे। धराने कहा- यही कहीं खेल रहा होगा प्रभु पर आप तो भोजन खाओ। संत बोले- नहीं, नहीं, बताओ। धराने बहुत टालनेकी कोशिश की पर बात टली नहीं फिर आँखोंमें आँसू बहकर माँ धरा ने कहा- ये जो आपके सामने टिक्कड़ पड़े हैं ये मेरे बेटे की कुर्बानी है। मेरे पास यदि कुछ होता तो मैं बेटे को नहीं बेचती। मुझे मजबूरी में अपना बेटा बेचना पड़ा। संत की आँखोंमें आँसू आ गये। सन्त ने कहा- मां, तेरी गली-बाजारों में घूमनेवाले महात्माओं के प्रति इतनी श्रद्धा। इतनी भावना, जिनको भोजन खिलाने के लिए तुम अपने जिगर का टुकड़ा बेचकर आयी। अगर मैं भी अपने गुरु का सच्चा शिष्य हूँ तो मेरा यह संकल्प हैं बच्चे को बेचकर जितने मुट्ठी आटा तुम लेकर आयी उतने साल तक परम पिता परमात्मा, भगवान तुम्हारी गोद में खिलौना बनकर पुत्र के रूप में आयेंगे। ऐसे मिले हैं कन्हैया। धरा ने अपना जीवन कुर्बान किया।

शुकदेव बोले- राजन्, नन्दबाबा पूर्व जन्म में एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम द्रोण था और उनकी पत्नी का नाम धरा था। इन्हें सन्तान नहीं थी। वे भगवान श्रीविष्णु के परम भक्त थे। एक समय पुत्र की अभिलाषा होने पर ब्रह्माजी के आदेश से वे अपनी सहधर्मिणी धरा के साथ तप करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर गए। वहाँ दोनों दम्पति कंद, मूल एवं फल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबा कर तपस्या करते थे। बाद में जल के आधार पर उनका जीवन चलने लगा। तदनन्तर उन्होंने जल पीना भी बन्द कर दिया। इस प्रकार जनशून्य देश में उनकी तपस्या चलने लगी। उन्हें कठोर तप करते जब दस वर्ष बीत गए तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर आए और बोले- वर माँगो। उस समय उनके ऊपर दीमकें चढ़ गई थीं। अत: उन्हें हटाकर द्रोण अपनी पत्नी के साथ बाहर निकले। उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और विधिवत् उनकी पूजा की। उनका मन आनन्द से उल्लसित हो उठा। वे ब्रह्माजी से बोले कि ब्रह्मन्, विधे, परिपूर्णतम जनार्दन भगवान श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हो जायँ

और उनमें हम दोनों की प्रेमलक्षणा भक्ति सदा बनी रहे, जिसके प्रभाव से मनुष्य दुर्लंघ्य भवसागर को सहज ही पार कर जाता है। हम दोनों तपस्वीजनों का दूसरा कोई वर अभिलाषित नहीं है।

श्रीब्रह्माजी बोले कि तुम लोगों ने मुझसे जो वर मांगा है, वह कठिनाई से पूर्ण होनेवाला है और अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी दूसरे जन्म में तुम लोगों की अभिलाषा पूर्ण होगी। वही परम यशस्वी द्रोण व्रज में नन्द नाम के गोप हुए और उनकी पत्नी धरा इस जन्म में यशोदा नाम की उनकी पत्नी हुई। ब्रह्माजी के वरदान के कारण ही उन्हें श्रीकृष्ण को पुत्र के रूप में पालने-पोषने और प्यार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाद में श्रीकृष्ण द्वारा ज्ञानोपदेश दिये जाने पर उनका वात्सल्य प्रेम, भगवान श्रीकृष्ण की विमल भक्ति में बदल गया और उनको वैराग्य की प्राप्ति हुई।

इस जन्म में गोपराज श्रीनन्द समस्त समृद्धियों से सम्पन्न थे। यशोदा उनकी पत्नी थी। यशोदा के पिता का नाम गिरिभानु और माता का नाम पद्मावती था। नन्दबाबा और यशोदाजी की अवस्था ढल गई थी और चौथा पन समीप था। परन्तु उनके पुत्र नहीं था। अत: प्रेमी हृदय व्रजवासियों की आशालता क्रमश: सूखती जा रही थी। इसलिए उपनन्द आदि वृद्ध गोपों ने परामर्श करके एक पुत्रेष्टि-यज्ञ का आयोजन करवाया। सबने यज्ञ-पुरुष से गोपराज नन्द को पुत्र प्रदान करने की प्रार्थना की।

इधर बाहर यज्ञ हो रहा था, ब्राह्मणों की वेद ध्वनि से आकाश मुखरित था। उधर गोपराज श्री नन्द अन्त:पुर में यशोदा से कह रहे थे- यशोदारानी। इस यज्ञ के फलस्वरूप मेरे पुत्र नहीं होगा। मन में पुत्र की कामना भी है और पुत्रेष्टि-यज्ञ में मेरा विश्वास भी है। परन्तु मेरे मन में जिस प्रकार के पुत्र की वासना सदा जाग्रत है, उस प्रकार का पुत्र प्रदान करना कर्मजनित अदृष्ट के लिए सहज नहीं है। यज्ञादि कर्मों के सभी फल चंचल हैं। मैं जिसको सदा अपने पुत्र रूप में देखता हूं वह अचल है। कर्म के फलस्वरूप उसे प्राप्त करने की आशा दुराशा मात्र है। वह कर्म का फल है ही नहीं। मैंने जिसको अपने मनोरथ पर बैठाया है और जिसको स्वप्न में देखा है, वैकुण्ठाधिपति नारायण भी उसके समान सुन्दर नहीं हैं। मुझे ऐसा लगता है कि इस सौन्दर्य का जिसके हृदय ने एक बार भी स्पर्श कर लिया है, उसका चित्त किसी प्रकार भी दूसरी ओर आकृष्ट नहीं हो सकता।

व्रजराज की यह बात सुनकर यशोदा रानी ने अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ स्वप्न की बात पूछी। इसपर नन्दराय ने कहा- देवी, तुम मेरी नित्य सहधर्मिणी हो, सुख-दु:ख की नित्य संगिनी हो। तुमसे क्या छिपाऊँ। अब तक मैंने इसे असम्भव समझकर ही तुमसे नहीं कहा था, क्योंकि ऐसी असम्भव बात का कहना पागलपन ही माना जाएगा। पर आज तुम्हारे अनुरोध को न टाल सकने के कारण मैं तुम्हें बतला रहा हूँ- सुनो, मैं स्वप्न में तथा मनोरथ में सदा-सर्वदा ही देखता हूँ।

मैं देखता हूँ कि दिव्यातिदिव्य नीलमणि-सदृश श्याम वर्ण एक बालक, जिसके चंचल मनोहर नेत्र अत्यन्त विशाल हैं, तुम्हारी गोद में स्थित होकर तुम्हारे दुग्धस्रावी पयोधरों का दुग्ध पान कर रहा है और भाँति-भाँति की क्रीड़ा कर रहा है। उसे देख कर मैं अपने आप को खो देता हूँ। सोता हूँ या जागता, कुछ भी पता नहीं चलता। यशोदे, सत्य बताओ, क्या कभी तुमने भी स्वप्न में ऐसे बालक को देखा है?

स्वामी की बात सुनकर यशोदा आनन्द विह्वल होकर गद्‌गद् कण्ठ से कहने लगी- व्रजराज, सचमुच मैं भी ठीक ऐसे ही बालक को सदा अपनी गोद में खेलता देखती हूँ। स्वप्नों में उसे स्तनपान कराती हूँ, लाड़-प्यार करती हूँ। मैंने अति असम्भव समझकर ही संकोचवश कभी आपको यह बात नहीं बताई थी। कहाँ मैं आभीर-स्त्री और कहाँ दिव्य स्पर्शमणि।

व्रजराज नन्द ने फिर कहा- असम्भव समझकर मैंने इस वासना को मन से निकालने की बड़ी चेष्टा की, पर किसी प्रकार भी इस वासना की निवृत्ति नहीं हुई। ज्ञात होता है अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले भगवान नारायण की कृपा-दृष्टि से ही यह अदृष्ट और अश्रुत वस्तु हमें दृष्टिगोचर हो रही है। नारायण कृपा करें तो, न तो इस असम्भव वासना का निवृत्त होना

कठिन है और न इस दुर्लभ वस्तु का सुलभ होना ही असम्भव है। उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा।

समय आने पर वे ही भगवान श्रीनारायण बालक श्रीकृष्ण बनकर पुत्र रूप में नन्द और यशोदा को प्राप्त हुए और उनकी चिर प्रतीक्षित अभिलाषा को पूर्ण किया।

धरती में यशोदाके समान कोई देवता नहीं है। जिसने मुक्ति-दाताको ऊखलमें बांध दिया है और जिससे मुक्ति कह रही है कि अरी मैया, मुझे मुक्त कर दे।

भगवान श्रीकृष्ण तो पूर्ण काम हैं? वह तो केवल अपने भक्तों की अभिलाषा एवं अपने बहुत से अवतारों में दिये हुए वरदान आदि की पूर्ति करने के लिये ही अनेकों प्रकार की लीलाएँ करते रहते हैं। जैसे कृतयुग में वामन अवतार में मुग्ध हुई राजा बलि की पुत्री रत्नमाला, पूतना आदि ऋषि-मुनि? त्रेता युग में श्रीराम का अवतार धारण करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के रूप माधुर्य से मोहित हुयी जनकपुर आदि की सुन्दरी कन्याएँ एवं ऋषि मुनि रमा श्वेतद्वीप वैकुण्ठ की गोपियाँ और जलन्धरी कुमारियों के यूथ के यूथ जिन्होंने बड़ी ही उग्र तपस्या करके वरदान प्राप्त किये थे। उनकी पूर्ति के लिये ही द्वापर में भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण ने रास लीला में महारास करके उनकी पूर्ति की है।

नारद बाबा कही वा दिनाँ, ब्रज की अति मीठी माटी। तातैं चाखन कौं मैया, रसना सौं रही तनिक चाटी॥
सबरे बोलत झूठ, सुनौ, मैं नायँ कबहुँ खाई माटी। तुहूँ रही पतियाय इनहि, यासौं न बात नैकहुँ काटी॥
मानि लई तूनैं इनकी नकली बातैं सबरी खाँटी। यासौं पकरि मोय डरपावति, लै अपने कर में साँटी॥
काँपि रह्यौ डर सौं मैं, तौहू आँखि तरेरि रही डाँटी। मैया, तू क्यौं भई निरदई, कैसें तेरी मति नाठी॥
खोल दऊँ मुख, देखि अबहिं तू, नैकु कतहुँ जो होय माटी। का जगत, जब डारि दई मैंने अपनी सबरी छाटी॥

व्रजगोपियाँ अपने समस्त कर्म, समस्त उपासनाएँ भूल गयीं। उनके लिये तो अब सम्पूर्ण उपासनाओंका सारसर्वस्व यशोदानन्दन ही बन गये। सारा दिन, सारी रात उनकी आँखोंके सामने बाललीला-रसमत्त होकर नाचती रहती। दिनके अधिकांश भाग में भी नन्दद्वारके समीप खड़ी रहकर बिता देतीं। जब वे वापस घर लौटती तब मन उनका नन्दनंदन के पास रह जाता, अपने घरका काम भी ठीक से नहीं कर पातीं दूध दुहने बैठतीं तो आँखोंके सामने गायोंकी जगह नन्दनंदन ही दिखते। धान कूटने बैठतीं तो धान के कणोंमें श्यामसुन्दर ही दिखते, दही बिलोतीं तो मनमोहन नीलमणि मथानी पकड़े हुए खड़े दिखते हैं, सब जगह व्रजनन्दन नाचते-थिरकते दिखते, जलमें, जलपात्रमें, वस्त्रके धागोंमें सर्वत्र श्यामसुन्दर ही दिखने लगते और वे चकित होकर मुग्धसी बैठी रहतीं।

भगवान कृष्ण और बलराम गोकुल में विभिन्न प्रकार की विनोद लीलायें कर यशोदा-रोहिणी तथा अन्य गोप-गोपियों को आनन्दित करने लगे। गोपियों के घर जाना, उन्हें छेड़ना, उनके माटों को फोड़ देना, बछड़ों को खोल देना, इस प्रकार की अटपटी बात कहना और अनाखे काम करना उनका नित्यकर्म बन गया था।

भगवान की सब लीलाएँ ध्यानकी हैं। कुछ लीलाएँ समाधि लगानेके लिए होती हैं, कुछ ज्ञान बढ़ानेके लिए होती हैं और कुछ रसास्वादनके लिए होती हैं। इन लीलाओं को भगवान्ने जगत्के कल्याणके लिये प्रकट किया है। यशोदा मैयाका मन कभी कृष्णमें लगता है। वह चंचल और डाँवाडोल हो रहा है। वे घरको इसलिए नहीं छोड़ पातीं कि उनके लालाके लिए माखन-मिश्री कौन तैयार करेगा। रोटी कौन बनावेगा? पलंग कौन बिछायेगा? यशोदा मैया श्रीकृष्ण-परायण होती हुई भी कभी-कभी उनकी सेवाके लिए उनसे अलग हो जाती है।

१३) मैया का कृष्ण को ऊखल से बान्धना- राजा परीक्षित् यशोदा मैया के द्वारा श्रीकृष्ण से माटी

उगलवाने की लीला का श्रवण करके श्रीकृष्ण के भक्तवात्सल्य पर मुग्ध हो गये। उनकी मुग्धता देखकर श्रीशुकदेवजी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा- राजन्, अभी आप ने क्या देखा। भगवान् तो इतने बड़े भक्त-वत्सल हैं कि मैया के चाँटे भी खाते और उसके हाथों से ऊखल में बँध भी जाते हैं।

रात होने को आयी, संसार को थकानेवाले भगवान कृष्णको गोपियों ने थका दिया। यही है भक्ति की पराकाष्ठा। कन्हैया अपनी मैया से बोले- मैया, इन गोपियों ने आज बहुत नाच नचाया है, अब मैं सोऊंगा। यशोदा भी कन्हैया को लोरी सुनाते हुए सो गयी।

जो प्रभु बाँधत जगत को, सोइ बाँधे ऊखल मात। भक्तन वश प्रभु रहत नित, नहिं अचरज की बात॥

कार्तिक का महीना था। इन्द्र-यज्ञ होनेवाला था अत: यशोदा जी ने दासियों को दूसरे-दूसरे कार्यों में लगा दिया था और दही मथने का कार्य वे स्वयं करने लगीं।

एक दिवस दासी निकर, लगी और कुछ काम। स्वयं दुग्ध मथने लगी, नन्दराज की वाम॥

यद्यपि दासियाँ बहुत थीं किन्तु पद्मगन्धा, मधुगन्धा, मालतीगन्धा आदि प्रशस्त गौओं का दूध, दधि अत्यन्त स्वादु सुगन्धित तथा नीरोग होने से यही लाला के योग्य है ऐसा विचारकर दासियों को अन्य कार्यों में नियुक्त कर यशोदा प्रेमवश स्वयं दधि मथने लगी।

एक समय सब दासिन्ह दासा। अनत काज महुँ लगे सुपासा॥
प्रातकाल उठि जसुमति माई। करि सुपास सब लाल उठाई॥
मथति डारि दधि भाण्डमथानी। चिन्तति लाल चरित सुख खानी॥
दधि मन्थन धुनि सुनि प्रभु काना। आइ मातु ढिग कौतुक ठाना॥
कर गहि शिशु सुभाउ भगवाना। मचलत लिपटि करब पयपाना॥
करि दुलार गहि तुरतहिं गोदा। लागि करावनि पान समोदा॥
सहसा छीरू अगिनि सुधि आई। सुत उतारि यसुमति तहँ धाई॥
प्रभु अतृप्त मन अति खिसियाई। सोधि टूक पाहन इक लाई॥
फोरि डाण्ड दधि चले पराई। निरखि लाल गुन समुझेसि माई॥
सो धति गृह गृह सुत महतारी। कृष्ण उलूखल पाँहिं निहारी॥
चढ़ि तोहि ऊपर गहि दधि छींका। खात लुटावत कीसन्ह नीका॥
जेहिं सकोप लखि काल डेराहीं। चितवत इतउत भय मन माहीं॥
दाबि चरन पहुँची निकट लिहे दण्ड निज हाथ। लखि भागे भयभीत अति कृष्ण नाथ हूँ नाथ॥

कन्हैया माखन की चोरी करते थे अत: गोपियाँ उन्हें माखन-चोर कहकर पुकारती थीं। मैया ने सोचा इससे कन्हैया की बदनामी होगी। इस कारण भविष्य में उसका विवाह होने में कठिनाई होगी। प्रतीत होता है कि दासियाँ बढ़िया माखन नहीं निकालती हैं अत: लाला घर का माखन न खाकर गोपियों के घर का माखन चुरा कर खाता है। इसलिये लाला के लिये माखन मैं स्वयं निकालूँगी। बाकी घर का कार्य दासियाँ करेंगी। यह सोचकर दासियों को अन्यान्य कार्यों में नियुक्त कर यशोदा दही-मन्थन का कार्य स्वयं करने लगीं।

जो भगवान को भी यश प्रदान करती है, वह यशोदा है। कभी यशोदा साटी लेकर लाला से माटी उगलवाती है, कभी

लाला का कान उमेठती है और कभी उन्हें ऊखल बाँधती है, उन्हें दामोदर नाम प्रदान करती है। यदि यशोदा पृथ्वी पर न हुई होती तो कन्हैया को भक्तवत्सलता, भक्तवश्यता आदि का यश कौन प्रदान करता? कन्हैया की कमर में रस्सी बाँधकर उन्हें दामोदर कौन बनाता? इसका भाव यह हुआ कि यशोदा की गोद में बैठकर कन्हैया स्वयं महिमा-मण्डित हुए हैं। यहाँ यशोदा का दूसरा विशेषण है- आनन्दगेहिनी। वह नन्दगेहिनी तो है ही, किन्तु आनन्दगेहिनी भी है- आनन्द का घर भी है, आनन्द का खजाना भी है। जिसे आनन्द चाहिये वह खजाने से लावे, मैया से मांगे।

महाभाग्यवती यशोदाजीके सौभाग्यका वर्णन कौन कर सकता है, जिनके स्तनोंका साक्षात् ब्रह्माण्डनायकने पान किया है। संसारमें अनेक प्रकारके भक्त हैं, उनकी इच्छाके अनुसार भगवान्ने अनेक रूप धारण किये। नीच-से-नीच काम किये, छोटी-से-छोटी सेवा भगवान्ने की। कहीं नाई बनकर पैर दबाये तो कहीं महार बने। धर्मराजके यज्ञमें सबके चरण पखारते रहें, किंतु उनको बाँधा किसीने नहीं। छड़ी लेकर ताड़ना देनेका सौभाग्य महाभाग्यवती यशोदाजीको ही हुआ। ऐसा सुख, ऐसा वात्सल्य-आनन्द संसारमें किसीको भी प्राप्त न हुआ, न होगा। इसीलिये महाराज परीक्षित्ने पूछा है, महाभागा यशोदाने ऐसा कौन-सा सुकृत किया था, जिसके कारण श्रीहरिने उनका स्तनपान किया?

नन्दबाबाकी रानी यशोदामैयाके कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्थामें आकर श्यामसुन्दर उनके लाड़ले लाल बने। माताके हर्षका ठिकाना नहीं। आँखोंकी पुतलीकी तरह वे अपने श्यामसुन्दरकी देख-रेख करने लगीं। यद्यपि वे बाहरसे काम करती थीं, किंतु उनका मन सदा श्यामसुन्दरकी ओर लगा रहता था। श्यामसुन्दर उनकी आँखोंसे ओझल न हों, मनमोहन सदा उनके हृदयमन्दिरके आँगनमें क्रीड़ा करते रहें। चर्मचक्षु भी अनिमेषभावसे उन्हें देखते रहें। किंतु यह बालक अद्भुत था, जन्मके थोड़े ही दिन बाद पूतनाने आकर इसे मारना चाहा, वह स्वयं मारी गयी। शकटासुरने माया फैलायी, उसका भी अन्त हुआ। व्योमासुरने जाल रचा, वह भी यमलोक सिधारा। इस प्रकार रोज ही नये-नये उत्पात होने लगे। माताको बड़ी शंका हुई, बच्चा बड़ा चञ्चल है। इसकी चञ्चलता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है, पता नहीं, क्या घटना घट जाय। एक दिन माता दूध पिला रही थी, उधर दूध उफना। बच्चेको वहीं जमीनपर रखकर दूधको देखने लगी। चञ्चल भगवान ही जो ठहरे। दहीकी मटकी फोड़ दी, माखन फेंक दिया, बन्दरोंको बुला लिया। माताने देखा, यह तो बड़ा अनर्थ हुआ, देखते ही भागेगा और पता नहीं कहाँ जाय। धीरेसे पकड़ लिया और बोली- अब बता, तू बड़ी चंचलता करता है। घरमें टिकता ही नहीं, मैं तुझे बाँधूँगी। यह कहकर ओखलीसे उन्हें बाँध दिया। जो कभी नहीं बँधे थे वे बँध तो गये, किंतु उनका बन्धन भी दूसरोंकी मुक्तिके ही लिये था। ओखलीको घसीटते हुए यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें पहुँचे और उन्हें अपने पावन स्पर्शसे शापमुक्त कर दिया। नन्दजीने देखा कि उत्पात बढ़ रहे हैं तो वे अपने शकटोंको जोतकर जातिबन्धुओं और गौओंके साथ श्रीवृन्दावन चले गये।

यशोदा नन्दगोहिनी है। नन्दराय की पत्नी है। दधि मथना उस रानी के लिये शोभा नहीं देता किन्तु भक्ति-परवश हो वह अपने लाला के लिये स्वयं दधि का मन्थन कर रही है।

घुमर घुमर करती हुई माता मथानी चला रही थी। यशोदा स्थूल देह से पीढ़े पर बैठी हुई थी। दही की मटकी में अपने हाथों से मथानी चलाते हुए लाला की मधुर लीलाओं को अपने मुख से गान कर रही थी।

लीलाओं के गान करने से रस की धारा बह रही है और वह कन्हैया के पवित्र और उदार चरित्रों का गान करती है। हाथ से मक्खन निकालती है और वाणी से लीला रस गाती है।

यशोदा मैया दधि मथ रही थीं। मन्थन की बेला में कन्हैया की बाल-लीलाओं का स्मरण कर-कर उन्हें गा भी रहीं थी।

मृतका भक्षण करके माधव, तुमने वदन उघारी। तव मुख में मैंने तब देखी, विधि की सृष्टी सारी।।

विस्मय युत मम ऊपर तुमने, पुन निज माया डारी। जिम मरजी होवे तिम करिये, सब विध मैं हूँ थारी।।

माटी खाकर के जब आपने मुख पसारा था, तब मैंने तुम्हारे मुख में ब्रह्मा की रची सम्पूर्ण सृष्टि देखी थी। उस समय चकित हुई मेरे को देख करके फिर आपने मेरे ऊपर अपनी अचिंत्य शक्ति रूपा मोहमयी माया डाल दी थी। हे प्यारे, जैसे तुम्हारी इच्छा हो, वैसे ही करिये, क्योंकि मैं सर्व प्रकार से आपकी हूँ, अर्थात् मैं दासी हूँ तो आपकी, और माता हूँ तो भी आपकी हूँ।

भक्त कैसा होना चाहिये? शरीर से दधिमन्थनरूप सेवा-कर्म हो रहा है, हृदय में बाललीलाओं की धारा सतत प्रवाहित हो रही है, और वाणी के द्वारा उनका गान हो रहा है। भक्ति के तन, मन और वचन- सब अपने प्यारे की सेवा में संलग्न हैं। यशोदा दही मथते रस्सी खींचते खींचते कुछ श्रान्त हो गयी। जो हाथ भगवान की सेवा करें वही धन्य है, कान वे ही धन्य है भगवान की लीला का गुणगान सुने।

अत्यन्त प्रात:काल की बेला थी। मैया ने सोचा कन्हैया अभी सो रहा है, उसके उठने के पहले मैं ताजा मक्खन तैयार कर लूँ फिर उसे जगाऊँ, हाथ मुँह धुलाऊँ और माखन-मिश्री खिलाऊँ। ऐसा सोचकर मैया ने स्नान किया। पीला घाँघरा पहना और कृष्ण की भावना में लीन होकर मथने लगी दही। इसी बीच कन्हैया स्वयं जग गये। भक्त भगवान के लिये परिश्रम करे और भगवान् आलस्यवश सोये रहें- यह कैसे संभव हो सकता है? इसलिये श्रीकृष्ण जग गये। वे उठे, उठकर अँगड़ाई ली। पलंग पर इधर-उधर लोट-पोट किया और उसके बाद आँखें मलने लगे। मैया नें जो काजल रात में लगाया था, वह कपोलों पर आ गया। उठने के बाद मैया प्रतिदिन गोद में उठा कर मुँह धुलाती थी, पर आज नहीं दीख रही है। श्रीकृष्ण ने मैया-मैया कहकर दोनों ओर देखा और दोनों पाँव लटका कर पलंग पर बैठ गये फिर पुकारा कि मैया, तू कहाँ हैं? इस समय मैया की मानसिक स्थिति कुछ और थी। वह आनन्द-सिन्धु में विहार कर रही थी अत: कृष्ण का वचन नहीं सुना। तब पलंग से उतर कर कन्हैया धीरे-धीरे मैया के पास स्वयं पहुँच गये। मैया दही-मन्थन के साथ कृष्ण-चिन्तन में लीन थी। कृष्ण को मैया की छाती का दूध पीने की प्रबल इच्छा हुई अत: वे अपनी माता के हृदय में प्रेम और आनन्द को और बढ़ाते हुए दही की मथानी पकड़ कर खड़े हो गये और मथने से उसे रोक दिया।

शुकदेव बोले- परीक्षित **बड़ो भाग्य कैसो तैं पायो। सेवा भाव हिये कस छायो।।**

जो अनन्त ब्रह्माण्डन स्वामी। बन्यो आय तेरो अनुगामी।।

मैय्या तेरा कैसा सौभाग्य है और तेरे हृदय में कैसा सेवा भाव है कि जो अखण्ड ब्रह्माण्डों का स्वामी है, वह तेरे बस में है।

मथन न देवें दुग्ध को, पकड़ लिया मंथान। तब यशमति सुत गोद ले, दुग्ध कराया पान।।

यशोदा बोली-

चल उठ तुझे कलेऊ देऊँ, कृष्ण कहें अब मैं नहीं लेऊँ। पहले क्यों नहीं दीन्हों माँ, अबतो मेरी लेय बलाय।।

श्याम त्यागि शैया तुरत, मातु मथानी पकरिकें। अम्मा बोबो प्याइदै, पुनि पुनि बोलें अकरिकें।।

सम्मुख सुतकूँ निरखि नेहतैं मातु उठायो। अम लाइ मुख चन्द्र चूमि पय-पान करायो।।

उन्होंने बाल-सुलभ-स्वभाव के अनुसार ठुनकते हुए कहा- मैया, मुझे भूख लगी है, दूध पिला दे। मैया के प्रेम का पारावार न रहा। उसने लाला को अपनी बाँहुओं में समेट कर गोद में बैठा लिया और दूध पिलाने लगी।

परिवार संसार में रहकर उपलब्ध सांसारिक पदार्थ को भगवान को प्राप्त करने का साधन समझ कर ऐसी साधना की जाय की साध्य अपने आप ही आ मिले। रैदास जाति के चमार थे, अपने कर्मों में तन्मय होकर भगवान को पा लिया। रैदास का कार्य था जूता गाँठना वे कहीं कथा वाँचने नहीं गये। साधन में तन्मय साधक को साध्य स्वयं जगाता है।

यशोदा भक्त है। प्रेमरूपी माखन निकालना उसका लक्ष्य है। कमोरी संसार है। दही संसार के विषय हैं। मथनी साधन है। प्रेमरूपी माखन भगवान को खिलाना भक्त का उद्देश्य है। किन्तु भक्त जब भगवान में तल्लीन होकर साधन करता है, तब भगवान स्वयं उसके पास चले आते हैं। उसका साधन रोककर कहते हैं- तुम्हारे प्रेम का भूखा होकर मैं स्वयं तुम्हारे पास आ गया। बन्द करो अब साधन।

मैया दूध पिलाती जाती थी और अपने लाला को आनन्दित करने के लिये उनका मुख निरखती जाती थी। दैवयोग से उसी समय चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनने लगा। लाला अभी तृप्त नहीं हुए थे। मैया के दूध और लाला की भूख में मानो होड़ लगी हुई थी किन्तु दूध को उफनते देखकर मैया ने लाला को गोद से उतार कर भूमि पर बैठा दिया और दौड़ पड़ी दूध को उतारने के लिये।

इत जननी हिय हरिष कृष्णकूँ दूध पिआवै। धर्‌यो बरोसी दूध उफनि उत आगि बुझावै।।
दूध पूत इक सङ्ग ई, उफने माता सुतहिँ तजि। दूध उतारन आगितैं, लैंया पैंया गई भजि।।

भक्त को भगवान उतने प्रिय नहीं होते जितनी कि भगवान की सेवा। वस्तुत: यह दूध पद्मगन्धा गाय का था। यह केवल लाला के लिये ही तैयार किया जा रहा था। पद्मगन्धा गाय का दूध बड़ा विलक्षण होता है। हजारों गायों का दूध सौ गायों को, सौ गायों का दूध दस गायों को और दस गायों का दूध एक गाय को पिलाया जाता था यही गाय पद्मगन्धा कही जाती थी। इसी गाय का अतिमधुर दूध लाला को पिलाया जाता था। मैया ने सोचा यदि दूध बह जायेगा, तो मेरा लाडला भूखा रह जायेगा अत: मैया लाला को छोड़कर दूध उतारने दौड़ पड़ी।

धावत कह्यो ललन बलि जाऊँ। दूध सम्हारि तोहिँ पुनि आऊँ।।
या बिच मंथन-माट सम्हारौ। लालन याकी ओर निहारौ।।
पै लालन अतिशय दुख मान्यो। मोते अधिक दूध करि जान्यो।।
मो कहँ अपने संग न लीन्ह्यों। मानि परायो सो तजि दीन्ह्यों।।
चूले पर पय तप रहा, तिसका देख उफान। गयी उतारण दुग्ध को, कोपित हुए भगवान।।

मैया लाला को छोड़कर गृहस्थी बचाने के लिये चली गई। इसका मतलब यह हुआ कि शीघ्र ही आगे कोई-न-कोई परेशानी, विपत्ति आनेवाली है। दूध ने देखा कि लाला यदि मैया का दूध भर पेट पी लेगा तो मुझे नहीं पियेगा अत: वह दौड़ पड़ा लाला की ओर।

मैया ने दूध को उतार दिया। भक्त भगवान के लिये सन्तप्त होनेवाले प्राणी को उतार देते हैं, तार देते हैं। मैया छोड़कर चली गई। इस पर लाला को कुछ क्रोध-सा आ गया। कन्हैया ने सोचा यह कैसी मैया है? जो दूध मैं मैया के स्तनों से पी रहा था उसकी चिन्ता नहीं जिसे मैं बाद में पीनेवाला हूँ मेरा पेट भरने से पहले ही माता ने अपना दूध छुड़ा लिया। क्रोध से उनके लाला-लाल ओठ फड़कने लगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें दाँतों से दबा लिया और पास ही पड़े हुए लोढ़े से दही का मटका फोड़ डाला फिर झूठे ही रोने का बहाना करते हुए घर के अन्दर चले गये और वहाँ अकेले में बासी मक्खन खाने लगे।

दधि वासन को फोड़ के, पुन गृह अन्तर जाय। कुछ माखन खाया कछू, गृह में दिया फिलाय।।
मंथन-माट, रिसाइ उन, उलटन कियो उपाय। दाँत पीस, लोढ़ा लियो, फोरि दियो उन आय।।
दधि-धारा या बिधिहिँ बहाई। जाको निरखि शान्ति कछु पाई।।
यह सब करि पुनि मन भय आयो। खचंभ ओट उन जाय छिपायो।।

यशोदा की ददिया सास का यह पुराना और बड़ा माट फूटते ही पूरा दही आँगन में फैल गया। कन्हैया माखन का लौंदा हाथ में लेकर अंदर के कमरे में चले गये।

नहीं अघाये श्याम रोष मैयापै आयो। लोढ़ा ढिँगई धरयो क्रोध करि ताहि उठायो।।
मारयो तकिके भाँड दहीको फूटयो फटई। फुटति मथानी भगे शम माखन लै झटई।।
आइ यशोदा दृश्य लखि, हँसी पुत्र पकरन चली। सोचें मनमें श्यामकी, चोरीकी कलई खुली।।

यशोदा ने उफनते हुए दूध को उतार दिया फिर वे लौट कर दधि मथने के स्थान पर आईं। वहाँ उन्होंने देखा मटका फूटा हुआ है। दही चारों ओर फैली हुई है। लाला भी नहीं दिखलाई दे रहा है। उन्हें हँसी आ गई। उन्होंने सोचा यह सब करतूत उसी नटखट की है।

ददिया सासू को माट तुराना। मात रिसाई श्याम बुलाना।। भागे मोहन दौर लगाई। नटखट लाला हाथ न आई।।
मात थकित जाना मुरलीधर। स्व इच्छा पकरायो निज कर।। दाऊ सों रज्जु मँगानी। ऊखल सों चाहे बन्धानी।।
दो अंगुल छोटा रह जाता। बँधे नहीं तो खीजी माता।।

यशोदा ने अपनी ददिया सास का पुराना माट फूटा हुआ देखा तो जान गईं कि यह श्याम सुन्दर की करनी है। रुष्ट हुई माता ने श्याम सुन्दर को आवाज लगाई। मैया ने कहा- हाय हाय नीलमणि तुमने यह क्या किया। सारा दूध-दही आँगन में भर दिया। फिर सोचने लगी हमने इसको गोद से उतार दिया इससे उसने यह नटखटपन किया।

चतुराई याकी लखौ, चुप चुप कियो कन्हाय। छुपि छुपि मो नैनन गयो, लुकि लुकि रह्यो लुकाय।।
कहाँ गयो हा, नीलमणि, जाय न भय भरि भाग। हाय हाय अब का करूँ, उन दरसन मन लाग।।

कृष्णने बगीचे की ओर के दरवाजे खोल लिए और बहुत से बानरों को इशारे से बुला लिया था और उनको नौ लाख गायों का सुन्दर मक्खन आनन्दित होकर खिला रहे थे। कभी कभी वे भी कुछ लेकर खा लेते थे बाकी बन्दरों को ही हँस हँस कर लुटा रहे थे। कहीं मैय्या उनको देख न ले इससे शंकित होकर आँखें घुमा कर देखते जाते थे।

साँचिहुँ अति नटखट भयो, अटपट खेल सुहाय। खटपट इमि गोपिन करै, झटपट पुनि भजि जाय।।

सचमुच ही कन्हैया अत्यन्त नटखट हो गया है और इसको अटपटे खेल अच्छे लगते हैं इसी से गोपियों से खटपट करता है और जल्दी से भग जाता है।

मोहन ने मैया को क्रोध में देखा कि मेरे पीछे मुझे पकड़ने के लिए भागी आ रही हैं तो मोहन ने भी बचने के लिए दौड़ लगाई।

सुत के कृत को देख के, लेकर यष्टी हाथ। चली यशोदा पकड़ने, भाग गये ब्रजनाथ।।
साँटि लिये मातु उन देख्यो। कुटिल, कठिन, रिस-नैनन लेख्यो।।
अति भय मानि भग्यो अकुलाई। मातु तबहिं उन पाछे धाई।।

मैया कह रही थी हे चोरों के शिरोमणि, तुम कहाँ भाग जाओगे आज मुझसे बच नहीं पावोगे। जिनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है और जो योग की समाधि में भी उनको अपने मन में नहीं ला पाते और उनका स्पर्श नहीं कर पाते उनको पकड़ने के लिये आज यशोदा प्रयत्न कर नही है और मन से नहीं बल्कि हाथ से पकड़ने के लिए दौड़ रही है। क्योंकि मैय्या कन्हैया को सांसारिक बालक समझती है।

बढयो मातु उतसाह लखि, अति समीप उन आय। अब याको लेहौं पकरि, कहाँ छोरि भजि जाय।।

नटखट लाल माता के पकड़ने पर भी हाथ नहीं आये। मुरलीधर ने जब यह जाना कि माता थक गई हैं तो फिर अपनी

इच्छा से ही अपना हाथ माता के हाथों में पकड़ा दिया। मैया यशोदा बोलीं, अरे दाऊ भैया। जरा रस्सी लाना तो आज मैं कन्हैया को ऊखल से बाँधूगी। दाऊ आदि की लाई हुई रस्सियों से जैसे ही मैया बाँधने लगी तो प्रत्येक रस्सी दो अंगुल छोटी रह जाती थी। बहुत प्रयास करने पर भी जब लाला नहीं बँधे तो मैया की खीज अधिक बढ़ गई।

मटकी गृहस्थी है। दही संसार का विषय है। भक्त भगवान को छोड़कर जब गृहस्थी सजाने चलता है, तब वे उसकी गृहस्थी को तहस-नहस कर देते हैं। उसके प्रिय विषयों को बिखेर देते हैं। यही है रहस्य मटकी फोड़कर दही बहाने का अत: गृहस्थ को चाहिये कि वह भगवान को लेकर ही अपनी गृहस्थी सजावे, छोड़कर नहीं।

विद्यार्थी की परीक्षा एक बार होती है, भगवान अपने भक्तों की परीक्षा प्रतिक्षण लेते हैं। कहीं बुद्धि-विवेक से कार्य का सम्पादन नहीं किया, सन्मार्ग को त्यागकर जगत्-व्यवहार की ओर दौड़े तो उद्देश्य भरा जीवन रूपी मटका फूट जायेगा इससे दु:ख होगा।

लाला को न देख कर यशोदा उस नटखट को खोजने के लिये अन्दर की ओर गईं। वहाँ उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा- भीतर के कमरे में दरवाजे की ओर पीठ कर लाला ओखली पर बैठा है। छींके पर का माखन उतार-उतार कर स्वयं खा रहा है और बन्दरों को लुटा रहा है। चोर की तरह वह बीच-बीच में मुड़-मुड़ कर पीछे की ओर देख भी रहा है कि कहीं मैया तो नहीं आ रही है। मैया ने इस दृश्य को बड़े ध्यान से देखा फिर पीछे से पाँव दबा कर धीरे-धीरे उसके पास जा पहुँची।

माँ-बाप बालकों को प्यारपूर्वक अपनी गोद में नहीं रखते तो वे किसी खल की गोद में जा बैठते हैं। मानो संसार को यही सन्देश देने के लिये श्रीकृष्ण उल्टी ओखली पर जा बैठे।

रामावतार में बन्दरों ने पत्ते चबा-चबाकर भगवान् की सेवा की है। उसी कृतज्ञता के कारण इस अवतार में कृष्ण उन्हें माखन खिलाकर बदला चुका रहे हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, माता ने देखा श्रीकृष्ण उलटी ओखली के ऊपर खड़े हैं, छींके पर रखे मक्खन को इच्छानुसार वानरों को बाँट रहे हैं। चौर्य-कर्म की आशंका के कारण उनके नेत्र चञ्चल हो रहे हैं, वे इधर-उधर देख रहे हैं। पुत्र को ऐसी स्थिति में देखकर शनै: शनै: माँ सुत के समीप गयीं।

माता चुपके चली चोरकी चोरी पकरन। निरखत इत उत सभय चपल दृग जनमनरञ्जन।।

जननी आवत लखी ओखरी तजि हरि भागे। पीछें दौरी मातु कृष्ण डरि काँपन लागे।।

कन्हैया ने मैया को हाथ में छड़ी लिये आती हुई देखा। जल्दी से वे ओखली पर से उतरे और भयभीत की भाँति भाग खड़े हुए। परीक्षित्, बड़े-बड़े योगी भी जन्म-जन्मान्तर तक तपस्या से सूक्ष्म और निर्मल बनाये गये अपने मन से भी जिनका स्पर्श नहीं कर पाते, आज गोपी यशोदा उन्हीं को पकड़ने के लिये पीछे-पीछे दौड़ रही हैं।

नन्द कहत सुनबावरी हरि अति कोमलगात। लै साँटी धावत वृथा पुनि पाछे पछितात।।

अचरज तेरी बात को जानै देख्यो कहा। कुशल रहै दोउ भ्रात राम श्याम खेलत हँसत।।

मैया यशोदा की आवाज सुनते ही माखनचोर सकपका गये। अपने संगी वानरों को माखन बाँटते हुए भाग खड़े हुए। कन्हैया को डर है कि कहीं उनकी चोरी की पोल न खुल जाये। इन्होंने चारों तरफ देखा और उन्हें मैया यशोदा के आने की आहट मिल गयी। वानरों ने संकेत किया- कन्हैया, देख मैया आ रही है।

आगे सुन्दर श्यामघन पाछे यशुमतिमाय। दामिनि ज्यों दौड़ी फिरै हरि नहिंपकड़ोजाय।।

जिस परब्रह्म परमेश्वर ने अपने दो पग में चौदहों लोक नाप लिया था उनको किसकी सामर्थ्य है जो पकड़ सके।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस झांकी का दर्शन करो। देखो निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष, परब्रह्म गोकुल की गलियोंमें नंगे पैर दौड़ रहा है। योगी जिसको पकड़ने के लिए जन्म-जन्मान्तर से ध्यान लगाते हैं उसे यशोदा पकड़ने दौड़ रही है। जो सब ओर से मुँह मोड़कर भगवान की ओर दौड़ता है उसके हाथ भगवान जरूर आ जाते हैं।

भगवान की अनन्त शक्तियाँ हैं किन्तु व्रज में केवल दो शक्तियाँ ही प्रधान हैं- ऐश्वर्य शक्ति और वात्सल्य शक्ति। ऐश्वर्य शक्ति को तो भगवान ने गोप-गोपियों के क्षेत्र से तो बाहर ही रोक दिया है। वहाँ केवल वात्सल्य शक्ति की ही प्रधानता है। कोई असुर अस्त्र-शस्त्र लेकर जब आता हैं तो कन्हैया सुदर्शन चक्र का स्मरण करते हैं किन्तु वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति मैया की छड़ी का निवारण करने के लिये उनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। आगे-आगे भयभीत कन्हैया भाग रहे हैं। पीछे-पीछे मैया छड़ी लिये दौड़ रही है। परीक्षित, कितनी मधुर है यह झाँकी इसका दर्शन करो। धन्य है इस भय को।

नन्द के आँगन में यह अद्भुत दौड़ चल रही थी। नन्द के आँगन में इकट्ठी हुई गोपियाँ कन्हैया और मैया की दौड़ देखकर हँस रही थीं, ताली बजा-बजाकर कह रही थीं- भागो कन्हैया भागो। कन्हैया ने देखा मैया परेशान है, हैरान है अत: कृपा करके वे स्वयं उसकी पकड़ में आ गये।

भगवान के भक्त कहते हैं कि- जब मैया दौड़ते-दौड़ते श्रान्त हो गई, थक गई और लाला पकड़ में नहीं आये तब मैया ने सतयुग, त्रेता, द्वापर के भक्तों की सौगन्ध दिलाना प्रारम्भ किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। अन्त में कलियुग के भक्तों की शपथ दिलाने पर श्रीकृष्ण पकड़ में आ गये। वस्तुत: मैया के वात्सल्य के सामने कन्हैया का ऐश्वर्य बौना पड़ गया और वे पकड़ में आ गये। यशोदा भक्ति है। वह अधर्म पर दृष्टि रखकर प्रभु को पकड़ने चली है, तो कैसे प्रभु उसकी पकड़ में आ सकते हैं? यशोदा मैया दौड़ते-दौड़ते थक गयीं, हाथ की छड़ी गिर गयी। माँ नि:साधन हुई, अभिमान की यष्टि गिर गयी तो भगवान स्वत: बन्धन में आ गये।

अतिसय श्रमित मातु कहँ जानी। तासु पकड़ मँह प्रभु निज आनी।।
भगत भगति कइ रीति सुहाई। स्वजन भाव बस्यता दिखाई।।
यद्यपि कृष्ण रहे अपराधी। तदपि रोइ गल हिचकिहिं बाँधी।।
पसरेउ मुख कज्जल छबि न्यारी। मीजत दृग भय न भहिं निहारी।।
फेंकि यशोदा दण्ड कर अति सभीत सुत देखि। बाँधन लागि उलूखलहिं दण्ड उदण्ड बिशेषि।।
नहिं जेहिं आदि मध्य अवसाना। स्वयं मूल सोइ स्वयं बिधाना।
तेहिं सुत गुनि प्राकृत शिशु नाँई। बाँधनि लागि उखल माई।।

यशोदा जैसा वात्सल्य जिसका हो, वो ही उसे बांध सकता है। प्रेम से ही बंधता है गोविन्द।

जब हरि जाना थक पड़ी, जननी अति अकुलान। कर में आये तास के, जनवत्सल भगवान।।

यदि भक्ति अभिमान को साथ लेकर भगवान को पकड़ने चलेगी तो वे उसकी पकड़ में नहीं आयेंगे। यशोदा भक्ति है, भक्ति से भरी बुद्धि है। लकड़ी अभिमान का प्रतीक है। जब तक बुद्धि में अभिमान है, भले ही वह भक्ति से भरी हो, तब तक वह भगवान् को नहीं पकड़ सकती। अभिमानी हृदय से भगवान् की सेवा नहीं कर सकता।

संसारके विषय इन्द्रियोंको बाँधनेमें समर्थ है। ये हृदयमें स्थित अन्तर्यामी और साक्षीको नहीं बाँध सकते। तब गो-बन्धक (इन्द्रियों या गायोंको बाँधनेवाली) रस्सी गो-पति (इन्द्रियों या गायोंके स्वामी) को कैसे बाँध सकती हैं?

यशोदा मन-ही-मन सोचती हैं- इसकी कमर मुट्ठी भरकी है, फिर भी सैकड़ों हाथ लम्बी रस्सीसे यह नहीं बँधता है।

कमर तिलमात्र भी मोटी नहीं होती, रस्सी एक अंगुल भी छोटी नहीं होती, फिर भी वह बँधता नहीं। कैसा आश्चर्य है। हर बार दो अंगुलकी ही कमी होती है, न तीनकी, न चारकी, न एककी। यह कैसा अलौकिक चमत्कार है।

अगर सृष्टिकी समस्त रज्जुएँ और नागपाश, वरुणपाश, ब्रह्मपाश सब एकत्र कर लें तो भी सब उद्योग व्यर्थ है। योगमाया के करोंकी शक्ति अचिन्त्य हैं। वे जिसे पाश-मुक्त रखना चाहें, महामायाके महापाश भी उसे बाँधनेमें असमर्थ हो जाते हैं। यह तो नित्यमुक्त, अनादि ईश्वर को बाँधना चाहती हैं। देशकाल भी जिनमें कल्पित है उन्हें कोई अपने घेरे में कैसे ले सकता है।

भगवान श्रीकृष्ण इतने कोमलहृदय हैं कि अपने भक्तके प्रेमको पुष्ट करनेवाला परिश्रम भी सहन नहीं करते हैं। वे अपने भक्तको परिश्रमसे मुक्त करने के लिये स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लेते हैं। भगवानने अपने मध्यभागमें बन्धन स्वीकार करके यह सूचित किया कि मुझमें तत्त्वदृष्टिसे बन्धन है ही नहीं; क्योंकि जो वस्तु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे नहीं होती, केवल बीचमें भासती है, वह झूठी होती है। इसी प्रकार यह बन्धन भी झूठा है। भगवान किसीकी शक्ति, साधन या सामग्रीसे नहीं बँधते। यशोदाजीके हाथों श्यामसुन्दरको न बँधते देखकर पास-पड़ोसकी ग्वालिनें इकट्ठी हो गयीं और कहने लगीं- यशोदाजी। लालाकी कमर तो मुट्ठीभरकी ही है और छोटी-सी किमिणी इसमें रुन-झुन कर रही है। अब यह इतनी रस्सियोंसे नहीं बँधता तो जान पड़ता है कि विधाताने इसके ललाटमें बन्धन लिखा ही नहीं है। इसलिये अब तुम यह उद्योग छोड़ दो। यशोदा मैयाने कहा- चाहे सन्ध्या हो जाय और गाँवभरकी रस्सी क्यों न इकट्ठी करनी पड़े, पर मैं तो इसे बाँधकर ही छोड़ूँगी। यशोदाजीका यह हठ देखकर भगावन ने अपना हठ छोड़ दिया; क्योंकि जहाँ भगवान और भक्तके हठमें विरोध होता है, वहाँ भक्तका ही हठ पूरा होता है।

मैया अपने बाँए हाथ से कन्हैया का दाँया हाथ पकड़े खड़ी है। उसके दूसरे हाथ में छड़ी है। श्रीकृष्ण मैया के सामने अपराधी बनकर खड़े हैं। जोर-जोर से रो रहे हैं। आँखों को मल रहे हैं। काजल मुख पर फैल रहा है। वे कभी माँ की ओर कभी नीचे की ओर देख रहे हैं। उनके नेत्र भय के कारण विह्वल हैं।

मैया कन्हैया की ओर छड़ी हिलाती हुई। आँखें गुरेरती हुई बोली- अरे नटखट, यदि तुझे इतना डर था तो तूनें दही का इतना पुराना मटका क्यों फोड़ा? अरे अशान्त प्रकृते, अरे वानर बन्धो, मनचले, आज तुझे ऐसा बाँधूंगी कि अनेक प्रकार से ऊधम करते रहते हो, माखन की चोरी करना सीखे हो, सब भूल जाओगे। मैया के डाटने पर कन्हैया काँपने लगे। उन्होंने गिड़गिड़ाते हुए कहा- मैया, अब की बार क्षमा कर दे। आगे ऐसी गलती नहीं करूँगा। तुम्हारे हाथ की छड़ी से डर लग रहा है। मेरी मैया तूँ इसे फेंक दे। इस पर मैया का हृदय पिघल गया। उसने देखा कि लाला डर रहा है अत: छड़ी दूर फेंक दी।

श्याम कह्यो, अब करौं न मैया। हाय हाय करि विकल कन्हैया।।
जननि हियो नहिं नेक पसीजो। जस कीन्ह्यों तस फल भर लीजो।।
रुदन करत भयभीत निज, सुत को लखकर मात। तज कर यष्टी हस्त से, लगी पूछने बात।।

अर्थात् जब तक प्राणी जड संसार को पकड़े रहता है, तब तक चेतन परमात्मा उसके हाथ में कैसे आयेगा? संसार छोड़ोगे तो परमात्मा से संगम होगा।

जिनको जप, तप, ध्यान, योगतैं पकरि न पावें। तिनकूँ जननी छरी लिये डर सहित भगावें।।
देह थूल सुकुमार श्रमित जब जानी माता। स्वयं पकड़महँ आइ गये तब भव भय-त्राता।
निज करतैं हरि-र पकरि, बोली क्यों चोरी करी? रोये आँखिनि मीड़ि प्रभु, तब जननी फेंकी छरी।।

मैया सोचने लगी- इसे ऊखल में बांध दूँ। भाग भी न सके और अपने किये हुए अपराध पर प्रायश्चित करें और मैं

निश्चिन्त होकर माखन तैयार कर लूँ।

यशोदा बोली- **लाला कैसे दूध बिगारी।।**

क्या मैं तोको खान न देती, क्यों तुम भवन उजारी। साची भाखत हैं ब्रज गोपी, दुर करतूत तुमारी।।

लाल निरंकुश तूं निजतंतर, नयनन लाज उतारी। सब बालक पुन बंधुजनों से, तुमरी कृत अति न्यारी।।

मैं नवनीत तुमारे कारण, राखा छीक मझारी। सो सब तुमने भूमि मिलाया, गति नहिं जानूं थारी।।

देखन को तुम अल्प दिखावो, उत्पाती अति भारी। श्री गोपाल कहूँ मैं तोको, मत हो स्वजन दुखारी।।

हे पुत्र, मैंने तो माखन तुम्हारे निमित्त ही छीके में रखा था; वह सब तुमने मिट्टी में मिला दिया है। तुझे तो तेरी चाल समझ नहीं आती क्योंकि देखने को तुम छोटे से दिखाई देते हो, परन्तु उपद्रवी बड़े भारी हो। हे श्री गोपाल, मैं तेरे से कहती हूँ, तू अपने बांधवों के दु:खद मत बनो।

श्रीकृष्ण बोले- **मैंया मैं हूँ पर उपकारी।।**

यह गोरस सब श्याम सर्प ने, मुख से कीन जुठारी। जो खावत या गोरस को सो, जावत यमपुर द्वारी।।

याके देखत जहिर चढ़े हैं, मति तक नयन उघारी। देखन को यह सुधा दिखावत, कपटि मित्र कृतकारी।।

श्रीकृष्ण बोले- हे मैया, मैं तो सबका हित करनेवाला हूँ। यदि कहो कि यह क्या हित किया जो हमारे दूध को बिगाड़ दिया है, तो सुन- यह सम्पूर्ण गोरस दूधादिक काले सर्प ने मुख से झूठा कर दिया था। जो कोई इस दूध, दही, माखन को खाता, वह यमलोक को ही जाता। अरी मैया, इसके तो देखने मात्र से ही विष चढ़ जाता है। इस कारण तुम आँख उठाकर इसकी ओर देखो नहीं, क्योंकि देखने को तो यह दूध आदिक अमृत के समान दिखाई देते हैं, परन्तु यह अन्त में कपटी मित्र के समान कर्म करनेवाला है, अर्थात् दु:खदाई है। इसलिये इन पदार्थों को जो भी अपनी ममता से ग्रहण करता है, वह पुरुष जन्म-मरण रूप नरक में जाता है और इन संसारी पदार्थों को रागपूर्वक़ देखने से भी काम-क्रोधादि रूप विष शरीर में चढ़ जाता है। हे माता, तू कल्याण की इच्छावाली है, इसलिये इन पदार्थों को अपनी ममता रूप आँख को खोलकर नहीं देख, क्योंकि देखने में तो ये सुखदाई हैं, परन्तु अन्त में छलिया मित्र के समान संसार-समुद्र में बहनेवाले हैं।

नहिं विश्वास दिखावूँ तोको, कोटिन चींटि मारी। याको झटिती धरणि दबावो, देगा दुख यह भारी।।

शपथ तुमारी झूठ न बोलूँ, साक्षी हैं हलधारी। कह गोपाल सुनो मम माता, मैं तुमरा हितकारी।।

यदि तुम्हारे को मेरी बात पर विश्वास नहीं, तो मैं तुमको दिखाता हूँ- देख इसने करोड़ों ही चींटियाँ मार दी हैं। इसलिये इस दूध को शीघ्र ही पृथ्वी में दबा दो, नहीं तो यह महान दु:ख देगा। हे माता, मेरे को तुम्हारी सौगंध हैं, मैं झूठ नहीं कहता हूँ। वेद में कहा है जो झूठ बोलता है, वह समूल नष्ट हो जाता है। इस बात में बलराम जी भी गवाह हैं, आप बलराम जी से पूछ लें। हे मेरी माता, मैं तो आपका शुभचिंतक और कल्याण करनेवाला हूँ।

बानर-बन्धु, चोर दधि माखन। अबहिंग देहुँ याको फल चाखन।।

चंचल मति, गृह-लुण्ठन-कारी। अबहिं देहुँ मैं तोहिं सुधारी।।

अब मैया ने कन्हैया को बाँधना चाहा, क्योंकि वह उनके ऐश्वर्य से अपरिचित है। वह समझती है कि अरे, यह तो वही है, जिससे अभी बाट नहीं उठता, पीढ़ा नहीं उठता। यह कमजोर है अत: इसको बाँधने में कठिनाई नहीं है। मैं भी इसे भर पेट अपना दूध न पिला सकी अत: यशोदा मैया ने सोचा कि थोड़ी देर तक इसे ऊखल में बाँध देती हूँ फिर नया माखन और ताजी रोटी तैयार कर उसे खिलाऊँगी। तब यह सब उपद्रव छोड़कर शान्त हो जायेगा।

चतुराई के वचन सुन, सुत के यशमति मात। कुप्त होय बाँधन लगी, डोर न्यून हो जात।।

माता यशोदा, चतुराई से मिले हुए पुत्र के वचन सुन करके तब क्रोध में होकर श्रीकृष्ण को बाँधने लगी। उस समय जिस-जिस डोरी से बाँधती थी वही डोरी कम हो जाती थी।

और और पुन लायके, गाँठी डोर अनेक। दो अंगुलि सब न्यून रहि, पूरण होत न एक।।

फिर दूसरी-दूसरी बहुत सी डोरी लाकर मिलाकर गाँठी (जोड़ी) परन्तु बाँधते समय भी सब दो अंगुलि की छोटी ही रहीं। एक भी बाँधने में बराबर नहीं होती।

देशकाल परिछेद से, रहित विभू भगवान। सो आवें किम बंध में, मुक्त त्रिकाल अमान।।

जब हरि जाना हृदय में, दुखित भयी अति मात। बंधन में आये प्रभू, निज इच्छा कर तात।।

श्रीकृष्ण भगवान सर्वव्यापक, एकरस तथा अद्वितीय रूप हैं, इसलिये वे देश और काल के अंत से रहित हैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों कालों से परे, परिणाम रहित हैं बंधन में कैसे आ सकते हैं। जब श्रीकृष्ण ने मन में जाना कि माता बहुत दु:खी हो गई है, तब स्वयं श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से ही माता के बंधन में आ गये।

श्री शुकदेव बोले- राजन्, जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है और न अन्त:, जो बाहर-भीतर के भेद से रहित है; जो जगत् के पहले भी थे, बाद में भी रहेंगे; इस जगत् के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपों में भी वही दिखलाई पड़ रहे हैं; और तो क्या, जगत् के रूप में भी स्वयं वही हैं; यही नहीं, जो समस्त इन्द्रियों से परे और अव्यक्त है। उन्हीं भगवान को, मनुष्य का सा रूप धारण करने के कारण, पुत्र समझकर यशोदा रानी रस्सी से ऊखल में, साधारण बालक की भाँति, बाँध देती हैं।

जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एकसूत्र में बाँधते हैं उन्हें किसमें बाँधने की शक्ति है?

लाला को जब नन्दरानी यशोदा बाँधने लगीं तो रस्सी दो अँगुल छोटी पड़ गई। गोकुल भर रस्सियाँ जोडी गई। जितने भी रस्सियाँ जोड़ी जाती सब दो अंगुल छोटी पड़ जाती। यशोदा लाला को बाँध न सकी।

दौरि परीं सिंगरी सखिन, बिगरीं अतिहिं रिसाय। झगरीं लखि गति लाल की, पकरि, रहीं समुझाय।।

यह देखकर गोपियों को महान् आश्चर्य हुआ। वे यशोदा की असफलता को देखकर मुस्कराने लगीं। इस पर यशोदा को भी स्वयं आश्चर्य हुआ। वे भी मुस्कुराने लगीं।

मातु थकी पुनिपुनि रजु गहई। तदपि छोट युग अंगुल रहई।
फेंकि र जु गहि सिरु महतारी। कहइ लाल अब तो मैं हारी।।
लखि निरुपाय गुमान बिनु उर दिबि भाव प्रधान। परम पूर्ण स्वच्छन्द गति स्वयं बँधे भगवान।।

जीव में और ईश्वर में दो ही अंगुल का अन्तर है। एक अंगुल तो जीव की कमी है कि वह अपने अहंकार को नहीं छोड़ता। एक अंगुल भगवान की भी कमी है कि वे कृपा नहीं करते। जीव अपने कर्तृत्व के अभिमान को छोड़ दे और भगवान कृपा कर दें तो फिर भी शेष नहीं रह जाती।

इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि माताजी का शरीर पसीना-पसीना हो गया है और वे बहुत श्रान्त भी हो गई हैं, तब कृपा करके वे स्वयं ही अपनी माँ के बन्धन में बँध गये। परमात्मा जब भी बन्धनवश होगा तब प्रेमवश ही होगा, जीवात्मा के पुरुषार्थ से नहीं, परमात्मा के अनुग्रह से हमारे चित्त में परमात्मा पकड़ा जायेगा। परमात्मा त्रिगुणात्मिका मायाकी डोरी से नहीं, प्रेम से, भक्ति से बँध जायेंगे। भगवान स्वतंत्र है पर भक्ति से परतंत्र हो जाते हैं। भगवान भक्त-अधीन हैं, प्रेमबन्धन तोड़ नहीं सकता, प्रेम कोई शर्त से नहीं किया जाता। ज्ञान से, तप से भगवान दर्शन दे सकते हैं पर स्वयं बन्धन में नहीं

आते। विशुद्ध प्रेम ही एक उपाय है, जिसमें न बन्धन है, न मोक्ष यही बन्धनमोक्ष की लीला है।

भगवान चाहे कैसे भी हों, भक्त इतने प्रेमी होते हैं कि उनके प्रेमकी अधिकता के सामने भगवान को झुकना ही पड़ता है। गाँवकी ग्वालिनोंके साथ नाचते हैं और दूसरेके अनुसार गोपियों का इतना प्रेम है कि भगवान को नचाती हैं।

यशोदाजी क्रोध करके रस्सी को खींचती हैं। कृष्ण ने देखा कि मां बेटे के भले के लिए क्रोध कर रही हैं, तो वे मन-ही-मन मुस्कराने लगे। उन्होंने कहा कि दूध उबल रहा है, ऐसा कहकर उन्होंने मां को व्याकुल कर दिया और इस प्रकार अपना हाथ छुड़ा लिया। सारे बर्तनों को फोड़कर सारी दही और मक्खन गिरकर उसका कीचड़ बना डाला। अब मां रस्सी ले आई और कहा कि अब मैं तुम्हें बांधूंगी। कृष्ण ने मां के गव को समझकर अपने को बांधने नहीं दिया। यशोदा की रस्सी बांधने में दो उंगुल छोटी रह जाती थी। वे बार-बार रस्सी मांगती थीं, किंतु पूरी न होती थी। कृष्णने सोचा कि नारद के शाप से जो देवता यमलार्जुन वृक्ष के जोड़े बन गए हैं, उनका अब उद्धार करूं। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान अपने भक्तों के हित के लिए बार-बार अवतरित होते हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, जिनका न बाहर है, न भीतर, न पूर्व है न पर, तथा जो इस सम्पूर्ण जगत के बाहर भीतर आदि अन्त में विद्यमान् हैं तथा जगत् स्वरूप ही हैं, उन इन्द्रियों से अतीत माया से मानव बने अव्यक्त अच्युत को मैया यशोदा अपना पुत्र ही मानकर प्राकृत शिशु के समान रस्सी द्वारा उलूखल से बाँधने लगीं।

कसिकें पकरे श्याम दई मीठी सी गारी। हरिकूँ बाँधन हेतु कचनितैं डोरि निकारी।।

दयो लपेटा एक कमरमहँ बाँधन लागी। द्वै अंगुल कम रही जेवरी दूसरि माँगी।।

पुनि द्वै अंगुल कम रही, पुनि बाँधी पुनि कम भई। घरकी सब रस्सी चुकी, हँसी मातु विस्मित भई।।

यशोदाजी कृष्णसे कहती हैं कि मैं आज तुम्हें बांधूंगी। देखें, कौन छुड़ाता है? तुमने मुझसे बड़ी शरारतें की हैं। यशोदाजी कृष्ण का हाथ पकड़कर ऊखल से बांधती हैं। मां को अत्यन्त क्रोधित जानकर कन्हैया ने अपने को बंधवा लिया और माता का मुख देखकर आंखों से आंसू बहाने लगे। यह देखकर ब्रज की नारियां दौड़ी और कहने लगीं, कहो कृष्ण अब चोरी क्यों नहीं करते? यशोदाजी कन्हैया को ऊखल से बांधने के बाद उन्हें मारने के लिए संटी (लकड़ी की पतली बेंतनुमा डंडी तोड़ने लगीं। संटी देखकर सारी गोपियां पछताने लगीं। सब व्याकुल हो गईं और जहां-तहां मुंह मोड़ने लगीं।

ब्रजेश्वरी उन सबन सुनायो। वाको सब उतपात बतायो।।

तब इक बोली अतिहिँ रिसाई। लालन बदन देखु री माई।।

तूने थोड़े से दही के कारण इतना गुस्सा किया और कन्हैया को इतना बड़ा अपराधी मान लिया इसने कितना दूध दही बहाया है और कितना दही मक्खन खाया। कितना इन्होंने बन्दरों को खिलाया है और कितने मटके फोड़ डाले हैं, ऐसा कन्हैया ने क्या किया है जिसके कारण तू इनको मारने के लिये दौड़ी है।

यमुमति, नीलमणिहिँ तव प्राना। या हित चित धरि रोष बिधाना।।

याके मंगल हित सब साजा। या हित लगयो रहत ब्रज-राजा।।

यशोदा यह कन्हैया ही तुम्हारा प्राण है और इसी के कल्याण के लिये तुम गुस्सा भी होती हो और इसी के कल्याण के लिये सदैव व्यवस्था बनाती हो और इसी में नन्दबाबा भी लगे रहते हैं।

अब लौं नहिं अनुशासन कीन्ह्यों। आजु भलो करि इन सखि दीन्ह्यों।।

अब पुनि अस नहिं रोष दिखावो। इन लीलन लखि सब बिसरावो।।

तुमने अब तक अनुशासन नहीं किया आज इनको यह शिक्षा दी यह अच्छा किया किन्तु अब ऐसा गुस्सा मत दिखाओ और इनकी लीलाओं को देखकर सब कुछ भूल जाओ।

गोपियों ने कहा कि हे यशोदा, यह समझदारी की बात नहीं कि माखन और दही के लिए तुम बेटे को बांध रही हो। सूरदासजी कहते हैं कि तुमने कृष्ण को बहुत सता लिया, हमसे ही सवेरे-सवेरे गलती हुई, जो हमने तुम्हें उलाहना दिया।

गोपियां कहती हैं, यशोदा, यदि तुम्हें अपने माखन की हानि की इतनी परवाह है, तो हम अपने घर से माखन ला दें। जिसके कारण तुम इसे छोड़ती नहीं और हाथ की छड़ी से डराती हो। हे यशोदा। तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिए। डर के मारे कृष्ण का मुख इस प्रकार संकुचित हो गया है जैसे चंद्रमा कि किरण पाकर कमल संकुचित होकर तालाब में फूलता नहीं। तुमने इतने सुंदर कृष्णको उसकी भुजाओं सहित ऊखल से बांध दिया है। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण के नेत्रों से आंसू इस प्रकार टपक रहे हैं, जैसे चंद्रमा से मोती गिर रहे हो।

गोपियां कहती हैं कि यशोदा, अच्छा तेरा हृदय हैं। कमल के समान सुंदर नेत्रवाले कृष्णको न सिर्फ माखन के कारण ऊखल से बांध रखा है, जो संपत्ति देवता और मुनियों को स्वप्न में भी दिखाई नहीं पड़ती, वह निधि रूप भगवान तुझे घर बैठे मिल गए, इसलिए तू अभिमान में भूली है। जो निर्गुण ब्रह्म जल-थल में व्यापक रूप में समाया है और जिसे वेद भी खोज नहीं पाए, उस परमेश्वर को तुम अपने आंगन में चुटकी बजा-बजाकर नचाती हो। पहले जब तू किसी के बेटे को रोता हुआ देखती थी तो दौड़कर उसे गले लगा लेती थी और अब अपने घर के बच्चे के साथ इतनी निर्दयता दिखा रही हो। देखो, कुंवर कन्हैया बार-बार आंसू भरे नेत्रों से देख रहे हैं। क्या करूँ? मैं तेरी बलैया लेती हूं, तू जल्दी इन्हें छोड़ दे। मैं तुझे तेरी सौगंध दे रही हूं, जो श्रीहरि देवताओं के रक्षक हैं, असुरों को मारनेवाले हैं, जिनसे सारा त्रैलोक्य डरता है, उन्हें छोड़ दे। सूरदासजी कहते हैं कि जिसको वेद ऐसा नहीं, ऐसा नहीं कहकर उनका भेद नहीं जानते, उनकी ही यह लीला है।

चाहत देत अपनपउ जेहीं। तिन्हहिं भगति निज दुर्लभ देहीं।।
तब लगि तहँ आईं बहु गोपी। कहतिं द्रवित स्वामिनि पहिं कोपी।।
सुमन सरिस मृदु कोमल लाला। कस बाँधेसि करि हृदय कराला।।
काह भयो इक बरतन फूटे। हम सब के गृह केतिक टूटे।।
नहिं रिसियाति तुम्हारिहिं नाईं। करति न अस उर अति कठिनाईं।।
तवहुँ यशोमति दीन्हिं न ध्याना। सुत शिक्षा लगि अस हठ ठाना।।

वृषभानुनन्दिनी के वेणीपाश से ही श्रीकृष्ण बँधे थे। यशोदा ने कृष्ण की कमर में रस्सी बाँधकर उसका दूसरा छोर ओखली से बाँध दिया। ओखली पुरानी थी। उसकी पेंदी में छेद हो गया था। उसी में डालकर यशोदा ने रस्सी बाँधी थी।

दहिया कारण श्याम रिस, नाहिन उत्तम बात। शान्त क्रोध करि देखु सुत, भय युत श्यामल गात।।

गोपियों ने कहा, अरी मैया। तुम केवल थोड़े से ही दही खाने के कारण श्याम सुन्दर के ऊपर क्रोध कर रही हो। यह अच्छी बात नहीं है अपने क्रोध को शान्त करके अपने पुत्र की ओर देखो यह बेचारा श्याम सुन्दर हमारे तुम्हारे भय से कितना भयभीत हो रहा है। यशोदा बोली-

मैं नहिं मानूँ वचन तुम्हारे। जावो जावो अपने द्वारे।। लाला बिगरे इक घर खोवे। लाली बिगरे दो घर रोवे।।
अधिक दुलार बिगारन हारा। आज न मानूँ बाँधू बारा। हलधर कहे सुनो मम मैया। क्रोध रहित ह्वै बात मनैया।।
भक्ताधीन सदा हरि रहई। प्रेम पुकार सुने जन कहई।।

कोप से भरी माता ने गोपियों से कहा, मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं मानूँगी। तुम लोगों ने इसे सिर पर चढ़ाकर ढीठ बना दिया है। जाओ जाओ अब तुम सब अपने घर को चली जाओ। यशोदा जी ने कहा, अरी गोपियों, अगर किसी का लड़का बिगड़ता है तो वह एक घर की चारों ओर बदनामी करवाता है, अगर किसी परिवार में लड़की अपने रास्ते से भटक जाती है तो पीहर और ससुराल दोनों परिवार के घरवालों को रोना पड़ता है। इसलिए बच्चों से अधिक दुलार करना उन्हें बिगाड़ने में सहयोगी होता है। आज मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं मानूंगी और अपने इस ढीठ बालक को अवश्य ही ऊखल से बांधूंगी। तुम सबोंने ही इसे इतना उत्पाती बना दिया है। प्रतिदिन उलाहना देते-देते मुझे व्याकुल किये रहती हो और अब आ गयीं सहानुभूति दिखलाने। सब दूर हठ जाओ। मैं इसे आज ऐसे ही छोड़ दूँ तो फिर ये मेरी बात मानेगा कभी। मैं तो आज इसे बाँधूँगी।

गोपिन गईं और घर ज्योंही। भयो निराश कन्हैया त्यों ही।।
करुण स्वरन बलराम पुकास्यो। अग्रज रोहिणि संग सिधार्‌यो।।

एक बच्चेने जाकर बलराम से कहा- कन्हैया को आज मैयाने बाँध दिया है। दाऊ बोले- कब बाँध दिया? बोला- सबेरेसे ही बाँध दिया।

हलधर सा कहि ग्वालि सुनायौ। प्रातहिं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौं।।
यह सुनि कै हलधर तहँ धाए। देखि स्याम ऊखल सौ बाँधे तबहीं दो उ लोचन भरि आए।।

दाऊ अपनी मैया से बोले- छोड़ दे कन्हैया को। तुझे बांधना ही है तो मुझे बांध दे।

स्यामहि छोरि मोहि बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिं पाए।
मेरे प्रान जिवन-धन कान्हा, तिन के भुज मोहि बँधे दिखाए।।

बलराम बोले- मैया, यह तूने क्या अनर्थ कर दिया? तुमने कन्हैया को लकड़ी दिखाकर डाँटा, जरा-से दहीके लिये। भय दिखाया और रस्सीसे बाँध दिया। इस कोमल शिशु को देखकर तुम्हारे मनमें कोई कसक नहीं आयी। तूँ माँ बनी है, धिक्कार है तेरे माँ बननेको। मैं तो घर पर नहीं था; नहीं तो एक बर्तन नहीं छोड़ता, सब फोड़ डालता।

सुनु माई बलराम कह, आदि पुरुष हरि जान। इनकौ बन्धन को करै, भक्तन हित प्रगटान।।

बलराम जी ने कहा, अरी मेरी मैया, कन्हैया आदि पुरुष श्री हरि का रूप हैं। भला इनको कौन बंधन में डाल सकता है। ये तो सर्व शक्तिमान और परम स्वतंत्र हैं अपनी इच्छा से ही भक्तों का कल्याण करने के लिए यहाँ धरती पर प्रकट हुए हैं।

ये हैं अखिल विश्व के नाथा। उत्पत्ति आदि इनके हाथा।। प्रेम डोर सें बँधने वाले। माँ तू रिस ह्वै फन्दा डाले।।
हार गई नहिं बन्धन लागे। बोधन पर उलटे रिस जागे।। सुर पूजा दधि कीन जुठारी। देवन पूजा बाधा डारी।।
आज न छोड़ूँ ढीठ कन्हैया। लोग कहें रिस त्यागो मैया।।

बलराम ने कहा, ये श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्व के नाथ हैं, अखिल ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन और संहार इनके ही हाथ में है। ये प्रेमावतार तो प्रेमियों की डोर से ही बंधन में आ सकते हैं। अरी मैया। तुम तो क्रोध के वशीभूत होकर इनको रस्सी के फंदे में डालना चाहती हो, यह कभी संभव नहीं हो पायेगा। हे तात, यशोदा मैया श्री हरि को बाँधने का प्रयास करते करते हार गई परन्तु सर्वतंत्र स्वतंत्र और पूर्ण परमात्मा मैया के रस्सी की बंधन में नहीं बँधे। बलदाऊ आदि कोई भी यशोदा को समझाने का प्रयास करता तो वे उसी पर क्रोधित हो जातीं। यशोदा जी को समझाने का प्रयास करनेवाले गोप और गोपियों से यशोदा जी कहतीं आज इसने बहुत बड़ा अपराध किया है। जो दही मैंने देवताओं की पूजा के लिए पवित्रता पूर्वक अलग रखा था कन्हैया ने उसे खाकर जूठा कर दिया और देवताओं की पूजा में पूरी तरह बाधा डाल दी।

यशोदा जी ने कहा, आज मैं इस ढीठ कन्हैया को नहीं छोडूंगी इसे इसके द्वारा किये गए अपराध का दण्ड अवश्य दूँगी। लोगों ने बार बार मैया से कहा, हे यशोदाजी, अब इस क्रोध को त्यागकर शान्त हो जाओ।

रास्तेमें गोपियों ने बलराम को सुनाया कि तेरा कन्हैया बँधा हुआ ब्याकुल हो रहा है। वह रोता हुआ दौड़कर कन्हैया के पास गया और यशोदा मैया से झगड़ा करने लगा और कहने लगा- अरी मैय्या, इसके बड़े से बड़े अपराधों को क्षमा कर दो चाहे इसको छोड़कर मुझे बाँध दो। मैया तूने यह कैसी कठोरता का स्वाँग बना दिया। यह तेरे लिये अशोभनीय है। यशोदा सुनकर भी कुछ नहीं बोली और मौन खड़ी रही।

जो स्वतंत्र सब तंत्र सों, जिन बन्धन कहुँ नाहिं। सब को शासक, स्वामि जो, जिन शासक न दिखाहिं।।
ऐसो परबश भक्त हौं, मानहु यहै दिखायँ। षडैश्वर्य सम्पन्न जे, ऊखल बँधे सुहायँ।।

मानो वे यह दिखाने के लिये कि मैं कैसा भक्तों के बश में हूँ, छै: ऐश्वर्यों से युक्त होते हुए भी वे ऊखल में बँधे शोभा दे रहे हैं।

हलधर ने कहा, अरी मेरी मैया। मेरी बात सुनो, क्रोध रहित शान्त होकर मेरी बात मान लो। परम भक्तों ने कहा है श्री हरि सदा भक्तों के अधीन रहते हैं और अपने प्रेमी भक्तों की प्रेम भरी पुकार को प्रेम से सुनते हैं।

बलराम बोले- **याको छोड़ बाँध मोको, राम की दुहाई तोको, सहा नहीं जात मोसे, दु:ख लघुभ्रात का।।**
तन धन धाम जावो, कृष्ण मत दु:ख पावो, याके हेत त्याग करूँ, मात गुरु तात का।।
मैंने भली भाँति जोई, याकी तू न मात कोई, होत न कठोर ऐसा, हीय सगी मात का।।
ऐसी जग मात कौन, ऐसे सुत बाँधे जौन, क्या तू आज भई बौरी, लगा रोग वात का।।

फिर श्री बलरामजी बोले- हे मैया, इस प्यारे श्रीकृष्ण को छोड़ दे और इनकी जगह मेरे को बाँध दे। तेरे को श्रीराम जी की सौगंध है, क्योंकि मेरे से छोटे भाई का दु:ख सहा नहीं जाता। मेरा मन, शरीर, धन, घर भले ही चला जाय, परन्तु श्रीकृष्ण जी दु:ख नहीं पावें। बहुत क्या कहूँ, इनके निमित्त माता-पिता आदिक बड़ों को भी मैं त्याग दूँगा। मैंने भली प्रकार विचार से देखा है कि तू इसकी सगी माता नहीं है, क्योंकि सगी माता का ऐसा कठोर हृदय नहीं होता। भला ऐसी संसार में कौन सी माता है, जो ऐसे मनोहर पुत्र को बाँधे? हे मैया, क्या आज तू बावरी हो गई है, अथवा तेरे को वात का रोग लगा है?

खड़ा रहो अब बाँधूँ तोको। सदा खिझावो दोनों मोको। जो तुम सुत इतना दुख पावो। क्यों नहिं भ्राता को समुझावो।।

यशोदा बोली- रे बलराम, खड़े रहो, अभी तेरे को भी बाँधती हूँ, क्योंकि नित्य ही तुम दोनों भैया मेरे को तंग करते हो। हे पुत्र, यदि तुम इनको बँधा हुआ देखकर के दु:ख पाते हो, तो तुम अपने भैया कन्हैया को समझाते क्यों नहीं।

उसी समय उपनन्द पत्नी यशोदा की जेठानी आ गयी। नीलमणिकी ताई क्या उसे बाँधने देंगी। यशोदा एकतरफ ले जाकर बोली- जीजी, इसने बहुत ऊधम किया है। मैंने थोड़ा धमका दिया है। दौड़कर पकड़ा हैं। अब बहुत डर गया है। इस वक्त आप खोल देंगी तो पता नहीं कहाँ भाग जायेगा। मैं कहाँ ढूँढूंगी इसे? आप भी कहाँ ढूँढेंगी। क्या ठिकाना कि खुलनेपर आपके साथ आयगा ही नहीं। सबेरेसे भूखा है। तनिक भी माखन इसके मुखमें नहीं गया। जब तक इसके कलेऊकी व्यवस्था कर लूँ तब तक इसे बँधा रहने दो बाद में खोल दूँगी। खोलनेपर खाने-पीनेमें लग जायेगा तो भय, रोष को भूल जायगा।

भगवान के बाँधे जाने में भगवान् के अनुग्रह की ही प्रधानता है। अपने अनुग्रहवश ही वे भक्तों के हाथों बँध जाते हैं किन्तु भक्त इतने प्रेमी होते हैं कि उनके प्रेम की अधिकता के सामने भगवान को झुकना ही पड़ता है, बँधना ही पड़ता है।

यहाँ भगवान की ऐश्वर्य शक्ति अपने स्वामी को बाँधने नहीं देना चाहती थी अत: वह रस्सी में प्रविष्ट होकर अपनी करामात दिखला रही थी, वात्सल्य-शक्ति लाला को बाँधने का प्रयास कर रही थी। ऐश्वर्य-शक्ति और वात्सल्य-शक्ति का

यह मधुर कलह है। उस समय प्रभु ने ऐश्वर्य-शक्ति से कहा- मैं यहाँ गोकुल में ईश्वर नहीं, यशोदा मैया का बालक मात्र हूँ। मैं द्वारिका में तेरा पति होकर आऊँगा अत: इस समय तू यहाँ से चली जा। माताको बाँधने की इच्छा है तो उसे बाँध लेने दो। गोकुल में प्रेम का प्राधान्य है और द्वारिका में ऐश्वर्य का।

प्रेम रस की मुक्ति को देनेवाले श्रीकृष्ण सब गोपियों को पिला रहे हैं। जिन गोबर थापनेवाले गोपियों का वेश है। आज मानो वे यह प्रगट होकर दिखा रहे हैं कि प्रेम का मार्ग कैसा रस भरा है।

गोकुल-लीला में वात्सल्य भाव और पौगण्ड लीला में सख्यभाव प्रधान है। किन्तु गोपी-लीला में माधुर्य-भाव मुख्य है। भगवान् की आज्ञा होने पर ऐश्वर्य-शक्ति रस्सी में से चली गई। फलत: कृपापूर्वक कन्हैया मैया के बन्धन में आ गये।

रज्जु दो अंगुल ही क्यों छोटी होती थी? यह दो अंगुल की दूरी अहन्ता और ममता की दूरी है। अहन्ता और ममता- ये दो भाव जहाँ होते हैं, वहाँ भगवान् बाँधे नहीं जा सकते, पकड़े नहीं जा सकते। मैया को अहंकार है कि मैं इसे बाँध ही लूँगी और यह मेरा बेटा है अत: इसे बाँधने का मुझे अधिकार है अत: रस्सी गाँठ लगाने की बेला में दो अंगुल छोटी पड़ जाती थी।

डोरी लपेटि चहति कटि बाँधन। पै लघु परति, सधत नहिं साधन।।
दूसरि जोरि, जतन करि भारी। अंगुर द्वै लघु रही निहारी।।

जब तक भक्त श्रम नहीं करता, भगवान के लिये पसीना नहीं बहाता तब तक भगवान की भक्त पर अनुकम्पा भी नहीं होती। बन्धन में आने का एकमात्र कारण है- भगवान की अनुकम्पा। किन्तु भगवान की अनुकम्पा का कारण है- भक्त का परिश्रम। मैया परिश्रम कर-कर के श्रान्त हो गई। तब अनुकम्पा करके कन्हैया स्वयं बन्धन में आ गये। यही है मुख्यरूप से रस्सी के दो अंगुल छोटी होने का कारण।

यशोदा ने पास-पड़ोस की और भी रेशमी रस्सियाँ उसमें मिलाकर जोड़ी किन्तु फिर भी रस्सी दो अंगुल छोटी रही।

यशोदा लाला को बाँध न सकी। यह देखकर गोपियों को महान् आश्चर्य हुआ। वे यशोदा की असफलता को देखकर मुस्कराने लगीं। इस पर यशोदा को भी स्वयं आश्चर्य हुआ। वे भी मुस्कुराने लगीं। एक अंगुल यशोदाका अहं और एक अंगुल श्रीकृष्णकी दूरी, दोनोंसे दो अंगुलकी कमी पड़ती गयी। अब यशोदा मैया चक्करमें पड़ गयी। इतनेमें आ गयीं गोपियाँ और बोली कि अरी मैया, तू इस बात के लिए खुश क्यों नहीं होती कि तुझसे तेरा बेटा बाँधा नहीं जा सका। देखती नहीं कि- इसके ललाटमें विधाताने बन्धन नहीं लिखा है। कितना भाग्यशाली है तेरा बेटा। गुस्सा छोड़ और खुश हो जा।

कैसो तेरो कोप री, कैसो तेरो ज्ञान। इन किशोर कोमल शिशुहिं, बाँधन करति बिधान।।
यशुमति कहति, सीख मति दीजो। डोरी लाय काज मम कीजो।।
सहि न सकौ तौ नैनन लावो। या अपने अपने घर जावो।।

यशोदा कहती हैं मुझे सिखाओ मत, डोरी लाकर हमारे काम में मदद करो। अगर आपको सहन नहीं होता तो आँख बन्द करके अपने-अपने घर को जाओ।

मैया बोली कि गोपियों, आज अगर मैं बाँधनेमें विफल हो गयी तो कलसे वह हमारी बात नहीं मानेगा।

री यशमति तू कस महतारी। सुत सनेह नहिं हृदय मझारी।।
अति कठोर तव उर दरसावे। सुत को बाँधत दया न आवे।।
ऐसा सुत नहिं लायक थारे। दुग्ध हेत तू इसको मारे।।
हमरे गृह नित दूध बिगाड़त। हम तो इसको नैक न ताड़त।।

गोपी बोली- अरी यशोदा, तू कैसी माता है? लगता है तुम्हारे हृदय में पुत्र का प्रेम नहीं है? तेरा हृदय भी बड़ा कठोर देखने में आता है, क्योंकि पुत्र को बाँधते समय तुम्हारे को दया नहीं आई। हे यशोदा, ऐसा सुन्दर पुत्र तुम्हारे योग्य नहीं है, जो तू दूध के निमित्त इसको मारती है। देख, यह तेरा लाला हमारे घर में नित आकर दूध को बिगाड़ता है, तो भी हम इसको थोड़ा सा भी नहीं डाटती हैं। क्या दूध इससे उत्तम है? नहीं, यही सबसे श्रेष्ठ हैं।

यशोदा गोपियों से रस्सी लाकर बँधवाने में मदद माँगती है, पर गोपियों ने कहा अरी मैय्या तू कितनी निष्ठुर है तू कन्हैया का मुख नहीं देख रही हैं।

भगवान सदा ही भक्तोंकी हठ रखते हैं। अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर भक्त का मान रखते हैं। भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा रखने के लिए स्वयं अपनी शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा तोड़कर रथचक्र लेकर उनपर प्रहार करने दौड़े। अत: मां की हठ पूरी करने के लिए बन्धन में आ गये।

त्रेता द्वार के भगत, जौन होयँ हरि तोर। तिनकी शपथ देवावती, लेव बँधा यह डोर।।
बांध न पाई जब हरि माई। कलि के भक्तन शपथ खवाई।।
इतना सुनते बन्धन आये। जग व्यापक ऊखल बँधवाये।।
मात गई हरि बोले दाऊ। आज तुम्हें इक खेल दिखाऊं।।
जननी जनि तुम टेर्‌यो भाई। यमलार्जुन उद्धारूँ जाई।।
धनद पुत्र नारद ऋषि शापा। अर्जुन तरु बनि आँगन थापा।।

मैया यशोदा ने कहा, हे हरि, त्रेता युग में और द्वापर युग में जितने तुम्हारे भक्त हुए हैं उन सबकी तुम्हें शपथ देती हूँ कि तुम इस डोरी में अपने आप को बँधा लो। यशोदा मैया त्रेता, द्वापर युग के भक्तों की शपथ दिलाने पर भी मनमोहन श्री हरि को नहीं बाँध पाई तब मैया ने कन्हैया को कलि के भक्तों की शपथ दिलाई। कलि के भक्तों की शपथ सुनते ही सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रहनेवाले परम प्रभु बंधन में आ गए और अपने आपको ऊखल से बँधवा लिया।

करहुँ परिक्षा अबहिं मैं, परखूं तेरी बात। साँच बात तो देर बिन, मोहन लेत बँधात।।

यशोदा बोली, बलराम। मैं तेरी बात को अभी परखती हूँ। तेरे कहे हुए वचन कितने सत्य हैं अभी मैं परीक्षा करके निर्णय लेती हूँ। **सतयुग के भक्तन शपथ, यशुमति कहैं सुनाय। जो हरि तुमरे प्रिय अहैं, तौ तुम लेव बँधाय।।**
इम कहि जब बाँधन लगी, लगी न रसरी गाँठ। अति रिसि आई पुनि कहै, कैसी भक्तन साँठ।।

यशोदा जी ने कन्हैया को सुनाते हुए कहा, मेरे लाला। मैं तुम्हें तुम्हारे सत्‌युग के भक्तों की शपथ देती हूँ। हे हरि, यदि वे भक्त तुम्हें प्रिय हैं तो अपने आप को बँधा लो। इतना कहकर माँ यशोदा कन्हैया को बाँधने लगीं परन्तु रस्सी दो अंगुल छोटी हो जाने के कारण गाँठ नहीं लग पाई जिससे अधिक क्रोधित होकर कहने लगीं, इस कन्हैया की सत्‌युग के भक्तों से कैसी साँठगाँठ है कि शपथ दिलाने पर भी बंधन में नहीं आया।

गुस्सा जानकर गोपियों ने रस्सी दी और कहा मैया तुम बहुत अच्छा कर रही हो किन्तु यशोदा जब उनकी रस्सी जोड़कर बाँधने लगी तो वह भी छोटी पड़ गयी। बड़े अचम्भे में पड़ कर उसने फिर देखा रस्सी दो अंगुल छोटी थी, गोपियाँ खिल खिला कर हँस पड़ी और बोलीं अरी भोली मैय्या मोहन मोहिनी विद्या जानता है। इस विद्या के बल पर इनसे बड़े बड़े मायावी तक हार जाते हैं। मोहिनी के बल पर जहाँ चाहता है निर्भय चला जाता है कोई इसे बाँध नहीं पाता है।

नन्द भवन की सभी रस्सियाँ जोड़ ली गयीं फिर भी मैया असफल रही, यह देखकर गोपियाँ हँसने लगी। बालक का

स्वरूप भी घटता बढ़ता नहीं है तब फिर रस्सी कम पड़ने से आश्चर्य क्यों न हो। यह अद्भुत लीला कैसे घटीं इसको गोपियों की बुद्धि समझ नहीं पाई।

हार मानि अतिशय श्रमित, बैठि गई अकुलाय। करुण अकारण की कृपा, प्रगट भई तब आय।।

यशोदा हार मानकर, बहुत थककर तथा व्याकुल होकर बैठ गई तब बिना कारण के कृपा करनेवाले भगवान की कृपा प्रगट हो गई। **पुनि अब ज्यों बाँधन चली, अन्तिम करन प्रयास। बँध्यो श्याम लघु रज्जु महँ, भयो न कछु आयास।।**

फिर जब वह अन्तिम प्रयत्न करने चली तो श्रीकृष्ण छोटी सी रस्सी में ही बँध गये और मैय्या को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा। **जो निर्गुन, गुन बाँधि सगुन, भयो प्रेमवश आय। दूर भई दूरी सबै, प्रेम बिवश यदुराय।।**

ब्रह्म जो निर्गुण है वह गुण अर्थात रस्सी में बँधकर सगुण हो गया। यह प्रेम का प्रभाव है और उसी से सारी दूरी ब्रह्म और जीव की दूर हो गयी। जो तुम श्रीकृष्ण को बाँधना चाहते हो तो भजन का प्रयत्न और कृपा की प्राप्ति इन दोनों से श्रीकृष्ण बाँधे जा सकते हैं। इसके लिये न कोई दूसरा उपाय वेदोंने बताया है और न संतोंने। जब तक यशोदा ने प्रयत्न किया तब तक कृपा का प्राकट्य नहीं हुआ। तब तक यशोदा लाला को नहीं बाँध पायेगी और सब प्रकार से असमर्थ रहीं। जब प्रयत्न करते-करते थक गई और व्याकुल हो गयी तो भगवान की कृपा प्रकट हो गयी। इस तरह श्रीकृष्ण बँधन में बँध गये। जब साधना का अहंकार मिट जाता है तभी भगवान की कृपा प्रकट होती है। साधना करते-करते थक जाने पर अहंकार नष्ट हो जाता है। तब भक्त असमर्थ दिखाई पड़ता है और जो अत्यन्त असमर्थ होता है उसीको भगवान की कृपा मिलती हैं। कृपा मिलनेपर ही भक्त भगवान के बन्धन में आ सकते है और उसको अपना सर्वस्व दे देते हैं।

मातु डोरि गहि ऊखल लाई। वामें बाँध्यों जाय कन्हाई।।
सखन आइ निरख्यो नँदलाला। बन्धन निरखि भये बेहाला।।
मातु कह्यो, निज निज गृह जाओ। याको बन्धन नाहिं छुड़ाओ।।
यशुदा निज गृह कारज लागी। हरि ऐश्वर्य गयो उन भागी।।

मैय्या ने ग्वालों से कहा अपने अपने घर जाओ इसके बन्धन को मत छुड़ाना। यशोदा अपने घर के काम में लग गई और श्रीकृष्ण का सारा ऐश्वर्य भग गया। कन्हैया को ऊखल से बांधकर माता घर में बिखरे हुए दही को समेटने के लिए चली गईं।

कन्हैया कैसा दीन बना खड़ा है इसे देखकर गोपिकाओं के हृदय में दया का समुद्र उमड़ने लगा। वे बार बार कहने लगीं अरी यशोदा, लाला हिचकियाँ भर कर रो रहा है और तुम्हारे मुख की ओर देख रहा है। अरी मैय्या नटखट है तो क्या हुआ तेरी ही कोख से पैदा हुआ है क्या हुआ जो उसने मक्खन खा लिया तो यह तो तुम्हारे कुल का दीपक है।

एक वृद्धागोपी बोली- जिसकी मूर्ति जल और थल में सब जगह छबि छिटकाती है, वेद जिसको खोज भी नहीं पात, वही मूर्ति तू गोद में लेकर खिलाती है और चुटकी बजा बजा कर उसे नचाती है ऐसा तेरा सौभाग्य है। जब तेरे लाला नहीं था तो किसी भी बालक को रोता देखकर तू स्वयं रो पड़ती थी और उसे स्वयं हृदय से लगा लेती थी। अब तुझे क्या हो गया, तूने अपना हृदय कैसा बना लिया अरे तू अपने लाला के रूप में त्रिभुवन के स्वामी को नहीं पहचान पाती। इस प्रकार से वह परम तत्व को प्रगट करती है और बार-बार सौगन्ध दिलाती है लेकिन मैय्या का हृदय पत्थर हो गया है इसलिये वह किसी की बात नहीं मानती। यशोदा गुस्सा होकर गोपियों से कहती है कि तुम अपने घर जाओ, तुम्हीं ने इसको इतना ढीठ बना दिया है और तुम्हीं अब इसको छुड़ाने आई हो।

तब श्री हरि दाऊ भैया से बोले, हे दाऊ भैया। आज मैं तुम्हें एक सुन्दर खेल दिखाता हूँ। कन्हैया ने कहा, अरे भैया। तुम

मैया को मत बुलाना मैं यमलार्जुन का उद्धार करने जा रहा हूँ। कान्हा बोले, कुबेर के दोनों पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव को ऋषि नारद का श्राप लगा हुआ है इसलिए वे दोनों अर्जुन के वृक्ष बनकर अपने यहाँ आँगन में लगे हुए हैं।

जननी के सुन वचन तब, राम सहित यदुवीर। ऊखल खैंचत ले चले, गये नदी के तीर।।

इस प्रकार माता यशोदा के वचन सुनकर, बलराम के सहित यादवों में वीर श्रीकृष्ण ऊखल को खींचते हुए ले चले और यमुनाजी के किनारे पहुँच गये।

भगवान का इस तरह बन्धन में आना दूषण है किन्तु प्रेमवश होकर बँध जाना परम चमत्कारी होने के कारण भूषण बन गया। भगवान आत्माराम हैं फिर भी भूख लगने पर रोना, पूर्ण काम होने पर भी माखन के लिए अतप्त रहना, शुद्ध सत्वस्वरूप होने पर भी क्रोध करना, स्वराज्य लक्ष्मी से सम्पन्न होने पर भी चोरी करना, काल भी जिनके भय से भयभीत रहता है उनका भयातुर होना, मन की गति से भी तीव्र भागनेवाले का यशोदा माँ के हाथों में पकड़ा जाना, यह सब उनकी भक्तवत्सलता ही है, स्वाभाविक भक्तवश्यता है। शास्त्र कहता है- कृष्ण स्वयं कहते हैं मैं हूँ भक्तों का दास, भक्त मेरे मुकुट मणि। इन चमत्कारी तथ्यों पर वे ही विश्वास नहीं करते जिनको भगवान पर विश्वास नहीं, जो भगवान को और उसकी सर्वमयता को नहीं जानते। लेकिन भक्त हृदय इन लीलाओं का श्रवण कर द्रवित हो जाता है, गद्‌गद् हो जाता है, प्रेम सरोवर में गोते लगाने लगता है।

आप बँधावत प्रेमवश भक्तन छोरत फंद। वेद पुकारत रात दिन भक्तवछल नँदनंद।।

हे परीक्षित्, नन्द महरि उन सर्वात्मन प्रभु को ऊखल से बाँध कर अपने घर को चली गईं।

ऊखल में सुत बांधके, आप लगी गृह काम। देख दुखित भा राम पुन, गोकुलपुर की वाम।।

उस समय पुत्र श्रीकृष्ण को ऊखल में बाँधकर आप यशोदा घर के काम में लग गईं। फिर गोकुल की स्त्रियाँ और बलराम प्राणों से प्रिय कृष्ण को ऊखल के साथ बँधा हुआ देख करके दु:खी हुए।

देव-वृन्द लखि सुधि बुधि भूल्यो। प्रेम निरखि रस झूलन झूल्यो।।
पै यशुमति अस मति मन लाई। बाँध्यो भाजि न जाय कन्हाई।।
जाय माय गृह कारज लागी। चिन्ता मनु लालन की त्यागी।।
वल, कठोरता-लखि अकुलाये। जननि उपेक्षा नेक न भायो।।

इस तरह भगवान ने अपनी भक्त-वत्सलता दिखलाई है जो प्रसाद पुत्र ब्रह्मा को, पौत्र अथवा अपने आत्मा शिव को एवं जाया लक्ष्मी को भी प्राप्त न हो सका, वह प्रसाद यशोदा को प्राप्त हुआ इससे बढ़कर यशोदा का भाग्य और क्या होगा? इसलिए महापुरुषों ने कहा है कि संसार में यशोदा से बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं जिसके ऊखल में बँधे हुए मुक्तिप्रद भगवान स्वयं अपनी मुक्ति चाहते हैं।

दाम उदरमहँ कसी उलूखलमहँ सो बाँधी। उलट्यो गाड़ी बनी बैल बनि प्रभुने साधी।।
बड़ो अटपटो पंथ प्रेमको नहिँ सब जानें। जिनकूँ जोगी जती जगन्मय जगपति मानें।।
तिनिकूँ मैया पकरि बाँह मारें धमकावें। पिट पिठाइकें श्याम गोद ताहीकी आवें।।
जिनकी लीला ललित सुनि, सब जग आनन्दमहँ भर्‌यो। जगदीश्वर जिनि सुत बने, कौन सुकृत यशुमति कर्‌यो।।

श्रीकृष्ण को भला संसार में कौन बाँध सकता है। बाँधने में तो वही समर्थ हो सकता है, जो बँधनेवाले से रूप में, आकर्षण में, गुण में, ऐश्वर्य में, सरलता में उससे अधिक हो। श्रीकृष्ण से बढ़कर सुन्दर कौन हो सकता है। उनके समान आकर्षण संसार की किसी भी वस्तु में सम्भव नहीं। सद्‌गुणों की तो वह खानि ही हैं। समस्त सद्‌गुण उन्हीं से उत्पन्न हुए

हैं, वे गुणों के नियामक हैं। ऐश्वर्य उनके समान किसका हो सकता है, उन्हें किसी वस्तु का अभाव भी नहीं, कोई उनसे बड़ा भी नहीं। जहाँ उस वस्तु को देखते हैं, वहीं रीझ जाते हैं, वहीं बँध जाते हैं। वह वस्तु है प्रेम वे प्रेम के अधीन होकर भक्तों के वश में हो जाते हैं। इस प्रकार माता के द्वारा स्वयं ही बँधकर उन समस्त बन्धनों से मुक्त करनेवाले सर्वेश्वर ने यह दिखला दिया कि मैं भक्तों के वश में हूँ। भक्त मुझे जैसा नाच नचावेंगे, वैसी ही नाच मैं नाचूँगा। जहाँ रखेंगे वहीं रहूँगा। वे जो कहेंगे वहीं करूँगा। उनके बाँधने पर बँध जाऊँगा अत: अपनी माता पर कृपा करके वे स्वयं ही बन्धन में बँध गये।

कृष्ण कृपा जिनपै भई, तिनके कारज सध गये। श्याम नेह वश आपुही, प्रेमपाशमहँ बँध गये।।
गोपी कीन्हीं विदा करें गृह कारज मैया। ग्वाल बाल मिल कहें खेल कछु होवै भैया।।
हरि अधरन आई हँसी, बल उन लखि मुसकान। को बाँधै छोरै इन्हैं, इन माया, येइ जान।।

श्रीकृष्ण के ओठों पर हँसी आ गयी जिसे देखकर बलदाऊ मुस्कराने लगे और सोचने लगे कि इनको कौन बाँधे और कौन छोड़े इनकी माया यही जानें। यही संसार की उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हैं। शेष नाग अपने हजार मुख से इनके गुणों का वर्णन करते रहते हैं। यह असुरों का संहार करने और भक्तों का कल्याण करने आए हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, जब माता अपने गृह कार्यों में व्यस्त हो गयी तो प्रभु श्रीकृष्ण चन्द्र ने सम्मुख अजुन के दो वृक्ष देखे। ये दोनों पूर्वजन्म में यक्षों के पति कुबेरजी के पुत्र थे। जो श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध स्थापित करके भक्ति करते हैं, वह सुख ब्रह्मादि देवों को, योगियों को तथा आत्मस्वरूप तत्वज्ञानियों को भी दुर्लभ है।

कृष्ण अपनी मैया के हाथ कैसा बिका हुआ है। सर्व समर्थ होने पर भी असमर्थ सा दिखाई पड़ता है, यह सोच-विचार कर बलरामजी चले गये।

स्वयं बँध कर भी बन्धन में पड़े हुए यक्षों की मुक्ति की चिंता करना, सत्पुरुष के सर्वथा योग्य है। ये अपने भक्त कुबेर के पुत्र हैं और देवर्षि नारद के द्वारा दृष्टिपूत किये जा चुके हैं, इसलिए भगवान ने उनकी ओर देखा। देवर्षि नारद के शाप देने के हेतु थे- एक तो अनुग्रह-उनके मद का नाश करना और दूसरा हेतु- श्रीकृष्ण की प्राप्ति। ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिकालदर्शी देवर्षि नारद ने अपनी ज्ञान-दृष्टि से यह जान लिया कि इन पर भगवान का अनुग्रह होनेवाला है। इसी से उन्हें भगवान का भावी कृपा पात्र समझकर ही उनके साथ छेड़-छाड़ की। भगवान श्रीकृष्ण अपनी कृपा दृष्टि से उन्हें मुक्त कर सकते थे। परन्तु वृक्षों के पास जाने का कारण यह था कि देवर्षि नारद ने कहा था कि तुम्हें वासुदेव का सानिध्य प्राप्त होगा।

नारद-शाप कृपा-उन पाई। द्वापर ब्रज-तरु बने सुहाई।।
ब्रज-रज पाय मलिनता खोई। ब्रज बसि को न कृतारथ होई।।
स्मरणमात्रसे जिनके होता सूक्ष्म कामनाका भी अंत। पूर्णकाम वे स्तन्य-काम हो दौड़ पड़े ले क्षुधा अनन्त।।
नित्यतृप्त जो रहते जिनके ध्याता भी हो जाते तृप्त। वे हरि मातृस्तन्य-हित समझ रहे अपनेको नित्य अतृप्त।।
शुद्ध सत्त्व जो परम पुरुष हैं, जिनमें नहीं त्रिगुण-संश्लेष। क्रोध वरणकर होठ काटते वे, दिखता न क्षमाका लेश।।
जिनकी शुभ स्मृति ही हर लेती जनके क्रोध आदि सब दोष।
प्रकट कर रहे वे, हो काम-प्रतिहत दधि-भाजनपर रोष।।
पूर्णैश्वर्ययुक्त जो नित स्वाराज्य-श्रीके परमाधार। वही लोभ वश चोरी करते, घुसकर माखनके भंडार।।
जिनके भयसे यम-कुबेर-सब करते नियमित सारे काम। छड़ी क्षुद्र वबे देख जननि-कर बन जाते भय रूप ललाम।।
चौर्यविशंकित-नेत्र देखते बारंबार द्वारकी ओर। आ न जाय मैया, मारेगी मुझे समझ अपराधी-चोर।।

भय-विह्वल हो भाग चले हरि, सहज तीव्र गतिमें कर वृद्धि। पकड़ लिया जाकर मैयाने, असफल हुई ईश्वरी-सिद्धि॥
पकड़ हाथ, मैयाने छड़ी दिखा, डाँटा अति, कहा- अशान्त। वानरसखा, अदान्तात्मन् तू हुआ धृष्ट अति ही दुर्द्धान्त॥
आज मिटा दूँगी मैं तेरा सब चतुराईका अभिमान। रोने लगे आँख मल-मलकर एक हाथसे श्रीभगवान॥
पर जिनकी शरणागतिसे ही कट जाते तुरंत बन्धन। बरबस वही बँधे ऊखल कमनीय कर रहे मधु-क्रन्दन॥
शुद्ध सच्चिदानन्द, सनातन, नित्यमुक्त जो परम स्वतंत्र। कर बन्धन स्वीकार उदरमें, हुए यशोदाके परतन्त्र॥
जिनके अतुलैश्वर्य-सिन्धुके बिन्दु-बिन्दुमें विश्व अपार। डूबे रहते नित्य, लाँघकर, उसे, कौन जा सकता पार॥
नहीं कभी हो सकता जिन असीमकी सीमाका निर्देश। नित्य अनन्त पूर्ण चिद्घनका नहीं प्राप्त हो सकता शेष॥
काम-क्रोध-लोभ-भय-क्रन्दन-बन्धनको वे कर स्वीकार। दिव्य बना देते इनको, कर निज स्वरूपमें अंगीकार॥
नहीं कल्पना, नहीं भावना, माया, नाट्य, न दम्भ अनित्य। है यह रसमयका शुचि पावन प्रेम-रस-सुधास्वादन सत्य॥
शुद्ध प्रेम-परवश हरिमें नित रहते साथ विरोधी धर्म। इसीलिये होते उनके सब विस्मयभरे विलक्षण कर्म॥
ज्ञानी-मुक्त, सिद्ध-योगी कोई भी थाह नहीं पाते। श्याम-रूप-संदोह-महोदधिमें वे सहज डूब जाते॥
मधुर दिव्य इस भगवद्रसका वही परम रस ले पाते। केवल प्रेमपूर्ण सर्वार्पण कर जो उनके हो जाते॥
इसीलिये सर्वार्पित-जीवन महाभाग वे गोपी-ग्वाल। दिव्य रस-सुधास्वादन करते रहते हैं सब विधि सब काल॥
नहीं छोड़कर जाते ब्रजको कभी रसिकवर वे नँदलाल। निज-जन सबको सुख देते वे, करते रहते नित्य निहाल॥
उन प्रेमीजनके पवित्र पद-रज-कणको है अमित प्रणाम। जिनके प्रेमाधीन हुए हरि करते लीला मधुर ललाम॥

शुकदेव बोले- परीक्षित, भगवान श्रीकृष्ण स्वतन्त्र हैं, ब्रह्मा, इन्द्र आदि के साथ यह सारा जगत् उनके वश में है फिर भी मैया के हाथों बँध कर उन्होंने संसार को यह दिखला दिया कि- मैं अपने प्रेमी भक्तों के वश में हूँ। ग्वालिन यशोदा ने मुक्तिदाता मुकुन्द से जो अनिर्वचनीय कृपा-प्रसाद प्राप्त किया वह पुत्र होने पर भी ब्रह्मा को न मिल सका, शंकर को आत्मा होनेपर भी न प्राप्त हो सका और वक्ष:स्थल पर विराजमान लक्ष्मीजी अर्धांगिनी होने पर भी न पा सकीं। वही इस संसार में यशोदा से बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। जिसके द्वारा उलूखल में बाँध दिये जाने पर, सारे संसार के मुक्तिदाता भगवान स्वयं अपनी मुक्ति चाहते हैं।

आत्माराम की भूख-प्यास, पूर्णकाम की अतृप्ति तृष्णा, शुद्धसत्त्व का कोप, स्वराज्यलक्ष्मी के पति का चौर्यकर्म, महाकाल के काल का भय-पलायन, मन के अग्रगामी का पकड़ा जाना, आनन्दघन का दु:ख-रोदन और सर्वव्यापी का बन्धन- यह सब स्वाभाविक भक्ति-पराधीनता का प्रदर्शन है।

शुकदेव बोले- राजन्, यह गोपिकानन्दन भगवान जितनी सुगमता से अपने अनन्य प्रेमी भक्तों को प्राप्त हो जाते हैं, उतनी आसानी से देहाभिमानी, कर्मकाण्डी, तपस्वियों एवं आत्मभूत ज्ञानियों को भी प्राप्य नहीं हैं।

पुनि सोचति, इन बन्धन लाऊँ। ह्वै निश्चिन्त काज-गृह जाऊँ॥
परम कुपित लालन कहुँ जावे। तौ मम प्राण परम अकुलावे॥

फिर सोचने लगी कि इसको बाँध दूँ फिर निश्चिन्त होकर घर का काम करूँ। कहीं गुस्सा होकर लाला भग जाय तो वह कितनी ब्याकुल हो जायगी। ऐसा विचार कर इनको बाँधने का निश्चय किया और इसी में अपना और लाला का हित माना। मैय्या नित्य मुक्त रहनेवाले कन्हैया के स्वरूप को नहीं जानती वह उनके ऐश्वर्य को नहीं पहचानती। यह समाचार सुनकर कि कन्हैया बाँधा जा रहा है उसका पक्ष लेकर गोपिकाएं चारों तरफ घेर कर खड़ी हो गईं और कहने लगीं कि लाला की ओर देखो,

ऐसी कठोर न बनो, ऐसी गुस्सान करो। मैया ने कन्हैया को ओखली में बाँध दिया फिर वे घर के काम-काज में लग गईं।

अँसुवन झर झर बरस कस, बिवश श्याम निरुपाय। नन्द नँदन बन्दन जगत, उन बाँधन चह माय।।

मैयाने सब गोपियों का निरादर कर दिया और प्राण जीवन कन्हैया को बाँधने का मन किया। जिसके न कोई अन्दर है, न बाहर है, जिसका कोई आदि नहीं, अन्त नहीं जो सृष्टि और प्रलय करने में समर्थ है, जो इन्द्रियोंकी पहुँच के बाहर बताया जाता है, प्रेम के बस में होकर वह पुत्र बनकर आया है, उसी कृष्णको यशोदा अपना पुत्र मानकर ऊखल में बाँधना चाहती हैं।

ओर छोर जाको नहीं, सो किमि बाँध्यो जाय। पै जननी भोरी बनी, उन बाँधन चित लाय।।

किन्तु जिसका ओर छोर नहीं है वह कैसे बाँधा जा सकता है लेकिन मतैया भोली भाली उनको बाँधना ही चाहती है।

कहाँ भयो जो माखन खायो। महरि कोख को तेरोई जायो।।

अति अजान पुनि कितो बिगारो। गोकुल गोरस भरो भँडारो।।

इधर भगवान् की दृष्टि द्वार के पास खड़े दो अर्जुन के वृक्षों पर पड़ी। ये पूर्व जन्म में कुबेर के पुत्र थे। इनका नाम था- नलकूबर और मणिग्रीव। ये नारदमुनि के शाप के कारण वृक्ष-योनि को प्राप्त हुए थे।

द्वै यलमार्जुन तरु भल सोहे। नलकूबर, मणिग्रीव विमोहे।।

जो कुबेर युग-सुवन कहाये। धन मदान्धता फल भल पाये।।

नारद शाप कृपा-उन पाई। द्वपार ब्रज-तरु बने सुहाई।।

ब्रज-रज पाय मलिनता खोई। ब्रज बसि को न कृतारथ होई।।

नारद का श्राप और उनकी कृपा पाकर द्वापर में वे दोनों ब्रज में आकर वृक्ष बने और ब्रज की रज के प्रभाव से उनकी मलिनता मिट गयी ब्रज में वास पाकर सबका कल्याण होता है।

दोनों अर्जुन के वृक्षों के तनों के बीच की दूरी लगभग एक हाथ रही होगी। नन्दनन्दन ऊखल को खींचते हुए दोनों वृक्षों के बीच से स्वयं तो पार हो गये परन्तु ऊखल दोनों तनों में अटक गया। कन्हैया ने अटके हुए ऊखल को अर्जुन वृक्षों के तनों में से निकालने के लिए जोर लगाया तो दोनों ही पेड़ अर्र अर्र धम् की आवाज करते हुए उखड़कर गिर गये। उनमें से देवता प्रकट हुए जो हाथ जोड़कर कन्हैया के समीप आये। लोकपाल कुबेर के इन पुत्रों के नाम नलकूबर और मणिग्रीव था। देवताओं के भण्डारी कुबेर के पुत्र होने के कारण इनको अपनी सम्पत्ति का विशेष अहंकार हो गया था जिसके कारण इन्हें नारद ऋषि का श्राप मिला जो आज श्री हरि की परम कृपा से ये अपने किये गये पाप से छूट गये। कुबेर के नलकूबर नाम के पुत्र का नाम उसके मेरुदण्ड में कूबर होने के कारण पड़ा और दूसरा पुत्र पैदा हुआ तो उसके गले में मणि थी इसलिए उसका नाम मणिग्रीव हुआ।

जुटी काज माता बहुरि कृष्ण दृष्टि गइ द्वार। नारद श्रापित विटप दोउ करन चहत उद्धार।।

तब श्यामसुन्दर ने सोचा कि प्राचीन काल से खड़े हुए वृक्ष रूप में यक्ष कुबेर के दोनों पुत्र नल कूवर व मणिग्रीव मेरे दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे ऐश्वर्य मदमें अन्धे थे इसी कारण नारद जी ने उन्हें वृक्ष होने का शाप दिया था। इसलिए ब्रज में आकर वृक्ष हो गये थे। अब उनका उद्धार करना चाहिए।

परम अनुग्रह भाव धरि, शाप दियो ऋषि आय। धन-मद अरु ऐश्वर्य-मद, दीन्ह्यों दोउन मिटाय।।

द्रुमन योनि दोउन मिली, नारद कृपा महान। कृष्ण चरण सान्निध्य को, पायो दिव्य बिधान।।

नशा किसी भी चीज का क्यों न हो अपना भला नहीं करता बल्कि सर्वस्व नाश कर देता है। नशे के कारण देवता नलकूबर-मणिग्रीव में देवत्व नहीं है। धन और रूप एक ही स्थान पर इकट्ठे ही रहते है ऐसा जरूरी नहीं है। कंचन में सभी

गुणों का वास होता है इस बात को ठकुर सुहाती करनेवाले लोग कहते हैं। ज्ञानी लोग तो जानते हैं कि अर्थ तो अनेक अनर्थों की जड़ है। धन की देवी लक्ष्मी का वाहन उल्लू है जिसे न सूर्य दिखाई देता है न सूर्य का प्रकाश।

ब्रजवासी प्रभु भक्तहित आप बँधायो दाम। ताही दिन ते प्रकटभो दामोदर असनाम।।

कृष्णने सोचा कि नारद के शाप से जो देवता यमलार्जुन वृक्ष के जोड़े बन गए हैं, उनका अब उद्धार करूं। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान अपने भक्तों के हित के लिए बार-बार अवतरित होते हैं।

कंस को पता चल गया था कि नन्द का छोरा ही हमें मारनेवाला भगवान है। किन्तु जब समाचार फैला कि यशोदा ने अपने लाला को ओखली में बाँध दिया। तब कंस ने कहा कि यह मुझे मारनेवाला ब्रह्म नहीं हो सकता। इस प्रकार कृष्ण के ब्रह्मत्व को छिपा देने के कारण यशोदा गोपिका है।

यशोदा के द्वार पर दो वृक्ष खड़े हैं। यमलार्जुन के वृक्ष, अशोक वृक्ष। ये दोनों कुबेर के पुत्र हैं। इन्होंने नारदजी का सम्मान नहीं किया। इसलिये नारदजी ने जड़वत होने का शाप दिया और कहा कि श्रीकृष्ण के संस्पर्श से तुम्हारी मुक्ति होगी। आज गोविन्द माँ यशोदा को ऊखल से बाँधकर चली गयीं तो कृष्ण घुटमन-घुटमन चलकर दोनों वृक्षों के बीच में से निकलें, कृष्ण का स्पर्श पाते ही दोनों वृक्ष धड़ाम से धरती पर गिर पड़े।

यमलार्जुनके मध्य हरि, गये उलूखल फँसि गयो। खींच्यो बलतें बाल प्रभु, गिर्‌यो वृक्ष अति रव भयो।।

नारदजीने कहा कि जो लोग अपने प्रिय विषयों का सेवन करते हैं, उनकी बुद्धि को सबसे बढ़कर नष्ट करनेवाला है श्रीमद्-धन सम्पत्ति का नशा। हिंसा आदि रजोगुणी कर्म और कुलीनता का अभिमान भी उससे बढ़कर वैसा बुद्धि भ्रंशक नहीं है, क्योंकि श्रीमद् के साथ-साथ तो स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहती है। ऐश्वर्यमद और श्रीमद् से अन्धे होकर अपनी इन्द्रियों के वश में रहनेवाले क्रूर पुरुष अपने नाशवान शरीर को तो अजर और अमर मान बैठते हैं और अपने ही जैसे शरीर वाले पशुओं की हत्या करते हैं। जिस शरीर को भूदेव, नरदेव आदि नामों से पुकारते हैं- अन्त में उसकी क्या गति होगी? उसमें कीड़े पड़ जायेंगे, पक्षी खाकर उसे विष्ठा बना देंगे या वह जलकर राख का ढेर बन जाएगा। उसी शरीर के लिए प्राणियों से द्रोह करने में मनुष्य अपना कौन सा स्वार्थ समझता है? ऐसा करने से तो उसे नरक की ही प्राप्ति होगी। यह शरीर किसकी सम्पत्ति है? अन्न देकर पालनेवाले की है या गर्भाधान करानेवाले पिता की? यह शरीर उसे नौ महीने पेट में रखनेवाली माता का है अथवा माता को भी पैदा करनेवाले नाना का? जो बलवान पुरुष बलपूर्वक इससे काम करा लेता है उसका है अथवा दाम देकर खरीद लेनेवाले का? जिस चिता की धधकती हुई आग में यह जल जाएगा, उसका है अथाव जो कुत्ते-स्यार इसको चीथ-चीथ कर खा जाने की आशा लगाए बैठे हैं उनका है? यह शरीर एक साधारण-सी वस्तु है। प्रकृति से पैदा होता है और उसी में समा जाता है। ऐसी स्थिति में मूर्ख पशुओं के सिवा और कौन ऐसा बुद्धिमान है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरों को कष्ट पहुँचाएगा, उसके प्राण लेगा। जो दुष्ट श्रीमद् से अन्धे हो रहे हैं उनकी आँखों में ज्योति डालने के लिए दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंजन है, क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे ही जैसे हैं। जिसके शरीर में एक बार काँटा गड़ जाता है, वह नहीं चाहता है किसी भी प्राणी को काँटा गड़ने की पीड़ा सहनी पड़े, क्योंकि उस पीड़ा और उसके द्वारा होनेवाले विकारों से वह समझता है कि दूसरों को भी वैसी ही पीड़ा होती है। परंतु जिसे कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसकी पीड़ा का अनुमान कर ही नहीं सकता।

धनमद, पदमद, देहबल- मद तीनों ने मिलकर उन यक्षकुमारों को संज्ञा-शून्य कर दिया। जब देवी लक्ष्मी अकेली आती है तो दृष्टि, श्रोत, वाणी सब विकृत कर देती हैं। परमात्माका वरदान है दरिद्रता। दरिद्र भोग-विवर्जित सहज तापस

हैं। यदि उसमें संतोष आ जाय तो उसका उद्धार सरल है, निश्चय है।

दरिद्र में घमंड और हेकड़ी नहीं होती, वह सब तरह के मदों से बचा रहता है। बल्कि दैववश उसे जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसके लिए एक बहुत बड़ी तपस्या भी है। जिसे प्रतिदिन भोजन के लिए अन्न जुटाना पड़ता है, भूख से जिसका शरीर दुबला-पतला हो गया है, उस दरिद्र की इन्द्रियाँ भी अधिक विषय नहीं भोगना चाहतीं, सूख जाती हैं और फिर वह अपने भोगों के लिए दूसरे प्राणियों को सताता नहीं, उनकी हिंसा नहीं करता। यद्यपि साधु पुरुष समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका समागम दरिद्र के लिए ही सुलभ है, क्योंकि उसके भोग तो पहले ही छूटे हुए हैं। अब संतों के संग से उसकी लालसा तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। (धनी पुरुष में तीन दोष होते हैं- धन, धन का अभिमान और धन की तृष्णा। दरिद्र पुरुष में पहले दो दोष नहीं होते हैं, केवल तीसरा ही दोष रहता है। इसलिए सत्पुरुषों के संग से धन की तृष्णा मिट जाने पर धनियों की अपेक्षा उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है।) जिन महात्माओं के चित्त में सबके लिए समता है, जो केवल भगवान के चरणारविन्दों का मकरन्द-रस पीने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं, उन्हें दुर्गुणों के खजाने अथवा दुराचारियों की जीविका चलानेवाले और धन के मद से मतवाले दुष्टों की क्या आवश्यकता है? वे तो उनकी उपेक्षा के ही पात्र हैं। (धन स्वयं एक दोष है। जितने से पेट भर जाए, उससे अधिक को अपना माननेवाला चोर है और दण्ड का पात्र है। भगवान भी कहते हैं- जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसका धन छीन लेता हूँ। इसलिए सत्पुरुष प्राय: धनियों की उपेक्षा करते हैं।) ये दोनों यक्ष वारुणी मदिरा का पान करके मतवाले और श्रीमद् से अन्धे हो रहे हैं। अपनी इन्द्रियों के अधीन रहनेवाले इन स्त्री-लम्पट यक्षों का अज्ञान जनित मद मैं चूर-चूर कर दूँगा। कितना अनर्थ है कि ये लोकपाल कुबेर के पुत्र होने पर भी मदोन्मत्त होकर अचेत हो रहे हैं और इनको इस बात का भी पता नहीं है कि हम बिल्कुल नंग-धड़ंग हैं। इसलिए ये दोनों अब वृक्षयोनि में जाने के योग्य हैं। ऐसा होने पर इन्हें फिर इस प्रकार का अभिमान नहीं होगा। वृक्षयोनि में जाने पर भी मेरी कृपा से इन्हें भगवान की स्मृति बनी रहेगी और मेरे अनुग्रह से देवताओं के सौ वर्ष बीतने पर इन्हें भगवान श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होगा, और फिर भगवान के चरणों में परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोक में चले आएँगे। अपने अनुयायीके द्वारा किया हुआ काम जितना यशस्कर होता है उतना अपने हाथ से नहीं यही सोचकर कृष्णने अपने पीछे-पीछे चलनेवाले ऊखलके द्वारा मणिग्रीव और नलकूबर का उद्धार करवाया।

यमलार्जुन दो वृक्ष थे, मग में परम विशाल। निकसे तिनके बीच से, ऊखल युत गोपाल॥
ऊखल के संसर्ग से, गिरे विटपि जब भूप। तिन वृक्षन से पुरुष दो, तिकसे अद्भुत रूप॥
दामोदर भगवान को, परमब्रह्म कर जान। कर प्रणाम कर जोर के, लगे कृष्ण गुण गान॥

देवताओं में लोकपाल पुत्र बुढ़ापे और रोग से रहित शरीर वाला होता है। उसके साथ कुबेर के पुत्रों के पास कंचन की वर्षा होती रहती थी जिसके मद ने इन्हें अन्धा कर दिया। यक्षों की गिनती उपदेवताओं में भी होती है। ये असुरों की तरह बहुत सी मायाओं के जानकार होते हैं। देवताओं का शरीर क्षुधा पिपासा रहित होता है। अमृत पीनेवाले देवता होते हुए भी कुबेर के पुत्रों ने कुसंग के कारण प्राप्त दुर्बुद्धि से मदिरा को अपनाया। शिव की पावन भूमि हिमालय पर्वत पर ये लोग विचरण करने लगे। भगवान श्री हरि के चरणों से उत्पन्न हुई कलियुग के मल को हरण करनेवाली परम पवित्र जल की धारा मन्दाकिनी गंगा जिसे शंकर भगवान ने अपनी जटाओं में धारण किया उसीके किनारे कुबेर पुत्र शराब पीकर विचरते रहते। एक बार पतित पावनी गंगा की धारा में स्नान करने के बाद दोनों कुबेर पुत्र जलकेलि करने लगे। साथ में आयी युवती अप्सराएँ भी जल क्रीड़ा में साथ देने लगीं। कुबेर पुत्र अप्सराओं के ऊपर जल के छींटे मारने लगे। हिमालय पर्वत पर कुबेर पुत्र

नि:संकोच होकर गंगा की धारा में नङ्गे नहाने लगे। श्रीहरि-चरण समुद्भवा, शिवशिरसि विहारिणी, कलिकल्मषनाशिनी, पुण्य-सलिला मन्दाकिनी को मदान्ध मूर्ख अपनी जलक्रीड़ासे कलुषित करने लगे थे। कर्मयोनि यक्ष भले न हो; किन्तु अत्युग्र कर्म तो इन्द्रको भी भोग-भ्रष्ट कर सकता है। एक तो धन का मद दूसरे उसके ऊपर शराब का मद होने से ये निर्लज्ज हो गये थे। सुरापानका नित्य साथ है स्त्री-सेवनसे और यक्षराजके पुत्रोंके लिए अप्सरा अनुपलब्ध रह नहीं सकती। हिमालय तपस्थली है, मुनियोंका अनादि उपासना स्थान और उमा-महेश्वरकी विहार भूमि। नल-कुबर और मणिग्रीव के पिता कुबेर पिता भगवान महेश्वरके सेवक- ऐसे सेवक कि आशुतोष भगवान उन्हें अपना सखा मानते थे।

नारद वा देवल ऋषि गे नारायण दर्शन। देखत नारी वसन धरे इन नहिं पग पर्सन।।
जड़ वत देखे जड़ होवन ऋषि वाक उचारा। श्री कृष्ण अवतार करें तुमरा उद्धारा।।

अनेक बार असम्भावित ही अचानक घटित होता है। देवर्षि नारद भगवान शंकरके यहाँसे नर-नारायणाश्रम जाते निकले और उधरसे ही आ गये। उन्हें देखते ही उनके साथकी अप्सराएँ भागीं। जलसे निकलकर उन्होंने अपने शरीर वस्त्रोंमें छिपा लिये।

नारद ऋषि अथवा कल्पभेद से देवल ऋषि नारायण भगवान के दर्शन करने गये। बन्द्रीनारायण के दर्शनों के पश्चात इन्होंने देखा गंगा की धारा में अप्सराएँ और कुबेर पुत्र नग्न होकर नहा रहे हैं। इनको देखते ही अप्सराओं ने लज्जा के कारण वस्त्र पहन लिये और ये दुर्बुद्धि मद में मतवाले होकर गंगाजी में नंगें नहाते रहे। न तो इन्होंने वस्त्र पहने और न ही ऋषि को प्रणाम किया। जड़ की तरह खड़े हो गये। नारद ऋषि को उनका ये दुर्व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने विचार किया जिन देवताओं के प्रति समाज में इतना आदर सम्मान है वे ही यदि शराब पीकर नारियों के साथ गंगा की धारा में नग्न स्नान करेंगे तो समाज में अनाचार को बढ़ावा मिलेगा। इसलिये इनको शिक्षा देने के लिये उचित दण्ड देना आवश्यक है। अत: उन्होंने क्रोध के आवेश में कुबेर पुत्रों को श्राप दिया कि तुम महात्मा को देखकर जड़ की तरह खड़े हो गये थे अत: जड़ रूप वृक्ष बन जाओ। तुम दोनों सुरसरिमें, जहाँ समस्त ऋषि-मुनि श्रद्धा समन्वित स्नान करते हैं, सुरापान करके स्त्रियोंके साथ यह कलुषित क्रीड़ाका साहस करते हो? अपना संगीत समाप्त करके उन दयामयने कहा- तुम ऐसे उन्मत्त हो कि अपनी नग्नताका भी तुम्हें स्मरण नहीं। अत: अन्त:संज्ञा रखनेवाले तुम स्थावर वृक्ष बनकर गोकुलमें व्रजराजके द्वारपर रहो। वहाँ भी तुम्हे मेरी कृपासे स्मृति बनी रहेगी। यह श्राप सुनकर उनकी चेतना जागी और भयभीत होकर वस्त्र पहनकर ऋषि के चरणों में गिर पड़े। दीन होकर अपने अपराध की क्षमा माँगी और अपने उद्धार का उपाय पूछा। तब नारद ऋषि ने उनकी दीनता पर द्रवीभूत होकर कहा, इस धरती का भार उतारने के लिए परम ब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण के रूप अवतरित होंगे तब वे तुम्हारा उद्धार करेंगे। नारदजी ने कहा, जब तक भगवान श्रीकृष्ण का अवतार नहीं होता तब तक तुमको अर्जुन वृक्ष के रूप में भी सन्तों के प्रति की गई धृष्टता के अपराध की स्मृति बनी रहेगी जिससे तुम अपनी अर्जुन वृक्ष की देह को देख देखकर पश्चाताप की अग्नि में जलते रहोगे।

कुबेर के दोनों पुत्र ऋषि के श्राप को सुनकर अहमार से रहित होकर पश्चाताप करने लगे। कहाँ तो हम यक्षलोक के भोगों को भोग रहे थे और कहाँ अब तपस्या का धाम वृक्ष का शरीर प्राप्त हो गया। हे तात विदुर, दोनों कुबेर पुत्र गोकुल में जाकर अर्जुन वृक्ष बनकर महावन में सर्दी और गर्मी के कष्ट उठाने लगे।

दोउ कुबेर सुत मद कुचाल ते। मुनिहिं श्राप तरु विपुल काल ते।।
गवने प्रभु दोउ तरुवर बीचा। गिरे धरनि विभु ओखल खींचा।।
रुचिर रूप भए दरस प्रतापा। छुटेउ मुनवर नारद श्रापा।।
धरि पद शीश रुचिर रज लीनें। पुनि पुनि दोउ प्रभु बनती कीन्हीं।।

करि प्रदक्षिणहिं प्रभुहिं प्रनामा। प्रभु आयसु लहि गे निज धामा।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिनके उदर में दाम बँधी है, उन बालकृष्ण ने उलूखल को ज्योंही बलपूर्वक खींची त्योंही लुढ़ककर अटके हुए उसके परम पराक्रम से शाखा प्रशाखा तथा पत्तों सहित विचलित हुआ वह वृक्ष बड़े वेग से घोर रव करता हुआ, जड़ सहित उखड़कर गिर गया। एक तीव्र झटका- कुछ अद्भुत मूर्छा-सी आयी और दोनों अर्जुन वृक्ष मूल सहित उखड़कर भूमिपर गिर पड़े। छूट गया व्रजवास। छूट गयी इनकी सन्निधि। यह यक्ष देह पुन: क्या मिला- इसका आदेश मिल गया- यहाँसे शीघ्र अलका चले जाओ। स्तुति, प्रणाम, करके चले ही आना पड़ा। सर्वेश्वरकी आज्ञा टाली तो नहीं जा सकती। अपनी भक्तिका वरदान अवश्य उन्होंने दे दिया है- यही आश्वासन रहा अब।

नारद ऋषि ज्ञानी, भगत अमानी, दुर्मद हानी, धन्य कियो।
जो ध्यान न आवत, तप नहिं पावत, उन दर्शन-रस आजु पियो।।

उसमें से दो महापुरुष निकलें और कृष्ण की स्तुति करने लगे। कहने लगे- यही वर दे दो प्रभु- वाणी आपके गुणों को गाये, कानों से हम आपकी कथा सुनें, शरीर आपकी सेवा में लगे, मस्तक आपके चरणों में झुके, दृष्टि इतनी महान बने कि प्रत्येक व्यक्ति में हमें आपका दर्शन हो।

हे सत-चित आनँद, भक्ति-मुक्ति-प्रद, नित्य-मुक्त अन्तर्यामी।
हे सब जग त्राता, विश्व-बिधाता, नमस्कार हे जग-स्वामी।
हे हे दामोदर, हे विश्वम्भर, हे स्वतन्त्र स्वेच्छागामी।
हे मंगल-साधन, सिद्ध-जनन-धन, नमस्कार, पूरणकामी।।
ऋषि-शाप जो पायो, अति भल भायो, तव दर्शन-रस सरसायो।
जो ज्योति स्वरूपा, अनुभव रूपा, सगुण-रूप सनमुख आयो।
पूरण अवतारी, रमण-बिहारी, लीला धारी छबि छायो।
नारायण-रूपा, विष्णु-स्वरूपा, पूरण अंशन प्रगटायो।।
परिक्रमा दोउन करी, उन अनुशासन पाय। सगुण छबिन निज हिये धरि, धनि निज लोक सिधाय।।

प्रभु ने दोनों को स्वर्ग जाने की अनुमति दी।

यमजार्लुन उद्धार प्रभु, कीन्हों निज जन जानि। गये युगल निज लोक को, आयशु प्रभु की मानि।।

ऋषिवर शाण्डिल्य ने बृजपति नन्दराय को यह प्रेरणा दी कि अर्जुन के वृक्ष तुम्हारे आँगन में लगाओ जो सारे गोकुल के लिये लाभप्रद होंगे। नन्दराय ने गुरु की आज्ञा मानकर दो वृक्ष आँगन में रोपित कर दिये। उनकी नित्य प्रति पूजा होने लगी। घर परिवार और गाँव के लोक धूप, दीप, नैवेद्य, आरती सद्भावना पूर्वक करने लगे। धीरे धीरे यमुलार्जुन वृक्षों के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ने लगी। नमस्कार, परिक्रमा के साथ लोग मनौतियाँ भी माँगने लगे और उनकी श्रद्धा के फलस्वरूप मनौतियाँ पूर्ण भी होने लगीं। वृक्षों के नीचे चौक, चबूतरा आदि बन गये और परिक्रमा करनेवालों की संख्या में वृद्धि होने लगी। गोपियाँ ही नहीं, व्रजेश्वरी तक उन दोनों वृक्षोंकी पूजा करती थीं। वे प्रतिदिन सायंकाल उनके समीप प्रदीप प्रज्ज्वलन करती थी। गोपियाँ मनौतियाँ माँगती थी। गायें उनकी छायामें स्वच्छन्द बैठती थीं। वृषभ विश्राम करते थे। बछड़े-बछड़ियाँ उछलते-फुदकते थे। गोपोंकी गोष्ठी होती थीं और गोपबालक क्रीड़ा करते थे। गोपियाँ अर्जुन वृक्षों से बृजपति श्री नन्दराय के यहाँ सन्तान की प्राप्ति हो ऐसी प्रार्थना करते हुए बोली, हे यमुलार्जुन, हमारी इस भावना को आप अवश्य पूरा करें।

गोपियों की प्रार्थना को अर्जुन के वृक्षों ने सुनकर यक्षों के द्वारा अपने पिता को इसकी सूचना भिजवाई और कहलवाया बृज के राजा वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। फिर भी उन्हें सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। लोकपति कुबेर ने अपने पुत्रों के सन्देश को कैलाश पर्वत पर जाकर अपने सखा शंकर भगवान को सुनाया। पार्वती के सहित शंकर भगवान इस बात को सुनकर मौन हो गये, मानों कह रहे हों कि हमारे आराध्य देव बृजपति के यहाँ प्रकट होनेवाले हैं।

वृक्षोंके उस विशाल जीवन में वर्ष दिवस जैसे व्यतीत होते गयें उनकी व्यथाके वे वर्ष भी व्यतीत हुए और परमपुरुष श्रीनन्दनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुए। गोपियोंकी मनौतियाँ सफल हुईं। उन वृक्षोंको जितनी पूजा प्राप्त हुई, देवताओंके इस सुरेन्द्रको भी समस्त सृष्टिमें कभी प्राप्त नहीं हुई। यमलार्जुन वृक्षोंके तने सूत्र वेष्टित किये गये। इतना गौरवपूर्ण अलंकार उन्हें यक्षेश्वरपुरीमें भी अप्राप्त था।

कृष्ण का ऊखल-बंधन सुनकर बलराम दौड़कर आए। कृष्ण को ऊखल से बंधा देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया। बोले- हे कृष्ण, मैंने तुम्हें कितनी बार रोका, अच्छा हुआ तुम्हारे दोनों हाथ बांधे गए। अब तुम शरारत छोड़ोगे। फिर वे हाथ जोड़कर मां के पास पहुंचे और कहा कि कन्हैया को छोड़कर आप मुझे बांध ले। मुझे तो निकलते ही अच्छे शकुन नहीं हुए थे। कन्हैया तो मेरे प्राण और धन हैं। उनके हाथ आज बंधे दिखाई पड़ रहे हैं। हे मां, मैं सौगंध खाकर ढिठाई कर रहा हूं। उन्होंने उनके स्वरूप (परब्रह्म रूप) और नाम (ईश्वरीय नाम) सुनाए। सूरदासजी कहते हैं कि तब यशोदाजी कहती हैं कि तुम दोनों भाई एक ही मत के हो।

कृष्ण को देखकर बलराम मुस्करा उठे। इनको कौन बांध सकता है और कौन छोड़ सकता है? इनकी महिमा तो ये ही जानते हैं। ये ही उत्पत्ति करते हैं और ये ही प्रलय करते हैं। शेषनाग अपने हजार मुखों से इनका यश गाते है। यमलार्जुन वृक्ष को तोड़कर कुबेर के पुत्रों का उद्धार करने के लिए इन्होंने अपने आप उसका कारण उत्पन्न कर दिया है। ये तो असुरों का संहार करते हैं, भक्तों को तारते हैं। पापियों का उद्धार करना इनका बाना है। सूरदासजी कहते हैं कि भक्ति भाव के कारण ही ये यशोदाजी के हाथ बिके हुए हैं।

दोनों वृक्ष पृथ्वी पर भर-भराकर गिर पड़े। जड़ सहित अरान का शब्द सुनाई पड़ा। ब्रज के सारे लोग चकित हो गए। वे डर गए, कोई आकाश की तरफ देखता रहा, कोई सिर झुकाए खड़ा रहा, सबकी सुध-बुध खो गई।

श्रवण-शक्ति देवनहुँ नसानी। बधिर भये पातालहु प्रानी।।
दिग दिगन्त कँपि कँपि थर्रायो। रव गँभीर तिहुँ लोकन छाया।।

पक्षियों का चहचहाना भौरों का गुंजार करना और मोरों का नाचना इस सब का मधुर स्वर ब्रज में भरा रहा किन्तु जब यक्ष अपनी पुरी को चले गये तब ब्रज में बड़ा भयंकर शब्द भर गया।

अब सब ब्रजबासिन सुन्यो, खर खर स्वर घनघोर।
व्यापि गयो, ब्रज कँपि गयो, चक्रित सुनि रव रोर।।

नन्दनन्दन अपने सखाओं के सहित अर्जुन वृक्षों के पास खेलते तो कुबेर पुत्रों को ऐसा लगता कि देवर्षि नारद ने हमें श्राप नहीं वरदान दिया है। भला अलकापुरी में रहते हुए ऐसी सुविधा कहाँ मिल सकती थी कि परमानन्द स्वरूप श्री कृष्ण हमारे अङ्ग का स्पर्श करते हुए हमारे आस पास खेलें।

कुबेर पुत्र विचार कर रहे हैं कि गाय और ग्वाले हमारी छाया में बैठे रहते हैं और वृषभों के सहित बैठे जुगाली करते हैं। चरवन करती हुई गायों के पास नन्हे नन्हे बछड़े किलोल करते हैं और उछलते कूदते हुए अपने पिछले पैरों को पछाड़ते

हैं नन्दनन्दन कन्हैया हमारी ओट लेकर आँख मिचौनी खेलता है। जब संग के बाल सखा इन्हें ढूँढ़ते हैं तो यह नन्द का बेटा हमारे तनों के साथ चिपककर हमारी ओट लेकर छिपकर बैठ जाता है।

ऋषि लोग परमानन्द स्वरूप श्री हरि के स्पर्श से प्राप्त होनेवाले आनन्द के लिए ही अनेक वर्षों तक तपस्या करके वरदान प्राप्त करते हैं और ब्रह्मा जी से वरदान की याचना करते हैं कि हमें बृज में तृण बना दो, पेड़ बना दो, लताएँ बना दो अथवा बृज का कोई पक्षी बना दो। जिससे हमें आनन्दघन श्री कृष्ण का स्पर्श प्राप्त करके सारे शरीर में सिरहन होने लगती है। कन्हैया अपने हाथों से हमारी शाखाओं को हिलाता है तो हमें बहुत सुख मिलता है।

अर्जुन के वृक्ष बने दोनों कुबेर पुत्र आपस में विचार कर रहे हैं कि जिस दिन का हमें डर था आखिर वो दिन आ ही गया। ऊखल से बँधे हुए कन्हैया के पास रखवाली के लिए बलराम को बिठाकर जाते समय मैया ने यह नहीं सोचा कि बलराम की विचारधारा कभी श्याम सुन्दर की विचारधाराओं से अलग हो सकती है। ऊखल को अपने साथ खींचते हुए कन्हैया द्वार के बाहर प्राँगण में हमारे समीप आ ही गये।

नारद ऋषि ने अपने द्वारा दिये गये श्राप का उद्धार बताते हुए कहा था कि सर्वेश्वर भगवान मनमोहन तुम्हारा उद्धार करेंगे। परन्तु हमें श्रीकृष्ण के द्वारा किया जानेवाला अपना उद्धार श्राप के समान प्रतीत हो रहा है। क्योंकि अब ये हमें अर्जुन वृक्ष की योनि से मुक्त करने जा रहे हैं जबकि इस वृक्ष रूप से छुटकारा पाना हमें रुचिकर नहीं है। बृजपति नन्दराय जी के महल के प्रांगण में हमारा वास इन दिनों बहुत आनन्द प्रदान करनेवाला है। अर्जुन वृक्ष वाला शरीर छूटते ही हमारा बृजवास छूट जायेगा और हमें अलकापुरी भागना पड़ेगा।

कैसा ये उद्धार द्वार मोहन का छूटे। दरसन परसन पुन्य हमारा लागा खूटे।।
तिरछा ऊखल अटका कान्हा जोर लगाया। अर्र धम्म आवाज हुई यों हमें गिराया।।

कुबेर पुत्रों ने कहा, ये कैसा श्राप से उद्धार है जिसके कारण हमारा कन्हैया का दर्श, स्पर्श और उसका द्वार छूट रहा है। लगता है श्री हरि के दर्शनों का और उनके आनन्दमयी स्पर्श का हमारा पुण्य समाप्त हो गया है। ऊखल तिरछा होकर हमारे बीच में अटक गया और कन्हैया ने उसे निकालने के लिए जोर लगाना प्रारम्भ कर दिया है। अर र र र र धम की आवाज हुई और इस प्रकार श्यामसुन्दर ने हमें गिरा ही दिया।

नलकूबर ने कृष्णकी स्तुति करी-

तुम आदि नारायण ईश्वर हो, सब विश्व चराचर रूप तुमारा।
प्रकृती मन इन्द्रिय प्राणन का, तनुका तुम हो नित प्रेरण वारा।।
मति की वृति आदि अनातम को, तुम ही परमातम जानन हारा।
नहिं ज्ञेय बखानत है तुमको, श्रुति कृष्ण प्रभो तव रूप अपारा।।
अपनी प्रकृति कर छादित हो, घन मंडल से जिमि सूर तमारी।
जन तारण दुष्ट निवारण को, तुम धारत हो अवतार मुरारी।।
तनु धार अलौकिक काम करो, तव देह अलौकिक वेद उचारी।
यदुनंदन माधव गोपपते, तुमरे पदकंज प्रणाम हमारी।।
गुणगान करे रसना हमरी, पुन कान सुनें यश प्राक्रम थारा।
कर सेव करें तुमरे पद की, तव ध्यान करे नित चित्त हमारा।।

युग नेत्र तकें तिन संतन को, जग जो पुरुषोत्तम रूप तुमारा।
पुन सीस निवें तुमरे पद में, जिसको हर ने उर में नित धारा।।
धन्य धन्य अति भाग्य हमारे। हमरे सम को जगत मझारे।।
यह सब नारद मुनि की दाया। जो यह तव दर्शन हम पाया।।
धनद तनुज हम नाम हमारा। नलकूबर मणिग्रीव उचारा।।
एक समय हम दोनों भाई। मदिरा पान कीन यदुराई।।
युवतिन सहित नदी जल अन्तर। क्रीड़ा करत रहे निज तंतर।।
तब नारद ऋषि तहाँ पधारे। नारिन ने अंबर तनु डारे।।
हम मदमत्त मूढ़ अभिमानी। नारद से नहिं लज्जा ठानी।।
नग्न देखकर देह हमारा। देवऋषी तब शाप उचारा।।
तुम मूरखच जड़ मति हो जोऊ। जावो जड़ तनु पावो दोऊ।।
शाप श्रवण कर हम भय माना। मुनि के पदयुग वंदन ठाना।।
तब मुनि करुणा कर यदुराई। स्वीय शाप की अवधि सुनाई।।
वर्ष शतक जावेगा जबही। हरि अवतार लेंगे तबहि।।
मुक्त करेंगे तुमरी सोई। पतित उधारक केशव जोई।।
लेवो वर तुम एक हमारा। ज्ञान नष्ट नहिं होगा थारा।।
जो यह वृक्ष देह मुनि दीना। सो तिनने हमरा हित कीना।।
जो शिक्षा नहीं दिवें साधू। मूरख करें संत अपराधू।।
सो अपराध तुमारा होई। हरि हरिजन का भेद न कोई।। अब आज्ञा होवे हम जावें। मात-पिता के दर्शन पावें।।

यशोदाजी ने आंगन में देखा तो कृष्ण नहीं बंधे थे। दोनों वृक्षों को पृथ्वी पर गिरा देखकर यशोदाजी ने आंगन में देखा तो कहा कि अभी तो मैं कृष्ण को आंगन में छोड़कर गई हूं, इस पेड़ से बंधे थे। मैं अभागिन हूं। मैंने नंद के प्राण-आधार को बांधा है। सारी गोपियां और ग्वाले व्याकुल थे।

ब्रजेश्वरिहिँ सुत की सुधि आई। चली जहाँ बाँध्यो तहँ धाई।।
तृणावर्त की सी ध्वनि आवे। सोचि बिकल मैया दुख पावे।।
तहँ न नीलमणि सुत निज पाई। अति घबराई, बाइर आई।।
देखे दोउ बड़ बिटपन डारे। कहाँ नीलमणि, हा मम प्यारे।।

उसका शब्द गोवर्धन पर्वत तक पहुँच गया। नन्द वहीं पर थे उनका मन भी काँप गया था। श्रीकृष्ण की मंगल कामना करते हुए गोपों और ब्राह्मणों के साथ उठकर दौड़े।

सब लोगों ने देखा कि वृक्ष तो बहुत बड़े थे, यह देखकर सभी डर गए। सब लोग बड़े आश्चर्य में पड़े कि ये पेड़ गिरे कैसे। तनिक भी तो हवा नहीं। दोनों वृक्षों के बीच में कृष्ण ऊखल में बंधे बैठे हुए थे। उनके हाथ छुड़ाकर उन्हें उठा लिया और नंदजी को भाग्यशाली माना। स्त्रियां कृष्ण के अंग देखती हैं कि कहीं चोट तो नहीं लगी। वे कहती हैं कि यशोदा कभी इन्हें मारती है, कभी बांधती है, बड़ी ही अभागिन है। यशोदाजी आंखों से आंसू गिराने लगीं और बेटे को गले से लगा

लिया। कहने लगीं कि मेरा क्रोध जले जिसके कारण मैंने तुम्हें बांधा, मुझे बलाएं लगें।

ये रस्सी जल क्यों नहीं गयी जिससे मैंने लाला को बांधा। सभी ब्रजवासी देखकर बोले- मैया तू बड़ी भोली है, तुमने लाला को क्यों बांधा? ये तो नारायण की कृपा ही है जिससे लालाकी सुरक्षा हो गयी।

नंदजी इन दोनों पेड़ों को देखकर मुझे क्या कहेंगे? मैं मर जाऊं, तुम दोनों भाई सकुशल रहो। घर पर आकर नंदजी ने देखा कि दोनों भारी वृक्ष गिरे हुए हैं।

पल्लव-जालन छिप्यो दिखायो। अँसुवन झरि झरि नयनन लायो।।

नन्द दौरि उन गोद उठायो। ऊखल बंधन समुझि न पायो।।

नन्द बोले- किसने बाँधा तुझे? कन्हाई केवल बाबाकी ओर देखकर हँसता है। मैयाने बाँधा यह बात अपने मुखसे नहीं कहना चाहता। दूसरे शिशु भले बतला दें, स्वयं मैयाके दोष नहीं कहेगा। बोले कि तू मेरे बेटे को बांधती है, ऐसा कहकर वे यशोदाजी को डांटने लगे। तब कृष्ण बाबा कहकर दौड़े। नंदजी ने उन्हें अंकमाल में भर लिया। नन्दराय ने रस्सीकी गाँठ खोलकर अंकमें उठा लिया और बोले- तेरी मैया बहुत बुरी है जो तुझे बांधती हैं। अब मत जाना उसके समीप मैं तुझे अपने पास रखूँगा। मैयाको यहीं घरमें रहने दो।

समय भर्त्सना को नहिं जान्यो। परम-वेदना उन अनुमान्यो।।

अस बिचारि कहि कुशल बतायो। नारायण इन आजु बचायो।।

सुवन सहित यमुना तट आये। विप्रन बिबिध दान करवाये।।

उन आशिषन पाइ गृह आई। रचत सुमंगल गान बधाई।।

यशुमति क्षोभ भरी अकुलानी। चेत पाइ हूँ परम लजानी।।

उठि न सकी, गोपिन कह जावो। नन्द-नँदन मोरे ढिग लावो।।

नन्द आदि सुनि धुनिहिं बिशेषा। धाए तहँ दोउ तरु हत देखा।।

गिरेउ कवन बिधि करत बिचारा। आइ कहे कछु ग्वाल कुमारा।।

तात कृष्ण ओखलहिं फँसाई। इन्ह दोउ तरुवर खींचि गिराई।।

तदपि न गोपन्ह यह सचु माना। किमि पारिहिं शिशु बिटप महाना।।

धाइ खोलि रज्जुहिं तुरत अति बिहबल पितु नन्द। लीन्हिं मगन छपकाइ उर सुवनु सुआनन्द कन्द।।

नन्दबाबाने झट दौड़कर अपने प्राणप्रिय बालकको हँसते-हँसते गोदमें उठा लिया। हँसते-हँसते इसलिए कि कहीं बेटा डर न जाय। कहीं यह न समझ बैठे कि मैयाने तो नाराज होकर मुझे बाँध दिया था, क्योंकि मैंने गलत काम किया और इस गलतीके लिए कहीं बाबा भी चाँटा न मार दें। इसलिए नन्दबाबा हँसते हुए गये कि बेटा, मैं तुम्हारे ऊपर नाराज नहीं हूँ। उन्होने श्रीकृणकी कमरमें बँधी रस्सी खोल दी और उनको मुक्त कर दिया।

बारबार देखत बदन हिचकिन रोवत श्याम। वज्रहु से तेरो हियो कठिन अहो नँदवाम।।

सूरदासजी कहते हैं कि तुम किस प्रकार वृक्षों के नीचे से बचे, मैं तुम पर बलिहारी जाता हूं।

एक गोपी ने पूछा कि लाला बाबाके पास रहोगे तो सोओगे कहाँ? कन्हैया बोला- बाबाके पास सोयेंगे। गोपीने पूछा- दूध किसका पीओगे? कन्हैया बोला- गैया और मैयाका दूध पीयेंगे। नन्दबाबा बोले- तुम्हारी मैयाने तुमको बाँध दिया है, इसलिए आज हम उनको मारेंगे। कन्हैया बाबाके मुँहपर हाथ रखकर बोला- बाबा, ऐसा मत करना और कृष्ण नन्दबाबाके

कन्धे पर से उतर गये और जाकर अपनी मैयाकी गोदमें चिपक गये और दूध पीने लगे।

जिनका दर्शन सनकादिक परम हंसों को दुर्लभ है उन्हींके दर्शनों का आनन्द यशोदा पाती है और जिसके रस में शंकर और शुकदेव डूबे रहते हैं उसीका रस ब्रज को सरस बना रहा है।

गोविन्द को गोद में लेकर मैया पालने में सुला रही हैं। लोरियां गा रही है। बृजवासियों के मन में कृष्ण के प्रति अद्भुत वात्सल्य का भाव है और वात्सल्य भाव होने के नाते कृष्ण की जरा सी भी असुविधा, असुरक्षा ब्रजवासियों को प्रिय नहीं लगती। उनके मन में कष्ट हो जाता है। लोरियां सुनकर कन्हैया सो जाता है। माया जिनके इशारों पर नाचती है, वही ब्रह्म आज गोपियोंके कहनेपर नाचता है। मैया कहती है कि वह पीढ़ा ले आओ, तो ले आते हैं। गोपियां बाट उठाने को बोलती हैं तो बाट ले आते हैं। लोगोंको अपनी लीला दिखा-दिखाकर आनन्द देते हैं और उधर आकाशमें, गोलोकमें सनक-सनन्दन, नारद, शिव आदि खड़े-खड़े उनकी लीलाएँ देख रहे हैं।

यमुलार्जुन के उद्धार की कथा- परीक्षित बोले- गुरुवर, कृपा करके यह बतलाइये कि नलकूबर और मणिग्रीव का कौनसा अपराध था? जिस पर क्रुद्ध होकर देवर्षि नारद ने उन्हें शाप दिया।अधिकारका मद और धनका मद दोनोंमें अधिक था। यह लोकपाल कुबेरके पुत्र थे, बड़ा अधिकार और धनकी प्रचुरता, भोग शक्ति इनके पास सारी-की-सारी है तो धनोदमत्त थे।

शुकदेव बोले- परीक्षित, नलकूबर और मणिग्रीव एक तो धनाध्यक्ष कुबेर जैसे धनी बाप के बेटे थे और दूसरी बात यह है कि उनकी गणना प्रलयंकर शंकर के अनुचरों में होने लगी थी अत: उन्हें बड़ा घमण्ड हो गया था। एक दिन वे दोनों मदिरा पीकर उन्मत्त हो, कैलास के मनोरम उपवन में अप्सराओं के साथ घूमते हुए मन्दाकिनी के परम पवित्र तट पर जा पहुँचे। उस समय विकसित कमलों के कारण मन्दाकिनी की अपूर्वशोभा हो रही थी। वहाँ पहुँच कर उन दोनों ने अप्सराओं के साथ गंगाजल में नग्न होकर विहार प्रारम्भ किया। उस समय वे विविध क्रीड़ाओं में निरत थे। भगवान् की अनिर्वचनीय कृपा से उसी समय देवर्षि नारद जी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने समझा की ये मदिरा के नशे में धुत्त हैं। कभी-कभी असम्भावित भी सम्भव हो जाता है। देवर्षि नारद भगवान शंकर के दर्शन कर नर-नारायण के आश्रम जा रहे थे।

देवर्षि को देखकर स्त्रियोंने तो भागकर वस्त्र धारण कर लिया किन्तु मदिरा से मत्त और धन-मद से चूर नलकूबर-मणिग्रीव नंगे ही रहे। यह देखकर नारद जी उन दोनों पर अनुग्रह करने के लिये और इन्हें भी भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हो जाय। इस विचार से शाप देते हुए कहा- इस संसार में श्रीमद्, धनमद सबसे महान है। ऐसा मद सत्कुल में जन्म तथा विद्या से भी नहीं होता। जिसे प्रतिदिन अन्न के लाले पड़े रहते हैं, भूख के मारे जिसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है, इन्द्रियाँ सूख गई हैं, उसकी हिंसा की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती हैं महात्मा लोग भी भिक्षा के लिये धनिकों के द्वार पर न जाकर प्राय: दरिद्रों के यहाँ ही जाया करते हैं। उनकी संगति से दरिद्रों की धन की तृष्णा भी समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होते ही उनका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। भगवान के चरण-कमलों के रस-पिपासु महात्माओं का धन से उन्मत्त व्यक्तियों से क्या लेना-देना? वे तो उनकी उपेक्षा ही किया करते हैं।

तो मैं वारुणी से मतवाले धन-मद से अन्धे स्त्री-लम्पट एवं अजितेन्द्रिय इन कुबेर-पुत्रों के मद को चूर-चूर कर दूँगा। लोक-पाल कुबेर के पुत्र होकर भी इनको इस बात का पता नहीं है कि हम बिल्कुल नंग-धड़ंग हैं। ठूँठ वृक्ष की भाँति खड़े हैं इसलिये ये दोनों वृक्ष हो जायँ, जिससे इन्हें फिर इस प्रकार का अभिमान न हो। किन्तु मेरे प्रसाद से वृक्ष-योनि में भी इन्हें शाप की स्मृति बनी रहेगी। दिव्य सौ वर्षों के अनन्तर इन्हें भगवान श्रीकृष्ण का संसर्ग प्राप्त होगा फिर भगवान् के चरणों में

परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोक में चले आयेंगे। नारदजी ने कहा- जाओ, जड़वृक्ष बनकर गोकुल में ब्रजरज के प्रांगण में उत्पन्न हो जाओ। जब द्वापर में कृष्ण अवतरित होंगे तब उन्हीं के स्पर्श से तुम्हारा उद्धार होगा।

संग अप्सरा वस्त्रहीन नंगे ह्वै न्हावें। हरि गुन गावत परम रसिक नारद मुनि आवें।।
लखि मुनि युवती निकरि पहिन पट ऋषि सन्मानें। किन्तु धनद सुत मत्त नग्न ठाढ़े भौं ताने।।
शाप दयो मुनि तरु बनो, यमलार्जुन ते ह्वै गये। पुनि द्वापरके अन्तमहँ, परसि प्रभुहिं पावन भये।।
असत: श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्। आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्र: परमीक्षते।।

राजन्, यह कहकर नारदजी नर-नारायण के आश्रम पर चले गये। शाप और वरदान से तपस्या क्षीण होती है। नलकूबर-मणिग्रीव को शाप देने के पश्चात् नर-नारायण आश्रम की यात्रा करने का यह अभिप्राय है कि फिर से तप:संचय कर लिया जाय। नारायण नारद के गुरु और आराध्य दोनों ही हैं।

इधर नलकूबर और मणिग्रीव नारद के शाप के कारण अर्जुन के दो पेड़ बन कर नन्द बाबा के भवन के पूर्वीय द्वार के पास में उगे। भगवान् अपनी बात भले ही झूठी कर दें, किन्तु वे भक्त की बात कभी झूठी नहीं होने देते। भगवान् जैसा भक्तवत्सल, भक्त-परतन्त्र एवं भक्त-भक्तिमान् तो कोई दूसरा है ही नहीं।

अत: नारद जी का वचन सत्य सिद्ध करने के लिये भगवान् वहाँ धीरे-धीरे चलकर आये, जहाँ अर्जुन वृक्ष का जोड़ा खड़ा था। उन्होंने सोचा कि- देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्रिय भक्त हैं और ये दोनों भी हमारे भक्त कुबेर के पुत्र हैं अत: महात्मा नारद ने जो कुछ कहा है, उसे मैं ठीक उसी रूप में पूरा करूँगा। यह विचार कर भगवान श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में घुस गये। वे तो दूसरी ओर निकल गये, परन्तु उलूखल टेढ़ा होकर अटक गया। वह तो खल था ही। खल का स्वभाव होता है- तिरछा होना- टेढ़ा होना।

कन्हैया ने अपनी रस्सी और ऊखल के साथ दोनों तरुओं के बीच से निकल जाना चाहा। रस्सी कुछ अधिक ही बड़ी थी। कन्हैया अपनी कमर की रस्सी के साथ सहज दोनों वृक्षों के बीच पार हो गया पर ऊखल उलझकर रह गया। कन्हैया ने जोर लगाया कि ऊखल बाहर आ जाय। ऊखल को पार नहीं आना था, वह अच्छी तरह फँसा हुआ था। कन्हैया ने रस्सी को झटका दिया और खींचा। ऊखल तो बाहर आने से रहा, पर वे दोनों वृद्ध जर्जर वृक्ष ही जड़ से उखड़ गये। वृक्षोंके गिरने से इतनी जोरकी आवाज हुई कि आसपास की गोप-गोपियाँ, नौकर-चाकर, सेवक दौड़े कि कन्हैया को कुछ हो तो नहीं गया।

ब्रज के निवास के लिए मुनीन्द्र, महेश, सुरेश, महर्षिगण तृण-गुल्म, लता तक बनने को अपना परम सौभाग्य मानते हैं। कुबेर पुत्रोंको ऐसा अवसर देवर्षि ने उन्हें सहज में ही प्रदान कर दिया। यही सच्चे सन्त की महिमा है। वे दोनों यक्ष देवर्षि के शाप से गोकुल में अर्जुन वृक्ष के रूप में उत्पन्न हुए। महर्षि शाण्डिल्य के निर्देश पर गोप, गोपियाँ और स्वयं ब्रजरानी भी इनकी पूजा करतीं। संध्यासमय दीप जलातीं और विभिन्न प्रकार की मनोतियाँ मनातीं। गायें, वृषभ और वत्स इनकी स्वच्छ छाया में विश्राम करते। गोपबालक इनके सान्निध्य में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें करते।

कन्हैया ने अस्वीकारा मैयाके बंधन को और शरीर की सारी शक्ति लगाकर घसीट ले चला अपने को उस काष्ठ-खण्ड के साथ ही। बाँधा तो यशोदा ने उसे एक स्थान पर स्थिर रखने के लिये पर बंधन विद्रोह को जन्म दे देता है तो कहाँ का स्थैर्य, कैसा समझौता, कहाँ का अनुशासन? कन्हैया आंगन में आया। बहुत कठिनाई से धीरे-धीरे अपने को उस ऊखल को घसीटता हुआ, कभी रुकता, कभी दम लेता। मन में आक्रोश और तन में शक्ति संचार कर रहा था। सोच रहा था- मैया, तुम्हें लाला नहीं पसन्द तो मैं भी चला तुम्हारे प्रांगण से। बाल मन कह रहा था- तुम्हें दूध-दही के मटके ज्यादा मूल्यवान

लगते हैं अपने भूखे शिशु से तो सम्हालो सारे मटके और भाँड़। पर मैं आज समझ गया, तुम्हें कान्हा से प्यार नहीं, कान्हा को ही तुमसे प्यार था। प्रेम तो तुम्हें अपनी सम्पत्ति, अपनी गौओं, बछड़ें, गोरस और गोष्ठ से हैं कन्हैया तो तुम्हारे लिये सिर्फ एक मन-बहलाव का साधन मात्र हे। संवेदना में बाल-मन, प्रौढ़ और युवा-मनों से बीस ही होता है, उन्नीस नहीं। मैया तो बड़े आराम से दही बिलो रही होगी। उसे क्या चिंता है कि कन्हैया पर क्या बीत रही होगी?

जब भगवान ने जोर लगाकर उलूखल खींचा तब धक्का लगने से दोनों वृक्ष चट-चटाकर धड़ाम से भूतल पर गिर पड़े। उनके गिरते ही उनमें से अग्नि के समान तेजस्वी दो देवता प्रकट हुए। कुबेर पुत्रों ने अर्जुन के वृक्षों के उखड़ जाने पर यक्ष का रूप धारण कर लिया। दोनों ने हाथ जोड़कर श्री भगवान की वन्दना की। श्री हरि की स्तुति करने लगे।

उन लोगों ने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो भगवान् के सगुण-निर्गुण रूपों का वर्णन करते हुए अन्त में कहा- प्रभो, हमारी वाणी आपके मंगलमय गुणों का वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथा के श्रवण में लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवा में और मन आपके चरण-कमलों की स्मृति में रमे रहें। हमारा मस्तक आपके निवासभूत संसार को प्रणाम करने में लगा रहे। हमारे नेत्र आपके शरीर रूप भक्तों के दर्शन से निहाल होते रहें।

वेदज्ञात ब्राह्मण यह जानते हैं कि व्यक्त और अव्यक्त सब कुछ आपका ही है। आप सर्वशक्तिमान और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।

हे करुणानिधि, करुना कीजै, अपनी भाउ-भगति-रति दीजै।
बानी तुमरे गुन-गन गनै, श्रवन परम पावन जस सुनै।।
हे जगदीस, जसोदानन्दन, सीस रहौ नित तुव पद-बन्दन।
तुमरी मूरति भक्त तुम्हारे, नित ही निरखहुँ नैन हमारे।।

हे सर्वलोक अभ्युदय करनेवाले, हे निश्रेयस, हे उल्लास प्रदाता, साधारण शरीर वाला प्राणी आपकी तरह से वैभव का प्रकाश नहीं कर सकता। हे भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले, हे मंगल प्रदाता, हे जीवों का कल्याण करनेवाले यदुवंश शिरोमणि, हे परम प्रिय श्रीकृष्ण आपको नमस्कार है। यक्ष पुत्रों ने कहा, आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें कि हमारी वाणी आपके गुणों का हमेशा गान करे। हमारे श्रवण तुम्हारी लीलाओं को सुनते रहें। हमारे हाथ तुम्हारी सेवा में लगे रहें और हमारा मन सदा तुम्हारा ही स्मरण करता रहे। सारे विश्व को तुम्हारा ही रूप जानकर हमारा मस्तक सबके सामने झुकता रहे तथा आपके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करके हमारी आँखें सुख प्राप्त करें।

नलकूबर बोले- ऊखलमें बँधे दामोदरको किसीने आजतक नहीं देखा। पर हमने देखा कि भगवन् कितने प्रेमपरवश है यह सब नारदजी की कृपा है।

राजन्, नलकूबर-मणिग्रीव की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा- ठीक है, जाओ तुम्हारे सकल मनोरथ पूरे होंगे। ऋषि ने शाप देकर तुम लोगों पर अनुग्रह ही किया है। यह उनके अनुग्रह का ही फल है कि मेरा सुदुर्लभ दर्शन तुम लोगों को मिल सका। अब तुम लोग आनन्दपूर्वक अपने लोक को चले जाओ। अपने पिता के धाम अलकापुरी में जाओ। वहां नित्य प्रति मेरे नाम का जप करना जिससे तुम्हारे द्वारा पुन: सन्तों का अपराध नहीं होगा।

श्रीकृष्ण बोले- **राजराजसुत निज गृह जावो। पुन ऐसा मत कर्म कमावो।।**
संत अवज्ञा करहै जोई। जन्म जन्म दुख पावत सोई।।
धन यौवन मदिरा मद जांके। साधु असाधु विवेक न तांके।।
सब पापन कर यह त्रय मूला। विविध कलेश देत सम शूला।।

जिसको धन-मद, युवा अवस्था का मद और मदिरा-पान का अभिमान है, उस पुरुष को ही सज्जन-दुर्जन का विचार नहीं होता है। यह तीन प्रकार का अभिमान ही सम्पूर्ण पापों का कारण है तथा यही अभिमान अनेक प्रकार के शूल के समान दुखों को देनेवाला है। **यह त्रय मद तुमने उर धारे। वर्षा तप दुख विविध सहारे।।**

पंडित चतुर विवेकी सोई। यह त्रय मद जाके नहि होई।।

हे नलकूबर मणिग्रीव, ये तीन प्रकार के अभिमान तुमने हृदय में धारण किये थे, इसलिये ही वर्षा, धूप तथा वायु आदिक नाना प्रकार के दुखों को तुमने सहन किया है। पण्डित तथा चतुर और ज्ञानवान वही है, जिसमें धनादिक के तीन प्रकार का अभिमान नहीं हैं। अब तुम हमारे भक्त हुए हो, अत: मेरी भक्ति के प्रभाव से तुम्हारे सम्पूर्ण दुख नष्ट हो गये हैं। मेरी भक्ति जिस पुरुष के हृदय में आती है, वह पुरुष बारंबार जन्म को प्राप्त नहीं होता है।

दामोदर के वचन सुन, करके दण्ड प्रणाम। कर प्रदक्षिणा यक्ष सुत, गये जनक के धाम।।

श्रीकृष्ण के कमर में रस्सी बंधी हुई है, ऐसे परम दयालु भगवान के वचनों को सुनकर, कुबेर के पुत्र उन्हें साष्टांग प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर अपने पिता के घर को चले गये।

भगवान ने कहा- कोई बात नहीं, कैसे भी जीव सन्तों के सम्मुख आ जाय, उसका बेड़ा पार ही है। सन्तों का समागम, राग से, द्वेष से, क्रोध से, सद्भावना से, दुर्भावना से, कैसे भी किसको हो जाय फिर उसके उद्धार में कोई संदेह नहीं रह जाता।

तब बोले हरि करुनाधाम। पूरन हौहिं तुम्हारे काम। नारद प्रीतम भक्त हमारौ। तुमपर कियौ अनुग्रह भारौ।।
मो भक्तन कौ यहै सुभाउ। जैसे उदित होत दिनराउ।
सहजहिं निबिड़ तिमिर कौं हरै। अवर बहुत मंगल बिस्तरे।।
पुनि बोले हरि सब गुन-सींव। हे नलकूबर। हे मनिग्रीव।
अब तुम गवन भवन कौं करौ। मो माया डर तैं जिनि डरौ।।

जब भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनों ने भगवान की परिक्रमा की और बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद ऊखल में बँधे हुए भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर उन लोगों ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

टूटत तरु अति सुघर देवसुत प्रकट भये तहँ। करत प्रकाशित दिशनि नम्र ह्वै आये हरि जहँ।।
नलकूबर मणिग्रीव धनद सुत बुद्धि गँवाई। पायो नारद शाप भये तरु दोऊ भाई।।
कृष्ण दरशतैं दुख कटे, विषय वासनाहू जरी। तनु पुलकित गद्गद् गिरा, दामोदर विनती करी।।

भगवान की योगमाया ने वृक्षों के गिरने की ध्वनि को तब तक बाँधे रक्खा, रोके रक्खा जब तक की अपनी बात पूरी करके नलकूबर और मणिग्रीव वहाँ से चले नहीं गये अन्यथा वृक्षों के गिरने की आवाज से लोग एकत्रित हो जाते और नारद का अनुग्रह अधूरा रह जाता इसलिये योगमाया ने वृक्ष-भंग की ध्वनि को तब तक के लिये बाँधे रक्खा, रोके रक्खा जब तक कि नलकूबर-मणिग्रीव का उद्धार नहीं हो गया।

यक्ष पुत्र बोले, हमने यहाँ बृजमण्डल में होनेवाले कितने ही उत्सवों का आनन्द लिया। गोपों के सोलह प्रकार के संस्कारों में से कितने ही हमारे सामने हुए। अनेकों यज्ञ हमारे समीप हुए, बहुतों से उपनयन संस्कार, नामकरण एवं विवाह आदि हमारे सामने हुए। वर्षों से यह आनन्द की गंगा हमारे सामने बहती आई। जगत् जननी माँ दुर्गा के नवरात्रों का महोत्सव, रामनवमी उत्सव, अनेकों बार हमारे सामने मनाए गए। अनेक शिवरात्रि के पर्व, दीपावली के पर्व मंगलमय ढंग से मनाए गए। गोप-गोपियों का नृत्य गायन सभी उत्सव उत्साह से भरपूर होने के कारण भली प्रकार मनाए गए। रंग रंगीला होली का महोत्सव भी

अनेकों बार मनाया गया। नलकूबर और मणिग्रीव ने न चाहते हुए भी अपने पिता के धाम के लिए प्रस्थान किया।

भक्त-परम्परा के अनुसार आगे चलकर, नलकूबर और मणिग्रीव गोलोक धाम में स्निग्ध और मधुकण्ठ बने। वे दोनों वहाँ कृष्ण-लीला में नित्य कीर्तन किया करते हैं।

यशोदा ने कन्हैया को बाँधा क्या, उन्होंने उन्हें एक नया नाम ही दे डाला- दामोदर। दाम माने रस्सी है बँधी उदर= कमर में जिसके वह है- दामोदर। यह नाम कृष्ण की भक्ति-वश्यता को प्रदर्शित करता है। भक्त-मण्डली में भगवान् का यह नाम अतिशय प्रिय है।

वृक्षों के गिरने से बड़ा भयंकर शब्द हुआ। उसे सुनकर नन्द आदि गोप वज्रपात की आशंका से दौड़कर वहाँ आ पहुँचे।

उन लोगों ने देखा कि अर्जुन के दोनों विशाल वृक्ष धराशायी हो गये हैं। उनके गिरने का कारण रस्सी से बँधे उलूखल को खींचता हुआ बालक, यद्यपि उनके सामने ही था। किन्तु वे उसे न जानकर भ्रम में पड़ गये। वे परस्पर आशंका व्यक्त करते हुए कहने लगे- यह किसका कार्य है, ऐसी आश्चर्यजनक दुर्घटना कैसे घट गई? यह उत्पात कैसे हुआ?

विना बातं विना वर्ष विद्युत्प्रपतनं विना। विना हस्तिकृतं दों केनमौ पातितौ द्रुमौ?

इतने बड़े वृक्ष और तूफान आया नहीं, जोरकी आँधी आयी नहीं, वर्षा हुई नहीं, अकस्मात बहुत जोरकी बिजली नहीं गिरी, मतवाले हाथी भी नहीं आये कि झकझोरकर गिरा देतें। यह घटना घटी तो कैसे? गिराया तो किसने गिराया?

दोनोंमें से एक भी वृक्ष खोखला नहीं था। खोखला भी होता तो टूटकर गिरता। इसकी जड़ें मोटी थीं सुदृढ़ थीं, पर्याप्त गहराई तक गईं थी और दूर-दूर तक फैली हुई थीं। अर्जुन वृक्षकी जड़ें तो पाषाणका भी भेदन करके भूमिमें प्रवेश करती हैं। कोई जड़ सड़ी नहीं थी। किसीमें कीट लगने अथवा अन्य किसी रोगका लक्षण नहीं था।

सब समुझ्यो इन तरुन को, घोर रोर चहुँ व्याप। इनहिंन प्रबल निपात सों, गयो सकल ब्रज काँप।।
वर्षा, वायु कछू कहुँ नाहीं। कारण पतन समुझि किमि पाहीं।।
याकी ओर ध्यान नहिं आयो। सबहिंन श्याम दरस मन लायो।।

किन्तु वे लोग इसका कारण नहीं समझ पाये कि न तो पानी बरस रहा है न आँधी चल रही है फिर वृक्ष गिरे तो कैसे गिरे। किन्तु इस समय इस ओर ध्यान न जाकर सबका ध्यान श्रीकृष्ण के दर्शन की ओर था।

वृक्ष पतन रव सुनत नन्द गोपादिक धाये। बँधे उलूखल कृष्ण करत क्रीड़ातहँ पाये।।
कहें परस्पर गिरे वृक्ष नहिँ आँधी पानी। बालनि सच सब कही बात काहू नहिँ मानी।।

वहां कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा- अरे, यह काम तो इसी कन्हैया का है। यह दोनों वृक्षों के बीच में से होकर निकल रहा था। ऊखल तिरछा हो जाने पर दूसरी ओर से इसने उसे खींचा और वृक्ष गिर पड़े। हम लोगों ने तो इनमें से निकलते हुए दो पुरुषों को भी देखा है। परन्तु गोपों ने बालकों की बात न मानी। वे कहने लगे- एक नन्हा-सा बालक इतने विशाल वृक्षों को उखाड़ डाले, यह कभी सम्भव नहीं है। किसी-किसी के चित्त में श्रीकृष्ण की पहले की लीलाओं का स्मरण करके सन्देह भी हो आया।

पतित द्रुमों का शब्द सुन, नन्दादिक आभीर। वज्रपात का मान भय, गये नदी के तीर।।
गिरे नगन को देखके, देख कृष्ण को तात। बालन से पूछत भये, दुखितेन्द्रिय मन गात।।

तहाँ गिरे हुए वृक्षों को देखकर, तथा अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण को भी वहाँ देखकर, इन्द्रिय, मन, तथा शरीर से दुखित हुए नन्दराज जी बालकों से पूछने लगे।

कहो तात किस विटप गिराये। बिना प्रचंड पवन के आये। किस बांधे प्रिय पुत्र हमारे। जाना चाहित सो यमद्वारे।।

नन्दराज बोले- हे प्रिय बालकों, कहो, ये वृक्ष किसने गिराये हैं, क्योंकि महान् वेग से वायु के आये बिना, अपने आप तो ये वृक्ष गिरनेवाले नहीं थे और मेरे पुत्र श्रीकृष्ण को ऊखल से किसने बाँधा हैं? जिसने बाँधा हैं, क्या वह यमलोक जाना चाहता है? बालक बोले- हे बाबा नन्दराज, इस श्रीकृष्ण ने दूध के बासन को फोड़ा था, इस कारण श्रीकृष्ण को यशोदा ने बाँधा है। ऊखल को खेंचते हुए इन वृक्षों के बीच जब ही ये गये, तब ही ऊखल टेढ़ा हो गया।

इसने बल कर खैंचा जबही। पतित भये यह युग द्रुम तबही।।

तिनसे दो नर उत्पन भय हैं। याकी स्तुति प्रणाम कर गय हैं।।

जब श्रीकृष्ण ने ऊखल को जोर से खेंचा, तब ही ये दोनों वृक्ष गिर गये। फिर तिन वृक्षों से दो पुरुष उत्पन्न हुए। वे इस श्रीकृष्ण की स्तुति तथा प्रणाम करके चले गये हैं।

द्वै शिशु उन चलि तबहिं बतायो। या कान्हहिं ने इनहिं गिरायो।।

प्रगटत तरुन पुरुष द्वै पाये। जिन इन कान्हहिं शीश नवाये।।

ज्योति रूप उन अस्तुति कीन्ह्यों। कनुवाँ-चरनन दृग झरि दीन्ह्यों।।

विस्मित पुनि पुनि सौंहन खायो। बाबा झूठ न तुमहिं बतायो।।

गोपन उन मान्यो नहीं, छोटो सो नँदलाला। इन गिराय कैसे दियो, दोउन द्रुमन बिशाल।।

नन्द बिकल उन बन्धन छोर्‌यो। हरि रस-चितवनि उन रस घोर्‌यो।।

बिप्रन गत लीलन अनुमान्यो। याको कछु स्वरूप सन्धान्यो।।

परिवारवालों ने सोचा अर्जुन के पेड़ों की पुरानी पीड़ इतनी मोटी थी कि चार व्यक्तियों के हाथों की पकड़ में भी नहीं आती थी। इतना मोटा तना किस प्रकार से गिरा यह बात किसी की समझ में नहीं आ रही थी। किसी ने यहाँ साँड़ों को लड़ते भी नहीं देखा। साँड़ों में भी इतना बल कहाँ होकता है जो इतने बड़े पेड़ों को गिरा सके।

निकर न पाई ऊखल मोहन जोर लगावे। पीछे मुड़ के लखा पुन: निज बल अजमावे।।

तीन बार ऊँ किया पेड़ उभ चर-चर बोलें। फट फट टूटी जड़ें तरू धरनी को झोले।।

छोटे बालकों ने बताया, झटका लगाने पर भी जब ऊखल नहीं निकला तो मोहन ने और जोर लगाया। लाला ने पीछे मुड़कर देखा और अधिक बल लगाकर अपने बल को अजमाने लगा। नन्दलाल ने तीन बार जोर लगाते हुए ऊँ की आवाज निकाली और तभी दोनों पेड़ चर चर बोलने लगे। फट फट करते हुए जड़ें टूट गईं और पेड़ धरती की ओर झुक गये। बालकों ने कहा, पेड़ों को गिरते हुए देखकर हम सब भय के मारे दूर भाग गये। हम में से कोई भी नहीं ठहर पाया। भागते भागते हम लोग चिल्लाते हुए कहने लगे, अरे कन्हैया पेड़ गिरनेवाले हैं तुम भी भाग जाओ। कुछ देर आगे जाकर हम लोगों ने पीछे मुड़कर देखा कि अर्र धम की आवाज हुई और तभी दोनों पेड़ धराशायी हो गये। तब हमें ध्यान आया कि बेचारा कन्हैया हमारी तरह कैसे भागता क्योंकि वह तो ऊखल के साथ बँधा हुआ था इसीलिए वह दोनों पेड़ों के बीच में दब गया।

हम ऊंचे स्वर रोवते, देखी अद्‌भुत बात। तरुवन सों द्वै देवता, नन्द सूनु ढिंग आत।।

बालकों ने कहा, हम लोगों ने ऊँचे स्वर से रोते हुए एक आश्चर्यजनक बात देखी। दोनों पेड़ों में से दो देवता निकले और वे हाथ जोड़कर नन्दलाल के समीप आ गये। कन्हैया के सखाओं ने बताया, देवताओं ने अपने हाथ जोड़कर श्याम सुन्दर के चरणों में सिर झुकाया और कुछ बोले भी। हम लोग दूर खड़े थे इसी कारण हमें उनकी बात सुनाई नहीं पड़ी। हमें ऐसा

लगा कि वे धीरे धीरे बात कर रहे थे। श्याम सुन्दर मुस्कराए और अपना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और दोनों आकाश मार्ग से चले गए और थोड़ी समय में ही अन्तर्ध्यान हो गये।

परिवार के लोगों ने बालकों की बात सुनी परन्तु छोटे से कन्हैया ने इतने बड़े पेड़ गिरा दिये यह बात किसी की बुद्धि में नहीं समाई। बड़े गोपों ने विचार किया यह बालक बहुत छोटी आयु के हैं इसलिए बालकों जैसी बातें कर रहे हैं। एक गोप ने कहा, आप मानो या न मानो बालकों की बात सत्य मालूम पड़ती है। बालकों का हृदय निर्मल होता है इसलिए वे झूठ और कपट का व्यवहार नहीं करते। हमारा नीलमणि इतना सुन्दर, इतना मोहक है कि उसे मुनीगण भी हाथ जोड़ते हैं और यह चञ्चल चाहे जिससे बातें करने लगता है; किंतु वृक्ष क्या उन देवताओंने गिराये होंगे? कोई राक्षस, दैत्य, दानवका तो यह उत्पात नहीं है।

नन्द बोले- गोकुलमें ये दोनों वृक्ष देव मन्दिर के समान थे। इन्हें हमारे पिताने महर्षि शाण्डिल्यके आदेशसे लगाया था। ये गोष्ठके रक्षक थे, सबका कल्याण करते थे। गोपियाँ इनका पूजन करती थीं। इनसे मनौती करती थीं और उनकी कामनाएं पूरी होती थी। इनका गिरना बहुत अशुभ हुआ। किसी बड़े उत्पात का यह सूचक है। गोकुलमें-पूरे महावनमें कोई पक्षी, काक तक किसी पदार्थमें बश्चु नहीं डालते। श्वान, श्रृंगाल, मार्जार कोई मुख नहीं डालेगा यज्ञीय पदार्थोंमें और न कपि कुछ उठावेंगे। इनमें कोई वहाँ नहीं था। कोई वहाँ जायगा भी नहीं। ये सब नीलमणिके ही साथ लगे रहते हैं सबेरेसे सायंकाल तक। जब तक कन्हाई यहाँ है, ये लकुट लेकर भगानेसे भी नहीं भागेंगे। सब वहाँ एक साथ पहुँचेंगे, जब श्याम वहाँ जायगा।

बालक के सुन बचन तब, तिनके हृदय न आय। नन्द तनुज को खोल कर, निज उर लिया लगाय॥
मुख चूमत कर फेर सिर, उपजा प्रेम महान। यशमति को फटकार दे, दिये द्विजन को दान॥

श्रीकृष्ण के मुख को चूमकर तथा पुत्र के सिर पर हाथ फेर, नन्दराज के मन में महान् आनन्द उत्पन्न हुआ। तब यशोदा को डाँट देकर फिर नन्दराय जी ब्राह्मणों को दान देने लगे।

कोपिन तोमें मति नहिं राई। सुतको बांधत दया न आई॥ गो गोरस गृह सब लुट जावो। पर मत सुत पर हाथ उठावो॥
ऐसा कीन पुना तुम जबही। देश निकाला द्योंगा तब ही॥ ले प्रिय सुत को गोद खिलावो। भूखा होगा दुग्ध पिवावो॥
यशमति लज्जित होय के, लिया पुत्र को गोद। मन में बहु पछतावती, उपजा निजपर क्रोध॥

गोपी यशोदा तो प्रेम का समुद्र हैं और भगवान कृष्ण भी तो इनको परम प्रिय हैं। इनका श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँधना, ऐसा कठोर स्वभाव कहाँ हो सकता है? किन्तु यहाँ माता के कठोर स्वभाव में भगवान की इच्छा ही बलवान थी।

यशोदा बोली, मेरे कन्हैया को मेरी भी उम्र लग जाये। मेरे बालक का बाल भी बाँका न हो। ये सदा मेरी आँखों के सामने खुशहाल बना रहें। नन्द भवन की ओर आनेवाले हरेक गोपों के मन में एक ही भावना थी कि हमारा कन्हैया सकुशल हो। जब तक उन्होंने नन्दभवन में आकर अपनी आँखोंसे कन्हैया को सकुशल देख न लिया तब तक सभी के प्राण अटके रहे।

माता यशोदा विलाप करने लगीं, बोलीं कि अब मेरे अवगुणों का बखान करोगे या कन्हैया को भी खोजोगे। सब ग्वाल-बाल श्यामसुन्दर की खोज करने लगे। चारों तरफ से उस वृक्ष को टटोलने लगे। एक छोटा-सा गोप बालक चिल्लाने लगा, बाबा। कान्हा का पटुका मुझे दिखाई दे रहा है। देखो, उन पत्तों के नीचे उसका पीत पट दिखाई दे रहा है। सभी ग्वाल उसी ओर झुक-झुक कर देखने लगे। कान्हा पत्तें के झुरमुठ में बैठे मुस्कराने लगे। गोप उसी ओर दौड़े और श्यामसुन्दर को निकालने का प्रयास करने लगे। गोप जैसे ही हाथ बढ़ाते, श्याम और पीछे सरक जाते और यही क्रम बहुत देर तक चलता रहा। माता यशोदा तथा अन्य व्रजांगनाएँ दुखी हो रही थीं, अश्रुपात कर रही थीं। गोप प्रयासरत थे। कन्हैया को उस वृक्ष के जाल से मुक्त कराने के लिये सतत प्रयत्न कर रहे थे और पत्रावली के मध्य बैठे हुए श्यामसुन्दर आनन्दित हो

रहे थे। विचार कर रहे थे कि संसार की निवृत्ति के लिए कैसा प्रयास कर रहे हैं? अन्त में सभी गोपों ने मिलकर उस वृक्ष को उठाने का उपक्रम किया तो यशोदा घुटनों के बल उसके नीचे घुसकर कृष्ण को उठा लाई। उसकी अवस्था बड़ी विलक्षण हो गई थी- नेत्रों से निरन्तर अश्रुपात हो रहा था, वेग से श्वासं चल रही थी, शरीर में कम्पन्न हो रहा था और वो अपने लाल के अंग-प्रत्यंगों को बार-बार टटोल कर देख रही थीं कि कहीं चोट तो नहीं लगी। आकाश में घिरे देवगण मन्द-मन्द मुस्कराकर यशोदा के भाग्य की सराहना कर रहे थे। इसी बीच मधुमंगल भी आ पहुँचा- वह ऋषिकुमार। यशोदा चिल्लाकर बोली- अरे खोलो मेरे लाल को, तुम लोग खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? मधुमंगल कोई पहले जन्म का योगी-यति, तपस्वी रहा होगा, मैया को लगा- मधुमंगल के आ जाने से सब मंगल हुआ वर्ना मैं अपने लालसे हाथ धो बैठती। मधुमंगल बोला- अब तुम ही खोलो इसे, क्या हमसे पूछकर बाँधा था? बाँधते समय नहीं सोचा कि इतने कोमल शरीर को इस तरह बाँधा जाता है।

बृजपति ने घर में आकर प्रांगण में देखा कि अर्जुन के दोनों वृक्ष जड़ से उखड़कर ढेर पड़े हुए है। वे सोचने लगे ऐसे ऊंचे और बड़े पेड़ कैसे गिर गये। दोनों अर्जुन वृक्षों के बीच में बैठा हुआ श्याम मुस्करा रहा था। कन्हैया को कुशल देखकर नन्दराय जी की जान में जान आ गयी। नन्दराय ने कन्हैया को उठाकर गोदी में लेना चाहा परन्तु कमर में बँधी हुई रस्सी ने अटकाव लगाया तब उन्होंने उदर पर बँधी हुई रस्सी को खोला और अपने श्याम को छातीसे लगा लिया।

नन्दबाबा ने देखा उनका प्राणप्रिय कन्हैया रस्सी से बँधा हुआ ऊखल घसीटता जा रहा है। उसे देखकर वे हँसने लगे और जल्दी से जाकर रस्सी की गाँठ खोल दी। नन्दबाबा ने भर्त्सना की माट फोड़ने की छोटी सी घटना को देखकर बालकृष्ण को बाँधा जाना क्या उचित था? ये तो बाल स्वभाव है। बालकों की वृत्ति चंचल होती हैं। यदि तुमसे पूछे बिना माखन खाया तो क्या अपराध किया? बन्दर पक्षियों को माखन खिलाना तो पुण्यकार्य है। यह तो बालक के अच्छे संस्कारों का प्रतीक है।

नन्द बाबा के हँसने का कारण यह है कि कन्हैया कहीं यह सोचकर डर न जाय कि जब माँ ने बाँध दिया, तब पिताजी आकर पीटने न लगें। हँसकर नन्द ने लाला को निर्भय बना दिया। माता ने बाँधा और पिता ने छोड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण की लीला से यह बात सिद्ध हुई कि उनके स्वरूप में बन्धन और मुक्त की कल्पना करनेवाले दूसरे ही हैं। वे स्वयं न बद्ध हैं, न मुक्त हैं। नन्दजी ने शीघ्र ब्राह्मणों को आमंत्रित किया और स्वस्तिवाचन आदि कराकर उन्हें बहुत-सा दान दिया।

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रजराज नन्दजी ने अपने पुत्र को ओखली में रस्सी से बँधा देखा तथा यह भी देखा कि वह उस ओखली को खींच रहा है तो हँसते हुए उन्होंने अपने लाला के बन्धन को खोल दिया।

आज नन्द बाबा को अवसर मिला। वे लाला से कहने लगे- देख, लाला, तेरी मैया ने बाँधा था और मैंने तुझे खोल दिया। अब बता तूँ किसका बेटा है? लाला बोला,- बाबा, अब तक तो मैं मैया का बेटा था किन्तु आज से मैं आपका बेटा हूँ।

इसके पूर्व जब कभी नन्द बाबा पूछते थे तो कन्हैया का उत्तर होता था- मैं मैया का बेटा हूँ। किन्तु आज नन्द बाबा की इच्छा पूरी हो गई। नन्द बाबा यशोदा को डाँटने लगे- लाला भले ही गलती करे, किन्तु इसे तूँने बाँधा ही क्यों? बाँधते समय तुझे दया भी न आई?

बँधे बिलोके श्याम नन्द बाबा ढिँग आये। दाम खोलि मुख चूमि प्रेमतैं हृदय लगाये।।
बाबा बोले-वत्स, गोद मैया की जा अब। मैया मारे मोइ न जाऊँ बोले- हरि तब।।
यशुमति मन सन्ताप अति, तब मम मति मारी गई। नहिँ सुत आयो अब तलक, सुमिरि मातु व्याकुल भई।।

नन्दबाबा ने अपने लाला से पूछा, अरे बेटा। मुझे बताओ तो तुम्हें ऊखल से रस्सी के साथ किसने बाँधा। मेरे कन्हैया को ऊखल के साथ बाँधकर किसने दुख दिया। कन्हैया ने अपने मुख से अपनी माता की करनी का बखान नहीं किया।

साथ खेल रहे छोटे बच्चों ने नन्दबाबा से मैया के द्वारा की गई क्रोध पूर्ण चेष्टा को बढ़ चढ़कर बताया। अरे बाबा, मैया ने ही कुपित होकर लाला को ऊखल से बाँध दिया। अपने महर की गोदी में अपने लाल कन्हैया को सकुशल देखकर मैया के जी में जी आया। चारों तरफ इकट्ठी भीड़ ने उच्च स्वर से कन्हैया का जयकारा लगाया। ईश्वर ने हमारी विनय सुनकर लाल को सकुशल रखा। नन्दनन्दन को प्रसन्न चित्त देखकर पुरुष और स्त्रियाँ सभी हर्षित हुए।

यशोदा ने सोचा आज सभी उसे दोषी बतला रहे हैं। सभी डाँट रहे हैं। उसे चोरी की आदत पड़ती जा रही है। उसे छुड़ाने के लिये ही मैंने स्नेहवश उसे बाँधा था।

नन्दबाबा यशोदा से बोले- अब मेरा कन्हैया मेरे पास ही रहेगा, मैं उसे तुम्हारे पास नहीं जाने दूँगा। नारायण भगवान की कृपा से बड़ी मनौतियों के बाद वृद्ध अवस्था में जैसे तैसे एक पुत्र प्राप्त हुआ। उसीको तुम नित्य प्रति डाँटती फटकारती रहती हो। क्या हुआ जो श्याम सुन्दर ने माखन की मटकियाँ तोड़ दीं, दूध, दही, फैलाकर बन्दरों और पक्षियों को इकट्ठा कर यदि मेरा लाल स्वयं भी कुछ माखन खा लेता है तो तेरे घर में किस बात की कमी आ जाती है। नौ लाख गैया दूध दे रही हैं, एक नन्हा बालक कितना सा लुटा पायेगा। कुम्हार के घर में जितनी रखी हैं वह सबकी सब तेरे यहाँ मँगवाकर रख सकता हूँ एक दो मटकियों के टूटने पर कौनसा बड़ा नुकसान हो गया। अरी महर, वृद्धावस्था में तुमको यह प्रथम पुत्र प्राप्त हुआ है इसलिए बालक का लालन पालन करना तुम्हें नहीं आता। मेरा लाला थोड़ा सा नुकसान करता है तो तुम उसके ऊपर क्रोधित हो जाती हो। कभी आँखे तरेरती हो कभी लठिया दिखाती हो कभी थप्पड़ मारती हो। जिस बालक के लिए हम सारी उम्र तरसते रहे उसीको तुम कठोर शब्द बोलकर ताड़ना देती रहती हो।

नन्दबाबा की बात सुनकर यशोदा मैया की आँखों में आँसू बहने लगे। दीनता पूर्वक बोली, हे महर, मेरे अपराध को क्षमा करो। मेरा मन इस समय बहुत दुखी है। यदि ये पेड़ कहीं कन्हैया के ऊपर गिर जाते और मेरे लाल को थोड़ी सी भी चोट लग जाती तो मैं जीते जी मर जाती। मेरी आँखों का प्रकाश मेरा मन मोहन मुझे और कहाँ मिलेगा।

यशोदा मैया मन से पश्चाताप करती हुई बोली, मेरे यह हाथ टूट क्यों नहीं गये। जिन हाथों ने लाला को ऊखल के साथ बाँधा वो मेरी उँगलियाँ जल क्यों नहीं गयीं जिन्होंने श्याम के उदर में फंदा डाला। मेरी ये आँखें फूट क्यों नहीं गयीं जिनसे मैंने मनमोहन को तरेर कर उसे भय दिखाया। मेरे मुख की जीभ जल क्यों नहीं गई जिससे मैंने प्यारे लाल को कठोर वचन सुनाये।

बार-बार बुलाने पर भी आज लाला मैया के पास नहीं जा रहा है। वह कह रहा है कि मैं तेरा बेटा नहीं, बाबा का बेटा हूँ। बेटे की बात को सुनकर यशोदा ने सोचा कि गोपियों और बालकों ने रो-रोकर मना किया था फिर भी निष्ठुर बन कर मैंने लाला को बाँध दिया अत: वह रूठ गया है। वे रोने लगीं कि लाला कब मेरी गोद में आयेगा? मैया का रोना कन्हैया को बर्दाश्त न हुआ।

पास खड़ी हुई माता ने कन्हैया की बात सुनी तो दु:ख के मारे उसकी आँखों में आँसू बहने लगे। रोती हुई घर के भीतर आई तो सारा घर काटने को दौड़ताथा। सारा घर, धन धान्य एवं सुखद वस्तुओं से भरा हुआ होने पर भी कन्हैया के बिना मैया को खाली खाली लगता था। लाला के बिना सारा घर सूना नीरस भारी दुख देनेवाला महसूस हो रहा था। यशोदा मैया पश्चाताप करके अपने आप को कोसने लगी। रसोई घर में उफनते दूध को श्याम सुन्दर के लिए ही बचाने गई थी न, श्याम सुन्दर को गोदी से उतारकर उसे नाराज कर दिया। अब उसके लिए बचाया हुआ दूध खुद ही लेकर पी लिजो। जिस कन्हैया के लिए माखन निकालने की उतावली की थी वही श्याम सुन्दर तुझसे रूठ गया है अब तुम्हारा जीना भी क्या कोई जीना है। यशोदा अपने आप को कोस रही हैं। यह जीवन जिसके लिए समर्पित है वह बेटा ही मुख से नहीं बोलता। मेरे द्वारा किया गया निष्ठुरता का व्यवहार ही मेरे आगे आँखें खोल रहा है अर्थात् आड़े आ रहा है। एक मिट्टी के मटके के लिए

मैंने अपने परम धन को खो दिया है। मेरा हृदय भी कैसा पत्थर है जिसके कठोर व्यवहार के कारण मेरा प्यारा बेटा रोया। मेरे हाथ टूट क्यों नहीं गए जिन्होंने श्याम सुन्दर को ऊखल से बाँधा। यह सब सुनकर कन्हैया नन्दबाबा से बोले, मुझे गोदी से उतारकर दूध की रक्षा के लिए मैया रसोई घर में गई थी। मेरे द्वारा माखन के माट के टूटने पर मैया को क्रोध आया। अरे बाबा, मुझे मैया की याद आ रही है। मुझे इस समय भूख लगी है और वह बाबा के कन्धे से उतर कर धीरे-से गोपियों के बीच से होता हुआ मैया की गोद में आ गया और अपने पीताम्बर की छोर से मैया की आँखों से आँसू पोछने लगा।

यशोदा ने सोचा- मेरा कन्हैया कितना सयाना है। वे विनती के स्वरो में कहने लगी- लाला, मैंने तुझे बाँध कर अच्छा नहीं किया था। इसे तुम अपने मन में मत रखना।

कन्हैया ने माता के आँचल को खींचते हुए कहा- मेरी प्यारी-प्यारी मैया, मैं सब कुछ भूल सकता हूँ किन्तु तेरा प्यार कभी नहीं भूल पाऊँगा। मैया, मैं यह कैसे विस्मृत कर पाऊँगा कि कभी तूने मुझे अपने प्यार के बन्धन में बाँधा था।

परिवारिक जन सोचने लगे कि हम लोगों की समझ में यह बात नहीं बैठ रही है कि ये बड़े बड़े अर्जुन के पेड़ किस प्रकार धरती पर गिर पड़े। न तो इस समय कोई बड़ा अन्धड़ आया न ही भूकम्प आया फिर से धरती पर कैसे गिर पड़े।

यह तो गोकुल की एक मुख्य लीला है, जिसने कृष्ण को भक्त-मण्डली में दामोदर इस नाम से प्रसिद्ध कर दिया। ज्ञानी ज्ञान के बल पर ईश्वर का साक्षात्कार तो कर सकता है, किन्तु उसके ज्ञान में यह शक्ति नहीं कि वह ईश्वर को बाँध सके।

१४) कृष्ण की गोकुल में अन्य बाल लीलायें-

१) सुखिया मालिन का प्रसंग- भगवान श्रीकृष्ण प्रेमाधीन हैं और ये जितनी लीलायें हैं, सब उनकी प्रेमाधीनताका ही सुन्दर चित्रण है। लेकिन यह ऐसी प्रेमाधीनता है कि अब वे किसी जाति-पाँतिका भेद नहीं करते। स्त्री-पुरुषका भेद नहीं करते। विद्वान-मूर्खका भेद नहीं करते, बूढ़े-बालकका भेद नहीं करते। जो भी कोई इनसे प्रेम करे उसीके ये अधीन हो जायँ। यह इनका प्रेमाधीनताका स्वभाव है, स्वरूप है। अपने सारे ऐश्वर्यको भूलकर, अपनी भगवत्ताको एक और रखकर प्रेमाधीन बनकर उसे सुख दे। यह इनका स्वभाव है। वे प्रेमी भक्त मात्रके वशीभूत हैं। केवल किसी गोपीके लिये ही नहीं। नीच जातिका हो, चाण्डाल हो, वह भी यदि इनसे प्रेम करना चाहे तो उसका चाण्डालत्व, नीचत्व बाधक नहीं होता। यह उसके अधीन हो जाते हैं।

ब्रजमहँ काछिनी हती एक सुखिया हरिप्यारी। कृष्ण प्रेममहँ रहति सत पगली मतवारी।।
हरिहियकी सब जानि उपेक्षा भाव दिखावें। यों उत्कण्ठा तासु दिनहिं दिन अधिक बढ़ावें।।
जब अति उत्कण्ठा बढ़ी, सदय साँवरो ह्वैं गयो। अभिलाषा पूरन करी, सुखियाकूँ अतिसुख दयो।।

किसी दिन कोई फल बेचनेवाली आ जाती तो घर से अनाज लेकर फल लेने दौड़ पड़ते अनाज तो छोटे-छोटे हाथों में से मार्ग में ही गिर जाता, किन्तु वह फल बेचनेवाली उनके दोनों हाथों को फलों से भर देती। समस्त उपासना तथा कर्मों के फल दाता प्रभु उस बेचनेवाली से स्वयं फल लेते, उसकी टोकरी स्वयं रत्नों से भर जाती।

व्रज में एक मालिन रहती थी। उसका नाम था सुखिया। सुखिया की प्रबल इच्छा थी कि वह कन्हैया को फल दे। इसलिए वह नन्द बाबा के घर के सामने चक्कर काटती हुई रोज बोलती थी- फल ले लो, फल ले लो। प्रतिदिन की यही उसकी आदत थी। दिन बीते, महीने बीते। उसकी साधना पूरी हुई। एक दिन जब सुखिया नन्द बाबा के द्वार पर आवाज लगा रही थी तभी कन्हैया घर के भीतर से हाथ पसारे दौड़ा आया- दे दो मालिन हम को फल। छोटा-सा सुन्दर साँवलासा बालक। शरीर पर पीताम्बर शोभित था। कमर नीली काछनी से कसी थी। सिर पर मयूर पिच्छ लहरा रहा था। आँखों में काजल और पावों में पैजनी। उन अशेष-शेखर को मैया ने इस प्रकार सजाया था मानों वसन्त में बहार आ गई हो। सुखिया

ने कन्हैया को देखा तो ठगी-सी देखती ही रह गई। यशोदा मैया ने इस दृश्य को देखा। उन्होंने कहा- देखना मालिन, कहीं हमारे लाला को नजर मत लगा देना।

एक समय में मालिनी, नन्द द्वार में जाय। बोली दोनों भ्रात को, तिन का नाम बुलाय।।
हे माधव हे राम उदारे। आँब लाई हूँ हेत तुमारे।। बहुत पके मीठे अति लाला। सुन्दर कलमी पाल रसाला।।
आवा बेग लीजिये भैया। ठाड़ी हूँ बल जावे मैया।। हुकम होय तो अन्दर आवूँ। हुकम होय ठाड़ी रह जावूँ।।
ठाड़ी रह हम दोनों आवें। आज तुमारे फल को खावें।। बोनी कर तूं आज हमारी। उत्तम बिक्री होगी थारी।।

कृष्ण बोले- मालिनि, तुम बाहिर ही खड़ी रहो, हम दोनों भाई बाहिर ही आते हैं। हम आज तुम्हारे फलों को खावेंगे। आज तू पहिले हमारी ही बोहिनी कर, जिससे तुम्हारे फलों की अच्छी बिक्री होगी।

फल परदाता सर्व के, नित्य तृप्त सुख रास। गोदी भर कर धान की, गमने मालिनि पास।।

सब जीवों के कर्मों के फल को देनेवाले, नित्य-तृप्त और सुख की खान भगवान् कृष्ण, धान की झोली भरकर मालिनी के पास आ गये।

तिसने ले अँन आँब से, भरदी तिनकी गोद। घर जा देखा धान्य सब, रत्न भये भा मोद।।

कन्हैया मालिन के सामने हाथ पसारे खड़ा था। मालिन कुछ और क्षणों तक कृष्ण की बाँकी झाँकी का आनन्द लेना चाहती थी अत: उसने लाला को बातों में फँसाये रक्खा रहा अत: बोली- लाला, तुम मेरे से फल लेना चाहते हो पहले इनका मोल तो चुकाओ। बिना मूल्य दिये इतने सुन्दर फल कैसे प्राप्त कर सकते हैं? कन्हैया ने कहा- अरी फलवाली, मोल किस वस्तु का नाम है। मोल की विषय में तो मैं जानता ही नहीं। तू कैसी है जो फल के बदले मोल माँगती है मेरी मैया मुझे नित्य प्रति दूध, दही, माखन देती हैं। वह इसके बदले में तो कभी मोल नहीं माँगती। भोले कन्हैया ने कहा, फिर तू फल के बदले मोल क्यों मांगती है? फलवाली ने कहा, अरे लाला। तुम नित्य प्रति अपनी मैया की गोदी में बैठते हो। अपने प्यारे मुखड़े से मैया मैया कहते हो। यदि तुम मेरी गोदी में बैठकर अपने नन्हे प्यारे मुख से मुझे भी मैया कहकर बुलाओ तो मैं भी तुम्हारी मैया की तरह फलों का मूल्य नहीं लूँगी।

फल चाहो नँदलाल प्रथम मोल चुकावो। मोल बिना सुन्दर फल इतने कैसे पावो।।
मोल किसे कहते हैं बोलो मैं नहिं जानूं। बिन जाने कैसे कुछ तेरे निकटाई आनूँ।।
मैया देती दूध, दही, माखन बिन मोला। तू क्यों माँगे कहे ये कान्हा भोला।।
गोदी बैठो मैया अपने मुख सों बोली। मैं हूँ कछु ना मौल गहूँ नन्दा मुख खोलो।।

मैं फल देने नहीं, बेचने आई हूँ। मुझे अनाज दो मैं तुम्हें फल दूँगी। मालिन की बात सुनकर कन्हैया दौड़कर भीतर गया। अंजुली में अनाज भरा और फिर दौड़ा मालिन की ओर। अँजुली से सारा धान्य इधर-उधर छिटक कर गिर गया। जो पाँच-दस दाने बचे थे उन्हें मालिन की टोकरी में डालते हुए कन्हैया ने कहा- दो मालिन, अब फल। मालिन ने बड़े दुलार से कृष्ण को गोद में बैठाया और फिर फलों से भरने लगी लाला की अँजुली को। महान आश्चर्य। टोकरी का सारा फल कन्हैया की अँजुली में समा गया।

मालिनी ने अन्न लेकर बलराम कृष्ण की झोली आमों से भर दी। घर जाकर जब मालिनी ने धान्य को देखा, तो वह सब रत्न हो गये, जिन्हें देखकर मन में महान् आनंद हुआ।

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम्। फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च।।

एक दिवस इक वृद्धा नारी। आई फल बेंचन सिरु धारी।।

मुख मलीन अति निर्बल गाता। बोलति लेहु फलहिं कृस बाता।।

लट पटात पद दृढ़ता नाहीं। परत चरन इत उत पथ माहीं।।

द्वार द्वार प्रति हाँक लगावा। तदपि तासु फल काहु न भावा।।

आई पुनि ब्रजराज दुआरा। तासु दशा प्रभु जबहिं निहारा।।

सकल फलहिं दायकु गृह धाए। लेन फलहिं कछु ध्यानहिं लाए।।

बिखरेउ मग लघु लघु पुट पानी। ढाढ़ भए कहु लइ सुख दानी।।

निरखि सरल सुठि छबि मन हारी। मगन सकल अरपेसि बनवारी।।

सुखिया सुखी हो गई। कन्हैया भागकर घर के भीतर गया। धन्य-धन्य मालिन टोकरी सिर पर रखकर अपने घर की ओर चली। आज सुखिया के भाग्य की सराहना ब्रह्मा आदि देवता कर रहे थे। जो अखिल ब्रह्माण्ड के फल का दाता है, उसे आज एक साधारण-सी मालिन फल दे रही है।

नन्द भवनके निकट लेउ फल सुखिया बोली। जानी अनुगत कृष्ण कृपाकी गठरी खोली।।

पस भरि लाये अन्य दयो कर आगे कीये। सुखिया सब फल तुरत करनिमें हरिके दीये।।

कृष्ण हाथ फलतें भरे, हरि रतननि डलिया भरी। यों सुखिया सब श्यामकूँ, फल दैकें जगतें तरी।।

भगवान श्यामसुन्दरका सौंदर्य ऐसा अप्रतिम है कि जितना देखो उतना ही देखनेकी लालसा बढ़ती हैं। वह नित्य नव सुन्दर है। नित्य नया बनता है। उसकी ओरसे कभी चित्त हटता नहीं।

घर पहुँचकर मालिन ने टोकरी नीचे उतारी। कपड़ा हटाकर देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पूरी टोकरी बहुमूल्य रत्नों से खचाखच भरी थी। धन्य धन्य हो गई सुखिया मालिन। आज उसकी जन्म-जन्मान्तर की दरिद्रता का समूल उन्मूलन हो गया। उसने अपने जीवन में कृष्ण-दर्शन और कृष्णकीर्तन का अखण्ड व्रत धारण कर लिया।

सुखिया को उस समय शरीर का सुख, धन का सुख, नेत्रों का सुख और मन का सुख सब अनन्त रूप में मिल रहा था उसके रोम रोम में सुख भर गया था और वह मधुर रस का संचार कर रहा था।

शुकदेव बोले- राजन्, जिन श्रीकृष्ण के करों से अन्न बिखर रहा था, उन दोनों करों को फल बेचनेवाली ने फलों से भर दिया और भगवान ने उसके फलों के पात्र को रत्नों से भर दिया। सुखिया मालिन ने एक पलमें जो पा लिया- बस पा लिया। अब जन्म-जन्मकी उसकी साध पूरी हो गयी। अब कुछ पाना शेष नहीं रहा।

मालिन जीव का प्रतीक है। फल सत्कर्मों के फल हैं। टोकरी बुद्धि का प्रतीक है। रत्न ब्रह्मज्ञान है। जो जीव अपने सत्कर्मों का फल भगवान् को अर्पित करता है, उसकी बुद्धिरूपी टोकरी को भगवान ब्रह्म-विद्यारूपी रत्नों से ब्रह्म-ज्ञानरूपी रत्नों से भर देते हैं।

वह फलवाली पूर्वजन्म में भक्त निषाद की माँ थी। निषादराज ने लंका विजय के बाद राम प्रभु के लौटने पर माँ को दर्शन देकर कृतार्थ करने को कहा तो प्रभु श्रीराम ने समयाभाव के कारण यह कहकर टाल दिया कि फिर कभी देंगे। वही निषादराज की माँ द्वापर में फलवाली बनी।

हे चितचोर अजब तेरी माया। तश्वावर्त को त्राण दे दिया, सकटासुर का संकट काट।

दुष्ट पूतना मात बनाई पहुँचाया निज धाम सपाट।
श्रीधर को सद्ज्ञान सिखाया, कागासुर को कण्ठ लगाया।
बक बगुला को निर्भय करके, दीन्हीं मुक्ति श्रीधाम पठाया।
वत्सासुर को वत्स समझकर, वत्स बना गोलोक बसाया।।
अघ अजगर मुख कर प्रवेश प्रभु, पूर्वजन्म का शाप मिटाया।
शत योजन का गिरी उठाकर नाम श्रीगिरधारी पाया।।
हे नटनागर भव दुख टारक हे चितचोर अजब तेरी माया।

फलविक्रयिणी को कृतार्थ कर कृष्ण-बलदाऊ और ग्वालबालों के साथ यमुना के सुकोमल तट पर खेलने चले गये।

२) दुर्वासा ऋषि पर कृपा-

एक दिवस मुनिवर दुरबासा। कृष्ण दरस लगि अति अभिलाषा।।
नेति नेति जेहिं बेदन्ह गाए। तेहिं देखन ब्रज मण्डल आए।।
ग्वाल बाल सँग सोइ जग मूला। खेलत रबि नन्दिनि सूठि कूला।।
धूरि धूसरित श्यामहिं देखी। भएउ मुनिहिं मन मोह विशेषी।।
मनहीं मन मुनि करत बिचारा। तेहिं विभु कृत यह कवन प्रकारा।।

गोकुल की रसभरी रमण रेती में श्रीकृष्ण सखाओं के साथ खेल रहे थे। उसकी रज में लोट लोट कर वे परम सरस रस का पान करते थे। वे अपनी अपनी रुचि के अनुसार उनके दर्शन पाते थे और उन पर तन न्यौछावर करते थे तथा उनकी छबि अपने हृदय में धारण करते थे।

वे अपनी अँजुरी से सखाओं पर बालू डाल रहे थे और किलकारी मार कर और पुलकित होकर सखाओं में रस का संचार करते थे। गोपियाँ उनको देख देख कर उन पर तन मन न्यौछावर करती हुई रस पान कर रहीं थीं।

यमुना उनको देखकर प्रसन होती थी और लहरों के द्वारा उस तट को चूमती थीं जहाँ श्रीकृष्ण लीला बिहार कर रहे थे। मानों वे उनके चरणों का स्पर्श करना चाहती हैं और तट पर पहुँच कर अत्यन्त सरस हो जाना चाहती हैं।

श्रीकृष्ण बाजी बद कर लड़ते थे और कभी सखाओं को हरा देते थे और कभी स्वयं हार जाते थे। किसी के मन में संकोच या झिझक नहीं थी और श्रीकृष्ण भी अपना ऐश्वर्य प्रगट नहीं कर रहे थे। उसी समय श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से दुर्वासा ऋषि वहाँ पहुँच गये। और वे श्रीकृष्ण के धूल से सने शरीर और उनके घुँघराले बालों को धूल से सने और उलझे हुए देखकर आश्चर्यचकित हो गये।

वे सोचने लगे कि जो अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी है वही ग्वालों की इच्छानुसार काम कर रहा है। उनके तपस्या से पवित्र हुए मन में भी भ्रम भर गया मानों तीनों लोकों को मोहित करने वाली माया ने उनको भ्रमित कर दिया हो।

वे विचार करने लगे कि वेद जिसको ईश्वर कहता है और वह जिन्हें छै ऐश्वर्यों से पूर्ण बताता है वह ईश्वर, यह नन्द का पुत्र नहीं है। यह यशोदा का पुत्र भगवान नहीं है। इस प्रकार वे संदेह में पड़ गये और महायोग माया ने उन्हें भ्रमित कर दिया। उसी समय श्रीकृष्ण उनके पास आ गये और उन्होंने उनका भ्रम दूर करने का विचार किया।

श्रीकृष्ण ने निर्भय होकर हँसते हुए पूछा कि आप बतावें कि खेल में मैं हार गया या यह श्रीदामा हारा। हे मुनि, आप इसका निर्णय कर दें। वे कृष्ण के बचन सुनकर मानो मधुर रस में डूब गये हों।

अति चंचल मुद्रा भई, अंग अंग उन डोल। नयन ज्योति असुँवन ढरी, दियो शाम रस घोल।।

वे यमुना तट की रेती पर बैठ गये और उनका अंग अंग श्रीकृष्ण ने रसमय बना दिया। उसी समय श्रीकृष्ण उनकी गोद में जाकर बैठ गये और पुन: पूछने लगे कि श्रीदामा हार गया न। किन्तु दुर्वासा जी को मौन देखकर श्रीकृष्ण उठकर आ गये और सखाओं से बोले इस समय मुनि का मौन रहने का मन है। ऐसा कहकर फिर किलकारी मार कर और पुलकावली का आनन्द देते हुए खेलने लगे।

फिर श्रीकृष्ण ने छै ऐश्वर्यों से युक्त हँसी के द्वारा मुनि के मन का भ्रम टालने का विचार किया। उस हँसी ने मुनि को आकर्षित कर लिया और उनको ऐश्वर्य के रस से सींच दिया। वे श्रीकृष्ण के मुख में समा गये और उन्होंने अपने आपको बहुत से ब्रह्माण्डों के बीच में पाया। वे उन लोकों को देख देख कर उन पर बलि बलि जाकर मोहित हो गये।

मुनि को भ्रमित देखकर परम कौतुकी प्रभु मुनि के समीप आकर हँस दिए। प्रभु के हँसते ही मुनि प्रभु के मुख में समा गए वहाँ उन्होने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा फिर ब्रह्माण्ड के छिद्र से गोलोक धाम पहुँचे वहाँ राधा के साथ प्रभु कृष्ण को देखा। वहाँ भी प्रभु मुनिराज को देखकर हँस दिए जिससे मुनि प्रभु मुख से बाहर आकर फिर से वही शिशु रूप देखने लगे।

समाधान मुनिवर भएउ इहाँ उहाँ सोई ईश। बाल केलि सुख वजन लगि करत कृष्ण परमीश।।

दीन्हिं ज्ञान करुनायतन मोहिं आपन जन जानि। करन लगे अस्तुति रुचिर अश्रुनयन पुट पानि।।

उनको सात लोक, पाताल आदि दिखाई पड़े और श्वेत श्रृंग को देखकर उनका मन और लुभाया और वे वहाँ सौ करोड़ वर्ष तक तप करते रहे तब उनको प्रलय काल आता हुआ दिखाई पड़ा।

पहले उन्होंने अपने चारों ओर अपार जल देखा फिर ब्रह्माण्डों में निवास करनेवाले को देखा और फिर उस ब्रह्म अण्ड के छेद में घुस गये तब उन्होंने करोड़ों ब्रह्माण्डों का समूह देखा।

फिर उन्होंने बिरजा नदी को देखा जिसके तट मरकतमणि के बने थे उसे देखकर मुनि प्रसन्न हुए। उसके घाट काले, सफेद, पीले, हरे और लाल मणियों के बने थे। फिर उन्होंने सैकड़ों चोटी वाले गोवर्धन पर्वत को देखा जिसके चारों ओर पारिजात वृक्षों के बन थे।

वहाँ पर उन्होंने अनन्त कामधेनुओं को देखा और प्रणाम किया। फिर उन्होंने वहाँ श्री वृन्दावन देखा जो सुमन लताओं और वृक्षों से सुशोभित था। वहाँ पर आम, पनस और बेर, नारंगी, ताड़, खजूर, केला, नारियल, श्रीफल, अनार आदि के सुहावने वृक्ष बहुत से देखे। नीम, प्रियाल, शाल, शाल्मली, पीपल, कदम्ब आदि की शीतल छाँह से युक्त श्रीवृन्दावन के अत्यन्त सुन्दर स्वरूप को देखा। कुन्द, मालती, केतकी के फूलों की सुगंध वहाँ चारो ओर बिखर रही थी। सुन्दर माधवी, यूथिका के सुमनों पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। ऐसे सुहावने एवं लुभावने श्री वृन्दावन धाम के मुनि ने दर्शन किये। वहाँ पर यमुना कल-कल ध्वनि कर रही थी और मुनि उस पर बलि बलि जाते हुए देख रहे थे।

वहाँपर उन्होंने सुना कि वहाँ के भक्तजन श्री गोलोक धाम एवं श्री वृन्दावन धाम की जय जय कार कर रहे हैं। वह सत चित आनन्द स्वरूप परम धाम कुंजों से सुशोभित है और वहाँ मंद मंद वायु बहती है और वह भौरों, मोरों, कोकिलों और तोतों से दिन रात गुंजायमान है और उसका कण कण अत्यन्त शोभा से युक्त है। जहाँ पर १६ सुन्दर द्वार हैं। ऐसे दिव्य धाम को देखकर मुनि का मन मोहित हो गया।

वहाँ करोड़ों गोपों की छबि श्रीकृष्ण की छबि के समान मनोहारी है और करोड़ों किशोर अवस्था वाली गोपियाँ मधुरस से छकी रहती हैं और श्रीकृष्ण के रस में डूबी रहती हैं।

वहाँपर मुनि सोलहवें द्वार में घुस कर परम दिव्य प्रकाश से प्रकाशित स्थान पर आ गये और उस ज्योति मण्डल में उन्होंने लक्ष दल वाला दिव्य कमल देखा। उसी लक्ष दल कमल की गद्दी पर अत्यन्त शोभाधाम श्रीकृष्ण को देखा। वे सम्पूर्ण विश्व को मोहित करनेवाले स्वरूप को धारण करके सुशोभित हो रहे थे।

ब्रज गोपियाँ उनको चारों ओर से घेरे हैं और दिन रात उनकी छबियों का दर्शन कर रही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर देवताओं के राजा इन्द्र एवं मुनियों के स्वामी, धर्म और शेषनाग उनको प्रणाम कर रहे हैं।

वे भक्तों के परम प्यारे हैं, उनके स्वामी हैं और कृपालु हैं एवं सदा कृपा करने के लिये बड़े उतावले हैं। श्री राधा जी उनके वक्षस्थल पर विराजमान हैं वह रसमयी परम रसिक श्रीकृष्ण के साथ शोभा दे रही हैं।

दुर्वासा जी के भी नेत्र उनको देखकर शीतल हो गये और उनका अंग पुलकित हो उठा। उन्होंने भी हाथ जोड़कर उनकी बन्दना की और बार बार उनके चरणों पर अपना सिर रखा।

फिर उनके नेत्र खुले तो चकित होकर देखा कि गोकुल की रमणरेती अपनी छबि छिटका रही है और श्रीकृष्ण सखाओं के साथ वहाँपर ही खेल रहे हैं और एक दूसरे पर बालू डाल रहे हैं।

यह क्या हुआ, किसने मुझे इस प्रकार भ्रमित सा किया और मुझे क्षण भर में ही बहुत से ब्रह्माण्डों को दिखाया। मुझे गोलोक धाम की विलक्षण छबि के दर्शन कराये जहाँ पर श्रीकृष्ण की यही अत्यन्त प्रिय छबि थी।

और फिर मैं इस ब्रज मण्डल के बीच आ गया और यहाँ पर श्रीकृष्ण को सखाओं के साथ खेलता देख रहा हूँ। यह सब देखकर दुर्वासा मुनि हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण को प्रणाम करने लगे और सखाओं के सहित उन पर बलि बलि जाकर आनन्दित होने लगे।

पुन: ऋषि ने विनती की कि यह श्रीकृष्ण गोकुल के स्वामी हैं, ब्रज के स्वामी हैं, तीनों लोकों के स्वामी हैं। उनके इस स्वरूप में कोई भिन्नता नहीं है। वे करोड़ों कामदेवों को अपनी सुन्दरता से लजाने वाले हैं। वे कमल स्वरूपी नेत्रवाले हैं सुख और शान्ति के घर हैं और अपने वचनों से मधुर अमृत रस की वर्षा करनेवाले हैं।

बड़े से बड़े अभिमान को चूर करनेवाले और अपने प्रिय जनों का उद्धार करने वाले हो। आपने इस बार हमारे ऊपर कृपा की जिससे जो अनादि काल से भ्रम और अशान्ति थी उसको अन्तवाला करके मिटा दिया। तुम तनिक सा नाम लेने मात्र से भक्तों को अपना धाम दे देते हो। हे अत्यन्त शोभनीय, हे मन को प्रसन्न करनेवाले आपको प्रणाम है।

हे अशरण शरण, मुझे आपके कमलस्वरूपी चरणों की शरण अच्छी लगती है, जो पद-पद पर शरणागत भक्तों की रक्षा करती रहती है और जिस आपके नित्य धाम का विलक्षण दर्शन हमारे लिये सम्भव हो गया है वही हमें ललचा रहा है। हे बाल रूप वाले, हे विश्व रूप वाले विराट पुरुष, हे ब्रह्म रूप आपके इस मनभावने स्वरूप को हम प्रणाम करते हैं।

आपका सगुण साकार स्वरूप अत्यन्त विलक्षण और अनोखा है। इसका आनन्द जिन्हें मिल जाता है वे उसमें ऐसे बावले हो जाते हैं कि फिर उनको तीनों लोकों की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी अच्छी नहीं लगती और यदि मिल जाय तो वह उनको अखरने लगती है। ऐसे आपके इन श्री चरणों के रज की वन्दना करके फिर इसको छोड़ कर कहाँ भटका जाय।

जो उन्होंने अनन्त जन्मों तक तपस्या की थी उसका उनको यह कितना अच्छा फल मिला कि श्रीकृष्ण ने उनको अपना दर्शन एवं स्पर्श देकर उन्हें अपना दास बना लिया।

जिन श्रीकृष्ण का नाम ही कल्याण करनेवाला है उन्हींने दुर्वासा की गोद में बैठ कर उन्हें आनन्द दिया। जिसको भगवान अपना बना लेते हैं उनको फिर कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। गोप गोपियों ने कुछ भी नहीं जाना कि मुनि कैसे आये

और कहाँ चले गये।

३) अन्य बाललीलायें

धाम के काम ब्रजबाम सब भूल रहीं, कान्ह बलराम के संग डोलैं।
सूर गिरिधरन मधु चरित मधु पान कै, और अमृत कछू आन लागै।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै, मुक्ति भी नमक सी खारी लागै।।

गोपी ने कौतूहल वस कृष्ण को कमरे में बन्द कर दिया और नन्दभवन में यशोदा से शिकायत करने पहुंची तो देखा कृष्ण आँगन में खेल रहे हैं। और गोपी से जब नजर मिली तो उसे अंगूठा दिखाकर चिढ़ा दिया। गोपी आश्चर्यचकित रह गयी और पुन: दोड़कर अपने घर आई तो देखा कृष्ण उसके कमरे में बैठे रो रहे हैं। ग्वालिन फिर यशोदा के पास पहुंची तो देखा- लाला यशोदा की गोद में दूध पी रहे हैं। गोपी को देखकर बोला- ले मौसी, दूध तू भी पीले। गोपी अवाक् रह गई, बिना कुछ कहे वह फिर दौड़ी, घर आकर देखा कृष्ण उसी कक्ष में बैठे हैं। गोपी विस्मृत हो धड़ाम से कृष्ण के चरणों में गिर पड़ी। अपने दुस्साहस के लिए पश्चाताप करने लगीं। भगवान की सेवा कर, तेरा कल्याण होगा और वहाँ से भाग गये। गोपी ठगी सी रह गयी। ऐसी लीला भगवान अपना स्वरूप ज्ञान कराने के लिए किया करते थे।

एक दिन एक मलिका नाम की गोपी आयी और बोली कि यशोदा मैया, आज हमारे घरमें कोई नहीं है, गोबर सब खेतमें चला गया है, पर्वका दिन है और घरकी लोपकर पूजा करनी है, जरा-सा गोबर दे दो, नहीं तो आज हमारी सास बहुत नाराज होगी।

यशोदा बोली- कि अरी, गोबरमें क्या रखा है, जितनी मौज हो उतना ले जा। गोपीने गोबरसे टोकरी भर ली, लेकिन उसको उठवाये कौन? ग्वालबाल तो है नहीं, इधर-उधर देखने लगी। इतनेमें छोटेसे कृष्ण, पाँवमें नूपुर पहने, पीली धोती धारण किये, उसके ऊपर लाल-हरा कछोटा बाँधे, कन्धेतक केश लटकाये और मस्तकमें विभूति लगाये वहाँ आ गये। उन्होंने पूछा- कि ग्वालिन, क्या चाहिए?

गोपी उनकी वेशभूषा, मन्द-मन्द मुस्कान, प्रेम भरी चितवन, भौहोंकी मटकन आदिपर मन-ही-मन न्यौछावर हो गयी। फिर बोली- अरे लाला, जरा हमारी गोबरकी टोकरी तो उठवा दो। श्रीकृष्णने कहा कि मैं क्या तेरे बापका नौकर हूँ? नहीं उठवाऊँगा। तू अपने आप उठा। मैं क्यों उठवा दूँ। यह कहकर मटकने लगा, अँगूठा दिखाने लगा। ताली बजाकर हँसने लगा। कितना भोला है यह। यह समझता था कि मैं अकेली तो टोकरी उठा नही सकतीं। यह सुकुमार टोकरी उठवाने योग्य हैं क्या? इसके नन्हें हाथ मेरी कटि तक भी नहीं पहुँच सकते। कैसा मटकता है? कितना प्रसन्न हँसता है। गोपीने उसकी मनुहार की।

गोपी बोली कि उठवा दे लाल, तुम तो बहुत अच्छे हो, जितनी टोकरी उठवाओगे, उतने ही माखनके लोंदे तुमको दूँगी। बस क्या था, श्रीकृष्ण गोबरसे भरी टोकरियाँ उठवाने लगे। चार-पाँच टोकरियाँ उठवानेके बाद बोले कि ग्वालिन, तेरा भरोसा नहीं। तू बादमें धोखा दे सकती है, इसलिए गिनती करती जा।

कन्हैया बोला- तूने कितनी टोकरी उठवायीं, यह कैसे पता लगेगा? तू बड़ी सच्ची है यह कहकर मटकने लग गया।

गोपीने कहा कि लाला, मुझे गिनती तो आती नहीं। यह लो, एक-एक टोकरीके बदले गोबरका एक-एक टीका तुम्हारे ललाटपर लगाती जाती हूँ। अब तो गोपी सुध-बुध भूल गयी और श्रीकृष्णके सारे मुख-मण्डलपर गोबरके टीके लग गये।

जब गोपीको होश आया तब वह बोली कि इतना गोबर तो मुझे चाहिए नहीं, मैं क्यों इतनी टोकरियाँ भर-भर कर ले गयी? श्रीकृष्णने कहा कि बहाना मत बना, गिनतीके अनुसार गिन-गिनकर माखनके लोंदे ला। अब झल्लाकर बोला- तू खा

गोबर लगा नवनीत। इतनी टोकरियां उठाई और एक बूँद माखन दे रही है। यह चपल तो खीझता रहा, माखन खाता रहा और अन्तमें भाग गया; किंतु गोपी को रात्रिभर नींद नहीं आयी।

गोपी बोली- लाला, ऐसे मक्खन नहीं मिलता। श्रीकृष्णने पूछा कि फिर कैसे मिलेगा? गोपीने कहा कि नाचो तब मिलेगा। अब श्रीकृष्ण एक हाथ अपनी कमरपर और दूसरा हाथ अपने सिरपर रखकर नाचने लगे। शिव, सनक-सनन्दन और नारदादि उन्हें देख रहे हैं। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उनका हृदय द्रवित और कण्ठ गद्‌गद् हो जाता है। यह सोचकर चकित हो जाते हैं ये त्रिलोकीनाथ, अखिल ब्रह्माण्डनायक, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-आधार प्रभु भक्तोंके इतने हाथमें हो गये कि उनके नचाये नाच रहे हैं।

इसप्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान अपनी मधुर-मधुर बाल-लीलाओं से व्रजवासियों को आनन्दित करते और संसार को यह दिखलाते कि मैं अपने भक्तों के कितना वश में हूँ।

जबसे श्रीकृष्ण आये तबसे नन्दरानीका घर और तमाम गोकुल उत्सवमय हो गया। नित्योत्सव है। जहाँ भगवान रहते हैं वहाँ नित्योत्सव रहता है।

करहिं कृष्ण दिवि बालहं लीला। भगत भगति बस जन सुख सीला॥
कहुँ ब्रज बनितन्ह के फुसिलाए। नाचहिं गावहिं प्रभु उमगाए॥
कहुँ गुरु जनहिं रजायसु मानी। देहिं वस्तु इच्छित सब आनी॥
आनहिं पाटहिं बाँट खड़ाऊँ। सुर पूजन लगि वस्तु चढ़ाऊं॥
जात कबहुँ विक्रय लगि गोरी। मागहिं दधि माखन बरजोरी॥
रुचि अपूर जबहीं नटखट की। फोरहिं हति कंकड़ दधि मटकी॥
अरुझि करइ को आपन हानी। गोपिन्ह देहिं हृदय सुखमानी॥
यदपि सकल अर्पण प्रभु हेतू। तदपि करहिं रस लगि रस सेतू॥
करि करि सुन्दर रुचिर सुठि मधुर चरित्र बिधान। देहिं स्वजन कहुँ परम सुख अनुपम सुखहिं निधान॥
एक काल हरि कर रहे, यमुना तीर बिहार। यशमति भेजी रोहिणी, बोलन हेत कुमार॥
आवो सुत बल जावे मैया। जन्म नक्षत्र आज तव भैया॥ घर आये कर करो सुनाना। विप्रन को देवो गोदाना॥
निज मित्रन को देखो आये। भूषण वसन मात पहराये॥ भोजन करके तुम दो भाई। कर श्रृंगार खेलो यदुराई॥

ऐसा नहीं है कि यह केवल श्रीकीर्तिकुमारी या दाऊ दादामें तन्मय-एकरूप हो जाता हो। यह क्या अपनी वंशी अधरोंपर रखता है तो स्वरसे कम एकाकार होता है? अथवा किसी गाय, बछड़े-बछड़ीको दुलारने-पुचकारने लगता है तो इसे अपनी कोई सुध-बुध रहती है। यह सखाओंसे ही नहीं, मयूर-मेढ़क-कपि, शशकसे भी खेलमें लगता है तो तन्मय। गाने, नाचने, कूदनेमें ही नहीं, चिढ़ानेमें भी लगता है तो तन्मय ही होकर। इसे आधे मनसे कोई काम जैसे करना ही नहीं आता है।

अब आजकी ही बात है, कन्हाई यमुनातटपर अकेला बैठा गीली रेतसे कुछ बनानेमें लगा था। बार-बार नन्हे करोंसे रेत उठाता था और तनिक-तनिक बहुत सँभाल कर धरता था। पता नहीं कैसी रेत है कि टिकती ही नहीं। गिर-गिर पड़ती है रेत; किंतु कन्हाई कहीं ऐसे हारनेवाला है, वह लगा है अपने महानिर्माणमें। लगा है- तन्मय है।

पता नहीं, सखा कब चले गये, दाऊ दादा भी चला गया। सबने पुकारा, बुलाया, कहा; किंतु जब यह सुनता ही नहीं तो सब खीझकर चले गये कि अकेला पड़ेगा तो स्वयं दौड़ा आयेगा; किंतु इसे तो यह भी पता नहीं कि आसपास कोई सखा

नहीं है, यह अकेला है।

मैया पुकारती रही, पुकारती रही और अन्तमें समीप आ गयी यह देखने कि उसका लाल कर क्या रहा है। क्यों सुनता नहीं। अन्तत: अब आतपमें कुछ प्रखरता आने लगी है। इस धूपमें तो इस सुकुमारको नहीं रहने दिया जा सकता।

कटिमें केवल रत्नमेखला और कटिसूत्र है। कछनी तो इसे उत्पात लगती है। उसे आते ही खोलकर फेंक दिया था। कुछ पीछे रेतपर पड़ी है वह पीतकौशेय कछनी। बार-बार ढीली होनेवाली कछनीको यह कबतक सँभालता?

चरणोंमें मणि-नूपुर हैं। करोंमें कंकण हैं। भुजाओंमें अंगद हैं। कण्ठमें छोटे मुक्ताओंके मध्य व्याघ्रनख है। कौस्तुभ है गलेमें। भालपर बिखरी अलकोंके मध्य कज्जल बिन्दु है। थोड़ी अलकोंको समेटकर उनमें मैयाने एक मयूरपिच्छ लगा दिया है। बड़े-बड़े लोचन अञ्जन-मण्डित हैं।

दोनों करोंमें गीली रेत लगी है। दोनों चरण आगे अर्धकुञ्चित किये बैठा है। पूरे पदोंपर, नितम्बपर गीली रेत चिपकी है। स्थान-स्थान और वक्षपर, कपोलपर भी रेतके कण लगे हैं।

पुलिनपर बहुत-से बालकोंके पदचिन्ह हैं। गीली रेतपर-सूखी रेतमें भी शतश: बालकोंके खेलनेके चिन्ह हैं। रेत कहीं एकत्र है, कहीं कर-पदोंसे फैलायी अथवा बिखेरी गयी है। गीली रेतपर कहीं छोटे गड्ढे हैं अथवा रेतकी ढेरियाँ हैं। मैया इनके मध्य ही चलती आयी है। उसने समीप आकर कन्धेपर हाथ रखकर पूछा - तू अकेला यहाँ क्या कर रहा है?

मैं? चौंककर कन्हाईने मुख उठाया- नेत्र हर्षसे चमक उठे- अरे, यह तो मैया है।

मुख धूपसे कुछ अरुणाभ हो उठा है। भालपर, कपोलोंपर नन्हें स्वेद-कण झलमला उठे हैं। मैयाको देखकर यह झटपट उठ खड़ा हुआ है। मैया किञ्चित् स्मितके साथ पूछती है- तू अकेला यहाँ कर क्या रहा है?

अकेला? श्याम एक बार सिर घुमाकर आसपास देखता है। उसे अब पता लगता है कि वह अकेला है। ये सब सखा-दाऊ दादा भी उसे छोड़कर चले गये? अकेला वह कैसे रह सकता है; किंतु अब तो मैया समीप आ गयी है। दोनों भुजाएँ मैयाकी गोदमें जानेको उठा देता है।

तू कर क्या रहा था? मैया हँसती है। कन्हाईको अब कहाँ स्मरण है कि वह क्या बना रहा था। एक बार मुख झुकाकर गीली रेतकी उस नन्ही ढेरीको देखता है और फिर मैयाके मुखकी ओर देखता है दोनों भुजाएँ फैलाये।

श्यामके नेत्रोंमें उलाहना है, खीझ है- तू कैसी मैया है कि स्वयं समझ नहीं लेती कि उसका लाल क्या बना रहा था। जब वह इतनी तन्मयतासे इस महानिर्माणमें लगा था तो दुर्ग-ग्राम, गाय-बैल, कपि-गज कुछ तो बना ही रहा था। अब उसे तो स्मरण नहीं। उसे तो मैयाकी गोदमें चढ़ना है और मैया हँसती है। हँसती है और पूछती है।

यह भी कोई बात है कि मैया उसे गोदमें नहीं लेती और पूछती है। अब यह खीझनेवाला है। अपनी ही भावनामें तन्मय, अब तो मैयाकी गोद और सम्भवत: उसका अमृतपय ही इसे स्मरण है।

रोहिणी कृष्ण को पुकारकर बोली- हे कृष्ण, आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है, चलकर स्नान करके पवित्र होकर, ब्राह्मणों को गौओं का दान करो। इस प्रकार बुलाने पर श्रीराम कृष्ण दोनों भाई खेल छोड़कर न आए। यशोदाजी ने रोहिणीजी को दोनों के निमित्त भेजा। यशोदाजी बलदेव और कृष्ण को एक साथ पुकारने लगीं। हे कृष्ण, हे कृष्ण, बस अब मत खेलो। तुमको भूख लगी होगी। हे राम, अपने छोटे भैया कन्हैया को साथ लेकर शीघ्र आओ।

क्रीड़ा में मन लग रहा, गये न जब विबुधेश। गयी यशोदा आप तब, बोलन हेत नरेश॥

रे कुल नन्दन माधव आवो। खेलन में बहु मन नहिं लावो॥ भूख लगी होगी सुत प्यारे। क्रीड़ा करत बहुत तुम हारे॥

प्राता काल अल्प दधि खाया। अब लग भोजन नहिं तुम पाया।। तात राम भ्राता को लावो। जो चाहे सो भोजन पावो।।
भोजन करते तात तुमारा। देख रहा अब मारग थारा।। सखा तुमारे घर को जावें। क्षुधित होंयगे भोजन पावें।।
कहने से जब नहिं चले, बल कर पकड़े मात। भाग गये कर से पुना, ग्रहण करे दृढ़ तात।।

माता यशोदा के कहने से भी जब दोनों भाई घर को नहीं चले, तब माता ने पास जाकर हठ से उन्हें पकड़ लिया, जब फिर भगवान हाथ से छूटकर भाग गये, तब माता ने उन्हें पुन: दृढ़ता के साथ पकड़ लिया। बलराम को तो एक हाथ में और दूसरे हाथ में श्रीकृष्ण को पकड़कर, जब माता यशोदा दोनों के बीच होकर चलने लगीं उस समय की शोभा अद्भुत बनी थी। मानो ज्ञान, वैराग्य और भगवद्भक्ति ये तीनों मिले हुए शोभा पा रहे हों।

अनह्वाये पहराय के, विप्रन को दे दान। थाल परोसा मात ने, विविध भाँत पकवान।।

तब माता यशोदा ने घर जाकर भगवान बलराम-कृष्ण को स्नान कराया, सुन्दर वस्त्रभूषण शरीर में पहनाकर फिर उनके हाथ से ब्राह्मणों को दान दिलवाकर, उनके खाने निमित्त थाल में अनेक प्रकार के पकवान-मिठाई आदि परोसती गई।

जब यशोदा ने साथ खेलनेवाले बालकों से कहा कि हे बालकों, तुम सब अपने-अपने घर जाओ। हे परीक्षित्, तब यशोदा जी श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर घर ले आयीं और स्नान कराकर दूध देनेवाली सुन्दर गऊओं का दान कराया।

जेंवत स्याम नन्दकी कनियाँ। कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छबि निरखत नन्दरनियाँ।।
बरी, बरा, बेसन, बहु भाँतिनि, व्यंजन विविध, अगनियाँ। डारत, खात, लेत अपनें कर, रुचि मानत दधि-दोनियाँ।।
मिश्री, दधि, माखन मिश्रित करि, मुख नावत छबि धनिया। आपुन खात, नन्द-मुख नावत, सो छबि कहत न बनिया।।
जो रस नन्द-जसोदा बिलसत, सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ। भोजन करि नन्द अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनियाँ।।
तात साथ हम खावें मैया। अलग बैठ खावो यह भैया।। हमरा कर नोंचत है दाऊ। याका साथ न हमें सुहाऊ।।
हम नहिं अलग बैठ के खावें। तात साथ हम भोजन पावें। याका साथ न मोको भावत। उगल उगल के पुन यह खावत।।

बलदेव बोले- मैया, मैं अलग बैठकर नहीं खाऊंगा, किन्तु मैं तो पिता के साथ ही बैठकर भोजन पाऊँगा। भैया कृष्ण के साथ मिलकर भोजन करना मेरे को भी अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि यह तो बारम्बार उगल-उगल कर भोजन कर रहे हैं।

यशोदा बोली- **अलग अलग तुम दोनों खावो। आपस में नहिं बैर कमावो।।**
लीजो थाल न करिये देरी। लगी होयगी भूख घनेरी।।

नन्द बोले- तुम दोनों भैया मेरे साथ बैठकर भोजन खाओ, किन्तु क्रोध मत करो।

दोनों को समुझाय के, नन्द बिठाये साथ। किंचित् मुख में पायके, पुन बोले अहिनाथ।।

कृष्ण बोले- **मैया मोको क्षीर न भावत। पूरी साग न हमें सुहावत।।**
माखन मिसरी दधि प्रिय लागत। और अन्न से मम मन भागत।।
माखन दधि दीना तुम जोई। मोको खाटा लागत सोई।। ताजा गोरस देंगी जब ही। अन्न पाउंगा जननी तबही।।

हे मैया, मेरे को दूध अच्छा नहीं लगता है और ना ही पूरी-साग भी मेरे को सुहावे है। मैया बोली- तो तेरे को क्या अच्छा लगता है? सुन मैया- मेरे को माखन-मिसरी, दही प्यारा लगे है। दूसरे अन्न, चटपटे-साग आदिक में मेरा मन रुचि नहीं कर रहे हैं। जो यह माखन दही तुमने दिया है वह मेरे को खट्टा लगे है। हे माता, जब ताजा माखन देगी, तब ही मैं भोजन पाऊँगा।

यशोदा बोली- बलराम तुम भोजन करो, बिना मीठे का दूध पीओ। कृष्ण तुम अभी का निकला हुआ माखन खाओ।

जलदी भोजन करिये लाला। बाहिर खेलत हैं ब्रज बाला।। भोजन कर लेवोगे जबही। सुभग खिलोना द्योंगी तबही।।

हे लाला बलराम कृष्ण, शीघ्र भोजन करिये, बाहर ब्रज-बाल खेल रहे हैं। जब तुम भोजन कर चुकोगे, तब ही तुम्हारे को सुन्दर-सुन्दर खिलौने दूँगी।

सोई दीना दूध दधि, तिनकी दृष्टि बचाय। प्रेम देख कर मात का, खान लगे युग भाय।।

माता यशोदा ने वही दूध-दही, बलराम कृष्ण जी की दृष्टि बचाकर दे दिया। यद्यपि भगवान सर्व जानते हैं, तो भी माता का प्रेम देखकर दोनों भाई भोजन करने लगे। भगवान केवल प्रेम के भूखे हैं।

निज प्रिय पुत्र जिमावते, जो सुख पाया मात। जो सुख पाया नन्द ने, सो सुख कहा न जात।।

अब भगवान खाने लगे। कुछ खाते हैं, कुछ हाथसे गिर जाता है। कुछ नीचे फेंक देते हैं और नन्दरानी इस छविको देख-देखकरके हर्षित हो रही हैं। बड़े, बेसनकी चीजें, बहुत भाँतिके साग, मिठाई, तरकारी, रायता उठाते हैं, खाते हैं। अपने हाथसे फिर खाने लगते हैं। दही बड़ा अच्छा लगता है। मिश्री, दही, माखन यह कभी मिला लेते है। दहीमें भी मक्खन मिला लेते हैं। जो मनमें आया मिला लिया। बोले- बाबा, तू भी खा लो। एक ग्रास बाबाके मुखमें भी दे दिया। बोले- बड़ा स्वाद है। यह बड़ा अच्छा है, बाबा। तू भी खा ले। स्वयं खाते हैं और नन्दके मुखमें भी दे देते हैं। नन्द यशोदाको जिस रसका अनुभव हो रहा है- जिस रसका विलास उन्हें मिल रहा है, त्रैलोक्यमें वह रस कहीं नहीं है।

भगवानकी प्रकट लीलामें जितने भी लालासहचर वात्सल्य, सख्य एवं मधुरभाव रखनेवाले हैं, वे सब-के-सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं; क्योंकि वे सभी भगवान्‌के लीला-पार्षद हैं। उनके द्वारा जो भी चेष्टा होती है, स्फुरणा होती है, वे जो कुछ भी करते हैं, करनेकी चेष्टा करते हैं, सब भगवान्‌की इच्छाशक्तिसे समन्वित लीलाशक्तिके द्वारा होता है तथा यह सब भगवान्‌की लीलाका उपकरण है।

सच्चिदानन्दघन कृष्णका रसस्वरूप, रसविग्रह है। वास्तवमें ये की बढ़ते-घटते नहीं। ये हमेशा एकरस हैं। इनमें कभी परिवर्तन नहीं होता इनके सौन्दर्य माधुर्यमें नित्य नया परिवर्तन होता रहता है। भगवान स्वयं ब्रजमें गोपियोंके साथ, गोपोंके साथ वात्सल्यसख्य और मधुर भावोंको लेकर लीला की है। इनका गोकुल-वृन्दावनमें निवास केवल इस रसके आस्वादन करने-करानेके लिये ही हुआ है।

कबहूँ नाचें नाच गान कबहूँ वर गावें। माँगे माखन कबहुँ हठि रार मचावें।।
कबहूँ माँगे भीख भिखारी वेष बनाई। कबहूँ घर घर जाइ दिखावें स्वाँग कन्हाई।।
काम बतावें मातु पिता ततछिन करि लावें। माँगे माता वस्तु दौरिकें ताहि उठावें।।
बाट तराजू लाइ धरें आगे मैयाके। कपड़ा लावैं दौरि बड़े हलधर भैयाके।।
धोवें पग नँदराय जब, लाइ खड़ाऊँ प्रभु धरें। भक्तवश्य श्रीजगपति, सेवक सम कारज करें।।

शुकदेव बोले- राज्न, भगवान श्रीकृष्ण लोक में ज्ञानी पुरुषों को अपनी भक्तवश्यता दिखाते हुए ब्रजवासियों को आनन्दित करते हुए विविध भाँति की बाल चेष्टाएँ करने लगे। कभी स्वजनों के आज्ञा देने पर पीढ़ा बटखरा तराजू तथा पादुकाओं को उठा लाते। कभी ताल ठोंककर मल्लयुद्ध करते, इस प्रकार अपने बन्धु बान्धवों को सुखी करने लगे।

लालाको अपनी कछनी भी बाँधनी नहीं आती थी। कभी बाँध लेनेका मन होता तो उसे लेकर दाऊ दादाके सम्मुख आ खड़े होते अथवा जो गोपी समीप दीख जाती उसके पास पहुँच जाते। व्रजराज भोजनके लिए बैठ जाते किंतु राम-श्याम जब तक गोद में न बैठ जायँ तबतक ग्रास उठाया नहीं जाता था और व्रजेश्वरी जब तक स्वयं न जायँ, चाहे जिसे भेज लें, ये दोनों किसीकी सुनते ही नहीं।

भोजन की बेला हो गई थी। नन्दबाबा भोजन करने चौके पर बैठ गये। उन्होंने कहा- कृष्ण और बलराम को बुलाओ साथ ही भोजन करेंगे। रोहिणी जी बुलाने गईं किन्तु दोनों बालक गोपबालकों के साथ इस प्रकार क्रीड़ा मग्न थे कि बार-बार बुलाने पर भी नहीं आये। निराश होकर रोहिणी जी लौट आईं। उन्होंने यशोदा को भेजा। यशोदा बोली- दाऊ, राम, तुम्हारे अनुजको भूख लगी हैं। देखो न, इसका पेट कितना पिचक गया है। मैयाके कहते ही दाऊ छोटे भाईके पेटकी ओर देखने लगे और उन्हें मैयाकी बात सत्य लगी- यह श्रांत हो गया। उसके मुखको देखो, कैसा अरुण हो चला है और उसपर स्वेद कण आ गये हैं। अब तुम इसे लेकर आ जाओ। इसे अब भोजन करना चाहिये।

कभी सब बालकोंको समझाकर उनके घरोंको विदा करके और कभी सबको स्नेहपूर्वक किसी बहुत सुस्वादु भोजन, अलंकरण, खिलौने अथवा अर्चा-विशेषमें सम्मिलित होनेको कहकर साथ लेकर मैया अपने कन्हाईको अंकमें उठा पाती हैं और दाऊका कर पकड़कर तब गृहमें प्रवेश करती हैं। बालक ही तो हैं सब। भागेंगे, इधर-से-उधर पत्तोंमें छिपेंगे अथवा मैयाके ही चारों ओर घूमने लगेंगे। नहीं आवेंगे तो सुनेंगे नहीं और आवेंगें तो सब एक साथ गोदमें आना चाहेंगे। तोक, अंशु, देवप्रस्थ, तेजस्वी, भद्र सब श्यामके साथ व्रजेश्वरीके अंकमें, कन्धोंपर चढ़ेंगे और इन वात्सल्यमयीके अंकमें स्थानका अभाव कहां होता है। गोपियाँ हँसेगी इतने बालकोंको उठाये आती इनको देखकर और माता रोहिणी मिल गयीं तो उनके कन्धें, क्रोड़ी भी भर जायगी।

यशोदा के बुलाने पर दोनों भैया हाथ पकड़े हुए मैया के पास दौड़ आये। यशोदा दोनों बालकों का हाथ पकड़ कर घर ले आईं। स्नान कराया। अलंकृत किया। जन्मदिन था अत: गोदान करवाया फिर भोजन कराकर शय्या पर सुला दिया।

कहें मातु प्रिय वचन प्यार करिकें फुसलावें। आवें भरि तनु धूरि लाइ पुनि मातु न्हवावें।।
मैया परसे प्रेमतें, बाबा सँग भोजन करें। कबहूँ लिपटैं प्रेमतें, कबहू मातातें लरें।।

यशोदा मैया बोली- अरे लाला, अब तो तू बड़ा हो गया है। अब तुझे मेरा दूध पीना शोभा नहीं देता। इसे देखकर ग्वाले हँसते हैं। मैं इसलिए रोकती हूँ कि इससे तुम्हारे सब दाँत बिगड़ जायेंगे। गाय के दूध में बड़ी शक्ति होती हैं इसके पीने से दाँत अच्छे हो जाते हैं।

एक दिन दौड़े-दौड़े आये और आकर मैयाका वक्ष:स्थल का वस्त्र खींच लिया। अपना मुख उसमें छुपा लिया और स्तनपान करने लगे। मैया समझाने लगीं, सिखाने लगी कि देख, बेटा। अब तुम बहुत बड़े हो गये हो। अब जब तुम इस प्रकारसे स्तनपान करते हो तो देखो न ये तुम्हारे साथी सब ये आ-आकरके ताली पीटते हैं, हँसते हैं तो तुमको लाज नहीं आती और फिर बेटा, जबतक दाँत नहीं आते तभी तक दूध पीया जाता है, नहीं तो इस दूधसे दाँत बिगड़ जाते हैं। तुम्हारी जो सुन्दर-सुन्दर दँतुलियाँ हैं यह सब खराब हो जायेंगी। मेरी बात मान ले और अब तू छोड़ दे। पर मैयाकी बात सुनकर वो मुस्कुरा दिये और आँचलमें अपना मुँह छिपा लिया। फिर दूध पीने लगे तो इतनेमें इनके सखा सब दौड़े आये। सुबल, श्रीदाम, उज्ज्वल, वसन्त, तोक और मधुमंगल सबके सब आकर जब उन्होंने पुकारकी, हो-हो मचाया तो अब कौन गोदमें रहता? अब तो खेलकी बात है तो गोदसे उतरे और भाग चलें।

जसुमति कान्हहि यहै सिखावति। सुनहु स्याम, अब बड़े भये तुम, कहि स्तन-पान छुड़ावति।।
ब्रज-लरिका तोहि पीवत देखत, हँसत, लाज नहिं आवति। जैहैं बिगरि दाँत ये आछे, तातैं कहि समुझावति।।
अजहूँ छाँड़ि कह्यौ करि मेरौ, ऐसी बात न भावति। सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहि लुकावत।।

एक दिन घर में आकर रोकर मैया से बोले- दाऊ भैया मुझे बहुत चिढ़ाते हैं और कहते हैं कि मैया ने तुझे कब पैदा

किया। तू तो मोल का खरीद कर लाया हुआ है।

कहत मातु पितु नाम बतावो। काने, कब जायो समुझावो।।

बाबा मैया दोउ अति गोरे। तू कारो केहि भाँति भयो रे।।

फिर कहते हैं कि अपने माता-पिता का नाम बताओ और यह समझाओ कि किसने तुझे कब पैदा किया। मैया और बाबा दोनों बहुत गोरे हैं, अबर तू इनका लाड़का है तो तू काला कैसे हो गया।

नाचि नाचि इमि गाय सब, हँसि हँसि मोहिं खिझाय।।

तू मोहीं मारन चलै, दाउहिं रोष न लाय।।

इस प्रकार से कह-कह कर, नाच-नाच कर और हँस-हँस कर मुझको खिझाते हैं और तू मुझको ही मारने चलती है दाऊ पर गुस्सा भी नहीं करती।

गोद लाय मल्हराय बलि, जसुमति कह समुझाय। बड़ो महर तेरो बबा, हौं तोरी प्रिय माय।।

यशोदा ने उसको गोद में लेकर प्यार किया और समझाती हुई बोली कि नन्द बाबा तो तेरा बाबा है और मैं तुम्हारी प्यारी मैया हूँ। **बड़ो चबाई जनम को, बलदाऊ अति धूत। मोहिँ गोधन की सौंह तू, मेरो जायो पूत।।**

बलदाऊ तो बड़ा धूर्त है और जन्म से ही निंदा करनेवाला है। मैं गायों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि तू मेरा पुत्र है।

बलराम श्रीकृष्ण को बार-बार जीता देते हैं। इससे वे खेलना बन्द नहीं करते हैं। रोहिणी मैया वहाँ पहुँचकर उन्हें बुलाती हैं और उनको देखकर तन-मन न्यौछावर करती हैं। जब से यमलार्जुन वृक्षों के गिरने का भय व्याप्त हो गया था, तब से मैया का तन और मन काँपता रहता था। कन्हैया ग्वालों के साथ यमुना-तट पर शोर करता हुआ सखाओं के साथ खेलता था और उनके साथ ताली बजाता था। दासियाँ उनको बुलाने जातीं, तो वे खेल में ऐसे रमे होते कि वे कुछ सुनते ही न थे। जब यशोदा उनको बुलाने आतीं तो उनको धूल में सना देखकर हँसने लगती। फिर कहती कि हे बलराम, हे कुल के दीपक तू नीलमणि को लेकर आ जा। अरे, तू तो सबेरे का कलेऊ किए हुए है। अब आकर माखन रोटी खा ले। नन्दबाबा भोजन करने के लिए आ गए हैं और तुम दोनों को बुला रहे हैं। उनके साथ भोजन करके उनको सुख दो और तब फिर खेलने आना। जिनका थोड़ा सा स्पर्श करने के लिए मुनियों का मन ललचाता है, उन्हीं को पकड़कर यशोदा रस में डूबी रहती हैं। गोपवालों की बोली सुनकर दौड़ जाता हैं और मैया की दृष्टि बचाकर खेलने लगता है। जब ग्वाल-बाल उसको बुलाने आते हैं तब नन्दबाबा ग्वालोंको समझाते हैं कि लाला को भोजन कर लेने दो तब खेलना। स्त्री पुरुष अपनी आँखें और अपने चित्त को उसमें लगाये रहते हैं। कन्हैया के नये-नये खेल देखकर यशोदा ने प्रसन्न होकर कहा, अरे नीलमणि, तू बड़ा ज्ञानी है। अपनी प्रशंसा सुनकर कृष्ण घबरा गये और मैया के गले में बाँह डालकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन अपनी मैया से बोले- मैया एक बहुत प्यारी बात है लेकिन मुझे बताने में लज्जा लगती है। मैया ने कहा कि मुझसे लजाने की क्या बात है तू अपनी प्यारी-प्यीर बात सुना दे। कन्हैया बोला- नहीं मैया तू तो सबको बता देगी और बलदाऊ दादा से भी नहीं छिपायेगी और कहीं मनसुखा सुन लेगा तो चारों तरफ कहता फिरेगा। मैया की आँचल में मुँह छिपाकर कन्हैया बोला- तू मेरा ब्याह करा दे। उससे मुझे बड़ा सुख मिलेगा। मैं बहू देखने के लिये ललचाता हूँ मैं उसके लिये बहुत व्याकुल हूँ। अरी मैया मुझे बता वह किस लोक में रहती हैं, वह गोरी हैं या काली। मैंने एक सुन्दर सपना देखा है कि मैं दूल्हा बना हुआ हूँ और मेरे गोप बाल सब बराती बने हुए सखा चल रहे हैं और बाबा भी बड़े गोप के साथ आनन्दित होकर चल रहे हैं। वह बहुत गोरी-गोरी भोली-भाली अत्यंत सुकुमारी है। अरी मैया, वह मेरे मन में बसी हुई है।

मैया बोली- अरे नन्दके लाड़ले कैसी भोली-भाली बातें करके तू मुझे आनंद दे रहा है। मैयाने नंदबाबा को बुलाकर सब बातें बतायी और बोली- लाला ने ब्याह करने का मन बना लिया है। इसने सपने में एक दुल्हन भी देख रही हैं। वह कहता है कि वे बहुत बड़े महल में रहती हैं और सपने में देखकर उसी में लुभा गया है। यह सुनकर बाबाको बड़ा आनन्द मिला और बोले- लाला, जब तू बड़ा हो जायेगा तब तेरा ब्याह करा दूंगा।

लाला बोले- मैया, विवाह क्या होता है? मैं भी विवाह करूंगा।

यशोदा बोली- अरी गोपियों, मेरा अबोध लाला तुम्हे पत्नी कैसे कह सकता है। गोपी अपने प्राणधन श्यामसुन्दर कृष्णका दर्शन करके प्रमुदित हो रही थी। कृष्णने पूछा- मैया, गोपियाँ पत्नी ऐसा शब्द क्या बोल रही थी। यशोदा बोली- अरे, भोले-भाले श्याम वह तो बावली थी, पत्नी का अर्थ होता है दुल्हन। कन्हैया बोला- अरी मैया, यह दुल्हन क्या चीज होती है। मैया बोली- दुल्हन बड़ी अच्छी चीज है। इतना सुनकर कन्हैया बोले- मैं दुल्हन लूँगा और रोने लगे। मैया बोली- पहले माखन-मिश्री खाओ, मोटे हो जाओ, बड़े हो जाओ माखन चोरी छोड़ दो तब दुल्हन मिलेगी।

राधिका गोरी से वृज की छोरी से, मैय्या करादे मोरो ब्याह
अरे हाँ बन्धन है प्यार का, उमर तेरी छोटी है, नजर तेरी खोटी
कैसे कराऊ तेरो ब्याह, राधीका गोरी से.....
ने नही ब्याह करावे, तेरी गौखा नही चरावु, आज के बाद मोरी मैया, तेरी दहेली पर न आवु
आयेगा रे मजा रे मजा अब जीत हार का, राधीका गोरी से.....
चन्दन की चैकी पर मैय्या तुझको बिठाऊ, अपनी राधीका से मै, माँ चरण तेरे दबवावु
भोजन मै बनवाऊँगा, बनवाऊँगा छप्पन प्रकार का, राधीका गोरी से.....
छोटीसी दुल्हनिया जब अंगना मे डालेगी, तेरे सामने मैया वो, घुंघट ना खोलेगी
दाऊ से जा कहो, जा कहो बैठेंगे द्वार पै, राधीका गोरी से.....
सुन बातें लाला की मैया बैठी मुस्काये, लेकर बलैया मैया, हिवडे से अपने लगायें
नजर कहीं लग जाय ना, लग जाय ना मेरे गोपाल को, राधीका गोरी से.....

दोनों बालक गोप-गोपियोंको बहुत प्रिय हैं। दोनों बहुत चंचल है। उधमी हो गये हैं दोनों। बहुत अधिक मित्रोंकी मण्डली बना ली। देवकी ने सुना- मैया यशोदाने कृष्णको ऊखल से बांध दिया। देवकी हँसने लगी और बोली- उधम करेगा तो माता बाँधेगी। यमलार्जुन के वृक्षोंका गिरने का सुनकर माता देवकी काँप गयी।

एक दिन एक पक्षीवाला आ गया नन्दग्राममें। एक ही पक्षी था इसके पास; किन्तु इतना सुन्दर पक्षी तो इधर दीखता नहीं। मयूरकी कलँगीसे भी अत्यन्त सुन्दर कलँगी और सुरंग पक्षी। बालकोंके समान मधुर भाषामें छोटे-छोटे शब्द मानवभाषाके बोल लेता है। पक्षीवाला कहता था- यह बहुत शुभ पक्षी है और अनेक बार इसकी भविष्यवणियाँ सर्वथा सत्य होती हैं। यह आगम-ज्ञानी पक्षी है।

पक्षीवाला ही कहता था कि यह हिमालयके बहुत ऊपरी भागमें-हिमक्षेत्रमें होता है। इसने भी यह पक्षी किसी दूसरेसे क्रय ही किया है। पक्षीके पतले छोटे पदोंमें पक्षीवालेने पतली कौशेयकी काली रज्जु बाँध रखी थी। पक्षी उसके करपर शान्त बैठा था। सम्भवत: उसे अपने बन्धनका आभास था। वह जानता था कि उड़नेका प्रयास व्यर्थ है।

शिशिरमें आज पर्वका दिन है। बालक आज गोचारणको नहीं गये हैं। सब गोप भी प्राय: एकत्र हो गये हैं व्रजराजके

चौपालमें पक्षीको देखने तो फिर बालक घरोंमें कैसे रह सकते हैं।

कन्हाई अभी-अभी दौड़ा-दौड़ा आया है भवनमेंसे और बाबाके अममें बैठ गया है। दाऊ और भद्र बाबाके दाहिने-बायें सटे बैठे हैं। दूसरे भी शतश: बालक व्रजराजके ही समीप हैं।

आज जो पूछेंगे, यह उसका उत्तर देगा। पक्षीवालेने अपना दाहिना हाथ लम्बा किया, जिसपर पक्षी बैठा है।

देवप्रस्थने कन्हाईके कानोंके समीप मुख ले जाकर कहा- कनूँ, बेचारा पक्षी बँधा है। दु:ख पाता होगा।

कन्हाईने बाबाके मुखकी ओर मुख किया और उनकी दाढ़ीमें अपने दाहिने करकी अँगुलियाँ नचाता हुआ बड़े आग्रहसे बोला- बाबा, मैं पक्षी लूँगा।

बाबाके बोलनेसे पहले ही नन्दन चाचाने विचित्र अटपटे वेशवाले पक्षीवालेसे कहा- तुम व्रजराजकुमारको अपना पक्षी दे दो। तुम जितना चाहो, इसका मूल्य ले लो।

पक्षीवाला बोला- यह हिमप्रदेशका पक्षी है। यहाँ वसन्तमें ही मर जायगा।

पक्षी बोल उठा- नहीं मरूँगा। जिऊँगा, खूब जिऊँगा। मुझे विक्रय करो।

पक्षीकी ओर देखकर पक्षीवाला बोला- यह आगम-ज्ञानी है। नही जाना चाहता है तो कुमार इसे लें।

कन्हाई बाबाकी गोदसे कूदकर दौड़ गया पक्षीवालेके पास। पक्षी उड़कर श्यामके करपर आ बैठा। पक्षीवालेने रज्जु पकड़ा दी। पक्षीवाला स्वप्नमें भी न सोच सकता हो इतने रत्न नन्दन चाचा भर लाये, गायको चारा देनेको जैसे लाये हों, उसी बड़े टोकरेभर चमकते रत्न। पक्षीवाला तो आँख फाड़े देखता रह गया। उसकी तो कई पीढ़ी बैठी खायँ इतना धन-व्रजराज-पौरिपर आकर भी कोई कंगाल रहा करता है।

पक्षीवालेने कन्हाईकी ओर देखकर कहा- आप इसे छोड़ोगे तो उड़ जायगा। श्यामने दाऊ दादाके करपर पक्षी बैठा दिया है और स्वयं उसके पैरकी रज्जु खोलने लगा है। बालक सब कन्हाईको घेरे खड़े हैं।

पक्षी ही बोला- नहीं भागूँगा। ये बाँधे रहें तो और खोल दें तो, मैं इनके पास ही रहूँगा। कइयोंके बन्धनमें पता नहीं कबसे हूँ। अब ये बाँधे रहें तो मुझे सुख ही है।

कन्हाईने कहा- नहीं, बाँधूँगा नहीं तुझे। कृष्णका स्वभाव बाँधना नहीं है। यह बन्धन खोलता ही है- तू रोटी खायगा?

पक्षीवालेने बतलाया- यह केवल फल खाता है। पक्षीने कहा- खाऊँगा, तुम जो खिलाओ वही खाऊँगा। पक्षीने पक्षीवालेको डाँट दिया- अब तुम चुप रहो। जाओ, मैं इनका पक्षी हूँ।

पक्षी रज्जु खुलते ही दाऊके करपरसे उड़कर श्यामके वाम स्कन्धपर बैठ गया। तोक दौड़कर रोटीका टुकड़ा लाया तो उसके हाथपर बैठकर नन्हीं चोंचसे तनिक-तनिक रोटी खाने लगा।

कन्हाई बोला- मैया तेरे लिये स्वर्णपिंजरा लटका देगी। रातमें उसमें सो जाना और दिनमें मेरे साथ वनमें चलना। कन्हाई पक्षी पाकर उसीमें तल्लीन है- वनमें बहुत फल हैं- खूब मधुर फल। तू बच्चा देगा?

पक्षी चौंका- बच्चा, वह तो मेरी चिरैया अण्डा देती है। उसमें बच्चा निकलता है, बहुत दूर हिमालयमें कहीं होगी?

कन्हाईने कह दिया- तू उसको बुला ला। हम उसको भी रोटी देंगे, फल देंगे।

पक्षीका स्वर उदास लगा और बोला- मैं जाऊँ? मार्गमें पता नहीं कितने व्याध जाल बिछायेंगे। पता नहीं कितने लकड़ियोंमें गोंद लगाकर मुझे पकड़नेकी घात लगायेंगे। तुम मेरा ध्यान रखोगे? मैं तुम्हारा हूँ।

कन्हाईके नेत्र भी गम्भीर हो गये- हाँ रखूँगा। तू जा, अपनी चिरैयाको बुला ला।

पक्षीने पंख फैलाये, फिर समेट लिये। फिर फैलाये, फिर समेट लिये। बारम्बार पंख फैलाता-समेटता रहा। उसका जी यहाँसे उड़कर कहीं अन्यत्र जानेका नहीं; किंतु इन व्रजराजकुमारका आदेश- इसे टाला भी तो नहीं जा सकता।

पक्षी उड़ा- बहुत देरतक वहीं फुर्र-फुर्र उड़ता रहा। दाऊ, कन्हाई, भद्र-सभी बालकोंके, बाबाके, गोपोंके सिरोंके पास उड़ता रहा। बड़ी देरमें वह ऊपर उठा और गगनमें जाकर सीधे उत्तर उड़ चला। उसे कोई फँसा पायेगा। वह कन्हाईका पक्षी है। कनूँ तो उसके अदृश्य होनेपर भी उसी दिशामें देख रहा है।

रस स्वरूप, आनन्द घन, ब्रज जीवन, घनश्याम। रस बरसत, सरसत, रसत, पियतिँ। रसन ब्रज-बाम॥

जो रस स्वरूप ही हैं, जो आनन्द के बादल हैं, जो ब्रज के जीवन हैं, ऐसे श्रीकृष्ण रस बर्षाते हैं, सरस होते हैं, रस झरते हैं और ब्रज की बालायें उस रस का पान करती हैं।

ग्वाल बाल बलि बलि रहत, खेलन रत सब काल। गोधन बन बिचरन निरखि, ललचत मन नँदलाला॥

सारे संसारके देव, मनुष्य, गन्धर्व, असुर आदि जीवोंको कर्मोंकी बेड़ीसे निरन्तर बाँधे रखनेवाले सच्चिदानन्द, जगन्नियन्ता प्रभु गोपी यशोदाके द्वारा ऊखलसे बँध जाते हैं। सारे जगत्को मायाके खेलमें सदा रमानेवाले मायापति हरि गोप-बालकोंसे खेलमें हारकर, स्वयं घोड़े बनकर उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाते हैं। उन व्रजवासी नर-नारियोंको धन्य है। एक दिनकी बात है- यशोदाजी घरके आवश्यक काममें लग रही थीं, बाल-कृष्ण मचल गये और बोले, मैं गोद चढूँगा। माताने कुछ ध्यान नहीं दिया। इसपर खीझकर आप रोनें और आँगनमें लोटने लगे। इतनेहीमें देवर्षि नारद भगवान्की बाल-लीलाओंको देखनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा, सचराचर विश्वके स्वामी परम आनन्दमय भगवान् माताकी गोद चढ़नेके लिये जमीनपर पड़े रो रहे हैं।

नारद बोले- यशोदे, तेरा सौभाग्य महान् है। क्या कहें, न जाने तूने पिछले जन्मोंमें तीर्थोंमें जा-जाकर कितने महान पुण्य किये हैं? अरी, जिस विश्वपति, विश्वस्रष्टा, विश्वरूप, विश्वाधार भगवान्की कृपाको इन्द्र, ब्रह्मा और शिव भी नहीं प्राप्त कर सकते, वही परिपूर्ण ब्रह्म आज तेरी गोद चढ़नेके लिये जमीनपर पड़ा लोट रहा है।

गोकुल के आँगन, गोशाला, गलियों और उपबन में श्रीकृष्ण रस बरसाते हैं। उनके बाल-बिहार का रस अब चारों तरफ छहराने लगा और उसने गोकुल के कण-कण को रस से भर दिया।

कभी खीझते हैं, कभी चौगान खेलते हैं, कभी भौंरा-चकडोरीसे खेलते हैं। कभी खेलमें एक-दूसरेको हारनेपर दावँ देनेका अवसर देना पड़ता है। श्रीकृष्ण खेलमें हार जाते हैं। श्रीदामा जीत जाते हैं। श्रीकृष्ण दावँ देना नहीं चाहते, परंतु अन्ततः खेलना भी चाहते हैं तो दावँ देते हैं। इसप्रकार की अनेक बाललीलायें की।

जिन परमात्माका वेदोंने नेति-नेति कहकर वर्णन किया है तथा जो मुनियोंके लिये भी अगम हैं, उन्हें एकमात्र प्रेमके ही बलपर प्राप्त किया जा सकता है। वे प्रभु प्रेमसे भरे किरात बालकोंकी गँवारू एबातोंको पितृवत्सल-भावसे यदि सुन रहे हैं तो इसका प्रमुख कारण है उनका निश्छल प्रेम।

७) कृष्ण का वृन्दावन गमन

वृन्दावन- ऐसा पवित्र वन जहां गोवर्धन है, यमुना का किनारा है, प्रियतम के सुख में सुख का अनुभव करना, उनकी प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता का अनुभव करना, ये प्रेम का सच्चा प्रतीक होता है। वृन्दावन अति ही सुन्दर वन है। वहाँ पर सदा छःहों ऋतु निवास करती है। महाराज केदार की बेटी ने भगवान को प्रसन्न करने के लिये कभी यहाँ बहुत बड़ी तपस्या की थी। तभी से यह वन वृन्दावन नाम से विख्यात हो गया। वृन्दावन पशुओं का हितकारी है जिसमें नवीन बाग बगीचा और पुष्प

वाटिका हैं, वहाँ गोप और गौओं के रहने योग्य उत्तम स्थान है। लोगोंके देखनेमें वृन्दावनधाम आठ कोस लम्बा तथा चार कोस चौड़ा है, पर भगवान्‌का धाम अचिन्त्य चिन्मयस्वरूप है। उसके एक-एक धूलिकणमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका समावेश है।

वहाँ की बालू बड़ी ही कोमल और लहरियादार है। वहाँ की दूब अत्यन्त हरी-हरी और कोमल-कोमल हैं। चारे घास की तो वहाँ कमी ही नहीं। बारह कोस का वह वन है। यमुनाजी के इस पार उस पार उसकी सीमा है। जल का सुपास है समीप ही गोवर्धन नाम का सुन्दर पर्वत है। जिसमें से झरने-झरते है। उसकी तलहटी में वन-जन्तु विचरते हैं। वृन्दावन की शोभा अपूर्व है। बालक वहाँ की प्राकृतिक शोभा को देखकर बड़े प्रसन्न होंगे। वृन्दावन जैसा परम पावन वन, समस्त गिरिवरों से श्रेष्ठ गिरिराज-गोवर्धन, यमुना के परम रमणीक पुलिन एक-से-एक आकर्षक वस्तुएँ वहाँ हैं। पर्वत, दूब और लता आदि की बहुलता है। वह गोप-गोपी और गौओं के रहने योग्य है। यमुना गोकुल की अपेक्षा वृन्दावन के अधिम समीप है, अत: पशुओं के लिये पेय-जल की प्रचुरता है। कृषि को सिंचाई के लिए पर्याप्त जल सुलभ होगा।

वृन्दावनका अन्तरङ्ग स्वरूप कल्पवृक्ष अथवा चिन्तामणि-जैसे गुणोंवाला है। अन्तर है तो केवल इतना ही कि कल्पवृक्ष अथवा चिन्तामणि जहाँ सिर्फ भौतिक सुख-सुविधाओंसे सम्बन्धित आशा-अभिलाषाओंकी पूर्ति करता है, वहाँ वृन्दावन साधककी समस्त कामनाओंकी उपलब्धि करानेमें समर्थ है। मुक्ति भी यह देता है, भुक्ति भी यह देता है और भक्ति भी यह प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त वृन्दावन देता है- साधकको वह अतिशय अद्भुत परमोज्ज्वल परम माधुर्यपूर्ण प्रेम, जिसकी प्यास में पपीहेकी भाँति आकुल-व्याकुल भगवान प्रेमी साधकके पीछे-पीछे लगे फिरते हैं। वृन्दावनके इस अन्तरंग स्वरूपका साक्षात्कार व्यक्तिकी ज्ञानेन्द्रियोंसे नहीं होता, न यह मनकी कल्पनाका विषय है, यह तो केवल आत्मानुभवगम्य है। अंतरङ्ग वृन्दावन का दर्शन चूँकि आत्माका विषय है, इसलिये मनरहित समस्त इन्द्रियों तथा बुद्धिको निर्विकार करनेवाले परम्परागत समस्त उपाय इस सन्दर्भमें अधिक उपयोगी नहीं हैं। अत: वृन्दावनके अन्तरङ्गमें प्रवेश करनेके लिये किसी विधि-निषेधकी अपेक्षा नहीं है, केवल विशुद्ध अनुरागकी आवश्यकता है।

वृन्दावन रसकी खान है और गोपिकाएँ इस रसकी महासिन्धु हैं। कृष्ण नित्य-निरन्तर वृन्दावनकी वीथियोंमें यहाँके कुञ्ज-निकुञ्जोंमें, यमुनातटपर वेणु बजाते रहते हैं और गायें चराते अपने रसिक भक्तोंको कृतार्थ करते रहते हैं।

नवल बृन्दावन सोभा धाम। नवल बसंत, नवल मलयानिल, तरुवर नवल ललाम॥
नवल कुसुम, मकरंद नवल, रस-लोलुप नवल मिलिंद। नवल मोर, सुक-सारि-कोकिला कुहकत नवल सुछंद॥
नवल किसोर, नवल लीला रत नवल किसोरी संग। नवल प्रेम, आनंद नवल, अति मूर्छित नवल अनंग॥

रमण रेती में नित्य प्रति बाल गोपाल बछड़े चराने के लिए जाते हैं। एक दिन सभी बालक बैठकर विचार करने लगे, हमारा प्यारा गोकुल हर ऋतु में पैदा होनेवाले फल और फूलों से हरा भरा रहता है। अब पहले जैसा दिखाई नहीं देता। दाऊ दादा बोले, यहाँ के वनों की सेवा पहले जैसी नहीं रही हमारी सुख सम्पदा पर न जाने किसकी नजर लग गई। पेड़ों की हरियाली पहले के समान नहीं दिखाई देती। बछड़ों की चरने की हरी हरी घास अब कहीं कहीं दिखती है। सरोवरों का जल, पोखर, कुएँ का जल, नदी, नालों का जल कम क्यों होते जा रहा है, ये बात हमारी समझ में नहीं आ रही। पहले जो हीरे मोती वनों में ढेर सारे पड़े रहते थे वे अब ढेर के ढेर रत्न कहां छिप गए। कंकणों और पत्थरों की संख्या बढ़ने लगी है।

बर्हिषत् से ईशान, यदुपुरसे दक्षिण, शोणपुरसे पश्चिमकी भूमि माथुरमण्डल है। इसके अन्तर्गत साढ़े बीस योजनका भूभाग दिव्यभूमि है। इस दिव्य भूभाग का हृदय है वृन्दावन।

धन्य है व्रज-रज, जिसने परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णका अखण्ड सान्निध्य पाया। उस प्रेमका क्या पारावार जिसे

श्रीकृष्णने स्वयं परोसा।

माथुरमण्डलके सब वनोंमें वृन्दावन सर्वश्रेष्ठ है। वहाँ गोवर्धन गिरि है। कालिन्दीका प्रवाह है तथा उसका प्रशस्त पुलिन है। बृहत्सानुपुर के स्वामी वृषभानुजी नन्दके अभिन्न मित्र हैं। उनके पुरसे समीप ही नन्दीश्वर गिरी है। वह आवासके योग्य है। वह स्थान कंससे दूर हो जायेगा। वृषभानुजीके समीप नंद का बल द्विगुण हो जायगा। वृन्दावन नवीन बन है। सघन, छोटे हरित वृक्ष हैं। वहाँ पर्याप्त जलकी सुविधा है और पशुओंके लिए मृदुल तृणोंसे वह परिपूर्ण है।

वृन्दावन में प्रेम है, संगीत है, मिलन है, विरह है, योग है, श्रृङ्गार है। वहाँकी अनुरागमयी भूमिके कण-कणमें एक दिव्य उन्माद भरा हुआ है। वहाँके पत्ते-पत्तेमें एक विचित्र आकर्षण है। वहीं तो सर्वस्व है। जीवन है वहाँ, रस है वहाँ, पूर्ण रसमें रहकर अतृप्ति है वहाँ। वहाँकी दिव्य लताओंसे आलिङ्गित सरस रसालकी मञ्जरियोंके मकरन्दसे आकृष्ट हुए भौरोंको, जो अपनी चञ्चलता छोड़कर इस प्रकार उनसे लिपट गये हैं मानो कारागारमें कैद हैं। जब मलयज वायु अपने कोमल करोंसे स्पर्श करती है, बौरोंके झूलेपर मस्त हुए मिलिन्दोंको आन्दोलित करती है और वे एक साथ ही अत्यन्त मधुर संगीत गाते हुए मधु-धारा प्रवाहित करनेवाली पुष्पवती लताओंकी ओर बढ़ते हैं, तब हृदयमें कितना आनन्द होता है, उन्हें देखकर सम्पूर्ण हृदय सभी प्रकार रससे सराबोर हो जाता है।

वृन्दावन सो वन नहीं, नहीं श्याम सो यार। राधा सो कोई नारी नहीं, न ललिता-सो कोई नार॥

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण ने बलराम जी से कहा कि हे आर्य। अब इस महावन में ग्वालबालों के साथ खेलना सम्भव नहीं है। हम लोगों ने इस सारे वन को अपने उपभोग में लाकर इसकी शोभा-सम्पत्ति को नष्ट कर दिया है। यहाँ की घास चर ली गई है और काष्ठ भी तोड़ लिए गए हैं। गोपों ने यहाँ के एक-एक वृक्ष को मथ डाला है। जो वन और कानन सघन थे वे अब आकाश के समान सूने दिखाई देते हैं। इन्हें देखकर अब सुख नहीं मिलता है। अत: अब हम दूसरे वन में चलें जहाँ नई-नई घास और ईंधन की अधिकता हो। हमारी गौएँ उन नई-नई घासों को चर सकें, जो अब तक चरी नहीं गई हैं। अत: जो वन धन से सम्पन्न हो उस वन में चलें, जहाँ नयी घास उपलब्ध हों। सुना जाता है कि वृन्दावन नामक वन बड़ा ही रमणीय है। वहाँ पर्याप्त घास फैली हुई है। वहाँ के वृक्षों में स्वादिष्ट फल लगे हैं और वहाँ का जल भी सुस्वादु है। वहाँ अधिकतर कदम्ब के वृक्ष हैं तथा वह वन यमुना के तट पर ही स्थित है। उसमें सदा स्निग्ध एवं शीतल वायु चलती है। वहाँ सभी ऋतुओं का निवास है। वह वन बड़ा सुन्दर एवं सुखद है। वहाँ गोपियाँ बड़े सुख से सब ओर विचर सकती हैं। वृन्दावन के भीतरी भाग में और भी दूसरे बहुत से विचित्र एवं मनोहर वन हैं। उसके पास ही सुन्दर गोवर्धन पर्वत है और वन के मध्य भाग में रमणीय कालिन्दी नदी प्रवाहित होती है। वहीं चलकर इस व्रज को बसाया जाए और इस गुणहीन वन को छोड़ दिया जाए। गोकुल की भूमि को त्यागकर वृन्दावन चलें। सब प्रकार के सुखद साधनों सें भरपूर महापर्वत गिरिराज है। जिस वृन्दावन में निर्मल जल से भरे हुए सुन्दर सरोवर हैं और चारों ओर भारी हरियाली भी भरी हुई है।

कृष्ण बोला -दादा, यह वन तो अब रहने योग्य नहीं रहा। आर्य, यहाँ तृण चर लिया गया। शुष्क काष्ठ समाप्त हो गये। वृक्ष श्रीहीन हो गये। सघन महावन तो उजाड़ प्राय हो गया। गोष्ठमें लगे वृक्ष भी आग सुलगानेसे झुलस गये। आस-पास जल भी घट गया। अब काष्ठ तथा शाक साधारण लोगोंको क्रय करना पड़ता है। ये वनमें सुप्राप्य नहीं रहे। यह तो नगरों जैसी बात हो गयी। यह तो निर्गुण वन है। अब हम इसे त्याग कर अन्यत्र चलें।

व्रजमण्डलका यह बहिरावरण महावन- गोकुलमें केवल शैशवकी क्रीड़ा ही तो सम्भव है। यहाँ वात्सल्यका स्नेह ही सुविधापूर्वक स्वच्छन्द पाया जा सकता है। अब इसे अन्तरंग मण्डलमें- वृन्दावनमें पहुँचनेकी उत्सुकता हो गयी है और

इसलिए यह पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो रही है।

ये गोप बहुत वर्षोंसे यहाँ बसे हैं। इस स्थानका मोह सरलतासे नहीं छोड़ पावेंगे। यही बात मुझे कृष्णकी मान्य नहीं है। कोई गोप, कोई गोपी कुछ प्रहर भी कन्हाईको छोड़कर रहनेकी कल्पना नहीं कर सकता। इसे चलना है तो यह कहकर देख ले, सब अपना सर्वस्व-गोधन तक त्यागकर तत्काल चल देंगे यदि यह ऐसा आग्रह करेगा और मुख मोड़कर भी पीछे नहीं देखेंगे। यह जिनके सम्मुख आ गया एक क्षणको भी, उनके मानसको मोहकी छाया स्पर्श करनेमें समर्थ कैसे हो सकती है।

दाऊ बोले- आर्य, आपके श्रीचरण यहाँ पड़े। आपने अपनी क्रीड़ासे इस पृथ्वीको पावन किया। मैं इस गोकुलको, महावनको ऐसे ही असुरक्षित कैसे छोड़ सकता हूँ कि कंसके क्रूर राक्षस यहाँ अपना आवास बनायें अथवा इसपर अधिकार करके यहाँ विचरण करें। मैं इसे उनके लिए अतिशय भयप्रद बना दूँगा।

मैंने तो तुम्हारी इच्छा को स्वीकार कर लिया है, परन्तु तुम सभी गोकुल वासियों का मन कैसे बदलोगे? जिनके पूर्वज पीढ़ी दर पीढ़ी यहाँ निवास करते आये हैं। वे इसे छोड़ने की इच्छा कैसे करेंगे? गोपों को अपने बालक और गोधन सबसे प्यारे होते हैं। कन्हैया बोले- हम लोगों को कोई नवीन कारण उत्पन्न करके इन व्रजवासियों को डराना चाहिए।

श्रीकृष्ण ऐसा कह ही रहे थे कि उनके रोम-रोम से सैकड़ों भयानक भेड़िये उत्पन्न होने लगे, जो आमिष आहारी थे। व्रज को वहाँ से उजाड़ने के लिए जब श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार बहुत से भेड़िये प्रकट होने लगे तब उन्हें देखकर गौओं, बछड़ों, मनुष्यों तथा गोपांगनाओं में अथवा यों कहिए सम्पूर्ण व्रज में महान त्रास छा गया। योगमाया ने सर्वेश्वर भगवान के मन के संकल्प को जानकर कान्हा के शरीर से बहुसंख्यक भेड़िए पैदा कर दिए जिनका शरीर महाभयंकर आकार वाला था। झुण्ड के झुण्ड भेड़िए कन्हैया में से प्रकट होकर गोकुल की गलियों में जहाँ तहाँ फैल गए। श्री हरि की इस लीला को वहाँ कोई नहीं जान पाया।

भेड़ियों की बात गोकुल गाँव में अग्नि की तरह फैल गई। समूहों में बैठी हुई गोपियाँ आपस में इसी विषय पर बात करती हुई दिखाई पड़ रही थीं। गोपों और गोपियों ने अपने बालकों से कहा, बछड़े चराने के लिए आज वन में कोई बालक नहीं जायेगा। भेड़िये वन में इतने अधिक फैले हुए हैं जिनकी संख्याका कोई लेखा नहीं। जाने किस दिशा में से किस स्थान पर वन में भेड़िए मिल जाएँ और कोई दुर्घटना हो जाये। बड़े बूढ़ों ने कहा, राम श्याम के सहित सभी नन्हे बालकों की रखवाली करनी चाहिए। नटखट नन्हे चंचल बालक घर से बाहर पैर भी ना निकालें। घर के आँगन में ही खेलें और घर में ही कलेऊ करें। आज वन में कोई भी गोधन चराने नहीं जाये। वृद्ध गोपियों ने अपनी बहू, बेटियों को आदेश दिया, अब कोई यमुना किनारे नहीं जावे, न ही पानी भरने के लिए, न ही यमुना नहाने के लिए क्योंकि वन में असंख्य भेड़िये जहाँ तहाँ घूम रहे हैं। बड़ी बूढ़ियों की आज्ञा सभी ने शिरोधार्य की। बहू बेटियों ने घर से बाहर पैर भी नहीं निकाला और वे घर में ही बनी रहीं।

वृक यहाँ थे ही नहीं। ये भेड़िये तो बहुत धूर्त और भयंकर होते हैं। ये यूथोंमें रहते हैं और अपने स्ववर्गका भी शव नौच खाते हैं, दूसरोंपर दया कैसे करेंगे।

पंचायत पंचन लगी, जुरे सभी बड़ बूढ़। युव अधेड़ नँदराय गृह, बतिया सुनिवे गूढ़॥

गोकुल गाँव में पंचों की पंचायत जुड़ी जिसमें गाँव के बड़े बूढ़े, युवा अवस्था के और अधेड़ अवस्था के गोप श्री नन्दराय जी के घर आये। रहस्यमय भेड़ियों की बातें सुनने के लिए श्री नन्दराय के घर इकट्ठे हुए। पंचों ने कहा, सभी गोप मित्र विचार करो ये भेड़िये कहाँ से आये हैं एवं किस दिशा में, किस स्थान पर घात लगाये बैठे हैं। जाने यह प्रकृति का कैसा प्रकोप है। विधाता पता नहीं इन भेड़ियों के माध्यम से हमें क्या कुछ दिखाना चाहता है। दूसरी बात यह है कि छोटे छोटे

बालकों और पशु धन की सुरक्षा किस प्रकार करें इस पहलू पर भी विचार करना चाहिए। सभा में बड़े बूढ़ों ने सबको धीरज देकर समझाते हुए कहा, सबेरे से दोपहर ढलने को आई अभी तक भेड़ियों द्वारा किये गये किसी अनिष्ट की कोई सूचना नहीं है। तभी ताऊ उपनन्द बोले, एक सूचना में सुनाता हूँ जो कि असंख्य भेड़ियों ने हमारा बहुत बड़ा भला काम कियाहै।

वृद्ध गोप उपनन्द ने कहा, कंस का छोटा भाई सुनामा कंस की आज्ञा से असुरों की बहुत बड़ी सेना लेकर गोकुल पर धावा बोलने के लिए आ रहा था। दोपहर तक उसने सारी सेना को यमुना नदी के उस पार से इस पार पहुँचा दिया। कंसका सगा भाई सुनामा राक्षसोंकी भारी सेना लेकर आज लगभग मध्याह्नमें यमुनाके इस पार उतरा। भेड़िये उस समय उधर ही घूम रहे थे। अपार संख्या में भूखे भेड़िये सुनामा की सेना पर टूट पड़े, उन्होंने आधी सेना को समाप्त कर दिया बाकी बची आधी सेना अपने प्राण बचाकर वापस भागी।

वृकोंको वैसे भी पालतू नहीं बनाया जा सकता। अब यहाँ गायोंको वनमें ले जाना सम्भव नहीं रहा। वनसे तृण-काष्ठ नहीं लाया जा सकता। वृकोंका समुदाय कितना बड़ा है, कोई अनुमान नहीं है। शिशुओंकी, गायोंकी, सबकी ही सुरक्षा इसीमें है कि हम सब गोकुल त्याग दें और यहाँसे वृन्दावन चलें। उपनन्द बोले- मैं वहाँ नन्दीश्वर गिरिका परिसर देख आया हूँ। हम सबके लिए सब प्रकारकी ही सुविधा-सुरक्षा वहाँ उपलब्ध है।

इस प्रकार उन दुर्जेय भेड़ियों को बढ़ते देखकर समस्त व्रज के स्त्री-पुरुषों ने एकत्र होकर अन्यत्र जाने के लिए मन्त्रणा की और सबकी सहमति से, सभी लोग वृन्दावन के लिए तुरन्त प्रस्थान कर गए।

करि करि बिविध मधुर चरिताई। देहिं परम सुख ब्रज समुदाई।।
एक दिवस संकर्षण भाई। कहेउ बोधि अति निकट बुलाई।।
नहिं शोभा श्री एहिं बन माहीं। अब हमरे सुजोगु यह नाहीं।।
अब तृन काठ प्रचुर नहिं ऐते। चहिय हमहिं सब सुरभिन्ह जेते।।
चलन चहिय अब कानन आना। जहँ सुपास सब सुखहिं बिधाना।।
सुनेउँ इहाँ ते थोरेहिं दूरी। वृन्दावनहिं सुपासहिं पूरी।।
तेहिं वन बिपुल रुचिर सुठि ठाऊँ। तहँ गिरिवर गोवर्धन नाऊँ।।
यह राजत कालिन्दिहिं तीरा। तेहिं सुस्वादु सुठि निर्मल नीरा।।
चलिय बसाइय व्रज तहाँ तजि एहिं वन गुणहीन। डेरवाइय व्रज वासियन्ह रचिकछु हेतु नवीन।।
निरखत पंथ गएउ बहु काला। करन चहिय अब स्वजन निहाला।।
तुरतहिं प्रभु तनु बिपुल श्रृगाला। प्रगटे दुर्धष अमित कराला।।

गोकुल में, महावन में रह-रहकर बड़े-बड़े उत्पात होने लगे। सारा गोकुल कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्यार करता था अत: एक बार गोकुल के बड़े-बूढ़ों के मन में यह विचार आया कि यहाँ बड़े-बड़े अनर्थकारी उत्पात हो रहे हैं। इस स्थिति में क्या करना चाहिये? वे सभी एकत्रित हुए और परस्पर विचार विमर्श करने लगे। उनमें उपनन्द जी वय और ज्ञान में सबसे बड़े थे। उन्होंने भरी सभा में खड़े होकर कहा कि- अब गोकुल में हमारे बालकों का रहना निरापद नहीं है। इसलिये हमें इस स्थान का परित्याग कर कहीं और चलना चाहिये। देखिये हमारा कन्हैया पूतना से बच गया, छकड़ा के नीचे दबने से बच गया, बवण्डर से बच गया, और अब पेड़ों के बीच में आकर भी, उनके गिरने पर, घायल होने से बच गया। भगवान् की हम लोगों पर यह बड़ी भारी कृपा है कि नन्दराय का छोरा बराबर सकुशल बचता चला आया किन्तु अब दूसरा उत्पात आने के पहले ही हमें गोकुल छोड़ देना चाहिये।

जब किसी गृह या ग्रामके अधिदेवता उसका त्याग कर देते हैं तो वह प्राणहीन शवके समान अपवित्र-अमंगल बन जाताहै। वह आवासके अयोग्य हो जाता है। उसका शीघ्र त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जैसे शव सड़ने लगता है, ऐसेही अधिदेवतासे त्यक्त स्थान उत्पातोंका आवास बन जाता है। उसे उजड़ जानेसे बचाया नहीं जा सकता। वहाँ बसे रहनेका प्रयत्न करनेवाले अशान्ति, कष्ट ही पाते है और स्थान-त्यागको विवश होते हैं। गोकुलके अधिदेवताओंने इसे त्याग दिया तो अब यहाँ शीघ्र उत्पात होने लगेंगे। यह अब रहने योग्य नहीं रहा।

अब गोकुलके अधिदेवता भी यह स्थान त्यागकर चले गये। अत: जब तक आधिदैविक उत्पात भी नहीं आ टूटते, उससे पहिले ही हम सबको यह स्थान त्याग देना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यहां से थोड़ी ही दूर पर वृन्दावन नाम का एक वन है। उसमें छोटे-छोटे और भी बहुतसे नये-नये हर-भरे वन हैं। वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी भरी लता-वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओं के लिये तो वह बहुत-ही हितकारी है। गोप, गोपी और गायों के लिये सुख-सुविधा की सारी वस्तुएँ वहाँ प्राप्त हैं।

नन्दबाबा ने आज पूरे बृजवासियों के समाज को एकत्रित किया, ब्रजवासियों से बोले- जिस दिन से लाला का जन्म हुआ है, कोई न कोई उत्पात यहां हो रहा है। गर्गाचार्य मुनि भी आकर कह गये हैं कि हमें गोकुल में नहीं रहना चाहिए। जहाँ हमारे लाला को सुख नहीं हैं, जहाँ मेरा कन्हैया सुविधा से नहीं रह सकता, ऐसी जगह हमको नहीं रहना चाहिए। इसलिये गोकुल का परित्याग कर कोई ऐसी सुंदर नगरी में जायेंगे। नन्द जी के छोटे भ्राता सुनन्द जी ने कहा, परम पावन अद्‌भुत जगह है वृन्दावन।

एक दिन सब वृद्ध, गोप, नन्द, उपनन्द आदि ने विचार किया कि इस वृहद् वन (महावन) गोकुल में अनेकों उपद्रव नित्य होते रहते हैं। कंस के द्वारा भेजे हुए राक्षस नित्य यहाँ आ आ कर हमारे प्रिय कृष्ण को मारने की घात लगाते रहते हैं। अत: हम को अब इस वन को शीघ्र ही त्याग देना चाहिये। यहाँ से वृन्दावन को चले जाना चाहिये। वह वन अति उत्तम और सदा घास से हरा भरा रहता है। जिस भाँति हमारे राम श्याम सुखी रहें, हमें वही काम करना चाहिये। शीघ्र ही यहाँ से कूँच कर देना चाहिये।

उपनन्द बोले- जिस स्थान पर देव पुरुषों का वास न हो वहाँ निवास करना अच्छा नहीं होता। गोकुल के चारों ओर वनों में पहले जैसी शोभा दिखाई नहीं देती। वन में घास की कमी हो गई है। सरोवरों में पानी घटने लगा है। इतना सब होने पर भी नयी आपत्ति के रूप में भेड़ियों का उपद्रव हो गया है। अब हमें किसी तरह गोकुल की धरती को छोड़ देना चाहिये और वृन्दावन चलना चाहिये जहाँ किसानों के लिये हरा भरा और खुला जंगल और खुला पानी चाहिये।

महावन से भी श्रेष्ठ और सुन्दर वृंदावन सुख का धाम है। अब गोकुल छोड़कर वृंदावन चलें वहाँ रहने का आनन्द लें। सुख देनेवाला वही निवास-स्थान अच्छा लगता है, जहाँ रहने से परिवार का भला हो। जहाँ पर शरीर गोधन और जन सुख पावें, बुद्धिमान लोग वहीं पर वास करना उचित बताते हैं। जिस स्थान में रोग और शोक से रहित निर्भय वास करने को मिले, वही स्थान शुभ और रहने योग्य है। इधर महावन में बड़े भय उत्पन्न हो गए हैं और कंस हमारी सब बातें जान गया है।

राम और कृष्ण दोनों गोकुल के प्यारे, जीवन के धन और आँखों के तारे हैं। गोकुल में अब इनके प्राणों का भय है। किसी अशुभ घटना को सोचते ही तन मन काँप जाता है। इस प्रकार बहुत से विघ्न आये, लेकिन इष्टदेव नारायण ने इसे बचा लिया। बिना कृष्ण-बलराम के गोकुल में कोई नहीं रह सकता। इसके पहिले कि कोई अशुभ घटना हमको आकर नष्ट कर दे, हमें यह स्थान छोड़कर कहीं और चलना सब प्रकार से उचित दिखाई पड़ता है। मन को रमानेवाली सुहावनी पर्वत की चोटियाँ हैं और वह स्थान गोपियों, गोपों और गायों को अच्छा लगनेवाला है। वहाँ पर नदी और तालाब बड़े सुहावने हैं। हमारा तो मन आज ही वहाँ चलने को होता है।

वृन्दावन धाम में निर्मल शीतल जल के सरोवरों और नदी नालों की बहुतायत है। वन में अधिकतर हरियाली की सम्पदा भरी पड़ी है। वृन्दावन में पतितों का उद्धार करने वाला परम पवित्र गोवर्धन पर्वत है। गोप जाति में एक विशेषता है कि वे सारे यथाशीघ्र एकमत हो जाते हैं। शाण्डिल्य मुनि ने भी ईश्वर की अन्त:प्रेरणा जानकर सम्पूर्ण सहमति प्रदान की और सभी ने दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त में वृन्दावन के लिये प्रस्थान करने का निश्चय किया। शाण्डिल्य मुनि बोले- हिंसक पशु, मूषक, शुक एवं अन्य ऐसे प्राणियोंकी वृद्धि जो मानवकी आजीविका तथा जीवनके लिए आतंक बननेवाले हों आधिदैविक उत्पातोंमें ही गणना की जाती है। अकाल, महामारी आदिके समान इनके प्रतिकारका दायित्व भी हम ब्राह्मणोंपर ही है। तुम सबको अब गोकुल त्याग देना चाहिये। सम्भवत: भगवान नारायणकी यही इच्छा है।

बालकों के खेलने के लिये भी वहाँ बहुत से अवान्तर वन हैं। तो हमारा यह प्रस्ताव यदि आप लोगों को रुचिकर प्रतीत हो तो आज ही हम लोग वहाँ के लिये प्रस्थान कर दें। विलम्ब न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें और पहले गायों को, जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें।

नन्दजी के सबसे बड़े भाई उपनन्दजी ही सबसे अधिक बूढ़े थे। गोपों में वे ही ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध समझे जाते थे। वे देश, काल और वस्तु के तत्त्व को जाननेवाले थे। श्याम और बलराम को वे प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। राम श्याम के लिये वे सब कुछ करने को सर्वदा उद्यत रहते थे। वे भी अनुभव करते थे यह स्थान अब निरापद नहीं है। स्थान परिवर्तन की बात वे भी इधर कुछ दिनों से सोच रहे थे। आज भी गोपों ने मिलकर यह निर्णय किया, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भी इस बात से पूर्ण सहमत थे, कि हमें इस स्थान का परित्याग कर देना चाहिये। अत: वे बोले- मुझे इस बात से अत्यन्त प्रसन्नता है, कि आप सब लोग इस स्थान को त्यागने के लिये उद्यत हैं। हम देखते हैं, जब से नन्द के लाला हुआ है, तब से यहाँ नित्य ही कुछ-न-कुछ उत्पात होते रहते हैं। यहाँ बालकों का रहना निरापद नहीं, अत: यदि हम गौओं की गोवंश की कुशल चाहते हैं तो हमें इस स्थान का मोह त्याग कर यहाँ से उठकर चल ही देना चाहिये। जब से हमारे घर में बच्चे का जन्म हुआ है, तभी से यहाँ विपत्तियों का ताँता-सा लगा रहता है।

जब तक कोई और अनिष्टकारी उत्पात या अरिष्ट आकर ब्रज पर आक्रमण नहीं करता- उससे पहिले ही हमें बालकों को लेकर किसी अन्य स्थान पर चला जाना चाहिये। सब गोप भी अपने बन्धु-बान्धव तथा समस्त सामग्री के साथ चलें।

शशक हैं, मृग हैं, गवय हैं, भल्लूक हैं, केशरी हैं और व्याघ्र हैं; किंतु वृक एक भी कहीं नहीं दीखा। इतने अधिक वृकोंके पदचिन्ह पाये गये थे; किंतु यह प्राणी कपटी है, कोलाहलसे दूर रहता है। छिपकर कुटिलतापूर्वक आक्रमण करता है। लाख-लाख गायों-वृषभोंकी हुंकृति, उनके गलेमें पड़ी घण्टियोंका शब्द, शकटोंकी घर्र-घर्र ध्वनि, बालकोंका कोलाहल भी कम लगा था। एक यूथका शृंगनाद समाप्त होतेही दूसरा यूथ प्रारम्भ कर दे। इस गगन-गुंजित करते अविराम कोलाहलमें वृक समीप आनेका साहस नहीं कर सकते।

उपनन्द ब्रजराजनन्द के अग्रज हैं। उपनन्दजी बड़े भारी ज्ञानी भी रहे, सद्विचारक भी रहे, विवेकवान भी रहे, दूरदर्शी भी और वयोवृद्ध। सब गोपोंपर इनकी धाक थी सभी इनकी धाक मानते थे। उनको व्यवहार-नीतिका सभी पण्डित मानते हैं।

ब्रजहिं विविध उत्पातहिं देखी। नन्द बुलाएउ सभा विशेषी।।
नन्द उपनन्द सकल वृषभानू। आए सकल सुगोप सुजानू।।
बोले नन्दराज सुठि बाता। होत ब्रजहिं बहुविधि उत्पाता।।
करहु सकल मिलि रुचिर विचारा। कवन भाँति एहिं विपति उबारा।।
बोला गोप सुनन्दहिं बूढ़ा। जानत ईश रहस अति गूढ़ा।।

नन्दराय अस मोर विचारू। अब हम सब लगि ब्रज न सुचारू।।
चलन चहिय संग परिकर ब्राता। जेहिं थलु होइ न कछु उत्पाता।।
नाथ इहाँ ते थोरहिं दूरी। वृन्दावनहिं सुखद भरपूरी।।
विभु क्रीड़ा थलु दिबि रुचिर तहँ सब भाँति सुपासु।।
गर्ग महामुनि मुख सुनी प्रथमहिं महिमा तासु।।

शुकदेव बोले- राजन्, उपनन्द जी सब गोपों को सम्मति देते हुए कहने लगे- देखो, भाई। यहाँ से कुछ ही दूर पर एक वृन्दावन नाम का वन है। वह नूतन बनावली से सुशोभित है, पशुओं के लिये हितकर है, उसमें अति पवित्र पर्वत है गौओं के लिये घास है और बड़ी लताओं की कुञ्जें हैं सब गोप-गोपी और गौओं के लिये सेवनीय है, अत: आज ही हम सब वहाँ गौओं को आगे करके चलें, देरी करने का काम नहीं, सभी पश्चों को मेरी बात जँचे तो अपने-अपने छकड़ों को जोत कर चलो।

यमलार्जुन को पतन अशुभ अति गोपनि मान्यो। नहीं निरापद ठौर शिशुनि हितकर नहिँ जान्यो।।
पश्चायत सब करहिँ होहिँ उत्पात यहाँ अति। नाना रूप बनाय असुर इत आवें नित प्रति।।
तातें तजि गोकुल तुरत, श्री वृन्दावन चलहु सब। भूमि सरस जल थल विमल, बोले श्री उपनन्द तब।।

नन्दपौर पर लगे यमलार्जुन के वृक्ष बिना आंधी, चक्रवात के गिर गये। व्रज का सर्वस्व श्याम उनके मध्य फँस गया- उपनन्द को यह बहुत अपशकुन लगा। ये वृज मुनि शाण्डिल्य के निर्देश से उनके पिताश्री ने लगाये थे। गोपियाँ इन पर देवताओं का वास मान कर इनकी पूजा करतीं, मनौतियाँ माँगती। शिशु अबोध थे, बनाकर ऐसा नहीं कह सकते। अत: उनकी यह बात असत्य नहीं मानी जा सकती कि इन वृक्षों के गिरने पर इनमें से दो देवता निकले थे और लाला को साष्टांग कर आकाश में अदृश्य हो गये।

वे दिव्य तरु थे। देवताओं के आवास थे। देवता चले गये तो वे गिर गये। जब किसी गृह या ग्राम के अधिदेवता उसका त्याग कर देते हैं तो वह प्राणहीन शव के समान अपवित्र-अमंगल हो जाता है। आवास के लिए अशुभ माना जाता है। गोकुल के अधिदेवताओं ने वहाँ से पलायन प्रारम्भ कर दिया है अत: गोकुल अब रहने योग्य नहीं रहा इसका त्याग कर देना ही अभीष्ट हैं। यहाँ अब उत्पात होने लगेंगे।

उपनन्द ने यह भी सुझाव दिया कि अब कहीं अन्यत्र रहने योग्य स्थान खोजना चाहिए। क्योंकि यहाँ उत्पात पहले से ही हो रहे हैं। पूतना, शकटासुर, श्रीधर पण्डित, बकासुर, तृणावर्त आदि का आगमन कंस के निर्देश पर हुआ। इन सबका निन्दनीय प्रयास हमारे प्राणधन ब्रजराजकुमार के प्रतिकूल ही तो था। यहाँ जीव-जन्तु भी बहुत रहने लगे हैं। उनसे हमारे बालकों का अनिष्ट हो सकता है। नन्द वल्लभ की रक्षा करना ही हमारा प्रथम दायित्व है। यहाँ असुरक्षा बढ़ती जा रही हैं। अत: गोकुल का त्याग ही श्रेयस्कर होगा।

एक समय में नन्द नृप, विविध अरिष्ट निहार। इकठे कर ब्रज बोप सब, बोला वचन विचार।।
विविध वेदना हम पर आई। सो सब तुमने देखी भाई।। बाकी शकट से पुत्र हमारे। निज भागन से बचे बिचारे।।
तृणावर्त द्रुमपतन कराला। इनसे जिम किम छूटे बाला।। हमरे यह दो शिशु सम प्राना। इन बिन मम आलम्ब न आना।।
सो यह यहाँ विविध दुख पावत। मम मन कुछ विचार नहिं आवत।।
अब क्या करना चाहिये भाई। यह महि मम अब नाहिं सुहाई।।
सब गोपन में गोप इक, हरिजन वृद्ध सुजान। तास नाम उपनन्द नृप, बोला वचन प्रमान।।
नन्दराज तुम भज्ञखा जोई। समीचीन हम जानासोई।। मेरे मन तो अब यह आई। योग्य यहाँ से चलना भाई।।

चतुर्विंशती क्रोश प्रमाना। वृन्दावन वरु विपिन बखाना।। अति समीप कालिन्दी जामें। सुन्दर घास प्रचुर अति तामें।।

यदि कहो, यहाँ से अब कहाँ चलना चाहिये- तो सुनो। चौबीस कोश प्रमाण का वृन्दावन नाम का एक श्रेष्ठ वन कहा है, जिसके अत्यन्त पास में श्री यमुना जी बह रही हैं, और उसमें सुन्दर-सुन्दर घास भी बहुत है।

नन्दीश्वर गहवर गोवर्धन। जामें पर्वत अघगणमर्दन। जो तुमको प्रिय लागे भाई। तहाँ वास सब विध सुखदाई।।

और जिस श्री वृन्दावन में, नन्दीश्वर नाम का पर्वत, गह्वर वन और संपूर्ण पापों को नाश करनेवाला गोवर्धन पर्वत है, (भाव-गोवर्धन, कामवन, नंदगांव, बरसाना आदि स्थान यह सभी चौबीस कोस का वृन्दावन है।) हे भाई, यदि आपको वह वृन्दावन प्यारा लगे, तो उस वन में निवास, सर्व प्रकार के सुखों को देनेवाला है।

हितकारी ता गोप के, सुनकर वचन विशाल। बहुत ठीक बहु ठीक कह, बोले सब गोपाल।।

उपनन्द की बात सुनकर सभी ने एक स्वर से बहुत ठीक है, बहुत ठीक है कहकर उनके प्रस्ताव का समर्थन किया। इसके बाद सब लोगों ने अपनी झुण्ड-की-झुण्ड गायें इकट्ठी की और छकड़ों पर घर की सारी सामग्री लाद कर वृन्दावन की यात्रा की।

नन्द बोले- गोपों के प्रेमभाव को देखकर नन्दबाबा की आँखों में आनन्द के आँसू भर गये और वह सिर झुकाकर आनन्द देनेवाले बचन बोले। उन्होंने कहा कन्हैया तो सारे ब्रज का प्यारा है, उसकी रक्षा के लिये मैं अवश्य चलूँगा तुम धीरज रखो।

मार्ग की सुरक्षा व्यवस्था सनंद को सौंपी गयी। तो शाण्डिल्य ने प्रस्थान के मुहूर्त का उचित समय बता दिया।

सबको लगा कन्हैयाकी रक्षाके लिये वृन्दावन चलना चाहिये। तमाम गोपोंके मनमें एक ही बात है कृष्णका मंगल हो। यह प्रेम प्रेरित है। मैयाको तो बार-बार यह लग रहा था कन्हैयाको कहाँ छिपाकर रखें? मैया तो रो भी पड़ती। कहा करती कि कहाँ चली जाऊँ? क्या करूँ? गोकुलमें रहना तो अब मेरे लिये सम्भव नहीं है।

नाहिन गोकुल बास हमारौ। बैरी कंस बसत सिर ऊपर, नित उठि करै खगारौ।।
गाँम-गाँम प्रति देश-देश प्रति, लोक-लोक प्रति जानी। यह गोपाल कहाँ लै राखौं, कहत नंद की रानी।।
सकट पूतना तृनावर्त तै यहै विधाता राख्यौ। कैसे मिटै कह्यौ संतन कौ, गर्ग बचन यौं भाख्यौं।।
जद्यपि परब्रह्म अबिनासी, महतारी डर मानै। परमानंद प्रीति ऐसी पुनि, सुक मुनि, ब्यास बखानै।।
सुनि सुनन्द कर सुन्दर बानी। हरषे सकल बहुत भल मानी।।
समाधान सबके मन आवा। तुरत पयानहिं साज बनावा।।
रथ गज बाजि छाकड़हिं नाना। नन्द सगण तँह कीन्हिं पयाना।।
बाजत मंगल बिबिध बधाई। चलत बन्दिजन सुजसु सुनाई।।

इसके बाद सब लोगों ने अपनी झुण्ड-की-झुण्ड गायें इकट्ठी कीं और छकड़ों पर घर की सारी सामग्री लाद कर वृन्दावन की यात्रा की। परीक्षित्, ग्वालों ने वृद्धों, बालकों, स्त्रियों और सब सामग्रियों को छकड़ों पर चढ़ा दिया। फिर वे धनुष बाण लेकर बड़ी सावधानी से उनके पीछे-पीछे चले।

परीक्षित्, ग्वालों ने वृद्धों, बालकों, स्त्रियों और सब सामग्रियों को छकड़ों पर चढ़ा दिया। फिर वे धनुष बाण लेकर बड़ी सावधानी से उनके पीछे-पीछे चले। सुखकर वृन्दावन में पहुँच कर पहले ग्वालों ने अस्थाई रूप से रहने के लिये अपने छकड़ों को अर्धचन्द्राकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपनी गायों के लिये योग्य स्थान बना लिया। बाद में सुन्दर भवनों का निर्माण कराकर वे सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे। वृन्दावन, गोवर्धन और यमुना के आकर्षक तटों को देखकर बलराम और कृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई।

कंस के भय ने गोकुलवासियों को अपने पूर्वजों के धन-धाम और धरती छोड़ने को बाध्य कर दिया। निर्दोष बालकों की

हत्या के साथ-साथ वह यदुवंशियों को बर्बाद करने के लिए बर्बरता पर उतरा। उनकी गौ-सम्पत्ति के बलात् हरण से लेकर उनके गोचर को नष्ट करने तथा पकी फसल को अग्नि के हवाले करने से भी उसके लोग बाज नहीं आ रहे थे।

प्रात: प्रस्थान की प्रस्तुति में सनन्द रात्रि भर घूम फिर कर गोकुल के सभी गृहों में होकर नन्दरानी के प्रांगण में पहुँचा तो पहली बार श्याम बलराम को एक ही शैया पर सोते देखा। निद्रा में ही राम का दक्षिण कर कृष्ण के ऊपर था जैसे उसे सम्हालते हुए हों। रोहिणी-यशोदा सामान की सम्भाल में थीं कि किस छकड़े पर क्या सामान लादना है। मार्ग के लिए भोजन भी तैयार हो रहे थे। कृष्ण के खिलौने, वस्त्र, कलेऊ की विविध सामग्री विशेषरूप से नन्दरानी ने पृथक से सँभाल कर रखी है। न जाने कब क्या माँग बैठे। सनन्द ने नन्दरानी की व्यस्तता देखकर उपहास किया।

भाभी, मुझे मार्ग में कलेऊ तो करा दोगी न। भैया, तुम रोहिणी जीजी से पूछ लो। उन्होंने ही तुम्हारी, तुम्हारे भैया की, अतुला और मेरी भी व्यवस्था की है। मैं नीलमणि, राम, भद्र, तोक, विशाल आदि की व्यवस्था ही नहीं बना पा रही हूँ। तनिक मेरी मदद करो, बताओ कि मार्ग में उन्हें कब क्या चाहिए? सनन्द हाथ जोड़-मुस्कराता चला गया। जहाँ भी वह व्यवस्था की दृष्टि से गया सबकी बस एक ही माँग सर्वोपरि थी कि उनका छकड़ा नन्दरानी के पास ही रखा जाय।

रातको कन्हैया और बलराम सोये रोहिणीने जाकर उठाया और कहने लगी यशोदा तू देरी कर रही है जानेमें देर होगी तो आगे भी देर हो जायेगी। यशोदा नीलमणिको जगाने लगी - बेटा, मोहन जागो। कमलोंका विकास हो गया सूर्यकी किरणें पड़के, कुमुदिनी मुरझा गयीं। यह देख, तुम्हारे संगी-साथी आ गये। सूरज भगवान आकाशमें पूरबकी ओर दिखते है। अब जब कन्हैया जागा तो मैयाने उठाकर गोदमें ले लिया।

जागौ मोहन, भोर भयौ। फूल कमल, कुमुद मुद्रित भए, तमचुर कौ सुर हारि गयौ।।
टेरत ग्वाल-बाल सब ठाढ़े, पूरब सौं पतंग उदयौ। सुनत बचन जागे नँदनंदन, सूर जननि तब उछँग लयौ।।

गोकुल की आखिरी रात जागते ही जागते और गाड़ियों में मनचाही वस्तुयें रखते ही बीत गयी। बालक, वृद्ध, नर नारी सभी चलने का प्रबन्धन करने लगे जिसे देखकर नन्द बड़े प्रसन्न हो रहे थे।

नन्द के छोटे भाई सनन्द ने कहा- मथुरा मण्डल में सब वनों में वृंदावन सबसे श्रेष्ठ है। महर्षि शाण्डिल्य ने बताया था कि तीस योजन का यह भूभाग दिव्यभूमि है। वृन्दावन इसका हृदय है, अत: वृन्दावन ही क्यों न चला जाय। यहाँ गिरिगोवर्धन निकट है। कालिन्दी का प्रवाह है, सुन्दर पुलिन है और वृषभानु हैं जो हमारे परम हितैषी हैं। वृन्दावन नवीन वन है। सघन छोटी हरित वृक्षावली है। पर्याप्त जल सुविधा तथा पशुओं के लिए मृदुल तृणों से परिपूर्ण है। मथुरा के पास रहकर कब तक सकुशल रह सकेंगे।

कुछ गोप बोले- हमारे न घर है न खेती- बारी। गौएँ ही हमारा धन हैं, गौएँ ही हमारी देवता हैं, वे ही हमारी आजीविका का साधन हैं। जहाँ बाढ़ लगाकर गौएँ खड़ी कर दीं, वहीं हमारा गोकुल हो गया। जहाँ क्रमबद्ध छकड़े खड़े कर दिये वहीं हमारा पुर हो गया, इसी स्थान के लिये हमारा कोई पट्टा तो लिखा नहीं सब ही भूमि गोपाल की है। हमारे यहाँ बारह वन और बारह उपवन हैं। इस वन का नाम है महावन। महावन में उपद्रव हैं, तो किसी दूसरे वन में चलकर डेरा डाल दो। वहाँ बस्ती बना लो।

बृषभानु बोले- हमें स्थान की उतनी चिन्ता नहीं। हमें तो श्रीकृष्ण की चिन्ता है। श्रीकृष्ण जहाँ सुखी रहें, राम कृष्ण को जहाँ आनंद हो, वह नरक भी हमारे लिये स्वर्ग से बढ़कर है, जहाँ श्रीकृष्ण प्रसन्न न रहें, वह बैकुण्ठ भी हमारे लिये नरक के समान है। यदि यहाँ नित्य प्रति उत्पात होते हैं और श्रीकृष्ण के लिये कुछ आशमा हैं, तो हमें तुरन्त इस स्थान को त्याग देना चाहिये। श्रीकृष्ण ही हम सबके जीवन सर्वस्व हैं।

सब की सम्मति स्थान त्याग की ही समझकर नन्दजी ने कहा- अच्छा, यह तो निश्चय हो गया, कि इस स्थान को

हमें त्यागना है, किन्तु अब विचारणीय विषय यह है, कि इस स्थान को छोड़कर चलें कहाँ? कहाँ अपनी बस्ती बसावें। स्थान ऐसा चाहिये, जो खुला हुआ विस्तृत हो, जल का सुपास हो, गौओं के लिये घास का बाहुल्य हो और देखने में भी रमणीय हो। सघन वृक्ष हों।

रक्षा का दायित्व निभाने के लिए सनन्द ने सभी तरुण साथियों को अस्त्र-शस्त्र सहित अपने साथ ही रखा। मुनि शाण्डिल्य शिष्यों सहित एक छकड़े पर, भगवती पूर्णमासी, मधुमंगल कुछ मुनियों सहित एक छकड़े पर, रोहिणी यशोदा अपने सुकुमारों को सँभाले एक छकड़े पर, उपनन्द, नन्द, नन्दन एक छकड़े पर, तुङ्गी, पीवरी, अतुला, कुबला एक छकड़े पर बैठ गई। यशोदा और रोहिणी दोनों मैय्या बलराम और कृष्ण को लेकर बैठी। गायों की अपार भीड़ शोभा दे रही थी और वह सब एक कतार में खड़ी मन को अच्छी लग रही थी।

व्यूह के अनुरूप आगे गायें, वृषभ ऋषि शाण्डिल्य, भगवती पूर्णमासी, नन्दरानी और फिर जेठानी, देवरानियाँ और नन्दराज सबमें पीछे थे। प्रस्थान हुआ। कुछ दूर जाकर सब गाय, वृषभ लौट पड़े। प्रहरी रोकते ही रह गये। सब नन्दरानी के छकड़े के चारों ओर हुंकारें भरती चलने लगीं। व्यवस्था बिगड़ गयी। किन्तु सनन्द प्रसन्न हुए कि श्याम की सुरक्षा दृढ़ हो गई।

क्षण भर में ही गोकुल का मार्ग गाड़ियों और गायों से बड़ा सुहावना लगने लगा। गाड़ियों के मण्डप सोने के कलशों से शोभायमान थे और उनमें ध्वजा और पताकायें लगी थीं। बैलों के गले में घण्टियाँ बँधी थीं जो झफन झफन टुन टुन शब्द कर रही थीं और वे एक अनुशासन में बँधे हुये राजमार्ग पर शोभा दे रहे थे।

साधु-साधु सब कहें कर्‌यो अनुमोदन सबने। बोले बूढ़े गोप लख्यो वृन्दावन हमने।।
सबई तहाँ सुपास दूब, द्रम, जल, वन गिरिवर। श्रीयमुनाके निकट परम सुन्दर अति सुखकर।।
चलो आज ई चलेंगे, निश्चय सब मिलिके कर्‌यो। सुनत बँधे बिस्तर तुरत, छकरनिमहँ सब धन भर्‌यो।।
तुरहीं बाजन लगीं जोरि छकरा सब दीन्हें। धनुष बान लै हाथ गोप कछु आगे कीन्हें।।
तिनके पीछे धेनु साँड़ बछरा सब जावें। छकरनि गोपी चढ़ीं गीत गोविँदके गावें।।
माता यमुशति रोहिणी, राम-श्याम सँग रथ चढ़ीं। ज्यों मन सँग इन्द्रिय चलहिँ, त्यों हरि सँग गैया बढ़ी।।

गोकुल की वे गलियाँ जिनमें कृष्ण-बलराम की बाल-क्रीड़ाओं की कहानियाँ अंकित हैं, यहाँ के ये पेड़-पौधे,लता-गुल्म जो वर्षों से उनके सुख-दु:खके साक्षी-संगी रहे हैं, ये अट्टालिकाएँ, ऋषियों-तपस्वियोंके, गाँव-किनारों के ये पर्णकुटीर, ये गोष्ठ गौओं के ये तृणाच्छादित विस्तृत गोचर-प्रदेश इन सबों से सदा के लिए मुँह मोड़ना पड़ेगा। बड़े लुभावने प्राकृतिक दृश्य हैं गोकुल के। हरे-भरे ऊँचे पेड़। आम, नीम, महुआ, ताल, पलाश, पीपल, बरगद, बबूल से घिरा-भरा गोकुल जैसे प्रकृति की साक्षात् कोख में ही बसा था। यहाँ की माटी की अपनी गंध थी जो गौओं और गो-वत्सों की गंध से मिलकर यहाँ की विशेष पहचान बन गई थी। यहाँ की बयार की अपनी मस्ती थी जो अनेकानेक पुष्पों का पराग अपने में समेट गंध-बोझिल हो गोप-गोपियों को एक नैसर्गिक मस्ती का बोध कराती थी। यहाँ के बाँस-वनों का अपना आकर्षण था और हवा के हलके झोकों पर ही आपस में रगड़ खाकर जिस संगीत की वे सृष्टि करते थे उसका जादू सब पर समान रूप से चलता था।

सभी लोग प्रस्थान को प्रस्तुत थे- कृष्ण, बलराम, श्रीदामा, सुबल, सुकान्त, सुभद्र आदि बालकों में विशेष उत्साह लखित हो रहा था। सबने मिलकर छकड़ों पर सामान सजाया था, रोगियों, असहायों की सहायता की थी और स्वयं पैदल चलने को तैयार थे।

सबकी सम्मति जानके, नन्दगोप गोपेश। निज दासन को बोलकर, हुकम दिया मिथिलेश।।
हे शत्रूजित हे अरिमर्दन। हे सहस्त्रजित तस्कर अर्दन।।

जलदी स्यंदन जोत लिआवो। अबला बाल वृद्ध बइठावो।।
सब वस्तू शकटन में धरिये। गो आदिक पशु आगे करिये।।
तुम सब चलिये प्राक पिछारी। धनु असि आदिक आयुधधारी।।
नन्दराज का वचन सुन, तैसे ही तिन कीन। निज निज स्यन्दन जोड़ के, सबी अभीर प्रवीन।।
शंख तुरी का घोष कर, निज निज इष्ट मनाय। नाचत गावत सब चले, विविध श्रृंगार बनाय।।
मात यशोदा रोहिणी, निज निज सुत ले गोद। एक यान में बैठ कर, चली अमित मन मोद।।
वृन्दाकानन पहुँच कर, सुन्दर यमुना तीर। निज निज धाम बनाय के, बसत भये आभीर।।

ऋषि मुनियों के द्वारा स्वस्ति वाचन हुआ। नारायण के नाम की ध्वनि और ओंकार का उच्चारण हुआ। तभी शंखनाद हुआ और गायों के घंटों की आवाज आने लगी। पूर्व दिशा में पौ फटी और पूरी दिशा में लालिमा भर गई। रात्रि का अंधकार हल्का पड़ने लगा। सब लोग अपने इष्ट का स्मरण करके नए उत्साह के साथ वृन्दावन की ओर चल पड़े। प्रात:काल अपने प्यारे गोपाल श्याम सुन्दर के दर्शन किए बिना गैया आगे की ओर पैर नहीं बढ़ा रही थीं। जिन बछड़ों को नन्दलाल ने नित्य चराया वे भी उनके दर्शन के बिना वृन्दावन की राह पर आगे नहीं बढ़ रहे थे। हरि के दर्शन प्राप्त होते ही सभी प्रसन्न हो गए। बछड़े उछल कूदकर पाद उछालने लगे। हम्बे हम्बे की आवाज करके अपनी माताओं के कानों में प्रसन्नता का सन्देश देने लगे। वन के जन्तु, भालू, हाथी, मृग भी साथ चलने लगे। वन के बाघ और शेर पालतू पशुओं की तरह बिना भय उपजाए साथ साथ चल पड़े। सर्वेश्वर नारायण सर्वज्ञ होते हुए भी बाल लीला दिखाते हुए श्याम और राम अनेक बार वन जन्तुओं के विषय में अपनी मैया से पूछते, अरी मैया। इस पशु, जन्तु का क्या नाम है और यह क्या काम करता है। यह अपनी मैया के बिना हमारे साथ अकेला क्यों आ गया? इसकी मैया तो पीछे छूट गई फिर यह अपनी मैया को छोड़कर क्यों दौड़ आया। मैया बोली, यह जानवर मेरे लाला से मिलने के लिए आया है। तू वन का राजा है न इसलिए वन के पशु और पक्षी तुमसे मिलने आये हैं। अपने लिए राजा सुनकर कान्हा गाड़ी में खड़े होकर उछलने लगे। दाऊ भैया से बोले, दाऊ भैया। मैया कहती है मैं राजा हूँ फिर मैया से बोले, अरी मैया। इनको खाने को दो जिससे हमारी प्रीति बढ़े।

बीच में छकड़े और चारों ओर लक्ष-लक्ष गायों और वृषभों का समूह चल रहा है। गोपियां बीच-बीच में श्रीकृष्ण को अनेक नाम लेकर बुलाती थी उन्हें दामोदर, माखन चोर और बानर बन्धु कह करके हँसाती थीं, खिझाती थीं और बलि बलि जाती थी। श्याम बड़े चंचल हैं। चलते छकड़े पर खड़े हो जाते हैं, कभी ताली बजाकर किलकने लगते हैं, कभी अपनी माता से कुछ पूछने लगते हैं, कभी साथ के शकटों पर बैठे सखाओं को आवाज लगाते हैं। सब बालक बहुत प्रसन्न हैं, क्यों न हों? पहली बार वन और उसके फल-फूल देखने को मिले हैं। गायें तृण चरना भूलकर कन्हाई के शकट की ओर ही दृष्टि लगाये हुँकारती आगे बढ़ रही हैं। गायें भी तृण चरना भूलकर कन्हाईके शकटकी ओर ही दृष्टि लगाये हुंकार करती चलती आयी हैं। इन्हें भी कालिन्दी पार करके चरनेको प्रेरित करना पड़ेगा; किंतु यह कन्हाई भागा जा रहा है आगे। यह तो कूदता-पुकारता जा रहा है- भद्र। तोक, मधुमंगल, विशाल, अर्जुन।

सेतु से यमुना पार की। मध्याह्न का भोजन कर पुन: प्रस्थान किया। सनन्द बड़वा पर सवार हैं जिस पर बैठ भाभी रोहिणी गोकुल आयीं थीं। बहुत ही सधी चला और समझदार है यह अश्विनी। शकटों और गायों के समुदाय में भी आसानी से मार्ग बना लेती है। यमुना का किनारा शकट और गायोंसे बड़ा शोभायमान हो रहा है। मानो मंदराचल औरा कैलाश पर्वत ने अपने बच्चों को इस आशा से भेजा है।

यमुना तट खेलैं स्वच्छन्दा। निरखैं बाल छबिन नँद-नन्दा।।

मूर्त स्वरूप राज्य श्री आई। सोइ यमुना तट अति छबि छाई।।

वे यमुना तट पर स्वतंत्रता से खेलें और बालकृष्ण की छबियों को देखें अथवा साक्षात् राज्यलक्ष्मी ही आकर यमुना के तट पर शोभा छिटका रही है। चतुर गोपों ने यह अनुमान लगा लिया कि अब प्रबन्ध करते करते सन्ध्या हो गयी है अत: आगे जाना नहीं हो सकता।

गो श्रेणिन ठाढ़ी करि दीन्हीं। क्रम क्रम उन निवास-थल कीन्हीं।।

ज्योत्स्ना-खण्ड सरिस छबि छाई। दुग्ध सरोवर सी सरसाई।।

मैया के द्वारा खाने की वस्तु देने पर किसी जीव जन्तु ने मुँह नहीं लगाया। न ही किसी पक्षी ने चोंच डाली। मैया बोली ये तुम्हारे बिना नहीं खायेंगे तुम पहले अपने खाने की सोचो।

पशु पक्षियों को खिलाने के लिए राम श्याम ने खाने की वस्तु पहले अपने मुख में डाली उसके पश्चात ही बाल सखाओं ने भोजन के लिए हाथ पसारा। वन के जीव जन्तुओं ने भी तभी मुख में डाला। बालकों और बूढ़ापें के लिए बाल भोग खाने को दिया गया। गाय और बछड़ों ने मिलकर यथायोग्य चारा खाया। राम श्याम के साथ मिलकर उनके संगी साथियों ने कलेऊ किया। जो वस्तु जिसने माँगी मैया ने उसे वही थमाई। सब लोगों ने चहक चहक और फहर फहर कर वन की शोभा देखी। लाला कन्हैया नई नई बतियाँ अपनी मैया से पूछते। कान्हा बोले, अरी मैया। इस पंछी की चोंच इतनी बड़ी क्यों है? अथवा इस पक्षी के पंख इतने छोटे क्यों हैं? इस पक्षी में इतने रंग क्यों भरे हैं? अथवा इसके पैर मोटे क्यों हैं?

श्याम बोले, अरी मैया। यह पक्षी ऊँचा क्यों नहीं उड़ता है? और यह पक्षी इतना ऊँचा आकाश में कैसे उड़ लेता है? मोरों के साथ मोरनियों को नाचते हुए देखकर नटवर नागर तालियाँ बजाने लगते। पक्षियों को फुदकते देखकर नकल करते जैसे पक्षी अपने पंखों में फरफुर करते वैसे ही कन्हैया भी सिर नीचा करके हाथों को थोड़ा पीछे करके फुर फुरी की नकल करते। बन्दरों की घुड़कियाँ देखकर मृग और खरगोश को चौकड़ी भरकर दौड़ता देखकर कन्हैया आदि तुरन्त उनकी नकल करने लगते। चलते चलते सब लोग यमुना के किनारे पहुँचे। गाड़ियाँ रोकी गईं, सबके भोजन की व्यवस्था की गई। गोप गाड़ियों से उतर उतरकर अपने सामान और अपने सगे सम्बन्धियों को सँभालने लगे।

लाला मैय्या से पूछते हैं- मैया वृन्दावन कहाँ है? मैय्या बोली- मेरे लाला वह तो यमुना के पार अपनी शोभा से मन को मोहित कर रहा है। वे अज्ञानियों की तरह पूछते हैं कि यह किसका वृक्ष है जिसके पत्ते बड़े चंचल हैं। वे पीपल नाम सुनकर पुलकित होते हैं फिर गूलर के फल देखकर लुभा जाते हैं। वे बरगद की घनी जटाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं और बट नाम सुनकर बट बट रटने लगते हैं।

श्याम बार-बार नन्हें कर हिलाकर चाचाको समीप बुलाता है- चाचा, वह कौन है? कभी किसी पशुका नाम पूछता है इसे, कभी किसी पक्षीका। कभी किसीको पकड़ना चाहता है, कभी किसीको कुछ खिलानेको उत्सुक होता है। जब अपनी मैया या माँसे पूछकर नहीं जान पाता, कहकर नहीं करवा पाता तो मुझे बुलाता है। कभी-कभी व्याघ्र के बच्चोंको देखकर कन्हैया कहता मैं वह बिल्लियाँ लूँगा और हठ करने लगता है। श्याम व्याघ्र के बच्चोंको पकड़ने लगता है।

सनन्द बोले- लाल, वे बिल्लियाँ नहीं हैं। वे उस बड़े व्याघ्रके बच्चे हैं। मैं जानता हूँ कि मेरा समझाना यह नहीं सुनेगा। मैं उन बच्चोंको उठाकर इसे दे सकता हूँ; इसमें व्याघ्र-दम्पति आपत्ति नहीं करेंगे, इतना पता है मुझे; किंतु कठिनाई यह है कि तब वे दोनों भी कन्हाईके शकटके समीप आना चाहेंगे। इसमें गायें उत्तेजित होकर उनको आहत कर सकती हैं। पशुओंको सब स्नेहशीलोंका स्नेह समझाया तो नहीं जा सकता।

सनन्द बोले- हमको कालिन्दी-कूलपर ही रात्रि-विश्राम भी करना था। मध्याह्नके समय स्नान-सन्ध्या, भोजन करके

महर्षि शाण्डिल्य मुनि-मण्डलके साथ प्रथम चल पड़े। इन परम पूज्य तपस्वियोंने रात्रि-विश्राम वृक्षोंके नीचे ही किया। गोपोंको भी गायोंके समूहके समीप ही रहना था और मुझे अपने तरुण साथियोंके साथ तो रात्रिमें सतर्क रहना था। हमारे लिए निद्रा लेनेका प्रश्न ही नहीं था। शिशुओंको तथा स्त्रियोंको शकटोंके घेरेमें रात्रि-विश्रामके लिए बड़े भैयाने वस्त्र-शिबिरों की व्यवस्था कर दी थी।

प्रबन्ध को देखकर और उनकी रचना कौशल को पहिचान कर नन्दबाबा बड़े प्रसन्न हुये। जमुना के निर्मल जल में जाकर नन्द ने रुचि पूर्वक स्नान किया और फिर आनन्द मग्न होकर श्री नारायण का पूजन किया।

कन्हाई ने कौतूहल से पूछा- चाचा, वह ऊँचा-ऊँचा हरा-हरा सा क्या हे? सनन्द ने बताया- ये गिरिराज गोवर्धन है।

यह हमारे बृज का देवता पर्वतों का राजा गोवर्धन है। यह जन जन की श्रद्धा की मूर्ति है। यह अतिशय सुन्दर पर्वत पर्वतों का राजाधिराज है। इसका आकर बहुत बड़ा है यह हर ऋतु में सुविधा प्रदान करनेवाला है। तीनों मुख्य देव पर्वतों के रूप में वृन्दावन में विराजे हुए हैं। गिरिराज गोवर्धन का रूप भगवान विष्णु ने ही धारण किया है। ब्रह्मा ब्रह्मगिरी के रूप में विराजमान हैं जिसपर बरसाना गाँव निवास है। शंकर नन्दीश्वर पर्वत के रूप में विराजते हैं। यह हरियाली से परिपूर्ण और सुन्दरता की सीमा है। बृज की भूमि नित्य धाम गोलोक का अंश है। जब-जब श्रीहरि का अवतार होता है योगमाया वहीं उसका प्रगटीकरण कर देती हैं।

हम गिरिराज के पास ही रहेंगे श्याम ने प्रसन्नता से ताली बजाते हुए कहा। सनन्द ने कहा- वे रहीं सामने। यह वन कौन-सा है? चाचा। यह वृन्दावन है लाल। बस-बस कन्हाई चिल्लाया। यहीं रूक जाओ। यहाँ सुन्दर पुलिन है, खेलने को सुन्दर बालुका है। गायों के लिए हरित तृण भी है, यही उपयुक्त स्थान है। लाला के कथानुसार उसके मन चाहे स्थान पर ही सब शकट रुक गये। गायें यमुना में जल पीने लगीं इस तरह वृन्दावन बिहारी का श्रीधाम वृन्दावन में आगमन हुआ।

गोकुल नगर के भवन किसी शिल्पी की रचना नहीं हैं, घर घर और द्वार द्वार को देवताओं ने नहीं बनाया। नन्दमहल से लेकर सभी घर और गौशालाएँ गोलोक धाम की पूर्व रचना हैं। सभी विशाल भवन नित्यधाम से बने बनाए ही प्रगट हुए हैं। देव शिल्पी विश्वकर्मा ने भवन निर्माण की बहुत प्रार्थना की। विश्व के रचनाकार ब्रह्माजी ने प्रगट होकर कोई सेवा लेनी चाही परन्तु विश्व वंद्या लक्ष्मी देवी जहाँ अपने हाथ से सेवा कार्य करती हों वहाँ किसी और को सेवा का मौका कैसे प्राप्त हो सकता है। सर्वेश्वर प्रभु के गोकुल की भूमि को त्यागने का भाव जानकर योगमाया ने सेवा सँभाली। गोकुल को नीरस, सारहीन करके उसका त्याग करवा दिया। गोकुल नगरी के दिव्य रूप पर माया ने परदा डालकर उसे प्राकृत की तरह दिखा दिया। गोपों के गोकुल त्यागने की बात सुनकर अनुचरों सहित कंस वहाँ गया था परन्तु सभी कुछ महत्वहीन देखकर कुछ भी लाने की इच्छा नहीं हुई।

नन्दीश्वर पर्वत पर बसे इस नन्दगाँव में गोलोक धाम की ही अद्भुत रचना प्रगट हुई थी। लोक निर्माण की एक भी कला वहाँ दिखाई नहीं दे रही थी। अद्भुत सुन्दर महल प्रगट हुए थे जो बहुमूल्य सम्पत्ति से भरे हुए थे। बृजवासियों के घरों की रचनाकारी अति सुन्दर थी। नन्दगाँव में बाजार चौक, रास्ते और छोटी बड़ी अनेक गलियाँ बनी थीं। सबही गलियाँ नन्द महल तक पहुँचकर एक हो गई थीं। प्रात:काल उठकर बृजवासियों से नई सुन्दर धरती देखी। गो बछड़ों की हुँकार आदि सब नई पहेली बन गई थी। ग्रामवासी एक दूसरे से मिलकर परस्पर प्रीति बढ़ाने लगे। घरों में भरपूर मात्रा में अपार वस्तुएँ देखकर सभी लोग अति प्रसन्न मन से खड़े होकर देखने लगे। नन्दगाँव वासियों के चित्त की वृत्ति सामान्य हो गई। उन्हें लगने लगा हम तो सदा सदा से यहीं रहनेवाले हैं। बहुत समय से आनन्द में मतवाले होकर हम यहाँ का वास कर रहे हैं। सबको मन में ऐसा लगने लगा कि यहाँ की धरती हमारी जानी पहिचानी है। नन्दीश्वर भगवान मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि परम प्रभु ने हमारी सेवा स्वीकार कर ली। पंछियों में चहचहाट होने लगी। पूर्व दिशा से सूर्य भगवान का प्रादुर्भाव हुआ।

बरसाने के राजा श्री वृषभानु राय अपने दोनों पुत्रों श्रीदामा और सुबल को लेकर आये थे और सबने स्नेह की गंगा में स्नान किया। श्यामसुन्दर ने अपने बरसाने वाले भोले प्रिय सखा श्रीदामा और सुबल को अन्य सखाओं एवं बछड़ों के सहित आते हुए देखा। समीप आते ही सभी सखा प्रसन्नता से किलकारियाँ मारते हुए आपस में गले मिले। मधुमंगल ने ताली बजाकर बरसाने से आनेवाले सखाओं का स्वागत किया। तोक, विशाल वरूथप, ऋषभ, मनसुखा, भद्र, बलराम एवं श्याम सुन्दर के सहित सभी सखाओं से मिलकर सुबल और श्रीदामा ने एक दूसरे सखाओं का सम्मान किया। श्रीदामा और सुबल दोनों संकोची स्वभाव के होने के कारण मोहन के घर आने में संकोच मानते थे। परन्तु श्याम सुन्दर उन दोनों को अपनी बातों से समझाकर अपने घर ले ही आये। घर आकर कान्हा अपनी मैया से बोले, अरी मैया। ये दोनों कीर्ति मैया के बेटे हैं दोनों बहुत अधिक संकोची हैं। अरी मैया। बड़ी मुश्किल से इन्हें घर बुलाकर लाया हूं। इन दोनों की एक सुन्दर सी बहन भी है उसका नाम राधा है। मैया बोली, मैं जानती हूँ। वृषभानु ने अपनी बेटी राधा की सगाई तुम्हारे साथ कर दी। राधा के दोनों भाई श्याम सुन्दर के साथ नित्य खेलते और वत्स चराने चले जाते। राधा का भाई सुबल बोला- राधा को हम अपने साथ नन्दगाँव ले जाया करेंगे अपने कान्हा के संग खेलेगी। दूसरे दिन सुबल राधा को लेकर नन्दगाँव चले गये। कन्हैया राधा से बोले- अरी राधा। तुम हमारे साथ यहाँ खेलने आई हो निसंकोच होकर खेलो। राधा ने कन्हैया की बात सुनकर अपने विशाल नेत्रों से कन्हैया को निहारा और कन्हैया को देखकर सारे शरीर में सिहरन सी जाग उठी। श्रीदामा और सुबल के साथ राधा रानी नन्दमहल में आई। यशोदा मैया स्वयं दरवाजे पर खड़ी और शरमाई सकुचाई राधा को अपने साथ भीतर ले आयी। मैया यशोदा आशीर्वाद देते हुए बोली- हे दोनों लाला और लाली युग युग जीवें और सदा सुखी और प्रसन्न बने रहें। कन्हैया बोले- अरी मैया। मैं राधा को बरसाने जाकर उसके घर तक पहुँचा आऊँ। मैया बोली, अरे मेरे लाल, अभी जाना उचित नहीं, कुछ समय पश्चात जाना। अभी तो राधा के साथ तुम्हारी सगाई हुई है। विवाह हुए बिना दुल्हे का ससुराल जाना अच्छा नहीं माना जाता। मैया राधा से बोली- अरे मेरी लाड़ली राधा, तुम बार-बार यहाँ आती रहना।

सब ब्रज वासियों ने उनकी बात का समर्थन किया और सब अपने अपने छकड़ों, रथों पर घर का सामान लादकर गाय बछड़ों को आगे करके चल पड़े। स्थान स्थान पर लगी हुई बड़ी बड़ी मशालों से उजाला हो गया। युवा बलवान गोपों ने हाथों में अस्त्र शस्त्र लेकर चारों ओर सुरक्षा पंक्ति बनाई। उनके बल और योग्यता पर विश्वास करके सभी बृजवासी निश्चिन्त होकर सोये। पथ की थकावट के कारण अधिकतर लोग शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद में सो गये।

परीक्षित्, ग्वालों ने बूढ़े, बच्चे, स्त्रियों को और सब सामग्री को छकड़ों पर चढ़ा दिया तथा वे स्वयं अपने पशुधन को साथ लेकर वृन्दावन के लिये रवाना हो गये। गोपियाँ रथ में बैठी कृष्णलीलाओं का गान करती जाती थीं। रोहिणी और यशोदा उनकी लीलाओं को सुन-सुनकर प्रसन्न होती थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने योग्य स्थान बना लिया। राम और श्याम थोड़े ही दिनों में समय आने पर बछड़े चराने लगे। बाँसुरी बजाते और विविध प्रकार की बाल लीला करते।

नन्दरानी तथा रोहिणी जी भी एक उत्तम रथ में बैठकर अपने लाल राम व श्याम के साथ समस्त गृह सामग्री गाय बछड़ों आदि के साथ ले वृन्दावन को चल दीं। सभी गोप ग्वाले शंख, सींग, तुरही बजाते हुए उनके पीछे पीछे चलने लगे। कुछ ही समय बाद वे सब वृन्दावन में पहुँच गये। ग्वाल बालों ने अपने छकड़े अर्द्ध चन्द्राकार खड़े करके गाय तथा बछड़ों के लिये उत्तम स्थान बनाया और वहीं गोवर्द्धन पर्वत के निकट यमुना नदी के पुलिन पर रहने लगे। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों यमुना नदी की अति सुन्दर पुलिन को देखकर अति प्रसन्न हुए। गोकुल की भाँति वृन्दावन में भी सब ब्रज वासियों को आनन्द देने लगे। कभी वे बाँसुरी बजाते कभी गुलेल से ढेला फेंकते। कभी नाचते, कभी घूँघरों की तान छेड़ते थे। कभी बनवारी गाय बैल बन कर खेलते

थे, मोर कोयल और बंदरों की बोली बोलते थे। इस प्रकार सर्व शक्तिमान भगवान सामान्य बालकों की भाँति खेल करते थे।

कन्हैया बोले- मैया, सबकी बहू हैं, मेरी बहू कहाँ है?

मैया हँसकर कहती- अरे, अभी से तेरी बहू कहाँ से आयी। तू तो चोरी करता है, तेरे बहू कैसे आ सकती है।

आप कहते- मैया, मैं चोरी अब न करूँगा। मुझे भी बहू मँगा दे। मैं भी बहू के साथ घूमा करूँगा। जब सबके बहुएँ हैं, तो मेरी भी बहू होना चाहिये।

मैया कहती- अच्छा, वृन्दावन चल। वहाँ तुझे भी बहू मँगा दूँगी।

इस प्रकार की बातें करते हुए यमुना किनारे-किनारे सब वृन्दावन के सामने पहुँचे। रात्रि में वहीं डेरा डाला। प्रात:काल सभी यमुनाजी को पार करके वृन्दावन की पवित्र भूमि में पहुँचे। वह बन सभी ऋतुओं में सुखदायी था। दूर से गोवर्धन पर्वत दिखायी देता था। यहाँ के पादप झुककर झूमकर वृन्दावन की पवित्र रज को चूम रहे थे, वृक्षों पर बेलें चढ़ने से कुञ्ज-कुटीरें बनी हुई थीं। गोपों ने यमुना के पश्चिम, अर्ध चन्द्रकार शकट खड़े करके गौओं के रहने योग्य स्थान बना लिया। राम और कृष्ण दोनों भाई वृन्दावन के पवित्र जङ्गलों को, गोवर्धन पर्वत को और यमुनातट को देखकर अत्यन्त ही प्रमुदित हुए। वहाँ सुखपूर्वक रहते हुए नाना क्रीड़ाएँ करने लगे। वृन्दावन की भू-भाग की चौड़ाई एक योजन और लम्बाई दो योजन थी। काँटेदार वृक्षों के द्वारा व्रज चारों ओर से सुरक्षित था। भगवान वासुदेव सम्पूर्ण विश्व के हित के लिए विराजमान थे, उस वृन्दावन में न तो बछड़े ही शिथिल होते थे, न गौएँ कष्ट पाती थीं और न ही दूसरे लोगों को कभी दु:ख का अनुभव होता था। सभी लोग उस स्थान में बड़े आनन्द से रहने लगे।

सुतनि गोदमहँ लिये मातृ जावें वृन्दावन। मगमहँ निरखत श्याम वृक्ष खग मृग बन पशु-गन॥
कौतूहलके सहित मातुतें पूछें नटवर। मैया, जे को रहै कहाँ कित है इनको घर॥
मैया प्यार दुलारतें, इत उतकी बातें कहैं। कहैं अटपटी बात जब, हँसि मुख फेरें चुप रहैं॥

शुकदेव बोले- राजन्, जो वृन्दावन सभी ऋतुओं में सुखदायक है, उसमें पहुँचकर अर्ध चन्द्राकार अपने छकड़ों को खड़ा किया और अपनी-अपनी गौओं के रहने योग्य स्थान बनाये।

सुखकर वृन्दावन में पहुँच कर पहले ग्वालों ने अस्थाई रूप से रहने के लिये अपने छकड़ों को अर्धचन्द्राकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपनी गायों के लिये योग्य स्थान बना लिया। बाद में सुन्दर भवनों का निर्माण कराकर वे सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे। वृन्दावन, गोवर्धन, गोवर्धन से बरसाना और यमुना के आकर्षक तटों को देखकर बलराम और कृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई।

वृन्दावन पहुँचे सभी, ले गौ धन अरु बाल। राम श्याम खेलन चले, लेकर के सँग ग्वाल॥

एक घरके बालक के लिये सारे गाँवके लोगोंने अपने-अपने पुराने घर-द्वार छोड़ दिये, बाग-बगीचे छोड़ दिये; खेत-खलिहान छोड़ दिये, रिश्तेदार छोड़ दिये। अपनी चल-सम्पदा और गायोंके साथ और सब-के-सब उनके साथ अन्यत्र दूसरे गाँव में जा बसे। इससे मालूम पड़ता है कि उन व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति कितना अगाध अनन्य प्रेम था।

गोप वृषभानु अपनी पत्नी कीर्तिदा के साथ हाथी पर बैठकर, पुत्री राधा को अंक में लिए, गायकों-से यशोगान सुनते हुए, मृदंग, ताल, वीणा और वेणुओं की मधुर ध्वनि के साथ वृन्दावन को गये।

वृषभानु ने अपने लिए वृषभानुपुर (बरसाना) नामक नगर का निर्माण कराया, जो चार योजन विस्तृत दुर्ग के आकार में था। उसके चारों ओर खाइयाँ बनी थीं। उस दुर्ग के सात दरवाजे थे। दुर्ग के भीतर विशाल सभा-मण्डप था। अनेक सरोवर उस दुर्ग की शोभा बढ़ाते थे। नन्दबाबा ने अपने लिए नन्दनगर (नन्दगाँव) का निर्माण कराया। वह भी चार योजन

विस्तृत, सुन्दर भवनों, फूलों के उद्यानों तथा विविध प्रकार के फलदार वृक्षों से सुशोभित था। उसमें नन्द-भवन इन्द्र नीलमणि के चित्रित कलशों द्वारा विशेष शोभा पा रहा था। नाना प्रकार के मनोहर राजमार्ग उस नगर की शोभा बढ़ाते थे।

कृष्ण का मानव शरीर नहीं जीव शरीर है। मानव की भाँति पंच भौतिक नहीं है। यह प्राकृत शरीर नहीं हैं लीलावपु हैं। इनका धाम भी लीलाधाम है, सबकुछ अलौकिक है। परात्पर ब्रह्म ही अपनी सम्पूर्ण विभूतियों के साथ श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। कृष्ण जब पांच वर्ष के हो गये तो गोकुल छोड़कर वृन्दावन आ गये।

कंस को सहसा इस समाचार पर विश्वास ही नहीं हुआ कि पूरा गोकुल खाली हो गया है। वह सोचने लगा कि कहीं ऐसा भी होता है? कोई कहे कि पूनम की रात में आसमान में चाँद ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता कौन विश्वास करेगा। पूरा-का-पूरा गोकुल गांव धरती से गायब हो गया। उसने सुना गोकुल है ही नहीं। गुप्तचरोंने बताया नन्द, महानन्द, उपनन्द, सनन्द और उनकी पत्नियाँ, दास-दासियाँ सब वहाँसे गायब हो गये। उनका अपार गो-धन, समुद्र की तरह विस्तृत, उनके बैल, गाय और बछड़ोंका समुदाय सभी न जाने कहां विलीन हो गये। इसी तरह वह गोकुल से वृंदावन गये। गायों के लिए हरित तृण भी है, यही उपयुक्त स्थान है। लाला के कथानुसार उसे मन चाहे स्थान पर ही सब शकट रुक गये। गायें यमुना में जल पीने लगीं इस तरह वृन्दावन बिहारी का श्रीधाम वृन्दावन में आगमन हुआ।

वहाँ वृन्दावन को देखकर सभी को परम आनन्द हुआ सभी नन्द एवं उपनन्द ने वहाँ निवास किया। यथायोग्य सुन्दर स्थल देखकर विविध प्रकार के विशेष गोष्ठों की रचना करके सुन्दर सुखदायी सब सुविधा से भरपूर विविध भवनों का निर्माण किया। वृषभानु भी अपने सभी साज समाज के साथ वहाँ निवासस्थान बनाकर निवास किया। इस प्रकार वहाँ नन्दनगर तथा वृषभानुपुर दोनों स्थान अत्यन्त सुन्दर कमनीय परम रमणीय आरामप्रद रमणी एवं रमण के लिए रमणीय स्थलों की रचना हुई। तथा चिन्मय अखिलेश्वर राधाश्याम का परमयोग पाकर उस बन की शोभा सुख अभिराम सुषमा श्री और भी बढ़कर दिव्य हो गई।

दोनों पुर में परस्पर अत्यन्त प्रीति थी। सभी एक दूसरे के पास हमेशा आते जाते थे। दोनों पुर में परस्पर ऐसी सुमति एवम् विशेष प्रीति थी एक दूसरे का दु:ख सुख अपना समझकर बाँटते थे। सभी लोग सभी वैदिक एवम् लौकिक रीति त्यागकर कृष्ण पर अतिशय प्रीति करते थे। वृन्दावन में कोई भी ऐसा नहीं था जिसे कृष्ण प्राण प्यारे न हो।

वृन्दावन बड़ा ही सुन्दर वन है। चाहे कोई भी ऋतु हो, वहाँ सुख ही सुख है। वृन्दावन का हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के सुन्दर-सुन्दर पुलिनों को देखकर के भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी के हृदय में प्रीति का उदय हुआ। श्रीकृष्ण और बलराम नन्दनगर (नन्दगाँव) और वृषभानुपुर (बरसाना) में बालकों के साथ क्रीड़ा करते हुए घूमते और गोपांगनाओं की प्रीति बढ़ाते थे। राजन्, कुछ दिनों बाद सम्पूर्ण गोपों के समादर-भाजन मनोहर रूप वाले बलराम और श्रीकृष्ण वृन्दावन में बछड़े चराने लगे। वे दोनों भाई ग्वाल बालों के साथ गाँव की सीमा तक जाकर बछड़े चराते थे। कालिन्दी के निकट उसके पावन पुलिनों पर सुशोभित निकुंजों और कुंजों में बलराम और श्रीकृष्ण इधर-उधर लुकाछिपी के खेल खेलते और कहीं-कहीं रेंगते हुए चल कर वन में सानन्द विचरते थे। उन दोनों के कटि प्रदेश में करधनी की लड़ियाँ शोभा देती थीं। खेलते समय उनके पैरों के मंजीर और नूपुर मधुर झंकार करते थे। बलराम के अंगों पर नीलाम्बर शोभा पाता था और श्रीकृष्ण के अंगों पर पीत पट। वे दोनों भाई हार और भुजबन्दों से भूषित थे। कभी बालकों के साथ क्षेपणों (ढेलवासों) द्वारा ढेले फेंकते और कभी बाँसुरी बजाते थे। कुछ ग्वाल बाल अपने मुख से करधनी के घुँघरुओं की-सी ध्वनि करते हुए दौड़ते और उनके साथ वे दोनों बन्धु-राम और श्याम भी पक्षियों की छाया का अनुसरण करते भागते हुए सुशोभित होते थे। सिर पर मयूर-पिच्छ लगाकर फूलों और पल्लवों के श्रृंगार धारण करते थे। इस प्रकार सर्व शक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण साधारण बालकों के

समान खेलते रहते थे। वृन्दावनका हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजीके हृदयमें उत्तम प्रीतिका उदय हुआ।

वसुदेव बोले- अच्छा हुआ, कंससे तो दूर हो गये। सभी बालक बृहत्सानुपुरके स्वामी वृषभानुजी के पास अधिक सुरक्षित रहेंगे। कृष्ण चार वर्षका होते-होते हठ करके बछड़े चराने वनमें जाने लगा। वसुदेवजी देवकी से बोले- देवि, कृष्ण को तो अपने कंस जैसे शत्रुको मिटाना है। कंस मल्लयुद्ध और गदायुद्धमें शूरवीर है। गोपोंको भी लाठी चलानी उत्तम आती हैं। गोपकुमारोंके साथ अभीसे युद्धकी शिक्षा मिलना ही उत्तम हैं।

कृष्ण की वृंदावन में लीलायें

१) कन्हैया का बाँसुरीवादन- बात पहुँच गई कंस तक कि उसका सम्भावित काल, विपिन के किस भाग में, बाँबी में बैठे सर्प की तरह छुपा बैठा है। अन्तर इतना ही था कि साँप तो सचमुच अपने बिल में कैद रहने का प्रयास करता है पर उस कृष्ण-रूपी काल-सर्प ने अपने को छिपाने-छुपाने का कोई प्रयास नहीं किया। ग्वाल-बालों और नन्द-यशोदा के सारे प्रयास उसे गुप्त रखने में असफल रहे और जब बलराम-कृष्ण-रूपी सूर्य-चन्द्र ही पहचान में आ गए तो टिमटिमाते तारों, गोपालकों, यदुवंशियों को उनके निवास-स्थल के साथ पकड़-पहचान लेना कौन बड़ी बात थी?

अब दोनों भाई अन्य ग्वाल-बालों के साथ वन में गोचारण को निकलने लगे थे और श्रीकृष्ण तो गायों को एक किनारे छोड़, कभी किसी अश्वत्थ तो कभी किसी कदम्ब-वृक्ष के नीचे खड़ा हो मुरली बजाने में तल्लीन हो जाता है। सुना तो यह भी गया है कि मुरली पर वह ऐसी मीठी तान छेड़ता है कि ब्रज की सारी गोपियाँ अपना काम-धाम छोड़ उसको आ घेरती हैं। तब वह तारों से घिरे चाँद की तरह लगता है।

गोपियाँ तो गोपियाँ, उस छोकरे की मुरली का स्वर सुनते ही गौएँ, वृषभ, गोवत्स और अन्य जंगली जानवर यहाँ तक कि व्याघ्र और सिंह तथा सर्प तक उसके आसपास आ जुटते हैं और सभी अपनी हिंस्र-भावना भूलकर उसकी मुरली की लय पर सिर डुलाते रहते हैं। सबके हृदय में प्रेम का एक तूफान-सा उठने लगा। सभी गोपिकाएँ तन्मय हो गयीं, सभी को भाव समाधि हो गयी। अश्रु पुलक आदि सात्विक विकार होने लगे। उसी दिन से श्यामसुन्दर वंशीधर हो गये।

तुम्बरु गन्धर्व ने मन में विचार करने लगा, मैं दीपक राग गाकर दीपक जला सकता हूँ, मल्हार राग गाकर बरसात करा सकता हूँ। मेरा संगीत किसी कठोर शिला को मृदुल करने का काम कर सकता है, पत्थर को पिघला सकता है, जल में आग लगा सकता है परन्तु बंशी की मधुर तान में चर को अचर और अचर को चर बनाने का गुण भी होता है यह मुझे आज तक मालूम नहीं। कान्हा ने तो बंशी बजाकर सारी सृष्टि को ही प्रभावित कर दिया। कान्हा की बंशी की मधुर तान ने बछड़े, हिरन, बन्दर, केसरी आदि अति चंचल पशु और मोर, तोता, कबूतर, कोयल आदि पक्षी भी जड़वत् बना दिये। नीलकंठ ने जो चारा अपनी चोंच में पकड़ा था कान्हा की बंशी बजते ही वह उसके पेट में नहीं पहुँच सका और चोंच में ही अटका रह गया। कीड़े और जल की धारा आदि बंशी के प्रभाव से स्थिर हो गए और पेड़ों से रस की धारा बहने लगी। कंकड़ और शिलायें मोहन की मोहनी बंशी के प्रभाव से रस की धार बनकर बहने लगीं और चींटी जड़वत् हो गईं। सारे सखा मुँह खोले अवाक् बन गए और कोई कुछ नहीं बोल पाया। सत्य लोक के सहित चौदह भवनों में रहनेवाले मनुष्य और देवता आदि जड़ चेतन सभी बंशी की मधुर तान से प्रभावित हुए। पुत्र गणपति के सहित माता पार्वती और कैलाशपति परम ब्रह्म भी मधुर तान सुनकर आनन्द मग्न होकर अचेतवत् हो गए।

जो कुछ घटित हो रहा है वह ईश्वर की कृपा से ही हो रहा है, उनकी इच्छा के कारण हो रहा है। उनके न चाहने पर कुछ नहीं होता। हर कार्य में उनकी भूमिका सबसे बड़ी है। व्रज के कृष्ण ने अपने मुख से कुछ नहीं कहा किंतु उनके कार्य, कर्म व आचरण में, वंशी की ध्वनि में, जन-जन के प्रति आह्वान में परिलक्षित है। उन्होंने अपनी ओर से ज्ञान एवं कर्म के बारे में कुछ नहीं कहा केवल भक्ति स्रोत में मानव को बहा ले जाते हैं। उनकी बांसुरी बजाने के साथ-साथ मन में तरंगे उत्पन्न होती है, वह मानव मन के अंतर को स्पर्श करती है। इससे भाव संवेदन का जागरण होता है। बांसुरी की धुंद मानव को अपनी ओर आकर्षित करती है, बुला लेती है। वंशी जिस प्रकार ध्वनित हुई, साधक का मन भी उसी प्रकार तरंगायित हुआ। यहां पर ज्ञान और कर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। दौड़ कर जाना ही धर्म है। वंशी की मधुर ध्वनि पर हर एक कोई दौड़ रहा है आनंदमय परिवेश में। इसप्रकार व्रज के कृष्ण के पास कर्म, ज्ञान की कोई व्याख्या नहीं है, दार्शनिक युक्तियां भी नहीं है। मनुष्य का मन वंशी की धुन सुनने के बाद घर की सीमा में बांध कर नहीं रखा जा सकता दौड़कर बाहर निकल पड़ता है। कृष्ण का भक्त, कृष्ण का प्रेमी इनकी वंशी की धुन सुनकर दौड़ पड़ता है कहीं ठोकर लग जाएं, गिर जाएं, हाथ-पैर टूट जाएं, खून बहने लगे इन सब चीजों की परवाह नहीं होती। भक्त लोग कहते हैं वंशी की धुंद ने हमे पागल बना दिया। वंशी की ध्वनि के सहारे हम खींचे चले आए।

शुकदेव बोले- राजन्, वन में जाकर श्रीकृष्ण कभी वेणु बजाते, कभी दूर ढेले फेंकते, कभी चरणों में घुँघरू बाँधकर उन्हें बजाते और कभी कृत्रिम गैया, बैल बनकर खेलते। कोई भौरोंके साथ गाये, कोई कोयलके साथ कूजे, कोई पक्षीकी छायाके साथ दौड़े, कोई हंसके साथ चले, कोई बगुलेके साथ बैठें और कोई मयूरके साथ नृत्य करे कोई ग्वालबाल पेड़की डालीपर बैठै बानरकी पूँछ पकड़ ले और जब बानर उछले तब उसके साथ वह भी उछलकर पेड़पर चढ़ जाय। जब बानर मुँह बनाये तो उसके साथ ग्वाल-बाल भी मुँह बनाये। कई ग्वाल-बाल नदीके कछारमें छपका खेलें और कई फुदकते हुए मेढ़कोंके साथ फुदकें। कोई ग्वाल-बाल अपनी प्रतिच्छायाका उपहास करे और कोई प्रतिध्वनिको गाली दें।

कंसने सोचा यह मुरली तो उसके लिए रण-दुदुंभी बन गई है। व्याघ्र-सिंह, पर खतरे की जरा-सी भनक मिलते ही वह मुरली में फूँक मार बैठे तो बात की बात में सैकड़ों गोप-गोपियाँ और एक-से-एक सींगधारी वृषभ और गाएँ उसे घेर बैठेंगी, तब आसानी से किसी योजना को क्रियान्वित करना कितना कठिन हो जाएगा?

बांसुरी प्रेम का प्रतीक है। कृष्ण के प्रेमिल व्यक्तित्व की समग्र अभिव्यक्ति होती है बांसुरी। आद्य वाद्य-यंत्रों में वीणा और मृदंग को जितनी लोकप्रियता मिली है, बांसुरी का प्रभाव और भी आकर्षित करता रहा है। अकेली बांसुरी है जो लोक-स्मृति की समस्त सत्ता को मधुमय बनाकर उसकी इयत्ता को कृष्ण से जोड़ देती है। कृष्ण व्यक्तित्व में जो माधुर्य है, कलात्मकता और लयमय आकर्षक है उसकी धुरी है बांसुरी।

बाँसुरी ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दोनों जिसके सामने फीके पड़ जायें, उसका नाम वेणु होता है। यहाँ समाधि नहीं है, परन्तु संसारका आनन्द भी नहीं है और संसार नहीं है, परन्तु समाधिका आनन्द है। ऐसी विचित्र है यह वंशी-ध्वनि। मानों भगवान् अपने परमानन्दको बाँसुरीमें भर-भरकर निकाल रहे हों। पहले वेणु-गीतके द्वारा लोगोंके मनमें काम-वासनाको जाग्रत करते हैं उसके बाद दुनियाकी काम-वासना छूटकर भगवद्विषयक कामवासनाका उदय हो जाता है।

कर मुरली रव वर्जित कोकिल मंजुमत, मुरली वादन धारी, राधाय प्रति वाहनम्।।

मुरली के स्वर माधुर्य के आगे कोयल का मीठा स्वर भी फीका पड़ जाता है। उसकी स्वर लहरी सुनकर कोयल लजा जाती है। **नंदक नंदन कदंबगेरि तरुतले, धीरे-धीरे मुरली बोजाव।**

सूरदास और अष्ठछाप के अन्य कवियों के काव्य में मुरली का प्रसंग अपना अलग स्वर्णिम पक्ष है। वहां वह राधा की सौत के रूप में है। लेकिन कई ऐसे भी प्रसग हैं गोपियां उसके प्रेममाधुर्य से मुग्ध हो गई। कदंब की छाव को प्रेम योग की सीख देती रही। राधा और गोपियों को माध्यम बनाकर संस्कृति की अक्षुण्णता को प्रेम-राग की सरसता प्रदान करती रही है।

दुर्लभ जन्म, दुर्लभ वृंदावन, दुर्लभ प्रेम प्रसंग,
ना जाने, बहुररह-कब होव सयाम तत्हारे संग, छबीले मुरली नेक बजावैं ।।

माधुर्य भक्ति की तरलता और महाभाव की उच्चतम अनुभूति में राधा भाव की प्रबलता है, भावोदीपन में अंतर्नाद महिमा है। प्रेराग या अंतर्नाद का उद्दीपन होता है वंशी से। मुरली का कुछ ऐसा ही अनुभव किया जा सकता है।

है मर्म पिघलता, कैसी ऊष्मा होती, स्वर घहरात संपुट में भरते मोती।
ज्यों आदि नाद-नद ब्राह्म-रंध्र से छूट, भर जाता हो जीवन घट तल से फूटा ।।

जीवन और प्रकृति को बांसुरी ने बहुत कुछ दिया है। बांसुरी का स्वर जीवन को इस ढंग से बांध देता है कि शुष्कता नष्ट हो जाती है, तरलता में सहजता आ जाती है।

आकाश अनिल में लीन हुआ जाता है, जल अनिल तेज में दीन हुआ जाता है।
बुझता जाता है तेज डूबकर जल में, जल का विलयन होता धरती के तल में ।।

श्रीकृष्ण की वेणु ब्रह्म-सुख में लीन करने का वह साधन है, जो निस्साधन जीवों को भगवान के आशीर्वाद रूप में प्राप्त होता है। कृष्ण ग्वाल सखाओं के साथ गाय चराते हुए वृंदावन में विचरण कर रहे थे। वृंदावन की शोभा देखकर उनका मन उल्लसित हो गया, उमंग की लहर बांसुरी की धुन में घुमड़ने लगती है। बांसुरी अपनी स्वर माधुरी से समस्त जड़ चेतन का मन चुरा लेती है। बांसुरी की धुन पर वन पक्षी मोर नाचने लगते हैं। पशु-पक्षी शांत हो जाते हैं। हिरनियां कृष्ण के पास चली आती हैं, गौएं अपने कानों को दोने की तरह स्वर की ओर इस प्रकार उन्मुख कर देती हैं, मानों कान रूपी दोने से अमृत पी रही हों। कृष्ण की बांसुरी का सुरों पर अधिकार है। बांसुरी के स्वर में गोपियां और गौओं का अलग-अलग नाम लेकर पुकारने लगते हैं।

गोचारी कृष्ण नटखट स्वभाव के हैं। वे बांसुरी में भौरों की गुनगुनाहट की नकल करते हैं। उनके स्वर में स्वर मिलाकर वन फूलों में रोमांच पैदा कर देते हैं। बांसुरी वस्तुत: एक क्षण विशेष के लिए नहीं, अपितु जनम-जनम की पहचानी-सी आवाज में आह्वान करती है। गीत की आत्मा प्रेम है और प्रेम की आत्मा कृष्ण। कृष्ण की आत्मा राधा है और राधा के प्रेम की कसौटी है बांसुरी।

बंशी तथा श्रीकृष्ण का सनातन संबंध है। बंशी का नाम लेते ही नेत्रों के सम्मुख श्रीकृष्ण की छवि तथा श्रीकृष्ण का ध्यान करते ही बंशी का सहज स्मरण हो उठता है। श्रीकृष्ण की त्रिभंगी छवि बंशी के कारण ही मनमोहनी है। उनकी मुरली की महत्ता इसी से स्पष्ट है। कहते हैं कि यदि भारतीय संस्कृति से कृष्ण का माधुर्य निकाल दिया जाये तो शेष कुछ नहीं रहेगा और यदि बंशी को निकाल दें तो श्रीकृष्ण भी हतप्रभ रह जाएंगे। इतना ही नहीं जैसे राधा बिना श्रीकृष्ण अपूर्ण हैं वैसे ही वह बंशी के बिना भी अपूर्ण हैं। यदि राधा उनकी संजीवनी शक्ति, रस बल्लरी हैं तो बंशी उन्हें प्राणों से प्रिय है। अत: यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कृष्ण को जितनी प्रसिद्धि अपने देवत्व गुणों से मिली, उससे किसी भी दृष्टि से कम नहीं, बंशी के कारण भी मिली।

जब वंशी बजती है, तब बादलोंका गति-रोध हो जाता है। संगीत-सम्राट तुम्बुरु गन्धर्व बार-बार चमत्कृत हो उठते हैं।

सनक, सनन्दन आदिके हृदयमें रसका समुद्र उमड़ने लगता है और वे अपनी सब ध्यान-धारणा छोड़ बैठते हैं। ब्रह्मा चकित, स्तम्भित, विस्मित होकर कहने लगते हैं- मेरी सृष्टिमें इतना माधुर्य कहाँ। रसातलके एकच्छत्र अधिपति दैत्यराज बलिका चित्त उत्सुकताकी परम्परासे अस्थिर हो जाता है। शेषनाग आघूर्णित होने लगते हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका घेरा तोड़-फोड़कर सम्पूर्ण जगत्में परिव्याप्त हो जाती है यह वंशीध्वनि।

वंशीकी इस उन्मादक स्वर-लहरीके स्पर्शसे अपनेको कौन नहीं भूल जाता? इसीके द्वारा निखिल जगत्का चुम्बन करके श्रीकृष्ण एक गुदगुदी उत्पन्न किया करते हैं, सोये हुए प्रेमको जगाया करते हैं।

नंदगांव में जहां उनके बचपन के ग्यारह वर्ष व्यतीत हुए, लगभग सभी बांसुरी बजाते थे, किंतु श्रीकृष्ण की बांसुरी में जो सम्मोहन था, वह किसी अन्य में नहीं। उनकी मुरली की स्वरलहरी पर लोग ठगे-अचम्भित से रह जाते थे। पशु-पक्षी तक सुध-बुध खो देते थे।

यमुना नीर प्रवाह थकित भयो, पवन रहयो मुरझाई। खग-मृग मौन-अधीर भये सब, अपनी गति बिसराई।।

उनकी बांसुरी का उनकी विश्वमोहिनी छवि में बहुत योगदान था, इसी से वह सबके प्रिय थे- अधर धरत रि के परत ओ दीठ पर जोति। हरित बांस की बांसुरी इंद्रधनुष छवि होति।।

सूरदास, रसखान, नन्ददास, बिहारी, जयदेव, मीरा आदि अनेक साहित्यानुरागियों ने उनकी बंशी का गुणगान किया है। कहते हैं रास के मोहक क्षणों में ब्रज वनितायें सारा उपालंभ बिसरा कर मुरली की तान पर थिरकने लगती थीं, भले ही पहले वह कहा करती थीं- जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को बांसुरी बजाइगो कि विष बगराई गो। (रसखान)। किंतु मुरली की तान पर वे सभी मनोवांछित रसास्वादन करने लगती थी- मोहन मुरली नाद स्रवन कीनो सब किनहूं। जथा-जथा विधि रूप तथा विधि परस्यो तिनहूं।।

मनमोहन कृष्ण की बंशी के प्रति गोपियों के हृदय में डाह उत्पन्न होती है क्योंकि वह एक पल के लिए भी कृष्ण से अलग नहीं होती, यहां तक कि उनके अधर रस का पान भी करती रहती है। अत: राधा का उपालंभ स्वाभाविक होता है- या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरोंगी (रसखान)। राधा का वश चले तो प्रिय मिलन में बाधक बनी मुरली को किसी ऐसे स्थान पर छिपा दें जहां कृष्ण देख न सकें, क्योंकि मुरली श्याम को भरमा रही है- अधर सेज नासा विजन स्वर मिलि चरन दबाय। अरी सुहागिनि मुरलिया लियो स्याम भरमाय। गोप बालाओं को लगता है कि मुरली गर्व से इतराती है इसी से वह इठलाती रहती है- माई री मुरली अति गर्व काहू वदति नहिं आज। हरि के मुख कमल देख पायो सुख राज।

नीलमणि अपने लाल-लाल होठोंपर हरे बाँसकी वंशी रखे बजा रहे हैं। पहले चुपके-चुपके बजाते थे, झुरमुटोंमें छिपकर बजाते थे। सखाओंके सामने खुलकर बजाने लगे। सब सखियां, गोपियोंने जान लिया कि यह तो कृष्णकी वंशी है तो वह खड़ी-खड़ी देखती रह गयीं।

गोपियां कृष्ण से बोली- आप भले ही हर समय मुरली बजाओ पर हम जिस समय घर में भोजन बनायें, उस समय तुम मुरली मत बजाया करो। तुम्हारी मुरली सुनकर हम भोजन नहीं बना पाते हैं। जब तुम मुरली बजाते हो तो चूल्हे में जलनेवाली लकड़ी गीली हो जाती है, अग्नि बुझ जाती है। गाय जो चेतन है मुरली को सुनकर जड़ हो जाती हैं। जड़ जो लकड़ी हैं, मुरली को सुनकर चेतन हो जाती हैं।

पहले-पहले जब वंशी बजी तब तो विश्वव्यापिनी हुई और उसके बाद तो इस वंशीपर अधिकार हो गया केवल ब्रजवासियोंका। यहाँ तक हो गया कि इनको वंशी मथुरा नहीं ले जाने दी। वंशी और मयूरचन्द्रिका यह दो चीजें ही थीं

जो यह साथ नहीं ले गये। मोर मुकुट और वंशी यह दो पहचान है ब्रजके ठाकुरकी। इन्हींसे बच्चे पहचान लेते हैं कि यह राम है और यह कृष्ण हैं। बोलते हैं- इनके हाथमें धनुष और इनके हाथमें वंशी है और मयूरचन्द्रिका है।

यह वंशीकी ध्वनि विश्व व्यापिनी नहीं अखिल ब्रह्माण्ड व्यापिनी हो गयी। यह वंशी-वृंदावनसे ऊपर उठी और उर्ध्व लोकोंमें गयीं। नीचे तमाम पाताललोकमें गयीं। सारे जो बादलोंके समूह थे ये अवरुद्ध हो गये। स्वर्गमें तुम्बुरु गन्धर्व गा रहा था उसकी तो दशा विचित्र हो गयी वह आश्चर्यचकित होने लगा यह ध्वनि कहाँ से आ रही है। उन्मद-नाद- जो नाद उन्मत्त कर दे- जिसके सुनते ही शरीरमें पागलपन आ जाय, तुम्बुरु गन्धर्व गाते-गाते मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सनक सनन्दन आदि ऋषि समाधि लगा बैठ जाते। मुरली की ध्वनि उनके कानोंमें गयी और उनकी समाधि टूट गई। गोपियोंकी समाधि लगी थी, वह भी टूट गयी। ब्रह्माजी उस समय वेदोंका अर्थ कर रहे थे, उनका चित्त भी विस्मृत हो गया।

गोपियां कहतीं- अरे कन्हेया, एकबार वंशी सुना दे। नन्दबाबा और यशोदा कहते हैं हे कृष्णचन्द्र, नीलमणि। यह बड़ी विचित्र बात है कि कहाँ तुम्हारे ये सुकोमल नन्हे-नन्हें अधर होंठ जो माताके स्तनपान करनेमें भी समर्थ नहीं थे। पूरे दूधको चूस नहीं सकते थे और कहाँ आज तुम अधरोंपर वंशी रख करके और कुछ ही दिनोंमें इतनी मधुर वंशी बजाना सीख गये। यह पाठ, यह शिक्षा तुमने किस गुरुसे प्राप्त की।

इस वंशी ध्वनिने मानों सबके स्वभावोंको बदल दिया। केवल इसने चेतन प्राणियोंके ही नहीं स्थावर, जंगम सबके स्वभावको पलट दिया। जब यह वंशी बजती थी तब जो अचल पर्वत आदि हैं, इन सारे पर्वतोंके शिखर भी गीले हो जाते थे, द्रवित हो जाते उनमें रस बहने लगता और पत्थर द्रवित होकर बहने लगते उनमेंसे नये-नये झरने फूटते। उन झरनोंको देखकर पक्षीगण और तमाम वनपशु जल पीनेके लिये उत्कण्ठित हो जाते। यह वंशी ध्वनि उनके अंगोंको अवश कर देती। यह चल-अचल हो जाते। उनकी ऐसी विचित्र आनंदमयी दशा हो जाती कि वे अपने समीप आयी हुई जलकी धाराको पी नहीं सकते। वे वंशी के रसमें निमग्न हो जाते। वंशीकी ध्वनिका चमत्कार है कि सरोवरोंके जलोंको जमाकर बर्फ बना देती। यहाँतक कि सरोवरोंमें जो हंस-हंसिनियाँ तैरते थे उनके सारे अंग निश्चल हो जाते। लगता था कि यह हंस जीवित नहीं है। यह पत्थरसे बन जाते उनके अंगोंमें जड़ता आ जाती। इस प्रकार जड़ चेतन सभीमें इस ध्वनिका चमत्कार फैल गया। गोपियाँ कन्हैया से मनुहार करती, खुशामद करतीं कि लाला वंशी बजा। तब लाला कहीं यमुनाके तटपर वंशी बजाने लगा।

नन्दलाल बजाई बाँसुरी श्रीजनुमानके तीर री। अधर कर मिलि सप्त स्वर सौं उपजत राग रसाल री॥
ब्रजजुबती धुनि सुनि उठि धाईं, रही न अंग सँभार री। छूटी लट लपटात बदन पर, टूटी मुक्ता-माल री॥
बहत न नीर समीर न डोलत वृन्दा-विपिन संकेत री। सुनि थावर अचेत चेतन भये, जंगम भये अचेत री॥
अफल करे, फल-फूल भये री, जरे हरे भए पात री। उमग प्रेम जल चल्यौ सिखरु तें गरे गिरिन के गात री॥
तृण चरत मिरगा-मिरगी दोउ, तान परी जब कान री। सुनत गान गिरि परे धरनि पर, मानौं लागे बान री॥
सुरभी लाग दियौ केहरि कौं, रहत श्रवन हीं डार री। भेक भुजंगम फन चढ़ि बैठे, निरखत श्रीमुख चारु री॥
खग रसना रस चाख बदत नहिं, नैन मूँदि मुनि धार री। चाखत फलहिं न परे चोंच ते, बैठे पाँख पसार री॥
सुर नर असुर देव सब मोहे, छाये व्योम विमान री। कौन नहीं बस भए या मुरली की तान री॥

कभी वे बाँसुरी बजाते कभी गुलेल से ढेला फेंकते। कभी नाचते, कभी घूँघरों की तान छेड़ते थे। कभी बनवारी गाय बैल बन कर खेलते थे, मोर कोयल और बंदरों की बोली बोलते थे। इस प्रकार सर्व शक्तिमान भगवान सामान्य बालकों की भाँति खेल करते थे।

वंशी की ध्वनि में ऐसा जादू था कि पशु पक्षी सभी उसे सुनकर आनन्द में विभोर आत्मविस्मृत से बन जाते। भगवान श्रीकृष्ण की जादू-भरी वंशी का चमत्कार बड़ा ही अद्‌भुत और त्रिभुवन को वश में करनेवाला था। गोपियां कृष्ण की बांसुरी गीत का स्वर सुनकर मदहोश हो जाती थी और कहने लगती थी-

मोहन हमारे मधुवन में तुम आया ना करो, जादू भरी यह बांसुरी बजाया ना करो।

कभी गोप कहते- कनुआ, हमने सुना है, भैया। तू नाचता बड़ा सुन्दर है, तनिक नाच तो दिखा दे। तब आप अपने पैरों के घुँघरुओं को बजाते हुए नाचते। इसी तरह वह गोकुल से वृंदावन गये।

कभी श्रीकृष्ण कहते- अच्छा कौन किस पशु पक्षी की बोली बोलना जानता है? उस पर कोई म्याऊँ-म्याऊँ, कहकर बिल्ली की बोली बोलता। कोई ऐं-ऐं कहकर बकरी की बोली का अनुकरण करता। कोई गुटुर्गुं-गुटुर्गुं करके कबूतर की बोली बोलता कोई काँउ-काँउ कौवे के स्वर का अनुकरण करता। कोई पैकू-पैकू करके मोर की बोली बोलता, कोई कपड़ा फैला कर मयूर की भाँति नृत्य करता। कोई ऊपर पैर करके मोर चाल चलता, कोई मेढक की चाल का अनुकरण करता। कोई सर्प की चाल चलता। कोई कुत्ते की भाँति शरीर को अकड़ता। इस प्रकार सर्वान्तर्यामी प्रभु भी उनके साथ-साथ उनकी ही भाँति क्रीड़ा करते हुए साधारण बालकों के ही अनुसार मयूर आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करते हुए बछड़ों के पीछे-पीछे वनों में घूमने लगे।

ग्वालनि गाय बनाय साँड़ सप स्वयं रम्हामें। बने बाल कछु ग्वाल साँड़ ढिँग गाइन लामें।।
कबहूँ द्वै बनि साँड़ परस्पर टक्कर मारें। कबहूँ जीते श्याम कबहूँ बलदाऊ हारें।।
सारस मोर चकोर सम, बोली बोलें हँसि परें। यो प्राकृत शिशु सरिस हरि, बाल सुलभ क्रीड़ा करें।।

श्यामसुन्दर अब बन्सी बजाना सीख गये। बन्सी की ध्वनिसे समस्त ब्रजवासी मोहित हो उठे। गोपियाँ कहती- अरे, प्यारे कन्हैया। तुम्हारे ये कोमल अधर तो मातृस्तनपानोंमें भी समर्थ नहीं थे, फिर भला इने-गिने दिनोंमें ही तुमने इतनी मधुर बंशी बजानेकी शिक्षा किस गुरुसे सीख ली। गोपियोंका आग्रह देखकर श्यामसुन्दर बन्सी बजाते और गोपियां मुग्ध हो जातीं। अब श्यामसुन्दर सखाओंके साथ क्रीड़ा करते, बंशी बजाते, गाय एवं गोवत्सोंके साथ ही क्रीड़ा करने लगे। कभी दो, चार, छ: गोवत्सोंको अथवा गायोंको पकड़ लेते; उनको अपने अधीन करके नचाते तथा स्वयं उनके साथ नाचते। कभी उनके सींगोंको पकड़कर खेलते। कभी गाड़ीमें जुते हुए बैलोंके सींग पकड़कर उनसे विविध क्रीड़ा करते। नन्दरानी, नन्दराय स्नेहवश भयभीत हो जाते। बार-बार मना करते, पर श्रीकृष्ण उनकी एक भी नहीं मानते। साथ में दाऊका प्रोत्साहन तो सम्मति थी। दोनों भाई परामर्श करके बहुत दूर निकल जाते। जननी व्याकुल होकर ढूँढ़ने जाती तो दोनों भाई ब्रजकी सीमाके बाहर वनके पास बछड़ा चराते हुए गोपशिशुओंके साथ खेलते मिलते।

शास्त्रों के अनुसार जब कृष्ण बाँसुरी बजाते थे तो उसमें अलौकिक आकर्षण होता था। कृष्ण और मुरली एक दूसरे के पर्याय रहे हैं। मुरली के बिना श्री कृष्ण की कल्पना भी नहीं की जा सकती उनकी मुरली के नाद रूपी ब्रह्म ने सम्पूर्ण सृष्टि को आलोकित और सम्मोहित किया। दरअसल कृष्ण की बांसुरी उनके स्वभाव की मधुरता का प्रतीक है। कृष्ण के हाथ में बांसुरी का मतलब जीवन में कैसी भी घड़ी आए हमें घबराना नहीं चाहिए। भीतर से शांति हो तो संगीत जीवन में उतरता है। ऐसे ही अगर भक्ति पाना है तो अपने भीतर शांति कायम करने का प्रयास करें। साथ ही शास्त्रों के अनुसार कृष्ण के बचपन के अलावा और कहीं उनके बांसुरी वादन का उल्लेख नहीं मिलता है। कृष्ण की बांसुरी प्रेम, कलात्मकता व रचनात्मकता का प्रतीक है। इसलिए कृष्ण का बांसुरी वादन इस तरफ भी इशारा करता है कि बचपन में बच्चों की कलात्मकता व रचनात्मकता पर ज्यादा

ध्यान देना चाहिए क्योंकि इससे उनके मन में संवेदनाएं उत्पन्न होती है और उनका सर्वांगीण विकास होता है।

श्यामकी वंशीका मधुर निनाद ही नादावतार था। इसीसे उस वंशी-ध्वनिने प्रेममय व्रजधाममें जड़को चेतन और चेतनको जड़ बना डाला। जब श्यामसुन्दरने वंशी बजायी, तब स्थिर पदार्थ द्रवित होने लगे और चेतन स्थिर हो गये। पवनकी गति बंद हो गयी, यमुनाजलने प्रवाहित होना बंद कर दिया, पक्षी मोहित हो गये, हिरणोंके समूह दौड़ना छोड़ वंशी-ध्वनिका श्रवण करने लगे।

श्रीकृष्णने जब वृन्दावन में वंशीकी तान छेड़ी, तब उसकी मधुर ध्वनि सुनकर सिद्धोंकी समाधि भंग हो गयी। देवताओंके विमान स्तब्ध रह गये। देवांगनाएँ चित्रलिखितसी हो गयीं। सभी उस ध्वनिको सुन आनन्दसे उमग उठे। वंशीकी तानसे निकले संगीत-स्वरको सुनकर सभीकी गति उलट गयी। पत्थरोंसे झरने फूट पड़े, गन्धर्व मोहित हो गये, पक्षी और पशुओंने फल तथा तृण-भक्षणकी याद बिसरा दी। बछड़ोंने मां (गायों) का दूध पीना बंद कर दिया। वृक्ष एवं लताएँ चंचल हो उठी, उनमें नव पल्लव फूट पड़े। वायु स्थिर हो गयी। विशाल नेत्रोंवाले श्यामसुन्दरने वंशी बजाकर सभीका मन मोहित कर लिया। मन मोहनवाले मनमोहनने मोहक रूप धरकर कामदेवके अभिमानको गलित कर दिया। वे मन्मथमन्मथ कहलाने लगे।

वंशी-ध्वनि सुनकर शंकरजीका ध्यान टूट गया। ब्रह्माजी वेद-पाठ करना भूल गये। सरस्वतीजी सुध भूल उनका गुणगान करनेमें असमर्थ हो गयीं। इन्द्रकी सभा स्तब्ध रह गयी। रम्भाका गर्व नष्ट हो गया, वह नृत्य करना भूल गयी। मोहनकी मुरलीने तीनों लोकोंको मोह लिया है।

बाँसुरी बजाई आछे रंग सौं मुरारी। सुनि कैं धुनि छूटि गई संकर की तारी॥
बेद पढ़न भूलि गए ब्रह्मा ब्रह्मचारी। रसना गुन कहि न सकै, ऐसि सुधि बिसारी॥
इंद्र सभा चकित भई, लगी जब करारी। रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृतकारी॥

वंशीकी ध्वनिने वैकुण्ठमें पहुँच लक्ष्मीनारायणके हृदयमें भी रुचि उत्पन्न कर दी। नारायण बोले- लक्ष्मीजी, यह अद्भुत शब्द सुनो और वृन्दावनकी ओर निहारो। उन्होंने धन्य-धन्य कहकर व्रजवासियोंके जीवनको सराहा। उन्होंने कहा- वृन्दावन धाम धन्य है, व्रजभूमि धन्य है- कदाचित् वहाँकी धूलि उड़कर हमें भी लग जाती तो हम भी धन्य हो जाते।

प्रभुके भक्तोंको वंशीकी इस साधनाका अनुसरण करना चाहिये। जबतक लौकिक सुख-दु:खमें समता और सहिष्णुता नहीं आती, जबतक ईश-प्राप्तिके लिये इच्छाओं और वासनाओंका त्याग नहीं किया जाता, जबतक हृदयको सभी प्रकारकी कामनाओंसे रहित बनाकर अपनेको पवित्र नहीं किया जाता, तबतक उस परम प्रभुके प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती।

गोपिकाओंका भगवत्प्रेम तो जगजाहिर रहा है, किंतु भगवान् श्रीकृष्णके बाँसुरी-प्रेमने उनकी नींद चुरा ली थी। आखिर गोपिकाओंने इसका रहस्य बाँसुरीसे पूछा- सुभगे, तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण स्वयं हर समय ओठोंपर लगाये रहते हैं और हम सब उनकी कृपादृष्टि पानेके लिये बहुत प्रयास करती हैं, पर सफल नहीं होतीं, जबकि तुम बिना प्रयास किये ही उनके अधरोंपर सदा विराजमान रहती हो?

एक व्रजाङ्गना जो मुरलीधरकी बाँसुरीकी सुरीली तान सुनकर मोहित और अत्यन्त मुग्ध हो चुकी है, सारे व्रजवासियोंसे जोरदार शब्दोंमें ऐलान करके कहती है कि कल जब वे बाँसुरी बजायेंगे तब मैं अपने कानोंको अंगुलियोंसे बंद कर लूँगी; क्योंकि उनकी मधुर मुसकानको देख लेनेके बाद अपनेको सँभाल रखना सम्भव नहीं है।

बाँसुरी बोली- बिना प्रयास किये नहीं गोपियों, मैंने भी प्रयास किये हैं। जानती नहीं हो, मुझे बाँसुरी बननेके लिये अपना मूल अस्तित्व ही खो देना पड़ा है। मेरा जन्म कहाँसे हुआ, कैसे हुआ और किस प्रकार हुआ। धूप-गरमी और बरसातके थपेड़े खाकर

मैं बड़ी हुई। फिर मुझे काटा गया, तपाया गया, तब जाकर मैं बाँससे बाँसुरी बनी हूँ। श्रीकृष्णके अधरोंतक पहुँचनेमें मेरा सारा जीवन कठिन तपस्यामय बीता है। गोपिकाओंको बाँससे बाँसुरी बनने तककी बात समझमें आ गयी। बाँसुरी अपने-आपमें खाली थी। उसमें स्वयंका कोई स्वर नहीं गूँजता था। बजानेवालेके ही स्वर गूँजते थे। बाँसुरीको देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि यह कभी बाँस रह चुकी है; क्योंकि न तो उसमें कोई गाँठ थी और न ही कोई अवरोध था। गोपिकाओंको भगवान्‌का प्रेम पानेका अनूठा मन्त्र मिल गया और वे श्रीकृष्णप्रेममें ऐसी डूबीं कि सब सुध-बुध खो बैठीं।

हाँ, कन्हैया वंशी बजाता था, कन्हैया नहीं श्याम। आखिर यह मुरली, यह बाँस की बाँसुरी उस बालिका की भेंट थी जिसने अपने सम्पूर्ण जीवन और अपने वर्तमान-भविष्य सबको उसके ऊपर किसी देव-मूर्ति दांव पर लगा दिये जा रहे सुरभित सुमनों की तरह समर्पित कर दिया था। यह उसकी स्मृति को सदा उसके मन-मस्तिष्क में अक्षुण्ण रखती थी जो अपना स्वंय का अस्तित्व तो भूल गई थी पर जिसने उसे सम्पूर्ण आर्यावर्त्त के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में देखने का सपना अवश्य सँजोया था। उस सपने को साकार करना था तो इस मुरली को भी सदा हाथों में या होठों पर रहना था जिससे किसीको दिए गए वचन के पालन में शैथिल्य नहीं आए, जिससे किसीके सपनों के शीशमहल को वास्तविकता में परिवर्तित किया जा सके। हां, वृषभानु-सुता उसकी प्रेरणा थी तो उसके द्वारा प्रेषित यह मुरली उसकी प्रेरणा की साक्षात् प्रतीक- उसे सतत् जागरूक और कर्मशील रखने की उसकी मधुर संगिनी।

मधुर स्वर ही फूटता था इस मुरली से। किसीने कोई शिक्षण-प्रशिक्षण नहीं दिया था श्रीकृष्ण को संगीत का- मुरली-वादन का। सबकुछ स्वत: हुआ था। जैसे कोई देवता को प्रसन्न करने के लिए अपने स्वर का नैवेद्य चढ़ाए और उस क्रम में उसके अन्दर निहित सम्पूर्ण स्वाभाविक प्रतिभा स्वत:स्फूर्त रूप में उसके स्वरों में घुल जाए वैसा ही हुआ था कन्हैया के साथ। आखिर राधा भी तो उसके मन-मन्दिर की देवी ही थी। अपितु एक जीती-जागती, जीवन-स्पन्दित देवी, कोई पाषाण-मूर्ति नहीं। इस राधा को उसने छुप-छुपकर करील-कुंजों में बाँसुरी सुनाई थी और स्वर और लय शनै:-शनै: स्वत: उसके संगी हो गए थे। मुरली अब मिश्री की मिठास उगलने लगी थी। एक सम्मोहन-सा छा जाता था चतुर्दिक्। लगता कुंजों की लता-वल्लरियाँ झुक-झुक आतीं, उनके कुसुम-किसलय भी मन्द-मन्द डोलायमान हो स्वर-लहरियों के आरोह-अवरोह पर झूमने लगते। पेड़ों के पक्षी अपने कलरव की व्यर्थता को समझ, बाँसुरी के स्वर को पीने के लिए शान्त पड़ जाते। न सिंह हिंस्र पशु, पर वन-मृग, शशक-शावक, चित्तल और वन-गायों के साथ गोकुल की गौएँ और गो-वत्स भी उस कुंज और कुंज के बाहर मंत्र-मुग्ध-से, आविष्ट-से आ जुटते। यह तो था मुरली के मन्द-स्वर का प्रभाव, स्वर जो केवल राधा को निवेदित था। अगर वह खुले में खड़ा होकर मुरली पर तान छेड़ता तो व्रज की सारी वनिताएँ- बाल, वृद्ध और किशोरियाँ, वन के सारे पशु-पक्षी सच ही उसके इर्द गिर्द जुट जाते। मुरली से निस्सृत स्वर के पान के लिए सबके कान खड़े रहते।

जो हो श्रीकृष्ण ने वह तान अभी तक नहीं छेड़ी थी जिसका उल्लेख उसने राधा से किया था- उसके आह्वान का। ऐसा स्वर, जो वृन्दावन के वृक्षों और लता-वल्लरियों की बाधाओं को नकारता हुआ, हवाओं पर तैरता बृहत्सानुपुर के महलों के द्वारों, वातायनों और गवाक्षों में प्रवेश कर वृषभानु-सुता के कर्णरन्ध्रों तक पहुँच जाता और उसे विवश करता जैसी थी उसी रूप में वृन्दाविपिन की ओर भागने को। पता नहीं ललिता-सखी को भी साथ लेने की सुधि उसे रहती या नहीं? पर इस तान की अभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी। अपने माता-पिता के आदेश के उपरान्त वह सदा सुलभ थी उसे, भले ही वह अपने मन को मारकर दिनों तक वृन्दावन की ओर मुख नहीं करती थी। आखिर, श्याम को पर्याप्त अवसर प्रदान करना था अपनी शक्ति और क्षमताओं की वृद्धि के लिए।

राधा और ललिता वंशी के स्वर की डोर पकड़ जहाँ पहुँची वहाँ का दृश्य ही अद्‌भुत था। एक कदम्ब-वृक्ष के नीचे कृष्ण मुरली पर अपनी प्राय: सम्पूर्ण शक्ति से एक विशेष लय में फूँक मारते जा रहे थे और उनके स्वर के जादू में बँधे सम्पूर्ण वृन्दावन और आसपास के सभी नर, नारी तथा गोधन, मन्त्र-मुग्ध-सा उन्हें घेरकर खड़े थे। गौओं, वृषभों और गो-वत्सों का घेरा जहाँ समाप्त होता था उसके बाद वन के अन्य जीव- मृग, चित्तल शशक एवं वनैली गौएँ एवं वनअश्व-भी मन्त्रमुग्ध-से मूक खड़े थे।

बाँसुरी पर एक मीठी धुन छेड़ी थी। सब जहाँ-की-तहाँ खड़ी हो गई थीं- मिट्टी की मूर्तियों की तरह। दूर-पास कुलाँचें भरते हिरनों के झुण्ड-के-झुण्ड भी पास सरक आए थे। घास चरना छोड़ गौएँ भी आ जुटी थीं आसपास। पता नहीं कब तक यह मोहक वंशी-निनाद चला था और जब वह सहसा बन्द हुआ था तो सब गोपियाँ होश में लौटी थीं।

२) वत्सासुर का वध- कंस के भय से गोकुलवासियों को अपने पूर्वजों के धन-धाम और धरती छोड़ने को बाध्य कर दिया। निर्दोष बालकों की हत्या के साथ-साथ वह यदुवंशियों को बर्बाद करने के लिए बर्बरता पर उतरा। उनकी गौ-सम्पत्ति के बलात् हरण से लेकर उनके गोचर को नष्ट करने तथा पकी फसल को अग्नि के हवाले करने से भी उसके लोग बाज नहीं आ रहे थे।

ईश्वर? ईश्वर क्या होता है? जिसकी भुजाओं में शक्ति है, जिसकी तलवार की धार पर पानी है, जिसके राज-दण्ड का आतंक है- शत-सहस्र लोगों पर, वही ईश्वर है। इस अर्थ में ईश्वर मैं हूँ। मैं, मथुराधिपति कंस। वृष्णि, अंधक आदि अनेक संघों का एकमात्र अधीश्वर मैं। कंस अक्सर अपने अहंकार को अभिव्यक्ति इसी रूप में देता था। किसीका भय नहीं था उसे। अपने प्रबल भुजदण्डों का ही भरोसा इतना भारी था कि देवकी के आग्रह पर अपने सम्भावित काल की जननी को भी कारागार में डाल वह निश्चिन्त हो गया था।

नियति के साथ समझौता करना उसके स्वभाव में ही नहीं था और यही किया उसने इस बार भी। जैसे ही गोकुल-वासियों का संधान मिल गया, अपने सम्भावित काल की समाप्ति-हेतु उसने मन्त्रणा आरम्भ कर दी। क्या हुआ जो पूतना कालकवलित हुई, शकटासुर पिसकर रह गया, तृणावर्त एक तृण की तरह झंझा-झकोरों में छिन्न-भिन्न हो गया? प्रयास और कर्म को इन असफलताओं से परास्त नहीं होना था। अनेक असफलताओं के मध्य यही एक सफलता कम थी कि जिस गोकुल को उसके गुप्तचर आकाश की अनन्त ऊँचाइयों अथवा पाताल की अतल गहराइयों में लुप्त हो गया बता रहे थे उसका सन्धान उसने माह लगते नहीं लगते करा लिया था? अब जब कृष्ण, बलदाऊ का पता लग गया था तो उन्हें समाप्त करने का भी कोई नया और अचूक मार्ग भी मिल सकता है। आवश्यकता है बुद्धि के उचित प्रयोग की। इस स्तर पर कंस ने भी समझौता करना नहीं सीखा था। अपने असामान्य अहम् के बावजूद वह आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की बुद्धि का प्रयोग करने में भी पीछे नहीं रहता था। पता नहीं उसकी अन्तरात्मा ने कैसे उसे यह सीख दे दी थी कि एक से अधिक मस्तिष्कों का प्रयोग सदा सफलता को समीप लाने में सहायक होता है। भले ही अब तक सफलता उसके साथ लगातार छल ही करती जा रही थी पर एक से अधिक मस्तिष्कों के सम्मिलित सोच को महत्त्व देने की उसकी आदत में अभी तक परिवर्तन नहीं हुआ था। उसका विश्वास था, एक से अधिक व्यक्ति जब मिल बैठते हैं और उनके सोच का लक्ष्य एक ही होता है तो कुछ ऐसे अज्ञात रासायनिक परिवर्तन होते हैं इस मस्तिष्क-मिलन से कि जो समाधान उभरकर सामने आता है, वह अकेले मस्तिष्क के बूते के बाहर होता है। यही कारण है कि अपने मंत्रणाकक्ष की उपयोगिता को उसने कभी नहीं नकारा। भले ही

अमात्य बदलते रहे, महामात्य बदलते रहे, सभासदों की संख्या में ऱ्हास-वृद्धि होती रही पर मंत्रणा-कक्ष का महत्त्व ज्यों-का-त्यों बना रहा। जब कभी कोई समस्या उपस्थित हुई उसने विश्वस्त सभासदों को मंत्रणा-कक्ष में आमन्त्रित किया। महामात्य को सम्मानजनक स्थान दिया, अमात्यों को भी यथास्थान बैठाया और समस्या की गेंद उनके मध्य उछाल दी- लो सुलटो इससे। कोई बात बन आई तो कंस अवश्य उसका स्वागत करेगा, नहीं बनी तो प्रयास जारी रहेगा, पर निर्णय होगा सर्वसम्मति से ही। आज की समस्या का पता सबको था। वृन्दावन में गोकुलवासियों के आवास का पता लग गया था, साथ ही यह भी कि अभी उनको इस बात का भान भी नहीं था कि उनकी उपस्थिति का अनुमान मथुरापति को हो चुका है।

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और अत्यन्त मधुर बालोचित लीलाओं से गोकुल की तरह, वृन्दावन में भी व्रजवासियों को आनन्दित करते रहे। थोड़े ही दिनों में समय आने पर वे दोनों भाई, ग्वाल-बालों के साथ बछड़े चराने आस-पास के जंगलों में जाने लगे। साथियों के साथ बछड़े चराते हुए वे कहीं बाँसुरी बजावें, कहीं ढपली बजावें, कहीं पाँव के नूपुरों से रुन-झुन ध्वनि करें और कहीं साँड़ बन कर हँकड़ते हुए आपस में भिड़ने लगें। कहीं पक्षियों की आवाज में बोलें, तो कहीं बन्दरों की नकल करें। यमुनापुलिन पर भाँति-भाँति के खेल खेलने लगे। इसप्रकार उनका समय बड़े आनन्द से बीतने लगा।

यह मधुमंगल जो रहा न, यह बड़ा देवशक्तिसे सम्पन्न था। इसको दिख जाती थी आगे-पीछेकी बात।

कमला-नायक वैकुण्ठदायक, दु:ख-सुख जिनके हाथ। काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ।।

शुकदेव बोले- राजन्, किसी समय अपने समवयस्क बालकों के साथ बलदेवजी तथा श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाजी के किनारे बछड़ों को चरा रहे थे, उसी समय उन्हें मारने की इच्छा से एक दैत्य उस स्थान पर आया।

बनमहँ बालनि सहित करें हरि हलधर खेला। आयो तब ई दुष्ट तहाँ इक दैत्य जरैला।।
बनिकें बछरा जाइ मिल्यो हरिके बछरनिमहँ। समुझि गये हरि बलहिँ बतायो खल सैननिमहँ।।

एक दिन की घटना है। श्याम और बलराम अपने साथी ग्वालबालों के साथ यमुना के तट पर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय उनको मारने की नीयत से एक दैत्य आया। यह बछड़े का रूप धारण कर बछड़ों में जा मिला। कृष्ण तो भगवान् ठहरे। वे सब के मन की बात जाननेवाले हैं। बछड़े के रूप में दैत्य के आने की बात उनसे छिपी न रही। उन्होंने आँखों से ही बलराम को संकेत किया फिर वे धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये।

बलराम ने कृष्ण से पूछा- क्या तू इसे पहचानता है? कृष्ण बोले- इसके उद्धारका जिन्होंने दायित्व दिया है, उनके पावन पदोंको पहिचानना अधिक आवश्यक है।

गोप बालकों ने पूछा और चकित होकर देखने लगे यह नया बछड़ा हमारे बछड़ोंमें कहाँसे आ मिला। यह न तो नन्दव्रजका है, न बरसानेका। यह तो लाल-लाल नेत्रोंवाला बछड़ा हैं जिसे हमने कभी नहीं देखा है। कितने ही ऐसे काले, हृष्ट पुष्ट थे उस यूथमें। **दूर खड़े हो सो लखा, वत्सन रंगत रूप। तैसे गल घन्टी धरी, पूरा धरा सरूप।।**

धीरे-धीरे कृष्ण उसी ओर जाने लगे जैसे उसे बड़ा स्नेह करने जा रहे हों। वह श्याम को अपनी ओर आते देख भी उदासीन बना रहा। श्याम उसके समीप पहुँचे तो उसने दूसरे पद से प्रहार किया। श्याम ने उसके पैर पूँछ दोनों ही पकड़ ली। उसने दूसरे पैर का प्रहार किया तो दूसरे हाथ से उसे भी पकड़कर घुमाने लगे और स्वयं भी घूमने लगे।

उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे दैत्य को तो पहचानते ही नहीं और उस स्वस्थ सुन्दर बछड़े पर मुग्ध हो गये हैं। पीठ पर हाथ रखकर सहलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने पूँछ के साथ उसके दोनों पिछड़े पैरों को पकड कर ऊपर उठा लिया और आकाश में घुमाना शुरू किया। वे उसे आकाश में तब तक घुमाते रहे जब तक वह निष्प्राण न हो गया। निष्प्राण हो

जाने पर उन्होंने उसे पास में स्थित कैथ के पेड़ पर दे मारा। उसके भारी भरकम शरीर के धक्के से एक साथ कई वृक्ष धराशायी हो गये। यह देखकर ग्वालबालों के आश्चर्य की सीमा न रही। वे वाह-वाह कह के अपने प्रिय कन्हैया की प्रशंसा करने लगे। देव-मण्डली भी आनन्द-मग्न हो कृष्ण पर फूलों की वर्षा करने लगे। श्याम ने कृपा करके उसे गोलोक धाम में सुरभि का बछड़ा बना दिया।

पकरि पूँछ अरु पाँई कुहकुआ सरिस घुमायो। बछराको तजि रूप असुर तनु खल प्रकटायो।।
मार्‌यो सारो दुष्ट जिह, भलो कर्‌यो दुख हटि गयो। वत्सासुर उद्धार लखि, देवनि अति विस्मय भयो।।

गोप बालक चीत्कार कर बोल उठे। कनूँ, यह तो दैत्य है। नन्दिनीका शाप श्रीकृष्णके स्पर्शके साथ समाप्त हो गया। अब वहाँ बछड़ा नहीं था। काला, भयंकर, रक्तनेत्र, रक्तकेश, भयंकर दाढ़ोंवाला दैत्य था, जिसके पैर पकड़कर कन्हाई स्वयं तीव्रगतिसे घूम रहा था। दैत्यके लिए अपने हाथ भी समेटना सम्भव नहीं हो रहा था।

गोपबालक भौचक्के रह गये थे। उनका सुकुमार कन्हाई इतने बड़े दैत्यको कबतक घुमावेगा? लेकिन दो क्षण लगे और श्यामने फेंक दिया पूरे बलसे दैत्यदेह एक भारी कपित्थ-वृक्षके ऊपर। कपित्थका वृक्ष टूटकर गिर पड़ा। दैत्यका शरीर फटकर चिथड़े हो गया और आपका कृपापात्र तो पुन: बछड़ा बनकर गोलोकमें सुरभिके समीप पहुँच गया था।

पुच्छ सहित लै पिछले पाइ, दियौ फिराइ-फिराइ बगाइ। महाकाइ उपर ही मर्‌यौ, बहुत कपित्थन लै धर पर्‌यौ।।

घुमाते ही उसके प्राण निकल गये। चक्राकार घुमाया तो उसके सारे चक्कर छूट गये। भगवान्‌के हाथका चक्कर लग गया तो भवसागरके सारे चक्कर छूट गये।

वत्सासुर को मार कर भगवान श्रीकृष्ण ने वृन्दावन की भूमि पर असुरसंहार का श्रीगणेश किया।

वत्सासुर अज्ञान का प्रतीक है। अज्ञान ब्रह्म को भी तिरस्कृत करने की, मारने की चेष्टा करता है। अज्ञान ब्रह्म को, ज्ञान को ढकना चाहता है किन्तु ब्रह्म के सामने, ज्ञान के सामने टिक नहीं पाता, वह स्वयं विनष्ट हो जाता है। यही रहस्य है वत्सासुर के आने और मारे जाने का।

वत्सासुर अपने पूर्व जन्म में एक भयंकर दैत्य था। इसके बाप का नाम था- मुर और इसका नाम था प्रमील। घूमते-घूमते एक दिन प्रमील महर्षि वसिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचा। वहाँ उसने महर्षि की गाय नन्दिनी को देखा। झट-पट उसने ब्राह्मण का रूप धारण कर वसिष्ठ जी से नन्दिनी की याचना की और महर्षि से बोला- महर्षि, मैं दरिद्र ब्राह्मण आपकी कामधेनुकी याचना करता हूँ। इससे मैं अपने परिवारका पालन करते हुए सुखपूर्वक साधन-रत रह सकूँगा। आप पूर्णकाम, धर्मज्ञ ब्रह्मपुत्र अतिथिको निराश नहीं करोगे, इसी आशासे दूरसे चलकर आया हूँ।

मुनीनां गां समाहर्तुं भूत्वा विप्र: समागत:। दैत्योऽसि मुरुजस्तस्माद् गोवत्सो भव दुर्मते।।

बनावटी ब्राह्मण की बात सुनकर सर्वज्ञ वसिष्ठ चुप रहे। उन्होंने कुछ कहा नहीं किन्तु नन्दिनी से न रहा गया। उसने मनुष्य की वाणी में कहा- अरे दुष्ट, तू दैत्य है और ब्राह्मण का वेश धारण कर गाय लेने आया है इसलिये जा तू गो-वत्स ही हो जा। गाय का बछड़ा बन जा। बाद में क्षमा मांगने पर गिड़-गिड़ाने पर नन्दिनी ने कहा कृष्ण के हाथों तुम्हारा उद्धार हो जायेगा।

नंदिनी ने कहा- वत्स, प्रतीक्षा करो। द्वापर के अन्त में अनन्त श्रीकृष्ण रूप में व्रज में अवतरित होंगे तब तुम्हारा उद्धार होगा। इस पशु योनि से ही नहीं असुर योनि से भी मुक्त हो जाओगे।

वत्सासुर-वध की सूचना कंस को इस तरह उत्तेजित कर गई जैसे कोई मणिधर नाग इस बात से क्रुद्ध हो जाय कि उसके मुख से निकली मणि को पीठ फेरते ही कोई गायब कर दे। उसका क्रोध अपनी सारी सीमाओं को लाँघ गया और उसने

करणीय-अरकणीय का विचार किए बिना सूचना लानेवाले चर की गर्दन खड्ग से ऐसे उड़ा दी जैसे कोई कुष्मांड को उसके मूल से काट फेंके।

मिथ्याचारी, कायर, भला कोई वत्सासुर के समान मल्ल की, द्वन्द्व-युद्ध में हत्या की कल्पना कर सकता है, वह भी एक दस वर्ष के किशोर द्वारा? अवश्य इसमें घोर षडयन्त्र है। सम्पूर्ण मथुरा मेरे विरुद्ध उसी प्रकार एक होकर मेरे सर्वनाश पर सन्नद्ध है जैसे बहेलिए के जाल में फँसे कपोत उसके जाल को ही लेकर उड़ जाने हेतु एक हो जाएँ। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कंस ने सोचा, वह इस सम्पूर्ण षड्यन्त्र को उसी तरह कुचल देगा जैसे कोई मत्त गजराज अपने पैरों तले किसी नर-मुण्ड का कचूमर निकाल छोड़ता है। मेरे ही लोगों ने अवश्य मेरी ही पीठ में खड्ग-प्रहार किया है और इन सबको तलवार के घाट ही उतारूँगा। अवश्य ही इसमें प्रधान सेनाध्यक्ष दुर्धर्ष, महामात्य विकट, महादण्ड नायक अमर्ष और गुप्तचर-प्रधान गोखुर के साथ-साथ मथुरा की सम्पूर्ण जनता का हाथ है। सभी को पता लग गया है कि यह नन्द-किशोर ही देवकी का आठवां बेटा है और सभी मिलकर मेरे काल-सर्प के अण्डे को इसी तरह से से रहे हैं जैसे कोई काग मूर्खता-वश कोयल के अण्डे को सेता है। सब उसकी रक्षा को तत्पर लगते हैं। सभी को मेरी मृत्यु प्यारी है। अब किसी पर विश्वास करना स्वयं को मृत्यु के खुले मुख में विसर्जित करने के सिवा कुछ नहीं है अपितु प्रज्ज्वलित अग्नि में अपने ही सिर को काटकर किसी पशु-यज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न करना है।

नहीं, ऐसा नहीं होगा, कंस अपने काल को अब दूसरों के भरोसे नहीं छोड़ेगा। अपने ही लोगों की छत्रछाया उसे नहीं सुलभ कराएगा फलने-फूलने के लिए और एक दिन किसी दुग्ध-पलित विषधर की तरह अपने ही पैरों में मृत्यु-दंश झेलने के लिए। अब वह उस गोप-बालक की हत्या स्वयं करेगा अपने इसी रक्त-रंजित खड्ग से। नहीं, अब एक क्षण का भी विलम्ब व्यर्थ है। आखिर वृन्दावन है ही कितनी दूर। वह आज अपने विरुद्ध लिखे जा रहे मनहूस मृत्यु-ग्रंथ का अंतिम अध्याय अपने तथाकथित काल की हत्या से स्वयं ही लिख डालेगा।

राजतन्त्र, वह भी निरंकुश राजतन्त्र, दया और सहानुभूति के दुर्बल पायों पर नहीं टिक पाता। अमानवीय क्रूरता और हृदयहीन नृशंसता ही उसके अस्तित्व की शर्तें हैं। दण्ड के अभाव में राजदण्ड व्यर्थ होता है और एक दिन वह राज-ध्वज के चिथड़े ही उड़ा देता है। कंस इस बात को समझता था और अपनी उस भयानक भूल पर स्वयं पछता-पछताकर अपने को क्रोधाग्नि के साथ-साथ पश्चात्ताप की अग्नि में भी जलाता जा रहा था।

राजनीति मात्र सम्भावनाओं की मोहताज नहीं होती, कंस ने धीरे-धीरे आरम्भ किया, यहाँ हमें कटु यथार्थ के सामने के लिए भी प्रस्तुत रहना पड़ता है और अभी का यथार्थ यह है कि देवकी का आठवाँ पुत्र हमारा काल बनकर बैठा है। इसके पूर्व कि वह सचमुच मथुरा पर चढ़ आए, हमें उस काल-सर्प को उसके बिल में ही समाप्त कर देना है।

गोपोंने मैया यशोदा से वत्सासुर राक्षसों के मारे जाने का हाल सुनाया।

मोहनलीला नंद सों गोप कही सुनाय। देवी देव मनाइकै मात लियो उर लाय।।

सुनि गोपोंके मुखसे वत्सासुर की बात। यशुमति सबके पाँवपरिबारबार पछितात।।

३) बकासुर का वध- शुकदेव बोले- परीक्षित्, सारे ब्रह्माण्ड के एकमात्र नियन्ता श्याम और बलराम वृन्दावन में आकर वत्सपाल बने हुए हैं। वे तड़के ही उठ कर नहाते-धोते और कलेवे की सामग्री को लेकर बछड़ों को चराते हुए एक वन से दूसरे वन में घूमा करते थे। एक दिन की बात है सब ग्वालबाल अपने झुण्ड-के-झुण्ड बछड़ों को पानी पिलाने के लिये यमुना के तट पर गये। वहाँ उन लोगों ने बछड़ों को जल पिलाया और स्वयं भी पिया।

श्रीकृष्ण और बलदाऊ नित्य की तरह आज भी गोचारण को प्रात: ही प्रस्थित हुए। संग में श्रीदामा, सुबल, सुमन, सुपक आदि गोप-किशोर भी लग गए। गायों को यमुना-किनारे ही हरीतिमा में मुँह मारने को छोड़ वे एक कदम्ब-वृक्ष के नीचे आ गए। इन गोपकुमारोंके साथ कितना स्नेह, कितनी आत्मीयता है इन परात्पर परम पुरुषकी। कोई तनिक देरके पश्चात् समीप आता है तो ये ऐसे आतुर भुजाएँ फैलाकर हृदयसे लगाते हैं, जैसे अनेक वर्षोंके पश्चात् मिला हो वह सखा। स्वयं नृत्य करते हैं और गोपकुमार तालियाँ बजाते हैं। स्वयं गाते हैं, ताली बजाते हैं जब सखाओंमें कोई नृत्य करने अथवा गायन करने लगता है। ये प्रशंसा करते हैं सर्वलोकनमस्कृत इन गोपकुमारोंके नृत्य अथवा गायनकी। कहीं तुलना है इन बालकों-बछड़ोंके सौभाग्य की।

धनि धनि ब्रजके नारिनरधनियशुदाधनिनन्द। विहरतजिनके सदन में ब्रह्मसच्चिदानन्द॥
कहिकहिदेवसिहायँधन्यधन्यवृन्दाबिपिन। जहाँचरावतगायसकल सुरन सिरमुकुटमणि॥

कंस सदा व्याकुल बना रहता, वह भगवान् की माया में ऐसा फँसा था कि स्वयं भय के कारण नन्द-गोकुल में आता नहीं था। उसे दृढ़ विश्वास था कि मेरा और मेरे शत्रु विष्णु का जहाँ एकान्त में आमना-सामना हुआ, वह मुझे मार डालेगा। उसकी बुद्धि ऐसी विपरीत हो गयी थी कि वह अभी तक निर्णय भी न कर सका था, मेरा शत्रु है कौन? वह किसका लड़का है। योगमाया के कथन से इतना ही उसे अनुमान था कि मेरा शत्रु नन्दजी के गोकुल में किसी गोप के घर में बालरूप में छिपा है। जिसे भेजता, उसे ही श्रीकृष्ण मार डालते उसे कोई सूचना देनेवाला भी नहीं बचता। सेना भेजता तो उसके बचे सैनिक जाकर सूचना देते। सेना भेज नहीं सकता था भेजने का कोई कारण नहीं कोई आधार नहीं। असुरों को भेजता था। वे भी गुप्त रूप से अनेक वेष बना कर आते। श्रीकृष्ण वहीं समाप्त कर देते। इससे कंस को सदा खटका बना रहता।

जिस पूतना को उसने ब्रज में बच्चों को विष पिलाकर मारने भेजा था, वह पूतना आज तक नहीं लौटी। वह समाप्त हो गयी। उस पूतना का एक भाई था, जिसका नाम था बक। मंत्री ने कहा, महाराज, यह बकासुर जो है, अब तो उसके बलका आश्रय करना चाहिये। अब बगुलेकी जाति ही दम्भी होती है और यह जहाँ जाता है वहाँ दम्भका गहरा जाल फैला देता है। बकासुर अर्थात् दम्भासुर। तो अब इससे काम लिया जाय। मंत्रियोंने याद कराया। कंसके पहलेके जीवनकी एक घटना थी। बोला- आप कहा करते थे न। आपने उस दिन सुनाया था न। कंस बोला- ठीक-ठीक, याद आ गयी मुझे। वह तो मेरा मित्र है, बड़ा सुहृद है मेरा बकासुर। उसको भेजा जाय। तो पहलेकी बात क्या थी? पूतना जो थी उसका छोटा भाई था बकासुर। वह भी राक्षस था और ये लड़कपनमें साथ-साथ खेला करते थे- कंस और बक। बक बड़ा बलवान था। एक दिन उसने कंसको उठाकर मुँहमें डाल लिया। कंसमें भी बड़ा बल था तो वह अन्दर जाकर बाहर निकल आया। इतना उसने बल दिखाया भीतर कि बकने उगल दिया। वह निकल तो आया और फिर बकको उठाकर पटका भी लेकिन उसके बलकी छाप पड़ गयी कंसके हृदयपर। तब पूतना दौड़ी आयी। पूतनाने कहा कि मेरे भाईको ऐसा कर दिया। पूतना कंससे बोली कि मेरेसे लड़। कंसने सोचा कि कहीं इसमें बल ज्यादा हुआ और इसने मुझै मार दिया तौ? उसने बुद्धिमानीसे कहा- **स्त्रीयां सार्द्धमहं युद्धं न करोमि कदाचन**- अरे। मैं कभी औरतोंसे लड़ता हूँ क्या? स्त्रियोंके साथ मैं नहीं लड़ता। पूतना बोली- फिर? फिर आजसे तू मेरी बहन और यह मेरा भाई। आजसे यह सम्बन्ध हो गया कि तू मेरी बहन हो गयी और बकासुर मेरा भाई हो गया। तबसे ही यह बकासुरको अपना भाई और पूतनाको बहन मानता था।

उस बकासुर को कंस ने बुलाकर कहा- भैया बक, देखो तुम्हारी बहिन को मैंने ब्रज में अपने शत्रु को मारने भेजा था। सुना है, वह नन्द के गोकुल में गोप बालक बना हुआ गुप्त रूप से रहता है। बड़ा होने पर वह मुझे अवश्य ही मारेगा, तुम्हारी

बहिन को भी संभवतया उसी ने छल से मार डाला है, यदि तुम किसी भाँति उसे मार सको तो मेरा भी शत्रु मारा जाय और अपनी बहिन के घाती से तुम भी बदला ले लो।

यह सुनकर बकासुर ने कहा- राज्न, आप चिन्ता न करें मैं आज ही नन्द के ब्रज में वृन्दावन जाऊंगा। बड़े बक का वेष बनाकर उस बालक को तुरन्त निगल जाऊँगा। मुझसे वह बच नहीं सकता।

ग्वालबालों ने फिर वहाँ देखा कि एक विशालकाय श्वेत पक्षी बैठा हुआ है। वे उसे देखकर डर गये। वह एक बड़ा भयंकर असुर था। उसका नाम था- बक। वह बगुले के रूप में रहता था। उसकी चोंच वज्र-सी कठोर और तीखी थी। वह स्वयं भी महान् बलवान था। गोप-बालकोंने पूरे हिम-शिखरके समान विशाल बकको देखा। उनका भयातुर होना स्वाभाविक था। सब जहाँके तहाँ बगुलेकी ओर सभी देखते खड़े रह गये। केवल कृष्णचन्द्र भाईके समीपसे कुछ पद आगे दौड़ आये। जैसे वे इतने बड़े बगुलेको निकटसे देखनेको उत्सुक हों।

एक बड़ा सफेद-सफेद विशाल जन्तु वहाँपर बैठा है। उज्ज्वल वर्ण है और बड़ा भारी है। छोटा-सा पक्षी नहीं था, बड़ा भारी विशाल था। बालक निर्णय नहीं कर सके कि यह क्या है? अब बालक अपनी-अपनी बुद्धिसे सोचने लगे। एकने कहा कि कहीं बिजली गिरी होगी और बिजलीसे किसी पहाड़की चोटी टूटकर गिरी होगी और गिरकर जमीनपर यहाँ तालाबके किनारे आ गई होगी।

एक काल में असुर इक, सखा कंस का भूप। वृन्दावन जावत भया, बगुले का धर रूप॥
श्वेत शैलसम देह सो, तीक्षण तुण्ड कराल। देख ता के रूप को, भाग गये सब बाल॥

उत्कल अकस्मात् नहीं आया था। वह अपनी बहिन पूतनाका परिशोध लेने कंसकी प्रेरणा से ही पहुँचा था। इतने बड़े बकको श्रीकृष्ण तक पहुँचनेमें केवल दो डग धरने पड़े। पहुँचते ही चोंच बढ़ाकर नन्दनन्दनको उसने टप् से उठा लिया अपनी चोंचमें।

उस समय हाहाकर करते हुए सभी देवता वहाँ आ पहुँचे। इन्द्र ने वज्र चलाकर, ब्रह्मा जी ने ब्रह्मदण्ड से, शंकर जी ने त्रिशूल से, वायुदेव ने वायव्यास्त्र से, यम ने यमदण्ड से, सूर्यदेव ने धनुष से बाण चलाकर, कुबेर ने तीखी तलवार से, अग्निदेव ने आग्नेयास्त्र से उस पर प्रहार किया, परन्तु वह दैत्य बकासुर मरा नहीं। तदनन्तर वरुण ने अपने पाश से बाँधकर उसे घसीटा, भद्रकाली ने उस पर गदा से प्रहर किया, शक्तिधारी स्कन्द ने उस पर अपनी शक्ति चलाई, परन्तु वह दैत्य फिर भी नहीं मरा। तदनन्तर विद्युत की गड़गड़ाहट के समान गर्जना करते हुए उस दैत्य ने सहसा क्रोधपूर्वक धावा किया और अपनी तीखी चोंच से मार-मारकर सभी देवताओं को खदेड़ दिया। वह दैत्य पुन: उसी स्थान पर आकर भीषण गर्जना करने लगा।

ग्वालबालों के सामने आने पर उसने झपट कर श्रीकृष्ण को निगल लिया। यह देखकर बलराम-सहित सारे ग्वालबाल घबड़ा कर अचेत हो गये किन्तु श्रीकृष्ण अन्दर जाकर अग्नि के समान उष्ण बन गये। इससे उसका तालुमूल जलने लगा। जब उसे सहन नहीं हुआ, तब उसने कृष्ण को उगल दिया।

व्रजके जीवन श्यामसुन्दर नीलमणिको बकने अपने मुखका ग्रास बना लिया। अब तो वहाँपर सारा वन रो उठा। वृक्षोंकी डालियोंपर जितने पक्षी सब बैठे थै मधुर-मधुर काकली कर रहे थे, उन सबके आँसू बहने लगे- आर्त्तनाद करने लगे। बेलें-लतायें सब काँपने लगीं। वनके मृग-हरिण करुण चीत्कार करने लगे। बन्दर रोने लगे और अन्तरिक्षमें देवताओंने क्रन्दन आरम्भ कर दिया और बेचारे गोपबालक- इनकी तो वही दशा हुई।

जब बक ग्रस्यौ कुँवर नँदलाल। बाल समेत सब ब्रज के बाल॥ भये विचेतन ते तन ऐसें। प्रान बिना इंद्रीगन जैसें॥

जिनके एक अंशकी अभिव्यक्तिसे- अभिव्यक्ति क्या जिसके एक-एक रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड धूलिके कणके समान

विलीन हो जाते हैं- जो जगत्की रचना करनेवालेकी भी रचना करनेवाले हैं, उन भगवान्को, ऐश्वर्यमय भगवान्को, यह नन्हा-सा असुर अपने पेटमें रख सके, यह क्या कभी होनेकी बात है। यह भी एक लीला रसास्वादनकी पद्धति है। यह भी एक नवीन शैली है। भगवान अपनी लीला-रसास्वादन करवाते हैं- करते हैं। वहाँ भी खेलने गये हैं। राक्षसके उदरमें भी इनका रंगमञ्च है। वह पेट भी खेलनेकी जगह है- क्रीड़ाभूमि है। इसीलिये उनके मनमें वहाँ खेलनेकी आ गयी। बाहर खेलते-भीतर खेलते। भीतर दूसरा कौन खेलता है? हम सबके पेटमें कौन खेलता है? वे आज स्वयं उस असुरके पेटमें खेलनेके लिये चले गये। वह निगल तो गया परन्तु अब उसके कण्ठमें आग लग गयी। जलने लगा उसका तालु-जलने लगा उसका कण्ठ। अब यह उल्टी बात। वहाँ तो लीलाशक्तिकी बात है। कहते हैं कि जिस श्रीकृष्णके नामका आभास जीभपर आते ही नरककी सारी भयानक ज्वालायें शान्त हो जाती हैं। जो परम शीतलताके समुद्र हैं उन भगवान्को अपने अन्दर लेकर, उनके श्रीअंगोंके स्पर्शसे ही असुरके अन्दर दाह पैदा हो जाता है। भगवानके परम शीतल चरण-कमलोंका स्पर्श पाकर बकका कण्ठ जलने लगता है। यह उल्टी बात हुई। उसे इतनी वेदना हुई, इतनी पीड़ा हुई कि वह अन्दर रख न सका, उगलना पड़ा। तुरंत उसने उगल दिया कि अब तो प्राण कैसे तो बचें? इनको मारनेकी बात तो भूल गया और उसके मनमें आया कि कैसे भी प्राण बच जायँ; जल्दी इसको बाहर फेंको। यह तो मानो जलता हुआ आगका गोला अन्दर आ गया। जलने लगा तमाम कण्ठ उसका। उसने तुरन्त उगल दिया। ये बाहर आ गये। जब कृष्ण बाहर आ गये तब चोंच से प्रहार करने के लिये वह उन पर झपट पड़ा।

शुकदेव बोले- राजन्, वह बक नाम का महान असुर बगुले का रूप धारण किये हुए था। उस तीक्ष्ण चोंच वाले महाबली असुर ने सहसा आकर श्रीकृष्ण को निगल लिया।

कृष्ण को तास ने, ग्रास लिया मिथिलेश। देख बाल रोवत भये, विकल भये विबुधेश।।
निज तनु को श्रीकृष्ण ने, कीना अनल समान। दग्ध कंठ भा तास का, उगल दिये भगवान।।
पुनर्ग्रसन के हेत सो, आया तुंड पसार। युगल चुँच से पकड़ कर, करा देह दो फार।।

दम्भ जब स्वयं सर्वेश्वरको निगलकर उनका स्थान लेने जाता है, मृत्यु-भस्म होना ही उसका निश्चित परिणाम है। बछड़े, गोप, बालक सबके शरीर जैसे निष्प्राण हो गये। रक्तहीन, श्रीहीन, श्वेत और स्पन्दन-रहित। केवल भगवान संकर्षणका श्रीमुख अरुण हो उठा था। नेत्र, अंगार उगलने लगे थे। वे कुछ अघटित करने ही वाले थे।

पलकोंके गिरनेमें जितना समय लगता है, उसका भी अर्धकाल- बक छटपटा उठा। जैसे उसने तप्तांगर मुखमें उठा लिया हो, इस व्याकुलतासे उगल दिया उत्कलने श्रीकृष्णको। अपनी चोंच खोलकर- पूरी खोलकर श्वांस ली उसने। ग्रीवाको झटका दिया दो बार इधर-उधर और फिर पूरी ग्रीवा पीछे करके चोंचकी चोट करने टूटा।

विद्युत गति से उन्होंने सीधे बकासुर की गर्दन पर ही छलाँग लगा दी और अपने दोनों हाथों को चिमटे का रूप दे उसकी लम्बी गर्दन को उसमें फँसा उसके पहाड़ सदृश शरीर से वैसे ही लटक गए जैसे किसी वृक्ष से एकाकी लता लटकती है। बकासुर लाख प्रयास करे उनकी बाहुओं से अपनी गर्दन को छुड़ाने के लिए परन्तु जैसे किसी पशु से सटी जोंक छुड़ाए नहीं छूटती वैसे ही उसकी गर्दन से कृष्ण का छूटना असम्भव हो गया। वह जितना ही अपनी गर्दन को छुड़ाने का प्रयास करता कृष्ण की पकड़ उतनी ही बढ़ती जाती।

भागते-दौड़ते, छटपटाते बकासुर परेशान हो गया। कृष्ण की उम्र चाहे जो कम हो पर उनके पुष्ट शरीर का भार कुछ कम नहीं था। उसे लगा, उसकी लम्बी गर्दन से कोई दस वर्ष का किशोर नहीं कोई भारी शिलाखण्ड ही लटका हो। इस

दौड़-भाग के कारण उसकी साँसें जोर-जोर से चलने लगीं और उसके बड़े-बड़े नथुने जल्दी-जल्दी फूलने और पिचकने लगे। उसका पूरा शरीर पसीने से इस तरह लथ-पथ हो गया और उससे इस तरह जलधार गिरने लगी जैसे बड़े वृक्ष के तने से वर्षा का जल झड़ता है।

श्रीकृष्ण ने अब उसकी लम्बी गर्दन को जोर-जोर से झटका देना शुरू किया। वह इतना श्लथ हो गया था कि अब उसके हाथ भी अच्छी तरह ऊपर को नहीं उठ पाते थे जिससे वह कृष्ण को अपनी गर्दन से नोच फेंकने के अपने पूर्ण प्रयास को जारी रखे। कृष्ण के हर झटके पर उसके गले से गों-गों की भीषण चीत्कार निकलती और वह पहले से अधिक पस्त हो जाता।

झटके देने से बकासुर की गर्दन नहीं टूटी। वह लम्बी अवश्य थी पर मोटी भी कम नहीं थी। जैसे बरगद की मोटी डाल को कदम्ब की डाल की तरह झटके से तोड़ा नहीं जा सकता, उसी तरह श्रीकृष्ण को लगा कि बकासुर की पुष्ट गर्दन को सीधे झुला देना आसान नहीं था। पर उनके झटके जारी रहे और बकासुर के गले से निकलने वाले गों-गों के शब्द भी अब पहले से अधिक भयानक और दर्दीले हो आए। लगता था आवाज किसी मल्ल के गले से नहीं निकलकर किसी भयानक भैंसे के गले से आ रही हो।

बकासुर अब पूरी तरह थक चुका था। अब दूर-दूर तक दौड़-भाग करने के बदले वह एक ही स्थान पर चक्कर लगाने लगा। एक ही स्थान पर चक्रायित होने से कृष्ण के मस्तिष्क में भी सहसा कोई बात तड़ित की तरह चमकी और श्रान्त-कामान्त बकासुर की गर्दन को झटका देना छोड़ उन्होंने ठीक कुम्भकार के चक्र की तरह उसकी गर्दन को चारों तरफ घुमा दिया। आसपास की पहाड़ियों तक को अपनी प्रतिध्वनि से कँपाती एक जोर की चीत्कार बकासुर के गले से निकली और उसकी गर्दन ठीक उसी तरह झूल गई जैसे किसी बड़े-से विल्व-बल की टहनी फल के साथ झंझा-झकोरे की चपेट में आ झूल जाती है। दूसरे ही क्षण बकासुर का प्राण-रहित शरीर जमीन पर उसी तरह धराशायी हुआ जैसे मूल पर कुठार के अंतिम और निर्णायक प्रहार के पश्चात् कोई विशाल बरगद वृक्ष धराशायी हो जाता है। बलराम, श्रीदामा, सुबल आदि सभी सखा दौड़े पर श्रीकृष्ण इसी मध्य उस बकासुर के शव से छिटककर दूर खड़े हो गए थे। उनके शरीर में कहीं कोई खरोंच भी नहीं आई थी।

नटनागर भगवान कृष्ण ने पैंतरा बदल कर झटसे उसकी ऊपर नीचे की दोनों चोंचों को पकड़ कर के वैसे ही फाड़ डाला, जैसे कोई सींक फाड़ता है।

प्रभु लीला-आसक्त वै लखि सिसु दुखी अपार। कर-कमलन सौं चोंच गहि करे फका द्वै फार॥

निष्प्राण दैत्य धड़ाम से भूतल पर गिर कर मर गया।

यों बनि बछरापाल लाल डोलें बन बनमहँ। इक दिन ग्वालनि लख्यो बड़ो बक सोचे मनमहँ॥

है यह निश्चय असुर खड़ो मुख ऊपर कीये। जब तक सोचे ग्वाल लीलि ग्वाने हरि लीये॥

गये कृष्ण बक-बदनमहँ, निरखि बाल व्याकुल भये। तुरन्त दुष्टके कण्ठमहँ, पावक सम हरि ह्वै गये॥

व्याकुलता में कृष्ण चौंच सम्पुट से बाहर आ गये। बक सँभला। श्वांस ली उसने। फिर चौंच की चोट करने को उद्यत हुआ तो कृष्ण ने उसकी एक चौंच पकड़ ली और बाँयें चरण से उसका निम्न भाग दवा लिया और दक्षिण कर से ऊपरी भाग ऊपर उठाते चले गये जैसे वामन भगवान का पग।

तृण के समान बक का शरीर चीर दिया कृष्ण ने। बक का उद्धार श्रीकृष्ण के कर-कमलों से हो गया। बकासुर के मरते ही आकाश में स्थित देवों ने जय-जयकार करते हुए फूलों की वर्षा की। सारे गोप-बालक यह लीला देखकर आश्चर्य से चकित रह गये।

जैसे तृण-पात्र निर्मित करनेवाले एरका तृण चीर देते हैं, बकका देह चीर दिया गया था। दैत्य उत्कलका दिव्यीकरण हो गया। वह बकसे हंस बनकर इन परम प्रभुके नित्यधामकी वापीका भूषण बनने जा चुका था।

बकासुर सुरपुर गयो अधमअसुरतनत्याग। सुर हर्षत बरसतसुमन गगनसहित अनुराग।।

सबसे पहिले भगवान बलरामने दौड़कर अपने अनुजको अंकमाल दी। बछड़े-बालक सब सचेत, सावधान, सुप्रसन्न दौड़े। सुरोंकी सुमन-वृष्टिकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं गयी, न गगनमें गानको, स्तवनको किसीके श्रवण सुन रहे थे। बछड़े श्यामसुन्दरको सूँघ लेनेको समुत्सुक थे। सखाओंमें प्रत्येक कर, चरण, सर्वांग भली प्रकार देखनेमें लगा था कि कहीं कोई क्षत-चिह्न तो नहीं है।

सहन करि सक्यो नहीं उगल दीये खलने हरि। मारन दौर्‌यो दुष्ट चोंचतें तुरत कोप करि।।
हरि हँसि पकरी चोंच ग्वाल लखि अति हरषाये। दयो बीचतें फारि सुमन देवनि बरषाये।।
अति विस्मित बालक भये, आलिङ्गन हरिको करें। पत्र, पुष्प, फल लाइकें, हरष सहित सम्मुख धरें।।

शाम को जब सब व्रज-बालक बछड़ों को लेकर वज्र में आये तब वहाँ उन्होंने घर के लोगों से सारी घटना कह सुनाई। बकासुर के वध की घटना सुन कर सब-के-सब गोपी-गोप आश्चर्य से चकित हो गये। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो कन्हैया मृत्यु के मुख में जाकर लौटा हो। वे सभी कृष्ण को निहारते हुए अघाते नहीं थे। वे आपस में कहने लगे- यह बालक कई बार मृत्यु के मुख में जाकर वापस आया है। जो इसका अहित करने के लिये आया उसीका अनिष्ट हुआ।

इस प्रकार बाल-लीलाओं द्वारा भगवान की कौमारावस्था क्रमश: व्यतीत हो गई। नन्दबाबा और गोप-गण श्रीकृष्ण और बलराम की इन मधुर लीलाओं की चर्चा करते हुए संसार के विविध कष्टों को भूल गये थे।

शुकदेव बोले- राजन्, जब श्रीकृष्णजी बगुले के मुख से निकलकर बलराम तथा अन्य गोप कुमारों के समीप आये, तो उन्हें देखकर सबको ऐसा आनन्द हुआ जैसे गये हुए प्राणों के आने से इन्द्रियों को आनन्द होता है। ग्वाल-बाल अति प्रसन्नतापूर्वक उनसे गले लगाकर मिले। तदनन्तर अपने-अपने बछड़ों को लेकर ब्रज में आये। वहाँ आकर उन सबने बक के मारे जाने आदि का सभी वृत्तान्त सुनाया।

असुर मृतक हरि कुशल निरखि बालक हरषावें। मनहुँ मृतक तनु प्रान आइ इन्द्रिय सुख पावें।।
लै बछरनिकूँ ग्वालबाल वृन्दावन आये। अति उत्सुक ह्वै वृत्त सबनि यशुमतिहिँ सुनाये।।
बगुलासुरकी बात सुनि, सबकूँ अति विस्मय भयो। कहे गोप मुनि गर्गने, सब भविष्य पहिलिहिँ कह्यो।।

सबने अपने-अपने बछड़ों को एकत्रित किया और श्रीकृष्ण को आगे करके वृन्दावन की ओर चल पड़े। ब्रज में आकर गोपों ने बड़े उल्लास के सहित बकासुर का सब वृत्तान्त गोप और गोपियों से कहा। छोटे-छोटे बच्चों ने यशोदा मैया से कहा- मैया, मैया, आज कनुआ भैया ने एक बड़े भारी राक्षस को मार डाला।

गद्‌गद कण्ठ से उपनन्दजी ने नेत्रों के अश्रुओं को पोंछते हुए कहा- देखो, कैसे आश्चर्य की बात है कि इस बालक को कितनी बार मृत्यु ने आकर घेरा किन्तु जब-जब ऐसे संकट आये- यह बाल-बाल बच गया। इसका एक रोंआ भी टेढ़ा नहीं हुआ। इसके विपरीत जिन्होंने आकर इसे भय पहुँचाया उन्हीं का अनिष्ट हुआ। वे ही प्राणों से हाथ धो बैठे। जैसे अग्नि पर पतङ्गेआकर गिरते हैं तो अग्नि को तो कुछ हानि पहुँचा नहीं सकते। उलटे वे ही स्वयं अग्नि में गिरकर भस्म हो जाते हैं, वैसे ही जो-जो भी राक्षस आये वे सब इसके समीप आकर मर गये।

इस पर नन्द बोले- वेदवेत्ता जो बात कह देते हैं, वे जो भविष्य वाणी कर देते हैं- वह होकर ही रहती है। ज्योतिष शास्त्र

के प्रणेता भगवान् गर्ग ने इस बालक के नामकरण के समय जो-जो बातें कही थीं, अब मैं उन सबको प्रत्यक्ष- अपनी आँखों से हुई देख रहा हूँ। उन्होंने इस कृष्ण का हाथ देखकर और इसकी जन्म लग्न बनाकर ग्रहों का बलाबल विचार कर कहा था। इसके ऊपर जितने शत्रु आक्रमण करेंगे, वे सब मारे जायँगे। इसके पीछे गोप वंश का बड़ा नाम होगा। ब्रजवासी इसकी कृपा से बड़े-से-बड़े संकटों से सरलता के साथ तर जायँगे।

मैयाके आँखोंमें आँसू आ गये। मैया गोपियोंसे बोलीं- बहनों, जिस कारणसे गोकुलको छोड़कर यहाँ हम आये वह तो यहाँ भी हमारे पीछे-पीछे भय-उत्पात आ गये। यहाँ भी असुरोंका उत्पात होने लगा।

मोहनलीला नंद सों ग्वालन कही सुनाय। देवी देव मनाइकै मात लियो उर लाय॥
सुनि ग्वालन के मुखन ते वत्सासुर की बात। यशुमति सबके पाँवपरिबारबार पछितात॥

बकासुर दम्भ का प्रतीक है। बक तालाब में मछली मारने के लिये किस प्रकार एक पैर उठाकर ध्यान लगाता है, इस दृश्य को लोगों ने बहुश: देखा होगा। दम्भ करनेवाला व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों को भले ही ठग ले, किन्तु भगवान के सामने उसकी एक भी नहीं चलती।

यमुना मैया भक्ति का प्रतीक है। भक्ति के किनारे दो बाधाएँ उपस्थित होती है। एक है वत्सासुर (अज्ञान, अन्धश्रद्धा) और दूसरी है बकासुर (दम्भ)। बगुला दम्भ का प्रतीक हैं। बकभगत अर्थात् दम्भी। भक्ति के किनारे दम्भ आ विराजता है अत: उसकी घात में नहीं फँसना चाहिये। अन्य पापों का तो प्रायश्चित्त है, किन्तु दम्भ का नहीं। बगुले की चोंच है- लोभ। वह बड़ी लम्बी है। लोभ बढ़ते ही दम्भ आ जाता है। कीर्ति और धन का लोभ अपने साथ दम्भ भी लाता है। यमुना अर्थात् भक्ति के किनारे बक अर्थात् दम्भ के आते ही सारा खेल बिगड़ जाता है।

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, महर्षि जाजलि गंगा सागर द्वीप में भगवान कपिलदेव के आश्रम के समीप ही आश्रम बनाकर निवास करते थे। नदियों एवं समुद्र के संगम स्थल पर मत्स्य आखेट विशेष रूप से होता है। इसी उद्देश्य से दैत्यराज हयग्रीव का पुत्र उत्कल समीपीय तट पर गया था। उत्कल ने समरांगण में देवताओं को परास्त करके देवराज इन्द्र के छत्र को छीन लिया। उस महाबली दैत्य ने और भी बहुत से मनुष्यों तथा नरेशों की राज्य-सम्पत्ति का अपहरण करके सौ वर्षों तक सर्व वैभव सम्पन्न राज्य का उपभोग किया।

सचराचर समुद्धारिणी, श्रीहरि-चरण समुद्भवा, शिव-सिर विहारिणी, भवतारिणी, भगवती सुरसरि के समुद्र-संगम पावन तीर्थ, जाजालमुनि की तपस्थली के सम्मुख इस दैत्यकुमार ने मत्स्य पकड़ने के लिए वंशी डाल दी। ऋषि के विरोध करने पर भी जिह्वा लोलुप दैत्य ने ध्यान नहीं दिया तो ऋषि ने शाप दे दिया तू अपनी शक्ति के अहंकार में अंधा होकर इस क्षेत्र की पावनता को नहीं देखता, तीर्थ का असम्मान कर रहा है और ऋषि की बात बधिर के समान अनसुनी करके बक के समान मत्स्य पकड़ने के लिए बैठा है, जा बक हो जा।

सृष्टिके नियमानुसार वह असुर बक शरीरमें उत्पन्न हुआ पूतनाका छोटा भाई और अघके अग्रज रूपमें। बक अघका अग्रज ही तो होता है। श्वेतकाय-मूर्त्तिमान सात्त्विकता दीखे ऐसा शरीर, एक पैरपर स्थिर, शान्त, जलमें ऐसा खड़ा रहे जैसे महान ध्यानस्थ योगी; किंतु ध्यान मत्स्यपर- मछली आयी और टप् पकड़ निगल ली। अघका अग्रज यह दम्भ-अत्यन्त सात्त्विक वेश, एकाग्रता, ध्यान, तपका उत्कट दिखावा और दृष्टि भोगपर, छलसे भोग प्राप्त करनेपर। इतना क्रूर-कुटिल हृदय कि किसीकी हत्यामें, किसीको कुछ भी कर देनेमें किञ्चित् भी हिचक नहीं। केवल अपने स्वार्थ, अपने सुखपर दृष्टि। यह दम्भ पापका बड़ा भाई ही तो है। कोई भी साधन इसका समुद्धार करनेमें समर्थ कहाँ है। साधनको ही स्वार्थके लिए

प्रयुक्त किया गया तो वे पतनके हेतु हो गये, अब उनसे उद्धारका क्या सम्बन्ध। इस उत्कलका उद्धार तो निखिलकलैकधाम, षोडश-कला-सम्पूर्ण श्रीकृष्ण स्वयं करें अपने करोंसे तभी सम्भव है।

कंस दिग्विजय में अघ और बक दोनों को अधीन कर मथुरा ले आया। जैसे पूतना को कंस ने बहिन बनाया था उसी तरह इन्हें भी अनुज मानकर आश्रय दे दिया।

शाप सुनकर घबड़ाये हुए दैत्य ने प्रार्थना कर जब मुनि को प्रसन्न किया तब उन्होंने कहा- अच्छा, द्वापर की समाप्ति पर भगवान श्रीकृष्ण के हाथों ही तुम्हारा उद्धार होगा। वत्सासुर कहते हैं मन की चंचल वृत्ति को और उसे समाप्त करने की सामर्थ्य गोविंद में है। मन की वृत्तियां जब चंचल बन जायें, तो कन्हैया उसको दूर करते हैं। जिसके विचार संसार के प्रति अग्रसर हैं और दिखावे में जो भक्ति का स्वरूप परिवर्तित करता है, वही बकासुर है। जिसने इन्द्रियों का भरण-पोषण किया भक्ति का आश्रय लेकर, उसी पाखण्ड को हम लोग पाप कहते हैं। गोविंद ने बकासुर का उद्धार कर दिया।

४) कृष्ण का गोवत्स चारण और ग्वालबालों के साथ बाल क्रीड़ायें-

वृन्दावनमहँ पहुँचि सबनिने डेरा डारो। कृष्णचन्द्र ह्वै उदित कस्यो नभ वन उजियारो।।
वन, गिरि, तटकी छटा निरखि हरि अति सुख पायो। वत्सपाल बनि मातु पिता मन मोद बढ़ायो।।
गोपवत्स गोवत्स सँग, लिये विविध कौतुक करें। मुरली मधुर बजाइकें, गावें नाचें स्वर भरें।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामजी अपनी मधुर वाणी और बाललीलाओं से ब्रजवासियों को आनन्दित करते हुए कुछ ही काल में बछड़ों को चराने वाले हो गये।

अब जब कछु हरि बढ़े सखनि सँग गोपालन हित। गैयनि लै वन जाहिँ कस्यो बलदेव सहित चित।।
कातिक शुक्ला बहुल अष्टमी जबई आई। लै गैयनि हरि चले सखा सँगमहँ बल भाई।।
कुसुमित कानन अति सुखद, प्रविशि करहिँ क्रीड़ा तहाँ। खगमृग विहरहिँ सुख सहित, अलि कमलनि गूँजे जहाँ।।

श्रीकृष्णने यशोदा मैया से कहा- हमारे सखा बछड़े चराने के लिए जाने लगे। मेरे पास यहाँ खेलने के लिये कोई नहीं रहेगा गाँव में मैं अकेला ही रह गया अब मैं किसके साथ खेलूँ? अब मैं भी बछड़े चराने जाया करूँगा बछड़े भी चरते रहेंगे और हम सखाओं के साथ हिल-मिल कर खेलते रहेंगे।

कन्हैया अपनी बात मनवाने के लिये मैया की मनुहार करने लगा। मैया बोली- लाला, ये बछड़े तो दूर चरने जाते हैं मेरा नन्हा सा कन्हैया इतनी दूर कैसे जा सकेगा? श्याम बोला- मैया। आपसमें बातचीत करने में बालकों के साथ खेलेंगे। समय का और थकान का पता नहीं चलेगा। तुमने कभी बछड़े चराये नहीं इसलिए मेरी बात तुम्हें समझ में नहीं आ रही। मैया बोली- अरे लाला, मैं तेरी बात मान भी जाऊं परन्तु तेरे बाबा इस बात को कभी भी नहीं मान सकते। कन्हैया बोला- बाबा को तो मैं तुरन्त मनाऊँगा। भागकर बाबा की गोद में बैठकर बोले- बाबा, हमारी सखाओं की टोली बछड़े चराने जाती हैं। घर में मैं अकेला ही रह जाता हूँ। सखाओं के बिना मेरा मन घरमें नहीं लगता अत: मुझे बछड़े चराने की अनुमति दो।

एक समय अति हर्ष कर, संकर्षण गोपाल। गोद बैठकर नन्द की, बोले वचन रसाल।।
जनक तात हम दोनों भाई। वत्स चरावेंगे वन जाई। सखा हमारे बालक जोई। वत्स चरावन जावत सोई।।
हम भी बालन के संग जावें। वत्स चराय साँझ गृह आवें।। बालक पुर में रहत न कोई। हम दोनों सँग खेले जोई।।

नन्दबाबा बोले- मेरा कान्हा बछड़े चराने नहीं जायेगा घर में इतने दास-दासियों के होते हुए मेरा लाला स्वयं बछड़ा चराने क्यों जाएं? अरे लाला- वन में कांटों की झाड़ियाँ होती हैं। छोटे-बड़े कंकड़ भी पैर में लग जाते हैं। उनसे पैर छिल

जाता है और रक्त बहने लगता है। तुम अपने आँगन में खेलो, चौक में खेलो, गली में खेलो, घर के दरवाजे पर खेलो। बछड़े तो बहुत दूर तक कूदते फिरते हैं। मेरा लाला थककर हार जायेगा। मैं अपने लाला के लिये मथुरा से चकई, भौंरा, गिल्ली, डंडा, गेंद, झुनझुना आदि बहुत से खेल खिलौने लेकर आऊंगा।

गायोंके चराने में कितनी विषमतायें हैं। कितनी गायें हैं, किधर-किधर भटक जाती हैं। कैसे उन्हें नियंत्रित किया जाता है? साँड़ तो परस्पर लड़ने लगते हैं, कैसी भयंकर होती है उनकी स्पर्धा। कोई कोई चोटिल भी हो जाता है। यह तुम्हारे बस का काम नहीं है। अभी तुमसे बछड़े भी नहीं सँभाले जाते।

लाला बोला- बाबा अब तुम मेरी बात नहीं मानते तो मैं तुमसे नहीं बोलूंगा। तुम बड़े होने के कारण सदा अपनी ही बात मनवाते हो। अनेक युक्तियां करके श्याम ने अपने बाबा को मनवा लिया। बाबा बोले, अरे बेटा। तुम घरके समीप ही रहना। वन की सर्दी गर्मी अधिक समय तक नहीं सहना। जब तुम्हें भूख लगे तो बछड़ों को छोड़कर तुरन्त घर चले आना और छाक तो तुम दोनों भैया मेरे साथ मिलकर ही खाना।

धरा और गगन दोनों वाद्य-ध्वनि, विप्रवर्ग के सस्वर मन्त्र पाठ, नटों का प्रदर्शन, सूतमागधों का स्तवन, नभ में अप्सराओं का नृत्य। कैसी अद्भुत छटा हैं। सब गोप-गोपियाँ स्तब्ध हैं, प्रफुल्लित हैं, आनन्दित हैं।

ब्रजराज नन्दन पूजन कर रहे हैं, विप्रगण मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं। कन्हाई इस तरह सविधि पूजन कर रहे हैं जैसे बहुत बड़े ज्ञाता हों कर्मकाण्ड के शोडष मातृका, नवग्रह लोकपाल, दिकपालादि का पूजन सम्पन्न हो गया। अरणि-मन्थन का तो केवल कहाना था, अग्नि स्वयं प्रकट हो गयी। पूर्णाहूति के साथ यज्ञ भी सम्पन्न हो गया।

दियेबच्छबगराय सब चरत आपने रंग। बच्छ चरावत नंद सुत मिलि ग्वालन के संग।।
माखनरोटी और जल शीतल छाकबनाय। दीन्हों जल्दीग्वालसँगयशुमति बनहिं पठाय।।
चले हरि वत्स चरावन आज। मुदित जसोमति करत आरती, साजें सब सुभ साज।।
मंगलगान करत ब्रजबनिता, मोतिन पूरे थाल। हँसत-हँसावत, बत्स-बाल सँग चले जात गोपाल।।

अपनी चेतनाको उस नित्य जीवनके साथ एकात्म करके साथ दूब तोड़-तोड़कर बछड़ोंको खिलानेमें ही बिताया। जब बछड़े तृणसे तृप्त हो गये तो उन्हें जलाशयके समीप ले जाकर पानी पिलाने लगे। एक बछड़ेने जल-पान नहीं किया। बाललीला-रसमत्त श्यामसुन्दरने सोचा-अच्छा, अपने हाथोंसे इसे जल पिला दूँ, सम्भवत: यह जलाशयमें जानेसे डरता है। यह सोचकर अपने करकमलोंकी छोटी-सी अञ्जलि बनायी तथा जलाशयसे जल भरकर बछड़ेके मुंहके पास ले गये। छोटी-सी अञ्जलि मुँहतक पहुँचते-पहुँचते खाली हो गयी। श्यामसुन्दर कुछ उदास-से हो गये। दो-चार बार ऐसा करनेपर भी जब सफल नहीं हुए तो अपना पीताम्बर भिगोया। श्यामसुन्दर बछड़ेके सामने अञ्जलि बाँधे रहे एवं दाऊ ऊपरसे भीगे पीताम्बरको निचोड़ने लगे। जल अञ्जलिमें गिरने लगा, पर बछड़ा जलकी धारासे चिहुँककर अलग कूद गया। नन्दनन्दन एवं सभी सखा हँस पड़े।

जलसे तृप्त हुए बछड़ोंको एक वृक्षकी शीतल छायामें बैठाया। फिर उनसे खेलने लगे। एक बछड़ेके पस गये; उसके सारे अङ्गोंको सहलाया; उसके गलेमें अपनी दोनों भुजाएँ डाल दीं; पश्चात् गोवत्सके कपोलपर अपना कपोल रखा। अब दिन अधिक ढल चुका था। अत: यशोदानन्दन बछड़ोंको एकत्र कर व्रज लौटे। जननी-जनक एकान्त मनसे वनकी ओर नेत्र लगाये प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने हृदयधनको आते देखकर दोनों ही दौड़ पड़े। मार्गमें ही मिलन हुआ, यशोदाने अपने प्राणधनको हृदयसे लगा लिया; अपनी गोदमें नीलमणिको लिये घर पहुँची। बछड़ोंको नन्दरायजी स्वयं उनकी माताओंके

पास पहुँचा आये।

सचमुच ये राम-कृष्ण दोनों अब बड़े चंचल हो गये हैं तथा विशेषत: इन्हें गायोंका संग बड़ा प्रिय है। यदि गायोंके संग बिना ये नहीं रह सकते तो अच्छा यह है कि व्रजके निकट रहकर ये छोटे बछड़ोंको चराया करें।

उपनन्दने भी यही सम्मति दी। अत: ज्योतिषियोंको बुलाकर तिथि- पुण्यमुहूर्त निश्चय कर लिया गया। ब्रजमें बात फैलते क्या देर लगती? सुनते ही सबने निश्चय किया कि हम भी अपने-अपने बच्चोंको उसी दिनसे वत्सचारणके लिये भेजेंगे। वात्सल्य स्नेहसे जननीके मनमें शंकायें उत्पन्न हुई। वे डर गयीं कि कहीं जंगलमें मेरे कन्हैयाका अनिष्ट न हो जाय। इसे कोई वन्य कीट-पतङ्ग न काट ले। कहीं यह गिर न पड़े। नन्दरानीकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होने दाऊको समीप बुलाकर उनके हाथमें कन्हैयाका हाथ पकड़ाकर कहा- बेटा, तुम बड़े हो, यह कन्हैया बड़ा चंचल है; अपने इस छोटे भाईकी सँभाल रखना।

कर पकराई, नयन भरि अँसुअन सकल सम्भार दाउ ऐ दीन्हीं।

शाण्डिल्य ऋषि ने शुभ लग्न मुहूर्त में विधि विधान से बछड़े चरावने के लिए पूजन करवाया।

गोसंरक्षणकी कुशलता गोपवंशकी परम्परामें अद्वितीय ही है। बुधवार श्रवण-नक्षत्र-विशिष्ट कार्तिक शुक्लपक्षकी अष्टमी गोपालनके लिये परम सुन्दर मुहूर्त है।

तदनन्तर यशोदानन्दन ने सब गुरुजनोंको प्रणाम किया और वत्सचारणके लिये प्रस्थान किया।

चले हरि बत्स चरावन आज। मुदित जसोमति करत आरती साजे सब सुभ साज।।

मंगलगान करत ब्रजबनिता, मोतिन पूरे थाल। हँसत हँसावत बत्स-बाल सँग चले जात गोपाल।।

इस प्रकार पौगण्डवयस्क बलराम एवं नीलसुन्दर वृद्ध गोपोंका अनुमोदन पाकर आज वत्सपालसे गोपाल बन गये हैं और अब वे असंख्य सखाओंके साथ गोचारण करते हुए जा रहे हैं वृन्दाकाननकी ओर। काननके उस भूभाग-वनस्थलीके प्रत्येक अंशपर ही अबसे-किसी अन्य पशुपालका नहीं- एकच्छत्र इन अनोखे गोपालका ही साम्राज्य है और इसीलिये आज वनभूमि उनके ध्वज, वज्र, अमुश आदि चिन्ह-समन्वित पदामोंसे पूर्वकी अपेक्षा भी अत्यधिक समलंकृत हो रही है।

परस्पर हँसते खेलते एवं गोवत्सोंको उछलाते-कूदाते सबने वनमें प्रवेश किया। तृण-लताङ्कुरोंसे अत्यन्त शोभित हरित वनभूमिपर बछड़ोंको चरनेके लिये छोड़ दिया। एवं परस्पर खेलमें संलग्न हो गये। कुछ देर सखाओंके साथ खेलकर फिर नन्दनन्दनने गोवत्सोंसे खेलनेका विचार किया। श्यामसुन्दर अपने सुकोमलतम हाथोंसे हरी-हरी दूब तोड़ते तथा बछड़ोंके मुँहमें जाकर देते। बछड़ा अपना मुख श्यामसुन्दरके हाथोंपर रख देता तथा धीरे-धीरे दूब चरने लग जाता। उसे चरते देखकर सभी गोवत्स श्यामसुन्दरको चारों ओर घेरकर खड़े हो जाते और उनके हाथसे दूब चरनेकी चेष्टा करते। श्यामसुन्दर भी अतिशय प्यारसे क्रमश: सबके मुँहमें हरी-हरी दूब देते। ग्वालसखाओंकी मण्डली श्यामसुन्दरके हाथोंमें तोड़-तोड़कर दूब देती और वे उन्हें खिलाते जाते।

प्रतिदिन ग्वालबाल तैयार होकर अपने-अपने बछड़ों के साथ नन्दबाबा के द्वार पर आ विराजते थे। वे कन्हैया की प्रतीक्षा करते थे। वन की सीमा पर सब वन्य पशु और वितान बनाये उड़ते पक्षियों ने उनका स्वागत किया। डालों पर बन्दर कूदने लगे उनके आने की खुशी में वन विहार प्रारम्भ हो गया। विभिन्न क्रीड़ायें और ऱ्हास-परिहास होने लगा।

श्याम सखाओं के साथ अनवरत वत्सचारण के लिए वन जाते हैं। किन्तु जब किसी सखा का जन्मदिन मनाया जाता है तो परिवारजन खूब प्रसन्न होते हैं। आनन्द मनाते हैं लेकिन वह सखा बड़ा उदास, हताश हो जाता है। उस दिन वह वन

नहीं जाता, वनमाली का साहचर्य उसे प्राप्त नहीं होता और एकांकी रहना उसे सुहाता नहीं।

मैया यशोदा अपने लाला श्यामसुन्दर को नहलाती, वस्त्र पहनाती, बाल सँवारती चन्दन लगाती, दूध पिलाती, साथ ले जाने के लिये रोटी, माखन और मिश्री देती, तब कन्हैया घर से बाहर निकलता था। किन्तु आज का दिन प्रतिदिन से भिन्न था। आज के लिये योजना बनी थी कि वन में ही कलेवा किया जायेगा अत: श्रीकृष्ण सबसे पहले तैयार हुए। उन्होंने श्रृंग-रव में घूम-घूमकर सोते हुए ग्वाल-बालों को जगाया। सब ग्वाल-बाल तैयार होकर एकत्रित हुए। वे सब अपने-अपने बछड़ों को आगे करके भगवान के साथ व्रज-मण्डल से वन के लिये निकल पड़े।

प्रत्येक ग्वाल-बालों के बछड़े हजार से कम न थे, किन्तु श्रीकृष्ण के बछड़े असंख्य थे। ग्वाल-बालों ने अपने-अपने बछड़ों को श्रीकृष्ण के बछड़ों से मिला दिया था। प्रत्येक ग्वाल-बाल डींका, बेंत, वेणु और श्रृंगी बाजा लिये हुए थे। मार्ग में चलते हुए बालक भाँति-भाँति के हँसी-मजाक करते जाते थे। वे एक दूसरे के छींकें, बेंत, बाँसुरी आदि चुरा लेते और ज्ञात हो जाने पर धीरे से पहला दूसरे के पास, दूसरा तीसरे के और तीसरा चौथे के पास पहुँचा देता फिर हँसते हुए जो वस्तु जिसकी होती वह उसे लौटा दी जाती थी।

कभी-कभी श्रीकृष्ण अकेले वन की शोभा निरखते हुए आगे निकल जाते तो उनके पास पहुँचने और उन्हें छूने के लिये ग्वाल-बालों में पहले मैं, पहले मैं की होड़ लग जाती और सभी उनकी ओर दौड़ पड़ते थे। ऐसी ही भाँति-भाँति की लीलायें करते हुए सब ग्वाल-बाल विचर रहे थे। कोई बाँसुरी बजाता, कोई सींग बजाता, कोई मोंरों के साथ गुनगुनाता, कोई कोयलों के स्वर में मिला कर कुहू-कुहू करता, कोई पक्षियों की छाया के पीछे दौड़ता, कोई मेढ़कों के साथ कूदता और कोई बन्दरों के साथ खोंखों करते हुए पेड़ पर चढ़ आता। इसी प्रकार की विविध क्रीड़ाएँ भगवान श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ करके सबको परमानन्द प्रदान कर रहे थे। जिनके चरण-कमलों की धूलि, जन्म-जन्मान्तर तक कठिन साधना करनेवाले योगियों के लिये भी दुर्लभ है, वे ही भगवान् जिनकी आँखों के सामने स्वयं नाच रहे हैं, जिनका हाथ पकड़ कर खेल रहे हैं उन व्रजवासियों के भाग्य का वर्णन भला कौन कर सकता है।

जिनके संकल्पसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड परिचालित होते हैं उनकी ऐसी प्राकृत लीला देखकरके लोगोंको वहम हो जाता है अच्छे-अच्छे लोगोंको हो जाता है। वे पहचान नहीं पाते कि ये सर्वेश्वर हैं यह सर्वशक्तिमान हैं। यह जो गायोंके, गोपियोंके और गोपबालकोंके प्रेम-सिन्धुमें डूबकर और उसमें अपने सारे ऐश्वर्यको डुबो देते हैं और प्रेमाधीन होकर जब ये बाल माधुर्यका विस्तार करते हैं तब यदि वहाँपर कोई ढूँढ़ने भी आता है कि ऐश्वर्य कहीं खोज-खाजकर निकाल लें तो उसको भी वंचित रहना पड़ता है। कहींपर इनका ऐश्वर्य उस समय प्रकट होता ही नहीं। जब इनका बाल माधुर्य हो तो इनका ऐश्वर्य सारा-का-सारा बाल माधुर्यमें डूब जाता है। वह तो बस, जो कोई इनके प्रेमभावापन्न होकर माधुर्य ग्रहण करनेके लिये ही निश्चय कर लेते हैं और जो किसी माधुर्य जगत्के किसी सखाका किसी गोपबालकका किसी गोपांगनाका आश्रय-चरणोंका आश्रय लेकर और जब अप्राकृतकी प्राकृत लीला देखना चाहते हैं तब कहींसे थोड़ा बहुत दिखायी देता है। ऐश्वर्यसे ज्ञानशक्तिसे तर्कोंसे यह चीज नहीं दिखायी देती। हैं तो ये विश्वपालक पर गोपबालक समझकर ही इनकी लीला तमाम चल रही है। इस लीलामें नानाप्रकारके इनके विनोद चलते हैं। आपसमें हँसी-मसखरी चलती है और वहाँ श्रीकृष्णका सर्वेश्वरत्व सर्वथा विलुप्त हो जाता है। बच्चे कभी-कभी पीछे दौड़करके मार बैठते हैं। मार देते हैं कि तू कहाँका आ गया बड़ा आदमी और ये हँस देते हैं। इसप्रकार नाना तरहसे ये खेल करते हैं। इस प्रकार विविध लीलाओंका, खेलोंका रस लेते हुए और रस देते हुए खेल रहे हैं।

यह न तो दम्भ है, न छल है, न माया है, न यह दिखानेका नाट्य है। वास्तवमें भगवान स्वयं ऐसे ही बन जाते हैं। उनको

भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, भय भी होता है, क्रोध भी होता है, लोभ भी होता है तथा क्रन्दन और बन्धन भी होता है पर यह सारे-के-सारे स्वयं ही बन जाते हैं। यहाँपर प्रेमरसका आस्वादन करना और कराना यह दोनों ही इनकी लीलाके प्रधान उद्देश्य होते हैं। भगवान लीलामें प्रमत्त हैं।

गोकुल से बाहर कदम्ब खण्डी में जाकर बछड़ों को चराकर यमुना किनारे कदम्ब की छाया में मन इच्छित खेल खेलते। कदम्ब के पेड़ पर चढ़ जाना, डालियों से उतर जाना, छुई मुई का खेल, आँख मिचौनी, बटचौगान का खेल और बृज रज में लोटने में उनकी रुचि बढ़ गयी। यमुना के किनारे बृज रज के विशाल टीले पर बालक प्रेम सहित लोटने लगे। नये नये उत्साह से नवीन होकर बालक नये नये खेल खेलने लग गये। गोपियाँ माता के द्वारा भेजे गए बहुत से पकवान लेकर आईं। जिस ग्वाले के मन में जिस वस्तु के खाने की इच्छा होती थी वह उस पदार्थ को उठाता। पहले कन्हैया के मुख में डालता फिर प्रसादी बनाकर स्वयं खाने लगता।

शुकदेव बोले- राजन्, इस तरह श्रीकृष्ण बलदेवजी ने ब्रज में रहकर आँख मिचौनी सेतुबन्ध बन्दर चाल आदि और भी अनेकों कुमारावस्था के अनेकों खेलों को खेलते हुए अपनी कुमारावस्था बिता दी। ग्रामीण बालकों के खेलों में श्रम और साहस दोनों ही अधिक होते हैं।

श्रीकृष्ण क्रीड़ाप्रिय और कौतुक प्रिय दोनों हैं। वे कुमारों के साथ भी खेल करना जानते हैं और कुमारियों के साथ में भी। युवकों के साथ खेलते हैं और युवतियों के साथ भी। सज्जनों के साथ भी वे क्रीड़ा करते हैं और असुरों को भी खेल-खेल में पछाड़ देते हैं। वे अपने सम्बन्धियों के साथ छोटे बनने का भी खेल करते हैं और कभी खेल-खेल में ही जगद्गुरु बन जाते हैं। कभी खेल-खेल में स्वयं रथी बनकर रथ में बैठ जाते हैं, कभी खेल-खेल में स्वयं सारथी बनकर रथ हाँकने लगते हैं, कभी खेल-खेल में असंख्यों राजाओं को लड़ाकर उनका नाश करा देते हैं, कभी अपने पुत्र पौत्रों का ही खेल-खेल में संहार कर देते हैं। श्रीकृष्ण का सब खेल है जब जैसे बन जाते हैं तब तैसे ही खेल करने लगते हैं। इसीलिये वे सदा प्रसन्न रहते हैं। वे सदा खेल को खेल समझते हैं।

शुकदेव बोले- राजन् एक दिन की बात है, कि भगवान प्रात:काल बहुत तड़के उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया था आज वन में ही कलेवा करना चाहिये, इसीलिये अपने नरसिंहा के मनोहर शब्द से सभी साथियों को जगाते हुए आगे-आगे बछड़ों को करके गोष्ठ से वन के लिये निकल पड़े। राजन्, इस प्रकार जो श्रीकृष्ण तत्त्वज्ञानी पुरुषों के लिये तो ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं। भक्तों के लिये जो परदेवता रूप हैं और माया मोहित पुरुषों के लिये जो साधारण मानव बालक रूप हैं, भगवान् ब्रज के उन बड़भागी बाल गोपालों के साथ ऐसी-ऐसी विचित्र क्रीड़ायें करते थे।

वृन्दावन के अनुपम सौंदर्य से वे विमुक्त से हो गये। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के एक मात्र अधीश्वर वृन्दावन की परम पावन भूमि में वे अपने ऐश्वर्य को भूल गये। प्राकृत विमुग्ध बालक की भाँति क्रीड़ाएँ करते थे।

कोई बगुला बने ध्यानको ढोंग बनावें। कहि कहि बगुलाभगत अन्य गोपाल चिढ़ावें।।
कोई बन्दर बने चढ़े तरु ताहि हिलावें। कोई खों-खों करें कपिन लखि मुँह मटकावें।।
बकरी बकरा भेड़ बनि, चेंमें-चेमें कछु करें। करि धुनि प्रति धुनि सुनि शपै, कोई ऊँचेतें गिरें।।

एक बार चुपकेसे धीरेसे अपने घरसे बाहर आकर यशोदानन्दन गोपियोंके भवनमें जाकर उनके आँगन में खेलते थे। खेलते-खेलते अपनी गोशालामें चले गये। उन्होंने अतिशय मनोयोगसे गायोंका दुहा जाना देखा। नन्दराय पास ही दुहा हुआ दूध दोहनीमें सँभाल रहे थे। कन्हैया पिताकी आँख बचाकर गोशालामें दूर जा पहुँचा। एक बूढ़ा ग्वाला गाय दुह रहा

था। श्यामसुन्दरको देखकर गाय जोरसे रँभा उठी। वह ग्वाला नन्दरायका अतिशय प्रिय था। वह गायोंकी सेवा करता था। कन्हैया जाकर उसके पास बैठ गया और जाकर उस ग्वालेसे बोले- ताऊ मुझे भी दूध दुहना सिखा दो। वृद्ध गोप उसकी मधुर ध्वनि सुनकर रो पड़ा। कन्हैया बोले- ताऊ, मुझे नहीं सिखाओगे। गोप बोला- मेरे लाल, आज तो सब गायें दुही जा चुके हैं कल आ जाना कल सिखा दूँगा। कन्हैया बोले- तुझे बाबा की सौगन्ध, कल अवश्य सिखला देना। इसके बाद तो अपनी गायें अपने आप दुह लूँगा। अच्छा तो आज संध्या को क्यों नहीं सीख लेते? पर ताऊ, सायंकाल तो मैया आने नहीं देगी कल ही सिखाना। गोप ने हाँ भरी। दूसरे दिन कन्हैया और दाऊ साथ में आये और बोले चलो ताऊ, गाय कहाँ है? सिखा दो। कन्हैया पास में छोटी-सी दोहनी लिये गायके थनके पास बैठे।

तुम किस प्रकार दूध की मटकी को घुटनों पर रखते हो और किस प्रकार बछड़े को गाय के थन में लगाते हो? किस प्रकार रस्सी गाय के पैरों में बांधते हो और गाय को उसमें फंसाकर रखते हो। किस प्रकार दूध की धार मटकी में लगकर बजती हैं यह सारी रीतियां मुझे बताओ। गोप बोला- गाय दुहने के लिये बछड़े को गाय के थन से लगाया जाता है। बछड़ा अनजान होता है, उसे पकड़कर थन से लगाते हैं। थन में बछड़े का मुंह लगते ही गाय के थन में दूध भर जाता है। फिर गाय के पैरों को इस प्रकार लगाकर रस्सी कसते हैं कि गाय के पैरों में थोड़ा फासला भी रहे और पांव भी न उठा सके इस कार्य को नोई करना कहते हैं। रस्सी को नोई नाम भी देते हैं फिर घुटनों के बल पर बैठते हैं और घुटनों से टेककर मटकी इस प्रकार रखते हैं कि वह पैरों के बीच अटकी रहे और दूध की धार सीधी उसमें गिरे। जब दूध की धार मटकी पर में गिरती है, तो आवाज करती है। यह आवाज बड़ी मधुर होती है। गाय दुहने के लिए सीखना और अभ्यास करना होता है।

गोपने कन्हैया की अँगुलियोंको अपनी अँगुलियोंमें पकड़कर गायके थनकर दबाना शुरू किया। दूधकी धार दोहनीपर गिरकर कभी श्यामसुन्दरके पेटपर और कभी पृथ्वीपर गिरती। थोड़ा बहुत दूध दोहनीमें एकत्र हो गया। नाच-नाचकर कन्हैया दाऊ को कहने लगा देखो, मैं गाय दुहना सीख गया। माता यशोदा डरी हुई थी कि मेरा नीलमणि अभी निरा अबोध शिशु है, कहीं दुहते समय गाय लात न मार दे। तब प्यार से बोली- नीलमणि, पहले अच्छी तरह गायको दुहना सीख ले, तब मैं दोहनी दूँगी। तब तू दूध दुहकर ले आना। माँ की बात सुनकर उसी समय लाला नन्दबाबा के पास दौड़ गये और दुहनी देनेके लिये हठ करने लगे। पासमें ही उपनन्द खड़े थे। बोले- एक-दो धार श्यामसुन्दर को दुहनी में दुहने दो। मैयाने नीलमणि को एक छोटीसी स्वर्णकी दुहनी हाथ में दी। कन्हैया ने गोदोहन शिक्षाका प्रारम्भ किया।

हरि बिसमासन बैठि कै मुदृ कर थन लीनो। धार अटपटी देखि कै ब्रजपति हँसि दीनो।।
गृह गृह ते आयीं देखन सब ब्रजनारी। सकुचत सब मन हरि लियो हँसि घोषबिहारी।।
तनक कनक की दोहनी, दै-दै री मैया। तात दुहन सीखन कह्यौ, मोहिं धौरी गैया।।
अटपट आसन बैठि कै, गो-धन कर लीन्ही। धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हंसि दीन्ही।।
घर-घर तें आईं सब, देखन ब्रज-नारी। चितै चतुर चित हरि लियौ, हंसि गोप-बिहारी।।
बिप्र बोलि आसन दियौ, कह्यौ वेद उचारौ। सूर स्याम सुरभी दुही, संतनि हितकारी।।

कृष्ण कहते हैं कि हे मां, मुझे छोटी-सी स्वर्ण-दोहनी (मटकी) दो। पिताजी ने मुझे सफेद वाली गाय दुहना सिखाने को कहा है। वे दुहने के लिए पहुंचे और अटपटा आसन लेकर बैठ गये और गाय के थन को पकड़ लिया। जब कृष्ण ने गाय के थन से दूध की धार निकाली तो वह मटकी में न पड़कर और जगह गिर गई। यह देखकर नंदजी हंस पड़े। घर-घर से गोपियां कृष्ण का दुहना देखने के लिए आई हैं। कृष्ण ने मुस्कराकर उन सबका चित्त चुरा लिया। इस शुभ कार्य के

अवसर पर ब्राह्मण को बुलाकर आसन दिया गया। वे वेदों का उच्चारण करने लगे।

हममें आयुके अनुसार सबसे बड़ा मधुमंगल है। हमारे दाऊसे दो वर्ष बड़ा लगता है; किंतु मैया कहती है कि यह कोई योगीश्वर है। बढ़ता ही नहीं अपने मनसे। कोई नहीं जानता कितना बड़ा है। ब्राह्मण है, इसलिए क्या पता यह भी आप सबके समान मुनि भी हो। मन्त्र-पाठ तो करता है महर्षिके साथ कभी-कभी पूजाके अवसरपर।

उजले शंख जैसा श्वेत वर्ण है। श्वेत वर्णके ही वस्त्र पहिनता है औरश्वेत पुष्पोंकी माला प्रिय है इसे। मोटा-सा लम्बा पेट है। लम्बा मुख है। देह भी मोटा है और मोदक मिल जाय तो क्या पूछना- तत्काल जमकर बैठ जायगा। कोई काम नहीं करता। गाये भी घेरने नहीं जाता; किंतु हम सबको बहुत प्रिय है। सबको हँसाता रहता है। ब्राह्मण है, अत: इसे पहिले तो खिलाना ही चाहिये; किंतु कहता है- मिष्टान्न जूँठा नहीं हुआ करता।

ऋषभ मेरे उपनन्द ताऊका पुत्र है। दाऊ दादासे दो दिन ही छोटा है। गेहुँआ रंग है। पुष्ट लम्बा शरीर है और हरे वस्त्र पहिनता है। झगड़ना तो जानता ही नहीं, न कभी चिढ़ता है। रहता है दाऊ दादाके साथ लगा; किंतु कन्हाईपर दृष्टि लगाये रहता है कि श्यामको कुछ चाहिये। मोहनको कुछ करना है। कुछ कहेगा भी किसीसे तो ऐसे बोलेगा जैसे प्रार्थना कर रहा हो, पर इसकी बात तो कन्हाई भी आदेशके समान मानता है। हम सब इसको आदरसे बूढ़ा दादा कहते हैं।

अर्जुन सन्नन्द चाचाका पुत्र है। ऋषभसे सात दिन छोटा। साँवला रंग, इकहरा शरीर, केशरिया वस्त्र पहिनता है। बहुत सीधा है, ऋषभसे भी सीधा। गायें यही घेरने जाता है। कम बोलता है और हममें-से कोई काम बता दे तो तत्काल करने लग जाता है।

मेरा नाम विशाल है। महानन्द बाबाका पुत्र हूँ। मैया कहती है कि पिताके समान ही मैं तप्तमात्र वर्ण हूँ और सखाओंमें सबसे ऊँचा शरीर है मेरा। मुझे ये केशरिया वस्त्र ही प्रिय हैं। गोपियाँ मुझे शैशवमें- श्यामका अश्व कहकर चिढ़ाती थीं। इसमें बुरा क्या है? मैं दाऊ दादासे एक मास छोटा हूँ। कन्हाई मेरी पीठपर बैठ जाता था और मै उसे लेकर घुटनोंके बल घूमा करता था। अब भी किसी ऊँचे वृक्ष-लतासे फल या पुष्प तोड़ना होता है तो वह आकर मेरे कन्धेपर ही बैठता है। वह जब दौड़कर आकर मेरे कन्धोंपर बैठकर दादा कहता है, जान जाता हूँ कि इसे कुछ काम है।

वरूथपको तो कोई भी देखते ही पहिचान लेगा। यह गोपनायक अभय चाचाका पुत्र है। सब इसे दुहरी देहका कहते हैं, पर देह तो इसके एक ही है। अवश्य बहुत सुगठित शरीर है। श्यामवर्ण है, तनिक ठिगना है। सतरंगी पगड़ी, दुरंगा पटुका, श्वेत कछनी इसे सुहाती है। गायें किधर चरने जायँगी, यह निर्णय ही करता है।

श्रीदाम तो वृषभानु बाबाका पुत्र है। सुबलका बड़ा भाई। वृषभानु बाबाके दोनों पुत्र श्रीदाम, सुबल और उसकी लाली राधा भी- तीनों तप्तस्वर्ण-वर्ण हैं। तीनोंको नील वसन ही प्रिय है। श्रीदाम है तो दाऊ दादासे एक दिन छोटा; किंतु कृशकाय है। कन्हाईके साथ ही लगा रहेगा और कन्हाई भी इसे खिझाता ही रहता है।

सुबल तो ऐसा है कि अपनी बहिनके साथ खड़ा रहे तो पता नहीं लगे कि दोनोंमें भाई कौन, बहिन कौन। कन्हाई चलते समय भी इसके कन्धेपर ही वाम भुजा रखता है।

भद्रसेनको हम सब तो भद्र ही कहते हैं। सबसे छोटा चाचा नन्दनजीका यह ऋषभके समान गेहुँए वर्णका है। कन्हाईके समान पीली कछनी बाँधता है और इसका नीला पटुका तो दाऊ दादाके पटुकेसे परिवर्तित होता ही रहता है। श्याम केवल इसकी कुछ मानता है। सबको यह आज्ञाके स्वरमें ही कहता है और इसकी तो माननी पड़ती है। हमारे कन्हाईसे लगभग नौ महीने बड़ा है; किंतु कन्हाई इसे बड़ा तभी मानता है और कहता है जब कोई काम ही आ पड़े। देखनेमें तो श्यामके बराबर

ही लगता है। दाऊ दादाके पीछे चलेगा श्यामसे सटा और दाऊ न हो तो दाहिने दीखेगा।

देवप्रस्थ ऋषभका छोटा भाई है। हम सब इसे देव कहते हैं। देवता जैसा ही सुन्दर, सुकुमार पाटलदलके समान वर्णवाला। इसे सब रंगोंके वस्त्र शोभित होते हैं। कब कैसे वस्त्र पहिनेगा, निश्चित नहीं रहता।

तेजस्वी मेरा छोटा भाई है। मेरे समान ही तप्ततामगौर; किंतु उसे सिंदूरी वस्त्र अच्छे लगते हैं। बड़े-बड़े नेत्र हैं। सब गोपियाँ कहती हैं- यह व्रजराजकुमारका सेनापति है। बहुत तेज है। दाऊ दादासे भी आदेशके स्वरमें यह बोल लेता है और दादा इसको बहुत मानते हैं।

अंशु तो दाऊ दादाकी दूसरी मूर्ति ही है। यह अर्जुनका अनुज दाऊके समान ही नील वस्त्र पहिनता है। तेज स्वभाव है; किंतु कन्हाईके साथ ही लगा रहता है।

तोक छोटा भाई तो है भद्रका; किंतु शरीरके वर्ण, वस्त्र, स्वरूपमें गोपियोंको भी इसे देखकर बहुधा श्यामका भ्रम हो जाता है। सबसे छोटा है सखाओंमें कन्हाई इसे इतना मानता है कि यह रूठे तो कनूँ रूठा धरा है। इसपर अतिशय स्नेह है श्यामका और यह भी उसीके संग रहता है।

ऋषभ, अर्जुन, मैं, वरूथप- हम सबकी कोई रुचि नहीं है दल बनानेमें। मैंने मुनि महाराजको बतलाया- ऐसे ही अंशु, तेजस्वी, तोक इतने छोटे हैं कि ये मण्डली नहीं बनाते। ये सब तो कन्हाईकी मण्डलीमें ही मिले रहते हैं।

भद्रसेनकी मण्डली है। उसमें सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्धन, वीरभद्र, गोभट, भद्रांग यक्षेन्द्रभट, विजय प्रमुख हैं। इनमें भी मण्डलीभद्र ही वस्तुत: दलनायक है। भद्रसेन कहाँ दल बनाता है। सब दल उसीके हैं। आप श्यामवर्ण, पाटलवस्त्र, मयूरमुकुटी, मोटा लकुट लिए मण्डलीभद्रको देखते ही पहिचान लोगे।

देवप्रस्थ प्राय: अपने सिरपर पाश लपेटता है। इसे गेण्डुर लिए आप देख सकते हैं। मरन्द, कुसुमपीड़, मणिबन्ध, करन्धमको इसके दलमें कह सकते हैं।

श्रीदाम अनेक बार पीतवस्त्र पहिनता है; किंतु उष्णीव सदा ताम्रवर्ण बाँधता है। इसके हाथमें श्रृंग प्राय: रहता है। इसके दलमें वसुदाम, दाम, सुदाम, किंकिणीदाम, विलासी, पुण्डरीक, विटकांक्ष, कलविंक हैं। वैसे तो यह तोक, अंशु, भद्रसेनको भी अपने ही दलमें गिनता है; क्योंकि ये सब नियुद्ध और लाठी चलानेकी क्रीड़ामें रुचि लेते हैं।

सुबल भी भाईके समान कभी-कभी हरित वस्त्र पहिनता है। इस कमल-लोचनको भी दलसे कोई काम नहीं; किंतु उज्वलका दल इसीका दल कहा जाता है। सदा परिहास करनेवाला उज्वल अरुण वस्त्र पहिनता है। महुएके मीठे पुष्पोंके ऐसे-ऐसे आभरण बनता है कि देखकर मन मुग्ध हो जाय। यह तनिक हरित-नीलवर्ण मणिमाला प्रिय है और अत्यन्त चपलेक्षण है। गन्धर्व और बसन्त इसके अनुगामी हैं। अनेक बार अर्जुनको भी अपने दलमें बुला लेता है। कन्हाईकी कोई बात सुबल-उज्वलसे किञ्चित् भी छिपी नहीं रहती; किंतु ये सब ऐसे हैं कि पूछनेपर भी हँसते हैं। कुछ नहीं बतलाते।

आप हमारे दाऊ दादाको श्यामके दाहिने देख लेना। बहुत विशाल बाहु हैं उसके और चौड़ा वक्षस्थल कस्तूरीसे बने चित्रसे चित्रित रहता है। गुंजामाल, नीलवस्त्र, उत्पलोवतंसपर गूँजते अलिगण- दाऊ दादा तो केवल दाहिने कर्णमें कुण्डल पहिनता है।

कन्हाई अतसी-कुसुम-श्याम है। पीतपटुका, पीत कछनी, वनमाली, मयूरमुकुटी रहताहै। उष्णीष कब किस रंगका कैसे बाँधेगा, पता नहीं रहता; किंतु तिरछी अवश्य बाँधेगा। गोरोचनकी खौरके मध्य कस्तूरीका बिन्दु लगाता है भालपर। कभी मुरली कटिमें लगी रहती है, कभी करमें। इसके वाम कन्धेपर कभी-कभी काली कमली होती है। करमें क्रीड़ासे

कमल भी ले लेता है। वाम स्कन्धपर पट्टसूत्रसे बना विद्युतके समान चमकती कुण्डलीकृत रज्जु रखता है। स्वर्णाग्र-मण्डित तीन हाथ ऊँची अरुणवर्णकी वेत्र-यष्टि होती है वाम करनमें और वाम कक्षमें ही श्रृंग रहता है।

ऋषभ- ऋषभ कान्हा के ताऊजी उपनन्द का पुत्र है। स्वभाव से गम्भीर, हरे वस्त्र धारण करता है। न किसीसे झगड़ता है, न चिढ़ता है, सदैव दाऊ के साथ रहता है। उनसे दो दिन छोटा है। सब उसे बूढ़ा दादा कहकर सम्मान देते हैं।

देवप्रस्थ- ऋषभ का छोटा भाई है। सब इसे देव कहते हैं। सुन्दर और सुकुमार है। सब रंगों के वस्त्र इसे सुन्दर लगते हैं।

विशाल - महानन्द का पुत्र है। यह तप्त ताम्रवर्ण का है। इससे केशरिया वस्त्र पसंद है। इसे श्याम का अश्व भी कहते हैं।

वरूथप - यह मोठा देह का है, सुगठित शरीर, श्यामवर्ण है। सप्तरंगी पगड़ी, दुरंगा पटका इसे बहुत प्रिय है। यह गोपनायक अभयनन्द का पुत्र है। गायें किधर चरने जायेंगी इसका निर्णय ही अंतिम है।

तेजस्वी - विशाल का छोटा भाई हैं। सिंदूरी रंग वस्त्र उसे पसंद है। गोपियों की दृष्टि में ब्रजराजकुमार का सेनापति है।

अर्जुन - सनन्द जी का पुत्र है। सांवला रंग पतला और सरल-सीधा है।

अंशु - अर्जुन का अनुज है। दाऊ दादा के समान नीले वस्त्र पहनता है। उग्र स्वभाव है कन्हैया के साथ रहता है।

भद्रसेन- भद्र के नाम से जाना जाता है। नन्द के अनुज नन्दन का पुत्र है। पीला, नीला पटुका धारण करता है। श्याम का चहेता है। इसका आदेश सबको मान्य होता है। कन्हैया से नौ महीना बड़ा है।

तोक - भद्र का छोटा भाई है। श्याम का प्रतिरूप है। कभी-कभी तो गोपियाँ भी भ्रम में पड़ जाती हैं। श्याम का सर्वाधिक प्रिय है और उसी के साथ सदैव रहता हैं।

इसके अलावा सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्धन, वीरभद्र, गोभट, भद्रांग, यक्षेन्द्र, विजय, मरन्द्र, कुसुमपीड़, मणिबन्ध, श्रीदाम, वसुदाम, दाम, सुदाम, किंकणीदाम, पुण्डरीलक, विरंगाक्षा आदि प्रमुख हैं।

५) अघासुर का मोक्ष- अज्ञान और दम्भ के पीछे-पीछे अघ चलता है। यही कारण है कि वत्सासुर और बकासुर के बाद यमुना तट पर अघासुर आया। यह बकासुर और पूतना का लघु बन्धु था। अघासुर उसे कहते हैं जो दूसरे की सुख-समृद्धि को नहीं देख सकता। जो दण्ड भोगे बिना नहीं मरता उसे अघ कहते हैं। पापी को देवता भी नहीं मार सकते। अमृत पान करके अमर हुए देवता भी अघ के मरने की प्रतीक्षा करते हैं। पाप कितना व्यापक है और कितना साहसी है।

दूसरी की वस्तु को जो हड़पने का प्रयत्न करता है, उसे अघासुर कहते हैं। दूसरे की सम्पत्ति को बिना किसी परिश्रम के स्वयं लेना चाहिये, वही अघासुर का स्वरूप है।

अघासुर- कंस का अनुचर एक राक्षस। इसके बड़े भाई बकासुर और बड़ी बहन पूतना को कंस ने श्रीकृष्ण के वध के लिए गोकुल भेजा था। परंतु वे दोनो कृष्ण के द्वारा मार डाले गए। अपने भाई-बहन का बदला लेने के लिए उसने विशालकाय अजगर का रूप धारण किया और मुंह खोलकर लेट गया। धरा से लेकर आकाश तक उसका मुँह फैला हुआ है। जबड़े कन्दराओं के समान, दाढ़ गिरि के समान विशाल, जीभ चौड़ी सुन्दर सड़क के समान, श्वास आँधी के समान अर्थात् पृथ्वी से आकाश तक व्यापक है। यह अघासुर रूपी जो पाप है ऐसे पाप से सामान्य लोग कैसे बच सकते हैं? पाप और साँप एक समान हैं। अजगर अर्थात् बकरे को समूचा निगल जाता है। साँप के क़ाटने पर शीघ्रातिशीघ्र दवा न की जाय तो मृत्यु हो जाती है। विषय-वासना के कृत्य को पाप कहा गया है। वासना के प्रभाव में ज्ञान बह जाता है और पाप हो जाता है।

जिनकूँ ग्वाल गँवार खेलमें खेलि हरावें। तिनि ग्वालनिके भाग्य इन्द्र विधि शम्भु सरावें।।
यों करि क्रीड़ा कृष्ण सबनिको चित्त चुरायो। तबई तहँ अघ असुर बकी बक भाई आयो।।

बहिन बन्धु मेरे हने, सोचे खल जा श्यामने। मारूँ गोपनिके सहित, अब अरि आयो सामने।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिस समय भगवान बालकों के साथ ऐसी-ऐसी आनन्दमयी क्रीड़ाएँ कर रहे थे, उसी समय उन क्रीड़ाओं को न सह सकनेवाला अघनायक महाअसुर वहाँ आया वह ऐसा भयमर असुर था, कि अमृत पीकर अमर हो जाने पर भी देवगण उससे भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त, उसकी मृत्यु के अवसर की प्रतीक्षा में बने रहते थे।

परीक्षित, इसी समय कंस के द्वारा भेजा गया अघासुर नाम का महान् दैत्य आ धमका। वह श्रीकृष्ण और ग्वालबालों की आनन्द दायिनी क्रीडा को देख नहीं सकता था। बालकों की क्रीडा को देखकर वह जल-भुन उठा। अमृत पान कर अमर हुए देवता भी भयवश उसके मरण की प्रतीक्षा किया करते थे। भयभीत देवता इसके विनाश के इच्छुक थे। देवताओं की इच्छापूर्ति का समय आज आ गया।

वह पूतना और बकासुर का लघु बन्धु था। कृष्ण को देखकर वह सोच रहा था कि इसी ने मेरे भाई-बहन को मारा है अत: आज मैं इसे ग्वालबालों के साथ- **सबल** मारकर बदला चुकाऊँगा।

ईश्वर? ईश्वर क्या होता है? जिसकी भुजाओं में शक्ति है, जिसकी तलवार की धार पर पानी है, जिसके राज-दण्ड का आतंक है- शत-सहस्र लोगों पर, वही ईश्वर है। इस अर्थ में ईश्वर मैं हूँ। मैं, मथुराधिपति कंस। वृष्णि, अंधक आदि अनेक संघों का एकमात्र अधीश्वर मैं। कंस अक्सर अपने अहंकार को अभिव्यक्ति इसी रूप में देखा था। किसीका भय नहीं था उसे। अपने प्रबल भुजदण्डों का ही भरोसा इतना भारी था कि देवकी के आग्रह पर अपने सम्भावित काल की जननी को भी कारागार में डाल वह निश्चिन्त हो गया था।

नियति के साथ समझौता करना उसके स्वभाव में ही नहीं था। यही किया उसने इस बार भी। जैसे ही गोकुलवासियों का संधान मिल गया, अपने सम्भावित काल की समाप्ति-हेतु उसने मन्त्रणा आरम्भ कर दी। क्या हुआ जो पूतना कालकवलित हुई, शकटासुर पिसकर रह गया, तृणावर्त एक तृण की तरह झंझा-झकोरों में छिन्न-भिन हो गया? प्रयास और कर्म को इन असफलताओं से परास्त नहीं होना था। अनेक असफलताओं के मध्य यही एक सफलता कम थी कि जिस गोकुल को उसके गुप्तचर आकाश की अनन्त ऊँचाइयों अथवा पाताल की अतल गहराइयों में लुप्त हो गया बता रहे थे उसका सन्धान उसने माह लगते नहीं लगते करा लिया था? अब जब कृष्ण, बलदाऊ का पता लग गया था तो उन्हें समाप्त करने का भी कोई नया और अचूक मार्ग भी मिल सकता है। आवश्यकता है बुद्धि के उचित प्रयोग की। इस स्तर पर कंस ने कभी समझौता करना नहीं सीखा था। अपने असामान्य अहम् के बावजूद वह आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की बुद्धि का प्रयोग करने में भी पीछे नहीं रहता था। पता नहीं उसकी अन्तरात्मा ने कैसे उसे यह सीख दे दी थी। भले ही अब तक सफलता उसके साथ लगातार छल ही करती जा रही थी पर एक से अधिक मस्तिष्कों के सम्मिलित सोच को महत्त्व देने की उसकी आदत में अभी तक परिवर्तन नहीं हुआ था। उसका विश्वास था, एक से अधिक व्यक्ति जब मिल बैठते हैं और उनके सोच का लक्ष्य एक ही होता है तो कुछ ऐसे अज्ञात रासायनिक परिवर्तन होते हैं इस मस्तिष्क-मिलन से कि जो समाधान उभरकर सामने आता है, वह अकेले मस्तिष्क के बूते के बाहर होता है। यही कारण है कि अपने मंत्रणाकक्ष की उपयोगिता को उसने कभी नहीं नकारा। भले ही अमात्य बदलते रहे, महामात्य बदलते रहे, सभासदों की संख्या में ऱ्हास-वृद्धि होती रही पर मंत्रणाकक्ष का महत्त्व ज्यों-का-त्यों बना रहा। जब कभी कोई समस्या उपस्थित हुई उसने विश्वस्त सभासदों को मंत्रणा-कक्ष में आमन्त्रित किया। महामात्य को सम्मानजनक स्थान दिया, अमात्यों को भी यथास्थान बैठाया और समस्या की गेंद उनके मध्य उछाल दी। कोई बात बन आई तो कंस अवश्य उसका स्वागत करेगा, नहीं बनी तो प्रयास जारी रहेगा, पर निर्णय होगा सर्वसम्मति से ही। आज की

समस्या का पता सबको था। वृन्दावन में गोकुलवासियों के आवास का पता लग गया था, साथ ही यह भी कि अभी उनको इस बात का भान भी नहीं था कि उनकी उपस्थिति का अभिमान मथुरापति को हो चुका है।

कंस मामा एक-एक कर खिलौने भेजता रहा, भानजा उन्हें तोड़ता रहा।

अब दोनों भाई अन्य ग्वाल-बालों के साथ वन में गोचारण को निकलने लगे थे और श्रीकृष्ण तो गायों को एक किनारे छोड़, कभी किसी अश्वत्थ तो कभी किसी कदम्ब-वृक्ष के नीचे खड़ा हो मुरली बजाने में तल्लीन हो जाता है। सुना तो यह भी गया है कि मुरली पर वह ऐसी मीठी तान छेड़ता है कि व्रज की सारी गोपियाँ अपना काम-धाम छोड़ उसको आ घेरती हैं। तब वह तारों से घिरे चाँद की तरह लगता है।

कबहूँ गावत सखन सँग कबहुँ बजावत बेनु। धवरी धुमरी नाम ले कबहुँ बुलावत धेनु।।

कृष्ण अपने गोप-सखाओं के साथ उसी वन में विचरण कर रहे थे। श्रीकृष्णके साथ ही उनके प्रेमी सहस्त्रों ग्वालबाल सुन्दर छींके, बेंत, सिंगी और बाँसुरी लेकर अपने सहस्त्रों बछड़ोंको आगे करके बड़ी प्रसन्नतासे अपने-अपने घरोंसे चल पड़े। उन्होंने श्रीकृष्णके अगणित बछड़ोंमें अपने-अपने बछड़े मिला दिये और स्थान-स्थानपर बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे। यद्यपि सब-के-सब ग्वालबाल काँच, घुँघची, मणि और सुवर्णके गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावनके लाल-पीले-हरे फलोंसे, नयी-नयी कोंपलोंसे, गुच्छोंसे, रंग-बिरंगे फूलों और मोरपंखोंसे तथा गेरू आदि रंगीन धातुओंसे अपनेको सजा लिया। कोई किसीका छीका चुरा लेता, तो कोई किसीकी बेंत या बाँसुरी। जब उन वस्तुओंके स्वामीको पता चलता, तब उन्हें लेनेवाला किसी दूसरेके पास दूर फेंक देता, दूसरा तीसरेके और तीसरा और भी दूर चौथेके पास। फिर वे हँसते हुए उन्हें लौटा देते। यदि श्यामसुंदर श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिये कुछ आगे बढ़ जाते, तो पहले मैं छुऊँगा, पहले मैं छुऊँगा- इस प्रकार आपसमें होड़ लगाकर सब-के-सब उनकी ओर दौड़ पड़ते और उन्हें छू-छूकर आनन्दमग्न हो जाते। कोई बाँसुरी बजा रहा है, तो कोई सिंगी ही फूंक रहा है। कोई-कोई भौरोंके साथ गुनगुना रहे हैं, तो बहुत-से कोयलोंके स्वरमें मिलाकर कुहू-कुहू कर रहे हैं। एक ओर कुछ ग्वालबाल आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ लगा रहे हैं, तो दूसरी ओर कुछ हंसोंकी चालकी नकल करते हुए उनके साथ सुन्दर गतिसे चल रहे हैं। कोई बगुलेके पास उसीके समान आँखें मूँदकर बैठ रहे हैं, तो कोई मोरोंको नाचते देख उन्हींकी तरह नाच रहे हैं। कोई-कोई बंदरोंकी पूँछ पकड़कर खींच रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ इस पेड़से उस पेड़पर चढ़ रहे हैं। कोई-कोई उनके साथ मुँह बना रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ एक डालसे दूसरी डालपर छलाँग मार रहे हैं। बहुत-से ग्वालबाल तो नदीके कछारमें छपका खेल रहे हैं और उसमें फुदकते हुए मेढ़कोंके साथ स्वयं भी फुदक रहे हैं। कोई पानीमें अपनी परछाईं देखकर उसकी हँसी कर रहे हैं, तो दूसरे अपने शब्दकी प्रतिध्वनिको ही बुरा-भला कह रहे हैं। भगवान श्रीकृष्ण ज्ञानी संतोंके लिये स्वयं ब्रह्मानन्दके मूर्तिमान् अनुभव हैं। दास्यभावसे युक्त भक्तोंके लिये वे उनके आराध्यदेव, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं। और माया-मोहित विषयान्धोंके लिये वे केवल एक मनुष्य बालक हैं। उन्हीं भगवान्के साथ वे महान पुण्यात्मा ग्वालबाल तरह-तरहके खेल खेल रहे हैं। बहुत जन्मोंतक श्रम और कष्ट उठाकर जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और अन्त:करणको वशमें कर लिया है, उन योगियोंके लिये भी भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी रज अप्राप्य हैं। वही भगवान स्वयं जिन व्रजवासी ग्वालबालोंकी आँखोंके सामने रहकर सदा खेल खेलते हैं, उनके सौभाग्यकी महिमा इससे अधिक क्या कही जाय।

कोई उड़ते पक्षियोंकी छायापर पद रखते दौड़ रहा है, कोई मयूरके साथ नृत्य करता उसे चिढ़ा रहा है, कोई मण्डूकके समान बैठा मण्डूकके साथ कूद रहा है, कोई बकके समीप उसी प्रकार बैठा है। कोई शशकको दौड़ा रहा है, कोई कपियोंके

साथ छोटे वृक्षकी शाखापर चढ़ा जा रहा है। किसीने कपिके बच्चेको पकड़ लिया है। कोई काले कपिकी लांगूल पकड़कर लटक गया है। कोई कपिको चिढ़ा रहा है, खी-खी करके, दाँत दिखाकर। मृग, केशरी, बछड़े अभवा किसी पक्षीकी बोलीका अनुकरण कर रहे हैं अनेक और कई प्रतिध्वनिके साथ ही उलझे हैं। कठोर शब्द बोलते हैं और प्रतिध्वनि आती है तो हँसते हैं, अधिक उच्च स्वरसे बोलते हैं।

ज्ञानी संतों के लिए भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् मूर्तिमान् ब्रह्मानन्दानुभव स्वरूप हैं। दास्यभाव वाले भक्तों के लिये वे परमाराध्या, परमैश्वर्य सम्पन्न तथा परमेश्वर हैं। माया मोहित विषयी जीवों के लिए वे एक बालक हैं। इस प्रकार के श्रीभगवान के साथ अत्यधिक पुण्यवान् ग्वालबाल खेल खेल रहे हैं। अनेक जन्मों तक कठोर तपस्या करके जिन लोगों ने अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में कर लिया है, ऐसे योगी भी भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों की धूलि प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। वे ही श्रीभगवान व्रजवासी ग्वालों के साथ रहकर क्रीड़ा करते हैं। यह गोप बालों के सर्वोत्तम पुण्य का फल है।

यों करि निश्चय बन्यो असुर अजगर अतिभारी। मुख गिरिगुहा समान सड़क सम जीभ निकारी।।
अधर धरापै धर्‌यो ओठ घन नभमहँ लाग्यो। बालनिके उर दृश्य निरखि कौतूहल जाग्यो।।
उपमा अजगरतें करें, गिरिकी गुहा बताइकें। कोई कछु कहि कहि हँसे, तुलना करें सिहकें।।

अघासुरने देखा बालक इतना सुन्दर है कि व्रज के सारे नर-नारी ही नहीं, पशु-पक्षी भी उससे प्रेम करते हैं और उसका रूप ऐसा दिव्य, तेजोमय है कि जहाँ भी जाता है उजियाला फैला देता है। वह तो साँवला है पर फैलाता है उज्ज्वल प्रकाश।

ज्यों-ज्यों डूबे श्याम रंग त्यों-त्यों उज्ज्वल होय। बलिहारी वा प्रेम की गति नहिं समझे कोय।।

राजन्, दुष्ट दैत्य अजगरका रूप धारण कर मार्गमें लेट गया। उसका वह अजगर शरीर एक योजन लंबे बड़े पर्वतके समान विशाल एवं मोटा था। उसकी नीयत सब बालकोंको निगल जानेकी थी, इसलिये उसने गुफाके समान अपना बहुत बड़ा मुँह फाड़ रखा था। उसका नीचेका होठ पृथ्वीसे और ऊपरका होठ आकाश से सटा हुआ था। उसके जबड़े कन्दराओंके समान थे और दाढ़ें पर्वतकी चोटी के समान जान पड़ती थी। मुँह में घोर अन्धकार था। जीभ एक चौड़ी लाल सड़क-सी दीखती थी। यह एक उपलक्षण है। वस्तुत: अघ=पाप के मुख में सकल ब्रह्माण्ड ही समाया रहता है। ब्रह्मा से लेकर तृण-पर्यन्त सभी उसके मुख में आ जाते हैं।

यह विचार कर सर्प ने, योजन भर विस्तार। गिरि सम मोटा देह कर, निज मुख दिया पसार।।
बालक तांके वदन को, अचल कन्दरा जान। निज कर ताली पीटते, धसे बिना भगवान।।
तिनके रक्षण हेत पुन, राम कृष्ण युग भ्रात। कर प्रवेश तांके वदन, विपुल करा निज गात।।
प्राणरोध से सर्प का, फूटा सीस नृपाल। बाहिर आये वदन से, राम कृष्ण सब बाल।।

अघासुर का ऐसा रूप देखकर बालकोंने समझा कि वृन्दावन का यह सुहाना रूप है। उस अजगर के जीव को देखकर कुछ ग्वाल-बालकोंने कहा- यह तो लम्बी चौड़ी सड़क है। उसकी लाल-लाल जीभ देखकर ग्वालबाल बोले- कहीं जंगलमें आग लग गयी हैं इसीसे यह गरम और तीखी हवा आ रही है। एक ग्वालबाल बोला- यदि हमलोग इसके मुँहमें घुस जायँ तो बड़ा आनन्द आयेगा इसप्रकार देखकर ताली ठोककर हँसते हुए सभी ग्वालबाल अघासुर के मुख में घुस गये।

एक सखा बोला- क्यों भैया, ये सामने क्या चीज है? दूसरा बोला- तू नांय जानें, ये कोई वृन्दावन की बहुत बड़ी गुफा है। तीसरो बोल्यो- गुफा में बड़े-बड़े संतन वास करें। बड़ा सखा बोल्यो- चलो संतन के दर्शन कर आवें। नन्हें-नन्हें बाल गोपालोंने अघासुर के मुख में प्रवेश किया और उसकी जीभ पर पैर रखा। उनमें से एक सखा बोला- भैया गुफा तो बड़ी

बढ़िया है ये गुदगुदो-गुदगुदो क्या है? दूसरो सखा बोल्यो- तू नायं जानें, जो बढ़िया गुफा होय ना, वामें ऐसे ही गद्दा बिछे रहें। एक सखा बोल्यों- भैया ये गुफा लाल रंग की क्यों है? तीसरो सखा बोल्यो- जो बढ़िया गुफा होय वो लाल रंग क्यों हैं? अन्दर प्रवेश करने लगे। अजगर सर्प के मुंह के बड़े-बड़े दाँत दिखायी दिये। एक सखा बोला- यह गुफा तो सफेद-सफेद का चीज है? दूसरो सखा बोल्यो- तू ना जाने, अन्दर या गुफा में दो हजार संत बैठै हैं उन संतन का यह नियम है कि कोई उनसे मिल पावें तो अपने सामान कूँ बाहर खूँटी पर टाँग के आवै। बालकों ने अजगर के दाँतों को खूँटी समझ लिया और अपना-अपना सामान टाँग दिया लेकिन एक सखा जब अंदर गया तो अंधेरा ही अंधेरा दिखा। बोला भैया मोहे तो डर लागे। भैया ये कोई राक्षस नहीं जो हमें खा जाय। दूसरो बोल्यो- डरपै काहे कूँ है? यदि गुफा होयगी तो संतन के दर्शन कर लेंगे और यदि राक्षस भयौ तो हमारो कन्हैया उनसे निपट लेगो।

अजगररूपी राक्षस की वास्तविकता न जानने के कारण जिज्ञासावश गोप बालक उसके मुख में चले गए। सभी ग्वाल-बाल नाचते-गाते, ताली बजाते कन्हैया को साथ लेकर उसके मुँह में घुस गये।

ग्वालबाल बछड़ा सबै पड़े असुर मुख आय। इन सबहि की मायसों कहा काहौंगो जाय।।
बाल सुलभ चांचल्य कहें जामें घुसि जावें। होहि असुर बक सरिस मरे लखि सब सुख पावें।।
यों कहि अहि मुख घुसे बजावत बालक तारी। पुनि बछरा घुसि गये भये चिन्तित बनवारी।।
अन्तर्यामी असुरको, जानि सकल छल बल गये। बालक बछरा बचें कस, मरे असुर सोचत भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, श्री भगवान सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। काम ऐसा हो जिससे इस दुष्ट का जीवन भी न रहे और इन सरल बालकों की हिंसा भी न हो। कैसे ये दोनों काम हों, इसकी चिन्तन करते-करते अशेषदृक् भगवान् वासुदेव अपना कर्त्तव्य स्थिर करके स्वयं भी उसके मुख में घुस गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि अनजान बालक सर्प के मुख में चले जा रहे हैं। उन्होंने बालकों को रोकने का प्रयास किया किन्तु तब तक सबके सब बालक और बछड़े अघासुर के पेट में प्रवेश कर चुके थे। कृष्ण की प्रतीक्षा में अभी भी अघासुर अपना मुख खोले हुए था। वह सोच रहा था कि हमारी बहन और भाई का हन्ता कृष्ण जब हमारे मुख में आ जाय तब बन्द करूँ। कृपा और करुणा के सागर भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि सारे बालक अघासुर के मुख में प्रवेश कर चुके हैं तो वे भी उसके मुख में प्रवेश कर गये। वे यह सोच रहे थे कि बालकों की रक्षा भी हो जाय और दुष्ट दैत्य समाप्त भी हो जाय।

देवलोक में हाहाकार मच गया। इधर श्रीकृष्ण ने देखा कि सभी ग्वाल-बाल, गाय-बछड़े परेशान हैं। कृष्णने सोचा कि ये बेचारे ग्वालबाल जिनका एकमात्र रक्षक मैं ही हूँ। कोई तिनका जैसे उड़कर आगमें गिर पड़े वैसे ही अपने आप यह सब बालक मृत्युरूप अघासुरकी जठराग्निके ग्रास बन गये। वे सोचने लगे कि मुझे कौनसा उपाय करना चाहिये जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और इन निरपराध भोले-भाले बालकों की हत्या भी न हो।

नन्दनन्दन सरवज्ञ सबनिके घटिकी जानें। असुर अघासुर तिन्हें बन्धुघाती रिपु मानें।।
अघ मुख प्रविशे तुरत दयासागर बनवारी। सब सुर हाहाकार करें सुख असुरनि भारी।।
अनुगत दासनिके निमित, सब कारज नटवर करहिँ। भक्त चरन रज लोभतें, नित पीछे पीछे फिरहिँ।।
करि बिचार सर्वग्य सुजाना। अहि मुख पैठे कृपानिधाना।। परम पुरुष भक्तन सुखदाता। दीनबंधु सरनागत त्राता।।

राजन्, भगवान कृष्ण तो भूत, भविष्य, वर्तमान को जानते है। अपना कर्त्तव्य निश्चय करके सबके संकट निवारण करने के लिए अपना स्वरूप इतना बड़ा कर लिया कि उसका गला रूँध गया और आँखें पलट गयीं। भगवान चींटी जितना बनना

जानते हैं तो पहाड़ जैसा बनना भी तो उनको आता है। गोविंद ने अपने शरीर को फुलाना प्रारम्भ किया। गले में बैठकर ऐसा फुलाया शरीर कि अघासुर का प्राण अवरुद्ध हो गया, मस्तिष्क फट गया, प्राण निकल गये अघासुर मारा गया।

अन्तर्यामी भगवान् और जिनके सामने, जिनके समीप कोई भी कालका व्यवधान नहीं और देशका व्यवधान नहीं।

माखनप्रभु कीन्हौं तभी बालशरीर विशाल। श्वासव्याल को रोक के त्रासदियो तेहिकाल।।

वह व्याकुल होकर बहुत छटपटाने लगा, साँस रूक गयी अन्त में उसके प्राणवायु ब्रह्मरन्ध को फोड़कर निकल गयी। इस पर श्रीकृष्ण ने उसके मुख कर सीधे खड़े होकर अपनी शक्ति का इतना विस्तार किया कि अघासुर की सांस रुक गई और उसने दम तोड़ दिया। ग्वाल-बाल और गैया-बछड़ों सहित श्रीकृष्ण उनके मुखसे बाहर आ गये। देवता हर्षित हुए। अघासुर को कृष्णके स्पर्श से सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुयी। ग्वाल-बाल मृत्यु के मुँह से बच गये।

भगवान के अघासुर के मुख में प्रवेश करते ही बादलों में छिपे हुए देवता भयवश हाय-हाय कह कर चिल्ला उठे और अघासुर के हितैषी कंस आदि राक्षस प्रसन्नतावश नाचने लगे। कृष्ण सब ग्वालोंको, बछड़ों को साथ लेकर अघासुर के मुख से बाहर निकल आये। श्रीकृष्ण के बाहर आते ही अघासुर के शरीर से निकली आकाश में स्थित वह ज्योति सब देवताओं के देखते-देखते उन्हीं में समा गई। भगवान् के सारे अवतार पापियों को, अघियों को तारते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण साक्षात् अघ का ही उद्धार कर देते हैं। यह विशेषता केवल भगवान श्रीकृष्ण में ही देखने को मिलती है, अन्यत्र नहीं।

अघासुर की मृत्यु और बछड़ों एवं बालकों के सहित श्रीकृष्ण को सकुशल बाहर आया देख कर आकाश से देव-मण्डली फूलों की वर्षा करने लगी, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। ऋषि-मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आदि जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण व्याप्त हो गया। जिनकी कृपा दृष्टि पाकर जड़ प्रकृति कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन कर देती हैं। उनकी सुधा-स्त्राविनी दृष्टि जब सखा और वत्सों पर पड़ी तो वे उठकर खड़े हो गये।

दैत्य अघासुर मार कर, भेज्यौ निज पुर नाथ। कूदि कूदि खेलन लगे, ले ग्वालन प्रभु साथ।।
अति दीरघ बपु बढ़े कृपाला। असुर स्वास रुकि गौ तेहि काला।।
भ्रमै प्रान ब्याकुल बिबुधारी। उलटे नयन गिरे भू भारी।।
पवन रह्यौ रुकि, छिद्र न पावा। दसम द्वार छिदि बाहर आवा।।
माखनप्रभु परतापते त्रिविधताप मिटि जाहिं। ताहिपाप कैसे रहैं आपजाहिं मुख माहिं।।
मुखमहँ हरिकूँ निरखि अघासुर अति हरषायो। सुर मुनि चिन्तित लखे श्याम तनु तुरत बढ़ायो।।
स्वाँस रुकी स्वर रुद्ध नेत्र निकसे फाट्यो सिर। बछरा बाल जिवाइ करे अघ मुखतें बाहर।।
असुर बदनतें ज्योति इक, दिव्य निकसि ठाढ़ी भई। मुखतें हरि निकसे तबहिँ, श्याम अङ्गमहँ मिल गई।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिन भगवान की मनोमयी प्रतिमा को एक बार भी अन्त:करण में धारण करने से भक्तों को भागवती गति प्राप्त हुई है, उन्हीं नित्य आत्मानन्दानुभव स्वरूप मायातीत भगवान् ने जिस अघासुर के मुख में स्वयं प्रवेश किया, उसके उद्धार में तो किसी प्रकार का सन्देह हो ही नहीं सकता है।

जब-जब किसी सर्प के साथ श्रीकृष्ण की भिड़न्त होती है, तब तब उनके साथ बलराम नहीं हुआ करते। बलराम शेष, सर्पराज के अवतार हैं। उनके सामने किसी का साहस नहीं हो सकता कि वह उनकी जाति-बिरादरी वाले का वध करे। कृष्ण के सामने लड़ने के लिये किसी सर्प के आने पर बलराम जी स्वयं भी उसे डाटकर भगा देंगे अथवा श्रीकृष्ण से कह देंगे कि यह अपना स्वजन है, इसे मत मारो। इसलिये भगवान् जब अजगर के रूप में आये अघासुर का वध करते हैं या कालिय नाग का

दमन करते हैं तब बलराम जी को व्रज में ही छोड़कर आते हैं। कहते हैं कि उस दिन बलराम का जन्मदिन था अत: मैया यशोदा ने उन्हें व्रज में ही रोक लिया था। इससे मेरे बन्धुओं को तिलांजलि मिल जायेगी, उन्हें बड़ी शान्ति मिलेगी।

आनन्दोत्सव की मंगल ध्वनि ब्रह्मलोक तक पहुँच गई। ब्रह्मा को प्रतीत हुआ की यह मंगल-ध्वनि कहीं हमारे लोक में ही हो रही है अत: वे उसे देखने के लिये अपने नगर से बाहर निकले। वे ब्रह्मलोक में बाहर आये तो मालूम हुआ कि स्वर्ग में कुछ हो रहा है। स्वर्ग में आये तो ऐसा लगा कि मर्त्य-लोक में कुछ हो रहा है। मर्त्य-लोक में आये तो मालूम हुआ कि व्रज में वृन्दावन में कुछ हो रहा है फिर वृन्दावन में वे जब आये तो यहाँ श्रीकृष्ण की अद्भुत महिमा देखकर दंग रह गये। उन्होंने कहा कि पाप की मुक्ति हमारी सृष्टि में तो होती नहीं अत: श्रीकृष्ण ने अघ की, पाप की, मुक्ति कर सृष्टि मर्यादा भंग की है।

अघ-उद्धार निहारि अप्सरा सुर मुनि आये। नृत्य वाद्य सङ्गीत श्यामकूँ मधुर सुनाये।।
वेद पाठ द्विज करें देव जय शब्द उचारें। ब्रह्मलोक विधि बैठि वाद्यकी बात बिचारें।।
होहिँ कहाँ चलिकें लखें, आनन्दोत्सव अवनिमहँ। तुरंत हंस चढ़ि चलि दये, आये ब्रजमहँ कृष्ण जहँ।।

परीक्षित, जब वृन्दावन में अजगर का यह चाम सूख गया तब यह व्रजवासियों के लिये बहुत दिनों तक खेलने की एक अद्भुत गुफा-सी बना रहा। अघासुर के मोक्ष की यह लीला भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कुमारावस्था में अर्थात् पाँचवे वर्ष में ही की थी। किन्तु बालकों ने इसी व्रज में पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष में, एक वर्ष बाद की।

अघासुर मूर्तिमान अघ (पाप) ही था। भगवान के स्पर्श से उसके सारे पाप धुल गये और उसे सारूप्य मुक्ति की प्राप्ति हुई। भगवान श्रीकृष्ण के किसी एक अंग की भावनिर्मित प्रतिमा, यदि ध्यान के द्वारा एक बार भी हृदय में धारण कर ली जाय तो वह सालोक्य, सामीप्य, आदि का दान करती है। ऐसी स्थिति में वे ही स्वयं जिस अघासुर के शरीर में प्रविष्ट हो गये तो उसकी मुक्ति में क्या सन्देह हो सकता है?

जीव कितना भी पापी क्यों न हो, यदि उसके घर सर्वात्मरूप परमात्मा को प्रत्यक्ष प्राप्त करनेवाला महात्मा आ जाय तो उसके साथ स्वयं भगवान भी आ जाते हैं उससे वह पापी धन्य हो जाता है।

शुकदेव जी की बात सुनकर राजा परीक्षित ने कहा- भगवन्, सारे ग्वालबाल एक वर्ष तक कहाँ रहे? जो कि उन लोगों ने अघासुर के मोक्ष की लीला व्रज में एक वर्ष बाद जाकर कही। इसमें अवश्य ही कुछ-न-कुछ रहस्य है। आप कृपा कर इसका कारण हमें बतलावें।

श्रीकृष्ण काल से परे हैं, वे तो काल के भी नियामक हैं, उन्हें देश काल की अवधि बाँध नहीं सकती। वे देश काल से परे हैं। ब्रह्माजी का भी काल है। काल उनका स्वरूप है। उनका एक नित्य अङ्ग है, इसलिये उनकी लीला में भूत, भविष्य, वर्तमान आज तथा कल का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने कभी किसी भी काल में लीला की हो, वह नित्य हैं, शाश्वत है। उसमें आगे पीछे का भेदभाव करना अज्ञान मात्र ही है। जिनकी दृष्टि काल के कवलित हो जाते हैं, वे लीला श्रवण के अधिकारी ही नहीं।

सूतजी ने कहा- शौनक, जब परीक्षित् ने इस प्रकार प्रश्न किया तो शुकदेव जी भगवान की लीला का स्मरण कर समाधिस्थ हो गये फिर बड़ी कठिनता से जल छिड़क कर घड़ी-घण्टा बजाकर उन्हें बाह्य जगत् में लाया गया। इसके बाद भागवतशिरोमणि श्री शुकदेव जी ने कहना प्रारम्भ किया।

शुक बोले- हे महाभाग, राजन्। जिन्होंने अपने मन को वाणी तथा कानों को कृष्ण कथा श्रवन मनन तथा कथन में ही लगा दिया है, उसका यह स्वभाव ही होता है, कि उन्हें अच्युत की कथाएँ क्षण-क्षण में ही नवीन-ही-नवीन जान पड़ती है, जैसे जार पुरुषों को अपने मन के अनुकूल स्त्रियों की चर्चा में नया-ही-नया रस अनुभव होता है।

अघासुर पूर्व जन्म में शंफासुर का बेटा था। इसका रूप अतिशय सुन्दर था। एक बार इसने अष्टावक्र मुनि को देखा। उनकी टेढ़ी-मेढ़ी गति को देखकर इसने उनकी हँसी उड़ाई फलत: मुनि क्रुद्ध हो गये। उन्होंने शाप दिया- अरे दुर्मते, जा तू टेढ़ी-मेढ़ी चाल वाला अजगर हो जा। बाद में प्रार्थना करने पर मुनि ने कहा- द्वापर की समाप्ति पर जब भगवान् श्रीकृष्ण तेरे उदर में प्रवेश करेंगे तब तेरी सर्प-योनि से मुक्ति हो जायेगी।

शंखासुरका अत्यन्त सुन्दर पुत्र मलय-पर्वतपर पहुँचा और अभाग्यके कारण अष्टावक्रजीका अनुकरण करनेकी सूझ गयी उसे। खर्वाकृति, काले कुरूप, कई स्थानोंसे वक्र-विकृत देह; किंतु अमित तेजस्वी महामुनि अष्टावक्रकी गति-उनके चलने का ढंग शरीरके वक्र होनेसे अटपटा है। असुर कुमार उनको दिखाकर उनके समान ही मचकते हुए अटपटा टेढ़ा-मेढ़ा चलने और हँसने लगा। अष्टावक्रजीको रोष आ गया- अरे दुर्बुद्धि, तू पापियोंके समान कायाको ही देखता है और सर्पके समान वक्र चलकर मेरा उपहास करता है, अत: अघका अधिष्ठाता अजगर हो जा।

महर्षि अष्टावक्रके शापसे यह असुरकुमार एक कोस लम्बे शरीरका अजगर बन गया। कंसकी दिग्विजय यात्रामें वनमें इसने उसे लपेटा तो कंसने इसे इतना मर्दित किया कि मरने लगा। इसे मथुरा ले आया वह अपने कण्ठमें लपेटकर माला बनाकर।

यह सारा संसार अघासुर है। जब भगवान के भक्त इस संसार रूपी अघासुर के पेट में चले जाते हैं, तब भगवान भी अपने धाम से उतर कर संसार के पेट में आ जाते हैं, अवतार लेकर अपने भक्तों का उद्धार करते हैं। भगवान के अघासुर के पेट में जाने का यही रहस्य है।

६) ब्रह्मा द्वारा बछड़ों और ग्वालोंका अपहरण और ब्रह्मा का मोह भंग- ब्रह्ममयी व्रजभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ सदा होती रहती हैं। कृष्णकी प्रिय वस्तु, जिनके साथ वे क्रीड़ा करते हैं मुख्यत: तीन हैं- गौएँ, गोपियाँ और ग्वाल-बाल। व्रज में भगवान कृष्ण अपने साथी ग्वाल-बालोंके साथ गो-सेवा कर गोपियोंको आनन्दित करते रहते हैं। गायें श्रीकृष्णकी प्रिय निधि हैं। गो-सेवाकी प्रमुखताके कारण ही उनका लोक गोलोक कहलाता है। गोलोककी लीला प्रभुकी वास्तविक लीला है, जिसमें गौएँ, गोपियाँ एवं ग्वाल-बाल सब सच्चिदानन्दरूप होकर विहार करते हैं।

गोचारणकी वास्तविक और व्यावहारिक लीलाको समझनेका प्रयास जब ब्रह्माजीके द्वारा होता है, तब भगवान कृष्ण अपनी वास्तविक लीलाका रहस्य उनके सामने प्रकट कर उन्हें आश्चर्यचकित कर देते हैं। ब्रह्माजी गौएँ और ग्वालबालोंको कृष्णरूपमें देखकर व्रजभूमिमें जन्म लेनेकी कामना करते हैं, जिससे कि गौएँ और उनकी सेवा करनेवाले ग्वाल-बालोंकी चरण-रज उन्हें मिल सके। भगवान कृष्णकी गो-सेवा मनको मोहित कर उनकी व्यावहारिक लीलाको समझनेमें सहायक होती है। गोकुल की गायों की अभिलाषा थी कि वे प्रभु के साथ एक बनें। उनकी कामना थी कि हमारे बछड़ों की भाँति कृष्ण भी हमारा दूध पियें। प्रभु ने उनकी यह इच्छा उनके बछड़े बन कर पूर्ण की।

गोकुल की वयस्क गोपियों की उत्कण्ठा थी कि कन्हैया को हम छाती से लगाकर, बाहुओं में भर कर, उन्हें उबटन लगाकर, स्नान करा और साथ में सुलाकर अपनत्व का अनुभव करें। भगवान ने उनकी यह इच्छा गोप बालक बन कर पूरी की।

शुकदेव ने कहा- राजन्, आपने बड़ा ही उत्तम प्रश्न किया है। वस्तुत: आप भगवान् के भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं। भगवद्भक्तों का यह स्वभाव ही है कि वे भगवान की कथा सुनने के समय विविध प्रश्नों के द्वारा उसे नित नवीनता प्रदान करते रहते हैं साग्राही सन्तों का यही स्वभाव है कि वे अपने कान, अपनी वाणी और अपने चित्त को भगवान में लगा देते हैं और प्रतिक्षण नवीन-नवीन के समान उनकी कथा सुनते हैं जैसे लौकिक रसिक लोग इकट्ठे होकर बड़े प्रेम से स्त्रियों की चर्चा करते हैं, वैसे ही साधु लोग भगवान् की चर्चा करते हैं।

राजन्, अघासुर के मुख से निकलकर भगवान ने ग्वाल-बालों से कहा- आओ भैयाओ, हम सब यहाँ बैठकर भोजन करें। अब दिन भी बहुत चढ़ गया है और सब भूख से व्याकुल भी हो रहे है। हम लोग वनभोज करें, बछड़े जल पीकर शनै:-शनै: घास चरें।

मृत्यु-स्वरूप अघासुर के मुख में से अपने साथी ग्वालबालों को निकाल कर भगवान् उन्हें यमुनाजी के पुलिन पर लाये और बोले- मित्रों, देखो तो सही कि यमुना जी का यह तट कितना मनोरम है। यहाँ की बालू मखमल की तरह कोमल और अत्यन्त स्वच्छ है। यहाँ खेल खेलने में बड़ा आनन्द आयेगा। यहाँ खेल की सारी सामग्री एक साथ एकत्र विराजमान है। एक तरफ रंग-बिरंगे कमल विकसित हैं। उनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर झुण्ड-के-झुण्ड भ्रमर गुंजार कर रहे हैं; तो दूसरी ओर सुन्दर-सुन्दर पक्षी बड़ा ही मनोहर कलरव कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनि से सुशोभित वृक्ष इस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं।

अहो सखा, यह पुलिन सुहावन। अति रमनीय, सुखद अरु पावन।।
स्वच्छ बालुका, बिसद तलावा। सुभग बारि मुनि-मनहि चोरावा।।
बिकसे कंज पुंज अलि श्रेनी। कूजहिं द्विज सब श्रुति सुख देनी।।
ता करि बसीभूत नभगामी। बोलत प्रतिधुनि रुचि हिय कामी।।
ता धुनि तैं तरु सोभित भारी। सीतल छाँह पथिक-मन-हारी।।
तहाँ छाक सब घरनते आई भरिभरि भार। यशुमति पठयो कान्ह को व्यंजन बहुत प्रकार।।

अत: मेरा विचार है कि आज हम लोग यहीं भोजन करें।

हरि बालन को साथ ले, गये नदी के तीर। सीतल मंद सुगन्ध युत, बहती जहाँ समीर।।

चलो आज यही विराजो और कलेवा खाओ और गायोंको यही चरने दो। सभी बाल-गोपाल विराजमान हो गये।

गावत खेलत हँसत सब सखावृन्द ले साथ। वृन्दावन के कुञ्ज में वृन्दावन के नाथ।।

कृष्ण की बात सुनकर सभी बालकों ने उनका अनुमोदन किया। चारों तरफ की ग्वाल-बाल और बीच में गोपाल बैठ गये।

बछड़ों को पानी पिला कर हरी-भरी घासों से भरे मैदान में छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोलकर भगवान् के साथ बड़े आनन्द से भोजन करने लगे।

अहो सखा, सब मिलि एहि ठामा। भोजन करहु बैठि सुखधामा।।
भइ बड़ि बेर, काल चलि एउऊ। छुधा-तृषा बाधित सब भएऊ।।
बछरन प्याइ नीर सुठि नीकौ। निकट चरहिं तृन भावत जीकौ।।
सखन प्याइ बछरन कौं नीरा। हरित सुभग तृन जमुना-तीरा।
तहाँ चरन बछरा जब लागे। तब सब मिलि भोजन अनुरागे।।

सब के बीच में भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये। उनके चारों ओर बालकों ने बहुत-सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से-एक सटकर बैठ गये। सब की आँखें आनन्द से खिली थीं। वन-भोजन के समय श्रीकृष्ण के साथ बैठे हुए ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों कमल की कर्णिका के चारों ओर पंखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों। आठों दिशाओं में श्रीकृष्ण का मुख था। बिना मुख दर्शन किये स्नेह प्राबल्य नहीं होता।

मंडल करि बैठे ब्रजबाल, मध्य बने तहँ मोहनलाल।
सोब सब तैं सन्मुख ऐसें, कमल के बीच करनिका जैसें।
चहुँ दिसि बाल-मंडली वैसी, नखत बिसाखा होति है जैसी।

तिनि मधि स्याम सुभग सोहत यों, राकानिसि राकेस लसै ज्यों।
जनु चहुँ दिसि मुक्तामनि रचीं, मधि गुपाल मरकत मनि खचीं।
रबिजा कर मुद्रिका दिखाई, यह ताकौं जगमगत जराई।

सभी बालक यही सोच रहे थे कि कन्हैया हमें ही निहार रहे हैं। हम ही उनके सबसे सन्निकट बैठे हैं। दूसरे बालक दूर हैं। यह भगवान की अचिन्त्य लीला-शक्ति का प्रभाव था। कोई पुष्प तो कोई पत्ते और कोई पल्लव, अंकुर, फल, छींके, छाल और पत्थरों को पात्र बनाकर भोजन करने लगे। जिसको जो मिला, वह पात्र लेकर और उसमें सामग्री रखकर भोजन करने बैठ गया।

भोजन करने के समय सभी ग्वालबाल अपनी-अपनी रुचि का प्रदर्शन कर रहे थे। कह रहे थे कि हमें यह प्रिय है, वह प्रिय है। इस प्रकार सभी हँसते थे, और भोजन करते थे।

हँसत हँसावत सतत, सखनिकूँ सुख अति दीनों।
विधि विधानतें मखनिमहँ, भाग गहहिँ जे नेमतें। ते ग्वालनि सँग बैठिकें, जूठो खावें प्रेमतें।।

शुकदेव बोले- राजन्, जो श्रीहरि यज्ञों में भोजन करनेवाले हैं, वे आज ग्वालों के बीच बैठे विनोद पूर्ण मधुर बातों से सबको हँसाते हुए वन में भोजन कर रहे हैं। उस समय उनकी फेंट में मुरली खुरसी थी, बगल में बेंत और सींग दबाये थे। बाँये हाथ में चिकना कौर लिये हुए थे, उँगलियों में अचार के फल भींचे हुए थे। भगवान की उस समय की उस बाललीला को स्वर्गवासी देवगण भी देख रहे थे।

अखिल जग्य भोगी श्रुति गावै। पुनि परिपूरन नाम बतावै।।
सो हरि बाल संग इमि आजू। जेंवत सुखप्रद संत-निवाजू।।

बायें हाथ में बड़ा ही मधुर घृत-मिश्रित दही-भात का ग्रास था। अँगुलियों में अदरक, नीबू आदि के अचार मुरब्बे रक्खे थे। ग्वाल-बाल उनको चारों ओर से घेर कर बैठे थे और वे स्वयं सबके मध्य में बैठकर अपनी विनोदभरी बातों से साथी ग्वालबालों को हँसाते जा रहे थे। सभी सखा हँसते-हँसाते भोजन कर रहे थे जिससे प्रेम में बढ़ोतरी हो रही थी। मधुमंगल तो औरों को प्रसन्न रखने में बहुत ही कुशल है इसी गुण के कारण वह सभी सखाओं का प्यार प्राप्त कर बैठा है।

ग्वालबाल में बैठके माखनप्रभु व्रजना। माखन, रोटी हाथ ले खात जात इक साथ।।

एक सखा बोला- लाला, मैं घर से दाल-भात बनवा कर लायौ हूँ, नैक चखो। एक सखा बोला- मेरे घरकी पकौड़ी तो देख कितनी बढ़िया है। एक ने कहा मेरे घर बेझड़ की रोटी बनी हुई है। कृष्ण की मंडली के बीच में सबसे गरीब यदि कोई सखा है वह मधुमंगल है। यह पूर्णमासी पुरोहितानी का बेटा है। घरमें इतनी गरीबी है, सवेरे खाय तो शाम के लिये कुछ नहीं रहता। इसलिये मैया यशोदा ने पूर्णमासी पुरोहितानी से कहा था कि अपने लाला मधुमंगल को मेरे घर में रहने दो। कन्हैया के पास में रहैगौ, यहीं पर दोनों समय का भोजन पायौ करेगौ। ब्राह्मण का बालक है।

मधुमंगल बोला- ब्राह्मणको दिये बिना स्वयं भोजन करना दोष होता है। भद्र हँसकर बोला- हमसे भूल हो गयी मुनिवर। हम गोपकुमार उच्छिष्ट आपको नहीं दे सकते। आप हमारा उच्छिष्ट कैसे खायेंगे। इसलिये आप व्रत न करें तो किसी वृक्षपरसे फल तोड़नेका कष्ट कर ले। मधुमंगल गंभीर मुख बनाकर बोला- इस भोले भाले भद्रकी सुनो। इसे इतना भी ज्ञान नहीं श्रीकृष्णके सान्निध्यमें कुछ भी उच्छिष्ट नहीं होता। मिष्टान्न कभी उच्छिष्ट हुआ करता है। तुम सब केवल मोदक-मिष्टान्न प्रदान करो। श्रद्धा-सहित दिये गये पदार्थको ब्राह्मण कभी अस्वीकार नहीं करता।

मधुमंगल का अवतार तो हँसी ठठ्ठा करने के लिए ही हुआ है। ऊपर से तो बोल कटु होते हैं परन्तु हृदय में गाढ़ा प्रेम भरा होता

है। पेट भरने के बाद बालक खाने के पदार्थ लेकर मधु मंगल के पास पहुँचे और प्रेमपूर्वक खाने का आग्रह किया। पेट भरा होने पर मना करने से कोई सखा मधु मंगल की नाक में कान में कोई चपलता पूर्वक उसके मुँह में वस्तुएँ ठूँसने लगे।

कृष्ण अपने सखा मधुमंगल से बोले- अरे मधुमंगल। नित्य प्रति दिन तो हम लोगों का लाया हुआ कलेवा खाता है आज अपने घर का लाया हुआ कलेवा मुझे दो। मधुमंगल सोचता है कि मैं एक गरीब ब्राह्मण का बालक; कलेवा भी मेरी गरीबी का इतिहास बताता है। इन्हें मै क्या दूं? मधुमंगल की आँखें सजल हो गयी। मैं तो स्वयं कृष्ण के घर का भोजन करता हूँ ऐसी कौन सी चीज है, जिसे अपना कहकर कन्हैया को खिलाऊँ। मधुमंगल की माँ शाम को नमक डालकर टिक्कड़ बनाती है। कृष्ण मचल गये और बोले- भैया, आज तो मैं तुम्हारे घर का भोजन करूँगा। मधुमंगल बोला- मेरे घरका भोजन करेगा लाला, तू दो मिनट ठहर अभी गयो और अभी आयो। मधुमंगल दौड़कर घर गये। पुर्णमासी पुरोहितन ने पूछा- बेटा, तू बीच में कैसे आय गयौ? मधुमंगल बोला- आज मेरो लाला कन्हैया बोलो- मैं आज मधुमंगल के घर कौ ही भोजन करूँगा। सो तो जो भी घर में है वो मुझे दे। लाला भूखौ बैठ्यौ जंगल में, बाकू भोजन करानौ है। मैया बोली- तू जानै घर में तो कछु है नहीं। यह ऊपर मटकी टँगी है उसमें देख कुछ हो तो ले जा। मधुमंगल ने जैसे ही मटकी खोलकर देखा, उसमें तीन दिन की बाँसी खट्टी कढ़ी रखी थी। यह देखकर मधुमंगल का भी मन खट्टा हो गया। मधुमंगल कढ़ी की मटकी को लेकर चला। मधुमंगल एक झाड़ी के पीछे जाकर छिप गया और सोचने लगा मेरो लाला मीठो माखन खावें, मीठी मिश्री पावें, सुन्दर भोग लगावै। लाला ने पहली बार घरको भोजन माँग्यो और मैं लाला के तांईं खट्टी कढ़ी लेकर आयो। सोचने लगा यह कढ़ी की मटकी फोड़ ही देऊं। इसको फेंकू तो मुश्किल, छिपाकर रखूँ तो मुश्किल। सोचने लगा यह कढ़ी को मैं ही पी लूँ। मधुमंगल ने अपना मुँह मटकी को लगाया और गटक-गटक कर कढ़ी पी गयौ। इधर-उधर देख रहा है कि मुझे कोई देख तो नहीं रहा। जल्दी-जल्दी पीनेसे आधी कढ़ी पेटमें गयी और आधी मुँहको लग गयी। कन्हैया ने देखा- मधुमंगल तो कढ़ी पी रह्यौ है। दौड़कर उसके पास आये और बोले- मधुमंगल तुमने जो कढ़ी मेरे लिये लेकर आया, तू तो स्वयं क्यों पी गये। मधुमंगल बोला- लाला मैंने सोचा, गोविन्द बड़ौ कोमल है। सुन्दर खीर खावै, मिश्री पावें, उसको खट्टी कढ़ी कैसे खवाऊं। उस वास्ते मैं ही पी गयो। अब आज माफ कर दे कर मैं खाने की चीज बनाकर लाऊंगा। बढ़िया-बढ़िया पकवान लेकर आऊंगा। कन्हैया बोला- मैंने कहा था आज तो मैं तुम्हारे ही घर का भोजन करूँगा। मधुमंगल बोला- जब है ही नांय तो कहाँ से करेगा? कन्हैया ने उसी समय अपनी जीभ निकाली और मधुमंगल का मुँह चाँट लिया।

सुबल उठा और कन्हैया को अपने मुख का घास खिलाया। कृष्ण कौर खाकर बोला, मुझे तो स्वाद विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं है अन्य सभी सखाओं को चखाओ। इसप्रकार अपने सखाओं के साथ भगवान हंसते-हंसाते हुए नाना कृत्य करते थे।

निज निज छीके लावो जाई। सुखसों भोजन करिये भाई।। नीर पान कर बछरे सारे। निर्भय घास चरनगे प्यारे।।
अपने अपने अन्न को, देत परस्पर तात। भोजन का गुण दोष कह, सब मिल हंसत हंसात।।

जो भगवान इतने षट्रागी हैं, वे ही जब प्रेम के साम्राज्य में आ जाते हैं, तो गाँव के गँवार ग्वारियों के साथ भूमि पर बैठकर उनका जूठा खानेवाले भगवान की लीला के सम्बन्ध में कोई क्या कह सकता है। जो सारे यज्ञों के एकमात्र भोक्ता हैं, वे ही भगवान् ग्वालबालों के साथ बैठकर इस प्रकार बाल-लीला करते हुए भोजन कर रहे थे और स्वर्ग के देवता आश्चर्य-चकित होकर यह अद्भुत लीला देख रहे थे।

परीक्षित्, ब्रह्माजी पहले से ही आकाश में स्थित होकर भगवान् की लीला का अवलोकन कर रहे थे। अघासुर के मोक्ष को देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ था अत: वे भगवान् की कुछ और मनोहर लीलाओं को देखना चाहते थे।

ब्रह्माका एक नाम विधि है- विधत्ते इति विधि:। जो विधान करे, वह विधि है।

ब्रह्माने सोचा पापकी मुक्ति तो हमारे संविधानमें नहीं है। श्रीकृष्णने पापकी मुक्ति करके असंवैधानिक कृत्य कर डाला है इससे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सर्वेश्वर की लीला है कि जो जितना बड़ा होता है उसका मोह भी विशाल होता है अधिक शक्तिशाली को शंकायें भी अधिक होती हैं। महान् विद्वान के अन्त: में सन्देहों का अधिक स्थान होता है। सृष्टि से स्रष्टा, वेद एवं श्रुतियों के प्रणेता चतुर्मुखी लोकपितामह ब्रह्माजी भी श्रीकृष्ण की अनुपम, अद्भुत लीलाओं को देख भ्रान्त हो गये, भटक गये अपने मोह में। खेल में सुख होता ही है, हँसी आती ही है। कभी हँसते-हँसते आँखों में आँसू भी आ जाते हैं। अत: हँसना और आँखों में आँसू आ जाना यही खेल का प्रयोजन है। श्रीकृष्णावतार में भगवान ने ऐसे-ऐसे प्राकृत खेल खेले, कि मायामोहित मनुष्यों की तो बात ही क्या ब्रह्माजी भी मोहित हो गये। उन्हें भी उनकी भगवत्ता में संदेह होने लगा।

ब्रह्माजी ने सोचा कि इन ग्वालोंके आँगनके कीचड़में तो खेलते हो और ब्राह्मणोंके यज्ञमें आनेमें इन्हें शर्म आती हैं। जब गौएँ हम्बारव करती हैं, हुँकारती हैं, डकराती है, तब इनके साथ बोलने लगते हैं, लेकिन वेद-मन्त्र तो इनसे बोले नहीं जाते। गोकुलकी गँवार ग्वालिनोंके पीछे-पीछे तो चलते हैं लेकिन महात्माओं के सामने आनेमें इन्हें लज्जा आती हैं। यह किसी विधि-विधानके नहीं, यह कैसा ब्रह्म है। प्रेमके अधीन है, प्रेमसे ही प्राप्ति होती है। कही ये ईशों के भी ईश्वर हो सकते है ये तो गोपकुमार है। इसप्रकार ब्रह्मा अपने बुद्धि के बल से तर्क से परमात्मा के अपार रहस्य को जानना चाहते थे।

अब स्वर्गके देवता लोग इस दृश्यको देखकर आश्चर्य चकित हैं कि हम लोगोंके लिए जो यज्ञ होता है, उसमें तो ये जल्दी पधारते नहीं, किन्तु ग्वालोंके साथ बैठकर इस पत्तलकी चीज उस पत्तलमें और उस पत्तलकी चीज इस पत्तलमें कर रहे हैं। **ब्रह्म लोक सों आ विधी, देखा बन बनभोज। ग्वालन झूठ खा रहे, जिन कहँ योगी खोज।।**

ब्रह्मा को जानकारी हुई कि बहुसंख्यक देवता विमानों में बैठकर बृजमण्डल में गये हैं तो कौतूहल वश ब्रह्मा जी भी हंस पर सवार होकर ब्रह्म लोक छोड़कर वहाँ आ गये और उन्होंने वन में वन भोज करते हुए पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को जिन्हें योगी दिन रात साधना करके खोजते रहते हैं ग्वालों की जूठन खाते हुए देखा।

ब्रह्मा जी विचार करने लगे जो परम ब्रह्म श्रीकृष्ण अनन्त हैं, श्रुतियाँ जिसे नेति नेति कहती हैं, जो एक रस हैं नित्य हैं और जिन्हें सन्त अजन्मा भगवान कहते हैं, जो चेष्टाहीन हैं, इच्छा रहित हैं, सत्य स्वरूप हैं, सम्पूर्ण बुद्धियों के साक्षी हैं, ब्रह्म स्वरूप हैं, मलिनता से रहित हैं, व्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, नरोत्तम हैं और आनन्द स्वरूप हैं। जो परमात्मा अन्तर्यामी हैं, विश्व व्यापक हैं, विश्व के रचनाकार हैं, विश्व के पालनकर्ता हैं और संहार करनेवाले हैं, निर्गुण और सगुण दो स्वरूपवाले त्रिगुणमयी श्रृष्टि को धारण करनेवाले सत् चित् आनन्द स्वरूप सदा भरपूर विश्व नियन्ता, अखिल लोक सर्वेश्वर जीवों के दैहिक दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के तापों का हरण करनेवाले हैं। जो परम ब्रह्म परमात्मा हैं वह बालकों की तरह दूसरे बालकों का जूठा खा रहा है। जिस परम ब्रह्म सर्वेश्वर ने आकार लिया है वह कोई और ही होगा परंतु बिना परीक्षा लिये इस पवित्र आचरण से रहित बालक को भगवान समझकर यदि मैं स्तुति गाऊँगा तो लोग मुझे अज्ञानी कहेंगे।

ग्वाल-बालोंका प्रेम इतना अद्भुत है, विलक्षण है कि उनको श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका कभी भान ही नहीं रहता। जब उनपर कोई संकट पड़ता है तब वे यही कहते हैं कि कन्हैया, हमारी अपेक्षा अधिक बलवान् है। इसलिए उसको जरा पुकार लो कि वह आकर हमारी मदद करे।

जिन प्रभु के चरण कमल की रज के लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते हैं, जिनके भुवन मोहन स्वरूप की केवल झाँकी के

लिये बड़े-बड़े योगी, विरागी तेजस्वी तपस्वी मुनि असंख्यों जन्मों तक जप-तप करते रहते हैं, वे आनन्दघन विग्रह, परात्पर प्रभु बालक बनकर वृन्दावन के गँवार ग्वारियों के छोकरों के साथ सदा सुखपूर्वक खेलते रहते हैं।

जिन गोपों को श्रीकृष्ण बाबा, चाचा, ताऊ, दादा और भैया आदि कहते हैं, उनकी आज्ञाओं को मानते हैं। उनके बार-बार मुख चूमने पर संकोच से मुख नीचा कर लेते हैं, उन गोपों की किनसे उपमा दी जाय।

भक्तनिके भगवान् जो, ज्ञाननिके जो ब्रह्म हरि। कहें अज्ञ शिशु आज ते, ब्रज विहरे नर-वेष धरि।।

अपार जयनाद-असीम कोलाहल सुन ब्रह्माजी को कौतूहल हुआ। ऐसा क्या हो गया, देवताओं ने क्या पा लिया जो सोल्लास उनके बाद्य बज रहे हैं, एक साथ जयघोष कर रहे हैं। सुरेन्द्र कोई उत्सव नहीं कर रहे हैं अन्यथा वे भी आमंत्रित होते। असुर विजय का जयनाद नहीं है, फिर अमरावती में यह आनन्द उत्सव क्यों मनाया जा रहा है। कौतुहलवस वे अपने हंस पर बैठ बाहर निकले। उनकी अपार दृष्टि ने देख लिया कि देवताओं के विमान ब्रजमण्डल के आकाश में है वहीं से आनन्द ध्वनि प्रसारित हो रही हैं। उन्हें पुन: आश्चर्य हुआ कि मृत्युलोक के किसी पुण्यवान का यह पुण्यफल है जिससे देवता प्रफुल्लित हो रहे हैं। उनका हंसदेव विमानों के समीप आ गया तो देवगणों को प्रणिपात किया और अपने विमानों को एक ओर कर लिया।

इधर कृष्ण मधुमंगल की सूखी रोटी छीनकर खाने लगे और मधुमंगल के मुख पर लगी बासी कढ़ी चाँटने लग गये। यह देखकर सभी ग्वाल-बाल हँसने लगे मधुमंगल भी स्तब्ध रह गया। उसी तत्क्षण बोला- अरे नन्दनन्दन, तुम्हें इस सूखी रोटी में क्या आनंद आयेगा? इतने में दूसरे बालक बोले- हाँ हाँ कन्हैया इसे फेंक दो, मेरी मैया ने जो मालपुआ बनाया है उसे खाओ। कृष्ण बोले- अरे भैया, तुम लोगों की माँ और एक मौसी होगी पर मधुमंगल की माँ तो पूर्णमासी है। इनके द्वारा सिद्ध किया प्रसाद भी पूर्ण है। मधुमंगल बोला- कन्हैया, मेरी गरीबी का क्यों मजाक उड़ा रहे हो। कन्हैया बोला- अरे मधुमंगल, तेरा प्रसाद तो अति आनन्ददायक है, तेरा कितना कोमल हृदय है। अन्त:करण से तो चाहता है कि कन्हैया मेरा भी प्रसाद पावे परंतु कह नहीं पाता। कृष्ण बोला- मैं वही प्रसाद ग्रहण करता हूँ जो पवित्र हाथों से बनाया गया हो। आपके पिता ऋषि शाण्डिल्य तो भोजनानन्द को त्याग देते हैं। वे तो ऐसे परम तपस्वी ब्राह्मण है जो ब्राह्म मुहूर्त में शौचक्रिया से निवृत्त होकर गायत्री महामन्त्र द्वारा ईश्वर की आराधना करते हैं उनके प्रभाव से पूरा घर पवित्र हो जाता है। भगवान को भक्त खिलाते हैं तो भगवान ग्रहण नहीं करते किन्तु कुछ भक्त ऐसे हैं जिनके यहाँ के भोजन को परम पवित्र प्रसाद मानकर पाने के लिए उत्साहपूर्वक भगवान आते हैं। ग्वालबालों के सङ्ग भगवान बालसुलभ क्रीड़ा करते हुए कलेवा कर रहे है।

ब्रह्माजी ने देखा कि- जिन्हें हम नारायण समझ रहे हैं वो तो विश्वका भरण-पोषण करते हैं। यह बालक तो गरीब ब्राह्मण से माँग-माँग कर प्रसाद पा रहा है। मगर लगता तो नकली नारायण है, उसकी पोल खोलनी चाहिये। यह कैसा भगवान है? भगवान थोड़ी ही कभी किसीकी झूठी कढ़ी खाता है। वो देवकीनन्दन कोई और होगा, ये भगवान नहीं हो सकता। इसकी परीक्षा लेकर देखूँगा। भगवान नहीं होगा तो रोयेगा।

उन्हें संदेह उस समय हुआ जब श्री व्रजकुमार सखाओं के साथ पुलिन में बैठे गोप बालकों को अपना उच्छिष्ट स्वयं अपने कर-कमलों से खिला रहे थे, ये बालक भी अपने मुख में दिया पदार्थ स्वादिष्ट कहकर व्रजराजकुमार के मुख में दे देते और वे बड़े प्रसन्न होकर उसे पा लेते। आश्चर्य हुआ ब्रह्माजी को कि ये यज्ञ-भोक्ता जिन्हें सावधानी पूर्वक प्रस्तुत पवित्रतम सामग्री तपेश्वरी ब्राह्मण सस्वर श्रुति मन्त्रों के द्वारा सादर समर्पित करते हैं उन्हें ये पुराणपुरुष संकोचपूर्वक स्वीकार करते हैं। वे ही आज इन यज्ञोपवीत हीन, संस्कार रहित गोप बालकों का अच्छिष्ट इतने उल्लास और प्रेम से स्वीकार कर रहे हैं। ब्रह्माजी बोले- यह सब क्या हो रहा है। इस प्रकारका आचरण तो वेद-विरुद्ध है।

ब्रह्माजी सोचने लगे याज्ञिक ब्राह्मण यज्ञ के द्वारा प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए हर प्रकार की पवित्रता करते हैं। वहीं यज्ञ नारायण भगवान पूर्ण ब्रह्म हर जाति के सखा की जूठन खा रहे हैं। मैं चार बुद्धियों का स्वामी हूँ इसलिए बिना परीक्षा किए इस नन्दलाल को पूर्ण ब्रह्म मानना मुझे स्वीकार नहीं है। अपनी शंका का निवारण करने के लिए ही मैं इनकी लीला दर्शन करने की इच्छा से ही यहाँ आया हूँ। यदि वही पूर्ण भगवान है तो सदा सर्वज्ञ होने के कारण इन्हें इस बात का ज्ञान हो ही जायेगा कि मैंने बछड़ों सहित ग्वाल बालों को किस स्थान पर छिपाकर रखा है और सर्वशक्तिधर मुझे अपनी शक्ति से हराकर अपने वत्स और सखा छुड़ाकर ले जायेंगे।

ब्रह्माजी को क्रोध तो था ही भगवान की लीला भी देखने के उत्सुक थे अत: एक उपाय सूझा कि इन दूरस्थ बछड़ों को अपहृत कर लिया जाय और ऐसा ही किया।

इसलिये उन्होंने पहले तो बछड़ों को और भगवान श्रीकृष्ण के चले जाने पर ग्वालबालों को भी अन्यत्र ले जाकर रख दिया और उन्हें अपनी माया से बुला कर स्वयं अन्तर्हित हो गये।

हंसारूढ़ ब्रह्मा जी ने यह विचार कर अपनी माया का आह्वान किया जिसके प्रभाव से सारे बछड़ों को सुमेरु पर्वत की कन्दरा में रखकर हरि के प्रिय सखाओं को भी अपनी मायासे उठाया और बेसुध करके उन्हें भी सुमेरु पर्वत की गुफा में रखकर पत्थर से ढक दिया।

यह लीला चौमुहाँ नामक स्थान पर हुई। व्रजमें जो गाँवोंके नाम हैं, वे निराधार नहीं है। यशोदा मैयाने जहाँ छटी देवीकी पूजा की, पूतना वध हुआ उसका नाम छटीकरा हुआ। चौमुहाँ नामक स्थान भगवान चतुर्भुज ब्रह्माजीके नामपर पड़ा।

ब्रह्माजी मोहित भये, लखि माया ब्रजराय। कीन्ह बन्द निज हाथ से, ग्वाले बछड़ा गाय।।

सहसा ग्वालबालों को गाय-बछड़े दिखायी नहीं दिये, सब आश्चर्य में पड़ गये और भयभीत हो गये। बछड़े भी हरी-हरी घासके लालचसे घोर जंगलमें बड़ी दूर निकल गये।

बत्स चरत वन माहिं, तृन-लोभित चलि दूर गे। सखन लखे जब नाहिं, भय तें अति चक्रित भए।।

वरूथपको सबकी अपेक्षा बछड़ोंकी अधिक चिन्ता थी। यह वत्स-चारणका अग्रणी मानता था। बछड़े कब किस दिन धिर ले जाना, यही निर्णय वही करता था। कभी बछड़े दूर चले जाय तो स्वयं उसे लौटाने के लिये भागेगा अथवा अर्जुन, विशाल, ऋषभ, उज्ज्वलमें से किसीको भेजकर पता लगायेगा। बछड़ोंके ऊपर इसकी सतर्क दृष्टि रहती थी। बछड़ेको वहाँ न देखकर वह बोला- अरे, अपने बछड़े कहाँ गये? अर्जुन ने पुकारा कोई एक बछड़ा भी नहीं बोलता, कूदता नहीं तो सशंक हो गया। उसे लगा यही कहीं समीप में गये लगते हैं। सबके हाथ रूक गये। सब पीछे मुड़कर देखने लगे।

उसी समय कृष्ण बोला- वरूथप तू नहीं जायेगा। तेरे बिना कैसे खा सकूँगा। तू जायेगा और कोई जायगा तो पता नहीं कितनी देर लगेगी। मैं जाऊंगा, मेरे पुकारते ही सब बछड़े दौड़ आयेंगे। मुझे कहाँ भागना पड़ता है किसीको बुलानेके लिये। तुममें से कोई जायगा तो उसे भागना पड़ेगा। मैया ने मना किया है कि भोजन करके दौड़ना नहीं चाहिये।

उसी समय भक्तों के भय को भगानेवाले भगवान ने कहा- प्यारे सखाओं, तुम लोग भोजन बन्द मत करो। मैं अभी गैया-बछड़ों को लेकर आता हूँ।

अहो मित्र, तुम भोजन करौ, अपने मन तनिकौ जिनि डरौ।
बछरन हम लै ऐहैं अबै, बैठे रहौ, लहौ सुख सबै।।
वत्स अगोचर देखके, भये विकल मन बाल। तिनको धीरज देन हित, बोले कृष्ण दयाल।।

चिन्ता मत करिये तुम ताता। निर्भय भोजन कीजो भ्राता। मैं जावत हूँ विपिन मझारे। ढूँढ लाँउगा बछरा सारे।।
तब ग्वालों कहत कन्हाई तुम सब जेंवत रहियो भाई। जनि कोऊ उठै करै औसेर, सबके बछरे लाऊँ घेर।।

ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर भगवान श्रीकृष्ण हाथमें दही-भातका कौर लिये ही पहाड़ों, गुफाओं, कुञ्जों एवं अन्यान्य भयंकर स्थानोंमें अपने तथा साथियोंके बछड़ोंको ढूँढने चल दिये। भगवान सब ग्वाल-बालों को ढूँढ़ने लगे। मधुमंगल, सुबल, तोष और श्रीदामा कहाँ हैं? अब कृष्ण आगे देखे तो ग्वालबाल नहीं और पीछे देखे तो बछड़े नहीं। साड़ेचार वर्ष का कृष्ण विचलित हो गया कि हमारे बछड़न को कौन ले गयौ। हमारे ग्वाल बालोंको कौन ले गयौ?

मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ अपने भक्त का कभी परित्याग नहीं करता।

सर्वं त्यजामि समये बहुना किं प्रियामपि। सदाऽशयगतं भक्तं न कदाप्यत्यजत् तथा।।
विधिने लीला लखी मोह अति मनमहँ छायौ। करूँ परीक्षा भाव चित्त चतुरानन आयौ।।
बछरा लये चुराइ छिपाये निजपुर जाकें। पुनि बालनि लै गये भोजके थलपै आकें।।
सोचें- अब का करतु है, जिह जशुमतिको छोहरा। बछरनिकूँ ढूँढ़त फिरें, इति हरि गिरि गुह कन्दरा।।

जब चारों ओर खोजने पर भी बछड़े न मिले तो भगवान उसी स्थान पर लौट आये जहाँ कुछ देर पहले साथियों के साथ भोजन कर रहे थे। वहाँ आने पर देखा कि ग्वाल-बालों को भी चारों ओर खोजा किन्तु वे भी कहीं नहीं मिले। तब सर्वज्ञ भगवान् ने तुरन्त जान लिया कि यह सब करतूत ब्रह्माजी की ही है।

ब्रह्मा की कृत जानकर, विश्वकार गोपाल। वत्स वत्सपालक सकल, आप भये तत्काल।।
जैसा जास स्वभाव था, जैसा जांका रूप। जैसा जास अकार पुन, तैसा भा यदुभूप।।

शुकदेव बोले- कैसा है, यह अद्भुत दृश्य अपने हृदय में इसकी झाँकी देखो। इस प्रकार इधर भोजन का क्रम चल रहा था और उधर हरी-हरी कोमल घासों के लोभवश बछड़े दूर जंगल में निकल गये। बछड़ों को पास में न देखकर ग्वाल-बाल चिन्तित हो उठे। अब तक भगवान में लगा हुआ उनका मन चंचल हो उठा। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा- मेरे प्यारे मित्रों, तुम लोग भोजन करना बन्द मत करो। मैं अभी बछड़ों को लेकर आता हूँ।

बछड़े तृण के लोभ से कृष्ण से दूर निकल गये। ग्वालबालों का मन भी कृष्ण से हट कर बछड़ों पर चला गया। इसका मतलब है कि कोई-न-कोई विपत्ति आनेवाली है। संसार के प्राणी जब भगवान का स्मरण-चिन्तन छोड़ कर संसारी विषयों में उलझ जाते हैं, तब समझ लेना चाहिये कि कोई-न-कोई विपत्ति उन पर शीघ्र आयेगी। मित्रों को आश्वस्त कर भगवान हाथ में दही-भात का कौर लिये ही पहाड़ों, गुफाओं, कुञ्जों तथा बनों में बछड़ों को ढूँढने चल दिये।

श्रीकृष्ण बछड़ों को ढूंढने गये, नहीं मिले तो वापस आये और देखा कि ग्वाल-बाल सारे सखा भी गायब है। कृष्ण करतूत समझ गये कि ब्रह्मा मेरा चमत्कार देखने की लालसा में है। विश्वकर्ता ईश्वर ने अपने से दोनों की ग्वाल-बाल और बछड़ों की उत्पत्ति की। यह एक विलक्षण सृष्टि हुयी। अपरच्छिन्न ब्रह्म से पञ्चभूत उत्पन्न होता है तब ब्रह्माजी सृष्टिका विकास करते हैं, मानव-दानव आदिकी उत्पत्ति होती है। स्वयं नन्दनन्दन सकल व्रजवासी तथा ब्रह्माजी आदि सबको आनन्द देनेके लिये लीला-सृष्टि की। द्रौपदी की लाज रखने के लिये साड़ी अवतार धारण किया और कृष्ण स्वयं साड़ी बने।

अब भगवान श्रीकृष्ण ने बछड़ों और ग्वालबालों की माताओं को, अर्थात् गायें एवं प्रौढ गोपियों को भी आनन्दित करने के लिये अपने आपको ही बछड़ों और ग्वालबालों- दोनों के रूप में बना लिया। उनके लिये यह कोई बड़ी बात न थी। वस्तुत: वे ही सारे विश्व के निर्माता सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। उन्होंने ऐसी विलक्षण लीला कि जैसे पूर्व के ग्वाल-बाल,

बछड़े हैं ठीक उसी प्रकार वर्तमान के ग्वाल-बाल, बछड़े हैं। गौयें अपने बछड़ों को देख कर रम्भाने लगी, श्रीकृष्ण बछड़े के रूप में उनका स्तनपान करने लगे।

ब्रह्म निर्विकार रहता हुआ, विकारयुक्त बन गया। न प्रकृति, न पञ्चभूत, न प्रारब्ध, न कर्म, न वासना, फिर भी सृष्टि वैसी ही प्रगट हो गयी; एकमात्र भगवान् सर्वरूप से प्रगट हुए। द्रौपदी की साड़ी किस जुलाहे ने बुनी थी कौरव सभा में? अपने संकल्प से ही तो उत्पन्न की थी भगवान ने, भगवान स्वयं ही साड़ी बने थे। वैसे ही बछड़े और गोप बालरूप में, सर्वरूप में, एकमात्र भगवान ही प्रगट हो गये। ब्रह्म निराकार निर्विकार रहते हुए परिणाम को प्राप्त होता है। दृश्यमान जगत् ईश्वर का परिणाम है। श्रीकृष्ण सत्य हैं, लड़की, बछड़े, कपड़े, ग्वाल कृष्ण ही हैं।

पुनि नहिँ निरखे बाल लाल विधिकृत सब जान्यो। कृष्ण कुपित नहिँ भये मोह मायाको मान्यो।।
होवै नहिँ विधि ग्वाल-बाल बछरनि जननिनि दुख। बालक बछरा बने विष्णु सबकूँ देवैं सुख।।
शोभा शील स्वभाव स्वर, नाम रूप बय वेश सब। जैसे जितने सब हते, तितने तस हरि बने तब।।

शुकदेव बोले- राजन्, तब विश्वकृत भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी का प्रिय करने की इच्छा से तथा ग्वाल-बाल और बछड़ों की माताओं का प्रिय करने की इच्छा से अपने आपको ही सब बछड़े और बालक रूप में बना लिया।

जितने बछड़ों को ब्रह्मा ने चुराया था बिल्कुल वही बछड़े श्रीकृष्ण ने अपने शरीर में से प्रकट कर दिये। जितने ग्वाल-बाल ब्रह्मा ने चुराये थे, उतने ही वही ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण ने अपने शरीर में से प्रकट कर दिये। जिसकी जैसी आकृति है, जैसा शील है, जैसा स्वभाव है, ये सब श्रीकृष्ण ने बना दिया।

भगवान सर्वसमर्थ हैं। वे ब्रह्मा द्वारा चुराये गये ग्वालबालों और बछड़ों को ला सकते थे किन्तु इससे ब्रह्माजी का मोह भंग न होता और न वे भगवान की दिव्य माया का ऐश्वर्य ही देख सकते। भगवान् की इस माया ने ही ब्रह्मा के विश्वकर्ता होने के अभिमान को नष्ट किया है। इसलिये भगवान् उन्हीं ग्वालबाल और बछड़ों को न लाकर स्वयं ही वैसे ही एवं उतने ही ग्वालबाल और बछड़े बन गये।

भगवानकी कला कैसी अद्भुत है। उसके सामने कोई मसाला नहीं, कोई भीत नहीं, कोई आधार नहीं, कोई शरीर नहीं, कोई कलम नहीं, कोई तूलिका नहीं, कोई रंग नहीं, फिर भी वह चित्र बनाता है। वह स्वयं ही अनेक रूप ग्रहण कर लेता है। जिनकी सत्ता से, प्रकाश से हमारे और ब्रह्माजी के भी मन, बुद्धि प्रकाशित हो रहे हैं उसके बारे में युक्ति, तर्क थोड़े ही चल सकते हैं?

परीक्षित, वे बाल और बछड़े संख्या में जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे; उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ थीं, छींके थे, जैसे वस्त्राभूषण थे; शील, स्वभाव और अवस्थाएँ जैसी थी, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपों में भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। सर्वात्मा भगवान स्वयं ही बछड़े ग्वालबाल और सब कुछ बन गये।

जैसे तन के अंग जस, जैसो जा को रूप। जगत पती तस रूप धर, चाले भूपन भूप।।

श्रीकृष्ण रूप ग्वाल-बाल ने श्रीकृष्ण के साथ संध्या के समय ब्रजमण्डल में प्रवेश किया।

सायंकाल होने पर अपने-अपने बछड़ों को हाँकते हुए सारे ग्वालबाल अपने-अपने पृथक्-पृथक् गोष्ठ में, खरिका में, ले आये। आज सारी गायों को और सारी गोपियों को अपने-अपने बछड़ों और बालकों को छूने में छाती लगाने में, दूध पिलाने में, चाटने में, नहलाने, कपड़ा पहनाने में जो अपूर्व आनन्द आ रहा था, वह अवर्णनीय था। ऐसा क्यों हो रहा था, यह किसी की समझ में न आ रहा था। कन्हैया को दुलार करने में जो आनन्द और जैसी अनुभूति यशोदा को होती थी, वही अनुभूति सारी माताओं को अपने बालकों की सेवा में संस्पर्श में हो रही थी। उन्हें क्या मालूम कि यह हमारा बछड़ा या

बालक साक्षात् कन्हैया ही है। सायंकाल होने पर गायें और माताएँ अपने बछड़ों और बालकों से मिलने के लिये विकल होकर दौड़ पड़ती थीं। आनन्द और स्नेह की यह धारा पूरे व्रज में पूरे एक वर्ष तक निरन्तर बहती रही किन्तु प्रेम की इस अधिकता का रहस्य किसी को कुछ मालूम नही हुआ।

सुभग उरोज स्रवत पय धाई। सुत उठाइ उर लै लपटाई।।
सुअन जानि परब्रह्म उठाई। अंक राखि निज हृदयँ लगाई।।
सुधा सरिस पय पान कराई। जानहु परम भाग्य नरराई।।

श्रीकृष्ण स्वयं चरवाहे और स्वयं चराये जानेवाले बछड़ों के रूप में वर्ष भर लीला करते रहे। एक ही परब्रह्म परमात्मा वर्षभर न केवल ग्वालबालों और बछड़ों के रूप में बल्कि छींकों के रूप में, छड़ियों के रूप में, वस्त्राभूषण आदि के रूप में प्रतिष्ठित होकर खेल खेलता रहा। स्वरूप अनेक, पर उनमें एक के रूप में भगवान क्रीडा कर रहे थे। अपनी इस अगाध लीला से भगवान सबको आनन्द दे रहे है।

माता यशोदा के आँगन में जब कृष्ण नृत्य कर रहे थे तो वृद्धा गोपियों ने अपने मन में सोचा, बड़ी भाग्यवती है माँ यशोदा। जैसे इनके पुत्र बनकर इन्हें सुख प्रदान करते हैं। कभी हमारे पुत्र बनकर हमें भी ये सुख प्रदान कर सकेंगे क्या? उन वृद्धा गोपियों की आकांक्षा की पूर्ति के लिए आजकल कृष्ण ही ग्वाल-बाल बन गये, तो बछड़ा भी श्रीकृष्ण हैं, ग्वाल-बाल भी श्रीकृष्ण हैं। अब नित्यप्रति बछड़ा चराने जाते हैं, लौटकर आ जाते हैं।

यशोदासे मन-ही-मन कभी-कभी, रोकर कह भी देतीं कि यशोदे। तेरा बड़ा भाग्य है। जो वेदोंकी सम्पत्ति है, जो सनकादि मुनियोंका सर्वस्व है वह तेरी गोदमें खेल रहा है। यह सुख तो मुझे कभी नहीं मिला।

जाकौ रूप जगत के लोचन, कोटि चन्द्र-रवि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा, गोपिन-प्रान, पूतना-बैरी।।

जिनका नाम लेनेसे, जिनके नामके आभाससे सारा विषाद, भय, शोक, सदाके लिये मिट जाता है। जिनके स्मरणके क्षेत्रमें यह सब दुर्भाव नहीं आ सकते, नहीं टिक सकते, वे स्वयं मनोहर बाललीला प्रमत्त भगवान श्यामसुन्दर, इन बछड़ोंको और सखाओंको न पाकर विषादग्रस्त होकर पुकारने लगे, पर कोई नहीं आया। रूपमें, आकृतिमें, चिह्नमें, स्वभावमें, स्वर, वस्त्र, आभूषण और चालमें दोष-गुण, (दोष भी) रुचि-अरुचि, जिसकी जैसी ठीक उसी प्रकार यह सब स्वयं बन गये।

जितक हुते बछ-बाछी-बाल, आपु ही भए कुँवर नँदलाल।
वैसेइ कंबर, अम्बर, हार, वैसेइ सहज अहार-बिहार।।
वैसेइ नाम, दाम, गुन नीके, वैसेइ श्रृंग, बेनु, दल, छीके।
वैसियै हसनि, चहनि पुनि बोलनि, वैसियै लटकनि, मटकनि, डोलनि।।
नूपुर, कंकन, किंकिनि, माल, सबै भए ईश्वर नँदलाला।
बेद जु बिदित बिस्व यह जिते, सबै बिस्नुमय भासत तिते।
जो यह बानी निगमन गाई, सो प्रभु मूर्तिवंत दिखराई।।

भगवान इस प्रकारसे मूर्तिमान हुए, सब बन गये। विश्वके सृष्टा वही हैं। उन्हींके द्वारा यह पञ्चभूतोंका निर्माण हुआ है। यह सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और अनन्त नक्षत्र राशि यह सब उनकी ही रचना है। समुद, गिरि, धरा, पर्वत इत्यादि सब भगवान्की ही सत्तासे बनती हैं। पर जो कर्मफलका अंश है वह वहाँ रहता है; यह कर्म फलांश नहीं है। यह भगवान् स्वयं

अपने आप ही अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ऐसा बने।

यह भगवान्‌का जो सृजन है यह उत्कृष्टतम है। यह जो सर्ग है भगवान्‌का इसमें कोई कर्म कारण नहीं; अज्ञान कारण नहीं, बन्धन कारण नहीं यह तो स्वयं भगवान्‌का अद्‌भुत लीला-विलास है। यह भगवान्‌का आत्मविहार आरम्भ हुआ। यह सालभर तक चलता रहेगा। स्वयं तो उपस्थित हैं और देखे श्यामसुन्दर वैसेके वैसे हैं। अब श्यामसुन्दर ही अनन्त-अनन्त सब बन गये।

भगवान के रहस्य को समझकर बलदेवजी ने उनसे कहा- हे श्रीकृष्ण, ये ग्वाल-बाल और बछड़े यथार्थ तो है नहीं। ये कोई देवता या ऋषि हों सो भी बात नहीं। मुझे तो भिन्न-भिन्न उपाधियों में एक मात्र आप ही दिखाई दे रहे हैं। कृपा करके स्पष्ट बताइये यह नाना भाव किस कारण से हुआ?

वे विस्मित होकर सोचने लगे- यह कैसी विचित्र बात है, ब्रजवासियों का अपने बच्चों पर क्षण-क्षण प्रेम बढ़ रहा है और इन गौओं ने तो अपने व्यवहार से प्रेम की पराकाष्ठा ही दिखा दी। पहिले जो स्नेह ब्रजवासियों का मेरे इन छोटे भाई बने स्वामी के प्रति था। वही प्रेम वैसा ही प्रेम इनका अपने बच्चों में भी बढ़ गया है। यह कोई माया है, या जादू टोना है। यह मोहिनी माया ब्रज में कहाँ से आ गई। यह मानवी माया है, दैवी है अथवा राक्षसी है और की बात जाने दो, मेरा भी इन सब ग्वाल-बाल और बछड़ों में दिन दूरा रात्रि चौगुना स्नेह बढ़ता ही जाता है। इन अहीरों को भले ही कोई दैवी या राक्षसी माया वश में कर ले। मेरे सामने तो माया फटक भी नहीं सकती। इससे प्रतीत होता है कि यह दैवी, आसुरी, राक्षसी तथा मानवी माया का प्रभाव नहीं है। यह तो मेरे स्वामी सच्चिदानन्दघन परात्पर प्रभु सर्वान्तर्यामी श्रीहरि की ही माया है। जिसने मुझको भी मोहित कर रखा है। यही सब सोचकर शेषावतार भगवान् संकर्षण ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, तो उन्हें प्रत्यक्ष वे सब ग्वाल-बाल और बछड़े विष्णुरूप दिखाई दिये। इससे परम विस्मित होकर बलरामजी ने करुणा भरी वाणी में दीनता के साथ पूछा- भगवन्, मुझे ऐसा लगता है ये यथार्थ ग्वाल-बाल और बछड़े नहीं हैं इनमें किसी देवता ऋषि या असुर का आवेश हो सो भी बात नहीं। मुझे तो इन भिन्न-भिन्न उपाधियों में एकमात्र आप ही दिखाई दे रहे हैं। यदि मैं इस विषय के श्रवण का अधिकारी होऊँ- तो कृपा करके इसके रहस्य को मुझे समझाइये।

अस बिचारी बलराम ग्यान दृष्टि देखी तबहिं। कृष्णदेव सब ठाम बछरा बत्सप आपु हरि।।

सर्वेश्वर सर्वलोकमहेश्वर प्रभु, देवेश्वर सुनो और देखो- ये बछड़े और ये गोपशिशुके रूपमें न तो कोई पार्षद हैं और न ही कोई ऋषि हैं। यह तुम्हीं असंख्यरूप धारण कर रखे हो। दीखते हैं यहाँपर बछड़े, दीखते हैं बालक और दीखते हैं उनसे सम्बन्धित सारे पदार्थ- पत्ते दीखते हैं, फल दीखते हैं, फूल दीखते हैं, कपड़े दीखते हैं, सिंगा दीखता है लेकिन भैया, हो तुम्हीं, मुझे अब दीख रहा है कि असंख्य रूपोंमें तुम्हीं मूर्त हो रहे हो। बताओ क्यों बन गये ऐसा? तुम महामहेश्वर हो, तुम सबके स्वामी हो पर यह दीखनेवाले बछड़े, यह गोपबालक, यह श्रृंग, वेणु, बेंत, छीकें इत्यादि इन सब रूपोंमें तुम क्यों प्रकट हो गये?

तब भगवान् ने ब्रह्माजी के मोह का वृत्तान्त बता दिया। उसे सुनकर बलदेवजी को सब वृत्त विदित हुआ।

जैसी पहिले प्रीति कृष्णपै माँ यशुमतिकी। तैसी ब्रजमहँ भई सुतनिपै सब गोपिनिकी।।
बाढ़ैं छिन्न-छिन्न प्रेम बेलि सब मरम न जानें। उमड़ै अति अनुराग ब्रह्मकूँ सब सुत मानें।।
वरष माहिँ कछु दिन बचे, समुझे श्री बलराम तब। कृष्ण, कहा माया रची, श्याम बतायो वृत्त सब।।

एक दिन की घटना है। प्रौढ ग्वाले गोवर्धन पर्वत पर गायों को चरा रहे थे। इन गायों के दूसरे बछड़े भी पैदा हो गये थे। दूसरे बछड़ों के पैदा होने पर गाएँ पहलेवाले बछड़ों को प्यार नहीं करती हैं- यह एक प्राकृतिक नियम है। अभी एक वर्ष पूरा होने

में पाँच-छ: रातें अवशिष्ट थीं। भगवान श्रीकृष्ण बलराम आदि के साथ वृन्दावन में बछड़ों को चरा रहे थे। गोवर्धन पर्वत की चोटी पर से जब गायों ने अपने बछड़ों को वृन्दावन की ओर चरते हुए देखा, तो वे अपने आप को भूलकर उन बछड़ों की ओर बेतहाशा भागीं और जोर से रँभाने लगी यद्यपि बड़े-बूढ़े ग्वाले उन्हें रोकने का भरपूर प्रयास कर रहे थे; किन्तु वे एक न मानीं। कृष्णरूपी बछड़ों के पास आकर गायें उन्हें चाटने एवं दूध पिलाने लगीं। ग्वाले भी गायों के पीछे-पीछे दौड़कर आये। उन्हें अपनी गायों पर बहुत क्रोध आया किन्तु जब उन्हें अपने बच्चे दिखलाई पड़े तो उनके हृदय में भी प्रेम का सागर उमड़ पड़ा। वे भी अपने-अपने कृष्णरूपी बालकों को छाती से लगाकर उन्हें चूमने लगे, दुलारने लगे।

वत्स चरावे गोवर्धन तलहट्टी लाला। हरी हरी जहँ दूब चरे खेले सब बाला।।
गइयन ने जब देखे वत्सा रुक नहिं पाई। गोपन रोकी बकहुत तोहु द्रुत दौरी आई।।
वत्स पिलाये गाय निज, ग्वाले चूमें बाल। क्रोध सभी को उड़ गयो, नेह भरो हिय हाल।।

बलरामजी ने इस दृश्य को देखा। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें विदित हुआ कि ये बछड़े और ग्वाल-बाल सब कृष्ण ही हैं। बलराम जी ने इसका कारण श्रीकृष्ण से पूछा। बलराम बोले- कन्हैया, ये ग्वाल-बाल, बछड़ें न तो देवता हैं और न ऋषि हैं, गोपाल। सभी रूपों में तुम्हीं प्रकाशित हो रहे हो। इसका कारण बताओ अन्यथा तुम्हारी पोल खोल दूँगा।

कन्हैया बोले- अरे दाऊ भैया, चुपचाप रहो, मुँह मत खोलो अन्यथा इस लीला सम्पादन में आनन्द नहीं आयेगा। जब छोटा भाई बड़े को किसी कार्य के लिये मना करे उसे मान लेना चाहिये यही उचित है।

मैं बछरा बालक बन्यो, मेरो प्रेम स्वरूप है। करैं प्रेम मोतें सकल, भव तो अन्धो कूप है।।

भगवान ने संक्षेप में इसका सारा रहस्य बलराम को बतला दिया। कन्हैया ने इशारे से ब्रह्मा की करतूत समझा दी।

दाऊ सोचे बात समझ नहिं आवे कोई। आज श्याम सों प्यार नहीं गोपन मन होई।।
गोपी गोप बाल सह वत्सा हरि सँग डोलें। कहाँ गयो इन दिनन प्रेम ढँग सों नहिं बोलें।।
मुसकाये नँद लाल कहा सुनु भईया दाऊ। बुद्धी भ्रम यह नहीं नहीं कछु माया काऊ।।
बूढ़े बाबा कमलज हमरे वत्स चुराये। बालन सहित सुमेरु कूट जा गुहा दुराये।।
बेशम बेशम बस रहा, गइयन सुत मम रूप। याही सों मम ध्यान ना, पाये पुत्र अनूप।।

अपनी माया की करनी पर और चतुराई पर गर्व अनुभव करते हुए ब्रह्माजी अपने ब्रह्म लोक की ओर चल पड़े। ब्रह्मा जी अपने सत्य लोक में पहुँचते उससे पहले श्याम सुन्दर ने चतुर्मुखी ब्रह्मा का स्वरूप बनाया और ब्रह्म लोक में पहुँच गए।

बछड़ों और ग्वालबालों को चुराकर, छिपा कर, ब्रह्माजी नें एक त्रुटि बीतने पर, पुन: वृन्दावन पर, गोकुल पर दृष्टि डाली। ब्रह्माजीने ब्रह्मलोक से देखा। नीचे नजर डालकर देखा तो यहाँ वही ग्वाल-बाल बछड़े हैं, ऊपर देखा तो वहाँ भी वही हैं। अब, जिन्हें मैं चुराकर ले गया वो सत्य है या ये सत्य है, वे झूठे हैं या ये झूठे हैं, ब्रह्माजी की समझ में नही आता। हो सकता है दूर से देखने में ठीक से नहीं देख पा रहा हूँ जैसे ही ब्रह्माजी वृन्दावन में आये, तो ब्रह्मलोक में उनकी गद्दी हो गयी खाली। ब्रह्माजी तो आये जानकारी करने वृन्दावन में कि वहीं है या दूसरे हैं। बालकृष्ण वहाँ पहुँच गये ब्रह्मलोक में ब्रह्मा बनकर। ब्रह्मलोक में श्रीकृष्ण ब्रह्मा की कुर्सी पर बैठ गये। वहीं चार भुजायें, वहीं चार मुख, बिल्कुल ब्रम्हा का स्वरूप है। अपने द्वारपालों को बुलाकर कहा- आजकल बहुरूपिया बहुत डोलते हैं। मेरे जैसा दूसरा ब्रह्मा आवे, तो धक्के देकर बाहर निकाल देना। द्वारपाल बोले- महाराज कोई चिन्ता नहीं। एक तो कोई बहुरूपिया यहाँ आयेगा नहीं और आ

गया तो आज उसकी खैर नहीं। ब्रह्माजी ने देखा वही ग्वाल-बाल हैं, वही बछड़े हैं, वही छड़ी छींका है।

एक असुर मेरा रूप बनाकर मेरे जैसा श्रृंगार करके मेरे जैसे हंस पर सवार होकर लोगों को ठगने के लिए आ रहा है। वह यहाँ आकर ज्योंही ब्रह्म लोक में प्रवेश करना चाहे उसे अपमानित करके आवश्यकता पड़े तो धक्के मारकर भवन से बाहर निकाल देना इस विषय में लेशमात्र भी शंका मन में नहीं रखना।

ब्रह्माजी जब वापिस ब्रह्मलोक पहुँचे तो उन्हें विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। द्वारपालों ने उन्हें द्वार के अन्दर नहीं जाने दिया। विशेष कुछ कहने पर बल प्रयोग की धमकी भी दे डाली। ब्रह्मा जी चकित हो द्वारपालों से पूछने लगे कि क्या मेरे स्थान पर अन्य किसी ब्रह्मा को नियुक्त कर दिया है सर्वेश्वर ने। द्वारपाल उपहास करने लगे। बोले- हमें हमारे स्वामी ने पहले ही सतर्क कर दिया था कि असुर उनका वेश धारण कर यहाँ आवेगा। हम तेरे शब्दों के, स्वर के, स्वरूप के भ्रम में आनेवाले नहीं।

जैसे ही लौटकर ब्रह्मलोक में गये, इतने ही द्वारपालों ने इन्हें रोक दिया। द्वारपाल बोले- क्या बात है, कहाँ से आये हो? बाहर चलिये। ब्रह्मा बोले- क्या तुम नशेमें हो? अपने मालिक को अन्दर जाने से रोक रहे हो? द्वारपाल बोले- बहुत आते हैं तुम्हारे जैसे बहुरूपिया। ब्रह्मा बोले- बहुरूपिया, क्या बक रहे हो? मैं तुम्हारा मालिक, इस ब्रह्माण्ड का मालिक विधाता ब्रह्मा। द्वारपाल बोले- इस ब्रह्माण्ड के विधाता तो भीतर गद्दीपर बैठे हैं। तुम दूसरे कहाँ से आ गये? एक ब्रह्माण्ड का एक ही मालिक होता है। हमारे मालिक ब्रह्मा तो अंदर बैठे है। सीधे बाहर नहीं जाओगे तो धक्के मारकर बाहर निकाल देंगे।

ब्रह्माने पूछा- क्या कोई और भी ब्रह्मा अधिपति होकर यहाँ आ गये हैं? द्वारपाल बोले- कोई और क्यों आवेंगे? हमारे स्वामी स्वयं आये हैं। तू तो मायावी असुर उनका रूप बनाकर यहाँ प्रवेश का प्रयत्न कर रहा है। हम तेरे रूप और शब्दोंके स्वरके भ्रममें नहीं पड़नेवाले हैं।

उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण ग्वालबालों और बछड़ों के साथ एक साल से पहले की ही भाँति क्रीडा कर रहे हैं। वे सोचने लगे- गोकुल में जितने भी ग्वालबाल और बछड़े थे, उन्हें तो मैंने अपनी माया से अचेत कर पर्वत की गुफा में सुला दिया था। वे तभी से अचेत पड़े हुए हैं। तब मेरी माया से मोहित ग्वालबाल और बछड़ों के अतिरिक्त ये उतने ही, ठीक वैसे ही, दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये,जो एक साल से भगवान के साथ खेल रहे हैं। ब्रह्माजी ने दोनों स्थानों पर दोनों को बार-बार देखा, ध्यान से देखा। उनकी समझ में कुछ आ नहीं रहा था। कौन पहले के हैं और कौन बाद के हैं? कौन सच्चे हैं और कौन नकली हैं- इस बात को वे समझ ही नहीं पा रहे थे। ब्रह्माजी चले थे कृष्ण को मोहित करने, किन्तु अपनी ही माया से वे स्वयं ही मोहित हो गये। स्वयं ही अपने बिछाये जाल में फँस गये। ब्रह्माजी सोच में पड़ गये। आखिर यह सत्य है या वह सत्य है। ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान होकर नाचते-गाते अनेक प्रकार से भगवान की उपासना कर रहे है।

प्रथम चुराये मैंने जोई। मम माया कर सोवत सोई।। यह अब और कहाँ से आये। क्या इनने यह नये बनाये।।
इनमें कौन सत्य कर मानूँ। किनको कल्पित कर के जानूँ। इनमें उनमें भेद न कोऊ। सम स्वरूप दीसत हैं दोऊ।।
अमित सुमहिमा देख के, विधि उर में घबराय। जड़ पुतली सम हो गया, तनु की सुध विसराय।।

जितने ग्वालबाल श्यामसुन्दर के साथ में थे वे सब चतुर्भुजीरूप वैजयन्ती माला किरीट मुकुट व पीताम्बर आदि पहिने विष्णु-महादेव और इन्द्रादिक देवता हाथ जोड़े स्तुति करते दिखलाई दिये। आठों सिद्धियाँ व गंगा आदि नदियाँ अपना-अपना रूप धारण किये उनके सामने खड़ी हैं। उनमें कोई ब्रह्मा चार शिर के, कोई आठ मस्तक के और कोई सोलह सिरा

के दिखलाई दिये। इन्द्र की अप्सराओं को नाचते व गन्धर्वों को गाना सुनाते उनके सामने देखा। ब्रह्मा को वहाँ के सब पशु-पक्षी व वृक्ष चतुर्भुजी रूप दिखलाई दिये। वहाँ बाघ और बकरी आदि जीवों को निर्वैर देखा।

ब्रह्माजी ने हाथ जोड़े हुए देखा चौदह भुवनों की सारी सृष्टि श्रीकृष्ण को प्रणाम कर रही है। कन्हैया ने जितने रूप धारण किये है सभी लोगों ने भी उतने ही रूप धारण कर रखे थे। अणिमा, महिमा, माया, विद्या, सिद्धि, विभूति, महतत्त्व, चौबीस तत्त्वों के सहित सभी स्तुति कर रहे थे।

काल स्वभाव, विषय, फल, इच्छा आदि ने श्री हरि को घेर रखा था। सत्ता, कर्म, भेद और महिमा ने भी परम प्रभु के चरणों में डेरा लगाया हुआ था। सारी विद्याओं के पति श्री ब्रह्मा जी श्री हरि के स्वरूपों के विषय में नहीं जान सके। जो सम्पूर्ण माया के पति अकल और अरूण हैं उसको ब्रह्मा जी ने अपनी माया के द्वारा प्रभावित करने का निष्फल प्रयास किया। **अन्तरध्यान भयो सभी, रूपन राशि अपार। ब्रह्मा देखत दुर गयो, माया पति अम्बार।।**

हे राजन् मायारूपी ग्वालबालों की यह महिमा देखते ही ब्रह्मा ने घबराकर अपनी आँखें बन्द कर लीं, चित्र के समान चुपचाप खड़े रहे, ज्ञान-ध्यान व अभिमान सब भूलकर मारे डर के काँपने लगे। जब श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने जाना कि ब्रह्मा अपने कर्तब से लज्जित होकर अति व्याकुल हुए तब उन्होंने मायारूपी ग्वाल आदि को अन्तर्धान कर दिया और आप अकेले कृष्णरूप में मोरमुकुट पहिने खड़े रहे।

मोहविकल अतिदेखिकै सुन्दरश्याम सुजान। प्रकट कियो जनजानिनिज विधि के उर में ज्ञान।।

ब्रह्माजीने धारण बना ली कि सर्वेश्वर ने उन्हें अपराध के कारण पदच्युत कर दिया है। मैंने उनके स्वजनों पर माया प्रयोग कर धृष्टता की हैं। वे विचार करने लगे कि मैंने आवेश में शीघ्रता की थी- यह भी देखना भूल गया कि उन वत्स और सखाओं के प्रारब्ध में मातृ-पितृ बिछोह है भी या नहीं? अहंकार के वशीभूत होकर मनमानी करना ही तो असुर वृत्ति है। मैं यह भी नहीं समझ सका कि बालक और वत्स मेरी सृष्टि के भी हैं या नहीं।

ब्रह्माजी अपनी भूल और अपराध का प्रायश्चित करके ब्रज में लौटे तो तब तक मानव का एक वर्ष बीत गया था। वे जब ब्रज के गगन पर आये तो अवाक् रह गये- नीचे वे बालक कृष्ण के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वही बालक, वे ही वत्स, वही रंग, वही रूप, वही स्वर, प्रकृति, स्वभाव सब कुछ वही केवल एक वर्ष में आयु का अन्तर आकारों में आया है या उनके पटका, कछनी और आभूषण भिन्न हैं।

जैसे अन्धकारभरी अमावस्या की रात्रि में कुहासे का पता नहीं चलता और प्रचण्ड चण्डांशु की प्रभा में जुगनू की रोशनी का पता नहीं चलता वैसे ही महान् शक्ति के समक्ष छोटे मनुष्य की माया का, बुद्धि-बल का पता नहीं चलता।

वे सुमेरु की ओर मुड़ गये। वहाँ गुफा में जैसे वे सुला आये थे वैसे ही सब संज्ञाहीन हो रहे थे। फिर ब्रज के गगन पर आये- सब पूर्ववत् कृष्ण के साथ खेल रहे हैं वत्स चर रहे हैं। ब्रह्माजी ने हंस को और ऊपर गगन में उड़ाया और दो मुखों से सुमेरू और दो से ब्रज को देखा। उनकी दृष्टि को देश, काल या पदार्थ कोई अवरुद्ध नहीं कर सकता। सुमेरू या ब्रज की स्थिति वैसी ही है। दोनों स्थानों पर बालक और वत्स है। वृन्दावनमें जहाँ देखो वहाँ प्रिय वस्तुएँ फैली हुई है। ब्रह्माने देखा कि वृन्दावन ऐसा है यहाँके प्राणी आपसमें वैर नहीं करते, मित्रकी तरह रहते हैं।

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी- ग्वालबाल और बछड़े साक्षात् श्रीकृष्ण के रूप में दिखलाई पड़ने लगे। सब-के-सब सजल जलधर के समान श्यामवर्ण, पीतवसन, वनमाली, शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त चतुर्भुज तथा नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित थे। अणिमादि सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर उनकी उपासना कर रही

थीं। माया विद्या आदि विभूतियाँ तथा महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व उन्हें घेरे हुए थे। प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगानेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल सभी मूर्तिमान होकर भगवानके प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं। भगवानकी सत्ता और महत्ता अपना अस्तित्व खो बैठी थी।

दोनों स्थानों पर दोनों को देखा और बहुत देर तक ध्यान कर अपनी ज्ञान दृष्टि पर इस रहस्य को जानने की यथाशक्ति चेष्टा की किन्तु यह जानने में सफल नहीं हो सके कि कौन से पूर्व के हैं और कौन-से बाद के, मूल कौन से हैं और कौन बनावटी हैं।

ब्रह्मा ने समाधि लगाकर देखा- अन्दर तो बाँसुरीवाला बैठा है। ब्रह्मा द्वारपालों से बोला- वास्तव में ब्रह्मा तो वही है, एक बार मुझे उनका दर्शन करने दे।

शमर विष्णु असंख्य अज, लखि अज मन अति होत सुख।
निरखे ब्रह्मा विविध विधि, दशमुख, शतमुख, सहसमुख॥

ब्रह्मा की एक त्रुटि भूतल पर एक वर्ष के बराबर होती है। तब तक भूतल पर एक वर्ष बीत चुका था।

ब्रह्माजी ने यह भी देखा कि वे सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के द्वारा सीमित नहीं है, त्रिकालाबाधित सत्य हैं। वे सब-के-सब स्वप्रकाश और अनन्त आनन्द स्वरूप हैं।

देखि विरञ्च चित्रसौ भयो, भूलौ ज्ञान ध्यान सब गयो। जनु पाषाण देवो चौमुखी, भई भक्ति पूजा विनदुखी॥

इस प्रकार ब्रह्माजी ने एक साथ ही देखा कि वे सब-के-सब उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाश से यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है। यह सब देखकर ब्रह्मा कठपुतली की भाँति स्तब्ध से खड़े रह गये। उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं। उन्होंने अपनी माया का पर्दा झट से हटा दिया। तब जाकर ब्रह्मा किसी-किसी प्रकार कुछ स्वस्थ हुए। एक वर्ष पहले की स्थिति उनके सामने आ गई। उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण हाथ में पहले की भाँति दही-भात का कौर हथेली पर रक्खे अभी तक बछड़ों को ढूँढ रहे हैं।

कृष्ण अपने बछड़ोंको पुकार रहे हैं- गौरव, अरुण, आलोक। फिर अपने सखाओंको पुकारने लगे- भद्र, सुबल, श्रीदाम, तोक, विशाल अरे तुम सबके-सब कहाँ हो, कहाँ छिप गये हो? अरे छिपो मत बोलो- एक-एक कुञ्ज, एक-एक सघन झाड़ियाँ, गिरिराजकी गुफाएँ, गह्वर तक ढूँढ़ रहे हैं- देख रहे हैं। बहुत व्याकुल होकर पुकार रहे है।

ब्रह्माजी चारों तरफ देखने लगे, पहले दिशाएँ और उसके बाद तुरंत ही उनको वृंदावन दिखायी पड़ा। जीवोंको जीवन देनेवाले फल और फूलोंसे लदे हुए, हरे-हरे पत्तोंसे लहलहाते हुए वृक्षोंकी पाँते शोभा पा रही हैं। भगवान श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण वृन्दावन धाममें क्रोध, तृष्णा, आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते और वहाँ स्वभावसे ही परस्पर दुस्त्यज वैर रखनेवाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रोंके समान हिल-मिलकर एक साथ रहते हैं। ब्रह्माजीने वृन्दावनका दर्शन करनेके बाद देखा कि अद्वितीय परब्रह्म गोपवंशके बालकका-सा नाट्य कर रहा है। एक होनेपर भी उसके सखा हैं अनन्त होनेपर भी वह इधर-उधर घूम रहा है और उसका ज्ञान अगाध होनेपर भी वह अपने ग्वालबाल और बछड़ोंको ढूँढ़ रहा है। ब्रह्माजीने देखा कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण पहले अपने हाथमें दही-भातका कौर लिये उन्हें ढूँढ़ रहे थे, वैसे ही अब भी अकेले ही उनकी खोजमें लगे हैं।

वृन्दावन सो लोक नहीं तीनों लोक में, जहाँ राधेवर खेलें सदा, अति छवि ते ता ठौर॥

जिस परम पावन भूमि में श्रीकृष्ण के सान्निध्य के कारण राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद-मत्सर, काम, क्रोध आदि अशुभ वासनाओं का जीवों के मन में अस्तित्व ही नहीं रहा है। जहाँ वन्यपशु सिंह, व्याघ्र, मृग, सर्प, मयूर आदि अपने स्वाभाविक

वैर भाव को भूलकर साथ-साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। जहाँ सिंह, बकरी, व्याघ्र, गौ, चूहे, बिल्ली, नकुल और सर्प तथा अन्यान्य परस्पर में बैर रखनेवाले जीव हिल मिलकर प्रेमपूर्वक निवास करते हैं, उस निर्वैर, प्रशान्त, सुखद, मनोज्ञ, हृदय और इन्द्रियों का सुख देनेवाले वृन्दावन को ब्रह्माजी ने निहारा। उनके सम्मुख अब कालिन्दी का पुण्य पुलिन था, हरी-हरी कोमल दूर्बा थी और गिरि गोवर्धन पर्वत की अद्भुत छटा थी।

श्रीवृन्दावन सम नहीं तिहूँलोक में और। माखनप्रभु खेलत सदा अतिछवि से ता ठौर।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, ब्रह्माजी की अब आँखें खुलीं। उन्होंने अनुभव किया मैंने बड़ी भारी भूल की। इतने महामहिम्न प्रभु की परीक्षा लेनी चाही, चलो चलकर उनके चरणों में पड़कर क्षमा याचना करें। फिर सोचा- मैं चोर हूँ, पहिले सब ग्वालबाल और बछड़ों को लाकर जहाँ-के-तहाँ बैठा दूँ, तब कहीं वन में विचरण करनेवाले वनवारी के चरणों में पड़कर विनय करूँ।

चौबेजी चले तो थे, छब्बे जी बनने के लिये, किन्तु रहे दुब्बेजी भी नहीं। ब्रह्माजी विश्व को विमोहन करनेवाले मोहहीन मदन-मोहन को मोहने चले थे, किन्तु स्वयं ही उनकी माया में मोहित होकर मतवाले-से बन गये। ब्रह्माजी भगवान को ठगने चले परंतु वे स्वयं ठग गये। ब्रह्माजी ज्ञानमय तथा जगत के उत्पत्ति कर्ता और सबके पूर्वज है किंतु वे भी कृष्ण की माया से मोहित हो गये। भगवान की उस लीला में क्रोध तृष्णा आदि किसी प्रकार का दोष नहीं। वैर-भाव का प्रवेश नहीं है। ऐसे उत्तम दिव्य धाम में परब्रह्म अपनी नाट्य लीला कर रहा है।

क्या एक घड़े में समुद्र का जल आ सकता है? बकरे की पीठ पर सुमेरु लद सकता है? डिबिया में सम्पूर्ण आकाश आ सकता है? कुहरे का अन्धकार रात्रि के अन्धकार को अच्छादित कर सकता है? दीपक का प्रकाश सूर्य के प्रकाश को दबा सकता है? दिन के प्रकाश में जिस प्रकार जुगुनू के प्रकाश का कुछ महत्त्व नहीं- उसी प्रकार ब्रह्माजी की माया का उन अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी श्रीकृष्ण के सम्मुख क्या महत्व है, जिस प्रकार छोटी ध्वनि बड़ी ध्वनि में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार महान् पुरुषों पर की जानेवाली तुच्छ माया, प्रयोग करनेवाले की सामर्थ्य को गँवा देती है उन महापुरुषों का तो वह कुछ बिगाड़ कर नहीं सकती।

अच्युत की अनुपम अपार ऐश्वर्य की आभा से अभिभूत होकर अज अवाक् रह गये। उस समय उनके अङ्ग जड़वत् प्रतीत होते थे। ऐसा लगता था मानों मदनमोहन की महिमा ही वृन्दावन की अधिष्ठातृ देवी है, उस देवी के सम्मुख शोभा के लिये किसी ने चार मुखवाली एक कठपुतली खड़ी कर दी हो। ब्रह्माजी उस मन वाणी से भी अचिन्त्य माया के प्रभाव को देखकर बारम्बार उसके विषय में तर्कणा करने लगे- यह क्या है? यह क्या है? किन्तु कुछ निर्णय करने में समर्थ न हुए। तब तो अत्यन्त अधीर हो गये, उनकी विकलता बहुत बढ़ गयी। वे किंकर्तव्यविमूढ़ बने वन में चारों ओर निहारने लगे।

करिअ स्तुति गद्गद वचन दृग जल पुलक शरीर। परे चरण पंकज बहुरिविधि अतिप्रेम अधीर।।

भगवान को देखते ही ब्रह्मा जी अपने वाहन हंस पर से कूद पड़े और अपने चारों मुकुटों के अग्रभाग से उनके चरणों का स्पर्श करते हुए दण्डवत् प्रणाम की मुद्रा में लेट गये। श्रीकृष्ण के इस स्वरूप का दर्शन करते ही ब्रह्माजी का मोह भंग हो गया, प्रेम और मुक्ति के एकमात्र उद्गम भगवान को देखकर ब्रह्माजी का मस्तक झुक गया।

ठाढ़े स्तुति तप करें, पर ब्रह्म चित लाय। कृष्णरूप मय सब लखैं, ग्वाले बछड़ा गाय।।

कीन्हीं बिनय बहु भाँति तब, परयौ चरन अकुलाय। क्षमहु नाथ मैं दास तुम, माया परि न लखाय।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान जो महिमा माया से अतीत हैं, स्वयं प्रकाशानन्द स्वरूप हैं तथा अनात्म पदार्थों का बोध करनेवाली श्रुतियों से जाने जाते हैं। उस अपनी महिमा के विषय में ब्रह्माजी को यह क्या-यह क्या इस प्रकार कहते हुये

मोहित होते देखकर तथा उसके दर्शनों में भी अपने को असमर्थ हुआ जानकर उनकी बढ़ी हुई विकलता को अनुभव करके परम प्रभु ने तुरन्त ही अपनी माया का पर्दा छिपा दिया।

समुझि रहस बल कृष्ण चरनमहँ प्रीति दृढ़ाई। इत अज आये लौटि बुद्धि तिनकी चकराई।।
ज्यों के त्यों सब लखे ग्वाल बछरा घबराये। दौरि गये तहँ लखे लौटि पुनि बनमहँ आये।।
बछरा बालक बाँसुरी, वेत्र निरखि सब रूप हरि। निरखें इत उत विकल बनि, तुरत हंसतें अज उतरि।।

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, यद्यपि ब्रह्माजी समस्त दिव्य विद्याओं के अधिपति हैं तथा भगवान के इस दिव्य स्वरूप को तनिक भी नहीं समझ सके यहाँ तक कि वे उन ब्रह्म स्वरूपों को देख भी न सके उनकी आँखें मुंद गईं। भगवान ने ब्रह्माजी की असमर्थता और मोह को समझ कर अपनी माया तुरन्त हटा ली। ब्रह्माजी ने देखा वह अद्वितीय परमब्रह्म गोप बालक का सा नाटक कर रहा है, एक होने पर भी अनेक सखाओं के रूप में हैं, अनन्त होने पर भी इधर-उधर घूम रहा है, ज्ञान का सागर होने पर भी बछड़ों को खोज रहे हैं।

ब्रह्माजी चारों ओर से लोट-पोट करके कृष्ण के चरणों के अग्र भाग पर अपना मुकुट रगड़ने लगे। उनकी आँखों से प्रसन्नता की अश्रुधारा बह रही थी। उससे भगवान के चरण नहा उठे थे। ब्रह्मा की दशा यह हो गई थी कि वे बार-बार भगवान् के चरणों पर गिरते और गिरकर उठते। यह क्रम घण्टों चला फिर वे धीरे-धीरे उठे। नेत्रों के आँसू पोछे, हाथ जोड़े, कन्धा झुकाये। ध्यान लगाकर गद्गद वाणी से भगवान की स्तुति करने लगे।

मैं अपराधी हीन मति पर्‌यो मोह के जाल। ममकृत दोष न मानिए तुम प्रभु दीनदयाल।।
कहजानों तुव भेव मैं ब्रह्मा तुम्हरो कियो। तुम देवन के देव आदिसनातन अजित अज।।
करुणा करि रोयोमहा कहासकै गुणगाय। दृगजल से धोयोमनो माखनप्रभु के पाँय।।
नहिं तप बल नहिं योग बल नहिं बल बुद्धि विचार। तुमहिं कृपा ते तुमहिं जन जानहिं रहस्य तुम्हार।।

प्रभो, जिस प्रकार जब जीव की अहम स्थिति नष्ट हो जाती है, तब मूल का ही सहज अंश सहज मूल से मिलकर एक हो जाता है। इस वृन्दावन में लता गुल्म वृक्ष तृन सभी पशु पक्षी धन्य है जो इन्हें अपने मूल का संसर्ग सुलभ है। इनके समान अन्य कौन है। प्रभो, मैं आपकी महिमा को ठीक-ठीक नहीं जानता था अत: माया का प्रयोग कर मैंने आपके प्रति महान् अपराध किया है। कृपा कर आप मुझे क्षमा करें। मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ। देव, एकमात्र आप ही स्तुति करने के योग्य हैं। मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम है, इस पर बिजली की भाँति झिलमिल-झिलमिल करता पीताम्बर शोभायमान हो रहा है, आपके गले में घुँघची की माला, कानों में मकराकृति कुण्डल तथा सिर पर मोरपंखों का मुकुट है, इन सबकी कान्ति से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्ष:स्थल पर लटकती हुई वनमाला और नन्हीं-सी हथेली पर दही-भात का कौर है। बगल में बेंत और सींग तथा कमर की फेंट में आप की पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है। पत्थर को भी पिघला देनेवाले कमल-से भी कोमल आपके सुकुमार चरण हैं। मैं मोहित था अत: यह न जान सका कि मेरे आराध्य देव ही आज नन्द-नन्दन के रूप में ब्रज में विराजमान हैं।

प्रभो, आपने अपना यह श्रीविग्रह हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिये अपनी इच्छा से धारण किया है। यह पंचभूतों से बना हुआ नहीं है। विशुद्ध चिन्मयस्वरूप है। इसकी महिमा को कोई भी व्यक्ति अपने अन्त:करण से, समाधि से भी नहीं जान सकता है तो फिर आपके ब्रह्मस्वरूप की महिमा को जानना तो दूर रहा।

भगवन् आपकी भक्ति सारे कल्याणों की जड़ हैं, उद्गम-स्थल है। जो उसे छोड़कर केवल ज्ञान-प्राप्ति का प्रयास करते

हैं वे क्लेश के तथा दु:ख के ही भागीदार बनते हैं। जिस तरह से भूसी कूटनेवाले को केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं। प्रभो, इस लोक में पहले भी अनेक योगी हो चुके हैं। योग के द्वारा जब उन्हें आपकी प्राप्ति नहीं हुई तब उन लोगों ने अपने समस्त कर्मों को आपके चरणों में समर्पित कर दिया। उससे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उसके द्वारा उनलोगों ने आपके स्वरूप को जाना तथा बड़ी ही सुगमता से आपके परमपद की उन लोगों ने प्राप्ति की।

हे अच्युत, इतिहास इस बात का साक्षी है कि बहुत से योगी योग-साधना में सफल न होने पर आपकी कथा के श्रवण से प्राप्त भक्ति का आश्रय लेकर ही बड़ी सुगमता से परमपद के भागीदार बने। देव, इस संसार में पृथ्वी के धूलि-कण, आकाश में स्थित ओस की बूँदें और उसमें चमकनेवाले तारे भले ही कथञ्चित् गिन लिये जाँय, किन्तु आपके इस सगुण स्वरूप के अनन्त गुणों को गिनना संभव नहीं है। इसलिये हे मेरे स्वामी, जो पुरुष प्रतिक्षण आप की कृपा का बड़ी उत्सुकता के साथ भली-भाँति अनुभव करता रहता है; प्रारब्धवश जो कुछ भी सुख-दु:ख मिल जाय उसे निर्विकार मन से भोग लेता है एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद् वाणी और पुलकित शरीर से आपको सर्वदा प्रणाम करता रहता है, वह आपके परमपद का अधिकारी अनायास उसी प्रकार बन जाता है जैसे पुत्र अपने बाप की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो जाता है।

माता-पिता अपने शिशुके अपराधको भी देखकर आनन्दित होते है। मैंने अहंकारवश कुछ कर दिया है; किंतु आपका हूँ। आपका पदाश्रित हूँ। आपकी कृपाका आकांक्षी हूँ। आपके स्वरूप आपकी महिमासे सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। अब आपही मेरी ओर देखकर अनुकम्पा करें।

हे प्रभो, मेरी दुर्जनता तो देखिये कि मैं अपनी माया का विस्तार कर आपकी महिमा जानने का प्रयास कर रहा था। मेरे देव, मैं आपके सामने उसी प्रकार नगण्य हूँ, जैसे उठती हुई आग की लपटों के सामने चिनगारी। आप मुझे अपना भृत्य समझते हुए मेरे अपराध को क्षमा करें। जब बच्चा माँ के गर्भ में रहता है, तब वह अज्ञानवश अपना हाथ-पैर चलाता रहता है किन्तु माता उस पर कभी क्रुद्ध नहीं होती। ऐसे ही ब्रह्माण्ड की कोई वस्तु है क्या, जो आपकी कुक्षि से बाहर हो? मैं भी आपकी कुक्षि के भीतर का एक प्राणी हूँ अत: मेरे अपराध को क्षमा करें।

श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जल में विलीन थे, उस समय उस जल में स्थित नारायण के नाभि-कमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ था। उनका यह कथन कथापि मिथ्या नहीं हो सकता। तब आप ही बताइये, प्रभो, क्या मैं आप का पुत्र नहीं हूँ? आप मेरा अपराध क्षमा करें। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र- ये त्रिदेव आपके ही स्वरूप हैं। भक्तों की रक्षा और दुष्टों के संहार के लिये आप युग-युग अवतरित होते रहते हैं। आपकी लीलाओं से पार पाना किसी भी व्यक्ति के लिये संभव नहीं है। यह संसार स्वप्न की भाँति मिथ्या है किन्तु अधिष्ठानरूप आप की सत्ता के कारण सत्य-सा प्रतीत होता है। सत्य तो केवल इसमें एकमात्र आत्मा ही है। जो गुरु-कृपा से इस रहस्य को समझ जाते हैं, वे इस मिथ्या संसार-सागर को पार कर जाते हैं।

जिन्हें ज्ञान नहीं हुआ, जो रहस्य से वंचित रह गये, उनके लिये ही यह जीवन-मरणरूप संसार जैसे-का तैसा बना रहता है। सच तो यह है कि संसार-सम्बन्धी बन्धन और मोक्ष- ये दोनों ही नाम अज्ञान से कल्पित हैं। वास्तव में ये अज्ञान के ही दो नाम हैं। सत्य और ज्ञानरूप परमात्मा से इनका भिन्न अस्तित्व नहीं है जैसे सूर्य में दिन और रात का भेद नहीं है, उसी प्रकार आत्मा में भी बन्धन-मोक्ष नहीं है। भगवन्, महान आश्चर्य की बात है कि आप हैं अपने आत्मा पर लोग आपको पराया मानते हैं और शरीर आदि हैं पराए किन्तु उनको आत्मा मान बैठते हैं और इसके बाद आपको कहीं बाहर ढूँढने लगते हैं। अज्ञ जनों की यह अज्ञानता तो देखिये। प्रभो, सत्य तो यह है कि जिन पर आपके चरण-कमल की कृपा होती है, वे ही आपकी महिमा के तत्त्व

को समझते हैं। दूसरे लोग साधन करते-करते थक जाते हैं, किन्तु आप की महिमा का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

ब्रह्माजी कहते हैं कि- भगवन्, मुझे इस जन्म में, किसी दूसरे जन्म में अथवा किसी पशु-पक्षी आदि के जन्म में कुछ ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासों में कोई एक दास बन जाऊँ और फिर आपके चरण-कमलों की सेवा कर सकूँ। ये व्रजवासी गायें और गोपियाँ धन्य हैं, जिनके स्तन को वत्स और बालक बनकर आपने अपने मुख से पिया है अन्यथा बड़े-बड़े यज्ञ भी आज तक आपको तृप्त न कर सके। अहो, नन्दबाबा के व्रज में निवास करनेवाले गोपों का भाग्य कितना आश्चर्यजनक है। दुनियाँ में देखा यह जाता है कि लोग भगवान् की भक्ति करते हैं, उनके सखा बनते हैं, उनके प्रति मधुरभाव धारण करते हैं, परन्तु इस व्रज में तो इसका उल्टा ही है। आपही उनके सखा बनने का सम्बन्धी होने का प्रयास करते देखे जाते हैं।

ब्रह्माजी बोले- ऐसे व्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा का क्या कहना। किन्तु मन आदि ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता के रूप में निवास करनेवाले महादेव आदि हम लोग भी बड़े ही भाग्यवान् हैं क्योंकि इन व्रजवासियों की मन आदि ग्यारह इन्द्रियों को प्याला बनाकर हम आपके चरण-कमलों का, अमृत से भी मधुर, मदिरा से भी मादक और आसव से भी अधिक सर्व-रोग-निवारक, मधुर मकरन्द रस का पान करते रहते हैं।

प्रभो, आपसे मेरी एक विशेष प्रार्थना है- नाथ, यदि मेरा जन्म कभी इस भूतल पर हो तो आपकी क्रीडाभूमि वृन्दावन में हो। उसमें भी यदि गोकुल में हो जाय तब तो मेरे भाग्य की सीमा ही नहीं है। नाथ, मेरी इच्छा है कि यहाँ मैं कोई घास बन जाऊँ, कोई लता या तृण बन जाऊँ, जिससे कि गोकुलवासियों की चरणधूलि उड़-उड़ कर मेरे ऊपर पड़ती रहे। इससे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। इसका कारण यह है कि श्रुतियाँ भी अनादि काल से आपके चरणों की धूलि को खोज रही हैं और आज तक प्राप्त न कर सकीं। ऐसी महिमा से मण्डित आप गोकुल निवासी गोपों के जीवन-धन होकर उनके साथ क्रीडा कर रहे हैं। धन्य-धन्य हैं व्रज के गोप और गायें।

ब्रह्मा बोले मुझे तो बस ब्रज में ही रखना और व्रजके लोगोंकी चरणधूलि मुझे मिलती रहे। मुझे नहीं चाहिये मुक्ति।

मुक्ति कहे गोपाल सों मेरी मुक्ति कराय। व्रजरज उड़ि मस्तक चढ़े मुक्ति मुक्त होई जाय।।

ब्रह्मा ने कहा- देवों के भी आराध्य प्रभो। इन व्रजवासियों को, इनकी सेवा के बदले, आप क्या देंगे, सम्पूर्ण फलों के भी फल- परमफल तो आप ही हैं। आप से बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोच कर मेरा मन मोहित हो रहा है। आप उन्हें अपने आपको देकर भी तो उऋण नहीं हो सकते क्योंकि आपके स्वरूप को तो अघासुर, बकासुर आदि अपने कुल कुटुम्ब सहित पूतना ने भी प्राप्त कर लिया। उस पूतना ने जिसका कि केवल वेश ही साध्वी स्त्री का था, परतु जो हृदय से महान् कुटिल थी, दुष्टा थी फिर जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र प्राण और मन सब आपके श्रीचरणों में ही समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके लिये ही है, उन व्रजवासियों को भी यही फल देकर आप भला कैसे उऋण हो सकते हैं?

भक्तन के सुखदान भक्तबछल भगवानहरि। नारी पुरुष समान प्रेमभाव के वश सदा।।

मैंने आपके स्वजनोंका अपराध किया है। ये ऐसे महाभाग कि आप भी इन्हें कुछ देनेमें असमर्थ हैं; क्योंकि विष पिलाने आयी बालघातिनी पूतनाको आपने माताका पद प्रदान कर दिया तो अब क्या रहा जो आप इनको दे सकें? इनको-जिन्होंने अपना सर्वस्व अपने प्राण-शरीर सब आपको अर्पित कर रखे हैं और केवल आपकी सेवाको, सुखको अपना सर्वस्व बना लिया है।

भगवान बोले- ब्रह्माजी, इन व्रजवासियों से मैं कभी भी, कुछ भी देकर उऋण नहीं हो सकता। इनका ऋण सर्वदा मेरे ऊपर बना ही रहेगा।

तब हँसि बोलो श्याम गर्व प्रहारी भक्तहित। जाहु आपने धाम वचन हमारो मानि अब।।

ब्रह्माजी ने कहा- प्रभो, तभी तक राग आदि चोर परेशान करते हैं, तभी तक घर कारागार के समान है। मेरे स्वामिन्, जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते हैं, वे जानते रहें; किन्तु आपका ऐश्वर्य मेरे शरीर, मन और वाणी से परे है। मेरे स्वामी, आप सब के साक्षी हैं अत: आप सब कुछ जानते हैं। आप समस्त जगत् के मालिक हैं। यह सारा प्रपंच आप में ही विराजमान है। अब आप मुझे स्वीकार कीजिये। मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दीजिये। श्यामसुन्दर, आप यदुवंशीरूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य हैं। प्रभो, पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप सागर की वृद्धि करनेवाले चन्द्रमा भी आप ही हैं। आप ही सूर्य-चन्द्ररूप से अधर्मरूपी अन्धकार का नाश करते हैं। आप राक्षसों के द्रोही हैं। हम सूर्यपर्यन्त और कल्पपर्यन्त आपको नमस्कार करते हैं। आप जो आभूषण पहने हुए हैं, उनको भी हम नमस्कार करते हैं। अब मैं कल्प के अन्त में ही आपका दर्शन कर सकूँगा अत: मैं आज आपको कल्पभर का पुन: पुन: प्रणाम कर रहा हूँ।

हरि परमानन्दा आतमचन्दा महिमा जान न कोई। जे शुष्क गियानी व्यर्थ पचानी दर्शन तव नहिं होई।।
हे करुणागारे दीन पियारे प्रीत सरस रस पावा। सब सृष्टि हरावे बहुपद पावे हिय तव छवि नहिं आवा।।
हूँ मैं अज्ञाना मरम न जाना रचना नहिं मम बाला। तिन वत्स समेता किया अचेता पर्वत कन्दर घाला।।
मैं बहु अपराधी लीला बाधी दण्ड धरो कोइ भारी। अति बड़ अभिमानी अति अज्ञानी माया मैं मति मारी।।
प्रगट रजोगुणमान मैं, अज जगपति जगधार। निज सेवक मोहिं जानिके, क्षमा करहु करतार।।
ब्रह्म वन्दना जे कथे, चार पदारथ पाय। तीन ताप त्रय गुण रहित, नित्य धाम महँ जाय।।
यद्यपि लियो उठायकै माखनप्रभु उरलाय। तद्यपि रहेउलजाय कै दृगअरु शीशनवाय।।

आप कितने महान हैं और मैं कितना क्षुद्र हूँ। मेरेमें आप गुण देखने जायेंगे तो कहीं गुण है ही नहीं पर आप जगन्नाथ हैं। आप जगन्नाथ हैं- जगत्के नाथ हैं और क्या मैं क्षुद्र जगत्से बाहर हूँ। मैं तो जगत्में ही हूँ न। और आप जगन्नाथ हैं इसलिये आप तो मेरे नाथ ही हैं। भगवन्, इस नाथत्वसे आप कैसे अलग होंगे? यह जो कुछ भी प्रपञ्च-अप्रपञ्च हैं; इस सबके आप नाथ हैं- स्वामी हैं और आप नियन्ता स्वयं भगवान् हैं। यद्यपि मेरे साथ आपकी तुलना नहीं। आपके अशांश और प्रकृतिके अन्तर्यामी सारे प्रपञ्चोंके महाधिपति विष्णु हैं उनके साथ भी आपकी तुलना नहीं होती।

अनादिकालसे अबतक बड़े विधि-विधानसे संपादित हुये यज्ञ समूह जिनको तृप्त नहीं कर सके। कुशल कर्मकाण्डी विप्रवर्ग, सम्पूर्ण विधियोंके द्वारा यज्ञका अनुष्ठान करके भी जिनको तृप्त नहीं कर सके। उस नित्यपूर्णको, परिपूर्णको, नित्य तृप्तको, किसी द्रव्यके द्वारा, साधनके द्वारा तृप्त नहीं किया जा सकता परन्तु आज वही आपने पूर्ण स्वरूप होनेपर भी गोवत्स और गोपबालकोंके रूपमें इन गायोंका और गोपिकाओंका स्तनपान किया।

ब्रह्माजी ने भगवान के प्रिय बछड़ों और बालकों को उनसे वियुक्त कर दिया था अत: वे उनसे कुछ बोले नहीं। मौनद्वारा ही ब्रह्मा को जाने की आज्ञा दे दी। ब्रह्मा जी ने भगवान की परिक्रमा की और पुन: प्रणाम कर उनकी महिमा का स्मरण करते हुए अपने लोक चले गये। उन्होंने बालकों और बछड़ों को पहले ही यथास्थान पहुँचा दिया था।

वत्स लाय आगे दिये, पुन कर दंड प्रणाम। करके चार प्रदक्षिणा, गया द्रुहिण निज धाम।।
वत्सन को ले साथ हरि, गमने पुलिन मझार। यदुनन्दन को देख के, बोले गोप कुमार।।
हे ब्रजनन्दन माधव ताता। अति झटिती आये तुम भ्राता।।
हमने एक ग्रास नहीं खाये। वत्सन को तुम ढूँढ लिआये।।

भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मा जी को विदा कर बछड़ों को लेकर यमुना जी के पुलिन पर आये। वहीं वे पहले अपने मित्र

ग्वालबालों को छोड़कर गये थे। यद्यपि भगवान से बिछुड़े उन्हें पूरा एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन ग्वालबालों को वह समय आधे क्षण के समान जान पड़ा। यह भगवान की विश्वमोहिनी माया का प्रभाव था। इस दुनियाँ में भगवान की लीला ऐसी है कि सभी अपने आप को भूले हुए ही हैं। श्रीकृष्ण को देखकर ग्वालबालों ने कहा- आओ, कन्हैया, आओ कन्हैया। अभी तो हमने एक ग्रास भी नहीं खाया है, हमारे साथ भोजन करो।

बहु विधि विनती करी ब्रह्म निज लोक सिधाये। तब बछरनिकूँ घेरि श्याम भोजन थल आये।।
माया वश सब भूलि कालकी जानी नहिँ गति। निरखि कृष्णकूँ भये ग्वाल सबई प्रमुदित अति।।
बोले- कनुआ, च्यौं करी-देर कहाँ तक तू गयो। तेरी सूँ हमने नहीं, एक कौर मुँहमें दयो।।

बालकों की बात सुनकर भगवान ने हँसते हुए उनके साथ बैठकर भोजन किया और उन्हें अघासुर के शरीर का ढाँचा दिखाते हुए वे वन से संध्या समय व्रज में लौट आये।

सुनत वचन हँस कहैं बिहारी, मोकों चिंता भई तिहारी। निकट चरते इकठौरे पाये। अबघर चलौ भोर के आये।।

वहाँ लौटकर बालकों ने अपने-अपने घर में कहा- आज कन्हैया ने वन में एक बड़ा भारी अजगर मार डाला है और उससे हम लोगों की रक्षा की है।

माखनप्रभु को रूपरस प्रेम सहित सुख पाय। पीवें व्रजवासी सबै चितवत् तृषा बुझाय।।
जन्म भयो जब श्याम को तब से यही उपाध। कहाहोय हमरे यतन विधिगति अगम अगाध।।
दरबार में वंशीबारे के दु:ख दर्द मिटाये जाते हैं, दुनिया के सताये लोग यहाँ सीने से लगाये जाते हैं।।

वो परब्रह्मा ब्रज में नाचता है। जो चाहे उसका कान पकड़ लेता है। जो चाहे वो कन्हैया को घोड़ा बनाकर ऊपर बैठ जाता है। ये बात सबकी समझमें नहीं आती। ये तो मुरली वाले के जो दीवाने होते हैं न, वो ही समझ सकते हैं। भक्ति से जिनका जीवन ओत-प्रोत है, वो ही समझ सकते हैं। कृष्ण से प्रेम मजाक नहीं है। गोविन्द के चरणों में प्रीति मजाक नहीं है। जब तक सर्वस्व समर्पण की भावना नहीं आयेगी, तब तक गोविन्द नहीं मिल सकता।

अभिमान गोविन्द के पास नहीं चल सकता। यहाँ न शंकर का अभिमान चला, ब्रह्मा का अभिमान चूर-चूर हो गया। जिसको अभिमान भेंट चढ़ाना हो, वही गोविन्द के सामने आ सकता है। इतना अपने आपको छोटा समझे, वही गोविन्द के दरबार में आ सकता है। ऐसा त्याग जिसके जीवन में आ जाये, सुख-वैभव छोड़ने की भावना जिसके मन में आ जाये, वही गोविन्द को प्राप्त कर सकता है। ब्रजवासियों के जीवन में जो त्याग है, ये सर्वोत्तम भक्ति है। गोविन्द उन्हें प्राप्त हो गये। कन्हैया उनके हाथ की कठपुतली बन गया। प्रेम की स्थिति सर्वोत्तम है।

राजा परीक्षित ने पूछा- महाराज, श्रीकृष्ण तो पराये बालक थे, अपने पुत्र नहीं थे फिर व्रजवासियों का उनके प्रति इतना प्रबल प्रेम कैसे हुआ?

शुकदेव बोले- राजन, संसार के सभी प्राणी अपनी आत्मा से ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्र, धन आदि से जो प्रेम होता है, वह तो इसलिये होता है कि वे वस्तुएँ आत्मा को प्रिय लगती हैं। कृष्ण को आप सकलजगत् की आत्मा समझें। वे आत्मा के भी आत्मा हैं, कारणों के भी कारण हैं। इसीलिये मनुष्य स्वभावत: सबसे अधिक भगवान से प्रेम करता है। कृष्ण के प्रति व्रजवासियों के प्रेम का मूल कारण यही था। जो लोग भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का आश्रय लेते हैं, उनके लिये यह दुस्तर संसार-सागर बछड़े के खुर के गड्ढे के समान सरलता से सन्तरणीय हो जाता है।

राजन्, सुख-दुख, मान-अपमान मन के विषय है। अपनी सुख-शान्ति के निमित्त लोग अपने परिवार से विद्रोह कर

बैठते हैं। मन को मोहनेवाला तो मनमोहन है, उसके कृत्य से लोग इतना मोहित है कि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण से मोह करके परमानन्द की प्राप्ति करते हैं।

जो लोग भगवान श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूप को जानते हैं, उनके लिये तो इस जगत्में जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, इससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्स्वरूप हैं, सभी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं। सभी वस्तुओंका अन्तिम रूप अपने कारणमें स्थित होता है। उस कारणके भी परम कारण हैं भगवान श्रीकृष्ण।

वत्स चराये घर चाले मृत अजगर देखा। सूख गया सब चमड़ा उसका पर्वत लेखा।।
आज परी बहु धूप तांही सों सूखा सर्पा। खेलन बड़ी सुपास कन्हैया हम कहँ अर्पा।।

शाम के समय बछड़े चराकर घर जाते समय बालकों ने अघज्ञसुर का मृतक शरीर देखा। पर्वत के आकारवाले उस अजगर के शरीर का चमड़ा सूख गया था जिसे देखकर एक सखा ने कहा, आज धूप बहुत पड़ी थी न इसीलिए इस सर्प का चमड़ा सूख गया है। हाँ हाँ करते हुए सखा बोले कन्हैया ने हमको खेलने के लिए अजगर को मारकर बढ़िया जगह दे दी है।

राजन्, आपने पूछा था कि कुमारावस्था में किये गये अघासुर के वध की चर्चा बालकों ने पौगण्डावस्था में अपने माँ-बाप से क्यों की? इसका कारण मैंने बतला दिया।

हरि माया मोहित भये, बाल तिरोहित राज। प्रथम वर्ष के कर्म को, यह जाना भा आज।।
घर घर भाखी बालका, अजगर मारा आज। मृत्यु मुख राखा हमें, हरि हमरे सिरताज।।

जो लोग इस लीला को प्रेम से कहते हैं और सुनते हैं, उनके चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। परीक्षित्, इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम ने कुमार-अवस्थाके अनुरूप आँखमिचौनी, सेतुबन्धन, बंदरोंकी भाँति उछलना-कूदना आदि अनेकों लीलाएँ करके अपनी कुमार-अवस्था व्रजमें ही त्याग दी। स्वयं रस मत्त होते और सखाओंको, मित्रोंको सब रसदान करते। **माखन प्रभु भगवान हैं घटघट व्यापक सोय। सबके जीवन प्राण हैं क्यों नहिं प्रीतम होय।।**

इस लीलामें यह बात बतायी गयी है कि व्यक्त-अव्यक्त जो कुछ सृष्टिमें हैं, वह सब परमात्माका स्वरूप है। जैसे भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी माया-छायाके, बिना किसी परमाणुके, बिना किसी प्रारब्धके, बिना किसी उपादानके, बिना किसी जीव-भेदके, बिना किसी अन्त:करणके, अपनेमें एक सृष्टिका चित्र दिखा दिया, ठीक वैसी ही यह विश्व-सृष्टि भगवान् के स्वरूप में है।

यह कुमार-वय-चरित शिशुनि पौगण्डवयसमहँ। कह्यो आइ ब्रज श्याम आज अहि मार्‌यो वनमहँ।।
शुकतें बोले भूप परीक्षित् प्रभु, रुकि जाओ। गयो कहाँ इक वर्ष कृपा करि भेद बताओ।।
कर्म दूसरे छिन कर्‌यो, ग्वाई छिन कहि सकहिं नहिं। कौतूहल मम हृदयमें, समाधान गुरुवर, करहिं।।

७) कृष्ण का गो-चारण- एक दिन कन्हैया अपनी मैया से बोला- मैंया मैं गाय चराने जाऊंगा और मचल गया।

मैया री, मैं गाय चरावन जैहौं। तूँ कहि महरि नंदबाबा सों, बड़ो भयो न डरैहौं।।
श्रीदामा लै आदि सखा सब, अरु हलधर सँग लैहौं। दह्यो भात काँवरि भरि लैहौं, भूख लगै तब खैहौं।।

एक दिन कन्हैया अपनी माँ यशोदा से बोला- मैं अब बड़ा हो गया हूँ। जंगलोंमें, वनोंमें गायें चरानेके लिये जाऊंगा। मैया बोली- शाण्डिल्य मुनि को बुलाकर मुहूर्त निकालकर गाय चरानेके लिये भेजूंगी। पुरोहितजी ने शुभ मुहूर्त निकाला।

सर्वत्र प्रत्येक शुभारम्भ में गणेश-स्मरण किया जाता है। शाण्डिल्य मुनिने साम्ब-शिव सुत गणेश की आराधना की।

गणपतिका विसर्जन नहीं होता। इसलिये गणपति व्रजमें रहनेको विवश है। गणेश विघ्नहर्ता है। जिनके नाम-स्मरणसे ही सब विघ्न विलीन हो जाते हैं, फिर गणेशजी कोई विघ्न कहां उपस्थित कर सकते हैं। कन्हैया ने नन्दबाबा से पूछा कि मैं गाय चराने जाऊंगा। बड़े गोप तो गायें चराते हैं मैं भी कल से सब गायें और बैल चराने ले जाऊंगा।

जनक अर्थना एक हमारी। रावर सन्मुख करें उचारी।। भये पुगंड दोउ हम भ्राता। धेनु चरावेंगे अब ताता।।

नन्द बोले- **तुम सब विध लायक हो ताता। पुरुषसिंह तुम दोनों भ्राता।।**

खुशी रहो जामें तुम दोउ। सब प्रकार प्रिय हमको सोऊ।।

आज्ञा लेकर तात की, मित्रन को ले साथ। धेनु चरावन हेत वन, गमने श्रीयदुनाथ।।

कन्हैया को गायोंको वनमें दूर ले जाना पड़ता है। बहुत सी गायें हैं जो इधर-उधर भागती हैं उनके पीछे बहुत भटकना पड़ता है। बैल आपस में लड़ने झगड़ने लगते हैं यह बालकोंके वशका काम नहीं है। कन्हैया बोला- मैं बड़ा हो गया हूँ। गायें मेरे पुकारनेसे मेरे पास आती हैं, बैल मेरे मना करनेपर लड़ते नहीं। मेरे बुलानेपर सब पशु दौड़कर आ जाते हैं। नन्दबाबा जानते हैं कि कन्हैया कितने हठी हैं। कन्हैया की बात तो माननी ही पड़ती है। बाबा बोले- महर्षि शाण्डिल्यसे पूछकर, पूजन कराके गोचारण आरम्भ करना चाहिये। कन्हैया बोला- मैं भी महर्षिके समीप आपके साथ चलूँगा। कन्हैया अब पाँच वर्ष का हो गया। ताऊ उपनन्द हमेशा कन्हैया का पक्ष लेते हैं। कहते हैं गोपकुमार के लिए गोचारणका उत्साह उज्ज्वल आशाका सूचक है। इसका उत्साह भंग करना उचित नहीं है। महर्षि शाण्डिल्यने कार्तिक शुक्ल अष्टमीका मुहूर्त निश्चित कर दिया।

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं। वृंदावन के भांति-भांति फल, अपने कर मैं खैहौं।।

ऐसी बात कहै जनि बारे, देखो अपनी भांति। तनक-तनक पग चलिहौं कैसे, आवत ह्वै है राति।।

प्रात जात गैया ले चारन, घर आवत है सांझ। तुम्हरौ कमल बदल कुम्हिलै है, रैंगत घामहिं मांझ।।

तेरी सौं मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक। सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, परयौ आपनी टेक।।

हे माता, आज मैं गाय चराने जाऊंगा। वृंदावन में जाकर वहां के तरह-तरह के फलों को अपने हाथ से तोड़कर खाऊंगा। (अपने हाथ से तोड़कर फल खाने का मजा ही और होता है)। यशोदा कहती है कि हे बच्चे, तू ऐसी बात न कर, अपनी आयु वाले बच्चों को देख, कोई गाय चराने नहीं जाता। तुम अपने छोटे-छोटे पांवों से कैसे चलोगे? लौटते-लौटते रात्रि हो जाती है। ग्वाले प्रात:काल गायों को लेकर चराने जाते हैं और सायंकाल घर वापस आते हैं। धूप में चलते-चलते तुम्हारा कमल के समान सुंदर मुख कुम्हला जाएगा। इस पर कृष्ण कहते हैं कि मां, मैं तेरी सौगंध खाकर कहता हूँ कि मुझे धूप नहीं लगती और भूख भी बिल्कुल नहीं लगती। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण कहना नहीं मानते और अपनी जिद पर अड़े हुए हैं।

अब तक श्रीकृष्ण वत्सपाल थे। कार्तिक शुक्ला अष्टमी से वे गोपाल हो गये। इसीलिये लोक में यह अष्टी गोपाष्टमी के नाम से विख्यात हुई। इस गोपाष्टमी के दिन सभी को गोपाल गोविन्द की तथा गौओं की विशेष रूप से- साथ पूजा करनी चाहिये। आज के ही दिन श्याम का नाम गोपाल प्रसिद्ध हुआ। ब्रज नवयुवराज आज गोपाल बन रहा है। ब्रजके लिए, गोपोंके लिए इससे बड़ा महोत्सव और क्या होगा? प्रत्येक गोष्ठ, प्रत्येक गली सजी है। गृहद्वारोंपर तोरण हैं, फल-भारसे झुके कदलीस्तम्भ हैं, सुपूजित कलशोंपर प्रदीप हैं। गोप, गोपियाँ, बालक सब सजे हैं। सब वस्त्राभरण भूषित है। सुसज्जित, शृंगार किये हैं सब पशुओंके।

माँ बोली- कन्हैया जिस जंगल में गाय चराने जायेगा तो तेरे छोटे-छोटे कोमल पैरोंमें जंगलोंके, वनोंके काँटे चुभेंगे। तुझे बड़ा कष्ट होगा इसलिये मैं तुम्हें छोटी-छोटी जुतियाँ बनवा देती हूँ जब वे बनकर आ जायेंगे तब तुम वह पहनकर गाय

चरानेके लिये जाना। कृष्ण बोला- नहीं, मैं तो नंगे पाँव ही जाऊंगा। तू इन गायोंके लिये जूते क्यों नहीं बनवाती। यशोदा बोली- तू तो बड़ा भोला है। भला कहीं गायोंके लिये जूता बन सकता है? गाय तो पशु है भला ये जूते कैसे पहनेंगे? कन्हैया बोला- माँ तो गायको पशु बता रही है। क्या पूजनीय गोमाता पशु है, क्या तुलसी सामान्य घास है? पतित पावनी गंगा क्या सामान्य जलकी नदी है? क्या कल्पतरु सामान्य वृक्ष है? चिंतामणि क्या सामान्य पत्थर है? गैया तो सभी कामनाओंको देनेवाली कामधेनु है। फिर भला यह पशु कैसे हो सकती है? यह भवसागर से पार लगानेवाली है। इससे बढ़कर अन्य कौन देवता हो सकता है? मैया बोली- अच्छा, यह बात है तो तू नंगे पांव ही गाय चराने के लिये जा मैं तुझे मना नहीं करूंगी।

अरुणोदयके साथ ही शंख-ध्वनि हुई और तत्काल श्रृंग, दुन्दुभियाँ बजने लगीं। गायोंने हुंकार की। गायें, वृषभ, बछड़े सब स्नान कराके अलंकृत किये जा चुके हैं। सबके शरीर रत्नजटित झुलोंसे सजे हैं। खुर रजत-मण्डित हैं और श्रृंगोंपर स्वर्णावरण है। कण्ठोंमें मणि-मालाओंके मध्य स्वर्ण-घण्टिकाएँ हैं। वृषभ, गायें, बछड़े सब गोष्ठोंसे निकले और वाद्य-ध्वनिके साथ मण्डपके समीप पहुँचकर शान्त खड़े हो गये। बछड़े तक आज केवल कभी-कभी सिर मात्र हिला लेते हैं।

सूत, मागध, बन्दी सभी उत्सवोंपर स्तवन, वंशविरद-गान करने आते ही हैं। आज तो नट-नर्तक तथा अन्य कला-जीवियोंका समुदाय ही आ गया है।

नीलसुन्दर उत्साह में है। आचार्यका पूजन, विप्रवर्गका पूजन, वृद्ध गोपोंका पूजन- व्रजराज कर दे सकते थे यह; किंतु श्याम आज स्वयं यह सब करना चाहता है। सबके चरणवन्दन कर आया- गोपियोंका अभिवादन करने अन्त:पुरमें चला गया।

शाण्डिल्य ऋषि ने नन्दबाबा और यशोदा के समीप बैठकर कन्हैया के द्वारा गणपति पूजन, नवग्रह पूजन, लोकपाल पूजन, मात्रका पूजन और दिग्पाल पूजन करवाया। यज्ञ कुण्ड में देवताओं के नाम की आहुतियाँ देकर उनका प्रतिपालन करवाया। पूर्ण आहुति के समय देवताओं के लिये घी की अखण्ड धारा चलाई गई। जब कृष्ण ने धर्म को पुकारा तो आवाज सुनकर बड़े भारी वृषभ ने हुँकार भरी।

मोहन अन्त:पुरसे आया। वेत्र-लकुट, मृदुल रज्जु, शृंग और मुरलिका- इन सबका भी तो पूजन करना है। पूजनके पश्चात् व्रजराजने उठाकर अपने लालके करोंमें लकुट दिया। इसे लेकर कृष्णचन्द्र आज गोपाल हो गया है। महर्षि तथा पिताके पदोंमें मस्तक झुकाया मोहनने। महर्षिने शृंग दिया और वृद्ध बड़े ताऊने वाम स्कन्धपर रज्जु सजा दी। वंशी स्वयं इसने उठाकर कछनीमें लगायी।

आचार्यका तथा ब्राह्मणोंका पूजन करके, भोजन कराके उन्हें दक्षिणा देकर विदा करना उचित था। वे अग्र-पूज्य हैं। व्रजेश्वरी बहूने ब्राह्मण-पत्नियोंको भली प्रकार अलंकृत कर दिया। वृद्ध गोपों तथा सम्बन्धियोंका और नट-नर्तकादिका उचित सत्कार भी समझमें आता है।

सबको भली प्रकार भोजन कराके, भरपूर उपहार देकर नन्दरायने परितुष्ट कर दिया है। अब कहीं यशोदा बहूका अंकधन अपने सखाओंके साथ भोजन करने बैठा है। इसका यह उल्लास, यह मित्रोंको हँसाकर परोसना और भोजनकी इस पंक्तिमें प्रधानता तो मधुमंगलकी ही रहनी है। यह ब्राह्मणोंके साथ बहुत मनानेपर भी नहीं बैठा और अब व्रजेश्वरीके सम्मुख जमा बैठा है- भैया। इन सबको रहने दे। मैं अग्रभोजी ब्राह्मण हूँ। तू मुझे ढेर-से मोदक दे दे।

व्रजेश्वरके गोष्ठमें पशु सत्कृत हो गये। आज तो वन-पशु भी यहाँ स्थान-सत्कार पा गये। अपने अग्रज के साथ व्रजराजकुमार आज गोपाल बन गये हैं। गोचारणार्थ चले हैं। पीछे से सज्जित लकुट हस्त सखाओंका समुदाय। गायोंके दोनों पार्श्वोंमें दण्ड लिए गोपोंका सावधान समूह।

मैया ने रोते-रोते बलदेव को छाती से चिपटा कर कहा- बेटा बलदेव, देख तू बल में भी बड़ा है और अवस्था में भी बड़ा है। तू कृष्ण की देख-रेख करना, यह बड़ा चंचल है। किसी बड़े पेड़ पर, चीऊँ डाली पर न चढ़े, अँधेरे कूआ में बहुत ओ-ओ न करे। कँकरीली भूमि में बहुत घूमें नहीं, जिधर काँटे हों उधर न जाय। मैंने इससे कहा था- तू जूता पहिनकर वन में गौएँ चराने जा, किन्तु यह तो किसी की मानना सीखा ही नहीं। कहता था- मैया, जब मेरी गैयाँ ही जूता नहीं पहिनतीं, वे भी नङ्गे पैरों जाती हैं, तो मैं जूता कैसे पहिनूँ। मैं भी नङ्गे पैरों जाऊँगा।

मुझसे तो ढीठ हो गया है, तुझसे कुछ डरता है। तू सदा इसको साथ रखना, पल भर को भी अपने से पृथक् न करना। इतना कहते-कहते माता का कंठ रुद्ध हो गया, वे मूर्छित् होकर भूमि पर गिर गयीं।

स्वच्छन्द वनों में विहार करने में क्या सुख है, क्या आनन्द है, उसे सघन वस्तियों से घिरे उच्च-उच्च स्वर से अट्टालिकाओंवाले बड़े-बड़े नगरों के निवासी बालक क्या जान सकते हैं। मनुष्य का जितना ही प्राकृत जीवन से अधिक संसर्ग रहेगा, वह उतना ही सौन्दर्य प्रिय भोला-भाला तथा सरल जीवन प्रिय होगा जीवन जितना ही कृत्रिमता के पास में आबद्ध होता जायगा, उतना ही उसका आनन्द नष्ट होता जायगा। उसके जो ध्यान, धर्म, सत्य, अनुराग, प्रेम, उदारता आदि स्वाभाविक सद्गुण हैं, वे नष्ट होते जायँगे। उनके स्थान में दम्भ, छल, कपट, बनावट और मिथ्या शिष्टाचार ये दुर्गुण आते जायेंगे। प्राकृत जीवन प्राकृति की गोद में ही बिताया जाता है। प्रात:कालीन उदित सूर्य की आभा कैसी होती है। अस्त होते समय उसकी लालिमा कैसी होती है। शान्त एकान्त वृक्षों के झुरमुट में जो सन्-सन् का शब्द सुनाई देता है, उसका हृदय की धड़कन पर कितना प्रभाव पड़ता है, घोर वन में अपने स्नेहियों को पाकर स्नेह कितना उमड़ता है, हृदय की कैसी दशा होती है, ये बातें कहने से समझ में नहीं आती। एकान्त में गौ बछड़े अपनी मूक भाषा में कितनी बातें करते हैं, वृक्ष कितना स्नेह करते हैं, वे स्पर्श पाकर कितने प्रमुदित होते हैं, इनका अनुभव कोलाहल पूर्ण नगर निवासी नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण भगवान का बाल्यकाल भी वन में विहार करते हुए गौओं को चराते हुए बीता। वे लगभग एक वर्ष तक तो बछड़ों को चराते रहे, तदनन्तर गौओं को चरानेवाले बन गये।

जब पौगण्ड अवस्था आई। पसुपालन संमत दोऊ भाई।।
निज गोधन लै भ्रात समेता। सखन संग नृप कृपा-निकेता।।
बन-बन धेनु चराइ प्रबीने। वृंदावन भू पावन कीने।।
निज पद अंकित करि जदुनंदा। महापुन्यतम छिति सुखकंदा।।

अब कन्हैया साक्षात् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा नन्दनन्दनके रूपमें छोटे-से बालकके रूपमें जंगलोंमें गाय चरानेके लिये जाने लगे और गायोंकी अपनी हाथोंसे सेवा करने लगे। कन्हैया अपने हाथमें डंडा नहीं रखता था, कोई शस्त्र नहीं रखता था। वो तो सिर्फ केवल अपनी हाथ में बन्सी लिये गाय चराने जाता था। जो ब्रह्म बड़े-बड़े महान योगियोंके समाधि लगानेपर भी ध्यानमें नहीं आते, वे ही साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण गायोंके पीछे-पीछे नंगे पांव जंगलोंमें, वनोंमें अपने हाथमें बन्सी लिये घूम रहे हैं। भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक एवं परब्रह्म परमात्मा है। वे विश्वके कर्ता-पालक एवं धारणकर्ता है। समस्त जीवोंका भरण-पोषण करनेवाले भी वे ही हैं। चींटीसे लेकर हाथीपर्यन्त जीवमात्रको खिलाने-पिलानेवाले वे ही हैं। जो आस्तिक और भक्त हैं, उनके लिये तो वे ही साक्षात् योगक्षेमवाहक हैं।

धनि धनि ब्रजके नारिनरधनियशुदाधनिनन्द। विहरतजिनके सदन में ब्रह्मसच्चिदानन्द।।
कहिकहिदेवसिहायँ धन्यधन्यवृन्दाबिपिन। जहाँचरावतगायसकलसुरन सिरमुकुटमणि।।

गोकुलेश गोविन्द प्रभु, त्रिभुवनके प्रतिपाल। गो-गोवर्धन-हेतु हरि, आपु बने गोपाल।।१।।
द्वापरमें दुइ काज-हित, लियौ प्रभुहि अवतार। इक गो-सेवा, दूसरौ भूतल कौं उद्धार।।२।।
गोप-वेश रुचिकर लगत, गो-गोपी गो-बाल। सँग सोभित गोधन विपुल, बिहरत वन नँदलाल।।३।।

कन्हैया गाय चराकर लौट रहे हैं। बड़ी सुन्दर झाँकी है। जिसका अधर भी मधुर है, जिसका शरीर भी मधुर है, जिसके नयन भी मधुर हैं, जिसका हँसना भी मधुर है, जिसका हृदय भी मधुर है, जिनका चलना भी मधुर है- जिसकी वेणु मधुर है, जिस बालुका पर खड़े हैं, वो बालू भी मधुर हैं, जिस हाथ से मुरली पर स्वर चला रहे हैं, वो भी मधुर है और उनका चरण भी मधुर है, उनकी माला भी मधुर है, यमुना भी मधुर है, जिन गलियों में होकर निकलते हैं वो गली भी मधुर है, यमुना का जल भी मधुर है, यमुना में खिलनेवाले हैं वो भी मधुर हैं, सब कुछ मधुर है, गोप भी मधुर हैं, गैया भी मधुर हैं, सबकुछ मधुर है।

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्। हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।१।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं बलितं मधुरम्। चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरम्। नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्। रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्। वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।५।।
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा। सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।६।।
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्। दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा। दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।८।।

८) धेनुकासुर का वध- श्रीकृष्ण पाँच वर्ष पूरे कर छठे वर्ष में प्रविष्ट हुए। छठे वर्ष के कार्तिक शुक्ल अष्टमी को श्रीकृष्ण की गोचारण-लीला प्रारम्भ हुई। इसीलिये उसे गोपाष्टमी कहते हैं।

छठे वर्ष में प्रवेश करने पर एक दिन कन्हैया ने यशुमति से कहा- मैया, देखो अब मैं बड़ा हो गया हूँ अत: गायों को चराने जाऊँगा। यशोदा बोली- मेरे लाल, अभी तो तू छोटा ही है। जरा और बड़ा हो जा फिर अच्छा-सा मुहूर्त दिखलाकर मैं तुझे गोपाल बनाऊँगी।

इसी बीच पुरोहित शाण्डिल्य ऋषि का आगमन हुआ। यशोदा ने उन्हें कन्हैया का जन्माक्षर देते हुए गोापाल बनाने का मुहूर्त पूछा। इस पर ऋषि ने कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी का मुहूर्त दिया। कन्हैया उस दिन गोपाल बनने वाले थे। उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि उनकी नींद भी गायब हो गई। उन्होंने कहा- मैया, मुझे गायों से बड़ा प्रेम है। मैं इनकी पूजा करूँगा।

प्रात:काल हुआ। कन्हैया स्नान आदि से निवृत्त हुए ही थे कि शाण्डिल्य ऋषि आ गये। कन्हैया ने गायों की पूजा की।

यशोदा मैया ने कन्हैया को अंग-वस्त्र और पादत्राण पहनाना चाहा तो उन्होंने कहा- मैया, मैं गोपाल हूँ, गायों का सेवक हूँ, गायें नंगे पैर रहें और गायों का सेवक जूते पहने, क्या यह शोभा देगा? मैया ने कहा- बेटा, गायें तो पशु हैं। इनकी बात कुछ और है। इस पर कन्हैया ने कहा- मैया, ऐसा कभी मत कहना। गायों में सारे देवों का वास है अत: वे मेरी पूज्य गैया मैया हैं। मैं तो गायों का सेवक हूँ।

कृष्ण जब तक गोकुल में रहे तब तक उन्होंने बड़ी दृढ़ता से चार नियमों का पालन किया- उन्होंने गोकुल में सिले हुए

कपड़े कभी नहीं पहने; क्योंकि उनके साथी ग्वाल-बाल बड़े गरीब थे। अस्त्र-शस्त्र नहीं धारण किये। सिर के बाल कभी नहीं उतरवाये और कभी जूते नहीं पहने।

बलराम और गोपबालों के साथ गायों को आगे करके भगवान् श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में प्रवेश किया। नग्न पद से विचरण करते हुए उन्होंने वृन्दावन को परमपावन बना दिया। गोपबालक उनके पीछे-पीछे उनका यशोगान करते हुए चल रहे थे। वृन्दावन हरी-हरी घासों एवं रंग-बिरंगे फूलों से अलंकृत था। उसे देखकर भगवान ने मन-ही-मन उसमें विहार करने का संकल्प किया। उन्होंने देखा कि बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलों के भार से झुक कर उनके चरणों का स्पर्श कर रहे हैं, तब उन्होंने आनन्दित होकर मुस्कराते हुए अपने अग्रज बलराम जी से कहा- भैया, वृन्दावन के ये बड़े-बड़े वृक्ष फलों और फूलों का उपहार लेकर आपके चरणों में झुककर प्रणाम कर रहे हैं। ये सभी कभी बड़े-बड़े भक्त थे, सन्त थे, अब अपनी इच्छा से वृन्दावन के वृक्ष बन गये हैं। गाय, बछड़े एवं हरिण आदि होने की अपेक्षा उन्होंने वृक्ष बनना अधिक अच्छा समझा क्योंकि गायों को कभी-कभी दान देकर नन्द बाबा उन्हें वृन्दावन से बाहर भेज देते हैं अत: उन लोगों नें निश्चल वृक्ष बनना अधिक समीचीन समझा। व्रज से बाहर जाना ही तम है। उसके नाश के लिये ही इन सन्तों ने व्रज के वृक्ष बनना पसन्द किया। भ्रमरों का झुण्ड आप की मंगलमयी कीर्ति का गान करते हुए आपके पीछे-पीछे भ्रमण कर रहा है। आप छिपकर मानवयोनि में आये तो आपके ये भक्त भी आपका यशोगान करने के लिये अपने को बदल कर भ्रमररूप में आये हैं। नृत्य करके मयूर, कटाक्षपातद्वारा हरिणियाँ और मधुर-मधुर स्वरों से कोकिलाएँ आपका स्वागत कर रही हैं। आपके चरण-स्पर्श से वृन्दावन का भूतल, तृण तथा कर स्पर्श से वृक्ष-लताएँ भी धन्य-धन्य बन रही हैं। अपने घर आये हुए आपका ये सब स्वागत कर रहे हैं। वस्तुत: सत्पुरुषों का यही स्वभाव है कि वे अपने यहाँ पधारे हुए की अपनी शक्तिभर सेवा करें।

परीक्षित्, इस प्रकार परम सुहावन वृन्दावन को देखकर भगवान श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे अपने सखा ग्वालबालों के साथ गोवर्धन की तलहटी में, यमुना के तट पर गायों को चराते हुए विविध लीलायें करने लगे। वे कभी ग्वालबालों के साथ भ्रमरों के स्वर में स्वर मिलाकर गुनगुनायें, कभी कलहंसों के साथ कूंजन करें, कभी मयूरों के साथ नाचें। कभी मेघ-गम्भीर ध्वनि से गायों को बुलावें, कभी पक्षी और पशुओं की ध्वनियों की नकल करें। जब कभी बलराम जी किसी गोप-साथी की गोद में सिर रखकर लेट जाँय तो वे उनके चरणों को दबावें।

व्रज ऐश्वर्य भुलाइकें, त्रिभुवनपति हरि रमापति। बाल सुलभ क्रीड़ा करहिँ, सुख ब्रज-जीवनि देहिँ अति।।

भगवान को जब जैसी लीला करनी होती है, प्राणियों के हृदयों में तब तैसी प्रेरणा कर देते हैं। वे ही सबको अपनी इच्छानुसार नचा रहे हैं। असुर भी उनकी प्रेरणा से चेष्टा करते हैं और सुर भी। सबके नियामक वे ही घनश्याम है। सबके प्रेरक वे ही प्रभु हैं।

त्रेता में कृष्ण थे राम और बलराम थे लक्ष्मण। लक्ष्मण राम का पैर दबाकर उनकी सेवा करते थे। इस अवतार में, उस सेवा का बदला चुकाने के लिये ही, कृष्ण छोटे बने हैं और शेषावतार बलराम को अपने से बड़ा बनाया है। श्रीकृष्ण अब उसी सेवा का बदला चुका रहे हैं।

राम और श्याम कभी ग्वालबालों की क्रीड़ा देखकर हँसे और कभी उनकी प्रशंसा करें। कभी-कभी कृष्ण स्वयं भी उनके साथ कुश्ती लड़ते। थक जाने पर कोमल पल्लवों की शैया बनाकर वृक्ष के नीचे लेट जाते थे। उस समय कोई उनका सिर अपनी गोद में रख लेता। कोई उनका पैर दबाता और कोई उनको हवा डुलाता था। लक्ष्मी जिनकी चरण-सेवा के लिये लालायित रहती हैं, वे ही भगवान् यहाँ ग्रामीण बालकों के साथ बड़े प्रेम से ग्रामीण खेल खेल रहे थे। किन्तु ऐसा होने पर भी

कभी-कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी प्रकट हो जाया करती थीं। जब ग्वालबाल नाचने-गाने लगते या ताल ठोंक-ठोंककर एक दूसरेसे कुश्ती लड़ने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथमें हाथ डालकर खड़े हो जाते। कभी-कभी स्वयं श्रीकृष्ण ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते।

श्रीदामा, सुदामा आदि नाम भगवान को बहुत प्रिय हैं। बलराम और श्रीकृष्ण के बहुत से मित्र थे। उनमें श्रीदामा नाम का गोप बालक प्रधान था। एक दिन उन्होंने तथा सुबल और तोककृष्ण (छोटे कृष्ण) आदि ग्वालबालों ने श्याम और राम से बड़े प्रेम से कहा- यहाँ से थोड़ी दूर पर ताल नाम का एक सुन्दर वन है। वहाँ बहुत-से ताल के विशाल वृक्ष हैं। सब पके-पके फलों से लदे हुए हैं। फल बहुत ही सुन्दर और स्वादिष्ट हैं। उनकी सुगन्ध यहाँ तक आ रही है। बहुत-से फल वहाँ गिरे हैं और सर्वदा टपकते भी रहते हैं। उनको खाने की हमारी बड़ी इच्छा हो रही है। इस पर भगवान् ने कहा तो जाकर लाओ। इस पर गोपों ने कहा- अरे भैया, वहाँ धेनुक नाम का एक दुष्ट दैत्य रहता है। उसने उन फलों पर रोक लगा रक्खची है। अब तक उसने अनगिनत मनुष्यों को मार कर खा लिया है अत: कोई भी व्यक्ति उसके भय से वहाँ नहीं जाता है। उसका डर इतना महान् है कि पशु-पक्षी भी उस जंगल में नहीं जाते। बलदाऊ और भैया कृष्ण, यदि आप उचित समझें तो उन फलों को आज हमें अवश्य खिलावें।

धेनुकासुर तो वृन्दावन के पास अवस्थित राजकीय ताड़-वन का रक्षक था। गधे के समान उसका मुख था और वह अत्यन्त भयानक और बलशाली था। एक ही साथ लगातार वह कई ताड़ों को जड़-मूल से उखाड़ने में समर्थ था। उसका विशेष दाँव था पद-प्रहार। गधे की तरह वह इस तरह दुलत्ती झाड़ता था कि दुश्मन के मर्म-स्थल ही व्यर्थ हो जाते थे और बेचारा बात-की-बात में काल कवलित हो जाता था।

चलो तालवन प्रिय फल खावो। धेनुक से डर जनि उर पावो।।
विघ्न करेगा धेनुक जोई। बक अघ की गति लेगा सोई।।

ग्वालबालों की बात पर राम-श्याम को हँसी आ गई और फिर उन सबको लेकर वे उस वन में चले गये। वहाँ पहुँचते ही महाबली बलराम ने वृक्षों को पकड़कर जोर से झकझोर दिया जिससे बहुत से फल तड़ातड़ भूतल पर गिर पड़े। फलों के गिरने की आवाज सुनते ही क्रुद्ध होकर धेनुकासुर बलराम को मारने के लिये दौड़ा। उसने बड़े जोर से रेंकते हुए बलराम की छाती पर दुलत्ती से प्रहार किया। जब फिर दुबारा दुलत्ती से उन पर प्रहार करने का प्रयास किया तो बलराम जी ने अपने दाँयें हाथ से उसके दोनों पैरों को पकड़ कर आकाश में घुमाना शुरू किया और तब तक घुमाते रहे जब तक कि उसके प्राण-पखेरू उड़ नहीं गये। निर्जीव हो जाने पर उन्होंने उसे ताड़ के पेड़ पर दे मारा। उसके धक्के से बहुत-से वृक्ष धराशायी हो गये।

खरको पिछले पदन से, गह करके बलधाम। घूम घुमाकर द्रुमन पर, मारत भा बलराम।।

वन की भूमि तालों, ताल के फलों से पट गई। यह देखकर धेनुक के अनुयायी बलराम और कृष्ण पर टूट पड़े। राम और कृष्ण ने पास में आये हुए दैत्यों का पैर पकड़ कर सब को वृक्षों पर दे मारा। अब जिधर देखिये उधर फल, वृक्ष और मरे हुए दैत्य ही दिखलाई पड़ते थे। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि शत्रु को सामने से नहीं पीछे से वार करे।

इस दृश्य को देखकर देवता लोग राम और श्याम पर आकाश से फूलों की वर्षा करने लगे। बलराम और कृष्ण की कृपा से बालकों ने छककर तालफलों का आस्वाद लिया। जिस दिन धेनुकासुर मरा उस दिन से लोग निर्भय होकर उस वन के ताल-फल खाने लगे तथा पशु भी स्वच्छन्दता के साथ वहाँ की घास चरने लगे।

बलदाऊ ने वध कियौ, धेनुकासुर को जाय। ग्वाल बाल प्रमुदित भये, मधुर मधुर फल खाय।

तांके बांधव क्रोध कर, आये रण के हेत। राम श्याम ने तास सम, मारे सब रण खेत।।

धेनुक-कानन में विचरण करके सायंकाल भगवान् कृष्ण बड़े भाई बलराम जी और ग्वालबालों के साथ व्रज में आये। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की घुँघराली अलकों पर गायों के खुरों से उड़-उड़ कर धूलि पड़ी हुई थी, सिर पर मोर-पंख का मुकुट शोभा पा रहा था और बालों में सुन्दर-सुन्दर जंगली पुष्प गुँथु हुए थे। उनके नेत्र मधुर-मधुर चितवन और मुख मनोहर मुसकान से सब का मन हर रहे थे। वे चित्ताकर्षक मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वाल-बाल उनकी ललित कीर्ति का गान कर रहे थे। वंशी की ध्वनि सुनकर झुण्ड-की-झुण्ड गोपियाँ व्रज से बाहर निकल पड़ीं। उनकी आँखें न जाने कब से कृष्ण-दर्शन के लिये तरस रही थीं। आनन्दकन्द परमानन्द का दर्शन पाकर गोपियों ने अपने को धन्य माना।

कृष्ण बलराम से बोले- आपके चरणों में यों तो इन्द्रादि बड़े बड़े सभी देवता सिर झुकाते हैं, किन्तु ये बन के वृक्ष भी फलों से लदकर आपके चरणों में अपना सिर झुकाकर फल, पुष्प अर्पण कर रहे हैं। ये भी बड़े बड़े तपस्वी तथा योगीजन हैं। इन्होंने अनेक जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या के फलस्वरूप वृन्दावन धाम में वृक्ष योनि प्राप्त की है, जिससे ये आपको फल स्वरूप अपनी भेंट देकर आपकी सेवा कर सकें। हे भ्राताजी, आप अपने दिव्य रूप को छिपाकर ग्वाल बालों के साथ गोपाल लीला करते हैं, किन्तु फिर भी ये योगीजन तथा तपस्वी मुनिजन अपने आराध्य देव को पहिचान कर भौरों के रूप में आपके गुण गान कर रहे हैं। ये मोर भी आपको अपने घर (बन) में आया हुआ जानकर आपके स्वागत के लिए नृत्य कर रहे है।, मीठे स्वरों से बोल रहे हैं। आपके दर्शनों को आ रहे हैं। वे हिरन हिरनियाँ गोपियों की भाँति आपके स्वागत् के लिए बन में नित्य लालायित रहती हैं। ये अपनी प्रेम भरी चितवन से आपकी ओर निहार रही हैं। वे बनवासी पशु, पक्षी, मृग, मोर, कोयल आदि कितने धन्य हैं तथा पुण्यवान हैं, जो अतिथि सत्कार से ओत प्रोत होकर आपका स्वागत कर रहे हैं। भेंट की सामग्रियों से आपकी पूजा कर रहे हैं। यह ब्रजराज तथा उस पर उगी हुई घास आपके चरणों का स्पर्श करके पवित्र हो रही है। वे लता बेलें तथा झाड़ियाँ आपके कोमल करों का स्पर्श प्राप्त करके अपने को सौभाग्यशाली मान रही हैं। ब्रज की नदी, पर्वत, पशु, पक्षी, ब्रज की गोपियाँ, गोप ग्वाल सभी बड़े तपस्वी तथा आपके वे भक्तजन हैं, जिन्होंने आपकी प्राप्ति के लिए पूर्व जन्मों में बड़ी घोर तपस्यायें की हैं। आपने अपने स्पर्श से उन्हें कृत कृत्य कर दिया। जिस अङ्ग स्पर्श के लिए स्वयं लक्ष्मी जी तरसती रहती हैं, उस अङ्ग स्पर्श को ब्रज की गोपियाँ आपको गोद में उठा उठा कर अपनी छाती से लगा कर लाड़ लड़ाकर प्राप्त करती हैं।

व्रज की गोपियाँ कृष्ण के दर्शन के बिना दिन भर सन्तप्त होती रहीं। अब सायंकाल वे निर्निमेषनयनों से कृष्ण को निहार-निहार कर अपने नेत्रों को शीतल बना रही थीं। भगवान् ने भी उनकी प्रेमभरी तिरछी चितवन का सत्कार स्वीकार करते हुए गोकुल में प्रवेश किया। पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणी ने अपने-अपने लाला को उबटन लगाया, स्नान कराया, सुन्दर वस्त्रों और रुचिर मालाओं से अलंकृत कर स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजन करके दोनों भाई सुन्दर सुकोमल शय्या पर शयन किये।

दिन भर स्वच्छ वायु में वन उपवनों में गौओं के पीछे-पीछे घूमने से भूख भी बहुत लगी हुई थी, माताओं के स्नेह सत्कार और आग्रहपूर्वक परसे हुए सुस्वादु अन्न से बुभुक्षा पिपासा, शोक, मोह तथा जरा मृत्यु इन षड़र्मियों से रहित होने पर भी दोनों ने अपनी बुभुक्षा को शान्त किया।

साँझ समय श्रीश्याम सखनि सङ्ग सुखतें आवत। मन्द-मन्द मुसकात मधुर स्वर वेनु बजावत।।
करि प्रवेश ब्रजमें सकल, विरह ताप सबको हर्‍यो। भोजन करि दाऊ सहित, श्याम शयन शय्या कर्‍यो।।

जो लोग शरीर को ही आत्मा मानकर सन्तुष्ट हो उसका लालन-पालन करते हैं, वे देहाध्यासी हैं। ऐसे लोग अपने शरीर के लिये संसार का अपमान करने से हिचकते नहीं हैं। धेनुकासुर देहाध्यासी था। भगवान अथवा भगवान का अंश ही

देहाध्यास से छुटकारा दिला सकता है।

धेनुकासुर प्रह्लाद का वंशज था। कृष्ण ने प्रह्लाद से कहा था- अर्थात् तुम्हारे वंश में उत्पन्न किसी भी व्यक्ति का वध मेरे हाथों से नहीं होगा। यही कारण था धेनुक का वध कृष्ण ने नहीं किन्तु बलराम ने किया था।

धेनुकासुर अपने पूर्व जन्म में बलि का बेटा साहसिक था। एक बार यह गन्धमादन पर्वत पर तिलोत्तमा अप्सरा के साथ उद्दाम संभोग में संलिप्त था। इसे यह भी ध्यान न था कि पास में ही महर्षि दुर्वासा ध्यानस्थ हो तप कर रहे हैं। साहसिक और तिलोत्तमा की क्रीड़ा से ऋषि का तप भंग हुआ। उन्होंने क्रोध में आकर शाप दिया- जा तू असुर योनि में जाकर गधा बनेगा क्योंकि तू गधे के समान भोगी है और बलराम के हाथों मारे जाने पर तेरा उद्धार होगा। यह तिलोत्तमा भारतवर्ष में बाणासुर की बेटी बनकर जन्मेगी। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के आलिंगन-पाश को प्राप्त कर यह शाप से मुक्त होगी।

तिलोत्तमे भारते त्वं वाणपुत्री भविष्यसि। श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि॥

दैत्यराज बलिका पुत्र साहसिक अपने लोक सुतलसे पृथ्वीपर आया। वह गन्धमादनपर पहुँचा तो अप्सरा तिलोत्तमा भी वहाँ आयी थी। दोनोंका पूर्व परिचय था। दोनों मिले तो परस्पर हास-परिहास प्रारम्भ हो गया। दोनों खिलखिलाकर हँसने लगे। दैत्य तो भारी अट्टहास करनेका अभ्यासी था। इन्होंने ध्यान ही नहीं दिया कि महर्षि दुर्वासा समीप ही ध्यानस्थ बैठे हैं। तुम दोनों मूर्ख हो। ध्यानमें बाधा पड़नेपर महर्षिने क्रोधपूर्वक देखकर शाप दिया- तू गधेके समान उच्चस्वरसे शब्द करता है, अतः गधा हो जा। यह अप्सरा होकर असुरके साथ क्रीड़ा करती है, अतः आसुर योनिमें जायगी।

दोनोंने शाप सुना तो व्याकुल होकर महर्षिके चरण पकड़ लिये। दुर्वासाजीने शापोद्धार किया- अप्सरा तेरे दैत्य-कुलमें ही उत्पन्न होगी। तेरें साथ सटी खड़ी है, अतः तेरे भाई बाणकी पुत्री बनेगी और श्रीवासुदेवके पौत्रका वरण करके पवित्र हो जायगी। तू भगवान संकर्षणके करोंसे मरकर उनका नित्यधाम प्राप्त करेगा।

९) कालिया नाग का दमन- गोपाल रात्रि में विचार कर रहे हैं, मैं कृष्ण बनकर यहाँ क्यों आया? मैं ब्रजवासियों के संकट को कैसे दूर कर सकूँ, ब्रजवासियों के कष्ट की मैं निवृत्ति कर सकूँ।

लिये ग्वाल अरु गाय गये यमुना तट ब्रजपति। आज न सँग बलराम ग्रीष्म ऋतु धाम विकट अति॥
कालियह्रदके निकट प्यासतें सब घबराये। करि विषयुक्त जलपान ग्वाल गौ प्रान गँमाये॥

शुकदेव बोले- राजन्, परमात्मा का अवतार लेनेका एक ही उद्देश्य है। भक्तों को आनन्द कैसे मिले? कन्हैया ने मन में निश्चय किया यमुना में जो कालिया नाग रहता है उसका दमन करना होगा।

है सम्पूर्ण विश्व ही, श्री कृष्ण के उदर भरा। उनके भारी बोझ को, कालिया भला कैसे सहता?
कालिय पर रमण कियो, जोत स्वरूप सोय, यशोदा आछंग कान्हा नाम कहावे सोय।

कालिया नाग भयानक, कई फनोंवाला समुद्री सर्प था वह जो समुद्र के रास्ते गंगा में प्रवेश कर और पुनः गंगा-यमुना के संगम पर यमुना में प्रवेश कर वृन्दावन के इस भाग में आ जमा था। अच्छा-खासा परिवार भी बन गया था उसका। छोटे-बड़े उसके वंशज उस भाग पर अधिकार जमाए बैठे थे। यमुना का पानी वहां दूर-दूर तक विषाक्त हो गया था और अगर भूल से कोई गौ अथवा गो-वत्स वहाँ जल में मुँह लगा दे तो मृत्यु-मुख में जाने में क्षणभर भी नहीं लगता था। ठीक था कि इससे गोधन की क्षति हो रही थी और यमुना का वह भाग वृन्दावनवासियों के लिए व्यर्थ हो गया था।

वह बहुत ही गहरा, क्षोभरहित जल से परिपूर्ण तथा प्रशान्त सागर के समान हलचल से शून्य था। जल में पैदा होनेवाले मगर आदि हिंसक जन्तुओं ने भी उस ह्रद का त्याग कर दिया था। जलचर पक्षियों से भी वह सूना ही था तथा मेघों से

आच्छादित हुए आकाश की भाँति वह अगाध जल से पूर्ण दिखाई देता था। उसके तटों पर बड़े-बड़े बिल थे, जिनमें सर्प रहते थे। उनके कारण उस कुण्ड तक पहुँचना बहुत ही कष्टदायक था। सर्पों की विषरूपी-अरणि से उत्पन्न हुई आग के धूम से वह सारा कुण्ड व्याप्त रहता था। वह पशुओं के उपयोग में आने के योग्य नहीं रह गया था। जलार्थी प्राणियों के लिए उसका जल अपेय हो गया था। तीनों समय स्नान की इच्छा रखनेवाले देवताओं ने भी उसे त्याग दिया था। वह कुण्ड उनके उपयोग में भी नहीं आता था। उस कुण्ड के ऊपर-ऊपर आकाशचारी पक्षियों के लिए आकाश मार्ग से जाना भी असम्भव था। उसके जल में तिनके भी पड़ जाएँ तो वह कुण्ड अपनी विषाग्नि के तेज से प्रज्ज्वलित हो उठता था। उसके चारों ओर एक-एक योजन से अधिक भू-भाग ऐसा था, जिस पर चलना देवताओं के लिए भी कठिन था। वहाँ फैली हुई भयानक विषाग्नि से जो लपटें उठती थीं, उन्होंने आस-पास के छोटे वृक्षों को भी जला कर भस्म कर दिया था। उस कुण्ड में काली अंजन-राशि के समान काला तथा अत्यन्त दारुण नागराज कालिय निवास करता था, जो पक्षीराज गरुड़ के भय से समुद्र का निवास छोड़कर वहाँ आ गया था। उसी ने इस समुद्रगामिनी-यमुना के कुण्ड को विष से दूषित कर दिया था। उस नागराज के भय से ही कोई प्राणी उस देश का सेवन नहीं करता था।

मृत्यु के अपर मुख के समान उस महाभयंकर कुण्ड को देखकर भगवान मधुसूदन ने विचार किया- इसमें दुष्टात्मा कालिय नाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है और जो दुष्ट मेरी विभूति गरुड़ से पराजित होकर समुद्र को छोड़कर भाग आया है। इसने इस समुद्र-गामिनी यमुना के कुण्ड को दूषित कर दिया है। अब इसका जल प्यासे मनुष्यों और गौओं के भी काम में नहीं आता है। अत: मुझे इस नागराज का दमन करना चाहिए, जिससे व्रजवासी लोग निर्भय होकर सुखपूर्वक रह सकें। इन कुमार्गगामी दुरात्माओं को शान्त करना चाहिए, इसलिए ही तो मैंने इस लोक में अवतार लिया है।

काली विषधर अति महा, उगलै मुख से आग। दुष्ट दलन घनश्याम ने, पल में नाथ्यौ नाग।।

एक दिन की घटना है। कन्हैया अपने सखा ग्वालबालों के साथ यमुना-तट पर गये। उस दिन उन लोगों के साथ बलराम नहीं गये थे। ज्येष्ठ का महीना था। गर्मी भीषण थी। गायें और ग्वालबाल प्यास से व्याकुल हो रहे थे इसलिये उन लोगों ने यमुना का विषैला जल पी लिया। उसे पीते ही गाएँ और ग्वाल-बाल अचेत होकर यमुनाजी के तट पर गिर पड़े। ग्रीष्ममें मध्याह्नकी संतप्त पुलिन-रेणुका है। सब दौड़कर ही गये होंगे। प्यासके कारण पहुँचते ही ह्रदका जल पी लिया सबने और निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी यह अवस्था देखकर कृष्ण को दया आ गई। उन्होंने अमृत बरसानेवाली अपनी दृष्टि से देखकर सबको जीवित कर दिया। चेतना आने पर वे सब यमुना जी के तट पर उठ खड़े हुए और आश्चर्य से चकित होकर एक-दूसरे को देखने लगे। अन्त में उन लोगों ने यही निश्चय किया कि- विषैले जल के प्रभाव से हम लोग मर चुके थे। परन्तु हमारे कन्हैया ने अपनी अनुग्रहभरी दृष्टि से देखकर हम लोगों को जीवित कर दिया।

गोप गाय अँचवत भये कालीदह को नीर। निकसत सब अकुलाय कै बैठ गये जलतीर।।
परे सकल मुरझाय जहाँ तहाँ विष झारते। ग्वाल बच्छ अरु गाय भये मनो बिन प्राण सब।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, यमुना जी में कालिय नाग का एक विशाल कुण्ड था। यमुना के प्रवाह से कुण्ड का स्पर्श नहीं होता था। अन्यथा यमुना का जल मथुरावासियों के व्यवहार में नहीं आ सकता था। उसका जल विष की गर्मी से खौलता रहता था। उसके प्रभाव से कुण्ड के ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी झुलस कर उसमें गिर जाया करते थे। भगवानका अवतार तो दुष्टोंका दमन करनेके लिये होता है।

नारद मुनि कंस के पास गये। कंस ने बड़े आदरभाव से नारदजी का स्वागत करके अपने पास बैठाया। नारदजी ने कहा-

हे राजन्, तुम उदास क्यों दिख रहे हो? यह सुनते ही कंस हाथ जोड़कर बोला- महाराज, गोकुल में नन्दजी के यहाँ दो बालक बड़े बलवान उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने अघासुर आदि राक्षसों को मार डाला, उनसे मुझे अपने प्राणों का डर है।

ये दोउ व्रज में नन्दकुमारा। जानि परत हैं कोउ अवतारा।।
कहत जिन्हें बलराम कन्हाई। तिनकी गति मति जानि न जाई।।
अब तुम मुनि कछु कहो विचारा। जेहि विधि मारों नन्दकुमारा।।
मुनि हरि के गुण नीके जाने। सुनि नृप वचन मनहिं मुसकाने।।
तब मुनि बोले नृपतिसों सत्य कहो तुम बात। वे दोऊ, अवतार हैं उन गति जानि न जात।।
हैं वे तुम्हारे काल प्रकट भये व्रज आय कै। नन्दगोप के बाल तुम उनको राखो नहीं।।
नन्द बोले- **मेरे सुत दोउ कंस उर खटकत हैं दिन रात। आज कहेउ ऐसो वचन बलमोहन पर घात।।**
चढ़ि हैं व्रज पर धाय काल्हि सबन पर कोप करि। भयो मरण अब आय को राखे कितजाइये।।

कुण्ड के तरंगों के स्पर्श से और वायुद्वारा लाये गये उस जल-कणों के सम्पर्क से तट के पेड़-पौधे सभी जलकर विनष्ट हो गये थे। वहाँ तट पर एक कदम्ब का वृक्ष था। वही एकमात्र हराभरा था। उसका कारण यह था कि स्वर्ग से अमृत का घट ताले समय कभी उस पर गरुडजी बैठे थे, जिससे अमृत की कुछ बूँदे छलक कर उस वृक्ष पर आ पड़ी थीं। भगवान कृष्ण ने दुष्टों का दमन करने के लिये ही अवतार धारण किया है। उन्होंने देखा कि उस नाग का विष अत्यन्त भयंकर है, यह विष ही उसका बल है, उससे ही यह यमुना दूषित है, अत: उन्होंने यमुना को निर्विष बनाने का निश्चय किया। फलत: अपने दुपट्टे से कमर कस ली ताल ठोंका फिर उस ऊँचे कदम्ब की डाल पर चढ़कर धड़ाम से कूद पड़े उस यमुना-कुण्ड के जल में। उस कालिय नाग के एक सौ फण है, विशाल उसका महल है, बड़ी भारी उसकी सेना है। यमुना जी का जल एक बहुत बड़े दायरे में रुका हुआ है, जिसको हम बोलते हैं ह्रद और ह्रद को ही ब्रजभाषा में हद कहते हैं। इसलिए उसे कालीदह बोलते हैं। ब्रजवासियों को कन्हैया के प्रति वात्सल्य है। कृष्ण को जरा सर्दी भी लग जाये, तो मैया यशोदा सब वैद्यों को बुला लेती हैं। यदि लाला दो घूंट दूध भी कम पी ले तो मैया दुनियाँ भर के ज्योतिषियों को बुला लेती हैं। मेरे लाला ने आज दूध कम क्यों पियौ।

कृष्ण आज प्रात: ही अपने ग्वाल सखाओं से बोले- आज विश्राम का दिन है। गाय चराने की छुट्टी करो। सखा बोले- काय की खुशी में आज छुट्टी कर रहे हो? कृष्ण बोले- आज गेंद खेल खेलेंगे। आज कालीदह पर कंदुक क्रीड़ा करेंगे। सखा बोले- ना बाबा ना हम नहीं जायेंगे। एक सखा बोला- मेरी मैया ने तो एक सौ आठ एकादशी के व्रत किये तब मेरो जन्म भयौ। मैं तो अपनी माँ का एक लौता बेटा हूँ। एक सखा बोला- हमारी मैया ने दस हजार गऊ दान करीं, तब मैं पैदा हुआ। दूसरा सखा बोला- मेरे दादा-परदादान् तपस्या करीं तब मैं यहाँ आया। हम सब अपने एक माँ-बाप के लौते बेटे हैं। कालीदाह पर जाकर मरनौ थोड़े ही है। हम तो नहीं जायेंगे। कन्हैया बोले- अरे काहे कूँ ऐसा बोल रहे हो? हम कालीदाह के पानी में थोड़ी जायेंगे हम तो किनारे पर जो मैदान है वहींपर खेलेंगे। गेंद का खेल खेलेंगे भैया। श्रीदामा बोले- देख कन्हैया, रेशम के पट्टे की गेंद तो मेरे पास में है। कन्हैया बोला- चंदन का बल्ला मेरे पास है। छोटे-छोटे सखाओं के संग गेंद बल्ले का खेल खेलने जा रहे हैं। ऊपर से शंकर जी और ब्रह्माजी देख रहे है और बोले- अरे, ब्रजवासियों, तुमने ऐसा कौन सा सत्कर्म किया जो पूर्णब्रह्म, जिनको योगीजन समाधि से नहीं जान पाते, वो तुम्हारे संग लीला कर रहा है। जरूर तुम लोगों ने कोई बड़ा सत्कर्म किया है। बलरामने कहा- सुनो भैया, अरे लाला कहाँ जा रहे हो? कन्हैया बोला- हो गयी ना गड़बड़। खेलबे जा रहे हैं भैया जी। बलराम बोले- मैं भी तुम्हारे संग चलूँगो। शुकदेव बोले- राजन्, कन्हैया ने

मनमें सोचा- यदि बलरामजी साथ में गये तो ये कालियानाग को मारने नहीं देंगे क्योंकि बलराम है शेषनाग का अवतार। यह शेषनाग ही कलियुग में जगत्गुरु रामानुजाचार्य बने। कृष्ण सोचे- बलराम तो शेषनाग है पर मुझे मारना कालियनाग। यदि बलराम जी साथ में गये तो अपनी बिरादरी का पक्ष जरूर लेंगे मारने नहीं देंगे। कृष्ण बलराम से बोले- भइया जी हमारे संग चलौ तो कोई हरकत नहीं पर हमें बड़ी शर्म लगै। बलराम बोले- कोई बात नहीं, मैं नहीं जाऊंगा पर ज्यादा दूर मत जइयों और यमुना जी में अंदर नहीं, बाहर ही खेलियों। दाऊ से सब डरते हैं। कन्हैया के संग सब खेलने जा रहे है। कन्हैया ने सोचा- यह सखा मुझे ऐसे तो यमुना में कूदने नहीं देंगे। लाला की जब बारी आयी, तो ऐसौ जोर से बल्ला चलायो, सो गेंद धड़ाम से यमुना में गिर गयी और ब्रजवासियों के मन में भावना ऐसी भर दी कि वे लोग अपनी उसी गेंद को माँगने का आग्रह करें। श्रीदामा की गेंद, बरसाने के राजा का पुत्र हैं। बड़ा ही तेज तर्रार। कृष्ण से बोला क्यों रे लाला, तैने मेरी गेंद को यमुना में कायकूँ फेंक दी? कन्हैया बोला- गलती हो गयी भैया। जोर से बल्लो लग गयो, सो यमुना में चली गयी। इसमें मेरी क्या गलती है? श्रीदामा बोला- अच्छा, तुम्हारी गेंद होती तो बल्लो जोर से बिल्कुल नहीं लगतौ। मेरी गेंद तो परायी गेंद थी न, परायी गेंद में बल्लो मार दियो। मैं तो अब वो ही गेंद लेऊंगा। कन्हैया बोला- गलती है गयी। वो गेंद तो कालीदह में गिर गयी। तुम वो गेंद के बदले में पाँच-दस और गेंद ले लो। श्रीदामा बोला- देख लाला, खेलन में कोई छोटो-बड़ौ नहीं होय। तेरे पास पाँच गइया ज्यादा होगी, हमारे पास पाँच गइया कम। बड़ी मेहनत से मैंने रेशम के पट्टे की गेंद बनायी अब मैं तो वही गेंद लेकर मानूँगो। क्यों फेंकी तुमने। सब सखा श्रीदामा की ओर हो गये और कृष्ण से बोले- भैया, बात तो बराबर है, तोकूँ उसकी गेंद देनी पड़ेगी। कन्हैया बोला- देखो, तुम जानौ नहीं हो, मैं बड़ा जिद्दी हूँ। तुम मेरे पीछे पड़ोगे तो मोकूँ गुस्सा आ जायगौ और यदि क्रोध आ गयौ तो यमुना में कूद कै तेरी वाही गेंद को ले आऊंगा। बात इतनी बढ़ गयी कि बात ही बात में सखाओं में तू-तू, मैं-मैं हो गयी।

सकलदेव शिरताज पर न पावैं ब्रह्मशिव। ताहि गेंद के काज फेंट पकड़ झगड़त सखा।।

ग्वालबालों ने देखा- गोविन्द कदम्ब के पेड़ पर चढ़ गया। वो कालीदह में छलांग लगाने की तैयारी में था। सब सखा हाथ जोड़कर बोले- लाला, नीचे आ जा हमें गेंद नहीं चाहिये। हम तो ऐसे ही हंसी मजाक कर रहे थे। नहीं-नहीं भाड़ में जाने दे गेंद, तू नीचे आ जा। कनूँ। उधर मत जा। उतर जा तू। सब सखा एक साथ चिल्लाये। श्रीदाम चौंककर उतरने लगा। वह जहाँ है, वहाँसे अब वह कन्हाईको देख नहीं पाता। नीचे आकर देखा और हृदय धक्से हो गया। वह भी चिल्लाया- जाने दे कन्दुकको। तू उतर आ। इस पुकारके ही पलमें श्रीनन्दननन्दनने ताल ठोंकी और कूद पड़े। हृदका जल सौ धनुषतक उछला और फैलता चला गया।

कोमल तन अति साँवरो साजे नटवर साज। जल भीतर पैठे तहाँ जहँ सोवत अहिराज।।

कृष्ण बोले- श्रीदामा, अब तो वही गेंद लेकर ही आऊँगौ और कृष्ण ने कालीदह में छलाँग लगा दी। जैसे ही बालकृष्ण प्रभु ने यमुना में छलांग लगायी, महल में बैठी माँ यशोदा के हृदय में धक् से आवाज आयी। मैया बोली- अरे मेरौ लाला कहाँ गयौ? आज तो बिना पूछे गयौ है। माँ यशोदा तुरन्त घरसे निकली, बाहर द्वार पर आयी और हर गोप से पूछने लगी- क्या तुमने मेरौ लाला को देख्यौ का? गोपियां बोली- हमने तो नायं देख्यौ। सखाओंसे पूछा सखा भी बोले हमने नायं देख्यौ। नन्दबाबा बोले- क्या बात हो गयी। मैया बोली- आज सबेरे से लाला नहीं है मोय चिंता हो रही है। सामने से बलराम को आते देखा मैया ने पूछा- बेटा बलराम, लाला कहाँ गयौ? कन्हैया कहाँ है? बलराम बोला- वो तो खेलबे गयौ है। **चली रसोई करन मैं छींक भई मोहिं आज। आगे होय बिलारि पुनि गई दूसरे आज।।**

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान् श्रीकृष्ण जिनका अवतार दुष्टों का दमन करने के ही निमित्त हुआ है, उन्होंने प्रचण्ड वेगयुक्त विष की शक्ति से बलवान् कालियनाग को तथा उसके द्वारा दूषित की हुई यमुना को देखा। तब वे कमर के फेंटे को कसकर ताल ठोकते हुए एक बहुत बड़े कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर उस पर से उस विषैले जलवाले ह्रद में कूद पड़े।

चढ़े कदँमपै कृष्ण कूदि कालीदह माहीं। उठि उत्ताल तरङ्ग उछलि जल तटनि डुबाहीं।।
सागरमहँ जनु तरी करें डगमग त्यों नटवर। नीचे ऊपर उछरि करें क्रीड़ा विश्वम्भर।।
निकरि भवनतें अहि लख्यो, शिशु सुकुमार सुहावनो। कर, पद, सब अँग अति मृदुल, मुख प्यारो मनभावनो।।

सभी सखा हाय-हाय करके पुकारने लगे। श्रीदामा ने सोचा कि गेंद के लिए नंदजी का पुत्र मारा गया। वृन्दावन में अनिष्ट सूचक अपशकुन होने लगे। ब्रजेश्वरी के दायें अंग फड़कने लगे तो ब्रजराज के वाम अंगों में स्फुरण होने लगा। कुत्ते ऊपर मुख करके रो रहे थे। दिन में श्रृंगाल स्वर सुनाई पड़ रहा था। देवमूर्ति के नेत्र में अश्रुपात हो रहा था। वायु खर-खर स्वर करती वेगवती हो रही थी।

यशोदा रसोई के भीतर गई थीं, तभी एक गोपी ने छींक दिया। यशोदा अपने द्वार पर ठिठक गईं, उन्होंने सोचा कि बात अच्छी नहीं हुई। आकर आंगन में निकलीं और दोष को मिटाकर वापस आईं, तो बिल्ली आगे से निकल गई। लौटकर फिर वे आंगन में आ गईं। बाईं ओर कौआ बोला और दाहिनी ओर गधे का स्वर सुनाई पड़ा। अब तो वे व्याकुल होकर फिर लौट आईं। इस प्रकार क्षणभर में भीतर जाती हैं और क्षण में बाहर आती हैं और क्षण में आंगन में जाती हैं।

मैया बोली- अरे, तू बाके संग क्यों नहीं गयौ? बलराम बोले- मैया मोकूँ साथ नहीं ले गयौ। यह सुनकर यशोदा तो धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। बलराम बोले- मैया, लाला बड़ा उधम मचाता हैं। सांप की बिल में अंगुली देकर खेलतें, कोई साँप इसको काट जायेगा। जब तेरे सामने ही कृष्ण ऊधम मचाये बिना नहीं मानता, तो आज तो जरूर कालीदह पै चलौ गयौ होयेगो।

गायों के नेत्रों से आँसू झर रहे हैं। पक्षियों की चंचलता समाप्त हो गयी। बछड़े टकटकी लगाकर देख रहे हैं। ब्रजांगनायें अपने कार्य में स्तब्ध हो गयीं। पूरा ब्रजमण्डल दौड़ पड़ा यमुना के किनारे। कृष्ण के जितने सखा थे, सब कृष्ण के वियोग में मूर्छित पड़े हैं। यशोदा ने सखाओं से पूछा- अरे भैया, मेरौ लाला कहाँ है, मेरो कन्हैया कहाँ है? एक सखा बोल्यौ- मैया हमने बहुत मना करी, लाला मान्यौ नहीं और यमुना में कालीदह में कूद गयौ। यह सुनकर नन्दबाबा, मैया यशोदा, समस्त ब्रजवासी अपने आपको वश में नहीं रख सखें और सभी यमुना में कूदकर नष्ट होना चाहते हैं। उसी समय बलराम जैसे-तैसे सबको रोकते हैं और बोले- मैया सुन, तेरे लाला कौ कोई कुछ नायं बिगाड़ सकें। क्यों रोती हो आप? यह छोटा सा कालिया नाग क्या बिगाड़ेगा गोविन्द का। वो तो एक हजार फनवाले शेषनाग पर शयन करते हैं। मैया बोली- अरे बेटा, तू कैसी बात करे है? कन्हैया तो सांप से इतना डरता है कि साँप को देखते ही मेरी गोद में चढ़ जाय। वो तो सांप का चित्र भी नहीं देख सकै।

आज बिना बल गयो श्याम बन गाय चरावन। नर-नारी अति दुखिल लगे सब बन-बन खोजन।।
ध्वज अंकुश व्रजादितें, चिह्नित पद पहिचानकें। पहुँचे कालिय दह निकट, डरे मृतक सब जानिकें।।

बलराम बोले- हे माता, तुम क्यों इतना सोच कर रही हो, वह अविनाशी पुरुष त्रिलोकीनाथ हैं, उसको यमुनाजल में डूबने या कालीनाग के काटने का कुछ डर नहीं। जिन्होंने पूतना को क्षणभर में मार डाला। मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि कोई ऐसा जीव तीनों लोक में नहीं है, जो उसको दु:ख दे सके।

मोहिं दोहाई नन्द की अबहीं आवत श्याम। नाग नाथि ले आवहीं तब कहियो बलराम।।

यशोदा बोली- जब-जब हम लोगों पर दु:ख पड़ता था तब-तब तुम हमारी रक्षा करते थे। अब हम लोग तुम्हारे विरहरूपी सागर में डूब रहे हैं, तब क्यों नहीं आकर इससे बाहर निकालते।

शोकसिन्धु बूड़ी नँदरानी। तन की सुधि बुधि सबै भुलानी।।

व्रजयुवतिन सुनि महरि के वचन प्रेम अधीर। अकुलानी रोवत सबै भई कठिनउरपीर।।

व्रजवासी सब उठे पुकारी। जल भीतर क्या करत मुरारी।

मात-पिता अति ही दुख पावैं। रोय-रोय सब कृष्ण बुलावैं।।

यशोदा बोली- **छाँड़ि महावन या वन आये, तौहू दैत्यन अधिक सताये।।**

बहुत कुशल असुरन ते करी, अब क्यों न दह ते निकसत हरी।।

नन्द बोले- हे बेटा, तू मुझे छोड़कर कहाँ चला गया। तेरे बिना मुझको जगत् अँधियारा मालूम होता है। मैं किस तरह जीऊँगा। इसी दु:ख के मारे गोकुल छोड़कर वृन्दावन में आ बसे थे, सो यहाँ भी तुम्हारे प्राण पर घात लगा। ऐ प्राणप्यारे, जिस तरह तुमने बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर हमको सुख दिया था उसी तरह आज भी मेरे बुढ़ापे की लज्जा रखकर जल्दी अपनी मोहनीमूर्ति दिखलाओ नहीं तो अब मैं मर जाऊँगा।

लोग उठे सब रोय दीन वचन सुनि नन्द के। कहत विकल सबकोय हरि तुम व्रज सूनो कियो।।

भगवान के कूदने से यमुना-ह्रद का जल उछल कर चार सौ हाथ की दूरी तक फैल गया। कुण्ड को ही ह्रद कहते हैं। भगवान ने अपनी भुजाओं से उस कुण्ड के जल को इस प्रकार मथ डाला कि उससे बड़े जोर-जोर का शब्द होने लगा।

सब ब्रजबालायें अपना सिर व छाती पीटकर कहती थीं कि हे मरहरण, तुम हम लोगों को इस दु:ख में छोड़कर जलविहार करने चले गये। आपके बिना सारा व्रज सूना हो गया। अब हमारा दही व माखन कौन चुराकर खायगा। हम सब गोपियाँ किसका उलहना देने यशोदा के पास जावेंगी। आपके विरह में हम लोग मरी जाती हैं, जल्दी बाहर निकलकर हमारे प्राण बचाओ, जल के भीतर बैठे क्या करते हो।

गोपियां बोली- अब हम भी यशोदा के साथ इस सर्पराज के महाकुण्ड में ही डूबी जाती हैं, अब हमें व्रज में जाना उचित नहीं है। सूर्य के बिना दिन कैसा? चन्द्रमा के बिना रात्रि कैसी? साँड़ के बिना गौएँ क्या? ऐसे ही श्रीकृष्ण के बिना व्रज में भी क्या रखा है? श्रीकृष्ण को बिना साथ लिए अब हम गोकुल नहीं जाएँगी, क्योंकि इनके बिना वह जलहीन सरोवर के समान अत्यन्त अभव्य और असेव्य है। जहाँ नीलकमल दल की-सी आभावाले ये श्यामसुन्दर हरि नहीं हैं, उस मातृ-मन्दिर से भी प्रीति होना अत्यन्त आश्चर्य ही हैं।

कितने ही व्रजवासी अपनी सुध-बुध खो बैठे। नन्दराय अत्यन्त विलाप करके बार-बार मूर्छित होने लगे। वे चेत होने पर पुन: रोते तथा रो-रो कर फिर मूर्छित हो जाते थे।

शुकदेव बोले- राजन्, उन ब्रजवासियों ने जब दूर से ही कालिय दह में सर्प-शरीर के बन्धन में जकड़े हुए श्रीकृष्ण को निश्चेष्ट देखा, ग्वालबालों को भी जलाशय के किनारे अचेतनावस्था में देखा तथा सब ओर गौओं को भी आर्त्तस्वर से डकराते देखा तो वे अत्यन्त ही व्याकुल होकर मूर्छित हो गये।

उस समय ज्ञानियों में श्रेष्ठ बलराम ने अत्यन्त विलाप करते हुए नन्द को, शोक से कातर हुई यशोदा को, गोपों और गोपांगनाओं को, रोते हुए समस्त बालकों तथा शोकग्रस्त हुई सम्पूर्ण गोप बालिकाओं को धीरज बँधाते हुए समझाना आरम्भ किया।

जो जगत् का भार उठानेवाले शेष के भी आधारभूत हैं, संहारकारी शमर के भी संहारक हैं तथा विधाता के भी विधाता हैं, उनकी इस भूतल पर किससे पराजय हो सकती हैं? श्रीकृष्ण अणु से भी अणु तथा परम महान् हैं। वे स्थूल से भी स्थूल तथा परात्मपर हैं। उनकी सत्ता सदा और सर्वत्र विद्यमान है, तथापि वे किसी के दृष्टि पथ में नहीं आते हैं। वे ही योगियों के भी सम्यक् योग हैं। श्रुतियों ने स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण दिशाएँ कभी एकत्र नहीं हो सकतीं, आकाश को कोई छू नहीं सकता तथा सर्वेश्वर को कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। श्रीकृष्ण सबकी आत्मा हैं। आत्मा किसी की दृष्टि में नहीं आता। उसे अस्त्रों का निशाना नहीं बनाया जा सकता। वह न तो वध के योग्य है और न दृश्य ही है। उसे आग नहीं जला सकती और न उसकी हिंसा ही की जा सकती है। अध्यात्मतत्व के विज्ञाता विद्वानों ने आत्मा को ऐसा ही माना और जाना है। इन श्रीकृष्ण का विग्रह भक्तों के ध्यान के लिए ही है। ये ज्योति-स्वरूप और सर्वव्यापी हैं। इन परमात्मा का आदि मध्य और अन्त नहीं है। जब सारा ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल में मग्न हो जाता है, तब ये श्रीकृष्ण जल में शयन करते हैं। उस समय इनकी नाभि से जो कमल पैदा होता है, उसीसे ब्रह्मा जी का प्राकट्य होता है। जिन्हें एकार्णव के जल में भी भय नहीं है, उन्हीं परमेश्वर के लिए इस कालीदह में विपत्ति की सम्भावना कितना महान अज्ञान है? हे पिताश्री, यदि एक मच्छर सारे ब्रह्माण्ड को निगल जाने में समर्थ हो जाए तो भी उन ब्रह्माण्ड नायक को वह सर्प अपना ग्रास नहीं बना सकता। यह मैंने परम उत्तम सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान की बात कही है। यह गूढ़ ज्ञान योगियों के लिए सार वस्तु है। इससे समस्त संशयों का उच्छेद हो जाता है।

कालिय नाग की पत्नियां नागिनें कृष्ण की मोहनीमूर्ति की सुन्दरता को देखकर उसपर मोहित होकर कहने लगी तुम ऐसे स्वरूपवान व कोमलतन यहाँ किसलिये आये हो जल्दी भाग जाओ। यहाँ कालिय नाग अभी सोया है नहीं तो उसके जागने पर तुम्हारा अंग विष से जल जायगा।

नागपत्नियाँ वे बहुत पहलेसे श्रीकृष्णचरणारविन्दकी अभिलाषिणी थीं। व्रजेन्द्रनन्दन जब पधारे उनके नागालयमें उस समय इनको देखकरके उनके चित्तमें बड़ा आकर्षण तो हुआ- हर्षोत्फुल्ल हो गया उनका हृदय, परन्तु वह पहचान नहीं सकीं। उनके मनमें यही आया कि छोटा-सा बच्चा कितना सुकुमार, कितना मोहक, कितना मनोहर और यह हमारा पति कितना क्रूर निर्दय यह अभी अगर जाग जायेगा तो इस बच्चेके प्राण नहीं रहेंगे। बच्चेकी प्राणरक्षाके लिये उसकी मोहिनी सूरतपर न्यौछावर हो करके नागपत्नियों ने उस बच्चेसे कहा कि भाई। तुम जल्दी भाग जाओ। यह जग न जायँ हमारे स्वामी, तुम जल्दी भागो। यह तो भागनेके लिये आया ही नहीं था। यह तो आया था कृतार्थ करनेके लिये, फिर भागता कैसे? भागा नहीं।

कहयौ कौन कौं बालक है तू, बार-बार कहि, भगि न जाई।
छनकहि मैं जरि भस्म होइगौ, जब देखै उठि जाग जम्हाई।।

कृष्ण बोले, जाकर के अपने पति को जल्दी जगा दे। नागिन बोली- तुम कालिय नाग से क्या बात करोगे, उसकी एक फुफकार से तुम्हारा शरीर भस्म हो जायगा। हमें तो तेरा सुन्दर रूप देखकर दया आ रही है। अब तू मरने के वास्ते अपनी खुशी से यहाँ आया। तुझे बालक जानकर हम कहते हैं तेरे मरने से तेरे माता-पिता को बड़ा दु:ख होगा। तू बेचारा लड़का अपने प्राण लेकर यहाँ से भाग जा। यह सुनकर कृष्ण बोले-

अरी बावरी सर्प सों काह डरावति मोहिं। जैसो मैं बालक प्रकट वही देखावों कोहि।।
क्यों नहिं देत जगाय देखों मैं याके बलहिं। यापर कमल लदाय लै जैहों यदि नाथिव्रज।।

हे नागिन, सोये हुए को मारना अधर्म है, इसलिए तुझसे जगाने के लिये कह रहा हूँ। नागपत्नियाँ बोली- छोटे मुँह बड़ी बात कहना उचित नहीं। तेरी मृत्यु तुझे यहाँ ले आई है जो तू हमारा कहना नहीं मानता। तुममें कालिय नाग से लड़ने की

सामर्थ्य हो तो उन्हें स्वयं जगा ले।

नाग के सैनिकों ने ऊपर आकर गोविन्द को देखा सभी सैनिक देखते रह गये। कालियनाग के सैनिकों ने कालियनाग से जाकर कहा- महाराज, कमाल हो गया। एक इतना सुन्दर बालक आया है हमने जीवन में पहले कभी नहीं देखा। एक पाँच वर्ष का बच्चा आपके जल में किलोल कर रहा है, नाच रहा है। कालियनाग बोला- पहला आश्चर्य तो यह है कि ये बालक जल में आया कैसे? और दूसरा आश्चर्य यह आया तो जीवित रह गया कैसे? इसको तो मर जाना चाहिये था। मेरे जल का तो स्पर्श करते ही व्यक्ति मर जाते हैं फिर ये जीवित कैसे?

कालिय नाग को यह सहन न हुआ कि कोई उसके स्थान का तिरस्कार करे अत: वह क्रुद्ध होकर भगवान श्रीकृष्ण के सामने वेग से सरकता हुआ आ गया। एक क्षण के लिये उसकी आँखें भगवान के सौन्दर्य को निरख कर निहाल हो गईं। इतना सुन्दर, सुकुमार बालक उसने अपने जीवन में कभी देखा ही नहीं था। कालियनाग ने सोचा इसको मारना तो उचित नहीं। यह बच्चा तो प्यार करने योग्य है। मैं इसे मार नहीं सकता।

कृष्णने अपने पाँव से कालीनाग की पूँछ को दबाया। कालीनाग गरुड़जी के डर से चौंककर उठ खड़ा हुआ। जब उसने देखा कि मेरे सामने एक बालक खड़ा है तब वह आश्चर्यचकित हुआ कि मेरे विष की गर्मी अक्षयवट नहीं सह सकता और कोसों तक के पशु आदि उस गर्मी से भस्म हो जाते हैं, फिर यह कैसा बालक है जिसने जीते पहुँचकर मुझे नींद से जगाया। इतना आकर्षक रूप होने पर भी जब कालिय नाग ने देखा कि बालक तनिक भी भयभीत नहीं हो रहा है तो उसके क्रोध की सीमा न रही। विकराल रूप धारण करके कालियनाग ने एक सौ फन धारण कर झपटकर कृष्ण को पकड़ लिया। उसने श्रीकृष्ण के मर्मस्थलों में डँसने के बाद उन्हें चारों ओर से लपेट कर जकड़ लिया।

ऐसो मनमहँ सोचि क्रोध करि कालिय आयो। डसै दुष्ट करि कोप कृष्ण तनु अँग लपटायो।।
अहि बन्धनमहँ श्यामकूँ, निरखि बाल ब्याकुल भये। गौ बछरा अरु ग्वाल तहँ, मूर्छित सबरे ह्वै गये।।

नाग के द्वारा कस कर लपेटे जाने पर एक क्षण के लिये भगवान श्रीकृष्ण निश्चेष्ट हो गये। यह देखकर उनके प्रिय मित्र सारे ग्वालबाल अत्यन्त भयभीत होकर चिल्ला उठे। उनमें तो कितने मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। गाय, बैल, बछिया और बछड़े भी जोरों से रंभाते हुए ह्रद के तट पर आ गये और रोते हुए एक टक श्रीकृष्ण को ही निहारने लगे।

इधर व्रज में पृथ्वी, आकाश और शरीरों में बड़े भयंकर उत्पात और अपशकुन होने लगे। इन्हें देख कर व्रजवासी नन्द आदि गोप और गोपियाँ सभी भयभीत हो उठे। आज बलराम के बिना ही कृष्ण गायों को चराने गये थे अत: लोग सोचने लगे कि कहीं कृष्ण का कुछ अनिष्ट तो नहीं हो गया। कृष्ण के अनिष्ट की आशंका से वे भय-विह्वल हो उठे। बालक, वृद्ध, वनिता तथा तरुण सब-के-सब कृष्ण को देखने की लालसा से व्रज से निकल पड़े। उन्हें इस प्रकार विकल जानकर बलराम जी को कुछ हँसी आ गई। वे अपने लघुबन्धु के बल-पराक्रम को जानते थे अत: वे न तो चिन्तित ही हुए और न कुछ बोले ही। सभी आबाद-वृद्ध गोप-गोपी-गण भूमि पर पड़े श्रीकृष्ण के चरण-चिन्हों को देखते हुए यमुना के तट पर कालिय ह्रद के पास पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्ण की दशा देखकर सबको बड़ी व्याकुलता हुई। गोपियों को तो श्रीकृष्ण के बिना सारा जगत् सूना-सा प्रतीत होने लगा। माता यशोदा और नन्द बाबा अपने लाड़ले लाल की यह दशा देखकर दु:ख से कातर होकर ह्रद में कूदने जा रहे थे कि बलराम जी ने उन्हें समझा-बुझाकर रोक लिया। भगवान् ने देखा कि सारे व्रजवासी उनके लिये व्यथित हो रहे हैं, निष्प्राण हो रहे हैं तो एक मुहूर्त तक सर्प के बन्धन में रहकर वे बाहर निकल आये।

नागिनों नें कहा कि यह बालक तो बड़ा शूरवीर है। शायद कोई मंत्र जानता है, इसलिए इसके शरीर में विष प्रवेश नहीं

करता। कालीनाग ने देखा कि मेरे काटने से यह बालक नहीं मरता। कालीनाग कृष्णसे बोला- तुम मुझे नहीं जानते हो, मैं सर्पों का राजा हूँ। अब यहाँ से जीते-जी बचकर जावोगे तो देखूँगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने उस समय अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँप का शरीर टूटने लगा। वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया। उस समय उसके फण ऊपर उठे हुए थे। आँखे क्रोध के मारे लाल-लाल थीं। वह जोर-जोर से फुत्कार रहा था।

फणों को उठाकर तथा लम्बी-लम्बी फुफकारों को छोड़ता हुआ टकटकी लगाये भगवान् बालकृष्ण की ओर सरोष निहारने लगा। उस समय उसकी नासिकाओं से विष निकल रहा था। उसके लाल-लाल अपलक अंचल नेत्र भाड़ में तपाये हुए खपड़े के समान, लुहार की भट्टी में तपाये लोहे के समान, प्रलयकाल में तीक्ष्ण हुए सूर्य के समान, तथा शंकर के तीसरे नेत्र के समान लाल हो रहे थे।

भगवान श्रीकृष्ण और वह सर्प एक दूसरे को पकड़ने की इच्छा से पैतरा बदल-बदल कर चक्कर काटने लगे। चक्कर काटते-काटते नागराज अत्यन्त श्रान्त हो गया। उसके शरीर पर पसीने की बूँदें उभर आईं। श्रीकृष्ण ने देखा नागराज थक गया है, बलहीन बन गया है, तो उन्होंने उसके विशाल फण को झुकाकर उसके ऊपर चढ़ गये।

वह अभिमानी नाग अपने जिस-जिस फणों को नहीं झुकाता था, वह प्रचंड दंडधारी भगवान उसके उसी-उसी फण को अपने पाद प्रहार से कुचल डालते। उसके गर्व को खर्व कर डालते।

अब तो नाग का अभिमान चकनाचूर हो गया। वह बार-बार विष वमन करता, लम्बी लम्बी फुफकारें छोड़ता, प्रहार करने का अवसर खोजता, किन्तु वह अपने कृत्य में सर्वथा असफल ही रहा। भगवान् के पाद प्रहारों से वह मृतक तुल्य बन गया, मुख और नासिकाओं से रक्त की वमन करने लगा, उसे चक्कर आने लगे और वह चेतनाशून्य होकर गिर गया। उसका बल पुरुषार्थ पुराण पुरुष प्रभु के सम्मुख कुछ भी काम न आया। उसके फण रूप छत्र छिन्न-भिन्न हो गये। समस्त अंग-प्रत्यङ्ग चकनाचूर हो गये।

भगवान उसके सारे फणों पर कूद-कूद कर नाचने लगे, पैरों के तलवों से पटक कर उसके फणों को कूटने लगे। कालिय नाग के फण पटल पर नृत्याचार्य श्रीकृष्ण को नृत्य करते देखकर सारी देव-मण्डली बाजा बजाने लगी, नाचने लगी और फूलों की वर्षा करने लगी।

जिस माया- नटीके नियंत्रणमें ब्रह्मा, शिव, सुरेन्द्र और मुनीन्द्र सभी निरन्तर नाच रहे हैं। ब्रह्माण्डका प्रत्येक सूक्ष्मतक धूलकणसे लेकर महान् सुमेरु और एक अत्यन्त क्षुद्रकण, अणु-परमाणुओंसे लेकर ब्रह्मा पर्यंत, चर-अचर समुदाय, यह सबका सब जिस मायाके नियन्त्रणमें नित्य निरन्तर नृत्यरत है, वे मायाधिपति सकलकलानिधान भगवान व्रजेन्द्रनंदन आज स्वयं कालीयफणपर मधुर नृत्य कर रहे हैं। मधुरता है ताण्डवता है।

भगवान परम स्वतंत्र हैं। उनका नृत्य अत्यन्त मादक, अत्यन्त मनोहर हैं। गन्धर्वोंने कहाँ शिक्षा पायी इनके नाच की। वह तो बेचारे किसी कलाके ग्रन्थको लेकर और किसी कलाविदसे शिक्षा पाकर कला सीख रहे हैं।

कलाओंका उद्भव् स्थान, कलाओंका झरना, कलाओंका भण्डार, कलाओंके समुद्र तो इनके चरण कमल हैं। अब जब इन्होंने अपनी तान छेड़ी तो गन्धर्वोंकी विसात नहीं कि इनके साथ ताल मिला सकें। इनके साथ कण्ठसे कण्ठ मिलाकर गा सकें उनके वाद्य यंत्र तालमें ताल मिलाकर चल सकें यह तो इनके ताल पाठका उच्चारण भी कठिन हो गया।

समुझे हरि सब दुखी सुनी बलदाऊ बानी। कालिय फनपै नृत्य करन नटवर मन ठानी।।

समुझि श्याम संकेत सुमन सुरगन बरसावैं। बीणा पणव बजाइ तालमहँ ताल मिलावैं।।
मधुर-मधुर वीणा बजहिँ, नचैं नटवर फननिपै। जो न नवें रौंदें तिनहिँ, चरन चलावें सबनिपै।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान नटनागर कालिय के फणों पर नृत्य करने लगे। वह नाग अपने नयनों से विषवमन करता हुआ क्रोध के कारण वेग के साथ फुफकारें छोड़ने लगा। वह अपने सहस्र शिरों में से जिस-जिस को ऊँचा उठाता, उसी-उसी को नृत्य करते हुए नटवर अपने चरणों की ठोकर से रौदकर नत कर देते थे। देवता पुष्पों द्वारा उनकी पूजा कर रहे थे। उस समय वे पुराण पुरुष सुरोंद्वारा पूजित होकर शेषशायी श्याम के समान सुशोभित हुए।

माखन प्रभु फण गहि लियो दियो व्याल फुफकार। चरण कमल माथे धरे निरतत हरी मुरार।।
तीन लोक का बोझ ले, भारी भये मुरारि। फन फन पर नाचत फिरें, दुष्ट दलन असुरारि।।
ताण्डव गति मुण्डन पर निरतत बनवारी। पं पं पं पग पटकत फं फं फं फन फटकत।।
वं वं व बिनती करत नाग बधू आली। सूरदास ब्रज आष (वाम) नाचत दै ताली।।

कालिया जिस फन को उठाना चाहता है श्याम उसी पर ताल बदलकर कूद जाते हैं। आज श्याम-श्याम नहीं रहे भूतभावन बन गये। कटि से घोंटू तक पीताम्बर भींग कर चिपक गया है, मोर मुकुट नम होकर वक्र हो गया है। फटते जा रहे हैं कालिया के फन। रक्त की फुहारों से जल नील से लाल वर्ण धारण करता जा रहा है। कालिया अब और शिथिल हो गया। सारे फन विदीर्ण हो गये हैं। मरणासन्न हो रहा है किन्तु श्याम के स्पर्श से चैतन्य हैं।

बोझ के मारे कालिया मरने लगा और फण पटक-पटक उसने जीभ निकाल दीं, उससे रुधिर की धार बह निकली। जब विष और बल का गर्व उतर गया तब उसने मन में जाना कि आदि पुरुष ने अवतार लिया, नहीं तो किसमें इतनी सामर्थ है जो मेरे विष से बचे।

नृत्यकला गान आदि के पूर्व प्रवर्तक भगवान श्रीकृष्ण उसके सिरों पर कलापूर्ण नृत्य करने लगे। जिसको देख-देख कर गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरा आदि ने अपने मृदङ्ग, ढोल, नगारे आदि से सुन्दर सुन्दर गीत गाकर उनके नृत्य की ताल को मिलाया। उस समय पुराण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण के चरणों पर जो खून की बूँदें गिरी थी, उससे ऐसा मालूम होता था, मानो रक्त पुष्पों से उनकी पूजा की गयी हो। कालीनाग की ऐसी छिन्न-भिन्न अवस्था देखकर उसकी पत्नियाँ बच्चों को आगे करके भगवान् की शरण में आयीं और हाथ जोड़कर प्रणाम करके भगवान की स्तुति करने लगीं।

कालिय नाग के एक सौ एक सिर थे। उसके जो-जो फण नहीं झुक रहे थे, उसी को प्रचण्ड दण्डधारी भगवान अपने पैरों की चोट से कुचल डालते थे। फल यह हुआ कि नागराज मृतप्राण हो गया। उसके मुखों और नासिका छिद्रों से रक्त की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। कालिय शिथिल पड़ता जा रहा है। कोई भी सिर उठानेमें असमर्थ होता जा रहा है। वह मरणासन्न है; किंतु इनके श्रीचरणोंका स्पर्श मिला उसे, धन्य है कालिय। अन्त में नागराज बेहोश हो गया। होश आने पर उसने मन-ही-मन जगन्नियन्ता नारायण की शरण ग्रहण की। भगवान कृष्णके उदरमें सम्पूर्ण विश्व हैं। उनके भारी बोझसे कालिय नागके शरीरकी एक-एक गाँठ ढीली पड़ गयी। कभी-कभी क्या होता राजन्, दो फणों के बीच प्रभु का चरण पड़ जाता, फन फट जाते और रक्त की बूँदें उछलकर कृष्ण के चरण पर पड़ जातीं, तो दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता मानों देवताओं ने लाल रंगके पुष्प कृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिये। इधर देवता, गंधर्व ताली बजा रहे हैं, फूलों की वृष्टि कर रहे हैं। इसप्रकार भगवान के दिव्य ताण्डव नृत्य से कालिय नाग के सब फन छिन्न-भिन्न हो गये और वह उनमें से खून उगलने लगा। पूँछ कुचल गयी। पीड़ासे तिलमिलाकर कालिय उठा फूत्कार करता नागिनें स्तब्ध, भयभीत

एक ओर हट गयीं। हृदतल तक मथित हो रहा था। जैसे मन्दराचलसे क्षीरोदधिका मन्थन हो रहा हो। हृदमें उत्ताल तरंगे उठ रही थीं इन अखिलेशके भुजदण्डोंके सञ्चालनसे।

बहुत मुखनितें रक्त भयो कालिय मूर्छित तब। छिन्न भिन्न ह्वै गये नागफण छत्र रूप सब॥
अनत शरन नहिँ निरखि शरन हरिकी अहि आयो। अखिल भुवनपति पादपद्ममहँ चित्त लगायो॥
पत्नी सबरी नागकी, आई पतिकूँ बिकल लखि। शिशु सम्मुख करि नयन भरि, श्रीहरितें बोली बिलखि॥

कालियनाग का तमाम बल नष्ट हो गया। उसका गर्व शमित हो गया। सारी शक्ति उसकी प्राय: चली गयी, क्षीण हो गयी। वह निराश हो गया कि अब इस प्रकारका अवसर तो कभी जीवनमें आया नहीं।

अपने पति की यह दुर्दशा देखकर नागराज की पत्नियाँ अपने बालकों को आगे करके भगवान की शरण में आईं। भय के मारे उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे। केश की चोटियाँ बिखर रही थी। वे भगवान के चरणों पर गिर पड़ी और पति को छुड़ाने की इच्छा से उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान की स्तुति प्रारम्भ की।

निज पति का दुख देख के, नागिनियाँ सह बाल। नाग क्षेम हित कृष्ण के, चरण गिरी तत्काल॥

हे वेदान्तवेद्य देवेश्वर, हे दुष्ट दैत्य दलन हे भुवनेश्वर, हे जगन्नाथ, हे महापुरुष, हे पूर्वज यह नाग अब अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है, कृपया आप हमें पति दान की भिक्षा दीजिए।

हम सबके पति प्राण प्रानपति भिक्षा दीजै। हैं अबला भयभीत अभय अखिलेश्वर कीजै॥

प्रभो, आप दुष्टों का दमन करने के लिये ही अवतार धारण करते हैं अत: अपराध करनेवाले नागराज को दण्डित करना आपके लिये उचित ही है। आपकी दृष्टि शत्रु और सुत पर समान रहती है। आप व्यक्ति के कल्याण के लिये ही उसका दमन करते हैं।

आपने हम लोगों पर बड़ा ही अनुग्रह किया है। यह तो आपका कृपाप्रसाद ही है क्योंकि आप तो दुष्टों को दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। नागराज अवश्य ही अपराधी हैं। तभी तो इन्हें सर्प की योनि मिली है इसलिये हम सच्चे हृदय से आपके इस क्रोध को भी आपका अनुग्रह ही समझ रही हैं। मेरे स्वामी, हमें नहीं मालूम कि नागराज के किस पुण्य का यह प्रताप है, जो इन्हें आप की चरण धूलि के स्पर्श का अधिकार प्राप्त हुआ है। आपके चरणों की रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्धांगिनी लक्ष्मीजी को भी बहुत दिनों तक समस्त भोगों का त्याग करके नियमों का पालन करते हुए चिरकाल तक तपस्या करनी पड़ी थी।

प्रभो, जो आपके चरणों की धूलि भी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे भक्त-जन स्वर्ग का राज्य अथवा भूतल की बादशाही भी नहीं चाहते। न वे रसातल का ही राज्य चाहते हैं और न ब्रह्मा के पद की ही उन्हें कामना होती हैं। उन्हें अणिमा आदि योग-सिद्धियों की भी अभिलाषा नहीं होती। यहाँ तक कि जन्म-मृत्यु से छुटकारा देनेवाले कैवल्य मोक्ष की भी लालसा उन्हें कभी भी आकृष्ट नहीं करती।

मेरे प्रभो, यह नागराज तमोगुणी योनि में उत्पन्न हुए हैं। अत्यन्त क्रोध करना इनका स्वभाव है फिर भी इन्हें आपकी यह परम पवित्र चरणरज प्राप्त हुई। यह दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है। आपकी चरण रज-पाने की इच्छा मात्र से ही अष्टसिद्धियों की बात तो दूर रही, मुक्ति भी सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती है। इतना कहकर वे भगवान के विभिन्न रूपों को प्रणाम करती हुई प्रार्थना करती हैं- प्रभो, स्वामीं को अपनी प्रजा का अपराध एक बार क्षमा कर देना चाहिये, ये मूढ हैं, आपको पहचानते नहीं है इसलिये इन्हें क्षमा कर दीजिये। ईश, नागराज अब मरने ही वाले हैं अत: इन पर कृपा कीजिये।

साधु पुरुष सदा से ही हम अबलाओं पर दया करते आये हैं अत: आप हमें हमारे प्राणस्वरूप पतिदेव को दे दीजिये।

आप अपनी मर्यादा न भूले, हम आपसे यही भिक्षा माँगते हैं। अभी हमारे पतिदेव के प्राणपखेरु उड़नेवाले हैं।

प्रभो, हम आपकी दासी हैं। हमें आप आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें आप की सेवा करनेवाला प्राणी सारे भयों से छूट कर नि:शंम हो जाता है। भक्ति तो वही श्रेष्ठ है जिसमें प्रभुसे कुछ माँगा नहीं जाय। यदि आपको माँगना ही है तो गोविन्द के चरणों की धूल माँगो।

नागपत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न हुए भगवान ने नागराज को छोड़ दिया। चरण-प्रहार छोड़कर वे उसके फणामण्डल से नीचे उतर आये। नागराज मूर्च्छित हो गया था। उसके सारे फण फट गये थे। धीरे-धीरे उसे चेतना आई। बड़ी कठिनता से श्वास लेते हुए हाथ जोड़ कर उसने भगवान से कहा- हे देवेश्वर, आपकी पूजा अथवा स्तुति करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, मेरी चित्तवृत्ति तो केवल आपकी कृपा की ओर ही लगी हुई है, अत: आप मुझपर प्रसन्न होइये। हे केशव, मेरा जिसमें जन्म हुआ है, वह सर्प-जाति अत्यन्त क्रूर होती है, यह मेरा जातीय स्वभाव है। हे अच्युत, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। इस सम्पूर्ण जगत् की रचना और संहार आप ही करते हैं। संसार की रचना के साथ उसके जाति, रूप और स्वभावों को भी आप ही बनाते हैं।

कालिय बोला- सर्प जाति के जन्तु जन्म से ही बड़े क्रूर, तमोगुणी और महाक्रोधी होते हैं। हम तो जहाँ भी रहेंगे, वहीं दुष्टता ही करेंगे। केवल जानने मात्र से ही तो स्वभाव नहीं बदला जा सकता। जीवों को दु:ख में सुख का अनित्य में नित्य का मिथ्याभिनिवेश हो गया है, अनात्म में जो आत्म प्रतीति हो रही है, उसका छोड़ना जिस प्रकार कठिन है, उसी प्रकार सभी जीवों के लिये अपने स्वभाव को छोड़ना कठिन है। मनीषियों ने स्वभाव को दुरतिक्रम बताया है। सभी अपने स्वभाव से विवश हैं।

सबके स्वभावों के बनानेवाले भी तो आप ही है। आपने ही तो इस त्रिगुणात्मक जगत् की रचना की है। सबके स्वभाव आपने ही भिन्न-भिन्न बनाये हैं। सबके बलवीर्य भी पृथक्-पृथक् हैं। आप यद्यपि हाथी तथा चींटी के शरीर में समान रूप से स्थित हैं। फिर भी चींटी और हाथी के बलवीर्य में अन्तर होता ही है। इसी प्रकार आपने नाना योनियों की रचना की है। सबकी योनियाँ पृथक्-पृथक् हैं। सबके आकार पृथक् हैं, सबकी चित्तवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इस पृथक्ता के रचयिता भी तो आप ही हैं। हम सर्पों को आपने क्रोधी ही बनाया है, फिर हम माया मोहित जीव आपकी दुस्त्यज माया को बिना आपकी कृपा के अपने आप स्वयं कैसे छोड़ सकते हैं।

नाथ, हम जन्म से ही दुष्ट, तमोगुणी और महान क्रोधी हैं। प्राणियों के लिये अपना स्वभाव छोड़ना अति कठिन है। इसी दुस्त्यज स्वभाव के कारण संसारी प्राणी नाना प्रकार के दुराग्रहों में फँस जाते हैं। आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकृतियोंका निर्माण किया है। आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं, हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं। हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं। फिर हम मायाका त्याग कैसे करें। सारी दुनिया को आप ही बनाते हो। नागोंके अन्दर जहर भी आप ही भरते हो। नागों को क्रोधी भी आप बनाते हो, फिर इसके लिये मैं दोषी कैसे हूँ। आप ही सबसे बड़े कारण है।

आप जगत् के मालिक हैं। सब कुछ करने में समर्थ हैं। आपकी जैसी इच्छा हो, हमें दण्ड दें, छोड़ दें अथवा मार डालें।

आपने गाय को सींग दिए, बिच्छू को जहर दिया। मुझे भी आपका दिया हुआ ही जहर है, मुझे गरुड का भय है इसलिए मैं यहां आकर बैठा हूँ। हे ईश्वर, आपने मुझे जाति, रूप और स्वभाव से युक्त करके जैसा बनाया है उसी के अनुसार मैंने यह चेष्टा भी की है। हे देवदेव, यदि मेरा आचरण विपरीत हो तब तो अवश्य आपके कथनानुसार मुझे दण्ड देना उचित है। तथापि हे जगत्स्वामिन्, आपने मुझ अज्ञ को जो दण्ड दिया है, वह आपसे मिला हुआ दण्ड मेरे लिए कहीं अच्छा है, किन्तु

दूसरे का वर भी अच्छा नहीं है। हे अच्युत, आपने मेरे पुरुषार्थ और विष को नष्ट करके मेरा भली प्रकार मानमर्दन कर दिया है। अब केवल मुझे प्राणदान दीजिए और आज्ञा कीजिए कि मैं क्या करूँ?

कालिय ने कहा कि हे वरदायक प्रभो, दूसरे किसी वर के लिए मेरी इच्छा नहीं है। प्रत्येक जन्म में मेरी आपके चरणकमलों में भक्ति बनी रहे और मैं सदा आपके उन चरणारविन्दों का चिन्तन करता रहूँ, यही वर मुझे दीजिए। जन्म ब्राह्मण के कुल में हो या पशु-पक्षियों की योनि में, सब समान हैं। वही जन्म सफल है, जिसमें आपके चरणकमलों की स्मृति बनी रहे। यदि आपके चरणों का स्मरण न हो तो देवता होकर स्वर्ग में रहना भी निष्फल है। जो आपके चरणों के चिन्तन में तत्पर है, उसे जो भी स्थान प्राप्त हो, वही सबसे उत्तम है। उस पुरुष की आयु एक क्षण की हो या करोड़ों कल्प की, अथवा उसकी आयु तत्काल ही क्षीण होने वाली क्यों न हो, यदि वह आपकी आराधना में बीत रही है तो सफल है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं है- वह व्यर्थ है। जो आपके चरणारविन्दों के सेवक हैं, उनकी आयु व्यर्थ नहीं जाती, सार्थक होती है। उन्हें जन्म-मरण, रोग-शोक और पीड़ा का कुछ भी भय नहीं रहता और वह इनकी कुछ भी परवाह नहीं करते। भक्तों के मन में आपके चरणों की सेवा को छोड़कर इन्द्रपद, अमरत्व अथवा परम दुर्लभ ब्रह्मपद को भी पाने की इच्छा नहीं होती।

नाग तज्यो तब सो कहे, नाथ। तुमहिँ सब कछु करो। तुम ही डारो जगतमहँ, जीव विपति तुमहीं हरो।।

नागराज के दैन्यभरे वचनों को सुनकर भगवान ने कहा- नागराज, अब आपको यहाँ नहीं रहना है। आप अभी समुद्र के लिये प्रस्थान कीजिये। इस नदी का जल मानव, पशु और पक्षियों द्वारा सेवित है अत: इसका विषैला होना ठीक नहीं है। जो व्यक्ति नाग-दमन लीला का सायं-प्रात: स्मरण करते हैं, उन्हें सर्प का भय समाप्त हो जाता है। जो इस ह्रद में स्नान कर तर्पण करते हैं वे सारे पापों से छूट जाते हैं। तुम गरुड के भय से रमणकद्वीप छोड़कर यहाँ आकर छिपे थे किन्तु अब गरुड़ तुम्हारे फणों पर मेरे चरण-चिन्हों को देखकर तुम्हें नहीं मारेगा।

चरणकमल की छाप है तेरे मस्तक माहिं। अब इस छापप्रताप से गरुड़ बोलहैं नाहिं।।

मैनें इस कालियदहमें क्रीड़ा की है। जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, व्रत, पूजा, उपासना करेगा वह सब पापोंसे मुक्त हो जायेगा।

सुनि बोले घनश्याम- यहाँतें अहि तुम जाओ। अब स्वदेशमहँ रहो सदा मेरे गुन गाओ।।

मम पद अमित शीश गरुड़ लखि ढिँग नहिँ आवे। कालियदहमहँ न्हाय सुकृत करि नर सुख पावे।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान के यह कहने पर नागराज ने अपनी पत्नियों के साथ, विविध अलंकरणों से तथा विशाल कमल की माला से भगवान की पूजा की, उनकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और फिर प्रसन्न हो वहाँ से रमणक द्वीप में सपरिवार चला गया। तभी से निर्विष हुआ यमुना के ह्रद का जल, निर्विष होकर, अमृत के समान सबके पीने योग्य बन गया।

जैसे ही कृष्ण ने बाहर निकलकर मुरली की तान छेड़ी, ब्रजवासी बोले- मैया, तेरो कन्हैया आ गयो। कन्हैया बोला- मैया चिंता मत कर। यो नाग तो मेरो चेलो हो गयो।

हमारी इन्द्रियाँ ही कालिय नाग हैं। उनके विषय ही विष हैं। इन्द्रियाँ जब विषय ही विष हैं। इन्द्रिया जब विषयोन्मुख होकर भोगपरायण बनें तो उनका दमन करना चाहिये। भगवान ने अन्य दुष्टों का वध किया है, कालिय नाग का दमन किया है। भगवान ने नागराज के सारे विष को निचोड़ कर उसे रमणक द्वीप में भेज दिया। इन्द्रियाँ जब विषयों के लिये विकल बनें तो उनका दमन कर, उन्हें विषयों से दूर कर, रमणक द्वीप अर्थात् सत्संग स्थल में लगा देना चाहिये।

घटना स्वायम्भुव मन्वन्तर की है। वेदशिरा नाम के एक मुनि थे। विन्ध्याचल पर्वत उनकी तप:स्थली थी। एक समय

अश्वशिरा नाम के मुनि भी वेदशिरा के आश्रम के पास ही तप करने के लिये गये। वेदशिरा ने इसे अपने तप में विघ्न समझ कर अश्वशिरा को वहाँ से चले जाने के लिये कहा। इस पर अश्वशिरा क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने शाप देते हुए कहा- यह तो भगवान की भूमि है। यहाँ न जाने कितने लोगों ने तप किया होगा। तुम व्यर्थ में सर्प के समान फुफकारते हुए क्रोध कर रहे हो अत: तुम सर्प-योनि में चले जाओ और गरुड से तुम्हें सर्वदा भय बना रहे।

शाप को सुनकर वेदशिरा ने कहा- तुम्हारा अन्त:करण बड़ा दूषित है। सामान्य-सी बात पर क्रुध होकर तुमने मुझे इतना कठोर शाप दे डाला। कौए की तरह काँव-काँव करते हुए तुम अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हो अत: कौआ बन जाओ। परस्पर एक-दूसरे को शाप देने के बाद शान्तचित्त होने पर वे दोनों दु:खी हो रहे थे। उसी समय भगवान् ने वेदशिरा से कहा- मुनिवर, सर्प होने पर भी तुम्हारे फण पर मेरा चरणचिन्ह बना रहेगा। इससे तुम्हें गरुड़ का भय नहीं होगा।

वेदशिरा को सान्त्वना देने के बाद भगवान ने अश्वशिरा मुनि से कहा- मुने, कौआ होने पर भी तुम्हें त्रैकालिक निर्मल ज्ञान बना रहेगा। यही अश्वशिरा अगले जन्म में काकभुशुण्डि हुए जिन्होने गरुड को रामकथा सुनायी।

श्वसन् सर्प इव त्वं भो वृथा क्रोधं करोषि हि। अत: सर्पो भव त्वं हि भूयात्ते गरुडाद्भयम्॥
कार्यार्थी काक इव कौ त्वं काको भव दुर्मते। साक्षात्काकभुशुण्डोऽभूद् योगीन्द्रो नीलपर्वते॥

शुकदेव बोले- राजन्, गरुड़जी रमणक द्वीप में पहुँचकर जिस सर्प के घर घुस जाते उसी को खा-पीकर साफकर डालते थे। नागों को गरुड़ के इस दुर्व्यवहार से बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने एक विशाल सभा का आयोजन कर उसमें गरूड़ को आमंत्रित किया। अनन्तर सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पासकर गरूड़ से प्रार्थना की गयी कि आप ऐसा क्रूर व्यवहार न करें, हम सब मिलकर बारी-बारी से प्रतिमास की अमावस्या को एक वृक्ष के नीचे आपके लिए बलि का प्रबंध कर देंगे। आप उसे भक्षणकर वहीं से कृपाकर लौट जाया करेंगे। गरूड़ ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सभी नाग इस नियम के अनुसार प्रति अमावस्या पर बारी-बारी से बलि दिया करते थे। एक दिन जब कालिय की बारी आयी तब उसने अभिमानवश बलि नहीं दी। इस पर आगे वाले ने भयभीत हो नाना व्यंजनों सहित एक बूढ़े सर्प को रखकर बलि दे दी। किन्तु विष एवं वीर्य के मद से उनमत्त कालिय ने गरूड़ को तुच्छ समझ उनके निमित्त रखी हुयी वह बलि स्वयं जाकर खा ली और बूढ़े सर्प को घर भेज दिया। गरूड़जी ने आकर जब यह समाचार सुना तब वे कुपित हो कालिय को मारने दौड़े कालिय भी अपने एक सौ एक फण उठाकर बड़े वेग से गरूड़ पर झपटा और दाँतों से उन्हें डस लिया।

पूर्वकाल की बात है। गरुड जी एक-दो सर्पों को खा जाते थे और बहुतों को मार कर फेंक देते थे। इससे व्याकुल होकर सर्प ब्रह्माजी की शरण में गये। ब्रह्माजी ने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक अमावस्या को, एक निर्धारित वट-वृक्ष के नीचे, प्रत्येक सर्प-परिवार बारी-बारी से गरुड जी को एक सर्प की बलि दिया करे। गरुड जी उसी को खाकर सन्तुष्ट हो जायेंगे। इस नियम के अनुसार निश्चित तिथि को निर्धारित स्थान पर सारे सर्प अपनी रक्षा के लिये महात्मा गरुड जी को अपना-अपना भाग देते रहते थे। उन सर्पों में एक सर्प कालिय भी था। यह कद्रू का बेटा था। इसे अपने बल का बड़ा अभिमान था। बहुत समय तक यह क्रम चलता रहा; किंतु अपने शतैकशीर्षा होनेके अभिमानमें कालियने इस सन्धिको भंग किया। बहुत अहंकार था उसे अपने विषका। उसने एक पूर्णिमाको वृक्षके नीचे मेरे लिये प्रस्तुत आहार नागोंके रोकनेपर भी स्वयं खा लिया।

इसने गरुड जी का तिरस्कार करके स्वयं तो बलि देना दूर रहा- दूसरे साँप जो गरुड जी को बलि देते उसे भी खा लेता था। यह सुनकर गरुड जी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कालिय नाग को मार डालने के विचार से बड़े वेग से आक्रमण किया। कालिय भी अपने एक सौ एक फणों को फैलाकर डसने के लिये गरुड पर टूट पड़ा। उसने अपने दाँतों से उन्हें डँस

भी लिया। उसका यह दु:साहस देखकर गरुडजी ने उस पर अपने बायें पंख से प्रहार किया। प्रहार से घायल होकर कालिय वहाँ से भागा और आकर यमुना जी के ह्रद में निवास करने लगा। कालिय समुद्रसे सुरसरिमें और उनसे कालिन्दीमें होता वृन्दावन पहुँचा। उसे सौभरिके शापका किसीके द्वारा पता होगा। वह ह्रद गरुड जी के लिये अगम्य था। उसकी गहराई इतनी विशाल थी कि दूसरे लोग भी वहाँ नहीं जा सकते थे।

रमनक नामक द्वीप नाग सब बास करहिँ जहँ। विष बलतें उनमत्त नाग कालियहु रहे तहँ।।
गरुड़ आइ कछु खाइ कछुनिकूँ मारि गिरावें। बिनतासुतको कृत्य निरखि अहि अति भय पावें।।
सब नागनि सम्मति करी, सन्धि गरुड़जीते करो। रोकि जाति विध्वंसकूँ, सब सर्पनिको भय हरो।।
अरुणानुजके निकट सर्प सब मिलिकें आये। प्रति मावस बलि देहिँ सबनि मृदुबचन सुनाये।।
हरिवाहनने बात अहिनिकी सब स्वीकारी। पर्व पाईकें सर्प आइँ सब बारी-बारी।।,
कालिय अति बलवीर्य मद, युक्त भयो नहिँ देहि बलि। स्वयं गरुड़ बलि खाइकें, पहिले ही खल जाहि चलि।।

राजा परीक्षित शुकदेवजी से पूछते हैं- भगवन्, कालियनाग ने नागों के निवास स्थान रमणकद्वीप को क्यों त्याग दिया। उस अकेले ने ही गरुड़जी का ऐसा कौन-सा अपराध किया था।

शुकदेव बोले- यमुना जी के जल में खड़े होकर सौभरि ऋषि तप में रत थे। एक दिन भूख से विकल गरुड जी वहाँ पहुँचे। उन्होंने एक बड़े मत्स्य को मार कर खा लिया। फलत: मत्स्य-परिवार दु:खी हो उठा। सौभरि को यह देखकर बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने गरुड जी को शाप देते हुए कहा- मैं सच-सच कह रहा हूँ। आज के बाद यदि गरुड यहाँ जल में प्रवेश कर मछलियों को मार कर खायेंगे तो उनकी मृत्यु हो जायेगी।

अत्र प्रविशय गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति। सद्य: प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्हयम्।।

इस बात को केवल कालिय भर जानता था। दूसरे नाग इस बात से अनभिज्ञ थे इसलिये वह गरुड के भय से वहाँ रहने लगा था। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे निर्भय करके वहाँ से रमणक द्वीप भेज दिया। सौभरि के शाप के कारण गरुड जी ने वहाँ जाना छोड़ दिया था।

गरुड़ कुपित अति भये दुष्टकूँ दौरि दबायो। कालियहू भिड़ गयो बहुत विष वीर्य चलायो।।
जब नहिँ लाग्यो दाव भागि कालीदह आयो। सौभरि मुनिके शाप कवचतें प्रान बचायो।।
रहै तहाँ विष वमन करि, जल अपेय सब करि दयो। मरहिँ अचर चर जीव सब, हरि कौतुक अद्भुत कियो।।

जब कालिय नाग को यमुना जी से उद्वासित कर कृष्ण बाहर निकले तब नन्द आदि गोप उनका आलिंगन कर बड़े प्रसन्न हुए, सारे गोप, गोपी, बालक, बालिकाएँ, गायें और बछड़े- सब-के-सब कृष्ण को पाकर परम प्रसन्न हो उठे। बलराम अपने लघु बन्धु को छाती से लगाकर हँसने लगे। वे उनके प्रभाव को बखूबी जानते थे।

अब भगवान श्रीकृष्ण को नदियों के प्रदूषित जल को ठीक करना था। यमुना नदी प्रदूषित हो रही थी। भगवान श्रीकृष्ण का कालिया नाग का वध वास्तव में यमुना नदी को प्रदूषण के जहर से मुक्त करवाने का अभियान था। स्वच्छ पानी पर्यावरण के लिए आवश्यक है।

शुकदेव बोले- राजन्, गरुड़ (ज्ञान) की माता विनता और कालिया नाग (विषयी जीव) की माता कद्रु में परस्पर वैर था। अत: स्वाभाविक है कि गरुड़ और कालिया में वैर की भावना रहे। कालिया (विषयी जीव) गरुड़ की सर्वव्यापकता के भय से यमुना अर्थात् भक्ति की आड़ में छिप गया। कालिया के हृदय में भक्ति नहीं आयी, भक्ति में कालिया आ गया। वासना युक्त

जीव धर्म एवं अध्यात्म को कलंकित करता है। यमुना जी कलमित हो गयी, अमृत जल विषैला हो गया। भक्ति में उदित वासना को कोरे विद्वान् दूर नहीं कर सकते, क्योंकि वे चरित्रनिष्ठ नहीं होते हैं। दृष्टान्त यथा- मेघनाद के मुक्त होने पर सुलोचना व्यथित हो गयी। रावण ने उपदेश दिया- नस्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय विचार। बेटी, यह मेघनाद ही क्या सारा संसार नाशवान् है फिर दु:ख किसका? ऐसा दिव्य उपदेशक रावण स्वयं पुत्रशोक में डूबा हुआ था। अत: उसका दिव्य उपदेश साध्वी मन्दोदरी, सुलोचना की समझ में नहीं आया। गरुड़ भगवान के सेवक तो हैं किंतु मांसाहारी हैं। सौभरी ऋषि का श्राप है कि तुम गरुड़ यमुना में नहीं आ सकते। यह बात मात्र कालिया को मालूम थी अत: यमुना में आ छिपा। भक्तिमार्ग ईश्वरीय मार्ग को कलमित करनेवाले का भगवान उसके विषय-वासना का दमन करके कल्याण करते हैं। यमुना जी की महिमा बढ़ानेवाले भगवान कालिया का कल्याण करके स्वजनों से आ मिलें, सभी प्रसन्न हो गये। आकाश से देवता नमन करने लगें।

कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम्। नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्॥

ब्राह्मण लोग नन्द बाबा के पास आये। ब्राह्मणियाँ भी उनके साथ थीं। उन लोगों ने नन्द बाबा से कहा- बाबा, आपका कन्हैया कालिय नाग से छूटकर सकुशल वापस आ गया अत: हम ब्राह्मणों को दान दीजिये। उनकी बातों को सुनकर नन्द ने प्रसन्न मन से उन्हें गायों और सुवर्ण का दान दिया।

यशोदा के प्रेम का तो ठिकाना ही न था। उसने कृष्ण को अपनी गोद में बैठा कर प्रेमाश्रुओं से उनको नहला डाला। उस दिन सारे व्रजवासी दिन भर के भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे अत: बिना कुछ खाये-पिये कालिय दह के पास ही रात में सो गये।

आलिङ्गन पुनि-पुनि करें, दये दान प्रमुदित भये। भूखे प्यासे ग्वाल गौ, ग्वा दिन तट पै वसि गये॥

शुकदेव बोले- राजेन्द्र, जिस दिन भगवान ने कालिय नाग का दमन किया था, उस दिन सभी ब्रजवासी और गौएँ क्षुधा पिपासा तथा श्रम के कारण अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। अत: उस रात्रि को वे सबके सब वहीं यमुना तट पर ही रह गये।

१०) व्रजवासियों को दावानल से बचाना और कृष्ण का दावाग्नि पान-

शीतल मन्द सुगन्ध पवन बालू अति कोमल। सोये आधी राति उठी बनमहँ दावानल॥
देखि अगिनिकी लपट गोप सबरे घबराये। दीन दुखी अति भये शरन श्रीहरिकी आये॥
ब्रजवासिनिकूँ समय लखि, हँसि मोहन ठाढ़े भये। नयन मुँदाये सबनिपै, तुरत अगिनि सब पी गये॥

रात्रि में अग्नि देव ने विचार किया कि प्रात:काल उठने पर व्रजवासी कुछ फल-फूल खाने लगेंगे। गाये भी घास चरने लगेंगी। नागलीला सम्पन्न करने में पूरा दिन व्यतीत हो गया। अत: रात्रि में सभी व्रजवासी सहित व्रजराज यमुनापुलिन पर विश्राम करने लगे। सभी गहरी नींद में सोये हुए थे। अर्द्धरात्रि को पक्षी चहकने लगे। गायें रंभाने लगीं, वत्स कूदने लगे। वन में दावाग्नि लग गई।

ताहि समय ग्रीषम ऋतुहिं बहेड प्रझंझा वात। बाँस रगड़ दावानल हिं प्रगटेउ आधी रात॥
घेरि चतुर्दिक अनल भयंकर। देन लाग तापहिं नारी नर॥
करन लगे सब आर्त पुकारा। राम कृष्ण करु स्वजन उबारा॥
सुनि अति आरत स्वजनहिं बानी। कीन्हिं पान प्रभु जन सुखदानी॥
भएउ भोर जन ब्यूह समाए। सुनत सुजसु निज ब्रज मँह आए॥

जब रात को सब वृन्दावनवासी यमुना के किनारे सरहरी के वन में सो रहे तब राजा कंस ने यह हाल सुनकर धुन्धक राक्षस को बुलाकर कहा कि तुम आज यमुना के किनारे जाकर सब व्रजवासियों को श्याम व बलराम समेत जला दो तो मैं

तुम्हारा बड़ा यश मानूँगा। यह वचन सुनते ही उस राक्षस ने आधी रात के समय वहाँ जाकर चारों ओर से आग लगा दी।

दावानल अति क्रोध कर लियो चहूँ दिशिघेर। उठी अनल ज्वाला प्रबल मानौं अचल सुमेर।।

कालिय के प्रभाव से यहाँ सब कुछ विषैला है अत: गोपों और गायों का अनिष्ट हो सकता है। ऐसा सोच कर अग्निदेव ने बचे-खुचे वृक्षों, लताओं और घासों को जलाना शुरू कर दिया। यह दैत्याग्नि नहीं देवाग्नि थी। आधी रात के समय दावाग्नि: वन में स्वयमेव लगने वाली अग्नि वन में लग गयी। चारों ओर से व्रजवासिवृन्द को घेर कर अपने प्रभाव से प्रभावित करने लगी। परमात्मा श्रीकृष्ण वहीं व्रजवासियों के मध्य में उपस्थित है। परमात्मा के मुख में विराजमान अग्नि ने सोचा कि यहाँ वन में जो भी फल-फूल-घास आदि हैं वे कालिया के विष से विषैले हो गये है। प्रात:काल होते ही ग्वाल-बाल-गोपाल-गौएँ यहाँ के फल-फूल-घास आदि से अपनी-अपनी क्षुधा की निवृत्ति के निमित्त खायेंगे। इससे उन्हें अविस्मरणीय हानि होगी। अत: सभी के रक्षार्थ अग्नि देवता स्वयं प्रकट हो गये। सहसा दावाग्नि लगी।

ब्रजवासी ब्याकुल भये, लखि वन अनल महान। श्रीकृष्ण ने तुरत ही, पीयौ अम्बु समान।।

सभी वन्याहार जलकर स्वाहा हो गया। अग्नि से घिर जाने पर सब लोग भगवान की शरण में गये और बोले- हे महान् तेजस्वी कृष्ण, हे अमित बलशाली बलराम; हम वनाग्नि से जल रहे हैं। हमारी रक्षा करें, हमारी रक्षा करें। हम आपके चरण की शरण छोड़कर जीवित नहीं रहना चाहते।

शरण गही जिन आय के तात मातु बिसराय। हम औ तुम द्वै भाय बिन इनके कौन सहाय।।

निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत। तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्वणम्।

पीत्वा मुखेन तान् कृछ्रात् योगाधीशो व्यमोचयत्।

आप लोग डरो मत। अपनी आँखें बन्द कर लो।

घिरे चतुर्दिक गोप गौ लागे करन पुकार। होत छार अब कृष्ण हे हम सब दास तुम्हार।।

तुमहिं एक गति नाथ हमारे। चलत फिरत आश्रयहिं तुम्हारें।।

दीन बचन सुनि कह प्रभु बयना। जनि उरपहु मूँदहु निज नयना।।

धरि सिर आयसु परम प्रतापी। ग्वाल बाल निज लोचन ढाँपी।।

तुरत कीन्हिं दावानल पाना। प्रनत उबारे श्री भगवाना।।

भगवान अनन्त हैं। वे अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं। ऐसे जगन्नियन्ता भगवान श्रीकृष्ण ने जब देखा कि मेरे स्वजन इस प्रकार विकल हो रहे हैं, तब वे उस भयंकर आग को पी गये। अत: अग्निरूप कार्य को भगवान ने अपने मुखरूप कारण में विलीन कर लिया। ग्वालों ने आंख खोला तो देखा भण्डीर वट के सन्निकट है।

शुकदेव बोले- यमुना के तट पर श्रीकृष्ण के द्वारा दावाग्नि का पान कर लेने पर सभी स्वजन सम्बन्धी प्रसन्न हो उठे। वे श्रीकृष्ण की कीर्ति का गान करने लगे। भगवान सबको साथ लेकर पुन: व्रज में लौट आये।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, उस समय जब सभी ग्वालबाल श्रीकृष्ण और बलराम जी के साथ खेलने में मग्न थे, तब उनकी गायें बेरोकटोक चरती हुई बहुत दूर निकल गईं और हरी-हरी घास के लोभ से एक गहन वन में घुस गईं। उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसे एक वन से दूसरे वन में होती हुई आगे बढ़ गईं तथा गर्मी के ताप से व्याकुल हो गईं। वे बेसुध-सी होकर अन्त में चिल्लाती हुई मुञ्जाटवी (मूंज के वन) में घुस गईं।

बिछरी गैयां बिछरे ग्वाल, भूले फिरें मूंजें वन माल। रूखन चढ़ें परस्पर टेरैं, लै लै नाम पिछारी फेरैं।।

जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि ग्वालबालों ने देखा कि हमारे पशुओं का कहीं पता ही नहीं है, तब वे क्रीडा छोड़कर उनकी खोज करने लगें किन्तु उनका कहीं भी पता न चला। तब वे बड़े व्याकुल होकर उनके खुरों के चिन्हों और चरी गई घासों के सहारे आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी गाएँ मुञ्जाटवी में मार्ग भूलकर चिल्ला रही हैं। उनको नाम ले-लेकर भगवान् बुलावें तो वे उनकी आवाज का उत्तर तो हुंकार करके दें, किन्तु मार्ग भूलने के कारण आ न सकें। इसी बीच मुञ्जाटवी (वन) में आग लग गई। यह सामान्य अग्नि नहीं असुराग्नि थी। उससे गौयें और सब ग्वालबाल घिर गये। जोर से बहनेवाली आँधी ने आग को बढ़ाने का काम किया। ग्वाल-बाल घबड़ाकर श्रीकृष्ण और बलराम जी की शरण में जाकर रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे।

आधी रात बीत जब गई, भारी कारी आँधी तव भई। दावाग्नि लगी चहुँ ओर, अति झारि बरै वृन्दावन ठौर।।
पुनि भांडीरक निकट आइ खेले सब बालक। गौएँ निकसीं दूरि खेलमहँ तन्मय पालक।।
आई पुनि जब यादि ढूँढ़िवे गौअनि भागे। दावानलकूँ देखि ग्वाल सब रोमन लागे।।
विषद सघन वन मूँजके, दावानलतें सब जरें। डकरावें फँसि धेनु तहँ, ग्वाल लपट लखि अति डरें।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब गौओं ने तथा गोपों ने चारों ओर से दावानल को अपनी ही ओर आतें देखा, तो उसी प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम की शरण में आकर पुकारने लगे, जिस प्रकार मृत्यु के भय से भयभीत हुए जीव श्रीहरि की शरण में आते हैं।

गायें और भैंसे आदि चरती-चरती सरकण्डोंके जंगलमें चली गयीं और वहाँ गर्मीके कारण बड़ी व्याकुल हो गयीं। अपना रास्ता भी भूल गयीं। उनको भगवान् बुलायें तो वे उनकी आवाजका उत्तर तो दें, पर रास्ता भूलनेके कारण आ न सकें। इसी बीच वनमें आग लग गयी और हवा बड़ी तेज चलने लगी। यह अग्नि असुर थी। उससे सब-के-सब गोप डर गये और श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी शरणमें आकर आर्त भावसे प्रार्थना करने लगे कि हे कृष्ण, हे राम, हम लोगोंकी रक्षा करो। हम तुम्हारी शरणमें होकर भी इस प्रकार दु:खी हों, यह हमारे योग्य नहीं है।

भहराने और झहराने का शब्द करता हुआ दावानल आया। चारों ओर से घेरकर शोर करता हुआ पृथ्वी और आकाश में छा गया। जंगल के बांस जलने लगे। कुशा और कांस जोरसे हिलकर जल उठे और बड़ी तेजी से चारों ओर उड़ने लगे। आग की लपटें झपट के उठीं, फूल और फल जलकर चटकने और फटने लगे। वृक्ष लटक-लटककर हिलने लगे। अग्नि की झार बढ़ी, धुआं-ही-धुआं हो गया। अंगारे उठने लगे, वन के पत्ते जलने लगे। बड़े-बड़े वृक्ष घनघोर शब्द करके पृथ्वी पर गिरने लगे। ब्रज के सारे गोप और ग्वाल-बाल घबरा उठे। सबने कृष्ण की शरण की पुकार की और कहा कि आपने तृणावर्त, केशी, शकटासुर, पूतना, बकासुर, अघासुर को मारा और बाएं हाथ पर पर्वत को उठाकर हमारा उद्धार किया है। इस पर कृष्ण ने कहा कि थोड़ा धैर्य धारण करो और कहा कि इस समय तुम सब आंखें बंद कर लो। फिर कृष्ण ने मुट्ठी दावानल से भर ली और उसे अपने मुंह में डाल लिया। भगवानने तुरन्त कहा कि- तुम सब लोग अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लो, डरो मत।

क्षणभर में प्रचण्ड लपटोंवाली अग्नि सर्वात्मा श्यामसुन्दर के संकल्प मात्र से शान्त हो गयी।

मींचो तुम सब आँखि सुनत मींची सब गोपनि। दावानल करि पान कहें हरि- निरखो गौअनि।।
भाण्डरीक नीचे निरखि, सकुशल गौअनिके सहित। भये सुखी पुनि चलि दये, लै गैयनि ब्रजकूँ तुरत।।

थोड़ी ही देर बाद जब लोगों ने आंखें खोलीं तो यह देखकर सभी लोग बड़े चकित हुए कि पृथ्वी, आकाश में जो बड़ी-बड़ी ज्वालाओं की लपटें थीं, जो देखने में बड़ी भयंकर थीं, वह इस प्रकार अचानक कहां गई, न तो वर्षा हुई और न बूंदों

की छिड़क ही पड़ी तो यह दावानल की ज्वाला कहां समाप्त हो गई। अभी तो वन में बड़ा शोर कर रही थी, यह कैसे बुझ गई। इस पर कृष्ण ने हंस-हंसकर कहा कि यह तो घास-फूस की आग थी, जली और बुझ गई।

जब सब लोगोंने अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लीं तो भगवान् श्रीकृष्णने अपने मुखमें अग्निका पान कर लिया और गोपों तथा गौओंके कष्टका निवारण कर दिया।

भगवान श्रीकृष्ण गायों और गोपोंके साथ सायंकाल घर लौट आये। उनके दर्शनसे गोपियोंको बड़ा भारी आनन्द हुआ। क्योंकि श्रीकृष्ण जब गोपियोंकी आँखोंसे ओझल हो जाते थे तब उनके लिए एक क्षणका समय भी सौ-सौ युगके बराबर हो जाता था।

शुकदेव बोले- राजन्, अपने सखा ग्वालबालों के दीनता भरे वचनों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- डरो मत, तुम लोग अपनी आँखें बन्द कर लो। भगवान की आज्ञा सुनकर ग्वालबालों ने कहा- बहुत अच्छा फिर उन लोगों ने अपनी आँखें बन्द कर ली। तब योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने उस भयंकर अग्नि को अपने मुख से पी लिया।

कुछ देर के बाद ग्वालबालों ने जब अपनी आँखें खोंली तो देखा कि गायों के साथ वे भाण्डीरबट के पास स्थित हैं। यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे अपने आपको और गायों को इस भीषण संकट से मुक्त पाकर अत्यन्त विस्मित थे। इस कार्य से वे श्रीकृष्ण को साधारण गोप बालक नहीं, देवता समझने लगे।

ग्वाल खोल दृग कहैं निहारी, कहाँ गई वह अग्नि मुरारी। कब फिर आये वन भंडीर, होत अचंभो यह बलवीर।।

सायंकाल के समय बलराम जी के साथ भगवान श्रीकृष्ण गायों को लेकर बंशी बजाते हुए व्रज को लौटे। गोप-बालक प्रशंसा करते हुए उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इधर व्रज में गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग से व्यथित थीं। श्रीकृष्ण के बिना उनके लिये एक-एक क्षण भी सौ-सौ युग के समान व्यतीत हो रहा था। श्रीकृष्ण को देखकर वे आनन्द के सागर में निमग्न हो गईं।

शुकदेव बोले- राजन्, सायंकाल के समय गौओं को चराकर श्रीगोविन्द जब लौटें, तो उनके दर्शन पाकर गोपियों को परमानन्द की प्राप्ति हुई। उन गोपियों को भगवान के वियोग में एक-एक क्षण सौ-सौ युग के समान लम्बा दिखाई देता था।

भगवान के द्वारा दावाग्नि के पान का रहस्य यह है- यह सारा संसार वन है। इसमें सर्वदा दु:खरूपी आग लगी हुई है। सारे संसारी प्राणी इस दावाग्नि से झुलस रहे हैं। भगवान का निर्देश है कि जब तुम दु:खों से घिर जाओ तब रोओ मत, घबड़ाओ मत। हाय-हाय भी मत करो। विपत्तियों के जंजाल में फंसने पर, दु:खाग्नि की लपटों से घिरने पर आँख, बन्द कर मेरा ध्यान करो, मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारी सारी दु:खाग्नि को पी जाऊँगा।

जो भगवान के अनन्य भक्त हैं अथवा जिन्हें वेद और शास्त्रों की मर्यादा का कुछ भी ज्ञान नहीं है केवल प्रभु के प्रति ही विश्वास रखना जिनका धर्म बन गया है, ऐसे भोले-भाले ब्रजवासियों को अधोगति से बचाने के लिये ही, मेरा अवतार तो सभी का दाह दूर करने के लिये हुआ है। इसलिये उस भयंकर दावानल का पान किया और अपने प्रेमी भक्तों की रक्षा की। मुख के द्वारा अग्नि शान्त करके, यह भाव प्रकट किया कि दावाग्नि को शान्त करने में भगवान् के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण ही समर्थ है।

मुञ्जवन बीहड़ सघन अति, फँसी धेनु सब जाय। आग लगी झंझा चली, ग्वाल सभी घबराय।।
लखि ज्वाला प्रचण्ड हरि, अभय किये सब ग्वाल। अनल तभी नन्द लाल ने, पान कियौ तत्काल।।
श्रीकृष्ण प्रेम-विग्रह साक्षात्। हरि-हृदय प्रीतिपात्र।
दिवस मध्याह्न भाण्डीरवट यमुनाकूल। उच्छलित आमोद-नाना सुरंगे दुकूल।
इनका यह वन-भोजन श्रीकृष्ण-राम संग। क्या आश्चर्य-स्रष्टा भूल गये अपना रंग।

चारों ओर छायामें बैठे हैं समस्त पशु। बालकोंकी क्रीड़ा- सब भोजन कर तन्मय अस;
विस्मृत पशु, विस्मृत परिस्थिति, समाज सब। विस्मृतमें कोई उठा कैसे विवाद अब।।
श्रीदाम श्रीहरिप्रिय, हुए (हाय) इतने रुष्ट। क्रीड़ामें- अरुण मुख, कठोर वाणी, अहो, कष्ट।
दाव नहीं दोता तू, हारता है तब भी? किसका है गर्व तुझे? मुझसे बढ़ अब भी।
किंतु नहीं- तेरे साथ अब न मुझे खेलना। नित्यका झंझट नहीं है और झेलना।
सुबल, चल हम सब अब इससे पृथक रहें। इससे न बोलेंगे- कोई कुछ भी कहे।
यह क्या? कमललोचन इतनेसे दोनों कर मुखपर धर। बैठ गये, रुदन करते हैं हिचकी भर?
हो गया- इतना श्रीदामको सह्य कहाँ। मान-रोष अब कैसा, देखा तक नहीं यहाँ।
कितना अपार स्नेह, वक्षसे लिपटा- अपने दुकूलसे नेत्र पोंछ चिपटा-
पूछता है- कनूँ, तू रोने क्यों लगा? मैंने तो कभी भी तुझे क्रीड़ामें नहीं ठगा।
चुप हो जा, बोल तू चाहता है क्या बता? रोकर मुझे अब इतना तो मत सता।
अपने साथ रहने दो, अपना मुझे दो प्यार। छि:, फिर रोता है? यह तो तेरा अधिकार।
अधिकार कैसा सखाओंमें किसका? हम सब समान ही हैं, करो जो जी जिसका।
किंतु मुझे अपना रखो, अपने साथ रहने दो। कुछ मैं कह लूँ तो भैया, मुझको भी कहने दो।
दुर्बल हूँ तुम सबसे- मुझको है स्वीकार। सदा सर्वत्र तुम सबसे मेरी हार।
अच्छा उठ, शान्त हुआ जैसे ही यह विवाद। ओह, आ पड़ा यह पुन: कैसा विषाद?
अर्जुन, विशाल, ऋषभ, बालक वरूथप- भागे दौड़े हाँफते गोपाल बाल यूथप-
आये हैं, एक स्वर चिन्ताग्रस्त- दादा, कनूँ, अपनी सब गौएँ कहीं नहीं।
आसपास एक भी तो दीखती नहीं कहीं।
ढूँढ़ लिये हमने सब समीपके सघन कुञ्ज, वृक्षपुञ्ज, सुनती हुंकारकी भी न है कोई गूँज।
कनूँ, कदम्बपर चढ़कर नेक टेर तू। श्रृंग बजा, दाऊ दादा- ऊँचे चढ़ हेर तू।
कन्हाईकी टेर सुन दौड़ी सब आयेंगी- नहीं तो हम सबको बहुत भटकायेंगी।
एक साथ राम-श्याम, श्रीदाम मणिभद्र, सुबल, मधुमंगल भली और उठे झट भद्र।
कदम्बकी ऊँची शाखाओंपर पहुँचकर- बालक दूर तक देखते हैं इधर-उधर।
हाथसे दक्षिण उड़ाते हुए पीतपट, उच्चस्वर पुकारते हैं आतुर मयूर-मुकुट।
कामदा, कपिला, नन्दा, अरुणा कहाँ हो? धर्म, आनन्द, गौरव, बोलो भी जहाँ हो।
बार-बार अधरोंसे शृंग लगा फूंकते हैं। ऐसे पुकारते हैं- व्याकुलसे हूकते हैं।
पशुओंको पुकारते हैं नाम ले-लेकर, व्याकुल ये देखते हैं अहो अखिलेश्वर।
श्रुतिका सस्वर स्तवन सुनकर भी रहते मौन- पशुओंको पुकारते यहाँ धन्य ऐसी धरा कौन।
यह क्या? उत्तर आये बालक विषाद-ग्रस्त, इतना मलीन मुख- शशि ज्यों दिवस-अस्त।।
आज क्या रुदन-दिवस? हृषीकेश रोते हैं? अश्रुधार चलती है- कपोल दोनों धोते हैं।
भद्रने लगा लिया अपने हृदयसे। रो रहा वह भी है किंतु साथ भयसे।

नित्य सर्वज्ञ, सकलेश्वर और यह कातर वाणी- सम्मोहित होगा ही माया- मुग्ध क्षुद्र प्राणी।।
भैया भद्र, अपने करेंगे अब क्या भला। कुटिल नियतिको व्रजका वैभव खला।
गायें गयीं, वृषभ गये- पशु गये सब। सद्य: प्रसूता शेष गोष्ठमें जो अब।
उतनेसे व्रजका बनेगा क्या भला। गोप क्या करेंगे? क्या गोपियाँ अबला।
अब क्या बाबा हम सबके सेवक बनेंगे? किसी सम्पन्नकी सेवा जा करेंगे?
कोई कहेगा नहीं हम सबको कुछ भी। कैसे दिखलावेंगे उनको मुख हम भी।
ब्रजका धन गो-धन हाय हमने विलुप्त किया। माता-पिताको यही सुख मिलकर दिया।
मैया व्रजेश्वरी, मैया श्रीदामकी- दासी बनेंगी कहीं- सहेंगी आज्ञा कामकी?
बाबा ब्रजराज अब आज्ञा सुनेंगे? कैसे क्या होगा- कौन क्या-क्या करेंगे?
उजड़ेगा अजि नन्दपुर-वृषभानुपूर जीविकाके लिए स्वजन होंगे परस्पर दूर?
हम सब मिलेंगे नहीं परस्पर अब कहीं? यही हमारी नियति निश्चित क्या हो रही?
हिचकियाँ लेते हैं- काँपता पूरा शरीर- सहा नहीं जाता भद्र, हाय, वीर।
सहसा प्रबुद्ध भद्र-दृढ़ हुई भृकुटी। सिर घूमा देख लिया कहाँ पड़ी लकुटी।
पीठ सहलाता बोला- रो मत कनूँ मेरे। गायें अभी लाता हूँ देख यहाँ मैं घेरे।
तनिक तू चुप हो जा- लकुट लिये जाता हूँ। जहाँ तक भी वन है- पूरा ढूँढ लाता हूँ।
कितनी भी गयीं हों दूर लेकर ही आऊंगा। गायें लौटाकर तुझे मुख दिखलाऊँगा।
नहीं, तू अकेला नहीं। लकुट दे मेरे हाथ। हम सब चलेंगे सखा भद्र अब तेरे साथ।
पलभरमें सबने लकुट उठा लिये। भद्र चल पड़ा है अवनिपर दृष्टि दिये।
जीवाचार्य आद्य अनन्त अनुगामी हैं। कैसा आश्चर्य आश्रित हैं- जो सबके स्वामी हैं।
भद्रकी प्रतिभा-सरस्वती क्षमा करें, कृष्ण-सखा समता कहाँ- भोले ये स्वयं रहें।
देखो सब-गोबर यह अभीका है पड़ा। गरम है, सूखा नहीं, पड़ा नहीं पड़ा।
यह रही गोमूत्र-रेखा, तृण यहाँ कुचला। गये हैं इधर ही पशु संशय कहाँ भला।
अरुणाने अंग खुजलाया यहाँ सविशेष, वृक्षमें ये रोम उसके दीखते हैं विशेष।
खुरोंसे वृषभने किसी यहाँ रज उठायी। मिट्टी खुदी है, रज तृणोंपर छायी।
यहाँ सब कूदे हैं, दौड़े हैं, भागे हैं। तृण कैसे कुचते हैं, वृषभ ही आगे हैं।
उनके खुरोंके चिह्न गोखुरसे मिटते। अभी हम पहुँचते हैं उन तक। सब सिमटे-
भद्रके पीछे चले आते हैं- भागे। भूमिपर देखता चलता भद्र आगे।
सहसा समाप्त वन आगे मुंज वन-घोर। ग्रीष्म तप्त मूँजही स्वर्णवर्ण चारों ओर।
भद्र रुका, सब रुके- देख कनूँ कितनी, मूँज मध्य हिलती हैं, सब क्या इतनी?
अपने पशु इसीमें हैं, मार्ग नहीं पाते हैं। थोड़ेसे घेरेमें घूम-घूम आते हैं।
करले विश्वास उनको पुकार तू। बाहर ही बैठ थका होगा, न हार तू।
कामदा, कपिला, कृष्णा, आनन्द, अरुणा। नन्दा, धर्म गौरव, कुमुद, कर्बुरा, तरुणा।

भद्र कुछ कहता और किंतु झट कन्हाईने। नाम ले-लेकरकी पुकार बलभाईने।
पशु हुंकार कर हर्षित हो बोले । दौड़नेसे उनके मध्य मुंज-वन डोले।
किंतु पथ पाते नहीं पशु हुंकारते हैं। बालक-मुंज मध्य चले-चलते पुकारते हैं।
पशु मिले हर्षित हुए बालक चिन्ता मिटी, लेकिन मुंजवनमें ये लपटें, हैं क्यों उठी?
ओह, यह कृत्यानल कदर्य कंसका पला। आसुर अग्नि आया है- देगा सबको जला?
सूखा अपार मुंजवन, ज्वाला उठती। घेरकर चारों ओरसे हैं बढ़ी घिरती।
सहसा पशुओंने किया क्रन्दन लिया घेर- बालकोंको मध्यमें करके रहे कातर हेर।
बालकोंने भी विपत्तिको लिया भाँप। राम-कृष्णको कर मध्य देह गये सबके कांप।
धन्य प्रेम पशुओंका, पशुपाल बालोंका, पहिले भस्म हम होंगे दृढ़ निश्चय ग्वालोंका।
किंतु रही लपट दूर ताप भी लगा कहीं। मिट जायगी मर्यादा सृष्टिकी सदाको ही।
बढ़ा आ रहा है दावाग्नि यहाँ चारों ओर। रुई-सा मुंज-वन जलता जाता है घोर।
फुंकार छोड़ते ज्यों महासर्प आते हों। लपटें सनसनाती हैं, वृषभ ज्यों जाते हों।
बचा लो, बचा लो, हमें दाऊ, कन्हाई। केवल तुम्हारे हम, आश्रित तब भाई।
गोपाल, गोपाल, गायें बचा लो, अपनोंको कृष्णचन्द्र अबकी बचा लो।
आर्तस्वर गोपबाल एक साथ बोले। क्रन्दन पशु संग-संग- देह नहीं डोले।
सब चाहते हैं पशु और पशयुपाल भी। राम-श्याम सकुशल हैं- होवे हमें कुछ भी।
अरुण हो गये नेत्र सहसा बलरामके- क्षणमें अनर्थ होता; किंतु कर श्यामके-
स्कन्ध पड़े, सहसा पुकारते व्रजचन्द्र- मित्रो सब शीघ्र करो अपने-अपने नेत्र बन्द।
कर लिया नेत्र सबने बन्द, हलधरसे हौले- स्कन्धपर कर धरे, धीरेसे बोले-
दादा, तू केवल देख पंकज-मुख दिया खोल। वामकन इंगित- गये आसुराग्नि पद डोल।
पी लिया समस्त अग्नि तापत्रय-हारीने। पी लिया हलाहल था जैसे त्रिपुरारीने।।
चारों ओर महामंजुवन भस्ममात्र। केवल मध्य पशुओंसे कुछ दूर अवशेष।
दीर्घ रुग्णका हो ज्यों कंकाल-मात्र शेषगात्र। इतना पर्याप्त नहीं- प्यासे पशु जल दूर।
सखा सब अबतक हो गये श्रान्त भरपूर। उठी दृष्टि ऊपर-हाथ जोड़ा योगमायाने।
निखिल महेश्वरी भगवती परापायाने। अग्रज समस्त पशु सब सखा पशुपाल।।
यमुनातट भाण्डीर-वट-निकट दीखे गोपाल। मधुमंगल श्रीदामके सिर चपत धर-
हँसकर बोले- नेत्र बन्द रखो दिनभर। शीतल सुमन्द वायु यमुनाका कलकल,
पक्षियोंका कलरव और कपियोंकी हलचल, कृष्णकी विनोद-वाणी सुनकर चकित नेत्र खोल-
मेरे कन्हाई सब सके केवल इतना बोल। आलिंगन सबको मिला, सबने दिया भावसे।
देवता तू कह दिया श्रीदामने चावसे। सचमुच बड़ा देवता हूँ, पूजा किया कर।
अपना पूरा छीका तू मुझको दिया कर। देवता तू? वरदानमें मोदक सब-
देता रहे मुझको तू पूजा करूँ अभी अब। देवता तो खाता नहीं, सूँघ लेना तू भले।

पत्र-पुष्प ले ले मधुमंगली चले। एक पूरी टहनी तोड़ शीश पर धरने। छीन लिया आगे बढ़ कन्हाईके कर ने।
भंग हुआ गाम्भीर्य-विलुप्त ऐश्वर्य-ज्ञान। आनन्दकी क्रीड़ा आनन्दघन सब समान।
माखन प्रभु के नेह में कछुक कहूँ दर नाहिं। प्रात होत आनंद सों सब आये घर माहिं।।

कृष्णने सोचा- मैं सबका दाह दूर करनेके लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ। इसलिये यह दाह दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। रामावतारमें सीताको सुरक्षित रखकर अग्निने मेरा उपकार किया था। अब उसको अपने मुखमें स्थापित करके उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य है। कार्यकारण में लय होता है। कृष्णके मुखसे अग्नि प्रकट हुआ इसलिये भगवानने उसे मुखमें ही स्थापित किया। मुखके द्वारा अग्नि शान्त करके भाव प्रकट किया भव-दावाग्निको शान्त करनेमें भगवान्के मुख-स्थानीय ब्राह्मण ही समर्थ है। विषाग्नि, मुञ्जाग्नि और दावाग्नि तीनों का पान करके भगवान्ने अपनी त्रितापनाशकी शक्ति व्यक्त की। पहले रात्रिमें अग्निपान किया था, दूसरी बार दिनमें। भगवान् अपने भक्तजनोंका ताप हरनेके लिए तत्पर रहते हैं। भगवान परोक्ष अपरोक्ष दोनों प्रकारसे भक्तजनोंका हित करते हैं।

११) प्रलम्बासुर का वध- इस प्रकार अपनी योगमाया से ग्वाल का वेष धारण कर राम और श्याम व्रज में क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ। यह ऋतु प्राणियों को अतिशय प्रिय नहीं है किन्तु वृन्दावन के स्वाभाविक गुणों के कारण वहाँ वसन्त ऋतु की सी छटा छिटक रही थी। इसका कारण था भगवान श्यामसुन्दर का वहाँ निवास। वृन्दावन में यत्र-तत्र झर्झर करते हुए निर्झर बह रहे थे। उनके जल कणों से सिक्त होकर वहाँ की भूमि चारों ओर श्याम तृणों से रहित थी। विविध प्रकार के विकसित कमलों की भीनी-भीनी गन्ध के साथ शीतल मन्द वायु बह रही थी। यही कारण था कि सूर्य की अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँ कष्टकर नहीं थीं। पूरा वन कुसुमित था। कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे थे तो कहीं प्रसन्न भ्रमरावली गुंजायमान थी। मोर नाच रहे थे। कोकिलमण्डली कूक रही थी। बड़ा ही मनोरम वातावरण था।

ऐसे ही मनोहर वातावरण में क्रीडा की इच्छा से वेणु बजाते हुए भगवान श्रीकृष्ण बलराम और गोपों के साथ गायों को आगे-आगे करके वन में प्रविष्ट हुए। वहाँ कोई नाचता, कोई युद्ध करता, कोई कुश्ती लड़ता, कोई गाना गाता, कोई ताली बजाता और कोई हँसता। इस आनन्द में देवता लोग भी गोपवेश धारण कर सम्मिलित हो भगवान की लीला का दर्शन करके प्रफुल्लित होते। श्याम और राम एक दूसरे का हाथ पकड़ कर कभी घुमरी-परेता खेलते, कभी लम्बी छलांग लगाते, कभी कमण-पत्थर रखकर घुमा कर फेंकते, कभी ताल बजाते, कभी आपस में खींचा-खींची करते और कभी कुश्ती लड़ते। जब दूसरे ग्वालबाल गाना गाते तो राम-श्याम ताली बजाकर उनका उत्साहवर्धन करते और वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा भी करने लगते। कभी एक-दूसरेपर बेल, जायफल या आँवलेके फल हाथमें लेकर फेंकते। कभी एक-दूसरेकी आँख बंद करके छिप जाते इसप्रकार आँखमिचौनी खेलते। कभी मेंढ़कोंकी तरह फुदक-फुदककर चलते, तो कभी मुँह बना-बनाकर हँसी उड़ाते। कहीं रस्सियोंसे वृक्षोंपर झूला डालते ये विचित्र-विचित्र तरह की क्रीड़ायें करते थे- **कबहूँ सारस कोकिला हंस मोर की भाँति। ग्वालबाल बोलैं कभी माखनप्रभु मुसकात।।**

१) भ्रामण- परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर घुमाना। २) लंघन-गर्तादि का लाँघना। ३) क्षेप-क्षेपण-पत्थर के टुकड़े अथवा गोलियों को क्षेपण यंत्र से फेंकना। ४) आस्फोटन- ताल ठोकना। ५) विकर्षण- परस्पर एक दूसरे को खींचना। ६) नियुद्ध-मल्लयुद्ध, कुश्ती लड़ना। ७) कभी विल्व कभी कुम्भ (गुलर) और कभी आमूलकों को मुष्टि से फेंककर क्रीड़ा करना, परस्पर दो फलों का आघात करना। ८) अस्पृश्य-छुआछूत। ९) नेत्रबंध- आँख मिचौनी।

बड़ा ही आनन्द का वातावरण था। खेल के प्रसंग में राम और श्याम कहीं बिल्व से, कहीं कुम्भ से, कहीं आँवले से

खेल-खेलते। कहीं आँख-मिचौली करते, कहीं मेंढ़कों की तरह उछलते, कहीं हँसी-मजाक करते, कहीं झूला झूलते। इसप्रकार भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ वृन्दावन के पर्वत, नदी, द्रोणी, कुञ्ज, कानन तथा सरोवर आदि स्थानों में लोक-प्रसिद्ध क्रीडा करते हुए विचरण करते थे।

सभी बालक क्रीडा में निमग्न थे। इसी समय प्रलम्ब नाम का एक असुर गोप-बालक का रूप धारण कर कृष्ण और बलराम को हरण करने की इच्छा से वहाँ आया। उसने सोच रक्खा था कि पहले मैं इनके खेल में सम्मिलित हो जाऊँ, फिर बाद में इन लोगों को उठा ले जाऊँगा। प्रलम्बासुर की लम्बाई की कोई हद नहीं थी।

प्रलम्ब ने भी खेल में भाग लेने का प्रस्ताव रखा जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। क्रोध तो उसे बलराम पर था। उसने उन्हीं को अपना भागीदार चुना और जान-बूझकर खेल में हार गया। अब उसे घोड़ा बनना था और बलराम को उसपर सवारी करनी थी।

भगवान श्रीकृष्ण ने उसे देखा। वे देखते ही जान गये कि यह असुर है परन्तु उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया। उन्होंने उसके साथ मैत्री कर ली। कृष्ण उसको बोले- **सबसों नीकौ वेष तिहारौ। भलौ कपट बनि मित्र हमारौ।।**

सखा बुलाये निकट सब तिन्हैंकहेउ नँदलाल। फलबुझाय अब खेलिये मुदित भये सब ग्वाल।।

वे उसके वध की बात सोच रहे थे। उन्होंने सारे बालकों को दो दल में विभक्त कर दिया। एक दल के नेता थे श्रीकृष्ण और दूसरे दल के नायक थे बलराम। दोनों दलों में भाँति-भाँति की क्रीड़ाएँ होने लगीं। क्रीड़ा में शर्त यह थी कि जो जीत जायेंगे वे हारनेवाले को घोड़ा बनाकर उस पर सवारी करेंगे। हारनेवाला जीतनेवाले को ढोवेगा। यह क्रीडा भाण्डीर-बट के आस-पास हो रही थी अत: पीठ कर बैठा कर भाण्डीर बट तक ले जाने की बात निश्चित हो गई थी। श्रीकृष्ण ने बलराम को बताया-

अपनौ सखा नहीं बलवीर, कपट रूप यह असुर शरीर।
याके बध को करो उपाय, ग्वाल रूप मारो नहिं जाय।
जब यह रूप धरै खल अपनौ, तब तुम ताहि ततक्षण हनौ।।

शुकदेव बोले- राजन्, वन में जाकर गोपों ने खेल में श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को अपने-अपने दल का प्रधान बनाया। गोपों में से कुछ श्रीकृष्ण की ओर हो गये, कुछ बलरामजी की ओर। फिर वे घोड़ा बनकर चढ़ने चढ़ाने को बहुत खेल खेलने लगे। इन खेलों में जो दल हार जाता, उसे विजित दल के लोगों को पीठ पर चढ़कर ले जाना पड़ता।

खेल प्रारम्भ हुआ। खेल में बलराम के दल की जीत हुई। श्रीकृष्ण का दल हार गया। शर्त के अनुसार पराजित दल को विजेताओं को अपनी पीठ पर बैठा कर भण्डीर-बट तक ले जाना था अत: हारा हुआ दल विजयी दल को अपनी पीठ पर बैठा कर लक्ष्य की ओर बढ़ा। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को, भद्रसेन ने वृषभ को और प्रलम्बासुर ने बलराम को अपनी पीठ पर चढ़ाया था।

प्रलम्बासुर बलराम को लेकर बड़े वेग से दौड़ा और उतारने के स्थान भाण्डीरबट को लाँघकर आगे निकल गया फिर उन्हें लेकर आकाश में उड़ने की कोशिश की किन्तु बलराम पर्वत की भाँति वजनी थे अत: प्रलम्ब की गति शीघ्र ही धीमी पड़ गई। आकाश में पहुँच कर प्रलम्ब ने अपना भयानक असुर रूप धारण कर लिया। बलराम प्रलम्ब की पीठ पर जा बैठे। प्रलम्ब को लगा, उसकी पीठ पर पहाड़ ही रख दिया गया। उसे पता ही नहीं था कि बारह वर्ष का एक किशोर इतना भारी होगा। फिर भी उसने हिम्मत बटोरी और बात-की-बात में बलराम को लेकर झुण्ड से काफी दूर भाग खड़ा हुआ।

संकर्षनकूँ लै असुर, दाईतें आगे बढ़्यो। गोपरूप तजि रूप निज, धारन करि नभमहँ उड़्यो।।

जब प्रलम्बासुर भाग रहा था तब ऐसा लगता था कि काला-काला बादल चन्द्रमा और बिजलीके साथ भागा जा रहा है। उसके अप्रत्याशित असुर रूप को देखकर एक क्षण के लिये तो बलराम कुछ डर-से गये किन्तु जब बलराम ने जाना कि अरे यह तो असुर है। यह मेरा हरण करना चाहता है तो उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने वज्र के समान अपनी सुदृढ़ मुष्टि से उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि उसका सिर फट गया। मुख से रक्त की धारा बहने लगी और फिर चिल्लाता हुआ वह पृथ्वी पर गिर कर मर गया।

ग्वाल बाल सङ्ग असुर इक, खेलन लाग्यौ आय। दैत्य प्रलंबसुर जानि के, हन्यो राम ने ताय।।
मस्तक मुक्का मारि असुरके सिरकूँ फास्यो। यों प्रलम्बकूँ तुरत रोहिनीनन्दन मास्यो।।
ग्वालबाल सब आइकें, साधुवाद बलकूँ दयो। लखि बल द्वारा असुर वध, अति विस्मय सबकूँ भयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, बलरामजी के द्वारा प्रलम्बासुर के मारे जाने पर देवगण परम प्रमुदित हुए और संकर्षण भगवान पर फूलों की वर्षा करने लगे तथा उनकी प्रशंसा करते हुए बार-बार साधु-साधु कहने लगे।

गोप-गण इस अद्भुत दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो उठे फिर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा- वाह भैया वाह। आपने बहुत अच्छा कार्य किया है। बलराम के पराक्रम को देखकर ग्वालबालों का चित्त प्रसन्न हो उठा। प्रलम्बासुर के मारे जाने पर देवों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे बलराम पर पुष्प-वृष्टि कर उनकी प्रशंसा करने लगे।

ग्वालबाल चकित भये दौड़ गये बलपास। मृतक असुर तन देखके सबको भयो हुलास।।
धन्य धन्य बलराम धन्य तुम्हारे मातुपितु। बड़ो कियो यह काम कपटरूप मास्यो असुर।।

प्रलम्बासुर प्राणी की बड़ी-बड़ी वासनायें हैं। ये आसानी से मरती नहीं है। भगवान् की कृपा होने पर ही वासनाओं का विनाश होता है। कई जन्मों के कर्मों के संचित संस्कार ही वासना कहे जाते हैं अत: वासनाएँ विशाल और प्रबल होती है।

कुबेर शिव-भक्त थे। उन्होंने शिव की पूजा के लिये विशाल पुष्पोद्यान लगा रक्खा था। उनका कहना था कि- जो व्यक्ति इस उद्यान का पुष्प तोड़ेगा वह असुर बन जायेगा। हूहू गन्धर्व का बेटा था- विजय। उसे कुबेर के कथन की बात ज्ञात न थी अत: एक दिन उसने उस उद्यान के कुछ फूल तोड़ लिया। पुष्प तोड़ते ही वह सद्य: असुर हो गया। उसके क्षमा-याचना करने पर कुबेर ने कहा- अच्छा- द्वापर की समाप्ति पर भाण्डीर वन में बलदेव के हाथों से तुम्हारा उद्धार हो जायेगा।

देवतागण सदा पक्षियों तथा भ्रमरों के रूप में इन दोनों भाइयों का यशोगान करते रहते थे। कृष्ण और बलराम कभी घुमरी, परेता, खेल खेलते, कभी होड़ लगाकर ढेले फेंकते, कूँड़ी (कबड्डी) खेलते। कभी ठेका मारते, कभी कुश्ती लड़ते, कभी रस्साकशी का खेल खेलते, कभी आँख मिचोनी का खेल होड़ लगाकर खेलते। इसी भाँति बाल सुलभ नित्य नये खेल बाजी लगाकर खेलते।

१२) राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन- शुकदेव बोले- राजन्, व्रज में अवतार लेने पर श्री राधा और श्रीकृष्ण की पहली भेंट वृन्दावन में यमुना नदी के किनारे हुई थी। उस समय श्रीराधा जी आयु लगभग सात वर्ष की थी।

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण अपने गोपसखाओं के साथ यमुना किनारे खेलने के लिए गए। वहाँ वे नटनागर मुरली हाथ में लिए अपने एक सखा के साथ खड़े थे। दैवयोग से वहाँ विशाल नयनी वृषभानु की दुलारी श्री राधा सुन्दर श्रृंगार किए हुए उमंग से भरी हुई अपने सखियों के साथ यमुना स्नान के लिए आईं। श्रीराधा की, कोटि काम रति की छवि को लज्जित करनेवाली, मनोहारी छवि देखकर भगवान श्रीकृष्ण की आँखें उनकी ओर आकर्षित हुईं। वे सोचने लगे कि यह मृगनयनी चन्द्रवदनी कौन है? किसकी पुत्री है और कहाँ की रहनेवाली है? उसी समय भगवान श्रीकृष्ण और श्रीराधा की आँखें मिलीं

और दोनों को पिछली प्रीति का (गोलोक का) स्मरण हो आया। दोनों प्रेमवश एक दूसरे के प्रति आकर्षित और मोहित हो गये। अत: दोनों के हृदय में प्रीति बढ़ी। परन्तु लोकाचार निभाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीराधा से पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है, किसकी बेटी और कहाँ की रहने वाली हो? मैंने आज तक तुमको इस व्रज में कभी नहीं देखा है। मोहन की ऐसी बातें सुनकर श्री राधा ने कहा कि मैं सदा अपने गाँव में ही खेलती रहती हूँ। मुझे अब तक यहाँ आने का काम ही नहीं पड़ा। मैं तो कभी यहाँ आई ही नहीं। फिर तुम देखते कैसे? मेरा नाम राधिका है। मैं राजा वृषभानु की पुत्री हूँ और इसी व्रज की रहनेवाली हूँ। तुमने भले ही मेरा नाम न सुना हो परन्तु मैंने तुम्हारा नाम भली-भाँति सुन रखा है। तुम नन्द बाबा के ढोटा हो और ग्वालिनियों का दही माखन चुरा-चुरा कर खा जाते हो। तुम वही नन्द के लाला हो। आज मैंने तुमको अपनी आँखों से देख लिया है। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि हे सुन्दरी कभी-कभी यहाँ खेलने चली आया करो।

राधिका ने मन में सोचा- यह नन्द का छोरा जितना आकर्षक है उतना ही ढीठ है। कितने प्यार से बोलता है, इसकी वाणी में कितनी मोहकता है, किन्तु वे लज्जावश श्याम की बातों का उत्तर न दे सकीं। श्याम ने इधर-उधर देखकर उनकी नीली रेशमी साड़ी पकड़ ली और बोले- मेरी शपथ खाओ कि फिर आओगी। राधिकाजी ने साड़ी छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया। अपने बड़े-बड़े विशाल कजरारे नयनों से शंकित दृष्टि से इधर-उधर देखकर बोलीं- छोड़ दो, छोड़ दो। हाँ मैं अवश्य आऊँगी। श्यामने बात पर बल देकर कहा- कल आओगी इसी समय। शंकित चित्त से वृषभानुनन्दिनी ने कहा- अब कल की तो नहीं कह सकती। हैं तुम्हारी भाँति छोरा तो हूँ नहीं, छोरी हूँ। माता से पूछकर किसी को साथ लेकर, कोई बहाना बनाकर तब आना होता है। श्यामसुन्दर बोले- तुम्हारा खिरक और हमारा खिरक पास-ही-पास तो है, माता से कह देना गौओं को दुहने जाती हूँ। शीघ्रता से किशोरी बोली- अब तुम मुझे छोड़ दो, तुम्हें यह सब सिखाना न होगा, मैं सब अपने आप कोई युक्ति सोच लूँगी।

मोहन की प्रेमभरी बातें सुनकर राधा भी तन-तन से कृष्ण पर मोहित हो गयीं तथा पिछली प्रीति और प्रगाढ़ हो गई परन्तु उन्होंने सखियों के सामने अपने प्रेम का भेद नहीं खोला। पुन: श्रीकृष्ण ने कहा कि हे राधे, तुमको बाबा वृषभानु की सौगन्ध, दो चार घड़ी हमारे घर नित्य आ जाया करो। जब नन्दबाबा तुम्हारे घर गायें गिनने जाएँगे तो उनके संग मैं भी आया करूँगा और जब तुम दूध दुहाने के लिए आया करो तो गोशाला में मुझे भी बुला लिया करो। मोहन की ये मनोहर बातें सुनकर राधा मन ही मन आनन्दित हुईं और मन में श्रीकृष्ण की छवि बसाकर अपने घर को चलीं। बहुत देर हो जाने के कारण मन में माता-पिता का भय भी व्याप्त था।

राधा ऊपर के मन से कहने लगीं कि हे सखियों, शीघ्र घर को चलो। माता बाट देखती होंगी। यह जो श्रीकृष्ण ने कहा कि हमारे घर खेलने आ जाया करो, तो भला हमारे घर खेलनेवालों की क्या कमी है जो मैं इतनी दूर जाऊँ और अपने पैर थकाऊँ। परन्तु मन में तो श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण बसे हुए थे। जब घर गईं तो माता ने पूछा कि पुत्री। इतनी देर कहाँ कर दी? मैं तुम्हें गायों के खरक में भी देख आई, परन्तु तुम वहाँ नहीं मिली। श्री राधा बोलीं कि माता, मैं गायों को देखने चली गई थी। उन्होंने यह कहकर माता को बहला दिया परन्तु स्वयं श्रीकृष्णमयी हो गईं।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, अब दोनों ओर से नित्य प्रति मिलन को उत्कट इच्छा बनी रहने लगी। दोनों ही निरन्तर मिलन के अवसर खोजने में लगे रहते। जब भी अवसर मिलता किसी भी बहाने से मिल जाते। कभी श्रीकृष्ण अनेक रूप रखकर राधा के अन्त:पुर में चले जाते, कभी राधाजी अनेक रूप रखकर श्रीकृष्ण को सम्भ्रम में डालतीं। स्नेह बढ़ने लगा,

उसने मान का रूप धारण किया फिर वही प्रणय रूप में परिणत हो गया। राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव ये स्नेह की क्रम-क्रम से सीढ़ियाँ हैं। राधा श्रीकृष्ण की प्राणेश्वरी हैं, हृदयेश्वरी हैं। उनके बिना श्रीकृष्ण रह नहीं सकते।

दिव्य लोकतैं धरनि धामपै राधा आईं। निज परिकर पुर लाइ अवनिकूँ दई बढ़ाई।।
धनि-धनि श्रीवृषभानु कीर्ति जननी हू धनि-धनि। जिनकी दुहिता बनी राधिका विहरैं भवननि।।
यह अवनी पावन बनी, राधा पदरज परसिकें। जिहि रज सुरगन, इन्द्र अज, शिव सिर धारहिं हरषिकें।।
गुप्त प्रीति प्रकटत नहीं दोऊ हृदय छिपाय। मनमोहनप्यारी चली घर को नयनचलाय।।

खेलते हुए श्रीकृष्ण ब्रज की गलियों से निकले। वे कमर में कछनी और पीतांबर बांधे हुए थे। हाथ में भौंरा और चकडोरी थी। सिर पर मोर-मुकुट और कानों में कुंडल थे। दांतों की चमक बिजली की शोभा को छीननेवाली थी। कृष्ण यमुना के किनारे पहुंचे। अचानक वहां पर उन्होंने राधा को देखा जिसके नेत्र विशाल थे। लड़कियों के साथ वह इन्हीं की ओर आ रही थीं। उसकी अवस्था अभी छोटी थी, शरीर गोरा था और वह बहुत ही सुंदर लग रही थी। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण उसे देखते ही उस पर आसक्त हो गए। नेत्रों से नेत्र मिलकर दोनों ही ठगे गए।

बूझत स्याम कौन तू गोरी। कहां रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज-खोरी।।
काहै कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहति आपनी पोरी।
सुनत रहित स्त्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

कृष्ण ने कहा कि हे सुंदरी तुम कौन हो? कहां रहती हो, किसकी बेटी हो? तुम्हें मैंने कभी ब्रज की गलियों में नहीं देखा। तुम हमारे ब्रज की ओर क्यों आई हो? अपने दरवाजे पर ही खेलती रहतीं। उनके इस ताने पर राधा ने कहा कि हां, सुनती रहती हूं कि तुम नंद के बेटे हो, मक्खन और दही की चोरी करते फिरते हो। कृष्ण ने उत्तर दिया कि तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे? अच्छा चलो, संग-संग जोड़ी बनकर खेलें। सूरदासजी कहते हैं कि रसिक शिरोमणि कृष्णने बातों में भोली राधा को मुग्ध कर दिया। उस समय तो राधिका यह बातें करके अपने घर चली गई पर उसका मन कृष्ण में लगा रहा। संध्या समय राधा अपनी माता से दूध दुहाने का बहाना करके गोष्ठ में कृष्ण से भेंट करने चली।

लै माता सों दोहनी चली दुहावन गाय। मन अटक्योनँदलालसों गई खरक समुहाय।।
मनमगसोचतजायकितदेखों वह साँवरो। जिन मन लियो चुराय खरक मिलन मोसों कह्यो।।

हे राजन्, जब राधा और कृष्ण की खरका में भेंट हुई तब श्यामसुन्दर ने अपनी माया से घटा व बदली उत्पन्न करके उसी अँधेरे में उससे प्रेमपूर्वक बातें कीं। जब राधा विलम्ब होने से हड़बड़ाकर अपने घर चली तब मोहनप्यारे ने उसकी साड़ी स्वयं ओढ़ ली और अपना पीताम्बर उसे दे दिया। जब श्रीकृष्णजी वह साड़ी ओढ़े हुए अपने घर आये तब यशोदा ने उनको देखकर बिचारा कि इसने किसी गोपी से प्रीति करके उसकी साड़ी ले ली है। मोहनप्यारे अन्तर्यामी यशोदा के मन का हाल जानकर बोले- हे मैया, आज मैं यमुना के किनारे गौवों को पानी पिलाने गया था वहाँ एक गोपी अपनी साड़ी रखकर स्नान करने लगी। सो एक गौ वहाँ से भागी, जब मैं गाय बहोरने गया तब उस गोपी ने डरके मारे जल्दी में मेरा पीताम्बर, जो यमुना के किनारे रक्खा था, पहिन लिया और अपनी साड़ी छोड़कर चली गई। वह ब्रजवाला मेरी पहिचानी हुई है, अभी जाकर अपना पीताम्बर ले आता हूँ। ऐसा कहकर वहाँ से बाहर चले आये और अपनी माया से उसी साड़ी को पीताम्बर बना लिया। फिर यशोदा के पास जाकर

कहा कि मैं अपना पीताम्बर बदल लाया। यशोदा उनकी बात सच जानकर चुप हो रही।

सुबल के द्वारा कही गई श्याम सुन्दर की बातों को सुन सुनकर भानु नन्दिनी राधा रानी के प्रेममयी पवित्र हृदय में अपने प्रियतम से मिलने की लालसा इतनी अधिक बढ़ गई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसी के फलस्वरूप प्रात:काल दोहिनी हाथ में लेकर दूध दुहने के बहाने घर से निकल पड़ी। सुबल भैया ने बहन राधा को बताया था कि श्याम सुन्दर नित्य प्रति प्रात:काल खिरक में जाकर गैया दुहते हैं और हाथ फैलाकर बोला इतनी बड़ी धार निकालते हैं जिसे कभी कभी तो मुख में भी भर लेते हैं।

कामधेनु कल्पत रहे, भइ न ब्रजकुल गाय, श्री राधा दोहावत दोहनी, हरि दोहवत हाथ चढ़ाय।
कल्पतरु कल्प तक रहे, भयो न व्रजकुल आय, श्याम सखा संग आवते, हरि चढ़ते डाल नमाय।।

जब चलते समय मैया ने पूछा- अरी लाली राधा, सवेरे सवेरे कहाँ जा रही हो? राधा बोली, हे मैया, मैं गौशाला जा रही हूँ। कल मुझे देर हो गई थी मेरे पहुँचने तक ग्वालों ने सभी गैया दुह डाली थीं।

खिरकन देखे राधिका, दूहत दूध अहीर। नंद गाँव गो सदन महँ, द्रग देखे यदुवीर।।

राधा ने देखा गायों के खिरक में अहीर दूध दुह रहे हैं। नन्दगाँव के गो सदन में यदुवीर श्रीकृष्ण को अपने नेत्रों से देखा।

कुंवरी राधा को देखकर कन्हैया बोले, हे राधे। तुम्हारा यहाँ आना कैसे हुआ। राधे के नैन संकोच के कारण नीचे हो गए और वे अपने चरण का अँगूठा धरती पर घुमाने लगीं। श्यामसुन्दर ने लाड़िली राधे की ठोड़ी पर हाथ लगाया और उन्हें अपने साथ ले लिया। हाथ में हाथ पकड़कर प्रिय प्रियतम गौशाला की राह पर चल पड़े।

एक ज्योति भइ द्वै वरण, श्याम गौर वर रूप। एक प्राण द्वै तन जनूँ, जोड़ी परम अनूप।।

एक ही ब्रह्म ज्योति ने श्याम और गौर वर्ण के श्रेष्ठ दो स्वरूपों को धारण किया हुआ है। इस पर अनुपम जोड़ी के मानो शरीर ही दो हैं और दोनों में मानो एक ही प्राण रहता है।

संग की सखियों ने कहा- राधे, अब बहुत देर हो गई है घर की ओर चलो तुमने तो गाय दोहन सीखने के लिये पूरा डेरा ही लगा लिया है। कुछ आज सीख लिया है कुछ कल सीख लेना, कल फिर आ जाना। यदि अधिक देर हो गई तो मैया से क्या बहाना लगाओगी।

परम ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण की अति प्रिय राधा त्रिभुवन की स्वामिनी है। सम्पूर्ण विश्व की रचना करनेवाली महाशक्ति है। अखिल विश्व की रक्षा करनेवाली सभी जीवों का भरण पोषण करनेवाली मनमोहन की आह्लादिनी शक्ति बृज की स्वामिनी है। आनन्दमयी भामिनी अपनी माता से भयभीत होकर उनके तप बल का प्रभाव दिखा रही है।

राधा माँ का भय दिखलाते हुए सखियों से बोलीं, अरी सखियो, मेरी मैया मेरी राह देख रही होगी और कहती होगी, मेरी छोरी राधा जाने कहाँ चली गई मुझसे तो कहा था गौशाला में शालिग्राम की पूजा के लिये अहीरों से मैं सीधे ही धारोषन दूध दोहिनी में दुहाकर लाने जा रही हूँ।

घर आने पर मैया ने पूछा, अरी लाली। इतनी देर कहाँ लगा दी तो राधा ने कहा, अरी मैया। हमारे यहाँ के खिरक में कोई दूध दुहने वाला नहीं था इसलिये मैं दूध हेतु नन्दगाँव चली गई थी। वहाँ एक अहीर बहुत सुन्दर ढंग से गाय दुहना जानता है। उसने गाय दुहकर मुझे दूध दिया और मुझे गाय दुहना भी सिखाया।

राधा दूध दुहाकर श्यामसुन्दर का पीताम्बर पहिने हुए अपने द्वार तक पहुँची और घबराकर अपनी माता को पुकारा। उसका बोल सुनते ही कीर्ति दौड़ी आई और उसने अपनी बेटी को घबराई हुई देखकर पूछा- हे बेटी, अभी तू अपने घर से

अच्छे से गई थी, तेरी क्या दशा हो गई।

तब राधा ने कहा कि एक लड़की जिसका नाम मैं नहीं जानती, मेरे साथ चली जाती थी उसको साँप ने काट लिया सो वह अचेत होकर गिर पड़ी तब मैं भी डर गई। जब नन्दकुमार के झारने से उसको आराम हुआ तब मैं अपने घर आई। यह बात सुनते ही कीर्ति ने राधा को गले लगाकर कहा कि तुझे ईश्वर ने मृत्यु से बचाया। मैं तुझको बारम्बार मना करती हूँ, तू मेरा कहना नहीं मानती। कभी बाहर दूर खेलने, कभी यमुना किनारे नहाने, कभी खरका में दूध दुहाने जाती है। खेलते समय देखकर धरती पर पाँव नहीं रखती है। अब तू कहीं बाहर खेलने मत जाया कर। यह बात अपनी माता से सुनकर राधिका मन में कहने लगी कि आज मैंने अपनी माता से अच्छा छल किया। उसने कृष्ण का ध्यान हृदय में रखकर अपनी माता से कहा कि अब मैं बाहर न जाकर गाँव और घर में खेला करूँगी। हे राजन्, राधा के मन में नन्दलालजी ऐसे बस गये थे कि उनके देखे बिना उसे चैन नहीं पड़ता था, **अंग अंग छवि गड़ गई, राधा हिय के बीच। जनु कारे ने डँस लई, सिर पर आई मीच।।**

राधा के हिय मन्दिर में मनमोहन के अंग अंग की सुन्दर छवि गढ़ गई मानो उसे कारे कन्हैया ने साँप की तरह डस लिया हो और उसके सिर पर आनन्दमयी मृत्यु तुल्य बेसुधि छा गई।

इसलिए तीसरे दिन फिर राधिका दूध दुहाने के बहाने श्यामसुन्दर के स्थान पर आई और द्वारे पर से मोहनप्यारे को पुकारा। मारे लज्जा के भीतर नहीं गई। राधा का शब्द सुनते ही नन्दलालजी ने यशोदा से कहा कि हे मैया, कल मैं यमुना के किनारे रास्ता भूल गया था सो एक गोपी मेरा हाथ पकड़कर गाँव में पहुँचा गई तब मैं घर पहुँचा हूँ, नहीं तो न मालूम भूलकर कहाँ चला जाता। वही ब्रजबाला मेरे साथ खेलने आई है, पर तुम्हारे भय से यहाँ नहीं आती। तुम उसको भीतर बुलाकर देखो। ऐसा कहकर कृष्ण ने अपनी माया ऐसी यशोदा पर फैला दी कि उसकी राधा से प्रीति उत्पन्न हो गई। तब यशोदा ने श्यामसुन्दर से कहा तू उसको भीतर बुला ले। यह बात सुनते ही कृष्ण जब राधिका की बाँह पकड़कर भीतर ले आये तब यशोदा ने उसकी सुन्दरता देखते ही बड़े प्रेम से अपने पास बैठाकर पूछा कि तू किस गाँव में रहती है, मैंने आज तक कभी तुझको नहीं देखा, तेरा व तेरे माता पिता का क्या नाम है? कल मेरा कृष्ण राह भूल गया था, सो तूने बहुत अच्छा किया जो उसको गाँव में लिवा लाई। श्यामा ने कहा कि मेरा नाम राधिका है।

नाम कहा तेरौ री प्यारी। बेटी कौन महर की है तू, कौ तेरी महतारी।।
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी।।
मैं बेटी वृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानतिं। जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिंन पहिचानतिं।।
ऐसी कहि, वाकौं मैं जानति, वह तो बड़ी छिनारि। महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हंसति देति मुख गारि।।
राधा बोलि उठी, बाबा कछु तुमसौं ढीठी कीन्हौ। ऐसे समरथ कब मैं देखे हँसि, प्यारहिं उर लीन्हौ।।
महरि कुंवरि सौं यह कहि भाषति, आउ करौं तेरी चोटी। सूरदास हरषित नंदरानी, कहति महरि हम जोटी।।
मैं बेटी वृषभानु की तुमको जानत माय। बहुत बेर मिलनो भयो यमुना के तट आय।।

हे राजन्, श्याम व श्यामा ऐसे सुन्दर थे, जिनके स्वरूप का वर्णन शेष गणेशजी नहीं कर सकते, दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो बड़ाई कर सके।

खेलत दोउ झगड़न लगे भरे परम अहलाद। मानो घन अरु दामिनी करत परस्पर बाद।।

यशोदा उन दोनों को खेलते-हँसते हुए देखकर बहुत प्रसन्न हुई और राधिका से कहा कि तू नित्य यहाँ आकर मेरे मोहन

के साथ खेला कर। श्यामसुन्दर राधाप्यारी से हँसकर बोले तुम लज्जा छोड़कर हमारे यहाँ खेलने आया करो। तुम्हारे साथ खेलने से मेरा मन अति प्रसन्न होता है। मोहन की यह बात सुनकर राधा मुस्कराती हुई अपने घर चली गई।

परम नागरी राधिका अतिनागर वृजचन्द। करत आपनी घात दोउ बँधे प्रेम के फन्द।।

यशोदा के मन का हाल जानकर कीर्ति ने सब गोपियों से कहा कि मेरी बेटी दामिनी और मोहन घटा-सा श्याम अति मनभावन दोनों विवाह के योग्य हैं। कीर्ति को भी इस बात की चाह हुई कि राधाप्यारी का विवाह नन्दलालजी से होता तो बहुत अच्छा था। ऐसा विचारकर उसने वृषभानु से यह बात कही-

युगुलकिशोर स्वरूपवर वृन्दावन रसखान। नवदूलह दुलहिन सदा राधाश्यामसुजान।।

वृषभानु भी अपनी स्त्री की बात सुनकर प्रसन्न हुए। इसी तरह राधिका नित्य नन्दजी के घर आकर मोहन के साथ खेला करती थी। श्यामसुन्दर भी उसके साथ बड़ी प्रीति रखते थे। राधा जब कभी अपनी गौवों का दूध दुहाने के वास्ते मनहरण से कहती थी तब वह बड़े प्रेम से उसकी गौ दुह दिया करते थे।

धेनुदुहावत लाड़िली दुहत नंदको लाल। सो सुख कासों जात कहि देखत व्रजकी बाल।।

राधा कृष्णसे गाय दुहा रही हैं। इस प्रकार वे अपने मन की इच्छाएं पूर्ण कर रही हैं। कृष्ण ने गाय दुहते हुए दूध की धार राधाके मुंह पर डाल दी। यह दूध की धार उनके मुंह पर बहुत सुंदर लग रही थी, मानो चंद्रमा (मुख) अपने कलंक को धो रहा हो, अत: जहां-तहां अमृत की बूंदें दिखाई पड़ रही हैं। इस पर दोनों हाव-भाव में मग्न हो गए (अच्छा लगते हुए भी राधाजी ने नाराजगी दिखाई होगी और कृष्ण ने भी उसकी प्रतिक्रिया दिखाई होगी।) इन दोनों की लीला की यह शोभा सखी ललिता देख रही थी। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार उनके प्रभु श्रीहरि गोदोहन का सुख पा रहे हैं जो कि तीनों लोकों में कहां प्राप्त हो सकता है।

हरि सौं धेनु दुहावति प्यारी। करति मनोरथ पूरन मन, वृषभानु महर की बारी।।
दूध-धार मुख पर छगि लागति, सो उपमा अति भारी। मानौ चंद कलंकहिं धोवत, जहं-तहं बूंद सुधारी।।
हाव भाव रस मगन भए दोउ, छबि निरखति ललिता री। गौ-दोहन सुख करत सूर-प्रभु, तीनिहुं भुवन कहा री।।

एक दिन राधा श्यामसुन्दर से गौ दुहाकर जब दूध लिए हुए अपने घर चली, उस समय मोहन ने उसकी ओर देखकर मुसुकरा दिया। राधा वह मुसुकान देखते ही मोहित हो गई। जब राह में उससे सखियों ने पूछा कि आज तेरे गौ दुहानेवाले ग्वाल क्या हुए जो तूने नन्दलालजी से दूध दुहाया है। राधा श्यामसुन्दर का नाम सुनकर ऐसा अचेत होकर गिरी कि दूध का बर्तन उनके हाथ से छूट पड़ा और गिरते समय सब सखियों से बोली कि मुझको काले साँप ने काटा है। यह वचन सुनते ही सहेलियाँ उसे उठाकर उसके घर ले गईं और कीर्ति से साँप काटने का हाल कह दिया। उन्होंने बहुत से गुणी बुलाकर झाड़-फूँक कराया, पर उसको मोहनरूप साँप ने डसा था, इसलिए मंत्र व यंत्र से कुछ लाभ न हुआ। जब वह उसी तरह रही तब सहेलियों ने जो उसकी प्रीति का हाल जानती थीं, मैया कीर्ति से कहा कि नन्दमहरि का बेटा बड़ा गुणी है, उसे बुलाकर दिखलावो तो इसको आराम हो जायगा।

सखियनि मिलि राधा घर लाई। देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुं इहिं कारैं खाई।।
हम आगैं आवति, यह पाछैं, धरनि परी भहराई। सिर तैं गई दौहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई।।
स्याम-भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई। रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई।।

कृष्णके मुख की मुस्कान रूपी विष के दोष से यह मरी जा रही है। मंत्र-जंत्र कुछ भी काम नहीं करता। रोग कोई है

नहीं, सारे गुणी लोग हारकर चले गए। प्रेम का विष इसके हृदय में लगा है। वही इसके शरीर को जला रहा है। गुणी लोग प्रयत्न करके थक गए, लेकिन विष न उतार सके। सूरदासजी कहते हैं कि अब तो कृष्ण रूपी गरुड़ के बिना कोई भी उसके सिर की कठिनाई दूर नहीं कर सकता। जब सखियोंने इसप्रकार कहा-

यह सुनकर कीर्ति बोली कि एक दिन राधिका ने मुझसे कहा था कि किसी लड़की को साँप काटने से नन्दकिशोर ने उसे अच्छा कर दिया था। वह बात याद करते ही कीर्ति ने दौड़कर यशोदा के पास जाकर कहा कि मेरी बेटी को साँप ने काटा है, सो तुम मोहन को साथ कर दो, वह मंत्र पढ़कर उसे अच्छी कर दे।

कर जोरे विनती करूँ, यशुदा आगे जाय। पग पकरूँ मम लाड़िली, दीजै आन बचाय।।

रानी कीर्ति ने अति व्याकुल होकर रुदन करते हुए हाथ पसार कर विधाता से राधा की कुशलता की पुकार की और कहा, हमारी लाली राधा की कुशलता मेरी झोली में डाल दो। ऐसा कहकर आँखों में आँसू भरकर बेटी राधा को बार बार अपने गले से लगाया और सोचने लगी मेरे हृदय में जो पीड़ा हो रही है मैं वह किसी बताऊँ।

रानी कीर्ति श्री वृषभानु से बोलीं, आप राधा की देखरेख के लिये यहाँ रहो और मैं ईश्वर का स्मरण करते हुए कन्हैया के पास जाकर उसे लिवा लाती हूँ। ऐसा कहकर रानी कीर्ति रथ में बैठकर नन्दरानी के पास पहुँच गईं और कुररी की तरह विलाप करते हुए माता कीर्ति ने शीघ्रता पूर्वक जाकर यशोदा मैया के चरण पकड़ लिये।

रानी कीर्ति ने कहा, हे रानी यशोदा। मैं आपकी शरण में आई हूँ मेरी विनय है कि मेरी बेटी राधा को मृत्यु के मुख से बचा लो। मेरी किशोरी सबेरे सबेरे गायों के खिरक में दूध दुहने के लिये गई थी। वहाँ अँधेरे में उसे पता भी नहीं चला कि काले नाग ने कब उसे डंक मार दिया।

बेटी राधा का शरीर सर्प दंश के कारण नीला हो गया है, अँखियाँ मुरझा गई हैं और शरीर की सुध बुध भी नहीं है। सारा शरीर विष की व्याकुलता के कारण मछली के समान तड़फ रहा है। मैं बार बार आपके चरणों में वन्दना करती हूँ कि मेरी लाली राधा को बचा लो मैं आपका एहसान जीवन भर नहीं भूलूँगी और आपका गुणगान जीवन भर करूँगी आप अपने गारुड़ी लाला को मेरे साथ भेज दो।

यह सुनकर यशोदा बोली कि अरी बहिन, मेरा अज्ञान बालक मंत्र-यंत्र क्या जाने, किसी गुणी को बुलाकर दिखलाओ। आज तक मैंने कभी उसके मंत्र-यंत्र जानने का हाल नहीं सुना है। तब कीर्तिदेवी ने कहा कि मैंने राधिका से एक लड़की के साँप काटने और कन्हैया को अच्छा कर देने का हाल सुना था, सो तुम दया करके तुरन्त उसे बुला दो।

यशोदा ने कहा, अरी कीर्ति रानी। आपको किसी ने बहका दिया है मेरा कन्हैया कहाँ का गारुड़ी। वह छः वर्ष का नन्हा बालक गरुड़ मंत्रों को क्या जाने। मैं भी आपके साथ चलती हूँ हम राधा के शरीर में से सर्प का विष निकालने के लिये किसी बड़े गुणी गारुड़ी की खोज करें। जो अपने अनुभव से युक्त मंत्रों का उच्चारण करते हुए लाली को काटने वाले सर्प को खींचकर बुला ले।

मंत्र पढ़े विष ऊतरे, कोई गुणी महान। अनवेशन अस गारुड़ी, मम लाला अनजान।।

हम लोग किसी महान गुणी गारुड़ी की खोज करें। उत्तम गारुड़ी ही मंत्र पढ़कर विष उतारने में सक्षम हो सकता है। इस विषय में मेरा लाला तो बिल्कुल अन्जान है।

कीर्ति देवी बोली, अरी यशोदा। हमारी लाली ने अपनी सखियों को किसी समय अपने मुख से बताया था कि नन्दलाल तो बहुत बड़ा गारुड़ी है। मेरी आँखों के सामने सर्प काटने से व्याकुल व्यक्ति को इन्होंने किस प्रकार बचा लिया था राधा ने

सब बताया। पल भर में ही नन्दनन्दन ने सर्प का विष उतार दिया था इसलिये मैं दीन होकर गले में पल्ला डालकर विनती करती हूँ कि श्याम सुन्दर को मेरे साथ भेज दो।

शुकदेवजी ने कहा- हे राजन्, जब कीर्ति मोहनप्यारे को बुलाने जा चुकी तब ललिता सखी ने, जो उसकी प्रीति का हाल जानती थी, एक ब्रजबाला को मोहनप्यारे के पास जहाँ पर वह खेलते थे समझाकर भेजा। उस गोपी ने जाकर नन्दलाल से कहा- **अहो महरिके लाड़ले मोहनश्यामसुजान। कित सीखे यह गोदुहन हमसे कहो बखान।।**

हे नन्दकुमार, आज प्रात:समय जिसकी गौ तुमने दुही थी वह इस समय अचेत पड़ी है, केवल तुम्हारा नाम लेने से आँख खोल देती है। उसने गिरते समय यह कहा था कि मुझको काले साँप ने काटा है, सो कोई मंत्र व यंत्र उसको लाभ नहीं करता। इसलिए तुम चलकर अपनी कृपादृष्टि से उसका विष उतार दो। तुम्हारा श्यामरंग देखकर, मैं जानती हूँ कि यह लहर तुम्हारे मुसकान की उसे चढ़ी है। जल्दी चलकर उसे अच्छी कर दो। वह तुम्हारे विरह की आग में जल रही है, सो अपने चन्द्रमुख की शीतलता से उस बिरहिनी की अग्नि बुझाओ। कदाचित तुम उसे न जिलाओगे तो हम लोग नन्दजी के द्वारे पर जाकर तुम्हारे ऊपर अपना प्राण दे देंगी। मैया कीर्ति उसके दु:ख से व्याकुल होकर यशोदा के पास तुमको बुलाने गई है। यह बात सुनते ही मोहन ने मुसुकराकर उससे कहा कि कदाचित् राधा को काले भुजंग ने भी डसा होगा, तो मैं उसको अच्छा कर दूँगा। ऐसा कहकर उस सखी को विदा किया और आप अपने घर चले आये।

यशोदा ने कहा, आप नहीं मानती हैं तो मैं कन्हैया को बुला लेती हूँ। ऐसा कहकर मैया ने एक सखी को नन्दलाल को बुलाने के लिए भेजा। सखी मनमोहन को अपने साथ लेकर आयी। माता यशोदा से सारी बात सुनकर कन्हैया मुस्कराते हुए मैया के कान में धीरे से बोले, मैं कुछ मंत्र विष उतारने के भी जानता हूँ।

नन्दलाल ने कहा, अरी मैया मैं व्याधिग्रस्त को देखे बिना निर्णय नहीं कर सकता कि किस प्रकार के नाग ने उसे खाया है। ऊपर से मनमोहन मीठी मीठी बात कर रहे थे और हृदय में निर्मल प्रेम भरा हुआ था। मैया ने कहा, अरे बेटाश्याम तुम शीघ्र जाकर राधा को बचा लो जिसके लिये रानी कीर्ति यहाँ दौड़ी दौड़ी आई हैं।

तब यशोदा ने उनसे हँसकर पूछा कि बेटा, तुम क्या साँप काटने का मंत्र जानते हो? यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले- मैया, तेरी सौगन्ध है, मैं ऐसा मंत्र जानता हूँ कि साँप के डसे हुए को देख पाऊँ तो वह मरने न पावे। यशोदा ने कहा कि बेटा, राधा को सौंप ने काटा है।

तुम कीर्ति मैया के साथ जाकर उसे आराम कर दो। श्यामसुन्दर यह आज्ञा पाते ही प्रसन्न होकर कीर्ति के साथ गये। जब मैया कीर्ति नन्दलाल समेत अपने घर पहुँची तब राधिका को अधिक ब्याकुल देख मोहन से कहा कि हे नन्दकुमार। मुझे अपने ऊपर न्योछावर समझकर राधा को अच्छा कर दो।

कीर्ति मैया के साथ नन्दनन्दन उसके घर राधा के कक्ष में आ गये। उन्होंने राधा को समीप से देखा। राधा के हाथों को देख, आँखों पर बार बार दृष्टि डाली और चारों ओर देखने लगे। इस ढंग से कन्हैया नब्ज पकड़कर देखने लगे मानो कोई महान गारुड़ी हो। पूरा शरीर देखने पर भी श्यामसुन्दर को साँप के दाँतों के निशान नहीं दिखाई दिये। लीलाधारी श्याम ने बड़े गम्भीर बनकर राधा के कानों के साथ मुख को सटाकर कुछ शब्द बोले मानो बड़ा भारी गारुड़ी किसी विशेष मंत्र का उच्चारण कर रहा हो।

राधा की शैया के चारों ओर फेरी लगाते हुए श्याम ने मधुर बंशी बजाई और फिर उसी बंशी को गौर वर्णवाली राधा के शरीर पर घुमाया। बंशी के घुमाते ही राधा ने अपने बड़े-बड़े नैनों को खोला और चारों ओर देखने लगी फिर उठकर बैठ

गई। शरीर के विष की सारी पीड़ा समाप्त हो गई और वह चलने फिरने लायक हो गई।

जैसे राधिका ने श्यामसुन्दर के आने का हाल सुना वैसे ही उसका हृदय ठण्डा हो गया और प्रेम के आँसू बहने लगे। जब श्रीकृष्णजी ने कुछ पढ़कर अपनी मुरली राधा के अंग में छुआ दी तब उसने चैतन्य होकर अपना अंग कपड़े से ढाँप लिया। श्यामसुन्दर को देखकर वह भली चंगी हो गई और अपनी माता से पूछा कि आज क्या है जो इतने मनुष्य यहाँ इकट्ठे हुए हैं। कीर्तिदेवी ने कहा कि बेटी तू साँप के काटने से मरण तुल्य हो गई थी, सो तुझको कन्हैया ने अपने मंत्र से जिलाया है। इनसे तुझे लज्जा न करनी चाहिए। यह कहकर श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया।

राधा ने नेत्र खोल दिए। सामने नंदलाल को देखकर वह शरमा गईं और अपने अंग को संभालने लगी। मां ने कहा कि प्यारी बेटी, आज तू मरने से बची है। तुझे काले नाग ने डस लिया था। तुझे कुछ भी सुधि न थी। सूरदासजी कहते हैं कि तुझे तो कृष्ण ने पुन: जीवित किया है।

उरलगाय मुख चूमिकै पुनि पुनि लेत बलाय। धन्य कोख यशोमति महरि जहाँअवतर्योआय।।
कछु मेवा पकवान कहेउ खान घनश्याम सों। बिदा कियो दैपान कीरति श्यामसुजान को।।

हे राजन्, श्यामसुन्दर के जाने के उपरांत वृषभानु और कीर्ति ने कहा कि श्रीकृष्ण और राधिका दोनों विवाह करने योग्य हैं। ललिता सखी सब भेद जानती थी, वह मनहरणप्यारे से बोली कि तुम बड़े गुणी हो गये, राधिका का विष तुरन्त तुमने उतार दिया।

गारुड़ी रूप में कृष्ण वहां आए। यह सुनकर राधा मन में हर्षित हो गईं। उन्होंने अपने को धन्य कहा, किंतु ऊपर से और मुरझा गईं। शरीर के रोएं खड़े हो गए और आनंद के आंसू बह चले। मां कीर्तिजी ने समझा कि राधा अधिक घबरा गई है, वह व्याकुल हो रही है और विष उसके अंग-अंग में समा रहा है। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण और राधा दोनों अंदर की बातें भली प्रकार जानते हैं।

राधा ने अपनी प्रिय सखियों से पूछा, अरी सखियों। कान्हा हमारे यहाँ किस कारण आये हैं, ये स्वयं ही आये हुए हैं अथवा बरसाने से बुलावा भेजकर इनको बुलाया गया है। ललिता ने कहा, राधा। तुम्हें काला नाग खा गया था तुम पलंग पर पड़ी बेसुध होकर तड़फ रही थीं। तुम्हारा विष उतारने के लिये बहुत से प्रयत्न किये गये परन्तु किसी से भी काम नहीं बना। बहुत से मंत्र तंत्र करनेवाले गारुड़ी आये फिर भी तुम्हारे शरीर का कष्ट दूर नहीं हो पाया तभी यह बृजराज के लाला जो बड़े गारुड़ी जाने जाते हैं बुलाये गये। कन्हैया के मंत्र पढ़ते ही तुम्हारी व्याधि तुरन्त दूर हो गई।

यह मन्त्र कभी मत भूलना, मैं तुम्हारा भेद अच्छी तरह जानती हूँ। तुमने राधा को मोहनी डालकर उसको अपने वश कर लिया है। यह सुनकर श्यामसुन्दर हँसते हुए अपने घर चले आये। यशोदा राधिका के ठीक होने का हाल सुनकर अति प्रसन्न हुई और मोहनप्यारे को गोद में उठाकर प्यार करने लगी।

राधा तुम हो आदि प्रकृति, पुरुष कृष्ण सुखधाम। ऋषि मुनि जन नित जपत हैं, तेरा नाम ललाम।।
तेरा नाम ललाम, कृष्ण की भक्ति देवैया। राधा नाम सुनि सहजहि रीझैं कृष्ण कन्हैया।।
जीवन उसका सफल हुआ, जो तुम्हें आराधा। हे कृष्ण प्रिया अब कृपा करो, हे नागरि राधा।।
कारो सुत नँदराय को जाकी लीला नित्त। उनहीं को ये डसत हैं जिनके उज्ज्वलचित्त।।
धनिधनिव्रज की बाल धन्यधन्यव्रज ग्वालसब। जिनके सँग नँदलाल दुहत चरावत धेनुनित।।

कन्हैया बोले- मैया, मुझे कोई ऐसा गुनिया बताओ जो मुझे राधा की तरह गोरा बना दे। मैं ऐसे काले रंग का न होता तो

लोग मुझे काला काला कहकर क्यों चिढ़ाते?

एक बार राधा ने पूछा, कान्हा, यदि तू गोरा-गोरा होता तो हमारी जोड़ी कितनी अच्छी होती, तू तो कारो-कारो और मैं गोरी-गोरी हूँ। तू काला-काला क्यों हुआ?

कन्हैया ने कहा, देख राधा, यदि मैं गोरा होता ना तो लोग मुझे देखकर मेरी सराहना करते, मैं चाहता हूं कि लोग तेरा दर्शन करें। यही मेरा भाव है। इसका प्रभार तो हमारे समाज पर भी बहुत है कि लड़का चाहे काला ही क्यों न हो पर कन्या गोरी-गोरी होनी चाहिए।

यशोमती मैया से बोले नंदलाला, राधा क्यूं गोरी मैं क्यूं काला... राधा क्यूं गोरी...

बोली मुस्काती मैया लालन को बताया, काली अंधिअरी आधी रात में तू आया....

लाड़ला कन्हैया मेरा हो हो हो लाड़ला कन्हैया मेरा कालि कमलीवाला इसीलिए काला, यशोमती मैया से.....

बोली मुस्काती मैया सुन्न मेरे प्यारे, गौरी गोरी राधिका की नैनर कजरारे,

काली नैनों वाली ने हो हो हो काली नैनों वाली ने ऐसा जादू डाला, इसीलिए काला, यशोमती मैया से.....

कोई लोग तो ऐसा प्रश्न करने लगे- नन्दबाबा और यशोदा मैया तो गोरे हैं और यह कृष्ण तो साँवला है, ऐसा क्यों? कृष्ण यशोदा मैया से कहते हैं- माँ, तू बहुत भोली है, मैं तेरा ही बेटा हूँ, कहनेवाले को कहने दे। मैया कहती है- तो बेटा तू काला और मैं तथा तेरे बाबा तो काले नहीं। अरी मैया, तूने जन्म दिया तब तो मैं बिलकुल तेरे जैसा ही था, गोरा। रात के बारह बजे थे, सब सो गये थे, तू भी सो गयी थी। घना अन्धेरा था। रातभर, अन्धेरे में करवट बदलते-बदलते मैं काला हो गया।

महाभारत के उद्योगपर्व में कृष्ण कौरवसभा में इष्टि करने पाण्डवों की ओर से जाते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रति बड़े अपमानयुक्त वचन कहता है। इसके दो बाप हैं। अब तक तय नहीं हुआ इसका बाप कौन है। माँ-बाप के वर्ण से जुदा ही, यह तो बिलकुल काला है। राजवंशी भी नहीं है, चरवाहा है। तब कृष्ण प्रत्युत्तर देते हैं- काला तो मैं जरूर हूँ, क्योंकि कौरवों के काले करतूत अब भर चुके हैं, मैं कौरवों का काल हूँ।

१३) राधा-कृष्ण की प्रणय लीला- एक दिन सखियों के साथ सुकुमारी राधा जमुना जल में बिहार कर रही थीं और अत्यन्त पवित्र हास विलास कर रहीं थी और श्रीकृष्ण को लुभाने की भावना से किलकारी मारकर हँस रहीं थीं। वह लहरों के द्वारा श्रीकृष्ण के स्पर्श का आनन्द पाती थीं और इस प्रकार आनन्द में डूबी हुई स्नान कर रही थीं गले तक जल में डूबी हुई सब सखियों के साथ चन्द्रमा के समान वे सुशोभित हो रही थीं। सब सखियाँ सुध भूलकर बलि-बलि जाती हुई उनके अंग-अंग की छबियों पर लुभा गईं। राधा भी श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न होती हुई बावली सी हो गई और उनकी दशा एवं बुद्धि पंगु हो गई। इधर तो यह संकोच था कि कहीं सखियाँ न जान जायें और उधर बिना श्रीकृष्ण को देखे राधा के प्राण ब्याकुल हो रहे थे। चतुर सखियों ने राधा के मन के भोलेभाले प्रेमभाव को जान लिया। राधा यह चाहती थीं कि सखियाँ हमारे प्रेम को न परख पावें इससे वे सखियों की ओर देखकर फिर श्रीकृष्ण की ओर देखती थीं। दोनों एक दूसरे को स्पर्श करने का भाव प्रगट करते हैं और एक दूसरे पर रीझकर आनन्दित होते हैं। दोनों एक दूसरे की छबियों पर अपनी आँखें इस प्रकार गड़ाये हुये हैं मानों दोनों ने संसार को भुला ही दिया है। वे दोनों नेत्रों के इशारे से मिलकर आनन्दित हो रहे हैं और अंग-अंग से स्पर्श के रस की बरसा कर रहे हैं। इस प्रकार जल बिहार करके श्रीकृष्ण के रस में पगी हुई। (राधा सखियों सहित) निकलकर वस्त्र पहिनने के लिये जमुना तट पर दौड़ी हुई आई।

सखियां बोली- राधा, तुमने इनके दर्शनों की बड़ी इच्छा की थी उसे आज इन्होंने पूरा कर दिया। अब इनको अच्छी

तरह से पहचान लो और जान लो कि यह सब ब्रज को अच्छे लगनेवाले हैं। यह सुनकर राधा मन में पछताने लगी कि हमारे गुप्त प्रेम को सखियों ने जान लिया। अब तक हमने इनसे श्रीकृष्ण प्रेम को छिपाया था किन्तु आज ये जानकर लज्जित कर रही हैं। राधा श्रीकृष्ण के प्रेम रस में ऐसी डूबी हैं कि वे मुख से कुछ बोलती नहीं हैं और वे बार-बार रुककर पीछे श्रीकृष्ण की ओर प्रेम में डूबी हुई खड़ी रह जाती हैं। हृदय में श्रीकृष्ण का प्रेम लहरा रहा है इससे राधा कुछ बोल नहीं पातीं किन्तु सखियाँ कहतीं हैं जिनसे जान पहचान नहीं है उनसे आँखें जाकर कैसे मिल गई। उनकी छबियों को देखकर कैसे इतनी दीवानी हो गईं कि तन, मन का कुछ होश नहीं रहा। यह सुनकर राधा ने कहा अरी सखियों तुम क्या कहती हो। हम नहीं तुम सबही बावली हो गयी हो। श्रीकृष्ण का अंग साँवला है और उनका वस्त्र पीला है जो मन को लुभा लेता है और ऐसा लगता है कि मानों अपनी चंचलता छोड़कर बिजली बादलों के संग शोभा पा रही हो। उनके मुरली बजाने से ऐसा लगता है कि बादल मन्द-मन्द स्वर में गरज रहे हैं और उनके अंग-अंग से मानों छबि रस की वर्षा हो रही है और उनकी चितवन और मुस्कान ऐसी रसीली है जिससे मन हरा-भरा हो जाता है जैसे वर्षा से पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है।

वे उस बाण से युवतियों को निशाना बनाते हैं और जिसकी तरफ वे देख लेते हैं उनके हृदय में वे बाण गड़ जाते हैं। इस प्रकार वे उनके प्राणों में पीड़ा पैदा करते हैं और फिर मधुर बवचनों से उनको धीरज बँधाते हैं। वे उनको मार मारकर जिलाते हैं। विष पिलाकर फिर अमृत पिलाते हैं। वे प्रेम खेलों के बड़े रसीले खिलाड़ी हैं और मार करके फिर जीवित करना यह उनकी महिमा है।

अरी सखियों जहाँ पर अपार सौन्दर्य है उसे देखना दो नेत्रों के बश में कहाँ है। अगर बिधाता अनन्त आँखें देवे तब कहीं श्रीकृष्ण को देखा जा सकता है। सौन्दर्य तो अनन्त है और आँखें केवल दो हैं वे भी आँसुओं से भर जाती हैं जिससे पुतलियाँ डूब जाती हैं। फिर मैं किस प्रकार से कमलस्वरूपी नेत्रों वाले, पवित्र शरीर वाले श्रीकृष्ण को देखूँ। तुम उनके स्वरूप में लीन होकर आनन्दित हो गईं और मैं आँसु बरसाती हुई बावली हो गई। अरी सखियों यह तो अपना-अपना भाग्य है तुम ब्रज की गोपियाँ धन्य हो। अरी राधा, यह सत्य ही है कि श्रीकृष्ण की छबियों को देखना तो उन्हीं को आ सकता है जिनको तुम्हारे सरीखे नेत्र मिल जाएँ। वैसे उनकी छबियों को पार नहीं पाया जा सकता।

जिन छबियों को देखकर ब्रज की गोपिकाएँ बिक-बिक जाती हैं उनका वर्णन कोई कवि कैसे करे और ऐसे सुन्दर श्रीकृष्ण जिन राधा की छबियों पर बिक-बिक जाते हैं उन राधा के स्वरूप को कौन जाने। आँखों को, देखने की बड़ी व्याकुलता है, किन्तु सखी लाचारी कितनी है। जिस प्रकार एक चोर सम्पन्न घर में चोरी करने जाय तो एक वस्तु उठाकर दूसरी वस्तु के लिये ललचाता है। और इस प्रकार किसको छोड़े और किसको लेकर भगे यह सोचते हुए सारी रात बिता दे। ऐसी ही हमारी दशा हो गई है। हम किस अंग को देखें किस अंग को छोड़ें। यह सोचते-सोचते हम बावली हो गई हैं। श्रीकृष्ण में बिजली से भी अधिक चंचलता है और उनकी चमक से आँखे चकाचौंध हो जाती हैं उनके नेत्र चमकते हैं, उनके संकेत चमकते हैं, उनके अधर चमकते हैं और उनके दाँत भी चमकते हैं। यदि बिधाता ने हमको ब्रज में पैदा किया था तो हमको अनन्त आँखें क्यों नहीं दीं। यदि हमारे रोम-रोम में आँखें हो जातीं तो हे सखी, कुछ-कुछ उन छबियों को अपनी आँखों में भर पाती। फिर राधा चली गयी और घर के काम में लग गई किन्तु मन में श्रीकृष्ण बसे हैं इसलिये वह बार-बार मिलने का अवसर देख रही है और यमुना तट पर चलने का बिचार कर रही है।

श्रीकृष्ण प्रेम रस में पली हुई राधा, दर्शनों के लोभ से अकेली यमुना तट पर चली, ऐसी उसकी प्रेम की मर्यादा है। उनकी आँखें श्रीकृष्ण की दर्शन रस की प्यासी हैं यद्यपि वे अत्यन्त उदास हैं फिर भी उनको विश्वास है कि दर्शन अवश्य

होंगे, इसलिये वे चारो ओर चकित होकर देखती हैं और श्रीकृष्ण से मिलने के क्षण की पल-पल प्रतीक्षा कर रही है।

इधर तो राधा श्रीकृष्ण के लिये आई और उधर श्रीकृष्ण राधा के लिये व्याकुल हो रहे हैं। दोनों यमुना तट पर आ गये और दोनों एक दूसरे को देखकर मुसकराये। श्रीकृष्ण ने कहा तुम यहाँ क्यों आई हो तुमने मुझ पर कैसी मोहिनी डाल रखी है। राधा ने कहा तुमने हमारा मन चुरा लिया था उसी को वापस लेने आई हूँ। गोकुल में तुम माखन चुराते थे, वृन्दावन में चित्त की चोरी करते हो। उस समय हम तुम दोनों भोलेभाले और छोटे थे, अब सयाने होकर तुम चित्त चुराकर क्या अनीति करते हो। अब हम तुम दोनों ही तरुण हो गये हैं इसलिये ब्रज में सावधान होकर चलो, जिससे कोई हम लोगों को बुरा न कह सके और सारे ब्रजवासी हम लोगों की सराहना करें। ऐसा कहकर राधा ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और उनके स्पर्श का इस प्रकार आनन्द प्राप्त किया और कहा हमारा मन हमको वापस दे दो और हमसे अब झगड़ा मत बढ़ाओ। श्रीकृष्ण ने कहा तुम तो बड़े घरवाली हो, तुम हमारा हाथ पकड़कर कैसा झगड़ा कर रही हो। यह सुनते ही राधा आनन्द में डूबकर लुभा गयी और श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया और कहा कि तुमने हमसे प्यार को छिपाने और तनिक भी प्रगट न करने को कहा है। नगर के और घर के सभी लोग सच्चे प्रेम को नहीं जानते हैं और वे तुम्हारे स्वरूप को भी तनिक भी नहीं पहिचानते हैं। इसलिये वे तुमसे मिलने में बाधा डालते हैं और लज्जा भी हमारे पैरों को आगे बढ़ने से रोक लेती है। मुझे घर में रहना बिलकुल अच्छा नहीं लगता और तुम्हारे बिना एक पल कल्प के समान लम्बा दिखाई पड़ता है। कुल की मान मर्यादा वैसी ही है जैसी सब संसारी लोग मानते हैं। जिनको तुमसे मिलने का दिव्य रस मिल चुका है वे विषय वासना के झूठे आनन्द में कैसे भ्रमित हो सकते हैं। यह संसारी जन श्रीकृष्ण प्रेम रस को भी बिष के समान जानते हैं हाय, हाय वे कृष्ण प्रेम रस को पहिचानते ही नहीं।

माता-पिता अनेक प्रकार से ताड़ना देते हैं और गाँव के लोग व्यर्थ की चर्चा करके हँसते हैं। दुष्ट पुरुषों की और गुरुजनों की संगति बड़ी विलक्षण है इसलिये मैं तुम्हारे दर्शनों के बिना दुखी रहती हूँ। इसलिये हे प्रियतम श्रीकृष्ण, हमारा तुम्हारा मिलना जुलना नहीं हो पाता और विरह की व्यथा रहती है। तुम कृपा करके इस बाधा को दूर करके विरह के दुख को समाप्त कर दो। श्रीकृष्ण ने राधा को हृदय से लगा लिया और बार-बार उनको इस प्रकार कहकर समझाया कि हे प्यारी तुम्हारी ही कृपा से इन ब्रज की लीलाओं का ब्रज में विस्तार किया है। हमारा तुम्हारा तो दिन रात नित्य मिलन होता रहता है, क्योंकि हम तुम दोनों एक ही स्वरूप तो हैं। यह वृन्दावन हम तुम दोनों की राजधानी है और यह रस से सनी हुई भूमि तुम्हारे लीला बिहार का रसमय स्थान है। इस वृन्दावन के प्रगट होने पर इन कुंजों में हम तुम दोनों सदा ही मिलते रहते हैं। फिर भी तुम उस मिलन को भूलकर मिलने के लिये ब्याकुल होकर आँसू बहाने लगती हो। तुम तो जहाँ कहीं भी ध्यान में मुझको बुलाती हो वहीं मैं पहुँच जाता हूँ। धीरे-धीरे सखियों का भ्रम दूर हो जायेगा और इनके हृदय में भी प्रेम प्रगट हो जायेगा। मैं इनको अपना स्वरूप प्रगट करके इन्हें जी भरकर सरस रस पिलाऊँगा और जब इनको हमारा स्वरूप प्रगट हो जायेगा तब ये तुम्हारे स्वरूप को भी जान जाएँगी। अब तुम घर जाओ यह छुप-छुप कर मिलने का आनन्द भी विलक्षण हैं। श्रीकृष्ण उनसे अलग होकर बार-बार मिलते हैं और इस प्रकार प्रेम की रसमयी पद्धति का निर्वाह करते हैं।

उस समय चारों ओर से गोपीजनों को आता हुआ जानकर राधा मन में लज्जित हो गयीं और श्रीकृष्ण भी ग्वालों को टेरते हुये दौड़े और यमुना तट पर ग्वालों के पास आ गये। उसी समय सखियां भी आ गयी और बोली राधा- तुम यमुना तट पर अकेली कैसे आयी। अब राधा तुम्हारे छुपाने से कुछ नहीं छुपेगा तुम दोनों को हमने साथ-साथ देख लिया। अरी प्यारी राधा तुमसे श्रीकृष्ण ने क्या कहा। हमने उनको मुस्कुराते हुये देखा। उन्होंने तुम्हारे मन को कल चुरा लिया था क्या आज उसी को तुमने वापस पा लिया। अब तुम कैसे इन्कार करोगी हमने तुम दोनों का मिलना आँखों से अच्छी तरह देख

लिया। तुमने हमसे कहा था कि तुम हम दोनों को साथ-साथ देखो तब हम मानेंगी, सो आज हमने देख लिया। तब राधा ने हँसकर उनसे कहा कि अरे तुम लोग बड़ी भोली हो मन-मन से अनुमान करके तुम हमसे झूठ बोल रही हो। सखियां बोली- तुमने तो श्रीकृष्ण से भी अधिक बुद्धि पाई है। तुम्हारी इस बात को सुनकर बड़ी हँसी आती है। फिर भी सब सच्ची-सच्ची बताओ कि श्रीकृष्ण ने तुमसे क्या बातें कीं। राधा के रंग-ढंग को देखकर सखियाँ मुस्कराने लगीं और बोलीं मछली को पानी पीते कौन जान पाया है। वे राधा को संग लिये हुये पनघट पर आईं। राधा के मन में श्रीकृष्ण बसे हुये थे। राधा सिर पर गगरी रखे हुये चल रही थीं और सखियाँ उनको रस भरी बातें कहकर प्रसन्न कर रही थीं। मार्ग में श्रीकृष्ण ने जिस स्थान का संकेत किया था उसी स्थान की याद करके राधा प्रसन्न हो गईं। उसी स्थान का ध्यान करती हुई घर का सब कामकाज करना भूली हुई थीं। किसी प्रकार से उन्होंने रात बिताई। उसमें उन्होंने सपनों में श्रीकृष्ण से घुलने-मिलने का आनन्द प्राप्त किया। दोनों को आता हुआ देखकर दोनों बड़े आनन्दित हो गये और दौड़कर दोनों इस प्रकार मिलकर सुखी हुये मानों स्वर्णलता तमालवृक्ष से मिल रही हो।

दोनों एक दूसरे की ओर देखकर लज्जा का भाव प्रगट करते हैं और तन-मन न्यौछावर करके प्रसन्न होते हैं। क्षण भर को वे कुञ्जों में जाते हैं फिर बाहर आ जाते हैं, तब फिर यमुना तट पर पहुँच कर रास रचाते हैं। इस प्रकार से दोनों ब्रज में ऐसी लीला रस बहा रहे हैं, जिससे रसिक जन आनन्दित होते हैं। राधा ने कहा हे प्यारे, तुम्हारे बिना हमको शान्ति नहीं है। श्रीकृष्ण कहते हैं तुमको छोड़कर हम जाते ही कहाँ हैं।

तुम मेरी प्राणों की आधार और प्यारी हो यह सुनकर राधा ने कहा कि हे बिहारी तुम तो हमारे सर्वस्व हो। इस प्रकार दोनों प्रेम भरी बातों से सरस लीला का बिस्तार कर रहे हैं। राधा ने कहा हमारा अलग होने का मन नहीं है। हे प्राणनाथ, तुमको छोड़कर जायें तो कहाँ जायें। तुम हमारे रोम-रोम में बसे हो, किन्तु हमें घर वाले और बड़े लोगों के भय का सदा दुख बना रहता है। तुम्हारी चितवन और मुस्कान हमको प्यारी लगती है। हम उसी को देखती रहना चाहती हैं। तुमने ऐसा बशीकरण मंत्र चला दिया है कि मुझे घर में तनिक भी अच्छा नहीं लगता।

श्रीकृष्ण ने प्रिया के आंचल को पकड़ लिया और उसमें गाँठ को देखकर पूछा कि हे प्यारी जी, इसमें क्या छिपाया है। इस पर राधा ने कहा यही तो आने का बहाना बनाया था। मैंने माँ से कहा था कि हमारी प्राणों से प्यारी दुलरी खो गई है उसके खोजने के लिये मैं मैया से बात बना करके इधर आई थी। श्रीकृष्ण ने कहा मैं भी कलेऊ छोड़करके इधर आ गया और मैया से कहा कि किसी गाय ने बछड़ा पैदा किया है, मैं उसी को सम्हालने जा रहा हूँ और उसे सम्हाल कर तुरन्त आ जाऊँगा। अब बहुत देर हो गई है तुम जाकर अपनी मैया को दुलरी दिखाओ और मैं जाकर अपनी मैया को वात्सल्य रस का आनन्द दूँगा। राधा घर चली गयी।

सखियों ने जाकर राधा को बताया- कि श्रीकृष्ण ने हमें ऐसा आनन्द रस में भिगो दिया हे प्रिया तुम भी चलो तो मैं तुमको दिखाऊँ और उनके झगड़ने का रस तुमको पिलाऊँ। राधा यह सोचकर आनन्द के आँसू बरसाने लगी कि प्रियतम श्रीकृष्ण ऐसा रस-पान करा रहे हैं। उन्होंने सखियों से कहा कि तुम रस को पीकर धन्य हो गई हमें तो वह रस तनिक भी नहीं मिला। वे धन्य हैं जिनका घड़ा ढरकाया अथवा जिनको हृदय से लगाया। जिनको श्रीकृष्ण ने बंशी बजाकर पुकारा अथवा जिनकी ओर हँसकर देखा वे भी धन्य हैं और वह अंग धन्य है, जिसे उन्होंने छुवा। अरी सखी मैंने तो अपना जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया। अपने नेत्रों से देखकर उन्होंने जिनका मन चुरा लिया उनका सौभाग्य देखकर मेरा भी मन ललचाता है। अब मैं सब लज्जा छोड़कर श्रीकृष्ण की छबियों का दर्शन करने जाऊँगी। उसी समय एक ब्रज गोपी ने आकर कहा

कि श्रीकृष्ण पनघट पर खड़े हैं इसलिए घड़ा लेकर चलो और अपना मन-रूपी घड़ा आनन्द से भरकर कृतार्थ बनो। हे राधा देखो वे तुम्हारी ओर इक टक देख रहे हैं। तुमने उनको कैसा बावला बना दिया है। राधा उनकी छबि को देखकर प्रसन्न हो गईं और उनके रूप के द्वारा उनका चित्त ठग लिया गया और वे बावली हो गईं। मन को मोहनेवाली राधा अपना घड़ा भर कर अपने सिर पर धर कर श्रीकृष्ण पर मोहिनी डालकर चली। वह धीरे-धीरे चलती है मानो हृदय में भरे श्रीकृष्ण प्रेम रस को छलक कर प्रगट नहीं होने देना चाहती।

श्रीकृष्ण अपनी सोने की छड़ी लिए हुए आगे-आगे जा रहे हैं और वे उनके चित्त को चुराते और आनन्दित होते तथा मार्ग के काँटे आदि हटाकर सम्हालते जाते हैं। वे कभी राधा की छाया में अपनी छाया मिलाते हैं और इस प्रकार अपने अतिशय प्रेम के भाव को प्रगट करते हैं और उनकी ओर अपना पीताम्बर फहराते हैं और अपने मन की मिलन इच्छा को बताते हैं। श्रीकृष्ण भी राधा के हृदय में प्रेम बढ़ाने के लिए उन पर कंकड़ी मार कर बलि-बलि जाते हुए मुस्कराते। राधा भी उनके इन भावों को पहिचानती हैं और वे उनको छलने का मन करती हैं। वे दोनों ही नयी-नयी बहुत सी प्रेम की चेष्टायें करते हैं और दोनों ही रस भरी विलक्षण छबियों को छिटकाते हैं। आज सुन्दरी राधा ने अपनी छबि को छिटकाकर अपने छल द्वारा छल में निपुण श्रीकृष्ण को भी छल लिया। उस समय श्रीकृष्ण ब्याकुल होकर अत्यन्त पास आ गये और सखियों की ओर देखकर स्पर्श का आनन्द देकर मुस्कराये। उनको अपने घड़े व वस्त्र के गिरने का कुछ भी ज्ञान न हो पाया और उनके हृदय में आनन्द देनेवाली महान पीड़ा उत्पन्न हो गयी। उनके तन-मन-प्रान ब्याकुल हो गये और आनन्द देनेवाली मूर्च्छा में सब सुध-बुध भूल गयीं। उन्होंने उनको बार-बार सावधान किया फिर कलश भरकर उनके सिर पर रक्खा और फिर वे कुंजों में जाकर छिप गये। इस प्रकार से श्रीकृष्ण प्रेम की रीति का निर्वाह करते हैं। वे बिरह जगा कर मिलन का रस पिलाते हैं और फिर मिलन का रस देकर बिरह जगाते हैं। बिरह और मिलन, प्रेम के दोनों सहयोगी हैं। गोपियाँ इन्हीं दोनों रसों में मतवाली बनी रहती हैं। जो इनके विरह में ब्याकुल होती हैं, उन्हीं को श्रीकृष्ण मिलन का आनन्द देते हैं। वें जानते हैं कि विरह के बिना मिलन में आनन्द कहाँ है। मिलन में तो क्षण भर का आनन्द मिलता है किन्तु बिरह में युग-युग तक आनन्द मिलता रहता है। मिलन में तो श्रीकृष्ण की छबि सामने दिखायी पड़ती है, किन्तु बिरहिणी को तो कण-कण में दर्शन होते हैं।

राधा सखियों के संग घर को आयीं। उनका मन श्रीकृष्ण ने हर लिया था। उन्हें मन ही मन उनकी छबियों का स्मरण अच्छा लगता है और वे उनसे मिलने-जुलने को बार-बार व्याकुल होती हैं। वह बार-बार उनकी विलक्षण छबियों को सोच-सोच कर उनकी बोलचाल पर बलि-बलि जाती है और जिधर देखती है, उन्हीं की छबि दिखाई पड़ती है। इसलिए वे श्याम-श्याम कहती हुयी ब्याकुल होकर दौड़ती हैं। वे सखियों के संकोच से दूर हो जाते थे और फिर गोपियोंकी छाँह में छाँह मिलाकर बड़े प्रसन्न होते थे। कोई मेरी निन्दा न करे इस डर से वे श्रीकृष्ण को देख नहीं पाती।

राधा बोली- मैं नहीं जानती सारे ब्रज के लोग व्यर्थ की चर्चा क्यों करते हैं? मैं तो अब सारी लज्जा को दूर करके नन्दगाँव चली जाऊँगी। मैं अब तक संकोच करती रही किन्तु अब तो मैं अपना प्रेम प्रगट कर दूँगी। हम दोनों एक दूसरे के मन में बस गये हैं। जिसको जो अच्छा लगे कहता रहे मेरा मन तो श्रीकृष्ण को मिलने को ललचा रहा है। आज मैं सखियों से भी सारा गुप्त प्रेम बता दूँगी। सब सखियाँ अपने-अपने घरों में घड़ा रखकर राधा के मन की बात जानने के लिये आयीं और बार-बार कहने लगीं अरी राधा, चलो यमुना तट पर चलें और वहाँ श्रीकृष्ण से मिलने का आनन्द पावें। वे श्रीकृष्ण रस में पगी हुई हैं। ठगी हुई आँखों से आँसू बरसा रही हैं और प्रेम प्रगट करने का मन होते हुये भी उसे छिपा रहीं हैं। राधा की यह दशा देखकर कीर्ति मैया ने पूछा कि तुझे क्या हो गया है? तू आँसू क्यों बरसा रही है। क्या किसी ने कोई

नटखटपन किया है। तू पनघट से ब्याकुल सी कैसी आई है। अरी सखियों तुम तो इसके साथ ही घूमती हो, इसके रोने का कारण तुम्हीं बताओ। अरी सखियों तुम सब ठगी सी प्रेम में पगी सी दिखाई पड़ती हो। तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो। राधा ब्याकुल होकर रो रही है। इसका कारण मुझे बताओ। सखियों ने कहा, यमुना तट पर श्रीकृष्ण ने गायों को बिचका दिया, इससे हमारे हृदय में भय भर गया हैं। इसलिये पनघट पर जाने का मन नहीं होता है। यह सुनकर मैया ने कहा कि मैं यशोदा से कन्हैया के नटखटपन की बात बताऊँगी। अरी प्यारी राधा तू तनिक भी भय न कर और यमुना तट पर पनघट को जा। वे आँखों के इशारे से बताती हैं कि आज श्रीकृष्ण पनघट पर आवेंगे। राधा कहती है जायें तो कैसे जायें उस छलिया से कैसे बच पावें। वह बाँका छैला कन्हैया हम लोगों का रास्ता रोक लेता है इसकी चर्चा गाँव में होती है। इसकी इसे कुछ भी चिन्ता नहीं है। अरी सखी कोई हमको बदनाम न करे। तुम जानती हो ये गोपियाँ कैसे स्वभाव की हैं। मेरा रास्ता अपनी छड़ी से सँभालते हुये मेरी ओर देखते हैं। अरी सखी मैं क्या करूँ, तुम बिचार करके मुझे बताओ। जब मैं सिर पर मटकी रखती हूँ तो वे उसमें कंकड़ी मारते हैं और जब मेरा अंचल उड़ता है तब वे टकटकी लगाकर मेरी ओर देखते हैं। वे रास्ते में मेरा चित्र बनाते हैं और हाथ जोड़कर उससे बिनती करते हैं। वे जहाँ कहीं हमारे चरण-चिह्न देखते हैं, वहाँ ही अपना सिर झुकाते हैं।

ब्रज के घर-घर में यह चर्चा होती है कि श्रीकृष्ण राधा को घेरते फिरते हैं। मैं क्या करूँ, किस प्रकार अपनी लज्जा को बचाऊँ मैं घर के भीतर कब तक रुकी रहूँ। हमारा शरीर तो घर में रहता है किन्तु मन तो श्रीकृष्ण में लगा रहता है। दिन रात उनकी याद करता रहता है। अब तो मैंने मन में बिचार कर लिया है कि उनके बिना हमारा जीना नहीं हो सकता। सारा ब्रज भले ही हमारी हँसी करे किन्तु मैं तो उन्हीं से प्रेम करूँगी। प्राण छोड़ देने में क्या लाभ है। उनसे प्रेम करने में तो आनंद पाऊँगी। राधा ने कहा कि मैं कुल की सभी मर्यादा को छोड़कर श्रीकृष्ण से प्रेम करूँगी। यह सुनकर सखियों ने कहा कि तुम धन्य हो जो ऐसा मन में निश्चय किया। तुम्हारे इस बिचार को मैं भी अच्छा मानती हूँ। राधा ने कहा मैं हृदय के प्रेम को कहाँ तक छिपाऊँ और मन को ब्याकुल करके शरीर को कहाँ तक सुखाऊँ। मोहन तो सारे ब्रज को मोहित करनेवाला है। वही मनमोहन हमारे मन को अच्छा लगा है।

वृंदावन का कृष्ण कन्हैया, सब की आँखों का तारा।
मन ही मन क्यों जले राधिका, मोहन तो है सबका प्यारा ।।

कृष्ण यमुना-तट पर वंशीवट पर जाते हैं। उनको बिना राधा के न घर अच्छा लगता है न बन। वे राधा-राधा बोलते हुये और उनके कानों में मधुर रस घोलते हुये फिरते रहते हैं। कभी वे उनको संकेत स्थान पर बुलाते हैं और कभी यमुना-तट पर व वंशीवट पर मिल जाते हैं। कभी जब उनको कहीं नहीं पाते तो वह राधा के विशेष कुञ्ज में पहुँचते हैं। दोनों प्यारे अत्यन्त प्रेम से भरे हुये एक दूसरे के हृदय में रस ढलकाया करते हैं। श्रीकृष्ण ने चारों ओर खोज कर प्रिया को नहीं पाया तो वे उनकी कुञ्ज में आ गये। राधा श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में ब्याकुल होकर सोच रहीं थीं कि वे आयेंगे या नहीं। कहीं वे गुरुजनों के भय से हमारे यहाँ आने में संकोच न करें। उसी समय उन्होंने श्रीकृष्ण की मुरली सुनी और वे मुस्कराती हुयी बलि-बलि जाती हुयी आयीं और उनके अंग-अंग को देखकर उनपर रीझती हुयी, प्रसन्नतापूर्वक उनके हृदय से लिपट गयीं। दोनों एक दूसरे को सुख देने वाले हैं और वे अपने बचनों से रस की वर्षा करते हैं। वे रस से भरी बातें करके एक दूसरे को मधुर रस पिला रहे हैं।

कृष्ण बोले- राधा, मेरा जीवन तुम्हारे कारण जीवन कहलाता है और तुम्हारे ही प्राणों से मैं प्राण युक्त होता हूँ। तुम्हारे ही मन से मन वाला हूँ। तुम्हारे ही रस से मैं मतवाला रसिक हूँ। तुम्हारे रस का भंडार अनन्त हैं और मेरा मन उसी रस का भिखारी है। उसी रस को तुम मेरे द्वारा भक्तों में बँटवाकर मुझको रसपान कराती हो। राधा ने कहा यह दासी तो तुम्हारे

चरणों पर बलि-बलि जाती है आप कैसे दीन बचन बोल रहे हो। तुम जैसा मुझ पर प्यार दिखाते हो वैसा मुझको भी करना बता दो। तुम हमारे दर्शन और स्पर्श के लिये कैसा ललचाते हो कि तुम अपनी महिमा ही भूल जाते हो। ऐसा कहकर राधा ब्याकुल होकर नेत्रों से प्रेम के आँसू बरसाने लगी। कृष्ण बोले- तुमको मुझसे कितना प्रेम है इसे कोई नहीं जानता। तुम्हारे प्यार की समता कोई नहीं कर सकता। वास्तव में तो तुम ही प्रेम का भण्डार हो। तुम उदार बनकर उस रस की धारा को बहावो और उस रस में मुझको डुबावो। फिर राधा के चरणों को पकड़कर श्रीकृष्ण कहने लगे कि तुम मुझको वैसा ही प्यार करना सिखा दो। वास्तव में तुम ही अच्छी तरह प्यार करना जानती हो और तुम ही सच्चे रूप में प्रेम तत्व को पहिचानती हो। इस प्रकार की बातें करते हुए दोनों अपने वास्तविक ब्रह्म स्वरूप को भूले हुये हैं और दोनों एक दूसरे की प्रशंसा करते हुए आनन्दित हो रहे हैं। एक रस भरा बादल है तो दूसरा सरस रस का सागर है। इस प्रकार दोनों ही नागरी राधा और नागर श्रीकृष्ण रस से भरे हुए हैं। जो इनकी प्रेम की पद्धति को पहिचान लेता है उसको, यह दोनों रस का दान करनेवाले, रस पिलाते हैं। वे दोनों ही ऐसे प्रेम में डूबे रहते हैं कि दोनों ही नहीं जानते कि दोनों ही ने एक दूसरे का चित्त चुरा लिया है। वे नागरी राधा और नागर श्रीकृष्ण प्रेम रस में गहरे सने रहते हैं।

मेरे मन की गंगा और तेरे मन की जमुना का, बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं...

कृष्ण बोला- तुम सुन्दर रूप से स्नेह करनेवाली मेरी प्यारी गृहिणी हो, तुम कैसा रस देनेवाली और कैसा प्रेम करनेवाली हो। मैं तो बिना रस का हूँ। मैं भला रस को क्या जानूँ, मैं तो तुम्हीं को रस देनेवाली समझता हूँ। तुम रूप, शील और गुणों का समूह हो तथा रस से भरी हुई रस की भण्डार ही हो और मैं तो इन सब रसों का पान करने के लिये तुम्हारा अतिथि बनना चाहता हूँ। हे करुणा और कृपा से भरी हुई कीर्ति की बेटी और वृषभानु की दुलारी श्री राधे तुम मेरी सदैव याद रखना मेरा योगक्षेम भुला न देना। हे तीनों लोकों को मोहित करनेवाले श्रीकृष्ण को भी मोहित करनेवाले और अत्यन्त सुहावनी तथा सरल स्वभाव वाली, हे ब्रज के भूषण श्रीकृष्ण का पोषण करनेवाली और उनके चन्द्रमुख की ओर सदा चकोरी की तरह देखते रहनेवाली, हे ब्रज गोपियों के मध्य महान महिमावाली, हे तरुणियों में मणि के समान श्रेष्ठ तथा रास रस का आस्वादन करने वाली और रसिकों को सुख देने वाली सुन्दरी, हे ब्रज मण्डल की शोभा बढ़ानेवाली और रास की रसमयी रात्रियों को प्रकाशित करने वाली, हे वृषभानु बाबा की दुलारी बेटी मेरा योग क्षेम न भुला देना।

राधा बोली- हाय-हाय हे प्यारे, तुम प्रेम के वश में होकर क्या बोल रहे हो। मैं तो तुम्हारे चरणों की प्यारी दासी हूँ। मैं तुम्हारे इन बचनों पर बलि-बलि जाती हूँ। मैं तो तुम्हारे प्रेम को देखकर तुम पर बलि-बलि जाती हूँ और इसीलिये किसी प्रकार भी घर में नहीं रुक पाती। अब तो मैं कुल की मर्यादा और लोक की चिन्ता छोड़कर तुम्हारी बनकर रहूँगी। हे गुणों के भण्डार चतुर श्रीकृष्ण, मैं तुम पर वारी-वारी जाती हूँ मैं तो सभी गुणों से रहित तुम्हारी शरण में आई हूँ। हे रसिकों में श्रेष्ठ, हे रस के समुद्र, तुम इस राधा की हृदय गागरी को रस से भर दो।

कृष्ण बोले- इन्हीं बचनों के द्वारा तुमने मुझको मोल लेकर अपना दास बना लिया है। अरी राधा यह तुम्हारी दासता मुझे बहुत अच्छी लगती है। यह तो तुझको रस पिलाती है। जब मैं बंशी में तुम्हारे गुण गाता हूँ तो मेरी आँखों के आगे तुम्हारी छबि आ जाती है। ऐसा रूप मैने कहीं नहीं पाया है और ऐसा किसी दूसरे नाम में रस भी नहीं मिलता। किस कारण से तुमने उसमें ऐसी मिठाई भर दी है जिस पर मधुर श्रीकृष्ण भी रीझ गया है और उस पर तुमने प्रेम का मंत्र ऐसा उच्चारण कर दिया है जिससे यह जादू करनेवाला श्रीकृष्ण भी उसके जादू से प्रभावित हो गया है।

राधा दोनों हाथ जोड़कर खड़ी है और बार-बार प्यारे-प्यारे कहकर अपना सिर झुकाती है और कहती हैं कि हे प्यारे, तुम

अपने बश में रहो, तुमसे तो सम्हाल कर बचन नहीं बोले जाते। तुमने तो मुझे अपना सब कुछ दे डाला है और तुम मुझे सभी स्वरूपों वाला बताते हो किन्तु मुझे इसका उत्तर नहीं सूझता। मैं तो तुम्हारे बचनों की रचना की चतुराई पर मुग्ध हो रही हूँ। हे प्यारे, मैं तो केवल इतना ही कह सकती हूँ कि तुम्हारे लिये तो हमारे समान संसार में बहुत से हैं किन्तु मेरे लिये तो हे प्राणधन, हे जीवन धन एकमात्र तुम्हीं हो। तुमको पाकर तो हे प्रियतम मैं धन्य हो गई, पूर्णरूप से कृतार्थ हो गई, तुम्हीं हमारे मन के भाव हो, तुम्हीं हमारी भाषा हो और तुम्हीं उसके अर्थ हो।

कृष्ण बोले- मैं अपनी आँखों से तुम्हारी छबियों को बसाये रखता हूँ और कानों से तुम्हारे शब्दों का रस पान करता रहता हूँ। हे श्री राधे तुम्हारे समान हमें कोई भी प्यारा नहीं है। इसी से मैं तुमसे क्षणभर को भी अलग नहीं होता। राधा बोली- तुम्हीं हमारे साधन हो, तुम्हीं हमारे साध्य हो और तुम्हीं हमारे प्राप्त करने योग्य हो। तुम हमारे सुख के घर हो और हमारे प्रेम के पात्र हो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के द्वारा तुम्हीं मुझमें एक मात्र हर समय रमे रहते हो। हे प्यारे तुम तो सदा हमसे घुले मिले रहते हो और पलभर को भी कभी अलग नहीं होते हो। तुम्हीं राधा बनकर सुशोभित होते हो। तुम्हीं राधा को कृष्ण बना लेते हो। श्रीकृष्ण ने कहा हे राधा, तुम धन्य हो। वास्तव में तुम्हीं सिद्धि हो और तुम्हीं सिद्धि को देनेवाली हो। तुम्हारे समान तीनों लोकों में कोई प्रेम की मूर्ति नहीं है। मैं तुमको अब क्या दूँ। मैं तो तुमको सब कुछ दे चुका हूँ और सब कुछ तुम पर न्यौछावर कर चुका हूँ और इसकी अंतिम स्थिति यह है कि मैंने अपने को भी तुम्हारे अर्पण कर दिया। फिर भी बार-बार तुम्हें कुछ देने को सदैव मन ललचाता रहता है। हे प्रिये राधा, प्रेम में तो देना ही देना रहता है।

राधा ने कहा तुम तो प्रेम के धनी हो और मैं तो तुम्हारे प्रेम की ऋणियाँ हूँ। इसलिये मैं क्या कहूँ। मैंने तो लेना ही जाना है देना बिल्कुल नहीं पहचाना है। हे रस बरसाने वाले रसिया, तुम भी देते-देते कभी नहीं थकते। आप हमारा सब अपराध भुला कर हमारे सिर पर कृपा का हाथ रक्खो। श्रीकृष्ण ने कहा कि हे सब गुणों से भरपूर राधा, तुम तो अपराध रहित हो। तुम हमको आनन्द देनेवाली हो और हमारी नित्य आत्मा व प्रिया हो। तुम हमको जीवन और प्राण देनेवाली हो और हमारी इन्द्रियों में, बुद्धि में, मन में तुम्हारी ही याद रहती है। हम तुम दोनों, दोनों के बिना अधूरे हैं और एक दूसरे को पूरा बनानेवाले हैं। राधा ने कहा कि तुम तो सब गुणों के भण्डार हो। हे चतुर खिलाड़ी मैं सब गुणों से रहित हूँ। ऐसी मुझको तुम अपने समान बताते हो, इस तरह धूल और पर्वत को एक समान कहते हो। कहाँ तुम अनन्त सौन्दर्यवाले कहाँ मैं सुन्दरता से रहित। कहाँ तुम महान चतुर और मैं अत्यन्त छोटी तथा अत्यन्त दीन। सभी दिव्य गुण तुम में प्रगट हैं और मेरे में कोई गुण नहीं। तुम रस के भण्डार हो और रस के चाहनेवालों के प्यारे हो और हे रसीले तुम अनन्त रूप व गुण वाले हो। तुम सदा पूर्ण हो, व्यापक हो, इच्छा रहित हो और सभी अच्छे गुण स्वयं तुम्हारे पास चले आते हैं और मैं अच्छे गुणों से हीन हूँ। इसलिये मैं कहाँ से क्या लाकर दूँ। हमारे पास तो केवल दीनता है उसी को तुम्हारे चरणों में समर्पित करती हूँ। तुमने अपने ऐश्वर्य की कुछ भी चिन्ता न करके मुझे दीन जानकर अपना बना लिया। संसार की हँसी की कुछ भी चिन्ता न करके मुझ तुच्छ से प्रेम किया। यह तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार है जिसको मैं कभी नहीं भूल सकती। हे प्यारे, मेरा तो बस इतना ही माँगना है कि मैं तुम्हारे चरणों में बसी रहूँ। तुम चाहे प्यार करो या ठुकराओ। मैं तुम्हारे चरणों से कभी दूर न रहूँ। राधा इस प्रकार से कह कर अपनी सुध-बुध भूल गयीं और प्रेम में विभोर हो गयीं।

तब श्रीकृष्ण ने उनको हृदय से लगाकर आनन्द देते हुये कहा। हे राधा, तुम अपने स्वरूप को भुलाकर अत्यन्त दीनता का भाव प्रगट कर रही हो। यही तुम्हारी बड़ी भारी महिमा का परिचायक है। मैं तुम्हारे स्वरूप को और तुम्हारे में व्याप्त रस को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम तो अपार रस की सागर हो। इसी से यह प्रियतम तुम्हारा भिखारी बना है। तुमने मुझको

कृपा करके अपना बना लिया है और प्रेम करना भी सिखा दिया है और अपने सौन्दर्य की छबि को छिटकाकर मुझे अपना दास बना लिया है। यह दासता मुझे बड़ी अच्छी लगती है क्योंकि इससे दिन-रात तुम्हारी सेवा करने का सुख मिलता है। इस रस को जो पाता है वही जानता है। दूसरा तो कोई इसका अनुमान भी नहीं कर सकता। तुम बिना कारण के कृपा करके सदैव वह रस मुझे देती रहना क्योंकि उसके बिना मुझे क्षण भर को भी चैन नहीं है और यह श्रीकृष्ण सदा उसी के बस में है। तुमने तो मुझे अपने सँग रख कर रस में डुबो दिया है। वास्तव में मैं तो तुम्हारे चित्त को चुरानेवाला नहीं हूँ, तुम मेरी चितचोर हो। तुम मुझको जिस प्रकार रस में डुबोती हो। वैसा ही, मैं रस में डूबता हूँ। यह बनवारी कुञ्जों में रस बिखेरता हुआ तुम्हारी तालियों पर नाचता है। हे राधा वृन्दावन को तो तुम्हारे ही बल पर अत्यन्त रस से भरा हुआ बनाया है। नहीं तो सारा ब्रज बिना रस के रह जाता। हे प्रिया रस तो तुम्हारे ही कारण प्रगट होता है।

राधा ने कहा मैं तो जान भी नहीं पाती। तुम्हारे नृत्य के साथ हमारी ताली बजने लगती हैं। कुञ्जों में जो रस तुम बहाते हो उसी के लिये मैं तुम्हारे संग दौड़ती हूँ। हे रस के सागर तुम्हारे बिना रस कहाँ है। हे चतुर खिलाड़ी तुम्हारे बिना लीलायें भी कहाँ हैं। तुमने तो मुझको अपना खिलौना बना लिया है और मेरे संग मन चाहे खेल खेलते रहते हो। फिर तुम जहाँ जैसे चाहते हो खिलौने डाल देते हो और अपनी मन चाही लीला का विस्तार करते हो। यह सब हे चतुर खिलाड़ी तुम्हारी चतुराई है, जो इस प्रकार हम कठ-पुतलियों को नचा रहे हो। खेल की कठपुतलियों को लिये हुये तुम नाचते व नचाते फिरते हो। यह सारी चतुराई तो तुम्हीं प्रगट कर रहे हो।

यह रस दिव्य, मधुर और सत चित आनन्द स्वरूप है। यह हर समय सुख देनेवाला, रस देनेवाला व कल्याणकारी है। जिन्होंने इस रस को आनन्दपूर्वक पिया वे ही प्रसन्न होकर धन्य हो जाते हैं। इस रस को जो जान लेते हैं। उनका विषयों से वैराग्य हो जाता है। इस रस को पीने का सौभाग्य करोड़ों जन्मों के तप से मिलता है। इसको कामी लोगों का काम न समझना। इसको दिव्य प्रेम ही मानना। जो रस श्रीकृष्ण से मिलने में मिलता है वह वाणी से नहीं कहा जा सकता।

राधा ने कहा कि हे प्यारे, तुम छिपकर जाना जिससे किसी पर यह मिलन प्रगट न हो पाये। सखियाँ चारों ओर से घेर-घेर कर आती हैं और हम दोनों का मिलना देखकर मुस्कराती हैं। यह सब सखियाँ हमें खोजने में ही लगी रहती हैं और ऐसी डोलती फिरती हैं मानो हमारी पहरेदार हों। यह सब ब्रज की गोपियाँ विधाता की विशेष रचना हैं। राधा ने सखियों को आते देखा। उन्होंने पास आकर कहा अरी राधा रानी तुम धन्य हो तुम्हारी करतूतें हम सब सखियाँ जानती हैं। जब तुम जमुना के किनारे हमारे साथ आईं थीं तब वहीं तुमने श्रीकृष्ण को इशारे से आने को कह दिया था। इसी से वे अन्तरंग कुंज में आ गये। अरी राधा आज तो तुमने प्रियतम से मिलने का आनन्द प्राप्त किया। फिर वे सखियाँ आपस में कहने लगीं कि अरी सखियों तुम राधा को छोटी और भोली समझती हो। यह तुम्हारी भूल है। वह अपने अंगों को मुस्कराकर देखती है, देखो अब कैसी भोली भाली बन गई है। किन्तु कैसी श्याम मिलन के आनन्द में डूब रही है और प्रेम में विभोर होने के कारण उसकी आँखे बन्द हैं। राधा बोली- मैं किस-किस का मुख पकडूँ इससे मौन रहना ही अच्छा है। मैं तो प्राकृतिक छबियाँ देखकर लुभा जाती हूँ और उन्हीं के लिये ललचाती हुई बन में आती हूँ।

सखियाँ आपस में आनन्दित होती हुई कहती हैं कि तनिक इनकी बात सुनो, जिनसे वे नित्य घुलती-मिलती रहती हैं उन्हीं को देखकर भ्रमित हो जाती हैं। राधा बोली- वह मुझसे पूछती है कि कहो श्रीकृष्ण कैसे हैं। वे काले हैं, गोरे हैं, सुन्दर हैं या कुरुप हैं। जिन श्रीकृष्ण को इन्होंने अपने वश में कर रखा है और जो उनके नित्य मिलन का आनन्द पाती रहती हैं। उनको देखो कैसी उन्होंने प्रीति की रीति को पहिचाना है कि वे लोभी के धन की तरह प्रेम धन को छिपाकर रखती है।

जिसे श्रीकृष्ण मुरली बजाकर बुला लेते हैं वही कहती है कि हमने उनके दर्शन नहीं पाये। श्रीकृष्ण को उन्होंने नहीं देखा है ऐसा राधा कहती हैं और इस प्रकार हम सखियों को भ्रमित करती हैं। अरी राधा, तूने उनको नहीं जाना जो ब्रज में तेरे ही हाथ बिके हुए हैं। तुम जो प्रियतम श्रीकृष्ण का प्रेम छिपाती हो वह तो सच्चे प्रेम का तुमने निर्वाह किया है। हम तो उस निर्धन के समान हैं जो थोड़ा सा ही धन पाकर बावला बनकर उसे प्रगट करता फिरता है।

राधा ने कहा अरी सखी, अब क्या छिपाऊँ, बिना श्रीकृष्ण के मैं अधीर हो जाती हूँ। वे मुझे अच्छी तरह दर्शन नहीं देते उनके अंगों पर करोड़ों कामदेव बलि-बलि जाते हैं। हमारे दोनों नेत्र उनके दर्शन के लिये उड़ते फिरते हैं किन्तु फिर भी प्राणों के प्यारे श्रीकृष्ण को मैं देख नहीं पाती। यदि मैं उनके अत्यन्त समीप जाकर देखूँ तो वहाँ मुझे अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। सखियों ने राधा के मन की स्थिति को जान लिया कि इसका प्रेम और इसकी बुद्धि श्रीकृष्ण के साथ ही लगी हुई है और इसी से इसके अंग-अंग में प्रेममयी तरंगे उठकर लहराती हैं।

सखियों ने कहा अरी राधा, तूने आज ही सच्ची-सच्ची बता बताई है और अपने हृदयके प्रेम भाव को प्रगट कर दिया। अरी तू धन्य है, तू तो बड़ी भाग्यशालिनी है। तू तो प्रियतम के प्रेम रस से अनुराग करनेवाली है। तुम दोनों एक ही हो यह हमने जान लिया। तुझे तो श्रीकृष्ण अपना आधा अंग मानते हैं। अब तुम मुझको बताओ कि तुमने श्रीकृष्ण को प्रथम बार कब देखा और उनका कौन सा रूप तुम्हें विशेष अच्छा लगा। तुमने सबसे पहले कुञ्जों में देखा या गलियों में देखा या गोरस बेचते समय देखकर आनन्दित हुयीं अथवा वे गोशाला में मिले। अब तुम बतावो हमसे चतुराई करके छिपावो नहीं। अथवा जब साँप के काटने की बात कही थी, मुझे ऐसा लगता है कि तभी तुमने श्रीकृष्ण को पाया था।

राधा ने कहा कि अरी सखी, मैं क्या बताऊँ और किस मिलन को उनका प्रथम मिलन कहूँ। वे तो देख लेने पर भी ऐसे लगते हैं मानों उन्हें देखा ही नहीं है और मिलने पर भी ऐसा लगता है कि वे अभी मिले ही नहीं है। उनका ऐसा विलक्षण प्रेम मय मिलन है। अरी सखी, मैं कैसे कहूँ कि वे मुझे कब मिले हैं। वे तो हमारी आँखों से कभी ओझल ही नहीं होते। अरी सखी वे तो सदा मिले ही रहते हैं कभी बिछुड़ते ही नहीं है। तब फिर उनका मिलना कब बताऊँ। इसीसे अरी सखी मैं तुम्हारे पूछने पर सकुचा कर चुप रह जाती हूँ।

एक दिन ब्रज में खेलने आई तो मुझे यशोदा मैया ने बुला लिया और एक दिन मैंने गोशाला में जाकर दूध दुहाया, उस समय नन्द-नन्दन के दर्शन पाये। एक दिन पनघट पर मैं घड़ा लेकर आई उस समय अचानक कन्हैया को देखा। वे मेरी ओर देखचकर आँखों से इशारा कर रहे थे। इस प्रकार प्यारे ने मेरा चित्त चुरा लिया। उस समय मेरे तन-मन की सब सुधि भूल गई उन्होंने अपनी मुसकान से मुझे मधुर भाव से मोहित कर लिया। अरी सखी, मैं उस समय उसके हाथ बिक गई किन्तु मैंने कुछ नहीं जाना कि क्या किसने लिया और क्या किसने दिया। उस दिन से मैंने उनको हृदय में बसा लिया है और फिर क्षण भर को भी उन्हें भूल नहीं पाई। अब तो उनकी चितवन मेरी चितवन में बस गई है और उनकी मुसकान मेरी मुसकान में सदा ही बसी रहती है। मैं नहीं जानती कि उन्होंने क्या कर दिया। मेरे अंग-अंग उनके अंग-अंग पर बलि-बलि गये। उस समय से मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता उनसे मिलने को सदैव मन ललचाया करता है। एक दिन हमारे प्राणों से प्यारे कृष्ण हमारे महल में आये और ड्योढ़ी में खड़े हो गये। मैं उस समय अकेली आँगन में थी, मैं उनके पास आ गयी और वे बार-बार मेरी ओर देखने लगे। अब तो मन उन्हीं में लुभाया रहता है। उनके हृदय से मन को बाहर चलना अच्छा नहीं लगता। जैसे-जैसे प्रयत्न करके मनको वहाँ से हटाती हूँ तैसे-तैसे वह और डट जाता है। अब मैं श्रीकृष्ण से मिलने की कथा कहाँ तक कहूँ। मैं तो दिन-रात उनके साथ रहती हूँ जिधर देखती हूँ वे ही दिखायी पड़ते हैं और अपने रोम-रोम में उनको बसा हुआ देखकर मैं सब कुछ भूल जाती

हूँ। मेरे मन में गुरुजनों का संकोच समाया रहता है, इसलिए प्रेम भाव को छिपाये रखती हूँ। तुमसे कुछ अधिक प्रेम होने के कारण तुमको कुछ बता दिया। उन्होंने अपनी चंचल चितवन से चित्त चुरा लिया और भौहें टेढ़ी करके रस में डुबा दिया। मैं उनकी ऐसी रसमयी छबियों को देखकर सकुचा गयी और सब सुध भूल गयीं। इसलिये न तो मैं बोली और न हिली किन्तु उन्होंने प्रेम रस घोल दिया। सखियों ने कहा कि श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आये किन्तु तुमने उनके प्रेम को ठुकरा दिया।

सखियां बोली- अरी राधा तू तो बड़ी चतुर है फिर ऐसा अच्छा अवसर पाकर क्यों व्यर्थ खो दिया? तुमने उनकी चेष्टाओं को और उनके मन के भावों को नहीं पहचाना। राधा ने कहा अरी सखी, गुरुजनों की लज्जा के कारण मुझसे यह भूल हो गयी, किन्तु मुझमें इतनी चतुराई आ गयी कि हाथ की आरसी में उनकी छबियों पर लुभाती रही। सखियों ने कहा कि तुम दोनों धन्य हो, तुम्हारे हृदय के भाव को कोई नहीं जान सकता। सम्मान और प्रेम का दान भाव द्वारा ही अच्छा होता है। यही प्रियतम श्रीकृष्ण को पसन्द है। हम सखियाँ तुम दोनों की प्रेम की पद्धति को जानती हैं। तुम दोनों रोम-रोम से एक दूसरे के रस का पान करते हो। तुम दोनों एक दूसरे का शब्द सुनने के लिये और रूप देखने के लिये हर समय लुभाये और ललचाये रहते हो।

राधा ने कहा कि अरी सखी यह मैंने सपना देखा या सचमुच ही प्रियतम को देखा। जबसे उन्होंने मुझको दरसन दिया है। तब से हमारा तन और मन अपने बश में कर लिया है। वे मन ले करके फिर वापस नहीं करते और उसे अपने श्याम रंग में डुबाये रखते हैं। किन्तु श्याम रंग में डूबते ही वह उज्वल हो गया है और उसमें पवित्रता और स्वच्छता आ गई है। जब से हमारी पुतलियों में प्यारे श्रीकृष्ण समा गये हैं तब से नींद और भूख सब भुला बैठी हूँ। किस प्रकार से उनके बार-बार दर्शन पाती रहूँ क्योंकि दर्शन पा पाकर तृप्ति नहीं होती। मैं अपनी बिरह की पीड़ा को भी किससे कहूँ। मैं तो इससे बड़ी व्याकुल रहती हूँ। सखियां बोली- अब तो तू ब्रज की रानी और श्रीकृष्ण ब्रज के राजा हो गये हैं और यह वृन्दावन तुम दोनों की राजधानी है और हम सब तुम्हारी प्रजा हैं। दोनों ही एक दूसरे की चितवन और मुसकान में रीझे हुये दिन रात प्रेम रस में भीगे रहते हैं। हम तो इन्हीं के इस प्रकार मिलने-घुलने का रस पा लें तो इतने से ही हम धन्य हो जायें। हम तो दोनों के बिरह मिलन और मान रस पर बलि-बलि जाते हुए ब्रज रस को बहाती रहेंगी। हम इन दोनों के रसमय खेल रचावें और उन्हें देखने का आनन्द लें। बहुत देर हो गई यह सोचकर वे ब्याकुल हो गईं क्योंकि उनकी सास और ननद देर होने पर उनसे गुस्सा होते हैं औरक हते हैं कि तुम राधा के साथ समाज जोड़कर कहाँ बिना काम के घूमती रहती हो। वह तो बड़े घर की बेटी है उसके पीछे अपनी हँसाई करवाना ठीक नहीं है। उसकी चर्चा तो घर-घर में होती है और लोग बड़ी निन्दा करते हैं। तुम भी उसी की तरह अपने कुल को बदनाम करना चाहती हो और ब्रजपुर वृन्दावन में घर-घर में हँसी करवाना चाहती हो। तुम या तो सम्हल-सम्हल कर चलो नहीं तो तुम घर से अलग होकर रहो। वे श्री राधा-कृष्ण के मिलन के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते और उसकी महिमा को नहीं पहिचानते। इनका रहस्य तो वेदी भी नहीं जानता इसलिये जिन्हें इनके स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

राधा ने कहा कि मैं तो सम्पूर्ण लज्जा को छोड़कर श्रीकृष्ण की छबियों पर बलिहारी जाऊँगी। मैं बड़े संकोच के साथ एक बात बताती हूँ कि मैंने तो एकमात्र श्रीकृष्ण से ही प्रेम का नाता जोड़ लिया है। तुम किसी भी प्रकार से मुझको उनके दर्शन करा दो और इस प्रकार मेरे प्राणों की रक्षा करो। सभी कहते हैं कि श्रीकृष्ण अत्यन्त सुन्दर हैं और तीनों लोकों को मोहित करनेवाले तथा उनसे बन्दनीय हैं। उनके अंग-अंग से मधुर रस टपकता है ऐसा उनका स्वरूप सभी बताते हैं। मैं तो उनके बिना प्रतिक्षण ब्याकुल रहती हूँ हाय, हाय मुझको उनके दर्शन कब होंगे। मैं तो लोक की लज्जा और कुल की मर्यादा की कोई चिन्ता न करके उन रमण बिहारी श्रीकृष्ण की दासी बनूँगी। हे प्यारे कृष्ण, हे मेरे प्राणों के धन, हे मेरे जीवन रक्षक, हे मुरली धर, हे नन्द-नन्दन। हे मेरे जीवन के प्राण, हे मेरे प्राणों से प्यारे, तुम मुझसे एक पल को भी अलग

न रहो। ऐसा कहते-कहते राधा मूर्छित हो गई और उसकी आँखों से आँसू बरसने लगे। राधा को विरह में ब्याकुल होते हुये देखकर ललिता बहुत भयभीत हो गई और वह बार-बार उनको धीरज बँधाती हुई बोली कि अरी राधा तुम तो कृष्ण की प्राण ही हो। वे भी तुम्हारे बिना अत्यन्त व्याकुल रहते हैं और तुम्हारे दर्शनों के लिये ललचाते हैं। अरी चतुर राधा तुम धीरज रक्खो मैं अभी उनको लाती हूँ। मैं तो राधा की सब सखियों से अधिक प्यारी हूँ इसलिये मैं तो इनको दुखी नहीं देख सकती। ऐसा बिचारकर वह बार-बार राधा को धीरज बँधाने लगी और उनका मुख धोकर उन्हें जल पिलाया। फिर कहा कि मैं अभी कृष्ण के पास जाऊँगी और हे राधा, मैं तुम्हारी दशा का वर्णन करके उनको अपने साथ लाऊँगी। अरी प्यारी राधा तुम यहीं बैठी रहो, यहीं पर ब्रह्म श्रीकृष्ण आवेंगे।

ललिता ने कुंजों में जाकर प्रियतम श्रीकृष्ण को पा लिया उसे देखकर वे मुस्कराये और पूछा कि अरी दीवानी सखी तू कहाँ जा रही है और मुझको देखकर तू मुस्कराई क्यों। ललिता ने कहा कि एक ऐसी बात हुई जो कहते नहीं बनती किन्तु वह आश्चर्य भरी बात मैं तुमको सुनाऊँगी। आज मैंने एक रस का समुद्र देखा जिसमें अनेक रंग के कमल खिले थे। और अपने मिलन के रस से उसके बिरह को दूर करके उस रस के सागर को कृतार्थ करो। इतना सुनते ही श्रीकृष्ण उसका अन्तरंग आशय समझकर वहाँ आये और उसमें प्रवेश करके हँसते हुए वहाँ रस की लहरें उठने लगे। उसके सुमन, कमल, पशु, पक्षी देख-देखकर वे लुभा रहे हैं। घने बादलों के समान श्रीकृष्ण उस रस के सागर (राधा के हृदय) में घुसकर रस की वृद्धि करने लगे। इस प्रकार रस के मेघ स्वरूप श्रीकृष्ण रस ही रस की वर्षा करके सखियों को रस में डुबोने लगे और सखियाँ रोम-रोम से रस पान करके आनन्द में डूब गईं और प्रेम की खेती लहराने लगी। राधा का श्रीकृष्ण से घुलना मिलना देखकर प्रेम के कारण ललिता भी इसके लिये ललचाने लगी। उन दोनों की चितवन, उनका मिलना-घुलना सब विलक्षण थे। वे दोनों श्रेष्ठ नर और नारी की भाँति सुशोभित थे। राधा बिना पलक गिराये देखते हुए श्रीकृष्ण के अंग-अंग का रस पीकर छक रही थी और उनकी बाँकी छबि को देखकर रीझ रही थी। वे एक दूसरे की छबि रस का पान करते और उसका दान करते हुये आनन्दित हो रहे थे और दोनों एक दूसरे पर अपना अधिकार जना रहे थे। राधा मिलकर भी मिलने का विश्वास नहीं कर रही थी और सोचती थी कि यह वास्तविक मिलन है या स्वप्न है। वह बार-बार श्रीकृष्ण की छबियों को आँखों में बसाती थी और उस छबि को हृदय के भीतर ले सजाती थी। उनकी छबियों को नित्य नया पाकर वह सभी छबियों को हृदय में भरकर भी तृप्त नहीं होती थी। जिस रुचि से चकोर चन्द्रमा की ओर देखता है उससे भी अनन्त गुना रुचि धारण करके वह देख रही थी। वह टक टकी लगाकर देखती रह जाती थी और बार-बार देखने पर भी उसे ऐसा लगता था कि अभी कहाँ देखा है। इधर राधा नई-नई छबियों को देखकर बलिहारी जाती थी और उधर प्यारे श्रीकृष्ण अनन्त छबियाँ बनाते जाते थे। राधा अपने पलक नहीं गिराती थी वह तो अंग-अंग की छबियों को देखने में लगी थी और उन पर रीझ कर और आनन्द मग्न होकर उनको हृदय में सजाती जाती थी।

उधर श्रीकृष्ण अपार रूपों का विस्तार करके अनोखी छबियों को धारण कर रहे थे किन्तु इधर राधा के हृदय में छबि दर्शन के लोभ की भी सीमा नहीं थी और उधर श्रीकृष्ण छबियों का विस्तार उदारता से कर रहे थे। उधर राधा भी अपनी छबियों का विस्तार करती है और तब श्रीकृष्ण छबि रस के प्यासे होकर देखते हैं। दोनों ही इस प्रकार के रण में कुशल हैं और दोनों ही रस पान और दान में थकते नहीं है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे प्यारी राधा मैं तुमको अपनी दृष्टि से दूर नहीं करूँगा, मैं तो तुम्हें हृदय में बसा कर रखूँगा क्योंकि तुम्हारे बिना मैं ब्रज में ब्रज रस की वर्षा नहीं कर सकता। रस की सागर प्रिया से रस लेकर श्रीकृष्ण रूपी बादल रस की वर्षा करेंगे और इस प्रकार सखियाँ रसमयी बनकर दोनों के मिलने का आनन्द पावेंगी।

एक दिन ललिता और विशाखा आदि सखियाँ राधा के पास आकर बोली- तुम जिसका हमेशा चिंतन करती हो जिसका नित्य गुणगान करती हो, वही कान्हा ग्वाल बालों के साथ धेनु चराने के लिए हमारी गलियों से रोज आते हैं। यह सुनकर राधाको अपार हर्ष हुआ। राधा रात में सोते समय कोटि कोटि कामदेव के पद को लज्जित करनेवाले कृष्ण के विशेष स्वरूप को स्वप्न में देखने लगी। सुबह होते ही वहाँ उनकी सखियाँ आकर कहने लगी- हे सखि देखो कुँवर कान्हा जा रहा है। उसके सिरपर मोर का मुकुट हैं, शरीर पर पीताम्बर सुशोभित है, ग्वाल बाल उसके संग है। गौवें उनके पीछे है। जब वृषभानकुमारी राधा ने श्याम को देखा और विह्वल होकर अपनी सारी सुधबुध खो बैठी।

गुणनिधि रुचित रूप लखि राधा। मगन भए प्रभु कृष्ण अगाधा।।
भएउ चेत पुनि लोचनु खोली। समुझि अंग सखियन्ह सन्ह बोली।।
करहु सखी अस वेगि बिधाना। बिनु ब्रजभूषण रहिहिं न प्राना।।
सुनि ललिता कान्हा ढिग जाई। हाल राधिकहिं सकल सुनाई।।

पूर्णनिधान राधा का भी रुचिर रूप देखकर अगाध प्रभु कृष्ण प्रेम में मग्न हो गए। जब राधाजी का थोड़ा चेत हुआ तो नेत्र खोलकर अपनी सखियों को अपना अंग समझकर उनसे बोली- हे सखी अब शीघ्रही ऐसा कुछ विधान करो जिससे प्रभु के श्रीचरण की प्राप्ति हो। क्योंकि ब्रज के भूषण प्रभु कृष्ण के बिना अब ये प्राण नहीं रहेंगे। यह सुनकर ललिता ने कान्हा के समीप जाकर राधा का पूरा हाल कह सुनाया।

यदि ब्रज के भूषण प्रभु का सानिध्य नहीं है तो इस जीवन मे कुछ भी सुख और रस नहीं। इसलिए राधाजी न कुछ सुनती है न कुछ बोलती है। आपके विरह में उनके नेत्र ठसे रहते है। ऐसी कौनसी बात है जो आपको विदित नही है क्योंकि आप ही आत्मारूप से सब में वास करते है। हे प्राण प्रियतम तुमही इस जग के कर्ता हो, जग के पालनहार हो और फिर संहार करनेवाले भी हो।

यद्यपि आप अकल है, अज है, आप ही परमेश्वर हो। आपको किसी भी स्थिति से फर्क नहीं पड़ता है। फिर भी आप अपने जनों के हृदय की प्रीति देखकर अपने जनसे उसी तरह आप भी प्रीति करते हो। इसलिए उसे अपना अनन्य जन समझकर अब करूणा कीजिए तथा मेरी सखी राधा को दर्शन दीजिए। आप के चरण कमल को पाए बिना उसका दुख भला किस प्रकार से दूर हो?

कृष्ण बोला- मैं प्रेम रस में रमण करता हूँ। जो मुझमें और राधिका में जो भेद समझता है वह दुख को ही प्राप्त होता है। मैं बिना राधा के अधूरा हूँ। राधा का मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। ललिता राधा के पास आयी और बोली- हे सखी, जिसप्रकार से तुम कान्हा से प्रेम करती हो कन्हैया भी तुमसे वैसे ही प्रेम करते है। तुम दोनों भेद रहित एक ही लय हों एक ही रस का विस्तार हो।

राधा ने तुलसी की विधिपूर्वक पूजा की, तपस्या की। तुलसी का मन्दिर बनवाया। तुलसी ने प्रगट होकर राधा को वरदान दिया- हे ब्रजभानु दुलारी देवी, आप प्रभु कृष्ण की सहज वल्लभा और प्यारी हो। यद्यपि आप स्वयं परिपूर्ण काम है फिर भी निष्काम होकर मेरे व्रत को धारण किया इसलिए मेरा यह आशीर्वाद है कि आप के समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे। यह वरदान देकर तुलसी अंतर्धान हो गयी।

एक दिन राधा सोलहों श्रृंगार किये अपने घर बैठी थी। मोहन ने अपनी इच्छानुसार उसके घर जाकर श्यामा को अपने गले लगा लिया और उसकी सुन्दरता पर बलायें लेने लगे। केशवमूर्ति की माया से श्यामा ने अपने मुखारविन्द की परछाहीं

मुरलीमनोहर के जड़ाऊ गहने में, जो गले में पहने थे, देखकर क्या समझा कि इस दूसरी सुन्दरी से नन्दलालजी के लिये ले आये हैं। ऐसा विचारकर राधा को सौतिया डाह हुई। तब उसने रोनी सूरत बनाकर कहा- ऐ मोहन, मैंने जाना, तुम प्रकट में मेरे साथ प्रीति करते हो और अन्त:करण से इस महासुन्दरी को ऐसा चाहते हो कि आठों पहर अपनी छाती से लगाये रहते हो, एक क्षण अलग नहीं करते। इस सखी का बड़ा भाग्य समझना चाहिए जो रात-दिन तुम्हारे हृदय में बसती है। अब तुम इसके साथ प्रीति करो मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। यह वचन सुनते ही ज्योतिस्वरूप उसके सामने हाथ जोड़कर बोले- ऐ प्राणप्यारी, तुम्हारे सिवा और कौन है जिसको हम चाहते हैं। तुम हमारी बात का विश्वास करो, ऐसा मत विचारो। इसी तरह बहुत बिनती करके नन्दलाल ने श्यामा का हाथ पकड़कर अपने पास बैठानाचाहा, पर वह सौतियाहाड से वहीं बैठकर बोली- ऐ कृष्ण, अपनी प्यारी से जिसको हृदय में रखते हो, बोलो, अब हमको तुमसे कुछ प्रयोजन नहीं है। ऐसा कहकर राधा अपनी परछाहीं को गालियाँ देने लगी। मोहन ने कई बार समझा कर कहा कि यह दूसरी स्त्री नहीं है, मेरे जड़ाऊ गहने में तेरी परछाहीं दिखलाई देती है, पर श्यामा को सौतीया डाह से उनकी बात का विश्वास नहीं हुआ।

श्रीकृष्ण अपनी सखियों से बोले- ऐ सखी, मैंने तो राधा का कुछ अपराध नहीं किया। इसने अपनी परछाहीं मेरे जड़ाऊ गहने में देखकर उसे दूसरी स्त्री समझा है, इस कारण मुझसे रूठकर नहीं बोलती। तू किसी तरह इसका सन्देह मिटाकर प्रसन्न कर दे। जब यह बात कहकर श्यामसुन्दर ने आँखों में आँसू भर लिया तब उस सखी ने मुरलीमनोहर से कहा कि तुम वृन्दावन में चलो, मैं राधा को वहाँ लिये आती हूँ। यह सुनकर मोहन वृन्दावन के कुंज में चले गये। उस सखी ने राधा के पास जाकर कहा कि तुम्हें गोपीनाथ ने बुलाया है। श्यामा बोली- तू नहीं जानती कि नन्दकुमार ने दूसरी सुन्दरी से प्रीति करके उसको अपने हृदय में बसाया है, अब उन्हे मेरी चाह नहीं है, मैं उनके पास जाकर क्या करूँ? तब फिर वह सखी बोली- हे राधा, तू जिनकी वस्तु माँगने में ले आई है, वह तेरे बदले मोहन को वन में घेरे खड़े हैं और तुम यहाँ मचलाकर बैठी हो ऐसा न चाहिए। श्यामा ने कहा कि मैं किसी की वस्तु माँगकर नहीं ले आई हूँ जो घेरे हों, उनका नाम बतला दो। तब वह सखी बोली कि हरिणी की आँख, चीते की कमर, हाथी की चाल, अनार के दाँत तू मँगनी लाई है। वे लोग नन्दलाल से तगादा करते हैं। यह बात प्रीति भरी हुई सुनकर राधा ने हँस दिया। तब वह सखी बोली कि हे प्यारी, तू बड़ी अज्ञान है, मोहन से वृथा क्रोध करता है। जिस तरह पहिले एक दिन तूने शीशा देखकर अपनी परछाहीं को सौति समझा था उसी तरह आज भी नन्दलाल के जड़ाऊ गहने में अपनी परछाहीं को दूसरी स्त्री जानकर मोहन से क्रोध किया, इसलिए वह तेरे विरह में व्याकुल होकर राधा-राधा पुकारते हैं। तू जल्दी चलकर उनकी चिन्ता छुड़ा दे। जब यह वचन सुनकर श्यामा का चित्त ठिकाने हो गया तब वह पछताकर कहने लगी कि हे सखी। तुम मोहन से जाकर कह दो कि मैं श्रृंगार करके अभी आती हूँ। जब वह सखी श्यामसुन्दर के पास यह सन्देशा कहने गई तो क्या देखा कि वृन्दावनविहारी राधा के विरह में व्याकुल होकर वृक्ष के तले लोट रहे हैं।

बैठत उठत अधीर कोऊ सुधि पावन नहीं। बढ़त विरह की पीर श्रीराधा राधा रटत।।
मुख नहिं बोलत बैन अति व्याकुल तेरे विरह। भरभर डारत नैन कहा कहूँ उनकी दशा।।

राधा यह वचन सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर उस सखी के साथ वन में जा पहुँची। श्यामसुन्दर ने प्यारी को देखते ही आनन्द होकर उस सखी की बड़ाई की और श्यामा को अपने हृदय में लगाकर कामदेव की अग्नि बुझाई।

परमप्रेम दोऊ मिले श्रीराधा नँदनन्द। गुण आगर युगल छबिसागर सुककन्द।।
जो प्रभु अगर अपार वेद भेद जानत नहीं। सो व्रजकरत विहार मरम न वाको पावै नहीं।।

एक दिन श्यामसुन्दर ने वृंदावन की गली में ललिता सखी को आती हुई देखकर रोका। तब ललिता बोली कि तुम झूठी प्रीति मेरे साथ रखकर कभी मुझ गरीबिना के घर नहीं आते। यह सुनकर नन्दलालजी ने कहा।

तुम कैसे बिसरत प्रिया हँसि बोले घनश्याम। आजु आय सुख लेहिंगे रैन तुम्हारे धाम।।

हे राजन्, ललिता ने बड़े हर्ष से अपने घर आकर सोलहों श्रृङ्गार किया और शय्या की तैयारी करके श्यामसुन्दर के आने की आशा करने लगी। जब आधी रात बीतने पर श्री कृष्णजी वहाँ न आकर शैला सखी के घर चले गये तब ललिता ने उदास होकर कहा- **कहत श्याम आये नहीं होन लगी अधरात। गये आशदेमोहिं पुनि कहाधरोंजियबात।।**

जब ललिता को इसी सोच विचार में सारी रात जागते बीत गई तब प्रात: समय नन्दलालजी अपना वचन याद करके ललिता के घर पहुँचे।

तब बोली मुसकाय प्रिय कहा काम मम धाम। ताही के घर जाइये बसे जहाँ निशिश्याम।।

जब यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर ने मुसकरा दिया तब ललिता ने उन्हें स्नान कराया।

थोड़ी देर कृष्ण वहाँ रहकर उसकी इच्छा पूर्ण करने के उपरान्त अपने घर चले आये। इसी तरह मोहनप्यारे कभी श्यामा, कभी चन्द्रावली, कभी सुखमा आदि गोपियों के घर रात भर रहकर उनकी इच्छा पूर्ण करते थे। जब एक ब्रजबाला से वचन हारकर दूसरी सखी के घर चले जाते और वह ब्रजबाला हठकर मान करती तब बहुत विनती करके उसे मनाते। इसी तरह मोहन अपना एक रूप नन्द व यशोदा के पास रखते और अनेकरूप धरकर कभी-कभी ब्रजबालों की मनोकामना पूर्ण करते थे।

कबहुँ कहत हरि आइहैं उरमें हर्ष बढ़ाय। कबहुँ विरह व्याकुलजरत अतिआतुर अकुलाय।।

एक रात श्यामसुन्दर किसी सखी के घर रहकर जब प्रात:समय राधा के पास गये तब वह क्रोध करके रूठ बैठी, इसलिए मोहनप्यारे ने बहुत विनती करके सौगन्ध खाई कि हे प्राणप्यारी, अब मैं दूसरी गोपी के घर कभी नहीं जाऊँगा तब वह प्रसन्न हुई। पर त्रिलोकीनाथ ने, जो सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले थे, सौगन्ध खाने पर भी ब्रजबालों के घर को जाना नहीं छोड़ा। एक दिन श्यामसुन्दर कौमुन्दा सखी के घर पर रहे और प्रात:काल वहाँ से आते थे, उसी समय अचानक राधाप्यारी कौमुन्दा सखी को यमुना स्नान करने के लिए बुलाने गई। जैसे श्यामा ने केशवमूर्ति को उसके घर से निकलते देखा वैसे ही क्रोधित होकर बिना नहाये अपने घर चली आई। नन्दलाल उसे देखते ही भय मानकर मन में कहने लगे कि आज हमारी चोरी राधा ने पकड़ लिया। जब मुरलीमनोहर राधा से भेंट किये बिना नहीं रह सके तब कई सखियों को साथ लेकर उसे मनाने गये। उन्हें देखते ही श्यामा क्रोध से बोली-

घरघर डोलत फिरत निशि बोलत लगत न लाज। आय दिखावें प्रात मोहिं निशिवासर के साज।।

जब श्यामसुन्दर के विनती करने और सखियों के समझाने पर भी राधा ने क्रोध क्षमा नहीं किया तब सखियाँ बोलीं कि हे श्यामा, चार दिन के जीवन पर अभिमान मत कर। वृन्दावनविहारी तेरे क्रोध करने से उदास होकर अपना अपराध क्षमा कराने तुम्हारे पास आये हैं सो तू हँस बोलकर इनका सोच छुड़ा दे।

आदर करि बैठायके पियको कंठ लगाय। घर आये नहिं कीजिये ऐसी विधि निठुराय।।

श्यामा यह सुनकर बोली कि जिसके घर श्यामसुन्दर रातभर रहे हैं वहाँ जावें। मेरे साथ अब इनका क्या काम है। अभी चार दिन हुए इन्होंने मुझसे सौगन्ध खाई थी कि अब किसी सखी के घर न जाऊँगा, सो आज मैंने अपनी आँख से इनको कौमुन्दा गोपी के यहाँ से निकलते देखा। मैं इनके योग्य नहीं हूँ, लम्पट मनुष्य से प्रीति करके कौन नष्ट होवे।

ऐसो गुण हरिको सखी निपटकपट की खानि। अब इनसों मोसों कभी नहीं बनैगी जानि।।

ऐसो कहि चुप हो रही मुर बैठी रिस गात। मधुरे वचनन से कहत निपट सखिनसों बात।।

सखी कह्यो मुसकाय नहिं मानत मेरो कह्यो। श्याम मनावें आय मैं जान्यों तब मानिहै।।

जब सखियों के समझाने से राधा नहीं मानी तब उन्होंने श्यामसुन्दर से कहा कि हम लोग समझाते समझाते हार गईं, पर राधा नहीं मानती, तुम उसे समझाकर मना लो।

मान तबै नहिं लाड़ली थाकीं सब मनाय। नेकु यत्न कुछ कीजिये रचिये आप उपाय।।

चलै बने है लाल अब और यत्न नहिं कोय। काछ काछिये जौन विधि नाच नाचिये सोय।।

जब ऐसा कहकर सब सखियाँ अपने-अपने घर चली गईं तब नन्दकुमार भी वहाँ से बाहर चले आये, पर उनका मन नहीं माना तब स्त्रीरूप बन गये और श्रीकृष्णजी की ओर से राधाजी के पास जाकर यह संदेशा कहा कि मैं इस समय तुझे देखने के लिए वृन्दावन के कुंज में गई थी सो तुझे उस जगह नहीं पाया, पर श्यामसुन्दर तेरे विरह में वहाँ अतिविलाप करते हैं उन्होंने मेरे पाँव पकड़कर बहुत निवती से तुझे बुलाया है, सो तू मान छोड़कर मोहन के पास चल। यह बात कहकर गोपीरूप मोहनप्यारे श्यामा के चरणों पर गिरकर विनती करने लगे।

जब राधा उस स्त्री के विनती करने से प्रसन्न होकर चलने के लिए तैयार हुई तब श्यामसुन्दर ने अपना रूप धरकर श्यामा को गले से लगा लिया। दोनों ने बड़े हर्ष से एक थाली में भोजन किया और अपने-अपने कामदेव की अग्नि भेंटरूपी जल से बुझाई। इसी तरह मोहन राधा आदि गोपियों का मनोरथ पूर्ण किया करते थे।

एक ही प्रीति, एकही लय, एकही इच्छा अपने प्रति राधा की देखकर प्रभु कृष्ण उनके प्रेम की परीक्षा लेने आए। गोप सुंदरी का शरीर धारण करके प्रभु कृष्ण वहाँ आए जहाँ वृषभानु दुलारी राधा विराजमान थी। दोनों ने परस्पर में एक दूसरे का आदर, दान, मान, सन्मान करते हुए एक दूसरे की बड़ाई की।

१४) कृष्ण की गोपियों से पनघट पर छेड़छाड़- राधाके साथ गोलोक से उनकी कुछ प्रमुख सखियाँ भी भगवान श्रीकृष्ण के आदेशानुसार पृथ्वी पर व्रज मण्डल में विभिन्न गोपों के घरों में अवतीर्ण हुई थीं। उनकी संख्या नौ थी और उनके नाम थे- ललिता, श्यामला, धन्या, श्रीहरिप्रिया, विशाखा, शैव्या, पद्मा, भद्रा और चन्द्रावली। ये सभी सखियाँ भी भगवान श्रीकृष्ण को उतना ही प्यारी थीं जितनी कि स्वयं श्रीराधा थीं।

ये सखियाँ गोलोक में भी गोलोक विहारी श्रीकृष्ण की प्यारी प्रेयसी थीं और यहाँ व्रज में भी हो गईं। इसमें कोई भी कार्य अप्राकृत और मर्यादा के विरुद्ध नहीं था। गोलोक से भूलोक में आने के कारण उनके सम्बन्धों में थोड़े समय के लिए व्यवधान आ गया था।

वे गोपकुमारियाँ जो भगवान श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए व्रतादि का विधान किए हुए थीं, वे श्रीराधा की गोलोक की वे नौ प्यारी सखियाँ ही थीं जो उन्हीं के साथ गोलोक से आकर व्रज के विभिन्न गोप परिवारों में अवतीर्ण हुई थीं और भगवान से मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहती थीं। वे नौ सखियाँ पुन: श्रीराधा के साथ ही गोलोक को लौट गई थीं।

सभी ब्रजांगनायें कृष्ण पर ऐसी मोहित थी कि उसकी साँवली सूरत को देखे बिना चैन नहीं पड़ती थी। पानी भरने और दही-दूध बेचने के बहाने यमुना के किनारे व वन में जाकर श्यामसुन्दर का दर्शन करके अपने हृदय की तपन बुझाती थी। अपनी सास व माता का समझाना उनको अच्छा नहीं लगता था।

यह सूरदासजी की मौलिक रचना है। भागवत में इसका उल्लेख नहीं है। इसमें गोपियां यमुना-तट पर गागर लेकर जल भरने जाती हैं और वहां कृष्णजी को देखकर अनुरक्त हो जाती हैं। वे चाहती हैं कि कृष्णजी मिलें और उनसे छेड़-छाड़

करें। कृष्ण उनकी गागर गिरा देते हैं और जल नहीं भरने देते। गोपियां भी उनकी लकुटी और बंसी छीन लेती हैं। गोपियां जब सिर पर घड़ा रखे हुए जाती हैं, तो कृष्ण उनका अंग स्पर्श कर उनसे आलिंगन करते हैं। गोपियां हर्ष-विभोर हो जाती हैं, किंतु फिर भी जाकर उनकी मां यशोदा से उलाहना देती हैं। यशोदा कृष्ण पर क्रुद्ध होती हैं और जब वे सामने आते हैं, तो उन्हें मारने के लिए दौड़ती हैं। रोहिणी आकर कृष्णको बचाती हैं और कहती हैं कि कृष्ण अभी तो छोटा बालक है, ये गोपियां ही यौवन-मदमाती हैं, जो स्वयं ही अपनी गागर फोड़कर उलाहना देने आती हैं। राधा भी इन गोपियों में है और वह भी पनघट-लीला में पूरा योग देती है। **गोरस बेचन हरि-मिलन, एक पंथ दो काज।**

एक दिन कृष्ण अपना नटवर रूप धरे सब सखाओं को साथ लिये यमुना किनारे कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़े होकर बांसुरी बजाने लगे। उसी समय राधा अपनी सखियों समेत जल भरने के बहाने नन्द के लाला को देखने चली।

बरसाने वाली सुना, कान्हा रूप अपार। यमुना तट आने लगी, देखन कृष्ण मुरार।।

जब यमुना तीर ग्वालों की भीड़ उसने देखी तब खड़ी होकर सखियों से बोली कि माखनचोर राह में खड़ा है, हम लोगों को अवश्य छेड़ेगा। जब श्यामसुन्दर उसके दिल का हाल जानकर अपने सखा समेत राह छोड़कर दूसरी ओर चले गये तब राधिका ने सहेलियों समेत यमुना किनारे जाकर जल भरा और अपना-अपना घड़ा सिर पर लेकर घर को चलीं। श्यामको उत्पात सूझा और राधा से पूछा- तुम सब-की-सब हमारे घाटपर क्यों आयी? हमारा कर चुकाकर तब जल ले जाओ। राधा बोली- यमुना घाट भी किसीका होता है? जल भरनेका कर लगना तो हमने कभी सुना नहीं, हम तो भरेंगी जल।

नंद का लाला बोला- अरी बृज बालाओ, यमुना पर तो बहुत से घाट बने हुए हैं। तुम लोग वहीं पर पानी भर लिया करो। तुम्हारी नानी क्या पानी भरने के लिए इसी घाट पर भेजती है। गोपियाँ बोलीं, अरे ओ फोकट के राजा। इस घाट पर क्या कहीं तुम्हारा नाम लिखा है। यह घाट तो यमुना का है। तुम बिना कारण ही इस घाट का स्वामी बन रहे हो। अरे ओ नन्द के सपूत, हम मैया यशोदा के पास जाकर तुम्हारी शिकायत करेंगे। हमारे घड़े फोड़ने का स्वाद भी तुम्हें मिल जायेगा।

नंद का लाला बोला- अरी बरसाने की बालाओं, तुम मेरे घाट पर पानी भरने क्यों आयी हो? क्या तुम्हें पता नहीं मेरे घाट पर पानी भरने का कर लगता है।

बरसाने की छोरियों ने नन्दनन्दन को आँखों से देखा तो बहुत प्रसन्न हुईं। श्यामसुन्दर की रूप माधुरी इतनी अधिक सुन्दर थी कि गोपियां सब मोहित हो गयी। एक चंचल सखी मोहन की रूप माधुरी का विशेष आनन्द लेने के लिए उनसे उलझ पड़ी और बोली, अरे नन्दलाल, हम जल भरने का कोई कर वर नहीं देंगी और जल भी तुम्हारी इसी घाट से भरकर ले जायेंगी। यह तुमने कर लगाने के उल्टे ठाट क्यों लगा रखे हैं। कोई धर्मात्मा लोगों की जल सुविधा के लिए कुआँ बनवाता है, कोई बावरी बनवाता है, कोई नदी के घाट बनवाता हैं, कोई पुल बनवाता है। धर्म के कार्य करके पुण्य कमाते हैं। तुम कैसे हो जो पानी भरने पर भी कर लगाते हो। ऐसा कहकर बरसाने की गुमान भरी बड़ी ही ढीठ छोरियाँ अपनी अपनी कलसियाँ मोहन के घाट से भरकर अपने सिर पर रखकर बरसाने की ओर चल पड़ीं।

नीलसुन्दर अपने इन सखाओं के साथ उलझ रहा था सबकी कलशियोंका जल उन्हींपर उलटने लगा। कृष्ण और सुबल ये दोनों भी छीपा झपटीमें लग गये। नीलमणिने जब राधा की कलशी पकड़ी वह तो इतनी भोली है कि नीलमणिके मुखकी ओर देखकर स्वयं अपनी कलशी उसके हाथोंमे दे दी।

कियो दृगन में धाम सुन्दर नटनागर सुखद। जित देखों तित श्याम पंथ मोहिं सूझै नहीं।।

राधा सखियों के झुण्ड में हंस की सी चाल से चली आती थी, मोहनीमूर्ति ने गोपियों के गोल में आकर राधा की गगरी

में एक कंकरी मारी और अपनी मुसकान से राधा आदि सब सखियों का मन हर लिया। तब श्याम सखियों से बोली-

कान्हा कंकड़ दिया छेद उँगली भर कीन्हा। धार निकलती देखी कान्हा फुदका भीन्हा।।

चपल उछतिर नाचा अरु हाथन तालि बजाई। आ हा हो हो करिके अपना मोद जनाई।।

कान्हा ने राधा की मटकी पर निशाना साधा और कंकड़ी मारी गगरी में छेद हो गया। पानी की धार बह निकली। मोहन नाचने लगा और प्रसन्नता से फुदकने लगा। उछल-उछलकर हाथों से तालियाँ बजाने लगा, अपने मुख से आ हा ओ हो के शब्द निकाल-निकालकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगा।

मोहे पनघट पे नन्दलाल छेड़ गयो रे, मेरी नाजुक कलाइयां मरोर गयो रे।।

कंकड़ी मोहे मारी गगरिया फोड़ डारी, मोरी साड़ी अनाड़ी भिगोय गयो रे।।

नैनों से जादू किया जियरा मोह लिया, मोरा घूंघटा नजरियों से तोड़ गयो रे, मेरे पनघट पे...

नन्द के लाल ने राधा से कहा- हमारी बात का बुरा नहीं मानना और हमारे यहाँ नन्दगाँव में आती रहना। हम अपने धाम में तुम्हारी राह देखा करेंगे। गौर वर्ण की राधा रानी ने अपने कमल जैसे नयनों को नीचा करके मन मोहन के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की। फिर अपनी सब सखियों के साथ बरसाने के रास्ते पर चल दीं।

कान्हा ने अपने घाट से सखियों को बिना कर दिये जल भरकर ले जाते देखा तो अपने सभी छुपे हुए सेना रूपी सखाओं को आवाज देकर बुला लिया। सभी सखाओं ने आकर धूम मचा दिया। श्री राधा की सारी सखियाँ हाए हाए कहती हुई इधर उधर भागीं। राधा की सखियाँ पूरी तरह से भीग जाने पर पैर पटक पटककर खीजने लगीं।

बरसाने की छोरियों ने बरसाने में जाकर कहा, हम तो यमुना जी में डूब ही जातीं परन्तु उसी समय कहीं से नन्दलाल आया और हमें डूबने से बचाया। ये बात सुनकर बरसाने वाले नन्दनन्दन पर बहुत राजी हुए और उनका आभार प्रगट करने के लिए बहुत से उपहार नन्दलाल के लिए भेजें।

गोपियों ने कन्हैया को परास्त करने के लिये नया तरीका अपनाया सोचा मिट्टी की मटकिया तो श्याम तोड़ देता है इसलिए अब हम पीतल की कलसिया लेकर आया करेंगी फिर भला यह कैसे तोड़ेगा।

उनमें जो ब्रजबाला चतुर थीं उन्होंने कहा कि हे मोहनीमूर्ति, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो अपनी मुस्कान व चितवन से प्राण व ज्ञान दोनों हमारे हर लेते हो। तुम्हारा मोहनरूप देखने और वंशी की ध्वनि सुनने से हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता। तुमने मन चुराने का उद्यम कब से सीखा है। यह प्रीति भरी हुई बात सुनकर श्यामसुन्दर बोले कि जिस तरह तुम लोगों ने अपनी छवि दिखलाकर मेरा मन चुरा लिया है उसी तरह मुझे भी कहती हो तब गोपियों ने रुखाई से कहा कि तुम किसी का चीर खींचकर, धक्का देकर गिरा देते हो, किसी की गगरी कंकरी मारकर फोड़ डालते हो, तुम्हारे मारे कोई यमुना जल भरने नहीं पाता, हम लोग यशोदा के पास जाकर तुम्हें फिर ऊखल में बँधवावेंगी।

यह सुनिहरि रिसकरि उठे इँडुरीलई छिनाय। कहोजाय अब मातसों लीजो मोंहिँ बँधाय।

मोहिं कहत ठग चोर आप भई साहुनि सबै। डारी गगरी फोर कहत जाउ चुगुली करन।।

कहाँ श्याम मेरो तनिक वे सब यौवन जोर। अब उरहन लै आवहीं तब पठवहुँ मुख तोर।।

तू क्यों उन ढिग जात मैं बरजत मानत नहीं। लावत झूठी बात व सब ढीठ गुवालिनी।।

शुकदेव बोले- हे राजन्, राधा पूर्वजन्म के संस्कार से श्यामसुन्दर पर बड़ी प्रीति रखती थीं, इसलिए मोहनीमूर्ति को देखे बिना व्याकुल होकर सखियों से बोलीं- हे बहिन। यमुना किनारे जल भरने के लिए फिर चलो, जिसमें मोहनप्यारे को

देखकर आँखें ठंडी करूँ। जब मैं वहाँ जाती हूँ तब वह अपनी मुसकान व चितवन से मेरा मन मोह लेता है। उस मोहनीमूर्ति को देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती। लोकलाज के डर से मैं कुछ बोल नहीं सकती। बाहर निकलूँ तो माता-पिता का भय सताता है, घर में बैठने से मेरा तन यहाँ रहता और मन श्यामसुन्दर के पीछे दौड़ता है। मैं अपने चित्त को बहुत समझाती हूँ, पर उस चित्तचोर की ओर से नहीं फिरता।

एक सखी मनमोहन की मधुरी मुसकान देखाय दई री। वह साँवरी सूरत चैनमई सबही चितई हमहूँ चितई री।।
सब ही सखियाँ अपने-अपने गृह खेलत कूदत बाट लई री। मैं बपुरी वृषभानलली घर आवत पौर पहाड़ भई री।।

अब मैंने मन में यह बात ठान ली कि कृष्ण से प्रकट प्रीति करूँगी, इसमें चाहे कोई मेरी निन्दा करे या स्तुति, उस साँवलीमूर्ति के सामने मुझे लोकलाज व कुल-परिवार कुछ अच्छा नहीं लगता। जब मेरे प्राण उसके विरह में निकल जायँगे तो मैं लज्जा को लेकर क्या करूँगी। इसलिए अब मैं मोहन को अपना पति बनाना चाहती हूँ, इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है। ललिता आदि सखियाँ भी श्यामसुन्दर पर मोहित थीं, यह बात सुनकर वे बोलीं-

कहु प्यारी कैसे चलें वा यमुना की ओर। गैल न छाँड़त साँवरो रसिया नन्दकिशोर।।
कैसे जल भरन मैं जाउं। गैल मेरी परयौ सखि री, कान्ह जाकौ नाउं।।
घर तैं निकसत बनत नाहीं, लोक-लाज लजाउं। तन इहां, मन जाइ अंटक्यौ, नंद-नंदन-ठाउं।।
जौं रहौं घर बैठि कै तौ, रह्यौ नाहिंन जाइ। सीख तैसी देहु तुमहीं, करौं कहा उपाइ।।
जात बाहिर बनत नाहीं, घर न नैकु सुहाई। मोहिनी मोहन लगाई, कहति सखिनि सुनाइ।।
लाज अरु मरजाद जिय लौं, करति हौं यह सोच। जाहि बिनु तन प्रान छांड़े, कौन बुधि यह पोच।।
मनहिं यह परतीति आनी, दूरि करिहौं दोच। सूर प्रभु हिलि मिलि रहौंगी, लाज डारौं मोच।।

मैं पानी भरने के लिए कैसे जाऊं? हे सखी, मेरे रास्ते में वह बैठा रहता है, जिसका नाम कन्हैया है। घर से निकला नहीं जाता और मैं लोक की लज्जा से शरमाती हूं, किंतु यदि मैं नहीं जाती तो मेरा शरीर तो यहां है, किंतु मन कृष्ण में ही उलझा हुआ है। यदि मैं यहां घर में बैठी रहूं तो रहा नहीं जाता, इसलिए हे सखी। अब तुम जैसी शिक्षा दो, वैसा मैं करूं। बाहर जाया नहीं जाता और घर में कुछ अच्छा नहीं लगता। वह सखियों को सुनाकर कहती है कि कृष्ण ने तो मोहित करनेवाला मोहिनी मंत्र मुझ पर चला दिया है। लज्जा और लोक मर्यादा के कारण मैं मन में चिंता करती हूं, किंतु जिसके बिना यह शरीर प्राण ही छोड़ देगा, उसके करने में कौन-सी बुद्धि होगी? यह तो नीच बात ही होगी।

सूरदासजी कहते हैं कि गोपी ने अंत में यही निश्चय किया कि द्विविधा को दूर कर प्रभु श्रीहरि से हिल-मिलकर रहूंगी और लोक-लज्जा को छोड़ दूंगी।

ऐ राधा, हम लोग अपने मन का हाल तुमसे क्या बतलावें, जो गति तेरी है वही दशा हमारी भी है। उसकी छवि देखकर हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता और बाँसुरी की ध्वनि हमें अधिक अचेत कर देती है, न मालूम उसने कैसी मोहना हम लोगों पर डाल दी। तूने बहुत अच्छा विचारा, संसार में कौन ऐसा जड़ व चैतन्य जीव है जो उसकी छबि देखकर और मुरली सुनकर मोहित न हो जावे। यह हमारे पति होकर हमें अंगीकार करें तो लाज भाड़ में पड़े।

मेटिलोककी कानि पतिव्रत राखो श्याम सों। यही बनी अब आनि भलोबुरो कोऊ कहै।।

हे राजन्, राधा आदि सब ब्रजबालाओं की यह दशा थी कि दिन उनके विरह में और मिलने के उपाय में काटकर संध्यासमय उनका दर्शन करके अपने हृदय की तपन बुझाती थीं। अपने घरवालों का कहना और समझना उनको अच्छा नहीं लगता था।

प्रथम प्रेम को दोनों के मन ने समझ लिया। उन्होंने नेत्रों से ही बातें की, क्योंकि प्रेम की बातें नेत्रों से ही की जाती हैं। इस प्रकार उनका गुप्त प्रेम भाव प्रकट हो गया। कृष्ण ने कहा कि कभी तुम हमारे ब्रज गांव के नंद-सदन में खेलने आओ तो दरवाजे पर ही से मुझे पुकार लेना, मेरा नाम कृष्ण है। अगर तुम कहो कि तुम्हारा घर दूर है तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि यदि तुम पुकार के अपने घर से बुलाओ तो हमारे यहां सुना जा सकता है अर्थात मेरा घर कोई दूर नहीं है। तुम्हें तुम्हारे पिता वृषभानु की सौगंध है, एक बार प्रात: या सायंकाल अवश्य मिलो। देखने में तुम बिल्कुल सीधी हो, इसलिए तुम्हारी संगति चाहता हूं।

इसी समय वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधा अपनी सखियों को संग लिये पानी भरने के बहाने श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए यमुना तट पर आईं। समीप आकर देखा तो सखाओं को संग लिए श्रीकृष्ण खड़े होकर बाँसुरी बजा रहे थे। श्यामसुन्दर का दर्शन पाकर श्रीराधा और उनकी सखियों के नयन और मन तृप्त हो गए। श्रीराधा और उनकी सखियों ने यमुना जल से अपनी-अपनी गगरी भरी और सिर पर रखकर घर की ओर चल पड़ीं। उस समय वृषभानुनन्दिनी सखियों के समूह में ऐसी शोभायमान हो रही थीं, मानों हथिनियों के झुण्ड में राज-हथिनी मन्द-मन्द चाल से झूमती चली जा रही हो।

राधा सिर पर जल-भरी गगरी लिए घर को चलीं। पीछे से मोहन ने आकर वह गगरी लुढ़का दी। राधा ने झपटकर मोहन का हाथ पकड़ लिया और उनके हाथ से उनकी बाँसुरी छीन ली और बोलीं कि हे माखनचोर। तुम और किसी की गगरी फोड़कर छुटकारा पा गये होगे। मैं तो तुम्हें इस तरह नहीं छोड़ूँगी। जब मनमोहन हँसकर उनकी गगरी देने लगे तो श्रीराधा ने कहा कि मैं खाली गगरी नहीं लूँगी। जब तुम्हीं मेरी गगरी भरकर मेरे सिर पर रख दोगे, तभी मैं तुम्हारी बाँसुरी दूँगी। यदि तुम्हें नन्द महर का बेटा होने का गर्व है तो मैं भी श्री वृषभानु-महर की बेटी हूँ। मैं तुमसे किसी प्रकार भी कम नहीं हूँ। मेरा और तुम्हारा एक ही ग्राम का निवास है। मैं किसी प्रकार तुम्हारी बात नहीं सहूँगी। श्रीराधा की प्यारभरी बातें सुनकर श्यामसुन्दर हँस दिये और कहा कि हे प्यारी, तुम मेरी बाँसुरी दे दो, मैं तुम्हारी गगरी भरकर तुम्हारे सिरपर रख दूँगा। मोहन की बाँकी चितवन और मधुर मुस्कान देखकर श्रीराधा सहित सभी सखियों के तन-मन की सुधि भूल गई। मन तो श्यामसुन्दर के फन्दे में फँस गया और तन पुलकायमान हो गया। श्रीराधा ऐसी बेसुध हुईं कि उनके हाथ से बाँसुरी गिर पड़ी, परन्तु उन्हें इसका भी ध्यान नहीं रहा।

तब श्यामसुन्दर ने गगरी भरकर श्रीराधा के सिर पर रख दी। श्रीराधा को अपने तन की तनिक भी सुधि नहीं रही। वह सखियों के संग अपने घर को चल पड़ीं। उनके नयन और मन में भगवान श्रीकृष्ण पूर्णतया बस गए थे। वे जिधर भी देखतीं उधर श्यामसुन्दर ही दीखते थे। उन्हें रास्ता नहीं सूझता था।

श्रीराधा की एक दूसरी सखी उधर से जल भरने को आ रही थी। राधा को देखकर वह कहने लगी कि हे राधा, तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे मन में क्या सोच है जो तुम राह भटकती सी चल रही हो? राधा बोलीं कि हे आली, क्या कहूँ, उस नन्द के लाला ने मुझपर कुछ ऐसी मोहिनी डाल दी है कि मोहन के अतिरिक्त मुझे और कुछ दिखाई ही नहीं देता। श्रीराधा की मधुर वाणी सुनकर उस सखी को भी श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रबल अभिलाषा हो गई और वह झटपट वंशीवट के निकट जा पहुँची। परन्तु श्यामसुन्दर को वहाँ नहीं देखा। अन्तर्यामी भगवान श्रीकृष्ण एक वृक्ष की ओट में खड़े होकर उस गोपी को देख रहे थे। विरहानल ने उस गोपी के तन-मन को ऐसा तपाया कि वह तप्त तवे के समान हो गई। जब उसे मनमोहन के दर्शन नहीं हुए तब वह बार-बार पश्चाताप करती हुई जल भरकर अपने भवन को चलना चाही। वह अपनी गगरी जल से भरकर अपने सिर पर रखती थी परन्तु वह गगरी तुरन्त ही खाली हो जाती थी। जब इस प्रकार से गगरी बार-बार खाली होने लगी तब वह गोपी व्याकुल हो गई। उसे व्याकुल होते देखकर मनमोहन अचानक उसके पास आकर खड़े हो गए। श्यामसुन्दर ने कहा कि हे प्रिये,

तुम क्यों व्याकुल हो रही हो? मैं तो तेरे पास ही हूँ। ऐसा कहकर उस गोपी को हृदय से लगा लिया और उसके तन-मन का सब ताप बुझा दिया। उसके मुखारविन्द को चूमकर कहने लगे कि हे मृगनयनी तुम कौन हो? मैंने आज तक तुमको कभी नहीं देखा था। गोपी बोली कि हे जीवन-धन। तुम मुझे कैसे देखते। पहले तो अपना सुन्दर स्वरूप दिखलाकर हमारा मन हर लेते हो और फिर वृक्ष की ओट में छिपकर हमारे प्रेम की परीक्षा लेते हो। हे चित्तचोर, यह तो बताओ कि यह चित्त चुराने की विद्या तुम्हें किसने सिखाई? उसकी ऐसी बातें सुनकर मनमोहन तिरछी चितवन से उसे देखकर मुस्कराये। वह गोपी मोहन की तिरछी चितवन और मन्द मुस्कान देखकर सब सुधि-बुधि भूल गई। उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि मैं कौन हूँ, और कहाँ हूँ? उसने किसी प्रकार से अपनी गगरी भरकर सिर पर रख ली और इधर-उधर भटकने लगी।

वह गोपी उसे सावधान करके स्वयं यमुना की ओर जल भरने चल पड़ी। उसके मन में भी उस श्याम सलोने कुमार के दर्शन की अभिलाषा जाग्रत हो उठी। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि मुरलीधर मुरली हाथ में लिए एक वृक्ष की छाँव में खड़े हैं। उनका दर्शन पाकर उस गोपी की आँखें तृप्त हो गईं। जब उसने यमुना जल से अपनी गगरी भरी और सिर पर रख कर घर चलने को हुई तो नन्दलाल तुरन्त उसके पास आकर खड़े हो गये और उसकी लट पकड़कर कहने लगे कि हे चन्द्रानने, कहाँ चली? मनमोहन को अपने पास खड़े और अपनी लट पकड़े देखकर उस गोपी को अपार आनन्द मिला। परन्तु वह ऊपरी मन से दिखावे के लिए बोली कि मुझे दूसरी गोपी मत समझना, मैं बड़े गोप की कन्या हूँ। तुमने मेरी लट को क्यों पकड़ा? मोहन ने कहा कि तुम गुस्सा क्यों करती हो? मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था, इसलिए तुम्हारा सुन्दर मुख देखने लगा था। ऐसा कहकर मोहन ने उसकी लट को छोड़ दिया और उसे बाँकी चितवन से देखकर मुस्करा दिये। जब वह गोपी घर को जाने लगी तो थोड़ी ही दूर जाकर मार्ग भूल गई और वहीं बैठ गई। जब वह कुछ सचेत हुई और अपने घर तथा गुरुजनों का स्मरण हुआ तो वह अत्यन्त लज्जित हुई और जैसे-तैसे करके घर पहुँची।

गोकुल की दूसरी गोपियों को भी उपर्युक्त गोपियों की बातें जानकर कृष्ण के बार-बार दर्शन की प्रबल अभिलाषा जाग्रत हो उठी। उन्होंने सोचा कि हम लोग भी किसी प्रकार श्रीकृष्ण का दर्शन अवश्य करें। उस समय वे सब ऐसी मतवाली हो गईं कि श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना एक क्षण भी काटना कठिन हो गया। वे सब अपनी-अपनी गागरियाँ घर पर रखकर यमुना की ओर चल पड़ीं। मार्ग में मनमोहन एक कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़े मिले।

सब सखियाँ बोलीं कि हे मनमोहन, तुम बड़े ठग हो, जो पराई स्त्रियों को ठगते फिरते हो। श्रीकृष्ण बोले कि तुमने मुझे ठग कैसे समझा और मैंने तुम्हारा क्या ठग लिया है? ठग के लक्षण मुझे बताओ। गोपियाँ बोलीं कि हम ठग के लक्षण भी तुमको बतलाती हैं। ठगों के पास फाँसी होती है, सो तुम्हारी मधुर मुस्कान ही फाँसी है। ठगों के पास धनुष-बाण होते हैं, सो तुम्हारी भृकुटी की भंगिमा ही धनुष है और चितवन ही बाण है। रूप की ठगोरी डालकर व्रज-बालाओं के मन, धन और प्राण ठगते हो। व्रज की सभी युवतियाँ लोकलाज, कुल-कानि तजकर, बावली होकर वन-वन भटकती फिरती हैं। उनको नन्द के लाला ने ठग लिया है, यह बात सारे संसार में विख्यात है। श्रीकृष्ण बोले कि अपने लक्षण तुम मुझमें बताती हो। जैसे तुम लोगों का चित्त चुराती हो, वैसा ही मुझे बताती हो। यह बात भी सारे संसार में विदित है कि व्रज की गोपियों ने नन्द के लाला को ठग लिया है। तुम नहीं कहती तो क्या, सारा विश्व पुकार रहा है। सुर, नर, मुनि तक यह बात कहते हैं कि जो ब्रह्मा, शिव, सनकादि के भी ध्यान में नहीं आते, उन त्रिलोकी नाथ को आजकल व्रज-वनिताओं ने अपने वश में कर रखा है।

श्यामसुन्दर की यह बात सुनकर गोपियाँ बोलीं कि हे नटनागर, तुम बड़े नटखट हो। तुम सभी बातों को उलट-फेर कर देते हो। हम तुम्हारी चतुराई अच्छी तरह से जानती हैं। तुम किसी गोपी की गगरी ढुलका देते हो, किसी की लट पकड़ लेते

हो, किसी सखी को अंक में भर लेते हो तो किसी युवती को मार्ग में रोक लेते हो। कोई गोपी तुम्हारे डर के मारे घर से बाहर नहीं निकलती। तुम इस नटखटपन को छोड़ दो। यदि तुम नहीं मानोगे तो हम यशोदा मैया से जाकर कहेंगी तो वह फिर तुम्हें ऊखल में बाँधेगी। गोपियों की ऐसी बातें सुनकर श्रीकृष्ण को हँसी आ गई। वे तो अन्तर्यामी हैं, उन्होंने यह अच्छी तरह से जान लिया कि ये व्रज युवतियाँ मुझ पर प्राणपन से मोहित हैं और ऊपरी मन से दिखावे की बातें बना रही हैं। उन्होंने अपनी भुवन-मोहिनी मुरली बजाई जिसकी ध्वनि सुनकर गोपियाँ चित्रवत खड़ी होकर स्वर सुधा का पान करने लगीं। जब श्रीकृष्ण ने बाँसुरी को बजाना बंद कर दिया तब गोपियाँ सचेत होकर बोलीं कि हे मोहन, तुमने अपनी बाँसुरी बजाकर हमारे तन, मन और प्राण को अपने वश में कर लिया है। तुम्हारे दर्शन के बिना हम लोगों का मन सदा तड़पता रहता है। तुम इसी भाँति नित्य ही अपनी रूप-माधुरी हमें अवश्य दिखलाया करो। उनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम लोग शीघ्र ही अपने घर को जाओ। तुम्हारे माता-पिता और घरवाले तुम्हारी राह देखते होंगे। भगवान की ऐसी आज्ञा पाकर वे गोपियाँ अपने घरों को लौट गईं। श्रीकृष्ण भी अपने घर को चले गए।

श्रीराधा का सखियों के संग यमुना तट पर पानी भरने जाना केवल श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए जाने का एक बहाना मात्र था।

व्रज की कुछ नवयुवती गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण की मनोहर छवि को देखकर उन पर प्राणपन से मोहित हो गई थीं और किसी भी बहाने उनका दर्शन करके अपने नयनों की प्यास बुझाती थीं। उनके मन में भगवान श्रीकृष्ण की मोहिनी छवि सदा बसी रहती थी। ये नवयुवती बालाएँ अपने को सुन्दर श्रृंगार से सुसज्जित करके प्रतिदिन मधुपुरी में गोरस बेचने जाती थीं। वे सदा श्रीकृष्ण की झलक पाने की कामना करती थीं।

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण ने उनको सुख देने के लिए दही दान (कर) की लीला रचाई। उन्होंने अपने समवयस्क गोप बालकों को बुलाकर अपना कार्यक्रम बतलाया और दूसरे दिन बड़े सवेरे ही उनको लेकर एक अनजान डगर से जंगल में पहुँच गए। वहाँ प्रत्येक पेड़ के नीचे कुछ गोप सखाओं को बैठा दिया और रास्ते को घेर लिया।

वे नवयुवती गोप बालाएँ नित्य की भाँति सुन्दर श्रृंगार से सजकर, सिर पर दही माखन की मटकी लेकर, आपस में हँसती-बोलती बड़े सवेरे ही उधर से गोरस बेचने जाने लगीं। जब गोपियाँ निकट आ गईं तो ग्वालबालों ने उनको अचानक चारों ओर से आकर घेर लिया।

भद्र सखाओंका समूह लेकर पीछे पहुँच गया और श्याम इन सबोंके सामने मार्ग रोककर दोनों हाथ कमर पर रखे खड़ा हो गया। कन्हैया ने पूछा- अरी गोपियों, तुम सब कहाँ जा रही हो? उस समय राधा ने कहा- कहीं भी जायें, तुम्हें क्या करना है? कन्हैया बोला- यह वन हमारा है। इसमें से कुछ भी बेचने जाना हो तो हमारा कर देकर जाओ। विक्रयकी वस्तुपर कर देना पड़ता है।

गोपियां बोली- हे कृष्ण, प्रात:काल ही तुम क्यों झगड़ा करते हो? औरों को छोड़कर तुम हमसे हठ कर रहे हो। तुम तो दिन-प्रतिदिन रास्ते में आकर लड़ाई करते हो। बोहनी के बिना हम थोड़ा भी नहीं देंगी वैसे यदि तुम जबरदस्ती करना चाहो तो सारा ही छीन लो। हम मथुरा अपने गोरस को बेचने जा रही हैं, तुम्हें किसने अधिकार दिया है, तुम कागज (अनुमति पत्र) दिखलाओ। यहां डर किस बात का लगता है? यह भी बतलाओ कि इस रास्ते पर जाते हुए किसने कर दिया है? तुम हमारे आंचल को खींच-खींचकर पकड़ रहे हो, हमें जाने दो, देर हो रही है। सूरदास कहते हैं कि प्रेम के कारण गोपियों का मन तो कृष्ण में उलझा है। उनसे वह रास्ता छोड़ा भी नहीं जाता। वे कृष्ण का मुख देखती हुई उन्हीं में मग्न हैं। वास्तव में इन्हीं का भाग्य सबसे अधिक है।

कृष्ण ने कहा कि बिना दान यानी कर लिए जाने नहीं दूंगा। जब मैं तुम्हारा सारा दूध-दही, मक्खन ढुलवा दूंगा। तुम यहां चोरी से आती हो और बिक्री करके चली जाती हो। यदि तुम्हें जाने दूंगा तो फिर मैं गोरस कहां से पाऊंगा। केवल तुम मुझसे मुहर लगा हुआ कागज (अधिकार-पत्र) मांगती हो, मुझे नहीं मानती हो, और सभी लोग मानते हैं।

अपने को चारों ओर से घिरा हुआ देखकर गोपियाँ डर गईं और चित्र लिखे से होकर खड़ी हो गईं। तब ग्वालबाल बोले कि डरो नहीं। हम लोग कोई ठग या चोर नहीं हैं। हम तो दानी यदुपति श्रीकृष्ण के आदमी हैं। तुम लोग प्रतिदिन इसी रास्ते से आती-जाती रहो। श्रीकृष्ण के राज्य में कोई भय नहीं है। इधर से जाने के लिए जो कुछ कर लगता है उसे तुम लोग देती रहो। जब गोपियों ने श्रीकृष्ण का नाम सुना तो उनमें से एक गोपी हँसकर बोली कि कन्हैया का दही-चोरी से पेट नहीं भरा तो अब दान लगाने लगे हैं। जब कान्हा बालक थे तो उनकी उल्टी-सीधी सभी बातें अच्छी लगती थीं, परन्तु वही कान्हा अब कुछ बड़े होने पर कोई धोखा करेंगे तो क्षणभर में उनकी इज्जत चली जाएगी।

चन्द्रावली सखी नेत्र निकालकर बोली- वन कबसे तुम्हारा हो गया? व्रजमें तो गोरस-विक्रयपर कर लगते सुना नहीं।

उनकी ऐसी बातें सुनकर कन्हैया ने कहा कि वन मेरा है या नहीं, अपने वृषभानु बाबासे जाकर पूछ लेना। यहांपर कर लगता है और मैंने लगाया है। तू बहिरी तो है नहीं। नहीं तो अब कान खोलकर सुन ले मोहन भी झगड़नेमें कम नहीं है। तुम सदा की झूठ बोलनेवाली हो। महर और महरि (नन्द और यशोदा) ने तुम्हें बहुत ढील दे रखी है, इसलिए तुम बहुत ढीठ हो गयी हो। परन्तु तुम अब वह भ्रम भूलकर अपना अभिमान छोड़ दो। अपना हिसाब करके दान देने पर ही तुम लोग इधर से जाने पाओगी। तब गोपी ने हँस कर कहा कि महर के ही डर से अब तुम स्वयं ढिठाई छोड़ दो। गोपियां बोली- मार्ग छोड़ो। हम कोई कर-वर किसीको नहीं देनेवाले है। तुम्हें पता है राजनन्दिनी हमारे साथ हैं। बहुत अशिष्टता मत करो, नहीं तो तुम्हारे बाबा से जाकर शिकायत करेंगे। नन्दबाबा तो बहुत ही सीधे-सादे हैं और तुम उन्हीं के कारण बहुत प्रतापी बन गये हो। अभी कल की ही बात है कि तुम घर-घर जाकर दही-माखन चुराकर खाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि रात में तुम्हें कोई स्वप्न आया है और इसीलिए तुम आज ठकुराई दिखलाने लगे हो। कन्हैया ने कहा कि तुमने कुछ ठीक नहीं कहा है। तुम बात के भेद को नहीं जानती हो। पिता के द्वारा बनाया हुआ धन, धाम पुत्र के ही काम आता है। नन्द बाबा तुम्हारे-जैसे व्यक्ति को प्रजा वसाकर इस जगह पर रखे हैं। अब तुम मुझसे बराबरी करने लगी हो और चतुराई की बातें करने लगी हो। तुम्हे जिससे कहना हो, कह लेना। कोई साथ हो, कर तो तुम सबको देना ही पड़ेगा। ऐसे मार्ग नहीं मिलेगा। चन्द्रावली बोली- हम लौट जायँगी। कन्हैया बोला- इसे बहुत क्रोध आया दिखता है। चन्द्रावली बोली- क्या तुम लौटने भी नहीं दोगे? कन्हैया बोला- मैं इतना बुद्धू नहीं हूँ कि तुम सब पीछे लौटनेको कहकर किसी और मार्गसे निकल जाओ। मेरा कर दे दो फिर आगे जाओ या पीछे जाओ। गोपियाँ बोली- कर कैसा? कह दिया है ना हम कर नही देंगे। कन्हैया बोला- देगी कैसे नहीं? मुझे लेना आता है और उसकी दहेंड़ी छीन ली।

गोपी ने तब डाँटकर कहा कि तुम बात सँभाल कर बोलो। ऐसा कौन दरिद्र हो गया है, जो तुम्हारी प्रजा होकर बसेगा। हम और तुम सभी राजा कंस की प्रजा हैं और एक ही जगह बसते हैं। हम घर जाकर देखती हैं और अब तुम्हारा गाँव छोड़कर चली जाती हैं। कन्हैया ने कहा कि हमारा गाँव छोड़कर किसके गाँव में जाकर बसोगी। तीनों लोक में ऐसा कौन जीव है जो मेरे वश में नहीं है। उस कंस की कौनसी गिनती है, जिसकी प्रजा तुम मुझको बताती हो। तुम दान देकर ही बच पाओगी। बिना दान दिए काम नहीं चलेगा। गोपी ने कहा कि तुम छोटा मुँह बड़ी बात करते हो। बात सँभाल कर बोलो। तीनों लोक और कंस कब तुम्हारे वश में भये। तुम ऐसी बात उससे कहना जो तुम्हें जानता नहीं हो। तुम जैसे हो, वह सब

मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। सच्ची बात कह दूँ तो तुम्हारी लेखे की सब बात भूल जायेगी। झूठी बातें हमको अच्छी नहीं लगतीं। दान के सभी रुपये पैसे हमसे अच्छी तरह से जाँच-परख कर ले लो। उसे रखने से तुम्हारा पीताम्बर फट जाएगा। इसलिए अपने घर से बड़ी थैली मँगवा लो।

गोपियां पूछती हैं कि हे कृष्ण, बताओ हमारे पास क्या माल है? जिसके कारण तुम सारी स्त्रियों को रोक रहे हो? लौंग, नारियल, किशमिश, सुपारी, हींग, मिर्च, पीपल, अजवाइन आदि बिक्री की वस्तुएं हैं, कूट जायफल, सोंठ, चिरायता, काला जीरा, मजीठ, लाख, सिंदूर आदि क्या तुम देख रहे हो? बायबिडंग, बहेड़ा, हरड़, बेल, गोंद ये सभी वस्तुएं व्यापारी रखते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि हे कृष्ण, अब तुम्हें तुम्हारा बचपन तो भूल गया। अब तुम जवान हो गए हो, अत: तुम्हारी नीयत ठीक नहीं मालूम पड़ती।

कृष्ण ने कहा कि तुम किस व्यापार की चीजों की बात सुनाती हो? तुम्हारा सारा सामान (यौवन), हाथी (गजगामिनी की चाल) पर लदा है। तुम हींग और मिर्च आदि की बात क्यों गा रही हो? मेरे आगे तुम क्यों छिपती हो, हम तुम्हारी सभी वस्तुओं को जानते हैं। तुम्हारे सामान तो बहुत ही कीमती हैं, ये छिपाने से कैसे छिपेंगे? सूरदास कहते हैं कि तुम्हारा कुछ माल तो हम खरीदेंगे और कुछ दान में लेंगे।

गोपियां कहती हैं कि कृष्ण तो बड़ रस जाननेवाले हो गए हैं। थोड़े दिन तक तुम यमुना के घाटों पर पनघट-लीला में रोकते थे। अब अधिक उजागर हो गए हो। कंधे पर काली कमरी, हाथ में लकुटी लेकर गाय चराने जाते हो। अब तुम हाथ में नई छड़ी लिये हुए हो और तुम्हारी कमर में पीतांबर सुशोभित है। अब तो तुम युवा हो गए हो, अत: युवा गोपियों को मोहित कर रहे हो?

कान्हा ने कहा कि तुम सभी गोपियाँ झूठी हो। तुम लोग इतना गर्व क्यों करती हो? मैं तो सच्ची बात कहता हूँ। मेरा कहना मानकर तुम लोग अपना हिसाब कर लो और हमारा दान दे दो। मैं बाबा नन्द की दुहाई देकर कहता हूँ कि बिना दान लिए तुम लोगों को ऐसे नहीं जाने दूँगा। गोपियाँ बोलीं कि नन्द बाबा की दुहाई क्यों देते हो? राजा कंस की दुहाई दो। तुम इतना इठला क्यों रहे हो? लड़कपन छोड़ दो। पहले की ही परिपाटी चलने दो। आज कोई पयी परिपाटी मत चलाओ। यदि राजा कंस यह जान जाएँगे तो बहुत बुरा हो जाएगा। कन्हैया ने कहा कि तुम मुझको लड़का कहती हो, परन्तु मेरा लड़कपन नहीं देखा है। दूध पीते ही पूतना को मारकर स्वर्ग पठा दिया। अघासुर, बकासुर, वत्सासुर और केसी को भी मार डाला। गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठा लिया। यह मेरा लड़कपन ही तो था।

गोपियों ने कहा कि तुमने सब कुछ अच्छा किया। अब हमको तुम क्या कहते हो? हमको देर हो रही है। हम दही लेकर जा रही हैं। हँसी दो-चार पल की होती है, यहाँ तो पूरा दिन ही बीतने लगा। परायी स्त्रियों को वन में रोक रखा है। तुम को शर्म आनी चाहिए। कन्हैया ने कहा कि तुम्हारी मति मारी गयी है। तुम्ही हँसी करती हो। तुमने हमको और हमने तुमको व्यर्थ ही गाली दी। कुछ सोच-समझकर बात करो। वृथा शोर मचाने से कोई लाभ नहीं होगा? अब तक तुम लोग सदा चोरी से निकल जाती थी। परन्तु आज तुम लोग मेरी पकड़ में आ गयी हो। गोपियों ने कहा कि यदि भिक्षा माँगो तो तुम्हें दही मिल जाएगी। दान का नाम मत लो। इस तरह तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। तुम हम लोगों को क्यों डराते हो? तुम मुझे ही चोरनी कहते हो और अपने अब साहु हो गये हो। चोरी करके दही और छाछ खाकर तुम अब तो बड़े हो गए हो।

कन्हैया ने गोपियों से दही और माखन छीनकर ग्वाल सखाओं को खाने के लिए दे दिया और स्वयं गोपियों को एक-एक करके आलिंगन किया। कन्हैया का आलिंगन पाकर गोपियों का हृदय आनन्द से भर गया। श्रीकृष्ण के दर्शन और स्पर्श की उनकी कामना पूर्ण हुई। परन्तु सभी गोपियाँ ऊपरी मन से दिखावे के लिए झगड़ने का भाव व्यक्त करती थीं। गोपियों

ने कन्हैया को धमकाते हुए कहा कि घर चलो तो हम तुम्हें बताती हैं। तुमने हमारी मटकी छीन ली, गले का हार तोड़ दिया, हमें अंकवारी में भरकर पकड़ लिया। हम लोग अब मैया यशोदा जी से जाकर कहती हैं कि कान्हा को अब जवानी सूझी है। कन्हैया ने कहा कि तुम लोग जाकर मैया से यह सब बातें कहोगी तो मैया विश्वास ही नहीं करेगी और तुम लोग पश्चात्ताप करती हुई घर जाओगी। तुम लोग सीधे से माँगने पर अपने रूप और यौवन का दान क्यों नहीं देती हो?

गोपियों ने कहा कि हे मोहन, ऐसा दान मत माँगो जो हमसे दिया नहीं जा सके। तुम वन में युवतियों को रोककर छेड़ते हो और राह में तथा यमुना तट पर जाकर और झूठी बातें बनाकर उनके मन को मोहते हो। क्या कोई रूप और यौवन का दान भी लेता है? तुमको यह किसने सिखाया पढ़ाया है? तुम जो रस चाहते हो वह नहीं मिलेगा। हाँ, दही माखन इच्छा भर खालो। हे कान्हा, तुम हम लोगों से ऐसी बरजोरी क्यों करते हो? क्या कहीं कोई यौवन का भी दान माँगता है? यह सुनकर तो हम लाज से मर जाती हैं। हमें देर हो रही है। डर लगता है। हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं। अब हमें घर जाने दो। तुम झगड़ा क्यों करते हो। तुम तो चतुर सुजान हो और हम गँवार गोपियाँ हैं।

कन्हैया ने तब हँसकर पुन: सभी गोपियों को आलिंगन से आनन्दित किया और उनको घर जाने दिया। उन सभी के चले जाने के बाद कन्हैया भी ग्वाल सखाओं के साथ घर चले गए।

जब कृष्ण तथा सखाओं ने सारा गोरस लूट लिया, तब कवि वर्णन करता है कि गोपियां अत्यंत आनंदित हुईं। मक्खन और दही कृष्ण प्रेम से खा रहे थे और वे सब खड़ी हुई प्रेम के साथ देखती रहीं।

इधर राधा ने मुस्कराते हुये मैया को आनन्दित करते हुये गाँठ से दुलरी खोलकर दे दी। मैया ने हृदय से लगाकर उसको प्यार किया और बड़ा सुख पाया। राधा को जो सखियाँ रास्ते में मिलीं उनसे उसने कोई बात नहीं बताई केवल यही कहा कि तुम हमको जहाँ कहीं अकेली पाती हो श्रीकृष्ण से मिलने का दोष लगाती हो। पता नहीं तुमको क्या हो गया। तुम सब जगह शंका करती हो। मैं तो उनका नाम ग्राम भी नहीं जानती हूँ। यद्यपि राधा कृष्ण दोनों एक ही हैं। फिर भी वे मिलने के लिये ललचाते रहते हैं और ब्रज रस बरसाने व पीने के लिये हर समय अकुलाते रहते हैं।

एक दिन छबि वाले प्यारे श्रीकृष्ण ग्वालों को लिये हुये यमुनातट पर खड़े हुये थे। सखा उनकी करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर छबि पर ललचाये हुये उन्हें घेरकर खड़े हुये थे। श्रीकृष्ण ने गोपी को आते हुये देखकर ग्वालों से कहा कि तुम कहीं छिप जाओ और वे स्वयं कदम्ब की आड़ में छिपकर खड़े हो गये। उनके मन में उनसे घुलने-मिलने की इच्छा बढ़ रही थी। गोपी ने इधर-उधर देखकर जल को हिलकोरा और फिर यमुना में अपने घड़े को डुबोया फिर उसे अपने सिर पर रखकर निराशा की साँस भरते हुये घर की ओर चल दी। तब तक श्रीकृष्ण चलकर पास आ गया और लपटते झपटते हुये उसके घड़े को ढरका दिया। उसने चकित होकर श्रीकृष्ण को देखा। आँखों से आँखें मिलते ही वह सुधबुध भूल गई। फिर अपने आपको सँभालकर श्रीकृष्ण के हाथ की लकुटी छीनते हुये बोली कि तुम्हारा यह नटखटपन अच्छा नहीं लगता। इस पर हँसकर देखते हुये श्रीकृष्ण ने कहा कि प्यारी गोपी मैं तुम्हारी भोली छबियों को देखना चाहता हूँ। इससे मैंने तुम्हारा घड़ा ढरकाया। मुझे तुम्हारा सुन्दर रूप बहुत अच्छा लगा। तू ब्रज की ग्वालिनी है और मैं अत्यन्त सुन्दर रूप वाला और बड़ी बड़ी आँखों वाला ब्रज का ग्वाला हूँ। तू अपनी गागरी ले ले क्रोध करने में कोई रस नहीं है। मेरी सोने की लकुटिया मुझे दे दे। मुझे घर जाने में देर हो रही है। तब ग्वालिनी क्रोधित होकर बोली। अरे नन्द के प्यारे बेटे तुम हमसे हँसी करते हो। तुम हमको और ग्वालिनियों की तरह न समझना तुम हमसे झगड़ा न करो। हम दोनों एक गाँव के रहनेवाले हैं। हमको ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती। हमें नन्द बाबा का कोई डर नहीं है। तुम एक कहोगे तो मैं हजार सुनाऊँगी। ऐसा

कहकर उसने श्रीकृष्ण की ओर भौंहें टेढ़ी करके देखा। किन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी चितवन और मुसकान से उसका चित्त चुरा लिया और बोले। तू हमारी लकुटिया को साधारण बन की लकड़ी समझती है और इसका मूल्य नहीं जानती। यह सोनेकी बनी है इसमें जड़े हुये मणि शोभा बढ़ा रहे हैं। तू मुझे दे दे मैं घर जाऊँ। इस पर ग्वालिनी ने कहा तुम हमारी गागरी को थोड़े ही मूल्य का समझते हो। तुम सब गायों का मूल्य लगा दो फिर भी ऐसी गागरी नहीं खरीद पावोगे। जब तुम हमारी गागरी भर के दोगे तभी हम तुम्हारी लकुटी देंगी। श्रीकृष्ण ने उसको गागरी भरकर दी और हृदय से लगाकर प्यार किया और अपनी चितवन का जादू चलाकर उसका घूँघट खोलकर मुख देखा।

गोपी आनन्द में भूली हुयी डगमगाते पैरों से चली उसकी आँखों में श्रीकृष्ण का प्रेम और हृदय में उमंग भरी हुयी थी। उसे देखकर एक सखी ने पूछा। अरी चतुर सखी, तू सीधे पैर भी नहीं धरती है। तूने किसका प्रेम कहाँ से किस प्रकार पाया है। इस प्रकार प्रेम पंथ को कैसे अपना लिया। वह कुछ उत्तर नहीं देती, बावली की तरह हँसती रहती है। उसके घड़े का पानी छलक कर बाहर गिरता रहता है। वह बार-बार उसके घड़े को सँभालती है और उसकी प्रेम विभोर दशा को आनन्दित होकर देखती है। तब उस सखी ने कहा, प्यारी सखी मैं क्या बताऊँ। मैं उस आनन्द को पाने के लिये बार-बार ललचा रही हूँ। पनघट पर श्रीकृष्ण आये और उन्होंने मेरा घड़ा ढरका दिया। मैंने उनकी लकुटी छीन ली। तब उन्होंने रस ढलकाते हुये मेरा घड़ा भरकर दिया। अब वे किसी कुंज में जाकर छिप गये। पर मेरा मन तो मेरे बश में नहीं है। हाय सखी उन्होंने जो रस दिया है। वह मुझे फिर कब पिलायेंगे। उन्होंने तो मेरा घूँघट खोलकर मुझे पागल बना दिया है। यह सुनकर उसके हृदय में भी प्रेम की पीड़ा उत्पन्न हो गयी। फिर उसने उसको घर पहुँचा दिया और स्वयं उस आनंद को पाने के लिये घड़ा लेकर यमुना-तट पर आयी परन्तु वहाँ पर श्रीकृष्ण नहीं दिखायी पड़े। वह घड़ा भर-भर कर बार बार ढलकाती है और उनको देखने के लिये चारों ओर आँखे घुमाती है। श्रीकृष्ण छिपकर उसके भाव को देखते हैं और उस पर कृपा करने का अवसर देख रहे हैं। वह ब्रज गोपी पछताती हुयी चल दी। हाय, हमको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हो पाये। किन्तु वे तो अन्तर्यामी हैं। वह तो अपने प्रियजनों के मन का भाव जानते हैं। तू कहाँ रहती है। तू मुझको जानती है कि नहीं। ऐसा पूछते हुये उसका घूँघट खोलकर उसकी प्रशंसा करते हुये वे मुस्कराये। उस सखी ने उनके मधुर बचनों और चितवन का आनन्द पाया और उनकी मुस्कान ने उसके मन को बावला कर दिया। वह रस में डूबी हुयी कुछ देर खड़ी रही। श्रीकृष्ण उसको रस पिलाकर चले गये। फिर वह सखी मूर्छित होकर ब्याकुलता के साथ गिर पड़ी और उसे तन-मन की सुधि न रही। वह सखी अपना घड़ा भरकर चल दी क्योंकि देर होने से सास, ननद का डर था। उसी समय अचानक श्रीकृष्ण उसके पास आये और उसके चिबुक को छूकर उन्होंने उससे आँखें मिलाईं। उसने गुस्सा होकर कहा कि मुझे मत छुओ, मेरा रास्ता मत रोको, हम घर जा रही हैं। स्त्रियों को छूते हुये तुम्हें लज्जा नहीं आती। अरे नटखट झगड़ा करने में तुम्हारी क्या बड़ाई होगी? गाँव वाले अनेक प्रकार की चर्चा करते हैं और युवतियाँ देख-देख कर मुस्काती हैं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम यहाँ से चले जाओ। मुझे अधिक हैरान न करो।

श्रीकृष्ण बार-बार उसको छूते और हँसते हुये दौड़कर किसी वृक्ष की आड़ में छिप गये और वह सखी, उनकी छबियों से छकी हुयी बावली सी दिखाई पड़ने लगी। वह उठ-उठ कर चलती है, रास्ते में गिर जाती है। उसके पैर डगमगाते हैं। जिससे वह चल नहीं पाती है। वह श्याम-श्याम कहती हुयी आँसू बहाती है, उसे देह की सुधि भूली हुयी है। वह बावली बनी बिचर रही है। वह कहती है हाय हाय, बलदाऊ का भैय्या कन्हैया कहाँ चला गया। उसने मेरा मन हर लिया। अगर तुमने कहीं देखा हो तो मुझे बता दो। एक बार दर्शन करा दो। हे घनश्याम, हे दया के सागर, हे नटनागर, हे गुणों के घर, तुमने दावानल को तो पान कर लिया, किन्तु बिरह की ज्वाला को क्यों नहीं शान्त किया। तू बार-बार कृष्ण-कृष्ण रट रही

है। हाय-हाय क्या उस छलिया से तुमने प्रेम जोड़ लिया है, तो फिर अब बिरह की ज्वाला से क्यों डरती है? उनकी तो बिरह की आग युग-युग तक जलाती रहती है। वह पूछती है अरी सखी, अब मैं क्या करूं? मैंने तो श्रीकृष्ण से प्रेम जोड़ लिया। अब तो वे ही कृपा करके इस प्रेम को पूर्ण करें, जो स्वयं पूर्ण काम हैं। उन्होंने हठपूर्वक मेरे मुख को देखा और अपनी मुस्कान व चितवन का जादू चलाया उन्होंने कोमल और मधुर बचनों से मेरे मन को हर लिया और इस प्रकार सब तरह से मुझे अपने बश में कर लिया। सखियों ने घर-घर जाकर यह समाचार फैलाया कि पनघट पर श्रीकृष्ण नटखटपन करते हैं। वे गोपियों को अपने दर्शन का सरस आनन्द देते हैं और अपने स्पर्श से उन्हें प्रेम रस में नहलाते हैं।

गोपियोंको प्रेमभाव में डूबा हुआ उनको देखकर श्रीकृष्ण मुस्कराये और फिर उन्होंने बहुत से रूप बना लिये। किसी को उन्होंने छूकर आनंदित किया, किसी की हँसकर चुनरी छीन ली। किसी की गागरी भरकर दी। हाथ पकड़कर किसी को गले से लगा लिया। किसी की चिबुक पकड़कर उसके मुख को ऊँचा करके आँखें मिलाकर उसका संकोच दूर कर दिया। वे किसी की चोटी झटकते हुये मटकने लगे, किसी की गागरी पृथ्वी पर पटक दी। किसी से उसका नाम पूछा, किसी को हँस कर अपना नाम बताया। किसी से कहा कि कुंजों में और पनघट पर क्यों नहीं आती। मैं तुझे दिन रात बन-बन में ढूंढ़ता फिरता हूँ। जैसी जिसकी इच्छा थी उससे वैसा ही व्यवहार श्रीकृष्ण ने किया और इस प्रकार गोपिकाओं ने अपने भाव के अनुसार श्रीकृष्ण से आनन्द को पाया। इस प्रकार सबको मधुर रस पिलाया फिर अपने सभी रूप छिपा लिये। सखियों ने कहा कि हे कुँवर श्रीकृष्ण तुमने हमारी मर्यादा को भंग किया।

श्रीकृष्ण ने कहा- मैं तो जहाँ था वहीं रहा तुम्हीं ने आकर मुझको बावला बना दिया। मैं तो पनघट पर अपने सखाओं के साथ आता हूँ और तुम्हारे वश में होकर तुम्हारी गागरी उठाता हूँ। तुम मुझसे बहुत से सेवा कार्य करवाती हो और मुझे अपनी मुसकान और चितवन से अपने वश में कर लेती हो। मैं तो तीनों लोकों का स्वामी हूँ किन्तु तुमने मुझ पर अपने रूप का जादू डाल दिया है। ब्रज में आकर मैने अपना ब्रह्म स्वरूप भुला दिया है। इसी से ब्रह्मा कहता है कि देखो ब्रह्म कैसा बावला हो गया है। मैया कहती है कि ब्रज बालायें हमारे लाला को नचाती हैं और वह उनकी गालियाँ सुनकर हँस देता है। वह कहती है कि अरे लाला तू इस व्यवहार को छोड़ दे और इन ब्रज गोपियों से बात मत किया कर। उनकी ऐसी बातें सुनकर गोपियाँ मुसकाती हैं और परस्पर उसी की चर्चा करती हैं। अपने सब दोष आप हम पर लगा रहे हैं, हे प्यारे साँवरे, हे रस से भरे हुए, तुम अपने बचनों से अमृत रस बहाकर हमें वश में किये हुए हो। तुम जैसा नटखटपन करते हो वैसा बड़े घर के लड़कों को शोभा नहीं देता। तुम ब्रज की गोपियों से झगड़ा करते हो और हम पर झगड़ा करने का दोष लगाते हो। सारा ब्रज मण्डल तुम्हारे कामों की हँसी करता है, किन्तु हे कन्हाई तुमको लज्जा नहीं आती। हम तुम्हारे कारण पनघट में जल नहीं भर पातीं और तुम्हारे उत्पात को देखकर हम इधर नहीं आतीं। सास कहती है कि तुम जल क्यों नहीं लातीं और इतनी देर कहाँ लगा देती हो। मैं जाकर यह सब मैया से कहूँगी और वह न सुनेगी तो यह ब्रज छोड़कर कहीं और जाकर रहूँगी। ऐसा सुनकर कन्हैया क्रोध करता हुआ उठा और गोपियों की इँडुरी छीन ली और बोला कि मुझे तुम ठग और चोर बताती हो और स्वयं साहुनी बनकर अपना गुणगान करती हो। तुम स्वयं मटकती हुई घड़ा गिराकर फोड़ देती हो और हमारा झूठा नाम लगाती हो। इससे आज मैं तुम सबकी गागरी फोड़ दूँगा। हम देखेंगे तुम कितनी चंचल ब्रज गोपी हो। यह सुनकर सभी गोपियों ने मिलकर बिनती की कि हे प्यारे, घर-घर में निन्दनीय चर्चा होती है इसलिये हमारे घड़ों को फोड़ो नहीं, उन्हें सिर पर रखने में हमारी सहायता करो। ऐसा कहते हुए उनके हृदय का प्रेम आँसुओं के रूप में बाहर दिखने लगा और वे धन्य-धन्य कहती हुई उनका बार-बार वन्दन करने लगीं।

कन्हैया का आलिंगन पाकर उन ब्रजबालाओं को अपार आनन्द मिला और वे प्रसन्न चित्त अपने घर को चल पड़ीं।

परन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर उनके मन मेंयह विचार आया कि हम लोग तो घर से दही माखन बेचने के लिए मधुपुरी जा रही थीं। गोरस बेचने से जो धन की प्राप्ति होनी थी, वह नहीं हुई, क्योंकि वह सब दही-माखन कन्हैया के ग्वाल सखा खा गए। हममें से किन्ही सखियों के गले का हार भी टूट गया है। घर जाकर हम लोग इन बातों के लिए क्या उत्तर देंगी? ऐसा विचार मन में आते ही वे ब्रजबालाएँ चिन्तित हो उठीं। बहुत सोच-विचार करने के बाद उन्होंने यह निश्चय किया कि हम लोग यशोदा मैया से इसके लिए उलाहना देने जाँये और कन्हैया की ढिठाई बयान करें। अपने घरवालों से भी यही बात कही जायेगी जिससे गोरस के बदले धन नहीं लाने का स्पष्टीकरण हो जाएगा। अन्तर्मन से नहीं चाहते हुए भी परिस्थितियों-वश उन ब्रजबालाओं को उलाहना देने का निश्चय करना पड़ा। अब वे अपने घरों को नहीं जाकर सीधे यशोदा मैया के पास गयीं और कन्हैया की करतूत बयान करने लगीं।

गोपियाँ यशोदा मैया से जाकर कहने लगीं कि हे मैया, तुमने ऐसा उत्पाती पुत्र पैदा किया है, जो किसी गोपी का दही-माखन छीन कर खा जाता है तो किसी के गले का हार तोड़ देता है, किसी की बाँह पकड़कर झटकता है तो किसी की गगरी फोड़ देता है। वह हम सभी गोपियों को गाली देता है और ऐसी बातें करता है कि तुम्हारे सामने उनको कहने में भी लाज लगती है। आज उसने हम सभी सखियों का दही माखन छीनकर अपने ग्वाल सखाओं को खिला दिया और बरजोरी करके हमें गले से लगाया। ऐसे छीना-झपटी में कई सखियों के गले का हार भी तोड़ दिया। तुम्हारा पुत्र अचगरी करता है और तनिक भी संकोच नहीं करता है। अब तो हमारा ब्रज में रहना भी कठिन हो गया है। हे मैया, तूँ अपने पुत्र को मना क्यों नहीं करती हो?

ब्रज गोपियाँ श्रीकृष्ण की बातों का रस पीती हुई कहती हैं, अरे चतुर, तुम धन्य हो। तुमसे बातों में कोई नहीं जीत सकता, इसलिये तुमसे कौन झगड़ा करे। तुम अपनी मैया को इसी प्रकार समझा देना। हम लोग आज तुम्हें अवश्य ही बँधवायेंगी। ऐसा कहकर वे नन्द-महल में आ गईं और यशोदा से कहा अरी मैया सुनो। नन्द का प्यारा बेटा बड़ा हठी है। वह पनघट पर नटखटपन करता है और हम जब पानी भरने जाती हैं तो वह हमसे झगड़ा करता है। वह हमारी गागरी फोड़ता है और बाहें मरोड़ता है और इंडुरी लेकर जमना में डुबो देता है वह गाली देने में संकोच नहीं करता और हमको छैल-छबीली कहता है। अरी मैया, तुमने उसको ऐसी शिक्षा दी है उसे हमारा घूँघट खोलने में संकोच नहीं होता। हे महारानी जी, हम तुमसे लज्जा भरी इसकी चेष्टायें कैसे बतावें। अब हम लोगों का ब्रज में रहना किसी प्रकार भी संभव नहीं है, इसलिये हम तो कहीं और जाकर रहेंगी।

मैया यशोदा ये तेरा कन्हैया पनघट पे मेरी पकड़े है बैयां
तंग मुझे करता है संग मेरे लड़ता है रामजी की कृपा से मैं बची रामजी की कृपा से...
गोकुल की गलियों में जमुना किनारे, वो तो है कन्हैया चुप चुपके मारे
नटखट अदायें सूरत है भोली, होली में मेरी भिगाये वो चोली,
बैया न छोड़े, कलैया मरोड़े, पैया पड़ूं फिर भी पीछा न छोड़े,
मीठी मीठी बातों में मुझको फंसाये, हे रामजी की कृपा से...
जब जब बजाये मोहन मुरलिया, छन छन छनकती है मेरी पायलियाँ,
नैनों से जब वो करे छेड़खानी, दिल थामे रह जाये प्रेम दिवानी,
सूद-बूद गवायी, नींदें उड़ायी, जो करने बैठी थी वो कर नहीं पायी,
बड़ी मुश्किल से दिल को सम्भांला, हे रामजी की कृपा से...
गोकुल का कान्हा रे दिल में समाया, मैं भाग्यशाली इन्हें मैंने पाया,

माना की सबसे हैं ये कन्हैया, कहलायेंगे बस तुम्हारे ही मैया,
प्यारा पिया है, तुमने दिया है, ममता के आंचन में हमको लिया है,
चरणों में तेरे ओ मां हमको रहना है, रामजी की कृपा से हां जी हां, हे रामजी की कृपा से...

ब्रज की सारी गोपिकाएँ प्रेम में विवश हो गईं। कृष्ण के रूप में रमकर वे यशोदा के पास उलाहना देने चलीं। उनका अंग रोमांचित हो गया, उनकी चोली में दरार आ गई। अपने हार को तोड़कर उन्होंने हाथ में ले लिया, आंचल को फाड़ डाला, हृदय पर नाखूनों की चोट लगा ली और इन सब बहानों को लेकर नंदजी के घर पहुंची। उन्होंने कहा कि हे यशोदा मां, तुमने अपने बेटे को क्या सिखा रखा है। उसने हमारी चोली फाड़ दी हैं, गले के हार तोड़ डाले हैं और हृदय पर नाखूनों की चोटें की हैं। आंचल को चीरकर आभूषणों को तोड़ डाला है और जब हमने उन्हें पकड़ना चाहा तो वे भाग गए। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदाजी अपने मन में कहने लगीं कि कृष्ण इन सब कार्यों के करने लायक कब हुए?

प्रेम बिबस सब ग्वालि भईं। उरहन देन चली जसुमति कौं, मनमोहन के रूप रईं।।
पुलक अंग अंगिया दरकी, हार तोरि कर आपु लई। अंचल चीरि, घात उर नख करि, यह मिस करि नंद-सदन गईं।।
जसुमति माइ कहा सुत सिखयौ, हमको जैसे हाल किए। चोली फारि हार गहि तोरे, देखौ उर नख-घात दिए।।
अंचल चीरि अभूषन तोरे, घेरि धरत उठि भागि गए। सूर महरि मन कहति स्याम धौं, ऐसे लायक कबहिं भए।।

गोपियों की कोप-भरी बातें सुनकर यशोदा जी बोलीं कि मैं क्या करूँ? यह मैं भी जानती हूँ कि कन्हैया बड़ा ढीठ हो गया है। यदि तुम लोग उसको पकड़कर मेरे सामने लाओ तो मैं तुमको अभी दिखा दूँ कि मैं उसको कितना दण्ड देती हूँ। देखो, पहले तुम्हारे सामने ही उसे ऊखल में बांधा था। छड़ी लेकर उसे मारने दौड़ी तो तुम्हीं लोगों ने मुझे मना किया था।

यह सुनकर यशोदा ने विनम्र भाव से कहा कि अरी सखियों मैं इसके लिये क्या उपाय करूँ। वह अब तक भोजन करने नहीं आया है। मैया यशोदा रोहिणी से बोली- वह बावला बना हुआ खेलता फिरता रहता है और पनघट पर जाकर अनोखा नटखटपन करता है और गोपियों से झगड़ा करता है। वह बेटियों और बहुओं को खिझाकर उनकी मटकी फोड़ता है और उनसे झगड़कर उनका घूँघट खोलता है और उनकी इँडुरी जमुना में बहा देता है। यदि वे बुरा मानकर ब्रज छोड़कर चली जायँगी तो हम वृन्दावन में अकेली कैसे रहेंगी। जो सुख-दुख में सदा साथ देनेवाली हैं उनसे श्रीकृष्ण झगड़ा करता है।

अच्छा, आज उसको घर आने दो। मैं उसको ऐसा पीटूँगी कि फिर तुम लोगों से वह बात भी नहीं करेगा। तुम लोग अबकी बार मेरे ऊपर कृपा करके उसका यह अपराध क्षमा करो। इस प्रकार समझा-बुझाकर यशोदा जी ने उन गोपियों को उनके घर भेजा। जब वे गोपियाँ अपने घर को जा रही थीं तो उधर से कन्हैया आ गये और मार्ग में ही भेंट हो गयी। गोपियों ने कहा कि यशोदा मैया तुम्हें बुलाती हैं, घर तो जाओ। हम लोग उनसे तुम्हारी बहुत बड़ाई कर आयीं हैं। श्रीकृष्ण बोले कि तुम लोग कुछ सन्देह मत करो, मैं मैया को समझा लूँगा।

गोपियों से ऐसे कहकर भगवान श्रीकृष्ण डरते हुए घर पहुँचे और द्वार से ही इधर-उधर झाँक कर देखा कि मइया काम में तो लग रही हैं परन्तु गोपियों के उलाहना का कोप अभी उनके चित्त में भर रहा है। जो-जो बातें गोपियाँ कह गईं थीं, वे सब बातें रोहिणी को सुनाकर कह रही थीं कि कन्हैया कैसा ढीठ हो गया है। उन लोगों का उलाहना सुनकर जैसे-तैसे उनसे पीछा छुड़ाया है। परन्तु जब कान्हा घर आएगा तो छड़ी से उसकी बात पूछूँगी।

मैया यशोदा ने कन्हैया को डाँटा और कन्हैया से पूछा- क्यों रे वन में कितने बन्दर भरे पड़े हैं? एकसाथ सभी टूट पड़े ब्रजबालाओंपर? मैयासे ललिता और चन्द्रावली ने यही शिकायत करी। कन्हैया बोला- मैया, हम सबको ये ब्रजबालायें बन्दर

बताती है। वे सब झूठ बोलती है। वे डरकर भागेगी तो कँटीली झाड़ियोंमें गिरनेसे दहेंड़ियाँ फूटेंगी, वस्त्र फटेंगे, आभूषण टूटेंगे।

मैया के क्रोध भरे वचन सुनकर कन्हैया बोले कि मैया, मेरे ऊपर तो तुम क्रोध करती हो परन्तु गोपियों की करतूत अभी तुमने नहीं सुनी। वे जो कुछ झूठी-सच्ची बातें तुम्हारे सामने आकर कह गईं, उन बातों का तुमको भी विश्वास हो गया। तुमने इस बात को नहीं विचारा कि वे बीस हैं और मैं अकेला हूँ। मैं अकेले उनको कैसे घेर सकता हूँ? मैया, मैं सत्य कहता हूँ कि वे सब गोपियाँ मिलकर बरजोरी मुझको पकड़ लेती हैं और ताली बजा-बजाकर मुझे नचाती हैं। यदि मैं नहीं नाचता हूँ तो मेरे गालों पर गुलचे मारती हैं। वे जब मटक-मटक कर चलती हैं तो उनके सिर पर से गोरस की मटकी या जल की गगरी गिर पड़ती है तो वे सब मुझे दोष देती हैं और तेरे सामने आकर झूठी बातें बनाती हैं।

मोहन के मनोहर वचन सुनकर और उनके चन्द्र-वदन को देखकर यशोदा मैया का क्रोध ठंडा हो गया और वे कहने लगीं कि ये मदमाती गोपियाँ मेरे कान्हा को वृथा दोष देती हैं। मेरे आगे जोड़-जोड़ कर झूठी बातें बनाती हैं। मैं उन सबके गुण जानती हूँ। मेरे श्याम से बरजोरी इठलाती हैं और झूठे लांछन भी लगाती हैं। मेरा कान्हा कहाँ तो अभी छोटा-सा बालक है और वे सभी युवतियाँ हैं। अब यदि वे उलाहना लेकर आएँगी तो उनको उल्टे मुँह वापस करूँगी। हे कान्हा, तुम क्यों उनके पास जाते हो। मैं बार-बार मना करती हूँ परन्तु तुम मानते नहीं हो। वे सभी गोपियाँ ढीठ हैं और झूठी बात बनाकर उलाहना देने आ जातीं हैं।

रोहिणी रसोई बना रही थी और यशोदा को अपना सुझाव दे रही थी। उसी समय श्रीकृष्ण ने पीछे से विनयपूर्वक कहा कि मैया तू बड़ी सीधी और भोली है। तू मुझे ही मारना और डाँटना जानती है तू गोपियों की करतूतें नहीं समझ पाती। तू उनकी बातों पर विश्वास कर लेती है, तू उनके गुन नहीं जानती। अरी मैया वे मुझको घेरकर नचाती हैं और स्वयं मटकती हैं जिससे मटकियाँ पृथ्वी पर गिर जाती हैं। वे मुझसे कहती हैं कि हमारी गागरी उठाकर सिर पर रख दो और हमारा घूँघट सम्हाल दो। मैंया मैं उनके मन का भाव नहीं जान पाता। उनके मन में कुछ और बात रहती है इससे वे व्यर्थ का उलाहना देती हैं। उनकी रसमयी बातें सुनकर प्रेम रस में डूबी हुई मैया उनकी ओर चकित होकर देखने लगी और बोली हे प्यारे लाला, गोपियाँ बड़ा उलाहना दे रही थी। श्रीकृष्ण ने कहा मैं तो गौशाला से आ रहा हूँ उन्होंने मेरा नाम झूठ ही लगाया। मैया उनकी प्यारी छबियों को देखकर सब कुछ भूल गई और उनको हृदय से लगाकर प्यार किया। और कहने लगीं हमारा कन्हैया कैसे सरल स्वभाव वाला और भोला है और यह सब गोपियाँ बड़ी दुर्गुणों से भरी हैं। ये सब अपनी युवावस्था से मतवाली हो रही हैं। इससे वे इठलाती हुई कन्हैया से लिपटती झपटती है। अरे लाला तू इनके पास न जाया कर, यह सभी गोपियाँ व्यर्थ की चर्चा करती हैं। देखो अपनी जातपाँत से झगड़ा करना अच्छा नहीं होता उनका उलाहना सुनना हमें अच्छा नहीं लगता। फिर रोहिणी से बोली कि कन्हैया की बात सुनो और गोपियों की करतूतों को समझो, ये कैसी अचरज की बातें करती हैं और लाला का झूठा नाम लगाती हैं। यह ग्वालिनें गँवार और ढीठ हैं तू इनके पास मत जाया कर। तू बड़े घर का बेटा है इन छोटे लोगों से मत उलझा कर। अरे लाला वे तुम्हारा ही दोष बताती हैं और बड़ी अशोभनीय बातें कह जाती हैं। वे अपना हार तोड़कर दिखाती हैं और कहती हैं कि तुम्हारे लाला ने झटका देकर तोड़ दिया है। वे अपनी टूटी चूड़ियाँ हमको दिखाती हैं और अपनी चुनरी फाड़कर हमें उलाहना देती हैं कि लाला ने फाड़ी है। अब वे आवेंगी तो उनको फटकार दूँगी और उनके उलाहनों की ओर कुछ भी ध्यान न दूँगी।

ऐसा कहकर यशोदा ने श्याम सुन्दर को गले से लगा लिया और मुँह चूमकर बहुत प्यार किया। अब व्रज में घर-घर में यह बात प्रकट हो गई कि कन्हैया बड़ा ऊधम मचाता है और विविध प्रकार से गोपियों को छेड़ता है। कदम्ब के वृक्ष पर

बैठकर मुरली बजाता है और सबके चित्त चुराता है। इस प्रकार नन्दकुमार नित्य नई-नई लीलाएँ करके सब युवतियों का मन हरते थे। जो जिस भाव से श्यामसुन्दर को भजते थे, उनको वैसा ही फल प्राप्त होता था।

यशोदा गोपियों को बोली हे मदमत्त गोपियों, यूं ही मेरे लाला के ऊपर अपराध लगाती हो? तुम यौवन के अभिमान में हो। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे, अब तो चुप हो जाओ। तुम्हें शर्म नहीं लगती। मेरा कृष्ण तो अभी मक्खन खानेवाला बच्चा ही है, तुम व्यर्थ ही इसे दोष लगाती हो।

जो जेहि भाव से भजत मुरारी। प्रभु मिलते सोई गुण वपुधारी।।

एक गोपी राधा से बोली- हे सखी, कृष्ण की ढिठाई क्या कहूँ? वह चपल कलूटा, उसको कुछ लाज भी नहीं है। हठपूर्वक युवतियों के पथ को रोकता है। हमको अकेली गली में जाती देखकर, मेरा हाथ पकड़कर, अँटखेली करने लगा। माँगनेपर दधि न देनेपर मेरी मटकी फोड़ डाली, मेरे शरीर से वस्त्र खींचकर बरजोरी करता। इस काले कलूटे का ना तो रंग है, ना सुंदर रूप है, न वीर है, न इनके अन्दर कुछ शील संकोच है। जाति का ग्वाला। हे सखि ऐसे लम्पट को क्या विशेष जानकर प्रीति करती हो? मेरी उचित सीख मानकर इसको आज से ही मनसे निकाल दो।

उस गोप सुंदरी की ऐसी कठोर वाणी सुनकर, अपने प्रेम में बाधा समझकर राधा के हृदय में अत्यंत विस्मय हुआ। राधा बोली, तेरा शरीर तो सुंदर है, लेकिन तेरा मन घोर कलुषित है। अरे तू उसको कलूटा, लंपट कह रही हो जिसका परमार्थी लोग शोध करते है। जो विभु समस्त आकाशों में रमण करता है, निर्गुण भी है, सगुण भी है और परमाकार है, जिसके बारे में वेद नेति नेति कहकर बखान करते है, ब्रह्मा विष्णु महेश भी जिसका ध्यान करते हैं।

जिसने वत्सासुर, तृणावर्त का संहार किया। बकासुर, पूतना, अघासुर को मारा, जिसने खल कालिया नाग का दमन किया तब तू यह कैसे कह रही है कि उनमें वीरता नहीं है? जिसका थोड़ासा अनुग्रह पाकर यक्ष कुबेर धनपति कहलाता है, उसी के दिव्यचरण को हमेशा लक्ष्मीजी भजती है, तब तू बता उस प्रभु के पास क्या वैभव नहीं है? जो समस्त चर, अचर प्राणियों के सर्वस्व है वही परमेश्वर अपने भक्त के प्रेम के वश में रहते है।

रचत कोटि ब्रह्माण्ड जो सोइ जनप्रेम अधीन। जन पाछे धावत सदा को तिन्ह सरिस प्रवीन।।

प्रभु कृष्ण को कोई किसी भी भाव से भजे वह सहज मे ही रुचिर मुक्ती प्राप्त कर लेता है। प्रभु कृष्ण मुक्ति तो देते है लेकिन अपनी भक्ति नहीं देते। जिसके वश में रहना चाहते है उसी को अपनी भक्ति देते है। यह सुनकर गोपसुंदरी बोली, अगर तुम सत्य बोल रही हो तो जिसको अपने मन मे सँवारकर बैठी हो उसको यही बुलाओ। फिर राधा ध्यान धारण करके निश्चल होकर बैठ गयी। जिससे भगवान कृष्ण तुरन्त प्रकट हुए।

अपने सर्वस्व चितचोर प्रियतम को देखकर राधिका प्रेमविभोर होकर उनके चरणों मे गिर पड़ी। अपने प्रति प्रभु की अतिशय कृपा, अतिशय प्रेम समझकर अपना भाग्य महान समझने लगी। राधा के जीवन में ना दिवस का क्रम था, ना रात्रि का क्रम था बस एक ही क्रम था प्रभु कृष्ण परम छबि हमेशा नेत्रों के सामने रहें। राधा के हृदय में जिस प्रकार का परमानन्द व्याप्त हुआ वह अगर है, वह अगाध है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

गोपियां कहने लगीं- अरी सखियो, राधा की बात सुनो। यह हमको धन्य कहती है और अपने को धिक्कारती है। वास्तव में यह तो बड़ी ही निर्मल है। इसको कृष्ण रूपी धन प्राप्त हुआ, किंतु फिर भी यह अपने को दीन और हमें धनी कह रही है। वास्तव में यह पूर्ण है और हम अधूरी हैं, यह संत है और हम असंत हैं। हमें धिक्कार है, हमारी बुद्धि को धिक्कार है। यह राधिका धन्य नारी है। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण को इसी ने पहचाना है, हम तो मूर्ख व गंवार स्त्रियां हैं।

जाते हुए कृष्ण को राधा ने हाथ से पकड़कर रोका। लगा कि कृष्ण हाथ छुड़ाकर जाने का प्रयत्न करने लगें। तब राधा ने कहा कि तुम भुजा मरोड़कर जाना चाहते हो, देखती हूं कैसे जाते हो? मैं तुम्हें ठीक प्रकार से पहचान गई हूं। अभी तक तो तुम मक्खन की चोरी करते थे, अब मन के चोर भी हो गए हो। मैंने सुना था कि कृष्ण लोगों के मन चुराते हैं, अब मैं देखती हूं कि तुम प्रत्यक्ष मेरा मन चुरा रहे हो। तुम बड़े ही ढीठ हो गए हो। तुम ब्रज की नारियों का निरादर करने लगे हो। सूरदासजी कहते हैं कि तुम मेरा भी निरादर करोगे, ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें प्रेम की गाली दूंगी।

राधाजी के रोकने पर भी कृष्ण हाथ झटककर चल पड़े। तब राधा कहती हैं- हे यदुराय, यह तुम्हारा क्या बल है? मैं तो अबला हूं, यदि तुम मुझसे हाथ को छुड़ाकर चल ही दिए तो क्या? तुम बड़े चतुर कहे जाते हो और तुम्हारे अंग-अंग में चतुराई भरी हुई है। तुम्हें बहुत-से उपाय आते हैं, फिर भी मैं कहती हूं कि तुम्हें तब समझूंगी, जब एक क्षण के लिए भी मेरे हृदय से जा सको। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान को तो हृदय के भाव अच्छे लगते हैं, इसलिए राधा के प्रेम-भरे वचनों को वे सहन न कर सके और तुरंत ही घूमकर उन्होंने राधा को गले से लगा लिया।

प्रथम राधा-कृष्ण मिलन के उपरांत सखियां राधा के घर गईं। राधा ने आंखें बंद कर रखी थीं और कुछ बोल नहीं रही थीं। सखियों से आंखों के इशारे से ही बात कर रही थीं। उधर सखियों ने जान लिया कि यह कोई चतुराई कर रही है, अभी कोई बुद्धि की बात बनाकर कुछ कहेगी। चोर तो अपने बल पर चोरी करता है। राधा ने भी अपने बल पर कृष्ण से गुप्त-मिलन किया है। अब कुछ स्पष्ट होकर कहेंगी और हम सब जो कहेंगे, उसको नहीं मानेंगी। इसकी भौहों को देखो, देखो क्या उत्तर देती हैं? तुम देखो कि अब यह अपने गर्व के बोल कैसे रखती है? सूरदासजी कहते हैं कि ये कृष्ण के साथ रहने से अधिक बेधड़क हो गई हैं। यह तुम्हारे मुख और आंखों की ओर नहीं देख रही हैं।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद राधाजी बोलीं कि हे सखी, मैंने पता नहीं जल को धारण करनेवाले बादल को देखा था या गिरिधर श्रीकृष्ण को। बगुलों की पंक्ति थी या मोतियों की माला, मोर थे या मोर पंखों का मुकुट था, जो आवाज थी वह बादलों की मंद-मंद गर्जना थी या कृष्ण के पैर के घुंघरुओं के स्वर थे। वह स्याम आभा बादल की थी या कृष्ण की, यही आज मैं प्रात:काल से सोच रही हूँ। सूरदास कहते हैं कि राधा तो कृष्ण के प्रेम-रस में विभोर थीं और उमंग-उमंग कर रस को निकाल रहीं थी।

सखी कहती है कि हमारे नेत्र तो कृष्ण के अंगों को देखकर कभी तृप्त ही नहीं होते। एकटक देखते रहते हैं, पलक भी नहीं गिराते जैसे चकोर चंद्रमा को देखता है। जिस प्रकार नदियां सागर में गिरती हैं और सागर की असीम धाराएं उठतीं जाती हैं। उसी प्रकार कृष्ण-छवि रूपी नदियां इन नेत्र रूपी सागर में गिरती जाती हैं और प्रेम की असीम धाराएं उनमें समाती जाती हैं। लोभ की अथाह गहराई उसमें हैं, फिर भी उन्हें संतोष नहीं होता। सूरदासजी कहते हैं कि इनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

ये नेत्र रस को चुरानेवाले हो गए हैं। इन्होंने कृष्ण रूपी अमृत-रस को चखा है, अत: उन्हीं के रूप पर लुब्ध होकर उन्हीं के पास गए हैं। जैसे परकीया नायिका को अपना घर अच्छा नहीं लगता, वह पर-पुरुष में ही अनुरक्त रहती है उसी प्रकार ये नेत्र अपने को छोड़कर कृष्ण पर ही अनुरक्त हैं। कभी यदि ये आंखें उनकी ओर से हट जाती हैं, तो बड़ी व्याकुल होती हैं, जैसे पहली बार हटी हैं और फिर कृष्ण की ही ओर इस प्रकार दौड़ती हैं, जैसे धनुष से तीर छूटा हो और जाकर कृष्ण के शरीर में चुभ गया हो। ये आंखें कृष्ण की ओर जाने को आतुर रहती हैं और मेरी ओर से उदास रहती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि ये नेत्र कृष्ण के रूप-सौंदर्य के प्रति मन-वचन और कर्म से निष्ठावान हैं।

एक गोपी कहती है कि हमारी आंखों का यह स्वभाव बन गया है कि वे कृष्ण के रूप पर मोहित हो गई हैं और डंका बजाकर उनकी गुलाम बन गई हैं। इतनी प्रसन्न हैं कि किसी की परवाह नहीं करतीं। लगता है कि इनका आनंद इनके हृदय में नहीं समाता। यही बात (अपनी गुलामी की) कहकर सबको सुनाती हैं और इन्हें जरा भी लज्जा मालूम नहीं होती। हमने इन आंखों की हमेशा रात-दिन सेवा की, किंतु जब ये बड़ी हुईं तो हमें ही छोड़कर भाग गईं, इनका ये स्वभाव तो देखो। गोपी कहती है कि हमारी आंखें कृष्णजी के मुख को देखकर सब कुछ भूल गईं। उनकी मधुर मुस्कान की चमक पर इस प्रकार आनंदित हुईं, जैसे कुमुदनी चंद्रमा को देखकर फूल उठती है। अब ये कुल की लज्जा, कुल के धर्म, कुल के नाम आदि को नहीं मानतीं। अब तो ये इस प्रकार दीवानी होकर कृष्ण की तरफ भाग रही हैं कि रोकने पर भी एक नहीं सुनतीं। ये कृष्ण के अंगों के सौंदर्य पर लुब्ध हो गई हैं और इन्होंने अपने शरीर की दशा को भुला दिया है।

राधा ने अपने मन में समझ लिया कि कृष्ण उनके द्वार पर उनसे मिलने के लिए आए हैं। उन्होंने समझा कि अब तो कृष्ण प्रेम की अवस्था में हैं, तो उन्होंने अपने मन में गर्व किया। वह अभिमान में भरी हुई बैठी रहीं। उन्होंने अपने सुखी मन में गर्व किया। वह अभिमान में भरी हुई बैठी रहीं। उन्होंने अपने सुखी मन में गर्व को स्थान दे दिया, किंतु ऐसा समझने के कारण राधाजी को पछताना पड़ा, क्योंकि जहां गर्व होता है वहां भगवान नहीं रहते। (नर्व गोविन्दहिं भावत नाहीं) इसलिए कृष्ण वहां थोड़ी देर भी नहीं रुके, उन्होंने राधा को दर्शन नहीं दिया। सूरदास कहते हैं कि ज्यों ही उन्होंने राधा के गर्व को समझा वे अंतर्धान हो गए।

राधा के घर पर उनकी सखी (ललिता) मिलने आई। उस समय राधा अत्यंत व्याकुल थीं, उन्हें कोई सुध-बुध नहीं थी। वे अपने शरीर को भी भूल गई थीं। राधा का हाथ पकड़कर उनकी सखी पूछने लगी कि तुझे क्या हो गया है? तू इतनी बेबस क्यों हो गई है। मुझे बताओ। कल ही मैंने तुझे और रंग का, अर्थात पूर्णतया प्रसन्नचित्त देखा था। आज तो तू बिल्कुल ही मुरझा गई है। सूरदास कहते हैं कि तुमने कृष्ण को देखा था, क्या उन्होंने फिर से तुझ पर जादू कर डाला है?

राधा ने कहा कि अब मैं तुझसे क्या छिपाऊं। अपनी कहानी और कृष्ण का कार्य मैं तुझसे स्पष्ट कहती हूं। मैं अपने घर में बैठी थी, वे स्वयं मेरे द्वार पर दर्शन देने आए। मेने मन के गर्व को उन्होंने जान लिया, उनका तो नाम ही गर्व को नष्ट करनेवाला है, तभी से मैं व्याकुल डोल रही हूं। कितना भी मन को समझाती हूं, वह समझता ही नहीं। अब तो मेरा घर ही मेरे लिए वन हो गया है। मैं किस प्रकार उनका दर्शन पाऊं।

राधाजी ललिता से कहती हैं कि कृष्णसे मिला दो। अब मैं अपनी बुद्धि लगाकर कुछ कार्य नहीं करूंगी, ऐसा करने से मेरे हित की हानि हुई है। मेरे हृदय पर मोतियों की माला वज्र के समान लग रही है। लगता है कि चंद्रमा तीर तान रहा है, मोर और ठंडी हवा विष की खान लग रही है। वस्त्र कैवांछ की तरह जलाते हैं और चंदन अग्नि के समान लग रहा है। तात्पर्य यह कि विरह के कारण सभी सुखदायी वस्तुएं दुखदायी लग रही हैं। मैं अपने सिर पर हाथ रखकर कह रही हूं कि अभिमान कभी नहीं करूंगी। सूरदासजी कहते हैं कि विरह की आग में हालत अजीब-सी हो रही है। वह अपनी भूल मन-ही-मन मान रही है।

ललिता ने कहा कि तुमने ही उनको सिर चढ़ा रखा है। घर और वन में सदा उनके साथ-ही-साथ डोलती हो। यों ही तू अपने प्रेम को दिखाती रहती है। पुरुष तो भौंरे के समान होता है, दो-चार दिन अपनी रुचि से पीछे-पीछे घूमता है। कृष्ण तो अनेक रमणियों के साथ आनंद करते हैं, यही सोचकर उन्होंने तुझे भुला दिया है। अपनी बात तो अपने हाथ होती है, पहले तुमने मुझसे प्रेम की बात नहीं की। सुनो, बिना मान किए कौन अपने प्रिय को वश में कर पाती है? अत: अब तू भी रूठकर बैठ जा।

राधा कहती हैं कि हे सखी। तुम मुझे कृष्णसे मिला दो। सखी अपनी सखी से कहती है कि मैं काम से पीड़ित हूं, मेरा दुख

दूर कराओ। रात्रि के समय चंद्रमा मुझे बहुत जलाता है, इसलिए कृष्ण को दिखा दो। वे भ्रमर की भांति अन्यत्र जानेवाले हैं, हे सखी। तुम जाकर उन्हें मनाओ। उनके चरण और हाथ कमल के समान हैं और उनका नाम भी रंगीले कृष्ण है। सूरदासजी कहते हैं कि तू सखी का उपकार करनेवाली है, मैं दुर्दशाग्रस्त हूं, मेरा बुरा रंग है, तू मुझे जीवित कर दे।

ललिता ने कहा कि हे राधा, अब तू धैर्य धारण कर, मैं कृष्णको लाऊंगी। तू अब व्याकुल न हो, मैं तुझे अभी सुखी करूंगी। ललिता राधा की दशा देख नहीं सकी और वह घबरा गई थी। वह सोचने लगी कि मैं राधा की प्रिय सखी हूं, यह सोचकर वह भी पछताने लगी। यह राधा तो बड़ी सुकुमार है, बेचारी चिंता से सूख-सूखकर पीली हो गई है। मैं जाकर कृष्ण से कहूंगी कि ऐसी क्या भूल राधा से हो गई है। उसने राधा का मुख धोया और कपड़े से पोंछा। बहुत-सी तर्कपूर्ण बातें कहीं, फिर भी राधा की सुधि न संभली। उसने राधा को सावधान करते हुए कहा कि मैं कृष्ण को लाऊंगी। सूरदास कहते हैं कि वह बड़ी आतुरता से वहां गई, जहां कृष्ण थे।

ललिता का मुख देखकर कृष्ण मुस्करा उठे। ललिता भी कृष्णके मुख को देखकर मुस्कराई। दोनों ने एक-दूसरे की बात मन-ही-मन जान ली। कृष्ण ने कहा, कहो ललिता इतनी आतुरता से क्यों दौड़ी आ रही हो? तुम्हारा मुख क्यों सूख रहा है? इस प्रकार कृष्ण बार-बार प्रश्न करते रहे और आंखों को चुराए हुए देखते रहे। तब वह चतुर नारी बोली कि मैं आपको एक आश्चर्य की बात बताऊंगी और यदि मेरे साथ चलो तो तुम्हें आंखों से भी दिखा दूंगी। भाव यह कि ललिता ने ऐसे प्रकट किया, जैसे वह राधा की भेजी हुई नहीं आई है। वह तो यों ही वृंदावन में घूम रही थी। उसने एक आश्चर्यजनक स्थान देखा है, इससे चमत्कृत है। वह चाहती है कि यदि कृष्ण उसके साथ चलें तो वह उन्हें भी आश्चर्यजनक स्थान दिखा देगी।

अनुराग भरे कृष्ण जब राधा से मिले तो उन्हें देखकर राधा हंस पड़ी। कृष्ण आनंदित हुए और राधा के अंग-अंग को देखते हुए मुस्कराकर उन्होंने आलिंगन किया।

कृष्ण राधाके विरह में पड़कर कभी कुंज के वृक्षों के नीचे बैठते हैं और कभी खड़े ही रहते हैं। कभी वे अपने तन-बदन की याद ही भूल जाते हैं और कभी उन्हें उसकी याद आती है। वे राधा के गुणों को सोचते और उन्हीं को गाने लगते हैं। विरह के कारण उनका मुकुट कहीं है, मुरली कहीं गिरी है और उनकी कमर का पीतांबर कहीं पड़ा है। सूरदास कहते हैं कि जब श्याम की ऐसी दशा तब उनकी दूती दौड़ी हुई आई।

गोपी ने जाकर राधा से कहा कि कृष्ण वृंदावन में बैठे हैं। तूने सबका माल क्यों चुरा लिया है? इस प्रकार तू अपनी बदनामी करा रही है। जो कुछ तूने पराया ले रखा है, उसे छोड़ दे। तू मेरी बात मान। तभी से उन लोगों ने शोर मचा रखा है, इसलिए मैं तुझे बुला रही हूं। जल्दी से चल, देर न लगा, फिर आकर आराम कर लेना। कृष्ण तो तेरी ओर से उन सबसे लड़ रहे हैं और तू उन्हीं से क्रुद्ध हो गई है।

राधा के पूछने पर कि उसने किसका धन चुराया है, गोपी उत्तर देती है। सुनो, जिन लोगों ने कृष्ण से जाकर पुकार की और जिनका माल तुम्हारे शरीर ने छीन लिया है, वे इस प्रकार हैं- चंद्रमा कहता है कि मेरे मुख की छवि छिन गई, भौंरें कहते हैं कि हमारी शोभा राधा की लटों ने ले ली। तेरे नेत्रों ने हिरनों की और तेरी वाणी ने कोयल को लूट लिया। सभी रोते हुए कृष्ण के पास गए हैं। कमल चरणों से, तोता नाक से, सिंह कटि से, कबूतर गर्दन से, हाथी चाल से, स्वर्ण रंग से और केला तेरे पैरों से दु:खी है। मूंगा होंठ से, कुंद दांत से और सर्प चोटी से घबराकर सभी अकुलाए हैं और कृष्ण की शरण में गए हैं। तेरी अनीति को जानकर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर तुझे बुलवाया है। तू ही अब चलकर उत्तर दे आ।

कृष्ण गोपियों के साथ अनेक रंग दिखाते हैं। इससे कोई गोपी तो प्रसन्न होती है और कोई खीझती है। वे किसी के घर

रात्रि को रहते हैं और किसी के मुख का स्पर्श मात्र कर आते हैं। वे बहुनायक होकर बिलसते हैं। इस लीला का अंत शंकर भी नहीं कर पाते। कृष्ण को ब्रज की सभी नारियां अपना पति मानती हैं। इनकी इस लीला के कारण कोई तो कृष्ण का आदर करती है और कोई अपमान। कृष्ण किसी से सायंकाल आने को कहते हैं, किंतु उस समय किसी दूसरी के घर पर हैं। कभी सारी रात साथ रहकर सवेरा करते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण की लीला ऐसी ही न्यारी होती है।

कृष्ण शरीर से राधा के घर ही निवास करते हैं। अन्य गोपियों के घर को तो वे अपने शरीर से मात्र प्रकाशित ही करते हैं। ब्रह्म तो पूर्ण है, उसमें द्वैत भाव नहीं हैं। राधा ही सब कुछ हैं और वे ही कृष्ण की सब कुछ हैं। जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है, उसी प्रकार कृष्ण विभिन्न गोपियों के घर-घर में प्रकाश करते हुए विहार करते हैं। खंडिता नायिका के वचन के लिए ही वे यह उपाय करते हैं कि कृष्ण कहीं-कहीं जाते और कहीं नहीं जाते। कृष्ण अपने जन्म को इसी में सफल पाते हैं कि नारियों को प्रेम के वचन सुनाएं। सूरदास कहते हैं कि वे जहां वचन देते हैं, वहां न जाकर अन्यत्र ही जाया करते हैं।

राधा अपने घर चली गईं। वे पांव के नख से लेकर चोटी तक क्रोध से भरी हुई हैं, उन्हें अपने यौवन का गर्व है। सखियां यह देखकर चल पड़ी कि वह हठ कर बैठी हैं और मान के कारण बोलती भी नहीं हैं। इतने में कृष्ण वहां आ गए। कृष्ण को देखकर गोपियां उनके पास आईं और कहने लगीं कि तुमसे क्रोध करके तुम्हारी प्रेमिका राधा मान कर बैठी हैं। तुमने कौन-सी चतुराई की है कि तुम्हारे आते ही वह इतना ज्यादा नाराज हो गई हैं। सूरदासजी कहते हैं कि यह सुनकर कृष्ण चकित हुए और मुरझा गए।

दूती कृष्णसे कहती है कि सुकुमारी राधा मान रूपी तालाब में विहार कर रही हैं। वह किसी प्रकार उस मान-सर से नहीं निकलतीं। मैं उनकी खुशामद करके हार गई हूँ। मौन रूपी तालाब का बहुत बड़ा बांध बना रखा है और आंसू रूपी उसमें अथाह जल है। प्रकट होने से नहीं डरतीं, मैं पुकारकर थक गई हूं। उनकी आहें उस तालाब की सूस (कछुए की तरह का एक जानवर) हैं और उनके नेत्र कमल हैं। उनकी चंचल चितवन जलचरों का चलना है। कामेच्छा प्राणलेवा मगरमच्छ है। वह डर को छोड़कर उस मान-सर में तैर रही हैं। उनके बाल उस तालाब की सैवार (घास) हैं, उन्हीं में वह उलझ रही है, उन्हें वह साफ नहीं कर सकतीं। उनका नीला आंचल कमल का पत्ता है और उनके स्तन कमल हैं। उन्होंने अपनी रुचि से मान कर रखा है। हे कृष्ण, उनमें उनका मन रूपी हंस रमा है। आप ही स्वयं अब उनकी बांह पकड़कर उन्हें निकाल लाइए।

सखी राधा को समझाते हुए कहती है कि तुम इतना अभिमान क्यों करती हो? यौवन और रूप सौंदर्य तो दस दिन का ही है। यह तो इस प्रकार चला जाता है, जैसे अंजलि का जल। यह तो इस प्रकार जानेवाला है, जैसे घास की आग, धुएं का मकान और बर्फ का पानी। तुम क्रोध से इस प्रकार जल रही हो, जैसे पतंगा ज्योति में जलता है और कुछ लाभ और हानि नहीं समझती। कुछ समझ और अभिमान को छोड़ दो तुमने अब कौन-सी बुद्धि ठान रखी है? अपने यौवन-धन को दोपहर की छाया समझो, किस अज्ञान में भूली हुई हो। नौ सौ नदियां अपनी मर्यादा में चलकर सीधे सागर में समा जाती हैं। तुम तो बंजर में वर्षा के थोड़े जल से उमड़ी हुई नदी के समान हो। थोड़े काल के यौवन के अभिमान से काम नहीं चलेगा।

एक दिन सखियों को साथ लेकर राधाजी ब्रज की गलियों में निकलीं। वे प्रात: उठकर यमुना स्नान को चली थीं। जिस घर में कृष्ण रहे थे, उसी घर में सखी को बुलाने वे आई थीं। ज्यों ही वे दरवाजे पर आई, उसी समय कृष्ण उस घर से निकले। अचानक दोनों की भेंट हुई और दोनों ही चकित हो गए। राधा इधर से आईं और कृष्ण उधर से। कोई भी एक-दूसरे को नहीं जानता था। राधा तो अपने घर को लौट पड़ीं, सखियां देखकर खड़ी रह गईं। अब तो स्नान की याद भूल गई और शरीर में क्रोध भर गया। कृष्ण तो मुरझा ही गए। ऐसा लगा जैसे उन्होंने ठग-मूलि खा ली हो, जहां-के-तहां खड़े रह

गए। सखियों ने उन्हें समझाया और कहा कि इतने ही के हो गए। वे बांह पकड़कर उन्हें वहां ले गईं, जहां राधा थीं।

सखी राधा को समझा रही है कि यह ऋतु मान करने की नहीं है। बादल पृथ्वी के लिए बरस रहा है (बादल और पृथ्वी में पति-पत्नी संबंध माना गया है)। प्रियजन हर्ष से मिल रहे हैं। जितनी लताएं ग्रीष्म ऋतु में जली हुई थीं, वे सब अपने प्रियतम वृक्षों से लिपटी हुई हैं। जो नदियां जल से रहित थीं, वे सब अब भरी हुई हैं और अपने प्रियतम समुद्र से मिल रही हैं। जवानी का धन तो चार दिन का है, यह तो ऐसा क्षणभंगुर है जैसे बादल की छाया। मैंने तो प्रिया-प्रियतम के प्रेम की रीति की बात कही है, तुम तो स्वयं चतुर हो, अपने मन में समझो। हे सखी राधिका। तू यह अपने चित्त में धर ले और मेरी बांह पकड़कर चल तथा अपने प्रियतम से मिल।

कृष्ण ने कहा कि प्रेम के कारण पतंगा अग्नि में गिरकर मरता है। प्रेम के कारण ही हिरन बांधा जाता है। प्रेम के कारण ही पपीहा पीहू-पीहू रटता है। चाकर कभी नहीं सोता और मछली बिन जल के मर जाती है। हे मानिनी, जहां प्रेम होता है वहां मान नहीं होता। इस प्रकार प्रेम की गणना नहीं होती। प्रेम में जो रूठता है, उसमें प्रेम कैसे होगा? तू क्रोध से कांप रही है और मेरी ओर पीठ करके बैठी है। तुम अपनी मणि की माला को देखो और उसमें अपने रूप का प्रतिबिंब अर्थात सूखा हुआ चेहरा देखकर फिर अपने रुख को फेर दो। हृदय में प्रेम को छिपाए हुए हो, इसलिए सभी लोग अंधकार में हैं। यदि तुम इतना मान करोगी तो फिर मेरे मनाने से क्या? मैं तो तेरी सौगंध खाकर कहता हूँ, तेरी ही झलक मेरे दिल में हैं। यहां तेरे सिवा और कौन हो सकता है? पांव के नीचे जिस दर्पण रूपी मणि को रख रखा है, उसे निकालो और उसमें देखो कि दोनों में कौन है? मालिक बिना अपराध के दास को दु:ख देता है, उसे सब कुछ शोभा देता है। राधा दर्पण में कृष्ण का प्रतिबिंब देखती हैं। राधा को जैसी इच्छा हुई, वैसी ही कृष्ण से सौगंध उठवाई, तब वह मानीं। जब उन्होंने अपने हाथ से कृष्ण को पान दिया, तब जाकर कृष्ण ने जीवन धन पाया।

यमुना के तट पर हिंडोला डाला गया। वहां पर युवा गोपियों के साथ युवा कृष्ण हैं। कोई कृष्ण को झूले पर बिठाती है, कोई झूला देती हैं, कोई उनके अंगों को देखती है और कोई गा उठती है। गोपियां कृष्ण को इस प्रकार घेरे हैं, मानो बादल को बिजलियां छिपा लेना चाहती हों। गोपियों के साथ कृष्ण गाते हैं। उनके स्वर कोयल से भी अधिक मीठे हैं।

झूले पवन की आयी बहार, प्यार छलकें...

कृष्ण के सिर का मोर मुकुट झूलते हुए हिलता है। ऐसा मालूम होता है जैसे मोर नाच रहा हो। उनके सुंदर मुख के दोनों ओर कुंडल चमकते हैं, जिन्हें स्त्रियां इस प्रकार देखती हैं जैसे प्रात:काल चकवा प्रसन्नता से देखता है। इन नारियों के नयन चकोर की भांति एकटक लगे हैं। कृष्ण के विहार को देखकर देवियां आकाश में स्तम्भित हो रही हैं। वे बहुत-से फूल बरसाकर जय-जयकार करती हैं। वे मन-ही-मन यह इच्छा करती हैं कि वम वन के वृक्ष और डालियां क्यों न हुए। राधा गाती हैं- **हवा में उड़ता जाएं मेरा लाल दुपट्टा मलमल का ओ जी- ओ जी...**

सूरदासजी कहते हैं कि पूर्ण परब्रह्म मनुष्य देह धारण करके विलास कर रहा है।

कृष्ण राधाके साथ झूल रहे हैं। दंपती के अंगों की शोभा देखकर कामदेव भी लज्जित हो रहे हैं। शीतल-मंद-सुगंध हवा चल रही है, जिसमें राधा-कृष्ण के अंगों की सुगंध भी बिखर रही है। इस सुंदर वास के साथ गोपियों के मन रूपी भौंरें बंधे हुए हैं। जिस प्रकार की सुंदरता यमुना में है, रंगीन हिंडोला पड़ा हुआ है, उसी प्रकार सुंदर गोपियां बन-ठनकर कृष्ण को अपने नेत्रों की कोर से देख रही हैं। सुंदर वृंदावन है, जिसके निकुंजों के द्वारों पर कृष्ण अनेक गोपियों के साथ अनेक लतागृहों में विहार करते हैं। यहां पर कृष्ण की शाश्वत लीला होती है, नित्य आनंद होता है और सदा मंगल-गान होता रहता है।

वृंदावन-धाम और कृष्ण नित्य हैं। राधा तथा ब्रज की गोपियां भी शाश्वत हैं। उनकी रासलीला, जल बिहार, मान लीला, खंडिता और अभिसारिका की नायिका-लीलाएं भी नित्य हैं। ये ही ब्रह्म हैं, ये ही सृष्टि के कर्त्ता हैं। ये ही कर्त्ता और हर्ता हैं, ये ही त्रिभुवन के तत्त्व हैं। इनकी निकुंज-लीला की विलास-लीला और झूलन भी नित्य है। यहां शीतल-मंद-सुगंध वायु सदा चलती है। यहां वसंत सदा निवास करता है। यहां सदा हर्ष रहता है, उदासी कभी नहीं आती। यहां कोयल, तोते आदि पक्षी बोलते रहते हैं। चित्त को चुराने वाला कामदेव यहां सदा निवास करता है। यहां वन में अनेक प्रकार के पुष्प खिले रहते हैं। मस्त भौंरे घूमते और गुंजार करते रहते हैं। यहां के नए पल्लवों की एक-सी शोभा सदा रहती है और अनेक गोपियां कृष्ण के साथ विहार करती हैं। कोयल कुहू-कुहू करती है, जिसे सुनकर नारियां हर्षित होती रहती हैं। वे बार-बार कृष्ण को सुनाकर कहती हैं कि वसंत ऋतु आ गई है। हमारे मन में अभिलाषा है कि हम तुम्हारे साथ फाग खेलें।

कृष्ण हिंडोले पर सुशोभित हैं। उनके साथ नीली ओढ़नी पहने हुए राधा हैं। वे स्वर्ण में लाल मणि, मोती और हीरा जड़ा हुआ मूल्यवान हार पहने हुए हैं। सारे ब्रज की सुंदरियां उन्हें झुलाती हैं और हर्ष के साथ कल्लोल कर रही हैं। खेलती, हंसती और आपस में मीठे-मीठे बोल बोलती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि प्रिय और प्रियतम (राधा-कृष्ण) झकझोरे खाते हुए झूल रहे हैं।

भगवान श्रीकृष्ण तो पूर्णतम ब्रह्म परमात्मा सर्वान्तर्यामी परमेश्वर थे। उनकी भुवन-मोहिनी छवि को देखकर गोकुल की युवती गोपियाँ उन पर प्राणपन से मोहित हो गई थीं। वे किसी न किसी बहाने नित्य उनका दर्शन करती थीं। कभी दही बेचने के बहाने तो कभी पानी भरने के बहाने, तो कभी कोई बहाना बनाकर यशोदा जी के पास जाने के बहाने उधर से होकर अवश्य गुजरतीं और श्रीकृष्ण के दर्शन की अपनी अभिलाषा पूर्ण करती थीं। जब कभी श्यामसुन्दर उनको नहीं मिलते तो वे सैकड़ों उपाय करती थीं। क्योंकि बिना मोहन को देखे उनका तो हृदय ही शीतल नहीं होता था। उनके माता-पिता और सास-श्वसुर बहुतेरा समझाते थे। परन्तु उनकी समझ में कुछ नहीं आता था, क्योंकि उनके मन को तो मनमोहन ने पहले ही मोह लिया था। भगवान श्रीकृष्ण भी यह जानते थे कि ये सभी गोपियाँ तन-मन-धन से मेरे ऊपर मोहित हैं इसलिए सर्वान्तर्यामी दिन में एक बार अपनी मधुर मुस्कान सहित बाँकी झाँकी दिखलाकर उनको अवश्य तृप्त करते थे।

१५) कृष्ण का ब्रज में होली खेलना - जब फागुन का महीना आया तब श्यामा आदि ब्रजबालों ने मोहन प्यारे से हाथ जोड़कर विनय किया कि महाराज, हम लोगों के साथ होली खेलो। यह वचन सुनकर नन्दलाल बोले कि तुम लोग अपने अपने घर जाकर तैयारी करो, मैं अपने सखों को साथ लेकर होली खेलने आऊँगा। जब सब ब्रजबालों ने अपने-अपने धर जाकर होली खेलने की तैयारी की तब नन्दकुमार ने ग्वालबालों को बुलाकर केसरिया कपड़ा पहिनाया और रंग अबीर इत्र आदि अपने-अपने शरीर पर डालकर सुगन्धित फूलों के गजरे गले में पहिन लिये। डफ, बाँसुरी व खंझरी बजाकर फगुवा गाते व ब्रजबालों को गालियाँ देते, अबीर उड़ाते, अनेक तरह के स्वांग बनाये, लड़कों को नचाते हुए ब्रज में होली खेलने निकले। जो गोपी राह में दिखलाई देती थी उस पर रंग की पिचकारियाँ मारकर हँसते थे। सब ब्रजबाला कोठों पर से मोहन और ग्वालबालों पर रंग व अबीर डालकर गालियाँ सुनकर प्रसन्न होती थीं। जब इसी तरह वृन्दावनविहारी होली खेलते हुए राधा के घर बरसाने गाँव में पहुँचे तब श्यामा अपनी सखियों समेत सोलहों श्रृङ्गार किये रंग की पिचकारियाँ मारकर हँसते थे। सब ब्रजबाला कोठों पर से मोहन और ग्वालबालों पर रंग व अबीर डालकर गालियाँ सुनकर प्रसन्न होती थीं। जब इसी तरह वृन्दावनविहारी होली खेलते हुए राधा के घर बरसाने गाँव में पहुँचे तब श्यामा अपनी सखियों समेत सोलहों श्रृङ्गार किये रंग की पिचकारियाँ लिये गली में जाकर मोहनीमूर्ति के सामने खड़ी हुईं। जब दोनों ओर से पिचकारियाँ चलकर अबीर उड़ने लगीं तब श्यामा सखियों से बोली कि आज अपने चितचोर को पकड़कर चीर हरने का बदला लेना चाहिए।

वृंदावन में जित देखो तित लाल, सो लाली हरि नाम की, राधा लाल गुलाल।
यह लीला तव भई, वृष भानु जा के संग, लाली से लाली मिली, तब नीक्स्यो सुरंग।

जब रंग व अबीर उसे अँधियारा छा गया तब श्यामा ने सखियों से कहा कि मनहरणप्यारे को किसी उपाय से पकड़ो।

पकड़ नचावै तुम्हें मुरारी। तब कहियो हमको ब्रजनारी।।

यह बात सुनकर व्रजनाथ ने सखियों से कहा कि मैं तनिक श्यामा का संकोच करता हूँ, नहीं तो अपने ग्वालों को लगाकर अभी तुम्हारी दशा दिखा दूँ। यह सुन गोपियाँ मुसकराकर बोलीं कि तुमको नन्द का सौगन्ध है जो ऐसा न करो। तब मोहन ने अपने सखा समेत रंग की पिचकारियाँ ब्रजवालों पर मारकर अबीर उड़ाने और फगुवा गाकर उन्हें गालियाँ देने लगे। श्यामा ने भी सखियों समेत मोहन आदि से अच्छी तरह होली खेली। वह आनन्द देखने के लिए देवता व गन्धर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर बैठकर वहाँ आये और राधाकृष्ण पर फूल बरसाकर आपस में कहने लगे कि जिस वैकुण्ठनाथ के चरणों का दर्शन ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता वही परब्रह्म परमेश्वर ग्वालबालों और गोपियों के साथ गलियों मे होली खेलकर उनको सुख देते हैं। जब राधाकृष्ण होली खेल चुके तब ललिता सखी ने आकर कृष्ण से विनय किया कि कल हम लोग भी तुम्हारे गाँव में होली खेलने आवेंगी।

दूसरे दिन प्रात:समय राधा ने सखियों समेत सोलहों श्रृंगार किया और सोने-चाँदी के बरतनों में रंग, अबीर, गुलाब, इत्र भरवाकर बड़ी तैयारी से होली खेलने चलीं। जब श्यामा गाती-बजाती रंग-अबीर उड़ाती हुई नन्दगाँव में जाकर यशोदा का स्थान घेर लिया तब श्याम व बलराम भी अपने सखों समेत फगुवा गाते हुए बाहर निकले और रंग व अबीर से राधा आदि के साथ होली खेलने लगे। **रंग बरसे भीगे चुनरवाली रंग बरसे...**

जब ब्रजबालों ने राधाकृष्ण को गाँठिबन्धन किये हुए बीच में बैठाकर रंग व अबीर से नहला दिया और उनक छबि देखकर प्रेम से गाने लगीं तब यशोदा ने ललिता को घर में बुलाकर कहा कि रसोई खाने का समय हुआ है, इसलिए तू सबको भीतर बुला ले। जब ललिता श्यामा आदि सखियों को भोजन करने के लिए भीतर लिवा ले गई और श्यामसुन्दर व्रजबालों से छूटकर अपने गोल में चले आये तब ग्वालबालों ने बलरामजी को बुलाकर उनका रूप दिखलाया और मोहन को सौगन्ध धराकर जब उसी तरह उनका हाथ पकड़े हुए नन्द व यशोदा के पास ले गये तब वह अपने लाल को स्त्री रूप से देखते ही बड़े हर्ष से लिपटकर बोले- हे बेटा। तुम्हारा यह रूप किसने बनाया। नन्दकुमार ने कहा कि हे बाबा, ललिता आदि राधा की सखियों ने यह भूषण व वस्त्र मुझे पहिनाया है। फिर यशोदा ने श्यामा आदि व्रजबालों को छत्तीस व्यञ्जन खिलाये और पान इलायची देकर अपने यहाँ से उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र राधा को पहिनाये।

फागुन का महीना, केसरिया रंग घोर, होली खेले राधा, सँग नटवर नन्द किशोर।।
ओढ़ के आइ कान्हा, नई रे चुनरिया, रंग पिचकारी मेरे, मारो न सांवरिया।।
भर पिचकारी मारी कर दीनी सराबोर, होली खेले राधा...
उड़त गुलाल सखी, लाल भयो बदरा, राधा की अखियन को, बिगड़ो है कजरा, होली खेले राधा...
आज ब्रज में होली रे रसिया, होरी नहीं है बरजोरी रे रसिया, आज ब्रज में होली रे रसिया...
अपने अपने घर से निकली, कोई सांवल कोई गौरी रे रसिया, आज ब्रज में होली रे रसिया...

एक सखी कहने लगी मैं तो होली से बचती बचाती नई-नई दुल्हन बनके यहाँ आई थी, मुझको यहाँ की राह पता नहीं था, कन्हैया ने राह में चलती का मेरा हाथ पकड़ लिया। बचा आई है सूखी। कल देखूँगा मुझे। मैं तो शर्म के मारे, घूँघट

डाले सकुचा रही थी और वे तो अपनी कह गये।

हथ फड़ के कहदां सांवरिया, कल तेरी गली बिच आना। तू ही कोरी बची रही, कल तैनू रंग लगाना।।
होरी के दिन निरख के, बोल लिये ब्रजवार। पिचकारिन से पुष्प जल, रंग परस्पर डार।।

होली के दिन आये देखकर, श्रीकृष्ण-बलराम ने, सब ब्रज बालक बुला लिये और पिचकारियों से ढाक के फूलों का जल तथा गुलाल आदिक रंग आपस में डारते भये।

होली खेलत राम मुरारी। दोनों दल में बाल सखा बहु, कर कांचर रंग झारी।।
कोउ अबीर गुलाल उड़ावत, को मारत पिचकारी।।
झांज मजीरा कोउ बजावत, को ढोलक करतारी। कटि पट फैंट कसी सब बालक, सिर चीरा जरदारी।।

बलराम श्रीकृष्ण अब दो दल बनाकर होली खेलते हैं। एक दल में बलराम और दूसरे दल में श्रीकृष्ण, अपने अपने दलों में बहुत से सम आयु के बालक-मित्र को साथ में लेकर और हाथ में रंग से भरी हुई सुवर्ण की झारी लिये ठाढ़े हैं। तिनमें से कोई तो अबीर और कोई गुलाल उड़ाते हैं। कोई परस्पर पिचकारी मारते है। कोई झांझ-मजीरा बजाते हैं। कोई बालक ढोलक तथा हाथ की तारी बजाते हैं।

जहां पुरुषोत्तम व्रज बांकुरो, सबल सुदामा संग, मधु मंगल पर जीवणा, श्री व्रजपति खेले रंग।
जहां अर्जुन भोज विशल सबल, बल बलदाऊ नाम, ग्वाल मंडली गिरधर तणी, तहां जीवन जन विश्राम।।

सब बालकों ने कमर में दुपट्टे की फैंट कसी हुई है और सिर पर जरीदार पगड़ी बांधी हुई है।

आो मित्रो खेलो होरी। काम क्रोध लोभ मोह मत्सर, इन्हें मिटाओ जोरा जोरी।
समता दया धर्म गुरु पूजा इन्हें फैलावो जोरा जोरी। पर दुख सहन मान पर दाता यह रंग उड़वो जोरा जोरी।।
न्याय क्षमा परहित अति चिन्तन, यह कण्ठ लगाओ जोरा जोरी।।

माघ के महीने में प्यारी सखियाँ बसन्तोत्सव करके प्रियतम को अच्छा लगनेवाला श्रृंगार बनाकर पीले वस्त्र, आभूषण धारण कराके चारो ओर डोलती हैं और प्रियतम के हृदय में प्रेम पैदा करती हैं। और फागुन को आता हुआ जानकर सखियाँ ब्रह्म श्रीकृष्ण को निमन्त्रण देती हैं और कहती हैं कि हे प्रियतम सुनो और बिचार करो कि फाग खेलने के दिन आ गये हैं। अब तो तुम्हारे ऊपर रंग विरंगा रंग डालकर सखियाँ तुमको गोरा बना देंगी। अगर तुम मैया के अंचल में छिप जावोगे तो भी नहीं बचोगे, इससे बताओ कि फाग का खेल कब करोगे। यह सुन सुनकर श्रीकृष्ण मन ही मन प्रसन्न होते हैं और होली खेलने के लिए ललचाते हैं और सखाओं को बुलाकर आनन्दित होते हुए कहते हैं कि अरे सखाओं होली के खेल की व्यवस्था करो। सभी ग्वालों को बुला लो और सब नन्द गाँव में आकर इकट्ठा हो जावो, फिर वहाँ से राधाकुण्ड चलें और कुन्जों-कुन्जों में चलकर फाग खेलें। और वे प्रिया जी को निमन्त्रण देकर कहते हैं कि आज उसी फाग का साज सजाओ जिसके बारे में सखियों ने मुझसे कहा है और जिससे तुम्हारा भी बड़ा प्रेम है। उनके मन की इच्छा जानकर फिर श्रीकृष्ण बड़ी प्रसन्नता के साथ सखाओं के पास आते हैं और कहते हैं कि चलो मिलकर के होली का आनन्द मनावें।

तोता, कोकिल, हिरण और मोर यह सब सफेद स्फटिक मणि के रंग के सुहावने हैं। वहाँ पर सदा पूर्णिमा बनी रहती है और वहाँ पर यह नन्द का बेटा रास करता है। सभी दिशाओं से और सभी रात्रियों में भी कोई वहाँ प्रवेश करे तो उसे सभी ओर सफेद ही सफेद दिखाई पड़ेगा। ऐसे कुन्ज में पहुँचकर प्रियतम, प्रिया और सखियाँ कोई भी दिखाई नहीं पड़ेगी।

वस्तुत: वे तत्वत: एक ही ब्रह्म तत्व ही तो हैं इसलिए वे जब वहाँ पर आये तो सब अपने ही स्वरूप में अपने ही आप

मिलकर अपने नित्य स्वरूप को प्राप्त हो गये और फिर वे अपने आपको ही खोजते फिरते हैं और दृष्टि की विलक्षणता को प्राप्त होते हैं। ऐसी छबिवाली कुन्ज के बीच में वे दोनों आये और दोनों ने अपने-अपने दल को सफेद-सफेद ही सजाया। सभी सफेद वस्त्र और आभूषण धारण किये हुये थे और अपने समस्त अंगों को भी सफेद ही बनाये हुए थे।

गौरवर्ण की भोली भाली नवल किशोरियाँ जो छबि से युक्त और प्रेम रस में डूबी हुई थीं। वे सभी कुंज की सफेदी में आकर समा गईं। अब वे बिना बोले नहीं समझ में आ सकती थीं। इधर श्रीकृष्ण का दल भी सफेद था। वह भी आकर वहाँ पर ऐसा समा गया कि वह भी नहीं दिखने लगा। जैसे नीला आकाश चाँदनी के छिटकने से नीला नहीं जान पड़ता। ऐसी ही सम्पूर्ण कृष्ण-दल की स्थिति हो गई और बिना बोले उसका भी वहाँ होना नहीं जान पड़ने लगा। सखियाँ समझती थी कि वे हमको देख रहे हैं और सखा जानते थे कि वे हमें देखकर हमारी ओर आ रही हैं। किन्तु वास्तव में दोनों की एक समान ही स्थिति थी और दोनों में से किसी को भी एक दूसरे की स्थिति का ज्ञान नहीं था। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अरे सखाओ, रंग घोलो और प्रिया जी के मन में भी यही बात आई। इसलिये दोनों ही ओर केशर का गहरा रंग घुलने लगा और दोनों दलों ने अपनी-अपनी पिचकारियाँ सम्हाल लीं और एक दूसरे को रंग में सरोबार करने का बिचार करने लगे। जिनके कहीं पिचकारी का रंग पड़ जाता था उसकी छबि वहाँ प्रगट होकर दिखाई पड़ने लगती थी। किन्तु फिर भी वे पहिचाने नहीं जा सकते थे और गोपी और ग्वालों में भेद नहीं समझ में आता था। कौन किस पर रंग डाल रहा है यह कोई नहीं जान पाते थे फिर भी दोनों एक दूसरे को रंग ही रहे थे। वे दोनों ही दौड़-दौड़ कर पिचकारी मारते थे और वे अपने अपने दल के नायक प्रिया प्रियतम की जय-जयकार कर रहे थे।

जिनको राधा जी की जय बोलते पाते थे उनकी ओर श्याम के सखा दौड़कर जाते थे और प्रियतम की जय जिस ओर से आती थी उस ओर प्यारी जी अपनी सखियों को भेजती थीं। इस प्रकार दोनों ही दल रंग के युद्ध में लगे थे और अन्त में वे दोनों ही दल एक दंग के हो गये यही नहीं सम्पूर्ण कुन्ज, मोर, हिरण, कोकिल, तोता सभी केशर के रंग मे रंग गये मानो उसी के हाथ बिक से गये हों। इतना ही नहीं आकाश भी केशर रंग का हो गया और चन्द्रमा भी ऐसा लगने लगा मानो केशर से ही बनाया गया हो। स्फटिक मणि भी केशर के रंग का हो गया और सरोवर भी उसी रंग के हो गये। वह कामदेव को सुख देनेवाला कुंज केशर की छबि से युक्त होकर शोभायमान होने लगा। अस्तु वहाँ पर सखियाँ और सखा फिर ऐसे समा गये कि वे देखने ही न लगे। उनके गहने, वस्त्र, मुख और ओठ एक ही रंग के शोभा देने लगे, जिससे एक दूसरे को न जान कर वे फिर भ्रमित हो गये। जब श्रीकृष्ण केशर के कुंज में आ गये तो वे वहाँ पर अनेक उपाय सोचकर आनन्दित होने लगे। यहाँ पर चारो ओर केशर की ही छबि छाई हुई थी और वहाँ का कण-कण केशर रंग से रँगा हुआ था।

उधर राधा भी अपनी सखियों की सेना सजाकर उसी कुंज में आ गईं। अब दोनों ही गुलाबी रंग घोलने लगे और दोनों दलों ने अपनी झोलियों में गुलाल भर लिया। और क्षण भर में ही पिचकारियों से रंग बरस-बरस कर रस की वर्षा करने लगा और चारो ओर गुलाल उड़ने लगा और वह आकाश में चारो दिशाओं में खूब घना-घना छा गया। इससे सखियाँ, सखा सभी लाल हो गये और पृथ्वी तथा आकाश भी लाल हो गये, तालाब और सरोवर सभी लाल हो गये यहाँ तक कि लता, वृक्ष सभी लाल-लाल हो गये। चन्द्रमा भी लाल ही शोभा वाला हो गया और उसके साथ आकाश भी सूर्य के समान लाल-लाल दिखाई पड़ने लगा। पशु-पक्षभ सब लाल ही लाल दिखाई पड़ने लगे। ऐसा लगता था कि सब एक ही तत्व बन कर शोभा दे रहा है। यहाँ तक कि लली और लाल दोनों ही लाल हो गये और अनोखी शोभा छिटकने लगे और सखाओं और सखियों दोनों के ही दल, लाल ही लाल दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने केशर कुंज को भी लाल निकुंज बना दिया जहाँ पर कोई किसी को कहीं पर भी पहिचान नहीं पाता।

गोपियां बोली- हे प्यारे, अब हमसे कैसे बचोगे, अब तो तुम्हें हमारे वचन मानने पड़ेंगे। हे रस के स्वामी, अन्तर्यामी श्रीकृष्ण, अब तो तुम स्वामिनी जी के साथ रसपान करो और हम सबको करावो। ऐसा कहकर राधा के संग करुणा के सागर श्रीकृष्ण को उस पूर्णेन्दु नामक कुंज में ले आयी जहाँ पूर्ण चन्द्रमा का सागर ही लहराता रहता है। फिर वे दोनों को स्नान कुंज में ले गयीं और उनको स्नान करवा कर आनन्दित हुयीं। उन्होंने एक-एक कर उनके सब वस्त्र उतारे और उन्हें स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कराये। उनको सुन्दर सफेद आभूषण पहनाये और उनको भोग खिलाकर उनका प्रसाद लिया। फिर उन्हें अत्यन्त सफेद सिंहासन पर लाकर बिठाया।

गोपियाँ श्रीकृष्ण को गालियाँ सुनाकर अत्यन्त सुखी हो रही थीं और उनके गालों में गुलचे मारने का भाव दिखाती थीं और कहती थीं कि हे प्यारे, क्या तुमको उस दिन की याद आई जब तुमने जबरदस्ती हमारी मटकियाँ फोड़ी थीं। अरे अहीर के लाला, तुमको बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है। अरे अरे, यह ग्वालों का सिरताज ग्वालों सहित सखियों से हार गया। और उस दिन नाव पर हमको बिठाकर झगड़ा करके हमारे गले के हार, यह कहकर उतरवा लिये थे कि मेरी नैया इन हारों का भार नहीं सम्हाल सकेगी। फिर कहो तो उस दिन का बदला आज हम ले लें। पता नहीं फिर आज सरीखा अनुकूल अवसर हमें कब मिलेगा। इस प्रकार फगुवा के आनन्द में आनंदित होते हुए गोपियाँ प्रसन्न हो गईं। इस प्रकार नित्य नई-नई लीलाओं की रचना करके श्रीकृष्ण (प्रिया लाल) गोपी जनों के हृदयों को आनंदित करते हैं।

खेलो रंग हमारे संग आज दिन रंग रंगीला आया, आओ सज्जन हमरे द्वार रंग डालूंगी तुम पर हजार...

होली आयी रे कन्हाई रंग बरसे सुना दे जरा बाँसुरी...

एक दिन की बात है कि राधा जी मोर कुटी पर मोरों का नृत्य देखने के लिये ललचाई हुई गयीं। जहाँ पर चारो ओर से आकर मोर नाचा करते थे। किन्तु वहाँ पर उस दिन उन्होंने एक भी मोर नहीं देखा। उसके मन में नृत्य देखने की प्रबल इच्छा थी इसलिये वह बड़ी आशा से इधर-उधर देखने लगीं। फिर गहरी साँस भरकर कहा कि बड़ा आश्चर्य है कि आज यहाँ एक भी मोर नहीं दिखाई पड़ता। अरी सखियों, कोई जाकर कहीं से मोर बुला लावो और उसका नृत्य हमको दिखाओ। आज मेरे मन में इसके लिये बड़ी इच्छा है। इसलिये मुझे मोर नृत्य देखे बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। यह सुनकर सखियाँ चारो ओर देखने लगीं किन्तु उनको किसी ओर मोर नहीं दिखा।

राधा बार-बार सखियों से इसके लिए विनम्र प्रार्थना करती हैं और मोर-मोर कहती हुई इधर-उधर दौड़ती हैं। उनको ब्याकुल देखकर सखियाँ भी दुखी होती हैं किन्तु वे भी अपने को असमर्थ अनुभव करती हैं। उसी समय एक अत्यन्त सुन्दर मोर नृत्य करता हुआ आया राधा जी उसको देखकर बलि-बलि गईं। सखियों ने कहा राधा तुम धन्य हो। राधा ने कहा कि मोर कैसा सुहावना है इसके नृत्य को देखकर चारो ओर रस ही रस उमड़ता दिखाई पड़ता है। अहा, अहा यह कैसा विलक्षण सुन्दर है। यह नृत्य करता हुआ बड़ा प्यारा लगता है। चलो अत्यन्त पास चलकर इसका मनोहर नृत्य देखें। अरी सखियों इसने कैसी मेरी मनोकामना पूर्ण कर दी। सखियों ने पास पहुँच कर कहा कि अरी राधा जी यह तो मोर नहीं चितचोर है। अरी, प्यारे नटवर श्रीकृष्ण ही मोर बनकर नाच रहे हैं।

तब राधा ने उन पर बलि-बलि जाते हुए कहा कि हे प्यारे, यह तुम क्या लीला करते हो। सखियों ने कहा हे राधा, तुम धन्य हो जो तुम्हारे प्रेम के बश में श्रीकृष्ण हैं।

प्यारे श्रीकृष्ण ने कहा कि हम तो उसी समय धन्य हो गये जब प्रिया ने हमको मोर अर्थात् मेरा कहा। यह राधा के चन्द्रमुख का चकोर श्रीकृष्ण प्रिया का बन कर कृतार्थ हो गया।

नवलकिशोर कृष्ण और किशोरी राधा होली खेलते हैं। दोनों एक दूसरे के चित्त को चुराते हैं और गोपियां जो सभी सुंदर हैं, जाल बनाकर घेर लेती हैं। इनके नख की शोभा देखकर सूर्य की मति भ्रमित हो जाती है। एक गोपी हाथ में गुलाल लेती है, तो दूसरी चंदन और तीसरी रोली। सभी कृष्ण के ऊपर ऊचक उचककर छिड़कती हैं। कुल की मर्यादा को तोड़कर वे रसानंद लेती हैं। सारी ब्रज की नारियां आशीष देती हैं कि राधा-कृष्ण की जोड़ी युगों-युगों तक जिए। सूरदास कहते हैं कि इनके लिए मुझे कोई उपमा नहीं सूझती, इनके लिए जो भी कुछ कहा जाए, थोड़ा ही है।

कभी श्रीकृष्ण अपना ऐश्वर्य प्रगट करते हैं और कभी उसे छिपा लेते हैं। इस प्रकार वे ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों प्रकार की लीलायें करके ब्रज रस भर-भर कर पिलाते हैं।

१६) वर्षा और शरद ऋतु, वेणुगीत-

गई ग्रीष्म ऋतु वर्षा आई, हरियाली चहुँ भू पर छाई। चातक मोर मुदित मन माहीं, गरजि घन नभ में छाई।।
डूकहिं वृषभधेनु एक ठामा, व्रज युवतिन हिय उमड़हि कामा।
वर्षा विगत शरद शुभ आई, फूलि फूलि बेली तरु छाई।।
पम बिहीन भूमि चहुँ देखी, छायौ ब्रज आनन्द विशेषी।
ब्रजयुवतिन मन प्रेम समायौ, मिलन श्याम सों चित में चायौ।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, ग्वालबाल जब घर पहुँचे तो उन लोगों ने अपनी माँ, बहिन आदि स्त्रियों से बलराम के द्वारा प्रलम्ब वध और श्याम के द्वारा वनाग्नि का पान कर अपनी रक्षा की बात बतलाई। इन घटनाओं को सुनकर गोपियों और गोपवृद्धों को महान् विस्मय हुआ। उन लोगों ने सोचा कि राम और श्याम के वेश में कोई बहुत बड़े देवता ही व्रज में पधारे हैं। सबके सब गोप ग्वाल तथा उनकी गायों भाण्डीर वन के निकट बैठे हैं। यह देखकर सभी बड़े आश्चर्य में हुए और श्रीकृष्ण की योग माया के प्रभाव को देख कर उन्हें कोई देवता समझने लगे।

व्रजमें ग्रीष्मऋतु आयी और चली गयी। वृन्दावन की महिमा है ग्रीष्म-ऋतु भी वसन्तके समान मालूम पड़ती है।

इसके बाद वर्षा ऋतु का शुभागमन हुआ। इस ऋतु में अनेक प्रकार के जीव बढ़ जाते हैं। आकाश-मण्डल काले-काले बादलों से भर गया। रह-रह कर मेघ गर्जन होने लगा। चारों दिशाओं में बिजली चमकने लगी। सूर्य, चन्द्र और तारों की चमक आच्छादित हो उठी। मेघाच्छन्न आकाश, गुणों से संयुक्त ब्रह्म की तरह प्रतीत होता था। जैसे राजा पहले कर के रूप में प्रजा से धन संग्रह करता है और बाद में सूखा आदि संकट के समय उसे प्रजा में वितरित कर देता है, वैसे ही सूर्य ने अपनी किरणों के द्वारा पृथ्वी से जिस जल का संग्रह किया था उसे वह उसके सन्तप्त होने पर अपनी कर रूपी किरणों से उड़ेलना प्रारम्भ कर दिया। बिजली की चमक से शोभायमान बादल तेज हवा की प्रेरणा से प्राणियों की भलाई के लिये, अपने प्राणों को न्योछावर कर देते हैं। ग्रीष्म के सन्ताप से पृथ्वी सूख गई थी। अब वह वर्षा के जल से सिक्त होकर उसी प्रकार हरी-भरी हो गई जैसे किसी कामना से तप करनेवाले व्यक्ति का कृश शरीर तप का फल प्राप्त हो जाने पर प्रफुल्लित हो जाता है, हरा-भरा बन जाता है। सायंकाल की बेला में, चतुर्दिक् अन्धकार व्याप्त हो जाने पर तारों का प्रकाश तो नहीं दिखलाई पड़ता, किन्तु जुगनू उसी प्रकार चमकने लगते हैं, जैसे कलियुग में पापों की प्रबलता के कारण पाखण्ड चारों ओर दिखलाई पड़ता है, और वैदिकमय प्राय: विलुप्त-से हो जाते हैं। भूमि के नीचे चुपचाप सोये पड़े हुए मेढ़क बादलों के गर्जन को सुनकर टर्र-टर्र करने लगे जैसे नित्य-नियम से निवृत्त होने पर ब्रह्मचारी लोग वेद-पाठ करने लगता है। कहीं कहीं चातक पुकारते हैं।

इस ऋतु में पृथ्वी प्रसव को धारण करती है। अनेक प्रकार के कीट, पतंग, गिजाई, लाल गुड़िया सर्प, मेंढ़क आदि

प्राणधारियों को उत्पन्न करती हैं। चन्द्रमा पर मण्डल पर मण्डल बैठते हैं। काले बादल घिर घिर कर पशु पक्षी मोर आदि को अति आनन्दित करते हैं। उनकी गरज सुनकर, मोर, सारस, हंस आदि प्रसन्नता से कुहुकने लगते हैं तथा आनन्दोन्मत्त होकर नाचने लगते हैं बिजली चमक-चमक कर कौंधने लगती है और तड़तड़ाने लगती है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि दृष्टि भी नहीं आते हैं। उस काल आकाश ऐसा प्रतीत होता है जैसे ब्रह्मज्ञान से निर्मल जीव को सांसारिक गुण ढक कर मलीन कर देते हैं। सूर्य दयावान राजा की भाँति आठ मास तक पृथ्वी से जल रूप को खींच कर इन महीनों में उसे जल प्रदान करके सन्तुष्ट करता है। बादल दानी पुरुष की भाँति अपने को मिटाकर पृथ्वी को अपना समस्त जलदान करने लगे जिस प्रकार दयावान दानी अपना सर्वदान कर देता है पीछे को कुछ नहीं देखता। यही दशा उस समय बादलों की होने लगीं।

पृथ्वी जल के बरसने से हरी तथा प्रसन्न होती हैं। जिस प्रकार सकाम भाव से तप करनेवाले को तप का फल मिलने पर प्रसन्नता होती है, वही दशा पृथ्वी की होने लगी। संध्याकाल में चन्द्रमा तथा तारागणों के छिपने पर जुगनू चमकने लगे, जिस प्रकार कलियुग में धर्म के लोप होने पर पाखण्डों का प्रचार होने लगता है। वर्षा ऋतु में मेंढ़क इस प्रकार टर्र टर्र करने लगे जैसे मानों ब्रह्मचारी वेद पाठ कर रहे हों। नदियाँ इस प्रकार उमड़ कर बहने लगीं जिस प्रकार छुद्र जनों को सम्पत्ति मिलने पर वे इतरा कर चलने लगते हैं और कुमार्ग तथा अधर्म का अनुसरण करते हैं। किसान, पशु, पक्षी, सभी खेतों की हरियाली देखकर आनन्द से राग अलापने लगे। जल के बरसने से प्राणहीन पृथ्वी के प्राणों का संचार हो गया। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द, रम्यता ही रम्यता छा गई। वर्षा ऋतु में नदियों में जल से समुद्र अपनी ऊँची ऊँची तरंगे मारने लगता है जैसे किसी योगी की कामनवासना जाग्रत होने पर वह सांसारिक विषय भोगों की तरंगें मारने लगता है। पर्वत मूसलाधार जल के प्रहार को इसी प्रकार सहने लगे जैसे संत पुरुष दुष्टों के बचन रूपी प्रहार को सह लेते। आने जाने के मार्ग इसी भाँति घास फूस आदि से रुक गये जिस प्रकार कलियुग में वेद का ज्ञान न होने से कर्म के मार्ग रुक जाते हैं। बिजली कौंध-कौंधकर जगत की अस्थिरता प्रगट कर रही है, कि कुलटा स्त्री तथा दुष्टजनों की प्रगति भी ऐसी अस्थिर होती है। आकाश में इन्द्रधनुष पड़ने लगे। चन्द्रमा बादलों से इसी प्रकार ढक गया जिस प्रकार कर्मों के प्रभाव से निर्मल जीव ढक जाता है। वृक्ष जल पीकर फलों से लदकर झुक गये जिस प्रकार सत्पुरुष तनिक से उपकार को भी अधिक मान कर झुक जाता है।

हे परीक्षित्, वर्षा ऋतु में वृन्दावन की और ही अपूर्व शोभा थी। जामन खरूज के वृक्ष फलों से लद रहे थे। गौयें हरी हरी घास खा खा करके दूध भरे थनों के भार से धीरे धीरे चलने लगीं। जब श्रीकृष्ण उनके नाम को लेकर पुकारते थे तब वे प्रेम के वश दौड़ कर उनके निकट आती थीं। उस समय उनके थनों से दूध झरता जाता था। भगवान श्रीकृष्ण को देख देख कर वन के भील तथा भीलनी भी अति प्रसन्न होते। कल कल की ध्वनि करते हुए झरनों की अपूर्व शोभा थी। श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालों के साथ कभी किसी वृक्ष की खौंहड़ में बैठ जाते कभी किसी गुफा में छिप कर बैठ जाते थे। कभी वन के मीठे मीठे फल खाकर अनेक प्रकार के खेल खेलते। अपना दुपट्टा हिला हिला कर धौरी, पीरी, श्यामा नाम लेकर गौओं को पुकारते।

हे परीक्षित, इस वर्षा ऋतु में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होता है किन्तु ब्रज में विशेष आनन्द रहता है क्योंकि वहाँ सभी ऋतुएँ निवास करती हैं वहाँ सदा बहार वाले वन, वृक्ष झाड़ियाँ, लता पत्रादि उत्पन्न होते हैं और वे सब कृष्णमय रहते हैं।

छोटी-छोटी नदियाँ, जो ज्येष्ठ-आषाढ में शुष्कप्राय हो गईं थी, वे वर्षा ऋतु में तटों को लांघकर उफनाकर बहने लगती हैं, जैसे इन्द्रियों के दास विषयी जनों की सम्पत्तियाँ अमर्यादित रूप से व्यय होने लगती है। कभी भारी वर्षा होती तो कभी छोटी-छोटी बूँद पड़ती।

सारी दिशाएँ हरी-हरी घासों से भर गईं। भूमि ग्वालिनों (गोपबधूटियों) की लालिमा से व्याप्त हो गई। धरती राजलक्ष्मी के

समान छत्राकों (धवल कुकुरमुत्तों) से सुशोभित हो गई। सब खेत लहलहाते हुए धानों से भरे-पूरे थे। उन्हें देखकर किसान तो प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु महाजन (कर्जदाता सूदखोर) जनों के मन में जलन हो रही थी। जल, और नभ निवासी सभी नवीन जल की वृष्टि से सन्तृप्त हो सुहावने प्रतीत हो रहे थे। मूसलाधार वर्षा से आहत होने पर भी पर्वतों को उसी प्रकार कोई व्यथा नहीं होती थी जैसे भगवान का आश्रय लिये हुए व्यक्तियों को दु:खों की मार व्यथित नहीं करती। मयूर सुप्रसन्न हो नाचते हुए नृत्य कर रहे थे। वन में चारों ओर अपूर्व सौन्दर्य विराजमान था। इस ऋतु में मयूर अपने नृत्य तथा कुहक से लोगों के मन को अत्यधिक आकृष्ट करने लगे थे। गर्मी के दिनों में जो वृक्ष सूख गये उनमें नये पत्ते निकल आये। सर्वत्र अत्यधिक आनन्द की वृद्धि होने लगी।

बेलि विविधलपटी ललितफूल रहे बहुरंग। शोभित सहस श्रृङ्गारजिमि नारिपुरुषके संग।।
शोभावृन्दाविपिनकी बरणिसकै कवि कौन। शेष महेश गणेश विधि पार न पावत तौन।।
महिमा अमित अपार श्रीवृन्दावनधाम की। जहँनित करत बिहार परब्रह्म भगवान हरि।।

भगवान श्रीकृष्ण वृन्दावन का अनुपम सौन्दर्य देखकर क्रीड़ा करने के लिये गायों, गोपालों और बलराम के साथ वहाँ पहुँचे।

गायें विशाल स्तनों के भार से धीरे-धीरे चल रही थीं। जब श्रीकृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वे प्रेम परवश हो जल्दी-जल्दी दौड़ने लगतीं। उस समय उनके थनों से दुग्ध की धार प्रवाहमान होने लगती थी। जब वर्षा होने लगती थी तब भगवान श्रीकृष्ण वृक्ष के मूल में आश्रय लेते। कभी कन्द-मूल-फल खाकर ग्वालबालों के साथ क्रीडा करते। कभी जलाशय के तट पर धुली हुई स्वच्छ शिलाओं पर दही-भात रखकर, श्रीदामा आदि साथियों के साथ, खाते थे।

वर्षा ऋतु में बैल, बछड़े और थनों के भार से श्रान्त गायें सभी थोड़ी ही देर में भरपेट हरी-हरी घास चरने के बाद बैठकर जुगाली करते थे। इस प्रकार वर्षा ऋतु की सुन्दरता अपार थी। सारे प्राणियों के लिये वह सुखप्रद थी। नि:सन्देह वर्षा, ग्वाल-बाल और गायें- सब-के-सब श्रीकृष्ण की लीला के विलास थे फिर भी उन्हें देखकर भगवान बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते थे।

वन के सघन वृक्षों को देखकर गोपियां कहतीं- वृक्षों, तुम्हारा ही जीवन सफल है, तुम कहीं जाते नहीं, अपने ही स्थान पर अड़े रहते हो, श्याम स्वयं आकर तुम्हारे नीचे बैठते हैं, हम तो छटपटाती रहती हैं, बिलबिलाती रहती हैं, इधर-से-उधर भटकती रहती हैं, श्याम हमारे समीप आकर बैठ जायँ, किन्तु हाय। हमें ऐसा सुअवसर नहीं प्राप्त होता। फिर पाषाणों को निहारकर कहतीं- पाषाणों, तुम ही धन्य हो, जो तुम्हारे ऊपर बैठकर श्यामसुन्दर दही भात खाते हैं, अपना उच्छिष्ट अन्न तुम्हारे ऊपर डालते हैं, अपने हाथों से प्यारे को खिलाने में कितना सुख है, उनके अधरामृत से उच्छिष्ट प्रसाद में कितना स्वाद है, ये कुछ कहने की बातें नहीं है, हाय। ब्रज की शिलायें ही होती- तो कृतार्थ हो जातीं। श्यामसुन्दर हमारे ऊपर लेट तो जाते, गौएँ चराते-चराते थककर विश्राम तो करते, अब तो हम उनके किसी काम में नहीं आयी।

फिर गौओं को देखकर उनके हाथ जोड़ती, उन्हें दण्डवत् करतीं और कहतीं- गौओं, जीवन तो तुम्हारा ही सफल है। श्यामसुन्दर का सुखद स्पर्श तुम नित्य प्रति पाती हो वे तुम्हारी पीठों को थपथपाते हैं हमारे ऐसे भाग्य कहाँ, वे तुम्हारा नाम लेकर पुकारते हैं, तुम दौड़ी-दौड़ी उनके निकट चली जाती हो, हमें वे न पुकारते हैं न बुलाते हैं, हमारे तो नामों को भी न जानते होंगे। हमें उनका रोमाञ्चकारी दिव्य स्पर्श कैसे प्राप्त हो सकता है। हम उनके निकट भी निर्भय होकर नहीं जा सकतीं। ये सास ननँद, देवर, जेठ सब चारों ओर से बाढ़ बनाये खड़े हैं।

हाय, हम ब्रज की रज भी न हुई। ब्रज की रज होती तो वसन्त और ग्रीष्म में उड़-उड़कर श्याम के पलकों में, अलकों

में, कपोलों में, वक्ष:स्थल में बाहुओं में लग जातीं और वर्षा में कीचड़ बनकर उनके चरणों में लिपट जातीं।

शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित, जब वर्षा ऋतु आई तब राधाप्यारी ने श्यामसुन्दर से कहा कि तुम झूला झूलने की लीला करो तो हम सब सखियाँ तुम्हारे साथ झूला झूलकर बरसात के गीत गावें। यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर ने जड़ाऊ झूला कुंजों में डलवा दिया। राधाप्यारी आदि व्रजबाला उत्तम भूषण और अनेक रंग के वस्त्र पहिनकर श्यामसुन्दर के साथ झूलने व गाने लगीं। उस समय वृन्दावनविहारी ने मुरली सुनाकर और अनेक राग-रागिनी से गाकर उन्हें अति प्रसन्न किया। वह आनन्द देखने के लिए ब्रह्मादिक देवता और गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर चढ़कर वृन्दावन में आये। बड़े हर्ष से राधाकृष्ण पर फूल बरसाकर व्रजबालों के भाग्य की बड़ाई करने लगे। इसी तरह बरसात भर राधा आदि गोपियों के साथ विहार करके उन्हें सुख दिया।

भगवान अपनी बांसुरी की तान छोड़ते हैं। इससे गौएँ, ग्वाल-बाल गोपियों के शरीर सिहर उठते हैं। सभी गोचारन जाते हैं, बालसुलभ क्रीड़ा करके घर वापस आते हैं। इसप्रकार वर्षा ऋतु बीत गयी।

वंशी धुन धुन विह्वल गोपियाँ लागीं मन समझाने ।। किन्तु मन चंचल हो श्याम मिलन के लिए अधीर हो उठा और इस अधीरता का कारण श्याम की वंशी थी। इस प्रकार श्याम और बलराम बड़े आनन्द से व्रज में विलास कर रहे थे। इसी समय वर्षा के बिदा होने पर शरद् ऋतु का आगमन हुआ।

जल आकाश निर्मल भयो वर्षाऋतु के अन्त। जैसे उज्ज्वल चित सदा माखनप्रभु के सन्त ।।

आकाश बादल-विहीन हो गये। जैसे योग-भ्रष्ट पुरुषों का चित्त पुन: योग का सेवन करने से मलविहीन बन जाता है, वैसे ही शरद ऋतु के आगमन से नदियों के जल निर्मल बन गये। वायु का वेग भी समाप्त हो गया। इस ऋतु में निर्मल जलाशय विकसित कमलों से भर गये जैसे भगवान् की भक्ति सारे आश्रम-वासियों के समस्त सन्तापों को समाप्त कर देती है, वैसे ही शरद ऋतु ने गगन के बादल, वर्षाकाल में बढ़े हुए जीव, पृथ्वी के कीचड़ और जल की मलिनता को नष्ट कर दिया। मेघ अपना सर्वस्वरूप जल त्यागकर कर शुभ्र बन गये, जैसे कि मुनि-गण कामनाओं का परित्याग कर निर्मल एवं शान्त हो जाते हैं। साधना करके सिद्ध पुरुष जिस तरह समय आने पर अपने देव आदि शरीरों को प्राप्त करते हैं उसी तरह वैश्य, स्नातक, संन्यासी और राजा जो वर्षा के कारण एक स्थान पर रुके पड़े थे, चलकर अपने-अपने अभीष्ट कार्यों में लग गए।

सबसे सुख भारी अब जानों, स्वाद सुगंध रूप पहिचानों। निशि नक्षत्र उज्ज्वल आकाश, मानें निर्गुण ब्रह्म प्रकाश ।।

चार मास जी विरमे गेह, भये शरद नित तजे सनेह। अपने अपने काज सिधाये, भूप चड़े तकि देश पराये ।।

शरद ऋतु में सागर का जल वैसे ही स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया, जैसे योगिजन शब्दाडम्बर का परित्याग कर अपने परमार्थ रूप में स्थित हो जाते हैं। मेघ-विहीन आकाश-मण्डल चमकते हुए नक्षत्रों एवं ताराओं से शोभा सम्पन्न बन गया। परीक्षित्, जैसे भूतल पर यदुवंशियों के मध्य भगवान श्रीकृष्ण की शोभा होती है, वैसे ही आकाश में तारों के बीच पूर्णचन्द्र सुशोभित होने लगा। उसकी दुग्ध जैसी चन्द्रिका भूतल पर दूध की सरिता-सी बहाने लगी। नवीन अन्न के आ जाने से लोग नवान्न-प्राशन का उत्सव मनाने लगे। खेतों में धान पक कर लटक गये। पृथ्वी भी श्रीकृष्ण और बलराम की उपस्थिति से शोभायमान हो उठी। वर्षा के कारण अवरुद्ध कार्य प्रारम्भ हो गये। सभी लोग अपने-अपने कार्यों में जुट गये।

शरद ऋतु में गौएँ, हिरनियाँ चिड़ियाँ तथा नारियाँ सभी ऋतुमती होकर अपने अपने प्रियतमों से मिलने की इच्छा करती हैं। साँड़, हिरन, पक्षी तथा पुरुष उनका अनुकरण करके उन्हें ऋतुदान करने लगे। कुमुदनी को छोड़कर सभी कमल खिलने लगे। ग्रामों में नवीन अन्न प्राशन होने लगा। जो मनुष्य वर्षा के कारण घरों में बैठे रहते थे, वे सभी अब काम काजों में लग गये।

श्रावण में अपने-अपने पिताओं के घर में आई हुईं लड़कियाँ अपनी-अपनी ससुराल को जाने लगीं। व्यापारी बैलों को लादे व्यापार के लिये निकल पड़े। राजागण युद्ध के लिये सुसज्जित होकर दिग्विजय के लिये सेना सहित जाने लगे। गोपिकायें कहाँ जातीं वे जिसे भी देखतीं उसी को देखकर रोने लगतीं। नदियों के जल को स्वच्छ देखतीं तो कहती- बहिनों, तुम्हारा जल तो निर्मल हो गया, किन्तु हमारे मन का मैल नहीं कटा। हमारा मन और भी अधिक मलिन हो गया है। मोहन जब तक अपने तन-से-तन और अपने मन-में मन न मिलावें तब तक हम मलिन मन वाली ही बनी रहेंगी। देखो, तुम्हारे भीतर के कमल खिल गये, किन्तु हमारा मन मुकुर अभी विकसित नहीं हुआ। वह अभी बन्द है। श्यामरूप सूर्य का दिव्य प्रकाश जब तक प्राप्त न हों, तब तक वह खिल ही कैसे सकता है।

छोटे-छोटे पोखराओं में रहनेवाली मछलियों को शरदकालीन सूर्य के प्रखर ताप में संतप्त देखकर गोपिकायें कहतीं- मछलियो, हमारा तुम्हारा दु:ख समान है, तुम भी ताप से संतप्त होकर तड़प रही हो और हम भी, किन्तु हममें और तुममें कुछ अन्तर है, तुम हमसे अधिक भाग्यशालिनी हो। एक तो वर्षा में तुमने अपने जीवनधन की अगाधता और प्रचुरता का सुख भोग लिया है हम सब अभी उससे वंचित हैं, दूसरे तुम्हें रात्रि में तो शान्ति मिलती है, हम तो रात्रि-दिन तड़पती रहती हैं। यह तड़पन कब मिटेगी, इसे श्यामसुन्दर ही जानें।

मुग्धा सखी लताओं से कहने लगीं- लताओं, जल रूप जीवन पाकर तुम कच्ची से पक्की हो गयीं, छोटी से बड़ी बन गयीं, उस प्रकार हम बढ़ तो गयीं किन्तु श्यामसुन्दर का स्पर्श न पाकर अभी जैसी-की-तैसी ही बनी हैं।

शरदकालीन चन्द्र को देखकर वे कहतीं- हे निशानाथ, संसार में तुम सर्वश्रेष्ठ सुन्दर माने जाते हो। कवियों ने शारदीय शशि की सुन्दरता के वर्णन में सीमोल्लंघन कर दिया है। तुम शरद्कालीन सूर्य की प्रखर किरणों से संतप्त प्राणियों को रात्रि के समय शान्ति प्रदान करते हो, किन्तु हमें तुम और भी अधिक सन्ताप पहुँचाते हो।

चन्द्रमा के साथ खिली हुई ताराओं को देखकर कहतीं- तारिकाओ, नभ में रहने का फल तुमने ही पाया है, जो शशांक निशा के नाथ होने पर भी तुम सबके नाथ बने हैं, तुम सबको खिला रहे हैं, रिझा रहे हैं, प्रमुदित बना रहे हैं। हमारे नाथ तो हमें खिझाते हैं, रुलाते हैं, समीप भी नहीं आते। वंशी बजाते हुए टेढ़े-टेंढ़े निकल जाते हैं।

पुरुष, पुरुष से भले ही कोई बात छिपा ले, किन्तु स्त्री, स्त्री से कोई बात नहीं छिपाती। तुम तो हमारी जाति की हो, अन्तर इतना है कि तुम सौभाग्यशालिनी हो, तुम्हें पति का संयोग प्राप्त है, हम उसके लिये लालायित हैं, इच्छुक हैं।

किसी सुखद वस्तु में प्राणी चित्त नहीं लगाता तब तक वह उसके सुख को अनुभव नहीं कर सकता। सो हे पवनदेव तुम्हारी ये बातें सत्य हो सकती हैं, किन्तु हम अपने चित्त को तुममें लगावें कैसे? चित्त हमारे पास हो, तो उसे लगावें भी। हमारे चित्त को तो चित्तचोर श्यामसुन्दर ने चुरा लिया है। जो अपने पास है ही नहीं, उसका प्रयोग कर ही कैसे सकते हैं।

गौओं मृगियों और पक्षिणियों को देखकर वे विरह सन्तप्ता गोपिकायें कहने लगीं- बहिनाओ, इस ऋतु में आकर तुम सब ऋतुमती बन गयी हो। तुम्हारा ऋतुकाल सार्थक है, जो तुम्हारे पति अनाहुत भी तुम्हारा अनुशरण कर रहे हैं। हम अभागिनी तो इस सुख से वंचित हैं।

सूतजी कहते हैं- मुनियो, इस प्रकार श्रीकृष्ण अनुराग में अनुरक्ता वे ब्रजाङ्गनाएं जलाशयों के जल को स्वच्छ करनेवाली जिस शरद् ऋतु में इस प्रकार तड़प रही थीं, उसी शरद् ऋतु में श्यामसुन्दर ने गोपाल और गौओं के साथ कुसमित कानन में प्रवेश किया। उस वन की शोभा अनुपम थी, शरदकालीन कमल खिल-खिलकर हिल रहें थे, सुगन्धियुक्त पुष्पों और फलों के भार से नमित पादपों पर सुनाई देनेवाले पक्षियों के कलरव से ऐसा प्रतीत होता था मानों वे अपने हाथों को हिलाकर मधुर स्वर

में पथिकों को विश्राम के निमित्त बुला रहे हों। भिन्न-भिन्न करके भौंरे मानों भिन्न-भिन्न स्वरों में गा रहे हो। पक्षियों का कलरव गिरि गुहाओं में, नद नदी तथा सरिता सरों के स्वच्छ सलिल में प्रतिध्वनित होकर वन्य प्रदेश में एक प्रकार की विचित्र गूँज को भर रहा हो। ऐसे सुखद समय में ऐसे शोभायुक्त वन में वनवारी ने वंशी बजायी।

सुखद शरदको समय सरित सर स्वच्छ भये सब। गो गोपाल समेत श्याम प्रविशे बनमहँ तब।।

शारदीय बिकसे कमल, प्रकृतिबधू सब विधि सजी। हिय मनसिजकूँ उदय करि, तब मोहन मुरली बजी।।

कृष्ण बलराम से बोले- इन दिनों भोजन की वस्तु में स्वाद मालूम होता है, सब छोटे-बड़ों को अनेक तरह का सुख मिलता है। गृहस्थ को अपने घर रहने में सुख प्राप्त होता है।

मुझे वृन्दावन का ऐसा सुख तीनों लोकों में नहीं मिलता, इसलिए मनुष्य तन धारण करके ब्रज में रहकर वृन्दावन को वैकुण्ठ से प्यारा जानता हूँ। तुम यहाँ के वृक्षों को कल्पतरु से कम न समझो। वृन्दावनवासी सब जड़ व चैतन्य जीव अपने प्राणों से अधिक मेरी प्रीति रखते हैं।

जाके वश मैं रहत हूँ अपनी प्रभुता त्याग। प्रेम भक्ति सो लहत नर वृन्दावन अनुराग।।

श्री शुकदेव बोले- परीक्षित्, शरद ऋतु के कारण वृन्दावन की अपूर्व शोभा हो रही थी। सरिता-सरोवरों के जल निर्मल थे। जलाशयों में विकसित कमल-कमलिनी, कुमुद, कुमुदिनी आदि पुष्पों की सुगन्ध से भरपूर वायु मन्द-मन्द बह रही थी। उसी समय भगवान श्रीकृष्ण ने गायों और ग्वालबालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश किया।

सुन्दर-सुन्दर पुष्पों से परिपूर्ण हरी-हरी वृक्ष-पंक्तियों पर मतवाले भ्रमर गुनगुना रहे थे और भाँति-भाँति के पक्षी कलरव कर रहे थे, जिससे उस वन के सरोवर, नदियों और पर्वत-सब-के-सब गूंज रहे थे। इससे प्रतीत होता था कि सारा-का-सारा वृन्दावन भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति गान कर रहा है। भगवान से मिलने के लिये केवज ब्रज-वनिताएँ ही नहीं, अपितु परा-अपरा प्रकृति सब लालायित हैं। वृन्दावनधाम के तरु, लता, गुल्म, सरसी आदि सभी भगवत्सम्मिलन के लिये लालायित हैं। क्योंकि अप्राकृत भगवान की लीला प्राकृत पदार्थों से नहीं हो सकती, इसलिये निखिल रसामृतमूर्ति श्रीकृष्ण ने वृन्दावन स्थित सकल तत्त्वों में अन्तरङ्गतया निर्विष्ट होकर उन्हें रसमय, अप्राकृत बना लिया। अब श्रीकृष्ण की उसने क्रीडा ठीक-ठीक तरह से हो सकेगी।

मधुपति (मधु अर्थात वसन्त के प्रति मधुपति। वनों को वसन्त ही महिमा-मण्डित कर देता है। अब जब मधुपति ही वृन्दावन में प्रविष्ट को गये तो फिर उसके सौन्दर्य-माधुर्य सौगन्ध्य के बारे में कहना ही क्या है फिर तो वृन्दावन को अपूर्व होना ही है।) श्रीकृष्ण ने बलराम जी और ग्वालबालों के साथ गायों को लिए हुए वृन्दावन में प्रवेश किया। वहाँ गायों को चराते हुए उन्होंने अपनी वंशी पर मधुर तान छेड़ दी। यद्यपि ब्रज की देवियाँ, ब्रज की गोपियाँ उस समय ब्रज में थीं और वंशी-कूजन करनेवाले श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ वन में थे। तथापि गोपियों को, आसक्ति के बल पर, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो श्रीकृष्ण उनकी आँखों के सामने खड़े होकर वंशी बजा रहे हैं।

मधुर वचन सुन श्यामके सखावृन्द सुखपाय। प्रेम पुलकतन मुदित मन रहे सबै गहि पाय।।

धनिधनि तुम श्याम धनिव्रजधनिवृन्दाविपिन। तुम्हरे गुण अभिराम हम सब कछु जानैं नहीं।।

शुकदेव बोले- राजन्, उस सुहावनी मनभावनी शरद ऋतु में जब भगवान श्रीकृष्ण नटनागर जगत उजागर अपनी वेणु बजाने लगते और मधुर स्वर में उस पर गीत गाने लगते, तब प्राणियों की तो बात ही क्या जड़ भी मुग्ध हो जाते। वह त्रिलोक्यमोहिनी वंशी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, जड़, चेतन आदि सभी को अपने वश में किये रहती थी। सबके मन

उसीके साथ चलते थे। वंशी की ध्वनि भगवान श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम तथा उनसे मिलने की आकांक्षा जो जाग्रत करती थी। वेणुनाद का श्रवण जीव को परमात्ममिलन की चाह से भर देता है।

सभी गोपियाँ एकान्त में बैठ जातीं और उनकी लीलाओं तथा उनकी बाँसुरी के गुणों का परस्पर वर्णन करने लगतीं। जब वे वंशी का स्मरण करतीं तब उसी के साथ भगवान श्रीकृष्ण का उन्हें स्मरण हो आता। उनकी मधुर मुस्कान, उनके संकेत, सुन्दर चितवन आदि का स्मरण करने लगतीं। उनका मन चितचोर मनमोहन में ही लगा रहता। वे अपने स्थूल शरीर की सुधबुध भूल कर मन द्वारा उनका आलिङ्गन करने लगतीं उनका मन श्रीकृष्णमय हो जाता। वे मन ही मन उनका चिंतन करने लगतीं।

कारण करणअनन्तगुणनिगम भेदनहिं पाव। सो ग्वालन सँग गावहीं देखो भक्ति प्रभाव।।

सो धुनिसुनिकरि गोपिका लाजकाज बिसराय। माखनप्रभु के दरशको घर से निकलीं धाय।।

बंशी के संगीतसे शिलाएँ मृदुल हो गयी- अपना काठिन्य त्याग दिया किंतु यह स्वर तो सृष्टिके अणु-अणुको सुधा-सिञ्चित कर रहा है। कण-कणमें सुधाका संचार हो गया।

कृष्ण की वंशी में छः राग व छत्तीस रागिनी गाकर उसमें ग्वालबालों का नाम लेने लगे। मुरली बजाते समय अपनी आँख व भौं से ऐसा भाव बतलाया कि देखनेवाले मोहित हो गये।

बछड़े, मृग, केशरी मूर्त्ति के समान जड़-स्थिर हैं। स्थिर हैं वृक्ष शाखाओंपर पक्षी। गन्धवह मरुतके भी पद-सञ्चारका पता नहीं। प्रत्येक पत्र स्थिर है।

कपि कूदने जा रहा था दूसरी शाखापर। वह हाथ उठाये उसी मुद्रामें मानो मूर्त्ति बन गया। पक्षीने पंख फैलाये थे, वह पक्ष समेट नहीं सका है। मृगी मुखमें तृण लिये स्तब्ध खड़ी है। उसके शिशुने माताके स्तनमें मुख लगाया था, शिशुके मुखके पार्श्वोंसे मुखका दूध बह रहा है। नीलकण्टने चारा पकड़ा था चंचुमें। चारा छूट गिरा और वह कृमि वहीं स्थिर है जीवित होनेपर भी। नीलकण्ठ पृथ्वीपर ही पक्ष फैलाये, मुख खोले रह गया है।

तब अन्य बोली- सखि, इस बाँसुरी की महिमा हम अधिक कुछ कह भी नहीं सकतीं, इसने तो ब्रह्माजी के विधान को भी विपरीत बना दिया। जब श्यामसुन्दर अपने बड़े भाई बलदेवजी तथा समस्त साथियों के सहित गौओं को आगे करके एक वन से दूसरे वन में जाते हैं, तो उस समय मधुरपदावली युक्त उदार वंशी ध्वनि को सुनकर अचर सचर सभी जीवों की विचित्र दशा हो जाती है। अचर तो सचर दिखायी देने लगते है और सचर, अचर बन जाते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी जितने भी सचर प्राणी हैं वे तो वेणुनाद को सुनते ही स्तम्बध स्तम्भित हो जाते हैं और जो वृक्ष आदि अचर हैं उनके शरीर रोमाञ्चित हो जाते हैं। इतना कहते-कहते वह भी मूर्छित हो गयी।

हरि मुरलीकी तान सुनि, होहिँ अचर चर, चर अचर। पान करहिँ बेसुधि बनहिँ, बेनुमाधुरी परस्पर।।

गतिका नाम नहीं है किसी पिपीलिका तकमें। सबके एक-एक रोम उत्थित हैं और उनसे स्वेद, नेत्रोंसे अश्रु झर रहे हैं। रोमाञ्च तो वृक्षोंमें लक्षित हो रहा है। पृथ्वीका एक-एक तृण ऊर्ध्वमुख खड़ा है। तरुओंकी शाखाओंसे, तनेसे, पत्र-मूलसे रसस्त्राव हो रहा है। शिलाएँ- कंकड़ तक केवल मृदु नहीं हुए हैं- उनमें अजस्त्र रसधारा बहने लगी है।

गति नहीं है किसी चरमें-चेतनमें। सब जड़के समान स्थिर हैं; किंतु गति है, सर्वत्र गति है- समस्त अचर-जड़ गतिशील हो गये हैं। सबके शरीरसे स्वेद चल रहा है। सब वृक्ष-लताओंसे मधुधारा झर रही है। सब शिला-पाषाण निर्झरोंको प्रकट कर रहे हैं। कालिन्दीकी धारा उलटी अपने उद्गमकी ओर बहने लगी है। उत्ताल तरंगे उठ रही हैं यमुनामें और राशि-राशि

पद्म-पुष्प पता नहीं कहाँसे लाकर सूर्यसुता उत्सर्ग कर रही हैं अपने इन आराध्यके श्रीचरणोंमें।

प्रकृति नीरव है। भृंग, मक्षिका तकका कोई स्वर कहीं नहीं। केवल वंशीका नाद- वंशीकी ध्वनि गूँज रही है। सम्पूर्ण अन्तरालको गुञ्जित करती, अद्भुत आह्लादोंमें स्नात करती वंशी-ध्वनि गूँज रही है। भूत, भैरव, विनायक, प्रेत-पिशाच, योगनियाँ, भृंगी, नन्दी सभी अपना होश खो बैठे।

व्रजाङ्गनाओं ने पहले श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये कात्यायनी के व्रत का अनुष्ठान किया था, वैसे ही गोपबालाओं की प्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण ने वंशी की आराधना की थी। वंशी साधारण बाँस नहीं, यह साक्षात् रुद्र है- रुद्रस्तु भगवान वंश:। शिव की आराधना के बिना प्राणी को अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती।

बाँसुरी बजै तो ब्रज हम ना बसैगी बीर। बाँसुरी बजावो लाल हमें विदा दीजिये।।
जेते राग तेते दाग जेते छेद तेते भेद। जेतौ सौर तेतौ घोर रोम-रोम छीजिये।।
तान के तिरीछे बान लागते हैं मोहि आन। श्रवनन सुनत जान बन में बसीजिये।।
बन्शी का छोड़ो श्याम विनय करत ब्रज की वाम। ऐसी कीन्हीं सूर प्रभु ऐसी हू न कीजिये।।
और विष जैते तेतौ प्रान के हरैया होत। बन्शी के काटे की कभी जाय ना लहर है।।
सुनत ही रोम-रोम रीझ जाय एरी दैया। जोम जारि डारै पारै बेकली जहर है।।
ग्बालकवि तोसों जोर कर पूछत हों। साँचु कहि दीजै जोपै मोपै महर है।।
बाँस में कि छेद में कि होठ में कि फूँक में। कि आँगुरी की दाब में धुन में जहर है।।

वृन्दावनमें सबसे बड़ा आनन्द तो व्रजदेवियोंके दर्शनका है। वे गाँवकी गँवार ग्वालिनें प्रेमकी मूर्तियाँ ही हैं। नगरकी बनावट उन्हें छू तक नहीं गयी है। कितनी भोली हैं वे। उस दिव्य राज्यमें कपटका तो प्रवेश ही नहीं है। केवल उनका हृदय ही दिव्य नहीं है, शरीर भी दिव्य है। सामने यह वृन्दावन है। कितना सुन्दर है यह धाम। वृन्दावनमें श्रीकृष्णका ध्यान नहीं करना पड़ता। यहाँ तो वे ही इन गोपियों का ध्यान करते हैं, इनके पीछे-पीछे घूमते हैं।

गोपी-प्रेम का प्रकाश करनेवाली भगवान्की वृन्दावनलीला सर्वथा अनिर्वचनीय है। वह कल्पनातीत, अलौकिक और अप्राकृत है। कितना गम्भीर प्रेम है। इनका हृदय इनके हाथमें नहीं है, निरन्तर श्यामसुन्दरके पास ही रहता है। इनके हृदयमें श्रीकृष्णकी बाँसुरी बजती ही रहती हैं, एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती। ये प्रतिपल उनके मधुर संस्पर्श और रूप-सुधाके पानके लिये आकुल रहती हैं। घरमें, वनमें, कुञ्जमें, नदी-तटपर जहाँ भी ये रहती हैं वहाँ इनका मन उसी चितचोर मोहनको देखनेके लिये मचलता रहता है। अब घरका काम-धन्धा कैसे हो? इन्होंने सोचा- यह हृदयकी विवशता तो अच्छी नहीं है, इसको अपने हाथमें करना चाहिये। यह कैसे हो? बिना योग किये यह वशमें कैसे आये? इसलिये आप योग कर रही हैं। कितना आश्चर्य है। बड़े-बड़े मुनिगण प्राणायाम आदि साधनोंके द्वारा मनको विषयोंसे खींचकर जिनमें लगाना चाहते हैं, उन्हींसे मनको हटाकर यह गोपी विषयोंमें लाना चाहती है। बड़े-बड़े योगी जिनको अपने चित्तमें तनिक-सा देखनेके लिये लालायित रहते हैं, उन्हींको यह मुग्ध गोपी अपने हृदयसे निकाल देना चाहती है।

वृन्दावन की ब्रजाङ्गनायें परस्पर कह रही हैं- सखियों, हम तो नेत्रवालों के नेत्रों का परम लाभ यही समझती है कि श्रीकृष्ण अपने सखाओं के सहित गौओं के पीछे-पीछे चलकर वन से लौटकर ब्रज में प्रवेश कर रहे हों। राम श्याम दोनों नन्द के कुमारों का प्रणय कटाक्षयुक्त मुख, बजती हुई बंशी से सुशोभित हो रहा हो उस सुखामृत का जिन्होंने नेत्रों द्वारा पान किया हो; वे ही धन्य हैं इसके अतिरिक्त नेत्रों की सार्थकता और कुछ नहीं।

नेत्र पाने का मुख्य लाभ हैं नेत्रों से श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम गोपोंके साथ अपनी गायोंको लेकर वन जाते या लौटते अपने अधरों पर तिरछी चितवन से हमारी ओर देख रहें और हम उनकी मुख माधुरी का पान करें।

बहरो मोइ बनाइ दें, ब्रजतें नातौ जोरिकें। अपर शब्द कबहूँ न सुनूँ, मुरली धुनिकूँ छोरिकें।।

कामरूपी कृष्ण को कोई बाहर खोजे तो वह नहीं मिलता। वृन्दावन के बाहर वह जाता ही नहीं। वह तो गोष्ठ (शरीर) के समीप ही वृन्दावन में (हृदय कमल मध्य में) वंशी बजाता है। उसकी वंशी मादकता पूर्ण होती है, जिसने भी एकाग्रचित्त से उसे सुन लिया फिर वह अपने आपे में नहीं रह सकता। संसारी काम, बन्धन कराता है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध का काम संसार से मुक्ति कराता है।

दूसरे लोगों ने वेणु-कूजन सुना और गोपियों ने वेणुगीत को सुना। कूजन ध्वनिमात्र होता है और गीत में एक प्रकार का सन्देश रहता है। मानो वेणुगीत को सुनकर गोपियों को श्रीकृष्ण का उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण हुआ। कुछ व्रजाङ्गनाओं के मन में वस्तुत: काम का भी उदय हुआ। वे एकान्त में अपनी सखियों से उनके रूप, गुण और वंशी ध्वनि के प्रभाव का वर्णन करने लगीं। मन से एक समय एक ही कार्य हो सकता है, या तो वे अनुभव करें, या स्मरण करें। परन्तु अनुभव या स्मरण के साथ-साथ वर्णन नहीं हो सकता। वेणुगीत ने गोपियों का मन विक्षिप्त कर दिया था, उसे श्रीकृष्ण के पास पहुँचा दिया था अत: वे वर्णन न कर सकीं। परन्तु भगवान गोपियों से वर्णन कराकर स्वयं अपनी अधर-सुधा का पान करना चाहते थे। भगवान की अधर-सुधा के तीन भेद हैं- देवभोग्या, भगवद्भोग्या और सर्वभोग्या। वेणु द्वारा निर्गत भगवान के अधर की सुधा कर्णरन्ध्रों के द्वारा गोपियों के हृदय में प्रविष्ट होकर जब भगवान के वर्णन के रूप में निकलती है, तब उसका आस्वादन भगवान करते हैं। यही है अधरसुधा का भगवद्भोग्या होना। देवभोग्या अधरसुधा का पान पशु, पक्षी एवं वृक्ष वन सभी ऋषि, मुनि एवं देव करते हैं। सर्वभोग्या का पान गोपिकाएँ और अन्य गोप करते हैं।

अत: न चाहते हुए भी, आसक्ति में भी, श्रीकृष्ण के स्वरूप की प्रशंसा के शब्द गोपियों के मुख से अपने आप छलक कर निकल पड़े। ये ही गोपियों के उद्‌गार हैं। भगवान कृष्ण नटवर वपु को धारण किये हुए, मोर के पंख का मुकुट धारण किये हुए, वैजयन्ती माला पहने कानों में कर्णिकार धारण किये हुए, पीताम्बर पहने हुए, अधर-सुधा से वेणु-छिद्रों को पूरित करते हुए, गोपबालकों के संग हर्षोल्लास से वृन्दावन धाम में पधारे।

जब हरि मुरली अधर धरत। थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत।।
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत। पसु मोहैं सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत।।
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत। सूरदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिं लहत।।

जब श्रीकृष्ण मुरली को अपने होठों पर धारण करते हैं तो न चलनेवाले (वृक्ष आदि) भी चल पड़ते हैं और चलने वाले (जीव) स्थिर हो जाते हैं। हवा रुक जाती है और यमुना का जल नहीं बहता। पक्षी मोहित हो जाते हैं। जानवरों के झुंड रास्ता भूल जाते हैं। कृष्ण की काम-छवि देखकर सभी छल जाते हैं। पशु मोहित हो जाते हैं, गाएं स्तब्ध हो जाती हैं और घास को दांतों में रोके रखती हैं। शुकदेव मुनि और सनक-सनंदन आदि परमहंस जैसे मुनि भी मोहित हो जाते हैं। थोड़ी देर भी उनका ध्यान नहीं लगता। सूरदासजी कहते हैं कि वे बड़े भाग्यवान हैं, जो कृष्ण के मुरलीवादन का सुख पाते हैं।

एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि मुरली अभिमान से भरी हुई है। वह किसी को कुछ नहीं समझती। उसने कृष्ण के मुख रूपी कमल देश पर सुख का राज पाया है। उनके हाथ पर पीठ रखकर बैठती है। उनकी दृष्टि और होठों की छत्रछाया पाती है। उसके ऊपर उनके घुंघराले लटकते हुए बालों का चमर ढुल रहा है। अनेक प्रकार के जो स्वर गाए जा

रहे हैं, उनकी संगीत-सभा लगी हुई है। मुरली यमुना के जल को सागर की ओर जाने नहीं देती (यमुना के जल का बहना रुक गया है)। यह ऊपर के देवताओं के विमानों को बुला लेती है। देवता लोग श्रीकृष्ण की मुरली सुनने के लिए अपने-अपने विमानों पर आकाश में मंडराते रहते हैं। जो न चलनेवाले हैं, वे भी चल रहे हैं और जो चलनेवाले हैं, वे स्थिर हो गए हैं। इस प्रकार सबको जीतकर ब्रह्माजी की रीति को भी मिटाकर अपनी रीति चला रही हैं। सूरदासजी कहते हैं कि सारे देव, मनुष्य, मुनि, और नाग मुरली के वश में हैं। इसके प्रेम में पड़कर श्रीविष्णु भगवान ने लक्ष्मी तक को भुला दिया है।

मुरली वन के बांस (वृक्ष) से बनती हैं, किंतु उसने समस्त भूमंडल को अपने वश में कर रखा है, अत: कवि उसकी वन के उस राजा से उपमा देता है, जो विश्व-विजयी है। पद में एक सांगरूपक द्वारा मुरली का ऐश्वर्य दिखाया गया है।

मुरली रूपी वन के राजा ने युद्ध में विजय प्राप्त की है। विजय प्राप्त करने के कारण अपने बल से इसने सबकी रीतियों को मिटाकर अपना शासन चलाया है। शील (सदाचार) रूपी हाथियों का झुंड तितर-बितर हो गया। लज्जा की सेना भाग गई। घूंघट के किले टूट गए और नेत्र रूपी घोड़े भाग गए। मुरली की ध्वनि सुनते ही गोपियां लोक-शील, नारीसुलभ लज्जा, अपने मुख पर का घूंघट और नेत्रों की शरम को छोड़ बैठती हैं। किसी ने अपने पति का घर छोड़ दिया और किसी ने अपने प्राण ही छोड़ दिए। (यज्ञ-पत्नी लीला में बताया गया है कि कुछ गोपियां अपने पतियों की परवाह किए बिना चली गईं और जिस गोपी को रोका गया उसने अपने प्राण ही त्याग दिए) किसी ने अपने कान से मुरली के माध्यम से श्रीकृष्ण के यश को सुनकर आनंद-लाभ किया। कुछ प्रभु के चरणों को स्पर्श करके अपने-अपने देश गए। कुछ राजा थे, इस मुरली की धुन को सुनकर अपना सब कुछ त्यागकर फकीर हो गए। इस बंशी के यश-गान के रूप में काम हवा से मिलकर दसों दिशाओं में इसकी दुहाई देता है। सूरदासजी कहते हैं कि औरों की कौन कहे, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण इस मुरली के वश में है।

एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि मुरली अभिमान से भरी हुई है। वह किसी को कुछ नहीं समझती। उसने कृष्ण के मुख रूपी कमल देश पर सुख का राज पाया है। उनके हाथ पर पीठ रखकर बैठती है। उनकी दृष्टि और होठों की छत्रछाया पाती है। उसके ऊपर उनके घुंघराले लटकते हुए बालों का चमर ढुल रहा है। अनेक प्रकार के जो स्वर गाए जा रहे हैं, उनकी संगीत-सभा लगी हुई है। मुरली यमुना के जल को सागर की ओर जाने नहीं देती। (यमुना के जल का बहना रुक गया है)?। यह ऊपर के देवताओं के विमानों को बुला लेती है। देवता लोग श्रीकृष्ण की मुरली सुनने के लिए अपने-अपने विमानों पर आकाश में मंडराते रहते हैं। जो न चलनेवाले हैं, वे भी चल रहे हैं और जो चलनेवाले हैं, वे स्थिर हो गए। इस प्रकार सबको जीतकर ब्रह्माजी की रीति को भी मिटाकर अपनी रीति चला रही हैं। सूरदासजी कहते हैं कि सारे देव, मनुष्य, मुनि और नाग मुरली के वश में हैं। इसके प्रेम में पड़कर श्रीविष्णु भगवान ने लक्ष्मी तक को भुला दिया है।

उन सखियों में से एक ने पूछा- आली, वह कौन सा दृश्य तुम्हारी आँखों ने देखा है, जिसे तुम भुला ही नहीं सकती, जिसके देखने से ही नेत्रों की सफलता है, हम भी तो उसे सुने। हम भी तो अपने नेत्रों को सफल करें।

(बंसी बजाते समय कृष्ण की मुखमुद्रा संगीत की मस्ती में इसी प्रकार होती है।) आप तो होंठ रूपी कोमल शय्या पर शयन कर रही है और उनकी मुलायम उंगलियों से अपने पांव दबवा रही है (बंसी के छेदों पर उंगलियां चलती रहती हैं)। मुरली बजाते हुए कृष्ण की भौहें टेढ़ी होती हैं, नथुने फूल जाते हैं, यह सब देखकर गोपी कहती है कि देखो कृष्ण हमारे ऊपर क्रोध कर रहे हैं, क्योंकि बंसी हमारी चुगली कर रही है। फिर कभी-कभी कृष्ण सिर हिलाते हुए-से लग रहे हैं। एक-आध क्षण के लिए वह प्रसन्न हो गई है, इसलिए कृष्ण भी सिर हिला रहे हैं।

बंसी से तंग आकर उससे बचने का उपाय एक गोपी बताती है- हे सखी, बंसी को चुरा लिया जाए। इस बंसी ने गोपाल

को अपने वश में कर लिया है, हम सबकी प्रीति तुड़वा दी है। कृष्ण इसे एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते। घर के अंदर हो या बाहर हमेशा उसे साथ रखते हैं। कभी यह उनके हाथ में होती है, कभी होठों पर और कभी कमर में। नहीं जानती कि इसने कोई मोहिनी मंत्र अपने अंग-अंग में डाल रखा है। सूरदास कहते हैं कि इसने तो कृष्ण के मन को राग-रागिनियों की मधुर डोर से बांध रखा है।

सायंकाल के समय श्यामसुन्दर गौओं को चराकर घर आते हों। बलरामजी तथा अन्य सखा उनके साथ हों, आगे-आगे गौओं का झुण्ड चल रहा हो। उनके पीछे मन्द-मन्द मुसकाते मुरली बजाते बलराम और श्याम चल रहे हों, उनके पीछे-पीछे उनकी लोक विश्रुत विरुदावली का बखान करते हुए ग्वालबाल चल रहे हों। उस प्रणय कटाक्षयुक्त मुरली से सुशोभित कमल और इन्द्र को भी तिरस्कृत करनेवाले मुखामृत का जिन्होंने अपलक नयनों से पेट भर के पान किया है, नेत्र तो उन्हीं के सार्थक हैं। इस दृश्य के देखने वाले नेत्र ही, नेत्र हैं। इतना कहते-कहते श्यामसुन्दर रूपासव के अधिक पान करने से वह सखी उन्मत्ता हो गयी उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, वह आगे कुछ न कह सकी।

एक कहे- बलराम श्याम दोऊ ही नटवर। रङ्गभूमि अति सुधर सरस वृन्दावन सुखकर।।
स्वर सब मुरलीमहँ भरहिँ, नाचें गावें हँसि परें। नील पीत पट धारिकें, धेनुनि लै कौतुक करें।।

शुकदेव बोला- राजन्, एक गोपी श्रीकृष्ण की वेणुमाधुरी का वर्णन करती हुई कह रही है- सखियो, हम उन नेत्रवाले प्राणियों के नेत्रों की सार्थकता तो इसके अतिरिक्त और कुछ समझती ही नहीं। जिन्होंने ऐसे राम और श्याम के प्रणय कटाक्षयुक्त मुखामृत का नेत्रों द्वारा सेवन और पान किया है, जिन दोनों व्रजराज कुमारों का मुख बजती हुई बंशी से सुशोभित है। अपने साथी बालकों के सहित गौओं के पीछे प्रवेश कर रहे हैं। उन्हें देखनेवाले ही धन्य हैं।

अपने प्यारे की चर्चा में, स्मृति में, इसीलिये आनन्द का अनुभव होता है कि उसकी प्रत्येक चेष्टा सुखद है, रमणीय है, आपाद आकर्षक है। किसी स्वाभाविक सुन्दर वस्तु की ओर देखकर चित्त उसकी ओर स्वत: ही आकर्षित होता है। किन्तु जिसके अंग-अंग से सौन्दर्य फूट-फूटकर निकल रहा है जिसका सुखकर सरस स्वर वेणु की सरसता में सनकर सरसतम बन गया हो, उसका विषद बखान कोई नहीं कर सकता है।

बर्हापीड़ं नटवरवपु: कर्णयो: क्रर्णिकारं, बिभ्रद्वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै, र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति:।।५।।
मोर के मुकुट माथे हाथे में लकुट राजे साजे गुँजमाल गले ललित लरनते।।
सुन्दर कपोल श्रुति कुण्डल झलक राजे जुलफ अमोल भरे गोरज कनकते।।
गौवन के पाछे आछे काछे काछनी के काछ राग गौरी गावत गवावत सखनते।।
आनँद के कन्द ब्रजलोचन चकोर चन्द मन्द मन्द आवत गोविन्द वृन्दावनते।।
जरीदार चीरा में चुन्निन की चमक चारु हार मुक्ता के लर पाँवन लौं परसत।।
कुण्डल चमक पीत पट लपटाने कटि दीपक दमक द्युति दामिनी सी दरसत।।
नैनन को फल लेय लोचन सुफल करो यह छवि देखिबे को क्यों न जीव तरसत।
मन्द मन्द आवत बजावत मधुर वेणु कुंजन ते आवत रसिक रूप बरसत।।

मयूर को जब आनन्दोल्लास होता है तब वह नृत्य करता है। श्रीकृष्ण ने जिस पिच्छ को धारण कर रक्खा था वह राधाके प्रिय मयूर का था। श्रीकृष्ण के अंग के समान उस मयूर के कण्ठ की श्यामलता थी। इसीलिये श्रीकृष्ण का स्मरण

होने के कारण, श्रीराधारानी उस मयूर को अपने पास रखती हैं उसी का पिच्छ भगवान धारण करते हैं। मयूर के पिच्छ पर अंकित चिन्ह को देखकर राधारानी के आँखों के सौन्दर्य का स्मरण होता है, क्योंकि वह राधा की आँख के समान मनोहारी है। अत: श्रीकृष्ण ने उसे अपने सिर पर धारण कर रक्खा है। प्रिय की वस्तु को, भक्त की वस्तु को भगवान सिर पर धारण करते हैं। यह उनकी भृत्यवत्सलता है अत: श्रीकृष्ण ने उसे सिर पर धारण कर रक्खा है।

यशोदानन्दन, मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर राधारानीके मोरके साथ नाचते हैं। नाचते-नाचते मोरका पिच्छ गिर पड़ता है। श्रीकृष्ण उसे उठा लेते हैं और यह कहते हुए कि अरे, इसने तो हमको पुरस्कार दिया है, उसको अपने सिरपर धारण कर लेते हैं। वे तरह-तरहके वेश बदल लेते हैं। उनके शरीरमें ऐसा लगता है, मानो लावण्य दौड़ रहा है। यह वेश धारण करके ऐसा लग रहा हैं मानों ब्याह करने जा रहे हो। भगवान पृथ्वीकी प्रीतिके लिये आये हैं, इसलिए उसका जो पीला रंग है, उसके समान स्वर्ण-वर्ण वस्त्र धारण करते हैं अथवा राधारानीके अंगका वस्त्र धारण करते हैं। जिसमें शोभा, सौंदर्य और माधुर्यकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीजी लीन रहती हैं, उसका नाम माला है।

भगवान श्रीकृष्ण द्विविध श्रृंगार-स्वरूप हैं। श्रृंगार-सार-सर्वस्व हैं अथवा सर्वश्रेष्ठ तट की तरह रूप धारण किये हुए।

जो देखनेवाले, छूनेवाले और श्रद्धा के साथ बात करनेवाले को अमरत्व प्रदान करता है, वह वपु है। प्राणियों का विग्रह शरीर और भगवान का विग्रह वपु कहलाता है।

अग्नि में तपकर चमचमाते हुए सुवर्ण की भांति पीताम्बर धारण किये हुए। श्रीकृष्ण श्रृंगार रसस्वरूप हैं। रस आवृत ही शोभायमान होता है। निरावरण रस रस नहीं रसाभास हो जाता है। पीताम्बर आच्छादक होने के साथ-साथ विमोहक भी है। योगमाया राधा रानी के स्वरूप में विमोहकता और प्रावरकता है। वही श्रीकृष्ण के शरीर से पीताम्बर बन कर लिपटी हुई हैं।

सुनौ सखी यह वेणु बजाई, बाँस वंश देखौ अधिकाई। मेरे आने की यह गढ़ी, अब भई सौति बदनपर चढ़ी।।
इसने तप कीन्हों है कैसा, सिद्ध हुई पाया फल ऐसा।।

अपने अधर पर रखकर वंशी बजाते हुए। अपने अधरामृत को वंशी के छिद्रों में उड़ेलते हुए। सम्पूर्ण षड्भग (ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) सम्पन्न भगवान पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। वेणु में सात छिद्र हैं अत: षट् छिद्रों द्वारा एक-एक भग-धर्म एवं सातवें छिद्र द्वारा षड्धर्म सहित भगवान अधर-सुधा द्वारा वंशी में प्रवेश कर, उसके द्वारा श्री व्रजाङ्गनाओं के हृदय में प्रवेश करते हैं।

फिर ललिता सखी बोली- हे सखियों, इस वंशी ने संसार में कौन से तप, पुण्य कर्म तथा व्रत नियमादिक करे हैं, जिन श्रेष्ठकर्मों के प्रभाव से यह वंशी श्रीकृष्ण भगवान के अधरामृत का निरन्तर पान कर रहे है और इस वंशी ने जिस सरोवर का जलपान किया है तथा जिन बांसों के कुल में इसने शरीर धारण करा है, वे सरोवर और वृक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं क्योंकि जैसे श्रेष्ठ पुरुष के पुत्र भगवद्भक्ति को ग्रहण करे, अर्थात् जब धर्मात्मा पुरुष का पुत्र ईश्वर भक्ति में लगे है, तब जिसके पिता आदिक बांधव प्रसन्न होते हैं; कारण भगवत्-सेवा ही सर्वोत्कृष्ट है।

एक गोपी दूसरी से मुरली के प्रति कटू वचन कहती है- ऐ सखी, तुम इसके कुल के धर्म को सुनो। जिस प्रकार इसका पिता है, वैसी ही इसकी मां है। अब हम इसके कर्म देख ही रहे हैं। इसका पिता है बादल, जो बरसता है तो सारी पृथ्वी, तालाब, नदी आदि को अथाह कर देता है, किंतु पपीहा जो उसका चाहनेवाला है, बेचारा एक बूंद के लिए तरसता रहता है। इसकी मां है पृथ्वी, जो सबको जन्म देती है (पृथ्वी पर वृक्ष, घास, जीव-जंतु प्रतिवर्ष पैदा होते हैं), फिर भी आप सदा कुमारी रहती है। उसका जन्म देना सदा-सदा चलता रहता है। सभी वस्तुएं पृथ्वी पर जन्म पाती हैं और उसी में नष्ट

होकर समा जाती हैं, किंतु माता पृथ्वी को उनके प्रति तनिक भी मोह नहीं होता। इस कुल में यह कन्या रूप में पैदा हुई है। अब मैं इसके गुण सुना रही हूँ। सूरदासजी कहते हैं, गोपी ने कहा कि इसके गुण गुसनकर तुम्हें सुख होगा और मैं कहकर सुखी होऊंगी। यहां पर गोपियों की खीझ दिखाई गई है। वे बंसी को गाली दे रही हैं। बांस अपने आप पृथ्वी से वर्षा के बाद उपजता है, इसलिए बादल को पिता और पृथ्वी को मां कहकर मां-बाप को गाली निकाल रही हैं।

वेणु एक तो परूष है, कठोर है और दूसरे उसमें छेद है। परन्तु भगवान उनके रन्ध्रों याने छिद्रोंको भी अपनी अधर-सुधासे पूर्ण कर रहे हैं।

मुरली ने कपट की चतुराई कर ली। यह उनसे इस प्रकार मिली कि वे भी इसे ठीक से पहचान न सके। एक तो वह स्त्री है, फिर मीठे बोल बोलती है, इसलिए उसके वचनों को सुनकर कृष्णजी ललचा गए। जाति-पांति की कौन पूछे, वे तो उस पर आसक्त हो गए। जिसका मन जिसमें रमता है, वह वहीं पर सुख मानता है। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण उसके गुण गाते हैं और वह कृष्ण के गुण गाती है।

मुरली गोपियों से कहती है कि हे गोपियों, तुम मुझे उलाहना क्यों दे रही हो? तुम जाकर कृष्ण से पूछो जिनका स्नेह मैंने बड़े दु:ख से प्राप्त किया है। जन्म लेने के साथ ही मैंने वैराग्य धारण किया, गांव और घर छोड़ दिया। एक पैर पर खड़ी रहकर मैंने तपस्या की (बांस एक पैर पर ही खड़ा रहता है)। सर्दी, गर्मी और वर्षा सबको सहा। जड़, शाखा और पत्ते सबको छोड़ दिया। चिंता से मेरी देह सूख गई। अग्नि-शलाकाओं में अपने शरीर को जलाने से नहीं रोका (छेद करने के लिए गर्म छड़ों से छेदा जाता है)। अपने शरीर को छिदवाया। मैं पूछती हूं, तुम लोग क्रोध करके मुझे बंसुरिया कह-कहकर बुरा-भला क्यों कहती हो।

मुरली गोपियों से कहती है कि तुम भी कृष्ण को क्यों नहीं रिझा लेतीं? व्यर्थ में क्यों बकवास करती हो और व्यर्थ ही टेढ़ी हो रही हो। मैं तो अपनी तपस्या का फल प्राप्त कर रही हूं। तुम भी तपस्या करो और उसका फल प्राप्त करो। तब यदि कोई तुम्हारे बीच में बोले तो उसे दूर कर दो। हर एक का अपना-अपना भाग्य होता है, कोई दूसरे का भाग्य नहीं लेता। यदि तुम्हें कुछ कहना ही है तो कृष्ण से कहो, मुझ पर दु:खी क्यों होती हो?

भोली गोपियां बोलीं- मुरली ने सचमुच शरीर को गलाकर तपस्या की है। जब गर्म शलाकाओं से जलाई गई तो यह जरा भी नहीं हिली, सब सहती रही। इसने सर्दी, गर्मी, वर्षा सही और एक पैर पर खड़ा रही। जब इसे काटा गया, तब भी इसने अपने अंग को नहीं मोड़ा। यह तो बड़ी ही साहसी स्त्री है। इसने कृष्ण को प्रसन्न कर लिया तो इसे गाली क्यों देती हो?

सूरदास कहते हैं कि कृष्ण तो इसके गुणों से ही इस पर द्रवीभूत हुए हैं और इसे प्यार किया है।

गोपियां बोली- हम तो समझते थे कि यह अभिमानिनी है, पर इससे बढ़कर साध्वी कोई नहीं है। इसने तो तपस्या के बल पर ही कृष्ण को प्रसन्न किया है, तुम लोग व्यर्थ ही शोर मचाती हो। कृष्ण तो बहुनायक हैं, अर्थात उनकी तो अनेक प्रेमिकाएं हैं, उन प्रेमिकाओं में यह भी उनकी एक प्रेमिका और मिल गई है। तुम यदि प्रेम-नेम से रहोगी तो प्रेम हाथ से नहीं जाएगा।

सखी कहती है कि कृष्ण को बंसी बजाने दो, तुम अपने कानों से अमृत का पान क्यों नहीं करतीं? तुम इसे मत रोको। सुनती नहीं कि वह क्या कह रही है? वह तो राधा-राधा ही पुकार रही है। तुम समझती हो कि कृष्ण हमें भूल गए हैं। तुम सब स्त्रियों के तो वे एक ही पति हैं। इसी बंसी के मुख से ही हमारे नाम पुकारे जा रहे हैं और इस प्रकार वही हम सबको कृष्णसे मिला रही है।

सखी राधा से कहती है- जब-जब कृष्ण बंसी बजाते हैं, तब-तब तुम्हारा (राधा) नाम ही पुकारते हैं और तुम्हीं को

प्रसन्न करते हैं। तुम उनकी प्रिया हो और वे तुम्हारे प्रिय हैं, हमे तो ऐसा ही मालूम होता है। यदि तुम यह समझती हो कि मुरली तुम्हारी सौत बनी है तो भी वह तुम्हारी सेवा ही कर रही है। हे राधा, यह तो दासी है और तुम कृष्ण की अर्धांगिनी हो, इसलिए उसी के द्वारा कृष्ण तुम्हें बुलाते हैं।

प्रेम को पशु-पक्षी भी पहिचानते हैं। पशु-पक्षी ही नहीं, पादप पाषाण तक प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं। कहते हैं- भरतजी के अलौकिक प्रेम को देखकर कामद चित्रकूट पर्वत के पाषाण पिघल गये। मदनमोहन मुरलीधर की मुरली की धुन सुनकर गिरि गोवर्धन की शिलायें कोमल हो गयीं पिघल गयीं- अद्यावधि उन पर ग्वालबाल, श्रीकृष्ण और गौओं के चरणचिन्ह विद्यमान हैं। गोवर्धनपर्वत की परिक्रमा करनेवाले महाभाग यात्रियों को उन सौभाग्यशालिनी शिलाओं के दर्शन होते हैं। श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि साधारण ध्वनि नहीं थी, वह तो विश्व की विमोहित करनेवाली मधुरातिमधुर ध्वनि थी।

वंशी साक्षात् रुद्र ही है। राधा को पाने के लिये कृष्ण ने तप किया। रुद्र प्रसन्न होकर बोले वर माँगो। कृष्ण ने कहा वर दीजिये कि राधा मुझे मिल जाय। शंकर ने कहा मैं बाँस बन कर नन्दबाबा के घर के सामने उगूंगाँ। तुम उसे कटवा कर वंशी बना लेना और बजाना। वंशी की ध्वनि को सुनकर राधा ही नहीं सकल ब्रह्माण्ड मोहित होकर तुम्हारे पास दौड़ा चला आयेगा।

यत्र-तत्र अपने चरण-चिन्हों से अलंकृत वृन्दावन धाम में गोपबालों के साथ पधारे। वृन्दावन वैकुण्ठ धाम से भी अधिक रमणीय है। वृन्दावन भगवान के चरणारविन्दों को भी आनन्द देनेवाला है। कृष्ण की प्रियतमा राधारानी के चरणचिन्हों के कारण सुशोभित वृन्दावन में भगवान पधारे। गोपबाल उनके पीछे-पीछे उनकी कीर्ति का गान करते हुए चल रहे थे। गोपवृन्द भगवानकी कीर्तिका गान कर रहे हैं।

विशाखा बोली- बहिनों, चौरासी कोस ब्रजमंडल की पृथ्वी में जो यह वृन्दावन है, यह ब्रजमंडल पृथ्वी की महान कीर्ति को बढ़ा रहा है, क्योंकि इस श्रीवृन्दावन में बड़े भाई बलराम के सहित श्रीकृष्ण के कोमल चरण-कमल नित्य प्रति विचरते हैं। जब वृन्दावन में श्याम की वंशी बजती है, तब वंशी की ध्वनि को सुनकर मोर ऊँचे स्वर से पुकारते हैं। फिर मोरों के शब्द को सुनकर वन के पशु-पक्षी बोलने से रहित हो जाता हैं अर्थात् वंशी और मोरों का शब्द सुनने के लिये कठपुतली की न्याईं खड़े रह जाते हैं।

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्। श्रुत्वा व्रजस्त्रिय: सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे।।६।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, यह वंशीध्वनि जड, चेतन-समस्त भूतों का मन चुरा लेती है। गोपियों ने उसे सुना और सुनकर उसका वर्णन करने लगीं। वर्णन करते-करते वे तन्मय हो गईं और मन-ही-मन उनका आलिंगन करने लगीं।

श्रवण शब्द सुनि रहीं ठगी-सी सब ब्रजनारी। कछु गुन बरनन करें बधुनि मन बात बिचारी।।
करयो कछुक आरम्भ याद मोहनकी आई। तब चिथ चञ्चल भयो देहकी सुरति भुलाई।।
अपर सम्हरि बोली- अली, मुरली अधरामृत भरहिँ। पुनि झुकि फूँके नंदनँदन, छिद्रनितें वितरित करहि।।

पुन: स्मरण होने पर एक ने कहा-अरी सखियों, वस्तुत: नेत्र पाने का यही प्रधान फल है कि वन में पशुओं के पीछे-पीछे जाते हुए, नन्द के दुलारे श्याम और राम के मुख-चन्द्र को हम देख रही हैं। वंशी बजाते हुए वे अपने कृपा-पात्र ग्वालबालों को कैसे मधुर मनोहर कृपा-कटाक्ष से देख रहे हैं। जिन्हें भगवान ने आधिदैविक देह अर्थात इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि आदि प्रदान किया, उनके लिये यही परम फल है कि श्री कृष्णचन्द्र के सौन्दर्य आदि का आस्वादन करें।

गोपियाँ आपसमें बातचीत करने लगीं- अरी सखी। हमने तों आँखवालोंके जीवनकी और उनकी आँखोंकी बस, यही- इतनी ही सफलता समझी है; और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है। वह कौन-सा लाभ है ? वह यही है कि जब श्यामसुन्दर

श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालबालोंके साथ गायोंको हाँककर वनमें ले जा रहे हों या लौटाकर व्रजमें ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरोंपर मुरली धर रक्खी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान करती रहें।।७।।

दामोदरके अधरोंकी सुधा तो हम गोपियोंके हककी चीज है, क्योंकि दामोदर हमारा कैदी है, हमने उसकी कमरमें रस्सी लगाकर बाँध लिया कि यह हमारा है। उसके प्रति हमारी ममताकी पराकाष्ठा है। किन्तु यह बाँसुरी हमारी उस वस्तुको पीये जा रही है।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम:, सख्य: पशूननु विवेशयतोर्वयस्यै:।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं, यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्।।७।।

दूसरी सखी ने कहा- सखी, नन्द के दोनों लाड़ले लाल जब विविध रंग-बिरंगे पुष्पों और पत्तियों से सुसज्जित हो सुन्दर पीत एवं नील वस्त्र धारण कर गोपबालों की मण्डली के मध्य बैठकर मधुर संगीत की तान छेड़ देते हैं, उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो दो चतुर नट रंगमंच पर अभिनय कर रहे हों। मैं क्या कहूँ? उस समय की उनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। अरी सखी। जब वे आमनी नयी कोंपलें, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे, रंग-बिरंगे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्णके साँवरे शरीरपर पीताम्बर और बलरामके गोरे शरीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा विचित्र बन जाता है। ग्वालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों बीचोबीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ देते हैं। मेरी प्यारी सखी। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों। मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है।। ८ ।।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां, रङ्गेयथानटवरौ क्व च गायमानौ।।८।।

तीसरी गोपी बोली- अरी सखि, देखो तो सही, इस वंशी ने पता नहीं कौन-सा पुण्य किया है, जिसके फलस्वरूप यह अकेली ही अतृप्त होकर भगवान की होठों का पान कर रही है। जिन नदियों के जल से यह सींची गई है, उन्हें भी खिले हुए कमलों के बहाने रोमांच हो रहा है। इसकी जाति के वृक्षों से मधुधारा के निमित्त से आनन्दाश्रु झर रहे हैं। अरी गोपियो। यह वेणु पुरुषजातिका होनेपर भी पूर्वजन्ममें न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हम गोपियोंकी अपनी सम्पत्ति-दामोदरके अधरोंकी सुधा स्वयं ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि हम लोगोंके लिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा। इस वेणुको अपने रससे सींचनेवाली हृदिनियाँ आज कमलोंके मिस रोमाञ्चित हो रही हैं और अपने वंशमें भगवत्प्रेमी सन्तानोंको देखकर श्रेष्ठ पुरुषोंके समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखोंसे आनन्दाश्रु बहा रहे हैं।।९।।

सखियों, हम तो संसार में दो को ही परम भाग्यशालिनी समझती हैं, एक तो ब्रज की रेणु को, दूसरे इस सौति वेणु को, दोनों ही ये कृष्ण के अंगों में लिपट जाती हैं। श्यामसुन्दर जब वन को जाते हैं, लौटकर आते हैं, तो ब्रज की रेणु उड़-उड़कर उनके श्रीअंग में उनके काले-काले कुञ्जित केशों में लग जाती हैं, उनमें सट जाती हैं, किन्तु वेणु तो उनके अधरामृत का हम सबके सामने-सबके देखते-देखते निर्लज्ज होकर पान करती रहती हैं। इसके भाग्य की क्या सराहना की जाय। हाय वेणु के भाग्य की क्या प्रशंसा की जाय। एक बार जिस अधरामृत का पान करके मन उन्मत्त-सा हो जाता है, उसका वह सतत पान करते-करते अघाती नहीं, मतवाली नहीं होती। कैसी यह ढीठ है।

जा मुरलीने कर्यो कौन तप श्याम रिझाये। मुरलीधर जिहि हेतु जगत घनश्याम कहाये।।

वेनु रेनु अति धन्य श्याम- अँगमहँ जो चिपटें। वेनु अधरपै रहे रेनु सब अङ्गनि लिपटें।।
वेनु बाँसकी सुता रेनु धरनीकी दुहिता। पुत्रिनि भाग सराहि मातु दोउनिकी मुदिता।।
यद्यपि ब्रजरजके निमित, लालायित सुरगन रहहिँ। तदपि वेनुकूँ ही परम, भाग्यवती हम सब कहहिँ।।

यद्यपि यह मुरली श्याम को विविध प्रकार से नाच नचाती है फिर भी यह श्याम को अच्छी लगती है। प्रभु के अत्यन्त सुकुमार कोमल शरीर से अपने आज्ञा का पालन करवाती है तथा प्रभु के हाथों पर बैठकर अपना अत्यधिक अधिकार जनाती है श्याम को एक पैर पर खड़ा कराती है और कमर भी टेढ़ी करवा देती है रुचिर सुधर से शीश डुलवाली रहती है तथा तान बनाने के लिए श्वाँस भी बँधवाती है। इस वेनु को भी ब्रज की वासी समझकर हम सबने सुख रासी प्रीतम को उसे सौंपी थी। लेकिन इसने तो अत्यन्त ढिठाई कर दी हम सबकी प्रीत को पूरी तरह इसने अपना लिया। न जाने यह कौन सी मोहनी डाल कर प्राण प्रीतम की सोहनी हो गई। यह हम सब की गाढ़ी सौतन बनकर हमारे और श्याम के बीच में खड़ी हो गई है। हे सखी तनिक हृदय में विचार कर देखो मेरी बात बहुत भले की है। अब तो बनवारी समस्त ब्रज नारियों को भूलकर उसी के हो गए। भूलकर भी उसे अपने से अलग नहीं करते हैं। वह मुरली हरि के तन मन की प्यारी हो गई है।

जब ते कर पल्लव बसी दिनहूँ दिन इठलाति। श्याम अधर रस अंस मम छीनति नहिं सहि जाति।।

कृष्ण मुरली वादन में तल्लीन हो जाते हैं तो गोपियों की कुछ नहीं सुनते। गोपियां सहन नहीं कर पातीं कि कृष्ण मुरली के कारण उनसे न बोलें। इस प्रकार उन्हें लगता है कि मुरली तो उनकी सौत हो गई है, जो प्रिय को आने नहीं देती। मुरली को सौत (नारी) समझकर वे उसकी आलोचना कर रही है।

एक सखी दूसरी से कहती है कि यद्यपि मुरली रूपी नारी कृष्ण को नाना प्रकार से नचा रही है (कृष्ण बांसुरी बजाते हुए नचाते भी हैं), फिर भी आश्चर्य है कि वह कृष्ण को अच्छी लगती है। (जो स्त्री अपने पति को नचाती (सताती) है, वह उसे अच्छी नहीं लगती)। देखो कृष्ण को वह एक पावं पर रड़ा रखती है और इस प्रकार उन पर अधिकार जमाती है (कृष्ण बांसुरी बजाते हुए एक पैर खड़े होते हैं)। कृष्ण का शरीर कोमल है, फिर भी वह अपनी आज्ञा का पालन कराती है और इसी से उनकी कमर टेढ़ी होती है। (बांसुरी बजाते हुए कृष्णकी कमर टेढ़ी होती है)। गोवर्धन को उठानेवाले परम शक्तिशाली कृष्ण बंसी रूपी नारी के सामने झुक रहे हैं और लगता है कि बड़े अधीन और अहसानमंद महसूस कर रहे हैं।

जबसे यह मुरली श्याम के कर पल्लव पर बैठ गई है तब से दिन प्रतिदिन इठला रही है हम सब के अंश अधर रस को छीन रही है नहीं सहा जा रहा है। हे आली मुरली श्याम की ऐसी सुहावनी हो गई कि दिन रात उनके ही संग रहने की ठान ली है। श्याम तो मुरली में पग कर कब की हम सब को भूल गए हैं कहाँ हम सब की सुधि करते हैं। इस मुरली की जाति को गिरिधर नहीं जानते हैं अवगुन की खानी में उसका जन्म हुआ है। बिना कुछ समझे बिना कुछ अनुमान किए हरि उसे अपनी पट रानी बना लिए है।

प्रभु मुरली मुरली प्रभु सानी। मिलन परस्पर जिमि पय पानी।
चोर चोर ठग ठग रति जानी। मिलहिं क्रूर क्रूरहिं पहिचानी।।
प्रभु बस करि चतुराई ठानी। हम सब केर करति यह हानी।
नित छलमय स्वारथ रस सानी। ताकर प्रभु प्रतीति कस आनी।।

प्रभु मुरली में मुरली प्रभु में ऐसे घुल मिल गए हैं जैसे दूध और पानी परस्पर में घुल मिल जाते हैं। चोर चोर की ठग ठग से ही रति जानते हैं क्रूर क्रूर से ही पहचान कर मिलते हैं प्रभु को चतुराई करके अपने बस में कर लिया है यह हम सब की

हानि कर रही है जो हमेशा छलमय है स्वारथ रस से सनी हुई है प्रभु उसका विश्वास कैसे कर लिए।

सखि री मुरली कीजै चोरी। जो सुप्रीति हम सब की तोरी।
अकथ सुभाग अतुल रस छोरी। चैनु सुचारु अचैनहिं जोरी।।

हे सखी जो मुरली हम सबकी सुप्रीति को तोड़ी है उस मुरली की ही चोरी कर लो। हम सबके अकथनीय सुभाग अतुल रस को छीन लिया है। सुचारु चैन को नष्ट करके हम सब में बेचैनी भर दी है। इस तकरार की उलाहना किससे दूँ मुरलीधर की निठुराई किससे कहूँ जो मुरली करती है श्याम वही करते हैं श्याम हमेशा उसी के रंग में ढल गए हैं। सखियों की सब बानी सुनकर राधा हँसकर बोली कि हे सखियों राजीव नयन श्याम से मुरली को अलग करना कैसे सम्भव है।

जो मुरली प्रीतम को अत्यन्त भाती है वह मुरली उन्हीं से शोभा पाती है। हरि के ही स्वर को गाकर हरि को सुनाती है रसो वै स: रस स्वरूप को उन्हीं के रस से रिझाती है। अधर पर रखने से ही सजीव होती है प्रभु से ही स्वर पाकर वह अतीव स्वर बोलती है। श्याम के बनाने से ही वह बड़भागी है उन्हीं के पगाने से ही वह हमेशा उनमें पगी हुई है।

हे सखी तब इसमें मुरली का क्या दोष है। तुम लोग व्यर्थ ही उसपर क्रोध कर रही हो। मुरली तो काठ है प्रभु में ऐसी समर्पित है कि जैसी प्रभु की रुचि होती है वह यन्त्रवत वैसी ही रहती है। अपने आप को हमेशा बनवारी के लय में ढालती रहती है चाहे उसे श्याम पास में रखे या चाहे उसे दूर फेंक दें। हम सबके लिए यह हमारा ही रोधक है यह अपने प्रभु स्वरूप की लयता नहीं है सब कुछ उन्हीं को समर्पित करके उसी मूल को पकड़ना चाहिए जैसी श्याम की रुचि उसी प्रकार उनके अंश स्वरूपों को रहना चाहिए।

आत्ममयता की वास्तविकरीतिमय राधा की दिव्य वाणी सुनकर सब सखियों ने प्रभु की जैसी रुचि यही ध्येय बनाया। अपनी चूक समझकर हृदय में अत्यन्त ग्लानी हुई। ब्रजभूषण प्रभु कृष्ण के दिव्य स्वरूप को देखकर उनके मधुर प्रेममय अनुपम चरित्र को सुनकर तथा मुरली की रुचिर न्यारी ध्वनि सुन सुन कर गोपियाँ अपने सुधि बुधि सब कुछ भूल गयी। हर प्रकार आशा विलास सभी हृदय से नष्ट हो गए। हृदय मे केवल एकही लालसा जाग उठी। इस तीनों लोक में कौनसी ऐसी सुजान नारी है जो प्राकृतिक नर को त्याग कर इस बनावटी को न भजे।

शुकदेव बोले- राजन्, एक दूसरी गोपी वेणु के सौभाग्य को स्मरण करके गोपियों से कह रही है- अरी गोपियों, भला बताओ तो सही इस बाँसुरी ने ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया है, जिसके फलस्वरूप यह गोपिकाओं के पीने योग्य दामोदर की अधरसुधा का प्रथम स्वयं पान कर तब उच्छिष्ट औरों के लिये छोड़ देती है। जिस प्रकार सत्पुत्र से वंश वाले आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार इसे उत्पन्न करनेवाले इसके वंश वाले बाँस तथा धातृ स्थानीय नदियाँ खिलकर खिलकर और प्रेमाश्रु बहाकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। भगवान के साथ जिन वस्तुओं का सम्बन्ध है, वे सब दिव्य हैं, चिन्मय हैं। पूर्वजन्म में जिन्होंने अनन्त तप किये होंगे, उन्हें ही भगवान के श्रीअंग का नित्य संसर्ग प्राप्त होता है। भगवान के सानिध्य में उनके नित्य पार्षद ही रह सकते हैं।

मुरली कौन तप तैं कियौ। रहत गिरधर मुखै लागी, अधरन को रस पियौ।।
नन्दनन्दन पाणि परसत तोहि में तन मन दियौ। सूर श्री गोपाल बस भये जगत में तैं जस लियौ।।
जब हरि मुरली अधर धरत। थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत।
खग मोहैं मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छवि करत। पशु मोहैं सुरभी विथकित, तृन दन्तनि टेकि रहत।।
शुक सनकादिक सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत। सूरदास भाग हैं तिनके, जो या सुखहिं लहत।।

गोप्य: किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु- र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुमे स्वयं यदवशिष्टरसं हृदन्यो, हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्या: ।।९।।

पता नहीं इस बांसुरी ने क्या पुण्य किया है कि जब कन्हैया जागता है तब भी उनके साथ और जब सोता है तब भी उनके साथ, भोजन करे तो भी साथ, जहां भी जाएं यह बांसुरी सदा साथ में ही रहती है। हे गोपी, यह बांसुरी न तो सोती है और न किसी को सोने देती है। भले ही यह श्रीकृष्ण के पास हो पर जब वह बांसुरी बजाते हैं तो हम अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। क्या भाग्य है बाँसुरी का? इससे अधिक क्या कोई भगवान की तपस्या करेगा। यह सुनकर दूसरी ब्रजबाला बोली कि परमेश्वर हमारा जन्म भी बाँस में देते तो मैं भी आठों पहर मोहनीमूर्ति के मुख से लगी रहती और उनके होठों का अमृत पीकर सुख पातीं।

एक सखी ने कहा- सखियों, देखो हम श्रीकृष्ण के अधरामृत पान के लिये कितनी लालायित बनी रहती हैं। एक बार भी हमारे ओष्ठों में वह अमर कर देनेवाला रस लग जाय, तो हम कृतार्थ हो जायँ। हम उस दिव्यातिदिव्य रस के लिये निरन्तर उत्कण्ठित ही रहती हैं और यह बाँस की मुरली का निर्भय होकर उसका पान करती है। प्राय: अधरामृत का पान एकान्त में जनशून्य स्थान में किया जाता है, किन्तु यही निर्लज्जा तो देशकाल किसी का ध्यान नहीं रखती। सब समय, सबके सम्मुख शील संकोच छोड़कर निर्भय होकर हरि के अधरामृत का पान करती है। इसके माता-पिता धन्य है, इसका कुल धन्य है, जो इसने श्यामसुन्दर को इस प्रकार वश में कर लिया है। श्यामसुन्दर तो इसके हाथों मानों बिक-से गये हैं। पलभर भी इसे अपने शरीर से पृथक् नहीं करते। रात्रि में भी साथ ही लेकर सोते हैं, वन में जाते हैं तो बगल में दबाये रहते हैं। जब यह चाहती है अधरों की शैया पर सो जाती है। श्याम इसका इतना संकोच करते हैं, कि यह जब तक यह उनके अधरों की शैया बनाकर लम्बी होकर सोती है तब तक ये एक पैर से खड़े रहते हैं। कोमल-कोमल उँगलियों से शनै: शनै: इसके पैरों को पलोटते रहते हैं। अपने मुख की वायु से इसकी व्यार करते रहते हैं। ऐसा सौभाग्य तो किसी कुलवती शीलवती नारी को भी प्राप्त नहीं हो सकता, इसी को अपनाने से इसके अधीन होने से नन्दनन्दन के मुरलीधर, वंशीधर, मुरलीमनोहर आदि नाम पड़ गये हैं।

वह सखी बोली- बहिन, वंश तो इस कुलटा का कोई बहुत बड़ा ही है नहीं। बाँसों का लगाना अशुभ समझा जाता है। कोई भी बुद्धिमान पुरुष अपने यहाँ जान बूझकर बाँस न लगावेगा। उसी बाँस के वंश में तो यह वंशी पैदा हुई है। पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण पृथ्वी ही इसकी माता है, बादलों के जलबिन्दु से बढ़ने के कारण घन ही इसके पिता है। नद नदियों तथा सरोवरों के जलों का पान करके बढ़ने के कारण इसकी धातृ स्थानीय है। बड़े लोग जिसे अपना लेते हैं, उसके गोत्र को कोई पूछता नहीं।

श्याम के अधरामृत पर संपूर्ण अधिकार हम गोपियों का ही है। हम उसे यथेष्ठ पेट भर के पान करलें और फिर कुछ अवशिष्ट रह जाय, तो किसी दूसरी को दे सकती हैं, यह हमारी कृपा पर निर्भर है। दयालु लोग अपना उच्छिष्ट अपने आश्रितों को दे ही देते हैं। यह हमारी सौत मुरली सबसे पहिले स्वयं पेट भर-भर के अधरामृत को पी लेती है, फिर कुछ बचा-कुचा उच्छिष्ट रह जाता है उसे हमारे लिये छोड़कर अधरों से हट जाती है जो धन की यथार्थ स्वामिनी है उसे जूठा कूठा मिले और जो दासी है वह पहिले यथेष्ट उसका उपभोग कर ले। श्यामसुन्दर के यहाँ यह उल्टी ही गङ्गा बह रही है। देखने में सुन्दर हो हरी भरी हो सो भी बात नहीं सूखी साखी है। यह कोई चरित्रवान निश्छिद्र हो सो भी नहीं एक नहीं आठ-आठ इसमें छिद्र हैं, इतने सब दोष होने पर भी जो इसे इतनी बड़ी पदवी प्राप्त हो गयी है, इतनी अमूल्य निधि की उपभोग करनेवाली बन गयी है, इसमें अवश्य ही कोई हेतु होगा। बिना पूर्वजन्म की तपस्या के इतना सौभाग्य प्राप्त हो ही नहीं सकता।

तपस्या का ही तो यह फल है, कि दूसरे के धन की स्वतन्त्र स्वामिनी बन गयी है। तपस्या तो इस वंश ने ऐसी की है जैसी कोई कर नहीं सकता। बाँसों की जड़ कठोर होती है, उस कठोर जड़ को फोड़कर यह पाली गयी। अर्थात् इसने

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर, दम्भ, अहंकार तथा अन्य भी समस्त दोषों को अपने भीतर से निकाल दिया, यह पोली होकर एकान्त वन में वास करती हुई चिरकाल तक घर में ही रहकर साधन करती रही।

नाशवान् वस्तु के साथ किया हुआ प्रेम मोह कहलाता है और वही प्रेम अविनाशी श्रीकृष्ण में होने से वह प्रेम के नाम से पुकारा जाता है। प्राकृत स्त्री पुरुषों में किया हुआ प्रेम काम होता है, उसी प्रेम को गोपी श्रीकृष्ण में करें तो उसकी प्रेम संज्ञा हो जाती है। गोपियों का काम ही प्रेम है।

लखि बशी सौभाग्य वंशकुल अति सुख पावें। सरिता धाई सरिस रोम जनु कमल खिलावें।।
जा वन धेनु चरावहीं माखनप्रभु चितचोर। तहाँ आय ठाढ़ी रहैं हरि सम्मुख कर जोर।।
वंशी धुनिसुनिकै सदा सुख पावैं सब लोग। माखनप्रभु मुखसों लगी क्यों नहिं हो सुखयोग।।
मुरली तऊ गुपालहि भावति। सुनरी सखी जदपि नन्दलालहि, नाना भाँति नचावति।।
राखति एक पाइ ठाड़ो करि, अति अधिकार जनावति। कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति।।
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरधर नार नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सैय्या पर, कर पल्लव पलुरावति।।
भृकुटी कुटिल, नैन नासापुट, हम पर कोप करावति। सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, घर तैं शीश डुलावति।।

चौथी गोपी बोली- हे सखि, यह वृन्दावन अखिल भू-मण्डल की कीर्ति का विस्तार कर रहा है, क्योंकि देवकीनन्दन (गोपियाँ तो पहले मर्यादा की रक्षा के लिये श्याम के साथ बलराम को भी अपने वक्तव्य का विषय बना रही थीं। किन्तु जब वे अपनी सुध-बुध खो बैठीं तब उन लोगों के वक्तव्य के एकमात्र लक्ष्य कृष्ण ही थे, दामोदर ही थे। वैसे भी बलराम यहाँ अभीप्सित नहीं थे।) गोपियों ने यशोदानन्दन न कहकर देवकीनन्दन कहा है। श्रीकृष्ण के चरणकमलों के, कमल, अंकुश आदि चिन्हों से यह अंकित है।

इस व्रजभूमिके चप्पे-चप्पेमें, लता-लतामें, वृक्ष-वृक्षमें, पुष्प-पुष्पमें, जहाँ-जहाँ भगवान्के चरणारविन्द पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ लक्ष्मीजी मिलती हैं। मानो लक्ष्मीजीने शपथ खा रही हो कि वे भगवान्के चरणारविन्दका स्पर्श पृथ्वीको नहीं होने देंगी, भगवान् जहाँ भी इस पृथ्वीपर पाँव रखेंगे, वहाँ मैं बीचमें आकर लेट जाऊँगी। इसप्रकार लक्ष्मी देवी सत्याग्रह करती फिर रही हैं, वृन्दावनके सौभाग्यपर।

यह वृन्दावन कैसा है? यहाँ गोविन्दकी बाँसुरी बज रही है, उसके पीछे मयूर मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं। बड़े सुन्दर-सुन्दर अद्रि-सानु हैं और इसमें रजोगुण-तमोगुण बिल्कुल नहीं हैं, सब सत्त्व-ही-सत्त्व है। यहाँके समस्त प्राणी शान्त बैठे हैं। कैसा है यह वृन्दावन? यहाँ मोर मतवाले होकर नाचते हैं।

देखो-देखो, श्रीकृष्ण की वंशी की धुन पर मोर नाच रहे हैं। पक्षी चुपचाप शान्त होकर वृक्ष की डालियों पर आँखें बन्द कर आनन्द में निमग्न हो रहे हैं। अरी सखी। यह वृन्दावन वैकुण्ठलोकतक पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तार कर रहा है। क्योंकि यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिन्होंसे यह चिह्नित हो रहा है। सखि। जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मोर मतवाले होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं। यह देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी चुपचाप-शान्त होकर खड़े रह जाते हैं।।१०।।

वेनु बजावत श्याम मोर समुझें जनु धनरव। गरजि रहे हिय जानि मत्त ह्वैं नृत्य करें सब।।
मोहन मुरली मधुर सुनि, नाचें केकी तालमहँ। हम सब बिलपति दिवसनिशि, फँसी निठुरके जालमहँ।।

सखियों, जब ये उसी पुण्यमयी पावन भूमि पर त्रिभङ्ग ललित गति से खड़े होकर मुरली बजाते हैं, कपोलों को विचित्र बनाकर

इसमें फूँक मारते हैं और वह बैरिनि गाने लगती है, तब तो कुछ पूछो ही नहीं, वन में विचरने वाले मयूरों को भ्रम हो जाता है, मानो मंद-मंद स्वर में मेघ गरज रहा हो। मेघ की गरजन सुनकर हृदय में प्रेम की हिलोरें उठने लगती हैं, मन वश में नहीं रहता बिना नाचे रहा नहीं जाता अत: वे अपने चित्र-विचित्र पर्खे को उठाकर नृत्य करने लगते हैं। उनके नृत्य को देखकर और विचित्र वेणुरव को सुनकर सभी चराचर प्राणी स्तब्ध हो जाते हैं, उनकी गति रुक जाती है, जहाँ के तहाँ खड़े-के-खड़े ही रह जाते हैं।

चन्द्रकला बोली- हे सखी, मित्रों के सहित गौउवें चराते हुए श्रीश्यामसुन्दर प्रभु जब वंशी को बजाते हैं, तब भगवान पर धूप का दु:ख देखकर मेघ तिनके ऊपर अपने शरीर को छत्र के समान धारणकर छाया करते हैं और कभी कभी मेघ गर्जना के मिस से अपने प्यारे श्रीकृष्ण के गुणों को गाते हैं और कभी कभी बूँदरूप फूलों की वर्षा वर्षाते हैं। क्योंकि सज्जनों का और सुगन्धि का यह स्वाभाविक धर्म है कि वे अपने मित्र की शोभा को बढ़ाते हैं।

कृष्ण को देखकर सखी कहती हैं कि देखो कृष्ण का रूप सुंदरता का सागर है। इसको पार करने में बुद्धि, विवेक और बल हार जाते हैं और सुयोग्य मन डूब जाता है। कृष्ण के शरीर का श्याम रंग सागर का अथाह जल है और उनके कटि का पीतांबर सागर की सुनहरी तरंगे हैं। कृष्ण के नेत्र ही मछलियां हैं, कुंडल मगरमच्छ और भुजाएं सांप हैं। मोती की माला ऐसी हैं, जैसे गंगा की दो धाराएं एक साथ मिल रही हों। मणि जड़े हुए स्वर्ण के आभूषण हैं। मुख पर पसीने की बूंदें शोभा दे रही हैं। ऐसा लगता है कि सागर को मथकर उसमें से चंद्रमा, लक्ष्मी और अमृत सहित चौदह रत्न निकाले गए हैं। इस रूप को देखकर गोपियां विचार-विचारकर रह गईं। सूरदास कहते हैं कि वे बेचारी इस सौंदर्य के सागर को पार न कर सकीं और प्रेम कर-करके हार गईं।

गोपियां बोली- हे सखी, हम कृष्ण के मुख की शोभा का कहां तक वर्णन करें। यह ऐसी है, जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल। इसके तेज के आगे सूर्य और चंद्रमा दोनों ही मंद पड़ जाते हैं। होंठ बिंबाफल के समान हैं। उनके ऊपर नाक है। ऐसा लगता है, मानो तोता बिंबाफल पर चोंच मार रहा हो। मुस्कराने पर दांत चमकते हैं जिनके आगे बिजली की चमक भी मंद पड़ जाती है। कानों में पड़े हुए मकर की आकृति के कुंडल बड़े ही सुंदर लगते हैं। ब्रज की गोपियां सारा दिन सूरदास के स्वामी कृष्णको रटती हैं, क्या वे कभी उन्हें भूल सकती हैं?

सखी कहती है कि हे सखी। तू कृष्ण के चंचल नेत्रों को देख। खंजन, मछली और मृगशावक की चंचलता इनके एक इशारे की भी बराबरी नहीं कर सकती। कमल की अनेक जातियां हैं- राजीब, इन्दीवर, कमल और कुशेशय आदि। यह सब कृष्ण की आंखों की तुलना में नहीं आते, क्योंकि ये सब रात में बंद हो जाते हैं, केवल दिन में ही खिलते हैं, जबकि कृष्ण के नेत्र दिन और रात दोनों ही में समान रूप से खिले रहते हैं। इनकी आंखों में लाल, सफेद व काला तीन रंग हैं। इनकी उपमा का कौन वर्णन करे। ऐसा लगता है मानो सरस्वती, गंगा और यमुना मिलकर यहां संगम कर रही हैं। इनकी चितवन जल धारा की भांति तेज है, वहां किसी का मन नहीं ठहरता। सूरदास कहते हैं कि नेत्रों की छवि अपार है, उपमाएं इनके सामने शरमाती हैं।

मयूर को तो देख, यह कितना नाच रहा है। बाँसुरी की धुन पर अपनी कला दिखा रहा है। कन्हैया मोर को बोला- मोर, कहां जा रहे हो? तू नृत्य करता है तो मुझे अच्छा लगता है। कन्हैया बांसुरी बजाते-बजाते मोर के पीछे चले। वृंदावन को छोड़कर बरसाने में आ गये। बरसाने में आकर मोर वृषभान के आंगन में खड़ा होकर नृत्य करने लगा। कन्हैया एक बार फिर से ललित त्रिभंगी हुए और बांसुरी बजाते रहे और मयूर नृत्य करता रहा। कन्हैया को नचाने की चाबी राधा के पास है। मोर नाचता है और बोलता है-

श्याम के बिना तुम आधी, तुम्हारे बिना श्याम आधे। राधे-राधे, राधे-राधे।

आठों पहर जो रहे अंग संग उस सांवरे की इक झलक दिखला दे। राधे-राधे, राधे-राधे।

नँदगाँव में नन्द बाबा की छत पर आकर वह मोर फिर नाचता है और गाता है-

हमारो धन राधा श्री राधा, श्री राधा, हमारो धन राधा श्री राधा, श्री राधा।

कुछ समय पश्चात् राधिका जमनाजी का जल भरकर आयी। उसके सर पर जमुनाजी के जल से भरी मटकी है। ओढ़नी ओढ़ रखी है और ठुमक-ठुमक करती राधा आयी। जब राधा अपने आंगन में आयी तो देखा कि मोर तो नृत्य कर रहा है और एक सांवरा-सांवरा अति सुंदर छोरा बांसुरी बजा रहा है। पहले तो श्रीकृष्ण ने राधा को देखा- जब देखी वृषभानुजा तो हिय बिच उठी हूक।

कन्हैया के हृदय में कुछ हुआ। पहली ऐसी सुंदर कन्या देखी, गोरी-गोरी राधा, तो फिर, अरे बंसी रह गयी हाथ मा और फिर ना लागी फूंक तो बंसी तो रह गयी हाथ में ही और फूंक मारना कन्हैया भूल गया।

मोर ने कहा, ए कान्हा, क्या हो गया। देखते तो रहो पर बांसुरी भी बजाते रहो।

राधा को शर्म आ गयी और उसने जब घूंघट नीचे खींचा तो मटकी नीचे गिर गयी और टूट गयी। जब कन्हैया ने देखा कि मटकी फूट गयी तो हंस पड़े। जब कन्हैया को हंसी आयी तो राधा और शरमा गयी और घर के अंदर जाकर दरवाजा बंद कर लिया। मोर ने कन्हैया को तिरछी आंख से देखा और कहा- क्यों कन्हैया, कैसी लगी यह? भगवान ने कहा, अरे मोर, यह तो बड़ी सुंदर मुलाकात तूने करवा दी। बहुत सुंदर कन्या का दर्शन करवाये तूने तो। राधा से मुलाकात, उसका दर्शन जो तूने करवाया है इसी याद में तेरा जो पंख है उसे मैं अपने मुकुट में सदा रखूंगा। इस तरह ये मोर मुकुट कृष्ण की शोभा बना।

वृन्दावनका कृष्ण कन्हैया, सबकी आँखों का तारा। मन-ही-मन क्यों जले राधिका मोहन तो है सबका प्यारा।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं, यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं, प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम्।।१०।।

पाँचवी गोपियोंने कहा- देख री सखी, ये हरिणियाँ भी धन्य-धन्य हैं। वंशी की धुनि सुनकर ये अपने पतियों के साथ कृष्ण के पास चली आयी हैं और सुन्दरवेशधारी श्रीकृष्ण की अपने प्रेमभरी चितवन से पूजा करती हैं। अरी सखी। जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं, तब मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियाँ भी वंशीकी तान सुनकर अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निरखने लगती हैं। निरखती क्या है, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभरी चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं। वास्तवमें उनका जीवन धन्य है। (हम वृन्दावनकी गोपी होनेपर भी इस प्रकार उनपर अपने को निछावर नहीं कर पातीं, हमारे घरवाले कुढ़ने लगते हैं। कितनी विडम्बना है।) ।।११।।

चन्द्रानना बोली- अरी सखियों, यद्यपि मृगियों ने पशु-योनि तो धारण की, परन्तु फिर भी वे महान धन्य हैं, क्योंकि वे सदैव श्याम सुन्दर प्रभु की शोभा को देखती रहती हैं और पतियों (मृगों) के साथ विचरती हुई मृगियाँ प्रीति के सहित देखते हुई सगे भ्राता बलराम के सहित गौओं की पालना करनेवाले श्रीकृष्ण का सम्मान करती हैं। इनका जो निर्भयता से देखना है, वही सत्कार करना है। हम अपने मन में यह निश्चय धारण करती हैं कि वन में जो पक्षी हैं, वे तो मुनीश्वर हैं, क्योंकि ये पक्षी वंशी की ध्वनि को सुनकर, नेत्र बन्द कर बोलना बन्द कर देते हैं, मानो मुनियों की न्याईं समाधि लगा रहे हों।

शुकदेव बोले- राजन्, उन सखियों में से एक बोली- अरी सखी, ये मृगियाँ मूढ़ मतिवाली होने पर भी धन्य है, जो विचित्र वेषधारी नन्दनन्दन के समीप वेणु की ध्वनि सुनते ही अपने पति कृष्णसार मृगों के सहित आकर अपने प्रणय

कटाक्षों द्वारा उनकी पूजा करती है।

ये हरिणियाँ धन्य हैं। ये पढ़ी-लिखी नहीं हैं तो क्या हुआ? कोई बड़ा भारी पण्डित हो, सौ शास्त्रोंका ज्ञाता हो, लेकिन यदि उसका हृदय द्रवित नहीं हुआ, उसमें भक्ति नहीं आयी तो वह किस कामका? वृन्दावनकी हरिणी साधारण हरिणी नहीं है। यह तो हरिं नयति है। यह कहाँ जा रही है, पूछनेकी जरूरत नहीं। उसके पीछे-पीछे चले जाओ। वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे श्यामसुन्दरको देखनेके लिए चली जा रही है। उसको वेदान्तज्ञानकी कोई जरूरत नहीं है। वह मूढ़मति होनेपर भी इसलिए धन्य है कि विचित्र-विचित्र वेश धारण करके आते हुए नन्दनन्दनको देखती है और उनकी वंशी-ध्वनि सुनती है। गोपियाँ कहती हैं कि हमारे पति तो हमारे साथ नहीं जाते। पर इनके पति कृष्ण-सार हैं, जिनके हृदयमें कृष्ण भरे हुए हैं और जो सदा इनके साथ रहते हैं। ये हरिणियाँ प्रेम-पूर्ण चितवनसे देख-देखकर उनकी पूजा करती है।

हमसे तो मृगियाँ ही अच्छी हैं, कि बाँसुरी की माधुरी का निश्चेष्ट होकर चुपचाप खड़ी हुई पानकर रही है। बड़े-बड़े सींगों वाले इनके पति ये कृष्णसार मृग भी इनके साथ ही खड़े हैं। इन्हें न इनका कुछ शील समोच है, न इन्हें इन पर अविश्वास अथवा ईर्ष्या ही। पति-पत्नी दोनों साथ-ही-साथ वेणु माधुरी का मत्त होकर पान कर रहे हैं।

मृगी पतिनि सँग सुनत तुरत जड़वत बनि जावें। प्रनय कटाक्ष चलाय श्याम प्रति भक्ति दिखावें।।
चढ़ि विमान सुनि वेनु धुनि, सुरनि सहित सुर सुन्दरीं। भईं विवश नीवी खिसीं, शिथिल केश माला गिरी।।

धन्या: स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता, या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसारा:, पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकै: ।।११।।

छठी सखी ने कहा- अरे, जरा ऊपर की ओर देखो। आकाश में विमान पर आरूढ स्वर्ग की देवियाँ, कामिनियों के मन को आकृष्ट करनेवाले श्रीकृष्ण के विचित्ररूप को देखकर और मुरली की ध्वनि को सुनकर सुध-बुध खो बैठी हैं। देखो-देखो उनके केशों के पुष्प और कटि की साड़ी खिसक कर नीचे गिर रही है।

अरी सखी। हरिनियोंकी तो बात ही क्या है- स्वर्गकी देवियाँ जब युवतियोंको आनन्दित करनेवाले सौन्दर्य और शीलके खजाने श्रीकृष्णको देखती हैं और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र आलाप सुनकर वे अपने विमानपर ही सुध-बुध खो बैठती हैं- मूर्छित हो जाती हैं। यह कैसे मालूम हुआ सखी सुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धीरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं। यहाँतक कि उन्हें अपनी साड़ीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे सरककर जमीनपर गिर जाती है।।१२।।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्वरूपशीलं, श्रुत्वा च तत्कणितवेणुर्विचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतय: स्मरनुन्नसारा, भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्य: ।।१२।।

सातवीं गोपीने कहा- अरी सखियों, वंशी के प्रभाव को तो देखो- जिस समय श्यामसुन्दर वंशी बजाते हैं, गायें भी अपने कान खड़े करके घास चरना छोड़ देती हैं और उनके बच्चे दूध पीना बन्द कर देते हैं। वे अपने मुख का दूध न उगल पाते हैं तथा न निगल पाते हैं। उनकी आँखों में प्रेम के आँसू और हृदय में गोविन्द का स्पर्श होता है।

आठवीं गोपी ने कहा- अरे, जरा वृन्दावन के पक्षियों की ओर तो देखो। सचमुच इन्हें पक्षी कहना ही गलत है। सत्य तो यह है कि उनमें से अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं। ये वृन्दावन के वृक्षों की डालियों पर बैठकर निर्निमेष नयनों से कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करते हुए तन्मय होकर वंशीनिनाद को सुनते रहते हैं। धन्य-धन्य है इनका जीवन।

अरी सखी। गौएँ और बछड़े तो हमारी घरकी वस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो। वृन्दावनके पक्षियोंको तुम नहीं देखती हो? उन्हें पक्षी कहना ही भूल है। सच पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं। वे वृन्दावनके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंकी नयी और मनोहर कोंपलोंवाली डालियोंपर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यारभरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं, तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल उन्हींकी मोहिनी वाणी और वंशीका त्रिभुवनमोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं। मेरी प्यारी सखी। उनका जीवन कितना धन्य है।।१४।।

प्रायो बताम्ब विमुनयो विहगा: मुनयो वनेऽस्मिन्, कृष्णोक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्, श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाच: ।।१४।।

यह पशु-पक्षी, लता-विटप पूर्व जन्म के ऋषि हैं। यहाँ श्री वृन्दावन धाम के लीलानिकुञ्ज में श्रीहरि के नाम का हर समय स्मरण करते हैं। **श्रीराधे श्रीराधे राधे राधे प्रिया प्रिया। श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कृष्ण कृष्ण प्रिया प्रिया।।**

इस व्रजके पक्षियोंकी बात तो देखो। वे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, उनकी वाणी सुनते हैं तथा उनके द्वारा बजाया हुआ वेणुगीतका आनन्द लेते हैं। वृक्षकी डालियोंपरसे। जैसे वेदकी शाखाएँ होती हैं, वैसे ही ये वृक्षोंकी डालियाँ हैं और जैसे वेदोक्त फलकी प्राप्ति होती है, वैसे ही इन वृक्षोंमें लाल-लाल रुचिरप्रवाल, कोंपलें हैं।

यह बड़े-बड़े ऋषि-महात्मा तप करते-करते कुछ अनुभव नहीं हुआ, तो यहां पक्षी बनकर आये हैं और घरौंदे में से अपना मस्तिष्क ऊंचा करके ये दामोदर का दर्शन कर रहे हैं। सारा माहौल कृष्णमय हो गया है।

हमसे तो ये वृन्दावन के वृक्षों पर रहनेवाले पक्षी ही धन्य हैं। देखो ये कैसे चुपचाप बोलना बन्द करके श्रीकृष्ण वेणुनाद को एकाग्रचित्त से श्रवणकर रहे हैं। उनकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहे हैं।

शान्तता, दान्तता, एकाग्रता, तन्मयता तथा निर्निमेषता को निहार कर हमें तो ऐसा प्रतीत होता है ये कोई पूर्वजन्म के मुनीश्वर हैं। बड़े सौभाग्यशाली हैं, वृन्दावन के पादपों पर इन्होंने जन्म ग्रहण किया है। नित्य प्रति यमुना जल पान करने को मिलता है और जहाँ से श्यामसुन्दर के सुभते से दर्शन हो सकें, उन मनोहर पल्लवों से युक्त शाखाओं पर बैठकर श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का यथेष्ट आहार प्राप्त होता है, इनके सौभाग्य की क्या सराहना की जायँ। हम तो विकलता के कारण भली-भाँति न तो श्यामसुंदर की मुरली ध्वनि को ही सुन सकती हैं और न उनके अनुपम सौंदर्य-माधुर्य का ही सावधानी के साथ अपलक भाव से पान ही कर सकती है। इतना कहते-कहते उसे भी भाव समाधि हो गयी।

इसे देखकर अन्य सखी बोली- इन वृन्दावन के पक्षियों को श्यामसुन्दर की रूप माधुरी के कारण जो समाधि हो जाती है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। कैसे भी सही पक्षी होने पर भी ये प्राणधारी जीव तो हैं। सचेतन प्राणियों का प्रेम होना स्वाभाविक है, इन अचेतन नदियों को भी देखो, मुझे तो ऐसा लगता है, श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी और वेणुमाधुरी के कारण ये भी काम विकार से पीड़ित-सी प्रतीत होती हैं।

बैठि तरुनिकी डार सुने वंशी धुनि नित प्रति। हम लालायित रहें रूप रसकी प्यासी अति।।
बड़भागी सरिता सकल, भुज तरङ्गतें सुमन धरि। आलिङ्गन हियमें करें, रूप माधुरी नयन भरि।।

नौंवी सखी ने कहा- गोपियों, चेतन की बात छोड़ो। अब जरा इन अचेतन नदियों की ओर दृष्टिपात करो। देखो, ये वंशी की ध्वनि को सुनकर अपनी जल-तरंगों की हलचल के व्याज से श्यामसुन्दर से मिलन की आकांक्षा व्यक्त कर रही हैं। लहरीरूपी हाथों से कमल का उपहार चढ़ा कर मानों कृष्ण की पूजा कर रहे हैं।

अरी सखी। देवता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों करती हो ? वे तो चेतन हैं। इन जड नदियोंको नहीं देखतीं? इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षाका पता चलता है ? उसके वेगसे ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो। ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरण पकड़कर कमलके फूलोंका उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिङ्गन कर रही हैं; मानो उनके चरणोंपर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं।।१५।।

अरे यमुने, आपके पास तो गति है और आप ही के किनारे तो दामोदर खड़े हैं और वेणु बजा रहे हैं तो आप क्या हमारा एक काम कर सकती हो कि हम आपको पत्र, पुष्प, फल आदि दें, तो क्या आप भगवान कृष्ण तक पहुंचा सकोगी?

यमुनाजी ने कहा- हां, लाओ दे दो। एक हवा का झोंका आया, कुछ फल गिरे कुछ पुष्प गिरे, कुछ पत्ते गिरे, और यमुना महारानी ने धीरे-धीरे मंथर गति से जहां दामोदर खड़े थे त्रिभंगी बने हुए, धक्का मारकर प्रभु तक पहुंचा दिये।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत- मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगा:।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे- र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहारा: ।।१५।।

अरी सखी। ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वीकी, हमारे वृन्दावनकी वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलोंको भी देखो। जब वे देखते हैं कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वालबालोंके साथ धूपमें गौएँ चरा रहे हैं और साथ-साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँड़राने लगते हैं और वे श्यामधन अपने सखा घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं। इतना ही नहीं, सखी। वे जब उनपर नन्हीं-नन्हीं फुहरियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं।।१६।।

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून सह रामगोपै:, सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदित: कुसुमावलीभि: सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्।।१६।।

ग्यारहवीं ने कहा- देखो, ये सौभाग्यवती भीलनियाँ, वनचरी स्त्रियाँ घासों पर लगे भगवान के चरण-कुंकुम को अपने स्तन और कपोलों पर पोत कर हृदय की प्रेम-पीडा मिटाती हैं।

अरी भटू। हम तो वृन्दावनकी इन भीलनियोंको ही धन्य और कृतकृत्य मानती हैं। ऐसा क्यों सखी ? इसलिये कि इनके हृदयमें बड़ा प्रेम है। जब ये हमारे कृष्ण-प्यारेको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि लग जाती है। उस समय ये क्या उपाय करती हैं, यह भी सुन लो। हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपयाँ अपने वक्ष:स्थलोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्याम-सुन्दरके चरणोंमें लगी होती है और वे जब वृन्दावनके घास-पातपर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। ये सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्तनों और मुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेम-पीड़ा शान्त करती हैं।।१७।।

पूर्णा: पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग- श्रीकुमुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन, लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्।।१७।।

हिय, मुख कुच कुंकुम मलें, प्रेम व्यथा मेटें अलीं। स्वर्ग सराहें सुरबधू, हमतें तो भीलिनि भलीं।।

तब एक अन्य बोली- सखियों, हम तो इन वनविहारिणी जंगली भीलनियों के सौभाग्य की सराहना करती हैं, हम ही क्या सराहना करती हैं, इनके सौभाग्य पर तो स्वर्ग की सुर-सुन्दरियाँ भी विस्मित हो जाती है।

एक सखी ने कहा- आली, इन भीलनियों ने ऐसी कौन सी निधि पाली है।

बारहवीं गोपी ने कहा- जरा, इन हरिदास शिरोमणि गिरिराज की ओर तो देखो। इन्हें प्रतिदिन भगवान् के चरणारविन्द के स्पर्श का परमानन्द प्राप्त होता है। ये सैकड़ों उपचारों के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं। वे झरने का सुमधुर जल देते हैं, हरी-हरी कोमल घास देते हैं, विश्राम के लिये कन्दरा देते हैं, खाने के लिये कन्द और मूल देते हैं।

अरी गोपियों। यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान्के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य। देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है। इसके भाग्यकी सराहना कौन करे ? यह तो उन दोनोंका- ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता हैं। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है, गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है।।१८।।

प्रभावती बोली- अरी गोपियों, यह श्रीगोवर्धन पर्वत भगवद्भक्तों में शिरोमणि है, क्योंकि यह भगवान बलराम-श्रीकृष्ण के श्रीचरण-कमलों का शरीर के साथ स्पर्श होने से अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है, तथा सुन्दर घास, गुफा और नाना प्रकार के कंद मूल फलों से (अर्थात् पृथ्वी से निकलने वाले आलू जिमीकंद आदि से) तथा झरनों के मीठे-मीठे जल से नित्य लीन बलराम-श्रीकृष्ण का सम्मान करता है। भगवान बलराम-श्रीकृष्ण के चरण कमलों के चिन्हों से युक्त होने के कारण यह गोवर्धन पर्वत गुरु के समान हमारे लिए नित्य प्रति पूजने के योग्य है।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो, यदु रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोद:।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्, पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलै: ।।१८।।

तब एक अन्य सखी बोली- सखियों, श्रीश्यामसुन्दर से जिनका किसी भी प्रकार तनिक भी संबंध हो जाय, वही धन्य है। किंतु हम तो इस गिरिराज गोवर्धन पर्वत को सबसे अधिक धन्यतम मानती हैं, इसके सौभाग्य को तो कोई दूसरा प्राप्त कर ही नहीं सकता और सब नारद सनकादि तो हरिदास ही हैं, किन्तु यह पर्वत तो हरिदासवर्य है।

दूसरी सखी बोली- यद्यपि इस पर्वत को सब लोग जड़ कहते हैं। किंतु मेरे मत में यथार्थ चैतन्यता का लाभ इने ही प्राप्त किया है। इसकी प्रत्येक शिला पर बलराम के सहित वनों में गौओं के संग विचरण करनेवाले श्यामसुन्दर के पादपद्म पड़े हैं। श्रीकृष्ण चरणारविंदों से यह कृतकृत्य हो गया है।

शरीर रोमांचित हो जाता है। इसी प्रकार इस पर्वत का शरीर श्रीकृष्ण के पादस्पर्श से उनके दर्शनों से रोमाञ्चित हो जाता है। यह भगवान का सखाओं का गौओं का हृदय से स्वागत-सत्कार करता है, गौओं को खाने के लिये सुंदर-सुंदर हरी-हरी दूब देता है। गोपालों के लिये मधुर स्वादिष्ट कंदमूल फल देता है। सबको पीने के लिये सुंदर स्वच्छ अपने झरनों का अमृत तुल्य जल देता है बैठने के लिये अपनी कंदराओं को देता है। अतिथि को विश्राम करने को स्थान भोजन और जल यही स्वागत में आवश्यक है, सो यह अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। कुछ भी बचाकर नहीं रखता है। इससे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन होगा?

शुकदेव बोले- राजन्, एक अन्य सखी कह रही है- सखियो, हाय, हम कुछ नहीं। यह गोवर्धन पर्वत ही हरिदासों में सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के स्पर्श से प्रमुदित होकर श्रीकृष्ण की गौओं की तथा गोपों की पानी से, सुन्दर हरी घास से कन्दरा तथा कन्द मूलों से सम्मान करके सेवा कर रहा है।

सखियों, देखो, नभ में काले-काले मेघ इस प्रकार क्यों उमड़-घुमड़ रहे हैं?

इन्हीं का जीवन धन्य है, इनका ही जलधर नाम सार्थक है, जो अपने जल का और तन का श्रीकृष्ण कैंकर्य करके सदुपयोग करते हैं, हम हत भागिनी तो ऐसी हुई, कि श्याम के किसी काम में न आई यह मुरली धन्य है जो मदनमोहन का मनोरंजन तो करती है। इतना कहते-कहते सखी का कण्ठ रुद्ध हो गया। शरीर रोमांचित हो गया और नेत्र की पुतलियाँ चढ़ गयीं।

तेरहवीं ने कहा- अरी सखियों, जब श्रीकृष्ण गायों को साथ लेकर मधुर-मधुर स्वर से वंशी की तान छेड़ते हुए चलते हैं, तब चलने-फिरनेवाले चर प्राणी अचल हो जाते हैं और अचल चल हो जाते हैं, झूम उठते हैं। परमात्मा होकर भी जब ये बाल-क्रीड़ा करते हुए अपने सिर पर नोवना (दुहने के समय गाय का पैर बाँधने की रस्सी) लपेट कर और कन्धों पर फन्दा (भागनेवाली गायों को पकड़ने की रस्सी) रखकर एक वन से दूसरे वन में, गायों के पीछे-पीछे, जाते हैं उस समय इनकी शोभा न्यारी होती है।

अरी सखी। तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखतीं ? जब हमारे कृष्ण-प्यारे अपने मुखसे बाँसुरीमें स्वर भरते हैं और गौएँ उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब ये अपने दोनों कानोंके दोने सम्हाल लेती हैं- खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीतका रस लेने लगती हैं। ऐसा क्यों होता है सखी ? अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वहीं विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं। और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायोंके थनोंसे अपने-आप दूध झरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं, तब मुँहमें लिया हुआ दूधका घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदयमें भी होता है भगवान्का संस्पर्श और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू। वे ज्यों-के-त्यों ठिठके रह जाते हैं।।१३।।

ए गोपी, जरा इन गायों को तो देख, भगवान दामोदर, भगवान श्रीकृष्ण अपनी बांसुरी जब बजा रहे हैं, तो इनमें से यह अमृत निकल रहा है और ये गायें अपने कानों को ऊंचा करके कानों के माध्यम से हृदय में ग्रहण कर रही हैं। हृदय से स्तन तक आ रहा यह अमृत दूध रूप में बह रहा है उनके स्तनों में से। एक ओर तो यह काली-काली यमुना और दूसरी ओर नौ लाख धेनु। गायों के स्तनों से जो दूध बह रहा है उससे दूध की यह सफेद नदी बन गयी है। और दोनों मिल रही हैं तो जरा यह तो देख कि कितना सुंदर दिखाई देता है।

गावञ्च कृष्णामुखनिर्गतवेणुगीत- पीयूषमुत्तभितकर्णपुटै: पिबन्त्य:।
शावा: स्तुतस्तनपय:कवला: स्म तस्थु- गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकला: स्पृशन्त्य: ।।१३।।
चरत-चरत तृन धेनु सुनरीं मादक मुरली धुनि। श्रवनि पुटनितें पान करैं हरषित ह्वै पुनि-पुनि।।
बछरा मुखमहँ कौरि धरि, ज्योंके त्यों ठाढ़े रहें। झाग गिरें मोती सरिस, धुनि प्रवाहमहँ सब बहें।।

शुकदेव बोले- राजन्, एक सखी कह रही है- देखो ये गौ और बछड़े ही धन्य है। ये गौएँ अपने उन्नत श्रवणपुटों से श्रीकृष्ण मुखनिसृत वेणुरूपी अमृत का पान करती हुई तथा अपने नेहनीर पूरित नयनों द्वारा उनकी मधुर मूर्ति को हृदय में ले जाकर उसका आलिङ्गन करती हुई निश्चेष्ट खड़ी हैं और ये इनके बछड़े भी दूध झरते हुए स्तनों का घूँट मुख से टपकाते हुए स्तम्भित खड़े हैं।

इन पशु जाति की गौओं को देखो। ये मदनमोहन के मुखनिसृत वेणुगीत रूप अमृत का अपने ऊँचे उठे हुए श्रवण पुटों द्वारा पान करके आत्मविभोर-सी बनी खड़ी हैं। इन्हें अपने शरीर की सुधि-बुधि नहीं। नयनों से निरन्तर नेह का नीर निकालती हुई नीरव तथा निस्तब्ध बनी खड़ी हैं। इनके शरीर के समस्त रोमस्याही के काँटों के सदृश खड़े हैं, इससे प्रतीत

होता है ये श्यामसुन्दर की मधुरातिमधुर मूर्ति को नयनों द्वारा अन्त:करण में ले जाकर उसका कसकर आलिङ्गन कर रही हों, क्योंकि बिना अन्त: स्पर्शालिंगन के इस प्रकार रोम खड़े हो ही नहीं सकते। ये बछड़े अपने मुख के कौर को मुख में ही रखे, चुपचाप सन्न हुए खड़े हैं, इनके मुख से दुग्ध के बिन्दु उसी प्रकार टपक रहे हैं, मानो वृक्ष से श्वेत पुष्प झर रहे हों। ये गौएँ और बछड़े ही धन्य हैं जो श्रीकृष्ण का मन से आलिंगन कर रहे हैं।

अरी सखी। इन साँवरे-गोरे-किशोरों की तो गति ही निराली है। जब वे सिरपर नोवना (दुहते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्सी) लपेटकर और कंधोंपर फंदा (भागनेवाली गायोंको पकड़नेकी रस्सी) रखकर गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, साथमें ग्वालबाल भी होते हैं और मधुर-मधुर संगीत गाते हुए बाँसुरीकी तान छेड़ते हैं, उस समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियों में भी चलनेवाले चेतन पशु-पक्षी और जड नदी आदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल-वृक्षोंको भी रोमाञ्च हो आता है। जादूभरी वंशीका और क्या चमत्कार सुनाऊँ ?।।१९।।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार- वेणुस्वनै: कलपदैस्तनुभृत्सु सख्य:।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां, निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्।।१९।।

चन्द्रावली बोली- हे सखियों, संसार में हमारे ही भाग्य सबसे बड़े हैं, क्योंकि इस ब्रजमंडल रूप स्वर्ग में इन्द्र और उपेन्द्र (वामन) के समान दोनों भाई बलराम तथा अघासुर के शत्रु श्रीकृष्ण बसे हैं। श्रीकृष्ण के शत्रुसमूह को नाश करनेवाले हल को धारणे वाले बलराम इन्द्र के समान हैं। तथा हे प्यारी, नन्दराज के पुत्र श्रीकृष्ण वामन भगवान के समान, देवता रूप ब्रजवासी गोपों की सदा प्रतिपालना करनेवाले हैं।

परीक्षित्, वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण की इस प्रकार विविध लीलायें हैं। गोपियाँ प्रतिदिन उनका वर्णन करती हुई कृष्ण में तन्मय हो जाती थीं। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों ने अपने अभिमान का परित्याग कर दिया था। इस प्रकार अपनी तेरह इन्द्रियों को भगवान में स्थिर कर गोपियों ने अपने हृद्गत भावों को अभिव्यक्त किया है।

सकल भुवन वश कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
थकित भये रवि-रथ-हय सारे, चंचल पवन चलप गति हारे। ग्रह, नक्षत्र थिर कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
थम गई यमुना की चंचल धारा, खग-कुल भूला कलरव सारा, सबहिं सिथिल तनु कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
सुनि धुनि धेनु-वत्स-मृग मोहैं, मौन खड़े तपसी-सम सोहैं। सबहिं मोह-वश कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
शुक सनकादि महामुनि जेते, धुनि सुनि विरत ध्यान भये तेते। शिव विधि मोहित कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
ब्रह्मा जी भूले वेद पढ़ाई, शिव, जी सघन समाधि भुलाई, सबहिं चकित चित कीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
विटप-लताओं के पात सिथिल भये, जल-थल-नभ-चर सब मोहित भये। सबका मन हर लीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
धुनि सुनि विकल भईं ब्रज-बाला, सब मिलि ढूँढ़ै नन्द का लाला। मिलन-चाह भरि दीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
मिलन-प्यास उर ऐसी जागी, निकल चलीं सबही गृह त्यागी। अति आतुर करि दीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
वृन्दावन में रास रचइया, द्रुपद-सुता की लाज बचइया। गीता-ज्ञान कहि दीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
दुखदायी निशिचर संहारे, ब्रज-हित नख पर गिरिवर धारे। जग को मंगल दीन्हा रे, श्याम वंसिया बजाइके।।
नटवर नागर नन्द दुलारे, विद्यानाथ पर कृपा प्रसारे। चरण-कमल-रति दीन्हा रे, श्याम बंसिया बजाइके।।

हे राजन्, श्रुतिरूपा जो गोपियाँ थीं, वे शेषशायी भगवान विष्णु के पूर्व कथित वर से व्रजवासी गोपों के उत्तम कुल में उत्पन्न हुईं। उन सब ने वृन्दावन में परम कमनीय नन्दनन्दन का दर्शन करके उन्हें वर रूप में पाने की इच्छा से

वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवी की समाराधना की। वृन्दादेवी के दिए हुए वर से भक्त वत्सल भगवान श्रीकृष्ण उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो गए और प्रतिदिन उनके घरों में रास क्रीड़ा के लिए जाने लगे।

१७) चीरहरण लीला- गोपियाँ कृष्ण को जिस देवी-देवता अथवा साक्षात् ईश्वर से कम नहीं समझती थी भले ही उनके प्रति उनका प्रेमभाव, सखाभाव था। भाद्रपद की अनन्त चतुर्दशी के दिन यह सभी कृष्ण पूजन के लिये आई थीं। कृष्ण अश्वत्थ पीपल वृक्ष के नीचे बैठ गये थे।

जनकपुर की कन्याएँ भगवान श्रीराम के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गयी थीं। वे उसी जन्म में उन्हें अपना पति बनाना चाहती थीं। किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम राम उस जन्म में उनकी वह कामना पूर्ण न कर सके। उन कन्याओं ने भगवान् को अपना तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर दिया। एक दिन स्वप्न में ही भगवान् श्रीराम प्रेमाकृष्ट हो उनके समक्ष प्रकट हो गये। कन्याओं ने उनके गले में जयमाल डालकर उन्हें अपना पति बना लिया था। भगवान ने स्वप्न में इसकी स्वीकृति देते हुए उन्हें आदेश दिया कि तुम कात्यायनीदेवी का व्रत करो। मैं कृष्णावतार में तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

तदनुसार राम के वरदान से वे कन्याएँ व्रज में उत्पन्न हुयीं। भगवान् के रूप पर मोहित हो वे सब उन्हें पति रूप में वरण करना चाहती थीं। उन्होंने विवाह नहीं किया। केवल देवी की आराधना कर उन्होंने अपने जन्म बिता दिये। उसी पूर्वसंस्कारवश इन गोपकन्याओंको वेणुनाद सुनते ही स्मृति जाग उठी और हेमन्त ऋतु के मार्गशीर्ष मास में उन्होंने कात्यायनीदेवी की आराधना आरम्भ कर दी। कृतप्रतिज्ञ भगवान् वर-प्रदान द्वारा अपनी नित्यसिद्ध पत्नियों के चिर अभिलषित मनोरथ पूर्ण करने को वहाँ पहुँच गये।

नन्द व्रज और बृहत्सानुपुर (बरसाने) की सब बालिकाओं ने कार्तिक पूर्णिमा से कात्यायनी देवी का व्रत आरम्भ किया। भगवती पूर्णवासीजी ने यह उपासना करने का निर्देश दिया है ऐसा कहकर वृषभानुनन्दिनी ने भी व्रत करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। इस व्रतोपासना के समय कोई नर या विवाहित नारी नहीं आ सकती है। अत: मातायें इन बालिकाओं को सूर्योदय से पूर्व ही घर से चले जाने पर चिन्तित अवश्य थीं किन्तु आराधना में व्यवधान डालना नहीं चाहती थमं।

हेमन्त प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिका:। चेरुर्हविष्यं भुज्जाजाना: कात्यायन्यर्चनव्रतम्।।

ये अल्पायु की बालिकायें अरुणोदय से पूर्व ही पूजन की डलिया लेकर एक दूसरे को बुलाती हुई एकत्र होकर श्रीश्यामसुन्दर का गुणगान गातीं, हंसती, भुजाओं में भुजायें डाले जाती यमुना पुलिन की ओर। एकान्त कालिन्दी कूल स्नान के लिए निश्चित कर लिया था। प्रतिदिन कूल पर पहुँच कर वस्त्र उतार जल में प्रवेश कर परस्पर जल सिंचन करतीं, विनोद करती, किलोल करतीं।

समूचा वृन्दावन ही कृष्ण का पूजन करने उमड़ पड़ा। उनमें सभी चंचल, किशोरियाँ, गम्भीर प्रौढ़ाएँ और आस्थावान् वृद्धाएं थीं। सबने कृष्ण का बड़े प्रेम से पूजन किया। फिर भोग लगाया। सबने अपने हाथों बनाएं पक्वान्नों और मिष्टान्नों को अपने हाथों से उनके मुख में खिलाने की होड़ लगा दी। अन्त में कृष्ण उनसे दूर खड़े होकर बोले- यह मेरा पेट है या यमुना का विस्तार। अब यह सब बन्द करो। अब मुझे कुछ नहीं खाया जायेगा। अब जो कुछ बचा है वो यमुना मैया की पेट में डाल दो। गोपियां बोलीं- कान्हा, मत खाओ। पर अब एक बात बताओ कि ये प्रसाद किसको खिलाये, हम फेकेंगे नहीं। कृष्ण बोला- मुझे खाने के लिये बाध्य नहीं करो। दुर्वासा ऋषिको खिला दो। बेचारे बूढ़े वृद्ध ऋषि को ऐसे सुस्वादु पदार्थ आजीवन नहीं मिले। वे तृप्त हो जाएंगे।

गोपियां बोलीं- पर एक बाधा है भाद्रपद में यमुना की उफनती, हिलोरें लेती लहरें। कोई नाविक उस पार जाने को तैयार

नहीं होगा। फिर यमुना पार उस धूनी रमण दुर्वासा तक हम कैसे जाएं। तुम तो बड़े चमत्कारी हो। पता नहीं मैया यशोदा के पेट से कौन-कौन से चमत्कार सीखकर आये हो। कन्हैया बोला- यमुना किनारे जाकर पुकार कर कहना- अगर कन्हैया को अब तक किसी पर नारी का स्पर्श नहीं प्राप्त हुआ हो तो हमारी नौका सकुशल उस पार पहुँच जाय। फिर तुम सबकी सब बारी-बारी से नाव लेकर उस पार पहुँच जाओगे।

गोपियाँ सुनकर खिल-खिलाकर हँसने लगी। कन्हैया ने आश्चर्यचकित होकर पूछा- तुम सब क्यों हँस रही हो? एक गोपी बोली- तुम्हारी बात पर हँसे नहीं तो और क्या? तुम कहते हो कि कन्हैया ने अब तक कोई पर नारी का स्पर्श नहीं किया। फिर यह रोज-रोज क्या हो रहा है? गोपियों के हाथों-में-हाथ डालकर वन मयूर की भाँति कौन नाचता है? गोपी की गोदी में पसरकर कौन सोता है? फिर तुम कहते हो कि तुमने किसी पर-नारी का स्पर्श नहीं किया। हमको क्या यमुना में डूब मरना है? कृष्ण बोले- तो फिर लौट जाओ अपने-अपने घर। कन्हैया तो यह कहकर अन्तर्धान हो गया। किसी प्रौढ़ गोपी ने सोचकर कहा- चलो इसे भी आजमा लो। दुर्वासा को खिलाये बिना वापस लौटना उचित नहीं। एक गोपी बोली- हमें क्या मरने की पड़ी हैं? यह कान्हा तो नित्य ही हमारी गोद में सोता है और कहता है- ऐसा जाकर यमुना से कहो कि कन्हैया ने कोई पर नारी का स्पर्श नहीं किया है यमुना तुम्हें मार्ग दे देगी। तब प्रौढ़ गोपी बोली- इसे आजमाने में क्या हर्ज है? अगर कहीं खतरा लगा तो बीच से ही लौट आएंगे और अगर मर भी गई तो इसी कान्हा के नाम पर मर मिटेगी। यह सुनकर गोपियाँ यमुना के किनारे चल पड़ी। यमुना पूरे जोर पर थी। तीव्र हवा का झौंका पाकर लहरें आसमान छू रही थी। वहाँपर एक बड़ी नौका थी पर कोई नाविक नहीं था। गोपिकाओं ने किनारे खड़ी होकर श्रीकृष्ण की बात दुहराई- हे यमुना मैया, अगर कन्हैया ने आज तक किसी परकीया का स्पर्श नहीं किया हो तो तुम हमारी नौका को सकुशल उस पार पहुँचा दो। और सब जा बैठीं उस बड़ी, पर जर्जर प्रतीत होती काष्ठ-नौका में। अनाड़ी हाथों से नौका खेना आरम्भ किया और सचमुच यह लो, वह लो, वे अन्ततः उस किनारे जा ही पहुँची।

गोपियां बोली- यह तो चमत्कार हुआ। एक गोपी बोली- यह संयोग भी तो हो सकता है। गोपियां बोली- अब जो भी हुआ चलो, पहले दुर्वासा की क्षुधा-पूर्ति करें। और वे सब-के सब दुर्वासा- कुटी की ओर बढ़ चलीं।

दुर्वासा ऋषि बहुत वर्षों से बुभुक्षित थे। बात-की-बात में पूरा हविषान्न खा गये। गोपांगनाओं के सम्पूर्ण पक्वान्न, मिष्टान्न निःशेष हो गए। कितने प्रेम से मुनि ने उनका प्रसाद ग्रहण किया। एक तरफ वह नंद का छोरा, एक-दो मिष्टान्न और मालपुआ के बाद ही भाग खड़ा हुआ। दुर्वासा अभी तृप्त नहीं हुए थे पूछ लिया और कुछ बचा है? गोपियां बोली- महामुनि अब कुछ नहीं बचा। दुर्वासा बोले- ठीक है तो अब वापिस लौट जाओ। दुर्वासा अपनी समाधि में जाने को प्रस्तुत थे गोपियोंकी वापिस लौटने की विवशता थी। यमुना फिर अपने उफान पर थी। ऋषि तो सर्वसमर्थ है कुछ भी कर सकते हैं? गोपियां बोली- महाराज एक प्रार्थना है। यमुना में भीषण बाढ़ आई है। अगर आपका आशीर्वाद हो तो हम उस पार उसके सहारे चले जाएँ। ऋषि बोले- मेरे आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं। पर एक उपाय है। तुम्हें नौका का सहारा भी नहीं लेना पड़ेगा और तुम यमुना पार कर जाओगी। गोपियों ने कहा- महाराज, क्या उपाय है? दुर्वासा बोले- तुम नदी-किनारे जाकर कहना- हे यमुने, अगर ऋषि दुर्वासा ने पिछले बारह सालों से हवा के अतिरिक्त कुछ नहीं ग्रहण किया हो तो तुम हमें मार्ग दे दो। तुम निस्संकोच नदी से पार उतर जाओगी। दुर्वासा थे क्रोध की साक्षात् प्रतिमूर्ति। उनके समक्ष गोपियों का हँसना अशिष्टता होती। गोपियाँ सोच रही थी अभी-अभी अपार पक्वान्न-मिष्टान्न ऋषि के उदर के हवाले किये और यह मुनि कह रहे हैं कि दुर्वासा ने वायु के सिवा बारह वर्षों में कुछ भी भक्षण नहीं किया तो यमुना राह दे देगी नौका की भी आवश्यकता नहीं है। रात्रि का समय हो आया। गोपियां

सोचने लगी- इस समय इस जंगल में रहना हमारे लिये वांछनीय नहीं है। ऋषि के क्रोधाग्नि से जल मरने से तो यमुना जल में डूब मरना ही अच्छा है। गोपियोंने सोचा- उनकी मृत्यु तो निश्चित ही है। ऋषि की तपस्या के बल पर यमुना-जल में एक बूँद भी नहीं रहे। पर मिथ्या वचन पर यमुना मार्ग देने लगेगी तो सत्य किसकी शरण में जायेगा। एक गोपी बोली- चलो, इस बार ऋषिकी परीक्षा कर ले और यह विचारकर वह गोपी पानी में उतर गई। धारा के बीचों बीच चली गयी। उसको देखकर अन्य गोपियोंने साहस किया और पानी में उतर गई। उतरकर उस पार पहुँच गयीं और जल की एक बूंद भी उनके वस्त्रोंको गिला नहीं कर पाई। वह प्रौढ़ा गोपी बोली- लगता है द्वापर का अन्त आ गया है, कलियुग आ गया। तभी तो सत्य पर मिथ्या की विजय हो रही है। सभी अपनी जिज्ञासा लेकर कन्हैया के पास करने गयी।

दूर से ही बाँसुरी की मन्द, मधुर ध्वनि कानों में पड़ी। हवा की लहरियों पर चढ़ती-उतरती गोपिकाओं के कर्ण-रन्ध्रों तक पहुँचती यह अद्‌भुत संगीत-ध्वनि गोपांगनाओं को मदहोश करने लगी। तो कन्हैया बाँसुरी की तान छेड़ बैठा है। कुछ ने सोचा। किस खुशी में? इसीमें तो कि सारी-की-सारी गोपांगनाओं ने यमुना-जल में समाधि ले ली होगी? उपक्रम तो उसने पूरा कर दिया था इसका। वह तो इनका भाग्य प्रबल था कि वे सकुशल वापस आ गईं।

जैसे-जैसे वंशी का स्वर समीप आता गया, लड़खड़ाती, गिरती-पड़ती वे नन्द-गृह की ओर दौड़ने-सी लगी थी; जैसे डोर में बँधी पतंग खिंचती है उसी तरही वे यशोदा के आँगन की ओर खिंचती चली गईं। उन्हें सामने पाते ही बीच आँगन में अपनी त्रिभंगी मुद्रा में खड़े कन्हैया ने बाँसुरी को होठों से हटा लिया- लौट आईं तुम? कर आईं ऋषि दुर्वासा को तृप्त?

गोपियां बोली- तुमने तो हमारे तर्पण का ही प्रबन्ध कर दिया था।

श्रीकृष्ण ने पूछा- यह कैसे?

गोपियां बोली- उस जर्जर नौका पर बिना नाविक के हम पार लग गई, यही क्या कम है?

श्रीकृष्ण बोले- हो गईं न पार? मेरे बताए उपाय का तो सहारा लिया होगा न?

गोपियां बोली- यही तो रोना है। सत्य पर मिथ्या की विजय। लगता है घोर कलियुग आ गया।

कन्हैया बोला- कैसा सत्य? कैसी मिथ्या?

गोपियां बोली- अब एक बात हो तो बताएँ। तुम जो लगातार हमारे संसर्ग में रहते हो, इस बल पर उस जर्जर नौका को किनारे लगा दिया कि तुमने किसी पर-नारी का स्पर्श ही नहीं किया और तुमसे भी बड़ा चमत्कारी निकला वह ऋषि दुर्वासा जो हमारे सामने ही टोकरे-के-टोकरे मिष्टान्न-पक्वान्न पेट में डाल गया और इस कथन पर यमुना-जल के बीचोंबीच ही राजमार्ग-सा निर्मित कर दिया कि वह बारह वर्षों से केवल वायु पर पल रहा है।

गोपियों ने कहा- हे प्रभो, हमने मुनि दुर्वासा का दर्शन उनके सामने जाकर किया, किन्तु आप दोनों के वचनों को सुनकर उनकी सत्यता के सम्बन्ध में हमारे मन में संदेह उत्पन्न हो गया है। जैसे गुरुजी असत्यवादी हैं, उसी तरह चेला भी मिथ्यावादी हैं- इसमें संयश नहीं है। हे अघनाशन, आप तो गोपियों के उपपति और बचपन से ही रसिक हैं, फिर आप बालब्रह्मचारी कैसे हुए? यह हमें स्पष्ट बताइये और हमारे सामने बहुत सा अन्न (भार के भार छप्पन भोग) खा जाने वाले मुनि दुर्वासा केवल हवा पीकर रहने वाले कैसे हैं? व्रजेश्वर, हमारे मन में यह भारी संदेह उठा है।

कृष्ण बोले- तो इसमें मिथ्या क्या है?

गोपियां बोली- मिथ्या नहीं है? क्या तुम परनारियों के संस्पर्श से रहित हो?

कृष्ण बोले- हाँ। गोपियां बोली- क्या बोलते हो? क्या उनका स्पर्श तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ।

कृष्ण बोले- नहीं, अब तो उनको मेरा स्पर्श मिलता हैं। गोपियां बोली- फिर बात तो एक ही हुई।

कृष्ण बोले- बात एक कैसे हुई। स्पर्शजनिक आनन्द अथवा अनुभूति का भान तुम्हें होता होगा तो होता होगा। मुझे नहीं होता। मैं इन सारी क्रियाओं में पूरी तरह तटस्थ हूं। मैं जो कुछ होने देता हूँ तुम्हारा मन रखने के लिए। मैंने किसी परकीया का स्पर्श जाना ही नहीं, यह मिथ्या नहीं सत्य है।

गोपियां बोली- ठीक हैं, पर वह ढोंगी ऋषि? हमारे सामने ही सबकुछ चट कर गया और वह बोलता है बारह वर्षों से वायु भक्षण कर रहा है और यमुना तक ने उसके वचन की मर्यादा रख दी। यह कलिकाल नहीं तो क्या है?

वह ऋषि भी मिथ्या-भाषण नहीं कर रहा था। वह ठीक ही बारह वर्षों से केवल वायु के सहारे हैं।

गोपियां गर्व से बोली- और हमने जो उसे मनों अन्न खिलाया?

कृष्ण बोले- तुमने खिलाया पर उसने खाया तो नहीं। गोपियां बोली- खाया कैसे नहीं? हमारे सामने ही तो वह सबकुछ डकार गया।

कृष्ण बोले- वह सब तुम्हारा मन रखने के लिए था। उसने कुछ नहीं खाया। जाकर पूछो तो तुम्हारे मधुर-से-मधुर मिष्टान्न और सुस्वादु से सुस्वादु पक्वान्न के स्वाद तक का उसे पता नहीं। वह तो पूर्णतया निस्संग था, तटस्थ। वायु अब भी उसका आहार है, पहले भी थी। तुम चाहे जो उसके मुँह में डाल आओ, उसको क्या? उसमें उसकी प्रीति कहाँ हैं?

श्रीकृष्ण ने कहा- गोपियों, मैं ममता और अहंकार से रहित, सबके प्रति समान भाव रखनेवाला, सर्वव्यापी, सबसे उत्कृष्ट, सदा विषमता शून्य तथा प्राकृत गुणों से रहित हूँ- इसमें संशय नहीं है। तथापि जो भक्त मेरा जिस प्रकार भजन करते हैं, उनका उसी प्रकार मैं भी भजन करता हूँ। इसी प्रकार ज्ञानी साधु-महात्मा भी सदा विषम-भावना से रहित होते हैं। योगयुक्त विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह कर्मों में आसक्त हुए अज्ञानीजनों में बुद्धि-भेद न उत्पन्न करे। उनसे सदा समस्त कर्मों का सेवन ही कराए। जिस पुरुष के सभी समारम्भ (आयोजन) कामना और संकल्प से शून्य होते हैं, उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्नि में दग्ध हो जाते हैं। अर्थात् उनके लिए वे कर्म बन्धन कारक नहीं होते हैं। ऐसे पुरुष को ज्ञानीजन पण्डित (तत्वज्ञ) कहते हैं। जिसके मन में कोई कामना नहीं है, जिसने चित्त और बुद्धि को अपने वश में कर रखा है तथा जो समस्त संग्रह परिग्रह छोड़ चुका है, वह केवल शरीर-निर्वाह सम्बन्धी कर्म करता हुआ किल्विष (कर्मजनित शुभाशुभ फल) को प्राप्त नहीं होता। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने आप में उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। जो समस्त कर्मों का ब्रह्मार्पण करके, आसक्ति छोड़कर, कर्म करता है, वह पाप से उसी प्रकार से लिप्त नहीं होता, जैसे कमल का पत्र जल से। इसलिए मुनि दुर्वासा तुम सब के हित-साधन में तत्पर होकर बहुत खानेवाले हो गए। स्वत: उन्हें कभी भोजन की इच्छा नहीं होती। वे केवल परिमित दुर्वारस का ही आहार करते हैं।

गोपियाँ निरुत्तर। क्या उत्तर था उनके पास? फिर यमुना जो उसकी साक्षी थीं। मार्ग निर्विघ्न किया था दोनों ओर से उन्होंने इन्हीं दोनों के उन कथनों पर जिन्हें वे मिथ्या सिद्ध करने पर उतारू हैं।

तो एक बात तो स्पष्ट हुई। गोपिकाओं में जो सबसे अधिक रूपवती थी और जो श्रीकृष्ण को अपने सर्वाधिक समीप मानने की डींग मारती थी बोली।

क्या? कि तुम सबकुछ हमारी प्रसन्नता के लिए करते हो? तुम्हारी इसमें अपनी कोई रुचि नहीं।

कृष्ण बोले- रुचि होना या न होना गौण है। तुम प्रसन्न रहती हो यही प्रधान है।

उसने झूठलाकर कहा- तो कल से हम तुमसे नहीं मिलती।

सबों ने उसे खींचते हुए कहा, अरे चल भी। जैसे न मिलना हमारे हाथ में है। जब तक यह निगोड़ी मुरली इसके हाथ में रहेगी यह हमें खींचे बिना कहाँ छोड़ने का है? न सही इसे हमारी आवश्यकता, हमें तो इसकी आवश्यकता है। हम इसे देखे बिना जी भी कैसे सकती हैं?

कार्तिक स्नान और तुलसी विवाह- शुकदेव बोले- राजन्, हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में श्रीनन्दजी के ब्रज में रहनेवाले गोपों की कुमारी कन्याओं ने हविष्यान्न भोजन करते हुए कात्यायनी देवी के पूजन का नियम किया।

स्त्रियों के लिये कार्तिक मास के स्नान का बड़ा माहात्म्य है। वैसे तो स्त्री पुरुष सभी के लिये कार्तिक स्नान परम पुण्यदायक है किन्तु स्त्रियाँ इस व्रत को अत्यधिक करती हैं। जिन देशों में पूर्णिमा के पश्चात् महीना आरम्भ होता है, उन देशों में आश्विन की शरद पूर्णिमा से यह स्नान आरम्भ होकर कार्तिकी पूर्णिमा को समाप्त होता है। जिन देशों में अमावस्या के अनन्तर महीना आरम्भ होता है, उन देशों में दीपावली से आरम्भ होकर मार्गशीर्ष की अमावस्या को यह स्नान समाप्त होता है। इस व्रज में यह आवश्यक है, कि सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व अरुणोदय में अवश्य ही स्नान हो जाना चाहिये। अपने समीप कोई नदी हो, जलाशय हो तो उसमें स्नान करे, दोनों के अभाव में कूप में स्नान करे। हविष्य अन्न का एक बार भोजन करे, नमक न खायं, नियम से ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे। व्रत के समस्त नियमों का पालन करे। वृन्दादेवी तथा पार्वतीजी का विधिवत् पूजन करे, गीत गावें और ग्राम की अथवा देवमन्दिर की परिक्रमा दें और भी इसी प्रकार के नियम हैं।

करि पूजा सब नियम करें दुर्गे, जगदम्बे। नन्दनँदन पति होहिँ देहु बर वरदे अम्बे।।
यों हविष्य करि असन नियम व्रतके सब साधें। श्रद्धा भक्ति समेत भगवतीकूँ आराधें।।
सुखद सरल लीला करी, प्रेम निरखि निष्कपट हरि। अपनाई चिरसङ्गिनी, सब दोषनिकूँ दूर करि।।

कार्तिक मास हिंदू महीनों के उत्तम मासों में से एक है। हिंदू वर्ष के कई महीने भगवान विष्णु को समर्पित है उनमें से वैशाख, कार्तिक, माघ तथा चातुर्मास प्रमुख हैं। अपने नाभि कमल से ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाले भगवान विष्णु को त्रिलोकीनाथ कहते हैं। प्रभु, परमात्मा, आदि भी भगवान विष्णु को संबोधित किए जानेवाले सम्मानजनक शब्द हैं। भगवान विष्णु को कार्तिक मास अत्यन्त प्रिय है। कार्तिक मास में विष्णु आराधना बहुविध तरीकों से होती है जिसमें स्नान, व्रत, तुलसी पूजन, आंवला पूजन, ब्राह्मण पूजन, दान, जप, होम आदि विभिन्न तरीके अपनाए जाते हैं। विष्णु तीर्थों की यात्रा, नदी, समुद्र, संगम स्थलों का स्नान सहित शालिग्राम पूजन भी उक्त गणना में आते हैं। भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के नाना उपाय हैं। जिसको जो सहज लगे वह अपनाए। कार्तिक मास में स्नान करने के मानदण्ड निर्धारित हैं। कार्तिक मास में ठण्डे जल से स्नान करना चाहिए। ठण्डे जल से तात्पर्य यह है कि उसमें गर्म पानी न मिलाएं क्योंकि गर्म पानी से स्नान करने की अपेक्षा ठण्डे पानी से स्नान करने पर दस गुना अधिक फल मिलता है। इससे भी सौ गुना अधिक अगर हम बाहर के कुएं पर स्नान करें तो पुण्य मिलेगा। बावड़ी के पानी से अगर हम स्नान करें तो कुएं के जल की तुलना में अधिक फल मिलता है। अगर हम पोखर में स्नान करें तो उसका पुण्य और अधिक फलदायी होता है। झरने पर स्नान करने से पूर्व की तुलना में पुण्य फल और बढ़ जायेगा। अगर हम नदी पर स्नान करें तो पूर्व की तुलना में पुण्य फल अधिक मिलेगा। स्नान की इस श्रृंखला में अगर हम किसी तीर्थ स्थान पर स्नान करें तो पूर्व की तुलना में पुण्य फल की बढ़ोत्तरी होती जायेगी। इस क्रम में अगर हम दो नदियों के संगम पर स्नान करें तो पुण्य फल फिर बढ़ जायेगा। जहां कहीं तीन नदियों का संगम हो और वहां हम कार्तिक मास में स्नान करें तो पूर्व की अपेक्षा पुण्य फल की अत्यन्त बढ़ोत्तरी होगी। सिंधु, कृष्णा, वेणी, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, व्यास, नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयू, क्षिप्रा, चंबल, झेलम, वेदिका,

सोनभद्र, बेतवा, अपराजिता, गण्डकी, गोमती, पूर्णा, ब्रह्मपुत्र, वाग्मती, सतलुज आदि नदियों पर अगर हम स्नान करते हैं तो वह भी पुण्यदायी होता है। उत्तर भारत के क्षेत्रों में भी कार्तिक मास में स्नान करना फलदायी माना गया है। कोल्हापुरी क्षेत्र भी श्रेष्ठ पुण्यदायी माना गया है। कोल्हापुरी से भी श्रेष्ठ विष्णुकांची है। विष्णुकांची से भी श्रेष्ठ शिवकांची है। इस श्रेष्ठता की श्रृंखला में वराह क्षेत्र भी पूर्व तीर्थों से भी अधिक श्रेष्ठ माना गया है। वराह क्षेत्र से श्रेष्ठ चक्रक, चक्रक क्षेत्र से भी श्रेष्ठ मुक्तिक क्षेत्र और फिर अवन्तिपुर, फिर बद्रिकाश्रम, फिर अयोध्या तथा हरिद्वार फिर कनखल, मथुरा, फिर द्वारिका, भागीरथी, भागीरथी से भी १० गुना अधिक श्रेष्ठ प्रयाग और सबसे अधिक श्रेष्ठ काशी को माना गया है। इस प्रकार से आप और हम पूर्वोक्त स्थानों पर रहकर स्नान तथा तपस्या करके पूर्व में उल्लेखित पुण्य फल कार्तिक मास में प्राप्त कर सकते हैं। कार्तिक मास में पूर्वोक्त फलदायी स्थानों, तीर्थों का यह महत्त्व स्कन्द पुराण में वर्णित हैं। भक्तगण को कुछ रात बाकी रहे, तब स्नान करना चाहिए। इससे भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। उसके लिए यह जरूरी है कि स्त्रियां अपने पति से आज्ञा लें। पति से बिना पूछे जो धर्म कार्य किया जाता है, वह पति की आयु को क्षीण कर देता है। कार्तिक मास में चार प्रकार के स्नान बताये गये हैं- वायव्य, वारूण, बाह्य और दिव्य। स्कन्द पुराण के अनुसार गोधुली में किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है। समुद्र आदि के जल में जो स्नान किया जाता है, इसे वारूण कहते हैं। वेद मंत्रों के उच्चारणों से जो स्नान किया जाता है, वह बाह्य स्नान कहलाता है। मेघों तथा सूर्य की किरणों द्वारा जो जल अपने शरीर पर गिरता है, इसे दिव्य स्नान कहा जाता है। मनीषियों ने कार्तिक मास में वारूण स्नान को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। स्कन्द पुराण में बतलाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मंत्रोच्चारण पूर्वक तथा स्त्रियों व अन्यों को बिना मंत्रों के स्नान करने का प्रावधान है। किसी भी मनुष्य को चाहे वह किसी वर्ण से संबंधित हो, अपने सामर्थ्य व सुगमता के हिसाब से कार्तिक मास में स्नान करना चाहिए। आस्तिकों को उनकी आस्था का फल तो मिलेगा ही। यही कारण है कि राजा प्रभंजन ने कार्तिक मास में पुष्करराज तीर्थ में स्नान किया था तथा नन्दा ने भी ऐसा ही किया था फलस्वरूप नन्दा को तो परमधाम प्राप्त हुआ व प्रभंजन को व्याघ्रयोनि से मुक्ति मिली। कार्तिक मास में भगवान विष्णु का उत्तम प्रकार से पूजन करना चाहिए। भगवान विष्णु शुद्धता व पवित्रता को पसंद करते हैं इसलिए स्नान के पश्चात भगवान विष्णु का अपनी सुगमता से पूजन करना चाहिए। घर में अगर शालिग्राम शिला है तो उसका पूर्ण मनोयोग से भक्ति भाव से पूजन करें। ऐसी मान्यता है कि शालिग्राम शिला में भगवान हर समय निवास करते हैं। पद्म पुराण के अनुसार जो व्यक्ति शालिग्राम शिला का दर्शन करता है उसके आगे मस्तक झुकाता है, विधिपूर्वक स्नान करके पूजन करता है इसे करोड़ों यज्ञों तथा गोदानों का फल मिलता है। ब्रह्म हत्या का पाप भी उसका नष्ट हो जाता है। यमराज उसके निकट नहीं आता है। भगवान ने स्वयं यह कहा है कि करोड़ कमल पुष्पों से मेरी पूजा करने पर भक्त को जो फल प्राप्त होता है वह शालिग्राम शिला के पूजन से और कई करोड़ गुना अधिक हो जाता है। शालिग्राम शिला के आगे कीर्तन करना चाहिए, शालिग्राम के आगे पत्र, पुष्प, फल, जल, दुर्वादल अर्पित करना चाहिए। शालिग्राम शिला के सम्मुख स्वस्तिक का चिन्ह बनाना चाहिए। इससे अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं तथा पुण्य मिलता है। भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। कार्तिक मास में आंवले के वन में जो श्री हरि की पूजा करता है आंवले की छाया में भोजन करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य शरीर की हड्डियों को आंवले के स्नान से धोये, वह गर्भ में वास नहीं करता। अगर दिवंगत स्वजन की अस्थियों को आंवले से स्नान करायें तो इसे मोक्ष मिल जायेगा। पुन: जन्म के रूप में गर्भ में वास नहीं करना पड़ेगा। जिस घर में आंवला रखा जाता है वहां भूत-प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस नहीं आते हैं, यह स्कन्द पुराण में वर्णित है। कार्तिक मास में विष्णु को प्रसन्न करने का एक और भी उपाय

है, वह है तुलसी पूजन। तुलसी भगवान विष्णु को सदैव प्रिय है भगवान के चरणों में चढ़ी हुई तुलसी का मुख पान जो करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। कार्तिक मास में एक सुगम विधि यह भी है कि स्नान करने से पूर्व जल में तुलसी दल मिला लें। फिर उससे स्नान करे चूंकि तुलसी पांवों में नहीं आनी चाहिए, इसलिए तुलसी के पत्ते स्नान के पानी में कुछ देर डालकर रख लें। फिर उन्हें हटा लें। तत्पश्चात उस पानी से स्नान करें। भगवान विष्णु उससे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हटाए हुए तुलसी दलों को पीपल में विसर्जित कर दें। घर में तुलसी का पौधा लगाना चाहिए तथा उसको आस्था से सींचना चाहिए। आम दिनों में तो केवल इतना ही उचित है लेकिन कार्तिक मास में प्रतिदिन दोनों समय तुलसी के पौधे के सामने दीपक रखना चाहिए। कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी को रात्रि के समय शालिग्राम शिला के साथ तुलसी जी का विवाह कराना चाहिए। विवाह की विधि अगर स्वयं को नहीं आती है तो पंडित से सलाह कर लें। चूंकि तुलसी भगवान विष्णु को अत्यन्त प्रिय है इस कारण से तुलसी दलों को हो सके तो भगवान विष्णु के चरणों में प्रतिदिन चढ़ाना चाहिए। कुल मिलाकर कार्तिक मास भारत के श्रेष्ठ मासों में एक है जिसका हिंदू धर्म में धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व है।

श्री शुकदेव बोले- परीक्षित्, अब हेमन्त ऋतु का आगमन हुआ। उसके प्रथम माह मार्गशीर्ष में नन्दबाबा के व्रज की कुमारियों ने कात्यायनी देवी के पूजन का नियम आरम्भ कर दिया। दुर्गा को कात्यायनी कहते हैं। उन दिनों वे हविष्यापन्न ही खाती थीं। मार्गशीर्ष को सर्वोत्तम मास माना है इसमें कुमारियों को, भक्तजनों को श्रेष्ठ वर प्राप्त करने के लिये पूजा-पाठ, जप-अनुष्ठान करना चाहिये।

वे कुमारियाँ पूर्व दिशा का क्षितिज लाल होते-होते यमुना के पावन जल में स्नान कर लेतीं और तट पर ही देवी की बालुकामयी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, पुष्पमाला, भाँति-भाँति के नैवेद्य, धूप-दीप, छोटी-बड़ी भेंट की सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदि से उनकी पूजा किया करती थीं। प्रेमाधिक्य के कारण कभी-कभी पूजा का क्रम विस्मृत भी हो जाता था। आराधना के समय में वे बोलती थीं- हे कात्यायनी, हे महामाये, हे महायोगिनी, हे सब की एकमात्र स्वामिनी, आप नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दीजिये। देवि, हम आपके चरणों में प्रणाम करती हैं- इसी मन्त्र का जप करती हुई वे कुमारियाँ देवी की आराधना करती थीं।

गोपसुता कहैं गौरि गोसाइन पाँय परों विनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नेकु सों चित्त दयारस भीजै।।
देइ जो ब्याह उछाह से मोहन मात-पिता कुछहू नहिं कीजै।
सुन्दर साँवरो नन्दकुमार बसैं उर जो वर सो वर दीजे।।

शरद में गोपकुमारियाँ प्रात: चार बजे उठती हैं और पूरी तरह निर्वस्त्र होकर यमुना में स्नान करती है और फिर माता कात्यायनी की पूजा करती हैं। आराधना में माँगती है कि नन्द का पुत्र श्रीकृष्ण है वो हमें पति रूप में मिलें।

कात्यायनि देवी जो ख्याता। नन्दघोष की कन्या व्राता।।
करन लगीं व्रत पूजन प्राता। हविष्यान्न केवल जिन भाता।।
महामाये कात्यायनि, महायोगिनी मात। अखिल विश्व की स्वामिनी, विनय सुनो भवत्रात।।
नन्द सुवन जगदीश्वर जोई, करो पती हमरा तुम सोई। नमस्कार तव चरण मझारे, करें ग्राम हम करुणागारे।।
एक मास कन्या व्रत कीना, कृष्ण विषय जिनका मन लीना।
प्रतिदिन निकर सखी उठ प्राता, दूसर प्रति इक लेत बुलाता।।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हमारे पति हों- इस कामना से उन लोगों ने पूरे महीने भर व्रत-नियम का पालन करते हुए भद्रकाली की पूजा की। उनका मन पूर्ण श्रीकृष्ण के रंग में रंग गया था। व्रजकुमारिकाओं के अंगों में अनंग का संचार तो अवस्था-क्रम से ही हुआ, परन्तु श्रीकृष्ण तो बहुत पहले ही उनके अंग ही क्या, अन्तरात्मा, अन्त:करण, प्राण, इन्द्रियों एवं रोम-रोम में प्रविष्ट हो गये थे। एक ही कुमार को अनेक कुमारियाँ चाहती हैं।

कात्यायनि महामाये महायोगियन्धीश्वरी। नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नम:।।

इस प्रकार नन्द के व्रज की कुमारिकाएँ श्री कृष्ण में आसक्त मन होकर भगवती भद्रकाली की अर्चना किया करती थीं। उनका प्रतिदिन का नियम था कि उषा-काल में ही उठकर अपने-अपने वर्गों से आहूत होकर, एक-दूसरी के गले में हाथ डाले हुई, उच्च स्वर से कृष्ण की कीर्ति का गान करती हुई, कालिन्दी नहाने जाया करती थीं। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा आई। व्रत-नियम की समाप्ति का यह अन्तिम दिन था। नित्य की भाँति आज भी वे तीर पर आकर, पूर्ववत् वस्त्रों को उतारकर, कुमारियाँ जिन वस्त्रों को पहनकर आती थीं, नंगी होकर स्नान करने के बाद फिर उन्हीं को पहन कर दुर्गा की पूजा करती थीं। श्रीकृष्ण के मंगलमय यश का गान करती हुई प्रसन्नता से यमुना-जल में विहार करने लगीं। व्रत की पूर्ति का दिन था। तन-मन विस्मृत कर श्रीकृष्ण-यश गाती हुई विहार करने लगीं। भावुकों का कहना है कि यमुना-जल में स्नान करने मात्र से भी प्राणी को श्रीकृष्ण सम्मिलन की योग्यता प्राप्त हो जाती है। कुमारियाँ पूजा के निमित्त यमुना तट पर वस्त्र उतारकर निर्वस्त्र होकर स्नान करने लगी।

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओं के व्रत का अभिप्राय जानकर, उनके कर्म की सिद्धि के लिये ही, अपने दाम, सुदाम, वसुदाम, किंमिणी, गन्ध और पुष्कर आदि परम अन्तरङ्ग सखाओं से परिवृत्त होकर वहाँ गये। ये सखा श्रीकृष्ण के साक्षात् अन्त:करण ही हैं। यहाँ मर्यादा की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण बड़े भैया बलराम को साथ नहीं ले गये हैं। चीरहरण लीला के समय में बलराम नहीं थे। चीरहरण की लीला अलौकिक एवं अप्राकृत है, यही बात प्रतिपादित करने से भगवान व्रजकुमारियों की शुद्धभावना से की गई आराधना से सन्तुष्ट होकर, उनकी कर्म-सिद्धि के लिये पधारे हैं, गोपियों के नग्न अंग देखने के लिये नहीं। यह गोपाङ्गनाओं का अहोभाग्य है कि भगवान उनके साथ रमण करने के लिये उत्सुक हैं। यह केवल विशुद्ध प्रेम की ही महिमा हैं कि उनके कर्म सिद्ध करने के लिये सखाओं से घिरे हुए भगवान पधारे। वे बड़ी शीघ्रता से उनके वस्त्रों को लेकर कदम्ब पर चढ़ गये और हँसते हुए बालकों के साथ परिहास करते हुए कहने लगे- अरी बालाओं, क्यों शीतल जल में कम्पित हो रही हो? निकल कर सुखे वस्त्र धारण करो। अरी गोपियों, इस कदम्ब की शाखा में इतने वस्त्रों को किसने लाकर बाँधा है? क्या आप सब जानती हैं? मैं तो दूर से ही यह देखकर कि मेरे कदम्ब में आज रंग-बिरंगे वस्त्रों के ही फल- फूल लगे हैं, अभी इस पर चढ़ा हूँ। यदि आप लोग यह कहें कि यह हमारे वस्त्र हैं, तो यह तो सम्भव नहीं। तुम्हारे वस्त्र इतने ऊँचे कैसे चढ़ सकते थे? तुम्हारी यह स्नान करने की पद्धति बिल्कुल अच्छी नहीं है।

ग्वाल बाल संग लिये घनेरे, सफल करन हित व्रत सब केरे। यमुना तट पर जाय कन्हाई, चीर सबन के लिये उठाई।।

वेद के अनुसार किसी भी जलाशय में निर्वस्त्र होकर स्नान नहीं करना चाहिए इससे लौकिक अपराध और धार्मिक अपराध बनता है। धार्मिक अपराध वरुण देवता का अपराध करते हैं और उनका अपमान करते हैं। लौकिक अपराध यह है कि आप नारी हो। कोई मनचला व्यक्ति अगर तुम्हारे कपड़ों को आकर किनारे से उठाकर ले जाये, तो फिर तुम बाहर नहीं निकल सकोगी।

बसन हरे सब कदम चढ़ाये। सोरह सहस गोप कन्यानि के, अङ्ग अभूषन सहित चुराये।।

नीलाम्बर, पाटम्बर सारी श्वेत पीत चुनरी, अरुनाये। अति विस्तार नीप बस तामें, ले ले जहाँ तहाँ लटकाये।।
मनि आभरन डार डारनि प्रति, देखत छवि मनही अटकाये।
सूर श्याम जुवातिन ब्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराये।।
प्रेम मगन युवती सबै रहीं ध्यान मन लाय। हरि सब भूषण बसन लै चढ़े कदम पर जाय।।

गोपियां अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गयी और आपसमें कहने लगीं कि अभी तक तो यहां एक चिड़िया भी नहीं आई, हमारे वस्त्र कौन ले गया।

पट यमुना तट धरें न्हाइ नित नङ्गी जलमहँ। करन कृतारथ कृष्ण गये छलतें तिहि थलमहँ।।
जल बिहार मिलि करे उलीचें सलिल परस्पर। लै सबके पट चढ़ै कदँबपै नागर नटवर।।
सङ्ग सखनिके हँसत हरि, धरि अधरनि पै बाँसुरी। डरति लजति थरथर कँपाति, सब सुकुमारी सुन्दरी।।

गोप कुमारियां बोली- लाला तुमने ही चुपके से उठाकर उतने ऊँचे रख दिया है। श्रीकृष्ण बोले- क्या यह भी कहने का साहस करोगी? क्या नन्दराय का पुत्र मैं, चोर हूँ? क्या तुम लोग इस अभियोग को लेकर राजा कंस के पास मथुरा जाना चाहती हो? गोपियाँ बोली- लाला, नाराज मत होओ। वस्त्र ही देखो-पहचानो, ये स्त्रियों के वस्त्र हैं, पुरुषों के नहीं। श्रीकृष्ण बोले- ठीक है। ये स्त्रियों के वस्त्र हैं। परन्तु क्या इस संसार में तुम्हीं स्त्री हो? और कहीं स्त्रियाँ नहीं हैं? गोपियाँ बोली- नहीं, नहीं; स्त्रियाँ तो बहुत हैं। किन्तु इस निर्जन वन में हम व्रजबालाओं को छोड़कर और कौन स्त्री आ सकती है? हे धर्म के मर्म को जाननेवाले भगवन् हम ठण्ड के मारे ठिठुर रही हैं हमारे वस्त्र दे दो। श्रीकृष्ण बोले- हे व्रजबालाओं, क्या आप ही लोग रहस्यक्रीड़ा करती हैं?

गोपियाँ बोली- कन्हैया, आप अन्यथा न समझें। हम लोग यहाँ खेलने नहीं आतीं, किन्तु कदम्ब-देवता श्रीदुर्गा की पूजा करने आती हैं। श्रीकृष्ण बोले- तो क्या दुनियाँ में तुम्हीं लोग दुर्गा की पूजा करती हो? अरी मुग्धाओं, यहाँ तो प्रत्येक अर्धरात्रि में स्वर्ग की देवियाँ विमान पर आरूढ होकर आती हैं और दुर्गा की पूजा करती हैं। गोपियाँ बोली- ठीक है, किन्तु वे अपना वस्त्र छोड़कर क्यों जायेंगी? श्रीकृष्ण बोले- बालाओं, तुम इस तत्त्व को नहीं जानती। आज पुन: पूजा के लिये वे वस्त्र छोड़ गई हैं।

कृष्ण बोले- हे बालाओं, मांगा तो उससे जाता है जिसे कुछ दिया जाये। तुमने हमें क्या दिया है जो मांग रही हो? वस्त्र तो मुझे पड़ा हुआ मिल गया सो मैंने उठा लिया। व्रज बालाओं, यदि सचमुच यह तुम्हारे ही वस्त्र हों तो आओ, अपना-अपना वस्त्र पहचान कर विश्वास के लिये शपथ करके ले लो। चाहे सब लोग साथ ही आओ, चाहे दो-तीन मिलकर, अथवा एक-एक ही आओ। मिलकर आने में, भीड़ में, कोई लोभवश अधिक वस्त्र भी ले सकती है। यदि नहीं आओगी तो वस्त्र नहीं मिलेंगे। यदि समझती हो कि मैं कपटी हूँ, मुझ पर विश्वास नहीं है, तो मैं शपथ पूर्वक़ सत्य कहता हूँ आप लोग व्रतों से कर्षित (दुर्बल) हैं। मैं परिहास नहीं करता हूँ। आप तपस्विनियों पर दया, भक्ति एवं धर्म का भी भय है, यदि मुझे मिथ्यावादी समझकर अविश्वास करती हो तो भी ठीक नहीं क्योंकि मैंने कभी भी इस जन्म में इतनी अवस्था तक झूठ नहीं बोला है। इस बातको ये सब बालक जानते हैं।

इच्छा हो तो कन्यका, यहाँ आयकर धीर। अपने अपने वसन को, ले जाओ तुम बीर।।
सत्य सत्य तुमसे कहुँ नारी। हँसी करत नहिं तुम सन प्यारी।
व्रत करते तव कृश तनु होय। हँसी योग्य क्या तुम सब कोय।।
दीनदयाल हरहु दु:ख प्यारे, दीजै मोहन चीर हमारे, ऐसे सुनके कहै कन्हाई, यों नहिं दूँगा नंद दुहाई।
एक-एक चल बाहर आओ, तों तुम अपने कपड़े ले जाओ।।

अस अनीति जनि करो सुप्यारे। जानति हैं तव नन्द दुलारे।। ब्रजवासी सब ही नर नारी। करत शलाघा बहुत तुमारी।।
कंप भयो अति देह मझारे। देहि वसन तुम हमरे प्यारे।। श्याम सुन्दर तव दासी होई। जो कुछ कहो करेंगी सोई।।
हे धर्मज्ञ सर्वज्ञ विभु, दीजे वसन हमार। नहिं तो जाकर कहेंगी, नृपसों मरम तुमार।।

गोपियाँ बोली- दूर से ही इस जल में वस्त्रों को फेंक दें या बालकों के द्वारा भेज दें। हम ले लेंगी। वे मन में सोचती है कि हम तो तुम्हें पति मानते हैं किन्तु तुम्हारे सखाओं के सामने कैसे आयें?

श्रीकृष्ण बोले- यह तो ठीक नहीं है क्योंकि ये वस्त्र तुम्हारे हैं या और के, हमें क्या पता। धार्मिक व्यक्ति दूसरों के वस्त्रों को नखाग्र से भी नहीं छूते हैं अत: तुम्हीं लोग आकर अपने-अपने वस्त्र पहचान कर ले लो। हम दूसरे की वस्तु को न लेते हैं, न देते हैं और न छूते ही हैं। अच्छा ठीक है। तो परीक्षण के लिये तुममें से कोई एक साधारण बाला आये, फिर देख लेना यदि उसके साथ कोई छेड़-छाड़ हो तो न आना अथवा यदि तुम सब मिलकर आओगी तब तो कोई डर ही नहीं है। अरे सुमध्यमाओं, तुम्हें आने में क्यों समोच हो रहा है? ब्रजाङ्गनाओं, आप लोग जो कहती हैं कि हम राजा से जाकर कहेंगी, तो यह सब निरर्थक है; क्योंकि अभी तो आप लोग नग्न हैं, ऐसी अवस्था में न कंस के पास जा सकती हैं, न नन्दराय के पास ही जा सकती हैं।

भगवान की यह हँसी-मसखरी देखकर गोपियों का हृदय प्रेम से सराबोर हो गया। वे तनिक सकुचा कर एक दूसरी की ओर देखने और मुस्कराने लगीं, किन्तु जल से बाहर नहीं निकलीं। यद्यपि वे शीतल जल में थर-थर काँप रही थीं फिर अनुनय करती हुईं बालाओं ने कहा- कन्हैया, अन्याय मत करो। हम जानती हैं आप महात्मा नन्दराय के प्रिय पुत्र हैं। आप की व्रज में बड़ी महिमा है। हम काँप रही हैं। हमारे वस्त्र दे दो।

हा-हा करति गोप कुमारि। सीत तैं तन कंपत थर-थर बसन देह मुरारि।।
जो पुहष तिय अङ्ग देखै, कहत दूषन भारि। नैकुं नहिं तुम तरस खावत, गईं हिम सब मारिं।।
मनहिं मन अति भयौ सुख, देखि के गिरधारि। सूर प्रभु अति ही निठुर भये, नन्दसुत वनवारि।।

श्यामसुन्दर, हम आपकी दासी हैं। आप की आज्ञा का पालन करेंगी। आप धर्म के मर्म को जाननेवाले हैं, वस्त्र दे दो नहीं तो हम राजा नन्दराय से तुम्हारी शिकायत करेंगी।

माखन प्रभु घनश्यामजू तुम्हें उचित यह नाहिं। हमदासी बिनदाम की समझो तुम मनमाहिं।।
तन मन धन अरप्यो तुम्हें सो हैं तुम्हारे पास। अब अम्बर दीजै हमैं जानि आपनीदास।।
तब हँसि कह्यो कन्हाई जो तन मनमोको दियो। सेहुबसन ह्याँ आइ जो मानो मेरोकह्यो।।
छाँड़ि देव यह टेक हरि बरु भूषण तुम लेव। शीत मरत हम नीर में चीर हमारो देव।।
दूषण होत अपार जो तिय अंग देखै पुरुष। ताते नंदकुमार नंगी नारि न देखिये।।

कृष्ण बोला- तुम सबको जिससे जाकर कहना हो, कह दो।

सुनी श्यामकी सरस रहसमय अनुपम बानी। एक-एककी ओर निरखि मनमहँ मुसकानी।।
पुनि बोलीं- घनश्याम, निपट हम दासी तुमरी। अरपन सरबसु करें लाज लेओ मत हमरी।।
कहहिँ श्याम- सुन्दरि, सुनहु, यदि दासी तो च्यौं डरो। जैसो जो कछु कहहुँ हौं, तुम तैसो निर्भय करो।।
काहे कपट करत नंद लाल, हम सूधी भोरी ब्रजबाल। परी ठगौरी सुधिबुधि गई, ऐसी तुम हरिलीला ठई।।
बन सम्भारिकै करि हैं लाज, अब तुम कछूकरो वृजराज।।

श्रीकृष्ण ने कहा- कुमारियों, यदि तुम हमारी दासियाँ हो और हमारा कहना मानोगी तो यहाँ आकर अपना-अपना वस्त्र ले

लो। कृष्ण की बात सुनकर ठण्ड से काँपती हुईं कुमारियाँ अपने दोनों हाथों से गुप्त अंङ्गों को छिपाकर यमुना के जल से बाहर निकलीं। उस समय ठण्ड उन्हें बहुत सता रही थी। अब गोपियाँ क्या करतीं? सब-की-सब बाहर निकलीं, भगवान्ने उनको अपनी दृष्टिसे देखा और उनके अन्दर जो कुछ लज्जा, शमा, भय, जुगुप्सा, कुल, जाति, शीलका पाश था, वह सब छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर बोले कि सूर्य भगवान्को हाथ जोड़ो, क्योंकि तुमको अपराध लगा है। गोपियोंने पूर्ण विश्वासके साथ श्रीकृष्णकी बात मानी और सूर्य भगवान्को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोली मोहन न जाने तुमने कौनसा जादू हमपर डाल दिया है जो तुम्हारी साँवली सूरति देखे बिना हम लोगों को अपना घर और कुल-परिवार कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

कहत परस्पर मिलि सबै हरिहठ छोड़त नाहिं। चीर बिना कैसे बने कौन भाँति घरजाहिं।।
सुभग शरीर निहारिकै माखन प्रभु बलवीर। प्रेम प्रीति रस वश भये दिये सबन के चीर।।

असूयाका लेश भी किसीके अन्त:करणमें उदित नहीं हुआ। लड़कियोंने दोनों हाथ जोड़कर, अञ्जलि मस्तकसे लगायी और सब झुक गयीं। इस समय तो अशेष कर्मसाक्षी भगवान आदित्यको और इन प्रत्यक्ष कदम्बाधिरुढ़ श्रीकृष्णको साथ ही प्रणाम करना था।

लाज ओट यह दूर करौ। जोइ मैं कहौं करौं तुम सोई, सकुच बापुरिहिं कहा करौ।।
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम विनय करौं। पूरन व्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन शंका दूरि करौ।।
अब अन्तर मोसों जनि राखहु, बार बार हठ वृथाँ करौ। सूर श्याम कहैं चीर देत हों, मो आगे श्रृङ्गार करौ।।

गोपकुमारियों के इस शुद्ध भाव को देखकर भगवान प्रसन्न हो उठे। उनको अपने पास आई देखकर उन्होंने गोपियों के वस्त्र अपने कन्धे पर रख लिये और बड़ी प्रसन्नता से मुस्कराते हुए बोले- अरी गोपियों, तुमनें जो व्रत लिया था, उसे नि:सन्देह अच्छी तरह निभाया है किन्तु व्रत की अवस्था में तुम लोगों ने जो निर्वस्त्र होकर स्नान किया है, उससे जल के देवता वरुण और यमुना जी का अपमान हुआ है। शास्त्रों में नग्न होकर स्नान करना धर्म के विरुद्ध बतलाया गया है।

ब्रज वनितन उपदेश हित, हरयौ चीर यदुराय। वरुण देव जल में बसें, नग्न होय नहिं न्हाय।।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित, एक समय कार्तिक मास में अपने जीवन प्राण आधार से मिलने की कामना को लेकर श्रीकात्यायनी देवी का एक माह का अनुष्ठान करने का संकल्प लेकर ये गोपियाँ सुबह ही तारागण की छाह में कालिन्दी श्री यमुनाजी में अपने सभी वस्त्रों को उतार कर नग्नावस्था में स्नान करती थीं। ये नहीं जानती थी कि नग्नावस्था में स्नान करने से व्रत खण्डित हो जाता है। परन्तु जिनके लिये इन्होंने जो व्रत करने का नियम लिया था, वह सब कुछ जानने में समर्थ हैं। इसलिये उनके वस्त्रों का हरण करके श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण पास ही एक कदम के वृक्ष पर चढ़ गये और मधुर-मधुर मुरली की धुन छेड़ने लगे।

कदम्ब- कदम्ब वृक्ष भारत के अलावा नेपाल, म्यांमार, तथा श्रीलंका में भी उपजता है। लगभग १५-२० मीटर ऊंचाई वाला यह वृक्ष सदा हरा-भरा रहता है। इसके पत्ते महुए के समान होते हैं। वर्षा ऋतु में यह खूब फूलता है। इसका फूल पीला और लाल आभा लिए गेंद जैसा गोल होता है, जिस पर पीली केशर घने रूप में जड़ी होती है। इस वृक्ष की तीन-चार जातियां होती हैं। महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में जो कदम्ब होता है, उसका फल छोटे-छोटे कांटों से भरा रहता है। फल मुलायम और खट्टा होता है। बहुत से लोग खासकर आदिवासी फल का उपयोग खटाई के लिए करते हैं और उसके बीजों से तेल निकालते हैं, जो खाने और दीपक जलाने के काम में आता है। आदिवासियों की कदम्ब वृक्ष के प्रति गहरी श्रद्धा है। वर्षा ऋतु के आरंभ में वे इसका पूजन कर ही त्यौहार मनाते हैं।

कालिदास ने कदम्ब के फूलों के प्रति नारियों के गहरे आकर्षण का उल्लेख किया है। बाणभट्ट की कादम्बरी में भी इस वृक्ष के प्रसंग हैं। कुछ अन्य संस्कृत व हिन्दी कवियों ने भी अपने ग्रंथों में कदम्ब के सौंदर्य और जनजीवन के प्रसंगों का प्रफुल्लित मन से वर्णन किया है, मेघदूत खंडकाव्य में कालिदास ने अलकापुरी की यक्ष नारियों द्वारा कदम्ब पुष्पों से अपने केशों को सजाने की बात कही है। नीच नाम पहाड़ी पर पुष्पित कदम्ब वृक्षों के ऊपर रुककर विश्राम करने की सलाह भी कालिदास ने मेघों को दी है। प्रणय से गौरवर्ण पार्वती के मुखारविंद पर लज्जा की हलकी लालिमा से कालिदास ने कदम्ब फूलों की उपमा दी है।

कदम्ब वृक्ष यद्यपि अब कम दिखाई देता है, पर कुछ दशक पूर्व तक यह मोहक और यौवन का प्रतीक सांस्कृतिक वृक्ष नगरों-कस्बों में नदी, तालाबों, मंदिरों के आसपास प्राय: देखने को मिल जाता था। रिमझिम बरसात में इसकी डालों पर झूला झूलते किशोर बालक-बालिकाएं आनंद मग्न हो मस्ताते थे। उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा में यह उपजता है। शब्द कल्पद्रुम में कदम्ब को विश्व कदम्ब की संज्ञा दी गई है। प्राचीन और विराट वृक्षों के साथ कदम्ब की गणना होती है। इसे सांस्कृतिक परिवेश में विपुल मान्यता मिलती रही है। वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने पांचवीं सदी में पृथ्वी को गोल और सूर्य की परिक्रमा लगाने वाला ग्रह बताया था। आलोचकों के यह कहने पर कि यदि पृथ्वी गोल है और भ्रमण करती है तो पृथ्वी के प्राणी नीचे क्यों नहीं टपक पड़ते। तब आर्यभट्ट ने उत्तर दिया था कि जिस प्रकार कदम्ब पुष्प गोल होता है, पर उसकी केशर बंधन के कारण नीचे नहीं गिरती, उसी तरह प्राणी और वस्तुएं गोल पृथ्वी से बंधन यानी गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे नहीं गिरते।

गोपियों ने देखा कि उनके वस्त्र तो यमुना के तटपर न होकर कदम्ब के वृक्षपर लटके हैं और श्रीकृष्ण की बहुत ही विनती की। श्रीकृष्ण ने कहा- अरी गोपियों, तुम नदी से बाहर आकर अपने वस्त्र ले जाओ। यह सुनकर गोपियों ने कहा- श्रीकृष्ण, तुम हमारी समस्या को समझो, हम ऐसी अवस्था में जल से कैसे बाहर आ सकती हैं। श्रीकृष्ण ने कहा- जैसे गयीं थी। तब गोपियों ने कहा- कन्हैंया हमें लाज आती हैं, हमें हमारे वस्त्र दे दो। हे मनमोहन, असुर निकनन्दन हे नन्दनन्दन तुम अत्यन्त रसिक एवं ढीठ हो।

श्रीकृष्ण ने पूछा- अरी गोपियों, तुम इतनी सुबह ही यमुना में स्नान करके किसका और किसलिये पूजन करती हो? अब कुछ सहमी सी लजाती हुई गोपियों ने कहा- हे श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, हम अपने प्राणनाथ की प्राप्ति के लिये ही दामोदर मास में कात्यायनी देवी का पूजन करती हैं। श्रीकृष्ण ने कहा- गोपियों, तुम्हें यह मालूम नहीं कि जल में वरुण देव के गण रहते हैं और इस तरह नग्नावस्था में स्नान करने से व्रत खण्डित हो जाता है। यह सुनकर गोपियों ने कहा- कन्हैंया, हम ठहरी गाँव की गँवारी, हम यह सब नहीं जानती अब कभी भी ऐसी भूल नहीं होगी, अब तो हमारे वस्त्र हमें दे दो। तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनको वस्त्र दे दिये। भगवान सदा ही अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही तरह-तरह की लीला किया करते हैं।

सब बोलीं ब्रजबाल-लाल मति पाप कमाओ। हैं हम नङ्गी नारि न ऐसी हँसी उड़ाओ।।
कँपति नीरमहँ खड़ी दया हम सबपै कीजै। उतरि कदँबतें कुँवर वसन हम सबके दीजे।।
कहें कृष्ण- जलतें निकरि, अपने अपने लेउ पट। सुमुखि, सुनहु साखी सखा, करहुँ कबहुँ नहिँ छल कपट।।

अत: अब इस दोष की शान्ति के लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिर से लगाओ और उन्हें झुक कर प्रणाम करो अर्थात् अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करो। फिर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

हरि बोले- अपराध वरुनको कीयो तुम सब। न्हाई नग्यङ्गी करहु विनय करपुट सिर धरि अब।।

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे। जगत् पवित्रे शुचये नमस्ते कर्मसाक्षिणे।।

जब श्रीकृष्ण ने अंजलि बाँधने के लिये कहा, तो व्रजाङ्गनाओं ने नीचे ही अंजलि बन्धन किया। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि सिर पर अंजलि बाँधकर रखना ही प्रणाम है। जब उन्होंने एक हाथ से अपनी योनियों को आच्छादित करके एक हाथ द्वारा सिर से प्रणाम किया, तब श्रीकृष्ण ने कहा- एक हाथ का प्रणाम भी अशास्त्रीय है फिर उन लोगों ने निश्चल एवं निष्कपट भाव से श्रीकृष्ण को सर्वान्तरात्मा और सर्वेश्वर समझकर व्रत की पूर्ति के लिये प्रणाम किया।

श्रीकृष्ण बोले- **अरी गोपिका नियम तुमारा। भली भांति पूरण सारा।।**

पर तुम होकर वसन विहीना। यमुना जल में स्नान कीना।।

इस कारण जल देव का, पुन यमुना अपराध। भयो सुनो तुम सर्व ही, घोर नियम का बाध।।

एक ओर वे गोपियों के चीर चुराते हैं। यह चीर नहीं आवरण है अहंकार का जिसकी उपस्थिति रंचमात्र भी हो तो पूर्ण प्रेम की स्थापना में बाधक है।

वस्तुत: जीव भगवान के सम्मुख निरावरण और निष्कपट होने में अनेक तरह से आनाकानी करता है परन्तु जब भगवान जिस पर अनुकम्पा करते हैं, तब किसी-न-किसी तरह उसे अपने सामने कर ही लेते हैं। यह प्रभु की विचित्र लीला है, बड़े-बड़े मुनीन्द्रगण इसलिये लालायित रहते हैं कि प्रभु मुझे अपने सम्मुख कर लें, उनमें मेरा मन आसक्त हो। परन्तु जिस पर प्रभु की कृपा होती है, उसकी चाहे इच्छा न भी हो, तो भी उसके शतधाआनाकानी करने पर भी भगवान उसको खींच लेते हैं। इसीलिये प्रेमियों ने कृष्णावेश को ग्रहावेश कहा है। बलि ने भी कहा है कि-नाथ, आप हम सब के परोक्ष गुरु हैं। हम लोगों की इच्छा न होने पर भी बलात् सम्मुख कर लेते हैं क्योंकि बिना सर्वव्यवधानशून्य निरावरण हुए जीव की कृतकृत्यता नहीं होती। **सनमुख होइ जीव मोहिं जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।**

इस तरह अवनत व्रजाङ्गनाओं को देखकर, परम करुण भगवान ने उनके शुद्ध भाव से प्रसन्न होकर उन्हें वस्त्र दे दिया। वस्त्र के साथ अद्भुत ब्राह्मसंस्पर्श को प्रदान किया या अपने आपको ही समर्पित कर दिया। अहो। उनका कितना दृढ़ प्रलम्भ किया गया, उनसे छलभरी बातें की गईं, उन्हें लज्जाविहीन किया गया, उन्हें क्रीडनक (खिलौना) सा बनाया गया, उनका वस्त्र अपहरण किया गया फिर भी उन्होंने श्रीकृष्ण में दोष बुद्धि नहीं की; किन्तु प्रियतम मनमोहन के संग परम प्रसन्न हुईं।

श्रीकृष्ण ने देखा कि उन कुमारियों ने उनके चरण कमलों के स्पर्श की कामना से ही व्रत धारण किया है और उनके जीवन का यही एक मात्र संकल्प है। तब गोपियों के प्रेम के अधीन होकर ऊखल तक में बँध जानेवाले भगवान ने उनसे कहा कि- मेरी परम प्रेयसी कुमारियों, मैं तुम्हारा यह संकल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषा का अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह संकल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी। जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रखा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोग की ओर ले जाने में समर्थ नहीं होतीं, ठीक वैसे ही, जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अंकुर के रूप में, उगने के योग्य नहीं रह जाते। इसलिए कुमारियों, अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तीन मास व्यतीत होने पर वृन्दावन के सुरम्य रासमण्डल में तुम सब लोग मेरे साथ रास क्रीड़ा करोगी। जैसा मैं हूँ वैसी ही तुम हो। हममें तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारा प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिए प्राणस्वरूपा हो। प्यारी गोपियों, तुम लोगों का यह व्रत लोक रक्षा के लिए है, स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं, क्योंकि तुम लोग गोलोक से मेरे साथ आई हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है। तुम मेरी नित्य सिद्धा प्रेयसी हो। तुमने साधना करके मुझे पाया है, ऐसी बात नहीं है। अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्म में तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिए प्राणों से

भी बढ़कर हो। इसमें संशय नहीं है।

वस्त्र प्राप्तकर वे व्रजबालाएँ भगवान के चरण-स्पर्श की अभिलाषा से उनके समागम के लिये सज कर उन्हीं की ओर लज्जाभरी चितवन से निहारती रहीं। उनकी कामना को समझकर भगवान ने उनसे कहा- मेरी परम प्रेयसी कुमारियों, मैंने तुम्हारी अभिलाषा जान ली है। मैं इसका अनुमोदन करता हूँ। तुम्हारा संकल्प मैं अवश्य पूरा करूँगा। इस समय तुम लोग व्रज में लौट जाओ। आगे आनेवाली शरद् ऋतु की इन रात्रियों में तुम लोग मेरे साथ रमण करोगी। मेरे साथ रमण करने की अभिलाषा से ही तुम लोगों ने यह व्रत और कात्यायनी देवी की अर्चना की है।

प्रभु प्रसन्न ह्वै गये तुरत पट सबके दीये। पाइ वसन प्रिय परम पहिन निज निज तिनि लीये।।
प्रेम विवश बनि गईं सकुचिकें श्याम निहारें। पूजन चाहे चरन न मुखतें बचन उचारें।।
जानि मनोगत भाव हरि, बोले- बाला डरहु मति। शरद निशिनिमहँ रमन मम, संग करोगी सुखद अति।।

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रजबालाओं के व्रत से सन्तुष्ट होकर भगवान् बोले- हे साध्वियों, अब तुम सब ब्रज में अपने-अपने घर जाओ। तुम्हारा यह व्रत पूर्ण हो गया। जिस उद्देश्य से तुमने यह व्रत लेकर कात्यायनी देवी का पूजन किया है, उसकी पूर्ति शरद् ऋतु की रात्रियों में होगी। उन आनेवाली रात्रियों तुम मेरे साथ रमण करोगी।

वे रात्रियाँ प्रत्यक्ष हैं। भगवान अँगुली से निर्देश करते हुए कहते हैं कि इन रात्रियों में आप लोग मेरे संग रमण करना। यद्यपि भविष्य की रात्रियों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है, तथापि मालूम होता है कि जैसे राजा की दान रुचि समझकर राजा का मंत्री देय वस्तु को उसी क्षण उपस्थित कर देता है, उसी तरह श्रीकृष्ण की दानरुचि जानकर ही योगमाया ने उन रात्रियों की अभिमानिनी शक्तियों को उपस्थित कर दिया। उन्हीं की ओर अङ्गुलि से निर्देश करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप लोग इन रात्रियों में मेरे साथ रमण करोगी। कृष्णने कहा- शरद पूर्णिमा की रात्रि में आपके और किशोरी राधा के संग में रासलीला करूँगा। राधा तत्व है, कृष्ण परमतत्व है। राधा नाम का स्मरण करने पर गोविंद पीछे-पीछे चला आता है।

तुम अगली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे दिव्य अलौकिक बिहार में सम्मिलित होना। मेरा वह बिहार इस जगत के प्राणियों को अदृष्ट है केवल मेरे भक्तजन तथा पार्षद गण ही उसमें सम्मिलित होकर मेरे दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। तुम भी मेरे उन्हीं साधकों में हो तुम अपनी साधना से मेरे दिव्य अलौकिक लीला को देखने योग्य हो।

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रजबालाओं की इच्छा पूरी हो गई। भगवान के आदेश से, वहाँ से जाने की अनिच्छा होते हुए भी भगवान का चिन्तन करती हुई वे बड़े कष्ट से व्रज में लौट गईं।

यदि श्रीकृष्ण भगवान है तो भगवान को कोई दोष नहीं लगता।

समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं। रवि पाक सुरसरि की नाईं।।

हे परीक्षित, यह चीरहरण लीला अलौकिक तथा दिव्य है। वैसे तो भगवान् की सभी लीलायें अलौकिक हैं किन्तु यह लीला सर्वोत्तम तथा अत्यधिक अलौकिक है। जब भगवान का साधक अपनी पूर्ण साधना से अपने सर्वस्व को उनके अर्पण कर देता है तभी वह उन भगवान की प्राप्ति का अधिकारी होता है। उन गोपियों ने अपना कुल परिवार, धर्म, कर्म, खान पान सब श्रीकृष्ण के अर्पण कर दिया था। उन्होंने तन, मन, धन सभी श्रीकृष्ण को दे दिया था। वे संसार में जीती थीं तो श्रीकृष्ण के लिए, घर के काम काज करती थीं तो श्रीकृष्ण के लिये। उनके पवित्र मन में अपने प्यारे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। अपने प्रियतम के सुख के लिये ही वे सब कुछ करती थीं। उनके सुख में ही स्वयं सुखी रहती थीं। सोते जागते, उठते बैठते उन्हीं प्रियतम का ध्यान रखती थीं। गोपियाँ प्रात: दही बिलोतीं, माखन निकालतीं किसलिये उन्हीं अपने प्रियतम के लिये।

गोपियाँ रातों में जागती थीं कि कब प्रात: हो और कब श्यामसुन्दर के दर्शन करें। वे माखन निकाल कर छींकों पर रखतीं और कहतीं कि श्यामसुन्दर आवेंगे और इस उत्तम माखन का भोग लगावेंगे। यदि किसी दिन श्यामसुन्दर को देर हो जाती तो वे व्याकुल हो उठतीं। इसका तात्पर्य यह है कि- हे परीक्षित्, उनके सोते जागते, दिन में तथा रात्रि में सभी कर्म अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के लिए होते थे। उनकी रही सही साधना मार्गशीर्ष के व्रत से पूर्ण हो चुकी थी किन्तु उनमें अभी अपने प्रियतम जगत के स्वामी श्रीकृष्ण के प्रति लज्जा तथा संकोच का आवरण शेष था। लौकिक दृष्टि से उनमें केवल इतनी आत्म समर्पण में कमी थी। उन गोपियों को लोक, परलोक, स्वार्थ, परमार्थ, जाति, कुल, कुटुम्बी गुरुजनों आदि की कोई परवाह न थी। सब कुछ त्यागकर श्रीकृष्ण के चरणों तक पहुँच चुकी थीं किन्तु केवल लज्जा का आवरण ही उनसे मिलने में बाधक था। उस आवरण को हटा देना अति आवश्यक था। वह संकोच ही साधक को साध्य तक पहुँचने का बाधक पर्दा था। निरावरण रूप से अपने बनानेवाले ब्रह्म के पास पहुँचने में झिझकती थीं। गोपियों ने भक्ति द्वारा प्रेम उत्पन्न कर लिया था प्रेम की भक्ति से वे अपने को समर्पित कर चुकी थीं किन्तु अपना पूर्ण समर्पण नहीं कर सकीं, क्योंकि संकोच लाज का पर्दा उनके बीच में जो था। उसी पर्दे को चीरहरण द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने दूर कर दिया।

गोपियाँ संसार रूपी जल में कण्ठ तक डूबी हुई थीं। शीतादि सुख दुख उन्हें सता रहे थे। उनके पूर्व जन्मों के संस्कार श्रीकृष्ण के सन्मुख जाने में बाधा कर रहे थे। वे श्रीकृष्ण के लिए सर्वस्व त्याग चुकी थीं किन्तु उन्होंने अभी अपने को नहीं त्यागा था। वे अपने को नहीं भूलीं थीं। वे श्रीकृष्ण से मिलना चाहतीं किन्तु संस्कारों का पर्दा बीच में रोड़ा डाल रहा था। उसी पर्दे को अपनी युक्ति से भगवान श्रीकृष्ण जी ने हटा दिया। शुद्ध प्रेम का अर्थ यही है कि मेरे और गोपियों के बीच में किसी प्रकार का संकोच-भाव को चीरहरण द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी स्वकीया गोपियों से हटा दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- मुझसे अनन्य प्रेम करनेवाली कुमारियों, आओ अपने को तथा अपने सर्वस्व को भूलकर एक बार मेरे निकट आओ। अपने हृदय में छिपे हुए त्याग को प्रकट करके मेरे निकट आने का साहस करो।

साधक बड़ी दुविधा में पड़ा है। भगवान को भी चाहता है और संसार के आवरण में भी रहना चाहता है। माया के पर्दे को भी नहीं हटाना चाहता। भगवान यही उन्हें उपदेश करते हैं- कि तुम इस माया के परदे को हटाकर मेरे निकट आओ। यह माया का पर्दा ही मुझ ब्रह्म और तुम आत्मा के बीच में बाधक है। इसे हटा कर मेरे निकट आओ। तभी तुम्हारी आकांक्षा पूर्ण होगी अर्थात् मुझ ब्रह्म को प्राप्त कर सकोगी।

ब्रजकुमारियों के चले जाने के बाद बलराम जी अन्य ग्वाल बालों के साथ गायों को लिये हुए वहाँ पहुँचे फिर भगवान कृष्ण बड़े भैया बलराम के साथ ग्वालबालों से घिरे हुए गायों को चराते-चराते वृन्दावन से बहुत दूर आगे निकल गये।

मध्याह्न की तीव्र बेला हो चली थी। छत्र के समान वृक्ष सिर पर छाया किये हुए थे। इस दृश्य को देखकर भगवान ने कहा- अहो। इन वृक्षों का जीवन दूसरों को सुख प्रदान करने के लिये समर्पित है। वे स्वयं तो हवा के झोंके, वर्षा, धूप और पाला सब कुछ सहते हैं, परन्तु हम लोगों की उनसे रक्षा करते हैं।

इन्हीं का जीवन सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियों को सहारा मिलता है। उनका जीवन-निर्वाह होता है जैसे किसी सज्जन पुरुष के घर से कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षों से भी सभी को कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है। मेरे प्रिय मित्रों, संसार में प्राणी तो बहुत हैं; परन्तु उनके जीवन की सफलता इतने में ही है कि जहाँ तक हो सके अपने धन से, विवेक-विचार से, वाणी से और प्राणों से भी ऐसे ही कर्म किये जाँय, जिनसे दूसरों की भलाई हो।

आस्तिकता के साथ विचार करने से विदित होता है कि जिन लीलाओं के वक्ता अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्र भगवान

श्रीशुक हैं, जिन्हें भगवत्कथा-रसामृत के अतिरिक्त कुछ सुहाता ही नहीं, जिनके लिये यह दृश्यमान जगत् असत्कल्प हो चुका है, और श्रोता राजर्षि परीक्षित हैं, जो साम्राज्य-सिंहासन का परित्याग कर गंगातट पर निर्जल व्रत धारण किए, कुशासन पर बैठे हुए, आत्मकल्याण के लिये व्यग्र हैं, जिनके जीवन की अवधि कुल सात दिन की है; जिस समाज में महा-महा ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि विराजमान हैं, वहाँ किसी भी ग्राम्यकथा का, अश्लील लीला का संचार कैसे हो सकता है?

चीरहरण-लीला के समय भगवान श्रीकृष्ण की वय प्राय: नौ वर्ष की थी। क्या नौ वर्ष का बालक स्त्रियों के सम्पूर्ण अङ्गों के रहस्यों और उपयोगों की बात जानता है? क्या वह रति-रङ्ग में पारङ्गत होता है? यदि नहीं तो श्रीकृष्ण पर अनुचित हरकतों का दोष कैसे मढ़ा जा सकता है? गोपबालाएँ जीव हैं। वस्त्र प्रावरक होने के कारण अविद्या है। लज्जा और अहंकार अविद्या के कार्य हैं। श्रीकृष्ण भगवान हैं और गोपाङ्गनाओं का नियम-पूजन तपस्या है। लोग भले ही कहें कि यह कामी पुरुष के लक्षण है। कृष्ण ने गोपियों के वस्त्र जब चुराये, उनकी उम्र थी नौ वर्ष की और नौ वर्ष के बालक के मन में काम की भावना नहीं होती। बालक क्या जानें काम-वासना को।

श्रीकृष्ण ने व्रज में केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था तक ही निवास किया था। यदि रासलीला का समय दसवाँ वर्ष मानें, तो नवें वर्ष में ही चीर-हरण-लीला हुई थी। इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती कि आठ-नौ वर्ष के बालक में कामोत्तेजना हो सकती है। गाँव की गँवारिन ग्वालिनें, जहाँ वर्तमान काल की नागरिक मनोवृत्ति नहीं पहुँच पाई है, एक आठ-नौ वर्ष के बालक से अवैध सम्बन्ध करना चाहें और उसके लिए साधना करें- यह कदापि सम्भव नहीं दीखता। उन कुमारी गोपियों के मन में कलुषित वृत्ति थी, यह वर्तमान कलुषित मनोवृत्ति की ही कल्पना है। आजकल जैसे गाँव की छोटी-छोटी लड़कियाँ राम-सा वर और लक्ष्मण सा देवर पाने के लिए देवी-देवताओं की पूजा करती हैं, वैसे ही उन कुमारियों ने भी परम सुन्दर परम मधुर श्रीकृष्ण को पाने के लिए देवी-पूजन और व्रत किए थे। इसमें दोष की कौन सी बात है?

प्राणी को भगवान की प्राप्ति में अविद्या, लज्जा और अहंकार आदि का व्यवधान हैं। अपने को भगवान से भिन्न समझकर उनसे अपने को छिपाने और आवृत्त रखने का प्रयास किया जाता है। भगवान जब साधक की साधना से पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते हैं तो वे कृपा करके अविद्यारूपी चीर का, आवरण का स्वयं बढ़ कर हरण कर लेते हैं। वस्त्ररूप अविद्या के छिन जाने पर बालाएँ अहंकार और लज्जा से अपने को छिपाना चाहती थीं, किन्तु सर्वव्यापक भगवान् ने यह भी अनुचित समझा और सर्वथा निरावरण निश्छल होने का अनुरोध किया। भगवान के संकल्प से व्रजाङ्गनाओं ने वैसा ही किया। आवरण-भंग के बिना ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त हैं।

भगवान ने गोपियों के सभी आवरणों को लौटा दिया। किन्तु अब वे सब भगवत्प्रसाद बन गये थे। कृष्ण ने वस्त्रों को अपने कन्धे पर रखने के बाद लौटाये थे। इस प्रकार उन्होंने वस्त्र के साथ अद्भुत ब्राह्म-सम्बन्ध प्रदान किया या अपने आप को ही समर्पण कर दिया। इससे व्रजाङ्गनाओं में कृष्ण-रमण की योग्यता का संचार हुआ। जब तक व्रजाङ्गनाएँ रसात्मक श्रीकृष्णमय न हो जाँय जब तक वे श्रीकृष्ण के रमण योग्य नहीं बन सकतीं। श्री कृष्णाङ्गसंस्पृष्ट वस्त्रों के संसर्ग से व्रजाङ्गनाओं के प्राकृतभाव की निवृत्ति एवं कृष्णभाव की प्राप्ति होती है।

रसात्मक श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से सभी वस्तु रसात्मक श्री कृष्णमय बन जाती हैं अत: श्रीकृष्ण से संस्पृष्ट वस्त्रों को धारण करने से बालाओं में भी रसात्मकता आ गई। जब से प्राणी भगवान् का अर्चन स्मरण प्रारम्भ करता है, तभी से प्राणी का प्राकृतभाव नष्ट होने लगता है और भगवत्स्वरूपभूत रसात्मकता आ जाती है।

चीर कहते हैं सूक्ष्म रेशमी वस्त्र को। भक्तजीव जब साधना करते-करते अपनी अविद्यारूपी मोटे मैले चादर को धोते-

धोते उसे अत्यन्त क्षीण कर देता है, तब भगवान भी उस पर करुणा करके उसकी माया के पर्दे का अपहरण कर उसे अपने सामने कर अपनी छाती से लगा लेते हैं, अपने में मिला लेते हैं। यही है चीरहरण का रहस्य।

इस संसार में तीन प्रकार के प्राणी हैं- विषयी, साधक और सिद्ध। विषयी वे हैं जो संसार के विषयों में रचे-पचे हैं। साधक वे हैं जो मुक्त होने की साधना में लग गये हैं और सिद्ध वे हैं जो जीवन्मुक्त हो चुके हैं। यह कथा इन तीनों प्रकार के प्राणियों के कल्याण के लिये लिखी गई हैं। विषयी प्राणियों के चित्त का आकर्षण श्रृंगार के वर्णन द्वारा ही हो सकता है अत: व्यासजी ने बड़ी ही सावधानी से श्रृंगार-रस के वर्णन से, चीरहरण के द्वारा उनके मन को तत्त्वज्ञान की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है। भगवान् का यह नियम है कि जो जिस भाव से उनका भजन करता है वे उससे उसी भाव से मिलते हैं। श्रीमद्भागवत का स्वयं कथन हैं कि- गोपियाँ काम से, कंस भय से, शिशुपाल आदि राजा द्वेष से, यदुवंशी सम्बन्ध से, पाण्डव स्नेह से और नारद आदि भक्ति से भगवान् को प्राप्त किये अत: जैसे भी हो अपना मन भगवान में लगाना चाहिये। यही जीवन का मुख्य लक्ष्य है गोपियों की भक्तिसे भरा यह आख्यान इसी तथ्य पर प्रकाश डालता है।

गोपियाँ क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधना से स्पष्ट है। वे चाहती थीं- श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण, श्रीकृष्ण के साथ इस प्रकार घुल-मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल श्रीकृष्णमय हो जाय। शरत्-काल में उन्होंने श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि की चर्चा आपस में की थी, हेमन्त के पहले ही महीने में अर्थात् मार्गशीर्ष में उनकी साधना प्रारम्भ हो गई। विलम्न उनके लिए असह्य था। जाड़े के दिनों में वे प्रात:काल ही यमुना-स्नान के लिए जातीं, उन्हें शरीर की परवाह नहीं थी। बहुत सी कुमारी गोपियाँ एक साथ ही जाती, उनमें ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। वे ऊँचे स्वर से श्रीकृष्ण का नाम कीर्तन करती हुई जाती, उन्हें गाँव और जाति वालों का भय नहीं था। वे घर में भी हविष्यान्न का ही भोजन करती, वे श्रीकृष्ण के लिए इतनी व्याकुल हो गई थी कि उन्हें माता-पिता तक का संकोच नहीं था। वे विधिपूर्वक़ देवी की बालुकामयी मूर्ति बनाकर पूजा और मन्त्र जप करती थीं। अपने इस कार्य को सर्वथा उचित और प्रशस्त मानती थीं। एक वाक्य में उन्होंने अपना कुल, परिवार, धर्म, संकोच और व्यक्तित्व भगवान के चरणों में सर्वस्था समर्पण कर दिया था। वे यही जपती रहती थीं कि एकमात्र नन्दनन्दन ही हमारे प्राणों के स्वामी हों। श्रीकृष्ण तो वस्तुत: उनके स्वामी थे ही। परन्तु लीला की दृष्टि से उनके समर्पण में थोड़ी कमी थी। वे निरावरण रूप से श्रीकृष्ण के सामने नहीं जा रही थीं, उनमें थोड़ी झिझक थी। उनकी यही झिझक दूर करने के लिए उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करने के लिए उनका आवरण भंग कर देने की आवश्यकता थी, उनका यह आवरण-रूप चीर हर लेना आवश्यक था और यही काम श्रीकृष्ण ने किया। इसी के लिए वे योगेश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण अपने मित्र ग्वाल बालों के साथ यमुना तट पर पधारे थे।

विधि का अतिक्रमण करके कोई साधना के मार्ग में अग्रसर नहीं हो सकता। परन्तु हृदय की निष्कपटता, सच्चाई और सच्चा प्रेम विधि के अतिक्रमण को भी शिथिल कर देता है। गोपियाँ श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए जो साधना कर रही थीं, उसमें एक त्रुटि थी। वे शास्त्र-मर्यादा और परम्परागत सनातन मर्यादा का उल्लंघन करके नग्न स्नान करती थीं। यद्यपि उनकी यह क्रिया अज्ञानपूर्वक ही थी, तथापि भगवान के द्वारा इसका मार्जन होना आवश्यक था। भगवान ने गोपियों से इसका प्रायश्चित भी करवाया। जो लोग भगवान के प्रेम के नाम पर विधि का उल्लंघन करते हैं।

गोपियों ने जिनके लिए लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन और गुरुजनों की परवाह नहीं की, जिनकी प्राप्ति के लिए ही उनका यह महान अनुष्ठान है, जिनके चरणों में उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रखा है, जिनसे निरावरण मिलने की ही एकमात्र अभिलाषा है, उन्हीं निरावरण रसमय भगवान श्रीकृष्ण के सामने वे निरावरण भाव

से नहीं जा सकें- क्या यह उनकी साधना की अपूर्णता नहीं है?

श्रीकृष्ण चराचर प्रकृति के एकमात्र अधीश्वर हैं, समस्त क्रियाओं के कर्ता, भोक्ता और साक्षी भी वही हैं। ऐसा एक भी व्यक्त या अव्यक्त पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी परदे के उनके सामने न हो। वही सर्वव्यापक, अन्तर्यामी हैं। गोपियों के, गोपों के और निखिल विश्व के वही आत्मा हैं। उन्हें स्वामी, गुरु, पिता, माता, सखा, पति आदि के रूप में मानकर लोग उन्हीं की उपासना करते हैं। गोपियाँ उन्हीं भगवान को जानबूझकर कि यही भगवान हैं- यही योगेश्वरेश्वर, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं- पति के रूप में प्राप्त करना चाहती थीं।

प्रेम की प्रकृति है सर्वथा व्यवधान-रहित, अबाध और अनन्त मिलन। जहाँ तक अपना सर्वस्व-जिसका विस्तार चाहे जितना हो- प्रेम की ज्वाला में भस्म नहीं कर दिया जाता, वहाँ तक प्रेम और समर्पण दोनों ही अपूर्ण रहते हैं। इसी अपूर्णता को दूर करते हुए **शुद्ध भाव से प्रसन्न हुए** श्रीकृष्ण ने कहा कि मुझसे अनन्यभाव से प्रेम करनेवाली गोपियों, एक बार, केवल एक बार अपने सर्वस्व और अपने को भी भूल कर मेरे पास आओ तो सही। तुम्हारे हृदय में जो अव्यक्त त्याग है, उसे एक क्षण के लिए व्यक्त तो करो। क्या तुम मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकती हो? गोपियों ने मानो कहा- हे श्रीकृष्ण, हम अपने को कैसे भूलें? हमारी जन्म-जन्म की धारणाएँ भूलने दें, तब न। हम संसार के अगाध जल में आकण्ठ मग्न हैं। जाड़े का कष्ट भी है। हम आना चाहने पर भी नहीं आ पाती हैं। हे श्याम सुन्दर, प्राणों के प्राण, हमारा हृदय तुम्हारे सामने उन्मुक्त है। हम तुम्हारी दासी हैं। तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करेंगी। परन्तु हमें निरावरण करके अपने सामने मत बुलाओ। साधक की यही दशा-भगवान को चाहना और साथ ही संसार को भी न छोड़ना, संस्कारों में ही उलझे रहना- माया के परदे को बनाए रखना, बड़ी द्विविधा की दशा है। भगवान यही सिखाते हैं कि संस्कार-शून्य होकर निरावरण होकर, माया का परदा हटाकर मेरे पास आओ। अरे, तुम्हारा यह मोह का परदा तो मैंने ही छीन लिया है, तुम अब इस परदे के मोह में क्यों पड़ी हो? यह परदा ही तो परमात्मा और जीव के बीच में बड़ा व्यवधान है, यह हट गया, बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, तभी तुम्हारी चिर संचित आकांक्षाएं पूरी हो सकेंगी। परमात्मा श्रीकृष्ण का यह आह्वान, आत्मा के आत्मा परम प्रियतम के मिलन का यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपा से जिसके अन्तर्देश में प्रकट हो जाता है, वह प्रेम में निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में दौड़ आता है।

जब प्रेमी भक्त आत्मविस्मृत हो जाता है, तब उसका दायित्व प्रियतम भगवान पर होता है। अब मर्यादा रक्षा के लिए गोपियों को तो वस्त्र की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि उन्हें जिस वस्तु की आवश्यकता थी, वह मिल चुकी थी। परन्तु श्रीकृष्ण अपने प्रेमी को मर्यादाच्युत नहीं होने देते। वे स्वयं वस्त्र देते हैं और अपनी अमृतमयी वाणी के द्वारा उन्हें विस्मृति से जगाकर फिर जगत् में लाते हैं। श्रीकृष्ण ने कहा- हे गोपियों, तुम सती-साध्वी हो। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी साधना मुझसे छिपी नहीं है। तुम्हारा संकल्प सत्य होगा। तुम्हारा यह संकल्प, तुम्हारी यह कामना तुम्हें उस पर पद स्थित करती हैं, जो निस्संकल्पता और निष्कामता का है। तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण, तुम्हारा समर्पण पूर्ण और अब आगे आनेवाली रात्रियों में हमारा रमण पूर्ण होगा। भगवान ने साधना सफल होने की अवधि निर्धारित कर दी। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्ण में किसी भी कामविकार की कल्पना नहीं थी। कामी पुरुष का चित्त वस्त्रहीन स्त्रियों को देखकर एक क्षण के लिए भी वश में कहाँ रह सकता है?

दृष्टि भेद से श्रीकृष्ण की लीला भिन्न-भिन्न रूपों में दीख पड़ती हैं। अध्यात्मवादी श्रीकृष्ण को आत्मा के रूप में देखते हैं और गोपियों को वृत्तियों के रूप में। वृत्तियों का आवरण नष्ट हो जाना ही चीरहरण-लीला है और उनका आत्मा में रम जाना ही रास है। इस दृष्टि से भी समस्त लीलाओं की संगति बैठ जाती है। भक्तों की दृष्टि से पूर्णतम पुरुषोत्तम

गोलोकाधिपति भगवान श्रीकृष्ण का यह सब नित्य लीला-विलास है और अनादि काल से अनन्त काल तक यह नित्य चलता रहता है। कभी-कभी भक्तों पर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखा-सहचरियों के साथ लीलाधाम में प्रकट होकर लीला करते हैं और भक्तों के स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द मंगल की सामग्री प्रकट करके पुन: अन्तर्धान हो जाते हैं। साधकों के लिए किस प्रकार कृपा करके भगवान उनके अन्तर्मन को और अनादिकाल से संचित संस्कारपट को विशुद्ध कर देते हैं, यह बात भी इस चीरहरण-लीला से प्रकट होती है। भगवान की लीला रहस्यमयी है, उसका तत्व केवल भगवान ही जानते हैं और उनकी कृपा से उनकी लीला में प्रविष्ट भाग्यवान भक्त कुछ-कुछ जानते हैं।

हमारा चित्त कहीं न कहीं स्थान, मान, गौरव, और लज्जा के चीर पहने ही रहता है। भगवान् ये चीर हर लेते हैं। भगवद्विश्वास में विघ्नरूप लज्जा और गौरव का त्याग करना कोई छोटी बात थोड़ी है?

आत्मा का पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान जीव के संकल्प को स्वीकार करें, संकल्प करनेवाले को भी स्वीकार करें। जीव संसार के अगाध जल में आकण्ठ मग्न है, जाड़े इत्यादि का कष्ट भी है, भगवान को चाहता भी है, किन्तु माया को छोड़ना नहीं चाहता। संस्कारों की बुनी हुई जाल भेदकर, माया के परदे को हटाकर, सर्वधर्मान् परित्यज्य त्याग की स्मृति को त्यागकर, सब कुछ भुलाने को तैयार है, तब सिर्फ परमात्मा ही हैं, श्यामसुन्दर ही हैं। भगवान स्वयं भक्त का अन्तिम आवरणभम करते हैं।

हरेक आत्मा परमात्मा का अंश है, अंग है, पत्नी है। जीव कभी संसार में मन के वश, कभी वासनावश, कभी शरीरवश माया की सत्ता का ही अनुभव करता है। घृणा, शंका, भय, कुलाभिमान, धर्म-कर्म का गौरव कुछ न कुछ ऐसा है जिससे बलात् खिच जाता है, किन्तु चाहता है परमात्मा से मिलन। इससे यह प्रार्थना करता है, एक परमात्मा की सत्ता का हमें अनुभव हो, मैं परमात्मा की सत्ता के वश ही रहूँ।

जीव उन्नति करना तो चाहता है, किंतु जीवपने को छोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य कुलीन और प्रतिष्ठित तो बनना चाहता है किन्तु इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर से यह सब नहीं चाहता। जो शरीर प्राप्त है, वही श्रेष्ठ कहावे, उसी की प्रशंसा करें। इसी प्रकार साधक आत्मसमर्पण तो करना चाहता है, किंतु अपने अहं को बचाये रखना चाहता है। दाता धन को दान कर देगा, किन्तु दातापने के अभिमान को-सर्वस्व दान करने पर भी बचाये रखेगा। उसे दान करना वह जानता भी नहीं उसके अधिकार की बात भी नहीं। दातापने के अभिमान को तो गृहीता ही छुड़ा सकता है। वही सर्वस्व लेकर अनावृत-नग्न-कर सकता है। जब तक बीच में वस्त्रों पटों का परदा है, तब तक आत्मसमर्पण कहाँ?

तन-मन तथा धन सब कुछ उनके चरणों में समर्पित करना है, उससे एकान्त में भी परदा करना यह समर्पण का स्वरूख नहीं। किन्तु इस परदे को हटाना साधक की सामर्थ्य के बाहर की बात है, वह स्वेच्छा से निरावृत नहीं हो सकता। श्याम ही उसके वस्त्रों को उठा ले जायँ उसे वसन विहीन बना दें, तभी सर्वात्मसमर्पण हो सकता है। श्रीकृष्ण को पति बनाकर भी आवरण न हटा, तो यथार्थ पति नहीं कहलाये जा सकते और न वे मिथ्या लज्जावती सच्ची सहचरी भी नहीं है। श्रीकृष्ण जिसे अपनाते हैं पहिले उसे विवस्त्र बना देते हैं। पुन: उन्हीं पटों को प्रसादी बनाकर लौटा देते हैं, फिर वे अपने पट न होकर पीतपटधारी के प्रसादी पट बन जाते हैं उनके प्रसाद को पाकर तो जीव कृतार्थ ही हो जाता है।

मानव वृद्धि जो भौतिकता एवं स्थूलता से आप्लावित है वह केवल जड़ के सम्बन्ध, भौतिक विषयों के सम्बन्ध में ही विचार कर सकती हैं। भगवान की दिव्य चिन्मयी लीलाओं के सम्बन्ध में कल्पना नहीं कर सकती है तो उसकी लीलाओं को समझने में सर्वथा असमर्थ होगी।

भारतीय मनीषियों ने धार्मिक धरातल पर पृथक पृथक वस्तुओं के पृथक-पृथक देवताओं का अस्तित्व निर्धारित किया

है। अत: जल के देवता वरुण के समक्ष नग्न होना उनका अनादर है, अशिष्टता है। अत: इस अशिष्टता को शिष्टता में बदलने के लिए श्रीकृष्ण ने ऐसा किया।

गोपियाँ अभीष्ट सिद्धि के लिए व्रत अनुष्ठान कर रही थीं- किन्तु इसमें नग्न स्नान करना अभीष्ट फल देनेवाला नहीं था- अत: अनुष्ठान भ्रष्ट हो जाता। इसलिए कृत्य का विरोध करना- साधक के हित में था। अत: इसे क्रियात्मक ढंग से श्रीकृष्ण ने रोकने के लिए चीरहरण किया।

श्रीकृष्ण ने लीला पुरुषोत्तम होते हुए भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है गोपियों की साधना कृष्ण प्राप्ति के लिए थी- उस साधना में त्रुटि थी- शास्त्र मर्यादा तथा सनातन मर्यादा का उल्लंघन कर नग्न स्नान कर रही थीं, यद्यपि यह गोपियों की अज्ञानता थी किन्तु साधना में व्यवधान तो था ही- इसे मार्जित करने हेतु श्रीकृष्ण ने चीरहरण कर उन गोपियों से प्रायश्चित कराया- यह उचित ही था। इससे शास्त्र तथा सनातन मर्यादा का आदर हुआ।

गोपियाँ सम्पूर्ण रूप से कृष्ण को समर्पित थीं और उन्हीं श्रीकृष्ण का भगवत् तत्त्व होने का भी ज्ञान था, वेणुगीत, गोपीगीत और रास से श्रीकृष्ण के अन्तर्धान हो पर गोपियों के द्वारा उनको खोजने के प्रसंग से यह स्पष्ट है, यह हमारी दुष्ट बुद्धि है जो श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रेम को केवल दैहिक और कामनाकलुषित समझती है। उस दिव्य एवं अलौकिक लीला को प्रकृति के प्रांगण में घसीट लाना हमारी वासनाओं का परिणाम है।

प्रेम-प्रेम और प्रेमास्पद के बीच या साधना-साधक और साध्य के बीच किसी प्रकार का आवरण नहीं रहना चाहिए, अगर है तो प्रेमी और साधक अपनी साधना में असफल हो जायेगा। इसलिए श्रीकृष्ण साधनारत गोपियों के वस्त्र रूपी संस्कारों के आवरणों को लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। गोपियाँ जल में अपने आवरणयुक्त समझ रही थीं वे इस तत्त्व से परिचित नहीं थी कि कृष्ण जल में ही नहीं-जलस्वरूप ही हैं। गोपियों के पुराने संस्कार, भगवत् प्राप्ति में बाधक थे- वे सब कुछ त्याग चुकी थीं- सब भूल चुकी थीं- किन्तु अपने आपको नहीं भूली थीं। ये संस्कार (लज्जा) ही परदा बनकर बीच में थे। प्रेम की ज्वाला में जब तक सब कुछ भस्म नहीं किया जाता तब तक प्रेम और समर्पण अधूरे हैं। इसलिए इस अपूर्णता को समाप्त करने के लिए प्रभु ने गोपियों को जल से बाहर अपने पास बुलाया किन्तु गोपियाँ संसार के आकण्ठ जल में मग्न थीं। अत: यह दुविधा साधक के लिए घातक है- इसे छोड़ना होगा। तुम्हारे माया आवरण रूपी वस्त्र तो मैंने हटा दिये- तुम केवल माया के मोह में पड़ी हो इस मोह को भी छोड़ दो- यह आवरण ही तो जीव और ब्रह्म के बीच व्यवधान है।

तुम सब कुछ भूल चुकी हो किन्तु यह भूलना तुम्हें याद है इसे भी भूलकर मेरे पास आ जाओ। जब मेरे पास आओगी तब न वस्त्रों का ध्यान रहेगा न अपना। न जगत को देखोगी, न अपने आपको फिर केवल मुझे ही देखोगी और मैं तुम्हें।

गोपियाँ जब जल से बाहर श्याम के सामने मूक खड़ी हो गई, लज्जा से मुख नीचा था। कृष्ण ने कहा-इतने बड़े त्याग में यह लज्जा कलंक है, इस कलंक को मिटा दो। गोपियों, तुम इस कलंक को भी त्याग दो और त्याग के भाव का भी त्याग करदो, त्याग की स्मृति का भी त्याग कर दो- तुम निष्कलंक हो। गोपियों ने कृष्ण के मुख कमल को देखा तो दोनों हाथ अपने आप उठ गये, जुड़ गये और कृष्ण से प्रेम की भीख माँगने लगे। गोपियों ने, आत्मविस्मृति ने कृष्ण को अपना बना लिया। अब उन्हें केवल वंशीवादक श्याम दीखता था और कुछ नहीं।

गोपियाँ विस्मृत हो गई कृष्ण की रूप माधुरी में- अब उन्हें आवरण की आवश्यकता नहीं, उन्हें अभीष्ट वस्तु प्राप्त हो चुकी थी। किन्तु कृष्ण मर्यादित थे और अपने भक्त को भी अमर्यादित नहीं होने देते। अत: अपनी अमृत वाणी से उन गोपियों की विस्मृति को भंग कर उनके वस्त्र दे पुन: भौतिक जगत् में लाकर मर्यादा की रक्षा की।

यह जीव इस संसार को पकड़कर ही प्रभु को पकड़ना चाहता है। लेकिन बिना अहंकार का निवारण हुए प्रभु का मिलन नहीं हो सकता। आत्मा और परमात्मा एकही धारा है। इसमें भेद बुद्धि यह अहंकार ही उत्पन्न करता है। परमात्मा जब अपने अंश को अपने आप में मिलाना चाहता है तब उस आत्मा से अहंकाररूपी चीर अर्थात वस्त्र का निवारण कर देता है। तब सांसारिक समस्त मिथ्या आभास की स्थिति नष्ट हो जाती है। एक परम कृष्णमय भावही प्रकाशित हो जाता है।

आए आगम शरद ऋतु नहिं सन्देह विचार। करब रास रसमय रुचिर मिलन हमारा तुम्हार।।

यह आत्मा और परमात्मा की ऐक्यधारा हैं। यहाँ प्राकृतिक तनु का व्यवहार नही है। लेकिन मूढ़ जन प्राकृतिक नर नारी समझकर कुटिल और कुविचारी बनकर कुतर्क करते है। जो आत्मा और परमात्मा को नही जानते वही गोपियों और कृष्ण को नर नारी मानते है। एक परम प्रभु ही बहु तनुधारी हैं। वही अपने स्वजनों के लिए सुखकारी रुचिर लीला करते हैं।

१८) यज्ञपत्नियों पर कृष्ण की कृपा- कृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृक्षोंके झुरमुट से निकलकर यमुना तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने गायोंको मधुर जल पिलाकर साथियों के साथ स्वयं भी जल पिया फिर कुछ देर बार गायों को चराते हुए गोपों ने, भूख से व्याकुल होकर, भगवान श्रीकृष्ण और बलराम के पास जाकर गोप बालक कृष्णसे बोले-

शुकदेव बोले- परीक्षित्, एक दिन बलराम, श्रीकृष्ण अपने सखा ग्वाल-बालों के साथ गौओं को चराते हुए वृंदावन से बहुत आगे निकल गये थे। आसमान निर्मल हो रहा था, बरसात के बाद की तीखी धूप निकली हुई थी, यमुना जी के किनारे पर लगे हुए वृक्षों की छाह ही उस तीखी घाम से बचने का एक मात्र साधन था। मानो वह वृक्ष उन पर छाते का काम कर रहे हों? भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने साथी ग्वाल-बालों से कहा- मेरे प्यारे मित्रों, ये वृक्ष कितने भाग्यवान हैं, इनका सारा जीवन परोपकार में ही व्यतीत हो जाता है और स्वयं तेज वायु के झोके वर्षा और घाम, पाला आदि सहन करते ही रहते हैं फिर भी सभी जीव धारियों का पोषण करते ही रहते हैं। जैसे सज्जन पुरुषों के घर से कोई भी याचक खाली हाथ नहीं लौटता है। **वृक्ष कबहु नहिं फल भकें नदी न संचें नीर। परमारथ के कारण साधुन धरा शरीर।।**

कहहिँ सखनितें श्याम वृक्ष ये अति उपकारी। घाम, वायु, जल सहहिँ करहिँ परहित नित भारी।।
सबई इनकी वस्तु काम सबके ही आवें। इन ढिँग अरथी आइ विमुख कबहूँ नहिँ जावें।।
छाया ईंधन कोयला, पत्र, पुष्प फल मूल दल। साधत सबके काज नित, जीवन इनको ई सफल।।
वृक्षन से मत ले, मन तू वृक्षन से मत ले। काटे वाको क्रोध न करहीं, सिंचत न करहीं सनेह।।
धूप सहत अपने सिर ऊपर, और को छाँह करेत। जो वाही को पथर चलावे, ताही को फल देत।।
धन्य धन्य ये पर उपकारी, वृथा मनुज की देह। सूरदास प्रभु कहँ लगि बरनौ, हरिजनकी मत ले।।

यह वृक्ष जैसे यज्ञ में बैठे हैं, देते ही जाते हैं, कभी किसी को अपने पास से खाली हाथ नहीं जाने देते।

ये वृक्ष अपने लिये कुछ भी संग्रह नहीं करते। इनकी सब वस्तुएँ दूसरों के ही काम आती है। ये स्वत: बरसे हुए वर्षा के जल को पीते हैं। सड़ी गली दुर्गन्धयुक्त वस्तुओं को अपनी जड़ों से खाकर शरीर को बनाये रहते हैं और निरन्तर उपकार में ही रत रहते हैं। इनकी एक भी ऐसी वस्तु नहीं जो किसी-न-किसी के काम में न आती हो।

कोई चार वेदों का भले ही पंडित हो, या छहों शास्त्रों में निष्णात् विद्वान हो जाए, जिसे कृष्ण चरणों में प्रेम नहीं है, तो उनको गोपाल की जल्दी प्राप्ति नहीं हो सकती।

शुकदेव बोले- राजन्, भूख से व्याकुल ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में आये। ये प्रतिदिन भोजन की सामग्री साथ में लाते थे किन्तु उस दिन गोप-कन्याओं को छकाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण के कहने से बिना भोजन लिये बहुत

सबेरे ही चले आये थे अत: भूख के लगने पर उन लोगों ने बलराम और श्रीकृष्ण से इस प्रकार प्रार्थना की।

गोप बालकों ने कहा- महान् बलशाली बलराम जी और दुष्टों को दलन करनेवाले कृष्ण, भूख हम लोगों को अतिशय पीडित कर रही है अत: आप दोनों इसे दूर करने का उपाय करें।

श्री शुकदेव बोले- परीक्षित्, जब ग्वालबालों ने देवकीनन्दन कृष्ण से इस प्रकार प्रार्थना की तब उन्होंने मथुरा निवासिनी अपनी भक्त ब्राह्मण-पत्नियों पर कृपा करने के लिये यह बात कही।

मेरे प्रिय मित्रों, यहाँ से थोड़ी दूर पर वेदवादी चतुर्वेदी माथुर ब्राह्मण स्वर्ग की कामना से आङ्गिरस नाम का यज्ञ कर रहे हैं। तुम लोग उनके पास जाओ। वहाँ बड़े भैया बलदाऊ जी का और मेरा नाम लेकर उनसे भोजन मांग लाओ। भगवान् की आज्ञा मिलते ही ग्वालबाल यज्ञशाला में ब्राह्मणों के पास दौड़े जा पहुँचे। उन लोगों ने विनम्र हो ब्राह्मणों से कहा- भूदेवों, हमारी बात सुनो, जिस अग्नि में आप आहुति दे रहे हैं, वही अग्नि तो हमारे पेट में है। हमें थोड़ा सा चरु चाहिये। यहाँ से थोड़ी दूर पर बलराम और श्रीकृष्ण गायें चरा रहे हैं। उन्हें भूख लगी हुई है। उन लोगों ने भोजन मांगने के लिये हम लोगों को भेजा है अत: यदि आप लोगों की श्रद्धा हो तो उन्हें भात तथा अन्य भोजन-सामग्री प्रदान करने की कृपा करें। घर आये भूखे को भोजन करवाने का बड़ा माहात्म्य और पुण्य है।

गोप कहें सब कल्प वृक्ष सम तू उपकारी। भैया, जैसे बनें मेंटि तू विपति हमारी।।
आज लगी अति भूख छाक अब तक नहिँ आई। सुनि बालनिके बचन बिहँसि बोले बलभाई।।
सत्र आङ्गिरस करहिँ द्विज, जाओ मखशाला तुरत। करो याचना अन्नकी, सब विनम्र ह्वैकें प्रनत।।

उन गोप बालकोंने उन ब्राह्मणोंसे कहा जिस यज्ञमें पशु बलि नहीं होती अथवा सोमपान नहीं किया जाता उसमें अतिथिको अन्न देनेसे यज्ञमें दोष नहीं आता।

हरि आयसु सब पाइ गयो विप्रनि ढिँग बालक। कहें सुनहु द्विज, निकट कृष्ण आये पशु पालक।।
होहि अन्न कछु देहु खाइ ते भूख बुझावें। यज्ञ शेष चरु पाइ ग्वाल सब तुमहिँ सरावें।।
करी न नाहीँ नहिँ दयो, मौनी सब द्विज बनि गये। लौटि सखनि हरितें कही, नहिँ निराश नटवर भये।।
हाथ जोरि ठाढ़े भयसे ग्वालबाल यक साथ। भोजन माँगत हैं कह्यो माखनप्रभु व्रजनाथ।।

पंडितों को बड़ा अभिमान था। अभिमान ही तो काम बिगाड़ता है। बोले- कहाँ से आ गये ग्वारिया? पढ़े लिखे तो हैं नहीं।

परीक्षित्, इस प्रकार भगवान के भोजन मांगने की बात सुनकर भी वे ब्राह्मण चुप ही रहे, कुछ बोले नहीं। वे अपने को महान् कर्मकाण्डी समझ कर यज्ञ के कर्मकाण्ड में उलझे हुए थे। थे तो वे अल्पज्ञानी, किन्तु अपने को महान् ज्ञानी मानते थे। उन्हें यह पता नहीं था कि यज्ञ, यज्ञ की सारी सामग्री, यजमान और पुरोहित आदि सब कुछ भगवान श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं। वे परब्रह्म, साक्षात् नारायण स्वरूप श्रीकृष्ण को मनुष्य-दृष्टि से देखते थे अत: उन लोगों ने न हाँ कहा और न ना ही और सिर से हूँ हूँ किया। न स्वीकार किया, न इन्कार किया।

वे अहमारी ब्राह्मण अपने को ज्ञानवद्ध मानते थे चारों वेदों के ज्ञाता बनते थे किन्तु ज्ञान की दृष्टि से वे मूर्ख ही थे क्योंकि उनके यज्ञ के भोक्ता तो एक मात्र इन्द्रियजीत परम ब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण ही थे स्वयं ग्वाल बालों के साथ उनसे अपना यज्ञ का भाग माँग रहे थे किन्तु उन्होंने उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर उनको यज्ञ का भाग नहीं दिया।

कर्मकाण्ड रत क्षुद्रहिय दम्भी स्वयं गुमान। गुनि साधारण मनुज प्रभु कीन्हिं कृष्ण अवमान।।

देश, काल, अनेक प्रकार की सामग्रियाँ, भिन्न-भिन्न कर्मों में विनियुक्त मंत्र, अनुष्ठान की पद्धति, ऋत्विक्, अग्नियाँ,

देवता, यजमान, यज्ञ एवं धर्म ये सबके सब जिनके शरीर हैं, उन्हीं, साक्षात् परंब्रह्म अधोक्षज भगवान श्रीकृष्ण की भात की याचना को उन ब्राह्मणों ने उन्हें सामान्य मनुष्य मानकर स्वीकार नहीं किया।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, उन ब्राह्मणोंको यह समझ में नहीं आई कि जो सम्पूर्ण विश्वका स्वामी है, वही उनसे अन्न मँगवा रहा है। उन्होंने राम-कृष्णको साधारण मनुष्य समझा और उनका सम्मान नहीं किया। असलमें वे ब्राह्मण थे तो बालकों-जैसी बुद्धिवाले, लेकिन अपनेको ज्ञान-वृद्ध मानते थे। एक ओर पास-पड़ोसके लोग भूखे रहें और दूसरी ओर आहुति-पर आहुति पड़े तो इस तरहका यज्ञ धर्मानुकूल नहीं होता। मनुष्यको भूखा रखकर यज्ञ सम्पन्न नहीं किया जा सकता। मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि जब अपने पास नौकरों, चाकरों, स्वजनों और परिवारवालोंके लिए तीन वर्षोंतक खाने-योग्य सामग्री हो तभी यज्ञ करना चाहिए। निराश होकर गोप-बालक भगवान के पास लौट आये और उन्हें सब कुछ बतला दिया।

कन्हैया बोले- कुछ खाइबे के लाये? बालक बोले- आ अँगार लाये है? कृष्ण बोला- ऐसे कायकूँ बोल रहे है? वे ग्वालबालक बोले- रहन दै भैया, हमें कहाँ भेज दियौ? पंडित जी तो इतने अभिमानी हैं, हमारी प्रणाम भी नहीं स्वीकार करी। ऐसे अभिमानी के पास हम नांय जाय।

उनकी बात सुनकर भगवान को हँसी आ गई। उन्होंने बालकों से पुन: कहा- अच्छा, अब तुम लोग एक बार फिर जाओ। अब की बार ब्राह्मणों से नहीं, उनकी पत्नियों से भोजन मांगो। उन्हें बताओ बलराम और श्रीकृष्ण भूखे हैं उनके लिए भात दे दो। वे तुम्हें पर्याप्त मात्रा में भोजन देंगी। उनके मन में मेरे लिये बड़ी श्रद्धा है।

बोले अबकें जाउ बिप्रपत्निनिके ढिँग तुम। अन्न देहिँ ते अवसि स्वादतें खावैं सब हम।।
नन्दनँदन हँसिकें कहें, दूध बैल देवै नहीं। लात दुधारहु गायकी, खाइ मनुज लेवें नहीं।।

भगवान की आज्ञा होने पर ग्वालबाल ब्राह्मण-पत्नियों के पास पहुँचे। उन्हें प्रणाम किया। विनम्रता से भगवान का आदेश उन्हें सुना दिया।

द्विज नारिन के ढिग गये, कृष्ण वचन निर्धार। पूरबवत तब अन्न को, मांगत भये कुमार।।
कृष्ण नाम को श्रवण कर, विप्र कलत्र उदार। भयीं मुदित मन तिनों का, कीना अति सत्कार।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपों ने जाकर विप्रपत्नियों से कहा- हे विप्रपत्नियों, हम सब तुम्हें पैलगी करते हैं। आप हमारी बात सुनिये, यहां से कुछ ही दूर पर श्रीकृष्ण गौओं के पीछे विचर रहे हैं, उन्होंने हमें भेजा है। वे ग्वालबालों और बलराम के साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावन से बहुत दूर निकल आये हैं। उन्हें बड़ी भूख लगी है अत: उनके लिये और उनके साथियों के लिये कुछ भोजन दीजिये।

नमो वो बिप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि न:। इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम्।।
गाश्चारयन् स गोपालै: सरामो दूरमागत:। बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम्।।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हृदय ज्यादा कोमल होता है। इनमें करुणा ज्यादा होती है।

ब्राह्मण-पत्नियाँ तो श्रीकृष्ण का दर्शन चाहती ही थीं। उनके आने का समाचार सुन कर वे उनसे मिलने के लिये उत्कण्ठित हो उठीं।

तब ग्वालन से पूछत बाला। केतिक दूर अहैं नँदलाला।।
चलो आज हम नयनन देखैं। जीवन जन्म सुफल करि लेखैं।।

वे नाना प्रकार की भोजन-सामग्री चाँदी की थालियों में सजाकर भगवान की ओर दौड़ पड़ी।

चले फेरि सब ग्वाल गये द्रिजपत्निनि पाहीं। हरिकी सबई बात विनयतें तिनहिँ सुनाई।।
अति प्रसन्न सब भईं धन्य निज जीवन जान्यो। आज होहिँ हरि दरश सुदिन सबने अति मान्यो।।
मीठे, खट्टे, नमकयुत, कटुक, कसैले, चरपरे। अति उज्ज्वल बर थाल सब, षडरस व्यञ्जनतें भरे।।
को जन जाने भेद यह यज्ञ करत केहि काज। भोजन माँगत हैं वही माखन प्रभु व्रजराज।।

यद्यपि भगवत्सम्मिलन के लिये जाती हुई उनके पतियों परिवारजनों ने उन्हें रोका था। संकेत से यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों ने पूछा- कहां जा रही हो? तो उनकी पत्नियों ने संकेत में ही हूँ हूँ करके उत्तर दिया। किन्तु कृष्ण के सौन्दर्य आदि गुणों को सुन-सुन कर उन लोगों ने अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण पर न्योछावर कर दिया था अत: रोकने पर भी न रुकीं। जब वे यमुना के तट पर पहुँची तो देखा कि अशोक वृक्षों के झुरमुट में श्रीकृष्ण और बलराम गोपबालों के साथ गायों को चरा रहे हैं। श्रीकृष्ण के श्याम शरीर पर सुनहला पीताम्बर झिलमिला रहा था। गले में वनमाला लटक रही थी। मस्तक पर मोर-पंख का मुकुट था। अंग-अंग में रङ्ग-रङ्ग की चित्रकारी बनी हुई थी। उन्होंने नवीन कोपलों के गुच्छे शरीर पर लगाकर नट-सा वेष बना रक्खा था। एक हाथ प्रियमित्र ग्वालबाल के स्कन्ध पर था और दूसरे हाथ से कमल का पुष्प नचा रहे थे। कानों में कमल के कुण्डल थे, कपोलों पर घुँघराली अलकें लटक रही थीं। मुख मन्द-मन्द मुस्कान की रेखा से प्रफुल्लित हो रहा था।

पति यदुपति जाने नहीं, जाने जगपति तीय। ले भोजन की भेंट बहु, पहुँची सब तिहि ठीय।।

भगवान के सौन्दर्य को देखकर यज्ञपत्नियाँ सुध-बुध खो बैठीं। उनका हृदय भगवान के ध्यान में निमग्न हो गया। उनके जन्म-जन्मान्तर के सारे पाप-ताप धुल गये। भगवान के सामने पकवानों से भरी थालियों को रखकर वे एक टक श्रीकृष्ण की मुखमाधुरी को निरखने लगीं। सकल संसार के प्राणियों के भावों को जाननेवाले श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर कहा- भाग्यशालिनी देवियों, आपका स्वागत है। आइये। बैठिये। बतलाइये हम आपके लिये क्या करें? आप लोग हमारे दर्शन की इच्छा से यहाँ आई हैं, यह आप जैसे प्रेमियों के लिये उचित ही है। स्वार्थ-परमार्थ के ज्ञाता जन वैसे ही मेरी अहैतुकी भक्ति करते हैं, जैसे कोई अपने स्वजनों के साथ करता है।

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम्। यन्नोदिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि व:।।
वृन्दावन घर दूर हमारा, किस विधि आदर करें तुम्हारा।

माताओं, आपका स्वागत करता हूँ, आप ब्राह्मण पत्नियों को मैं प्रणाम करता हूँ। आप बड़ी भाग्यवती हैं।

ऐसा कहकर कृष्ण ने उनका अन्न ग्रहण किया और ब्राह्मण पत्नियों से कहा- देवियों, मैं आप लोगों के प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ। आपने मेरा दर्शन किया, भोजन दिया। अब अपनी यज्ञशाला में लौट जाओ। तुम्हारे पति ब्राह्मण गृहस्थ हैं। वे तुम्हें बगल में बैठाकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे।

द्विज पतिनिनि लखि हँसे कहें- हे भामिनि आओ। आई दरशन हेतु करें अब दरशन जाओ।।
हरि आयसु सुनि मन तहाँ, धरि तनतें मखमहँ गईं। दरश श्यामके पाइकें, धन्य विप्र पत्नी भईं।।

विप्रपत्नियाँ बोली- आज धन्य भाग्य हमारा जो दर्शन पाया और जन्म-जन्म का पाप गमाया।

जो हरि से हित करता है उसका विनाश कभी नहीं होता।

संकर्षण गोपाल का, दर्शन कर हर्षाय। भोजन तिनें समर्प कर, बोलीं वचन सुहाय।।
आज आप अति कीनी दाया। मित्र भेजकर हमें जनाया।। धन्य भाग हमने निज चीने। युगल मनोहर दर्शन कीने।।

उन नारियों के हृदय में अपना निष्काम भाव देखकर प्रभु घनश्याम हर्षित होकर मधुर वचन बोले- हे सुभगि, आप लोगों

ने मेरा बहुत प्रिय कार्य किया। इसलिए कहो मैं आप का क्या प्रिय करूँ? जो बुद्धिमान होते है वही स्वार्थ और परमार्थ अच्छी तरह समझकर तथा मुझे मूल यथार्थ समझकर मुझे भजते है। शरीर, धन, स्वजन, प्रियजन उनके सब मेरे ही नाते होते है। मेरी भक्ति से विमुख उनको कुछ भी अच्छा नही लगता फिर प्रभु कृष्ण ने बहुत उत्साह के साथ भोजन किया और उन स्त्रियों से कहा कि अब तुम जाओ।

कह प्रभु आयसु पालि मम सुभगि भवन निज जाहु। प्रथमहिं निज निज स्वजन सँग करतब धरम निबाहु।।

सबको कर्म संसृत के अनुसार ही शरीर की प्राप्ति होती है। बिना भोगे कर्म का ऋण नष्ट नही होता।

मूरख विप्र कृष्ण अभिमानी, श्रीमद् मोह लोभ मत सानी।
ईश्वर को मानुष कर माने, माया अन्ध कहाँ पहिचाने।।
जप तप यज्ञ जासु हित कीजै, ताकौ कहा न भोजन दीजै।।
वही धन्य है धन जन लाज जो आवे तुम्हारे काज और सोई है तप ज्ञान जिसमें आवे तुम्हारो ध्यान।।

कृष्ण बोले- **मात जनि मुझको करो प्रणाम, मैं हूँ नन्द महर को श्यामा।।**

कृष्ण की बात सुनकर यज्ञपत्नियों ने विकल होकर निवेदन किया अन्तर्यामी श्याम सुन्दर, ऐसा कठोर वचन न कहें। आप अपनी उस वेदवाणी को सत्य करके दिखलाइये, जिसमें कहा गया है कि भगवान के पास आ जाता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। आप अपनी इस वेद-वाणी को सत्य कीजिये। अब हम आपके चरण की शरण में आ गई हैं। हमने अपने सारे भाई-बन्धुओं का परित्याग कर दिया है। अब आपके चरणों पर चढ़ी और फिर गिरी हुई तुलसी की माला को अपने बालों में धारण कर साधु बनकर घूमेंगी। मेरे स्वामी, अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरों की तो बात ही क्या है? वीरशिरोमणे, अब हम आपके चरणों की शरण में आकर गिर गई हैं। आपके अतिरिक्त हमें और किसी का सहारा नहीं है अत: कृपा कर अब हमें दूसरों के पास मत भेजिये।

आपकी यह बात निष्ठुरता से पूर्ण है? आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभु, श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसार में नहीं लौटना पड़ता। अत: आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये। भगवन्, हम अपने सभी सगे-सम्बन्धियों की आज्ञा का उल्लंघन करके आपके चरणों की शरण में आयी हैं? क्योंकि आपके चरणों से गिरी हुयी तुलसी की माला बनाकर हम उन्हें अपने केशों में धारण करेंगी। अत: अब हमें, हमारे पति-पुत्र और बन्धु स्वीकार नहीं करेंगे। उनकी यह बात सुनकर, भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- देवियों, तुम्हारे पति-पुत्र, भाई-बन्धु, माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों की तो बात ही क्या, अब पूरे संसार के प्राणी तुम्हारी प्रशंसा ही करेंगे? क्योंकि अब तुम मेरी ही हो चुकी हो, अत: वे तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे तथा अब तुम मेरी आज्ञा मानकर वहाँ चली जाओ और मेरे स्वरूप, गुण, स्वभाव आदि लीलाओं का चिन्तन करोगी तो अवश्य ही कुछ समय के पश्चात् मुझे प्राप्त कर लोगी।

यज्ञपत्नियों की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा- देवियों, पति-पुत्र, भाई-बन्धु आदि कोई भी आप लोगों का तिरस्कार नहीं करेंगे। सारा संसार आप लोगों का सम्मान करेगा। इसका कारण है अब आप लोग मेरी बन गई हैं, मुझसे युक्त हो गई हैं। ये देवता भी मेरी बात का अनुमोदन कर रहे हैं। देवियों, इस संसार में मेरा सान्निध्यमात्र मेरे प्रति अनुराग का कारण नहीं है इसलिये आप लोग जाइये, अपना मन मुझमें लगाये रखियेगा। इससे आप लोगों को शीघ्र ही मेरी प्राप्ति हो जायेगी।

पति सुत सब अनुकूल तुमारे। होवनगे नहिं दोष निहारे।। गृह में जावोगी तुम जबही। यज्ञ समापित होगा तबही।।
चित्त रहा हरि के चरण, हरि की आज्ञा मान। गयीं गेह में ब्राह्मणीं, निरख बंधु हर्षान।।

कृष्ण का आदेश प्राप्त होने पर ब्राह्मण-पत्नियाँ लौटकर यज्ञशाला में गईं।

यज्ञपत्नियों ने स्तुति की- जिनके तत्व का निरुपण करने में सरस्वती जड़वत हो जाती हैं, महेश्वर, शेषनाग, धर्म और स्वयं विधाता भी जड़तुल्य हो जाते हैं, पार्वती, लक्ष्मी, राधा एवं वेद-जननी सावित्री भी जड़ता को प्राप्त हो जाती हैं, फिर दूसरे कौन विद्वान आपकी स्तुति कर सकते हैं? हे प्राणेश्वरेश्वर, हम स्त्रियाँ आपकी क्या स्तुति कर सकती हैं? हे देव, हम पर प्रसन्न होइये। हे दीनबन्धो, कृपा कीजिए। यों कहकर सब विप्रपत्नियाँ उनके चरणारविन्दों में पड़ गईं।

ऐसा दिव्य-दर्शन प्राप्त करके यज्ञ-पत्नियाँ अत्यन्त मुग्ध हो गयीं। उन्होंने श्रीकृष्ण-बलराम और ग्वाल-बालोंको खिलाया-पिलाया। फिर भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञ-स्थलपर लौट गयीं।

कन्हैया को अपनी गोद में बैठाकर उन यज्ञपत्नियों ने उन्हें भोजन कराया, कैसी सुन्दर उनकी वात्सल्य भावना है।

ब्राह्मणोंको वेदान्त पढ़ते-पढ़ते बुढ़ापा आ गया, लेकिन गोविन्द का दर्शन उन्हें नहीं हुआ। उनकी पत्नियों के हृदय में भाव था। वेद में निष्णात वो नहीं थीं, लेकिन प्रेम होने के नाते, केवल कृष्ण मिला नहीं, केवल ब्रह्म दर्शन हुआ नहीं, उस ब्रह्म को अपनी गोद में बैठाकर अपने हाथ से भोजन करा रही हैं। यज्ञ का भोक्ता आज उनकी गोद में बैठकर भोजन कर रहा है। बड़ी हर्षित और पुलकित हो रही हैं समस्त ब्राह्मण पत्नियाँ, सखाओं को भी भोजन कराया।

जापर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई॥

अब जब ब्राह्मणोंको मालूम हुआ कि उनकी पत्नियोंके हृदयमें भगवान्‌के प्रति अलौकिक प्रेम है तब वे अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे- हाय-हाय हमारी विद्या, हमारा कुल, हमारी जाति किस कामकी; जो हम भगवान्‌से विमुख हैं। हमारे हृदयमें भाव नहीं, भक्ति नहीं तो हमारा जीवन किस कामका? हम तो ऐसे हैं कि जिसका सब कुछ है, उसीको हमने भोजन देनेसे इन्कार कर दिया।

धिग् जन्म नस्त्रिवृदविद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम्। धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥
माखनप्रभु दरशय ले आईं सुघर सुजान। तिनके दरश प्रताप ते विप्रन पायो ज्ञान॥

ब्राह्मण बोले- अपने अज्ञान और अभिमान से हमारे मन में दया भी नहीं आई, सो हमारे यज्ञ व तप करने पर धिक्कार है। हमने परमेश्वर को नहीं पहिचाना। हम लोगों से तो इन स्त्रियों को अच्छा समझना चाहिए, जिन्होंने जप-तप किये बिना और कथा-पुराण सुने बिना अपने ज्ञान से परमेश्वर को पहिचानकर भोग लगाया और उनका दर्शन करके नेत्रों का सुख पाया।

जो भगवान से विमुख हैं उन प्राणियों के त्रिविध जन्म को, विद्या को, व्रत को बहुज्ञता को, कुल की ओर क्रिया के चातुर्यको अधिक क्या कहें उनका जो कुछ भी वैभव ऐश्वर्य है उन सबको धिक्कार है। हमने भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन किया। हम बड़े अज्ञानी एवं हतभाग्य हैं। गोपों द्वारा भगवान ने हमें अपने स्मरण भी कराया, फिर भी हम अभिमानवश उन्हें पहचान न सके।

विप्र अपनी पत्नियों से बोले- आहे, तुम सब लोग परम धन्य हों, क्योंकि तुमने साक्षात् परमेश्वर के दर्शन किए हैं। हमारा जीवन व्यर्थ हैं। हम लोगों का वेदपाठ भी निरर्थक है। वेद और पुराणों में सर्वत्र विद्वानों द्वारा श्रीहरि की ही समस्त विभूतियों का वर्णन किया गया है। सबके जनक श्रीहरि ही हैं। जप, तप, व्रत, ज्ञान, पूजन, वेदाध्ययन, तीर्थ-स्थान और उपवास-सबके फलदाता श्रीकृष्ण ही है। जिसने श्रीकृष्ण की सेवा कर ली उसे तपस्याओं के फलों से क्या प्रयोजन है? जिसे कल्पवृक्ष की प्राप्ति हो गयी, वह दूसरे किसी वृक्ष को लेकर क्या करेगा? जिसके हृदय में श्रीकृष्ण विराजमान हैं, उसे यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान की क्या आवश्यकता है? जिसने समुद्र को पी लिया, उसके लिए कुआँ लाँघने में क्या पुरुषार्थ है?

हे भगवन्, आप हमारा अपराध क्षमा करें हम आपकी शरण में हैं। इस प्रकार पश्चाताप कर अपने को धिक्कारते हुए वे

ब्राह्मण भगवान के दर्शनों की अभिलाषा करने लगे, किंतु कंस के भय से वे वहाँ जा न सके।

कृष्ण परम प्रभु मनुज नहिं भएउ द्विजन्ह उर ज्ञान। भइ गलानि पछितात अति कीन्हिं ईश अपमान।।

धर्म, कर्म, यज्ञ, तप, व्रत, दान, योग, वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान ये सब किस काम के? सब वृथा ही है। अगर हृदय में परम प्रभु कृष्ण का प्रेम न हो।

धिग धिग हौं मतिमन्द बिकारी। मोते अतिभल सुठि मम नारी।।

कवन संस्कृत तियहिं द्विजाती। लोक वेद बाहेर सब भाँती।।

तजि नश्वर सब लौकिक रीती। करतिं धन्य प्रभु पद दिबि प्रीती।।

धनि ते धन्य तिन्हहिं कृत सारे। जिन्हहिं कृष्ण प्रभु परम पियारे।।

हम सब बिकारी, मन्दमति को धिक्कार है, धिक्कार है। मुझसे तो अतिश्रेष्ठ सुंदर मेरी पत्नियाँ है। भला स्त्रियों में कौनसा द्विजात संस्कार किया जाता है? वे लोक और वेद सब प्रकार से बाहर रहती है। फिर भी इन सब लौकिक नाशवान रीतियों को त्यागकर परमप्रभु कृष्ण के चरणों में दिव्य प्रीति की। धन्य है। इनके समस्त कृत्य धन्य है। जिनके परमप्यारे प्रभु कृष्ण हो वे धन्य है।

ब्राह्मणों ने उनके साथ किसी प्रकार की दोष-दृष्टि नहीं की। उन्हें प्रेम-पूर्वक अपने बगल में बैठा कर यज्ञ का कार्य पूर्ण किया। जब स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के लिये भोजन लेकर जाने के लिये तत्पर हुईं, यज्ञ-मण्डप में एक स्त्री को उसके पति ने हठपूर्वक उसे रोक लिया था। जाने नहीं दिया था। उस समय उस ब्राह्मण पत्नी ने भगवान के वैसे ही स्वरूप का ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनों से सुन रक्खा था। प्रगाढ ध्यान के बल पर उसने मन से भगवान का आलिंगन कर अपने त्रिगुणात्मक शरीर का परित्याग कर दिया और भगवान के रूप में ही जाकर मिल गई। उसके सारे कर्म-बन्धन समाप्त हो गये।

शुकदेव बोले- परीक्षित, जब भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार समझा कर कहा, तब वे ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला को लौट गयीं तथा किसी ने भी उनसे कुछ भी नहीं कहा। अब उन ब्राह्मणों ने वैदिक विधि के अनुसार अपने यज्ञ का कार्य पूरा किया। इधर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मणियों के लाये हुए चारों प्रकार के भोज्य पदार्थों से पहले अपने साथी ग्वाल-बालों को भोजन कराया और फिर स्वयं भी भोजन करने लगे। परीक्षित्, जब उन ब्राह्मणों को यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं परब्रह्म हैं? तब वे बहुत पछताये और उन्होंने कहा-

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी। यद् वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजा:।।

अर्थात् निश्चय ही भगवान् की माया बड़े-बड़े योगियों को भी मोहित करनेवाली है? तभी तो हम कहलाते हैं मनुष्यों के गुरु, परन्तु अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थ के विषय में अभी भी भूले हुए हैं और अपनी पत्नियों की सराहना करते हुए, उनके हृदय में भगवान् बलराम एवं श्रीकृष्ण के दर्शन की बड़ी इच्छा हुयी, किन्तु वे राजा कंस के भय के कारण वहाँ नहीं जा सके।

राम कृष्ण के दर्श की, लगी द्विजन को प्यास। कंस दुष्ट से उर डरे, गये न तिनके पास।।

यज्ञ-पत्नियों के चले जाने पर भगवान ने यज्ञपत्नियों द्वारा प्रदत्त अन्न से गोपों को यथेच्छ भोजन कराया और स्वयं भी भोजन किया। यज्ञ करनेवाले ब्रह्म ब्राह्मणों को जब विदित हुआ कि श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान हैं, तो उन्हें महान् पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे कि संसार के नियन्ता श्रीकृष्ण और बलराम की याचना को अस्वीकार कर हमने महान् अनर्थ किया है। श्रीकृष्ण तो मानवलीला करते हुए परमेश्वर ही हैं। जब उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियों के हृदय में भगवान के प्रति अलौकिक प्रेम है और हम लोग उससे रहित हैं, तब वे पछता-पछता कर अपने में हीनभावना का अनुभव करने लगे। वे

कहने लगे- भगवान से विमुख व्यक्तियों के त्रिविध जन्मको, विद्या को, व्रत को बहुज्ञता को, कुल को, चातुर्य को और वैभव आदि- सबको धिक्कार है, धिक्कार है।

श्रीकृष्ण के प्रति अगाध प्रेम के कारण इन लोगों ने गृहस्थीरूपी अपने दुरन्त बन्धन को समाप्त कर डाला। इनमें विद्या तप आदि कुछ भी नहीं है फिर भी ये हम अभिमानी विद्वानों से बहुत आगे हैं, बहुत ऊपर हैं। इनकी श्रीकृष्ण में जैसी दृढ़ भक्ति है, वैसी हमारी नहीं है। भगवान ने हम लोगों पर बड़ी कृपा करके गोपों के द्वारा हमें अपना स्मरण भी कराया था, फिर भी हमारा अभिमान तो देखिये कि हम उन्हें पहचान ही न सके। इतना होने पर भी हम धन्य-धन्य हैं, जिन्हें कृष्ण-भक्त स्त्रियाँ मिली हैं। इन्हीं के कारण भगवान श्रीकृष्ण में हमारी भी निर्मल निश्चल बुद्धि लग गई है। हे भगवन्, हम आपकी माया से मोहित हैं अत: आप हमारे अपराध को क्षमा करें। हम आपके शरणागत हैं।

ब्राह्मणोंने कहा कि हमारी पत्नियाँ तो भगवान्से इतना प्रेम करती हैं। इनको न तो द्विजातिका संस्कार हुआ है और न इन्होंने गुरुकुलमें वास किया है। इनमें न तपस्या है, न आत्ममीमांसा है, न शौच है, न क्रिया है। फिर भी योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें इनकी इतनी दृढ़ भक्ति है। हमारा संस्कार हुआ तो क्या और गुरुकुल वास हुआ तो क्या, जब कि श्रीकृष्णमें हमारी भक्ति नहीं है।

धन्य यह स्त्रियाँ, इनका यज्ञोपवती नहीं, न इनमें वेदाध्ययन, तप, जप है और पूर्णपुरुष नन्दनन्दनमें इनका इतना अनुराग। ब्राह्मणोंमें परस्पर चर्चा है- धिक्कार है हमारे ब्राह्मणत्वको, वैदिक ज्ञानको, शौच-सदाचार और कर्मनिष्ठाको हमने सुना है कि साक्षात् श्रीहरि व्रजमें अवतीर्ण हैं; किंतु हमें श्रद्धा नहीं। उन दयाधामने तो सखाओंको भेजकर हमें सावधान किया, पुकारा; पर हम अभिमानी पराङ्मुख ही बने रहे।

उन पूर्ण पुरुषको भला किसीकी कृपाकी क्या अपेक्ष? कमला उनकी किंकरी, निखिल लोकोंके वे परिपालक। एक वृद्ध विप्र रुदन करते बोले- उनके स्वजनोंका, सन्तोंका स्वभाव ही है माया-मोहित हम जैसे भ्रान्त-भटकते लोगोंको सचेत करना। वे श्रीकृष्णके सखा हमें सचेत करने आये थे याचना के बहाने; किंतु हम अज्ञानी समझ नहीं सके।

द्विजों का तीन प्रकार से जन्म होता है- शुद्ध माता-पिता से, उपनयन से और दीक्षा से। हमने भगवान की आज्ञा अस्वीकृत कर दी। वस्तुत: हम बड़े अज्ञानी और अभागे हैं। हमने उच्च वंश में जन्म लिया है, कर्मकाण्ड में निपुण हैं। किन्तु यह कुछ भी हमारे काम नहीं आया। हमने घर पर आये हुए भगवान का सम्मान नहीं किया। जिनको बड़े बड़े योगीजन तथा यज्ञ के करनेवाले बड़े कठिन परिश्रम से प्राप्त करते हैं उन्हीं घर पर आये भगवान का हमने स्वागत नहीं किया। यह हमारे अशुभ कर्मों का फल है।

इन स्त्रियों के सौभाग्य को तो देखो। यह स्त्रियां जो मूर्ख हैं सदा गृहस्थ में फँसी रहती हैं न इनका यज्ञोपवीत संस्कार ही हुआ है, न ही इन्होंने कोई तपस्या की है फिर भी इन्होंने योगेश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया।

इत सब आई लौटि द्विजनि अति प्रेम दिखायो। यज्ञकाज लै सङ्ग पूर्ण बिधि सहित करायो॥
विप्रनिको हू हृदय शुद्ध हरिने करि दीन्हों। सबने पश्चाताप कृत्य अपनेपै कीन्हों॥
ये अबला ई धन्य हैं, हाय, अभागे हम रहे। आये प्रभु पूजे नहीँ, कठिन वचन उलटे कहे॥

शुकदेव बोले- राजन्, इधर जब उन यज्ञ करनेवाले विप्रों ने यह अनुभव किया कि हमने मनुष्यरूपधारी दोनों जगदीश्वरों की याचना का अनादर करके बड़ा अपराध किया है, तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ अपनी स्त्रियों में भगवान की अलौकिक भक्ति देखकर तथा अपने को उससे हीन समझकर वे पछताते हुए अपने आप ही अपनी निन्दा करने लगे।

करुना सागर कृष्ण कबहुँ तो कृपा करिंगे। मलिन बासना दु:ख शोक आसक्ति हरिंगे।।
माया मोहित जीव करम मारगमहँ भटकैं। क्षुद्र स्वर्ग सुख हेतु अनलमहँ सिर नित पटकैं।।
नंदीनंदन हम अधम अति, अधम उधारन नाथ तुम। करहु छिमा अपराध प्रभु। तव चरननिकी शरन हम।।

व्रज में रहकर कृष्ण निरन्तर गोप गोपी तथा गौओं को आनन्दित करते रहते थे। उन्होंने अपनी लीला से द्विजपत्नियों को भी कृतार्थ किया। उन्हें अपने दर्शन भी दिये और उनके सम्बन्धियों से भी विग्रह न होने दी।

यज्ञ धरम जा कारण ठये, तिनके सन्मुख आज न भये।
आदि पुरुष हम मानुष जानौ, नाहिं वचन गोपिन कौ मानौ।।
हम मूरख पापी अभिमानी, कीन्हीं दया न हरिगति जानी।।

एक समय की घटना है। अग्निदेव सप्तर्षियों की पत्नियों के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठे। पता चलने पर सप्तर्षियों ने अग्नि को सर्वभक्षी होने का और अपनी पत्नियों को मानव-योनि में जन्म लेने का शाप दिया। पत्नियों के अनुनय-विनय करने पर सप्तर्षियों ने कहा- द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण के रूप में भगवान् का अवतार होगा। उस समय उन्हें अन्न प्रदान कर तुम लोग वैकुण्ठ की अधिकारिणी बनोगी।

१९) ब्रह्मा द्वारा राधा-कृष्ण का विवाह- राधा के बिना कृष्ण अधूरा ही है। इन आल्हादिनी शक्तिको पाकर ही पूर्ण होता है। ये अनादि दम्पती हैं। कृष्णमें कृपा है, प्रेम है, शक्ति है, ऐश्वर्य है, वह सब इस राधा का ही प्रसाद है। कृष्ण को राधा का साहचर्य सुलभ हुआ। कृष्ण और राधा का मधुर मिलन नित्य रहेगा। गर्गाचार्यजी ने वृषभानु और कीर्तिदेवी को बताया था कि आपकी पुत्री राधा भगवान श्रीकृष्ण की नित्य प्रिया हैं। उसका पाणिग्रहण भगवान कृष्णसे होगा जो इस समय लीलावश नन्द नन्दन बनकर अवतीर्ण हुए। इन दोनों का विवाह ब्रह्मा स्वयं आकर कराएँगे।

श्रीकृष्ण परम देव हैं। उनके छहों ऐश्वर्योंकी मूलरूपा श्रीराधा उनकी सतत आराधना करती रहती हैं। वृन्दावनके एकमात्र स्वामी परमेश्वर श्रीकृष्ण हैं और श्रीराधा भी श्रीकृष्णके द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक ही शरीर हैं। लीलाहेतु पृथक् बन गये। श्रीराधा भगवान श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण ईश्वरी हैं, सनातनी विद्या हैं। उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री हैं। एकान्तमें चारों वेद उनकी स्तुति करते हैं। उनकी महिमा श्रीब्रह्मा भी वर्णित नहीं कर सकते। श्रुतियाँ राधाजीका इन अट्ठाइस नामोंसे स्तुतिगान करती हैं- राधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्णमन्त्राधिदेवता, सर्वाद्या, सर्ववन्द्या, वृन्दावनविहारिणी, वृन्दाराध्या, रमा, अशेषगोपीमण्डलपूजिता, सत्या, सत्यपरा, सत्यभामा, श्रीकृष्णवल्लभा, वृषभानुसुता, गोपी, मूल प्रकृति, ईश्वरी, गन्धर्वा, राधिका, आरम्या, रुक्मिणी, परमेश्वरी, परात्परतरा, पूर्णा, पूर्णचन्द्रनिभानना, भुक्तिमुक्तिप्रदा और भवव्याधिविनाशिनी।

श्रीराधाजीको इन नामोंसे भजनेवाले मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाते हैं, व्रती हो जाते हैं, वायुसे भी पवित्र एवं वायुको पवित्र करनेवाले तथा सब ओर पवित्र एवं सबको पवित्र करनेवाले हो जाते हैं। वे राधा-कृष्णके प्रिय हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि पड़ती है, वहाँतक वे सबको पवित्र कर देते हैं।

बृहत्सानुपुर की वृषभानु-सुता राधा की सगाई कन्हैया के साथ हुए बहुत दिन हो गए। अब दोनोंका विवाह भी संपन्न होना चाहिए। श्याम के हर जन्मदिन पर बरसाने से प्रचुर भेंट आती थी। भाद्रपद कृष्ण की अष्टमी पर पकवानों, फलों, मेवों और पूरे परिवार के लिए रंग-बिरंगे वस्त्रों-आभूषणों से लदी डालियां लिए वृहत्सानुपूर के परिचर पहुँचे। इन वस्त्रों में श्रीकृष्ण की पसन्द, पीताम्बर अवश्य होता। मोर-पिच्छ होते। सुन्दर बेंतों-बाँसों अथवा जंगली लकड़ी की लकुटी होती। पर इस वर्ष लकुटी के स्थान पर आई बाँस की बनी बाँसुरी। राधा का अनुरोध था कि श्याम बाँसुरी बजाना अवश्य सीखें

और इसी बाँसुरी के साथ श्याम का चित्र उसे मिले जिसमें श्याम बाँसुरी को होठों से लगाए खड़ा हो। राधा की दृष्टि जिधर भी जाती श्याम रूप ही दृष्टिगोचर होता। सामने देखो तो श्याम, बाएं-दाएँ देखो तो श्याम, पीछे मुड़ो तो श्याम, पेड़ों की शाखाओं पर श्याम, कुंजों में श्याम, पृथ्वी पर श्याम, आसमान में श्याम, मेघों में आँखमिचौनी करते श्याम, यमुना की रजत-रेत पर खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुसकराते होठों से मुरली लगाए श्याम, जहाँ देखो वहाँ श्याम।

जैसे वत्स के हुँकार पर गौ सारे बन्धनों को तोड़ बात-की-बात में उस तक पहुँचना चाहती है, जैसे अपने खोये बालक का सन्धान पा माता सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं की उपेक्षा कर उसकी दिशा में दौड़ पड़ती है, जैसे उषा के आगमन के साथ ही रवि-रश्मियाँ सारे आकाशीय बाधाओं को चीरकर पृथ्वी की ओर भागने को व्यग्र हो उठती हैं, उसी तरह राधा क्षण-मात्र में ही वृन्दाविपिन की ओर प्रस्थान करने को सन्नद्ध हो गई। मुरली का स्वर लगातार पूरे महल में भरता जा रहा था। अवश्य ही माता कलावती और पिता वृषभानु ने भी उसे सुना होगा पर यह किसी के लिए किसी का आन्तरिक आह्वान है, यह बात उनपर नहीं प्रकट हुई होगी। प्रकट उसे ही करना था और यह आवश्यक था। उस समय वह पाँव-पैदल वृन्दावन की ओर नहीं भाग सकती थी। भले ही वृषभानु-सुता को मार्ग में, विशेषकर इस चाँदनी-स्नात-रात्रि में कोई भय नहीं हो।

वृषभानु और उसके सदृश्य अन्य पुरुष राधा को कभी-कभार गलत अवश्य समझ लें। इतिहास-पुरुष राधा को गलत नहीं समझे।

गर्गाचार्य ने श्रीकृष्ण और राधाकी कुण्डलियाँ पुन: देखी। ऋषि गर्ग को अपनी गणना की भूल का आभास हुआ है कि विवाह-योग नहीं है राधाकी कुण्डली में पर श्रीकृष्ण की एकमात्र प्रेरिका-शक्ति के रूप में पैदा हुई है- राधा-श्रीकृष्ण जो अपने जीवन-काल में ही अपने कृत्यों के बल पर भगवान के रूप में सम्पूर्ण आर्यभूमि में पूजित होनेवाला है।

नन्द बाबा शिशु श्रीकृष्ण को साथ लेकर वृन्दावन में आ गए और भाण्डीर उपवन में गौओं को चराने लगे। उस भू-भाग में स्वच्छ तथा स्वादिष्ट जल से भरा हुआ सरोवर था। नन्दजी ने गौओं को उसका जल पिलाया और स्वयं भी पिया। इसके बाद वे बालक को लेकर एक वृक्ष की जड़ के पास बैठ गए।

सायंकाल सखाओं के साथ खेलनेमें शाम को विलम्ब हो गया। नन्दबाबा व्याकुल होकर वनमें आ गये। कन्हैया के सभी सखा भाण्डीर वटके समीप खेल रहे थे। गौयें चरते-चरते निकल गयी। सूर्यास्त होनेवाला था। नन्दबाबा ने दाऊ को सब बालकों के साथ घर भेज दिया और कहा तुम चलो मैं गायोंको लेकर आता हूँ।

जैसे आषाढ़ के प्रारम्भ में आकाश में घटा घिर आती हैं, मेघ गर्जना करने लगता है। प्रभु कृष्ण के रूप से चारों ओर वायु, वेग, तूफान, बादलोंके घनी घटाएँ बरसने लगीं। उस समय चारों ओर बिकट घोर अन्धकार छा गया। कहीं भी कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। आकाश बादलों से ढक गया। वन का भीतरी भाग श्यामल हो गया। वर्षा के साथ जोर-जोर से हवा चलने लगी। बड़े जोर की गड़गड़ाहट होने लगी। मूसलाधार पानी बरसने लगा और वृक्ष काँपने लगे। वृक्ष की डालियाँ टूट-टूट कर गिरने लगी। उसी क्षण करोड़ों सूर्य के समूह समान दिव्य दीप्ति उदित हुई। नन्द अत्यंत बेहाल हो गये। प्रकृति के गुण में रँगकर लीला करते हुए कन्हैया अत्यन्त भयभीत होने लगे। उसी समय परमात्मा की आह्लादिनी परम शक्ति तेजपुन्ज की छबि रासी अपने रुचिर छटा को प्रकाशित करती हुई दिव्य राधिका वहाँ कन्हैया को ढूँढ़ने के लिये प्रकट हुई। प्रतिदिन यह प्रेममयी सायंकाल गवाक्षपर दृष्टि लगाये रहती है। कन्हैया भी इसकी एक झाँकी पाये बिना रात्रिमें सुखसे शयन नहीं कर सकता।

नन्दने वहाँ वृषभान नन्दिनी श्रीराधा को देखा। निर्जन वन में राधा की ऐसी छबि देखकर नन्दबाबा अचम्भें में पड़ गये। उनके प्रकाश से वन ऐसा प्रकाशित हो गया कि मानो करोड़ों चन्द्रमाओं का प्रकाश छा गया हो। नन्द बाबा ने भक्ति भाव

से उनको प्रणाम करते हुये अपनी आँखों से आनन्द के आँसू बरसाये।

श्री राधा के दिव्य तेज से अभिभूत हो नन्दजी ने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा- राधे, ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजी के मुख से सुनकर जानता हूँ। तुम बृजभानु की प्यारी पुत्री बनकर प्रगट हुयी हो। तुम इनकी स्वामिनी हो और ये तुम्हारे स्वामी है। तुम दोनों का ऐसा सुहावना स्वरूप है मैं तो मायासे मोहित होकर भ्रमित हो रहा हूँ।

राधे, अपने प्राणनाथ को तुम मेरे अंक से ले लो। यह लीला करते हुए प्रकृति का अनुसरण करके बहुत भयभीत हैं। आप अपने प्राण प्रीतम को अपने अंक में ले। आप मुझे अपना जग दुर्लभ दर्शन दिया आप मुझपर अमित कृपा की।

आपकी जहाँ इच्छा हो उसे ले जाओ। अपना मनोरथ पूर्ण कर लेने के पश्चात् मेरा यह पुत्र मुझे लौटा देना। इस भूतल पर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। आपके दर्शन दुर्लभ है।

तब श्री राधाजी ने नन्दजी की गोद से अपने प्राणनाथ को दोनों हाथों में ले लिया। राधाजी ने बालक को ले लिया और नन्द से बोली- हे बाबा, यह रहस्य दूसरे किसी पर प्रकट मत करना। इसके लिए प्रयत्नशील रहना। तुम्हारे अनेक जन्मों के पुण्यफल का उदय होने के कारण आपने मेरा दर्शन प्राप्त किया है। गर्गाचार्यजी सभी विषय के ज्ञाता है। वे हमारे अवतार का सारा कारण जानते है। राधा का यह वचन सुनकर ब्रजेश्वर नन्द ने कहा- हे देवी, अपने प्रियतम सहित अपने चरणों की भक्ति मुझे प्रदान करो। हे परमेश्वरी, आपदोनों के संनिधान में रहने का सौभाग्य हमें प्रदान करो।

हे परमेश्वरी, हे जगत की माता, हे देवी, मैं और यशोदा तुम्हारे चरणों की सेवा करते रहें, यह सुनकर और उनके अनोखे प्रेमभाव को विचार कर राधा ने उनको सुख देनेवाली भक्ति प्रदान की।

परमेश्वरी राधा बोली- हे ब्रजेश्वर, तुम्हें दास्यभाव भक्ति प्राप्त होगी। हमारे चरण कमलों में तुम दोनों की दिनरात भक्ति बनी रहेगी। मेरे वर के प्रभाव से माया तुमपर अपना आवरण नहीं डाल सकेगी। अन्त में मानव शरीर का त्याग करके तुम दोनों पति-पत्नी गोलोक में पधारोगे। जहाँ हमारा तुम्हें नित्य दर्शन होगा।

फिर जब नन्दजी वहाँ से चले गये, तब श्री राधिका जी भाण्डीर बन में चली गयीं। पृथ्वी देवी अपना दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुयीं। उस वन की छटा रुचिर एवं सुहावनी हो गई। दिव्यधाम की शोभा का अवतरण होते ही भगवान श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण किशोरावस्था के अनुरुप दिव्य देह धारण करके श्रीराधा के सन्मुख खड़े हो गये। सहसा आकाशमें आलोक हुआ। मतवाले भ्रमरों तथा झरनों से सुशोभित कन्दराओं द्वारा वह पर्वतराज सुशोभित होने लगा। उस समय वृन्दावन के निकुंज ने अपना दिव्य रूप प्रकट किया। उसमें सभा-भवन, प्रांगण तथा दिव्य मंडप शोभा पाने लगे। वसन्त ऋतु की सारी मधुरिमा वहाँ अभिव्यक्त हुई। मधुपों, मयूरों, कपोतों तथा कोकिलों के कलरव सुनायी देने लगे।

श्रीकृष्ण राधा से बोले- पूर्वकाल में गोलोक में जो कुछ मैंने वचन दिया था उसे आज पूर्ण करूंगा। हे सुमुखि राधे, तुम मेरे लिए प्राणों से भी बढ़कर प्रियतमा हो। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका-शक्ति और पृथ्वी में गन्ध होती है, स्वर्णकार स्वर्ण के बिना आभूषण तैयार नहीं कर सकता उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं हूँ। तुम सृष्टि की आधारभूता हो और मैं अच्युत बीज रूप हूँ। तुम श्री हो, सम्पत्ति हो, आधार स्वरूपिणी हो, सर्वशक्तिस्वरूपा हो और मैं अविनाशी सर्वरूप हूँ। जब मैं तेज:स्वरूप होता हूँ तब तुम तेजोरूपिणी होती हो। मैं तुम्हारे संयोग से ही सदा सर्व बीजस्वरूप होता हूँ। तुम शक्तिस्वरूपा तथा सम्पूर्ण नारी जाति का स्वरूप धारण करनेवाली हो। मेरा अंग और अंश तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम मूल प्रकृति ईश्वरी हो। हे वरानने, तुम शक्ति, बुद्धि और ज्ञान में मेरे समान

ही हो। तब राधा बोली- हे प्रभो, मुझे गोलोक की सारी बातें याद है। आप तृण को पर्वत और पर्वत को तृण बनाने में समर्थ हो, आप योग्य-अयोग्य, सम्पत्ति-विपत्ति सभी में आपकी समान कृपा होती है। उसीसे वहाँपर रास मण्डल प्रगट हो गया। राधाजी बड़ी प्रसन्नता से रास मण्डल में गयीं जहाँ पर अमृत और शहद से भरे हुये रत्नों से जुड़े हुये कलश शोभा दे रहे थे।

कृष्ण बोले- हे प्राणप्यारी राधे, हम दोनों तो एक ही हैं हम में भेद कहाँ जैसे दूध और उसकी सफेदी तथा भूमि और उसकी गंध अलग नहीं हो सकते वैसे ही हम दोनों रस स्वरूप एक ही हैं। जैसे सुनार बिना सोने के भूषण नहीं बना सकता वैसे ही तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। तुम्हीं सृष्टि का आधार हो और उसका अविनाशी बीज हो। किन्तु तुम हो मेरा ही स्वरूप। जिन अधम पुरुषों को मेरे में और तुममें भेद दिखाई पड़ता है उनको कालसूत्र नरक का दुख भोगना पड़ता है। जो ब्रज की लीलाओं में दोष बताते हैं उनके करोड़ों जन्म के पुण्य नष्ट हो जाते हैं और जिनको तर्क विकर्त भरमाते रहता है उनकी पन्द्रह पीढ़ियां नरक में चली जाती हैं। तुम्हारे से युक्त होकर ही मैं राधाकृष्ण कहा जाता हूँ। तुम मेरी श्री हो, सम्पत्ति हो, मेरी बड़ी भारी शक्ति हो मैं तुम्हारे साथ में सृष्टि के सभी बीज स्वरूप हो जाता हूँ। तुम मेरी ज्ञान, बुद्धि और बल हो यद्यपि तुम मेरा ही स्वरूप हो।

राधा राधा जो कहत, तुम सोहुँ बड़ प्रिय मोय। प्रेम, भक्ति, अनुरक्ति मम, पावै अधिकौ सोय।।

जो राधा राधा कहता है वह तुमसे भी अधिक हमको प्यारा लगता है और उसको हमारा प्रेम, भक्ति और अनुराग और अधिक मिलता है। देवता और देवियाँ तो केवल प्राण प्यारे हैं किन्तु तुम तो प्राणों से भी अधिक प्यारी होकर वक्ष स्थल पर विराजती हो और मुझ कृष्ण रूप के साथ शोभा देती हो।

राधा पुरः स्फुरति पश्चिमतश्च राधा, राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा।
राधा खलु क्षितितले गगने च राधा, राधामयी मम बभूव कुतस्त्रिलोकी।।

मेरे सामने राधा है, मेरे पीछे राधा है; मेरे बायें राधा है, मेरे दाहिने राधा है; पृथ्वीमें राधा है, आकाशमें राधा है- यह सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे लिये राधामय क्यों हो गयी?

राधा बोली- हे प्रियतम, जो कुछ आपने मुझको गोलोक धाम में बताया है वह सब याद आ गया। आप तो सब कुछ करने में समर्थ है, अब आप जो चाहे सो करो। हे प्रियतम, हमारे प्रेम का निर्वाह करो क्योंकि आपके बिना एक-एक क्षण युग के समान बीतता है और आपके दर्शनों और स्पर्श के बिना मैं दुखी रहती हूँ।

उसी समय विशाल उज्ज्वल हंस भूमिपर उतरा उसके ऊपरसे चतुर्मुख अरुणवर्ण सृष्टिकर्त्ता ने राजा कृष्णको प्रणिपात करके कहा- हे देव आज आप दोनोंका विवाह मुहूर्त है। ब्रह्माने शुभमुहूर्त शोध लिया। ब्रह्माने कहा- आज मैं कन्यादान करूँगा। कन्याका पिता शास्त्रज्ञ हो तो कन्यादानका आचार्यत्व वह स्वयं कर सकता है। सभी सामग्री सृष्टिकर्त्ताके संकल्पने उपस्थित कर दी। ब्रह्माने राधा और कृष्ण की स्तुति की। हे प्रभो, आप सबके आदि कारण हैं, आपका कोई आदि-अन्त नहीं है। आप समस्त पुरुषोंत्तम में उत्तम है। अनन्त अगणित ब्रह्माण्डों के स्वामी है। ऐसे राधा-कृष्ण की मैं शरण में हूँ। ब्रह्माजी ने राधा की स्तुति की और बोले- श्रीकृष्ण कृपा से मुझे आपके चरणकमलों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूर्वकाल में मैंने पुष्कर तीर्थ में साठ हजार वर्षों तक तपस्या की। इसीलिये मुझे आज आपके चरणकमलों के दर्शन प्राप्त हुए। आप सभी देवियाँ प्रकृति की अंशभूता हैं। हे अम्बिके, सारी स्त्रियाँ आपकी अंशभूता है। वेद तथा पंडित आपकी गुणोंका वर्णन करने में असमर्थ है। हे ज्ञान की जननी, हे माँ राधे आप बुद्धि की जननी है। आपकी स्तुति करने की क्षमता कोई नहीं रखता। सरस्वती और वेद भी अपने को असमर्थ पाते हैं।

आप भी कृष्ण के समान अयोनिजा है, आप श्रीकृष्ण के आधार हो। आप दोनों का रिश्ता ऐसा सुहावना है कि आप दोनों एक दूसरे के प्राण हैं। तुम दोनों सदा रहनेवाले हो और दोनों एक दूसरे के अंश हो। शेषनाग शंकर और गणेश भी आपके स्वरूप बताने में सब प्रकार से ऐसे समर्थ हैं। प्रेम सहित आप मेरे दोषों को भुला दो, हे स्वामिनी मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो। ब्रह्माने कहा- यही वरदान दो कि मुझै आप दोनोंके चरणों से भक्ति मिले। राधा ने वरदान दिया और उन्हें अपना सेवक मान लिया।

तब कृष्णने हँसते हुए प्रियतमा का हाथ अपने हाथ में थाम लिया और उनके साथ विवाह मण्डप में प्रविष्ट हुए। फिर ब्रह्मा प्रभु का रुख पाकर आकाश से नीचे उतरकर दोनों के चरणों में प्रणाम कर प्रेम पुलकित होकर राधा श्याम की स्तुति करने लगे।

उतरि विधाता नभहिं ते दोउ पद कीन्हिं प्रनामु। करन लगे बिनती पुलकि लखि मुद राधा श्यामु।।

हे परमेश्वर अगाध ब्रजेश आप की जय हो। हे रुचिर ब्रजेश्वरी राधा आप की जय हो जय हो। हे प्रभो आप अनन्त हैं आप का चरित्र अनन्त हैं आपकी लीला का कभी भी अन्त नहीं है। हे गोलोक के सदैव बिहारी आपको नमस्कार है इस धरती पर आप अपने स्वजनों को सुख देने के लिए प्रगट होते हैं। जब आप प्रभु राम रूप से प्रगट होते हैं तब ए राधा सीता होकर वाम भाग में विराजती हैं फिर जब आप वैकुण्ठनाथ होते हैं तब महालक्ष्मी बनकर साथ में विराजमान होती हैं।

हे प्रभो जब आप ब्रह्म रूप रहते हैं तब प्रकृति माया रूप रहती हैं आप जब महान स्वरूप में रहते हैं तब वह सगुणा रूप में रहती हैं। जब आप विराट रूप में रहते हैं तब इनका ठाट आप के साथ धारणा रूप में रहता है। अब आप नर नारायण रूप से रहते हैं तब परम शान्ति रूप से आपमें परायण रहती हैं। जब आप अन्तरात्मा रूप में रहते हैं तब इनका प्रतापलक्षणावृत्ति रूप से रहता है।

श्याम गौर अनुपम रुचिर द्विबिध तेज सर्वत्र। पाहि पाहि मोहि शरण तव हे अज परम स्वतंन्त्र।।
यदपि आपु नित दम्पती पूरन पारावार। तदपि कराउब ब्याहतव सिद्धि लोक व्यवहार।।

श्यामस्वरूप कृष्ण तथा गौर स्वरूप राधा यही अनुपम रुचिर दोनों तेज सर्वत्र व्याप्त है हे अज परम स्वतंत्र मैं आपकी शरण में हूँ रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए। यद्यपि आप सदा सर्वदा दम्पती ही हैं पूर्ण पारावार हैं फिर लीला के लोक व्यवहार की सिद्धि के लिए आप का विवाह कराऊँगा।

तब बिरन्चि उर अति हरषाए। चले पुरावन चरित सुहाए।।
अग्नि ज्वलित करि हवुन करावा। सात प्रदक्षिन दोउ फिरावा।।
प्रिया करहिं प्रियतम कर दीन्हीं। पानिग्रहनु बिधि पूरन कीन्हीं।।
रसहिं रसिक दोउ परम रसाला। मेले युगल परस्पर माला।।
भानु सुता प्रभु बाम बिराजीं। जिमि विद्युति दिबि घन संग भ्रांजी।।

ब्रह्मा बोले- आप दोनों नित्य दम्पती हैं और परस्पर प्रीति से परिपूर्ण रहते हैं। मैं लोक-व्यवहार की सिद्धि या लोक संग्रह के लिए आप दोनों की वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा।

फिर ब्रह्माजी हृदय में अत्यन्त हर्षित हो प्रभु के सुहावने चरित्र को पूरा करने चले। अग्नि को प्रज्ज्वलित करके दोनों से हवन कराया तथा सात प्रदक्षिणा करवाए। राधा और कृष्ण दोनोंको प्रणाम करके ब्रह्माजी ने यज्ञ और वेदों की रचना प्रकट की। स्वयं ब्रह्माने कन्यादान देनेका आनंद लिया।

प्रिय राधा का हाथ प्रीतम कृष्ण के हाथों में दिया तथा पाणिग्रहण की बिधि को पूर्ण किया। ब्रह्माने खड़े होकर श्रीकृष्ण

और राधा से अग्निदेव की सात परिक्रमाएँ करवाईं और दोनों से सात मन्त्र पढ़वाए। रस स्वरूप तथा रसिक स्वरूप परम रसाल दोनों ने एक दूसरे के गले में माला पहनाई। फिर वृषभानु सुता राधाजी प्रभु के बाम भाग में विराजमान हुई उसी प्रकार से सुशोभित हुई जैसे घन के साथ बिजली शोभायमान होती है।

उस जोड़ी को सुखपूर्वक आसन पर बैठे हुए देखकर हर्ष विभोर होकर फूल बरसाने लगे। पटह मुरुज दुन्दुभी आदि बाजे आकाश में बाजने लगे तथा गन्धर्वगण रस से सजा कर गीत गाने लगे। अप्सरा गण सुन्दर नाच नाचने लगीं। सभी अपने अपने कृत्यों के लिए आज शुभ सच्चा अवसर समझे। फिर विधाता प्रभु से अपना नेग माँग लिए कृपासिन्धु ने अपनी भक्ति का वरदान दिया।

रुचिर भानुवृष नन्दिनी नँदनन्दन दिबि ब्याहु। ब्रज बासिन्ह अनजान सब भा यह रुचित उछाहु।।

ब्रह्मा के स्मरण करते ही अग्निदेव प्रकट हो गये। ब्रह्माजीने विधिपूर्वक कन्यादान किया, सप्तपदी हुई, मंत्रोच्चारण किया। उसी समय ब्रह्माजी ने अग्निकुंड की अग्नि प्रज्ज्वलित की और उन दोनों प्रिया-प्रियतम के वैदिक विधान से पाणिग्रहण की विधि पूरी की। ब्रह्माजी वहाँसे विदा होकर अपने धाम को चले गये।

तदनंतर भाण्डीर बन में श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से प्रिया का मनोहर श्रृंगार किया। श्रीकृष्ण ने यमुना में प्रवेश करके राधा के साथ विहार किया।

राधा कृष्ण से बोली- मैं केवल तुम्हारी हूँ, तुम केवल मेरे हो। मैं न तो केवल राधा हूँ, न तुम केवल श्याम। हम दोनों एक ही हैं, राधा-श्याम, श्याम राधा। राधा ने श्याम से कहा- तुम्हें संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष बनना है और अत्याचारी दुष्ट कंस का वध करना है। राधा कृष्ण की प्रेरणा है। तुम इतिहास पुरुष नहीं, काल पुरुष हो। जिसकी प्रेरणा शक्ति राधा हो वह पुरुष कहाँ रह पाएगा, उसकी कीर्ति अमर, अनन्त अक्षय होगी।

इसके बाद जब श्रीराधाजी भी श्रीहरि को श्रृंगार धारण कराने को उद्यत हुईं, उसी समय श्रीकृष्ण अपने किशोर रूप को त्यागकर छोटे से बालक बन गये। नन्दने जिस शिशु को जिस रूप में राधा को दिया था उसी रूप में वे होगी। जब श्री राधा जी विलाप करने लगीं तो सहसा आकाशवाणी ने कहा- राधे, इस समय सोचा मत करो। तुम्हारा मनोरथ कुछ काल के पश्चात् पूर्ण होगा। निभृत निकुञ्ज राधा-कृष्ण का विहार स्थल बन गया। बृषभानुजी भी कीर्तीकुमारी राधा को ढूँढ़ रहे थे और पुकार रहे थे। उनकी पुकार सुनकर श्री राधाजी शिशु रूपधारी श्रीकृष्ण को लेकर तुरन्त ही यशोदा जी के घर गयीं और उनके हाथ में बालक को देकर बोलीं- आपके पति देव ने मार्ग में इस बालक को मुझे दे दिया। यशोदा ने राधा से कहा- हे वृषभानु नन्दिनी राधे, तुम धन्य हो, इस समय तुमने लाला की पूर्णतया रक्षा की है और राधा यशोदा की आज्ञा लेकर धीरे-धीरे अपने घरको चली गईं। राधाजी प्रतिदिन रात में वृन्दावन में जाकर श्रीहरि के साथ क्रीड़ा करती थी। यह है राधा और कृष्ण के विवाह की परम मंगलमयी गुप्त कथा। पूर्णतम परमेश्वर कृष्णकी माया और उनका विधान वे कौन सी लीला कब, कहां और कैसे करेंगे यह तो वे स्वयं ही जान सकते हैं दूसरा कोई उसे जानने में समर्थ नहीं। रुचिर वृषभानु सुता राधा तथा नंदनंदन कृष्ण के दिव्य विवाह का रुचिर उछाल सभी ब्रज वासियों के अनजान में सम्पन्न हुआ।

२०) गोवर्धन लीला- श्रीकृष्ण कोई सामान्य देव नहीं, साक्षात् परमात्मा हैं। उन्होंने अपनी लीलाओं के द्वारा सभी देवों का पराभव किया। वत्सलीला में ब्रह्मा का गर्व दूर किया। संकल्पमात्र से बालकों बछड़ों की रचना कर डाली। अग्निपान लीला में अग्नि का अभिमान विनष्ट किया। अब गोवर्धन लीला में इन्द्र का अहंकार उतारने जा रहे हैं।

शुकदेव बोले- राजन श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ वृन्दावन में निवास करते हुए भाँति-भाँति की लीलाएँ कर रहे थे।

उन्होंने एक दिन देखा कि वहाँ के सब गोप इन्द्र-यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं।

आभीरों ने एक दिन, शक्र याग के हेत। करी एकठी वस्तु सब, पय पकवान समेत।।
सर्वातम सर्वज्ञ हरि, जानत भी सब देव। हस्त जोड़ नन्दादि सों, पूछत भा सब भेद।।
निज उत्सव की भाखो बाता। किसका याग करो तुम ताता।।
को मख का साधन अधिकारी। कौन दैव फल कौन उचारी।।
श्रवण करन की इच्छा मोको। याते पूछत हैं हम तोको। प्रिय उपेक्ष अरि जिनके नांही। निजपरदृष्टि न जिन उर मांही।।

यद्यपि भगवान् सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं। उन्हें सब के अन्त:करण की बातें विदित हैं फिर भी उन्होंने अनजान-से बनकर नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपों से पूछा- पिताजी, आप लोगों के सामने यह कौन-सा बड़ा भारी कार्य, कौन-सा उत्सव आ पहुँचा? इसका फल क्या है? किस उद्देश्य से, कौन लोग, किन साधनों के द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं? पिताजी, कृपा कर आप हमारी जिज्ञासाओं का समाधान करें। जिस क्रिया को सम्पन्न करने के लिये आप लोग उद्योग कर रहे हैं, वह शास्त्रीय है अथवा परम्परा से प्राप्त लौकिक है? इस यज्ञ में कार्तिक बदी चतुर्दशी को इन्द्र की विधिपूर्वक पूजन किया करते थे।

तब हरि बोले नंदसों मधुर मन्द मुसुकाय। करतपुजाई कौन की बाबा मोहिं बताय।।
एक दिवस हरि लखे गोप इततें उत जावैं। जौ, तिल, चाँवर, धीउ, सबहिँ घर घरतें लावैं।।
बाबा, का उत्सव करो, प्रभु पूछें व्रजराजतें। धूम धाम अति मचि रही, होवेगो का आजतें।।

ब्रह्मा, शंकर इत्यादि सभी का शासन करनेवाले भगवान श्रीकृष्णने इन्द्र को शिक्षा देने के लिए विचार किया उसको अति अहंकार हो गया है।

आप लोग जान-बूझकर धर्म की राह छोड़कर कुराह पर क्यों चलते हो। संसार में तीन तरह के धर्म और कर्म होते हैं, एक वेद व शास्त्र सम्मत दूसरा लोक व्यवहार, तीसरा अपने मन से। वेदशास्त्र सम्मत करने से उसका फल मिलता है। जो लोग अपने अज्ञान से नारायण को, जो इन्द्रादिक सब देवतों के मालिक हैं, छोड़कर दूसरे देवतों की पूजा करते हैं, उन्हें मूर्ख समझना चाहिये।

आप सब के कृत का क्या कोई शास्त्र प्रमाण है कि नहीं या लौकिक रीति है या केवल अज्ञान ही है।

यदपि कृष्ण सर्वज्ञ विभु सर्वातम परमीश। पूँछत अज्ञ समान सुठि करन चहत तम खीश।।

श्रीकृष्ण के प्रश्नों को सुनकर नन्द बाबा ने कहा- बेटा, भगवान इन्द्र वर्षा करनेवाले मेघों के स्वामी हैं। ये मेघ इन्हीं के अपने रूप हैं। वे ही प्राणियों को जीवन प्रदान करनेवाले जल को बरसाते हैं। वर्षा से कृषि होती है। कृषि से अन्न उत्पन्न होता है। उसी से हम इन्द्र का यज्ञ करते हैं। बचे हुए अन्न को हम लोग खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं और धर्म, अर्थ तथा काम रूप त्रिवर्ग सिद्ध करते हैं अत: हम सभी परम्परा से चले आ रहे इस इन्द्रयाग को प्रतिवर्ष बिना किसी व्यवधान के किया करते हैं। यही हमारा धर्म है। जो लोग किसी कारण से इस परम्परा का पालन नहीं करते हैं, वे दु:ख के भागी बनते हैं।

मघवा देव मेघतनु धारी। वर्षत जीव जीवनं वारी।। ता जल सों उपजत द्रव जोई। तिससे याग करें सब कोई।।
धर्म काम धन लाभ विचारी। पुरुष करें पुरुषारथ भारी। तिसका फल परदाता सोई। बिना मेघ कृष्यादि न होई।।
परंपरा यह मख चल आया। याको जो जन देत भुलाया। काम लोभ भय रिसकर ताता। उभयलोक सो सुख नहीं पाता।।

लाल, तू जो मेघ देखता है, ये इन्द्रके भेजनेसे आते हैं। ये वर्षा करते हैं, तब घास, अन्न होता है। उसी अन्नसे इन्द्रकी पूजा करते हैं। इन्द्रकी पूजा नहीं करनेसे अनर्थ होता है। अकाल पड़ता है। हम लोग भी कल इन्द्रकी पूजा करेंगे।

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघस्तस्यात्ममूर्तय: । तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पय: ।।

तब बोले ब्रजराज इन्द्रकी पूजा भैया । जो बरसावें नीर होहिं तृन खावें गैया ।।

जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवन दाता । त्रिभुवनपति सर्वेश स्वर्गपति विष्णु विधाता ।।

नन्द वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले ब्रजचन्द्र तब । जड़ चेतन चर अचर जग, पिता कर्म-वश भ्रमहि सब ।।

अन्तत: उसी कदम्ब के वृक्ष के नीचे, उसी विस्तृत चबूतरे पर बैठक जमी । एक ओर इन्द्र-पूजा के समर्थक बड़े-बुजुर्ग, परम्परावादी और दूसरी ओर इसके विरोधी, श्रीकृष्ण के सखा- नई पीढ़ी की नई पौध ।

कन्हैया तो झट बाबाकी गोदमें जो अब तक अधलेटा था आ बैठा और बोला- बाबा, धूल उड़ती है और ऊपर जाती है तो उसीके कणोंपर पानीकी भाप जमती है । इससे मेघ बनते हैं । वायु इन मेघोंको ले आता है । इसमें इन्द्रका क्या अड़ंगा? महर्षि शाण्डिल्य तो कहते हैं कि सब अपने ही कर्मका फल भोगते हैं । अपने ही कर्मसे सुख-दु:ख होता है, फिर हम इन्द्रकी पूजा क्यों करें? श्रीकृष्ण ने ही पूछा- आखिर यह पूजा क्यों आवश्यक है?

पुरानी पीढ़ी के लोग कुछ देर चुप रहे, अन्तत: एक वृद्ध ने कहा, क्योंकि हमें पता नहीं हम इसे कब से करते आए हैं, हमारे पूर्वज और उनके पूर्वजों के भी पूर्वज इस पूजा को महत्त्व देते आ रहे हैं ।

नई पीढ़ी की ओर से श्रीकृष्ण ही बोल रहे हैं जो काम पूर्वज करते आए हैं, उन्हें करते रहना क्या आवश्यक है?

वृद्ध ने उत्तर दिया- होना तो यही चाहिए । कृष्ण बोले- हमारे पूर्वज तो वल्कल पहनते थे । पेड़ों के फल-फूल और कन्दमूल से अपना पेट भरते थे । हम ऐसा कहाँ करते हैं?

इस तर्क पर पुरानी पीढ़ी की बोलती बन्द हो गई । बहुत देर के सन्नाटे के बाद एक वृद्ध एवं प्रतिष्ठित गोप को एक बात सूझी, बात इतनी ही नहीं है । परम्परा की केवल बात होती तो हम तोड़ भी देते । बात कुछ और भी है और वह इससे अधिक महत्त्वपूर्ण है । कृष्ण ने कहा- क्या बात है?

बात यह है कि हम लोग, आप लोग अर्थात् श्रीकृष्ण और बलराम के कारण गोचारण से अधिक कृषि पर ध्यान देने लगे हैं । आप ही लोगों ने वृन्दावन की बहुत-सी भूमि को कर्षित कर कृषि-योग्य बनवाया । कन्हैया का कृष्ण नाम भी प्राय: इसी कारण अधिक प्रसिद्ध हो गया- कर्षित इति कृष्ण:- जो कर्षण करे अर्थात् भूमि को जोते वह कृष्ण । बलराम ने तो हल को इतना सम्मान दिया कि उसे अपना आयुध ही बना लिया । सही है कि गोचारण भी वर्षा पर आश्रित है । वर्षा न हो तो गोचर-भूमि किधर से आए? पर यह भी सही है कि कृषि के लिए वर्षा अत्यन्त आवश्यक है । धरती को शस्य-श्यामला बनाने में वर्षा ही सक्षम है और वर्षा देता है इन्द्र, अत: इन्द्र-पूजा बन्द करनी हमारे हक में नहीं है ।

श्रीकृष्ण ने कहा- कौन कहता है कि वर्षा इन्द्र देता है? उन गोपोंने पूछा- तो आपके विचार से इन्द्र वर्षा नहीं देता?

कृष्ण ने स्पष्ट कहा- नहीं । गोपों ने पूछा - तब कौन देता है वर्षा? श्रीकृष्ण का नपा-तुला उत्तर था- प्रकृति ।

प्रकृति? यह कैसे? कई वृद्धों के लिए यह नई बात थी ।

इस सृष्टिमें हर प्राणी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार चलता हैं । इन्द्र से पूछो कि क्या वह किसीका स्वभाव बदल सकता है? क्या वह पृथ्वीको रसवत्, जलको गन्धवत्, अग्निको शीतवत् औरआकाशको स्पर्शवत् बना सकता है? नहीं बना सकता । सबको अपना-अपना शरीर कर्मके अनुसार ही प्राप्त होता है । कर्म ही गुरु है, कर्मकी ही पूजा करनी चाहिए और एकका आश्रय लेनेके बाद दूसरेका आश्रय नहीं लेना चाहिए । ऐसा करना व्यभिचार है । ब्राह्मणको वेदके द्वारा, राजाको पृथ्वी पालनके द्वारा, वैश्यको व्यापारके द्वारा और शूद्रको ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यकी सेवाके द्वारा अपना जीवन

व्यतीत करना चाहिए। वैश्यके लिए कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद माने व्याज लेना ये चार प्रकारकी वृत्तियाँ हैं। हम लोग तो केवल गायसे अपनी जीविका चलाते हैं। बादल अपने गुणके अनुसार वर्षा करते हैं और उसीसे प्रजाका काम चलता है। हमारा न कोई जनपद है, न कोई ग्राम है, न कोई घर है, हम वनमें विचरण करते हैं- वन-शैल निवासी हैं। इसलिए यदि पूजा करनी ही है तो आओ इस वन-शैलकी पूजा करें। हमारे पूजाके योग्य तो गाय, ब्राह्मण, पर्वत ही हैं। इसलिए हम लोग इन्हींके यजनकी तैयारी करें।

पूर जनपद कुछ हमरे नाहीं। वास करें वन शैलन माहीं।। ताते गो द्विज सेवा करिये। गिरिपति की पूजा विस्तरिये।।

हम लोग न तो किवाड़ तथा भित्ति के अन्दर रहनेवाले हैं और न निश्चित गृह अथवा खेत वाले किसान ही हैं, बल्कि वन-पर्वतादि में स्वच्छन्द विचरनेवाले हम लोग चक्रचारी मुनियों की भाँति समस्त जन-समुदाय में सुखी हैं। अत: गृहस्थ किसानों की भाँति हमें इन्द्र की पूजा करने का कोई काम नहीं है।

सब कृष्णका मुख देखने लगे- कृष्ण बोला। हम लोग नगरमें रहते नहीं। गाँवमें भी कहाँ रहते हैं। हमारा तो व्रज है। वनपर्वतका वास है। न व्यापार है, न खेती। न धन गोधन है। गिरिराज सन्तुष्ट रहेंगे तो गायोंको तृण मिलता रहेगा। वे स्वस्थ रहेंगी। अत: मेरी सम्मति तो गिरिराजके पूजनकी है। आप सबको अच्छा लगे तो यह करो। सब देवता और सब तीर्थ गौमें रहते हैं। गौओंको बढ़ानेवाले होनेसे गिरिराजका नाम गोवर्धन है। इनसे बड़ा देवता कौन होगा? महर्षि प्रतिवर्षके प्रारम्भमें पञ्चांग सुनाते हैं, तब उसमें मेघ, गज, समुद्रका नाम बतलाते हैं। शस्येश-मेघेश तो ग्रह गिनाते हैं। उनमें इन्द्रका तो कहीं नाम भी नहीं होता। सुना है कि ब्रह्माके एक दिनमें चौदह इन्द्र मर जाते हैं और श्रीहरिके एक निमेष में ब्रह्मा मरते-जीते हैं। बाबा, श्रीहरि तो शालिग्राम हैं न? ये गिरिराज शालिग्राम-स्वरूप हैं। इनको छोड़कर किसी औरकी शरण लेना अच्छा नहीं।

पिताजी, हमारा न कोई जनपद है, न कोई ग्राम है, न कोई घर है। हम वन में निवास करते हैं। पर्वतों पर रहते हैं। वन और पहाड़ ही हमारे घर हैं। इसलिये हमलोग गायों, ब्राह्मणों और गिरिराज गोवर्धन पर्वत के यजन की तैयारी करें।

इन्द्र के मनाने से कछु नहीं होता क्योंकि वह भुक्ति मुक्ति का दाता नहीं और उससे ऋद्धि सिद्धि किसने पाई है? यह तुम ही कहो उसने किसे वर दिया है। तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाकर इन्द्रासन दे रक्खा है इससे कोई परमेश्वर नहीं हो सकता, जब इन्द्र असुरों से बार-बार हारता है तब भाग के कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है, ऐसे कायर को क्या मानों, धर्म किसलिये नहीं पहिचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता। जो कर्म में लिखा है सोई होता है, सुख-सम्पत्ति द्वारा भाई-बन्धु भी सब अपने धर्म कर्म में मिलते हैं ब्रह्मा ने जो चार वर्ण बनाये हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उनके पीछे भी एक-एक कर्म लगा दिया है कि ब्राह्मण तो वेद विद्या पढ़ें, क्षत्रिय सबकी रक्षा करें, वैश्य खेती और शूद्र इन तीनों की सेवा में रहें। हे पिता, हम वैश्य हैं, गायें बढ़ी इनसे गोकुल हुआ तिसी से नाम गोप पड़ गया हमारा यह कर्म है कि खेती वणिज करें और गौ ब्राह्मण की सेवा में रहें, वेद की आज्ञा है कि अपनी कुल रीति न छोड़िये जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं सो ऐसे हैं जैसे कुलवधू हो किंतु परपुरुष से प्रीति करै, इससे अब इन्द्र की पूजा छोड़ दीजै और वन पर्वत की पूजा कीजै क्योंकि हम बनवासी हैं और हमारे राजा वे ही हैं जिनके राज्य में सुख से रहवें तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं।

हमें कहा सुरपति सों काजू, पूजें वन सरिता गिरिराजू।।
भलौ मतौ कान्हा दियौ, तजिये सिगरे देव। गोवर्द्धन पर्वत बड़ौ, ताकी कीजै सेव।।
जीव कर्मवश होहि कर्मवश ही मरि जावै। करै शुभाशुभ कर्म दु:ख सुख तैसो पावै।।
बँधे कर्ममहँ जीव इन्द्र का करे विचारो। तैसो तब तनु मिले कर्म जस होहिँ हमारो।।

कोउ न सुख दुख दै सके, सबतें कर्म विशिष्ट है। जाकी तातें जीविका, चले तासु सो इष्ट है।।

शुकदेव बोले- राजन्, श्रीनन्दजी से भगवान कह रहे हैं- पिताजी। यह जीव अपने कर्म के अनुसार ही उत्तम और अधम शरीरों को ग्रहण करता है और छोड़ता है। वह कर्मों के अनुसार ही शत्रु, मित्र और उदासीन का व्यवहार करता है। इसीलिये कर्म ही सबका गुरु है वही ईश्वर है। इसलिये मनुष्यों को कर्म की ही पूजा करनी चाहिये और पूर्व संस्कारों के अनुसार अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते रहना चाहिये। जिसकी जिसके द्वारा सुगमता से आजीविका चलती है वही उसका इष्टदेव है।

प्राणी अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है जीव अपने उत्तम और मध्यम कर्मों के अनुसार ही शरीर प्राप्त करता है तथा छोड़ता है और कर्मोंके अनुसार ही किसी को मित्र तथा किसी को शत्रु बनाता है। इसलिए हे पिताजी, मनुष्य को अपने उत्तम कर्म ही करने चाहिये। हमारा कर्म गौ रक्षा करना है। उसके लिये हमें गिरिराज से घास मिलती है। वही हमारा घर है। उसकी गुफायें हमारा बैठने का स्थान है। इसलिए हमें गौ, ब्राह्मण और गिरिराज की पूजा करनी चाहिये।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान नन्दजी से कह रहे हैं- देखो पिताजी। हम लोग बनवासी हैं, इसलिये सब लोगों को मिलकर गौओं की, ब्राह्मणों की और गोवर्धन पर्वत की पूजा करनी चाहिये। जो सामग्री आपने इन्द्रयाग के लिये एकत्रित की है इसी से यह गोवर्धन-पूजन यज्ञ हो।

आप कहते है कि फलदाता कोई और ही है, तो बतलाइये कि फलदाता कर्म-कर्ता को फल देता है अथवा कर्म के अकर्ता को? स्पष्ट है, कर्म के कर्ता को ही फल मिलता है। ऐसी दशा में कर्म करनेवालों को इन्द्र से क्या लेना देना? जब वे कर्म के फल को बदल नहीं सकते- तब उनसे क्या प्रयोजन? मनुष्य अपने स्वभाव (पूर्वसंस्कारों) के अधीन है। वह उसी का अनुसरण करता है। सारा जगत् स्वभाव में ही स्थित है। कर्म से ही ऊँची-नीची योनियाँ मिलती हैं। कर्म से ही शत्रु मित्र बनते बिगड़ते हैं। कर्म ही गुरु है, कर्म ही ईश्वर है अत: मनुष्य को कर्म का ही आदर करना चाहिये, जिसके द्वारा मनुष्य की जीविका सुगमता से चलती है, वही उसका इष्टदेव है।

कर्मणा जायते जन्तु: कर्मणैव विलीयते। सुखं-दु:खं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते।।

अस्ति चेदीश्वर: कश्चित् फलरुप्यन्य कर्मणाम्। कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तु: प्रभुर्हि स:।।

अर्थात्- प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही जन्म लेता है और कर्म से ही मर जाता है? उसे उसके कर्मानुसार ही सुख-दु:ख, भय और मंगल आदि निमित्तों की प्राप्ति होती है। यदि कर्मों को ही सबकुछ मानकर उनसे भिन्न, जीवों के कर्म का फल देनेवाला ईश्वर माना भी जाय तो वह, कर्म करनेवालों को ही उनके कर्म के अनुसार फल दे सकता है। कर्म न करनेवालों पर उसकी प्रभुता नहीं चल सकती। अत: जब सबही प्राणी अपने-अपने कर्मों से ही उत्तम, मध्यम और अधम शरीरों को ग्रहण करता है और छोड़ता है। अत: कर्म ही गुरु और कर्म ही ईश्वर है और पिताजी। हम तो सदा के बनवासी हैं तथा बन और पहाड़ ही हमारे घर हैं। इन्हीं से हमारा और हमारे पशुधन गौओं का पालन भी होता है तो क्यों न हम विप्र देवों के द्वारा गिरिराजजी का पूजन करें। इन्द्रयज्ञ के लिये जो सामिग्रियाँ इकट्ठी की गयीं हैं, उन्हीं से इस यज्ञ का अनुष्ठान करने की तैयारी करें। मेरी तो पिताजी, ऐसी ही सम्मति है और आगे आप लोगों की इच्छा हो जैसा करें।

सुर नर असुर सभी समुदाय काल का रुख पाकर ही घटते बढ़ते हैं। ऋषि मुनि वेद पुराण सभी यही वर्णन करते हैं कि काल ही सबसे अमित बलवान है।

जब तक जीवों में कर्म फल की आशा रहती है तब तक उसके भोगों का नाश नहीं होता है। सकामी होने के कारण ही जीव इस भव में भ्रमण कर रहा है जब तक जीव निष्कामी नहीं होता है तब तक मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। हमेशा ईश्वर को

समर्पित करते हुए कर्म करना चाहिए तथा उसी ईश्वर को मैं मेरा अर्पण करके हमेशा भजन करना चाहिए। प्रभु भजन के बिना निष्फल रुचिर निर्वाण गति दूसरे किसी उपाय से नहीं मिल सकती।

भजइ सदा परमेश्वरहिं सब लय तासु प्रसार। होत करम भव पास ते तबहिं जीव निस्तार।।

समस्त लयों में उसी का प्रसार समझते हुए सदा उसी परमेश्वर को भजना चाहिए तभी जीव का इस भव कर्म पास से निस्तार होता है।

निज कर्मन कर जन जनि पावत। कर्मन से मृत्यु जग आवत।। दुख सुख भय अदृष्ट से होई। और देव जग में नहिं कोई।।
यदी देवता हैं जग कोऊ। कर्मन का फल देवे सोऊ। बिन अदृष्ट कुछ सो नहिं देवे। तो कत वृथा तास को सेवे।।
कर्म विवश वर्तत जन जोई। वासव कर तांको क्या कोई। निज अदृष्ट दुख आवत जोऊ। तिसे दूर करत सकत न सोऊ।।
विप्र वैदतें करे जीविका क्षत्रिय महितें। वैश्य बनिज कृषि धेनु व्याजके मिले धनहिंतें।।
करिके सेवा शूद्र द्विजनिकी वृत्ति चलावें। जो स्वधर्ममहँ रहें अन्तमहँ सद्गति पावें।।
देहिँ घास, जल, मूल, फल, गोप इष्ट गिरिराज हैं। पूजो गिरिवर धेनु द्विज, पूरन सबही काज हैं।।

कृष्णने सन्नन्द ताऊके समीप जाकर कहा- ताऊ, ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं तो वे मन्त्र-यज्ञ करते हैं, क्षत्रिय रण-यज्ञ करते हैं, किसान हल पूजन करते हैं, हम गोप हैं; अत: गिरि-यज्ञ करेंगे। महर्षि शाण्डिल्य वहीं बैठे थे बीच में बोल उठे- श्रीव्रजराजकुमारकी बात बड़ी है। वही करनेमें सबका कल्याण हैं। मैं श्रीकृष्णके साथ हूँ।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान कृष्ण ने नन्द आदि बड़े-बूढ़े लोगों की बातें सुनी और फिर इन्द्र को क्रुद्ध करने के लिये अपने पिता नन्दबाबा से बोले- प्राणी अपने कर्म के अनुसार ही पैदा होता और कर्म से ही मर जाता है। कर्म के अनुसार ही उसे सुख-दु:ख की प्राप्ति होती है। व्यक्ति के मंगल या अमंगल में कर्म ही कारण है। यह कैसी परम्परा है? सबको अपने-अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। कर्मसे ही सब-कुछ मिलता है। प्रकृति अपने-आप सारा काम करती है। प्रकृति ही उपादान है और कर्म निमित्त उसीसे सारे भोग मिलते हैं। फिर इसमें इन्द्र देवताकी क्या आवश्यकता है। उसको तो हमारे कर्मका सेवक होना पड़ेगा।

पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुसार मिलनेवाले भोगों को वह बदल नहीं सकता और न उसमें कुछ अधिक लिख ही सकता है और न उसे टाल ही सकता है तब उस इन्द्र को हम ईश्वर क्यों मानें?

प्रकृति वर्षा देती हैं। बादलों को आकृष्ट करते हैं पर्वत, पेड़ और पौधे। वर्षा इन्हीं से होती है और हम हैं कि पेड़-पौधों को निष्करुण होकर काटते हैं, पर्वतों के पत्थर निकाल-निकाल अपने महल और राजमार्ग बनाते हैं। अब अपने गिरिराज (गोवर्द्धन) को ही ले लीजिए। कोसों में विस्तृत यह पर्वत वर्षा का प्रमुख कारण है। और हम क्या करते हैं? गिरिराज को अपने और अपने पशुओं के पैरों तले रौंदते-रौंदते नित्य वामन (बौना) किए जा रहे हैं। इसकी चट्टानों को तोड़ ली जाती हैं। पूजा ही करनी है तो हमें गिरिराज की करनी चाहिए। तब इसके प्रति स्वत: श्रद्धा बढ़ेगी। लोग इसकी सुरक्षा पर ध्यान देंगे न कि इसके विनाश पर। मैं कहता हूं, लाख इन्द्रों के होने के बाद भी अगर गिरिराज नहीं रहे तो पूरा व्रज मरुभूमि बन जाय। पता है न आपको कि गिरिराज से कुछ ही दूर पश्चिम से एक विशाल रेत-भरा कान्तार (मरुभूमि) आरम्भ होता है जो दूर तक चला गया है और जहाँ अन्न-तो-अन्न घास का एक पत्ता तक भी नहीं उगता?

प्राय: एकादश वर्षीय किशोर कृष्ण के इस ज्ञान से सभी प्रत्यक्षत: प्रभावित हुए- पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी दोनों के लोग।

श्रीकृष्णने फिर कहा कि बाबा, स्वर्गका इन्द्र स्वर्गमें रहता है। उसको हमलोगोंने कभी देखा नहीं है। हमारे पास न तो राज्य है और न कोई नगर है। हमारे तो गाँव भी नहीं हैं। हम तो बनवासी है और इस गिरिराजकी तलहटीमें रहते हैं।

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्। नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः।।

हमारी बात सुनो ब्रजराज। सुरपति को बलि भाग न दीजै पूजौ यह गिरिराज।।

बरषैं मेघ गाय सुख पहैं, ह्वै ह्वै ब्रज सुख साज। सूरदास प्रभु नन्द कुँवर कहैं वे ही कीजै काज।।

संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण सत्त्व, रज और तम हैं। रजोगुण के कारण ही विविध प्रकार की सृष्टि होती है, रजोगुण से ही प्रेरित होकर मेघ सर्वत्र जल की वर्षा किया करते हैं। प्रजा की उसी से भलाई होती है। ऐसी स्थिति में इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं। पूर्वजन्म के संस्कार को इन्द्र कभी नहीं पलट सकता। हम लोगों की गौ रक्षा ही मुख्य जीविका है। इसी कारण हमारा नाम गोप तथा हमारे स्थान का नाम गोकुल है।

यह आवश्यक नहीं कि धर्म परम्परागत ही हो और परम्परा धर्मगत ही हो। परम्परा की तुलना में विवेक को महत्त्व देकर निर्णय करना चाहिए। अपने जाति-धर्म के अनुसार धर्मों का आदर करते हुए कर्म करना चाहिए। अपने वर्णाश्रम धर्म पर मर मिटना श्रेयस्कर है, दूसरे के धर्म को स्वीकार करना महापाप है। भावी को मिटानेवाले मात्र एक परमात्मा है जो तत्त्वत्र से परे हैं। वह पूरे विश्व के देव हैं। वही पूर्व में जगन्नाथ, दक्षिण में रामेश्वर, पश्चिम में द्वारिकानाथ और उत्तर में बद्रीनाथ इन चारों के मध्य गोवर्धनाथ के रूप में है। इन्हीं गोवर्धननाथ की पूजा करना श्रेयस्कर है।

हमको इन्द्रकी वजह से सुख नहीं है। इन्द्र वर्षा नहीं करवा रहा, वर्षा तो गोवर्धन करवा रहा है, जल भी गोवर्धन दे रहा है अगर यज्ञ करना है तो गोवर्धन का करो। यज्ञ में देनेवालोंको अहंकार नहीं आता और लेनेवाले को मन में न्यूनता नहीं अनुभव होती। यह ज्ञान यज्ञ है। यहां देनेवाला कोई एक आदमी नहीं, देनेवाले सब लोग हैं और प्रसादी सबको मिले।

ताते सोई कीजिए कृष्ण कही जो बात। सब ब्रजवासी पूजिए गोवर्धन उठि प्रात।।

इतर जीव जो मख में आवें। विप्र शेष सो भोजन पावें।।

गो गण को तृण आदि चरावो। तिनका विविध श्रृंगार करावो।।

चार पदारथ जग में जोऊ। गिरि गोवर्धन देवत सोऊ। तहाँ मेघ वर्षा वर्षावत। होत अन्न बहु नर सुख पावत।।

चार पदारथ जग में जोऊ। गिरि गोवर्धन देवत सोऊ।। जहाँ अद्रिपति तात न होई। तहाँ करे गोबर का सोई।।

यह निज मत मै। भाखा ताता। करिये तो यदि तुमें सुहाता।।

गो ब्राह्मण गिरि का मख जोऊ। तामस और पुण्य नहिं कोऊ।।

इन्द्र-यज्ञ के लिये जो सामग्रियाँ एकत्रित की गई हैं, उन्हीं से इस यज्ञ का अनुष्ठान होने दें। अनेकों प्रकार के खीर, पूड़ी, पकवान तैयार कर व्रज का सारा दूध एकत्रित किया जाय। वेदवादी ब्राह्मणों से खूब हवन करवाया जाय। उन्हें अन्न, गाय और द्रव्य की दक्षिणा दी जाय। चाण्डाल, पतित और कुत्तों तक को यथायोग्य वस्तुएँ प्रदान कर गिरिराज गोवर्धन की पूजा की जाय, उन्हें भोग लगाया जाय। इसके बाद खूब खा-पीकर, सज-धज कर गिरिराज महाराज की परिक्रमा की जाय। ऐसा यज्ञ गौ, ब्राह्मण और गिरिज को तो प्रिय होगा ही; मुझे भी अतिशय प्रिय है। पिताजी, मेरा तो यही अभिमत है। इस पर आप लोग जैसा सोचें वैसा करें।

पृथ्वी पर गौ, ब्राह्मण और गोवर्धन-पर्वत ये तीन प्रत्यक्ष देव हैं। इन तीनों का ही पूजन हो। गिरिराज का तो भोग लगे। वेदपाठी ब्राह्मण आवें, विधि-विधानपूर्वक अग्निहोत्र करें। नानाप्रकार के द्रव्य, अन्न, वस्त्र तथा गौएँ दान दक्षिणा में पावें। गौओं को सजाया जाय, इन्हें हरी-हरी घास खिलायी जाय। मेरी बुद्धि में तो ऐसा ही उत्सव मनाना चाहिये।

व्यञ्जन सरस बनाइ शैलकूँ भोग लगाओ। भोजन द्विजनि कराइ प्रेमतें माल उड़ाओ।।

पावैं सब परसाद महोत्सव मधुर मनावें। गिरि परिकम्पा करें, गीत गोपी मिलि गावें।।

मेरी तो सम्मति जिही, जिह मख मम मतिमहँ खरो। सुनि सब बोले गोप तब, कृष्ण कहे सोई करो।।

एक वृद्ध गोप ने पूछा- तो इन्द्र की पूजा बन्द कर देनी चाहिए क्या? श्रीकृष्ण बोले- हाँ, और गिरिराज की पूजा आरम्भ करो। सबसे सम्मिलित स्वर में इसका अनुमोदन किया।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, कन्हैया का यह प्रस्ताव सुनकर नन्द आदि सभी गोपों ने बहुत अच्छा, बहुत बढ़ियाँ कह कर हृदय से उसका समर्थन किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार यज्ञ करने को कहा था, वैसा ही यज्ञ उन लोगों ने प्रारम्भ किया। पहले ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवा कर उसी सामग्री से गिरिराज और ब्राह्मणों को सादर भेंट अर्पित की। गायों को हरी-हरी घास खिलाई। इसके बाद नन्द बाबा आदि गोपों ने गायों को आगे-आगे करके गिरिराज की प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा की बेला में गोप-गोपी छकड़ों पर सवार होकर श्रीकृष्ण के बलवीर्य का कीर्तन करते हुए चल रहे थे।

पूरी छुन छुन छने कचौरी खस्ता सुन्दर। रबड़ी लच्छेदार खीर केशरिया सुखकर।।

हलुआ मोहनथार जलेबी पेरा मठरी। टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी।।

व्यञ्जन सब सुन्दर बनें, दाल, भात, रोटी कढ़ी। साग रायते विविध विधि, उड़द मूँग आलू बड़ी।।

खुरचन है, खीरमोहन, खीरसा और खुरमी, खीर, खजला, जलेबी, कलाकंद, बालूशाही है।

मोहनथार, मेवाबाटी, मठरी, मैसूर पाक, पेड़ा, रसगुल्ला संग रबड़ी सुहाई है।

भुजिया, नमकीन, सेव, गाठिया, सकलपारे, और भुजिया, समौसा, पापड़, पकौड़ी बनाई है।

मधुप-श्याम नंदबाबा यशोदा सब सामग्री, लेकर के गिरिराज आज भोग में सजायी है।

छप्पन भोग बने- छैना के रसगुल्ले बने, छैना को राजभोग बन्यों, गुलाब जामुन बने, चमचम बनी, पकौड़ी बनीं, खुरचन बनीं, कुलिया बनीं, खोवा के लड्डू बनें, पेड़े बने, खोआ की चक्की बनीं और कलाकंद। खीर मोहनथाल बनें, बेसन के लड्डू बनें, जलेबी बनीं, मगद के लड्डू बनें, इमरती बनी, पूड़ी बनीं, पकौड़ी, कचौड़ी बनी, दही बड़ा बने, कांजी बड़ा बने, चावल की खीर बनी, साबूदाने की खीर, ताल मखाने की खीर बनीं, बन्ने के रस की खीर बनीं। चावल बने, मीठे चावल, नमकीन चावल, मेवा के चावल बनें, दही भात बना, कढ़ी भात बना, सब प्रकार की दाल और सब्जी बनीं। बेझड़ की रोटी बनीं, मिस्सी रोटी बनी, दाल-बाटी चूरमा भी बने, फुल्का भी बने, बाजरा की रोटी भी बनी, दलिया भी बना और अधौटा दूध।

शाण्डिल्य मुनि आगे-आगे चल रहे हैं।

सुन्दर सजी हुई पालकी पर बैठी वृषभानुनंदिनी अपनी ललिता, विशाखा आदि सखियों सहित पूजन करने चल दीं और भी हजारों गोपी-गोप हाथ में नाना प्रकार की भेंट लिए नाच-गान करने चल दीं और जब भगवान शंकर ने यह समाचार सुना तो वे भी भाँग-धतूरा और विषपान के नशे में मस्त हो झूमते हुए पार्वतीजी के साथ नन्दीश्वर पर सवार हो सैकड़ों गणों के साथ गिरिराज का दर्शन करने चल दिये।

बहुत से ऋषि-मुनि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्ध-योगेश्वर और ब्राह्मण-मण्डली भी वहाँ पहुँच गयी। सुमेरू हिमालय आदि बड़े-बड़ पर्वत भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हो गये। बड़ा विशाल समारोह वहाँ जुट गया। नन्दजी ने वैदिक ब्राह्मणों के द्वारा गोवर्धन का पूजन आरम्भ किया।

मैं तो गोवर्धन कूँ जाऊँ मेरी बीर। नांय मानैं मरौ मनवा।। सात कोस की दे परिक्रमा।

मैं तो मानसी गंगा न्हाऊँ मेरी वीर। नाय माने मेरो मनुआँ। छटा तेरी तीन लोक से न्यारी है, गोवर्धन महाराज।

माखनप्रभु अति चाव सो भूषण वस्त्र मँगाय। गिरिगोवर्धन ले चले गोधन सबै बनाय।।
नन्द महर उपनन्द सब श्याम राम दोउभाय। पहुँचे गोवर्धन निकटनिरखिशिखर सुखपाय।।
कहेउ कृष्णतबनन्दसों भोजन लेव मँगाय। गिरि आगे सब राखिकै अपौंविनय सुनाय।।
जिम भाखा भगवान ने, तैसा ही तिन कीन। गोवर्धन पूजन लगे, गिरि को हरितनु चीन।।

कन्हैया ने सबको कहा गिरिराज को स्नान कराओ, अपनी-अपनी आँखें बन्द करो। कृष्ण ने मन से गंगा प्रकट कर दी। इसलिये उसका नाम है मानसीगंगा है। मानसी गंगा की जय।

एक गोप ने कान्हा से पूछा, यह तो पहाड़ है, पत्थर है यह क्या खाएगा? लाला बोले- यदि पहाड़ और पत्थर के रूप में देखोगे तो वह नहीं खाएगा। परमात्मा यहां विराजमान हैं, इसी भाव से यदि तुम देखोगे तो परमात्मा खायेगा।

इधर सबको विश्वास दिलाने के लिये स्वयं श्रीकृष्ण ही गिरिराज के ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये और बोले कि- मैं गिरिराज हूँ। इस प्रकार कह कर वे पूजा में भेंट की गई सारी सामग्री खाने लगे। गोप-बालक यह देखकर चिल्लाने लगे- देखो-देखो, गिरिराज सारा-का-सारा पकवान खाते जा रहे हैं। हम लोगों को प्रसाद के लिये कुछ नहीं छोड़ेंगे। इस पर श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया, गिरिराज अवश्य ही हम लोगों को प्रसाद के लिये कुछ-न-कुछ छोड़ेंगे ही। इस पर गिरिराज ने सबमें वितरण के लिये प्रसाद छोड़ दिया।

मैं हूँ गिरि गोवर्धन भाई। तुमरे हेत देह प्रकटाई। भया प्रसन्न प्रेम लख थारा। मांगो वर जो तुम मन धारा।।
जो तुमने मम भोग लगाया। सो मैंने अति रुचि सों खाया।। करत प्रसन्न मोहि जन जोई। तांको दुर्लभ नहिं कुछ होई।।

भगवान शिव ने अपने झोले में से भाँग पड़े लड्डू, बर्फी, मोहनभोग एवं नाना प्रकार के पकवान निकालकर स्वयं भगवान को अपने हाथ से खिलाये। उनके खाते ही गिरिराज को नशा चढ़ गया उसी नशा में जो गोप जहाँ-जहाँ थाल लिए खड़े थे उन्हीं थालों से नाना प्रकार के व्यंजन लेकर बड़े प्रेम से जीमने लगे और सबके लिए प्रसादी छोड़ते गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने उस स्वरूप को दूसरे व्रजवासियों के साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहा- देखो, हमारा लगाया भोग खाया है। ये इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी गिरिराज महाराज का निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर देते हैं। आओ, अपने और गायों के कल्याण के लिये हम इन्हें प्रणाम करें।

उस समय अनन्त भगवान श्रीकृष्ण ने गिरिराजजी का मान बढ़ाने और उन गोपों को विश्राम दिलाने के लिये एक विशाल रूप गिरिराज के ऊपर धारण कर रक्खा था और उसी रूप से भोजन सामग्री अरोगने लगे थे। तथा दूसरे अपने बालरूप से उन्हीं गोपों के साथ पूजा और प्रणाम करके बोले- देखो, कैसा आश्चर्य है कि गिरिराज ने साक्षात् प्रकट होकर हम लोगों पर कृपा की है। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से नीराजन-पुष्पाञ्जलि पूर्वक श्रीगिरिराजजी की पूजा कर, ब्राह्मणों को वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित गाय एवं दक्षिणा और भोजन आदि कराकर सन्तुष्ट किया।

त्यागि इन्द्र मख गोप करें पूजा गिरिवरकी। भई विप्र, गिरि धेनु, यज्ञमहँ सम्मति सबकी।।
लागे छप्पन भोग श्याम गोबरधन बनिकें। करि करि लम्बे हाथ उड़ाये व्यञ्जन तनिकें।।
खिचरी, पूरी, मिठाई, सटकें सट सट साग सब। देखि देव प्रत्यक्ष गिरि, भयो सबनि विश्वास अब।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपों को विश्वास दिलाने के निमित्त नन्दनन्दन भगवान कृष्ण ने एक अत्यन्त डील डौलवाला बृहद्काय दूसरा स्वरूप धारण किया और यह कहते हुए कि मैं ही गिरिराज गोवर्धन पर्वत हूँ, उन्होंने सब भेंट पूजायें ग्रहण कीं।

कुछ गोप बोले- इन्द्र की पूजा करते-करते वर्षों बीत गये, लेकिन हमें उसने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया। आज हम कितने

भाग्यवान हैं कृपा को सागर है गिरिराज। जो प्रगट होकर दर्शन दे रहे हैं।

देखनको धाये सभी ब्रज के नर अरु बाम। भयो देवता गिरि बड़ो ताहि पुजावतश्याम।।
बड़े महर उपनन्द नन्द आदि ठाढ़े सबै। कहत जो कछु नँदनन्द करत सकल सोई तहाँ।।
इतहि नन्दको करगहेगोपिन सों बतलात। उन अपनो धरि चारभुज रुचिसों भोजनखात।।
श्रीराधा सुखपाय मुदितविलोकतिश्यामछवि। भक्तन के सुखदायनितनवकरत विनोदव्रज।।
प्रीतिरीतिके भावसों भोजनसबको खाय। होइ प्रसन्न अति नन्दसोंतबबोल्यो गिरिराय।।
लेवननन्दवरदान अब जो तुम हमसों चहौ। मैं लीन्होंसुखमान बहुतकरीतुम भक्तिमम।।
नन्दगोपअरु नन्दसुत श्रीवृषभानु समेत। बार-बार गिरिराजके चरणपरत अतिहेत।।
करिसबकोसम्मान दे प्रसाद निजहाथ सों। सबन कही घरजानहोइप्रसन्नगिरिराज तब।।
प्रकट देत हैं दरशगिरिसबके आगे खात। परम हर्ष नरनारि सब सबके मुख यह बात।।
महिमा अमित अपार श्रीगोवर्धनअचलकी जेहिपूजतकरतारशारदविधिनहिं कहिसकें।।
माखन प्रभु हरि देव हैं सब देवन को मूल। मूलहि सींचे होत हैं हरेपात फल फूल।।

हे राजन्, उस दिन ब्रजवासी रात को उसी जगह रहकर बड़े आनंद से रात भर गाते बजाते रहे। दूसरे दिन उसी तरह आनन्द मनाते हुए गायों व बछड़ों समेत अपने घर आये। उसी दिन से अन्नकूट की पूजा संसार में प्रकट हुई।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से नन्द बाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपों ने गिरिराज, गायों और ब्राह्मणों का विधिपूर्वक पूजन किया फिर सब श्रीकृष्ण के साथ व्रज में लौट आये।

कृष्ण सहित नर नारि सब करि गिरिराजु प्रनाम। सानुकूल सानन्द उर लउटे निज निज धाम।।

गर्गाचार्य ऋषि ने बताया- सभी तीर्थों, ग्रहों, अथवा पवित्र नदियों का अधिष्ठाता देवता या अधिष्ठातृ देवी होती है। यह अधिष्ठाता देवता या देवी का शरीर मानव-सदृश ही होता है। उनके अनुसार सविता (सूर्य) जो अग्निपिंड-सा आसमान में तपता है वह अपने अधिष्ठाता देव से सर्वथा भिन्न है। उसका अधिष्ठाता देवता तो एक प्रकाशमान देवपुरुष है। उसी तरह गंगा केवल एक पानी के प्रवहमान स्रोत का नाम नहीं है। गंगा नदी की अधिष्ठातृ, सरस्वती की तरह सौम्य एवं धवल श्वेतवस्त्रा देवी हैं। जिनका दर्शन उन्हीं को हो सकता है जो गंगा की उपासना-आराधना से उन्हें प्रसन्न करते हैं। यह अधिष्ठाता देवता अथवा देवी नित्य के पूजा-पाठ और मन्त्रोच्चारण के फलस्वरूप स्वयमेव निर्मित होते या होती हैं। सूर्य की उपासना सृष्टि के आरम्भ अथवा मानव-सभ्यता के विकास-काल से ही हो रही है, अत: उसके अधिष्ठाता देवता का निर्माण हो गया। गंगा की पूजा सहस्त्रों वर्षों से हो रही है, इसीलिए उसकी एक अधिष्ठातृ देवी हो गई।

गोवर्द्धन की पूजा चूँकि अभी आरम्भ ही हुई है, अत: इसके अधिष्ठाता देवता के निर्मित होने का अभी प्रश्न ही नहीं है। ऋषि गर्ग ने समझाया कि मन्त्रों में वह शक्ति है कि वे देवताओं का निर्माण कर देते हैं। इसलिए वैदिक अथवा पौराणिक देवता मूलत: हों या नहीं, पर उनकी पूजा-अर्चना और उनके नाम के मन्त्रों ने उनका निर्माण कर दिया है, अब वे पूरी तरह हैं।

तो जब गिरिराज का अभी कोई अधिष्ठाता देवता ही नहीं तो हमारे द्वारा प्रदत्त सुस्वादु पक्वानों को ग्रहण कौन करेगा? व्रजवासियों ने सहज प्रश्न किया।

गोपाल श्रीकृष्ण को ही गिरिराज का अधिष्ठाता देवता मान लिया जाय और सारे पक्वान्न, नैवेद्य आदि उन्हें अर्पित कर दिए जाएँ। अपने पराक्रम से श्रीकृष्ण ने अपने देवत्व को स्थापित कर दिया है और व्रज और व्रज के बाहर अधिकांश लोग

उन्हें ईश्वर का अवतार मानने लगे हैं।

धूमधाम से गिरिराज का पूजन हुआ। उनकी परिक्रमा हुई। साथ ही राधा-कृष्ण का पूजन भी हुआ गिरिराज के अधिष्ठाता देवता और देवी के रूप में।

पूजाके ई समय मानसी प्रकटीं गङ्गा। सुन्दर निर्मल नीर निकट गिरि तरल तरङ्गा।।
गोवर्धनकूँ पूजि द्विजनि परसाद पवायो। परिकम्मा पुनि करी हर्ष हियमहँ अति छायो।।
पायो प्रेम प्रसाद पुनि, पय पी सब ब्रजमहँ गये। गिरिवर पूजातें सकल, प्रमुदित ब्रजवासी भये।।

कहते हैं तभी से आरम्भ हुई राधा-कृष्ण की पूजा, जो आज भी जारी है। श्रीकृष्ण के जीवन में और नारियाँ आईं- महिषियाँ भी, पट्टमहिषी भी, पर कृष्ण के पार्श्व में राधा जो एक बार विराजी सो आज तक विराजती जा रही है।

गोवर्धन की पूजा की बात देवर्षि नारद को विदित हुई। वे हरिगुण गाते वीणा बजाते इन्द्र के पास आये।

नारद इन्द्र से बोले- इन्द्र, क्या बात है आज तुम्हारे रसोई घर से धुआँ नहीं निकल रहा। इन्द्र बोला- निकलेगा भी नहीं आज हमारा ब्रज में निमंत्रण है। प्रतिवर्ष ब्रजमण्डल के अन्दर हमारा निमंत्रण होता है। दीवाली के अगले दिन गोवर्धनवाले दिन। उस रात सब ब्रजवासी मेरी पूजा करते है, परिक्रमा करते है। नारद बोले- इन्द्र आज तो तुम्हारा व्रत होगा। ब्रजवासियोंने अपना इष्टदेव बदल दिया है। तुम्हारी पूजा छोड़कर गिरिराज की पूजा में लग गये हैं। सारे ब्रज के लोग तुम्हे छप्पन भोग लगाते थे वह तो गिरिराज के पास पहुँच गये।

देवर्षि बोले- देवराज मैंने सुना है कि नंद के छोरे ने आपकी पूजा बन्द करा दी है। आपका तो पत्ता साफ हो गया। इतनी पुरानी हजारों वर्षों से चली आ रही आपकी पूजा। उस छोटे से सात वर्ष के नंद के छोरे ने तुम्हारी पूजा बंद करवा दी और स्वयं भगवान बनकर अपनी पूजा करवा रहा है।

सुरपति की पूजा तजी, करि पर्वत की सेव। तबहिं इन्द्र मन कोपि के, सबै बुलाये देव।।

नारदजी भी आय पहुँचे तो इन्द्र से कहने लगे कि सुनो महाराज, तुम्हें सब कोई मानते हैं पर एक ब्रजवासी नहीं मानते क्योंकि नन्द के एक बेटा हुआ है उसका कहा सब करते हैं उन्होंने तुम्हारी पूजा मेटकर सबसे पर्वत पूजवाया। इतनी बात के सुनते ही इन्द्र क्रोध कर बोला कि ब्रजवासियों का धन बढ़ा है इसी से उन्हें गर्व हुआ है।

निज पूजा का भंग सुन, इन्द्र कर कोप। प्रलय जलद को कहत भा, करन चहत व्रज लोप।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इन्द्र को जब पता लगा कि मेरी पूजा बन्द कर दी गई है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपों पर बहुत क्रोधित हुए किन्तु उनके क्रोध करने से होता क्या है? उन गोपों के रक्षक तो साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण थे। इन्द्र अपने आपको भगवान समझते थे अत: क्रुद्ध होकर उन्होंने प्रलयकारी मेघों के संवर्तक नामक गणों को व्रज में प्रलय मचाने का आदेश दिया और कहा- इन जंगली गोपों को धन का मद हो गया है। इन लोगों ने एक साधारण मानव-बालक श्रीकृष्ण के कहने पर मेरी पूजा बन्द कर मेरा महान् अपमान किया है। कृष्ण बकवादी, नासमझ, अभिमानी और मूर्ख होने पर भी अपने आपको महान् ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्यु का ग्रास है, मरणधर्मा है फिर भी उसी के बल पर इन अहीरों ने मेरी महान् अवहेलना की है। ये धन के नशे में चूर हैं तथा कृष्ण इन्हें बढ़ावा दे रहा है।

ब्रज बासिनि मौको बिसरायौ। भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिं चढ़ायौ।।
मोसौं गर्व कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ। तैंतिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ।।
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुंचायौ। सुनहू सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसे होत सहायौ।।

इन्द्र ने कहा कि ब्रजवासियों ने मुझे भुला दिया। अच्छा किया, मेरी बलि इन्होंने सब-की-सब पर्वत को चढ़ा दी। इन छोटे प्राणियों ने मुझसे अभिमान किया है। पता नहीं इनके मन में क्या आ गया। मैं तैंतीस करोड़ देवताओं का स्वामी हूँ। इन्होंने जान-बूझकर मुझे भुलाया है। अब मैं इन ग्वालों को पृथ्वी पर नहीं रखूंगा। इन्होंने मेरी बलि (चढ़ावे) को मुझे नहीं पहुंचाया है। सूरदासजी कहते हैं कि अब मैं देखूंगा कि मेरे मारने पर पर्वत किस प्रकार इनकी रक्षा करता है।

इन्द्र ने कहा पहले तो मैं गोवर्धन को ही बहाऊंगा। व्रज की चोट से इसे चूर-चूर कर दूंगा और पृथ्वी में मिला दूंगा। इन लोगों ने मेरा बड़प्पन नहीं जाना। अब मैं प्रकट करके इन्हें दिखा दूंगा। जल-वृष्टि करके सारे ब्रज को डुबो दूंगा, सारे लोगों को बहा दूंगा। ये लोग आराम से खा और खेल रहे थे, अब अच्छा कार्य किया है। साल में एक बार मेरी पूजा करते थे, वह भी इन्होंने मिटा दी। क्रोध करके इंद्र ने प्रलय के बादलों को बुला लिया। सूरदासजी कहते हैं कि इन्द्र ने बार-बार कहा कि तुम लोग ब्रज पर टूट पड़ो।

इंद्र की आज्ञा सुनकर प्रलय के बादल पूरी सेना के साथ आ गए। उनके साथ बड़ी शक्तिशाली आंधी, पानी, वज्र और अग्नि बरसाने वाले बादल आ गए। वे सब अपनी प्रकृति के साथ घहराते, हहराते, दरराते, तरराते, झहराते हुए इंद्र के संमुख नतमस्तक होकर खड़े हो गए। बोले कि हे देवराज, आपको ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा है कि आपने हम प्रलय करनेवालों को बुलाया। इंद्र ने कहा कि तुच्छ बुद्धि वाले ब्रज के लोग साल में एक बार मेरी पूजा करते थे, किंतु अभिमान में आकर उन्होंने मुझे भुला दिया और गोवर्धन पर्वत की पूजा की, इसलिए मैं आज्ञा देता हूं किं तुम सब ब्रज पर टूट पड़ो। इस पर बादलों ने कहा कि ये ब्रज के लोग क्या हैं, आपने इन पर क्या क्रोध किया। जिस पर्वत ने भोग लिया है, उसे इसका फल तुरंत मिलेगा। सूरदासजी कहते हैं कि उन्होंने कहा कि हे देवताओं के राजा इंद्र, ध्यान से सुनिए, जैसा उन्होंने बोया है, वैसा ही काटेंगे भी। आप क्या सोच रहे हैं, वे सब गोवर्धन पर्वत के साथ ही बह जाएंगे।

जप तप यज्ञ तज्यौ व्रत मेरौ, काल दरिद्र बुलायौ नेरौ। मानुष कृष्ण देव करि माने, ताकी बातें सांची जाने।।
वह बालक मूरख अज्ञानी, बहु वादी राखे अभिमानी, उनका अवहिं गर्व परिहरौं, पशु खोई लक्ष्मीबिन करौं।।

तुम अभी अपना दल साथ ले जाओ और गोवर्धन पर्वत समेत ब्रज मंडल को बरसकर ऐसा बहाओ कि कहीं भी गिरि का चिन्ह और ब्रजवासियों का नाम न रहे।

ऐसे सुरपति क्रोध करि मन में गर्व बढ़ाय। प्रलय काल के मेघ सब लीन्हें तुरत बुलाय।।
और ठौर सब छाँड़ि कै व्रजमहँ बरसो जाय। व्रजवासी गोधन सहित जल से देव बहाय।।

सांवर्तक मेघों, तुम लोग जाकर इनके धन के घमंड को तथा पशुओं को विनष्ट कर दो। मैं भी ऐरावत पर सवार होकर मरुद्गणों के साथ नन्द व्रज को विनष्ट करने के लिए आ रहा हूँ। क्रोधमें आकर इन्द्रने प्रलयकालीन मेघोंको उन्मुक्त बन्धन करके आज्ञा दे दी- पूरे व्रजको बहा दो। गोपोंके समस्त पशुओंको नष्ट कर दो। मैं स्वयं ऐरावतपर आरूढ़ होकर आ रहा हूँ। एक मरणधर्मा बालक कृष्णके कहनेसे इन सबोंने मेरा अपमान किया है। मैं इन गोपोंको देख लूँगा।

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम्, इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यंचाहेशमान्युत।।

इन्द्र ने मेघ मालाओं को आदेश किया, ब्रजमण्डल पर जाकर इतनी जोर की वर्षा करो कि एक भी गाँव, एक भी घर सुरक्षित नहीं रहे।

इन्द्र बोले-एक तो ये यों ही धन के मद से चूर हो रहे थे; दूसरे श्रीकृष्ण ने इन्हें और फुला दिया है, बढ़ावा दे दिया है। अब तुम लोग जाकर इनके इस धन के घमण्ड और अभिमान को धूल में मिला दो तथा उनके पशुओं को नष्ट कर डालो।

इत सुरपति जब सुनी नन्द मम भाग न दीयो। समुझ्यो निज अपमान कोप गोपनिपै कीयो।।
सोचे सुरपति कृष्ण काह्निको छोरा छोटो। भानि गोप तिहि बात काज कीयो अति खोटो।।
अच्छा इनके गर्वकूँ, अबई खर्व कराउँगो। वर्षा विकठ कराइकें, व्रजकूँ आज डुबाउँगो।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब इन्द्र ने देखा कि इन व्रजवासी गोपों ने मेरी पूजा करनी छोड़ दी है जिनके श्रीकृष्ण ही एकमात्र नाथ है तो उन गोपों पर देवराज ने अत्यन्त कोप किया।

प्राणी अभिमान के कारण ईश्वर-परमेश्वर सब को भूल जाता है। जिन श्रीकृष्ण से अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना करने के लिये अन्य देवताओं के साथ इन्द्र भी क्षीरसागर के तट पर गये थे और गर्भस्तुति की बेला में मथुरा भी आये थे; उन्हीं को वे अब अपशब्द कह रहे हैं। उनकी पिछली लीलाओं के अवसरों पर तो इन्द्र फूलों की वर्षा करते रहे हैं, किन्तु स्वार्थ का अपघात होने पर वे आज उन्हीं श्रीकृष्ण को गाली बक रहे हैं।

इन्द्र को बड़ा अभिमान हो गया था, वह अपने को ही सबसे श्रेष्ठ ईश्वर समझता था। वह सोचता था, मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ, मेरे समान और कौन है। उसने सोचा- ये गोप मेरे प्रभाव को भूल गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गत वर्षों से मैंने समय पर यथेष्ट वर्षा की है। जिससे ब्रजजन हमें बहुत घास हो गयी। गोपों की गायें बढ़ गयी हैं, मोटी हो गयी हैं, अधिक दूध देने लगी हैं। अधिक आय होने से गोप धनी हो गये हैं। धन बढ़ने से मद बढ़ गया है। मुटाई छा गयी है। प्रभुता पाकर सभी को मद हो जाता है। इन गाँव के गँवार गोपों की मूर्खता तो देखो एक छोटे से बालक कृष्ण की बात मानकर मुझ इतने बड़े देवता का अपमान कर डाला। इसलिये मैं इन सबके मद को चूर करूँगा। इन्हें इनके किये का फल चखाऊँगा।

प्रलय कालीन प्रचण्ड सूर्य तपते हैं जिनके ताप से सब चराचर जीव नष्ट हो जाते हैं, फिर हाथी की सूँड़ की धारा के समान सांवर्तक नामक मेघ वर्षा करते हैं, जिससे सातों समुद्र एक हो जाते हैं। पृथ्वी जलमयी बन जाती है। सांवर्तक मेघ बीच में कभी नहीं खोले जाते, किन्तु आज तो इन्द्र क्रोध के कारण आपे से बाहर हो रहे थे। उन्होंने सांवर्तक मेघों को बुलाकर कहा- देखो, तुम लोग जाओ गिरिराज गोवर्धन पर्वत पर इतनी वर्षा करो कि उसे जल से डुबा दो। नन्द का जितना व्रज है, सबका नाश कर दो। वहाँ के गोपों की एक भी गौ न बचने पावे, न गोप ही। सबका सर्वनाश कर दो। जहाँ नन्दादि गोपों ने डेरे डाल रखे हैं, उसे जलमय बना दो।

कर्‌यो इन्द्र अति कोप भयङ्कर मेघ बुलाये। करिबेवारे प्रलय मेघ सांवर्तक आये।।
बोले तिनतें शक-शीघ्र तुम व्रजमहँ जाओ। गोपनिको धन धान धेनु सर्वस्व डुबाओ।।
गरजत तरजत घन चले, प्रलय सरिस बरषा करें। प्रेरित पवन प्रचण्ड हिम, नर पशु पक्षिनिपै परें।।

गोप-गोपियाँ अपने बालकों तथा पशुओंके साथ घरोंमें पहुँचे ही थे कि दिनके तृतीय प्रहरान्तमें प्रलयकारी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। प्रचण्ड पवन, पल-पलपर पविपात और अनवरत ओलोंका उत्पात। पहिले ही वज्रपातमें वह आरोपित इन्द्रध्वज भस्म हो गया। केवल इतना पौरुष इन्द्र व्रजमें प्रकट कर सका। इसके अनन्तर तो एक तृण तक उस दिव्यधराका नहीं टूटा। भगवती योगमायाने उपलवृष्टि शिलाओंपर और वज्रपात कालिन्दी जलमें केंद्रित कर दिया; किंतु सहस्राक्ष तो क्रोधान्ध था, इसे देख कहाँ पाता था।

प्रलय-पयोदोंकी भरिशुण्डाधार वर्षा, प्रबल प्रचण्ड पवन- बहुत शीत बढ़ गया। वैसे भी कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा थी। शरद् ऋतुके द्वितीय मासका भी अन्तिम पक्ष। गायें, गोप, गोपियाँ सब शीतसे थर-थर काँपने लगे। सबको लगा कि उनके भवन अब पलभरमें भूमिसात् होनेवाले हैं। शिशुओंको गोदमें उठाकर उनको अपने शरीरसे झुककर छिपाये सब

नन्दभवनकी ओर भागते चले आये। वही एक आश्रय था सबका।

थर थर काँपें गाय हाय सब लोग पुकारें। ठिठुरत इत उत फिरत कहत-हरि हमें उबारें।।
अनत शरन नहिँ लखी शरन सब हरिकी आये। शरनागतके निकट दीन ह्वै वचन सुनाये।।
भक्तवछल भगवान हे, हरि हम सबके दुख हरो। कृपित इन्द्रके कोपतें, प्रणतपाल रक्षा करो।।

मनुष्यों के हाथ, हाथियों के शुण्डदण्ड तथा बाँस के तुल्य मोटी धाराएँ प्रकट करके वे पर्वताकार मेघ वहाँ सब ओर वर्षा करने लगे। आकाश में चारों ओर पर्वताकार मेघ गर्जना कर रहे थे। उस समय पक्षियों ने उड़ना बन्द कर दिया तथा विभिन्न जाति के पशु इधर-उधर भागने लगे। मेघों की घटाएँ घिर आने से व्योम मण्डल प्रभा शून्य हो गया। ग्रह और तारे दृष्टि पथ से ओझल हो गए। चन्द्रमा और सूर्य की किरणों का पता नहीं चलता था। अत: सारा आकाश अन्धकार से आच्छन्न हो गया। मेघों के बरसाये हुए तथा बारम्बार बरसाये जाते हुए जल से आवृत्त हो वहाँ सब ओर की भूमि जलमयी सी प्रतीत होने लगी। उस समय वहाँ मोर जोर-जोर से बोलने लगे। पक्षियों की आवाज बहुत कम हो गयी। नदियों में बाढ़ आ गई और किनारे के वृक्ष प्रवाह में बह गए। बादल आपस में टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधी की प्रेरणा से वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे। इस प्रकार जब दल के दल बादल बार-बार आकर खंभे के समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब व्रजभूमि का कोना-कोना पानी से भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा- इसका पता चलना कठिन हो गया। इस प्रकार मूसलाधार वर्षा तथा झंझावात के झपाटे से जब एक-एक पशु ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंड के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गईं। अब तो मेघोंने व्रजपर मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ की। चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं। आँधीका वेग प्रचण्ड हो गया। बड़े-बड़े ओले गिरने लगे। व्रजवासियोंमें हा-हाकार मच गया। अब ब्रज में मूसलाधार वर्षा तथा झंझावात के झपाटों से त्राहि-त्राहि मच गया।

इससे इन्द्रको क्रोध चढ़ आया और उसने व्रजपर खूब जोरकी वर्षा करवा दी। बड़े-बड़े आधा सेरके ओले पड़ने लगे और बैल बाँधनेकी रस्सी होती है न, वैसी मोटी-मोटी धाराएँ पानीकी पड़ने लगी। ओलोंकी मार और पानीकी बौछारोंसे लोग घबराये। उन्होंने भगवानको पुकारा। वे सब श्रीकृष्णकी शरणमें आये और उनसे प्रार्थना करने लगे कि रक्षा करो, रक्षा करो। भगवान्ने कहा कि तुमलोग चिन्ता मत करो और गोवर्द्धनके नीचे आ जाओ। यह कहकर उन्होंने गोवर्द्धन धारण कर लिया।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इन्द्र की आज्ञा मिलते ही मेघ व्रज पर चढ़ आये। मूसल की तरह मोटी-मोटी जल की धाराएँ गिरने लगीं। सारा व्रज-मण्डल बेहाल हो गया। बादल तड़पते, बिजलियाँ चमकतीं, तीव्र वायु के झकोरे उठने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। अपने नन्हें-मुन्नों को छाती से चिपकाये काँपते हुए गोप और गोपियाँ कन्हैया की शरण में पहुँचे। त्राहि-त्राहि कहते हुए उनसे बचाने की प्रार्थना करने लगे। गायें भी रँभाती हुई कृष्ण के चारों ओर खड़ी हो गईं।

राखिलेहु अब नन्द किशोर। तुम जो इन्द्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर।।
ब्रजवासी तुम तन चितवत हैं, ज्यों करि चन्द्र चकोर। जनि जिय डरौ नैन जनि मूँदौ, धर हों नख की ओर।।
करि अभिमान इन्द्र फिर आयौ, करत घटा घनघोर। सूर श्याम कह्यौ तुम कौ राखौ, बूँद न आवैं छोर।।

हे प्यारे श्रीकृष्ण, हे श्याम, अब तुम हमारी रक्षा करो तुम्हीं हमारे रक्षक हो। इस गोकुल के एक मात्र स्वामी हो उस महा कोप से तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो। जब भगवान श्रीकृष्ण ने गोपियों, गोपों, ग्वालों तथा गौओं की इस प्रकार पुकार सुनी तब भक्त वत्सल भगवान ने विचार किया कि यह प्रचण्ड वायु तथा ओलों की वर्षा इन्द्र ही कर रहा है। यह मूर्ख अपने को लोक पाल मान कर ऐश्वर्य मद में चूर हो रहा है। इसका अज्ञान मुझे अवश्य मिटाना चाहिये। यह अपने सत्व गुण से

च्युत हो गया है। इसका मान भङ्ग होने पर ही इसको शान्ति मिलेगी। यह सारा ब्रज मेरी शरण में है। इनका एक मात्र रक्षक मैं ही हूँ। भक्तों की रक्षा करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है।

गोप-गोपी-गण प्रार्थना करते हुए कहने लगे- प्यारे कन्हैया, आप ही हमारे रक्षक हैं, त्राता हैं। क्रुद्ध इन्द्र से आप हमारी रक्षा करें। व्रजवासियों की आर्त-वाणी सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि घबराओ नहीं, यह इन्द्र का काम है। वे क्रोध में ऐसा अनर्थ कर रहे हैं। साधु व्यक्ति में अभिमान नहीं होना चाहिये, किन्तु इन्द्र अभिमानी हो गये हैं। मैं इनके अभिमान को तोड़ कर छोड़ूँगा। इन्द्र को अपने इन्द्र पद का अहंकार था।

गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययु:।

शीत सहित अति वृष्टि लखि समुझि इन्द्र करतूति। प्रभु निज मन निश्चय किहे नासब मदहिं विभूति।।

भगवानने सोचा- देवताओं में ईश्वरत्व का गुमान होना अच्छा नहीं है इन्द्र को अपने लोकपालकत्व का अभिमान था। यही उचित है कि देवों के अन्दर की यह कुभावना नष्ट करूँ इनके अभिमान को नष्ट करने से ही इनके लिए शान्ति प्रदायक होगी। इस प्रकार विचार करके प्रभु ने एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर अपने कर कमल पर धारण कर लिया और बोले हे पिता हे माता हे सुन्दर ब्रज के समस्त नर नारी।

आप सब अपनी गौओं के साथ इस गिरि गर्त में आनन्दपूर्वक बैठ जाओ यहाँ कुछ भी भय नही है। यह पर्वत गिर जाएगा ऐसी शंका मत कीजिए इस गिरि के गोद में सब प्रकार की सुविधा रहेगी। इस प्रकार प्रभु द्वारा ढाढ़स पाकर पूरा समुदाय उस गिरि गर्त में जाकर बैठ गया जो सयाने लोग थे वे प्रभु के अपरिमित प्रभाव को मानते थे इसलिए प्रभु के इस कार्य से निश्चिन्त थे।

तात मात भ्राता गोपेशा। गिरिगर्त्तन में करो प्रवेशा।। गोधन युत सब करो निवासू। सब विध होगा तुमें सुपासू।।

जिसके पास हाथ है, उसको ईश्वरकी ओर देखनेकी और यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि हमारे लिए यह कर दो, वह कर दो। अरे बाबा, तुम अपने हाथका उपयोग करो और जो कुछ भी करो, ईश्वरके लिए करो।

जब भगवान ने बांसुरी बजाई तो धीरे-धीरे गोवर्धन ऊपर आने लगा। **गिरिराज धरण मैं तो तेरी शरण।**

दौड़ते आये और तनिक झुककर अंगुलीका संकेत मात्र किया होगा कि गोवर्धन ऊपर उठता चला आया। पूरा पर्वत वाम हस्तकी कनिष्ठिकापर उठाकर आप मध्यमें खड़े हो गये।

या विध तिनको धीर दे, गिरिपति लिया उठाय। एक हस्त कर कृष्ण ने, जिम पुष्कर गजराय।।

गोवर्धनके उठानेपर उसके नीचे पाँच कोस लम्बी, एक कोस चौड़ी भूमिका विशाल कक्ष बन गया। पहिले गोप पहुँचे दौड़ते, तो उन्हें आज्ञा दे दी- इस स्थानमें वर्षासे तीनों लोकोंकी रक्षा हो सकती है, अकेले व्रजकी तो बात क्या है। सब लोग लौट जाओ और अपने गृहोंका समस्त उपकरण, सब स्वजन, पूरा गोधन लेकर आओ। सब छकड़ापेंमें भर लाओ। भय मत करना, मेरे हाथसे गिरिराज गिरेंगे नहीं।

जिनका संकल्प त्रिभुवनकी रक्षा करना है, उन्होंने जब गोवर्धन उठा लिया- रक्षामें क्या सन्देह रह गया। गोपियोंको भी लौटा दिया आपने और मैयाको भी- शिशुओंको यहीं छोड़ो और जाकर, घरमें जो हो सब समेटो- छकड़ीमें भरो और झटपट ले आओ। मैया, तू मेरे वस्त्र लावेगी?

गोपों-गोपियोंने छकड़े भरे और अपना-अपना गोधन हाँक दिया। गायें, वृषभ, बछड़े, बछड़ियाँ पूँछ उठाये दौड़ती पहिले आ गयीं। उन्होंने शरीर हिलाया और पर्वतके नीचे खड़ी हो गयीं। छकड़े भी पहुँचे, वे भी पर्वतके नीचे चले गये। इन्द्र चिल्लाया- इस पर्वतको बहा दो। मैं इसे चूर्ण-चूर्ण कर दूँगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी योग-शक्ति से गोकुल की रक्षा के लिये गोवर्धन पर्वत को अपने एक हाथ से उखाड़कर उठा लिया- ठीक वैसे ही, जैसे बालक छत्रक (कुकुरमुत्ता) को उखाड़ लेते हैं। इसके बाद भगवान् ने गोपों से कहा- माताजी, पिताजी और व्रजवासियों, तुम लोग अपनी गायों और सभी सामग्रियों के साथ इस पर्वत के गड्ढे में आकर आराम से विराजमान हो जाओ। पर्वत गिरने की शमा मत करना। नि:शम होकर इस गर्त में बैठ जाओ। तुम लोगों की रक्षा के लिये ही मैंने यह उपाय रचा है। यहाँ इन्द्र का भय नहीं है। वे अब कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

मारयो मान इन्द्र कौ यदुपति, धार्‌यौ कर गिरिराज। तिहिं छिन ब्रज रक्षा करी, कीन्हों निज जन काज॥

भगवान सबको लेकर गोवर्धनके समीप गये और उसे हाथसे ऊपर उठाकर छत्रकी भाँति तान दिया। व्रजके लोग अपने ढोर-डंगर, छोरा-छोरी और गँठड़ी-मुठड़ी लेकर उसके नीचे आ घुसे। सात दिनतक प्रभु अपने बायें हाथकी छोटी उँगलीपर पर्वत उठाये रहे और दाहिने हाथसे बंसी बजाते रहे, जिससे किसीका ध्यान समय समय और भूख-प्यास थकानकी ओर न जाय।

सप्त दिवस गोपाल ने, निज कर में गिरि धार। ब्रजवासी सब कृष्ण के, मुख को रहे निहार॥
श्याम लियौ गिरिराज उठाय। धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोवर्द्धन करत सहाय॥
नन्द गोप ग्वालिन के आगे, देव कह्यो यह प्रगट सुनाय। काहे कौं व्याकुल भये डोलत, रक्षा करें देवता आय॥
सत्य बचन गिरिदेव कहते हैं, कान्ह लेहिं मोय कर उचकाय। सूरदास नारी नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाय॥

वहाँ श्रीहरिका सहस्त्रार सुदर्शन चक्र सम्पूर्ण तेजके साथ प्रज्ज्वलित था। पर्वत सूखा पड़ा था। जलधाराएँ पड़ती भी तो इस चक्रकी असह्य अग्निमें वाष्प बन जातीं।

देव सुदर्शन चक्र ने, निज पति इच्छा चीन। तब गिरिवर पर आयके, जल शोषण कर लीन॥

अपना चक्र व्रजके ऊपर छोड़ा कि वर्षाके जोर और ओलोंसे किसीके घर-झोपड़े न ढह जायँ चक्रने सब जल सोख लिया। सात वर्ष के कृष्ण ने सात कोस लम्बे-चौड़े गिरिराज को सात दिन, सात रात पर्यन्त इक्कनी अंगुली के नख पर धारण किया। सातवें दिन वर्षा बंद हुई तो उन्होंने सबसे घर जानेको कहा। उनके निकल जानेपर पर्वत ज्यों-का-त्यों नीचे रख दिया। उस दिनसे उनका नाम गिरिधारी अथवा गिरधर पड़ा।

सात कोस गिरिराज वपु सात वर्ष के श्याम। सात दिवस कर पर धर्‌यो पायो गिरिधर नाम॥

भगवान ने जल को पृथ्वी पर आने ही नहीं दिया। जाज्वल्यमान सुदर्शन चक्र को उन्होंने आज्ञा दी, वह पहाड़ के ऊपर बैठ गया। भगवान का आश्वासन मिलते ही सारे व्रजवासी गायों और सामग्रियों के साथ उस पर्वत के नीचे आ घुसे। बीच में बायें हाथ की कानी उँगली पर गिरिराज को धारण किये हुए श्रीकृष्ण थे और उनके चारों ओर सारे व्रजवासी। यह व्रजवासियों के साथ कृष्ण का रास था। भगवान ने सात दिनों तक पर्वत को कानी उँगली पर धारण किये रक्खा, एक कदम भी वहाँ से हिले-डुले नहीं। उन्हें उस अवधि में न भूख लगी, न प्यास लगी और न किसी प्रकार की थकावट ही लगी।

कर्मके देवता इन्द्रका भी उद्‌भव स्थान श्रीकृष्णका कर। उसपर गोवर्धन उठाये खड़े हैं। कर्मके- करके भी अधिदेवताकके ऊपर तो इन्होंने अपने वक्षसे उत्पन्न भावगिरि गोवर्धनको स्थापित कर दिया। केवल वाम करकी कनिष्ठिका पर स्थित है गोवर्धन। ललित त्रिभांगि खड़े हैं व्रजराजकुमार।

गोवर्धन के विशाल गड्ढे में छिपे हुए ग्वाल-बालों में बड़ी प्रसन्नता थी, बड़ा भारी उत्साह था। वृषभानु बाबा भी वहीं थे, कीर्तिदा (राधारानी की माँ) भी वहीं थी, राधारानी भी वहीं थीं, उनकी ललिता (विशाखा) आदि सखियाँ भी वहीं थीं,

जिनका चीरहरण किया गया था, वे कुमारियाँ भी वहीं थीं। बरसाने, नन्दगाँव आदि समस्त चौरासीकोस के गाँवों के लोग उस छोटे-से पहाड़ के नीचे छिपे थे। यह सब योगमाया का प्रभाव था। किसी को किसी प्रकार का कष्ट न था। किसी को भूख-प्यास भी न सता रही थी। निद्रा-तन्द्रा किसी को कुछ नहीं थी।

भगवान श्रीकृष्ण बाँयें हाथ की सबसे छोटी उँगली पर, त्रिभङ्गललित मुद्रा में, जरा कमर टेढ़ी करके, एक ही पाँव पर अपने ओठ पर बाँसुरी लगाये गोवर्धन धारण किये थे। सारे व्रजवासी गोवर्धनधारी की जय-जयकार कर रहे थे। अपूर्व उत्साह था उन लोगों में।

व्रजबालायें प्रसन्न थीं अपने प्रियतम के शौर्य को, पराक्रम को देखकर। उनमें परस्पर हँसी-मजाक भी चल रहा था। इसी बीच एक व्रजबाला ने सब सखियों को सावधान कराते हुए कहा।

सखियों तुम खूब सचेत रहो, हँसि खेल की बेला है आज नहीं।
दिन सात तो आज समाप्त हुआ, पर शान्त हुआ सुरराज नहीं।।
वृषभानु-सुता को बचा रखना, लखले न कहीं व्रजराज उसे।
करकञ्ज न काँप उठे उसका, गिरिजाय कहीं गिरिराज नहीं।।

इतने में राधारानी अपने प्राण-वल्लभ की एक झाँकी लेने के लिये वहाँ आ गईं। कृष्ण ने उन्हें देखा। देखते ही सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया।

गोपियां बोली- **चोर चोर खायो दधि, काम आयो है आज।** चोर-चोर के जो माखन खाया है वह आज काम आया है। सबकी रक्षा करने के काम आया है। जैसे बालक छत्रक उठाते हैं, ठाकुर जी ने बायें हाथ की अँगुली पर गिरिराज पर्वत को उठाया। बरसाने वाली सखी (राधा) भी थी- अगर आप सलाह दो तो मैं रहस्य बता दूँ। एक ही ज्योति ने दो रूप धारण किये हैं, एक राधा है और एक माधव। राधाजी वाम भाग की तरफ रहती हैं, बाँया हाथ तो राधा जी का है इसलिए राधा जी की ताकत से गोवर्धन को उठाया है।

बरसाने वाली कहे सही बात कुछ ओर। सबकी होय सलाह तो मैं कर दूँ भंड़ा फोर।।
कछु माखन को बल बढ़्यो, कछु गोपन करी सहाय। राधा कृपा कटाच्छ से गिरिवर लियो उठाय।।

शरीर सिहरन के कारण किञ्चित् काँप उठा। पर्वत डगमगाने लगा। यह देखकर सभी व्रजवासी बेचैन हो उठे। बलराम ने कन्हैया की ओर देखा। कन्हैया ने लजाकर अपनी आँखे नीची कर ली।

श्रीवृषभानु सुता तहँ आई। कुँवर कान्ह के अति मन भाई। गोर अंग सुन्दर सुकुमारी। श्याम संग खेलत नित प्यारी।।
सुनत बोल हँसि उठे मुरारी। तबहीं डोल गयो गिरि भारी। नर नारिन को अति भय भाई। धाय छिपाय राधिका आई।।

ग्वालबालों ने आपस में कहा कि-

है कोऊ आदि पुरुष औतारी। दीखत है कोई देव मुरारी।।
मोहन मानुष कैसो भाई, अंगुली पर क्यों गिरि ठहराई।।

कन्हैया तो हमसे कुश्ती लड़ने में हार जाता है। यह हारने पर हमें अपने कन्धे पर चढ़ा कर दौड़ता है। यह इतनी देर तक पहाड़ उठा रक्खेगा तो इसका हाथ दु:खने लगेगा अत: हमें इसकी सहायता करनी चाहिये। ऐसा विचार कर साथी पहुँचे कृष्ण के पास और उनसे बोले- कन्हैया, तुम्हें सात दिन खड़े-खड़े बीत गये। इस बीच तुमने नींद भी नहीं ली है। मित्र, तुम थक गये हो। थोड़ी देर के लिये यह पहाड़ श्रीदामा के हाथ पर रखकर जरा विश्राम कर लो। यदि तुम पहाड़ किसी दूसरे के हाथ

पर देना पसन्द नहीं करते तो इसे दाहिने हाथ पर ले लो। हम तुम्हारे हाथ को कुछ देर तक दबा देते हैं, सहला देते हैं।

कृष्ण बोला- तू मेरी मुरली दे पहिले मुझे। व्रजराजकुमारकी माँग उचित है। यहाँ सबको पता नहीं कबतक ऐसे ही रहना है। क्षुधा-पिपासा-निद्रादि सबको विस्मृत करा देनेकी शक्ति तो इनकी वंशी-ध्वनिमें ही है। इसीतरह सात दिन, सात रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं लगा जैसे सात पल भी प्रतीत नहीं हुए।

जल प्रवाह आवत तल माहीं। सुमिरे शेष सुदर्शन काहीं।।
यथा कोटि अति दारुन भानू। भ्राजेउ गिरि पहिं चक्र महानू।।
करत पान पय चक्रहिं कैसे। नीर निधिहिं कुंभजरिषि जैसे।।
जल प्रवाह अति वृष्टि विशेषू। गिरिहिं चतुर्दिक रोकेउ शेषू।।

जब जल का प्रवाह उस पर्वत के तल में आने लगा तब प्रभु शेषजी को तथा सुदर्शन का सुमिरन किया। प्रभु की आज्ञा पाकर अति दारुन कोटि सूर्यों के समान महान चक्र उस गिरि के उपर विराजमान हो गया तथा जिस प्रकार कुंभज ऋषि समुद्र का पान कर रहे थे उसी प्रकार महान चक्र वृष्टि जल का पान करने लगा। विशेष अति वृष्टि के जलप्रवाह को उस गिरि के चारो ओर अपने विशाल शरीर से धोकर रोके हुए थे।

भगवान् राम जब रावण को मारकर अयोध्या में लौटे जब रामजी का राज्यतिलक हो गया। जानकी जी की ब्राह्मणों में बड़ी श्रद्धा है। अपने हाथ से भोजन बनाती हैं।

रामजी से एक दिन उदास होकर बोलीं, क्या बताऊँ? बड़े प्रेम से भोग बनाती हूं, लेकिन जो भी ब्राह्मण पंडित जी आते हैं, वे थोड़ा सा पाकर ही उठ जाते हैं। कोई ढंग से भोजन पाता ही नहीं।

रामजी बोले, ऐसा मत कहो देवी। कभी कोई ऐसा ब्राह्मण ऐसा आयेगा, आप बनाते-बनाते थक जाओगी। अभी तुमने असली ब्राह्मण देखे कहाँ हैं? ठीक है, किसी दिव्य ब्राह्मण को बुलाता हूँ। अगस्त्य मुनि जो तीन श्वासों में पूरे समुद्र को पी गये राम ने भोजन करने के लिये अपने घरपर निमंत्रण दिया।

अगस्त्य मुनि आ गये। भगवान राम ने और जानकी जी ने उनका स्वागत किया। चरणों में प्रणाम किया। चरण धोये। रामजी बोले, महाराज, भोजन आज यहीं पर करें। अगस्त्य बोले- इच्छा तो नहीं, फिर भी आप कहते हैं तो थोड़ा कर ही लूँगा।

माता जानकी बोलीं- मेरी इच्छा होती है, अपने हाथ से भोजन बनाकर परोसूँ।

माता जानकी जी ने देखा, दुबला-पतला सा संत है कितना खायेगा? रसोई घर के द्वार पर महाराज का आसन लगा दिया, सोने की थाली सजायी, उसमें पचास कटोरियाँ रखीं। कई प्रकार के व्यंजन उसमें सजे हैं। थाली में बीच में पूड़ी रख दीं। अगस्त्यदेव बैठे और जैसे ही थाली के पास बैठे, अगस्त्य ने टेढ़ी नजर से राम जी की ओर देखा। राम जी ने इशारा किया, आप असली रूप दिखा देना अपना।

अगस्त्य ने कहा- जो आज्ञा। जानकी जी ने कहा, महाराज। भोजन करना शुरू कीजिये।

अगस्त्य जी थाली की ओर देख रहे हैं और केवल हँस रहे हैं। जानकी जी बोलीं, आप शुरू करिये न महात्मन्।

अगस्त्य मुनि बोले, भोजन कराना है तो देवी ढंग से कराओ, नहीं तो रहने दो। जानकी जी तो बड़ी प्रसन्न हुईं। कोई भोजन करनेवाला तो आया। महाराज, आप पाइये। मैं बनाती हूँ।

ग्यारह बजे भोजन शुरू किया महाराज ने, सायंकाल हो गया। उनको तो डकार भी नहीं आयी।

जानकी जी ने पन्द्रह बार तो आटा गूँद लिया। जब सायंकाल हो गयी, तो अगस्त्य जी से बोलीं और चाहिये?

अगस्त्य जी बोले, अभी तो शुरूआत ही नहीं हुई, अभी से पूछने लगीं आप?

जानकी जी ने कहा- नहीं बाबा। सुनिये आप प्रेम से पाइये, मैं अभी आती हूँ।

जानकी जी ने गणेश जी की दोनों पत्नि ऋद्धि-सिद्धि को बुलाया और उनसे बोली- देखो, महाराज अगस्त्य भोजन कर रहे हैं। कुछ भी हो जाय, भूखे नहीं उठने चाहिये। सारे भंडार खोल दो। लेकिन महात्मा भूखा नहीं उठे। ऋद्धि-सिद्धि जहाँ बैठ जायें, वहां क्या कमी है? ऋद्धि-सिद्धि महाराज को पूरी बनाकर परोसती जा रहीं हैं। महाराज बड़े प्रेम से भोजन कर रहे हैं। तीन दिन और तीन रात्रि हो गये। महात्मा जी का अखण्ड भोजन चल रहा है। जानकी जी रसोई के द्वार पर आयीं तो ऋद्धि-सिद्धि के सामने माता जानकी ने गणपति जी को बुलाया।

गणेशजी रसोइया बनकर आ गये। नव निधि को बुलाया।

ऋद्धि-सिद्धि, नवनिधि सब मिलकर पूड़ी बेल रहीं हैं और गणपति महाराज झरिया में पूड़ी निकालकर अगस्त्य महाराज को परोसते जा रहे हैं। महाराज जी मुँह में उड़ेलते जा रहे हैं। पन्द्रह दिन और पन्द्रह रात्रि पूरे हुए, बिना रुके भोजन चल रहा है। जब सोलहवाँ दिन भी पूरा हो गया, अगस्त्य महाराज के चेहरे पर कोई सिकुड़न नहीं है, वो तो अविश्राम गति से भोजन करने में व्यस्त हैं। सत्रहवाँ दिन जब भोजन का चल रहा था, तो जानकी जी आयीं और महाराज को प्रणाम किया। महाराज प्रणाम करती हूँ। अगस्त्य महाराज ने कहा, चिर सौभाग्यवती रहो देवी, लेकिन अभी वार्ता कर नहीं सकता क्योंकि मैं भोजन में व्यस्त हूँ। वार्ता बाद में करूँगा। जानकी जी बोलीं, मैं कोई बात करने नहीं आयी महाराज। मैं तो इतना कहने आयी हूँ कि आधा भोजन हो जाये, तो पानी पीना चाहिये। अगस्त्य बोले- चिंता मत करो। जब आधा भोजन हो जायेगा तो पानी अपने आप ही पी लूँगा। जानकी जी ने मन में विचार किया - हे भगवान्, ये कैसा महात्मा है? अभी आधा भी नहीं हुआ है। महाराज का भोग चल रहा है।

सत्रहवें दिन सायंकाल के समय, श्रीराम आये। रामजी ने आकर देखा, जानकी जी चिन्तित हैं, गणपति जी महाराज चिन्ता में हैं। ऋद्धि-सिद्धि, नवनिधि सब हार चुकी हैं। रामजी ने श्री जानकी जी से कहा- क्यों देवी। महाराज का भोजन अभी चल रहा है ना। जानकी जी बोलीं- सुनिये, ऐसा ब्राह्मण मेरे घर पर फिर कभी मत बुलाना। क्यों?

ये भी कोई बात है? श्रद्धा की टाँग तोड़कर रख दी। अट्ठारह दिन पूरे हो गये, बोलते हैं, अभी आधा ही नहीं हुआ।

रामजी बोले, आप रोज कहती थीं न, तो अब कराओ भोजन। भगवान् राम रसोईघर के द्वार पर गये, महाराज भोजन कर रहे हैं। अगस्त्य महाराज ने भोजन करते-करते तिरछी नजर से राम को देखा और इशारे से पूछा- बस कि और चलें? भगवान ने कहा- बस रहने दो। रामजी के इशारे पर तो हो ही रहा था यह सब।

अट्ठारहवें दिन शाम को डकार आयी। अगस्त्य मुनि बोले- जल लाओ, तो देवी अब आधा भोजन हो गया, जल पिलावो। रामजी ने कहा- देवी, महाराज के लिए जल लाइये। जानकी जी बोलीं- हमारे पास कोई जल की व्यवस्था नहीं है। इतना पानी कहाँ से लायेंगे? एक-आध घड़े से तो काम चलेगा नहीं।

अगस्त्य बोले- पानी भी पीते हैं तो फिर ढँग से ही पीते हैं। ऐसे रोज-रोज तो पीते नहीं। दो-चार युग में एक बार पीते हैं। राम जी ने कहा- तो महाराज पानी की व्यवस्था नहीं हो पा रही है।

अब इस युग में भोजन करें, दूसरे में पानी पियें। आगे जो द्वापर युग आ रहा है न, द्वापर युग में मैं गिरिराज को उठाऊँगा। क्रोध में आकर इन्द्र जितनी जल की वृष्टि करें, आप सारा जल पान करें। अगस्त्य बोले- ठीक है प्रभु, एक समाधि लगाऊ तो द्वापर आ जायेगा।

वर्षा के समस्त जल को सुदर्शन चक्र बीच में ही जला देता था। इस प्रकार सात दिनों तक निरन्तर वर्षा होती रही। भगवान की योग माया के प्रभाव से किसी को यह समय मालूम ही नहीं हुआ। सब बड़े आनन्द से हँसते खेलते आनन्द करते रहे। खीर उड़ाते रहे। यशोदा मैया को बड़ी चिन्ता थी, वह बार-बार श्यामसुन्दर के हाथ में मक्खन मलती और पूछती- बेटा, हाथ दुखने तो नहीं लगा। श्रीकृष्ण हँस जाते और कहते-मैया। तैंने जो मुझे इतना माखन खिलाया है उसका कुछ भी तो बल होना चाहिये और सब गोप तो उठते बैठते तथा सोते-लेटते भी थे, किन्तु श्रीकृष्ण खड़े ही रहे और उनके सामने उनकी आँखों में आँखें मिलाये गोपराज वृषभानु की एक छोटी-सी गोरी-सी छोरी भी खड़ी थी। वह भी सात दिन नहीं बैठी। जब कोई उससे बैठने को कहता, तो वह कह देती- स्वप्न में गोवर्धननाथ ने मुझसे कहा है, श्यामसुन्दर के साथ तू भी खड़ी रहना, तू न खड़ी होगी तो कभी श्यामसुन्दर के हाथ से पर्वत गिर जायगा, सब लोग दब जायँगे, बड़ा अनर्थ होगा। इसलिये मैं इसकी भलाई के लिये खड़ी हूँ। यह सुनकर सब लोग कहते- इन छोरा छोरी की जोड़ी तो बड़ी सुन्दर है। अवश्य ही इस छोरी में कोई चमत्कार है, तभी तो कनुआ पलक नहीं मारता भूला-सा भटका-सा एक टक उसी की ओर देखता हुआ खड़ा है।

दाबति भुजा यशोमति मैया। बारबार मुख लेत बलैया।।
लखि पहाड़ मन अति दुख पावे। पुनि-पुनि गोवर्धनहि मनावे।।
नाथ आपनो भार सम्हारी। करियो कान्हा की रखवानी।
पय पकवान मिठाई मेवा। बहुरि पूजिहौं तुमको देवा।।

यशोदा बलराम से बोली- कन्हैया तुम्हारी सहायता करता था, इस समय तुम्हारी भी सहायता की जरूरत है। नन्दरानी अपने कुलदेवता व परमेश्वर को बारम्बार दण्डवत करके यह मनाती थी कि कृष्ण को पहाड़ उठाने में दु:ख न पहुँचे।

माखन प्रभु के कारणे जाय वारनी माय। ताके मन की कल्पना केहि विधि वरणी जाय।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, गोपों को तो भगवान के वचन पर पूर्ण विश्वास था, अत: भगवान के यह आश्वासन देने पर कि तुम किसी बात का न भय करो, न पर्वत गिरने की आशंका करो। मैं सबकी रक्षा करूँगा। वे सब-के-सब अपने छकड़ों, गौओं तथा भृत्य, पुरोहित और परिवार के लोगों के साथ आनन्द के साथ सात दिनों तक पर्वत के नीचे बैठे रहे। इतने समय तक अपनी योगमाया के प्रभाव से भगवान एक ही स्थान पर खड़े रहे। तनिक भी इधर-उधर विचलित नहीं हुए।

जब श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्द्धनको हाथपर उठाये सात दिन हो गये तब ग्वाल-बालोंने कहा कि तुमने तनिक भी विश्राम नहीं किया कन्हैया। एक हाथपर पहाड़ लिये खड़े हो, तुम्हारा हाथ दुखता होगा। अब थोड़ी देरके लिए श्रीदामाके हाथमें पहाड़ दे दो। हम तुम्हारे इस बायें हाथको जरा दबा दें, जिससे कि इसमें रक्तका संचार ठीक-ठीक होने लगे। यदि तुमको श्रीदामाके हाथमें पहाड़ देनेसे अपनी हेठी मालूम पड़ती हो तो उसको मत दो। दाहिने हाथपर पहाड़ रख दो। इससे बाँयें हाथको आराम मिल जायेगा। मधुमंगल बोला- लाला तीन दिन से सोया नहीं, नैक विश्राम कर लै। कन्हैया बोला- यदि विश्राम करूँगा तो गिरिराज नीचे आ जायेंगे। ब्रजवासी बोले- तू चिंता काय करै, हम अपनी लठिया लगा देंगे और लाखों लठियाँ नीचे लग गयीं।

बाल वृद्ध सब नारि नर, हरि को शिशु सम चीन। निज निज कर में लकुट ले, नग का स्तंभन कीन।।

किन्तु कृष्ण ने मुस्कराकर उनकी बात टाल दी। तब साथियों ने अपनी-अपनी लाठियों को पहाड़ में लगाकर कहा- कान्हा, हम अपनी लाठियों पर कुछ देर पहाड़ को उठाये रहेंगे। तुम अपना हाथ थोड़ी देर के लिये हटा लो। ऐसा कहकर बालकों ने पहाड़ में अपनी-अपनी लाठियाँ टिका दी। जोर लगाया, गाल फुलाया। कृष्ण ने अपना हाथ जरा-सा ढीला किया। ग्वालबाल चिल्लाने लगे- कन्हैया, पहाड़ गिरा, गिरा। भैया, इसे तुम्हीं सँभालो। उनकी बातों को सुनकर कृष्ण ने

अपना हाथ कड़ा कर दिया। पहाड़ ज्यों-का-त्यों टिका रहा। उसका डगमगाना बन्द हुआ।

जब ग्वाल-बाल तैशमें आते थे तब कहते थे कि अरे ओ कन्हैया, तुमने गिरिराजको अकेले थोड़े ही उठाया था। हमने भी तुम्हारे साथ-साथ अपने-अपने हाथ लगाये थे, अपनी-अपनी लाठियाँ लगायी थीं।

ब्रजवासी बोले- हमारी लगाई हुई इतनी मोटी-मोटी लठियाँ टूट गयीं और तुमने एक पतली सी अँगुली पर गोवर्धन धारण किया। तेरी अँगुली में इतनी शक्ति कहाँ से आयी? गोविन्द बोले- एक तो मैंने माखन खाया और माखन का बल बढा। आप सब लोगों ने मेरी सहायता करी। किशोरी श्रीराधा की कृपा से मैंने गिरिराज उठा लिया।

सात दिनों तक निरन्तर ओलों सहित वर्षा होने पर भी एक बूँद पानी भी गोपों के पास नहीं गया। वे आनन्दपूर्वक सुख से बैठे रहे, अपने नित्य के कार्य करते रहे। मद के कारण इन्द्र तो अन्धा हो रहा था।

इन्द्र ने अपने मेघों से कहा- जरा देखो तो सही ब्रजमण्डल बरसात में बह गया होगा? गऊऐं सब बह गई होंगी। गोप ग्वाल सब बह गये होंगे। देवताओं ने कहा- पानी तो तुम्हारे मेघों का खत्म हो गया ब्रज में तो धूल उड़ रही है। कुछ भी नहीं हुआ। वहाँ की वृक्षावली का एक छोटा सा पौधा भी नहीं टूटा। सुदर्शन चक्र ऊपर घूम रहा है, वह सारा जल पी रहा है। शेषनाग बड़े रूप में कुंडली मारकर बैठे है ताकि जल भीतर नहीं आ सकता। शंकर भगवान ने अपनी जटायें खोल रखी हैं और सारे पानी को अपने अन्दर समाते जा रहे हैं।

श्रीकृष्ण की योगमाया का यह प्रभाव देखकर इन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अपना संकल्प पूरा न होने पर उसका सारा अभिमान समाप्त हो गया, गर्व चूर-चूर हो गया। इन्द्र भौंचक्के-से रह गये। इसके बाद उन्होंने मेघों को वर्षा करने से रोक दिया। इन्द्रने अपने सैनिकों से पूछा- तुम्हारा इतना पानी कहाँ गया। सैनिकों ने सूचना दी कृष्णने जब गिरिराज उठाया, तो नीचे से शेषनाग ने आकर चारों तरफ बाँध लगा लिया ताकि बाहर का जल अन्दर न आ सके। ऊपर एक कोने पर सुदर्शन चक्र जी बैठकर पानी को सुखा रहे हैं और दूसरे कोने पर अगस्त्य मुनि बैठकर जल को पी रहे हैं।

सुरपतिकी करतूम समुझि हरि मन मुसकाये। कछु चिन्ता मत करो सबनिकूँ बचन सुनाये।।
करपै गिरिवर धर्‍यो फूल सम ताहि उठायो। चक्र सुदर्शन जल सोखन हित शैल बिठायो।।
मैया कर माखन मले, लकुट लगावैं गोप गन। सात दिवस गिरि कर धर्‍यो, भयो न नेकहु मलिन मन।।

प्रलयमेघ श्वेत वारि-विहीन शक्रके सम्मुख सिमट आये थे और सिसक रहे थे- देव। एक सीकर जल नहीं हमारे समीप। कोई सम्भावना नहीं कि वह वाष्प बनकर पुन: प्राप्त होगा। पुरारिकी जटाएँ सब पी गयीं। इन्द्रके पद कम्पित होने लगे। इन्द्रने मेघोंको लौटनेकी आज्ञा दी और ऐरावत अमरावतीकी ओर लौटाते हुए वायुको भी शिथिल हो जानेका आदेश दिया।

नष्ट भ्रष्ट उद्योग सब मान मदहिं भा नास। निस्ताम्भित तब बिवुध पति बरजेसि मेघ हतास।।

देवोंने कहा- **तुम जानत प्रभु भूमि जब दुखित पुकारी जाय। कहेउलेन अवतार तबसोइविहरतब्रजआय।।**
कहेउ इन्द्रपछताय मैं भूल्यों जान्यों नहीं। कीन्ही बहुत ढिठाय भयकरि मनव्याकुल भयो।।
प्रलयकालके मेघ शक्तिभर पूरे बरसे। नीचे गिरिके गोप साथ सब सुखतें निवसे।।
जलतें खाली भये गये सुरपतिके पाहीं। बोले- बरषा करी नन्दब्रज डूबत नाहीं।।
मद सब उतर्‍यो इन्द्रको, सुनत चकित-सो रहि गयो। रोके घनर सब ब्रज चलो, गिरिधर गोपनितें कह्यो।।

हे नरेश्वर, उसी समय सूर्योदय हो गया। बादल इधर-उधर छँट गये। हवा का वेग रुक गया और नदियों में बहुत थोड़ा पानी रह गया। आकाश निर्मल हो गया। चौपाये और पक्षी सब ओर सुखी हो गए। जब गोवर्धनधारी भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि वह

भयंकर आँधी और घनघोर वर्षा बन्द हो गयी, आकाश से बादल छँट गए और सूर्य दीखने लगा, तब उन्होंने गोपों से कहा- हे मेरे प्यारे गोपों। अब तुम लोग निडर हो जाओ और अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चों के साथ बाहर निकल जाओ। देखो, अब आँधी-पानी बन्द हो गया तथा नदियों का पानी भी उतर गया। भगवान की ऐसी आज्ञा पाकर अपने-अपने गोधन, स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों को साथ लेकर तथा अपनी सामग्री छकड़ों पर लाद कर धीरे-धीरे सब लोग बाहर निकल आए।

पानी बरसना बन्द हो गया। सूर्य बादलों से बाहर निकल कर चमकने लगे। उसके बाद श्रीकृष्ण के कहने पर सभी गोपी-गोप अपने-अपने छकड़े, सामान और परिवार को लेकर बाहर निकले। भगवान ने जरा-सा पीछे हटकर गोवर्धन को धीरे से नीचे उतारा। बड़े आदर, प्रेम तथा शान्ति के साथ धरती पर यथास्थान रख दिया। अपना हाथ बाहर खींच लिया।

दीवालीके दूसरे दिन व्रजमें इन्द्र यज्ञ होता था। भगवान कृष्णने उसको बन्द करवाकर गोवर्धन पर्वतकी पूजा आरम्भ करवायी। इससे इन्द्रको क्रोध चढ़ आया और उसने व्रजपर खूब जोरकी वर्षा करवा दी। बड़े-बड़े आधा सेरके ओले पड़ने लगे और बैल बाँधनेकी रस्सी होती है न, वैसी मोटी-मोटी धाराएँ पानीकी पड़ने लगी। ओ)लोंकी मार और पानीकी बौछारोंसे लोग घबराये। उन्होंने भगवानको पुकारा। भगवान सबको लेकर गोवर्धनके समीप गये और उसे हाथसे ऊपर उठाकर छत्रकी भाँति तान दिया। व्रजके लोग अपने ढोर-डंगर, छोरा-छोरी और गँठड़ी-मुठड़ी लेकर उसके नीचे आ घुसे। सात दिनतक प्रभु अपने बायें हाथकी छोटी उँगलीपर पर्वत उठाये रहे और दाहिने हाथसे ंसी बजाते रहे, जिससे किसीका ध्यान समय समय और भूख-प्यास थकानकी ओर न जाय। अपना चक्र व्रजके ऊपर छोड़ा कि वर्षाके जोर और ओलोंसे किसीके घर-झोपड़े न ढह जायँ चक्रने सब जल सोख लिया। सातवें दिन वर्षा बंद हुई तो उन्होंने सबसे घर जानेको कहा। उनके निकल जानेपर पर्वत ज्यों-का-त्यों नीचे रख दिया। उस दिनसे उनका नाम गिरिधारी अथवा गिरधर पड़ा।

इसप्रकार इन्द्र के कोप से अपने अनुरक्त भक्त अनन्याश्रयी गोपों की सकुटुम्ब श्यामसुन्दर ने रक्षा की। इन्द्र के मद को चूर किया, गोवर्धन की महिमा बढ़ायी और अपनी अद्भुत योगशक्ति भी दिखायी। गोपगण अत्यन्त प्रेम में विभोर हुए चारों ओर से श्यामसुन्दर को घेरकर ब्रज की ओर चले और उनके पीछे-पीछे अपने ऊँचे-ऊँचे जूरों को रङ्ग-बिरङ्गी ओढ़नियों से ढककर, घुमघुमारे लहँगाओं को हिलाती हुईं नन्दनन्दन की पूर्वोक्त ललित लीलाओं को गाती हुईं गोपियाँ चलीं। इस प्रकार वे सब आनन्द और उल्लास के सहित अपने पूर्व के निवास स्थान ब्रज में पहुँचे।

पूजन गोपी करें कृष्णकी कुशल मनावें। सुरगन सादर सुमन गगनतें मिलि बरषावें।।
आनंद त्रिभुवनमहँ भयो, सुखी सकल सुर नर भये। चढ़ि छकरनिपै गोप सब, वृन्दावनकूँ चलि दये।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- मेरे प्यारे ब्रजवासियों, अब तुम लोग निडर होकर अपने-अपने पशुधन एवं सामग्रियों को लेकर अपने-अपने स्थान पर पहुँच जाओ। भगवान की आज्ञा पाकर सभी ब्रजवासी तुरन्त ही बाहर निकल आये और उनकी प्रशंसा करने लगे। उधर सर्वशक्तिमान् भगवान श्रीकृष्ण ने गिरिराजजी को खेल ही खेल में सबके सामने पूर्ववत् उसी स्थान पर स्थापित कर दिया।

निज बंधुन को साथ ले, निकसे गोप नरेश। गिरिधारी ने प्रथमवत्, स्थापित कीन नगेश।।

आज सारे व्रजवासियों का हृदय श्रीकृष्ण के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर प्रेम-श्रद्धा से भर गया। पर्वत को रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्ण के पास दौड़ आये। कोई उन्हें हृदय से लगाने लगा। कोई उन्हें चूमने लगा। सबने उनका सत्कार-सम्मान किया। बड़ी-बूढ़ी गोपियों ने बड़े आनन्द और स्नेह से दही, चावल, जल आदि से उनको मंगल तिलक किया और खुले हृदय से शुभ आशीर्वाद दिया।

यशोदारानी, रोहिणी जी, नन्दबाबा और महाबली बलरामजी ने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया तथा आशीष प्रदान किये। यह देखकर आकाश में स्थित देव-मण्डली गाना गाने लगी, बाजा बजाने लगी, स्तुति करने लगी और करने लगी फूलों की अपार वर्षा। चारों ओर आनन्द का ही साम्राज्य था। नन्दनन्दन गायों और गोपों के साथ पुन: व्रज में लौट आये। उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी भगवान की गोवर्धनधारण आदि लीलाओं का गान करती हुईं बड़े आनन्द से व्रज में वापस आ गईं। बोलो गोवर्धनधारी भगवान की जय।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, श्रीकृष्ण सात वर्ष के थे। उन्होंने सात दिनों तक गोवर्धन पर्वत को बायें हाथ की सबसे छोटी उँगली पर उठाये रक्खा, न खाया, न पिया और न सोया। व्रजवासियों ने इस दृश्य को देखा। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। गाँव में सर्वत्र कृष्ण के इस अलौकिक कर्म की चर्चा होने लगी।

प्रभु तो निरपेक्ष हैं तथा पूर्ण काम हैं उन्हें न भूख है न प्यास और न विश्राम करने की ही रुचि है। प्रनत पिरीते प्रभु हाथ में उस पर्वत को लिए हुए सब के देखते सात दिन बीत गए। सभी नर नारी निर्भय होकर गान कर रहे थे कि मेरा कान्हा गोवर्धन धारी है कृष्ण की जय हो जय हो अपने स्वजनों का हमेशा हित करनेवाले है शरणागतों का दुख दूर करने पालन करनेवाले हैं। प्रभु कृष्ण की ऐसी योग शक्ति देखकर देवराज इन्द्र को विशेष विस्मय हुआ।

शुकदेव बोले- परीक्षित, भगवान श्रीकृष्ण के इस अलौकिक कार्य को देखकर सभी ब्रजवासी परस्पर इस प्रकार कहने लगे। हे नन्द, तुम्हारे घर में जो बालक उत्पन्न हुआ है इसने अनन्त भार वाले गोवर्धन को इस प्रकार उखाड़ लिया जैसे कोई हाथी कमल को उखाड़ लेता है और इस सात वर्ष के बालक ने अपने नन्हें से हाथ पर उसे सात दिन तक उठाये रक्खा, यह साधारण मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं है।

या विध श्रीगोपाल के, दैवत कर्म निहार। कहत भये नृप नन्द को, ब्रजवासी नर दार।।
सप्तवर्ष का अति सुकुमारा। सप्त दिवस गिरिवर कर धारा। तव कुल में अस नर नहिं कोई। निज कर में गिरि धारे जोई।।
तुम दम्पति गोरे ब्रजपालक़। कह किम श्यामल तनु तव बालक।।
तव कुल से सब विध विपरीता। सत्य कहो किसका सुत मीता।।

व्रजवासियों को तो भगवान की अनन्त शक्ति का पता था नहीं अत: वे एकत्रित होकर पहुँचे नन्द बाबा के पास और उनसे कहा- नन्द बाबा, इस बालक के कर्म बड़े अलौकिक हैं। हम जैसे ग्रामीणों में इसका जन्म लेना इसके लिये बड़ी निन्दा की बात है, इसके अनुरूप नहीं है। जैसे कोई गजराज कमल को उखाड़ ले और उसे अनायास ऊपर धारण किये रहे, वैसे ही इस नन्हें-से सात वर्ष के बालक ने एक ही हाथ से गोवर्धन को उखाड़ लिया और खेल-खेल में सात दिनों तक उसे उठाये रक्खा। यह साधारण मानव के लिये भला कैसे सम्भव है? जब यह नन्हा-सा था तब दूध पीते-पीते इसने क्रूर भयमर राक्षसी पूतना को मार डाला। छकड़े में प्रविष्ट शकटासुर की पैर के धक्के से शकट को उलटकर इहलीला समाप्त कर दीं। गला दबाकर तृणावर्त को आकाश से भूतल पर पटक कर मार डाला। यमलार्जुन जैसे विशाल वृक्षों को एक धक्के में जड़ से उखाड़ कर गिरा दिया। बकासुर की लम्बी चोंच को पकड़ कर बीच से चीर डाला। वत्सासुर, धेनुकासुर और प्रलम्बासुर को तो खेल-खेल में मार डाला। गायों और ग्वालबालों की वनाग्नि से रक्षा की। महान् विषैले कालिय नाग का दमन कर उसे यमुना हे हृद से निकाल दिया। अभी यह केवल सात वर्ष का ही है फिर भी देखो, इसने इतना विशाल गोवर्धन पर्वत उठा लिया। बाबा नन्दजी, आपके इस साँवले सलोने बालक पर हम व्रजवासियों की स्वाभाविक प्रीति है और यह भी हम लोगों पर स्वाभाविक स्नेह रखता है। तो बाबा, क्या आप बतला सकते हैं कि इसका कारण क्या है? भला, कहाँ तो यह सात वर्ष का नन्हा-सा बालक और कहाँ

इतने बड़े गिरिराज को सात दिनों तक उठाये रखना। व्रजराज, इसी से तो तुम्हारे लाला के सम्बन्ध में हमें बड़ी शंका हो रही है। बाबा, सच-सच बतलाओ यह तुम्हारा बेटा है या नहीं? हमारी शंकाओं का निवारण करो।

प्रभु प्रभावतें परम प्रभावित भये गोप अब। नन्द तनय नहिँ श्याम करें शमा मिलि जुलि सब।।
कैसे जाने सात दिवस गोवर्धन धार्‌यो। कैसे कालिय, क्रूर कुण्डते मारि निकार्‌यो।।
जाके सबई काज अति, अद्‌भुत परम विचित्र है। करे अलौकिक काज नित, मधुमय दिव्य चरित्र हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, गोवर्धन धारण के अनन्तर सब गोपों ने श्रीकृष्ण की पुरानी लीलाओं को स्मरण करके उनके प्रभाव को बताते हुए अन्त में कहा- नन्दजी। तुम्हारे इस लाल में हमारा अनुराग भी दुस्त्यज है और इसका भी हम पर सहज स्नेह है। बताइये इसका क्या कारण है। फिर आप ही सोचें- कहाँ सात वर्ष का यह बालक और कहाँ महान् गिरिराज गोवर्धन को धारण करना, इन्हीं सब कारणों से हे व्रजराज, हमें तुम्हारे बच्चे के विषय में सन्देह होता है।

सभी ब्रजवासी कृष्णके बारे में शंकित हो गये। सभा जोड़कर नन्द से पूछे- नन्दबाबा एक बात बताओ तुम गोरे हो, यशोदा गोरी है और यह श्याम कृष्णवर्ण का है? यह कृष्ण सात दिनका भी नहीं हुआ था और इसने पूतना मार दी। तीन महीनेका था तभी लदा छकड़ा पैर मारकर पलट दिया। तृणावर्त दैत्यका गला दबाकर मार दिया इसने और विशाल अर्जुन वृक्षोंको अपनी भुजाओंके बलसे गिरा दिया। पञ्च गिनाया गया- यहाँ नन्दीश्वरपुरमें आकर वत्सासुर, बकासुर, अघासुरको इसने मारा। यमुनाके हृदयसे भयंकर विषैले कालियनागको निकाल दिया। अभी सात ही वर्षका है और इतना विशाल पर्वत इसने उठाये रखा हाथपर सात दिन रात। नन्द का छोटे भाई सनन्द बोला- आपका कहना है क्या कृष्ण मानव नहीं है, दैत्य हैं? राक्षस है? दानव है? क्या तात्पर्य है आप सबका? ब्रजवासियोंने कहा हमारा वह तात्पर्य कभी नहीं है। वह तो जन्मसे ही राक्षस, दैत्य, दानव तो मारता आ रहा है। यह तो पूरे संसार को मालूम है कि वह असुर-शत्रु है।

तुम्हारे लाला के विलक्षण चरित्रों को देखकर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। इसने हम जंगली ग्रामीणों में कैसे जन्म लिया जो इसके अनुरूप था।

दश दिनको नहिँ भयो पूतना मारि पछारी। तृणावर्त अरु शकट, काक, बक हने मुरारी।।
खल अघ, धेनुक, बत्स विविधि वेषनितें आये। आइ असुरता करी श्याम यम सदन पठाये।।
दामोदर बनि यमज तरु, खेंचि गिराये बालने। सात दिवस अब खेलमहँ, धर्‌यौ शैल कर लालने।।
यह जो है बल पूत तिहारौ, चिरजीवौ ब्रज कौ रखवारौ।।
दानव दैत्य असुर संहारौ, कहाँ ब्रज जनन उवारौ।।
जैसी कही गर्ग ऋषि आई, सोइ सोइ बात होति है माई।।

जाति में कोई छोटा बड़ा नहीं। जाति भाई सब एक से हैं। जाति के किसी भाई से भी अनुचित कार्य हो जाय, तो छोटे-से-छोटा जाति भाई उसे दण्ड दे सकता है। पहिले बड़प्पन धन से विद्या से या प्रभाव से नहीं माना जाता था, कुलीनता, शालीनता तथा सदाचार ही बड़े होने का कारण था। इसीलिये जाति के भय से कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकता था। अपनी जाति में कोई निर्धन है, तो सब मिलकर उसकी सहायता करते उसे भी धनवान बना देते हैं। तब समाज का शासन जातीय पुञ्जों पर ही था। कोई आपस में मन मुटाव की बात हुई, तो उन्हें नित्य प्रति न्यायालयों में नहीं दौड़ना होता था। उचित अनुचित बातें गाँव वालों से, जाति वालों से तो छिपती नहीं, वे लोग सब सोच-समझकर यहीं निर्णय कर देते। घर की छोटी-से-छोटी बात से लेकर बड़ी-से-बड़ी बात तक का निर्णय जातीय पञ्चायतों में ही हो जाता। इस कारण जाति

का गौरव बना रहता। उसमें वर्ण समरता, वृत्ति समरता तथा आचार-विचार की समरता न आने पाती। लोग रोटी-बेटी के व्यवहार में विशुद्ध बने रहते। यही सदाचार पालन की प्रधान भित्ति है।

मालिक तीनों लोक के तुम्हरो पुत्र न होय। जन्म मरण जाको नहीं माखनप्रभु हैं सोय।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपों की शमा पर नन्दजी ने उनसे कहा- हे गोपो, तुम्हें जो इस बालक के विषय में शमा हुई है, इस विषय में मेरी कथा श्रवण करो। इसे सुनकर तुम्हारी शमा दूर हो सकती है। गर्गजी ने इस बच्चे के विषय में जो बातें बतायीं थी, उन्हें आप सबको सुनाता हूँ।

पूछें मिलि सब गोप नन्दतें को ये गिरिधर। कहो सत्य व्रजराज कौनके सुत ये नटवर।।
सुनि बोले ब्रजराज सत्य मैं बात बताऊँ। मेरो ई सुत कृष्ण रहस परि तुम्हें सुनाऊँ।।
गर्ग प्रथम मोतें कही, अवतारी तेरो तनय। गुन सब नारायन सरिस, ऱ्ही, श्री, बल, तप, नय विनय।।

नन्द बाबा बोले- गोपों, मेरे बालक के विषय में तुम लोगों की शंका दूर हो जायेगी। इसके नामकरण की बेला में गर्गाचार्य जी ने जो कहा था, वह सब अब सत्य हो रहा है। उन्होंने कहा था- नन्द, तुम्हारा यह बेटा साक्षात् नारायण के समान है। इसमें सन्देह नहीं। यह बड़ी-बड़ी विपत्तियों से आप लोगों की रक्षा करेगा। अपने पिछले जन्मों में भी इसने दुष्टों का विनाश कर सज्जनों की रक्षा की है। मैं आपके लाला का महत्त्व क्या बतलाऊँ? जो व्यक्ति इससे प्रेम करते हैं, उन्हें शत्रु पीडित नहीं कर सकते, जैसे विष्णु का आश्रय लेनेवाले देवों को असुर पराजित नहीं कर पाते।

तब नन्द बोले- महर्षि गर्गाचार्य ने इसके नामकरण संस्कार के समय कहा था यह सब गोपोंकी, गायोंकी सब विपत्तियोंसे हर समय रक्षा करेगा। इसके साथ प्रीति करनेवालोंको शत्रु पराभूत नहीं कर सकेंगे। यह श्री, कीर्त्ति, प्रभावमें नारायणके समान होगा। इसतरह सभी ब्रजवासियोंकी शंका का समाधान हुआ।

कर्म अलौकिक इसने करने। लखकर तुम नहिं संशय धरने। प्रेम करेगा इसमें जोई। चार पदारथ पावे सोई।।
बड़भागी कुल गोप तुमारा। जिसमें कृष्ण लीन अवतारा।
या विध गर्ग वचन को जोई। सुत में विस्मय मम नहिं कोई।।
नन्दराज वचन सुन, गत विस्मय हो लोक। तात सहित गोपाल पद, पूज गये निज ओक।।

अत: आचार्य गर्ग की बात का विश्वास कर मैं इसे नारायण का अंश मानता हूँ। नन्द की बात सुनकर सारे ब्रजवासियों ने आनन्द में भरकर नन्दबाबा और श्रीकृष्ण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उनकी सारी उत्कण्ठाएँ समाप्त हो गईं। नन्दबाबा के साथ सारे ब्रजवासियों की श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, स्नेह के साथ ही श्रद्धा का भी सागर उमड़ पड़ा। गोप बोले- हे नन्दजी, हम लोग यह भी देखते हैं कि इस बालक का प्रेम ब्रज वासियों में विशेष है और ब्रजवासियों का प्रेम इसमें विशेष है यह अवश्य ही कोई महान् देवता है।

करि मोकूँ आदेश गये घर गर्ग महामुनि। हौ अति विस्मित भयो पुत्रके ग्रहफल शुभ सुनि।।
तबतें जो जिह करे मोइ होवे नहिँ विस्मय। नारायन सुत समुझि सतत विहरौं हौ निर्भय।।
समाधान सबको भयो, करे प्रशंसा नन्दकी। जय बोलें मिलिकें सकल, नन्दनँदन ब्रजचन्द्रकी।।

२१) इन्द्रका गर्वहरण और श्रीकृष्ण का नाम गोविन्द- शुकदेव बोले- परीक्षित्, जब भगवान श्रीकृष्ण ने गिरिराज गोवर्धनको धारण करके मूसलधार वर्षा से व्रज को बचा लिया, तब उनके पास गोलोक से कामधेनु (बधाई देने के लिये) और स्वर्ग से देवराज इन्द्र (अपने अपराध को क्षमा कराने के लिये) आये-

श्रीकृष्ण की अवहेलना करने के कारण लज्जित इन्द्र ने एकान्त में उनके पास जाकर अपने सूर्य के समान चमचमाते हुए मुकुट से उनके चरणों का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया। परम तेजस्वी भगवान श्रीकृष्ण का प्रभाव देख-सुनकर इन्द्र का घमण्ड चूर-चूर हो चुका था। उन्होंने बड़ी विनम्रता से दोनों हाथ जोड़ कर भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा- भगवन्, आपका स्वरूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय एवं ज्ञानधन है। गुणों के प्रवाह से बना हुआ यह संसार रूप प्रपञ्च मायानिर्मित है। आपके स्वरूप को ठीक-ठीक न जानने के कारण ही आप में इसकी प्रतीति होती है। जो परमात्मा को नहीं जानते, उनके लिये प्रपञ्च है किन्तु जो परमात्मा को जानते हैं, उनके लिये यह प्रपञ्च नहीं है।

शुकदेव मुनि बोले कि महाराज, भोर होते ही सब गायें और ग्वालबालों को संगकर अपनी-अपनी छाक ले कृष्ण बलराम वेणु बजाते और मधुर मधुर स्वर से गाते जो धेनु चरावन वन को चले तो राजा इन्द्र समस्त देवताओं को साथ लिए कामधेनु आगे किये ऐरावत हाथी पर चढ़ सुरलोक से चला वृन्दावन में आय बनकी बाट रोक खड़ा हुआ, जब श्रीकृष्ण उसे दूर से आते दिखाई दिये तब गज से उतर नंगे पाँवों, गले में कपड़ा डाले थर-थर काँपता दौड़कर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा और पछताय-पछताय रो-रो कहने लगा कि हे बृजनाथ, मुझ पर दया करो।

मैं अभिमानी गर्व अति किया, राजस तामस में मन दिया।
धनमदकर सम्पत्ति सुख माना, भेद न कछू तुम्हारा जाना।।
तुम परमेश्वर सबके ईश, और दूसरौ को जगदीश।
ब्रह्मा रुद्र आदि वरदाई, तुम्हारी दई सम्पदा पाई।।
जगत्पिता तुम निगम निवासी, सेवत नित कमला भईदासी।
जगके हेतु लेत औतारा। सदाहरत भूमि कौ भारा।।
दूर करौ सब चूक हमारी, अभिमानी मूरख हों भारी।।

जब ऐसे दीन हो इन्द्र ने स्तुति करी तब श्रीकृष्ण दयालु हो बोले कि अब तू कामधेनु के साथ आया इससे तेरा अपराध क्षमा किया पर फिर गर्व मत कीजो क्योंकि गर्व से ज्ञान जाता है और कुमति बढ़ती है इससे अपमान होता है।

जिसे अपने धन का, ऐश्वर्य का, प्रभाव का, तपस्या तथा सिद्धियों का अभिमान हो जाता है, वह दूसरों की बात सुनता ही नहीं, जो ऐश्वर्य और लक्ष्मी के मद से अन्धा हो रहा है वह पुरुष मुझ दण्डपाणि प्रभु को देखता ही नहीं। इसीलिये मैं जिस पर कृपा करना चाहता हूँ उसको ऐश्वर्य भ्रष्ट कर देता हूँ, जिससे वह मेरा निश्चिन्त होकर भजन कर सके।

प्रभुता पाकर जो मुझ दण्डपाणि को न देखकर गुमानी हो जाता है उसकी प्रभुता को मैं हर लेता हूँ तथा मैं दण्ड देकर उसके अभिमान को नष्ट करता हूँ। अब मेरी आज्ञा का पालन करना जाकर अपने गणों के साथ अपने अधिकारों का उपयोग करो। भक्तोंको कोई कष्ट दे तो मुझे सहन नहीं होता।

हम भक्तन के भक्त हमारे। सुन अर्जुन प्रतिज्ञा मेरी यह ब्रत टरहिं न टारे।।

भक्त मेरा है और मैं भक्त का हूँ। ये प्रतिज्ञा कभी छोड़ नहीं सकता। जीवन में कभी अभिमान मत करना इन्द्र।

भक्त हमारे पग धरें वहाँ धरूँ मैं हाथ। सदा संग लागत फिरूँ कबहुँ न छोड़ूं साथ।।

आपके उस रूप में काम, क्रोध और लोभ आदि भावों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रभो, दोषों का होना तो अज्ञान का लक्षण है फिर भी आप धर्म की रक्षा और दुष्टों का दमन करने के लिये कभी-कभी दण्ड को धारण करते हैं।

प्रभो, आप अपने भक्तों की लालसा पूर्ण करने के लिये स्वेच्छा से लीला-शरण धारण करते हैं। इस प्रकार लीला करते

हुए आप हमारे जैसे अभिमानियों के अभिमान का मर्दन भी किया करते हैं। मैं ऐश्वर्य से मदोन्मत्त था। अपने आपको त्रिलोकी का शासक मानता था अत: आपको ठीक-ठीक पहचान न सका। मैं आप से क्षमा-याचना करता हूँ। मेरे अपराध को क्षमा करें और मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे मुझमें कभी ऐसी दुर्बुद्धि उत्पन्न ही न हो। स्वामिन्, आपका अवतार भूतल के भारभूत विधर्मियों के विनाश और भक्तों के कल्याण के लिये समय-समय पर हुआ करता है। मैं आपको बार-बार प्रणाम कर रहा हूँ। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। मेरा प्रयास व्रज विनाश के लिये था। उसे विफल कर आपने मेरा महान् कल्याण किया है अत: मैं आप की शरण में आया हूँ। आप मेरा अपराध क्षमा करें।

भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्र की स्तुति सुनकर मेघ-सदृश गंभीरवाणी में कहा- इन्द्र, तुम धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो गये थे इसलिये तुम पर अनुग्रह करके ही मैंने तुम्हारा यह यज्ञ भंग किया है। यह इसलिये कि अब तुम मुझे नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहो। जो ऐश्वर्य और धन-सम्पत्ति के मद से अन्धा हो जाता है, वह काल स्वरूप मुझे नहीं देख पाता अत: मैं जिस पर अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसे ऐश्वर्य से भ्रष्ट कर देता हूँ।

हे देवराज, तुमको अपने धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्य का मद हो गया था, उसी मद को नष्ट करने के लिये मैंने तुम पर कृपा करके तुम्हारा यह यज्ञ नष्ट किया है जिससे तुम नित्य निरंतर मेरा स्मरण करते रहो। मैं सदा कालरूप परमेश्वर काल दंड लेकर सबके सिर पर सवार रहता हूँ। जिस पर मेरी कृपा होती है पहले मैं उसका ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति नष्ट कर देता हूँ। हे देवराज, मेरी तुम पर असीम कृपा है। अब तुम घमण्ड को त्याग कर अमरावती का शासन करो और नित्य निरन्तर मेरी मर्यादा का पालन करते हुये मेरा स्मरण करते रहो।

मैं जिस पर पूर्णतया अनुग्रह करता हूँ उसे सम्पत्तियों से हीन कर देता हूँ, क्योंकि लक्ष्मी के मद से अन्धा हुआ प्राणी मुझे भूल जाता है।

अत: इन्द्र, तुम्हारा मंगल हो। अब तुम अपनी राजधानी अमरावती लौट जाओ। घमण्ड का परित्याग कर अपने कर्त्तव्य का पालन करो। सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए उचित रीति से मर्यादा का पालन करना।

इन्द्र बोला- महाराज मैं तो ब्रजवास करूँगा। ब्रजवास तो वही कर सकता है, जिसके जीवन में त्याग हो। जब तक जीवन में त्याग नहीं आयेगा, कोई ब्रज में वास नहीं कर सकता। वृन्दावन वास करने से **यह कलयुग का परम प्रतापा। मानस पुण्य होंहि नहिं पापा।।** यह कलियुग का विशेष प्रताप है कि यहाँ मन में सोचने से पुण्य का फल तो कुछ मिल जाता है पर पाप का फल सोचने से भी नहीं मिलता। वृंदावन का चिंतन करने से तभी तो प्रभु प्रसन्न होगे। **याद आयेगी उनको कभी न कभी। कृष्ण दर्शन तो देंगे कभी न कभी। ऐसा विश्वास मन में जमाते चलो।।** गिरिराज को प्रणाम करके इन्द्र चले गये। गिरिराज धरण की लीला में प्रेम ही प्रधान है, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति ये तीनों का संमिश्रण है। बिना भक्ति के ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना भक्ति संभव नहीं।

मेरे गुरु पितृ मातु बन्ध तुम सब कुछ स्वामी। समुझि शक्र मद रहित कहें हरि अन्तरयामी।।
इन्द्र, जाहु निज लोककूँ, मम आयसु पालन करो। कबहुँ न करियो गर्व अब, मम सिख यह हियमहँ धरो।।
तब पुनि बोली सुरभि श्याम तुम लीलाधारी। मम सन्ततिकी विपति धारि गिरि हरि तुम टारी।।
अज अनुमतितें आज आप अभिषेक करावे। शक्र सुरनिके इन्द्र आप गोविन्द कहावें।।
निज पयतें प्रभु रुख निरखि, कर्‌यो धेनु अभिषेक पुनि। हरषे हरि अभिषेक लखि, इन्द्र सहित सुर सिद्ध मुनि।।

परीक्षित्, भगवान इन्द्र को इस प्रकार आज्ञा दे ही रहे थे कि उसी समय मनस्विनी कामधेनु भी अपनी सन्तानों के साथ

वहाँ आई और श्रीकृष्ण को प्रणाम करके बोली- प्रभो, आप लोकनाथ हैं। आज आपने मुझे सनाथ कर दिया। आज से मेरे इष्ट देव और इन्द्र भी आप ही हैं। यदि आपने हमारी सन्तानों की रक्षा न की होती तो इन्द्र ने हमारा सर्वनाश ही कर दिया था।

होइ मदान्ध मारन चहेउ सन्तति सुरभि हमार। राखेउ सन्तति मोर प्रभु नासि सक्र अहँकार।।

यह इन्द्र मदान्ध होकर हमारी सुरभि सन्तति को मारना चाहता था लेकिन आपने इस इन्द्र का अहंकार नष्ट करके मेरी सन्तति की रक्षा की।

अब तो आप ही हमारे स्वामी हैं। अब हम इन्द्र को अपना स्वामी माननेवाली नहीं है। प्रभो, आप ही गाय, ब्राह्मण और देवता- इन सबके इन्द्र बनकर इनका पालन कीजिये। अब हम गायें ब्रह्माजी की प्रेरणा से आपको अपना इन्द्र मानकर अपने दुग्ध से अभिषेक करेंगी। आपही हमारे परम पूजनीय है इसलिए हे नाथ मैं अब आपका अभिषेक करूँगी। ऐसा कहकर अपने पवित्र दूध की धारा से प्रभु के शीषपर प्रसारकर अभिसिंचित किया।

स्वामिन्, पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही आपने अवतार धारण किया है ऐसा कहकर कामधेनु अपनी दुग्ध-धाराओं से श्रीकृष्ण का अभिषेक करने लगी। यह देखकर इन्द्र को अपनी कमी मालूम पड़ी। उन्होंने भी तुरन्त आकाशगंगा का जल मँगवाया और देवताओं तथा ऋषियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किया और उनका नाम गोविन्द रखा। जो गायों की रक्षा करता है, वह गोविन्द है; जो इन्द्र बनकर देवताओं की रक्षा करता है, वह गोविन्द है। जो इन्द्रियों की रक्षा करता है, उनको आकृष्ट करता है, वह गोविन्द है।

निज संतान समेत तब, सुरभि धेनु नर भूप। कर प्रणाम जगदीश पद, बोली वचन अनूप।।
जय कृष्ण केशव कृष्ण केशव, कृष्ण केशव श्रीहरे। भवरूप भव के हेत भवभव, नाथ भव से तुम परे।।
गिर धार कर वर कंज में मम, वंश प्रभु ने रख लिया। तुम परम दैवत नाथ मम निज, इन्द्र तुमको हम किया।।
गो विप्र सुर के हेत तुमने, देव यह तनु धारिया। भूभार रूप अपार प्रभु तुम, असुर कुल संहारिया।।
गो प्राण त्राण परायणातम, नर नारायण खल अरी। अभिषेक हित तब ईश मोको, ब्रह्म ने आज्ञा करी।।
व्रजनाथ अनाथ सुनाथ प्रभो, हमको तुम नाथ सनाथ करा।
तव नाम अनंत अनंत विभो, अब गोविन्द ये तव नाम धरा।।
तिसको यह नाम महातरणी, जन चाहित जो भवसिंधु तरा।
यह गारुड़ मंत्र मणि तिसको, भव व्याल विषानल संग जरा।।
गो पृथ्वी रविकर सुरभि, वागिन्द्रिय शशि वार। तैश्च तांश्च यो विन्दते, तं गोविन्द उचार।।
पुष्प वृष्टि कर कृष्ण पर शक्र सुरभि सुरवाम। गुण गावत गोविन्द के, गमने निज निज धाम।।

कामधेनु ने इन्द्र से कहा- मेरे साथ वृन्दावन चलकर हमारे गोपाल का गायोंके इन्द्रपदपर अभिषेक कर आ।

कामधेनु ने स्तुति की- हे सच्चिदानन्द घनस्वरूप महायोग योगेश्वर परमात्मन्, आप स्वयं विश्व हैं और विश्व को उत्पन्न करनेवाले हैं किन्तु इतना होने पर भी आप विकारों से रहित हैं, आप अच्युत हैं। इस इन्द्र ने ब्रज में मेरे स्वरूप में रहनेवाली गायों को मारने की चेष्टा की किन्तु आपने हमारी रक्षा की। आप हमारे आराध्य देव हैं। हे प्रभो, आप हमारे इन्द्र हैं और गौ, ब्राह्मण तथा साधुओं की रक्षा करनेवाले हैं। हम गौएँ ब्रह्माजी की आज्ञा से आपको इन्द्र मान कर इन्द्र पद पर अभिषेक करेंगी।

कामधेनु अपने दुग्ध और ऐरावत द्वारा लाये हुए आकाश गंगा के जल से भगवान् का अभिषेक करने लगीं। इन्द्र ने नारद आदि देवर्षियों सहित भगवान् का अभिषेक किया और उनका नाम गोविन्द रखा। हे राजन्, श्रीकृष्ण का अभिषेक होने के

उपरान्त जीवों का वैरभाव दूर हो गया।

जब इन्द्रका मान-मर्दन हो गया तब वे कामधेनुके साथ आये। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की और उनको गोविन्द-पदपर, उपेन्द्र पदपर अभिषिक्त किया। लेकिन कामधेनु तो कह बैठी कि इन्द्र देवताओंके इन्द्र रहें तो रहें, हम सब गौएँ इन्द्रको अपना इन्द्र नहीं मानेंगी। तबसे गौओंके इन्द्र स्वर्गके इन्द्र नहीं, साक्षात् भगवान् गोविन्द-गोपाल गौओंके इन्द्र हैं।

आप सम्पूर्ण चराचर जगत् के एकमात्र अधीश्वर हैं। हे महायोगिन, आप सम्भव असम्भव सब कुछ करने में समर्थ हैं। हे विश्वात्मन्, आप घट-घट की जाननेवाले हैं। हे विश्व की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के एकमात्र स्थान, यह जगत् आपका लीला विलास मात्र ही है। हे अच्युत। आप वास्तव में लोकनाथ हैं। आपके द्वारा गोजाति भी सनाथ हो गयी। इन्द्र तो क्रोध में भर के मेरी सन्तानों को मारने के लिये उद्यत ही था। आपने ही अपने योग प्रभाव से गिरिराज गोवर्धन को छतरी की भाँति उठाकर गोजाति की रक्षा की। हे जगत्पते, आप हमारे परम पूजनीय देव हैं। आप हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करें। हम आपके चरणों में कुछ निवेदन करना चाहती हैं।

भगवान से कहा- प्रभो, आप सदा ही गौ, ब्राह्मण, देवता तथा साधु सन्तों की रक्षा के लिये अवतार धारण करते हैं। हम चाहती हैं आप गौओं के इन्द्र बनें। हम आपको गोविन्द की उपाधि से विभूषित देखना चाहती हैं।

कामधेनु ने कहा- प्रभो, इन्द्र तो वही होता है, जो विपत्ति से रक्षा करे। इन्द्र ने तो जान बूझकर गौओं को विपत्ति में डालने का प्रयत्न किया। रक्षा तो आपने ही की। अत: हम अपनी श्रद्धा भक्ति व्यक्त करने के निमित्त आपको इन्द्र बनाना चाहती हैं। कृपा करके आप हमारी इस विनय को स्वीकार कर लें।

अदिति ने कहा- भगवन, आप तो चराचर विश्व के इन्द्र हैं। गौओं का इन्द्र होना यह तो आपके महत्व को घटाना है। इन्द्र तो इसमें अपना सौभाग्य समझेगा। इससे उसका गौरव और बढ़ेगा। वह स्वयं अपने ऐरावत की सूँड़ द्वारा लाये हुए आकाश गंगा के जल से आपका अभिषेक करेगा।

कामधेनु ने अपने दिव्य दूध से यशोदानन्दन का अभिषेक किया। तदनंतर ऐरावत की सूँड़ से लाये हुए गङ्गा जल से इन्द्र ने भगवान का अभिषेक किया। सभी ने मिलकर विधिवत् भगवान की पूजा की।

यों गिरिवर हरि धारि इन्द्र मख भङ्ग करायो। करि मदमर्दन फेरि क्षमा करि मान बढ़ायो।।
हरि आयसु लै इन्द्र सुरभि निज लोक सिधाये। कुञ्ज विहारी करत केलि वृन्दावन आये।।

देवी सुरभि आकाशमें ठीक उनके ऊपर इस प्रकार हो गयीं कि उनके चारों स्तनोंसे झरती दुग्धधारा श्रीकृष्णको सिंचित करने लगी। ऐरावतने आठों सूंड़ोंसे आकाशगंगाका जल स्वर्णघटोंमें लाया था। उससे स्नान कराने लगा। सुरभि ने कहा- आश्विन और कार्तिक आपकी पूजाके मास रहेंगे। मार्गशीर्ष पहिलेसे ही आपका मास है। आश्विनमें सरिता-सरोवरोंका जल स्वच्छ हो जाया करेगा।

शुकदेव बोले- राजन्, जब गोवर्धन पर्वत को धारण करके भगवान श्रीकृष्ण ने व्रज की मूसलाधार वृष्टि से रक्षा की। तब उनके समीप गोलोक से सुरभि गौ और अपने लोक से इन्द्र आये।

व्रजकी रक्षा करी कृष्णने यश जग छायो। लज्जित ह्वैकें इन्द्र स्वर्गतें प्रभु ढिँग आयो।।
कामधेनु गोलोक त्यागि सेवामहँ आई। आय शक्र अति सकुचि मधुर स्वर विनय सुनाई।।
कर जोरें शतक्रतु कहे, शुद्ध सत्वमय नाथ तुम। प्रभो, छिमहु अपराध अब, माया मोहित जीव हम।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, श्री भगवान इस प्रकार इन्द्र को आज्ञा दे ही रहे थे कि उसी समय मनस्विनी कामधेनु ने अपनी

सन्तानों के साथ गोपवेषधारी परमेश्वर श्रीकृष्ण की वन्दना की- हे सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण, आप महायोगी हैं। योगेश्वर हैं। आप स्वयं विश्व और विश्व के परम कारण एवं अच्युत हैं। हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी। आपको अपने रक्षक के रूप में प्राप्त करके आज हम सनाथ हो गयी हैं। फिर कामधेनु (सुरभि) ने अपने दूध से और देव माताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने, ऐरावत की सूँड़ के द्वारा लाये हुए आकाशगंगा के जल से देवर्षियों के साथ परंब्रह्म यदुवंश शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण को गोविन्द नाम से सम्बोधित करके अभिषेक किया। उसी समय वहाँ उपस्थित नारद जी तुम्बरु आदि ऋषि-मुनि देवताओं ने स्तुति करते हुए नन्दनवन के पुष्पों की वर्षा की। उस समय तीनों लोगों में आनन्द की बाढ़ सी आ गयी थी लोग भगवान् गोविन्द की लीलाओं का वर्णन करके नृत्य कर रहे थे। परीक्षित्, देवराज इन्द्र ने इस प्रकार गौ और गोकुल के स्वामी भगवान् गोविन्द जी का अभिषेक किया और उनसे आज्ञा प्राप्त करके देवता-गन्धर्व आदि के साथ अपनी राजधानी अमरावती को लौट गया।

उस समय देवताओं ने भगवान के यश का गान किया तथा अप्सराओं ने नृत्य किया। उस समय नदियों में अनेक प्रकार के रसों की बाढ़ आ गयी। पृथ्वी में अनेक प्रकार की औषधियाँ पैदा हो गयीं। क्रूर जीव भी वैरहीन हो गये।

ले गंगाजल इन्द्र ने, कियौ तिलक ब्रजराज। चरण शीश धरि विनय करि, कीन्ह सुरन्ह के काज।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, ऐसा कह कर उस कामधेनु ने अपने दूध से और देवमाताओं की आज्ञा से तथा देवराज इन्द्र ने ऐरावत की सूँड़ में लाये हुए आकाश गंगा के जल से समस्त देवर्षियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण जी का अभिषेक किया और उनको गोविंद नाम से पुकारा। नारद, तुम्बुर, विद्याधर आदि गन्धर्व तथा अप्सरायें पहले से ही वहाँ आ गईं थीं। वे सब उनके पवित्र गुणों का वर्णन करने लगीं। उन पर नन्दन वन के पुष्पों की वर्षा होने लगी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। इस प्रकार इन्द्र ने गौ और गोकुल के स्वामी श्री गोविन्द का अपने हाथों से अभिषेक किया और उनसे आज्ञा ले अपने लोक को चला गया।

जिस समय श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ, नदियोंमें नानाप्रकारके रस बहने लगे, वृक्षोंसे मधुक्षरण होने लगा और पृथ्वीमें बिना जोते-बोये औषधियाँ उगने लगीं। पहाड़ोंमें छिपे हुए मणि प्रकट हो गये और प्राणी निर्भय हो गये।

सुरभि- पूर्वकाल में वृंदावन नामक वन में सुरभि का जन्म हुआ। एक बार भगवान श्रीकृष्ण कौतूहलवश राधा एवं अन्य गोपियों समेत वृंदावन गए। वहां पहुंचने पर वे एकांत में छिप गए। स्वेच्छापरायण उन्हें दुग्धपान की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने उसी समय अपने वामपार्श्व से सुरभि देवी की लीलापूर्वक रचना की, जो बछड़े के साथ अत्यंत सुंदर लग रही थी। भगवान ने रत्न के पात्र में सुरभि का दोहन किया और अमृत के समान उस दूध का पान किया। वहां दुग्ध-पात्र के किसी प्रकार गिर जाने से दुग्ध का सरोवर उत्पन्न हो गया, जो चारों ओर से सौ योजन लंबा-चौड़ा था। गोलोक में वही क्षीरसागर नाम से प्रख्यात है।

अमृत पीकर जब भगवान प्रजापति पूर्ण तृप्त हो गए, तब उनके मुख से सुरभि (मनोहर गंध) निकलने लगी। सुरभि गंध के निकलने के साथ ही सुरभि नामक गौ प्रकट हो गई, जिसे प्रजापति ने अपने मुख से प्रकट हुई पुत्री के रूप में देखा। उस सुरभि ने सौरभेयी नाम की बहुत-सी गौओं को उत्पन्न किया जो संपूर्ण जगत के लिए माता के समान थी। उन सभी का रंग सुवर्ण सदृश कांतिवान था। वे सभी प्रजाजनों के कल्याण के लिए दूध देनेवाली थीं।

मुनिवर नारद ने यह वृत्तांत देवराज इंद्र के सारथी मातलि को रसातल का भ्रमण करते हुए बताया- पूर्वकाल में जब लोकपितामह ब्रह्मा अमृतपान करके तृप्त हो रहे थे, और अपने मुख से अमृत का सारभाग निकाल रहे थे, उसी समय उनके मुख से अनिंदिता सुरभि का प्रादुर्भाव हुआ था। इस प्रकार गोमाता सुरभि अमृत से उत्पन्न हुई हैं जो पृथ्वी के सातवें तल रसातल में निवास करती हैं। ये सुरभि पृथ्वी के सारतत्त्व से प्रकट छः रसों के सारभाग से संयुक्त एवं सर्वोत्तम दिव्य एक

रसरूप क्षीर को सदा अपने स्तनों से प्रवाहित करती रहती हैं। सुरभि की पुत्री-स्वरूपा चार अन्य गौएं हैं जो सभी दिशाओं में निवास करती हुई उनका धारणपोषण करती हैं। ये गौएं हैं- पूर्व दिशा की सुरूपा, दक्षिण दिशा की हंसिका, पश्चिम दिशा की सुभद्रा तथा उत्तर दिशा की सर्वकायदुधा। देवताओं न असुरों के साथ मिलकर मंदराचल को मथानी बनाकर इन्हीं धेनुओं के दूध से मिश्रित क्षीरसागर की दुग्धराशि का मंथन किया था।

जिस समय श्रीकृष्ण का अभिषेक हुआ, उस समय देवता-गण आकाश से पुष्प-वृष्टि करने लगे, नदियों में नाना प्रकार के रस प्रवाहित होने लगे, वृक्ष मधु-धारा बहाने लगे और पृथ्वी बिना जोते-बोये विविध औषधियाँ उत्पन्न करने लगी, पर्वतों में छिपे हुए रत्न प्रकट हो गये और सारे प्राणी निर्भय बन गये। इस प्रकार गोविन्द पद पर भगवान श्रीकृष्ण का अभिषेक करने के अनन्तर देवराज इन्द्र उनसे अनुमति लेकर स्वर्ग चले गये।

श्रीकृष्ण का अभिषेक होने पर गिरिराज गोवर्धन प्रसन्नता से फूल उठा। उसमें द्रवता आ गई। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर ऊपर अपना कर-कमल रक्खा। कहते हैं, उसका चिन्ह अब भी दिखलाई पड़ता है।

इन्द्र ने आकाश-गंगा के जल से श्रीकृष्ण का अभिषेक किया था। उससे वहाँ मानसी गङ्गा का प्रादुर्भाव हुआ। कामधेनु ने अपने दूध से अभिषेक किया था। उससे वहाँ एक कुण्ड बन गया। उसको लोग गोविन्द कुण्ड कहते हैं। यह कुण्ड आनोर गाँव के पास है जिसके अन्दर ये अभिषेक का जल और दूध आकर गिरा था। इसलिए इसका नाम गोविन्द कुण्ड पड़ गया। इसमें स्नान करनेवाले व्यक्ति के महापातकों का विनाश हो जाता है। भक्तों का कहना है कि इसमें श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति को आज भी कभी-कभी दूध का स्वाद प्रतीत होता है।

गोवर्धन एक बहुत बड़े पहाड़ का नाम है। भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों को इन्द्र की पूजा करने की परंपरा को तोड़ने के लिए कहा। अपना वर्चस्व टूटता देखकर इन्द्र क्रोधित हो गया। कुपित होकर वह बृजवासियों को बाढ़ में डुबो देना चाहता था। उसने भयंकर बरसात शुरू कर दी। जल थल होने लगा, नगर डूबने लगा। नगरवासी सहम गए। भगवान श्रीकृष्ण ने सबको एक स्थान पर एकत्रित किया। गोवर्धन की पूजा अर्चना की, फिर उस पर्वत को अपनी उंगुली पर उठा लिया। उनके साथियों ने भी सहायता की। किसी ने छड़ी लगाकर सहारा दिया, किसी ने हाथ का, कन्धे का सहारा दिया। पर्वत ने सारी वर्षा सोख ली एवं किसी को भी जरा नुकसान नहीं हुआ। इन्द्र का अहंकार चूर-चूर हो गया। उसने भगवान श्रीकृष्ण से क्षमा मांगी एवं बृजवासियों को कभी कष्ट न पहुंचाने काआश्वासन दिया। भगवान श्रीकृष्ण भगवान विष्णु का अवतार हैं। भगवान विष्णु ने सदा इन्द्र की सहायता की है। उसके प्राणों की सदा रक्षा की। उसके सिंहासन की रक्षा की। इन्द्र भी भगवान विष्णु का उपासक हैं, भक्त है लेकिन वह भगवान श्रीकृष्ण से क्यों चिढ़ गया? क्यों वह हर समय पंगे लेता रहता है? उसे भगवान श्रीकृष्ण बहुत अच्छे लगते हैं। उनकी सल्तनत में कोई अवरोध पैदा करे, उसे गवारा नहीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने ग्रामीण संस्कृति को अर्थशास्त्र की धुरी बताया था। जब ग्रामीण क्रान्ति उच्च शिखर पर होती है, तब देश सबल होता है। कंस का संहार करने से पहले उन्होंने अपने समाज को सबल बनाया था। उन्होंने बताया कि स्वयं सबल बन कर ही पाप से टक्कर ली जा सकती है। भगवान श्रीकृष्ण ने जनता के चरित्र को भी बखूबी प्रस्तुत किया। जनता अधिकतर मूढ़ परंपराओं में बंधी होती है। यदि वह परंपराओं से मुंह मोड़ने का साहस करे तो उसे अनिष्ट की चिंता सताने लग जाती है। परंपराओं को तोड़ना नदी के वेग को मोड़ने जैसा असाध्य कार्य है। उस समय जनता में यह मूढ़ मान्यता व्याप्त थी कि यदि इन्द्र की उपासना न की जाए तो वह वृजवासियों पर कोप करेगा एवं बृज को भयंकर बाढ़ का सामना करना पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण भक्ति में डर को निकाल देना चाहते थे। वे चाहते थे कि भक्ति प्रेमवश की जाए। इसी कारण उन्होंने इन्द्र की पूजा का

विरोध किया। इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं है। वह एक शक्ति है। यदि वह जल बरसाता है तो हमारे पास जल भंडारण के साधन होने चाहिए, जंगल होने चाहिए, पेड़ पौधे होने चाहिए तो उसका बरसाया जल हमारे लिए वरदान बन जाएगा। यदि हमने पर्यावरण को नष्ट कर दिया है जंगल काट दिए हैं, हमारे पास जल भंडारण के संसाधन मौजूद नहीं तो इन्द्र का कोप बाढ़ के रूप में अवश्य प्रलय लाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने जनता को समझाना चाहा कि बृज का पर्यावरण सुदृढ़ अवस्था में है, डरने की आवश्यकता नहीं है लेकिन जनता का डर उनके आत्मविश्वास में बाधा बन रहा था। ऐसे में भगवान श्रीकृष्ण ने एक खेल खेला। इन्द्र भी स्वयं बने एवं गोवर्धन भी स्वयं। खूब बरसात कर दी। जनता डर गई। सब गोवर्धन पर्वत के नीचे खड़े हो गए। भगवान ने गोवर्धन की पूजा अर्चना इस मकसद से की कि पर्यावरण सुरक्षा के लिए पर्वतों का कितना महत्व है।

ग्रामों, घरों में बन-निर्झरों में, अट्टालिकाओं कुटियाघरों में।
हैं गूँजते नाम यही सभी में, गोविन्द दामोदर माधवेति। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
बारिश की प्रेममयी तरँगें, भावों की ये भाव भरी उमँगे।
संकेत द्वारा दिन-रात गातीं, गोविन्द दामोदर माधवेति।। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
दीनों-अनाथों, दलितों-क्षुधार्तों, सर्वस्वहीनों रमणीविहीनों।
के चित्त में भी यही याद आती, गोविन्द दामोदर माधवेति। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
विद्यानुरागी निज पुस्तकों में, अर्थानुरागी धनसञ्चयों में।
ये ही निराली ध्वनि ढूँढ़ते हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
देहात्मवादी, परमाणुवादी, साम्राज्यवादी अथ साम्यवादी।
गाते यही हैं मन मार सारे, गोविन्द दामोदर माधवेति। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
सद्ग्रन्थ, षड्दर्शन, वेदचारों, इञ्जील देखो कुरआँ विचारो।
पावो सभी में यह मन्त्र प्यारे, गोविन्द दामोदर माधवेति। गोविन्द दामोदर माधवेति, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।

राजा परीक्षित् बोले- गिरिराज गोवर्धन की उत्पत्ति और उसका क्या माहात्म्य है? पर शुकदेव बोले- राजन्, एक समय भगवान श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए भूलोक आते समय श्रीराधाजी से भी उनके साथ चलने को कहा। इस पर श्रीराधाजी ने कहा- जहाँ वृन्दावन, यमुना और गोवर्धन नहीं, वहाँ मेरे मन को सुख शान्ति प्राप्त न हो सकेगी।

अत: यदि इन स्थलों का भूलोक में आप निर्माण कर सकें तो मैं वहाँ चल सकती हूँ। यह सुनकर भगवान् ने अपने हृदय की ओर दृष्टिपात किया। तत्क्षण उनके हृदय से प्रेमांकुर के रूप में सजल तेज निकलकर गोलोक की रासभूमि पर गिर पड़ा और वह पर्वत के आकार में परिणत हो गया। वह पर्वत रत्नमय नाना श्रृङ्ग, सुन्दर झरने, कदम्ब आदि वृक्ष एवं कुञ्जों से सुशोभित था। उसमें और भी नाना प्रकार की दिव्य सामग्रियाँ थीं। उसे देख श्रीराधाजी बहुत प्रसन्न हुई भगवान की प्रेरणा से शाल्मलीद्वीप में द्रोणाचल की पत्नी से गोवर्धन का जन्म हुआ। भगवान के जानु से वृन्दावन और वाम-स्कन्द से यमुना प्रकट हुई। गोवर्धन का जन्म सुनकर हिमालय सुमेरू आदि बड़े-बड़े पर्वत वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने उसे भगवद्रूप जानकर बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया और पूजन कर उसकी स्तुति की और गिरिराज बनाकर सब अपने-अपने धाम को चले गये।

एक समय तीर्थयात्रा करते समय पुलस्त्य मुनि दैवात् वहाँ आ पहुँचे। वे गोवर्धन को देखकर मुग्ध हो गये और द्रोण के समीप जाकर बोले- मैं काशी निवासी ब्राह्मण प्रार्थी होकर आपके समीप आया हूँ। आप इस पुत्र को मुझे दे दें। मैं इसे काशी में स्थापित कर वहीं तप करूँगा। यह सुनकर द्रोण के नेत्रों से पुत्र स्नेह के आँसू भर आये। इधर मुनि के शाप का

भी भय था। अन्तत: द्रोण ने विवश हो गोवर्धन को ले जाने की अनुमति दे दी। बाद में गोवर्धन ने स्वयं मुनि से कहा- महाराज मैं दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा हूँ आप मुझे ले कैसे जायेंगे। पुलस्त्य ने कहा-

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम्। वाहयामि करे त्वां वै यावत्काशीसमागम: ।।

वत्स, तुम मेरे हाथ पर बैठकर सुखपूर्वक चलो। जब तक काशी नहीं आती तब तक मैं तुम्हें वहन करता रहूँगा। गोवर्धन ने कहा- मुनिराज, एक शर्त है। यदि आप मुझे कहीं मार्ग में रख देंगे तो मैं फिर उठ न सकूँगा। मुनि ने यह शर्त सहर्ष स्वीकार की। बाद में गोवर्धन मुनि के हाथ पर बैठ गये। वे उन्हें धीरे-धीरे ले चले। ब्रजभूमि आने पर गोवर्धन की पूर्व स्मृति जाग उठी। वे मन में सोचने लगे- कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के नायक भगवान श्रीकृष्ण राधारानी के साथ जहाँ अवतीर्ण होकर बाल्य, पौगण्ड, किशोर आदि अवस्थाओं की दानलीला, मानलीला आदि बहुत-सी लीलाएँ करेंगे। इसलिए मैं यहाँ से जाऊँगा नहीं। ऐसा विचारकर गिरिराज बड़े भारी हो गये। जिससे मुनि थक गये। वे उन्हें पृथ्वी पर रखकर लघुशंका करने गये। बाद में स्नानादि से शुद्ध हो वे जब उठाने लगे तो वे उठ न सके। मुनि ने कहा- गिरिराज, क्या नाराज हो गये? उठो अपना अभिप्राय कहो। गोवर्धन ने कहा- मुनिराज। मैंने शर्त की थी और आपने सहर्ष स्वीकार भी किया था। तदनुसार अब मैं यहाँ से उठूँगा नहीं। यह सुनकर मुनि क्रोध से लाल हो गये और शाप देते हुए बोले- तुम बड़े धृष्ट हो। तुमने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, इसलिए तुम प्रतिदिन तिल-तिल घटते जाओगे। मुनि के चले जाने पर गिरिराज शापवश आजतक तिलतिल घट रहे हैं।

नित्यं संक्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने।

फिर भी जब तक गंगा और गोवर्धन पृथ्वी पर हैं तब तक संसार में कालिका प्रभाव पूर्णरूप से न जम सकेगा।

नित्य गोलोकविहारी श्रीकृष्ण के संसर्ग में जो भी है सब चिन्मय है। जड़ता का तो वहाँ नाम भी नहीं। जैसे यहाँ पर वृन्दावन है वैसे ही गोलोक में भी दिव्य वृन्दावन है। यहाँ की भाँति वहाँ भी कालिंदी है, गिरिराज गोवर्धन पर्वत है। जब अनंतकोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्ण गोलोक से अपने समस्त परिवार के सहित पृथ्वी पर अवतरित हुए, तब यह गोवर्धन पर्वत भी आया। यह भगवान का नित्य सहचर है, इसके बिना भगवान रह ही नहीं सकते। जैसे भगवान के अवतार में हेतु बताते है कि स्वायंभुवमनु और शतरूपा ने तपस्या करके वर प्राप्त किया कि भगवान हमारे पुत्र हों। द्रोण और धरा ने वर माँगा कि सर्वेश्वर हमारे सुत हों। वैसे ही इस पर्वत के ब्रज में पधारने का कारण बताते हैं। ये सब कारण गौए हैं, लीलाविस्तार के लिये तथा संगति मिलने के लिये हैं। वास्तविक बात तो यह है कि यह सब लीलाधारी की लीला है, गोलोकविहारी का खेल है। जब वे अपनी श्रुत मधुरलीलाओं को भक्तों के कल्याणार्थ पृथ्वी पर प्राप्त करना चाहते हैं, तब वे ये सब उपकरण खड़े कर देते हैं। करने करानेवाले ये ही वृन्दावन विहारी हैं।

भगवान ने प्रसन्न होकर इन्हें अपना स्वरूप ही प्रदान किया, इसीलिये गोवर्धन पर्वत के दर्शन करना भगवान् के दर्शन करने के समान है। निष्ठावान वैष्णव इनकी शिलाओं पर पैर नहीं रखते औरउनका भगवद् बुद्धि से पूजन अर्चन करते हैं इसीलिये अत्यंत छोटे होने पर भी ये गिरिराज कहलाते हैं, जहाँ पर्वतों की गणना होती है, वहाँ इनका भी नाम आता है। ये संसार में परम भाग्यशाली हैं। गोपिकायें इनकी इतनी महिमा गाती हैं।

एक समय गोमती तीरवासी विजय नामका ब्राह्मण अपना ऋण लेने मथुरा गया। वहाँ अपना कार्य समाप्तकर जाते समय गोवर्धन का एक गोल पत्थर उठाकर ले गया। मार्ग में उसने एक बड़ा भयंकर राक्षस देखा, उसके हृदय में सुख, तीन पैर, छ: भुजायें एक हाथ की नासिका, सात हाथ की जिह्वा, बड़े-बड़े दापँत एवं लाल-लाल नेत्र थे। ब्राह्मण ऐसे विकराल

राक्षस को देखकर थर-थर काँप उठा और मारे भय के कहीं भाग भी न सका केवल रोने लगा। तब तक वह भूखा राक्षस घुरघुराता हुआ उसके सामने आ खड़ा हुआ। ब्राह्मण से और कुछ तो बना नहीं उसने वह गोवर्धन का पत्थर ही उसपर दे मारा। उसके स्पर्श मात्र से उसने राक्षस शरीर त्यागकर दिव्य शरीर धारण किया और ब्राह्मण के चरणों पर गिरकर बोला- हे ब्राह्मण देवता, अपने इस पाषाण के प्रहार से मेरा उद्धार कर दिया। मैं पूर्व जन्म में एक बड़े धनवान वैश्य का पुत्र था। बाल्यावस्था से ही मैं कुमार्गगामी हो गया था। मदिरा पीकर वेश्याओं के घर पड़ा रहता था। माता-पिता और स्त्री सभी मुझे बहुत डाँटा करते थे। पर मेरी कुचाल में कुछ अन्तर नहीं पड़ा। नित्य के कलह और अपमान से ऊबकर एक दिन मैंने विष देकर माता-पिता को मार डाला और स्त्री की भी तलवार से हत्या कर डाली। धन के लोभ में मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्यायें भी की। कोई पापकर्म मुझसे बचा नहीं। एक दिन मैं मांस की इच्छा से मृगों को मारने वन में गया। वहाँ मुझे एक सर्प ने डस लिया और मेरी तत्काल मृत्यु हो गयी। मैं नाना प्रकार की नरकयातनाएँ भोगकर इस राक्षस योनि में आया। एक दिन मैं किसी शूद्र के शरीर में प्रविष्ट हो व्रज में गया। तुरन्त कृष्ण भगवान के पार्षदों ने मुझे मारकर भगा दिया। बहुत दिनों का भूखा मैं आज आपको खाने आया था। आपने गिरिराज के पाषाण से प्रहारकर मेरा उद्धार कर दिया। गन्धमादन की यात्रा तथा नाना प्रकार के पुण्यों और तपस्याओं से जो फल प्राप्त होता है उससे भी कोटिगुण अधिक गोवर्धन के दर्शन का फल होता है।

उसके यह कहते ही आकाश से एक दिव्य विमान उतरा। उस पर चढ़कर वह सीधा गोलोक चला गया। ब्राह्मण यह दृश्य देखकर चकित रह गया। वह पुन: वहाँ से लौटकर गोवर्धन गया और वहाँ प्रेम से गोवर्धनकी पूजा और प्रदक्षिणा कर उनका महत्व गाते-गाते घर चला गया।

हे राजन्, इस प्रकार मैंने भगवान श्रीकृष्ण का यह परमपावन चरित्र और गिरिराज का महोत्सव तुम्हें सुनाया। यह मनुष्यों के समस्त महापापों का नाश करनेवाला है।

२२) वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाना और गोपोंको वैकुण्ठ धाम का दर्शन कराना-

वरुण लोक में नन्द ने, देखा कृष्ण स्वरूप। विनय करत सब चरण परि, गावें सुयश अनूप॥

ब्रह्मा और इन्द्र के पराभव हो जाने के बाद अब वरुण के पराभव की बारी आई। वरुण इन्द्र के बाद दूसरे क्रमांक के देवता हैं।

ब्रजवासी सब लोकपालोंके सम्मान्य हैं। उनके स्वभाव में, आचरण में भागवत धर्म आश्रय पाता है, उसका प्रतिपालन होता है। जगतके जीव उन्हींसे भागवत धर्मका आदर्श ग्रहण करते हैं। प्रबोधिनी एकादशी को व्रजके पशु तक व्रत करते हैं।

नन्द-यशोदा को लाला हो- ऐसा विचार कर व्रज-मण्डल के सारे गोपी-गोप एकादशी का व्रत करते थे। नारायण को प्रसन्न करने के लिये एकादशी सर्वोत्तम व्रत है। घर में लाला के आ जाने के बाद भी नन्द का एकादशी व्रत विधि-विधान के साथ चलता रहा।

हरिवासर व्रत करें सबहि ब्रजमहँ नर नारी। निर्जल कछु फल खाईं रहें कछु दूधाधारी॥
एकादशी पुनीत सुदी कातिककी आई। निराहार ब्रजराज रहे दिन दयो बिताई॥
जानि प्रात उठि चलि दये, स्नान करन यमुना निकट। धरि पट जलमहँ घुसि गये, जानी नहिँ बेला विकट॥

शुकदेव बोले- परीक्षित्, नन्द बाबा ने कार्तिक शुक्ल एकादशी का उपवास किया और भगवान की पूजा अर्चना की। एकादशी व्रत का प्राण है द्वादशी तिथि में पारण करना।

जैसे देवताओं में श्रीकृष्ण है, वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, देवताओं में जैसे गणेश, शास्त्रों में वेद, तीर्थों में गंगा, धातुओं में सुवर्ण, जीवों में वैष्णव, धनों में विद्या, साथियों में जैसे धर्मपत्नी, प्रमथों में रुद्र, श्रेय करनेवालों में जैसे बुद्धि, इद्रियों में जैसे

आत्मा, चंचलों में जैसे मन, गुरुओं में माता, प्रियों में जैसे पति, बलवानों में जैसे देव, गणना करनेवालों में काल, मित्रों में जैसे सौशील्य, शत्रुओं में रोग, कीर्तिमन्तों में कीर्ति, घरवालों में जैसे घर, हिंसक में खल, दुष्टों में जैसे पुश्चली, तेजस्वियों में सूर्य, सहिष्णुओं में पृथ्वी, खाने वाले पदार्थों में अमृत, जलानेवालों में अग्नि, धन देनेवालों में लक्ष्मी, सती साध्वियों में जैसे शिव प्रिया सती, प्रजापतियों में ब्रह्मा, जलाशयों में सागर, वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्री, वृक्षों में पीपल, पुष्पों में तुलसी मञ्जरी, मासों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, रुद्रों में शंकर, वसुओं में भीष्म, वर्षों में भारतवर्ष, देवर्षियों में नारद, ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजाओं में राजा रामचन्द्र, सिद्धों में कपिल, ज्ञानी योगियों में सनत्कुमार, हाथियों में ऐरावत, पशुओं में शरभ, पर्वतों में हिमालय, मणियों में कौस्तुभमणि, पुण्यस्वरूपिणी नदियों में जैसे सरस्वती, गन्धर्वों में चित्ररथ, यक्षों में कुबेर, राक्षसों में सुमाली, स्त्रियों में शतरूपा, मनुओं में स्वायम्भुवमनु, सुन्दरी अप्सराओं में रम्भा और जैसे समस्त माया करनेवालियों में माया सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही समस्त व्रतों में एकादशी व्रत सर्वश्रेष्ठ है।

पहले प्रहर सब कोई जागे, दूसरे प्रहर भोगी। तीसरे प्रहर तस्कर जागे, चौथे प्रहर जोगी ।।

दूसरे दिन अतिप्रात: काल द्वादशी समाप्त हो रही थी अत: नन्द बाबा ने आधीरात के बीतने पर स्नान करने के लिये यमुना जी के जल में प्रवेश किया। उन्हें यह मालूम नहीं था कि यह आसुरी बेला है। आसुरी बेला में जल में प्रवेश वर्जित है। रात्रि के बारह से सुबह साढ़े तीन का समय जलचरों के लिए विश्रांति का समय है। इस समय में स्नान करना निषिद्ध माना गया है।

जल में प्रवेश करते ही वरुण के एक सेवक असुर ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें अपने स्वामी के पास ले गया।

यदि रात्रि में आसुरी बेला में ही द्वादशी समाप्त हो रही हो तो उसमें भी स्नान कर लेना शास्त्र-विरुद्ध नहीं है अत: नन्द बाबा का आसुरी बेला में यमुना जल में प्रवेश धर्म-विरुद्ध नहीं था किन्तु वरुण के दूत को यह धर्म का मर्म मालूम नहीं था अत: वह नन्दबाबा को पकड़ कर वरुण के पास ले गया।

व्रजराज नंद स्नानके लिये ब्रह्ममुहूर्तसे मात्र कुछ पल पूर्व कालिन्दीमें प्रविष्ट हुए, यह उनका प्रमाद नहीं माना जा सकता। यह तो उनकी सतर्कता, पालनीय सत्कर्मके प्रति श्रद्धा थी।

सर्वतोभद्र- जल के स्वामी वरुणदेव का निवासस्थान। देवराज इंद्र के सारथी मातलि अपनी पुत्री गुणकेशी के लिए वर की खोज में रसातल की ओर जा रहे थे। उसी समय महर्षि नारद वरुणदेव से मिलने के लिए उधर जा रहे थे। नागलोक के मार्ग में जाते हुए मातलि की नारदजी के साथ अकस्मात् भेंट हो गई। इसके बाद वे दोनों साथ-साथ पृथ्वी के भीतर प्रवेश करके जल के स्वामी वरुण के समीप गए। नारदजी पाताललोक से बहुत अच्छी तरह परिचित थे, अत: उन्होंने मातलि को वहां के संबंध में विस्तार से सब कुछ बता दिया। वरूणदेव के निवासस्थान के विषय में नारदजी ने कहा- मातले। देखो, यह जलेश्वर वरुण का समृद्धिशाली निवासस्थान है। इसका नाम है- सर्वतोभद्र।

शुकदेव बोले- राजन्, द्वादशी को स्नान के लिये गये नन्दजी को लौटकर आते न देखकर गोपगण, हे राम। हे कृष्ण ऐसा कहकर चिल्लाने लगे। स्वजनों को अभयदान करनेवाले श्रीहरि उनका करुण क्रन्दन सुनकर और पिता को वरुण ले गया है इस बात को जानकर वे वरुण के समीप गये।

जब नन्द बाबा यमुना के जल से बाहर नहीं निकले तो साथ में गये हुए गोपों ने समझा कि वे डूब गये अत: वे कन्हैया, बलदाऊ, बाबा को बचाओ-बचाओ ऐसा कहकर चिल्लाने लगे।

अति व्याकुल यशुमति भई उठी रोय अकुलाय। सुनिधाये व्रजलोग, सब नंदहि खोजत जाय ।।
जल के नीचे ठाँव है जहाँ वरुण को बास। माखन प्रभु के तात को लै राख्यो तेरे पास ।।

श्रीकृष्ण ने जब उनकी चिल्लाहट को सुना तो उन्हें यह समझते देर न लगी कि वरुण ने बाबा का अपहरण करा लिया है। फलत: वे जल में कूद पड़े और वरुण लोक में वरुण के पास जा पहुँचे। वरुण ने हृषीकेश को अपने पास देखा। बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़े वे सिंहासन से उतर गये। कृष्ण की अगवानी की और बड़ी श्रद्धा से उनकी पूजा की। उस समय प्रसन्नतावश वरुण का रोम-रोम खिल उठा फिर तो उन्होंने भगवान से निवेदन किया।

वरुण ने कहा- प्रभो, आज मेरा शरीर धारण करना सफल हो गया। आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गये क्योंकि आज मुझे आपके चरण के अर्चन का अवसर अधिगत हुआ है। भगवन्, जिन्हें भी आपके चरण-सेवन का अवसर मिलता है, वे संसार-सागर से पार हो जाते हैं। आप अचिन्त्य, अनंत, माधुर्य, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि समस्त दिव्य गुणों से युक्त हैं।

प्रभो, मेरे दूत ने अज्ञानतावश आपके पिता को पकड़ा और उन्हें यहाँ लाया। यह उसने अपराध किया। आप उसे क्षमा करें और मेरे ऊपर भी अनुग्रह करें।

बिन जाने मम भृत यदुराया। मूरख तोर तात कोलाया।। क्षमिये सो अपराध हमारा। लीजो यह है पिता तुमारा।।

सेवक का अपराध स्वामी का अपराध माना जाता है। इस प्रकार मुख्य अपराधी तो मैं ही हुआ अत: आप मुझे क्षमा करें। मैं आपका सेवक हूँ।

मैं कीन्हों अपराध सो प्रभु उन नहिं लाइए। तुमहों सिंधु अगाध क्षमा करो निजजानिजन।।

गोविन्द, मैं जानता हूँ कि आप अपने पिता के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखते हैं। यह आपके पिता हैं। आप इन्हें ले जाइये। तब कृष्ण ने नन्दबाबा को वरुण पाश से छुड़ाया। वरुण ने नन्दबाबा को श्रीकृष्ण के सामने लाकर खड़ा कर दिया।

सफल जन्म है आज हमारौ, पायो जदुपति दरश तुम्हारौ।।
कीजै दोष दूर सब मेरे, नन्दपिता इस कारण घेरे।।
तुमको सबके पिता बखाने, तुम्हरे पिता नहीं हम जाने।।

कन्हैया अपने पिताजी को सादर घर लाये। नन्द को आया देखकर सारे गोप-गोपी प्रसन्न हो उठे। नन्द बाबा ने वरुण लोक में वरुण के ऐश्वर्य, ठाट-बाट और सुख-सम्पत्ति को देखा तथा यह भी देखा कि वरुण अपने सेवकों के साथ उनके लाला के चरण का वन्दन कर रहे हैं। यह सब देख-सुन कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने गोकुल में पहुँच कर गोपों के सामने सारी घटना का यथावत वर्णन कर दिया।

दूत पकरि लें गयो तुरत जलपतिके पाहीं। इत ग्रजमहँ नँदराय लौटिके आये नाहीं।।
समाचार सुनि दुखद वरुनके पास गये हरि। सौपे श्रीव्रजराज वरुनने बहु पूजा करि।।
पिता सङ्ग घनश्याम लै, आये ब्रजमहँ सुखसदन। सुनि अति वैभव कृष्णको, भयो सबनिको मन मगन।।
नंद कहत हरि नेह में हम लेहैं वह धाम। जन्ममरण जहँ भय नहीं रहत सदा विश्राम।।

इसे सुनकर गोप कन्हैया को साक्षात् ईश्वर समझने लगे और कहने लगे कि क्या कन्हैया कभी हम लोगों को अपने दिव्य वैकुण्ठ धाम का दर्शन करावेगा? श्रीकृष्ण तो घट-घटवासी ठहरे। उन्हें गोपों का अभिप्राय समझने में देर न लगी अत: विचार किया कि अपने कर्मवश नाना योनियों में भटकनेवाले इस जीव को मेरे स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान होना कठिन है। इसलिये कृपा-परवश कन्हैया ने गोपों को मायारूपी अन्धकार से परे अपना परम धाम वैकुण्ठलोक दिखला दिया।

भगवान बोले- अरे, तुम लोगों ने आज भाँग तो नहीं पी ली है। भैया मेरा लोक तो यही वृन्दावन है। जहाँ गौएँ हैं, मैया और बाबा हैं, ये गोपियाँ हैं और तुम सब ग्वाल हो। जहाँ यमुनाजी हैं, गोवर्धन पर्वत है वही वृन्दावन मेरा धाम है। तुम कैसी कैसी

पागलपने की बातें कर रहे हो। गोपों ने कहा- अरे भैया, तू हमें बहकाता क्यों है, हमने सुना है वैकुण्ठलोक बड़ा अच्छा है। वहाँ की भूमि रमणीक अमृत के वापी, कूप, तड़ाग है। वहाँ की सरितायें दिव्यामृत बहाती हैं। उनके तट दिव्य मणियों से बने हैं। वहाँ कल्पवृक्षों के दिव्य बाग हैं। खग-मृग, पशु-पक्षी जो भी वहाँ हैं, दिव्य चिन्मय है। वहाँ के मंदिर चिन्तामणियों से बने हैं। वहाँ के निवासी शुद्ध सतोगुणी होते हैं। वहाँ के लोगों के वस्त्र आभूषण मुकुट जो भी हैं सब दिव्य हैं।

यह सुनकर भगवान हँस पड़े। उन्होंने सोचा- देखो, यह जीव अज्ञान के कारण नाना भाँति की छोटी बड़ी कामनाओं के कारण तथा काम्य कर्मों के कारण निरंतर छोटी-बड़ी ऊँची-नीची योनियों में भ्रमण करता रहता है। कभी भौम स्वर्ग के सुखों को चाहता है, कभी पाताल स्वर्ग के सुखों को, कभी इन्द्रलोक वरुणलोक कभी जनलोक, कभी तपलोक और कभी ब्रह्मलोक, इसी प्रकार एक लोक के दूसरे लोक की इच्छा करते हुए घूमता रहता है। मेरा जो परमपद है, जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, उसमें मन को स्थिर नहीं करता। अपनी वास्तविक गति को पहिचानकर उसी में आरूढ़ हो जाय, तो इस जीव के समस्त शोक, मोह तथा दु:खादि दूर हो जायँ।

जीव अज्ञानवश शरीर में आत्मबुद्धि करके भाँति-भाँति की कामना और उनकी पूर्ति के लिए नाना प्रकार के कर्म करता है। फिर उनके फलस्वरूप देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ऊँची-नीची योनियों में भटकता फिरता है, अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप को नहीं पहचान पाता। परम दयालु भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार सोचकर उन गोपों को मायान्धकार से अतीत अपना परम धाम दिखलाया। भगवान ने पहले उनको उस ब्रह्म का साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योति स्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं। जिस जलाशय में अक्रूर को भगवान ने अपना स्वरूप दिखलाया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्म ह्रद में भगवान उन गोपों को ले गए। वहाँ उन लोगों ने उसमें डुबकी लगाई। वे ब्रह्मह्रद में प्रवेश कर गये। तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसमें से उनको निकालकर अपने परमधाम का दर्शन कराया। वहाँ उन्होंने ज्योतिर्मण्डल के मध्य में विराजमान अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया। वे शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से सुशोभित थे। मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों से उनका स्वरूप और भी भव्य दिखाई देता था। असंख्य कोटि सूर्यों के समान तेजस्वी स्वरूप से वे शेषनाग की शैया पर पौढ़े थे। चँवर डुलाये जाने से उनकी आभा और दिव्य जान पड़ती थी। ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवा में लगे थे। उस समय भगवान के गदाधारी पार्षदों ने उन गोपगणों को सीधा करके, उनसे प्रणाम करवाकर, उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर खड़ा किया और उन्हें चकित-सा देख वे पार्षद बोले- अरे वनचरों, चुप हो जाओ। यहाँ वक्तृता नहीं दो, भाषण नहीं करो। क्या तुमने श्रीहरि की सभा कभी नहीं देखी हैं? यहीं सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान स्थित होते हैं और वेद उनके गुण गाते हैं। इस प्रकार शिक्षा देने पर वे गोप हर्ष से भर गए और चुप चाप खड़े हो गए। अब वे मन-ही-मन कहने लगे- अरे, यह ऊँचे सिहासन पर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है। यह हमसे क्षणभर के लिए बात तक नहीं करता। इसलिए व्रज से बढ़कर न कोई श्रेष्ठ लोक है और न उससे बढ़कर दूसरा सुखदायक लोक है, क्योंकि व्रज में तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है।

भगवान के धाम का स्वरूप भी भगवान की ही तरह है। वह भी सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योति:स्वरूप है। समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही उसे देख पाते हैं। नन्दलाल अपने परमधाम का दर्शन करा लेने के बाद गोपों को पुन व्रज में लौटा लाये। गोप ब्रजमें वापिस लौटकर परस्पर कहने लगे- कन्हैया के लोक में प्रकाश तो बहुत है किन्तु अपने व्रजसे वह उत्तम नहीं है। यहाँ तो कन्हैया हमारे पास बैठता है वहाँ अपना कन्हाई दूर सिंहासनपर जाकर बैठता है और इसके पास जानेसे दूसरे देवता रोकते हैं। यहाँ तो यह हमारे साथ गो-चारण करता है, खेलता है उससे तो अपना व्रज ही बहुत अच्छा है।

जहाँ न नन्द यशोदा मैया, जहाँ न गोपी गोकुल गाय ।।
जहाँ न जल जल यमुना को निर्मल । जहाँ नहीं कदमनप की छाई ।।
व्रज रज तज मिल जाये बलाई । क्या करें ऐसे वैकुंठ जाई ।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, भगवान ने ऐसी मोहिनी मुसकान से सबकी ओर देखा कि वे सब वैकुण्ठ की बातें भूलकर श्रीकृष्ण को पूर्ववत अपना सङ्गी सम्बन्धी समझकर प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगे।

द्विभुज कृष्ण नहिँ देखि भई तिनिकी विभ्रम मति । लख्यो चतुर्भुज रूप भयो सबकूँ विस्मय मति ।।
यों वैकुण्ठ दिखाइकें, विस्मय कीयो दूर हरि । नित नूतन अभिनय करें, छद्मललित अतिवेष धरि ।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपों का समल्प देखकर भगवान ने सोचा- इन्हें मेरे धाम के दर्शन हों। विचार कर परम कारुणिक भगवान ने उन गोपों को अपने ज्ञानातीत धाम के दर्शन कराये।

गोप विचारें श्याम हमें वैकुण्ठ दिखावें । गोता हमहू बैठि ब्रह्मसरमाहिँ लगावें ।।
सबकी इच्छा जानि विष्णु निजलोक दिखायो । सुखमहँ सबई मग्न भये सब जगत भुलायो ।।
ब्रह्मानन्द चखाइ हरि, पुनि बैकुण्ठ दिखाइकें । भये चकित सब गोपगन, हरिपुर दर्शन पाइकें ।।

२३) रासलीला- बृज के नंदलाला, राधाजी के साँवरिया, सब दु:ख दूर हुए, जब तेरा नाम लिया।

संत हरिदास स्वामी कहते हैं, पहले भागवत सुनना चाहिए। भागवत भक्तों के मुख से पवित्र वाणी है। नवधा भक्ति से जीवन यापन करें। श्रेष्ठ गुरु बनायें, जो दक्ष हो, सर्वज्ञ हो और रसिक हो। वृंदावन में बसने का संकल्प करें। देह की सुधि बिसर कर मन में वैराग्य नही आवें तब कहीं व्यक्ति रास का अधिकारी होता है।

प्रथम सुमिरि भागवत, भक्त भागवत बानी, द्वितीय आराधे भक्ति, व्यास नव भांति बखानी ।।
तृतीय करे गुरु समुझि, दक्ष सर्वज्ञ रसीलो, चौथे होंय विरक्त, बसे बनराज बसीलो ।
पाँचे भूले देहि सुधि, तब छटें भावना रास की, सातें पावें रीति रस, श्री स्वामी हरदास की ।

चलते-फिरते, उठते-बैठते, प्रत्येक परस्थिति में जो कृष्ण का रस का पान करे, उसका आनन्द ले, उसका नाम गोपी है।

समुझै रास-रहस्य करै सेवा सन्तनिकी । सुनै भागवत धरै धूरि सिर गुरुचरननिकी ।।
विषय वासना त्यागि देहकी सुधि विसरावै । जगके नाते तोरि हरषि वृन्दावन धावै ।।
तजै भेद नर नारिको, गोपी भाव दृढ़ाइकें । अपनावैं रासेश्वरी, ताकूँ हिये लगाइकें ।।

श्रीकृष्णावतार में भगवान ने जितनी दिव्यातिदिव्य लीलाएँ की हैं, उनमें रासलीला अत्यन्त ही रहस्यमयी है। इसके विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। बहुत से तो यहाँ तक कहते हैं कि यह प्रसंग भगवान व्यासकृत नहीं है। प्रक्षिप्त हैं, पीछे से किसी ने जोड़ दिया है, इसे भागवत से निकाल देना चाहिये। कुछ लोगों का कथन है कि भगवतरूप देह में रास पंचाध्यायी पंचप्राण हैं। जैसे शरीर में से प्राण निकल जाने पर वह शव हो जाता है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत में से पाँच अध्याय निकाल दिये जायँ तो सम्पूर्ण भागवत निर्जीव-मृतक सदृश-बन जायगी। भागवत में रासपंचाध्यायी ही जीवन है।

श्रीमद् भागवत में चार प्रकार की रासलीला का वर्णन आया है। १) वेणुगीत प्रसंग में कुमारी गोपियों के साथ रास क्रीड़ा २) यज्ञपत्नियों पर कृपा के प्रसंग में विवाहित गोपियों के साथ। ३) गोवर्धन लीला में- बृद्ध गोपियों के साथ एवं चौथी सन्यास के प्रसंग में- सन्त स्वरूपा गोपियों के साथ रास लीला। अत: मुख्य रासलीला इस प्रकार है- गोप बालकों के साथ, गौओं के साथ और गोप युवतियों के साथ।

वृन्दावन धाम श्रीरासेश्वरी श्रीराधा का अन्त:पुर है। समस्त परिकर की स्वामिनी श्रीवृषभानुनन्दिनी ही हैं। उनकी उपासना करने से निकुञ्ज में प्रवेश होता है। निकुञ्ज में प्रवेश उन्हीं का हो सकता है जिनका अन्त:करण साधना करते-करते विशुद्ध बन गया हो। श्री वृन्दावन रसभूमि है, अन्य धाम तथा तीर्थ साधनभूमि हैं। सहस्त्रों जन्मों तक जो तप समाधि द्वारा अन्त:करण को शुद्ध कर लेते हैं उन्हें वृन्दावन बास का अधिकार होता है। जो अनाधिकार चेष्टा करते हैं उनका पतन अनिवार्य है।

जो अनाधिकार चेष्टा करते हैं वे उभय भ्रष्ट हो जाते हैं। साधना के बिना अत:करण की शुद्धि नहीं होती। कुछ अनुग्रह सृष्टि के जीव होते हैं, इन्हें इस जन्म में कुछ भी साधन नहीं करना पड़ता, वे जन्म से ही सिद्ध होते हैं। मधुर उपासना का रास विलास के रसास्वादन का-भी सभी को अधिकार नहीं होता।

शुकदेव बोले- राजन्, जीवों पर अनुग्रह करने के निमित्त श्रीहरि मानव देह में स्थित होकर ऐसी-ऐसी क्रीड़ाएँ किया करते हैं, जिन्हें सुनकर लोग उन्हीं के स्वरूप में रँग जायँ, अर्थात भगवत् परायण हो जायें। भगवान ने भी शरद ऋतु की उन रात्रियों को देखकर जिनमें मल्लिका के कुसुम खिले हैं योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की।

इत गोपिनिको चित्त कृष्णके रूप लुभायो। करिबे रास विलास श्याम उत मन ललचायो।।
अति सुखदायिनि शरद्पूर्णिमाकी निशि आई। सुषमा अति रमनीक दशहु दिशिमाहिँ सुहाई।।
मनमोहनने मोहिनी, मायाको आश्रय लयो। आप्तकाम परिपूर्णको, मन क्रीड़ाके हित भयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, शरदपूर्णिमा के दिन अपनी शान्त किरणों द्वारा लालिमा से प्राची दिशा के मुख को रञ्जित करता हुआ शशि उसी प्रकार उसे आनन्दित करता हुआ, जिस प्रकार बहुत दिनों में विदेश से लौटा नायक अपनी प्रिया के मुख कमल को कुंकुम रँग से रंजित करके उसे सुखी करता है। चन्द्र के उदय होते ही जीवों का सूर्य सन्ताप जनित ताप दूर हो गया।

संसार में सुख, दुख, अनुकूल, प्रतिकूल सभी कुछ सहना पड़ता है, द्वन्द्व का ही नाम तो संसार है। संसार की स्थिति के लिये सुख की भी आवश्यकता है और दुख की भी आवश्यकता है। ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर सभी ऋतु आवश्यक हैं। इन सब में सुख भी है, दुख भी है। गरमी न पड़े तो सूर्य अपनी किरणों से जल कैसे सोखें। वे जल न सोखें तो वर्षा कैसे हो। शीत न पड़े तो अग्नि प्रदीप्त कैसे हो? गरमी आवश्यक है, किन्तु गरमी में कितना कष्ट होता है प्यास लगती है, पसीना छूटता रहता है, रहा नहीं जाता। इसी प्रकार जल जीवन है, किन्तु वर्षा होने से चारों ओर कीच हो जाती है। सील हो जाती है, अग्नि मन्द पड़ जाती है। सदा नभ में मेघ छाये रहते हैं, किन्तु वर्षा निकल जाने पर जब आकाश स्वच्छ निर्मल हो जाता है, कीच सूख जाती है, नदियों का जल स्वच्छ हो जाता है, पृथ्वी हरी-भरी शस्यश्यामला बन जाती है तो उस समय का दृश्य अनुपम हो जाता है। इसीलिये साहित्य में सर्वत्र शारदीय पूर्ण चन्द्र की ही उपमा दी गई है। शरद ऋतु का चन्द्रमा निर्मल स्वच्छ और परम सुखद होता है। उस दिन चन्द्रमा में से विशेष अमृत स्राव होता है। उस दिन के चन्द्र के दर्शन का विशेष माहात्म्य होता है।

वृन्दावन अति मनहरन, आये गोपीजनरमण। नटनागर सजि बजि तुरत, रास करन यमुनापुलिन।।

शुकदेव बोले- राजन्, नभ में नवकुंकुम के समान अरुण वर्ण तथा लक्ष्मीजी के मुख के सदृश शोभायमान अखंड मण्डलाकार निशानाथ को उनकी कोमल किरणों से रंजित वृन्दावन को देखकर श्यामसुन्दर ने ब्रजरमणियों के मन को तथा हरनेवाला मधुरगान आरम्भ किया।

हरि मुरली मधुर बजाई। मोहे सुर नर नाग निरन्तर, ब्रज बनिता अकुलाईं।।
यमुना नीर प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यो मुरझाई। खग मृग मीन अधीन भये सब, अपनी गति बिसराई।।
द्रुमबेली अनुराग पुलकतनु, शशि थाक्यों निशिन घटाई। सूरश्याम वृन्दावन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई।।

रासलीला प्रेम की पराकाष्ठा है। रासलीला कामलीला नहीं है। यह तो कामविजयलीला है। यह रासलीला आप्तकाम भक्त और भगवान की लीला है। लौकिकता का आभास होने पर भी यह क्रिया काम विकार रहित है। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह भगवान श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी क्रीडाका नाम ही रास है। इसमें न कोई जड शरीर था, न प्राकृत अंग-संग था, और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दमय भगवान्का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममें सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

श्रीमद्भागवत में राधा का एक बार भी उल्लेख नहीं मिलता। राधा-कृष्ण की केलिक्रीड़ा, प्रणय-प्रसंगों आदि का वर्णन कृष्ण-चरित्र के साथ अन्याय है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का उल्लेख आया है परन्तु भक्तिप्रधान होने के कारण राधा को कृष्णकी सहचरी होने के साथ-साथ सीता, पार्वती अथवा लक्ष्मी की तरह एक पूजनीया नारी के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण इस ग्रन्थ में राधा को साध्वी संबोधन करते हैं और कहते हैं तुम श्री हो, तुम्हारे बिना मैं केवल कृष्ण हूँ और जब तुम मुझसे संयुक्त हो जाती हो तो मैं श्रीकृष्ण बन जाता हूँ। राधा श्रीकृष्ण की एक ऐसी सहचरी जो न तो परकीया थी, न उनकी तथाकथित अविवाहिता प्रेमिका अथवा प्रेयसी। ब्रह्मवैवर्त पुराण में तो राधा-कृष्ण का विधिवत् विवाह का वर्णन भी मिलता है यह विवाह स्वयं ब्रह्मा ने भांडीर वन में कराया था। कृष्ण चरित्र की वास्तविकता जानने के लिये बहुत सारे ग्रन्थों का वर्णन समावेश किया गया है। राधा कृष्णकी आह्लादिनी शक्ति, उनकी सर्वस्वी है। राधा ही कृष्ण है और कृष्ण ही राधा। यही बात रासलीला को लेकर है। जो कोई भी स्वेच्छाचारी, कामुक और वारांगनाओं से घिरा पाया जाता है, उसे लोग कृष्ण की संज्ञा दे देते हैं। यह उनकी अज्ञानता के सूचक के अलावा कुछ नहीं। रासलीला का उल्लेख भागवत में स्पष्ट है कि ग्यारह वर्ष की करीब आयु तक श्रीकृष्ण वृंदावन में रहे और बाद में मथुरा प्रस्थान कर गए, कंस का वध किया। विचारने योग्य है कि ग्यारह वर्ष का बालक जो रासलीला करता है, उसकी प्रकृति कैसी होगी? जो लोग रासलीला में कामवासना को ढूँढते हैं वे अपनी कामुकता का ही अपराध आरोपित करते हैं। ब्रज की गोपियों के साथ कृष्ण के सम्बन्धों में लेकर सही है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी, गोप भी उनसे प्रेम करते थे। बाल, युवा, वृद्ध सभी तरह के गोप। गोपियां उनसे इसलिये प्रेम करती थी कि वे आकर्षक है, उनपर अपनी जान छड़कती थी, उनका प्रेम विशुद्ध प्रेम है, आत्मिक और आध्यात्मिक है माँसल अथवा पार्थिव नहीं।

काम ने ब्रह्मा आदि देवों को जीत लिया। इससे उसका अभिमान आकाश छूने लगा। फलत: उसे श्रीकृष्ण पर विजय प्राप्त करने की इच्छा हुई। किन्तु श्रीकृष्ण कोई सामान्य देवता तो हैं नहीं। वे साक्षात् परमात्मा हैं। उन्होंने अपनी मधुर मनोहर लीलाओं द्वारा सभी प्रमुख देवों का पराभव किया है। ब्रह्मा को अपनी सृष्टि का अभिमान था अत: उन्होंने ब्रह्मा से कहा- आप पञ्च महाभूतों के सहारे जगत् का निर्माण करते हैं। मैं संकल्पमात्र से जगत् की सृष्टि करता हूँ। भगवान को सृष्टि-रचना के लिये किसी उपकरण की आवश्यकता नहीं है। संकल्पमात्र से ही उन्होंने गोप-बालकों और बछड़ों का निर्माण कर दिया था। वह सब रूप उन्होंने स्वयं ही धारण किया था। दो बार अग्नि का पान कर उसका भी अभिमान विनष्ट किया था। इन्द्र का अभिमान गोवर्धन-लीला में उतारा गया है। वरुण देव के पराभव की कथा का प्रसंग हुआ।

षड, ऐश्वर्य जब पूर्ण होकर सम्यक् रूप से एकत्र हो जाते हैं तब भग कहलाते हैं। इन षड् ऐश्वर्य अर्थात धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य, वैभव और यश को धारण करनेवाला ही भगवान कहलाता है। सोलह हजार एक सौ साठ विवाह करना, यश, भोग और सामर्थ्य की पराकाष्ठा है। इतने बड़े गृहस्थ का धर्मानुगत पालन भी धर्म की पराकाष्ठा है और आगे चलकर अपने ही संकल्प से अपने वंश परिवार को समाप्त करा देना ज्ञान और वैराग्य की पराकाष्ठा है।

भगवान की रासलीला में श्रीकृष्ण की दिव्य अन्तरंग लीला का, निजस्वरूपभूता, महाभावरूपा, आल्हादिनी शक्ति श्री ब्रजेश्वरी तथा दिव्य कृष्ण प्रेममयी गोपांगनाओं के साथ होनेवाली रसमयी लीलाओं का चित्रण है। रास का मूल है रस वह स्वयं श्रीकृष्ण हैं।

एक दिन अभिमानी काम कृष्ण के पास पहुँचा। वह अपने आपको सर्व-विजयी मान रहा था। उसने कृष्ण के सामने मल्लयुद्ध का प्रस्ताव रक्खा। कृष्ण ने कहा- कामदेव कभी भगवान शंकर ने तुझे भस्म कर दिया था, क्या तू इस घटना को भूल गया। यह तो उनकी कृपा थी कि तुझे पुन: यह शरीर प्राप्त हो गया।

कामदेव बोले- हाँ, आपका कथन सत्य है। उस समय मुझसे कुछ गड़बड़ी हो गई थी। शिवजी समाधिस्थ थे। वे तेजोमय ब्रह्म का चिन्तन कर रहे थे। उस समय मैं उनसे लड़ने गया। यह मेरी बड़ी भूल थी। परिणाम यह हुआ की उनकी क्रोधाग्नि में मैं भस्म हो गया। श्रीकृष्ण बोले- रामावतार में भी तो तूँ हार गया था। क्या उसे भी विस्मृत कर दिया?

कामदेव बोले- आपने रामावतार में मर्यादा का अतिशय पालन किया था अत: मुझे हारना पड़ा। उस अवतार में आप एक पत्नी-व्रत का पालन कर रहे थे इसलिये वहाँ भी मेरी दाल नहीं गली। श्रीकृष्ण बोले- तो अब तूँ क्या चाहता है?

कामदेव बोले- आप इस कृष्णावतार में किसी मर्यादा का पालन तो करते नहीं। गोकुल की तरुणियों के साथ सर्वदा छेड़-छाड़ करते रहते हैं। मैं चाहता हूँ की आप पर पुष्प-बाणों की वर्षा करूँ। उस अवस्था में यदि आप निर्विकारी बने रहें तो विजय आपकी होगी और यदि आपके मन में विकार की तरङ्गें उठने लगें तो विजय मेरी मानी जायेगी। निर्विकारी बने रहने पर ईश्वर आप माने जायेंगे और यदि कामाधीन हो गये तो मैं ईश्वर बन जाऊँगा। शरद्-पूर्णिमा आ रही है। उस समय वृन्दावन के पावन मनभावन अञ्चल में आप तरुणियों के साथ हास-परिहास करें। उस समय मैं आप पर बाण चलाऊँ। जो जीतेगा वह ईश्वर कहलायेगा।

रति- कामदेव की पत्नी। कामदेव के वाम पार्श्व से एक अत्यंत सुंदरी एवं अलौकिक शोभासंपन्न कामिनी प्रकट हुई, जो समस्त पुरुषों को मुग्ध करती है। मंद-मंद मुस्कराती उस सुंदरी को देखकर सभी प्राणियों की उसमें रति हो गई। सभी उसी की कामना करने लगे, इसीलिए बुद्धिमानों ने उसका नाम रति बताया है।

श्रीकृष्ण बोले- अच्छा जैसी तेरी इच्छा, वैसा ही होगा। हमारा तुम्हारा युद्ध शरद् की शुभ्र रात्रियों में उन्मुक्त आकाश के खुले मैदान में होगा। भगवान के सामने उनकी स्तुति करने के उपरांत बाण (तथा पुष्पमय) धनुष धारण करनेवाला कामदेव रत्नसिंहासन पर प्रिया रति के साथ आसीन हुआ। मारण, स्तंभन, जंभृण, शोषण और उन्मादन-इन्हीं पांचों बाणों को वह सदैव अपनाए रहता है, अत: पंचबाण है।

नीरव वन में किसी वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर काम को जीतना कोई बड़ी बात नहीं है किन्तु श्रीकृष्ण ने अगणित तरुणियों के मध्य में रह कर काम को पराजित किया था। जब काम ने देखा कि कृष्ण के ऊपर मेरा तिनके भर का भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है, तो उसने अपना धनुष-बाण फेंक दिया और जाकर गिर पड़ा श्रीकृष्ण के श्रीचरणों पर। तभी से श्रीकृष्ण का एक नाम मदनमोहन पड़ गया अत: रासलीला काम-पराभव की लीला है।

गोपियोंके प्रेमकी यही विशेषता है कि गोपियोंको निज सुखकी कामना रत्तीभर भी नहीं है। उन्हें अपने सुखके लिये कल्पना ही नहीं होती। वे तो अपने द्वारा श्रीकृष्णको सुखी हुआ देखकर ही दिन-रात सुख-समुद्रमें डूबी रहती हैं। गोपियोंका प्रेम काम-कालिमाशून्य है, निर्मल भास्कर है, सर्वथा दिव्य है, अलौकिक है।

गोपियोंके प्रेमका नाम काम होनेपर भी वह असलमें काम नहीं, बल्कि शुद्ध प्रेम है। महान् भगवद्भक्त उद्धव-सरीखे

महात्मा इसी काम नामक प्रेमकी अभिलाषा करते हैं। क्योंकि गोपियोंमें निजेन्द्रियसुखकी इच्छा है ही नहीं। वे तो श्रीभगवान्‌को भगवान् समझकर ही अपने सकल अङ्गोंको अर्पण कर उन्हें सुखी करना चाहती हैं।

श्रीभगवानने प्रेमिक भक्तोंकी प्रेमकामना पूर्ण करनेके लिये व्रजमण्डलमें इस सच्चिदानन्दमयी दिव्य लीलाको प्रकट किया था। गोपी-प्रेमकी यह पवित्र लीला भगवान्‌ने रमणाभिलाषासे अथवा गोपियोंकी कामवासनातृप्तिके लिये नहीं की थी; न तो भगवान्‌में रमणाभिलाषा थी और न गोपियोंमें कामवासना ही। यह तो की गयी थी जगत्‌के जीवोंके काम-नाशके लिये। रासलीला-प्रकरणको समाप्त करते हुए मुनिवर शुकदेव कहते हैं- जो धीर पुरुष व्रजबालाओंके साथ भगवान् विष्णुके इस रास-विहारकी कथाको श्रद्धापूर्वक सुने या पढ़ेगा, वह शीघ्र ही भगवान्‌की पराभक्तिको प्राप्तकर हृदयके रोगरूप काम-विकारसे छूट जायगा।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, शरद ऋतु थी। पूर्णिमा की रात्रि थी। चतुर्दिक बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ-महँ महँक रहे थे। भगवान ने चीर-हरण की बेला में गोपियों को जिन रात्रियों का समेत किया था, वे सबकी सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रि के रूप में उल्लसित हो रही थीं। भगवान ने उन्हें देखा, दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं कि हम श्यामसुन्दर के साथ विहार करें, अब योगमाया के सहारे भगवान के मन में भी गोपियों के साथ विहार करने की इच्छा प्रादुर्भूत हुई। (योगमाया- अर्थात् जीवों को अपने साथ मिला लेने के लिये भगवान की कृपा, राधा और मुरली और कृपा ये तीनों ही योगमाया है।)

जाके किये तीन गुण और तत्त्व चौबीस, जिनकी रग को कल्प तक धरे ब्रह्मा और आशुतोष।
वोही रज को शीशपे धारे ब्रजकूल वधु।
शेष महेश्वर जीवणा निशिदिन कृष्ण को ध्याय, जो रस पीणो गोपियां सो बूंद न चाखण जाय।

विश्व ब्रह्माण्ड में मोहन की मुरली का मधुरस्वर व्याप्त है। जैसे ये सब वस्तुएँ युक्ति से, श्रम से प्राप्त की जाती है, वैसे ही बनवारी की बाँसुरी का शब्द भी प्रेम उत्कण्ठा और प्रतीक्षा के द्वारा सुना जाता है। स्वाति का जल सर्वत्र समान बरसता है, किन्तु उससे अधिक सुख तो पपीहा को ही होता है। मोहन की मुरली अबाधित रूप से बजती रहती है, किन्तु उसे सुनती तो युवती गोपिकायें ही हैं। दूसरे अनेक व्यवसायों में फँसे रहने से उसे सुन नहीं सकते। कुछ सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं, किन्तु अनुरागवती गोपियों को तो वह ध्वनि उन्मत्त बना देती है। वैसे वंशी तो नित्य ही बजती है, किन्तु प्रतीक्षा के पश्चात् उत्कण्ठा के अनन्तर-निश्चित समय पर जो बजती है, वही उन्मादिकारिणी होती है। आँख कान बन्द करके जो चिरकाल तक अहद शब्द श्रवण करने का अभ्यास करते हैं, उन शब्दब्रह्म के उपासकों को मुरली की मधुर ध्वनि अवश्य ही सुनाई देती है, स्पष्ट सुनाई देती है। उन्हें मुरली ही नहीं रास के समस्त वाद्य सुनाई देते हैं।

स्वरलहरी प्रकटित भई, विश्व निखिल रव भरि गयो। मधुर गान काननि पर्‍यो, युवतिनि चित चञ्चल भयो॥

पूर्णिमा की रात को कालिन्दी के किनारे श्रीकृष्ण ने बाँसुरी टेरी।

जब श्रीकृष्ण मुरली को अपने होठों पर धारण करते हैं तो न चलनेवाले (वृक्ष आदि) भी चल पड़ते हैं और चलनेवाले (जीव) स्थिर हो जाते हैं। हवा रुक जाती है और यमुना का जल नहीं बहता। पक्षी मोहित हो जाते हैं। जानवरों के झुंड रास्ता भूल जाते हैं। कृष्ण की काम-छवि देखकर सभी छले जाते हैं। पशु मोहित हो जाते हैं, गाएं स्तब्ध हो जाती हैं और घास को दांतों में रोके रखती हैं। शुकदेव मुनि और सनक-सनंदन आदि परमहंस जैसे मुनि भी मोहित हो जाते हैं। थोड़ी देर भी उनका ध्यान नहीं लगता। सूरदासजी कहते हैं कि वे बड़े भाग्यवान हैं, जो कृष्ण के मुरलीवादन का सुख पाते हैं।

मुरली की ध्वनि सुनते ही गोपियां लोक-शील, नारीसुलभ लज्जा, अपने मुख पर का घूंघट और नेत्रों की शरम को छोड़

बैठती हैं। किसी ने अपने पति का घर छोड़ दिया और किसी ने अपने प्राण ही छोड़ दिए। (यज्ञ-पत्नी लीला में बताया गया है कि कुछ गोपियां अपने पतियों की परवाह किए बिना चली गईं और जिस गोपी को रोका गया उसने अपने प्राण ही त्याग दिए।) किसी ने अपने कान से मुरली के माध्यम से श्रीकृष्ण के यश को सुनकर आनंद-लाभ किया। कुछ प्रभु के चरणों को स्पर्श करके अपने-अपने देश गए। कुछ राजा थे, इस मुरली की धुन को सुनकर अपनासब कुछ त्यागकर फकीर हो गए। इस बंशी के यश-गान के रूप में काम हवा से मिलकर दसों दिशाओं में इसकी दुहाई देता है। सूरदासजी कहते हैं कि औरों की कौन कहे, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण इस मुरली के वश में हैं।

जब कृष्ण ने बंसी को अपने होठों पर रखकर बजाया, तब गोपियों ने घर की सारी रीतियां छोड़ दीं। वे लोक-मर्यादा के श्रेष्ठ मार्ग को त्यागकर नि:शंक होकर चल पड़ीं। वन मार्ग से जाते हुए कांटा (पैर का शत्रु) उनके वस्त्रों में उलझ गया, किंतु उन्होंने अपने कपड़े को नहीं संभाला, उलट-पलटकर भी न देखा, न खड़ी हुईं। शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन मोर मिला। उसकी आवाज सुनकर मन-चित्त और बुद्धि हर गई- अपने तन-मन की याद जाती रही। अब उन्हें अपने शरीर का ध्यान जाता रहा, अत: तोता रूपी नाक, कबूतर रूपी गर्दन, भौंरें रूपी बाल, कोयल रूपी बोली, खंजन रूपी नेत्र, चंद्रमा रूपी मुख, मूंगा और बिंबा फल रूपी होंठ और बिजली रूपी दंत-छवि सब हट गए, अर्थात उनकी अपने रूप-सौंदर्य की भावना ही हट गई। उनके मन में यही बात रही कि अब तो वह सूर्य-पुत्री यमुना के किनारे कृष्ण से मिलेगी और वे आनंद और उमंग में भरी हुई प्रेम के प्रवाह में बहती हुई कृष्ण से मिलने के लिए आगे बढ़ गईं।

जबहिं वन मुरली श्रवन पड़ी। चक्रत भईं गोप कन्या सब, काम धाम बिसरी।।
कुल मर्याद वेद की आज्ञा नेंकहु नहीं डरी। श्याम सिन्धु सरिता ललना तृन, जल की ढरनि ढरी।।
अङ्ग मर्दन करवे को लागीं, उबटन तेल धरी। जो जिहि भाँति चली सो तैसेहि निसिवन को मुखरी।।
सुत, पति नेह भवन जन शंका, लज्जा नाहिं करी। सूरदास प्रभु मन हर लीनों नागर नवल हरी।।

भगवान की रमण करने की इच्छा होते ही पूरब दिशा में पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ। उनकी दुधिया चाँदनी से सारा वृन्दावन जगमगा उठा। जब भगवान् श्यामसुन्दर ने देखा कि- चन्द्रमा ने अपनी किरणों से सारे वन को रँग दिया है, तब उन्होंने बिना किसी गोपी का नाम लिये ही बाँसुरी की तान छेड़ दी। परन्तु प्रत्येक गोपी को यही प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्ण वंशी में उसी का नाम लेकर बुला रहे हैं। वंशी प्राणवाद्य है। उसमें तन्मय होकर बजानेवाले और सुननेवाले को संसार की सर्वथा विस्मृति हो सकती है।

श्रीकृष्ण ने ऐसा काम बीज बजाया कि उसे सुनते ही गोपियों का मन छटपटा उठा, विकल हो गया और वे न केवल घरद्वार, बल्कि सब कुछ छोड़कर दौड़ पड़ीं। उन्होंने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष छोड़ दिया। दोहन भी छोड़ दिया।

कृष्ण ने मुरली का निनाद किया। स्वजनों के हृदय का ताप मिटाना चाहा। मुरलीधर ने मधुर गायन का सुर छेड़ दिए। चर और अचर समस्त जीवों के चित्त चुरा लिए। सप्त सुरों से युक्त दिव्य तान एवं मनमोहिनी रस संगीत के रुचिर अनागत एकलय रसमय अतीत नाद से सर्वव्याप्त हो गया।

धरती उमगकर सुखद और मृदुकारी हो गयी। पाहन से फूटकर पवित्र जल झरने लगे। वृक्ष झुर्त होकर फल फूल से युक्त हो गए। फूल सुकूल होकर अधिमूल में विलय हो गए। समस्त खग और मृग मुरली की धुन सुनकर ऐसे मौन साध लिए, मानो कोई चित्र बनाया हुआ है। प्रेम मे मग्न होकर नारद सनकादि ऋषि मुनि उस रास का आह्लाद देखने चले।

मुरली की सुन्दर धुन सुनकर ब्रह्म लोक से चतुरानन ब्रह्माजी अपनी प्रिया के साथ व्रज के कानन में आये। उस मुरली

कि रुचिर मधुर बानी सुनकर भवानी के साथ शिव वहाँ आए। मुरली की धुन सुनकर परम सुख मानकर वैकुण्ठ से श्री लक्ष्मी के साथ भगवान विष्णु वहाँ आए। ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान ये तीनों गति एवं तीन गुण विलीन होकर प्रेममय हो गए। काम उद्दीपन दिव्य गायन सुनकर गोपियाँ कृष्ण परायण होकर आयीं।

मुरली की धुन सुनकर गोपियां जो जिस कार्य में व्यस्त थी, उसी कार्य को बीच में छोड़कर चली आयी। आग पर चढ़ा हुआ दूध छोड़ दिया। कड़ाही में पकते हलवे को छोड़ दिया। खिलाते हुए पति को बीच में ही परोसना छोड़ दिया। जो छोटे-छोटे बच्चों को दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियों की सेवा-सुश्रुषा कर रही थीं वे सेवा-सुश्रुषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर श्रीकृष्ण की ओर बेतहाशा भागीं। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि हम सज-सँवर रही थीं और मेरा सजना-सँवरना भी अधूरा है। किसी ने कर्णाभूषण एक कान में पहना है तो किसी ने आँजन एक ही आँख में लगा रक्खा है। उनके वस्त्राभूषण भी उल्टे-सीधे धारण किये गये हैं। उनके पिता, पतियों ने, भाई और जाति-बन्धुओं ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। परन्तु वे इतनी मोहित हो गई थीं कि रोकने पर भी न रूकीं, न रुक सकीं।

तन, मन, घर, परिवारकी, सुरति त्यागि सब चलि दई। काम काज बिसरे सकल, मन्त्रमुग्ध-सी बनि गई।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिनका चित्त श्रीकृष्ण में आसक्त हो रहा है ऐसी गोपिकाएँ उसकामोद्दीपक वेणुगीत को सुनते ही, एक दूसरी से अपनी चेष्टा को छिपाती हुईं अपने प्यारे के निकट आईं। अत्यन्त वेग के कारण चलते समय उनके कानों के कमनीय कुण्डल झोटा खा रहे थे।

दूध दुह्योको दुह्यो गायके नीचे पटक्यो। रही पालनो खोलि तज्यो ज्योंको त्यों लटक्यो।।
दही मथतही छोड़ि चलीं माखन न निकास्यो। छोड़ि चूल्हि पै दूध चलीं नीचे न उतास्यो।।
पति भोजन ति चली इक, प्रेम चटपटी हियलगी। हलुआ घोटति रही इक, छोड़ि कढ़ाईमहँ भगी।।

श्री राधिका ने जब वंशी की मधुर ध्वनि सुनी तो तत्काल ही वे प्रेमाकुल हो अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनका शरीर ठूँठे काठ की तरह स्थिर और चित्त ध्यान में एक तान हो गया। क्षणभर में चेत होने पर पुन: मुरली की ध्वनि उनके कानों में पड़ी। वे बैठी थीं, फिर उठकर खड़ी हो गईं। अब उन्हें बार-बार उद्वेग होने लगा, वे आवश्यक कर्म छोड़कर घर से निकल पड़ीं। यह एक अद्भुत बात थी। चारों ओर देखकर वंशी की ध्वनि का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं। मन ही मन भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविंदों का चिन्तन करती जाती थीं। वे अपने सहज तेज तथा श्रेष्ठ रत्नसारमय आभूषणों की कान्ति से वन-प्रान्त को प्रकाशित कर रही थीं। राधिका जी की सुशीला आदि जो अत्यन्त प्यारी तैंतीस सखियाँ थीं और समस्त गोपियों में श्रेष्ठ समझी जाती थीं, वे भी श्रीकृष्ण के दिए हुए वर से आकृष्ट-चित्त हो, घर से बाहर निकलीं। वे कुल-धर्म का त्याग करके नि:शंक हो, वन की ओर चल पड़ीं। वे सबकी सब प्रेमातिरेक से मोहित थीं।

यमुना किनारे झिलमिल करे तारे, जहां बांसुरी बजावे, यशोदा का लड़का,
जिसे सुन-सुन राधाजी का दिल धड़का।।
पांवों में पैजनियाँ, पहन चोरी-चोरी, घर से चली रे देखो, राधे गोरी गोरी,
आई कदम्ब के नीचे, घुंघट पट खींचे, जहाँ बांसुरी बजाए यशोदा का लड़का।।
नटखट था बड़ा कन्हैया, पकड़ी राधा की बंईयां, राधाजी का नरम कलेजवा नाचे, ताता थैय्या,
लो प्रीत गगरिया छलकी, माथे से चुनरिया ढ़लकी, जहां बांसुरी बजावे यशोदा का लड़का।।
राधा मोहन के मधुर मिलन की छटा, देखकर, उठी गगन में घटा, पवन को हटा,

मेघ जो फटा, बरसने लगा रे मूसलधार, महावन भीगा, मधुबन भीगा, भीगे कृष्ण मुरार,
भीग गई रे कुंवर राधिका, भीगा उनका साथ, पंछी मोर जो पुकारे, खुले नयन सितारे,
जहां बांसुरी बजावे यशोदा का लड़का ।।

भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का चिन्तन करती हुई श्रीराधा अपनी सम्पूर्ण सखियों के साथ उनके पास वन में पहुँची। श्रीराधा को अपने समीप देखकर श्रीकृष्ण वहाँ बड़े प्रसन्न हुए। वे बड़े प्रेम से मुस्कराते हुए उनके निकट आए। उस समय वे प्रेम से आकुल हो रहे थे। राधा अपनी सखियों के बीच में रत्नमय अलंकारों से विभूषित्त होकर खड़ी थीं। उनके श्री-अंगों पर दिव्य वस्त्रों के परिधान शोभा पा रहे थे। वे मुस्कुराती हुई बाँकी चितवन से श्याम सुन्दर की ओर देखती हुई गजराज की भाँति मन्द गति से चल रही थीं।

श्रीराधा ने भी किशोर अवस्था से युक्त श्यामसुन्दर को देखा। वे नूतन यौवन से सम्पन्न तथा रत्नमय आभरणों से विभूषित थे। करोड़ों कामदेवों की लावण्य-लीला के मनोहर-धाम प्रतीत होते थे और बाँके नयनों से निहारते हुए उन प्राणाधिका राधिका को देख रहे थे। उनके परम अद्भुत रूप की कहीं कोई उपमा नहीं थी। वे विचित्र वेशभूषा तथा मुकुट धारण किए सानन्द मुस्करा रहे थे। बाँके नेत्रों के कोण से बार-बार प्रीतम की ओर देख कर सती राधा ने लज्जावश मुख को आँचल से ढक लिया और वे मुस्कराती हुई अपनी सुधबुध खो बैठीं। प्रेम-भाव का उद्दीपन होने से उनके सारे अंग पुलकित हो उठे।

वंशीके स्वरने तो पुकारना प्रारम्भ कर दिया। वंशी क्रमश: अनेक-अनेक नारियोंका नाम पुकारने लगी।

राधा, राधा, राधा रासेश्वरी। राधा, राधा, राधा प्राणेश्वरी ।।

उस स्वर पर व्रज की सारी गोपियाँ यमुना-किनोर दौड़ पड़ीं। कृष्ण और राधा मध्य में रहे और शेष उनको घेरकर खड़ी हो गईं। राधा और कृष्ण के नृत्य की समाप्ति के पश्चात् कृष्ण ने सभी गोपियों के साथ बारी-बारी से नृत्य किया, उन्हें अपना अंग-स्पर्श दिया। सभी धन्य हो गईं। ज्योत्स्ना-स्नात रात में यह लीला रात-भर चली। प्रात: सभी गोपियाँ अपने-अपने घरों को लौटीं।

वंशीवादन सुनकर गोपियों के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम, उनसे मिलने की आकांक्षा पराकाष्टा का उल्लंघन कर गई। श्यामसुन्दर ने गोपियों के मन को पहले से ही हर लिया था, अब तो उनके मन में संसार का भय, संकोच, धैर्य, मर्यादा आदि सभी समाप्त हो गया। वंशी की ध्वनि सुनते ही गोपियों की दशा विचित्र हो गई।

आज बन बेनु बजावत श्याम। यह कहि कहि चक्रत भईं गोपी, सुनत मधुर सुर ग्राम ।।
कोउ ज्योनार करति, कोउ बैठी, कोई ठाड़ी ही धाम। कोउ जेंवति, कोउ पतिहि जिमावति, कोऊ सिंगार में बाम ।।
मनौ चित्र कैसी लिखि काढ़ी, सुनत परस्पर नाम। सूर सुनत मुरली बौरी भई, मदन कियौ तन जाम ।।

परीक्षित्, गोपियां इतनी द्रुतगति से भागीं वंशी की ध्वनि को सुनकर जो गोपी जिस प्रकार से थीं, और जो कार्य कर रही थी उन सबको ज्यों का त्यों छोड़कर चल पड़ी।

शुकदेव बोले- राजन्, कोई गोपी तो दूध दुह रहीं थीं, वे अत्यन्त उत्सुकता वश दूध दुहना छोड़कर चल दीं। कोई-कोई उबलते हुए दूध को छोड़कर चल दीं और अधबने मोहनभोग को चूल्हे पर ही छोड़कर चल दीं।

जो जो कारज करति रहीं त्यागो सो तिनने। चलीं वेनु सुनि, काज अधूरे छोड़े उनने ।।
बरजीं पति पितु बन्धुने, रोकीं बहु परि नहिँ रुकीं। कही बहुत परिते नहीं, लोकलाज सम्मुख झुकीं ।।

परीक्षित बोले- हे योगेश्वर, गोपियाँ तो श्रीकृष्ण को परम प्रियतम मानती थीं। ब्रह्म का भाव नहीं था- वे तो कृष्ण के

माधुर्य-सौन्दर्य, लावण्य पर मुग्ध थीं फिर वे इस त्रिगुणात्मक शरीर को त्याग भावना को कैसे प्राप्त हो गईं?

सम्बन्ध कैसा भी हो स्वार्थ का हो या परमार्थ का, काम का हो या क्रोध का किन्तु होना चाहिए। कंस ने भय से, शिशुपान ने विरोध से मोक्ष प्राप्त कर लिया तो ये ब्रजललनायें समस्त प्रवृत्ति और उनके गुण दोषों से विगत हैं। कृष्ण से उनका अनन्य अनुराग है। इनको प्रभु प्राप्त होना कौन-सी आश्चर्य की बात है?

कुछ गोपियाँ घर से निकल न सकीं थीं। उनके पतियों ने उन्हें घर के भीतर ही बन्द कर दिया था। उन्हें घर से निकलने का मार्ग न मिल सका। वे घर के भीतर ही बैठकर प्रियतम श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं। उन्हें अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के विरह-जन्य तीव्र ताप से इतना अपार दु:ख हुआ कि उनके यत्किञ्चिदवशिष्ट समस्त, दु:खदायी निमित्त समाप्त हो गये। उनको ध्यान में श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई।

कछुक रही घर माहि गमनकी करी तयारीं। किन्तु चलि नहीं सकीं पिता पति बन्धु निवारीं।।
करिबे हठ जब लगीं दयो बाहरतैं तारो। भीतर सोचैं विवश-नाथ, वश नाहिँ हमारो।।
कृष्ण भावनामहँ सकल, तब तन्मय ते ह्वै गईं। नयन मूँदि मनहरनके, मगन ध्यानमहँ सब भईं।।

शुकदेव बोले- राजन्, कुछ गोपिकायें घरों के भीतर थीं, वे बाहर न जा सकीं। अत: वे वहीं श्रीकृष्ण की भावना में युक्त होकर नेत्रों को बन्द करके उनके ध्यान में तन्मय हो गईं।

फिर रास की रासेश्वरी राधाजी वहाँ आयी। वहाँ अगाध परम प्रभु कृष्ण विराजमान थे। उनके साथ गोलोक धाम की निवासिनी रुचिर सखियों का समूह था। कोई श्रृंगार कारिका, कोई शेज चालिका, कोई कुन्ज कारिका, कोई द्वार पालिका थी। कोई नृत्य प्रवीणा, कोई गायन धुरिणा, कोई सुंदर वाद्य वादन प्रवीणा थी। फिर मधु माधवी बिरजा आदि अपने समुदाय के साथ वहाँ आई। फिर ललिता, विशाखा आदि अपना व्यूह बनाकर वहाँ आई।

सबको कृष्ण प्रभु प्राणप्यारे थे। कृष्ण हेतु ही सब अपना जीवन धारण किए हुए थे। वे सब गोपियाँ केवल कृष्ण चरित्र को ही कहती थी, सुनती थी। कथा सुमिरन करती थी, एक कृष्ण को ही मनन करती थी। बोध करती थी। चिंतन करती थी। शरीर से, मन से, बुद्धि से, चित्त से एक प्रभु कृष्ण की ही पूजा करती थी।

गोपिकायें घर, द्वार, कुटुम्ब, परिवार की समस्त मोह ममता को छोड़कर श्रीकृष्ण की ओर चल दीं। वे घरवालों के रोकने पर भी नहीं रुकीं, किन्तु कुछ ऐसी भी थीं जो घर के भीतर थीं। वे घर के भीतर तन से तो गृहस्थी के काम कर रही थीं, किन्तु मन मदनमोहन की माधुरी में मतवाला हो रहा था। मन से वे मदनमोहन का ही निरन्तर चिन्तर कर रही थीं। सहसा उनके कर्णकुहरों में मुरली की मधुर तान सुनाई दी।

लोग कुटुम्ब घर पति तजे, तजी लोक की लाज। हैं अनाथ कोऊ नहीं, राखि शरण ब्रजराज।।

श्रीकृष्ण ने उनका आलिङ्गन किया। उससे उन्हें ऐसा महान् सुख हुआ कि उनके सारे-के-सारे पुण्य-संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये। **कृष्ण विरह अति दुसह वेदना भई तीव्र जब। सकल अशुभ मिटि गये भावमहँ मगन भईं सब।।**
दिव्य देहतैं तुरतई, कृष्ण सङ्ग सङ्गम कर्‍यो। भयहारी भगवानने, भवबन्धन तिनिको हर्‍यो।।

फिर तो वे गुणमय भौतिक शरीर का परित्याग कर श्रीकृष्ण में जा मिली, गोपियाँ भले ही श्रीकृष्ण के प्रति जारभाव रखती थीं किन्तु उन्हें प्राप्ति तो श्रीकृष्ण की ही हुई। सत्य वस्तु भाव की अपेक्षा नहीं रखती। आग पर जिस भी भाव से हाथ रक्खोगे, वह तो जलायेगी ही। गरल को जो कुछ भी समझकर पियोगे, वह तो अपना काम करेगा। इस प्रकार जारबुद्धि से भगवान् के पास जाने पर भी उन्हें भगवान की ही प्राप्ति हुई। वे क्षीण-बन्धन हो गईं। राजा ने पूछा- भगवन्, गोपियाँ तो

भगवान श्रीकृष्ण को केवल अपना परम प्रिय ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था फिर उन्होंने इस गुणमय संसार को कैसे छोड़ दिया, कैसे श्रीकृष्ण में जा मिलीं?

डपटि कहें शुक-भूप। भूलिका बात गये तुम। भई मुक्ति शिशुपाल बताई बात प्रथम हम।।
बैरभाव करि तरि गयो, कस्यो कृष्णमहँ प्रेम नहिँ। सदा बसत हिय श्यामघन, ते गोपी क्यौं नहिँ तरहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, मैंने तुमसे पहिले कह तो दिया, भगवान को चेदिराज शिशुपाल द्वेष बुद्धि से चिन्तन करता था, उसी से उसे सिद्धि प्राप्त हो गई। फिर जो व्रजाङ्गनायें व्रजविहारी को अत्यन्त प्रिय थीं, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

जो शिशुपाल महा अधम हरि को निन्दनहार। ताहू को निज पुर दियो ऐसे अधम उधार।।

राजन्, शिशुपाल श्रीकृष्ण का महान् द्वेषी था। उन्हें वह गालियों की बौछार लगा देता था किन्तु अन्त में वह भगवान में ही जा मिला, मुक्त हो गया फिर ये गोपियाँ तो भगवान् की नित्यसिद्धा पत्नियाँ थीं। इनका श्रीकृष्ण में अनन्य प्रेम था फिर इनकी मुक्ति में सन्देह का अवसर कहाँ? काम, क्रोध, भय, स्नेह, नातेदारी और मित्रता आदि किसी भी भाव से भगवान् के साथ अपनी चित्त-वृत्तियाँ जोड़नेवाले प्राणी निश्चित ही भगवत्स्वरूप बन जाते हैं, बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

काम, क्रोध, भय, लोभ, नेह, सौहार्द्र भावतैं। कैसे हू हरि भजो शुद्ध वा असद्भावतैं।।
जे तन्मय ह्वै जायँ तरहिँ भवसागरते नर। जो चाहे सो करहिँ सिद्धिदातावे तटबर।।

अनुचित, उचित ये उभयता में ही होता है। एकही रस में अनुचित कुछ नहीं होता है। सभी गोपियाँ प्रभु को घेरकर खड़ी है। जैसे बहुत सी प्रेम की सुन्दर मूर्तीयाँ बनायीं गयी है।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकाओं को अपने समीप आई देखकर वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान नन्दनन्दन अपनी वाक् पटुता से उन्हें विमोहित करते हुए कहने लगे।

जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि व्रज की अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ हमारे पास आ गई हैं, तब उन्होंने अपनी विनोद भरी वाक्चातुरी से उन्हें मोहित करते हुए कहा- अत्यन्त सौभाग्यशालिनी गोपियों, तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं कौन-सा कार्य करूँ? व्रज में तो सब कुशल-मङ्गल है न? कहो, इस समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ गई? **स्वागतं वो महाभागा: प्रियं किं करिवाणि व:। व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारूणम्।।**

गोपियों, इस समय रात की बेला है। यह स्वयं ही बड़ी डरावनी होती है और इसमें बड़े-बड़े भयानक जीव-जन्तु इतस्तत: भ्रमण करते रहते हैं अत: तुम लोग शीघ्रातिशीघ्र व्रज में लौट जाओ। रात के समय स्त्रियों को जङ्गल में नहीं रुकना चाहिये।

तुम अपनो घर छोड़िकैं क्यों आईं वन माहिं। रैनि समय घरकी वधू घर तजि कहूँनजाहिं।।
निज पति तजि पर पति भजे तियकुलीन नहिं होय। मरे नरक जीवत जगत भलो कहै नहिं कोय।।

तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु ढूँढ रहे होंगे अत: उन्हें संकट में न डालो। रंगबिरङ्गे पुष्पों से मण्डित, चन्द्र की चाँदनी से अलंकृत और यमुना की ओर से आते हुए अनिल से झूमते हुए तरुपल्लवों से सुशोभित वन देख लिया। अब विलम्ब मत करो। शीघ्रातिशीघ्र व्रज में लौट जाओ। तुम लोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ अपने पतियों की और सतियों की सेवा-सुश्रुषा करो। देखो, तुम्हारे घर के बच्चे रो रहे हैं, गायों के बछड़े रँभा रहे हैं। बच्चों को दूध पिलाओ और गायों को दुहो। जिन स्त्रियों को उत्तम लोक या मोक्ष पाने की इच्छा हो उन्हें अपने पतियों का परित्याग नहीं करना चाहिए।

इतनी औपचारिक बात की जायगी, किसीको आशंका नहीं थी। सबके मुख म्लान हो गये। सबके नेत्र टपकने लगे;

किंतु अभी तो अन्तिम वज्रपात शेष था। वंशीधर कह गये- आप सब मेरे प्रेमसे विवश आयी हो, यह उचित ही है। सब प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं; किंतु प्रेम परिशुद्ध होता है। किसी स्त्रीको परपुरुषके स्पर्शकी कामना नहीं करनी चाहिये। यह कामना क्लेश, अयश तथा अधोगतिका कारण होती है। स्त्रीको पति तथा पतिके स्वजनोंकी सेवा करनी चाहिये। आप सबके पति, पिता, भाई आपको घर न पाकर बहुत व्याकुल होंगे। अभी गायें दुहनी होंगी। स्वजनोंको भोजन कराना होगा। स्त्रीका परम धर्म पति सेवा है। अत: आप सब अब शीघ्र लौटो और स्वजनोंकी तथा गायोंकी सेवा करो। गो-दोहन सम्पन्न कराओ। घरके लोगोंको भोजन कराओ। मेरा प्रेम मनमें रहने दो, इसीसे आपका परम मंगल होगा।

दु:शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग धनोऽपिवा। पति स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकप्सुभिरपातकी।।
वृद्ध रोगवश जड धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकई धर्म एक व्रत नेमा, काय, वचन, मन, पति पद प्रेमा।
पति प्रतिकूल जनम जह जाई, विधवा होई पाई तरूनाई।
पति बंचक पर पति रति करहिं, रौरव नरक कल्प सत परहिं।
छन सुख लागि जनम सत कोटि, दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।

भगवान के इस कथन में भी एक प्रकार का व्यंग्य है। उन्होंने कहा कि- देखो गोपियों, यदि तुम्हें बहुत पति पाने की इच्छा है, जन्म-जन्म पति पाने की अभिलाषा है, तो जो लौकिक पति हैं, उनकी सेवा करो और सर्वदा के लिये एक पति की कामना हो तो मुझसे प्रेम करो, मैं तुम्हें प्राप्त हो जाऊँगा।

भगवान ने आगे कहा- गोपियों, तुम लोग हमारे प्रेम में आबद्ध होकर मुझे देखने के लिये दौड़ी चली आई, तो यह भी ठीक ही है। संसार के सारे प्राणी मुझसे स्वभावत: प्रेम करते हैं। निष्कपट भाव से पति की सुश्रुषा करना स्त्रियों का परम धर्म है। पति के भाई-बन्धुओं की सेवा भी स्त्रियों के लिये उचित हैं पति चाहे कुरूप हो, कोढ़ी हो, धनी हो, निर्धन हो प्रत्येक स्थिति में उसका साथ निभाना स्त्री का सर्वोच्च कर्त्तव्य है। जार-पति का सेवन सर्वत्र कुत्सित माना गया है।

दूसरी बात यह है कि मेरी लीला और गुणों के श्रवण से, रूप के दर्शन से, उन सबके कीर्तन और ध्यान से मेरे प्रति जैसी अनन्य प्रीति होती है, वैसी पास रहने से नहीं होती अत: तुम लोग अपने-अपने घर लौट जाओ।

शीतल मन्द सुगन्ध पवन पल्लवन वन विकसित। अथवा सुषमा शारदीय अवलोकनके हित।।
आईं अथवा नेहवश, प्रेम करहिँ मोमें सबहिँ। पातिव्रत पालन करहु, जाओ निज निज घर अबहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्ण का यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास हो गईं। उनका मन खिन्न हो गया। वे मुख नीचा करके अँगूठे से धरती कुरेदने लगीं। उस समय उनकी आँखों से काजल-मिश्रित आँसुओं की धारा बह चली। उससे उनके कुचों पर लगा कुमुम धुल गया। उनका हृदय अगाध दु:ख से भर गया। वे कुछ भी बोल न सकीं। कुछ समय बीतने पर अपनी स्थिति को सँभालती हुई गोपियों ने गद्गद वाणी में कहा- प्रिय श्रीकृष्ण, आप इस प्रकार के कठोर वचनों का प्रयोग न करें। संसार के सारे विषयों का परित्याग कर हम आपके चरण के तले आई हैं। हम आपकी भक्ति हैं। हठीले, अब आप हमारा परित्याग न करें। भगवान नारायण कृपा करके जैसे अपने मुमुक्षु भक्तों को स्वीकार कर लेते हैं, वैसे ही आप भी हमें अङ्गीकार कर लें।

अब तुमको यह उचित नहिं सुनो श्याम सुखराश। मन हमरो अपनायकै हमको करत निराश।।

हे प्यारे प्रियतम, तुम हठीले और स्वतन्त्र हो, तुम पर हमारा कोई वश नहीं है, फिर भी हमारा इस प्रकार परित्याग न करो,

हमें अपना समझकर स्वीकार करो। हे प्यारे मनमोहन, तुम समस्त धर्मों के मर्म को जाननेवाले हो। तुम्हारा यह कथन अक्षरश: सत्य है कि स्त्रियों का धर्म पति, पुत्र, भाई, बन्धुओं की सेवा करना है किन्तु तुम तो इनके भी पति सर्वात्मा ईश्वर हो। तुम साक्षात् भगवान हो- जो प्रेम, पति, पुत्र आदि से हमारा हो, वह तो तुम्हीं से होना चाहिये। तुम सम्पूर्ण भूतों के आत्मा, मित्र तथा परम प्यारे हो। जिन प्राणियों को तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान है, जो तुम्हें पहिचानते हैं, वे तो केवल तुम्हीं से प्रेम करते हैं, सांसारिक पति, पुत्र, कुटुम्बी आदि से प्रेम नहीं करते हैं क्योंकि वे तो अनित्य नाशवान तथा दु:ख देनेवाले हैं। केवल सत्य सुखद नित्य तो आप ही हैं।

पति पुत्र निज जन तजे आई तुम्हरे पास। दीनबन्धु जग नाथ तुम, पुजवौ हमरी आस।।
कहा करें ग्रह जाय कर, अटक्यौ मन तुम माँहिं। तुम सम दूजौ और नहिं, हमकूँ इस जग माँहिं।।

हे श्यामसुन्दर, तुम्हारे मिलन की अग्नि हृदय में जल रही है हमारा गात गात जला जा रहा है हमें अपने चरणों की दासी बनाकर अपनी सेवा का अवसर प्रदान करो। हम तुम्हारी रूप-माधुरी, मधुर चितवन, मन लुभावनी मुस्कान तथा लक्ष्मी जी के निवास स्थान, उस वक्षस्थल को देखकर और भक्तों की रक्षा करनेवाली दोनों सुन्दर भुजाओं को देखकर हमारा मन तुम्हीं में लग गया है, हम तुम्हारी बिना मोल की दासी बन चुकी हैं। जब हम तुम्हारी त्रिलोक्य मोहिनी वंशी की ध्वनि सुनती हैं और तुम्हारी उस बाँकी छवि को देखती हैं, तब हे बांके बिहारी, हम अपने तन, मन की सुधि भूल कर तुम्हारे इन चरणों को चूमने की अभिलाषा करने लगती हैं। हमने उन्हीं चरणों को चूमने के लिए अपने कुल की लज्जा, कान, आर्य, मर्यादा, भक्ति सब त्याग दी हैं।

गोपियों का साहस टूट गया। किस निष्ठुर से प्रेम किया। इतने सौन्दर्य माधुर्य में इतनी निष्ठुरता भी रह सकती है। छछून्दर की-सी गति हो गई, न निगलते बनता न उगलते ही। ये बढ़ते ही जाते हैं, हमें भगाने पर उतारू हैं। प्राण रहते हुए हम यहाँ से टल नहीं सकतीं। जिसको एक बार हृदय सौंप दिया, अब तो सदा के लिये उसी के हो रहे।

सुनत श्यामके कठिन बचन व्रजवनिता रोईं। भयो हृदय दुख दुसह सबनि तन मन बुधि खोईं।।
नयननि निकसत नीर कालिमा काजरकी सँग। ढरकि हृदयपै गिरत मिलत कुचकुंकुमके रँग।।
गङ्गा यमुनाके सरिस, उमड़त हिय मुख मलिन अति। बनें भलें ही कठिन हरि, हमरी तो वे एक गति।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, जब श्यामसुन्दर ने आई हुईं गोपियों से प्रथम ही ऐसी प्रेमहीन, नीरस कठोर बातें कहीं, तब गोपियों का समस्त उत्साह भंग हो गया। उनका मुखमंडल म्लान हो गया। उनकी आशा लता मुरझा गयी, प्रेमालिङ्गन की आशा निराशा में परिणित हो गयी। वे अगाध दुस्तर चिन्ता सागर में निमग्न हो गयीं।

प्रिय श्यामसुन्दर, आपने हमें पति-परिवार की सेवा-सुश्रूषा का उपदेश दिया है। यही स्त्रियों का धर्म बतलाया है। हम आपका कथन स्वीकार करती हैं। किन्तु हमारे ये-सारे भाव तो आप में ही सन्निहित हैं। आप ही हमारे पति हैं, आराध्य हैं। क्षणिक सुखदाता पति-पुत्र आदि को लेकर हम क्या करेंगी? अब तक हमारा मन घर के काम-धन्धों में लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उसमें रमे हुए थे। परन्तु हमारे देखते-ही-देखते आपने अपनी वंशी बजाकर हमारा चित्त खींच लिया। इससे हमारे पैर अब आपके सन्निधान को छोड़कर एक पग भी कहीं जाने में समर्थ नहीं है। फिर हम व्रज में कैसे जाँय? और यदि किसी-किसी प्रकार जाँय भी तो वहाँ करें क्या? अब हमारे हाथ किसी गृह-कार्य के लिये उठते ही नहीं है। अब तो यही हो सकता है कि हम यहीं पर अपने प्राणों का त्याग कर दें, व्रज तो हमसे लौटकर जाया नहीं जाएगा।

यह सब माया के तथा कर्म के नाते है। ये परम लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाते है। ध्येय, प्रेय, सब स्वजन सगाई, हे कान्हा सब

कुछ मेरे केवल एक तुमही हो। हे नाथ परम परमार्थ यही है कि सब त्यागकर आपसेही प्रेम किया जाय। क्योंकि समस्त तनुधारियों आत्मा रूप से तुमही हो। तुम्हारे समान कोई भी परम हितकारी नहीं है। एक तुमसे नाता जोड़ लेना सच्चा नाता है। अलग नाता माया का नाच है। ज्ञानी वही है जो परम मूल गति एक तुम्हीं को जानकर हमेशा एक तुम्हीं से प्रेम करें।

प्राणवल्लभ, आपके हास-परिहास से, बाँकी चितवन से और वंशी के मधुर मनोहर गान से हमारे हृदय में प्रेम और मिलन की आग भड़क उठी है, कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी है। अब आप ही अपने अधरामृत की वर्षा से उसका उपशमन कीजिये। यदि आप अपने अधरामृत के पान से हमारी हृदयाग्नि शान्त नहीं करते तो सुन लीजिये, हम सब सोलह सहस्त्र गोपियाँ आप की विरहाग्नि से जल मरेंगी और ध्यान के द्वारा आपके चरण-कमलों को प्राप्त कर लेंगी।

प्रिय कमलनयन, आप वनवासियों के प्यारे हो और वे भी आप से बहुत प्रेम करते हैं। इससे आप प्राय: उन्हीं के पास रहते हो। यहाँ तक कि आपके जिन चरणकमलों की सेवा का अवसर स्वयं लक्ष्मी जी को भी कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणों का स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। चरणों के स्पर्श के सौभाग्य पर विराजती हैं। एक दिन उन्होंने आपसे प्रार्थना की- प्राणनाथ, मैं आपके चरणों में निवास करूँगी। इस पर आपने कहा- लक्ष्मीजी, वहाँ तो आप की सौत तुलसी निवास करती है। तुम सौत के साथ कैसे रहोगी? दूसरी बात यह हैं कि वहाँ निरन्तर भक्तों की भीड़ भी लगी रहती है। हमेशा धक्का-मुक्की रहती है। इस पर लक्ष्मीजी ने कहा- प्रभो, सौत के साथ रह लूँगी। भीड़-भाड़ में भी रह लूँगी। किन्तु रहूँगी आपके चरणों में ही। प्राणनाथ, लक्ष्मीजी के समान हम लोग भी आपके चरण की शरण में आई हैं। आपके चरणों की उपासना ही हमारा ध्येय है। अथवा आपकी उपासना का नाश करनेवाली वस्ती का परित्याग करके आई हैं। प्यारे, हम आपसे अधिक क्या कहें? हम आपकी मधुर मुस्कान और मनोहर चितवन के कारण तीव्र काम से सन्तप्त हैं। अत: अब आप हमें दासी बना लीजिये।

गोपियाँ आगे कहती हैं- प्रियतम, घुँघराली लटकती हुई अलकों से अलंकृत आपके मुखकमल, सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित आपके कमनीय कपोल, अमृत को भी लज्जित करनेवाली सुधा से लबालब भरे हुए आपके अधर, मन्द-मन्द मुस्कान से उल्लसित आपकी नयन-मनोहारी चितवन, शरणागतों को अभय प्रदान करने में निपुण आपकी दोनों भुजाओं और लक्ष्मीजी की क्रीडास्थली आपके वक्ष:स्थल को निरख कर हम बस आपकी दासी बन गई हैं।

प्रिय श्यामसुन्दर, त्रिलोकी में कौन ऐसी स्त्री है, जो आपके इस रूप को देखकर और आपकी वंशी की ध्वनि को सुनकर मोहित न हो जाय? आर्यचरित से विचलित न हो जाय? जब गाय, पक्षी वृक्ष और हरिण-हरिणियों के झुण्ड आपके वंशी-निनाद को सुनकर तथा आपके भुवन-मोहक सौन्दर्य को निरख कर मुग्ध हो जाते हैं, तब हमारा अनुरक्त होना कोई विलक्षण बात नहीं है। संसार के कष्ट का निवारण करने के लिये ही आपका प्रादुर्भाव हुआ है इसलिये आप हमारे दु:खों का निवारण कर हमें स्वीकार करें। प्रियतम, हम सब दु:खकी मारी हैं। आपके मिलन की आकांक्षा की आग से हमारा वक्ष:स्थल धधक रहा है। आप अपनी इन दासियों के वक्ष:स्थल और सिर पर अपने कोमल करकमल रखकर हमें अपना लीजिये, जीवनदान दे दीजिये।

सुत पति सेवा करन दयो उपदेश हमें तुम। परि समझें सर्वस्व प्रानपति तुमकूँ सब हम।।
प्रियता जगमहँ होहि सबनिमहँ तुमरे कारन। कैसे हम करि सकें आपुकी शिक्षा धारन।।
कुशल शास्त्रविद् सकलजन, करहिँ प्रेम तुम श्रेष्ठमहँ। का पति सुत जग प्रेमतैं, होवे यदि रति श्रेष्ठमहँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें भगवान से कह रही हैं- हे प्यारे, आप धर्म को जाननेवाले हैं। आपने जो पति, पुत्र और बन्धु बान्धवों की सेवा करना ही परम धर्म है यह उपदेश दिया है तो यह उपदेश आप ईश्वर में ही हों। आप ही देहधारियों के प्रियतम बन्धु और आत्मा हैं।

चन्द्रावली यह कुछ प्रगल्भा गोपी है, इसीलिए वह बोल सकीं- इसके वचन ही सबके लिए सुधा-श्रोत हो गये।

श्यामसुन्दर, इतने निष्करुण मत बनो। ऐसे नृशंस वचन तुम्हें नहीं कहने चाहिये। हम संसारके समस्त सम्बन्ध त्यागकर, सब छोड़कर तुम्हारे समीप आयी हैं। परम पुरुष परमात्मा भी अपने अनन्याश्रितोंको अपना लेते हैं। तुम हमें त्यागो मत। स्वीकार करो। अत्यन्त आर्त गद्‌गद् स्वर इसका। पाषाण भी पिघल जाय ऐसी वाणी।

प्यारे, दुराग्रह मत करो। तुमने जो पति, पुत्र, पिताकी सेवा स्त्रीका परम धर्म बतलाया है, तुम धर्मज्ञ हो, अत: स्वयं कह दो कि तुम्हारे ये वचन तुम्हारे चरणोंकी सेवामें सार्थक नहीं होते? तुम्हीं सबके परम प्रेष्ठ आत्मा नहीं हो? समस्त प्रज्ञण धारियोंके आत्मा तुम- तुम्हारी सेवा ही तो सबकी सच्ची सेवा है?

जो विद्वान हैं, विवेकी हैं, ज्ञानी हैं, वे सब तो तुममें सदा प्रीति करते हैं। ये संसारके बन्धन, विपत्ति, क्लेश देनेवाले पति-पुत्र-पितादिसे क्या प्रयोजन? अत: कमल लोचन हमपर प्रसन्न हो जाओ। बहुत समयसे हमने आशा लगा रखी है। इस आशा लताका उन्मूलन न करो।

यह आशा हमारे हृदयमें तुमने स्वयं अंकुरित की है। स्वयं अपने हास्य, लीला-विलास, बंक विलोकनसे सींचकर तुमने इसे बढ़ाया है। तुमने अपने भुवन मोहन वंशीरवसे हमारा चित्त छीन लिया और अब कहते हो कि हम लौट जायँ?

हम कैसे लौट जायँ? हमारे पद तुम्हारे समीपसे एक पद हटते नहीं। कहाँ लौट जायँ? तुम्हारे अतिरिक्त तो हमें संसार सूना दीखता है। क्या करें कहीं जाकर? हमारे चित्त एक पलको तुम्हारे पादपद्मोंको छोड़ और कुछ स्मरण नहीं कर पाते।

पुरुष-भूषण, सब त्यागकर, सब सम्बन्ध भूलकर केवल तुम्हारी उपासनाकी आशासे हम आयी हैं। हमपर प्रसन्न हो जाओ। तुम सबके विपत्ति विनाशक हो। हम आर्त अबलाओंको अपनी दासियाँ स्वीकार कर लो।

तुम्हारे सुन्दर स्मितसे हमारे अन्तरमें तुम्हारी प्राप्तिका प्रचण्ड वाडव प्रज्ज्वलित हो उठा है। तुम तो व्रजके भय, दु:खको दूर करनेके लिए प्रकट हुए हो। हमारे इस अन्तस्तापको अपने अधरामृतसे सिंचित करके शान्त कर दो।

प्रियतम, तुम हमें अपनी प्राप्तिसे रोक नहीं सकते। केवल संसार तुम्हें निष्ठुर कहेगा। हमारे हृदयोंमें और धैर्य नहीं है। तुम्हारी अपेक्षाग्नि असह्य है। हम तो अभी तुम्हारा ध्यान करके शरीर त्याग देंगी और तुम्हें प्राप्त कर लेंगी; किंतु प्यारे। प्रीतिकी मर्यादा सदाको मिट जायगी। लोग कहेंगे कि व्रजराज कुमारके सम्मुख उनकी प्रेयसियाँ तड़प-तड़पकर मरीं और....। अब अपना लो श्यामसुन्दर। जो कुशल होते हैं, वे ही तुमसे प्रेम करते हैं और जो तुमसे प्रेम करते हैं, वे ही कुशल हैं। दुनियाके पदार्थ और सम्बन्ध तो दु:ख देनेवाले ही हैं। हम चिरकालसे तुम्हारे प्रति आशा जोड़कर बैठी हैं। तुमने पहले तो हमारे भीतर आशा जगायी और अब उसको काट रहे हो। अरे, अपने हाथसे लगाये हुए जहरके पेड़को भी नहीं काटते।

भगवान बोले- एक पतिव्रता स्त्री थी। घर के आंगन में बैठी धान कूट रही थी। पति कहीं बाहर से आये, तो पतिदेव को देखते ही वे खड़ी उठी। पति-पत्नी दोनों बैठ गये। बैठे-बैठे पति को पत्नी की गोद में नींद आ गयी। उनका एक वर्ष का बालक घुटमन-घुटमन खेलता हुआ अग्निकुंड के पास चला गया। बालक क्या समझे अग्नि को। पत्नीने देखा कही अग्नि कुंड में गिर न जाये। उसने सोचा, यदि बच्चे को बचाने के लिए जाती हूँ, तो मेरा पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाता है। पति की निद्रा भंग हो जायेगी और बच्चे को बचाने नहीं जाऊँ, तो बालक जल कर राख हो जायेगा। इसी बीच उसका बालक अग्निकुण्ड में गिर गया। उस पत्नी ने अपनी आँखों को बन्द कर लिया और सोचने लगी भले ही मेरा पुत्र जलकर राख हो जाये लेकिन मैं पतिव्रत धर्म को नष्ट नहीं कर सकती। थोड़ी ही देर में पति की नींद खुली तो पत्नी रोते हुए अग्निकुंड के पास गयी देखा अग्निकुंड में बड़ी जोर से अग्नि प्रज्ज्वलित है। जलते हुए अग्नि कुण्ड में उसका बालक किलोल कर रहा है। पतिव्रत धर्म

के प्रभाव से जलती हुई अग्नि भी शीतल हो गयी। ऐसा होता है पतिव्रता नारी का धर्म। पति की सेवा ही सर्वोच्च धर्म है। यह बात सुनकर गोपियां एकदम गम्भीर हो गयी और बोली- आप जो हमें घर जाने को कहते हैं गोपाल यह हमें बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। सारे विषयों को हमने त्याग दिया और आपके चरण कमलों की प्राप्ति के लिये यहां आयी हूं। आपने जो उदाहरण दिया इसका अर्थ तो यही है शरीर ही पति है, पत्नी है, शरीर ही सासू हैं, शरीर ही पुत्र है, आत्मा का पति श्रीकृष्ण कैसे हो सकता है? जब तक देह के प्रति अध्यास है, देहाभिमान है, तबतक देह से सम्बन्ध रखनेवालों के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। पर जब हम ये जान जायें कि मैं देह नहीं हूँ, मैं तो आत्मा हूँ फिर आत्मा का पति सिवाय कृष्ण के कौन हो सकता है? आपने जो पतिव्रता नारी का उपदेश दिया गोपाल, ऐसी दो-चार कथायें तो हम भी सुना सकते हैं।

एक गोपी बोली- एक पतिव्रता स्त्री थी। पति को प्राणों से अधिक प्यार करती थी। सदा पति की सेवा में ही लगी रहती थी। संयोग की बात एक बार पति को आवश्यक कार्यवश परदेश जाना पड़ा। पतिव्रता ने कहा- प्राणनाथ, मैं आपके बिना कैसे जीवित रह सकूँगी। मेरा तो एकमात्र व्रत आपकी सेवा करना ही है। मुझे जीवन का सहारा चाहिये।

पति भी अपनी पत्नी को हृदय से प्यार करता था। उसने अपनी एक मृत्तिका की प्रतिकृति-सुन्दर मूर्ति-बनवाकर पत्नी को दी और कहा- तू इसी को मेरा रूप मानकर सेवा करना। इतने समय में मैं लौट आऊँगा। यह कहकर वह चल गया।

यद्यपि वास्तव में वह मृत्तिका की मूर्ति पति नहीं थी, किन्तु उसमें पति की आज्ञा से पति की भावना रखकर वह श्रद्धाभक्ति से उसकी पूजा किया करती थी।

एक दिन वह उस पति-प्रतिमा की प्रेमपूर्वक पूजा कर रही थी। सहसा उसके पति ने किवाड़ें, खटखटाईं, उसे प्रेमपूर्वक पुकारा। अब बताइये उसका धर्म क्या है वह उस मृत्तिका की प्रतिमा के पूजन में लगी रहे या पति का आह्वान सुनकर-सब कुछ छोड़कर द्वार पर दौड़ी जाय?

भगवान ने कहा- इसमें भी क्या पूछने की बात है। जब उसका यथार्थ पति आ गया। वही जब उसे प्रेमपूर्वक बुला रहा है तो फिर मृत्तिका के माने हुए पति की पूजा की क्या आवश्यकता है?

गोपी ने कहा- तो देखिये अब आपके मुख से ही आपकी बात का खण्डन हो गया। आपने अपने मुख से ही न्याय कर दिया। आपने कहा था पति में परमेश्वर भावना करके उसकी सेवा करो। इससे यही सिद्ध हुआ कि परमेश्वर कोई दूसरा है। हाड़-मांस के बने पति में उसकी भावना की जाती है। जब हमें यथार्थ परमेश्वर ही मिल गये और उन्होंने ही वंशी बजाकर हमें हठात अपने समीप बुला लिया तो फिर हम अब लौटकर कहाँ जायँ?

ऐसे बर को क्यों बरें, जो जन्मे और मर जाय। वर बरिये गोपाल को, जासे से चुड़लो अमर हो जाय।।

भगवान ने कहा- तुम्हारे सगे सम्बन्धी तुम्हारे लिये चिंतित हो रहे होंगे?

गोपियों ने कहा- वे चिंतित क्यों हो रहे होंगे, इसीलिये कि हमने उनमें अपनापन कर रखा है। अब हम सब चाहती हैं कि उन सबमें जो हमारा अपनापन है, वह सब बटोरकर आपमें ही लग जाय, क्योंकि प्राणीमात्र के प्रिय से भी प्रिय बन्धु आप ही हैं। जीव मात्र के अन्तरात्मा आप ही है। आपके ही द्वारा सबका जीवन है। जब हमने सर्वान्तर्यामी जीवनाधार की शरण ले ली, तब हमें और किसी के समीप जाना नहीं चाहिये। वे अज्ञानी तो इस हाड़-मांस के बने पांचभौतिक शरीर को ही आत्मा मानते हैं, किन्तु शास्त्रकुशल पुरुष आत्मस्वरूप आपमें ही प्रेम करते हैं। संसार में किया हुआ प्रेम तो अनित्य है। यदि रूप के कारण है तो रूप के नष्ट हाने पर प्रेम भी नष्ट हो जाता है, यदि देह के कारण है तो भी नाशवान है, किन्तु आप तो अविनाशी हैं, अत: आप ही नित्य प्रिय हैं, आपसे ही प्रेम करने में सुख है। जिनका आपसे प्रेम हो गया, उन्हें तो ये पति

पुत्रादि मिट्टी के पुतले प्रतीत होते हैं।

कमलनयन। अब कठिन हृदय बनि मत ठुकराओ। फूली आशा लता ताहिं नहिँ नाथ जराओ।।
जाहिँ कहाँ का करें चित्त नहिँ वशमहँ प्यारे। कर, पद अब गतिहीन अङ्ग सब भये हमारे।।
अरे, निर्दयी, प्रथम तो, जाल प्रेमको डारिकें। अब फँसाइ व्याकुल करत, च्यौं नाहिँ डारे मरिकें।।
मन्द-मन्द मुसकाय हृदयमहँ बान चुमोयो। करी प्रज्वलित आगि कामकी सरबसु खोयो।।
प्यासी बनमहँ फिरहिँ दया हिरदेमहँ लाओ। अधरामृत अतिसुखद रमण। भरिपेट पिआओ।।
वधिक, विरह विषबानतैं, नाहिँ हम सब मरि जाइँगी। दिव्य देहतैं ध्यान धरि, चरन शरन तब पाइँगी।।

शुकदेव बोले, राजन्, गोपिकायें कह रही है- हे वृजिनार्दन, आप हम पर प्रसन्न हों, हम अपने घर-द्वार को छोड़कर आपकी सेवा के निमित्त ही आपकी शरण में आयी हैं। हे पुरुष-भूषण, आपकी चारुचितवन और मन्द मुस्कान से हमारा चित्त अत्यन्त कामतप्त हो रहा है। आप हमें अपनी दासी बना लीजिये।

जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन समुद्र में चन्द्रमा को देखकर उफान उठता है। प्रेमास्पद के हृदय में प्रेम की अभिवृद्धि होने से प्रेमी का उत्साह और भी बढ़ता है, फिर वह अपने प्रस्ताव को नि:संकोच अनावृत भाव से रखता है। जब दोनों ही ओर से प्रेम समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन करके उमड़ने लगता है, तभी रास-विलास होता है। उसके पूर्व जो हो जाता है, वह क्षणिक इन्द्रिय विकार है, तुच्छ है, उसमें सुख नहीं, शान्ति नहीं, हृदय दौर्बल्य है।

गोपियां कहने लगीं- श्यामसुन्दर, देखो हम अबलाओं के साथ अन्याय मत करो। सोचो तो सही, इस बीहड़ वन में हमारा क्या रखा है, हम घर बार, कुटुम्ब परिवार का मोह छोड़कर यहाँ क्यों पड़ी हैं। एकमात्र तुम्हारे लिये ही न? हे कमलनयन, तुम तो वनवासी मुनियोंके प्यारे हो, सुनते हैं, वन में रहकर भजन करनेवालों से तुम प्रसन्न होते हो, इसीलिये हम घर छोड़कर वन में आयी हैं? क्या तुम हमें प्यार न करोगे? सुनते हैं आप जब शेषशैया पर सुख से शयन करते हैं तो लक्ष्मीजी चंचल होने पर भी आपके चरणों को निरन्तर पलोटती रहती है, क्या इन चरणों को पलोटने का अवसर हमें दोगे?

जिस दिन से हमने आपके कमल के सदृश कोमल नवनीत से भी अधिक स्निग्ध इन चरणों का स्पर्श किया, उसी दिन से हम आपके हाथों बिना मोल के बिक गयीं, आपकी क्रीतदासी हो गयीं। हमसे आप बीच यमुना में खड़े होकर कहला लो आप सर्वान्तर्यामी परमात्मा में हमारा पति भाव है और इस भाव को हम पाप भी नहीं समझती।

गोपिकाओं ने दृढ़ता के स्वर में कहा- हो उनका अधिकार हमें लक्ष्मी से कोई डाह नहीं। वे आपके हृदय पर विहार करें। हम उनके अधिकार को छीनना नहीं चाहतीं। किन्तु आप तो नाथ, बहुवल्लभ हो न? देखो, तुलसीजी आपके चरणों की सेवा करती हैं, भक्त आकर चरणों में गिरते हैं। जो आता है उसे ही आप अपने चरणों की शरण देते हैं। हृदय पर लक्ष्मीजी का अधिकार हो तो बना रहे, किन्तु ये चरण तो पंचायती हैं। जो आता है वही चरणों में पड़ जाता है। इससे चपल चंचला लक्ष्मीजी का चित्त चंचल हो उठता है, वे भी चरणों की सेवा करने को लालायित हो उठती हैं, उनसे भी आप मना नहीं करते, उन्हें भी चरण सेवा का अधिकार देते हैं, फिर हमें आप क्यों ठुकरा रहे है? हमारे लिये आप इतने कठोर क्यों बन रहे हैं? हम लक्ष्मीजी की भाँति कोई अनधिकार चेष्टा तो कर ही नहीं रही हैं। जो चरण समस्त भक्तजनों द्वारा सेवित हैं, जिन पर सर्व साधारण का अधिकार है, हम उन्हीं चरणों की रज की इच्छुका हैं।

हमारा एकमात्र हेतु आपकी सेवा करना ही है। हमें आप सेवा का सुअवसर दें, सेविका समझकर अपनावें शिष्टाचार की बातें कहकर, कुशल प्रश्न और क्षमा याचना ऊपरी बातें करके ही हमें ठुकरावें नहीं, टरकावें नहीं। अपने चरणों की

सन्निधि में रहने दें।

तुम तो चोर शिखामणि निकले। तुमने अपनी मन्द-मन्द मनोहर मुसकान से तथा चारु चितवन से हमारे चित्त को चुरा लिया है। तुमने अपने अनुराग भरे अवलोकन से कामबाण मारकर हमारे हृदय में दाह उत्पन्न कर दी है, हमारा हृदय काम सन्तप्त हो रहा है। यदि आप दया करके हमें अपनी दासी बना लें, सेविका समझकर अपना लें तो यह दाह शान्त हो जाय। वेदना निर्मूल हो जाय। तुम हमें अधर में लटकाये हुए हो। न मारते ही हो न जिलाते ही हो।

त्रैलोक्य में ऐसी कोई भी सुन्दर स्त्री न होगी, जो आपके ऊपर आसक्त न हो जाय?

एक तो यह काली-काली कुटिल अलकावली से आवृत्त आपका मनोहर मुख है, जिसे कमल, चन्द्रमा आदि किसी की भी उपमा देना व्यर्थ है, इसे देखकर कौन-सी स्त्री धैर्य धारण कर सकती है। दूसरी वस्तु है कानों के कमनीय कनक कुंडलों की कलित कान्ति से सुशोभित ये गोल-गोल लोल कपोल। इन कपोलों पर कौन अपना सर्वस्व निछावर करने को प्रस्तुत न होगी।

आपके बिम्बाफल के सदृश सुचिक्कण मृदुल अधरों से चूता हुआ अधरामृत। जिसके ओठों से इसका एक बार भी स्पर्श हो जाय, उसे क्या घर द्वार, कुटुम्ब परिवार कभी अच्छा लग सकता है, फिर वह क्या कभी घर में रह सकती है।

आपकी विष बुझे बाणों के सदृश मनोहर मन्द मुस्कानमयी चंचल चितवन। सहज स्वभाव से भी एक बार आपकी ओर देख दें, फिर वह न घर की रहेगी न बाहर की। घर द्वार विहीन होकर सूतरी में बँधी कबूतरी के समान आपके पीछे-पीछे ही घूमती रहेगी। आपके गोल-गोल अभयदायक विशाल बाहु युगल। जिसके कन्धे पर आपने इनको रख दिया। जिसके कण्ठ में हार के समान ये एक बार भी पड़ गये, उसे फिर ये मणिमाणिक्य, मोती तथा सुवर्ण आदि के बने हार अच्छे लग सकते हैं क्या? अपने करकमलों में से जिसे आपने एक बार छू दिया, वह किसी दूसरे सुखद स्पर्श से तृप्त हो सकती है?

एकमात्र कमलादेवी का क्रीड़ा स्थान आपका विशाल वक्ष:स्थल, जिसमें श्रीवत्स का चिन्ह है, कौस्तुभ मणि जिसमें लटकती रहती है। उस वक्ष:स्थल से जिस भाग्यवती का वक्ष:स्थल सट गया, उसके सौभाग्य की सराहना संसार में कौन कर सकती है। सो ब्रजबल्लभ, आपकी इन्ही छै वस्तुओं को देखकर ही हम आपकी हृदय से दासी बन चुकी हैं। हमने तो अपना सर्वस्व आपके चरणों में सदा के लिये समर्पित कर दिया। अब उसे स्वीकार करना आपका काम है।

हम पूछती हैं, हमने कौन सा अनुचित काम किया?

उच्च स्वर से गायी गयी और आह्वान के ही लिये बजाई गई, मधुर स्वरलापों से युक्त इस मुरली की धुन को सुनकर और त्रिलोक सुन्दर आपके सुकुमार स्वरूप को निहार कर संसार में ऐसी कौन-सी स्त्री होगी, जो घर बार के कामों में लगी रहेगी? उन्मत्त होकर आपके चरणों की ओर न दौड़ेगी। स्त्रियों की बात छोड़ दीजिये, गौएँ भी तो आपके पीछे-पीछे पालतू हिरनी की भाँति घूमती रहती हैं। वे भी तो आपके संकेत पर नाचती हैं। इन सबकी बात छोड़ो, वृक्षों के भी तो रोमाञ्च हो जाते हैं। जब पशु, पक्षी और वृक्षों की यह दशा है तो स्त्रियाँ यदि अपनी आर्य मर्यादा से विचलित हो जायँ तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है?

हम बात को अधिक बढ़ाना नहीं चाहतीं। बोलने की हममें शक्ति भी नहीं, योग्यता भी नहीं। संसार में निर्बलों की रक्षा सदा सबल करते हैं। देवताओं पर जब दु:ख पड़ता है तो दयासागर विष्णु अपने चक्रसुदर्शन से उनकी रक्षा करते हैं। प्रजा पर आपत्ति-विपत्ति आती है तो अपने अस्त्रों-शस्त्रों से राजा उनकी रक्षा करते हैं। ब्रजमण्डल पर जब-जब विपत्ति आई, तब-तब आपने उन सबसे उसकी रक्षा की। गोप-गोपियों के दु:खों को दूर किया। अब हमारे ही लिये इतने निष्ठुर क्यों बन गये हो? काम के द्वारा पीड़िता हम दासियों की भी आप रक्षा करो।

श्यामसुन्दर, इतने निष्ठुर क्यों बन गये हो? शरण में आयी हुई हम अबलाओं के साथ एकान्त में ऐसा अनाचार अत्याचार

क्यों कर रहे हो? अच्युत हमें अपनाते क्यों नहीं? यदि हम विशुद्ध नहीं है तो तुम तो विशुद्ध हो। सुनते हैं, भृङ्गी कीट को अपना-सा बना लेता है। तुम भी तो भृङ्गी के समान काले हो। अपनी शक्ति से हमें भी अपने अनुरूप बना लो। प्रपन्न को अपनाना यही तो परमेश्वर का काम है। हम प्रपन्न हैं, आपकी शरण में हैं। हमारी सेवा स्वीकार करो।

जा दिनतैं अति मृदुल पमदुपद हमने परसे। ता दिनतैं अनुराग हृदय सर सरजित सरसे।।
चरनकमलरज चहहिं किमरी करि अपनाओ। दीनबन्धु दुखदलन दया करि हृदय लगाओ।।
बाहु कण्ठको हार करि, कर सरोज सिरपै धरो। वक्षःस्थल पदकमल धरि, हृदय ताप गिरिधर हरो।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, अनुनय-विनय की भी पराकाष्ठा होती है। गोपियों को अत्यन्त विह्वल देखकर कठोर कृष्ण का भी हृदय पसीज गया।

श्रीकृष्ण भक्त कभी पथभ्रष्ट नहीं होता, मार्ग नहीं भूलता। वह जिस ओर चलने लगता है, उसी ओर उसके लिये मार्ग बन जाता है। **लगी श्याम संग प्रीति, ये दुनिया क्या जाने।**

मैं रंगी श्याम के रंग में, मैं भई बावरी जब से, बाधी प्रेम की डोर मोहन से।
नाता तोड़ा मैंने जग से, ये कैसी पागल प्रीति, ये दुनिया क्या जाने।

राजन्, जब भगवान योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण ने गोपियों की विकलता एवं आतुरता देखी तो वे हँस पड़े। उनका हृदय दया से भर गया। कृष्ण बोले- सखियो, तुम इतनेमें अधीर हो गयीं? मैं तो परिहास कर रहा था। मैं सदा-सदाका तुम्हारा हूँ, क्या यह भी कहना शेष है? आत्माराम होते हुए भी उन्होंने गोपियों के साथ विहार प्रारम्भ किया। आत्माराम का विहार दूसरों को आनन्दित करने के लिये हुआ करता है। भगवान की प्रेमभरी चितवन और उनके दर्शन के आनन्द से गोपियों का मुखकमल खिल गया। वे श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गईं। उस समय उनकी ऐसी शोभा हुई मानो अपनी पत्नी तारिकाओं से घिरे हुए चन्द्रमा हों। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण ने वन-विहार प्रारम्भ किया। गोपियाँ श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का गान करती थीं तो श्रीकृष्ण उनके सौन्दर्य के गीत गाते थे। वन का सौन्दर्य देखते-देखते श्रीकृष्ण गोपियों को लिये हुए यमुना के बालुकामय पावन पुलिन पर पदार्पण किये। उस समय यमुना का पुलिन तरल तरङ्गों के स्पर्श से शीतल और कुमुदिनी की सहज सुगन्ध से सुवासित था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु वातावरण में चार चाँद लगा रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिन पर भगवान् ने गोपियों के साथ क्रीडा प्रारम्भ की। गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करके श्रीकृष्ण उनका गुणगान करते थे और गोपियाँ श्रीकृष्ण के गुणों का गान करके उन्हें आनन्दित करती थीं। उनका प्रेम भाव परम उज्ज्वल और पवित्र था और वे अपनी चितवनि और मुस्कान से उनके हृदय में पवित्र रस भर रहे थे। इस प्रकार मधुर रस कासंचार करते हुये वे रमण कर रहे थे। श्रीकृष्ण वही हैं जिन्हें वेद रस ही कहकर आनन्दित होते हैं।

ब्रजबनितनिकी बिनय बिहारी सुनि हरषाये। प्रेम अलौकिक जानि नयन हरिके भरि आये।।
योगेश्वर मुसकाय कह्यो हौं रमण करुङ्गो। चिरदिनको सन्ताप सबनिको आज हरुङ्गो।।
यों कहि गोपनि मध्यमहँ, उडुगन सम शोभित भये। श्याम परसतैं सबनिके, चन्द्रवदन विकसित भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान ब्रजवल्लभ ब्रजाङ्गनाओं की ऐसी विह्वलतापूर्ण बातें सुनकर दयापूर्वक मुस्काये। फिर उन्होंने आत्माराम होकर भी उनके साथ रमण किया। जीव क्रीड़ाप्रिय हैं। वह नित्य नूतन क्रीड़ा चाहता है।

बाहुपाशमहँ जकरि फिरैं बन रतिपति सम हरि। ज्यों हरिनिनि संग हरिन करिनि सँग मदमातो करि।।
कृष्ण कीरतन करति कंठ कल सब मिलि गावें। नटवर बेनु बजाइ तालमहँ ताल मिलावें।।

बन बन बिचरत सखिनि सँग, आये गिरिधर पुलिनमहँ। यमुनातट शीतल सुखद, सरस बालुकर रम्यजहँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्ण व्रजांगनाओं के कामरस को उदीप्त करने के निमित्त विविध चेष्टायें करने लगे। जैसे आलिंगन के लिये बाहुओं को पसारना, हृदय से सटा लेना, करों को, केशों को, कटिवस्त्र बन्धन को, ऊरुओं को तथा स्तनों को छूना, हँसी करना, नखक्षत करना, विनोद पूर्ण चितवन से अवलोकन करना तथा मुस्काना। इस प्रकार उन्हें सुख देते हुए क्रीड़ा करने लगे।

चंचल तरल तरंग संग शीतल मलयानिल। कुसुम कुमुदिनी गंध पवन संग खेलै हिलमिल।।
तहँ रासेश्वर आइ रमण रमणिनि सँग कीन्हों। काम कलातैं सबनि अलौकिक सुख अति दीन्हों।।
तनु पुलकित हुलसित हृदय, हँसहिं हाथ फैलाइकें। मिलहिं परस्पर प्रेमतैं, भरमामें चौकाइकें।।

हाथ फैलाना, कस कर आलिङ्गन करना, हाथ मिलाना, गोपियों की चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, तिरछी चितवन से देखना और मुस्कराना- इन क्रियाओं के द्वारा गोपियों के दिव्य कामरस को, परमोज्ज्वल प्रेमभाव को, उत्तेजित करते हुए श्रीकृष्ण उन्हें आनन्दित करने लगे। गोपियों के अन्त:करण में विराजमान कामदेव को तो उन्होंने न केवल परमानन्दित किया, अपितु आश्चर्य से चकित कर दिया।

वे प्रफुल्लवदनवाली बालायें अपने कमनीय कटाक्षों से कोटि कँदर्पों के दर्प को दलन करनेवाले श्रीकृष्ण की ओर अनुराग भरी दृष्टि से निहारने लगीं। भगवान उन ब्रजांगनाओं के कंठ में गलबैयाँ डाले रति-पति के सदृश प्रतीत हो रहे थे। वे वैजयन्तीमाला को धारण किये हुए उन सबके संग यूथपति के सदृश इधर से उधर वन में विचरण कर रहे थे। वे कृष्णप्रिया कामिनियाँ अपने कोकिल कूजित कमनीय कंठों से कृष्ण की कलित कीर्ति का गान कर रही थीं। श्रीकृष्ण भी उनके स्वर में स्वर और लय में लय मिलाकर उनके गाने का अनुकरण कर रहे थे। उनकी ताल में ताल मिलाकर स्वयं भी गा रहे थे। अपने सुखद संस्पर्श के साथ उन्हें वन की शोभा दिखा रहे थे। ब्रजांगनाओं के अनुराग की अनुक्षण अभिवृद्धि हो रही थी। अत: विचरण के अनन्तर रमण की अभिलाषा अत्युत्कट हो रही थी, उसकी पूर्ति के हेतु यशोदानन्दन यमुना के पावन पुलिन के सन्निकट आये। वहाँ की बालुका सरस थी, सुन्दर थी, स्वच्छ थी, कोमल और गुदगुदी थी। वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतनी कुंजों का निर्माण नन्दनंदन ने अपनी योगमाया के द्वारा किया, फिर प्रत्येक रमणी के साथ राधारमण ने रमण की अभिलाषा से निकुञ्ज में प्रवेश किया। उस समय का दृश्य अलौकिक था। काम का सखा मलयानिल कालिन्दी की उत्ताल तरंगों के संसर्ग से शीतल और परमसुखद बन रहा था। कुमुदिनी के कुसुमों की गन्ध से वह सुगन्धित बन रहा था और श्रीकृष्ण के भय से पैरों की पैछर बचाकर मन्द-मन्द गति से चल रहा था। उस अलौकिक आनन्दमय अवसर पर अच्युत ने अपनी अनन्योंपासिका गोपिकाअें के संकल्प को पूर्ण किया। काम कला में परम प्रवीण प्राणपति प्रेष्ठने अपनी प्रियतमाओं की चिरकालीन अभिलाषा की पूर्ति की। बाहु प्रसार, परिरम्भ, कर, अलक, जघन, कटिपटबन्धन-मोक्षण, हृदय, स्पर्श, नर्म नखदन्तक्षत्र, चारु चितवन, मन्द-मन्द मुस्काने तथा और भी जो कुछ हुआ करता है सब कुछ कर करा के उनके काम संतृप्त हृदय को शान्त किया। उनको सुख दिया, उनके अधीन-से हो गये, दीनता-सी दिखाने लगे। बार-बार उनसे प्रणय की याचना करने लगे।

कबहूँ बिनवें दीन होहिं पुनि कबहूँ अकरें। हिय, मुख, करि, कटि, केश करिनतैं पुनि-पुनि पकरें।।
करि-करि क्रीड़ा ललित प्रेमरसमाहिं भिगोई। कुसुम कली सम सकल सरसतामाहिं डुबोईं।।
जगपति परबश-से भये, करीं तृप्त अति सुख दयो। पाइ मन अति श्यामतैं, मान सबनि हियमहँ भयो।।

परम कृपालु भगवान् श्रीकृष्ण ने जब इस प्रकार गोपियों का मान किया, सम्मान किया, तब उनके मन में ऐसा भाव

आया कि संसार की समस्त स्त्रियों में हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, सर्वाधिक सुन्दरी हैं, हमारे सामने और कोई नहीं है, तभी तो श्रीकृष्ण हमारे पीछे-पीछे नाचते हैं, गाते हैं और हमें मनाते हैं- यह सोचकर वे कुछ मानवती हो गईं। उनके मन में मान आ गया। वे सोचने लगीं कि श्रीकृष्ण को गरज होगी तो हमें मनायेंगे, दुलारेंगे, पुचकारेंगे।

प्रभु अपना अनन्यजन समझकर उनके प्रेम मे पगकर अपने ही अंग के संग रमण करने लगे। प्रभु सुन्दर युवती समूह में इस प्रकार से सुशोभित होने लगे जैसे तारागणों के समूह में चन्द्रमा। भगवान कृष्ण अपने यश को सुनते हुए गोपियों के साथ मधुर गान करने लगे। फिर रसेश्वरी राधा का हाथ पकड़कर परम उदार प्रभु कृष्ण सुंदर वनों में विहार करने लगे। गोपियों के बीच में आनन्द कन्द इस प्रकार सुशोभित होने लगे जैसे श्रुति छन्दों से आवृत्त होकर यथार्थ ज्ञान। इस प्रकार भगवान का दर्शन, स्पर्श, अभिमज्जन तथा प्राप्ति मान पा जाने से मानवती गोपियों के हृदय में दारुण अभिमान उत्पन्न हुआ। जब भगवान ने देखा कि गोपियों के हृदय में अपने सौन्दर्य का अभिमान हो गया है, वे अब मान भी करने लगीं हैं, तब वे उनका मान समाप्त कर उन्हें प्रसन्न करने के लिये- वहीं उनके बीच में अन्तर्धान हो गये।

उन जान्यो हरि वशय कियो लाईं मन अभिमान। प्रभु अन्तर्यामी भये क्षण में अन्तर्धान।।

अभिमान और मान में अन्तर है। राधारानी को मान हुआ और गोपियों को अभिमान। अभिमान तो होता है देह का और मान होता है आत्मीय के प्रति रूठना। रूठने को मान कहते हैं।

जिहि हियमहँ मनहरन मान तहँ रिपु घुसि आयो। समुझि गये घनश्याम दृश्य अति दुखद दियो।।
करन कृपा मदहरन रमनतैं बिरत भये तब। अन्तर्धान सुजान भये बिलखैं गोपीं सब।।
पति बिनु नारी विकल ज्यों, हथिनी ज्यों बिनु यूथपति। त्यों व्याकुल गोपी भईं, निरखि निकुञ्ज न प्रानपति।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्ण यह देखकर कि इन्हें मान और सौभाग्यमद हो गया है तो वे उसे शान्त करने तथा उनके ऊपर कृपा करने के निमित्त वहीं अन्तर्धान हो गये।

अब तक तो गोपियों की गलबहियाँ में कृष्ण नृत्य कर रहे थे। जबसे राधारानी को लेकर गोविन्द अन्तर्धान हो गये और गोपियां विरह में रोने लगी।

लोक में जिन वस्तुओं को बुरा बताया जाता है, यदि वे ही भगवान में लग जायँ तो अच्छी हो जाती हैं। काम, क्रोध तथा भय आदि लोक में बुरे हैं, यदि वे भगवान के प्रति हों तो ये ही परमपद प्राप्ति के साधन बन जाते हैं। लोक में अभिमान करना, अपने सौभाग्य पर मद करना यह बुरी बात है। यही मान मद भगवान के प्रति हो जाय तो विरह उत्पन्न करता है, जिससे हृदय द्रवीभूत होता है, अन्त:करण विशुद्ध बनता है, जिससे मुसकाते हुए माधव सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। लोक में भी देखा गया है, पति-पत्नी में जो प्रेम का मान होता है, वह प्रेम को और बढ़ाने के ही निमित्त होता है। भक्तिरस शास्त्रों में जो प्रेम के व्यभिचारी भाव बताये हैं। जैसे निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अप्सार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल, निद्रा सुप्ति तथा बोध इनमें से अधिकांश लोक में निंदित माने जाते हैं, किन्तु जब ये भक्ति सम्बन्ध से होते हैं तो अति आदरणीय रस के पोषक माने जाते हैं। रस वृद्धि के ही लिये मान और मद गोपिकाओं के हृदय में उत्पन्न होते हैं। मान मद का होना यह भी एक क्रीड़ा है। अपने रूप लाभ पर गर्व हो जाय, यही मद कहलता है।

श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेका उद्देश्य है- गोपियोंके विरहभाव को दृढ़ करना, जिससे उनके चित्तके सभी विकार धुल जायँ। उनके आँसुओंमें उनका अहंकार बह जाता है। अब उनका चित्त सभी प्रकारके विकारोंसे रहित हो गया है। संसारकी

मायाका उन्होंने त्याग कर दिया है। उनकी शरणागति पूर्ण हो गयी है।

कामदेव को स्वच्छन्द रूप से अपनी शक्ति का परीक्षण करने के निमित्त श्याम अन्तर्धान हो गये। गोपियों के साथ रास करते समय श्याम ने बहुरूप धारण किये कि एक गोपी एक कृष्ण के साथ आलिङ्गन, उद्दीपन, कटाक्षपात के माध्यम से नृत्य कर रही थीं- गोपी की भावना अहंकारमय हो गई कि श्याम केवल मेरे साथ ही अनुरक्त हैं। रास में श्याम के मिलन में ऐसी आसक्त हो गई कि दूसरी गोपी और कृष्ण उन्हें दिखाई ही न दे रहे थे। अत: यह अभिमान जागृत हुआ कि श्यामसुन्दर केवल मुझे ही परम प्रियतमा मानकर हास-परिहास मनोविनोद कर रहे है। प्रत्येक गोपी की यही दशा देख भगवान उनके अहंकार की निवृत्ति के लिए अन्तर्धान हो गये।

गोपियों को यह अनुभव कराने के लिए कि प्रेम में उपस्थिति आवश्यक नहीं- प्रेमी की सन्निधि वांछित नहीं है इसलिए श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये। गोपियोंको यह समझाने के लिए कि वियोग से ही संयोग की पृष्टि होती है। प्रेम का स्फुरण, जागृति और वास्तविक स्वरूप वियोग में ही प्रकट होता है।

संयोग से बाह्यरूप से, स्पर्श, आलिंगन, कटाक्षपात, वाक्वैभव का ही प्रदर्शन होता है किन्तु वियोग में बाह्यभान शून्य अन्त:वेदना, अन्त:मिलन, अन्त: अनुभव और मिलन की उत्कट अभिलाषा के अनुभाव में जो आनन्दाभूति होती है वह संयोग में नहीं है। यही सब अनुभव कराने के लिए श्यामसुन्दर ब्रजराज अन्तर्धान हो गये। ब्रजराज के अन्तर्धान होने पर गोपियाँ विकल हो विलाप करने लगी। कभी उनकी विभिन्न लीलाओं का ध्यान करने लगीं- कभी धीरज धर चारों ओर उन्हें निहारने लगीं- आने की प्रतीक्षा करने लगीं, रासेश्वर के न आने पर उनकी लीलाओं का सम्पादन करने लगीं।

लीला मधुर विलास यादि करि करिकें रोवें। ह्वै तन्मय उन्मत्त सरिस तनु सुधि बुधि खोवैं।।
उच्चस्वरतैं हरिगुननि, गावें रोवें सिर धुनैं। खग, मृग, गिरि, तरु, लतनितैं, पूछैं हरि कोई न सुनैं।।

अन्य गोपियों से परिचय करने लगीं- जब श्याम न आये तो उनका यशोगान करने लगीं- पूछने लगीं-

मुरली बजामत भये किसी ने मेरे श्याम देखे?
गोपी तेरे श्याम मैंने मधुवन में देखे गैया चरामत भये। किसी ने मेरे श्याम देखे?
गोपी तेरे श्याम हमने वंशीवट पै देखे चीर चुरामत भये। किसी ने मेरे श्याम देखे?
गोपी तेरे श्याम हमने गोवर्धन में देखे, गिरिवर उठामत भये। किसी ने मेरे श्याम देखे?

उनकी व्याकुलतासे द्रवित होकर श्रीकृष्ण पुन: प्रकट होते हैं और गोपियोंके साथ महारास आरम्भ होता है। वे अपनी लीलाशक्तिका सहारा लेकर जितनी गोपियाँ थीं उतने रूप धारणकर उनके साथ लीला-विहार करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी लीलाएँ उनके रसरूपकी अभिव्यक्ति हैं। व्रजभूमिमें वे केवल रसकी धारा नहीं बहाते, बल्कि प्रेममार्गका निरूपण भी करते हैं। वे गोपियोंको इसी मार्गपर ले चलते हैं। उनमें प्रेमकी व्याकुलता जगाते, उन्हें मायाके बन्धनोंसे मुक्त करते और अन्तमें उनका अहंकार दूर करनेके लिये विरहकी पीड़ा भी देते हैं।

राधा प्यारी सङ्ग ले, दुरे श्री ब्रजराज। सकल गोपिका विरह में, तड़फति उनके काज।।

जब श्रीकृष्ण गोपियों के साथ खुलकर विहार कर रहे थे, तब गोपियों को अपने सौन्दर्य का अभिमान हुआ, राधारानी ने जब इस दृश्य को देखा तो प्रणय-कोप कर वे क्रीडासे बाहर खड़ी हो गईं और श्रीकृष्ण को क्रोधभरी तिरछी निगाह से देखने लगीं। श्रीकृष्ण दूसरी सुन्दरियों के पीछे पड़ जाँय, रम जाँय, यह उन्हें सह्य नहीं। भगवान तो अन्तर्यामी ठहरे। उन्होंने इस स्थिति को देखा तो गोपियों का मान तोड़ने के लिये और राधारानी को मनाकर प्रसन्न करने के लिये राधा के साथ वहाँ से गायब हो गये।

जब-जब यशोदा मैया की, गोपियों की दृष्टि श्रीकृष्ण से हटकर दूसरी ओर चली जाती हैं, तब तब दु:ख उपस्थित हो जाता है। गोपियों की दृष्टि श्रीकृष्ण से हट कर दूसरी ओर चली जाती हैं, तब तब दु:ख उपस्थित हो जाता है। गोपियों की दृष्टि कृष्ण पर से हट कर अपने ऊपर गई। फिर क्या था? श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो गये। संयोग का रस समाप्त। वियोग का रस उपस्थित।

भूख के बिना भोजन का मजा नहीं मिलता। यही कारण था कि भगवान गोपियों का अन्त: हित करने के लिये अन्तर्हित हो गये।

१) गोपियों का विरह- शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान् गोपियों के साथ क्रीडा करते-करते सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर गोपियाँ वैसे ही व्याकुल हो उठीं जैसे गजराज के गायब हो जाने पर हथिनियाँ विह्वल हो जाती हैं। उनका हृदय विरह की ज्वाला से सन्तप्त हो उठा।

उन्होंने अपने तन, मन और प्राणों को कृष्णमय बना लिया था और अपना प्रेम, अपनी बुद्धि और अपनी दशा उन्हीं को समर्पित कर दी थी। उनके रोम-रोम में श्रीकृष्ण समा गये थे और वे उनका मनभावना गुण गान कर रही थीं।

भगवान श्रीकृष्ण की मदमत्त गजराज की-सी चाल, प्रेमभरी मुस्कान, विलासभरी चितवन, मनोहारी प्रेमालाप, विभिन्न लीलाओं तथा श्रृङ्गार-रस की भावभङ्गियों ने उनके चित्त को चुरा लिया था। वे प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गईं और फिर श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का अनुकरण करने लगीं। श्रीकृष्ण की चाल-ढाल, हास-विलास और चितवन-बोलन का अनुकरण करती हुई, देह-भान भूल कर वे कहने लगीं- देखो, मैं श्रीकृष्ण ही हूँ, मेरी ओर देखो, आओ मेरी छाती से लिपट जाओ। वे सारी गोपियाँ ऊँचे स्वर से भगवान श्रीकृष्ण का गान करती हुईं पागलों की भाँति एक वन से दूसरे वन में जाकर उन्हें ढूँढ़ने लगीं।

बाँसुरी की धुनि सुनि आई तजि लाज काज सोई व्रजराज साज समय बितै गये।
मन्द मुसकाय के लोभाय मन हाय हाय रूप रस प्याय प्रेम चित्त सों चितै गये।।
कहैं बलदेव नीच बान सो है मारी तान लेके तुम प्रान लाज हमरी रतै गये।
टोह ना मिलत कछु चाह न हमारी श्याम मोहनी दिखाय रूप मोहन कितै गये।।

यद्यपि भगवान सारे प्राणियों में आकाश के समान विद्यमान हैं, फिर भी वे वनस्पतियों के पास जाकर पूछने लगीं- हे पीपल, पाकर और बरगद, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हमारा मन चुराकर चले गये हैं। क्या तुम लोगों ने उन्हें देखा है? कुरबक, अशोक, नागकेसर, पुन्नाग और चम्पा, कन्हैया अपनी मनोहर मुस्कान से हमारा मानमर्दन कर चले गये हैं। क्या वे इधर आये थे? गोपियाँ पीपल से पूछी- नारायण के रूप में दुनिया तुम्हें दुग्ध, जल समर्पण करती हैं, क्या तुमने हमारे प्राणबल्लभ प्रियतम कृष्ण को देखा? वे हमें छोड़कर कहाँ चले गये?

श्याम नहीं आये तो खोजने चलीं- वृक्षों से पूछने लगीं, तमाल, कदम्ब, आम से पूछा- फिर स्त्री जाति की लताओं से पूछा- जुही, चमेली, रजनीगन्धा, रातरानी और अन्त में तुलसी से पूछा- अरे कल्याणी, तुम तो गोविंद के चरणों की परम प्रेयसी हो। तुम्हारा कृष्ण चरणों में अनन्य अनुराग है तुम्हीं बताओ- श्याम को कहीं जाते देखा। तुलसी का उत्तर न पा, जुही चमेली से पूछने लगीं- तुम से श्याम को अति अनुराग है, तुम्हारे स्पर्श से वे प्रफुल्लित हो जाते हैं तुम्हीं बताओ कहीं तुमने श्याम देखे हैं- कोई उत्तर नहीं मिला।

श्रीतुलसी को देखिके जियकी कहत सुनाय। माखन प्रभु की प्राणप्रिय प्रीतम देव बताया।।

तब बोलीं- हे रसाल, हे तमाल, पीतसाल, साल, कटहल, आम, कदम्ब तुम्हारा जीवन परोपकार के लिए है तुम्हीं हम

दुखियारियों को दुख दूर करो। तुम्हीं बता दो हमारे श्याम कहाँ गये हैं- उत्तन न मिला।

तब हिरणियों से पूछा हे मृगनयनी, तुम्हारे नेत्रों ने उस कमल नयन को अवश्य जाते देखा होगा- तुम्हीं बता दो किस ओर गये हैं- उत्तर न मिला। गोपियां उन्मादित होकर वृक्षों से, लताओं से, पशुओं से, पक्षियों से पुन: पुन: पूछकर हार गयीं- तब सामूहिक रूप से पूछने लगीं- **कौन गली गये श्याम, बता दो कोई।**

जब बड़े-बड़े पुरुषजाति के वृक्ष कुछ भी नहीं बोले तब स्त्री जाति के वृक्षों से उन्होंने पूछना प्रारम्भ किया- बहन तुलसी, तुम स्त्री जाति की हो। तुम्हारा हृदय बड़ा कोमल है। तुम भगवान् के श्रीचरणों में नित्य निवास करती हो। तुम उनकी प्राण-प्रिया हो। वे भी तुम्हें बहुत प्यार करते हैं। बतलाओ, क्या तुमने अपने परमप्रियतम श्यामसुन्दर को देखा है? मालती, मल्लिका (बेला), जाती और यूथिका क्या तुम लोगों ने कृष्ण को देखा है? अवश्य ही वे माधव अपने हाथों से तुम लोगों का स्पर्श करते हुए इधर से गये हैं, तभी तो तुम लोग प्रसन्नता से खिल उठी हो।

प्यारी प्रभुकी परम स्वामिनी सुखकी सरिता। श्याम-सिन्धु प्रति बहति भाव भावित रस भरिता।।
लै तिनिकूँ हरि छिपे लतनितैं पूछति नारी। निरखे इत कहुँ कृष्ण कन्हैया कुञ्जबिहारी।।
नारी तुमहू नारि हम, निष्ठुर नरने ठगि लई। चोर चोरिके चित चल्यो, गयो बिना चितके भई।।

प्रेम में पगली बनी वे व्रजबालायें व्रजविहारी का अन्वेषण करती हुईं पादपों से उनका पता पूछने लगीं। जब वृक्षों ने परमश्रेष्ठ प्राणपति का पता नहीं बताया तो वे तुलसीजी के समीप गईं और बोली- हे कल्याणि, तुलसी, देखो, तुम हरिप्रिया कहलाती हो। प्यारे तुम्हें अत्यधिक प्यार करते हैं। तुम भी सदा उनके चरणों में लिपटी रहती हो, उनके कण्ठ से सटी रहती हो। श्यामसुन्दर कहीं भी चाहे छिपे क्यों न हों, तुम्हें उनका पता अवश्य होगा।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें कृष्णान्वेषण करती हुई वृक्षों से कह रही हैं- हे तरुओ, जिन श्रीकृष्ण ने एक हाथ अपनी प्रिया के कन्धे पर रख रखा है तथा दूसरे हाथ से क्रीड़ा कमल घुमा रहे हैं और जिनके पीछे-पीछे तुलसी की गन्ध के लोभी मदान्ध मधुकर जा रहे हैं, उन श्रीकृष्ण ने यहाँ विचरते हुए तुम्हारे वदन का अपने प्रणयकटाक्षों से अभिनंदन किया है क्या?

नख-क्षततैं अनुराग अति, उमड़ि रह्यो तुव अँगनितैं। पायो आलिङ्गन अवसि, तुम सबने प्रिय भुजनितैं।।

रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीम और यमुना के तट पर उगनेवाले अन्य वृक्षों, आप लोगों का जन्म तो दूसरों की भलाई करने के लिये ही हुआ है अत: हमें कृष्ण का कुछ पता बतलाइये।

कहि धौंरी बन बेलि कहूँ, तैं देखे हैं नन्द नन्दन। बूझहूँ धौं मालती कहूँ, तैं पाये हैं तन-चन्दन।।
कहि धौकुन्द, कदम्ब, बकुल, बट, चम्पक, ताल तमाल। कहि धौं कमला पति सुन्दर नैन विशाल।।
कहि धौं री कुमुदिनी, कदली कछु कहि बदरी बीर। कहि तुलसी तुम सब जानति हो कहाँ घनश्याम शरीर।।
कहिं धौं मृगी दया करि हम सौं, कहि मधुप मराल। सूरदास प्रभु के तुम सङ्गी है कहँ परम कृपालु।।

हे यमुना तटवर्ती तरुवरो, हे परोपकार के ही लिये जीवन धारण करनेवाले पादपों। हे घाम, शीत और वर्षा के कष्टों से बचानेवाले वृक्षो, हम अबला हैं, निराश्रिता हैं, प्रियतम द्वारा परित्यक्ता हैं, आप में से कोई भी हमारे ऊपर दया करो, कृपा करो, अनुग्रह करो। हम सब चेतनाहीन हो रही हैं। हमें कोई श्यामसुन्दर को एक बार दिखा दो, हमें उनसे क्षण भर को मिला दो, नहीं तो वे जिस मार्ग से निकले हैं, उनके उस मार्ग को ही बता दो।

हे तरुवरगण, परोपकार ही तुम्हारा महान व्रत है, तुम निरन्तर ही सबका उपकार करते रहते हो। पतझड़ तुम्हारे पत्तों को

गिरा देता है, तुम कुछ बोलते नहीं, कोई तुम्हारे अंगों को काट दे तो तुम उसका प्रतिकार भी नहीं करते। तुमने बिना संकेत का मौन व्रत ले रखा है। किन्तु मौनव्रती भी कभी अवसर आने पर मौनव्रत को तोड़ देते हैं तुम भी परोपकार के लिये अपने व्रत को भंग करके हमें श्रीराधाकान्त का पता बता दो। देखो, वे घन के सदृश्य श्याम हैं। उनके कन्धे पर चमकता हुआ पीताम्बर पड़ा है। अवश्य ही वे अपनी प्रिया के कन्धे पर कर रक्खे हुए चल रहे होंगे। उनकी प्रिया उनसे उसी प्रकार लिपटी रही होंगी जैसे घन से सौदामिनी लिपटी रहती है। किन्तु वे गरजते न होंगे, रस की वर्षा अवश्य कर रहे होंगे। हमारा अनुमान है, घनश्याम के अमृत रस के कुछ बिन्दु अवश्य ही तुम्हारे ऊपर पड़े हैं। बिना उन बिन्दुओं के पड़े इतनी प्रसन्नता हो ही नहीं सकती। तुमने जब झुककर झूमकर उनके चरणों को चूमा होगा तो अवश्य ही उन्होंने तुम्हारे अभिवादन का अभिनंदन किया होगा, क्योंकि वे कृतज्ञ हैं, नम्र हैं, गुणग्राही हैं, हमसे वे किसी एक अपराध पर रूठ गये हैं। दोष हमारा ही है, उनका नहीं। वे तो निर्दोष हैं, सम हैं, व्यापक हैं, वृहत् हैं, परिपूर्ण हैं, सर्वगत हैं।

हे बहिन वसुन्धरे, तुम ही सब धनों को धारण करती हो, इसीलिये तुम्हारा नाम वसुन्धरा है। हमारे हृदयधन के भी चरणों को तुम अपने वक्ष:स्थल पर धारण करती हो, इसीलिये घास रूप में तुम्हारे रोमांच हो रहे हैं। जब तुम पाताल में चली गई थीं तब ये ही श्यामसुन्दर वाराह रूप रखकर तुम्हें अपने ऊपर बिठाकर लाये थे। तब तुमने भयभीत-सी होकर उनका गाढ़ालिङ्गन कर लिया था। तुम जानती हो प्रियालिङ्गन में कितना प्रमाद है, वामनावतार में भी एक ही पैर से उन्होंने तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को दबा दिया था। तुम तो उनकी प्रिया हो, तुम्हारे कठिन वक्ष:स्थल पर वे निरावरण अपने अरुण चरणों को नि:संकोच रख देते हैं और तुम उन्हें कृपण के धन के सदृश छिपा लेती हो, उनकी चरणकमलों की पावन पराग से अपने को धन्य बना लेती हो, हमें भी धन्य बना दो, हमें भी प्यारे का पता बता दो, वे अकेले नहीं हैं, अपनी प्रिया को साथ लिये हुए हैं। अरी पृथ्वी, तुमनें कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिससे भगवान के चरण के स्पर्श का सौभाग्य तुम्हें मिला है। उनके चरण के स्पर्श के कारण ही इस समय तुम रोमाञ्चित हो रही हो। ये वृक्ष, लता आदि तो तुम्हारे रोमाञ्च ही हैं। तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श का फल है अथवा तुम्हारे उद्धार की बेला में वाराह भगवान के अंग के संग के कारण तुम्हारी यह दशा तो नहीं हो रही है?

हे धरनी, तू धन्य पाद प्रभुके धारति नित। लिये लाड़िली सङ्ग लाल गिरधर निरखे इत।।
हे मृगबधुवर, नयन नेहमहँ भीजे तुमसे। बहिना, देउ बताइ गये इत प्रियतम हमरे।।

कृष्ण चमड़े का सौन्दर्य नहीं देखते, कृष्ण शरीर का सौन्दर्य नहीं देखते वे तो सुमन देखते हैं, उनको सुन्दर मन चाहिये। हमने अपने शरीर का अभिमान किया इसलिये वे हमें छोड़कर चले गये। हे कृष्ण तुम कहाँ हो?

सम्मुख फूली लताओं को देखकर वे बोली- इन पुरुष वृक्षों की सम्भव है श्यामसुन्दर ने उपेक्षा भी कर दी हो, क्योंकि पुरुष जाति कठोर होती है, किन्तु ये लतायें तो बड़ी लचीली हैं। तनिक वायु लगते ही हिल जाती हैं, तनिक रस बरसते ही खिल जाती हैं। ये अनुरागवती हैं। इनको पूछो।

अहा, इनका कितना भारी सौभाग्य है। जिस प्रेमालिंगन के लिये लक्ष्मीजी कमल वन में जाकर एकान्तवास करके कैसी घोर तपस्या करती हैं। जिस आलिंगन के लिये तुलसीजी वृक्ष बनकर वर्षा, हिम तथा आतप आदि को सहन करके दुष्कर तप तपती रही हैं, वही आलिंगन इन लताओं ने अपने पुष्पों के कारण अनायास ही प्राप्त कर लिया है। इससे यह लोकोक्ति सत्य ही प्रतीत होती है कि प्यारे को प्रसन्न करने की अपेक्षा प्यारे के प्यारे को प्रसन्न करने की सतत चेष्टा करे। ये लतायें धन्य हैं जिनके सुमनों से श्यामसुन्दर ने अपनी प्यारी के केशों को सजाया है। हाय, हम अभागिनी लताओं से भी गई बीती हो गयीं। हम यदि ब्रज की अबला न होकर वृन्दावन की किन्हीं कुञ्ज की लता ही होतीं तो श्यामसुन्दर अपने साँवले सलोने

करों से हमारे सुमनों को तो तोड़ लेते, हमारी सघन शीतल छाया में अपनी प्रिया के संग क्रीड़ा तो करते। अपने प्रणय कटाक्षों से हमारी ओर निहारकर अपनी प्रिया को प्रसन्न करने को हमारी शोभा तो दिखाते, हमारे गुणों का गान तो करते।

हाय, इस सुन्दर मानव शरीर से क्या लाभ? जिससे श्यामसुन्दर का साक्षात्कार न हो। हमसे तो ये वृन्दावन की कंकड़ियाँ ही भाग्यशालिनी हैं जो श्यामसुन्दर के चरणों के स्पर्श से कठोर होने पर भी मृदुल हो जाती हैं। श्यामसुन्दर के चरणों का स्पर्श होने पर फिर भला किसी में कठोरता कैसे रह सकती है? वृन्दावन के ये सूखे पत्ते जो घर द्वारविहीन होकर इधर-उधर पड़े रहते हैं। वायु जिन्हें जहाँ चाहती हैं वहीं उड़ाकर ले जाती है ये हमसे तो भाग्यशाली हैं ही। हम सरसता होने पर भी भटक रही हैं किन्तु हमें श्यामसुन्दर का साक्षात्कार नहीं होता। क्या करें, कहाँ जायँ, किससे पूछें, कौन हमें श्याम का पता बतावेगा, कौन हमें उनसे मिलावेगा, क्या करने से नन्दनन्दन मिल सकेंगे। किस साधन से किस युक्ति से वे हमारे हृदय के हार बन सकेंगे। कैसे वे हमें अपनावेंगे, कब वे हमें हृदय से चिपटावेंगे। कब वे हमें अंक में सटावेंगे?

सूतजी कहते हैं- मुनियों, इस प्रकार श्रीकृष्ण विरह में व्याकुल हुईं व्रजांगनायें विरह की वेदना में विह्वल बनी एक वन से दूसरे वन में भटकने लगीं, श्रीकृष्ण आनन्दकन्द की खोज करने लगीं। खोज करते-करते वे तन्मय हो गयीं और श्रीकृष्णकी विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं।

ऐसे कहि-कहि बैंन नैनतें नीर बहावें। कबहूँ करैं प्रलाप कबहुँ रोवें पछतावें।।
करैं कृष्णकी ध्यान पुकारें नाम निरन्तर। नाम ध्यानतैं भई गोपिका तन्मय सत्वर।।
कृष्ण सरिस क्रीड़ा करें, बनी पूतना अपर हरि। ज्यों की त्यों अभिनय करें, नयन मूँदि पयपान करि।।

अरी हरिणियों, तुम लोग कहाँ बेतहाशा भागती जा रही हो? क्या श्रीकृष्ण तुम लोगों का भी परित्याग करके चले गये हैं? इधर से तो उनके गले में पड़ी कुन्दमाला की मत्त करनेवाली सुगन्ध आ रही है। कहीं वे इधर ही तो नहीं चले गये हैं? अरे वृक्षों, हमारे श्यामसुन्दर इधर से ही गये होंगे, तभी तो उनको प्रणाम करने के लिये तुम लोग झुके हो।

उन हरिनियों को देखकर वे कहने लगीं- बहिनों, स्त्री जाति में जन्म लेकर तो तुम ही कृतार्थ हुईं। तुम सदा अपने पति के साथ लगी रहती हो। तुम्हारे पति कभी तुम्हीं छोड़ते नहीं। देखो हमारे प्राणपति श्यामसुन्दर तो हमें छोड़कर चले गये। तुम्हारे नेत्रों से अनुराग फूट-फूटकर निकल रहा है, इससे प्रतीत होता है, तुमने श्यामसुन्दर को अपनी प्रियतमा के साथ इधर से जाते हुए अवश्य ही देखा होगा। उनकी प्राणप्रिया के कमलनयन तुम्हारे नयनों से मिलते-जुलते-से हैं। हमें इस बात में भी सन्देह नहीं है कि वे यहाँ न आये हों, क्योंकि अपनी प्राणप्रिया के अङ्ग-संग से उनके कुच कुंकुम से रंजित कुन्दकली की माला की मनोहर गन्ध आ रही है। अवश्य ही यह गन्ध कुलपति कृष्ण के कण्ठ की माला की ही है। तुम हम पर कृपा करके उनका पता बता दो।

वृक्षनिकै लै नाम कहें- हे, पीपर, पाकर। हे कदम्ब, हे वकुल, नीम, वट, चंपक, गूलर।।
हे रसाल, रसराज श्याम इत तौ नहिँ आये। चितवन जाल बिछाय हमारे चित्त चुराये।।
समुझि स्वारथी नरनिकूँ, सब मिलि तुलसीढ़िँग गईं। करि अतिशय अनुनय-विनय, प्रेष्ठ पतो पूछति भईं।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान के अंतर्धान होने पर वे व्रजाङ्गनायें उन्हीं के गुणों का उच्च स्वर से गान करती हुईं उन्मत्त के समान एक बन से दूसरे बन में फिरने लगीं और वृक्षों के समीप जाकर, आकाश के समान समस्त भूतों के बाहर भीतर रहनेवाले सर्वान्तर्यामी श्रीहरि का उनसे पता पूछने लगीं।

सिद्धान्त: तो वृन्दावन के समस्त वृक्ष, तला, गुल्म तथा पाषाण चिन्मय हैं, किन्तु लोक लीला में तो वे जड़ ही हैं। जो

चैतन्य हैं, जैसे पशु-पक्षी, मृगादिक उनमें भी बोलने बताने की शक्ति प्राय: नहीं होती, किन्तु प्रेमान्माद में यह विवेक रहता ही नहीं कि यह जड़ है या चैतन्य। उसमें तो जड़ चैतन्य का भेदभाव रहता ही नहीं। केवल इष्ट ही दृष्टि के सम्मुख रहता है। उस समय हृदय में दीनता आ जाती है। गुण दोष देखने की प्रवृत्ति विलीन हो जाती है। यही आशा हृदय में लगी रहती है, सम्भव है इससे प्यारे का पता लग जाय। इस प्रकार उस अवस्था में निरंतर खोज होती रहती है। प्रिय की स्मृति में ऐसी तन्मयता हो जाती है कि अपने को उसी का रूप अनुभव करने लगते हैं। जिन भाग्यशालियों की ऐसी दशा होती है, वे वंदनीय हैं श्रीकृष्ण विरह में गोपियों की ऐसी ही दशा हुई।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, सहसा श्रीकृष्ण के अंतर्धान होने से ब्रजाङ्गनायें विकल हो गयीं। उनका हृदय श्रीकृष्ण के विरह ताप से जलने लगा। श्रीकृष्ण को खोजने के लिये एक वन से दूसरे वन में भटकने लगीं। प्रिय वियोग में जो दशायें होती हैं, उनमें से बहुत-सी दशायें उनके शरीर में प्रकट प्रत्यक्ष दिखाई देने लगीं।

इस प्रकार कहीं से, किसी से भी कुछ उत्तर न मिलने पर कृष्ण-प्रेम में व्याकुल गोपियाँ उनकी विभिन्न लीलाओं का अभिनय करने लगीं। **बनि बनवारी ब्रजवधू, वेनु बजावें बननिमहँ। कछुक गोप गैया बनीं, सुनि धुनि आवें रमनजहँ।।**

कोई गोपी कृष्ण बनकर पूतना बनी हुई गोपी का स्तन-पान करने लगी। किसी ने बालक कृष्ण बनकर शकटासुर बनी गोपी को लेटे-लेटे पैर से मारा। कोई तृणावर्त बनी तो कोई कृष्ण बन गई। कोई वत्सासुर की नकल करती, तो कोई बकासुर का अभिनय करती, तो कोई अघासुर का अनुकरण करती।

एक गोपी ने अपनी फरिया फैलाकर तृणावर्त का अनुकरण किया, दूसरी जो श्रीकृष्ण बनी थी उसे उठाकर उड़ा ले गयी। फिर श्रीकृष्ण बनी ने खेल-ही-खेल में झूठ-मूठ में उसे मार दिया। एक कहती हैं- मैं श्रीकृष्ण हूँ, दूसरी कहती- मैं बलराम हूँ, दोनों साथ-साथ वंशी बजाने का अनुकरण करतीं। कुछ को गौएँ बना लेती हैं, कुछ बछड़े बन जातीं। उन बछड़े बनी गोपिकाओं में कोई वत्सासुर बनकर मिल जाती और सबको पैरों से मारती, तब श्रीकृष्ण जाकर उस वत्सासुर बनी गोपी को पछाड़ते। सब मिलकर कहते- धन्य-धन्य भैया, बड़ा अच्छा काम किया, यह तो कोई दुष्ट असुर था जो बछड़ों में आकर मिल गया था। तुने इसे भला मारा।

कोई गोपी मुरलीधर बनकर मुरली बजाती। बहुत-सी गोपिकायें गौएँ बनकर घास चुगने का अभिनय करतीं। उन्हें दूर जाते देखकर श्रीकृष्ण वंशी की तान छेड़ते। बाँसुरी की धुनि सुनकर रम्हाती हुईं गौएँ बनी गोपियाँ दौड़ी आतीं और श्रीकृष्ण बनी गोपी से लिपट जातीं, इस प्रकार वियोग में भी लीला अनुकरण द्वारा वे संयोग सुख का अनुभव करने लगीं।

कोई श्रीकृष्ण की चाल का अनुकरण करतीं, अपने शरीर को कुछ टेढ़ा करके मन्द-मन्द गति से बाँसुरी को बजाती हुई चलती और कहती- देखो, मैं श्रीकृष्ण हूँ, मेरी ललित गति का तो अवलोकन करो। मैं राधारमण हूँ, मुझे ही लोग गोपीजन वल्लभ कहते हैं।

फिर सब मिलकर गोवर्धन-धारण लीला का अनुकरण करतीं। कुछ इन्द्रयज्ञ करने को उद्यत होतीं, एक श्रीकृष्ण बनके उनसे यज्ञ का कारण पूछती। बताने पर इन्द्र का यज्ञ न करके गिरि गोवर्धन याग करने लगते। देवेन्द्र उन पर ओलों की वर्षा करते। तब ब्रजवासी बनीं ब्रजांगनायें भय से विह्वल होकर ब्रजराज बनी वनिता की विनय करतीं। तब ब्रजवल्लभ बनी ब्रजांगना हाथ उठाकर कहती- अरे ब्रजवासियों, तुम वायु और वर्षा से भयभीत मत हो। इन्द्र तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकता। मैं दुष्टों का शासन करनेवाला, तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ। मैं तुम्हें सभी संकटों से छुड़ा दूँगा। तुम सोच मत करो। मेरा अवतार शिष्टों के पालन और दुष्टों के संहार के निमित्त हुआ है। यह कहकर वह अपनी ओढ़नी को फैला देती।

दूसरी गोप बनी गोपिकायें लकुटि लगाकर उसकी सहायता करतीं, इस प्रकार वह गोवर्धन धारण लीला का अभिनय होता।

तदनन्दर कालियदमन लीला करने लगतीं। कोई गोपी कालिय नाग बन जाती बहुत-सी गौएँ बनकर कालियह्रद में जल पीने को जातीं और विषमिश्रित जल पीकर मर जाने का अभिनय करतीं दूसरी श्रीकृष्ण बनकर कालियदह में कूदती और कालिय को ललकार के डाँट डपटकर कहती- अरे, दुष्ट। तू खड़ा तो रह, तुमने यहाँ बहुत उपद्रव किया है। आज मैं तुझे यहाँ से निकालकर ही छोड़ूँगा। यह कहकर कालिय बनी गोपी के ऊपर श्रीकृष्ण का अनुकरण करने वाली गोपी चढ़ जाती और उसके फणों पर नृत्य करने का अभिनय दिखाती। फिर कुछ गोपिकायें नाग पत्नी बनकर श्रीकृष्ण की स्तुति करतीं। तब श्रीकृष्ण बनी हुई गोपी कालिय को छोड़ देती।

श्रीकृष्ण प्रेम में पगली हुईं ये व्रजाङ्गनायें श्रीकृष्ण भाव में भावित होकर उनकी छोटी मोटी बड़ी अनेकों लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। इस वन से उस बन में जातीं, जहाँ जातीं वहीं लीला अनुकरण करतीं। कभी वृक्षलता गुल्मों से पुन: प्रभु का पता पूछतीं। इस प्रकार जब वे अधिक विह्वल हुई तो उन्हें वहाँ भूमि पर ब्रजांकुशादि चिन्हों से चिन्हित बालू में उभरे हुए श्यामसुन्दर के चरण चिन्ह दिखाई दिये। उनके दर्शनों से उनकी विचित्र दशा हुई।

वे गोपियाँ इसी भाँति मतवाली सी होकर श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों को देखती हुईं उन्हें खोजने लगीं।

एक कृष्ण बनि गोवर्धनकूँ धारे बलतैं। बनि यशुमति हरि बनीं ताहि बाँधे ऊलखतैं।।
देह गेहकी सुधि न कछु, भ्रमति प्रेम रसमहँ पगीं। तन्मय ह्वैकें अनुकरण, नटवर को करिबे लगीं।।

इस प्रकार कन्हैया की नकल करती हुई, सबसे पूछती-पूछती गोपियाँ वन के उस भाग में पहुँची जहाँ उन्हें भगवान के चरण-चिन्ह दिखलाई पड़े फिर तो वे एक-दूसरी से कहने लगीं- देखो, देखो, ये कन्हैया के चरण-चिह्न हैं और यह देखों उनके कन्धे पर हाथ रखकर गलबँहियाँ डाल कर जाती हुई किसी सौभाग्यशालिनी स्त्री के बीच-बीच में ये चरण-चिह्न हैं उन्हें देखकर हमारे हृदय में ईर्ष्या की आग भड़क उठी है।

प्रेम उन्माद में विह्वल गोपियाँ वन में भटकने लगीं- एक गोपी ने भगवान के पदचिन्ह बालुका में पहचान लिये- कमल, अंकुश, वज्र, ध्वज के चिन्ह अंकित थे। गोपी उसी के आधार पर आगे चलीं तो इसके साथ ही किसी सौभाग्यशालिनी गोपांगना के भी चरण चिन्ह थे। गोपियों ने अन्दाज लगाया कि यहाँ उस गोपी को पुष्प लेने हेतु या क्रीड़ा करने हेतु श्याम ने नीचे उतारा होगा। वहीं बैठकर उसके केश सँभाले होंगे उसमें वेणी गुन्थन किया होगा।

हे वृन्दे। हे तुलसि, श्यामको पतो बताओ। कहाँ छिपाये श्याम बहिन टुक तनिक दिखाओ।।
हतभागिनी हम भईं त्यागि हम हरिने दीन्हीं। रमन सङ्ग श्रीप्रिया गईं तुमने का चीन्हीं।।
सौति समुझि आगे बढ़ीं, पतो सबनि पूछन लगीं। ललित लता पुष्पित लखीं, समुझीं सब सजनी सगीं।।
केश प्रसाधनं त्वत्र कामिन्या: कामिना कृतम्। तानि चूड़यता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम्।।

शुकदेव बोले- राजन्, वनों में भटकती हुई गोपिकायें जब श्रीकृष्ण के चरणों के साथ श्रीराधा के चरणचिन्हों को देखती हैं तो कहती हैं- निश्चय ही इसी सखी ने भगवान की आराधना की है। इसीलिये तो इससे प्रसन होकर, हम सबको छोड़कर अकेली इसी को एकान्त में ले गये हैं।

भागवत में श्री शुकदेव ने राधा को आराधिका शब्द से उल्लेख किया है। इधर तो परीक्षित् को जन्म-मरण से सात दिन में मुक्त करना है।

निरखे प्रभुके चरण चिन्ह अवनीपै उभरित। ब्रजांकुश, ध्वज, कमल यवादिक चिन्हनि चिन्हित।।

बिच-बिच प्यारी चरन निरखि अतिशय अकुलावति। करें सौतिया डाह प्रियाको भाग्य सराहति।।
है अनुपम अनुराग अति, राधाको ही कान्तमहँ। करहिँ भ्रमर सम पान हरि, अधरामृत एकान्तमहँ।।

अवश्य ही सर्वशक्तिमान श्रीकृष्ण की यह आराधिका (आराधना करनेवाली) होगी। भगवान जिस गोपी को लेकर अन्तर्हित हुए हैं, वह राधिका ही है। इसलिये इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्रिय श्यामसुन्दर हमें छोड़कर इसके साथ एकान्त में चले गये हैं।

वह ऐसी बड़ भाग्य है सुन्दरि सुघरि सुजान। माखन प्रभु के संग में अधर करै मधुपान।।

वे श्रीराधा कितनी बड़भागिनी हैं जो अपने प्रियतम के कन्धे पर कर रखे, उनके अंगों में अपने अंगों को सटाकर, उनके मोर-मुकुट में अपनी चंद्रिका को छुआकर उनकी लटकती लटाओं में अपने केशपाशों को उलझाकर, अपनी नीली साड़ी में उनके पीताम्बर को मिलाकर उनके चरणचिन्हों को बचाकर उनके साथ-साथ गईं होंगी। जीवन का लाभ तो उन्होंने ही पाया। अपनी सेवा से श्यामसुन्दर को सब प्रकार से सन्तुष्ट उन्होंने ही किया है। हाय, हम तो अभागिनी ही रह गयीं हमें तो वे तनिक सुख देकर हमारी लालसा को बढ़ाकर, तनिक-सा रतिसुख दिखाकर अन्तर्हित हो गये।

इसप्रकार की राधा के भाग्य की सराहना करती हुईं अपने भाग्य को धिक्कारती हुईं वे रो रही थीं।

यह वृन्दावन की परम पावन रज कोई साधारण वस्तु नहीं है। जिस रज पर नन्दनंदन ने अपने चरणारविन्दों को रखा है, उस रज के भाग्य की सराहना जितनी भी की जाय, उतनी ही कम है, ब्रह्मा, शंकर तथा अन्यान्य बड़े-बड़े लोकपाल इस रज के दर्शनों के लिये सदा तरसते रहते हैं, जिन लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष के निमित्त बड़े-बड़े अधिकारी लालायित रहते हैं, वे लक्ष्मीजी भी इस चरणरज को सिर पर चढ़ाने के निमित्त सदा व्यग्र बनी बैठी रहती हैं और इस रज के कण को पाकर अपने आपको कृतार्थ मानती हैं।

श्यामसुन्दर के चरणारविन्दों के चिन्हों से तथा उनके संस्पर्श से पावन हुई रज से तो हमारा चित्त प्रसन्न होता है, किन्तु यह जो उनके चरणों के समीप छोटी-छोटी धँसी हुई एड़ी वाले चरणचिन्ह हैं, उन्हें देखकर हमारे मन में क्षोभ हो रहा है, हमें ईर्ष्या हो रही है।

यह तो श्रीकृष्ण की प्रिया के चरणचिन्ह हैं, प्यारे के सम्बन्ध की तो सभी वस्तुएँ प्यारी होती हैं, फिर हमारे प्यारे जिन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करें, वे तो हमारी सर्वस्व हैं, उनका आदर तो प्यारे से भी अधिक करना चाहिये।

एक गोपी बोली- तुम प्यारे की प्यारी का आदर करो। मैं तो उसे स्वार्थपरा मानती हूँ जो सबकी सम्पत्ति है, जिसके उपभोग का सभी को समान रूप से अधिकार है। उन श्रीकृष्ण के अधरामृत का वह एकान्त में अकेली ही पान करती है, यह उसकी स्वार्थपरता नहीं तो क्या है। इस कारण हमें तो उससे डाह होता है।

इस पर दूसरी गोपी ने कहा- देवि, सबका अधिकार एक-सा नहीं होता। आप उनकी प्राणप्रिया हो, आप राधा के साथ सापल्य भाव रख सकती हो, किन्तु हम तो उनकी दासियों की दासी होने की भी अपने को अधिकारिणी नहीं मानतीं। हमारा तो एकमात्र अवलम्बन श्रीकृष्ण-कृपा ही है। वे हमें चाहें अपनावें चाहें ठुकरावें चाहें पकड़कर हृदय से लगा लें, या अपना छोटे से छोटा कैमर्य करा लें। हम तो उनकी किङ्करियों की भी किङ्करी हैं। उन्होंने हमें आशातीत सुख दिया, अब उसी सुख को स्मरण कर-करके रो रही हैं, इधर-से-उधर भटक रही हैं।

करत बिबिधि अनुमान बढ़ीं कछु आगे बाला। एकाकी पदचिन्ह निरखि बोलीं इहँ लाला।।
अवसि यान वे बने राधिका कन्ध चढ़ाई। यहाँ तोरिके फूल श्यामने प्रिया सजाई।।

फूली-फूली लतनितैं, उचकि सुमन तोरे अवसि। एड़ी बिनु पंजे बने, पुनि इततैं आये निकसि।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें परस्पर में कह रहीं है- सखियों, अवश्य ही यहाँ अपने में ही सन्तुष्ट रहनेवाले और स्त्रियों की दुरात्मता दिखाने के निमित्त उस गोपी के साथ रमण किया होगा।

मोती सुमन पुरोइ प्रियाकी माँग सम्हारी। अवसि यहाँ तिहि सङ्ग करी हैं क्रीड़ा प्यारी।।

अवसि यहाँ हरिवश भये, अवसि व्यधा दोउनि बढ़ी। श्याम दिखाई दीनता, अवसि सखी सिरपै चढ़ी।।

सूतजी ने कहा- श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया ये श्रीराधिकाजी हैं। श्रीकृष्ण की आल्हादिनी शक्ति हैं। श्रीकृष्ण का समस्त आह्लाद, रास, विलास तथा सर्वसुख इन्हीं के कारण है। श्रीकृष्ण इन्हीं के संकेत से नाचते हैं।

प्रिय सखियों, भगवान श्रीकृष्ण अपने चरण-कमल से जिस धूलिकण का स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य-धन्य हो जाती है। ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मी जैसी महान् विभूतियाँ भी अपने अशुभ को नष्ट करने के लिये उसे अपने सिर पर धारण करती हैं। अरी प्यारी सखी, चाहे कुछ भी हो- हमारे प्राण-धन के साथ एकान्त में जाकर उनकी अधर-सुधा का पान करनेवाली इस गोपी के ये उभरे हुए चरण-चिह्न तो हमारे हृदय में शूल उत्पन्न कर रहे हैं। देखो, यहाँ उस गोपी के चरण-चिह्न नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं। प्रतीत होता है कि जब उसके कोमल चरणों में कुश-काश के तृण-अंकुर आदि गड़ने लगे तो श्याम सुन्दर ने उसे अपनी गोद में उठा लिया होगा। तभी तो भार उठाने के कारण कामी कन्हैया के पैर इधर अधिक गहरे हुए हैं, नीचे धँसे हुए हैं। मालूम पड़ता है, उन महात्मा ने फूल चुनने के लिये अपनी उस प्रियतमा को यहाँ नीचे उतारा है। यहाँ उन्होंने पैर के पंजे के बल ऊपर उठकर ऊँचे स्थान के फूलों को चुना है। तभी तो पैर के पूरे-पूरे चिह्न नहीं दिखलाई पड़ते हैं। ऐसा लगता है, परम प्रेमी श्रीकृष्ण अपनी कामिनी का केश-पाश सँवारने के लिये, उसके जूड़े में फूल गूँथने के लिये यहाँ अवश्य बैठे रहे होंगे। यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, पूर्णकाम हैं फिर भी उन्होंने कामियों की दीनता-स्त्रीपरवशता और स्त्रियों की कुटिलता प्रदर्शित करने के लिये यहाँ उस गोपी के साथ एकान्त में जमकर काम-क्रीडा की है।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें लताओं से प्रभु का पता पूछतीं हुई कह रही हैं- हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति, हे यूथिके। तुमने क्या माधव को देखा है? प्रतीत होता है वे तुम्हें अपने करस्पर्श से प्रमुदित करते हुए इधर से पधारे है।

हे मालति तुम सदा बसो श्रीजी केशनिमहँ। स्वर्ण मल्लिका रङ्ग बसै प्यारी अंगनिमहँ।।

माधव लये छिपाय माधवी कहाँ बताओ। अरी, मल्लिके, जाति, यूथिके श्याम दिखाओ।।

प्रेम परस बिनु होहि नहिँ, मन प्रमोद अरु पुलक अँग। श्याम अवसि करतैं परसि, निकसे इततैं प्रिया सँग।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, वे गोपाङ्गनायें प्रिया के साथ श्यामसुन्दर के चरणचिन्हों का अनुसरण करती हुईं बड़ी दूर तक चली गयीं। आगे चलकर उन्होंने देखा श्यामसुन्दर के चरण चिन्ह तो हैं, किन्तु प्रियाजी के चरणों के चिन्ह दृष्टिगोचर नही होते। तब वे आपस में कहने लगीं- अरी, बहिनों। देखो, कैसी आश्चर्य की बात है, यहाँ तो अकेले श्यामसुन्दर के ही चरण हैं। राधा यहाँ से कहाँ चली गयीं?

इस पर एक प्रगल्भा सी गोपी बोली- प्रतीत होता है, यहाँ दूर्वा कुछ कठिन है, अत: अत्यन्त स्नेह के वशीभूत होकर प्यारे ने यहाँ प्रियाजी को अपने कन्धे पर चढ़ा लिया होगा, जिससे उनके अत्यन्त सुकुमार चरणों को कष्ट न हो। ओहो, अवश्य यही बात है। तुम देख रही हो, ये चरण धँसे हुए हैं। बोझ के कारण पूरे-के-पूरे बालू में गड़कर उभरे हुए हैं।

इस प्रकार कहतीं-कहतीं और उन भाराक्रान्त चरणचिन्हों की पदावली को निहारती हुईं आगे बढ़ीं। कुछ दूर और चलकर उन्होंने देखा- जाती, चम्पा, मालती तथा कुन्द की कलियाँ फूली हुई हैं। बड़ी-बड़ी लताओं के विस्तृत वितान

बने हुए हैं, वहाँ चरणों का चिन्ह न देखकर वे खोजने लगीं और कहने लगीं यहाँ तो कई प्रकार के चरण हैं, कुछ आगे हैं, कुछ पीछे हैं। प्रियाजी के भी हैं, प्रीतम के भी हैं। ओहो, श्यामसुन्दर से राधा ने पुष्प तोड़ने के लिये आग्रह किया होगा। प्रतीत होता है, यहाँ श्यामसुन्दर राधा के सर्वथा वश में हो गये हैं। तभी तो उन्हें कन्धे पर बिठाकर यहाँ तक लाये हैं। यहाँ उन्होंने उन्हें कन्धे से नीचे उतारा है। यह देखो, वृक्ष को पकड़कर इसके सहारे उतरकर प्रियाजी यहाँ बैठी होंगी। यहाँ केवल बालुका में उनके बैठने का चिन्ह स्पष्ट बना हुआ है। यहाँ कुछ पुष्प भी गिरे हुए हैं। प्रतीत होता है प्रिया की प्रसन्नता के निमित्त प्यारे ने यहाँ पुष्पचयन किया है। ये कुछ ऊँची लतायें हैं। यहाँ उचककर मदनमोहन ने सुमनों को तोड़ा होगा। यह बिना एड़ी के पञ्जों के उभरे हुए चिन्ह स्पष्ट सह बात की सूचना दे रहे हैं।

गोपियां समझ गयीं श्याम ने यहाँ श्यामा के साथ समस्त सुख की क्रीड़ायें की हैं। यहाँ दोनों बहुत देर तक खेलमाल करते रहे होंगे।

अरी, रमने रमन कर्‌यो रमनी सँग तरुतर। अत्तो पत्तो मिल्यो श्याम श्यामाको गुरुतर॥
धन्य लाड़िली भाग करे वशमहँ बनवारी। मनोकामना पूर्ण भई नहिँ वीर, हमारी॥
कृष्णान्वेषण कातरा, इत रमनी बन-बन फिरहिँ। उत प्रियतम सँग राधिका, कामकेलि कौतुक करहिँ॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर वन-वन में भगवान् को खोजती हुई भटक रही थीं। इधर श्रीकृष्ण सारी गोपियों को छोड़कर राधा गोपी को लेकर एकान्त में ले गये थे, उसने समझा कि- भगवान्, सारी गोपियों को छोड़कर मुझे ही एकान्त में लेकर आये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मैं सारी गोपियों से अधिक सुन्दरी हूँ इसीलिये यह मुझे मानते हैं।

परस्पर श्रृंगार करके श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के साभ भद्रवन, महान खदिरवन, बिल्ववन और कोकिलावन में गए। उधर श्रीकृष्ण को खोजती हुई गोपियों ने उनके चरण चिह्न देखे। जौ, चक्र, ध्वजा, छत्र, स्वस्तिक, अंकुश, बिन्दु, अष्टकोण, वज्र, कमल, नीलशंख, घट, मत्स्य, त्रिकोण, बाण, उर्ध्वरेखा, धनुष, गोखुर और अर्धचन्द्र के चिन्हों से सुशोभित महात्मा श्रीकृष्ण के पद-चिन्हों का अनुसरण करती हुई गोपांगनाएँ उन चिन्हों की धूलि ले लेकर अपने मस्तक पर रखतीं और आगे बढ़ती जाती थीं। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों के साथ-साथ दूसरे पद चिन्ह भी देखे। वे ध्वजा, पद्म, छत्र, जौ, ऊर्ध्वरेखा, चक्र, अर्धचन्द्र, अंकुश और बिन्दुओं से शोभित थे। लवंगलता, गदा, पाठीन (मत्स्य), शंख, गिरिराज, शक्ति, सिंहासन, रथ और दो बिन्दुओं के चिन्हों से विचित्र शोभाशाली उन चरण-चिन्हों को देखकर गोपियाँ परस्पर कहने लगीं- निश्चय ही नन्द-नन्दन श्री राधिका को साथ लेकर गए हैं। श्रीकृष्ण-चरणारविन्दों के चिन्ह निहारती हुई गोपियाँ कोकिला वन में जा पहुँची।

उन गोपांगनाओं का कोलाहल सुनकर माधव ने श्रीराधा से कहा कि- कोटि चन्द्रमाओं को अपने सौन्दर्य से तिरस्कृत करने वाली प्रिये श्रीराधे, सब ओर से गोपिकाएँ आ पहुँची। अब वे तुम्हें अपने साथ ले जाएँगी। अत: यहाँ से जल्दी निकल चलो। उस समय रूप, यौवन, कौशल (चातुरी) और शील के गर्व से गर्वीली मानवती राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे प्यारे, मैं कभी राजभवन से बाहर नहीं निकली थी, किन्तु आज अधिक चलना पड़ा है। अत: अब एक पग भी चलने में समर्थ नहीं हूँ। देखते नहीं, मैं सुकुमारी राजकुमार पसीना-पसीना हो गई हूँ? फिर मुझे कैसे ले चलोगे?

राधा ने जब देखा- श्यामसुन्दर तो मेरे संकेत पर नाचते हैं। मेरे पैरों को कष्ट न हो, इसलिये मुझे कन्धे पर चढ़ाते हैं। मैं जो माँगती हूँ, उसे तुरन्त लाकर देते हैं। अपने पीताम्बर से मेरे पसीने को पोंछते हैं। अपने हाथ से मुझे खिलाते हैं। स्वयं मेरी वेणीं गूँथते हैं। बार-बार मुझे दर्पण दिखाते हैं, मेरे वस्त्राभूषणों को सम्हालते हैं। मुझे अंक में स्थित करके मेरे मुख को दीनता के साथ जोहते रहते हैं। मेरे मुख की आकृति का अध्ययन करते रहते हैं। हर समय शंकित से बने रहते हैं। मुझे

जिससे प्रसन्नता हो, उस काम को हठपूर्वक करते हैं। वे मेरी कृपा के निरन्तर इच्छुक बने रहते हैं। अहा, मैं कितनी बड़भागिनी हूँ। जिनकी कृपा के लिये ब्रह्मादिक देवता तरसते रहते हैं, जो बड़ी-बड़ी स्तुति करने पर उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते वे ही आज छोटी-से-छोटी नीच-से-नीच सेवा कर रहे हैं। कितनी ललनायें इनके दृष्टिपात के लिये तरसती रहती हैं, वे उन सबको तुच्छ समझकर मुझे ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानकर मुझे यहाँ एकान्त में ले आये हैं और आज्ञाकारी अनुचर की भाँति मेरी प्रेमपूर्वक परिचर्या कर रहे हैं। जिन कामिनियों को ये रोती बिलखती छोड़कर आये हैं, वे सब इनमें अनुरक्ता थीं, इनकी भक्ता थीं, फिर भी मेरे कारण उनकी उपेक्षा कर दी। मेरा उन सबसे अधिक सम्मान किया। इस प्रकार के विचार उठते ही उनके मन में प्रेम गर्व उत्पन्न हुआ। प्रेमगर्विता बनिता को नायक को नचाने में एक प्रकार के अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति होती है। अधिकाधिक उसे अधीन करना चाहती है, अत: प्यारे के अधिक संस्पर्श सुख की अनुभूति के लोभ से श्रीमतीजी उनसे बोलीं- प्यारे, तुम मुझे कहाँ यहाँ बीहड़ वन में लिये डोलते हो?

राधिका को गर्व हो गया था, कि मैं सबसे अधिक सुन्दरी हूँ, तभी तो श्यामसुन्दर सबको छोड़कर अकेली मुझे ही यहाँ एकान्त में ले आये हैं और मुझे समस्त सुख प्रदान कर रहे हैं। मेरे अधीन हो गये हैं। मेरी छोटी-से-छोटी सेवा को भी वे उल्लास और उत्साह के साथ कर रहे हैं। मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी कामिनी और संसार में कौन होगी।

यद्यपि राधिका कृष्ण अर्पिता थी फिर भी अहं पन के कारण प्रेमगर्विता हो गयी। अहंभाव सहज एक रस में बाधक है।

अत्यन्त ही अनुराग के साथ श्यामसुन्दर बोले- प्रिये, मैं तुम्हें रिझाने के लिये, तुम्हारी कृपा पाने के लिये ये सब कार्य कर रहा हूँ। यहाँ से अति निकट ही एक गहवर है, वहाँ तुम्हें ले जाकर सुन्दर-सुन्दर दृश्य दिखाऊँगा। तुम्हारे लिये सुन्दर-सुन्दर सुमन लाकर सभी अंगों के स्वयं आभूषण बनाऊँगा। पुष्पों का श्रृंगार करके तुम्हें सजाऊँगा और तुम्हारे लिये अतिकोमल पुष्पों की शैया बनाऊँगा।

तुनककर प्रेम के कोप के स्वर में राधाजी बोलीं- न जाने कितना दूर है आपका गहवर वन। मुझसे तो चला नहीं जाता।

ममता भरी वाणी में मदनमोहन बोले- थक गयीं क्या? अब तो समीप ही आ गये, देखो कैसी सुन्दर-सुन्दर भीनी-भीनी गन्ध आ रही है। वह जो सामने सघन लताओं का वितान दिखायी देता है, वहीं तो चलना है। अति संनिकट ही है। चली चलो।

राधा डाँटकर बोलीं- चली कैसे चलूँ? मुझसे तो अब एक पैर भी नहीं चला जाता। कहाँ ऊबड़-खाबड़ में ले आये हो? चलते-चलते पैर पिराने लगे। सभी अंग शिथिल हो गये हैं।

अनुराग भरित स्वर में श्यामसुन्दर बोले- लाओ चरण चाप कर दूँ। यहाँ की भूमि सम नहीं है। आगे बड़ा सुखद स्थल है। मेरे कन्धे को पकड़कर चली चलो।

इस पर राधा बोलीं- देखो, तुम मुझसे बहुत वाद-विवाद मत करो। मैं एक डग भी नहीं चल सकती। यदि तुम्हें उस सघन निकुञ्ज में ले चलना है, तो मुझे अपने कन्धे पर चढ़ाकर जहाँ चाहो तहाँ ले चलो। पैदल तो मैं जाने की नहीं।

यह वचन सुनकर राधिका- वल्लभ श्रीकृष्ण श्रीराधा के ऊपर अपने दिव्य पीताम्बर से हवा करने लगे। फिर उनका हाथ थामकर बोले कि हे श्रीराधे, अब तुम अपनी मौज से धीरे-धीरे चलो। उस समय श्रीकृष्ण के बारम्बार कहने पर भी श्रीराधा ने अपना पैर आगे नहीं बढ़ाया। वे श्रीहरि की ओर पीठ करके चुपचाप खड़ी रहीं। तब संतों के प्रिय श्रीकृष्ण ने मानिनी प्रिया राधा से कहा कि हे मानिनी। यहाँ अन्य गोपियाँ भी मुझसे मिलने की हार्दिक कामना रखती हैं, तथापि उन्हें छोड़कर मैं मन से तुम्हारी आराधना करता हूँ, तुम्हें जो प्रिय हो, वही करता हूँ। राधे, मेरे कन्धे पर चढ़कर तुम सुखपूर्वक शीघ्र यहाँ से चलो। उनके ऐसा कहने पर प्रिया ने जब उनके कन्धे पर चढ़ना चाहा तभी स्वच्छन्द गति वाले ईश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

हे राजेन्द्र, फिर तो कीर्तिकुमारी राधा का मान उतर गया। वे उस महान कोकिला वन में भगवद्-विरह से व्याकुल उच्च स्वर से रोदन करने लगीं। रो-रोकर श्रीराधा कहने लगीं कि हा नाथ, हा रमण, हा श्रेष्ठ, हा महाभुज, तुम कहाँ हो, कहाँ हो, मेरे सखा, मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सान्निध्य का अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो।

अन्य गोपिकायें तो प्रेम की निचली ही सीढ़ियों पर थीं, अत: उन्हें तो थोड़े ही सौभाग्य पर मान हो गया। वे ऐश्वर्य मद में मदमाती हो गयीं, अत: श्यामसुन्दर ने सबको एक साथ ही अन्तर्हित होकर विरह का अनुभव कराया, किन्तु श्रीमती राधिका के लिये इतना सार्वजनिक सम्मिलन सुख कोई विशेष महत्व की वस्तु नहीं थी, अत: श्यामसुन्दर सबका परित्याग करके एकाकी ही उन्हें एकान्तिक रति सुख का अनुभव कराने सघन निकुञ्जों में दूर ले गये। वहाँ उन्होंने उनके साथ कितनी सुखद, कितनी मनोज्ञ, कितनी अलौकिक लीलायें कीं, ये अनिर्वचनीय हैं, उनका कथन करना तो पृथक् रहा, अनुभव करना भी मानवीय बुद्धि के परे की बात हैं। उनका भावन भगवान कृपा करके स्वयं ही करा दें, अत: उसके विषय में यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान सब गोपियों के बीच से जिस गोपी को एकान्त में ले गये थे, अब उसे मान हुआ। उन्होने समझा मैं ही सब गोपियों में श्रेष्ठ हूँ, इसलिये प्यारे समस्त कामातुरा कामिनियों को छोड़कर मेरा ही भजन करते हैं।

जहाँ मान तहँ वास करैं कैसे गिरधारी। परबश तब घनश्याम लखे तब बोली प्यारी।।

पैदल अब नहिँ चल सकों, कितव। कहाँ लैं जात हैं। पग चाँपौ घोड़ा बनों, प्यारे। पाँइ पिरात हैं।।

गोपी का ध्यान भगवान पर से हटकर अपने शरीर पर, सौन्दर्य पर चला गया, यह एक गड़बड़ी हुई। ऐसा सोचकर वह गोपी वन में जाकर अपने प्रेम और सौभाग्य के मद से मतवाली होकर श्रीकृष्ण से कहने लगी- प्यारे, अजी आप मोकुँ कहाँ लिये जा रहे हो? मौपे तो चल्यो भी नाय जाय। मुझसे और अधिक चला नहीं जाता। मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहाँ चलना चाहो, वहाँ मुझे अपने कन्धे पर बैठा कर ले चलो। प्यारे का सुखद कर स्पर्श पाकर शरीर रोमांचित हो जाता है, उसमें कँपकँपी उठने लगती है। रौएँ खड़े हो जाते हैं और हृदय में आनन्द की हिलोरें उठने लगती हैं।

कृष्ण कितना सुन्दर, कितना मधुमय, कितना श्रुतप्रिय सुखदायक नाम है। कभी-कभी वे कदम्ब के ऊपर से वंशी की मधुर ध्वनि सुनतीं। सयानी-सयानी गोपिकाएँ कहती हैं- यह नन्द का लाल वंशी बजा रहा है। श्रीराधाजी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। हाय, जिसका इतना सुन्दर मधुमय नाम है, वह इतनी सुंदर वंशी भी बजा लेता है क्या? इस प्रकार उनका प्रेम वंशी ध्वनि को सुनकर और भी अधिक बढ़ता।

भगवान ने गोपी की बात सुनी। मन-ही-मन मुस्कराये और सोचा - इसे भी गुमान हो गया है। तो बोले- ठीक है मेरे कन्धे पर बैठ जाओ। ऐसा कहकर वे बैठ गये।

श्यामसुन्दर ने उन्हें अंक में भरकर उस टीले पर खड़ी कर दिया और आप तनिक झुककर उनके चरणों के समीप कन्धे को ले जाकर विनम्रतापूर्वक खड़े हो गये। प्रियाजी का गर्व पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। उन्होंने नूपुर, पाइजेब, कड़े, छड़े, साँकर, बिछुआ तथा छल्ली छल्ला और पगपान से मंडित अपने दायें चरणों को श्रीकृष्ण के कन्धे पर चढ़ने को ज्योंही उठाया त्योंही श्रीकृष्ण तुरन्त वहाँ के वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब हँसि बोले- श्याम चढ़ो कन्धापै प्यारी। सुनि अति हरषित भईं चढ़नकी करी तयारी।।

त्यों ही अन्तरधान भये हरि वे पछितावें। इत उत खोजहिँ फिरहिँ डरहिँ रोवहि बिललावें।।

नाथ, रमन, प्रियतमपरम, जीवनधन, असरनशरन। देहु दरस अब दुखहरन, विश्वभरन, भवभयहरन।।

जैसे ही गोपी ने अपना एक पैर उठाया और चढ़ने का प्रयास किया। इसी बीच भगवान गायब हो गये, अन्तर्धान हो गये। गोपी धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। कृष्ण को न पाकर वह सन्तप्त हो उठी। विलाप कर कहने लगी- हा नाथ, हा रमण, हा प्राणप्रिय, कहाँ हो? अपना मुखचन्द्र तो हमें दिखलाओ।

राधा के सौन्दर्य का अभिमान, रूप का गर्व तथा सम्पूर्ण स्त्रियों में श्रेष्ठ होने का मद चकनाचूर हो गया। वे भूली-सी भटकी-सी ठगी-सी अपने को असहाय अनुभव करने लगीं और आँखों से आँसू बहाती हुई बिलख-बिलखकर रोने लगीं। जिनके ऊपर अभिमान था, जब वे ही अन्तर्हित हो गये, अब अभिमान किस पर करतीं। जड़ के बिना वृक्ष रह कैसे सकता है। अभिमान भग गया और उसका स्थान दीनता ने ले लिया। वे अत्यन्त दीन होकर रुदन करने लगीं।

राधा कन्धा कर धरे, क्रीड़ा कमल घुमावते। निरखे नँदनंदन नयन, खग मृग कुल सरसावते।।

श्रीवृषभानु कुमारि कीर्तिपुत्री सुकुमारी। वरसानेकी लली किशोरी भोरी भारी।।

गोपी, कांता, राधिका, प्रिया प्रेयसी कामिनी। नित्यकिशोरी लाड़िली, मनमोहन मनभावनी।।

शुकदेव बोले- राजन्, विरहविह्वला राधिका विलाप करती हुई कर रही हैं- नाथ, हे रमण, हे प्रियतम। हे महाबाहो तुम कहाँ हो? कहाँ हो? इस दीना दासी पर दया करके दर्शन दो प्यारे।

हमको क्यों छोड़ी ब्रजनाथ, सर्वस दियो तुम्हारे साथ।।

हाहा नाथ परमहिमकारी, कहाँ गये स्वच्छन्द विहारी।। चरण शरण दासी मैं तेरी, कृपासिंधु लीजै सुधिमेरी।।

जिसके नाम में ऐसा जादू है उसकी मोहिनी मूरति कैसी होगी। श्रीकृष्ण के दर्शन कैसे हों? मेरे ये नेत्र सार्थक कैसे हों? हाय, श्रीकृष्ण दर्शन मुझे कब होंगे? श्रीकृष्ण कब मेरे इन नयनों को सफल करेंगे।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहि मैं जाना।।

विरह का जो प्रेम होता है उसका दर्शन कराने के लिए प्रभु अन्तर्ध्यान हो गये। जो आनन्द पुकारने में है, वह मिलन में नहीं, जो मजा इंतजार में है, वह मिलन में नहीं है।

दर्शनों के लिये चित्त में चिन्ता बनी रहती है। दर्शनों के लिये चपलता बढ़ जाती है। प्रिय के विषय में सोचते-सोचते शरीर में जड़ता-सी आ जाती है। उन्माद तथा मोह आदि भी दर्शन होने से हो जाते हैं। इसी का नाम अयोग है।

गोपियों के प्रेम का कोई बंटवारा नहीं हैं, एक जगह पर केंद्रित है। हम सबका तो प्रेम बंटा हुआ है कुछ पत्नी में है, कुछ पद में है, कुछ प्रतिष्ठा में, कुछ पैसे में।

हाय, कहाँ तजि गये रमन। मुखकमल दिखाओ। भयो दर्प मम दलन दयानिधि आओ आओ।।

भ्रमरी भूखी फिरहिँ कमल। मधु अघर पिआओ। मरति चातकी प्यास श्यामघन रस बरसाओ।।

यों प्यारी प्रिय बिरहमहँ, कुररी सम रोवति फिरति। सम्मुख निरखति चरअचर, पूछति पति बिलखति गिरति।।

श्रीकृष्ण के अन्तर्हित होते ही वे संयोग सुख को स्मरण करके तथा अपने गर्व के लिये बार-बार पश्चात्ताप करती हुई रुदन करने लगीं। वे बन-बन में रात्रि के समय भटकती हुईं चिल्ला रही थीं हा नाथ। ओ मेरे प्राणों के प्यारे, मुझ अबला को इस बीहड़ वन में अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? प्यारे, आओ, आओ, दरस दिखाओ, हृदय लगाओ, मत तड़पाओ, रस बरसाओ, हिय सरसाओ। अमृत पिलाओ। प्यारे, क्या तुम रूठ गये? कहीं अपनों की बात पर ध्यान दिया जाता है। मुझसे अपराध हुआ। अवश्य हुआ। किन्तु अब न होगा, अब तो मैंने अपने किये का फल पा लिया। तुम्हारी माधुरी मूरति नेत्रों के सम्मुख नाच रही है, किन्तु तुम हृदय से मुझे नहीं लगा रहे हो।

असिं प्यार तेरे नाल पाया, पर तैंनू की। असिं अपना आप गँवाया, पर तैंनू की।।
तेरे पिच्छे लीकां लोकां कोलों लवाईयाँ ने। कदी आ सपने विच मिल कमली दिया दे साइयाँ वे।।
तेनुं लखां वार बुलाया पर तैनूं की। असीं प्यार तेरे...
तू अपनी प्यारी राधा नु वी भूल्ल गयों। जरा दस किसदी प्रीतां उते डुल्ल गयों।
तैंनु जरा तरस नहिं आया पर तैंनू की, असीं प्यार...
मेरिं अखियाँ हञ्जू भर-भर रोदियाँ पईयाँ ने। तेरि रहमत वालीयाँ नजराँ क्यों फिर गईयाँ ने।।
असिं रो रो दर्द सुनाया पर तैंनू की असीं प्यार...

तुम्हारे सान्निध्य में तो बीहड़वन भी नन्दनकानन से बढ़कर है, किन्तु तुम्हारे बिना तो बैकुण्ठ गोलोक भी सूना-सूना है कोटि-कोटि नरकों से भी अधिक क्लेशदायक है। नन्दनन्दन, अब देरी मत करो। जब ये प्राण ही न रहेंगे तब तुम्हारे आने का क्या उपयोग? जब खेती सूख जाय, तब चाहें इन्द्र अमृत ही क्यों न बरसावें सब व्यर्थ है।

करि-करि सुमिरन सङ्ग श्यामको रोवति राधा। बन-बन विहरत बिकल बिरहकी बाढ़ी ब्याधा।।
दीखति दशमी दशा दुखी दरशन बिनु प्यारी। ब्याकुल बिलखति बिरहमाहिँ तनुदशा बिसारी।।

सभी पुराणों में श्रीराधिका के चरित्र का विस्तार के साथ वर्णन है। गर्गसंहिता ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्मपुराण, स्कन्धपुराण तथा अन्यान्य सभी छोटे-बड़े पुराणों में कहीं संक्षेप में, कहीं विस्तार से श्रीराधाजी के चरित्र का वर्णन है। श्रीमद्भागवत में उसी धन को इस प्रकार छिपा कर रखा है कि पढ़ने को तो सब पढ़ जायँ, किन्तु इसका गूढ़ रहस्य कोई विरले ही ज्ञानी भगवद्भक्त पुरुष समझें अन्य पुराणों में तो स्पष्ट वर्णन है, किन्तु यहाँ बीजक रूप में छिपाकर रखा है। उस बीजक को पढ़ते सब हैं, किन्तु उसका रहस्य न समझकर उस सुख से वंचित रहते है। कोई अनन्योपासक उन्हें समझावे तब उसका रसास्वादन कर सकते हैं।

शरद रात मे चन्द्रमा निक्ल्यो निरख रास अध्याय, सो स्वाती बूंद गिरी, जिसको मुक्ता भयो फल।
आषाण उसका जीवन, ऐसो श्याम स्वरूप, भीतर चमके दामिनी सो ही राधाजी को रूप।

बिना शक्ति के कोई भी कभी भी किसी का कार्य होता नहीं। शक्तिहीन का ही नाम शव है। शक्ति के सहित ही शिव-शिव हैं जो जैसा होता है, उसकी शक्ति भी वैसी ही होती है।

भगवान की शक्ति का ही नाम राधा है। भिन्न-भिन्न रूपों में भगवान की भिन्न-भिन्न शक्ति हैं। कोई इन्हें प्रकृति के नाम से पुकारते हैं कोई माया कहते हैं। साधारणतया जैसा शक्तिमान होता है वैसी ही उसकी शक्ति भी होती है। भगवान का रूप जगमोहन है तो उनकी शक्ति भी जगन्मोहिनी है। भगवान रासेश्वर हैं तो उनकी शक्ति रासेश्वरी हैं। भगवान अचिन्त्य लीलावाले हैं तो श्रीराधाजी की भी महिमा अचिन्त्य है। भगवान आनन्द स्वरूप हैं तो वे भी आनन्द की वर्षा करनेवाली हैं। श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं और ये श्रीकृष्ण की आराधना करता है। जिसके जीवन में भक्ति की धारा आ गयी वह राधा है। यह तो भक्ति की धारा है। भक्ति अखंड होनी चाहिए, टूटे नहीं।

रा कहते रस अजे, धे कहते धीर, राधे राधे जो जपै, ताके निकट यदुवीर।

राधा की सखियाँ पश्चिममें वाम पार्श्वमें श्रीवृषभानु-नन्दिनीके समीप प्राय: उनके समान वर्णकी, स्वर्ण किरण सदृश कृशांगी, पाटलवस्त्र प्रधान सखी ललिता। वायव्यमें पीतवस्त्रा श्यामला, सम्मुख उत्तरमें अपने नामके समान ही धानी वस्त्रधारिणी धन्या, ईशानमें हरिप्रिया रंगदेवी सुचित्रित वस्त्रा, पूर्वमें तनिक श्यामा भास, केशरिया परिधाना, कालिन्दीकी दूसरी मूर्ति विशाखा, श्यामसुन्दरके समीप उनके दक्षिण पाश्वमें, आग्नेयमें उज्ज्वल वस्त्रा, चन्द्रोज्वला धन्या, दक्षिणमें पृष्ठ

भागमें पाटलवस्त्रा पद्मा और नैऋत्यमें अरुण वस्त्रा, पाटलवर्णा अनंग मञ्जरी।

इस आवरणकी प्रधाना हैं श्रीचन्द्रावलीजी। वे श्यामसुन्दरकी प्रीति-भाजना, श्रीवृषभानु-नंदिनी चचेरी अग्रजा भगिनी हैं। स्वयं किशोरीजी उनका सम्मान करती हैं।

चन्द्रवलीजी, सुदेवी, तुंगविद्या और चित्रा उत्तरमें, माधवी, रूप, मञ्जरी, भद्रा, और चम्पक लता पूर्वमें, चन्द्रा, चित्ररेखा, मदनसुन्दरी और मधुमती दक्षिणमें तथा इन्दुलेखा, चन्द्ररेखा, चन्द्रावती और कृष्णप्रिया पश्चिममें अवस्थित होती हैं।

जहां इन्द्रा, वृन्दा, राधिका, श्यामा, भामा, नार, ललिता, विशाखा सर्व सखियां और व्रज कुमार।
चित्रा, रेखा, रंगदेव, चम्पकला, तुंगी, विद्या, सुदेवी।
भानुमती, संझावती, कालिंदी के तीर, तहां वेणु बजावे, खेल मचावे बलवीर।।

संगीत, वाद्य, हास्य-विनोद, ताम्बूल-दान, जल, निकुञ्ज श्रृंगार- अत्यल्प सेवा है और सभी सखियों प्रयत्न करती रहती हैं कि उसे अधिकतम अवसर सेवाका प्राप्त हो। कृष्ण कहते हैं-

राधा मेरी देह है और मैं राधा की देह। किंतु जहाँ अभिमान है, रहुँ तहाँ नहीं लेह।।

इनका प्राकट्य रासविलास के ही निमित्त हुआ, अत: ये रासेश्वरी हैं। इनका प्रादुर्भाव क्रीड़ा के ही निमित्त हुआ अत: ये क्रीड़ाप्रिया हैं, अपने शक्तिमान के साथ नित्य नूतन-नूतन लीलायें रचती हैं, प्रधान शक्तिमान की प्रधान शक्ति के द्वारा ही समस्त शक्तियों का विकाश होता हैं, श्रीराधिका जी के रोम कूपों से अल्पशक्ति से ही अन्य असंख्य गोपियों का प्राकट्य हुआ। यह सब लीला में ही प्रादुर्भाव तिरोभाव है, वास्तव में तो शक्ति शक्तिमान सदा अभिन्न हैं, नित्य हैं, शाश्वत हैं, उनका आविर्भाव नहीं, तिरोभाव नहीं। उत्पत्ति नहीं, विनाश नहीं। ऱ्हास नहीं, उल्लास नहीं, सभी जानते हैं कण-कण जल से छोटी-छोटी जल की राशि बनती है। गड्ढा, कूप, तालाब तथा नदी सभी में जल होता है, सभी से प्यास बुझती है, सभी जीवों का जीवन है, किन्तु यह समस्त जल, जल की महाराशि समुद्र से आता है, अन्त में किसी न किसी मार्ग से वहीं चला जाता है। इसी प्रकार संसार में जो हमें यह आनन्द रस अथवा प्रेम दिखायी देता है, यह सब श्रीराधाकृष्ण महासागर के कुछ कण हैं, वह दिव्य आनन्द दिव्य लोक में निरन्तर उमड़ता रहता है। इसका आदि नहीं, अंत नहीं, अवसान नहीं।

इनमें न घटाव है न बढ़ाव, दोनों ही नित्य किशोरावस्थापन्न रहते हैं। निरन्तर रास विलास में मग्न रहना ही इनका काम है। सृष्टि, स्थिति तथा संहार आदि के कार्य त्रिदेव करते-रहते हैं। असुर आदिकों का संहार भी विष्णु का कार्य है। श्रीकृष्ण का तो एकमात्र कार्य अपनी शक्ति के सहित निरन्तर क्रीड़ा करते रहना ही है। कभी-कभी वह दिव्यलोक की लीला इस मर्त्यलोक में भी होने लगती है। वही लोक ज्यों-का-त्यों यहाँ प्रकट हो जाता है।

आन्तरिक लीला निकुञ्जलीला है। उसमें सब सखियों का भी प्रवेश नहीं। उसमें कुछ अत्यन्त अंतरंग सखियाँ ही सम्मिलित हो सकती हैं। शेष गोष्ठ और वन की लीलाओं में महाभाग्यशाली गोपों का, गोपियों का, सभी का प्रवेश है, वह जगत् के आनन्द की वृद्धि करनेवाली हैं।

शुकदेव भगवान की स्तुति करते हुए कह रहे हैं- जो भगवान ऐकान्तिक भक्तजनों के रक्षक हैं तथा कुयोगियों की जो दृष्टि से दूर हैं, जो अपने अक्षर ब्रह्मधाम में विराजकर, जिसके समान अथवा जिससे अधिक किसी का ऐश्वर्य नहीं, उन शक्ति श्रीराधाजी के साथ जो रमण करते हैं, उन श्रीहरि को बारम्बार नमस्कार है।

राधा रसकी खानि सरसता सुखकी बेली। नंदनंदन मुखचन्द्र चकोरी नित्य नबेली।।
नित नव नव रचि रास रसिक हिय रस बरसावे। केलि मलामहँ कुशल अलौकिक सुख सरसावै।।

HHH(९००)HHH

गोरी भोरी सुन्दरी, रामा सुषमा श्यामकी। सती शिरोमनि स्वामिनी, श्रीवृन्दावन धामकी।।

श्रीराधा और माधव के प्रेम सम्बन्ध में कोई पक्ष में बोलता, कोई विपक्ष में, किन्तु आजकल श्रीराधा सबकी समालोचना का केन्द्र बनी हुई थीं। कोई उन्हें परकीया मानते कोई स्वकीया। स्वकीया परकीया का यह भेद सनातन है और सदा रहेगा।

जिस ब्रजांगना को भगवान ने इतना सौभाग्य प्रदान किया उसे भी अहंकार ने नहीं छोड़ा- उसे भी सर्वश्रेष्ठ होने का अहंकार हुआ तो भगवान उसे भी त्यागकर दृष्य हो गये।

सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम्। हित्वा गोपी: कामयाना मामसौ भजते प्रिय:।।

राधा के सम्मुख के अन्तर्हित हो जाना उनकी क्रीड़ा मात्र ही है, रस की अभिवृद्धि के लिये ही यह अभिनय है। जो राधिका मदनमोहन की माधुरी की मधुपात्री हैं। जो चितचोर चन्द्र की मदचकित चकोरी हैं उनका भला वृन्दावनविहारी से वियोग सम्भव हो सकता है। वे तो उनकी हृदयेश्वरी हैं, प्राणों से भी अधिक प्यारी हैं, किन्तु नित नवनव लीलाभिनय से रसवृद्धि होती है, प्रेमरूप अनन्त सागर में उत्ताल तरंगे आती रहती हैं, जिससे वह शब्द करता हुआ प्रवृद्ध होता हुआ-सा प्रतीत होता है। उसमें नव चेतनता स्फूर्ति दिखायी देती है, इसीलिये यह उनका लीला विलास है।

जब श्रीराधाका हा नाथ, रमण, श्रेष्ठ, कहाँ गये? कहाँ गये? कहकर रोने चिल्लाने लगीं और मूर्छित होकर गिर पड़ीं। अचेत हो गयीं, तो उसी समय घूमतीं फिरतीं वे सब श्रीकृष्ण की विरह व्यथा में व्याकुल बनी ब्रजाङ्गनायें भी वहाँ आ पहुँची। राधिकाजी की ऐसी दशा देखकर उन्हें दु:ख भी हुआ। किसी-किसी को आन्तरिक सुख भी हुआ।

श्रीकृष्ण को ढूँढती हुई गोपियाँ जब वहाँ पहुँची तो देखा कि अत्यन्त सन्तप्त गोपी विलाप कर रही है, रह रह कर वह मूर्च्छित हो जा रही है। पूछने पर उस गोपीने किसी तरह सारी घटना का वर्णन कर दिया। उसने यह भी बतलाया कि भगवान् ने उसे कैसा प्यार किया, कैसा सम्मान दिया और जब मैंने कुटिलतावश उनका अपमान किया। तो वे अन्तर्हित हो गये। इन बातों को कहकर वह गोपी मूर्च्छित हो गई। उसकी इस चिन्तनीय दशा को देखकर गोपियों ने कहा- राधा यदि जीवित रहेंगी तो हम जीवित रहेंगी और यदि यह कृष्ण के वियोग में मर गईं तो हम सभी नन्दबाबा के द्वार पर जाकर विष-पान कर आत्महत्या कर लेंगी। वे सब-की-सब आकर राधा के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने लगीं।

इत प्यारी मूर्छित परी, उत आईं ढूँढ़त सखीं। अति अचेत आकुल अधिक, राधाजी सबने लखीं।।

राधा ढूँढ रही किसीने मेरा शाम देखा....

यदि राधा होश में नहीं आईं तो इनके माता-पिता को महान् कष्ट होगा। इस स्थिति में हम सारी गोपियाँ भी इस अहीर के दरवाजे पर जाकर हीरा की कनी चाट कर अपने प्राणों को छोड़ देंगी।

गोपी बैठीं घेरि प्रियाकूँ सब समुझावें। गोदीमाहिँ लिटाइ कमल दल व्यंजन डुलावें।।

कछुक चेतना भई रसिककी बात चलाई। अपु बीती सब बात दुखित ह्वै प्रिया बताई।।

एक प्रान मन मिलि सकल, मानरहित अति दीन सब। गावत गुन गोविन्दके, भईं ध्यानमहँ लीन सब।।

शुकदेव बोले- राजन्, उन सब गोपियों का मन श्रीकृष्ण में ही लगा था, उन्हीं की सब बातें कह रही थीं, उन्हीं की चेष्टाओं का अनुकरण कर रही थीं तथा उन्हीं के ध्यान में लीन थीं। इस कारण वे सब उन्हीं के गुणों का गान कर रही थीं, वे घर द्वार की समस्त चिन्ताओं को भूल गयीं, तन्मय हो गयीं।

कान में कृष्ण नाम की ध्वनि पड़ते ही राधा को ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों कोई कर्णकुहरों में अमृत उड़ेल रहा है। अकबकाकर उन्होंने नेत्र खोल दिये और सहसा बोल उठीं- प्यारे कहाँ हैं? प्यारे कहाँ हैं? प्यारे तुम कहाँ चले गये थे।

आपको तो कभी छोड़ सकते नहीं। आप तो उनकी प्राणों से भी अधिक प्यारी हो, आपके ही मुख को देखने के लिये तो उनका जीवन है। आपकी चिन्ता करने को ही तो उनका चित्त है। वे गोचारण आदि बाह्य कार्य करते हुए भी निरन्तर आपके ही सुन्दर मुख का चिन्तन करते रहते हैं। आपको भला वे कैसे छोड़ सकते हैं। असंभव है, सर्वथा असम्भव है, हम त्रिकाल में भी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकतीं।

राधा पूछने लगीं- बहिनाओ, तुम यहाँ कहाँ से आ गयीं? प्यारे कहाँ चले गये? गोपियां बोली- प्यारे को तुमने यहाँ छिपा रखा है, जिससे वे हमें दिखायी न दें।

जित तितते धाईंसबै व्रजसुन्दरि अकुलाय। व्याकुल लखि अति लाड़िली लीन्हों कण्ठ लगाय।।
कहाँ गये गोपाल बार बार पूछत सबै। मूर्च्छिपड़ी तेहि काल मुखते वचन न आवही।।
क्या पूछो मुझसों सखी मोहन की निठुराय। नहिं जानों वह कित गये मोहूँ को छटकाय।।

राधा बोली- सखियों, मैंने मान किया था, मुझे अपने सौभाग्य सुख पर गर्व हो गया था। मैं प्रेमगर्विता बनिता बन गयी थी। मैंने सौभाग्य के मद में भरकर मदनमोहन का अपमान किया। इसी से वे रूठ गये, मुझ अभागिनी को छोड़कर चले गये। यह कहते-कहते श्रीजी पुन: विह्वल हो गयीं।

मैं कीन्हों अभिमान नारि बुद्धि ओछी सदा। वह प्रिय परम सुजान जान लई मम जीयकी।।
माखन प्रभुके विरह दुख कासों वरणी जाय। अपनो दोष विचारि कर बारबार पछिताय।।

व्रजबालों ने श्यामा को भी अपने समान विरहअग्नि में जलते हुए देखा तब अति विलाप करके बोलीं- हे व्रजनाथ, तुम्हारे वियोग में हमको एक क्षण कल्प के समान मालूम होता है और प्राण निकलने चाहते हैं, इसलिए दयालु होकर दर्शन दो। जब बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं उनका पता न मिला तब निराश होकर अति विलाप करने लगीं।

राधा सबसों मिली, नैनन नीर बहाय। प्रेम पियासी सब सखी, रहीं कृष्ण गुन गाय।।

एक चतुर सी सखी बोली- श्यामसुन्दर वहीं बैठे हैं, जहाँ उन्होंने पहिले-पहिल वंशी बजायी थी।

राधा बोली- क्या रासस्थली में? गोपी बोली- हाँ रासस्थली में रासेश्वर अवश्य होंगे। वहाँ बैठे हुए हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे? हम तो गह्वर वन के निकट हैं। रासस्थली तो यहाँ से दूर हैं। दूर भी नहीं समीप ही है।

राधा बोली- अच्छा चलो वही चलें, किन्तु मार्ग के और वनों को भी खोजती चलना। सम्भव है यही कहीं छिपे हों। वे बड़े छलिया हैं। समीप छिपे रहने पर भी दूर दिखायी देते हैं। कभी-कभी दूर रहने पर भी समीप हो जाते हैं। अभी तो प्रकाश है। वे काले-काले दिखायी दे जायँगे। अन्धकार में तो वे उसी के रूप में मिल जायँगे। तब उन्हें खोजना अत्यन्त कठिन हो जायगा। प्रकाश की सहायता से उनका पता लगावें। चन्द्रिका के आलोक में उन्हें हम खोजें। यह सुनकर वे सब एक साथ चल दीं। प्रकाश की सहायता से खोजने लगीं किन्तु श्रीकृष्ण किसी की सहायता से नहीं मिलते। जब वे स्वयं ही मिलने को तैयार हो, तो अपने आप प्रकटित हो जाते हैं। वे व्रजाङ्गनायें चन्द्रमा की चाँदनी में उन्हें एक वन से दूसरे वन में खोजती फिर रहीं, पर श्यामसुन्दर नहीं मिले।

श्रीकृष्ण हमारे पुरुषार्थ से प्राप्त नही होते। वे तो स्वयं ही कृपा करके हमें वरण कर लें, अपने आप ही आकर हमें बलपूर्वक उठाकर अपने हृदय से लगा लें, तभी उनकी प्राप्ति सम्भव है। स्वत: वे ही हाथ बढ़ाकर हमारे मुख को फाड़कर अमृत उड़ेल दें तभी अमरता सम्भव है। स्वयं हम अपने पुरुषार्थ से उन्हें न पा सकेंगी। चन्द्रमा के प्रकाश पर जो विश्वास था, वह भी मन्द पड़ गया। वन में तम का साम्राज्य हो गया। अब तो रासस्थली में ही चलकर बैठें, उनकी कृपा की प्रतीक्षा

करें। उनके नाम गुणों द्वारा ही कालक्षेप करें। कभी तो वे कृपा करेंगे। यही सोचकर वे जहाँ से गयी थीं वहीं लौट आयीं और धैर्यपूर्वक साधना रति का अनुकरण करने लगीं।

इस दशा में मान सर्वथा नष्ट हो जाता है। सुन्दरता का, कुलीनता का, धन, यौवन तथा अन्य सभी प्रकार के मानों का अभाव हो जाता है। सबके साथ समान भाव से बैठकर अपने साध्य की प्राप्ति के लिये निरभिमान होकर जुट जाते हैं। जिसे भी देखते हैं उसी की वन्दना करते हैं।

मन में सदा आशा बनी रहती है, कभी-न-कभी प्यारे कृपा करेंगे ही। कभी-न-कभी तो दया करके दर्शन देंगे ही। कभी-न-कभी तो वे हमें अपनायेंगे ही। इसी आशा को लगाये वे कालयापन करते हैं।

साधनारति में समुत्कंठा सदा बनी रहती है। प्यारे के रूप को याद कर-करके, उनके गुणों को याद करके मिलने की जो छटपटाहट है उसे ही समुत्कंठा कहते हैं। यह उत्कण्ठा प्रतिपल प्रतिक्षण बनी रहती है। प्यारे अब आये, अब आये। अब उनके दर्शन होंगे। अब नेत्र सफल होंगे।

जिस स्थलपर प्यारे ने कमनीय क्रीड़ायें की हैं उन स्थल पर स्वाभाविक प्रीति हो जाती है। उन स्थलों को देखकर उनका स्मरण करके उद्दीपन होता है। यहाँ प्यारे ने यह लीला की थी, इस स्थल पर यह घटना घटित हुई थी। प्यारे के उन-उन स्मृति स्थानों में जाना, उनका मन वचन तथा करो द्वारा पूजन करना, उन स्थलों के प्रति आदर करना यह भी रति का सर्वश्रेष्ठ अंग है।

सबसे अधिक रति की वृद्धि के कारण है तद्गुणख्यान आसक्ति। प्यारे के सौन्दर्य माधुर्य और उनकी लीलाओं का गान करना, उनका अनुकरण करना, उनका श्रवण करना इन सभी कारणों से साधनारति की वृद्धि होती है।

सूतजी कह रहे हैं- मुनियों, वे गोपिकायें लौटकर उसी स्थान पर आ गयीं जहाँ श्यामसुन्दर ने सर्वप्रथम बाँसुरी बजाकर ब्रजाङ्गनायें बुलायी थीं। वहाँ वे अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई, मान शून्य होकर, उत्कण्ठापूर्वक श्रीकृष्ण दर्शनों की आशा से उस स्थल के प्रति आदर प्रदर्शित करती हुई, भगवान के नामों को उच्च स्वर से लेकर, उनके गुणों का गान करती हुईं घर द्वार कुटुम्ब परिवार की सुधि भुलाकर कृष्ण-स्मृति में ही अपने समय का सदुपयोग करने लगीं। उन सबने परस्पर मिल-जुलकर जो श्रीकृष्ण गुण-गान सम्बन्धी गीत गाये हैं, वे गोपी गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सुधि बुधि तजि घर द्वार बारकी कृष्ण पुकारें। उत्कण्ठित अति भई करुण स्वर नाम उचारें।।
रूप सुमिरि घनश्याम हृदय पिघिले भरि आवे। देह कँपी-कँपी उठे चित्त चंचल ह्वै जावै।।
करत प्रतीक्षा पुलिनमहँ, मिलि जुलि गावें गीतकूँ। साधनसिद्धा सखी सब, प्रकट करें रस रीतिकूँ।।

फिर वे गोपियों ने जहाँ तक चन्द्र की चाँदनी छिटक रही थी, वहाँ तक अपने प्राण-प्रिय को खोजा किन्तु उनके न मिलने पर वे सारी-की-सारी गोपियाँ तन्मयता के साथ कृष्ण का गान करती हुई यमुना के उसी पुलिन पर आईं जहाँ से नन्दनन्दन अन्तर्धान हुए थे। वहाँ सभी एक साथ मिलकर श्रीकृष्ण के गुणों का गान कर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगीं। अधीर मन से कृष्ण को पुकारने लगीं। सबने मिलकर एक मंगलगीत गाया उसीका नाम गोपी गीत है।

गावैं गोपी गीत जयति जय ब्रजबनचन्दन। ब्रज जीवन सरवस्व सुखद नटवर नँदनन्दन।।
कमल बदन हम जेहि मधुकरी जीवन धारें। तिनहिँ अदरशन वायु बिना वल्लभ, च्यौं मारें।।
प्राणेश्वर तव दरश बिनु, प्रानहीन हम भई सब। खोजि थकीं दश दिशि दयित, देहु दयानिधि दरश अब।।

२) गोपी गीत- जयति तेऽधिकं जन्मना वज्र: श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयति दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतावस्त्वां विचिन्वते।।१।।

हमरे तन, मन, प्रान, कर्म सब तुम हित प्रियतम। तव प्रसन्नता हेतु करें धारन जीवन हम।।
जिन नयननि तव रूप लख्यो पुनि और न भावैं। सुने श्रवण तव वचन अन्य पटतर नहिँ आवैं।।
नस्यो प्रियतमा प्रेयसी, को मद अब दासी भईं। आओ, दरशन देउ अब, बन बन ढूँढ़त थकि गईं।।

गोपियों ने कहा- हे श्यामसुन्दर यहाँ आपके जन्म लेने से व्रज की महिमा वैकुण्ठ आदि लोकों से भी बढ़ गई है। तभी तो सौन्दर्य और माधुर्य की देवी श्रीलक्ष्मी जी अपना निवास-स्थान वैकुण्ठधाम छोड़कर नित्य निरन्तर यहीं निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम, देखो तो सही आप को ही अपना सर्वस्व समझनेवाली, आपको ही अपना प्राण समर्पित करनेवाली हम गोपियाँ वन-वन में भटक कर आपको ढूँढ रही हैं। व्रजधाम विशेष उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है।

व्रज में भगवान का जन्म होने के कारण, इसकी महिमा बढ़ गयी है। वैकुण्ठ में भगवान का जन्म नहीं होता, कृष्ण जन्म की बधाई नहीं बजती। जिस दिन व्रज में भगवान का जन्म हुआ उसी दिन से लक्ष्मीजी वैकुण्ठ छोड़कर व्रज में चली आयीं, बस गयीं। हमारे स्वामी यहाँ ग्वाल बनकर आये हैं, नंगे पैर यहाँ की धरती पर घूमेंगे तो लक्ष्मीजी ने चारों ओर अपने को बिछा दिया। भगवान की दृष्टि जहाँ जाती हैं, उस वस्तु को पहले से ही लक्ष्मीजी सुन्दर सँवारती हैं, सुगंधित करती हैं। कण-कण की सेवा लक्ष्मीजी स्वयं करती हैं। वैकुण्ठ में तो लक्ष्मीजी की सेवा होती है।

शरदुदाशये साधुजातसत् सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः।।२।।

हमारे प्रेम भरे हृदय के स्वामी, हम आपकी बिना मोल की दासी हैं। आप शरद्ऋतु में विकसित कमल की शोभा को चुरानेवाले अपने नेत्रों से हमें घायल कर चले गये हैं। मेरे मालिक, क्या नेत्रों से मारना वध नहीं है? क्या अस्त्रों से हत्या करना ही वध है?

बनितनि बन्धन करन बधिकको वेष बनायो। सुन्दर कोमल मृदुल रूपको जाल बिछायो।।
मोहकता कण फेंकि मधुर स्वर बेनु बजावें। गाइ सुखद सङ्गीत मृगिनि सम नारि फँसावें।।
भ्रुकुटि धनुष विष बुझे सर, सेंन नैन सरसाइकें। तकि मारे घायल करें- निरखें सतत सिहाइकें।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें गीत गाती हुई कह रही हैं- हे सुरतनाथ, हम आपकी बिना मोल की क्रीत दासियाँ हैं। आप अपने शरद कालीन सरोवर में समुत्पन्न सुन्दर सरसिजों के मध्य भाग की शोभा को भी हरनेवाले नयनों की चोट से मार गये हैं। हे वर देनेवाले, हम तुमसे पूछती हैं, क्या यह वध करना नहीं है?

हे प्यारे, तुम सुरत सुख के स्वामी हो। तुमसे हमें जो सुरत सुख प्राप्त हुआ है वह संसार में अन्य कहाँ मिल सकता है? तुम देखने में तो बड़े भोले-भाले सीधे सादे लगते हो, किन्तु हो बड़े खोटे। बड़े काइयाँ हो, छिपे हुए वधिक हो। वधिक का बाण कभी व्यर्थ भी हो जाता है किन्तु तुम तो लक्ष्यभेदी हो। जहाँ बाण मार देते हो फिर उसे निकालना सीखे ही नहीं। विशेषकर तुम्हारी शूर-वीरता इन अबलाओं पर ही चलती है। निर्बलों को मारना उन्हें घायल करना भला यह कोई अच्छी बात है?

तुमने सुन्दरता, कोमलता, मृदुता, सरलता तथा वशिता आदि तन्तुओं से एक सुदृढ़ जाल बिछाया है। उसे अपने आनन रूप अरण्य में तान दिया है। उसमें मोहकता से भरे मन्द-मन्द मुसकान रूप अन्न कण बिखेर दिये हैं और आप भौंहें रूपी धनुष पर कटाक्ष रूप बाणों को साधे हम हरिनी रूपी व्रजाङ्गनाओं पर, चोटें करने के निमित्त कदम्ब की ओट से मोहक मुरली बजाते हैं। कामवर्धक तान छेड़ते हैं। हम अपने गृह कार्यों में व्यग्र हुई उस ध्वनि को सुनकर उसके आकर्षण से अवश हुई खिंची चली आती हैं। कोई तो धन देकर दासी खरीदी जाती है, तुम तो लोभी और स्वार्थी ही हो। न एक छदाम मूल्य देते

हो न किसी का दु:ख ही देखते हो, कटाक्षों की चोट मारकर घायल कर लेते हो और बिना मोल की दासी बना लेते हो।

हमारा जो भी कुछ धर्म कर्म रूपी धन था, उसका भी तुम चोर शिखामणि ने अपहरण कर लिया। यहाँ तक कि लज्जा निवारणार्थ हमारे वस्त्र थे उनको भी तुमने चुरा लिया। सब प्रकारसे असहाय बनाकर हमें यहाँ एकान्त में बुलाकर छोड़ दिया।

हम तुमसे कुछ नहीं चाहती। तुमने हमारा सर्वस्व अपहरण किया अच्छा ही किया, हमें घर बार बिहीन बनाकर वन में अपने चरणों के निकट बुला लिया। इतना निरपराध स्त्रियों के वध का जो तुम्हें पाप लगा है, उसका कुछ भी तो प्रायश्चित करो। हम जल के बिना जैसे मछली तड़फड़ाती है, वैसे तड़प रही हैं, बिलबिला रही हैं। अपने दर्शन रूप जल से हमारे अङ्गों का सिंचन करके हमें जीवनदान दो, तुम्हें बड़ा भारी पुण्य होगा। सब पापों से तुम छूट जाओगे। यदि दर्शन रूप अमृत पिलाकर इतनी मरती हुई अबलाओं को तुम बचा लोगे, तो तुम अक्षय पुण्य के भागी बनोगे। श्यामसुन्दर आओ आओ। आ जाओ प्यारे, बहुत हो चुका अब अधिक विकल न बनाओ। यदि तुम्हें हमें मारना ही अभीष्ट था, तो पहिले तुमने हमें क्यों बचाया?

आपने ही दौड़कर हमें मृत्यु मुख से बचा लिया था। हमें मरने नहीं दिया था। जब दूसरे के द्वारा मारे जाने पर तुमने हमारी रक्षा की तो अब तुम स्वयं ही हमारा वध क्यों कर रहे हो? क्यों हमें बिलखा रहे हो। प्यारे अब बहुत हो गया। अब देरी करने से अनर्थ हो जायगा।

कायर कपटी कुटिल कामिनी घातक कारे। तीखे बान कटाक्ष ताकि अबलनिमहँ मारे।।
घायल सिसकति फिरहिं बान तनतें न निकारें। छलिया छिपिकें हँसत न आओ सतत पुकारें।।
दरश सुधा हित दयित हम, दु:ख दुसह दारुण सहें। बिना मोलकी किमरी, कृष्ण कृष्ण कबतें कहें।।

विषलाप्ययाद् व्यालराक्षसात् वर्षमारूताद् वैद्युतानलात।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहु: ।।३।।

पुरुषशिरोमणे। यमुनाजीके विषैले-जलसे होनेवाली मृत्यु अजगरके रूपमें खानेवाले अघासुर इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदिसे एवं भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगोंकी रक्षा की है।। ३ ।।

वध करनो ही हतो हमें च्यौं प्रथम बचायो। च्यौं असुरनिकूँ मारि सबनिको दु:ख छुड़ायो।।
कुपित इन्द्रने उपल प्रलयके घन बरसाये। च्यौं गोवर्धन धारि नाथ हम सकल बचाये।।
च्यौ दावानल पान करि, कालियदह पै दुख हर्‌यो। च्यों अजगरके मुख घुसे, च्यों बत्सासुर वध कर्‌यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोविन्द के गुणों के गीत गाती हुई गोपिकायें कह रही हैं- हे नर श्रेष्ठ, आपने हमारी विषैले जल से, अजगर से, अघासुर से, आँधी, वर्षा, बिजली, दावानल, वत्सासुर तथा मयात्मज व्योमासुर से तथा अन्य अनेक प्रकार के समटों से आनेवाली मृत्यु से हमारी रक्षा की है।

श्यामसुन्दर, सुना है तुम सबमें श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ पुरुषों का काम यही है, कि दीनों पर दया करना, दुखियों के दु:खों को हटाना, पीड़ित पुरुषों को पीड़ा से बचाना। आर्तों की आर्त को हरना, सदा परोपकार में निरत रहना। किन्तु तुम इसके विपरीत आचरण कर रहे हो। हमें स्वयं ही पीड़ा पहुँचा रहे हो। अदर्शन रूप अस्त्र से हमें घुला-घुलाकर मार रहे हो। कटाक्ष बाणों से घायल करके तुम छिपकर हँस रहे हो। हम तड़प रही हैं। रो रही हैं। तुम हँस रहे हो, प्रसन्न हो रहे हो। बड़े निर्दयी हो तुम, तुम्हारे हृदय में तनिक भी दया नहीं। तुमने ही हमारे हृदय में काम की चिनगारी डालकर स्नेह की फूँक मारकर उसे सुलगा दिया है और अब बड़े विरक्त बन गये हो। पहिले तो तुमने प्रेमबेलि को अपने प्यारे प्यारे मधुर वचनामृतों से उसे सींचा, जब वह वेलि पल्लवित

और पुष्पित हुई, तो श्यामघन बनकर अमृत के स्थान में उनपर उपल की वर्षा कर रहे हो उस पर तुषाराघात कर रहे हो उसे तुम्हें नष्ट ही करना है, तो उसकी जड़ को काट दो ऐसे पाला डालकर उसे झुलसा क्यों रहे हो? जब तुम्हें उसे जड़ मूल से काटना ही अभीष्ट था, तो उसे पहिले बढ़ाया ही क्यों अमृत बेलों से स्वयं उसे अपने हाथों से सींचा? क्यों उसकी आल-बाल बनाकर सब भाँति से रक्षा की। रक्षा करके जब उसके फलने फूलने का अवसर आया तो उसमें विष की वस्ति दे रहे हो। सूची के द्वारा उसकी नसों में विष को पहुँचा रहे हो। क्या यही साधुता है। सज्जन पुरुष तो अपने हाथ से लगाये हुए विष वृक्ष को भी स्वयं नहीं काटते, तुमने हमें बड़े दुखों से पहिले दया करके बचाया है, मृत्यु के मुख में घुसकर हमारी रक्षा की है। एक बार नहीं अनेकों बार हम समस्त ब्रजवासी मृत्यु के मुख में चले गये थे, किन्तु आप हमें हठपूर्वक अपने बल पुरुषार्थ से निकाल लाये।

बाण कटाक्ष मारकर घायल करके तुम अदर्शन रूप विष उस घाव पर छिड़क रहे हो। विरह रूप विषैली ओषधि की वस्ति देकर सुई से घाव से सम्बन्धित रक्त वाहिनी नसों में उस विषैली वस्तु को पहुँचा रहे हो। क्या ऐसा आचरण तुम्हारे अनुरूप है। स्वयं विषैले जल में डूबकर हम मर रही थीं तब तो हमें बचा लिया अब स्वयं ही विष पिला रहे हो। तड़फा-तड़फा कर मार रहे हो?

ऐसा मत करो ब्रजरक्षक, अब तक तुमने हमारी रक्षा की है तो अब भी करो, हमें दर्शन देकर कृतार्थ करो।

तुम तो सर्वेश्वर हो, निर्गुण, निराकार, निरीह निर्लेप और अद्वितीय हो तुम्हें एकाकी ही रमण करना था, तो हम रमणियों की रक्षा आपने क्यों की?

यदि अब तुम दयाहीन हो गये हो, तो जैसे असुरों का तुमने वध किया है, वैसे ही हमारा भी वध कर दो। हमारे प्राणों को ले लो, हमें सर्वथा मृतक बना दो। मरजीवा की स्थिति क्यों बना रखी है। इस समय न हम मृतक ही हैं न जीवित ही। बार-बार हमारी रक्षा की है, तो एक बार और भी रक्षा करो।

बार बार च्यौं विपति उदधितें नाथ बचाई। च्यौं नटवर कर पकरि रासमहँ विहँसि नचाई।।
च्यौं कुंकुम मुख मल्यो प्रेमको खेला खेल्यो। च्यौं गोदी सिर धारि अमृत मुखमाहिँ उड़ेल्यो।।
च्यौं सरसायो नेह अति, ढीठ बनाई च्यौं हमें। अब दरशन बिनु देउ दुख, लाज न लागति च्यौं तुमें।।

जिस दिन से हम लोगों ने तुम्हारी मोहनीमूर्ति देखी है उसी दिन से हमारा ध्यान व प्राण तुम्हारे चरणों के पास रहकर संसारी व्यवहार में नहीं लगता। सो हमें महादीन व दु:खी जानकर अपना चन्द्रमुख दिखलाओ। हमारी आँखें जो रोते-रोते जल रही हैं उन्हें ठण्डी करो। कदाचित् तुम्हें हम लोगों को अपने विरह में मारना था तो राक्षसों के हाथ से, दावानल अग्नि से, कालीनाग के विष से, इन्द्र के कोप से क्यों बचाया था? जो तुम नन्द व यशोदा के बेटे होते तो ऐसी कठोरता न करते, न मालूम किसके जने हो। तुम्हारे विरह में हमारा हृदय जल रहा है, इसलिए दु:खी होकर यह कठोर वचन तुमको कहती हैं। हमारे मन का हाल तुम्हें अच्छी तरह मालूम होगा।

जाही हाथ धनुष चढ़ायो है सीतापति जाही हाथ रावण सँघारि लंक जारी है।
जाही हाथ तार्‌यो और उबार्‌यो हाथ हाथी गहि जाही हाथ सिंधुमति लक्ष्मीको निकारा है।।
जाही हाथ गिरवर धारि गिरिधारी भयो जाही हाथ नन्दकाज नाथ्यो नाग कारी है।
हौं तो मैं अनाथ हाथ जोरे कहौं दीनानाथ वाही हाथ मेरो हाथ गहिबे की बारी है।।
दही दूध ले जात थे माखनप्रभु ब्रजराज। तबहूँ तो बरज्यो नहीं बैर करत क्यहि काज।।

यह वचन सुनकर दूसरी गोपी बोली- सुनो प्यारियों, उनको ताना मारने से कभी नहीं पावोगी, केवल विनय करने से वे प्रसन्न होंगे, क्योंकि उनका नाम दीनदयालु है।

तब उन सब गोपिन कह्यो नाहीं और उपाय। माखनप्रभु बिनती करौ तबै मिलेंगे आय।।

न खलु गोपिकानन्दनो भवा नखिलदेहिनामत्नरात्मदृक।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले।।४।।

हे सखे, आप केवल यशोदानन्दन ही नहीं, समस्त शरीर-धारियों के हृदय हैं, अन्तरात्मा के साक्षी हैं अत: ब्रह्माजी की प्रार्थना पर संसार की रक्षा के लिये आपने यदुकुल में जन्म ग्रहण किया है। क्या हम विश्व के बाहर हैं, जो आप हमें अपनी विरहाग्नि में जला-जलाकर मार रहे हैं।

आप दया की मूर्ति यशोदा मैया के बेटे नहीं है, अन्यथा इतने कठोर हृदय कैसे होते? आप सारे प्राणियों के अन्तरात्मा के द्रष्टा नहीं हैं। यदि होते तो हमारे हृदय की व्यथा अवश्य जानते।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें कह रही हैं- हे सखे, यह बात तो निश्चित है, कि आप केवल यशुमति नन्दन ही नहीं हैं, अपितु अखिल देहियों की अन्तरात्मा के साक्षी हैं। सम्पूर्ण संसार की रक्षा के निमित्त ब्रह्माजी की प्रार्थना पर आपने सात्वत कुल में अवतार धारण किया है।

जब हमारी ऐसी अबला व दुखियों के प्राण लेते हो तो रक्षा किसकी करोगे? हे मनहरणप्यारे, तुम्हारे मन्द-मन्द मुसकान व तिरछी चितवन व भौंह की मटक व गर्दन की लटक व बातों की चटक जब हम लोगों को याद आती है तब हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता। जब तुम वन में गो चराने जाते थे तब चार पहर दिन के तुम्हारे विरह में हमको चार युग के समान बीतते थे फिर सन्ध्यासमय तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर अपनी आँखें ठण्डी करके कहती थीं कि ब्रह्माजी बड़े मूर्ख हैं जिन्होंने आँखों पर पलक बना दी। पलक बन्द होने से उतनी देर तक तुम्हारी मोहनीमूर्ति नहीं दिखाई पड़ती। हे जगत्पालक, जिन चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आठों पहर अपने हृदय में रखते हैं, उन्हीं चरणों का दर्शन देकर हमारी इच्छा पूर्ण करो। वे चरण कैसे हैं, जिनके देखने व दण्डवत् करने से अनेक जन्म के पाप छूट जाते हैं और लक्ष्मीजी अपने हाथ उन्हें दबाती हैं। हे श्यामसुन्दर, जब तुम्हारे विरह में हमारे प्राण निकल जायँगे तब पीछे से अमृत पिलाकर क्या करोगे? अब तक केवल तुम्हारे मिलने की आशा पर अपने प्राण राखे हैं, सो अपनी छवि दिखलाकर कामरूपी हमारा दु:ख छुड़ावो और वंशी सुनाकर हमारी चिन्ता मिटावो। रात के समय स्त्रियों को कोई अकेली नहीं छोड़ देता। जिस तरह तुम लक्ष्मीजी को दिन-रात छाती में लगाये रहते हो उसी तरह हम लोगों को भी अपने चरणों से अलग मत करो। निर्दयता छोड़कर शीघ्र अपना दर्शन दो। तुम्हारा नाम संसार में गोपीनाथ प्रसिद्ध है सो अपने नाम की लज्जा करो या अपना नाम गोपीनाथ मत रक्खो। तुम अपने श्याम रंग के समान मन भी काला करके ऐसी निर्दयता करते हो जो हमें विरहसागर से बाहर नहीं निकालते। तुम्हें ढूँढ़ते समय हमारे पाँवों में काँटे चुभते हैं उस पर भी तुम्हें दया नहीं आती। हम लोगों को अपने दु:ख पाने का तो इतना सोच नहीं है, पर तुम्हारे कमलरूपी चरणों में रात को भागते समय जो काँटे चुभते हैं वह हमारे कलेजे में पीड़ा देते हैं, क्योंकि तुम्हारे चरणों का वास हमारे हृदय में है। इसलिए तुम जल्दी यहाँ चले आवो तो तुम्हारे कोमल चरणों को अपनी कोमल छातियों पर मलकर अपना कलेजा ठण्डा करें। या तुम कहीं बैठकर रात बिता दो जिसमें तुमको दु:ख न हो। तुम्हें कष्ट पहुँचने से हम लोगों के प्राण निकल जायँगे। अपनी जानकारी में हम लोगों ने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया, फिर क्यों खेद मानकर इतनी कठोरता करते हो। कदाचित् इसलिये हमारे ऊपर क्रोध किये हो कि अपने पतियों की आज्ञा के बिना तुम लोग रात को मेरे पास क्यों चली आईं। सो इस बात में भी हम लोगों का दोष नहीं है, क्योंकि तुम्हारी वंशी सुनकर देवता व ऋषीश्वर आदि का चित्त ठिकाने नहीं रहता, उसकी ध्वनि सुनने से देवकन्या मोहित होकर अपने को नहीं सँभाल सकतीं तो हम लोगों की क्या सामर्थ्य है जो मुरली

सुनकर अचेत न हो जावें। कदाचित् आप ऐसा कहें कि तुम्हारी कामपूरी अग्नि अपने-अपने पति से भेंट करने में बुझेगी, सो ऐसा न समझिए, हमारी अग्नि उनसे बुझने योग्य होती तो हम अपने-अपने पति को छोड़कर तुम्हारे पास क्यों आतीं। हे दीनानाथ, यदि हम लोगों की प्रीति मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारे चरणों में हो तो अपना दर्शन देकर हमारा दु:ख हरो।

नहिँ नभमहँ हम कहें सुनो तुम सब कछु स्वामी। यशुमति सुतही नहीं आपु तो अन्तरयामी।।
अबला हम अति दुखित आप चाहे मत मानो। अधिक कहा हम कहें आप घट घटकी जानो।।
जानि हमारो हृदय दुख, दै दरशन जग यश लहो। जड़ चेतन जग जीव जे, तुम सबके हियमहँ रहो।।

गोपिकायें कह रही हैं- श्यामसुन्दर। यदि हम तुम्हें सांसारिक जार पुरुष समझकर तुमसे प्रेम करतीं, तो हमारा यह व्यभिचार था, निन्दनीय कार्य था। हम यदि तुम्हें किसी एक माता का पुत्र समझतीं, अविद्योपाधिक एक जीव समझकर चाहतीं, तो यह दोष था। यद्यपि आप नन्दनन्दन कहलाते हैं, अपने को यशुमतितनय बताते हैं और आप हैं भी। इस बात को हम अस्वीकार नहीं करतीं कि आप गोपिकानन्दन नहीं हैं। अवश्य हैं, किन्तु गोपिका नन्दन ही नहीं हैं। सबको आनन्द देनेवाले हैं आपका आनन्द सीमित न होकर निस्सीम है। संकुचित न होकर विशाल है। आप किसी व्यष्टि क्षेत्र के ही साक्षी नहीं है, किन्तु समस्त देहधारी चर-अचर प्राणियों के अन्त:करणों में समान स्वरूप से साक्षी होकर वास करते हैं। आपका कोई एक मूर्तरूप नहीं। सभी आपके ही रूप हैं।

आप अविद्या, माया तथा प्रकृति से परे हैं। निर्गुण से आप सगुण बन गये हैं। अमूर्त भी तुम्हारा ही रूप है, मूर्त होने पर भी उसमें कोई दोष नहीं आता, वह ज्यों-का-त्यों निर्लेप निर्विकार, सर्वसद्गुणाश्रय बना रहता है।

हे जनार्दन, तुम अपनी प्रतिज्ञा को याद करो। जब तुम्हारा अवतार ही समस्त जगत् की रक्षा के निमित्त हुआ है तो हमें तुमने जगत् से पृथक् क्यों कर दिया है? हम भी तो इस जगत् में ही जनमी हैं। हमारी रक्षा क्यों नहीं करते? हमारे तन की तपन को क्यों नहीं बुझाते? हमें आकर अपने हृदय से क्यों नहीं लगाते?

हम घोर वन में अकेली भयभीत हो रही हैं। स्त्रियाँ एक तो स्वभाव से ही भीरु होती है, फिर अकेली तो और भी डर जाती हैं, रात्रि में तो सभी को भय लगता है। हम कुछ और नहीं चाहतीं। हमारी केवल यही प्रार्थना है, कि समुद्र से निकलने पर लजाती हुई, अनुरागवती कमला का कोमल कर आपने जिस अपने कर से पकड़ा था, उसी कर कमल को सिरों पर आकर रख दो। उस कर के स्पर्शमात्र से ही हम कृत-कृत्य हो जायँगी। इतने से ही हमारी समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो जायँगी। उस कमनीय कामपूरक कोमल कर कमल के स्पर्श से हमारी समस्त काम पीड़ा शान्त हो जायगी। हमारा सिर सार्थक हो जायगा वह सर्वश्रेष्ठ बन जायगा।

ये आँखें बड़ी चंचला है, इन्होंने बहुत आँखों को देखा, किन्तु ये तुम्हारी आँखों को देखकर निहाल हो गयीं, धन्य हो गयीं। सुनते हैं स्त्री के रूप को देखकर मोहित नहीं होती। किन्तु ये हमारी निगोड़ी अँखियाँ तुम्हारी आँखों पर मोहित हो गयी हैं, निरन्तर ये उन्हें देखते ही रहना चाहती हैं। जो आँखें मनोहर मुस्कान युक्त मुख पर बैठकर चञ्चलता करती रहती है, जिनमें से अनुराग का स्रोत निरन्तर बहता रहता है, जो भक्त जनों के समस्त अभिमानों पर पानी फेरनेवाली हैं। इन शीतल, सुखद, अमृतस्रावी चरण कमलों की शीतलता से हमारी विरहाग्नि को शान्त कर दीजिये।

कृष्ण, कृतारथ करहु कृपा कीजै कछु हम पै। धरहु दया करि कान्त कामपूरक कर सिर पै।।
है हमरो हिय कठिन काम कंटकहू जामें। तव अति कोमल चरन कठिनकूँ मृदुल बनामें।।
धरहु चरन हिय पै हुलसि, हरहु काम पीड़ा सकल। सुने वचन जबतें सरस, मधुर भईं तबतें विकल।।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरूहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥५॥

ब्रह्मा ने संसार की रक्षा के लिये आपसे प्रार्थना नहीं की थी। यदि की होती तो हमारी भी रक्षा आप जरूर करते। आप करुणा-शिरोमणि यादवों के वंश में भी योंही उदित हुये हो अन्यथा इतने अकरुण कैसे हो जाते? वस्तुतः आप आकाश से टपक कर भूतल पर आये हो- इसीलिये आप में असङ्गता और उदासीनता ये दो अवगुण घर कर गये हैं, नहीं तो आप हमें इस प्रकार अनाथ की दशा में छोड़कर गायब न हो जाते।

हे यदुवंशशिरोमणे, संसार-चक्र से भयभीत हो जो जन, आपके चरण-कमलों की शरण में आते हैं, उनको आपके हस्तारविन्द अभय प्रदान करते हैं। हे कान्त, सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति करनेवाले, वासनाओं को विनष्ट करनेवाले तथा लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले कर-सरोरुहों को आप हमारे सिर पर रखने की अनुकम्पा करें।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषियां निजजनस्यमवंसनस्मित।
भज सखे भवत्किमरीः स्म नो जलरूहाननं चारू दर्शय॥६॥

व्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीर-शिरोमणि श्यामसुन्दर। तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मान-मद को चूर-चूर कर देने के लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा। हमसे रूठो मत, प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं। हम अबलाओंको अपना वह परम सुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ॥ ६ ॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हच्छयम्॥७॥

तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी तुमने समोच नहीं किया। हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारी मिलन की आकाङ्क्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो॥ ७ ॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुहती रधरसीधुनाऽप्यास्व नः॥८॥

कमलनयन। तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है। उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणीका रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। दानवीर। अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो॥ ८ ॥

तव कथामृतं तत्पजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥९॥

प्रभो। तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरह से सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता है॥ ९ ॥

प्रिया पिपासित फिरहिँ मधुर कछु पेय पिआओ। अधरामृत मुख भरो निठुर, कछु पुण्य कमाओ।।
प्याओ प्यारे परम स्वादयुत मीठो मीठो। दुखहर अतिशय सुखद सौति वंशीको जूठो।।
कान कान्हकी कथा सुनि, होहि कृतारथ रस लहहिँ। बड़भागी ते जगत नर, कथा तुम्हारी जे कहहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपिकायें कह रही हैं- हे श्यामसुन्दर। तुम्हारी अमृतमयी कथायें सन्तप्त जीवों को जीवनदान देनेवाली हैं, कविजनों द्वारा कीर्तित हैं, समस्त पापों को नाश करनेवाली हैं, सुनने में अत्यन्त ही मधुर हैं तथा सुख शान्ति प्रदायिनी हैं। उन कथाओं को जो भूलोक में कहते हैं प्रचार करते हैं, समझो संसार में वे ही सबसे श्रेष्ठ दान देनेवाले दाता है।

गोपिकायें गाती हुई कह रहीं हैं- हे कमलनयन, तुम जो शहद से अधिक मीठी-मीठी बातें बनाते हो, उनसे हमारा मन मोहित हो गया है। तुम्हारे मुख कमल से जो मधुर वाक्यरूप मकरन्द झरित होता है, उसको पान करके हमारा मन रूप मधुप मत्त हो गया है। उसके उन्माद में इसका अब अन्त ही होना चाहता है, तुम इस पर अपना अधरामृत छिड़क दो, तो यह जीवित हो उठे। क्या इतनी असहाय निरीह अबलाओं को जीवन दान देकर तुम पुण्य और यश के भागी न बनोगे?

इस समय हम केवल आपकी पापनाशिनी, शान्तिदायिनी मङ्गलवर्धिनी, अमृतमयी, कविजनकीर्तित कमनीय कथाओं के ही सहारे प्राण धारण किये हुए हैं। ये ही कथायें हमारी अवलम्ब हैं, सहारा हैं, परन्तु इनसे कब तक जीवेंगी? जब तक तुम दर्शन न दोगे, तब तक चित्त तड़पता ही रहेगा। अन्त:करण उद्विग्न रहेगा, मन में व्याकुलता ही बनी रहेगी। प्यारे, हमारे साथ अन्याय मत करो।

हे नाथ आपकी मन्द मधुर मनोहर मुस्कान, चित्त चुरानेवाली चितवन, विविध लीलाएँ और हास-परिहास का स्मरण कर हमारा मन क्षुभित हो रहा है। हे कान्त, आपके चरणारविन्द शरणागत की आर्ति का अशेष उन्मूलन करनेवाले हैं; वे समस्त सौन्दर्य एवं माधुर्य के कोष तथा श्रीदेवी के निकेतन हैं। इन निरावण चरणारविन्दों से आप हमारे गाय-बछड़ों को चराते हुए वृन्दावन में भ्रमण करते हैं; हमारी रक्षाहेतु आपने अपने चरणारविन्दों को कालिय नाग के फणों पर भी विराजमान किया; हमारा हृदय आपके विप्रयोगजन्य ताप से अत्यन्त सन्तप्त है, अत: हमारी आर्ति-हनन हेतु आप अपने चरण-कमलों को हमारे वक्ष:स्थल पर पधराने का अनुग्रह करें।

हे नाथ, आप की कथा अमृत है। वह त्रिविध तापों से सन्तप्त प्राणियों का जीवन है। उसके श्रवणमात्र से सारे पाप-ताप विगलित हो जाते हैं। वह परम मंगलकारिणी है। इसीलिये बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं भक्त कवियों ने वर्णन कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जो आपकी लीला-कथा का भूतल पर घूम-घूम कर गान करते हैं, वे विपुल पुण्यशाली और महान् दानी हैं।

आप की कथा ही मृत है, मार डालनेवाली है। जैसे खौलते तेल में शीतल जल-बिन्दु छन्न से उड़ जाता है, वैसे ही आपकी कथा का स्मरण करके हमारा जीवन-प्राण खौल उठता है। कविजन स्वभावत: उसका वर्णन कर देते हैं, उनके वर्णन का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। आप की कथा कर्म की कालिमा का विनाश करना होगा। तो जिनके कर्म की कालिमा है, पाप है, वे सुनें। उससे हमारा क्या लेना-देना। वह सुनने में अच्छी हो सकती होगी। किन्तु परिणामत: वह सुखकारिणी नहीं है। श्रीमदान्धों ने, धनिकों ने, प्राणियों को मारने के लिये ही कवियों को धन देकर उसका प्रचार-प्रसार करवा दिया है। आपकी कथाघूम-घूम कर जो चारों ओर सुनते हैं, उन्होंने लोगों का घर छुड़ाया, उन्हें याचक बनाया, पागल बनाया और आपके लिये तड़पा-तड़पा कर उन्हें मार डाला। ऐसे लोग प्राणि-घातक हैं।

आपकी कथा सभी कल्मषों को नष्ट करनेवाली है। हम तो चाहती हैं कि हमारे प्राण अभी निकल जायें, शरीर का अन्त हो जायें, पर हृदय में आपकी यह कथा चिन्तन प्राणों को निकलने नहीं देता।

तुम सर्व विद्या निपुण हो। फँसाने की समस्त चालों में तुम पंडित हो। मुसकान के सहित जो तुम्हारे कमनीय प्रणय कटाक्ष हैं, वे तो विष बुझे बाणों का काम करते हैं। हँसी की अनेक हृदयहारिणी कहानियाँ कह-कहकर तुम हँसाते हो, विविध भाँति की ठठोलियाँ कर-करके हमारे चित्त को चुराते हो। इन सभी बातों का स्मरण कर-करके हम अब अत्यन्त दुखी हो रही हैं। अब प्रकट हो जाओ, रोती हुई रमणियों को हँसाओ। प्यारे हँसाओ।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
रसहि संविदो या हृदिस्पृश:कुहक नो मन: क्षोभयन्ति हि ।।१०।।

प्यारे। एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरह की क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मङ्गलदायक है, उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेमकी बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र। अब वे सब बातें याद आकर हमारे मनको क्षुब्ध किये देती हैं।। १० ।।

चलसि यद् ब्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणांकुरै: सीदतीतिन: कलिलतां मन: कान्त गच्छति ।।११।।

हमारे प्यारे स्वामी। तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओंको चरानेके लिये व्रजसे निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जानेसे कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दु:ख होता है।। ११ ।।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरूहाननं बिभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि न: स्मरं वीर यच्छसि ।।१२।।

दिन ढलनेपर जब तुम वनसे घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमल-पर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओंके खुरसे उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम। तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा-दिखाकर हमारे हृदयमें मिलनकी आकाङ्क्षा- प्रेम उत्पन्न करते हो।। १२।।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणमजं शन्तमं च ते रमण न: स्तनेष्वर्पयाधिहन् ।।१३।।

प्रियतम। एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दु:खोंको मिटाने वाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। आपत्तिके समय एकमात्र उन्हींका चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुञ्ज-विहारी। तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्ष:स्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर दो।। १३ ।।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ।।१४।।

वीरशिरोमणे। तुम्हारा अधरामृत मिलनके सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्तापको नष्ट कर देता है। यह गानेवाली बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, उन लोगोंको फिर दूसरों और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर। अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ।। १४ ।।

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ।।१५।।

HHH(९११)HHH

प्यारे। दिनके समय जब तुम वनमें विहार करनेके लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक-एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्याके समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रोंकी पलकोंको बनानेवाला विधाता मूर्ख है।। १५ ।।

जब आप वन में गायों को चराने जाते हैं, तब आपको देखे बिना क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है। सायमाल जब आप घर लौट कर आते हैं तब आप को निरखने की बेला में न जाने कैसे ये अभागिन पलकें गिर जाती हैं। हम क्या कहकर कोसें उस बुद्धि-विहीन विधाता को, जिसने नेत्रों के ऊपर पलकें लगा दी। ये हतभागिनी पलकें आपकी रूपमाधुरी की पान-बेला में बाधा डाल देती हैं। दर्शन के बिना हमारी व्यथा बढ़ती जा रही है। अत: अति शीघ्र प्रकट होकर दर्शन देने की कृपा करें।

अब आन मिलो नन्दलाल। दुर्बल मलिन फिरत हम बन बन, तुम बिन मदन गोपाल।
द्रुम बेली पूछतिसब उझकति, देखति ताल तमाल। खेलन चहत रास रँग तुम सँग, छोड़ीं सब ब्रजवाल।।
गोपि वृन्द ढूँढ़त सब डोलें, अब प्रकट होहु नन्दलाल। सूरदास गोपी सब रोवें, होहि होहि अधिक विहाल।।

पतिसुतान्वयभ्रातृबानधवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागता:।
गितविदस्तवोद्रीतमोहिता: कितव योषित: कस्त्यजेन्निशि।।१६।।

प्यारे श्यामसुन्दर। हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा और आज्ञाओंका उल्लंघन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, समेत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गानकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी। इस प्रकार रात्रिके समय आयी हुई युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है।। १६ ।।

पतियों को छोड़ दिया, पुत्रों को छोड़ दिया। यदि कृष्ण आकर नहीं मिले तो विरह रूपी अग्नि में जलकर शरीर का अन्त होने वाला है। गोपियों ने बार-बार हृदय की भावनाओं को प्रकट किया।

मुरली बजा के मोहन क्यों कर लिया किनारा। अपनों से हाय कैसा व्यवहार है तुम्हारा।। मुरली बजा...
ढूंढ़ा गली-गली में, खोजा डगर-डगर में। मन में यही लगन है, दर्शन मिले दोबारा। मुरली बजा...
मधुवन तुम्हीं बताओ मोहन कहाँ गया है। कैसे झुलस गया है कोमल बदन तुम्हारा।। मुरली बजा...
यमुना तुम्हीं बताओ छलिया किधर गया है। तुम भी छली गयी हो कहती है नील धारा।। मुरली बजा...
दुनियाँ कहे दिवाना पागल कहे जमाना। अपनों को भूल जाना, हम को नहीं गँवारा।। मुरली बजा...
राधा की पीर निर्मल व्याकुल हृदय ही जाने। समझेगा क्या भला वो जिसको न गम ने मारा।। मुरली बजा...

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुर:श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मन:।।१७।।

प्यारे। एकान्तमें तुम मिलनकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्ष:स्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है।। १७ ।।

हे सखे, आपका हास-परिहास, प्रेमभरी चितवन तथा आपके विविध विहारों का चिन्तन कर हम कभी ध्यान में डूब

जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मंगलदायक है। उसके फलस्वरूप आप हमें मिले। हमें दुलारा और पुचकारा। किन्तु ओ कपटी, आज वे सारी बातें हमें क्षुभित कर रही है। आपके जिन कोमल चरणों को हम अपने कठोर कर्कश वक्ष:स्थलों पर रखने में संकोच करती हैं, वे ही निरावरण चरण जंगल के कंकण-पत्थरों से क्या व्यथित नहीं होते होंगे- इन बातों को सोच-सोचकर हमारा मन व्यथित हो उठता है। मेरे स्वामी, आपके चरण-कमल शरणागत भक्तों की समस्त कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उन चरणों की सेवा करती हैं। आप के ये चरण ही पृथ्वी के अलमरण हैं। आप अपने ऐसे चरणों को हमारे स्तनों के ऊपर रखकर हमारे सारे मनस्तापों को विनष्ट कर दीजिये।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥१८॥

प्यारे। तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियोंके सम्पूर्ण दु:ख-तापको नष्ट करनेवाली और विश्वका पूर्ण मङ्गल करनेके लिये है। हमारा हृदय तुम्हारे प्रति लालसासे भर रहा है। कुछ थोड़ी-सी ऐसी औषधि दो, जो तुम्हारे निजजनों-के हृदयरोगको सर्वथा निर्मूल कर दे॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेशु भीता:शनै:प्रिय दधीमाहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूपीदिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां न: ॥१९॥ (रासपंचध्यायी)

वे चरण साधारण चरण तो हैं नहीं। वे शरणागत अनन्य भावुक भक्तों की भवभीति तथा सकल कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाले हैं, वे कमला के कमनीय करों द्वारा प्रेम से प्रपूजित हैं। वे पृथ्वी के भव्य भूषण हैं। वे आपत्ति विपत्तियों में स्मरण आ जाने पर सुख शान्ति और सन्तोष प्रदान करनेवाले हैं। उन चरणों को कठोर पृथ्वी पर न रखकर हमारे हृदय पर क्यों नहीं रख देते। पृथ्वी से कठिन तो हमारे हृदय है नहीं। एक पन्थ दो काज हो जायँगे। तुम्हारा चलना भी हो जायगा, हमारी पीड़ा भी शान्त हो जायगी।

कोई अत्यन्त भूखी-प्यासी अनाथिनी दीना अबला के सदृश श्रीकृष्ण के मुखारविन्द मकरन्द का पान करने के लिये अपलक भाव से उनकी ओर देखती-की-देखती उसी प्रकार आत्म स्मित बन गयीं। जैसे भक्तगण भगवान के चरण कमलों को देखते-देखते आत्मविस्मृत बन जाते हैं।

तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर जंगलमें छिपे-छिपे भटक रहे हो। क्या कंकड़, पत्थर आदिकी चोट लगनेसे उनमें पीड़ा नहीं होती ? हमें तो इसकी सम्भावनामात्रसे ही चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण। श्यामसुन्दर। प्राणनाथ। हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं॥ १९ ॥

आपके वियोग में कामाग्नि हमारे सिर पर ताण्डव कर रही है। आप का कर-कमल उसे शान्त करनेवाला है। अथवा हे कान्त, अपने हस्तारविन्द को हमारे सिर पर रखकर हमें अभयदान दें। आप के हस्तारविन्द नखरूप चन्द्र को धारण करनेवाले पञ्चमुखी शमर हैं। भगवान शमर ने अपने दृष्टिपातमात्र से ही काम को भस्म कर दिया था। अस्तु, भगवान शंकररूप आपके हस्तारविन्द हमारे सिर पर विन्यस्त होकर हमारे कामज्वर का उपशमन कर देंगे। नाथ, आप सकल व्रजवासियों की पीड़ा दूर करनेवाले हैं। अपनी मधुर-मधुर मुस्कान से अपने जनों के अभिमान को विनष्ट करनेवाले हैं अत: प्रभो, आप हमें अपना मुस्कान-युक्त मुख दिखला कर हमारे भी अभिमान को दूर करें, हम आपकी बिना मूल्य की खरीदी गई दासियाँ हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, जब यह सब विनती व विलाप करने पर भी केशवमूर्ति कृष्ण का दर्शन नहीं मिला तब सब

ब्रजबालाओं ने व्याकुल होकर मिलने का भरोसा त्याग दिया और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं, फिर अति विलाप से रोदन करके कहने लगीं- हे माधव, हे मुकुन्द, हे मोहनप्यारे, हे नन्दलाल, हे केशवमूर्ति। अब हम लोग तुम्हारे विरह में अपने प्राण देती हैं, जैसा उचित जानो वैसा करो।

३) कृष्ण का गोपियोंके बीच में प्रकट होकर महारास करना-

सहस्रश: गोपिन् में वहां, शोभायमान श्री कृष्ण हुए, इस भाँति महारास के, उत्सव वहां आरम्भ हुए।।

शुकदेव बोले- परीक्षित् भगवान की प्रिय गोपियाँ विरह के आवेश में इस प्रकार भाँति-भाँति से गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने प्राणवल्लभ कृष्ण के दर्शन की लालसा से वे अपने को रोक न सकी, करुणाजनक सुमधुर स्वर से फूट-फूट कर रोने लगी।

बड़ी देर भई नंदलाला, तेरी राह तके ब्रिजबाला, ग्वाल बाल ईक ईक से पूछे कहा हैं मुरली वाला रे
बड़ी देर भई नंदलाला...
कोई न जाएं गली में, तुझ बिन कलिया चुनने को,
तरस रहे है जमूना के तट, धून मुरली की सुनने को,
अब तो दरस दिखा दे मोहन, क्यूं दुविधा में डाला रे, बड़ी देर भई नंदलाला...
संकट मे है आज वो धरती, जिस पर तुने जनम लिया,
पूरा कर दे आज वचन वह, जो गीता में तुने दिया,
तुम बिन कोई नहीं है मोहन, भारत का रखवाला रे, बड़ी देर भई नंदलाला...

भगवान ने गोपियों का विलाप सुना, उनसे रहा न गया, सहा न गया अत: ठीक उसी समय उनके मध्य में ही भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुख-कमल मन्द-मन्द मुसकान से खिला हुआ था। गले में वनमाला विराज रही थी। पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका सौन्दर्यातिशायी यह रूप साक्षात् काम के मन को भी मथ डालनेवाला था।

तिहि छिन प्रगट भये नन्दलाल। रहत प्रेम के वस्य कन्हाई, युवती करीं निहाल।।
पाय कृष्ण प्यारे अपने को, मुदित भईं ब्रजवाल। बिना कृष्ण प्यारे के गोपी, व्याकुल अति बेहाल।।
उठि कें धाईं ब्रजवनिता, गिरीं चरण तत्काल। चरण परस मोहन अपने के, भईं गोप-गोपाल।।

श्रीकृष्ण पीताम्बर को अपने हाथ में लिये हुए प्रकट हुए- जैसे कोई ऋणी व्यक्ति अपने ऋणदाता के सम्मुख जाता है और कहता है कि मुझे क्षमा करें, मैं आपका ऋण नहीं चुका सका। इसी प्रकार श्रीकृष्ण हाथ में दुपट्टा धारण कर गोपियों के सामने आये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि मुझसे त्रुटि हो गई, मैं आप लोगों को छोड़कर चला गया अत: मुझे क्षमा करें। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे दिलको दुखाना नहीं था बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।

प्यारे का दर्शन, स्पर्श और आलिङ्गन पाकर वे उसी प्रकार प्रमुदित हुई जैसे रिद्धि सिद्धि को पाकर, प्यास से मरता हुआ जल को पाकर, भूख से तड़पता हुआ स्वादु अन्न को पाकर, जाड़े से ठिठुरता जीव अग्नि को पाकर, जल में डूबता नौका को पाकर और संसार ताप से छूटनेवाला मुमुक्षु पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता गुरु को पाकर प्रसन्न होता है।

साधक सद्गुरु पाइके, आनंदित अति होत ज्यों। दरशन करि घनश्यामके, गोपी प्रमुदित भई त्यों।।

जिस समय श्रीकृष्ण ने गोपियों को देखा, उनकी दशा देखी, उस समय उनको अपने वस्त्र की सुधि नहीं रही। उनका दुपट्टा खिसक कर भूतल पर जा गिरा। जब श्रीकृष्ण एकान्त में श्रीराधारानी को लेकर चले गये थे तब वहाँ उनका दुपट्टा

बदल गया था। उन्होंने राधा की ओढ़नी ले ली थी और राधा ने उनका दुपट्टा ओढ़ लिया था। जिसके अधरामृत का श्रीकृष्ण ने बार-बार पान किया है, उसकी ओढ़नी को लिये हुए चले आये है।

राधा-कृष्ण साथ-साथ अपने करील-कुंज में आए।

एक पौराणिक विद्वान का कथन है कि- महारास की बेला में काम ने श्रीकृष्ण पर सरलता से विजय प्राप्त करने के लिये शरद् ऋतु में वसन्त ऋतु प्रकट कर दी थी। वह श्रीकृष्ण के पीताम्बर में जा छिपी। भगवान ने बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया और उसी से गोपियों के आँसुओं को पोंछा। मनमोहन का अलौकिक सौन्दर्य देखकर काम क़ा भी मन चञ्चल हो उठा, सिंहासन डोल गया। वह अपने रूप में न रह सका। झटपट अपना रूप परिवर्तित कर वह गोपियों के मनरूपी दुर्ग में जा विराजा। इससे वे अधिक विकल हो गईं। अब मदन ने अपनी गोपीरूपी विशाल सेना से मनमोहन पर धावा बोल दिया। काम की सेना का सामना करने के लिए वे भी अनेक बन गये।

गोपियों ने अपने प्रिय श्रीकृष्ण को देखा। वे झटपट उठ खड़ी हुईं। मानो शरीर में प्राण आ गया हो। गोपियाँ झपट कर झुकीं श्रीकृष्ण की ओर। किसी ने भगवान श्रीकृष्ण का कर-कमल अपने हाथ में धारण कर लिया। किसी ने उनके चन्दन चर्चित भुज-दण्ड को अपने कन्धे पर रख लिया। किसी ने भगवान का चबाया हुआ पान अपने हाथों में ले लिया। किसी ने उनके चरण-कमल को अपनी जलती हुई छाती पर रख लिया। किसी ने प्रणय-कोप वश भौंहे चढ़ाकर, दाँतों से होठ दबाकर, अपने कटाक्ष-बाणों से प्रहार करती हुई उनकी ओर घूर कर देखना प्रारम्भ किया। राधारानी हैं। कोई गोपी, योगियों की भाँति, नेत्रों द्वारा भगवान को अपने हृदय में पधरा कर आलिंगन करने लगी। कोई भगवान का ध्यान करते हुए समाधिस्थ हो गई।

भगवान के दर्शन और स्पर्श से गोपियों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वे आनन्द-सिन्धु में गोते लगाने लगीं। उनकी विरहाग्नि शान्त हो गई। उनका सारा ताप जाता रहा। उस समय भगवान अपनी सारी शक्तियों से सम्पन्न थे। वे गोपियों को साथ-साथ लेकर यमुना के पुलिन पर गये। चाँदी-सी चाँदनी चारों ओर चमक रही थी। फूलों की बहार से सारा वातावरण महक रहा था। मखमल-सी कोमल यमुना की बालुकाराशि थी। वहाँ पहुँचकर गोपियों ने अपनी-अपनी ओढ़नी बिछाई। उन लोगों ने हाथ पकड़कर सादर श्यामसुन्दर को पधरा दिया और स्वयं भी उनसे सट कर बैठ गईं।

लै सब सखियनि संग श्याम सरिता तट आये। कुसुम कुन्द मन्दार कुमुदिनी लखि हरषाये।।
कालिन्दी निज करनि बिछाई बालु सुकोमल। आसन हित पट प्रिया अंगको डास्यो तिहिँ थल।।
तहँ बैठे राधारमन, ब्रजबनितनिके बीचमहँ। सने पदुम पद सखिनिकी, कुच कुंकुमकी कीचमहँ।।

बड़े-बड़े योगेश्वर अपनी साधना से पवित्र हृदय में जिनको बैठाने का सायास प्रयास करते हैं, फिर भी उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता कभी-कभी ही मिल पाती है, वही सर्वशक्ति-सम्पन्न भगवान यमुना जी की रेती में गोपियों की ओढ़नी पर विराजमान हो गये। फिर गोपियाँ भगवान के कर-कमलों को, कोमल चरणों को अपनी गोद में रखकर उन्हें सहलाती-दबाती हुई प्रणय-कोप के आवेश में बोलीं-

गुण छांड़े अवगुण गहे, रहे कपट मन भाय। देखो सखी बिचारि कै, तासों कहा बसाय।।

इस संसार में तीन प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं। नाथ, कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालों से प्रेम करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं, जो प्रेम न करनेवालों से भी प्रेम करते हैं। कोई-कोई ऐसे होते हैं, जो दोनों से ही प्रेम नहीं करते- न तो प्रेम करनेवाले से और न प्रेम न करनेवाले से। मेरे स्वामी, अब आप ही बतलाइये कि इनमें से अच्छा कौन है?

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रजाङ्गनायें वनमाली से व्यंगपूर्वक पूछ रही हैं- हे धर्मज्ञ, हम आपसे ये प्रश्न पूछती है। कुछ लोग

तो प्रेम करनेवालों से प्रेम करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो इसके विपरीत होते हैं। अर्थात् प्रेम न करनेवालों से प्रेम करते हैं, कोई ऐसे भी हैं कि कोई प्रेम करो चाहे न करो दोनों से ही प्रेम नहीं करते। इन तीनों में कौन से श्रेष्ठ हैं। किस पक्ष को आप उत्तम समझते हैं, इस बात को बताइये।

पूछें करिके व्यंग श्याम। इक बात बताओ। तीन भाँतिके पुरुष साधुको शंक मिटाओ।।
एक प्रेम लखि करहिँ उभय पक्षनि तिनि प्रेमहु। करें तीसरे नहीं उभय पक्षनि तिनि नेमहु।।
इनमें कौन निकृष्ट हैं, को मध्यम को श्रेष्ठतम। नीति निपुण तुम धरमवित, तातें पूछें तुमहिँ हम।।

शुकदेव बोले- राजन्, गोपियों के प्रश्न करने पर भगवान कह रहे हैं- सखियों। मुझे जो लोग भजते हैं, मैं उन्हें भी नहीं भजता। इसलिये कि उनकी मनोवृत्ति निरंतर मेरी ओर लगी रहें, जिस प्रकार किसी निर्धन को बहुत साधन प्राप्त हो जाय और फिर विनष्ट हो जाय, तो वह निरन्तर धन की चिन्ता में निमग्न होकर इस संसार को सर्वथा भूल जाता है, उसी का स्मरण करता रहता है।

बोले सुनिके श्याम सुनहु सखि। सत्य बताऊँ। नीति धरमको मरम यथावत तुम्हें सुनाऊँ।।
करें स्वार्थ हिय धारि प्रेम ते नर व्यापारी। नहीं तहाँ सौहार्द प्रेम है वह व्यवहारी।।
करें प्रेम निरपेक्ष जे, ते कृपालु पितु मात हैं। तहाँ धरम कैतव रहित, बन्धु सुहृद ते तात है।।

गोपियों के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान ने कहा- गोपियों, सुनो, जो प्रेम करनेवाले से प्रेम करते हैं, वे संसारी है। प्रेम करनेवाले से प्रेम करना स्वार्थ है। उनमें न सौहार्द्र है, न धर्म है, न सुख है, वहाँ तो केवल स्वार्थ-ही-स्वार्थ है। जो प्रेम न करने पर भी प्रेम करते हैं, उनके सम्बन्ध में दो ही दृष्टान्त दिये जा सकते हैं- जैसे अकारण करुणा करनेवाले सत्पुरुष और माता-पिता। इनमें बिना किसी स्वार्थ के धर्म और सौहार्द्र है। जो दोनों में किसी का भी आश्रय नहीं लेते अर्थात् प्रेम करनेवाले और प्रेम न करनेवाले दोनों प्रकार के प्राणियों से प्रेम नहीं करते वे चार प्रकार के होते हैं- १) आत्माराम- आत्माराम अपने आप में ही मग्न होते हैं। इनकी बाह्य जगत् में दृष्टि नहीं होती। २) पूर्णकाम- जो भोग सामग्रियों के रहने पर भी उनकी इच्छा नहीं करते, सर्वदा कृतकृत्य ही रहते हैं। ३) कृतघ्न- जो किये हुए उपकार को भी नहीं मानते। ये जानते ही नहीं कि हमसे कौन प्रेम करता है। ४) चौथे वे हैं, जो गुरुद्रुह है। जो भयंकर अपराधी हैं। ऐसे लोग भी प्रेम करनेवाले से प्रेम नहीं करते।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये। यथाधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन्भृितो न वेद।।

गोपियों, मैं तो प्रेम करनेवालों से भी प्रेम का वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये। ऐसा व्यवहार मैं केवल इसलिये करता हूँ, ताकि उनकी चित्तवृत्ति निरन्तर मुझमें लगी रहे और दिनानुदिन दृढ़ होती रहे। जैसे निर्धन प्राणी अचानक प्राप्त धन के खोजने पर निरन्तर उसीकी चिन्ता में डूबा रहता है, वैसे ही मैं भी मिल-मिल कर छिप जाया करता हूँ। दूसरी बात यह है कि परोक्ष में भी तुम लोगों का भाव मेरे प्रति कैसा है? यह देखने और तुम्हारे प्रेमालाप को सुनने के लिये ही मैं अन्तर्हित हो गया था इसलिये तुम लोग मेरे प्रेम में दोष-दृष्टि मत रक्खो, दोषानुसन्धान मत करो। तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम लोगों का प्यारा हूँ।

गोपियों, मैं वैसा नहीं जैसा तुम समझती हो। मैं प्रेम करनेवालों से निश्चित प्रेम करता हूँ लेकिन दर्शाता ऐसा हूँ कि प्रेम नहीं करता जिससे उनके प्रेम में प्रगाढ़ता रहें। गोपियों, तुम्हारा प्रेम तो अनुकरणीय हैं। तुमने तो लोक मर्यादा, वेद मर्यादा, धर्म मर्यादा स्वजन सबका त्याग मेरे लिये कर दिया। तुम्हारा प्रेम तो परिपक्व हो गया। वियोग तो तुम्हें इसलिए दिया है कि बिना वियोग के संयोग की पुष्टि नहीं होती। प्रेम की पूर्णता वियोग में ही है।

देवियों, तुम लोगों ने मेरे लिये घर छोड़ा। परिवार की ममता त्यागी। बड़े-बड़े योगियों के लिये भी घर-परिवार की जिस प्रेम-श्रृंफ्ला को तोड़ना अतिकठिन है, उसे तुम लोगों ने मेरे लिये तृण की भाँति तोड़ दिया। यदि मैं तुम्हारे इस बलिदान का बदला चुकाना चाहूँ तो देवताओं की आयु पाकर भी नहीं चुका सकता। वस्तुत: मैं सर्वदा के लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम चाहो तो मेरे ऊपर दया करके मुझे इस ऋण से उऋण कर सकती हो, मुक्त कर सकती हो, अन्यथा दूसरा कोई उपाय नहीं है, मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ। गोपियों मैं सत्य बोलता हूँ। प्रेम की बातें तो सब करते हैं पर प्रेम तुम्हारे जीवन में देखा। तुम साक्षात् प्रेम की मूर्ति हो। तुम्हें देवताओं के समान लम्बी आयु प्राप्त हो तो भी मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकता। मैं चाहूँ भी तो भी ब्रह्माकी आयु लेकर भी तुम्हारे प्रेमका प्रतिदान कहाँ दे सकता हूँ।

जनम जनम हौं रहौं सुन्दरी ऋनी तिहारो। क्रीतदास बनि गयो प्रेमतें मोकूँ तारो।।
करि अर्पन सर्वस्व मोहि सुख अतिशय दीयो। तजिकें सब सुख सगे संग तुम मेरो कीयो।।
वचन श्यामके सरस सुनि, दु:ख शोक सबके भगे। निज करतें श्रृङ्गार हरि, श्रीजीको करिबे लगे।।

भगवान कह रहे हैं- सखियो, तुम तो मेरी प्राणप्रिया हो। सखी हो, एकान्त में रहस्य की बातें सुननेवाली हो। मेरा तुमसे स्वार्थजन्य प्रेम नहीं, स्वार्थ का प्रेम तो बहुत होता है उसमें सौहार्द नहीं होता उसमें धर्म की भावना भी नहीं रहती। सदा स्वार्थ पर ही दृष्टि लगी रहती है। ऐसा जो परस्पर का प्रेम है वह धर्म शून्य, सौहार्द्र से हीन, प्रयोजन सिद्धि के लिये होता है। नीच का परस्पर का प्रेम इसी निमित्त होता है।

सुन्दरियों, दूसरे ऐसे लोग होते हैं, जिनसे तुम चाहे प्रेम करो चाहे न करो वे तुमसे अवश्य प्रेम करेंगे। सेवा न करनेवाले से भी प्रेम करते हैं। उनमें दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो परोपकारी कृपालु महात्मा, दूसरे माता-पिता। कृपालु परोपकारी महात्मा तो धर्म की प्रेरणा से सबके प्रति प्रेम प्रदर्शित्त करते हैं।

दूसरे माता-पिता भी अपनी सन्तानों पर प्रेम न करने पर भी प्रेम करते हैं। पुत्र कितना भी अयोग्य हो, मूर्ख हो, क्रोधी हो। माता-पिता उसके प्रति प्रेम रखते ही हैं। उसकी मङ्गल कामना ही करते हैं। पुत्र चाहें उन्हें गाली भी दे, मारे भी तो भी वे सब सह लेते हैं। यह सौहार्द्र प्रेम है। सन्तान अपनी आत्मा रूप में ही उत्पन्न होती है। यह ऐसी दृढ़ श्रृंखला है। बन्धुओं के प्रति ऐसा स्वाभाविक स्नेह बन्धन होता है, कि उसे त्यागना अच्छे-अच्छे वीतराग मुनियों के लिये भी कठिन हो जाता है। इस स्वाभाविक सौहार्द्र प्रेम में अपेक्षा नहीं रहती कि वह हमसे प्रेम करे, हम उससे करें। जिनसे अपना सम्बन्ध हो गया, वे कैसे भी क्यों न हों उन्हें निभाना ही पड़ता है। सज्जन लोग जिसे एक बार अङ्गीकार कर लेते हैं, उसका प्रतिपालन यावज्जीवन करते ही हैं। यही उनकी साधुता है।

तीसरे वे लोग होते हैं, कि तुम चाहें उनसे कितना भी प्रेम करो वे तुमसे प्रेम करेंगे ही नहीं। जब वे प्रेम करनेवाले से प्रेम नहीं करते, तो प्रेम न करनेवाले से तो करने की तो कोई बात ही नहीं।

दूसरे होते हैं पूर्णकाम, जो जिस काम को करना चाहते हैं, उनका वह काम पूरा हो जाता है, तो वे न प्रेम करनेवालों से प्रेम करते हैं और न अपने से प्रेम करेनवालों से प्रेम करते हैं। कोई निन्दा करो स्तुति करो, मान करो, अपमान करो सभी में समान रहते हैं।

तीसरे होते हैं गुरुद्रोही। पहिले तो गुरुजनों की सेवा सुश्रूषा करते हैं, उनका सम्मान करते हैं पीछे पाप उदय होने पर किसी बात पर वे गुरु से द्रोह करने लगते हैं, उनका अनिष्ट चिन्तन करते हैं, इस प्रकार से उनकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो जाती है कि उन्हें अपकारी उपकारी का विवेक ही नहीं रहता। उनका हृदय ऐसा मलिन हो जाता है कि वे शत्रु मित्र सभी को

समान समझने लगते हैं। सब पर शमा करते हैं, किसी से प्रेम नहीं करते।

चौथे होते हैं कृतघ्न। ये गुरुद्रोहियों से पृथक् होते हैं। गुरुद्रोही तो पीछे किसी कारण विशेष से गुरुद्रोह करता है, किन्तु कृतघ्न तो जन्म से ही ऐसे होते हैं कि उनके साथ कोई कितना भी उपकार करे, वे सदा उसका अपकार ही सोचेंगे। जब वे अपने उपकारी के प्रति प्रेम प्रदर्शित नहीं कर सकते, तो शत्रु और उदासीन के प्रति तो करेंगे ही क्या? संसार में कृतघ्नता प्रकट न करना इतना बड़ा पाप है कि इससे जीव का कभी निस्तार हो ही नहीं सकता। जो जिसकी सेवा सुश्रूषा करता है, उसके प्रति मन में आदर भाव न रखना यही कृतघ्नों के चिन्ह हैं। ये लोग बड़े क्रूर होते हैं।

गोपियों ने कहा- पहिले अमृत रस पिलाकर फिर विष देना, यह कहाँ की करुणा है? पहिले तो हमें बुलाकर हृदय से लगाया, फिर कहते हो, दूर-दूर। क्या इसी का नाम करुणा है।

भगवान बोले- मैंने यह अपराध किया अवश्य, किन्तु कृतघ्नों के वशीभूत होकर नहीं किया। यह सब मैंने प्रेम की वृद्धि के लिये ही किया था। तुम्हारी उत्कंठा को बढ़ाने के लिये ही किया था।

गोपियों ने कहा- बीच में छिप जाने से प्रेम में वृद्धि होती है या रस भंग होता है?

भगवान बोले- गोपियों, तुम रस की पंडिता हो। सब जानती हुई भी मेरे मुख से सुनना चाहती हो तो सुनो। बात यह है कि यह प्रेम रस ऐसा आसव है, जिसका पान रुक-रुककर ठहर-ठहरकर किया जाता है, इससे अधिक मादकता आती है। वस्तु के प्राप्त होते समय उतना सुख नहीं होता, जितना उसकी मीठी-मीठी स्मृति में सुख होता है। वस्तु का यथार्थ गुण उसके परोक्ष में ही प्रकट होता है।

गृहस्थी को घर में सभी प्रकार के सुख होते हैं। उठने-बैठने के नियत स्थान होते हैं। सभी आवश्यक सामग्री घर में रहती है। सब ऋतुओं की आवश्यक वस्तुओं का संग्रह सम्पन्न सद्गृहस्थ के यहाँ रहता है। तुम्हारे घर में सब वस्तुएँ उपस्थित थीं, तुम्हारे परिवार वाले तुमसे प्यार भी करते थे, किन्तु केवल एकमात्र मेरे लिये ही तुम घर-बार कुटुम्ब-परिवार को छोड़कर इस बीहड़ वन में चली आयीं और मेरे लिये इस कँकड़ीली पथरीली भूमि में सब कष्ट सह रही हो। तुमने मेरे प्रेम के लिये बहुत त्याग किया है।

मेरी भी हार्दिक इच्छा, तुम्हारा मन सदा मुझमें लगा रहे तुम अनन्यभाव से मुझे ही प्यार करो। तुम्हारी चित्त वृत्तियाँ मेरे में ही सीमित रहें। तुमसे यदि मैं निरन्तर मिला रहता तो, तुम्हारी मुझे प्राप्त करने की इतनी तीव्र उत्कंठा कभी नहीं होती। इसीलिये तुम्हें एक बार आलिंगन सुख देकर थोड़ी देर के लिये मैं तुम्हारी अधीरता बढ़ाने को छिप गया। छिपकर कहीं दूर चला गया होऊँ सो भी बात नहीं। तुम मुझे देख न सको इसलिये समीप- तुम्हारे सामने ही- मैं छिप गया था। इसलिये हे मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारियों, हे हृदय की अधीश्वरियों, तुम मुझ पर क्रुद्ध न होना। कृतघ्न होने का दोषारोपण भी मत करना। मैं तुम्हारा प्यारे से भी प्यारा हूँ, तुम्हारा अपना ही हूँ।

जो लोग तुम मेरी प्रियाओं में दोष बुद्धि करेंगे, वे नरक के अधिकारी होंगे। तुम्हारा मुझसे मिलना सर्वथा निर्दोष है। तुम मुझे मनुष्य समझकर मेरे समीप आतीं तब तो पाप ही था। तुमने तो मेरी भगवत्ता कई बार प्रत्यक्ष देखी है। तुम्हारी तो मुझमें दृढ़ धारणा है। तुम मुझे प्राकृत पुरुष तो समझती नहीं, इसीलिये तुमने साधारण लोगों से किसी भी प्रकार न टूटनेवाली घर और कुटुम्बियों की दुस्तर श्रृंखला को तोड़कर एकमात्र मेरा ही आश्रय लिया है। तुम्हारा मुझसे यह मिलन सर्वथा दोषरहित है। इसमें तनिक भी पाप नहीं, स्वार्थ नहीं।

तुम सब कुछ मेरे ही निमित्त करती हो, मेरे ही लिये जीवन धारण करती हो, मेरी ही सेवा के निमित्त ही स्वाँस लेती हो। तुमने

अपने सदाचार, सद्व्यवहार और सुशीलता आदि गुणों से मुझे बिना मोल के खरीद लिया है, मैं तुम्हारा क्रीत दास बन गया हूँ। इस जीवन में तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकता। इस जीवन की तो बात ही क्या है, देवताओं के समान लम्बी आयु पाकर भी मैं तुम्हारे अनन्त उपकारों से एक भी उपकार का प्रत्युपकार करने में समर्थ नहीं। मैं अपने पुरुषार्थ के द्वारा तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। स्वयं ही कृपा करो अपनी उदारता से मुझे उऋण कर दो यह दूसरी बात है। सो, मैं उऋण होना भी नहीं चाहता। उऋण होने से मेरा तुम्हारा सम्बन्ध टूट जायगा। उसे मैं तोड़ना नहीं चाहता, मैं सदा तुम्हारा ऋणियाँ बना रहूँ और तुम मेरी सदा ऋण पानेवाली महाजन बनी रहो, इसी में मुझे सुख है। तुम मुझे कृतघ्न मत समझो।

जैसे आई मेरे काज। छाँड़ी लोक की लाज। ज्यों वैरागी छाँड़ैं गेह। मनदैं हरि सों करै सनेह।।

मैं क्या तुम्हरी करौं बड़ाई। हमसे पलटो दियो न जाई।

अब तुम रहो उदास मत मनमें करोहुलास। महारास अब साजि कै पूरण करिहौं आस।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, इस प्रेम का पन्थ कैसा निराला है। जो सर्वेश्वर है, सबका स्वामी हैं। ब्रह्मादिक देव, इन्द्रादिक असंख्यों लोकपाल जिसकी भ्रुकुटि विलास से थर-थर काँपते रहते हैं वही आज प्रेम के अधीन होकर गोकुल की गँवार ग्वालिनियों के सम्मुख अधीरता प्रकट कर रहा है। उनके उपकार का बदला चुकाने में अपने को असमर्थ सिद्ध कर रहा है। प्रेम में दोनों ही ओर से अधीनता होती है। वे उसे अपना सर्वस्व समर्पित्त करता है, वह उसे सब कुछ सौंपता है। भगवान की तो प्रतिज्ञा है जो मुझे जैसे भजता है, उसे मैं भी वैसे ही भजता हूँ। जो मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करता है, उसे मैं भी अपना सर्वस्व समर्पित्त करके उसका दास बन जाता हूँ।

भगवान के सुमधुर वचनों से उनका रहा सहा विरहजन्य दु:ख दूर हो गया और उनका अङ्ग-सङ्ग पाकर वे सब-की-सब सफल मनोरथ बन गयीं।

प्रेमहीन नर चारि श्रेष्ठ कछु अपर शतघ्नी। आत्मराम अरु पूर्णकाम गुरु शत्रु कृतघ्नी।।

हौं इन सबतें पृथक प्रेष्ठ पति सुहृद कारूनिक। प्रेम वृद्धिके हेतु कर्‌यो मैंने सब नाटक।।

अति दुस्तर गृह श्रृफ्ला, कूँ आईं तुम तोरिकें। मम हित पति सुत गृह कुटुम, तैं आई मुँह मोरिकें।।

उन भाग्यवती ब्रजाङ्गनाओं की समस्त चेष्टायें प्रेम की श्रीवृद्धि के ही निमित्त है। उनकी चलन चितवन, उठन बैठन, हँसन मुसकान, प्रश्न उत्तर तथा अन्यान्य सभी चेष्टायें लोक में प्रेम का आदर्श उपस्थित करने के ही लिये हैं।

गोपजाति में, वनवासी गिरिवासियों में संगीत, वाद्य, नृत्य, अभिनय, पहले और आज भी, विशेष रूप से प्रचलित, विकसित है। सभ्य समाज में भी यह सबको प्रिय लगते हैं। साधु समाज में संकीर्तन में नृत्य-संगीत की पद्धति है। सूफी संतों में तो इकट्ठे नृत्य का विशेष आनन्द है। ऐसा कोई समाज नहीं जो संगीत, नृत्य, वाद्य से आनन्द की अभिव्यक्ति न करता हो। संगीत और नृत्य तो हृदय के प्रेम से उमड़ते हैं, सिखाने से नहीं आते। श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का रास कोई मतवाद या सम्प्रदाय की हद में नहीं बँधता। यह तो चैतन्य का भाव समुद्र है, इसके कोई तट नहीं होते। वेद में कहे गये रस, परम आनन्द, मधुविद्या का मूर्त रूप है यह महारास।

मनुष्य के हृदय में ईश्वरमिलन की तड़पन जन्म लेती है तब संसार की मान्यताओं का कोई मूल्य नहीं रहता। ईश्वर-मिलन की कामना का उदय न हो तब तक सारी साधनाएँ व्यर्थ हैं।

भगवत्प्रेम जब हृदय में प्रगट होता है तब देहभाव का विलोपन कर चिदानन्द हरि-मिलनभाव जन्म लेता है।

प्रेम नदी उमड़त जबै कृष्ण सिंधु की ओर, लोक वेद मरजाद के डारैं परबत फोर।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्ण की रसभरी बातें सुनकर गोपियों का विरहजन्य सन्ताप समाप्त हो गया। उमड़ते हुए प्रेम के उल्लास से उनका हृदय भर गया। भगवान के श्री अङ्गों से लिपट कर वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों से उनके सौरस्य का, माधुर्य का अतृप्ति भावना से पान करने लगीं। उनके सारे मनोरथ पूरे हो गये। तदनन्तर भगवान ने वहाँ पर उन स्त्री रत्नों के साथ रासलीला आरम्भ की। वे गोपिकायें अच्युत के अनुगत थीं, परम प्रसन्न थीं और भगवान की बाहुओं में बाहु डाले हुए थीं।

भगवान श्रीकृष्ण की प्रेयसी और उपासिकायें गोपियाँ एक-दूसरे की बाँह में- बाँह डाले खड़ी थीं। उन सुन्दरी शिरोमणियों के साथ यमुना जी के पावन पुलिन पर भगवान ने अपनी रसमयी रास-क्रीडा प्रारम्भ की।

आठ प्रकार के प्रेमपाश कहे गये हैं- इनमें माता यशोदाजी का पुत्र स्नेह प्रधान है? ग्वाल-बालों का मैत्री प्रधान है? गोपियों का प्रेम, समर्पण प्रधान है और वह अटूट है। पाश वर्णनलज्जा, शंका, भय, ग्लानि, जुगुप्सा, कुल का मान, शील स्वभाव का मान, तथा जाति का अभिमान ये आठ पाश, भागवत् प्रेम के बाधक बने रहते हैं। भगवान श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ने गोपियों के उन बन्धनों को काटने के लिये अपनी प्रिय बंशी की आराधना की- तथा गोपियों को उन गृहस्थियों के पाश अर्थात्त् बन्धनों से सहज में ही मुक्ति दिला दी।

रस बस श्याम कीनी गवारि। अधर रस अंचवत परसपर, संग सब ब्रजनारि।।
कामातुर भईं वाला, सबनि पुरई आस। इक इक ब्रज नारि, इक इक आपु करयो प्रकास।।
कबहुँ नृत्यत कबहुँ गावत, कबहुँ दिव्य विलास। सूर के प्रभु रास नायक, करत सब दु:ख नास।।

कामदेव अपने पूरे बाणों को लेकर आया। कृष्ण ने परम सुन्दरी गोपियों के साथ रासलीला प्रारम्भ कर दी। जब परमात्मा नृत्य करता है, तो संसार नाचने लग जाता है। कृष्ण के नृत्य को देखकर पूरा ब्रह्माण्ड नाचने लगा।

राधा नाचे, कृष्ण नाचे, नाचे गोपी जन। मन मेरो बन गयौ सखी री पावन वृन्दावन।।

नृत्याचार्य श्रीकृष्ण ने मुरलिका को अधरों पर स्थापित करके अपनी प्राणप्रिया और गोपियों को बुलाया।

हे राधे वृषभान भूप तनये, हे पूर्ण चन्द्रानने। हे कान्ते कमनीय कोकिलरवे, वृन्दाबनाधीश्वरी।।
हेमत्प्राण परायणे च सुभगे, हे सर्व यूथेश्वरी। आगत्सवत्वरितं व्तमत्र विपने, माँदीन मानँदय।।

श्रीकृष्ण ने कहा- हे राजा वृषभान की सुन्दरी कन्या तुम सुन्दरता में पूर्णिमा के चन्द्रमा के सामने हो, वृन्दावन की जितनी भी गोपियाँ हैं, वे सब तुम्हें अपनी स्वामिनी मानती हैं। हे सौभाग्यशालिनी यूथयूथेश्वरी मेरी प्राण परायणी तुम शीघ्रातिशीघ्र इस उपवन को आकर आनन्दमय कर दो।

हे राधे वृषभान भूप तनये, गान्धर्व के मोहिनी। हे कृष्णानन पंकज भ्रमरिके, प्राणप्रिये माधवी।।
हे वृन्दावन नागरी गुणनिधे, दामोदर प्रेयसि। हे-हे श्री ललितादिक प्रियतमे, प्राणाधिके पाहिमाम्।।
हे श्याम सुभगे स्वभाव चपले, चित्रे, विशाखे प्रिये। हे चन्द्रावलि श्यामले च ललिते, हे तुंगभद्रे रमें।।
हे भद्रे सुखदे च चँपकलते, हे स्वर्णरेखे स्वभे। अन्याया मम् वल्लभा व्रजपरे, तास्तूर्ण मागच्छत।।
ऊधम मच्यौ है घरी चारिब्रज मंडल में। बाँसुरी बजाई श्याम आज वृन्दावन में।।

सम्पूर्ण योगों के एकमात्र स्वामी भगवान श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के मध्य में प्रकट हो गये और उनके गले में अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम रहा।

जीव का भगवान के साथ क्रीड़ा करना, एकाकार होना ही रास है। यहाँ नृत्य और गीत भगवान से एकाकार होने के अद्भुत साधन हैं। वस्तुत: ब्रह्म के साथ जीव का मिलन ही रास है।

रास-मण्डल में भगवान के खड़े होने के विषय में तीन प्रकार हैं- प्रत्येक गोपी के साथ एक कृष्ण, दो गोपियों के बीच

में एक श्रीकृष्ण और सहस्त्रों गोपियों के मध्य में एक श्रीकृष्ण।

श्यामा श्याम सजाइ रास मण्डलमहँ लाये। जै निरखीं तहँ नारि श्याम तै रूप बनाये।।
द्वै गोपिनिके बीच बीच हरि सोहत कैसे। स्वर्ण मणिनिके मध्य नील मणि दमकत जैसे।।
गलवैयाँ डारें चपल, नटवर वेष बनाइकें। ताता थेई करि हँसत, नाचत ताल मिलाइकें।।

एक ही श्रीकृष्ण सहस्राधिक गोपियों के साथ इतनी तीव्रता से नृत्य कर रहे हैं कि सब को यही प्रतीत हो रहा है कि श्रीकृष्ण हमारे ही साथ नृत्य में प्रवृत्त हैं।

इधर श्रीकृष्ण ने रास-क्रीड़ा प्रारम्भ की और उधर इसकी एक झाँकी लेने के लिये आकाशमण्डल शत-शत विमानों से भर गया। विमानों में बैठे देवों और देव-पत्नियों के मन अपहृत हो गये। पुष्प-वर्षा होने लगी। गन्धर्व गान करने लगे। वलय, नूपुर और किंकिणी आदि के शब्द झमृत होने लगे। गोरी-गोरी गोपियों के मध्य श्याम श्रीकृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सुवर्णमणियों के बीच में कोई महामरकत मणि हो।

कान्हा बजायें बांसुरी और ग्वाले बजायें मंजीर, गोपियां नाचे ठुमक-ठुमक।

रस शास्त्रवालों ने श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और शान्त ये आठ रस बताये हैं। इन सब में श्रृङ्गार प्रधान है। कहना चाहिये कि एकमात्र श्रृङ्गार ही रस है। श्रृङ्गार के ही ये रूपान्तर मात्र हैं। श्रृङ्गार को उद्दीप्त करता है संगीत।

नृत्य की बेला में गोपियाँ तरह-तरह से ठुमक-ठुमक कर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गति के अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखती, तो कभी बड़े वेगसे; कभी चाक की तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठा कर, मटका-मटका कर भाव बताती, तो कभी विभिन्न प्रकार से उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढङ्ग से मुस्करातीं, तो कभी भौंहे मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसे लचक जाती, मानो टूट गई हो। झुकने, बैठने, उठने और चलने की फुर्ती से उनका शरीर नाच रहा था तथा वस्त्र रह-रह कर खिसकते जा रहे थे। नृत्य के परिश्रम से उनके मुँह पर पसीने की बूंदें ऐसे झलक रही थीं, मानों पीत-कमल-कोष पर ओस-कण झूल रहे हों। केशों में बँधी चोटियाँ कुछ शिथिल पड़ गई थीं। नीवी की गाठें खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलाल की परम प्रेयसी गोपियाँ उनके साथ गा-गाकर नाच रहीं थीं। परीक्षित्, उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो विशाल श्याम मेघ-मण्डल में रह-रहकर बिजलियाँ कौंध रही हों। उस समय गोपियों की शोभा असीम थी।

श्रीकृष्ण में रति करना ही गोपियों का जीवन है। कृष्ण-रति ही उनके जीवन का सर्वस्व है। वे श्रीकृष्ण के अङ्ग से सट कर नाचते-नाचते उच्च स्वर से मधुर गान कर रही थीं। श्रीकृष्ण के प्रत्येक स्पर्श पर उनके आनन्द का उल्लास आकाश का स्पर्श कर रहा था। उनकी राग-रागिनियों से भरे गान से सारा जगत् अब भी गूंज रहा है। कोई गोपी भगवान के स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्ण के स्वर की अपेक्षा टौर भी उच्च स्वर से राग अलापने लगी। उसके स्वर की उत्तमता पर प्रसन्न होकर भगवान भी उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी राग को एक दूसरी सखी नें ध्रुपद में गाया, उसका भी भगवान ने बहुत सम्मान किया।

उसी प्रकार लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाले गोपियों के जीवन प्राण भगवान श्रीकृष्ण उन गोपियों को अपना ही स्वरूप जानकर उनके साथ रसमय विहार कर रहे थे। कभी श्रीकृष्ण उनको हृदय से लगाते थे और अंग-अंग स्पर्श का सुख पाते थे और कभी प्रेम भरी दृष्टि से उनकी ओर देखकर हँसते हुये शोभा देते थे।

आर्य शास्त्रकारों ने समस्त रागों को छै भागों में विभक्त कर दिया है। इसीलिये हमारे यहाँ भैरों, मालकोस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ ये छै ही राग माने गये हैं। इन छै रागों की पाँच-पाँच स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार ये तीस रागनियाँ हैं। इन्हीं

में कुछ हेर-फेर करके अनन्त रागिनी हो गयीं हैं, सब संकर जाति की हैं। शुद्ध राग रागिनी कोई विरले ही गा सकते हैं, नहीं तो सब संकर रागिनियों को ही गाते हैं। शुद्ध राग गाने से जड़ भी चैतन्य हो जाते हैं। जैसे भैरो राग शुद्ध गाया गया। इसी प्रकार मालकोस को सुनकर पत्थर अपने आप पिघल जाय, हिंडोल राग को सुनकर हिंडोला अपने आप झूलने लगे, मेघ राग को सुनते ही बिना बादलों के वर्षा होने लगे, श्रीराग को सुनकर सूखा वृक्ष हरा हो जाय और दीपक राग को सुनकर बुझे हुए दीपक अपने आप जलने लगें तब समझना चाहिये ये राग शुद्ध गाये गये।

एक दूसरी गोपी नृत्य करते-करते थक गई तो उसने श्यामसुन्दर के कन्धे को अपनी कोमल बाँह से कस कर पकड़ लिया। कोई लेटकर उनका चरण अपनी छाती पर रखकर उसकी जलन बुझाती, तो कोई उनके शीतल सुगन्धित चन्दन चर्चित बाहु को ही पकड़ कर चूमने लगती। एक गोपी नृत्य में निमग्न थी। नाचने के कारण उसके कानों के कुण्डल झूम रहे थे। मानों उन्हें भी आनन्द आ रहा हो। उसने श्रीकृष्ण के गालों से अपने गाल को सटा दिया। जब वह भगवान का ओठ चूमने लगी तो उन्होंने उसके मुँह में अपना चबाया हुआ पान दे दिया।

सर्वेश्वरेश्वर परात्पर पुरुष स्वयं पधारे हैं पृथ्वीपर। वे रसराज महारास करनेवाले हैं रासेश्वरीको लेकर उनकी अभिन्न सहचरियोंके साथ। उनका यह रास वृंदावन में गोलोकके नित्य निकुंजमें नित्य है, शाश्वत है।

भगवती उमा के साथ रहते हुए भी मोहिनी रूप पर सम्मोहित हुए काम विजेता शिवशंकर आज पुन: रासरासेश्वर के रास में सम्मिलित होकर आनन्द लेना चाहते हैं। भोलेनाथ यह जानते हैं कि सर्वेश्वर स्वयं कृष्ण रूप में सर्वेश्वरी आल्हादिनी शक्ति के साथ रासोत्सव में हैं। उन्हें यह भी आशंका है कि मोहिनी रूप की भांति कहीं वे पुन: न छले जायें। अत: रास में प्रवेश करें या न करें यह विचार करने लगे। वृन्दावन के ऊपर गगन में पहुँच कर उन्हें यह भान हुआ कि शशाम की गति स्तम्भित हो गयी है। वे भी बहुत समय तक स्तम्भित हुए रासेश्वर के दर्शन करते रहे। सहसा भाव बना कि गोपियों के साथ मिलकर नृत्य का आनन्द लिया जाय क्योंकि स्वयं नृत्याचार्य हैं। कैसे प्रवेश करूं यह भी सोचा- गौर वर्ण रूप में- नहीं, अत्यन्त सुन्दर स्वरूप में पहचान लिया जाऊँगा, तब नील लोहित श्याम वर्ण धारण करूं उसमें नहीं पहचाना जाऊंगा। यही उचित होगा।

उन पुरुषोत्तमके अतिरिक्त तो और किसी पुरुषका प्रवेश सम्भव नहीं; परन्तु स्त्री बनकर सम्भव है मैं प्रवेश पा सकूँ। वैसे वहाँ आद्या भगवती कात्यायनी-ललिताकी अनुमति पाये बिना तो कोई प्राणी प्रवेश नहीं पाता। मूर्तिमान महाभाव रासेश्वरी श्रीराधाकी संकेत-स्वीकृतिके बिना आद्या अनुमति नहीं देतीं, इतना सब होनेपर भी प्रयत्न करूँगा।

उसी समय कैलाश से गौरी पार्वती कृष्ण की रासलीला देखने सजधज कर तैयार होकर चलीं। गौरीशंकर ने पूछा- हे भाग्यवान, इस समय कहाँ जा रही हो। पार्वती बोली- वृंदावन धाम में कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला कर रहे हैं वहीं देखने जा रही हूँ। शंकर बोले- मैं भी साथ चलूँगा। पार्वतीजी बोली- वहाँ तो सिर्फ गोपियों को ही प्रवेश है पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध है। शिव अपनी हठ पर अड़े रहे कि मुझे गोपी बनाकर रास देखने के लिये ले चलो। शिव ने गोपी का वेष धारण किया और पार्वती के साथ रास देखने के लिये चल पड़े।

स्त्री शरीर स्वीकार करके रसराजको मोहित करनेका मनोरथ करूँगा। वहाँ स्वयं रासेश्वरी हैं और उनका अनन्त आकर्षण श्रीकृष्णको विमुग्ध बनाये रखता है। वे उन मयूर-मुकुटीकी स्वमोहिनी आल्हादिनी पराशक्ति-शिव उनकी सहचारियोंमें-सेविकाओंमें भी स्त्री बनकर प्रवेश पा जाय तो परम सौभाग्य।

एक दिन वो बोले भण्डारी, बन के ब्रज नारी, गोकुल में आ गये।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रिय भक्त एवं महातपस्वी एक मुनि थे जिनका नाम आसुरि था। वे नारद गिरि पर रहकर श्रीहरि के ध्यान में तत्पर होकर तपस्या करते थे। अपने हृदय में राधा-सहित मनोहर मूर्ति कृष्ण का वे चिन्तन किया करते थे। एक

समय रात में मुनि के ध्यान में कृष्ण नहीं आये इससे महामुनि खिन्न हो गये। फिर मुनि दर्शन की लालसा से बदरी-विशाल में नारायणाश्रम गये वहाँ भी नर-नारायणके दर्शन नहीं हुए। लोकालोक पर्वत पर गये, वहाँ भी उन्हें अनन्तदेव का कोई दर्शन नहीं हुआ। तब उन्होंने वहाँ के पार्षदों से पूछा- भगवान कहाँ गये। पार्षदों ने बताया- हम नहीं जानते। फिर मुनि क्षीरसागर से श्वेत दीप में गए, किन्तु वहाँ भी शेषशैय्यापर हरि का दर्शन नहीं हुआ। श्रीकृष्ण की दर्शन की लालसा से वे वैकुण्ठधाम गये किन्तु वहाँ भी लक्ष्मी के साथ निवास करनेवाले भगवान का दर्शन नहीं मिला। इसके बाद मुनि गोलोक में गये किन्तु वहाँ भी उन्हें परात्पर श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं मिला। हर जगह पार्षदों से पूछने पर यही उत्तर मिला कि हम नहीं जानते। अन्त में हारकर आसुरि मुनि कैलाश में शंकर के पास गये और बोले- हे भगवन्, मैंने सारा ब्रह्माण्ड इधर-उधर छान डाला पर मुझे कही भी देवाधिदेव कृष्ण के दर्शन नहीं मिले। महादेव बोले- हे आसुरे, तुम श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रिय भक्त हो। तुमने कृष्ण दर्शन की लालसा से महान कष्ट उठाया है। अब जिन भगवान को तुम ढूँढ रहे हो वे ही रसिक शेखर साक्षात् श्रीकृष्ण वृन्दावन में आकर सखियों के साथ रास-क्रीड़ा कर रहे हैं। मैं भी वहीं उनके दर्शन करने जा रहा हूँ तुम भी मेरे साथ चलो।

हे राजन्, भगवान शिव आसुरि मुनि के साथ सम्पूर्ण हृदय से ऐसा निश्चय करके वहाँ से चले। वे दोनों श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए व्रजमण्डल में गए। वहाँ की भूमि दिव्य वृक्षों, लताओं, कुंजों और गुमट्टियों से सुशोभित थी। उस दिव्य भूमि का दर्शन करते हुए दोनों ही यमुना तट पर गए। उस समय अत्यन्त बलशालिनी गोलोक वासिनी गोप सुन्दरियाँ हाथ में बेंत की छड़ी लिए वहाँ पहरा दे रही थीं। उन द्वारपालिकाओं ने मार्ग में स्थित होकर उन्हें बलपूर्वक रासमण्डल में जाने से रोका। वे दोनों बोले- हम श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से यहाँ आए हैं। तब राह रोक कर खड़ी द्वारपालिकाओं ने उनदोनों से कहा।

द्वारपालिकाएँ बोलीं- हे विप्रवरो, हम कोटि-कोटि गोपांगनाएँ वृन्दावन को चारों ओर से घेरकर निरन्तर रासमण्डल की रक्षा कर रही हैं। इस कार्य में श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ने ही हमें नियुक्त किया है। इस एकान्त रासमण्डल में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं। उस पुरुष-रहित एकान्त स्थान में गोपीयूथ के सिवा दूसरा कोई भी कभी नहीं जा सकता। हे मुनियो, यदि तुम दोनों उनके दर्शन के अभिलाषी हो तो इस मानसरोवर में स्नान करो। वहाँ तुम्हें शीघ्र ही गोपी स्वरूप की प्राप्ति हो जाएगी, तब तुम रासमण्डल के भीतर जा सकते हो।

हे राजन्, द्वारपालिकाओं के इस प्रकार कहने पर वे महामुनि आसुरि और शंकर जी मानसरोवर में स्नान करके, गोपीभाव को प्राप्त हो, सहसा रासमण्डल में गए।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के साथ लड़ने आये कामदेव ने अपनी पत्नी रति के साथ सम्पूर्ण गोपियों के हृदय में तूफान भर दिया। नन्दनन्दन के साथ गान करती हुई वे विविध प्रकार से विहार करने लगीं। परीक्षित्, जैसे नन्हा-सा शिशु, निर्विकार भाव से, अपनी परछाईं के साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपनी छाती से सटा लेते, कभी उनके कामोद्दीपक अङ्गों पर हाथ फेरते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवन से उनके ऊपर कटाक्ष-पात करते तो कभी लीलापूर्वक उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियों के साथ क्रीडा की, विहार किया।

पग पटकत कुण्डल हितल, मुख मटकत लचकत कमर। हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उत भ्रमर॥

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान की प्यारी वे गोपिकायें उन्हीं के यश का गान करती हुई ताल के साथ पैरों को उठाने बाहु विक्षेप करने से मधुर मुसकानयुक्त भ्रुकुटि विलास से कमर की लचक और चञ्चल अञ्चल तथा कपोलों के समीप हिलते हुए कुण्डलों के कारण मेघमण्डल में चमकती हुई चपला के समान सुशोभित हुई। रास में श्रम करने से गोपिकाओं के मुख पर श्वेद बिन्दु झलक रहे थे। उन्होंने अपने कटिबन्धन और केशों को कस लिया था। (तो भी वे ढीले हो गये थे)

राजन्, भगवान के श्रीअङ्गों का संस्पर्श प्राप्त करके गोपियों की इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्द से विह्वल हो गईं। उनके केश

बिखर गये। फूलों के हार टूट गये और आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये।

संसारी जीवों, संसारी अश्लीलता को हृदय से निकालकर तुम रासेश्वर के रास को देखने की चेष्टा करो। इन संसारी अश्लील बातों में क्या रस है? यह तो उस दिव्यातिदिव्य रस की एक क्षीण-सी छाया है छाया। रस निकाले हुए ईख के छिलके हैं। इनमें जो मिठास है, उस रस के संसर्ग से है। वह यथार्थ रस तो रसिकेश्वर के रास में है। दिव्य प्रकृति के साथ दिव्य पुरुष अनादिकाल से रास रच रहा है, कमनीय क्रीड़ायें कर रहा है। अन्तकाल तक यह रास ऐसे ही होता रहेगा। इसमें व्यवधान नहीं, विश्राम नहीं, इसका पर्यवसान नहीं। यह दिव्य क्रीड़ा निरन्तर अव्याहत गति से होती रहती है। रासेश्वर थकते नहीं, उनकी प्रियायें अकुलाती नहीं, उन्हें नित्य नूतन उत्साह होता है। प्यारे के संस्पर्श से भला कौन ऊबेगा, किसकी तृप्ति होगी? कौन चाहेगा प्यारे के कण्ठ से विलग हो जायँ? जब तक मन में मलीन वासनायें हैं, तब तक रास देखने का अधिकार प्राप्त न होगा। रासेश्वर की रास मण्डली में मिल जाना, उनके परिकर में सम्मिलित हो जाना यह तो बड़े भाग्य से होता है। जीवन का एकमात्र लक्ष्य महारास की झाँकी है। जिसने एक बार उसे पा लिया वह निहाल हो गया, कृतकृत्य हो गया।

देवता बाजे बजा रहे थे, गन्धर्व तान अलाप रहे थे, अप्सरायें नृत्यानुकरण कर रही थीं। गोपियों को नचा रहे थे, और साथ ही स्वयं भी नाच रहे थे। गोपियाँ कृष्ण को नचा रही थीं या कृष्ण गोपियों को नचा रहे थे।

उनके दिव्य सङ्गीत की गूँज सम्पूर्ण विश्व में भर गयी। सम्पूर्ण संसार उस दिव्य संगीत की स्वर लहरी से व्याप्त हो गया। अचर-सचर हो गये। वृन्दावन के वृक्षों के पुलक होने लगे। गोपिकायें पूरी शक्ति लगाकर गोविन्द को रिझा रहीं थीं। वे उनके अङ्ग से अत्यन्त आह्लादित हो रहीं थीं। भगवान एक राग को अलापते थे, उसी का अनुकरण गोपियाँ करतीं। भगवान् ने जिस गान को मन्द्र मध्य स्वरों में अलापा उसी को एक गोपी खींचकर तार स्वर में ले गयी। उसके इतने सुरीले उच्च स्वर के अलाप को सुनकर श्याम का रोम-रोम खिल उठा। मुरली की ध्वनि के साथ उनकी हृततन्त्री के तार स्वत: ही झंकृत हो उठे, उस झंकृति की लय में अपने आप ही मुख से साधु-साधु, धन्य-धन्य, बहुत अच्छा-बहुत अच्छा ऐसे शब्द निकल पड़े।

पाइ प्रेम प्रियको परम, अति प्रमुदित प्रमदा भईं। आलिङ्गनतें शिथिल अँग, मदमाती-सी बनि गईं॥

कृष्ण के विहार को देखकर आकाशचारिणी देवाङ्गनाएँ काम से पीडित होकर मूर्च्छित हो गईं। ताराधिपति चन्द्रमा भी अपने गणों के साथ विस्मित होकर ठहर गये। परीक्षित्, यद्यपि भगवान आत्माराम हैं- उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी की भी आवश्यकता नहीं है- फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेल में उनके साथ लोक-विस्मयकारी विहार किया। अति विहार के कारण गोपियाँ श्रान्त हो गई थीं। उनके मुख-मण्डल पर पसीने की बूँदें उभर आई थीं। भगवान ने उन्हें अपने सुखकारी हाथों से पोंछा, कामदेव गोपियों को माध्यम बनाकर श्रीकृष्ण से लड़ता रहा, उन्हें पछाड़ने का सबल प्रयास करता रहा किन्तु जब उसे सफलता न मिली तो वह स्वयं गोपी बनकर श्यामसुन्दर को पछाड़ने का प्रयत्न करने लगा।

स्थल-रास का श्रम दूर करने के लिये भगवान् ने गोपियों के साथ जल-विहार हेतु यमुना-जल में प्रवेश किया। वहाँ वे गोपियों के साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगे जैसे गजराज हथिनियों के साथ जल-क्रीड़ा किया करता है। हँस-हँसकर कटाक्षपात करती हुई गोपियाँ अञ्जलि में जल भर-भर कर भगवान पर फेंकने लगीं। आकण्ठ जल में निमग्न गोपियाँ भगवान के शरीर से लिपट कर विविध भाँति से सौरत-क्रीड़ा करने लगीं। इतना हाव-भाव, अङ्ग-स्पर्श और विलास-विहार होने पर भी काम भगवान के मन में रञ्चमात्र भी विकार उत्पन्न करने में समर्थ न हो सका। उसका सारा अहमार समाप्त हो गया फिर भी उसने अभी पराजय नहीं मानी थी। इन दृश्यों को देखकर देव-मण्डली आकाश से फूलों की वर्षा करने लगी।

अत्यन्त क्रीड़ा श्रान्त सखियोंको लेकर वनमालीने यमुनाके प्रवाहमें प्रवेश किया और जल विहार चलने लगा। शत सहस्र

शतदलारुण हाथोंसे सखियाँ व्रजराज कुमारपर जल उछालने लगीं और ये भी उनके मुखोंपर जलके छींटे मारने लगे। जल क्रीड़ामें मध्य कौन उन्हें अपने भुजापाशमें आबद्ध कर लेगी और ये किसी सम्मुख या पीछेसे पकड़ लेंगे कोई क्रम नहीं।

चले श्याम जलकेलि करन बनि गायक मधुकर। करत गान सँग चलत कँपकँपी उठति सखिनि उर।।
वायु डुलावत व्यजन सुशीतल मन्द सुगन्धित। कृष्ण कंठमहँ डारि भुजा प्रमदा अति प्रमुदित।।
करनिनि सँग जलकेलि ज्यों, करे करी अति हिय हरषि। त्यों सखियन सँग श्याम पुनि, करैं खेल जलमहँ प्रविशि।।

उस समय श्रीराधा के साथ श्याम सुन्दर श्रीहरि की उसी तरह शोभा हो रही थी, जैसे सुवर्णलता से श्याम तमाल की, चपला से घन-मण्डल की तथा सोने की खान से नीलाचल की होती है। वृन्दावन में रति के साथ कामदेव की भाँति विश्वमोहिनी श्री राधा के साथ मदन-मोहन श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे। जितनी व्रज सुन्दरियाँ वहाँ विद्यमान थीं, उतने ही रूप धारण करके रंग-भूमि में नट के समान नटवर श्रीकृष्ण रास रंग में नृत्य करने लगे। उनके साथ सम्पूर्ण मनोहर गोप-सुन्दरियाँ भी गाने और नृत्य करने लगीं। अनेक श्रीकृष्ण चन्द्रों के साथ वे गोप-सुन्दरियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो बहुसंख्यक इन्द्रों के साथ देवांगनाएँ नृत्य कर रही हों। तदनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्ण समस्त गोप-सुन्दरियों के साथ यमुना जल में विहार करने लगे, ठीक उसी तरह जैसे यक्ष सुन्दरियों के साथ यक्षराज कुबेर विहार करते हैं। उन सुन्दरियों के केशपाश तथा कबरी (बँधी हुई चोटी) से खिसक कर गिरे हुए सुन्दर पुष्पों से यमुना जी की ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे किसी नील पट पर विभिन्न रंग के फूल छाप दिए गए हों। व्रजांगनाएँ मधुसूदन का यश गाती थीं। उनका मनोरथ पूर्ण हो गया था। श्रीहरि ने उनकी सारी व्यथा हर ली थी। उनके पुष्पहार चंचल हो रहे थे और वे परमानन्द में निमग्न हो गई थीं। आकाश में खड़ी हुई विद्याधरियाँ, देवांगनाएँ तथा गन्धर्व-पत्नियाँ उस रासरंग को देखती हुई वहाँ देवताओं के साथ पुष्प-वर्षा कर रही थीं। वे सभी मोह को प्राप्त हो गई थीं। उनके वस्त्रों के बन्ध ढीले पड़कर खिसक रहे थे।

शुकदेव बोले- राजन्, जल में प्रवेश करने पर वे ब्रज-युवतियाँ भगवान पर चारों ओर से जल उलीचने लगीं और प्रणय कटाक्षों द्वारा चोट करती हुईं बार-बार खिलखिलाकर हँसने लगीं। विमानों में बैठे देवगण ऊपर से पुष्प बरसाते हुए स्तुति करने लगे। इस प्रकार स्वयं आत्मरति होने पर भी भगवान् उन ब्रजकामिनियों के साथ इसी प्रकार क्रीड़ा करने लगे जैसे कुञ्जर कुञ्जरियों के साथ क्रीड़ा करता है।

विविध भाँति जलकेलि करी हरि बाहर आये। पुनि पट पहिरे प्रियनि सङ्ग वन उपवन धाये।।

देर तक जलक्रीड़ा करके निकले। योगमायाने वस्त्र प्रस्तुत कर दिये। आर्द्र वस्त्र विसर्जित हुए; किंतु बिंदु टपकाती अलकें, भीगे शरीर। व्रजवल्लभ सबको लेकर पुलिनपर, कुंजोंमें विचरण करते विहार करने लगे।

गोप-किशोरियोंमें केवल एक उत्कण्ठा- श्यामसुन्दरको अधिक से अधिक आनन्द कैसे प्राप्त हो, वह- वही चेष्टा, वही क्रिया और ये आनन्दघन इन सबको आनन्दित करनेमें लगे हैं। ये जैसे प्रसन्न हों, ये जैसे आनंदित हों वह श्यामसुन्दरकी क्रिया। अपने सुख, अपने आनन्दकी तो कल्पना ही किसी मानसमें नहीं आती।

जल-क्रीडा समाप्त कर श्यामसुन्दर वृन्दावन के अति सुगन्धित वातावरण में प्रविष्ट हुए। उस समय सभी ऋतुओं के विविध पुष्पों के विकास से सारा वृन्दावन सुवासित हो रहा था। नन्दन कानन भी उसके सामने तुच्छ था। वहाँ अगणित भवन बनें थे। उनमें विलास की सारी सामग्रियाँ भरी थीं। इन्द्र-भवन भी उनके सामने नगण्य था। भगवान ने पृथक्-पृथक् भवनों में एक-एक गोपी के साथ विलास के लिये प्रवेश किया। यह अन्तिम अवसर था अत: काम ने भगवान को पराजित करने के लिये अपनी पूरी ताकत झोंक दी। जिस समय जहाँ सुन्दर-सुन्दर सखियों के साथ नृत्य इत्यादि किया कामदेव

ने अपने पाँच बाणोंसे आक्रमण किया। वशीकरण, उच्चाटन, सम्मोहन, स्तम्भन और उद्दिपन।

फलत: गोपसुन्दरियाँ श्यामसुन्दर के शरीर से इस प्रकार लिपट गईं वे उनसे एक क्षण भी अलग होने के लिये तैयार न थीं। काम स्वयं गोपी बनकर श्यामसुन्दर को पराजित करने की चेष्टा कर रहा था। वह डर रहा था कि कहीं रात्रि ही न बीत जाये और श्रीकृष्ण पराजित न हो सकें। उसकी इस चिन्ता को समझकर भगवान ने काल की गति रोक दी। चन्द्रमा अब भी आकाश के मध्य में अपनी पूरी कलाओं के साथ चमक रहे थे। काम इस तथ्य से अपरिचित रहा। भगवान ने काम को पूरा-पूरा अवसर प्रदान करने के लिये शरद् ऋतु की उस एक ही रात्रि में अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत कर दी थी। उस रात्रि में अनन्त ब्राह्मीरात्रियाँ समाहित थीं। इसीलिये सर्वा: निशा: कहा गया है। इस प्रकार चिरकाल तक पूरी सेना और शक्ति के साथ काम लड़ते-लड़ते थक गया, श्रान्त हो गया किन्तु श्रीकृष्ण को पराजित करने में जब समर्थ नहीं हुआ तो वह हार स्वीकार करते हुए भगवान को मदन-मोहन इस नाम से भी पुकारा जाने लगा। काम के लाख प्रयास के बाद भी भगवान् अपने स्वरूप से च्युत न हुए। भगवान सत्यसमल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय समल्प की ही चिन्मयी लीला है। भगवान ने इस लीला में कामभाव को, उसकी चेष्टाओं को तथा उसकी क्रियाओं को सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था, उन्हें अपने-आप में कैद कर रक्खा था। अपने दिव्य अङ्ग-सङ्ग से उन गोपियों के काम भाव को भी सर्वथा के लिए जला दिया था। काम भाव दिव्य विभूतियों में नहीं होता, वह तो केवल अपना प्रभाव तभी तक दिखाता है जब तक प्राणी सांसारिक जगत में रहता है। जब वह दिव्य जगत में प्रवेश कर जाता है, तब काम भाव वहाँ प्रवेश नहीं करता। भगवान श्रीकृष्ण तो स्वयं आत्माराम थे ही, वे तो कामदेव के भी ईश्वर थे। वे गोपियाँ भी उनके अङ्ग स्पर्श करते ही दिव्य हो गईं। उनका कामदेव भी स्वयं जलकर नष्ट हो गया। उनका जार भाव मिटकर वे आत्माराम हो गईं।

काम कृष्ण से बोला- हे अच्युत, संसार में जिनमें मेरा आवेश हुआ वे सभी च्युत हो गये, पर वस्तुत: यदि कोई अच्युत रहा तो आप ही। आपने मुझे जीतकर मेरा विश्वविजयित्व का अहंकार तोड़ डाला। मैं आपकी शरण में हूँ, मेरा अपराध क्षमा करें। भगवान ने कहा- काम, तुम्हारा मद उतारने के लिए ही मैंने यह महारासमयी लीला रची थी। जाओ तुम्हारा कल्याण हो, अनन्तर काम भगवान के अद्भुत ऐश्वर्य का गुणानुवाद करता हुआ वहाँ से विदा हुआ।

नख शिख से भूषण सजे व्रजभूषण के हेत। गानकरत अति चावसों निरतत अति छविदेत।।

हे राजन्, श्यामसुन्दर ब्रजबालाओं के साथ अनेक तरह के बाजे बजाकर छ: राग व छत्तीस रागिनी अलापकर रास व विलास करते थे। उस समय राग व रागिनी का ऐसा समा बँधा था जिसे सुनकर यमुना जल बहने से थामे रहा, हवा चलने से ठहर गई, उस वन के सब पशु-पक्षी वह लीला देखकर मोहित हुए, चरना और उड़ना भूलकर चित्रकारी से खड़े हो गये। केशवमूर्ति व राधाप्यारी जो बीच में नाचते थे उनकी सुन्दरता पर सब व्रजबाला बलायें लेकर आपस में प्रसन्न होती थीं। उस समय एक ब्रजबाला ने आप नन्द बनकर दूसरी सखी को वृषभानु बनाया और श्रीकृष्ण का विवाह राधिका से करके समधियों के समान आपस में शिष्टाचार किया।

कहना कठिन था कि दोनोंमें कौन गा रहा था कब और कौन कब वंशी बजाने लगता था। दोनोंके सटै मुख मुरली के समीप। सखियाँ चारों ओर घेरकर थिरकने लगी थीं। सब गा रहीं थीं और नृत्य कर रही थीं। अकल्पनीय सुषमामय लास्य नृत्य- इस सम्मोहन मधुर माधनकी सम्भावना भी सृष्टिमें नहीं।

नृत्यमें वेग आता गया। रसराजने अनेक रूप धारण कर लिये। जितनी सखियाँ थीं, उनके आधे रूप। दो गोपीके मध्य एक श्यामसुन्दर। दोनोंके कन्धोंपर उनकी भुजायें और दोनों ओरसे सखियोंके स्वर्णसुन्दर बाहु उनके स्कन्धोंपर। परस्पर

भी एक-एक बाहु उन्होंने पार्श्वस्थ सखीके स्कन्धपर रख लिया।

श्रीकृष्णका स्पर्श, सन्निधि मिलते ही गोपियोंकी पद-गति तीव्रसे तीव्रतम होती चली गयी। मध्यमें रसशेखर श्रीवृषभानु-नन्दिनीके साथ ठुमुक रहे थे और वंशी बजानेके साथ गा भी रहे थे। सुरोंके कर स्तम्भित हो गये। गन्धर्व-किन्नरोंके वाद्य साथ नहीं दे सके। अप्सराएँ लज्जित, थकित होकर स्तब्ध खड़ी रह गयीं। उनके और सुरांगनाओंके वस्त्र श्लथिक होने लगे अतिशय विमुग्ध होनेके कारण।

श्रीरासेश्वरका सप्तम स्वर उठा और गूँजता चला गया। यह सबसे अमिश्र स्वर माधुरी-सृष्टिने कभी यह स्वर सौष्ठव सोचा भी नहीं होगा। रसराज झूम उठे- साधु, साधु, और स्वयं उसी स्वरको ध्रुव बनाकर बार-बार दुहराने लगे। उल्लसित होकर बार-बार आलिंगन दान किया। इन्होंने अपनी परम प्रेयसीको।

इस संगीतका- इस नृत्यका साथ अप्सराएँ, गन्धवादिके वाद्य कैसे देते। गगनमें तोसब स्तब्ध-मूर्तिके समान जड़ हो गये थे। केवल नीचे व्रजसुन्दरियोंके नुपूर, किंकिणी, कंकणोंकी सुमधुर रुनझुन- ललित क्वणन उनके संगीतका साथ दे रहा था। भ्रमरोंकी अवलि अवश्य अपनी गुञ्जारसे साथ दे रही थी।

नृत्यमें अधिक और अधिक वेग आया। व्रजसुन्दरयिोंका संगीत शान्त हो गया, केवल नृत्य। उनके आभूषणोंका क्वणन और भ्रमरोंकी गुञ्जार। विश्वविमोहिनी मुरलीकी ध्वनि नृत्यको तीव्रतम करती जा रही थी।

सम्पूर्ण सृष्टिका कण-कण अस्थिर हो उठा- सब अणु अनन्त काल तक इस नृत्य वेगसे नर्तन करते रहेंगे। वायु ही नहीं, ग्रहोंकी गति भी थकित हो गयी। केवल कालिन्दीमें उत्ताल तरंगे उठ रही थीं। यमुनाका प्रवाह उलट पड़ा था और सूर्य-सुता अपनी लहरियोंसे लाकर सहस्र-सहस्र सरोज पुलिनपर समर्पित कर रही थीं।

श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं का प्राकट्य इस मर्त्यलोक में न होता, यह सम्पूर्ण संसार रसहीन-नीरस-बन जाता। श्रृंगार और संगीत के प्राण तो श्रीराधाकृष्ण की ललित लीलायें ही हैं। बाँसुरी की तान ने सम्पूर्ण संसार को रस में सराबोर कर रखा है। महाभागा गोपिकाओं के रास ने जगत् में रस की सरिता बहा दी।

विविध भाँति जलकेलि करी हरि बाहर आये। पुनि पट पहिरे प्रियनि सङ्ग वन उपवन धाये।।
भद्र, लौह, श्री, ताल, बकुल, भाण्डीर महावन। खदिर, कुमुद अरु काम्य, बारहों श्रीवृन्दावन।।
वारहवन उपवन बहुत, केलि केतकी, रास थल। शेषशायि वन केमद्रुम, सुललित, उत्सुक वन विमल।।

संसार में रास विलास के अतिरिक्त और जो भी कुछ दीखता है, मिथ्या है, असत्य है, भ्रम है, दुख है। रास ही रास सत्य है, शिव है, सुन्दर है।

रास रहस घनश्यामतें, अर्जुनने पूछ्यो जबहिँ। रस सरमहँ मञ्जन कर्‌यो, पुरुष वेष बदल्यो तबहिँ।।
सरतें निकसैं अंग अंगमहँ यौवन छायो। तनुको सुन्दर वर्ण भयो मनु कनक तपायो।।

गोपियों के ३३ गण रासमण्डल में आये। एकबार भगवान का सुमधुर वेणुनाद सुनकर भी जब श्रीरासेश्वरी नहीं आयी तब भगवान ने पुन: वेणुनाद किया। इस बार, श्रीराधा ने विचारा कि अब न चलने पर प्रणयकोप हो सकता है अत: वे दिव्यछवि में तुरन्त चन्द्रावली के साथ प्रकट हो गयीं और भगवान पर विमोहक कटाक्षपातकर मन्द-मन्द मुस्कान सुधा बिखेरने लगीं। रासोल्लास में उनके रोम कूपों से लाखों गोपियाँ प्रकट हो गयीं।

उनकी छवि कोटि-कोटि कामों को भी लजाने वाली थीं। रासेश्वरीजी केसाथ सुशीला आदि ३३ सखियाँ अपनी-अपनी टोली के साथ प्रकट हुयी- १) सुशीला के साथ १६ हजार, २) कुन्ती गोपी के साथ १० हजार, ३) कदम्ब माला के साथ

१३ हजार तथा ४) यमुना के साथ १४ हजार गोपियाँ थीं। इस प्रकार ५) जाह्नवी के साथ ९ हजार, ६) पद्ममुखी (पद्मावती) के साथ १० हजार, ७) सावित्री के साथ १५ हजार, ८) स्वयंप्रभा के साथ ७ हजार, ९) सुधामुखी के साथ १४ हजार, १०) सुभा के साथ १४ हजार, ११) पद्मा के साथ १४ हजार, १२) सर्वमंगला के साथ १६ हजार, १३) गौरी के साथ १४ हजार, १४,१५) कालिका तथा दुर्गा के साथ १६, १६ हजार, १६) कमला के साथ १३ हजार, १७) सरस्वती के साथ १३ हजार, १८) भारती के साथ १० हजार, १९) अपर्णा के साथ १४ हजार, २०) रति के साथ १४ हजार, २१) गंगा के साथ १४ हजार, २२) अम्बिका के साथ १६ हजार, २३) सती के साथ १३ हजार, २४) नंदिनी के साथ १० हजार, २५) सुन्दरी के साथ १३ हजार, २६, २७) कृष्णप्रिया और मधुमति के साथ १६-१६ हजार, २८) चम्पा के साथ १३ हजार, २९) चन्दना के साथ १६ हजार, ३०) माधवी के साथ ११ हजार, ३१) पारिजाता के साथ १० हजार, ३२) चन्द्रमुखी के साथ १६ हजार, ३३) शशिकला १४ हजार गोपियों का साथ लिये रासमण्डल में उपस्थित हुयी।

गोपियों के अलावा अन्य भी बहुत सी स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित हुई। सीतावरणानन्तर मिथिला की स्त्रियों ने एकान्त में भगवान राम को पति बनाने की प्रार्थना की थी। वे भी दान और तपस्या द्वारा राम के प्रसाद से गोपियाँ हुई। मार्ग में कौसल देश की स्त्रियाँ भी राम के सौन्दर्य पर मोहित हो गयी थीं। उन्हें भी गोपी होने का वरदान प्राप्त हुआ। जब सीता सहित राम अयोध्या आये तो वहाँ की स्त्रियाँ उनके सौन्दर्य पर मोहित हो गयीं। ये सरयू के तट पर कठोर तपस्या कर भगवान के अनुग्रह से गोपियाँ बनी। श्रीराम के दण्डकारण्य जाने पर गोपालमंत्रोपासक जो मुनिगण रासार्थ भगवान् का ध्यानकर रहे थे उनके ध्यान में जटा-मुकुट धारण किये भगवान् राम जा पहुँचे। वे समाधि से उत्थित हो रामसौन्दर्य पर मुग्ध हो गये। वे सब सीता के समान भगवान की सेवा करना चाहते थे।

भगवान के वरदान से वे भी गोपियाँ बने। जब भगवान राम पंचवटी में गये तब वहाँ की शबराङ्गनाएँ रामदर्शन से मोहित हो प्राण त्यागना चाहती थीं। भगवान ने ब्रह्मचारी वेश में उन्हें आश्वासन देकर गोपियाँ होने का वरदान दिया। लोकापवाद से सीता के त्यागने पर राम ने बहुत से यज्ञ किये और उनमें सुवर्ण की सीता बनाकर यज्ञों की पूर्ति की। इस प्रकार राम के मंदिर में यज्ञसीताओं का समूह एकत्र हो गया था। एक दिन वे सबकी सब चैतन्य होकर राम से समागम करने जा पहुँची।

भगवान ने उन्हें भी गोपी होने का वरदान दिया। इसी प्रकार वैकुण्ठ निवासिनी, श्वेतद्वीपनिवासिनी, लोकाचल आदि स्थानों में निवास करनेवाली देवियाँ भगवत्प्रसाद से गोपियाँ बनीं। उन्होंने रासमण्डल के रंगमंच पर भगवान के कंधों पर बाहुएँ रखकर प्रेम से विह्वल हो उनको वश में कर लिया।

पूर्वाचार्यों ने गोपियों की संख्या त्रिशत कोटि बताया है। उनमें राधा और चन्द्रावली को प्रधान बताया है। इन दोनों में सर्वप्रधान श्रीराधाजी हैं, ऐसा भक्ति-शास्त्र का निर्णय है। व्रज से गोपियाँ रासमण्डल में आयीं, उनके पीछे-पीछे कई हजार विवाहिताओं ने भी भगवान के समीप जाना चाहा, इसे अनौचित्य समझकर योगमाया की प्रेरणा से उनके पतियों ने उन्हें वहीं घरों में रोक दिया। उन्होंने वहीं भगवान् के ध्यान में लीन हो अपना भौतिक शरीर त्यागकर दिव्य रूप प्राप्त किया और वे रासमण्डल में सबसे आगे पहुँच गयीं।

गोपियां कई प्रकार की हैं- कुछ गोपियां साधन सिद्ध हैं, कुछ गोपियां स्वयं सिद्ध हैं। ऋषि रूपा गोपी हैं, देवरूपा गोपी हैं, श्रुतिरूपा गोपी हैं। साधनसिद्ध वह गोपी हैं जिनके पास जन्म के समय भक्ति नहीं थी, लेकिन जन्म के बाद मेहनत की, साधन की और प्रभु की प्राप्ति की, तो ये साधनसिद्ध गोपी हैं। जैसे-सूरदासजी, कबीरदास, मीरा ये सब साधन-सिद्ध गोपी हैं। जन्म के बाद जिन लोगों ने साधना की है। भक्ति परमात्मा किसी के भाग्य में लिखते नहीं। कुछ चीजें तुम्हारे ललाट

पर लिखी गयी हैं। शरीर बनने से पहले प्रारब्ध लिखा गया है कि यह जीव क्या करेगा? भक्ति प्रभु लिखते नहीं हैं यह तो जन्म के बाद यदि जीव मेहनत करे, साधना करे, प्रभु के चरणों में अनुराग रखे तो प्रभु उस पर कृपा करता है। ईश्वरतत्व पर हरेक का अधिकार है। यह नहीं कि यह व्यक्ति योग्य है और यह योग्य नहीं है। साधना तो हर व्यक्ति कर सकता है।

दूसरी स्वयंसिद्ध गोपी हैं- जन्म के साथ जिसका मन प्रभु में लगा हुआ है। जैसे-सनकादि ऋषि, प्रह्लादजी महाराज, चैतन्य महाप्रभु। ये सब जीव जन्म के साथ ही रंग में रंगे हुए हैं। उनको कुछ करना नहीं पड़ता। पिछले जन्म का कुछ याद है, तो बचपन से ही उन्होंने आरम्भ कर दिया। यदि किसी जीव के जीवन में ऐसा हो जाए तो समझ लेना कि यह कोई योगभ्रष्ट जीव है। इस जीव को अंत समय में प्रभु का दर्शन होता है। मध्य जीवन में यदि तुम करोगे तो बुढ़ापा सुधर जाएगा और यदि बुढ़ापे में किया तो तुम्हारा अगला जन्म सुधर जाएगा। भगवतचिंतन कभी निष्फल नहीं जाता। उम्र का ज्ञान के साथ कोई नाता नहीं है, भक्ति का उम्र के साथ कोई नाता नहीं है, वैराग्य और ज्ञान के साथ उम्र का कोई नाता नहीं है। ध्रुवजी ने यही समझाया कि जितनी छोटी उम्र में यह प्रारम्भ करो, यही सौभाग्य है। भाग्यशाली जीव यह कर सकते हैं।

देवरूपा गोपी- वैकुंठ में देवताओं को ईश्वर तत्व नहीं मिला। स्वर्ग में जाकर भजन नहीं कर सकते, तो ठाकुरजी की अनुभूति नहीं हुई। वे ही देव गोपी का रूप धारण करके प्रभु को मिलने आये हैं।

ऋषिरूपा- हजारों सालों तक एक जगह पर बैठकर जिन लोगों ने तपस्या की, साधना की, योग किया लेकिन प्रभु का अनुभव नहीं हुआ, तो आज ये लोग भी गोपियां बनकर आये हैं।

कृष्ण उमापति को गोपी के सम्मुख देखकर बोले- महाराज, हम सब कृतार्थ हो गये आप तो मेरी अभिन्न आत्मा हैं। आपको यह गोपी वेश धारण करने की क्या आवश्यकता हुई। आपसे तो मेरा कुछ छुपा नहीं है। अब गोपी शंकर का रहस्य खुल गया। संकोच से कपोल अरुणित हो गये, मन्द-मन्द मुस्कान दौड़ गई उनके अधरों पर, छोड़ दिया वह छद्मवेश, निज रूप में प्रकट हो गये। मुरलीधर ने गोपियों सहित उनकी पूजा की और पूजोपरान्त बोले- अब आप गोपेश्वर हो गये। इस वृन्दावन में ही विग्रहरूप में सदा निवास कर इसको संरक्षण दें।

शिवशंकर इस नवघन सुन्दर मुरलीधर के स्नेह में विह्वल हो गये सुधबुध बिसार बैठै। मौन ही रह गये। तब श्याम बोले- आशुतोष आप कब से कृपण हो गये, कुछ तो बोलिये?

ओम एवमस्तु। शंकर बोले-प्रभु। आपके इस दिव्य स्वरूप का दर्शन कर उन्मत्तता आ ही जाती है। यहाँ भूतेश्वर, चक्रेश्वर रूपोंमें रहनेपर भी वृन्दावनमें गोपेश्वर बनकर बसने आये हैं। रात्रि समाप्त होने को थी। निशिराज वेगवान हो गये थे।

धन्य धन्य ब्रजधाम जहाँ पावन वन उपवन। वृन्दावन अति धन्य धन्य सब सखा सखीगन।।
नन्द यशोदा धन्य धन्य है वे ब्रजवासी। जिन सँग हरि नित, करें शयन वन भोजन हाँसी।।
वृन्दावन व्रजधाम नित, ब्रजलीला परिहास नित। गो, गोपी, गोलोक नित, परिकर रास विलास नित।।

भगवान गौरीशंकर और आसुरि मुनि ने कृष्ण की स्तुति की और बोले- हे श्रीकृष्ण, महायोगी श्रीकृष्ण, देवाधिदेव जगदीश्वर, पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, गरुड़ध्वज, आपको नमस्कार है। जनार्दन, जगन्नाथ, पद्मनाभ, त्रिविक्रम, दामोदर, हृषीकेश, वासुदेव, आपको नमस्कार है। देव, आप परिपूर्णतम साक्षात् भगवान हैं। इन दिनों भूतल का भारी भार हरने और सत्पुरुषों का कल्याण करने के लिए आप समस्त लोकों को पूर्णतया शून्य करके यहाँ नन्दभवन में प्रकट हुए हैं। वास्तव में तो आप परात्पर परमात्मा ही हैं। अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण, समस्त अवतार समूहों से संयुक्त हो, आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं तथा वृन्दावन में सरस रासमण्डल को भी अलंकृत करते हैं।

गोलोकनाथ, गिरिराजपते, परमेश्वर, वृन्दावनाधीश्वर, नित्य विहार-लीला का विस्तार करनेवाले राधावल्लभ, व्रजसुन्दरियों के मुख से अपना यशोगान सुननेवाले हे गोविन्द, गोकुलपते, सर्वथा आपकी जय हो। शोभाशालिनी निकुंज-लताओं के विकास के लिए आप ऋतुराज वसन्त है। श्रीराधिका के वक्ष और कण्ठ को विभूषित करनेवाले रत्नाहार हैं। श्रीरासमण्डल के पालक, व्रजमण्डल के अधीश्वर तथा ब्रह्माण्ड मण्डल की भूमि के संरक्षक हैं।

हे राजन्, तब श्रीराधा-सहित भगवान श्रीकृष्ण प्रसन्न हो, मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मेघगर्जन की-सी गम्भीर वाणी में मुनि से बोले।

तुम दोनों ने साठ हजार वर्षों तक निरपेक्षभाव से तप किया है, इसीसे तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है। जो अकिंचन, शान्त तथा सर्वत्र शत्रुभावना से रहित है, वही मेरा सखा है। अत: तुम दोनों अपने मन के अनुसार अभीष्ट वर माँगो।

शिव और आसुरि बोले- हे भूमन्, आपको नमस्कार है। आप दोनों प्रिया-प्रियतम के चरण-कमलों की सन्निधि में सदा ही वृन्दावन के भीतर हमारा निवास हो। आपके चरणों से भिन्न और कोई वर हमें नहीं रुचता हैं। अत: आप दोनों- श्रीहरि एवं श्रीराधिका को हमारा सादर नमस्कार है।

हे राजन्, तब भगवान श्रीकृष्ण ने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तभी से भगवान शिव और आसुरि मुनि मनोहर वृन्दावन में वंशीवट के समीप रासमण्डल से मण्डित कालिन्दी के निकटवर्ती पुलिन पर निकुंज के पास ही नित्य निवास करने लगे।

राधा नाम ललाम भजि, जग पावै विश्राम। सहजहिं रीझैं भक्त पर, श्रीकृष्ण सुखधाम॥

श्रीकृष्ण सुखधाम के, चरण-कमल रति पावै। मन में भक्ति-रस-धार बहै, अघकलुष नशावै॥

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्ण ब्रजाङ्गनाओं और भ्रमरों की भीड़ से घिरे हुए उस स्थान पर आये जहाँ सब ओर जल और स्थल के सुमनों की सुगन्ध से सुवासित वायु बह रहा था। उस यमुना तट के सुरम्य उपवन में वे उसी प्रकार विचरण करने लगे, जिस प्रकार मद चूता हुआ मत्त हाथी अपनी हथिनियों के साथ भ्रमण कर रहा हो।

श्रीकृष्ण नित्य हैं, उनकी आह्लादिनी महाशक्ति नित्य हैं। उनके सखा नित्य हैं, सखी परिकर नित्य हैं, इनका धाम नित्य हैं, उनका नाम नित्य है, उनकी लीला नित्य है, उनका रासविलास नित्य है। उसमें देश, काल तथा कार्यकारण भाव की अपेक्षा नहीं। वह तत्त्व सनातन तथा शाश्वत सत्य है। जिनकी श्रीकृष्ण नामरूप, लीला और धाम में प्राकृत बुद्धि है। उन्हें प्राकृत पदार्थों की ही प्राप्ति होती है।

रसिक शेखर ने गोपियों से स्वगृह लौटने का आग्रह किया। कोई भी उनके सान्निध्य से हटना नहीं चाहती थी किन्तु विवशतापूर्वक सब लौट गयीं।

ब्रह्मा की रात्रि एक हजार चतुर्युगी के बराबर व्यतीत है। वह रात्रि व्यतीत हो गई। उस रात्रि का नाम संसार में प्रेमरात्रि प्रकट हुआ। ब्राह्ममुहूर्त आया। यद्यपि गोपियों की इच्छा अपने घर लौटने की नहीं थी। वे अपनी प्रत्येक चेष्टा से, प्रत्येक समल्प से केवल भगवान को ही प्रसन्न करना चाहती थीं अत: उनकी जाने की इच्छा नहीं थी। फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे अपने-अपने घर चली गईं।

रासकी यह नित्य-लीला तो शाश्वत है। यह कहाँ संसारमें आविर्भूत अवतार लीला है कि विरमित होगी। यह तो सदा चलती है और इसमें यह विराम रसपरिपुष्ट ही करता है।

परीक्षित् ने पूछा- भगवन्, भगवान का अवतार धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के लिये हुआ था। वे धर्म-मर्यादा के

ज्ञाता, उपदेष्टा और रक्षक थे। परस्त्री का स्पर्श भी धर्म-वर्जित है। ऐसी अवस्था में उन्होंने रासलीला में पराई स्त्री का आलिङ्गन, चुम्बन और मर्दन कैसे किया। भगवान श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तु की कामना न थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्राय से यह गर्हणीय कर्म किया। आप मेरे शंका संदेह मिटाइये।

महाराज परीक्षित शुकदेव से कह रहे हैं- भगवन्, जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्ण तो धर्म की स्थापना और अधर्म के प्रशमनार्थ अपने अंशों सहित अवनि पर अवतरित हुए थे। फिर उन्होंने धर्ममर्यादा के वक्ता, धर्ममर्यादा के रचयिता और धर्ममर्यादा के रक्षक होकर भी परस्त्रीगमन जैसा धर्मविरुद्ध आचरण क्यों किया?

सुनी रासकी कथा परीक्षित शमा कीन्हीं। गुरुवर, हरि करि रास नरनि का शिक्षा दीन्हीं।।
परनारी संस्पर्श पाप सब शास्त्र बतावें। थापन करिबे धर्म अवनिपै अच्युत आवें।।
च्यौं अधर्म कारज कर्‌यो, रक्षक ह्वैकें धर्मके। परनारिनितें रति करी, साक्षी ह्वैकें कर्मके।।

परीक्षित शुकदेवजी से पूछ रहे हैं- भगवन् यदुपति भगवान श्रीकृष्ण तो आप्तकाम हैं, फिर उन्होंने परदाराभिमर्शन रूप निन्दनीय कार्य किया ही क्यों? इसका अभिप्राय क्या है? हे सुव्रत, आप हमारा यह सन्देह दूर कीजिये। सन्देह पर ही बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, **समरथ को नहिं दोष गुसाई**, सूर्य, अग्नि तथा ईश्वर सामर्थवान् हैं। उनको कोई दोष नहीं लगता है। अग्नि सब प्रकार की भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुओं को खा जाता है किन्तु उसे कोई दोष प्राप्त नहीं होता किंतु जिन मनुष्यों में ऐसी सामर्थ नहीं है यदि वे ऐसा करते हैं तो वे नष्ट हो जाते हैं।

तेजस्वी व्यक्ति कभी-कभी ऐसा साहसपूर्ण कार्य करते हुए देखे जाते हैं, जो धर्म के विपरीत है फिर भी उन्हें दोष नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि- सर्वत्र की गन्दगी अपने में समेटने पर गङ्गा गन्दी नहीं होती। अपनी किरणों से स्पृश्य अस्पृश्य सब को छूने पर भी सूर्य अपवित्र नहीं होते और गाय, ब्राह्मण तथा बालक आदि का शरीर जलाने पर भी अग्नि को गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या आदि पाप नहीं लगता। किन्तु जिन लोगों में ऐसा सामर्थ्य नहीं है, उन्हें उनकी नकल करते हुए इस प्रकार का कार्य नहीं करना चाहिये। यदि मूर्खतावश ऐसा कार्य कर बैठें तो उनका नाश ही हो जाता है। भगवान् शमर ने हलाहल विष पी लिया था, उसे कण्ठ में ही धारण भी किया था किन्तु इतने उल्वण विष की एक बूँद भी यदि कोई पी ले तो उसकी मृत्यु ही हो जायेगी।

संसारी रासविलास में चित्त को मत फँसाओ। दिव्य रास में मन को जमाओ। संसार राधा माधव की क्रीड़ास्थली है। वृन्दावन धाम में आसक्ति हो, युगल नाम में अनुरक्ति हो। श्यामसुन्दर के मनोहर रूप में चित्त का खिंचाव हो और उनकी मधुर रास की सरस लीलाओं में ही सदा मन रमा रहे। यही जीवन का चरम लक्ष्य है, यही परमसाधन है, यही प्राप्य स्थान है, यही पराकाष्ठा है, यही परागति है। भगवन्, श्रीकृष्णलीला का रहस्य समझना अत्यन्त गूढ़ है।

समुझि सकें नहिँ नीच नर, रास-रहस अति गूढ़ हैं। हरिलीला प्राकृत कहत, ते नर पानी मूढ़ हैं।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिन परमेश्वर का नाम लेने और ध्यान करने से बड़े-बड़े योगी व मुनि कृतार्थ हो जाते हैं उन आदि पुरुष परमेश्वर को मनुष्य समझकर दोष लगाना बड़ा पाप है।

मो मन में अचरज बड़ो तुम सों ज्ञानी होय। माखनप्रभु की कथा में भरम मानिये सोय।।
माखनप्रभु गोपालकी लीला परम पुनीत। भाग्य उदय जग में वही जो सुनिए करि प्रीत।।

भगवान की रासलीला साधारणतया धर्म मर्यादा के विपरीत-सी प्रतीत होती है। बड़े लोग जिस काम को करते हैं, जिसे

वे प्रमाण मान लेते हैं, अन्य लोग भी उसका अनुवर्तन करते हैं। रासलीला का प्रसङ्ग सुनते-सुनते राजा परीक्षित को शमा हुई, कि यदि सब लोग भगवान की रासलीला को प्रमाण मानकर उसका अनुकरण करने लगें, तब तो धर्म की कोई मर्यादा रहेगी ही नहीं, सर्वत्र कदाचार व्यभिचार फैल जायगा। पातिव्रत तथा एक पत्नीव्रत ये धर्म की बातें तो नष्ट ही हो जायँगी, इसीलिये उन्होंने एक शमा तो रास के आरम्भ में की और उसे ही प्रकारान्तर से रास के अन्त में दुहराया।

महाराज परीक्षित की शंका निर्मूल नहीं थी। उसका परिणाम आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। धूर्त, ढोंगी, व्यभिचारी लोग कुछ महिलाओं को फँसाकर उनके कान में कह देते हैं- तुम गोपी हो और मैं कृष्ण हूँ। इसका परिणाम यही होता है जो होना चाहिये। व्यभिचार बढ़ता है, घर में कलह होती है तथा भ्रूण हत्यादि बड़े-बड़े पाप हो रहे हैं। जो स्वार्थी हैं वे दोषों को तो देखते नहीं हमारे किस कार्य का परिणाम हैं। अपनी तनिक-सी स्वार्थ सिद्धि के लिये जघन्य-से-जघन्य पाप कर डालते हैं।

भगवान की रासलीला एक आत्मरमण की लीला है। वह तर्क से नहीं जानी समझी जा सकती। रासपञ्चाध्यायी का नित्य श्रद्धा से पाठ करने से ही जानी जा सकती है। रास के नाम पर कदाचार करनेवाले व्यक्तियों का उल्लेख करना भी पाप है, पवित्र कार्यों के नाम पर सदा स्वार्थी लोग अनाचार करते आये हैं कर रहे हैं और आगे करेंगे। जिसका जिससे स्वार्थ सधता है उसे कभी लाख समझावे तो भी वह मानेगा नहीं। उन्हें तो ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते।

कामी, जड़मति, अज्ञ, धर्मद्वेषी, व्यभिचारी। ढोंगिनि रचि रचि रास धरम मरियाद बिगारी।।
बनें कलियुगी कृष्ण कामिनिनि चित्त चुरावँ। पाप करम छिपि करें रूप अगनितन बनावें।।
कृष्ण बनें दुष्कृत करें, नरकहु निरखि लजात है। कहें-शैल धारन करो, तब नानी मर जात है।।

जो व्यक्ति देहाभिमान, इन्द्रियाभिमान आदि से रहित हैं, उनके कर्म पाप-पुण्य रूप फल नहीं प्रदान करते। वे भूने हुए धन की भाँति अमुर पैदा करने में समर्थ नहीं होते। उनके लौकिक कर्म प्रारब्ध कर्मों की समाप्ति भर के लिये हुआ करते हैं। जिनके चरण-पमज-पराग की सेवा से सन्तृप्त ज्ञानी मुनिजन त्रिलोकी में निर्भय होकर विचरण करते हैं। फिर वही महापुरुष जब प्रकट हुआ है, तो उसके पाप-पुण्य, बन्धन और मोक्ष का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है। बुद्धिमान को चाहिये महान पुरुष के ऐसे आचरण भी जो उनके द्वारा उपदेश के लिए किये गये हैं, उन्हीं का अनुकरण न करे। फिर भगवान श्रीकृष्ण तो स्वयं परमात्मा थे गोपियाँ उनकी वशीभूत आत्मा थीं। वे स्वयं अपनी आत्माओं के साथ रमण कर रहे थे। वे जीवधारियों के अन्त:करणों में विराजते हैं।

समर्थ एवं तेजस्वी पुरुषों के आचरण कहीं-कहीं धर्म-विरुद्ध से जान पड़ते हैं और उनमें साहस, निर्भयता भी देखी जाती है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र बृहस्पति आदि देवता जिसके उदाहरणरूप में वर्तमान हैं। ब्रह्मा ने पुत्री का अनुगमन, इन्द्र ने अहल्यागमन, चन्द्र ने गुरूपत्नी तारा गमन, बृहस्पति ने भ्रातृपत्नी ममता से किन्तु ऐसे काम में उन्हें दोष वैसे ही नहीं लगता, जैसे गौ ब्राह्मण आदि का शरीर जलाने पर भी अग्नि को ब्रह्महत्या आदि दोष नहीं लगते। सर्वभक्षी होने पर भी जैसे अग्नि अपवित्र नहीं होती वैसे ही ये भी न अपवित्र होते हैं और न इन्हें दोष ही लगता है। असमर्थ प्राणी मूर्खतावश मन से भी ऐसा प्रयास न करे अन्यथा शिव का अनुकरण कर विषभक्षण करने में विनाश निश्चित है।

समरथको प्रतिकूल आचरण करिहैं प्रानी। पावें दुख इहलोक होहि परलोकहु हानी।।
कियो शम्भु विषपान हलाहल हमहूँ करिहैं। सोचि करें अनुकरन मौतिके बिनुतें मरिहैं।।
वेद शास्त्र गुरु वाक्यकूँ, धर्म समुझिकें जे करहिँ। सुखी होहिँ विपरीत करि, दुख पावैं नरकनि परहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, समर्थ पुरुषों द्वारा धर्म का व्यतिक्रम तथा साहस पूर्ण कार्य देखे गये हैं, किन्तु समर्थ तेजस्वियों

के लिये वे दोष नहीं होते। जैसे सबको स्वाहा करनेवाली अग्नि अच्छे बुरे सभी को जलाकर भस्म कर देती है।

ईश्वर वो है जो नहीं करने पर भी कुछ नहीं करे। ईश्वर के वचन को मानो। ईश्वर के वचन सत्य हैं। राम की लीलाओं का अनुकरण करो, कृष्ण की लीलाओं को सुनो। राम के किये हुए को करो, कृष्ण के कहे हुए को करो। राम का चरित्र विशुद्ध मानव चरित्र है और कृष्ण का चरित्र विशुद्ध, ईश्वरीय योगेश्वर चरित्र है। राम के चरित्र में मानवता का प्रदर्शन अधिक है, कृष्ण चरित्र में योगेश्वरता का प्रदर्शन अधिक है।

हँसि बोले शुकदेव- कृष्णकूँ पाप न परसे। रवि रस सबतें लेइ शुद्ध करि सब थल बरसे।।
नालो गङ्गा मिलत नाम गुन अपनो खोवै। चाहें जो कछु परे अग्निमहँ स्वाहा होवै।।
सब कुछ समरथ करि सकें, विधि निषेध तिनकूँ नहीं। अनिल अशुचि नित प्रति मखन, खाइ मलिन होवै कहीं।।

जो सबके हृदय में अवस्थित हैं, गोपियों और उनके पतियों के और चराचर शरीर-धारियों के अन्त:करणों में जो आत्मारूप से विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो प्रकट होकर यह लीला कर रहे हैं फिर उनके लिये पुण्य-पाप की आशमा कैसी? भगवान् प्राणियों पर कृपा करने के लिये ही विग्रह धारण करते हैं और ऐसी लीलाएँ किया करते हैं, जिनसे संसार के विषयी व्यक्ति भी उनकी ओर आकृष्ट हो सकें। यह भगवान की माया का ही कार्य था कि उन लोगों ने कभी भी कृष्ण के स्वरूप में दोष-बुद्धि नहीं की। उन गोपियों के पति गोपों ने यही समझा कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। जिन गोपियों से भगवान ने क्रीडा की थी पति गोपों की तो भगवान पर दोषदृष्टि नहीं हुयी। कारण वे अपनी पत्नियों को प्रतिक्षण अपने समीप ही देखते थे।

योगमाया ने गोपों के संतोषार्थ वहाँ मायिक गोपियों की रचना कर दी थी जो उन्हीं के साथ विहार करती थीं, उन्हें यही अनुभव होता था कि हमारी स्त्रियाँ हमारे निकट है वे कहीं गयी नहीं। इसलिए उनकी भगवान पर किसी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं हुयी।

बच्चों ने यह समझा कि हमारी मातायें हमारे निकट है। वे सब उनकी योगमाया में मोहित थे। उन्होंने कोई भी दोष बुद्धि नहीं की। रासलीला कोई स्त्री पुरुष का मिलन नहीं था यह तो जीव और ईश्वर का मिलन था। ईश्वर जो है वो अंशी है और हम ईश्वर के अंशी हैं। ईश्वर जो कार्य करता है, वो हम कैसे कर सकते हैं? इसलिए ईश्वर का चरित्र प्रमाण करने और वंदन करने योग्य है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य सिवाय कृष्ण के किसी और के चरित्र में नहीं हैं। परीक्षित्, ये तो काम को जीतने की रासलीला है। प्रभुने असंख्य सुन्दरी गोपियों के बीच रहकर भी काम को जीता। मन और इन्द्रियों पर जिसका नियंत्रण है, उसे कोई विचलित नहीं कर सकता।

राजन्, जो धीर पुरुष व्रजयुवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में पराभक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र हृदय के रोग-कामविकार से, हृदय पक्षाघात से, मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसका काम-भाव सर्वदा के लिये समाप्त हो जाता है।

रसस्वरूप भगवान की अलौकिक लीला ही रास है। यह रासलीला गोलोक धाम में नित्य-निरन्तर चलती रहती है। कभी-कभी भगवान के साथ ही यह लीला भी भू-मण्डल पर अवतरित होती है। भगवान और उनकी लीला-दोनों ही अप्राकृत हैं, प्रकृति से परे हैं, ऊपर हैं। गोपियाँ अपने घर को प्रस्थान कर गयीं और भगवान ने मानो मोक्ष का मार्ग प्रशस्त ही कर दिया। गोविन्द ब्रजवासियों के वश में हैं। इनका प्रेम इतना अगाध सागर हैं कि ब्रजवासियों के प्रेम के सागर में यदि ब्रह्मा भी गोता लगाये, तो थाह नहीं पा सकते। विधाता में सामर्थ्य नहीं है थाह पाने की।

अचिन्त्य तत्त्वों के विषय में तर्कानुसन्धान करनेवाले प्राणी पाप के भागीदार बनते हैं।

१) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने जो कुछ किया और कहा- वह सब अनुकरणीय है।

२) पुष्टिपुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण ने जो कुछ किया और कहा- वह सब मननीय है, चिन्तनीय है, ध्येय है और कोई-कोई ही अनुकरणीय है। यदि कोई भगवान की रासलीला का अनुकरण करने का प्रयास करे तो उसे कालिय नाग के फणों पर नृत्य भी करना चाहिये और गोवर्धन पर्वत भी उठाना चाहिये। वनाग्नि का पान भी करना चाहिये। क्या कोई संसारी प्राणी इन अद्भुत कृत्यों को करने की कल्पना कर सकता है? यदि नहीं तो उसे न तो रासलीला की अनुकृति का प्रयास करना चाहिये और न उस पर कुछ आक्षेप करने का ही अधिकार होना चाहिये।

३) सबसे अहम् बात यह है कि जब ब्रह्मा ने ग्वाल-बालों का और उनके बछड़ों का अपहरण कर लिया था, उस समय श्रीकृष्ण ने ही सारे ग्वाल बालों का रूप धारण किया था। वे पूरे एक वर्ष तक उन रूपों में भी विराजमान रहे। इस रहस्य को यादवों के पुरोहित शाण्डिल्य ऋषि जानते थे अत: उन्होंने सारे व्रजवासियों को बुलाकर कहा कि- इस वर्ष विवाह का सर्वोत्तम मुहूर्त आया है अत: सारे व्रजवासी अपनी-अपनी बेटियों का विवाह ग्वालबालों से कर दें। उनकी सलाह स्वीकार कर सारे गोपों ने अपनी बेटियों का विवाह ग्वालबालों से कर दिया। एक वर्ष के बाद ब्रह्मा के द्वारा ग्वालबालों के लौटा देने पर भगवान ने अपना रूप समेट लिया। पहले वाले ग्वालबाल सही सलामत अपनी जगह पर आ गये। परन्तु गोपस्त्रियाँ तो वहीं थीं, जिनका विवाह ग्वालबालरूपधारी श्रीकृष्ण के साथ हुआ था। अब आज भगवान के रास में वे ही गोपियाँ सम्मिलित हैं, जिनका वस्तुत: विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था। इसलिये वे गोपिकायें परायी कहाँ रहीं।

४) रासलीला के समय श्रीकृष्ण केवल आठ वर्ष एक महिना बाईस दिन के ही थे अत: उनमें काम का प्रभाव प्रदर्शित करना युक्ति-युक्ति न होगा इसीलिये पीछे कहा गया है कि श्रीकृष्ण गोपियों से वैसे ही विकार कर रहे हैं, जैसे बालक अपनी परछाईं से खेलता है। रासलीला अवतार लीला नहीं है। रास तो दिव्य लीला है दिव्य देहोंसे हुई। श्रीराधा कृष्ण से कुछ महीने (एक वर्षसे कम) बड़ी है। उनकी सखियोंमें भी कोई उनसे दो वर्षसे अधिक बड़ी नहीं हैं।

जो लोग यह कहते हैं श्रीकृष्ण चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये, तो फिर उन्हें इस बात का पता होना चाहिये गाँवोंमें रहनेवाले बहुत से दस वर्षके बच्चे तो नंगे ही फिरते हैं। उन्हें कामवृत्ति व्याप्त ही नहीं होती और स्त्री-पुरुष सम्बन्धका भी कुछ ज्ञान नहीं रहता। लड़का-लड़की एक साथ खेलते हैं, पढ़ते हैं, नाचते-गाते, त्यौहार मनाते हैं, गुड्डे-गुड्डियों की शादी करते हैं, बारात ले जाते हैं और आपसमें भोज-भात भी करते हैं। गाँवके बड़े-बूढ़े लोग बच्चोंका यह खेल देखकर प्रसन्न होते हैं। उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती स्त्रियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं। श्रीकृष्ण जैसे असाधारण श्री शक्तिसम्पन्न बालक जिनके अनेक सद्गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे जिनकी सम्मति, चातुर्य्य और शक्तिसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे व्रजवासियोंने त्राण पाया उनके प्रति वहाँकी स्त्रियों बालिकाओं और बालकोंका कितना आदर रहा होगा- इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट अपने गाँवकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ रहती थी और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, ताल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरंजन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे मनोरंजनोंमेंसे रासलीला भी एक थी। जो श्रीकृष्ण को केवल मनुष्य समझते हैं उनकी तो यह दोष दृष्टि हैं वास्तवमें तो गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीड़ा ही रति है। इसीलिये स्थान-स्थानपर उनके लिये विभु, परमेश्वर, लक्ष्मीपति, भगवान, योगेश्वरेश्वर, आत्माराम, मन्मथमन्मथ आदि शब्द आये हैं जिससे किसीको कोई भ्रम न हो।

इस उम्र में काम, वासना का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान का शरीर तो दिव्य है उसमें शुक्र आदि विकारों की

कल्पना भी नहीं की जा सकती। भगवान कालपुरुष है वे काल के अधीन नहीं, उनके लिए अवस्था का पारतन्त्रय भी नहीं इच्छानुसार उनकी अवस्था का अभिनय हुआ करता है। जीव जब तक बारह साल का न हो तब तक उनमें कामना विकार प्रवेश नहीं करता तब तक वह निर्दोष है।

५) गोपियों का प्रेम निष्कपट और निश्छल था। इस रासलीला में कामना या वासना के लिये कोई स्थान नहीं था। यह गोपियां कोई साधारण मानव शरीर की गोपियां नहीं थी, यह तपेश्वरी थीं। महारास में गोपियों के मनोकामनाओं की पूर्ति तथा कामदेव की पराजय हुई। अभिमान जनित अहंकार नष्ट होने पर कामदेव भगवान की शरणागत हो अपने लोक चला गया।

६) भगवान ने रास अवरुद्ध सौरत अर्थात् अस्खलित होकर किया था। भगवान ने जितनी गोपियाँ थीं उतने ही रूप बना लिये थे। भगवान ने गोपियों के दिव्य देह से रास रचा था, उनके स्थूल देह तो घर में पतियों के पास पड़े रहे। सबने उन गोपियों को अपने पास देखा। भगवान ने इतनी मर्यादा के साथ रास किया कि उन भाग्यवती गोपियों और परम भक्तों के अतिरिक्त किसी को उसका भान नहीं हुआ। शिशुपाल ने भगवान को इतनी गालियाँ दीं, किन्तु रास का उल्लेख करके कहीं भी लांछित नहीं किया।

७) प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण- इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक कारण शरीर रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। कारण शरीर कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस कारण शरीर के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा कारण का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। कर्मबन्धनके कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है- जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुत: योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरिता महापुरुषके समल्पसे, बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्त्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल समल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष- शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित निर्माणकाय यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परंतु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं। अप्राकृत शरीर इन सबसे विलक्षण हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते। और भगवद्देह तो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। देव-शरीर प्राय: रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते। अप्राकृत शरीर भी नहीं होते।

फिर भगवान श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे। वह तो सर्वथा चिदानन्दमय दिव्य है। उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीलापुरुषोत्तमका भेद नहीं है। श्रीकृष्णका एक-एक अंग पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं। उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा स्वाद ले सकती है। वे हाथोंसे देख सकते हैं, आँखोंसे चल सकते हैं। श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है। इसीसे उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है। उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है। फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिन और वृक्ष-बेल पुलकित हो जायँ। भगवानके ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं।

मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे क्रमश: रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामें इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है।

भगवान्‌का शरीर न तो कर्मजन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है। वह तो इन सबसे परे सर्वथा विशुद्ध भगवत्स्वरूप है। उसमें रक्त, मांस अस्थि आदि नहीं हैं; अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है। इसलिये उसमें प्राकृत पाञ्चभौतिक शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान्‌को उपनिषदमें अखण्ड ब्रह्मचारी बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये अवरुद्धसौरत आदि शब्द आये हैं। फिर कोई शमा करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्‌के समल्पसे हुई थी। भगवानके शरीरमें जो रक्त-मांस आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्‌की योगमायाका चमत्कार है। गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका जो रमण हुआ वह सर्वथा दिव्य भगवत् लीला है, लौकिक काम-क्रीड़ा नहीं।

८) गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया। उनके पास स्वयं मन नहीं था। अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी, दिव्य मनकी सृष्टि की। योगेश्वरेश्वर भगवान श्रीकृष्णकी यही योगमाया है, जो रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है।

९) अभिन्नस्वरूप गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुत: वह सच्चिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कडुआ स्वाद है ही नहीं। इस लीलाकी नकल किसीको नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। मायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवानका अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कडुए तूँबेको चाहे जैसी सुंदर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कडुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहग्रस्त मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अंतरंग लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसास्वादन करना चाहा या चाहते हैं, उनका घोर पतन हुआ है और होगा। श्रीकृष्णकी इन लीलाओंका अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। शुकदेवजी ने कहा- भगवान्‌के उपदेश तो सबको मानने चाहिये, परंतु उनके सभी आचरणोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

१०) जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको केवल मनुष्य मानते हैं और केवल मानवीय भाव एवं आदर्शकी कसौटीपर उनके चरित्रको कसना चाहते हैं, वे पहले ही शास्त्रसे विमुख हो जाते हैं, उनके चित्तमें धर्मकी कोई धारणा ही नहीं रहती और वे भगवान्‌को भी अपनी बुद्धिके पीछे चलाना चाहते हैं। इसलिये साधकोंके सामने उनकी युक्तियोंका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जो शास्त्रके श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं इस वचनको नहीं मानता, वह उनकी लीलाओंको किस आधारपर सत्य मानकर उनकी आलोचना करता है- यह समझमें नहीं आता। जैसे मानवधर्म, देवधर्म और पशुधर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवद्धर्म भी पृथक् होता है और भगवानके चरित्रका परीक्षण उसकी ही कसौटीपर होना चाहिये। भगवान्‌का एकमात्र धर्म है- प्रेमपरवशता, दयापरवशता और भक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति। यशोदाके हाथोंसे ऊखलमें बँध जानेवाले श्रीकृष्ण अपने निजजन गोपियोंके प्रेमके कारण उनके साथ नाचें, यह उनका सहज धर्म है।

११) जब गोपियाँ श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वनमें जाने लगी थीं, तब उनके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें जानेसे रोका था। रातमें अपनी बालिकाओंको भला कौन बाहर जाने देता। फिर भी वे चली गयीं और इससे घरवालोंको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई। और न तो उन्होंने श्रीकृष्णपर या गोपियोंपर किसी प्रकारका लाञ्छन ही लगाया। उनका श्रीकृष्णपर, गोपियोंपर विश्वास था और वे उनके बचपन और खेलोंसे परिचित थे। उन्हें तो ऐसा मालूम हुआ मानो गोपियाँ हमारे पास ही हैं। इसको दो प्रकारसे समझ सकते हैं। एक तो यह कि श्रीकृष्णके प्रति उनका इतना विश्वास था कि श्रीकृष्णके पास गोपियोंका

रहना भी अपने ही पास रहना है। यह तो मानवीय दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह है कि श्रीकृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी, गोपोंको वे घरमें ही दीखती थीं। किसी भी दृष्टिसे रासलीला दूषित प्रसङ्ग नहीं है, बल्कि अधिकारी पुरुषोंके लिये तो यह सम्पूर्ण मनोमलको नष्ट करनेवाला है। रासलीलाके अन्तमें कहा गया है कि जो पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रासलीलाका श्रवण और वर्णन करता है, उसके हृदयका रोग-काम बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्‌का प्रेम प्राप्त होता है।

१२) संसारके समस्त प्राणियोंको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए श्रीकृष्ण का मनुष्यावतार हुआ। इस अवतार का उद्देश्य यही है कि जो जहाँ हैं, जैसे हैं, वे वहाँसे वैसे ही कृष्णकी ओर आकृष्ट हो जायें। विषयी विषय देखकर, अर्थी अर्थ देखकर, कामी काम देखकर और जीवन्मुक्त उनको अपनी आत्माके रूपमें आस्वादन करके उनकी ओर आकृष्ट हों। अपने प्रेममें मग्न करनेके लिए ही भगवानका अवतार हुआ है। भगवान ने ऐसी लीला की है जिससे कि उस लीलाका श्रवण करके मनुष्य का मन संसार से उठ जाय, दोष-दृष्टि किये बिना ही, विवेक किये बिना ही वैराग्य हो जाय और भगवान में मन लग जाय।

१३) रासलीला की समाप्ति पर जब ये गोपियाँ घर लौटीं तब योगमाया द्वारा वे मायिक गोपियाँ अन्तर्हित कर ली गयीं, यह भगवान् की अद्‌भुत जगन्मोहिनी लीला थी। इसमें परकीयाओं की गन्ध भी न थी। उनके विहार स्थान भाण्डीरवन, श्रीवन, कन्दम्बकानन, नारिकेलवन, पूगबन, निम्बारण्य, मधुवन, कुन्दवन, बिल्ववन आदि ३३ वन थे इस प्रकार विचार करने पर रासलीला प्रकरण में भगवान पर यद्यपि किंचिन्मात्र भी आक्षेप का अवसर नहीं। तथापि ऐसी लीलाओं के बाह्य प्रदर्शन की आत्माराम भगवान को आवश्यकता क्या थी? इसका सीधा समाधान है काम के गर्व का नाश।

१४) मनुष्य की बुद्धि संकीर्ण है, बुद्धि में जड़त्व है, काम है, इसलिए वह उसी काम का दर्शन संसार में करता है। शुकदेवजी जैसे ब्रह्मनिष्ठ, जिनके सब देहावरण छूट गये हैं, वे काम-कथा कैसे करेंगे? परीक्षित्, जिसे सातवें दिन मृत्यु तक्षक डँसने की तलवार सिर पर खड़ी है, उसे कामकथा में रस कहाँ से होगा? रास में निराकार आनन्द नराकार हुआ है। चित्त जब वासनाशून्य होता है, तब वह हरि का आनन्दमय अलौकिक रसानुभव करता है।

१५) यहाँ न कोई प्राकृतिक पुरुष था न कोई प्राकृतिक नारी थी। सहज दिव्य एक रस तथा अविकारी थे। अतुलनीय भाव रस का रुचि सुसाज था। सकल रमणी विशेष अनुचरियों के साथ रमणेश का अभिलय रमण था। तन से तन मन से मन चित्त से चित्त बुद्धि से बुद्धि मिलकर एक प्रकार हो गए दिव्य आत्मा परमात्मा दिव्य एक रस धारा में बह गए। भगवान कृष्ण परम परिपूर्ण आत्माराम प्रभु हैं। अपने अंगों के साथ रमण करके पूर्व महान तपस्या का वरदान फल स्वरूप अपनी पूर्ण स्वलयता प्रदान किए। यह न भव विषय था न प्राकृत माया थी। यह सब परम प्रभु कृष्ण की दया थी। सविकारी काम रसरति यह प्राकृत नर नारी का मिलन नहीं था। यह आत्मा परमात्मा का परम सुयोग था। आप ही आप के लिए परम रस भोग था। यह चिन्मय सहज रस का हुलास था। परमानन्द स्वरति महारास था।

१६) जिन्होंने अध्यात्मशास्त्र का स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धि-प्राप्त साधारण योगी भी कायव्यूह के द्वारा एक साथ अनेक शरीरों का निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानों पर उपस्थित रहकर पृथक-पृथक कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानों पर उपस्थित होकर अनेक यज्ञों में युगपत् आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरों के ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियों के साथ क्रीड़ा करें, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? जो लोग भगवान को भगवान नहीं स्वीकारते, वही अनेकों प्रकार की शंका-कुशंकाएँ करते हैं। भगवान की निज लीला में इन तर्कों का सर्वथा कोई महत्त्व नहीं है।

१७) प्यारे श्रीकृष्ण तो सदा बढ़ते रहने वाले और सदा नवीन रहनेवाले रस से परिपूर्ण हैं। वहाँ पर प्राकृत रूप का बिहार

नहीं होता श्रीकृष्ण का ब्रह्मचर्य तो सदा सदा ही अखण्ड होता है। महायोग माया उस रस को बढ़ाती है और वही लीला रस को सरस बना देती है। इसे सांसारिक काम-क्रीड़ा नहीं समझना चाहिए। इसका आनन्द तो श्रीकृष्ण की कृपा पाकर ही लिया जा सकता है। दृष्टि मात्र से जो भगवान संसार की रचना करते हैं उन्हीं भगवान ने रास की रात्रियों को दिव्य बनाया और उन्होंने रस को दिव्य रूप में बढ़ाया और इससे कृष्ण और गोपियों के दिव्य मन का मिलन हुआ। गोपियां जो सब कुछ श्रीकृष्ण को ही जानती हैं और सीमित वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करतीं क्योंकि उन्होंने तो श्रीकृष्ण प्रेम के असीम धर्म को अपना लिया है उन्हीं को ऐसे महारास के रस को पीने का सौभाग्य मिलता है। जिन्होंने जिस भाव से श्रीकृष्ण से प्रेम किया उन्होंने उसी भाव के अनुरूप रस का पान किया। जिन्होंने जैसे प्रेम और जैसी अनुकूल विचार धारा से पाना चाहा उसे प्रेम रस का दान करनेवाले श्रीकृष्ण ने वैसा ही दिया। श्रीकृष्ण तो रस रूपी अमृत के घनीभूत स्वरूप हैं और वे सुन्दर रस के राजा हैं। वे अपनी दिव्य रसमयी लीलाओं के द्वारा रसमय गुणों और स्वभाव को प्रगट करते हैं। गोपियों के प्रिय लगनेवाले उन्माद को श्रीकृष्ण बड़े विलक्षण ढंग से प्रगट करते हैं। उनको संसारी पुरुष संसारी जानता है किन्तु दिव्य पुरुष उसके द्वारा दिव्य माधुर्य रस में डूब जाते हैं। गोपियों का प्रेम कामना रहित है और किसी सांसारिक स्वार्थवश नहीं है। उसी पवित्र प्रेम को पाने के लिए साधना करो और रसमय गोलोकधाम को प्राप्त करो।

कैसा भी काव्य हो, कैसी भी कहानी हो, यदि उसमें नायिका नहीं तो वह नीरस है। नायक नायिका के संसर्ग से ही रस की अभिवृद्धि होती है। नायक एकमात्र श्रीकृष्ण हैं और नायिका मुकुट मणि श्रीराधिकाजी हैं।

इन दोनों के हास विलास तथा क्रीड़ा का नाम रास है। जो इन लीलाओं से घृणा करेंगे इन्हें सुनना ही न चाहेंगे उनकी बात दूसरी है। जो श्रीकृष्ण को प्राकृत पुरुष समझकर उनकी क्रीड़ाओं में प्राकृत बुद्धि करेंगे उन्हें प्रकृति की प्राप्ति होगी और जो उन्हें अप्राकृत लीला मानकर, श्रीकृष्ण को परात्पर प्रभु मानकर श्रद्धा सहित इन लीलाओं का मनन चिन्तन करेंगे, उन्हें प्रकृति से परे अप्राकृत दिव्य गोलोक की प्राप्ति होगी, जहाँ नित्य ही भगवान का रास होता रहता है। जो रस का ही लोक है।

यदि भगवान मानव रूप से इस अवनि पर अवतरित होकर ऐसी रसमयी दिव्य लीलायें न करते, तो संसार से सरसता का लोप ही हो जाता। कवि किस विषय पर कविता करता है। गायक क्या गाते, लेखक क्या लिखते और संसार किनके चरित्रों को गा-गाकर रस-विभोर होता।

चिदानन्द घनश्याम देह प्राकृत नहिँ तिनकी। गोपी शक्ति अनन्त दिव्य चिन्मय हैं उनकी॥
शक्तिमानतें शक्ति विलग होवे नहिँ ऐसे। ज्यों श्रीशिवतें शिवा विष्णुतें कमला जैसे॥
अपनेतें अपनो मिलै, कितनों सरस प्रसङ्ग हैं। मनमोहनतें मन मिल्यो, पुनि नहिँ दूसर अङ्ग हैं॥
जब तक प्राकृत भावना, तब तक होवे रास नहिँ। दिव्य देह होवे जबहिँ, गोपी बनि नाचे तवहिँ॥

सम्मिलन समान शीलों में ही होता है। दूध में पानी ही मिल सकता है, लोहा नहीं। प्राकृत नेत्र पदार्थों को ही देख सकते हैं। दिव्य वस्तु को देखने को दृष्टि भी दिव्य ही चाहिये। प्रकृति मिलने से ही मन मिलता है दोनों का शील स्वभाव एक-सा हो तभी रास की अभिवृद्धि होती है। श्रीकृष्ण जगमोहिनी माया से परे हैं, अत: उन्हें ये मायिक पदार्थ मोह नहीं सकते। वे तो इनसे निर्लिप्त हैं, दिव्यातिदिव्य हैं, अत: उन्हें मोहने के लिये दिव्यातिदिव्य माया चाहिये। मोहन को मोहनेवाली माया भी मोहन मोहिनी चाहिये। भगवान का श्रीविग्रह प्रकृति से परे हैं। उसमें प्राकृत शरीरों की भाँति स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण का भेद-भाव नहीं। वह तो चिन्मय है। उनके साथ रास क्रीड़ा प्राकृत शरीर से कैसे हो सकती है जैसे वे हैं वैसे ही उनके साथ रास करनेवाली हों, तब लीला साङ्गोपाङ्ग उतरे। तब उसमें सरसता का सञ्चार हो, इसीलिये रास प्राकृत शरीर से नहीं

किया जाता। करने की बात तो पृथक् है, प्राकृत देहाभिमानी को तो रासदर्शन का भी अधिकार नहीं।

भगवान प्राकृत नहीं चिन्मय हैं, दिव्य हैं। अस्खलित वीर्य हैं। अच्युत हैं। प्रकृति के गुणों से परे हैं। उसकी बार-बार की इस बात को न मानकर केवल रास पर ही दोष देना यह तो व्यर्थ का छिद्रान्वेषण है।

भगवान ने अधर्म नहीं किया। जीवधर्म और भगवद् धर्म में अन्तर है। जीव माया के बन्धन में बद्ध है। भगवान प्रेम के बन्धन में बँधे हैं। उनकी सब चेष्टायें प्रेम की अभिवृद्धि के ही निमित्त होती हैं। भगवान का कोई पर नहीं। सभी उनके हैं वे जो मन से सोचते हैं उसे ही वचन से कहते हैं उसे ही करते हैं। उनका सोचना सृष्टि की उत्पत्ति हैं। कथन शास्त्र है और कर्म लीला है। ये सब अप्राकृत हैं। भगवान शिक्षा देने को लीला नहीं करते हैं। लीलाधारी होने से लीला करना उनका स्वभाव है। अपनी प्रकृति के अनुसार उनकी लीलाओं से जो जैसी चाहें शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। उनकी समस्त लीलायें प्रेम के ही निमित्त होती हैं। भगवान कर्मों के अधीन होकर शरीर धारण नहीं करते, अत: उन्हें किसी भी कर्म से बन्धन नहीं होता। उन्हें न पाप लगता है, न पुण्य। भगवान रसरूप हैं, अत: रसीली लीला करना ही उनका स्वभाव है। श्रीकृष्ण के विरुद्ध तो वह हो जो उनके अधीन न हो। सबको तो वे ही नचा रहे हैं। जब जिसकी जैसी बुद्धि करना चाहें कर दें। वे माया के अधीश्वर हैं, सबके नियामक हैं। फिर उनके विरुद्ध कर ही कौन सकता है।

दिव्य देहतें रास रच्यो गोपी प्रभुके सँग। पतिशैयापे परे रहे प्राकृत तिनके अँग।।
तातें निंदा नहीं करीं काहूने उनकी। समुझि सके को दिव्य रहसमय लीला तिनकी।।
हरिके रास विलासमहँ, दोषारोपन जे करहिँ। कहें जाहि व्यभिचार जे, ते पापी नरकनि परिहिँ।।

संसार में ऐसा कौन होगा जिसका चित्त कभी भी चंचल न होता हो। उस चंचल चित्त को चित्तचोर की रासलीलाओं में लगा देना यही रास का मुख्य उद्देश्य है। भगवान पाप पुण्य से परे हैं, उनकी लीलायें दिव्य चिन्मय हैं। उनके चित्त के मन की मलिनता शनै:-शनै: दूर होती है।

शुकदेव बोले- राजन्, जब ब्रह्म मुहूर्त हो गया, तब भगवान की आज्ञा पाकर उनकी प्रेयसी गोपिकायें इच्छा न रहने पर भी अपने-अपने घरों को गयीं।

यों वृन्दावन माँहि रास अति रसमय कीयो। धरि नर-वपु अति सुघर परमसुख गोपिनि दीयो।।
रासकी सरिता सुखद श्यामने सतत बहाई। लीला जो गोलोक होहि सो अबनि दिखाई।।
करि करि क्रीड़ा कामकी, करी कृतारथ कामिनी। होहिँ सुमिरि सब सुखी नर, लीला अति मन भवानी।।

दिव्य काम से प्राकृत काम नष्ट हो जाता है। यही रासलीला श्रवण का महान् माहात्म्य है।

जो नर श्रद्धा सहित रासलीलाकूँ गावें। पढ़ें सुनें सुख लहें अन्तमहँ प्रभुपद पावें।।
बार बार जे प्रेमतैं, गद्य पद्यमहँ गायँगे। तिनके हियके रोग सब, काम क्रोध नसि जायँगे।।

प्रेम की दिव्य यही रीति है प्रेम जो एक ही भूख सदैव रखती हुए बाकी सम्पूर्ण भूखों को मिटा देती है। बस एक ही अपने सर्वस्व प्रियतम की सुधि सदैव रहती है तथा बाकी सब प्रकार की सुधि बुधि नहीं रह जाती है। समस्त गोपियों का चित्त हमेशा अपने प्राण प्रियतम में ही रहता था। वे सब शरीर से तो कर्त्तव्य कार्य करती थी लेकिन उनके मन में रुचि कुछ भी नहीं थी। बस हमेशा अपने छैल छबीले का चिन्तन करती थीं तथा उन्हीं की हमेशा लीला गाती और सुनती थी।

जिसका आविर्भाव एकमात्र रसाभिव्यक्तिके लिये ही हुआ था, वह महारास तो मानो सर्वथा माधुर्यका ही विलास था। प्रभुकी रासक्रीड़ा जैसी मधुर है वैसी ही रहस्यमयी भी है। उसके भीतर जो गुह्यातिगुह्य रहस्य निहित है, वह आपातत: दृष्टिगोचर नहीं हो

सकता। वह इतना गूढ है कि उसमें जितना प्रवेश किया जाता है, उतना ही अधिकाधिक दुरवग्राह्य प्रतीत होता है।

२४) विद्याधर सुदर्शन का उद्धार- शुकदेव बोले- परीक्षित्, शिवरात्रि का अवसर था। अत: नन्द बाबा आदि सारे गोप-गण ने बैलगाड़ियों पर सवार होकर अम्बिकावन के लिये प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने सरस्वती नदी में स्नान किया फिर नाना प्रकार की सामग्रियों से भक्तिपूर्वक भगवान शमर एवं जगदम्बा दुर्गा की पूजा आराधना की।

वहाँ उन्होंने देवाधिदेव भगवान शमर की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों को सादर मधुर भोजन करा कर उन्हें गायें, सुवर्ण और वस्त्र आदि प्रदान किया।

श्रीनन्दनन्दनने महाशिवरात्रिका निर्जल व्रत किया है। अभी नौ वर्ष, छ: मास, छ: दिनकी अल्पवय और इसमें इतना आग्रह व्रतके प्रति, ऐसी श्रद्धा, इतना उत्साह। सबने आज निर्जल व्रत किया है।

सारे गोप शिवरात्रि का व्रत कर रहे थे अत: वे लोग जल पीकर रात्रि की बेला में सरस्वती नदी के तट पर ही नि:शम सो गये। वहाँ एक विशालकाय अजगर निवास करता था। उस दिन वह भूखा भी बहुत था। दैवात् वह उधर ही आ निकला और सोये हुए बाबानन्द को पकड़कर उन्हें निगलना शुरू किया। नन्द चिल्लाने लगे- बेटा, कन्हैया मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मुझे अजगर निगल रहा है अत: बचाओ, बचाओ। यह सुनकर गोप-गण दौड़ पड़े और जलती लकड़ियों से उस पर प्रहार करने लगे किन्तु इसका प्रभाव अजगर पर कुछ भी न हुआ उसने नन्द को नहीं छोड़ा। इसी समय भक्त-भय-हारी भगवान श्रीकृष्ण ने वहाँ पहुँचकर अपने चरणों से उस अजगर को छू दिया, भगवान के चरण का स्पर्श पाते ही उसने अजगर के शरीर को छोड़कर दिव्य विद्याधर शरीर को धारण कर लिया।

विद्याधर ने दिव्य रूप को धारण कर हाथ जोड़ कर सादर भगवान को प्रणाम किया। भगवान ने उससे पूछा- आप कौन है? आप को यह निन्दनीय सर्प-योनि कैसे प्राप्त हुई? यद्यपि भगवान को सब कुछ विदित था फिर भी संसार को सुनवाने के लिये उन्होंने इस प्रकार का प्रश्न किया।

तुम स्वरूप सुन्दर महा उपमा कही न जाय। सर्परूप काहे धरेउ हमसे कहो समुझाय।।

निर्गत पुरुष ने कहा- प्रभो, मैं पहले एक विद्याधर था मेरा नाम था- सुदर्शन। मैं विमान पर आरूढ होकर चतुर्दिक् विचरण किया करता था। एक दिन मैंने अंगिरा गोत्र के कुरूप ऋषियों को देखा। अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर मैंने उनकी हँसी उड़ाई। मेरे इस अपराध पर कुपित होकर उन लोगों ने मुझे अजगर योनि में जाने का शाप दे दिया। यह मेरे पापों का ही फल था किन्तु स्वामिन्, यह उनका शाप नहीं, मेरे ऊपर अनुग्रह था। उसी के फलस्वरूप अति दुर्लभ आपके चरण के स्पर्श का सौभाग्य आज मुझे मिला। आप सारे लोकों के स्वामी हैं। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। अच्युत, आपके दर्शनमात्र से ही मैं ब्राह्मणों के शाप से मुक्त हो यगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं; क्योंकि जो पुरुष आपके नामों का उच्चारण करता है, वह अपने-आप को और समाज के श्रोताओं को भी तत्काल पावन बना देता है फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरण-कमलों से स्पर्श किया हैं।

ताहि शाप कैसे कहौं वह तो भई अशीश। जेहि प्रताप जगदीश के पगलागे ममशीश।।

यह कहकर वह भगवान को प्रणाम कर स्वर्ग चला गया। इस दृश्य को देखकर सभी गोप आश्चर्य से चकित हो गये। नन्दका प्राण संकट समाप्त हुआ। सभी व्रजवासी प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण का गुण-गान करते हुए व्रज को लौट गये।

२५) शफ्चूड़ का उद्धार- वसन्त ऋतु की चाँदनी रात थी। दुग्ध-धवल चन्द्रिका चारों ओर छिटक रही थी। भगवान श्रीकृष्ण और महान बलशाली बलराम वन में अपने-अपने दल की गोपियों के साथ विहार कर रहे थे। नृत्य करते हुए वे सुमधुर शब्दों में गाना भी गा रहे थे। उस समय वृन्दावन में नृत्य और गीत की गंगा बह रही थी।

चाँदनी रात्रियाँ थीं, परम सुकुमारी व्रजनारी, रूप की उजारी, बहुत-सी सखियाँ साथ थीं। वे चन्द्रमुखी, मृगनयनी, कोकिलकंठी कामिनियाँ अपने कलकंठ से श्रीकृष्ण की कलितकीर्ति का गान कर रही थीं। उसी समय कुबेर का एक अनुचर वहाँ आ पहुँचा। उसका नाम था- शफ्चूड़। परीक्षित्, दोनों भाइयों के देखते-देखते वह कुछ गोपियों को पकड़ कर उत्तर दिशा की ओर भाग चला। उसने कृष्ण की प्रेयसी शतचन्द्रानना नामवाली गोप सुन्दरी को पकड़ कर उत्तर दिशा की ओर भाग गया। कृष्ण और बलराम ने इसे देखा। गोपियाँ कृष्ण और बलराम का नाम ले-ले कर बचाने के लिये चिल्ला रही थीं।

तुम्हरे करुणा वचनसुनि मैं आया हूँ धाय। शंखचूड़ सिरचूर करि तुमको लेब छुड़ाय।।

अपनी गोपियों की चिल्लाहट सुनकर दोनों भाई- डरो मत, डरो मत, ऐसा कहकर विशाल शाल वृक्षों को उखाड़ कर बड़े वेग से उसके पीछे दौड़े। कृष्ण और बलराम को अपनी ओर आता देखकर शफ्चूड़ गोपियों को छोड़ कर अपना प्राण बचाने के लिये दूसरी ओर भाग चला।

डरो मत, मेघ गर्जनके समान दो स्वर साथ सुनायी पड़े तो यक्षने पीछे मुड़कर देखा और उसकी रही-सही बुद्धि, शक्ति भी समाप्त हो गयी। समूल शाखाओं सहित विशाल शाल-वृक्ष सामान्य लकुटोंके समान करोंमें उठाये पूरे वेगसे जो गौर-श्याम दौड़े आ रहे थे, यक्षको लगा कि स्वयं महाकाल दो रूप धारण करके उसीके पीछे आ रहे हैं। अब प्राणभय- प्राण किसी प्रकार बचानेकी एकमात्र इच्छा रह गयी। व्रज सुन्दरियोंको उसने छोड़ दिया और अकेला भागा।

श्रीकृष्ण ने स्त्रियों की रक्षा के लिये बलराम को छोड़कर उसका पीछा किया। कुछ ही दूर जाने पर भगवान ने उसे पकड़ लिया और उस दुष्ट के सिर पर कस कर एक घूँसा जमाया जिससे उसका सिर टूटकर अलग जा गिरा। भगवान ने उसके सिर की मणि लाकर गोपियों के सामने ही बड़े भाई बलराम को प्रदान कर दी।

शंखचूड गोलोक में भगवान श्रीकृष्ण का श्रीदामा नामका गोप था। एक समय लीला-विकास के लिये भगवान् विरजा नामक गोपी के साथ विहार कर रहे थे। राधा को यह सह्य नहीं हुआ। वे कोप कर बैठीं। भगवान ने अनुनय-विनय कर किसी-किसी तरह राधा को मनाने का प्रयास किया। वे प्रसन्न हो ही रही थीं कि श्रीदामा ने कुछ कह दिया। इस पर कुपित होकर राधा ने उसे शाप दिया- दुष्ट बुद्धिवाले व्यकित, तूँ गो-लोक से चला जा और राक्षस बन जा। राधा के इसी शाप के कारण श्रीदामा अलकापुरी में सुधन की पत्नी से पैदा होकर कुबेर का अनुचर बना।

राधा के शाप से श्रीदामा जो शंखचूड दानव के रूप में जन्मा था वह तुलसी का, वृन्दा का पति था। शंखचूड का वध शंकर के त्रिशूल से हुआ था।

२६) युगल गीत- गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः। कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान्।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान श्रीकृष्णके गौओंको चरानेके लिये प्रतिदिन वनमें चले जानेपर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था। उनका मन श्रीकृष्ण का चिन्तन करता रहता और वे वाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्। कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।।२।।

व्योमयानवनिता: सह सिद्धै- र्विस्मितारतदुपधार्य सलज्जा: । काममार्गणसमर्पितचित्ता: कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्य: ।।३।।

गोपियाँ आपसमें कहतीं- अरी सखी । अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटता देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं । पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभरमें ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं । उन्हें इस बातकी भी सुधि नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ।।२-३ ।।

गिरधर मुरली मधुर बजावैं । कर कपोल धर राग अलापत, बाँकी भ्रुकुटि नचावैं ।।
मुख फूँक्त मुरली को पुनि पुनि, छेदनि अँगुरि फिरावें । सुनत मधुर स्वर सुरललना गन, सुमन सरनि विंधि जावैं ।।
खिसकति नीवी सुमन झरत कच, खुलि इत उत फहरावैं । लज्जावश विस्मित-सी व्हैकें, तनु सुधि बुधि बिसरावैं ।।
कोकिलकंठी सुमरि सुमिरि हरि, नयननि नीर बहावैं । धन्य धन्य व्रज की वे वनिता, नित गोविँद गुन गावैं ।।

हन्त चित्रमबला: श्रृणुतेदं, हारहास उरसि स्थिरविद्युत् । नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणु: ।।४ ।।
वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो, वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् । दन्तदष्टकवला धृतकर्णा, निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ।।५।।

मुरलीवाले मुरली बजा, सुन-सुन मुरलीकी धुन पर नाचे जियां.....

दूसरी सखी ने कहा क्यों बाँसुरी की ऐसी बड़ाई न हो, जिसका हाथ श्यामसुन्दर पकड़ें वह तीनों लोकों का मालिक हो सकता है । मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है जो वंशी ध्वनि सुनकर अचेत न हो जावें । उसके शब्द पर ब्रह्मादिक देवता व ऋषीश्वर मोहित होकर यह इच्छा रखते हैं कि हम लोगों को परमेश्वर मनुष्य का जन्म वृन्दावन में देते तो आठों प्रहर श्यामसुन्दर का दर्शन करने व मुरली सुनने से आनन्द होकर हरिचरणों की धूरि अपने सिर व आँखों पर लगाते । उसी तरह देवताओं की स्त्रियाँ अपने-अपने पति के साथ रहने पर भी उस बाँसुरी के बोल पर मोहित हो जाती हैं ।

दूसरी सखी बोली कि मनुष्य और देवता तो ज्ञानवान हैं वे बाँसुरी की ध्वनि पर मोहित हो गये तो कौन बड़ी बात है, उस मुरली का शब्द सुनकर पशु-पक्षी चरना और उड़ना भूलकर चित्रकारी से खड़े रह जाते हैं, किसी से नहीं भड़कते ।

दूसरी ने कहा कि हे प्यारियों, मुरली के शब्द में ऐसा गुण है कि कोई कैसी ही चिन्ता में बैठा हो उसका बोल सुनते ही प्रसन्न हो जाता है ।

फिरिये या के संगलगि लोकलाज घर त्यागि । जबजब सोजहँबाजिहै मोहन के मुख लागि ।।

दूसरी ब्रजबाला ने कहा कि वह बाँसुरी बड़ी चतुर व कूटनी है । जिस समय श्रीकृष्ण को किसी की चाह होती है उस समय वह बाँसुरी बजाकर उसे अपने पास बुला लेते हैं । यमुनाजल भी वह शब्द सुनकर बौराय जाता है । इसीलिये लहर की बेड़ियाँ उसके पाँव में पड़ी हैं । वृक्षों की डाली जो नीचे-ऊपर लिपटी रहती हैं वह भी बाँसुरी सुनने से अचेत हो गई हैं । कमल का फूल भी उसी शब्द पर मोहित होकर मतवालों की तरह आठों प्रहर अपना सिर हिलाता है । बादल उसी ध्वनि पर मोहित होकर विरहियों की तरह रोकर आँख से पानी बरसाता है ।

मोहन मुरली मधुर बरसावति । मत्त करति महिलनिके मनकूँ, कुलकी कानि नसावति ।।
अचर सचर अरु सचर अचर करि, विधि की रेख मिटावति ।

सुनि व्रजवनिता यमुना सरिता, गति मति सब विसरावति ।।
दर्शन दाबि तृन हरिन बधूटी, सुनि धुनि दौरी आवति ।
धेनु छोरि तृन वेनु श्रवनि करि, श्रवननि शंकि उठावति ।।
चित्र लिखित सब इक टक ठाढ़ीं, पलकनि नाहिँ हिलावति ।
लाज, काज घरके छुड़वावति, हठि बन बैनु बुलावति ।।

दूसरी गोपी बोली- मैं जानती थी कि श्यामसुन्दर केवल लड़कपन के खेल में बड़े चतुर हैं, पर अब मुझे मालूम हुआ कि गाने-बजाने में भी कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता। दूसरी व्रजबाला ने कहा कि ब्रह्मा और महादेव आदि देवता व बड़े-बड़े ऋषीश्वरों व ज्ञानियों का ध्यान वंशी सुनकर इस तरह छूट जाता है जिस तरह कोई नींद से जाग उठे। दूसरी गोपी बोली- मुरली हमारी सौत श्यामसुन्दर को ऐसी प्यारी है कि दिन-रात उसको अपनी छाती से लगाये रहते हैं। पिछले जन्म मुरली ने बड़ा भारी तप किया था जिसके प्रताप से मोहनप्यारे को अपने वश कर लिया।

आली हम अबला हतभागिनि। बोलि न सकैं श्यामतैं मुँह भरि, करि न सकैं पालागनि ।।
जब हरि रूप निहारति इकटक, अखियाँ जल भरि वैरिनि। विघन करत निरखन नहिँ देवै, झाँपैं आँसू नैननि ।।
इत उत निरखि परसि पग डरपैं, सासु जिठानी ननदनि। दीखें बूढ़े बड़े दूरितैं, हठि हम ढाँकें बदननि ।।
हम समान यमुना हू अबला, चूमन चाहे चरननि। किन्तु न चूमि सके बनि निश्चल, रोकति तुरत तरंगनि ।।

दूसरी सखी ने कहा- हे प्यारियों, मुरली का क्या अपराध है, यह सब कठोरता नन्दलालजी की समझनी चाहिये। उन्होंने नारी प्रीति छोड़ दी और नीच जाति वंशी को अपनी रानी बनाकर रक्खा। दूसरी व्रजबाला बोली कि मुरली बाँस के तनु में जन्म पाकर एक पैर से खड़ी रही। बरसात गर्मी सर्दी का दु:ख अपने ऊपर उठाकर परमेश्वर का तप किया। फिरा अपना पोर-पोर कटवाया और अग्नि की गर्मी सहकर अपने अंग-अंग में छेद कराया। इतना दु:ख उठाकर उसने त्रिलोकीनाथ को अपने वश किया है। इसीलिये तीनों लोकों के जीव उसके शब्द पर मोहित हो जाते हैं। हम लोगों को क्या सामर्थ्य है जो उसकी बड़ाई व बराबरी कर सकें। जब उसके समान तुम लोग भी तप करो तब मोहनप्यारे तुम्हारे साथ भी वैसी प्रीति कर सकते हैं। उनका पाना सहज मत समझो। जब हम लोगों ने श्यामसुन्दर के मिलने के लिए व्रत किया तब उन्होंने हमारे चीर छिपाकर हमको नंगी देखा था। यह अपने-अपने भाग्य का फल है।

दूसरी गोपी ने कहा- मुरली से प्रीति रखने में हमारे लिए भी अच्छा है। उसके साथ वैर करने में कुछ फल नहीं मिलेगा। इसलिए वंशी से डाह न करना चाहिए। हम लोग केशवमूर्ति के साथ बालपन से प्रीति रखती हैं। उनके चरणों का स्मरण व ध्यान करने से तुम्हारा अर्थ भी सिद्ध होगा।

जो हम व्रजकी रज बनि जातीं। तो निशंक ह्वै आली। हरिके, अंगनिमहँ लपटातीं ।।
प्रिय पद सरसि पुलकि सँग धावति, तनिक न लोक लजातीं।
अलक पलक अरु झलक कपोलनि, की द्युति अधिक बढ़ाती ।।
जो घन बरसत पंक होहि पग, प्यारे के सटि जातीं।
लोक वेद कुल कानि न मानति, द्वारेपै जमि जातीं ।।
देखत देखत सबके निर्भय, श्याम परस सुख पातीं।
घूँघट पटकी ओट न निरखति, नैंननिमें भरि जातीं ।।

दूसरी व्रजबाला बोली कि वंशी श्यामसुन्दर के ओठों का अमृत पीकर अमर हो गई, इसी लिये अपना बोल सुनाकर हम लोगों को ज्ञान सिखलाती है। यह वचन सुनते ही राधाप्यारी श्रीकृष्ण के विरह में डूबकर रोने लगी। तब दूसरी गोपी ने उससे कहा कि तू उदास मत हो, श्रीकृष्ण तेरे ऊपर मोहित होकर तेरा नाम बाँसुरी में बजाते हैं। तू रानी है और मुरली तेरी दासी है। हम लोग वृथा बाँसुरी को सौति जानकर उससे वैर रखती हैं। मोहनप्यारे ने मुरली को सब गुणनिधान समझकर उससे प्रीति लगाई है।

दूसरी गोपी ने कहा- हे सखी, मोहनप्यारा चित्तचोर वृन्दावन में ग्वालों के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए गौ चराता फिरता होगा और वंशी की ध्वनि सुनकर सब गौ इकट्ठी हो गई होंगी। दूसरी सखी बोली कि मोहनप्यारे ऐसे सुन्दर हैं, जिनके मुख से हँसते समय फूल झरते हैं। उनका मोहनीरूप देखकर और वंशी सुनकर कामदेव हमारे वश में नहीं रहता। बाँसुरी का शब्द सब जीवों के पैर में ऐसी बेड़ी डाल देता है कि किसी को चलने की सामर्थ्य नहीं रहती।

अरी गोपियों। तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो ? ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर देती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं। अरी वीर। उनके वक्ष:स्थलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी किरणें चमकने लगती हैं। उनके वक्ष:स्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुखीजनोंको सुख देनेके लिये, विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब व्रजके झुंड-के-झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी। दाँतोंसे चबाया हुआ घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो सो गये हैं या केवल भींतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है।।४-५।।

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै- र्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्ब:। कर्हिचित् सबल आलि स गौपे- गा: समाह्वयति यत्र मुकुन्द:।।६।।
तर्हि भग्नगतय: सरितो वै, तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम्। स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्या: प्रेमवेपितभुजा: रितमिताप:।।७।।

हे सखि। जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिर पर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली अलकोंमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग अंग रंग लेते हैं और नये-नये पल्लवोंसे ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियों। नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायँ, परन्तु सखियों। वे भी हमारेही जैसी मन्दभागिनी हैं। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती हैं और जड़तारूप सञ्चारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं।।६-७।।

अनुचरै: समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूति:। वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-र्वेणुनाऽऽह्वयति गा: स यदा हि।।८।।
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णु व्यज्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्या:। प्रणतभारविटपा मधुधारा: प्रेमहृष्टतनव: ससृज: स्म।।९।।

अरी वीर। जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्योंके स्वामी भगवान् नारायणकी शक्तियोंका गान करते हैं, वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम ले-लेकर पुकारते

हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ उँड़ेलने लगती हैं ।।८-९ ।।

दर्शनीयतिलको वनमाला- दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः । अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-माद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ।।१०।।
सरसि सारसहंसविहङ्ग- श्चारुगीतहृतचेतस एत्य । हरिमुपासत ते यतचित्ता, हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ।।११।।

अरी सखी । जिनती भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखने योग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं- ये हमारे मनमोहन । उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है- बस, देखती ही जाओ । गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वन-माला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के-झुंड भौंरे बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं । हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हींके स्वरमें-स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं । उस समय सखि । उस मुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है । वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं- मानो कोई विहङ्गम-वृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है ।।१०-११ ।।

सहबल- स्त्रगवतंसविलासः, सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः । हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण, जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ।।१२।।
महदतिक्रमणशमितचेता, मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः । सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभि- श्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ।।१३।।

अरी व्रजदेवियों । हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजी के साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगत्को हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं । बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं- उस समय श्याम मेघ बाँसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है । उसके चित्तमें इस बातकी शमा बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा । सखी । वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता लेता है, उनका छत्र बन जाता है । अरी वीर । वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है- नन्ही-नन्ही फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो । कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ।।१२-१३ ।।

विविधगोपचरणेषु विदग्धो, वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः । तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ।।१४।।
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः । कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ।।१५।।

सतीशिरोमणि यशोदाजी । तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालोंके साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं । रानीजी । तुम्हारे लाडले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं । देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं । अपने ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं । जब वे अपने बिम्बा-फल सदृश लाल-लाल अधरोंपर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शमर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी- जो सर्वज्ञ हैं- उसे नहीं पहचान पाते । वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर वंशी-ध्वनिमें तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध

खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं।।१४-१५।।

यशुमति, मुरली हरि कहँ पाई। कौने कान छेदिकें जाकूँ, नककनछिदी बनाई।।
कौने मलि मलि चिकनी कीन्ही, कौने सौति पढ़ाई। कौने दई श्यामके करमहँ, मोहनकूँ च्यौं भाई।।
जादू टौंना जिह कहँ सीखी, कौने कला सिखाई। जाके मुखपै मुखकूँ धरिकें, गावत गीत कन्हाई।।
बाजे तजे मुरुज वीणा वर, लकरी च्यौं अपनाई। मैया तेरे सुतकी मुरली, व्रजवनितनि दुखदाई।।

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र- नीरजामुशविचित्रललामै:। व्रजभुव: शमयन् खुरतोदं, वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणु:।।१६।।
व्रजति तेन वयं सविलास- वीक्षणार्पितमनोभवावेगा:। कुजगतिं गमिता न विदाम:, कश्मलेन कबरं वसनं वा।।१७।।

अरी वीर। उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, वज्र, कमल अमुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिन्ह हैं। जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगतसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमका, मिलनकी आकांक्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड वृक्ष हों। हमें तो सब बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वस्त्र उतर गया है या है।।१६-१७।।

मणिधर: क्वचिदागणयन् गा, मालया दयितगन्धतुलस्या:। प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे, प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र।।१८।।
क्वणितवेणुरवावञ्चितचित्ता:, कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्य:। गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो, गोपिका इव विमुक्तगृहाशा:।।१९।।

अरी वीर। उनके गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णासार मृगोंकी पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ जाती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटनेका नाम भी नहीं लेतीं।।१८-१९।।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो, गोपगोधनवृतो यमुनायाम्। नन्दसूनुरनघे तव वत्सो, नर्मद: प्रणयिनां विजहार।।२०।।
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं, मानयन् मलयजस्य रसेन स्पर्शेन। वन्दिनस्तुमुपदेवगणा ये, वाद्यगीतबलिभि: परिवव्रु:।।२१।।

नन्दरानी यशोदाजी। वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाड़ले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह-तरहसे हास-परिहास-के द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी भेटें देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं।।२०-२१।।

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो, वन्द्यमानचरण: पथि वृद्धै:। कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते, गीतवेणुरनुगोडितकीर्ति:।।२२।।
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना- मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्त्रक्। दित्सयैति सुहृदाशिष एष, देवकीजठरभूरुडुराज:।।२३।।

अरी सखी। श्यामसुन्दर व्रजकी गौओंसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गोओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायमाल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शमर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमालापर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आल्हादित करने- वाले चन्द्रमा हम प्रेमी जनोंकी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं।।२२-२३।।

मदविघूर्णितलोचन ईषन्- मानद: स्वसुहृदां वनमाली। बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या।।२४।।
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते। मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं, मोचयन् व्रजगवां दिनतापम्।।२५।।
बनतैं आवत श्रीगिरिधारी। सबहि श्रवन दै सुनहु सहेली, बजी बाँसुरी प्यारी।।
धेनु खुरनिकी धूरि उड़ति नभ, कोलाहल अति भारी। गावत गीत ग्वाल सब मिलिकें, नाचत बीच बिहारी।।
मलिन मुखी हम निशि सम नारी, बिनु हरि सदा दुखारी। कृष्णचन्द्र ब्रजचन्द्र खिलें नभ, तब हम चन्द्र उजारी।।
मिटै ताप सन्ताप तबहिँ जब, दृष्टि परैं बनवारी। चलो चलें चितचोर विलोकें, ठाढ़े कृष्ण मुरारी।।

सखी। देखो कैसा सौन्दर्य है। मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती है। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलों को अलमृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है। और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें बिदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी। व्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस सन्ध्या वेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका असह्य विरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं।।२४-२५।।

अब तो सखि सन्ताप विसारो। मन्द मन्द मुसकात मदन सम, सम्मुख श्याम निहारो।।
अरुन नयन मदमाते मनहर, मोर मुकुट सिर प्यारो। कोमल लोल कपोलनि ऊपर, कुंडल करत उजारो।।
शशि सम शीतल सुखद श्याम मुख, जीवन प्रान हमारो। रस बरसावत सैंन चलावत, गावत नन्द दुलारो।।
खोलो नयन विकलता त्यागो, मनमहँ धीरज धारो। आइ गये वनतैं अब तो हरि, तन मन तिनपै वारो।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार गोपियों का मन दिनभर कृष्ण में ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गईं थीं। प्रेम के प्रताप से व्रज की लीलाओं का गान करती हुई उन्हीं में रम जाती थीं। इस प्रकार उनके दिन व्यतीत हो जाते थे।

जिन चरननकी धूरि कौ, ब्रह्मादिक ललचात। वे ही गउअन सँग फिरैं, गो-रज रंजित गात।।
गउअनके सँग जात जब, मधुवन बाल मुकुन्द। गो-वृन्दनके सिन्धु ज्यों, बह्यौ जात गोविन्द।।
लीलाधर लीला करन, जब गोचरण जात। गो-परिकर गो-गोष्ठकी, गो-रज लिपटत गात।।
लीला मात्र न जानिये, है अति मरम विशाल। गो-विभूति गोलोककी, गोपालक गोपाल।।
इष्टदेव प्रभु सबहिके, जिनकी गउएँ सेव। तिनकी सेवा सौं स्वयं, चार पदारथ लेव।।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त ही प्रगाढ़ अनुराग था। उनके बिना उन्हें पल-पल युग के समान व्यतीत होता था। जिनका मन मदनमोहन की माधुरी में मिलकर तनमय हो गया है, उनके भाग्य की सराहना

कौन कर सकता है? उनका चित्त दूसरी ओर जाता ही नहीं था, जब श्यामसुन्दर उनके सम्मुख होते, तब वे अपलक भाव से उनकी रूप सुधा का पान करतीं। उनके संस्पर्श सुख से सभी सन्तापों को भूल जातीं। जब वे वन में चले जाते, तब मन से ही उनकी रूप-माधुरी का वेणुमाधुरी तथा लीला माधुरी का चिन्तन करतीं, वाणी द्वारा उनका गान करतीं। परस्पर में उन्हीं की चर्चा करतीं। उन सबमें राधा का भाव अलौकिक था, उन्हें तो श्याम बिना समस्त संसार सूना-ही-सूना दिखाई देता। श्याम के बिना सुन्दर स्वादिष्ट भोजन उन्हें विषवत् प्रतीत होता; श्याम के बिना सुमन शैया शूल के सामन दिखाई देती। श्याम के बिना समस्त भोग राजरोग के सदृश दुखद प्रतीत होते। गोपियों का काम था श्रीजी को निरन्तर श्यामचर्चा सुनाती रहें, अत: कोई क्षण गोपियों का ऐसा नहीं बीता था, जिससे श्याम उनके सम्मुख न रहें, नन्दनन्दन उनके नयनों में समाये रहते, वे कसकर नयनों को मूँद लेतीं, जिससे श्याम नयनों से निकलकर कहीं भाग न जायँ। इस प्रकार वे रमणियाँ निरन्तर रासेश्वर के ही साथ रमण किया करती थीं।

हरि लीला आहार पान करि काल बितावें। सब कछु कारज करें किन्तु नहिँ कृष्ण भुलावें।।

हमारे अति भाग्य हैं हम धन्य-धन्य हैं मेरे सुयश को तीनों लोकों में विख्यात कर दिया। जिस प्रकार ईंधन में अग्नि व्याप्त रहती है उसी प्रकार आप अव्यक्त स्वरूप व्याप्त रहते हैं। आप ही सबके कर्ता-धर्ता है। आप ही सम्पूर्ण जग के संहर्ता हैं तथा सबके परम मूल गति हैं। अपने जनों के हित के लिए देवों ब्राह्मणों गौ धरती के हित के लिए हे करुना निधान आप हमारे घर प्रगट हुए हैं। हे अखिल भुवन पति अग जग के स्वामी परमेश्वर आपको नमस्कार है।

गोकुल की गायों की अभिलाषा थी कि वे प्रभु के साथ एक बनें। उनकी कामना थी कि हमारे बछड़ों की भाँति कृष्ण भी हमारा दूध पियें। प्रभु ने उनकी यह इच्छा उनके बछड़े बन कर पूर्ण की।

गोकुल की वयस्क गोपियों की उत्कण्ठा थी कि कन्हैया को हम छाती से लगाकर, बाहुओं में भर कर, उन्हें उबटन लगाकर, स्नान करा और साथ में सुलाकर अपनत्व का अनुभव करें। भगवान ने उनकी यह इच्छा गोप बालक बन कर पूरी की।

श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते वस्तुत: गोपियों का मन पूर्णत: कृष्णमय बन गया था। वे अपना लौकिक कार्य नहीं कर पाती थीं अत: कुछ देर के लिये वे कृष्ण को अपने हृदय से निकालने का प्रयास करती थीं। एक बार नारद जा रहे थे। उन्होंने देखा कि गोकुल की एक गोपी ध्यान लगाये बैठी है। पूछने पर पता चला कि वह अपने हृदय से कुछ देर के लिये श्रीकृष्ण को बाहर निकालना चाहती है ताकि निर्विघ्नरूप से गृहस्थी का कार्य कर सके। यह सुनकर नारद अपना माथा पीटकर कहने लगे- बड़े-बड़े ऋषि-मुनि प्रत्याहार के द्वारा अपने मन से विषयों को निकालकर क्षणभर के लिये उसे जिस भगवान में लगाने का प्रयास करते हैं उसी भगवान को अपने हृदय से निकाल कर यह बाला अपने मन को सांसारिक कार्यो में लगाना चाहती है। महान् योगीजन अपने हृदय में जिसकी क्षणभर की झलक पाने के लिये उत्कण्ठित रहते हैं, देखो-देखो, यह भोली-भाली बाला उसे अपने हृदय से निकालना चाहती है। धन्य है यह गोपी, धन्य है।

मोहि-मोहि मोहनमयो री मन मेरो भयो हरिचन्द भेद न परत पहिचानि है।
कान्ह भये प्राणमय प्राण भये कान्हमय हिय में न जानि परै कान्ह है कि प्राण है।।

२७) अरिष्टासुर का वध- शुकदेव बोले- परीक्षित्, एक दिन की बात है। सायंकाल का समय था। कृष्ण के दर्शन की प्रतीक्षा में सारा व्रज-मण्डल उत्सव मना रहा था। उसी समय अरिष्ट नाम का एक असुर विशाल साँड़ का रूप धारण कर व्रज में पहुँचा। उसकी डील बड़ी विशाल थी। उसका शरीर छोटे-मोटे पहाड़ जैसा था। उसके खुरों के रखने से धरती काँपती हुई-सी प्रतीत हो रही थी। वह बड़े जोर से गर्जन कर रहा था। उसकी पूँछ खड़ी थी। सींगों से मिट्टी उछाल-

उछाल कर फेंक रहा था। वंगदेश में यह वृषाकृति असुर हुआ।

एक दिवसकी बात अरिष्टासुर ब्रज आयौ। रूप छिपायौ दैत्य बैलको वेष बनायौ।।
खुरतैं खोदत मही रम्हावै सींग चलावै। बार बार मल-मूत्र करै खल खेल दिखावै।।
गिरत गर्भ गैयानिके, वृषभ शब्द भीषन करत। सकल गोप गोपी डरत, खल हरिकूँ खोजत फिरत।।

शुकदेव बोले- राजन्, इसके पश्चात् व्रज में अरिष्ट नाम का असुर बैल का वेष बनाकर आया। वह अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता हुआ अपनी दहाड़ से दिशाओं को कँपाने लगा।

वह रह-रह कर पिशाब करता और गोबर छोड़ता जाता था। आँखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर दौड़ रहा था। उसके जोर-जोर से हँकारने से भयवश गायों और स्त्रियों के गर्भ-गिर जा रहे थे। मेघ भी पर्वत की शमा से उसकी विशाल डील कर आकर बैठ जाते थे। उसकी अति तीखी सींगों को देखकर सारे व्रजवासी भयभीत हो काँपने लगे। राजन्, पशु तो व्रज छोड़कर भाग खड़े हुए। उस समय सभी व्रजवासी श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण हमें इस भय से बचाओ-बचाओ- ऐसा कहते हुए उनकी शरण में आये। भगवान् ने सबको आश्वस्त किया और ललकारते हुए कहा- अरे दुष्ट, तू इन निर्दोष व्यक्तियों को क्यो डरा रहा है। तुझ जैसे दुरात्मा दुष्टों के बल का घमण्ड चूर-चूर करनेवाला मैं यह हूँ। यह कहकर भगवान ने जोर से ताल ठोंकी और अपने एक सखा के कन्धे पर हाथ रखकर खड़े हो गये। सांड़ ने क्रोधभरी तिरछी आँखों से कन्हैया को देखकर उनकी ओर झपटा। कन्हैया ने बड़ी फुर्ती से उसके दोनों सींगों को पकड़ लिया और उसे ढकेलते हुए १८ पग पीछे ले गये। वह धड़ाम से भूतल पर गिर पड़ा। पसीने से लथपथ होकर वह काँपने लगा फिर क्रोध में भरकर वह भगवान पर प्रहार करने के लिये उनपर झपटा। भगवान ने उसके दोनों सींगों को पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया और एक पैर से दबाकर गीले कपड़े की भाँति उसे निचोड़ डाला फिर उसकी एक सींग उखाड़ ली और उसी से पीट-पीट कर मार डाला।

उस समय उसके मुख से रक्त का प्रवाह बह रहा था। रह-रह कर गोबर और पिशाब बाहर निकल रहे थे। पैर पटक रहा था और उसकी आँखें बाहर निकल आईं थीं। उसने बड़े कष्ट के साथ अपने प्राणों का परित्याग किया।

सींग उखारे पकरि भयो निर्बल डकरायो। मुखतैं उगिलै रक्व वृषभ प्रभु मारि गिरायो।।

देव-मण्डली भगवान के ऊपर फूलों की वर्षा करती हुई स्तुति करने लगी। इस प्रकार अरिष्टासुर का वध कर भगवान ने अपने साथी ग्वाल-बालों के साथ व्रज में प्रवेश किया। उस समय उनको देखकर गोपियों की आँखें खिल उठीं।

उस समय राधिका बोली- हे मोहन, बैलरूप दैत्य मारने से तुमको पाप लगा, इसलिए सब तीर्थ स्थान करो तब किसी को छूना। यह वचन सुनते ही नन्दकुमार ने दो कुण्ड गोवर्धन पहाड़ के पास खुदवाकर कहा- हे राधाप्यारी, मैं इसी जगह सब तीर्थों को बुला लेता हूँ। सो उनकी इच्छानुसार उसी समय गंगा, यमुना, सरस्वती आदि सब तीर्थ अपने-अपने रूप से वहाँ आये और अपना-अपना नाम बतलाकर जब दोनों कुण्डों में जल डालकर चले गये तब श्यामसुन्दर ने उसमें स्नान किया। बहुत सी गौवें और सोना देकर वहाँ पर ब्राह्मणों को भोजन कराया। नन्दजी और वृषभानु आदि ने नन्दकुमार पर बहुत सा द्रव्यादिक न्योछावर करके गरीबों को दिया और आनन्द मनाते हुए अपने अपने घर आये। उसी दिन से वे तीर्थ राधाकृष्ण और श्रीकृष्णकुण्ड नाम से प्रसिद्ध होकर आज तक वृन्दावन में हैं।

अरिष्टासुर के मारे जाने के बाद एक दिन देवर्षि नारद मथुरा में कंस के पास पहुँचे।

कंस ने नारदजी का स्वागत किया। नारद बोले- महाराज कंस आप अपने आपको बहुत बुद्धिमान मानते हो अपने को किन्तु आप ठग गये। कंस बोला- नहीं देवर्षि। नारद बोले- अरे कंस, तुम क्या राजनीति जानते हो? राजनीतिज्ञ तो वह है जिसे अपने

शत्रु के घर में आज क्या हो रहा है, कल की क्या योजना है इसका पता हो। अरे कंस, तेरे सिर पर तो काल मण्डरा रहा है और तू उसको जानता भी नहीं। नीति में कहा है कि जो पुरुष अपने शत्रु को नहीं देखता, अर्थात शत्रु से सावधान नहीं रहता है, वह शीघ्र ही काल का ग्रास हो जाता है। यद्यपि तुम कार्य करने में कुशल तथा चतुर और सयाने भी हो फिर भी कही-कही अन्जान बन जाते हो। हे राजन्, तुम्हें अपने लक्ष्य से अचेत देखकर तुम्हें सचेत करने के लिए ही तुम्हारे पास आया हूँ।

बताओ कंस? कृष्ण भगवान को कब मारनेवाले हो। ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश कर गया कृष्ण। कंस बोला- कैसे मारूँ? मैं जिसको भेजता हूँ वह स्वयं वही मर जाता है। नारद बोले- भगवान शिव ने जो धनुष तुम्हें दिया है, उसका सभारंभ करो। आस-पास के ग्रामीण अंचल के प्रेमियों को उसमें आमंत्रित करो। कृष्ण बलराम के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन करो। उसमें उन्हें आमंत्रित करो। अक्रूर को उसके लिये उत्प्रेरित करो। जब दोनों भाई यहाँ आ जाये तो धोखे से मार देना। परसों तुम्हारी विजय देखना चाहता हूँ।

नारद ने कहा- कंस, जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गई, वह तो यशोदा की पुत्री थी और व्रज में जो श्रीकृष्ण हैं, वे देवकी के पुत्र हैं। वहाँ जो बलराम जी हैं, वे रोहिणी के सुत हैं। वसुदेव जी ने तुमसे डरकर अपने मित्र नन्द के पास उन दोनों को रख दिया है। उन्होंने ही तुम्हारे अनुचर दैत्यों का वध किया है। नारदजी की बात सुनकर कंस का शरीर क्रोध से भभक उठा। उसने हाथ में तलवार ली और वसुदेव को मारने दौड़ा। नारदजी ने उसे समझाते हुए कहा कि- क्या आज ही तुम्हें मरने की जल्दी है। जब तक तुम उनके मां-बाप को मारोगे, तो उन्हें यहाँ पर बुलाने में क्या विलम्ब होगा। उनकी उपस्थिति और तुम्हारी मौत निश्चित है। कंस ऐसा मत करो, अन्यथा यह सुनते ही कृष्ण और बलराम कहीं अज्ञात स्थान में भाग जायेंगे। कंस ने नारद जी की बात मान ली। तलवार म्यान में रख ली किन्तु उसने देवकी के साथ वसुदेव को हथकड़ी और बेणी से जकड़कर पुन: जेल में डाल दिया फिर उसने कृष्ण और बलराम को मथुरा में बुलाकर मरवा डालने की योजना बनायी। कंस के मन में एक ही भाव था कि वसुदेव ने मुझे धोखा दिया।

मंत्र हेतु सब सचिव सभामें कंस बुलाये। तबई कीर्तन करत देव-ऋषि नारद आये।।
नारदजीने पोल सब, दई खोलि बसुदेव की। रोहिनि सुत बलदेव हैं, जने कृष्ण सुत देवकी।।

जब विधाता विमुख होकर जिसे नष्ट करना चाहता है तब उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। तब वह अहित को ही हित तथा हित को अहित मानकर सच को झूठ झूठ को सच मानकर दारुण हानि को लाभ तथा लाभ को दारुण हानी मानने लगता है। अज्ञानी मूढ़ मन्दमति कंस भी अपने ही मृत्यु के बिधान की रचना करने लगा।

मिला रहा कपटी तू मुझे, भला साधु जाना मैं तुझे।। दिया नन्द के कृष्ण पठाय, देवी हमें दिखाई आय।।
मन में कछु कही मुख और, मारू अबशि तुझे यहि ठौर। मित्र सगा सेवक हितकारी, करै कपट सो पापीभारी।।
मुख मीठा मन विष भरा, रहे कपट के हेतु। आप काज पर द्रोहिया, उससे भला जो प्रेत।।

अरिष्टासुर अपने पूर्व जन्म में बृहस्पति का शिष्य था। इसका नाम था- वरतन्तु। एक दिन यह अपने गुरु के पास पढ़ने गया और पैर फैलाकर उनके सामने बैठ गया। इस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया- दुष्ट, तूँ वृषभ की तरह पैर फैला कर बैठता है अत: जा बैल होगा। उसी के फलस्वरूप यह वृषभ हुआ।

२८) कंस की अक्रूर को व्रज भेजने की योजना- अपना काम कर नारद जी के चले जाने पर कंस ने केशी को बुलाकर कहा- तुम व्रज में जाकर बलराम और कृष्ण को मार डालो। आदेश मिलते ही वह अपना कार्य करने के लिये चला गया। इसके बाद कंस ने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि पहलवानों, मन्त्रियों और महावतों को बुलाकर कहा-

कहे कंस- सब सभासद, सुनहु आज नारद कहत। मम रिपु वृन्दावन बसत, राम कृष्ण वसुदेव-सुत।।

अरे वीरों, वसुदेव के दो पुत्र बलराम और कृष्ण नन्द के व्रज में निवास करते हैं। उन्हीं के हाथों से मेरी मृत्यु का विधान है अत: जब वे यहाँ आवें तो कुश्ती लड़ने-लड़ाने के बहाने तुम लोग उन्हें मार डालना। मञ्च का निर्माण करवाओं और उसके चारों ओर लोगों के बैठने का प्रबन्ध करो, जिससे सभी इस स्वच्छन्द दङ्गल को देख सकें। महावत की ओर समेत करते हुए कंस ने कहा- देखो भाई, तुम दंगल के घेरे के फाटक पर ही कुवलयापीड हाथी को रखना और जब मेरे शत्रु उधर से निकलें, तब उसी के द्वारा उन्हें मरवा डालना। चारों ओर को विधिपूर्वक धनुष-यज्ञ प्रारम्भ कर दो और उसकी सफलता के लिये वरदानी भूतनाथ भैरव को बहुत से पवित्र पशुओं की बलि अर्पित करो। कंस अब अपनी विपत्तिको किसी प्रकार बचे नहीं रहने देना चाहता था। वह वही सब कर रहा था जो मृत्युग्रस्त प्राणी प्रारब्ध-प्रेरित अपने मरणके सब संयोग प्रस्तुत करनेके लिए करता है और समझता है कि वह सुरक्षाके साधन संग्रह कर रहा है।

दोऊ भैया अति बली, बल तिनके तनमहँ अमित। गाय चरावें पय पिये, माखन मिश्री खायें नित।।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस अपने सेवकों से कह रहा है- विधि विधानपूर्वक शिवचतुर्दशी के दिवस धनुर्याग आरम्भ कर दो, उसकी पूर्णता के निमित्त भूतराज रुद्र के लिये पवित्र पशुओं की बलि दो।

परीक्षित्, कंस तो केवल स्वार्थ-साधन का सिद्धान्त जानता था इसलिये उसने मन्त्री, मल्ल और महावत को इस प्रकार आज्ञा देकर श्रेष्ठ यदुवंशी अक्रूर जी को बुलवाया और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला- अक्रूरजी, आप तो दानपति (दानाध्यक्ष) हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जब हम निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लेंगे तो आप ही दानाध्यक्ष की गद्दी पर विराजमान होंगे। आप हमारे साथ मित्रता का व्यवहार करें। आप से बढ़कर हमारा कोई दूसरा हितैषी नहीं है। जैसे इन्द्र विष्णु का आश्रय लेते हैं वैसे ही मैंने आपका आश्रय ले रक्खा है। आप नन्द के व्रज में जाइये। वहाँ वसुदेव के दोनों पुत्र रहते हैं। उन्हें मेरे इसी रथ पर बैठाकर ले आइये। इस कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिये। सुनते हैं देवताओं ने उन दोनों को मेरी मृत्यु का कारण निश्चित किया है अत: उनको तो लाइये ही, नन्द आदि गोपों को भी बड़ी-बड़ी भेंटों के साथ ले आइये।

यों सबकूँ समुझाइ कंस अक्रूर बुलाये। करिकें बहु सम्मान प्रेमतैं पास बिठाये।।
कहे-मित्र, तुम सदा रहे हमरे हितकारी। अति सज्जन हो नहीं प्रशंसा करूँ तुम्हारी।।
आज काज गुरुतर परम, वृन्दावनमहँ जाइकें। राम-कृष्ण वसुदेव सुत, लाओ तिन्हें लिवाइकें।।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस अक्रूरजी को समझाते हुए प्रेमपूर्वक कह रहा है- हे सौम्य, आप नन्द के व्रज में जायँ। वहाँ वसुदेवजी के दो पुत्र रहते हैं, उन्हें इस रथ पर चढ़ाकर यहाँ ले आवें।

गच्छ नन्दब्रजं तत्र सुतावानकुदुन्दुमें:। आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम्।।

यहाँ आने पर मैं उन्हें काल के समान अपने हाथी से मरवा डालूँगा। यदि कदाचित् वे उससे बच गये तो बिजली के समान फुर्तीले अपने मल्लों से मरवा डालूँगा। उनके मार दिये जाने पर उनके जो भी पक्षधर हैं, उनका भी सफाया करवा दूँगा। मेरा पिता उग्रसेन यद्यपि वृद्ध हो गया है, फिर भी उसकी राज्य-लिप्सा बनी हुई है। उसे तथा उसके भाई देवक आदि को तलवार के घाट उतार दूँगा फिर तो सारी पृथ्वी मेरे लिये निष्कण्टक बन जायेगी। जरासन्ध आदि बड़े-बड़े राजा हमारे मित्र हैं फिर कैसी चिन्ता? आप शीघ्र जाकर राम-कृष्ण को यहाँ लाइये। अभी तो वे बालक ही है। उनको मार डालने में क्या लगता है? उनसे बस इतना ही कहियेगा कि महाराज कंस ने आप लोगों को धनुषयज्ञ और मथुरा की शोभा देखने के लिये बुलाया है। एकांत में बैठकर दृढ़ मंत्रणा की।

कंस की बात सुनकर अक्रूर जी ने कहा- राजन्, क्या करोगे तुम कृष्ण बलराम को बुलाकर, कौनसा प्रिय काम करना चाहते हो? आपका संकल्प तो ठीक ही है। सम्भव है, इससे आप की मृत्यु टल जाय किन्तु सफलता और असफलता के विषय में समभाव से कार्य करना चाहिये। फल तो दैव के अधीन है फिर भी मैं आप की आज्ञा का पालन करता हूँ।

पुरुषारथ कर्त्तव्य है, फल प्रारब्ध अधीन हैं। सिद्धि असिद्धि समान जे, लखें नहीं ते दीन हैं।।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस के प्रस्ताव करने पर अक्रूरजी उसे समझाते हुए कहने लगे- देखो, मनुष्य प्रारब्ध द्वारा नष्ट किये हुए बड़े-बड़े मनोरथों की अभिलाषा करता है। सिद्धि होने पर हर्ष और असिद्धि होने पर शोक उठाना पड़ता है। तथापि मैं आपकी आज्ञा का पालन तो करूँगा ही।

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि। युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते।।

राजन्, सोचा तो तुमने अच्छा ही है, लेकिन सोचने से कुछ नहीं होता, व्यक्ति को कर्म करना चाहिये। ये मानव की सबसे बड़ी भ्रांति है कि सोचता बहुत कुछ है, परन्तु करता कुछ नहीं। यह करेंगे, वह करेंगे तरह-तरह के विचार मन में उठते हैं। परंतु होता वही है, जो गोविन्द को प्रिय होता है। देह के अधीन होने के बावजूद मनुष्य कहता है, मैं ऐसा कर लूँगा। भरोसा एक क्षण का नहीं है और योजना बड़ी लम्बी बनाता है। मैं समझता हूँ, ये ही मानव की सबसे बड़ी भ्रान्ति है। इससे बड़ी भ्रान्ति और नहीं हो सकती। रात्रि भर बैठकर अक्रूर ने कंस को समझाया लेकिन कंस कहता है- भाषण मत सुनाइये, सिर्फ इतना बता दो कि कृष्ण-बलराम को लेने जाओगे कि नहीं?

अक्रूर जी सोचने लगे कंस की सारी योजना विफल होगी, प्रभु का कोई क्या बिगाड सकता है।

सुनि बोले अक्रूर धर्मकी बात बताई। होनी अति बलवान् आपके मन नहि भाई।।

आयसु सिर धरि भूपवर, काल्हि नन्द व्रज जाऊँगो। रथ चढ़ाइके गोप सङ्ग, राम-कृष्णकूँ लाऊँगो।।

शुकदेव बोले- राजन्, कंस मन्त्रियों और अक्रूर जी को इस प्रकार की आज्ञा देकर अपने महल में चला गया और अक्रूर भी अपने घर लौट आये।

२९) केशी वध-

सुनि प्रसन्न ह्वै कंस गयो भीतर महलनिके। इत केशी बनि अश्व गयो ढिँग व्रजवासिनिके।।

असुर समुझि सब लोग डरें भागें इत उतकूँ। हिनहिनात खल फिरत निहारत नँदनन्दनकूँ।।

दुष्ट दलन लखि दैत्यकूँ, सिहनाद भीषण कर्‌यो। सम्मुख खल मुँह फारिकें, झपट्यो नहि मनमहँ डर्‌यो।।

शुकदेव बोले- राजन्, इधर कंस का भेजा हुआ केशी बड़े भारी घोड़े का रूप बनाकर, मन के वेग के समान भागता हुआ, अपनी टापों के प्रहार से पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ, अपने कन्धे के बालों से मेघ और विमानों से आकाश को व्याप्त करता हुआ तथा अपने भीषण शब्दों से सभी को भयभीत करता हुआ व्रज मण्डल में आया। परीक्षित्, राजन्, गौ, ब्राह्मण और सुरों की रक्षार्थ श्रीहरि बार-बार धरा पर पदार्पण करते हैं। असुरों द्वारा गौ, ब्राह्मण और सुरों को त्रसित करने की परम्परा भी निरन्तर बनी हुई है। असुरों के आक्रोश का अधिक श्रेय स्वयं श्रीसुरराज इन्द्र को ही है। यह केशी कुमुद नामका इन्द्र का अनुचर था। इन्द्र पर छत्र लगाता था। वृत्रासुर को मारने पर जब इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी तब उसके निवृत्यर्थ उन्होंने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। कुमुद यज्ञ के सुन्दर अश्व को देखकर ललचा गया और चढ़ने की इच्छा से उसे चुराकर तललोक में चला गया। इन्द्र के आदेश से मरुद्गण पाशों से बाँधकर उसे पकड़ लाये। इन्द्र ने उसे शाप

देते हुए कहा- तूने अश्व चुराया है इसलिए तू दो मन्वन्तर तक घोड़े की आकृतिवाला दैत्य होगा।

एक बार इन्द्र का अश्व सेवक घोटक अश्व पर मुग्ध हो उस पर सवार हो गया। इन्द्र ने कुमुद सेवक की धृष्टता मान उसे अश्व होने का श्राप दे दिया। अत: कुमुद अश्व बन गया। किन्तु क्रोध के कारण असुर वृत्ति हो गयी उसकी।

अश्व के आक्रोश से हिनहिनाने पर इन्द्र देवताओं सहित भाग कर सुमेरु की शरण लेते, लेकिन गौ और ब्राह्मण कहां जाते। केसी अश्व के कारण त्रसित दुखित हो भगवान से प्रार्थना करते। कंस ने केसी को पराजित कर अपना सेनापति बना लिया। यह नरभक्षी मथुरा के आस-पास के वनों में वन्य पशुओं और आने जानेवाले मनुष्यों का भी आहार कर जाता। वनों में ही यह निवास करता। नरभक्षी केसी दूर-दूर तक ऋषि आश्रमों में जाने लगा। जब यह जाता तो गीध, चीलें और कंक इसके ऊपर मंडराते चलते, श्रृंगालों की टोली इसके पीछे चलती अवशेष आखेट को खाकर अपनी उदर पूर्ति के लिए। केसी अमर था अत: निर्द्वन्द होकर ऋषि-मुनि ब्राह्मणों को सताता। कंस केशी राक्षस को बोला-

महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा तुझको तेरा।। एक बार तू व्रज में जावै। राम कृष्ण हति मुझे दिखावै।।

कंस के द्वारा प्रेषित केशी घोड़े का विशालरूप धारण कर दौड़ता हुआ नन्द के व्रज में आया।

व्रज आयो केशी असुर जानि लियो नंदलाल। सम्मुख उसके हर्ष से चले कंस के काल।।

वह अपनी टापों से धरती खोदता आ रहा था। उसके गर्दन के उठे हुए बालों से टकराकर मेघमालाएँ और विमानावलियाँ तितर-वितर हो रही थीं। उसकी हिनहिनाहट इतनी भयानक थी कि उसे सुनकर सभी थर्रा रहे थे। फाल्गुन कृष्णा एकादशी का दिन पर्वताकार शरीर, विशाल नेत्र, कन्दरा के समान खुला मुख, लम्बी गर्दन साक्षात् यमराज के वाहन महिष ने ही जैसे यह रूप धारण किया है। खुरों से भूमि खोदता, हिनहिनाता वृन्दावन पहुँचा। गोप ग्वाल शोर मचाने लगे नरभक्षी अश्व आ गया। अपने पशुओं को गोष्ठों में घेरकर बन्द करने लगे। सबने घरों के द्वार बन्द कर लिये, किन्तु चाहे जितना भूखा हो किसी को छेड़ा नहीं, वह तो- श्रीकृष्ण कलेवा करके लकुट उठाकर वन जानेवाले ही है। उसी क्षण अश्व उन्हें देख गोप चिल्लाये- कान्हा अन्दर जाओ- नरभक्षी अश्व आ गया है कृष्ण कहाँ सुनते हैं ऐसी पुकार। वे तो ब्राह्मणों के श्रद्धा सहित श्रुति सूक्तों का स्तवन भी नहीं सुनते। उन्हें सुनाई देती है भक्तों की आर्तवाणी, अकिंचनों की प्रेम पुकार?

कंस का हित-साधन करने के लिये वह कृष्ण को खोज ही रहा था कि भगवान ने आगे बढ़कर उसे ललकारा। इस पर उसने उनके ऊपर अपने पीछे के पैरों से दुलत्ती चलाई। भगवान ने अवज्ञापूर्वक उसके पैरों को पकड़कर सौ धनुष (अर्थात् चार सौ हाथ) की दूरी पर उसे फेंक दिया। जब उसे होश हुआ तो उसने पुन: उन पर आक्रमण कर दिया। इस बार कृष्ण ने मुस्काते हुए अपना हाथ ही उसके मुँह में घुसेड़ दिया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई सर्प बिल में घुस गया हो। कृष्ण का हाथ केशी को गरम-गरम लोहे के समान लगा और वह उसके मुँह में वैसे ही बढ़ता गया, जैसे कोई रोग उपेक्षा करने पर बढ़ जाता है। उसके सारे दाँत खटाखट टूट गये और प्राणवायु रुक गयी। वह बेचैन होकर अपने पाँव पटकने लगा। उसका सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। उसकी आँखें उलट गईं। लीद भी निकल आई। भूतल पर गिर कर उसने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

उसका सारा शरीर पकी फटी ककड़ी के समान हो गया था फिर तो कृष्ण ने अपनी भुजा उसके मुँह में से निकाल ली। इस प्रकार कृष्ण ने बिना विशेष प्रयास के ही उसे मार डाला। इस दृश्य को देखकर प्रसन्न हुई देवमण्डली ने भगवान् पर पुष्पों की वर्षा की और उनकी स्तुति करने लगी।

पिछले पकरे पैर दैत्यकूँ श्याम घुमायो। सौ धनु फेंक्यो दूरि गिर्‌यो सुर रिपु घबरायो।।

पुनि उठि काटन हेतु फारि मुख हरि ढिँग आयो। मुँहमहँ डार्‌यो हाथ दैत्य हय मारि गिरायो।।

व्रजवासी प्रमुदित भये, बरसावें सुरगन सुमन। वृन्दावनमहँ देव ऋषि, पहुँचे गावत कृष्ण-गुन।।

परीक्षित्, देवर्षि नारदजी कृष्ण के परम प्रेमी और समस्त जीवों के सच्चे हितकर्ता हैं। कंस के पास से लौटकर वे कृष्ण के पास में आये और एकान्त में उनसे कहने लगे- प्रभो, आपने रास रंग तो बहुत खेल लिये, आपके माता-पिता तो जेल में हैं और आप यहाँ नाचने गाने और बंसी बजाने में लगे हुए हैं। यह बताइये कंस का उद्धार कब होगा? पापी कंस को कब मारेंगे? कृष्ण बोले- मैं कौन होता हूँ मारनेवाला और बचानेवाला। जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसका फल भोगता है। इतना जरूर सुनिश्चित है कंस ने जो पापकर्म किये हैं, उसका घड़ा पूरा भर चुका है और उसका फूटना भी सुनिश्चित है। नारद बोले- प्रभो, मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मैं तो परसों आपके हाथों कंस को मरा हुआ देखना चाहता हूँ।

कृष्ण हंसकर बोले- आप तो कंस के पास गये थे। वहाँ क्या कहकर आये हो? वहाँ मेरे बारे में कहकर आये हो या उसके बारे में कहकर आये हो। नारद बोले- आप तो मेरी प्रकृति जानते हैं मैं तो वहीं करता हूँ जिसमें पूरी प्रजा का हित चिन्तन रहता है और मैं वहीं कहता हूँ जो आपके मन की बात होती हैं। मैंने जो कहा है आपकी प्रेरणा से कहा है।

नारद ने भगवान की इसप्रकार स्तुति की-

काल रूप शिशुपाल के माखनप्रभु गोपाल। नित नव लीला करत हैं व्रज में मोहनलाल।।

आपका स्वरूप मन और वाणी का विषय नहीं है। आप योगेश्वर और सकल जगत् के नियन्ता हैं। सारे जगत् में आपका निवास है और सारा जगत् आपके हृदय में निवास करता है। केशी का वध कर आपने संसार का महान् कल्याण किया है। इसके भय से देवतागण भी भयभीत रहा करते थे। अब तो समय आ गया है- परसों सारा संसार चाणूर, मुष्टिक, कुवलयापीड हाथी और कंस को मारा हुआ देखेगा। उसके बाद शंखासुर, कालयवन, मुर और नरकासुर का वध देखूँगा। इसके बाद भविष्य में पारिजातहरण आदि आपकी विविध लीलाओं को देखने का अवसर उपस्थित होगा। आप साक्षात् चिद्घन हैं, ज्ञान स्वरूप और माया से परे हैं। मैं आपको बार-बार सादर प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार सारी भावी घटनाओं का वर्णन कर प्रसन्नमन नारदजी भगवान से आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चले गये।

३०) व्योमासुर का वध- कंस अत्यंत आतंकग्रस्त था। वह जिसे भी भेजता था व्रजमें, वह लौटता नहीं था। नन्दनन्दनके समीप जाकर कोई संसारमें लौटा करता है। पूतना, उत्कच (शकटासुर) श्रीधर, काक, तृणावर्त गोकुल गये थे और अब वह प्रमील-वत्सासुर, बकासुर भी व्रज जाकर समाप्त हो गये। दृश्य, अदृश्य, अर्धदृश्य, मनुष्य-पशु-पक्षी किसी भी वेशमें वहाँ जाकर कोई सफल नहीं हुआ और कंसको लगता है कि उसका काल प्रतिदिन-प्रतिक्षण बढ़ रहा है, सबल होता जा रहा है। उसने मित्रको अपनी मनोव्यथा सुना दी। व्योमासुरने उसे आश्वासन दिया। दानवेन्द्र मयके पुत्रपर कंस भरोसा कर सकता था।

एक दिन श्रीकृष्ण सारे ग्वालबालों के साथ गोवर्धन की तलहटी में लुका-छिपी का खेल (निलायन क्रीडा) खेल रहे थे। कोई भेंड़ बने थे, कोई रक्षक बने थे और कोई राजा बना था। रक्षक चोर को पकड़ कर लाते थे और राजा उसे दण्ड देता था।

इसी बीच में भगवान के सखा ग्वाल-बालों का वेश धारण करके महामायावी मय दानव का पुत्र- व्योमासुर वहाँ आया और बालकों के झुण्ड में मिल गया। खेल में वह प्राय: चोर ही बनता था तथा भेंड़ बने बहुत-से बालकों को चुराकर छिपा आता था।

शुकदेव बोले- राजन्, मयासुर का पुत्र महामायावी व्योमासुर वहाँ गोपाल वेष बनाकर आया। जिस खेल में प्राय: बहुत से चोर बनकर भेड़ बने बालकों को पकड़ ले जाते हैं, उसी में वह बालकों को ले जाकर छिपा आता था।

कछू भेड़ बालक बने, चले ग्वाल कछु चोर बनि। चोररिमहँ मिलि व्योम हू, गुहा छिपावै खल सबनि।।

वह महान् असुर बार-बार उन्हें ले जाकर एक पहाड़ की गुफा में डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी चट्टान से ढक देता। इस प्रकार ग्वाल बालों में चार-पाँच बालक ही बच रहे। भगवान से यह बात छिपी न रही। जब वह एक बालक को लेकर भाग रहा था तो उन्होंने उसे उसी प्रकार धर दबोचा जैसे सिंह भेंड़ों को दबोच लेता है। व्योमासुर बड़ा बली और विशाल था। पकड़े जाने पर वह अपने असली रूप में आ गया। परन्तु भगवान ने उसे भूमि पर गिरा दिया और पशु की भाँति उसका गला घोंट कर मार डाला। फिर बालकों को पहाड़ की गुफा से बाहर निकाला। भगवान के इस अद्भुत कार्य को देखकर देवता लोग आकाश से फूलों की वर्षा कर उनकी स्तुति करने लगे। ग्वाल-बाल भी भगवान की कीर्ति का गान कर रहे थे। तदनन्तर बालकों और गायों को लेकर भगवान व्रज में लौट आये।

ग्वाल निकारे गुहातैं, व्योमासुरकूँ मारिकें। आये व्रज मिलि सखनि सँग, बनतैं गाइ चराइकें।।

काशी में भीमरथ नाम के एक राजा थे। वे विष्णु के महान् भक्त थे। समय आने पर पुत्र को राज्य देकर वे मलय पर्वत पर तप करने के लिये चले गये। एक दिन शिष्य-मण्डली के साथ महर्षि पुलस्त्य उनके आश्रम पर पधारे। अपनी तपस्या के अभिमान में चूर राजा ने उनकी न अगवानी की और न प्रणाम आदि ही किया। इस पर क्रुद्ध होकर महर्षि ने शाप दिया- दुर्बुद्धे, जा तूँ दैत्य हो जा। राजा के अनुनय करने पर प्रसन्न हो महर्षि ने कहा- द्वापर के अन्त में भगवान के हाथों से मारे जाने पर तेरी मुक्ति होगी।

३१) अक्रूर जी का व्रज में आना- शुकदेव बोले- परीक्षित्, महामति अक्रूर जी वह रात्रि मथुरापुरी में ही बिताकर प्रात:काल होते ही रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के वृन्दावन के लिये चल पड़े।

मगमहँ सोचत जात आज हौं हरि ढिँग जाऊँ। करि हरि दरशन मनुज देहको शुभ फल पाऊँ।।

मार्ग में जाते हुए अक्रूर जी के हृदय में प्रेमलक्षणा भक्ति का उदय हो गया। वे सोचने लगे- मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ तपस्या की है अथवा किसी सत्पात्र को ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मैं भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करूँगा। बड़े-बड़े मनीषी दर्शन के लिए तरसते हैं, लेकिन कर नहीं पाते।

जैसे शूद्र के लिये वेदों का कीर्तन दुर्लभ है, वैसे ही मेरे जैसे संसारी के लिये भगवान का दर्शन दुर्लभ है। किन्तु यह मेरा सौभाग्य है कि आज मुझे भगवान् के दर्शन होंगे ही। आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया क्योंकि मैं आज योगियों के भी ध्येय भगवान के श्रीचरणों में प्रणाम करूँगा। योगीजन जिनका ध्यान ही करते रह जाते हैं, कदाचित् ही उनका दर्शन करने में सफल होते हैं। उन्हीं को मैं साक्षात् देखूँगा। कंस का मेरे ऊपर यह महान् अनुग्रह था, जो उसने मुझे यह कार्य सौंपा है। आज मेरे सामने शुभ शकुन घटित हो रहे हैं। देखिये, हरिण हमारी दाईं ओर से निकल रहे हैं। इससे यह निश्चित सूचना मिलती है कि आज मैं भगवान के उस मुख-कमल का दर्शन करूँगा जो घुंघराली अलकों से अलंकृत है, कमल से कोमल रतनारे लोचनों से सुशोभित है, जिस पर मन्द-मन्द मुस्कान बिखर रही है, जो नुकीली नासिका से सुशोभित है।

देखो, आज मुझे शुभ शकुन हो रहे हैं। भगवान पृथ्वी का भार उतारने के लिये आये हैं। आज वे मुझे अपनी छाती से लिपटा लेंगे और मुझे अपनी आँखों का फल मिल जायेगा। जिन भगवान के नाम, रूप और गुणों का कीर्तन करने से व्यक्ति के सारे पाप-ताप विनष्ट हो जाते हैं और वह जगत् को पवित्र करने की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। भगवान के गुणानुवाद से रहित यह वाणी मुर्दे की शोभा बढ़ानेवाली है, अर्थात् निरर्थक है। जिन भगवान के गुणगान का इतना महात्म्य है, वही प्रभु यदुवंश में प्रकट हुए हैं, हम लोगों का यश बढ़ा रहे हैं और देवता-जन भी उनका गुण-गान कर रहे हैं।

जब मैं उन्हें देखूँगा तब सर्वश्रेष्ठ पुरुष बलराम तथा श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करने के लिये तुरन्त रथ से कूद पड़ूँगा। उनके चरण पकड़ लूँगा। उनके चरण कितने दुर्लभ हैं। बड़े-बड़े योगी-यति आत्म-साक्षात्कार के लिये मन-ही-मन अपने हृदय में उनके चरणों की धारणा करते हैं और मैं उन्हें प्रत्यक्ष पा जाऊँगा तथा लोट जाऊँगा उन पर। उन दोनों के साथ ही उनके वनवासी सखा एक-एक ग्वाल-बाल के चरणों में भी वन्दना करूँगा। प्रभु के उन चरणों का दर्शन करूंगा, जो शीतल और सुंदर है। जो सबको सुख देनेवाले, कठिन दोष तथा दु:खों को हरने वाले हैं। उनके चरणों पर अंकुश, कलश, कमल और ध्वजा के चिन्ह अंकित है। मैं उनको ग्वाल-बालों के साथ वन में गो-चारण करते हुए पाऊंगा। जिन चरणों का ध्यान नारद मुनि, देवता, ब्रह्मा और शंकर करते हैं, उन्हीं चरणों को मैं प्रत्यक्ष अपने इन्हीं हाथों से स्पर्श करूंगा। दौड़कर उनके चरणों से लग जाऊंगा।

जब मैं भगवान् के चरणों में गिरूँगा, तब वे मेरे सिर पर अपना अभय प्रदान करनेवाला हाथ फेरेंगे। उनके वे कर-कमल उन लोगों को सदा के लिये अभय दान दे चुके हैं, जो कालरूपी साँप के भय से अत्यन्त घबड़ा कर उनकी शरण चाहते और शरण में आ जाते हैं। मैं कंस का दूत हूँ। उसी के भेजने से उनके पास जा रहा हूँ। कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे? राम, राम। वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं, सबके हृदय के साक्षी हैं, द्रष्टा हैं। जब वे मुझे अपने चरणों पर से उठाकर, विशाल भुजाओं में लपेट कर मेरा आलिंगन करेंगे, तब मेरा अन्त:करण पवित्र हो जायेगा और मेरे सारे बन्धन सर्वदा के लये समाप्त हो जायेंगे।

जब वे मेरा आलिङ्गन कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़कर सिर झुका कर उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा तब वे मुझे चाचा अक्रूर। इस प्रकार कह कर सम्बोधन करेंगे। तब मेरा जीवन सफल हो जायेगा। जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपना नहीं बनाया उसके जीवन को धिक्कार है। यद्यपि भगवान का न कोई प्रिय है और न अप्रिय ही। न कोई उनका मित्र है और न शत्रु ही जैसे कल्पवृक्ष अपने नीचे आये हुए व्यक्ति की कामनाओं को पूर्ण करता है, वैसे ही वे भी अपनी शरण में आये हुए प्राणी का सारा मनोरथ पूरा करते हैं। वे बड़े प्रेम से मेरा हाथ पकड़कर अपने घर ले जायेंगे। वहाँ भोजन आदि सामग्री से मेरा सत्कार करेंगे। इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि- कंस हमारे घरवालों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है?

शुकदेव बोले- परीक्षित्, श्वफल्क के पुत्र अक्रूर जी मार्ग में इसी प्रकार का चिन्तन करते हुए, सायमाल के समय में, जब सूर्य नारायण अस्ताचल कर गये, नन्दगाँव पहुँच गये।

अक्रूरका ऐसा मनोरथ हो रहा था कि उनको रथका पथ ही भूल गया। वे मथुरासे चले सबेरे और व्रजमें पहुँचे शामको। यद्यपि उनका रथ बड़ा तेज चल रहा था, परन्तु जब चालक ही रास्ता भूल जाता है तो मंजिल मिलती ही नहीं।

शुकदेव कहते हैं- कंस का सन्देश लेकर जब से अक्रूर जी चले और जब तक व्रज पहुँचे हैं, तब तक उनकी जैसी दशा रही है इसी को दम्भ, भय तथा शोक त्यागकर, भगवान के विग्रह के दर्शन तथा उनके नाम गुणों के श्रवण में लगा देना- ऐसी अवस्था को प्राप्त करना- यही देहधारियों के लिये देह धारण करने का परम लाभ है।

वहाँ भूतल पर भगवान के चरण-चिन्हों को देखकर वे भावावेश में रथ से तुरन्त उतर पड़े और विचार करने लगे- जिनके चरण-कमल की रज को सभी लोकपाल अपने किरीटों के द्वारा सेवन करते हैं, वे ही कमल, यव, अमुश आदि असाधारण चिन्हों से सुशोभित ये भगवान के चरण-चिन्ह हैं। इनसे पृथ्वी की शोभा बढ़ रही है। यह बड़े सौभाग्यशालियों को ही प्राप्त होते हैं। यह कहकर वे उन्हीं पर लोटने लगे। उनका शरीर रोमाञ्च से भर गया। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। किसी-किसी प्रकार उठकर वे आगे बढ़े ही थे कि उन्होंने अपने सामने बलराम और श्रीकृष्ण को देखा। उन्हें देखते ही अक्रूर जी

प्रेमावेग से अधीर होकर रथ से कूद पड़े और भगवान श्रीकृष्ण तथा बलराम के चरणों के पास साष्टाङ्ग लोट गये। उनकी आँखों में प्रेमाश्रु छलछला आये। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे कुछ बोल न सके। भगवान् ने अपने कर-कमलों से उठाकर उन्हें छाती से लगा लिया। जब वे परम विनीत भाव से खड़े हो गये तो बलराम जी ने उन्हें अपने गले से लगा लिया। इसके बाद उनका एक हाथ श्रीकृष्ण ने पकड़ा तथा दूसरा बलराम जी ने। दोनों भाई उन्हें सादर घर ले गये।

शुकदेव बोले- राजन्, अक्रूरजी ने बलराम तथा श्यामसुन्दर को गौओं के गोष्ठ में गोदोहन करते देखा। वे दोनों क्रमश: नीले और पीले वस्त्र पहिने हुए थे। शरदकालीन कमल के सदृश उन दोनों के नेत्र विकसित हो रहे थे।

घर पर पहुँचकर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें उत्तम आसन पर बैठाया। उनसे कुशल-मङ्गल पूछा। उनके चरण धोकर मधुपर्क आदि पूजन की सामग्री अर्पित की फिर उनका पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की। तदनन्तर उन्हें परम स्वादिष्ट भोजन करवाया। बलराम जी ने उन्हें माला पहनाकर सुगन्धित पान खिलाया। स्वागत-सम्मान हो जाने के बाद नन्द बाबा उनके पास पहुँचे। उनका समाचार पूछा और कहा- अक्रूर जी, आप लोग निर्दयी कंस के जीतेजी किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जिस पापी ने अपनी बिलखती हुई बहन के नन्हें-नन्हें बच्चों को मार डाला, आप लोग उसकी प्रजा हैं फिर आप सुखी हैं, यह अनुमान कैसे किया जा सकता है? यहाँ आने में आपको कष्ट तो अवश्य हुआ होगा। बतलाइये हम आपकी क्या सेवा करें? नन्द जी की इस प्रकार प्रेमभरी मधुरवाणी सुनकर अक्रूर जी का रहा-सहा सारा मार्ग-श्रम दूर हो गया। अक्रूर बोले- जब तक कंस अधर्मी जीवेगा तब तक गौ-ब्राह्मण और प्रजा को सुख नहीं मिलेगा।

३२) श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरा के लिये प्रस्थान और व्रजवासियों का विलाप-

शुकदेव बोले- श्रीकृष्ण और बलराम जी ने अक्रूर जी का भलीभाँति सम्मान किया। वे पलंग पर बैठ गये। उन्होंने मार्ग में जो-जो अभिलाषाएँ की थीं, वे सब पूरी हो गईं।

परीक्षित्, लक्ष्मीपति भगवान श्रीकृष्ण के प्रसन्न हो जाने पर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त न हो जाय फिर भी भगवान् के परमप्रेमी भक्तजन किसी भी वस्तु की कामना नहीं करते।

देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्ण ने सायंकाल का भोजन करने के बाद अक्रूर जी के पास जाकर अपने स्वजन-सम्बन्धियों के साथ कंस के व्यवहार और उसके अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा- चाचाजी, आप निश्छल हृदय के व्यक्ति हैं। आप को यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? आपका भूरि-भूरि स्वागत है। तत्पश्चात् भगवान ने अक्रूरजी को अतिथि जानकर एक गाय दी और चरण चापकर उनकी थकान दूर की।

मैं आपकी मङ्गल-कामना करता हूँ। मथुरा के हमारे आत्मीय सुहृद्, कुटुम्बी तथा अन्य सम्बन्धी सकुशल और स्वस्थ हैं न? हमारे कारण माता-पिता को अनेकों प्रकार की यातनाएँ झेलनी पड़ीं- तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़े। मेरे ही कारण उन्हें हथकड़ी-बेणी में जकड़ कर जेल में डाल दिया गया। मेरे ही कारण उनके कई बच्चे मार डाले गये। कहाँ तक कष्टों का वर्णन करूँ? आज आपके दर्शन से हमें महान् शान्ति मिली है। आपके आने का कारण क्या है? आपने हमें दर्शन देने की कैसे कृपा की?

श्रीहरि पूछें तात कहो व्रज कैसे आये। समाचार अक्रूर आदितैं सबहिं सुनाये॥

शुकदेव बोले- राजन्, जब भगवान ने अक्रूरजी से उनके आगमन का समाचार पूछा तब यदुवंशीय अक्रूरजी ने यदुवंशियों के साथ वैर बाँधने तथा वसुदेवजी के वध का जो कंस ने उद्योग किया था, वह सभी वृत्तान्त कह दिया। परीक्षित्, भगवान श्रीकृष्ण के पूछने पर अक्रूर जी ने आदि से अन्त तक की सारी घटनाओं को कह सुनाया। उन्होंने यादवों

के साथ कंस के वैर और वसुदेव के वध के प्रयास की भी चर्चा की। अक्रूर जी ने कंस का सन्देश कहा सुनाया। उन्होंने यह भी बतला दिया कि आप लोगों को आमन्त्रित करने के पीछे कंस की क्या योजना है। इसके बाद दोनों भाइयों ने नन्द जी को कंस का वास्तविक अभिप्राय तो बतलाया नहीं, केवल यही कहा कि मथुरा में बड़ा भारी उत्सव हो रहा है। उसे देखने के लिये वहाँ चलना है। कंस मामा ने उसीके लिये आमन्त्रण भेजा है। अक्रूर बोला-

जब ते कंस मधुपती भयौ, तबते सब ही कौ दुख दयौ ।।

पूछौ कहा नगर कुशलात, परजा दु:खी होत है गात ।। जब तक है मथुरा में कंस, तौ लों कहाँ बचैं यदुवंश ।।

कन्हैया बोला- कंस ने हमें मारने के लिये मथुरा बुलाया है। चाचाजी, आप मेरे ब्रजवासी सखाओं से ये बात कभी भूलकर भी नहीं बताना कि उसने हमें मारने के लिये बुलाया है। नहीं तो ये लोग रो-रो कर मर जायेंगे मेरी याद में। इनके जीवन का सर्वस्व केवल मैं हूँ। कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है उसीने सब यदुवंशियों को सताया है और सच पूछो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दु:ख पा रहे हैं।

कंस के आमन्त्रण को सुनकर नन्दबाबा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने व्रज में ढिंढोरा पिटवाकर यह सूचना दे दी कि कल मथुरापुरी में राजा कंस के यहाँ धनुष-यज्ञ के महोत्सव में चलना है। गाँव का सारा दूध-दही और भेंट की सामग्रियाँ ले लो। अपनी-अपनी बैलगाड़ियाँ जोत कर तैयार रक्खो। कल प्रात:काल प्रस्थान करना है।

राम कृष्ण का गमन सुन, दुखी भये ब्रज लोग। गोप गोपिका बाल सब, सह नहिं सके वियोग ।।

अक्रूर वृन्दावन आए तो उनका हृदय खोलकर स्वागत हुआ। रथ लेकर आए थे वे कृष्ण और बलराम को धनुष-यज्ञ में ले जाने के लिए। मामा कंस ने जो निमन्त्रण भेजा था। पर अक्रूर को कठिनाई न तो नन्द को लेकर हुई न बलराम और कृष्ण को लेकर।

कंस बुलाये हैं सुन तात, कहा अक्रूर काका ये बात ।।

गोरस मेंड़े छेरी लेहु, धनुष यज्ञ है ताकी गेहु ।। सब मिल चलौ साथ ले अपने, राजा बोले रहत न बने ।।

नन्दबाबा यह देखकर प्रसन्न हैं कि महाराज कंस ने हमारे लाला के लिये अपना स्वर्ण-मण्डित रथ भेजा है। वे बेचारे क्या जानें कि विश्वास उत्पन्न करने के लिये ही कंस ने अपना सोने का रथ भेजा है। गाँव के बालकों ने जब यह बात जानी तो वे भी साथ चलने के लिये तैयार हो गये। वे कहते थे कि यदि हम साथ नहीं चलेंगे तो कन्हैया की देख-भाल कौन करेगा? उनका मानना था कि बेचारे कन्हैया को वे ही सँभालते हैं। सकल ब्रह्माण्ड के रक्षक की रक्षा आज ग्वाल-बाल करने चले हैं। नन्दबाबा ने सभी बालकों को साथ चलने की अनुमति प्रदान कर दी।

ठौर-ठौर ऐसी दशा कहत न आवै बैन। बढ़ी श्याम बिछुरन व्यथा द्रुरत उमँगि जलनैन ।।

परीक्षित्, जब गोपियों ने सुना कि बलराम और श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने के लिये अक्रूर जी व्रज में आये हैं, तब उनके हृदय में बड़ी व्यथा हुई। वे विरह की कल्पना से व्याकुल हो गईं। उन्हें मूर्च्छा आ गई। उनके मुखकमल कुम्हला गये। वे रो-रोकर विधाता को कोसने लगीं। उन लोगों ने कहा- अरे विधाता तू कितना क्रूर है। क्या तुम्हारे हृदय में रञ्चमात्र भी दया का सञ्चार नहीं है? तुम पहले तो प्राणियों को प्रेम से एक-दूसरे को जोड़ देते हो, उन्हें आपस में एक कर देते हो और फिर बीच में ही उन्हें परस्पर विमुक्त कर देते हो। तुम्हारा यह खेल अज्ञानी बालकों के खेल जैसा बड़ा विचित्र है।

मेरा श्याम रूठा है, मुझसे मिला दो। कोई मेरे सिर पर यह एहसान चढ़ा दो ।।

दुहाई मैं रो रो कर देती हूँ, लोगों। जाता हुआ बंशीवाला मुझे लौटा दो ।।

तुम मनमोहन का अपूर्व सुन्दर मुखचन्द्र हमें दिखलाकर उसे हमारी आँखों से ओझल कर रहे हो। तुम्हारा यह कार्य

अत्यन्त अनुचित है, असाधु है। वस्तुत: तुम महान् क्रूर हो जो अक्रूर के द्वारा हमारी आँखों का ही हरण कर ले रहे हो। हम अपना सर्वस्व न्योछावर कर जिस श्यामसुन्दर की दासी बनीं, वे भी आज हमारी ओर देख तक नहीं रहे हैं। वस्तुत: उन्हें नई-नई स्त्रियों से स्नेह करने की आदत पड़ गई है। आज मथुरा की स्त्रियों का परम सौभाग्य है कि वे श्यामसुन्दर के मुस्कुराते सुन्दर मुख को देखेंगी। मथुरा की नागरी स्त्रियों के चक्कर में पड़कर भला कन्हैया हम गाँवों की ग्वालिनों को क्यों कर याद करने लगेगा? अरे। इस क्रूर का नाम अक्रूर किसने रख दिया? यह तो हमें कुछ सान्त्वना भी न देकर हमारे प्राणधन को छीन कर हमसे दूर लेकर चला जा रहा है।

गोपियाँ परस्पर कहने लगीं- हे विधाता, तुम्हारा विधान बड़ा उल्टा है। तुमने पहले कृष्ण से प्रेम कराया और अब तुम उन्हें हमसे बिछुड़ना चाहते हो। तुम्हारी यह करतूत अति अनुचित है।

हे विधि तव करतूत न नीकी। नहिं जानत पीड़ा पर जी की।।

हितकर प्रथम पियूष पिवावत। पुन तू तांको गरल खवावत।।

यह अक्रूर नहीं है क्रूर है। श्यामसुन्दर के अंगों में हम तो ब्रह्मा की सृष्टि के सौंदर्य को देखती रहती हैं। हमने तो उनके लिये अपने पुत्र, घर, द्वार सब छोड़ दिये, उन्हीं की चितवन, मुस्कान आदि से मोहित होकर उनकी बे मोल की दासी हो गईं। यह अक्रूर बड़ा दुष्ट है, निर्दयी है। यह हमारे दु:ख को नहीं जानता। यह हमारे श्यामसुन्दर को हमसे छीनने आया है।

हे विधाता, एक बार ऐसे शोभामय मुख को दिखाकर अब तुम कैसी निठुराई कर रहे हो। यह तुम्हारा काम बड़ा ही अनुचित है। हाय-हाय, तुमने ऐसी क्रूरता क्यों धारण कर ली है।

अरे निष्ठुर अक्रूर, हम ब्रज गोपियों के प्राण श्रीकृष्ण को न ले जा। फिर कहती हैं कि हाय-हाय, हमारे दुख भरे बचनों को यह निर्दयी सुन ही नहीं रहा है। अब तक इस ब्रज में ऐसा निष्ठुर कोई नहीं आया था जिसने श्रीकृष्ण को चलने के लिये राजी कर लिया हो। अब तक तो जितने आये वे अपने प्राण देने ही आये थे किन्तु आज यह तो हमारे प्राण श्रीकृष्ण को लिये जा रहा है।

कोई गोपी कहती थी यह अक्रूर क्यों व्रज में आया जो निष्ठुर दुर्दिन बन कर ब्रज में छा गया। हम अबलाओं को बिन धीर धराए मेरे प्राण प्रियतम को मुझसे दूर भगाना चाहता है। एक पल के लिए भी जिसका वियोग अत्यन्त कठिन है उनके संयोग के बिना अब हम लोग कैसे रहेंगी। कर्म तो कर रहा है महान क्रूरता का, लेकिन व्यर्थ में ही यह अपना नाम अक्रूर कहलाता है।

अग्नि से अधिक विरह की अग्नि गर्म है। कृष्ण मथुरा आने को कह रहा है यह सुनकर हमारी छाती जल उठती है। यहां की स्त्रियां इस प्रकार विरह में जल रही है, जैसे दीपक की बत्ती जलाती है। जो स्त्रियां अग्नि में जलकर मर गईं, वे तो अधिक सुखी है। सारी गोपियां नेत्रों से आंसू बहा रही हैं और व्याकुलता से पागल है। इनके दर्द को वही जान सकता है, जो श्यामसुंदर के रंग में रंगा हुआ है। एक गोपी दूसरे गोपी से कहती है- सुना है कृष्ण मथुरा जा रहे हैं मुझे इसका बड़ा ही दु:ख है, किंतु लज्जावश मैं अपने हृदय की गुप्त बात को किसीसे कह नहीं सकती। न मुझे नींद आती है, न रात बीतती है। सोचती हूं कि कब सवेरा हो और मैं कृष्णजी को देखूं। कृष्ण तो इस प्रकार का निर्मोही हैं, जैसे कमल का पत्ता। कृष्ण हमसे बिछुड़ रहे हैं पता नहीं कब सकुशल लौटेंगे?

क्या कहें? आज भाग्य ही हमारे विपरीत हो गया है। आज कन्हैया कितना निष्ठुर हो गया है कि हमसे बिना कुछ कहे ही रथ पर जा बैठा है। ये गोप, बालक और बूढ़े कितने अज्ञ हैं कि ये रथ को जल्दी चलाने की प्रेरणा कर रहे हैं। चलो, हम स्वयं ही चलकर अपने प्राण-धन श्यामसुन्दर को रथ के सामने खड़ी होकर रोकेंगी। कुल के बड़े-बूढ़े हमारा क्या कर लेंगे? ऐसा कहकर वे गोपियाँ लज्जा छोड़कर गोविन्द, दामोदर, माधव कहती हुईं जोर-जोर से रोने लगीं। उनका मन सर्वात्मना कृष्णमय हो गया था।

अब हरि जब मथुरा को जेहैं। तनु बिनु प्राण कौन विधि रैहैं।।

यह श्याम भी क्या कम निष्ठुर है। देखो कैसे जाकर रथपर बैठ गये। कोई उन्हें रोकनेवाला भी नहीं है। ये गोप-ग्वाले तो मथुरा जाने की तैयारी में कैसे उतावले और उन्मत्त हो रहे हैं। ये अपने छकड़े कितनी शीघ्रता से जोत रहे हैं। ये बड़े मूर्ख हैं। हमारे बड़े-बूढ़े भी इनको समझाते नहीं। श्यामसुन्दर को मथुरा जाने से रोक नहीं रहे। अब हम ही हमारी लोक लज्जा त्यागकर उनके निकट जाकर उनको मथुरा जानेसे रोक देंगे।

जो दुख देवै जीव को महाकष्ट वह पाय। बोवै बीज बबूल को आम कहाँ ते खाय।।

हम देखती हैं कि हमारे कुल के बड़े बूढ़े तथा सम्बन्धी हमारा क्या बिगाड़ लेंगे? हम श्यामसुन्दर का एक क्षण के लिये भी विरह नहीं सह सकती। उनकी विलासपूर्व चितवन मनोहर मुस्कान मीठी मीठी बातें रासलीला की वे रात्रियाँ, प्रेमालिंगन आदि हमें बेचैन किये दे रहे हैं। हम उनके बिना विरह व्यथा किस प्रकार सह सकेंगी।

एक सखी बोली- सखियों, दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। अपना ही दाम खोटा न होगा तो परखने वाले उसे कैसे खोटा बता सकते हैं? श्यामसुन्दर ही न जाना चाहें तो लाख अक्रूर आ जायँ वे न जायँगे। किन्तु श्यामसुन्दर तो स्वयं जाने को उद्यत हो रहे हैं। वे तो जाने की प्रसन्नता में इधर-से-उधर फूले-फूले घूम रहे हैं। ये जो अब तक प्रेम का ढोंग रचते थे, स्नेह का प्रदर्शन करते थे यह सब कपट व्यवहार था, बनावट थी। ये तो बहुवल्लभ हैं प्रेम करना तो जानते हैं, निभाना नहीं जानते। आज इससे प्रेम किया, कल उससे प्रेम किया। जैसे भौंरा एक कली का रस नहीं पीता एक से दूसरी पर, दूसरी से तीसरी पर घूमता रहता है, चक्कर काटता रहता है। उसे उत्कण्ठा बनी रहती है, सम्भव है, दूसरी कली में इससे अधिक स्वादिष्ट रस हो, उसमें अधिक मिठास हो श्रीकृष्ण का प्रेम क्षणिक है। एक क्षण में प्रेम करते हैं, दूसरे क्षण में उसे शीशे की भाँति चकनाचूर करके तोड़ देते हैं। ये बड़े कृतघ्न हैं, दूसरे के उपकार की ओर तो ये ध्यान ही नहीं देते।

हमने तो इनके लिये इतना सब किया, किन्तु आज ये इतने निस्पृह बन गये हैं कि हमारी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं। हमसे बोलते तक नहीं, मानों मौनी बाबा हो गये हों। यह कृतघ्नता नहीं तो और क्या है?

इस पर एक दूसरी बोली- सखियों, जब बुरे दिन आते हैं, तब अपने पराये हो जाते हैं। प्रतीत होता है, हमारा सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया। गत रात्रि तक ही हमारा सुख सौभाग्य था। आज की रात्रि तो मथुरापुरी निवासिनी नागरियों के लिये सुखप्रद होगी। आज उनका प्रात:काल शुभशकुन युक्त होगा। आज मथुरा में सभी का मङ्गल दिवस होगा। मथुरावासिनी स्त्रियों के नेत्र आज ही सफल होंगे। उन्हें नयन पाने का यथार्थ फल आज ही होगा। जब श्यामसुन्दर नगर में प्रवेश करेंगे तो लज्जावती कुलवती सुकुमारी ललनायें अपनी अटा अटारी, छज्जे, तिवारियों पर चढ़कर अपने कजरारे नयनों की चोट करती हुईं, घूँघट की ओट से मदनमोहन के मधुर मुसकानमय मुख की मादक माधुरी का मधुकरियों के सदृश पान करेंगी। जहाँ श्यामसुन्दर ने उनके सुललित मुखारविन्दों का अवलोकन किया तहाँ वे उनके प्रलय जाल में फँस जायँगे। हम गाँव की गँवारी ग्वालिनियों को सदा के लिये भूल जायँगे, फिर नन्दगाँव की ओर कभी भूल से पैर करके भी न सोवेंगे।

इस पर एक बोली- सखि, तू तो भोली-भाली है। तुझे पता नहीं। सौन्दर्य में कितना आकर्षण है। रूप में कितनी मादकता है? श्याम कितने भी मातृ-पितृ-भक्त क्यों न हों, जहाँ वे उनके गोरे-गोरे गोल-गोल सुकुमार मुखों को देखेंगे, जहाँ उनके मधु से भी मीठे अनुराग भरे वचन सुनेंगे, वहाँ उनके ऐसे वश में हो जायँगे कि माता, पिता, स्वजन, सखा सभी को भूल जायँगे। उनके प्रेम में ऐसे आसक्त हो जायँगे कि फिर उन्हें ब्रज में आना अत्यन्त ही बुरा लगेगा। फिर ये ब्रज की कभी भूलकर चर्चा भी न करेंगे।

इस पर एक अन्य सखी बोली- सखियों, हमारा तो सौभाग्य छिन ही रहा है, हम दूसरों को क्यों कोसें? अहा, आज जिस

मार्ग से रथ पर चढ़कर श्यामसुन्दर जायँगे, उस मार्ग के नर-नारी कृतार्थ हो जायँगे, धन्य बन जायँगे। जो रथ पर बैठे हुए समस्त गुणों के आगार लक्ष्मीरमण नन्दनन्दन का दर्शन करेंगे। मथुरापुरी कृतार्थ हो जायगी। उसमें रहनेवाले जितने दाशार्ह, अन्धक, भोज, कुकुर, मधु और वृष्णिवंशीय यादव तथा अन्यान्य वर्णों के लोग हैं वे नेत्रों को परमानन्द प्रदान करनेवाले की प्रदक्षिणा करेंगे, उनका स्वागत-सत्कार करेंगे।

भई तृप्ति नहिँ तऊ छीनिवे अब तू आयो। काम क्रूर अति करे नाम अक्रूर धरायो।।

एक गोपी बोली- मुझे कृष्ण के देखने से तीनों लोकों का सुख प्राप्त होता था, अब उनको देखे बिना किस तरह चैन पड़ेगी। दूसरी बोली कि जब वह एक बार आँख उठाकर मेरी ओर देखते थे तब मैं बहुत प्रसन्न होकर अपने बराबर किसी को नहीं समझती थी, उनके जाने पर मेरी क्या दशा होगी। दूसरी ने कहा- हे ब्रह्मन, तुम बड़े कठोर हो, जो पहिले मोहन से प्रीति लगाकर अब उनके विरहसागर में मुझे डुबाना चाहते हो। जिस तरह दूर से कोई प्यासा पानी देखकर पीने के लिए जावे और वहाँ उसे बालू दिखाई दे, वही गति हमारी हुई। राम व कृष्ण दोनों नेत्र हमारे चले जायँगे तो हम लोग बिना आँख के जीकर क्या करेंगी। श्याम व बलराम बिना एक क्षण हमारा जीना कठिन है।

जो राजन के राज हैं माखनप्रभु व्रजराज। अब जीवें कैसे सखी वह छूटत हैं आज।।

उन लोगों ने आपस में कहा कि कंस अधर्मी के राज्य में सुख व आनन्द स्वप्न हो गया। सब ब्रजबाला उनके चौगिर्द खड़ी होकर बड़ी करुणा से कहने लगीं- हे व्रजनाथ, तुम क्यों इन अबला अनाथाओं को अपने विरहसागर में डुबाकर प्राण लेना चाहते हो। वृन्दावनवासियों का जीवन तुम्हारे अधीन है। जिस तरह हाथ की रेखाएँ कभी नहीं मिटतीं उसी तरह भले मनुष्य की प्रीति कभी नहीं घटती और जैसे बालू की भीति नहीं ठहरती वैसे ही मूर्ख की प्रीति नहीं निबहती। हे गोपीनाथ, हम लोगों ने तुम्हारा क्या अपराध किया, जो हमें पीठ दिखलाकर चले जाते हो।

एक सखी बोली- यह सब कठोरता श्यामसुन्दर की समझना चाहिए। उनका चित्त भी शरीर के समान काला है। हम लोगों ने कुल की लाज छोड़कर उनसे प्रेम किया था, सो अब वह हमें इस दु:खसागर में छोड़कर चले जाते हैं।

गोपियाँ करुण कण्ठ से प्यारे श्यामसुन्दर को पुकारती हुयी उनके विरह में व्याकुल होती हुयी आयीं और रथ को पकड़ लिया। श्रीवृन्दावनअधीश्वरी राधा अचेत-सी होकर कहने लगीं- हे प्यारे श्यामसुन्दर, मेरे प्राणधन, हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो? हमें छोड़कर मत जाओ। अक्रूर, कन्हैया के बिना गोकुल और यह व्रज शमसान-सा हो जायेगा। हमें श्रीकृष्ण के विरह में मत मारो। अक्रूर स्तब्ध हो गये और सोचने लगे- व्रज का प्रेम देखा, गोपियों की प्रेम विह्वलता देखी, अब इन गोपियों को कैसे समझायें? भगवान कृष्ण ने देखा कि हृदयहारिणी गोपियाँ मेरे वियोग जन्य व्यथा से अतिशय सन्तप्त हो रही हैं उनसे रहा नहीं जा रहा है।

गोपियां अपनी देह और अपने घर की सब सुधि भूल गई और इस प्रकार संसार से उनका चित्त हट गया। ध्यान में उनके प्यारे श्रीकृष्ण की छबि छा गई और वे प्रेम समाधि में डूब गईं। वे इस स्थिति में अपनी आँखों से आँसू बरसाती हुई आपस में बातें कर रही थीं और कहती थीं कि अरी सखी, देखो पहले प्राणनाथ जाते हैं या पहले हमारे प्राण।

गोप बालक बोले- **तू प्यार का सागर हैं, तेरी एक बून्द के प्यासे हम.....**

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, जितनके चित्त श्रीकृष्णमें अत्यन्त ही आसक्त हो रहे हैं, जो भविष्यमें होनेवाले विरह-दु:खको स्मरण करके घबड़ायी हुईं, नाना भाँतिके आर्त-वचनोंको कहती हुईं और लोकलाज आदिकी कुछ भी परवा नहीं करती हैं, वे ऊँचे स्वरसे चिल्ला-चिल्लाकर हा गोविन्द, हा माधव, हा दामोदर, कह-कहकर रुदन करने लगीं।

ऊँचे स्वर रोने लगीं, तज लज्जा ब्रज दार। यशमति तब मूर्छित भयीं, रही न देह समार।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान के भावी विरह को स्मरण करके कुछ गोपियों के हृत्तापजनित उष्ण श्वासों से मुख की कान्ति म्लान हो गई। कुछ के वस्त्र तथा कंकणादि आभूषण खिसक गये और किसी के केशपाश ढीले हो गये।

सुनि गोपनि सँग नंद गमनकी करत तयारी। इत रासेश्वर गये कुञ्ज जहँ राधा प्यारी।।

हे राजन्, भगवान श्रीकृष्ण के प्रस्थान की यह बात वृषभानुवर के भी घर में पहुँच गयी। प्रियतम चले जाएँगे- यह समाचार भरी सभा में अकस्मात् सुनकर वृषभानु-नन्दिनी अत्यन्त दुखित हो गईं। वे हवा की मारी हुई कदली की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ी और मूर्छित हो गईं। किन्हीं गोपियों की मुख श्री अत्यन्त मलिन हो गई। कुछ गोपियाँ एकत्र हो आपस में इस प्रकार बातें करने लगीं। बात करते समय उनके कण्ठ गद्गद हो गए थे और वाणी लड़खड़ा रही थी। उनके नेत्रों से स्वत: अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। गोपियाँ बोलीं कि अहो, अत्यन्त निर्मोही जन का चरित्र बड़ा विचित्र होता है। वह कहने योग्य नहीं है। निर्मोही मनुष्य मुँह से तो कुछ और कहता है, परन्तु हृदय में कुछ और ही भाव रखता है। उसके मन की बात तो देवता भी नहीं जानते, फिर मनुष्य कैसे जान सकता है? रास में इन्होंने जो-जो बात कही थी उस सबको अधूरी ही छोड़कर वे चले जाने को उद्यत हो गए हैं। अहो, हमारे इन प्राणवल्लभ के मथुरापुरी चले जाने पर हम सबको कौन-कौन सा कष्ट नहीं होगा।

जब राधा को मालूम पड़ा तो राधा भी बड़ी अधीर हो कि ऊठी कन्हैया कल चला जायेगा और सखियों के साथ विलाप करके कहने लगीं- **ओ बसन्ती पवन पागल ना जा रे ना जा रोको कोई....**

फिर प्रभु ने राधा के पास जाकर राधा को हृदय से लगाकर उनके नेत्रों से अश्रु पोंछकर बहुत प्रकार से समझाया।

राधा बोली- सच बताओ प्राण बल्लभ, क्या तुम मुझे छोड़कर कहीं चले जाओगे।

राधा की ऐसी बात सुनकर कृष्ण बोले- प्रिये, तुम्हें हो क्या गया है? मुझमें जाना-आना तो बनता ही नहीं। जाना तो उसे कहते हैं, कोई वस्तु एक स्थान में हो, दूसरे स्थान में न हो। मैं तो वायु की भाँति, अग्नि की भाँति सर्वत्र व्यापक हूँ। मैं सर्वत्र सदा से था, सदा रहूँगा। सबसे आगे मैं हूँ, पीछे भी मैं हूँ। जैसे मैं सदा, सर्वत्र, सब काल में विद्यमान हूँ, वैसे ही तुम भी हो। मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं। मैं तुमसे पृथक् होना भी चाहूँ तो नहीं हो सकता। देह का संयोग न तो संयोग है और न देह का वियोग वियोग ही है। संयोग, वियोग तो मन से होता है। तुम तो निरन्तर मेरे मन में बसी रहती हो, अत: तुमसे तो मेरा वियोग सम्भव ही नहीं।

राधा बोली- आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। जैसे औषधियाँ चन्द्रमा को देखकर प्रफुल्लित हो जाती हैं और सूर्य के ताप से तप जाती हैं। वैसे ही तुम्हें देखकर मैं मरी हुई भी, कुम्हिलाई हुई भी प्रफुल्लित हो जाती हूँ। जैसे रात्रि में दीप की शिखा प्रकाशित होती है, वैसे ही मैं आपके दर्शनों से प्रकाशित होती हूँ। जैसे शुक्लपक्ष को पाकर चन्द्रमा की कलायें बढ़ने लगती हैं, वैसे ही तुम्हें पाकर मेरा अनुराग, उत्साह बढ़ता है। जैसे कृष्णपक्ष को पाकर चन्द्रमा की कला घटते-घटते क्षीण हो जाती है, वैसे ही तुम्हें न पाकर मैं कृश होते होते एक दिन विलुप्त हो जाऊँगी। जब मैं तुम्हारे हृदय पर सिर रखकर सोती हूँ तो इस प्रकार प्रकाशित होती हूँ, जिस प्रकार चन्द्र को पाकर पूर्णिमा की रजनी प्रकाशित होती है; तुम्हारे बिना मैं उसी प्रकार प्रभाहीन तेजोहीन हो जाती हूँ, जैसे बिना चन्द्रमा के अमावस्या की रात्रि। जैसे जलती अग्नि में घृत की आहुति पड़ने से वह और भी अधिक बढ़ती है, उसी प्रकार तुम्हें पाकर मेरा तेज, ओज, श्री, कान्ति तथा शोभा आदि अभिवृद्धि को प्राप्त होती है। तुम्हारे बिना मैं उसी प्रकार मुरझा जाती हूँ, झुलस जाती हूँ, जैसे जाड़ों में पाला पड़ने से लता मुरझा जाती है। मेरा रूप, यौवन, श्रृंगार सब तुम्हारे बिना उसी प्रकार व्यर्थ हो जायगा, जिस प्रकार रजनी के अन्त हो जाने पर ताराओं का तेज व्यर्थ हो जाता है। जैसे प्राणों के परित्याग करने पर शरीर मृतक बन जाता है, वैसे ही तुम्हारे बिना मैं मृतक सदृश हो जाऊंगी। जैसे तेजस्वी भाग्यशाली पुरुष के रहने से आश्रम श्रीसम्पन्न शोभायुक्त दिखायी देता है, उसके न रहने पर जैसे वह सूना-सूना दिखायी देता है। वैसे ही तुम्हारे बिना मैं शून्या हो

जाऊँगी। जैसे भीत पर चित्र काढ़ने से उसकी शोभा बढ़ जाती है और चित्र के मिटा देने से वह केवल मिट्टी-ही-मिट्टी रह जाती है; वैसे ही तुम्हारे बिना मैं कांतिहीन हो जाऊँगी। तुम समस्त ब्रज के उजियारे हो। व्रजराज-नन्दजी तथा मैया यशोदाजी की आँखों के तारे हो। मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। तुम वृन्दावन के वृक्षों की शोभा हो। वन का जैसे सिंह राजा होता है, वैसे ही, हे पुरुष शार्दूल। तुम समस्त ब्रज के वनों के राजा हो, तुम्हारे पीछे हमारी शोभा है। तुम्हारे चले जाने पर हम जलहीन सूखती नदी के समान, चन्द्रहीन निशा के समान तथा प्राणहीन देह के समान हो जायेंगी।

जीवनधन, यदि तुम चले गये तो तुम्हारे साथ मेरा सौभाग्य भी चला जायेगा। मुझे आप घोर विपत्ति सागर में ढकेलकर मथुरा जायेंगे। मैं यहाँ किसके सहारे रहूँगी, किसका मुख देखकर जीऊँगी, किनके मुखकमल मकरन्द को पीऊँगी? यदि तुम मुझ अबला को नि:सहाय छोड़कर चलें जाओगे तो मैं भी अब घर लौटकर न जाऊँगी। मैं भी एक वन से दूसरे वनों में भटकती फिरूँगी। तुम्हारे सुमधुर कृष्ण-कृष्ण इस नाम को रटती रहूँगी। इस प्रकार रात्रि-दिन तुम्हारे नाम का गायन करती हुई फिरती रहूँगी।

हाय, मुझे तुम्हारे ऊपर कितना गर्व था, संसार में मैं अपने को सर्वश्रेष्ठ ललना समझती थी, अब मेरा समस्त गर्व चूर्ण हो जायेगा। हे जीवनधन, तुम भी मुझे छोड़कर सुख न पाओगे। तुम्हारा जीवन सुखी न बीतेगा। आपके बिना मुझे एक-एक पल कल्पों के समान प्रतीत होता है।

कृष्ण बोले- कर्त्तव्य ऐसा ही कठिन होता है। कर्त्तव्य के वशीभूत होकर मुझे मथुरा जाना पड़ रहा है। अक्रूर मुझे लेने आये हैं। भावी ऐसी ही थी। तुम गोलोक की बात स्मरण करो। सुदामा गोप ने तुम्हें कुछ दिन के लिये मुझसे पृथक् होने का शाप दिया था। भावी को कौन मेंट सकता है। जो मिला है, वह एक दिन बिछुड़ेगा भी। तुम चिन्ता मत करो। समय आने पर फिर हमारा तुम्हारा मेल होगा। फिर हम तुम इसी प्रकार की लीला करेंगे। यह कहकर भगवान ने वृषभानुकिशोरी का गाढ़ालिंगन किया भावी विरह को स्मरण करके तथा प्रिय संगम के सुख के कारण श्रीजी चेतना शून्य हो गईं।

विलखति राधा कहति-प्राणपति। यदि तुम जाओ। तो नहिँ जीवित मोइ फेरि बरसाने पाओ।।
निशा चन्द्र बिनु नदी नीर बिनु सोह न जैसे। देह प्रान बिनु मृतक बने तुम बिनु हौं तैसे।।
मछली जल बिनु नहिँ जिये, पिये चातकी स्वाति जल। त्यों तुमने बिनु प्रानपति, होहि हृदय अतिई बिकल।।

प्रभु बोले, हे मेरी प्राणप्रिया राधिके, सुनो, तुमही मेरे सुख, रस और चरित्र को पूर्ण करनेवाली हो तुम तो इस रहस्य को जानती ही हो कि ब्रह्मा की बिनती सुनकर, धरती का भार हरण करने के लिए कंस आदि खलों का संहार करने के लिए ही तुम्हारे साथ अवतार लिया हूँ। अत: अपने अवतार के उद्देश्य की सिद्धि के लिए मैं मथुरा अवश्य जाऊँगा और भूमि का भार उतारूँगा। तत्पश्चात् शीघ्र यहाँ आऊँगा और तुम्हारा मंगल करूँगा। कृष्ण बोले- हे राधिके, तुम्हारा मन उदास क्यों है? तुम इस तरह शोक मत करो। मेरी मथुरा जाने की इच्छा सुनकर तुम विरह से व्याकुल हो उठी हो।

ऐसा विचार कर, हे प्रिये मेरे जाने का अनुमोदन करो। हृदय में धैर्य धारण कर के शोक का त्याग करो। यह सुनकर राधा बोली- हे नाथ, आप मथुरापुरी जा रहे हैं। मैं आपके रास्ते में बाधक नहीं बनूंगी। फिर भी हे प्रभो मेरी यह प्रतिज्ञा सुनिए, आप के बिना मै इस शरीर को धारण नहीं कर सकूंगी। यह सुनकर प्रभु बोले, हे प्रिया जैसी तेरी आज्ञा होगी वही परम विशेष है। इसलिए वही करूँगा। राधा ने कहा कि हे प्रभो, तब तो मेरी यही आज्ञा है कि आप मुझे छोड़कर कही मत जाइए।

जगदीश्वर श्रीहरि के ऐसा कहने पर वियोग-विह्वला श्रीराधाजी दावानल से दग्ध लता की भाँति मूर्छित हो गईं और उनमें कम्प रोमांच आदि सात्विक भाव प्रकट हो गए। उस अवस्था में वे अपने प्राणवल्लभ से बोलीं कि प्राणनाथ। तुम पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवश्य मथुरापुरी को जाओ, परन्तु मेरी इस निश्चित प्रतिज्ञा को भी सुन लो। यहाँ से तुम्हारे चले जाने

पर मैं शरीर को कदापि धारण नहीं करूँगी। मेरे प्राण अधरों की राह से निकल जाने को अत्यन्त आकुल हैं, ये कपूर की धूलि कणों के समान शीघ्र ही उड़ जाएँगे।

राधा का कहना सुनकर सभी देवताओं के हृदय में अत्यन्त विषाद हुआ। अगर राधारमण प्रभु नहीं जाएंगे तब किस प्रकार हम सब के दुखों का दमन होगा। सभी देवता राधा से प्रार्थना करने लगे- हे माता, हम लोगोंके उद्धार के लिए प्रभु को जाने की अनुमति दो। तब राधा ने निर्णय लिया।

जगत जननी दिव्य राधा धन्य है जो अगाध प्रेम और त्याग की मूर्ति है। इसलिए कठोर छाती करके व्रज के समान बनाकर बोली, हे नाथ जाइए। मैं किसी भी भाँति जीवित रह लूंगी। यही परमप्रभु की इच्छा जानकर देवताओं को दिव्य वाणी से अभय प्रदान किए। फिर से कहने लगी, कि प्रभो, आप तो भगवान है। मिलना-बिछड़ना आप के लिए एक समान है।

जब तक मै इस धरतीपर रहूँ तब तक आप हमेशा मेरे हृदय मे निवास कीजिए। श्वास पूरा होने के पहले एक बार फिरसे आपके चरण की धूली मिलें। इस प्रकार से अपनी प्राणप्रिया के हृदय का आलोलित भाव समझकर करुणा निधानप्रभु कृष्ण एवमस्तु कहा।

कृष्ण बोले, सुन्दरि, भारतवर्ष और वृन्दावन को पवित्र करना ही तुम्हारे शुभागमन का उद्देश्य है। समस्त लोकों में जो सम्पूर्ण स्त्रियाँ हैं वे तुम्हारी कलांश-कला से प्रकट हुई हैं। जो स्त्री है वह तुम हो, जो पुरुष है, वह मैं हूँ। मैं ही अपनी कला से अग्नि-रूप में प्रकट हुआ हूँ और तुम अग्नि की दाहिका शक्ति एवं प्रिय पत्नी स्वाहा हो। तुम्हारे साथ रहने पर ही मैं जलाने में समर्थ हूँ, तुम्हारे बिना नहीं। मैं दीप्तिमानों में सूर्य हूँ और तुम्हीं अपनी कला से संज्ञा होकर प्रभा का विस्तार करती हो। तुम्हारे सहयोग से ही मैं प्रकाशित होता हूँ। तुम्हारे बिना मैं दीप्तिमान नहीं हो सकता। मैं कला से चन्द्रमा हूँ और तुम शोभा तथा रोहिणी हो। तुम्हारे साथ रहकर ही मैं मनोहर बना हूँ। तुम्हारे न होने पर तो मुझमें कोई सौन्दर्य नहीं है। मैं पुरुष हूँ और तुम प्रकृति हो, तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। ठीक वैसे ही, जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता। तुम सम्पत्ति रूपिणी हो और मैं तुम्हारे साथ उस सम्पत्ति का ईश्वर हूँ। तुम कान्ति, शान्ति, मूर्तिमती सद्विभूति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, सुधा, तृष्णा, परा, दया, निद्रा, शुद्धा, तन्द्रा, मूर्च्छा, संनति और क्रिया हो। मूर्ति और भक्ति तुम्हारी ही स्वरूपभूता हैं। तुम्हीं देहधारियों की देह हो, सदा मेरी आधारभूता हो और मैं तुम्हारा आत्मा हूँ। इस प्रकार हम दोनों एक दूसरे के शरीर और आत्मा हैं। जैसी तुम, वैसा मैं, दोनों सम-प्रकृति-पुरुष हैं। हे देवि, हममें से एक के बिना भी सृष्टि नहीं हो सकती। इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्राणाधिका प्रिया श्रीराधा को हृदय से लगाकर बहुत समझाया-बुझाया।

श्रीराधा जी ने व्यथित हृदय से कहा- हे नाथ। हे रमणश्रेष्ठ, प्रिय लगने वाले मेरे समस्त सम्बन्धियों में तुम्हीं श्रेष्ठ हो। हे प्राणनाथ, मैं देखती हूँ, इस समय तुम्हारा मन बँटा हुआ हैं। तुम्हारे चले जाने पर मेरा प्रेम और सौभाग्य सब कुछ लुट जाएगा। मुझे शोक के गहरे समुद्र में डालकर तुम कहाँ चले जा रहे हो? मैं विरह से व्याकुल हूँ, दीन हूँ और तुम्हारी ही शरण में आई हूँ। अब मैं फिर-घर को नहीं लौटूंगी, दूसरे वन में चली जाऊँगी और दिन रात कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण का गान करती रहूँगी। अथवा किसी वन में भी नहीं जाऊँगी, प्रेम के समुद्र में प्रवेश करूँगी और मन में केवल तुम्हारी कामना लेकर शरीर को त्याग दूँगी। जैसे आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य सदा साथ रहते हैं, उसी तरह तुम मेरे आँचल में बँधकर सदा पास ही रहते हो और साथ-साथ घूमते हो। किन्तु हे दीनवत्सल, इस समय तुम मुझे निराश करके जा रहे हो। मुझ दीन एवं शरणागत अबला को त्याग देना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता जिनके चरण-कमलों का ध्यान करते हैं, वे परमात्मा तुम्हीं हो। तुमने माया से गोपवेष धारण कर रखा है। मैं ईर्ष्यालु नारी तुम्हें कैसे जान सकती हूँ? हे देव, मैंने तुम्हें पति समझकर अथवा अभिमान के कारण तुम्हारे प्रति जो दुर्नीतिपूर्ण बर्ताव तथा सहस्रों अपराध किए हैं, उन्हें क्षमा कर दो। मेरा गर्व चूर्ण हो गया और मेरे सारे मनसूबे दूर चले गए। अपने सौभाग्य को आज मैं अच्छी तरह समझ चुकी हूँ। नाथ, इसके सिवा तुमसे और क्या कह

सकती हूँ? गर्गजी के मुख से तुम्हारे विषय में सुनकर, जानकर भी मैं तुम्हारी माया से मोहित हो गई। इस समय प्रेमातिरेक अथवा भक्तिपाश से बँधकर मैं तुमसे कुछ कह नहीं सकती। हे प्राणवल्लभ, हे प्रभो, तुम्हारे बिना मुझे एक-एक क्षण, सौ युगों के समान जान पड़ता है, फिर सौ वर्षों तक मैं किस तरह जीवन धारण कर सकूँगी।

चली राधे रानी, भर अखियों मे पानी, अपने मोहन से मुखड़ा मोड़के, अपने पिया से नाता तोड़के...

कृष्ण बोले- हे प्राणप्रिया अपने हृदय से हरास को छोड़कर मुझे ऐसा बचन दो कि अब तुम्हारे आँख से कभी भी आँसू न बहें। क्योंकि इस भूतलपर तुम्हारे अश्रु गिरकर मेरे कर्त्तव्य मार्ग को अवरुद्ध कर देंगे। हे सुशीला, जब हम धरतीपर आए है तब पूरी लीला करनी चाहिए। ऐसा कहकर प्रभु कृष्ण अपनी प्रिया की ओर देखने लगे। फिर प्रभु की रुचि में पग कर राधिका उठी। प्रभु के चरण की दिव्य धूलि अपने शीश पर रखकर दण्डवत प्रणाम किया। फिर एक चित्र की तरह बैठी रह गयी। प्रभु अपने धाम आए।

हरि समुझाई प्रिया कुञ्जतैं आये घरमहँ। जावें मथुरा श्याम बात फैली सब ब्रजमहँ।।
गोपी सुनि सब दुखित भई हिय अति अकुलायो। करि करि हरि की यादि सबनि को मुख मुरझायो।।
विधिकूँ कोसें कुपित ह्वै, नन्दभवन ढिँग आइकें। मिलि विलाप सबईं करें, नयननि नीर बहाइकें।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान के वियोग की सम्भावना से व्याकुल और भयभीत हुई ब्रजाङ्गनायें, उन श्रीहरि की सुललित पति, विचित्र क्रीड़ा, मन्द मुसकानमयी प्रेम चितवन, चिन्ता को मिटानेवाली ठठोलियों तथा उनके उदार चरित्रों को स्मरण करके झुण्ड-के-झुण्ड एक स्थान में एकत्रित होकर अश्रु विमोचन करने लगीं, उनका चित्त सब समय श्यामसुन्दर में ही लगा रहता था, अत: भावी विरह को स्मरण करने लगे।

नन्द-भवन में अक्रूर के पहुँचने पर मैया यशोदा उनके भोजन आदि की तैयारी कर रही थीं अत: विशेष ध्यान नहीं दिया था। अब जब वे सबको खिला-पिलाकर खाली हो गईं तब नन्द के पास बरामदे में आ गईं और उनसे पूछा- यह अक्रूर जी किसलिये आये हैं? नन्द ने प्रसन्नता के साथ कहा- कंस महाराज ने धनुष यज्ञ का आयोजन किया है। वहाँ सभी आमन्त्रित हैं। उन्होंने हमारे लाला के लिये अपना स्वर्ण-मण्डित रथ भेजा है। हम सब कल वहीं जायेंगे। ये बातें सुनकर मैया का तो दिल ही बैठ गया। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। थोड़ी देर के बाद फिर सँभल कर उन्होंने कहा- यह अक्रूर नहीं, क्रूर हैं। मेरे लाला को मत जाने दो। उसके चले जाने से गोकुल उजड़ जायेगा। उसके न रहने पर गायें भी खाना-पीना छोड़ देंगी। यदि आपको मथुरा जाना हो तो जाओ किन्तु लाला को मत ले जाओ। वहाँ उसकी देख-भाल कौन करेगा? वह बड़ा संकोची है। भूखा रहने पर भी कुछ मांगता नहीं है। उसे मना-मना कर कौन खिलायेगा?

मैं कन्हैया को अपनी आँखों से दूर नहीं कर सकती। अगर किसी को मेरे प्राणों की आवश्यकता हो तो मैं सहज दे सकती हूँ। कृष्ण-बलराम दोनों मचल गये। मैया तुम हमें कहीं जाने नहीं देंगी हम तो जायेंगे ऐसा कहकर रोने लगे।

यशोदा आक्रोश में होकर बोली- कंस इतने वर्षों से असुर भेज कर हमारा मान-सम्मान कर रहा था। क्या हमको पता नहीं है, हम बिना सम्मान के ही अच्छे हैं। हम कृष्ण-बलराम को नहीं भेजेंगे।

यशोदा बोली- तुम्हारे बिना ब्रज तो श्मशान की तरह हो जायगा क्योंकि यहाँ चारों ओर विरह की चितायें धधकने लगेंगी। मैया बार-बार उनके पैर पकड़ कर ब्याकुल होती है और आँखों से आँसू बरसाती है। वह कहती है मैं तो अपने लाला को स्वप्न की समाप्ति की तरह खोये दे रही हूँ। मैं बिना लाला के पहले भी गरीबनी थी किन्तु फिर इसके होने पर रानी हो गई और अब फिर गरीबनी हो गई। यह सारा गोवंश, सारा ब्रज और सारी सम्पत्ति हमारे किस काम की जब ब्रज को छोड़कर ब्रज का प्यारा जा रहा है। इस ब्रज में हमारा कोई हितैषी है जो हमारे प्राण प्यारे लाला को जाने से रोक ले। अरे हमारे इन छोटे-छोटे

बालकों का क्या काम जो कंस ने इन्हें बुलाया है। अरे यह अक्रूर तो मेरा काल बन कर आया है। कोई हमारे सारे गोवंश को ले जावे किन्तु मेरे लाला को मुझसे अलग न करे। मुझे चाहे कंस जेल में डाल दे, चाहे देश निकाला दे दे।

नन्दबाबा ने यशोदा को समझाते हुए कहा- कन्हैया ग्यारह वर्ष का हो गया है। अब कितने दिनों तक तू उसे अपने घर में रक्खोगी? उसे बाहरी दुनियाँ भी देखनी चाहिये। हम दो-चार दिन मथुरा में रहकर कन्हैया के साथ वापस आ जायेंगे। तू चिन्ता मत कर। यशोदा यह सुनकर कि कन्हैया कल जायेगा धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। नन्दबाबा ने उठाकर उसे सम्भालते हुए कहा- महर इस तरह अधीर मत हो।

दुनिया में जब आये है तो जीना ही पड़ेगा, जीवन है अगर जहर तो पीना ही पड़ेगा।

रात हुई। सभी सो गये। किन्तु मैया की आँखों में आज नींद का नाम नहीं है। न जाने कल क्या होगा? कन्हैया चला जायेगा। उसके बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी? यशोदा अत्यंत दुखी होकर बार-बार यही कहती है कि क्या ब्रज में कोई मेरा ऐसा हितैषी नहीं है, जो कृष्ण को जाते हुए रोक ले। मेरे लाला का क्या काम है, जिसके लिए राजा कंस ने उसे मथुरा बुलाया है। यह अक्रूर तो मेरे प्राण लेने के लिए काल बनकर आया है। चाहे कंस हमारी गायों की सारी संपत्ति ले ले और मुझे कारागृह में डाल दे, किंतु मैं तो केवल यही चाहती हूं कि मेरा लाल मेरी आँखों के सामने खेलता रहे। मैं उसका मुख देखकर जीती हूं और रात में उसे गोद में लेकर रहूं। उसके वियोग में यदि भाग्यवश जी भी जाऊं तो हंसकर किसे बुलाऊंगी? कृष्ण के गुणोंको गाते-गाते यशोदाके होंठ और मुख सूख गए। वे इतनी दु:खी है कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे बोल तो सकती नहीं इसलिए नेत्रोंसे आंसू बहा रही हैं और इस प्रकार आंसू के माध्यम से अपने हृदय के दु:ख को कह रही है। वह शैय्या से उठकर बाहर आँगन में सिसकियाँ भरने लगी। कन्हैया की आँखें अचानक खुल गईं। उसने देखा कि मैया शैय्या पर नहीं है। उसने देखा तो माता आँगन में बैठी रो रही थी। वह मैया की गोद में बैठ गया और उसके गले में बाँहें डालकर आँसू पोछते हुए रोने का कारण पूछने लगा। मैया, तूँ क्यों रो रही है। तेरे रोने से मुझे महान कष्ट होता है।

कन्हैया का प्रश्न सुनकर मैया ने कहा- लाला, मैं सोचूँ हूँ, तू कल मथुरा चल्यौ जायगौ। तेरे बिना एक-एक पल जीवन का कैसे व्यतीत करूँगी। गोविन्द बोले- मैया तू चिंता मत करै, मैं जल्दी ही आ जाऊंगो।

तू कल जा रहा है। यह मुझे सह्य नहीं है। बरबस मेरी आँखें बार-बार बरस पड़ रही हैं। मुझे छोड़कर लाला तूँ कहीं मत जाना। मैं तेरे ही सहारे तो जीवित हूँ। कन्हैया ने कहा- मैया, तू काहे को परेशान होती हो। मैं परसों जरूर आ जाऊँगा। जब लाला ने कहा परसों उस गांव का नाम परसों हो गया। यह ग्राम आज भी ब्रज में है। भगवान ने मैया से कहाँ मैं शीघ्र लौट आऊंगा। इस शीघ्र शब्द पर सींह नामक ग्राम बस गया जो आज भी ब्रज में है। अपने लाला की बात का विश्वास कर मैया सन्तुष्ट हो गई। उसने कन्हैया को बाँहों में भर कर कहा- अच्छा, चलो अब हम लोग सो जाँय। यशोदा कहने लगी-

तुम्हीं मेरे मंदिर, तुम्हीं मेरी पूजा, तुम्हीं देवता हो, तुम्हीं देवता हो...
कोई मेरी आँखों से देखे तो समझे, के तुम मेरे क्या हो, के तुम मेरे क्या, तुम्हीं मेरे मंदिर...
जिधर देखती हूं उधर तुम ही तुम हो, न जाने मगर किन खयालों में गम हो,
मुझे देखकर तुम जरा मुस्कुरा दो, नहीं तो मैं समझूंगी, मुझसे खफा हो, तुम्हीं मेरे मंदिर...
मैं हूँ इक छोटी सी माटी की गुड़ियाँ, तुम्हीं प्राण मेरे, तुम्हीं आत्मा हो, तुम्हीं मेरे मंदिर...
बहुत रात बिती चलो मैं सुला दूँ, पवन छेड़े सरगम मैं लोरी सुना दू
तुम्हें देखकर ये खयाल आ रहा है, के जैसे फरिश्ता कोई सो रहा हो, तुम्हीं मेरे मंदिर...

मैया और कन्हैया दोनों एक ही शैय्या पर सो गये। आज श्रीकृष्ण ने यशोदा के हृदय में प्रवेश किया। अब कन्हैया मैया

को बाहर नहीं, भीतर ही दिखलाई पड़ेगा। आज माँ बेटे- दोनों के एक साथ सोने की यह अन्तिम रात थी।

नहिं कोई श्यामहिं राखे जाइ। सुफलक सुत बैरी भयौ मोकों, कहति यशोदा माइ।।
मदन गोपाल बिना घर आँगन, गोकुल काहि सुहाइ। गोपी रही ठगी सी ठाढ़ी, कहाँ ठगौरी लाइ।।
सुन्दर श्याम राम भरि लोचन, बिनु देखे दोउ भाइ। सूर तिन्हें लै चले मधुपुरी, हिरदे सूर बढ़ाइ।।

अक्रूर को कठिनाई आई यशोदा के रूप में। यशोदा किसी प्रकार श्रीकृष्ण को छोड़ने को प्रस्तुत नहीं थीं। अन्त तक अक्रूर उन्हें नहीं ही समझा सके और बलराम, श्रीकृष्ण को, रोती माँ को छोड़कर ही बाहर निकलना पड़ा। राधा अवश्य यशोदा के पास रुक गई। एक बार आँखें उठाकर उसने श्रीकृष्ण की ओर देखा। कहना कुछ नहीं था। जो कुछ कहना था वह बहुत पहले कहा जा चुका था। मात्र उसका स्मरण दिलाना था आँखों-ही-आँखों में।

परसों की कह गये बीत गयो बरसों। श्याम अभी तक न आयों।।

प्रात:काल हुआ। मङ्गल स्नान समाप्त हुआ तो माता कन्हैया का श्रृंङ्गार करने लगी। वह कन्हैया का मुख देख-देख कर भावविभोर और अधीर हो रही थी। उसने बड़े प्रेम से अपने हाथों भोजन पकाकर कन्हैया को खिलाया। माखन, मिश्री और रोटी एक कपड़े में बाँधकर नन्द को पकड़ा दिया और कहा- भूख लगने पर इसे लाला को खिला दे। कन्हैया ने माता से विदा ली और आशिष ली-

ले जा मेरी दुवायें ले जा, ओ परदेस जानेवाले, जाकर भूला न देना, सुनकर मेरी वफायें....

इतने में अक्रूर जी सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होकर रथ पर सवार हुए और उसे हाँक ले चले। आरती की थाल हाँथ में लिये यशोदा रथ की ओर बढ़ी। कन्हैया ने मैया को देखा तो रथ रूकवा दिया। माता ने बेटे की नजर उतारी, आरती की। चिरञ्जीवी होने का आशीष दिया फिर आँखें पोछती हुई यशोदा ने कहा- कान्हा, मैं आज एक रहस्य खोल रही हूँ। तू मुझे मैया कहता है और मैं तुझे बेटा कहती हूँ।

कृष्ण बोले- अरी मेरी मैया, यह तू क्या कह रही है? लोग चाहे जो कहें, किन्तु मैं तो सारे संसार से यही कहूँगा कि मैं मैया यशोदा का बेटा हूँ। यशोदा बोली- लाला मेरी एक प्रार्थना है। कृष्ण बोले- हाँ-हाँ, माँ, बोलो क्या कहना चाहती हो। यशोदा बोली- आँखों में आंसू भरकर, मेरे कलेजे के टुकड़े, मथुरा में तुम यह भूल जाना कि कभी मैंने तुझे ओखली में रस्सी से बाँधा था, छड़ी से पीटा था।

कृष्ण बोले- माँ, मैं सब कुछ भूल सकता हूँ किन्तु मैं तेरे बन्धन को कभी नहीं भूल सकता। मैया, तेरे अतिरिक्त और किसी के हाथ से मैं आज तक बँधा ही नहीं। मैं राधा को भूल सकता हूँ, वसुदेव-देवकी को भूल सकता हूँ, मथुरा-द्वारिका को भूल सकता हूँ, रूक्मिणी और प्रद्युम्न आदि को भूल सकता हूँ किन्तु मेरी मैया, मैं तुम्हारे बन्धन को कभी नहीं भुला सकता। तूने रस्सी नहीं, प्रेम की रज्जु से मुझे बाँधा है माँ।

मैया ने लाला को पुन: चिरंजीवी और सुखी होने का आशीष दिया। जब रथ आगे बढ़ने लगा सब गोप बालक विलाप करने लगे तभी बोले- **आ लौटके आजा मेरे मीत तुझे मेरे गीत बुलाते है.....**

ज्यों ही अक्रूरजी रथ पर बैठे और कृष्णको पुकारा, उनके नेत्रोंमें आंसू भर अए। मां यशोदा ने पुत्र-पुत्र कहते हुए शोर किया और गिरे वृक्ष के समान पृथ्वी पर लोटने लगीं। अन्य नारियां उन्हें देखते हुए चित्र की भांति खड़ी रहीं। कृष्ण भी देखते रह गए। हजारों गोपियां कृष्ण के महल के द्वार पर खड़ी थी। गोपियों अब बोल नहीं सकती थी चुपचाप खड़ी रही।

गोपियों ने विधाता की ओर देखकर कहा- हे विधाता, तुम्हारे मन में जरा भी करुणा नहीं है, जरा भी तुम्हारे मन में प्रेम नहीं है। तुम पहले तो जीव में प्रेम जाग्रत कराते हो, एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करते हो और मिलन के पहले उनका

विछोह कर देते हो। ये तुम्हारी आदत अच्छी तो नहीं हैं।

अहो विधाता न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिन:।
तांश्चाकृतार्थन् वियुनड़क्ष्यपार्थकं विक्रीड़ितं तेऽर्भक चेष्टितं यथा।।

शुकदेव बोले- एकाएकी श्रीकृष्ण का चलना सुन सब ब्रज की गोपियाँ अति घबराई व्याकुल हो घर हड़बड़ाय उठ आईं और उठती, भगती, गिरती, पड़ती, वहाँ आईं जहाँ श्रीकृष्ण का रथ था। आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनती कर कहने लगीं, हमें किसलिये छोड़ते हो ब्रजनाथ, सर्वस्व दिया है तुम्हारे साथ, ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है। जो हमें छोड़े जाते हों।

यह अक्रूर क्रूर है भारी, जानी कछू न पीर हमारी।। जा बिन सब होति अनाथ, ताहि चल्यौ ले अपने साथ।।
कपटी क्रूर कठिन हम भयौ, नाम अक्रूर वृथा किनदयौ। हे अक्रूर कुटिल मतिहीन, क्यों दाहत अबला आधीन।।

रथ आगे बढ़ने लगा। गोपियाँ सामने आ गईं। उनमें राधा भी थीं। उनकी दशा अवर्णनीय थी। वे मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़ीं। गोपियां बोली- लाला, हम आपको जाने नहीं देंगी और जाना है तो हमारे ऊपर से होकर रथ को ले जाओ, ऐसे तो नहीं जा सकोगे।

रथ पथमहँ लोटो सकल, सत्याग्रह सब मिलि करो। जान न पावें नंदनंदन, लोक लाज चूल्हे परो।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार वे ब्रजाङ्गनायें विरह से आतुर होकर परस्पर में बातें कर रही थीं, उनका चित्त श्रीकृष्ण में आसक्त हो रहा था। वे लज्जा को छोड़कर हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव। इन नामों को पुकारती हुई सुन्दर स्वर में ढाह मारकर रोने लगीं।

गोपियां बोली- इन घोड़ों के ऊपर बिजली ही गिर पड़ती या और किसी प्रकार का यात्रा में विघ्न उपस्थित हो जाता। अब कुछ विघ्न नहीं हो रहा है, तो हम ही विघ्न करें। घोड़ों की रास पकड़ लें रथ के जाने के पथ में सब लेट जायँ, अक्रूर को पकड़कर कहीं बन्द कर दें। श्यामसुन्दर को बलपूर्वक रथ से उतार लें। जिसके कारण हमारे रोमांच हो जाते, हम संसार में जन्म लेना सार्थक समझते। अच्युत के आलिंगन से बढ़कर संसार में जन्म लेना समर्थ समझते। अच्युत के आलिङ्गन से बढ़कर संसार में कोई भी सुख नहीं। उससे बढ़कर आनन्द प्रदान करनेवाली कोई वस्तु नहीं। हाय, अब हम सुख से वंचित हो जायँगी। श्यामसुन्दर का वह सुखद आलिङ्गन अब हम सबको प्राप्त न हो सकेगा। हाय जिनके साथ हँसी ठठोली, रास-विलास करके शरद ऋतु की बड़ी-बड़ी रात्रियाँ एक-एक क्षण के समान व्यतीत की थी, अब उन्हीं के बिना उन नीरस शून्य बड़ी-बड़ी रात्रियों को अकेली जागकर आहें भर-भरकर उनकी विरह व्यथा में कैसे बितावेंगी? इस विपत्ति के ऐसे विषम विरह वारिधि को कैसे पार कर सकेंगी?

कैसें अबला नारि निवारैं हरिकूँ बलतैं। नहिँ दीखेंगे श्याम हाय, अब ब्रजमहँ कलतैं।।

कृष्ण ने राधा जी को मूर्च्छित देखा तो वे उनके पास जाकर कान में कहने लगे- मेरी प्रिय राधे, पृथ्वी का भार उतारने के लिये हमारा अवतार हुआ है। तुम मेरी आह्लादिनी शक्ति हो। अब तक मैं तुम्हारे पीछे नाचता रहा, जगत् को रिझाता रहा। किन्तु अब संसार को नचाने जा रहा हूँ। तू धीरज रख। तेरे साथ मेरा वियोग हो ही नहीं सकता। यह ले मेरी निशानी वंशी। ऐसा कहकर कृष्ण ने राधा के हाथ में अपनी वंशी पकड़ा दी। वंशी राधा में विलीन हो गई। गोपियों को प्रणाम करके बोले- मैं तुम्हारे प्रेम के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। राधा से बोले- राधे, मैं जा रहा हूँ। मुझे विदा नहीं करोगी? उन्होंने अपने कंधे पर से काली कांबली उतारी और बाँसुरी राधा को दी और बोले- यह मेरी काली कांबली ले लो और यह मेरी बांसुरी रखो। यदि मैं मथुरा नहीं गया तो मेरी आगे की लीलाएँ सम्पन्न नहीं होगी। कृपया मुझे जाने की अनुमति प्रदान करें। राधा बोली- क्यों कान्हा, अब तू

बांसुरी नहीं बजाएगा? क्या तू काली कंबल नहीं पहनेगा? कन्हैया बोला- नहीं राधे, अब गायें चराने का समय मेरा पूरा हो गया। काली कांबली तो मैं व्रज में पहनता हूँ। अब मैं बांसुरी नहीं बजाऊँगा, अब तो शंख की ध्वनि करूंगा और शत्रु की आयु हर लूंगा। बांसुरी तो मैं केवल ब्रज में अपने प्रेमियों के, गोपियों के सामने ही बजाता हूँ। अब यह बांसुरी कभी नहीं बजेगी।

श्रीकृष्ण ने पार्श्व में बैठी राधा के स्कन्ध पर अपना सिर रखते हुए कहा- राधे, कहीं यह हमारी अन्तिम मुलाकात न सिद्ध हो। राधा बोली- नहीं, यह अन्तिम मुलाकात नहीं है। विशुद्ध प्रेम में बड़ी शक्ति हैं। तुम अभी भले मथुरा में जाकर मुझे भूल जाओ, पर एक-न-एक दिन तुम्हें मैं पुन: खींच ही लूँगी। श्रीकृष्ण ने उपालम्भ भरे स्वर में कहा- तुम भूलने की बात क्यों कर रही हो? राधा बोली- क्षमा करना, गलती हुई। भूलने की बात कहाँ उठती हैं? मेरा तात्पर्य तुम्हारी व्यस्तता से था। राधा, श्रीकृष्ण के प्रगति-मार्ग की बाधा नहीं बनना चाहती है। तुम्हें आगे बढ़ना है, आगे, बहुत आगे। ऐसी स्थिति में मैं या मेरा प्रेम तुम्हारे पैर की बेड़ियाँ बने यह मैं पसन्द नहीं कर सकती। तुम मुझे भूलोगे कहाँ? मैं तो तुम्हारे अन्तर में बैठी तुम्हें प्रेरित करती ही रहूँगी।

श्रीकृष्ण ने कहा- राधे। राधा बोली- बोलो। कृष्ण बोला- मैं तुम्हारे इस नि:स्वार्थ प्रेम, इस उपकार और इस त्याग का प्रतिदान कैसे दे सकता हूँ। शायद कैसे भी नहीं। राधा बोली- दे सकते हो। कृष्ण बोला- कैसे? राधा बोली- मेरे सपनों को साकार कर। आर्यावर्त्त का श्रेष्ठतम पुरुष, प्रथम पुरुष बन कर।

बाँस की बंशी साक्षात् विश्वनाथ है। बंशी साक्षात् रुद्र ही है। श्रीकृष्ण को भगवान रुद्र की उपासना की जरूरत पड़ी। जैसे गोपियों को कृष्ण-प्राप्ति के लिये कात्यायनी भगवती की आराधना करनी पड़ी, ऐसे ही श्रीकृष्ण को श्रीराधारानी को प्राप्त करने के लिये भगवान् रुद्र की उपासना करनी पड़ी।

शिव की आराधना के बिना इच्छित फल की प्राप्ति नहीं होती। गोरी राधा कर्पूरगौर शंकर का अवतार थीं। राधा रुद्र ही थीं। कृष्णवर्णा पार्वती कृष्ण के रूप में अवतरित थीं। ऐसी स्थिति में राधा भी रुद्र, वंशी भी रुद्र। दोनों एक तत्त्व थे अत: वंशी राधारानी में विलीन हो गई। राधा विलाप करते-करते यमुना पुल पर आ गयी और कहने लगी-

आ जा रे परदेसी... मैं तो कबसे खड़ी इस पार ये अखियाँ थक गई पंथ निहार, आ जा रे ....

ब्रज की गोपियां कहती हैं कि कृष्णजी से अलग होने पर अब इन नेत्रों का विश्वास जाता रहा। ये कृष्णजी के साथ उड़कर नहीं गए। कृष्णमय भी नहीं हुए। जैसे कि मृग नाद में मग्न होता है वैसे ही ये रूप के रसिक और लालची कहे जाते हैं। इनसे वह करनी भी नहीं हो पाई। सचमुच ये नेत्र तो क्रूर और कुटिल है। मछली तो अपने प्रिय जल के बिना जीती ही नहीं पर अब व्यर्थ में ये जल क्यों गिरा रहे हैं। समय निकल जाने पर इन्हें नई पीड़ा हो रही है इसीलिए ये जड़ हो गए हैं। पलकों ने भी हठपूर्वक धोखा दे दिया है, अर्थात गिरना बंद कर दिया है। हे कृष्ण तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ फिर किसलिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

तुम बिन छिन छिन कैसे कटै, पलक ओट से छाती फटै ।।
हियलगाय क्यों करत बिछोह, निठुर निरदई धरत न मोह ।।
ऐसी तहाँ आ सुन्दरी, सोचें दुख समुद्र में परी ।।
चाहि रही इकटक हरिओर, ठगी मृगीसी चन्द्र चकोर ।।
परहिं नयनते आँसू टूट, रहीं बिथुरि तट मुख पर छूट ।।

संयोग सुखके अभावका नाम वियोग है। श्रीकृष्णके साथ नन्द-यशोदा, गोप-गोपी, ग्वाल-बाल और गाय-बछड़ोंका बेहद लगाव था। श्रीकृष्णके अलग होनेपर उन सभीको वियोगकी अनुभूति होती है। श्रीकृष्णके वियोग-वात्सल्यकी

अनुभूति सबसे अधिक यशोदाको होती है। श्रीकृष्णका वियोग दो अवसरोंपर होता है- एक तो कालीदहमें कूद पड़नेपर और दूसरा मथुरा चले जानेपर। कालीदहमें कूदनेका वियोग थोड़ी देरका होता है, पर यशोदाकी अतिशय वियोग-वात्सल्यभरी छटपटाहट देखनेमें आती है।

खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इहिँ भाँति। सूर स्याम काँ टेरति जननी, नँकु नहीं मन शान्ति।।

वियोगका दूसरा अवसर श्रीकृष्णके मथुरागमनपर आता है। यह श्रीकृष्णका दीर्घकालीन वियोग है। सूरने संयोग-वात्सल्यकी अभिव्यक्ति भी बड़ी गम्भीर, व्यापक और सूक्ष्म चित्रणद्वारा की है। मथुरा जानेके वियोगमें कंसके द्वारा अनिष्टकी आशंकासे वेदना और बलवती हो जाती है। श्रीकृष्णका दीर्घकालीन साहचर्य एकदम भुलाया भी नहीं जा सकता। १) मथुरा जाते समय, २) नन्द आदिके मथुरासे लौटते समय, ३) कुछ दिन व्यतीत हो जानेपर नन्द तथा यशोदाके वार्तालाप करते समय और ४) उद्धवके आगमनके समय। वियोग-वात्सल्यके चित्रणमें सूरदासने माता यशोदाके विरहोद्‌गारोंकी ही अभिव्यक्ति की है। मथुरा जाते समय वे अनिष्टकी आशंकासे अभिभूत हो जाती हैं और श्रीकृष्ण तथा बलरामको ले जानेका सारा दोष अक्रूरको देती हैं। वे कातरताभरे शब्दोंमें व्रजके लोगोंको पुकारती हैं। उनके शब्दोंमें वियोग-वात्सल्यकी छटपटाहट व्यक्त होती है।

जसोदा बार बार यौं भाषै। है कोउ ब्रज मैं हितू हमारो, चलत गुपालहिं राखै।।

नन्दजी भी यशोदाजीको समझाते हैं, परंतु यशोदाको धैर्य नहीं बँधता। श्रीकृष्णके जाते समय चारों ओर व्रजके लोगोंकी भीड़ है। बीचमें रथपर श्रीकृष्ण और बलरामजी बैठे हैं। यशोदा पृथ्वीपर लेट जाती हैं। वे अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें श्रीकृष्णसे कहती हैं- लाल, बिछुड़ते समय मेरी छातीसे लग जाओ। लाला, मैं इतनी निष्ठुर हूँ। तोकूं कबहूँ प्यार नांय दियो। एक मिट्टी की मटकी फोड़ने के बदले तोकूँ ऊखल से बाँध दियो। मथुरा में जाकर कभी यह नहीं सोचना कैसी है माँ यशोदा? एक मिट्टी की मटकी जैसी औकात नहीं मेरी, एक मटकी के बदले मुझे बाँध दिया। यह बात कभी स्मरण नहीं करना। कृष्ण और बलराम दोनों यशोदा के चरणों में गिर पड़े और हिचकियाँ भरकर रो कर बोले- मैंया, दुनियाँ की सारी चीजें भूल सकता हूँ पर तुम्हारे प्रेम के, स्नेह के बन्धन को नहीं भूल सकता।

मोहन इधर देख तो लीजै। बिरत लाल हमैं कछु दीजै।। लेहु निहारि जन्म को खेरो। बहुरि बिरज में होत अँधेरो।।
यह कहि ग्वाल सखन को फेरो। अपनी गाय जाय के घेरो। ऐसे कहि यशुमति बिलखाई। किये यत्न बहु प्राण न जाई।।
तडफत विकल राम महतारी। अति व्याुल सब ब्रज की नारी।।
देखि दुखित व्रजलोग सब और यशोदा माय। तब हरियहकहि सुख दियो बहुरि मिलेंगे आय।।

अक्रूर को असल कठिनाई तब उपस्थित हुई जब वे बलराम और श्रीकृष्ण को लेकर मथुरा के लिए प्रस्थान को प्रस्तुत हुए।

गोपियों और ग्वाल-बालों के झुण्ड-के-झुण्ड रोते बिलखते पीछे लग गए। बालकों को तो खैर अपने साथ आने का निमन्त्रण दे अक्रूर ने जान छुड़ाई और उनके छकड़े भी बात-की-बात में जुत गए पर सभी-की-सभी गोपियाँ मार्ग पर बिछ गईं। अब ले जाना हो अक्रूर को अपना रथ तो गोपियों के ऊपर से चढ़ाकर ले जाएँ। वे हा कृष्ण, हा श्याम, हा गोपाल कह बिलख-बिलखकर रोती रहीं और पुकारने लगीं कन्हैया मत जाओ, श्याम मत जाओ। तुम्हारी गायें तुम्हारे आने की राह देख रही हैं। तुम्हें देखे बिना वह अधीर हो जाती हैं। हे मुरलीधर, मथुरा में निर्दयों का साम्राज्य हैं वहाँ तुम्हारी मधुर मुरली की धुन को कौन सुनेगा- और एक हम है जो इसको सुने बिना जीवित नहीं रह पायेंगी। देखो कृष्ण, कंस बड़ा क्रूर है, तुम्हारे भाई-बहिन का हत्यारा है। हमें भय लगता है तुम मत जाओ श्याम। अगर तुम हमारी शिकायतों से बौखला गये हो तो हम शपथ से कहती हैं तुम्हारा उलाहना देने तुम्हारी माँ के पास कभी नहीं जायेंगे। हे चितचोर, हम तुम्हें माखन चुराने से रोकती थीं-

इससे यदि दु:खी होकर जा रहे हो तो हम तुम्हें कभी नहीं रोकेंगी। जिन नैनों से हमने श्रीकृष्ण के शरीर के एक अंश में सृष्टि का विलक्षण सौन्दर्य देखा, हे अक्रूर उन्हीं को तुम हमसे हरण कर रहे हो। हे कृष्ण जिसके लिए हम सब लोगों ने सब कुछ छोड़ दिया वो ही तुम हम लोगोंको छोड़कर मथुरा ले जा रहे हो। यदि तुझमें ताकत है तो इस रथ को हमारे हृदय पर चलाकर हमारे कन्हैया को ले जा वरना हम कन्हैया को ले जाने नहीं देंगी। एक गोपी बोली- ये मूर्ख गोपकण भी कितनी जल्दबाजी कर रहे है। व्रज में आज किसी बड़े-बूढ़े को मौत भी नहीं आती जिससे आज की यह यात्रा स्थगित हो जाती।

गोपियों की चारों ओर से गुहार होने लगी श्याम को बोलने का अवसर नहीं दे रही थीं। स्नेह सरिता में जैसे बाढ़ आ गई हो- और लज्जा, मर्यादा, शील, संकोच सब कुछ उसमें बह गया हो। गोपियों को इतना भी अनुसन्धान न रहा कि उनके वस्त्र कहाँ हैं, उनके केशों की क्या दशा है उन्हें यह भान न रहा कि क्रूर कंस का दूत अक्रूर उनकी बातें सुन रहा है वह कंस से कहेगा- और उसका परिणाम क्या होगा। क्रूर कंस की बातें सुनकर बाबा नंद का भी मन विचलित होने लगा- कातर होने लगा- गोपियों की सूझबूझ की दाद देने लगा उनका मन। बलराज बैठे मुस्काने लगे- अक्रूर स्तम्भित था गोपियों की करुण दशा देखकर, वह न कुछ कह सके और न सहन ही हो रहा था- मन डगमगाने लगा उनका- अक्रूर सोचने लगे कंस के इरादे अच्छे नहीं हैं अगर सचमुच श्याम को कुछ हो गया- तो मेरी जीवन-भर की तपस्या नष्ट हो जायेगी, कलंक का यह दाग जन्म-जन्मान्तर तक नहीं छूटेगा। उन्हें सामने द्वार पर हाथ में माखन की कटोरी लिये यशोदा दीखने लगी- यशोदा के शब्द उनके कानों में गूंजने लगे। अरे लाला थोड़ौ सौ माखन खाय ले- मथुरा जायवे को कैसो चाव है माखन हूं नायं खाय रह्यौ हैं। देख कान्हा मथुरा बहुत दूर है गैल में भूख लगेगी, थोड़ौ सौ खाय लै- बिना कुछ खाये घर ते नही जायें- रोज उठते ही माखन माँगतौ आज भूख नॉय- और जब श्याम उछल कर रथ में बैठ गये तब यशोदा ने कहा- देख कान्हां, मैं कटोरी लिये खड़ी हूँ कल जब तू आय जायगो तब भीतर जाऊँगी- वहाँ रूक मत जाइयो।

अक्रूर का कुछ भी समझाना उनके काम नहीं आया। कृष्ण की बार-बार की सान्त्वना कि वे फिर लौटेंगे वृन्दावन को, किसी को आश्वस्त नहीं कर सकी। कइयों ने सिसकियों के बीच ही कहा, अब तुम कभी नहीं लौटोगे कृष्ण। तुम चोर तो थे ही, अब मिथ्यावादी भी हो आए।

श्रीकृष्ण क्या उत्तर दें, उन्हें स्वयं ही नहीं मालूम था कि वे कब लौटेंगे। लौटेंगे भी अथवा नहीं लौटेंगे।

समस्या विकट थी। कई बड़े-बूढ़े गोप अक्रूर को उलाहना दे रहे थे, तुम व्रज का हृदय ही निकाले जा रहे हो। हमारे प्राण ही खींचे जा रहे हो। पता नहीं तुम उनकी रक्षा भी कर पाओगे अथवा नहीं। तुम इन किशारोंको को उस अत्याचारी कंस के क्रोड़ में डालने जा रहे हो जो इनके रक्त का प्यासा है। किसने तुम्हारे सदृश क्रूर का नाम अक्रूर रखा।

अक्रूर क्या करें? वे भारी धर्म-संकट में थे। बड़े-बूढ़ों को उन्होंने समझाया, आप लोग इन किशोरों को मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं। इनका बाल भी बाँका नहीं होगा। अब तक जब कंस इनका कुछ नहीं बिगाड़ सका तो आगे भी नहीं बिगाड़ेगा। सुरक्षित रहेंगे ये।

कुछ दूरी पर गोपियाँ रथ के मार्ग को रोककर व्याकुल अत्यन्त शोकयुक्त धरती पर पड़ी थीं। फिर अक्रूरजी ने रथ रोककर बहुत प्रकार से समझाया लेकिन किसी के भी हृदय में धीरज ही नहीं हो रहा था।

गोपियाँ कहने लगी- हे अक्रूर यदि आपको रथ लेकर जाना है तो हम लोगों के ऊपर से ले जाकर कुचलते हुए ले जाइए। क्योंकि हम लोग श्याम को देखे बिना जीवित नहीं रह सकती। फिर प्रभु कृष्ण ने रथ से नीचे उतर कर सबको पकड़ कर उठाया तथा सबके आँसू पोंछकर बहुत प्रकार से समझाया। बोले तुम लोग मुझसे प्रेम ही नहीं करती हो। यह तुम सब की स्वार्थ की रीति है। क्योंकि प्रेम स्वार्थ नही है प्रेम कामना नहीं है।

पर वे इन गोपियों-गोपांगनाओं को कैसे समझाएँ? वे तो रथ-चक्रों के नीचे पड़ी थीं। अन्त में अक्रूर को वस्तुत: क्रूर बनना पड़ा। उन गोपियों-गोपांगनाओं के भाई-बन्धुओं, पिताओं-पतियों से कहकर ही उन्हें मार्ग से खींचकर अलग करवाना पड़ा। मार्ग खाली होते ही सारथी को उन्होंने अत्यन्त क्षिप्र गति से रथ को बढ़ाने को कहा। सारथी ने अश्वों की पीठ पर प्रदोत का प्रचुर प्रहार किया और वे हवा से बातें करने लगे। हमारे कन्हैया को कोई कष्ट न हो वे अपने रास्ते से हट गयी और बोली- ले जाओ अक्रूर, हमारे कन्हैया को कोई दु:ख नहीं पहुंचे।

गोपियाँ बहुत दूर तक हा कृष्ण, हा श्याम, हा गोपाल कहती पीछे दौड़ती रहीं पर वे रथ की गति को कैसे पा सकती थीं? अधिकांश मार्ग में ही मूर्छित होकर गिर गईं। कुछ मार्ग किनारे थककर बैठ गईं। अक्रूर का रथ आँखों से ओझल हो गया।

अब रथ आगे बढ़ा। नन्द बाबा आदि गोपों ने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदि भरे मटके और भेंट की बहुतसी सामग्रियाँ ले ली तथा छकड़ों पर उनके पीछे-पीछे चले। भगवान ने अपने वियोग में व्याकुल गोपियों को जब अपने पीछे खड़ी देखा तो उन्होंने दूत के द्वारा मैं आऊँगा यह प्रेम-सन्देश भेजकर उन्हें धीरज बँधाया अथवा प्रेमभरे दूतके, उद्धव के, वचनों द्वारा आऊँगा- यह कहा। गोपियाँ चित्रलिखित-सी तब तक खड़ी-खड़ी देखती रहीं जब तक कि रथ की ध्वजा और पहिये से उड़ती हुई धूल दीखती रही। गोपियाँ ब्रज में लौटी तो अवश्य, किन्तु उन्होंने अपना मन मनमोहन के साथ मथुरा भेज दिया था। वे भगवान की लीलाओं का गान करती हुई किसी-किसी तरह अपना दिन बिताती थीं।

ब्रजमें ग्यारह वर्ष, छ: महीने, पाँच दिन रहकर श्रीकृष्णने अग्रजके साथ फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीको अमृत योगमें, जबकि लग्नेश बुध था, मंगलकृत्य करके मथुरा-प्रस्थान किया। श्रीनन्दनन्दनने गुरुजनोंको, ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। शंखध्वनि, सस्वर वेदपाठ, मंगलगानके मध्य उन्होंने दाहिना पद उठाया।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार स्त्रियों को रोते-रोते ही सूर्योदय हो गया। अक्रूरजी ने सन्ध्या वन्दनादि प्रात: कृत्य भी कर लिये थे। अब उन्होंने रथ को मथुरा की ओर हाँक दिया।

जब तक रथ की ध्वजा चमकती रही। रथ से उड़नेवाली धूल चमकती रही, तब तक गोपियाँ टकटकी लगाकर रथ को देखती रहीं। शायद लाला को हमारी याद आ जाये। शायद कन्हैया को अपनी कारी, धौरी, धूमर गायन की याद आ जाये और वो रथ से दौड़कर तुरन्त हमारे अंक में लिपट जाये। लेकिन जब रथ की ध्वजा और धूल का चमकना भी बन्द हो गया तो गोपियों ने अपने हृदय पर धैर्य का पत्थर रख लिया और मन में सोचा, हे गोपाल। यदि तुम्हें हमसे दूर रहने में प्रसन्नता होती है, तो जीवन पर्यन्त तुम्हारी याद करके रोती रहेंगी, परन्तु तुम्हारी प्रसन्नता में कभी विघ्न नहीं आने देंगी।

विनती कर-कर हार गईं पर नांय गोपिन के जोर चले। रथ में बैठ कृष्ण बलदाऊ जब मथुरा की ओर चले।।
ठाड़े हैं ठाड़े रह गये बीच डगर में पड़े भये। पशु-पक्षि की पूछौ तो दीखें सबके मन मरे भये।।
देखें तो दीखें सबकी आंखिन में आंसू भरे भये। करि अनीति मन मीति रीति तज तोर प्रीत की डोर चले।।
बेहोशी जब दूर भई तब पलक राधिका ने खोले। धरौ धीर मत हो अधीर मन मार नन्द बाबा बोले।।
व्याकुल परम सकल ब्रजवासी ब्रजवनितन के मन डोले। वेदर्दी तोय दरद न आयो गोपिन के तन-मन डोले।।
बन कै नाथ कठोर चोरि कैं चितकूँ चित के चोर चले। मीन नीर बिनु नागमणि बिन, ज्यों बछड़ा बिन गैया की।।
बिना खिवैया जैसे हालत पड़ी भंवर में नैया की। श्याम बिना राधे, राधे बिन जैसे कृष्ण कन्हैया की।।
वही दशा है रही विरैहिन गोपी, यशुमा मैया की। हरि न नचत वन मोर मारिकै मन कूं मन के मीत चले।।

गोपियों के परित्याग में कृष्ण की निष्ठुरता नहीं है बल्कि उनके ओर भी अन्तरंग में प्रवेश करने की और उनके प्रति प्रेम की प्रधानता है। इसलिए जिस दिन से श्रीकृष्ण मथुरा गये, ब्रज की गोपियों ने मथुरा जाकर माखन बेचना बन्द कर दिया।

क्योंकि हमारे जाने से हमारे कृष्ण की स्वतन्त्रता में किसी भी प्रकार का व्यवधान आता है, तो ऐसा हम कभी नहीं करेंगी। लेकिन ब्रजमण्डल के इस विरह को देखकर के अक्रूर जी का हृदय विदीर्ण होने लगा। उन्होंने सोचा, मैंने अच्छा नहीं किया, रोते-बिलखते इन ब्रजवासियों को छोड़कर चल दिया मैं।

हे मइया अपने अगाध स्नेहमय स्वभाव बस मुझ चपल कपूत का सब अपराध क्षमा कर। सुत का मोह उत्पन्न दुख दाई होता है इसलिए मोह को दूर करके उस ईश्वर का भजन क्यों नहीं करती। वह एक गूढ़ परमात्मा ही सर्वत्र व्यापक है सब की आत्मा में उसी को क्यों नहीं देखती। मोह नष्ट होने से शोक का निवारण होता है फिर जीव जिससे निर्वाण पद की प्राप्ति करता है। फिर प्रभु कृष्ण की आज्ञा पाकर अक्रूर जी रथ को चलाए। माता यशोदा पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी। सम्पूर्ण ब्रज में हाहाकार मच गया।

राम-श्याम रथ चढ़े यशोदा रोवति आई। रथके चारिहुँ ओर फिरै शिशु बिनु जिमि गाई।।

परमात्मा को बाँधने की सामर्थ्य यदि किसी में है, तो केवल माँ यशोदा के प्रेम में है। बार-बार कृष्ण ने मैया का वन्दन किया और बार-बार अपने ब्रज को प्रणाम किया। गोपियोंने अक्रूरजी को पकड़ लिया और बोलीं- अक्रूर, तुम हमारे प्राणों को हरण कर रहे हो। या तो तुम हमारी छाती पर से रथ ले आओ या हमें भी साथ लेते चलो।

कहा करें व्रज जाय मन हरि ले गयो साँवरो। परत न आगे पाँय पाछे ही लोचन लखत।।
यों व्रजतिय पछिताय सब देखि यशोदादीन। सब आईं अपने घरन क्लेशितवदनमलीन।।

गाँव के शेष लोग चित्रलिखित-से यथास्थान पर ज्यों-के-त्यों खड़े रहें। गोपियाँ विरह-वियोग में आतुर होकर पुरजनों, परिजनों एवं स्वजनों का ध्यान न रखती हुई फूट-फूट कर रोने लगीं हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव, हमको भूल न जाना। उधर भगवान श्रीकृष्ण भी सोचते हैं कि अब मुझे कन्हैया कौन कहेगा? गोरस का दान कौन देगा और मैं मैया किसे कहूँगा? गोरस किससे माँगूगा? श्रीकृष्ण-बलराम द्रवित हो गये। गोपियों को अब रथपताका नहीं दीखती। भगवान के विरह में सिमटी अपने-अपने घर सब आ गयीं। दिन-रात भगवान् को याद करती रहीं।

भई निराशा लौटि सखी निज निज घर आई। इत रथ आगे बढ़्यो दई रविसुता दिखाई।।

कृष्ण के जाने के पश्चात् व्रज की दशा इस प्रकार हो गयी।

स्वर-सौष्ठव सब शान्त हो गये, शब्द नहीं अब होता। व्रजमें बस कराह उठती है हू-हू उल्लू रोता।।
चमगादड़ भवनोंमें रहते, मकड़ी जाले छाये। गृह-आँगन हो गये खण्डहर, कोई प्रेत जगाये।।
कालिन्दीकी कुक्षि कच्छपोंसे भर आयी। रुग्ण बछड़ियोंकी कायापर किलनी छायी।।
वृष-गायें कंकाल हो गयीं, कान न पूँछ हिलातीं। कहीं हरित तृण भी होता यदि-क्या उसको चर पातीं।।
पक्षी अब पूरे व्रजमें हैं- काक, कंक ये गृद्ध। घूम रहे हैं लोग प्रेत-से- इस श्मशानके सिद्ध।।
भूल गयी है मृत्यु कदाचित अपना मार्ग इधरका। इसीलिए शव सड़े नहीं, व्रजजीवनहीन कभीका।।
*** मार न देते महासर्पको- उसके मुखमें जाते। कालिय ही होता यमुनामें- जल पी हम मर जाते।।**
डरा न देते देवराजको- कोप आज कर लेते। यहाँ कौन गिरिधर बैठा था, विरह-ताप हर लेते।।
सूखा खड़ा समूचा व्रज है, पर दावाग्नि न आता। वह भी क्या इस विषम धरापर, पद-धरते सकुचाता ?
एक न छोड़ा असुर यहाँपर, यह दिन दिखलानेको ? हम ही थे क्या सुलभ हुए यों तिल-तिल तड़पानेको ?
*** व्रजके शूर, सलोने, सुन्दर, नन्दन पिता हमारे। पथराये दृग, झुकी रीढ़ है हुए शोकके मारे।।**
सुन भी पाती नहीं पुकारें अतुला माता तेरी। कनूँ। घड़ीमें इतनी वृद्धा, अब है चाची तेरी।।

तीनों ताऊ श्वास ले रहे- ताई भी सब ऐसी- श्वास शेष, शव-प्राय सभी गृह, दशा कहूँ क्या कैसी ?
बना भूत यह भद्र डोलता है एकाकी, व्रजके इस भीषण श्मशानमें अब क्या बाकी ।।
देख सकूँगी नहीं- वहाँ बाबा-मैयाकी काया । साहस नहीं, न जा पाऊँगा नन्द-भवन, फिर आया ।।
* बरसानेमें आग लगी है- जलते बाबा-मैया । कण-कण आर्त पुकार रहा है- आओ कुँवर कन्हैया ।
सूख गयी है पीली पोखर, खोर साँकरी रोती । बेल कँटीली भी कुञ्जोंमें कहीं शेष तो होती ।
भटक रहीं हैं भूली-भूली वन-वन गोपकुमारी । पूछ रहीं पेड़ों-पत्तोंसे ये भोली सुकुमारी ।
जिसकी पद-रजसे पावन है, पत्थर मारा भाल, कहाँ छिपा प्राणोंका प्रियतम प्रणतपाल गोपाल ?
अब भी इनके अन्तर उज्वल है अटूट विश्वास । इसी भरोसेपर अवशेषित इनके तनकी श्वास ।।
टूट जायगी जिस क्षण छलनापूर्ण रही भी आश । भस्म करेगी वहीं उसी पल इनकी ही नि:श्वास ।।
भटकेगी सम्पूर्ण भुवनमें हाय । अधूरी प्यास । बनी भूतनी, तब भी क्या तुम आ न सकोगे पास ?
* मानधनी, प्रियमिनल वरूथप शीर्णगात्र है । वह विशाल बस मुट्ठीभर कंकालमात्र है ।।
ऋषभ हो गया क्षीण, न अब रो भी पाता है । अर्जुन कुछ क्षण अभी-मृत्यु-मुखमें आता है ।।
अंशु हो गया बुझी भस्म, बस श्वास चल रही । तेजस्वी की देह-ग्रीष्ममें बरफ गल रही ।।
पाटल-दलप्रभ देवप्रस्थ-ज्यों काँटा काला । तोक ? क्या कहूँ- पड़ा फुलन पंकजपर पाला ।।
चिरनिद्रामें सखा सुबल-श्रीदाम सदाको सोयें । मर जायेगा अब मधुमंगल, भले भगवती रोयें ।।
* कान्ह नहीं है और अभी यह भद्र जी रहा ? प्राण नहीं, पर अहो- भटकता देह फिर रहा ?
मरणोन्मुख है महाभाव- रसराज नहीं जो । चला गया श्रृंगार- सड़े यह साज धरा जो ।।
सुखी हमारा श्याम रहे इतना कहता है- हुआ सभी नि:शेष, भद्र भी अब मरता है ।।
भूखे श्वान, श्रृगाल, कंक, कौये आ जायें । नोच-नोच भरपेट खुशीसे इसको खायें ।।
कृष्ण-करोंका सागर्ह माखन-मोदक खाया । आज चील-गृद्धोंको सादर अर्पित काया ।।
* किंतु-गूँजता किसे देखकर यह केकारव ? जले ठूँठ इन वृक्षोंमें क्यों ये नवपल्लव ?
अरे ग्रीष्ममें झुलसी-पुष्पित हुईं लतायें ? यह भ्रमरोंका मधु-गुञ्जन ? कोकिल क्यों गायें ?
नवप्रफुल्ल नीलोत्पल तुलसी-सौरभ मिश्रित- हव्यावाह यह आता है क्यों इतना सुरभित ?
क्या- यह भुवन-मोहिनी मोहन-मुरली बोली ? नाच रहे पत्ते-पत्ते तरुशाला डोली ।।
वह मयूरका पिच्छ दीखता है लहराता । वह विद्युत्पीताभ अहो, पटुका फहराता ।
दौड़ो । सब दौड़ो । आ गया कन्हाई । लो, यह उसकी स्नेहपूर्ण ध्वनि पड़ी सुनाई ।।
व्रजका जीवन-प्राण, ज्योति, सर्वस्व, सहारा- लो- यह हँसता आया, नटखट कनूँ हमारा ।।

ब्रज में बड़ा गहरा दु:ख व्याप्त हो गया और चारो ओर बिरह का सागर उमड़ पड़ा । सखियाँ इकट्ठी होकर बातें करतीं कि अरी मेरा बालपन का साथी बिछुड़ गया । किन्तु यह पापी प्राण नहीं निकल पाये और उनकी याद करके यह छाती भी नहीं फट जाती । कोई कहती है कि मैं तो प्रसन्न मन दही मथ रही थी इसलिये मैंने उनका चलना जान ही नहीं पाया ।

नहीं तो मैं लज्जा छोड़कर उनके साथ चली जाती और गुरुजनों का कुछ भी भय न करती । कोई कहती कि अरी सखी चिट्ठी लिखकर भेजो और अपने मन का भाव उनको बताओ । इस प्रकार वे अपने मन के दु:ख को बताती हैं और फिर कोई एक दूसरे को धीरज बँधाती हैं । कोई कहती है कि अरी सखी एक दिन कुंजो में जो हुआ उसकी याद तो भुलाये ही नहीं भूलती । कोई

कहती है कि यदि कहीं इस समय वे आ जायें तो उन्हें देखकर, प्रसन्न होकर उन पर हम बलि-बलि जायें। उन्हीं के समान श्याम घटा छाई हुई है और बगुलों की पंक्ति उनके दाँतों सी शोभा दे रही है। वैसा ही प्यारा मोरों का कोलाहल है। श्याम-श्याम कहते हुये नाचकर वे प्रसन्न हो रहे हैं। ऐसा मन होता है कि हम प्रसन्न होकर हिंडोले गावें और वे अपनी मुरली से मल्हार राग बजावें। कभी हिल मिल कर उनके साथ खेलें और कभी कुंजों में चलकर एक दूसरे के गले में बाँह डालें। कोई कहती कि मेरे मन में बड़ा भारी दुख इस बात का है कि उन छैल बिहारी को मैं चलते समय नहीं देख पाई। वहाँ की याद करते-करते राधा आँसू बरसाती हुई ब्याकुल हो गई। उसी समय एक पक्षी आकाश में उड़ता हुआ दिखाई पड़ा उसे बुलाकर उसे प्रणाम करके पूछा कि तू कहाँ से आया है। और तू अब कहाँ जा रहा है यह तुम मुझे बताओ और हमारा संदेश तुम हमारे प्रियतम को सुना देना। किन्तु जब उसने मथुरा नाम लिया तो राधा उस पर बलि-बलि गईं किन्तु कुछ बोल न सकी।

एक बार श्रीराधारानीकी सखी ललिताने मथुराकी ओर उड़कर जा रहे हंस-पक्षीको पुकारा और कहा कि अरे ओ हंस, सुन मेरी बात। श्रीकृष्णके पास जाकर कह देना कि आप कंसको मारकर मथुराके राजा बन बैठे हैं। लेकिन आपके विरहकी ज्वालासे जलकर व्रजके ग्वाल-बाल गिरिराजकी तलहटीमें बेहोश पड़े है। उनकी साँस बहुत धीमी-धीमी चल रही है। इनके पूर्वपरिचित हरिण इनके पास आकर इनको सूँघते हैं। लेकिन उस समय उनकी आँखोंसे इतनी आँसू गिरी हैं कि मानों वे मूर्च्छित ग्वाल-बालोंके मुँहपर पानी छिड़क रहे हों और कह रहे हों कि प्यारे, होशमें आओ। इस तरह व्रजकी समस्त गोपियाँ, गोपों और ग्वालबालोंको श्रीकृष्णके प्रति अवर्णनीय प्रेम है तथा वे सब उन्हींके स्मरण-चिन्तनमें निमग्न हैं।

इस प्रकार वह हृदय भर-भर कर साँस लेती हैं और उस समय चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है। सखियाँ कहती हैं कि अरी सखी क्या हमें प्रियतम नहीं मिलेंगे तब तो हम तड़प-तड़प कर मर जायेंगी। क्या कभी हमें वे पहले की तरह मिलेंगे और वे कभी हमको हृदय से लगा लेंगे। क्या वे हमें अपनी सुन्दर त्रिभंगी छबि दिखायेंगे और वे बन से गाय चराते हुए कब आयेंगे। और वे अपने अधरों पर बंशी धर कर हमारा नाम लेकर कब बुलायेंगे। अरी सखा बताओ वे आवेंगे या नहीं आवेंगे। बताओ वे कुंजों में मेरे साथ कब जायेंगे और मुझको बुलाने के लिये मेरे पास दूती कब भेजेंगे। हमारी भुजाओं को पकड़कर, आँसू बहाते हुए मेरे चरणों पर गिर कर मुझे कब मनावेंगे। अरी सखी, उस आनन्द के लिये मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। यदि हम अपने प्राण छोड़ दें तो फिर प्रियतम ब्रज में आवेंगे ही नहीं और वे हमारा मरण सुनकर ब्याकुल हो जावेंगे। इससे हमें मरना अच्छा नहीं लगता है कि कहीं प्रियतम को हमारे विरह का दु:ख न मिले।

वे प्यारे जीवन धन और नन्द के दुलारे अपने साथ हमारा सब सुख ले गये। ऐसा विलाप करती हुई गोपियाँ मथुरा की ओर देखती हैं और इस प्रकार एक-एक क्षण बिरह में व्याकुल होकर बिताती हैं।

हाय-हाय, हम ऐसी अभागिनी और अनाथिनी रहीं कि हम उनके साथ नहीं गयीं। यशोदा तो ऐसी भाव में डूबी रहती है कि उन्हें तो श्रीकृष्ण के चले जाने का विश्वास ही नहीं होता। वह सोचती है कि वे अभी माखन माँगने और प्रेम पूर्वक पकवान खाने के लिये आवेंगे। यदि कहीं यह सामान तैयार करने में देर हो जायेगी तो फिर सखाओं के साथ खेलने चला जायेगा। वह कभी अनेक प्रकार के खिलौने सजाती है और उनकी लीलाओं का गान करके प्रसन्न होती हैं कभी यह सोचकर कि पालने में कन्हैया लेटा हुआ है, वह उसे झुलाती है और सुखी होती है। इस प्रकार प्रत्येक क्षण और प्रत्येक पल श्रीकृष्ण से जुड़ी रहती है और आनन्द में डूबी हुई सुध-बुध भूली रहती है और इस प्रकार श्रीकृष्ण बिरह के दु:ख को भूलकर आनन्दित रहती है। यशोदा की दशा, उसकी बुद्धि और उसका निर्मल प्रेम पाने के लिये मन ललचाना चाहिये और भावना द्वारा राधा-कृष्ण की लीलाओं के रस में डूबे रहना चाहिये।

शुकदेव बोले- राजन्, इधर भगवान भी वायुके समान वेगवाले रथ पर चढ़कर बलदेवजी तथा अक्रूरजी के सहित

अघनाशिनी कालिन्दी के कूल पर पहुँच गये। अक्रूरजी श्रीयमुना किनारे अनन्त तीर्थ (भतरोड़) के समीप आ गये।

परीक्षित्, इधर भगवान श्रीकृष्ण भी बलराम और अक्रूर जी के साथ, वायु के समान वेगवाले रथ पर सवार होकर पापनाशिनी यमुना जी के किनारे जा पहुँचे। यह दिन की मध्याह्न बेला थी। वहाँ उन लोगों ने हाथ-मुँह धोकर यमुना जी के स्वादिष्ट जल का पान किया। इसके बाद बलराम जी के साथ भगवान वृक्षों के झुरमुट में खड़े रथ पर सवार हो गये।

अक्रूरजी के मध्यान्ह सन्ध्या का भी समय हो गया था। यमुना किनारे की शोभा भी अद्भुत थी, अत: उन्होंने रथ को खड़ा कर दिया और दोनों भाइयों से बोले- आप दोनों जाकर हाथ पैर धो लें। कुछ भूख हो तो भोजन कर लें। मुझे भी मध्यान्ह की सन्ध्या करनी है। कुछ काल यहाँ विश्राम करके तब चलेंगे। अब तो मथुरा के निकट ही आ गये। दोनों भाइयों को रथ पर बैठा कर अक्रूर जी उनकी आज्ञा लेकर यमुना जी में स्नान करने चले गये। वहाँ सविधि स्नानकर जल में डुबकी लगाकर वे गायत्री का जप कर रहे थे। उसी समय जल के भीतर अक्रूर जी ने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ बैठे हुए हैं। उन्होंने सोचा कि वसुदेव जी के पुत्रों को तो मैं रथ पर बैठा कर आया हूँ फिर वे जल के भीतर कैसे आ गये? शायद रथ पर न हों- ऐसा सोचकर उन्होंने सिर बाहर निकाल कर देखा। वे दोनों रथ पर पूर्ववत् बैठे हुए थे पुन: जल में डुबकी लगाने पर देखा कि मणि-मण्डित अनन्त सिरों से विभूषित शेष अनन्त सिरों से विभूषित शेष जी की गोद में, श्याम मेघ के समान चतुर्भुज घनश्याम विराजमान हैं। सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधर आदि शेष भगवान की स्तुति कर रहे थे।

यमुना जी में स्नान करते वक्त अक्रूर जी ने शेष नाग पर गोविन्द का दर्शन किया, तो उनके संदेह की निवृत्ति हो गयी। ये तो साक्षात् परब्रह्म हैं। इन्हें मारने की कोई सामर्थ्य कंस की नहीं है।

भगवान की यह झाँकी निरख कर अक्रूर जी का हृदय आनन्द के सागर में निमग्न हो गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गई। उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। आँखों से आनन्द के अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे जल के भीतर डुबकी लगाये ही भगवान की स्तुति करने लगे। अक्रूर जी ने कहा- प्रभो, आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं। चराचर जगत् के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा आपके ही नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हैं। मैं बड़ी श्रद्धा के साथ आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। इसके बाद जब अक्रूर यमुना-जलसे बाहर निकले तब श्रीकृष्णने उनसे पूछा कि चाचाजी आप चकित क्यों हैं? क्या आपने कोई कुछ आश्चर्य देखा? अक्रूर बोले- वत्स, जब तुमको ही देख लिया तब और क्या आश्चर्य देखना बाकी रहा ? सबकुछ तो आप में ही है। आपको देख लेने के बाद कुछ भी अनदेखा नहीं रह जाता। संसार में सभी तो अद्भुत ही अद्भुत हैं। पृथ्वी में, जल में अथवा आकाश में जितनी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे सब आपके उदर में छिपी हुई हैं। अत: जिसने आप अद्भुत ऐश्वर्यशाली के दर्शन कर लिये उसने सभी अद्भुत वस्तुएँ देख लीं। जब हे सर्वेश्वर, मैंने आपको ही देख लिया तो फिर देखने को शेष ही क्या रहा। जब मैं आपको ही देख रहा हूँ, तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो। हे मधुसूदन, अब उस आश्चर्य के विषय में और अधिक कहने से लाभ ही क्या है? तुम्हें देखने पर अब कुछ भी देखना शेष नहीं रह गया, अब तो हम तुम्हें ही देखते रहना चाहते हैं।

लखि अद्भुत इस्तुति करी, दरशनतैं प्रमुदित परम। बोले- हरि अपवर्गपति, काम अर्थ तुमहीं धरम।।

योगी-जन महापुरुष के रूप में आप का ही ध्यान करते हैं। कई लोग वेदत्रयी के द्वारा यज्ञानुष्ठान करके आप की ही आराधना करते हैं। जब वे इन्द्राय स्वाहा, अग्नये स्वाहा कहते हैं, तब आपका ही नाम लेते हैं। कोई-कोई सब कर्मों का

संन्यास करके केवल ज्ञान-यज्ञ से आपकी ही आराधना करते हैं। निवृत्तिपरायण ऐसे ही लोग आपका ध्यान करते हैं। कोई-कोई पाञ्चरात्र की रीति से बहुमूर्ति के रूप में आप की ही आराधना करते हैं और कोई शिव के रूप में आपकी ही अर्चना करते हैं जैसे सारी नदियों का जल जाकर सागर में समाहित हो जाता हे, वैसे ही सारे देवता, सारे कर्म, सारे सद्धर्म आप में ही जाकर समाहित हो जाते हैं। जो दूसरों के भक्त हैं, दूसरों का यजन करते हैं। वस्तुत: वे सब आपका ही भजन और यजन करते हैं।

जैसे नदी पर्वत से प्रकट होती हैं, वर्षा के जल से भर जाती है तथा समुद्र में जाकर विलीन हो जाती है, वैसे ही जितनी भी गतियाँ हैं, जितने भी सम्प्रदाय हैं, जितने भी पन्थ हैं, ये सब के सब अन्त में जाकर आप में ही समाहित होते है। अन्त में अक्रूर जी ने भगवान से प्रार्थना की- प्रभो, मुझे अविनाशी अक्षर वस्तु का ज्ञान नहीं है इसीलिये मेरा मन सर्वदा चंचल रहता है। उसे वश में रखना मेरे वश में नहीं है। मैं अनधिकारी हूँ। आपकी अहैतुकी कृपा के कारण ही आज मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। प्रभो, आप ही वासुदेव हैं, आप ही समस्त जीवों के आकर्षण (समर्षण) हैं। आप ही बुद्धि और मन के अधिष्ठातृदेवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। प्रभो, आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये।

माखनप्रभु व्रजनाथ के सभी देवता साथ। हाथ जोड़ि अस्तुति करैं धरे चरण पर माथ।।
तनमन रहो भुलायके देखिरूप अभिराम। माखन प्रभु घनश्याम को लाग्यो करन प्रणाम।।
अक्रूर बोले- अजातनुमशरणहौं माखन प्रभु भगवान। ऐसी बुधिमोहिं दीजिए तुम्हैं संकोपहिचान।।

*** जिसपर तुम हो रीझते, क्या देते यदुवीर। रोना-धोना सिसकना, आहों की जागीर।।**